
व्यास.
जनमेजयराजा.
देवी.
हिमाचल.

धन्यवादः ।

अद्य वयं सानन्दं निवेदयामः—"श्रीमत्पण्डितवर्य विद्यावारिधि कविकुलमुकुट भारतधर्ममहामण्डलमहोपदेशकानेकसंस्कृतग्रन्थानुवादक" इत्यादिस्वपराक्रमोपार्जितमहामहाबिरुदशालिश्रीयुतपण्डितज्वालाप्रसादमिश्रेभ्यो मनःपूर्वकं कोटिशो धन्यवादान्ब्रवाम । यैः श्रीयुतैरुक्तपण्डितैःस्वकीयेन निर्मलेन चेतसा नागरीभाषारसिकानां संमोदायात्यन्तिकाहिताय च मन्दप्रज्ञानां विद्यावर्द्धनाय च भाषाकवीनांसुतरामगम्येऽपि संस्कृतगैर्वाणेऽञ्जसा प्रवेशार्थं श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणस्य सुन्दरसरलात्यानन्दवर्धकभाषाटीकां विरचय्यातुलं यशःसमासादितम् । वयमेतादृशविद्याप्रचारेणजगद्धितकरश्रीमदुक्तपण्डितानामहर्निशंर्माभरप्रार्थनया दीर्घमायुराशास्महे । येन चैतादृशानेकग्रन्थप्रकाशनेन लोकोपकारकृत्यानि बहूनि भवेयुरिति । विद्वद्गुणग्रहणकौतुकी-खेमराज श्रीकृष्णदास.

श्रेयस्कर्थना.

अस्माकं मुद्रालये वेद-वेदान्त-धर्मशास्त्र-प्रयोग-योग-सांख्य-ज्योतिष-पुराणेतिहास-वैद्य-मंत्र-स्तोत्र-कोश-काव्य-चम्पू-नाटकालंकार-संगीत-नीति-कथाग्रंथाः बहवः स्त्रीणां चोपयुक्ता ग्रंथाः; बृहज्ज्योतिषार्णवनामा बहुविचित्रचित्रितोऽप्यपूर्वग्रंथः; संस्कृतभाषया, हिन्दी-गार्वाड्यन्यनरभाषाग्रन्थारतत्तच्छालायर्थानुवादकाः, चित्राणि, पुस्तकमुद्रणोपयोगिन्यो यावत्यस्सामग्र्यः; स्वस्वलौकिकव्यवहारोपयोगिचित्रचित्रितालिखितपत्रपुस्तकानि च, मुद्रयित्वा प्रकाशन्ते सुलभेन मूल्येन विक्रयाय । येषां यत्राभिरुचिस्तत्तत्पुस्तकाद्युपलब्धये एवं नव्यतया स्वस्वपुस्तकानि मुमुद्रयिषुभिःसुलभयोग्यमौल्येन सीसकाक्षरैः स्वच्छोत्तमोत्तमपत्रेषु मुद्रिततत्पुस्तकानां स्वस्वसमयानुसारेणोपलब्धये च पत्रिकाद्वारा तैःप्रेरणीयोऽस्मि । अधिकमस्मदीयबृहत्सूचीपत्रनिदर्शितपुस्तकानां भिन्नभिन्नविषयाणां प्रापणेन 'श्रीवेङ्कटेश्वरसमाचार' पत्रिकाप्रापणद्वारा च ज्ञेयमिति शम् ।

क्षेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालयाध्यक्ष-मुम्बई.

देवीभागवत-महापुराणत्वसंस्थापन।

पुराणोंमें दो भागवतोंका नाम पायाजाता है एक महापुराणोंमें और एक उपपुराणोंमें दोभागवतोंमें एक श्रीमद्विष्णुभागवत दूसरी श्रीमद्देवीभागवत है सांप्रदायी पण्डितोंका इनमें सदा विवाद रहता है एक विष्णुभागवतको आधुनिक कोई उपपुराण कहते हैं. दूसरे देवीभागवतको उपपुराण कहते हैं हम थोडीसी श्रीनीलकण्ठकी सम्मति लिखकर पीछे अपना मत प्रकाश करेंगे. यदि कोई कहे एकही भागवतका नाम पाया जाता है उन्हें जान्ना चाहिये कि, कूर्म, गरुड़, पद्मपुराणोंमें उपपुराणोंमें दूसरी भागवतकी स्पष्ट गणना की है कूर्मपुराणमें अठारह पुराणोंके नाम लेकर "अन्यान्युपपुराणानि मुनिभिः कथितानि तु। आद्यं सनत्कुमारोक्तं नारसिंहमतःपरम्। पराशरोक्तं प्रवरं तथा भागवताह्वयम्" हेमाद्रिदानप्रस्तावे। अर्थात् और भी उपपुराण मुनियोंने कहे हैं वह सनत्कुमार नारसिंह भागवतादि हैं यहां उपपुराणोंमें भागवतका नाम आया है तथा गरुडपुराणके तत्वरहस्यके द्वितीयांशके अन्तर्गत धर्मकाण्डके प्रथमाध्यायमें जहां पहले सात्विकादिभेदसे पुराणोंका विभाग किया है और इसी प्रकार उपपुराणोंका सात्विकादि भेद दिखायाहै वहां कहा है "पुराणं भागवतं दौर्गं नन्दिप्रोक्तं तथैवच। पाशुपत्यं रेणुकं च भैरवं च तथैव च" अर्थात् दुर्गामाहात्म्ययुक्त भागवत और नन्दिकेश्वरप्रोक्त पाशुपतादिपुराण उपपुराण हैं और पहले विष्णुधर्मोत्तरमें कहा है "तत्र भागवतं तथा" इति "तंत्रे भागवतं तथा" इति ऐसा भी पाठ है तंत्रका अर्थ शास्त्र है, इस विशेषणसे ग्रंथकी उत्तमता प्रतीत होती है, फिर पद्मपुराणके शकुनपरीक्षास्थलमें "ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवञ्च मार्तण्डं नारदेरितम्" इत्यादि, "तथैव गदितं राम पुराणं कापिलं तथा। वाराहं ब्रह्मवैवर्तं शकुनेषु प्रशस्यते। शैवं भागवतं दौर्गं भविष्योत्तरमेव च।" फिर पद्मपुराणके भागवतमाहात्म्यके १९ अध्यायमें "शैवमादिपुराणं च देवीभागवतं तथा।" इत्यादि प्रमाणोंसे देवीभागवतका उपपुराण होना सिद्ध होता है। और मधुसूदनसरस्वतीकृत सर्वशास्त्रार्थसंग्रह नाम ग्रंथमें तथा नागोजिभट्टकृत धर्मशास्त्र तथा दूसरे निबन्धकारोंके ग्रंथोंमें देवीभागवतको उपपुराण माना है.

यदि कहो कि, देवीभागवतके प्रथमाध्यायमें "तत्र भागवतं पुण्यं पंचमं वेदसम्मितम्" इसको परमपवित्र और वेदतुल्य कहा है तब यह स्वयंही जब अपनेको पंचम महापुराण कहता है तब दूसरे पुराण कैसे इसकी उपपुराणोंमें गणना करते हैं इसका उत्तर यह है कि नारदीय वायुआदिने अपनेको महापुराण कहाहै तौभी कितने एक पुराणोंने उनकी उपपुराणमें गणना की है, इससे पुराणोंकी सम्मतिसे किसीके महापुराण किसीके उपपुराण प्रतिपादित होनेसे विरोध नहीं जान्ना, यह भेद भक्तिदृढताके निमित्त है यथा वैष्णवपुराणके मतमें शैवपुराण तामस है और विष्णुसम्बन्धी पुराण सात्विक हैं इसीप्रकार स्कन्दपुराणके मतसे वैष्णवपुराण तमोगुणयुक्त हैं यथा "दश चैव पुराणानि सात्विकानि विदुर्बुधाः। तामसानि च चत्वारि वैष्णवानि प्रचक्षते" इस

स्कन्दपुराणके वचनसे वैष्णवपुराण तामस हैं तथा शिवपुराणके मतसे भी इसीप्रकार जानना, तथा नारदीयपुराणान्तर्गतमहापुराणोंकी सूचीमें इस पुराणने अपनेको स्वयं महापुराण कहा है किन्तु मद्वयं "भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम्। अलिंपाग्निपुराणानि कूस्कं गारुडमेव च" इस देवीभागवतके वचनसे और वक्ष्यमाणमुद्गलपुराणके वचनसे यह महापुराणबहिर्भूत होते हैं शिवपुराण भी अपनेको महापुराण कहता है यदि कहो कि वायुपुराणको तो निश्चयही पुराणोंमें गणना करना और शिवपुराण केवल शिवप्रतिपादक होनेसे वकारचतुष्टयमें उसका सम्भव नहीं है सो नहीं हैं मुद्गलपुराणमें लिखा है "ब्राह्मं च वैष्णवं पाद्मं शैवं भागवतं तथा। भविष्यं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेयं च वामनम्। आग्नेयं वायवं मात्स्यम्" इत्यादि इन वचनोंसे शिव और वायुपुराणको पृथक् ग्रहण किया है तथा वायुपुराणने अपनेको महापुराण और दूसरे कई पुराणोंको महापुराणोंसे बहिर्भूत किया है तो कहीं कोई महापुराणोंसे बहिर्भूत कहीं वह उनसे बहिर्भूत है आदित्यपुराणमें "अलिंपाग्निपुराणानि" आदित्य, लिंग, पद्म, अग्नि, और किसी किसी पुराणमें "अनापलिङ्गकूस्काख्यम्" इनहीको उपपुराण कहा है जब इन चार पुराणोंको कहीं महापुराण कहीं उपपुराण कहा है तो देवीभागवतमें क्या विरोध है मतभेदसे दोनोंही वचनोंका प्रमाण होगा, यदि कहो कि और उपपुराण "मुनिभिः कथितानि तु" अन्यमुनियोंके कहेहुएहैं इस वचनसे उपपुराण अन्यमुनियोंके रचे हैं और देवीभागवत स्वयं व्यासजीने रची है तब यह उपपुराणोंमें किसप्रकार होसक्ती है, यह बात नहीं है कारण कि नारद शिव वायव्यादि अनेक पुराणोंमें देखा जाता है कि अनेक पुराण वेदव्यासकृत होनेपर भी किसी २ पुराणके मतसे उनको उपपुराण कहा है इससे पूर्वका नियम क्रमसे अङ्गीकार नहीं हो सकता किन्तु यह वचन सत्वके अभिप्रायसे सन्निविष्ट है ऐसाही स्वीकार कियाजायगा इसप्रकारसे दोनों भागवत किसी पुराणमें महापुराण और किसीमें उपपुराण कहीगईहैं शिव और मत्स्यपुराणके मतसे देवीभागवत महापुराण है, शैवपुराणके उत्तर खण्डके मध्यमेश्वरमाहात्म्यमें शिवसे वर प्राप्तकरके व्यासने महापुराण बनाये वहां उनका निर्वचन इस प्रकारसे किया है–

"यत्र वक्ता स्वयं तण्डे ब्रह्मा साक्षाच्चतुर्मुखः। तस्माद्ब्राह्मं समाख्यातं पुराणं प्रथमं मुने ॥ १ ॥ पद्मकल्पस्य माहात्म्यं तत्र यस्मादुदाहृतम्। तस्मात्पाद्मं समाख्यातं पुराणं च द्वितीयकम् ॥ २ ॥ पराशरकृतं यत्तु पुराणं विष्णुबोधकम्। तदेव व्यासकथितं पुत्रपित्रोरभेदतः ॥ ३ ॥ यत्र पूर्वोत्तरे खण्डे शिवस्य चरितं बहु। शैवमेतत्पुराणं हि पुराणज्ञा वदन्ति च ॥ ४ ॥ भगवत्याश्च दुर्गायाश्चरितं यत्र विद्यते। तत्तु भागवतं प्रोक्तं न तु देवीपुराणकम् ॥५॥ नारदोक्तं पुराणं तु नारदीयं प्रचक्षते॥ यत्र वक्ता भवत्तण्डे मार्कण्डेयो महामुनिः ॥ ६ ॥ मार्कण्डेयपुराणं हि तदाख्यातं च सप्तमम्। अग्नियोगात्तदाग्नेयं भविष्योक्तेर्भविष्यकम् ॥ ७ ॥ विवर्तनाद्ब्रह्मणस्तु ब्रह्मवैवर्तमुच्यते। लिंगस्य चरितोक्तत्वात्पुराणं लिंगमुच्यते ॥ ८ ॥

वराहस्य च वाराहं पुराणं द्वादशं मुने । यत्र स्कन्दः स्वयंश्रोता वक्ता साक्षान्महेश्वरः ॥ ९ ॥ तत्तु स्कान्दं समाख्यातं वामनस्य तु वामनम् । कौर्मं कूर्मस्य चरितं मात्स्यं मत्स्यस्य कीर्त्तितम् ॥ १० ॥ गरुडस्तु स्वयं वक्ता यत्तद्गारुडसंज्ञितम् । ब्रह्माण्डचरितोक्तत्वाद्ब्रह्माण्डं परिकीर्त्तितम् ॥ ११ ॥

हेतण्डे मुनि! जिस व्याससंकथित प्रथम पुराणमें साक्षात् ब्रह्माजी वक्ता है वह पहला ब्राह्म पुराण है ॥ १ ॥ जिसमें पद्मकल्पका माहात्म्य वर्णन है वह पाद्मपुराण है ॥ २ ॥ पराशरनिर्मित विष्णुपुराण विष्णुमहिमासम्पन्न हैं पितापुत्रकी एकात्मा होनेसे यह व्यासनिर्मित कहा जाता है ॥ ३ ॥ जिसके पूर्व उत्तरखण्डमें बहुतायतसे शिवकी कथा है, वह शिवपुराण है ॥ ४ ॥ जिसमें भगवती दुर्गाका चरित्र है वह भागवत है परन्तु देवीपुराणका नाम देवीभागवत नहीं इनमें भेद है ॥ ५ ॥ नारदका कथित नारदीयपुराण, मार्कण्डेय कथित ॥ ६ ॥ सातवां मार्कण्डेयपुराण है, अग्निदेवसम्बन्धसे प्रयुक्त अग्निपुराण और भविष्यवृत्तान्तवाला भविष्यपुराण है ॥ ७ ॥ जिसमें विशेषरूपसे ब्रह्मतत्त्व विवृत हुआहै वह [illegible] लिंगअर्चनाका माहात्म्य वर्णन करनेसे लिंगपुराण कहाता है ॥ ८ ॥ इसी प्रकार [illegible]स्मृतसम्बन्धसे युक्त वराहपुराण जिसमें स्कन्द श्रोता और महेश्वर वक्ता हैं ॥ ९ ॥ वह स्कन्दपुराण है वामनके सम्बन्धसे वामन कूर्मके चरित्रसे कूर्म और मत्स्यके चरित्रसे मत्स्यपुराण ॥ १० ॥ जिसके गरुड वक्ता हैं वह गरुडपुराण है ब्रह्माण्डके चरित वर्णनसे ब्रह्माण्डपुराण कहाता है ॥ ११ ॥

इसका तात्पर्य यह कि कोई पुराणवक्तासम्बन्धसे कोई श्रोतासम्बन्धसे और कोई प्रतिपाद्य मुख्य देवताके चरित्रसम्बन्धसे नाम युक्त हुआहै, यह इन वचनोंसे स्पष्टही है तब पांचवे श्लोकसे दुर्गाके चरित्र वर्णन होनेसे देवीभागवत महापुराण कहा है और इसी नामसे यह प्रवृत्त हुआ है इस श्लोकमें तुशब्द निश्चयार्थबोधक है अर्थात् इसकाही नाम भागवत है. यदि कोई इसको उपपुराण कहनेका प्रयास करै तौ उसके निमित्त कहा है " न तु देवीपुराणकम् " पुराणकमें अल्पार्थमें कप्रत्यय है भाव यह कि, वह क्षुद्रपुराण नाम उपपुराण है और " देव्याः पुराणकम् " अर्थात देवीसम्बन्धीपुराण यह कहनेसे स्पष्ट विदित होता है कि जब ऐसा अर्थ होगा तो वह देवीपुराणक नहीं होगा, भाव यह कि, महामुनिव्यास देवने यह वचन कहकर दूसरेका महापुराणत्व और निज अभिप्रेतवस्तुका उपपुराणत्व निवारण किया है और देवीभागवतको महापुराण माना है और महापुराणोंमें भगवतीके चरित्रयुक्त दूसरा महापुराण है भी तो नहीं यदि कहो कि, नारदपुराणके मतसे विष्णुभागवत महापुराण है तब दोनोंको ही महापुराण मानकर अपना २ अभीष्ट सिद्ध करलें और विष्णुभागवतके भी दशमस्कन्धमें विन्ध्यवासनीका किंचित् चरित्र वर्णित हुआ इससे इसीको सर्वोत्तम महापुराण मानलो सो नहीं यादि भगवान् व्यासको यह अभीष्ट होता तौ भगवत इदं भागवतम् ऐसी व्युत्पत्ति करते सो व्यासजीने ऐसी व्युत्पत्ति क्यों न की क्या उनको कुछ भय था जो स्वच्छ निरुक्ति छोडकर दूसरे प्रकारकी निरुक्ति करते, इसी प्रकार " यत्र पूर्वोत्तरे खण्डे शिवस्य चरितं

वहु" इत्यादि शिवपुराणकी निरुक्ति की है, इससे मुनिके अभिप्रायका स्पष्ट मर्म विदित होता है, मतभेदसे पुराणभेदकी कल्पना नूतन नहीं है, पूर्वोक्त युक्तिके वलसे नारद शैव और आदित्यपुराण भिन्न और भी स्थलोंमें बहुत युक्ति तथा प्रमाण हैं, यदि गौरवकी आशंका करो तो भी विशेष क्षति नहीं कारण कि, गौरवके भयसे भीत होकर मुनि तात्पर्यको अन्यथा नहीं करेंगे, इससे पूर्वोक्त तात्पर्यको छोडकर और तात्पर्य अवलम्बन करनेसे, अन्यथा करनेका प्रयास करना महासाहसका कार्य कहाजायगा. और गायत्रीछन्दसे आरम्भ तथा वृत्रासुरकी विशेष कथाभी इसीमें यथायोग्य सन्निविष्ट हुई है, इससे भगवान् व्यासने इसको महापुराण कहा है. यह हमारा स्थिर सिद्धान्त है बुद्धिमान् इसको स्वयं विचार करलें. कालिकापुराणके वचन हेमाद्रिमें हैं "यदिदं कालिकाख्यं तन्मूलं भागवतं स्मृतम्" यह वचन विशेषरूपसे देवीभागवतको महापुराण जनाते हैं, कारण कि, "अष्टादशभ्यस्तु पृथक्पुराणं यत्प्रदृश्यते।विजानीध्वं द्विजश्रेष्ठास्तथा तेभ्यो विनिर्गतम् ॥" इस मत्स्यपुराणके वचनसे उपपुराण सव महापुराणोंसे निर्गत हुए हैं, तब यह कालिकापुराण किस महापुराणसे निर्गत हुआहै "कालिकाख्... वचनों... मूलं भागवतं विदुः" । अर्थात् इसका मूल भागवत है ऐसा निवन्धकारोंने कहा है, जैसे और उपपुराण एक एक महापुराणोंसे निर्गत हैं इसीप्रकार यह कालिकापुराण महापुराण भागवतसे निर्गत है यहां भागवतसे देवीभागवतकाही ग्रहण होगा, कारण कि, विष्णुभागवतमें तो यह चरित्र सम्भव ही नहीं है, इससे देवीसंबन्धी उपपुराण देवीभागवत मूलक है. जब कि, शैव उपपुराण शिवमहापुराणसे और वैष्णव उपपुराण विष्णुमहापुराणसे उद्धृत देखेजाते हैं तब देवीसम्बन्धी उपपुराणभी देवीसम्बन्धी महापुराणसे संगृहीत है इसमें सन्देह क्या इससे देवीभागवत महापुराण है आदित्यपुराणके अनुसारभी देवीभागवत महापुराण है रक्तासुरवधके प्रस्तावमें लिखा है "या जघ्ने माहिषं दैत्यं क्रूरं वृत्रासुरं तथा । साद्य रक्तासुरं हत्वा स्वाराज्यं ते प्रदास्यति" जिसने क्रूर महिषासुर और वृत्रासुरको मारा वह रक्तासुरको मारकर तुझको स्वाराज्य देगी इस वचनसे देवीभागवतकीही सम्मति दिखाई है देवीभागवतके सिवाय किसी पुराणमें देवीद्वारा वृत्रासुरवध नहीं है विष्णुभागवतमें इन्द्रद्वारा वध है और पुराणदानके प्रस्तावमें वहांही कहा है "ददाति सूर्यभक्ताय यस्तु भागवतं द्विजाः॥सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वव्याधिविवर्जितः । जीवेद्वर्षशतं साग्रमन्ते वैवस्वतं पदम्॥" अर्थात् सूर्यभक्तके निमित्त जो भागवत देते हैं वह सब पापरहित हो सौ वर्षतक जीने उपरान्त अन्तमें वैवस्वतके पदको जाते हैं इस वचनसे देवीभागवतही सिद्ध होती है कारण कि देवीभागवतके प्रथमश्लोक और ग्यारहवें स्कन्धमें और वारहवें स्कन्धमें विस्तारपूर्वक गायत्रीविधानक सहस्रनामादिकी वर्णनामें गायत्रीको ही सर्व प्रधान सूर्यकी अधिष्ठात्री कहकर वर्णन किया है और यदि विष्णुभागवतका आशय होता तो देनेवाला वैकुण्ठको जायगा ऐसा कहते मत्स्यपुराणमें लिखाहै "यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्ण्यते धर्मविस्तरः । वृत्रासुरवधोपेतं तद्भागवतमिष्यते ॥" जहां गायत्रीको लेकर धर्मविस्तार कहा जाय वह भागवत है, इस मत्स्यवचनसे इसमें पहला श्लोक तीनचरण-

युक्त है कारण कि वेदोंमें त्रिपदागायत्री सुनी है इससे देवीभागवत महापुराण सिद्ध है यदि कहीं प्रथम श्लोक चतुष्पाद दीखें तो वह नवीन पाठ जान्ना कारण कि वह पुराने ग्रंथोंमें नहीं हैं, यदि कोई कहै कि गायत्री विष्णुकी प्रतिपादक है तब मैत्रायणी शाखामें "भर्गो वै रुद्रः" इससे रुद्रको भर्ग माना है और प्रपंचसारप्रभृति तंत्रोंमें प्रधान २ पुराणोंमें शिवशक्तिआदिके पक्षमें अर्थ विद्यमान है तब एकही कैसे माने 'असति ह्यनुमानम्' वाक्य न मिलनेपर अनुमानसे जानलेना इसप्रकार स्तावकवाक्य है पर यह प्रधानवाक्योंके सन्मुख अग्राह्य है.

अपिच " हयग्रीवब्रह्मविद्या यत्र वृत्रवधस्तथा । गायत्र्या च समारम्भस्तद्वै भागवतं विदुः" अर्थात् जिसमें हयग्रीव दानवको ब्रह्मविद्यालाभ हुई है वृत्रासुरका वध और गायत्रीसे आरंभ है वह भागवत है इससे भी देवीभागवत ही महापुराण सिद्ध होती है अर्थात् देवीभागवतके प्रथमस्कंधमें हयग्रीवका विस्तारसे वर्णन है यदि कहो कि विष्णुभागवतके पंचमस्कन्धमें हयग्रीवका कुछ [illegible]व्याख्यान देखा जाताहै तो दोनोंहीका ग्रहण होगा सो नहीं कारण कि नारदीय [illegible] आदि निबन्धोंमें "मन्त्राःपुरुषदेवताःप्रोक्ताः विद्याः स्त्रीदेवताः स्मृताः" [illegible] सप्तदश [illegible]याका मंत्र स्त्रीदेवतात्मक होगा पुरुषदेवतात्मक नहीं और जो कहीं हो तौ गौणरूपसे स्वीकार होगा, सो गौणार्थका अवलम्बन करनेपरभी विष्णुभागवतपर संगत नहीं होता कारण कि उसमें लक्षणा स्वीकाररूप दोष होगा, देवीभा० "जपेदेकाक्षरं मंत्रं मायाबीजात्मकं मम" यह स्पष्ट देवीभागवतमें लिखा है इससे यह वचन दोनों भागवतोंमें न लगकर देवीभागवतपरही चरितार्थ होता है और मत्स्यपुराणमें "सारस्वतस्य कल्पस्य" इस वचनके द्वारा देवीभागवतकोही महापुराण कहा है मत्स्यपुराणके ५३में अध्यायमें पुराकल्पका ब्रह्मपुराण वाराहकल्पका वाराहपुराण और सारस्वत कल्पकी भागवत कही है और फिर उपपुराणका इसीप्रकार वर्णन कियाहै पद्मसे नृसिंहपुराण इत्यादि इस प्रकारसे अष्टादश पुराणके अतिरिक्त जो पुराण हैं उनका मूल महापुराण हैं फिर आगे यहभी लिखा है कि हरिमहिमापूर्ण कल्प सात्विक पितामह ब्रह्माकी महिमापूर्ण कल्प राजसिक अग्नि और रुद्रदेवकी महिमापूर्ण कल्प तामस सरस्वती और पितृगण माहात्म्यवर्णित कल्प सब गुणोंसे मिश्रित होनेसे संकीर्ण हैं जब यह चार विषयही पुराणोंमें वर्णित हैं तब निज२ कल्पके निज२ देवता प्रगट लिखनेसे सारस्वतकल्पका विषय वर्णित होनेसे लोकमें सरस्वती देवीप्रधान यह देवीभागवतही महापुराण है कारण कि उन कल्पोंके वे वे पुराण प्रसिद्ध हैं जैसे वाराहका वाराह इत्यादि इससे यही भागवत महापुराणरूपसे सिद्ध है विष्णुभागवतमें सरस्वतीकी महिमा नहीं है विष्णुभागवतके दूसरे स्कन्धमें स्वयंही "पाद्मं कल्पमथो शृणु" ऐसा कहा है इससे यह पद्मकल्पकी कथा है यदि कहो कि पद्मकल्पही सारस्वतकल्प है तो यह कहनाभी ठीक नहीं " पद्मकल्पस्य वृत्तान्तं पूर्वं यस्मादुदाहृतम् । तस्मात्पाद्मं समाख्यातम्" इस शिवपुराणके वचनसे और "एतदेव यदा पद्ममभूद्धैरण्मयं जगत् । तद्वृत्तान्ताश्रयं तद्वत्पाद्ममित्युच्यते बुधैः । पाद्मं तत्पंचपंचाशत्सहस्राणि तु कथ्यते " इससे ५५००० पद्मपुराण पद्मकल्पका है और "सारस्वतस्य

कल्पस्य मध्ये ये स्युर्नरामराः" इस वचनसे सारस्वत कल्पमें देवीभागवतका होना सिद्ध है जब दो कल्प एक कैसे होसकते हैं और जब सारस्वत और पद्मकल्प एक हों तो पद्मपुराण और भागवत पुराण यह दोनों भी एकही होने चाहिये और फिर प्रसिद्ध पद्मकल्पको छोडकर उसका अप्रसिद्ध नामभी तो नहीं होसक्ता यदि कहो कि मत्स्यपुराणके अन्तिम अध्यायमें पद्मकल्प नहीं कहा है तो इसका सारस्वत कल्पमेंही अन्तर्भाव होगा सो नहीं कारण कि यह तो सब कल्प तिथिपरत्व कहे हैं और वायुपुराणके कहे पद्मकल्पादि दिनपरत्व है और वहां 'ब्राह्मं पाद्ममिमं यस्तु पठेत्पर्वणि पर्वणि' ऐसा कहाभी है और जिस पुराणमें जिस कल्पका आरंभ करके लिखा जाता है जिस कल्पका प्रथम प्रतिपादन होता है उस कल्पकाही वह पुराण प्रतिपादक है ऐसा नियम है ब्रह्मवैवर्त में कृष्णजन्म-खण्डमें यह कथा सारस्वतकल्प की है पर आदिसे तो दूसराही कल्प चलता है कारण कि यों तो प्रायः अनेक पुराणोंमें कृष्णजन्मके चरित्र आदि हैं तब वे सब सारस्वतकल्पके नहीं हो सकते अथवा क्या कृष्णचारित्र होनेसे सब पुराणही भागवत हो जायँगे, इससे सारस्वतकल्पकी कथाश्रित देवीभागवतही महापुराण[illegible] उमासंहितामें "महा-विद्या जगद्धात्री सर्वविद्याधिदेवता । द्वादश्यां फाल्गु[illegible] हुआहै "कालिकाभूंन्नृप"इस श्लोकसे भगवतीका प्रादुर्भाव फाल्गुनशुक्लद्वादशीको हुआ है और उसी दिन सारस्वत कल्पका उद्भव हुआ है, जैसे हेमाद्रिके कल्पश्राद्धप्रकरण नागरखण्डमें लिखाहै "सारस्वतस्तु द्वादश्यां शुक्लायां फाल्गुनस्य च" इत्यादि इससे सारस्वतकल्पमें सरस्वतीकी पूर्ण महिमा होनेसे यह सर्वथा देवीभागवतका ही विषय है और सारस्वत कल्प होनेसे इसमें संकीर्ण विषयका वर्णन है.

और "अम्बरीष शुकप्रोक्तं नित्यं भागवतं शृणु" यहां शुकाय प्रोक्तम्" शुकदेवके निं-मित्त कहीहुई ऐसा अर्थ होनेसे यह वचनभी देवीभागवतपरत्वही बोध होता है, विष्णुभा-गवतका होना महाभारतके उपरान्त कहा है भारत और १७ पुराण बनाकरभी जब व्यास-जीको सन्तोष न हुआ तब विष्णु भागवत बनाई, और "अष्टादशपुराणानि कृत्वा सत्य-वतीसुतः । भारताख्यानमखिलं चक्रे तदुपबृंहितम्" इस मत्स्यपुराणके वचनसे पुराणों-के पश्चात् भारत है तो इस वचनसे तो देवीभागवतही महापुराण कहाजाताहै कारण कि; विष्णुभागवत भारतके उपरान्त हुई है यदि कहो कि देवीभागवतके ३ "स्कंधमें वेदशाखाः पुराणानि वेदान्तं भारतं तथा। कृत्वा संमोहसंमूढोऽभवं राजन्मनस्याति ॥"इति अर्थात् हेरा-जन् ! मैं वेदशाखा पुराण वेदान्त भारतको निर्माण करकै अविद्याजनित मोहसे व्याकुल हुआ था तब देवीभागवतके इस वचनसे शंका होती है कि तबतक देवीभागवत न थी सो नहीं, व्यासजीने जानलिया था कि में जन्मेजयके प्रति वक्ता हूंगा इसकारण उन्होंने ज्ञान दृष्टिसे पूर्वमेंही निर्माण करलीथी, और विष्णुभागवतमें यह बात कल्पित नहीं होसकती कारण कि चार श्लोकसे उसकी उत्पत्ति है उपदेशसे पूर्व उसके ज्ञानका अभाव है, और जो उससेभी पूर्व व्यासका ज्ञान मानोंगे तो सब वक्ष्यमाण अर्थवाद होजायगा, और ग्रं-थके सारका भंगप्रसंग होगा, "वेदशाखाःपुराणानि"यह पाठ असंगत है सो वहीं दिखावैं-गे जिससे विरोध प्रतीत न होगा.

और जो पद्मपुराणके भागवतमाहात्म्यमें भागवतकी कथा श्रवणको आये हैं वहां लिखा है "दशसप्तपुराणानि षट्शास्त्राणि समाययुः" अर्थात् वेदादि तथा १७ पुराण और छःशास्त्र आये यहां श्रीमद्भागवतको जोडनेसेही १८ की पूर्ति होती है और पद्मपुराणमें "दशसप्तपुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुतः। नाप्तवान्मनसा तोषं भारतेनापि भामिनि॥ चकार संहितामेतां श्रीमद्भागवतीं पराम् ॥" अर्थात् सत्रह पुराण और भारत बनाकर जब व्यासजीको संतोष नहुवा तब भागवत बनाई तब अष्टादशकी उक्ति न करके सत्रह पुराण कहकर अठारहीं श्रीमद्भागवत भारतके उपरान्त कहनेवालोंका कथन ठीक नहीं कारण की उनके वचनोंसे विष्णु भागवत अठारहवीं सिद्ध नहीं होती देवीभागवतही होती है कारण कि,महाभारतको सुनकर संदिग्ध हो क्रौष्टुकीने आनकर मार्कण्डेयसे जो प्रश्न कियेहैं उसपर मार्कण्डेयने मार्कण्डेय पुराण कहाहै "तत्वतो ज्ञातुकामोहं भगवन्तमुपस्थितः" इससे भारतके पश्चात् मार्कण्डेयपुराण हुआहै और विष्णुभागवत भी, तौ भारत से पहले सोलह पुराण सिद्ध होते हैं यदि कहो [illegible] इसमें क्षति क्या है इसपर कहते हैं पूर्व में दशसप्तकी कथा न कहकर सोलह [illegible] कहकर सत्रह कहे हैं इससे देवीभागवतको प्रथमही महापुराण स्वीकार किये विना सप्तदश पुराण भारतसे पहले सिद्ध नहोसकैंगे और हमारे मन्तव्यमें कोई विरोध नहीं आता कि, भारतसे पूर्व देवीभागवतसहित सप्तदश पुराण रहे और मार्कण्डेय पश्चात्का यह सब मिलकर अठारह ठीक होतेहैं पण्डितगण इसको विचारकर देखें और जो पद्मपुराणमें लिखा है "वैष्णवं नारदीयं च तथा भागवतं शुभम्। गारुडं च तथा पाद्मं वाराहं शुभदर्शने। सात्विकानि पुराणानि विज्ञेयानि शुभानि वै"। इसमें भागवतको सात्विक कहा है और कूर्मके वचनसे सात्विक पुराण विष्णुपरक है, तो विष्णुभागवतकाही ग्रहण है देवीभागवतका नहीं और स्कन्दपुराणमें लिखाहै "चतुर्भिर्भगवान् विष्णुर्द्वाभ्यां ब्रह्मा तथा रविः।आष्टादशपुराणेषु शेषेषु भगन्वाभवः"॥अर्थात् चार पुराणोंमें विष्णु दोमें ब्रह्मा और सूर्य शेषमें शिवका वर्णनहै,इससे विष्णुभागवतहीका ग्रहण होताहै, यह कहना ठीक नहीं, कारण कि,यहां तीन गुणोंकाही वर्णन है मत्स्यपुराणोक्त संकीर्णताकी व्यवस्था नहीं है, तौ कहिये संकीर्णका किन पुराणोंमें अन्तर्भाव है, मैं तौ क्रमदीपिकाके प्रकरणसे "मंत्राधिष्ठात्रीं देवतां वेदमातरं दुर्गांदुर्बोधध्वान्तभानुं गुरुं चरति" विष्णुमंत्रोंकी दुर्गा अधिष्ठाता होनेसे और अभिन्न होनेसे सात्विकके ही अन्तर्गत होती है. इसीसे "हरिर्द्वाभ्यां रविर्द्वाभ्यां द्वाभ्यां चण्डीविनायकौ ॥ द्वाभ्यां ब्रह्मा समाख्यातः शेषेषु भगवाञ्छिवः" अर्थात् दो पुराणोंमें हरि दोमें रवि दोमें चण्डी और विनायक दोमें ब्रह्मा और शेषमें शिव कहे गये हैं यह वचन चरितार्थ होता है।

वास्तवमें हमारे मतमें दोनों भागवतही सप्रमाण हैं विष्णुभागवतके पक्षपातियोंके वचनोंसहित कोई विरोध नहीं हैं इससे इस विषयमें और कुछ कहना निष्प्रयोजन है और नारदीयप्रभृति पुराणोंके मतसे विष्णुभागवत महापुराण है ये वचन सर्वथा प्रसिद्ध हैं अब यहां उनके लिखनेका प्रयोजन क्या है, उनके मतसे देवीभागवत उपपुराण है शिव और मत्स्यपुराणादिके मतसे देवीभागवत महापुराण और विष्णुभागवत उपपुराण है.

इसमें देवीभागवतके महापुराणत्वसंस्थापनमें कितने एक पण्डित देवीयामलके "श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं वेदसम्मितम्। पारीक्षितायोपदिष्टं सत्यवत्यंगजन्मना । यत्र देव्यवताराश्च बहवः प्रतिपादिताः" अर्थात् सत्यवतीसुत व्यासदेवने यह वेदसम्मत भागवतनाम पुराण जनमेजयको सुनाई जिसमें देवीके अनेक अवतार हैं तथा "इदं रहस्यं चरितं राधोपासनमुत्तमम् । व्यासाय मम भक्ताय प्रोक्तं पूर्वं मयाद्रिजे।मत्तो रहस्यं ज्ञात्वैव राधामाहात्म्यमुत्तमम्। एतस्य विस्तरं चक्रे श्रीमद्भागवते तथा । नारदे ब्रह्मवैवर्ते लोकानां हितकाम्यया" हे पर्वतपुत्री! श्रीमहालक्ष्मीदेवी राधाका सर्वोत्तम अतिगोपनीय उपासना और चरित्र हमने पूर्वमें अपने परमभक्त व्यासदेवजीको दिया था उन्होंने हमारे समीपसे सर्वश्रेष्ठ गूढतत्व राधामाहात्म्य प्राप्तकरके सब लोकोंके हितकी कामनासे नारदीय ब्रह्मवैवर्त और भागवतप्रभृति ग्रन्थोंमें विस्तार किया औरभी सौभाग्यकल्पलतामें संहारभैरवके वचन अनेक लिखे हैं उनको गौरवके भयसे नहीं लिखते यही बहुत है पण्डितोंको इन वचनोंको विचारकर दोनों ग्रंथोंको पूर्ण आदरसे देखना चाहिये.

भगवतीकी उपासनाविषयमें कोई २ भ्रान्त पंडित कहते हैं कि जो इस शास्त्रमें मायाकी उपासना भगवतीकी उपासना कही है तो माया मिथ्या है इसमें उसकी अनन्वय घटना उपस्थित होगी इस्से यह उपासना श्रद्धाके योग्य नहीं है इसपर कहते हैं यह भ्रान्ति नहीं है तापनीयमें लिखाहै "माया वा एषा नारसिंही सर्वमिदं सृजति सर्वमिदं रक्षति सर्वमिदं संहरति तस्मान्मायामेतां शक्तिं विद्याद्य एतां मायां शक्तिं वेद स मृत्युञ्जयति स पाप्मानं तरति सोमृतत्वं च गच्छति महतीं श्रियमश्नुते" [नृ०ता०]यह नृसिंहशक्ति महामाया सब इस जगत्की उत्पत्ति करके इस सबकी रक्षा और संहार करती है इस्से इस मायाशक्तिको जानकर जो इस शक्तिको जान्ता है वह मृत्युको जय करता पापसे तरता अमर होकर महालक्ष्मीको प्राप्त होता है अतएव जब श्रुतिमें मायाशक्तिकी उपासना करनेसे और उसको जाननेसे उपासक मृत्युके जीतनेमें समर्थ होताहै इस प्रकार कहागयाहै और "त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्य्या विश्वस्य बीजं परमासि माया । सम्मोहितं देवि समस्तमेतत्" । हे देवी ! तुम विश्वव्यापिनी, अनन्तवीर्यरूपिणी महाशक्ति हो, तुम्हीं इस विश्वको कारण स्वरूप और तुम्हीं महामाया हो, यह सब संसार तुम्हारी मायासेही विमोहित है। यदि कहो यह सब स्मृतिमें यहां जड़मायास्वरूपा वैष्णवी शक्तिकी उपासना करनेको कहाहै सो नहीं है कारण की देवीअथर्वशिरोभागमें "सर्वे वै देवा देवीमुपतस्थुः कासि त्वं महादेवी साब्रवीदहं ब्रह्मरूपिणी मत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकं जगत्" । अर्थात् सब देवताओंने देवीके शरीरकी उपासना करी थी और उनसे इस प्रकार पूछाथा कि हेदेवि ! तुम कौन हो ? तब उन महादेवीने उत्तर दिया कि मैं परब्रह्मरूपिणी हूं, मुझसे ही इस प्रकृति पुरुषमय विश्वकी उत्पत्ति होती है, औरभी भुवनेश्वरीउपनिषद्में "अथातोऽवोपनिषदं व्याख्यास्यामोऽथ ह्येनां ब्रह्मरन्ध्रे ब्रह्मरूपिणीमाप्नोतीति तथा भुवनाधीश्वरी तुर्यातीता विश्वमोहिनी इति" । हेसौम्यगण ! तुम जब सम्यक् प्रकारसे अधिकारी हुएहो, तो मैं अवश्य ही तुमसे वह परम सगुणनिर्गुणात्मक ब्रह्मविषयक उपनिषद् कहूंगी । जो इन समस्त भुवनोंकी नियंत्री है वह विश्वमोहिनी स्वरूपतः तुरीय चैतन्यरूपिणी हैं अतएव वह ब्रह्मरूपा तुम्हारे इस देहमें ही

स्थिति करती है इसलिये इस शरीरके अन्तर्वर्ती ब्रह्मरन्ध्रमें खोजनेसे ही प्राप्त होगी और भावनोपनिषद्में "स्वात्मैव ललितेति" अर्थात् यह आत्माही परम रमणीयइत्यादि सब श्रुतिमें और त्रिपुरातापनीय सुन्दरीतापनीय प्रभृतिमें "परोरजसेऽसावदोम्" इतिइसप्रकार गायत्रीचतुर्थ चरणप्रतिपाद्य ब्रह्मवाचकत्व और ह्रींकार बीजका उक्तिहेतु ह्रींकार बीजका ब्रह्मदेवतात्व प्रतिपादकश्रुतिप्रयुक्त एवं काली और तारा इत्यादि उपनिषद् और समस्त स्मृतिमें ब्रह्मरूपिणी भगवतीकीही उपासनाका विषय सम्यक् प्रकारसे कहागया है सूतसंहिताके पंचम अध्यायमें "अतः संसारनाशाय साक्षिणीमात्मरूपिणीम् ॥ आराधयेत्परां शक्तिं प्रपञ्चोल्लासवर्जिताम् ॥ "अतएव संसारनाशके निमित्त उन्हीं साक्षीमात्र समस्त प्रपंच और उल्लासादि जगत्का हर्षरहित आत्मस्वरूप पराशक्तिकी आराधनाकरै । फिर स्कन्दपुराणके वेदारण्येश्वरमाहात्म्यमें " परा तु सच्चिदानन्दरूपिणी जगदम्बिका । सैवाधिष्ठानरूपायाज्जगद्भ्रान्तेश्चिदात्मनि " इति। चिदात्मामें जो इस जगत्की भ्रान्ति होती है इस विषयमें उन सच्चिदानन्दरूपिणी पराशक्ति जगदम्बिकाको ही अधिष्ठानस्वरूप जानना चाहिये । फिर कूर्मपुराणके बारहवें अध्या[illegible] विषयमें स[illegible]र्शितं विप्रा देव्या माहात्म्यमुत्तमम् । सर्वं वेदान्तवेदेषु निश्चितं ब्रह्मवादिभिः । एकं [illegible] सूक्ष्मं कूटस्थमचलं ध्रुवम्। योगिनस्तत्प्रविश्यन्ति महादेव्याः परं पदम् । परात्परतरं तत्त्वं शाश्वतं शिवमच्युतम् । अनन्तं प्रकृतौ लीनं देव्यास्तत्परमं पदम् । शुभ्रं निरञ्जनं शुद्धं निर्गुणं दैन्यवर्जितम् । आत्मोपलब्धिविषयं देव्यास्तत्परमं पदम् ॥ " हे विप्रगण ! देवीका माहात्म्य ब्रह्मवादी ऋषियोंके द्वारा निश्चित होकर वेद और वेदान्तमें इस प्रकार प्रदर्शित हुआ है कि, वह एक मात्र अद्वितीय सर्वत्रगामी नित्यकूटस्थ चैतन्यस्वरूप है केवल योगिगणही उनका वह निरुपाधिकस्वरूप परमधाम देखनेमें समर्थ हैं प्रकृतिमें लीन अनन्त मंगलस्वरूप देवोंके उस परात्परतर तत्त्व परमपदका योगिगणही अपने हृदयकमलमें साक्षात् करते हैं हे महर्षिवृन्द ! देवी के उस अतीव निर्मल सदा विशुद्ध सर्वदीनतादिदोपरहित निर्गुण निरंजन केवल आत्मोपलब्धिके विषय परमधामका एक मात्र विमलचित्त योगेश्वर पुरुषही दर्शन करके अपनपे को कृतार्थ मानते हैं और भी हालास्येश्वरमाहात्म्यमें मायाबीजार्थप्रस्तावमें "सत्स्वरूपः" सदाकारो हकारो धर्मतत्परः । चिदाकारः शिवाकारो रेफः सर्वार्थसिद्धिदः । आनन्दरूपयोरैक्यादीकारः सर्वकामदः । बिन्दुनादौ तदन्तस्थौ भवेतां मोक्षदावुभौ । सच्चिदानन्दरूपं तु प्रोक्तं बीजं मनीषिभिः । सच्चिदानन्दरूपं यत्परं ब्रह्म तदेव हि ॥ " नित्यसत्यस्वरूप सदवयव धर्मतत्पर हकारके सहित चिन्मय विश्वरूप सर्वार्थसिद्धिदायक रेफकी योजना करै इन दोनों आनन्दमयकी ऐक्यताप्रयुक्त सब कामका पूर्ण करनेवाला दीर्घ ईकार संयुक्त होता है फिर परममुक्तिदाता बिन्दुनाद आनकर तिसमें सन्निविष्ट होनेपर जो सच्चिदानन्दमय ह्रींकार बीजका आविर्भाव होताहै, मनीषिगणने उसकोही सच्चिदानन्दस्वरूप परब्रह्म कहकर निर्देश कियाहै, इसीप्रकार देवीभागवतमेंभी "निर्गुणा सगुणा चेति द्विधा प्रोक्ता मनीषिभिः । सगुणा रागिभिः सेव्या निर्गुणा तु विरागिभिः " इति। हेमुनिगण ! उन परब्रह्मरूपिणी सच्चिदानन्दमयी पराशक्ति देवीको ब्रह्मवादी मनीषि महर्षिगणोंने सगुण और निर्गुण भेदसे

दोप्रकार कहाहै । उनमें संसारमें आसक्त सकाम साधकगण उनके सगुण भावको और वासनाहीन ज्ञानवैराग्यपूर्ण निर्मलचित्त योगिगण निर्गुणभावका आश्रयपूर्वक आराधना करतेहैं । तथाच ब्रह्माण्डपुराणे-ललितोपाख्याने । "चितिस्तत्पदलक्ष्यार्था चिदेकरसरूपिणी" चिति यह पद तत्पदका लक्ष्यार्थबोधक है अतएव वह एकमात्र चिदानन्दस्वरूप है । अधिक क्या कहैं ? इसी प्रकार अठारह पुराण और उपपुराणों में खोजनेसे देखा जाताहै कि देवीका परब्रह्मत्वप्रतिपादन करनेवाली अनेकानेक स्मृति देदीप्यमान हैं ।

यदि कहो कि, षोडशीग्रह ग्रहणपक्षमें क्रियाविषयमें प्रयुक्तशाखाभेदमें विकल्पकी संभावना होनेपर वस्तुस्वरूपकी एकाविधि होनेसे विकल्प असंभवहै क्योंकि भगवतीस्वरूप संबंधमें मायास्वरूपत्वप्रतिपादक श्रुतिके सहित भगवतीकी ब्रह्मस्वरूपत्वप्रतिपादक श्रुतिका विरोध संघटित होताहै ऐसा नहीं है । कारण कि, वेदान्तशास्त्रमें स्पष्ट कहागयाहै कि, माया मिथ्यापदार्थ है केवल अधिष्ठानरूप ब्रह्ममेंही माया कल्पित होतीहै । सुतरां अधिष्ठानकी सत्ताके अतिरिक्त मायाकी पृथक् सत्ता प्रतीत नहीं होती । तो जब मायामें ही अधिष्ठान की सत्ता आनकर प्रविष्ट होतीहै तो मायाके स्वरूपकी [illegible] अधिष्ठानभूतसत्तारूप ब्रह्मकीही उपासना सम्भावित होनेसे स्वीकार करनी है ह्रगी । फलतः इस आशयमें मायाका स्वरूपत्वप्रतिपादन होनेपर भी कोई विरोध संघटित नहीं होसकता. क्योंकि, ब्रह्मकी उपासनाके स्थलमें केवल ब्रह्मका ग्रहण न करके जिस प्रकार शक्तिकी ब्रह्मातिरिक्त सत्ताका अभावप्रयुक्त शक्तियुक्त ब्रह्मका ग्रहण करना होताहै इसीप्रकार मायाकी उपासना कहनेसे परब्रह्मसत्तायुक्त मायाकी उपासना समझनी चाहिये । अर्थात् सर्वशक्तिमान् परमेश्वरकी उपासनाही समस्त शास्त्रका अभिप्रेत और सार सिद्धान्त है तात्पर्य यही है कि, जिसप्रकार निरुपाधिक विशुद्ध चैतन्यस्वरूप परब्रह्मकी उपासना संभव नहीं होती ऐसेही ब्रह्मको छोड़कर केवल मायाकी उपासनाभी संभव नहींहै । विशेषतः मायाकी उपासनाके विषयमें केवल मायाकी उपासनासंभव होनेपर जो होता सो हो जाता परन्तु केवल मायाका अवस्थानही नहीं है । वस्तुतः सर्वत्र ब्रह्माधिष्ठानयुक्त मायाकाही अवस्थान जानना चाहिये । आशय यह कि भगवतीका मायारूपत्वप्रतिपादन होनेपरभी प्रकृत रूपमें उनका ब्रह्मस्वरूपत्वही सिद्ध होताहै । अतएव इसमें भलीभांति परस्पर श्रुतिका विरोधभी दूर हुआ । कहाहै "पावकस्योष्णतेवेयमुष्णांशोरिव दीधितिः । चन्द्रस्य चन्द्रिकेवेयं शिवस्य सहजा ध्रुवा" इति जिसप्रकार अग्निकी उष्णता, किरणमालीकी किरणमाला, निशाकान्त हिमांशु (चंद्रमा) की ज्योत्स्ना इत्यादि स्वभावशक्ति हैं उसी प्रकार वह परात्परा परमा शक्ति देवी भगवती भी शिवमय परब्रह्मकी नित्यरूपा सहज शक्ति है । तथाच "स्वपदा स्वशिरश्छायां यद्वल्लङ्घितुमीहते । पादोद्देशे शिरो न स्यात्तथेयं वैन्दवी कला" जैसे किसी मनुष्यके, अपने पैरोंसे अपने मस्तककी छाया उल्लंघन करनेकी चेष्टा करनेपर प्रत्येक पैर रखनेमें मस्तककी छाया विद्यमान नहीं रहती, इसी प्रकार इस विन्दुसम्बन्धिनी कलाको जानना चाहिये । इसका तात्पर्य यही है कि; परम ब्रह्मको छोड़कर कदापि ब्रह्मशक्तिकी सत्ता नहीं रहसकती । और भी देखो जिस प्रकार अग्निमें आहुति

देनेसे अग्निकी शक्तिमें ही वह होमार्थसिद्धि होती है, ऐसे ही अग्निशक्तिमें होम करने-पर भी वह अग्निमें आहुत होनेसे होमार्थ सिद्धहोता है। इसी प्रकार मायाका भगवतीत्व स्वीकार करनेसे फलतः ब्रह्मका ही भगवतीत्व सिद्ध हुआ। अतएव उपासनाविषयमें उसीका ग्रहण समझना चाहिये। तो मायाके मिथ्यात्व प्रतिपादक जो वचन हैं; वह ब्रह्मको छोड़कर केवल माया मात्रमें ही ग्रहण किये जानने। क्योंकि उस मायामें मिथ्यात्व रहनेपर भी ब्रह्मके अधिष्ठानकी सत्यता स्वीकार करनी पडेगी। उपासककी मोक्षदशामें उपास्यमायापदार्थके अन्तर्गत जो ब्रह्मांश है, उसको अनुस्यूतताके कारण मुक्तिकालमें भी उपास्यस्वरूपका त्याग नहीं होता इसलिये अन्तर्यामी ब्राह्मणमें पृथ्वी इत्यादि मायान्त पदार्थके संबंधमें इस प्रकार कहागया है; यथा—जो सदाही इस पृथ्वी में अवस्थान करते हैं और पृथ्वी जिनको जाननेमें समर्थ नहीं हैं, यह पृथ्वीही जिनका शरीर और जो इस पृथ्वीके अन्तरमें वास करते हुए इसको निरन्तर नियमित करते हैं। इन समस्त श्रुति में अन्तर्यामी चैतन्य सम्बन्धद्वाराही देवतात्व उपवर्णित हुआ है, औरभी " सर्वं खल्विदं ब्रह्म " यह श्रुतिभी इस विषयमें सम्यक् अनुगृहीता होती है, अतएव इस सब अभिप्राय से ही सूतसंहितामें इस प्रकार कहागया है। यथा-" चिन्मात्राश्रयमायायाः शक्त्याकारे द्विजोत्तमाः। अनुप्रविष्टा या संविन्निर्विकल्पा स्वयम्प्रभा। सदाकारा सदानन्दा संसारोच्छेदकारिणी। सा शिवा परमा देवी शिवाऽभिन्ना शिवङ्करी "। हे द्विजोत्तमगण! चिन्मात्राश्रित मायाशक्तिके अवयवमें अनुप्रविष्ट जो सद्रूपा सदानन्दमयी संसारोच्छेदकारिणी विकल्पनादिरहित स्वयम्प्रभा चिच्छक्ति परमा देवीही परमशिवरूपिणी हं, वास्तवमें वह मंगलविधायिनी शिवके सहित अभिन्नरूपी हैं, अथवा भगवतीके स्वरूपका प्रतिपादन करनेवाले सब वचनों में जो मायाशक्ति कलादि शब्द हैं, वह लक्षणाद्वारा मायाविशिष्ट, शक्तिविशिष्ट और कलाविशिष्ट ब्रह्मबोधक हैं। तथा मायाविशिष्ट शक्तिविशिष्ट और कलाविशिष्ट जो ब्रह्म है वही भगवतीपदवाच्य है, यही फलितार्थ है। इसीकारण क्षुधारूपमें निद्रारूपमें स्मृतिरूपमें संस्थिता इत्यादि केवल शक्तिवाचक पदही कथित हुए हैं किन्तु इन सब पदोंके द्वारा तत्तच्छक्तिविशिष्ट ब्रह्मकाही सर्वत्र ग्रहण जानना चाहिये। यही अर्थ कालोत्तर ग्रन्थमें भी शिवके प्रति देवी के प्रश्नवाक्यमिषसे कथित हुआ है। यथा "भगवन्देवदेवेश मिथ्या मायेति विश्रुता। तस्याः कथमुपास्यत्वं भवेन्मुक्तावनन्वयात्। श्रद्धा न जायते क्वापि मिथ्यावस्तुनि कुत्रचित्। देव्या उपासना चेयं श्रुता मायाश्रिता प्रभो। संशयं छिन्धि देवेश! रहस्यं वद मे प्रभो। इति श्रुत्वा वचो देव्या भगवांश्चंद्रशेखरः। उवाच वचनं दिव्यं सर्वलोकहितप्रदम्। नाहं सुमुखि! मायाया उपास्यत्वं ब्रुवे क्वचित्। मायाधिष्ठानचैतन्यमुपास्यत्वेन कीर्त्तितम्। मायाशक्त्यादिशब्दाश्च विशिष्टस्यैव लक्षकाः। तस्मान्मायादिशब्दैस्तु ब्रह्मैवोपास्यमुच्यते॥" हे भगवन्! देवदेवेश! आपके मुखसे सुना है कि, माया मिथ्या है। मिथ्या पदार्थका तो मुक्तिविषयमें अन्वय नहीं रहसकता, तो किस प्रकार उसका उपास्यत्व संभव होसकता है? और भी देखो मिथ्या वस्तुमें कब कहां किसकी श्रद्धा उत्पन्न होसक-

ती है ? किन्तु हे प्रभो ! मैंने इस प्रकार भी सुना है कि, यह देवीकी उपासना भी माया-श्रिता है अतएव हे नाथ ! इन दोनों विषयमें मुझको जो संशय उपस्थित हुआ है कृपाकरके वह दूर कीजिये। भगवान् चन्द्रशेखर देवीके यह वचन सुनकर सर्व लोकके हितकारी गूढ अलौकिक वचन कहनेमें प्रवृत्त हुए। हे सुमुखि ! मैंने किसी स्थलमें भी केवल मायाके उपास्यत्वकी कथा नहीं कही, वरन तंत्रमें मायाधिष्ठान चैतन्यकेही उपास्यत्वका विषय उपदेश किया है। स्थलविशेषमें प्रयोग किये माया शक्त्यादि शब्द विशिष्टके ही लक्ष्य जाने" अतएव मायादिशब्द द्वारा ब्रह्मकाही उपास्यत्व उक्त हुआ है। इस श्लोकके पूर्वार्द्धमें जो मायायुक्त चैतन्य इस प्रकार प्रयुक्त हुआ है, उसके द्वारा प्रथम पक्ष कीर्त्तित हुआ है। उत्तरार्द्धमें मायाशक्त्यादि, इसप्रकार प्रयोगद्वारा दूसरा पक्ष उप-पादित हुआ है, इसी अभिप्रायसे ब्रह्माण्डपुराणमें मायावाचक ह्रींकार बीजका माया विशिष्ट ब्रह्मवाचकत्व कीर्त्तित हुआहै "शक्त्यक्षराणि शेषाणि ह्रींकार उभयात्मकः"। अर्थात् शेषके समस्त अक्षर शक्तिस्वरूप हैं, ह्रींकार उभयात्मक अर्थात् शिवशक्त्यात्मक है। यदि केवल मायाकाही उपास्यत्व कहकर स्वीकार कियाजाय तो उस भ्रान्तवादीसे इसप्रकार पूँछना चाहिये कि, जो केवल जड़की उपासनाके करने में वह वह देवताके विग्रहों-के प्राणइन्द्रिय आत्मा और जीवादिविशिष्टत्व किसकारण किया जाताहै अतएव निश्चय जानो कि, उन देवी भगवतीके स्थूल और सूक्ष्मरूप दोप्रकार भेद हैं उनमें सूक्ष्मरूप मुख्य है अर्थात् वह प्रवल अधिकारियोंकेही बुद्धिगम्य है और स्थूलरूप दुर्वलाधिकारियोंके लिये है। पूजादिसमयमें दर्शनादि व्यवहारकी उपयोगिताके निमित्त उन सब दुर्वलाधि-कारियोंसे उपासित होकर सूक्ष्मरूपही स्थूलरूप ग्रहण करता है। यदि कहो कि सूक्ष्म-रूपमें ही चैतन्यका अनुप्रवेश होता है, किन्तु स्थूलरूपमें नहीं, तो स्थूलरूपकी उपासना करनेवाले साधकके उपास्य देवताके जीवितवत् कार्यकरण और सम्भाषणादि व्यवहार समस्त नष्ट होजायँ। अतएव इच्छा न होनेपरभी चैतन्ययुक्त उस उस शक्तिका उपा-स्यत्व स्वीकार करनाचाहिये ॥

यदि इस प्रकार कहो कि, तो शास्त्रमें किसलियेमायादिशब्द प्रयोगद्वारा भगवतीका व्यवहार स्वीकार कियागयाहै ? लक्षणादि दोषके अभावमें स्वेष्टप्रतिपत्तिनिमित्त ब्रह्मादि शब्दप्रयोगद्वारा किसलिये व्यवहार नहीं कियागया ? तो कहते हैं; सुनो विराट्, हिर-ण्यगर्भ, अव्याकृत और तुरीय, ब्रह्मका यह चतुर्व्यूहात्मक रूप है। यदि कहो कि, देवी-की उपासना उनमें किस पदार्थमें ग्रहणकरैं ? इस प्रकारकी शंका उठानेपर उत्तर यह है। यथा—विराट्, हिरण्यगर्भ और अव्याकृत तथा उनके अधिष्ठात्री देवतारूप ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र इत्यादि प्रत्येकको मैत्रायणीय श्रुतिमें एक एक गुणमय कहकर कीर्त्तन किया गया है, किन्तु तीनों गुणोंकी साम्यावस्थारूपा माया शास्त्रमें एकवार प्रकृत्यादि शब्द-की वाचक और तुरीय ब्रह्माश्रितत्वरूप में कथित हुई है। अतएव इस प्रकार बड़े अर्थ दिखाने के निमित्त वह मायायुक्त तुरीय ब्रह्मही भगवतीकी उपासनाके विषय में ग्रहण योग्य जानने। इसीकारण मायादिशब्दप्रयोगद्वारा व्यवहारकी विद्यमानता दिखाई देती

है। तथाच, मैत्रायणीय श्रुति । "तमो वा इदमेकमग्र आसीत्तत्परे स्यात्तत्परेणेरितं विषमत्वं प्रयात्येतद्वै रजः तद्रजःखल्वीरितं विषमत्वं प्रयात्येतद्वै सत्त्वस्य रूपम्" इति। हे सौम्य! इस समय जिसको जगत् कहकर बोध करतेहो, सृष्टिके पहिले यह केवल तमोमय अप्रकट रूपमें उस परब्रह्ममें ही लीन था, फिर (सृष्टिके समयमें) वह तमोमय पदार्थ पर ब्रह्मसे प्रेरित होकर वैषम्य धर्मको प्राप्त होता है, उसमें प्रथम रजोमूर्त्तिका आविर्भाव होता है, फिर ब्रह्मप्रेरित उस रजके विषमताको प्राप्त होनेपर सत्त्वरूपका प्रकाश होता है। इस वाक्यसे तमःशब्दमें व्यवहृत मायाका परब्रह्मके सहित नित्य सम्बन्ध प्रदर्शनपूर्वक साम्यावस्थाकीही जगत्कारणता दिखाई गई है। "अग्रे तस्यैतास्तनवोऽथ यो ह खलु वावास्य तामसोंऽशोऽसौ योऽयं रुद्रो यो ह खलु वावास्य राजसोंऽशोऽसौ ब्रह्मा यो ह खलु वावास्य सात्विकोंऽशोऽसौ विष्णुः।" हे सौम्य! सृष्टिके परवर्त्ती काल में जो रुद्ररूप कहे हैं, वही उनका तामस अंश है, जो ब्रह्मरूपी हैं, वही उनका राजस अंश हैं और जो विष्णु रूपमें कहे हैं वही उनका सात्विक अंश है। किन्तु सृष्टिके पहिले यह सब उस परब्रह्मके अव्याकृत तनुरूपमें थे। इसी श्रुतिमें ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रका गुणत्रयरूप उपाधिपन प्रतिपादित हुआ है केवल श्रुतिही नहीं, पुराणादिमें भी इसीप्रकार अनेकानेक प्रयोग हैं। यथा; "सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्गुणास्तैर्युक्तः परः पुरुष एक इहास्य धत्ते। सृष्ट्यादये हरिविरिञ्चिहरेति संज्ञाः श्रेयांसि तत्र खलु सत्वतनोर्नृणां स्युः"। वह परम पुरुष एक मात्र अद्वितीय होकर भी सृष्टि इत्यादि कार्य के निमित्त प्रकृतिके सत्त्व, रज, तम, इन तीनों गुणोंसे युक्त होकर हरि विरञ्चि और हर यह तीन संज्ञा धारण करतेहैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर इन तीनोंमें स्वरूप से एकत्व होनेपर भी सत्त्वमूर्त्तिसे ही मनुष्योंका कल्याण होता है। इस प्रकार सब पुराणोंमें ही ब्रह्मा विष्णु रुद्रका एक एक गुणवत्त्व प्रतिपादित हुआ है माया प्रकृति वा शक्त्यादि शब्दवाच्य वस्तु ब्रह्मके अतिरिक्त आश्रयवाली नहीं है, जिससे मायादि शब्दमें उपास्यवस्तु मायाविशिष्ट ब्रह्मके अतिरिक्त होसके, वास्तवमें उसे मायाविशिष्ट ब्रह्मकाही रूप जाने। उन समस्त शब्दोंके द्वारा उपास्य वस्तु प्रतिपादित होनेसे मायाविशिष्ट ब्रह्मरूपही जो उपास्य भगवतीरूप है यह बोध करानेके निमित्तही मायादिशब्दप्रयोगद्वारा भगवतीको उपासना का विषय कहा गया है॥

यदि कहो कि, तो "त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्य्या" इस स्थलमें भी मायाशब्द ब्रह्मविशिष्ट मायावाक्य हो, और इस स्थलमें केवल मात्र मायाके ही विवक्षितत्व प्रयोगमें कोई इष्टापत्तिभी नहीं है वस्तुतः यह नहीं है। क्योंकि सर्वत्र माया शब्दके प्रयोग होनेसेही जो सब स्थलमें मायायुक्त ब्रह्मको ग्रहण करना चाहिये हमने तो कभी इस प्रकारकी शपथ करके नहीं कहा जिसमें अतिप्रसंग दोष उठ सके। परन्तु किसी स्थलमें सम्बन्धि शब्दके सहित केवल मायाकाही ग्रहण है जिस प्रकार इस स्थलमें इसी प्रकार नाश प्रकरणमें केवल मात्र मायाकाही ग्रहण है और सृष्टि विषयमें भी इसी प्रकार समझना चाहिये। यथा "मन्मायाशक्तिसंक्लृप्तं जगत्सर्वं चराचरम्। सापि मत्तः पृथग्विप्रा नास्त्येव परमार्थतः"। हे विप्रगण! वह चराचर विश्व संसार मेरी माया शक्तिसे कल्पित है,

किन्तु वह भी वास्तविक मुझसे भिन्न वस्तु नहीं है. इत्यादि स्थलमें केवल माया मात्र का ही ग्रहण दीखता है किन्तु उपासना स्थलमें माया विशिष्ट ब्रह्मकाही ग्रहण है। ऐसे स्थल विशेषमें यथासंभव अध्याहारद्वारा समझलेना चाहिये । और "त्वं वैष्णवी शक्तिः" इस स्थलका अर्थ इस प्रकार करना चाहिये। हे मातः! तुम अधिष्ठानस्वरूप ब्रह्मरूपिणी होकर भी शास्त्रमें वैष्णवी माया शक्तिके नामसे जो प्रसिद्ध हैं वह भी तुम्हीं हो। इन समस्त वचनोंके द्वारा भगवतीका ब्रह्मरूपत्वही प्रतिपादित हुआ है। इसी प्रकार अन्यत्रभी जान लेना चाहिये। अथवा जगत्कारण ब्रह्मकी उभयात्मकता प्रयुक्त किसी स्थलमें मायायुक्त ब्रह्मकी उपासना का विषय उल्लिखित हुआ है उस स्थलमें शक्तिको सहायभूता जानना चाहिये। यही मत शिवपुराणमें स्पष्टतासे दिखाया गया है। यथा–"तस्मात्सह तया देवं हृदि पश्यन्ति ये शिवम्। तेषां शाश्वितिकी शान्तिर्नेतरेषां कदाचन।" अत एव जो महात्मा योगेश्वर पुरुष उस पराशक्तिके सहित परम मंगल मय परम देवको अपने हृदय पद्ममें ज्ञाननेत्रसे साक्षात् करते हैं उनको ही केवल नित्य शान्ति आनकर उपस्थित होती है दूसरोंको नहीं। इस प्रकार बहु वचनके द्वारा प्रतिपादित हुआ है। किसी स्थलमें फिर ब्रह्मविशिष्ट मायाकी उपासनाका विषय निर्दिष्ट हुआ है। उस स्थलमें भगवतीविषयमें ब्रह्मविशिष्ट मायाकीही जो उपासना है वही दिखानेके निमित्त माया शक्त्यादि शब्दप्रयोग द्वारा शास्त्रमें भगवतीका व्यवहार किया गया है। इसी मतको तंत्र और पुराणादि शास्त्र सम्मत जाने। "शिवेन सहितां देवीं भावयेद्भुवनेश्वरीम्।" शिवके सहित देवी भुवनेश्वरीकी हृदयमें भावना करै। भुवनेश्वरी पारिजातादिके इन सब वचनोंसे भी स्पष्ट रूपमें प्रतिपन्न होती है। और भी कूर्मपुराणमें भी कहा है "अस्यास्त्वनादिसंसिद्धमैश्वर्यमतुलं महत्। तत्सम्बन्धादनन्तैषा रुद्रेण परमात्मना।" इस मायाशक्तिका अनुपम महत् ऐश्वर्य देदीप्यमान है इसी सम्बन्धके कारण यह परमात्मा रुद्रके सहित अनन्तरूपिणी है। यह समस्त वचन देवीभागवत इत्यादि सब पुराणोंमेंही दिखाई देंगे। तात्पर्य यह है कि, दोनों पक्षमेंही उपासनाविषयमें ब्रह्मका चिदंश प्राप्त होता है अतएव मोक्षावस्थामें उपास्य स्वरूपके अनन्वयित्वरूप दूषण वा अश्रद्धेयता आदि किसी प्रकारके दोष नहीं हो सकता है॥

इस प्रकारसे भगवतीकी उपासना निर्णय करके अब ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और शक्ति इनमें किसकी उपासना श्रेष्ठ है इस विषयका विचार करते हैं, 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इस श्रुतिके अनुसार यह दृश्यमान सब पदार्थ ब्रह्म हैं इस प्रकार सामानाधिकरण्यके द्वारा सब पदार्थके ब्रह्मत्व सिद्ध होनेपर भी भक्तजनोंके दुर्बल चित्तों के अवलम्बनिमित्त परमेश्वरने शुद्धतर शुद्धतम विभूतिसे चित्तशुद्धिके तारतम्यसे कल्पित की है, गीतादिशास्त्रके विभूतिअध्यायमें और छान्दोग्यादि उपनिषदों में "प्राणो ब्रह्म, आदित्यो ब्रह्म, मनो ब्रह्म," अर्थात् प्राण ब्रह्म हैं आदित्य ब्रह्म है, मन ब्रह्म है इत्यादि वाक्य लिखे हैं, सो सब विभूतियों में ब्रह्मके समान रूपसे स्थित होनेपरभी विशुद्धके तारतम्यसे मणि तलवार दर्पण आदिमें प्रतिबिम्बका जैसे तारतम्य है इसीप्रकार विभूतियों में विशुद्धिके तारतम्यसे ब्रह्म

में प्रसाद करनेका तारतम्य प्रतिबिम्बफल का तारतम्य प्रतीत होता है, इसकारण सर्व-शास्त्रप्रसिद्ध इस व्यवहारमें कोई शंका नहीं है इस प्रकार ब्रह्मा विष्णु इत्यादि देवताओं-में एक एक गुणकी उत्कृष्टता होनेसे सम्पूर्ण गुणोंकी कारणस्वरूप साम्यावस्थायुक्त भगवतीकी उपासनाही श्रेष्ठ है कारण कि, एक एक गुणकी अपेक्षा उस उस गुणकी मूल भूत साम्यावस्था अधिक होती है और पहले तो ब्रह्मके सहित मायाका व्यवधान शून्य सम्बन्ध है, तदुपरान्त गुणोत्तरहेतु मायाद्वारा गुणका सम्बन्ध, इससे साम्यावस्थामें ब्रह्मका व्यवधानरहित सम्बन्ध है, इसमें भगवतीकी उपासना मुख्य और सर्व श्रेष्ठ है, सूतसंहिता में भी यही रीति कही है, "परमतत्त्वप्रकाशस्तु रुद्रस्यैव महत्तरः। ब्रह्मविष्ण्वादिदेवानां न तथा मुनिपुंगवाः"। हे श्रेष्ठ ऋषियो! रुद्रदेवताकाही महत् परमतत्त्व प्रकाश हुआ है विष्णुआदि देवताओंका वैसा नहीं है सूतगीतामें कहा है "रुद्रः कथञ्चित्कार्यार्थं मनुते रुद्ररूपताम्। न तथा देवताः सर्वाः परिस्फूर्त्यल्पताबलात्" इति। रुद्रदेवताही कार्य-विशेषके निमित्त रुद्रमूर्त्ति धारण करनेमें समर्थ हैं, और देवताओंमें वैसी सामर्थ्य नहीं है, यदि कहो कि, जब यह देवता एक २ गुणोपाधीवाले सर्व्वसम्मत हैं तब पुराणादि में इनकी साम्यावस्था किस प्रकार वर्णन की है, इसका कारण यह है कि, उनके अन्तरमें स्थित ब्रह्मका साम्यावस्था स्वरूप है, उसके साथ अभेद करके पुराणादि में ब्रह्मादिका साम्यावस्थास्वरूप वर्णन किया है, इस कारण तापिनी श्रुतिमें नृसिंह सत्त्वोपाधि विष्णु का अवतार कहकर सब श्रुति और पुराणमें निश्चित होनेपरभी साम्यावस्थारूपसे वर्णन करना संगत हुआ है, इस कारण माया शक्तिनामवाली ब्रह्मरूपा भगवतीकी उपासनाही मुख्य और सबसे श्रेष्ठ है, इससे अभीष्ट फल लाभकी इच्छावालों को मुमुक्षुओं को सर्वो-त्कृष्टवस्तुके आराधनकी इच्छावालों को यही भगवती आश्रय करने योग्य है यह सब पुराणों में स्पष्टरूपसे प्रतिपादित होचुकाहै देवीमाहात्म्यमें लिखा है "ब्रह्मविद्या जगद्धात्री सर्वेषां जननी तथा। यया सर्वमिदं व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम्। सैव सेव्या च पूज्या च नान्यद्वै देवतांतरम्" जो चराचर त्रिलोकीको व्याप्त करके विराजमान है जो सबकी माता स्वरूप है वह जगद्धात्री बुद्धि विद्यारूपिणी भगवतीही सेवनीय और पूजनीय है और देवता नहीं, तन्त्रोंमें कहा है "एवं यः पूजयेद्भक्त्या प्रत्यहं परमेश्वरीम्। भुक्त्वा भो-गान्यथाकामं देवीसायुज्यमाप्नुयात्। यो न पूजयते नित्यं चण्डिकां भक्तवत्सलाम्। भस्मी-कृत्यास्य पुण्यानि निर्दहेत्परमेश्वरी" अर्थात् इस प्रकार जो भक्तिसे नित्य प्रति परमेश्वरी का पूजन करते हैं वह यथेच्छ भोगोंको भोग कर अन्तमें देवी के सायुज्यको प्राप्त होते हैं। और जो भक्तवत्सला चण्डिकाका नित्य पूजन नहीं करते परमेश्वरी उनके पुण्य भस्म करके दुःख देती है इस वचनसे सन्ध्यावन्दनादिके समान भगवतीका नित्य पूजन करना चाहिये यही नित्यपदका आशय है, पुराणान्तरमें भी कहा है, "आराध्या परमा शक्तिः सर्वैरपि सुरासुरैः। मातुः परतरं किंचिन्नाधिकं भुवनत्रये।" तथा "ओंकारं पितृरूपेण गायत्रीं मातरं तथा॥ पितरौ यो न जानाति स विप्रस्त्वन्यरेतजः" अर्थात् यह परमा शक्ति सब देवता असुरोंको भी पूजनीय है, कारण कि, त्रिभुवनमें मातासे अधिक पूजनीय कोई नहीं है। ओंकार

पितारूप गायत्री मातारूप है इस प्रकार जो अपने माता पिताको नहीं जान्ता वह ब्राह्मण ब्राह्मणसे उद्भूत नहीं है इससे गायत्रीकी उपासना सबको करनी चाहिये "धिग्धिग्धिग्धिक्च तज्जन्म यो न पूजयते शिवाम्। जननीं सर्वजगतः करुणारससागराम्॥" अर्थात् सब जगत्की माता कृपाकी सागर गायत्रीदेवी शिवाका जो पूजन नहीं करता उसका जन्म व्यर्थ है। विस्तार हमारे निर्मित शक्तितत्त्वविमर्शिनीग्रंथमें देखो. तथा सप्तशतीके अंगषट्कमें यह उपोद्धात देवीभागवतकी स्थितिमें देखना. अब गौडपाठानुसार देवीभागवतकी व्याख्या करते हैं॥

इति नीलकण्ठकृतौ पण्डितज्वालाप्रसादानुवादितोपोद्घातप्रकरणं समाप्तम्॥



देवीभागवतकी-भूमिका।

भगवान् वेदव्यासजीने संसारी मनुष्योंपर कृपाकरके सर्ग प्रतिसर्ग वंश मन्वन्तर वंशानुचरितसंयुक्त कितनेही पुराण निर्माण किये हैं जिनके द्वारा संसारी मनुष्य अपने पुरुषाओंका वृत्तान्त सदाचारआदि जाननेमें समर्थ होतेहैं, यदि पुराणविद्या न होती तो ऐसा कोई भी भारतवर्षमें ग्रंथ नहीं है, जिसके द्वारा मनुष्य अपने पूर्ववर्त्ती ऋषि मुनि नृपति आदिका चरित्र जाननेमें समर्थ होते यद्यपि "तमितिहासश्च पुराणञ्च गाथाश्च" इत्यादि मंत्र द्वारा अथर्ववेदमें पुराणोंका प्रमाण दियाहै और पुराण इतिहास विद्या नित्य है, परन्तु तौभी अल्पज्ञोंको ऐसा सन्देह होजाता है कि, पुराण द्वापरके अन्तमें बने हैं, ऐसा नहीं है, पुराण अनादिकालसे चले आतेहैं, प्रत्येक द्वापरयुगोंमें व्यासजी उनको नवीन प्रकारसे संकलन करतेहैं, और यही कारणहै कि, किसी द्वापर युगमें कोई और किसी द्वापर युगमें कोई पुराण महापुराण माना जाताहै और व्यासजी इनका विस्तार करनेसेही कर्त्ता कहाते हैं और पुराणविद्या नित्यहै इसकारण अठारह पुराणोंमें अठारहोंके नाम पाये जाते हैं यदि ऐसा न होता तो एकम एकके दूसरेमें दोके नाम होते-इत्यादि ॥

भगवान् वेदव्यासने इनकी रचना करके इनके श्लोकसंख्या और संक्षिप्त सूची देकर यथायोग्य पुराणोंकी रक्षाकीहै पर तथापि यवन और बौद्धोंके समयमें ग्रंथोंकी छिन्न भिन्नता होनेसे और संप्रदायोंके प्रबलभेद जागरूक होनेसे इन परमोत्तम वेदार्थबोधक ग्रंथोंमें श्लोकोंकी न्यूनाधिकता तथा मतभेद जागरूक होरहा है, इसको बुद्धिमान् भली प्रकार जानसकते हैं वेदव्यासजीका यह आशय कभी नहीं है कि ब्रह्मा विष्णु महादेव शक्ति आदि देवताओंमें कुछ छुटाई बड़ाई हो, यह एकही सच्चिदानन्दके सृष्टिके निमित्त लीला विग्रह हैं इनमें जो भेद करताहै उसका कल्याण नहीं होता. हां इन्द्रियादिके समान भक्तके इष्ट देवमें प्रीति बढ़ानेके निमित्त उनकी सर्वोत्कृष्टता वर्णनकीहै, सो यह उचितही है कारण कि यदि इष्ट देवमें कुछ न्यूनता होगी तो उपासकका चित्त इष्ट देवकी ओर न झुकैगा और चित्तकी वृत्तिभी भिन्न भिन्नहैं इसकारण व्यासजीने उसी एक ब्रह्मको अनेक स्वरूप में वर्णनकर जो उपासकोंका कल्याण कियाहै उसके निमित्त भारतवर्ष उनका सदैव ऋणी है यदि पुराण न होते तो आजदिन जगत् प्रायः अन्धकारमें रहता कौन अपने जाति कुल गोत्र उत्पत्तिका समाचार जानता, बडे २ वेदोंके गूढ रहस्य कौन खोलता, सत्य तो यह है वेदोंके संक्षिप्त विषयोंको लेकर पुराणोंनें उनको विस्तारके साथ वर्णन किया है, जिनको विचारके साथ पढनेसे जो आनन्द प्राप्त होता है वह विचारशीलही जान सकते हैं ॥

जबतक इस देशमें वेदशास्त्र पुराणादिका पठन पाठन गुरुमुखसे था तबतक इस देशकी क्रमानुसार पूर्ण उन्नति थी, परन्तु जबसे संस्कृत विद्याकी न्यूनता होकर इनका पठन पाठन उठ गया है, तबसे अल्पज्ञोंके पुराणोंपर अनेक प्रकारके आक्षेप होने लगे हैं, कोई कहते हैं पुराणोंसेही अवनति हुइ है कोई कहते हैं सृष्टिक्रमके विरुद्ध हैं, कोई कहते हैं अमाननीय हैं कोई ऐसे वैसे उर्दूके टीके लेकर ही आक्षेप करनेको तैयार हो जाते हैं उनको यह विदित नहीं कि जो विद्या गुरुसे पढनेकी है उसको हम किस प्रकार साधारण टीकेकी लिखावटसे हृदयङ्गम कर सकते हैं, जो दल इस समय पुराणोंपर कुतर्क करने-

पर उतारू हुआ है उसमें बहुधा तो संस्कृतही नहीं है और जो उनके पृष्ठपोषक एक दो पंडित हैं वे अपने उदरपालनार्थ उनके कार्य साधनमें तत्पर रहते हैं पर एक बड़ा आश्चर्य है जब कोई उनको निकृष्ट कहने लगता है तब झट पुराणोंको टटोलकर उसके अनुसार अपनी बड़ाई सिद्ध करने लगते हैं ॥

इसी १९०१ की मनुष्यगणनामें सर्कारने कितनीही जातियोंको निकृष्ट वर्ण ठहराया था तब उन जातियोंने अपनी उन्नतिके लिये पुराणोंकी ही शरणली, इनमें प्रायः वही लोग अधिक थे जो पुराणोंको प्रमाण नहीं करतेथे धन्य भारतसन्तान, क्या निःस्वार्थता है पुराणोंपर अनेक शंका कुतर्क होते देखकर मेरी यह इच्छा हुई कि मैं संपूर्ण पुराणोंका अनुवाद शंका समाधानके सहित करूं कि जिससे पढ़नेवालोंको पुराणोंका महत्त्व सूचन होजाय परन्तु यह कार्य दीर्घकालसाध्य है और दूसरे अनुवादकोंको मैं रोक नहीं सकता हूं और जहां एक पुराण सटीक छप चुकता है वहां फिर उसकी दूसरी प्रतिकी छपनेकी आवश्यकता नहीं रहती यह विचारकर जितनोंका अनुवाद समयानुसार होसके उतनाही कर्तव्य समझा, और महाशिवपुराण, हरिवंशपुराण, श्रीमद्भागवतपुराणादि कितनोंका अनुवाद किया है और कितनोंका समय मिलनेसे करूंगा ॥

अनुवादक महाशयोंसेभी प्रार्थना है कि यदि वे किसी पुराणका अनुवाद करनेको बैठें तो केवल श्लोकार्थ करकेही अपनेको कृतार्थ न समझें किन्तु जहां कहीं नवीन शैलीके लोगोंको कुतर्क होना सम्भवहो वहां कुछ टिप्पणी अवश्य करें, अन्यथा वह श्रममात्रही गिना जायगा ॥

जिस ग्रंथका यह टीका आपके सन्मुख उपस्थित है इसमें बड़े २ आश्चर्यरूप वैदिक आख्यान हैं विशेषकर इसके ग्यारहवें और बारहवें स्कन्धमें जैसी गायत्रीकी विधि और महिमा वर्णनकी है वैसी और किसी पुराणमें मेरे देखनेमें नहीं आई, पर शोक है कि इस ग्रंथके ऊपरभी दो मत हैं, कोई कहते हैं श्रीमद्भागवत महापुराण है कोई कहते हैं देवी-भागवत महापुराण है, दोनोंकेही महापुराण होनेके ढेर प्रमाण हैं, इससे मेरे मतमें तो दोनोंही महापुराण हैं सारस्वत कल्पम देवीभागवत महापुराण मानागया है और दूसरे कल्पम विष्णुभागवत महापुराण मानागयाहै बुद्धिमान् विचारकरें कि ब्रह्म और उसकी शक्ति क्या कुछ दो हैं, क्या वेदमें लक्ष्मीसूक्त नहीं है फिर बखेड़ा क्यों ? दोनोंही भागवत शिरपर रखकर पूजनेके योग्य हैं दोनोंही मोक्षमार्ग पर्यन्त लेजायँगी, दोनोंही एक हैं ऐसा हमारा विश्वासके साथ अटल सिद्धान्त है, जिनको हठ और दुराग्रह है उनको हमारे पास प्रमाणके सिवाय और कुछ नहीं है पर यह बखेड़ा सम्प्रदायके भीतर पड़कर इतना बढ़ गया था कि संस्कृत टीकाकार नलिकण्ठको बहुतसे प्रमाणोंका संग्रह करके देवीभागवतको महापुराण सिद्धकरना पड़ाहै जिसका उचित सार हमने आगे प्रकाशित कियाहै, विदित होताहै कि नीलकण्ठके समय अधिक विवाद था हमको इस बातपर बड़ा आश्चर्य होता है जब कि अष्टादश पुराण व्यासकृत मानेजाते हैं तब शैव, वैष्णव, शाक्त, गाणपत्य आदि परस्पर क्यों विवाद करते हैं, पण्डितोंको विचारना चाहिये कि जिस एककी लेखनीसे यह सब कुछ निकला है वह क्या था, शैव, वैष्णव, शाक्त कौन था, इस विवादको शान्त करना चाहिये वेदमें सभी देवताओंका वर्णन है, रुद्राध्याय, पुरुषसूक्त, सवितादेवताके

मंत्र, लक्ष्मीसूक्त आदि सभी कुछ है तब क्या हमारा यह काम है कि हम ठीक और सब बुरे, यह तो पण्डिताईका लक्षण नहीं है आज २००० दो सहस्रसे अधिक वर्ष हुए द्वैत अद्वैतका विवाद नहीं मिटा, क्या इसके लिये पूज्यपाद शंकराचार्य और रामानुजाचार्यका शारीरिकभाष्य अलम् नहीं है, पर यहां तो हमसेभी बड़े महानुभाव गिनेजांय इस निमित्त सहस्रों श्लोकोंका ग्रंथ रचडाले अभी काशीमें परमपूज्य हमारे महानुभाव महोदयने द्वैत अद्वैतके विवादपर सहस्रों श्लोकोंमें ग्रंथ लिखकर आपने गुरुजनोंके स्नेहको पूर्ण किया है इतनाही नहीं इन्हीं के शिष्य एक निर्मले साधुने मुक्तावलीकी भूमिका में जगद्गुरु शंकराचार्यको देशका नाश करनेवाला कहा है, इन महात्मासे कोई पूछे यदि यह शंकराचार्य और इन्हींके शिष्य न होते तो आज दिन भारत वर्षमें वैदिक धर्मही न होता, यह वह महामहिम हुए हैं जिन्होंने विधर्मियोंका सब सहायतासे संयुक्त होनेपरभी आप असहायता हो परास्त किया और उनको देशसे बाहर कर वेदधर्मकी ध्वजा फहराई, क्यों इस उपकारीके संग कोई दूसरा नाम आपको दिखाई देता है, कभी नहीं ? फिर आपका भी दोष नहीं जैसा आपने प्रारंभसे इदन्न इत्यादि पढा है वही आपने लिखा, पर क्या आजदिन इन बातोंकी आवश्यकता है, कदापि नहीं क्या आप लोग नहीं जानते कि फिर आपके वेदशास्त्र पुराणादिपर अनेक आक्षेप होते हैं. ब्राह्मणादि वर्णधर्म मिटानेकी पूर्णरूपसे चेष्टा कीजाती है, वेदार्थ धर्मशास्त्रका अर्थ बिगाडा जाता है, लाखों लोग पंडितोंको बुरे शब्दोंसे पुकारनेवाले होते जाते हैं, सनातन धर्मके ऊपर कैसे कटाक्ष करते हैं कभी इनकी ओर भी हमारे महानुभावोंकी दृष्टि फिरेगी, इस बातसे काम न चलेगा कि यह तो कुछ नहीं है छोटे लोग हैं छोटेही बड़े होते हैं इस समय द्वैताद्वैत तथा सम्प्रदायोंका बखेडा उठा रखिये, यह बहुत हो लिया अब अपनी मूलकी ओरको दृष्टि दीजिये, मूलकी रक्षासे सबकी रक्षा होगी और मूलके नष्ट होनेमें पत्र पुष्प कुछ नहीं रहते यदि हमारे पूज्यपाद इतना परिश्रम किसी देशोपकारी काममें करते तो भारत वर्ष उनका सदैव उपकार मान्ता कारण कि उनकी लेखिनीमें सामर्थ्य है॥

यह तो बात है महापंडितोंकी पर जब हम आजकलके हिन्दीउद्धारी पुरुषोंकी ओर दृष्टि करते हैं तो उनकी भी बडी विचित्र गति दिखाई देती है, बहुत कालसे नागरी प्रचारकी धुन सुनाई आरही है, फल भी कुछ २ फलता दिखाई देरहा है, गवर्नमेंटने देव नागरीको न्यायालयमें स्थान दिया है, पर यह क्या सुनते हैं कि नागरीका प्रचार करनेवाले यदि भूत भविष्य वर्तमान कालमें हुए तो दो चार एफ्, ए, बीए, बाबूसाहबही हुए हैं, सूरदास तुलसीदास ब्रजभाषाके समस्त कवि तथा पूर्वी बोलीके और जो कवि हुए हैं वे सब निकम्मे हैं ब्रजभाषाको[1] देश निकाल दिया जाय इससे कुछ नहीं होगा, होगा तो हमारी खडी हिन्दीसे होगा और वह भी जो हम दो चारकी अंग्रेजी आदीसे अनुवाद कीहुई हिन्दी है वही हिन्दी है, और हिन्दीही नहीं है, इत्यादि इस दलने तो दयानन्दको भी पराभूत करदिया है अब पुरानी हिन्दी हिन्दी नहीं कहावेगी वह बूटजूता सा या टोप छाता हाथमें धारण करैगी वा इस कीलपर चढैगी उसके सिवाय और हिंदी काली हिंदी कहावेगी ॥

---

१ कवितासे ब्रजभाषा निकलते ही निर्जीव कविता रह जायगी ब्रजभाषा प्राण है।

खड्गविलासप्रेसकी भाषासम्बन्धी एक पुस्तक मेरे देखनेमें आई वहभी एक हिंदी रसिककी लिखी है उसमें ऋग्वेदके विषयमें लिखाहै कि इसके भजन पुरानी प्राकृत भाषा के लिखेहुए हैं धन्य है इससे विद्यार्थियोंको वेदधर्मकी अच्छी शिक्षा मिलेगी ॥

एक और नईबात हिंदीभाषाके उद्धारकी होती है अभीतक हिंदी भाषाकी उन्नति नहीं हुई अभीतक भण्डार पूर्ण नहींहुआ स्थान निर्माणहुआ नहीं पर हमारे बाबू महाशयोंको अभीसे उसमें कूड़ा कर्कट दिखाई देनेलगा इस कूडे के निकालनेको समालोचक समिति नामक एक म्यूनिसिपल बोर्ड बनैगा उसमें माननमाननमें तेरा महमान, बलात्कार समालोचना कीजायगी घर घरमें उसके मेम्बर झांकैंगे कि इस घरका पुरीष और मूत्रावस्थान स्वच्छ है कि नहीं किसीकी सम्मति है यह स्थान होनाही न चाहियें कोई कहचुके हैं रद्दी कूडेरूपी ग्रंथोंके लिये 'आईन पास' कराकर ऐसे लोगोंको दंड दिलायाजायगा, इसकी जो धारा है उनका यह गुप्त नियम है कि समितिवालोंके ग्रंथोंको छोड़कर और सब कूडा कर्कट समझा जायगा वह सब फिकवादिये जायँगे यों खडी हिन्दीरूपनगरकी स्वच्छता करानेसे दोचार बबुआनीकोठीके सिवाय और कुछ दिखाई न देकर फिर हिंदीको कोई रोग न व्यापैगा न इसमें कोई कूड़ा करकट दिखाई देगा बस इतना होतेही उन्नति होजायगी, इसमें एक औरभी धारा है कि लिखनेवालोंके हाथोंको नाकाम कियाजाय पर इसपर अभी गुप्त विचार होरहा है धन्य कलिकाल क्या इससे उन्नति होगी ?

जब कि हिंदीकी यह दशा हो और अपने धर्ममें श्रद्धा न्यून होती जातीहो तब धर्मग्रंथोंका अनुवाद करके सर्वसाधारणके सन्मुख उपस्थित करना कैसा कठिन काम है हमारी यह इच्छा है कि हम पुरातन ग्रंथोंका अनुवाद करके उनका महत्त्व दिखानेके निमित्त तथा सनातनधर्मपर श्रद्धा करानेके निमित्त सर्वसाधारणके सन्मुख उपस्थितकरें आजतक परमात्माने हमारी इस प्रतिज्ञाको निवाहा है और हमको पूरी आशा है कि इस उत्तमकार्य में वह हमारी निरंतर सहायता करैगा ॥

वेद शास्त्र पुराणोंका मर्म सर्वसाधारणको विदित होना तथा तदनुकूल कर्मानुष्ठान और सत्य व्यवहारमें प्रवृत्त होना यही देश और भाषाके उद्धारका उपाय मैंने निश्चित कियाहै और बनावटी बात वा अहंकारसे कभी कल्याण नहीं होता यह मुझे निश्चय है ॥

देवीभागवत और विष्णुभागवतकी रचना कहीं २ कैसी विलक्षण रूपसे मिलती है तथा इसमें दुर्गापाठके शब्द कैसे मनहरणरूपसे सन्निविष्ट हैं इत्यादि प्रसंगोंके देखनेसे चित्तमें बड़ा कौतूहल होताहै इसकी श्रेष्ठता संस्कृतज्ञाताओंके सिवाय अन्य सब महात्माओंपरभी विदित होजाय यही विचारकर मैंने इसका टीका सरल सुबोध हिन्दीभाषामें कियाहै जिससे सब कोई सुगम रीतिसे इसको समझ लें ॥

इसप्रकार यह ग्रंथ निर्माणकर सब प्रकारके स्वत्व सहित अपने परमस्नेही गुणग्राही परोपकारनिरत जगद्विख्यात "श्रीवेङ्कटेश्वर" यंत्रालयाध्यक्ष सेठजी श्रीयुत **खेमराज श्रीकृष्णदासजी** महाशयको समर्पण करदियाहै ॥

शेषमें सब पाठक महाशयोंसे प्रार्थना है कि यथासम्भव टीका करनेमें सावधानी कीगई है तो भी यदि कहीं त्रुटि रहगईहो तो कृपाकर उसे सुधारलें कारण कि सर्वज्ञ परमेश्वर है ॥

भा० कृ० १३
सम्वत् १९५८

सज्जनोंका अनुगृहीत–
पं०–ज्वालाप्रसाद मिश्र,
दीनदारपुरा–मुरादाबाद.

शुभमस्तु.

॥ श्रीः ॥

श्रीमद्देवीभागवतभाषाकी विषयानुक्रमणिका।

चतुर्थस्कन्ध ४.

पञ्चमस्कन्ध ५.

षष्ठस्कन्ध ६.

अध्यायः	विषयः	पत्रम्.

नवमस्कन्ध ९.

दशमस्कन्ध १०.

एकादशस्कन्ध ११.

इति
श्रीमद्देवीभागवत भाषा-
नुक्रमणिका समाप्ता ।

अनुक्रमणिका।

श्रीमद्देवीभागवतभाषानुक्रमणिका समाप्ता।



श्रीगणेशाय नमः ।

श्रीमद्देवीभागवत-

माहात्म्य-भाषा ।

थमोऽध्यायः १.

दोहा—गौरि गिरा गणपति सुमरि, विधि हरि हर शिरनाय ।
देविचरित माहात्म्यकी, भाषा लिखत बनाय ॥ १ ॥

सृष्टिमें जो उत्पत्तिरूपहै, जगत्के कारण विधिमें जो पालन शक्तिरूपहै, संहारमें रौद्रीशक्तिहै वा रौद्ररूप होकर संहार करतीहै जिसका यह सब जगत् खेलमात्रहै. जो "परा पश्यन्ती मध्यमा" और वैखरी वाणीरूपहै वह ब्रह्मा विष्णु महेश से आराधित प्रसन्नवदन भगवती हमारी वाणीको अलंकृत करो ॥ १ ॥ नारायण नर नरोत्तम देवी सरस्वतीको नमस्कार करकै तथा व्यासजीको प्रणाम करकै जयका उच्चारण करना चाहिये ॥ २ ॥ ऋषिबोले हेसूतजी, तुम बहुतकालतक जियो जिसकारण कि हमको मनोहर पुण्यकथा सुनातेहो, हे महाबुद्धिमान् व्यासजीके शिष्य ! ॥ ३ ॥ सर्व पापके हरनेवाले विष्णुके अद्भुतचरित्र अवतारकथासे युक्त हमने भक्तिपूर्वक श्रवण किये ॥ ४ ॥ शिवजीके दिव्यचरित्र भस्म रुद्राक्षका माहात्म्य हास सहित तुम्हारे मुखकमलसे सुना ॥ ५ ॥ अब हम पवित्रसेभी पवित्र अनायाससेही भक्ति मुक्ति देनेवाली कथाके सुन्नेकी इच्छा करतेहैं ॥ ६ ॥ हेमहाभाग ! उसको तत्त्वसे कहो जिसके जाननेसे मनुष्य सिद्धिको प्राप्त होतेहैं कलियुगमें संदेह छेदन करनेवाले तत्त्वको नहीं जानते ॥ ७ ॥ सूतजी बोले हेमहाभाग लोकोंके हितकी कामनासे आपने उत्तमवार्त्ता पूँछी, अब मैं सम्पूर्ण शास्त्रके सारको सबप्रकारसे कथन करताहूं ॥ ८ ॥ तभीतक तीर्थ व्रत और पुराण गर्जना करतेहैं जबतक मनुष्य भलीप्रकार देवीभागवत नहीं सुन्तेहैं ॥ ९ ॥ तभीतक मनुष्योंको यह पापरूपी अटवी क्लेश और निरंतर कंटक देनेवालीहै जबतक देवीभागवतरूपी परशा प्राप्त नहीं होताहै ॥ १० ॥ तभीतक मनुष्योंको उपसर्गरूपी महाअंधकार क्लेश देताहै, जबतक देवीभागवतरूपी सूर्यका उदय नहीं होता ॥ ११ ॥ ऋषिबोले

हेमहाभाग सूतजी! आप हमसे कथन कीजिये वह कैसा पुराणहै और उसके श्रवणकी विधिक्याहै ॥ १२ ॥ यह कितने दिनोंमें सुनाजाताहै और इसका पूजन कितने प्रकारसेहै किन मनुष्योंने इसे पहले सुना और वे किन किन कामनाओंको प्राप्तहुए ॥ १३ ॥ सूतजी बोले विष्णु भगवान्‌के अंशसे सत्यवतीमें पराशरके अंशसे मुनि प्रगट-हुए जो वेदोंके चारभागकर शिष्योंको पढातेहुए ॥ १४ ॥ व्रात्यपति और द्विजाधम का वेदमें अनधिकार देखकर तथा स्त्री और दुर्बुद्धि मनुष्योंको किसप्रकार ज्ञान प्राप्त-होगा ॥ १५ ॥ भगवान व्यासजी यह वार्त्ता मनमें विचारकर उनके धर्म जाननेके नि-मित्त पुराणसंहिताका विचार करते हुए ॥ १६ ॥ वह भगवान मुनि अठारहपुराणोंको निर्माण करके मुझे भारतका आख्यान पढाते हुए ॥ १७ ॥ उसमें देवीभागवत पुराण भोग और मोक्षका देनेवालाहै ॥ १८ ॥ इसको उन्होंने स्वयं जन्मेजय राजाको श्रवण कराया ॥ १९ ॥ पूर्वमें जब इनके पिता परीक्षित तक्षक सर्पके काटनेसे मृतक होग-येथे उसकी [illegible] निमित्त ॥ २० ॥ व्यासजीके मुखसे कथा श्रवणकर नौदिनतक त्रिलोककी माता देवीका विधिसे पूजन करताहुआ ॥ २१ ॥ इस नवाहयज्ञके पूर्ण होनेसे राजापरीक्षित दिव्यरूपधारीहोकर उसीसमय साकेतलोकको चलेगये ॥ २२ ॥ इसप्रकार राजाजन्मेजय पिताकी दिव्यगति देखकर व्यासमुनिकी पूजाकर फिरभी कहनेलगे ॥ २३ ॥ अठारह पुराणोंमें यह देवीभागवत पुराण सर्व श्रेष्ठ, धर्म, अर्थ, काम मोक्षका देनेवालाहै ॥ २४ ॥ जो सदाभक्तिसे देवीभागवतकी कथा श्रवण करतेहैं उनको सिद्धि दूर नहींहै, इसकारण मनुष्योंको सदा श्रवण करना चाहिये ॥ २५ ॥ आधेदिन चौथाईदिन मुहूर्तभर वा क्षणमात्रकोभी जोभक्तिसेकथा श्रवण करतेहैं उनकी कभी दुर्गति नहीं होतीहै ॥ २६ ॥ सब यज्ञ तीर्थ और सब दानोंका जो फलहै वह कही वार पुराणके श्रवण करनेसे फल मिलताहै ॥ २७ ॥ सतयुगादिमेंतो बहुत थे परन्तु कलियुगमें केवल पुराण श्रवण करनेके समान कोई धर्मनहीं है ॥ २८ ॥ आचारसे हीन कलियुगमें अल्पायु मनुष्योंके निमित्त व्यासजीने यह पुराणरूपी तरस विधान कियाहै ॥ २९ ॥ एकही इस अमृतके पानसे मनुष्य अजर अमर ताहै. देवीकेकथामृतपानसे कुलभी अजरामर होजाताहै ॥ ३० ॥ इसमें महीने और का नियम नहीं है. देवीभागवतका मनुष्योंको सदा सेवन करना चाहिये ॥ ३१ ॥ वा आश्विन, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ वा, चारों नव रात्रोंमें सुननेसे विशेषफलका देनेवालाहै ॥ ३२ ॥

इसकारण यह नवाहयज्ञ सम्पूर्ण पुण्यकार्योंमें अधिक फल देनेसे मनुष्योंको फलदायकहै ॥ ३३ ॥ जो खोटे हृदयवाले पापरत विमूढहैं मित्रद्रोही और मित्रोंकी निन्दा करनेवालेहैं हिंसामें रत नास्तिकमार्गमें लगेहुएहैं वेभी कलियुगमें नवाहयज्ञसे पवित्र होजातेहैं ॥ ३४ ॥ जो परायाधन और पराई स्त्रियोंके हरण करनेसे लुब्ध होरहेहैं जो मनुष्य कलिके भारी पापके भागीहैं जो गो देवता ब्राह्मणोंकी भक्तिसे हीनहैं वेभी नवाहयज्ञसे शुद्धहोजातेहैं ॥ ३५ ॥ उग्रतप व्रत तीर्थोंके सेवन अनेकदान नियम यज्ञ अग्निहोत्रयज्ञसे जो फल मिलताहै, मनुष्योंको वह फल नवाह-यज्ञसे मिलताहै ॥ ३६ ॥ गंगा, गया, काशी, नैमिषारण्य, पुष्कर, बद्रीवन इसप्रकार शीघ्र पवित्र नहींकर सकते जिसप्रकार हेब्राह्मणो ! यह देवीयज्ञ शीघ्र पवित्र करता है ॥ ३७ ॥ इसकारण यह देवीभागवत सब पुराणोंसे श्रेष्ठहै. और धर्म, अर्थ, काम मोक्षका उत्तम साधनहै ॥ ३८ ॥ आश्विन शुक्लपक्षमें जब सूर्य कन्याराशिमें प्राप्तहों, महाअष्टमीमे पूजन करके तुम सुवर्णके सिंहासन पर देवीकी प्रीतिके निमित्त "श्रीदेवीभागवत" पुण्य ग्रंथको योग्य ब्राह्मणके निमित्त देनेसे वह देवीकी पदवीको प्राप्तहोताहै ॥ ३९ ॥ देवीभागवतका एक वा आधाश्लो-कभी जो भक्तिसे पाठ करताहै वह देवीका प्रीतिपात्र होताहै ॥ ४० ॥ महामारीके बड़ेघोर आक्रमण और सम्पूर्ण उत्पात इसके श्रवणमात्रसे शान्त होजाते हैं ॥ ४१ ॥ जो बालग्रहकी पीडा और प्रेतका किया भयहै, वह इस देवीभागवतके श्रवणमात्रसे दूरहोजाताहै ॥ ४२ ॥ जो देवीभागवत भक्तिसे कहते वा सुनते हैं उनको धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारोंपदार्थ प्राप्त होतेहैं ॥ ४३ ॥ इसीके श्रवणकरनेसे प्रसेनकी खोजको बहुत दिनके गये भगवान वासुदेवकी चिन्तासे व्याकुल वसुदेवजीको प्रियपुत्र कृष्णका शीघ्र दर्शनहुआ और वे प्रसन्नहुए ॥ ४४ ॥ जो भक्तिसे इस श्रीभागवतकी कथाको श्रवण करतेहैं उन भक्तिसे पढनेवालोंकोभी भक्ति मुक्ति प्राप्तहोतीहै ॥ ४५ ॥ अपुत्र के पुत्रहोता दरिद्री धनीहोता और रोगी रोगसे मुक्त होजाता है. इसप्रकारका यह भागवतरूपी अमृतहै ॥ ४६ ॥ वंध्या काकवन्ध्या और मृतवत्साभी जो स्त्री होती हैं देवीभागवतके श्रवणमात्रसे चिरायुष पुत्रको प्राप्त होती हैं ॥ ४७ ॥ जिसके घरमें नित्य श्रीभागवतकी पुस्तक पूजित होतीहै वह घर तीर्थरूपहै निवास करने वालोंका पाप नाश करता है ॥ ४८ ॥ अष्टमी, चौदश, नवमीको भक्तिपूर्वक जो पढता सुनताहै

वह परसिद्धिको प्राप्तहोता है ॥ ४९ ॥ ब्राह्मण पढकर वेदविदोंमें अग्रणी होता है क्षत्रिय धरणीपति, वैश्य धनसे समृद्धिमान् और शूद्र श्रवणकरनेसे कुलमें उत्तम होताहै ॥ ५० ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे मिश्रसुखानन्दसूनु भारतधर्ममहामण्डलस्यमहोपदेशक, सनातनधर्मोपदेष्ट्रीसभाया मन्त्री, यजुर्वेदस्यभाष्यकार वाल्मीक्यादि ग्रन्थानामनुवादक पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृत भाषाटीकायां देवीभागवतमाहात्म्ये प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

ऋषिबोले महाभाग वसुदेवजीको कैसे पुत्रकी प्राप्तिहुई प्रसेन कौनथा जिसको श्रीकृष्णने ढूँढा ॥ १ ॥ और किसविधिसे किससे देवीभागवतसुनीगई, कैसे वसुदेव जीने सुनी हेबुद्धिमान् सूतजी आप यह सबकहिये ॥ २ ॥ सूतजी बोले, एक भोजवंशोत्पन्न सत्राजित द्वारकापुरीमें निवास करताथा, वह सूर्यकी आराधना करनेसे भास्करका भक्त और सखाथा ॥ ३ ॥ कुछदिनोंके उपरान्त सूर्य प्रसन्नहुए उसकी भक्ति और नम्रतासे अपने लोकका दर्शन कराया ॥ ४ ॥ और उसको प्रसन्न होकर सूर्यदेवने स्यमंतकमणिदी. वह उसको कण्ठमें धारणकर द्वारकामें आया ॥ ५ ॥ उसको तेजसे पूर्ण देखकर द्वारकावासियोंने सूर्यही जाना और सुधर्मासभामें बैठेहुए श्रीकृष्णसे आकर उन्होंने कहा ॥ ६ ॥ आपके दर्शनको सूर्यदेव आतेहैं यह वचन सुनकर श्रीकृष्ण हँसकर बोले ॥ ७ ॥ भोबालो ! यह सविता नहीं है, किन्तु सत्राजित मणिसे प्रज्वलित होरहाहै प्रकाशमान सूर्यकी दीहुई स्यमन्तकमणि लिये आताहै ॥ ८ ॥ फिर ब्राह्मणोंको बुलाय स्वस्तिवाचन पूर्वक अपने घरमें उस मणिको सत्राजित प्रवेश कराताहुआ ॥ ९ ॥ वहाँभारी दुर्भिक्ष और उपसर्गका भय नहींहोता जहाँ यह प्रतिदिन आठभार सुवर्णकी देनेवाली मणि रहती है ॥ १० ॥ तब एकसमय सत्राजितका भाई प्रसेन उस मणिको कण्ठमें बाँध सिन्धुदेशीय घोडेपर चढकर ॥ ११ ॥ मृगयाके निमित्त वनको गया उसे एक सिंहने देखा, घोडे सहित प्रसेनको मारकर सिंहने वह मणि ग्रहणकी ॥ १२ ॥ वहाँ जाम्बवान ऋक्षराजने उस मणिधारी सिंहको देखकर बिलके द्वारपर उसे मारकर उस मणिको ग्रहण

किया॥ १३ ॥ उस मणिको अपने पुत्रकी क्रीडाके निमित्त उसने दिया उस तेजस्विनी मणिको प्राप्त होकर बालकभी खेल करने लगा ॥ १४ ॥ इधर प्रसेनके न आनेसे सत्राजित बडा दुःखीहुआ कहनेलगा कि, मणिके लोभसे नजाने किसने भ्राताको मारडाला ॥ १५॥ कुछ दिनोंसे लोगोंके मुखसे पुरमें यह किंवदन्ती सुनी जानेलगी कि मणिकी इच्छासे कृष्णनेही प्रसेनको मारडाला ॥ १६ ॥ इसको कृष्णनेभी सुना और अपनेमें कलंक लगा जानकर इसे दूर करनेको लोकोंके सहित उसके खोजको गये ॥ १७ ॥ जाकर उन्होंने वनमें प्रसेनको मराहुआ देखा फिर वह रुधिरकी बूँदोकी छींटोंकी पहँचानसे सिंहके निकट तक पहुँचगये ॥ १८ ॥ फिर बिलके द्वारे सिंहकोमराहुआ देखकर कृपाकर भगवान पुरवासियोंसे कहनेलगे॥ १९॥ जबतक मैं यहाँ न आऊं तबतक तुम यहीं स्थितरहो मैं उस मणिके प्राप्त करनेको बिलमें प्रवेश करताहूं ॥ २० ॥ ऐसा कहनेसे द्वारकावासी वहीं स्थित होरहे, और श्रीकृष्ण बिलके भीतर प्रविष्टहुए जहाँ जाम्बवान्का घरथा ॥ २१ ॥ श्रीकृष्णने मणि धारणकिये जाम्बवन्तके पुत्रको देखा और जोंही मणिलेनेकी इच्छाकी कि धाई डरकर चिल्लाई ॥ २२ ॥ धात्रीका यह शब्दश्रवण करतेही ऋक्षपति आकर श्रीकृष्णके साथ दिन रात विश्राम किये बिना युद्ध करनेलगा ॥ २३ ॥ इसप्रकार २७दिनतक उन दोनोंका महायुद्ध हुआ और द्वारकावासी द्वारेपर खड़ेरहे ॥ २४॥ और द्वारकावासी बारहदिनके उपरान्त भयको प्राप्त होकर अपने स्थानको चलेगये वहाँ उन्होंने सब वृत्तान्त आदिसे कथनकिया ॥ २५ ॥ तब सब व्याकुल होकर सत्राजितको कोसनेलगे और महाभाग वसुदेवजीनेभी यह पुत्रकी वार्त्तासुनकर॥ २६॥ परमशोकसे परिवारके सहित मोहित होगये और अनेक प्रकारसे विचारनेलगे कि हमारा मंगल किसप्रकारसे होगा ॥ २७ ॥ उससमय देवर्षि ब्रह्मलोकसे आये वसुदेवजीने उठकर प्रणामकर इनका पूजनकिया ॥ २८ ॥ उससमय नारदजी वसुदेवजीसे पूंछनेलगे हेयदुश्रेष्ठ ! कहिये इससमय आप किसविचारमेंहो ॥ २९ ॥ वसुदेवबोले हमारे प्रियपुत्र कृष्ण पुरवासियोंके साथ प्रसेनको ढूंढनेगये और उसको मृतक देखा ॥ ३० ॥ बिलके द्वारे मराहुआ सिंह देखा, और पुरवासियोंके द्वारेपर बैठाकर बिलके भीतर स्वयं प्रविष्टहुये ॥ ३१ ॥ बहुतदिन होगये और आजतकभी हमारे पुत्र नहींआये इससे मुझको बड़ाशोचहै, जिससे मुझे प्राप्त हो वह उपाय आप कहिये ॥ ३२ ॥ नारदजी बोले हेयदुश्रेष्ठ ! पुत्र प्राप्तिके निमित्त

अम्बिकादेवीकी आराधनाकरो उसके आराधनसे बहुतशीघ्र कल्याणहोगा ॥ ३३ ॥ वसुदेवजी बोले हेभगवन् वह देवी कौनसीहै और उसका क्या प्रभावहै हेदेवर्षे ! उसका किसप्रकार आराधन होताहै, सो कृपाकर कहो ॥ ३४ ॥ नारदजी बोले हेमहाभाग वसुदेवजी संक्षेपसे मुझसे सुनो विस्तारसेतो देवीका माहात्म्य कौन कहसकताहै ॥ ३५ ॥ जो यह नित्याभगवती सच्चिदानंदरूपवालीहै, परेसे परे जिसने यह सब जगत् व्याप्त कररक्खाहै ॥ ३६ ॥ जिसकी आराधनासे ब्रह्मा चराचरकी सृष्टि करतेहैं, जिसकी स्तुतिसे मधु कैटभके भयसे ब्रह्माजी मुक्तहुए ॥ ३७ ॥ जिसकी कृपासे भगवान् विष्णु इस जगत्का पालन करते और जिसशक्तिकी कृपादृष्टिसे रुद्र संहार करतेहैं ३८ ॥ वह संसारके बंधनका हेतु और मुक्ति देनेवालीहै वही देवी परमाविद्या और सबकी ईश्वरीहै ॥ ३९ ॥ नवरात्रिके विधानसे जगदम्बिकाका पूजन करके नौदिन पर्यन्त देवीभागवत पुराण सुनो ॥ ४० ॥ जिसके श्रवणमात्रसे शीघ्रही पुत्रका दर्शनहोगा इसके पढने सुनने वालोंको भक्ति मुक्ति दूरनहींहै ॥ ४१ ॥ नारदजीके ऐसा कहने पर वसुदेवजी उनको प्रणामकर परमप्रीतिसे नारदमुनिसे बोले ॥ ४२ ॥ वसुदेवजी बोले हेभगवान् आपके कहनेसे मुझे अपना वृत्त स्मरणहुआ सुनिये देवीके माहात्म्य-की बात आपसे कहताहूं ॥ ४३ ॥ पहले कंसने इसप्रकारआकाशवाणीसुनकर कि, देवकी का आठवाँगर्भ तेरी मृत्यु करेगा मुझे भार्या सहित भयसे रोकरक्खा ॥ ४४ ॥ तब देवकी भार्याके सहित मैं कारागारमें रहनेलगा पापात्माकंसने मेरे प्रत्येक उत्पन्न हुए पुत्रको तत्कालही वधकिया ॥ ४५ ॥ जब उसने छः पुत्र मारे तब मैं अत्यन्त शोकाकुलहुआ और देवकी देवीभी रात दिन तप्यमान होनेलगी ॥ ४६ ॥ तब मैं ने गर्गमुनिको बुलाय प्रणाम कर पूजन किया और देवकीका दुःख कहकर पुत्रकी कामनासे वचन कहे ॥ ४७ ॥ हेभगवन् करुणासागर आप यादवोंके गुरुहैं आप वह साधन कहिये जिससे आयुष्मान् पुत्रकीप्राप्तिहो ॥ ४८ ॥ तब दयानिधि गर्गजी प्रसन्न होकर मुझसे कहनेलगे हेमहाभाग वसुदेवजी उस साधनको सुनिये ॥ ४९ ॥ जो दुर्गा भगवती भक्तोंकी दुर्गति दूर करतीहै उस कल्याणीकी आराधनाकरो शीघ्रही मनोरथकी प्राप्तिहोगी ॥ ५० ॥ जिसकी आराधनासे सबने सब कामनाओंकी प्राप्तिकीहै. दुर्गा पूजा करनेवालोंकी लोकमें कुछभी दुर्लभ नहीं है ॥ ५१ ॥ यह वचन सुनकर मैं भार्यासहित प्रसन्नहो परमभक्तिसे हाथजोड़ मुनिसे बोला ॥ ५२ ॥ वसुदेवजी बोले हेभगवन् करुणासागर ! यदि आपकी हमपर प्रीतिहै तो हेगुरु मेरे

निमित्त आप भगवतीका आराधन कीजिये ॥ ५३ ॥ कंसके घरमें निरुद्धहुआ मैं तो कछ करही नहीं सकता हे महामते इसकारण आपही दुःखसागरसे मेरा उद्धार करो ॥ ५४ ॥ यह सुन प्रसन्नहो मुनिराज बोले हेवसुदेवजी तुम्हारी प्रीतिकें कारण मैं तुम्हारा हित करूंगा॥ ५५॥ तब गर्गमुनि मेरी प्रार्थनासे प्रसन्नहो घरजाय विन्ध्याचलमें ब्राह्मणोंको साथले दुर्गाकी आराधना करनेको गये ॥ ५६ ॥ वहाँजाय उन जगत्की माता भक्तोंके अभीष्ट देनेवाली भगवतीको जप और पाठसे आराधना करने लगे ॥ ५७॥ तब नियम समाप्त होनेपर अशरीरिणी वाणीहुई हेमुनि! मैं प्रसन्नहूं तुम्हारे कार्यकी सिद्धिहोगी ॥ ५८ ॥ भूमिके भार दूर करनेको मैंने भगवान्से प्रेरणाकीहै वह वसुदेवसे देवकीमें अपने अंशसे आवतार लेंगे ॥ ५९ ॥ वसुदेवजी कंसके भयसे उस बालकको लेकर शीघ्र गोकुलमें नन्दरायके घर प्राप्तकरेंगे ॥ ६० ॥ और वहाँसे यशोदाकी कन्याको अपने घरमें लाकर कंसराजाको देंगे कंस उसे मारनेके निमित्त पृथ्वीमें पटकैगा ॥ ६१ ॥ वह उसके हाथसे छूटकर दिव्यशरीर धारण किये मेरें अंशसे युक्त विन्ध्याचलमें जगत्का हित करैगी ॥ ६२ ॥ यह उसके वचन सुन जगदम्बाको प्रणाम करके गर्गमुनि प्रसन्नहो मथुरामें आये ॥ ६३ ॥ गर्गाचार्यके मुखसे मैंने महादेवीका वरदान सुनकर भार्यासहित परम आनंदपाया ॥ ६४ ॥ उसदिनसे मैं देवीका माहात्म्य विशेषरूपसे जान्ताहूं हेदेवर्षे अब आपके मुखसेभी सुनाहै ॥ ६५ ॥ इसकारण देवीभागवत आपही श्रवण कराइये हेदेवर्षे आप हमारे भाग्यसेही प्राप्तहुएहो ॥ ६६ ॥ वसुदेवके वचन सुन नारदजी प्रसन्नमन होकर अच्छेदिन और नक्षत्रमें कथाका आरंभ करतेहुए ॥ ६७ ॥ और कथाके विघ्न निवारणके निमित्त पुरवासी ब्राह्मणोंसे नवाक्षर मंत्र और मार्कण्डेय पुराणोक्त देवीका स्तव पाठ करातेहुए ॥ ६८ ॥ प्रथमस्कंधसे लेकर श्रीनारदके मुखसे निर्गत वसुदेवजी प्रेमसे श्रीमद्भागवत श्रवण करतेहुए ॥ ६९ ॥ नौवें दिनमें कथाकी पूर्त्तिमें ग्रन्थ और वाचकको प्रसन्नहो महामना वसुदेवजी पूजन करतेहुए ॥ ७० ॥ उधर कृष्ण और जाम्बवन्तके युद्धमें कृष्णके मुष्टिपातसे जाम्बवन्तका अंग शिथिल होगया ॥ ७१ ॥ तब वहभी स्मृतिको प्राप्तहो भगवान्को प्रणामकर अपने अपराध क्षमाकराताहुआ बोला ॥ ७२ ॥ हेभगवन्! मैंने जाना कि आपने क्रोधसे सागरका क्षोभ किया और लंकामें प्राप्त होकर अनुचरों सहित रावणका वधकिया ॥ ७३ ॥ हेकृष्ण! आप वहीहो सो अब मेरी दुरात्मताको क्षमाकरो कहिये मैं आपका क्या प्रियकरूं आप

भृत्यपनमें स्थितहूं ॥ ७४ ॥ जाम्बवन्तके वचन श्रवणकर कृष्णबोले हेऋक्षराज मैं इस मणिके कारण बिलमें प्राप्तहुआहूं ॥ ७५ ॥ तब ऋक्षराजने प्रसन्न होकर अपनी जाम्बवती कन्या और स्यमंतकमणि कृष्णका पूजनकर प्रदानकी ॥ ७६ ॥ वह उस पत्नीको लेकर कंठमें मणिधारणकिये ऋक्षराजसे पूँछकर द्वारकाको चले ॥ ७७ ॥ कथा समाप्तिके दिन उदारमनावसुदेवजी ब्राह्मणोंको भोजन कराय दक्षिणा बाँटरहे थे ॥ ७८ ॥ और ब्राह्मण आशीर्वाद देरहेथे उसीसमय भगवान् भार्यासहित मणि धारणकिये प्राप्तहुये ॥ ७९ ॥ वसुदेव आदि भार्या सहित श्रीकृष्णको देखकर हर्षसे अश्रुपूर्ण नेत्र हो परमानन्दको प्राप्तहुए ॥ ८० ॥ और देवर्षि नारदजी कृष्णके आगमनसे प्रसन्नहो वसुदेव और कृष्णसे पूँछकर ब्रह्माकी सभाको गये ॥ ८१ ॥ यह भगवान्का चरित्र अपयशका दूर करने वालाहै जो मनुष्य पवित्रमन और भक्तिसे इसको पढते और सुनतेहैं वह सुखसे पूर्ण सदा जगत्में सिद्धकामनायुक्त होतेहैं और अन्तमें मुक्तिमार्गको प्राप्तहोते हैं ॥ ८२ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेमानसखण्डेपण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

सूतजी कहने लगे हे ऋषियो दूसरे इतिहासकोभी श्रवणकरो जिसमें देवीभागवतका माहात्म्यकीर्त्तन कियागयाहै ॥ १ ॥ एक समय लोपामुद्राकेपति अगस्त्यजी कुमारके पास जाकर पुजनकर अनेक कथा छतेहुए ॥ २ ॥ भगवान् स्कन्दजीने उनसे अनेक कथा कहीं दान और तीर्थोंकेभी अनेक माहात्म्य कथन किये ॥ ३ ॥ वाराणसी मणिकर्णिकाका माहात्म्य गंगादि दूसरे तीर्थोंकाभी विस्तारसे कथन किया॥ ४ ॥यह सुनकर मुनि प्रसन्नहो महातेजस्वी कुमारसे लोकके हितकरनेको अगस्त्यजी पूछनेलगे ॥ ५ ॥ अगस्त्यजी बोले हेभगवन् तारकके शत्रु देवीभागवतका माहात्म्य और उसके सुननेकी विधि कहिये ॥ ६ ॥ देवीभागवत नाम पुराण परम श्रेष्ठहै जिसमें त्रिलोककी माता निरन्तर गाई जातीहैं ॥ ७ ॥ स्कन्दजी बोले श्रीमद्भागवतका माहात्म्य विस्तारसे कौन कहसकताहै हेब्रह्मन् संक्षेपसे सुनो मैं कहताहूं ॥ ८ ॥ जो नित्या सच्चिदानंदरूपिणी जगदात्मिका है जिसमें भुक्ति मुक्ति देनेकी

सामर्थ्य स्थितहै ॥ ९ ॥ हेमुने ! देवीभागवत उसकी वाङ्मयी मूर्त्ति है जिसके पढने सुननेसे इस जगत्‌में कुछभी दुर्लभ नहींहै ॥ १० ॥ विवस्वतके पुत्र श्राद्धदेव हुएहैं उनके पुत्र नहींथा वशिष्ठकी अनुमतिसे उन्होंने पुत्रेष्टि यज्ञ किया ॥ ११ ॥ उस समय श्राद्धदेवकी स्त्रीने होतासे प्रार्थना करी कि हेभगवन् मेरी इच्छाहै कि मेरे कन्या उत्पन्नहो ऐसाही करो ॥ १२ ॥ तब होताने मनमें विचारकर कन्याकेही निमित्त हविदानकी, इसकारण उसके फलसे इलानाम कन्याही होतीहुई ॥ १३ ॥ तब राजा कन्याको देख विमनहो गुरुसे बोले हेप्रभो तुम्हारा संकल्प विपरीत क्यों हुआ ॥ १४ ॥ यह सुन मुनिने ध्यानकिया और उसका कारण जानकर इलाके पुरुष होनेके निमित्त ईश्वरसे प्रार्थना की ॥ १५ ॥ तब मुनिके तपके प्रभावसे और परमात्माके अनुग्रहसे सबके देखते २ इला पुरुष होगई ॥ १६ ॥ गुरुने संस्कार करके उसका नाम सुद्युम्न रक्खा और सब विद्याका सागर हुआ जैसे नदियें सब सागरमें प्राप्त होजातीहैं ॥ १७ ॥ कुछ समयमें सुद्युम्न तरुण हुआ और सिन्धुदेशीय घोडेपर चढकर वनमें मृगया खेलनेको गया ॥ १८ ॥ वनसे दूसरे वनमें जाताहुआ अनुचरों सहित भ्रमण करनेलगा प्रारब्धसे हिमालयकी तराईमें चलागया ॥ १९ ॥ वहाँ एक समय शिवासहित शिवजी आनंदपूर्वक रमण करने लगेथे ॥ २० ॥ उससमय मुनि-जन शिवदर्शनकी लालसासे आये उनको देखकर पार्वतीको बड़ी लाज आई ॥ २१ ॥ और उन दोनोंको विहार करते देखकर मुनिभी निवृत्त होकर--वैकुण्ठको चलेग-ये ॥ २२ ॥ तब प्रियाके हितकी इच्छासे शिवजीने उस वनको इस प्रकार शापित किया कि आजसे जो पुरुष यहाँ प्रवेश-करैगा वह स्त्री होजायगा ॥ २३ ॥ उस-दिनसे कोई पुरुषभी उस स्थानमें नहीं जाताथा वह सुद्युम्न प्रविष्ट होतेही स्त्री होगया २४ अपने अनुचर और अश्वकोभी स्त्री देखकर बड़ा विस्मित हुआ तब वह सुन्दरी रूपसे वनमें विचरने लगा ॥ २५ ॥ विचरण करते एक समय वह बुधके आश्रमके समीप आई उसको सुन्दर शरीर उन्नत पयोधर वाली देखकर ॥ २६ ॥ कि बिम्बाके समान ओष्ठ चमेलीकी कलीके समान दाँत सुन्दर मुख कमललोचनी देख अनंगशरसे विद्ध होकर बुध इच्छा करतेहुए ॥ २७ ॥ और उसनेभी सोमनन्दन कुमारकी इच्छा की और बुधके साथ रमण करते वहाँ निवास करने लगी ॥ २८ ॥ हेअग-स्त्यजी फिर कुछ समयके उपरान्त उससे पुरूरवा नाम पुत्र उत्पन्न हुवा ॥ २९ ॥ तब कितनेही वर्ष बीतजानेपर बुधके आश्रममें एकदिन अपना पूर्व वृत्तान्त स्मरण होने

पर उसको बड़ा दुःख हुवा ॥ ३० ॥ और गुरु वशिष्ठके आश्रममें जाय उनको प्रणाम कर पुरुष होनेकी इच्छासे अपना वृत्तान्त निवेदन किया ॥ ३१ ॥ वशिष्ठजी वृत्तान्त जानकर कैलासपर्वतपर जाय परमभक्तिसे पूजनकर शिवकी स्तुति करनेलगे ॥ ३२ ॥ वशिष्ठजी बोले शिवशंकर कपर्दी पार्वतीको अर्द्धदेहमें धारण करनेवाले चन्द्रमौलिके निमित्त नमस्कारहै ॥ ३३ ॥ मृड़सुखदायक कैलासवासीके निमित्त नमस्कारहै, नीलकण्ठ तथा भक्तोंको भुक्ति मुक्ति देनेवालेके निमित्त प्रणामहै ॥ ३४ ॥ शिवशिव रूप शरणागतोंके भयहारी वृषभपर चढनेवाले शरणागतवत्सल परात्माके निमित्त प्रणामहै ॥ ३५॥ सर्ग स्थिति और लयमें ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र रूपवाले देवाधिदेव वरदायी पुरारीके निमित्त प्रणामहै ॥ ३६ ॥ यज्ञरूपसे यजन करने वालोंको फल देनेवालेके निमित्त प्रणामहै, गंगाधर सूर्य इन्दु शिखि नेत्रवालेके निमित्त नमस्कारहै ॥ ३७ ॥ इसप्रकार स्तुति करनेसे जगत्पति भगवान शंकर प्रगटहुए वृषपर चढे पार्वतीके साथ कोटिसूर्यके समान कान्तिवाले ॥ ३८ ॥ रजतपर्वतके समान तीननेत्र चंद्रशेखर प्रणाम करते देखकर प्रसन्नहो वशिष्ठजीसे बोले ३९ श्रीभगवान् बोले हेविप्रर्षे जो तेरे मनमें इच्छाहो सो वर मांग यह सुनकर प्रणाम कर मुनि इलाके पुंस्त्व प्राप्तिकी प्रार्थना करतेहुए ॥ ४० ॥ तब प्रसन्नहो भगवान शिवजी मुनिसे बोले कि यह एक महीने पुरुष और एक महीने स्त्री रहेगा ॥ ४१ ॥ इसप्रकार शिवसे वर प्राप्तकर महर्षिवरदानमें उन्मुखी जगदम्बादेवीको प्रणाम करतेहुए॥४२॥ करोडौं चन्द्रमाके समान कला कान्तियुक्त स्मितमुखी देवीको भक्तिपूर्वक इलाकी पुंस्त्वकामनासे पूजन करते हुए ॥ ४३ ॥ हेमहादेवी भक्तोंकी अनुग्रह करने वाली तुम्हारी जयहो, सब देवताओंसे पूजित अनन्त गुणोंकी खान तुम्हारी जय हो ॥ ४४ ॥ हे शरणागतवत्सले देवि आपको प्रणामहै,हेदुःखनाशिनि दुष्ट दैत्य निषूदिनी तुम्हारी जयहो ॥ ४५ ॥ भक्तिसे जाननेयोग्य महामाया जगदम्बिकाके निमित्त प्रमाणहै, संसारसागरसे पार उतारनेकी तुम्हारे चरणारविन्द जहाजहैं ॥ ४६ ॥ ब्रह्मादिक देवताभी तुम्हारे चरणारविंदकी सेवासे संसारके उत्पत्ति प्रलय पालनमें समर्थवान हुएहैं ॥ ४७ ॥ हेचतुर्वर्ग देनेवाली देवी प्रसन्नहो हेदेवि तुम्हारी स्तुति कौन करसकताहै केवल मैं प्रणामही करताहूं ॥ ४८ ॥ इसप्रकार नारायणी भगवती स्तुतिको प्राप्तहोकर वशिष्ठकी स्तुतिसे तत्काल प्रसन्न होगई ॥ ४९ ॥ तब दीनोंके दुःख दूर करनेवाली देवी मुनिसे बोली सुद्युम्न घर जाकर भक्तिसे मेरा अर्चनकरै ॥ ५० ॥

और तुम सुद्युम्नको हमारी कथा—सुनाओ जो देवी भागवत नामवालीहै वह मेरी प्रियकरहै उसे नौदिनमें सुनै ॥ ५१ ॥ उसके श्रवण करनेसे इसको पुंस्त्वकी प्राप्तिहोगी, ऐसा कहकर शिवा शिव अन्तर्द्धान होगये ॥ ५२ ॥ वशिष्ठजी उनको प्रणामकर अपने आश्रममें आय सुद्युम्नको बुलाय देवीका आराधन कहते हुए ॥ ५३ ॥ आश्विनके शुक्लपक्षमें जगन्माताको पूजनकर नवरात्रके विधानसे राजाको कथा सुनाई ॥ ५४ ॥ सुद्युम्न भक्तिसे श्रीमद्भागवत श्रवणकर गुरुको प्रणाम और पूजनकर निरन्तर पुंस्त्वको प्राप्त हुआ ॥ ५५ ॥ तब महर्षि वशिष्ठने उनको राज्यासनपर अभिषेक किया तब वह प्रजाको प्रसन्न करते धर्मसे पृथ्वी पालन करनेलगे ॥ ५६ ॥ और बडी दक्षिणावाले अनेक यज्ञोंसे भजनकिया, फिर पुत्रको राज्य देकर देवीके लोककी प्राप्ति की ॥ ५७ ॥ हेब्राह्मणो यह आपसे सम्पूर्ण इतिहास कहा जो मनुष्य इसे भक्तिसे कहते सुनतेहैं वह यहां सब कामनाओंको प्राप्तहोकर देवीके प्रसादसे परमअमृतको प्राप्तहो देवीके लोकको गमन करते हैं ॥ ५८ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे देवीभागवतमाहात्म्ये पण्डितज्वालाप्रसाद मिश्रकृतभाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

सूतजी बोले अगस्त्यजी इस दिव्यकथाको श्रवणकर फिर सुननेकी इच्छासे स्कन्दजी से बोले ॥ १ ॥ अगस्त्यजी बोले हेसेनापते देव यह बडी विचित्र कथाहै औरभी देवीभागवतका माहात्म्य कहिये ॥ २ ॥ स्कन्दजी बोले हेमुने इस कथाको सुनिये जिसमें भागवतके एक देशकी महिमा कहीहै ॥ ३ ॥ जिसमें गायत्रीको अधिकारकर धर्मका विस्तार कहाजाय जिसमें गायत्रीकी महिमाहै वही भागवतहै ॥ ४ ॥ यह भगवतीके सम्बन्धवालीहै इससे भागवत कहातीहै विष्णु, ब्रह्मा, शिवभी प्रेमसे इसका आराधन करतेहैं ॥ ५ ॥ एक महाबुद्धिमान ऋतवाक मुनिथे उसका पुत्र गण्डान्त और रेवती नक्षत्रमें हुआ ॥ ६ ॥ उसने विधिपूर्वक उसके जातकर्मादि किये चूडा उपनयन नांदीश्राद्धादि संस्कार किये। ७। जबसे यह पुत्र उस महात्माके हुआ तबसे वह मुनि शोक रोगसे व्याकुलहुआ ॥ ८ ॥ रोष लोभसे युक्त मातापिताके कारण नित्यरोगसे व्याकुल शोचसे दुःखीथा ९ उसके कारण ऋतवाक् चिन्तासे दुःखी हुआ यह क्या कारणहै जो मेरापुत्र

दुर्मति है॥ १० ॥ और किसी मुनिकी पत्नीको उसने बलसे हरणकिया और उसने माता पिताकी शिक्षा मूढताके कारण न मानी॥ ११ ॥ तब चित्तसे व्याकुल होकर ऋतवाक्ने ऐसा कहा मनुष्योंको अपुत्रता होनी उत्तमहै कुपुत्रता भलीनहीं है ॥ १२ ॥ कुपुत्र स्वर्गमें प्राप्त पितरोंको नरकमें पातन करताहै, जीवन पर्यन्त माता पिताको केवल दुःख देनेवाला होताहै ॥ १३ ॥ कुपुत्र पापीका पिताके दुःखके निमित्तही जन्महै इससे उसको धिक्कारहै न वह सुहृदोंका उपकारकरै न वैरियोंका अपकार करै॥ १४ ॥ लोकमें वे मनुष्य धन्यहैं जिनके घरमें सुपुत्रहैं परोपकारमें शील होनेसे पिता माता को सुखदेताहै ॥ १५ ॥ कुपुत्रसे कुल और यश नष्ट होजाताहै कुपुत्रसे इसलोक और परलोकमें नरकयातना भोगनी होतीहै ॥ १६ ॥ कुपुत्रसे वंश और कुभार्या से जन्महीं नष्टहो जाताहै कुभोजनसे दिन नष्टहै और कुमित्रसे सुख कहां है ॥ १७॥ स्कन्दजी बोले इसप्रकार पुत्रके दुष्टाचारसे वह मुनि बहुत दिन बिताकर एकदिन गर्गजीसे पूछनेलगे ॥ १८ ॥ ऋतवाक् बोले हेभगवान मैं आपसे कुछ पूछताहूं कृपाकर कहिये आप ज्योतिषशास्त्रके आचार्यहो मेरा पुत्र दुःशील क्यों है ॥ १९ ॥ मैंने विधिपूर्वक गुरुकी शुश्रूषासे वेद पढाहै, ब्रह्मचारीके व्रतसे उत्तीर्णहो विधिपूर्वक विवाह किया २० भार्याके साथ गृहस्थधर्म भलीप्रकार अनुष्ठान किया, पंचयज्ञभी यथायोग्य किये ॥ २१ ॥ हे विप्र नरकके भयसे पुत्र उत्पन्नकिया काम सुखकी इच्छासे नहीं पुत्रप्राप्तिकी इच्छासे विधिपूर्वक मैंने गर्भाधान किया, ॥ २२ ॥ हेमुने यह पुत्र मेरे वा माताके दोषसे दुःखदायी माता पिताको कष्टकारक और बंधुओंको शोकदायक हुआहै ॥ २३ ॥ तब गर्गाचार्यजी मुनिके यह वचन सुनकर उसका हेतु ज्योतिषविद्यासे विचारकर बोले ॥२४॥ गर्गजी बोले हेमुने इसमें तुम्हारा, माताका और कुलका अपराध नहीं है रेवतीके अन्त गण्डान्तमें जन्म लेनेके कारणसे पुत्र दुःशील हुआहै ॥२५॥ हेमुने जिसकारण तुम्हारे पुत्रका जन्म दुष्टकालमें हुआहै इसीसे तुम्हारे दुःखके निमित्त हुआ और हेतु कुछ नहीं है ॥ २६ ॥ हेमुने उस दुःखशान्तिके निमित्त

१ पूर्णिमा पंचमी और दशमीके अन्तकी एक२तथा पडवा छठ और एकादशीके आदिकी एक एक घडी गण्डान्तहै यह यात्रा विवाहमें वर्जितहैं । कर्क सिंह इन दोनो लग्नोंकी घडीकी आधी और इसीक्रमसे वृश्चिक धन मीन मेष इनके आदिघडी गण्डान्तमें शुभकर्म नकरै । नक्षत्र गंडान्त। रेवती अश्विनी इनकी संधिकी२घडी इसी क्रमसे आश्लेषा मघा ज्येष्ठा मूल, इनकी संधिकी ४ घडी वर्जनीयहैं यह तीन प्रकारका गंडान्त यात्रा जन्मकालमें वर्जितहै, गण्डान्तका बालक पिताको । छःमास तक दर्शन करना उचित नहीं है. रेवतीके गण्डान्तमें पिताको दुःखदेताहै ।

जगन्माता शिवा दुर्गतिनाशिनी दुर्गाकी आराधना यत्नपूर्वककरो॥ २७॥ मुनिके वचन सुन ऋतवाक्‌ने क्रोधसे मूर्च्छित होकर रेवतीको शापदिया कि यह आकाशसे पतित होजाय॥ २८॥ हेमुने शाप देतेही वह तारा अंशसे आकाशसे पतितहुआ अर्थात् तेज पतितहुआ और वह प्रकाशमान सब लोकके देखते कुमुदाद्रिपर पतित हुआ॥ २९॥ उसके पातसे वह पर्वत रैवतनाम कहाया, और उसदिनसे वह बडा रमणीयहोगया॥ ३०॥ इस प्रकार रेवतीको शाप देकर मुनि गर्गके कथनानुसार विधिपूर्वक दुर्गाकी आराधना करनेलगे और सुख सौभाग्यके भागीहुए॥ ३१॥ स्कन्दजीबोले रेवतीनक्षत्रके उस तेजसे एक कन्या हुई जो रूपमें बडी विख्यात दूसरी लक्ष्मीके समान हुई॥ ३२॥ उस परसूचितहुई कन्याको परम मनोहर देखकर मुनिने उसका रेवती नाम किया॥ ३३॥ और उसे प्रमुचमुनि अपने आश्रममें लाय धर्मसे पालन करनेलगे वह प्रमोच महर्षि कुमुदाचलमें उसको पुत्रीवत् पालतेरहे॥ ३४॥ कुछ समयमें उसको प्रौढा और रूपशालिनी देखकर मुनि विचारने लगे इसके योग्य कौनवर होगा॥ ३५ वहुत खोजने परभी उसके योग्य वर न पाया तब अग्निशालामें प्रवेशकर अग्निको सन्तुष्ट करने लगे॥ ३६॥ तव प्रसन्नहो अग्निने कन्याके निमित्त वर बताया कि हेमुने धर्मिष्ठ बलवान् वीर प्रियवाक् किसीसे पराजित नहोनेवाला॥ ३७॥ दुर्दमनाम राजा इसका पति होगा अग्निके वचन सुन मुनि प्रसन्नहुए॥ ३८॥ देवकी प्रेरणासे आखेट के निमित्त उससमय वह राजा वहाँ आये, यह दुर्दम बड़े बुद्धिमान्‌थे॥ ३९॥ विक्रमशीलके पुत्र बलवान् वीर्यवान्‌थे यह कालिन्दीके जठरसे उत्पन्न प्रियव्रतके वंशमें थे॥ ४०॥ मुनिके आश्रममें प्रवेश करके और मुनिको न देखकर रेवतीके पासजाय राजा पूछनेलगे॥ ४१॥ राजाबोले हेप्रिये महर्षि इस आश्रमसे कहांगये मैं उनकी चरण देखनेकी इच्छा करताहूं हेकल्याणि तत्त्वसे कहो॥ ४२॥ कन्याबोली हेमहाराज महामुनि अग्निशालामें गयेहैं राजा यह वचन सुनकर शीघ्रही आश्रमसे चले॥ ४३॥ तब अग्निशालाके द्वारमें स्थित दुर्दम राजाको मुनिने राज्यलक्षण तथा नम्रतासे युक्तदेखा॥ ४४॥ राजाने उनको प्रणामकिया तत्काल मुनिने अपने शिष्यसे कहा हेगौतम शीघ्र अर्घ्यलाओ यह राजा अर्घ्यके योग्य हैं॥ ४५॥ यह चिरकालमें आयेहैं विशेषकर हमारे जामाताहैं यह कह राजाको अर्घ्यदिया और उन्होंनेभी विचार करते ग्रहण किया॥ ४६॥ आसनपर स्थित अर्घ्य ग्रहणकिये राजाको आशीर्वादसे अभिनंदनकर मुनिने कुशल

पूछी ॥ ४७॥ हेराजन् आपके बल, कोश, सुहृद्वर्ग भृत्य अमात्य पुर देश,और आपके शरीरमें अनामय है ॥ ४८॥ और तुम्हारी भार्यातौ कुलशयुक्तहै कारणकि वह यहीं हैं इसकारण इसकी कुशल नहीं पूछता आप औरोंकी कुशल कहिये ॥ ४९ ॥ राजाबोले हेभगवन् तुम्हारे प्रसादसे मेरे सब कुशलहै परन्तु यह मुझे बडा कौतूहलहै कि मेरी भार्या यहां कहां है ॥ ५० ॥ ऋषिबोले रेवतीनाम तुम्हारी भार्या रूपमें अद्वितीयहै वह यहांही स्थितहै तुम उस अपनी पत्नीको क्योंनहीं जान्ते ५१ राजाबोले हेप्रभो सुभद्रादि भार्यातो हमारे घरमें हैं हेभगवान् उनको तो जान्ताहूं परन्तु रेवतीको नहींजान्ता ॥ ५२ ॥ ऋषिबोले हेराजन् जिसको तुमने अभी प्रियाकहाहै उस श्लाघ्यतम प्रियाको आपने क्षणमात्रमें ही भुलादिया ॥ ५३ ॥ राजाबोले जो आपने कहा वह अन्यथा नहीं होता परन्तु मैंने साधारण बात कहीथी मेरा भाव अन्यथा नहीं. आप क्रोध न कीजिये ॥ ५४ ॥ ऋषिबोले हेराजन्! तुम सत्य कहतेहो तुम्हारा भाव दूषित नहीं है अग्निकी प्रेरणासेही आपने ऐसा वचन कहाथा ॥ ५५ ॥ आज मैंने अग्निदेवतासे पूंछाथा कि, इसका स्वामी कौनहोगा ? उसने कहा निश्चयही दुर्दमराजा इसका पति-होगा ॥ ५६ ॥ सो हेराजन्! इस मेरी दीहुई कन्याको आप ग्रहण कीजिये. प्रिया कहके तुमने आमंत्रण पहले कियाहै, अब विचार मतकरो ॥ ५७ ॥ यहसुन राजा मुनिके वचनको विचारते मौनहुए और मुनि उसकी विवाहविधि करनेको उद्यत हुए ॥५८॥ तब विवाहके निमित्त उद्यतहुए मुनिसे कन्या कहने लगी हेतात ! मेरा विवाह आप रेवतीनक्षत्रमें कीजिये ॥ ५९ ॥ ऋषिबोले हेवत्से ! विवाहके योग्यतौ औरभी वहुतसे नक्षत्रहैं फिर रेवतीमें क्यों विवाह कियाजाय विशेषकर वह दिव्य-लोकमेंभी स्थित नहीं है ॥ ६० ॥ कन्याबोली रेवतीनक्षत्रके विना मेरा विवाह-काल उचित नहीं है इसकारण प्रार्थना करतीहूं मेरा विवाह रेवतीनक्षत्रमें करो ॥ ६१ ॥ ऋषिबोले ऋतवाक् मुनिने पूर्व रेवतीनक्षत्रको पातित करदियाहै और नक्षत्रमें यदि तेरीप्रीति नहीं है तौ तेरा विवाह कैसेहोगा ॥ ६२ ॥ कन्याबोली क्या एक ऋत-वाक् काही ऐसा तपहै क्या आपका मन वचन कर्मसे उपार्जन किया ऐसा तप नहीं है ॥ ६३ ॥ मैं तुम्हारा तपोबल जान्तीहूं आप जगतके सृजन करनेमें समर्थहो हेपिता ! रेवती नक्षत्रको दिव्यलोकमें स्थापनकर मेरा विवाहकरो ॥ ६४ ॥ ऋषि-बोले तेरा कल्याणहो जैसा तू कहतीहै ऐसाही होगा. तेरे निमित्त चन्द्रमार्गमें मैं रेव-

तीको स्थापन करूंगा ॥ ६५ ॥ स्कन्दजीबोले इसप्रकार कहकर मुनिने अपने तपोबलसे यथापूर्व सोममार्गमें रेवतीको स्थापन किया ॥ ६६ ॥ और रेवती नाम नक्षत्रमें विधिपूर्वक मुनिने दुर्दम महात्माके निमित्त अपनी कन्यादेदी ॥ ६७ ॥ कन्याका विवाह करके मुनिने राजासे कहा हेवीर! तुम्हारी अभिलाषा क्याहै उसे कहो मैं पूर्ण करूंगा ॥ ६८ ॥ राजाबोले मैं ने स्वायंभुवके वंशमें जन्मलियाहै आपके प्रसादसे मन्वन्तरके अधिपति पुत्रकी मैं इच्छा करताहूं ॥ ६९ ॥ मुनिबोले जो आपकी यह कामनाहै तो देवीका आराधनकरो तुम्हारा पुत्र मनु मन्वन्तरका अधिपतिहोगा ॥ ७० ॥ देवीभागवत नाम जो पांचवाँ पुराणहै उसको पांचबार श्रवण करनेसे यथेच्छ पुत्रको प्राप्तहोगे ॥ ७१ ॥ रेवतीमें रेवतनाम पांचवाँ मनुहोगा वह वेदवित्शास्त्रके तत्त्वका जाननेवाला धर्मात्मा अपराजित होगा ॥ ७२ ॥ ऐसा कहने पर राजा प्रसन्नहो मुनिको प्रणाम करके वह बुद्धिमान् भार्याके सहित अपने नगरको गये ॥ ७३ ॥ और पिता पितामहका राज्य वह महामति करताहुआ और प्रजाको और सपुत्रकेसमान पालताहुआ ॥ ७४ ॥ एकसमय लोमशनाम महात्मा मुनि आगये उनको प्रणाम और पूजाकर राजाबोले ॥ ७५ ॥ राजाबोले भोमुने! आपके प्रसादसे देवीभागवत नाम पुराणको पुत्रकी इच्छासे सुनना चाहताहूं ॥ ७६ ॥ राजाके यह वचन सुन प्रसन्नहो लोमशजी बोले हेराजन् तुम धन्यहो जो तुम्हारी भक्ति त्रिलोकजननीमें हुई है ॥ ७७ ॥ जोपरमजमदम्बिका सुर असुरोंसे परम आराधनीयहै जो उसमें तुम्हारी भक्ति उत्पन्नहुई है तो अवश्य कार्य सिद्धहोगा ॥ ७८ ॥ इसकारण हेराजा! मैं तुमको श्रीमद्भागवत श्रवण करावताहूं जिसके श्रवणमात्रसे कुछभी दुर्लभ नहीं है ॥ ७९ ॥ ऐसा कहकर वह सुदिनमें कथा आरंभ करतेहुए और विधिपूर्वक भार्य्याके सहित पांचबार श्रवणकिया ॥ ८० ॥ समाप्तिके दिन राजाने पुराण और मुनिको परमप्रसन्नतासे धर्मपूर्वकपूजनकिया ॥ ८१ ॥ नवार्णमंत्रसे हवन करके कुमारियोंको भोजन कराकर और सपत्नीक ब्राह्मणोंको दक्षिणासे सन्तुष्ट करतेहुए ॥ ८२ ॥ फिर कुछदिनोंके उपरान्त रेवती भगवतीके प्रसादसे लोकके कल्याणकर गर्भको धारण करतीहुई ॥ ८३ ॥ फिर अच्छे पवित्र समय अच्छे स्थानमें प्राप्तहुए गृहोंसे युक्त सर्वमंगलकी सम्पन्नतामें रेवतीने पुत्रको प्रसवकिया ॥ ८४ ॥ पुत्रकी उत्पत्ति सुन राजा बड़ा प्रसन्नहो स्नानकर सुवर्णके द्वारा जातकर्म आदि क्रिया करतेहुए ॥ ८५ ॥ विधिपूर्वक ब्राह्मणोंको दान देकर

राजाने संतुष्टकिया, बडे होनेपर उपनयन कराय राजाने सांग वेदोंको पढ़ाया ॥ ८६ ॥ तब वह धर्मिष्ठ सब अस्त्रोंका ज्ञाता सम्पूर्ण धर्मोंका कर्ता धर्ता रेवतनाम वीर्यवान् हुआ ॥ ८७ ॥ तब ब्रह्माजीने रेवतको मानवपदमें नियुक्तकिया और वह मन्वन्तरका अधिपति धर्मसे पृथ्वी शासन करनेलगा ॥ ८८ ॥ यह इसप्रकार मैंने देवीका प्रभाव संक्षेपसे वर्णन किया, विस्तारसे पुराणका माहात्म्य कौन वर्णन करसकता है ॥ ८९ ॥ सूतजीबोले इसप्रकार अगस्त्यजी भागवतका माहात्म्यविधिपूर्वक श्रवण करके कुमारको पूजनकर अपने आश्रमको गये ॥ ९० ॥ हेब्राह्मणो ! यह मैंने तुमसे भागवतका माहात्म्य वर्णन किया जो इसको श्रवण करतेहैं वह अनेक भोग भोगकर अन्तमें मुक्तिको प्राप्तहोतेहैं ॥ ९१ ॥

इति श्रीस्कंदपुराणेमानसखण्डेश्रीदेवीभागवतमाहात्म्येपण्डितज्वालाप्रसादमिश्र
कृतभाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पुराणश्रवणविधिः ।

ऋषिबोले हेमहाभाग सूतजी ! हमने भागवतका माहात्म्य श्रवण किया अब आपके मुखसे पुराणश्रवणकी विधि सुनना चाहताहूं ॥ १ ॥ सूतजी बोले हेऋषियो ! तुमसब पुराण श्रवणकी विधि सुनो जिसके सुनतेही सब कामना सिद्धहोती-हैं ॥ २ ॥ पहले बुद्धिमान् ज्योतिषीको बुलाकर मुहूर्तको पूँछे और अच्छे महीने नक्षत्रमें आरंभ करके ॥ ३ ॥ हस्त, अश्विनी, मूल, पुष्य, रोहिणी, अनुराधा मृगशिर, श्रवणनक्षत्र अच्छी तिथि और अच्छेवारमें पुराण श्रवण करै ॥ ४ ॥ गुरुके नक्षत्रसे चौथे और । पहले ५ । ६ । ४ । ३ होनेसे क्रमसे धर्मकी प्राप्ति, लक्ष्मीकी प्राप्ति, कथा सिद्धि परमसुख ॥ ५ ॥ पीडा, राजभय ज्ञानप्राप्ति यह क्रमसे फल होताहै, इससे पुराणश्रवणमें चक्र शोधनकरै ऐसा शिवजीने कहाहै ॥ ६ ॥ अथवा देवीकी प्रीतिके निमित्त चारों नवरात्रमें दूसरे महीने तथा दूसरे नक्षत्र तिथिवार शोधनकर सुनै ॥ ७ ॥ विवाहादिके समान सामग्री सजानी चाहिये यह नवाहयज्ञ यत्नसे करना चाहिये ॥ ८ ॥ दंभ लोभसे रहित अनेक इसमें सहायकारी करने चाहिये, जो चतुर और वदान्य देवीकी भक्तिमें तत्परहों ॥ ९ ॥ यह वार्त्ता देश देशमें प्रत्येक भक्तको सुनवा देनी कि, देवीकथा होगी उसमें अवश्य आना चाहिये ॥ १० ॥ और गाणपत्य, शैव, शाक्त,

वैष्णव यह सबकोही सेवन करनी चाहिये कारण कि देवता शक्ति सहितहैं ॥ ११ ॥ श्रीदेवीभागवतके अमृतरूपी रसके लोलुप प्रेममें तत्पर मनुष्योंको कथाके निमित्त आना चाहिये ॥ १२ ॥ ब्राह्मणादि चारौं वर्ण स्त्रियें संन्यासी सकाम निष्काम सबकोही कथारूपी अमृत पान करना चाहिये ॥ १३ ॥ यदि नवाह श्रवणमेंभी उनको अवकाश न हो तो जिससमय अवकाश मिलै थोडे कालको आना चाहिये। कारण कि यज्ञमें किंचित्काल स्थिति करनाभी पुण्यदायक है ॥ १४ ॥ बुलावाभी विनयके साथ करना चाहिये, और आयेहुओंको श्रेष्ठनिवास स्थान देनाचाहिये ॥ १५ ॥, भूमिके मार्जन पूर्वक कथाका स्थान लीपना चाहिये और गोबरसे बड़ा स्थान लीपना चाहिये ॥ १६ ॥ और केलेके स्तंभोंसे शोभित मनोहर मण्डप करना चाहिये वितानके ऊपर ध्वजा पताका लगानी चाहिये ॥ १७ ॥ वक्ताका आसन दिव्य सुखसे बैठने योग्य उत्तर वा पूर्वमुख भलीप्रकार रचना चाहिये ॥ १८ ॥ और सुन्नेवालोंके आसनभी यथोचित करै जो मनुष्य और स्त्री यथायोग्य कथा श्रवण करसके ॥ १९ ॥ अच्छा बोलने वाला चतुर शास्त्रज्ञाता देवीके आराधनमें तत्पर दयालु स्पृहारहित दक्ष और धैर्यवान् वक्ता परमश्रेष्ठ है ॥ २० ॥ ब्राह्मणवत्सल, देवताका भक्त, कथाके रसमें परायण, उदार, लोभरहित, नम्र, हिंसादि रहित श्रोता होनाचाहिये॥ ॥ २१ ॥ पाखण्डमें निरत लोभी स्त्रीलम्पट धर्मध्वजी निठुर क्रोधी इसप्रकारका वक्ता देवीयज्ञमें नहीं लियाहै ॥ २२ ॥ संदेहका छेदन करना यह पण्डितका मुख्य गुण है श्रोतृबोधका करनेवाला व्यग्रतारहित पण्डित वक्ताका सहायक होनाचाहिये॥ ॥ २३ ॥ मुहूर्तसे एकदिन पहले वक्ता श्रोतादिको नियम कल्पना क्षौरादि बनवाकर करनी चाहिये ॥ २४ ॥ अरुणोदय वेलामें स्नान शौचसे निवृत्त होकर सन्ध्यातर्पणके उपरान्त जपादि संक्षेपसे करना चाहिये ॥ २५ ॥ कथाश्रवणके योग्य सिद्धयोग विचार ले समस्त विघ्नोंके दूर करनेको गणपतिका पूजनकरै ॥ २६ ॥ कलशस्थापन करकै दिग्देवता बटुक क्षेत्रपाल योगिनी मातृका ॥ २७ ॥ तुलसीगृह विष्णु शंकरका पूजनकरै और नवाक्षरमंत्रसे देवीको पूजै ॥ २८ ॥ श्रीभागवतकी पुस्तकको संपूर्ण उपचारसे पूजनकरै कारण कि श्रीदेवीकी यह वाङ्मयीमूर्ति यथावत् सुन्दराक्षरोंसे युक्तहै ॥ २९ ॥ कथा विघ्नशान्तिके निमित्त पांचब्रह्मचारियोंका वरणकरै वे नवार्णमंत्र जपैं और सप्तशतीका स्तोत्र पाठकरैं ॥ ३० ॥ प्रदक्षिणा नमस्कारके अन्तमें स्तुतिकरै हेकात्यायनि, महामाया, भवानि, भुवनेश्वरि ॥ ३१ ॥ हेरूपामयी!

संसारसागरमें मग्नहुए मेरा उद्धार करो ब्रह्मा विष्णु शिवसे आराधनयोग्य हेजगदम्बा! तुम प्रसन्नहो ॥ ३२॥ हेदेवी! हमको मनकी अभिलाषायुक्त वर दो आपको प्रणामहै. इसप्रकार प्रार्थनाकर नियमसे कथा सुने ॥ ३३॥ वक्ताकीभी व्यासबुद्धिसे नियमपूर्वक पूजाकरै माला अलंकार भूषणादिसे भूषितकर पूजनकरै ॥ ३४ ॥ हे सर्वशास्त्र और इतिहासके ज्ञाता! व्यासरूप आपको प्रणाम है. आप कथारूप चन्द्रोदयसे मनका अंधकार दूरकरो ॥ ३५॥ उसीके आगे नवाहान्त नियम करने चाहिये ब्राह्मणादिको पूजनकर बैठाय पीछे आपभी बैठे ॥ ३६ ॥ चारपदार्थकी प्राप्तिके निमित्त सावधानीसे कथा श्रवण करनी चाहिये. गृह, पुत्र, कलत्र, धनकी चिन्ता त्यागदेनी ॥ ३७॥ सूर्योदयसे प्रारंभकर जब कुछ सूर्य शेष रहजाय और दो मुहूर्त मध्याह्नमें विश्रामकर शेषदिनमें कथा होतीरहै ॥ ३८ ॥ मल मूत्रके जयके निमित्त थोड़ा भोजन करना चाहिये, कथावालेको एकसमय हविष्य भोजन करना चाहिये ॥ ३९ ॥ अथवा फलाहारी दुग्धाहारी वा घृतसेवी होना चाहिये, बहुत क्या जिससे कथामें विघ्न नहो चतुर पुरुषोंको वही वार्ता करनी चाहिये ॥ ४० ॥ ब्राह्मणोंमें कथा श्रवणमें निष्ठावालोंके नियम कहताहूं ब्रह्मा विष्णु महेशोंमें जो भेद करतेहैं ॥ ४१ ॥ जो देवीकी भक्तिसे हीन पाखण्डी हिंसक खलहैं ब्राह्मणद्रोही नास्तिक हैं वे कथा श्रवणके योग्य नहीं है ॥ ४२ ॥ ब्राह्मण धनके लोभी पराई स्त्री और परधनके लेनेकी इच्छावाले तथा देवधन हरण करनेवाले कथा श्रवणके योग्य नहीं हैं ॥ ४३ ॥ ब्रह्मचारी भूमिपर शयन करनेवाले सत्यवक्ता जितेन्द्रिय होकर कथासमाप्तिमें पत्तलपर भोजनकरै ॥ ४४ ॥ बैंगन, कलिन्द (कुरैयाका फल) तेल, दोदलके शाक, मधु, भुनाया अन्न भावदुष्ट और बासी अन्न व्रतीको त्यागना चाहिये ॥ ४५ ॥ मांस मसूरान्न उदकी (अन्नविशेष) लहसन मूली हींग प्याज गाजर ॥ ४६ ॥ पेठा नालीका शाक कथाव्रतीको भोजन करना न चाहिये. काम, क्रोध, मद, लोभ, दंभ, मानको त्यागना चाहिये ॥ ४७ ॥ ब्राह्मणद्रोही पतित व्रात्य चाण्डाल यवन अन्त्यज रजस्वला और वेदबाह्योंसे कथाव्रतीको आलाप करना न चाहिये ॥ ४८ ॥ वेद गौ गुरु विप्र स्त्री राजा बडेपुरुष देवता और देवभक्त इनकी निन्दा कभी न सुनै ॥ ४९ ॥ विनय सीधापन पवित्रता दया थोड़ाबोलना उदारतायुक्त मन यह कथाव्रतीको करना चाहिये ॥ ५० ॥ श्वेतदागवाला कुष्ठी क्षयी रोगी भाग्यहीन पापात्मा दरिद्र और अनपत्य वेभी भक्तिसे अपने रोग दूर होनेको कथा श्रवणकरैं कुष्ठीजन समाजसे पृथक् बैठें ॥ ५१ ॥

वंध्या काकवंध्या, दुर्भगा मृतभर्तृका वा जिसका गर्भ गिरजाताहो उसको यह कथा श्रवणकरनी चाहिये ॥ ५२ ॥ जो विनाश्रम धर्म, अर्थ, काम, मोक्षकी इच्छा करताहै उसको यत्नसे देवीभागवत सुननी चाहिये ॥ ५३ ॥ यह कथाके नौ दिन नौ यज्ञकी समानहैं इनमें दान हवन जप अनन्तफल देनेवाला होताहै ॥ ५४ ॥ इसप्रकार नवाहव्रत करकें फिर उद्यापनकरै, महाष्टमीव्रतके समान फलकी इच्छावालोंको कर्तव्यहै ॥ ५५ ॥ निष्काम श्रवण करनेसे श्रोता पवित्र हो मुक्तिको प्राप्त होते हैं, कारण कि, यह भगवती मनुष्योंको भोग और मोक्षकी देनेवाली है ॥ ५६ ॥ पुस्तक और वक्ताकी नित्य पूजा करनीचाहिये और वक्ताके दियेहुए प्रसादको भक्तिपूर्वक ग्रहण करना चाहिये ॥ ५७ ॥ कुमारीका पूजन नित्यकर भोजन कराय प्रार्थना करनी चाहिये सौभाग्यवती और ब्राह्मणोंकी पूजा होगी इसमें सिद्धिहोगी कोई सन्देह नहीं ॥ ५८ ॥ समाप्तिमें गायत्रीसहस्रनामका पाठकरै वा सर्वदोषकी शान्तिके निमित्त विष्णुसहस्रनामका पाठकरै ॥ ५९ ॥ जिसके स्मरण और नामोच्चारणसे तप यज्ञ और क्रियामें न्यूनताभी सम्पूर्णताको प्राप्तहोतीहै इसकारण विष्णुका कीर्तन करै ॥ ६० ॥ समाप्तिमें देवीसप्तशतीके मंत्रोंसे हवन करै अथवा देवीमाहात्म्यके मूलमंत्र अथवा श्लोकों ॥ ६१ ॥ अथवा गायत्रीमंत्रसे दूध और घृतसे हवन करै. कारण कि, यह भागवत गायत्रीमंत्रमय है ॥ ६२ ॥ वस्त्र भूषणादिसे वाचकको भलीप्रकार सन्तुष्ट करना चाहिये वाचकके प्रसन्न होनेमें उनपर सब देवत प्रसन्न होजातेहैं ॥ ६३ ॥ फिर भक्तिसे ब्राह्मणोंको भोजन कराय भक्तिसे उनको संतुष्टकरै. कारण कि, यह पृथ्वीमें देवरूपहै इनके संतुष्ट होनेसे अभीष्टफल मिलताहै ॥ ॥ ६४ ॥ श्रेष्ठवस्त्रधारणकिये कुमारियोंका देवीकी प्रीतिके निमित्त पूजनकरै. उनको दक्षिणा देकर अपनी सिद्धिकी प्रार्थनाकरै ॥ ६५ ॥ औरभी अनेकप्रकारके दान और सुवर्ण दुधारी गाय देनी चाहिये घोडा पृथ्वी देनेसे अक्षयफलकी प्राप्ति होतीहै ॥ ॥ ६६ ॥ और यह देवीभागवत सुन्दर अक्षरोंमें लिखीहुई सुवर्णके सिंहासनमें स्थापनकर पट्टवस्त्रसे वेष्टितकर ॥ ६७ ॥ अष्टमी वा नवमीको वाचकको अर्चन करके पुस्तकके दान करनेसे अनेक भोग यहाँ भोगकर दुर्लभ मुक्तिको प्राप्तहोताहै ॥ ॥ ६८ ॥ दरिद्र दुर्बल बालक तरुण बुड्ढा पुराणका ज्ञाता सदा वंदनीय और पूजनीय है ॥ ६९ ॥ यद्यपि लोकमें गुरुजन्मा बहुत गुरुहैं परन्तु उन सबमें पुराणज्ञाता परमगुरु है ॥ ७० ॥ पुराणज्ञाता ब्राह्मण व्यास आसनपर बैठाहुआ प्रसङ्गकी समाप्ति

नहोनेपर किसीको प्रणाम नकरे ॥ ७१ ॥ और जो पुराणकी दिव्यकथाको अभक्तिसे सुनतेहैं उनको पुण्यफल नहीं मिलता वह दुःख दरिद्रके भागी हैं ॥ ७२ ॥ जो पुराणके विना पूजे ताम्बूल कुसुमादिको सेवन कर कथा सुनतेहैं वे दरिद्री होतेहैं ॥ ७३ ॥ जो मनुष्य होतीहुई कथाको छोड़कर अन्यस्थानमें चलेजातेहैं भोगके उपरान्त उनकी दारा और सम्पदा नष्ट होजातीहै ॥ ७४ ॥ जो दांभिक वक्तासे ऊंचे स्थानपर बैठकर कथा सुनतेहैं वे नरकयातना भोगकर वायस होतेहैं ॥ ७५ ॥ जो बडेमोलके आसन और वीरासनपर बैठकर कथा सुन्तेहैं वे अर्जुनके वृक्ष होतेहैं ॥ ॥ ७६ ॥ जो कथा होनेमें दुरुक्ति करतेहैं कटुशब्द कहतेहैं वे पहले गर्दभ होकर फिर गिरगट होते हैं ॥ ७७ ॥ जो पुराणज्ञ और पापहारी कथाकी निन्दा करतेहैं वह सौ जन्मतक कुत्ते होते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ ७८ ॥ और जो कथा कहनेवालेके बराबर असनपर बैठकर कथा सुनतेहैं वे नरकमें गुरुस्त्रीगमनके पातकको प्राप्तहोते हैं ॥ ७९ ॥ और जो विना प्रणामकिये सुनतेहैं वे विषके वृक्ष होतेहैं और जो लेटकर सुनतेहैं वे अजगर होतेहैं ॥ ८० ॥ और जो मनुष्य कभीभी पुराणकी कथाको श्रवण नहीं करते वे घोर नरक भोगकर अन्तमें वनसूकर होते हैं ॥ ८१ ॥ और जो कथासे प्रसन्न नहोकर विघ्न करतेहैं वे मूर्ख करोंडो वर्ष नरक भोगकर अन्तमें ग्रामसूकर होते हैं ॥ ८२ ॥ आसन पात्र द्रव्य फल वस्त्र कम्बल वस्त्र जो कथा कहने वालोंको देताहै वे नारायणके स्थानको जातेहैं ॥ ८३ ॥ और पुराणपुस्तकके निमित्त जो पट्टा नया वस्त्र सुन्दर डोरी देते हैं वे मनुष्य सुखभागी होतेहैं ॥ ८४ ॥ सब पुराणोंके सुननेका जो फलहै उससे सौगुणा पुण्य देवीभागवतके सुननेसे मिलताहै ॥ ८५ ॥ जैसे नदियोंमें गंगा देवताओंमें शिव, काव्योंमें रामायण, ज्योतिषपदार्थोंमें सूर्य ॥ ८६ ॥ प्रसन्न करनेवालोंमें चन्द्रमा, धनोंमें यश, क्षमावालोंमें जैसे भूमि गंभीरतामें जैसे सागर ॥ ८७ ॥ पापनाश करनेवालोंमें जैसे गायत्री, पापनाशमें जैसे नारायण, वैसेही अठारह पुराणोंमें देवीभागवत है ॥ ८८ ॥ जिस किसी उपायसेभी जो नौवार करके इसे सुनतेहैं उसका फल नहीं कहाजासक्ता वह पुरुष सदा जीवन्मुक्तहै ॥ ८९ ॥ राज शत्रुभयकी शान्तिमें तथा महामारीके भयमें दुर्भिक्ष राज्यभंगादिकी शान्तिके निमित्त इसको सुननाचाहिये ॥ ९० ॥ भूत प्रेतके नाश करनेको शत्रुसे राज्य लेनेको पुत्रलाभके निमित्त हेब्राह्मणो ! देवीभागवत सुननाचाहिये ॥ ९१ ॥ यह श्रीमद्भागवत

जो पढ़ते और सुनतेहैं श्लोक आधाश्लोक वा चरण पढ़तेहैं वे परमगतिको प्राप्तहोतेहैं ९२ भगवती देवीने स्वयं इसको आधेश्लोकमें प्रकाशित कियाथा, शिष्योंकी परंपरासे इसीका विस्तार होगयाहै ॥ ९३ ॥ गायत्रीकेसमान परमधर्म और गायत्रीके समान परम तप नहींहै गायत्रीके समान देवता और गायत्रीकी बराबर कोई मंत्र नहीं है॥९४॥ गाने अर्थात् जपनेवालेकी रक्षा करतीहै इससे इसको गायत्री कहतेहैं यह देवी इस भागवतमें रहस्यसहित प्रतिष्ठित है ॥ ९५ ॥ इसकारण इस देवीकी प्रीति करनेवाली भागवतके और दूसरे महापुराण सोलहवीं कलाकेभी बराबर नहींहै ॥ ९६ ॥ यह श्रीमद्भागवतपुराण निर्मल ब्राह्मणोंका धनहै जिसमें नारायण और धर्मपुत्रनेभी निर्मल धर्म कहाहै और गायत्रीका रहस्य मणिद्वीपमें वर्णन कियाहै और हिमालयपर्वतपर भगवतीने स्वयं गीता कहीहै ॥ ९७ ॥ इसकारण लोकमें इसकी बराबर दूसरा पुराण नहींहै इसकारण हेब्राह्मणो सदा इसको सेवन करना चाहिये ॥ ९८ ॥ जिसके सम्पूर्ण प्रभावको विधाता हरि गिरिश अनन्त (शेष) भी नहींजानते अंशाशक और दूसरे देवता तो क्या हैं ऐसी जगदम्बिकाके निमित्त नित्य नमस्कारहै ॥ ॥९९॥ जिसके चरणारविन्दकी रजको प्राप्त होकर ब्रह्मा निरन्तर जगत्को सृजन करते हैं और विष्णु पालन करतेहैं रुद्र संहार करतेहैं उस जगदम्बिकाके निमित्त नित्य नमस्कारहै ॥ १०० ॥ सुधाका कूप और उसके निकट देववृक्षोंकी पंक्तिसे शोभित मणिद्वीप जो चिन्तामणिमय गृहोंसे चित्र विचित्र और रुचिर है वहाँ कल्याणहृदयवाली स्मितमुखी भगवती विराजमान है उनको ध्यान करके मनुष्य भोग मोक्षको अवश्य प्राप्तहोताहै ॥ १०१ ॥ ब्रह्मा शिव विष्णु इन्द्रादिसे उपास्यमान वह मणिद्वीपकी अधिष्ठातृ देवी जगत्के कल्याणके निमित्त हो ॥ १०२ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे देवीभागवतमाहात्म्ये पण्डितवरश्रीसुखानन्दमिश्रसूनुपण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां श्रवणविधिवर्णनं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इति

श्रीदेवीभागवतमाहात्म्य-भाषा

समाप्त।

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ श्रीमद्देवीभागवत ।

प्रथमस्कन्ध १.

अध्याय १.

दोहा—गौरी शंभु गिरा गुरु, गोविंद गणपति गंग ॥
सुमिरि व्यास भाषाकरत, देवीकथाप्रसंग ॥ १ ॥
जासु देह मति मति विषय, स्थित जो जगमात ॥
मति न लखत जेहि रूपको, मतिप्रेरक सुखदात ॥ २ ॥
सकल निगम उत्तंसमणि, ह्रल्लेखा जगवन्द ॥
मातुभवानीके चरण, नमोनमः सुखकन्द ॥ ३ ॥
तरुण चन्द्र शिर दयामय, कर अंकुश अरु पाश ॥
मन्दहास्ययुत भक्तके, काटत सब दुख त्रास ॥ ४ ॥
श्रीशंकर आचार्य अरु, मात पिता शिर नाय ॥
देवीभागवत ग्रंथकी, भाषा लिखत बनाय ॥ ५ ॥

सबकी चैतन्य अर्थात् आत्मारूप अनादिभूत ब्रह्मविषयक शुद्ध सत्व अन्तर्मुखप्रतिबिम्बविशिष्ट वृत्तिरूप विद्याको अर्थात् आत्मरूप उस प्रसिद्ध विद्याको ध्यान करतेहैं इस प्रकार ध्यान की हुई मायाविशिष्ट ब्रह्मरूपिणी भगवती हमारी बुद्धिको ध्यान करनेमें प्रेरणा करै, जिससे हमारे चित्तकी वृत्ति निरन्तर उसके चरित्रमें लगै, गायत्रीमें अन्तर्यामी ब्रह्मप्रतिपादन होनेसे सब वेदसे सम्मत गायत्रीके पद और उसी छन्दसे घटित मंगलाचरणसेही वह भागवतमें प्रतिपाद्यभी वस्तु मायाविशिष्ट अन्तर्यामी ब्रह्मरूपही है ऐसा जाननाचाहिये ॥ १ ॥ शौनक बोले, हे महाभाग सूतजी ! तुम धन्यहो जो तुमने सम्पूर्ण पुराणसंहिता भलीप्रकार अध्ययनकीहै ॥ २ ॥ हेपापरहित ! जो दिव्य अठारह पुराण भगवान् वेदव्यासजीने रचना कियेहैं सो तुमने भलीप्रकार अध्ययन कियेहैं ॥ ३ ॥ वह सर्ग प्रतिसर्ग वंश मन्वन्तर वंशानुचरितके सहित पांचलक्षणवाले हैं वह गुप्तअर्थसहित आपने सत्यवतीपुत्र व्याससजीसे पढेहैं ॥ ४ ॥ हमारे पुण्ययोगसे आप यहाँ उत्तमक्षेत्रमें प्राप्तहुएहो सो दिव्यमुनियोंका विश्राम देनेवाला

कलिके दोषसे रहित ॥ ५ ॥ यह मुनियोंका समाज है अब हम सावधान चित्तसे पवित्र संहिता सुननेकी इच्छा करतेहैं आप हमसे कथन कीजिये ॥ ६ ॥ हेसर्वज्ञ ! तीनतापरहित आप दीर्घायु हूजिये हेमहाभाग ! इससमय आप ब्रह्मसम्मत पुराण वर्णन कीजिये ॥ ७ ॥ हेसूत! श्रोत्रादि इन्द्रिय युक्त मनुष्य स्वादमें विचक्षणहैं वो विधिसे वंचितहुए पुराणोंको नहीं सुन्ते हैं ॥८॥ जैसे छःरसोंसे जिह्वा और इन्द्रियोंका सुख प्राप्तहोताहै इसीप्रकार वचनोंद्वारा बुद्धिमानोंने श्रोत्रेन्द्रियको आल्हाद देनेवाले महात्माओंके वचन कहेहैं ॥ ९ ॥ श्रोत्ररहित होनेसे भी शब्दसे सर्प मोहित होजातेहैं और जो कर्णयुक्त होकरभी कथा नहीं सुन्ते उनको कर्णहीनही जानो ॥ १० ॥ इसकारण हेसौम्य ! सम्पूर्ण ब्राह्मण सावधान होकर सुननेकी इच्छावाले कलिभयसे नैमिषारण्यक्षेत्रमें निवास करतेहैं ॥ ११ ॥ जैसेहो वैसे समय व्यतीत करनाही चाहिये, मूर्खोंका व्यसनमें और पण्डितोंका समय पुराणशास्त्रके विचारमें व्यतीत होताहै ॥ १२ ॥ और शास्त्रभी विचित्र है जिनमें न्यायआदिके अनेक जल्पवाद हैं "और पुराणभी अनेक सात्विकादि भेदसे तीनप्रकारकेहैं इसीप्रकार शास्त्रभी अनेकहैं जोवितण्डावादसे युक्त गर्व और अमर्ष करनेवाले हैं यह क्षेपक श्लोकहै ॥ १ ॥" जिनमें अनेक अर्थवाद हेतुवादादिके वचनहैं ॥ १३ ॥ उन शास्त्रोंमें वेदान्त सात्विक, मीमांसा राजसिक, और हेतुवादसे युक्त न्याय तामसी हैं ॥ १४ ॥ इसी प्रकार पुराणभी कथानकसे तीन प्रकारके हैं सो आपने पांच लक्षणयुक्त कहेहैं ॥ १५ ॥ उनमें यह पांचवां पुराण श्रीमद्भागवत वेदसम्मत तुमने सम्पूर्ण लक्षणोंसे कहाहै ॥ १६ ॥ वह आपने उद्देशमात्रसे कथन किया जो मुमुक्षुओंको मुक्तिका देनेवाला और धर्मात्माओंको धर्म और कामना देनेवालाहै ॥ १७ ॥ वह उत्तम पुराण आदरसे विस्तारपूर्वक कहिये हम सब ब्राह्मण दिव्यभागवतके सुननेकी इच्छा करतेहैं ॥ १८ ॥ हेधर्मज्ञ ! आप तो पुराणसंहिताओंको जानतेहैं वह गुरुभक्ति रखनेके कारण व्यासजीने तुमसे सम्यक्प्रकारसे कहाहै ॥ १९ ॥ हेसर्वज्ञ आपके मुखसे निकलेहुए और पुराण सुनेभी परन्तु सुधापानसे देवतोंके समान हमारी तृप्ति नहीं होतीहै ॥२०॥ हेसूत! यदि मुक्ति न हो तो अमृतपानको धिक्है भागवतामृतपानसे मनुष्य शीघ्र संकटसे छुटजाताहै ॥ २१ ॥ सुधापानके निमित्त जो सहस्रों यज्ञ किये हैं हेसूत ! उससे हम सबप्रकारसे शान्तिको प्राप्त नहीं हुएहैं ॥ २२ ॥ कारण कि यज्ञोंका फल स्वर्ग है और स्वर्गसे फिर आवृत्ति होतीहै इसप्रकार इस संसारचक्रमें

निरन्तर भ्रमण करना होताहै ॥ २३ ॥ हेसर्वज्ञ, विना ज्ञानसे तो मुक्ति नहींहोती यह मनुष्य इस त्रिगुणात्मक कालचक्रमें भ्रमणही करते रहतेहैं ॥ २४ ॥ इसकारण सब रसोंसे युक्त पवित्र भागवत कहिये जो मुमुक्षुओंको पवित्र करनेवाली मुक्तिदायिनी होनेसे सदा प्रिय है ॥२५॥ गायत्रीसम्मित होनेसे प्रश्नमें २४ श्लोक कहेहैं ॥

इति श्रीसकलशास्त्रविशारदमिश्रसुखानंदसुतपण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृते देवीभागवतस्याभिनवव्याख्याने प्रथमस्कंधे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

श्रीसूतजी बोले मैं धन्य और अतिभाग्यवानहूं महात्माओंने मुझे पवित्र करदिया जो आपने वेदविख्यात महापुण्यदायक पुराण सुननेकी इच्छाकी ॥ १ ॥ सो मैं सम्पूर्णश्रुतिके अर्थसे युक्त पुराण सुननेकी इच्छा करताहुं जो सबशास्त्रोंका रहस्य पुराणोंमें श्रेष्ठ है ॥ २ ॥ उसके श्रेष्ठपदकमल मुनियोंको मुक्ति देनेवाले प्रणामकरके जिनकी ब्रह्मादि सेवा करते और स्तुतिमें तत्पर मुनीन्द्र जिनका ध्यान करतेहैं उनको प्रणामकर यह परमोत्तम पुराण रसयुक्त विस्तारके साथ आपसे कहताहूं. हेद्विजो ! परमभक्तिसे यह देवीपुराण आपके प्रति कहताहूं ॥ ३ ॥ जो वेदमार्गमें सदा आया परा विद्या कहीजातीहै जो सर्वज्ञ सब बंधन छेदनमें निपुण सबके आशयमें स्थित जिसको दुरात्मा नहीं जानसकते जिसको मुनि अपने ध्यानमें प्रत्यक्ष करतेहैं वह भगवती हमारे ऊपर सदा प्रसन्न होकर सिद्धिकी देनेवाली हो ॥ ४ ॥ इस सत् असत्‌रूप जगत्‌को निर्माण करके जो अपनी त्रिगुणात्मकशक्तिसे इस जगत्‌की रक्षा करतीहै और कल्पान्तमें संहारकर उसीप्रकार रमण करतीहै उस सब विश्वकी माताको मनसे प्रणाम करताहूं ॥५॥ यह वार्ता प्रसिद्धहै कि ब्रह्माजी इस सम्पूर्ण जगतकी रचना करतेहैं और वेदवादी पुराणज्ञाताभी इसीवार्ताको स्वीकार करतेहैपरन्तु ब्रह्माजीकाजन्म विष्णुकी नाभि कमलसे हुआहै और उन्हीकी प्रेरणासे ब्रह्माजी जगत्‌की रचना करतेहैं वह स्वतंत्र नहींहै ॥६॥ और प्रलयकालमें विष्णुभी शेषकी शय्यामें शयन करतेहैं और उनके नाभिकमलसे ब्रह्माका जन्महै जो भगवान् प्रलयकालमें शेषजीकी आधारताको प्राप्तहोतेहैं वह मुरारि किसप्रकार जगत् रचनामें स्वयं संबोधन किये जासकेहैं ॥ ७ ॥ जो एकार्णव जलसागर है वह रसरूपहै और विनापात्रके उसकी स्थिति नहीं होसकती इनके धारण करनेको जो शक्तिरूप है उस सब संसारकी जननीको मैं

प्रणाम करताहूं ॥ ८ ॥ योगनिद्रासे नेत्रमीचे भगवान विष्णुको कमलमें स्थित ब्रह्मा-जीने जिस देवीको स्तुतिकर प्रसन्नकिया उसकी मैं शरण होताहूं ॥९॥ उस सगुण निर्गुण मुक्तिदायिनी मायाको ध्यानकरकै सम्पूर्ण पुराण कथन करताहूं हेमुनियो तुम सुनो ॥१०॥ यह श्रीमद्भागवत पुराण परमोत्तम है इसमें १८००० श्लोक हैं ॥ ११ ॥ और बारह स्कंधहै और सब ३०० तीनसे अध्याय व्यासजीने कहेहैं ॥ १२ ॥ उसमें पहले स्कन्धमें बीस दूसरेमें बारह तीसरेमें तीस चौथेमें पचीस ॥ १३ ॥ पांचवेमें ३५ छठेमें इकतीस सातवेंमें चालीस ॥ १४ ॥ आठवेंमें चौवीस नौवेंमें पचास दशवेंमें १३ तेरहहैं ॥ १५ ॥ ग्यारहवेंस्कन्धमें चौवीस बारहवेंमें चौदह ॥ १६ ॥ इसपुराणकी इसप्रकार महात्माने संख्या कहीहै इसकी अठारहसहस्र संख्या कहीहै ॥१७॥ सर्ग प्रतिसर्ग वंश मन्वन्तर वंशानुचरित यह पुराणके लक्षणहैं॥ १८॥जो निर्गुणसत्य नित्य व्यापकविकृत शिवाहै योगसे जाननेयोग्य सबका आधार जो तुरीयामें स्थितहै॥ १९॥उसीकी सात्विकी राजसी तामसी शक्ति महालक्ष्मी महासरस्वती महाकाली स्त्री है ॥२०॥ इन्हीं तीन शक्तियोंके देह अंगीकार लक्षणवाला तत्व जो सृष्टिके निमित्तहै तत्वविशारद उसीको सर्ग कहतेहैं ॥ २१ ॥ उन शक्तियोंके परिणाम रूप हरि ब्रह्मा और शिव इन प्रादुर्भाव पालन उत्पत्ति और संहाररूप होनेको प्रतिसर्ग कहतेहैं ॥ २२ ॥ सोम सूर्यवंशी राजाओंका चारित्र कीर्तन करना और हिरण्यकश्यपादिका चरित्र कथन वंशहै ॥ २३ ॥ स्वायंभुव आदि मनुओंका वंश वर्णन करना और उनकी कालसंख्या कथन मन्वन्तर वर्णनहै ॥ २४ ॥ उनके वंशका अनुकथनही वंशानुचरितहै इसप्रकार पुराण पांच लक्षणयुक्त होताहै ॥ २५ ॥ व्यासजीने सवालक्ष भारत कथनकियाहै वह पांचवां वेदसम्मत इतिहास कहाताहै ॥ २६ ॥ शौनकजी बोले हेसूतजी ! वे कितने सब पुराण और कितनी उनकी संख्याहै सब आप विस्तारसे कहिये ॥ २७ ॥ कलिकालसे डरेहुए हम नैमिशारण्यवासी हैं ब्रह्माजीने मनोमयचक्र देकर हमको यहां स्थापित कियाहै ॥ २८ ॥ और यह कहा कि तुम इस चक्रके पीछे २ चलेआओ जहां इस चक्रकी धार शीर्णहोजाय वही स्थान पवित्र जानना ॥ २९ ॥ वहां किसीप्रकारभी कलिका प्रवेश न होगा तबताई तुम वहां रहो जबतक फिर सतयुग आवै ॥ ३० ॥ यह उनके वचनको सुनकर और उस चक्रको ग्रहणकर चले और वह चक्रभी सबदेशके देखनेकी इच्छासे चला ॥ ३१ ॥ चलतेहुए यहां उस चक्रकी नेमि

शीर्णहोगई इसीकारण यह परमदेश नैमिषारण्य नामसे विख्यातहुआ ॥ ३२ ॥ यहां कलिका प्रवेश नहीं होता इसकारण यहां हमने स्थान कियाहै और सिद्धमहात्मा मुनि कलिसे भीत होकर यहां रहते हैं ॥ ३३ ॥ यहां हमने पशुहीन केवल पुरोडाशादिसे यज्ञ किये हैं और सतयुगके आनेतक यहां समय बितातेहैं ॥ ३४ ॥ हेसूतजी! आप हमारे भाग्यसे यहां आयेहै आप परमपवित्र ब्रह्मसंमित पुराण कहिये ॥ ३५ ॥ हेसूतजी! हम सब सुन्नेकी इच्छा करतेहैं आप बडेबुद्धिमान् वक्ताहै हम इससमय व्यापाररहित एकचित्त हैं॥ ३६ ॥ हेसूतजी! तीनतापरहित आप दीर्घायु हूजिये आप पवित्र कल्याणदायक ब्रह्मसम्मत भागवत पुराण कहिये॥ ३७॥ जिसमें धर्म अर्थ काम मोक्ष विद्याकी प्राप्तिका विस्तारसे वर्णनहै ॥ ३८ ॥ जो पवित्रकथा व्यासजीने कहीहै हेसूत! उस मनोरम कथाके सुनतेएहु हम तृप्त नहींहोतेहैं ॥ ३९॥ सम्पूर्ण गुणसमूहका एकही पवित्रपत्र जो सब जगत्की माताकी लीलासे चरित्र करतीहै उससे विचित्र अनेक पापसमूहोंका नाशक कामनापूरक यह भगवतीके नामसे युक्त प्रगटकरो ॥ ४० ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्याय ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

दोहा—यहि तृतीय अध्यायमें, प्रतियुग व्यासपुरान ॥
संख्यायुत वर्णन करहिं, सुमरि राम सुखदान ॥ १ ॥

सूतजी बोले, हेमुनीश्वरो! सुनो पुराणोंका वर्णन करताहूं जैसे मैं ने तत्वसै सत्यवती पुत्र व्यासजीसे श्रवणकियाहै ॥ १ ॥ दो मकारके दो भकारके तीन ब्र आदि अक्षरके चार वकारादि अक्षरके अ, ना, लिंग, कू, स्क, यह पृथक् २ पुराण हैं ॥ २॥ उसमें आद्यमत्स्यपुराण १४००० सहस्र श्लोकमें है मार्कण्डेय अद्भुतपुराणके नौसहस्र श्लोक हैं ॥ ३ ॥ चौदासहस्र पांचसौ श्लोकोंमें तत्वदर्शी मुनियोंने भविष्यपुराणकी संख्या कहीहै ॥ ४ ॥ अठारहसहस्र श्लोक श्रीमद्भागवतमें हैं, ब्राह्मपुराणमें दशसहस्र श्लोकहै ॥ ५ ॥ द्वादशसहस्र एकसौ ब्रह्माण्डपुराणहै, ब्रह्मवैवर्त १८०००हैं ॥ ६ ॥ वामनपुराणं १०००० वायुपुराणके २४६०० श्लोकहै ॥ ७ ॥ विष्णुपुराण परम अद्भुत है इसके २३०००श्लोकहैं ॥ ८ ॥ वाराहपुराणके चौविससहस्र श्लोकहैं अग्निपुराणके सोलासहस्र श्लोकहैं ॥ ९ ॥ नारदपुराणके पचीस सहस्र श्लोकहै पद्मपुराणके ५५०००

पचपनसहस्र और लिंगपुराणके ग्यारहसहस्र श्लोकहै॥ १०॥ गरुडपुराणके १९००० उन्नीससहस्रश्लोक भगवान्के कहेहैं कूर्मपुराणके सत्रहसहस्र श्लोकहै॥ ११॥ स्कन्दनाम परमअद्भुत पुराण ८१०००इक्यासीसहस्र श्लोकोंमें कहाहै ॥ १२॥ यह मैंने आपसे पुराणोंकी संख्याकही॥ १३॥ अब आप उपपुराणोंकी श्रवणकीजिये सनत्कुमार,नारसिंह,नारद, शैव,दुर्वासा,कपिल, मानव उसमेंसे॥ १४॥ वरुण, कालिका,साम्ब,नन्दी,और, पाराशरप्रोक्त आदित्यपुराण बडेविस्तारसहित ॥ १५॥ माहेश्वर,भागवत और विस्तारपूर्वक वशिष्ठपुराण यह महात्माओंने उपपुराण कहेहैं ॥ १६॥ सत्यवतीपुत्र भगवान् व्यासजी अठारहपुराण निर्माणकर पश्चात् उनके सारके सहित भारत रचते हुए॥ १७॥ प्रत्येक मन्वन्तर मैं जब जब द्वापरयुग आताहै तब तब धर्मकी इच्छाकरके पुराण करतेहैं ॥ १८॥ प्रत्येक द्वापरमें विष्णुही व्यासका रूप धारणकर हितकी इच्छासे एक वेदके कईभाग करतेहैं ॥ १९ ॥ फिर कलिमें ब्राह्मणों को अल्पआयु और अल्पबुद्धि देखकर पवित्रपुराणसंहिताको युग युगमें करतेहैं ॥२०॥ स्त्री शूद्र और द्विजबंधुओंको वेद सुननेका अधिकार नहीं है उन्हींके हितके निमित्त यह पुराण कियेहैं ॥ २१ ॥ इस श्रेष्ठ सातवें वैवस्वत मन्वन्तरमें अट्ठाईसवें द्वापरमें मुनिश्रेष्ठ ॥ २२ ॥ सत्यवतीपुत्र व्यास मेरे गुरु धर्मात्मा व्यासजी भएहैं उन्तीसवें द्वापरमें अश्वत्थामा व्यास होंगे ॥२३॥ इसप्रकार सत्ताईस व्यास बीतगयेहैं उन्होंने युग २में पुराणसंहिता रचीहै ॥२४॥ऋषि बोले हेसूतजी! उन व्यासोंका वर्णन कीजिये जिन्हों ने युग २ में पुराणसंहिता कहीहै ॥२५॥ सूतजी बोले पहले द्वापरमें ब्रह्माजी स्वयं व्यास हुएथे और उन्होंनें वेदोंका विभागकिया,दूसरे द्वापरमें प्रजापतिनेंव्यासका कार्य किया॥ २६॥ तीसरीमें शुक्र और चौथे द्वापरमें बृहस्पति व्यास हुए पांचवें में सविता छठेमें मृत्यु ॥२७॥ सातवेंमें मघवा आठवे में वशिष्ठ, नववेंमें सारस्वत, दशवेंमें त्रिधामा॥ २८॥ ग्यारहवेंमें त्रिवृष बारहवेंमें भरद्वाज तेरहवेंमें अन्तरिक्ष, चौदहवेंमें धर्म ॥ २९ ॥ पन्द्रहवेंमें त्र्य्यारुणि सोलहवेंमें धनंजय, सत्रहवेंमें मेधातिथि,अठारहवमें व्रती ॥ ३०॥ उन्नीसवेंमें अत्रि, वीसवेंमें गौतम इक्कीसवैमें हर्यात्मा उत्तम ॥ ३१ ॥ बाईसवैंमें वेन वाजश्रवा, तेईसवेंमें सोम आमुष्ययाण चौवीसवेंमें, तृणबिन्दु पचीसवैंमें भार्गव ॥ ३२॥ छव्वीसवैंमें शक्ति, सत्ताईसवेंमें जातुकर्ण और अठाईसमें कृष्णद्वैपायन हुएहैं यह मैंने आपसे अट्ठावीस व्यासोंकी संख्या कहीहै जहां कही व्यासोंका नामान्तरहो वहां कल्पभेद जाननाचाहिये ॥ ३३ ॥ कृष्णद्वैपायका कहाहुआ यह श्रीमागद्भवत

पुराण सब दुःखों पापोंका दूर करनेवाला मैंने सुनाहै ॥ ३४ ॥ यह कामना और मुक्तिका देनेवाला वेदार्थ संयुक्त सम्पूर्ण आगम और रससे मनोहर मुमुक्षुओंको सदा प्रियहै ॥ ३५ ॥ व्यासजीने सुन्दर पुराण रचनाकर जो आपने शुकदेव पुत्रको जो बडे वैराग्ययुक्त अरणीसे उत्पन्न हुएथे उसे पढाया॥ ३६ ॥ हेमुनीन्द्रो ! उस समय मैंने वहां व्यासके मुखसे यथार्थ रूपसे वह पुराण सुनाहै करुणानिधि गुरुकी कृपासे वह सब गुह्य पुराण मैंने श्रवणकियाहै ॥ ३७ ॥ पुत्रके पूछनैसे व्यासजीने सम्पूर्ण पुराणको कथनकिया, उन अयोनिजन्मा अद्भुत बुद्धिमानके श्रवण करतेमें मैंनेभी यह महाप्रभावयुक्त पुराण सुनाहै ॥ ३८ ॥ यह श्रीमद्भागवत वेदरूपी कल्पवृक्षका फलहैं हेमुनीयो ! इस दुरवगाह संसारके तरनेकी इच्छासे शुकदेवजीनें अनेक आख्यानरूपी रसोंको कर्णरूपी दोनेद्वारा प्रेमपूर्वक पानकिया, फिर इस अद्भुतकथाको कलिके भयसे श्रवणकर मुक्तहो ऐसा भूमिमें कौनहै ॥ ३९ ॥ जो अतिपापी वेदधर्मसे रहित स्वाचारसे हीन आशयवाला, किसी बहानेसेभी जो इस परमउत्तमपुराणको श्रवण करताहै वह यहाँही अनेक भोग भोगकर अन्तमें योगियोंको प्राप्त अव्ययस्थानमें भगवतीकी कृपासे प्राप्तहोजाताहै ॥ ४० ॥ जो निर्गुणहै और हरिहरादिकोंकोभी अलभ्यहै जो विद्यारूपसत्पुरुषोंको अतिप्रिय समाधिसे जाननेयोग्यहै जो इसपुराणमें प्रीति करतेहैं और सुन्तेहै उनके हृदयमें वह भगवती प्रगटहोतीहै ॥ ४१ ॥ सबअंगसे मनुष्यदेहको प्राप्तकर जोकि संसारसागरसे तरनेको जहाजरूपहैसो वाचकको प्राप्तहोकर भी जो मूढ सुख और मोक्षकी देनेवाली कथाको नहीं श्रवण करताहै वह विधिसे वंचितहुआ हतभाग्यही है ॥ ४२ ॥ जो मनुष्यजन्ममें दोकानोंको प्राप्त होकर रागी होकर दूसरोंकी निन्दाही सुन्तेहैं और चारौं पुरुषार्थके देनेवाले रसभरे पुराणको नहीं सुन्तेहैं वह नष्टहैं अथवा वे परापवादनिरत नष्ट मन्दबुद्धि आत्मज्ञानकरनेवाले इस पुराणको क्यों नहीं सुन्तेहैं ॥ ४३ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे भाषाटीकायां तृतीयोध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

ऋषि बोले हेसूतजी ! व्यासजीकी किस भार्यामें शुकदेवजी प्रगटहुए और कैसेहुए कैसे गुणी थे जिन्होंने यह संहिता पढी ॥ १ ॥ आप शुकदेवजीको अरणीसे प्रगट अयोनिज कहतेहो इसमें हमको सन्देह ह हेमहाबुद्धिमान् ! इसको आप हमसे कहिये ॥ २ ॥ हमने महातपस्वी शुकदेवजीको पूर्वमें गर्भ योगी सुनाहै, उन्होंने यह

बड़े विस्तारका पुराण किसप्रकार पढा ॥ ३ ॥ सूतजी बोले एकसमय व्यासजी सरस्वतीनदीके किनारे अपनें आश्रममें दो चटक पक्षियोंको देखकर परम विस्मित हुए ॥ ४ ॥ कि उत्पन्न होतेही अपने शिशुको जो अण्डेसे प्रगट मनोहर ताम्रमुख सब अंगसे मनोहर पुच्छ और रोमसे हीन था, घोसलेमें छोड़कर ॥ ५ ॥ रतिके श्रमसे परायण हुए वे दोनो भक्ष्य लाकर अपनी चोंचसे उसकी चोंचमें वारंवार अन्न देतेथे ॥ ६ ॥ वह परमप्रसन्नहो अपने अंगसे बालककी अंगघर्षण करते वे कलविंक प्रेमसे अपने बालकका मुख चूमतेथे ॥ ७ ॥ उन दोनों चटकोंका बालकमें अत्यन्त प्रेम देखकर चिन्तातुरहो व्यासजीनें अपने मनमें यथेष्ट विचारकिया ॥ ८ ॥ जब कि पक्षी आदिके प्रेमभी पुत्रोंमें देखाजाताहै फिर सेवाफलकी इच्छावाले मनुष्योंमें हो तौ क्या विचित्रहै ॥ ९ ॥ क्या यह दोनों चटक इसके विवाह सुखसाधनकी रचना करके वधूका मुख देख प्रसन्नहोंगे ॥ १० ॥ अथवा यह इनकी बुढापेमें सेवा करैगा,यह कलविंककी प्रसन्नताके निमित्त परमधर्म करैगा ॥ ११ ॥ क्या यह धन उत्पन्नकर माता पिताको तृप्त करैगा, अथवा विधिपूर्वक प्रेतकार्य करैगा ॥ १२ ॥ अथवा क्या जाकर गयामें श्राद्ध करैगा,क्या यह बालक विधिपूर्वक नीलवृषभ उत्सर्ग करैगा ॥ १३ ॥ इस संसारमें सुखोंमें उत्तम सुख यही कहाहै कि पुत्रके शरीरको स्पर्शकर प्रेमसे आलिंगन करना ॥ १४ ॥ अपुत्रकी गति नहीं और स्वर्गभी नहींहै परलोकके निमित्त पुत्रसे अधिक कोई साधन नहीं है ॥ १५ ॥ मनुआदि मुनियोंने धर्मशास्त्रमें लिखाहै पुत्रसेही स्वर्ग होताहै विनापुत्रके स्वर्ग नहीं है ॥ १६ ॥ यह प्रत्यक्षही है कुछ अनुमान साधनकी आवश्यकता नहीं है पुत्रवानही पापसे छूटजाताहै यह आप्तोंने कहाहै ॥ १७ ॥ आतुर और मृत्युकालमेंभी भूमिशय्यापर पड़ाहुआ मनुष्य पुत्रके विना मनमें व्याकुलहो चिन्ता करताहै ॥ १८ ॥ मेरे घरमें अनेक प्रकारका धनहै अनेकपात्रहैं सुन्दर मन्दिरहैं इनका स्वामी कौन होगा ॥ १९ ॥ मृत्युकालमें उसका मन दुःखसे भ्रमण करताहै इसकारण भ्रान्तचित्तकी सर्वथा दुर्गति होतीहै ॥ २० ॥ इसप्रकार व्यासजी अनेक चिन्ता करकै बहुतश्वास लेकर विमन होते हुए ॥ २१ ॥ ऐसा मनमें विचारकर निश्चयकर तप करनेको सुमेरुपर्वतपर चलेगये ॥ २२ ॥ अपने मनमें विचारकरनेलगे मैं किस देवताकी उपासना करूं जो शीघ्रही वर देकर मनोवांछित पूराकरै ॥ २३ ॥ विष्णु, रुद्र, सुरेन्द्र, ब्रह्मा, सूर्य, गणेश, कार्तिकेय, अग्नि, वरुणमेंसे किसे आराधनकरूं ॥ २४ ॥ उनके ऐसा विचार करनेपर मुनिश्रेष्ठ

नारदजी वीणा हाथमें लिये अपनी इच्छासेही वहां प्राप्तहुए ॥ २५ ॥ सत्यवतीपुत्र व्यासजी उनको देख परमप्रसन्न हुए अर्घ्य और आसन देकर मुनिसे कुशल पूंछनेलगे ॥ २६ ॥ कुशल प्रश्न सुनकर मुनिश्रेष्ठ पूछनेलगे हेव्यासजी ! आप किसनिमित्त चिन्तासे व्याकुल दीखतेहो हमसे कारण कहो॥२७॥ व्यासजी बोले न तौ अपुत्रकी गति होतीहै न मनमें सुख होताहै इसीकारण मैं दुःखी होकर बारंबार चिन्ता करताहूं ॥ २८ ॥ अब मैं मनोरथ पूर्ण करनेवाले किस देवको तपसे सन्तुष्ट करूं इस चिन्तासे व्याकुलहुआ अब मैं आपकी शरणहूं ॥ २९ ॥ हेकृपानिधे महर्षे ! तुम सर्वज्ञ हो कहिये मैं किस देवताकी शरणमें जाऊं जो मुझको पुत्र प्रदानकरै॥ ३०॥ सूतजी बोले इसप्रकार व्यासजीके पूछनेपर नारदजी ऋषि परमप्रसन्न हो व्यासजीसे बोले ॥ ३१ ॥ नारदजी बोले हेमहाभाग पराशरपुत्र ! जो आप हमसे पूछतेहो यही वार्ता भगवानसे हमारे पिताने पूंछीथी ॥ ३२ ॥ एक समय हमारे पिता हरिके ध्यानमें स्थित देखकर परमविस्मयको प्राप्तहो जगत्पतिसे पूछनेलगे कि ॥ ३३ ॥ जो कौस्तुभमणिसे उद्भासित दिव्य शंख चक्र गदा पद्म धारणकिये पीताम्बर चतुर्बाहु श्रीवत्ससे अंकित वक्षस्थल ॥ ३४ ॥ सबलोकके कारण देवदेव जगत्प्रभु वासुदेवको महातप करता देखकर ॥ ३५॥ ब्रह्माजी बोले हेदेव २ जगन्नाथ भूत भविष्य वर्तमानके ज्ञाता हे जनार्दन आप क्यों तप करतेहो, और किसका ध्यान करतेहो ॥ ३६ ॥ इसमैं मुझको बडा विस्मय है आप सब जगतके प्रभुहैं और जब आपभी ध्यान करतेहो तो इस्से चित्र और क्या होगा ॥ ३७ ॥ आपके नाभिकमलसे उत्पन्नहुआ मैं जगत्का करनेवालाहूं क्या कोई आपसेभी अधिकहै हेदेव सो आप कहिये ॥ ३८ ॥ हेजगन्नाथ ! में जान्ताहूं तुमही सब जगत्के आदिकारण हो, कर्ता, पालक, हरणकर्ता और सब कार्यमें समर्थहो ॥ ३९ ॥ हेमहाराज ! आपकी इच्छासे मैं जगत्को सृजन करताहूं और शिव प्रलयमें हरण करतेहैं, सोभी आपकी इच्छासे ऐसा करतेहै ॥ ४० ॥ आपहीकी आज्ञासे सूर्य आकाशमें भ्रमण और वायु वहन करताहै, अग्नि तपती और मेघ वर्षा करताहै ॥४१॥ आप किस देवका ध्यान करतेहैं, यह मुझे बडा सन्देह है त्रिलोकीमें आपसे अधिक कोई देवता नहीं देखताहूं ॥ ४२ ॥ कृपाकर आप कहिये मैं आपका परम भक्त हूं महत्पुरुषोंको कुछभी गोपनीय नहींहै यह स्मृतिहै ॥ ४३ ॥ यह उनके वचन सुनकर हरि प्रजापतिसे बोले हेब्रह्माजी ! एकमन होकर सुनो मैं आपसे वर्णन

करताहूं ॥ ४४ ॥ यद्यपि तुम आपनेको मुझको और शिवको सृष्टिकी उत्पत्ति पालन प्रलय करनेवाला मान्तेहो तथा सब देवता असुर मनुष्यभी जान्तेहैं ॥ ४५ ॥ तुम स्रष्टा मैं पालक और हर संहारकरनेवालेहैं, तौभी यह सब प्रच्छन्न कार्यरूप शक्तिके कियेहैं ऐसा वेदवादी महात्मा अनुमान करतेहैं ॥ ४६ ॥ जगत्की रचना करनेकी तुममें राजसी शक्ति है मुझमें पालनरूप सात्विकी और शंकरमें तामसीशक्ति विद्यमानहै ॥ ४७ ॥ उसके विना तुम किसीकर्मके करनेमें समर्थ नहींहो न मैं पालन करने और शिव संहार करनेमें समर्थहैं ॥ ४८ ॥ हेब्रह्मन् ! हम सब उसीके आधीन होकर वर्ततेहैं हेसुव्रत प्रत्यक्ष और परोक्षमें दृष्टान्त सुनो ॥ ४९ ॥ प्रलयकालमें परतंत्र होकर हमको शेषशय्यापर शयन करनाहोताहै, और समयपर उसीके आधीन होकर उठना होताहै ॥ ५० ॥ और उसीके आधीन होकर निरन्तर तपस्या करताहूं, कभी लक्ष्मीके साथ यथासुख विहार करताहूं ॥ ५१ ॥ कभी दानवोंके सहित संग्राम करताहूं जो सब लोकको भयदायी दारुण देहका क्लेशकारक होताहै ॥ ५२ ॥ हेधर्मज्ञ! तुह्मारे देखतेही एकार्णवसागरमें पांचसहस्रवर्षतक मैंनें बाहुयुद्ध किया ॥ ५३ ॥ और कर्णके मलसे उत्पन्नहुए वे मदसे गर्वित दानव देवीके प्रसादसेही मारेगये ॥ ५४ ॥ तब तुमने उस परात्परके कारणको क्या नहींजाना. हेमहाभाग ! वही शक्तिका रूप था फिर वारंवार क्या पूछतेहो ॥ ५५ ॥ जिसकी इच्छासे पुरुष होकर महाअर्णवमें विचरण करताहूं युगयुगमें कच्छप, वाराह, नृसिंह, वामन, अवतार धारण करताहूं ॥ ५६ ॥ तिर्यग्योनिमें जन्म लेनेकी कोईभी इच्छा नहींकरता, इससे मैं स्वेच्छासें वाराह आदि योनियोंमें जन्म नहींलेताहूं ॥ ५७ ॥ लक्ष्मीके संग विहार छोड़कर हीनयोनि मत्स्यादिका कौन शरीर धारण करैगा और शय्याको छोड़कर कौन स्वतंत्र गरुडके ऊपर चढकर संग्राम करैगा ॥ ५८ ॥ हेब्रह्मा ! एकवार तुह्मारे सन्मुखही धनुषकी ज्यासे हमारा शिर स्खलितहुआथा और उससमय त्वष्टाने अश्वका शिर हमारे शरीरपर[1] लगादिया ॥ ५९ ॥ तब उस दिनसे हमको हयग्रीवभी कहतेहैं यह आप प्रत्यक्षरूपसे देखिये यह लोकमें विडम्बनाहै यदि स्वतंत्रता होती तौ ऐसा क्यों होता ॥ ६० ॥

---

१ यह कथा वैदिक है शतपथ आदि ग्रन्थोंमें लिखाहै जब विष्णुका तेज अधिक बढा तब यह धनुषकी कोटीपर मुख धरे खडेथे उपजिह्विकाओंके धनुषज्या काटनेसे उनका शिर पतित होकर यह आदित्यहुआहै। गूढअभिप्राय यहहै कि यावन्मात्र यज्ञादि सामग्री है सबमें वैष्णव तेज व्याप्तहै, वह एकत्र कर यज्ञ करतेहैं ॥

इससे मैं स्वतंत्र नहींहूं सर्वथा शक्तिहीनहूं उसीशक्तिका मैं निरन्तर ध्यान करता हूं॥६१॥ हे कमलभव! इससे अधिक मैं और कुछ नहीं जान्ताहूं नारदजी बोले यहवार्त्ता विष्णुजीने ब्रह्माजीसे कही ॥ ६२ ॥ हेमुनिश्रेष्ठ और उन्होंने हमको सुनाई हेमहाभाग इससे तुमभी अपने कल्याणपुरुषार्थकी प्राप्तिके निमित्त ॥ ६३ ॥ सन्देहरहित होकर देवीके चरणारविन्दका भजनकरो जो तुम्हारा इष्टहोगा वह देवी सबकछ प्रदान करैगी ॥ ६४ ॥ सूतजी बोले नारदजीके यह कहने पर सत्यवतीपुत्र नारदजी देवीके चरणोंकी भक्ति करनेको तपके निमित्त पर्वतपर गये॥६५

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ५.

ऋषि बोले हेसूतजी हमारा मन महासन्देहसागरमें मग्न होरहाहै यह आपने जगत् का विस्मयकारक बड़ाआश्चर्यरूप कथानक कहा ॥ १ ॥ कि माधव भगवानकाभी शिर इसदेहसे उत्पतितहुआ और सबके कर्त्ता जनार्दनभी हयग्रीव रूपको प्राप्तहुए २ जिस देवकी देवता स्तुति करते है सब देवता जिनके आश्रयहैं जो आदिदेव जगन्नाथ सबकारणोंकेभी कारणहैं ॥ ३ ॥ देवयोगसे उनकाभी शिर छिन्नहुआ यह कब और क्योंहुआ, हेमहामते यह सब वार्त्ता आप विस्तारसे कहिये ॥ ४ ॥ सूतजी बोले सम्पूर्ण मुनियो तुम सावधान होकर सुनो परमतेजस्वी देवदेव विष्णुके चरित्र श्रवणकरो ॥ ५ ॥ वह सनातनदेव किसी समय दारुण युद्ध कर दशसहस्र-वर्षमें श्रान्तहुए ॥ ६ ॥ तब समान अच्छे स्थानमें पद्मासन करके कण्ठदेशमें धनु-षका अवलम्बनकर स्थितहुए ॥ ७ ॥ इस धनुषकी कोटिपर भार देकर भगवान शयनकरगये, और श्रान्तहोनेके कारण देवयोगसे उनको निद्रा आगई ॥ ८ ॥ तब कुछ समय उपरान्त इन्द्रादि सम्पूर्ण देवता ब्रह्माके सहित यज्ञ करनेको उद्यतहुए॥ ॥ ९ ॥ जनार्दन देवके देखनेको सब वैकुण्ठको गये कारण कि देवकार्यके सिद्ध करनेको यज्ञके अधिपति वहीहैं ॥ १० ॥ उनको वहाँ नदेख ज्ञानदृष्टिसे विचा-रकर जहाँ भगवानथे वहीं सब देवता गये ॥ ११ ॥ वहाँ उन्होंने योगनिद्रामें प्राप्त हुए नारायणको देखा, कि वह व्यापक विष्णुको विचेतन देखकर ॥ १२ ॥ सब देवताओंके स्थितहोनेसे और भगवान्‌के निद्रित होनेमें ब्रह्मा रुद्रादि सम्पूर्ण देवता विचा-रनेलगे ॥ १३ ॥ तब उनसे इन्द्रने कहा अब क्याकरैं हेदेवताओ विचारो तौ इन-की निद्राभंग किस प्रकारसे करनी चाहिये ॥ १४ ॥ तब उनसे शिवजीने कहा निद्रा

भंगकरनेका बड़ादोषहै और हेदेवताओ यज्ञका कार्यकरो ॥ १५॥ तब परमेष्ठी ब्रह्माने उपजिह्वका प्रगट करके उनके द्वारा धनुषकी कोटि भक्षण करानेको कहा ॥ १६॥ कि जिससमय यह धनुषकी कोटिको भक्षण करैंगी तब शरासन खुलैगा तब इनदेवकी निद्रा खुलैगी [ऐसा करनेसे देवताओंने अपनी निर्दोषता और अपने पर विष्णुकी अक्रोधता प्रतिपादनकी] ॥ १७ ॥ तो सम्पूर्ण देवताओंका कार्य सिद्धहोगा इसमें सन्देह नहीं सनातन देवने वम्रीको आज्ञादी ॥ १८ ॥ तब वम्री कहने लगी देवदेव जगत्पतिकी निद्रा भंग कैसेकरैं वहतो जगत्के गुरुहैं ॥ १९ ॥ किसीका निद्रा भंगकरना कथाका छेदनकरना दोनों स्त्री पुरुषोंकी प्रीति भेदन करना, बालकसे माता का भेद करादेना यह पाप ब्रह्महत्याके समानहै ॥ २० ॥ सो हम देवदेवका सुख किसप्रकार विनाशकरैं इसके भक्षणसे हमको क्या फलहोगा जो हम इसप्रकारका पापकरैं ॥ २१ ॥ लोक प्रायः सबही स्वार्थके वश होकर पातक करतेहैं इसकारणसे हमभी कुछ स्वार्थसेही भक्षण करैंगे ॥ २२ ॥ ब्रह्माजी बोले सुनो हम यज्ञमें तुम्हारे भागकीभी कल्पना करैंगे इसकारण तुम हमारा कार्य कर विष्णुको शीघ्र जगाओ २३ हवनके करनेमें हविदानसे जो भाग पार्श्वमें गिरैगा वह तुम्हारा भागहोगा इसकारण शीघ्र कार्य करो ॥ २४ ॥ सूतजी बोले ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर वम्रीयोंने शीघ्रताके सहित उस धनुषकी कोटिमें लग्नज्याका भक्षणकिया ॥ २५ ॥ प्रत्यंचाके मुक्तहोनेमें कोटि पतितहुई उसके टूटनेसे घोरशब्द हुआ जिससे सब देवता व्याकुल होगये ॥ २६ ॥ सब ब्रह्माण्ड क्षुभित और वसुधा कम्पितहुई समुद्र उद्विग्नहुए जलजन्तु घबड़ाउठे ॥ २७ ॥ उग्रपवन चलनेलगी पर्वत कम्पित होगये उल्कापात महोत्पातहुए जो दुःखके कथन करनेवालेहैं ॥ २८ ॥ दिशा अत्यन्त घोर होगई सूर्य अस्तप्रायहुए देवता चिन्तिततहुए कि इस दुर्दिनमें क्या होगा ॥ २९ ॥ उनके ऐसा चिन्ता करनेपर विष्णुका कुंडल मुकुट सहित मस्तक अदृश्यहुआ ॥ ३० ॥ जब वह घोर अंधकार शान्तहुआ तब ब्रह्मा और शिवजीने विष्णुका शरीर शिरहीन देखा ॥ ३१ ॥ इसप्रकार विष्णुका कबन्धदेख वे देवता विस्मितहुए और चिन्तासागरमें मग्नहो शोकसे व्याकुलहुए रोनेलगे ॥ ३२ ॥ हेनाथ हेप्रभो यह क्या अमानुषी लीलाहुई हेदेव २ सनातन यह क्या दुःख उत्पन्नहुआ ॥ ३३ ॥ यह किसदेवकी मायाहै जिससे तुम्हारा शिर हरणहुआ तुम अछेद्य अभेद्य और अप्रदाह्यहो ॥ ३४ ॥ हेविभो आपके ऐसा होनेपर सब देवता मृतक होजायँगे हमारा तुममें क्या स्नेहहै

१ दीमक ।

अपने स्वार्थके निमित्त रोतेहैं ॥ ३५॥ यह विघ्न दैत्य यक्ष राक्षसोंका किया नहीं है हे रमापते किसको दूषणदें यह देवताओंकाही किया विघ्नहै ॥ ३६ ॥ हम सब पराधीन देवता क्या करैं कहाँजाँय। हेदेव मूढचित्त देवताओंको कहींभी शरण नहीं है॥ ३७॥ यह माया सात्विकी राजसी तामसी नहीं है जो मायापति जगत्का उसके द्वारा शिर छेदन हुआहो ॥ ३८ ॥ जब इसप्रकार देवता शिवादिको रुदन करते देखा तब वेदज्ञाता बृहस्पति उनका शोक शान्त करतेबोले ॥ ३९ ॥ हेमहाभागो! अब रोने और क्रन्दन करनेसे क्याहै, इससमय बुद्धिपूर्वक उपाय करना चाहिये४० देव और पुरुषकार यह दोनों हेदेवेश समानहैं इसका उपाय करो दैवसे फलित होताहै ॥ ४१ ॥ इन्द्रबोले दैवही बलवान्है, अनर्थकारी पुरुषार्थसे कुछनहीं है देवताओंके देखते विष्णुकाशिर छेदन कियागया ॥ ४२ ॥ ब्रह्मबोले समयसे जो प्राप्तहोताहै वह फल अवश्य भोगना पड़ताहै शुभ वा अशुभ दैवको कौन अतिक्रम करसकताहै ॥ ४३ ॥ देहवाला सुख दुःखोंका भोक्ताहै इसमें सन्देहनहीं जैसे कालवशासे हमारा शिर शंभुने छेदन कियाथा ॥ ४४ ॥ और इसीप्रकार महादेवका शापसे लिंगपात हुआ,इसीप्रकार आज विष्णुका शिर लवणसागरमें पतितहुआ है ॥ ४५ ॥ इन्द्रकोभी सहस्रभग प्राप्तिका दुःखहै और इन्द्रको स्वर्गसे भ्रष्टहोकर मानससरोवरमें निवास करनापड़ा ॥ ४६ ॥ जब ऐसेभी दुःखके भोक्ताहैं फिर किसको दुःखका भोग नहीं है हेमहाभाग जब यह संसारकी दशाहै तो शोक त्यागन करो ॥ ४७॥ महामाया सनातनी विद्या देवीका विचारकरो वह स्वच्छन्द दुःखरहितहै वह निर्गुण परा प्रकृति हमारे कार्योंको विधान करैंगी ॥ ४८ ॥ ब्रह्मविद्या जगत्की माता सबकी जननीहै उसने यह सब चराचर जगत् व्याप्त कररक्खाहै ॥ ४९ ॥ सूतजी बोले ब्रह्माजीने इसप्रकार कहकर वेदोंको आज्ञादी और वे देवकार्य सिद्धिके निमित्त देहधारणकर आगे स्थितहुए ॥ ५०॥ ब्रह्माजी बोले तुम परमदेवी ब्रह्मविद्या सनातनी गूढअंगवाली सबकार्यकी साधन करनेवालीकी स्तुतिकरो"जैसे गजशरीरमें प्रविष्ट चेतनकी गजसंज्ञा होतीहै इसीप्रकार मायाशक्तिमें प्रविष्ट चैतन्यकी मायाशक्ति प्रथमासंज्ञाहै विद्याशरीरमें प्रविष्ट होनेसे विद्यासंज्ञाहै ॥ ५१ ॥ यह ब्रह्माजीके वचन सुन सर्वांगसुन्दर वेदज्ञानसे जाननेयोग्य उस महामायाकी स्तुति करनेलगे ॥ ५२ ॥ वेद बोले हेदेवी महामाये संसारकी उत्पादक कल्याणी आपको प्रणामहै हेनिर्गुण सब भूतकी अधीश्वरी मातः कल्याणकारिणी कामनादायक तुमको प्रणामहै ॥५३॥ "यहांसे आगे

सर्वत्र देवीस्तोत्र पुराणतंत्रोमें देवीमायासे विशिष्ट ब्रह्मरूप होनेके कारण कहीं ब्रह्मत्वसे कहीं मायात्वसे वर्णन कियाहै ऐसा जानना" तुमही सब प्राणियोंकी आधारहो प्राण धारियोंके प्राणहो धीः,श्रीः,कान्ति,क्षमा,शान्ति,श्रद्धा,मेधा,स्मृति धृति,तुमहो॥५४॥ तुम ॐकारमें अर्धमात्रा अर्धचन्द्ररूपिणीहो तुम गायत्री, सातव्याहृति, जया, विजया, धात्री, लज्जा, कीर्ति, स्पृहा, दया हो ॥५५॥ हेमातः तीनों भुवनके उत्पादन करनेमें कुशलहो दयारससे युक्त जनोंकी जननी विद्या कल्याणी सबलोककी हितकारिणी श्रेष्ठ निरन्तर वाग्बीज मंत्रोंके उपासकोंको प्राप्त होनेवाली निपुण भयनाशकारिणी तुम्हारीहम स्तुति करतेहैं॥५६॥ब्रह्मा, हर,विष्णु, इन्द्र वाणी सरस्वती, अग्नि, सूर्य भुवनोंके अधिपति यह सब आपके कियेहुएहैं इससे मुख्यनहीं और आप स्थावर जंगमोंकी माताहो॥५७॥जब तुम इस सम्पूर्ण भुवनके करनेकी इच्छासे हेदेवी माता विष्णु ब्रह्मा रुद्रादि देवतोंकी रचनेकी इच्छा करतीहो इनसे सृष्टिकी उत्पत्ति पालन और प्रलय करातीहो तुम एकरूपहो तुममें विकार नहीं न कुछ संसारका लेश है ॥ ५८॥ हेभगवती इस सम्पूर्ण भुवनमेंभी कोई निपुणतत्त्वसे तुम्हारे रूपको नहीं जानता, नकोई पुरुष तुम्हारे नामकी संख्या जाननेको समर्थ है"यतोवाचोनिवर्तन्ते"। कोश्रद्धा वेद इत्यादि श्रुति प्रसिद्धहैं जो मनुष्य थोडेसे सरोवरके जलकोभी उल्लंघन नहीं करसकता वह कैसे सत्यप्रतिज्ञ होकर सागरको उल्लंघन करसकताहै॥५९॥ हेदेवि देवताओंके मध्यमें भी कोई तुम्हारे अनन्त ऐश्वर्यको नहीं जानसकता तुम इस-संसारमें भुवनेश्वरी नाम किसीकी सहायता नलेनेवाली जननीहो एकमात्र तुम इस मिथ्याजगत्को किसप्रकार रचना करतीहो इस मिथ्याजगत्में [त्रयमेतत्स्वप्नसुषुप्तंमायामात्रमिति] यह निगम वचन प्रमाणहै ॥६०॥ तुम सब जगत्की कारणरूप निरीह हो हेभगवति आपके विचित्र चरित्र देख हमारा मन मोहित करतेहैं यही कि तुम अविकृत रूपहोकर विकारी जगत्की कैसे रचना करतीहो नासदासन्नोसदासीत्तदानीम् और कामस्तदग्रेसमवर्तत इत्यादि श्रुतिप्रतिपाद्य विरुद्धगुण तुममें हैं यह अनिर्वचनीय सम्पूर्ण निगमके जाननेयोग्य तुम्हारा प्रभाव हम कैसे कह सकतेहैं कारण कि उस अनिर्वचनीय प्रभावको अनन्त अनिर्वचनीय होनेसे तुमभी नहीं जान्तीहो [यो अस्याध्यक्षःपरमे व्योमन् सोअंगवेदयदिवानवेदेतिश्रुतेः] ॥ ६१ ॥ हे मातः तुम क्या नहीं जान्तीहो कि भगवान्का शिर तिरोधानहुआहै हेशिवे इसको जानकरभी क्या फिर इसके जाननेको इच्छा करतीहो वा मधुरिपुकी शक्ति

जाननेकी इच्छाहै सो यहभी नहीं कारण कि तुम्हारेही प्रसादसे मधुकैटभको जीताथा यदि कहाजाय विष्णुमें कोई दुरितका बलवान् फलहै सोभी नहीं होसकता तुम्हारे चरणकमलका भजन करनेवालेमें पापका लेश नहीं है ॥ ६२ ॥ यह देवताओंमें अधिकहैं इनके विषय उपेक्षा करनी उचित नहीं है हरिका मस्तक उत्पतन हुआहै यह बड़े आश्चर्यकी घटनाहै हेमात! यह बड़े दुःखकी बातहै तुमही जन्म मरणके दुःखछेदनमें कुशलहो हम नहींजान्ते भगवान विष्णुके शिर जुडनेमें क्यों विलम्ब होरहाहै६३ हेदेवि क्या सम्पूर्ण देवताओंके अनेक दोष देखकर उन देवताओंके दोषसे यह विष्णुका शिर छेदनहुआहै अथवा प्रजाके कियेपाप राजनीतिन्यायद्वारा देवताओंके दुष्टकृतसे देवराज होनेसे विष्णुका शिर पातितहुआ कारण कि प्रजाका पाप राजामें लगताहै अथवा विष्णुके समरजनितकोपका गर्व जानकर उसको दूर करनेको शिरछेदन करतीहो हेमात! इसमें हम कारण नहींजान्ते ॥ ६४ ॥ अथवा क्या समरमें हारकर दैत्योंने रम्यतीर्थमें घोर तपस्याकर तुमसे वरपायाहै जिससे हेभवानी यह विष्णुका शिर इससमय अन्तर्द्धान हुआहै अथवा विनाशिरके वासुदेवको देखकर तुमको कोई विनोद होताहै ॥ ६५ ॥ अथवा हेमाता क्या तुमको लक्ष्मीने रुठादियाहै नाथहीन इनको कैसे देखतीहो अपने अंशसे उत्पन्नहुए-का अपराध तुमको क्षमाकरना चाहिये अब इनको उठाकर हम सबको प्रसन्नकरो६६ कार्यमें मुख्य बड़े प्रभावशील यह देवता तुमको नित्य प्रणाम करतेहैं हे देवी इन सम्पूर्णके अधिपति जीवित करके हमको शोकसागरसे पारकरो ॥ ६७ ॥ हेमाता हरिका शिर कहांगया सो हम नहींजान्ते अब कोई जीवनका उपाय नहीं देखतेहैं जिसप्रकारसे तुम देवताओंके जीवनकर्ममें दक्षहो इसी प्रकार जगत्कोभी जीवनदेनेवालीहो ॥ ६८ ॥ सूतजी बोले जब इसप्रकार गुणातीत महेश्वरीकी स्तुतिकरी तब साङ्ग सामगानयुक्त वेदोंसे माता प्रसन्नहुई ॥ ६९ ॥ तब आकाशमेंसे अशरीरिणी वाणी हुई जो देवता भक्तोंको आनंदकारी शब्दोंसे पूर्णथी ॥ ७० ॥ हेदेवताओ चिन्तामतकरो स्वस्थ होकर स्थित हो मैं वेदोंकी स्तुतिसे अत्यन्त प्रसन्न हुईहूं ॥ ७१ ॥ जो मनुष्यलोकमें इस मेरे स्तोत्रसे स्तुति करैंगे और भक्तिसे सदा पढैंगे वे सब कामनाओंको प्राप्तहोंगे ॥ ७२ ॥ जो मनुष्य भक्तिसे तीन काल तक इस मेरे स्तोत्रको पढैंगे वह दुःखसे रहित होकर सुखीहोंगे यह वेदोक्त स्तोत्र वेदहीके समानहै॥७३॥यह कारण सुनो जिससे हरिका शिर उत्पतन हुआ इस

संसारमें विनाकारणके कोईकार्य कैसे होसकताहै ॥ ७४ ॥ विष्णुजी लक्ष्मीके समीपमें स्थितथे उनका मनोहर मुख देखकर धन्यहै इनका मुख ऐसा कह कर हँसे ॥ ७५ ॥ लक्ष्मी यह जानकर कहने लगीं स्वामी मुझे देखकर हंसते हैं किसकारणसे हरिने मेरारूप विरूपदेखा ॥ ७६ ॥ विनाकारण हास्य का कैसे संभव होसकताहै, विदितहोताहै कि इन्होंने कोई दूसरी स्त्री की है ॥७७॥ उससमय तमोगुणसे महालक्ष्मीको क्रोधहुआ कारण कि उसके शरीरमें तामसीशक्तिने प्रवेशकिया ॥ ७८ ॥ फिर किसीसमयके योगमें देवकार्यकी सिद्धिके निमित्त उनके देहमें बड़ी दारुण तामसी शक्तिने प्रवेशकिया ॥ ७९ ॥ देह में तमोगुण प्रविष्ट होनेसे वह महा क्रोधितहुई और शनैः २ बोलीं यह तुम्हारा शिर पति-तहोगा ॥ ८० ॥ स्त्रीस्वभाव होनहार और कालके योगसे ऐसा मुखसे निर्गतहुआ, बिनाविचारे अपने सुखका नाशक शापदिया ॥ ८१ ॥ सपत्नीका दुःखतो वैधव्य-सेभी अधिक होताहै ऐसा मनमें विचार तामसी शक्तिके योगसे उसके मुखसे यह निकलगया ॥ ८२ ॥ अनृत साहस माया मूर्खता अतिलोभता अशौच और निर्द-यता यह स्त्रीजनोंके स्वभाविक दोषहैं ॥ ८३ ॥ सो इस समयमें वासुदेवको पूर्वके समान शिरयुक्त करतीहूं शापयोगसे इनका शिर क्षारसमुद्रमें मग्नहोगया ॥ ८४ ॥ हेदेवताओ कुछ औरभी कारणहै तुम्हारा एक बड़ा कार्यहोगा इसमें सन्देह नहीं ८५ एक महाबाहु हयग्रीव नामक महादैत्य सरस्वतीके किनारे दारुण तप कर चुकाहै ॥ ८६ ॥ मायाबीजात्मक मेरा मंत्र जपताहुआ, आहारहीन आत्मजित् सब भोग छोड़ तपकरने लगा ॥ ८७ ॥ मेरी सब भूषणोंसे भूषित तामसी शक्तिका-ध्यान करते इसप्रकार सहस्रवर्षतक दारुण तपकिया ॥ ८८ ॥ तब मैं तामसी रूप करकै उस स्थानपर आई जैसा उसने ध्यानकियाथा उसी प्रकारसे उसके सन्मुख उपस्थितहुई ॥ ८९ ॥ सिंहके ऊपरस्थितहो दयापूर्वक मैंने उससे कहा हेमहाभाग वरमांग मैं तुमको प्रदान करूंगी ॥ ९० ॥ इस प्रकार देवीके वचन सुन प्रेमसे पूरित हो दानव शीघ्रतासे प्रदक्षिणा और प्रणामकर ॥९१॥ मेरा रूप देखकर प्रेमसे उत्फु-ल्लोचनहो हर्षसे नेत्रोंमें आंसू भरकर मुझको प्रसन्न करनेलगा ॥९२॥ हयग्रीवबोला सृष्टिकी स्थिति और अन्त करनेवाली महादेवीके निमित्त प्रणामहै हेभक्तके अनुग्रह करनेमें चतुर काम मोक्ष देनेवाली शिवे ॥ ९३ ॥ धरा, जल, तेज, पवन, आकाश इनपाँचोंके कारण गंध, रस, रूप, स्पर्श, शब्दका कारण तुमहो ॥ ९४ ॥ हेमहेश्वरी

घ्राण, रसना, चक्षु, त्वक्, श्रोत्र, कर्मेन्द्रिय जो कछहै सो सब तुमसे प्रगट हैं॥९५॥ श्रीदेवी बोलीं तू वरमांग क्या तुझको अभीष्टहै वह मैं वांछितवर दूंगी, मैं तेरी भक्ति और तपसे संतुष्टहूं जो अद्भुतहै ॥ ९६ ॥ हयग्रीव बोले हेमाता जिसप्रकार मेरीमृत्यु नहो सोकरो मैं अमर योगी सुरासुरोंसे अजेय होजाऊं ॥९७॥ देवी बोली जो उत्पन्नहै उसकी मृत्यु अवश्यहोतीहै और मृतका जन्म अवश्य होताहै यह लोककी मर्यादा अन्यथा कैसे होसकतीहै ॥ ९८ ॥ हेराक्षसोत्तम इसप्रकार तुम मरणमें निश्चय करकै मनमें विचारकर बोलो ॥ ९९ ॥ हयग्रीव बोला हेजगदम्बिके मेरीमृत्यु हयग्रीवसेहीहो दूसरेसे नहो यह तुम मेरा मनोरथ पूर्णकरो ॥ १०० ॥ देवी बोली हेमहाभाग तुम घर जाकर यथासुख राज्यकरो हयग्रीवसे विना तेरी मृत्यु नहोगी ॥ १ ॥ यह उसको वरदे देवी अन्तर्धान हुई और वहभी परम प्रसन्नहो अपने घरको गया ॥ २ ॥ वह दुष्टात्मा जाकर वेद और महर्षियोंको पीड़ा देनेलगा, और अब त्रिलोकीमें उसका कोई मारनेवाला नहीं है ॥ ३ ॥ इसकारण तुम मनोहर अश्वका शिर लाकर धरो त्वष्टा इनके देहपरवह शिर जोड़देगा ॥ ४ ॥ और हयग्रीव भगवान् हयग्रीवदैत्यका वध करैंगे उस पापिष्ठी क्रूरदानवका देवताओंके हितकी कामनासे वध करैंगे ॥ ५ ॥ सूतजी बोले ऐसा कहकर देवी मौन हुई और देवता प्रसन्न होकर त्वष्टासे कहनेलगे ॥ ६ ॥ देवता बोले आप विष्णुके शिरोसंयोजनरूप विष्णुका कार्यकरो, उस प्रबलदानवका हयग्रीवजी वध करैंगे ॥ ७ ॥ सूतजी बोले उनके यह वचन सुन त्वष्टाने बहुत प्रसन्न होकर शीघ्रतासे एक घोडेका शिर खड्गसे कर्तन करके देवताओंके समक्षही ॥ ८ ॥ उस शरीरको विष्णुके शरीरपर युक्तकिया, महामायाके प्रसादसे भगवान् हयग्रीव हुए९ कुछदिनोपर उन्होंने मदसे दर्पित हुए उस दानवको युद्धमें नष्ट करदिया ॥१०॥ जो मनुष्य भूमिमें इस सुन्दर आख्यानको श्रवण करतेहैं इसमें सन्देहनहीं उनके सब दुःख नष्ट होजाँयगे ॥ ११ ॥ यह महामायाके चरित्र पापके नाशकहैं पढने सुननेवाले सब सम्पत्ति पातेहैं ॥ ११२ ॥

इति श्रीदेवीभागवते म०प्र०हयग्रीवावतारकथनं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

ऋषि बोले हेसौम्य! जो आपने कहा कि मधुकैटभके साथ भगवानका महार्णवमें पांच सहस्रवर्षतक युद्धहुआ॥१॥उस एकार्णवजलमें किससे वह दोनों दानव उत्पन्नहुए जो

महावीर दुराधर्ष और देवताओंकोभी दुर्जयथे ।। २ ।। कैसे वे उत्पन्नहुए कैसे भगवानने उनको मारा हेमहाप्राज्ञ इस परम अद्भुत चरित्रको हमसे कहिये ।। ३ ।। हम सब सुननेकी इच्छावालेहैं और आप श्रेष्ठवक्ताहैं प्रारब्धसेही हमारा आपका संयोग हुआहै ।। ४ ।। मूर्खके साथ संयोग होना विषसेभी अधिक दुर्जरहै और पण्डितके साथ संयोग अमृतके समानहै ।। ५ ।। जीतेतौ पशुभीहैं वे खाते और मेहन करतेहैं और विषयाकार अनेक अद्भुत सुखको जानतेहैं ।। ६ ।। उनको सत् असत्का ज्ञान तथा मुक्तिदायकज्ञान नहीं है तथा जिनका हरिचरित्र सुननेमें आदर नहींहै उनकोभी पशुही जानना ।। ७ ।। कोई मृगादि पशु सुननेके ज्ञानको जान्तेहैं श्रोत्ररहित सर्पभी मधुरनादसे मोहित होजातेहैं ॥८॥ पाँचइन्द्रियोंमें दर्शन और श्रवणही शुभहै श्रवणसे वस्तुका विज्ञान और दर्शनसे चित्त रंजन होताहै ॥९॥ सात्विक राजसी तामसके भेदसे श्रवण तीन प्रकारका होताहै हेमहाभागो विद्वानोंने यह बात निश्चयकर कही है ॥ १० ॥ वेद-शास्त्रादिक श्रवण सात्विक, साहित्यका श्रवण राजस और युद्धवार्त्ता तथा परदोषका श्रवण तामसी श्रवणहै ॥ ११ ॥ और पंडितोंने सात्विक श्रवणभी तीनप्रकारका कहाहै, उत्तम, मध्यम और अधम ॥ १२ ॥ मोक्षफलदायक उत्तम स्वर्गदायक मध्यम और भोगदायक अधमहै ऐसा पंडितोंने निर्णय किया है ॥ १३ ॥ और साहित्यभी नवरसात्मक तीनप्रकारकाहै अपनीमें रति उत्तम, वारयोषिताकी रति मध्यम और दूसरेकी स्त्रीमें गमनकी कथा अधम है ।। १४ ।। शास्त्रज्ञाता पण्डितोंने तामसभी तीनप्रकारका कहाहै आततायीसे युद्ध उत्तम, ।। १५ ।। विद्वेषियोंसे युद्ध करना मध्यमहै जैसे पाण्डवोंका अपने शत्रुओंसे युद्धकरना विवाद क्लेशकी कथा अधम कहीहै ।।१६ ।। हेमहामते सो इस पुराणका श्रवण मुख्यहै यह बुद्धिका बढानेवाला और पाप दूरकरनेसे सात्विक उत्तमश्रवणहै ।। १७ ।। हेमहाबुद्धे सो आप पुराणकी श्रेष्ठकथा कहिये जो आपने सब अर्थकी साधक व्यासजीके मुखसे सुनीहै।। १८ ।। सूतजी बोले हेमहाभागो तुम धन्यहो और इस पृथ्वीतलमें मैंभी धन्यहूं,जिनको श्रवण और मुझको कथनकी बुद्धिहै ।। १९ ।। जब एकार्णव होनेसे तीनों भवन लीन होगयेथे, और देव २ जनार्दन शेषशय्यापर शयन करगयेथे ।। २० ।। तब विष्णुके कर्णमलसे उत्पन्नहुए मधु कैटभ दानव महाबली सागरके जलमें वृद्धिको प्राप्तहोनेलगे ।। २१ ।।क्रीडा करतेहुए इधर उधर विचरणकरनेलगे एकसमय वह महाकायावाले दैत्य महार्णवमें क्रीडा परवश होकर ।।२२।। दोनों भ्राता मनमें चिन्ता करनेलगे कि

यह परंपरा सर्वत्र एकसीहै, कारणके विना कार्य नहीं होता ॥ २३ ॥ विनाआधारके कभी आधेय स्थित नहीं रहता, आधाराधेयका भाव हमारे चित्तमें भासमान होता है ॥ २४ ॥ हे सुखरूप यह विस्तृत जल किसप्रकारसे स्थितहै किसने इसे उत्पन्न किया कैसे हुआ हम जलमें स्थित मग्न क्यों हैं॥२५॥हम दोनों कैसे उत्पन्न हुए किसने हमको प्रगट किया हमको अपने माता पिताका ज्ञान नहीं है ॥ २६ ॥ सूतजी बोले इसप्रकार इच्छा करतेहुए उनको निश्चय न हुआ, तब उससमय जलमें समीप स्थित मधुसे कैटभ कहने लगा ॥ २७ ॥ कैटभ बोला हे मधु हम दोनोंकी इसजलमें स्थित रहनेकी शक्ति जोहै सोई हेमहाबुद्धिमान् वह अचला महाशक्तिही हमारी स्थितिका कारणहै ॥ २८ ॥ उसीसे विस्तृतहुआ यह जल उसीके आधारमें स्थितहै वही परमदेवी हम दोनोंका कारणहै ॥ २९ ॥ जब इसप्रकारसे चैतन्यहो वे दोनों महासुर चिन्ता करनेलगे तब उन दोनोंने आकाशसें वाग्बीज रूप महाशब्द सुना ॥ ३० ॥ उन दोनोंने उसको ग्रहण करके उसका अभ्यास दृढकिया तब उन्होंने आकाशसे प्रगट होती एक दामिनीका दर्शनकिया ॥ ३१ ॥ तब उन्होंने विचारकिया इसमें सन्देह नहीं यह मंत्रहै और यह आकाशमें सगुणध्यान दृष्टगोचर हुआहै ॥ ३२ ॥ तब यह निराहार आत्मजित् उसीमें मन लगाये सावधानहो यह विचार कर जप ध्यानमें परायणहुए ॥३३॥ इसप्रकारसे उन्होंने सहस्रवर्षतक बड़ा तप किया तब उनके ऊपर वह परमाशक्ति प्रसन्नहुई ॥ ३४ ॥ तपमें निश्चय किये उन दानवोंको खिन्न देखकर उनपर अनुग्रह करनेको अशरीरिणी वाणीहुई ॥३५॥ हेदैत्यो मनवांछित वरमांगो मैं दूंगी तुम्हारे तपसे प्रसन्नहूं ॥ ३६ ॥ सूतजी बोले उस वाणीको सुनकर दानव कहने लगे हेदेवि हमारी मृत्यु हमारी इच्छासेहीहो ॥३७॥ वाणीने कहा हेदैत्यो मेरे प्रसादसे तुमको इच्छानुसार मरण होगा तुम दोनों देवता और दैत्योंसे अजेयहोगे इसमें सन्देह नहीं ॥३८॥ सूतजी बोले इसप्रकार देवीसे वरदानको प्राप्तहो वे दोनों दैत्य मदसे दर्पित होकर समुद्रमें जलचरोंके साथ क्रीडा करनेलगे ३९ हेब्राह्मणो कुछ समय यदृच्छासे उन दानवोंने पद्मासनपर बैठे प्रजापति ब्रह्माको देखा ॥ ४० ॥ उनको देखकर वे दोनों प्रसन्नहो और दोनों महाबली युद्धकी कामनासे कहनेलगे हेसुव्रत हमसे युद्धकरो ॥ ४१ ॥ और नहींतो इसपद्मको छोड़कर अन्यत्र चलेजाओ कारण कि यदि तुम निर्बलहो तो तुम्हारे योग्य यह आसन नहीं है ॥४२॥ यह स्थान वीरोंके भोगने योग्यहै यदि तुम कातरहो तो शीघ्र इसको छोड़जाओ, उनके यह वचन सुनकर प्रजापतिको चिन्ताहुई ॥ ४३ ॥ उन

बलियोंको देखकर विचारनेलगे कि मैं तपस्वी क्या करसकताहूं और इसप्रकार मनमें चिन्ताकरते स्थितहुए ॥ ४४ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ७.

सूतजी बोले उन दोनों बलियोंको देखकर ब्रह्माजी उपायका विचार करनेलगे सब तंत्रके ज्ञाता होनेसे साम दानका भेद विचारने लगे॥१॥कि मैं इन दोनोंका यथायोग्य बल नहीं जान्ताहूं विनाबल जाने युद्धकरना अच्छा नहींहै॥२॥और जो इन दुष्टमदसे मत्तोंकी स्तुति करूं तौ मेरी निर्बलता स्वयं प्रकाशित होजायगी॥३॥निर्बलताके प्रकाश होनेमें कोई एकही वध करैगा,दानके योग्य नहोनेसे भेदभी इनका किसप्रकार होसकताहै॥४॥अब शेषशय्यापर शयन करते भगवान् विष्णुको जगाऊं वह चतुर्भुज महाबली अवश्य हमारे दुःखहा होंगे॥५॥ऐसा विचारकर पद्मासनपर स्थितहुए ब्रह्माजी मनसेही दुःखनाशक विष्णुकी शरणहुए ॥६॥ और उनके जगानेको सुन्दर स्तोत्रोंसे स्तुतिकी उससमय जगत्पति नारायण योगनिद्रामें शयन कियेहुएथे ॥ ७ ॥ ब्रह्माजी बोले हेदीनानाथ हरे,विष्णो,वामन,माधव, उठिये हेभक्तोंके दुःखनाशक हृषीकेश सर्वावास हे जगत्पते ॥ ८ ॥ हेअन्तर्यामी, अमेयात्मा,हेवासुदेव जगत्पति,हेचक्रधारी दुष्टोंके मारनेमें एकाग्रचित्त करनेवाले ॥ ९ ॥ हे सब कुछ जाननेवाले सब शक्तिसे युक्त हेदेवेश दुःखनाशन मेरी रक्षाकरो ॥ १० ॥ हेविश्वंभर हेविशाललोचन,पवित्र श्रवण कीर्त्तनवाले जगत्के उत्पादक निराकार सृष्टिकी स्थिति और अन्त करनेवाले ११ हेमहाराज यह दैत्य दोनों मुझे मारनेको उद्यत हुएहैं हेअखिल आधार मेरे ऊपर संकट आपडाहै क्या इसबातको आप नहींजान्तेहैं ॥ १२ ॥ जो मुझ शरणमें आये दुःखीकी आप उपेक्षा करतेहैं तो हेमहाविष्णु आपका पालकत्व निराधार होजायगा॥ १३ ॥ जब इसप्रकारकी स्तुतिसेभी भगवान् न जागे,योगनिद्रामें स्थित ही रहे तब फिर ब्रह्माजी विचारनेलगे ॥ १४ ॥ अवश्यही योगनिद्राके वशीभूतहो विष्णुजी शक्तिसे आक्रान्तहुएहैं यह धर्मात्मा जागेनहीं अब मैं क्याकरूं ॥ १५ ॥ यह मदगर्वित दानव हमको मारनेको प्राप्तहुएहैं, मैं क्याकरूं कहां जाऊं मुझेतो कहींभी शरण नहींहै ॥१६॥ ऐसा मनमें विचारकर निश्चयको प्राप्तहो एकाग्र मनसे उसयोग निद्राको संतुष्ट करनेलगे ॥ १७ ॥ और यह विचारकर मनमें कहा जो शक्ति मेरी

रक्षा करनेमें समर्थ है, और जिसने विष्णुको निष्पंद अचेतन कर दियाहै ॥ १८ ॥ जैसे प्राणरहित शब्दादि गुणोंको नहीं जान्ताहै ऐसाही निद्रासे निमीलितनेत्र हरिभी इससमय कुछ नहींजानतेहैं ॥ १९ ॥ अनेकप्रकार स्तुति करनेपरभी जो यह निद्राको नहीं त्यागते हम जान्तेहै निद्रा इनके वशीभूत नहीं, यह निद्राके वशीभूतहैं ॥ २० ॥ जो जिसके वशमेंहै वह उसका किंकरहै, इसकारण यह हमारे पतिकी स्वामिनी है ॥ २१ ॥ जिसने स्वामीको लक्ष्मीके वशीभूत करदियाहै अवश्यही यह सब जगत् भगवतीके वशीभूतहै ॥ २२ ॥ विष्णु शंभु सावित्री रमा उमा हम सबही उसके वशमें हैं, इसमें कुछभी सन्देहनहीं ॥ २३ ॥ जिसके कारण साधारण जनके समान उसके वशमें हुए हरि शयन करतेहैं, फिर और महात्माओंकीतौ क्या कथा है ॥ २४ ॥ सो इस समय उस योगनिद्राकी स्तुति करूं जिससे मुक्तहोकर सनातन भगवान युद्धकरैं ॥ २५ ॥ पद्मनालमें स्थित ब्रह्माजी मनमें ऐसा विचारकर विष्णुके अंगमें स्थित भगवती योगनिद्राकी स्तुति करनेलगे ॥ २६ ॥ ब्रह्माजी बोले हेदेवि तुमही इस जगत्का निश्चय कारणहो हेमाता यह मैंने वेदवचनोंसे भलीप्रकार जानलियाहै जोकि सबलोकके विवेकके करनेवाले विष्णुभी पुरुषोत्तम तुम्हारे प्रभावसे निद्राको प्राप्तहुएहैं [अजामेकांलोहितशुक्लकृष्णांवह्वीप्रजांजनयन्तीसरूपामितिश्रुतेः] ॥ २७॥ हेमाता तुम्हारी मोहविलासकी लीलाको कौन जानसकताहै मैं मूढहूं और हरिविवश होकर शयन करतेहैं इसप्रकारसे तुम सबप्राणियोंके मनमें निवास करतीहुई देवताओंकी कोटिमेंभी अतिविद्वान् निर्गुणात्मक तुम्हारी महिमाको कोईनहीं जानता ॥२८॥ सांख्यवादी पुरुष प्रकृतिको जडात्मक कहतेहैं कि यह चैतन्य भावरहित होकर जगत्की कर्तृ कहातीहै सो क्या तुम ऐसीहो कभीनहीं जो ऐसी होती तौ सब विष्णुआदि चैतन्यतासे विरहित किसप्रकार विहितहोते ॥ २९ ॥ आप सगुण होकर अनेकप्रकारकी नाटकलीला करतीहो तुम्हारे कृत्यविधानयोग्यको कौन जानताहै तीनकालमें आपको मुनिगण ध्यान करतेहैं और तुम्हारा संध्या नाम कल्पना करके ध्यान करतेहैं सो हेभवानी तुम्हारी अनेकप्रकारकी लीलाहै ॥३०॥ सदाही तुम जगतकी बुद्धि और बोध करनेवालीहो, और हेदेवि देवताओंकी सदा सुख देनेवालीश्रीहो तथा कीर्ति धृति कान्ति श्रद्धा और मातः सब जनोंमें रतिरूप हो॥ ३१ ॥ इससे अधिक सी वितर्कादिसेपरे क्याहै जो मेरे दुःखमार्गके प्राप्तहोनेपर भगवान्को शयन करतेहुए मायाशबलरूप सब जगत्की जननी तुमको मैंने प्रत्यक्ष

देखा फिर अनुमानादिकी क्या कथाहै ।। ३२ ।। हेदेवि तुम वेदवादियोंकोभी जान्ने को अशक्यहो अखिलार्थता होनेपरभी वेद तुमको नहींजान्ताहै कारण कि वेद तुमसे प्रगटहोताहै, यह तुम्हारा सम्पूर्ण कार्य प्रत्यक्षहै ।। ३३ ।। हेदेवि कौन तुम्हारे सम्पूर्ण चरित्रको जानसकताहै बुद्धिमान् हरि शिवमें तथा दूसरे देवता मेरे पुत्र तथा दूसरे मुनि यह कोई तुमको नहीं जानसकते लोकमें तुम्हारी महिमा दुर्वाच्यहै।।३४।। हेदेवि यदि यज्ञमें तुम्हारा नाम स्वाहा न ग्रहण कियाजाय तौ देवताओंको यज्ञके भागकी प्राप्ति नहींहोती इससे तुम देवताओंकोभी वृत्ति देनेवालीहो ।। ३५ ।। हेदेवि प्रथम कल्पमें तुमने हमारी रक्षाकीहै और अबभी हमको दैत्योंसे भय हुआहै हेवरदा-यक देवि मैं भीतहोकर तुम्हारी शरणहूं अब मधु कैटभके साथका भय घोरहै इससे रक्षाकरो ।।३६।। इससमय विष्णुजी मेरे दुःखको नहींजान्तेहैं कारण कि तुम्हारे आधीन उनका शरीर होरहाहै, यातौ भगवान्को निद्रासे मुक्तकरो अथवा इन दोनों दानवेन्द्रोंको मारो हेमंहानुभावे जैसी तुम्हारी इच्छाहो वैसाकरो ।। ३७ ।। हेदेवि जो तुम्हारे परंप्रभावको नहींजान्ते वे थोड़ी बुद्धिवाले हरि हरका ध्यान करतेहैं हेजननि मैंने तुम्हारा प्रगट प्रमाण जानाहै जो विष्णुभी विवशहुए शयन करतेहैं ।।३८।। लक्ष्मीभी नारायणको जगानेको समर्थ नहीं कारणकि यहभी तुम्हारे आधीनहैं हेज-ननि विदित होताहै कि तुमने बलात्कारसे उनको अपने वशमें कियाहै जिसकारण वह तुम्हारी वशीकृता होनेसे इनको नहीं जगातीहैं ॥ ३९ ॥ जो भूमिमें तुम्हारी भक्ति परायण होकर और देवताओंका भजन छोडकर तुममें लीन हुएहैं हेदेवि वे सब निकाम तुम्हारा भजन करतेहैं कारण कि वे तुमको सबकी जननी और कामधेनु मानतेहैं ॥ ४० ॥ धी कान्ति कीर्ति शुभवृत्ति आदि तुम्हारे गुणहैं और विष्णुके गुण जाने कहांगये सोतौ विदित नहींहोते इससमय भगवान् निद्रासे परवश हुएहैं हेभगवती वह मानवती तुम्हारीही शक्तिहै ॥ ४१ ॥ तुमहीं सब जगत्की शक्ति महाप्रभाववालीहो, यह सब तुम्हारा निर्माण किया भावमात्रहै तुम अपने निर्माणकिये मोहजालमें क्रीडा करतीहो जिसप्रकार नट अपने नाटकमें विहार करताहै ४२ प्रथम युगादिमें आपने विष्णुको प्रगट कियाहै, और पालन करनेकी उनको अमलशक्ति-दीहै,और विवशकिये इस सब जगत्को रक्षा करतीहो हेदेवि जो तुमको अच्छा लगै सोकरो ।।४३।। हेदेवि यदि मेरी रचना करकै अब मेरे मारनेकी इच्छा नहो तो मौन त्यागकर मेरे ऊपर दयाकरो, इन काल रूप दैत्योंको क्यों प्रगट कियाहै, अथवा

हेभवानि क्या मेरा हास्य करनेको ऐसा कियाहै ॥ ४४ ॥ मैंने आपकी अद्भुत चेष्टाको जानाहै कि इससब जगत्को उत्पन्न करकै स्वतंत्रतासे रमण करती हो, और फिर लीन करलेतीहो हेभवानि क्या अब इसीप्रकार मेरे मारनेकी इच्छा करतीहो इसमें क्या विचित्रहै ॥ ४५ ॥ अच्छाहै हेमातः भलेही आप मेरा वध कीजिये हेजगदम्बिके मुझको इससमय मरणका दुःखनहीं है, परन्तु तुमने जिसको प्रथमही जगत्का कर्ता कहकर प्रगट किया, वह दैत्योंसे हतहो मृत्युको प्राप्तहुआ, यह बड़ा अपयश लैगा ॥ ४६ ॥ हेदेवि बाललीला वा कोमल लीलावाली तुम उठो इससमय भयंकर रूपकरो जो तुम्हारी इच्छाहो तो इन दैत्योंको मारो वा मुझे वधकरो और नहीं तो हरिको जगाओ, वा दैत्योंको मारो कारण कि सबकार्य समूह आपसे सिद्ध होते हैं ॥ ४७ ॥ सूतजी बोले इसप्रकार ब्रह्माजीने तामसीदेवीकी स्तुति की तब वह नारायणकी देहसे निकलकर उनके पार्श्वमें स्थितहुई ॥ ४८ ॥ अतुलतेजस्वी विष्णुके सब अंगोंको त्यागन करकै उन दोनोंके नाश करनेको निर्गतहुई ॥४९॥ जिससमय जनार्दन कम्पित शरीर हुए तब ब्रह्माजी यह देख बड़े प्रसन्नहुए ॥ ५० ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे विष्णुप्रबोधोनाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ८.

ऋषिबोले हेमहाभाग इस कथामें हमको महासन्देहहै वेद शास्त्र पुराणोंमें हमको निश्चय हुआहै ॥ १ ॥ कि ब्रह्मा विष्णु महेश यह तीन सनातन देवहैं, हेमहामते इस ब्रह्माण्डमें इनसेपरे कुछनहीं है ॥ २ ॥ ब्रह्मा लोकोंको सृजन करते विष्णु पालते और रुद्र संहार करतेहैं यह तीन इसमें कारणहैं ॥ ३ ॥ यह तीनों देवता एकही मूर्त्तिकेतीन हुएहैं और रज, सत, तम, यह तीन गुणकी ब्रह्मा विष्णु महेशकी तीन मूर्त्ति हैं ॥ ४ ॥ इनमेंभी भगवान् विष्णु सर्वश्रेष्ठ पुरुषोत्तमहैं, यह आदिदेव जगन्नाथ सबकार्य करनेमें समर्थ हैं ॥ ५ ॥ अतुलतेजस्वी विष्णुके सन्मुख कोईभी कुछ करनेको समर्थ नहीं है, उन विष्णुको योगमायाने कैसे विवश होकर शयन कराया ॥६॥ उनका विज्ञान और जीवनकी चेष्टा क्याहुई हेमहाभाग इसमें मुझको सन्देहहै आप यथायोग्य कहिये ॥ ७ ॥ वह शक्ति क्याहै जिसने भगवान् विष्णुकोभी जीतलियाहै वह कैसे प्रगटहुई और कैसे समर्थ है हेसुव्रत कैसे वह शक्ति कहाती है ॥ ८ ॥ जो सर्वेश्वर वासुदेव विष्णुहैं परमात्मा परानंद सच्चिदानंद विग्रहवालेहैं ॥ ९ ॥ सबके करनेवाले, विरज, सर्वव्यापक पवित्र होकर वह कैसे निद्राके वशीभूत हुए ॥ १० ॥

यह हमको बड़ा आश्चर्य और सन्देहहै, हेव्यासशिष्य सूतजी यह हमारा सन्देह दूरकरो ॥११॥ सूतजी बोले,इस सन्देहको चराचर त्रिलोकीमें कौन दूर करसकता है और ब्रह्म पुत्रादि सनातन मुनिभी इसमें मोहित होते हैं ॥ १२ ॥ हेमुनिश्रेष्ठ इस प्रश्नमें नारद और कपिलभी इसमें अशक्य हैं,फिर मैं इसमें क्या कहसकताहूं॥१३॥ देवताओंमें विष्णु सर्वगामी सबके पालकहैं, जिनसे विराट्‌रूप यह सब चराचर जगत प्रगटहुआहै ॥ १४ ॥ वे परात्पर देवको प्रणामकर उनकी सब उपासना करतेहैं, वेनारायण हृषीकेश वासुदेव जनार्दन कहातेहैं ॥ १५ ॥ और कोई महादेव शंकर शशिशेखर त्रिनेत्र पांचमुख शूलपाणि वृषभध्वज ॥ १६ ॥ सब वेदोंमें गीयमान त्र्यम्बक कपर्दि पंचमुख गौरीको अर्धदेहमें धारणकिये ॥ १७ ॥ कैलासवासमें निरत सब शक्तिसे युक्त भूतसमूहसे युक्त देव दक्ष यज्ञके विघातकको भजन करते है ॥ १८ ॥ तथा वेदवादी दिन दिन प्रभात और संध्यामें और मध्याह्नमें अनेक स्तोत्रोंसे सूर्यकी स्तुति करतेहैं ॥ १९ ॥ सब वेदोंमें सूर्यकी उपासना उत्तम कहीहै उन महात्माका नाम परमात्मा कहाहै ॥ २० ॥ तथा देवश्रेष्ठ सर्वत्र अग्निदेवताकी स्तुति करतेहैं त्रिलोकपति इन्द्र और वरुणहैं ॥ २१ ॥ जैसे गंगा अनेकप्रवाहोंसे वर्तती है इसीप्रकार महर्षियोंने सब देवताओंमे विष्णुको कहाहै ॥ २२ ॥ पण्डित तीनही प्रमाण पढ़ते हैं प्रत्यक्ष अनुमान और तीसरा शब्दप्रमाण ॥ २३ ॥ कोई उपमान और मिलाकर चार प्रमाण पढतेहैं कोई अर्थापत्ति मिलाकर पांच पढ़ते हैं ॥ २४ ॥ और साक्षि ऐतिह्यरूप मनीषिगण पौराणिक रूप सात प्रमाण पढते हैं इसप्रकारसे इन प्रमाणोंसेभी ब्रह्म दुर्ज्ञेय है ॥ २५ ॥ इसमें बुद्धि और आगमसे वितर्क करना चाहिये, निश्चयात्मिका बुद्धिसे वारंवार विचारकरके ॥ २६ ॥ बुद्धिमान्‌को प्रत्यक्षवस्तुका विज्ञान वारंवार विचारना चाहिये तथा दृष्टान्त और शिष्टोंका मार्ग अनुसरण करना चाहिये ॥ २७ ॥ विद्वान ऐसा कहते हैं और पुराणोंमेंभी ऐसा लिखाहै ब्रह्माको सृष्टि करनेकी शक्ति हरिमें पालनकी॥२८॥हरमें संहारकी सूर्यमें प्रकाशकी शेष और कूर्ममें भूमिधारणकी शक्तिहै२९ वही आद्याशक्ति सबमें परिणतहोकर स्थितहै अग्निमें दाह पवनमें प्रेरणात्मक शक्तिहै ॥ ३० ॥ कुंडलिनीसे विवर्जित होकर शिवभी शिवताको प्राप्तहोतेहैं जो शक्तिहीन हैं पंण्डितोंने उसको असमर्थ कहाहै॥३१॥ इसप्रकार सर्वत्र स्थावर जंगम भूतोंमें हे महा तपस्वियो ब्रह्मासे स्तम्ब पर्यन्त इस जगतमें ब्रह्माण्डमें ॥३२॥ शक्तिके विना

चराचर वस्तुमात्र निंदनीयहै, हीनशक्ति शत्रुके विजय करने गमन और भोजनमें अशक्त होताहै ॥ ३३॥ इसप्रकार सर्वगामिनी शक्ति ब्रह्म कहातीहै बुद्धिमानोंको विचारपूर्वक भलीभांति उसका सेवन करना चाहिये ॥ ३४ ॥ विष्णुमें वह सात्विकीशक्तिहै उसके विना वह कुच्छभी कर्म नहीं करसकते ब्रह्मामें राजसी शक्तिहै उसके विना वह कुछ नहीं करसकते ॥ ३५ ॥ शिवमें तामसीशक्तिहै इसीसे वह संहार कर सकतेहैं, इसप्रकार मनसे सम्पूणतया विचार करकै ॥ ३६ ॥ यह शक्ति ब्रह्माण्डकी रचना करकै पालना करतीहै, इच्छासे ही चराचर जगत्का संहार करतीहै ॥३७॥ विष्णु हर ब्रह्मा अग्नि सूर्य वरुण विनाशक्तिके कोईभी अपना कार्य नहीं करसकतेहैं ॥३८॥ वे सर्व देवता उससे युक्तहोकरही अपना कार्य करते हैं, वही कार्य कारणमें प्रत्यक्ष विदितहोतीहै ॥ ३९ ॥ वह सगुण निर्गुणके भेदसे महर्षियोंने दोप्रकारकी कहीहै रागी सगुणका और विरागी निर्गुणशक्तिका सेवन करतेहैं ४० वह अर्थ धर्म काम मोक्ष चारों पदार्थोंकी स्वामिनीहै विधिपूर्वक पूजा कीहुई मनोवांछित अर्थोंको देतीहै ॥ ४१ ॥ और मायासे आवृत्तहुए मूढ उसको जान नहींसकते हैं और जानकरभी कोई मनुष्य दूसरोंको नहीं बताकर मोहित करते हैं ॥ ४२ ॥ पण्डितजन अपने उदरपूर्त्तिके निमित्त कलिके प्रेरितहुए अनेक पाखण्डप्रवर्त्तित करतेहैं ॥४३॥ इस कलियुगमें हेमहाभागो अनेकभेद होगयेहैं वेदवाह्य धर्म दूसरे युगोंमें कभीनहीं होतेहैं ॥४४॥ विष्णुभी अनेकवर्षोंतक उग्रतप करतेहैं और ब्रह्मा हरादि देवताभी उस परमात्मिका शक्तिका ध्यान करतेहैं ॥ ४५ ॥ वे तीनों देवता सदा इच्छा करते हुये ब्रह्मा विष्णु महेश्वर अनेक यज्ञ करतेहैं ॥ ४६॥ वह ब्रह्मरूप नाम्नी परात्मिकाकी शक्तिका ध्यान करतेहुये उनको सनातिनी नित्य मानकर सदा ध्यान करतेहैं ॥ ४७॥ इसकारण निश्चय करने वाले ब्राह्मणोंको सदा शक्तिका ध्यान करना चाहिये हेमुनिश्रेष्ठो सब शास्त्रोंका निश्चय जाननाचाहिये, ॥ ४८ ॥ मैंने यह सब श्रीकृष्णसे सुना और उन्होंने नारदजी सुना नारदजीने ब्रह्मासे और प्रजापतिने विष्णुसे सुना ॥४९॥ दूसरोंके वचन बुद्धिमानोंको नमानने सुननेचाहिये कृतनिश्चयवाले विद्वानों को भगवतीका सदा सेवन करना चाहिये॥५०॥ अशक्तकी चेष्टा प्रत्यक्ष भी तो देखनी चाहिये इससे सब प्राणियोंमें शक्तिही देखनी चाहिये ॥ ५१ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ९.

सूतजीबोले जिससमय उस जगद्गुरुके शरीरसे निद्रा निर्गुतहुई तथा नेत्र हृदय और नासिकासे तेज निर्गतहुआ ॥ १ ॥ तब वह उत्तम तामसी शक्ति निर्गत होकर आकाशमें स्थितहुई और बार बार जंभाई लेते हुए जगन्नाथ जागे ॥२॥ तब उन्होंने भयसे व्याकुल प्रजापतिको देखा,और वह महा तेजस्वी मेघके समान गंभीरवाणीसे बोले ॥ ३ ॥ विष्णु बोले हे ब्रह्मा तप छोड़कर तुम यहां कैसे आये और तुम भयसे व्याकुल क्यों हो ॥४॥ ब्रह्माजीबोले हेदेव आपके कर्णमलसे उत्पन्नहुए मधु कैटभ दैत्य घोररूप महाबली हैं ॥ ५ ॥ हेजगत्पते उन दोनोंके भयसे मैं तुम्हारे समीप आयाहूं हेवासुदेव भयसे व्याकुलहुए विचिंतन मेरी रक्षाकरो ॥ ६ ॥ विष्णु बोले तुम स्थितरहो मैं उन दोनोंका वध करूंगा,वे मूढ गतायुष होकरही मेरे समीप युद्ध करनेको आये हैं ॥ ७ ॥ सूतजी बोले देवेशके ऐसा कहनेपर वे अतिबली दानव ब्रह्माजीको ढूंढते मदसे गर्वितहुए वहाँ प्राप्तहुए ॥ ८ ॥ निराधार विगतज्वर होकर मदोन्मत्त हुए ब्रह्माजीसे कहनेलगे ॥ ९ ॥ वहांसे भागकर इनके समीपम क्यों आयेहो, और युद्धकरो इस पुरुषके देखतेही हम तुझको मारडालेंगे ॥ १० ॥ और पीछे सर्पशय्यापर स्थितहुए इसकोभी मारडालेंगे सो तुम अब संग्रामकरो वा मैं तुम्हारा दासहूं ऐसाकहो ॥ ११ ॥ सूतजी बोले यह वचन सुनकर जनार्दन उनसे बोले हेदानवो तुम मेरे साथ संग्रामकरो ॥ १२ ॥ मैं तुम दोनों मतवालोंका मद हरणकरूंगा हेमहाबली महाभागियो यदि इच्छाहो तौ मेरे साथ युद्धकरो ॥ १३ ॥ यह वचन सुनकर क्रोधसे व्याकुल मन होकर वे निराधार जलमें स्थित होकर युद्ध करनेलगे ॥ १४ ॥ तब मधु क्रोधित होकर हरिके साथमें युद्ध करनेको स्थितहुआ और कैटभभी चला ॥ १५ ॥ उनका मत्त दो मल्लोंके समान युद्ध होनेलगा मधुके श्रान्त होनेमें कैटभ संग्राम करनेलगा॥ १६ ॥फिर मधुफिर कैटभ इसप्रकार वारंवार युद्ध करने और रागसे अंधेहो प्रभु विष्णुसे संग्राम करनेलगे ॥१७॥ उसको ब्रह्मा और अन्तरिक्षमें स्थितहुई देवी अवलोकन करतीथी और वे युद्ध करतेहुए न थके विष्णु-को श्रम होनेलगा ॥ १८ ॥ जब युद्ध करतेहुए पांचसहस्रवर्ष बीतगये तब भगवान् ने उनके मरणका कारण विचारकिया ॥ १९ ॥ कि मैंने पांचसहस्र वर्षतक बरा-बर युद्धकिया, यह दानव शान्त नहुए और मुझको परिश्रम विदितहोताहै ॥ २० ॥ मेरा बल और शूरता कहांगई क्यों यह दोनों कुशलपूर्वकहैं यहाँ क्या कारण होगा यह बात मनसे विचारकर शोचनेलगे ॥ २१ ॥ इसप्रकार वे दोनों मदोन्मत्त

हरिको चिन्ता करते देखकर मनमें बड़े प्रसन्नहोकर मेघ गंभीरवाणीसे भगवान्से कहनेलगे ॥ २२ ॥ हेविष्णु यदि तुममें बल नहीं है और युद्धसे शान्त होगयेहो तो कहो कि हम तुम्हारे दासहैं इसप्रकार शिरपर अंजलीकरो ॥ २३ ॥ हेमहामते! यदि समर्थ होतो हमारे साथ युद्धकरो तुमको मारकर हम चतुर्मुख पुरुषका वध करैंगे ॥ २४ ॥ सूतजी बोले भगवान् विष्णु यह उनके वचन सुनकर सामपूर्वक मनोहरतासे वचन बोले ॥ २५ ॥ भगवान् बोले श्रांत भीत पतित शस्त्रत्यागी और बालकपर वीर शस्त्रत्याग नहीं करते यह सनातनधर्म है ॥ २६ ॥ मैंने तुमसे पांचसहस्रवर्षतक युद्धकिया मैं इकलाहूं और तुम दोनों महाबलिष्ठ क्रमसे युद्ध करते रहेहो ॥ २७ ॥ तुम दोनोंने मध्यमें बारंबार विश्राम कियाहै मैं भी विश्राम कर तुमसे युद्ध करूंगा इसमें सन्देह नहीं ॥ २८ ॥ तबतक तुम बलवान् मदोन्मत्त स्थितरहो मैं विश्राम करके फिर न्यायमार्गसे युद्ध करूंगा ॥ २९ ॥ सूतजी बोले यह उनके वचन सुन दोनों दानव विश्वासको प्राप्तहो संग्राममें निश्चयकर दूर स्थितहुए ॥ ३० ॥ वासुदेव चतुर्मुख उनको अतिदूर स्थित देख उनके मारनेका कारण मनमें ध्यान करनेलगे ॥ ३१ ॥ चिन्तन करतेही यह वार्त्ता जानली कि देवीने दोनोंको वर दियाहै और संग्राममें इच्छापर मरणहै और शान्त नहोंगे ॥ ३२ ॥ मैंने इनसे वृथा युद्धकिया और मेरा श्रमभी वृथागया, यह निश्चय जानकर मैं अब इनसे कैसे युद्ध करूंगा ॥ ३३ ॥ विना युद्धकिये यह यहांसे किसप्रकार जांयगे यह मददर्पित दानव विनामरे बड़े दुःखदायी होंगे ॥ ३४ ॥ भगवतीने जो इनको वरदियाहै सोभी बड़ा दुर्घटहै; कोई दुःखीभी अपनी इच्छासे मरणकी इच्छा नहीं करता है ॥ ३५ ॥ रोगग्रस्त दीन मरताहुआभी मृत्यु नहीं चाहता फिर यह दोनों मदोन्मत्त क्यों मृत्युकी इच्छा करैंगे ॥ ३६ ॥ सो इससमय कामनादायक विद्याशक्तिकी शरणहूं विना उसके प्रसन्नहुए कामना सिद्ध नहीं होती ॥ ३७ ॥ इसप्रकार विचार कर आकाशमें स्थित योगनिद्रारूप मनोहर शिवाको देखतेहुए ॥ ३८ ॥ और वह अमेयात्मा हाथ जोड़कर उनको सन्तुष्ट करतेहुए उन दोनोंके नाशके निमित्त वरदायक भुवनेश्वरीकी प्रार्थना करनेलगे ॥ ३९ ॥ विष्णु बोले हेमहामाये ! सृष्टि और संहारकारिणीदेवी अनादि निधन चण्डि भुक्ति मुक्तिकी देनेवाली शिवे तुमको प्रणाम है ॥ ४० ॥ तुम्हारे सगुण निर्गुणरूपको मैं नहींजान्ताहूं और जो तुम्हारे असंख्य चरित्रहैं उनकीतो कौन कहै ॥ ४१ ॥ मैं तुम्हारा दुर्घटप्रभाव जानचुकाहूं जोमैं

निद्रित होकर विचेतन होगयाथा ॥ ४२ ॥ ब्रह्माजीने यत्नपूर्वक मुझे वारंवार बोधितभी किया परन्तु सर्वथा संकोचित षडिन्द्रिय होनेके कारण मैं प्रबुद्ध नहुआ ॥ ४३ ॥ हेअम्बिके तुम्हारे प्रभावसे मैं अचेतनत्वको प्राप्तहुआ और तुम्हारे छोड़नेसे मैं प्रबुद्धहुआ और बहुत युद्धकिया ॥ ४४ ॥ मैंतो श्रान्तहुआ और वह दोनों वरदान पानेके कारण शान्त नहुए और वे दोनोंबली ब्रह्माजीके मारनेको सन्नद्ध हुए॥४५॥ हेमानदे तब मैंने द्वंद्वयुद्धके निमित्त उनको संग्राममें बुलाया, और उनके साथ मैंने महार्णवमें घोरयुद्ध किया ॥ ४६ ॥ परन्तु उनके मरणमें मैंने महाअद्भुत वरदानको जाना,यह जानकर मैं तुझ शरण देनेवालीकी शरणमें प्राप्तहुआहूं ॥ ४७ ॥ हेमातः ! अब मेरी सहायता करो मैं युद्धकर्मसे खिन्नहोरहाहूं हेदुःखनाशिनी वह तुम्हारे वरदानसे दर्पितहैं ॥ ४८ ॥ वे पापी मुझको मारनेको उद्यतहैं अब मैं क्या करूं कहां जाऊं ऐसा कहनेसे तब देवी हास्य करके बोली ॥ ४९ ॥ वासुदेव जगन्नाथको प्रणाम करताहुआ देखकर बोली हे देवदेव ! विष्णु फिरभी युद्ध करो ॥५०॥ तब इन शूरोंको वंचना करके मारो मैं दोनों दानवोंको अपनी बुद्धिसे मोहित करूंगी ॥ ५१ ॥ हेनारायण ! मेरीमायासे मोहितहुए दोनोंका वधकरो सूतजी बोले प्रीतिभरे उनके वचनोंको विष्णुजी सुनकर ॥ ५२ ॥ फिर उस महार्णवमें संग्रामस्थलमें आनकर स्थितहुए और वेभी महाबली वीर युद्ध करनेको आये ॥ ५३ ॥ विष्णुको वहाँ स्थित देखकर दोनों प्रसन्नहुए और बोले चाहै तुम स्थितहो चाहे चतुर्भुज युद्धकरो ॥ ५४ ॥ कारण कि जय पराजय अवश्यही दैवाधीनहै सबलकी जय होतीहै कभी दैववश दुर्बलभी जय पाताहै ॥ ५५ ॥ इसप्रकार सर्वथा महात्माको हर्ष शोक न करना चाहिये पहलेभी दानव वैरीने बहुतसे दैत्य जीतेहैं ॥ ५६ । अब इनके साथ युद्ध रते पराजित हुए, सूतजी बोले ऐसा कहवे महाबाहु युद्ध रनेको स्थितहुए ॥ ५७ ॥ और देखकर अद्भुतकर्मा विष्णुने उनको मुष्टिसे ताडन किया और वहभी बली मुष्टिसे हरिको ताडन करतेहुए ॥ ५८ ॥ इसप्रकार परस्पर बड़ादारुण युद्धहुआ, तब उन महावीर्य मानोंको युद्ध करताहुवा देखकर नारायण ॥ ५९ ॥ नम्रदृष्टिसे भगवतीकी ओर देखनेलगे सूतजी बोले उससमय विष्णुको करुणारससे संयुक्त देखकर ॥ ६० ॥ वह ताम्रलोचनी प्रसन्न हुई और उन दोनों असुरोंको देखकर कटाक्षयुक्त कामबाणोंसे उनको ताडन करने लगीं ॥ ६१ ॥ अत्यन्त मन्दहास्य और प्रेमभावसे युक्त होकर [illegible]

देख वह दोनों पापात्मा देवीके वक्त्र विलोकनसे मोहित होगये ॥ ६२ ॥ और उनको विशेष देख कामबाणसे पीडितहुए और देवीकी कान्ति देखकर वहाँ स्थित-हुए ॥ ६३ ॥ भगवान्‌नेभी वह देवीकी चेष्टा देखी, और कार्यकुशल भगवान् उनको मोहित हुआ जानकर ॥ ६४ ॥ हँसतेहुए मेघ गंभीर वाणीसे बोले तुम दोनोंवीर यथेच्छवरमाँगो ॥ ६५ ॥ मैं तुम्हारे युद्धसे प्रसन्न होकर वरदूंगा मैंने अपने साथ पहलेभी युद्ध करते बहुतसे दानव देखे हैं ॥ ६६ ॥ परन्तु तुमसा नंकोई देखा न सुना इसकारण मैं तुम्हारे अतुलबलसे प्रसन्नहूं ॥ ६७ ॥ मैं तुम दोनों महाबली भ्राताओंको यथेच्छ वरदूंगा सूतजी बोले ! यह विष्णुके वचन सुनकर वे दोनों असुर कामसे पीडितहुए अभिमानपूर्वक ॥ ६८ ॥ जगत्‌की आनंद करनेवाली उस महामायाको देखतेहुए कामसे आर्त्त होकर कमललोचन विष्णुसे बोले हेहरि हम याचक नहींहैं तुम क्या देनेकी इच्छा करतेहो हम दाताहैं हे देवेश ! तुमको वर देसकतेहैं ॥६९॥७०॥ हेहृषीकेश तुम अपने मनके अभिलषित वरकी इच्छाकरो हेवासुदेव हम तुम्हारे अद्भुतयुद्धसे प्रसन्नहैं ॥ ७१ ॥ उनके यह वचन सुनकर भगवान् बोले जो तुम हमारे ऊपर प्रसन्नहो तो दोनों हमारे वध्यहो ॥ ७२ ॥ सूत जी बोले दोनों दानव विष्णुके यह वचन सुनकर बड़े विस्मितहुए हम वंचित हुए यह विचारकर शोकसे व्याकुलहुए ॥ ७३ ॥ मनसे विचारकर वे दानव विष्णुसे बोले और स्थलरहित जलमय भूमिको देखकर कहा ॥ ७४ ॥ हेहरि जो तुमने पहले वर देनेको कहा तो आपभी सत्यवाक् होकर हमको वरदीजिये ॥ ७५ ॥ हेमधुसूदन आप निर्जल देशमें हमारा वध कीजिये, इसप्रकारसे आप सत्यवचन हूजिये ॥ ७६ ॥ तब भगवान् चक्रका स्मरणकर हँसतेहुए उनसे बोले हेमहाभागो ! निर्जलस्थानमें मैं तुम्हारावध करूंगा ॥ ७७ ॥ यह कह भगवान्‌ने अपना ऊरूदेश विस्तार करके उनको निर्जलस्थान दिखाया और कहा ॥ ७८ ॥ हेदानवो यहाँ जल नहीं है अपना शरीर यहाँ त्यागो मैं और तुम अभी सत्यवाक्‌होंगे ॥ ७९ ॥ यह सुनकर वे दोनों मनमें विचारकर अपना देह सहस्रों योजनका करतेहुए ॥ ८० ॥ तब विस्मित होकर भगवान्‌ने अपनी जंघा दूनीकरदी तब वह उस परमअद्भुत जंघामें शिर धरते हुए ॥ ८१ ॥ तब विष्णुने चक्रसे उनका शिरछेदन करदिया, जिससमय वेगसे जंघाके ऊपर उनका शिरछेदनकिया ॥ ८२ ॥ उसीसमय मधु और कैटभ प्राणरहित हुए उनके मेदसे सम्पूर्ण सागर व्याप्त होगया ॥ ८३ ॥ तबसे सब ओर से उस पृथ्वीका

नाम मेदिनी हुआ हेमुनीश्वरो! इसीकारणसे मृत्तिका अभक्ष्यहै ॥ ८४ ॥ जो कुछ आपने पूछा सो हमने वर्णनकिया; महाविद्या महामायाका पंडितोंको सदा सेवन करना चाहिये ॥ ८५ ॥ सब सुरासुरोंको उस परमशक्तिका आराधन करना चाहिये इससे अधिक तीनों भुवनमें और कुछ नहीं है ॥ ८६ ॥ यह वेदशास्त्रका निर्णय सत्यहै सत्यहै, निर्गुण वा सगुणरूप पराशक्तिका पूजन करना चाहिये ॥ ८७ ॥

इति श्रीदेवीभागवते भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः १०.

सूतजीसे ऋषि बोले हेसूतजी आपने कहाकि महातेजस्वी व्यासजीने यह सब पुराण बनाकर शुकदेवजीको पढ़ाया ॥ १ ॥ व्यासजीने तप करके शुकदेवजीको कैसे उत्पन्न किया जो आपने व्यासजीसे सुना वह सब वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ सूतजी बोले सत्यवतीसुत व्यासजीसे शुकदेव जैसे हुए वह कहताहूं जिसप्रकार योगियोंमें श्रेष्ठ शुकदेवजी उत्पन्नहुए ॥ ३ ॥ एकसमय सत्यवतीपुत्र व्यासजी मनोहर सुमेरुके शृंगमें पुत्रके निमित्त बड़ा तप करनेलगे ॥ ४ ॥ और नारदजीसे सुनकर वाक्बीज एकाक्षर मंत्रका जप करनेलगे इसप्रकार पुत्रकी इच्छासे तपोनिधि महामायाका ध्यान करनेलगे ॥५॥ अग्नि भूमि वायु अन्तरिक्ष जल इनकी शक्तियोंसे संपन्न मेरा पुत्र हो यही निश्चय कियेथे ॥ ६ ॥ और १०० वर्षतक व्यासजीने कुछभी आहार नकिया, शिवा और शिवको आराधन करतेरहे ॥ ७ ॥ शक्ति सर्वत्र पूजनीयहै ऐसा बारंबार मनमें निश्चय करके कि अशक्त निंदित होता और शक्तिमान पूजित होताहै देवीकी पूजा करते ॥ ८ ॥ जहाँ पर्वतशृंगपर कर्णिकारका अद्भुत वनथा जहाँ देवता क्रीडा करते और मुनिजन अधिक तप करतेथे ॥९॥ आदित्य वसु रुद्र मरुत अश्विनीकुमार मुनि तथा दूसरे ब्रह्मवादी जहाँ निवास करतेथे ॥ १० ॥ उस गीतध्वनिसे शब्दायमान सुवर्णगिरिके शृंगमें धर्मात्मा सत्यवतीपुत्र व्यासजी तप करतेथे ॥ ११ ॥ तब इनके तेजसे चराचर विश्व व्याप्त होगये, और बुद्धिमान् व्यासजीकी जटा अग्नि वर्णकी होगई ॥ १२ ॥ तब इनके तेजसे इन्द्रको भयहुआ तब इन्द्रको भयसे व्याकुल देखकर ॥ १३ ॥ इन्द्रसे भगवान् रुद्रबोले हेइन्द्र तुम क्यों भीतहो अपने दुःखका कारणकहो ॥ १४ ॥ तपस्वियोंसे कभी अमर्ष नहीं करना चाहिये मुझे शक्तिसंयुक्त जानकर महर्षि तप करतेहैं ॥ १५ ॥ यह तपस्वी कभी किसीका अहित नहीं चाहते यह वचन सुन इन्द्र शिवजीसे बोले ॥ १६ ॥ व्यासजी क्यों तप करतेहैं उनके मनमें क्या अभिलाषाहै शिवजी

बोले पुत्रके निमित्त व्यासजी कठिन तपस्या करतेहैं ॥ १७ ॥ सौ वर्ष होगये अब मैं उनके निमित्त पुत्रदूंगा सूतजी बोले यह कहकर दयासे युक्त प्रसन्नमन ॥ १८ ॥ भगवान् जगद्गुरु शिवजी व्यासजीके निकट जाय बोले हे व्यासजी उठो तुम्हारे श्रेष्ठ पुत्र होगा ॥ १९ ॥ सब तेजसे युक्त ज्ञानी और तुम्हारी कीर्त्तिका करनेवाला होगा तथा सम्पूर्ण प्राणियोंका प्यारा तुम्हारा पुत्रहोगा ॥ २० ॥ और सात्विक गुणोंसे पूर्ण सत्यपराक्रमी होगा सूतजी बोले व्यासजी यह मनोहर वचन सुनकर ॥ २१ ॥ शिवजीको प्रणामकर अपने आश्रममें गये और बहुत वर्षोंके श्रमसे आतुर हुए आश्रममें जाकर ॥ २२ ॥ अरणीके सहित गुप्तहुई अग्निको मथनेलगे उन चिन्ताकरते हुए और अग्निमथन करते महात्माके सन्मुख सहसा पुत्रकी उत्पत्ति हुई मंथन दण्ड और अरणिके संयोगसे उत्पन्न ॥ २३ ॥ २४ ॥ अग्निके समान यह मेरे पुत्र कैसे-हुआ पुत्रकी प्रगट करनेवाली स्त्रीतो हमारे हैही नहीं ॥ २५ ॥ रूपसम्पन्न अच्छेकुलमें उत्पन्न पतिव्रता स्त्री जो चरणोंको श्रृङ्खलाके समानहै किसप्रकार स्वीकार करूं ॥ २६ ॥ पुत्रके उत्पन्न करनेमें दक्षपतिके व्रतमें सदास्थित पतिव्रता दक्ष और रूपवती कामिनीभी ॥ २७ ॥ स्वेच्छासे सुखदेनेवाली स्त्रीभी सदा बंधनरूपहै शिवभी कामिनी-रूप पाशसे संयुक्तहीहैं ॥ २८ ॥ मैं किसप्रकार दुर्घट ग्रहाश्रम कर सकताहूं यह उनके विचार करने पर दिव्यरूपवती घृताची ॥ २९ ॥ समीपही आकाशमें स्थितहुई दर्शनपथमें प्राप्तहुई उस चंचल अंगवाली श्रेष्ठ अप्सराको समीपमें स्थित देखकर ॥ ३० ॥ तुरतही धृतव्रत व्यासजी कामसे पीडितहुए और विचारनेलगे अब इस संकटमें क्या करूं ॥ ३१ ॥ धर्मके आगे प्राप्त कामभावसे दुरासद जो इसको अंगीकार करूं जोकि मुझे वंचन करनेको आईहै ॥ ३२ ॥ तौ मुझ विह्वलकी तपस्वी हँसी करैंगे कि यह सौ वर्षतक महाघोर तपकरकैभी ॥ ३३ ॥ महातपस्वी अप्सराको देखकर कैसे व्याकुल होगये अच्छा यदि अतुलसुख मिलै तो चाहै निन्दाभीहो ॥ ३४ ॥ जो गृहस्थाश्रमसे पुत्ररूपी सुखकी प्राप्तिहो सो गृहाश्रम सुख ज्ञान और मुक्तिका देनेवाला कहाहै ॥ ३५ ॥ वह इस देवकन्यासे तो होही नहींसकता, मैंने नारदजीसे पहले एक कथानक सुनाथा ॥ ३६ ॥ कि पुरूरवा राजा उर्वशीके वशीभूत होकर पराभूत हुएथे ॥ ३७ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ११

ऋषिबोले राजा पुरूरवा और देवकन्या उर्वशी कौनथी, और उस महात्मा राजाने किसप्रकार कष्टपायाथा ॥ १ ॥ हेसूतजी हमसे यह सब कथानक कहिये आपके मुखसे च्युतरसको हम सब सुननेकी इच्छा करतेहैं ॥ २ ॥ हेसूत तुम्हारी रसात्मिका वाणी अमृतसेभी श्रेष्ठहै और हम अमृतसे देवताओंके समान तृप्त नहींहोतेहैं॥ ३॥ सूतजी बोले हेमुनियो आप दिव्य मनोहर कथाको श्रवण कीजिये मैं यथाबुद्धि व्यासजीके मुखसे सुनी कथाको कहताहूं ॥ ४ ॥ बृहस्पति गुरुकी प्यारीभार्या तारा नामवालीथी,जो रूप यौवनसे संयुक्त सर्वांगमें मदसे विह्वलथी ॥५॥ एकसमय वह अपने यजमान चंद्रमाके घरगई,और चन्द्रमाने उसको अतियौवनवती देखकर ॥ ६ ॥ उस चन्द्रमुखीपर कामातुरहोगये और वहभी चन्द्रमाको देख कामसे पीडितहुई ॥ ७ ॥ तब वे दोनों परस्पर प्रेमयुक्त कामसे व्याकुलहुए इसप्रकार तारा और चन्द्रमदोन्मत्त होकर कामबाणसे पीडितहुए ॥८॥ और परस्पर स्पृहायुक्तहो मदमत्तहो रमण करनेलगे इसप्रकार रमण करते उनको कितने एकदिन होगये ॥ ९ ॥ उधर बृहस्पतिजीने चिन्ताकरके ताराके बुलानेको शिष्यको भेजा परन्तु वह चन्द्रमाके वशीभूतहोनेसे न आई ॥ १० ॥ जब चन्द्रमाने बारंबार शिष्यको लौटाया, तब क्रोध कर बृहस्पति स्वयंही गये तब बडीबुद्धिवाले बृहस्पति चन्द्रमाके घर जाय मदसे हँसतेहुए चन्द्रमासे क्रोधकरबोले ॥ ११ ॥ १२ ॥ हेचन्द्र यह कर्मधर्मसे गर्हितकर्म तुमने क्या किया मेरी यह सुन्दरी भार्या तुमने क्यों रोक रक्खीहै ॥ १३ ॥ मैं तुम्हारा देवगुरूहूं

---

१ यह कथा अध्यात्मपरभीहै बृहस्पति ब्रह्महैं तारा तारक विद्याहै जब चन्द्रमारूप मन उसको ग्रहण करताहै और आत्मज्ञानका विचार न करके सिद्धिकामना करताहै तब वह तारक विद्या जगत्‌पर होतीहै और ब्रह्म उसको ग्रहण करनेकी इच्छा करतेहैं तब इस मनकी ओर काम क्रोधरूपी दैत्य होतेहैं और आत्मज्ञानी देवताओंसे विरोध होताहै तारकविद्या नहींरहती उससे जगत्‌में प्रवृत्तवाला बुधरूप पुत्रहोताहै दूसरे इस कथाका यहभी आशयहै कि मुमुक्षुओंकी इन्द्रादि लोकसे वृत्ति हटकर ब्रह्ममेंहीं प्राप्तिहो इन्द्रादिलोकके सुखभी तुच्छ और अशान्तिकर तथा क्षयोन्मुखहैं तीसरा यहभी उपदेशहै कि महात्माओंको स्त्रीका संग क्लेशकर होताहै चौथा यह भीहै कि युवास्त्रियोंको एकाकी किसीके स्थानपर कभी जानेदेना उचितनहीहै जैसा कि एकमात्र ब्राह्मणोंकी भार्यायें कभी यजमानोंके गृहमें निवास करतीहैं, इसमें बहुधा भयहै इसकथासे श्री व्यासजीने भावियुगकी गति विचारकर पूर्णउपदेश दियाहै कि किसी वर्णमेंभी युवास्त्री कहीं इकले जानेके योग्य नहीं है। कारण कि पुरातन महर्षियोंकी यहभी परिपाटीहै कि जब किसीबातका निषेध करना चाहतेहैं तब उसमें बड़े पुरुषोंका उल्लेख करतेहैं कि जब उनसे ऐसा हुआ तौ साधारण पुरुष कैसे स्वस्थ और विश्वासके योग्यहोगा.

और तुम सर्वथा मेरे यजमानहो हेमूढ तैंने गुरुभार्याको क्योंभोगा अथवा रखछोड़ा है॥ १४ ॥ ब्रह्महत्यारा सुवर्ण चुरानेवाला सुरापाई गुरुभार्यामें गमन करनेवाला और इनका संसर्गी यह पांचौं महापातकी हैं ॥१५॥ तू महापातकसे युक्त दुराचारी बड़ागर्हितहै जो तैंने यह अंगना भोगीहोय तो देवताओंके सहनयोग्य नहीं है॥१६॥ इस सर्वाङ्ग सुन्दरीको छोड़ मैं अपने घर लेजाऊंगा नहींतौ हे दुष्टात्मन् मैं तुमको गुरुदाराका हरनेवाला कहूंगा ॥ १७ ॥ ऐसा कहतेहुए बृहस्पतिजीसे चन्द्रमा बोले जो बृहस्पतिजी क्रोधसे युक्त और ताराके विरहसे दुःखी होरहेथे ॥ १८ ॥ चन्द्र बोले ब्राह्मण क्रोधसेही अपूज्य होतेहैं ब्राह्मण क्रोधरहित होनेचाहियें क्रोधरहित शास्त्रज्ञाताही पूजनीयहैं इसके विपरीत नहीं ॥ १९ ॥ वह वरवर्णिनी तारा अवश्य तुम्हारे घरमें आवैगी और यहाँ उसके स्थित रहनेसे तुम्हारी क्या हानि है ॥२०॥ वह सुखकी कामकी इच्छावाली अपने इच्छासेही यहाँ रहीहै कुछदिन यहाँ रहकर फिर अपनी इच्छासे चलीआवैगी ॥ २१ ॥ आपनेही पहले धर्मशास्त्रका मत कहाहै कि पातक करने परभी रज संचार होने उपरान्त फिर स्त्रीदूषित नहीं रहती है वेदकर्मसे ब्राह्मण दूषित नहींहोताहै ॥ २२ ॥ चन्द्रमाके ऐसा कहनेपर गुरु बड़े दुःखीहुए और कामसे व्याकुलहो चिन्ता करते शीघ्रतासे घर चलेगये ॥ २३ ॥ और चिन्तासे व्याकुलहो कितने एकदिन गुरु वहाँ रहकर चन्द्रमाके स्थानपर गये॥ २४॥ और द्वारपालके निषेध करनेपर घरके बाहरहीं स्थित होरहे जब चन्द्रमा नहीं आये तब बृहस्पतिजीको बड़ा क्रोधहुआ ॥ २५॥ यह मेरा शिष्यहै इसकारण हमारी भार्या इसकी माताके समानहै इस अधर्मीने इसको बलसे ग्रहण कियाहै इस्से मैं इसको शिक्षा दूंगा॥ २६ ॥ तब द्वारेखड़े होकरही क्रोधसे बोले हेमंद!पापाचार देवताओंमें नीच क्या अपने घरमें सोताहै॥ २७॥ मुझे बहुत शीघ्र मेरीभार्यादे नहींतो मैं शापदूंगा, जो मेरी प्रिया नदेगे तो अवश्य भस्म करूंगा ॥ २८ ॥ सूतजी बोले इसप्रकार बृहस्पतिके क्रूरभाषणको सुनकर चन्द्रमा शीघ्रही घरसे बाहर निकले ॥ २९ ॥ और हँसतेहुए चन्द्रमाने कहा क्यों बहुत बोलतेहो वह सब लक्षणयुक्त स्त्री तुम्हारे योग्य नहीं है॥ ३०॥ हेद्विज!अपने समान कोई और कुरूपस्त्री ग्रहणकरो भिक्षुकके घर इसप्रकार सर्वांगसुन्दरी स्त्री रहनी योग्यनहीं ॥ ३१॥ नारियोंकी प्रीति अपने अपने सदृश पतियोंमेंही होतीहै हेमंदात्मन् आप कामशास्त्रका निर्णय नहींजान्तेहैं ॥ ३२ ॥ हेदुर्बुद्धे आप यथेष्ट चलेजाइये मैं तुम्हारी कामिनीको नहींदूंगा, जो तुमसे होसकै सोकरो भार्या न

मिलैगी ॥ ३३ ॥ और कामार्त्तहुए तुम्हारा शाप मुझे बाधा नहीं देसक्ताहै हेगुरो! आपकी कान्ता मैं नदूंगा, जो इच्छाहो सोकरो ॥३४॥ सूतजी बोले चन्द्रके ऐसा कहनेपर क्रुद्ध होकर गुरुने विचारकिया, और शीघ्रही क्रोधकर इन्द्रके भवनमें गये॥३५॥इन्द्रने गुरुको दुःखसे कातर अवलोकन कर पाद्य अर्घ्य आचमनीयादिसे भलीप्रकार पूजाकी ॥ ३६ ॥ और परमोदार इन्द्र गुरुकी इस दशाका कारण पूछने लगे हेमहाभाग!आपको क्या चिन्ताहै जो आप शोकसे व्याकुल होरहेहो ॥३७॥ हेगुरुदेव!मेरे राज्यमें किसने तुम्हारा तिरस्कार कियाहै, यह लोकाधिपोंके सहित सब सेना तुम्हारे आधीनहै ॥ ३८ ॥ ब्रह्मा विष्णु शिव औरभी सब देवता तुम्हारी सहाय करैंगे कहोतौ तुमको क्या चिंताहै शीघ्रकहो ॥३९॥ गुरु बोले मेरी सुलोचनभार्या चन्द्रमाने हरणकी है, बार बार मांगने परभी वह दुष्टात्मा नहींदेताहै ॥ ४० ॥ हेइन्द्र!मैं क्याकरूं अब तुमही हमारी शरणहो हेदेवेश इन्द्र मेरी सहायता करो मैं बड़ादुःखीहूं ॥ ४१ ॥ इन्द्रबोले हेधर्मज्ञ किसीप्रकारका शोच मतकरो मैं तुम्हारा दासहूं हेमहामते अवश्य मैं तुम्हारी भार्याको लाऊंगा ॥४२॥ मेरे दूत भेजनेपर वह मदाकुल यदि तुम्हारी भार्याको न देगा तौ मैं देवताकी सेनालेकर युद्धकरूंगा ॥४३॥ ऐसा कहकर इन्द्रने एक विचक्षण दूतको सब ऊंच नीच समझाकर चन्द्रमाके पास भेजा ॥ ४४ ॥ वह विचक्षण शीघ्रही चन्द्रलोकमें जाकर इसप्रकारके वचनसे रोहिणीपतिसे कहनेलगा ॥ ४५ ॥ हेमहाभाग!इन्द्रने मुझे आपके पास कुछ कहनेको भेजाहै हेमहामते!प्रभुके कहे वचन मैं कहताहूं ॥ ४६ ॥ हेसुव्रत महाभाग तुम धर्मज्ञ और नीतिके जाननेवालेहो तुम्हारे पिता अत्रि धर्मात्माहैं तुम निन्द्यकाम करनेके योग्य नहींहो ॥ ४७ ॥ यथाशक्ति सबहीको अपनी भार्याकी रक्षा करनीचाहिये उसके निमित्त क्लेश करना नहीं चाहिये ॥ ४८ ॥ जैसे तुमको वैसेही उनको दारारक्षणमें यत्न करना चाहिये हेसुधानिधे आपको आत्मवत् सब प्राणियोंकी रक्षा करनी चाहिये॥४९॥ तुम्हारेतौ अठाईस स्त्री दक्षकी कन्या सुलोचनाहैं, हेचन्द्र तुम गुरुपत्नीको कैसे भोगनेकी इच्छा करतेहो ॥ ५० ॥ और स्वर्गमेंतौ मेनकादि अप्सरा बड़ी मनोरमहैं उनको यथेच्छ भोगकरो परन्तु गुरुकी भार्याको त्यागकरो ॥५१॥ जो बड़े पुरुषभी निन्दित कर्म करने लगैं तौ अज्ञभी उसीके अनुसारवर्तैं फिर धर्म क्षय होजाय॥५२॥ हेमहाभाग इसकारण मनोरम गुरुपत्नीको त्यागकरो तुम्हारे निमित्त देवताओंको क्लेशनहो ॥५३॥ सूतजी बोले चन्द्रमा इन्द्रके वचन सुनकर कुछ क्रोधितहुए

और निन्दितफलकाधिकार्थ वादरूप वचन दूतसे कहनेलगे ॥ ५४ ॥ चन्द्र बोले हेमहाबाहो! तुम धर्मज्ञ और देवताके अधिपति स्वयंहो और वैसेही तुम्हारे पुरोहितहैं तुम दोनोंकी मति समानहै ॥ ५५ ॥ परोपदेशमेंतौ अनेक जन कुशल होतेहैं और जब वह कर्म स्वयं प्राप्तहो तौ उसमें स्वयं समझना दुर्लभहै ॥ ५६ ॥ बार्हस्पत्यप्रणीत शास्त्रको सब प्राणी ग्रहण करतेहैं हेदेवेश इसमें क्या विरोधहै उसमें कामना करतीहुई स्त्रीको भजताहुआ दूषित नहींहोता ॥ ५७ ॥ बलियोंको सबही अपनाहै निर्बलोंको नहीं स्वकीया और परकीया यह मन्दचित्तवालोंका भ्रमहै ॥ ५८ ॥ तारा जैसी मुझमें अनुरक्तहै वैसी गुरुमें नहीं अनुरक्त स्त्रीको धर्म और न्यायसे कैसे त्याग सकता हू ॥ ५९ ॥ गृहारंभ रक्तामें होताहै विरक्तामें कैसे होसकताहै जबसे गुरुने संवर्तभार्याकी इच्छाकी तबसे यह विरक्त रहतीहै६०मैं इस वरारोहाको नदूंगा जाकरतुम यह वार्त्ता स्वयं कहदो हेसहस्राक्ष तुम ईश्वरहो जैसे तुम्हारी इच्छाहो वैसाकरो॥६१॥सूतजी बोले च-न्द्रमाके ऐसा कहनेपर दूत इन्द्रके समीप गया और चन्द्रमाकी कही सब बात इन्द्रसे कही ॥ ६२ ॥ यह सुनकर इन्द्र बड़ा क्रोधितहुआ, और गुरुकी सहायताके निमित्त सेनाका उद्योगकिया ॥ ६३ ॥ शुक्राचार्य यह विग्रह सुनकर गुरुके द्वेषके कारण चन्द्रमाके पासगये और चन्द्रमासे कहा भार्या मतदेना ॥ ६४ ॥ हेमहामते! मंत्रकी शक्तिसे मैं तेरी सहाय करूंगा हेमारिष यदि इन्द्रके साथ तुम्हारा संग्रामहोगा तौ सहा-यकहूं ॥६५॥ इधर शिवभी चन्द्रमाको गुरुदाराभिमर्षी सुनकर गुरुका शत्रु भृगुको मानकर सहायकरतेहुए ॥ ६६ ॥ उससमय देवता और दानवोंका बड़ा संग्रामहुआ. और तारकासुरके संग्रामके समान बहुतदिन बीतगये ॥ ६७ ॥ तब ब्रह्माजी उस देवासुर युद्धको देखकर क्लेश शान्त करनेको हंसपर चढकर आये ॥ ६८ ॥ और चन्द्रमासे कहा गुरुकी भार्याको मुक्तकरो नहींतो विष्णुको बुलाकर तुम्हारा नाश किया जायगा ॥६९॥ यह कह लोकपितामह ब्रह्माने भृगुको निवारण किया, हेमहा-मते! क्या दैत्योंके संग दोषसे तुम्हारी अन्यायमें मति होगई है ॥ ७० ॥ तब भृगुने ओषधीपति को निषेधकिया, कि गुरुकी भार्याको छोडो मुझे तुम्हारे पिताने प्रेषण कियाहै ॥ ७१ ॥ सूतजी बोले यह भृगुके वचन सुनकर चन्द्रमाने गुरुकी प्रियभा-र्याको प्रदानकिया ॥ ७२ ॥ भार्याको प्राप्तहो प्रसन्नहो गुरु अपने स्थानको गये और देवता दैत्यभी अपने २ स्थानको गये ॥ ७३ ॥ ब्रह्माजी अपने घर और शिवजी कैलासमें गये और मनोहरभार्याको प्राप्तहो बृहस्पति प्रसन्नहुए ॥ ७४ ॥ फिर कुछसमयके उपरान्त ताराके एक सुन्दर पुत्रहुआ शुभदिन शुभनक्षत्रमें हुआ जो

गुणोंमें चन्द्रमाके समानथा ॥ ७५ ॥ पुत्र देखकर गुरुने विधिपूर्वक जातकर्म किया और मनमें बड़ेप्रसन्नहुए ॥ ७६ ॥ हेमुनियो ! चन्द्रमा पुत्रका जन्म सुनकर गुरुके पास दूत भेजतेहुए ॥ ७७ ॥ कि यह तुम्हारा पुत्रनहीं मेरा पुत्रहै तुमने इसकी जातकर्मादिक विधि क्योंकी ॥ ७८ ॥ बृहस्पति यह दूतके वचन सुनकर बोले यह मेरे सदृश होनेसे मेरा पुत्रहै इसमें सन्देह नहीं ॥ ७९ ॥ फिर देव दानव मिलकर विवाद करनेलगे और फिर युद्ध करनेवालोंका समाज एकत्रहुआ ॥ ८० ॥ फिर शांतिकी इच्छासे प्रजापति ब्रह्माजी आये और युद्धके निमित्त स्थितहुओंका निवारण करतेहुए ॥ ८१ ॥ और वह धर्मात्मा तारासे पूछनेलगे हेशुभे यह किसका पुत्रहै हे वरारोहे सत्य २ कह जिससे यह क्लेश शान्त होजाय ॥ ८२ ॥ तब लज्जाको प्राप्त होकर वह शुभांगी चन्द्रमाकाहै ऐसा शनैःशनैः कहकर मन्दिरमें प्रविष्टहुई और प्रसन्न होकर चन्द्रमाने उस पुत्रको ग्रहणकिया और बुध नाम करण करके अपने स्थानको गये ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ब्रह्मा और इन्द्र सहित सब देवता अपने स्थानको गये और सब प्राणी अपने स्थानको चलेगये ॥ ८५ ॥ यह मैंने गुरुके क्षेत्रमें चन्द्रमासे बुधकी उत्पत्ति कही जैसी मैंने पहले सत्यवती पुत्र व्यासजीसे सुनी ॥ ८६ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे बुधोत्पत्तिर्नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः १२.

फिर इलामें जैसे पुरूरवा उत्पन्नहुआ सो मैं तुमसे कहताहूं जो धर्मात्मा बुधका पुत्र यज्ञ और दानका करनेवालाहै ॥ १ ॥ सुद्युम्न नाम राजा सत्यवादी जितेन्द्रिय सैंधव अश्वपर चढकर वनमें विचरनेलगा ॥ २ ॥ कितने एक अमात्योंसे युक्त सुन्दर कुण्डल पहरे आजगव धनु और अद्भुतबाण धारणकिये ॥ ३ ॥ रुरुमृगोंको मारता उस वनके उद्देशमें विचरण करनेलगा, शश, शूकर, गवय, खड्ग ॥ ४ ॥ शरभ, महिष, सामर वनकुक्कुट इन मेध्य वन पशुओंको वधकरता कुमार वनमें प्रविष्टहुआ ॥ ५ ॥ वह मेरुपर्वतके नीचे मंदारवृक्षोंसे शोभायमान अशोककी लताओंसे युक्त बकुलोंसे विराजित ॥ ६ ॥ साल, ताल, तमाल, चम्पक, पनस, आम, नीम मधुक(महुआ)माधवीलताओंके मण्डपसे युक्त ॥ ७ ॥ दाडिम, नारिकेल, कदलीखण्डसे मंडित, चमेली, मालती, कुंद पुष्पवल्लरीसे व्याप्त ॥ ८ ॥ हंस कारण्डव पक्षियोंसे युक्त कीचककी ध्वनिसे युक्त भ्रमरसमूहोंसे शब्दायमान सब सुखदायक वनको ॥ ९ ॥ देखकर सेवकों सहित राजा सुद्यु-

म्न प्रसन्नहो विचरनेलगा वृक्षोंको फूलाहुआ देख कोकिलाके शब्दोंसे पूर्ण ॥ १० ॥ उस वनमें प्रवेश करतेही वह राजर्षि स्त्री होगया और घोड़ाभी घोड़ी होगई राजा यह देख चिन्तित हुआ ॥ ११ ॥ यह क्याहुआ इस प्रकार वह बारंबार चिन्ता करनेलगा,और लज्जितहो सुद्युम्नको बड़ा दुःखहुआ ॥ १२ ॥ क्याकरूं स्त्रीभावसंयुक्त घरको कैसे जाऊं मैं कैसे राज्यकरूंगा मुझको किसने वंचितकिया ॥ १३ ॥ ऋषि बोले हेलोमहर्षण सूत यह जो आपने आश्चर्यकी बात कही कि देवरूपराजा सुद्युम्न स्त्रीहोगया ॥ १४ ॥ उस मनोहर वनमें फिरनेसे यह वार्त्ताहुई इसमें कारण कहो फिर उस राजाने क्या किया सो विस्तारसे कहो ॥१५॥ सूतजी बोले एकसमय सनकादि ऋषि शिवजीके दर्शनको अपने प्रकाशसे दिशाओंको निर्मल करते आये ॥१६॥ उससमय शिवजी पार्वतीके सहित क्रीडामें आसक्तथे कामिनी शिवा वस्त्र हीनथी ॥ १७ ॥ वह भर्त्ताकी गोदीमें स्थितहुई रमण करतीथीं उन महर्षियों को देखकर देवी बड़ी लज्जितहुई ॥ १८ ॥ और स्वामीकी गोदीसे उठकर वस्त्र धारण करतीहुई और लज्जासे कम्पित होकर कामिनी स्थितहुई ॥ १९ ॥ और ऋषिभी उन रमण करनेवालोंका प्रसंग देखकर शीघ्रतासे नारायणाश्रमको चले गये॥ २० ॥तब पार्वतीको लज्जित देखकर शिवजी बोले तुम लज्जित क्योंहो मैं तुम्हारे निमित्त सुख करूंगा ॥२१॥ आजसे यदि कोईभी पुरुष मोहसेभी इस वनमें आवैगा वह स्त्रीरूप होजायगा ॥ २२ ॥ इसप्रकार वनको शापदिया जो कोई इसको जान्तेहैं वे इसदोषसे समृद्धित वनको नहींआतेहैं ॥ २३ ॥ सुद्युम्न अज्ञानसे मंत्रियोंके सहित वहीं प्रविष्टहुआ, और सब साथियोंके सहित वह स्त्रीरूप होगया ॥ २४ ॥ और चिन्तासे संयुक्त हुए राजर्षि लज्जासे घरको न गये और वनमें इधर उधर विचरण करनेलगे और स्त्रीत्वसे उस महात्माका इला नामहुआ वहाँ विचरण करतेहुए सोमपुत्र बुध आये॥ २५॥ २६ ॥ स्त्रियोंसहित उस मनोहर कान्ताको देखकर उसके हावभावसे बुध उसकी इच्छा करतेहुए ॥ २७ ॥ और उसनेभी सोमसुत बुधकी इच्छाकी प्रेमसे दोनोंका परस्पर संयोगहुआ ॥ २८ ॥ उसमें पुरूरवा पुत्रकी उत्पत्ति हुई ॥ २९ ॥ वह बाला वनमें पुत्रको उत्पन्न करके विचार करनेलगी और अपने कुलाचार्य वशिष्ठजीका स्मरण किया॥ ३० ॥ वह कृपायुक्त सुद्युम्नकी दशा देखकर लोकके कर्त्ता शंकरकी प्रार्थना करनेलगे ॥ ३१ ॥ भगवान् शिवजीने प्रसन्न होकर उनको वांछित वरदिया, तब वशिष्ठजीने राजाके पुरुष होनेकी प्रार्थनाकी ॥ ३२ ॥

शिवजी अपनी वाणी सत्य करनेके लिये बोले यह एक महीने स्त्री और एक महीने पुरुष रहैगा ॥ ३३ ॥ राजा यह वरदान पाय अपने घरगये व धर्मात्मा वशिष्ठकी आज्ञासे राज्य करनेलगे ॥ ३४ ॥ स्त्री होनेपर महलोंमें रहते और पुरुष होनेपर राज्यकाज करते प्रजा इसमें उद्विग्न होकर प्रसन्न न हुई ॥ ३५ ॥ समयपर पुरूरवा पुत्र युवा हुआ और राजा उसको प्रतिष्ठानपुरका राज्य देकर वनको गया ॥ ३६ ॥ अनेक वृक्षोंसे युक्त उस मनोहर वनमें जाकर नारदसे देवीके नवाक्षर मंत्रको प्राप्तकर ३७ अत्यन्त प्रेमसे मंत्र जपनेलगा तब सगुणा तारिणी शिवा देवी उसपर प्रसन्न हुई ॥ ३८ ॥ और दिव्यरूप धारणकिये सिंहपर चढकर प्राप्तहुई रसपान किये मदसे घूर्णित नेत्र ॥ ३९ ॥ उन दिव्यरूपिणीको देखकर प्रेमसे विह्वलहो प्रीतिपूर्वक शिर नवाय अम्बिकाको प्रसन्न करनलगे ॥ ४० ॥ इलाबोले । हेभगवती! तुम्हारा दिव्य रूप विख्यातहै, वह सब लोकका हितकारीरूप मैं नेदेखा देवसमूह से सेवित तुम्हारे चरण कमलको मैं प्रणाम करताहूं हेजननि! तुम्हारे चरण कामना और मुक्तिदेते हैं ४१ ॥ हेमाता! भूमिलोकमें तुम्हारे शरीर धारणकी महिमाको कौन जान्ताहै जिसमें मुनि और देवता मोहित होजातेहैं यह ऐसा अखण्ड ऐश्वर्य और मुझ कृपणपर दया यह सब कुछ देखकर मुझे बड़ा विस्मय होताहै ॥ ४२ ॥ शिव, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य, कुबेर, अग्नि, वरुण, पवन, सोम, वसु, इनमें कोईभी तुम्हारे प्रभावको नहीं जान्ते फिर अगुणमनुष्य तुम्हारे गुणोंको कैसे जान सकताहै ॥ ४३ ॥ हेमाता! महाकान्तिमान् विष्णु तुमको सत्वगुणी सब कामनादायक सागरसम्भूत लक्ष्मी रूपजान्तेहैं ब्रह्मा राजसी शक्ति और हर उमा रूप तामसी शक्ति रूप तुमको जानतेहैं हे अम्बिके निर्गुणरूप तुम्हारा वेभी नहींजान्ते हैं ॥ ४४ ॥ हेमाता! फिर मैं मन्दमति लघु प्रभावी कहां और कहां यह तुम्हारी मुझपर अतिशयकृपा. हेभवानी! हम आपके चरित्रको करुणा सहित जान्तेहैं जो तुममें प्रेम करतेहैं उन सेवकोंपर दयाकरती हो ॥ ४५ ॥ कमलवासिनी होकर तुमने विष्णुको वरण कियाहै तथापि मैं इनके योग्य नहीं ऐसा विचारकर मधुसूदन प्रसन्न नहीं होतेहैं और वह आदिपुरुष तुमसे चरण नहीं दबवाते किन्तु लोकोद्धारके निमित्त तुम्हारे शुद्धि करनेवाले हाथसे अपने चरण पवित्र करतेहैं ॥ ४६ ॥ अहोपुराण पुरुष हरिभी कल्पवृक्षके समान अतिकामनासे तुम्हारी कृपापूर्वक चरण ताडनाकी इच्छा करतेहैं और सम्पूर्ण देवताओंके अधिपति स्मरसे आर्तपतिको चरणपर प्रणत देखकर रुषितहुई तुम उस पाद-

तांडनाको करतीहो ॥ ४७ ॥ हे देवि! जैसे कृष्णमेघमें बिजली शोभायमान होतीहै इसप्रकारसे तुम उन विष्णुके विभूषित हृदयपर्यंकके समान सदैव निवास करतीहो सो क्या विष्णुजी तुम्हारे वाहनरूप होरहेहैं अवश्यहै यह तौ एक देश शक्तिकी महिमाहै मूल प्रकृतिकी कौनकहै ॥ ४८ ॥ हेदेवि! यदि कोपसे तुम मधुसूदनको त्यागदो तौ शक्तिहीन होनेसे पूजित होकरभी वह कुछनहीं करसकते कारणकि यह प्रत्यक्षहै कि शांति श्रीगुणोंसे वियुक्त पुरुषको प्रत्यक्षही प्राणीछोड़देतेहैं ॥ ४९ ॥ ब्रह्मादिक देवता जो दिन रात तुम्हारे चरणका आश्रय करतेहैं क्या वे मणिद्वीपमें जाकर स्त्रीरूप नहुए अवश्यहुए और फिर तुम्हारी कृपादृष्टिसेही वे पुरुषहुए हे अनन्तवीर्ये! तुम्हारी शक्तिको मैं कहांतक वर्णनकरूं. फिर यदि मुझे पुरुष करो तौ क्या मैं न होसकूं अवश्य होसकूताहूं ॥ ५० ॥ मेरे विचारमें तुम स्त्री पुरुषादि कोई चिह्नयुक्तनहींहो हेदेवि! सगुण वा निर्गुण जो कुछभी तुमहो मैं तुमको भावयुक्तहो निरन्तर प्रणाम करताहूं हेमाता मेरी तुममें अचलभक्तिहो यही वांछाहै ॥ ५१ ॥ सूतजी बोले जब राजा इसप्रकार स्तुतिको प्राप्तहो शरणमें हुए तब देवीने प्रसन्नहो अपना सायुज्य दिया ॥ ५२ ॥ सुद्युम्नने उससमय स्थिर परंपद पाया यह मुनियोंको दुर्लभपद देवीके प्रसादसे मिला ॥ ५३ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भाषाटीकायां सुद्युम्नस्तुतिर्नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः १३.

सूतजी बोले सुद्युम्नके स्वर्गजानेमें पुरूरवा राज्य करनेलगा जो गुणी रूपवान् और प्रजापालनमें तत्परथा ॥ १ ॥ वह प्रतिष्ठानपुरमें सबसे पूजितहो राज्य करनेलगा वह धर्मज्ञ प्रजारक्षणमें तत्परथा ॥ २ ॥ दूसरा कोई नजाने इसप्रकार उसका गुप्तमंत्रथा, उत्साह शक्ति और प्रभुशक्ति उत्तमथी ॥ ३ ॥ उस राजाके सामदानादि सब वशीभूतथ वर्णोंको धर्ममें स्थापित करते राज्य करताथा ॥ ४ ॥ उस राजाने बहुत दक्षिणाके अनेक यज्ञकिये और बड़े २ विचित्र दान दिये ॥ ५ ॥ उसके रूप शील गुण उदारता द्रव्य विक्रमको सुनकर उर्वशी राजाकी कामना करतीहुई ॥ ६ ॥ ब्रह्मशापसे अभितप्त होकर वह मनुष्यलोकमें आई और उस राजाको गुणी देखकर मानिनीने वरणाकिया ॥ ७ ॥ और ऐसी प्रतिज्ञा करके वह राजाके निकट बसी कि यह मैं दो मेढे तुम्हारे समीप रखतीहूं इनकी रक्षाकरना, और मेरा भोजन घृतही होगा और कुछनहीं और मथुनस

अन्यत्र में तुमको नग्न नदेखूं॥८॥९॥ हेराजन् जब तुम इस प्रतिज्ञाको भंग करोगे तब मैं तुमको छोड़कर चलीजाऊंगी, यह सत्यही कहतीहूं ॥ १० ॥ कामिनीकी यह बात राजाने स्वीकारकी और उर्वशी शापानुग्रह पर्यन्त वहां स्थितरही ॥ ११ ॥ राजा उसमें लीन होकर घरके भीतर बहुत वर्षोंतक रमण करतारहा और धर्म कर्मको छोड़कर मदसे मोहित हो उर्वशीके साथ रमण करनेलगा ॥ १२ ॥ राजा एकचित्त होकर उसमें लवलीनरहा उसकेविना क्षणमात्रकोभी न रहसकताथा ॥ १३ ॥ इसप्रकार बहुतवर्ष बीतनेपर इन्द्र उर्वशीको न आया देखकर गन्धर्वोंसेबोले ॥ १४ ॥ हेगन्धर्वो ! अब तुम उर्वशीको लाओ उसके दोनों मेंढे जा राजाके यहाँहैं हरणकरो॥ १५॥ उर्वशीके विना यह हमारा स्थान शोभित नहीं होताहै जिसप्रकार होसके उस कामिनीको यहांलाओ ॥ १६ ॥ यह कहनेपर वे विश्वावसु आदि गन्धर्व महाअंधकार उपस्थित होनेपर वहाँगये ॥ १७॥ और उन दोनोंको रमणकरता देखकर उन मेंढोंको हरण करतेहुए तब वे आकाशमें हरण होते चिल्लानेलगे ॥ १८ ॥ उर्वशी पुत्रोंके समान उनका रोना सुनकर क्रोधकर राजासे बोली जो मैंने तुमसे प्रतिज्ञाकीथी ॥ १९॥ सो मैं तुम्हारे विश्वाससे नष्टहुई देखो यह मेरे दोनों मेंढे चोर हरण करतेहैं हेराजन् यह मेरे पुत्रोंके समानहैं तुम स्त्रियोंके समान सोतेहो ॥ २० ॥ वीरमानीपुरुप कुनाथके कारणमें हतहुई यह मेरे सदा प्राणोंके समान प्यारे मेंढे गये ॥ २१ ॥ इसप्रकार उसे विलाप करता देख मोहितहुआ राजा उनके पीछे नंगाही उठगया ॥ २२ ॥ तब गन्धर्वोंने राजाके मन्दिरमें बिजलीका प्रकाश किया.तब उर्वशीने राजाको नंगा जाता देखा ॥ २३ ॥ तब गन्धर्व मेंढोंको छोड़कर मार्गमें चलेगये और नग्नराजा मेंढोंको लेकर आया ॥ २४ ॥ वहाँ उर्वशीको गया देखकर दुःखसे विलाप करनेलगा, पतिको नग्नदेखकर वह नारी चलीगई ॥ २५ ॥ देश देशान्तरमें क्रन्दन करताहुआ राजा भ्रमण करनेलगा और उसीमें मन लगाये विह्वलहो शोच करनेलगा ॥ २६ ॥ सब पृथ्वीपर भ्रमण करते कुरुक्षेत्रमें उर्वशीको देखा, उसे देख प्रसन्नहो राजाने सूक्त उच्चारणकिया ॥ २७॥ हेघोरेजाये स्थितहो क्यों जातीहो मुझे मतछोडो तुममें मनलगाये वशवर्ती पापरहित मुझे छोड़कर मतजाओ ॥ २८ ॥ हेदेवि! यह तुम्हारा त्यागाहुआ देह यहीं पतित होगा और इसको वृक कौए खाजाँयगे कारण कि तुम्हारा त्यागाहुआहै ॥ २९ ॥ राजाको ऐसा विलाप करता देख उर्वशी बोली दुःखी कृपण श्रान्त और कामार्तहोनेसे राजा विवशथा ॥ ३० ॥ उर्वशी बोली हेराजसिंह ! तुम मूर्ख होगये तुम्हारा ज्ञान कहांगया वृकाके समान स्त्रियोंकी किसी

से मित्रता नहींहै ॥ ३१ ॥ राजोंको स्त्रियों और चोरोंका कभी विश्वास न करना चाहिये घरजाओ सुखभोगो मनमें विषाद मतकरो ॥ ३२ ॥ इसप्रकार समझानेसे मोहितहुए राजाने कुछ न समझा और उस स्वच्छन्दचारिणीके स्नेहसे यंत्रित होनेके कारण परमदुःखको प्राप्तहुआ ॥ ३३ ॥ सूतजी बोले इसप्रकार तुमसे सब उर्वशीका चरित्र कीर्त्तन किया. बहृचं 'ऋक्' में यह विस्तारसे लिखाहै मैंने संक्षेपसे वर्णन किया है ॥ ३४ ॥

इति श्रीदेवीभागवतेभाषाटीकायांत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः १४.

सूतजीबोले इसप्रकार उस अप्सराको देखकर व्यासजी चिन्ता करनेलगे क्याकरूं यह देवकन्या अप्सरा मेरे योग्यनहीं है ॥१॥ इसप्रकार अप्सरा व्यासजीको चिन्ताकुलित देखकर भयभीत हुई कि यह मुझको शाप नदेदें ॥ २ ॥ तब वह शुकीका रूप धारणकर भयसे व्याकुलहो वहाँ से चली, और व्यासजी उसको विहंगी देख बड़े विस्मितहुए ॥ ३ ॥ उसके दर्शनसे ही व्यासजीकी देहमें काम जागरूक हुआथा, मन बड़ा विस्मितथा सब शरीर शिथिलथा ॥ ४ ॥ फिर बड़े धैर्यसे मुनि मनको ग्रहण करके भी मन गृहण नकरसके ॥ ५ ॥ बहुत ग्रहण करनेपरभी घृताचीमें मन मोहित होगया और होनहारके वश महातेजस्वी वेग धारण नकरसके, उससमय अग्निके निमित्त अरणीमथन करतेहुए सहसा मुनिका वीर्य अरणीमें पतितहुआ॥ ६ ॥ ७॥ वह उस वीर्यपातको नजानकर अरणीको मथन करतेही रहे उससे व्यासजीकी आकृतिके समान अतिमनोहर शुक प्रगटहुआ॥८॥ वह बालक विस्मय उत्पन्न करता अरणीसे प्रगट हुआ जैसे यज्ञहविसे प्रदीप्त होतीहै॥९॥ व्यास इसप्रकार पुत्रको देखकर बड़े विस्मित हुए यह क्याहै ऐसा विचारकर फिर शिवजीका वरदान मान्तेहुए ॥ १०॥ यह अरणीके गर्भसे तेजोरूप शुक प्रगट हुएहैं जो अपने तेजसे दूसरी अग्निके समान दीप्तिमानहैं॥ ११ ॥ तब व्यासजी अपने पुत्रको प्रसन्न देखकर जो दिव्य तेजसे युक्त दूसरी गार्हपत्य अग्निके समान प्रकाशितहै ॥ १२ ॥ और पर्वतसे उतरकर गंगामें स्नान करातेहुए हे तपस्वियो उससमय उस बालकके ऊपर फूलोंकी वर्षा होतीहुई ॥ १३॥ तब व्यासजीने उस महात्माका जातकर्म किया, देवताओंने दुंदुभीबजाई और अप्सरा नृत्य करनेलगीं ॥ १४ ॥ और देखकर गन्धर्वपति प्रसन्नहो गान करनेलगे विश्वावसु नारद और शुकदेव तथा तुम्बरु शुकदेवके प्रगट होनेमें ॥ १५ ॥ सर्व विद्याधरादिक

प्रसन्न होतेहुए अरणी गर्भसम्भूत दिव्यव्यास पुत्रको देखकर ॥ १६ ॥ अन्तरिक्षसे दिव्यकृष्णाजिन और दण्ड पतितहुआ हेब्राह्मणो शुकदेवजीके निमित्यदिव्यही कमण्डलु आनकर प्राप्तहुआ ॥ १७ ॥ उत्पन्न होतेही वह दीप्तिमान बालक वृद्धिको प्राप्त होनेलगा विद्याविधानके ज्ञाता व्यासजीने उसका उपनयन किया ॥ १८ ॥ उत्पन्न होतेही रहस्य सहित सम्पूर्णवेद इनके पिताके समान उनकोभी उपस्थित होतेहुए ॥ १९ ॥ जोकि घृताचीके शुकीरूप होनेके उपरान्त इनको कामकी उत्पत्ति हुईथी इसकारण व्यासने पुत्रका नामभी शुकही रक्खा ॥ २० ॥ फिर व्यासजीने बृहस्पतिको उपाध्याय करके ब्रह्मचर्यके व्रत विधिपूर्वक किये ॥ २१ ॥ और शीघ्रही आवृत्तिके समान रहस्य और संग्रहसहित सम्पूर्ण वेदोंको पढकर तथा सम्पूर्णधर्मशास्त्रोंका अध्ययनकरके गुरुकुलमें निवासकर ॥ २२ ॥ गुरुदक्षिणा देकर फिर समावर्तनके निमित्त अपने पिता कृष्ण द्वैपायनके समीपआये ॥ २३ ॥ व्यासजी पुत्रको आयादेख प्रेमसे उठकर उसे आलिंगनकर उनका शिर सूंघतेहुए ॥ २४ ॥ व्यासजीने कुशल और अध्ययनकी बातपूछी, और आश्वासनकर अपने आश्रममें शुककदेवजीको स्थितकिया ॥ २५ ॥ फिर व्यासजीने शुकदेवके विवाहके निमित विचारकिया और किसी मुनिसुता कन्याके निमित्त पूछा ॥ २६ ॥ व्यासजी पुत्रसे बोले हेपापरहित तुमने सब वेद पाठकिया तथा सब धर्मशास्त्र पढे हेमहामते!अब भार्या ग्रहणकरो ॥ २७ ॥ गृहस्थको करके देवता पितरोंका यजनकरो हेपुत्र मनोहरभार्याको प्राप्तहोकर मुझको ऋणसे मुक्तकरो ॥ २८ ॥ स्वर्गमें अपुत्रकी कभीभी गति नहींहै हेमहाभाग इसकारण तुम गृहास्थाश्रमकरो ॥ २९ ॥ हेपुत्र!मुझे गृहस्थाश्रम करकै सुखीकरो हेमहामति पुत्र यह हमारी बड़ी आशा पूर्णकरो ॥ ३० ॥ महाघोर तप करकै तुम आयोनिज पुत्र प्राप्तहुए हो हेदेवरूप महाबुद्धिमान् मुझपिताकी रक्षाकरो ॥ ३१ ॥ सूतजी बोले इसप्रकार निकटवर्त्ती पिताके कहनेपर अत्यन्त विरक्त शुकदेवजी अतिरागी साक्षात् अपने पितासे बोले ॥ ३२ ॥ शुकदेवजी बोले हेवेदव्यास महाबुद्धिमान् यह आप क्या कहतेहैं आप मुझको शिष्य जानकर तत्त्वज्ञान समझाइये आपकी आज्ञापालन करूंगा ॥ ३३ ॥ व्यासजी बोले हेपुत्र!तुम्हारे निमित्त तो मैंने सौवर्षतक तप किया शिव की आराधनासे बडे दुःखसे तुम प्राप्तहुएहो ॥ ३४ ॥ किसी राजासे कहकर मैं तुम को बड़ा धनदूंगा, हेमहाप्राज्ञ!यौवनकोप्राप्तहो अनेक सुखभोगो ॥ ३५ ॥ शुकदेवजी बोले हेतात! मानुषलोकमें निरामय सुख क्याहै जो दुःख मिलाहुआ सुखहै महाबुद्धि

मानू उसको सुख नहीं कहसकते ॥ ३६ ॥ हे महाभाग! स्त्रीको करके मैं उसके वशीभूत होजाऊं तो परतंत्र और स्त्रीजितको क्या सुख होताहै ॥ ३७ ॥ चाहै लोह काष्ठादि-यंत्रसे कभी छूटजाय परन्तु पुत्र दारमें बँधाहुआ कभी मुक्त नहीं होताहै ॥ ३८ ॥ यह देह विष्ठा मूत्रसे सम्बद्धहै इसीप्रकार स्त्रीसे निबद्धहै, हे विप्रेन्द्र ! उसमें विद्वान्को क्या प्रीति होसकतीहै ॥ ३९ ॥ हे विप्रर्षे! जब कि, मैं अयोनिजहूं तो मेरी योनिमें कैसे प्रीति होसकतीहै मैं आगे अब योनिसे उत्पन्न होना नहींचाहता ॥ ४० ॥ अद्भुत आत्माका सुख छोडकर क्या मैं विष्ठाके सुखकी इच्छाकरूं आत्माराम होकर फिर मैं लोभी नहीं होना चाहता ॥ ४१ ॥ मैं ने प्रथम विस्तारपूर्वक वेद पढे परन्तु वह कर्म-मार्गके प्रवर्तक होनेमें हिंसामयहैं ॥ ४२ ॥ बृहस्पति गुरु प्राप्तहुएथे वहभी गृहस्थ-रूपी सागरमें मग्नरहतेहैं अविद्यासे ग्रस्तहृदय होनेसे कैसे तार सकतेहैं ॥ ४३ ॥ जैसे रोगग्रस्त वैद्य दूसरेके रोगकी चिकित्सा नहीं करसकता इसीप्रकार मुमुक्षुको गुरु स्वयं मग्न होनेसे कैसे तारैगा, यह गृहस्थ विडम्बना मात्रहै ॥ ४४ ॥ गुरुको प्रणाम करके मैं आपके समीप आयाहूं संसार सर्पसे डरेहुए मेरी आप रक्षा कीजिये और तत्त्वज्ञान दीजिये ॥ ४५ ॥ इस महाघोर संसारमें आकाश चक्रकी समान भ्रमण करते सूर्यकी समान दिनरात कहीं विश्राम नहीं मिलताहै ॥ ४६ ॥ निज तत्त्वके विचारसे विना हे तात! संसारमें क्या सुखहै मूढोंको सुखबुद्धि इसप्रकारहै जैसे मलमें कीट सुखमान्तेहैं ॥ ४७ ॥ वेद शास्त्र पढकरभी जो संसारमें रोगीहैं उनकी बराबर कोई मूर्ख नहीं है वह कुत्ते अश्व सूकरकी समान धर्मवालेहैं ॥ ४८ ॥ दुर्लभ वेदशास्त्रका अध्ययन करके यदि संसारमें बंधनको प्राप्तहो तो फिर किसकी मुक्ति होसकतीहै ॥ ४९ ॥ इससे अधिक लोकमें और आश्चर्य नहीं है जो पुत्र दाराओंसे आसक्त होकर पंडित गायाजाय ॥ ५० ॥ जो मनुष्य संसारमें मायाके तीनगुणोंसे बाधित नहीं होता वही विद्वान् मेधावी शास्त्रका पारगामी जानो ॥ ५१ ॥ वृथा अध्ययन और दृढबंधन करनेसे क्याहै, वही शीघ्र पढना चाहिये जो भवबन्धनसे मुक्त करदे ॥ ५२ ॥ पुरुषको ग्रहण करताहै इसीसे इसको गृह कहतेहैं हेपिता बंधना-गारमें क्या सुखहै इसीसे मैं भीत होरहाहूं ॥ ५३ ॥ जोअबुधमन्दमति प्रारब्धसे वंचितहै वे मनुष्य जन्मको प्राप्तहोकर फिर बंधनमें प्रवेश करतेहैं ॥ ५४ ॥ व्यासजी बोले घरबंधना गार नहींहै नबंधनमें कारणहै जो मनसे निर्मुक्त है वे गृहस्थसेभी निर्मुक्तहैं ॥ ५५ ॥ न्याय से प्राप्त धनको लेनेवाले विधिपूर्वक वेद अध्ययन करनेवाले श्राद्धकारी सत्यवाक् पवित्र

गृहस्थभी मुक्त होजातेहैं ॥ ५६ ॥ ब्रह्मचारी यति वानप्रस्थ व्रतमें स्थित मध्याह्नके अतिक्रमण होनेसे सदा गृहस्थकी इच्छा करतेहैं ॥ ५७ ॥ श्रद्धासे अन्नदान सत्य निन्दारहित वाणीसे धर्मिष्ठ गृहस्थ आश्रमवासियोंका उपकार करतेहैं ॥ ५८ ॥ गृहाश्रमसे अधिक धर्म न हमने देखा न सुना, जिसको वसिष्ठादि आचार्य और ज्ञानियोंने आचरण कियाहै ॥ ५९ ॥ हेमहाभाग! वह वेदोक्त कर्म करते गृहस्थको क्या असाध्यहै स्वर्ग मोक्षादि जो जो वांछितहो उसकी प्राप्ति होतीहै ॥ ६० ॥ धर्मज्ञाता कहतेहैं आश्रमसे ही आश्रममें जाय इसकारण अग्न्याधान करकै यथोक्त कर्म करो ॥ ६१ ॥ हेपुत्र विधिपूर्वक देवता पितर मनुष्योंको तृप्तकरके गृहस्थाश्रममें पुत्र उत्पन्न कर उसे गृहाश्रममें संयुक्त करकै ॥ ६२ ॥ फिर घर छोड़ वनमें जाकर व्रत करना पहले वानप्रस्थ और फिर यथाक्रमसे संन्यासाश्रम करना ॥ ६३ ॥ हेमहाभाग वह इन्द्रियें अवश्यही मादकहैं यह पांचौ मनके सहित विना स्त्रीके दुरन्तहैं ॥ ६४ ॥ हेमहामते! इसकारण उनके जयके निमित्त दारसंग्रहकरो, वार्धक्य होनेमें तपकरै यह शास्त्रमें कहाहै ॥ ६५ ॥ हेमहाभाग! विश्वामित्रभी दुश्चर तपकरके तीनसहस्रवर्षतक निराहार जितेन्द्रिय रहे ॥ ६६ ॥ और तिसपरभी वह महातेजस्वी वनमें मेनकाके सहित मोहित होगये उन्हींके वीर्यसे शकुन्तला उत्पन्न हुईथी ॥ ६७ ॥ और हमारे पिता पराशर दासकन्या कालीको देखकर कामबाणसे अर्दितहो नौकामें स्थित उसे ग्रहण करतेहुए ॥ ६८ ॥ ब्रह्माभी सरस्वतीको देखकर कामबाणसे पीडितहुएथे और उनके वेगको शिवजीने निवारण कियाथा ॥ ६९ ॥ हेकल्याण! इससे तुम हमारे कल्याण वचनको मानो, किसी सत्कुलोत्पन्न कन्याको वरणकर वेदमार्गका आश्रयकरो ॥ ७० ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे भाषायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले हेपिता! सब प्रकारसे दुःख देनेवाला गृहस्थाश्रम मैं नहीं करूंगा यह मृगबंधिनी रज्जुकी समान सब देहधारियोंको बंधनरूपहै ॥ १ ॥ हेतात! धनकी चिन्तासे व्याकुल हुओंको क्या सुखहोताहै निर्धन लोलुप अपने कुटुम्बियोंसे पीडित होताहै ॥ २ ॥ ऐसा तो इन्द्रभी सुखी नहींहै जैसा निस्पृह भिक्षुक सुखी होताहै त्रिलोकीका विभव होनेसे इन्द्रभी सुखीनहींहै फिर औरकी कौनकहै ॥ ३ ॥ तपस्वीको तपकरता देखकर इन्द्र दुःखीहुए उसपर अनेक विघ्न करतेहैं ॥ ४ ॥ ब्रह्माभी सुखीनहीं और विष्णुभी लक्ष्मीको प्राप्तहोकर निरन्तर असुरोंसे संग्राम करतेहैं ॥ ५ ॥

अनेक यत्न करके दुश्चर तप करतेहैं रमापति लक्ष्मीहोनेपरभी ऐसेहैं तब महासुख किसको है ? ॥ ६ ॥ शंकरभी सदा दुखीहैं यह मैं जान्ताहूं जो तपश्चर्या करते सदा दैत्योंसे युद्ध करतेहैं ॥ ७ ॥ धनीपुरुष कभीभी सुखसे नहीं सोते. हेतात ! फिर निर्धन कैसे सुखी होसकतेहैं ॥ ८ ॥ हेमहाभाग! जानकरभी यह कि, मेरा यह औरस पुत्रहै फिर किसप्रकार महाघोर दुखदाई संसारमें मुझको नियुक्त करतेहो ॥ ९ ॥ जन्मसे दुःख जरासे दुःख मरणसे दुःख फिर हेपितः! विष्टामय गर्भवासमें दुःखहै ॥ १० ॥ इससे तृष्णा लोभसे उत्पन्नहुआ अतिशय दुःखहै हेमानद ! जोकि यह मरणसेभी अतिशय दुःखहै ॥ ११ ॥ कि ब्राह्मणोंका प्रतिग्रहही दुःखहै यह बुद्धिबलसे जीवन नहीं करतेहैं दूसरेकी आशा करनाही परमदुःख और दिन दिन मरणहै ॥ १२ ॥ सब वेद और शास्त्र पढकर पण्डित जाकर सबप्रकारसे धनियोंकी स्तुति करतेहैं ॥ १३ ॥ एक उदरके निमित्त क्या चिन्ताहै जो फल मूलसेभी पूर्ण होजाताहै अर्थात् जिस-किसी प्रकारसे इसकी तुष्टी होजाती है ॥ १४ ॥ भार्यापुत्र पौत्र कुटुम्बके विपुल-होनेपर उनके भरणपोषणमें बडा दुःख होताहै हेपिता ! अद्भुत सुख कहाँ है?॥ १५ ॥ आप मुझसे योगशास्त्र और ज्ञानशास्त्र सुखकी मूल वर्णन कीजिये हे तात ! कर्म-काण्डमें तो मेरा मन किसी प्रकार नहीं रमता है ॥ १६ ॥ आप प्रारब्ध संचित आदि कर्म क्षयके उपायको कहिये जैसे वर्तमान कर्मभी नाशको प्राप्तहो वह तीन प्रकारका कर्मका नाश होनेका उपाय कहो ॥ १७ ॥ जोंककी समान स्त्री मनुष्यका सदा रुधिर पीती है मूर्ख उसको नहीं जान्ता है और भाव चेष्टासे मोहित रहता है ॥ १८ ॥ भोगसे वीर्यको हरण करतीहै कुटिल भाषणसे मन और सब धन हरण करतीहै वहुत क्या यह कान्ता सर्वस्व हरण करलेतीहै इसकी समान और चोर कौनहै ॥ १९ ॥ यह मूर्ख प्राणी निद्रा सुख नाशके निमित्त विधातासे वंचित हुआ दुःख निमित्तही दारसंग्रह करता है सुख नहीं होता ॥ २० ॥ सूतजी बोले व्यासजी इसप्रकार शुकदेवजीके वाक्य श्रवणकर बड़ीचिन्ताको प्राप्तहुए कि, मैं अब क्याकरूं ॥ २१ ॥ दुःखसे उनके नेत्रोंमेंसे आँसू निकलनेलगे शरीरमें कंपा और ग्लानि प्राप्त हुई ॥ २२ ॥ इसप्रकार दीन शोकसे व्याकुल पिताको शोच करताहुआ देखकर उत्फुल्ल नेत्रहो शुकदेवजी पिताव्यासजीसे बोले ॥ २३ ॥ अहो मायाका बड़ाबलहै जो पंडितकोभी मोहित करती है जो कि वेदान्तके कर्ता सर्वज्ञ और वेदसम्मतहैं ॥ २४ ॥ नहीं जान्ते वह क्या मायाहै और कैसे अतिशय दुस्तरहै जो सत्यवती पुत्र व्याससे विद्वान्कोभी

मोहित करतीहै ॥ २५ ॥ जो पुराणोंके वक्ता भारतके निर्माता वेदोंके विभागकर्ता हैं वहभी मोहको प्राप्तहोतेहैं ॥ २६ ॥ उसी देवीकी शरणहूं जो इस सब जगत्को मोहित करती है ब्रह्मा विष्णु हरादिकोभी मोहित करती है औरोंकीतौ कथाही क्याहै ॥ २७ ॥ ऐसा त्रिलोकीमें कौनहै जो मायासे मोहित नहुआहो जिसने पूर्वमें ब्रह्मा विष्णु हरादिकोंकोभी मोहित कियाहै ॥ २८ ॥ अहो देवीका बल वीर्य बडा अद्भुत है जिसने सर्वज्ञ ईश्वरकोभी अपने वशीभूत कियाहै ॥ २९ ॥ पौराणिक कहतेहैं व्यासजी विष्णुके अंशहैं वहभी जहाज भंग होनेसे वाणीकरके समान मोहार्णवमें मग्नहैं ॥ ३० ॥ इस समय यह विवश हुए प्राकृतका समान अश्रुपात करते हैं अहो यह मायाका बल पंडितोंसे भी नहीं छोडजाताहै ॥ ३१ ॥ यह कौन मैं कौन यह क्या यह भ्रम कैसाहै पंचभूतात्मकदेहमें पिता पुत्रकी वासनाहै ॥ ३२ ॥ यह माया बडी बलिष्ठहै मायियौंकोभी मोहित करती है जिससे युक्त होकर महात्मा व्यासभी रुदन करते हैं ॥ ३३ ॥ सूतजी बोले इस प्रकार सब कारणकी कारण उस देवीको प्रणाम करके जो सब देवताओंकी जननी और ब्रह्मादिकीभी ईश्वरी है ॥ ३४ ॥ शोकार्णवमें व्याप्त दीन हुए पिताजीसे शुकाचार्य बोले यह अरणीसे उत्पन्न शुकदेवजी हेतुयुक्त वचन व्यासजीसे बोले ॥ ३५ ॥ हे पाराशर्य महाभाग व्यासजी तुम स्वयं सबके ज्ञान देनेवालेहो हेस्वामिन् ऐसा प्राकृत मनुष्यके समान क्या शोक करतेहो॥ ३६ ॥ हेमहाभाग अब तौ मैं तुम्हारा पुत्रहूं पूर्व जन्ममें न जाने मैं कौन और आप कौनथे यह पिता पुत्रका आत्मामें भ्रमहै ॥ ३७ ॥ आप धैर्यसे सावधानहो विषाद मनमें मत करो हेमहामते यह सब मोहजाल मानकर शोक त्यागन करो॥ ३८॥ भक्षण करनेसेही क्षुधाकी निवृत्ति होती है पुत्रके दर्शनसे नहीं जलपानसेही पिपासा निवृत्त होती है पुत्रदर्शनसे नहीं ॥ ३९ ॥ सुगंधद्वारा घ्राण सुख श्रवण द्वारा कर्ण सुख स्त्रीका सुख स्त्रीसे होताहै मैं तुम्हारा पुत्र क्याकरूं ॥ ४० ॥ अजीगर्तने अपना पुत्र राजा हरिश्चन्द्रके निमित्त मूल्यद्वारा यज्ञार्थ प्रदान कियाहै ॥ ४१ ॥ सुखोंका साधन द्रव्यहै धनसे सुखहोताहै लोभहो तौ धनका अर्जनकरो मुझपुत्रसे क्या सम्बन्धहै ॥ ४२ ॥ हेमहामते आप दैवज्ञ हो बुद्धिपूर्वक मुझे प्रबोधकरो हेमुने जिसप्रकार मैं इस महागर्भवाससे मुक्त होजाऊं ॥ ४३ ॥ हेपापरहित इस कर्म भूमिमें मनुष्यजन्म बडा दुर्लभहै उसमेंभी उत्तम कुलमें जन्म ब्राह्मणत्व होना बड़ादुर्लभहै ॥ ४४ ॥ मैं वृद्धहूं यह बुद्धि मेरेचित्तसे नहीं जातीहै संसारवासनाके जालमें वृद्धोंके आश्रय होकर

भी रमण करती है॥ ४५॥ जब महाबुद्धिमान् व्यासपुत्रने ऐसा कहा तब चतुर्थाश्रममें मनलगाय शान्तरूप शुकाचार्यसे व्यासजी बोले॥ ४६ ॥ व्यासजी बोले हेमहाभाग पुत्र जो ऐसाहै तौ हमारा निर्मित भागवत पढो जो पुराण शुभ वेद सम्मतहै और बड़े विस्तारमें नहीं है ॥ ४७ ॥ बारहस्कन्ध और पांच लक्षण से युक्त और सब पुराणोंका भूषण हमारा सम्मतहै ॥ ४८ ॥ जिसके सुनने मात्रसे सदसत्का ज्ञान और विज्ञान होजाताहै हेमहामते इसकारण उस भागवतको आप पढिये ॥ ४९ ॥ वटके पत्रमें शयन करते बालरूप विष्णुके निमित्त जब कि, वह चिदात्मा बालभावसे स्थितहुये विचार करतेथे कि, यह किसने बालभावसे हमको प्रगट कियाहै ॥ ५० ॥ किस निमित्त किसद्रव्यसे प्रगट कियाहै और किसप्रकारसे मैं इस सबको जानू इस प्रकार विचार करते भगवान् मुकुन्दके निमित्त ॥ ५१ ॥ इस सब शंकाकी निवृत्तिके अर्थ भगवतीने आधा श्लोक उच्चारण कियाथा, इस सम्पूर्ण जगत्में मैंही हूं-और कुछ सनातन नहीं है सच्चिदानन्द रूपिणी मैंही सनातनी हूं जगत् मिथ्या है५२॥ प्रथम यही वचन विष्णुने अपने हृदयमें धारण कियाथा और मनमें विचारनेलगे यह सत्यवाणी किसने उच्चारण की ॥ ५३ ॥ इस कहनेवालेको मैं कैसे जानू यह स्त्री पुरुष वा नपुंसक है इस चिन्ताको करतेहुए इस आधे श्लोकरूप भागवतको मनमें धारण किया ॥ ५४ ॥ और उन्हींमें चित्त स्थापन किये वारंवार चित्तसे उच्चारण किया. और वटपत्रमें शयनकरते मनमें बडी चिन्ता हुई ॥५५॥ तब चतुर्भुज शान्तदेवी प्रगट हुई शंख चक्र गदा पद्म वरायुध धारण किये हुये ॥ ५६ ॥ वह देवी दिव्य अम्बर धारणकिये दिव्यभूषणसे भूषित अपनी विभूतिरूप सखियोंसे युक्त ॥५७॥ अमिततेजस्वी विष्णुके आगे प्रगट हुई और वह महालक्ष्मी मन्दहास्य करती हुई सुमुखी प्रगट हुई ॥५८ ॥ सूतजी बोले कमललोचन भगवान् निराधार उस मनोरमा भगवतीको हृदयमें दर्शन कर विस्मयसे उत्फुल्लनेत्र होगये ॥५९॥ रति, भूति बुद्धि, मति, कीर्ति, स्मृति, धृति, श्रद्धा, मेधा, स्वधा, स्वाहा, क्षुधा, निद्रा, दया, गति॥ ६०॥ तुष्टि, पुष्टि, क्षमा, लज्जा, जृंभा, तन्द्रा, शक्ति, यह सब पृथक् पृथक् महादेवीके पार्श्वमें स्थितथीं ॥ ६१ ॥ वे सब श्रेष्ठ आयुधधारे अनेक आभरणोंसे युक्त मंदारमालाओंसे आकुलित मोतियोंके हारसे विराजमान् ॥ ६२ ॥ उसप्रकारसे उनको एकार्णव जलमें देखकर जनार्दन बडे विस्मित हुए ॥ ६३ ॥ यह सब स्त्रियें कहां से आईं और मैं कहां से वटवृक्षके निकट आया हूं ॥ ६४ ॥ इस

घोर एकार्णवमें यह न्यग्रोधका वृक्ष कहां से आया है और शिशुकरकै किसने मुझे स्थापित किया है ॥ ६५ ॥ यह मेरे प्रगट करनेवाली क्या कोई माया है जिसका भेद नहीं मिलता है इस किसी अनिर्वचनीय देवताविशेपने मुझे किसी कारणसे दर्शन दिया है ॥ ६६ ॥ मैं अब क्या करूं वा यहां से कहीं चलाजाऊं अथवा बालभावसे अतन्द्रित होकर मौन हो रहूं ॥ ६७ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे भाषायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

व्यासजीबोले वटपत्रमें शयन करते उनको विस्मित देखकर कुछ हँसती हुई देवी-बोली कि तुम विस्मित होरहे हो ॥ १ ॥ महाशक्तिके प्रभावसे तुम पहले विस्मित थे प्रलयहोनेमें वारंवार तुम प्रगट होते हो ॥ २ ॥ वह पराशक्ति निर्गुणाहै और तुम और मैं सगुणहूं और जो सात्विकी शक्तिहै उसको मेरी शक्ति अर्थात् मुझे दो ॥ ३ ॥ प्रजापति ब्रह्मा तुम्हारी नाभिकमलसे होंगे, वह सब लोकके कर्ता रजो गुणसे युक्त हैं ॥ ४ ॥ तब वह तपस्या करकै अनुत्तमशक्तिको प्राप्तहोकर रजसे सब जगत्को रक्तवर्ण करेंगे ॥ ५ ॥ वह महामति सगुण पांचभूतोंको उत्पन्न करकै इन्द्रिय और इन्द्रियोंके अधिष्ठात्री देवता और मनका ॥ ६ ॥ सर्ग प्रगट करेंगे, इसकारण वह कर्त्ता कहे जाते हैं हे महाभाग तुम विश्वके उत्पादक और पालकहो ॥ ७ ॥ तुम्हारे भ्रूमध्यसे क्रोध करनेके कारण रुद्र उत्पन्न होंगे, वे महाघोर तपकरकै तामसी शक्तिको प्राप्त होकर ॥ ८ ॥ कल्पान्तमें वहभी संहार करनेवाले होंगे, इस कारण मैं तुम्हारेपास प्राप्त हुई हूं तुम मुझको सात्विकी शक्ति जानो ॥ ९ ॥ हे मधुसूदन मैं सदैव तुम्हारे समीपमें स्थित हूंगी, और मैं तुम्हारे हृदयमें निवासकरती हुई निरन्तर स्थित रहूंगी ॥ १० ॥ विष्णु बोले हेदेवी मैंने पूर्वमें स्फुट अक्षरसे आधाश्लोक सुना है हेवरारोहे वह किसने यह परमशिवदायक रहस्य कहा है ॥ ११ ॥ हेवरारोहे सो कहो, मुझको इसबातमें संदेह है, जैसे दरिद्र धनको इसप्रकार उस श्लोकको मैं वारंवार स्मरण करताहूं ॥ १२ ॥ व्यासजी बोले विष्णुके यह वचन सुनकर महालक्ष्मी हास्यरूप होकर वह चारुहासिनी सुन्दर वचन बोली ॥ १३ ॥ महालक्ष्मी बोली हे विष्णु मेरा वचन सुनो हे चतुर्भुज मैं सगुणाहूं मैं सगुणा निर्गुणाहूं मुझको नहींजान्ते नहीं जानते ॥ १४ ॥ हेमहाभाग उसको तुम जानो उसने ही सब प्रगट किया है, उसको वेदसार पवित्र भागवत जानो ॥ १५ ॥ हेशत्रुनिषूदन मैं देवीकी

अपने ऊपर बडी कृपा मान्तीहूं हे सुव्रत जिसने तुम्हारे हितके निमित्त यह परम गुह्य कहा है ॥ १६ ॥ मनमें इसकी सदा रक्षा करनी चाहिये इसको भूलाना न चाहिये महाविद्याने सब शास्त्रोंका सार प्रकाशित किया है ॥ १७ ॥ इससे अधिक त्रिलोकीमें और कुछ जानने योग्य नहीं है तुम देवीके प्यारे हो इससे देवीने तुम्हारे प्रति ऐसा वचन कहा है ॥ १८ ॥ व्यासजी बोले इसप्रकार महालक्ष्मी देवीके वचन सुनकर भगवान्ने उसको मंत्र मानकर हृदयमें धारण किया ॥ १९ ॥ कुछ समय उपरान्त उनकी नाभिकमलसे उत्पन्नहुए ब्रह्माजी दैत्योंके भयसे व्याकुल हो भगवान्की शरण हुए ॥ २०॥ तब भगवान् महायुद्ध कर मधुकैटभको मारकर उसी आधे श्लोकका जप करने लगे ॥ २१ ॥ ब्रह्माजी वासुदेवको जप करता देखकर परमप्रसन्न हो कमलापतिसे पूँछने लगे ॥ २२ ॥ हेदेवेश! तुम क्या जपते हो, क्या कोई तुमसे भी अधिक है हे पुण्डरीकाक्ष जगदीश्वर जिसको स्मरणकर तुम प्रसन्न होतेहो ॥ २३ ॥ हरि भगवान् बोले मुझमें और तुममें जो क्रियाकारणलक्षणवाली शक्ति है हेमहाभाग उसका विचार करो वही भगवती शिवा है ॥ २४ ॥ जिसके अधिकारमें इस महार्णवमें सब जगत् स्थित हैं वह साकारा महाशक्ति अमेया और सनातनी है ॥ २५ ॥ जिसके द्वारा यह चराचर जगत् विसृजन कियाजाता है वही प्रसन्न होकर मनुष्योंकी मुक्तिके निमित्त वरदायिनी होती है ॥ २६ ॥ वही परमा विद्या मुक्तिकी हेतुभूत सनातनी है संसारके बंधहेतु सर्वेश्वरी भी वही है ॥ २७ ॥ और मैं भी यह सब विश्व उसकी चित् शक्तिसे उत्पन्न है हे ब्रह्मन् हे पापरहित यह इसप्रकारसे जानो इसमें सन्देह करना न चाहिये ॥ २८ ॥ उसीने जो आधेश्लोकमें मुझसे भागवत कही है द्वापारादि युगमें उसका व्यासद्वारा विस्तार होगा ॥ २९॥ व्यासजी बोले नारायणकी नाभिकमलसे उत्पन्नहुए ब्रह्माने विष्णुजीने उस भागवतको कहा उन्होंने महाबुद्धिमान् पुत्र नारदजीसे कहा ॥ ३० ॥ हे पुत्र शुकदेव नारदमहर्षिने वह मुझे सुनाया मैंने इसको द्वादशस्कन्धमें पूर्ण की है ॥ ३१ ॥ हेमहाभाग आप इस ब्रह्मसम्मितपुराणका पाठकरो यह पांच लक्षण युक्त देवीके उत्तमचरित्र वाला है ॥ ३२ ॥ यह तत्वज्ञानके रससे युक्त सबके निमित्त उत्तमोत्तम धर्मशास्त्रकी समान पुण्य वेदार्थसे संयुक्त ॥ ३३ ॥ वृत्रासुरके वधसे युक्त अनेक व्याख्यानकथाओंसे व्याप्त ब्रह्मविद्याका निधान संसारसागरकी तारनेवाली है ॥ ३४ ॥ हे महाभाग मतिमान् आप इसको ग्रहण कीजिये कारण कि तुम इसके योग्य हो हे पुरुषश्रेष्ठ यह

पवित्र पुण्य भागवत नाम पुराण है ॥ ३५ ॥ अठारह सहस्र श्लोकोंसे पूर्ण अज्ञान नाशक दिव्यज्ञानरूपी सूर्यकी बोधन करनेवाली कथा है ॥ ३६ ॥ सुख और शांतिदायक दिव्य दीर्घायुष्यकरनेवाली दिव्य सुनने पढ़नेवालोंको पुत्र पौत्रकी बढानेवालीहै ॥ ३७ ॥ और लोमहर्षणका पुत्र यह धर्मात्मा मेरा शिष्य तुम्हारे साथ इस पौराणिक शुभ संहिताका पाठ करैगा ॥ ३८ ॥ सूतजी बोले जब व्यासजीने मुझसे और शुकदेवसे ऐसा कहा तब मैंने विस्तारके सहित उस सम्पूर्ण पुराणको ग्रहण किया ॥ ३९ ॥ शुक भी इस पुराणको ग्रहण कर व्यासके आश्रममें रहे और देवीभागवतमें प्रतिपादित अर्थ संन्यासाश्रमके विना स्वीकार किये चित्त विक्षेपादिद्वारा अनुभवहोनेको समर्थ नहीं है सो किसप्रकारसे सन्यासाश्रमपूर्वक वह तत्त्व मुझको प्राप्त हो ऐसी चिन्ता करते हुए शर्म शान्तिको न प्राप्तहुए जिसप्रकारसे ब्रह्मपुत्र ॥ ४० ॥ और वह एकान्तसेवी विकल शून्यसे लक्षित होते थे न अतिभोजन और न उपवासमें प्रीति करते थे ॥ ४१ ॥ इसप्रकार पुत्रको चिन्तित देखकर व्यासजी बोले हे मानद पुत्र तुम नित्य क्या शोचते रहते हो और क्यों व्यग्र हो ॥ ४२ ॥ अधन जैसे ऋणग्रस्त होनेसे चिन्ता करता है इसप्रकारसे नित्य ध्यानमें तत्पर रहते हो हेपुत्र मेरे रहते तुम क्या चिन्ता करते हो ॥ ४३ ॥ यथाकाम सुख भोगो शोकको त्यागन करो शास्त्रोक्तज्ञानका विचारकर विज्ञानमें मति करो ॥ ४४ ॥ हे सुव्रत जो मेरे वचनसे तुमको शांति नहीं होती तो हे पुत्र तुम जनकपालित मिथिलानगरीको गमनकरो ॥ ४५ ॥ हे महाभाग वह राजा तुम्हारे मोहका नाश करैगा, वह जनक नाम विदेह सत्यसागर बडे महात्मा हैं ॥ ४६ ॥ हे पुत्र उस राजाके पास जाकर अपना सन्देह निवृत्तकरो हे पुत्र उनसे यथायोग्य वर्णाश्रमके धर्म पूँछो ॥ ४७ ॥ वह राजर्षि जीवन्मुक्त ब्रह्मज्ञानमें मतिवाला शुचि यथार्थवक्ता शान्तयोगी सदा योगप्रिय है ॥ ४८ ॥ सूतजी बोले यह महातेजस्वी व्यासजीके वचन सुनकर अरणीसंभव महातेजस्वी शुकदेवजी बोले ॥ ४९ ॥ हेमहात्मन्! मेरे चित्तमें यह वार्ता दम्भरूप विदित होती है कि विदेह कैसे जीवन्मुक्त राज्य करते हुए शान्त हैं ॥ ५० हे पिता यह जनक राजा वंध्यापुत्रके समान विदित होता है ब्रह्मज्ञानी होकर विदेह कैसे राज्य करता है यह मुझको बडा सन्देह है ॥ ५१ ॥ राजश्रेष्ठ विदेह राजाके देखनेकी मेरी इच्छा है जलमें पद्मपत्रके समान वह इससंसारमें कैसे स्थित हैं ॥ ५२ ॥ हेतात विदेहपर मेरा यह बडा सन्देह है, हे तात क्या वह सौगत नास्तिकोंके समान देहपातको जैसे वे मोक्ष मानते हैं

चार्वाकादि तद्वत् वह राज्यभोगमें सुखीहुए यावज्जीव सुखानुभव करतेहुए जीवन्मुक्त हैं॥ ५३ ॥ मुक्त अमुक्त कैसे होसकता है कृत अकृत कैसे होसकताहै हेमहामते! इन्द्रियोंका व्यवहार कैसे त्याग होसकताहै ॥ ५४ ॥ माता पुत्र भार्या भगिनी व्यभिचारिणी इनमें भेदाभेद किसप्रकारसे नहीं हो सक्ता और जो इनमें भेदाभेद हो तौ मुक्ति कैसे हो सकती है ॥ ५५ ॥ कडुवा खारा तीखा कसैला मीठा यह जिह्वा जान्ती है और श्रेष्ठभोगोंको भोगती है ॥ ५६ ॥ शीत उष्ण सुख दुःखादिका जब विज्ञान होता है तौ हे पिताजी! फिर मुक्तता कैसी? यह तौ मुझे बडा सन्देह है॥ ॥ ५७॥ शत्रु मित्रका परिज्ञान सदा वैर और प्रीतिका करनेवाला है, फिर क्या राजा इनके व्यवहारमें स्थित नहीं होते ॥ ५८ ॥ चोर और तपस्वीको वह किसप्रकार समान मान्ते हैं और जो असमान बुद्धि हो तौ हेतात! फिर मुक्तता कैसी होसकती है॥ ॥ ५९ ॥ मैंने तौ कोई प्रथम जीवन्मुक्त राजा नहीं देखा हेतात यह मुझको बडी शंका है कि, राजा घरमें स्थितहुआ कैसे मुक्त है ॥ ६० ॥ उस राजाके गुण श्रवण कर मेरी बहुत देखनेकी इच्छा हुई है सन्देह निवृत्तिके निमित्त मिथिलाको जाताहूं ॥ ६१ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे भाषायां प्रथमस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सूतजी बोले इसप्रकार कहकर शुकदेवजी पिताके चरणोंमें पतितहुए और हाथ जोडकर वह महामना जानेकी इच्छासे बोले ॥ १ ॥ हे महाभाग! आपसे जानेको पूँछता हूं और जनकसे पालित विदेहोंके जानेकी इच्छा करता हूं ॥ २ ॥ कि, जनकजी किसप्रकारसे विना दण्डके राज्य करते हैं जो दण्ड नहो तौ लोक धर्ममें नहीं वर्त सकते ॥ ३ ॥ धर्मका कारण दण्ड है ऐसा मन्वादिने पहले कह रक्खा है. हेतात! वह कैसे वर्तता है यह मुझे बडा सन्देह है ॥ ४ ॥ यह मेरी माता वन्ध्या है यह चेष्टा तो ऐसी विदित होतीहै हेमहाभाग! आपसे पूँछकर मैं जाता हूं ॥ ५ ॥ सूतजी बोले व्यासजी शुकदेवको जानेमें तत्पर देखकर आलिंगन करके निस्पृह ज्ञानी निस्पृह दृढसे बोले ॥ ६ ॥ व्यासजी बोले हेशुक! तुम्हारा मंगल हो तुम दीर्घायु हो हेतात! मेरी सत्यवाणी सुनकर फिर आऊंगा ऐसी प्रतिज्ञादेकर सुखपूर्वक जाओ॥ ७॥ और जाकर वहांसे हमारे आश्रममें आओ हेपुत्र तुम और कहीं मतजाना॥ ८॥ हे पुत्र मैं तुम्हारे मुखकमलको देखकर सुखसे जीनेकी इच्छा करता हूं हे पुत्र तुम्हारे देखेविना मेरे प्राण

दुःखी होते हैं॥ ९॥ हे पुत्र! जनकको देखकर और सन्देहको निवृत्त करके यहां आकर वेदाध्ययन करते हुए सुखसे स्थित रहो ॥ १० ॥ सूतजी बोले ऐसा कहनेपर प्रणाम करके और प्रदक्षिणा करके धनुषसे छूटे बाणकी समान शुकदेवजी वेगसे गमन करने लगे ॥ ११ ॥ अनेक देश और वित्तधर्मी लोकोंको देखते, वनवृक्ष फलते हुए क्षेत्रोंको देखते ॥ १२ ॥ तप करते हुए तपस्वी और दीक्षासे युक्त याजकोंको योगाभ्यासमें रत योगी और वनवासी वानप्रस्थोंको देखते हुए ॥ १३ ॥ शैव पाशुपत और शाक्त वैष्णव इन अनेक धर्मवालोंको देखते मुनि गमन करने लगे ॥ १४ ॥ वह महामति दो वर्षमें मेरुका उल्लंघन करके और एक वर्षमें हिमाचलका उल्लंघन करके मिथिलाके प्रति प्राप्त हुए ॥ १५ ॥ मिथिलामें प्रवेश करके उत्तम ऋद्धिको देखतेहुए. जहाँकी प्रजा सब सुखी सदाचारसे सम्पन्न थी ॥ १६ ॥ वहाँ द्वारपालने इनको निवारण किया कि, तुम कौन ? कहाँसे आये हो? क्या तुम्हारा कार्य है? ऐसा पूँछनेपर इन्होंने कुछ उत्तर न दिया ॥ १७॥ और नगरके द्वारदेशमें गमनागमनके मार्गको छोड़ स्थाणुके समान अचल विस्मित हँसते हुए स्थित रहे और कुछ न बोले ॥ १८ ॥ प्रतिहारीने कहा हे ब्रह्मन्! कहिये क्या आप मूक हैं? क्यों इस स्थानपर आये हैं? विना कार्य कोई चलता नहीं, ऐसा मेरे विचारमें है ॥ १९ ॥ हे ब्राह्मण ! इस नगरमें राजाकी आज्ञासेही प्रवेश करना होता है, विना कुल शील जाने यहाँ प्रवेश नहीं होता है ॥२०॥ तुम अवश्य कोई वेदज्ञाता तेजस्वी ब्राह्मण विदित होते हो, मुझसे कुल और कार्य कहकर अवश्य चलेजाओ ॥ २१ ॥ शुकदेवजी बोले मैं जिसनिमित्त यहाँ आया था सो तुम्हारे वचनसेही प्राप्त होगया "अर्थात् राजा ज्ञानी नहीं है" कि हम सरीखोंका भी विदेह-नगरमें प्रवेश दुर्लभ है॥ २२॥ यह मेरी दुर्बुद्धिका मोह था जो दो पर्वतोंका अतिक्रमण करके राजाके देखनेकी इच्छासे पर्यटन करता यहाँ आया हूं ॥ २३ ॥ हमारे पिताने राजाको ज्ञानी कहकर मुझे वंचित किया इसमें किसको दोष दे, हे महाभाग! कर्मसेही हम पृथ्वीमें भ्रमण करते हैं ॥ २४ ॥ पुरुषको धनकी आशाही भ्रमण कराती है सो मुझको नहीं है तौभी मैं भ्रमसे यहां प्राप्त होगया था ॥ २५ ॥ यदि मोहमें मज्जित न हो तो निराशावालेको नित्य सुख है. हेमहाभाग! मैं निराश होकरभी मोहसागरमें मग्न होता हूं ॥ २६ ॥ कहाँ मेरु? कहाँ मिथिला? और पैरोंसे आना, मेरे भ्रमणका क्या फल है? विधाताने मुझे वंचित किया ॥ २७ ॥ शुभ वा अशुभ

प्रारब्ध भोगनाही पड़ता है! यह प्रारब्धका भोग है, उद्यम उसीके वशमें हैं जो अपने आधीन करताहै ॥ २८ ॥ यहाँ तीर्थ और वेदभी नहीं है जिसके निमित्त मेरा श्रम होता विदेह राजाके तौ पुरमें प्रवेशही नहीं होता, अर्थात् जहाँ राजा रहता है वहाँ प्रवेशही नहीं है ॥ २९ ॥ ऐसा कहकर शुकदेव मौन हो विरामको प्राप्त हुए. प्रतिहारने जाना कि यह कोई ब्राह्मण श्रेष्ठज्ञानी है ॥ ३० ॥ तब द्वारपाल मुनिसे सामपूर्वक कहने लगा, हे ब्राह्मणश्रेष्ठ!जहाँ तुम्हारा कार्य हो वहाँ यथेष्ट गमन करो ॥ ३१ ॥ हे ब्राह्मण! यह मेरा अपराध है जो मैंने आपको निवारण किया. हे महाभाग! वह क्षमा कीजिये! विमुक्तोंको क्षमाही बल है ॥ ३२ ॥ शुकदेवजी बोले हे द्वारपाल! इसमें तुम्हारा दोष नहीं, तुम सदा परतंत्र हो, सेवकको यथोचित प्रभुका कार्य करना चाहिये ॥ ३३ ॥ जो तुमने मुझे रोका इसमें राजाकाभी दोष नहीं है, कारण कि पंडितको चोर शत्रुका ज्ञान सर्वथा करना चाहिये ॥ ३४ ॥ मेराही सर्वथा दोष है जो मैं यहां आया हूं, दूसरेके घरमें गमनही लघुताका कारण है ॥ ३५ ॥ प्रतीहारी बोला.हे द्विज!क्या दुःख?और क्या सुखहै?शुभकी इच्छावालेको क्या कार्यहै?कौन शत्रु और हितका कर्ता है?यह सब हमसे कहिये ॥ ३६ ॥ शुकदेवजी बोले सब लोकोंमें दोही प्रकारके मनुष्य होते हैं. रागी और विरागी. उनका चित्तभी दो प्रकारका होता है ॥ ३७ ॥ विरागीभी तीन प्रकारका होता है तीव्र वैरागी, मन्द वैरागी और मध्यम. और मूर्ख और चतुरके भेदसे रागी दोप्रकारकाहै ॥ ३८ ॥ शास्त्र और मतिसे उत्पन्न दोप्रकारकी चतुरता होती है, युक्त अयुक्तके भेदसे दोप्रकारकी मति होती है ॥ ३९ ॥ प्रतिहारीने कहा भगवन्!जो कुछ आपने कहा मैंनें उसको नहीं समझा, आप वह सब विस्तारपूर्वक कथन कीजिये ॥ ४० ॥ शुकदेवजी बोले जिसको संसारमें प्रेम ह वह रागी कहाता है उसको अनेक प्रकारका सुख दुःख होता है ॥ ४१ ॥ धन सुत दारा मान विजयको प्राप्त होकर सुख और इसके अभावमें अनेक दुःख होते हैं ॥ ४२ ॥ जिससे प्राणीको यथार्थ सुख मिलै वही उपाय करना चाहिये और जो सुखमें विघ्न करै वही उसका शत्रु जानना चाहिये ॥ ४३ ॥ रागयुक्तकोभी मित्र सुखदाता है इसमें शास्त्रके अवलोकनसे ज्ञानको प्राप्तहुआ चतुर मोहको प्राप्त नहीं होता, और मूर्ख सर्वत्र मोहको प्राप्त होता है ॥ ४४ ॥ विरक्त और आत्मामें रक्तको एकान्तसेवनही सुख है, आत्मा और वेदान्तका चिन्तन करना ही उनको सुखदायक है ॥ ४५ ॥ और यह संसारका कथनादि सम्पूर्ण दुःखरूप है

और शुभकी इच्छा करनेवाले विज्ञानीके बहुत शत्रु होते हैं ॥ ४६ ॥ काम क्रोध प्रमाद ये अनेक प्रकारके शत्रु हैं, इसमें सन्तोषरूपी बन्धुके समान कोई त्रिलोकीमें नहीं है ॥ ४७ ॥ सूतजी बोले ये उनके वचन सुन और उनको ब्राह्मण ज्ञानी मान- कर द्वारपालने मनोरम कक्षा (मार्ग) से उनका प्रवेश कराया ॥ ४८ ॥ वे त्रिविध जनोंसे संकुल नगरको देखतेहुए कि जहांपर अनेक द्रव्य व्यापारसे भरे बाजार क्रय विक्रयसे संयुक्त ॥ ४९ ॥ तथा रागद्वेषसे युक्त काम लोभ मोहसे व्याकुल विवाद करते जनोंसे आकीर्ण, धनसे अतिशय पूर्ण ॥५०॥ इसप्रकार त्रिविधप्रजाको देखते राजमंदिरकी ओर चले और वे परमतेजस्वी दूसरे सूर्यकी समान यहां प्राप्त हुए ॥ ५१ ॥ वहांपर द्वारपालने निवारणकिया तब काष्ठ के समान द्वारपर मार्गकी चिन्ता करते स्थित रहे ॥ ५२ ॥ छायामें और धूपमें समदर्शी महातपस्वी एकान्तमें ध्यान किये स्थाणकी समान अचल स्थित रहे ॥ ५३ ॥ तब एक मुहूर्तमें राजाका आमात्य (मंत्री)आकर हाथ जोड़कर राजमंदिरकी दूसरी कक्षामें प्रवेश करताहुआ ॥ ५४ ॥ वहां दिव्य मनोरम फूले वृक्षोंका बाग था, उस वनको दिखाकर और अतिथिसत्क्रिया करके ॥ ५५ ॥ वहां वारमुखी स्त्रियें जो राजाकी सेवामें परायण थीं, जो गीत वादि- त्रमें कुशल और कामशास्त्रमें विशारद थीं ॥५६ ॥ मंत्रिश्रेष्ठने उनको शुकदेवजीकी सेवाके निमित्त आज्ञा दी, और आप मंत्री वहांसे चलाआया, शुकदेवजी वहां स्थित रहे ॥ ५७ ॥ उन स्त्रियोंने परमभक्तिसे यथाविधि शुकदेवकी पूजा की और देशके अनुसार उत्पन्न अन्नसे भी सत्कार किया ॥ ५८ ॥ फिर वे अन्तःपुरकी रहनेवालीं उनको अन्तःपुरका कानन जो बड़ा मनोहर था वह काममोहित होकर दिखाती हुईं ॥ ५९ ॥ वे युवा रूपवान् मनोहर मृदुभाषी मनोरम थे, उनको काम- के समान देखकर सब मोहित होगईं ॥ ६० ॥ मुनिको जितेन्द्रिय मानकर सब सेवा करने लगीं, और शुद्धात्मा व्यासपुत्र उनको माता जानते हुए ॥ ६१ ॥ वे आत्माराम क्रोधजित् न प्रसन्न होते और न दुःखी होते थे,और उनके विकार देखकर स्थित रहे ॥ ६२ ॥ स्त्रियोंनें उनके निमित्त बड़ी मनोहर शय्या प्रदान की, जो बहुमूल्य वस्त्रोंसे युक्त अनेक सामग्रीसहित थी ॥ ६३ ॥ वे आलस्यरहित शुकदेव चरण धोकर कुश हाथमें लिये पश्चिमसन्ध्याकी उपासना करके ध्यान करने लगे ॥ ६४ ॥ एक पहर ध्यान करने उपरान्त शयन करनेगये और दोपहर शयन करके फिर उठ बैठे ॥ ६५ ॥ और फिर पिछली रातमें भी ध्यान करने लगे, स्नानउपरान्त प्रभातक्रिया करके फिर सावधान हो स्थित हुए ॥ ६६ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे भाषायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

शुकदेवजीका आना सुन राजा मंत्रियोंसहित स्नानकिये आगे पुरोहितको करके गुरुपुत्रके समीप गया ॥ १ ॥ भलीप्रकार राजा उनकी पूजाकर उत्तम आसन देकर दुधारी गौको निवेदन करके कुशल पूछता हुआ ॥ २ ॥ शुकदेवजीने राजाकी पूजाको विधिपूर्वक ग्रहण करके निरामय पूँछी ॥ ३ ॥ और कुशल प्रश्न पूँछकर सुखसे आसनमें बैठे और शान्त शुकदेवजीसे राजा पूछने लगा ॥ ४ ॥ हे महाभाग! किस प्रकारसे आपसे निस्पृहोंका मेरे घरपर आगम हुआ है? हे मुनिश्रेष्ठ! सो आप कहिये ॥ ५ ॥ शुकदेवजी बोले व्यासजीने मुझसे दारपरिग्रह करनेको कहा कि सब आश्रमोंमें गृहस्थाश्रम उत्तम है ॥ ६ ॥ मैंने उसे अंगीकार नहीं किया, वे बोले इसमें बन्धन नहीं होगा, मैंने वहभी न माना ॥ ७॥ और मेरा मन सन्दिग्ध हुआ तब वे उसप्रकार मुझे देख बोले मिथिलाको जाओ, शोककी बात नहीं है ॥ ८ ॥ वहां यज्ञीय जनक राजा जीवन्मुक्तहो निवास करताहैं वे लोकविदित विदेहहो अकंटक राज्य करता हैं॥९॥वह राजा राज्यकरताहुआ भी मायापाशसे बद्ध नहीं होता है. हे पुत्र! तुम क्यों डरते हो वनवृत्तिही परमतपस्या है॥१०॥ हे राजसिंह मुझसे वे बोले कि तुम जाकर उस राजाका दर्शन करो और मनके मोहका त्यागन करो. हे महाभाग! दारसंग्रह करो अथवा उस राजासे पूंछो ॥११॥ वह राजा तुम्हारे मनके सन्देहको दूर करेगा. हे पुत्र! तुम शीघ्र जाओ ऐसे उनके वचन सुनकर ॥१२॥ हे महाराज! उनकी आज्ञासे मैं तुम्हारे नगरमें आया हूं. हे राजेन्द्र! हे पापरहित! मुझे मोक्षकी इच्छा है, आप कृत्यवर्णन कीजिये॥१३॥तप, तीर्थ, व्रत, यज्ञ, स्वाध्याय, तीर्थसेवन, वा ज्ञान जो मोक्षके प्रति कारण हो हे राजेन्द्र! सो आप कथन कीजिये॥१४॥ जनकजी बोले हे विप्रेन्द्र! जो मोक्षमार्गाश्रितको करना चाहिये सो तुम सुनो, प्रथम उपनीत होकर वेदाभ्यासके निमित्त गुरुकुलमें निवास करै॥१५॥वहां वेदवेदान्तोंका अध्ययन करके गुरुदक्षिणा देकर समावर्तनसंस्कारपूर्वक गृहस्थाश्रममें स्त्रीसहित निवास करै ॥ १६ ॥ यजनयाजनादिसे भिन्न और वृत्तियोंकरके संतोषी आशाहीन कल्मषरहित अग्निहोत्रादि कर्म करते हुए सत्यवाक् पवित्र ॥ १७ ॥ पुत्रपौत्रको प्राप्त होकर वानप्रस्थ आश्रममें निवास करै. तपसे कामक्रोधादि छे शत्रुओंको जीतकर भार्या पुत्रको सौंपकर ॥ १८ ॥ यथान्याय धर्मात्मा सब अग्नियोंका आत्मामें आरोपण करके शुद्ध वैराग्य होनेपर चौथे आश्रममें शान्त हो निवास करै ॥ १९ ॥ सन्यासमें विरक्तके विना और किसीका अधिकार नहीं है, यह वेदवाक्य सत्य है अन्यथा नहीं: यह मेरी मति

है ॥ २० ॥ हे शुकदेवजी ! जन्मसे श्मशानपर्यन्त "४८" संस्कार वेदने कहे हैं उसमें महात्माओंने गृहस्थको "४०" संस्कार कहे हैं ॥२१॥ और शम दमादि आठ संस्कार मुक्तिकी कामनावालोंको कहे हैं, शिष्टोंकी यह आज्ञा है कि आश्रमसे आश्रममें प्रवेश करै ॥ २२ ॥ शुकदेवजी बोले जब बुद्धिमें वैराग्य उत्पन्न होनेसे ज्ञानवैराग्यप्राप्ति हो तब क्या गृहस्थादि आश्रममें निवास करै? वा वनमें निवासकरै ? ॥२३॥ जनकजी बोले हे मानद! इन्द्रिय बड़ी बलिष्ठ हैं, नियुक्त नहीं हैं, वे अपक्क पुरुषको अनेक विकार करती हैं॥२४॥ भोजन, सुख, सेज, पुत्रकी इच्छा जब विकारकी प्राप्ति यतिअवस्थानमें हो तौ यह कैसे होसक्ती है ॥ २५ ॥ वासनाजाल बड़ा दुर्जर है, किसीप्रकार शान्तिका प्राप्त नहीं होता, इससे वासनाकी शान्तिके निमित्त क्रमसेही उसको त्यागन करना चाहिये ॥ २६ ॥ ऊपरहीका सोया हुआ नीचे गिरता है, नीचेवाला नहीं इससे सन्यासमें भ्रष्ट होनेका प्रायश्चित्त नहीं है और फिर उसको मार्ग नहीं मिलता है ॥ २७ ॥ जैसे चींटी मूलसे शाखापर क्रमसे चढ़ती है और वह पदगामिनी क्रमसे सहज सहज फलपर पहुँचती है ॥ २८ ॥ और विघ्नकी शंकाको छोड़कर शीघ्रतासे चलताहुआ विहंग श्रान्त होजाता है, शीघ्र थक जाता है. परन्तु विश्राम लेती हुई पिपीलिका सुखपूर्वक गमन करती है ॥ २९ ॥ मनकी कामना बड़ी प्रबल है, वह अकृतात्माओंको अजेय है, इससे आश्रमके अनुक्रमसे इसको शनैः २ जीतना चाहिये ॥ ३० ॥ गृहस्थाश्रममें स्थित होकर भी शान्त, सुमति, आत्मज्ञानी, प्रसन्नता और दुःख न मानै, लाभालाभमें समान हो ॥ ३१ ॥ विहित कर्म करतेहुए चिन्ताको त्यागना चाहिये और आत्मलाभमें सन्तुष्ट होकर चिन्ता त्याग देनी चाहिये, वह मुक्त होगा इसमें सन्देह नहीं॥ ३२॥ हे पापरहित! देखो मैं राज्यमें स्थित होकर भी जीवन् मुक्त हूं, और यथेच्छ विचरता हूं, मुझे कुछभी नहीं होता है ॥ ३३ ॥ अनेक प्रकारके भोगोंको भोगते और अनेक प्रकारके कर्म करते भी जैसे मैं जीवन्मुक्त हूं, हे पापरहित! इसीप्रकार तुम होओ ॥३४॥ यह जो जगत् दीखता है वह मायाका विकार होनेसे दीखता है परमार्थसे नहीं है, फिर आत्मतत्त्व कैसे बंधनमें हो सक्ता है, सूर्यसे प्रकाशित घटादि सूर्यको नहीं बांधसक्ते, पंच भूत और उनके गुण लक्षित होते हैं ॥ ३५ ॥ आत्मा तौ अनुमानसे ही जाना जाता है प्रत्यक्षसे नहीं जानाजाता. हे ब्रह्मन्! वह निर्विकार निरंजन किसप्रकार बंधनको प्राप्त

हो सकता है ॥ ३६ ॥ हे द्विज ! केवल मन सुख दुःख और महत्कारण है, मनके निर्मल होनेमें सब निर्मल होता है अविद्याजन्य अन्तःकरणावच्छिन्न जीव मनकी वृत्ति और अविद्यासे कर्ता भोक्तासा लक्षित होता है ॥ ३७ ॥ सब तीर्थोंमें भ्रमण करने और वारंवार स्नान करनेसे जबतक मन निर्मल नहीं तबतक अबहीं निरर्थक है ॥ ३८ ॥ हे परंतप! देह, जीवात्मा मन इन्द्रिय इनमें एकभी नहीं, परन्तु मनुष्योंके बंध मोक्षका मनही कारण है ॥ ३९ ॥ आत्मा सदा शुद्ध मुक्त है वह कभी बंधनमें नहीं आता, मनमें ही बंध मोक्ष रहता है, मनके शान्त होनेपर शान्त होजाता है ॥ ४० ॥ शत्रु मित्र उदासीन यह सब मनके भेद हैं, एकात्मक होनेमें भेद नहीं है. यह द्वैतदर्शनसे भेद है ॥ ४१ ॥ मैं जीवसंज्ञक ब्रह्मही सदा हूं इसमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है, संसारमें वर्तनेसे भेदबुद्धि प्रवृत्त होती है ॥ ४२ ॥ हे महाभाग! यह सब अविद्या है विद्यासे ही इसकी निवृत्ति होती है, विचक्षणोंको विद्या अविद्याका ज्ञान सदा करना चाहिये ॥ ४३ ॥ विना धूपके छयाका सुख किसप्रकार जाना जा सकता है ? इसी प्रकार अविद्याके विना विद्याका ज्ञान नहीं होता है ॥ ४४ ॥ गुण गुणोंमें और पंचभूत पंचभूतोंमे वर्तते हैं, इन्द्रिय इन्द्रियोंमें वर्तती हैं इसमें आत्माका क्या दोष है? ॥ ४५ ॥ लोककी रक्षा करनेके निमित्त वेदोंमें मर्यादा स्थापित की है, हे पापरहित ! अन्यथा सौगत बुद्धोंकी समान धर्मनाश होता है ॥ ४६ ॥ धर्मके नाश होनेसे वर्णाचार नष्ट होता है, इसकारण वेदनिर्दिष्ट मार्गपर चलनेसे ही कल्याण होता है ॥ ४७ ॥ शुकदेवजी बोले हे राजन् ! हे नराधिप ! जो कुछ आपका कहा मैंने सुना है इसमें मुझे सन्देह है, वह निवृत्त नहीं होता है ॥ ४८ ॥ वेदधर्ममें हिंसाभी होती है और हिंसा अधिक अधर्मवाली है इससे हे राजन्! वेदधर्म कैसे मुक्ति देसक्ता है? ॥ ४९ ॥ हे राजन् ! सोमपान करना यह प्रत्यक्षमें ही अनाचार है तथा पशुका वध और मांसका भक्षण ॥ ५० ॥ और सौत्रामणियज्ञमें प्रत्यक्षही सुराका ग्रहण है, द्यूतक्रीडा और अनेक प्रकारके व्रत वर्णन किये हैं ॥ ५१ ॥ हमने सुना है कि पहले एक शशबिन्दु राजा थे वह यज्ञशील धर्ममें तत्पर वदान्य और सत्यसागर थे ॥ ५२ ॥ धर्मसेतुओंके रक्षक, उत्पथगामियोंके शासनकर्ता और उन्होंने बड़ी बड़ी दक्षिणाओंके बहुतसे यज्ञ किये हैं ॥ ५३ ॥ उनके यज्ञीय पशुओंके चर्मका शैलकी समान ढेर होगया था, मेघोंका जल उसपर पड़नेसे चर्मण्वती नदी बह चली है ॥ ५४ ॥ वेभी राजा स्वर्गको गये कि जिनकी भूमण्डलमें बड़ी कीर्ति है, वेदके ऐसे धर्मोमें मेरी

बुद्धि प्रवृत्त नहीं होती, कारण कि स्वर्गकी प्राप्ति अनित्य है॥ ५५॥ और आपके भी जीवन्मुक्त होनेमें मुझे सन्देह है, जो मनुष्य स्त्रीसंगमें भोगसे सदा सुख पाता है उसको विना दुःख मानता है फिर वह जीवन्मुक्त कैसे होसक्ता है? ॥ ५६ ॥ जनकजी बोले यज्ञोंके बीचमें जो हिंसा है वह अहिंसाही है "अहिंसन्सर्वभूतान्यन्यत्र तीर्थेभ्यः" इति श्रुतेः॥ यदि वह हिंसा, रागरूप उपाधिसे कीजाय तौ हिंसाही होगी, अर्थात् मांस-भक्षणके निमित्त याग करना हिंसा है ॥ ५७ ॥ जैसे गीले ईंधनके संयोगसे अग्निमें धूम प्रवृत्त होता है और उसके विना धूम नहीं होता है, इसीप्रकार रागादि उपाधिके रहीत होनेसे हिंसा नहीं है ॥ ५८ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकारसे तुम वेदोक्त हिंसाको जानो, रागियोंके निमित्त हिंसाही है. विरागियोंको नहीं है ॥ ५९ ॥ जो कर्म अहंकाररहित राग द्वेषके विना किया है, अर्थात् ईश्वरकी प्रसन्नताके निमित्त भगवानमें कर्मफलसमर्पणरूप जो कर्म किया जाता है उसको विद्वान् मनीषी अकृतही मानते हैं॥ ॥ ६० ॥ रागी गृहस्थियोंको तौ वह हिंसाही होगी. और जो रागरहित अहंकारवर्जित कर्म किया है॥ ६१ ॥ वह जितात्मा मुमुक्षुओंको अहिंसाही है, अथवा जिनकी मांसादिमें रुचि अधिकतर बढ़गई है, उसको यज्ञसे अन्यत्र पशुवध(हिंसा) कहकर यज्ञमें नियमपूर्वक कर्मद्वारा चित्तशुद्धि करा छुड़ानेसे तात्पर्य है कि जिस्से शनैः २ छोड़दे॥ ६२॥

इति श्रीदेवीभागवते प्रथमस्कंधे भाषायां अष्टादशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

शुकदेवजी बोले हे महाराज! यह मेरे हृदयमें और भी सन्देह है कि मायामें वर्तमान यह मनुष्य निःस्पृह कैसे हो सक्ता है? ॥ १ ॥ शास्त्रज्ञानको प्राप्त हो नित्यानित्यके विचारको करके भी योगादिके विना मोह मनसे नहीं जाता, फिर मुक्ति कैसे हो? ॥ २ ॥ अविद्यासे जो मनमें अंधकार छा रहा है वह शास्त्रजन्य परोक्षज्ञानसे नष्ट नहीं होता, जैसे दीपककी वार्ता करनेसे अंधकार दूर नहीं होता. ॥ ३ ॥ पण्डितोंको सदा सब प्राणियोंसे द्रोह त्यागना चाहिये, हे राजशार्दूल ! यह वार्ता गृहस्थको साध्य नहीं है ॥ ४ ॥ वित्तैषणा, राजसुखेषणा, और संग्राममें जयकी इच्छा आपकी शान्त नहीं हुई फिर मुक्ति कैसे होसक्ती है ? ॥ ५ ॥ आपकी चोरोंमें यह चोर है ऐसी बुद्धि है. तपस्वियोंमें यह तपस्वी है ऐसी बुद्धि है. अपना पराया तुममें लगा-हुआ है हे राजन्! फिर आप विदेह किसप्रकार हैं ? ॥ ६ ॥ कटु, तीक्ष्ण, कसैला, अम्ल आदि अच्छे बुरे रसोंको तुम जानते हो, अच्छेमें तुम्हारा चित्त रमता है और

अशुभोंकी इच्छा नहीं है ॥ ७ ॥ हे राजन्! आपमें समय २ पर जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति अवस्था वर्तती हैं फिर तुरीया कहांसे होगी? ॥ ८ ॥ पैदल घोड़े हाथी रथ ये सब मेरे वशीभूत हैं. इन सबका मैं स्वामी हूं. कहिये यह बात आप मानते हैं वा नहीं? ॥ ९ ॥ हे राजन्! सदा मीठा खाते हो, मुदित और विमन रहते हो, माला और सर्पमें भेद माननेसे समानदृष्टि कब होसक्ते हो? ॥ १० ॥ हे राजन्! मिट्टी और सुवर्णमें समानदृष्टि करनेसेही यह प्राणी मुक्त होता है, सबमें एकात्मबुद्धि और सब जन्तुओंका हित करना चाहिये॥ ११ ॥ मेरा तौ अब गृह दारादि कहींभी चित्त नहीं रमता है. इकला निस्पृह होकर विचरण करूं यही मेरी मति है ॥ १२ ॥ निस्संग निर्मम शान्त पत्र मूल फलके भोजन करता हुआ निष्परिग्रह व निर्द्वन्द्व हुआ मृगवत् विचरण करूंगा ॥ १३ ॥ हे राजन्! मुझको घर धन और रूपवती भार्यासे क्या प्रयोजन है? इस गुणातीत मनमें पूर्ण विराग है ॥ १४ ॥ आप अनेक प्रकारके रागसे व्याप्त विविध आकार प्रपंचका विचार करते हो अतएव अपने लिये विमुक्त कहना आपका दंभ विदित होता है ॥ १५ ॥ तुमको कभी शत्रु और कभी धनसे चिन्ता रहती है कभी सेनाकी चिन्ता रहती है कहिये तौ हे राजन्! आप निश्चिन्त कब रहते हो? ॥ १६ ॥ जो मुनि वैखानस मिताहारी जितव्रत हैं वे असत्य जानकर भी इस संसारमें मोहित होते हैं ॥ १७ ॥ आपके वंशमें हुओंका जो विदेह नाम है यह कुटिल नाम है. इसमें अन्यथा नहीं है ॥ १८ ॥ जैसे मूर्खका नाम विद्याधर, जन्मांधका नाम दिवाकर हो, दरिद्रका नाम लक्ष्मीधर हो इनका यह नाम निरर्थक ही है ॥ १९ ॥ आपके वंशोत्पन्न जो राजा मैंने पूर्वमें सुने हैं वे नामसें ही विदेह थे कर्मसे नहीं ॥ २० ॥ हे राजन्! तुम्हारे पहले कुलमें निमि राजा हुए उन्होंने यज्ञके निमित्त मुनिराज अपने वशिष्ठ गुरुको ॥ २१ ॥ निमंत्रित किया तब मुनिने उनसे कहा इस समय तौ मुझे इन्द्रने यज्ञके निमित्त निमंत्रित किया है ॥ २२ ॥ उनका यज्ञ पूर्ण करके तुम्हारा भी यज्ञ पूर्ण करूंगा. हे राजन्! तबतक तुम शनैः २ सामग्री एकत्र करो ॥ २३ ॥ यह कह मुनिराज महेन्द्रके भवनमें चले गये, निमिने दूसरेको गुरु करके यज्ञआरंभ किया ॥ २४ ॥ यह सुनकर वशिष्ठजी राजापर बहुत क्रुद्ध हुए और बोले हे गुरुके लोप करनेवाले! तुम्हारा देह पतित होजाय ॥ २५ ॥ राजाने भी शाप दिया कि तुम्हारा देहभी पतित होजाय वे दोनों परस्पर शापसे पतित हुए ऐसा मैंने सुना है ॥ २६ ॥

हे राजेन्द्र! विदेहने स्वयं अपने गुरुको कैसे शाप दिया? मेरे चित्तमें यह विनोद विदित होता है [फिर वशिष्ठजी मित्रावरुणके वीर्यसे उत्पन्नहुये और निमि पलकोंपर स्थित हुए] ॥ २७ ॥ जनकजी बोलेः-हे शुकदेवजी! यह तुमने सत्य कहा कुछ भी मिथ्या नहीं है तौभी हे विप्रेन्द्र! सुनो जो हमारे गुरु व्यासजीने कहा है ॥ २८॥ पिताके संगका त्यागन करके तुम वनमें जानेकी इच्छा करते हो तौ वहां तुम्हारा मृगोंके साथ सम्बन्ध होगा. इसमें सन्देह नहीं ॥ २९ ॥ महाभूतही जब सर्वत्र हैं तौ निःसंग कैसे होसक्ते हैं? जब आहारके वास्ते चिन्ता है तौ निश्चिन्त किस प्रकार होसक्ते हैं? ॥ ३०॥ दण्डाजिनकी चिन्ता जैसी तुमको वनमेंभी रहती है, इसीप्रकार मुझको राज्यकी चिन्ता रहती है ॥ ३१ ॥ दूरदेशसे आयेहुये तुमको विकल्प प्राप्त है, विकल्प और सन्देह न होनेसे मैं सर्वथा निर्विकल्प हूं ॥ ३२ ॥ हे विप्र! मैं सदा सुखसे सोता और खाता हूं और मैं बद्ध नहीं हूं, इस बुद्धिसे मैं सदा सुखी हूं ॥ ३३ ॥ मैं बद्ध हूं इस शंकासे तुम सदाही दुःखी हो इस शंकाको त्याग करके सावधानीसे सुखी होओ ॥ ३४ ॥ यह देह मेरा है मैं बद्ध हूं इस विचारसे मुक्तता नहीं होती, धन घर राज्यभी मेरा नहीं, यह मुझको निश्चय है, जब देहही मेरा नहीं तो राज्य कैसा? ॥ ३५ ॥ सूतजी बोले–यह राजाके वचन सुनकर शुकदेवजी प्रसन्न हुए और राजाकी आज्ञा लेकर पिताके श्रेष्ठ आश्रममें गये ॥ ३६ ॥ पुत्रको आया देखकर व्यासजी प्रसन्न हुए, आलिंगनकर शिर सूंघ कुशलपूँछते हुए ॥ ३७ ॥ और उस रमणीक आश्रममें पिताके समीप स्थित हुए. वेदाध्ययनमें सम्पन्न सब शास्त्रमें पण्डित हुए ॥ ३८ ॥ राज्यमें स्थित जनककी दशाको देखकर परानिवृत्तिको प्राप्त होकर पिताके आश्रममें स्थित हुए ॥ ३९ ॥ पितरोंकी पीवरीनाम कन्या परम सुन्दरी थी, योगमार्गमें स्थित होकर भी शुकदेवने उसे पत्नी बनाया ॥ ४० ॥ उसमें उन्होंने चार पुत्र, उत्पन्न किये ॥ कृष्ण, गौरप्रभ, भूरि देवश्रुत ॥ ४१ ॥ और प्रताप वान् व्यासपुत्रने एक कीर्तिनाम कन्या उत्पन्नकी और उसको विभ्राजके पुत्र अणुह महात्माको विवाहदी ॥ ४२ ॥ अणुहका पुत्र श्रीमान् ब्रह्मदत्त हुआ, यह राजा शुककन्यामें उत्पन्न होनेके कारण ब्रह्मज्ञानी हुआ ॥ ४३ ॥ फिर कुछ समयके उपरान्त नारदजीके उपदेशसे परमज्ञान और उत्तम योगमार्गको प्राप्त होकर॥ ४४ ॥ पुत्रको राज्यमें स्थापन करके बदरिकाश्रमको गया, मायाबीज भुवनेश्वरीके मंत्रोपदेशसे उसको पूर्ण ज्ञान हुआ ॥ ४५ ॥ और नारदजीके उपदेशसे जो कि मुक्तिका देनेवाला

है, शुकदेवजीभी पिताके संगका त्याग कर कैलासपर्वतके मनोहर शिखरमें ॥ ४६ ॥ सब संग छोड़कर ध्यानमें स्थित हो परम अणिमादि सिद्धिको प्राप्त हो पर्वतशृंगसे ऊपरको उछल गये ॥ ४७ ॥ उस समय शुकदेवके उछलनेके वियोगसे पर्वतशृंग विदीर्ण होगया और वह महातेजा आकाशमें प्राप्त हुए सूर्यकी समान शोभित हुए॥ ॥ ४८ ॥ जिस समय शुक आकाशको गये तब बड़े उत्पात हुए जिसप्रकार अन्तरिक्षमें वायु हो इसप्रकार महर्षियोंसे व्याकुल हो ॥ ४९ ॥ दूसरे भास्करकी समान तेजसे विराजित हुए और विरहसे व्याकुल हो व्यासजी पुत्र २ ऐसा वारंवार कहने लगे ॥ ५० ॥ और जहां शुकदेवजी थे उस पर्वतशृंगपर गये, उस समय दीन, श्रमसे व्याकुल व्यासजीको क्रन्दन करता देखकर ॥ ५१ ॥ सर्वभूतोंमें प्राप्त साक्षीरूपसे तुम्हारी मेरी "आत्मा" एक है शोक मत करो इस वाक्यसे उनको प्रतिशब्द अर्थात् उत्तर देतेहुए शुक आकाशके प्रति गये. व्यष्टि देहको समष्टिमें लीनकरके व्यापकरूपसे स्थित हुए ऐसा जानाजाता है. वहशब्द अबभी उस पर्वतशृंगपर स्फुटतयां सुननेमें आता है॥५२॥ शोकयुक्त व्यासजीको रोता देखकर जो कि वियोगसे पुत्र२ कह रहे थे॥५३॥तब शिवजीने आनकर व्यासजीको समझाया कि, हे व्यास! शोक मत करो तुम्हारा तौ पुत्र योगियोंमें श्रेष्ठहै ॥ ५४॥वह अकृतात्माओंको दुर्लभ परम गतिको प्राप्त हुआ और ब्रह्मके जाननेवाले तुमको उसका शोक न करना चाहिये ॥ ॥ ५५॥ हे पापरहित!इस पुत्रसे तुम्हारी अचल कीर्ति हुई, व्यासजी बोले हे देवेश! क्या करूं? मेरा शोक नहीं जाता ॥५६॥ पुत्रदर्शनकी लालसासे अबतक मेरे नेत्र तृप्त नहीं हुए हैं, शिवजी बोले अच्छा तुम अपने निकट पुत्रकी छाया उसी मनोहर आकृतियुक्त देखोगे ॥५७॥ हे मुनिशार्दूल! हे परंतप! उसको देखकर तुम शोकका त्यागन करो, सूतजी बोले तब व्यासजी पुत्रकी सुप्रभावाली छाया देखने लगे ॥ ॥ ५८ ॥ इस प्रकार वर देकर शिवजी अन्तर्धान हुए. महादेवके अन्तर्धान होनेपर व्यासजी अपने आश्रममें आये ॥ ५९ ॥ और शुकके वियोगमें परम तप्त हुए. "देवीभागवतके श्रवणसे शुकदेवकी यह गति हुई" यह इसके माहात्म्यवर्णन करनेका तात्पर्य है ॥ ६० ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भाषायां एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंशतितमोऽध्यायः २०.

ऋषि बोले देवसत्तम शुकदेवजी तो परमगतिको प्राप्त हुए फिर व्यासजी क्या करतेहुए सो विस्तारसे कहो? ॥ १ ॥ सूतजी बोले व्यासजीके जो वेदाभ्यासपरायण शिष्य थे आज्ञा लेकर वे सबही पहले धर्मप्रचारार्थ महीतलमें विचरने गये ॥ २ ॥ असित, देवल, वैशंपायन, जैमिनि, सुमन्त यह सब तपोधन गये ॥ ३ ॥ इसप्रकार उनको गये देख और शुकदेवकी परमगति विचार व्यासजीने महात्माओंके विरहसे व्याकुल हो जानेकी इच्छा की ॥ ४ ॥ मनमें व्यासजीने उस श्रेष्ठ निषादकन्याका स्मरण किया, जिसको गंगाके तटपर शोकसे युक्त देखा था. यद्यपि वह पराशरके स्पर्शसे मुक्तरूप थी ॥ ५ ॥ इसप्रकार व्यासजी सत्यवतीका स्मरण कर उस पर्वत-श्रेष्ठको छोड़कर वे महातेजस्वी मुनि अपने जन्मस्थानमें आये ॥ ६ ॥ और द्वीपमें आनकर निषादसे पूँछा कि,वह श्रेष्ठ कन्या कहां गई?तब निषादोंने कहा वह तो राजा शन्तनुको प्रदान करदीगई॥ ७॥ फिर दाशराजाने व्यासजीकी बड़ी प्रीतिसे पूजा की. स्वागतसे सत्कार कर हाथ जोड़ बोला ॥ ८ ॥ दाशराज बोले आज मेरा जन्म और कुल पवित्र हुआ जो देवताओंको भी अगम्य तुम्हारा दर्शन मुझे हुआ ॥ ९ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! जिसनिमित्त आप आये हो सो हमसे कहिये ? दारा धन पुत्र ये सब तुम्हारे अधीन हैं ॥ १० ॥ तब व्यासजीने सरस्वतीके किनारे अपना आश्रम बनाया और तप करनेको वहांही स्थित हुए॥ ११॥ बड़े कान्तिवाले शन्तनु राजासे सत्यवतीके दो पुत्र हुए हैं यह सुनकर व्यासजीने मनमें सुख माना और तप करने लगे ॥ १२ ॥ उन पुत्रोंमें पहला रूपयौवनसम्पन्न चित्राङ्गद सब लक्षणसे सम्पन्न था ॥ १३ ॥ और दूसरा राजा का पुत्र विचित्रवीर्य था यह सब गुणोंसे युक्त शंतनुका आनन्द बढ़ानेवाला था ॥ १४ ॥ और गंगासे राजाके बड़े पुत्र महाबली भीष्मजी उत्पन्न हुए थे और इसीप्रकार सत्यवतीसे दो पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥ १५ ॥ शंतनु उन सब लक्षणोंसे युक्त पुत्रोंको देखकर अपनेको देवताओंसे भी अजय मानते हुए ॥ १६ ॥ फिर कुछ समय उपरान्त शंतनु कालकवलित हुए, उन महात्माजीने जीर्ण वस्त्रकी समान अपने देहको त्याग दिया॥ १७॥ राजाके कालधर्मको प्राप्त होने-पर भीष्मने राजाके सब प्रेतकार्य करके अनेक दान दिये ॥ १८ ॥ और उन महाबलीने चित्रांगदको राज्यमें स्थापन किया और स्वयं राज्य न किया "कारण कि सत्यवतीको पिताके साथ विवाहनेके विषयमें दाशराजसे प्रतिज्ञा करली थी कि, मैं विवाह नहीं करूंगा" इस देवव्रतका पालन करनेसे वह देवव्रत कहाये ॥ १९ ॥

सत्यवतीका पुत्र बड़ा बली वीर शुचि चित्रांगद वीर्यसे मत्त हो दूसरे शत्रुओंको दुःख देता हुआ ॥ २० ॥ एक समय वह महाबाहु बड़ी सेना साथ लिये मृग आदि वध्य जीवों और वनस्थानोंको देखते विचरने लगा ॥ २१ ॥ चित्रांगद गन्धर्वने उस राजाको जाता देख भूमिके निकट अपना विमान उतारा ॥ २२ ॥ और वहां उन दोनों समान बलियोंका बड़ा युद्ध हुआ. वह युद्ध तीन वर्षतक कुरुक्षेत्रके वनोंमें हुआ ॥ २३ ॥ हे ऋषियो ! तब गन्धर्वसे मृत्युको प्राप्त हो राजा इन्द्रलोकको गया. भीष्मने यह वृत्तान्त सुन उसका ऊर्ध्वदैहिक कर्म किया ॥ २४ ॥ और भीष्मके शोकका मंत्रियोंने निवारण किया और फिर विचित्रवीर्यको राज्यसिंहासन दिया ॥ २५ ॥ मंत्री और गुरुओंसे बोधित होकर और पुत्रको राज्यपर स्थित देखकर पुत्रशोकसे हत होकर भी ॥ २६ ॥ सुमुखी सत्यवती सन्तुष्ट हुई और व्यासभी अपने भ्राताको राजा सुनकर प्रसन्न हुए ॥ २७ ॥ वे सत्यवतीके सुन्दर पुत्र पर यौवनको प्राप्त हुए, उस समय भीष्मने उसके विवाहकी चिन्ता की ॥ २८ ॥ काशिराजकी तीन कन्या जो सब लक्षणोंसे सम्पन्न थीं उस राजाने उनका विवाहके निमित्त स्वयंवर किया था ॥ २९ ॥ यहां सहस्रों राजा और राजपुत्र एकत्र हुएथे, स्वयंवर की इच्छासे सत्कृत होकर आये थे ॥ ३० ॥ वहां जाकर महातेजस्वी महाबली भीष्मने एक रथसे सब राजोंका मथन कर उनको बलपूर्वक हरण किया ॥ ३१ ॥ सब राजाओंको जीतकर भुजाओंके बलसे उनको लेकर हस्तिनापुरमें आये ॥ ३२ ॥ माता बहन और पुत्रीकी समान उनको विचारते हुए. उन तीनों सुलोचनी कन्याओंको हरण कर लाये ॥ ३३ ॥ और सत्यवतीको निवेदनकर ब्राह्मणोंको बुलाय ज्योतिषियों विद्वानोंसे विवाहका सुन्दर दिन पूँछते हुए ॥ ३४ ॥ जब विवाहका संभार कर अपने भ्राता धर्मिष्ठ विचित्रवीर्यका विवाह करने लगे ॥ ३५ ॥ तब कृष्णअपांगवाली सुन्दरनेत्रोंवाली लजाती हुई उन तीनोंमें बड़ी कन्या भीष्मसे कहने लगी ॥ ३६ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! धर्मज्ञ ! कुलदीपक गंगापुत्र ! मैंने स्वयंवरमें मनमें राजा शाल्वका वरण किया था ॥ ३७ ॥ और प्रेमसे व्याकुलचित उस राजानेभी मुझको वरण किया था, सो हे परंतप! अब आप इस अपने कुलके यथायोग्य कीजिये ॥ ३८ ॥ पहले उसने मुझे वरण किया है और मैंने उसे, तुम धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ हो, हे गंगापुत्र! तुम बलवान् हो जैसी इच्छा हो वैसा करो ॥ ३९ ॥ सूतजी बोले जब उस कन्याने ऐसा कहा, तब कुरुनन्दन भीष्मजी वृद्ध ब्राह्मण मंत्री और माता सत्यवतीसे पूँछने लगे ॥ ४० ॥

धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ भीष्मजीने सबका मत जानकर उस कन्यासे कहा हे वराननें! जहां तुम्हारी रुचि हो वहां जाओ ॥ ४१ ॥ तब भीष्मसे विदा कीहुई वह वरारोहा शाल्वके स्थानपर गई, और उस सुमुखीने मनईप्सित उस राजासे कहा ॥ ४२ ॥ तुममें मन लगानेके कारण धर्मसे भीष्मने मुझे छोड़दिया, हे महाराज! अब मैं आनकर प्राप्त हुई हूं, मेरा हाथ ग्रहण करो ॥ ४३ ॥ हे नृपश्रेष्ठ! मैं आपकी अत्यन्त धर्म-पत्नी हूंगी और पहले मैंने तुम्हें और तुमने मुझे चिन्तन किया है ॥ ४४ ॥ शाल्व बोले हे वरोरु! भीष्मने मेरे देखतेही तुमको ग्रहण किया और रथमें स्थापित किया है इस्से मैं तुम्हारा हाथ ग्रहण न करूंगा ॥ ४५॥ कौन बुद्धिमान् परोच्छिष्ट कन्याको ग्रहण करैगा?इससे भीष्मसे त्यागी हुईको माताकी समान मैं ग्रहण न करूंगा ॥ ४६ ॥ इसप्रकार उस रोती और विलाप करती हुईको उस महात्माने त्याग दिया. और वह फिर भीष्मके पास आकर रोतीहुई कहनेलगी ॥ ४७ ॥ हे वीर! तुम्हारी त्यागीहुई जानकर शाल्व मुझको ग्रहण नहीं करता, इस्से तुम मुझे ग्रहण करो. हे महाभाग! तुम धर्मज्ञ हो नहीं तो मैं क्या करूंगी? ॥ ४८ ॥ भीष्म बोले हे वरवर्णिनि! दूसरेमें चित्त लगानेवाली तुमको कैसे ग्रहण किया जासक्ता है? हे वरारोहे! अब तुम स्वच्छन्दतासे अपने पिताके पास जाओ ॥ ४९ ॥ भीष्मके ऐसा कहनेपर वह वनको चली गई ॥ ५० ॥ और वे दोनों काशिराजकी कन्या अम्बा और अम्बालिका रूपवती उस विचित्रवीर्य राजाकी भार्या हुईं ॥ ५१ ॥ यह महाबली राजा विचित्रवीर्य उन दोनोंके साथ घर और उपवनोंमें अनेक विहारोंसे रमण करने लगा ॥ ५२ ॥ वह राजा नौवर्षतक उनके साथ मनोहर क्रीडा करता हुआ राजयक्ष्मा रोग होनेसे मरणको प्राप्त हुआ ॥ ५३ ॥ तब पुत्रके मरनेसे सत्यवती बहुत व्याकुल हुई और मंत्रियोंद्वारा पुत्रके प्रेतकार्य करातीहुई ॥ ५४ ॥ और बड़ी दुःखी होकर एकान्तमें भीष्मसे वचन कहनेलगी, हे महाभाग शंतनुपुत्र! तुम अपने पिता शंतनुका राज्य करो ॥ ५५ ॥ इन भ्राताओंकी भार्याओंको लेकर इस वंशकी पालना करो! जैसे यह ययातिका वंश नाश न हो सो करो ॥ ५६ ॥ भीष्मजी बोले हे माता! पिताके निमित्त जो मैंने प्रतिज्ञा की है क्या वह आपने नहीं सुनी? "न मैं राज्य करूंगा और न मैं दारसंग्रह करूंगा" ॥ ५७ ॥ तब सत्यवती विचार करने लगी कि, यह वंश किस प्रकार चलैगा? अराजकता होनेमें आलस्यसे सुख नहीं मिलता ॥ ५८ ॥ तब भीष्म कहने लगे हे भामिनि! चिन्ता मत करो, विचित्रवीर्यके क्षेत्रज पुत्र उत्पन्न कराओ-

॥ ५९ ॥ किसी कुलीन ब्राह्मणको बुलाकर वधूके संग नियोजन करो. कुलरक्षामें और आपत्तिमें निगममें इसका दोष क्षत्रियको नहीं है ॥ ६० ॥ हे शुचिस्मिते ! इसप्रकार पौत्रको उत्पन्न करके राज्य दो और उसके शासनसे मैं राज्यपालन करता रहूंगा॥ ६१ ॥ तब भीष्मके यह वचन सुन सत्यवतीने अपनेसे कन्यावस्थामें उत्पन्न हुए व्यास मुनिका 'जो पापरहित हैं' मनसे ध्यान किया ॥६२॥ स्मरण करतेही तपस्वी व्यासजी ! आनकर प्राप्त हुए और माताको प्रणाम करके वह दीव्यमान मुनि सन्मुख स्थित हुए ॥ ६३ ॥ भीष्मने उनकी अतिशय पूजा की और सत्यवतीने मान किया. वहां वह महातेजस्वी निर्धूम अग्निके समान स्थित हुए ॥ ६४ ॥ तब माताने वृत्तान्त सुनाय उन मुनिसे पुत्र उत्पन्न करनेंको कहा कि "विचित्रवीर्यके क्षेत्रमें तुम अपने वीर्यसे सुन्दर पुत्र उत्पन्न करो" ॥ ६५ ॥ व्यासजी माताके कहनेके कारण उसको आप्त-वाक्य मानते हुए कारण कि, शास्त्रमें लिखा है कि माता पिता जो कहैं सो करना, इस्से व्यासजीने स्वीकार किया. और ऋतुकालकी चिन्ता करते इस बातको स्वीकार कर वहां स्थित हुए ॥ ६६ ॥ जिस समय अम्बिकाने ऋतुस्नान किया तौ मुनिके समीप जाकर नेत्र मूंद लिये, तेज न सहसकी, इससे उसके अन्ध पुत्र हुआ ॥६७ ॥ जन्मांध देखकर सत्यवतीने अत्यन्त दुःखी होकर दूसरी वधूसे शीघ्र पुत्र उत्पन्न कर-नेको कहा ॥ ६८ ॥ इसके अनन्तर वह ऋतुकाल प्राप्त होनेपर व्यासके संग संगत हुई और मुनिके तेजके कारण उसने अपने शरीरमें चन्दन लगा लिया था, इसप्रकार अम्बालिकाने रात्रिमें गर्भधारण किया ॥ ६९ ॥ इसकारण उसके पुत्र पाण्डुवर्णका हुआ. वहभी राज्यके योग्य न हुआ. फिर एक वर्षके उपरान्त सत्यवतीने पुत्रके निमित्त वधूकी प्रेरणा की ॥ ७० ॥ फिर मुनिश्रेष्ठ व्यासजीको बुलाय और उनकी प्रार्थना करके रात्रिको उनके शयनागारमें प्रेषण करतीहुइ ॥ ७१ ॥ उनके तेजके कारण वधू वहां न गई उसने दासीको भेज दिया, उस दासीमें धर्मके अंशसे शुभ विदुर जी हुए॥ ७२ ॥ इसप्रकार व्यासजीने धृतराष्ट्रादि तीन पुत्र बड़े बली वंशकी रक्षा करनेको उत्पन्न किये ॥ ७३ ॥ हे पापरहितो ! आप लोगोंसे यह सब उनके वंशका समुद्भव मैंने वर्णन किया कि, इसप्रकार इस कुरुवंशको भ्रातृधर्मज्ञाता व्यासने रक्षित किया ॥ ७४ ॥ इस ग्रंथसन्दर्भसे यह दिखाया है कि, इस संसारमें बड़े वंशोंकी भी यह

दशा है, इस कारण इस संसारमें संसक्त न होकर देवीकी उपासना करके संसारसे निर्मुक्त होना चाहिये (११८४) श्लोकोंमें देवीभागवतका प्रथमस्कंध पूर्ण हुआ ॥

इति श्रीमच्छैवकुलोत्पन्नसुखानन्दात्मजगंगागर्भजज्वालाप्रसादमिश्रकृते देवीभागवतभाषाव्याख्याने प्रथमस्कंधे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

दोहा—शिवासहित श्रीशिवचरण, कमल अमल मन लाय ॥
प्रथमस्कन्ध सुभागवत, भाषा लिखी बनाय ॥ १ ॥
पढ़हिं सुनहिं कर प्रेमजो, सिद्ध होहिं सब काम ॥
बुध ज्वालाप्रसाद नित, भजहु शिवा शिवनाम ॥ ३ ॥

विचार ।

इन पाण्डु धृतराष्ट्रादिकी कथाको देखकर यह विचार नहीं करना चाहिये कि, ऐसेही सबको करना उचित है, अर्थात् चाहे जिससे वंशकी उत्पत्ति करा लें; किंतु यह इतिहासमात्र है, कुछ शास्त्रकी आज्ञा नहीं है. मनुजी कहते हैं:—नान्यस्मिन् विधवा नारी नियोक्तव्या द्विजातिभिः। अन्यस्मिन् हि नियुञ्जाना धर्मं हन्ति सनातनम्। इससे स्पष्ट है कि, द्विजातिस्त्री किसीमें नियुक्त न करनी. शास्त्रमें कथित है कि. जब युगपरिवर्तन होता है तब चित्रसृष्टि होती है, इस वंशकी सृष्टि भारतवर्षके संहारहीके निमित्त मिश्रप्रकारसे हुई; भगवान्! व्यासदेवजीने यह दिखाया है कि, मुझसे तपस्वीके वीर्यसे भी इन दोनोंने उत्पन्न होकर जो वंशरक्षाको किये गये थे परस्पर द्वेष करके कुलका अठारह अक्षौहिणियोंसहित संहार किया, और किसीकी बात न मानी फिर साधारण नियोग करनेवालोंका कुल कैसे चलकर सुखी होसक्ता है? भारतसंग्रामका आरंभ ऐसीही सृष्टिसे हुआ, है और यह भी दिखाया है कि, जो प्रथमही संस्कार और वीर्यमें दोष आता है वह बहुतकालतक बिगाड़ करता है, इसकारणसे इस कथासे नियोग न चलाना; किन्तु निषेध मानना चाहिये । इति शम् ।

इति श्रीदेवीभागवत भाषा प्रथमःस्कन्ध समाप्त.

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ श्रीमद्देवीभागवत ।

द्वितीयस्कन्ध २.

प्रथमोऽध्यायः १.

दोहा—अंशभूत जेहि जीव सब, वेद चार निश्वास
चिद्रूपा माया परा, शक्ति नमो सुखरास ॥ १ ॥

ऋषि बोले हे सूतजी ! ये अव्यक्त कारणवाले आपके वचन बड़े आश्चर्यके करनेवाले हैं सब हम तपस्वियोंको सन्देह उत्पन्न हुआ है ॥ २ ॥ हे मेधाविन् ! व्यासजीकी माता सत्यवती जिसको पहले राजा शंतनुने विवाहा ॥ २ ॥ उसके व्यासजी कैसे पुत्र हुए ? वह सती अपने भवनमें स्थित थी और व्यासजीका जन्म होनेपर फिर शंतनुने उसके साथ क्यों विवाह किया? ॥ ३ ॥ हे सुव्रत ! हे महाभाग ! जिसप्रकार उसके दो पुत्र हुए, वह विस्तारपूर्वक परमपावनी कथा कहिये ॥ ४ ॥ वेदव्यासकी और सत्यवतीकी उत्पत्ति कहो, क्योंकि हम सब ऋषि उसके सुननेकी इच्छा किये हुए हैं ॥ ५ ॥ सूतजी बोले कि, चतुर्वर्गकी देनेवाली उस परमशक्तिको प्रणाम करके आदिशक्तिका स्मरण कर पुराणकी सुन्दर कथा कहता हूं ॥ ६ ॥ जिसके उच्चारणमात्रसे निरन्तर सिद्धि होती है और जो वाणी बीजके बहानेसेही उच्चारण करनेपर मोक्ष देती है ॥ ७ ॥ उस भलीप्रकार सबकी सब कामना सिद्धिके निमित्त मनोवांछित देनेवाली देवीको स्मरण करना चाहिये ॥ ८ ॥ विमानपर चढ़कर ऊपर फिरनेसे उपरिचर नाम धारण करनेवाला धार्मिक सत्यसंगर चेदिदेशका राजा श्रीमान् ब्राह्मणोंकी पूजा करनेवाला था ॥ ९ ॥ उसके तपसे प्रसन्न होकर इन्द्रने एक बहुत उत्तम विमान स्फटिककी समान शुभ्र उसको दिया ॥ १० ॥ राजा उस दिव्यविमानपर आरूढ होकर सर्वत्र गमन करता था भूमिपर न आने और ऊपर फिरनेसे यह वसु उपरिचर नामवाला था ॥ ११ ॥ वह नित्य धर्मकरनेवाला राजा सबलोकोंमें विख्यात था, उसकी

श्रेष्ठ स्त्रीका नाम गिरिका था ॥ १२ ॥ और उसके बली अमित पराक्रमी पांच पुत्र थे उनको राजाने पृथक्२ स्थानोंमें राज्य देकर स्थापन कर दिया था॥ १३ ॥ एक समय उस गिरिकाने अपने स्वामीको कामना प्रगट की जब कि, वह ऋतुकालमें स्नान कर चुकी थी ॥ १४ ॥ जिसदिन उसने यह कहा था उसीदिन पितरोंने श्राद्धके निमित्त इससे मृगलानेको कहा था, यह सुन और भार्याको ऋतुमती विचार यह सोचने लगा ॥ १५ ॥ फिर पितरोंके वाक्यको गुरु मानकर उसका करना विचार और गिरिकाका मनमें स्मरण कर राजा मृगयाको विचरने लगा ॥ १६ ॥ वनमें स्थित हुआ वह राजर्षि मनमें भामिनीका स्मरण करने लगा, जो रूपसे साक्षात् लक्ष्मीकी समान थी ॥ १७ ॥ कामिनीका स्मरण करनेसे उसका वीर्य स्खलित हुआ, स्खलित उस वीर्यको राजाने बड़के पत्तेमें रखकर विचारा ॥ १८ ॥ कि, यह मेरा वीर्य वृथा न जाय ऐसा किसप्रकारसे हो ? फिर ऋतुकाल जानकर राजाने यह इच्छा की ॥ १९ ॥ सर्वथा यह मेरा अमोघवीर्य है इसमें सन्देह नहीं, इसे प्रियाके पास भेजूं यह मनमें विचारा ॥ २० ॥ महिषीके निकट वीर्यप्रस्थापन करनेका समय विचार कर उसने वीर्यको अभिमंत्रित कर बटपत्रमें स्थापन किया ॥ २१ ॥ अपने निकटवर्ती श्येनको स्थित देखकर उससे बोला हे महाभाग ! शीघ्र इसको लेकर हमारे घरको जाओ॥२२॥ और हे सौम्य मेरी प्रियाके निमित्त इसको घर लेजाओ और अभी गिरिकाके निमित्त तुम इसको प्रदान करो, क्योंकि इस समय उसका ऋतुकाल है ॥ २३ ॥ सूतजी बोले यह कहकर राजाने श्येनके निमित्त वह पर्ण दिया और गगनगतिवेत्ताओंमें श्रेष्ठ वह उसको ग्रहणकर आकाशमें उडगया ॥ २४ ॥ आकाशमें चोंचमें दोना लिये आते हुए उसको देखकर एक दूसरे श्येनने उसे आते हुए देखा ॥ २५ ॥ और मांस जानकर शीघ्रही उसकी ओर दौड़ा फिर आकाशमें दोनों तुण्डयुद्ध करने लगे ॥ २६ ॥ उन दोनोंके युद्ध करते में वह वीर्य यमुनाजलमें गिरपड़ा और वीर्यपुट गिरजानेपर वे दोनों खग यथास्थानमें चले गये ॥ २७ ॥ इसी अवसरमें कोई अद्रिकानामक अप्सरा सन्ध्यावंदनमें तत्पर ब्राह्मणके निकट आई थी ॥ २८ ॥ और जलकेलि करती हुई जलमें मज्जित हो विचरने लगी और उस वरवर्णिनीने ब्राह्मणके चरणोंको ग्रहण किया ॥ २९ ॥ वे प्राणायाममें तत्पर उस अप्सराको देखते हुए और उन्होंने शाप दिया कि, तू हमारे ध्यानमें विघ्न करती है इससे मछली हो जा ॥ ३० ॥ वह ब्राह्मणसे

शापित होकर यमुनामें विचरती थी. वह अद्रिक नामक श्रेष्ठ अप्सरा शफरीरूपको प्राप्त थी ॥ ३१ ॥ श्येनके पदसे भ्रष्ट उस वीर्यको मत्स्यरूपी वह अद्रिका ग्रहण करती हुई ॥ ३२ ॥ फिर कुछ समयके उपरांत उस मत्सीको दशवें महीनेमें मत्स्यजीवी दाशराजने जालमें बंधालिया ॥ ३३ ॥ उस मत्स्यजीने उसका उदर विदिर्ण किया, उससे मनुष्याकारका एक युग्म जोडा निर्गत हुआ ॥ ३४ ॥ एक कन्या शोभायमान और एक सुन्दर बालक उससे प्रगट हुआ. इस आश्चर्यको देखकर वह बडे विस्मयको प्राप्त हुआ ॥ ३५ ॥ इन दोनों बालकोंको राजाको निवेदन किया, राजानेभी विस्मयको प्राप्त हो बालकको पुत्ररूपसे ग्रहण किया ॥ ३६ ॥ वह धर्मात्मा सत्यसागर मत्स्य राजा हुआ, वह वसुका पुत्र महातेजस्वी पिताकी तुल्य पराक्रमी हुआ ॥ ३७ ॥ और उस कन्याको उस राजाने जलजीवीके निमित्त दिया. उसका नाम काली और मत्स्योदरी हुआ ॥ ३८ ॥ मछलीकी गन्धि आनेसे उसका नाम मत्स्य-गंधा हुआ, इस प्रकार वह वसुवीर्यजा कन्या दासके घरमें वृद्धिको प्राप्त होने लगी ॥ ३९ ॥ ऋषि बोले अद्रिकाको मुनिने शाप दिया, और वह मत्सी हुई और दास उसको विदीर्ण कर खागये ॥ ४० ॥ परन्तु यह कहिये उस अप्सराका क्या हुआ? हे सूतजी! उसके शापका अन्त कैसे हुआ? और किसप्रकार स्वर्गको गई? ॥ ४१ ॥ सूतजी बोले जब मुनिने उसको शाप दिया तब वह विस्मि... और दीन होकर रोती हुई स्तुति करनेलगी ॥ ४२ ॥ तब वह द... जिसप्रकार उस रोती हुईसे कहने लगे हे कल्याणी! शोक मत करो, तुम्हार... कन्याव्रत नष्ट मैं कहता हूं ॥ ४३ ॥ हे शुभे! मेरे शापसे तू मत्सी होगी और दो ...न्तु उत्पन्न जन्माकर शापसे मुक्त हो जायगी ॥ ४४ ॥ ऐसा कहते ही उसने नदीके ...पराशर मत्स्यदेह पाई और बालकोंको उत्पन्न कर शापसे मुक्त होगई ॥ ४५ ॥ मत्...में पको त्यागकर और दिव्यदेहको प्राप्त हो शापके अंतमें वह वरवर्णिनी देवम... आ प्राप्त हुई ॥ ४६ ॥ इस प्रकार वह वरानना मत्स्यगंधवाली हुई और वह पा... मैंने दासके घरमें बढनेलगी ॥ ४७ ॥ जिस समय सुन्दरकान्तिवाली मत्स्यगंधा ... २ ॥ ...रणही हुई तब अपने पिताके सब कार्य करनेलगी ॥ ४८ ॥ ...गी तुझको

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे भाषायां मत्स्य... ॥ ३४ ॥ और

प्रथमोऽध्यायः ॥ ... सूतजी बोले, ऐसा कह

द्वितीयोऽध्यायः २.

सूतजी बोले एक समय पराशर मुनि तीर्थयात्राको जातेहुए. वे महातपस्वी कालिन्दीके तटपर आतेहुये ॥ १ ॥ उस समय वे महात्मा भोजन करतेहुए निषादसे बोले हमको नावके द्वारा कालिन्दीके पार पहुँचाओ ॥ २ ॥ दास मुनिके वचन सुन नदीतटपर भोजन करते हुए उस मनोहर मत्स्यगंधा अपनी कन्यासे बोले ॥ ३ ॥ हे बाले! छोटी नौकासे मुनिको पार ले जाय. हे शुचिस्मिते! ये धर्मात्मा बड़े तपस्वी अभी जाना चाहते हैं ॥ ४ ॥ पिताके यह वचन सुनकर वह वासवी मत्स्यगंधा उडुपपर मुनिको बैठाय पार लेजाने लगी ॥ ५ ॥ इस प्रकार यमुनामें गमन करते २ दैवयोगसे उस सुलोचनीको देखकर मुनि कामार्त हुए ॥ ६ ॥ यौवनके चिह्न देखकर मुनि उसको ग्रहण करनेकी इच्छासे अपने दहिने हाथसे उसका दक्षिण हाथ छूते हुए ॥ ७ ॥ तब वह असितापांगी हँसती हुई ऋषिसे बोली क्या यह बात तुम्हारे कुल शास्त्र और तपके सदृश है? अर्थात् काम बढ़ानेको मत्स्यगंधाने हास्य किया ॥ ८ ॥ तुम वसिष्ठकुलोत्पन्न कुलशीलसम्पन्न होकर हे धर्मज्ञ! कामसे पीडित होकर क्या करना चाहते हो? ॥ ९ ॥ हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! पृथ्वीमें मनुष्यका जन्म बड़ा दुर्लभ है और उसमें भी ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति होनी हनहीं दुर्लभ है ॥ १० ॥ कुल, शील, शास्त्रसे तुम धर्मज्ञाता ब्राह्मणोंमें उत्तम हो, हे और अभी ाग. मत्स्यगंधाको देखकर तुम अनार्षभावको कैसे प्राप्त हुए हो? ॥ ११ ॥ ऋतुकाल है ॥ ...ोले ब्राह्मण! तुम मेरे शरीरमें क्या देखकर पाणिग्रहण करनेको समीप दिया और ग... तुम कामातुर होकर अपने धर्मको कैसे नहीं जानते? ॥ १२ ॥ फिर मनमें ॥ २४ ॥ ...ने लगी–आश्चर्य है कि, ये ब्राह्मण शृंगाररसमें मग्न होकर स्तब्धबुद्धि होकर उसे उ... ग्रहण करनेकी इच्छा करते हैं, पंचबाण(काम)से इनका मन बहुत व्याकुल हुआ फिर उ...नको इस समय कौन निवारण कर सक्ता है? यह शापभयसे विचार किया ॥ १३ ॥ वह वीर्य ...चारकर वह बाला मुनिसे बोली हे महाभाग! धैर्य करो मैं आपको पार तौ पहुँचा चले गये ...जो इच्छा हो सो करना ॥ १४ ॥ सूतजी बोले तब पराशर वह हितपूर्वक वचन तत्पर ब्राह्म... हाथ छोड़कर बैठ गये और नदीके पार गये ॥ १५ ॥ और पार जाकर कामसे मज्जित हो वि... ...र उन्होंने मत्स्यगंधाको ग्रहण किया तब कांपती हुई उस कन्याने आगे ॥ २९ ॥ वे प्रा... ॥ १६ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ! मुझमें मछलीकी दुर्गन्ध आती है, इससे तुमको कि, तू हमारे ध्यानमें विघ्न करे... समानरूपवालोंकाही संयोगसुख करनेवाला होता

है ॥ १७ ॥ उसके यह कहतेही मुनिने उसको क्षणमात्रमें योजनगंधा कर दिया और फिर उसका रूप और सुंदर मुख और भी दूना दमक उठा ॥ १८ ॥ इसप्रकार उस मनोहर कान्ताको कस्तूरीकी समान गंधवाली करके कामपीडित मुनिने दक्षिण हाथसे उसको ग्रहण किया ॥ १९ ॥ तब सत्यवती मुनिको कर धारण करता देखकर बोली हे मुने ! यह आते जाते लोग देखेंगे और तटपर स्थित पिताभी देखते हैं ॥ २० ॥ यह पशुधर्म तो मुझे अच्छा नहीं लगता कारण कि, दारुण है. हे मुनि ! रात्रि होनेतक कालकी प्रतीक्षा करो ॥ २१ ॥ मनुष्योंको इस कर्ममें रात्रिही कही है, दिन नहीं. दिनमें संग करनेसे महादोष है और यह सब प्राणी भी देखते हैं ॥ २२ ॥ हे महाबुद्धे देखो ! यह लोकनिन्दा दुरासद् है, तब यह उसका युक्तिसंगत वचन श्रवण कर उदारबुद्धिवाले मुनिने ॥ २३ ॥ अपने पुण्यके बलसे नीहार (कुहरे) की कल्पना की. जब नीहार होगया तो तट अत्यंत अंधकारसे आच्छन्न होगया ॥ २४ ॥ तब वह कामिनी मुनिसे मृदुतापूर्वक वचन बोलने लगी—हे द्विजश्रेष्ठ! मैं कन्या हूं आप तौ मुझे भोगकर यथेच्छ चले जाँयगे ॥ २५ ॥ परन्तु हे ब्रह्मन् ! आप अमोघवीर्य हैं, मेरी क्या गति होगी ? जो इस समय मैं गर्भवती होगई तौ पितासे क्या कहूंगी ? ॥ २६ ॥ आप तौ मुझे भोगकर चले जाओगे, परन्तु कहो तौ मैं क्या करूंगी ? पराशर बोले हे कान्ते ! इससमय मेरा प्रिय कर तू कन्याही हो जायगी ॥ २७ ॥ हे भामिनी ! जो तेरी इच्छा हो वह वर मांग. सत्यवती बोली हे मानद ! जिसप्रकार मेरे माता पिता और कोईलोग मुझको न जानें ॥ २८ ॥ और मेरा कन्याव्रत नष्ट न हो हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! तुम वही करो, चाहै पुत्र आपहीकी समान वीर्यवान् उत्पन्न हो ॥ २९ ॥ सदा मेरे शरीरमें यह गंध रहै और नवा यौवन बढ़ता रहै. पराशर बोले हे सुंदरि ! सुनो तुम्हारा पुत्र विष्णुके अंशसे संभूत पवित्र ॥ ३० ॥ त्रिलोकीमें विख्यात होगा. हे वरवर्णिनि ! किसी एक कारणसे मैं तेरे विषय कामार्त हुआ हूं ॥ ३१ ॥ हे वरानने ! इससे पहले कभीभी मुझको सम्मोह नहीं हुआ था मैंने अप्सराओंके रूपको देखकर भी सदा धैर्य धारण किया है ॥ ३२ ॥ दैवयोगसे ही तुझको देखकर मैं कामके वशीभूत हुआ हूं, सो कोई कारणही जानना. कारण कि दैव बड़ा दुरतिक्रम है ॥ ३३ ॥ कि, मैं दुर्गन्धवालीभी तुझको देखकर कैसे मोहित होगया ! हे वरानने ! तेरा पुत्र पुराणकर्ता होगा ॥ ३४ ॥ और वेदज्ञाता श्रेष्ठ वेदविभागकर्ता तीनों भुवनोंमें विख्यात होगा. सूतजी बोले, ऐसा कह

कर वह मुनि उस वशीभत हुईको भोगकर ॥ ३५ ॥ शीघ्रतासे फिर कालिन्दीके जलमें स्नान कर चले गये और वह सत्यवती भी शीघ्र गर्भवती हुई ॥ ३६ ॥ और उसी काल यमुनाद्वीपमें कामकी समान सुन्दर पुत्रको उत्पन्न करती हुई. और उत्पन्न होतेही वे मुनि अपनी मातासे बोले ॥ ३७ ॥ तपमेंही मन करके वह वीर्यवान् बोले हे मातः! तुम भी जाओ और मैं भी जाता हूं ॥ ३८ ॥ हेमहाभागे! मैं तपको जाता हूं, जब तुम स्मरण करोगी तभी आनकर प्राप्त हूंगा हे मातः! जब तुम्हारा कभी कुछभी कार्य हो ॥ ३९ ॥ तब मुझे स्मरण करना हे भामिनी! मैं शीघ्र आऊँगा, तेरा कल्याण हो मैं जाता हूं. चिन्ता त्यागकर सुखसे रहो ॥ ४० ॥ यह कहकर व्यासजीभी चले गये और वहभी अपने पिताके पास गई. द्वीपमें बालकके रखनेसे वे द्वैपायन कहलाये ॥ ४१ ॥ वे विष्णुअंशके योगसे जातमात्रही वृद्धिको प्राप्त होगये, और तीर्थ २ में स्नान करते तप करने लगे ॥ ४२ ॥ इसप्रकार सत्यवतीमें पराशरसे द्वैपायनका जन्म हुआ, उन्होंने कलियुग आया जानकर वेदशाखाओंको किया ॥ ४३ ॥ वेदविस्तारके कारणसे वे मुनि वेदव्यास हुए. उन्होंने महाभारत और पुराणसंहिताओंकी रचना की ॥ ४४ ॥ वेदविभागकरके शिष्योंको पढ़ाया. सुमन्तु, जैमिनि, पैल, वैशंपायन ॥ ४५ ॥ असित, देवल, और अनपे पुत्र शुकको पढ़ाया. सूतजी बोले हे मुनिश्रेष्ठ! यह सब कारण आपसे मैं ने कहा ॥ ४६ ॥ जिस प्रकार सत्यवतीपुत्रकी उत्पत्ति हुई, हे मुनिश्रेष्ठ! योगियोंकी उत्पत्तिमें सन्देह नहीं करना चाहिये ॥ ४७ ॥ बड़ोंके चरित्र न देखने गुणग्रहण करने. कारणसेही सत्यवतीकी मछलीके पेटमें उत्पत्ति हुई ॥ ४८ ॥ पराशरसे संयोग होकर फिर शंतनुसे हुआ, नहीं तौ मुनिका चित्त कामाकुल क्यों होता ॥ ? ५९ ॥ धर्मज्ञ होकर मुनिने अनार्यजुष्ट कर्म क्यों किया? यह आश्चर्यरूप उत्पत्ति कारणपूर्वक हुई है ॥ ५० ॥ इसको सुनकर मनुष्य पापरहित होता है, जो बुद्धिमान् मनुष्य इस श्रेष्ठ आख्यानको सुनता है ॥ ५१ ॥ उसको दुर्गति नहीं होती और वह सदा सुखी होता है ॥ ५२ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भाषायां
द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

ऋषि बोले हे सूत! आपने बड़े तेजस्वी व्यासजीकी उत्पत्ति कही, हे अनघ! सत्य-

वतीका विस्तारपूर्वक चारित्र कहा ॥ १ ॥ तौभी हे पापरहित ! एक हमारे चित्तमें सन्देह हैही, वह निवृत्त नहीं होता. हे धर्मज्ञ! आपने कहा भी है॥ २॥ कि व्यासजीकी माता सत्यवती है वह राजा शंतनुको किसप्रकार प्राप्त हुई? जो बड़े धर्मात्मा थे॥ ३॥ निषादपुत्रीको स्वयं राजाने कैसे वरण किया? जो राजा कुरुवंशमें धर्मिष्ठ थे उन्होंने कुलहीनको कैसे स्वीकार किया? ॥ ४ ॥ और शंतनुकी पहली पत्नी कौन थी और महात्मा भीष्मजी वसुका अंश किस प्रकार थे? ॥५॥ हे सूत! यह जो आपने कहा कि भीष्मजीने चित्रांगदको राजा बनाया जो सत्यवतीका पुत्र बड़ा वीरथा ॥ ६ ॥ और चित्रांगद वीरके मरनेपर फिर उसके भ्राताको राजा किया यह विचित्रवीर्य-नाम सत्यवतीका पुत्र था ॥७॥ जब कि, धर्मिष्ठ रूपवान् ज्येष्ठ भीष्मजी विद्यमान थे तब वे राज्यके ऊपर क्यों स्थापित किये गये ॥ ८ ॥ विचित्रवीर्यके मरनेपर सत्य-वती बड़ी दुःखी हुई और उसने अपनी बहुओंके द्वारा गोलक पुत्र किसप्रकार उत्पन्न किये? ॥९॥ उस वरवर्णिनीने भीष्मको क्यों न राज्य दिया? और वीर भीष्मने दार-संग्रह क्यों न किया ? ॥ १० ॥ और महातेजस्वी व्यासने यह अधर्म क्यों किया ? जो ज्येष्ठ होकर छोटे भ्राताओंकी भार्याओंमें पुत्र उत्पन्न किये ॥ ११ ॥ उन धर्मात्मा पुराणकर्ता मुनिने परदारा और विशेषकर भ्राताओंकी भार्याओंका कैसे सेवन किया?॥ १२॥ मुनिने यह जुगुप्सित कर्म क्यों किया? हे सूत! वेदकी अनुमति करनेवालेका क्या यह शिष्टाचार होता है ? ॥ १३ ॥ हे बुद्धिमान्! आप व्यासके शिष्य हो, यह हमारा सन्देह दूर करो; हम धर्मक्षेत्र में सुननेको अवकाशमें स्थित हैं ॥ १४ ॥ सूतजी बोले एक राजा इक्ष्वाकुवंशमें महाभिष था वह सत्यवान् धर्म-शील चक्रवर्ती और राजाओंमें उत्तम था ॥ १५ ॥ सहस्र अश्वमेध सौ वाजपेयसे उसने इन्द्रको सन्तुष्ट किया और उस महामतिने स्वर्ग पाया ॥ १६ ॥ एक समय महाभिष राजा ब्रह्मलोकको गया, सब देवता प्रजापतिके सेवनको आये ॥ १७ ॥ महानदी गंगाभी उन विभुका सेवन करनेको आई उस समय पवनके वेगसे उनका वस्त्र उड़ा ॥ १८ ॥ सब देवताओंने यह न देखकर ही मुख नीचा कर लिया था, परन्तु महाभिष राजा गंगाको निश्शंक देखने लगा॥ १९॥ नदीकी देवता गंगाने राजाको प्रेमसंयुक्त जानकर स्वयंभी मोहित होकर देखा इस प्रकार वे दोनों कामसे मोहित हो निर्लज्ज होगये॥ २०॥ ब्रह्माने क्रोध कर उन दोनोंको त्वरित शाप दिया कि हे राजन्! तुम अब फिर जाकर मर्त्यलोकम जन्म लो॥ २१॥ फिर वहां पुण्यअर्जन करके स्वर्गलोकको

आओगे और फिर गंगाकी रजामें प्रेम चेष्टा जानकर ब्रह्माजीने गंगासे कहा कि, तुमभी मर्त्यलोकमें गमन करो ॥ २२ ॥ तब यह दोनोंभी विमनस्क होकर शीघ्र ब्रह्माके स्थानसे चले और वे दोनों भूलोकके राजाओंको विचारने लगे कि, कहा जन्म लें? २३ तब पुरुवंशमें उत्पन्न प्रतीपको पिता बनानेकी इच्छा की, उसी समय आठौं वसु अपनी स्त्रियों सहित ॥ २४ ॥ यदृच्छासे रमण करनेको वसिष्ठके आश्रममें प्राप्त हुए उन पृथुआदि वसुओंमें कोई उत्तम वसु था ॥ २५ ॥ द्यौनामा उसकी भार्याने नन्दिनी गायको देखा, उसको देखकर उसने पतिसे पूँछा कि, यह उत्तम धेनु किसकी है? ॥ २६ ॥ द्यौने कहा हे सुन्दरी सुनो, यह वसिष्ठकी धेनु है कोई स्त्री वा पुरुष जो इसका दूध पिये ॥ २७ ॥ वह नित्यनवीन यौवन सम्पन्न दश सहस्रवर्ष जीता है, यह सुनकर सुन्दरी-बोली मनुष्यलोकमें मेरी सखी ॥ २८ ॥ राजर्षि उशीनरकी पुत्री परमशोभायमान है. हे महाभाग! उसके निमित्त इस दुधारी गाय बछड़ेसहित ॥ २९ ॥ कामदा नन्दिनीको प्राप्त कर दीजिये. जो इसका दूध पानकर मेरी सखी सदा ही ॥ ३० ॥ मनुष्योंमें एकही जरारोगरहित हो जाय. ये उसके वचन सुन द्यौने नंदिनीको हरणकिया ॥ ३१ ॥ उस अनघने दाता इन्द्रियनिग्रही मुनिका तिरस्कार कर पृथुआदिके सहित नंदिनीको ग्रहण किया नंदिनीके हरजानेपर महातेजस्वी वसिष्ठजी ॥ ३२ ॥ फल फूल लेकर शीघ्र आश्रममें आये, जब मुनिने अपने आश्रममें वत्स और धेनुको न देखा ॥ ३३ ॥ तब वे तेजस्वी उसको गह्वर वनोंमें ढूँढनेलगे जब धेनु न मिली तब महर्षिको बड़ा क्रोध हुआ ॥ ३४ ॥ और ध्यानसे उसको वरुणपुत्र वसिष्ठने वसुओं-द्वारा हरी जानकर क्रोध किया कि, मुझे तिरस्कार कर जिससे गौ हरलीहै ॥ ३५ ॥ इस कारण ये आठों वसु मर्त्यलोकमें निस्संशय जन्म लेंगे, इसप्रकार धर्मात्मा वसिष्ठने स्वयं उनको शाप दिया ॥ ३६ ॥ यह वार्ता सुन्तेही वे सब अपनेको शापित जान बड़े दुःखसे ऋषिके आश्रममें आये ॥ ३७ ॥ उनको प्रसन्न करतेहुए सब वसु शरण हुए तब उन दीन वसुओंको आगे खड़ा देखकर धर्मात्मा मुनि बोले ॥ ३८ ॥ कि अनुक्रमसे एकही वर्षमें तुम जन्म लोगे और उसी वर्षमें प्राणत्याग कर देंगे और जिसने मेरी प्यारी नंदिनी गौका हरण किया है ॥ ३९ ॥ इसकारण यह द्यौः मनुष्य लोकमें बहुतकालतक निवास करेगा, उन्होंने उस समय शापित होकर मार्गमें-जाती हुई गंगाको देखा ॥ ४० ॥ तब शापित और हाथ जोड़े वे चिन्तातुर उस नदीको देखकर बोले हेदेवि! हम अमृतभाशी देवता मनुष्यके जठरमें कैसे प्राप्त

होंगे ॥ यह हमको बड़ी चिन्ता है, इससे हे सरिद्वरे! तुम मातुश्री होकर हमको प्रगट करो॥ ४१ ॥ ४२॥ हे अनघे! शंतनुनाम राजर्षिकी भार्या हो हे गंगे! उत्पन्न होतेही हमको जलमें डाल दो॥ ४३॥ इसप्रकार निःसन्देह हम शापसे निर्मुक्त होंगे "ऐसाही होगा" यह सुनकर वे अपने लोकमें गये ॥ ४४ ॥ और वारंवार चिन्ता करती हुई गंगादेवीभी वहांसे चली प्रतीपका पुत्र महाभिषनाम राजा हुआ ॥ ४५ ॥ वे शंतनु नाम राजर्षि धर्मात्मा, सत्यप्रतिज्ञ हुए, प्रतीपने अमिततेजस्वी सूर्यकी स्तुतीकी ॥ ४६ ॥ तब उस जलसे सुरूपवती शुभानना गंगा निर्गतहोकर शालकी समान राजाकी दहिनी ऊरूपर स्थित हुई ॥ ४७ ॥ अंकमें बैठी हुई उस स्त्रीसे राजाने कहा हे वामोरु! तुम कौन और क्योंमेरी दक्षिण जंघापर विना पूँछे आ बैठी हो ॥ ४८ ॥ वह वरोरु बोली हे राजसत्तम! मैं कामके निमित्त आपके पास आई हूं हे कुरुश्रेष्ठ! तुम मेरा भजनकरो ॥ ४९ ॥ तब राजाने उस रूपयौवनवतीसे कहा मैं कभी इच्छासे परस्त्रीके निकट गमन नहीं करता हूं ॥ ५० ॥ हे भामिनी! हे शुचिस्मिते तुम मेरी दक्षिण ऊरूपर आलिंगनकरके स्थित हुई यह स्थान तो सन्तान और पुत्रवधूओंका होताहै ॥ ५१ ॥ हे कल्याणि! तुम हमारी पुत्रवधू हो तेरे पुण्यसे हमारे निःसन्देह पुत्र होगा॥ ५२॥ अच्छा यह कहकर वह दिव्यदर्शन कामिनी जलमें प्रविष्ट हुई और राजाभी उस स्त्रीकी चिन्ता करते घरमें प्राप्त हुए ॥ ५३॥ तब कुछ दिनों उपरान्त राजाको पुत्र हुआ उसके युवा होनेपर वन जानेके समय राजा बोले ॥ ५४ ॥ और वह स्त्रीका सब वृत्तान्त कहकर कहा यदि वह चारुहासिनी स्त्री वनमें तुमको प्राप्त हो ॥ ५५ ॥ तब उसकी इच्छासे उसे स्वीकार करना, और तू "कौन है ?" यह मेरी आज्ञासे उस्से मत पूँछना ॥ ५६ ॥ उसे धर्मपत्नी बनाकर अवश्यही तुम सुखी होंगे सूतजी बोले प्रसन्नमनराजा इसप्रकार पुत्रसे कहकर ॥ ५७ ॥ सब राज्यलक्ष्मी उसे सौंपकर वनको चलागया; वहां भी तप कर और अम्बिकाका आराधन करके ॥ ५८ ॥ देहत्यागनकर अपने तेजसे यह राजा स्वर्गको गया और महातेजस्वी शंतनु राजा सार्वभौम राज्यको प्राप्त होकर धर्मपूर्वक दण्डदेतेहुये प्रजापालन करने लगे ॥ ५९ ॥ ६० ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भाषायां
तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

सूतजीबोले कि, प्रतीपके स्वर्ग जानेपर धर्मात्मा सत्यपराक्रमी शंतनु मृगयाशील हुए और वनमें व्याघ्र मृगोंको मारते विचरते थे ॥ १ ॥ एक समय वह राजा गंगाके किनारे घोरवनमें विचरता हुआ एक मृगनयनी सुन्दर भूषण धारणकिये स्त्रीको देखता हुआ ॥ २ ॥ देखतेही राजाने विचार किया कि, यह अंगना नहीं है, जिसको पिताने बताया था, जो रूपयौवनसम्पन्न साक्षात् लक्ष्मीकी समान है ॥ ३ ॥ उसका मुखकमल पानकरतेहुए राजा तृप्त न हुए और उसमें चित्त लगनेके कारण हृष्टरोम होगये ॥ ४ ॥ वह भी उसको महाभिष मानकर अत्यन्त प्रेमयुक्त होगई और कुछेक मन्दहास्य करके राजाके आगे स्थित हुई ॥ ५ ॥ उस असितापांगीको देखकर राजा अत्यन्त प्रसन्न हुए और मनोहर वाणीसे सान्त्वन करतेहुए उसे बोले ॥ ६ ॥ हे वामोरु ! तुम देवी वा मानुषी कौन हो?गन्धर्वी यक्षी नागकन्या वा अप्सरा हो ॥ ७ ॥ हे वरारोहे ! जो कुछ भी तुम हो हे सुंदरी ! हमारी भार्या हो प्रेम स्मितसे युक्त तुम इस समय हमारी भार्या बनो ॥ ८ ॥ सूतजी बोले राजाने तौ उसको नहीं जाना कि, यह गंगा है और गंगा जानती थी कि, यह महाभिष राजा उत्पन्न हुआ है ॥ ९ ॥ पहले प्रेमके योगसे राजाकी वह वाणी सुनकर वह नारी हँसती हुई राजासे यह वचन बोली ॥ १० ॥ स्त्री बोली हे राजन् ! मैं तुमको जानती हूं तुम श्रेष्ठ प्रतीपके पुत्र हो तुमसे पतिको कौन सुलक्षण स्त्री इच्छा न करैगी ? ॥ ११ ॥ हे राजन् ! मैं वाचाबंधसे तुमको पति करसक्ती हूं हे राजन् ! मेरी प्रतिज्ञा सुनो तब मैं तुमको वरूंगी ॥ १२ ॥ कि जो कुछ भी मैं शुभ वा अशुभ कोई कामकरूं उसमें कभी निषेध न करना, न कभी मुझसे अप्रिय वचन कहना ॥ १३ ॥ हे राजन् ! जिस समय तुम मेरा वचन न मानोगे हे राजन् ! उसी समय मैं तुमको छोड़कर यथेष्ट स्थानको चली जाऊंगी ॥ १४ ॥ तब वह प्रार्थना पूर्वक हृदय में वसुओंका जन्म विचार कर और महाभिषका प्रेम हृदय में विचार कर ॥ १५ ॥ राजाके स्वीकार करने पर उनको अपना पति करती हुई इसप्रकार मानुषरूपिणी गंगा राजासे वरणको प्राप्त हो ॥ १६ ॥ वह सुन्दर वरवर्णिनी राजाके मन्दिरमें प्राप्त हुई, राजा उसको प्राप्त हो उपवनोंमें क्रीडा करने लगा ॥ १७ ॥ और भावकी जानने वाली वह वरांगना राजाको रमाने लगी, राजाको क्रीडा करते

बहुत वर्ष बीत गये और कछ न जाना ॥ १८ ॥ इसप्रकार वह उस मृगलोचनीके संग इन्द्र इन्द्राणीकी समान रमण करने लगा. वहभी सब गुणोंसे सम्पन्न और वह भी काम में विचरण ॥ १९ ॥ लक्ष्मीनारायणकी समान दिव्य मंदिरमें रमण करने लगे गंगा फिर कुछ समयके उपरान्त उसने राजासे गर्भधारण किया, और उस चारुलोचनीने ॥ २० ॥ वसुरूप पुत्रको उत्पन्न किया, उसको प्रगट होतेही गंगा में डाल दिया ॥ २१ ॥ इसीप्रकार दूसरे तीसरे चौथे पाँचवे छठे पुत्रको जलमें डाल दिया, इसप्रकार सातवें पुत्रके मरनेपर राजा शोच करने लगे ॥ २२ ॥ अब मैं क्या करूं भूमि में मेरा वंश कैसे स्थिर होगा, इस पापरूपिणीने सात पुत्र तौ जल मैं वहा दिये ॥ २३ ॥ यदि मैं इसको निवारण करूं तौ यह सर्वथा मुझे छोड़कर चलीजायगी और यह अष्टम गर्भ मेरे मनको ईप्सित प्राप्त हुआ है ॥ २४ ॥ और जो मैं इसको निवारण न करूंगा तौ यह जलमें निक्षेप करैगी और जानें आगे होंगे या न होंगे यह मुझे सन्देह है ॥ २५ ॥ और होनेपर भी फिर यह दुष्टा जाने रक्षा करै वा न करै, इसप्रकार सन्देह में अब मैं क्या करूं ॥ २६ ॥ और वंशके रक्षा करने में मुझे उत्कृष्ट यत्न करना चाहिये तब फिर समय पर जब यह आठवाँ वसु हुआ ॥ २७ ॥ कि, जिस स्त्रीजीतने मुनिकी नन्दिनी गौ हरण की थी. इस पुत्रको देखकर राजा उसको चरणोंमें गिरकर बोला ॥ २८ ॥ हे तन्वंगि, हे शुचिस्मिते मैं तेरा दास हूं मेरी प्रार्थना सुनो एक पुत्रके पोषणकी इच्छा करता हूं इसका जीवदान मुझे दे ॥ २९ ॥ हे करभोरु तुमने मेरे सात पुत्र शुभ नष्ट किये, हे सुश्रोणी अब आठवेंकी रक्षा कर मैं तेरे चरणों पर गिरता हूं ॥ ३० ॥ और जो कुछ तेरी इच्छा हो वह मैं दुर्लभ भी वर तुझको देसकता हूं हे परम सुन्दरि ! इस समय मेरे वंशकी रक्षा कर ॥ ३१ ॥ वेदवादी कहते हैं स्वर्गमें अपुत्रकी गति नहीं है, इस कारण हे वरारोहे ! मैं अष्टम पुत्रकी इच्छा करताहूं ॥ ३२ ॥ इसप्रकार कहनेसे भी जब वह कुमारके लेजाने हीकी इच्छा करनेलगी, तब राजा कुपित और दुःखी हो उस्से बोला ॥ ३३ ॥ हे पापिष्ठे ! मैं इस समय क्या करूं तू नरकसे क्या नहीं डरती पाप करने वालीकी पुत्री तू कौन है ॥ ३४ ॥ यथेच्छ रह, चाहैं जा पुत्र तौ यहीं रहैगा, हे पापे ! वंश नष्ट करनेवाली तुझको लेकर मैं क्या करूं ॥ ३५ ॥ राजाके ऐसा कहनेपर वह बालकको ग्रहण कर जाती हुई कोपपूर्वक यह वचन बोली ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! पुत्रकामनावाली मैं इस बालकको लेकर मैं वनमें पालन करूंगी अब तुमने

अन्यथा प्रतिज्ञा की इसकारण मेरा समय (पण)नष्ट होगया अब मैं जाती हूं ॥ ३७॥ तुम मुझे गंगा जानो मैं देवकार्यके निमित्त यहां आई थी; महात्मा वसिष्ठजीने पहले आठ वसुओंको शाप दिया ।।३८।। कि तुम मनुष्य योनिमें प्राप्त होवो तब वे चिन्ता युक्त हो मुझसे बोले हे पापरहित तुम हमारी माता हो ॥ ३९ ॥ हे राजन्! उनकी वार्ता देकर मैं तुम्हारी पत्नी हुई देवकार्य सिद्ध करनेकोही तुम मेरा प्रगट होना जानो ॥ ४० ॥ वे तुम्हारे पुत्र सात वसु तो ऋषिके शापसे मुक्त हुए अब कुछ कालतक यह एक स्थित रहैगा ॥ ४१ ॥ हे शन्तनु इस गंगाके दिये पुत्रको तुम ग्रहण करो उसको वसु देवता जानकर पुत्रका सुख भोगो ॥ ४२ ॥ हे महाभाग! यह महाबली गांगेय होगा; अब इसको वहां लिये जाती हूं जहां मैंने तुमको वरण किया था ॥ ॥ ४३ ॥ हे राजन्! इसको पालन कर युवा होनेपर मैं तुमको देदूंगी; माताके विना पुत्र न जी सक्ता और न सुखी होसक्ता है ॥ ४४ ॥ ऐसा कहकर गंगा उस बालकको लेकर अन्तर्धान होगई, राजा बड़ा दुःखी होकर अपने मंदिरमें स्थित हुआ ॥ ४५॥ एक भार्याका विरह दूसरे पुत्रका अदर्शन इस्से राजा नित्य चिन्तितहुए राज्य करने लगा ॥ ४६ ॥ कुछ दिनोंमें राजा एक दिन मृगया खेलने गया; और महिष शूकर मृगादिको मारता हुआ ॥ ४७ ॥ उस समय राजा शंतनु गंगाके किनारे गये और गंगाको थोड़े जलवाली देखकर राजाको चिन्ता हुई ॥ ४८ ॥ वहां बहुतसे बाणोंका प्रहार करते एक कुमारको देखा जो बड़ा धनुष चढ़ाये गंगातट पर क्रीडा करता था ॥ ४९ ॥ उसको देख राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ, यह भेद कुछ भी न जाना और यह मेरा पुत्र है वा नहीं, यह ध्यान नहीं हुआ ॥ ५० ॥ यह इसकी बाण त्यागमें लघुहस्तता देख अमानुष कर्मवाला जाना यह उसकी अनुपम विद्या और कामकी समान रूप देखकर ॥ ५१ ॥ राजा विस्मित होकर पूँछने लगा हे सौम्य ! तुम किसके पुत्र हो? यह वीर बाण छोड़तेही रहा और कुछ न बोला ॥ ॥ ५२ ॥ और अन्तर्धान होगया तब राजाको बड़ी चिन्ता हुई, क्या यह बालक मेरा पुत्र था! अब मैं क्या करूं कहां जाऊं ? ॥ ५३ ॥ तब राजा सावधान मनसे गंगाको प्रसन्न करने लगा तब गंगाने उसीप्रकार सुन्दर रूपसे दर्शन दिया॥५४॥ उस सुन्दर अंगवालीको देखकर राजा बोले हे गंगे! यह बालक कौन था ? कहां गया ? इसका दर्शन मुझे कराओ ॥ ५५ ॥ गंगा बोली हे राजन् यह आठवां वसु तुम्हारा पुत्र है, यह मैं तुमको देती हूं, यह गांगेय महातपस्वी है ॥ ५६ ॥ हे राजन् यह

सुव्रत तुम्हारे कुलकी कीर्ति करनेवाला होगा इसमें सन्देह नहीं. इसको सब वेद और सनातन धनुर्वेद पढा दिया है॥५७॥ यह तुम्हारा पुत्र वसिष्ठके आश्रममें स्थित रहा है; यह सब विद्याके विधान का जाननेवाला सब बातमें कुशल और पवित्र है ॥ ५८॥ जो कुछ परशुराम जानते हैं वह यह तुम्हारा पुत्र जानता है हे राजन् ! इसको ग्रहणकर जाओ और हे राजन्! आप सुखी होओ ॥ ५९ ॥ यह कह गंगा राजाको पुत्र देकर अन्तर्धान होगई, और राजा उसको लेकर बडे सुखी हुए॥६०॥ राजा उसको आलिंगन कर और मस्तक सूंघकर और रथमें आरोपण कर अपने नगरमें आये॥६१॥ और हस्तिनापुरमें आकर राजाने उत्सव किया, ज्योतिषीको बुलाकर अच्छा दिन पूँछा ॥ ६२ ॥ सब प्रजा और मंत्रियोंको बुलाकर यौवराज्यमें गांगेयको स्थापित किया ॥ ६३ ॥ उस सर्वगुणयुक्त पुत्रको युवराज करके वह धर्मात्मा सुखी हुए और गंगाका स्मरण न किया ॥ ६४ ॥ सूतजी बोले यह आपसे वसुओंके शापका कारण गांगेयकी उत्पत्ति और गंगाका संभव कहा ॥ ६५ ॥ गंगाको पवित्र अवतरण और वसुओंके संभवको जो मनुष्य सुनता है वह निस्सन्देह पापसे मुक्त होजाता है ॥ ६६ ॥ हे मुनिसत्तमो! यह पुण्य और पवित्र आख्यान कहा है जैसा वेदसंमित पुराण व्यासजीसे मैंने सुना है सो कहा ॥ ६७ ॥ यह श्रीमद्भागवत परमपवित्र अनेक कथाओंसे युक्त द्वैपायनके मुखसे उद्भूत पांच लक्षणोंसे युक्त है ॥ ६८ ॥ यह पुराण सुननेवालोंके सब पाप नाश करता शुभ और सुख देनेवाला है हे मुनिश्रेष्ठो यह पवित्र इतिहास आपसे कीर्तन किया ॥ ६९ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे भाषायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ५.

ऋषिबोले हेरोमहर्षणके पुत्र सूतजी! आपने वसुओंका संभव और गांगेयकी उत्पत्ति वर्णन की ॥ १ ॥ हे धर्मज्ञ! व्यासकी माता सत्यवती वह शंतनुको किस प्रकारसे प्राप्त हुई जो सुन्दर गन्धसे युक्त थी ॥ २ ॥ सो यह आप हमसे विस्तारसे कहो कि, धर्मात्मा राजाने दाशपुत्री किसप्रकारसे वरण की ॥ ३ ॥ सूतजी बोले—शंतनु राजर्षि मृगयाशील तौ थेही बहुधा मृग, महिष, रुरुओंको वनमें मारते विचरते थे ॥ ४ ॥ इसप्रकार पुत्रके साथ राजा चारवर्षतक आनंदमें रहे जिसप्रकार कार्तिकेयके साथमें शंकरजी ॥५॥ एक समय बाण छोड़ते हुए खड्ग सूकरोंको मारते कालि-

न्दीके वनमें प्राप्त हुए ॥ ६ ॥ उस समय राजाको अलौकिक गंध आनेलगी, यह कहांसे आती है यह विचारते वनमें विचरनेलगे ॥ ७ ॥ न तो यह मनोहर गंध मन्दार और न कस्तूरीकी है तथा चंपक मालती और केतकीमें भी ऐसी गंध नहीं है॥ ८॥ पूर्वमें ऐसा वायुमें भी कभी गंध नहीं सूंघा यह हमारी नासिकाको मोहित करता वायु कहांसे आता है ॥ ९ ॥ यह विचारते राजा वनमें विचरने लगे और गंधके लोभसे मोहित हुए शंतनु पवनके अनुगामी हुए ॥ १०॥ तब राजाने नदीके किनारे स्थित हुई उस चारुदर्शनाको देखा जो शृंगार किये अतिमनोहर, मलीन वस्त्रधारण किये थीं ॥ ११ ॥ उस असितापांगीको देख राजा बड़ा विस्मितहुआ और यह निश्चय होगया कि, यह इसीके शरीरकी गंधहै ॥ १२ ॥ इसप्रकारसे उसका अद्भुत रूप देखकर और उसकी अलौकिक गंध देख तथा अवस्थाभी वैसीही नवीन यौवन सुन्दर देखकर राजा विस्मित हुआ ॥ १३ ॥ फिर राजा मनमें निश्चय करके कहने लगा यह कौन है और यहां क्यों आई है ? यह देवांगना मानुषी गन्धर्वपुत्री नागकन्या जाने कौन है जिसके शरीरसे गन्ध चली आती है ॥ १४ ॥ इसप्रकार मनमें विचार कर जब कुछ विशेष निर्णय न हुआ तब यह विचारा कि, यह गंगा तो न हो इसप्रकार विचार कामवश हो तटपर स्थित उस्से पूँछने लगा ॥ १५ ॥ हे प्रिये ! तुम कौन किसकी कन्या हो, हे वरोरु ! तुम इस विजन स्थानमें क्यों स्थित हो हे चारुनेत्री ! तुम इकली हो कहो तो तुम्हारा अभी विवाह हुआ है वा नहीं ॥ १६ ॥ हे अराल (कुटिल) नेत्रवाली तुमको देखकर मैं कामके वशीभूत हुआ हूं तुम मनोरम कान्ता हो हे प्रिये ! तुम्हारी क्या इच्छा है जो मैंने पूँछा है इसका उत्तर विस्तारसे कहो ॥ १७ ॥ वह सुदती राजाके इस प्रकार कहनेसे हँसतीहुई कमललोचनी बोली हेराजन् ! पिताकी आज्ञामें वर्तमान तुम मुझको दाशकी पुत्री जानो ॥ १८ ॥ हेराजन् ! मैं कालिन्दीके जलमें धर्मार्थ नौका वहन करती हूं, हेराजन् ! इससमय हमारे पिता घर गये हैं, यह मैं तुमसे सत्य कहती हूं ॥ १९ ॥ वह बाला यह कह कर मौन हुई और कामार्त होकर राजानें उस्से कहा कुरुवंशोत्पन्न मुझ राजाको तू अपना पति बना जिससे तेरा यौवन वृथा न जाय ॥ २० ॥ हेमृगाक्षि ! मेरे और कोई पत्नी नहीं है तुम मेरी धर्मपत्नी हो मैं तेरा दास होकर सदा वशीभूत रहूंगा,हेप्रिये मुझको काम ताप देता है॥ २१ ॥हमारी प्रिया हमको छोड़कर चलीगई और फिर मैं ने वरण नहीं की इससे मैं व्याकुल हूं तुमको सब अवयवसे मनोहर देखकर मेरा मन

तुम्हारे वशीभूत हुआ है ॥ २२ ॥ राजाके यह अमृतकी समान वचन सुनकर वह दासकन्या सुगंधा सात्विकभावमें युक्त हो धीरतासे राजासे मनोहर वचन कहतीहुई ॥ २३ ॥ हेराजन्! जो कुछ मुझसे कहतेहो यह वैसाही है मैं तुम्हारे वचन मानुती हूं परन्तु मैं स्वतंत्र नहीं हूं आप इस विषयमें मेरे पितासे प्रार्थना करो ॥ २४ ॥ मैं स्वैरिणी नहीं हूं. किन्तु कुलीन दासकी पुत्री हूं मैं निरन्तर पिताके अधीन हूं यदि वह तुमको प्रदानकरैं तो मेरा पाणिग्रहण करना मैं तुम्हारे वशीभूत हूंगी॥ २५॥ हे राजन्! आपकोही कामदेव क्यों दुःखदेता है मैं तौ नवयौवन हूं क्या मुझे दुःखी नहीं करता, करता ही है परन्तु धैर्यसे कुलके आचार्यपरंपराकी रक्षा करनीही चाहिये ॥ २६ ॥ सूतजी बोले काममोहित राजा इस प्रकार उसके वचन सुन उसकी याच-नाको दासपतिके घरमें गया ॥ २७॥ राजाको आता देखकर दास बड़ा विस्मित हुआ राजाको प्रणाम कर हाथ जोड़कर बोला ॥ २८ ॥ दासने कहा हेराजन्! मैं आपका दास हूं आपके आनेसे मैं कृतार्थ होगया हेमहाराज! आज्ञा दीजिये किस निमित्त आपका आगमन हुआ है ॥ २९ ॥ राजाने कहा हे अनघ! मैं तुम्हारी कन्याको धर्मपत्नी करनेकी इच्छा करता हूं यदि तुम हमको दो तौ यह सत्यही कहता हूं ॥ ३० ॥ दासने कहा राजन्! यदि आप मेरी कन्यारत्न ग्रहणकी इच्छा करते हो तौ देने योग्यकोही दूंगा अदेय को नहीं दूंगा ॥ ३१ ॥ हेमहाराज! यदि आप कन्या माँगतेहो तौ आपके पीछे इसीका पुत्र राज्याभिषेकको प्राप्त हो और आपका पुत्र नहीं ॥ ३२ ॥ सूतजी बोले दासके वचन सुन राजाको बडी चिन्ता हुई गांगेयको मनमें विचार कर राजाने कुछ न कहा ॥ ३३ ॥ और कामातुर होकरभी घरको चलाआया बड़ी चिन्ता हुई घर जाकर स्नानभोजनभी न किया, न चिन्ताके कारण निद्रा हो आई ॥ ३४ ॥ उस समय भीष्मजी राजाको चिन्तित देखकर पिताके निकट जाय उनके असन्तोषका कारण पूँछने लगे ॥ ३५ ॥ हे पितः! कौन आपका दुर्जय शत्रु है मैं उसे आपके वशीभूत करूं हे नृपशार्दूल! आपको क्या चिन्ता है सो कहिये ॥ ३६ ॥ हे राजन्! जो पिताको दुःखी देखकर उसका दुःख नाश न करै उस पुत्रके उत्पन्न होनेसे क्या है और ऐसा पुत्र पूर्वजन्मका ऋणही ग्रहणकरनेको आया है, इसमें सन्देह नहीं॥ ३७॥ दशरथपिताकी आज्ञासे रामचन्द्र राज्य त्यागनकरके वनको लक्ष्मण जानकीके सहित गये और चित्रकूटपर निवासकिया ॥ ३८ ॥ हे राजन्! हरिश्चंद्रका पुत्र रोहित

पिताके निमित्त अपने शरीरको बेचता हुआ और ब्राह्मणके घर दास होकर रहा ॥ ३९ ॥ इसीप्रकार अजीगर्तका पुत्र शुनःशेफ पिताके बेचनेसे बिकगया और पीछे विश्वामित्रने उसको मुक्तकिया ॥ ४० ॥ पिताकी आज्ञासे परशुरामने माताका शिर छेदन किया, और गुरुकी आज्ञा बड़ी है इस बातके करनेके निमित्त उसने अकार्यभी किया ॥ ४१ ॥ हे राजन् ! यह शरीर आपहीका है यद्यपि मैं कुछ करने में समर्थ नहीं हूं तथापि कहो तुम्हारा क्या प्रिय करूं मेरे होते आपके शोचकरना न चाहिये मैं असाध्यअर्थकोभी सिद्ध करसकता हूं ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! कहिये आपको क्या चिन्ता है ! मैं धनुष लेकर उसको अभी निवारण करूं यदि मेरे देहसे आपका कार्य सफल होता हो तौ यहभी आपकी इच्छा सफल हो सकती है॥४३॥ उस पुत्रको धिक्कार है जो पिताकी इच्छा सम्पादन करनेमें समर्थ होकरभी उसको प्रतिपादन नहीं करता उस पुत्रके उत्पन्न होनेसे क्या है जो चिन्तासे पिताका उद्धार नहीं करता है ॥ ४४ ॥ सूतजी बोले। इसप्रकार राजा शंतनु पुत्रके वचन सुनकर मनमें लज्जित होतेहुए पुत्रसे बोले ॥ ४५ ॥ हे पुत्र ! मुझको यह बडी चिन्ता है कि तुम एकही मेरे पुत्र हो शूर बलवान् मानी और संग्राममें अपराङ्मुख हो॥ ४६ ॥ हेपुत्र ! एक सन्तान होनेसे मेरा जीवनवृथाही है, यदि संग्राममें तुम्हारा शरीर पात हो तौ मैं क्या करूंगा ॥ ४७॥ यह मुझे बड़ी चिन्ता है इस्से मैं दुःखी हूं हे पुत्र ! और कोई चिन्ता नहीं जिसको मैं तुमसे वर्णनकरूं ॥ ४८ ॥ सूतजी बोले यह वचन सुन भीष्मजीने मंत्रिवृद्धोंसे पूँछा कि लज्जाके कारण पिताजी हमसे तौ नहीं कहते ॥ ४९ ॥ तुम महाराजसे पूँछकर उनके मनकी बात जानो, यथार्थ मुझसे आनकर कहो मैं तत्काल उसको सम्पादन करूंगा ॥५० ॥ यह सुनकर वे राजाके पास जाय और कारणको जानकर उस वार्ताको भीष्मसे कहते हुए भीष्मने सुनकर विचार किया ॥ ५१ ॥ और उन मंत्रियोंको साथ लेकर दासके घरको गये और जाह्नवीसुत्र भीष्मने नम्र हो प्रेमपूर्वक उससे कहा ॥ ५२ ॥ भीष्म बोले ! हे दास मेरे पिताके निमित्त अपनी सुमध्यमा कन्याको दीजिये यह तुम्हारी कन्या मेरी मातारूप होगी हे परंतप मैं इसका दास हूंगा ॥ ५३ ॥ दाशराज बोले हे महाभाग ! तुम इसको ग्रहणकर अपनी पत्नी बनाओ कारण कि पिताको देनेसे तुम्हारे होते इसका पुत्र राजा नहीं होसकता ॥ ५४ ॥ गांगेय बोले यह दाशेयी मेरी माता हो मैं राज्य नहीं करूंगा, इसमें सन्देह नहीं सर्वथा इसीका पुत्र राज्य करैगा॥ ५५॥

दाशराजने कहा यह सत्य है पर तुमसे उत्पन्न हुआ बलवान पुत्र अवश्यही बलसे राज्य ग्रहण करैगा ॥ ५६ ॥ गांगेय बोले यदि ऐसा है तौ मैं दारसंग्रहही न करूंगा, यह मेरा सत्यवचन है, आजसे मैंने यह बड़ा भीष्म 'भयंकर' व्रत अवलम्बन किया ॥५७॥सूतजी बोले दाशराजने इसप्रकार उनकी प्रतिज्ञाका स्मरण कर सर्वांगशोभना सत्यवती उस राजाको प्रदान की ॥ ५८ ॥ इस विधानसे उस राजाने सत्यवतीको ग्रहण किया और यह राजाको विदित नहीं था कि, इसके उदरसे व्यासकी उत्पत्ति होचुकी है, इससे राजामें दोष नहीं है ॥ ५९ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे भाषायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

सूतजी बोले इसप्रकारसे शंतनुने सत्यवतीका वरण किया, चित्रांगद और विचित्रवीर्य दो पुत्र हुए जो कालवश मृत्युको प्राप्त हुए ॥ १ ॥ व्यासजीसे अंधे धृतराष्ट्र हुए कारण कि मुनिको जटिल देखकर स्त्रीने नेत्र मूंदलिये ॥ २ ॥ दूसरी राजकन्या व्यासजीको देखकर श्वेतरूपा होगई इसकारण व्यासके कोपसे पाण्डु पुत्र हुआ॥३॥ और विविध वार्ताज्ञानमें कुशल दासीने व्यासजीको सन्तुष्ट किया इस कारण धर्मके अंशसे सत्यवाक् विदुर उत्पन्न हुए ॥ ४ ॥ इससे वंशक्षयमें एकबार गमनसे पुत्र होनेमें निर्दोषता कलियुगातिरिक्त युगोंमें जाननी. छोटा होनेपरभी पाण्डुकोही मंत्रियोंने राज्य दिया. अन्धताके कारण धृतराष्ट्रको राज्यमें नियुक्त न किया ॥ ५ ॥ भिष्मकी अनुमतिसे महाबली पाण्डुने राज्य किया और बुद्धिमान् विदुरको मंत्रिकार्यमें नियुक्त किया ॥ ६ ॥ धृतराष्ट्रकी दो भार्या थीं गांधारी और सौबली दूसरी वैश्या गृहस्थकर्ममें प्रतिष्ठित थी ॥ ७ ॥ और पाण्डुकोभी दो ही भार्या थीं शूरसेनकी कन्या कुन्ती और मद्रदेशकी माद्री ॥८॥ गांधारीके सौ पुत्र हुए और वैश्यासे एक पुत्र युयुत्सु हुआ ॥ ९ ॥ कुन्ती जब प्रथम कन्या थी तब उसके सूर्यसे एक परम मनोहर पुत्र पिताके घरही उत्पन्न हुआ पीछे पाण्डुने उसको विवाहा ॥ १० ॥ ऋषि बोले हे सूतजी ! आप यह क्या विचित्र बात कहते हो ? कि पहले पुत्र हुआ और पीछे पाण्डुने उस्से विवाह किया ॥ ११ ॥ कन्यावस्थामें सूर्यसे कर्ण कैसे उत्पन्न हुआ? सो विस्तारसे कहो, और फिर वह कन्या कैसे हुई और पाण्डुने कैसे विवाही?॥ १२॥ सूतजी बोले हे ऋषियो!जिस समय शूरसेनकी पुत्री

बालक थी, उस समय राजा कुन्तिभोजने उसको मांगलिया था ॥ १३ ॥ और कुन्तिभोजने उसको अपनी पुत्रीरूपमें कल्पना किया और अग्निहोत्रकी सेवामें उस चारुहासिनीको नियुक्त किया॥ १४॥ वहां दुर्वासा मुनि आकर चार महीनेतक स्थित रहे, मुनिकी कुन्तीने इतनी सेवा की कि, वे प्रसन्न होगये ॥ १५ ॥ और जिसके द्वारा देवता आजायँ इस प्रकारका मुनिने उनको मंत्र दिया, कि देवता आन-कर शीघ्रही मनोरथ पूर्ण करसकें ॥ १६॥ जब मुनिराज चले गये, तब कुन्तीने मंत्रके निश्चयके निमित्त घरमें विचार किया कि, किस देवताका चिन्तन करूं ॥ १७ ॥ उसी समय उसने सूर्यको उदय होतेहुए देखा और मंत्रोच्चारण करके सूर्यको बुलाया ॥ १८ ॥ तब सूर्य देव उस अपने मण्डलसे मनोहर मनुष्यका रूप धारण करके उसके समीप मन्दिरमें प्राप्त हुए ॥ १९॥ उस समय सूर्यदेवको आता देखकर कुन्ती बड़ी विस्मित हुई और कंपित होकर तत्कालही रजोदोषको प्राप्त हुई ॥ २० ॥ और हाथ जोड़कर वह सुलोचनी सूर्यसे कहने लगी मैं आपके दर्शनसे ही कृतार्थ होगई. अब आप अपने मण्डलको जाइये॥ २१ ॥ सूर्य बोले हे कुन्ति! तैं ने मंत्रबलसे हमकों क्यौं बुलाया? और बुलाकर आगे स्थित हुए मुझको तू क्यों नहीं भजती है? ॥ २२ ॥ हे वामोरु! भावसंयुक्त होकर तुम मुझे भजो मैं सकाम हूं इस मंत्रसे मैं तुम्हारे अधीन हूं मुझसे क्रीडा करो ॥ २३ ॥ कुन्ती बोली हे धर्मज्ञ! हे सबके साक्षी! मैं कन्या हूं इसकारण मेरे ऊपर कृपा करो मैं आपको प्रणाम करती हूं कुलकन्या होनेके कारण आपको मुझे दुर्वाच्य करना उचित नहीं है॥ २४ ॥ सूर्य बोले यदि हम वृथा चलेगये तौ बड़ी लज्जा होगी और सब देवताओंमें मोघदर्शन होनेके कारण मैं वाच्यताको प्राप्त हूंगा॥ २५॥ और उस ब्राह्मणको शाप दूंगा जिसने तुझको मंत्र दिया है और वृथा बुलाया इसकारण तुझकोभी शाप दूंगा जो न भजैगी॥ २६॥ और मेरे संयो-गसे तेरा कन्याधर्म स्थिर रहैगा कोईभी जान न सकैगा,और हे वरानने! तेरा मेरे समान पुत्र होगा ॥ २७ ॥ यह कहकर सूर्यने अपनेमें अनुरक्त और लज्जित कुन्तीको भोगकर मनवांछित वर दे गमन किया॥ २८॥ तब कुन्तीने गर्भ धारण किया और गुप्त मंदिरमें स्थित हुई. केवल इस बातको एक धात्रीने जाना और माता आदि किसीने न जाना ॥ २९ ॥ उस गुप्तमंदिरमें इसके बड़ा मनोहर पुत्र हुआ, जो कवच और दिव्य कुण्डल धारण किये था ॥ ३० ॥ दूसरे सूर्य अथवा दूसरे कुमारहीकी समान था और धात्री उसको हाथमें लेकर उस लज्जित हुईसे बोली ॥ ३१ ॥ हे करभोरु! इस समय तुम

क्या चिन्ता करतीहो ? मैं तुम्हारी आज्ञा करनेको स्थित हूं. तब कुन्ती उस पुत्रको मंजूषामें रखनेकी इच्छा करती हुई बोली ॥ ३२ ॥ क्या करूं? दुःखी हूं इसकारण प्राणवल्लभ पुत्रको त्यागन करती हूं, मैं मन्द भागिनी हूं जो सर्व लक्षणसम्पन्न तुमको त्यागन करती हूं ॥ ३३ ॥ तुझको सगुणा निर्गुणा सर्वेश्वरी अंबिका रक्षा करै और कामदा कात्यायनी तुझको अपना दुग्धदान करै, तुझ प्राणप्रियके मुखकमलका मैं कब दर्शन करूंगी ? तुझ सूर्यपुत्रको विजन वनमें दुष्ट स्वैरिणीकी समान त्यागन करती हूं ॥ ३४ ॥ मैंने पूर्वजन्ममें त्रिलोकजननीका आराधन नहीं किया, न शिवादेवीके सुखकारी चरणकमलोंका कभी ध्यान किया, इससे मैं दुर्भागिनीकी समान निर्जन वनमें मुझको त्यागन करती हूं और इस अपनी बुद्धिसे किये पातकको स्मरण करतीहुई तापित हूंगी ॥ ३५ ॥ सूतजी बोले ऐसा कहकर कुन्तीने उस पुत्रको मंजूषामें धरदिया, और मनुष्योंके देखनेके भयसे उसको धायके हाथमें दिया ॥ ३६ ॥ और आप स्नान करके पिताके घरमें रही और गंगामें बहतीहुई वह मंजूषा अधिरथीको मिली ॥ ३७ ॥ उसकी भार्या राधाने इस पुत्रको पालन किया, उससे बलवान् बली कर्ण हुआ. सूतजीके स्थानमें पालित हुआ ॥ ३८ ॥ स्वयंवरमें कुन्तीको राजा पाण्डुने विवाहा और मद्रराजकी कन्या माद्री दूसरी भार्या हुई ॥ ३९ ॥ एक समय महाबली पाण्डु वनमें मृगया करतेहुए मृगरूपमें रमण करते एक मुनिको मारतेहुए ॥ ४० ॥ तब क्रोधकर उन मुनिने पाण्डुको शाप दिया कि, तुमभी जब स्त्रीसे रमण करोगे तब अवश्य तुम्हारा मरण होगा ॥ ४१ ॥ जब मुनिने इसप्रकार शाप दिया तब पाण्डुको बड़ा शोक हुआ और राज्य छोड़कर दुःखी हो वनमें निवास करनेलगे ॥ ४२ ॥ कुन्ती और माद्री दोनों भार्या उनके संग गईं, हे मुनिश्रेष्ठो ! वे सतीधर्म सेवन करनेलगीं ॥ ॥ ४३ ॥ पाण्डु गंगाकिनारे स्थित हुए मुनियोंके आश्रमोंमें धर्मशास्त्रको श्रवण करते दुश्चर तप करनेलगे ॥ ४४ ॥ एक समय धर्मसम्बन्धिनी कथा श्रवण करते मुनियोंके कहे इस पुष्टवचनको सुनते हुए ॥ ४५ ॥ हे परंतप! जो पुत्रवान् नहीं है उसको स्वर्गमें गति नहीं है. जैसे बने वैसे पुत्र प्रकट करै ॥ ४६ ॥ अपने वीर्यसे, उत्पन्न कन्याका पुत्र, क्षेत्रज, गोलक, कुण्ड, सहोढ जो गर्भिणी व्याही गई उससे उत्पन्न, कन्यावस्थामें हुआ कानीन, क्रीत तथा वनमें प्राप्त हुआ ॥ ४७ ॥ पुत्रपालनामें अशक्तताके कारण किसीने बेचदिया, वह धनग्राही पुत्र है, यह पुत्र उत्तरोत्तर निकृष्ट हैं यह निश्चय है ॥ ४८ ॥ यह सुनकर राजाने कमललोचनी कुन्तीसे कहा कि, तुम किसी तपस्वी मुनिके निकट गमन करके

पुत्र उत्पन्न करो॥ ४९॥ और मेरी आज्ञासे तुझको दोष न लगेगा कारण कि, पहले महात्माओंकी भी आज्ञा इसी प्रकार है. सौदासने वसिष्ठसे पुत्र उत्पन्न कराया था ऐसा हमने सुना है ॥ ५० ॥ कुन्तीने कहा मनुष्योंसे क्यों पुत्र प्रगट किया जाय मेरे पास एक कामदायक मंत्र है हे प्रभो ! जो पहले दुर्वासाने दिया था और सब सिद्धिका देनेवाला है ॥ ५१ ॥ हे राजन् ! इस मंत्रसे मैं जिस देवताका निमंत्रण करूं सो अवश्य मेरे समीप आवैगा इसमें सन्देह नहीं ॥ ५२ ॥ तब अपने स्वामीके वचनसे वह धर्मराजका स्मरण करके संगम करके युधिष्ठिरको उत्पन्न करती हुई ॥ ५३ ॥ वायुसे भीम इन्द्रसे अर्जुनको प्रगट किया,इस प्रकार वर्ष वर्षमें एक २पुत्र प्रगट किया,यह तीन वर्षमें कुन्तीके महाबली पुत्र हुए॥ ५४॥ तब माद्रीने पाण्डुसे कहा हे सत्तम! हमको भी पुत्र दो. हे महाभाग!मैं क्या करूं? मेरा दुःख नाशकरो ॥ ५५ ॥ तब पतिकी प्रार्थनासे दयाकरके कुन्तीने माद्रीकोभी वह मंत्र दिया और पतिकी अनुमतिसे एकही पुत्रका प्रबन्ध हुआ ॥ ५६ ॥ परन्तु अश्विनीकुमारदेवताओंके स्मरण करनेसे नकुल और सहदेव यह दो पुत्र उसके हुए ॥ ५७ ॥ इसप्रकार पाण्डुके क्षेत्रमें पांच पाण्डव उत्पन्न हुए. हे द्विजोत्तमो. यह उस वनमें प्रतिवर्षमें एक एक हुए॥५८॥ एक समय पाण्डुने निर्जनमें माद्रीको देखकर प्राप्त मृत्यु होनेसे कामार्त होकर ग्रहण किया ॥५९॥ 'ऐसा नहीं ऐसा नहीं करो' उसने बहुत निषेधभी किया परन्तु उन्होंने ज्योंही प्रियाको आलिंगन किया कि, भूमिपर गिरगये ॥६० ॥ जैसे वृक्षके गिरनेसे उसकी बेलभी पतित होजाती है इसीप्रकार वह बाला पतित होकर रोदन करनेलगी ॥ ६१ ॥ उस बातको श्रवणकर कुन्ती रोती हुई आई और बालकभी तथा महाभागा मुनिभी इस कोलाहलको श्रवण करके ॥ ६२ ॥ कि, पाण्डु मृतक हुए हैं आये तब विधिपूर्वक अग्निकी विधिकरके गंगाकिनारे दाह करते हुए ॥६३ ॥ माद्री दोनों पुत्र कुन्तीको समर्पण करके संगही सती हुई और धर्मको आगे करके सत्यकामसे सती हुई ॥ ६४ ॥ वहांके रहनेवाले मुनि जलदानादि करके पांचपुत्रयुक्त कुन्तीको हस्तिनापुरको लाये ॥ ६५ ॥ उसको आयाहुआ देख भीष्म और विदुर और धृतराष्ट्रके स्थानमें सब नगरनिवासी आये ॥६६॥ और वे सब पूँछनेलगे हे वरानने ! यह किसके पुत्र हैं!कारण कि, यह शापको जान्तेथे तब कुन्ती बड़ी दुःखी हुई॥ ६७॥ और कहा कि, यह पुत्र कुरुकुलमें देवताओंसे प्रगट हुए हैं और विश्वासके निमित्त कुन्तीने फिर सब देवताओंको बुलाया ॥६८॥ उन्होंने आकाशमें आनकर कहा कि

यह हमारेही पुत्र हैं. तब भीष्मने देवताओंके वाक्यसे देवपुत्रोंका सत्कार किया ॥ ६९ ॥ और पुत्र तथा कुन्तीको लेकर सब हस्तिनापुरको गये और भीष्मआदि प्रसन्नचित्त हो यथायोग्य धनादिसे उनका पालनकरते हुए ॥ ७० ॥ इसप्रकार यह कुन्तीसुत भीष्मद्वारा पालितहुए ॥ ७१ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे भाषायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ७.

सूतजी बोले इन पांचोंकी भार्या द्रौपदी सामान्यतासे हुई. पांचपुत्र उसके पांचो पतियोंसे बड़े सुन्दर हुए ॥ १ ॥ कृष्णकी भगिनि सुभद्रा अर्जुनकी भार्या हुई. जिसको कृष्णकी सम्मतिसेही अर्जुनने हरण किया था ॥ २ ॥ उससे महाबली अभिमन्यु उत्पन्न हुआ और द्रौपदीके पांच पुत्र तथा अभिमन्यु भारतके युद्धमें निहत हुए ॥ ३ ॥ विराटकी पुत्री अतिसुन्दरी अभिमन्युकी स्त्री थी, वह गर्भवती थी उससे अश्वत्थामाकी बाणाग्निसे दग्ध होनेके कारण मृतक पुत्र उत्पन्न किया ॥ ४ ॥ तब उस भागिनेयके पुत्रको श्रीकृष्णने जीवित किया द्रोणपुत्रकी बाणाग्निसे जिवाना कृष्णका अद्भुत प्रतापथा ॥ ५ ॥ वंशके क्षीण होनेपर पुत्रने जन्म लिया इसकारण पृथ्वीमें उसका परीक्षित् नाम हुआ ॥ ६ ॥ अपने सौ पुत्र नष्ट होनेसे धृतराष्ट्र बड़े दुःखी हुए और भीमकी वाक् बाणीसे पीडित होकर भी पाण्डवोंके राज्यमें निवास करते रहे ॥ ७॥ और पुत्रशोकसे व्याकुल हुई गांधारीभी स्थित रही और युधिष्ठिर दिनरात उनकी सेवा करनेलगे ॥ ८ ॥ और धर्मात्मा विदुरभी उनको समझाते थे और युधिष्ठिरकी आज्ञासे निरन्तर उनके समीप रहते ॥ ९ ॥ और धर्मात्मा धर्मपुत्रभी पिताकी सेवा करते थे मानो उनके पुत्रका शोक विस्मरण कराते थे ॥ १०॥ जिसप्रकारसे धृतराष्ट्र सुन ले इस प्रकारसे बड़े क्रोधित होकर भीमसेन मनुष्योंको सुनाते उनको वाग्बाणसे विद्ध करते थे ॥ ११ ॥ मैंने दुष्ट अन्ध तेरे सब पुत्र युद्धमें मारे और दुश्शासनका रुधिर हृदयवेधकर पिया ॥ १२ ॥ अब यह निर्लज्ज ! मेरे दिये अन्नको खाता है, ध्वांक्ष और श्वानकी समान यह वृथा जीता है ॥ १३॥ इस प्रकार प्रतिदिन रूखे वचन कहता और धर्मराज उनको समझाते कि, यह मूर्ख है ॥ १४ ॥ इस प्रकार दुःखसे अठारह वर्ष वहां व्यतीत किये तब धृतराष्ट्रने युधिष्ठिरसे वन जानेको पूँछा॥ १५॥जब धृतराष्ट्रने धर्मपुत्रसे वन जानेकी प्रार्थना करी कि,

अब मैं पुत्रोंके निमित्त निर्वाप अंजली देनेकी इच्छा करता हूं ॥ १६ ॥ कारण कि, यहां तौ भीमसेनने सबका और्ध्वदैहिक किया, परन्तु पूर्ववैरके स्मरणके कारण मेरे पुत्रोंका नहीं किया है॥ १७॥ जो आप मुझे धन दे तो मैं और्ध्वदैहिक कर्म करके वनमें स्वर्गप्राप्तिके निमित्त तप करनेको जाऊं ॥ १८ ॥ तब एकान्तमें धर्मराजको विदुरने कहा तब उन्होंने धृतराष्ट्रको धन देनेकी इच्छा की ॥ १९ ॥ और सब अपने कुटु-म्बियोंको बुलाकर राजाने कहा हे महाभागो ! पिण्डदानकी इच्छावाले पिताको धन देतेहैं ॥ २० ॥ महापराक्रमी अपने बड़े भ्राताके यह वचन श्रवण कर क्रोधित हो भीमसेन कहनेलगे॥ २१ ॥ हे महाभाग! दुर्योधनके निमित्त आप क्यों धन देतेहो. इस-से तो यह अंधेभी सुखी होंगे. यह आपकी बुद्धिमानीकी बात नहीं है ॥ २२ ॥ हे नाथ ! आपकी दुर्मंत्रणासेही हमने वनमें दुःख पाया और हे महाभाग ! आपके सामने उस दुरात्माने द्रौपदीको बुलाया॥ २३ ॥ हे सुव्रत! आपहीके प्रसादसे हमको विराट्-नगरमें निवास करना पड़ा ! और हम सब अमितपराक्रमी होकर मत्स्यके यहां दासवत् रहे ॥ २४ ॥ यदि आप द्यूत न खेलते तब यह संक्षय किस प्रकार होता और आपहीके कारण जरासंधका वध करनेवाला होकर भी मुझे रसोइया बनना पड़ा ॥ २५ ॥ नहीं तो अर्जुनसे पराक्रमीको स्त्रियोंमें बृहन्नला क्यों बनना पडता? हे महाबाहो! इन्द्रपुत्र होकरभी आपहीके कारण यह स्त्रीरूपधारी बने ॥ २६ ॥ जिस हाथमें गांडीवकी शोभा थी उसमें कंकण पहरना पड़ा, मनुष्यशरीरको प्राप्त होकर इससे अधिक दुःख और क्या होगा ॥ २७ ॥ शिरपर वेणीनेत्रोंमें काजल, अर्जुनके देखकर जो क्रोध हुआ है, वह क्या तरवारसे धृतराष्ट्रका मस्तक छेदन करनेसेही सुख होसकता है ? ॥ २८ ॥ जिसने भीष्मादिकी सम्मतिके विनाही लाक्षागृहमें अग्नि दी,जिस पापात्माने हमारे जलानेका इच्छा की थी, और फिर आग लगाई ॥ २९ ॥ हे महाराज ! जिस प्रकार आपके विना पूँछे मैंने कीचकोंका वध किया, इस प्रकार भार्या सहित धृतराष्ट्रपुत्रोंको नष्ट न कर सका ॥ ३० ॥ हे राजन् ! आपने यह बुद्धिमानीका काम न किया जो इतनेपरभी गंधर्वोंसे दुर्योधनको छुड़ाया. कारण कि, उसने तौ दुर्योधनादि शत्रुओंको बांध लिया था. ऐसोंपर दया करनी उचित नहीं थी ॥ ३१ ॥ दुर्योधनके हितके निमित्त तुम धन देनेकी इच्छा करतेहो सो मैं तुमसे प्रेरित होकर भी धन न दूंगा ॥ ३२ ॥ ऐसा कहकर भीमसेन चलेगये और राजाने अर्जुन नकुल सहदेवसे परिवृत होकर धृतराष्ट्रके निमित्त

बहुतसा धन दिया ॥ ३३ ॥ और धृतराष्ट्रने ब्राह्मणोंके निमित्त बहुतसा धन देकर पुत्रोंका और्ध्वदैहिक कर्म कराया ॥ ३४ ॥ गांधारीसहित राजाने सम्पूर्ण और्ध्वदैहिक कम करके कुन्ती और विदुरको साथ लेकर वनमें प्रवेश किया ॥ ३५॥ महामति धृतराष्ट्र संजयके साथ मार्गमें जाते पुरसे बाहर हुए और पुत्रोंके निवारण करनेपर भी कुन्ती गई ॥ ३६ ॥ भीमसेन तथा अन्य पाण्डव विलाप करते हुए गंगातीरसे लौटकर हस्तिनापुरमें आये ॥ ३७ ॥ वे गंगाके किनारे शतयूपाश्रममें जाकर तृणकी कुटी बनाय तप करनेलगे ॥ ३८ ॥ इसप्रकार वहां छः वर्ष बीतगये तब उनके विरहसे युधिष्ठिरने अपने अनुजोंसे कहा ॥ ३९ ॥ मैंने स्वप्नमें देखा है कि, कुन्ती वनमें स्थित बड़ी दुर्बल होरही है इस कारण मेरा मन मातापिताके दर्शनोंकी इच्छा करता है ॥ ४० ॥ महात्मा विदुर और महामति संजय-को देखनेकी इच्छा है जो तुमको यह अच्छा लगे तो हम उनके दर्शनको जाँय ऐसी हमारी इच्छा है ॥ ४१ ॥ तब वे सब भाई सुभद्रा और द्रौपदी महाभाग उत्तरा और सब नगरवासी ॥ ४२ ॥ सब जनोंके सहित पाण्डव वहां दर्शनोंकी इच्छासे गये और शतयूपके आश्रममें प्राप्त होकर वे सब देखनेलगे ॥ ४३ ॥ जब विदुरको न देखा तब राजाने पूँछा कि, बुद्धिमान् विदुर कहां है ? तब धृतराष्ट्र बोले ॥ ४४ ॥ कि विदुर विरक्त होकर निष्परिग्रह हो विचरते हैं, कभी कहीं एकान्तमें बैठे सनातन देवका ध्यान करते हैं ॥ ४५ ॥ दूसरे दिन युधिष्ठिरने वनमें गंगाके किनारे तपसे कृश हुए विदुरका दर्शन किया ॥ ४६ ॥ देखकर महीपालने कहा मैं युधिष्ठिर आपकी वन्दना करता हूं. विदुर यह सुनकरभी स्थाणुकी समान अचल रहे ॥ ४७ ॥ और उसी क्षण विदुरके शरीरसे एक तेज निकला और धर्मांश होनेसे युधिष्ठिरके मुखमें लीन होगया ॥ ४८ ॥ इस प्रकार युधिष्ठिरने विदुरके प्राणत्यागनेपर बड़ा शोच किया और उस देहके दाहके निमित्त उद्योग किया ॥ ४९ ॥ तब उस समय अशरीरिणी वाणी हुई हे राजन्! यह विरक्त होनेसे दाहके योग्य नहीं है. इसकारण तुम यथेष्ट गमन करो ॥ ५० ॥ यह सुन युधिष्ठिर गये और सब भाइयोंने सुनकर गंगामें स्नान किया, और जाकर विस्तारके सहित धृतराष्ट्रको यह निवेदन किया ॥ ५१ ॥ तब पाण्डव नगरवासियोंसहित उस आश्रममें स्थित रहे. वहां सत्यवतीपुत्र व्यासजी ऋषि आये ॥ ५२ ॥ और भी उस समय महात्मा धर्मपुत्रके पास दूसरे मुनि आये तब कुन्ती शुभदर्शन बैठे हुए व्यासजीसे बोली ॥ ५३ ॥ हे तपोधन व्यासजी ! मेरा पुत्र

कर्ण उत्पन्न होते ही मुझसे पृथक् हुआ मेरा मन तप्त होता है, अब आप सब मृतक हुओंको दिखाइये ॥ ५४ ॥ हे महाभाग! आप समर्थ हो मेरा मनोवांछित करो. गांधारी बोली हे महामुने! दुर्योधनको युद्धमें आते मैंने नहीं देखा ॥ ५५ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ उस मेरे पुत्रको आप दर्शन कराइये. सुभद्रा बोली कि, प्राणोंसे भी अतिशय प्यारे अभिमन्युको ॥ ५६ ॥ हे तपोधन! मैं देखनेकी इच्छा करती हूं, सूतजी बोले व्यासजी इस प्रकारके वचन श्रवण करके ॥ ५७ ॥ प्राणायाम करके सनातनी देवीका ध्यान करते हुए. तब सन्ध्याकाल प्राप्त होनेपर गंगामें मुनिश्रेष्ठ ॥ ५८ ॥ युधिष्ठिरादि सबको बुलाते हुए और पवित्र जलमें स्नान कर विश्वजननीको सन्तुष्ट करने लगे ॥ ५९ ॥ जो प्रकृति पुरुष आश्रय चैतन्यसे अभिन्न सगुणनिर्गुण देवदेवी ब्रह्मरूपा मणिद्वीपनिवासिनी है ॥ ६० ॥ जब कि, ब्रह्मा विष्णु शिव कुवेर वरुण यम पावक कोईभी नहीं थे हे देवि! उस समयभी तुमही स्थित थीं ॥ ६१ ॥ जल वायु भूमि आकाश, न उनके गुण, इंद्रिय अहंकार मन बुद्धि सूर्य चन्द्र कोई नहीं थे उससमय हे देवि! तुम थीं इसकारण मैं तुमको नमस्कार करता हूं ॥ ६२ ॥ इस जीवलोकको चित्त अर्थात् हिरण्यगर्भात्मक समष्टिमें स्थापन करके और हिरण्यकोश अर्थात् समष्टिलिंगशरीरात्मक हिरण्यगर्भको पृथक् भिन्नगुणतत्वादिके सहित साम्यावस्थारूप सुषुप्तिमें प्राप्त करके कल्पके परिमाणकालपर्यन्त स्वतंत्र होकर विचरती हो उस समय ज्ञानसेभी तुमको कोई नहीं जान्ता, उस समय तुम प्रपंचसे परे हो जातीहो॥६३॥हे मातः! यह सब कोई मुझको मृतकदर्शनोंके निमित्त प्रार्थना करतेहैं सो हेमातः! मैं तो समर्थ नहीं हूं तुम उन मृतकोंको दर्शन कराओ ॥ ६४ ॥ सूतजी बोले जब इस प्रकारसे भुवनेश्वरीकी स्तुति की तब स्वर्गसे सब राजोंको बुलाकर दर्शन कराया गया॥६५॥और अमिततेजस्वी व्यासजीने फिर उन सबका विसर्जन करदिया और महामाया देवीका स्मरणकर इन्द्रजालकी समान इस उद्यतहुए कौतुकको देख वे सब ॥ ६६ ॥ पाण्डव और मुनि पूछकर फिर वहांसे चले युधिष्ठिर हस्तिनापुरको व्यासजीका चारित्र कहते आये ॥ ६७ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भाषायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ८.

सूतजी बोले तब राजा धृतराष्ट्र तीसरे दिन वनकी दावाग्निसे गांधारी कुन्तीसहित दग्ध होगये ॥ १ ॥ और संजय तो प्रथमही धृतराष्ट्रसे विदा हो तीर्थयात्राको चले गयेथे. युधिष्ठिरने यह बात नारदजीसे सुनकर बड़ा दुःखपाया ॥ २ ॥ और कौरवोंके क्षयसे छत्तीस वर्ष बीतनेपर प्रभासमें सब यादव विप्रशापसे क्षयको प्राप्त हुए ॥ ३ ॥ वे मद्यपानकरके मत्तहो परस्पर महात्मा रामकृष्णके देखते २ क्षयको प्राप्त हुए ॥ ४ ॥ बलरामजीनेभी योगसे देह त्यागनकिया और भगवान् हरिभी शापका पालन कर व्याधके बाणप्रहारको चहते हुए स्वर्गको गये ॥५॥ वसुदेवजीने भगवानकी परमधामयात्रा सुनकर मनमें भगवतीको धारणकर शरीरत्यागन किया ॥ ६ ॥ तब प्रभासमें जाकर अर्जुन बड़े दुःखी हुए और उन्होंने यथायोग्य सबके संस्कार किये ॥ ७ ॥ और हरिके देहकी छायाको देख काष्ठसंचयकर आठ पत्नियोंसहित उनका संस्कार किया. अर्थात् आठ पटरानी सती हुईं ॥ ८ ॥ रामकी छायाके साथ रेवती सती होगई. और अर्जुनने द्वारकामें आकर क्रमसे नागरिक जनोंको निकाला॥ ॥ ९ ॥ तब वह वासुदेवकी पुरी सागरने डुबादी, उस समय अर्जुन सब लोगोंको लेकर बाहर निकले ॥ १० ॥ उस समय मार्गमें वे द्वारिकाकी स्त्रियें चोर भीलोंसे लूटीगईं और सब धन लुट जानेसे अर्जुन निस्तेज होगया ॥ ११ ॥ और इन्द्रप्रस्थमें आनकर उसने वज्रको राजा किया, यह अनिरुद्धका पुत्र था. अमिततेजस्वी अर्जुनने उसे राज्यपर स्थापित किया॥ १२ ॥ और व्याससे सब अपना दुःख कहा. तब व्यासजी बोले हे महामते ! जब फिर भगवान् होंगे तब फिर तुम होगे ॥ १३ ॥ फिर दूसरे युगमें तुम्हारा पूर्ण तेज होजायगा यह सुनकर अर्जुन हस्तिनापुरको गया ॥ १४ ॥ और दुःखी हो उसने धर्मराजसे सब वृत्तान्त कहा. हरिका देहत्याग और यादवोंका क्षय सुनकर ॥ १५ ॥ राजाने हिमालय जानेकी इच्छा की ३६ वर्षके उत्तरापुत्र परीक्षित्को राज्यमें स्थापन करके ॥ १६ ॥ द्रौपदी और भ्राताओंको साथ लेकर राजा वनको गये (३६) वर्ष हस्तिनापुरमें राज्य करके ॥ १७ ॥ वे छहों हिमालयमें प्राणत्यागन करतेहुए. राजर्षिपरीक्षित्भी परम धर्मसे ॥ १८ ॥ साठ वर्षतक आलस्यरहित राज्य करतेरहे फिर मृगयाशील होकर वनमें गये ॥ १९ ॥ विद्धमृगको राजा मध्याह्नमें खोजते भूखे प्यासे और थकित होगये ॥ २० ॥ गरमीसे व्याकुल हो राजाने समीपमें स्थित ध्यान करते मुनिसे जलके निमित्त कहा ॥

॥ २१ ॥ वे मौनताके कारण कछ न बोले तब राजाको कोप हुआ और प्यासे होनेसे धनुष्यकी कोटिसे मृतसर्पको उठाकर ॥ २२ ॥ कलिसे आविष्ट चित्त होनेसे उनके गलेमें डालदिया, सर्प डालनेपर मुनिने कुछ न कहा ॥ २३ ॥ अपने घरमें राजा चले आये और वे ऋषि समाधिसे चलाय मान न हुए. उनका पुत्र महातेजस्वी महातपस्वी गविजात नामक था ॥ २४ ॥ वह बड़ा शाक्त था. उसने बालकोंके साथ क्रीडा करतेहुए सुना कि तुम्हारे पिताके गलेमें ॥ २५ ॥ कोई मरा सांप डालगया है उनके वचन सुन वह महाक्रोधित हुआ ॥ २६ ॥ और क्रोध कर जल हाथमें लेकर उसने राजाको शाप दिया, जिसने मेरे पिताके गलेमें मरा सर्प डाल दिया है ॥ २७ ॥ उस पापिष्ठको सातवें दिन तक्षक डसैगा. तब मुनिके शिष्यने घर स्थित हुए राजासे ॥ २८ ॥ मुनिपुत्रके शाप देनेका वृत्तान्त कहा, परीक्षित्‌ने ब्राह्मणके दिये शापकी कथा सुनकर ॥ २९ ॥ उसको अनिर्वार्य जानकर मंत्रिवृद्धोंसे पूँछा कि, मेरे द्वेषसे द्विजपुत्रने मुझको शाप दिया है॥ ३० ॥ हे अमात्यो! अब क्या करें इसका उपाय विचारो ? वेदवादी कहते हैं कि, अवश्य यह मृत्यु अनिर्वार्य है ॥ ३१ ॥ तौभी शास्त्रोक्त यत्न पंडितोंको सदा करना चाहिये. ऐसा उपाय ज्ञाता विद्वान् कहते हैं ॥ ३२ ॥ कि, बड़े विज्ञके उपायसे कार्य सिद्ध होजाते हैं, अन्यथा नहीं. मणि मंत्र और औषधियोंके प्रभावभी बड़े दुखगाह हैं ॥ ३३ ॥ क्या यह सिद्ध मणिवानोंसे न होगा? एक मुनिकी सर्पकी काटीहुई भार्या मृतक होकर फिर जीवित हुई थी ॥ ३४ ॥ और मुनिने उसके निमित्त अपनी आधी आयु प्रदान करदी थी. भवितव्यके ऊपर पंडितोंको सदा विश्वास करना चाहिये ॥ ३५ ॥ हे मंत्रियो ! इसमें प्रत्यक्ष दृष्टान्त देखो, कोई भूमि स्वर्गमें क्या ऐसा पुरुष दीखता है ? ॥ ३६ ॥ जो दैवमें मतिको रखकर निरुद्योग बैठा रहै. विरक्तभी यति होकर सदा भिक्षाको जाता है ॥ ३७ ॥ गृहस्थोंके घरमें बुलाये या विना बुलाये जाता है, यदृच्छासे प्राप्त हुआ भोजन स्वयं किसके मुखमें प्राप्त होसकता है ॥ ३८ ॥ उद्योग विना किये मुखसेभी उदरमें नहीं जाता. उद्यममें प्रयत्न करना चाहिये. चाहै वह सिद्ध नहो॥ ३९ ॥ जब सिद्ध न हो तब दैवका नाम लेना चाहिये, मंत्री बोले वे मुनि कौन थे? जिन्होंने अपनी स्त्रीको आधीआयु देकर जीवित किया॥ ४० ॥ हे महाराज! यह कैसे मरी सो विस्तारसे कहिये. राजाने कहा भृगुकी भार्या श्रेष्ठमुखी पुलोमानाम सुन्दरी थी॥ ४१ ॥ उसमें च्यवननाम मुनि तपस्वी प्रगट हुए. शर्यातिकी सुकन्या नामक सुन्दर कन्या इनकी

भार्या थी ॥ ४२ ॥ उसमें श्रीमान् प्रमति पुत्र हुआ, इन प्रमतिकी भार्याका नाम प्रतापी था ॥ ४३ ॥ उसके रुरुनामक तपस्वी उत्पन्न हुआ. उस समय कोई स्थूलकेश नामवाला ॥ ४४ ॥ बड़ा तपस्वी धर्मात्मा सत्यसंध था. उसी समय माननीया मेनका श्रेष्ठ अप्सरा॥ ४५॥ सर्वलोकमें अतिसुन्दरी नदीके किनारे क्रीडा करती थी. यह विश्वावसुके गर्भको प्राप्त होकर निर्गत हुई थी ॥ ४६ ॥ स्थूलकेशा ऋषिके आश्रममें आकर इसने उसका त्यागन किया, वह त्रिलोकसुन्दरी कन्या नदीके किनारे त्यागी हुई ॥४७॥ मुनिने उस अनाथ कन्याको देखकर ग्रहण किया और उसकी स्थूलकेशने पालना की. उसका प्रमद्वरा नाम रक्खा ॥ ४८ ॥ समयपर वह सब लक्षणोंसे सम्पन्न युवा हुई. रुरु उसको देखकर कामबाणसे पीडित हुए ॥ ४९ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे भाषायां द्वितीयस्कन्धेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ९.

परीक्षित् बोले कामार्त होकर वे मुनि अपने आश्रममें पडरहे, तब पिता पूँछने लगे हे रुरो ! तुमकिस कारणसे विमन होरहे हो? ॥ १ ॥ तब वे अति कामसे व्याकुल हो बोले—स्थूलकेशके आश्रममें एक प्रमद्वरा कन्या है वह मेरी भार्या हो यह बात है ॥ २ ॥ तब प्रमतिने स्थूलकेश मुनिके निकट जाकर भाषणसे मोहित कर प्रसन्न होनेपर कन्याकी याचना की ॥ ३ ॥ स्थूलकेशने वचन दिया कि, अच्छे मुहूर्तमें प्रदान करेंगे. और वनमें विवाहके निमित्त संभाररचना की ॥ ४ ॥ प्रमति और स्थूलकेश दोनों विवाहको उद्यत हुए और तपोवनमें वे महात्मा कार्यको उद्यत हुए ॥ ५ ॥ उस समय उस सुबोधिनी कन्याको आँगनमें सो जानेपर सर्पने चरणमें डसलिया ॥ ६ ॥ सर्पके काटते ही वह वरांगना मृतक हुई, प्रमद्वराको मरी देखकर बड़ा कोलाहल हुआ ॥ ७ ॥ सब मुनि मिलकर शोकाकुल होनेलगे और उसे भूमिपर पड़ी देख उसका पिता बड़ा दुःखी हुआ ॥ ८ ॥ और वह तेजसे दीप्यमान होकर भी रोनेलगा, रुरु भी यह रोना सुनकर देखनेको आये ॥ ९ ॥ उस कामिनीको मरी होनेपरभी तेजसे सजीववत् देखने लगे और स्थूलकेश तथा दूसरे ऋषियोंको रोता देखकर ॥ १० ॥ रुरु उस स्थानसे बाहर जाकर रोनेलगे. अहो! मेरे निमित्त दैवने यह सर्प भेजदिया ॥ ११ ॥ यह मेरा कल्याणविनाश करनेको दुःखका कारणही है. मेरी प्रिया नष्ट हुई अब मैं क्या करूं!

कहां जाऊं? ॥ १२ ॥ इस प्रियाके विना मैं जीनेकी इच्छा नहीं करताहूं- न मैंने इसे आलिंगन किया और न चुम्बन किया ॥ १३ ॥ मुझ मंदभाग्यने इसका पाणिग्रहण किया; न इसके साथ अग्निमें लाजाहोम किया ॥ १४ ॥ इस मनुष्यताको धिक्कार है. इस समय मेरे प्राणभी निर्गत होजायँ तौ अच्छा परन्तु दुःखीको माँगनेपर मृत्यु प्राप्त नहीं होती ॥ १५॥ तब पृथ्वीमें दिव्य सुख किसप्रकार प्राप्त होसक्ता है? अब मैं घोर हृद वा अग्निमें पतित होकर अपने प्राण दूंगा॥ १६॥ विष खाऊंगा वा गलेमें पाश डालकर प्राण दूंगा इस प्रकार रुरु विचार करके और विलाप करके ॥ १७ ॥ उस नदीके निकट स्थित हुआ विचारने लगा. इस कठिन आत्महत्या कर मरनेसे क्या फल होगा? ॥ १८ ॥ मेरे पिता और माता बड़े दुःखी होंगे और त्यक्तजीवित मुझको देखकर दैव तो अवश्य तुष्ट होगा ॥ १९ ॥ और दूसरे शत्रुभी मेरे मरणसे सब प्रसन्न होंगे प्रियाका परलोकमें क्या उपकार होगा? ॥ ॥ २० ॥ विरहसे पीडित होकर आत्मघात कर मरनेसे भी मुझ आत्मघातीको परलोकमें प्रिया नहीं मिलसक्ती ॥ २१ ॥ इसकारण मरणमें दोष है और अमरणमें उसके परलोकनिमित्त कार्य करनेसे दोष नहीं है. इस प्रकार रुरु विचारकर स्नान कर आचमन करने उपरान्त ॥ २२ ॥ जलको हाथमें लेकर यह शुभ वचन बोला ? जो कुछ मैंने सुकृत और देवार्चन किया है ॥ २३ ॥ भक्तिसे गुरुओंको पूजा. आहुति देकर जप तप किया है वेद पढ़े और यदि गायत्रीका स्मरण किया है ॥ २४ ॥ और सूर्यदेवकी आराधना की है तौ मेरी प्रिया जीवित होजाय. जो मेरी प्रिया न जियेगी तौ अभी मैं प्राणत्यागन करूंगा ॥२५॥ इसप्रकार देवाराधन कर भूमिपर वह जल डालदिया. राजा बोले इसप्रकार उस भार्याके निमित्त रोकर विलाप करतेहुएको ॥ २६ ॥ देवदूत आनकर बोला. देवदूतने कहा–हे ब्रह्मन् ! साहस मत करो. मृत हुई अब तुम्हारी प्रिया नहीं जीसक्ती ॥ २७ ॥ यह गंधर्व अप्सराकी सुता अब गतायु होगई. अब और शुभांगीकी इच्छा करो. यह तौ अविवाहितही मृतक हुई है ॥ २८ ॥ आप हीन बुद्धिसे क्या करते हो ? तुम्हारी इससे क्या प्रीति है ? रुरुने कहा हे देवदूत ! मैं दूसरी अंगनाको वरण नहीं करूंगा ॥ २९ ॥ जो यह न जियेगी तौ मैं प्राणत्यागन करूंगा. राजाने कहा यह उसकी हठ देखकर देवदूत प्रसन्न हो ॥ ३० ॥ तथ्य और सत्य अतिमनोहर वचन कहने लगा. हे विप्रेन्द्र! जो पहले देवताओंने विधान कर रक्खा है. वह

उपाय सुनो ॥ ३१ ॥ अपनी आधी अवस्था देकर इस प्रियाको जिवाओ. रुरुने कहा इसमें सन्देह नहीं इसके निमित्त मैं अपनी आयु देता हूं ॥ ३२ ॥ अभी मेरी प्रिया प्राणयुक्त हो उठे तब उससमय विमानमें बैठकर विश्वावसु आये ॥ ३३ ॥ अर्थात् प्रमद्वराको मरी जानकर स्वर्गलोकसे आये, तब गन्धर्वराज और देवदूत ॥ ३४ ॥ धर्मराजके पास जाकर यह वचन बोले हे धर्मराज ! रुरुकी पत्नी विश्वावसुकी सुता ॥ ३५ ॥ प्रमद्वरानामक सर्पके काटनेसे मृतक हुई है, हे धर्मराज! वह प्राणत्यागकी इच्छावाले रुरुकी आधी आयुसे ॥ ३६ ॥ उसके व्रताचरणके प्रभावसे जीवित होजाय, धर्मराजने कहा हे देवदूत ! वे विश्वावसुकी सुता कन्याकी यदि इच्छा करते हैं ॥ ३७ ॥ तौ तुम जाकर रुरुकी आधी आयुसे उसको जीवित करो. राजा बोले, धर्मराजके ऐसा कहनेपर दूतने जाकर प्रमद्वराको जिवाया ॥ ३८ ॥ और शीघ्रतासे रुरुको समर्पण किया, फिर अच्छे दिनमें रुरुने उसके साथ विवाह किया ॥ ३९ ॥ इस प्रकार उपायके योगसे उस मरीहुईको फिर उज्जीवित किया. इससे सर्वथा शास्त्रसम्मत उपाय करना चाहिये ॥ ४० ॥ प्राणरक्षामें विधिपूर्वक मणि मंत्र औषधी करनी. मंत्रियोंसे ऐसा कहकर राजाने विधिपूर्वक रक्षकोंकी कल्पना करके ॥ ४१ ॥ सतखण्डे महलको कराकर राजा परीक्षित् मंत्रियोंसहित वहां स्थित हुए ॥ ४२ ॥ वहां रक्षा करनेको मणिमंत्रधारी शूरोंको नियुक्त किया और फिर राजाने गौरमुख मुनिको ऋषिके आश्रममें प्रेषण किया कि, मुझ सेवकका अपराध क्षमा करो. और मंत्रसिद्धिवाले ब्राह्मणोंको रक्षामें नियुक्त किया ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ मंत्रिपुत्रने वहां स्थित होकर दन्तियोंको स्थापन किया कि, इस रक्षित महलपर कोईभी न आने पावै ॥ ४५ ॥ बहुत क्या पवनकाभी प्रवेश कठिनतासे था! राजाने वहीं स्थित होकर भक्ष्य भोज्यादि किया ॥ ४६ ॥ स्नान संध्यादि कर्म भी वहीं निवृत्त करके वहीं स्थितहुआ. राजा सब राजकाज करता था ॥ ४७ ॥ और मंत्रियोंसे सम्मति करता दिन गिन्ता था. उसी समय मंत्रका ज्ञाता कोई कश्यपनाम ब्राह्मण ॥ ४८ ॥ राजाके शापका वृत्तान्त श्रवण करताहुआ, वह धनकी इच्छासे विचार करनेलगा ॥ ४९ ॥ वहांको चलना उचित है, जहां वह शापित राजा विद्यमान है; ऐसी मति करके वह ब्राह्मण अपने घरसे निकलकर मार्गमें आया ॥ ५० ॥ यह कश्यपजी मंत्रके ज्ञाता विद्वान् धनकी इच्छा कियेथे ॥ ५१ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भाषायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः १०.

सूतजी बोले जिस दिन कश्यपजी घरसे चले उसी दिन उस नृपश्रेष्ठको शापित जानकर राजाके पासको पुरुषोत्तम तक्षक चले ॥ १ ॥ वृद्ध ब्राह्मणके रूपसे मार्गमें प्राप्त हुए और राजाके पास जाते कश्यपको मार्गमें देखा ॥ २ ॥ उस मंत्रवादी ब्राह्मणसे तक्षकने पूँछा कि आप कौन हो; शीघ्रतासे कहां जातेहो ? क्या करनेकी इच्छा है ॥ ३ ॥ ब्राह्मण बोला नृपश्रेष्ठ परीक्षितको तक्षक काटैगा, सो मैं राजाको अच्छा करनेको शीघ्र जाता हूं ॥ ४ ॥ हे विप्रेन्द्र ! मेरे पास विषनाश करनेवाला मंत्र है सो आयुष होनेपर मैं अवश्य उसको जीवित करूंगा ॥ ५ ॥ तक्षकने कहा हे ब्राह्मण ! तक्षक मैं ही हूं उस राजाको काटूंगा मेरे काटेकी तुम चिकित्सा नहीं करसक्ते ॥ ६ ॥ कश्यपने कहा हे ब्राह्मण ! मैं ब्राह्मणसे शापित उस राजाको मंत्रके बलसे अवश्य जिवाऊंगा, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७ ॥ तक्षकने कहा यदि तुम हमारे काटेहुए राजाको जिवानेको जाते हो तो हे विप्र! मुझे अपनी मंत्रशक्तिका बल दिखाइये ॥ ८ ॥ मैं अभी इस न्यग्रोधके वृक्षको काटता हूं. कश्यपने कहा काटनेकी कौन कहे तुम्हारे भस्म कियेकोभी सजीव करसक्ता हूं ॥ ९ ॥ सूतजी बोले तब पन्नगराजने उस वृक्षको काटकर भस्म कर दिया और कहा कि, हे कश्यप! अब इसको जिवाओ ॥ १० ॥ उस वृक्षके पन्नगको विषाग्निसे भस्म देखकर सब भस्म लेकर कश्यपजी कहनेलगे ॥ ११ ॥ हे सर्पश्रेष्ठ! मेरे मंत्रका बल देखो कि, मैं इस न्यग्रोधवृक्षको तुम्हारे देखते २ सजीव करता हूं ॥ १२ ॥ ऐसा कह मंत्रज्ञाता कश्यपने जल लेकर वह मंत्र पढ़ा जल उस भस्मराशिपर त्यागन किया ॥ १३ ॥ उसके सेचन करतेही वह न्यग्रोध ज्योंका त्यों होगया उस वृक्षको सजीव देख तक्षक बड़े विस्मयको प्राप्त हुआ ॥ १४ ॥ तब उस ब्राह्मणसे तक्षकने कहा यह तुम्हारा परिश्रम किस निमित्त है ? सो मैं उसको सम्पादन करूं; आप अपना मनोवांछित कहिये ॥ १५ ॥ कश्यपने कहा कि, हे सर्प ! राजाको शापित सुनकर इस अपनी विद्यासे उपकार करने और धन प्राप्त करनेके निमित्त आया हूं ॥ १६ ॥ तक्षकने कहा हे ब्रह्मन् ! जितना धन चाहिये यह आप लेजाइये और मैं भी अपना कार्य कर पूर्णमनोरथ हूंगा ॥ १७ ॥ सूतजी बोले परमार्थज्ञाता कश्यप यह उसके वचन सुनकर मनमें वारंवार विचारने लगा कि, मैं क्या करूं? ॥ १८ ॥ यदि धन लेकर मैं घरको चला जाऊं तौ इस लोभके आश्रयसे मेरी

कीर्ति न होगी ॥ १९ ॥ और राजाके जीवित होनेसे अचल कीर्ति होगी और अनेक प्रकारसे धनकी प्राप्ति और पुण्य भी होगा ॥ २० ॥ यशकी ही रक्षा करनी चाहिये. यशके विना जीवनको धिक्कार है, कीर्तिके निमित्त रघुने ब्राह्मणको सर्वस्व देदिया था ॥ २१ ॥ हरिश्चन्द्र और कर्णने बड़ी विस्तारयुक्त कीर्ति पाई है. इस कारण विषाग्निसे दग्ध होते राजाकी कैसे उपेक्षा करूं?॥ २२॥ मेरे राजाको जिवा देनेमें सबको सुख होगा इसमें सन्देह नहीं, अराजकतामें प्रजाका नाश होता है ॥ २३॥ प्रजानाशका पाप राजाके मृतक होनेपर मुझे मिलैगा और धनके लोभसे लोकमें अपकीर्ति होगी ॥ २४ ॥ यह मनमें विचार कर कश्यपने ध्यान किया तो जाना कि, राजाकी आयुही समाप्त होगई है ॥ २५ ॥ ध्यानसे राजाको मृत्युमुखमें पतित देखकर वह महात्मा तक्षकसे धन लेकर घरको चलागया ॥ २६ ॥ इस प्रकार कश्यपको लौटाकर सातवें दिन तक्षक राजाके मारनेकी इच्छासे हस्तिनापुरमें आया ॥ २७॥ नगरके निकटही सुना कि, राजा प्रासादके ऊपर स्थित हैं, मणि मंत्रऔर औषधियोंसे भलीप्रकार रक्षित हैं ॥ २८ ॥ तब वह नाग विप्रशापके भयसे व्याकुल हो चिन्ताविष्ट हुआ कि, योगसेभी किसप्रकार इस घरमें प्रवेश करूं॥ २९ ॥ और पापकारी राजाको किसप्रकार वंचना करूं? जो विप्रशापसे हत और ब्राह्मणोंको पीडा करनेवाला है ॥ ३० ॥ पाण्डवकुलके बीचमें ऐसा कोईभी न हुआ, जिसने तपस्वीके गलेमें मरा सर्प डाला हो ॥ ३१ ॥ विगर्हित कर्म करके कालके गतिको जानताहुआभी वह राजा भवनमें रक्षकोंको नियत करके महलपर चढ़कर ॥ ३२ ॥ मृत्युको जीतनेके निमित्त निराकुल बैठा है, सो विप्रवाक्यसे प्रेरित मैं उसको किसप्रकारसे धर्षण करसक्ता हूं? ॥३३॥ वह मंदात्मा दुर्निवार मृत्युको नहीं जानता है. इससे वह रक्षकोंको स्थापन कर मन्दिरपर आनंद करता है ॥ ३४॥ यदि दैवने इसकी मृत्यु विधानकी है तो क्या फिर कोटियत्नोंसेभी निवारण होसक्ती है? ॥३५॥ यह पाण्डववंशमें उत्पन्न होकर मृत्युको जानताहुआ भी जीवनमें मतिकरके निराकुल स्थित है ॥ ३६ ॥ इस समय तो इसको सर्वथा दान पुण्य करना चाहिये. धर्मसेही व्याधी दूर होती और आयु स्थित होती है ॥ ३७ ॥ नहीं तो मृत्युकी विधिकरके स्नानदानादि क्रिया करके स्वर्गलोकके निमित्त शरीर त्यागै, अन्यथा नरक होता है ॥ ३८ ॥ और द्विजपीडाका किया पाप और शाप यह दो इसको लगे हैं तथा घोर विप्रशाप लगनेसे अब यह आसन्नमरणही है ॥

॥ ३९ ॥ ऐसा कोई ब्राह्मण इसके समीप नहीं जो इसको समझावै, इसकी विधातासे विधान कीहुई मृत्यु सर्वथा अनिवार्य है ॥ ४० ॥ यह विचार उस सर्पने निकटमें स्थित अपने नागोंको तपस्वीका वेष बनाकर भेजा ॥ ४१ ॥ फलमूलादि राजाके निमित्त लेकर वे चले और तक्षक स्वयं कीटरूपधारण कर फलके मध्यमें प्रविष्ट हुआ ॥ ४२ ॥ तब वे नाग फल लेकर शीघ्रतासे चले और राजभवनमें प्राप्त हो महलके समीप स्थित हुए ॥ ४३ ॥ रक्षकोंने तपस्वियोंको देखकर उनकी चेष्टा जाननेकी इच्छा की! उन्होंने कहा हम तपस्वी राजाको देखनेआये हैं ॥४४॥ जो अभिमन्युका पुत्र वीरकुलदिवाकर है, उसके सुन्दर दर्शनको अथर्वमंत्रोंसे वृद्धिकरनेको प्राप्त हुए हैं ॥४५॥ दर्शनके निमित्त मुनि आये हैं यह तुम राजासे निवेदन करो! अभिषेक करने उपरान्त मिष्टफलादि देकर हम चले जाँयगे ॥ ४६ ॥ हमने कभी ब्राह्मणोंके निमित्त भरतकुलमें द्वाररक्षक नहीं देखे और तपस्वियोंको राजाका दर्शन प्राप्त न होनाभी कहीं न सुना ॥ ४७ ॥ हम वहां जाँयगे जहां राजा परीक्षित् है, हम उसको आशीर्वाद दे आज्ञा देकर चले जाँयगे ॥ ४८ ॥ सूतजी बोले रक्षक तपस्वियोंके इस प्रकार वचन श्रवण कर उन ब्राह्मणोंसे राजाकी आज्ञा सुनाते हुए बोले ॥ ४९ ॥ हे ब्राह्मणो! हम जानते हैं आज तौ राजाका दर्शन नहीं होगा, प्रभातकाल आप सब कोई आना ॥ ५० ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! इस समय महलपर जाना उचित नहीं है, राजा विप्रशापसे रक्षित होरहा है ॥ ५१ ॥ तब उन्होंने कहा हे रक्षको! यह फल मूल और आशीर्वचन राजासे सुनादो ॥ ५२ ॥ तब वे द्वारपाल राजासे सब बात कहते हुए. राजाने कहा उनके फल मूल लेआओ ॥ ५३ ॥ और उनसे कार्य पूँछना और कहना कल प्रभात समय फिर आना, और मेरा प्रणाम कर कहना आज दर्शन नहीं होगा ॥ ५४ ॥ वे जाकर फलमूलादि ले आये और सादर राजाको समर्पण करदिये ॥ ५५ ॥ उन विप्रवेषधारी नागोंके चलेजानेपर राजा वे फल लेकर मंत्रियोंसे बोले ॥ ५६ ॥ हे सुहृदो ! इन फलोंको भक्षण करो और इनमेंसे एक फल मैं भी भक्षण करता हूं ॥ ५७ ॥ यह कहकर उत्तराकुमार वे फल देकर और एक फल हाथमें लेकर उस पक्के फलको स्वयं तोड़ने लगे ॥ ५८ ॥ उस विदारित फलमें एक बड़ा छोटा कृमि पाया. उस कृष्णनयन ताम्रवर्णको राजाने स्वयं देखा ॥ ५९ ॥ उसको देखकर राजाने विस्मित हो मन्त्रियोंसे कहा कि, अब सूर्य अस्त होता है, अब मुझे

तक्षकके विषसे भय नहीं है ॥ ६० ॥ अब मैं उस शापको अंगीकार करताहूं. ब्राह्मणका वचन मिथ्या न हो इस कारण इस कीटसे कटवाये लेताहूं, ऐसा कहकर राजाने उसे ग्रीवामें बैठाया ॥ ६१ ॥ सूर्यके अस्त होनेपर राजाने उस कीटको ग्रीवापर रक्खा. उसी समय वह कालरूप भयानक तक्षक होगया॥६२॥उसने राजाको संवेष्टनकर काटलिया और मंत्री विस्मयको प्राप्त हो दुःखसे रुदन करनेलगे ॥६३॥ घोररूप सर्पको देखकर वे भयसे भागे और सब रक्षक पुकारे, महा हाहाकार होने लगा ॥ ६४ ॥ सर्पके शरीरसे वेष्टित होनेके कारण राजाका बहुत पुरुषार्थ न रहा, राजा उस समय कुछ न बोला और न धैर्यसे चलायमान हुआ ॥ ६५ ॥ तब तक्षकके मुखसे विषैली घोर अग्नि प्रगट हुई राजा तत्काल प्रज्वलित हो प्राणरहित हुआ ॥ ६६ ॥ इस प्रकार राजाका जीवन समाप्त कर तक्षक आकाशको गया, मनुष्योंने उस समय उसको ऐसे देखा मानो जगत्को दग्ध करदेगा ॥ ६७ ॥ जले वृक्षकी समान प्राणरहित हो राजा पतित हुआ, राजाको मृतक देख वहांके सब मनुष्य रुदन करनेलगे ॥ ६८ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे भाषायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ११.

सूतजी बोले राजाको गतप्राण और पुत्रको बालक देखकर परलोकक्रियाके निमित्त मंत्रि रुदन करने लगे ॥ १ ॥ उस राजाके दग्धीभूतप्राय भस्म हुए देहको गंगाके किनारे अगर चन्दनकी चितामें रखते हुए ॥ २ ॥ दुर्मरणके कारण प्रथम पुरोहितोंने मंत्रोंसे उसकी और्ध्वदैहिक क्रिया की ॥ ३ ॥ ब्राह्मणोंको दान और सुवर्णकी गाय देते हुए बहुत प्रकारके अन्न और वस्त्र दिये ॥ ४ ॥ और अच्छे मुहूर्तमें प्रजाके प्रसन्न करनेवाले बालक राजकुमारको सिंहासनपर बैठाया ॥ ५ ॥ और पुर देशकी प्रजाने उस बालकको राजा माना. इसका जन्मेजय नाम इसीकारण हुआ कि, यह राजलक्षणसे युक्त था॥ ६॥ धायने इसको सब राजचिह्नोंकी शिक्षा दी थी दिन २ वह राजा वृद्धिको प्राप्त होनेलगा; और बुद्धिमान् हुआ ॥ ७ ॥ ग्यारहवें वर्षमें पुरोहितने उसको सब विद्या सिखाई और उसने सीखली ॥ ८ ॥ कृपाचार्यने इसको पूर्ण धनुर्वेद सिखाया जैसे अर्जुनको द्रोणने कर्णको परशुरामने सिखाया था ॥ ९ ॥ तब यह विद्याको प्राप्त होकर बलवान् दुरतिक्रमणीय हुआ

धनुर्वेद और वेदका पारगामी हुआ ॥ १० ॥ धर्मशास्त्रके अर्थमें कुशल सत्यवादी जितेन्द्रिय धर्मपुत्रकी समान राज्य करनेलगा ॥ ११ ॥ उस समय सुवर्णवर्माक्ष काशीका राजा अपनी वपुष्टमा कन्या इसके निमित्त देताहुआ ॥ १२ ॥ उसको प्राप्त होकर जनमेजय प्रसन्न हुआ जैसे काशिराजकी मनोहर कन्याको प्राप्त होकर राजा॥१३॥विचित्रवीर्य प्रसन्न हुआथा, सुभद्राको प्राप्त हो अर्जुन प्रसन्न हुआथा; इसीप्रकार राजा वन उपवनोंमें विहार करनेलगा॥१४॥इस प्रकार उस कमललोच- नीसे प्रसन्न हुआ जैसे शचीसे इन्द्र प्रसन्न होता है उस राजाके न्यायसे प्रजा सन्तुष्ट हुई ॥ १५ ॥ कार्यकुशल मंत्री सब कार्य करनेलगे उसीसमय एक उत्तंकनामक मुनि ॥ १६ ॥ तक्षकसे दुःखी होकर हस्तिनापुरमें आया कि तक्षकने जो मुझे दुःखदिया इसके वैरका निराकरण कौन करे यह ? विचारता हुआ ॥ १७ ॥ वह परीक्षितसुतको राजा मान कर उनके समीप आया, और कहा हे राजन् ! समय उपस्थित होनेपर तुम उसके कार्य अकार्यको नहीं जान्ते ॥ १८ ॥ अकर्त- व्यको करते और कर्तव्यको क्यों नहीं करतेहो? अमर्षरहित निरुद्यम तुमसे मैं क्या कहूं ? ॥ १९ ॥ वैरसे शून्य शास्त्रज्ञानरहित बालचेष्टासे युक्त हो जन्मेजयने कहा कैसा वैर ? यह बात मेरे जाननेमें न आई और मैंने किस बातका प्रतीकार नहीं किया? ॥२०॥ हे महाभाग! सो कहिये जिसको मैं सम्पादन करूं. उत्तंक बोले हे राजन् ! आपके पिताको दुरात्मा तक्षकने नष्ट किया ॥ २१ ॥ आप मंत्रियोंको बुलाकर अपने पिताके मरणवृत्तान्तको जानो, सूतजी बोले यह वचन सुन राजाने मंत्रि- श्रेष्ठोंसे पूँछा ॥ २२ ॥ वे बोले विप्रशापसे तक्षकके काटनेसे मृत हुए, जनमेजयने कहा मुनिका शापही पिताके मरणमें कारण है ॥ २३ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! कहिये इसमें तक्षकका क्या दोष है?उत्तंकने कहा जो राजाको आरोग्य करने आया था उस कश्य- पको धन देकर तक्षकने लौटादिया ॥ २४ ॥ हे राजन् ! फिर वह आपके पिताके मारनेसे शत्रु क्यों नहीं ? वह तौ शापसे काटही लेता ब्राह्मणको निवृत्त क्यों किया ? हे राजन् ! पहले रुरुकी भार्या सर्पके काटनेसे मृतक हुई ॥ २५ ॥ और उस अविवा- हिताको मुनिने अपनी आधी आयु देकर जीवित किया, और रुरुनेभी यह दारुण

१ जिस समय यह गुरुके यहां पढ़तेथे तब गुरुकी स्त्रीने कहा मुझे अमुक रानीके कुंडल लादो. यह उस रानीसे कुण्डल लाये मार्गमें तक्षक वह कुण्डल हरण कर लेगया तब इनको पातालमें जानेसे बड़ी कठिनतासे कुण्डल प्राप्त हुए उस दिनसे सर्पोंसे वैर माननेलगे ।

प्रतिज्ञा की कि ॥ २६ ॥ जिस २ सर्पको देखूंगा आजसे उसी २ को मारूंगा ऐसी प्रतिज्ञा करके वह शस्त्रपाणि रुरु ॥ २७ ॥ सर्पोंको मारते पृथ्वीमें विचरनेलगे, एक समय वह वनमें घोर जरायुक्त डुडुंभअजगर सर्पको देखकर ॥ २८ ॥ दंड उठाय उसके सन्मुख हुए, और क्रोधसे उसपर प्रहार किया तब सर्प बोला हे विप्र ! मैंने तुम्हारा कोई अपराध नहीं किया फिर तुम मुझे क्यों मारतेहो ? रुरु बोले मेरी प्राण-प्रिया सर्पके काटनेसे मरगई॥ २९॥ ३०॥ हे सर्प ! तब मैंने दुःखित हो सर्पके मारनेकी प्रतिज्ञा की, अजगरने कहा मैं तो नहीं काटताहूं काटनेवाले सर्प और होते हैं॥ ३१॥ केवल शरीरके योगसे आप मुझे मारनेको योग्य नहीं हो सूतजी बोले उस सर्पकी मनो-हर मानुषी वाणी सुनकर ॥ ३२॥ रुरुने पूछा तुम कौन हो ? और कैसे अजगर हुए ? सर्पने कहा हे ब्राह्मण ! मैंभी पहले ब्राह्मण था और खेचर मेरे मित्र थे ॥ ३३॥ वह ब्राह्मण धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ सत्यवादी जितेन्द्रिय थे मैंने मूर्खतासे तृणका सर्प बनाय उनकी वंचना की ॥ ३४ ॥ वह अग्निहोत्रके स्थानमें स्थित हुए बड़े भयभीत हुए और उस विह्वल कंपायमान होतेहुएने पीछे मुझे शाप दिया ॥ ३५ ॥ हे मंदबुद्धि ! तुमने हमारी वंचना की इससे तुम सर्प होजाओ, तब मैंने उनकी बड़ी प्रार्थना की ॥ ॥ ३६ ॥ फिर कुछ शान्त होकर उन्होंने मुझसे कहा कि रुरु तुमको इस शापसे मुक्त करैगा ॥ ३७ ॥ वह प्रमतिका पुत्र रुरु होगा यह वचन मुझसे कहा सो मैं सर्प हूं तुम रुरु हो तो मेरा परम वचन सुनो ॥ ३८ ॥ इसमें सन्देह नहीं विप्रोंका अहिं-साही परम धर्म है ब्राह्मणोंको यथायोग्य सर्वत्र दयाही करनी चाहिये ॥ ३९ ॥ हे विप्रेन्द्र ! यज्ञसे अन्यत्र हिंसाकी सराहना नहीं है, उत्तंकने कहा तब यह ब्राह्मण सर्पयोनिसे निर्मुक्त हुआ, और रुरुने ॥ ४०॥ उसके शापका अन्त करके हिंसाको त्यागकर उस मृतक होकर जीवित हुई बालासे विवाह कर ॥ ४१ ॥ सर्पोंके वैरके कारण उनका हिंसन किया, और हे राजन् ! तुम तो सर्पोंसे वैर त्यागन कियेहो ॥ ४२॥ हे राजन् ! पिताके घातियोंसेभी वैर नहीं लेते, स्नान दानरहित होकर तुम्हारे पिताका शरीर अन्तरिक्षमें छूटा है ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! सर्पोंको मारकर उनका उद्धार करो. जो पिताके वैरको नहीं जान्ता वह जीताही मृतक है ॥ ४४॥ जबतक तुम उनको न मारोगे तुम्हारे पिताकी दुर्गति रहैगी, हे राजन्! भगवतीयज्ञके बहानेसे आप ॥ ४५ ॥ पिताका वैर स्मरणकर सर्पसत्र करो, सूतजी बोले राजा जनमेजय इस प्रकार उसके वचन सुन ॥ ४६ ॥ बड़े दुःखी हो रुदन करनेलगे कि, मुझ दुर्बुद्धि

वृथा मान करनेवालेको धिक्कार है ॥ ४७ ॥ जिसका पिता स्पर्शसे पीडित हो घोर गतिको प्राप्त हुआ, अब मैं यज्ञ करके पिताका उद्धार करूंगा ॥ ४८ ॥ अवश्य दीप्त-मान् अग्निमें सर्पोंको दग्ध करके वैर निकालूंगा. तब सब मंत्रियोंको बुलाकर राजाने कहा ॥ ४९ ॥ हे मंत्रिश्रेष्ठो ! विधिपूर्वक यज्ञका संभार सजाओ, गंगाके किनारे ब्राह्मणोंसे सुन्दर भूमि दिखवाकर माप करो ॥ ५० ॥ और सौ स्तंभका मनोहर यज्ञमण्डप करो और हे मन्त्रियो ! यज्ञकी उत्तम वेदी होनी चाहिये ॥ ५१ ॥ उसी यज्ञके अंगमें सर्पसत्रकाभी विधान करना चाहिये, उसमें तक्षक पशु किया जाय और होता उत्तंक कियेजांय ॥ ५२ ॥ शीघ्रही सर्वज्ञ वेदपारगामी ब्राह्मणोंको बुलाओ सूतजी बोले मंत्रियोंने राजाज्ञासे सब कार्य यथायोग्य किया ॥ ५३ ॥ यज्ञका सब संभार और यज्ञ वेदीका विस्तार किया. जिस समय सर्पोंका हवन मंत्रोंसे होनेलगा तब तक्षक ॥ ५४ ॥ भयभीत हो इन्द्रके पास जाकर कहनेलगा मेरी रक्षा करो. तब इन्द्रने भयभीत उसको आश्वासन देकर आसनमें बैठाया ॥ ५५ ॥ और अभयदान देकर कहा हे सर्प ! अभय हो मुनिने उसको इन्द्रकी शरणमें गया जान अभय पाया जाना ॥ ५६ ॥ तब उत्तंकने उद्विग्नमन हो इन्द्रसहित तक्षकको आहूत किया, स्मरण करतेही तक्षकके सहित वह स्मरणमात्रसे प्राप्त होताहुआ ॥ ५७ ॥ उसी समय जरत्कारुके पुत्र धर्मात्मा आस्तीकजी आनकर जनमेजयको प्रसन्न करनेलगे ॥ ५८ ॥ राजाने उस बालकको पंडित देखकर सत्कार किया और उससे वांछित फल देनेको कहा ॥ ५९ ॥ उसने यह कहा हे महाभाग ! अब यह यज्ञ बंद करो, सत्यबद्ध होनेसे फिरभी राजासे प्रार्थना करी ॥ ६० ॥ और मुनिवाक्यसे राजाने हवन निवृत्त किया और उस अवसरमें वैशंपायनने विस्तारसे महाभारत सुनाया ॥ ६१ ॥ यह सुनकरभी राजाको शांति न हुई और व्यासजीसे राजाने पूछा कैसे मेरी शान्ति होगी? ॥ ६२ ॥ मेरा मन बहुत दग्ध होता है कहो मैं क्या करूं? मेरे पिता दुर्भा-ग्यरूप होनेसे सर्पसे मृत हुए ॥ ६३ ॥ हे महाभाग ! संग्राममें मरणही क्षत्रियोंको श्रेष्ठ है, हे व्यासजी ! या तो युद्धमें मरण होया घरमें मरण हो तो विधिपूर्वक मरण हो ॥ ६४ ॥ सो इसप्रकार पिताका मरण न होकर अन्तरिक्षमें मरण हुआ, हे सत्यवती-पुत्र ! आप शान्तिका उपाय कहो ॥ ६५ ॥ जिससे हमारे पिता दुर्गतिसे तरकर स्वर्गको चलेजायँ ॥ ६६ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे भाषायां एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः १२.

सूतजी बोले यह उनके वचन श्रवण करके सत्यवतीपुत्र व्यासजी उस सभामें राजासे इस प्रकारके वचन कहनेलगे ॥ १ ॥ व्यासजी बोले सुनो हे राजन्! मैं आपसे वड़ा गुह्य उत्तम पुराण कथन करता हूं जो पवित्र भागवतनामक अनेक आख्यानोंसे युक्त है ॥ २ ॥ जो मैंने प्रथम अपने पुत्र शुकदेवजीको पढ़ाई थी, हे राजन्! वह परम रहस्य मैं आपसे कहता हूं ॥ ३ ॥ इसका श्रवण धर्म अर्थ काम मोक्ष चारों पदार्थोंका कारण है, जो नित्य शुभ और सुख देनेवाला सब शास्त्रोंका सार है ॥ ४ ॥ जनमेजय बोले यह आस्तीक कौन थे? जो यहां विघ्नकरनेको आये. हे प्रभो! सर्पोंकी रक्षा करनेमें इसका क्या प्रयोजन था ? ॥ ५ ॥ हे महाभाग ! विस्तारसे यह कथानक कहो, और विस्तारपूर्वक सब पुराण वर्णन करो ॥ ६ ॥ व्यासजी बोले शान्त जरत्कारु मुनिने गृहस्थाश्रम नहीं किया था उसने अपने पूर्वजोंको एक गर्तमें लम्बमान देखा ॥ ७ ॥ तब उन्होंने पूछनेपर कहा हे पुत्र ! दारसंग्रह करो जिस्से हमारी तृप्ति हो ! और दुःखरहित होकर स्वर्गको गमन करें, हे पुत्र ! तुम सदाचारी हो तुमसे ऐसा होना उचित है ॥ ८ ॥ यह सुनकर मुनिने कहा जब कन्याका और मेरा नाम एक होगा तथा समान वर्ण मेरी वशगामिनी होगी तो मैं विवाह करूंगा यह आपसे सत्य कहता हूं ॥ ९ ॥ यह कहकर जरत्कारु तीर्थोंको चलेगये उसी समय माताद्वारा सर्पोंको शाप हुआ था कि तुम अग्निमें पतित हो ॥ १० ॥ कश्यप मुनिकी पत्नी कद्रू और विनता दो थीं, वे आदित्यके रथके घोड़ेको देखकर बोलीं ॥ ११ ॥ उसको देखकर कद्रूने विनतासे कहा हे भद्रे! यह घोड़े किस वर्णके हैं? कहो ॥ १२ ॥ विनताने कहा यह घोड़े किस वर्णके है. मैं तो श्वेत मान्ती हूं, तुमभी वर्ण बताओ तब हम दाव लगायें ॥ १३ ॥ कद्रू बोली हे शुचिस्मिते ! मैं तो इनको कृष्णवर्ण मान्ती हूं, जो हममें अशुद्ध कहे वही उसकी दासी होकर रहै ॥ १४ ॥ सूतजी बोले कद्रूने अपने वशीभूत सर्पोंसे कहा हे पुत्रो ! तुम अश्वोंके शरीरमें लिपटकर उनको कृष्णवर्ण कर दो ॥ १५ ॥ जिन्होंने यह बात न मानी उनको शाप दिया कि जनमेजयके यज्ञमें तुम अग्निमें भस्म होगे ॥ १६ ॥ दूसरे सर्पोंने लिपटकर उनको कबरे वर्णका कर दिया और माताके प्रियकी इच्छासे घोड़ोंकी पूंछमें लिपट गये ॥ १७ ॥ और उन दोनों भगिनियोंने जाकर घोड़ोंको देखा घोड़ोंको कर्बुरवर्ण देखकर विनता बड़ी दुःखी हुई ॥ १८ ॥ तब उनके महाबली पुत्र गरुडजी आये,

और माताको दीन देखकर पूछनेलगे ॥ १९ ॥ हे मातः ! तुम क्यों दीन हो मुझको रोतीसी दीखतीहो, मेरे और रविसारथी अरुणके होते तुम क्यों दुःखी हो? ॥ २० ॥ हे मातः ! यदि हमारे होते तुम दुःखी हो तो हमारे जीनेको धिक्कार है, जो माता दुःखी हो तो उस पुत्रके जीनेसे क्या है ? ॥ २१ ॥ हे मातः ! मुझसे वह कारण कहो मैं तुमको दुःखरहित करूंगा, विनताने कहा पुत्र मैं सपत्नीकी दासी हुई और वृथा खंडित हूं मैं क्या करूं ? ॥ २२ ॥ वह कहती है जहां मेरे जानेकी इच्छा हो वहां कंधेपर चढ़ाय लेचल, इससे मै बड़ी दुःखी हूं गरुड़जी बोले जहां वह जानेकी इच्छा करेगी वहां मैं उसे लेजाऊंगा ॥ २३ ॥ हे कल्याणी ! शोक मत करो मैं तुमको निश्चिन्त करदूंगा, व्यासजी बोले ऐसा कहकर विनता कद्रूके पास गई ॥ २४ ॥ और महाबली गरुडजी दासीभाव निवारणके निमित्त पुत्रौंसहित उसको लिये समुद्रके पार गये ॥ २५ ॥ जाकर गरुडजी बोले हे मातः! कहो मैं तुमको प्रणाम करता हूं. मेरी माताका दासीभावसे कैसे छुटकारा होगा? ॥ २६ ॥ कद्रूने कहा यदि तू देवलोकसे बलपूर्वक अमृत लाकर मेरे पुत्रोंको दे तो मैं तेरी माताको मुक्त करदूं ॥ २७ ॥ व्यासजी बोले यह श्रवण करतेही गरुडजी बहुत शीघ्र इन्द्रलोकको गये और युद्ध करके उस सुधाके कुंभको खगोत्तमने ग्रहणकिया ॥ २८ ॥ और अमृत लाकर सर्पोंको अर्पण किया, इसपर उसने विनताको दासीभावसे मुक्त करदिया ॥ २९ ॥ जिस समय सर्प स्नान करनेगये इन्द्रने इसी अवसरमें अमृतको हरण किया और गरुडद्वारा विनता दासीभावसे मुक्त होकर विपतहीन हुई ॥ ३० घटके नीचे जो कुश धरे थे वे सर्पोंने चाटे तब कुशाग्रके स्पर्शमात्रसे उनकी जिह्वाके दो दो खण्ड होगये ॥ ३१ ॥ तब वे वासुकी आदि सर्प मातासे शापित होकर ब्रह्माजीकी शरणमें प्राप्त हो शापके भयकी बात बोले ॥ ३२ ॥ तब ब्रह्माजीने कहा जरत्कारु नामक मुनि है उसको तुम अपनी समाना नामिका कन्याका प्रदान करो ॥ ३३ ॥ उससे जो पुत्र होगा वह तुम्हारी रक्षा करैगा इसमें सन्देह नहीं, उसका नाम आस्तीक होगा ॥ ३४ ॥ वासुकी यह ब्रह्माजीके कल्याणकर वचन श्रवण कर वनमें जाकर विनयपूर्वक मुनिको कन्या देते हुए ॥ ३५ ॥ जरत्कारुने उसको समाना नाम जानकर उससे कहा जिस समय यह मेरा अप्रिय कार्य करैगी तब मैं इसे छोड़दूंगा ॥ ३६ ॥ इसप्रकार वाग्बंध करके मुनिने उसको ग्रहण किया और वासुकी उसको देकर घरको चलागया ॥ ३७ ॥ तब जरत्कारु उस महावनमें

पर्णकुटी करके उसके साथ सुख पाय वह परमतपस्वी रमण करनेलगे ॥ ३८ ॥ एक समय वे मुनि भोजन कर सो गये और वासुकी भगिनी वहां स्थित रही ॥ ३९ ॥ मुनिने कहा हे बाले! तुम मुझे किसी समय मत जगाना. इस प्रकार उस सुदतीसे कहकर मुनि सो गये॥ ४० ॥ सन्ध्याकाल उपस्थित हुआ सूर्य अस्त होगये उस बालाने कहा क्या करूं ? न जगावूं तौ कर्मलोप होगा और जगाऊं तौ मुझे त्याग देंगे ॥ ४१ ॥ और न जगाऊं तौ इनका धर्मलोप होजायगा सन्ध्याकाल वृथा होजायगा ॥ ४२ ॥ धर्मनाश न हो त्याग होनेमें हानि नहीं और त्यागसे मरणही उत्तम है मनुष्योंको धर्महानि नरकके निमित्त होती है ॥ ॥ ४३ ॥ यह विचार कर उस बालाने मुनिको जगादिया हे सुव्रत! उठो२ और संध्याकाल आनकर प्राप्त हुआ है ॥ ४४ ॥ मुनिने उठतेही कोपसे कहा तैंने मेरी निद्राका विच्छेद किया है मैं जाताहूं तू भाईके घरको जा ॥ ४५ ॥ मुनिके यह कहतेही वह कंपित होकर बोली हे महाप्रभाव! जिस निमित्त भ्राताने मुझे दिया था वह बात कैसे होगी ? ॥ ४६ ॥ मुनि कहने लगे जिसकी तुझको इच्छा है वह है [अर्थात्- तेरे भ्राताका इष्ट पुत्र तेरे गर्भमें है] तब मुनिसे त्यक्त होकर वह भ्राताके स्थानको चलीगई॥ ४७ ॥ भ्राताके पूछनेपर उसने पतिके कहे वचन कहे कि अस्ति' (है) ऐसा कहकर वह मुनि चले गये ॥ ४८ ॥ तब वासुकीने यह वचन श्रवण करके कि, मुनि सत्य वचन है परम विश्वाससे उस भगिनीको रक्खा ॥ ४९ ॥ फिर कुछ समयके उपरान्त मुनिपुत्र उत्पन्न हुआ तब वह आस्तीक नामसे विख्यात हुआ॥ ५० ॥ हे राजन्! उसने इस तुम्हारे यज्ञकी रक्षा की है. इस विज्ञानी मुनिने मातृपक्षकी रक्षा की है ॥ ५१ ॥ हे महाराज ! आपने इन मुनिका मान किया यह अच्छा किया. यह वासुकीकी भगिनीके पुत्रका कार्य सिद्ध हुआ ॥ ५२ ॥ हे राजन् ! आपका मंगल हो आपने सब भारत श्रवण किया बहुत दान दिये और मुनियोंका पूजन किया ॥ ५३ ॥ ऐसे सुकृतसे भी तुमको शान्ति पिताकी स्वर्गगति और कुलकी पवित्रता न प्राप्त हुई ॥ ५४ ॥ तौ हे राजन् ! आप देवीके उत्तम मन्दिरका निर्माण कीजिये. हे जनमेजय ! इससे आपकी सब सिद्धि हो जायगी ॥ ५५ ॥ परमभक्तिसे पूजित होकर भगवती सब कार्य करती है कुलकी वृद्धि और राज्यको स्थिर करती है ॥ ५६ ॥ हे राजन् ! विधिपूर्वक देवीयज्ञ करके श्रीमद्भागवतनाम पुराण श्रवण कीजिये ॥ ५७ ॥ यह परमपावनी कथा मैं

तुमको सुनाताहूं जो संसारकी तारनेवाली दिव्य अनेकरसोंसे युक्त है ॥ ५८ ॥ इससे अधिक और कोई श्रवणयोग्य पुराण नहीं है, हे राजन्! देवीके चरणारविन्दसे अधिक और कुछ नहीं है ॥ ५९ ॥ वे सभागी बुद्धिमान् और धन्य हैं जिनके हृदयमें प्रेमयुक्त देवी निवास करती है ॥ ६० ॥ हे राजन्! भारतवर्षमें वेही प्राणी दुःखी हैं, जिन्होंने महामाया अंबिकाका आराधन नहीं किया ॥ ६१ ॥ ब्रह्मादिक देवता जिसके आराधनमें तत्पर रहते हैं और वर्तते हैं उसका कौन सेवन न करे ? ॥ ६२ ॥ "इस पुराणमें साम्यावस्थामें स्थित मायोपाधिक ब्रह्मप्रतिपादन होनेसे मायोपाधिक ब्रह्मरूपिणी भगवती एक सत्वादिक गुणविशिष्ट होनेसे उसीकी सर्वसे श्रेष्ठता है" जो इसको नित्य सुन्ते हैं उनकी सब कामना पूरी होती हैं, यह भगवतीने स्वयं विष्णुको उपदेश की है ॥ ६३ ॥ हे राजन्! इसके श्रवणसे तुम्हारे चित्तमें शान्ति होगी. इस पुराणके श्रवणसे पितरोंको अक्षय स्वर्ग प्राप्त होता है ॥ ६४ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वितियस्कन्धे पण्डितज्वालाप्रसाद-
मिश्रकृतभाषायां श्रोतृवक्तृप्रसंगोनाम
द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

७२२ श्लोकोंमें देवीभागवतका दूसरास्कंध पूर्ण हुआ।

शुभमस्तु.

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ श्रीमद्देवीभागवत।

तृतीयस्कन्ध ३.

प्रथमोऽध्यायः १.

दोहा—पाशाङ्कुशवराभीतिधर, मन्दहासिनी माय ।
मणिद्वीपे वसती सदा, देवी करहि सहाय ॥ १ ॥

जन्मेजय बोले हे भगवन् ! आपने देवीयज्ञका बड़ा वर्णन किया वह किस प्रकार उत्पन्न है ? कौन वह अंबा ? क्या उसका स्वरूप है ? किस देश कालमें प्रगट हुई ? क्यों हुई ? और उसमें क्या गुण हैं ? ॥ १ ॥ उनका यज्ञ कैसा होता है ? उसका स्वरूप क्या है ? हे दयानिधे ! आप सर्वज्ञ हो इसका विधान कहिये ॥ २ ॥ ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति विस्तारसे कहिये जैसी मैंने पूँछी है. हे मुनीश्वर ! वह तुम सब जान्ते हो ॥ ३ ॥ ब्रह्मा विष्णु महादेव मैंने तीन देवता सुने हैं जो सृष्टि पालन और संहारके गुणवाले हैं ॥ ४ ॥ हे व्यासजी ! कहिये वे महात्मा स्वतंत्र हैं अथवा परतंत्र हैं ? यह मेरे सुन्नेकी इच्छा है ॥५॥ वे मृत्युधर्मवाले हैं वा सच्चिदानंद रूपवाले हैं ? आधिदैविक आधिभौतिक आध्यात्मिक तीन दुःखोंसे पृथक् हैं वा संयुक्त हैं ॥ ६ ॥ वे महाबली सुरेन्द्रादि कालके वशीभूत हैं वा नहीं ? वे कैसे और किस्से प्रगट हुए हैं ? सो कहिये ॥ ७ ॥ वे हर्ष शोक निद्रा आलस्यसे युक्त हैं या नहीं हे मुने ! उनके शरीर सात धातुके हैं वा नहीं ? ॥ ८ ॥ किन द्रव्य इन्द्रिय और गुणोंसे वे प्रगट हुए हैं ? उनका भोग और आयुका प्रमाण क्या है ? ॥ ९ ॥ उनका निवासस्थान और विभूति हमसे कहिये, हे ब्रह्मन् ! विस्तारसे इस कथाके सुन्नेकी हमारी इच्छा है ॥ १० ॥ व्यासजी बोले आपने यह गहन प्रश्न किया है, कि ब्रह्मादिकी उत्पत्ति किस्से है ? ॥ ११ ॥ यही बात मैंने पहले नारदजीसे पूछी थी, हे राजन् ! उन्होंने जो प्रश्नोंका उत्तर पहले दिया था सो आप सुनिये ॥ १२ ॥ किसी समय मैं गंगाके किनारे स्थित था, उस

समय वेदके ज्ञाता शान्त सर्वज्ञ नारदजीको मैंने देखा ॥ १३ ॥ देखकर मैं प्रसन्न हुआ और मैं ने मुनिके चरणोंको प्रणाम किया और उनकी आज्ञासे उनके समीप श्रेष्ठ आसनपर बैठा ॥ १४ ॥ कुशल वार्ता सुनकर मैंने नारदजीसे पूँछा जो कि सूक्ष्म-वालुकावाले गंगाके तटपर निर्जनमें बैठे हुये थे ॥ १५ ॥ हे मुने ! इस अतिविस्तार-वाले ब्रह्माण्डका कौन परम कर्ता है ? यह आप विधिपूर्वक हमसे कहिये ॥ १६ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! यह ब्रह्माण्ड किससे उत्पन्न हुआ है ? यह अनित्य वा नित्य है ? सो आप कहिये ॥ १७ ॥ यह एकका निर्माण किया है वा अनेकका ? विना कर्ताके कार्य नहीं होता यह मुझे विरोध विदित होता है ॥ १८ ॥ हे नारदजी! इस प्रकार सन्देहके मध्यमें मग्न हुए इस विस्तारवाले संसारमें अनेक विकल्प करते हुए मुझे आप अब तारो ॥ १९ ॥ कोई भगवान् शंकरको कारणका कारण कहते हैं. कि सदाशिव महादेव प्रलय उत्पत्तिसे वर्जित हैं ॥ २० ॥ यह आत्माराम सुरेश त्रिगुणात्मक निर्मल हर हैं नित्य संसारके तारक सृष्टिकी स्थिति और अन्त करनेवाले हैं ॥ २१ ॥ कोई सबके ईश्वर प्रभु विष्णुकोही कथन करते हैं, कि परमात्मा अव्यक्त सम्पूर्ण शक्तिसे युक्त हैं ॥ २२ ॥ भुक्ति मुक्ति देनेवाले शान्त सबके आदि सब और सर्व तो मुख व्यापक विश्वके शरण अनादिनिधन हरि हैं ॥ २३ ॥ कोई सृष्टिका कारण ब्रह्माजीकोही कथन करते हैं, वही सबके ज्ञाता और सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रवर्तक हैं ॥ २४ ॥ चतुर्मुख सुरोंके अधिपति नाभि कमलसे होनेवाले अविनाशी विभु सब लोकके उत्पन्न करनेवाले सत्यलोकके निवासी हैं ॥ २५ ॥ कोई वेदवादी सूर्यदेवको ही सृष्टिका कर्ता कहते हैं, सायं प्रभात सावधान होकर उन्हीकी स्तुति गान करते हैं ॥ २६ ॥ कोई यज्ञमें शतक्रतु इन्द्रका यजन करते हैं कि सहस्राक्ष देवदेव सबके महान् स्वामी हैं ॥ २७ ॥ जो यज्ञाधीश सुराधीश त्रिलोकपति शचीके भर्ता यज्ञोंके भोक्ता सोमपान करनेवाले सोमपान करनेवालोंके प्रियही बड़े हैं ॥ २८ ॥ कोई वरुण, सोम, पावक, पवन, यम, कुबेर, धनदाता, गणेश ॥ २९ ॥ हेरम्ब गजवदन, सर्वकार्यके सिद्ध करनेवाले, स्मरणसे ही सिद्धि देनेवाले काम-दायक गणेशकोही कामग कहते हैं ॥ ३० ॥ कोई आचार्य भवानीको ही सब अर्थोंका दाता समझते हैं, कि यही आदिमाया महाशक्ति प्रकृति पुरुषगामिनी, ॥ ३१ ॥ ब्रह्मके साथ एकताको प्राप्त हुई सृष्टिकी स्थिति और अन्तकरने-वाली सब भूत और देवताओंकी माता ॥ ३२ ॥ अनादिनिधन परि-

पूर्ण, सब जन्तुओंमें व्याप्त, सब लोकोंकी ईश्वरी निर्गुण सगुण कल्याणरूपिणी ॥ ३३ ॥ वैष्णवी शांकरी ब्राह्मी वासवी वारुणी वाराही नारसिंही महालक्ष्मी ॥ ३४ ॥ वेदमाता एकही संसारसागरसे तारनेको दृढ है, सब दुख-हारिणी और स्मरणसे ही सब कामना देनेवाली है ॥ ३५ ॥ मुमुक्षुओंको मुक्ति देनेवाली फलार्थियोंको कामना देनेवाली त्रिगुणसे परे रूपवाली गुणोंके विस्तार करनेवाली ॥ ३६ ॥ उस निर्गुणा सगुणाको फलकी इच्छावाले ध्यान करते हैं. कोई निरंजन निराकार निर्लेप निर्गुण ॥ ३७ ॥ अरूप व्यापक ब्रह्मकोही सबका कर्ता कहते हैं, कि वेद उपनिषदमें कहा हुआ कोई तेजरूप है ॥ ३८ ॥ यही सहस्रशीर्ष पुरुष सहस्रनेत्र है, यही सहस्रकर्ण सहस्रमुख सहस्रनेत्र है ॥ ३९ ॥ यह परमाकाश विष्णुका एक पादमात्र है जिसको विद्वान् निर्मल शान्त विराट्रूप कहते हैं ॥ ४० ॥ कोई पुराविद पुरुषोत्तमकोही सर्वश्रेष्ठ कहते हैं और कोई यह कहते हैं कि कोई एक ईश्वर नहीं है ॥ ४१ ॥ कोई कहते हैं यह सब ब्रह्माण्ड अनीश्वर है. कोई इसका ईश्वर नहीं है, क्यों कि यह अचिन्तित जगत् ईश्वरजन्य नहीं होसक्ता है ॥ ४२ ॥ कोई कहते हैं कि यह सत्रूप है अनीश है स्वभावसेही यह ऐसा होरहा है, यह पुरुष अकर्ता है प्रकृति ही ऐसा करती है ॥ ४३ ॥ इस प्रकारसे सांख्य और कपि-लके मतवादी मुनि कहते हैं, इस प्रकारके औरभी बहुतसे सन्देह हैं ॥ ४४ ॥ हे मुनीश्वर! तब चित्त विकल्पसे व्याकुल होजाता है मैं क्या करूं? धर्म अधर्मकी विवक्षामें मन स्थिर नहीं होता है ॥ ४५ ॥ क्या धर्म? क्या अधर्म है? इसका चिह्न विदित नहीं होता, देवता सत्वगुणमें उत्पन्न और सत्यधर्ममें स्थित हैं ॥ ४६ ॥ परन्तु पापिष्ठ दैत्योंसे पीडित होते हैं फिर धर्मकी स्थिति कहां है? धर्ममें स्थित सदाचारवाले हमारे वंशीय पाण्डव पुरुष ॥ ४७ ॥ अनेक प्रकारके दुःख पातेहुए, तौ फिर धर्मकी स्थिति क्या है? हे तात! इस कारण मेरा हृदय सन्देहसे कम्पित होता है ॥ ४८ ॥ हे महा-मुने! आप समर्थ हो इस कारण मेरे मनको सन्देहरहित कीजिये, हे मुने! ज्ञानरूपी जहाजसे आप मुझे संसारसागरके पार कीजिये ॥ ४९ ॥ मैं मोहरूपी सागरमें वारंवार उछलता डूबता हूं ॥ ५० ॥

इति श्रीदेवीभा०म०पु०तृतीयस्कन्धे भाषायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

व्यासजी बोले हे कुरुश्रेष्ठ! जो आपने मुझसे पूछा है मेरे पूछनेपर नारदजीने इन प्रश्नोंको कहा था ॥ १ ॥ नारदजी बोले हे व्यासजी! आपसे मैं क्या कहूं? पहले मेरे हृदयमें भी बड़ा सन्देह हुआ था ॥ २ ॥ तब मैं महातेजस्वी पिता ब्रह्माजीके निकट गया, हे व्यासजी !जो तुमने पूँछा यही बात मैंने पिताजीसे पूँछी ॥ ३ ॥ हे पितः! यह ब्रह्माण्ड किससे उत्पन्न हुआ है ? यह आपका किया है वा विष्णुका? ॥ ४ ॥ हे जगत्पते ! अथवा यह रुद्रका किया है? सो सत्य कहिये कौन सबसे उत्कृष्ट प्रभु आराधन करनेके योग्य है? ॥५॥ सो यह सब आप कहकर सन्देह छेदन कीजिये मैं इस असत्य संसारमें निमग्न होरहा हूं ॥ ६ ॥ संदेहसे चित्त दोलायमान होकर कभी शान्त नहीं होसक्ता, तीर्थ देवता तथा दूसरे साधनोंमें ॥७॥ परतत्वको विना जाने कहां शान्ति होसक्ती है, हे परंतप ! बहुत स्थलोंमें लगाहुआ चित्त शांतिको प्राप्त नहीं होता ॥ ८॥ किसका स्मरण करूं ? किसका भजन करूं ? कहां जाऊं? किसका अर्चन करूं?किसकी स्तुति करूं ? मैं सर्वेश्वरको नहीं जान्ता हूं ॥ ९ ॥ तब लोकपितामह ब्रह्माजी कहनेलगे, हे व्यासजी ! जब मैंने यह प्रश्न किया तब ॥१०॥ ब्रह्माजी बोले, हे पुत्र! क्या कहूं? यह प्रश्न बड़ा दुर्बोध है, हे महाभाग! आपको इस प्रश्नमें विष्णुभी पूर्ण निश्चयसे नहीं कहसक्ते ॥ ११ ॥ हे महामते! इस संसारमें रागी कोईभी इस बातको नहीं जान्ता है; जो विरक्त निरीह और अभिमानरहित है वह इस बातको जानसक्ता है ॥ १२ ॥ जब पूर्वकालमें यह जगत् स्थावरजंगमके नष्ट होनेसे एकार्णव था, तब पंच महाभूतमात्रके उत्पन्न होनेसे कमलसे मैंने जन्म लिया ॥ १३ ॥ उस समय चन्द्र सूर्य वृक्ष पर्वत आदि किसीकाभी मैंने दर्शन नहीं किया, कर्णिकामें स्थित होकर मैं चिन्ता करनेलगा ॥१४॥ इस महासागरमें मैं कहांसे उत्पन्न हुआ हूं? मेरा उत्पादक पालक वा संहर्ता युगात्ययमें कौन है? ॥ १५॥ पृथ्वीभी स्पष्ट नहीं दीखती जिसके आधारमें यह जल है,परन्तु यह कमल प्रसिद्धरूप किस प्रकार उत्पन्नहुआ है?॥ १६॥ अब मैं इस कमलकी मूलको अवलोकन करूं अवश्य इसकी मूलमें धरा होगी इसमें सन्देह नहीं ॥ १७ ॥ तब उस कमलसे उतरकर सहस्रवर्षतक ढूंढता रहा और धरणीको न पाया ॥ १८ ॥ तप करो तप करो जब इसप्रकार आकाशसे वाणी हुई तब मैं ने उस कमलमें सहस्रवर्षतक तप किया ॥ १९ ॥ 'सृजन करो' फिर ऐसी

वाणी सुनीगई यह सुनकर मैं विमूढ होगया और विचारने लगा क्या सृजन करूं? और क्या करूं? ।। २० ।। तब उस समय बड़े दारुण मधु कैटभ दैत्य आनकर प्राप्तहुए, उनको सागरमें युद्धनिमित्त आया देखकर मैं डरा।।२१।। तब मैं नालका आश्रयकर जलके मध्यमें अवतरित हुआ वहां मैंने परम अद्भुत पुरुषका दर्शन किया ॥ २२ ।। जो मेघकी समान श्यामशरीर पीले वस्त्र पहरे चतुर्भुज शेषपर शयनकियेहुए जगन्नाथ वनमालासे विभूषित ।। २३ ।। शंख चक्र गदा पद्मादि आयुधोंसे विराजमान थे इस प्रकार शेषशय्यापर शयन करते महाविष्णुको मैंने देखा ।। २४ ।। जो योगनिद्राके वशीभूत होनेसे कुछभी चलायमान नहीं थे उस प्रकार सर्पशय्यापर शयन करता देखकर ॥ २५ ॥ हे नारद! मुझे बड़ी चिन्ता हुई कि मैं क्या करूं ? तब मैंने निद्रा-स्वरूपिणी देवीका स्मरण किया. ॥ २६ ॥ तब वह देवी उनकी देहसे निर्गत होकर आकाशमें स्थित हुई, जो अवितर्क शरीर होनेसे दिव्य आभूषण धारणकिये थी॥ २७॥ इसप्रकार शीघ्रही विष्णुके देहको त्यागनकर वह आकाशमें स्थित हुई, और उससे मुक्त होकर भगवान् जनार्दन उठे ॥ २८ ॥ पांचसहस्रवर्षतक उन्होंने बड़ा युद्ध किया तब उन दैत्योंको नारायणने मारा ॥ २९ ॥ और विमल गोदी करके उसीपर उनका वध किया, और जहां हम दोनों स्थित थे वहीं रुद्र देवता आनकर प्राप्त हुए ॥ ३० ॥ हम तीनोंने आकाशमें स्थित देवीका दर्शन किया, और स्तुतिको प्राप्त हो भगवती हमसे बोली ॥ ३१ ॥ हमको कृपादृष्टिसे पवित्र कर देवी कहने लगी. हे ब्रह्मा विष्णु महेश ! तुम सावधान होकर अपने कार्योंको करो॥ ३२॥ अब सृष्टि स्थिति संहारके कार्य करो. यह दोनों दैत्य तो मृत्युको प्राप्त हुए हैं, और अपने२स्था-न बनाय आनंदपूर्वक निवास करो ।। ३३ ।। और अपने ऐश्वर्यसे चार प्रकारकी प्रजाकी रचना करो. ब्रह्माजी बोले यह भगवतीका सुन्दर और मृदु वचन श्रवणकरके ॥ ३४ ॥ हम सबने कहा हम शक्तिहीन होनेसे यह प्रजा किस प्रकार करैं? हे मातः ! पृथ्वीभी तो नहीं सर्वत्र जल भर रहा है ॥ ३५ ॥ न भूतोंके गुण तन्मात्रा और इन्द्रिय हैं, हमारे यह वचन सुनकर शिवा हँसने लगी ॥ ३६ ॥ और उस समय वहां आकाशसे एक विमान उतरा और कहा हे देवताओ! प्रसन्नतासे आप इस विमानमें आरूढ हो ॥ ३७ ॥ हे ब्रह्मा विष्णु महेश ! विमानमें बैठो मैं अद्भुत वार्ता तुमको दिखाऊंगी यह वचन सुन हम तीनो इस बातको स्वीकार करके ॥ ३८ ॥ उस रत्नजटित विमानमें प्रसन्न होकर बैठे जिसमें मोती जड़े और

घूंघरुओंका शब्द हो रहा था, ॥ ३९ ॥ वह मनोहर देवस्थानकी समान था. हम तीनो शंकारहित हो वहां बैठे तब हम विजितेन्द्रियोंको उसपर स्थित देख देवीने ॥ ४० ॥ अपनी शक्तिसे आकाशमें विमान चलाया ॥ ४१ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे भाषायां तृतीयस्कंधे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

ब्रह्माजी बोले मनके वेगसे वह विमान स्थानान्तरमें चलागया, वहां प्रलयका जल न देखकर हम शंकित हुए ॥ १ ॥ सब वृक्ष फलोंसे मनोहर कोकिलके शब्दोंसे शब्दायमान थे, भूमि पर्वत वन उपवन सब मनोहर थे ॥ २ ॥ नारी पुरुष पशु नदी बावड़ी कुए सरोवर छोटे सरोवर और झरनोंसे शोभित ॥ ३ ॥ चारों ओरसे पुर बड़ा रमणीय दिव्य परिखाओंसे युक्त यज्ञशाला और अनेक महलोंसे युक्त ॥ ४ ॥ उस नगरको देखतेही यह ज्ञान हुआ कि यह स्वर्ग है और किसने इसका निर्माण किया है? ॥ ५ ॥ वहां हमने देवराजको मृगया करते वनमें विचरते हुए देखा, विमानपर भगवतीका दर्शन किया ॥६॥ फिर पवनसे प्रेरित हुआ विमान क्षणमात्रमें दूसरे मनोहर देशमें प्राप्त हुआ ॥ ७ ॥ वहाँ हमने सुन्दर नन्दनवन देखा और पारिजात वृक्षकी छायामें सुरभी स्थित थी ॥ ८ ॥ उसके समीपही चार दांतवाला हाथी स्थित देखा, और वहां मेनका आदि अप्सराओंके समूह देखे ॥ ९ ॥ जो अनेक प्रकारके भाव और नृत्य गीतादिसे क्रीडा करतीथीं, वहां सैकड़ों गन्धर्व यक्ष विद्याधर देखे ॥ १० ॥ मंदार वाटिकाके मध्यमें गाते और रमण करते है वहां शचीसहित इन्द्रका दर्शन किया ॥ ११ ॥ इस प्रकार त्रिविष्टपको देखकर हम तो विस्मित होगये. वरुण, कुबेर, यम, सूर्य, अग्नि ॥ १२ ॥ इनको देखकर हम बड़े विस्मित हुए, तब उस पुरसे वही देवराज निर्गत हुए ॥ १३ ॥ जो देवराज स्वभावसे अक्षोभ्य नरवाहन शिविकापर स्थित थे, फिर हम बड़े वेगसे विमानपर चले ॥ १४ ॥ तब सब लोकोंसे नमस्कृत ब्रह्मलोकमें पहुँचे. वहां ब्रह्माजीको स्थित देखकर नारायण बड़े विस्मित हुए ॥ १५ ॥ वहां उनकी सभामें अंगों सहित सब वेद उपस्थित थे, यह स्वरूप धारण किये थे, सागर नदी पर्वत पन्नग उरग थे ॥ १६ ॥ तब केशव और शिवने हमसे पूँछा यह सनातन ब्रह्मा कौन है? तब हमने हरकेश-

१ यह ब्रह्मादिक दूसरे ब्रह्माण्डोंके देखे।

वसे कहा मैं इनको नहीं जान्ता हूं? ॥ १७ ॥ हे ईश्वरो ! मैं कौन हूं? यह कौन हैं ? यह हमको भ्रम हुआ है, इसमें हम कुछ नहीं जान्ते यह कहतेही क्षणमात्रमें वायुवेगसे वह विमान चला ॥ १८ ॥ और यक्षगणोंसे सेवित मनोहर कैलास पर्वतमें प्राप्त हुआ, जहां मनोहर मंदारवाटिका थी और कीर कोकिल कूज रहे थे ॥ १९ ॥ वीणा मुरजके बाजोंसे नादित सुखदायक शिवस्वरूप था. जब वहां विमान प्राप्त हुआ तभी उस स्थानसे ॥ २० ॥ वृषपर स्थित भगवान् त्रिलोचन देव निर्गत हुए जो पंचमुख दशभुजा अर्धचन्द्रसे मस्तकमें शोभायमान थे ॥ २१ ॥ व्याघ्रचर्म धारण किये गजचर्मका उत्तरीय धारे पार्ष्णिभागमें स्थित महावीर गणेश और कार्तिकेय ॥ २२ ॥ शिवके सहित दोनो पुत्र विराजमान थे और नंदीको आदि लेकर सब गण थे ॥ २३ ॥ जयशब्द कहते हुए शिवके पीछे गमन करते हैं. हे नारद ! वहां दूसरे शंकरको देखकर हम बड़े विस्मित हुए ॥ २४ ॥ मातृकाओंके सहित शंकरको देख हम बड़े विस्मित हुए फिर क्षणमात्रमें पर्वतशृंगसे वह विमान चला ॥ २५ ॥ और वैकुण्ठमें रमारमणके मंदिरमें प्राप्त हुआ, हे नारद ! वहां मैंने अलौकिक समृद्धि देखी ॥ २६ ॥ और विष्णुभी वैकुण्ठको देखकर बड़े विस्मित हुए, जब तक मंदिरके आगे होकर चले कि तब कमललोचन हरि भगवान् ॥ २७ ॥ अलसीके फूलकी समान कान्तिमान् पीतवसन चतुर्भुज गरुडपर चढ़े दिव्य आभरणसे भूषित ॥ २८ ॥ लक्ष्मीसे सुन्दर चामरोंके द्वारा वीज्यमान उन सनातन विष्णुको देखकर हम सब परस्पर आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥ २९ ॥ और परस्पर एक दूसरेको देखकर विमानमें स्थित रहे, क्षणमात्रमें वायुवेगसे वहांसे विमान चला ॥ ३० ॥ और मीठी तरंगवाले सुधासमुद्रमें प्राप्त हुआ जो जलचरोंसे युक्त और चलायमान तरंगोंसे व्याप्त था ॥ ३१ ॥ मंदार और परिजातके वृक्षोंवाले द्वीपसे शोभायमान अनेक आस्तरणोंसे शोभित और चित्र विचित्र पदार्थोंसे युक्त ॥ ३२ ॥ मोतीमाला तथा अनेक वस्तुओंसे विराजमान अशोक बकुल वृक्ष कुरुबकोंसे सम्पन्न ॥ ३३ ॥ चारों ओर मनोहर केतकी और चम्पाके वृक्षोंसे युक्त कोकिलाके शब्द और दिव्य गन्धसे युक्त ॥ ३४ ॥ भौंरोंकी झनकारसे युक्त परम अद्भुत था. उस द्वीपमें शिवाकार एक परम मनोहर पलँग था ॥ ३५ ॥ जो रत्नोंसे खचित और अनेक रत्नोंसे विराजित था. इस प्रकार विमानमें स्थित हुएही हमने वह दूरसे देखा ॥ ३६ ॥ जो अनेक

प्रकारके बिछावनोंसे सम्पन्न इन्द्रचापसे युक्त था उस पलँगपर कोई बड़ी श्रेष्ठ स्त्री स्थित थी ॥३७॥ रक्तमाला और वस्त्र धारण किये लाल गंध और अनुलेपन लगाये लाल मनोहर नेत्र कोटि बिजलीकी समान कान्तिमान् ॥ ३८ ॥ सुन्दर मुख लाल दांतोंसे विराजमान करोड़ों लक्ष्मीसेभी सुन्दर सूर्य विम्बकी समान मनोहर ॥ ३९ ॥ वर पाश अंकुश अभीष्टको धारण किये ऐसी मन्दहास्ययुक्त अपूर्व सुन्दरीका दर्शन किया ॥ ४० ॥ ह्रींकार जपमें निष्ठावाले पक्षिगणोंसे युक्त अरुणा और करुणाकी मूर्ति नवयौवना कुमारी ॥ ४१ ॥ सम्पूर्ण शृंगार किये मन्दस्मित मुखकमलसे युक्त, उद्यत पीन कुचोंके द्वंद्वसे कमलकुड्मलको जय करनेवाली ॥ ४२ ॥ अनेक प्रकारके मणिगण और भूषणोंसे शोभायमान कनक बाजू केयूर और किरीटसे शोभायमान ॥ ४३ ॥ दीप्यमान जो श्रीचक्राकार ताटंकरत्न कुंडल उनसे शोभित मुखकमलवाली, हृदयमें लेखाकी समान जागती हुई प्राणशक्ति अर्थात् हृदयागारमें निवास करनेवाली और भुवनेशी ब्रह्माण्डकी अधीश्वरी इन नामोंके जपनेमें परायण ॥ ४४ ॥ नित्यप्रति सखीसमूहोंसे स्तुत्य, भुवनेश्वरी महेश्वरी हृल्लेखाको आदि लेकर अमरकन्याओंसे वेष्टित ॥ ४५ ॥ और अनंगकुसुमादि देवियोंसे परिवेष्टित, और षट्कोणोंके मध्यमें यंत्रराजके ऊपर स्थित हुई देवीको ॥ ४६ ॥ देख हम सब विस्मित होकर वहाँ स्थित हुए. यह कौन कन्या? और क्या नाम है ? यहां क्यों स्थित है? किसप्रकार हम इसको जानें? ॥ ४७ ॥ जो यह सहस्रनेत्र सहस्रकर सहस्रमुखी दूरसे दीखती है इसमें सन्देह नहीं ॥ ४८ ॥ यह स्त्री अप्सरा गंधर्वी और देवांगना नहीं है. हे नारद ! इस प्रकार सन्देहको प्राप्त होकर हम वहां स्थित हुए ॥ ४९ ॥ तब भगवान् विष्णु उस चारुहासिनीको देखकर अपने मनमें निश्चय कर उनको अम्बा जानकर बोले ॥ ५० ॥ यही भगवती देवी हम सबका कारण है, यही महाविद्या महामाया पूर्ण अविनाशिनी प्रकृति है ॥ ५१ ॥ यह देवी अल्पबुद्धिवालोंको दुर्ज्ञेय योगगम्य दुराशय है, यह परात्माकी इच्छारूप है, नित्य अनित्य स्वरूपवाली है ॥ ५२ ॥ यह विश्वेश्वरी शिवा अल्पभाग्यवाले पुरुषोंसे आराधनके योग्य नहीं है यह वेदगर्भा विशालाक्षी सबकी आदि और ईश्वरी है ॥ ॥५३॥ यह सब विश्वकी क्रीडा करके युगक्षयमें क्रीडा करती है और सबके बीज लिंग अपनेमें लय करलेती है ॥५४॥ हे दोनो देवताओ ! यह सब जीवमयी विराजमान है देखो अनन्त विभूति इसके समीप स्थित हैं ॥ ५५ ॥ यह दिव्य, आभरणसे

भूषित दिव्यगंध लगाये इनकी सब परिचर्या करती हैं, हे ब्रह्मा, शंकर, सो तुम देखो ॥ ५६ ॥ इससे हम सब धन्य महाभाग और कृतकृत्य हैं जो इस समय हम भगवतीके दर्शनपथमें प्राप्त हैं ॥ ५७ ॥ जो पहले तप किया था यह उसीका फल है, अन्यथा इस प्रकारका दर्शन कैसे होसक्ताहै ॥ ५८ ॥ जो पुण्यशील तपस्यामें कुशल हैं वेही इसका दर्शन करसक्ते हैं, रागी पुरुष भगवती शिवाका दर्शन नहीं करसक्ते ॥ ५९ ॥ यही मूलप्रकृति सदा पुरुषसे संगत है, यही परमात्माके निमित्त ब्रह्माण्डरचना कर दिखाती है ॥ ६० ॥ हे देवताओ! यही अखिलब्रह्माण्डकी द्रष्ट्री है! यही सबकी कारण माया सर्वेश्वरी शिवा है ॥ ६१ ॥ कहां हम कहां दूसरे देवता रमाको आदि लेकर स्त्रियें इनके लक्ष अंशपरभी कभी कोई नहीं होसक्ती ॥ ६२ ॥ यह वही है जो हमने सागरमें देखी थी जो बालभावमें हमको खिला रही थी ॥ ६३ ॥ जिस समय हम वटपत्रपर जो दृढपर्यंककी समान था शयन करते थे और पदांगुष्ठ मुखकमलमें कर उसका रस लेते थे ॥ ६४ ॥ अनेक बालचेष्टाओंसे होठ चाटते तथा क्रीडा करतेहुए रमण करते हुए कोमल शरीर वटपत्रके दोनेमें स्थित ॥ ६५ ॥ मेरे बालभावमें स्थित होनेसे यह गाती और खिलाती थी सो मेरे दर्शनसे यह निश्चय ज्ञान प्राप्त हुआ है ॥ ६६ ॥ यह अवश्यही हम सबकी माता है सुनो मैं कहताहूं मैंने पहले अनुभव किया है वही यह ज्ञान मुझको प्रादुर्भूत हुआ है ॥ ६७ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

ब्रह्माजी बोले भगवान् विष्णु जनार्दन यह कहकर फिर बोले हम प्रणाम करते२ इनके समीप चले ॥ १ ॥ यह श्रेष्ठ महामाया हमको वर देगी हम निर्भय होकर इनके चरणोंमें भक्ति करैं ॥ २ ॥ जो हमको द्वारमें स्थित परिचारिका निवारण करैंगी, तो वहीं स्थित होकर देवीकी स्तुति करैंगे ॥ ३ ॥ ब्रह्माजी बोले ऐसा भगवान् विष्णुके कहनेपर हम प्रसन्न हो वहां स्थित हुए और निकट जानेके निमित्त प्रसन्न हुए ॥ ४ ॥ और हम स्वीकार कर तीनो विमानसे उतरकर शंका करते हुए द्वारपर स्थित हुए ॥ ५ ॥ भगवती देवीने उन सबको द्वारपर स्थित देखकर मंद मुसक्यायकर तीनोंको स्त्रीरूप करदिया ॥ ६ ॥ हम सुन्दर भूषण रूपादि धारे

स्त्रीरूप होगये और परम विस्मयको प्राप्त हो भगवतीके समीप गये ॥ ७ ॥ उन्होंने हमें स्त्रीरूपमें चरणके समीप स्थित देखा तब कृपादृष्टिसे भगवती हमको देखनेलगी ॥ ८ ॥ हम उनको प्रणामकर आगे स्थित हुए और स्त्रीरूपमें सुन्दर भूषण पहरे परस्पर देखनेलगे ॥ ९ ॥ अनेक मणियोंसे भूषित उनके पादपीठको देखने लगे जो अनेक महारत्नोंसे भूषित था वह कोटि सूर्यकी समान प्रकाशमान था वहां हम तीनो स्थित हुए ॥ १० ॥ वहां सहस्रों दासी थीं कोई रक्ताम्बर नीलाम्बर और पीताम्बर धारण किये थीं, ॥ ११ ॥ वे सब देवी मनोहर विचित्र वस्त्र धारण किये थीं, और समीपमें स्थित हुई भगवतीकी परिचर्या ग्रहण करतीथीं ॥ १२ ॥ कोई स्त्री नाचती गाती और कोई उपासना करती थीं, कोई प्रसन्न हो वीणा तथा वेणु आदिक बाजे बजाती थीं ॥ १३ ॥ हे नारद ! जो वहां मैं ने देखा सो सुनो देवीके चरणकलके नखके मध्यमें ॥ १४ ॥ सब स्थावर जंगम ब्रह्माण्डमें विष्णु, रुद्र, वायु, सूर्य, अग्नि; यम ॥ १५ ॥ वरुण; चन्द्रमा, त्वष्टा कुवेर इन्द्र, पर्वत, सागर, नदी, गन्धर्व, अप्सरा ॥ १६ ॥ विश्वावसु, चित्रकेतु, श्वेत, चित्रांगद, नारद, तुम्बरु, हाहा, हूहू ॥ १७ ॥ अश्विनी कुमार, वसु, साध्य, सिद्ध, पितर' शेषादिक नाग, किन्नर, उरग, राक्षस ॥ १८ ॥ वैकुण्ठ, ब्रह्मलोक, पर्वतोंमें उत्तम कैलास, यह सब वस्तु हमने नखके मध्यमेंही स्थित देखी ॥ १९ ॥ और कमलके मध्यसे अपना जन्म तथा कमलपर अपनेको स्थित देखा, शेषशायी जगन्नाथ और मधुकैटभको देखा ॥ २० ॥ भगवान् बोले इसप्रकार हमने भगवतीके चरणनखमें सब कुछ देखा और देखकर मैं बड़ा विस्मित हुआ कि यह क्या है ? ॥ २१ ॥ विष्णु और शंकरभी आश्चयम मग्नहुए तब हम सबने विश्वकी माताको पहचाना ॥ २२ ॥ इसप्रकार उनका ऐश्वर्य देखते सौवर्ष बीतगये, और उस सुधामय द्वीपमें विहार करनेलगे ॥ ॥ २३ ॥ वहां अनेक प्रकारकी देवी अनेक आभरण धारण किये हम सबको सखीकी समान मानने लगीं ॥ २४ ॥ और हमभी उसकी मनोहरता देख मोहित होगये, और प्रसन्न मन होकर अनेक मनोहर भावोंको देखनेलगे ॥ २५ ॥ एकसमय उस भुवनेश्वरी देवीको युवतीभावमें स्थित हुएही भगवान् विष्णु संतुष्ट करनेलगे ॥ ॥ २६ ॥ श्रीभगवान् बोले प्रकृति, विधात्री, कल्याणी, कामदात्री, वृद्धिसिद्धि रूप देवीके निमित्त नमस्कार है ॥ २७ ॥ सच्चिदानंदरूपिणी, संसारके दूरकरनेको अरणीरूप, पंचविधिकृत्य, सृष्टि स्थिति संहार तिरोभाव अनुग्रह कर-

णरूप भुवनेशीके निमित्त नमस्कार है ॥ २८ ॥ सबकी अधिष्ठान रूप अर्थात् सब विवृतरूप मिथ्या जगत् आविष्कृत ब्रह्मरूपिणी, दोनों देहसे अधिष्ठान होनेसे कूटवत् निर्विकार चैतन्य कूटस्थरूप, अर्धमात्र परब्रह्मरूपिणी, प्रत्यगात्मरूपके निमित्त प्रणाम है ॥ २९ ॥ हे देवी! मैं ने यह जाना कि यह सम्पूर्ण जगत् तुम्हारेमें स्थित है, हे मातः! तुमसेही इसका संभव और लय होता है, तुम्हारी ही इसके करनेमें सामर्थ्य है, तुम्हारा प्रभाव महान् है मैंने अब जाना यह निश्चय है कि तुमही सकल लोकमयी हो ॥ ३० ॥ यह सम्पूर्ण सत् आकाश वायुरूप अमूर्तभूत असत् तेज जल भूमिरूप मूर्तिमान् तीन भूत इनके विकारसे परिणामरूप जगतको उत्पन्न करके भोक्तारूपी चेतनको दिखाती हो, जिससे वह अनेक प्रकारके भोगोंको प्राप्त होता सांख्यके सम्मत सोलह तत्व, सात महदादि तत्वोंसे परिणत हुई तुम हमको इन्द्रजालकी समान विलक्षण अनिर्वचनीय दीखती हो ॥ ३१ ॥ तुम्हारे विना कोईभी वस्तु प्रकाशित नहीं होती, सबको व्याप्त करके तुम स्थित हो, शक्तिके विना पुरुष भी व्यवहार नहीं करसकता, हे देवी! यह बुद्धिमान् मनुष्य तुम्हारे भक्त कहते हैं. जो वस्तु भासती है वह नामरूप विशिष्ट भासती है, वह नाम रूप तुम्हारा रूपही है इससे तुम्हारी गति अव्याहत है ॥ ३२ ॥ हे मातः! तुम अपने प्रभावसे सम्पूर्ण विश्वको प्रसन्न करतीहो और अपने तेजसे सबको प्रगट करती हो. और कल्पकालमें सबको संहार करतीहो हे देवि! तुम्हारे वैभवका चरित्र कौन जानता है? ॥ ३३ ॥ हे जननि! आपने मधुकैटभसे हमारी रक्षा की आपनेही लोकविस्तार कर दिखाया है फिर हमको परम सुखके भवनमें प्राप्त किया है. हे भवानि! तुम्हारा दर्शन बड़े प्रभाववाला है॥ ३४ ॥ हे मातः! मैं शिव ब्रह्मा तथा औरभी कोई तुम्हारे दुर्विभाव्य चरित्रको नहीं जान्ता है, हे महादेवि! आपके रचना-कलापमें जितने भुवन हैं उनको कौन जान सक्ता है ? ॥ ३५ ॥ हमने इस भुवनमें दूसरे विष्णु शिव ब्रह्माका दर्शन किया है, हे देवि! क्या दूसरे भुवनोंमें वे न होंगे ? हे देवि! तुम्हारे विस्तृत प्रभावको हम क्या जानें? ॥ ३६ ॥ हे मातः! आपके चरणकमलमें निपतित होकर हम यही याचना करते हैं कि आपका यह रूप सदा हमारे हृदयमें निवास करता रहै, मुखमें निरन्तर तुम्हारा नाम और तुम्हारे चरणक-मलका दर्शन सदा हमको होता रहै, ॥ ३७ ॥ यह हमारे दास हैं सदैव इस प्रकारसे भावना करनी, हम तुमको मनसे सदा स्वामिनी जानते हैं हे भगवति! यह हम दोनोंकी

वृत्ति सदा रहै. हे मातः ! तुम सदैव पुत्रकी समान हमपर कृपा करती रहो ॥ ३८॥ तुम इस सम्पूर्ण प्रपंचको जान्तीहो कारण कि सर्वज्ञता तुमपर समाप्त है हे जगन्मातः ! हम पामर जन क्या निवेदन करैं? हे भवानि ! जो युक्त हो सो करो जो तुम्हारा इंगित होगा सो युक्त होगा ॥ ३९ ॥ ब्रह्मा सृजन करते विष्णु रक्षा करते उमापति संहार करते हैं, यह लोकमें प्रसिद्धि है, सो हे देवि ! क्या यह सत्य है? हम तौ तुम्हारी इच्छासे और सामर्थ्यसे ही सब कुछ करनेमें समर्थ हैं ॥ ४० ॥ हे धात्री ! तुम्ही धराधर पुत्रद्वारा जगत् धारण कराती हो, सम्पूर्ण आधार शक्तिही यह जगत् धारण करती है, हे वरदे ! तुम्हारी कान्तिही यह सूर्य प्रकाशमान होता है तुम्ही यह सब निर्मलरूपसे प्रकाश कर रहीहो, ॥ ४१ ॥ हे मातः ! ब्रह्मा मैं शिव यह तुम्हारेही प्रभावसे जन्मवान् हैं, नित्य नहीं है, फिर इन्द्रादि दूसरे देवता नित्य किसप्रकार होसक्ते हैं? हे मातः ! तुमही पुराण प्रकृतिरूप नित्य हो ॥ ४२ ॥ हे भवानि ! आपही पुराणपुरुषपर दया करती हो यह मैं तुम्हारे सन्निधानसे निश्चय जान्ता हूं, यदि ऐसा न होता तौ अनेक अहंकारादि धर्मवान् अहंकार प्रकृति मूढ होजाय, अर्थात् मैं विभु, मैं अनादि, मैं ईश हूं इत्यादि अहंकार धर्मवाला पुरुष होजाय॥ ४३॥ बुद्धिमान् मनुष्योंकी विद्या तुमही हो शक्तिमानोंमें शक्ति तुमही हो तुमही कीर्ति कान्ति, कमला, तुष्टिरूप, युक्ति और ज्ञानकी दाता मनुष्यलोकमें तुमही हो॥ ४४॥ पहले वेदकला गायत्री तुमही हो हे भगवती!स्वाहा स्वधा सगुणा अर्धमात्रा तुमही हो यह आपने जो शास्त्रका विधान किया है यह देवादिकोंके भी जीवन अर्थात् रक्षणके निमित्त किया है ।। ४५ ।। मुक्तिके निमित्त ही यह सब प्रपंच रचागया है, जिससे ज्ञान होकर यह जीव मुक्त होता है, यह जीव उस अनादिनिधन जीवके अंशरूप है जैसे सागरकी तरंगें होतीं हैं इन्हींके उद्धारके निमित्त शास्त्ररचना तुम्हारी दया है।।४६।। जिस समय यह जीव तुम्हारी कृत्यको जान्ता है, अर्थात् तुम्हारी महिमाको जान्ता है, कि इस अखिल जगतका तुमही संहार करतीहो, जैसे मिथ्यारूप अन्तरंग अर्थात् अतिगुप्त चमत्काररूप कार्यके करनेमें नटका नाटक चारित्र शान्त हो जाता है ऐसेही तुम्हारे ज्ञानसे विश्व शान्त होजाता है ।। ४७ ।। इस मोहसागरसे तुमहीं हमारी रक्षक हो, हे अम्बिके ! मैं तुम्हारी नित्य शरण होताहूं रागादिसे विरचित अन्तमें मिथ्यारूप इस दुःखरूप कालसे तुम मेरी रक्षा करो ।। ४८ ।। हे महाविद्ये !

देवि ! मैं तुम्हारे चरणोंको नमस्कार करताहूं हे सब अर्थदायक भगवति ! मुझको सदा ज्ञान दीजिये ॥ ४९ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंडितज्वालाप्रसादकृतभाषायां तृतीयस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पंचमोऽध्यायः ५.

ब्रह्माजी बोले जब देवदेव जनार्दन यह कहकर मौन हुए तब उस समय प्रणाम करके शिवजी कहनेलगे ॥ १ ॥ हे देवि ! यदि हरि तुम्हारे पराक्रमसे प्रगट हुए हैं. और उसीप्रकार ब्रह्माजी तुमसे प्रगट हैं तो फिर मैं सगुण क्या तुमसे प्रगट नहीं हूं ? किन्तु तुमसेही प्रगट हूं हे शिवे! तुम सब लोकके विधान करनेमें चतुर हो ॥ २ ॥ भूमि जल पवन आकाश अग्नि गुण तुमही हो और हे मातः ! तुमही ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रियरूप हो तुमही मन बुद्धि अहंकार हो ॥ ३ ॥ वह यथार्थ नहीं जान्ते, जो कहते हैं कि यह जगत् हरि हर ब्रह्माका कियाहुआ है. यह अन्यथा कहते हैं यह तीनों देवता आपहीके किये हैं, और चराचर जगत् निर्माण करते हैं ॥ ४ ॥ भूमि, वायु, आकाश, अग्नि जलादिके गुणोंसे यह जगत् होता है, यदि यह हो तो विना तुम्हारी चित्कलाके यह जगत् स्फुट कैसे होता ? ॥ ५ ॥ यह विष्णु अज शिवके द्वारा कल्पना कियाहुआ होता है, हे मातः ! इसमें आप अनेक वेष और कुतूहलसे यथारुचि विलास करतीहुई ॥ ६ ॥ सब लोकके सृजनकरनेकी इच्छा करनेवाले हरि ब्रह्मा और शिव यह सब तुम्हारे चरणारविन्दकी भक्ति और प्रीतिको प्राप्त होकर करसक्ते हैं ॥ ७ ॥ हे मातः ! यदि हमारे ऊपर सदा आप दयायुक्त हो तो हमको तमोगुणमें किसप्रकार प्रधान किया है, ब्रह्मा रजोगुण और हरि सत्वगुणयुक्त किये ॥ ८ ॥ हे मातः ! यदि आपकी विषममति नहीं है तो यह जगत् अनेकप्रकारका क्यों किया है? राजा मंत्री भूपति दासजन तथा धनी निर्धनीसे युक्त क्यों किया है? ॥ ९ ॥ तुम्हारे तीनो गुण सृजन पालन संहारमें स्थित हैं उन्हींसे आपने हरि हर और ब्रह्माजीको जगतके कारणरूप निर्माण किया है. ॥ १० ॥ मैंने विष्णु और ब्रह्माजीने विमानमें स्थित हुए तुमको जाना मार्गमें स्थित हुए हमने अनेक लोक देखे कहो वह किसके किये हैं? क्या नवीन हैं? ॥ ११ ॥ हे जगदम्बिके! तुम अपनी इच्छासे जगतकी उत्पत्ति और पालन करती हो और अपनी कलासेही इच्छापूर्वक नाश

कर सक्ती हो, अपने पति पुरुषसे सदा रमण करतीहो हे शिवे ! हम तुम्हारी गति नहीं जान्ते ॥ १२ ॥ हे जननि ! युवतिभावमें भी प्राप्त हुए हमको चरणकमलकी सेवा दीजिये, आपके चरणकमलकी भक्तिके विना सुख कहां है? ॥ १३ ॥ हे मातः ! तुम्हारे चरणोंको छोड़कर मेरे इच्छा कहींभी नहीं होती है.नरदेह प्राप्त होकर त्रिभुवनकी अधीश्वरी तुमको प्राप्त होकर अन्यस्थानकी इच्छा नहीं है ॥ १४ ॥ हे सुदति! भावको प्राप्त होकरभी तुम्हारे चरणकमलमें कुछभी अप्रीति मुझे नहीं है, यदि आपके चरणकमलमें कुछभी अप्रीति मुझे नहीं है, यदि आपके चरणकमलका दर्शन न हो तो उस पुरुषतासे हम क्या करैंगे? ॥ १५ ॥ हे अम्बिके ! त्रिलोकीमें यह मेरी निर्मल कीर्ति होगी, जो युवतीभावको प्राप्त होकर जन्ममरणके नाश करनेवाले तुम्हारे चरणकमलका दर्शन किया ॥ १६ ॥ तुम्हारे चरणकमलके निकटकी सेवाको त्यागकर ऐसा कौन है? जो भूमिमें जाकर अकंटक राज्य पानेकी वासना करे, तुम्हारे चरणकमल जिसके निकट नहीं होते वह इस दुर्भाग्यतासे वारंवार जन्म लेकर एक युगतक उसका फल भोगता है ॥ १७ ॥ हे मातः! जो निर्मलबुद्धि मुनिजन तुम्हारे चरणोंकी पूजा त्यागकर तपमें लगते हैं, वे अवश्य विधातासे वंचितहुए अपने तपरूप वैभवके विद्यमान होतेभी मोक्ष न पाकर अपने तीनों गुणोंसे पराजित रहते हैं ॥ १८ ॥ तप जितेन्द्रियता समाधि क्रतु (यज्ञ) इनके अनुष्ठान करनेसेभी विना तुम्हारे चरणकमल सेवन किये मुक्ति प्राप्त नहीं करसक्ते ॥ १९ ॥ हे देवि ! हमारे ऊपर कृपा करो यदि कृपा है तो अपना उत्तम मंत्र हमसे वर्णन करो जो मैं सुखपूर्वक जप करता हूं आप प्रसन्न हो वह उत्तम नवार्णमंत्र कहो ॥ २० ॥ प्रथम प्रादुर्भावमें हमको प्राप्त था इस समय हमको स्मरण नहीं हुआ हे जननि ! वह भवार्णवसे तारनेको हमसे वर्णन करो ॥ २१ ॥ ब्रह्माजी बोले जब अद्भुत तेजस्वी शिवजीने इस प्रकारसे कहा तब भगवतीनें स्फुट नवाक्षर मंत्रका उच्चारण किया ॥ २२ ॥ [विधान नवमस्कंधमें कहेंगे] उसको ग्रहणकर महादेव बहुत प्रसन्न हुए और देवीके चरणोंको प्रणाम कर वहीं स्थित हुए ॥ २३ ॥ उस काम और मोक्षदायक नवार्ण मंत्रका जप करनेलगे. वाणी बीजके शुभ उच्चारणकर सहित जपते हुए स्थितहुये ॥ २४ ॥ लोकके आनंद करनेवाले शंकरको इस प्रकार स्थित देखकर महामायाके चरणोंके समीप स्थित होकर मैं कहनेलगा ॥ २५ ॥ हेमातः ! वेदभी तुमको यथार्थ जान्नेको पटु नहीं है कारण कि उन्होंनेभी यज्ञादि क्षुद्रकर्मोंमें तुमको नहीं वर्णन किया, परन्तु सर्वथा तुम्हारा ज्ञान नहीं

ऐसा नहीं है, तुम सम्पूर्ण यज्ञोंमें स्वाहानामसे विख्यात हो, हे मातः ! तुम त्रिभुवनमें सर्वज्ञरूपसे विख्यात हो ॥ २६ ॥ मैं कर्ता हूं और सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको रचता हूं मुझसे अधिक चराचरमें और कौन पुरुष है ? मैं धन्य हूं जो सब लोकमें श्रेष्ठ ब्रह्मा हूं इस गर्वसे संसारसागरमें मग्न होता विचरता हूं ॥ २७ ॥ परन्तु आज मैं तुम्हारे चरणकमलके पराग ग्रहण करनेके गर्वसे अवश्यही धन्य हुआ हूं, अर्थात् तुम्हारे प्रसादसे यथार्थ ही मैं धन्य हुआ, संसारभय दूर करनेमें चतुर मैं आपसे याचना करताहूं आप मुक्तिदायक ईश्वरी हो भयदायक संसारके निगडरूप बंधन दूर कर भक्तियुक्त करो ॥ २८ ॥ हे शिवे ! आपके चरणकमलके प्रभावसे प्रसन्न होकर यही इच्छा करता हूं कि इनसे पृथक् न हूं मैं तुम्हारा आज्ञाकारी किंकर हूं, हे शिवे ! संसारसागरमें मग्न हुए मेरी रक्षा करो ॥ २९ ॥ जो मनुष्य तुम्हारे पवित्र चरित्रको नहीं जान्ते हैं, वे मुझे जगतका कर्ता प्रभु कहते हैं, जो याजक स्वर्गकी कामनासे यजन करते हैं वे तुम्हारे प्रभावको नहीं जान्ते ॥ ३० ॥ आपने चार प्रकारसे प्रजा रचनेमें मुझे ब्रह्मात्वमें निर्माण किया है. हे आदि ! मुझसे अधिक और कौन अधिक है? इस मेरे अहंकारवाले अपराधको क्षमा करो ॥ ३१ ॥ जो आठ प्रकारका श्रम करके योगमार्गमें प्रवृत्त हुए हैं. वे समाधिमें स्थित होते हैं, वे आपका मोक्षदायक नाम नहीं जान्ते हैं. बहानेसेभी आपका उच्चारण किया नाम मुक्तिका देनेवाला होता है ॥ ३२ ॥ आपका नाम छोड़कर तत्वसंख्याके विचारनेवाले विचार करते हैं सो हेभवानि ! क्या वे संसारमें न पड़ैंगे. अवश्य पड़ैंगे हे मात: ! आपही संसारसे मुक्ति देनेवाली हो ॥ ३३ ॥ हरि हर आदिके भजन करनेमें जिन्होंने परतत्व जाना है और यदि वे आधे निमेषकोभी अम्बिकाका परम नाम जपते हैं वे कभी फिर इस नामको नहीं त्यागते हैं ॥ ३४ ॥ क्या तुम इस जगतके विधान करनेमें समर्थ नहीं हो? समर्थ हो अपनी दृष्टिसेही जगतको चार प्रकारका विभक्त करती हो; अपने विनोदके निमित्त मुझ ब्रह्माको विधान करके आदिसर्गमें यह सब कुछ करतीहो ॥ ३५ ॥ हरिभी आपहीकी कृपासे पालक हैं, कारण कि तुमने सागरमें मधुकैटभसे उनकी रक्षा की है, और हर संहार करनेवाले हैं वहभी तुम्हारे किये हैं, यदि ऐसा न होता तौ प्रलयके उपरान्त मेरी भौंसे किसप्रकार प्रगट होते? ॥ ३६ ॥ हे भवानि ! आपका जन्म अवश्य कहीं देखा सुना नहीं तुम्हारा संभव कहांसे है इसे कोई नहीं जान्ता, हे भवानि ! तुम एक आदिशक्ति हो सबसे स्वतंत्र

होनेके कारण तुमकोही बोधन करते हैं ॥ ३७ ॥ तुमसेही युक्त होकर मैं जगत करनेको और हरि तुमसेही युक्त होकर पालन करनेको और तुम्हारी शक्तिसे हर संहार करनेको समर्थ हैं. तुम्हारे बिना कोईभी कुछ नहीं करसक्ते ॥ ३८ ॥ जैसे हम शंकर विष्णु आदि हैं वैसे क्या और न हुए हैं वा न होंगे; कौन इस विचित्र विवादमें मोहको प्राप्त नहीं होते? परन्तु सत् है वा असत् यह अल्पबुद्धिवालोंका विवाद है ॥ ३९ ॥ निर्गुण ईश्वर तुम्हारे विनोदको देखता है इसपर कहते हैं. वह आदिदेव अकर्ता गुणोंमें स्पष्ट निरीह उपाधिरहित सत् और कलारहित है तोभी वह तुम्हारे इस विनोदको देखते हैं इस प्रकार विधिके ज्ञाता कहते हैं ॥ ४० ॥ मूर्तामूर्तके भेदवाले इस संसारमें तुमसे अधिक इस जगतमें और कोई नहीं है. ॥ ४१ ॥ हे देवि ! मिथ्या वाक्यकी कल्पना करनी न चाहिये, अर्थात् अनुभवसे दो पदार्थ भासते हैं. श्रुति अद्वैतको कहती है, इससे श्रुति और अनुभवका महाविरोध हृदयमें शंका करता है ॥ ४२ ॥ जो कि वेद ब्रह्मको एक अद्वितीय कहते हैं. सो क्या तुम आत्मरूपा हो वा यह ब्रह्म है इस संदेहको दूर करो ॥ ४३ ॥ मेरा चित्त शंकारहित नहीं होता है, यह क्षुद्रमन हित और एकत्वके विचारमें मग्न होता है ॥ ४४ ॥ अपने मुखसे तुम मेरा सन्देह दूर करो, बड़े पुण्यके योगसे आपके चरणोंकी प्रीति मुझे प्राप्त हुई है ॥ ४५ ॥ तुम स्त्री वा पुरुष क्या हो ? विस्तारसे मुझसे कहो मैं तुम परमशक्तिको जानकर भवसागरसे मुक्त हूंगा ॥ ४६ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे भाषायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

ब्रह्माजी बोले जब इस प्रकारसे विनय और नम्रतासे भगवतीसे पूँछा तो वह आद्या भगवती मनोहर वचन बोली ॥ १ ॥ देवी बोली वास्तवमें एक सत् अर्थात् ब्रह्मही है, ब्रह्मसे मैं भिन्न नहीं. शक्ति और शक्तिमान्का अभेद है. जो यह है सो मैं हूं जो मैं हूं सो यह है. मतिके विभ्रम होनेसे भेद भासता है ॥ २ ॥ हम दोनोंका जो सूक्ष्म अन्तर है इसको जो जान्ता है वही मतिमान् है, वह संसारसे पृथक् होकर मुक्त होता है. इसमें सन्देह नहीं ॥ ३ ॥ सनातन नित्य ब्रह्म एकही नित्य अद्वितीय है, उत्पादन इच्छावाले समयमें वह द्वैतरूपको प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ जैसे एकही दीपक उपाधिभेदसे दो प्रकारका होता है, अथवा जैसे एकही मुख उपाधि-

दर्पणभेदसे प्रतिबिम्बरूपसे अनेकरूप होता है, जैसे छाया उपाधि भेदसे पुरुष अनेक प्रकारका होताहै इसीप्रकार हमारा तुम्हारा प्रतिबिम्ब कार्य कारणरूपसे अनेकप्रकारका होता है ॥ ५ ॥ जब मायामें लय होकर सम्पूर्ण प्रपंच ब्रह्ममें लीन होकर फिर सृष्टि होती है तब सृष्टिके निमित्त भेद प्रगट होता है, यह भेद दृश्य अदृश्यरूपसे दो प्रकारका है ॥ ६ ॥ सर्गक्षयमें मैं स्त्री पुरुष वा क्लीब नहीं हूं. सर्ग होनेपर भेद होता है. जो यह बुद्धिसे कल्पना कियागया है ॥ ७ ॥ बुद्धि, श्री, धृति, कीर्ति, स्मृति, श्रद्धा, मेधा, दया, लज्जा, क्षुधा, तृष्णा, क्षमा मैंही हूं ॥ ८ ॥ कांति, शांति, पिपासा, निद्रा, तन्द्रा, बुढ़ापा, अजरता, विद्या, अविद्या, स्पृहा, वांछा, शक्ति अशक्ति मैं हूं ॥ ९ ॥ वसा, मज्जा, त्वचा, दृष्टि, वाणी, ऋत, अनृत, परा, मध्या, पश्यन्ती विविध नाडीरूपभी मैंही हूं ॥ १० ॥ ऐसा संसारमें कुछ नहीं जो मेरे विना हो सब मैं ही हूं. हे ब्रह्मा! यह तुम निश्चय जानो ॥ ११ ॥ यह सब मेरे निश्चित रूप हैं, इनसे विहीन कुछ नहीं, सो आप मुझसे कहिये, हे ब्रह्मा! इससे मैं सब सृष्टिमें विस्तृत हूं ॥ १२ ॥ अवश्यही सब देवताओंमें मैं अनेक नामवाली हूं, मैं शक्तिरूपसे अनेक पराक्रम करती हूं ॥ १३ ॥ गौरी, ब्राह्मी, रौद्री, वाराही, वैष्णवी, शिवा, वारुणी, कौवेरी, नारसिंही, वासवी, मैं हूं ॥ १४ ॥ सब कार्योंके प्रगट होतेही मैं उनमें प्रवेश किये हूं उसी निमित्तको विधानकर सब कार्य करती हूं ॥ १५ ॥ जलमें शीतलता, अग्निमें उष्णता, सूर्यमें ज्योति, चन्द्रमामें शीतलता रूपसे मैंही हूं ॥ १६ ॥ मुझसे त्यागे हुए विधाताभी स्पन्दन नहीं करसक्ते, यह संसारके सब जीवका निश्चय तुमसे कहती हूं ॥ १७ ॥ मेरे विना शंकर दैत्योंका संहार नहीं करसक्ते, शक्तिहीन मनुष्यको लोक दुर्बल कहकर बोलते हैं ॥ १८ ॥ रुद्रहीन है वा विष्णुहीन है ऐसा कभी कोई मनुष्य नहीं कहते हैं; पर निर्बलको शक्तिहीन सब कोई कहते हैं ॥ १९ ॥ पतित स्खलित भीत शांत शत्रुके वशीभूत हुआ प्राणी लोकमें अशक्त कहाता है, यह अरुद्र है ऐसा कोई नहीं कहता ॥ २० ॥ जिससे तुम रचना करते हो उसे कारण शक्ति जानो जब शक्तिसे युक्त होते हो तब सबके कर्ता होते हो ॥ २१ ॥ इसी प्रकार हरि, शिव, इन्द्र, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, त्वष्टा, वरुण, पवन, शक्तिसम्पन्न हैं ॥ २२ ॥ शक्तियुक्त होकरही धराधारण करनेको समर्थ हुआ जाता है, अन्यथा परमाणुकाभी धारण नहीं हो सकता ॥ २३ ॥ इसीप्रकार शेष कूर्म और सब दिग्गज मुझसे

संयुक्त होतेही कार्यसाधन कर चलते हैं ॥ २४ ॥ मैंही सब जलपान करके अग्निका संहार करसक्ती हूं. यदि इच्छा करूं तौ सब पवनका संहार करसक्ती हूं ॥ २५ ॥ हे ब्रह्माजी! कभीभी किसी तत्वका असत् भावका संदेह न करना ॥२६॥ कभी किसीका प्रागभाव प्रध्वंसाभाव होता है, जैसे मृत्पिण्ड सत् पदार्थरूप कपालोंमें घटका प्रागभाव होता है ॥ २७ ॥ अब यह पृथ्वी नहीं है कहां गई? ऐसे विचारमें इसके परमाणु स्थित हैं ऐसा विचारना चाहिये ॥ २८ ॥ यह जगत् शाश्वत क्षणिक शून्य नित्य अनित्य सकर्तृक और अहंकार ऐसे सात भेदोंसे विवक्षित है ॥ २९ ॥ हे ब्रह्मा! महतत्त्वको ग्रहण करो जिससे अहंकार उत्पन्न है. फिर पूर्वकी समान सब भूतोंकी रचना करो ॥ ३० ॥ अपने २ स्थानोंमें जाओ और लोक रचकर निवास करो और यथा योग्य अपने २ कार्य करो ॥ ३१ ॥ और इस सुरूपवान् सुहासिनी रजोगुणयुक्त महासरस्वतीनामकी शक्तिको ग्रहण करो ॥ ३२ ॥ जो श्वेत वस्त्र धारण किये दिव्य भूषणसे युक्त वरासनपर स्थित है यह सहचारिणी तुम्हारी क्रीडाके निमित्त है ॥ ३३ ॥ यह वरांगना तुम्हारी नित्य सहचारिणी होगी. इसे पूज्यतम और प्रिय मेरी विभूति जानकर इसका कभी तिरस्कार न करना ॥ ३४ ॥ इसके साथ तुम सत्यलोकको गमन करो और बीजसे चार प्रकारकी प्रजा प्रगट करो ॥ ३५ ॥ वे सब जीव अपने कर्मोंके सहित लिंगकोशसे वर्तमान हैं, अब उनको यथाकालमें प्रगट करो, जैसे पहले किये थे ॥ ३६ ॥ काल कर्म स्वभाव नामवाले कारणोंसे और अपने स्वाभाविक गुणोंसे पववत् सब जगतको रचो ॥ ३७ ॥ विष्णुको सदा मान कर पूजन करना, यह सत्वगुण प्रधान होनेसे सबसे अधिक है ॥ ३८ ॥ जब जब तुम्हारा दुरत्यय कार्य होगा, तब तब भगवान् पृथिवीमें अवतार लेंगे ॥ ३९ ॥ तिर्यक् तथा मानुषी आदि योनियोंमें अवतार लेंगे और दानवोंका नाश करैंगे ॥ ४० ॥ यह महाबली शंकर तुम्हारी सहायता करैंगे, इस प्रकार सब देवताओंको प्रगट कर यथेच्छ विहार करो ॥ ४१ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य अनेक दक्षिणावाले यज्ञोंसे विधिपूर्वक तुम्हारा सबका पूजन करैंगे॥ ४२॥ सब कोई मेरा नाम उच्चारण करके सब यज्ञोंमें सदा सब देवता सन्तुष्ट होंगे ॥ ४३ ॥ तमके प्रधान देवता होनेसे शिव सबके माननीय हैं और सब यज्ञकार्योंमें यत्नसे इनका पूजन करना ॥ ४४ ॥ और जब फिर कभी दैत्योंसे देवताओंको भय होगा, तब मेरी शक्ति उत्पन्न होकर भय दूर

करैगी ॥ ४५ ॥ वाराही, वैष्णवी, गौरी, नारसिंही, सदाशिवा, इत्यादि अनेक कार्य करैंगी, सो तुम जानो ॥ ४६ ॥ यह मेरा नवाक्षर मंत्रबीज़ ध्यानके सहित जपते हुए ब्रह्माजी तुम सब कार्य करो ॥ ४७ ॥ हे महामते ! तुम इसको सब मंत्रोंमें उत्तम जानो, सब काम सिद्धिके निमित्त सदा हृदयमें धारण करो ॥ ४८ ॥ इस प्रकार जगन्माता मुझसे कहकर हरिसे बोलीं हे विष्णो ! इस परम मनोहर महालक्ष्मीको लेकर जाओ ॥ ४९ ॥ यह तुम्हारे सदा वक्षस्थलमें स्थित होगी. इसमें सन्देह नहीं है. यह मैने कल्याणी शक्ति तुम्हारी क्रीडाके निमित्त दी है॥५०॥ इसका कभी तिरस्कार न करना, और सदा मान करना, यह मैने लक्ष्मीनारायण नामका योग विधान किया है. इसमें सन्देह नहीं ॥ ५१ ॥ देवताओंके जीवनके निमित्त यज्ञोंका विधान किया है; तुमको विरोधरहित होकर वर्तना चाहिये ॥ ५२ ॥ तुम ब्रह्मा और शिव दूसरे देवता सब मेरे अंशोंसे प्रगट हैं यह तीनो देवता सबके मान्य और पूजनीय होंगे ॥ ५३ ॥ और जो मूढचित्त मनुष्य भेद करेंगे, वे भेद करनेसे अवश्य नरकगामी होंगे इसमें सन्देह नहीं ॥ ५४ ॥ जो हरि हैं वह साक्षात् शिव हैं जो शिव हैं सो स्वयं हरि हैं. इनमें भेदकल्पना करनेसे मनुष्य नरकगामी होता है ॥ ५५ ॥ और इसमें सन्देह नहीं वह द्रोही होता है हे विष्णु ! सुनो औरभी जो गुणोंके भेद हैं सो सुनो॥५६॥परमात्माके चिन्तनमें मुख्य सत्वगुण और रज तम गौण हैं ॥ ५७ ॥ लक्ष्मीके सहित विकार और अनेक भेदोंमें सर्वदा रजोगुणसे युक्त होकर इसके सहित विहार करो ॥ ५८॥ वाग्बीज कामराज और तृतीय मायाबीजरूप यह मंत्र मेरा दिया हुआ परमार्थदाता है ॥ ५९ ॥ इसको ग्रहणकर जपो और यथासुख विहार करो. हे विष्णो ! आपको मृत्यु और कालभय न होगा ॥ ६० ॥ और जबतक यह मेरा विहार होगा तबतक जगत् रहैगा, अन्तमें इस चराचर विश्वको मैं संहार कर जाऊंगी ॥ ६१ ॥ और फिर तुमभी मुझमें लीन होजाओगे ॥ और काममोक्षदायक यह मंत्र आपको सदा स्मरण करना चाहिये ॥ ६२ ॥ और शुभकी इच्छासे उद्गीथसंयुक्त करना चाहिये, हे पुरुषोत्तम ! वैकुंठकी रचना करके तुम उसमें निवास करो ॥६३॥ और मुझ सनातनीको हृदयमें धारण कर विहार करो. ब्रह्माजी बोले इस प्रकार वह त्रिगुणा प्रकृति वासुदेवसे कथनकरके ॥ ६४ ॥ निर्गुण शंकर देवसे अमृतकी समान वचन बोलीं, देवी बोलीं हे शंकर ! इस महाकाली मनोहर गौरीको तुम ग्रहण करो॥६५॥

और कैलासकी रचना कर यथेच्छ विहार करो. तुममें मुख्य तम और रज सत्व गौण रहेंगे ॥ ६६ ॥ असुरनाशके निमित्त तुम्हारा विहार होगा, इस निमित्त रज और तमोगुण होंगे तप करने और परमात्माके स्मरण करनेको ॥ ६७ ॥ शर्वरूप सत्वगुण शान्तरूप तुमको सदा ग्रहण करना चाहिये, हे पापरहित! सर्वदा तुम सृष्टिकी स्थिति और अन्त करनेवाले होगे ॥ ६८ ॥ इनके विना संसारमें और कुछ वस्तु न होगी, जो कुछ संसारमें दीखता है वह सब त्रिगुणात्मक है ॥ ६९ ॥ निर्गुण वस्तु लोकमें न कभी दीखी है, न दीखैगी निर्गुण परमात्मा कभी दृश्य नहीं है ॥ ७० ॥ मैं ही सगुणा सृष्टिके समय और अन्तके समय निर्गुण होती हूं हे शंभो ! मैं कल्याणकारिणी सदा कारणरूप हूं कार्य नहीं हूं ॥ ७१ ॥ कारणरूप मैं सगुण और पुरुषके समीप निर्गुणरूपसे स्थित रहती,हूं, महत्तत्व अहंकार शब्दादिक गुण॥ ७२ ॥ वह सब कार्य कारणके रूपसे निरन्तर संसरण करते रहते हैं, अहंकार दो प्रकारका है एक पराहंतारूप दूसरा महत्तत्वसे उत्पन्न है, पराहंतारूप अहं ब्रह्मास्मिवृत्तिवाला है,पराहंतारूप सो अहंकार सृष्टिके समयमें पहले भाव व्यक्तरूप परावाणीरूप अहंअस्मि है,सदुद्भूत अहंकार 'सदेव सोम्येदमग्र आसीदिति' है, इसी हेतुसे मैं अव्यक्तरूपा कारण शिवा हूं॥ ७३ ॥ अहंकार मेरा कारण है,और वह त्रिगुणात्मकतासे प्रतिष्ठित है. अहंकारसे महत्तत्व होताहै और वह समष्टि बुद्धि कहाता है ॥ ७४ ॥ महत्तत्व कार्य है ! और पराहंतारूप अहंकार महत्तत्वका कारण है और अहंकारसे तन्मात्रा उत्पन्न होती हैं ॥ ७५ ॥ उन सूक्ष्मभूत कारण पंचमहाभूतसे पंचीकृत पंचमहाभूतोंकी उत्पत्ति होती है, जब प्रपंचकी उत्पत्तिका समय होता है, तब पांच कर्मेन्द्रिय पांच ज्ञानेन्द्रिय होती हैं, अर्थात् पंचभूतोंके सात्विक अंशसे पंच ज्ञानेन्द्रिय राजस अंशसे कर्मेन्द्रिय होती हैं, और मन पांचभूतोंके मिलित सात्विकअंशोंसे होता है ॥ ७६ ॥ पांच भूत इस प्रकार यह मनसहित षोडशात्मक है, अर्थात् कार्यकारणरूप षोडशात्मक है, प्राणपंचभूतोंका राजसी अंश है, यही सोलह विकार हैं ॥ ७७ ॥ इस प्रकार आठ प्रकृति षोडश विकार युक्त हैं, यह सब परिणामी माया है, परमात्मा आदिपुरुष कार्य कारण नहीं है, हे शिव ! इसप्रकार आदिसर्गमें यह सब कुछ मुझसे प्रगट होता है ॥ ७८ ॥ यह तुम्हारा समुद्भव मैने संक्षेपसे वर्णन किया है; हे श्रेष्ठो ! अब तुम विमानोंपर स्थित हो कार्यके निमित्त गमन करो ॥ ७९ ॥ संकट उपस्थित होनेपर स्मरणसेही मैं तुमको दर्शन दूंगी. हे देवताओ ! परमात्मा सनातन देवकी शक्तिरूपसे मेरा

सदा स्मरण करना ॥ ८० ॥ दोनोंके स्मरणसे अवश्य कार्यसिद्धि होगी. ब्रह्माजी बोले इसप्रकार संस्कार कर शक्ति देकर हमको बिदा किया ॥ ८१ ॥ विष्णुके निमित्त महालक्ष्मी, शिवके निमित्त महाकाली, और हमको महासरस्वती देकर बिदा किया ॥ ॥ ८२ ॥ हम स्थलान्तरको प्राप्त होतेही पुरुषरूप होगये, उस परम अद्भुतप्रभावकी चिन्ता करनेलगे ॥ ८३ ॥ उस विमानपर हम तीनो आरूढ हुए तब वह द्वीप, देवी, सुधासिन्धु कोईभी न दीखा, फिर वह विमानहीं रहा और कुछ नहीं ॥ ८४ ॥ हम उस विस्तृत विमानपर बैठकर कमलके समीप प्राप्त हुए, जहां सागरमें विष्णु भगवानने मधु कैटभ दोत्योंको मारा था ॥ ८५ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे पं० ज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ७.

ब्रह्माजी बोले! ऐसे प्रभाववाली उस देवीका मैंने और विष्णुजीने दर्शन किया है और हे महाभाग! शिवजीनेभी वह देवी पृथक् देखी ॥ १ ॥ पिताके यह वचन सुनकर मुनिश्रेष्ठ नारदजी परम प्रसन्न होकर प्रजापतिसे कहने लगे ॥ २ ॥ नारदजी बोले आदिपुरुष निर्गुण अच्युत अविनाशी है, जो आपने देखा और अनुभव किया है वह कहिये ॥ ३ ॥ आपने त्रिगुण शक्ति देखी वह निर्गुण किस प्रकारकी है? हे कमलोद्भव! उसका और पुरुषका स्वरूप आप मुझसे कहिये ॥ ४ ॥ जिसके निमित्त मैंने श्वेतद्वीपमें बड़ा तप किया, और सिद्धमहात्मा क्रोधरहित तपस्वियोंका दर्शन किया ॥ ५ ॥ वह परमात्मा हमको प्राप्त न हुआ न दृष्टिगोचर हुआ, हे प्रजापते! वारंवार तीव्र तपस्या की ॥ ६ ॥ हे तात! आपने मनोहर सगुणा शक्तिका दर्शन किया है, वह निर्गुणशक्ति और वह निर्गुण किसभांतिके हैं? सो आप हमसे कहिये ॥ ७ ॥ व्यासजी बोले जब इस प्रकारसे नारदजीने पितासे पूछा तब हास्य करतेहुए ब्रह्माजी कहनेलगे ॥ ८ ॥ ब्रह्माजी बोले हे मुने! निर्गुणरूप दृष्टिगोचर नहीं होता है. कारण कि दृश्य तो नश्वर है अरूपका दर्शन कैसे हो सक्ता है? ॥ ९ ॥ वह निर्गुणशक्ति बड़ी दुर्गम है इसी प्रकार निर्गुण पुरुष है. यह दोनो ज्ञानके द्वारा जानेजाते हैं. और इसी प्रकार मुनिजन भावनाभी करते हैं ॥ १० ॥ प्रकृति पुरुषको सदा अनादिनिधन जानो. यह विश्वाससेही जानेजाते हैं. अविश्वाससे कभी नहीं जानेजाते ॥ ११ ॥ जो सब भूतोंमें चैतन्य है वही परात्मा है.

हे नारद ! अनेक भावोंमें वह तेज सर्वत्र व्याप्त होरहा है अर्थात् अनेकरूपसे व्याप्त है ॥ १२ ॥ वह चैतन्य और उससे अभिन्न शक्ति सर्वत्र व्याप्त हैं उनके विना इस संसारमें कोईभी वस्तु नहीं है ॥ १३ ॥ इस देहमेंही मिलेहुए इन अविनाशीका चिन्तन करना चाहिये. यह दोनों एकरूप चिदात्मा निर्मल और निर्गुण हैं ॥ १४ ॥ जों शक्ति है सो यह परमात्मा है जो यह परमात्मा है सो शक्ति है.हे नारद!इनका कोई सूक्ष्म अन्तरभी नहीं जानसक्ता॥ १५॥हे नारद! सब शास्त्र और सांग वेदोंको पढ़कर विना ज्ञानके उनके नाममात्रके सूक्ष्मभेदको कोई नहीं जानता ॥ १६ ॥ यह स्थावरजंगमात्मक जगत् सब अहंकारका किया है. सो हे पुत्र ! सौ कल्पमेंभी किस प्रकार अहंकाररहित हो सक्ता है ? ॥ १७ ॥ हे पुत्र ! सगुण निर्गुणको नेत्रोंसे किसप्रकार देखसक्ता है? हे महाबुद्धिसम्पन्न!इस कारण योग्यता जबतक न हो तबतक चित्तसे सगुणका विचार करता रहै॥१८॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! पित्तसे आच्छादित हुई यह जिह्वा और यह नेत्र कटुआदि रस और नेत्र रूपको जानते हैं,जिह्वा रसको जानती है. रूपको नहीं जानती ॥ १९ ॥ जब चित्त गुणोंसे आच्छादित है तो निर्गुणको कैसे जान सक्ता है फिर जो अहंकारसे उत्पन्न है वह निरहंकार कैसे होसक्ता है ?॥ २० ॥ और जबतक गुणोंका विच्छेद न हो तबतक उसका दर्शन कैसे हो सक्ता है ? जब अहंकाररहित होगा तब चित्तमें उसका दर्शन होगा ॥ २१ ॥ नारदजी बोले हे देवेश ! इन तीनों गुणोंके स्वरूप और त्रिगुणात्मक अहंकारका कथन कीजिये ॥ २२ ॥ हे पुरुषोत्तम ! सात्विक राजस तामस इनके भेदसे रूपोंका वर्णन कीजिये ॥ २३ ॥ जिसके जाननेसे मैं मुक्त होजाऊं वह ज्ञान मुझसे कहिये और गुणोंके लक्षणभी विभागसे कहिये ॥ २४ ॥ ब्रह्माजी बोले हे पापरहित ! इन तीनोंकी तीन गतियां मैं तुमसे कहता हूं. ज्ञानशक्ति क्रियाशक्ति और अर्थशक्ति होती हैं ॥ २५ ॥ सात्विक गुणकी ज्ञानशक्ति रजोगुणकी क्रियाशक्ति और तमोगुणकी द्रव्यशक्ति होती है ॥ २६ ॥ हे नारद ! सुनो मैं तत्वसे इनके कार्य कहता हूं. तमोगुणी द्रव्यशक्तिसे शब्द स्पर्श प्रगट होता है ॥ २७ ॥ रूप रस और गंध यह तन्मात्रा हैं, आकाशका शब्दही एक गुण है. वायुका स्पर्श गुण है ॥ २८ ॥ अग्निका गुण रूप और जलका गुण रस है. हे नारद पृथ्वीका गुण गन्ध है यह सूक्ष्म तन्मात्रा हैं ॥ २९ ॥ फिर आगे कही रीतिसे यह दश मिलकर द्रव्यशक्ति युक्त होते हैं. और तामस अहंकारकी वृत्तियुक्त यह ब्रह्माण्ड होता है॥ ३० ॥अब राजसी

क्रियाशक्तिसे उत्पन्नोंको श्रवण करो. श्रोत्र, त्वचा, नासिका, चक्षु, घ्राण ॥ ३१ ॥ यह ज्ञान इन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय वाक् पाणि चरण गुद गुह्य यह पांच हैं ॥ ३२ ॥ प्राण अपान व्यान समान उदान वायु यह पन्द्रह मिलकर राजसीसर्ग कहाता है ॥ ॥ ३३ ॥ यह सम्पूर्ण साधन क्रियाशक्तियुक्त हैं इनका उपादान कारण चिद्वृत्ति कही जाती है ॥ ३४ ॥ यह सब ज्ञानशक्तिसे युक्त और सात्विकसे प्रगट हैं. दिशा वायु सूर्य वरुण अश्विनीकुमार ॥ ३५ ॥ यह पांचो ज्ञानइन्द्रियोंके अधिष्ठातृदेवता हैं, चन्द्र ब्रह्मा रुद्र और क्षेत्रज्ञ ॥ ३६ ॥ यह वृत्तिके भेदसे चार प्रकारकेहुए अन्तःकरण बुद्धिआदिके भेद हैं, यह चारोंही अधिष्ठातृदेवता कहे हैं॥ ३७॥ यह मनसे मिलकर पन्द्रह सत्वगुणसे प्रगट होनेसे सात्विकसर्ग कहाते हैं ॥ ३८ ॥ स्थूल सूक्ष्मके भेदसे परमात्माके दो रूप हैं, ज्ञानरूप निराकार सब विवर्तादि कारण हैं ॥ ३९ ॥ साधकको ध्यानादिमें स्थूलरूप कहा है, यह पुरुषका सूक्ष्म शरीर कहा है; अन्तर्मुख बहिर्मुख भेदसे मायाशक्तिके दो रूप कहे हैं, उसमें अन्तर्मुखरूप तो पराहंतारूप उत्तमाधिकारी ज्ञानविषयक है, बहिर्मुखरूप उसकी अपेक्षासे स्थूल है, बहिर्मुख मायाशक्त्याकारविशिष्ट ब्रह्मरूप मध्यमाधिकारियोंको उपासनीय है, अक्षरार्थ तो यह है कि पुरुष परमात्माके लिंगदेहकी अपेक्षासे सूक्ष्मही यह बहिर्मुखमायाकाररूप अन्तर्मुख मायाकारकी अपेक्षासे स्थूल शरीर उपासनीय कहा है ॥ ४० ॥ मेरा शरीर सूत्ररूप कहाजाता है, परमात्मा ब्रह्मका स्थूलशरीर कहाता है ॥ ४१ ॥ हे नारद ! इसको यत्नसे सुनो, इसके सुननेसे मुक्ति होजायगी, तन्मात्रा भूत सूक्ष्म यह पहले कथन करदिये हैं ॥ ४२ ॥ पंचीकरणद्वारा यह पंचभूतकी उत्पत्ति है, सो आप पंचीकरणका भेद सुनो ॥ ४३ ॥ पहले रसकी तन्मात्रा मनमें निश्चय करके उसे दो प्रकारसे कल्पना करे फिर उससे स्थूल जलकी कल्पना करै ॥४४॥ इसी प्रकार अवशिष्ट चार भूतोंकेभी दो दो भाग करै, उनमें आधे भागको पृथक् करके अवशिष्ट अर्धभागके अंश पृथक् चारभाग करके अपने २ अर्धभागरहित उन अंशोंमें मिलावै, अर्थात् रसतन्मात्राके अर्धभाग जलमें रसतन्मात्राके अतिरिक्त भूतोंकी तन्मात्राके अर्ध भागोंके चारों खण्डोंमें मिलावै. इस प्रकार स्थूल जलके होनेमें ॥ ४५ ॥ फिर इसीप्रकार और चार भूतोंके पंचीकरण विभाग होनेपर उन पंचीकृत पंचभूतोंमें अधिष्ठानतासे चैतन्यके प्रतिबिम्बतासे प्रविष्ट होनेसे उस पंचभूतात्मक देहमें अहम् इस प्रकार तादात्म्यरूपवाली

संशयमनोवृत्ति उठती है. अर्थात् उस देहमें अहम् (मैं) यह प्रगट होता है ॥ ४६॥ जब वह विशेषरूपसे प्रतीयमान होता है तब वह स्थूलदेहाभिमानविशिष्ट चैतन्य वैश्वानर इत्यादिसे आदिनारायण और भगवान् कहा जाता है ॥ ४७ ॥ जब यह पंचीकरणसे घनीभूत होता है और आकाशादिरूपसे स्पष्टताको प्राप्त होता है. तब पूर्वोक्त इस तन्मात्रागुणों द्वारा कारण भूतसे वृद्धिको प्राप्त होकर कारणगुण कार्य गुणोंका आरंभ करते हैं, अर्थात् एक २ गुणकी वृद्धिसे एक २ भूत होते हैं ॥ ४८॥ आकाशका गुण एक शब्दही है, अन्य नहीं. वायुमें शब्द स्पर्श दो गुण रहते हैं ॥ ४९॥ अग्निमें शब्द स्पर्श रूप तीन गुण हैं. जलमें शब्द स्पर्श रूप रस यह चार गुण हैं ॥ ५० ॥ पृथ्वीमें शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध यह पांच गुण हैं, इस प्रकार पंचीकृत भूतोंके योगसे ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति होती है ॥ ५१ ॥ यह ब्रह्माण्डके अंशसे प्रगट होकर सब जीव अपने कर्मफल भोगनेके निमित्त चौरासी लाख होते हैं ॥ ५२ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ८.

ब्रह्माजी बोले हे तात ! तुम्हारे पूँछनेसे यह सर्ग वर्णन किया है. अब मन लगाय गुणोंकी रूपसंस्था श्रवण करो ॥ १ ॥ सत्वगुण प्रीत्यात्मक है, सुखसे सब पदार्थोंमें प्रीति होती है, सीधापन सत्य शौच श्रद्धा क्षमा धैर्य ॥ २॥ अनुकम्पा लज्जा शांति संतोष इनसे निश्चल सत्व गुणकी प्रतीति होती है ॥ ३ ॥ सत्वका वर्ण श्वेत धर्ममें प्रीति करनेवाला है, नित्य सत् श्रद्धाका प्रगट करनेवाला और असत् श्रद्धाका निवारण करनेवाला है ॥ ४ ॥ तत्वदर्शियोंने श्रद्धा सात्विकी राजसी तामसी तीन भेदवाली कही है ॥ ५ ॥ रजका लाल वर्ण है, यह अप्रीतिकारक अद्भुत है, और अप्रीति दुःखसे होती है, इसमें सन्देह नहीं. इस कारण यह दुःखरूप है ॥ ६ ॥ द्वेष द्रोह मतसरता स्तंभ उत्कंठा नींद और राजसी श्रद्धा इसमें होती है ॥ ७ ॥ मान दम गर्व रजसेही होता है, चतुर पुरुषोंको इन लक्षणोंसे रजोगुण जानना चाहिये ॥ ८ ॥ तमका कृष्णवर्ण है, यह मोहन और विषाद करनेवाला है, आलस्य, अज्ञान, निद्रा, दीनता, भय ॥ ९ ॥ विवाद, कृपणता, कुटिलता, रोष, विषमता, नास्तिकता, पराये दोषोंका देखना ॥ १० ॥ इन लक्षणोंसे पण्डितोंको तमोगुणकी पहँचान

करनी चाहिये. दूसरेको ताप देनेवाली तामसी श्रद्धा होती है ॥ ११ ॥ सत्वगुणका प्रकाश करना चाहिये, रजोगुणको रोकना चाहिये और शुभकी इच्छावाले जनको तमका संहार करना चाहिये ॥ १२ ॥ यह परस्पर एक दूसरेके अभिभवसे विरोध करते हैं. यह सब ही एक दूसरेके आश्रय हैं, कभी निराश्रय नहीं रहते हैं ॥ १३ ॥ कहींभी केवल सत्व रज वा तम नहीं रहता, यह सब मिलेहुए एक दूसरेके आश्रय हैं ॥ १४ ॥ इन दोनोंके आश्रयका विस्तार कहते हैं. हे नारद ! जिसको जानकर तुम भवबंधनसे छूट जाओगे ॥ १५ ॥ यह मेरा वचन युक्त जानकर इसमें सन्देह न करना चाहिये. फलके परिज्ञात होनेमें हम अनुभव करते हैं १६ ॥ हे महामते ! श्रवण दर्शनसे उसी समय फल दर्शनसे जो फलजनक ज्ञान है वही ज्ञान सुना और अनुभूत है, और जो संस्कारके अनुभवसे जाना जाता है वह उस पदार्थके अनुभवके विना नहीं जानाजाता है, जिस कर्मका फल न दीखै वह कियाभी विना किया है. किसीने पवित्र तीर्थकी कथा सुनी और फलप्राप्तिका निश्चय न जानकर वहां गमन करनेमें उसकी राजसी श्रद्धाका उदय हुआ फिर वहां जाय जैसा सुना था वैसाही दर्शन किया फिर उसी प्रकारकी चित्तवृत्तिसे ॥ १७ ॥ १८ ॥ वहां स्थान करके सब कृत्य किया और राजसी दान दिया और रजोगुणयुक्त हो वहां कुछ कालतक निवास किया ॥ १९ ॥ काम क्रोधसे युक्त होनेसे काम क्रोधसे मुक्त न हुआ. और फिरभी घर आकर पूर्वकी समान स्थित हुए ॥ २० ॥ हे मुनीश्वर ! उसने तीर्थ सुना और अनुभवभी किया और जब फलकी प्राप्ति नहीं हुई तो उसको अश्रुत और अनुभव-रहित जानिये ॥ २१ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! तीर्थका फल निष्पाप होना है जैसे लोकमें कृषिका फल अन्न भक्षण है ॥ २२ ॥ पाप काम क्रोधादिक यह देहके विकारके निमित्त होते हैं, लोभ मोह तृष्णा द्वेष राग मद ॥ २३ ॥ असूया ईर्षा अक्षमा अशान्ति हे नारद ! यह पापही हैं. जबतक यह देहसे नहीं निकलते तबतक वह पाप-युक्तही है ॥ २४ ॥ और तीर्थ करनेपरभी जो यह देहसे न निर्गत हों तो किसा-नकी समान इनका फल निरर्थकही है ॥ २५ ॥ जैसे किसानने श्रमसे दुर्घट भूमिको जोता और बहुमूल्य बीज बोया यह वृत्ति कल्याणकारिणी है ॥ २६ ॥ फिर दिन रात क्लेश भोगकर फलमें इच्छा की. और हेमन्तसमय आनेपर फलपाकके समय सोगया, और उसकी खेती आदि उपजका फल अन्नादि व्याघ्रादिकोंने ॥ २७ ॥ तथा शलभोंने भक्षण करके निराश करदिया, इस प्रकार हे पुत्र ! पापयुक्त

रहनेसे तीर्थ श्रमरूप है फल नहीं देता ॥ २८ ॥ शास्त्रके दर्शनसे सत्वगुण समुत्कट और वृद्धिको प्राप्त होता है, हे नारद ! तामसी वस्तुओंसे वैराग्य होनाही उसका फल है ॥ २९ ॥ यह रज और तम बलपूर्वक मनुष्यको आक्रमण करते हैं, लोभके योगसे प्रवृत्त होकर रज उत्कट होजाता है ॥ ३० ॥ तब वह तम और सत्व दोनोंको तिरस्कार करता है, और मोहसे तम उत्कट होकर ॥ ३१ ॥ सत्व और रज दोनोको तिरस्कृत कर देता है. वह अभिभवका विधान विस्तारपूर्वक कहता हूं ॥ ३२ ॥ जब सत्वगुण वृद्धिको प्राप्त होता है तब धर्ममें मति होती है, तम रज तमसे प्रगट हुए बाह्य अर्थकी चिन्ता नहीं करता ॥ ३३ ॥ और सत्वगुणसे उत्पन्न हुएही अर्थोंको ग्रहण करता है औरोंको नहीं. अनायास प्राप्त हुए अर्थसे यज्ञ और धर्मकी इच्छा करता है ॥ ३४ ॥ और सात्विक विभागोंमें ही मति करता है, मोक्षार्थी राजस पदार्थोमेंही इच्छा नहीं करता, तामसमें तो कौन कहै ? ॥ ३५ ॥ इस प्रकार पहले रजका जय करनेसे फिर तमोगुणका जय होजाता है. हे पुत्र ! उस समय केवल सत्वगुण निर्मल स्थित रहता है ॥ ३६ ॥ जब रज वृद्धिको प्राप्त होता ह तब सनातन धर्मोंको त्यागकर राजसी श्रद्धासे अन्यथा धर्मोंको करता है ॥ ३७ ॥ राजससे जो अर्थकी वृद्धि होती है उससे राजसीही भोग होते हैं, तब सत्व निर्गत होकर तमकाभी निग्रह होजाता है ॥ ३८ ॥ जिस समय तमकी उत्कट वृद्धि होती है उस समय वेद और धर्मशास्त्रपर विश्वास नहीं होता ॥ ३९ ॥ तामसी श्रद्धासे धनका व्यय करता है सर्वत्र द्रोह करता और शांतिको प्राप्त नहीं होता है ॥ ४० ॥ वह क्रोधी दुर्मति शठ सत्वरजको जय किये विपरीतभावोंमें यथेच्छ वर्तता है ॥ ४१ ॥ इकला सत्व रज वा तम नहीं रहता यह मिथुनधर्मी गुण सदा एक दूसरेका आश्रयकरके वर्तते हैं ॥ ४२ ॥ रजके विना सत्व और सत्वके विना रज कभी स्थित नहीं रहता है. हे पुरुषश्रेष्ठ ! न कभी यह तमके विना स्थित रहते हैं ॥ ४३ ॥ इनके विना केवल तम स्थित नहीं रह-सकता सब गुण कार्यान्तरमें मिथुनधर्मवाले हैं ॥ ४४ ॥ यह सब अन्योन्य आश्रय होकर स्थित रहते हैं वियुक्त नहीं और परस्पर एक दूसरेके प्रगट करनेवाले हैं ॥ ४५ ॥ कभी सत्वसे रज और तम प्रगट होता है कभी रजसे सत्व और तम होता है ॥ ४६ ॥ कभी तमसे सत्व और रज होता है यह परस्पर एक दूसरेको इस प्रकारसे प्रगट करते हैं जैसे मृत्तिका घटको प्रगट करती ह ॥ ४७ ॥ बुद्धिमें स्थित हुए यह गुण परस्पर एक दूसरेको करते हैं, जैसे देवदत्त विष्णुमित्र यज्ञदत्त इत्यादि ॥ ४८ ॥

जैसे स्त्री पुरुष परस्पर मिथुनधर्मी होते हैं इसीप्रकारसे गुण परस्पर युग्मभावको प्राप्त होते हैं ॥ ४९ ॥ रजके मिथुनमें सत्व और सत्वके मिथुनमें रज होता है, तमके मिथुनमें दोनो सत्व और रज होते हैं॥ ५०॥ नारदजी बोले इस प्रकार हमारे पिताने गुणरूपका वर्णन किया, फिर यह सुनकर मैं पिताजीसे पूछनेलगा ॥ ५१ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषायां अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ९.

नारदजी बोले! आपने गुणोंका लक्षण कहा उससे आपके मुखकी अमृतरूप वाणीसे मैं तृप्त नहीं हूं ॥ १ ॥ आप यथायोग्य गुणोंका वर्णन कीजिये, जिससे मैं चित्तमें परमशांतिको प्राप्त हूं ॥ २॥ व्यासजी बोले जब महात्मा नारदजीने इस प्रकार पूँछा तब रजोगुणसे उत्पन्न जगतके कर्ता कहनेलगे ॥ ३ ॥ ब्रह्माजी बोले सुनो नारदजी ! मैं गुणोंका वर्णन करता हूं. भलीप्रकार तो मैंभी नहीं जानता. पर यथामति कहता हूं ॥ ४ ॥ केवल सत्वगुण तो कहींभी लक्षित नहीं होता है, मिश्रभाव होनेसे मिलाहुआ दीखता है ॥ ५ ॥ जैसे कोई श्रेष्ठ नारी सब भूषणोंसे भूषित हो और हावभाव करके स्वामीकी प्रीतिकारिणी होती है॥ ६ ॥ और माता पिता बंधु वर्गोंकोभी प्रसन्न करती है. सपत्नी सौतोंको दुःख और मोह प्रगट करती है ॥ ७ ॥ इसप्रकारसे सत्वगुणके स्त्रीत्व प्राप्त होनेसे रज तमकी अन्यथावृत्ति प्रगट होती है ॥ ८ ॥ और रजके स्त्री होनेसे तथा तमसे एक दूसरेके समायोगसे अन्यथा वृत्ति होती है ॥ ९ ॥ स्वभावोंमें स्थित होनेसे जात्यन्तर नहीं होता है, हे नारद! कहीं कहीं योगसे विपरीत दीखते हैं ॥ १० ॥ जैसे रूपवती स्त्री यौवनसे विभूषित हो लज्जा माधुर्य और विनय संयुक्त है ॥ ११ ॥ कामशास्त्रकी विधि जाननेवाली धर्मशास्त्रमें सम्मत भर्ताकी प्रीति करनेवाली होकरभी सौतोंको दुःखदायक होती है ॥ १२ ॥ मोह दुःख स्वभावमें स्थित होकर प्राणियोंसे सत्वमें स्थित कहाजाता है, इसीप्रकार सत्वके विकारमेंभी दूसरे भाव प्रगट होते हैं ॥ १३ ॥ वह चोरोंसे उपद्रुत साधुओंको सुखदायक होती है, और दुःख मूढ तथा साधुओंको वही सुखदायक है ॥ १४ ॥ स्वभावसे विपरीत प्रतीतियोंको प्रगट करते हैं जैसे मेघावृत होनेसे महामेघसे आच्छन्न दुर्दिन होता है, बिजली चमकती और अंधकार व्याप्त होता है, और वर्षा करनेसे भूमिपर सींचते

हुए तमोरूप कहाते हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥ और यही खेती करनेवाले कर्षकोंको बड़ा दुर्दिन है, जिनकी खेती पकगई है. और बीज बोनेवालोंको यही सुखदायक है ॥ १७ ॥ यही विना छाये घरवाले दुर्भागी तथा तृण काष्ठ ग्रहण करनेवाले गृहस्थियोंको दुःख-रूप है ॥ १८ ॥ जिनके पति परदेश गये हैं उनको वह मोह करनेवाला है, अपने स्वभावमें स्थित वह सब गुण विपरीत दिखाते हैं ॥ १९ ॥ हे पुत्र! सुनो फिरभी मैं इनके लक्षण करता हूं सत्व लघुप्रकाशक निर्मल और विशद है ॥ २० ॥ जब नेत्रादि इन्द्रिय और अंग लघु होते हैं निर्मल चित्त होकर विषयोंको ग्रहण नहीं करता ॥ २१ ॥ उस समय शरी-रमें सत्वगुण स्थित होना चाहिये. जँभाई स्तंभ तंद्रा चंचलता होनेसे रजका लक्षण जानना ॥ २२ ॥ जब यह जिस किसीके देहमें उत्कट होता है उस समय क्लेश करना ग्रामान्तरगमन ॥ २३ ॥ चित्तका चलायमान होना विवादमें उद्यतता होती है अतिआवरण अर्थात् शरीरमें भारीपन होनेसे तम प्रगट होता है ॥ २४ ॥ उस समय अंग भारी और तमसे आवृत होते हैं इन्द्रिय मन शून्य होकर नींद नहीं आती है ॥ २५ ॥ हे नारद! इस प्रकार यह गुणोंके लक्षण जानने चाहिये. नारदजी बोले हे पितामह! आपने तीनो गुणोंके पृथक् पृथक् लक्षण कहे हैं ॥ २६ ॥ यह एक स्थानमें स्थित होकर निरन्तर कार्य कैसे करते हैं? वे भिन्न २ शत्रु परस्पर कैसे मिलते हैं? ॥ २७ ॥ एकत्र होकर कैसे कार्य करते हैं? सो आप हमसे कहिये, ब्रह्माजी बोले हे पुत्र! सुनो मैं कहताहूं वे गुण दीपकवृत्तिवाले हैं ॥ २८ ॥ जैसे दीपक अर्थदर्शनका कार्य करता है, और बत्ती तेल यह दोनो परस्पर विरुद्ध हैं ॥ २९ ॥ इसी प्रकार विरुद्ध तेल अग्निके साथ संगत हुआ है. तेल बत्ती अग्नि यह परस्पर विरुद्धही हैं ॥ ३० ॥ परन्तु एकत्र स्थित होकर पदार्थका दर्शन कराते हैं, इसीप्रकार गुणभी हैं. नारदजी बोले हे सत्यवतीपुत्र! इसप्रकार यह गुण प्रकृतिसे प्रगट होते हैं ॥ ३१ ॥ यह सब संसारके कारण हैं, जैसे मैं ने पूर्व सुना है. व्यासजी बोले इसप्रकार नारदजीने विस्तारपूर्वक हमसे सब कहा है ॥ ३२ ॥ गुणोंके लक्षण और विभागसहित उनके कार्य कहे, उसी परम शक्तिकी आराधना करनी चाहिये, जिसने यह सब विस्तार कर रक्खा है ॥ ३३ ॥ वह कार्यभेदसे सदा सगुण निर्गुण होती है. पूर्णपुरुष अकर्ता निरीह और अविनाशी है ॥ ३४ ॥ यह महामाया संसार सत् असत् करती है. ब्रह्मा विष्णु रुद्र सूर्य चन्द्रमा इन्द्र ॥ ३५ ॥ अश्विनीकुमार आठो वसु कुबेर वरुण वह्नि वायु पूषा कार्तिकेय गणेश ॥ ३६ ॥ यह सब शक्ति-

युक्त होकरही कार्य करनेको समर्थ होते हैं. हे मुनीश्वरो! यदि वैसा न हो तो वे प्रस्पंदित भी नहीं होसक्ते ॥ ३७ ॥ हे राजन्! वही परमेश्वरी जगतका कारण है, हे राजन्! यज्ञ करके उसका आराधन करो ॥ ३८ ॥ परमभक्तिसे उसकाही विधिपूर्वक पूजन करना चाहिये, वह महालक्ष्मी महाकाली महासरस्वतीरूप है ॥ ३९ ॥ वह सबभूतोंकी ईश्वरी और सब कारणोंकी कारण है, वह सब कामना देनेवाली शान्त सुखसे सेवनीय और दयायुक्त है ॥ ४० ॥ नामके उच्चारणमात्रसेही वांछितार्थ फल देनेवाली है, पहले ब्रह्मा विष्णु महेश्वर देवताओंने भगवतीका आराधन किया था ॥ ४१ ॥ और जितात्मा मुक्तिकी इच्छावाले देवताओंनेभी उसकी आराधना की है, जो कोई प्रसंगसे अस्तव्यस्तभी उसका नाम उच्चारण करै ॥ ४२ ॥ वह दुर्लभ वांछित अर्थोंको प्रदान करती है, किसीने व्याघ्रसे वनमें डरकर ऐ ऐ ऐसा उच्चारण किया था ॥ ४३ ॥ यद्यपि भगवतीका मंत्र 'ऐं' ऐसा बिन्दुयुक्त है, तोभी ऐसे उच्चारणसेभी वांछित अर्थ दिया, हे राजन्! इसमें सत्यव्रतका दृष्टान्त है ॥ ४४ ॥ जो भावितात्मा मुनि और हमको प्रत्यक्ष हुआ है, ब्राह्मणोंके समाजोंमें इसका उदाहरण पंडितोंद्वारा कहा हुआ ॥ ४५ ॥ हे राजन्! मैंने विस्तारपूर्वक सुना है, एक अनक्षर महामूर्ख सत्यव्रतनाम ब्राह्मण था ॥ ४६ ॥ वह कोलके मुखसे जो बिन्दुहीन था ऐसा ऐ, यह अक्षर सुनकर और उच्चारण करके पंडित होगया ॥ ४७ ॥ ऐकारके उच्चारणसे ही देवी प्रसन्न हुई और दयायुक्त हो देवीने उसे कविराज करदिया ॥ ४८ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः १०.

जन्मेजय बोले वह ब्राह्मण सत्यव्रत कौन था? किस देशमें उत्पन्न हुआ? और कैसा था? सो आप कहिये ॥ १ ॥ यह शब्द उसने किस प्रकार सुना? और किस प्रकार उच्चारण किया, और उस ब्राह्मणको किस प्रकार सिद्धि प्राप्त हुई? ॥ २ ॥ और सबमें स्थित वह भवानी किस प्रकार संतुष्ट हुई? विस्तारपूर्वक इस कथाको कहिये ॥ ३ ॥ सूतजी बोले! इस प्रकार जब सत्यवतीपुत्र व्यासजीसे पूँछा तो वह परमपवित्र रसवत् वचन कहनेलगे ॥ ४ ॥ व्यासजी बोले सुनो राजा मैं पुराणकी सुन्दर कथा कहता हूं, हे कुरुवंशोत्पन्न! जो मुनिसमाजमें सुनी है सो सुनो ॥ ५ ॥

हेश्रेष्ठ ! एक समय मैं पवित्र तीर्थाटन करताहुआ परमपवित्र मुनिसे वित नैमिषारण्य बड़ा प्राप्त हुआ ॥ ६ ॥ और सब मुनियोंको प्रणाम कर उस वराश्रममें स्थित हुआ ,७॥ महाव्रतवाले जीवन्मुक्त मुनिजन निवास करते हैं ॥ ७ ॥ वहां ब्राह्मणोंके समक्ष कथाप्रसंग होरहा था उस समय जमदग्नि मुनियोंसे पूँछनेलगे ॥ ८ ॥ जमदग्नि बोले हे महाभागो! मेरे मनमें बड़ा सन्देह है, मैं मुनियोंके समाजमें निस्सन्देह होनेकी इच्छा करता हूं ॥९॥ ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, मघवा, वरुण, अनल, कुबेर, पवन, त्वष्टा, स्वामिकार्तिक, गणेश ॥ १० ॥ सूर्य, अश्विनीकुमार, पूषा, निशानाथ चन्द्रमा, ग्रह इनमें सबसे अधिक कौन है? जो पूजनेसे वांछितार्थ फल देता है ॥ ११ ॥ कौन निरन्तर सुखसे सेवन करनेयोग्य और शीघ्र प्रसन्न होकर मान देनेवाले हैं? हे सर्वज्ञ अच्छे व्रतवाले मुनियो ! यह वार्ता शीघ्र कहो ॥ १२ ॥ इस प्रकार प्रश्न करनेपर लोमशजी कहनेलगे, हे जमदग्नि ! सुनो जो तुमने प्रश्न किया है ॥ १३ ॥ सब शुभकी इच्छा करनेवालोंको उस अम्बाका सेवन करना चाहिये,वह सर्वगामिनी आद्या शिवा शक्ति सबको सेवनी चाहिये ॥ १४ ॥ वही ब्रह्मादिक देवता और महात्माओंकी जननी है, वही संसाररूपी वृक्षकी आदिप्रकृति मूल है ॥ १५ ॥ वह स्मरण और उच्चारण करतेही वांछित फल देती है, सदैव वरदान देनेको वह आर्द्रचित्त रहती है, सदा सेवनीय है ॥ १६ ॥ हे मुनियों ! सुनो. मैं एक सुन्दर इतिहास कहता हूं जैसे अक्षरके उच्चारण करनेसे ब्राह्मणने सिद्धि प्राप्ति की ॥ १७ ॥ कोशलदेशमें एक ब्राह्मण देवदत्त बड़ा विख्यात था सन्तान उसके नहीं थी और पुत्रके निमित्त उसने विधिपूर्वक इष्टि की ॥ १८ ॥ उसने तमसाके किनारे विधिपूर्वक मंडप करके सब कर्ममें चतुर ब्राह्मणोंको बुलाकर ॥ १९ ॥ विधिपूर्वक वेदी बनाय स्थापन करके विधिपूर्वक वह ब्राह्मण पुत्रेष्टि यज्ञ करनेलगा ॥ २० ॥ ऋको ब्रह्मा याज्ञवल्क्यको अध्वर्यु बृहस्पतिको होता ॥ २१ ॥ पैलको करनेवाला गोभिलको उद्गाता, तथा दूसरे मुनियोंको सभ्य करके बहुतसा धन ॥ २२ ॥ उद्गाता सामवेदका ज्ञाता सात स्वरसे युक्त स्वरितके सहित रथन्तर गानेलगा ॥ २३ ॥ वारंवार श्वास लेनेमें इसका स्वर भंग हुआ तब देवदत्तने कर गोभिलसे कहा ॥ २४ ॥ हे मुनिमुख्य ! तुम मूर्ख हो जो तुमने स्व किया, जब कि मैं काम्य कर्म और पुत्रके निमित्त यजन करता था तुमने अशुद्ध कहा ॥ २५ ॥ तब गोभिलने क्रोधकर देवदत्तसे कहा हमको मूर्ख कहते हो

कारण तुम्हारा पुत्र मूर्ख ही होगा, और शब्दभी उच्चारण न करसकैगा ॥ २६ ॥ सब प्राणियोंको श्वास लेना होता है, उच्छ्वास दुर्ग्राह्य है ॥ सो हे महामते! स्वरभंगमें मेरा क्या दोष है? ॥ २७ ॥ तब महात्मा गोभिलके यह वचन सुनकर शापसे भीत हुआ देवदत्त दुःखी हो उनसे बोला ॥ २८ ॥ हे विप्रेन्द्र ! निरपराध मुझसे क्यों क्रोध करते हो ? मुनीश्वर सदा सुखदायक अक्रोधी होते हैं ॥ २९ ॥ हे विप्रेन्द्र ! थोड़ेसे अपराधपर आपने मुझे क्यों शाप दिया ? पुत्रके न होनेसे मैं पहलेही दुःखी था अब तुमने फिर दुःखी किया ॥ ३० ॥ वेदवादी कहते हैं पुत्र न होना अच्छा है, परन्तु मूर्ख अच्छा नहीं, फिर ब्राह्मणोंमें मूर्ख तो सबका निन्दनीय होताही है ॥ ॥ ३१ ॥ वह पशु और शूद्रकी समान सब कर्मोंके अयोग्य है, हे द्विजसत्तम ! मूर्ख पुत्रको लेकर मैं क्या करूंगा? ॥ ३२ ॥ मूर्ख ब्राह्मण ऐसा है जैसा शूद्र जो पूजा दानके योग्य न होनेसे सब कर्मोंमें निन्दनीय है ॥ ३३ ॥ वेदवर्जित ब्राह्मण देशमें बसताहुआ राजाओंको करदायक शूद्रकी समान जानना चाहिये ॥ ३४ ॥ वह ब्राह्मण देव और पितृकार्यके योग्य नहीं है, कार्यके फलकी इच्छावालोंको देव पितृकार्यमें मूर्खोंको आसन देना न चाहिये ॥ ३५ ॥ राजाओंको शूद्रकी समान इन्हें कार्योंमें नियुक्त करना, वेदवर्जित ब्राह्मणसे खेती करावे ॥ ३६ ॥ बे पढ़े ब्राह्मणको श्राद्धका अन्न न दे किन्तु कुशाके ऊपर रख दे ॥ ३७ ॥ मूर्खको आहारसे अधिक अन्न न दे और देता है तो नरकको जाता है, विशेष कर ग्रहण करनेवाला भी ॥ ३८ ॥ उस राजाके राज्यको धिक्कार है जिसके राज्यमें मूर्ख रहते हैं, जहां दान मान करके मूर्ख ब्राह्मण पूजे जाते हैं ॥ ३९ ॥ जहां आसनदानमें कुछ भेद नहीं है वहां न रहै, बुद्धिमान्को मूर्ख और पण्डितका भेद अवश्य जानना चाहिये ॥ ४० ॥ जहां दान मानसे सन्तुष्ट हुए मूर्ख गर्वित होते हैं पण्डितको वहां निवास न करना चाहिये ॥ ॥ ४१ ॥ दुर्जनोंके ऐश्वर्य असतोंके उपकारके निमित्त होते हैं, नीममें फल होते हैं तोभी उसे कौएंही भोगते हैं ॥ ४२ ॥ वेदपाठी ब्राह्मण अन्न खाकर वेदाभ्यास करता है उसके पूर्वज प्रसन्न होकर स्वर्गमें क्रीडा करते हैं ॥ ४३ ॥ हे गोभिल ! इससे अधिक तुम्हें क्या कहना चाहिये? संसारमें मूर्ख पुत्र मरणसेभी अतिनिन्दित है ॥ ४४ ॥ हे ॥ उस आश्रममें ही स्थित हुआ विप्र कृपा कीजिये. आप दीनोंके उद्धारमें समर्थ हो करने लगा ॥ २० ॥ इस प्रकार निर्मल आश्रम बोले ऐसा कहकर देवदत्त उनके चरणीतगये. आराधन मंत्र कालादि कुछ न जान्ता हुआ करनेलगा ॥

॥ ४६ ॥ गोभिल इस प्रकार उसे दीनचित्त देखकर प्रसन्न हुए कारण कि महात्मा क्षणकोपवाले और पापिष्ठ महाकोपवाले होते हैं ॥ ४७ ॥ जल स्वभावसे शीतल होता है परन्तु पावक और गरमीके योगसे गरम होता है परन्तु क्षणमात्रमेंही उसके विना ठंडा होजाता है ॥ ४८ ॥ तब दया करके गोभिल दुःखी देवदत्तसे बोले मूर्ख होकरभी तुम्हारा पुत्र विद्वान् होजायगा ॥ ४९॥ इस प्रकारसे वर पाकर ब्राह्मण-श्रेष्ठ प्रसन्न हुआ और यज्ञ समाप्त कर ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक बिदा किया ॥५० ॥ कुछ दिनोंके उपरान्त उसकी रूपवती भार्या रोहिणी, रोहिणीकी समान गर्भवती हुई ॥ ५१ ॥ ब्राह्मणने विधिपूर्वक गर्भाधानादिक कर्म किये पुंवसनविधान और शृंगारकरणादि किये ॥ ५२ ॥ तथा वेदविधानसे सीमन्तोन्नयन किया और यज्ञको सफल देखकर अनेकप्रकारके दान दिये ॥५३ ॥ उस समय रोहिणीनक्षत्र शुभदिनमें उसके पुत्र हुआ, अच्छे दिन अच्छी लग्नमें जातकर्मादि किये ॥ ५४ ॥ पुत्रका दर्शन करके नामकर्म किया और उसका नाम उतथ्य किया ॥ ५५ ॥ फिर अष्टम वर्ष शुभ दिनमें विधिपूर्वक पिताने उसका उपनयन संस्कार किया ॥ ५६ ॥ और व्रतमें स्थित गुरुने उसको वेदाध्ययन कराया परन्तु उतथ्य मुग्धकी समान स्थित रह-गया उससे कुछ उच्चारण न हुआ ॥५७॥ पिताके बहुत पढ़ानेपरभी उसकी मति न स्थिर हुई और मूर्खकी समान स्थित रहनेसे पिता शोच करनेलगा ॥ ५८ ॥ इस प्रकार सदा अभ्यास करते बारह वर्षका हुआ, परन्तु उसे संध्यावन्दनकी विधिभी न आई ॥ ५९ ॥ यह महामूर्ख है ऐसा सब लोकोंमें विख्यात होगया, ब्राह्मण तपस्वी सबको यह विदित होगया ॥ ६० ॥ जहां तहां उसके गमनागमनमें लोग हास्य करते थे, और मूर्ख होनेसे उसे घुड़कते, तथा पिता माताभी निन्दा करते थे ॥ ६१ ॥ इस प्रकार मनुष्य पिता माता और बंधुओंसे निन्दित होकर यह उतथ्य वैराग्यको प्राप्त हो वनको चलागया ॥ ६२ ॥ अंधा पंगु लँगड़ा पुत्र अच्छा है पर मूर्ख अच्छा नहीं. पिता माताके ऐसा कहनेपर यह वनको चलागया ॥ ६३ ॥ गंगात-टपर अच्छे स्थानमें पर्णकुटी करके वनकी वृत्ति कल्पना कर वहां सावधानीसे रहने लगा ॥ ६४ ॥ और यह नियम किया कि मैं कभी [illegible] नहीं बोलूंगा. और उस समय ब्रह्मचर्यसे स्थित [illegible] तुम मूर्ख हो जो तुम

इति श्रीदे[illegible] और पुत्रके निमित्त यजन करता था तुमने [illegible] १० ॥

[illegible]भिलने क्रोधकर देवदत्तसे कहा हमको मूर्ख कहते

एकादशोऽध्यायः ११.

लोमशजी बोले वेदका अध्ययन जप ध्यान देवताओंका आराधन कुछ नहीं जान्ता था ॥ १ ॥ आसन प्राणायाम प्रत्याहार भूतशुद्धि इनमेंसे कुछ नहीं जान्ताथा॥ २॥ मंत्र, कीलक, जप और गायत्रीको नहीं जान्ता था, शौच स्नानविधि और आचमनको नहीं जान्ता था ॥ ३ ॥ प्राणाग्निहोत्र बलिदान अतिथिक्रिया नहीं जान्ता, संध्या समिधा यह कुछभी वह नहीं जान्ता था ॥ ४ ॥ प्रभातकाल उठकर कुछ दतौन करता और गंगामें मंत्ररहित शूद्रवत् स्नान करता ॥ ५ ॥ मध्याह्नमें अपनी इच्छासे वनके फल लाकर खाता और उसे भक्ष्य अभक्ष्यका परिज्ञान नहीं था॥ ६॥ सदा सत्य बोलता कभी असत्य नहीं बोलता था तब सबोंने उस ब्राह्मणका नाम सत्यतपा रख लिया ॥ ७ ॥ यह किसीका हिताहित नहीं करता, और निर्भय होकर सुखसे चिंतन करता था ॥ ८ ॥ कब मेरा मरण होगा मैं दुःखसे वनमें जीता हूं मूर्खके जीवनको धिक्कार है, और मरणही उत्तम है ॥ ९ ॥ दैवनेही मुझको मूर्ख किया है इसमें और कोई कारण नहीं है उत्तम जन्म प्राप्त होकर भी मेरा जन्म वृथा गया ॥ १० ॥ जैसे स्वरूपवान् स्त्री और निष्फल वृक्ष वृथा है, विना दूधकी जैसी गौ है वैसाही मैं निष्फल हूं॥ ११ ॥ मैं दैवकी क्या निन्दा करूं! मेरा कर्मही ऐसा है किसी महात्मा ब्राह्मणको मैंने पुस्तक नहीं दी ॥ १२ ॥ न मैंने निर्मल विद्या किसीको दी, उसी कर्मसे मैं शठ हुआ हूं, और द्विजोंमें निकृष्ट गिनागया हूं॥ १३ ॥ न मैंने तीर्थमें तप किया न साधुसेवा की न द्रव्यसे ब्राह्मणोंका पूजन किया, इस्से मैं दुष्टबुद्धि हुआ हूं ॥ १४ ॥ अनेक मुनिपुत्र वेदशास्त्रमें परायण हैं, और मैं किसी दैवयोगसे मूर्ख रहगया हूं ॥ १५ ॥ मैं तपस्या नहीं जान्ता हूं, क्या साधन करूं? मेरा संकल्प मिथ्या है, मेरा भाग्य अच्छा नहीं है ॥ १६ ॥ दैवही परम है पौरुष निरर्थक है, कार्यमें परिश्रम वृथा है; यह सब कुछ दैवसेही होता है ॥ १७ ॥ ब्रह्मा विष्णु रुद्र इन्द्रादि देवता यह सब कालके वशमें हैं,कालही दुरतिक्रम है॥ १८॥ इस प्रकारकी वह ब्राह्मण तर्कणा करता हुआ गंगाके पवित्र तटमें दिन रात निवास करता था ॥ १९ ॥ उस आश्रममें ही स्थित हुआ वह विरक्त होगया, और निर्जन वनमें समय व्यतीत करने लगा ॥ २० ॥ इस प्रकार निर्मल आश्रममें निवास करते२ उसको पन्द्रह वर्ष वीतगये. आराधन मंत्र कालादि कुछ न जान्ता हुआ, वनमें समय

व्यतीत करता था ॥ २१ ॥ सब लोक उसका विचार यह जान्ते थे, कि यह मुनि सत्य बोलता है और सब प्राणियोंमें उसका यश फैलगया, कि यह मुनि सत्यव्रत है मिथ्या नहीं बोलता है॥ २२॥वहां एक समय मृगयामें रमण करता हुआ निषाद धनुष बाण धारण किये बड़ा क्रूरदेह कर्ममें मूर्ख उस स्थानमें आया ॥ २३ ॥ और धनुष-पर बाण चढाय खैंचकर उससे एक शूकरको विद्ध किया. वह भयसे व्याकुल हो भागता हुआ मुनिके समीप आया ॥ २४ ॥ वह कंपित रुधिरसे आर्द्र देह जब आश्रममण्डलमें आया उस समय उसको दीन देखकर मुनि अत्यन्त दयाभावको प्राप्त हुए ॥ २५ ॥ आगे रुधिर चुचाते शरीरवाले शूकरको देखकर दयासे कम्पित हो मुनिने 'ऐ ऐ' इस प्रकार सारस्वतबीजका उच्चारण किया ॥ २६ ॥ जो अज्ञात-पूर्व न कभी सुना हुआ और प्रारब्धसेही मुखसे निकला हुआ था, उस बातको तौ न जाना और उसे देखकर शोकसागरमें मग्न हुए ॥ २७ ॥ और आश्रममें प्रविष्ट होकर वह निकुंजमें लीन होगया. जहां कोई न पहुँचे उस स्थानमें वह बाण-विद्ध हुआ कम्पित होकर निर्विण्ण चित्तसे स्थित हुआ ॥ २८ ॥ उसी समय कर्णपर्यन्त धनुष चढ़ाये विकरालदेह निषादराज शूकरकी खोज करता मुनिके समीप प्राप्त हुआ ॥ २९ ॥ कुशासनपर बैठे उन सत्यव्रतनाम मुनिको देखकर व्याध प्रणाम कर आगे स्थित हुआ और पूँछा हे महर्षे ! वह शूकर कहां गया ? ॥ ३० ॥ तुम्हारे सत्यव्रतको मैं जान्ता हूं इस्से तुमसे पूछता हूं कि, वह मेरे बाणसे विद्ध हुआ शूकर कहांगया ? मेरा सब कुटुम्ब व्याकुल होगया है उसकी पालनाके निमित्त मैं आया हूं ॥ ३१ ॥ विधाताने मेरी यही वृत्ति विधान की है और नहीं, यह मैं सत्य ही कहता हूं, कैसाभी शुभाशुभ उपाय हो अपने कुटुम्बको पालना चाहिये ॥ ३२ ॥ सो तुम सत्यव्रत हो शीघ्र कहो यह हमारा कुटुम्बवर्ग क्षुधातुर होगया है,वह बाणसे विद्ध शूकर कहां गया? शीघ्र कहो मैं तुमसे कहता हूं ॥ ३३ ॥ जब इस प्रकार इस महात्मासे उसने पूँछा तौ मुनि सन्देहमें मग्न होगये, जो कि, आज मेरा सत्यव्रतभी भग्न न हो और नहीं देखा यहभी कहना न पड़े॥ ३४ ॥ शरसे विद्ध हुआ कोल यहांसे गया मृषा वा अमृषा कैसे कहूं ? यह क्षुधासे व्याकुल हुआ पूँछता है देखतेही यह शूकरको मारैगा ॥ ३५ ॥ जिसमें हिंसा हो वह सत्यभी सत्य नहीं. जिसमें दया और उपकार हो वह अनृतभी सत्य है, जिससे मनुष्योंका हित हो वही सत्य है और नहीं ॥ ३६ ॥ परन्तु तौभी मुझे असत्य बोलना न पड़े

मृगकाभी हित हो ऐसा किस प्रकारसे कहा जाय ? जिसमें असत्य भाषण न हो, इस प्रकार हे जमदग्नि ! वह ब्राह्मण धर्मसंकटमें विचार करता हुआ यथोचित वचन कहनेको समर्थ न हुआ ॥ ३७ ॥ परन्तु उस कोलको बाणसे ताडित हुआ देखकर जो कृपासे इसने 'ऐ ऐ' ऐसा उच्चारण किया था उस अपने बीजसे प्रसन्न हुई देवी इसको बड़ी विद्या देती हुई ॥ ३८ ॥ बीजके उच्चारणसे इसको विद्या प्रगट हुई जैसे वाल्मीकिको प्रगट हुई, और वह कवि हो गये थे ॥ ३९॥ तब धनुष धारण किये सन्मुख स्थित व्याधसे वह ब्राह्मण धर्मात्मा सत्यकाम दयावश हो यह श्लोक बोले ॥ ४० ॥ जो देखती है वह कह नहीं सक्ती जो बोलती है [जिह्वा] उसने देखा नहीं. अहो व्याध ! अपने कार्यकी इच्छासे वारंवार क्या पूछते हो ? ॥ ४१ ॥ महर्षिके यह वचन सुन वह व्याध चलागया और उस शूकरमें निराश हो अपने स्थानको लौटगया ॥ ४२ ॥ और वह ब्राह्मण वाल्मीकिकी समान कवि हुआ और सत्यव्रत नामसे सब लोकोंमें विख्यात हुआ ॥ ४३ ॥ तब वह विधिपूर्वक सारस्वत बीज जपने लगा और वह ब्राह्मण पृथ्वीमें बड़ा विख्यात पंडित हुआ ॥ ४४ ॥ जिसका यश ब्राह्मण प्रतिवर्ष गाते हैं और मुनिजन विस्तीर्ण आख्यानकी स्तुति करते हैं ॥ ४५ ॥ यह उनकी बड़ाई सुनकर जिन्होंने त्यागन किया था वे मान कर घर लेआये ॥ ४६॥ हे राजन् ! इस कारण वह आदिशक्ति परा देवी जगत्की कारण सदा सेवनीय है ॥ ४७ ॥ हे महाराज ! इससे वेदविधानसे यज्ञ करो जो सब कामका देनेवाला नित्य है, यह निश्चय है ॥ ४८ ॥ वह भक्तिसे स्मरण करने पूजन करने ध्यान और उच्चारण करनेसे मनोवांछित अर्थोंको देती है; इससे कामदा कहीजाती है ॥ ४९ ॥ हे राजन् ! रोगी दीन क्षुधित निर्धन शठोंको देखकर यह अनुमान सदा करना चाहिये ॥ ५० ॥ कि जो प्राणी आर्त मूर्ख पीडित वैरियोंसे आक्रान्त दास आज्ञाकारी क्षुद्र विकल विह्वल हैं ॥ ५१ ॥ तथा जो भोजन भोगमें अतृप्त हैं सदा आर्त और अजितेन्द्रिय हैं तृष्णामें अधिक आसक्त सदा रोगसे पीडित हैं ॥ ॥ ५२ ॥ कोई विभवसम्पन्न पुत्र पौत्रसे परिवर्धित हैं भोगोंसे पुष्टदेह वेदवादी ॥ ५३ ॥ राजलक्ष्मीसे युक्त मनुष्योंको वशीभूत करनेवाले, स्वजनोंसे अवियुक्त सब लक्षणोंसे लक्षित हैं ॥ ५४॥ उन्हें व्यतिरेक और अन्वयसे बुद्धिमानोंको जान लेना चाहिये कि सुखियोंने भगवतीका आराधन किया है दुःखियोंने नहीं ॥ ५५ ॥ इन

सुखी मनुष्योंने सदा भगवती अम्बिकाका आराधन किया है, इस कारण यह सब संसारमें सुखी हैं ॥ ५६ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! इस प्रकार मैंने मुनिसमाजमें लोमशके मुखसे देवीका माहात्म्य सुना था ॥ ५७ ॥ हे राजन्! हे पुरुषश्रेष्ठ ! ऐसा विचार कर परमभक्ति और प्रीतिसे देवीका अर्चन करना चाहिये ॥ ५८ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे भाषायां एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः १२.

राजा बोले उस देवीके यज्ञकी विधि भलीप्रकार कहो सुनकर आलस्यरहित होकर मैं सर्वथा करूंगा ॥ १ ॥ पूजाविधि मंत्र होम द्रव्यका विधान कहिये, कितने इसमें ब्राह्मण होंगे ? और दक्षिणाकी संख्या क्या होगी? ॥ २ ॥ व्यासजी बोले राजन् ! सुनो विधिसे देवीका यज्ञ कहता हूं. इसको विधिदृष्ट कर्मसे तीन प्रकारका जानना ॥ ३ ॥ सात्त्विकी राजसी और तामसी, मुनियोंका सात्त्विक और राजाओंका राजसिक कहा है ॥ ४ ॥ रक्षसोंका तामसी और ज्ञानियोंका निर्गुण यज्ञ होता है. और विमुक्तोंका ज्ञानमय होता है. मैं विस्तारपूर्वक कहता हूं ॥ ५ ॥ देश काल द्रव्य मंत्र ब्राह्मण और सात्त्विकी श्रद्धासे सात्त्विक यज्ञ कहाता है ॥ ६ ॥ द्रव्यशुद्धि क्रियाशुद्धि मंत्रशुद्धि यह जब होती है, तब पूर्ण फल होता है ॥ ७ ॥ अन्यायसे उत्पन्न किये द्रव्यसे जो पुण्य किया जाता है. उससे न यहां कीर्ति और न परलोकमें फल होता है ॥ ८ ॥ इसकारण न्यायोपार्जित द्रव्यसे सुकृत करना चाहिये, वह परलोकमें यश और सुखके निमित्त होता है ॥ ९ ॥ हे राजन् ! आपको विदित है कि पाण्डवोंने यज्ञ किया जो यज्ञश्रेष्ठ राजसूय और बड़ी दक्षिणावाला है ॥ १० ॥ जहां साक्षात् हरि कृष्ण यादवेन्द्र महामनस्वी थे और भारद्वाजादि पूर्णविद्याके ब्राह्मण थे ॥ ११ ॥ उस यज्ञको पूर्ण कर पाण्डवोंने एकही महीनेमें बड़ा कष्ट दारुण वनवास पाया ॥ १२ ॥ द्रौपदीका पीडन और द्यूतमें पराजय और वनवासमें बड़ा कष्ट पाया, यज्ञका फल कहां गया ? ॥ १३ ॥ उन सब महात्माओंने विराटके यहां दासता स्वीकार की और स्त्रियोंमें श्रेष्ठ द्रौपदी कीचकद्वारा खैंचीगई ॥ १४ ॥ और शुद्धचित्तवाले ब्राह्मणोंके आशीर्वाद कहां गये ? और उस संकटमें वासुदेवकी भक्तिसेभी कुछ सहायता न हुई ॥ १५ ॥ किसीने उस बाला द्रौपदीकी रक्षा न की और उस वरवर्णिनीको केशग्रह प्राप्त हुआ ॥ १६ ॥

यह धर्मवैगुण्यका कारण हुआ, इसमें क्या विचार करें? जहां देवेश केशव और धर्म-पुत्र युधिष्ठिर थे ॥ १७ ॥ जो भवितव्य ही कहाजाय तो आगम निष्फल होजाय और वेदमंत्र मिथ्या होजाँय ॥ १८ ॥ सब साधन और उपाय निरर्थक होजांय और इस वचनके प्रतिपादनमें भवितव्य होताहै ॥ १९ ॥ आगम अर्थवाद होजाय और सब क्रिया निरर्थक होजांय, स्वर्गके निमित्त तप व्यर्थ और वर्णधर्म विपरीत होजाँय ॥ २० ॥ बहुत क्या सर्वथा भवितव्यको हृदयमें धारण करैं तो सब प्रमाण व्यर्थ होजाँय इससे दैव और उपाय दोनों व्यर्थ होजाँयगे ॥ २१ ॥ जो कर्म करनेसे सिद्धि विपरीत होजाय तो पण्डितजनोंको उसमें विगुणता कल्पना करनी चाहिये ॥ २२ ॥ कर्म करनेवाले पण्डितोंने कर्म अनेकप्रकारका कहा है,जो कर्ताके भेदसे मंत्रके भेदसे द्रव्यके भेदसे तीन प्रकारका है ॥ २३ ॥ जैसे पहले इन्द्रने विश्वरूपको गुरु किया उसने माताके निमित्त दैत्यपक्ष अवलम्बन कर विपरीत कर्म किया ॥ २४ ॥ प्रत्यक्षमें देवता और परोक्षमें दैत्योंके निमित्त वारंवार स्वस्तिवाक्य कहे और मातृपक्षवाले असुरोंकीभी रक्षा की ॥ २५ ॥ तब दैत्योंको पुष्ट देखकर इन्द्रने क्रोध किया और वज्रसे शीघ्रही उसके शिरका छेदन करदिया ॥ २६ ॥ निःसन्देह यहां कर्ताके भेदसे क्रियामें वैगुण्यता प्राप्त हुई. नहीं तो पांचालराज द्रुपदने रोषसेभी क्रिया करी थी ॥ ॥ २७ ॥ कि जिससे द्रोणाचार्यका विनाश और पुत्रकी उत्पत्ति हो तब वेदीके मध्यसे धृष्टद्युम्न और द्रौपदी प्रगट हुई ॥ २८ ॥ और जिस समय दशरथजीने पुत्रेष्टि यज्ञ किया तब उनके चार पुत्र उत्पन्न हुए ॥ २९ ॥ इस कारण युक्तिसे की हुई सब क्रिया सिद्ध होती है. हे राजन् ! अयुक्तिसे सब विपरीत होजाती है ॥ ३० ॥ जैसे पाण्डवोंके यज्ञमें किंचित् वैगुण्यके योगसे विपरीत फल प्राप्त हुआ और जुएमें जीतेगये ॥ ३१ ॥ और सत्यवादी धर्मपुत्र युधिष्ठिर द्रौपदी और दूसरेभी अनुज श्रेष्ठ थे ॥ ३२ ॥ उनको कुद्रव्यके योगसेही उस यज्ञमें विगुणता प्राप्त हुई और अभिमानके कारण उनमें दूषण उपस्थित हुआ ॥ ३३ ॥ हे महाराज ! सात्विक यज्ञ वडे दुर्लभ हैं, वह यज्ञ वैखानस महामुनिही करसक्ते हैं ॥ ३४ ॥ जो तपस्वी नित्य सात्विक भोजन करते हैं, न्यायसे उत्पन्न वनके अन्न ऋषियोंका हितकारी भलीप्रकार संस्कार किये हुए ही ॥ ३५ ॥ पुरोडाशमें नित्यतत्पर, पशुबंधनके यूपरहित, मंत्रपूर्वक श्रद्धाके यज्ञ सात्विक कहे हैं ॥ ३६ ॥ रजोगुणी यज्ञमें अधिक द्रव्य लगता है, यूप बनते हैं, वह क्षत्रिय वैश्योंका अभिमानी मख है

॥ ३७॥ क्रोध मदका बढ़ानेवाला दानवोंका तामसी यज्ञ होता है, महात्माओंने क्रोध और अमर्षको तामसी यज्ञ कहा है ॥ ३८ ॥ और जो मुक्तिकी इच्छावाले विरक्त महात्मा हैं उनको सब साधनयुक्त मानसी यज्ञ कहा है ॥ ३९ ॥ और सब यज्ञोंमें कुछ न्यून भी हो तौ द्रव्य श्रद्धा क्रिया और ब्राह्मणों द्वारा ॥ ४० ॥ देश काल पृथक् द्रव्य सब साधनोंसे वह ऐसा पूर्ण नहीं होता जैसे मानसी यज्ञ पूर्ण होता है ॥ ४१ ॥ प्रथम तौ गुणवर्जित मनका शोधन करना चाहिये, मनके शुद्ध होनेमें अवश्य देह शुद्ध होजाता है ॥ ४२ ॥ इन्द्रियोंके अर्थ त्यागसे जहां मन शुद्ध हुआ तब यह पुरुष यज्ञका अधिकारी होता ह ॥ ४३ ॥ तब यह मनमें अनेक योजनका विस्तृत मण्डप करके और यज्ञीय वृक्षोंके अनेक स्तम्भ कल्पना करके ॥ ४४ ॥ मनसेही विशद वेदीकी कल्पना करै और विधिपूर्वक मनसेही अग्निस्थापन करना चाहिये ॥ ४५ ॥ इसी प्रकार ब्राह्मणोंके वरणको करके ब्रह्मा अध्वर्यु होता प्रस्तोता विधिपूर्वक करै ॥ ४६ ॥ उद्गाता प्रतिहर्ता और सभ्य यह भी विधि पूर्वक कल्पना करें और यह श्रेष्ठ ब्राह्मण मनसेही पूजै ॥ ४७ ॥ प्राण अपान व्यान समान उदान यह पांचौ पावक वेदीमें स्थापित करै ॥ ४८ ॥ प्राण गार्हपत्य अपान आहवनीय दक्षिणाग्नि व्यान आवसथ्यक अग्नि समान है ॥ ४९ ॥ उदान सभ्य है यह पावक परम उत्कट हैं और परम पवित्र निर्गुण द्रव्यको मनसे कल्पना करे ॥ ५० ॥ मनकोही होता और यजमान बनावे और यज्ञके अधिदेवता निर्गुण सनातन ब्रह्म हैं ॥ ५१ ॥ और निर्वेददायक फलदायक वह निर्गुण शक्ति है जो ब्रह्मविद्या सबका आधार व्याप्य होकर सर्वत्र स्थित है॥ ५२॥ उसके उद्देश्यसे प्राणाग्निमें उस द्रव्यको हवन करै फिर चित्त और प्राणोंको निरालम्ब करके सुषुम्नाके मार्गसे उन प्राणोंको ॥ ५३ ॥ भगवतीपदवाच्य ब्रह्ममें लय करे इस प्राणलयसे संकल्प विकल्पके क्षय होनेपर समाधि होनेमें अपनेसे अभिन्न भगवतीको ॥ ५४ ॥ निर्विकल्पचित्तमें ध्यान करै अपनेमें सब भूतोंको और सब भूतोंमें मैं हूं॥ ५५॥ इस प्रकारसे जब देखता है तब उस शिवाका दर्शन होता है. उस सच्चिदानंदरूपिणीको देखकर यह प्राणी ब्रह्मवित् होता है ॥ ५६ ॥ हे राजन् ! उस समय सब मायादिक दग्ध होजाती हैं केवल देहस्थितिके निमित्त प्रारब्ध कर्ममात्र रहजाता है ॥ ५७ ॥ उस समय यह जीवन्मुक्त होकर मुक्त होजाता है, हे राजन् ! जो जगदम्बाका भजन करता है वह कृतकृत्य होजाता है ॥ ५८ ॥ इसकारण सब प्रयत्नसे भुवनेश्वरीका

ध्यान करना और गुरुवाक्यके अनुसार उसे सुनै और ध्यान करै ॥ ५९ ॥ हे राजन्! इस प्रकार यज्ञ करनेसे मोक्षका देनेवाला होता है, इसमें सन्देह नहीं. और सकाम यज्ञ तौ क्षयोन्मुख होते हैं ॥ ६० ॥ विधिपूर्वक अग्निष्टोमसे स्वर्गकी कामनासे यज्ञ करै, मनीषियोंने यह वेदका अनुशासन कहा है ॥ ६१ ॥ वे प्राणी पुण्यके क्षीण होनेसे मृत्युलोकमें आते हैं, इसकारण मानसी यज्ञही श्रेष्ठ है कारण कि उसका फल अक्षय है ॥६२॥ जयकी इच्छा करनेवाले राजओंसे यह यज्ञ सिद्ध नहीं होता, हे राजन्! आपने भी पहले तामसी यज्ञ किया था ॥ ६३ ॥ आपने दुरात्मा तक्षकका वैर निकाला जिसके कारण आपने अनेक सर्पोंका नाश किया ॥ ६४ ॥ सो अब तुम विधिपूर्वक देवीयज्ञ करो हे राजन्! जैसा सृष्टिकी आदिमें विष्णुनेभी यज्ञ किया था ॥ ६५ ॥ हे राजन्! ऐसाही आप करो. मैं तुमसे विधि कहता हूं. हे राजन्! विधिके जान्नेवाले वेदविद् ब्राह्मण हैं ॥६६॥ जो देवीबीजके विधान जान्नेवाले मंत्रमार्गमें चतुर हों वे यज्ञ करानेवाले हैं और तुम यजन करो ॥ ६७ ॥ विधिपूर्वक यज्ञ करके उसका पुण्य पिताको अर्पण कर हे महाराज! दुर्गतिको प्राप्त हुए पिताका उद्धार करो ॥ ६८ ॥ ब्राह्मणके तिरस्कारका पाप बड़ा दुर्घट और नरकका देनेवाला है, हे पापरहित! इसी प्रकार तुम्हारे पिताको शाप प्राप्त हुआ है ॥ ६९ ॥ इसीप्रकार सर्पके काटनेसे दुर्मरण प्राप्त हुआ है, और अन्तरालमें मृत्यु हुई जो भूमि और कुशाके बिछौनेपरभी न थी ॥ ७० ॥ न संग्राममें हुई न गंगामें और स्नान दानसे रहित तुम्हारे पिताकी महलपर मृत्यु हुई ॥ ७१ ॥ हे राजन्! सब कुत्सित कार्य नरकके कारण होते हैं उनमें एकभी उद्धारका कारण न हुआ ॥ ७२ ॥ कारण कि जहां कहीं भी प्राणी स्थित हो और समय आया जाने साधनका अभाव हो संकटमें अवश हो ॥ ७३ ॥ जब निर्वेद होकर मन निर्मल होता है कि इस दुःखदायक पंचभूतात्मक देहमें मेरा क्या है? ॥ ७४ ॥ चाहै यह आजही पतित होजाय मैं तौ अविनाश हूं, यह तत्व नाशात्मक है इसमें शोककी बात क्या है? ॥ ७५ ॥ मैं ब्रह्म हूं संसारी नहीं सदा सनातन मुक्त हूं देहके साथ मेरा सम्बन्ध नहीं है जो कि कर्मसे प्रतिपादित है ॥ ७६ ॥ उसीने सब शुभाशुभ भोगे हैं मनुष्यदेहके योगसे जो कि सुख-दुःखका साधन है भोगाजाता है ॥ ७७ ॥ मैं घोरभयवाले इस संसारसागरसे मुक्त हुआ, इसप्रकार चिन्ता करतेहुए स्नानदानसे वर्जित ॥ ७८ ॥ भी जो शरीर

त्यागनकरे वह मुक्त होजाता है. सन्देह नहीं. यह योगियोंको दुर्लभ पराकाष्ठा गति है ॥ ७९ ॥ हे राजन्! आपके पिता राजा ब्राह्मणका शाप सुनकर देहमें ममता करते हुए निर्वेदको न प्राप्तहुए ॥ ८० ॥ यह मेरा देह निरोग और राज्य-कंटकरहित है मैं कैसे जीवूं ? मंत्रके जाननेवालोंको बुलाओ ॥ ८१ ॥ औषध मणि मंत्र परम यंत्रकरके राजा महलपर स्थित हुआ ॥ ८२ ॥ स्नान दान देवीका स्मरणादि कुछ न किया, और दैवको बलिष्ठ मानकर भूमिपर शयन न किया ॥ ८३ ॥ मोहकेही सागरमें मग्न रहा, महलपर सर्पके काटेसे मृत्यु हुई, कलिके योगसे तपस्वीके अवमानरूप पापको किया ॥ ८४ ॥ ऐसे आचरणोंसे तो अवश्य नरक होता है हे राजन्! इस कारण पापसे पिताका उद्धार करो ॥ ८५ ॥ सूतजी बोले इस प्रकार अमिततेजस्वी व्यासजीके वचन सुनकर जन्मेजय नेत्रोंमें जल भरकर बड़ा दुःखी हुआ ॥ ८६ ॥ यदि हमारे पिताकी सुगति नहीं है तो मेरे जीवनको धिक्कार है सो वही करूं जिससे पिता स्वर्गमें जायँ ॥ ८७ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे भाषायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः १३.

राजाने कहा हे व्यासजी! भगवान् विष्णुने प्रथम किस प्रकारसे यज्ञ किया था? जो विष्णु जगत्के कारण और जयशील हैं ॥ १ ॥ उसमें कौन सहाय ? कौन ब्राह्मण और वेदज्ञ ऋत्विज थे? सो आप मुझसे कहिये ॥ २ ॥ फिर मैं विधिदृष्ट कर्मसे यज्ञ करूंगा, परन्तु पहले विष्णुने भगवतीका याग किस प्रकार किया? सो सुनाइये ॥ ३ ॥ व्यासजी बोले हे महाभाग ! राजन् ! इस परम अद्भुत कथाको विस्तारसे सुनो, जैसे भगवान् विष्णुने विधिपूर्वक यज्ञ किया ॥ ४ ॥ जब तीन शक्ति देकर देवीने उन तीनोंको बिदा किया और वह तीनो पुरुषत्वको प्राप्त हुए विमानपर स्थितहुए ॥ ५ ॥ और घोर महार्णवमें प्राप्त हुए, और धराको उत्पादन कर निवासके स्थान किये ॥ ६ ॥ और जब देवीने स्वयं आधारशक्ति दी तो वह मेदयुक्त धरा अचल होगई ॥ ७ ॥ मधुकैटभके मेदसंयोगसे यह मेदिनी कहाती है, धारणसे धरा और विस्तारसे पृथ्वी हुई ॥ ८ ॥ अधिक होनेसे मही कहाई. शेषके मस्तकपर उद्धार कर रक्खी गई और धारणके निमित्त विस्तारपूर्वक पर्वत स्थापित किये ॥ ९ ॥ जैसे काष्ठमें लोहकी कील लगाईजाती है, इस प्रकार वे पर्वत हैं हे महाराज! ऐसा जानो ॥ १० ॥

बहुत योजनके विस्तारमें सुवर्णपर्वत सोनेका है, जो मणिमय शृंगसे शोभायमान परम अद्भुत है ॥ ११ ॥ मरीचि, नारद, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, दक्ष और वसिष्ठ ये ब्रह्माके पुत्र हैं ॥ १२ ॥ मरीचिसे कश्यपजी हुए, उनको दक्षकी कन्या विवाही गईं, उनसे अनेक देवता और दैत्य उत्पन्न हुए ॥ १३ ॥ तब यह बड़े विस्तारमें कश्यपकी सृष्टि चली, जो मनुष्य पशु सर्पादिके भेदसे अनेकप्रकारकी हुई ॥ १४ ॥ ब्रह्माके अर्ध देहसे स्वायंभुव मनु हुए और बाईं ओरसे शतरूपा नारी हुई ॥ १५ ॥ उसके दो पुत्र प्रियव्रत और उत्तानपाद हुए और तीन कन्या बहुत सुन्दर हुईं ॥ १६ ॥ इस प्रकार भगवान्! ब्रह्मा सृष्टि उत्पन्न करके मेरुके शृंगपर अपना स्थान करते हुए ॥ १७ ॥ और भगवान् विष्णु वैकुण्ठमें रमण करते हुए. जो क्रीडास्थान मनोहर और सब लोकोंके ऊपर विख्यात है ॥ १८ ॥ और शिवने परमस्थान कैलास बनाया, और भूतगणोंको प्राप्त होकर यथेच्छ विहार करनेलगे ॥ १९ ॥ स्वर्ग अर्थात् त्रिविष्टप मेरुके शिखरपर कल्पना किया. वह सुरेन्द्रका स्थान अनेक रत्नोंसे शोभायमान था ॥ २० ॥ समुद्रके मथनसे वृक्षश्रेष्ठ पारिजात प्राप्त हुआ. चतुर्दन्त नाग और कामदा कामधेनु प्राप्त हुई ॥ २१ ॥ उच्चैःश्रवा घोड़ा और रंभादिक अप्सरा यह स्वर्गभूषण सब इन्द्रको प्राप्त हुआ ॥ २२ ॥ धन्वन्तरि, चन्द्रमा येभी समुद्रसे प्रगट हुए, ये सब स्वर्गमें स्थित हो देवताओंके मध्यमें विराजमान हुए ॥ २३ ॥ हे राजन्! इस प्रकारसे यह तीनप्रकारकी सृष्टि उत्पन्न हुई है, देवता तिर्यङ् और मनुष्य इनका भेद कल्पित है ॥ २४ ॥ अंडज, स्वेदज, उद्भिज्ज, जरायुज यह चारप्रकारसे कर्मके अनुसार जीव हुए हैं ॥ २५ ॥ ब्रह्मा विष्णु महेश्वर इसप्रकार सृष्टिकरके अपने २ विहारस्थानोंको श्रेष्ठ करतेहुए ॥ २६ ॥ इस प्रकार सृष्टिके प्रवृत्त होनेमें अच्युत भगवान् महालक्ष्मीके सहित अपने भवनमें क्रीडा करनेलगे ॥ २७ ॥ एक समय भगवान् विष्णु वैकुण्ठमें स्थित थे, उस समय सुधासागरमें मणिद्वीपका स्मरण किया ॥ २८ ॥ जहां महामायाको देखकर मंत्र प्राप्त किया था, जिसकी महिमासे स्त्री भाव प्राप्त हुआ था, उस परमशक्तिका स्मरण करके ॥ २९ ॥ रमापतिने अम्बायज्ञ करनेकी इच्छा की. उस समय उस भुवनसे उतरकर शंकरको बुलाय ॥ ३० ॥ ब्रह्मा, वरुण, शक्र, कुबेर, पावक, यम, वसिष्ठ, कश्यप, दक्ष, वामदेव, बृहस्पति ॥ ३१ ॥ इन सबने यज्ञके निमित्त बड़ा संभार कल्पना किया, जो महाऐश्वर्यसे संयुक्त सात्विक और अतिमनोहर था ॥ ३२ ॥ कारीगरोंसे

बड़ा विस्तृत मण्डप कराया और सत्ताईस बड़े सुव्रत ऋत्विजोंका वरण किया ॥ ३३ ॥ चिति करके वेदीका विस्तार किया और देवीके बीजसहित ब्राह्मणमंत्र जपने लगे ॥ ३४ ॥ और विधिपूर्वक हवि कल्पना करनेलगे. और उस समय हवनके विस्तार होनेसे अशरीरिणी वाणी प्रगट हुई ॥ ३५ ॥ और अच्छे स्वरसे विष्णुके प्रति वह वाणी बोली, हे विष्णु ! तुम सर्व देवताओंमें श्रेष्ठ हो ॥ ३६ ॥ सब देवताओंमें मान्य और पूजनीय होगे. और ब्रह्मा तथा इन्द्रादिक सब तुम्हारी पूजा करेंगे ॥ ३७ ॥ जो मनुष्य हैं वे सब तुम्हारी प्रीति करेंगे. और तुम सब मनुष्योंमें वरदायी होगे ॥ ३८ ॥ तुम सब देवताओंके कामद परम ईश्वर होगे, तुम सब यज्ञोंमें मुख्य और सब याज्ञिकोंसे पूजनीय होगे ॥ ३९ ॥ तुमको सब प्राणी अर्चन करेंगे, सबके वरदाता तुम होगे और दानवोंसे पीडित हो देवता तुम्हारा आश्रय करेंगे ॥ ४० ॥ हे पुरुषोत्तम ! तुम सबके शरणदाता होगे. सब पुराण और विस्तृत यज्ञोंमें ॥ ४१ ॥ तुम्ही पूजनीय होगे और तुम्हारी कीर्तिका विस्तार होगा. और जब २ भूमिमें धर्मकी ग्लानि होगी ॥ ४२ ॥ तब तब अंशसे अवतार लेकर तुमको धर्मकी रक्षा करनी चाहिये. पृथ्वीमें तुम्हारे अनेक अवतार होंगे ॥ ४३ ॥ वे तुम्हारे अवतार महात्माओंको माननीय होंगे. हे माधव ! अनेक अवतार और सब योनियोंमें ॥ ४४ ॥ हे मधुसूदन ! तुम सब लोकमें विख्यात होगे और सब अवतारोंमें शक्ति तुम्हारी सहचारिणी होगी ॥ ४५ ॥ और वह मेरे अंशसे होकर सब कार्य सिद्ध करेगी. वह वाराही नारसिंही अनेक भेदवाली होगी ॥ ४६ ॥ जो अनेक आयुध लिये शुभाकारवाली सब आभरणोंसे मण्डित होंगी. हे माधव ! उनसे युक्त होकर देवकार्योंको ॥ ४७ ॥ मेरे दिये वरदानसे सिद्ध करोगे. और उन शक्तियोंका गर्वके लेशसेभी निरादर न करना ॥ ४८ ॥ यत्नसे उनका पूजन और मान करना, भारतखण्डमें वे शक्तियें काम देनेवाली हैं ॥ ४९ ॥ प्रतिमाओंमें पूजित होकर मनुष्योंके मनोरथकी पूर्ति करेंगी. हे देवेश ! उनसे तुम्हारी बड़ी कीर्ति होगी ॥ ५० ॥ तुम सात द्वीप और भूमण्डलमें विख्यात होगे. हे महाभाग! भूमिमण्डलमें मनुष्य तुमको और उन शक्तियोंको ॥ ५१ ॥ अपनी वांछासिद्धिके निमित्त पूजन करेंगे. अनेकभाव और उपहारसे पूजा होगी ॥ ५२ ॥ तथा वेदोक्तमंत्रोंसे नाम जपेंगे. हे मधुसूदन ! भूर्लोक और स्वर्गलोकमें ॥ ५३ ॥ तुम्हारे पूजनसे वृद्धि होगी. व्यासजी बोले यह कहकर वह वाणी विरामको प्राप्त हुई जो यज्ञसे प्रगट थी ॥ ५४ ॥ और विश्वात्मा

भगवान्भी सुनकर प्रसन्न हुए. इस प्रकार भगवान् यज्ञको समाप्त करके ॥ ५५ ॥ उन ब्रह्मपुत्र और मुनियोंको विदा करके अनुचरोंको सहित भगवान् गये ॥ ५६ ॥ औरभी सब देवता अपने २ स्थानोंको गये और सब मुनि विस्मित होकर परस्पर वार्ता करनेलगे ॥ ५७ ॥ और प्रसन्न होकर अपने २ पवित्र स्थानोंको गये॥ ५८॥ कानोंको मनोहर आकाशवाणी सुनकर सबका भगवतीके विषयमें प्रेम हुआ और सब ब्राह्मण मुनिगणोंसहित पूजन करनेलगे. हे मुनींद्रो! उस मूलप्रकृतिकी आराधना अवश्यही सब कामना देनेवाली है ॥ ५९ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः १४.

जनमेजय बोले मैंने यह विष्णुजीका यज्ञ विस्तारसे सुना. अब भगवतीकी महिमा विस्तारपूर्वक मुझसे कहिये ॥ १ ॥ देवीका चरित्र सुनकर उत्तम यज्ञ करूंगा, हे विप्रेन्द्र! तुम्हारे प्रसादसे मैं पवित्र होजाऊंगा ॥ २ ॥ व्यासजी बोले सुनो राजन्! मैं उत्तम देवीका चरित्र कहता हूं. और विस्तारपूर्वक पुरानी गाथा कहता हूं॥ ३ ॥ सूर्यवंशमें श्रेष्ठ एक राजा कोशलदेशमें था. वह महातेजस्वी पुष्पका पुत्र ध्रुवसन्धि था ॥ ४ ॥ वह धर्मात्मा सत्यसंध वर्णाश्रमके हितमें रत था, और समृद्ध अयोध्यामें राज्य करता था ॥५॥ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र तथा दूसरे ब्राह्मण अपनी२ वृत्तिमें स्थित राज्यमें निवास करते थे ॥ ६ ॥ उसके राज्यमें चोर चुगलखोर धूर्त पाखण्डी कृतघ्नी और मूर्ख निवास नहीं करते थे ॥ ७ ॥ हे राजन्! इस प्रकार उसके वर्तमान होनेमें कामभोगकी देनेवाली उसके दो पत्नी थीं ॥ ८ ॥ एकका नाम मनोरमा धर्मपत्नी वह बड़ी रूपवती और चतुर थी. और दूसरी रूपगुणसम्पन्न लीलावती थी ॥ ९ ॥ गृहोंके वनों उपवनोंमें वह राजा अपनी पत्नियोंसहित विहार करता था. क्रीडापर्वत बावड़ी और महलोंमें विचरता था ॥ १० ॥ मनोरमाके सुसमयमें पुत्र उत्पन्न हुआ. इसका नाम सुदर्शन था. यह राजलक्षणसे संयुक्त था ॥ ११ ॥ उसकी दूसरी पत्नी लीलावतीनेभी एकही महीनेमें सुन्दर पक्ष और सुन्दर दिनमें पुत्र उत्पन्न किया ॥ १२ ॥ राजाने दोनोंके जातकर्मादि संस्कार किये और पुत्रजन्मसे प्रसन्न हो दोनोंके कल्याणनिमित्त ब्राह्मणोंको दान दिया ॥ १३ ॥ राजा उन दोनों पुत्रोंमें समान प्रीति करते थे और कभी उनके

सौहार्दमें अन्तर न किया ॥ १४ ॥ और विधिपूर्वक राजाने समयपर उनका चूडाकर्म किया. जैसा राजाका ऐश्वर्य था उसी प्रकार परमतपस्वी राजाने किया॥ १५॥ चूडाकरण होनेपर वे दोनों बालक राजाका मन हरण करते क्रीडा करते लोकोंका मन हरण करते थे ॥ १६ ॥ उसमें लीलावतीका पुत्र सुदर्शन ज्येष्ठ था, और दूसरा शत्रुजित् अतिचतुराईके वचन बोलनेवाला था ॥ १७ ॥ यह मंजुभाषी सुन्दर दर्शनीय राजाका अतिप्रीतिपात्र था. और प्रजा तथा मंत्रियोंकाभी प्रिय हुआ ॥ १८॥ गुणयोगसे राजाभी शत्रुजित्में अधिक प्रीति रखता था और मन्दभाग्यताके कारण सुदर्शनमें वैसा प्यार नहीं था ॥ १९ ॥ इस प्रकार कुछ समय बीतनेसे ध्रुवसंधि मृगया खेलनेको वनमें गया ॥ २० ॥ और मृग रुरु कम्बु शूकर गवय शश महिष शरभ खड्ग पशुओंको मारता राजा वनमें क्रीडा करनेलगा ॥ २१ ॥ जब राजा उस घोर दारुणवनमें क्रीडा करता था. उस समय निकुंजसे एक परमकोपवान् सिंह प्रगट हुआ, और आगे राजाको स्थित देखकर मेघकी समान शब्द किया ॥२२॥२३॥लांगूलको ऊपर उठाये बालोंको फैलाये गलेके बालोंको फुलाये राजाके मारनेको आकाशसे कूदा ॥ २४ ॥ राजाने यह देख बड़े वेगसे खड्ग हाथमें लिया और बायें हाथमें चर्म लेकर सिंहकी समान स्थित हुआ ॥ २५ ॥ और उसके सेवकभी पृथक् २ क्रोधकर सिंहके ऊपर बाणप्रहार करनेलगे ॥ २६ ॥ उस समय महाहाकार होनेलगा कारण कि उसका दारुण प्रहार था. तब वह कठिन सिंह राजाके ऊपर कूदा ॥ २७॥ उसको आताहुआ देखकर राजाने खड्ग प्रहार किया उसनेभी अपने क्रूरनखोंके अग्रभागसे आकर राजाको विदीर्ण करदिया ॥ २८॥ नखोंसे आहत होकर राजा गिरकर मरगया. और सैनिक शब्द करते उसे बाणोंसे मारनेलगे ॥ २९॥ सिंहभी वहीं मृत हुआ; परन्तु राजाभी वहीं मृत होगया. तब सैनिकोंने मुख्यमंत्रियोंसे आकर यह निवेदन करदिया॥ ३०॥ वे मंत्रिश्रेष्ठ राजाको परलोकगामी हुआ सुनकर वनमें जाकर राजाका संस्कार करातेहुए ॥ ३१ ॥ और वसिष्ठजीने विधिपूर्वक उसको सुखदायक परलोककी क्रिया वहां कराई ॥ ३२ ॥ प्रजा और प्रकृति तथा महामुनि वसिष्ठजी सुदर्शनको राजा बनानेके निमित्त परस्पर सम्मति करनेलगे ॥ ३३ ॥ यह धर्मपत्नीका पुत्र शान्त पुरुष सुलक्षण है, और राज्यासनके योग्यभी है, ऐसा मंत्रिश्रेष्ठ कहनेलगे ॥ ३४ ॥ और यही वार्ता वसिष्ठजीनेभी कही कि यह बालक धर्मवान् राज्यआसनके योग्य है ॥ ३५ ॥ जब मंत्रियोंने ऐसा कहा तब

उसी समय उज्जयनीका राजा युधाजित् नाम वहां आनकर प्राप्त हुआ ॥ ३६ ॥ वह लीलावतीका पिता अपने जामाताका मरण सुनकर अपने धवतेके प्रियकी इच्छा कर शीघ्रतासे आया था ॥ ३७॥ और उधरसे सुदर्शन धवतेके प्रिय करनेकी इच्छासे कलिंग देशका राजा वीरसेन वहां आनकर प्राप्त हुआ ॥ ३८ ॥ वे दोनों राजा सेना साथ लिये वेगसे राजा कौन हो इस विषयमें मंत्र करनेलगे ॥ ३९ ॥ युधाजितने पूँछा इन दोनोंमें ज्येष्ठ कौन है? जो ज्येष्ठ हो वही राज्य पासक्ता है. छोटा कभी नहीं ॥ ४० ॥ वीरसेनने कहा धर्मपत्नीका पुत्रही राज्यका अधिकारी हो सक्ता है. ऐसा हमने शास्त्रोंमें सुना है ॥ ४१ ॥ युद्धाजितने फिर कहा जैसा यह ज्येष्ठ गुण और राजलक्षणसे युक्त है वैसा सुदर्शन नहीं है ॥ ४२ ॥ इस प्रकार राज्यके लोभी दोनो राजाओंका विवाद चलनेलगा. इस संकटमें कोईभी किसीका संदेह दूर न करसका ॥ ४३ ॥ युधाजितने मंत्रियोंसे कहा तुम सब स्वार्थपरायण हो जो सुदर्शनको राजा करके धनके भोगकी इच्छा करते हो ॥ ४४ ॥ तुम्हारी चेष्टाओंसे मैंने तुम्हारा विचार जान लिया. यह शत्रुजितही सबल है और नृपासनके योग्य है ॥ ४५ ॥ मेरे जीते छोटेको राजा कौन कर सक्ता है ? और ज्येष्ठ जो गुणी और सेनासहित है उसे कौन त्यागन करसक्ता है ? ॥ ४६ ॥ इसके निमित्त मैं अवश्य युद्ध करूंगा, मेरे खड्गसे भूमि हत होजाती है. तुम्हारी तो कथाही क्या है ? ॥ ४७ ॥ यह सुनकर वीरसेन युधाजित्से कहनेलगे यह दोनो ही बालक समानबुद्धिसम्पन्न हैं हे विचक्षण ! इनमें भेद क्या है ? ॥ ४८ ॥ जब वे दोनो राजा इसप्रकार विवाद करनेलगे तब प्रजा और ऋषि मनमें बड़े व्यग्र हुए ॥ ४९ ॥ तब सामन्त सेनासहित क्लेशित होकर प्राप्त हुए, जो परस्पर विग्रहकी इच्छा करनेलगे ॥ ५० ॥ शृंगवेरपुरके रहनेवाले निषाद उस स्थानमें आनकर प्राप्त हुए जो कि राजाको मृतक सुनकर राजद्रव्यकी हरण करनेकी इच्छासे आये थे ॥ ५१ ॥ दोनो पुत्रोंको बालक सुनकर तथा परस्पर विग्रह विचार देशदेशान्तरके चोर वहां आनकर प्राप्त हुए ॥ ५२ ॥ इस प्रकार क्लेशमें बड़ा जमघट हुआ. युधाजित् और वीरसेन दोनो युद्धकी इच्छा करनेलगे ॥ ५३ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः १५.

व्यासजी बोले जब उस संग्राममें दोनो राजाओंने शस्त्र ग्रहण किये तब उन क्रोध और लोभसे वशीभूत हुए दोनोंका बड़ा जमघट हुआ ॥ १ ॥ बड़ी बाहुवाला युधाजित् राजा धनुष धारणकर युद्धमें स्थित हुआ. और संग्रामके निमित्त निश्चय कर अपनी सब सेनाको एकत्र किया ॥ २ ॥ और वीरसेनभी क्षात्रधर्मका स्मरण कर क्षत्रियधर्मके अनुसार अपने धवतेके प्रियकी इच्छासे इन्द्रकी समान तेज धारण कर स्थित हुआ ॥ ३ ॥ वह युधाजित्को युद्धमें स्थित देखकर उसके ऊपर बाण-वर्षा करनेलगा और जैसे बिजली पर्वतपर गिरै इस प्रकार वह सत्यपराक्रमी क्रोधसे युक्त हो ॥ ४ ॥ बड़े तीक्ष्ण शीघ्रगामी बाणोंसे विद्ध करनेलगा और वहभी अपने बाणोंसे इसके तीक्ष्ण बाणोंका छेदन करनेलगा ॥ ५ ॥ हाथी रथी अश्वारोहियोंका बड़ा युद्ध होनेलगा, जिस घोर युद्धको सुर नर मुनियोंनेभी देखा, विहंगोंसे आकाश शीघ्रही व्याप्त होगया, काक गृध्रादि मांसके लोभी वहां आनकर प्राप्त हुए ॥ ६ ॥ वहां अद्भुत रुधिरका प्रवाह बहने लगा, जिसमें हाथी घोड़े और वीरगण बह रहे थे, जो देखनेवालोंको भय देती थी. जैसे पापात्माओंको वैतरणी त्रास देती है ॥ ७ ॥ उस रुधिरनदीके तटोंमें नरोंके मुण्ड पड़े हुए बालोंसे युक्त इस प्रकार शोभित होते थे जैसे यमुनाके तटपर एकत्रित हुए बालकोंने विहार करनेके निमित्त तुम्बीफल डालदिये हों ॥ ८ ॥ मरेहुए वीरको रथसे भूमिमें गिरा देखकर गृध्र मांसके निमित्त उसके ऊपर भ्रमण करता था, सो ऐसा विदित होता था मानो यह इस शरीरका जीव अपने मनोहर शरीरमें फिर प्रवेशकी इच्छा करता है ॥ ९ ॥ संग्राममें मृत्युको प्राप्त होकर कोई वीर सुरांगनाको अपने अंकमें लेकर उससे कहने लगा हे करभोरु ! देखो यह मेरा मनोहर शरीर बाणसे विद्ध हुआ पृथ्वीमें पड़ा है ॥ १० ॥ कोई दूसरा शत्रुके द्वारा हत होकर अन्तरिक्षमें गया और देवांगनाको प्राप्त हो विमानमें बैठकर स्थित हुआ, परन्तु इसी अवसरमें उसकी प्रियभार्या उसके शरीरके साथ सती हुई और उस स्वकीया अबलाने दिव्य देहको प्राप्त हो उससे अपने पतिको ग्रहण करलिया ॥ ११ ॥ परस्पर एक दूसरेके प्रहारसे निहत होकर जो वीर स्वर्गमें गये वहां भी एक अप्सराकी प्राप्तिके निमित्त परस्पर विवाद करने लगे ॥ १२ ॥ और कोई युवा सुरांगनाको प्राप्त होकर उस गुणरूप-

वती स्त्रीमें अनुरक्त हो उसे अपनेसे अधिक गुणवती विचार कर यह मुझसे विरक्त न होजाय इस कारण अपने गुणोंका विशेष वर्णन करके उसे अपने वशीभूत और अनुकूल करता हुआ ॥ १३ ॥ भूमिसे धूरिने उड़कर आकाशमें फैल सूर्यको ढककर रात्रि करदी थी, परन्तु यह एक साथही रुधिरके सागरमें मग्न होगई और कान्तिमान् सूर्य फिर प्रकाशित हुए ॥ १४ ॥ कोई आकाशमें जाय सुन्दर मुखवाली भक्तियुक्त देवकन्याको प्राप्त होकर भी ब्रह्मचारी मेरा नाम जाता रहैगा इस भयसे वह चतुर उस कन्याको अंगीकार न करता हुआ ॥ १५॥ इस प्रकार उस संग्रामके विस्तार होनेमें राजा युधाजित्ने तीव्रबाणोंसे वीरसेनका वध करडाला ॥ १६ ॥ तब वह राजा छिन्नमस्तक होकर भूमिपर गिरा, और उसकी सेनाभी नष्ट हो दशों दिशाओंमें भाग गई ॥ १७ ॥ जब मनोरमाने संग्राममें पिताका मरण सुना तब पिताके वैरीके डरसे व्याकुल हो उठी ।। १८ ।। और विचारने लगी वह दुराचारी युधाजित् अवश्य मेरे पुत्रको मारैगा कारण कि वह पापात्मा राज्यका लोभी है इस प्रकार चिन्ता करनेलगी ।। १९ ।। मेरा पिता युद्धमें निहत हुआ अब मैं क्या करूं? कहां जाऊं? और स्वामी भी यहीं मृतक हुए पुत्र बालक है ।। २० ।। लोभ पापकी खान है, ऐसा कौन है? जो इसके वशीभूत नहीं है. इससे युक्त हुआ यह पापी बली राजा क्या न करैगा? ॥ २१ ॥ पिता माता भाई गुरु स्वजन बंधु इन सबको भी लोभी मनुष्य मारनेकी इच्छा करता है. इसमें सन्देह नहीं ॥ २२ ॥ लोभसेही अभक्ष्यभक्षण अगम्यागमन करता है तथा तृष्णासे व्याकुल हुआ धर्मकोभी त्याग देता है ॥ २३ ॥ मेरा कोई सहायक नहीं है इस नगरमें ऐसा कोई नहीं जिसके आधारसे स्थित होकर मैं पुत्रकी पालना करूं ।।२४॥ यदि राजा मेरे पुत्रको मार डाले तौ मैं क्या करूंगी, इस भुवनमें कोई मेरा रक्षक नहीं. जिसको प्राप्त होकर मैं सुखी हूं ॥ २५ ॥ मेरी सौत तौ मुझसे वैर रखती है इस कारण यह लीलावती मेरे पुत्रमें दयावती न होगी ॥ २६ ॥ जब युधाजित् यहां आजायगा तौ मेरा निकलना न होगा, वह मेरे पुत्र बालकको और मुझे कारागारमें डाल देगा ॥२७॥ ऐसा सुनाभी है कि पहले इन्द्रने दितिके गर्भको ४९ खण्ड कर डाला था ॥ २८ ॥ अर्थात् अपवित्रतामें मायासे छोटा वज्र करके माताके गर्भमें प्रविष्ट होगये, वही गर्भके ४९ बालक स्वर्गमें मरुत-नामसे स्थित हैं ॥२९॥ एक राजाकी भार्याको उसकी सौतने उसे गर्भवती जानकर विष देदिया था ॥ ३० ॥ पीछे ऋषिकी कृपासे विषयुक्तही उस बालकका जन्म

हुआ. इससे वह भूमण्डलमें सगर नामसे विख्यात हुआ ॥ ३१ ॥ और राजा दशरथकी भार्या कैकेयीने सौतके पुत्र ज्येष्ठ रामचन्द्रको वनमें भिजवा दिया. जिसके कारण राजा दशरथकी मृत्यु हुई॥ ३२॥ और जो मंत्री मेरे पुत्रको राज्य देना चाहते थे वे युधाजित्के आधीन होनेसे अवश हैं ॥ ३३ ॥ मेरा भ्राता ऐसा शूर नहीं जो मुझे बंधनसे छुड़ावेगा, दैवयोगसे मुझको बड़ा कष्ट आनकर प्राप्त हुआ है ॥ ३४ ॥ परन्तु उद्यम सर्वथा करना चाहिये, प्रारब्धसे सिद्धि होती है अब मैं शीघ्रतासे पुत्रकी रक्षाके निमित्त उपायं करूं ॥ ३५ ॥ यह विचार कर उस वालाने बड़े मानी सब कार्योंमें चतुर मंत्रिश्रेष्ठ विदल्लको ॥ ३६ ॥ बुलाय एकान्तमें बड़ी दीनतासे रोकर बालकको हाथमें लिये इस प्रकारके वचन कहे ॥ ३७ ॥ मेरे पिता तो युद्धमें मृतक हुए और यह पुत्र बालक है और युधाजित् बली राजा है. इसमें क्या कर्तव्य है? सो मुझसे कहो ॥ ३८ ॥ यह सुनकर विदल्लने कहा अब तुमको यहां रहना नहीं चाहिये. हम वनको जायँगे फिर वाराणसीको जायँगे ॥ ३९ ॥ वहां मेरा मामा बड़ा बली सुबाहु रहता है, वह हमारा रक्षक होगा ॥ ४० ॥ मैं युधाजितको देखने नगरसे बाहर जाऊंगी यह बहाना कर तुम यहांसे चलीजाओ ॥ ४१ ॥ वह रानी मंत्रीके यह वचन सुन लीलावतीके पास जाय बोली, हे सुलोचने ! मैं पिताके देखनेको जाती हूं ॥ ४२ ॥ यह कह सैरन्ध्रीके सहित रथपर चढ़कर विदल्लको साथ ले नगरसे बाहर हुई ॥ ४३ ॥ वह त्रस्त दुःखी पिताके शोकसे व्याकुल हुई चली. वहां राजा युधाजित्को देखकर॥ ४४॥ और अपने पिताको मृतक देखकर कंपित हो उसने शीघ्रतासे संस्कार किया. दो दिनमें वहांसे चल कर गंगातटपर प्राप्त हुई॥ ४५॥ वहां निषादोंने लूटकर रानीका सब धन लेलिया और रथकोभी लेकर वे दस्यु शठ चलेगये ॥ ४६ ॥ वह सुवस्त्रा मनोरमा रुदन करतीहुई पुत्रको लिये सैरन्ध्रीका हाथ पकड़े गंगाके तटपर आई ॥ ४७ ॥ और डरके मारे बहुत शीघ्र एक छोटी नौका-पर चढ़ी और गंगाको तरकर चित्रकूटपर्वतको गई ॥ ४८ ॥ और भयसे शीघ्रता करती भारद्वाजके आश्रममें प्राप्त हुई. और वहां उन तपस्वीको देखकर निर्भय होगई ॥ ४९ ॥ मुनिने पूँछा तुम कौन? किसकी स्त्री हो ? तुम कष्टसे कैसे यहां आई हो ? हे शुचिस्मिते ! सत्य कहो ॥ ५० ॥ तुम देवी वा मानुषी बालक पुत्रको लिये कौन हो ? हे कमललोचनी ! तुम हमको राज्यभ्रष्टकी समान दीखती हो॥ ५१ ॥ इस प्रकार मुनिके पूँछनेपरभी उसने कुछ न कहा और दुःखसे व्याकुल हो उस रोतीहुईने विद-

ल्लको आज्ञा दी ॥ ५२ ॥ तब विदल्लने कहा नृपश्रेष्ठ ध्रुवसन्धि राजाकी धर्मपत्नी यह मनोरमा रानी हैं ॥ ५३ ॥ वह महाबली सूर्यवंशी राजा सिंहसे निहत हुए यह सुदर्शननाम उस राजाका पुत्र है ॥ ५४ ॥ इस मनोरमाके पिता धर्मात्मा धेवतेके प्रिय करनेकी इच्छासे युद्धमें निहत हुए. यह युधाजितके भयसे निर्जन वनमें आई ॥ ५५ ॥ यह बालकपुत्रवाली रानी अब तुम्हारी शरणमें प्राप्त हुई है हे महाभाग ! मुनिश्रेष्ठ ! आप इसके रक्षक हूजिये ॥ ५६ ॥ दुःखीकी रक्षा करनेका पुण्य यज्ञसेभी अधिक कहा है, और भयभीत दीनकी तो रक्षा करना महाफलदायक है ॥५७॥ ऋषिने कहा हे कल्याणी! तुम निर्भय होकर निवास करो, और इस पुत्रकी पालना करो. हे दीर्घलोचने ! तुमको यहां शत्रुसे भय न करना चाहिये ॥ ५८ ॥ अपने मनोहर पुत्रको पालो यही राजा होगा, यहां दुःख और शोक कभी कुछ न होगा ॥ ॥ ५९ ॥ व्यासजी बोले मुनिके ऐसा कहनेपर रानी स्वस्थ हुई, और मुनिकी दीहुई कुटीमें शोकरहित हो निवास करनेलगी ॥ ६० ॥ सैरन्ध्री और विदल्लके सहित सुदर्शनका पालन करती वहां मनोरमा रहनेलगी ॥ ६१ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः १६.

व्यासजी बोले महाबली युधाजित् संग्रामसे अयोध्यामें आकर सुदर्शनके मारनेकी इच्छासे मनोरमाको पूछनेलगा ॥ १ ॥ और वह कहां गई इस प्रकार वारंवार कहकर सेवकोंको ढूंढनेके निमित्त भेजताहुआ. और शुभ मुहूर्तमें अपने धेवतेको राजआसनपर स्थापित किया ॥ २ ॥ मंत्रीजन और वसिष्ठजीने अथर्ववेदके मंत्रोंसे तथा जलपूर्ण घटोंसे अभिषेक किया ॥ ३ ॥ भेरी शंखोंके शब्द बाजोंके शब्दपूर्वक नगरीमें बड़ा भारी उत्सव हुआ ॥ ४ ॥ ब्राह्मणोंके वेदपाठ बन्दीजनोंकी स्तुति और मंगलीक जयशब्दोंसे अयोध्या प्रसन्न होगई ॥ ५ ॥ हृष्ट पुष्ट जनोंसे व्याप्त स्तुति और बाजोंके शब्दोंसे पूर्ण होकर वह उस नये राजाके कारण नईसी होगई ॥ ६ ॥ जो साधुजन थे वे घरमें स्थित हो शोक करनेलगे कि वह राजकुमार सुदर्शन कहां गया? ॥ ७ ॥ और वह साध्वी मनोरमा पुत्रके सहित कहां गई? इस वैरी राज्यलोभीने युद्धमें उसके पिताको मारडाला ॥ ८ ॥ इस प्रकार विचार करतेहुए वे सम-

बुद्धि साधु शत्रुजित्के वशीभूत हुए दुःखसे रहनेलगे ॥ ९ ॥ और युधाजित्भी विधिपूर्वक धेवतेको राज्यपर स्थापन करके मंत्रीके अधीन अवधका राज्य कर अपनी पुरीकी ओर चला ॥ १० ॥ मार्गमें मुनियोंके आश्रममें सुदर्शनको स्थित सुनकर उसके मारनेकी इच्छा कर चित्रकूटपर्वतको गया ॥ ११ ॥ और बड़े बली शूर निषाद देशके राजाको आगे करके अर्थात् उस शृंगवेरपुरके अधिपति दुर्दर्शको लेकर चला ॥ १२ ॥ यह समाचार मनोरमा सुनकर बड़ी दुःखी हुई, कि वह मेरे बालकपुत्रको मारनेके निमित्त सेना लिये आता है ॥ १३ ॥ वह व्याकुल हो नेत्रोंमें जलभर मुनिसे कहनेलगी अब मैं क्या करूं? कहां जाऊं? युधाजित् आनकर प्राप्त हुआ है ॥ १४ ॥ इसने मेरे पिताको मारकर अपने धेवतेको राजा किया है. अब सेना लिये मेरे पुत्रको मारनेकी इच्छासे आता है ॥ १५ ॥ हे स्वामिन्! यह मैंने पहले सुना था कि पाण्डव वनमें द्रौपदीके सहित मुनियोंके आश्रममें रहते थे ॥ ॥ १६ ॥ एक समय वे पांचो भाई मृगयाके निमित्त वनको गये थे और मुनियोंके आश्रममें द्रौपदी स्थित थी ॥ १७ ॥ धौम्य, अत्रि, गालव, पैल, जाबालि, गौतम, भृगु, च्यवन, अत्रि, गोत्र, कण्व, जतु, क्रतु ॥ १८ ॥ वीतिहोत्र, सुमन्तु, यज्ञदत्त, वत्सल, राशासन, कहोड, यवक्री, यज्ञकृत, क्रतु ॥ १९ ॥ यह तथा और भारद्वाजादि शुभ मुनि वेदपाठ करनेवाले उस आश्रमें स्थित थे ॥ २० ॥ वह दासियोंके सहित द्रौपदी आश्रममें स्थित थी. वह सुन्दर अंगवाली मुनियोंके आश्रममें निर्भय थी ॥ २१ ॥ और पृथाके पुत्र इस वनसे उसमें इससे उसमें मृगोंके पीछे चलेगये. यह पांचो वीर धनुषधारी शत्रुनाशक थे ॥ २२ ॥ इसी अवसरमें सिन्धुदेशका राजा श्रीमान् जयद्रथ सेनासहित विचरता वेदपाठकी ध्वनि सुनकर मुनियोंके आश्रममें आया ॥ २३ ॥ भावितआत्मावाले मुनियोंके वेदपाठकी ध्वनि सुनकर उनके दर्शनकी इच्छासे राजा रथसे उतरा ॥ ॥ २४ ॥ जब कि यह अपने दो सेवकोंके साथ चला और वेदपाठ करतेहुए मुनियोंको इसने देखा ॥ २५ ॥ तब वह जयद्रथ मुनियोंके आश्रममें हाथ जोड़ेहुए प्रविष्ट हुआ ॥ ॥ २६ ॥ वहां जब राजा बैठा तब इसके देखनेको मुनियोंकी स्त्रियें कौतूहलसे 'यह राजा है' ऐसा विचारकर आईं ॥ २७ ॥ उनके मध्यमें सुमुखी याज्ञसेनीभी आनकर प्राप्त हुई. उसे रूपमें लक्ष्मीकी समान जयद्रथने देखा ॥ २८ ॥ उस असितापांगीको दूसरी देवकन्याकी समान देखकर राजाने पूँछा यह सुमुखी वरांगना कौन है? ॥ २९ ॥ किसकी भार्या? किसकी सुता? क्या इसका नाम है? यह रूप लावण्य

संयुक्त मानो इन्द्राणीही भूमिमें आई है ॥ ३० ॥ जैसे बबूलके वृक्षोंके मध्यमें लौंगकी वेल हो वा राक्षसियोंके मध्यमें रंभा हो इस प्रकार यह भामिनी विदित होती है ॥ ३१ ॥ हे महाभाग ! सत्य कहो यह अबला किसकी है ? हे द्विज ! यह तौ राजपत्नीकी समान दीखती है. मुनिवधू नहीं है ॥ ३२ ॥ धौम्य बोले पाण्डवोंकी प्रिया भार्या शुभलक्षणा द्रौपदी पांचालराजकी कन्या हमारे आश्रममें निवास करती है ॥ ३३ ॥ जयद्रथने कहा वह पांच शूर पाण्डव कहां गये हैं? वे महाबली शोक-रहित होकर इसी वनमें निवास करते हैं ॥ ३४ ॥ धौम्य बोले रथमें स्थित होकर पांचों पाण्डव मृगयाके निमित्त वनमें गये हैं वे मृगोंको लेकर मध्याह्नके समय आवेंगे ॥ ३५ ॥ धौम्यके यह वचन सुन वह राजा उठा और द्रौपदीके समीप जाय प्रणाम कर बोला ॥ ३६ ॥ हे वरारोहे ! तुम्हारी कुशल है ? पति कहां गये हैं? अब तुमको वनमें ग्यारह वर्ष बीतगये ॥ ३७ ॥ तब द्रौपदी बोली हे राजपुत्र ! आपका कल्याण हो आप आश्रमके समीप निवास करो अभी पाण्डव आते हैं ॥ ॥ ३८ ॥ उसके ऐसा कहनेपर वह राजा लोभाक्रान्त होकर मुनिश्रेष्ठोंका विचार न करके द्रौपदीका हरण करताहुआ. फिर पांडवोंने छुड़ाया ॥ ३९ ॥ इससे पंडितोंको किसीका विश्वास न करना चाहिये? करनेसे दुःख होता है, इसमें राजा बलिका दृष्टान्त है ॥ ४० ॥ वैरोचनका पुत्र धर्मात्मा सत्यवादी यज्ञका करनेवाला शरणागतवत्सल साधुसंमत था ॥ ४१ ॥ वह प्रह्लादका पौत्र कभी अधर्ममें रत नहीं था, उसने दक्षिणावाले ९९ यज्ञोंको किया था ॥ ४२ ॥ जो सत्वमूर्ति विष्णु सदा योगियोंको सेवनीय निर्विकार हैं, वे देवकार्यसिद्धिके निमित्त॥ ४३ ॥ कपटसे वामनरूप धर कश्यपके यहां प्रगट हुए; और उन्होंने सागरपर्यन्त भूमि और राज्यका हरण किया ॥४४॥ और विरोचनका पुत्र राजा बलि इतनेपरभी सत्यवाक् रहा और विष्णुने इन्द्रके निमित्त वंचना की ॥ ४५ ॥ जब सत्वमूर्तिने ऐसा किया तौ और कौन न करैगा? वामनरूपकरके यज्ञकी रक्षा करनेवालेने उसे छला ॥ ४६ ॥ इस कारण किसीका विश्वासन करना चाहिये. हे स्वामिन् ! जब चित्तमें लोभ होता है तब पापका भय नहीं होता ॥ ४७ ॥ लोभसे युक्त होकरही प्राणी पाप करते हैं. हे मुने ! ऐसोंको कभी परलोकका भय नहीं होता है ॥ ४८ ॥ मन वचन कर्मसे दूसरेका धन लेनेके कारण लोभसेही मनुष्य नरकमें पड़ते हैं ॥ ४९ ॥ मनुष्य भलीप्रकार देवताओंका आराधन कर धनकी इच्छा करते हैं. परन्तु देवता किसीके

हाथमें तो धन देतेही नहीं ॥ ५० ॥ वेभी दूसरेसे धन लाकर यथेच्छ देते हैं. व्यापार दान चोरी बल ॥ ५१ ॥ तथा बेचनेकी वस्तुओंसे वस्त्रादिक धन ग्रहण करके वैश्य देवताओंका पूजन करते हैं कि हमारे यहां धन होजाय ॥ ५२ ॥ हे परंतप ! क्या व्यापारसे पराये द्रव्यके लेनेकी इच्छा नहीं है? नाज भरतेही व्यापारी इच्छा करते हैं कि अकरा होजाय ॥ ५३ ॥ इस प्रकारसे सब प्राणी पराये धन लेनेकी इच्छामें वर्तमान हैं. हे ब्रह्मन् ! फिर किसका विश्वास कियाजाय? ॥ ५४ ॥ ऐसोंका तीर्थ दान वेदपाठ वृथा होता है. लोभ मोहसे व्याप्त चित्तवालोंका किया कार्य नहीं किया है ॥ ५५ ॥ हे महाभाग ! इस कारण इस राजाको घर लौटादो और मैं जानकीकी समान पुत्रसहित निवास करूंगी ॥ ५६ ॥ यह सुनकर वह प्रतापी भारद्वाज मुनि जाकर युधाजित् राजासे कहनेलगे॥ ५७॥ हे नृपश्रेष्ठ ! आप यथेष्ट अपने पुरको चले जाइये,बालपुत्रवाली दुःखित मनोरमा तुम्हारे दर्शनपथमें प्राप्त न होगी ॥ ५८ ॥ युधाजित् बोले हे मुने ! हठ छोड़कर मनोरमाको त्यागदो मैं इसे छोड़कर न जाऊंगा बलपूर्वक लेजाऊंगा ॥ ५९ ॥ ऋषि बोले यदि शक्ति हो तौ बलपूर्वक मेरे आश्रमसे लेजाओ स्मरण रखना विश्वामित्रने बलपूर्वक वसिष्ठजीके आश्रमसे धेनुग्रहण की थी क्या हुआ? ॥ ६० ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः १७.

व्यासजी बोले राजा इस प्रकार मुनिके वचन श्रवण करके सावधान हो वृद्धमंत्रीसे पूँछनेलगा ॥ १ ॥ हे सुव्रत! सुबुद्धि! कहो इस समय मुझे क्या करना उचित है?. उस सुभाषिणी पुत्रवालीको क्या मैं बलसे ग्रहण करूं? ॥ २ ॥ शुभकी इच्छावालोंको तो छोटे शत्रुकी उपेक्षा न करनी चाहिये, वह राजयक्ष्माकी समान बढ़कर अन्तमें मृत्युही करदेता है ॥ ३ ॥ यहां कुछ सेना योधा तो हैंही नहीं जो मुझे निवारण करें इससे उस दौहित्रके शत्रुको ग्रहणकरके उसे मारूंगा ॥ ४ ॥ जिससे मेरे धेवतेको राज्य निष्कंटक होजाय. वह कार्य मैं बलसे करूंगा सुदर्शनके मरनेपर यह अवश्य निर्भय होजायगा ॥ ५ ॥ मंत्री बोला हे राजन् ! इसमें साहस मत करो आपने मुनिका वचन सुना है राजन् ! उसने विश्वामित्रका दृष्टान्त कहा है॥ ६ ॥ पहले गाधिके पुत्र श्रीमान् विश्वामित्र बड़े प्रतापी हुए हैं वे नृपश्रेष्ठ विचरतेहुए वसिष्ठके

आश्रममें आये ॥ ७ ॥ प्रतापी विश्वामित्रने उनको प्रणाम किया और मुनिके दिये आसनपर बैठे ॥ ८ ॥ तब महात्मा वसिष्ठजीने उनको भोजन करनेको कहा वह महायशस्वी गाधिपुत्र सेनासहित निमंत्रित हुए ॥ ९ ॥ जो कुछ भक्ष्य भोज्य था वह सब नंदिनीने सम्पादन किया, राजाने सेनासहित वांछित भोजन कर ॥ १० ॥ और यह सब नंदिनीका प्रताप जानकर वसिष्ठसे नंदिनीको मांगा ॥ ११ ॥ विश्वामित्र बोले हे मुने ! तुम को घटोध्नी सहस्र गौ दूंगा, यह नंदिनी मुझको दो मैं तुम्हारी प्रार्थना करता हूं ॥ १२ ॥ वसिष्ठजी बोले हे राजन् ! मैं यह होमधेनु कभी नहीं दूंगा. यह सहस्रों धेनु आपके पास रहैं ॥ १३ ॥ विश्वामित्र बोले दस सहस्र अथवा एक लक्ष गौ आपको देता हूं हे मुने ! यह गौ हमको दो नहीं तो मैं बलसे ग्रहण करलूंगा ॥ १४ ॥ वसिष्ठजी बोले हे राजन् ! जैसे आपकी रुचि हो तो बलसे ग्रहण कर लीजिये और अपनी इच्छासे मैं नंदिनीको घरसे नहीं जाने दूंगा ॥ १५ ॥ यह सुनकर राजाने महाबली भृत्योंको आज्ञा दी कि तुम अपने बलदर्पसें नंदिनीको ग्रहण कर लो ॥ १६ ॥ तब उन भृत्योंने बलसे नंदिनीको पकड़ा, तब सुरभी नेत्रोंमें जल भर कर कंपित होकर मुनिसे बोली ॥ १७ ॥ हे मुने ! भलीप्रकार यंत्रित मुझको क्यों त्यागन करती हो,तब मुनिने कहा हे दुग्धदात्री ! मैं तुझको त्यागन नहीं करता हूं ॥ १८ ॥ हे शुभे ! यह राजा तुझको बलसे लिये जाता है. क्या करूं ? मैं तो तुझको मनसेभी छोड़नेकी इच्छा नहीं करता ॥ १९ ॥ मुनिके ऐसा कहतेही वह धेनु क्रोधयुक्त होगई और उसने हंभाशब्दपूर्वक बड़ा दारुण शब्द किया ॥ २० ॥ और उसके शरीरसे घोर दैत्य निकलनेलगे और कवच पहरे 'खड़े रहो खड़े रहो' कहकर आयुध ले धावमान हुए ॥ २१ ॥ उन्होंने विश्वामित्रकी सब सेनाको नष्ट करके नन्दिनीको छुड़ालिया, तब इकले राजा विश्वामित्र दुःखी हो वहांसे चलेगये ॥ २२ ॥ बड़ा खेद करके वे दीनात्मा क्षात्रबलकी निंदा करतेहुए ब्रह्मबलको श्रेष्ठ मानकर तपमें स्थित हुए ॥ २३ ॥ महावनमें बहुत वर्षोंतक घोर तप करके क्षात्र-विधिको त्यागन कर विश्वामित्रने ऋषिपनकी प्राप्ति की ॥ २४ ॥ हे राजेन्द्र ! इस कारण तुमको वैर नहीं करना चाहिये तपस्वियोंसे वैर करना निश्चयही कुलना-शके निमित्त होता है ॥ २५ ॥ तुम इन तपोनिधि मुनिश्रेष्ठका आश्वासन करके राजधानीको चलो. हे राजेन्द्र ! सुदर्शनभी यहां सुखपूर्वक निवास करै ॥ २६ ॥ हे राजन् ! यह निर्धन बालक तुम्हारा क्या अहित कर सक्ता है ? इस अनाथ

दुर्वल बालकमें तुम्हारा वैरभाव वृथा है ॥ २७ ॥ यह जगत् दैवाधीन है सर्वत्र दया करनी चाहिये. हे नृपश्रेष्ठ! ईर्षासे कुछ नहीं जो होनहार है सो होगा ॥ २८ ॥ हे राजन्! दैवयोगसे तो वज्रभी तृण होजाता है कभी दैवयोगसे तृणभी वज्र होजाता है ॥ २९ ॥ खरगोश सिंहको मशक हाथीको मारदेता है. हे मेधावी! इस कारण साहसको छोड़कर मेरे हितकारी वचन मानो ॥ ३० ॥ व्यासजी बोले इस प्रकारसे वह युधाजित् मंत्रीके वचन सुनकर उन मुनिको शिर झुकाय प्रणाम कर अपने घर चलागया ॥ ३१ ॥ और मनोरमाभी स्वस्थ होकर उस आश्रममें अपने पुत्र सुदर्शनकी पालना करती हुई ॥ ३२ ॥ दिन २ यह कुमार वृद्धिको प्राप्त होनेलगा और यह शुभ मुनियोंके बालकोंके साथ निर्भय हो क्रीडा करने लगा ॥ ३३ ॥ एक समय वहां विदल्लमंत्री आनकर प्राप्त हुआ. मुनिपुत्रोंने हँसीसे उसको क्लीव नामसे सम्बोधन दिया ॥ ३४ ॥ सुदर्शनने यह सुनकर उस एक अक्षरको धारण करलिया और वकार भूलकर 'क्ली' इस प्रकार वारंवार उच्चारण करनेलगा ॥ ३५ ॥ उस प्रकार यह कामराजका वीज उसने मनसे धारण किया और उसको मनमें धारण कर वारंवार जपने लगा ॥ ३६ ॥ हे महाराज! होनहारके योगसे स्वभावसे उस राजपुत्रने यह कामराजनामक बीज ग्रहण किया ॥ ३७ ॥ तब यह पंचम वर्षमें श्रेष्ठ मंत्रको प्राप्त होकर जो कि ऋषि छन्द ध्यान न्याससे रहित था ॥ ३८ ॥ लेटते क्रीडा करते समयमेंभी यही मनमें जपता हुआ, इसीको साररूप मानकर कभी न भूलता हुआ ॥ ३९ ॥ ग्यारहवें वर्षकी प्राप्तिमें यह नृपात्मज कुमार मुनिद्वारा यज्ञोपवीतको प्राप्त होकर वेद पढ़नेलगा ॥ ४० ॥ सांग धनुर्वेद और नीतिशास्त्र पढ़ताहुआ बहुत क्या इस मंत्रके बलसे इसने सम्पूर्ण विद्या पढ़ली ॥ ४१ ॥ एक समय इसने देवीका प्रत्यक्ष दर्शन किया. जो लालवस्त्र लालवर्ण और सर्वांगमें लालभूषण धारण किये थीं ॥ ४२ ॥ गरुडवाहनके ऊपर स्थित अद्भुत वैष्णवी शक्तिको देखकर यह राजकुमार बड़ा प्रसन्न हुआ ॥ ४३ ॥ वह सब विद्याओंके तत्वका ज्ञाता उस वनमें स्थित हुआ, और माताकी सेवा करताहुआ नदीके तटमें विहार करनेलगा ॥ ४४ ॥ धनुष और पैने बाण तरकस और कवच ये देवीने उसको स्वयं प्रदान किये ॥ ४५ ॥ इसी समय काशीराजकी शशिकलानामक सर्वलक्षणसम्पन्न कन्याने ॥ ४६ ॥ राजपुत्र सुदर्शनको वनमें स्थित सुनकर कि यह सब लक्षणसे सम्पन्न शूर मानो दूसरा कामदेव है ॥

॥ ४७ ॥ इस प्रकार राजपुत्रकी बड़ाई बन्दीजनोंके मुखसे सुनकर मनसे उसने उसको वरण करनेका विचार किया ॥ ४८ ॥ रात्रिमें जगदम्बाने उसके समीप आकर स्वप्नमें आश्वासनपूर्वक यह वचन कहे ॥४९॥ हे सुश्रोणि! उसको तू वर, वह सुदर्शन मेरा भक्त है. हे भामिनि! मेरे वचनसे वह तुमको सब कामनाका देनेवाला होगा ॥ ५० ॥ इसप्रकार शशिकला स्वप्नमें मनोहर रूपको देखकर और अम्बाके वचन सुनकर बहुत प्रसन्न हुई ॥ ५१ ॥ प्रसन्न होकर उठी. माताने वारंवार पूँछाभी परन्तु लज्जासे उसने हर्षका कारण न कहा ॥ ५२ ॥ और वारंवार स्वप्नका स्मरण कर प्रसन्नतासे हँसनेलगी और दूसरी सखीसे अपने स्वप्नका वृत्तान्त विस्तारपूर्वक कहा ॥ ५३ ॥ एक समय वह विहारके निमित्त उपवनमें गई वह वन चम्पकोंसे शोभित था यह विशालनयना सखीके सहित वहां प्राप्त हुई ॥ ५४ ॥ वह बाला फूलोंको तोडती चम्पेके नीचे स्थित हुई. तब मार्गमें शीघ्रतासे आतेहुए एक ब्राह्मणको देखा ॥ ५५ ॥ यह उस ब्राह्मणको प्रणाम कर मधुर वचन बोली हे महाभाग! आपने कहांसे आगमन किया? ॥ ५६ ॥ ब्राह्मण बोले हे बाले! मेरा आना भारद्वाजके आश्रमसे हुआ है. मैं किसी कार्य निमित्त आया हूं तुम क्या पूँछती हो? मुझसे कहो ॥ ५७ ॥ शशिकला बोली महाराज! कहो उस आश्रममें वर्णन करनेयोग्य क्या वस्तु है? विशेषकर सब लोकोंसे अधिक देखनेयोग्य वहां क्या है? ॥ ५८ ॥ ब्राह्मणने कहा ध्रुवसंधिका पुत्र श्रीमान् सुदर्शननाम कुमार पुरुषोत्तम यथार्थ नामसे वहां वर्तता है ॥ ५९ ॥ हे वामोरु! मेरे जान तो जिसने उसका दर्शन नहीं किया उसके नेत्र निष्फलही हैं ॥ ६० ॥ उसके निर्माणकी इच्छासे विधाताने उसमें एकत्रही गुणोंका सन्निवेश किया है. कारण कि विधाताको कौतुकसे गुणोंके आकरके देखनेकी इच्छा थी ॥६१॥ हे कन्ये! वह कुमार तुम्हारे योग्य है. तुम्हारा भर्ता होने योग्य है. विधाता यह योग करे तो मणिकांचनका योग है॥६२॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः १८.

व्यासजी बोले वह श्यामा किशोरबाला उसके वचन श्रवण कर बड़े प्रेमसे युक्त हुई, और ब्राह्मणभी यह कहकर उस स्थानसे चलागया ॥ १ ॥ और वह पहले अनुरागके कारण औरभी प्रेमसे चंचल होगई, और ब्राह्मणके जानेपर अतिशय

कामबाणसे ताडित हुई ॥ २ ॥ और कामसे व्याकुल हो अपने अनुकूलचारिणी सखीसे कहनेलगी, इस वाक्यके श्रवणसे देहमें विकार उत्पन्न हुआ है ॥ ३ ॥ अभी-तक रसके ज्ञानकोभी न प्राप्त हुआ मेरा मन उस कुलसंभव कुमारको न प्राप्त होकर व्याकुल है. यह पापी काम मुझे दुःख देता है. मैं क्या करूं ? कहां जाऊं ? ॥ ४ ॥ दूसरे कामकी समान कुमार मैंने स्वप्नमें देखा है अब मेरा कोमल मन विरहसे व्याकुल होकर अधिक तपता है ॥ ५ ॥ हे भामिनि ! देहमें लगायाहुआ चन्दन विषकी समान विदित होता है, यह माला सर्पवत् और चन्द्रकिरण अग्निवत् विदित होती हैं ॥ ६ ॥ महल बावडी पर्वत नदी आदि कोईभी मुझे सुखदायक विदित नहीं होते ॥ ७ ॥ शय्या ताम्बूल गीत बाजे कोईभी मुझे अच्छे नहीं लगते न मेरे नेत्र तृप्त होते हैं ॥ ८ ॥ मैं अब वहीं जाऊंगी जहां वह धूर्त है. क्या कहूं ? कुललज्जासे भीत और पितासे परतंत्र हूं ॥ ९ ॥ मेरा पिता स्वयंवर नहीं करता मैं क्या करूं ? मैं राजपुत्र सुदर्शनकोही शरीरप्रदान करूंगी ॥ १० ॥ बड़े २ ऋद्धिमान् अनेक राजा हैं, वे मुझे अच्छे नहीं लगते परन्तु मुझे यह राज्यहीन सुदर्शनही अच्छा लगता है ॥ ११ ॥ व्यासजी बोले एकाकी निर्धन बलहीन वनवासी फलभोजी सुदर्शनही उसके मनमें निवास करताहुआ ॥ १२ ॥ वाग्बीजके जपसेही सिद्धि उसको प्राप्त हुई. और वहभी नित्य ध्यान करताहुआ मंत्र जपनेसे सिद्ध हुआ ॥ १३ ॥ यह अखण्डित विष्णुमायाको स्वप्नमें देखता, जो विष्णुकी माया अव्यक्त सब सम्पत्ति करनेवाली अम्बिका है ॥ १४ ॥ शृंगवेरपुरके अधिपति निषादने आकर सब सामग्रीसहित उसको रथ प्रदान किया ॥ १५ ॥ चार घोड़े और पताकाओं-से शोभित जयका रथ राजपुत्रको भेंटदिया ॥ १६ ॥ मित्रत्वमें उपस्थित प्रीतिसे उसने वह दिया और राजपुत्रने ग्रहण किया, और वनके मूलफलसे उस शंबरकी अर्चना की ॥ १७ ॥ जब आतिथ्य होनेपर निषादराज चलागया, तब प्रीतियुक्त हो दूसरे तपस्वी कहनेलगे ॥ १८ ॥ हे राजपुत्र ! अवश्यही तुम राज्यको प्राप्त होगे, और निःसन्देह थोड़ेही दिनोंमें तुमको राज्यकी प्राप्ति होगी ॥ १९ ॥ वरदायक विश्वकी मोहनेवाली अम्बिका देवी तुम्हारे ऊपर प्रसन्न है. वह तुम्हारी सहाय करैगी हे सुव्रत ! किसीप्रकारकी तुम चिन्ता मत करो ॥ २० ॥ इसीप्रकार व्रतके अनु-ष्ठानी ब्राह्मणोंने मनोरमासे कहा हे शुचिस्मिते ! शीघ्रही तुम्हारा पुत्र धराधीश होगा ॥ २१ ॥ मनोरमाने कहा आपके वचन सफल हों यह आपका दास है, आप

महात्मा सद्विप्रोंकी उपासनासे राज्यप्राप्ति विचित्र बात नहीं है ॥ २२ ॥ सैन्य सचिव कोश सहायादि कुछभी नहीं है, किस योगसे मेरा पुत्र राज्य प्राप्त करैगा? ॥ ॥ २३ ॥ अवश्यही मेरा पुत्र आपकी कृपासे राजा होगा, इसमें सन्देह नहीं कारण कि, आप मंत्रज्ञाता हो ॥ २४ ॥ व्यासजी बोले जहां वह मेधावी सुदर्शन रथारूढ होकर जाता तहां वह अक्षौहिणीसे युक्त विदित होता है ॥ २५ ॥ यह मंत्रबीजकाही प्रताप है और किसीका नहीं. इसप्रकार प्रीतियुक्त उसका जप करतेहुए यह तो बिना गुरुके मंत्रका प्रभाव है और जो ॥ २६ ॥ इसप्रकार कामराज नामक सद्गुरुके बीजको प्राप्त- होकर जो शान्त होकर जपता है वह सब कामनाओंको प्राप्त होता है ॥ २७ ॥ ऐसी कोई वस्तु पृथ्वी वा दिव्यलोकमें दुर्लभ नहीं है, जो कुछ भगवतीके प्रसन्न होनेसे दुर्लभ हो ॥ २८ ॥ वे मंद दुर्भाग्य और रोगोंसे व्याप्त हैं जिनका भगवतीके अर्च- नादिमें विश्वास नहीं है ॥ २९ ॥ जो युगादिमें सब देवताओंकी माता कहीगई है, हे कुरूद्वह ! इसीकारण वह आदिमाता कहाती है ॥ ३० ॥ बुद्धि, कीर्ति, धृति, लक्ष्मी, शक्ति, श्रद्धा, मति, स्मृति, रूपसे वह सब प्राणियोंको प्रत्यक्ष दीखती है ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य मायासे मोहित हैं वे नहीं जानते. कुतर्की विश्वेश्वरी शिवाका भजन नहीं करते ॥ ३२ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, शिव, वासव, (इन्द्र) वरुण, यम, वायु, अग्नि, कुबेर, त्वष्टा, पूषा, अश्विनीकुमार, भग ॥ ३३ ॥ आदित्य, वसु, रुद्र, विश्वेदेवा, मरुद्गण, यह सबकोई सृष्टि स्थिति अन्त करनेवालीका सदा ध्यान करते हैं ॥ ३४ ॥ कौन विद्वान् उस परमात्मिका शक्तिका सेवन न करै, उस सब अर्थ देनेवाली देवीको सुदर्शनने जाना ॥ ३५ ॥ वह विद्याअविद्यारूपवाली ब्रह्म- कोभी दुष्प्राप है, वह पराशक्ति योगगम्य और मुमुक्षुओंकी प्रिया है ॥ ३६ ॥ उसके विना परमात्माका स्वरूप कौन जानसक्ता है ? जो तीन प्रकारकी सृष्टि करके सबके आत्माको दिखाती है ॥ ३७ ॥ उस भगवतीको सुदर्शन मनसे विचार कर- ताहुआ वनमें स्थित हुआभी राज्यलाभसे अधिक सुख मानता हुआ ॥ ३८ ॥ इधर यह चन्द्रकलाभी कामबाणसे अतिशय पीडित हुई अनेक उपचारोंसे अपने दुःखी शरीरको धारण करती थी ॥ ३९ ॥ तबतक उसके पिताने जाना कि, यह कन्या वरकी इच्छा करती है, ऐसा विचार कर उसने स्वयंवर किया ॥ ४० ॥ विद्वानोंने तीन प्रकारका स्वयंवर कहा है वह राजाओंकेही योग्य है औरोंके नहीं ॥ ॥ ४१ ॥ एक इच्छास्वयंवर चाहै जिसे वरले, दूसरा पणवाला जैसा रामको

शंकरधनुभंगसे जानकी मिली ॥ ४२ ॥ तीसरा शूरताशुल्कवाला यह वीरोंका स्वयंवर है, सो राजाने इच्छास्वयंवर किया ॥ ४३ ॥ शिल्पियोंसे अच्छे आस्तरणयुक्त बिछौने कराये, जब अनेक आकारके सभ्योंके मण्डप होगये ॥४४॥ और विवाहके निमित्त सामग्रीका विस्तार होगया, तब दुःखी हो सुलोचनी शशिकलाने अपनी सखीसे कहा ॥ ४५ ॥ हे सखि! तुम मेरी मातासे जाकर यों कहो मैं ने अपने मनमें ध्रुवसंधिके पुत्रको वरण करलिया है ॥ ४६ ॥ सुदर्शनको छोड़ कर मैं अन्यको वरण न करूंगी, भगवतीका कहाहुआ वह राजपुत्र मेरा स्वामी है ॥ ४७ ॥ व्यासजी बोले ! इस प्रकार वह सखी शीघ्रतासे जाकर मातासे बोली, और वह मंजुबोलनेवाली एकान्तमें वैदर्भीसे सुनानेलगी ॥ ४८ ॥ हे साध्वि ! मेरे मुखसे जो तुम्हारी पुत्रीने दुःखी होकर कहा है, हे कल्याणि ! उसे सुनकर तुम शीघ्रतासे प्रतिपादन करो ॥४९॥ भरद्वाजके पवित्र आश्रममें जो ध्रुवसंधिका पुत्र है; उसेही मैं ने चित्तमें वरण किया है. दूसरेको मैं वरण नहीं करूंगी ॥ ५० ॥ व्यासजी बोले रानीने यह वचन सुनकर राजाके घर आनेपर वे पुत्रीके वचन यथायोग्य वर्णन करदिये ।। ५१ ।। यह वचन सुन राजा विस्मित हो हँसते हुए अपनी वैदर्भी भार्यासे वचन कहनेलगे ।। ५२ ॥ हे सुभ्रु ! क्या तुमको विदित है कि, वह कुमार बालकपनमेंही राज्यसे निकाला गया था, वह अकेला मातासहित निर्जन वनमें निवास करता है ।। ५३ ।। इसीके निमित्त युधाजित्ने राजा वीरसेनको मारडाला, वह निर्धन स्वामी किस प्रकार इसके योग्य हो सक्ता है? ।। ५४ ।। हे चारुलोचने ! अपनी पुत्रीसे जाकर कहो स्वयंवरमें बड़े २ राजा आवेंगे उनके विपरीत कार्य न करना चाहिये ।। ५५ ।।

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषायां अष्टादशोऽध्यायः ।। १८ ।।

एकोनविंशोऽध्यायः १९.

व्यासजी बोले स्वामीके ऐसा कहनेपर रानीने पुत्रीको गोदमें करके उस बालासे मनोहर वचन समझाकर इस प्रकार कहा ॥ १ ॥ हे सुदति ! तुम क्यों वृथा हमारा विप्रिय कथन करती हो? हे सुव्रते ! इस वचनसे तुम्हारा पिता दुःखी होता है॥ २॥ सुदर्शन तो बड़ा दुर्भाग्य राज्यभ्रष्ट और निराश्रय है. तथा बल और कोशसे हीन बांधवोंसे त्यागाहुआ है ॥ ३ ॥ वह फलमूलभोजी कृश हुआ माताके सहित वनमें

प्राप्त है वह वनवासी दुर्भागी वर तेरे योग्य नहीं है ॥ ४ ॥ जो राजपुत्र बडे कृतज्ञ रूपवाले सुसंमत हैं, हे पुत्रि ! राजचिह्नोंसे युक्त ये तुम्हारे योग्य हैं ॥ ५ ॥ हे पुत्रि! इसका भ्राता कोसलदेशका राजा है, वह रूपसम्पन्न सब लक्षणोंसे लक्षित है ॥ ६ ॥ हे सुभ्रु ! औरभी एक कारण है सुनो जो कुछ मैं ने सुना है, युधाजित निरन्तर उस राजकुमारके मारनेकी इच्छा करता है ॥ ७ ॥ उसने वहां संग्राम कर राज्यमें अपने दौहित्रको स्थापित किया है और इसके नाना वीरसेनको मंत्री और मंत्रियोंसहित मारडाला ॥ ८ ॥ और वह युधाजित् सुदर्शनके मारनेकी इच्छासे भरद्वाजके आश्रममें प्राप्त हुआ फिर मुनिके निवारण करनेसे आश्रमसें अपने स्थानको गया ॥ ९ ॥ शशिकला बोली ! हे माता ! वह राजकुमार मेरा ईप्सित चाहै वनमेंभी स्थित है तोभी मुझे इष्ट है, जैसा शर्यातिके वचनसे सुकन्या पतिव्रता ॥ १० ॥ च्यवनको प्राप्त होकर उनकी शुश्रूषामें तत्पर रही, स्वामीकी शुश्रूषाही स्त्रियोंको स्वर्ग और मोक्षकी देनेवाली है ॥ ११ ॥ उनसे छल न करनाही स्त्रियोंको अवश्य सुखका देनेवाला है, मुझे तो उत्तम वर भगवतीने स्वप्नमें प्रदान करदिया है ॥ १२ ॥ उसे छोड़कर मैं दूसरे राजाको कैसे आश्रित करसक्ती हूं ? भगवतीने मेरे चित्तकी भीतमें सुदर्शनको लिखदिया है ॥ १३ ॥ उस अत्यन्त प्रियको छोड़कर मैं दूसरेको वरण न करूंगी. व्यासजी बोले उसने बहुत दृष्टान्तोंसे कन्याको समझाया पर उसने अनेक दृष्टान्तोंसे उसका निषेध किया ॥ १४ ॥ तब रानीने पुत्रीका कहाहुआ राजासे सुनाया और विवाहसे पहले शशिकलाने एक आप्तशास्त्रसम्मत ॥ १५ ॥ ब्राह्मणको सुदर्शनके आश्रममें भेजा और कहा पिताको समाचार ज्ञात न हो इस प्रकार तुम जाओ ॥ १६ ॥ हे विभो ! भरद्वाजके आश्रममें मेरे वाक्यसे आप जाकर सुदर्शनसे कहो कि, मेरे निमित्त पिताने स्वयंवर किया है ॥ १७ ॥ अनेक बली राजा इस अवसरमें आवेंगे और मैं ने सर्वथा प्रीतिपूर्वक चित्तमें तुमको वरण- किया है॥ १८॥ हे देवतुल्यसुंदर! भगवतीने स्वप्नमें तुमको मुझे दियाहै, यदि तुम न आओगे तो मैं विष खालूंगी.वा अग्निमें गिर पड़ूंगी ॥ १९॥ पिताके प्रेरणा करनेपरभी मैं औरको वरण न करूंगी मन वचन कर्मसे मैं ने तुमकोही वरण किया है ॥ २० ॥ और भगवतीके प्रसादसे हमारा तुम्हारा कल्याण होगा. तुमको यहाँ दैवबलका आश्रय कर अवश्य आना चाहिये ॥ २१ ॥ जिसके अधीन यह सब चराचर जगत् वर्तता है, उस भगवतीने ज़ो आज्ञा दी है वह मिथ्या न होगी ॥ २२ ॥ जिसके

वशमें शंकरादि सब देवता वर्तमान हैं हे ब्राह्मण ! उस राजकुमारसे एकान्तमें आप कहना ॥ २३ ॥ हे पापरहित ! जिस्से मेरा कार्य बने सोई तुमको कर्तव्य है. ऐसा कह दक्षिणा देकर ब्राह्मणको बिदाकिया ॥ २४ ॥ ब्राह्मणने वहाँ जाकर सब सुनाया और लौट आया सुदर्शनने यह सब जानकर जानेका निश्चय ॥ २५ ॥ मुनियोंसे किया और उन्होंने प्रेरणा की. परम आदरसे कहा जाओ. व्यासजी बोले गमनमें उद्यत पुत्रसे मनोरमा कहने लगी ॥ २६ ॥ जो उस समय दुःखसे आंसू भरे कंपित होरहीथी बोली. हे पुत्र ! बड़े राजाओंके समाजमें कहां जाते हो ? ॥ २७ ॥ तुम इकले वैरी राजाओंके स्वयंवरमें कहाँ जाते हो वह तुम्हारे मारनेकी इच्छावाला युधाजित्‌भी वहाँ आनकर प्राप्त होगा ॥ २८ ॥ हे पुत्र ! वहां तुम्हारा कोई सहायक नहीं है, इस कारण तुम मत जाओ. मैं एकपुत्रा बड़ी दीन तुम्हारे आधारवाली निराश्रय हूं ॥ २९ ॥ हे महाभाग ! इस समय तुम मुझे निराश करनेको योग्य नहीं हो. जिसने मेरे पिताको मारा वह भी उस स्थानपर आया है ॥ ३० ॥ हे पुत्र ! इकला जानेसे युधाजित् तुमको मारैगा. सुदर्शनने कहा माता ! होनहार होतीही है इसमें विचार कर्तव्य नहीं ॥ ३१ ॥ जगन्माताकी आज्ञासे मैं स्वयंवरमें जाता हूं हे वरानने ! कल्याणि ! क्षत्रिय होकर तुम शोक मत करो ॥ ३२ ॥ भगवतीके प्रसादसे मुझे कहीं भय नहीं है, व्यासजी बोले जब ऐसा कह रथपर चढ़ सुदर्शन जाने लगा ॥ ३३ ॥ तब मनोरमा पुत्रको आशीर्वादसे प्रसन्न करनेलगी कि, आगे तुमको अम्बिका और पृष्ठ-भागमें भगवती रक्षा करै ॥ ३४ ॥ (पार्वती दोनों पार्श्वमें रक्षण करै शिवा सर्वत्र रक्षा करै) विषममार्गमें और दुर्गमार्गमें दुर्गा रक्षा करै घोर कलहमें कालिका परमेश्वरी रक्षा करै ॥ ३५ ॥ मण्डपमें मातंगी स्वयंवरमें सौम्या तुम्हारी रक्षा करै भवमोचनी भवानी राजाओंके मध्यमें तुम्हारी रक्षा करै ॥ ३६ ॥ पर्वत दुर्गममार्गमें गिरिजा चौराहेमें चामुण्डा सनातनी कामगा वनमें तुम्हारी रक्षा करै ॥ ३७ ॥ हे रघूद्वह ! विवादमें वैष्णवी शक्ति तुम्हारी रक्षा करै और शत्रुओंके समागममें भैरवी शक्ति तुम्हारी रक्षा करै ॥ ३८ ॥ सर्वदा सब देशोंमें भुवनेश्वरी तुम्हारी रक्षा करै जो महामाया जगद्धात्री सच्चिदानंदरूपिणी है ॥ ३९ ॥ ऐसा कहनेपर माता कंपसे व्याकुल होगई और उसने यहभी कहा कि, मैं अवश्य तुम्हारे साथ चलूंगी ॥ ४० ॥ तुम्हारे विना मैं एक पलको भी स्थित होनेमें समर्थ नहीं और हे पुत्र ! जहाँ तुम जाते हो वहीं मुझको लेचलो ॥ ४१ ॥ ऐसा कहकर धायके सहित माता बाहर आई

और ब्राह्मणोंका आशीर्वाद लेकर सब प्रसन्नता सहित चले ॥ ४२ ॥ वह एकही रथमें चढ़कर वाराणसी पुरीमें प्राप्त हुआ. सुबाहुने कुमारको जान भली प्रकारसे सत्कार किया ॥ ४३ ॥ और ठहरनेको घर पानादिका प्रबन्ध किया और परिचर्याके निमित्त सेवकोंको आज्ञा दी ॥ ४४ ॥ इस समय अनेक देशोंके राजा मिलित हुए और धेवतेके सहित युधाजित भी आन कर प्राप्त हुआ ॥ ४५ ॥ करूषाधिपति, मद्रदेशाधिपति, सिंधुराज, माहिष्मतीका बली राजा ॥ ४६ ॥ पांचाल, पार्वतीय, बली कामरूप कर्णाट चोल वैदर्भ महाबली राजा आये ॥ ४७ ॥ सब उस स्थलमें ६३ अक्षौहिणी सेना हुई थी. सर्वत्र स्थित हुई सेनाने वह नगरी घेरली थी ॥ ४८ ॥ और बहुतसे राजा हाथी आदि लिये स्वयंवरके देखनेकी इच्छासे मिलित हुए ॥ ४९ और एक दूसरेसे मिलकर राजपुत्र कहने लगे कि, राजपुत्र सुदर्शन इकलाही आया है ॥ ५० ॥ वह महाकान्तिमान् इकलाही रथपर चढ मातासे सहित है सो अवश्यही यह ककुत्स्थवंशी विवाहके निमित्त आया है ॥ ५१ ॥ इन आयुधधारी राजपुत्रोंको छोड़कर क्या वह राजपुत्री इस महाभुजावालेको वरैगी? ॥ ५२ ॥ तब राजा युधाजितने उन राजाओंसे कहा मैं कन्याके निमित्त इसको मारूंगा ॥ ५३ ॥ उस समय नीतिमें श्रेष्ठ केरलदेशाधिपतिने कहा हे राजन् इस इच्छास्वयंवरमें युद्ध करना न चाहिये ॥ ५४ ॥ यहां शुल्कस्वयंवर नहीं बलसे हरण नहीं होगा यहां तो कन्याकी इच्छासे वरण होगा. विवाद कैसा? ॥ ५५ पहले आपने अन्यायसे इसको राज्यसे निकाल दिया और बलपूर्वक राज्य दिया ॥ ५६ ॥ हे महाभाग! यह काकुत्स्थभी कोशलदेशके राजाका है विना अपराध इस राजपुत्रको कैसे मारोगे? ॥ ५७ ॥ हे राजन्! फल तुमको अवश्य मिलैगा. हे राजन्! इस जगत्का अधिपति विलक्षण परमेश्वर रक्षक है ॥ ५८ ॥ धर्मकी जय है अधर्मकी नहीं, सत्यकी जय है नहीं. हे राजन्! अनीति मत करो पापमति छोड़ो ॥ ५९ ॥ तुम्हारा धेवता हुआ है सोभी रूपवान् है और राजयुक्त श्रीमान् है उसको क्यों न वरैगी? ॥ ६० और भी बड़े बली राजपुत्र हैं इस कन्याके स्वयंवरमें आये हैं किसीको स्वीकार करैगी ॥ ६१ ॥ स्वयंवरमें विवाद कैसा? सो कहिये तो, जानकर परस्पर विरोध न करना चाहिये ॥ ६२ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंशतितमोऽध्यायः २०.

व्यासजी बोले केरलदेशके राजाने ऐसा कहा तब हे महाभाग ! युधाजित् राजा बोला ॥ १ ॥ हे राजन् ! जो कुछ आप कहते हो क्या नीति यही है? राजाओंके समाजमें तुम जितेन्द्रिय सत्यवाक् हो ॥ २ ॥ परन्तु हे कुलश्रेष्ठ ! योग्य कुलके वर्तमान होते कन्यारत्न अयोग्यको प्राप्त हो? क्या यह न्याय आपको अच्छा लगता है? ॥ ३ ॥ सिंहका भाग गीदड़ किस प्रकार भोगसक्ता है? वैसे क्या यह सुदर्शन कन्यारत्नको प्राप्त होसक्ता है ? ॥ ४ ॥ ब्राह्मणोंका बल वेद और राजाओंका बल धनुषहै, हे महाराज ! मैं इस स्थलमें क्या अन्याय कहता हूं? ॥५॥ जैसे राजाओंका विवाहमें शुल्क बल कहा है कि बलवान्ही कन्या ग्रहण करसक्ता है. निर्बल नहीं ॥६॥ इस कारण कन्याका पण करके नीतिका विधान कियाजाय, नहीं तो अवश्य राजाओंमें क्लेश होगा ॥७॥ इस प्रकार वहाँ राजाओंके परस्पर विवाद होनेमें सभामें राजा सुबाहु बुलायागया ॥ ८ ॥ उसको बुलाकर सब तत्वदर्शी राजा कहनेलगे हे राजन्! आपको इस विवाहमें नीति करनी चाहिये ॥९॥ हे राजन् ! आपकी क्या इच्छा है? सो यथेष्ट हमसे कहिये, हे राजन् ! आप मनमें अपनी पुत्री किसको देना चाहते हैं? ॥१०॥ सुबाहुने कहा मेरी पुत्रीने मनमें सुदर्शनको वरण किया है; मैंने उसको निवारण किया पर वह मेरा वचन नहीं मान्ती ॥ ११ ॥ इस बातको मैं क्या करूं? मेरी पुत्रीका मन वशीभूत नहीं है और सुदर्शनभी इकला निर्भय आनकर प्राप्त हुआ है ॥ १२ ॥ व्यासजी बोले सब राजा सुदर्शनको बुलाकर इकले उस शान्तसे इस प्रकारके वचन कहनेलगे ॥१३॥ हे राजपुत्र महाभाग ! तुमको किसने बुलाया है? जो तुम इन राजाओंके समाजमें इकले आये हो॥ १४॥ सेना मंत्री कोश बल कुछभी तुम्हारे पास नहीं है फिर तुम कैसे आये हो? यह तत्वसे कहिये ॥ १५॥ इस समागममें बहुतसे राजा युद्धकी इच्छासे वर्तमान हैं. यह सेना कन्याके निमित्त सम्पन्न हुई है. तुम क्या करनेकी इच्छा करते हो ? ॥ १६ ॥ तुम्हारा भाई शूरसेनासहित तुमको मारनेकी इच्छासे प्राप्त हुआ है. और महाबाहु युधाजित्भी सहाय करनेको आया है ॥ १७ ॥ हे राजेन्द्र ! तुम यहां रहो वा जाओ यह मैंने सत्यही कहा है तुम सेनाहीन हो विचार कर जो इच्छा हो सो करो ॥१८॥ सुदर्शन बोले सेना,कोश दुर्गका आश्रय और सहायता हमारे पास कुछ नहीं है 'मित्र' सुहृद् और कोई राजाभी रक्षक नहीं है ॥ १९ ॥ यहां स्वयंवर सुनकर केवल देखनेकी इच्छासे चला

आया हूं और स्वप्नमें भगवती देवीने मुझको प्रेरणा किया है ॥ २० ॥ मेरी कोईभी इच्छा नहीं केवल भगवतीने मुझसे कहा है जो उसने विधान किया है वह होगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ २१ ॥ इस संसारमें कोईभी शत्रु नहीं है सर्वत्र जगदीश्वरी अम्बिका दिखाईदेती है ॥ २२ ॥ हे राजो ! कोई मेरे साथ शत्रुता करैगा उसकी शास्ता जगदम्बिका है मैं शत्रुता नहीं जानता ॥ २३ ॥ हे राजो ! जो होनहार है वह अन्यथा नहीं होती इसमें क्या चिन्ता करनी चाहिये ? मैं सदा दैवाधीन हूं ॥ २४ ॥ देव भूत मनुष्य सब प्राणियोंमे सबमें शक्ति विद्यमान है उसके सिवाय और कुछ नहीं है ॥ २५ ॥ हे राजो ! जो वह इच्छा करती है वही होता है निर्धनी धनी वही करती है.इसमें मुझे क्या चिन्ता है? ॥ २६ ॥ उस परमशक्तिके विना ब्रह्मा विष्णु हरादि देवता कुछभी करनेको समर्थ नहीं.फिर मुझे क्या चिंता है? ॥ २७ ॥ अशक्त शक्त जो कुछभी हूं सो हूं हे राजो ! उसीकी आज्ञासे मैं स्वयंवर में प्राप्त हुआ हूं ॥ २८ ॥ वह जो इच्छा करेगी सो होगा मेरी चिन्ता करनेसे क्या है? इसमें शंका न करनी चाहिये.यह मैं सत्य कहता हूं ॥ २९ ॥ हे राजन्द्र ! मुझको जय पराजयकी कुछभी लज्जा नहीं यह लज्जा भगवतीको है मैं सर्वदा इसके अधीन हूं ॥ ३० ॥ व्यासजी बोले हेराजसत्तम ! इस प्रकारसे उस कुमारके वचन सुन वे उसके निश्चय जाननेवाले राजा कहनेलगे ॥ ३१ ॥ हे साधो ! जो तुमने कहा वह सत्य है मिथ्या नहीं होगा तौभी उज्जयनीका स्वामी तुमको मारनेकी इच्छा करता है ॥ ३२ ॥ हे महामते ! तुम्हारे ऊपर दया करके हम तुमसे कहते हैं. पर जो कुछ होना है वह तुमको मनमें विचार कर कहना चाहिये ॥ ३३ ॥ सुदर्शनने कहा आप कृपालु सुहृज्जनोंने सत्य कहा है आपके कथनपर फिरभी मैं कहता हूं ॥ ३४ ॥ किसीसे किसीकी मृत्यु कभी नहीं होती. यह स्थावर जंगमात्मक सब जगत् दैवके अधीन है ॥ ३५ ॥ यह जीव अपने वशमें नहीं सदा कर्मके अधीन है. सो तत्त्वदर्शी विद्वानोंने तीन प्रकारका कर्म कहा है ॥ ३६ ॥ संचित वर्तमान और प्रारब्ध इस प्रकार कालकर्मसे सारा जगत् विस्तृत होरहा है ॥ ३७ ॥ कालके आये विना देव किसीके मारनेको समर्थ नहीं है परंतु सनातनकाल निमित्त मात्रसे मारेहुए सबको मारता है ॥ ३८ ॥ जिस प्रकार शत्रुनाशी मेरे पिताको सिंहने मारा इसी प्रकार मातामहकोभी युद्धमें कालने मारा ॥ ३९ ॥ कोटि यत्नभी करो परन्तु दैवयोगसे मृत्यु होतीही है दैवकी इच्छासे विना रक्षाकेभी सहस्रवर्षतक प्राणी जीता है ॥ ४० ॥ हे धर्मात्माओ ! मैं युधाजित्से किसी प्रका-

रभी नहीं डरता हूं. हे राजो ! मैं दैवकोही परम मानकर स्थित हो रहा हूं ॥ ४१ ॥ नित्यप्रति भगवतीकाही स्मरण मैं करताहूं वह विश्वकी जननी देवी कल्याण करैगी ॥ ४२ ॥ पूर्वार्जितही शुभ वा अशुभ भोगाजाता है जब अपना किया भोग है तो ज्ञानीको शोक क्या है ? ॥ ४३ ॥ यह अचेतन अपने कर्मयोगसेही दुःख पाता है, फिर यह अल्पमति निमित्तकारणसेही वैर करता है ॥ ४४ ॥ मैं वैर शोक भय नहीं जानता. इन राजाओंके समाजमें निश्शंक आनकर प्राप्त हुआ हूं ॥ ४५ ॥ मैं उत्तम स्वयंवरको इकलाही देखनेकी इच्छासे आया हूं. जो होनहार है सो होगी मैं चण्डिकाकी आज्ञासे प्राप्त हुआ हूं ॥ ४६ ॥ मेरा प्रमाण भगवतीही है और मैं नहीं जानता उसीका कियाहुआ सुख दुःख होगा इसमें अन्यथा न होगा ॥ ४७ ॥ युधाजित् सुख प्राप्त करे हे राजो ! मुझको वैर नहीं है जो मुझसे वैर करेगा वह उसका फल पावैगा ॥ ४८ ॥ व्यासजी बोले ! ऐसा कहनेपर राजा सन्तुष्ट हुए और वहभी अपने आश्रमको प्राप्त होकर स्थित हुए ॥ ४९ ॥ दूसरे दिन शुभकालमें राजा निमंत्रित हुए राजा सुबाहुने सुन्दर मन्दिरमें बुलाया ॥ ५० ॥ जो कि, मंचक दिव्य बिछोनेसे शोभित थे उनपर अच्छे शृंगार कर राजा बैठे ॥ ५१ ॥ वह दिव्यवेष धारण कियेहुए जैसे विमानोंमें देवता हों इस प्रकार दीप्यमान हो स्वयंवर देखनेकी इच्छासे बैठे ॥ ५२ ॥ और सबको यह चिन्ता हुई वह राजपुत्री कब आवेगी और किसी भाग्यवान् श्रुतपुण्य राजाको वरण करैगी॥५३॥और यदि प्रारब्धसे सुदर्शनको मालासे भूषित करै तो अवश्य राजाओंका विवाद होगा इसमें सन्देह नहीं ॥५४॥ ऐसा विचार कर वे राजा मंचोंपर स्थित हुए और नृपमंडलमें बड़ा बाजोंका शब्द होनेलगा ॥ ५५ ॥ तब स्नान कर अलंकृत हुई अपनी कन्यासे काशीपतिने कहा जो महुएकी माला पहरे क्षौम वस्त्रसे अलंकृत थी ॥ ५६ ॥ उसका दिव्य लक्ष्मीकी समान विवाहका उपस्कर देखकर कि, सुवस्त्र धारण करके भी चिन्तामें प्राप्त है, राजा हँसते हुए यह वचन बोला ॥ ५७ ॥ हे सुनासे पुत्रि ! उठो और हाथमें माला लेकर राजाओंके समाजमण्डपमें जाओ ॥ ५८ ॥ गुणवान् रूपसम्पन्न राजा जो तुम्हारे मनमें बसै, हे सुमध्यमे ! उसीको वरण करो ॥ ५९ ॥ देश देशके राजा रचेहुए मंचोंमें बैठे हुए हैं हे तन्वंगि ! उनको देखकर वरण करो, जिसमें तुम्हारी रुचि हो ॥ ६० ॥ व्यासजी बोले ! इस प्रकार पिताके कहनेपर यह सुभाषिणी बाला ललित धर्मसंयुक्त

वचन इस प्रकारसे बोली ॥ ६१ ॥ शशिकला बोली हे पितः ! मैं किसी भी राजाको दृष्टिमार्गमें प्राप्त न हूंगी जो स्त्री कामुक राजाओंके दृष्टिमार्गमें जाती हैं,वह और होती हैं ॥६२॥ हे तात! धर्मशास्त्रमें मैंने यह वचन सुना है कि,स्त्रियोंको एकही वर देखना चाहिये दूसरा नहीं ॥ ६३ ॥ जो बहुतोंके समीप जाती है उसका सतीत्व जाता रहता है, उसको देखकर सब यह इच्छा करते हैं कि, यह मेरी होजाय ॥ ६४ ॥ स्वयंवरमें माला धारणकर जब मण्डपमें जाती है तभी वह वधू सामान्या कुलटाकी समान होजाती है ॥ ६५ ॥ जैसे वारस्त्री बाजारोंमें जाकर अनेक पुरुषोंको देखती हैं और गुण अगुणका ज्ञान अपने मनमें करती हैं ॥ ६६ ॥ जैसे वेश्या एकभाव न होकर कामीको वृथा देखती है, क्या इसी प्रकार मैं मण्डपमें जाकर वारस्त्रियोंका कृत्य करूं ॥ ६७ ॥ यह जो वृद्धोंने किसी कारण वंशधर्म किया है, मैं इसको इस समय न करूंगी, कारण कि मनमें पतिवरण करचुकी मैं तौ पत्नीव्रतका आचरण करूंगी ॥ ६८ ॥ सामान्या पहले जाकर मनमें बहुत संकल्पकरके फिर विचारकर एकको वरती है मैं कब ऐसा करसक्ती हूं ॥ ६९ ॥ कारण कि मैं सर्वात्मासे पहले सुदर्शनको वरणकर चुकी हूं हे राजन्!उसके सिवाय और करनेकी इच्छा नहीं है ॥ ७० ॥ हे राजन् ! आप अच्छे दिन विवाहकी विधिसे कन्यादान सुदर्शनको कर दो जो मेरा हित चाहते हो ॥ ७१ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषायां विंशोऽध्यायः ॥२०॥

एक विंशोऽध्यायः २१.

व्यासजी बोले सुबाहु यह कन्याका वचन सुन बड़ी चिन्तामें मग्न हुआ कि अब क्या करूं ॥ १ ॥ सेना सामग्री सहित राजा प्राप्त हुए हैं महाबली युद्धकी कामनासे मंचोंमें बैठे हैं ॥ २ ॥ जो मैं उन सबसे यह कहूं कि पुत्री नहीं आती तो वह दुष्ट बुद्धि क्रोधकर मुझको मारेंगे इसमें सन्देह नहीं ॥ ३ ॥ न मेरी इतनी सेना है और न इतना दुर्गका बल है जो मैं सब राजाओंका प्रत्याख्यान करसकूं ॥ ४ ॥ और सुदर्शन इकला असहाय निर्धन शिशु है, मैं दुःख सागरमें निमग्न हुआ, क्या करूं ॥५॥ ऐसी चिन्ता करते हुए राजा राजोंके पास गये और प्रणाम कर बड़ी नम्रतासे कहा ॥ ६ ॥ हे राजो ! मैं अब क्या करूं हमारी सुता मण्डपमें नहीं आती मैंने और माताने बहुत कुछ प्रेरणा की परन्तु वह नहीं आती ॥७॥ हे राजो मैं तुम्हारा

दास हूं तुम्हारे चरणोंमें शिर रखता हूं अपनी अपनी पूजा ग्रहण कर आप अपने घरोंको चले जाँय ॥ ९ ॥ आपको मैं अनेक रत्न वस्त्र गज रथ दूंगा, उन्हें ग्रहण कर कृपा पूर्वक आप अपने स्थानोंको पधारें ॥ वह बाला मेरे वशमें नहीं है यदि वह खेदित होकर मरजाय तो मुझे बड़ा दुःख होगा यही मुझे बड़ी चिन्ता है ॥ १० ॥ आप करुणामान् महाभाग बड़े प्रतापी हो इस मंद दुर्विनीत मेरी दुहिताको प्राप्त होकर भी क्या करोगे ॥ ११ ॥ मेरे ऊपर आपको विशेष दया करनी चाहिये मैं सबका दास हूं आपको सर्वथा मेरी कन्या अपनी कन्याके समान माननी चाहिये ॥ १२ ॥ व्यासजी बोले सुबाहुके वचन सुनकर कोई भी राजा कुछ न बोला, परन्तु युधाजित् क्रोधसे लाल नेत्र कर बोला ॥ १३ ॥ हे राजन्! अब निन्दित कार्य करके मूर्खके समान क्या बोलते हो जब यह सन्देह था तो मोहसे स्वयम्वर क्यों किया? ॥ १४ ॥ तुमसे बुलाये हुये यह सब राजा स्वयम्वरमें मिलित हुए हैं यह अब किस प्रकार अपने घरोंको चलेजांय ॥ १५ ॥ क्या तुम सब राज्योंका तिरस्कार करकै सुदर्शनको कन्या देना चाहते हो इससे अधिक अनाड़ीपन और क्या होगा ॥ १६ ॥ पुरुषको पहलेही विचार कर कार्य करना चाहिये, सो आपने विना विचारे कार्यका आरंभ किया ॥ १७ ॥ इन बल वाहनोंसे संयुक्त राजोंको छोड़कर तुम सुदर्शनको किस प्रकार वरणकी इच्छा करते हो ॥ १८ ॥ हे पापिष्ठ! मैं पहले तुझको मारकर पीछे सुदर्शनको मारूंगा, और वह कन्या मेरे दौहित्रको मिलेगी, यह मुझे निश्चय है स्वयं मैं दूंगा ॥ १९ ॥ मेरे होते ऐसा कौन है जो कन्याहरणकी इच्छा करै, वह निर्बल निर्धन बालक सुदर्शन क्या वस्तु है ॥ २० ॥ भारद्वजके आश्रममें पहले मुनिके कहनेसे मैंने उसे छोड़दिया था अब मैं उस बालकको जीता नहीं छोडूंगा ॥ २१ ॥ इस कारण तुम भली भांति भार्यासहित विचाकर सुभ्रूकन्याको मेरे दौहित्रके निमित्त प्रदान करो ॥ २२ ॥ इस मनोरमा पुत्रीको देकर हमारे सम्बन्धी बनो, कल्याणकी इच्छा वालोंको सदा ऊंचेका आश्रय करना चाहिये ॥ २३ ॥ इस अपनी प्राणप्रिया पुत्रीको राज्यहीन इकले सुदर्शनको देकर तुम क्या सुखकी इच्छा करते हो ॥ २४ ॥ "कुल, धन, बल, रूप, राज्य, दुर्ग, सुहृज्जन यह देखकर कन्याको देना चाहिये, नहीं तो कन्या सुख नहीं पाती" ॥ हे राजन्! तुम धर्म और निरन्तरकी रहनेवाली राजनीतिको विचारो, यथायोग्य कार्य करो वृथा मति मतकरो ॥ २५ ॥ तुम मेरे बहुत सुहृद हो इस कारण मैं

तुम्हारे हितकारी वचन कहता हूं! सखीसहित सुताको मंडपमें लाओ ॥ २६ ॥ सुदर्शनको छोड़कर वह चाहैं जिसको वरणकरै. इसमें मुझको विग्रह नहीं है तुम्हारे मनइच्छित विवाह होगा ॥ २७ ॥ और भी यह सब राजा कुलीन और समान हैं, इनके वरणमें मुझको कुछ भी विरोध नहीं है ॥ २८ ॥ यदि ऐसा न होगा तो बलपूर्वक मैं शुभकन्याको हरण करूंगा, हमारा विरोध दुःसाध्य है, हे राजन्! जाओ कार्य करो ॥ २९ ॥ व्यासजी बोले युधाजित्के ऐसा कहनेपर सुबाहु शोकयुक्त हो श्वास लेताहुआ घर जाय भार्यासे बोला ॥ ३० ॥ हे धर्मज्ञे! जाकर पुत्रीसे कहो यह क्लेश उपस्थित हुआ है, हे सुलोचने अब मैं क्या करूं अशक्य और तुम्हारे आधीन हूं ॥ ३१ ॥ व्यासजी बोले वह रानी पतिके वचन सुन सुताके समीप जाय बोली हे पुत्री! महाराज तुम्हारे पिता बड़े दुःखी हैं ॥ ३२ ॥ तुम्हारे निमित्त यह राजोंका विग्रह उपस्थित हुआ है, हे सुश्रोणी! सुदर्शनको छोड़कर और किसी राजाको वरण करो ॥ ३३ ॥ हे पुत्रि! यदि हठसे तुम सुदर्शनको वरण करोगी, तो सेनायुक्त युधाजित् तुमको और हमको मारैगा ॥ ३४ ॥ और सुदर्शनको भी मारैगा कारण कि वह राजा बलमें मत्त और प्रतापवान् है, फिर क्लेशके उपरान्त भी अन्य ही तुम्हारा पति होगा ॥ ३५ ॥ इस कारण सुदर्शनके सिवाय अन्य राजाको वरण करो. जो हे मृगलोचनी! अपना और हमारा सुख चाहतीहो तो यह करो इस प्रकार माताके समझानेसे पीछे राजा भी पुत्रीको समझाने लगा ॥ ३६ ॥ दोनोंके वचन सुनकर निर्भय हो कन्या बोली. [कन्याने कहा] हे राजन्! आपने सत्य कहा, पर मेरे व्रतको आप जानते हैं ॥ ३७ ॥ हे राजन्! मैं सुदर्शनके सिवाय अन्यको वरण नहीं करूंगी, और हे राजेन्द्र! यदि आप कातर होकर राजोंसे डरते हो ॥ ३८ ॥ तो मुझे सुदर्शनको देकर नगरसे बाहर कर दो मुझे रथपर बैठाय वह तुम्हारे नगरसे चलाजायगा ॥ ३९ ॥ पीछे जो होना है सो होगा, हे राजन्! भवितव्यमें आपको चिन्ता करनी उचित नहीं ॥ ४० ॥ होनहार अवश्य ही होता है, इसमें सन्देह नहीं, राजाने कहा हे पुत्रि! बुद्धिमान्को अति साहस करना उचित नहीं ॥ ४१ ॥ वेदवादी कहते हैं बहुतोंके साथ विरोध न करना चाहिये, राजपुत्रको देकर कन्याको कैसे निकाल दूं ॥ ४२ ॥ यह वैर संयुक्त राजा क्या न करबैठे, हे वत्से! यदि तुमको रुचै तो कुछ पण लगाऊं ॥ ४३ ॥ जैसे सीताके स्वयंवरमें राजा जनकने शिवका धनुष धरकर उसके तोडनेका पण

किया था ॥ ४४ ॥ हे तन्वंगि ! इसी प्रकार मैं कोई कठिन पण करूंगा. जिससे राजोंका विवाद न होकर शान्ति रहैगी ॥ ४५ ॥ जो पणकी कामना करैगा नहीं तेरा भर्ता होगा सुदर्शन अथवा जो कोई बहुत बलिष्ठ होगा ॥ ४६ ॥ वह उस पणको निर्वाह कर निःसन्देह तुझको वरण करैगा, ऐसा करनेसे अवश्य राजोंका विवाद शान्त होजायगा ॥ ४७ ॥ तब मैं सुखपूर्वक तेरा विवाह करूंगा, कन्या बोली. मैं सन्देहमें मग्न होना नहीं चाहती, कारण कि यह मूर्खकृत्य है ॥ ४८ ॥ मैं ने तो प्रथमही मनमें सुदर्शनको वरण करलिया है,अब वह अन्यथा न होगा हे राजन् ! पुण्य और पापोंका कारण मनही है ॥ ४९ ॥ हे पिता ! मनसे वरण कियेको छोड़कर औरको कैसे वरण करसकती हूं, हे महाराज ! पण करनेपर तो मैं सबके ही वशवर्तिनी हूंगी ॥ ५० ॥ हे पिता ! एक दो अथवा बहुतोंने उस पणको पूरा किया तो फिर विवाद उपस्थित होनेमें मुझको क्या करना होगा ॥ ५१ ॥ संशय- वाले कार्यमें मैं मति नहीं लगाऊंगी, हे राजन् ! चिन्ता मत करो मुझे सुदर्शनके निमित्त देदो ॥ ५२ ॥ विधिपूर्वक विवाह कर दो सब प्रकार भगवती कल्याण करैगी, जिसके नामकीर्तनसे ही दुःख समूह शान्त होजाते हैं ॥ ५३ ॥ उस परम- शक्तिको स्मरण कर शांतिसहित सब कार्य करो अभी जाकर हाथ जोड़ राजोंसे कहो ॥ ५४ ॥ सब राजा लोग कल दिन स्वयम्वरमें आवें, ऐसा कहकर इस समय सब राजमण्डलको बिदा करो ॥ ५५ ॥ हे राजन् ! रात्रिमें वेदोक्तविधिसे विवाह करदो, और यथायोग्य भेंट देकर सुदर्शनको विसर्जन करो ॥ ५६ ॥ वह ध्रुवसंधिका पुत्र मुझे लेकर चलाजायगा, और जो वे राजा क्रोध कर संग्राम करनेको उद्यत होंगे ॥ ५७ ॥ तो देवी भगवती अवश्य हमारी सहाय करैगी और वह भी सब राजपुत्रोंसे संग्राम करैगा ॥ ५८ ॥ यदि दैवात् संग्राममें हमारे स्वामीकी मृत्यु होगी तो मैं उनके साथ मरजाऊंगी और तुम्हारा मंगल हो मुझे प्रदान कर आप सेनासहित घरमें रहिये ॥ ५९ ॥ मैं इकली ही उसके साथ प्रीतिपूर्वक जाऊंगी व्यासजी बोले ! यह कन्याके वचन सुन राजाभी इसमें निश्चय करके ॥ ६० ॥ विश्वासको प्राप्त हो इसी कार्यके करनेकी इच्छा करतेहुए ॥ ६१ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे भाषायां एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः २२.

व्यासजी बोले वह अनिंदितात्मा राजा कन्याके वचन सुनकर राजोंके पास जाकर कहनेलगा हे महाराजो! इस समय आप अपने डेरोंको जाइये, कल दिन हम विवाह करैंगे ॥ १ ॥ भक्ष्य और पीनेके पदार्थ मेरे दिये ग्रहण कर प्रसन्न हो प्रभातसमय कल फिर सब मण्डपमें आइये कार्य होगा ॥ २॥ पुत्री मण्डपमें नहीं आती हे राजन्! मैं क्या करूं प्रभातकाल समझाकर पुत्रीको लाऊंगा, इस कारण अब आप सब लोग डेरोंको जांय ॥ ३ ॥ बुद्धिमानोंको विग्रह न करके मेरे ऊपर कृपा करनी चाहिये, तथा इस अपनी संतानपर इस समय दया करो, प्रभातसमय समझाकर यहां लाऊंगा इस समय अपने २ स्थानोंको पधारो ॥ ४ ॥ अथवा कोई इच्छापण करके प्रभात काल विवाह करूंगा, कल सब कोई इस स्थान पर आना प्रभात कालको सर्व मतसे विवाह करूंगा ॥ ५ ॥ राजाके इसप्रकार वचन सत्य मानकर सब नृपति अपने२ स्थानोंको चलेगये और पार्श्वमें नगरकी रक्षाकर मध्यदिनकी क्रिया करतेहुए ॥ ६ ॥ सुबाहुने भी श्रेष्ठ जनोंके सहित विवाहकालके कृत्य करने प्रारंभकिये और वेदवादी पुरोहितोंको बुलाय गुप्तस्थानमें पुत्रीको आह्वान कर ॥ ७ ॥ और वरके भी स्नानादि कर्म करके तथा भूषणोंसे सजाय रचित ग्रहकी वेदीमें उसको लाकर उसकी पूजा राजाने की ॥ ८ ॥ विष्टर, आचमन, अर्घ्य, दोनों वस्त्र गो दो कुंडल यह राजा विधिपूर्वक उसको समर्पण करके कन्या दानकी इच्छा करताहुआ ॥ ९ ॥ और सुदर्शनने भी निर्भय होकर वह सब ग्रहण किया, उस समय मनोरमाकी चिन्ता दूरहुई उस सुकेशी कन्या रूपनिधिको निधिवत् मानकर परमप्रसन्नता प्राप्त की ॥१०॥ उस वरश्रेष्ठको भूषण वस्त्रदानसे पूजनकर मंत्री-आदि प्रसन्नतापूर्वक भयरहित हो सब कौतुकमण्डपमें लाये ॥११॥ सब शृंगारविधिको पूर्णकर स्त्रियोंने उस राजकन्याको उत्तम यानमें चढाय चौकोन मण्डपमें वरके समीप प्राप्तकिया ॥ १२ ॥ पुरोहितने अग्न्याधानकर और प्रज्वलितकरके शृंगार होने उपरान्त उन वधू और वरको बुलाया ॥ १३ ॥ विधिपूर्वक लाजाहोम करके तथा अग्निकी प्रदक्षिणा करके उन दोनोंने अपने कुल गोत्रका सम्पूर्ण विधान किया ॥ १४ ॥ दोसै घोडे दोसै रथ तरकसादिसे संगठित यह राजाने सुदर्शनके निमित्त प्रदानकिये ॥ १५ ॥ मदसे उत्कट सुवर्णसे भूषित पर्वत शृंगके समान देहवाले सवासौ हाथी प्रसन्न होकर राजाने सुदर्शनको दिये ॥ १६ ॥ सुवर्णके गहने पहरे सौ

दासी, सौ हथनी यह विवाहसमय राजाने प्रसन्न हो वरको प्रदान की ॥१७॥ और सब आयुधभूषणोंसहित १००० दासभी प्रदानकिये, रत्न और यथोचित वस्त्र दिव्य विचित्र ऊर्णवस्त्र ॥ १८ ॥ तथा बडे मनोहर रमणीय विचित्र डेरे चौंडे लम्बे और दोसहस्र सिंधुदेशके उत्तम घोड़े दिये ॥ १९ ॥ तीनसै ऊंट भार वहनकरनेके निमित्त प्रदान किये, और दोसै छकडे धान्यसे पूर्णकर प्रदान किये ॥ २० ॥ फिर राजसुता मनोरमाको प्रणाम कर हाथ जोड़कर राजा बोला हे श्रेष्ठराजसुता! मैं तेरा दास हूं जो तुम्हारे मनमें हो सोभी तुम कहो ॥ २१ ॥ मनोरमाभी राजासे सुन्दर वचन बोली हे राजन्! आपका मंगल और कुलकी वृद्धि हो अपनी रत्नरूप कन्या देकर मेरा बड़ा सन्मान किया है ॥ २२ ॥ हे राजन् मैं वंदि मागधकी पुत्री नहीं हूं किस प्रकार ऐसे बड़े आपकी स्तुति करूं, आपने मेरे पुत्रको सुमेरुके समान बना दिया ॥ २३ ॥ अहो राजाका चरित्र बड़ा विचित्र परमपवित्र है, मैं क्या कहूं जो राज्यभ्रष्ट मेरे पुत्रको तुमने अपनी श्रेष्ठ कन्या प्रदान की ॥ २४ ॥ वनवासी अधन पिता सेनाहीन, फलाहारी धनहीन पुत्रको इन सब राजोंको छोड़कर कन्या दी ॥ ॥ २५ ॥ समान धनवाले समान कुलमें राजा कन्या देते हैं, मेरे पुत्रको जो धनहीन है कौन अपनी रूपवती कन्या देता ॥ २६ ॥ बड़े बली राजोंसे परस्पर वैरकरके भी आपने मेरे पुत्रको कन्या दी मैं तुम्हारे धैर्यको कहांतक वर्णन करूं ॥ २७ ॥ यह वचन सुन राजा प्रसन्न हुआ और हाथ जोडकर यह वचन बोला, यह मेरा सम्पूर्ण राज्य तुम ग्रहणकरो और मैं तुम्हारा सेनापति हूंगा ॥ २८ ॥ और नहीं तो आधा राज्यलेकर पुत्रके सहित राज्यफल भोगो, काशीको छोड़कर और वन वा नगरका तुम्हारा वास मुझे सम्मत नहीं है ॥ २९ ॥ यह जो राजा क्रोधयुक्त हैं पहले तो जाकर इनको सांत्व करूंगा उसके उपरान्त दाम भेद उपाय है, अन्यथा पश्चात् युद्ध करूंगा ॥ ३० ॥ यद्यपि जय पराजय दैवाधीन है, तथापि धर्ममें जय अधर्ममें हार है, सो उन अधर्मी राजाओंकी जय किस प्रकार होगी ॥ ३१ ॥ यह राजाका अर्थ और गौरवयुक्त वचन सुनकर मनोरमा, मानको प्राप्त होकर सब प्रकार प्रसन्न हुई बोली ॥ ३२ ॥ हे राजन्! आपका मंगल हो आप भयत्याग पुत्रों सहित राज्य करो, और मेरा पुत्र भी अयोध्याका राज्य प्राप्तकर आनन्दसे विचरैगा ॥ ३३ ॥ हे राजन्! अब आप हमको घर जानेको विदा दो भवानी सब मंगल करैगी, हे राजन्! मुझको कोई चिन्ता नहीं वर्तती, कारण कि मैं भगवतीका चिन्तन

करती हूं ॥ ३४ ॥ इस प्रकारसे अनेक प्रकारके वचन कहते सुन्ते रात बीतगई. परस्पर अमृतके भरे वचन थे और प्रभातकाल राजा आनकर प्राप्त हुए और विवाह हुआ जानकर नगरके बाहर रोषकर बोले ॥ ३५ ॥ अभी उस राजोंमें कलंकीको मारकर और विवाहके अयोग्य उस बालकको मारकर इस शशिकला और राजलक्ष्मी को ग्रहण करैंगे, विना इसके लज्जा त्यागकर किस प्रकार अपने घरको जांयगे॥ ३६॥ सुनो तुरही शंख मृदंगोंका शब्द सर्वत्र पूर्ण हो रहा है, गीतकी वेदकी ध्वनि होरही है, विदित होता है कि राजाने विवाह कर लिया ॥ ३७॥ हमको अनेक वचनोंसे प्रतारण कर इसने विवाहकी विधिसे करपीडन किया, हे राजो! अब क्या विचारते हो; जो कर्तव्य है सो सम्मति करके करो ॥ ३८॥ इस प्रकार राजोंके कथन होनेपर महाप्रभावी काशीपति अपने सुहृद् मित्रोंके सहित राजोंके निमंत्रित करनेको प्राप्त हुआ॥ ३९॥ उस समय राजा काशीपतिको आता देखकर क्रोधसे कुछभी न बोले, और मौनतासे स्थित रहे ॥ ४० ॥ और राजा प्रणामकर हाथ जोड़ बोला हे राजाओ! आज आप सब भोजनके निमित्त हमारे घर चलिये ॥ ४१ ॥ कन्याने सुदर्शनको ही वरण किया, इस समयमें क्या हिताहित करूं आपको भी शान्ति करनी चाहिये, कारण कि आप महान् और दयालु हैं ॥ ४२ ॥ यह उसके वचन सुन राजा बड़ा क्रोध कर बोले राजन्! हम खाचुके, अब तुम अपने घरको जाओ ॥ ४३ ॥ शेष कार्योंको भी सम्पादन करो, आपने यथेष्ट सुकृत किया और सब राजा अब अपने २ घरोंको जाते हैं ॥ ४४ ॥ सुबाहुभी यह सुनकर शंकित हो अपने घरको गया. कि यह क्रोधकर मिलेहुए राजा न जाने क्या करैंगे ॥ ४५ ॥ उसके जानेपर सब राजोंने परस्पर प्रतिज्ञा की कि, मार्ग रोककर सुदर्शनको मार हम कन्या लेजांयगे ॥ ४६ ॥ कोई बोले हमको उसके मारनेसे क्या मिलैगा हम तो यह कौतुक देख अपने स्थानको जांयगे ॥ ४७ ॥ ऐसा कहकर वे सब राजा मार्गको आक्रमणकर स्थित हुए और सुबाहुभी अपने घर आकर उत्तर कार्य करता हुआ ॥ ४८ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः २३.

व्यासजी बोले राजाने उसके निमित्त अनेक गौरव भोज्य पदार्थ विधिसे विधान करके छः दिनतक भक्तिसे भोजन कराया ॥ १ ॥ इस प्रकार वह राजा विवाह कार्य

करकै और दायजा देकर मंत्रियोंसे सम्मति करकै ॥ २॥ दूतोंसे यह वचन सुनकर कि राजोंने मार्ग रोका है महातेजस्वी सुबाहु राजा दुःखी हुए ॥ ३ ॥ उस समय सुदर्शनने अपने श्वसुरसे कहा आप हमको बिदा कीजिये हम अशंकित होकर जांयगे ॥ ४ ॥ हम सावधानतासे भरद्वाजके आश्रममें जांयगे, वहां जाकर निवास करनेका विचार करैंगे, ॥ ५ ॥ हे राजन् ! तुमको इन राजौंसे भय न करना चाहिये, जगन्माता भवानी मेरी सहायता करैगी ॥ ६ ॥ व्यासजी बोले यह राजा इस प्रकार जामाताका मत जानकर धन देकर बिदा करते हुए और आप भी ॥ ७ ॥ बड़े बलसे युक्त होकर पीछे २ रहे और सुदर्शन निर्भय मार्गमें गमन करने लगा ॥ ८ ॥ दारासहित वह रघुनंदन शूर रथमें स्थित हुआ मार्गमें जाते हुए शत्रुओंकी सेना देखने लगा ॥ ९ ॥ सुबाहु राजा उस सेनाको देखकर चिन्ता करने लगा, और विधिपूर्वक सुदर्शन भगवतीकी शरण हुआ ॥ १० ॥ और वह कामराज श्रेष्ठ मंत्र जपने लगा, और नई व्याही पत्नीके सहित निर्भय और शोक रहित रहा ॥ ११ ॥ उसी समय सब राजा कोलाहल करके कन्याके हरणकी इच्छासे सेनासहित उठे ॥ १२ ॥ काशीराज भी उनको देखकर मारनेकी इच्छा करने लगे उस समय सुदर्शनने उनको बहुतही निवारण किया ॥ १३ ॥ वहां शंख भेरी दुंदुभी बजने लगी, सुबाहु और राजोंका परस्पर नाशक युद्ध हुआ ॥ १४ ॥ और शत्रुजित्‌भी युद्ध करनेकी इच्छासे स्थित हुआ और युधाजित् उसकी सहायता करनेको स्थित हुआ ॥ १५ ॥ और कोई केवल उन सेनाके देखनेको स्थित हुए और युधाजित् आगे जाकर सुदर्शनके समीप उपस्थित हुआ ॥ १६ ॥ उसके साथ यह छोटा भ्राता अपने बडे भ्राताको मारनेको उपस्थित हुआ, और क्रोधित हो वे परस्पर बाणोंका प्रहार करनेलगे ! ॥ १७ ॥ वहां बाणोंका बडा संमर्द हुआ, उस समय काशीपति भी अपनी बडी सेना लेकर ॥ १८ ॥ जामाताकी सहायताके निमित्त आया. इस प्रकार जब दारुण लोमहर्षण संग्राम हुआ ॥ १९ ॥ तब सिंहके ऊपर स्थित हुई देवी सहसा प्रगट होतीहुई, जो अनेक आयुधधारे सुन्दर आभूषणोंसे भूषित थीं ॥२०॥ दिव्य वस्त्र धारे मंदारके फूलोंकी माला पहरे भगवतीको देखकर सब राजा बडे विस्मयको प्राप्त हुए ॥ २१ ॥ यह सिंहपर आरूढ कौन कहांसे आई है, तब सुदर्शन भगवतीका दर्शनकर सुबाहुसे बोले ॥ २२ ॥ हे राजन् देखो यह दिव्यदर्शनवाली महादेवी दयाकरके मेरे अनुग्रहके निमित्त प्रगट हुई है

॥ २३ ॥ हे महाराज ! इस समय तो मैं निर्भयसेभी निर्भय हूं इस प्रकार सुदर्शन और सुबाहु उस प्रमदाश्रेष्ठ भगवतीको देखकर ॥ २४ ॥ प्रसन्न हो प्रणाम करते हुए, उस समय सिंहने गर्जना की जिससे हाथी व्याकुल होकर कंपायमान होगये ॥ २५ ॥ घोर पवन चलनेलगा, दिशा बड़ी दारुण होगई तब सुदर्शनने अपने सेनापतिसे कहा ॥ २६ ॥ तुम शीघ्रतासे उस मार्गको चलो जहां राजा एकत्र हैं वे दुष्ट चित्त राजा क्रोधकर क्या करेंगे ? ॥ २७ ॥ वह भगवती देवी हमको शरण देनेको प्राप्त हुई है इस राजाओंके मार्गमें निस्सन्देह निश्शंक गमन करो ॥ २८ ॥ यह महादेवी मेरे स्मरण करतेही रक्षा करनेको प्राप्त हुई है, यह सुनकर सेनापति उसी मार्गसे गमन करने लगा ॥ २९ ॥ तब युधाजित् क्रोधकर उन राजाओंसे कहने लगा तुम भयभीत क्यों स्थित हो कन्यासहित मारो ॥ ३० ॥ हम सब अधिक बलियोंको निरादर कर यह निर्बल बालक वेगसे कन्याको ग्रहण कर गमन करता है ॥ ३१ ॥ सिंहपर स्थित हुई इस स्त्रीको देखकर क्यों भीत होते हो? इसकी उपेक्षा न करो सब मिलकर इसे मारो ॥ ३२ ॥ इनको मारकर सुन्दर भूषणवाली कन्याको लेजायँगे. यह शृगाल सिंहसे गृहीत कामिनीके छीननेको समर्थ नहीं है. यह गीदड़ छेदन करने योग्य है ॥ ३३ ॥ यह कहकर शत्रुजित्के सहित क्रोधित हो युधाजित् युद्ध करनेको प्राप्त हुआ ॥ ३४ ॥ और शिलापर तीक्ष्ण किये पुंखवाले बाणोंको जो कि लोहकारसे मांजेहुए थे कर्णपर्यन्त खैंचकर छोड़े ॥ ३५ ॥ इस प्रकार वह दुर्बुद्धि मारनेकी इच्छासे सुदर्शनपर प्रहार करनेलगा. सुदर्शनने अपने बाणोंसे उनका क्षणमें छेदन करदिया ॥ ३६ ॥ इसप्रकार युद्ध होनेपर चण्डिका अत्यन्त क्रुद्ध हुई और दुर्गादेवी युधाजित्पर बाण प्रहार करनेलगी ॥ ३७ ॥ उस समय भगवती अनेक अस्त्र शस्त्र धारण किये अनेक रूप होगई और जगदम्बिकाने बड़ा भयंकर संग्राम किया ॥ ३८ ॥ उसमें शत्रुजित् और युधाजित् दोनों मारेगये, जिस समय वह रथसे पतित हुए उसी समय जयशब्द हुआ ॥ ३९ ॥ सब राजा उनको मृत देखकर परमविस्मयको प्राप्त हुए, इस प्रकार मामा भांजेका संग्राममें निधन हुआ ॥ ४० ॥ सुबाहु उन दोनोंको युद्धमें निहत देखकर दुर्गतिनाशिनी दुर्गादेवीको परमप्रीतिसे सन्तुष्ट करनेलगा ॥ ४१ ॥ जगन्माता शिवा-देवीको निरन्तर प्रणाम है दुर्गा भगवती कामदाको निरन्तर प्रणाम है ॥ ४२ ॥ शिवा, शान्ता, विद्या, मोक्षदात्री विश्वमें व्याप्त जगत्की माता जगद्धात्री शिवाके निमित्त प्रणाम है ॥ ४३ ॥ हे देवि ! बुद्धिसे विचारकरभी मैं तुम्हारी गति जाननेमें समर्थ नहीं हूं कि, तुम सगुणा वा निर्गुणा हो, प्रगटप्रभाववाली हे मातः ! मैं आपकी क्या

स्तुति करूं? आप भक्तोंके दुःख दूर करनेवाली परम शक्ति हो ॥ ४४ ॥ तुम वाग्देवता सबमें प्राप्त बुद्धिरूपा हो तुम बुद्धि विद्या और सब प्राणियोंकी गति हो मैं तुम्हारी क्या स्तुति करूं तुम सबके मनकी नियंत्री हो, सर्वव्यापक आत्मरूपकी स्तुति कैसी कीजाय? ॥ ४५ ॥ ब्रह्मा हर हरि तुम्हारे गुणोंकी निरन्तर स्तुति करते हैं परन्तु वे श्रेष्ठ देवता तुम्हारे गुणोंसे पार नहीं होते, हे मातः ! मैं अप्रसिद्ध सत्वादिगुणोंसे बद्ध भेदमतिवाला जीव तुम्हारे चरित्रको किसी समय भी जान्नेको समर्थ नहीं हूं ॥ ४६ ॥ अहो यह चित्त तुम्हारे चरित्रोंकी संगति क्यों नहीं करता ? कारण कि, प्रसंगसे भी चित्तकी शुद्धि तुम्हारे चरित्रोंसेही होती है अपने जामाताकी संगतिके कारण मैं ने भी यह तुम्हारा अद्भुत दर्शन पाया ॥ ४७ ॥ जिनका दर्शन ब्रह्मा हरि हर इन्द्रादिक देवता तत्ववादी मुनि निरन्तर चाहते हैं हे मातः ! वह तुम्हारा दुर्लभदर्शन मैं ने जप तप शम दम समाधिके विना पाया ॥ ४८ ॥ कहां तो मुझ मंदमति मंदको तुम्हारा दर्शन और कहां हे मातः ! आप संसाररोगकी अद्वितीय औषधि हे देवि ! विदित हुआ कि, तुम निरन्तर देवताओंसे पूजित भक्तोंके प्रेमको देख उनपर कृपा करती हो ॥ ४९ ॥ हे भगवति ! तुम्हारे इस चरित्रको मैं क्या वर्णन करूं ? जो कि आपने विषम संकटसे सुदर्शनका उद्धार किया और बड़े वेगसे इसके शत्रुओंको तुमने मारा यह तुम्हारा भक्तोंपर दया करनेवाला परम पवित्र चरित्र है ॥ ५० ॥ हे मातः ! विचारनेसे यह कोई बड़े आश्चर्यकी बात नहीं कारण कि, आप स्थावर जंगमात्मक सब जगत्की रक्षा करती हो, दया करके तुमने शत्रुओंको मार ध्रुवसन्धिके पुत्रकी रक्षा की ॥ ५१ ॥ इस सेवामें तत्पर भक्तका बड़ा विस्तृत यश हुआ- हे भवानि! इस चरित्रको रचकर यह तुमने ही किया, नहीं तो किस प्रकार यह मेरी सुताको ग्रहण करके निन्दारहित शीलवान् युद्धमें कुशल रहता? ॥ ५२ ॥ हे मातः! तुम तो जन्ममरणके भयनाश करनेमें समर्थ हो, भक्तजनकी रक्षा करना क्या बडी बात है? हे जननि ! निरन्तर भक्तजन आपका गान करते हैं, तुम पाप पुण्यसे रहित सगुण निर्गुण हो ॥ ५३ ॥ आपके दर्शनसे मैं सुकृती कृतार्थ हुआ हूं, हे भुवनेश्वरी! अब मेरा जन्म धन्य है. हे मातः! मैं आपके भजनका बीज नहीं जान्ता, अब तुम्हारी महिमा जानी जिसका प्रगट प्रभाव है ॥ ५४ ॥ व्यासजी बोले इसप्रकार स्तुति करनेसे प्रसन्नवदन होकर शिवा राजासे बोली हे सुव्रत ! इच्छित वर मांगो ॥ ५५ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः २४.

व्यासजी बोले वह राजा इस प्रकार भवानीके वचन सुनकर भक्तिपूर्वक यह वचन बोला ॥ १ ॥ सुबाहुने कहा एकओर तो देवलोक और भूमंडलका राज्य और एकओर तुम्हारा दर्शन इसमें सारा भूमंडलका राजा भी तुम्हारे दर्शनकी तुलना नहीं करसक्ता ॥ २ ॥ मेरी सम्मतिमें दर्शनकी समान त्रिलोकीमें और कुछ नहीं है. हे देवि ! मैं और क्या वरमाँगू ? भूमंडलमें मैं कृतार्थ होगया हूं ॥३॥ हे माता ! मैं यही वांछित वर चाहता हूं कि, सदा निश्चला अनपायिनी भक्ति तुम्हारी मुझको रहे ॥ ४ ॥ हे मातः ! इस नगरमें सदा तुमको स्थित रहना चाहिये और दुर्गादेवी नामसे यह आप शक्तिरूप यहां रहैं ॥ ५ ॥ तुमको सदा मेरे नगरकी रक्षा करनी उचित है. जैसे आपने कुशलपूर्वक शत्रुओंसे सुदर्शनकी रक्षा करी ॥ ६ ॥ हे मातः ! इसी प्रकार वाराणसीकी तुमको रक्षा करनी उचित है. जबतक भूमिमें यह पुरी प्रतिष्ठापूर्वक है ॥ ७ ॥ हे कृपावति दुर्गे ! देवि ! तबतक तुमको यहां रहना चाहिये यह वर तुमको देना चाहिये और मैं क्या प्रार्थना करूं ? ॥ ८ ॥ अनेक प्रकारकी कामनाको मुझे देकर शत्रुओंको मारो और सदैव लोकोंके अमंगलका नाश करो ॥९॥ व्यासजी बोले जब दुर्गतिनाशिनी देवीकी इस प्रकार प्रार्थना करी तब स्तुति कर आगे खडेहुए राजासे भगवतीने कहा ॥ १० ॥ देवी बोली हे राजन् ! इस मोक्षदा पुरीमें मैं सदा निवास करूंगी. सब लोकोंकी रक्षा करनेको पृथ्वीलयपर्यन्त मैं स्थित रहूंगी ॥ ११ ॥ तब सुदर्शनभी उस स्थानमें प्रेमपूर्वक आय परमभक्तिसे प्रणाम कर जगन्माताको सन्तुष्ट करनेलगा ॥ १२ ॥ अहो मातः ! मैं तुम्हारी कृपाका कहांतक वर्णन करूं ? जो आपने मुझ भक्तिहीनकी रक्षा की. भक्तके ऊपर तो सभी कृपा करते हैं, परन्तु भक्तिहीनकी रक्षा करना तुम्हाराही व्रत है ॥ १३ ॥ देवि ! मैं ने सुना है तुमहीं सब प्रपंचका सृजन करके पालन करती हो और संहारकालमें संहार करती हो तो मेरा रक्षण करना कोई विचित्र बात नहीं है ॥१४॥ हे मातः ! अब कहिये मैं क्या सेवा करूं ? और कहां जाऊं ? कार्यमें मैं विमूढ होरहा हूं, तुम्हारी आज्ञासे मैं जाऊंगा, विहार करूंगा स्थित रहूंगा ॥ १५॥ व्यासजी बोले ऐसा उस कुमारके कहनेपर देवी दया कर बोली हे महाभाग ! अयोध्यामें जाकर कुलोचित राज्य करो ॥ १६ ॥ सदा मेरा स्मरण और पूजन करना. हे राजन् ! मैं सदा तुम्हारे राज्यमें शांति रक्खूंगी ॥ १७॥ अष्टमी

नवमी चर्तुदशीको बलिदानके. विधानसे मेरी पूजा करनी ॥ १८ ॥ हे पापरहित! मेरी प्रतिमा अपने नगरमें स्थापित करनी और तीनों कालमें भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिये ॥ १९ ॥ और शरत्कालमें सर्वदा मेरी पूजा करनी चाहिये, नवरात्रका विधान भक्तिभावसे करना चाहिये ॥ २० ॥ चैत्र, आश्विन, आषाढ और माघमें महोत्सव करना चाहिये. हे महाराज! नवरात्रमें विशेष पूजा करनी चाहिये ॥ २१ ॥ कृष्णपक्षकी चौदशको अष्टमीको भक्तिभावके सहित तुमको पूजा करनी चाहिये ॥ ॥ २२ ॥ व्यासजी बोले ऐसा कहकर दुर्गतिनाशिनी देवी अन्तर्हित होगई. सुदर्शनने भी अनेक प्रणाम कर स्तुति की ॥ २३ ॥ भगवतीको अन्तर्हित हुआ जानकर वे सब राजा सुदर्शनको आनकर ऐसे प्रणाम करने लगे जैसे देवता इन्द्रको प्रणाम करते हैं ॥ २४ ॥ और सुबाहु भी प्रणाम कर प्रसन्नतासहित आगे स्थित हुआ. तब सब राजा अयोध्याके अधिपतिसे बोले ॥ २५ ॥ तुम हमारे प्रभु शास्ता हो और हम तुम्हारे सेवक हैं हे राजन्! हमको पालन करते हुए अयोध्याका राज्य करो ॥ २६ ॥ हे महाराज! आपकी कृपासे विश्वेश्वरी शिवाका दर्शन हुआ, वह आदिशक्ति भवानी चारवर्गोंका फल देती है ॥ २७ ॥ तुम धन्य कृतकृत्य और पृथ्वीमें बहु पुण्यवाले हो, जो कि आपके निमित्त सनातनी देवी प्रगट हुई ॥ २८ ॥ हे श्रेष्ठ राजन्! हमने तमोगुणयुक्त और मायासे मोहित होनेके कारण चंडिकाका प्रभाव न जाना ॥ २९ ॥ हम तो सदा धन स्त्री और पुत्रोंके ही चिन्तनमें लगेरहते हैं, इस कामक्रोध रूपी मगरसे भरे संसारसागरमें मग्न रहते हैं ॥ ३० ॥ हे महामते! महाभाग! तुम सर्वज्ञ हो, हम तुमसे पूँछते हैं यह कौन शक्ति. कहांसे प्रगट हुई? किस प्रभाववाली है सो कहो ॥ ३१ ॥ आपही इस संसारसे पार करनेको नौकासदृश हो, साधु दयालू होते हैं इस कारण हे काकुत्स्थ! हमसे देवीका माहात्म्य कहो ॥ ३२ ॥ इस देवीका जैसा प्रभाव जैसा उदय हो हे राजन्! वही तुमसे सुन्नेकी इच्छा है, सो आप तत्वसे कहिये ॥ ३३ ॥ व्यासजी बोले राजाओंके ऐसा कहनेपर वह ध्रुवसंधिका पुत्र प्रसन्न हो मनसे देवीको प्रणामकर उनसे बोला ॥ ३४ ॥ सुदर्शनने कहा हे राजो! उसके उत्तम चरित्रको तुमसे क्या कहूं? ब्रह्मादिक देवताभी इसको नहीं जानते ॥ ३५ ॥ वह महालक्ष्मी सबकी आद्या उत्तम शक्ति है. हे राजन्! यह सात्विक जगत्के पालनमें तत्पर है ॥ ३६ ॥ जो सृजनमें रजोगुणी, पालनमें सत्वरूप, संहारमें तमोरूप इस प्रकार त्रिगुणा है ॥ ३७ ॥ और वह निर्गुणा शक्ति सब काम और फलकी दे ने-

वाली है, हे राजन् ! वह सब ब्रह्मादिकोंकाभी कारण है ॥ ३८ ॥ हे राजाओ ! वह निर्गुण शक्ति तौ योगियोंको भी अगम्य है,सगुण सुखसे सेवनके योग्य है.जिसका पंडित सदा चिन्तन करते हैं ॥ ३९ ॥ सब राजा बोले हे कुमार ! तुम तौ डरकर बालकपनसेही वनमें प्राप्त हुए थे.यह परम उत्तम शक्ति तुमको किसप्रकार प्राप्त हुई? ॥ ४० ॥ और तुमने कैसे उपासना करके पूजी? जिसने प्रसन्न होकर तुम्हारी शीघ्रतासे सहायता की ॥ ४१ ॥ सुदर्शनने कहा बालभावमें ही मैं ने भगवतीका बीजमंत्र पाया, हे राजाओ ! उस कामबीजका ही मैंने निरन्तर जप किया ॥ ४२ ॥ और ऋषियोंके कथन करनेसे मैं ने अम्बिका शिवाको जाना. उसको मैं परमभक्तिसे दिनरात जपता हूं ॥ ४३ ॥ व्यासजी बोले कुमारके यह वचन सुन सब राजा भक्तिमें तत्पर हुए और परमभक्तिको मानकर सब अपने २ घरको गये ॥ ४४ ॥ और सुदर्शनसे पूँछकर सुबाहु काशीमें आया और धर्मात्मा सुदर्शन कोसलदेशको गया ॥ ४५ ॥ जब मंत्रीने शत्रुजित्को युद्धमें मृतक सुना और सुदर्शनकी जीत सुनी तब बड़े प्रसन्न हुए ॥ ४६ ॥ अयोध्यावासी उस राजाको आया सुनकर अनेक प्रकारकी भेंटैं लेकर सन्मुख उपस्थित हुए ॥ ४७ ॥ इसी प्रकारसे और सब प्रजा भी अनेक भेंटैं लेकर ध्रुवसंधिके पुत्रके निकट प्रेमसे आई ॥ ४८ ॥ वधूके सहित सुदर्शन अयोध्यामें प्राप्त होकर सब लोकोंका सन्मान कर राजमंदिरमें गया ॥ ४९ ॥ बन्दियोंसे स्तुतिको प्राप्त होकर मंत्रियोंसे वन्दित होकर कन्याओंकी खीलैं और फूलोंकी वर्षाका अनुभव करते राजमंदिरमें आगमन किया ॥ ५० ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पंचविंशोऽध्यायः २५.

व्यासजी बोले ! वह राजश्रेष्ठ सुहृदोंसे युक्त अयोध्यामें जाकर शोकयुक्त शत्रुजित्की मातासे बोला ॥ १ ॥ हे मातः ! संग्राममें मैं ने तुम्हारे पुत्रको नहीं मारा न मैं ने तुम्हारे पिता युधाजित्को मारा मैं तुम्हारे चरणोंकी सौगंध खाता हूं ॥ २ ॥ भगवती दुर्गाके सन्मुख होनेसे दोनों मृतक हुए इसमें मेरा अपराध नहीं है, होनहार किसीसे टलती नहीं है ॥ ३ ॥ हे मानिनि ! मृत पुत्रका शोक तुमको न करना चाहिये,जीव अपने

कर्मके अनुसार सुख असुख भोगता है॥ ४॥ हे मातः! इस प्रकार मैं तुम्हारा दास हूं जैसे मनोरमाका. हे धर्मज्ञे! इसीप्रकार तुम हो मैं कुछभी तुममें भेद नहीं मानता ॥५॥ शुभाशुभ किया कर्म अवश्य भोगना पड़ता है इस कारण तुमको सुख दुःखमें शोच न करना चाहिये ॥६॥ जो दुःखमें अधिक दुःख सुखमें अधिक सुख देखते हैं? आत्माको शत्रुकी समान हर्षशोकको अर्पण न करै ॥ ७ ॥ यह सब दैवके अधीन है अपने अधीन नहीं है, बुद्धिमान् शोकसे अपनी आत्माको नष्ट न करै ॥ ८ ॥ जैसे काठकी पुतली नटादिके द्वारा चेष्टा करती है, इसीप्रकार देही सर्वत्र अपने कर्मके अधीन चेष्टा करता है ॥९॥ हे मातः! मैं वनमें जाकरभी मनमें दुःखी न हुआ मैंने यही विचारा कि, यह अपना किया ही कर्म भोगना है ॥ १० ॥ मेरे मातामह यहीं मृतक हुए, माता वैधव्यको प्राप्त हुई और भयातुर हो मुझे लेकर गहन वनमें गई ॥ ११ ॥ हमको मार्गमें चोरोंने लूट लिया वस्त्र तक हरण करलिये और उस निराश्रय बालकपुत्रवालीका सब खर्च लेलिया ॥१२॥ माता मुझे लेकर भरद्वाजके आश्रममें प्राप्त हुई, केवल यह विदल्ल मंत्री और धाय हमारे साथ रही ॥ १३ ॥ मुनि और मुनिपत्नियोंने बहुत दया करके हम तीनोंकी नीवार अन्न और मूल फलसे पुष्टि किया ॥ १४ ॥ तब मुझे दुःख बहुत हुआ. और अब धनागमसे बड़ा प्रसन्न नहीं हूं मेरे चित्तमें किसीप्रकार वैर और मात्सर्य नहीं है ॥ १५ ॥ हे परंतप! राजभोगसे तो नीवारका भक्षणही श्रेष्ठ है राजभोगी नरकमें जाता है परन्तु नीवारादि भक्षणकरनेवाला तपस्वी कभी नहीं नरकमें जाता ॥ १६ ॥ बुद्धिमान् पुरुषको धर्मका आचरण करना चाहिये और इन्द्रियोंको जीतना चाहिये. जिससे नरक न हो ॥ १७ ॥ हे मातः! इस भरतखण्डमें मनुष्यका जन्म बड़ा दुर्लभ है, आहारादिका सुख तो सब योनियोंमें मिल सक्ता है ॥ १८ ॥ मनुष्यदेहको प्राप्त करके धर्मका साधन करना चाहिये. यह मनुष्योंको स्वर्ग और मोक्षप्रद है. और योनियोंमें दुर्लभ है ॥ १९ ॥ व्यासजी बोले कुमारके यह वचन सुन लीलावती बड़ी लज्जित हुई. पुत्रका शोक छोड़कर आँसू भरकर उस्से बोली ॥ २० ॥ युधाजितने मुझे पुत्रसहित अपराधी किया जिसने तुम्हारे मातामहको मारकर राज्यहरण किया ॥ ॥२१॥ उसको मैं वा मेरा पुत्र निवारण करनेको समर्थ न था जो उसने कर्म किया उसके मैं निवारण करनेमें समर्थ नहीं थी. इसमें मेरा अपराध नहीं है ॥ २२ ॥ वे अपने कर्मसे मरे 'हे पुत्र इसमें तुम्हारा अपराध नहीं है' मैं पुत्रको नहीं सोचती.

उसके कृत्यको शोचती हूं॥२३॥हेपुत्र! तुम श्रेष्ठ हो मनोरमा मेरी भगिनी है,हेपुत्र! तुमपर मेरा कुछभी क्रोध नहीं है ॥ २४ ॥ हे महाभाग! भलीप्रकार प्रजापालन पूर्वक राज्य करो यह भगवतीके प्रसादसे तुमको अकंटक राज्य प्राप्त हुआ है ॥ ॥२५॥ राजकुमार माताके यह वचन सुन उसको प्रणाम कर मनोरमा माता जहां पहले रहती थी उस पवित्र स्थानको गया॥ २६॥वहां जाय उसने निवास किया और सब मंत्रियोंको बुलाय और ज्योतिषियोंको बुलाकर शुभमुहूर्त पूँछा ॥ २७ ॥ कि मैं सुवर्णका मनोहर सिंहासन बनाय उसपर भगवतीका सदा पूजन करूंगा ॥ ॥२८॥पहले धर्म अर्थ काम मोक्षदायक भगवतीको स्थापन करके राज्य पीछे करूंगा जैसे श्रीरामचन्द्रादिने किया ॥२९ ॥ सब नगरनिवासियोंको सदा भगवतीका पूजन करना चाहिये और सब कामअर्थकी सिद्धि देनेवाली भगवतीका सदा मान करना चाहिये ।। ३० ॥ ऐसा सुन्तेही वे मंत्री राजाकी आज्ञा करतेहुए और कारीगरोंसे उन्होंने बहुत सुन्दर मन्दिर बनवाया।। ३१ ॥और भगवतीकी प्रतिमा बनवाय शुभ मुहूर्त दिनमें वेदज्ञाता ब्राह्मणोंको बुलाकर राजाने स्थापन किया ॥ ३२ ॥ विधिपूर्वक हवन कर और देवताओंका पूजन कर मन्दिरमें राजाने भगवतीका स्थापन किया ।। ॥ ३३ ॥ बाजोंके शब्दोंसे वहां बड़ा उत्सव हुआ. ब्राह्मणोंके वेदघोष और अनेक प्रकारके गान स्तुतियोंसे मंगल हुआ ॥ ३४ ॥ व्यासजी बोले इस प्रकार वेदवादि-योंने भगवतीकी स्थापना की और राजा भी परमभक्तिसे पूजा करनेलगे ।। ३५ ।। पूजाविधि कर राजा अपने पिताके राज्यको प्राप्त हो सुख भोगने लगे ! अम्बिका देवी सब कोसलदेशमें विख्यात हुई ॥ ३६ ॥ इस प्रकार राजा राज्य पाय सब सामंत और राजाओंको सद्धर्मसे जयकर अपने वशीभूत करता हुआ ॥ ३७ ॥ जैसे रामचन्द्र दिलीप और रघुका राज्य हुआ वैसीही मर्यादा और प्रजाओंको सुख हुआ ॥ ३८॥ वर्णाश्रमोंका चतुष्पाद् धर्म जागरूक था. किसीकाभी अधर्ममें चित्त नहीं लगता था ॥ ३९ ॥ सब लोगोंने ग्राम २ में भगवतीके मन्दिर बनाये इस प्रकार कोसलदेशमें भगवतीकी प्रीतिपूर्वक पूजा प्रवृत्त हुई ॥ ४० ॥ सुबाहुने भी देवीकी सुन्दर प्रतिमा काशीजीमें मन्दिर बनवाय स्थापित की और बड़ी भक्ति की ॥ ४१ ॥ वहां वे सबकोई नगरनिवासी प्रेमभक्तिपरायण हुए और विश्वेश्वरकी समान प्रेमभक्तिसे पूजा करनेलगे ॥ ४२ ॥ भूमितलम भगवती बड़ी विख्यात हुई. हे महाराज! देशदेशमें भक्ति बढ़नेलगी ॥ ४३ ॥ सम्पूर्ण भारतवर्ष

और सब लोकोंमें सब वर्णोंमें वह भवानी सबको भजन करने योग्य होगई ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! वे सब कोई शक्ति और भक्तिमें रत हुए और आगममें कहेहुए स्तोत्रोंसे जप ध्यानसें परायण हुए ॥ ४५ ॥ नवरात्रमें सब कोई प्रेमसे जप पूजा करते थे और भक्तिमें तत्पर मनुष्य देवीका अर्चन हवन और यज्ञ करने लगे ॥ ४६ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषायां पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

षड्विंशोऽध्यायः २६.

जनमेजय बोले हे व्यासजी ! नवरात्रके प्राप्त होनेमें क्या करना चाहिये ? और विशेषकर शरत्कालका भी विधान कहिये ॥ १ ॥ इसका क्या फल ? और क्या विधि है? हे द्विजोत्तम! यह विस्तारपूर्वक कहिये ॥ २ ॥ व्यासजी बोले सुनो राजन् ! नवरात्रका सुन्दर विधान कहता हूं जो शरत्कालमें विशेषकर विधिपूर्वक करना चाहिये ॥ ३ ॥ इसी प्रकार प्रेमपूर्वक वसन्तमें करना चाहिये यह दोनों ऋतु सब जनोंको यमदंष्ट्रा कही हैं ॥ ४ ॥ यह शरत् और वसन्त प्राणियोंको दुर्गम है इसका रण शुभकी इच्छावालेको यह यत्नसे करनी चाहिये ॥ ५ ॥ यह दोनोंही ऋतु महाघोर मनुष्यों को यह रोगकरनेवाली हैं यह दोनोंही रोगोत्पादन कर जनोंका नाश करती हैं ॥ ६ ॥ इस कारण पण्डितोंको इन ऋतुओंमें चण्डिकाका पूजन करना चाहिये, चैत्र और आश्विनके शुभ महीनेमें भक्तिसे पूजन करै ॥ ७ ॥ अमावास्याके दिनही सब सामर्थ्य कल्पित करै उस दिन हविष्यका भोजन एक समय करै ॥ ८ ॥ समाज देश शुभस्थलमें मण्डप बनावै जो सोलह हाथका प्रमाणमें और ध्वजा पताकासे युक्त हो ॥ ९ ॥ पीली मृत्तिका और गौके गोबरसे वहां लीपना चाहिये उसके मध्यमें समान और स्थिर वेदिका करनी चाहिये ॥ १० ॥ चार हाथ लम्बा चौड़ा और एक हाथ ऊंचा पीठस्थान करना चाहिये. विचित्र तोरण वन्दनवार लगावै चन्दोवा तानै ॥ ११ ॥ देवीके तत्व जाननेवाले पंडितोंको रात्रिमें आमंत्रण करै वे ब्राह्मण आचारमें निरत वेदवेदांगके पारगामी हों ॥ १२ ॥ प्रतिपदाके दिन विधिपूर्वक प्रातःस्नान करना चाहिये नदी गृह तडाग बावड़ी कूप वा घरमें स्नान करै ॥ १३ ॥ प्रभात काल नित्य कार्यसे निश्चिन्त हो ब्राह्मणोंका वरण करै और मधुके सहित उनको अर्घ्य पाद्य सब प्रदान करै ॥ १४ ॥ अपनी शक्तिमे उनको वस्त्र और अलंकार दे यदि ऐश्वर्य हो तौ धनकी शठता न करै ॥ १५ ॥ ब्राह्मणोंके सन्तोषसे अवश्य ही

सब कार्य होता है, नौ पांच तीन वा एक ब्राह्मणसे देवीका पाठ करावै ॥ १६ ॥ पारायण करनेमें शान्त ब्राह्मणका वरण करना चाहिये और वेदमंत्रोंसे स्वस्तिवाचन करावै ॥ १७ ॥ वेदीमें सिंहासन स्थापन करकै क्षौम वस्त्र उसमें धरकर उसपर चतुर्भुजी आयुध हाथमें लिये स्थापन करै ॥ १८ ॥ रत्नभूषणोंसे संयुक्त मोतियोंके हारसे विराजित, दिव्यवस्त्र धारे सौम्य सब लक्षणोंसे संयुक्त ॥ १९ ॥ शंख, चक्र, गदा, पद्म, धारे सिंहके ऊपर स्थित शिवा स्वरूपिणी है अथवा अष्टादश भुजायुक्त सनातनी देवीको स्थापित करै ॥२०॥ यदि प्रतिमाका अभाव हो तौ उस सिंहासनमें मंत्रसहित मध्यमें लिखे नवार्णमंत्रसे संयुक्त यंत्रके स्थापन करै, [सिंहासनके दक्षिण-भागमें कलश स्थापन करे,कहीं सिंहासनके आगे कलश स्थापन करै,सिंहासनपर नित्य पूजन है कलशमें नैमित्तिक पूजन है और मूर्तिके अभावमें कलशमें प्राणादिस्थापन आवाहन होता है] ॥ २१ ॥ पंच पल्लवोंसे संयुक्त वेदमंत्रोंसे संस्कृत अच्छे तीर्थके जलसे सम्पूर्ण सुवर्णसहित कलशमें डालै ॥ २२ ॥ पार्श्वमें पूजाका संभार कल्पना करकै मंगलके निमित्त बाजोंका निर्घोष करै ॥ २३ ॥ हस्तयुक्त तिथि और नंदा तिथिमें पूजन करना उत्तम है, हे राजन् ! प्रमथ दिवसका पूजन मनुष्योंको कामना देनेवाला है ॥ २४ ॥ पहले नियम करकै पीछे पूजाका आरंभ करै. उपवास करै रात्रिको एकवार भोजन करै ॥ २५ ॥ हे मातः ! नवरात्रका व्रत मैं विधि-पूर्वक करूंगा. हे जगदम्बा देवी ! तू मेरी सहायता कर ॥ २६ ॥ व्रतके निमित्त यथाशक्ति नियम करना चाहिये पीछे मंत्रपूर्वक विधिसे पूजा करै ॥ २७ ॥ चंदन अगर कर्पूर सुगंधिके फूल मंदार करज अशोक चंपा कनेर ॥ २८ ॥ मालती ब्राह्मीका फूल तथा अच्छे बेलपत्र इनसे धूप दीपक विधानसे जगत्की माताका पूजन करै ॥ २९ ॥ अनेक प्रकारके फल नारियल मातुलिंग दाडमी केला दे अनेक प्रकारसे अर्घ्य दे ॥ ३० ॥ नारंगी पनस बिल्वफल भेंटकरै. हे राजन् ! भक्तिसे अन्नदान भी करना चाहिये ॥ ३१ ॥ और जो मांसाशी हैं उनको इसी अवसरमें पशुहिंसन करना चाहिये अन्यत्र नहीं महिष बकरे वराह इनक बलिदान विशेष कहा है यह मांसकी विधि क्षत्रियके निमित्तही हैं अन्यत्रोंको नहीं जैसा शारदामें लिखा है "ब्राह्मणो नियतः शुद्धः सात्विकं बलिमाहरेत्" कालिका पुराणमें कहा है "सिंहव्याघ्रादिकं दत्वा चात्मवध्यमवाप्नुयात् । मद्यं दत्त्वा ब्राह्मणस्तु ब्राह्म-ण्यादेव हीयते । अवश्यं विहितो यत्र बलिस्तत्र द्विजः पुनः । पिष्टेनापि घृतेनापि

निर्मितं तु समर्पयेत्" इति। अर्थात् ब्राह्मण सात्विकको सत्वगुणी बलि देनी, कालीपुराणमें कहा है सिंहव्याघ्रादि देने से आत्मवधको प्राप्त होता है मद्य देनेसे ब्रह्मत्वसे हीन होता है जहां अवश्यही विधान है वहां पिष्टका पशु बनाय बलि देनी अथवा घृतकी आहुति देनी ॥ ३२ ॥ देवीके आगे निहत हुए पशु स्वर्गको जाते हैं कारण कि, ब्रह्मविद्या जीवदशाकी निहंत्री है हे पापरहित! इस कारण वहां पशु मारनेकी हिंसा नहीं हैं ॥ ३३ ॥ सब शास्त्रोंमें यह निर्णय है कि, वह यज्ञका हनन हिंसा नहीं है सो यह क्षत्रियके उद्देशमें ही बलिको छोड़कर अन्यत्र न करै इस न्यूनताके ही निमित्त है. कारण कि, इस उद्देशसे देवताके उद्देशसे बलि किये पशु स्वर्ग जाते हैं ॥ ३४ ॥ होमके निमित्त त्रिकोण कुण्ड बनावै, अथवा त्रिकोणके ही परिमाणसे स्थण्डिल (समस्थान) करै. [अर्थात् हवनकी सामग्रीके अनुसार एक हाथसे दश हाथतकका निर्माण करै ५० आहुतिमें मुष्टिमात्र शतहोममें अरत्निमात्र करै. ऐसा शारदातिलकमें कहा है.]॥ ३५॥ तीनों कालमें अनेक मनोहर द्रव्योंसे पूजन करै गीत वादित्र और नृत्यपूर्वक महोत्सव करना चाहिये ॥ ३६ ॥ नित्य पृथ्वीमें शयन करै. कुमारीपूजन करै उनको दिव्य वस्त्र अलंकार और अमृतमय भोजन दे ॥ ३७ ॥ अथवा नित्यप्रति एकका पूजन करै अथवा एक वृद्धिसे पूजनकरै अथवा दूनी तिगुनी वृद्धि करै, अथवा प्रतिदिन नौका पूजनकरै ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! शक्तियज्ञमें वित्तकी संकोचता करनी उचित नहीं. ऐश्वर्यके अनुसार पूजनकरै॥ ३९॥हे राजन् ! कन्यापूजनमें एकवर्षकी कन्याका पूजन न करै.कारण कि वह भोग और गंधादि ज्ञानमें परम अज्ञ है ॥४०॥ कुमारी उसको कहते हैं जो दो वर्षकी हो तीन वर्षकी त्रिमूर्ती और चार वर्षकी कल्याणी कहाती है ॥ ४१ ॥ पांच वर्षकी रोहिणी और छः वर्षकी कालिका कही है.सात वर्षकी चंडिका और आठ वर्षकी शांभवी है॥ ४२॥नौ वर्षकी दुर्गा दश वर्षकी सुभद्रा होती है. इससे अधिक कुमारीपूजामें न लेना ! आगे सब कार्योंमें विगर्हित है ॥ ४३॥इन नामोंसे विधिपूर्वक पूजा करनी चाहिये.इन नौ नामोंसे पूजा करनेका फल कहता हूं ॥ ४४ ॥ पूजित हुई कुमारी दुःख दारिद्र्यका नाश करती है. शत्रुक्षय धन आयुष्य बलकी वृद्धि करती है ॥ ४५ ॥ त्रिमूर्तिके पूजनसे आयु और त्रिवर्गका फल होता है. धन धान्यका आगम पुत्रपौत्रकी वृद्धि होती है ॥ ४६ ॥ विद्यार्थी विजयकी इच्छावाला और जो राजा जयकी इच्छावाला और सुखार्थी अवश्यही सब कामना देनेवाली कल्याणीका पूजनकरै ॥ ४७ ॥

और शत्रुओंके नाश करनेके निमित्त कल्याणीका पूजनकरै, ऐश्वर्य और धनकी कामनासे चण्डिकाको पूजनकरै ॥ ४८ ॥ और संमोहनके निमित्त शांभवीका पूजन करै. इस पूजनसे दुःख दारिद्यका नाश और संग्राममें विजय होती है॥४९॥ क्रूर शत्रुके नाशार्थ तथा उग्रकर्मके साधनके निमित्त तथा परलोकसुखके निमित्त दुर्गादेवीका पूजनकरै ॥ ५० ॥ और सुभद्राके पूजनेसे वांछितार्थकी सिद्धि होती है रोगनाशके निमित्त रोहिणीका पूजन करै. ॥ ५१ ॥ भक्तिमें तत्पर होकर 'श्रीरस्तु' इस मंत्रसे पूजनकरे. श्री युक्त मंत्रों अथवा दूसरे मंत्रोंसे पूजनकरै ॥ ५२ ॥ जो कुमार 'षण्मुख' के तत्वोंको लीलासेही सृजन करते हैं ब्रह्मादिदेवता और कुमारीको मैं पूजनकरता हूं ॥ ५३ ॥ जो सत्वादि त्रिमूर्तिसे नानास्वरूपिणी है त्रिकालव्यापिनीशक्ति त्रिमूर्तिकी मैं पूजाकरता हूं ॥ ५४ ॥ कल्याणकारिणी नित्य भक्तोंसे पूजितहुई सब कामनादायिनी है इस्से भक्तिपूर्वक कल्याणीको पूजनकरता हूं ॥ ५५ ॥ जो प्राग्जन्मके संचित कर्मोंकी अंकुरित करती है. जो देवी सब प्राणियोंको अंकुरित करती है. उस रोहिणीको पूजनकरताहूं ॥ ५६ ॥ कालिका चराचर सब ब्रह्माण्डको कलितकरती है. प्रलय करती है उस कालिकाका मैं पूजन करता हूं ॥ ५७ ॥ चण्डिका चण्डरूपा चण्डमुण्डकी नाशक कठिनपापकी दूर करनेवाली चण्डिकाका पूजन करता हूं ॥ ५८ ॥ अकारणसेही समुत्पत्ति जिसके स्वरूपोंकी कहीगई है उस सबकी सुखदायक शांभवीदेवीको मैं पूजनकरता हूं ॥ ५९ ॥ जो दुर्गा भक्तोंकी रक्षा करनेवाली दुर्गति नाशनेवाली है जो सबदेवताओंको दुर्ज्ञेय है उस दुर्गाको मैं पूजनकरता हूं ॥ ६० ॥ जो पूजित हुई सदा भक्तोंके भद्र (कल्याण) करती है. उस अभद्रनाशिनी सुभद्रादेवीको पूजन करता हूं ॥ ६१ ॥ पंडितोंको इन मंत्रोंसे सदा कन्याओंको पूजन करना चाहिये. वस्त्र अलंकार माला और उच्चावच गन्धोंसे पूजन करना चाहिये॥६२॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषायां षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः २७.

व्यासजी बोले जो कन्या कुष्ठयुक्त व्रणोंसे अंकित, गंधसे स्फुरित हीनांगी दुष्टकुल वाली हो उसको पूजन न करै ॥ १ ॥ तथा जातिअंधी एकहातवाली कानी कुरूपा बहुत रोमवाली रोहिणी रक्तपुष्पादिसे अंकित हो उसे त्यागदे ॥ २ ॥

बहुत दुबली बहुत थोडे दिनकी हुई विधवासे उत्पन्न अविवाहित कन्यासे उत्पन्न यह कन्यायें सदा पूजादि कर्मोंमें त्यागदेनी चाहिये ॥ ३ ॥ रोगरहित सुरूपवती अंगवाली सुन्दरी व्रणसे रहित शुद्ध माता पितासे उत्पन्न कन्याको भलीप्रकारसे पूजनकरै ॥ ४ ॥ सब कार्योंमें ब्राह्मणी, जयकार्योंमें क्षत्रिया, लाभके निमित्त वैश्यवंशोत्पन्ना अथवा शूद्रवंशकी कन्याका पूजनकरै ॥ ५ ॥ ब्राह्मणोंको ब्राह्मणकी पूजनी क्षत्रियोंको ब्रह्मक्षत्रियकी, वैश्यको ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यकी कन्या पूज्य है. और शूद्रोंको चारों वर्णकी कन्या पूजनीय है ॥ ६ ॥ शिल्पियोंको अपने वंशकी कन्या पूजनीय है. यह भक्तिपूर्वक नवरात्रके विधानसे कार्य करना चाहिये ॥ ७ ॥ यदि नवरात्रमें निरन्तर पूजा करनेमें अशक्य हो तो अष्टमीको विशेषरूपसे पूजा करनी चाहिये ॥ ॥ ८ ॥ कारण कि पहले दक्षका यज्ञ नाशकरनेवाली भद्रकाली करोडों योगिनियों सहित अष्टमीकोही प्रगटहुई है ॥ ९ ॥ इस कारण विशेषरूपसे अष्टमीको पूजन करना चाहिये ! अनेक प्रकारके उपहार और गंधमालासे अर्चित करै ॥ १० ॥ पायस खीरसे होमकरै क्षत्रिय मांसकीभी बलिप्रदान करसक्ते हैं, ब्राह्मणभोजन करा फल पुष्पोंकी भेंटसे जगदम्बाको सन्तुष्ट करै ॥ ११ ॥ यदि नवरात्रके उपवासमें समर्थ न हो तो हे राजन् ! तीन उपवासभी विशेष फल देते हैं ॥ १२ ॥ सप्तमी अष्टमी नवमीको भक्तिभावसे तीन रात व्रत पूजन करनेसे पूर्ण फल मिलता है ॥ १३ ॥ पूजा होम और कुमारीव्रत करनेसे तथा ब्राह्मणभोजनसे व्रत पूर्ण होता है ॥ १४ ॥ जो और व्रत दान अनेकप्रकारके हैं वे कोईभी पृथ्वीमें नवरात्रव्रतकी समान नहीं है ॥ १५ ॥ यह नित्य धनधान्यका दाता सुख सन्तान और वृद्धिका देनेवाला आयु आरोग्य और स्वर्ग मोक्षका देनेवाला है ॥ १६ ॥ विद्यार्थी धनार्थी पुत्रार्थी मनुष्यको यह सौभाग्यदायक व्रत अवश्य करना चाहिये ॥ १७ ॥ इस व्रतके साधनसे विद्यार्थी सब विद्याओंको प्राप्त होता है. और राज्यभ्रष्ट राजा सब प्रकारके राज्यको प्राप्त करता है ॥ १८ ॥ जिन्होंने पूर्वजन्ममें यह श्रेष्ठ व्रत नहीं किया है. वेही मनुष्य व्याधियुक्त दरिद्र और पुत्रहीन होते हैं ॥ १९ ॥ जो स्त्री वन्ध्या विधवा धनवर्जित हो यह अनुमान करलो कि इसने यह व्रत नहीं किया है ॥ २० ॥ यह नवरात्रव्रत जिन्होंने भूतलमें नहीं किया है वे ऐश्वर्यको प्राप्त हो किसप्रकार स्वर्गमें आनंद करैंगे ॥ २१ ॥ रक्तचन्दनयुक्त कोमल बेलपत्रसे जिन्होंने भवानीका पूजन किया है वही भूमिका राजा होगा ॥ २२ ॥ जिसने दुःखनाशक सिद्धिकारक जगत्में श्रेष्ठ सनातनी

शिवाका आराधन नहीं किया है. वही नर भूतलमें दुःख और शत्रुसे युक्त हुआ अवश्य दारिद्रि होता है ॥ २३ ॥ जिसको विष्णु इन्द्र हर ब्रह्मा अग्निकुबेर वरुण सूर्य सर्वार्थकी प्राप्तिके निमित्त प्रसन्न होकर ध्यान करते हैं ! मनुष्य उस चण्डिकादेवीका भजन क्यों नहीं करते ॥ २४ ॥ सब यज्ञोंमें स्वाहा और स्वधाके नामसेही सब देवता पितर तृप्त होते हैं. और बड़े मुनि प्रसन्न होकर सब यज्ञोंमें यही नाम उच्चारण करते हैं ॥ २५ ॥ जिसकी इच्छासे प्रजापति इस विश्वकी रचनाकरते भगवान् हरि अनेक अवतार धारण करते हैं अन्तमें शंकर सबका लय करते हैं उस कल्याणदामिनीका मनुष्य क्यों नहीं भजन करते हैं ॥ २६ ॥ सब भुवनोंमें भगवतीके विना देवता मनुष्य विहंग सर्प गंधर्व राक्षस पिशाच नग (पर्वत) ऐसा नहीं है जो उसकी शक्तिके विना स्पन्दित होनेको समर्थ हो ॥ २७ ॥ उस सबकामना देनेवाली भगवतीकी कौन न सेवा करै और धर्म, अर्थ, काम मोक्षकी इच्छावाला कौन पुरुष उसका व्रत न करै ॥ २८ ॥ महापातकी पुरुष भी जो नवरात्रका व्रत करै यह सब पापोंसे छूटजाता है इसमें सन्देह नहीं ॥ २९ ॥ पहले कभी कोई निर्धन वणिक् धन न होनेसे दुःखी हुआ कुटुम्बयुक्त कोसलदेशमें सिवास करता था ॥ ३० ॥ इसके भूख प्याससे व्याकुल बहुतसे सन्तान थे और सायंकालको उसके बालकोंको अन्न मिलता ॥ ३१ ॥ और यहभी कार्य करने उपरान्त संध्याको भोजन करता पर धैर्यसे कुटुम्ब पालन करता था ॥ ३२ ॥ सदा धर्ममें रत शान्त सदाचार सत्यवाक् था यह धैर्यवान् क्रोधर हित मद रहित असूया रहित था ॥ ३३ ॥ देवता अतिथि पितरोंको नित्य पूजनकर फिर कुटुम्बियोंके भोजन करचुकने पर पीछे यह आप भोजन करता ॥ ३४ ॥ यह कुछ समय बीतने पर अपने गुणोंसे सुशील कहाया. एकसमय वह दरिद्रसे व्याकुल होकर एक शान्त ब्राह्मणसे पूँछनेलगा ॥ ३५ ॥ सुशीलने कहा हे महामते ! ब्राह्मण ! कृपाकरके आप कहिये निश्चयकरके मेरा दरिद्र किस प्रकारसे नाश होगा ॥ ३६ ॥ हे मानद ! मुझको ऐसी धनकी इच्छा नहीं है कि, मैं धनी होजाऊं केवल कुटुम्बपालनकी इच्छासे मैं पूँछता हूं ॥ ३७ ॥ यह मेरी पुत्री और बालक भूंखसे रोते हैं. इतनाभी मेरे अन्न नहीं जो किसीको मुष्टिमात्रभी मैं अन्न प्रदान करसकूं ॥ ३८ ॥ देखो

मैंने बालकको घरसे पृथक् किया वह रोताहुआ चलागया इस कारण मेरा चित्त अत्यन्त व्याकुल होता है ॥ ३९ ॥ मेरी कन्याका विवाह है धनभी नहीं मैं क्या करूं यह दशवर्षसे अधिक होगई. दानकाल बीताजाता है ॥ ४० ॥ हे विप्र! इस प्रकार मैं शोच करता हूं आप सर्वज्ञ और दयासागर हो तप दान व्रत और मंत्रजप कहिये ॥ ४१ ॥ हे द्विज ! जिसमें मैं अपने कुटुम्बवर्गका पोषण करूं बस इतना धन मैं चाहता हूं. अधिककी मुझे इच्छा नहीं है ॥ ४२ ॥ आपकी कृपासे मेरा कुटुम्ब सुखी हो, हे महाभाग ! ज्ञानसे विचार कर कहिये ॥ ४३ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! इस प्रकार उसके पूँछनेसे वह श्रेष्ठ ब्राह्मण परम प्रीतिसे उस वैश्यसे कहनेलगा ॥ ४४ ॥ हे वैश्यश्रेष्ठ ! तुम नवरात्रका व्रत भगवतीका पूजन हवन भोजन करो ॥ ४५ ॥ वेदका पारायण शक्तिका होम जप यथाशक्ति करो तुम्हारा कार्य होगा ॥ ४६ ॥ इससे अधिक पृथ्वीमें व्रतादि नहीं है, हे वैश्य ! यह नवरात्रव्रत पवित्र और सुखदायक है ॥ ४७ ॥ यह ज्ञान मोक्ष सुख सन्तानका बढानेवाला है यह शत्रुका नाशक नवरात्रका व्रत है ॥ ४८ ॥ सीतासे वियुक्त होकर राज्यसे च्युत हुए महाराज रामचन्द्रने इस व्रतको किया था ॥ ४९ ॥ प्रतप्त और सीताविरहकी अग्निसे व्याकुल रामने नवरात्रके व्रतपूर्वक देवीकी विधिसे पूजाकी थी ॥ ५० ॥ इसीसे सागरमें सेतु बांधकर वैदेही प्राप्तकी थी. और मन्दोदरीपति रावण और महाबली कुंभकर्णको मारा ॥ ५१ ॥ तथा मेघनादको मार विभीषणको राज्य दे पीछे अयोध्यामें आय निष्कंटक राज्य किया ॥ ५२ ॥ हे वैश्यश्रेष्ठ ! इस नवरात्र व्रतके प्रभावसे महाराज रामचन्द्रको बड़ा सुख प्राप्त हुआ ॥ ५३ ॥ व्यासजी बोले यह वचन सुनकर वह वैश्य उस ब्राह्मणको गुरु करके माया बीजको ग्रहणकरता हुआ ॥ ५४ ॥ और परमभक्तिसे नवरात्रतक जप करता हुआ और अनेक प्रकारके उपहारोंसे आदरसे पूजता हुआ ॥ ५५ इस प्रकार नौवर्षतक मायाबीजमें परायण हुए नौवें वर्षके अन्तमें महाअष्टमीको भगवतीने ॥ ५६ ॥ आधीरातको प्रत्यक्ष दर्शन दिया और अनेक वरदानसे उसको कृतकृत्य किया ॥ ५७ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषायां सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टविंशोऽध्यायः २८.

जन्मेजय बोले रामचंद्रने किस प्रकार देवीका व्रत किया, वह कैसे राज्यभ्रष्ट हुए और कैसे सीता हरण हुआ ॥ १ ॥ व्यासजी बोले ! श्रीमान् राजा दशरथ अयोध्याके पति थे, यह सूर्यवंशमें श्रेष्ठ देवता और ब्राह्मणोंके पूजक थे ॥ २ ॥ इनके लोकविख्यात चार पुत्र हुए, जिनके राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, नाम थे॥ ३॥ यह अपने गुणरूपमें समान सब राजाके प्रिय करनेवाले थे कौशल्याके पुत्र राम कैकयीके भरत थे ॥ ४ ॥ सुमित्राके दो पुत्र बडे मनोहर हुए,वे किशोर अवस्थामें धनुष बाण धारण करनेवाले थे ॥ ५ ॥ यह संस्कार कियेहुए राजाके सुख बढाने वाले थे तब विश्वामित्रने आनकर रामचन्द्रको मागा ॥ ६ ॥ यज्ञकी रक्षा करनेको मांगा, जब कि यह सोलहवर्षके लगभग थे राजाने विश्वामित्रको लक्ष्मण सहित रामको दिया ॥ ७ ॥ वे सुन्दर दर्शनवाले मुनिके सहित मार्गमें जाते हुए, मार्गमें घोर दर्शनवाली ताडकाको वध किया॥८॥उस मुनियोंकी दुःख देनेवालीको रामने एकही बाणसे मारडाला,आश्रममें जाकर यज्ञकी रक्षा की,सुबाहु दैत्यको मारा॥ ९॥और मारीचकोभी मृतककी समान बाणवेगसे दूर फेंकदिया,इसप्रकार यज्ञपरिरक्षणरूप महत्कर्म करके॥ १०॥राम और लक्ष्मण विश्वामित्रके साथ मिथिलामें आये,शापसे अहल्याको मुक्तकर उसको निष्पाप किया ॥ ११ ॥ इस प्रकार मुनिके साथ वह विदेहनगरमें प्राप्तहुए और पणीभूत जनकके स्थापित शिवधनुका भंग किया ॥ १२ ॥ और लक्ष्मीके अंशसे प्रगट जानकीको वरण किया और अपनी और सुपुत्री उर्मिलाको राजाने लक्ष्मणसे विवाहदिया ॥ १३ ॥ इसी प्रकार दोनों भाइयोंने कुशध्वजकी कन्याओंको प्राप्तकिया. यह सुशील भरत और शत्रुघ्नको विवाहीगई ॥ १४ ॥ इसप्रकार मिथिलापुरीमें विधिपूर्वक चारों भाइयोंकी दारक्रिया हुई ॥ १५ ॥ घर आकर राजा दशरथने रामचंद्रको राज्यके योग्य देखकर उनको राज्य देनेका विचार किया ॥ १६ ॥ उस संभारको होता देखकर कैकयीने अपने पूर्वकल्पित दो वरोंको अपने वशवर्ती राजासे मांगा ॥ १७ ॥ एकसे भरतको राज्य और दूसरेसे रामको १४ वर्षका वनवास ॥ १८ ॥ रामचंद्र इस प्रकार माताके वचनसे सीता लक्ष्मणके सहित राक्षसोंसे भरे दण्डकवनको गये ॥ १९ ॥ इधर अमेयात्मा राजा दशरथ पुत्रके विरहसे पीडित हो श्रवणका शाप स्मरणकर प्राण त्यागनकरतेहुए ॥ २० ॥ भरतने माताकी करतूतसे पिताको मृतक देख रामके प्रियकी इच्छासे समृद्ध राज्यको

ग्रहण न किया ॥ २१ ॥ इधर पंचवटीमें रहतेहुए रामने रावणकी बहन कामसे व्याकुल शूर्पणखाको विरूप करदिया ॥ २२ ॥ उसकी छिन्ननासिका देखकर खरादिराक्षस महातेजस्वी रामसे बड़ा संग्राम करनेलगे ॥ २३ ॥ रामने बड़े बली खरादिराक्षसोंका वध किया और सत्यपराक्रमी रामने मुनियोंके हितकी इच्छा की ॥ २४ ॥ तब दूषितहुई शूर्पणखाने लंकामें जाकर रावणसे रामद्वारा खरदूषणका वध सुनाया ॥ २५ ॥ वह दुष्टभी शूर्पणखासे खरादिका विनाश सुनकर बड़ा क्रोधित हुआ और रथपर चढकर मारीचके आश्रमपर गया ॥ २६ ॥ और सुवर्णका मृग करके उसे रामके आश्रममे भेजा, वह मायावी सीताके लुभानेको चला ॥ २७ ॥ वह मायावी चित्रविचित्र अंगवाला सोनेका मृग बनकर सीताके सन्मुख हुआ और समीपमें विचरनेलगा ॥ २८ ॥ उसे देख दैवसे प्रेरित हो जानकी रामसे बोली, जैसे स्वाधीनपतिका बोलतीहै हेकान्त आप इसका चर्म लाइये॥ २९॥ रामभी कुछ विचार न करके वहां लक्ष्मणको स्थापनकर शर और धनु लेकर मृगके पीछे हुए ॥ ३० ॥ वह मृगभी भगवान्‌को देखकर अनेक मायामें चतुर दीखता अन्तर्हित होता इस वनसे उस वनमें गया ॥ ३१ ॥ फिर रामचन्द्रने उसको अपने धनुषके मार्गमें प्राप्तहुआ जान क्रोधसे धनुष चढाय उस तीक्ष्ण बाणसे कृत्रिम मृगको मारा ॥ ३२ ॥ वह बलपूर्वक मरतेसमय दुःखसे शब्द करनेलगा, हा लक्ष्मण मैं मरा ऐसा उस मायावी दुष्टने शब्द किया ॥ ३३ ॥ वह तुमुल शब्द जानकीने सुन और उसे रामका मानकर दुःखी हो देवरसे बोली ॥ ३४ ॥ हे लक्ष्मण ! बहुत शीघ्र जाओ रघुनन्दनपर कष्ट है, तुमको बुलाते हैं शीघ्र सहायता करो ॥ ३५ ॥ तब लक्ष्मण बोले हे माता ! मैं तो यहांसे रामके हतहोनेपरभी असहाय आश्रममें तुमको छोड़ नहींजासक्ता, फिर इस मायाके शब्दसे तो कैसे छोडकर चलाजाऊं ॥ ३६ ॥ हे माता ! मुझे रामचन्द्रकी यहां रहनेकी आज्ञा है, उसको त्यागके डरसे मैं तुमको नहीं छोड़सक्ता ॥ ३७ ॥ मैंने देखा कि, वह मायावी दैत्य रामको दूर लेगया है, हे शुचिस्मिते ! मैं तुमको छोड़कर एक पदभी नहीं जासक्ता ॥ ३८ ॥ तुम धैर्य धारणकरो रामको मारनेवाला कोईभी पृथ्वीपर नहीं है, रामके कथनको उल्लंघनकर मैं तुमको छोड़कर नहीं जासक्ता ॥ ३९ ॥ व्यासजी बोले, तब वह सुदती विधातासे प्रेरित हो सरल होकरभी रोतीहुई शुभलक्षणवाले लक्ष्मणसे क्रूर वचन बोली॥ ४० ॥ हे लक्ष्मण ! मैं जान्ती हूं तुम मुझमें अनुराग करते हो, मेरे निमित्तही तुमको भरतने

भेजदिया है ॥ ४१ ॥ हे अश्रेष्ठ! मैं कुलटा नारी नहीं हूं रामके न रहनेपर मैं कामसे अन्य पति नहीं करसक्की ॥ ४२ ॥ यदि रघुनाथ न आवेंगे तो अभी शरीर त्यागन करूंगी, उनके विना विधुरा दुःखी होकर मैं नहीं जिऊंगी ॥ ४३ ॥ हे लक्ष्मण! तुम रहो वा जाओ, मैंने तुम्हारी इच्छा न जानी, वह जो ज्येष्ठभ्रातामें तुम्हारा सौहार्द धर्मपूर्वक था सो कहाँ गया? ॥ ४४ ॥ जानकीके यह वचन सुन लक्ष्मण अतिदीन मनसे गद्गदकंठ हो जानकीसे बोले ॥ ४५ ॥ हे भूमिजे ! यह अत्यन्त कठोर वचन हमसे क्यों कहती हो, ऐसा कहनेसे विदित होता है तुमपर कोई भारी अनिष्ट आनेवाला है ॥ ४६ ॥ हे राजन्! ऐसा कह वह वीर रोते हुए जानकीको छोड़ चलेगये और शोकार्त हो रामको देखनेको गये ॥ ४७ ॥ लक्ष्मणके जातेही वह कपटकी आकृतिवाला रावण भिक्षुका वेष धारण कर आश्रममें प्रविष्ट हुआ ॥ ४८ ॥ जानकीने उसको यति मान आदरसे वनसम्बन्धी अर्घ्य देकर दुरात्मा रावणके निमित्त भिक्षा समर्पणकी ॥ ४९ ॥ वह दुष्टात्मा नम्रतापूर्वक उनसे पूँछने लगा, हे पद्मपलाशाक्षि ! तुम कौन हो और हे प्रिये! यहां वनमें इकली क्यों? ॥ ५० ॥ हे वामोरु! तुम्हारे पिता भ्राता और पति कौन हैं हे वरवर्णिनि! यहां तुम मूढ (मार्गभ्रष्ट) की समान स्थित हो ॥ ५१ ॥ हे प्रिये! तुम महलमें रहने योग्यहो सो इस निर्जनवनमें पर्णशालामें मुनिपत्नीकी समान क्यों स्थित हो तुम्हारी देव कन्याके समान कांति है॥ ५२॥ व्यासजी बोले यह वचन सुनकर जानकी उस मन्दोदरीके पतिको प्रारब्धवश यति मान्ती हुई बोली ॥ ५३ ॥ श्रीमान् महाराजा दशरथ अयोध्याके राजा हैं उनके चार पुत्र हैं उनमें बड़े पुत्र रामचन्द्रजी मेरे पति हैं ॥ ५४ ॥ उन राजाने कैकयीके निमित्त इनको वनमें भेजदिया है और वह लक्ष्मणके साथ चौदहवर्ष वनमें रहेंगे ॥ ५५ ॥ मैं सीतानामक जनकपुत्री हूं शिवका धनुष तोडकर रामने मुझे विवाहा है ॥ ५६ ॥ मैं रामके बाहुबलसे इस वनमें निर्भय निवास करती हूं सुवर्णका मृग देख हमारे पति उसे मारने गये हैं ॥ ५७ ॥ और लक्ष्मण भी भ्राताका शब्द सुनकर अभी गये हैं इन दोनोंहीके भुजबलसे मैं यहां रहती हूं ॥ ५८ ॥ मैंने यह सब अपने वनवासका वृत्तान्त कहा, और भ्रातासहित हमारे स्वामी आकर तुम्हारा सत्कार करेंगे ॥५९॥ यति विष्णु स्वरूप है, इस कारण मैंने तुम्हारा पूजन किया, हमने राक्षसोंसे आकुल घोरवनमें आश्रम किया ॥ ६० ॥ इस कारण मैं तुमसे पूँछती हूं, मेरे सामने सत्य कहो तुम त्रिदंडीके रूपसे वनमें क्यों विचरतेहो? ॥ ६१ ॥ रावण बोला, हे

अरालाक्षि ! मैं लंकेश मन्दोदरीपति हूं, हे शोभने, तुम्हारेही निमित्त मैं ने यह यतिका रूप बनाया है ॥ ६२ ॥ हे वरारोहे ! बहिनीकी प्रेरणासे मैं यहां आया हूं, जब सुना कि जनस्थानमें खर और दूषण मृतक होगये ॥ ६३ ॥ इन मानुषपतिको छोड़कर मुझ राजाको अपना पति बनाओ, तुम्हारे पति राज्यलक्ष्मीसे हीन होकर निर्बल वनवासी हैं ॥ ६४ ॥ तुम मन्दोदरीके ऊपर मेरी पटरानी हो, हे तन्वंगी ! मैं तुम्हारा दास हूं, तुम मेरी स्वामिनी हो ॥ ६५ ॥ मैं लोकपालोंका जीतनेवाला तुम्हारे चरणोंमें पड़ता हूं. हे जानकी ! तुम मेरा हाथ पकड़कर मुझे सनाथ करो ॥ ६६ ॥ मैंने पहले तुमको तुम्हारे पितासेभी माँगा था, पर जनकने कहा मैं ने पण लगाया है ॥ ६७ ॥ तब रुद्रचापके भयसे मैं स्वयंवरमें नहीं गया; पर मेरा मन तुममेंही स्थित है मैं विरहातुर हो रहा हूं ॥ ६८ ॥ इस वनमें तुम्हारा रहना सुनकर पूर्व अनुरागसे मोहित हुआ मैं हे अनवद्यअंगवाली ! यहां आया हूं तुम मेरा श्रम सफल करो ॥ ६९ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषायां अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः २९.

व्यासजी बोले यह दुष्टवचन सुनतेही जानकी भयसे विह्वल होगई और कांप गई फिर मनको स्थिर कर वचन बोली ॥ १ ॥ हे पुलस्त्यकी सन्तान ! कामसे मोहित हो क्यों असत्य वचन बोलते हो? मैं स्वैरिणी स्त्री नहीं किन्तु जनकके कुलमें उत्पन्न हूं ॥ २ ॥ हे रावण ! तुम लंकाको चले जाओ नहीं तो रामचन्द्र तुमको मारेंगे, और मेरे निमित्त तुम्हारा मरण होगा; इसमें सन्देह नहीं ॥ ३ ॥ ऐसा कहकर जानकी पर्णशालामें अग्निके समीप चलीगई और लोकोंके डरानेवाले रावणसे कहा जा जा ॥ ४ ॥ तब रावण अपना रूप प्रगट कर कुटीके समीप गया तब भयसे व्याकुल रोती हुई उस बालाको उसने बलसे ग्रहण किया ॥ ५ ॥ उस समय राम २ लक्ष्मण २ ऐसा कहती हुई रोनेलगी और पापी उनको रथमें बैठाय ले चला ॥ ६ ॥ मार्गमें जाते अरुणपुत्र जटायुने उसको रोका, उन दोनोंका वनान्तरमें बड़ा संग्राम हुआ ॥ ७ ॥ वह राक्षस जटायुको मार जानकीको लेगया, वह कुररीकी समान रुदन करती लंकाको गई ॥ ८ ॥ राक्षसियोंके पहरेमें अशोकवाटिकामें रावणने स्थापित की, और सामदानादिके प्रयोगसे भी वह अपने चरित्रसे चलायमान न हुई ॥ ९ ॥ रामचंद्र भी उस दैत्यको मारकर लौटे और लक्ष्मणको आता देखकर बोले हे अनुज !

यह तुमने क्या विषम वातकी? ॥ १० ॥ इकली प्रियाको छोड़कर तुम यहाँ कैसे आये? क्या उस पापीका शब्द सुनकर आगये ? यह रामने कहा ॥ ११ ॥ लक्ष्मण बोले हे प्रभो ! मैं सीताके वाग्बाणसे पीडित होकर कालयोगसे यहां चलाआया इसमें सन्देह नहीं है ॥ १२ ॥ तब उन्होंने पर्णशालामें जाकर देखा तौ जानकी नहीं हैं, खाली आश्रम देखकर दुःखी हुए और दोनों जानकीके खोजनेका यत्न करनेलगे ॥ १३ ॥ खोजते २ वहां आये जहां वह पक्षी पतित हुआ था. उस समय पृथ्वीपर पड़े जटायुके प्राणमात्र शेष थे ॥ १४ ॥ उसने कहा जानकीको रावण हरकर लेगया. मैंने उस पापात्माको युद्धमें रोका, सो वह मुझे मारगया ॥ ॥ १५ ॥ ऐसा कहनेपर उसके प्राण निकलगये, रामचन्द्रने उसका और्ध्वदैहिक संस्कार कर लक्ष्मणसहित आगे गमन किया ॥ १६ ॥ और कवंधको मारकर उसे शापसे मुक्तकिया. उसके वचनसे रामने सुग्रीवसे मित्रता की ॥ १७ ॥ रामचन्द्रने वीर वालीको मारकर किष्किंधाका राज्य जानकीके लानेकी प्रतिज्ञासे सुग्रीवको दिया ॥ १८ ॥ वहीं प्रवर्षणपर आप लक्ष्मणसहित वर्षाके चार महीने रहे और रावणसे हरीहुई जानकीको चित्तमें विचारतेरहे ॥ १९ ॥ सीताके विरहसे पीडित हुए राम लक्ष्मणसे बोले हे लक्ष्मण ! अब कैकेयी पूर्णमनोरथ हुई ॥ २० ॥ यदि जानकी न मिली तो मैं उनके विना न जिऊंगा जानकीके विना मैं अयोध्या न जाऊंगा ॥ २१ ॥ राज्य गया, वनमें, वासकरना पड़ा, पिताका मरण और प्रियाकाहरण हुआ, वह दुष्टात्मा दैव मुझको पीडित करता है जाने आगे दैव क्या करैगा ॥ २२ ॥ हे लक्ष्मण! प्राणियोंको भवितव्य नहीं जाना जाता, हे तात ! न जाने दुःखरूप हमारी क्या गति होगी? ॥ २३ ॥ हम दोनों राजपुत्र मनुके वंशमें जन्म प्राप्त कर अपने पूर्वकृतके अनुसार वनमें दुःखभागी हुए ॥ २४ ॥ हे लक्ष्मण ! तुमभी दैवयोगसे भोग छोड़कर मेरे साथ चले आये, अब दुःख भोगो ॥ २५ ॥ हमारे कुलमें हमारी समान कोई दुःखभागी न हुआ होगा, मुझसा अकिंचन निःक्षम न कोई हुआ न होगा ॥ २६ ॥ हे लक्ष्मण ! दुःखसागरमें मग्न हुआ मैं क्या करूं? मुझ असहायके तरनेका कोई उपाय नहीं है ॥ २७ ॥ हे वीर ! हमको धन और बल नहीं है आपही एक सहायक हो इस अपने कियेके भोगमें किसपर क्रोध करूं ? ॥ २८ ॥ क्षणमें इन्द्रकी समान राज्य चलागया और वनवास प्राप्त हुआ विधाताकी विधि कौन जानसक्ता है? ॥ २९ ॥ वालभावसे जानकी भी हमारे साथ चली आई दुष्ट प्रारब्धने उसको

कठिन दुःखमें प्राप्त करदिया ॥ ३० ॥ रावणके यहां उस अवलाको कितना दुःख हुआ होगा, वह पतिव्रता सुशीला मुझमें अधिक प्रीति करती है ॥ ३१ ॥ हे लक्ष्मण ! जानकी कभी रावणके वशीभूत न होगी, वह वरारोहा जनकात्मजा कभी स्वच्छन्दचारिणी न होगी ॥ ३२ ॥ बल करनेपर जानकी अवश्य प्राण त्यागदेगी, यह तो निश्चय है रावणके वशीभूत न होगी ॥ ३३ ॥ हे वीर ! यदि जानकी मरगई तो मैं अवश्य प्राण त्यागदूंगा, यदि वह न रही तो मेरे देहसे क्या होगा? ॥ ३४ ॥ इस प्रकारसे विलाप करते कमललोचन रामसे धर्मात्मा लक्ष्मण समझाते मधुर वाणीसे बोले ॥ ३५ ॥ हे महाबाहो ! कातरताको छोड़कर धैर्य करो, मैं उस राक्षसाधमको मारकर जानकीको लाऊंगा ॥ ३६ ॥ आपत्ति और सम्पत्तिमें जो समानधीरतासे रहते हैं वही धीर हैं और अल्पबुद्धिवाले तो विभव होनेपरभी थोड़ेही कष्टमें व्याकुल होजाते हैं ॥ ३७ ॥ संयोग वियोग दोनोंही दैवाधीन हैं, जब यह देह आत्मा है ही नहीं तो शोक किस बातका है? ॥ ३८ ॥ राज्यसे जैसे वनवास और जानकीका हरण हुआ इसीप्रकार कुछ कालमें संयोगभी होगा ॥ ३९ ॥ हे जानकीके पति ! प्राप्त होनेवाले सुखदुःखोंका कभी निर्वर्तन नहीं होता; इस कारण तुम दुःख त्यागदो ॥ ४० ॥ सेनामें बड़े बन्दर हैं यह चारों दिशाओंको जायँगे, वे अवश्य जानकीकी सुधि लावेंगे ॥ ४१ ॥ मार्गकी स्थिति जानकर पूर्ण पराक्रम कर वहां जाय उस पापकर्माको मार जानकीको लावेंगे ॥ ४२ ॥ अथवा सेनासहित भरत और शत्रुघ्नको बुलाकर हम शत्रुको मारेंगे हे स्वामिन् ! आप क्यों वृथा शोक करतेहो ? ॥ ४३ ॥ रघुने एकही रथसे सर्व दिशा जीती थीं, हे राघव ! उनके वंशमें प्रगट होकर आप क्यों शोक करतेहो? ॥ ४४ ॥ मैं इकलाही सब सुरअसुरोंके जीतनेमें समर्थ हूं, फिर आपकी सहायतायुक्त होकर कुलपांसु रावणका मारना क्या बड़ीबात है? ॥ ४५ ॥ हे रघुनन्दन ! अथवा जनकको हम सहायताको बुलावेंगे और सुरोंको कंटकरूप दुराचारी उसरावणको मारेंगे ॥ ४६ ॥ सुखके उपरान्त दुःख दुःखके उपरान्त सुखहोता है हेराम ! यह चक्रकी नेमिसे समान घुमते हैं ॥ ४७ ॥ जिसका मन बहुत कातर है यह दुःखसुखमें शोकसागरमें मग्न होजाता है और कभी सुखी नहीं होता ॥ ४८ ॥ हे राम ! एक समय इन्द्रको भी दुःख हुआ था उस समय सब देवताओंने इन्द्रके पदमें नहुषको स्थापित किया था ॥ ४९ ॥ और इन्द्र अपना पद त्यागकर अज्ञातवास करते हुए बहुत वर्षोंतक कमलनालमें रहे ॥ ५० ॥ और फिर कुछ समयके उपरान्त अपने पदपर

स्थित हुए और शापसे अजगर हो नहुष पृथ्वीपर गिरा ॥ ५१ ॥ इन्द्राणीकी इच्छा करने और ब्राह्मणोंके तिरस्कार करनेसे अगस्त्यके क्रोधसे राजाको सर्पकी देह प्राप्त हुई ॥ ५२ ॥ हे राम! इससे दुःख प्राप्त होनेपर शोक न करो, बुद्धिमान्‌को उद्यममें चित्त लगाकर स्थित होना चाहिये ॥ ५३ ॥ हे महाभाग ! आप समर्थ और सर्वज्ञ हो, प्राकृतकी समान आत्माको क्यों शोकयुक्त करते हो ॥ ५४ ॥ व्यासजी बोले इस प्रकार लक्ष्मणने रामको समझाया तब शोकत्यागन कर रामचन्द्र स्वस्थ हुए ॥ ५५ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भाषायां एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

त्रिंशोऽध्यायः ३०.

व्यासजी बोले इसप्रकारसे यह दोनों वार्ता करके जब मौन हुए उसी समय आकाश मार्गसे देवर्षि नारदजी आये ॥ १ ॥ स्वर ग्रामसे विभूषित महती वीणाको बजाते तथा बृहद्रथन्तर साम गायन करते प्राप्त हुए ॥ २ ॥ रघुनाथजीने महर्षिको आया देख सुन्दर धर्मरूप वृष दिया और महाद्युतिमान्‌ने उनको अर्घ्यपाद्य और आसन दिया ॥ ३ ॥ और परमपूजा कर हाथ जोड़कर उपस्थित हुए और मुनिसे सत्कृत हो रामचन्द्रभगवान् उनके समीप बैठे ॥ ४ ॥ अनुजसहित बैठे मनमें दुःखी रामचन्द्रसे मुनिश्रेष्ठ नारदजी कुशल पूँछनेलगे ॥ ५ ॥ हे राम ! साधारण मनुष्यकी समान क्यों शोककरतेहो, मैं जानता हूं दुरात्मा रावण जानकीको हरकर लेगया है ॥ ६ ॥ मैं ने देवलोकमेंही यह वार्ता सुनी थी कि, दुरात्मा रावणने अपनी मृत्युके निमित्तही जानकी हरण की है ॥ ७ ॥ हे राम ! तुम्हारा जन्म रावणके वधके निमित्तही है. हे नराधिप ! इसीकारण जानकीका हरण हुआ है ॥ ८ ॥ पूर्वजन्ममें यह वैदेही मुनिकी पुत्री बड़ी तपस्वीनी थीं, इन मनोहराको वनमें तप करते रावणने देखा था ॥ ९ ॥ हे राघव ! रावणने भार्या होनेकी प्रार्थना की जब उसने तिरस्कार किया तब रावणने बलसे केश ग्रहण किये ॥ १० ॥ हे राम ! उसीसमय उस तापसीने इसके स्पर्शसे दूषित देहको त्यागनेकी इच्छासे क्रोध कर उसी समय रावणको शाप दिया ॥ ११ ॥ हे दुरात्मन्! मैं तेरे नाशके निमित्त फिर भूमिमें अवतार लूंगी, उस अयोनिज वरा नारीने अपना शरीर त्यागन किया ॥ १२ ॥ वही यह लक्ष्मीके अंगसे प्रगट होकर उस राक्षससे गृहीत हुई है. उसने कुलनाशके निमित्तही मालाके भ्रमसे सर्पिणी ग्रहण की है ॥ १३ ॥ हे राम! तुम्हारा जन्म निशाचरोंके नाशके निमित्तहीहै और देवताओंकी प्रार्थनास अजन्मा हारिरूप आपने जन्म लिया है ॥ १४ ॥ हे महाबाहो ! तुम धैर्य धारण

करो वहां वह अवश सती धर्ममें तत्पर सीता निरन्तर आपका ध्यान करती है॥ १५॥ स्वयं इन्द्रने कामधेनुका दूध पात्रमें जानकीके पानके निमित्त प्रदान किया ॥ १६ ॥ कामधेनुके दुग्धपानसे वह भूख प्याससे वर्जित हुई ! स्थित कमलपत्राक्षी मैंने देखी है ॥ १७ ॥ हे राम ! मैं उस दैत्यके नाशका उपाय कहता हूं. तुम श्रद्धापूर्वक आश्विनमासमें व्रत करो ॥ १८ ॥ नवरात्रका उपवास और भगवतीका पूजन करो, हे राम ! जप होमके विधानसे सब सिद्धि होगी ॥ १९ ॥ मेध्य पशुओंकी भगवतीको बलि दो और दशांश हवन करके तुम अधिक समर्थ होंगे॥ २०॥ इस व्रतको पहले विष्णु और महादेवने किया था तथा ब्रह्माजीनेभी किया और स्वर्गमें स्थित इन्द्रनेभी इस व्रतको किया था ॥ २१ ॥ हे राम ! सुखी पुरुषोंकोभी नवरात्रका सुन्दर व्रत करना चाहिये और कष्टमें प्राप्त हुए पुरुषोंको तो अवश्य व्रत करना चाहिये ॥ २२ ॥ हे राम ! निःसंदेह यह व्रत विश्वामित्रने किया था, भृगु वसिष्ठ और कश्यपनेभी यह व्रत किया था ॥ २३ ॥ बृहस्पतिने दारहरणमें यही व्रत किया था, हे राजेन्द्र ! तुमभी रावणवधके निमित्त यह व्रत करो ॥ २४ ॥ इन्द्रने वृत्रासुरके नाशको और शंकरने त्रिपुरनाशके निमित्त पहले यह व्रत किया था ॥ २५ ॥ हरिने मधुनाशके निमित्त मेरुमें यह व्रत किया था, हे राम ! तुमभी सावधान होकर इसे करो ॥ २६ ॥ श्रीराम बोले वह कौन देवी? क्या उसका प्रभाव है? कहांसे हुई? क्या नाम है? हे दयानिधे! उनका व्रत कैसा है? आप सर्वज्ञ हो कहिये ॥ २७ ॥ नारदजी बोले हे राम ! सुनो ! वह विद्या आद्या सनातनी शक्ति है, वह सब कामनादायक देवी पूजनसे सब दुःख नाशनेवाली है, आद्या कहनेसे सबकी कारणभूत ब्रह्मरूपा तथा आदिसिद्ध जड़रूप मायावाली अग्निमें अग्निशक्तिकी समान ब्रह्ममें स्थित है, यह दोनों मायाविशिष्टरूप देवीपदवाच्य हैं. वही जगत्कारण माया शरीरमें प्रविष्ट होकर अनेकरूपवाली होती है, यह प्रथम प्रश्नका उत्तर हुआ; यही बृहदारण्यके गार्गिब्राह्मणमें स्पष्टस्वरूपसे कहा है, [यदूर्ध्वं याज्ञवल्क्यादिवो यदवाक्पृथिव्यामंतराइत्यादि] यह पूँछनेपर कि यह जगत् किससे ओतप्रोत है, तब इसी विषयका उत्तर है [एतद्वै तदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्ति इत्यादि] यह जो पूँछा कि, क्या प्रभाववाली है? इसपर कहते हैं. सबका कर्तृत्वही इसका प्रभाव है [तथाक्षरात्संभवतीह विश्वम् इति श्रुतेः] ॥ २८ ॥ हे राम ! वह सब जन्तु और ब्रह्मादिका कारण है. उसकी भक्तिके विना कोईभी गमन करनेको समर्थ नहीं है ॥ २९ ॥ विष्णुमें पालनरूप हमारे पिता ब्रह्मामें कर्तृरूप और रुद्रमें संहाररूपसे

निवास करती है॥ ३०॥कौन है? इस पर कहते हैं. जो कुछ त्रिलोकीमें सद् असद्रूप
है उस सबकी जो शक्ति है उसकी उत्पत्ति किस प्रकार हो सक्ती है ? ॥ ३१ ॥
जिस समय रुद्र ब्रह्मा विष्णु सूर्य इन्द्रादिदेवता भूमि पर्वत कुछ न थे ॥ ३२ ॥
तब उस परमपुरुषसे यह प्रकृति पूर्ण होकर उससे युक्तही युगादिमें निर्गुण शिवा
शक्ति विहार करती है ॥ ३३ ॥ पीछे यही सगुणा होकर जगत् उत्पन्नकरती है,
पहले ब्रह्मादिको प्रगट करके और उनको सब प्रकार शक्ति देकर सम्पन्न करती है
॥ ३४॥ उसीको जानकर यह प्राणी संसारबंधनसे मुक्त होजाता है वह विद्या वेदकी
आद्या वेदकी करनेवाली जान्नी चाहिये ॥ ३५॥ उसके असंख्य नाम ब्रह्मादिने गुण
कर्मके विधानसे कहे हैं, तुमसे कहांतक कहैं ॥ ३६ ॥ अकारसे लेकर क्षकारान्त
सब स्वर वर्णोंसे युक्त हे रघुनन्दन ! उसके अनेक नाम होते हैं ॥ ३७ ॥ श्रीराम-
चन्द्रजी बोले हे नारदजी ! आप संक्षेपसे इस व्रतका विधान कहिये अभी मैं श्रद्धा-
पूर्वक देवीका आराधन करूंगा ॥ ३८ ॥ नारदजी बोले हे राम ! समस्थानमें सिंहा-
सन स्थापन कर उसपर भगवतीको स्थापनकर विधिपूर्वक नवरात्रव्रत कीजिये ॥
॥३९॥ हे भगवन् ! आपके इस कार्यमें आचार्य मैं हूंगा, देवकार्य विधानके निमित्त
मुझको भी उत्साह है ॥ ४० ॥ व्यासजी बोले यह सत्य उनके वचन सुनकर प्रताप-
वान् रामचन्द्र सुन्दर सिंहासन करवाय उसपर शिवाको स्थापनकर ॥ ४१ ॥
व्रतपूर्वक भगवानने विधिसे पूजनकिया, आश्विनमासके उस गिरिवरपर प्राप्त होनेपर
॥ ४२ ॥ उपवासमें तत्पर होकर रामने उत्तमव्रत किया, होम बलिदान और
विधिपूर्वक पूजन किया ॥ ४३ ॥ प्रेमपूर्वक दोनों भ्राताओंने नारदजीकी सम्मतिसे
किया. अष्टमीके दिन आधी रातको देवी भगवती ॥ ४४ ॥ पूजित होकर सिंहपर
आरूढ हो दर्शन देतीहुई और पर्वतशृंगपर स्थित हो सानुज रामसे बोली ॥ ४५ ॥
भक्तिभावसे सन्तुष्ट हो मेघगंभीर भावसे देवी बोली. हेराम ! महाबाहो! मैं तुम्हारे व्रतसे
सन्तुष्ट हुई हूं ॥ ४६ ॥ जो तुम्हारे मनमें हो उस वरको मांगो, आप मनुवंशमें
नारायणअंशसे प्रगट हुएहो ॥ ४७ ॥ रावणके वधके निमित्तही देवताओंने तुम्हारी
प्रार्थना की है, पहले तुमने मत्स्यरूप धारण कर घोररूप राक्षसको मार ॥ ४८ ॥
देवताओंके हितकी इच्छासे वेदोंकी रक्षा की, कच्छपरूप धारणकर मंदरपर्वतको
धारण किया ॥ ४९ ॥ और समुद्रका मथनकर देवताओंको सन्तुष्ट किया और
वाराहरूप धारणकर अपने दांतोंके अग्रभागपर ॥ ५० ॥ मेदिनीको धारणकर
हिरण्याक्षको मारा और इसीप्रकार पूर्वमें नृसिंहशरीर धारण करके हिरण्यकशिपुको

मार ॥ ५१ ॥ हे राघव ! तुमने प्रह्लादकी रक्षाकी, वामनरूप धारणकर बलिको छला ॥ ५२ ॥ यह आप देवकार्यसिद्धिके निमित्त इन्द्रके अनुज हुए थे, तुमही विष्णुके अंश होकर जमदग्निके पुत्र हुए॥ ५३ ॥ और क्षत्रियोंका नाश कर ब्राह्मणोंको भूमि प्रदान की,इसीप्रकार हे काकुत्स्थ ! अब आप दशरथके पुत्र हुएहो॥ ५४ ॥ रावणसे पीडित हुए देवतोंने आपकी प्रार्थना की यह देवांशसे हुए बली वानर आपकी सहायता करैंगे ॥५५॥ हे नरव्याघ्र ! यह हमारी शक्तिसे संयुक्त हैं और शेषके अंशसे यह तुम्हारे अनुज लक्ष्मण हैं, यह रावणके पुत्रको मारैंगे ॥ ५६ ॥ हे पापरहित ! इसमें कुछभी सन्देह नहीं है और वसन्तमें भी श्रद्धापूर्वक मेरा सेवन करना चाहिये॥ ५७॥ पापिष्ठ रावणको मारकर यथायोग्य राज्य करना. ग्यारह सहस्र वर्षतक पृथ्वीमें सुख भोगकर ॥ ५८ ॥ हे रघुश्रेष्ठ ! फिर राज्य कर स्वर्गलोकको जाओगे. व्यासजी बोले ऐसा कह देवी अन्तर्धान हुई और रघुनाथजी बड़े प्रसन्न हुए॥ ५९॥ और उस व्रतको समाप्त कर दशमीके दिन उन्होंसे प्रयाण किया,विजया दशमीका पूजनकर अनेक दान दिये ॥ ६० ॥ सुग्रीवकी सेनासे युक्त अनुजसहित रामचन्द्र परमशक्तिसे प्रेरित हो पूर्णकामनासे सागरके समीप जाय पुल बाँधकर पार हो अमरशत्रु अर्थात् देवशत्रु रावणको मारकर कीर्तिमान् हुए ॥ ६१ ॥ जो मनुष्य भक्तिसे देवीका चरित्र सुन्ते हैं वे अनेक भोग भोगकर परमपदको प्राप्त होते हैं ॥ ६२ ॥ दूसरे पुराणभी बड़े विस्तारयुक्त हैं परन्तु वे इस भागवतकी समान नहीं ऐसी मेरी मति है॥ ६३ ॥

इति श्रीशैवकुलोत्पन्नमहामहिमकान्यकुब्जपण्डितसुखानन्दमिश्रात्मजपण्डित-ज्वालाप्रसादमिश्रकृते देवीभागवतव्याख्याने तृतीयस्कन्धे भाषायां त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ श्रीरस्तु ।

इस तृतीयस्कन्धमें व्यासजीने ॥ १७४६ श्लोक रचे हैं जो अतिश्रेष्ठ हैं ॥

दोहा—जगतजननिके पदकमल, प्रेमसहित मन लाय ।
एहि तृतीयस्कन्धकी, भाषा लिखी बनाय ॥ १ ॥
वसत रामगंगानिकट, नगर मुरादाबाद ।
तहाँ भजन अम्बा करत, द्विज ज्वालाप्रसाद ॥ २ ॥

शुभमस्तु ।

खेमराज श्रीकृष्णदास "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस-खेतवाडी-(बंबई.)

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ श्रीमद्देवीभागवत।

चतुर्थस्कन्धः ४.

प्रथमोऽध्यायः १.

दो०—जेहि उन्मेषनिमेषते,प्रलय जगत पुनि होय।भुवनेशानी सच्चिदा,नंदरूपिणीजोय १

ताके युगपदकमलको, वंदौं वारंवार।नेक ध्यानके कियेते, छुटत बंधसंसार॥२॥

जनमेजय बोले हे सर्वज्ञाननिधे! हे प्रभो! हे विमलात्मन्! हे मुनिवर! व्यासदेव आप सदाही मेरे कुलकी मंगलकामना करते हैं, मैं आपसे कई प्रश्न पूँछनेकी इच्छा करता हूं ॥ १ ॥ हे मुनिवर ! मैंने पूर्वमें सुना है कि, स्वयं भगवान् हरि जिनके पुत्रभावको प्राप्त हुए थे, वे प्रतापवान् ॥ २॥ आनकदुन्दुभि देवतागणोंकेभी पूजनीय श्रीमान् शूरसेनके पुत्र वसुदेव सदा धर्ममें निरत रहकरभी कंसके कारागारमें बन्दी हुए थे इसका क्या कारण है? ॥ ३ ॥ देवकी भार्याके सहित उन्होंने क्या अपराध किया था? किसलिये ययातिकुलनन्दन कंसराजने देवकीके छे बाल पुत्रोंका विनाश किया था ? ॥ ४ ॥ किसलिये भगवान् हरिने वसुदेवजीके पुत्र होकर कारागारमें जन्म ग्रहण किया था ? ॥ ५ ॥ किसलिये सात्वतकुलपति भगवान् वासुदेव गोकुलमें लायेगये थे ? क्षत्रियवंशमें उत्पन्न होकर किसकारण वे लोकमें गोपालकुलज कहकर विख्यात हुए थे ॥ ६ ॥ अपरिमिततेजसम्पन्न श्रीकृष्णके मातापिता वसुदेव और देवकीको किस कारण बेड़ियें पहिराई गई थीं ? जो जगत्की सृष्टि स्थिति और प्रलय करनेमें समर्थ हैं उन अपरिमित प्रभाव भगवान् हरिने जननीके जठरमें अवस्थित होकरभी किस कारण निगड़बद्ध पितामाताको तत्काल कारागारसे नहीं छुड़ाया ॥ ७ ॥ जो महात्मागणोंके पक्षमेंभी दुर्जय अपने अपने प्राक्तनकर्मके फलसे कारावंधको प्राप्त हुए थे, यह नहीं कहसक्के ॥ ८ ॥ क्यों कि परमपुरुष श्रीकृष्णने जिस स्थानमें जन्म ग्रहण किया था. उस स्थानमें क्या फिर प्राक्तनकर्मका फलभोग

होसक्ता है ? और वसुदेवके औरस एवं देवकीके गर्भसे उत्पन्न होकर अन्तमें जो कंसके हाथसे बालक मारे गये वे पूर्व जन्ममें कौन थे ? ॥ ९ ॥ जो कन्या कंसके हाथसे शिलापर पटकी जाकर तत्काल अष्टभुजा होकर आकाशमार्गमें चलीगई थी, वह कौन थी ? हे विमलात्मन् ! जिन्होंने अनेकों स्त्रियोंका पाणिग्रहण किया था, उन श्रीहरिने किसप्रकार गृहस्थधर्मका आचरण किया ॥ १० ॥ और उन्होंने उस जन्ममें जो जो कर्म करके जिसप्रकार देह त्याग किया, वह सब विषय मुझसे वर्णन कीजिये। मैंने किंवदन्तीसे जो जो सुना है, वह सब मेरे मनको मोहित किये डालता है ॥ ११ ॥ हे भगवन् ! उसमें सुना है कि वासुदेवके चरित्र कभी ईश्वरकी समान और कभी सामान्य जीवके समान हैं, अत एव वे ईश्वर हैं, अथवा सामान्य मनुष्य हैं इस प्रकार संशयविजृम्भित मोहमें मेरा मन व्याकुल होगया है, आप भगवान् वासुदेवके चरित्र यथार्थ रीतिसे वर्णन करके मेरा यह मोह दूर कीजिये ॥ १२ ॥ हे भगवन् ! पूर्व कालमें धर्मपुत्र महात्मा पुरातन मुनि ऋषिश्रेष्ठ नर नारायण नामक दो देवताओंने पवित्र बद्रिकाश्रममें अनेकों वर्षतक अति उत्तम तपस्या की थी ॥ १३ ॥ ये दोनों मुनि विष्णुके अंश थे, इन्होंने जगत्‌का कल्याण साधनेके लिये निःस्पृह जितेन्द्रिय और निराहार हो, काम क्रोधादि शत्रुओंको परास्त कर अति उत्तम तपस्या की थी ॥ १४ ॥ सर्वज्ञानयुक्त नारदादि मुनिगण कहते हैं कि सुप्रसिद्ध महाबल अर्जुन और कृष्ण पूर्वोक्त पुरातन दोनों मुनियोंके अंशावतार थे ॥ १५ ॥ वह नर नारायण दोनों देवता पूर्वदेहके विद्यमान रहते भी किस प्रकार देहान्तर ग्रहणपूर्वक कृष्णार्जुन होकर उत्पन्न हुए थे ॥ १६ ॥ और जिन दोनों मुनीन्द्रोंने मुक्तिके लिये उग्र तपस्या करके योगसिद्धि लाभ की थी उन्होंने किस प्रकार देह धारण किया था ? ॥ १७ ॥ हे ब्रह्मन् ! मैंने सुना है, स्वधर्मनिरत शूद्रदेहान्तमें वैश्य होकर जन्म ग्रहण करता है. इसी प्रकार वैश्य सदाचारनिष्ठ होनेसे क्षत्रियकुलमें जन्म लेता है और सदाचारसंपन्न क्षत्रिय देह त्यागकर ब्राह्मणके कुलमें जन्म ग्रहण करता है ॥ १८ ॥ और ब्राह्मण यदि निःस्पृह और शान्ति यथावलम्बी हो तो संसारकी यंत्रणासे छूट जाता है. हे भगवन् ! वे नर नारायण तपस्याद्वारा शरीर सुखाकरभी जो क्षत्रिय हुए थे यह विषय मुझे नियमके विरुद्ध बोध होता है ॥ १९ ॥ उन्होंने योगी होकर भी किस कर्मके द्वारा पुनर्वार जन्म ग्रहण किया था ? अथवा वे ब्राह्मण हो शापवशतःही क्षत्रिय होकर

उत्पन्न हुए थे॥ २०॥ जो हो हे मुने! आप मेरे निकट इसका कारण कहकर संशय दूर कीजिये. मैं ने सुना है कि ब्रह्मशापसे यदुकुलध्वंस हुआ॥ २१॥ और श्रीकृष्ण ईश्वरावतार होकरभी गान्धारीके शापसे उनका कुलक्षय हुआ था! असुरराज शम्बरने किसलिये प्रद्युम्नको हरणकिया था?॥ २२॥ देवदेव वासुदेव जनार्दनके विद्यमान रहतेभी सूतिकागृहसे पुत्रका हरण अत्यन्त दुर्घट बोध होता है॥ २३॥ शम्बरासुर दुरतिक्रम्य द्वारकामध्यस्थित हरिके गृहसे प्रद्युम्नको जब हरण करके लेगया. तब वासुदेव दिव्यचक्षुद्वारा क्यों नहीं देखसके?॥ २४॥ हे ब्रह्मन्! वासुदेवके देहत्याग करनेपर दस्युगणोंने जो उनकी पत्नीको लूटलिया था, इस विषयमें मुझको महान् संशय उपस्थित हुआ है॥ २५॥ हे मुनिसत्तम! देवदेव वासुदेवके स्वर्गगमन करतेही उक्त व्यापार क्यों संघटित हुआ? हे ब्रह्मन्! इसके अतिरिक्त मुझे और एक बड़ा संशय है. जो मनमें उदय होकर चित्तको चंचल करता है॥ २६॥ हे साधो! श्रीकृष्ण विष्णुके अंशसे उत्पन्न हैं. मुनिगणभी कहते हैं कि भूभारहरण करनेके लिये भगवान् हरि पृथ्वीमें अवतीर्ण हुए थे, उन्हीं श्रीकृष्णने जरासन्धके भयसे मथुराका राज्य परित्यागन करके॥ २७॥ सैन्य और सुहृद्गणोंके सहित द्वारका नगरीमें गमन किया था इस विषयमें मुझको आश्चर्यही बोध होता है और देखो यदि अमेयात्मा वासुदेव पृथ्वीका भारहरण॥ २८॥ पापात्मा गणोंका विनाश और धर्मस्थापनके लिये अवतीर्ण हुए थे, तो जिन दुष्ट तस्करोंने उनकी पत्नियोंका लुंठन कर लिया था, उनका पहिले उन्होंने विनाश क्यों नहीं किया?॥ २९॥ वे सर्वज्ञ होकर भी क्या उन चारोंको नहीं जानते थे॥ ३०॥ यद्यपि उन्होंने धर्मनिरत महात्मा पांडव गणोंकी रक्षाकी थी किन्तु अतिमहात्मा धर्मपरायण भीष्म द्रोणादिको भूभार विचारकर किस प्रकार उनका वधसाधन किया था? इस विषयमें मुझको महान् संशय उत्पन्न रहता है॥ ३१॥ युधिष्ठिर इत्यादि पांडुपुत्रगण सदाचार देवांशसंभूत कृष्णभक्त थे. उन्होंने भक्तिभावसे विधिपूर्वक राजसूय महायज्ञ सम्पादन करके॥ ३२॥ ब्राह्मणोंको अनेक प्रकारकी दक्षिणा प्रदान पूर्वक वासुदेवके आश्रित हुये थे॥ ३३॥ तथापि हे मुने! उन्होंने किस प्रकार घोरतर दुःख पाया था? उनकी पुण्यराशि कहां हरण होगई थी? हे मुनिवर! उन्होंने ऐसा क्या घोर पापकिया था. जिससे उनको सदाही क्लेश भोगना पड़ा था?॥ ३४॥ महाभागा द्रौपदी वेदीके मध्यसे उत्पन्नहुई थी. वह लक्ष्मीके अंशसे उत्पन्न साध्वी और कृष्णभक्तियुक्त थी॥ ३५॥ वह किसलिये वारंवार अतुलनीय घोरतर दुःखको प्राप्तहुई थी? हाय! द्रौपदी दुःशासनके केशाकर्षण करनेसे अत्यंत पीड़ित॥ ३६॥ एवं रजस्वला एकवस्त्रा और भीत होनेपरभी उस दुष्ट दुःशासन-

द्वारा राजसभामें लाईगयी थी, वह विराटनगरके मत्स्यराजाकी दासी ॥ ३७ ॥ और कुररीकी समान रोदन करनेपरभी कीचकद्वारा घर्षिता और अपमानिता हुई. हाय ! उस द्रौपदीके अत्यन्त दुःखित होकर क्रंदन करनेपरभी वह जयद्रथके द्वारा हरी जाकर ॥ ३८ ॥ अन्तमें बलवान् महात्मा पांडवगणोंसे छुड़ाईगई थी, हे मुनि-वर ! पूर्वजन्ममें उन पांडवगणोंने ऐसा क्या पाप किया था, जिसके द्वारा उनको इस प्रकारके घोरतर महाक्लेशमें पड़ना हुआ था? ॥ ३९ ॥ हे महामते ! मेरे पूर्वपुरुष-गणोंने राजसूय यज्ञका अनुष्ठान करकेभी किस कारण इसप्रकार अनेकभांतिके दुःख भोग किये थे? यह आप मेरे निकट वर्णन कीजिये ॥ ४० ॥ यदि कहो कि उन्होंने पूर्वजन्ममें किये कर्मके वश अत्यन्त महत् दुःख पाया था. यह संभव नहीं होसक्ता, क्यों कि वे देवांश थे, अतएव उनको इस प्रकार दुःख भोग किसलिये उपस्थित हुआ था? इस विषयमें मुझको महासंशय रहता है॥ ४१ ॥ कुन्तीके पुत्रोंने सदाचारसंपन्न होकर और इस जगत्को नाशमान जान करभी धनके लोभसे किस कारण छलपूर्वक भीष्मद्रोणादिका वध किया था ॥ ४२ ॥ उन्होंने, परमात्म-स्वरूप महात्मा वासुदेव हरिकर्तृक घोरतर पापकार्यमें प्रेरित होकर अपने कुलका क्षय किया था, इसका भी मुझे महाआश्चर्य है ॥ ४३ ॥ हे साधो ! वरन् भिक्षा-टनभी अच्छा, नीवारकणिकासे प्राणधारणभी अच्छा और शिल्पकर्मद्वारा जी-वनयात्रा निर्वाह करना भी अच्छा है, किन्तु लोभके वशीभूत हो अन्याययुद्धमें योधाओंका वध करना कभी कर्त्तव्य नहीं है ॥ ४४ ॥ हे मुनिसत्तम ! आपनेही, अतुलपराक्रमी समस्त गोलक पुत्रोंको उत्पन्न करके इस विच्छिन्न वंशकी रक्षा की थी ॥ ४५ ॥ और उस्से सत्कुलोत्पन्न उत्तरात्मज महानुभाव पिताने अकस्मात् किस कारण तपस्वी ब्राह्मणके गलेमें मरा हुआ सर्प डाला था ? इस विषयमें मुझको बड़ाही आश्चर्य है ॥ ४६ ॥ क्षत्रियकुलोत्पन्न कोई व्यक्ति भी ब्राह्मणके प्रति द्वेष प्रकाश नहीं करता, पिताने क्या मौनव्रतधारी तापसके प्रति इसप्रकार आचरण किया था ? आप क्या इस विषयको निश्चय करके कह सक्ते हैं? ॥ ४७ ॥ हे मुनिवर ! इन सब और अन्यान्य अनेक संदेहजालोंमें मेरा मन जटित होकर इस समय अत्यन्त विकल और व्याकुल होता है। हे दयानिधे ! हे साधो ! आप सर्वज्ञ हैं, अत एव कृपा करके मेरे इस चंचल मनको स्थिर कीजिये ॥ ४८ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

सूतजी बोले अनन्तर सत्यवतीपुत्र पुराणविद् वाक्यविशारद व्यासदेव इसप्रकार पूँछे जानेपर परीक्षितपुत्र शान्तचित्त जनमेजयसे ॥ १ ॥ संशयछेदन करनेवाले वचन कहनेलगे–हे राजन्! इस विषयमें और अधिक कहना क्या है? आप जानते हैं कि इस संसारमें कर्मकी गति सहजमें नहीं जानी जाती ॥ २॥ इसकी विचित्र गतिको देवता लोगभी जाननेमें समर्थ नहीं हैं, फिर मनुष्यगणोंके पक्षमें क्या कहूं? जिस समय यह त्रिगुणात्मक जगत् उत्पन्न होता है ॥ ३ ॥ तब कर्मके द्वारा ही सबकी उत्पत्ति होती है इसमें सन्देह नहीं. कर्मरूपी बीजसे उत्पन्न हुए समस्त जीवोंका आदि और अन्त नहीं है ॥ ४ ॥ वे इस कर्मबीजद्वाराही अनेक प्रकारकी योनिमें वारंवार जन्मग्रहण करते हैं और वारंवार मृत्युको प्राप्त होते हैं, क्यों कि कर्मोंका क्षय होनेसे जीवको कभी फिर देहके सहित संयुक्त होना नहीं पड़ता है ॥ ५ ॥ जीव-गणोंके कर्म शुभ, अशुभ और मिश्र हैं, तिनमें सात्विक कर्म शुभ, तामस कर्म अशुभ और राजसिक कर्म मिश्रित हैं. तत्वदर्शी पण्डितगणोंने जीवगणोंके कर्म ये तीन प्रकार कहकर निरूपण किये हैं ॥ ६ ॥ उक्त तीन प्रकारके कर्म फिर सञ्चित भविष्य और प्रारब्ध भेदसे तीन प्रकारमें विभक्त है यह तीन प्रकारके कर्म जीवके देहमें सदा विद्यमान रहते हैं ॥ ७ ॥ हे नृपते! ब्रह्मादि समस्तही इन कर्मोंके वशीभूत हैं और सुख दुःख, बुढापा, मृत्यु हर्ष, शोकादि ॥८॥ और काम, क्रोध और लोभादि देहगत समस्त गुण कर्म जनित अदृष्टके वशवर्ती होकर प्रादुर्भूत होते हैं॥ ९॥ अत एव रागद्वेषादि शारीरक संपूर्ण धर्म समानभावसे प्रभुता करते हैं देवता, मनुष्य और तिर्यग्जातिका ॥ १० ॥ पूर्व वैरानुयोगसे क्रोध ईर्षा द्वेषादि और स्नेह योगसे दया दाक्षिण्यादि समस्त प्रकारके विकार देहके सहित कर्मसूत्रमें बँध रहे हैं ॥ ११ ॥ हे राजन्! कर्मके विना किसी जीवकी भी उत्पत्ति नहीं होसक्ती ? कर्मके द्वाराही सूर्यदेव आकाशमंडलमें भ्रमण करते हैं, कर्मकेही द्वारा चंद्रमा राजयक्ष्मा रोगसे ग्रसित हुए हैं ॥ १२ ॥ और रुद्रदेवने कर्मद्वाराही कपालमाला धारणकी है। अत एव इस कर्मका आदिभी नहीं और मोक्षके पूर्व क्षणपर्यन्त विनाश भी नहीं है. इस कर्मकोही जगत्की उत्पत्तिके विषयमें एक मात्र कारण जानना चाहिये ॥ १३ ॥ इसी कारण स्थावर जंगमात्मक यह सब जगत् नित्य है, किन्तु

मुनिगण इसके नित्यानित्यविचारमें सर्वदा निमग्न रहते हैं ॥ १४ ॥ यह जगत् नित्य है, वा अनित्य. यह वे भलीभांति नहीं जानसक्ते. जहां माया विद्यमान है वहां जगत् नित्य प्रतीत होता है ॥ १५ ॥ क्यों कि जहां कारण सर्वतोभावसे वर्त्तमान है वहां कार्याभाव किस प्रकार कहसक्ते हैं? माया नित्य और सर्वदाही सबके कारणरूपमें विद्यमान रहती है ॥ १६ ॥ अतएव हे राजन्! पण्डितगण कर्मबीजको नित्य कहकर विवेचना करते हैं हे नृप! यह संपूर्ण जगत् कर्मद्वारा नियन्त्रित निबद्ध होकर सदाही परिवर्त्तित होता है ॥ १७ ॥ हे राजेंद्र! अमिततेज विष्णुकी इच्छासे नानाविध धर्ममय अनेकप्रकारकी योनियोंमें जन्मग्रहण करता है. हे नृपते! यदि अमितपराक्रमशाली विष्णुका जन्म इच्छामात्रसेही होता है ॥ १८ ॥ तो उन्होंने किसनिमित्त अधर्ममय अनेक योनियोंमें जन्म ग्रहणकिया है? किस निमित्त भगवान् विष्णुने युगयुगमें अनेकानेक नीचयोनिमें जन्म ग्रहण किया है? कौन स्वतंत्र पुरुष वैकुंठवास और अनेक प्रकारके सुख भोग छोड़कर ॥ १९ ॥ विष्ठामूत्रपरिपूरित मंदिरमें वास करनेकी इच्छा करता है? कौन बुद्धिमान् फूल तोडनेकी लीलाविलास जलकेलि और सुखासन छोड़कर ॥ २० ॥ गर्भगृहमें वास करनेकी अभिलाषा करेगा? रुईपूर्ण कोमल मनोरम दिव्य शय्या छोड़कर कौन बुद्धिमान् ॥ २१ ॥ अधोमुखसे गर्भवास करनेका अभिलाषी होगा? हे नरेन्द्र! अनेकप्रकारके हावभावपरिपूर्ण नृत्य गीत और वाद्य (बाजा) ॥ २२ ॥ परित्यागपूर्वक कौन नरकमें वास करनेकी मनमें भी चिन्ता करसक्ता है? हेराजेन्द्र! लक्ष्मीके अनुपम मनोरम अद्भुत दुस्त्यज अद्भुतभावको त्यागकर॥२३॥विष्ठामूत्रका रसपान करनेमें किस बुद्धिमान्की प्रवृत्ति उत्पन्न होसक्ती है? हे जनमेजय! इन तीनों भुवनोंमें गर्भवासकी समान अन्य नरक कुछ नहीं है ॥ २४ ॥ इसकेही भयसे भीत होकर मुनिगण कठिन तपस्या करते हैं, मुनिगण जिसके भयसे भीत हो राज्य और विषयभोगको त्यागकर वनमें चले जाते हैं ॥ २५ ॥ फिर ऐसा मूढ़ कौन है. जो उसी नरककी सेवा करनेके लिये इच्छापूर्वक कामना करेगा? देखो गर्भवासके समय कृमिगण दंशन करते हैं और जठराग्नि अधोभागमें ताप देती है ॥ २६ ॥ उसमें फिर गर्भवेष्टन मांसद्वारा सदाही निर्दयरूपमें बँधकर रहना होता है.हे राजेन्द्र! उसमें कुछभी तो सुख दिखाई नहीं देता यद्यपि कारागृहमें वास और बेडियोंसे बँधा रहनाभी अच्छा है॥२७॥किन्तु अल्पक्षणमात्रभी गर्भवास शुभकर नहीं है. प्रथम तो दशमास गर्भवासमें॥२८॥और

फिर दारुण योनियन्त्रद्वारा निकलनेके समयभी जीवको महादुःख अनुभव करना पड़ता है. बाल्यावस्थामें वचन कहनेका अभाव और अज्ञानताके कारण॥ २९ ॥ भूख प्यासके जतानेमें असमर्थ होता है. सुतरां पराधीन और अतिशय कातर होकर जीव दुःख पाते हैं फिर जब बालक भूंखा होकर रोता है, तिसको सुनकर माताभी चिन्तातुर होती है ॥ ३० ॥ तब वह बालकके रोगकी यातना अधिकतर जानकर औषधि पान करनेकी इच्छा करती है, इसीप्रकार बाल्यावस्थामेंभी अनेकप्रकारके दुःख उपस्थित होते हैं ॥ ३१ ॥ अत एव देवगण क्या सुख देखकर इस घोरतर दुःखसंकुल संसारमें अपनी इच्छानुसार जन्मग्रहण करनेकी इच्छा करेंगे ? हे नृप ! निरंतर संतोष सुख परित्यागकरके कौन मूढ़ देवताओंके संग श्रमदायक और सुख-नाशक संग्राम करनेकी इच्छा करेगा? हे नृपेन्द्र! ब्रह्मादिदेवतागण सभी॥ ३२॥ ३३॥ कृतकर्मका विपाक हेतु सर्वतोभावमें सुखदुःखभोग करते हैं. हे नृपोत्तम ! क्या देवता क्या मनुष्य क्या तिर्यग्जाति जो कोई देहधारी मात्र क्यों नहीं, सबकोही अपने अपने किये कर्मका शुभाशुभ फल अवश्य भोगना होगा. इसमें कुछभी संदेह नहीं है ॥ ३४ ॥ हे पार्थिव ! मनुष्य तपस्या दान और यज्ञद्वारा इन्द्रत्वको प्राप्त होसकता है. किन्तु पुण्य क्षीण होनेपर इन्द्रभी अपने स्थानसे पतित होता है ॥ ॥ ३५ ॥ देखो, रामावतारके समय देवताओंने उनकी सहायता करनेके लिये वानर होकर और कृष्णअवतारमें गोप व यादव होकर जन्म ग्रहण किया था ॥ ३६ ॥ इसीप्र-कार युगयुगमें ब्रह्माजीके द्वारा प्रेरित होकर भगवान् विष्णु धर्मकी रक्षाके लिये पृथ्वी-मंडलमें अवतीर्ण हुए थे ॥ ३७ ॥ हे पृथ्वीन्द्र ! इस प्रकार भगवान् हरि रथच-क्रकी समान परिवर्त्तित होकर अनेक योनियोंमें अनेकबार अद्भुतरूपसे वारंवार अव-तीर्ण हुए थे ॥ ३८ ॥ अमेयात्मा हरि स्वयं अशांशसे पृथ्वीमें अवतीर्ण होकर दैत्यसंहार रूप कर्तव्य कर्म संपादन करते हैं ॥ ३९ ॥ अत एव मैं तुमसे वह कल्याणदायक कृष्णकथाही करूंगा वह भगवान् विष्णुही यदुकुलमें अवतीर्ण हुए थे ॥ ४० ॥ हे राजन् ! कश्यपमुनिके अंशसे उत्पन्न प्रभावसंपन्न वसुदेवजी पूर्व शापके कारण जन्म ग्रहणकर पशुपालनवृत्तिद्वारा जीविकानिर्वाह करते थे ॥ ४१ ॥ हे नृपवर ! कश्यप ऋषिकी दोनों पत्नी अदिति और सुरसाने शापके वश ॥ ४२ ॥ देवकी और रोहिणी दो भगिनी रूपमें जन्म ग्रहण किया था. हे भरतर्षभ ! मैंने इसप्रकार सुना है कि जलाधिपति वरुणजीने किसी समय क्रोधमें भरकर उनको शाप दिया था ॥ ४३ ॥ जनमेजय बोले हे महामते ! महर्षि कश्यपजीने क्या

अपराध किया था जिसके द्वारा उन्होंने भार्याके सहित पशुजीवी होकर जन्मग्रहण किया था ॥ ४४ ॥ वैकुण्ठवासी अखंडितात्मा विष्णुने किस निमित्त गोकुलमें जन्म ग्रहण किया था? यह मुझसे वर्णन कीजिये ॥ ४५ ॥ जो भगवान् और नारायण हैं जो सुरश्रेष्ठ और निग्रहानुग्रहमें समर्थ हैं जो सर्वाधार और अव्यय हैं उन सर्व युगादि वैकुण्ठवासी हृषीकेशने ॥ ४६ ॥ किस कारण अपना भवन परित्याग-पूर्वक नरलोकमें जन्मग्रहण करके मानुषीकर्म किये थे? इस विषयमें मुझको महान् संदेह रहता है ॥ ४७ ॥ उन्होंने मनुष्यदेहधारण करके अनेक प्रकारकी विडम्बना भोग और अनेकप्रकारके दुष्टभाव अनुभव किये थे ॥४८॥ क्यों कि मनुष्यजन्ममें कभी काम, क्रोध, अमर्ष, शोक और वैर कभी प्रीति ॥ ४९ ॥ कभी सुख, कभी दुःख, कभी मानवतासुलभ दीनता, सुकृत, दुष्कृत, वचन और हनन, पोषण और चलन, ताप, विमर्श (विचार) और श्लाघा ॥ ५० ॥ लोभ, दम्भ और मोह (कपट) और शोच मनुष्योंमेंही यह सब और अन्यान्य अनेक प्रकारके भाव उत्पन्न होते हैं ॥ ५१ ॥ अत एव उन भगवान् विष्णुने नित्य सुख परित्याग करके किसलिये इस सब दुष्टभावसे युक्त मनुष्यजन्मको ग्रहण किया था? ॥ ५२ ॥ हे मुनिवर! पृथ्वीतलपर मानुषजन्म ग्रहण करनेमें ऐसा क्या सुख है? कि उन साक्षात् हरिने भी जिसके लिये गर्भवास स्वीकार किया था ॥ ५३ ॥ हे मुनीन्द्र! जिस मनुष्यजन्ममें गर्भवासमें, उत्पत्तिकालमें, बालभाव और यौवनमें भी दुःख एवं गार्हस्थ आचरणमें तो दुःखकी सीमा नहीं है ॥ ५४ ॥ हे द्विजसत्तम! तो फिर वे भगवान् विष्णु किस लिये वारंवार मनुष्य जन्ममें अवतीर्ण हुये थे? ॥ ५५ ॥ देखो वेही ब्रह्मसंभव हरि रामावतारको प्राप्त होकर दारुण वनवासमें अत्यन्त महत् दुःखको प्राप्त हुए थे ॥५६॥ उन महात्माने जनकात्मजाके विरहजनित दुःख वारंवार संग्राम प्रियतम कान्ता (स्त्री) के वियोग इत्यादि महादुःखदायक समस्त विषय अनुभव किये थे ॥५७॥ इसी प्रकार कृष्णावतारके समय कारागृहमें जन्म ले गोकुलमें गमन और गोचारण ॥ ५८ ॥ कंसनाश, अतिकष्टसे द्वारकामें गमन इत्यादि अनेकप्रकारके संसारदुःख क्यों भोग किये थे? ॥ ५९ ॥ हे भगवन्! आप सभी जानते हैं अत एव कहिये कौन ज्ञानवान् मुक्त पुरुष दुःखलाभकी आकांक्षा करता है? आप मेरे चित्तकी शान्तिके निमित्त यह महासंशय छेदन करके मुझपर दया प्रकाश कीजिये ॥ ६० ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

दोहा-एहि तृतीयअध्यायमें, शिवा शम्भु मन लाय ।
अदितिशापकी कथाको, वर्णत हैं मन लाय ॥ १ ॥

व्यासजी बोले हे महाराज! इन हरिके अवतार और सम्पूर्ण देवतागणोंके अंशावतारमें अनेक कारण दिखाई देते हैं ॥ १ ॥ इस समय आप वसुदेव देवकी और रोहिणीके अवतारका कारण भलीभांति श्रवण कीजिये ॥ २ ॥ एक दिन श्रीमान् कश्यप ऋषि यज्ञके लिये वरुण देवकी कामधेनु हरणकरलाये. अनन्तर वरुणदेवके इस धेनुके लिये वारंवार प्रार्थना करनेपरभी उन्होंने इनको वह उत्तम धेनु नहीं दी ॥ ३ ॥ तब वरुणदेव अत्यन्त दुःखित हुए और जगत्प्रभु ब्रह्माजीके निकट जाय विनयसहित अपना दुःख निवेदन करके उन्होंने कहा ॥ ४ ॥ हे महाभाग ! महर्षि कश्यप इस समय प्रायः उन्मत्त हैं. उन्होंने किसीप्रकारभी मुझको धेनु नहीं दी, मैंने माताके विरहमें अत्यन्त दुःखित वत्सगणोंकी रोदनध्वनि सुनकर उनको यह कहकर शाप दिया है कि तुम नरलोकमें गोपाल होकर जन्म ग्रहण करो और तुम्हारी दोनों भार्या अतिशय दुःखको प्राप्त होकर उसी स्थानमें जन्मलाभ करें ॥ ५ ॥ ६ ॥ हे ब्रह्मन् ! वत्सगणोंका वह कष्ट देख अत्यन्त क्रोधमें भर फिर अदितिसे कहा कि, तुम पृथ्वीतलमें मृतवत्सा, कारावासिनी और अत्यन्तदुःखकी भागिनी होगी ॥ ७ ॥ हे जनमेजय ! पद्मयोनि ब्रह्माजीने वरुणके यह वचन सुन कश्यपजीको बुलाकर कहा ॥ ८ ॥ हे महाभाग ! आपने किसलिये लोकपाल वरुणदेवकी धेनुहरण की है ? और किसलिये पुनर्वार वह धेनु न देकर अन्याय किया है ? ॥ ९ ॥ हे भगवन् ! आप सर्वज्ञ और मतिमान् होकर एवं न्यायका मर्म जानकरभी परधन हरणकरके किस लिये अन्यायकार्यमें प्रवृत्त हुए हैं ? ॥ १० ॥ अहो ! लोभकी क्या अपूर्व महिमा है ? महत्पुरुषभी लोभके हाथसे मुक्त होनेमें समर्थ नहीं होते. लोभ पापकी खानि है, वह सज्जनगणोंके असम्मत और निःसंदेह नरकप्रद होता है ॥ ११ ॥ कश्यपभी त्यागनेको समर्थ नहीं तो मैं अब क्या करूं? इससमय मैंने सब प्रकार दैवसे भी लोभको अधिक प्रभावयुक्त जाना ॥ १२ ॥ जिन महर्षिगणोंने शान्तिपरायण शान्तचित्त और प्रतिग्रहसे पराङ्मुख और वैखानस वृत्ति अवलम्बन करके लोभको पराजित किया है वेही धन्य हैं ॥ १३ ॥ संसारमें लोभही बलवान् शत्रु है, लोभकी समान अपवित्र और घृणित वस्तु संसारमें दूसरी नहीं है, हाय ! उसी लोभने महर्षि कश्यपको भी सामान्य स्नेहमें बद्ध और दुराचारी कर डाला. यह

अत्यन्त आश्चर्यका विषय है, इसमें संदेह नहीं ॥ १४ ॥ अनन्तर प्रजापति ब्रह्माजीने भी न्याय और धर्मकी रक्षा करनेके लिये अपने परम प्रियतम पौत्र कश्यपजीको शाप देकर कहा कि ॥ १५ ॥ तुम पृथ्वीतलपर यदुकुलमें जन्म-ग्रहण कर मायाके सहित मिलित हो गोपालनकार्य संपादन करो॥ १६ ॥ हे महाराज ! अंशावतार और भूभारहरण करनेके लिये ब्रह्मा और वरुणजीने महर्षि कश्यपजीको इस प्रकार शाप दिया ॥ १७ ॥ और दितिने अत्यन्त शोकसंतप्त होकर अदितिको यह कहकर शाप दिया था कि तुम्हारे सात पुत्र जन्मते जन्मते नाशको प्राप्त होंगे ॥ १८ ॥ जनमेजयने कहा हे मुनिसत्तम ! दितिने इन्द्रजननी भगिनी अदितिको किस कारण शाप दिया था ? उसके शापका कारण क्या है ? सो मुझसे कहिये. यह विषय सुनकर मेरे अन्तःकारणमें शोक उदय होता है ॥ १९ ॥ सूतजी बोले हे ऋषिगण ! परीक्षितपुत्र जनमेजयके सत्यवतीपुत्र व्यासदेवसे इसप्रकार पूछने-पर महर्षि समाहित हो राजासे उसीप्रकार उन विषयोंका कारण कहनेलगे ॥ २० ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! दिति और अदितिनामक प्रजापति दक्षकी दो कन्या थीं ? यह दोनों सुव्रता कन्या महर्षि कश्यपजीकी प्रियभार्या हुईं ॥ २१ ॥ अदितिके गर्भसे अत्यन्त वीर्यवान् देवराज इन्द्र उत्पन्न हुए. तब दितिनेभी अपने इसीप्रकार वीर्यवान् और तेजसंपन्न पुत्रकी कामना की ॥ २२ ॥ उस असितापाङ्गी दितिने पतिको संबोधन देकर कहा हे स्वामिन् ! आप सबकोही मान देते हैं. अतएव प्रार्थना करती हूं. मुझको इन्द्रकी समान बलशाली, वीर, धीर, धर्मिष्ठ और वीर्यवान् पुत्र दो ॥ २३ ॥ महर्षिजी बोले हे कान्ते ! सावधान होओ, मैं तुझसे जिस व्रताचरणका विषय कहता हूं उस व्रतके समापन करनेसेही तुम इन्द्रकी समान पुत्र लाभ करोगी ॥ २४ ॥ आप जो आज्ञा करते हैं मैं वही करूंगी यह कहकर दितिके उस उत्तम व्रतका अनुष्ठान करनेपर महर्षि कश्यपने उसके उदरमें गर्भ स्थापन किया. दिति वह गर्भ यथानियम धारण करने लगी ॥ २५ ॥ वरवर्णिनी दिति नियमान्वित और पवित्र रहकर एकाग्र चित्तसे पयोव्रतके अनुष्ठान पूर्वक भूमिमें शयन करने लगी ॥ २६ ॥ इसप्रकार वह तेजसंपन्न गर्भ जब परिपूर्ण होगया तब अदिति दितिको श्वेतवर्ण और दीप्ताङ्गी देखकर दुःखित चित्तसे चिन्ता करने लगी कि ॥ २७ ॥ जब दितिके इन्द्रकी समान महाबल पुत्र उत्पन्न होगा, तब निःसंदेह मेरा पुत्र तेजहीन होजायगा ॥ २८ ॥

अभिमानिनी अदितिने इसप्रकार चिन्तातुर होकर अपने पुत्र अमरराजसे कहा-हे वत्स! अतिशय वीर्यवान् तुम्हारा एक शत्रु इस समय दितिके गर्भमें विद्यमान है ॥ २९ ॥ तुम अभीसे शत्रुविनाशके लिये उपाय विचारो. हे सुशोभन ! दितिका गर्भ जिससे उत्पन्न होनेके पहिलेही नाशको प्राप्त होजाय इस विषयमें तुम यत्नवान् होओ ॥ ॥ ३० ॥ सपत्नीभावमें गर्विता उस असितापाङ्गी दितिको देखकर सुखनाशिनी और मर्मघातिनी चिन्ता मेरे हृदयको अत्यन्त तापित करती है ॥ ३१ ॥ देखो, शत्रु राजयक्ष्माकी समान बद्धमूल होनेसे फिर उसका विनाश नहीं किया जात अत एव बुद्धिमान् शत्रुगणको अंकुरित अवस्थामें ही विनाश करै ॥ ३२ ॥ हे शतक्रतो ! दितिका गर्भ लोहेकी शंकु कीलकी समान मेरे हृदयमें निक्षिप्त हुआ है, तुम जिस किसी उपायसे इसका विनाश करो ॥ ३३ ॥ हे महा-भाग ! यदि तुम मेरी प्रिय कामना करते हो तो साम दानादि अथवा बलद्वारा दितिके गर्भका नाश करके मेरे सन्तापित चित्तको शीतल करो ॥ ३४ ॥ हे महाराज ! अमरराज इन्द्र माताके वचन सुन मनमें अनेक प्रकारकी चिन्ता कर विमाताके निकट गये ॥ ३५ ॥ वे पापमति विनयान्वित हो दितिके चरणवंदन-पूर्वक विषगर्भित मधुरवचन द्वारा उससे कहनेलगे ॥ ३६ ॥ हे मातः ! तुम व्रताच-रणसे क्षीणदेह और अत्यन्तदुर्बल होगई हो. मैं तुम्हारी सेवाके लिये आया हूं. इस समय क्या करूं ? आज्ञा कीजिये ॥ ३७ ॥ हे पतिव्रते ! मैं तुम्हारे चरणोंकी सेवा करना चाहता हूं, क्यों कि गुरुकी सेवा करनेसे पुण्य और अक्षयगति लाभ होती है ॥ ३८ ॥ हे माता ! मैं शपथकरके कहता हूं कि मेरे अन्तःकरणमें अदिति और तुममें कुछ भेदबुद्धि नहीं है यह कह चरणोंका स्पर्शकर पैर दाबने लगे॥ ३९ ॥ व्रतसे थकी कृश सुलोचना दिति पैर दाबनेके सुखको प्राप्त हो और इन्द्रके वचनमें विश्वास कर गाढ़निद्रामें निमग्न हुई ॥ ४० ॥ वज्रपाणि इन्द्रने उसको सोती देख, अत्यन्त सूक्ष्मरूप धारणकर ॥ ४१ ॥ सावधानीसे योगबलके द्वारा उसके उदरमें शीघ्र प्रवेश किया और वज्रद्वारा छेदनकरके उसके गर्भको सातभागमें विभक्त कर डाला ॥ ४२ ॥ उदरमें स्थितहुए बालक वज्रद्वारा आहत होकर रोनेलगे. इन्द्र 'रोओ मत, रोओ मत' ऐसा कहकर बालककी वारंवार सांत्वना करनेलगे॥ ४३ ॥ किन्तु बालकको निवृत्त हुआ न देखकर इस सप्तखंडमेंके प्रत्येकखण्डकोही पुनर्वार सातसातभागमें विभक्त किया. हे नृपवर ! उससेही उनचास मरुद्गणोंकी उत्पत्ति हुई ॥ ४४ ॥ सुमति

दितिने तब जागकर जाना कि कपटाचारी इन्द्रने मेरा गर्भ छेदन किया है.इससे वह अतिदुःखित और क्रोधित हुई ॥ ४५ ॥ यह सब कार्य अपनी बहनका किया जानकर सत्यवादिनी पतिपरायणा दितिने अदिति और इन्द्रको क्रोधसे ॥ ४६ ॥ शाप दिया कि, तेरे पुत्रने छलपूर्वक जिसप्रकार मेरा गर्भ काटा है. इसीप्रकार उसका त्रिभुवनराज्य नष्ट होगा ॥ ४७ ॥ और पापाचारिणी अदितिने जिसप्रकार गुप्तरीतिसे मेरा गर्भ निपात कराय मेरे पुत्रका नाश किया है ॥ ४८ ॥ इसी प्रकार इसके पुत्र जन्मते जन्मते वारंवार नाशको प्राप्त हों. पुत्रशोकसे अत्यन्त कातर होकर कारागारमें वास करै ॥ ४९ ॥ और जन्मान्तरमेंभी मृतवत्सा हो. व्यासजी बोले हे महाराज ! मरीचिनन्दन महर्षि कश्यप इस शापके वचनको सुन ॥ ५० ॥ प्रणयवचनद्वारा उसका कोप शान्त करके कहनेलगे हे कल्याणि ! तुम कोप मत करो. तुम्हारे पुत्र अत्यन्त बलवान् ॥ ५१ ॥ और मरुत्नामक देवतागण होकर इन्द्रके सखा होंगे. हे वामोरु ! तुम्हारा वह शाप विफल नहीं होगा. अट्ठाईसवें मन्वन्तरके समय द्वापरयुगके अन्तमें इसका फल फलेगा ॥ ५२ ॥ तिसकाल ईर्षाकलुषित कोपना अदिति अंशद्वारा मनुष्यजन्मको प्राप्त होकर इसका फल भोगकरेगी. वरुणजीनेभी संतापित होकर इसको शाप दिया था ॥५३॥ तुम्हारे दोनोंके शापवशतः यह अदिति मानुषी होकर जन्म ग्रहण करेगी. हे महाराज ! तब वरवर्णिनी देवी दितिने पतिद्वारा आश्वासित होकर संतोषलाभ किया ॥ ५४ ॥ फिर और कुछ अप्रिय वचन न कहे. हे राजन् ! यह मैंने तुम्हारे निकट पूर्ण शापका कारण वर्णन किया ॥ ५५ ॥ हे नृपसत्तम ! इस प्रकार अदितिने अपने अंशसे देवकी होकर जन्म ग्रहण किया था ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

दोहा–एहि चतुर्थ अध्यायमें, जग अधर्ममय होय।
सो सब वर्णन करहिंगे, जेहि जानत कोइकोय ॥ १ ॥

राजाने कहा हे महाभाग ! यह उपाख्यान सुनकर मैं विस्मित हुआ हूं. हे महामते ! मैं देखता हूं यह संसारही पाप स्वरूप है तो जीवगण संसारमें आनकर किस प्रकार मुक्तिलाभ करेंगे ? इस विषयमें आशा तो कुछ हो नहीं सक्ती ॥ १ ॥

क्योंकि जिन्होंने परमपवित्र कश्यप ऋषिके वीर्यसे जन्म ग्रहण किया और त्रैलोक्य जिनका विभव है उन देवराज इन्द्रनेभी जब इस प्रकार गर्हित (नीच) कार्यकिया तब फिर कौन व्यक्ति गर्हित कार्यमें प्रवृत्त नहीं होगा? ॥ २ ॥ सेवा करनेके छलसे भारी शपथ कर माताके गर्भमें प्रवेशपूर्वक बालकका प्राणनाश करना निःसंदेह अत्यन्त दारुण कार्य है ॥ ३ ॥ जो सबके शासक और धर्मके रक्षक हैं जो त्रैलोक्यके अधिपति हैं जब उन्होंनेभी इस प्रकार घृणित कार्य किया, तब फिर कौन गर्हित और दूषित कार्यमें प्रवृत नहीं होगा ? ॥ ४ ॥ हे जगद्गुरो ! मेरे पितामहगणोंने कुरुक्षेत्रके संग्रामस्थलमें अत्यन्त दारुण निन्दित कार्य किये थे, यह भी अत्यन्त आश्चर्यका विषय बोध होता है ॥ ५ ॥ देखो भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, अधिक क्या धर्मके अंशावतार युधिष्ठिर भी उसी निन्दित कार्यमें लिप्त हुए थे. उन सबने देवांश, धर्मनिरत और बुद्धिमान् होकर एवं संसारकी असारता जानकर भी वासुदेवकर्तृक ॥ ६ ॥ गुरुवधादिरूप विशुद्ध धर्ममें प्रेरित होकर किस प्रकार घृणित कर्मका आचारण किया ॥ ७ ॥ हे विप्रकुलेन्द्र ! ऐसे महान् पुरुषोंका जब धर्मके विषयमें इस प्रकार आचारण है, तब धर्मकी अवस्थितिके विषयमें आस्था वा श्रद्धा क्या है? और तिस विषयमें निश्चित प्रमाणही क्या है ? हे मुनींद्र ! यह सब आख्यान सुनकर मेरा चित्त अत्यन्तही विचलित हुआ है ॥ ८ ॥ यदि आप्तवाक्यही धर्मके विषयका प्रमाण कहै, तो श्रेष्ठ देहधारी आपही कौन हैं ? संपूर्ण विषयासक्त पुरुषगण सम्यक् प्रकार विषयमें अनुरागी होते हैं अत एव वे आप्त नहीं होसक्ते ॥ ९ ॥ मैं ने निश्चित प्रकारसे समझा है, कि स्वार्थनाश होनेसेही राग और द्वेष उत्पन्न होता है, और स्वार्थसिद्धिके लिये उसी द्वेषसे असत्य वचन कहे जाते हैं ॥ १० ॥ सत्वमूर्ति श्रीकृष्णने जरासन्धके वधार्थ जान सुनकर भी छलपूर्वक ब्राह्मणका वेष धारण किया था ॥ ११ ॥ सात्विकमूर्ति वासुदेवने जिस प्रकार स्वार्थसाधनके लिये छलका अवलम्बन किया अर्जुनने भी इसी प्रकार यज्ञ-कार्य साधनके लिये छलका आश्रय लिया था? तब आप्त कौन है? और प्रमाण क्या है ? ॥ १२ ॥ जिस स्थानमें शिशुपालवधादिरूप अनर्थकी उत्पत्ति हुई वह यज्ञ कैसा था ? यह यज्ञ किसलिये शान्तिरहित हुआ ? यह परलोकप्राप्तिके लिये, वा यशके लिये अथवा अन्य किसी अभिप्रायसाधनके लिये हुआ था ? ॥ १३ ॥ पुराणवित् पण्डितगण कहते हैं कि सत्य धर्मका प्रथम पाद शौच दूसरा पाद दया तीसरा पाद

॥ १४ ॥ और दान चौथा पाद है. यह श्रुतिवाक्य है यह पादविहीन धर्म, सबका सम्मत होकर इस संसारमें उत्तम प्रकारसे अवस्थिति नहीं कर सक्ता ॥ १५ ॥ पांडवगणोंने सत्य और दयादिरहित होकर यज्ञकार्य संपादन किया था अत एव वह किस प्रकार फलदायक होसक्ता है ? धर्मके विषयमें जो कहीं भी किसीकी मति स्थिर थी, ऐसा प्रतीत नहीं होता, अत एव उन्होंने दंभपूर्ण होकरही यज्ञ किया था, तब वे किस प्रकार आप्त होसक्ते हैं ? ॥ १६ ॥ जगत्विभु विष्णु छल करनेके लियेही वामनावतार हुये थे, उसीके अनुसार इस वामनरूपसे बलिराजाको छला था हे मुने ! जब भगवान् विष्णुनेही इस प्रकार छलका अवलम्बन किया था, तब फिर कौन आप्त होनेके लिये शेष रहा? ॥ १७ ॥ बलिराजा शतयज्ञका अनुष्ठानकर्त्ता वेदकी आज्ञाका प्रतिपालक धर्मिष्ठ दानशील सत्यवादी और जितेन्द्रिय था ॥ १८ ॥ जगत्प्रभविष्णु विष्णुने इस प्रकार अनेकसद्गुणयुक्तको अकस्मात् स्थानभ्रष्ट किया. हे द्विजोत्तम! उन दोनोंमें क्या बलिकी जय अथवा वामनकी जय हुई? ॥ १९ ॥ क्या छलकर्मके जाननेवाले वामनने बलिको जीता. अथवा वंचनासे वंचित किये हुए बलिने वामनको जीता. इस विषयमें मुझको बड़ा संदेह है, हे द्विजोत्तम! आप सत्य कहो ॥ २० ॥ हे द्विजोत्तम ! आप धर्मज्ञ पुराणकर्ता महामति हो, व्यासजीने कहा हे महाराज ! बलिराजाने भूमिदान करनेकी जो प्रतिज्ञा की थी उसका प्रतिपालनपूर्वक सत्यकी रक्षा करनेसे बलिराजाकी ही जय हुई थी ॥ २१ ॥ हे नरेन्द्र ! त्रिविक्रम जो वामन कहकर विख्यात हैं उन्होंनेही छलावलम्बी होकर वामनमूर्ति धारणकी थी अर्थात् अपने शरीरके द्वाराही छलावलम्बका क्षुद्रत्व प्रकाश किया था ॥ २२ ॥ हे पार्थिव ! सत्यकी अपेक्षा श्रेष्ठ मूलधर्म दूसरा कुछ नहीं है, आप देखिये वेही सत्यापहारी हरि छलके फलसे बलिका द्वारपालत्व लाभ करनेमें बाध्य हुए थे ॥ २३ ॥ अत एव हे राजन् ! सम्यक् प्रकारसे सत्यकी रक्षा देहधारियोंके पक्षमें दुःसाध्य जाननी चाहिये.हे राजन्! त्रिगुणात्मिका बहुरूपिणी अघटितघटनापटीयसी माया जाननेमें नहीं आती है ॥ २४ ॥ मायाही बलवती है, उसी मायाने अपने विमिश्रित तीनो गुणोंके द्वारा इस विश्वको निर्माण किया है इसकारण छलावलंबी किस प्रकार सत्यकी भलीभांति रक्षा करनेमें समर्थ होंगे ॥ २५ ॥ यह विश्व मिश्रगुणमें अर्थात् रजोगुणद्वारा निर्मित है अत एव रजोगुणात्मक इस संसारमें केवल निर्मल सत्य दुर्लभ है. हे राजन् ! इसको

ही सनातनी मर्यादा अर्थात् विधिनिर्दिष्ट नित्यकार्य जानना चाहिये. यदि कहैं कि वैखानस मुनिगण निर्मल सत्यकी मर्यादा रक्षा करते हैं यद्यपि यह सत्य है किन्तु वह निःसंग निष्परिग्रह॥ २६॥ सत्ययुक्त विगतराग और श्रमरहित हैं और दृष्टान्त दिखानेके लिये निर्मित हुए हैं अत एव उनकी बात स्वतंत्र है ॥ २७ ॥ उक्त मुनिगणोंके अतिरिक्त सबही त्रिगुणसमन्वित हैं अत एव मुनिगणोंके सहित अपरकी तुलना नहीं होसक्ती. हे नृपसत्तम ! गुणवानोंके बनाये पुराणादि और साङ्गवेदमें और धर्मशास्त्रमें एक प्रकारकी उक्ति नहीं होती.बनानेवालोंके गुणोंकी विभिन्नतासे भिन्नभिन्न होगई है क्योंकि सगुणपुरुष सगुणकार्य करते हैं, किन्तु निर्गुण सगुणकार्य नहीं करते ॥ २८॥ ॥ २९॥ समस्त गुण मिलित होनेपर कभी पृथक्भाव अवलंबन नहीं करते. वे जिस जिस गुणके सहित परस्पर मिलते हैं.उसीउस गुणका भाव प्रकाश करते हैं. हे महाराज! इस संसारमें जन्म ग्रहणकरके सभी मायाके द्वारा मोहित होते हैं. अत एव छलादि-रहित निर्मल और अटल धर्ममें किसीकीभी मति स्थिर नहीं रहसक्ती ॥ ३० ॥ इन्द्रियें बुद्धिको मलीन विपरीत करके भोगमार्गमें विचरण करातीं हैं. मन उन इन्द्रियों-मेंही आसक्त है. अत एव तीनो गुणोंके द्वारा निरन्तर भावसे प्रेरित होकर॥ ३१ ॥ अनेक भावमें विचरण करता है हे राजन्! ब्रह्माजीसे लेकर स्थावरजंगमपर्यन्त ॥ ३२ ॥ सभी प्राणीही मायाके वशीभूत हैं वह माया उनको लेकर अनेक प्रकारकी क्रीडा करती है यह मायाही सबको मोहित करती है और सदा जगत्की विकृति साधन करती है ॥ ३३ ॥ हे नरेन्द्र! मनुष्यगण प्रथम कार्यके वश असत्यका आश्रय करते हैं वे जब इन्द्रियोंके लिये भोगादिकी चिन्ता करके उसको नहीं पाते ॥ ३४ ॥ तब छलअवलंबन करते हैं और इसी कारण पापमें प्रवृत्त होते हैं काम क्रोध और लोभ यह प्राणिगणोंके अतिशय बलवान् शत्रु हैं ॥ ३५ ॥ जीवगण इनके वशीभूत होकर कार्य अकार्यका विचार करनेमें समर्थ नहीं होते. विभवके विद्यमान होनेपर अहंकार प्रबल होता है ॥ ३६ ॥ उस अहंकारसे मोह और मोहसे अंतमें मृत्यु होती है संसारमें जीवगणोंके मनमें अनेक संकल्प विकल्प उत्पन्न होते हैं ॥ ३७ ॥ ईर्षा असूया और द्वेषादि उत्पन्न होते हैं फिर आशा तृष्णा दैन्य (दीनता) दंभ और विषयगामिनी बुद्धि ॥ ३८॥ यह सब मोहसे उत्पन्न होकर प्राणी गणोंके ऊपर प्रभुत्व करते हैं ॥ ३९॥ पुरुषगण अहंकारसे ग्रसित होकरही

दिनादिन यज्ञ, दान, तीर्थसेवा, व्रत और नियमादिका अनुष्ठान करते हैं. यह सब यज्ञादि अहंकारभावके द्वारा अनुष्ठित होनेसे ॥ ४० ॥ शौचादिके समान मालिन्य दूर करनेमें समर्थ नहीं होता. विशेषतः राग वा लोभके वश होकर कोईभी कार्य करनेसे वह सर्वाङ्गशुद्ध नहीं होता अत एव यज्ञादिकार्यका अनुष्ठान करना हो तो प्रथम उसकी द्रव्यशुद्धिको देखनाही पण्डितगणोंका कर्त्तव्य है ॥ ४१ ॥ हिंसादि न करके जो द्रव्य उपार्जन किया जाय वह द्रव्य धर्मकार्यमें श्रेष्ठ है. हे नृपोत्तम! मनुष्यगणोंके द्रोहार्जित द्रव्यद्वारा शुभकार्यका अनुष्ठान करनेपर ॥ ४२ ॥ वह फल देनेके समय विपरीत फल प्रदानकरता है. जिसका मन अत्यन्त निर्मल है, वही भलीभांति शुभ फल लाभ करता है ॥ ४३ ॥ विकारयुक्त मनवाले यथार्थ फललाभ करनेमें समर्थ नहीं होते. यदि कार्यके समय आचार्य, ऋत्विक् इत्यादि कार्यकर्तागण ॥ ४४ ॥ शुद्धमन हों और यदि देश, काल, क्रिया, द्रव्य, यजमान और मंत्र यह सब शुद्ध हों ॥ ४५ ॥ तभी कर्मका फल भली भांतिसे होसक्ता है, शत्रुनाश और अपनी उन्नतिके उद्देशसे ॥ ४६ ॥ क्रिया करनेपर वह विपरीत फल प्रदान करती है. अत एव पराये विनाशके लिये कर्म करना उचित नहीं है. स्वार्थनिरत पुरुष शुभाशुभ कर्मके विचारमें समर्थ नहीं होते ॥ ४७ ॥ वे दैवके आधीन होकर पापही करते हैं,पुण्यकर्मके करनेमें समर्थ नहीं होते. सब देवता और असुरगणोंने प्रजापतिसेही जन्म ग्रहण किया है ॥ ४८ ॥ यह सभी स्वार्थनिरत होनेसे परस्पर विरोध करते हैं. वेदमें कहा गया है कि देवताओंने सत्वगुणसे मनुष्यगणोंने रजोगुणसे ॥ ४९ ॥ और तिर्यग्गणोंने तमोगुणसे जन्म ग्रहण किया है. हे राजन्! यदि सतोगुणसे उत्पन्न हुए देवतागणही परस्पर सदा वैर करैं ॥ ५० ॥ तो तिर्यग्गणोंकी जो जातिवैरिता संघटित हो तो इस विषयमें विचित्रत्व क्या है? जब कि देवतागण सदाही असंतुष्ट द्वेषकलुषित परस्परविरोधी और पराये तपमें विघ्न करनेवाले हैं तो निःसंदेह जानिये कि यह संसार अहंकारसेही उत्पन्न है. अतएव किसप्रकार वह रागद्वेषादिरहित होसक्ता है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे भाषायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ५.

दोहा–मायामय जगकथन कर, एहि पंचम अध्याय ।
नारायणकी कथाको, वर्णन करहिं सुभाय ॥ १ ॥

द्वैपायनने कहा हे नृपसत्तम ! बहुत वाक्य कहनेका क्या प्रयोजन है ? केवल इतनाही कहना ठीक होगा कि, इस संसारमें हिंसा द्वेष जनित कलुषित बुद्धिका परित्याग कर धर्मपरायण हों, ऐसे पुरुष बहुत थोड़े हैं ॥ १ ॥ हे राजेन्द्र ! सत्ययुगमें भी यह स्थावरजंगमात्मक विश्व, राग द्वेषादिसे व्याप्त था. इस समय कलुषित कलिकाल उपस्थित है. इस समय जो संसार रागद्वेषादिसे व्याप्त हो, इसमें फिर आश्चर्य क्या है ? ॥ २ ॥ हे नृपवर ! देवतागण जब द्वेष और ईर्षायुक्त एवं छलपरायण हैं. तब फिर तिर्यग् और मनुष्यगणोंकी बात क्या कहूं ? ॥ ३ ॥ हे पृथ्वीपते ! द्रोह करनेवाले जीवसे द्रोह करै, क्योंकि इस विषयमें समानता दिखाई देती है. किन्तु हिंसारहित शान्त जीवसे द्वेष करनेपर दुष्टता है ॥ ४ ॥ जिस किसी व्यक्तिके शान्त,तापस, जपपरायण और ध्याननिमग्न होनेपर अमरराज उसकी तपस्यामें विघ्न डालते हैं अतएव इन्द्रकी खलता स्पष्ट ही दिखाई देती है ॥ ५ ॥ हे राजन् ! सब युगोंमें ही साधु असाधु और मध्यम,इन तीन प्रकारोंके मनुष्य दिखाई देते हैं.तिनमें जो साधु हैं उनको सर्वदाही सत्ययुग है जो असाधु हैं तिनको सदा कलियुग है और जिस जिस युगमें क्रिया और योग व्यवस्थित है वह द्वापरात्मक और त्रेतात्मक युगही सदा मध्यम गणोंके लिये निर्दिष्ट रहता है ॥ ६ ॥ हे राजन् ! आप जानते हैं कि कभी कोई भी सत्यधर्मका अनुसरण करता है यह न करके भिन्न भिन्न युगके सब प्राणी ही उस उस युगधर्मका अनुवर्तन करते हैं ॥ ७ ॥ हे राजेन्द्र ! धर्मस्थितिविषयमें सर्वत्रही वासनाको कारण कहकर अवगति करते हैं उस वासनाके मलीन होनेपर धर्मभी मलीन होता है ॥ ८ ॥ आप जानते हैं कि शुद्ध वासना पुराणसाध्य होनेसे वह अल्पही होती है और मलिनवासना स्वभावसेही अधिकतर होती है, यह मलीनवासनाही जीवगणोंको सम्यक्प्रकारसे नष्ट करती है, अतएव इसका आचरण कभी कर्तव्य नहीं है । हे नृपोत्तम ! इन सब वचनोंके द्वारा कृष्ण और इन्द्रादिका छल और अधर्माचरण एवं पांडवगणोंकी अधर्मशीलताका कारण समझ लीजिये. अब मुक्तिके लिये तपाचरणशील नरनारायणकी देहान्तरप्राप्तिकी

कथा सुनिये. ब्रह्माके हृदयसे धर्मनामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥ ९ ॥ वह ब्रह्मज्ञाननिष्ठ सत्यसंपन्न और सदाही वेदधर्ममें अनुरक्त था उस महात्मा गृहस्थ-धर्मावलम्बी मुनिवर धर्मने प्रजापति दक्षकी दश कन्याओंसे यथाविधि विवाह किया था. सत्यनिष्ठगणोंमें अग्रणी उस धर्मने उनके गर्भसे हरि कृष्ण नर और नारायण नामक चार पुत्र उत्पन्न किये थे, तिनमें हरि और कृष्ण सदाही योगाभ्यासमें रत होकर रहते थे ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ नर और नारायण भी हिमालय पर्वतपर आय बदरिकाश्रमतीर्थमें अति उत्तम तपस्या करने लगे ॥ १३ ॥ वह तपस्वी प्रधान पुराण दोनों मुनि गंगाके प्रशस्त तटपर गायत्रीसंज्ञक परब्रह्मके मंत्रका जप करने लगे ॥ १४ ॥ हरिके अंशसे उत्पन्न नर नारायण नामक दोनों ऋषियोंने पूर्ण हजार वर्ष पर्यन्त उस स्थानमें उत्तम तपस्या करी॥ १५॥ उनके तप सम्बन्धी तेजसे चराचर संपूर्ण जगत् तप्त हो उठा, और देवराज इन्द्रभी संक्षोभित होगये ॥ १६ ॥ सहस्रलोचन चिन्तायुक्त होकर मनमनमें कल्पना करने लगे कि, वे दोनों धर्मपुत्र तपोनिरत और ध्यानपरायण हुए हैं ॥ १७ ॥ यह तपसिद्ध होनेपर मेरे इस अति उत्तम राज्य आसनपर अधिकार करसकेंगे. तो इस समय इनकी तपस्या भंग करनेके लिये किसप्रकारसे विघ्न उत्पादन करूं ? ॥ १८ ॥ देवराज इन्द्रने इस अभिप्रायसे काम, क्रोध और अतिदारुण लोभको उत्पन्न कर, ऐरावतपर चढ़ ॥ १९ ॥ विघ्नाचरण करनेके लिये गंधमादन पर्वतपर जाय, उस पुण्याश्रममें उपस्थित हो उन पुरातन दोनों ऋषियोंका दर्शन किया ॥ २० ॥ उनको तपके तेजसे सूर्यकी समान दीप्तिमान् देखकर देवराज विचार करने लगे कि ये ब्रह्मा हैं, वा विष्णु है, अथवा सूर्य हैं ॥ २१ ॥ ये धर्मपुत्र और ऋषि हैं. ये तपस्याद्वारा क्या करेंगे ? इस प्रकार चिन्ता करके शचीनाथ उनके समीप जाय कहने लगे ॥ २२ ॥ हे महाभाग ! धर्मतनय दोनों ऋषियो ! आपलोगोंका कार्य वा प्रार्थना क्या है ? कहो, मैं तुमको उत्तम वर देनेके लिये यहां आया हूं, मैं तुम्हारी तपस्यासे अत्यन्त संतुष्ट हुआ हूं अत एव आप जो प्रार्थना करेंगे वह अदेय होनेपरभी मैं प्रदान करूंगा. व्यासजी बोले कि इन्द्र उनके सन्मुख खड़े होकर वारंवार इसप्रकार कहने लगे ॥ २३ ॥ २४ ॥ किन्तु दोनों ऋषि दृढचित्त और ध्यानमें मग्न थे, इस कारण उन्होंने कुछ न कहा. यह देख अमरराजने अत्यन्त भयदायक मोहिनी मायाकी कल्पना करी ॥ २५ ॥ सिंह, व्याघ्र, वृक, इत्यादि समस्त हिंसक जन्तु

और वृष्टि, पवन, अग्नि इत्यादि वारंवार उत्पन्न करके भय दिखाने लगे ॥ २६ ॥ यद्यपि शत्रुमोहिनी मायाको प्रगट करके भय दिखाया, किन्तु इसके द्वाराभी उन धर्मपुत्र दोनों मुनियोंको वशमें न करसके ॥ २७ ॥ उन नर नारायण दोनों मुनियोंको वर-ग्रहणमें लुब्ध अथवा सिंहादि वा अग्निपवनादिसे डराहुआ न देखकर ॥ २८ ॥ देवराज इन्द्र अपने स्थानको चले गये. अनन्तर इन्द्र घर जाय दुःखित होकर चिन्ता करने लगे कि, जब ये दोनों मुनि सिंह व्याघ्रादिके द्वारा आक्रान्त होकर भी अपने आसनसे विचलित न हुए ॥ २९ ॥ तब कोई इनका ध्यानभंग करनेमें समर्थ नहीं होगा. ये दोनों मुनि भय लोभादिसे विचलित न हुए ॥ ३० ॥ ये आदिशक्ति महा-विद्या सनातनी त्रिलोकेश्वरी अद्भुतरूपिणी परप्रकृति श्रीभुवनेश्वरीका ध्यान करते हैं. इस समय अनेक मायाका जाननेवाला होकरभी ऐसा कौन है जो इनका ध्यानभंग करनेमें समर्थ हो ? क्यों कि जो परमाशक्ति देवासुरकृत सब मायाकी मूल है ॥ ३१ ॥ इस योगमाया महाशक्तिके ध्यानपरायण होकर जो पापके हाथसे मुक्त रहते हैं. इस त्रैलोक्यमें ऐसा कौन है जो उनका ध्यानभंग करनेमें समर्थ हो ? ॥ ३२ ॥ जो सरस्वतीबीज, कामबीज और मायाबीज जपकर निष्पाप और विशुद्धात्मा हुए हैं ॥ ३३ ॥ जिनके चित्तक्षेत्रमें भुवनेश्वरीबीज प्रगट हुआ है उनके विघ्नाचरण करनेमें कौन समर्थ होगा ? हे महाराज ! मायाका क्या प्रभाव है ? देखिये शाक्तगणोंके अत्याचारमें कोई समर्थ नहीं होता यह जानकरभी देवराज मायासे मोहित हो पुनर्वार उनका प्रतीकार करनेके लिये मन्मथ (कामदेव) और वसंतको बुलाकर कहने लगे हे मनोभव ! तुम इससमय वसंत और रतिके सहित मिल और अप्सराओंको संग ले शीघ्र गंधमादन पर्वतपर जाओ. उस स्थानमें नर नारायणनामक पुरातन दो ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ऋषि बद्रिकाश्रममें एकान्त बैठकर तपस्या करते हैं, हे मन्मथ ! तुम उनके निकट जाय अपने बाणोंके प्रभावसे ॥ ३७ ॥ उनका चित्त कामातुर करके मेरा यह कार्य संपादन करो. तुम अपने शराघातसे उनको मोहित और उच्चाटित करो ॥ ३८ ॥ कभी इससे कुंठित मत होओ. हे महाभाग ! इस प्रकार तुम उन धर्मपुत्र दोनों मुनियोंको वशीभूत करो. हे कन्दर्प ! इस संपूर्ण संसारमें देवता दैत्य वा मनुष्यगणोंमें ऐसा कौन है ? ॥ ३९ ॥ जो ताडित होकर तुम्हारे बाणके वशीभूत न हुआ हो. ब्रह्मा मैं गिरजानाथ (शिव) चंद्रमा और अग्निभी जब तुम्हारे बाणसे मोहित हैं ॥ ४० ॥ तो तुम्हारा बाण उन ऋषियोंके प्रति परा-

क्रम प्रकाश करनेमें क्यों न समर्थहो? फिर क्या विचार करना चाहिये? तुम्हारी सहायता करनेके लिये इन वाराङ्गनाओंको तुम्हारे संग भेजताहूं ॥ ४१ ॥ यह रंभादि समस्त मनोरम अप्सरागणभी उस स्थानमें जाँय, तिलोत्तमा रंभा अथवा तुम अकेले ही कार्यसाधनमें समर्थ हो ॥ ४२॥ फिर सब मिलकर जो कार्यसाधन करोगे तो इसमें संदेह ही क्या है? हे महाभाग ! तुम कार्यसाधन करो मैं तुमको वांछित अर्थ प्रदान करूंगा॥ ४३॥ हे मन्मथ ! मैंने दोनों तपस्वियोंको वरदान देनेका लोभ दिखाया था किन्तु वे शान्तात्मा दोनों तपस्वी अपने निश्चितार्थसे विचलित न हुए इससे मेरा यत्न और परिश्रम सभी विफल होगया है।। ४४।। फिर मैं ने इन दोनों तपस्वियोंको माया-के द्वारा अत्यन्त भय दिखाया था तोभी वे अपने स्थानसे न उठे अतएव बोध होता है कि वे देहकी रक्षामें यत्नवान् नहीं हैं ॥ ४५ ॥ व्यासदेवने कहा, कामदेवने देवराज इन्द्रके इस प्रकार वचन सुनकर उनसे कहा हे देवेन्द्र! अभी मैं आपका अभिलषित कार्य संपादन करूंगा ॥ ४६ ॥ किन्तु एक बात यह है कि यदि वे दोनों तपस्वी विष्णु, महेश्वर, ब्रह्मा वा दिवाकरके ध्यानपरायण हों तब मैं उनको वशीभूत करनेमें समर्थ हूंगा॥ ४७॥ नहीं तो जो पुरुष कामराज महाबीजमंत्रके चिन्तनमें निरत है, मैं उस देवीभक्त पुरुषको वशीभूत करनेमें कभी समर्थ नहीं हूं ॥ ४८ ॥ यदि दोनों तप-स्वियोंने उसी महाशक्ति महादेवीका भक्तिभावसे आश्रय किया है तब वे मेरे शरके गोचरीभूत नहीं होंगे ॥ ४९ ॥ इन्द्रने कहा हे महाभाग ! तुम कार्य-साधनोद्यत अनुचरगणोंके सहित जाओ मेरे इस दुःसाध्य हितकर कार्यका साधन करनेवाला तुम्हारे अतिरिक्त और कोई नहीं है ॥ ५० ॥ व्यासजीने कहा इसप्रकार इन्द्रकी आज्ञा पाय उन सबने ही जहां वे दोनों धर्मके पुत्र नर नारायण दुष्कर तपस्या करते थे वहां गमन किया ।। ५१ ।।

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे भाषायां पंचमोऽध्यायः ।। ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

व्यासजीने कहा हे राजन् ! प्रथम ऋतुराज वसंत उस मनोहर पर्वतके ऊपर प्रगट हुआ, तिसकाल सब वृक्ष पुष्पित और भ्रमरसमूहोंसे शोभायमान होगये ॥ ॥ १ ॥ मनोहर आम बकुल तिलक और शोभायमान किंशुक शाल ताल तमाल और मधुकादि तरुराजिने कुसुममालासे विराजित होकर अनुपम शोभा धारण की ॥ २ ॥ वृक्षोंके ऊपर कोकिलाओंका मधुर शब्द सुनाई आने लगा. सब लताओंने पुष्पित होकर वनस्पतियोंका आलिंगन किया ॥ ३ ॥ प्राणिगण कामातुर होकर अपनी २ भार्याओंसे प्रेमयुक्त और परस्पर क्रीडासक्त हो अत्यन्त उन्मत्त होगये ॥ ४ ॥ मंद सुगंध और सुखस्पर्श दक्षिण पवन बहने लगा, सब इन्द्रियें बलवान् होकर फिर मुनिगणोंके वशमें न रहीं ॥५॥ तब मीनकेतन (कामदेव) रतिके सहित मिलित हो, पंचबाण धारण कर उस बदरिकाश्रममें शीघ्र जाय वास करने लगा ॥ ६ ॥ संगीतमें चतुर रंभा और तिलोत्तमादि प्रधान प्रधान सब अप्सरा उस मनोहर आश्रममें जाकर स्वर, ताल और लयके सहित गान करने लगीं ॥ ७ ॥ वह मधुर संगीत, कोकिलाओंका मनोहर कूजन और भौंरोंकी मधुर कलध्वनि सुनकर वे दोनों मुनि जागरित हुए ॥ ८ ॥ नर नारायण दोनों ऋषि अकालमें ऋतुराज वसन्तका उदय और वनपादपोंका पुष्पोदय देखकर चिन्ता करने लगे ॥ ९ ॥ नियमके विना इस समय किसप्रकार वसन्त ऋतुका उदय हुआ? और इस समय सबही प्राणी अत्यन्त कामातुर तथा विह्वल दिखाई देते हैं ॥ १० ॥ कालधर्मका विपरीत होना अतिदुर्घट है, किस प्रकार वह संघटित हुआ? इसके उपरान्त नारायण विस्मयोत्फुल्लनेत्रद्वारा नर नामक ऋषिसे कहने लगे ॥ ११ ॥ नारायण बोले हे भ्राता ! देखो,ये सब वृक्ष पुष्पित होकर शोभायमान हो रहे हैं कोकिलकी कलध्वनि सुनाई आरही है, संपूर्ण भौंरे मधुर ध्वनि करके इधर उधर विचरण कर रहे हैं ॥ १२ ॥ यह देखो, वसंतकेसरी पलाशकुसुमरूप अपने खर नखोंसे शिशिर रूप भयंकर मातंगको विदारित करके उपस्थित हुआ है ॥ १३ ॥ हे ब्रह्मन् ! देखो, किस प्रकार मनोहर सुषमासंपन्न वसन्तलक्ष्मी बदरिकाश्रममें उदित हुई है, हे देवर्षे ! लाल अशोक इसका करतल है, किंशुककुसुम इसके मनोहर चरण, नील अशोक इसके श्याम

केशकलाप, विकसित कमल इसका वदन ॥ १४ ॥ नीलकमल इसके नेत्र, बिल्व-फल इसके मनोहर पयोधर, प्रफुल्ल कुन्दकुसुम इसके दशन, मंजरी इसका मनोहर कर्णफूल है ॥ १५ ॥ ॥ बंधुजीव इसका अधर, सिंधुवार अद्भुत नख, पुंस्कोकिलकी कलध्वनि इसका कंठस्वर, कदम्बकुसुम इसके वसन ॥ १६ ॥ मोरगण इसका भूषण, सारसस्वर इसकी मयूरध्वनि, कुसुमदाम इसका चन्द्रहार, मत्तहंसकी गतिंही इसका गमन ॥ १७ ॥ कदम्बकेशर इसकी रोमराजि है। हे ऋषिवर! इन सबके द्वारा वसन्तलक्ष्मीने क्या अपूर्व शोभा धारणकी है? ॥ १८ ॥ यह अकालमें उपनीत क्यों हुई? इस विषयमें इस समय मुझको आश्चर्य उत्पन्न होता है तुम विचारकर देखो यह निश्चय तपस्यामें विघ्न करनेवाली है॥ १९॥ यह सुनो देवताओंकी स्त्रियें कैसा मनमोहन ध्यानविनाशक गान करती हैं! बोध होता है, हमारी तपस्याका भंग करनेके लिये देवराज इन्द्रने सब उपाय किये हैं ॥ २० ॥ ऋतुराज असमयमें क्यों प्रीति उत्पन्न कराते हैं? इससे स्पष्ट विदित होता है कि असुरारि इन्द्रने हमारी तपस्यासे डरकर तपस्याभंग करनेके उपायस्वरूप ये सब विघ्न नियोजित किये हैं ॥ २१ ॥ देखो, शीतल सुगंध और मनोहर पवन प्रवाहित होता है इन्द्रके कार्यके अतिरिक्त इसमें दूसरा कोई कारण दिखाई नहीं देता ॥ २२ ॥ विप्रवर विभु देव नारायण ये सब वचन कहते ही थे कि इसी समय मन्मथादि सब उनको दिखाई दिये ॥ २३ ॥ भगवान् नर और नारायण दोनों ही उनको देखकर आश्चर्यमें हुए ॥ २४ ॥ फिर उन्होंने मनोभव मेनका रंभा तिलोत्तमा पुष्पगंधा सुकेशी महाश्वेता मनोरमा ॥ २५ ॥ प्रमद्वरा चारुहासिनी संगीतकी जाननेवाली घृताची, चन्द्रप्रभा, कोकिलभाषिणी, सोमा ॥ २६ ॥ अम्बुजाक्षी, कांचनमालिनी, विद्युन्माला, इन सब और अन्यान्य वरारोहा अप्सराओंको सन्मुख देखा ॥ २७॥ आठ हजार पांचसौ अप्सरागण और कामकी विस्तृत सेनाको देखकर दोनों मुनि विस्मित हुए ॥ २८ ॥ तब दिव्यमालासे शोभायमान दिव्याभरणयुक्त देवताओंकी स्त्रियें दोनों मुनियोंको प्रणाम कर सन्मुख अवस्थिति करने लगीं ॥ २९ ॥ फिर उन सब अप्सराओंने पृथ्वीतलमें दुर्लभ और कामदेवका बढ़ानेवाला स्वर्गीय संगीत आरंभ किया ॥ ३० ॥ भगवान् विष्णुस्वरूप नर नारायण दोनों मुनियोंने वह संगीत सुनकर प्रसन्नतापूर्वक उनसे कहा ॥ ३१ ॥ हे शोभनमध्यमा! अप्सरागण! तुम स्वर्गसे अतिथिधर्ममें यहां आई हो तुम इस स्थानमें सुखपूर्वक

रहो हम भलीभांतिसे तुम्हारा अतिथिसत्कार करेंगे ॥ ३२ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! देवराज इन्द्रने तपस्यामें विघ्न करनेकी इच्छासे निःसंदेह इन अप्सराओंको भेजा है यह चिन्ता कर नर नारायण दोनों मुनियोंने अभिमानमें पूर्ण हो विचारा ॥ ३३ ॥ कि ये सब अप्सरा सामान्यरूपसंपन्न और जघन्य निकृष्ट हैं. हम इससमय इनसेभी श्रेष्ठ दिव्यरूपसंपन्न नूतन अप्सराओंको उत्पन्न करके अपने तपोबलको दिखावें ॥ ३४ ॥ मनमें इसप्रकार विचार करद्वारा उरुताड़न करके शीघ्रही एक सर्वाङ्गसुंदरी नारी उत्पन्न करी ॥ ३५ ॥ वह शुभानना मुनिवरके उरुस्थलसे उत्पन्न होनेसे उर्वशी नामसे विख्यात हुई. अनन्तर वे सब अप्सरा इसको देखकर अत्यन्त अचंभेमें हुईं ॥ ३६ ॥ अनन्तर नारायण मुनिने इन्द्रकी भेजी अप्सराओंकी सेवा करनेको उनकी अपेक्षाभी सुंदरी उतनीही स्त्रियें सहसा उत्पन्न करीं ॥ ३७ ॥ उन उत्पन्न हुई समस्त अप्सराओंने अनेक भांतिके उपहार द्रव्य हाथमें लिये गान और हास्य करते करते, अंजलि बांध दोनों मुनियोंके आगे स्थित हो प्रणाम किया ॥ ३८ ॥ इन्द्रकी भेजी देवाङ्गना अन्यको मोहित करनेवाली होकरभी अपने मनको भ्रम करनेवाली तपस्याके फल सम्पत्ति स्वरूपिणी सर्वाङ्गसुंदरी उर्वशीको देखकर मोहित हुईं और उनके सब अंग रोमांचसे उत्फुल्ल होगये. तब वे अपने अपने वदनकमलकी परमशोभा विस्तारित करके दोनों मुनियोंसे कहने लगीं ॥ ३९ ॥ हे देवयुगल ! हम बाला हैं. हमको कुछभी ज्ञान नहीं है. आपकी तपस्याका महत्व और आपका धैर्य देखकर हम किसप्रकार आपकी स्तुति करनेमें समर्थ हों, अहो ! हमारे कटाक्षरूप विषदग्ध बाणसे जो दग्ध न हो ऐसा पुरुष पृथ्वीतलमें दिखाई नहीं देता. किन्तु उससे आपके मनमें कुछभी विकार दिखाई नहीं देता, अतएव आपका माहात्म्य अतिआश्चर्यजनक है ॥ ४० ॥ हम जानती हैं आप दोनोंही विष्णुके अंशस्वरूप देव और मननशील तथा शमदमादिही आपके निधिस्वरूप हैं. आपकी सेवाके लिये हम इस स्थानमें नहीं आई हैं. वरन् आपकी तपस्यामें विघ्नसंपादनरूप देवराज इन्द्रका कार्य साधनके लिये ही हम इस स्थानमें आई हैं ॥ ४१ ॥ हमारे इस प्रकार दुर्जन होनेपर भी हमारे किसी संचित भाग्यके फलसे आपका दर्शन प्राप्त हुआ. उससे हम अवगत नहीं हैं और हमारी समान अपराध करनेवाले व्यक्तिके प्रति शापादिप्रदान करनेमें समर्थ होकर भी अपना जन जान जो आपने शापादिप्रदान न करके मनस्ताप दूर किया. इससे आपका क्षमागुण

अत्यन्त प्रशंसनीय हुआ. हम जानती हैं ॥ ४२ ॥ महानुभव पण्डितगण तुच्छ-फलप्रद शापादिसे अपनी तपस्याका व्यय नहीं करते. व्यासजी बोले हे राजन्! काम और लोभके जीतनेवाले वे धर्मपुत्र दोनों महर्षि विनयावनत सुरकामिनीगणोंके इस प्रकारके वचन सुनकर ॥ ४३ ॥ प्रीत और प्रसन्नवदन हुए और अपने तपकी प्रभासे प्रदीप्ताङ्ग हो उनसे कहने लगे. नर नारायण बोले हे रमणीगण! हम तुम्हारे प्रति संतुष्ट हुए हैं. तुम अभिलषित वर मांगो. हम इसीसमय वह प्रदान करेंगे ॥ ४४ ॥ फिर तुम इस शोभायमान नेत्रवाली उर्वशीको लेकर स्वर्गमें चली जाओ. यह मनोरमा बालिका उर्वशी देवराजका उपहारस्वरूप तुम्हारे संग गमन करे ॥ ॥ ४५ ॥ हमने अमरराजकी प्रीतिके लिये उरुसे उत्पन्न हुई इस उर्वशीको प्रदान किया. इस समय सब देवताओंका कल्याण हो. तुम अपने अपने इष्ट स्थानमें जाओ. इसके पीछे फिर किसीकी तपस्यामें विघ्न न करना ॥ ४६ ॥ अप्सरागणोंने कहा हे नारायण! हे सुरश्रेष्ठ! हम परमभक्तिवशतः आपके चरणकमलोंको प्राप्त होकर अत्यन्त आह्लादित हुई हैं. हम इस समय कहां जायँ॥ ४७॥ हे नाथ! हे मधुसूदन! हे कमललोचन! आप यदि सन्तुष्ट होकर हमको वांछित वर देते हैं. तो अपने मनोरथ आपसे कहतीं हैं सुनिये ॥ ४८॥ हे देवेश! आप जगत्के पति हैं. अतएव आप हमारे पति हूजिये. हे परंतप! हम प्रसन्नचित्तसे आपकी सेवामें सदा नियुक्त रहेंगी ॥ ४९ ॥ आपने जिन सब नारियोंको उत्पन्न किया है वे शोभायमान नेत्रवाली रमणीगणभी इस स्थानमें विद्यमान हैं. इस समय उर्वशी इत्यादि ॥ ५० ॥ नारीगण सभी आपकी आज्ञासे स्वर्गमें गमन करें और हम सोलह हजार पांचसो रमणी इस स्थानमें आपकी सेवा करती रहैं ॥ ५१ ॥ हे माधव! आप देवतागणोंके प्रभु हैं अतएव हमको वांछित वर देकर आप सत्यभाषी हूजिये. तत्वदर्शी धर्मके जाननेवाले मुनियोंने कहा है कि कामातुर स्त्रियोंकी आशाका भंग करनेसे हिंसाजनित पापमें लिप्त होना पड़ता है ॥ ५२ ॥ हम भाग्यवशतः स्वर्गसे इस स्थानमें आकर प्रेममें निमग्न हुई हैं ॥ ५३ ॥ हे देवेश! आप जगत्के स्वामी हैं, आप सभी कार्यमें समर्थ हैं अत एव आप हमको परित्याग नहीं कीजिये. नारायणने कहा हे तन्वंगी अप्सराओ! मैंने इस स्थानमें पूर्ण हजारवर्षपर्यन्त जितेन्द्रिय होकर तपस्या करी है ॥ ५४ ॥ इस समय किसप्रकार विषयसंगमें लिप्त होकर उस तपस्याका भंग कर सक्ता हूं? परमानन्द और धर्मके

विनाशक विषयसंभोग सुखमें हमारी वासना नहीं होती ॥ ५५ ॥ क्योंकि कौन मतिमान् पशुके समान विषयसंभोग धर्ममें प्रवृत्त होसकता है अप्सरागणोंने कहा हे मुनिवर! शब्दादिपाँचोंमें स्पर्शसुख हो ॥ ५६ ॥ आनंदरसमूलक और श्रेष्ठ है इसके समान श्रेष्ठ सुख दूसरा और कुछ नहीं है अतएव आप हमारे वचनानुसार कार्य करके आनंदरसभोग कीजिये ॥ ५७ ॥ आप इस गंधमादनपर्वतमें अत्यन्त सुख प्राप्त करके विचरण कीजिये आप यदि स्वर्गकी कामना करते हैं तो जानिये कि गंधमादनसे श्रेष्ठ स्वर्ग दूसरा नहीं है ॥ ५८ ॥ आप इस परम मनोहर शोभायमान स्थानमें सुराङ्गनागणोंके सहित परमसुखसे विहार करके परमानंदरस अनुभव कीजिये ॥ ५९ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे भाषायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ७.

व्यासजीने कहा हे राजन्! महत् प्रभावसंपन्न धर्मनन्दन नारायण उन अप्सराओंके इस प्रकार वचन सुनकर अपने कर्त्तव्यकार्यकी चिन्ता करने लगे ॥ १ ॥ यदि मैं इस समय विषयासङ्गमें प्रवृत्त हूं तो मुनिगणोंमें अवश्यही उपहासका भाजन हूंगा और अहंकारही धर्मविनाशका आदि और प्रधानमूल है अहंकारसेही जो यह दुःख उपस्थित हुआ है इस विषयके विचारमें अब प्रयोजन नहीं है ॥ २ ॥ महात्मा महर्षिगण कहते हैं कि अहंकारही संसाररूपी वृक्षकी जड़ है मैंने वाराङ्गनागणोंको देखकर मौनावलम्बन पूर्वक अवस्थान न किया ॥ ३ ॥ बरन उनसे बातचीत इत्यादि की है इसीसे दुःखका भाजन हुआ विशेषतः धर्मव्यय करके स्त्रियोंको उत्पन्न किया है ॥ ४ ॥ इन्द्रकी भेजी यह उत्तम और मनोहर प्रमदागण कामातुर होकर तपोधर्षण तपके नाश करनेमें प्रवृत्त हुई हैं यदि अहंकारसे इनको उत्पन्न न करता तो मुझको यह दुःख उपस्थित ही नहीं होता! इस समय मैं ऊर्णनाभ (मकरी) के समान अपने बनाये दृढजालमें स्वयंही बंध गया अब मुझको क्या करना चाहिये ॥ ५ ॥ इन तपके नाशनेवाली स्त्रियोंके त्याग करनेमें क्या चिन्ता है यह विचारकर यदि इन अबलागणोंको परित्याग करें ॥ ६ ॥ तो यह भग्नमनोरथ हो केवल शाप देकर चली जांयगी तो शीघ्र भारी विपदसे छूटकर विजनस्थानके मध्य उत्तम तपस्या करनेमें समर्थ हूंगा ॥ ७ ॥ अतएव क्रोध प्रगट करके इन सुन्दरीगणोंको

परित्यागकरूं व्यासजी बोले हे राजन् ! नारायणमुनि ॥ ८ ॥ सुखोत्पादनसाधनार्थ इसप्रकार चिन्ता करके फिर मनमें विचारने लगे कि यह दूसरा महाशत्रु क्रोध त्रैलोक्यमें अत्यन्त सन्ताप दायक है ॥ ९ ॥ यह कामसेभी अधिक बलवान् और लोभसे भी अत्यन्त दारुण है मनुष्यगण क्रोधयुक्त होकर प्राण विनाशिनी हिंसा करते हैं ॥ १० ॥ यह हिंसा नरकका बगीचा भूमिको दीर्घिकारूपिणी (बावड़ी) है और सब जीवोंको दुःख देनेवाली है जिस प्रकार वृक्षोंके संघर्षणसे अग्नि उत्पन्न होकर अपनी उत्पत्तिके कारण वृक्षोंकोही जलाती है ॥ ११ ॥ इसीप्रकार दारुण क्रोधभी देहसे उत्पन्न होकर देहकोही जलाता है. द्वैपायनने कहा नरनामक धर्मके छोटे पुत्रने भ्राताको इसप्रकार चिन्तातुर और दीनमन देखकर ॥ १२ ॥ यथार्थ वचन कहे नर बोले हे नारायण आप महाभाग और महामति हैं ॥ १३ ॥ अतएव क्रोधभावको दूरकर शान्तभाव अवलम्बन पूर्वक दुर्द्धर्ष अहंकारका विनाश कीजिये आपको क्या स्मरण नहीं है कि पूर्वमें अहंकारके दोषसे ही हमारी तमस्या नष्ट हुई थी ॥ १४ ॥ और दिव्यसहस्र वर्षपर्यन्त असुरेन्द्र प्रह्लादके संग अत्यन्त अद्भुत संग्राम उपस्थित हुआ था ॥ १५ ॥ हे सुरोत्तम ! उसमें हमने अत्यन्त दुःख पाया था अतएव हे मुनीन्द्र ! आप क्रोधभावको छोड़कर शान्त भावका अवलम्बन कीजिये ॥ १६ ॥ "मुनिगण कहते हैं कि, शान्तिही तपस्याकी एकमात्र मूल है" व्यासजी बोले हे राजन् ! नरऋषिके ये सब वचन सुनकर धर्मनन्दन नारायणने शान्तभावका अवलम्बन किया जन्मेजयने कहा हे मुनीश्वर ! महात्मा प्रह्लाद विष्णुभक्त और शान्तचित्त थे ॥ १७ ॥ पूर्वकालमें उनके संग किसप्रकार युद्ध उपस्थित हुआ था ? नर नारायण दोनों ऋषियोंने किसप्रकार उनसे युद्ध किया था ? इस विषयमें मुझको अत्यन्त संशय उत्पन्न हुआ है ॥ १८ ॥ दोनों धर्मपुत्र तापस और शान्तचित्त थे इनके सहित दैत्यसुतका समागम किस प्रकार हुआ था ॥ १९ ॥ उन महात्माके संग दोनों ऋषियोंने किसप्रकार संग्राम किया था ? प्रह्लादभी अत्यन्त धार्मिक. ज्ञानवान् और एकान्त विष्णु परायण थे ॥ २० ॥ नरनारायण भी सत्वगुणसंपन्न तापस थे. अतएव प्रह्लादके संग यदि नरनारायणका वैरभाव उत्पन्न हुआ था ॥ २१ ॥ तो पहिले सतयुगके समयभी तपस्या धर्ममें केवल श्रममात्रही दिखाई देता है तथा जप और तप सभी वृथा बोध होता है ॥ २२ ॥ ऐसे तपस्वी भी क्रोधावृत और अहंकाराच्छन्न चित्तको नहीं जीतसके ! क्योंकि अहंकारके अंकुर विना क्रोध और मात्सर्य कभी उत्पन्न नहीं होसक्ता ॥ २३ ॥

अहंकारसेही काम क्रोधादि उत्पन्न होते हैं, कोटिसहस्रवर्ष कठिन तपस्या करके भी ॥ २४ ॥ यदि अहंकारका अंकुर उत्पन्न हो, तो वह संपूर्ण तप व्यर्थ होजाता है. जिसप्रकार सूर्यके उदय होनेपर अन्धकारका लेशमात्रभी नहीं रहसक्ता ॥ २५ ॥ इसीप्रकार अहंकारके अंकुरका अग्रभाग उदित होनेसे किंचित् भी पुण्य नहीं रहता प्रह्लादने भी यदि बलवान् हरिके संग युद्ध किया था ॥ २६ ॥ तब तो पृथ्वीमें सुकृत सभी विफल होगया है, शान्तचित्त नर नारायण दोनों ऋषियोंने परम पदार्थ तपस्याको त्यागकर जब युद्ध किया था॥२७॥तब शान्ति और सुकृति कहां रही ? जब कि इस प्रकार सत्वगुणसंपन्न दोनों ऋषि अहंकारको नहीं जीतसके ॥ २८ ॥ तो मेरे समान असारचित्त पुरुषोंके अहंकार नाश विषयमें फिर क्या कहना है ? इसप्रकार महान् व्यक्तिगण जब अहंकारसे मुक्त नहीं थे. तब तीनों भुवनोंमें अहंकाररहित और कौन होसकता है ॥ २९ ॥ मैं निश्चय जानता हूं. इस विश्वमें अहंकारमुक्त कोई न हुआ न होगा. लोहेकी बेड़ी वा काठकी बेड़ीसेभी मनुष्य मुक्त हो सक्ता है ॥ ३० ॥ किन्तु एकबार अहंकारसे बांधनेपर फिर कभी उससे मुक्त नहीं होसक्ता यह स्थावर जंगमात्मक संपूर्ण जगत् अहंकारसे आवृत होकर॥३१॥ विष्ठामूत्रप्रदूषित इस संसारमें भ्रमण करता है अतएव इस मोहसे ढकेहुए संसारमें ब्रह्मज्ञान कहां है ? ॥ ३२ ॥ हे सुव्रत ! मीमांसकगणोंका कर्मप्रधान मतही संगत और समीचीन दिखाई देता है. हे मुने ! जब प्रधान प्रधान पुरुषभी सदा काम क्रोधादिसे ग्रसित हुए हैं ॥ ३३ ॥ तब कलियुगमें मेरे समान लघुचित्तकी फिर बातही क्या है ? व्यासजीने कहा हे भरतकुलभूषण ! कार्य कारणसे भिन्न है. यह किसप्रकार कह सक्ते हैं॥ ३४॥कटक और कुंडल उपाधिभेदसे भिन्न होनेपरभी दोनोंही अपने कारण सुवर्णके समान हैं. यह सब चराचर ब्रह्माण्ड अहंकारसे उत्पन्न है ॥ ३५॥ वस्त्रका कारण तन्तु है अतएव वस्त्र जिस प्रकार तन्तुसे अभिन्न नहीं हो सक्ता, इसी प्रकार चराचरके सहित यह संपूर्ण ब्रह्माण्ड अहंकारसे उत्पन्न होकर किस प्रकार उससे मुक्त होसक्ता है!छोटे तृणसे लेके स्तम्बपर्यन्त स्थावर जंगमात्मक यह संपूर्ण जगत् मायाके तीनगुणोंसे विरचित है ॥३६॥ अतएव उसके मिथ्या होनेपर ज्ञानीगणोंको उससे दुःखादि क्या है ? हे नृपसत्तम ! ब्रह्मा विष्णु और महादेवभी अहंकारसे मोहित होकर ॥ ३७ ॥ इस अगाध संसार समुद्रमें भ्रमण करते हैं, वसिष्ठ नारदादि महाज्ञानी मुनियोंने भी ॥ ३८ ॥ इस संसारमें वारंवार जन्म ग्रहण

किया है और करते हैं. हे राजेन्द्र ! इस त्रैलोक्यमंडलमें ऐसा कोई भी देहधारी नहीं है॥ ३९॥ जो मायाके गुणोंसे एकबार ही मुक्त तथा शान्त और परमात्मसुखमें अवस्थित होसके. हे नृपोत्तम! काम, क्रोध, लोभ और मोह सभी अहंकारसे उत्पन्न हैं ॥ ४० ॥ यह देहधारियोंमें किसीकोभी परित्याग नहीं करते. संपूर्ण वेद शास्त्र अध्ययन और सब पुराणोंकी आलोचना ॥ ४१ ॥ तीर्थपर्यटन, दान, ध्यान और देवार्चना करके भी मनुष्यगण विषयासक्त होकर तस्करके समान सभी कर्म करते हैं ॥ ४२ ॥ वे कामान्ध मोहान्ध और मदान्ध होकर प्रथम कुछ भी विचार करनेमें समर्थ नहीं होते. हे कुरुनन्दन ! इस संसारमें सत्य त्रेता और द्वापर ॥ ४३ ॥ इन तीनों युगोंमें ही धर्मविद्ध और क्षत विक्षत हुआ. है अब कलिकालकी बात फिर क्या कहूं? इस कलियुगमें सदाही द्रोह लोभ और अमर्षादि वर्त्तमान रहता है॥ ४४॥ अतएव यह काल जो अतिशय दूषित होगा: इसमें फिर बातही क्या है ? इस कालमें मत्सरहीन क्रोधजित् अमर्षजित् साधुपुरुष अत्यन्त विरल हैं ॥ ४५ ॥ केवल आदर्श दिखानेके कोई कोई शान्तचित्त व्यक्ति वर्त्तमान रहते हैं. राजाने कहा हे मुने ! जो मोहरहित जितेन्द्रिय और सदाचार संपन्न हैं वेही धन्य और पुण्यवान् हैं ॥ ४६ ॥ उन्होंनेही त्रैलोक्यको जीता है. हे मुनिवर ! मेरे महात्मा पिताने जो कार्य किया इससे मैं दुःखी हूं ॥ ४७ ॥ विना अपराध तपस्वीके गलेमें मराहुआ सर्प डाला था, उनका वह पापकार्य स्मरण करके मैं अत्यन्त दुःखी और क्लिष्ट होता हूं. अतएव हे मुने ! आप कहिये मैं उसका क्या प्रतीकार कर सक्ता हूं? ॥ ४८ ॥ हे भगवन् ! बुद्धिदोषसे इस विषयमें क्या संघटित होगा सो मैं नहीं कह सक्ता ? मूढ़ात्मा मधुके लालचसे मधुही देखते हैं. सन्मुख जो प्राणसंहारक पर्वत पड़ा रहता है उसको वे बुद्धिके दोषसे कभी नहीं देखसक्ते ॥ ४९ ॥ इस प्रकार सब लोग निन्दितकर्म करते हैं और सन्मुख जो घोरतर भयंकर नरक रहता है उसको वे मोहके वशीभूत होकर नहीं देखते, अतएव उससे डरते भी नहीं सो जो हो हे मुनीन्द्र ! पूर्वकालमें किसप्रकार युद्ध हुआ ? सो कहो ॥ ५० ॥ प्रह्लादके संग नरनारायणका घोर युद्ध उपस्थित हुआ था ? यह आप विस्तारसहित मुझसे वर्णन कीजिये. प्रह्लाद पातालतलसे सारस्वतमहातीर्थमें तथा पुण्यकर और पवित्र बदरिकाश्रममें किसलिये आये थे ? यह आप मुझसे कहिये. हे मुने ! शान्तचित्त मुनिवर नरनारायणने ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ किसकारण प्रह्लादसे युद्ध किया था?

धन संपत्तिके लिये वा स्त्रीके लिये स्वभावसेही परस्पर विवाद होता है ॥ ५३ ॥ उक्त दोनों महर्षि वासनारहित थे तो किस लिये घोर संग्राममें प्रवृत्त हुए थे ? और प्रह्लादभी धर्मात्मा थे. वे जानते थे कि नर नारायण दोनों मुनि सनातन देवता हैं ॥ ५४ ॥ तब उन्होंने किस कारण उनसे युद्ध किया था ? हे ब्रह्मन् ! इसका कारण विस्तारसहित सुननेकी मुझको अत्यन्त वासना उत्पन्न हुई है ॥ ५५ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे भाषायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ८.

सूतजी बोले हे तापसगण ! परीक्षितके पुत्र जन्मेजयके इसप्रकार पूँछनेपर सत्यवतीके पुत्र विप्रोत्तम व्यासदेवजीने उन सब विषयोंको विस्तारसहित कहा था ॥ १ ॥ धर्मात्मा जन्मेजय उन सबको सुन, अपने पिता उत्तरातनय परीक्षितका दुश्चरित समझ अत्यन्त दुःखको प्राप्त हुए थे ॥ २ ॥ उनके पिताने ब्राह्मणकी अपमानतास्वरूप पापाचरणके कारण यमलोकमें गमन किया. तिनका उद्धार करनेके लिये वह सदाही मनमें चिन्ता करते थे ॥ ३ ॥ हे ऋषिगण ! पुन्नामक नरकसे पिताकी रक्षा करनेके कारण आत्मजका पुत्र यह नाम हुआ है, अतएव जिस किसी उपायसे पिताकी रक्षा करनेसे आत्मजका "पुत्र" नाम सार्थक होता है ॥ ४ ॥ उत्तराके पुत्र राजा परिक्षितने ब्राह्मणके शापसे स्नानदानरहित हो महलके ऊपर प्राण परित्याग किया है ॥ ५ ॥ पिताकी इस प्रकार दुर्गति सुनकर परिक्षितपुत्र महाभाग नरपति जन्मेजय अत्यन्त संतप्त और भयसे विह्वल हो दुःखको प्राप्त हुए थे ॥ ६ ॥ फिर ऋषिश्रेष्ठ निर्मलात्मा व्यासदेवजीके घर आनेपर उन्होंने उनसे नरनारायणकी यह अत्यन्त विस्तृत कथा पूछी थी ॥ ७ ॥ ऋषिवर व्यासदेवजी जन्मेजयके प्रश्न सुनकर कहने लगे हे नृपते ! जब अत्यन्त उग्रवीर्य असुरराज हिरण्यकशिपु मारागया तब प्रह्लादनामक उसका पुत्र उस राज्यमें अभिषिक्त हुआ ॥ ८ ॥ देवता और ब्राह्मणोंका पूजनेवाला वह दैत्यश्रेष्ठ राज्यशासन करने लगा, तब पृथ्वीतलमें वास करनेवाले राजागण श्रद्धायुक्त हो अनेक प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान करके देवताओंको तृप्त करने लगे ॥ ९ ॥ उसके राजत्वकालमें ब्राह्मणगण तपस्या धर्म और तीर्थयात्रामें निरत, वैश्यगण व्यापारादि अपने अपने कार्यमें आसक्त और शूद्रगण सेवामें मन लगाते हुए ॥ १० ॥ हरिके अवतार नृसिंहदेवने दैत्य-

राज प्रह्लादको पातालतलमें स्थापित किया था, प्रल्हाद उस स्थानपरही प्रजा-पालनमें निरत रहकर राज्य करते थे ॥ ११ ॥ किसी समय भृगुके पुत्र महातपा च्यवन मुनि नर्मदाके जलमें स्नान करनेको व्याहृतीश्वर नामक तीर्थमें गये थे ॥ १२॥ उस स्थानमें महानदी रेवाको देखकर उसमें उतर रहे थे इसी समयमें एक भयानक सर्पने आनकर उनको ग्रहण किया ॥ १३ ॥ उन मुनिसत्तमने नागद्वारा ग्रसित हो, पातालतलमें पहुँच अत्यन्त भयसे मनमें भगवान् देवदेव जनार्दन विष्णुका स्मरण किया था ॥ १४ ॥ पुण्डरीकाक्षका स्मरण करनेसे वह महासर्प निर्विष होगया था, इसलिये मुनिवर पातालमें पहुँच करभी विषजनित किसीप्रकारके दुःखको प्राप्त नहीं हुए थे ॥ १५॥ तब सर्पराजने मुनिवरके प्रभावको जाना "फिर ये तपस्वी मुझको शाप देंगे" इस भयसे अत्यन्त शंकित और दुःखयुक्त हो उनको छोड़ दिया ॥ १६ ॥ मुनिसत्तम च्यवन नागकन्याओंसे पूजित वहां विचरण करने लगे. फिर एक समय नाग और दानवगणोंके परममनोहर पुरमें गये ॥ १७ ॥ भृगुनंदन च्यवन किसी समय अन्तःपुरमें विचरण कर रहे थे. इसी समयमें दैत्यराज धर्मवत्सल प्रह्लादने उनको देखा ॥ १८ ॥ दैत्यराजने उनको देखकर उस समय उनकी पूजा करी और फिर उनसे पातालमें आनेका कारण पूछा ॥ १९ ॥ प्रल्हादने उनसे कहा हे द्विजोत्तम! आप क्या इन्द्रके भेजे यहां आये हैं? सो सत्य कहिये.मुझको बोध होता है कि दैत्यविद्वेषी इन्द्रनेही आपको मेरा राज्य देखनेके लिये भेजा है ॥ २० ॥ च्यवनने कहा हे राजन्! इन्द्रके संग मेरा कोई भी कार्य और संगति नहीं है, उनका भेजा दूतकार्य करनेके लिये मैं आपकी नगरीमें क्यों आऊंगा? ॥ २१ ॥ आप मुझको धर्मतत्पर ज्ञाननेत्र भृगुका पुत्र च्यवन जानिये. हे दैत्येन्द्र! इन्द्रका भेजा हुआ जानकर किसी प्रकारकी शंका न कीजिये ॥ २२ ॥ हे राजेन्द्र! मैंने स्नान करनेके लिये नर्मदाके पवित्रतीर्थमें जाय नदीके जलमें उतर रहा था, इसी अवसरमें एक सर्पने मुझको पकड़लिया ॥ २३ ॥ तब मैंने विष्णुका स्मरण किया. विष्णुका स्मरण करनेसे सर्पने निर्विष होकर मुझे छोड़ दिया है ॥२४॥ हे राजेन्द्र! यहां आनकर आपका दर्शन पाया. आप विष्णुके भक्त हैं मुझको भी उन्हीं विष्णुका भक्त जानिये ॥ २५ ॥ व्यासजी बोले हे राजन्! हिरण्यकशिपुके पुत्र प्रल्हादने उनके इस प्रकार मीठे वचन सुनकर परम प्रीति सहित उनसे अनेक तीर्थोंका विषय पूछा ॥ २६ ॥ प्रल्हादने कहा हे मुनि-

सत्तम ! पृथ्वीतलमें, पातालमें, अथवा आकाशमंडलमें कौन कौन तीर्थ पुण्यदायक हैं? उन सबका मुझसे विस्तारसहित वर्णन कीजिये ॥ २७ ॥ च्यवनने कहा हे राजेन्द्र ! जिसका देह, वाक्य और मन विशुद्ध होगया है, उसको पदपदमें ही तीर्थ हैं, जिसका चित्त मलीन है. उसको गंगाभी कीकटदेशसे अधिक कही गई हैं ॥ २८ ॥ यदि प्रथम मन पापरहित और विशुद्ध हो. तो उसके पक्षमें सब तीर्थही पवित्रकर होते हैं ॥ २९ ॥ हे दैत्यसत्तम ! गंगातीरमें अनेक नगर, वसति, व्रज वा गोष्ठ, आकर, ग्राम, क्षुद्रपल्ली, छोटे गाम ॥ ३० ॥ निषादनिवास और कैवर्त्तनिवास हूण, म्लेच्छ, जाति वङ्गजाति खस(जातिविशेष)अधिक क्या म्लेच्छगणोंके अनेक वासस्थान रहते हैं ॥ ३१ ॥ वहांके निवासी मनुष्यगण अपनी इच्छानुसार सदाही ब्रह्मोपम गंगाजल पान करते हैं. और उसी जलमें स्नानादि करते हैं ॥ ३२ ॥ हे राजन्द्र ! उन सबमें कोई भी विशुद्धात्मा नहीं हो सक्ता तो देखिये जिसका चित्त विषयोंमें आसक्त है, सुतरां जो विनष्टचित्त होरहा है उसको फिर तीर्थका क्या फल होसक्ता है ? ॥ ३३ ॥ तीर्थादि धर्मकर्मविषयमें मनको ही प्रधान कारण जानना चाहिये. अन्य कुछभी नहीं है जो शुद्धिकी कामना करते हैं मनको शुद्ध करनाही उनका प्रधान कर्त्तव्य है ॥ ३४ ॥ तीर्थवासी पुरुषगण तीर्थ स्थानमें अन्यव्यक्तिको छलकर महापापी होते हैं. तीर्थस्थानमें पापाचरण करनेपर वह फिर नष्ट नहीं होता वरन वह पाप अनन्त और अक्षय होता है ॥ ३५ ॥ जिसप्रकार इन्द्रवारुणीका फल पकने पर भी मीठा नहीं होसकता, इसीप्रकार जिसके चित्तका भाव दूपित है वह करोड़वार तीर्थके जलमें स्नान करनेसेभी शुद्ध नहीं होता ॥ ३६ ॥ जो कल्याणकी कामना करते हैं पहिले मन शुद्ध करनाहीं उनका कर्त्तव्य है, मन शुद्ध होनेपर फिर द्रव्यशुद्धि ॥ ३७ ॥ तदनन्तर आचार शुद्धि और तदुपरान्त तीर्थभ्रमण सिद्ध होता है. इसके अन्यथा होनेसे तत्काल समस्त व्यर्थ हो जाता है ॥ ३८ ॥ तीर्थमें जाकर हीनवर्णके सहित संसर्ग छोड़ बुद्धि और कर्मद्वारा जीवगणोंके प्रति दया प्रकाश करनी चाहिये. हे राजेन्द्र ! आपने पुण्यतीर्थकी कथा पूछी है अतएव मैं अतिउत्तम सब तीर्थोंकी कथा आपसे कहताहूं श्रवण कीजिये ॥ ३९ ॥ हे नृप ! पुण्यदायक नैमिषारण्यही प्रथम है फिर चक्रतीर्थ और तदुपरान्त पुष्कर तीर्थ है इनके अतिरिक्त पृथ्वीतलमें अन्यान्य अनेक तीर्थ हैं, उनकी गिनती नहीं है ॥ ४० ॥ हे नृपोत्तम ! इनके

अतिरिक्त भूमण्डलमें अनेक पवित्र स्थान भी विद्यमान हैं, व्यासजी बोले हे राजन्! दैत्यराज प्रल्हादने उनका यह वचन सुन नैमिषारण्यमें जानेके लिये उद्यत हो ॥ ॥ ४१ ॥ प्रसन्नतापूर्वक दैत्यगणोंसे चलनेको कहा. प्रल्हाद बोले हे महाभागगण! तुमलोग सब उठो हम सब अभी नैमिषारण्यमें जायँगे ॥ ४२ ॥ पुण्डरीकाक्ष पीतवासाअच्युतदेवके दर्शन कर चारितार्थ होंगे. व्यासजीने कहा हे राजन्! विष्णुभक्त प्रह्लादने जब इसप्रकार कहा तब सब दानवगण मुदितमन हो ॥ ४३ ॥ उनके संग पातालसे निकले उन महाबल दैत्य और दानवगणोंने मिलकर ॥ ४४ ॥ प्रसन्नचित्तसे वहाँ जाय स्नान किया था प्रह्लादने उस तीर्थमें दैत्यगणोंके सहित विचरण करते करते ॥ ४५ ॥ महापुण्यदायक निर्मल जलवाली सरस्वती नदीका दर्शन किया. हे नरेन्द्र! सरस्वतीके विमल जलमें ॥ ४६ ॥ स्नानकरके महात्मा प्रल्हादका मन प्रसन्न हुआ. दैत्यराजने प्रसन्न होकर उस कल्याणप्रद परमपवित्र तीर्थमें स्नान दानादि कर्म विधिपूर्वक समापनकिया था ॥ ४७ ॥ इस तीर्थमें प्रल्हाद बहुत प्रसन्नतासे सब कार्य करते हुए ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे भाषायां अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ९.

व्यासजीने कहा हे राजन्! हिरण्यकशिपुके पुत्र प्रल्हादने उस स्थानमें विधिपूर्वक तीर्थक्रिया करते करते पुरोभागमें छायाप्रधान एक वटका वृक्ष देखा ॥ १ ॥ फिर वहां गृध्रपक्षयुक्त, शाणित (धारवाले), सुतीक्ष्ण, महोज्वल, बाणोंको सुसज्जित देख ॥ २ ॥ मनमें चिन्ता करने लगे कि, इस परमपवित्र पुण्यतीर्थरूप ऋषियोंके आश्रममें किसके शर रक्षित हैं ॥ ३ ॥ प्रल्हाद मनमें इसप्रकार चिन्ता करतेही थे कि इसी समय उन्होंने कृष्णाजिनधारी, ऊंची जटाआदि धारण किये धर्मपुत्र दोनों मुनि नरनारायणको ॥ ४ ॥ और उनके अग्रभागमें शास्त्रोक्तलक्षणयुक्त सुशोभित शार्ङ्ग और आजगवनामक दो धनुष तथा अक्षय तरकस रक्खे हुए देखे ॥ ५ ॥ धर्मपुत्र महाभाग नर नारायण दोनों ऋषि ध्यानमें स्थित थे. असुरपालक प्रल्हाद उस समय उनको देख ॥ ६ ॥ क्रोधसे लाल लाल नेत्र करके कहने लगे हे दोनों तपस्वियो! तुम्हारे मनमें क्या धर्मविनाशक दम्भने प्रवेश किया है? ॥ ७ ॥ आपने कभी देखा वा सुना नहीं है कि, इस संसारमें सतयुगके समय तपाचरण और उग्रश-

रासन धारण ॥ ८ ॥ इन दोनोंका अत्यन्त विरोध है, यह कलिकालके उपयुक्त है. सतयुगमें इन दोनोंका अनुष्ठान किसप्रकार संगत होसक्ता है ? तपाचरण ही ब्राह्मणके उपयुक्त धर्म है. तब आप चाप क्यों धारण करते हैं? ॥ ९ ॥ मस्तकमें जटा-भार धारण करना कहां ? और विडम्बनास्वरूप धनुष बाण धारण करना कहां ? अतएव आपको दिव्यभावयुक्त होकर धर्मका आचरण करना ही युक्तिसंगत बोध होता है ॥ १० ॥ व्यासजी बोले हे भरत कुलभूषण ! मुनिवर नरने प्रह्लादके इस प्रकार वचन सुनकर कहा हे दैत्येन्द्र ! हमारी इस तपस्याके विषयमें तुमको वृथा इतनी चिन्ता क्यों हुई है? ॥ ११ ॥ जिसको सामर्थ्य है वह सबसे ही संपन्न होता है । हे मन्दबुद्धे ! हम इन दोनों कार्योंमें ही भली भाँति समर्थ हैं, यह तीनों लोकमें ही विख्यात है ॥ १२ ॥ हमको युद्ध और तपस्या इन दोनों कार्योंमें ही सामर्थ्य है, तुम इस विषयमें क्या करोगे ? यह मार्ग स्वच्छ पड़ा है, जहां इच्छा हो, वहां चले जाओ. इस स्थानमें किस कारण श्लाघा प्रकाश करते हो? ॥ १३ ॥ तुम मूढबुद्धि होकर ब्रह्मतेजको किस प्रकार जानसक्ते हो ? तुमको जानना चाहिये. कि जो सुखलाभ करनेकी अभिलाषा करते हैं, उनको ब्राह्मणसंबंधीय किसी विषयका विचार करना कभी उचित नहीं है ॥ १४ ॥ प्रह्लादने कहा हे दोनों तपस्वियो ! तुम मंदबुद्धि और वृथागर्वसे मोहित हो, धर्म–सेतुके प्रवर्त्तक दैत्यराज मेरे इस तीर्थमें विद्यमान रहते ॥ १५ ॥ यहां अधर्माचरण युक्तियुक्त नहीं होसक्ता हे तपोधन ! तुम्हारी युद्धके विषयमें क्या शक्ति है ? वह अभी मुझको दिखाओ ॥ १६ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! मुनिवर नरने प्रह्लादके यह वचन सुनकर कहा. यदि तुम्हारी इसी प्रकार बुद्धि उत्पन्न हुई है. तो मुझसे अभी युद्ध करो ॥ १७ ॥ हे असुराधम ! अभी युद्ध करके मैं तेरा मस्तक विदीर्ण कर डालूंगा. तो फिर तेरी कभी युद्ध करनेकी अभिलाषा नहीं होगी. व्यासजीने कहा हे राजन् ! महाबलशाली दैत्यराज प्रह्लादने उनका वचन सुन, कुपित हो ॥ १८ ॥ यह प्रतिज्ञा करी कि जिस किसी उपायसे इन तपस्वी नर नारायण ॥ १९ ॥ दोनों ऋषियोंको युद्धमें पराजित करूंगा. व्यासजी बोले तदनन्तर दैत्यराजने शरासन ग्रहण कर ॥ २० ॥ शीघ्र आकर्षणपूर्वक प्रत्यंचाका शब्द किया, हेराजेन्द्र! तिसकाल ऋषिवर नर भी शरासन ग्रहण कर क्रोध-युक्त हो अनेक शिलापर पैनाये ॥ २१ ॥ सब अस्त्र प्रह्लादके ऊपर निक्षेप करने लगे ॥ २२ ॥ अनन्तर दैत्यपति प्रह्लादने शीघ्रता सहित स्वर्णपुंखबाणोंसे नरके

चलाये सब बाणोंको छिन्न भिन्न कर डाला। तब ऋषिवर नर अपने चलाये सब बाणोंको कटता देखकर क्रोधयुक्त हुए और अन्यान्य अनेक बाणोंकी वर्षा करनेलगे ॥ २३ ॥ तब दैत्याधिपति प्रह्लादने तीव्रवेगी बाणोंसे उन सब बाणोंको काटकर उन मुनिवरके उरुस्थलमें आघात किया और नरने भी क्रोधित होकर पांच बाणोंसे दैत्यराजकी दोनों भुजा विंध डालीं ॥ २४ ॥ उनका युद्ध देखनेके लिये इन्द्रादि देवतागण विमानमें बैठ आकाशमण्डलमें स्थिति कर कभी नर ऋषिकी और कभी प्रह्लादकी प्रशंसा करने लगे ॥ २५ ॥ दैत्यराज चाप ग्रहण कर, मेघ जिसप्रकार पर्वतके शृंगपर जलकी वर्षा करते हैं. इसीप्रकार नरके ऊपर अत्यन्त क्रोधयुक्त हो अनेक भांतिके अस्त्रोंकी वर्षा करनेलगा. हे महाराज! उस समय मुनिवर नर प्रह्लादके बाणोंसे विद्ध होकर अत्यन्त ग्लानियुक्त हुए. तब नारायण नरको क्लांत देखकर अत्यन्त रुष्ट हुए और अप्रमेय शार्ङ्ग शरासन धारण कर स्वर्ण-पुंख बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ २६ ॥ हे पृथ्वीन्द्र! तिसकाल परस्पर जयकी इच्छा करनेवाले नारायण और प्रह्लादका तुमुल संग्राम उपस्थित हुआ. देवतागण आकाशमार्गमें अवस्थिति करके उनके ऊपर प्रसन्नचित्तसे फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ २७ ॥ दैत्यराज प्रह्लाद अत्यन्त कुपित होकर अत्यन्त तीव्र वेगसे अस्त्रोंका निक्षेप करने लगा. धर्मपुत्र नारायणने धनुषसे छोड़े हुए तीक्ष्ण अस्त्रोंके द्वारा तत्काल उन सब अस्त्रोंको काट डाला ॥ २८ ॥ तदनन्तर प्रह्लाद तीक्ष्ण बाणोंके द्वारा युद्धमें अटल उन वीरवर धर्मपुत्र नारायणपर बाण बरसाने लगे. नारायणने भी शिलापर पैनाये बाणोंको वेगसहित चलाकर ॥ २९ ॥ आगे स्थित दैत्यपतिको पीड़ित और अस्थिर किया. इस युद्धको देखनेके लिये आकाशमें ॥ ३० ॥ देवता और दैत्यगणोंका समूह उपस्थित हुआ. उसके बीचबीचमें दोनोंके जयकी घोषणा करने लगे दोनोंके शरवर्षणसे गगनतल आच्छादित होकर ॥ ३१ ॥ दिवाभाग भी रात्रिके समान अंधकारमय हो उठा। तब देवता और दैत्यगणोंने अत्यन्त आश्चर्ययुक्त होकर परस्पर कहा कि ॥ ३२ ॥ इस प्रकारका दारुण युद्ध हमने पहिले कभी नहीं देखा. तिस काल देवर्षिगण, गंधर्वगण, यक्षगण, किन्नरगण, सर्पगण ॥ ३३ ॥ विद्याधरगण और चारणगण, सभी अत्यन्त आश्चर्ययुक्त, हुए थे. नारद और पर्वत ऋषि भी इस युद्धको देखनेके निमित्त उपस्थित हुए थे ॥ ३४ ॥ देवर्षि नारदने पर्वतसे कहा पहिले कभी इस प्रकार युद्ध उपस्थित नहीं हुआ था। तारकासुर और वृत्रासुरका युद्ध ॥ ३५ ॥

तथा हरिका मधुकैटभके संग जो युद्ध हुआ था, वे सब युद्ध भी ऐसे नहीं थे, बोध होता है कि प्रह्लाद अतिशय वीर्यवान है, क्यों कि सिद्ध पुरुष ॥ ३६ ॥ अद्भुतकर्मा नारायणके सहित अभीतक समान ही युद्ध कर रहा है. व्यासजी बोले हे राजन्! तिसकाल दिनरातमें वारंवार ॥ ३७ ॥ वह दैत्य और तापस नारायण ये दोनों वारंवार अत्यन्त घोरसंग्रामकरने लगे तब नारायणने शीघ्रतासहित एकही बाणसे प्रह्लादका शरासन काट डाला ॥ ३८ ॥ फिर प्रह्लादने भी दूसरा धनुष ग्रहण किया. लघुहस्त नारायणने शीघ्रतासहित दूसरा बाण चलाकर ॥ ३९ ॥ उस धनुषका मध्यभाग काट डाला. इसप्रकार वारंवार धनुष कटनेपर प्रह्लाद भी वारंवार उसको ग्रहण करनेलगा ॥ ४० ॥ नारायण भी क्रोधकर अस्त्रसे उनको वारंवार काटने लगे. इसप्रकार सब धनुषोंके कटनेपर फिर दैत्यराजने परिघ ग्रहण किया ॥ ४१ ॥ और अत्यन्त कुपित होकर नारायणकी बाहुमें शीघ्रतासहित निक्षेप किया. बलवीर्यवान् भगवान् नारायणने उस घोर परिघको आताहुआ देख ॥ ४२ ॥ शीघ्रतासहित बाण चलाय उसको काट डाला और दशबाणोंसे प्रह्लादको विद्ध किया अनन्तर प्रह्लादने लोहेकी दृढ गदा उठाय ॥ ४३ ॥ क्रोधमें भर नारायणके जानुदेशको लक्ष्य कर वेगसहित चलाई. अत्यन्त बलवान् धर्मनन्दनने, गदा देखकर भी स्थिरमन और पर्वतके समान अचल भावसे खड़े रहकर ॥ ४४ ॥ शीघ्रतासहित अपने बाणोंके द्वारा दैत्यपतिकी उसदृढ गदाको काट डाला ॥ ४५ ॥ तिसकाल आकाशमें स्थित दर्शकगण अत्यन्त आश्चर्ययुक्त हुए थे. इसके उपरान्त शत्रुविनाशी प्रह्लादने अत्यन्त कुपित हो शक्तिग्रहणपूर्वक ॥ ४६ ॥ शीघ्र नारायणके उरुस्थलको लक्ष्य करके तीव्रवेगसे चलाई। उस शक्तिको आती हुई देखकर नारायणने लीलापूर्वक ही एक बाणसे काटकर ॥ ४७ ॥ सात टुकड़े कर दिये और सात बाणोंसे शीघ्र उसको बींधडाला. इस प्रकार उस आश्रममें प्रह्लाद और नारायणका दिव्यसहस्रवर्षपर्यन्त ॥ ४८ ॥ सर्वजीवोंको परमाश्चर्यदायक घोर युद्ध हुआ था, तब पीतवासा चतुर्भुज गदाधरने शीघ्रतासहित ॥ ४९ ॥ प्रह्लादके निकट आय उसको बुलाया। हिरण्यकशिपुके पुत्र प्रह्लादने, चतुर्भुज, रमाकान्त, पद्मधारी चक्रधर नारायणको ॥ ५० ॥ उस स्थानमें आया देख, परमभक्तिसहित प्रणामपूर्वक हाथ जोड़कर उनसे कहा. प्रह्लाद बोले हे देवदेव ! आप जगन्नाथ और भक्तवत्सल हैं ॥ ५१ ॥

हे माधव ! मैं ने दिव्य पूर्ण सौवर्षतक संग्राम किया तो भी इन दोनों तपस्वियोंको किस कारण मैं समरमें परास्त न करसका ॥ ५२ ॥ इस विषयमें मुझको महान् आश्चर्य उत्पन्न हुआ विष्णुजीने कहा हे क्षमाशील यह दोनों "सिद्ध मेरे अंश हैं इसमें विस्मय क्या है ? ॥ ५३ ॥ यह नर नारायण दोनोंऋषि तापस. जितात्मा हैं इसलिये तुम इनको पराजय नहीं करसके हे राजेन्द्र ! तुम अब पातालमें जाओ मेरे प्रति उसीप्रकार अचलभक्ति करो ॥ ५४ ॥ हे महामते ! तुम दोनों तपस्वियोंसे फिर विरोध न करना. व्यासजीने कहा हे राजन् ! दैत्यराज प्रह्लाद भगवान् विष्णुसे इसप्रकार आज्ञा पाय असुरगणोंके सहित वहांसे चलेगये ॥ ५५ ॥ और दोनों नर नारायणने भी फिर तपस्यामें मन लगाया ॥ ५६ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषायां नवमोऽध्यायः ॥ ९

दशमोऽध्यायः १०.

दोहा—कहत दशम अध्यायमें, भृगुमहर्षिके शाप ॥
देहधारि श्रीकृष्णने, दूर किये सन्ताप ॥

जन्मेजय बोले हे पराशरनन्दन ! आपके पूर्वोक्त वचन सुनकर मुझको महान् संशय उत्पन्न होता है. धर्मपुत्र नरनारायण दोनों तपोधन, शान्त, विष्णुके अंश, तीर्थाश्रयी, सत्वगुणसंपन्न, सदा वनके फलमूलादिका आहार करने वाले, महात्मा, तापस, और सत्यनिष्ठ होकर ॥ १ ॥ २ ॥ किसप्रकार संग्राममें ऐसे अनुरागी हुए थे ? और किस निमित्त परमकल्याण कारी तपस्याको छोड़कर॥ ३॥ पूर्ण दिव्य सहस्रवर्षतक प्रह्लादके संग युद्ध किया था? किसकारण वे शान्तिसुखको परित्यागकर ऐसे दुःखदायक युद्धमें प्रवृत हुए थे ? ॥ ४ ॥ हे महाभाग मुनिवर ! किसलिये उन्होंने प्रह्लादसे युद्ध किया था? आप उस विग्रहका कारण मुझसे विस्तार सहित वर्णन कीजिये ॥ ५ ॥ स्त्री, सुवर्ण वा दूसरे किसी विषयका कार्य विग्रहका कारण होता है, किन्तु नर नारायण दोनों मुनि सब विषयोंमें विरागी थे, उनका इन सब विषयोंमें कोई प्रयोजन दिखाई नहीं देता, तो उनको युद्धकी बुद्धि क्यों उत्पन्न हुई थी ? हे तपोधन ! उन्होंने किस निमित्त ऐसी तपस्याका अनुष्ठान किया? ॥ ६ ॥ हे मुनिवर! उन्होंने औरको मोहित करनेके निमित्त अथवा सुखभोगके निमित्त या स्वर्ग प्राप्त करनेके निमित्त यह उत्कट सर्व फलदायक कठोर तपस्या करी थी ॥ ७॥

और यह शान्तचित्त दोनों मुनि तपस्याके किस अद्भुत फलको प्राप्त हुए थे ? वे क्या तपस्यासे कृश देह होकरभी संग्राममें ॥ ८ ॥ पूर्ण दिव्य सहस्रवर्ष वारंवार संग्राम करके श्रमद्वारा पीडित नहीं हुए थे ? राज्यके लाभ करनेके निमित्त वा धनलाभके निमित्त वा स्त्रीलाभके निमित्त इस प्रकारके संग्राममें प्रवृत्त नहीं हुए ॥ ९ ॥ तो किस निमित्त वा उन्होंने उस महात्मा प्रह्लादसे युद्ध किया था ? निरीह पुरुष कौन ऐसा करेगा ॥ १० ॥ धर्मको सनातन जानकर भी किसकारण ऐसे देह–दुःखप्रद युद्धमें सम्यक् प्रकारसे प्रवृत्त हुए. हे धर्मज्ञ ! श्रेष्ठ बुद्धिवाले पुरुष सदा ही सुखदायक कर्म करते हैं ॥ ११ ॥ वे कभी दुःखदायक कर्म नहीं करते यही सनातनी संसारमर्यादा प्रतिष्ठित है दोनों धर्मके पुत्र हरिके अंश, सर्वज्ञ और सर्व सम्पदसे विभूषित थे ॥ १२ ॥ तो वे दुःखकर और धर्मनाशक संग्राममें क्यों प्रवृत्त हुए थे हे महर्षे ! इस संसारमें मूर्ख मनुष्यभी ऐसे सुख और आनंदजनक तथा सर्व फलदायक तपस्या और समाधि छोड़कर ॥ १३ ॥ दारुण दुःखदायक युद्धकी कामना नहीं करते मैं ने सुना है कि, पृथ्वीपति ययाति स्वर्गसे च्युत हुए थे ॥ १४ ॥ यह यज्ञ दान और धर्मनिरत राजा होकरभी अहंकारजनित पापके कारण स्वर्गसे परिच्युत हो पृथ्वीमें गिरे थे ॥ १५ ॥ मैं अश्वमेधादि यज्ञका अनुष्ठान कर्ता हूं इत्यादि अहंकार सूचक शब्दके उच्चारण करते ही वज्रपाणि इन्द्रने उसको पतित किया था, अतएव अहंकारके विना युद्ध उपस्थित नहीं होता यही स्थिर निश्चय है ॥ १६ ॥ हे मुने ! मुनियोंको देह बल नहीं है अतएव उनको तपोबलसे ही युद्ध करना होता है, सुतरां मुनियोंके युद्ध करनेसे तपनाशके अतिरिक्त और उससे क्या फल होसकता है ? व्यासजी बोले हे राजन् ! संसारका मूल तीन प्रकारका है ॥ १७ ॥ धर्ममें निश्चित मति सर्वज्ञ मुनिगण सात्विक राजस और तामस, इस त्रिविध अहंकारको ही संसारका कारण कहते हैं इस कारण मुनिगण देहधारी होकर उस अहंकारको परित्याग करनेमें किस प्रकार समर्थ हों ॥ १८ ॥ कारणके विना कार्यकी उत्पत्ति नहीं होती. यह स्थिर निश्चय जानना चाहिये हे महाभाग! सात्विक अहंकारसे तपस्या दान और यज्ञ ॥ १९ ॥ तथा राजस वा तामस अहंकारसे कलहकी उत्पत्ति होती है. हे राजेन्द्र ! अहंकारके विना इस संपूर्ण ब्रह्माण्डके किसी स्थानमें स्वल्प मात्रभी क्रिया उत्पन्न नहीं होती ॥ २० ॥ शुभ हो, वा अशुभ हो अहंकारसे ही वह उत्पन्न होती है, यह स्थिर निश्चय जानना चाहिये. इस जगत्में अहंकारके अतिरिक्त दूसरी कोई भी बंधनकारक वस्तु नहीं

है ॥ २१ ॥ अहंकारसे ही यह विश्व रचागया है, अतएव ये किसप्रकार अहंकार रहित होसक्ते हैं ? हे राजन् ! जब ब्रह्मा विष्णु और रुद्र यह भी अहंकारयुक्त हैं ॥ २२ ॥ तब इनके सिवाय सामान्य मुनिगण जो अहंकारयुक्त हों तो फिर इस विषयमें बातही क्या है अहंकारसे आवृत होकर यह चराचर विश्व भ्रमण करता है ॥ २३ ॥ पुनर्जन्म और पुनर्मृत्यु इत्यादि सबही कर्मवशतः होती है. हे महीन्द्र ! देवता, तिर्यक् और मनुष्यगण इस संसारमें ॥ २४ ॥ रथके पहियोंके समान सदाही भ्रमण करते हैं इस विस्तीर्ण संसारके मध्य—उत्तम मध्यम और अधम योनियोंमें भगवान् विष्णुके अवतारोंकी संख्या कौन जान सक्ता है साक्षात् नारायणहरिने मत्स्य कूर्म अवतारधारण किया ॥ २५ ॥ २६ ॥ शूकर. नृसिंह और वामनदेहका आश्रय किया था वासुदेव जगन्नाथ जनार्दन युगयुगमें ॥ २७ ॥ ब्रह्मासे प्रेरित हो असंख्य रूपोंसे अवतीर्ण होते रहते हैं. हे महाराज ! वैवस्वतनामक सातवें मन्वन्तरमें भगवान् हरिके ॥ २८ ॥ जो सब अवतार हुए थे वह सब यथातत्व सुनो. हे राजेन्द्र ! देवताओंमें श्रेष्ठ ईश्वर विभु विष्णु भृगुके शापसे अनेकबार पृथ्वीमें अवतीर्ण हुए थे ॥ ॥ २९ ॥ इसप्रकार उन्होंने अनेक अवतार धारण किये. राजाने कहा हे महाभाग ! मेरे हृदयमें और एक महासंशय उत्पन्न हुआ ॥ ३० ॥ भगवान् भृगुने विष्णुको किस कारण शाप दिया था ? हे मुने ! भगवान् हरिने उनका क्या अनिष्ट किया था ॥ ३१ ॥ जिससे देवतागणोंके नमस्कार करनेयोग्य जनार्दन विष्णु भगवान् भृगुसे शापित हुए थे व्यासजी बोले हे राजन् ! भृगुके शाप देनेका कारण कहता हूं सुनो ॥ ३२ ॥ पूर्वकालमें कश्यपका पुत्र राजा हिरण्यकशिपु जबतब देवताओंसे संग्राम करता ॥ ३३ ॥ इसप्रकार सदा संग्रामसे सब जगत् व्याकुल हो उठा था तदुपरान्त दैत्यपतिके नृसिंहद्वारा मारे जानेपर शत्रु-तापन प्रह्लाद राजा होकर ॥ ३४ ॥ पितृशत्रुदेवताओंको पीडित करने लगा तिसकाल देव-राज और दैत्यराजका संग्राम ॥ ३५ ॥ सौवर्षपर्यन्त लोकोंको आश्चर्यदायक होतारहा ॥ हे राजन् ! इस युद्धमें देवताओंने ही उग्रतर युद्ध करके जयलाभ किया था ॥ ३६ ॥ और प्रह्लाद पराजित हुआ था तिसकाल प्रह्लाद अत्यन्त दुःखको प्राप्त हो सनातन धर्मको श्रेष्ठ जान विरोचनके पुत्र बलिको राज्य दे ॥ ३७ ॥ तपस्या करनेके निमित्त गंधमादनपर गया. बलिभी राज्यको प्राप्त हो देवताओंसे वैर करने लगा ॥ ३८ ॥ परस्परमें घोरतर संग्राम होनेसे देवताओंने असुरोंको पराजित किया. हे

राजेन्द्र ! अनन्तर अमिततेजा इन्द्रके ॥ ३९ ॥ विष्णुकी सहायतासे दैत्यगणोंको राज्यभ्रष्ट करनेपर पराजित दैत्यगणोंने कुलगुरु शुक्राचार्यजीकी शरणागत हो॥४०॥ उनसे कहा हे ब्रह्मन् ! आप तपोबलसंपन्न और प्रतापवान् हैं. आप दैत्यगणोंकी सहायता क्यों नहीं करते? तो हम फिर पृथ्वीतलमें वास करनेको समर्थ नहीं होसकेंगे, हमको शीघ्र ही रसातलमें प्रवेश करना पड़ेगा ॥ ४१ ॥ यदि मंत्रजाननेवालोंमें उत्तम आप हमारी सहायता न करोगे. व्यासजी बोले हे राजन् ! दैत्यगणोंके इसप्रकार कहनेपर उन परमकरुणामय मुनिवर गुरु शुक्राचार्यने उनसे कहा॥ ४२॥ हे दैत्यगण ! तुमलोग भय मत करो मैं अपने तेजसे तुम्हारी रक्षा करूंगा तथा मंत्र और औषधीसे तुम्हारी सहायता करूंगा ॥ ४३ ॥ तुम उत्साहयुक्त होकर मनसे दुःख और संताप दूर करो. व्यासजीने कहा हे राजन् ! इसके उपरान्त दैत्यगण शुक्राचार्यका आश्रय पाय निर्भय हुए ॥ ४४ ॥ फिर देवताओंने यह सब वृत्तान्त दूतके मुखसे जाना और इन्द्रके सहित परामर्श करके यह ॥ ४५ ॥ स्थिर किया कि, जबतक दैत्यगण शुक्राचार्यके मंत्रके प्रभावसे राज्यच्युत न करैं. तबतक हम अतिशीघ्र उनसे युद्ध करनेको चलें ॥ ४६ ॥ इसप्रकार सहसा आक्रमण कर विनाश करते हुए बचे असुरोंको पातालतलमें भेज देंगे. देवतागण इसप्रकार परामर्श कर अस्त्र शस्त्र धारणपूर्वक क्रोधयुक्त हो दैत्यगणोंसे युद्ध करनेको गये ॥ ४७ ॥ और इन्द्रकी आज्ञा पाय विष्णुके सहित दैत्योंका विनाश करने लगे. इस प्रकार जब देवताओंने दैत्योंका वध करना आरंभ किया; तब वे भीत और त्रसित हो ॥ ४८ ॥ "हे प्रभु ! रक्षा करो रक्षा करो" यह कहते हुए शुक्राचार्यजीकी शरणमें आये. शुक्राचार्यजीने उन महाबलवान् दैत्योंको देवताओंसे पीडित देखकर ॥ ४९ ॥ मंत्रौषधिके प्रभाव द्वारा "भय नहीं, भय नहीं" यह वचन ऊंचे स्वरसे कहा. अनन्तर देवता शुक्राचार्यजीको देख, असुरोंको छोड़ अपने अपने स्थानको चलेगये ॥ ५० ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे भाषायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ११.

व्यासजीने कहा हे राजन्! जब देवतागण शुक्राचार्यको देख समर छोड़ चले गये, तब शुक्राचार्यजीने दानवगणोंसे कहा हे दनुजगण! पूर्वकालमें ब्रह्माजीने जो कहा है, वह मैं तुमसे कहता हूं सुनो ॥ १ ॥ जनार्दन विष्णु दैत्योंके मारनेमें नियुक्त होकर संपूर्ण दैत्यगणोंकाही विनाश करेंगे, इसमें संदेह नहीं. पूर्वमें उन्होंने वराह रूप धारण कर असुरश्रेष्ठ हिरण्याक्षको संहार किया था ॥ २ ॥ नृसिंहमूर्ति धारण करके हिरण्यकशिपुका जिसप्रकार वध किया था, इस समय वैसे ही उत्साहयुक्त हो सब दैत्यगणोंका विनाश करेंगे, इसमें संदेह नहीं ॥ ३ ॥ इस समय मेरे मंत्रका बल हरिके निकट भलीभांति फलदायक नहीं होगा. और जब मैं तुम्हारी रक्षा कर लूंगा फिर तुम देवताओंके जीतनेमें समर्थ होगे ॥ ४ ॥ अतएव हे दानवोत्तमो! कुछ कालतक प्रतीक्षा करो मैं अभी मंत्रप्राप्तिके लिये महादेवजीके निकट जाता हूं ॥ ५ ॥ अनन्तर फिर मैं उस स्थानसे मंत्र प्राप्त करके शीघ्रही लौटता हूं, हे दानवोत्तम! मैं उस मंत्रके बलसे तुम्हारी भलीभांति रक्षा करूंगा ॥ ६ ॥ दैत्यगणोंने कहा हे मुनिवर! हम पराजित और दुर्बल होगये हैं इस समय हम पृथ्वीमें कैसे रह सक्ते हैं? उतने कालतक प्रतीक्षा करनेमें किस प्रकार समर्थ होंगे? ॥ ७ ॥ हममें जो महाबलशाली थे वे सभी निहत होगये हैं, हम इस समय थोड़ेसे दानव शेष हैं, ऐसी अवस्थामें हमारा समरमें रहना युक्तिसंगत और शुभकर बोध नहीं होता. शुक्राचार्यजीने कहा मैं श्रीमहादेवजीके निकटसे मंत्रविद्या ग्रहण करके जबतक न आऊं, तबतक तुम शान्तियुक्त और तपस्यामें नियुक्त होकर अवस्थिति करो ॥ ९ ॥ पण्डितगणोंने कहा है कि, वीरगण साम, दान, भेद और दंड, इन चार प्रकारके उपायोंके अनुसार देश, काल, बल और सामर्थ्यका विचारकर प्रयोग करैं ॥ १० ॥ कल्याणकी कामना करनेवाले पुरुषगण समयकी गतिके अनुसार शत्रुओंकी भी सेवा करैं, किन्तु जब देखें कि, अपनी शक्ति सम्यक् प्रकारसे बढ़ गई है, तब शत्रुओंका विनाश करनेकी चेष्टा करैं ॥ ११ ॥ अतएव इस समय विनयसहित छल प्रकाश पूर्वक साम अवलम्बन करके मेरे आनेकी प्रतीक्षा कर अपने घरमें रहो ॥ १२ ॥ हे दानवगण! जब महादेवजीसे मंत्रग्रहण करके आऊं तब मंत्रके बलसे युक्त होकर पुनर्वार देवताओंसे युद्ध आरंभ करो ॥ १३ ॥ हे राजन्! शुक्राचार्यजी इस प्रकार कहकर मंत्र लानेमें कृतनिश्चय हो महादेवजीके निकट गये ॥ १४ ॥

इधर दानवगणोंने संधि (मेळ) करनेके लिये सत्यवादी, स्थिरचित्त, विशेष कर देवताओंके विश्वासप्रद प्रह्लादको देवताओंके पास भेजा ॥ १५ ॥ राजवर प्रह्लादने असुरोंके सहित विनयावनत होकर अत्यन्त विनयसे देवताओंसे इस प्रकार वचन कहे ॥ १६ ॥ हे देवताओ! इस समय हम सबनेही अस्त्र और वर्म (कवच) का त्याग किया है, अब हम वल्कलधारण करके तपका अनुष्ठान करेंगे, यही हमारी इच्छा है ॥ १७ ॥ देवता प्रह्लादके यह सत्य वचन सुनकर युद्धसे निवृत्त हुए और संग्रामजनित दुःख सन्ताप छोड़कर आनन्दित हुए ॥ १८ ॥ दैत्यगणोंके शस्त्रपरित्याग करनेपर देवता युद्धसे निवृत्त हो विश्वस्तचित्तसे घर जाय चित्तको स्थिर कर आमोद प्रमोदमें रत हुए ॥ १९ ॥ दैत्यलोगभी दमअवलम्बन करके तपमें निरत तपस्वी हो. शुक्राचार्यजीके आनेकी इच्छासे कश्यपजीके आश्रममें वास करने लगे ॥ २० ॥ इधर शुक्राचार्यजीने कैलासमें जाकर श्रीमहादेवजीको प्रणाम किया. तब महादेवजीने उनसे आनेका कारण पूँछा ॥ २१ ॥ तब शुक्राचार्यने कहा. जो मंत्र देवताओंके पास नहीं है मैं देवताओंकी पराजय और असुरोंकी जीतके लिये उन्हीं सब मंत्रोंको ग्रहण करनेकी इच्छा करता हूं ॥ २२ ॥ हे राजन्! कल्याणप्रद सर्वज्ञ महादेवजीने उनका यह वचन सुनकर मनमें विचार किया कि अब क्या करना चाहिये ॥ २३ ॥ फिर उन्होंने मनमें स्थिर किया कि दैत्यगुरु शुक्राचार्य देवताओंके प्रति विद्रोहाचरण करेंगे. इसप्रकार बुद्धियुक्त हो. असुरोंकी विजयकेलिये मेरे पास मंत्र लेनेको आये हैं ॥ २४ ॥ क्योंकि देवताओंकी रक्षा करना हमारा अत्यन्त कर्तव्य है. उन्होंने इसप्रकार विचार कर काव्यको एक कठिन व्रतके अनुष्ठान करनेका उपदेश दिया ॥ २५ ॥ कि पूरे हजार वर्षतक ऊर्ध्वपद (ऊंचे पैर) और नीचेको शिर होकर यदि कणधूम (तुषका धुआं) पान करसको तो तुम्हारी कामना पूर्ण होगी और उसके द्वारा मंत्रलाभ करसकोगे ॥ २६ ॥ शुक्राचार्य इसप्रकार सुन महादेवजीको प्रणाम कर "हे सुरेश्वर! आप जो अनुमति देते हैं. मैं उसी प्रकार उस व्रतका अनुष्ठान करूंगा" यह कहकर उसको स्वीकार किया ॥ [illegible] ॥ व्यासजी बोले हे राजन्! शुक्राचार्य महादेवजीसे इस प्रकार स्वीकार क[illegible] मन्त्रकेलिये कृतनिश्चय हुए और शमगुणअवलंबन कर धूम्रपानमें निरत हो. उस कठोरतर अत्युत्तम व्रतका अनुष्ठान करने लगे ॥ २८ ॥ तदन-

न्तर देवतालोग शुक्राचार्यको व्रतमें निरत और दैत्यगणोंको दंभयुक्त देखकर मंत्रण (सलाह) में तत्पर हुए ॥ २९ ॥ हे नरेन्द्र ! देवता मनहीमनमें विचारकर जिस स्थानमें दानवप्रवरगण वास करते थे. अस्त्र शस्त्र धारणपूर्वक समरमें उद्यत हो उसी स्थानमें गये ॥ ३० ॥ दैत्यगण देवताओंको आयुध और कवच धारण किये चारों ओरसे आया देखकर भयसे अत्यन्त उद्विग्न होगये ॥ ३१ ॥ वे देवताओंको सहसा अस्त्रशस्त्रोंसे सजाहुआ देखकर चकित हुए और भयसे कातर हो बलदर्पित देवताओंसे नीतिगर्भ वचन कहने लगे ॥ ३२ ॥ हे देवताओ ! हमने अस्त्र त्याग किया है. हमारे आचार्य देवव्रतमें निरत हुए हैं. और आपने पूर्वमें हमको अभय दिया है. तो किस निमित्त इस समय हमको मारनेके निमित्त सुसज्जित होकर उपस्थित हुए हो ॥ ३३ ॥ हे देवतालोगो ! तुम्हारा सत्य और श्रुतिविहित धर्म कहाँ गया ? श्रुतिमें कहा है कि शस्त्रत्यागी भीत और शरणागतका विनाश न करै. उस धर्मका आपने क्यों परित्याग किया ? ॥ ३४ ॥ देवताओंने कहा तुमने मंत्रशिक्षाके निमित्त शुक्राचार्यजीको छलपूर्वक भेजा है. तुम्हारी दुष्टभावयुक्त तपस्याको हमने जानलिया है. अतएव इस समय हम तुम्हारे संग निःसंदेह युद्ध करैंगे ॥ ३५ ॥ तुम इस समय युद्ध करनेके लिये अस्त्र शस्त्र ग्रहण करके सज्जित होओ. देखो छिद्रपाते ही शत्रुको मारना चाहिये. यही सनातन धर्म है ॥ ३६ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! दैत्यलोग देवताओंके ये वचन सुन. आपसमें विचारकर सभी भयसे विह्वल हुए और उस स्थानसे निकलकर भागे ॥ ३७ ॥ दानवलोग डरकर शुक्राचार्यकी माताके शरणमें गये। तब शुक्र-जननीने उनको भयसे अत्यन्त संतप्त देख अभय देकर कहा ॥ ३८ ॥ तुमको भय नहीं हे दानवगणों ! तुम भयका परित्याग करो. तुम जब मेरे समीप अवस्थान करते हो तब फिर भयका विषय कुछ भी नहीं है. निर्भय इस स्थानमें वास करो ॥ ३९ ॥ असुरगण उनका यह वचन सुनकर उद्वेग-हीन हुए और आयुधरहित होकर भी उस स्थानमें भय छोड़कर वास करने लगे ॥४०॥ इधर देवतागण दानवोंको भागता देख उनके पीछे पीछे दौड़े और बलाबल न विचार कर. उस आश्रममें जाय दैत्योंका हनन करनेमें उद्यत हुए ॥ ४१ ॥ तब शुक्राचार्यकी माताने निवारण किया किन्तु उनके निवारण करनेपर भी देवतालोग उनका वचन न सुन आश्रमस्थित दैत्योंको हनन करने लगे ॥ ४२ ॥ देवताओंको असुरोंका वध करता देख शुक्रमाताने अत्यन्त रुष्ट होकर कहा मैं तपोबलसे अभी

देवताओंको निद्रित करती हूं ॥ ४३ ॥ उसने यह कहकर निद्राको प्रेरण किया. निद्राने जाय देवताओंको मोहित कर भूमिमें गिरा दिया. तब देवता इन्द्रके सहित निद्रामें अभिभूत होकर मूककी समान अवस्थिति करने लगे ॥ ४४ ॥ भगवान् विष्णुने इन्द्रको निद्रासे ग्रसित और दीन देखकर कहा हे सुरोत्तम ! तुम मुझमें प्रवेश करो. इसमें तुम्हारा मंगल होगा. मैं तुमको अन्यत्र लेजाऊंगा ॥ ४५ ॥ इन्द्रने इसप्रकार सुनकर विष्णुके शरीरमें प्रवेश किया तब हरिसे रक्षित हो. इन्द्र निद्रारहित और निर्भय हुए ॥ ४६ ॥ देवराज इन्द्रको हरिसे रक्षित और व्यथारहित हुआ देखकर शुक्र-माता क्रुद्ध होकर इस प्रकार कहने लगी ॥ ४७ ॥ हे इन्द्र ! मैं आज तपोबलसे विष्णुके सहित तुमको भक्षण करूंगी सब देवतालोग यह देखें. हे इन्द्र ! तुम मेरा तपोबल इसी प्रकार जानो ॥ ४८ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! शुक्राचार्यजीकी माताके इसप्रकार कहनेपर विष्णु और इन्द्र दोनों ही योगविद्यामें अभिभूत और स्तब्ध होकर रहे ॥ ४९ ॥ देवतागण उनको अत्यन्त अभिभूत और पीड़ित देखकर अतिशय विस्मित हुए और अत्यन्त दीनमन होकर हाहाकार करने लगे ॥ ५० ॥ शचीपति इन्द्रने देवताओंको आर्त्त-नाद करताहुआ देखकर विष्णुसे कहा. हे मधुसूदन ! मैं आपकी अपेक्षा विशेष अभिभूत हुआ हूं ॥ ५१ ॥ हे माधव ! अब विचारका प्रयोजन नहीं है. यह तपो-दर्पिता दुष्टा जबतक हमको दग्ध न करै. तबतक शीघ्र इसका विनाश करो॥ ५२॥ भगवान् विष्णुने अतिपीड़ित शत्रुसे इसप्रकार अभिहित होकर स्त्रीवधजनित घृणाका परित्याग करके शीघ्र सुदर्शनका स्मरण किया ॥ ५३ ॥ विष्णुका वशीभूत चक्र स्मरण करतेही उपस्थित हुआ. तब इन्द्रकी प्रेरणासे क्रोधित होकर भगवान्ने चक्रधारण किया ॥ ५४ ॥ और फिर क्रोधयुक्त हो वेगसहित निक्षेप करके शुक्राचार्यकी माताका शिर काटडाला. यह देखकर इन्द्र अतिशय आनंदित हुए ॥ ५५ ॥ देवतालोग भी संतापरहित होकर जयजयशब्दसे हरिका स्तव करने लगे ॥ ५[illegible] ॥ इन्द्र और विष्णु तिसकाल सब क्लेशसे छूट गये. किन्तु भृगुके दा[illegible] तिक्रमणीय शापकी बात मनमें विचार कर अत्यन्त शंका करने लगे॥ ५७॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषायां एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः १२.

व्यासजी बोले हे महाराज जन्मेजय ! अनन्तर भगवान् भृगु विष्णुका स्त्रीवध रूप दारुण पापकार्य देखकर क्रोधसे काँपने लगे और अत्यन्त दुःखार्त्त होकर मधुसूदनसे बोले ॥ १ ॥ भृगु बोले हे मधुसूदन ! तुम अतिशय बुद्धिमान् हो और जानसुनकर भी ऐसा अकार्य किया. क्या आश्चर्य है ? इस विप्रकन्याका वध एक बार मनमें धारण करनेको भी समर्थ नहीं हुआ जाता और तुमने उसको साक्षात संपादन किया ॥ २ ॥ हे देव ! महर्षिगण तुमको सत्वगुणसंपन्न, ब्रह्माको रजोगुणयुक्त और शंभुको तमोगुणयुक्त कहते हैं. तब इस समय उसके विपरीत क्यों हुआ ॥ ३ ॥ तुमने किसलिये तमोगुणयुक्त होकर अतिनिन्दित कर्म किया ? हे विष्णु ! स्त्रीजाति अवध्य अर्थात् मारनेयोग्य नहीं है. तो विना अपराध इस अबला नारीका क्यों विनाश किया ॥ ४ ॥ तुमने अत्यन्त निन्दित कार्यका आचरण किया है. इस समय मैं तुम्हारा क्या करूं ? तुमको शाप देनाही युक्तिसंगत विचारता हूं. हे पापिष्ठ ! तुमने इन्द्रके लिये मुझको अत्यन्त दुःखान्वित और कातर किया है ॥ ५ ॥ मैं इन्द्रको शाप नहीं दूंगा. तुम सदाही कपटभावअवलंबन और काले सर्पकी समान व्यवहार करते हो. तुम अत्यन्त दुष्टाशय हो. मैं तुमकोही शाप देता हूं ॥ ६ ॥ जो मुनिगण तुमको सत्वगुणसंपन्न कहते हैं. वे अत्यन्त मूर्ख हैं. तुम जो अतिशय दुराचारी हो. वह मैंने आज प्रत्यक्ष जाना ॥ ७ ॥ हे विष्णु! तुम मेरे शापसे मर्त्यलोकमें अनेकबार अवतीर्ण होकर पापकर्मका फलस्वरूप प्रायःगर्भकी यंत्रणाभोग करोगे इसमें संदेह नहीं ॥ ८ ॥ हे राजन् ! भगवान् विष्णु उसीशापके वश धर्म नष्ट होनेसे लोकोंका हित करनेकेलिये इस मनुष्य लोकमें वारंवार अवतीर्ण होते हैं ॥ ९ ॥ जन्मेजयने कहा हे मुनिवर ! तेजपुंजशाली चक्रद्वारा भृगुकी भार्याके वहां निहत होनेपर उन महात्माका पुनर्वार गार्हस्थ्य धर्म किसप्रकार संपादित हुआ था ? ॥ १० ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! कार्यविद् भृगुजीने क्रोधयुक्त हो हरिको इसप्रकार शाप दे फिर उस छिन्नमस्तकको ग्रहणपूर्वक शीघ्र देहके ऊपर लगाकर कहा ॥ ११ ॥ हे देवि ! इस समय विष्णुने तुमको मारा है, मैं तुमको अभी जीवित करता हूं यदि मैं नव धर्मोंको जानता हूं, यदि मैं धर्मका आचरण करता हूं ॥ १२ ॥ यदि मैं सदाही सत्य कहता हूं तो उस धर्मके बलसे तुम जीवन लाभ करो सब देवता लोग मेरा तपोबल देखें ॥ १३ ॥ यदि सत्यही मेरा वेदाध्ययन और वेदज्ञान है, यदि मेरा तपोबल है, तो तुमको

अभिमंत्रित शीतल जलसे प्रोक्षितकरके तपोबलके द्वारा इसी समय जीवित करता हूं ॥ १४ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! भृगुद्वारा जलसे संप्रोक्षित होकर भृगु–भार्या तत्काल जीवनलाभ करके उठी और परमप्रीतिलाभ करके कुछेक हंसने लगी ॥ १५ ॥ तिसकाल सब जीवगणोंने उसको सोते हुएकी समान उठी देखकर भृगुको और उसको चारों ओरसे "साधु साधु" कहकर स्तव किया था ॥ १६ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार उस वरवर्णिनीके भृगुसे जीवनलाभ करनेपर इन्द्रादि देवता उसको देख अत्यन्त विस्मित हुए ॥ १७ ॥ तब इन्द्रने देवताओंसे कहा हे देवताओ ! इस समय तो शुक्रजननीने भृगुद्वारा जीवन लाभ किया किन्तु शुक्राचार्य घोरतर तपस्या करके मंत्रलाभ करनेपर न जाने हमारा क्या अनिष्ट करेंगे ॥ १८ ॥ व्यासजीने कहा हे नरेन्द्र ! तिसकाल देवराजकी वह निद्रारूपिणी माया दूर होनेपरभी शुक्राचार्यकी मंत्रप्राप्तिके लिये उस अतिदारुण तपस्याका वृत्तान्त सुनकर उनके देहमें दुःखका संचार हुआ ॥ १९ ॥ अनन्तर सुरपति इन्द्रने मनमें विचार करके अपनी कन्या तन्वङ्गी जयन्तीसे सस्मित वचनसे कहा ॥ २० ॥ हे तनये ! मैं तुमको शुक्राचार्यकी सेवामें नियोजित करता हूं हे तन्वङ्गि ! वहां जाकर मेरा कार्य साधनके निमित्त उस तपश्चारी शुक्रकी आराधना करके वशीभूत कर ॥ २१ ॥ उस उत्तम आश्रममें शीघ्र जाकर जिस जिस कार्यसे मुनिका मन परितुष्ट हो, उसी उसी प्रिय कार्यके अनुष्ठानसे तुम उनकी आराधना करके मेरा भय दूर करो ॥ २२ ॥ उस विशालाक्षी मनोरमा जयन्तीने पिताका वचन सुनकर वहां गमन किया और वहां देखा कि शुक्राचार्य आश्रममें तपोनिरत होकर धूम्रपान करते हैं ॥ २३ ॥ शुक्राचार्यके देहको देख और पिताका वचन स्मरण कर जयन्ती केलेके पत्ते लाय उनकी बयार करने लगी ॥ २४ ॥ बुद्धिशालिनी जयन्ती अव्यग्र रहकर निर्मल, सुशीतल और सुवासित जल लाकर परमभक्ति सहित उनके पान करनेकेलिये धीरे धीरे रख देती ॥ २५ ॥ वह सुंदरी जयन्ती स्वयं धर्ममें नियुक्त रहकर इसप्रकार शुक्राचार्यकी सेवा करनेलगी ! जब मार्त्तण्डदेव मस्तकपर गमन करते तब वस्त्रद्वारा उनके मस्तकपर छत्रकी रचना करके छाया करदेती ॥ २६ ॥ मुनिके भक्षण करनेको शास्त्रविहित दिव्य पके हुए और मधुर फल लाकर उनके सन्मुख रख देती ॥ २७ ॥ उनके नित्यकर्म समाधानार्थ तोतेके शरीरकी समान हरिद्वर्णप्रादेशप्रमाण कुश और पुष्प उनके आगे रख

देती ॥ २८ ॥ मुनिकी निद्राके लिये कोमल पल्लवोंसे शय्याकी रचना कर रखती और उस मुनिके प्रति भक्तियुक्तस्थित हो बयार करती ॥ २९ ॥ जयन्ती मुनिके शापदेनेके भयसे भीत होकर कभी हावभावादि मनोविकारजनक कुछभी कार्य नहीं करती ॥ ३० ॥ वह सुभाषिणी कृशाङ्गी प्रीतिकर और अनुकूल वचनोंसे महात्मा शुक्राचार्यकी स्तुति करती ॥ ३१ ॥ मुनिके जागरित होनेपर उनके आचमनके लिये जल लाकर सन्मुख रखती इस प्रकार मुनिके मनके अनुकूल आचरण करके जयन्ती उस स्थानमें वास करने लगी ॥ ३२ ॥ भयातुर इन्द्रभी उस मुनिको प्रवृत्ति जाननेके लिये वहां सेवकगणोंके भेजते ॥ ३३ ॥ इसप्रकार क्रोधरहित और ब्रह्मचर्य परायण इन्द्रतनया जयन्ती बहुत कालतक शुक्राचार्यकी सेवामें नियुक्त रही ॥ ॥ ३४ ॥ क्रमक्रमसे हजार वर्ष पूर्ण होनेपर श्रीमहादेवजी परितुष्ट और प्रसन्नमन हो वर देनेके निमित्त शुक्राचार्यसे कहने लगे ॥ ३५ ॥ शिवजी बोले—हेभृगुनंदन ब्रह्मन् ! इस विश्वसंसारमें जो कुछ विद्यमान है तुम नेत्रोंसे जो कुछ देखतेहो और जो किसीके वचनगोचरभी नहीं है ॥ ३६ ॥ तुम उस सबके अविभावक जीतनेवाले होकर प्रभुत्व करोगे,इसमें संदेह नहीं!इसके अतिरिक्त तुम सबजीवगणोंसे अवध्यप्रजाओंके ईश्वर और द्विजश्रेष्ठ होंगे इसमें संदेह नहीं है ॥ ३७ ॥ व्यासजी बोले हे राजन्! देवदेव शम्भु इसप्रकार वर देकर उसी स्थानमें अन्तर्हित होगये. तब शुक्राचार्य जयन्तीको देखकर कहने लगे ॥ ३८ ॥ हे सुश्रोणी ! तुम कौन हो किसकी कन्या हो ? तुम्हारे मनकी अभिलाषा क्या है ? किस निमित्त तुम यहां आई हो ? हे वामोरु ! तुम्हारा क्या कार्य है ? वह कहो ॥ ३९ ॥ सुलोचने ! मैं तुम्हारे कार्यसे अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूं; तुम मेरे निकट क्या वांछा करती हो ? हे सुव्रते ! तुम वर मांगो वह मैं अत्यन्त दुष्कर होनेपरभी तुमको दूंगा ॥ ४० ॥ यह सुनकर जयन्तीका मुखकमल प्रफुल्लित हुआ, तब सुव्रता बालाने विनयनम्र वचनद्वारा तपोधनसे कहा, हे भगवन् ! मेरा मनोरथ आप तपोबलसे जान लीजिये ॥ ४१ ॥ शुक्राचार्यजीने कहा मैं ने तुम्हारे मनका भाव जान लिया है तो भी तुम भलीभांति समझाकर कहो, सर्वथा तुम्हारा मंगल संपादन करूंगा मैं तुम्हारी सेवासे अत्यन्त प्रसन्न और परितुष्ट हुआ हूं ॥ ४२ ॥ जयन्तीने कहा हे ब्रह्मन् ! मैं इन्द्रकी कन्या जयन्तकी छोटी बहन हूं, पिताने मुझको आपके समर्पण किया है ॥ ४३ ॥ मैं आपसे सकामा हुई हूं इस समय आप मेरि इच्छा पूर्ण कीजिये हे महाभाग ! मैं

क्या गति है ? हे मुनिवर ! इस विषयमें मुझको महासंशय उपस्थित हुआ है॥ ९॥ जब कि, भगवान् हरि ब्रह्मा शचीपति और अन्यान्य सुरसत्तमगण सभी कपट–कर्म में चतुर हुए हैं तब स्वल्पसत्व और अल्पबुद्धि मनुष्योंकी फिर क्या बात है ॥ १०॥ हे मानद ! जब कि–सब देवतागण, वसिष्ठ, वामदेव, विश्वामित्र और बृहस्पति इत्यादि तपोधन मुनिगणभी काम क्रोधमें अभिभूत लोभमें विनष्टचित्त छलकर्ममें दक्ष और पापमें निरत हैं तब धर्मकी फिर क्या गति है ? ॥ ११ ॥ ॥ १२ ॥ हाय ! जब कि, इन्द्र अग्नि चंद्रमा और विधाता यह भी कामके उत्कट लोभमें अभिभूत होकर परदारासक्त हुए तब इस संपूर्णभुवनमें फिर शिष्टता कहाँ रही ? ॥ १३ ॥ हे विमलात्मन् ! जब संपूर्ण देवतागण और मुनिगण लोभमें ग्रसित हुए तो फिर किसका वचन उपदेशस्वरूपमें ग्रहण करें ॥ ॥ १४ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! इन्द्र हों बृहस्पति हो ब्रह्मा हो विष्णु हो वा महादेव हों, जो देहधारण करेगा उसकोही पूर्वोक्त अहंकार और लोभादि विकार दोषमें लिप्त होना पड़ता है, इसमें संदेह नहीं ॥ १५॥ हे महाराज ! ब्रह्मा, विष्णु और शिव यह सभी विषयानुरागी हैं, अतएव अनुरागी व्यक्ति क्या अकार्य नहीं कर सक्ता ॥ १६ ॥ हे नरेन्द्र ! अनुरागी व्यक्ति चातुर्य वशसे केवल मुक्तकी समान दीखते हैं किन्तु संकट स्थल उपस्थित होनेपर तिस समय स्वस्वगुणसे उनकी धूर्तता प्रकाशित होजाती है, तब वह गुणोंके वशीभूत होकर कार्य करते हैं, अतएव इस विषयमें तीनों गुणोंकोही कारण जानना चाहिये, क्योंकि कारणके विना कभी कार्यकी उत्पत्तिका संभव नहीं होसकता ॥ १७ ॥ ब्रह्मादि देवताओंके भी तीनों गुणही कारण हैं. कारण कि, उन सबके देहभी प्रधान महत्तत्वादि पचीस तत्वसे उत्पन्न हुए हैं, इसमें संदेह नहीं है ॥ ॥ १८ ॥ हे नृपवर ! ब्रह्मादिभी मरण धर्मशील अर्थात् नाशवान् हैं, अतएव इसमें फिर आपको संदेह क्या है ? आप जानिये कि, सभी दूसरेको उपदेश देनेके समय भलीभाँति शिष्टता प्रकाश करते हैं ॥ १९ ॥ किन्तु अपना कार्य उपस्थित होनेपर स्वभावका विप्लव होजाता है. तब वह काम, क्रोध, लोभ, हिंसा, अहंकार और मात्सर्यादि सबमें उपस्थित होकर कार्य करते हैं॥ २०॥ कोई देहधारी पुरुष उनको परित्याग करनेमें समर्थ नहीं होता. हे महाराज ! महर्षिगण कहते हैं. यह संसार सदा इसीप्रकार चला आता है ॥ २१ ॥ यह शुभाशुभमय संसार

कभी अन्यभावको प्राप्त नहीं होता. इसीप्रकार चला आता है. देखो, भगवान् विष्णु कभी दारुण तपश्चरण करते हैं ॥ २२ ॥ देवराज इन्द्रभी कभी अनेक भांतिके यज्ञोंका अनुष्ठान करते हैं और देखो परमप्रभु लीलामय विष्णु कभी कमलाके कमनीय विलासतरंगरंगमें रंजितचित्त होकर ॥ २३ ॥ वैकुंठमें विहार करते हैं और कभी करुणासिन्धु होकरभी दुर्जय दानवगणोंके संग अत्यन्त दारुण युद्ध करके उनके ॥ २४ ॥ शरजालसे अत्यन्त पीडित होते हैं तथा कभी जय प्राप्त करते हैं और कभी दैववशतः पराजितभी होते हैं ॥ २५ ॥ इससे वह निःसंदेह सुखदुःखके वशीभूत होते हैं. हे महाराज! वही नारायण कभी विश्वसंसारको अपनी कुक्षिमें रक्षा कर योगनिद्रामें अभिभूत हो, शेष शय्यापर शयन करते हैं ॥ २६ ॥ फिर यथा समयमें प्रकृतिद्वारा प्रतिबोधित होकर जागरित होते हैं. हे राजन्! अधिक क्या कहूं इस विश्व संसारमें महादेव, ब्रह्मा, हरि इत्यादि देवतागण ॥ २७ ॥ और मुनिगण सभी अपनी अपनी आयुके परिमाण कालतक जीवित रहकर विचरण करते हैं. प्रलय कालका अवसान होनेपर नष्ट प्राय यह स्थावर जंगमात्मक जगत् ॥ २८ ॥ फिर उत्पन्न होता है इसमें कुछ भी संदेह नहीं है. हे राजन्! अपनी अपनी आयुके अन्तमें ब्रह्मादि सभी नाशको प्राप्तहोते हैं, इसमें संदेह नहीं ॥ २९ ॥ फिर यथासमयमें विष्णु और महादेव इत्यादि देवतागण देहधारी होकर वह सब कामादि भाव लाभ करतेहैं ॥ ३० ॥ हेपार्थिव! आप इस विषयमें विस्मित न हूजिये यह संसार काम क्रोधादिसे संयुक्त होकर सदाही भ्रमण करता है ॥ ॥ ३१ ॥ हेराजन्! इस संसारमें कामादिसे मुक्त परमार्थके जाननेवाले पुरुष अत्यन्त दुर्लभ हैं. जो व्यक्ति इस संसारसे डरते हैं. वे स्त्रीग्रहण न करते ॥ ३२ ॥ इसकारण वह सब प्रकार विषयासंगसे मुक्त और शंकाहीन होकर विचरण करते हैं इसकारणही चंद्रमाने बृहस्पतिकी भार्याको हरण किया था ॥ ३३ ॥ गुरुने भी अपने छोटे भ्राताकी भार्याको हरण किया था इस प्रकार इस संसारचक्रमें समस्त जीवही सदा रागलोभादिसे आवृत रहते हैं ॥ ३४ ॥ हे राजन्! गार्हस्थ्य अवलम्बन करनेपर मनुष्यगण किसीप्रकार मुक्तिलाभ करनेमें समर्थ नहीं होते, अतएव सर्वप्रयत्नसे संसारकी सारताका विचार छोड़ ॥ ३५ ॥ सच्चिदानन्दरूपिणी महेशानीकी आराधना करनी चाहिये. यह चराचर जगत् उनकेही मायागुणमें आच्छन्न होकर ॥ ३६ ॥ सीदरासक्तकी समान अथवा उन्मत्तकी समान सदा भ्रमण करता है

बुद्धिमान् पुरुष उनकी आराधनासेही सब गुणोंको पददलित करके ॥ ३७ ॥ मुक्तिलाभ करते हैं. हे राजेन्द्र! इसके अतिरिक्त मुक्तिलाभका दूसरा कोई मार्ग नहीं है. महेशानीकी आराधना करके जबतक उनकी करुणा प्राप्त न होसके ॥ ३८ ॥ तबतक सुख कहाँ है ! उनके अतिरिक्त दूसरे किसीकी प्रकृत दयादृष्टि नहीं होती अतएव विशुद्ध-चित्त होकर उन करुणामयीका भजन करना उचित है ॥ ३९ ॥ क्योंकि उनकी आराधना करनेसेही पुरुष जीवन्मुक्त होसक्ता है. जिस व्यक्तिने मनुष्य शरीरको पाकर महेश्वरीकी सेवा न करी ॥ ४० ॥ वह सोपानश्रेणीके ऊपरिभागसे नीचे गिरगया यही मेरा विचार है. यह त्रिगुणयुक्त विश्व अहंकारमें आवृत ॥ ४१ ॥ और असत्यमें सम्बद्ध है अतएव उन सर्वेश्वरीकी आराधनाके अतिरिक्त फिर किसप्रकार मुक्तिलाभ होसक्ता है ? हे राजन् ! सब विषयोंका परित्याग करके उन भुवनेश्वरी-की सेवा करनाही सबका एकान्त कर्त्तव्य है ॥ ४२ ॥ जन्मेजय बोले हे मुने ! शुक्ररूपधारि देवगुरुने तिससमय क्या किया था ? और शुक्राचार्य कितने दिन पीछे दैत्योंके समीप आये थे ? यह मुझसे भलीभाँति कहिये ॥ ४३ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! शुक्रवेष धारी महात्मा बृहस्पतिने उस समय जो किया था वह मैं कहता हूं सुनिये ॥ ४४ ॥ देवगुरुके भलीभाँति समझा देनेपर दैत्यगण उनकोही अपना गुरु शुक्राचार्य जान सम्यक् प्रकार विश्वास करके तत्परायण हो उनके आज्ञावर्त्ती हुए ॥ ४५ ॥ बृहस्पतिकी मायासे मोहित और प्रतारित दैत्यगण विद्याप्राप्तिके लिये शुक्राचार्य जानकर उनकी शरणागत हुए क्योंकि इस संसारमें लोभके वशीभूत हो सभी मोहित होते हैं ॥ ४६ ॥ इस ओर जब दश वर्ष पूर्ण हुए तब दैत्यगुरु जय-न्तीके संग क्रीडा समापनपूर्वक यजमान गणोंका स्मरण करने लगे ॥ ४७ ॥ वह विचार करने लगे कि, दैत्यगण हमारे आनेका मार्ग देखतेहुए अवस्थित हैं मैं जाकर उन भयातुर असुरोंको अवलोकन करूं ॥ ४८ ॥ वे मेरे भक्त हैं अत एव देवता-ओंके द्वारा जिससे उनको भय न हो वह करना उचित है. इसप्रकार चिन्ताकरके जयन्तीसे कहा ॥ ४९ ॥ हे चारुलोचने ! मेरे पुत्रोंने देवताओंकी शरणली है तुम्हारा दशवर्षका समय आज संपूर्ण हुआ ॥ ५० ॥ अतएव हे सुमध्यमे ! मैं इस समय अपने यजमानोंको देखनेके निमित्त जाताहूं फिर शीघ्रही तुम्हारे निकट आऊंगा ॥ ५१ ॥ पतिव्रता जयन्तीने तथास्तु कह उनके जानेमें सम्मति प्रदान करके कहा हे धर्मज्ञ ! आपकी जहाँ इच्छा हो वहाँ जाइये । मैं आपका धर्मलुप्त करनेकी इच्छा नहीं

करती हूं ॥ ५२ ॥ शुक्राचार्य ने उसका वचन सुन शीघ्र दानवगणोंके समीप उपस्थित होकर देखा कि, दानवगणोंके समीप छलवेषधारी सौम्याकृति बृहस्पतिजी विराजमान हैं ॥५३॥ वह निजप्रणीत जैनधर्म छलपूर्वक समझा रहे हैं और हिंसादि दोष दिखलाकर यज्ञकी निन्दा करते हैं ॥ ५४ ॥ वह कहते हैं अहो ! देव वैरी गण ! मैं तुम्हारे हितकर सत्य वचन कहता हूं ? अहिंसाही परमधर्म है अधिक क्या ? आततायी लोगोंका मारना भी उचित नहीं है ॥ ५५ ॥ तुमको निश्चय जानना चाहिये कि, भोगनिरत ब्राह्मणोंनेही अपनी अपनी रसना चरितार्थ करनेकोही वेदमें पशुहिंसाका मार्ग दिखाया है, किन्तुअहिंसाकी समान श्रेष्ठ परमधर्म दूसरा कुछ नहीं है ॥ ५६ ॥ हे राजन् ! देवगुरुको वेदशास्त्रकी निन्दा करतेहुए यह वचन सुनकर भृगुपुत्र अत्यन्त विस्मित हुए ॥ ५७ ॥ और मनमें चिन्ता करने लगे,यह गुरु निस्संदेह मेरा विद्वेषी है इस धूर्त्तके द्वारा मेरे यजमानगण-छले गये हैं. इसमें संदेह नहीं ॥ ५८ ॥ पापके एकमात्र कारणस्वरूप जो लोभद्वारा प्रेरित होकर यह गुरुभी मिथ्या कहते हैं उस पापबीज और नरकके द्वार स्वरूप लोभको धिक्कार है ॥ ५९ ॥ क्या आश्चर्य है ! जो सब देवताओंके गुरु और धर्म शास्त्रके प्रवर्त्तक हैं. जिनका वचन प्रमाण कहकर ग्राह्य होता है, उन्होंने भी आज पाखंड मत धारण किया । अहो ! लोभकी क्या अनिर्वचनीय महिमा है ॥ ६० ॥ लोभके वशीभूत होकर सुर गुरु भी जब पाखंड पण्डित हुए तो लोभके वशीभूत हो मलिनमन मूढ़बुद्धि पुरुष क्या अकार्य न करेंगे ? ॥ ६१ ॥ आज यह सुरगुरु ब्राह्मण होने पर भी नटकी समान समस्त चेष्टा ग्रहण करके मूढबुद्धि मेरे यजमान दैत्यगणोंको छलते हैं ॥ ६२ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे भाषायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः १४.

दोहा—दिशावेद अध्यायमें, गुरु पायो जिमि जान ॥
सो सब वर्णहि सुमिरि श्री,—शिवाचरण सुखदान ॥

व्यासजी बोले हे राजन् ! शुक्राचार्य मनहीमनमें इस प्रकार चिन्ता कर दैत्यगणोंसे हँसते हुए कहने लगे हे दैत्यगण ! तुम मेरे रूपधारी सुरगुरु बृहस्पति द्वारा कैसे

वञ्चित हुये ? ॥ १ ॥ मैं शुक्राचार्य हूं और तुम मेरे यजमान हो, यह देवताओंका कार्य साधन करनेवाले सुरगुरु बृहस्पति हैं, इन्होंने निःसंदेह तुम लोगोंको छला है ॥ २ ॥ इस दांभिकने मेरा आकार धारण किया है, तुम इसके वचनमें कभी श्रद्धा न करना. हे दैत्यगण! तुम लोग मेरे यजमान हो, अतएव मेरे अनुवर्त्ती होओ, इस बृहस्पतिको परित्याग करो ॥ ३ ॥ दैत्यगण उनका यह वचन सुन और उन दोनोंकी समान आकृति देख अत्यन्त आश्चर्य युक्त हुए और उपस्थित व्यक्तिकोही शुक्राचार्यने निश्चय किया ॥ ४ ॥ तिस समय बृहस्पतिने उनको सरल स्वभावयुक्त और मायासे मोहित देखकर कहा, यही देवगुरु बृहस्पति हैं, इस समय मेरा रूप धारण करके तुमको छलनाही इनका अभिप्राय है ॥ ५ ॥ यह देवताओंका कार्य साधनेके लिये तुम्हारे छलनेको इस स्थानमें आये हैं, हे असुरप्रवरगण ! तुम लोग इनके वचनमें कभी विश्वास न करना ॥ ६ ॥ मैं ने शिवके निकटसे जो विद्या प्राप्तकी है तुमको वही अध्ययन कराता हूं. मैं देवताओंके सहित युद्धमें तुमको निःसंदेह विजयी करूंगा ॥ ७ ॥ तब शुक्ररूपधारी गुरुके इसप्रकार वचन सुन दैत्यगणोंने "यही शुक्राचार्य हैं" यह निश्चय करके उन्हींके वचनमें अतिशय विश्वास किया ॥ ८ ॥ जो हो उस काल दानवगुरु शुक्राचार्यने यद्यपि दानवलोगोंको भलीभाँति समझाया था, किन्तु तोभी उन्होंने बृहस्पतिकी मायासे मोहित हो विपरीत कालकी विचित्रताके कारण वह सब कुछभी न समझे ॥ ९ ॥ तब उन्होंने स्थिर निश्चय होकर महात्मा शुक्राचार्यसे कहा, यही हमारे बुद्धिप्रद और हितनिरत गुरु हैं ॥ १० ॥ इन्हीं धार्मिक चूडामणि भार्गवने दशवर्षतक हमको उपदेश दिया है, तुम हमारे गुरु नहीं हो वरन् मायावी बोध होते हो, अतएव इस स्थानसे चले जाओ ॥ ११ ॥ मूढबुद्धि दैत्यगणोंने भार्गवसे इस प्रकार कह और वारंवार भर्त्सना कर शुक्ररूपी सुरगुरुको प्रणाम और अभिवादन पूर्वक प्रसन्न मनसे उनको ही गुरु समझकर ग्रहण किया ॥ १२ ॥ इधर शुक्राचार्यने दैत्योंको सुरगुरुका अत्यन्त अनुवर्त्ती देख और बृहस्पतिके वचनमें विश्वास करनेके कारण वंचित हुआ स्थिर कर क्रोधयुक्त हो उनको यह शापदिया कि ॥ १३ ॥ जब मेरे समझाने पर भी तुमने मेरा वचन ग्रहण नहीं किया, तब तुम संज्ञाहरण होकर पराभव को प्राप्त होंगे ॥ १४ ॥ तुम लोगों ने मेरी जो अवज्ञा की है, उसका फल अल्पकालमेंही प्राप्त होगा और उस समय इन सुरगुरुका कपट भाव भलीभाँति अनुभव

करसकोगे ॥ १५ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! इस प्रकार कहकर शुक्राचार्य क्रोधमें भरे हुए शीघ्र चले गये और बृहस्पति हृष्ट तथा स्थिर चित्त होकर उस स्थानमें कुछ काल अवस्थिति करने लगे ॥ १६ ॥ तदनन्तर दैत्योंको भार्गवके शापसे अभिशप्त हुआ जान उन्होंने उस स्थानको त्याग किया और अपना रूप धारण पूर्वक ॥ १७ ॥ शीघ्र इन्द्रके समीप आनकर उनसे कहा, मैं ने इस समय निश्चयही कार्य साधन किया है, क्योंकि भार्गवने दैत्योंको शाप दिया है और मैं ने भी इस समय उनको परित्याग किया है ॥ १८ ॥ वह निराश्रय हुए हैं, हे महाभाग ! सुरसत्तमगण ! मैं ने दैत्यगणोंको शाप दग्ध किया है, तुम इस समय उनके संग युद्ध करनेकी चेष्टा करो ॥ १९ ॥ देवराज इन्द्र सुरगुरु बृहस्पतिजीका इस प्रकार वचन सुनकर प्रसन्न चित्त हुए और संपूर्ण देवतागणोंने संतुष्ट हो बृहस्पतिकी पूजा करी ॥ २० ॥ और पुनर्वार निर्जनमें परामर्श कर संग्रामके निमित्त उद्योग करनेलगे इसके पीछे देवता मिलित हो संग्रामको असुरगणोंके सन्मुख अग्रसर हुए ॥ २१ ॥ महाबलशाली देवताओंको उद्योगसहित संग्रामके निमित्त आता जान और गुरुदेवको अन्तर्धान हुआ जान दैत्यगण अत्यन्त चिन्तायुक्त हुए ॥ २२ ॥ उसकाल परस्परमें कहने लगे. अहो ! हम उन सुरगुरुकी मायासे मोहित हुए हैं. महात्मा शुक्राचार्यने क्रुद्ध होकर हमको परित्याग किया है. इस समय उनको प्रसन्न करना हमारा एकान्त कर्त्तव्य है ॥ २३ ॥ वह मायामयभ्रातृभार्यागामी, अन्तर्मलिन, बहिःशुचि और कपटपण्डित सुरुगुरु हमको निस्संदेह छल कर इस समय अन्तर्धान हुआ है ॥ २४ ॥ अब हम क्या करैं ? कहां जायँ ? किस प्रकार उन क्रोधित शुक्राचार्यजीको अपनी सहायताके निमित्त प्रसन्न करैं ? ॥ २५ ॥ दैत्यलोग इसप्रकार चिन्ता कर सब मिलित हो. भयसे व्याकुल चित्त हुए प्रह्लादको आगे किये शुक्राचार्यजीके समीप गये ॥ २६ ॥ भार्गव शुक्राचार्यजी दैत्यगणोंको देखकर चुप रहे. जब दैत्योंने उनके चरणकमलोंमें प्रणाम किया.तब वह क्रोधितहो लाल नेत्र कर उनसे कहने लगे ॥ २७ ॥ जब कि मेरे समझादेनेपर भी तुमने कपटगुरुकी मायासे मोहित हो, मेरा पवित्र हित-कर और ज्ञानगर्भ वचन नहीं सुना ॥ २८ ॥ वरन् उनके वशवर्ती और मदसे उन्मत्त होकर मेरी अवज्ञा करी, तब तुम उसका फल अवश्य पाओगे ॥ २९ ॥ तुम इस समय कल्याणसे भ्रष्ट हुए हो, अर्थात् अपने आपही अपना सर्वनाश किया है,

अब जहाँ वह कपटरूपी. सुरकार्यार्थी वंचक पण्डित है, वहीं जाओ, मुझको उसकी समान छली मत जानो ॥३०॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! शुक्राचार्यजीके इसप्रकार संदिग्धवचन कहनेपर प्रह्लाद उस समय उनके चरण पकडकर यह वचन कहने लगे ॥ ३१ ॥ प्रह्लादने कहा हे गुरुदेव भार्गव ! हम इस समय कातरभावसे आपके निकट आये हैं. हे सर्वज्ञ ! हम आपके यजमान हितकर पुत्रके समान हैं, अतएव आप हमारा परित्याग न कीजिये ॥ ३२ ॥ आपके मंत्रलाभार्थ गमन करनेपर, अवसर पाय उस नटरूपी आपका वेषधारी दुरात्मा बृहस्पतिने मधुरालापद्वारा हमको छला है ॥ ३३ ॥ आपसे अधिक क्या कहैं ! धीर चित्त महात्मा अज्ञानकृत अपराधसे कुपित नहीं होते, आप सर्वज्ञ हैं, हमारा चित्त जो आपमें ही एकान्त आसक्त है. यह आप जानते ही हैं ॥ ३४ ॥ हे महाबुद्धे ! आप तपोबलके प्रभावसे हमारे मनका भाव जानकर कोपका परित्याग कीजिये. मुनिगण कहते हैं कि, साधुगणोंका कोप चिरस्थायी नहीं है॥३५॥ हे मुने ! जल स्वभावसे ही शीतल है यद्यपि अग्निके द्वारा तापसे वह उष्ण होता है,किन्तु क्षण काल पीछे ताप दूरहोनेसे फिर शीतल हो जाता है ॥३६ ॥ हेसुव्रत ! क्रोध चण्डालकी समान है, अतएव पण्डितगण उसको परित्याग करते हैं.आपके निकट प्रार्थना है कि,आप हमारे प्रति कोप दूर करके प्रसन्न हूजिये ॥३७॥ यदि आप क्रोधका परित्याग न करके इसप्रकार घोरदुःखाभिभूत हमलोगोंका परि त्याग करेंगे ? हे महाभाग ! तो आपसे परित्यक्त होकर हम रसातलमें प्रवेश करेंगे ॥३८॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! शुक्राचार्य प्रह्लादके वचन सुन ज्ञाननेत्रसे देख प्रसन्नचित्त हुए और कुछ एक हँसकर कहने लगे॥३९॥ तुमको अब भय करना वा रसातलमें प्रवेश करना नहीं पड़ेगा, तुम हमारे यजमान हो, मैं तुम्हारी अमोघमंत्रके प्रभावसे अवश्य रक्षा करूंगा ॥ ४० ॥ हे धर्मज्ञगण ! पूर्वकालमें ब्रह्माजीने जो कहा था उसीके अनुसार हमारे यह सत्य, हितकर और निश्चित वचन सुनो ॥ ४१ ॥ जो अवश्य होनेवाली बात है वह शुभ हो वा अशुभ हो, अवश्यही होगी पृथ्वीतलमें कोई भी दैवके विरुद्ध नहीं करसक्ता ॥४२॥ तुमलोग इस समय कालकी गतिसे निःसंदेह हीनवल हुए हो, अतएव इस समय तुमको देवताओंके प्रभावसे पराभूत होकर एक बार पातालतलमें गमन करना पड़ेगा ॥४३॥ ब्रह्माजीने कहा है कि, जब तुम्हारा त्रैलोक्य राजभोग करनेका पर्याय काल उपस्थित हुआ था तब तुमने समृद्धिपरिपूर्ण इस त्रैलोक्यका आधिपत्य सुख भोगाहै ॥४४॥ तुमने दैवबलसे देवताओंको आक्रमण कर

उनके मस्तकपर चरणधर पूर्ण दश युगपर्यन्त निर्विघ्न त्रैलोक्य सुख संभोग किया है ॥ ४५ ॥ सावर्णिक मन्वन्तरमें यह राज्य फिर तुम्हारे अधिकारमें होगा ! उसकालमें बलिनामक तुम्हारे वंशमें त्रैलोक्यविजयी प्रह्लादका पौत्र राज्यको प्राप्त होकर विशेष ख्यातिलाभ करेगा ॥ ४६ ॥ वैकुण्ठनाथ हरिने जब वामनरूपसे बलिका राज्य हरण किया था तब भगवान् जनार्दन विष्णुने दैत्यराज बलिसे कहा था ॥ ४७ ॥ कि मैंने देवताओंकी वांछितार्थ सिद्धिके लिये छलसे तुम्हारा राज्य हरण किया आगामी सावर्णिक मन्वन्तर उपस्थित होनेपर तुम्हीं इन्द्र होंगे इसमें संदेह नहीं ॥ ४८ ॥ हे प्रह्लाद ! भगवान् हरिके वचनानुसार तुम्हारा पुत्र बलि इस समय सब भूतोंसे अदृश्य रहकर अत्यन्त भीतकी समान अवस्थिति करता है ॥ ॥ ४९ ॥ वह इन्द्रके भयसे भीत होकर गर्दभरूप धारणपूर्वक शून्यगृहमें अवस्थित है ॥ ५० ॥ इसीसमय एक दिन देवराजने उसको देखकर अनेक प्रकार उससे गर्दभ देहधारण करनेका कारण पूँछा ॥ ५१ ॥ हे दैत्यवर ! तुम सदा सर्वलोकसुखभोग करते और तुम्हीं दैत्यगणोंके शासनकर्त्ता थे हे दैत्यसत्तम ! सब लोकोंके ऊपर तुम्हारा अचल आधिपत्य था अतएव गर्दभरूप धारण करनेमें तुमको लज्जा उत्पन्न क्यों नहीं होती ? दैत्यराज बलिने उनका यह वचन सुनकर कहा ॥ ५२ ॥ हे शक्र ! इस विषयमें शोक वा दुःख क्या है ? जब कि महातेजा विष्णुनेभी मत्स्यकच्छपका रूप धारण किया है ॥ ५३ ॥ तो मैं जो कालवशतः खराकार धारण करके रहता हूं इसमें फिर आश्चर्य क्या है ? आप ब्रह्महत्याके पीछे जिसप्रकार मानससरोवरमें कमलके मध्य संलीन होकर स्थित थे ॥ ५४ ॥ इसीप्रकार मैंभी इस समय कातर हो गर्दभरूप धारण कर स्थित रहता हूं. हे पाकशासन ! दैवाधीन पुरुषव्यक्तिको सुख दुःख क्या है ! उसके पक्षमें सभी समान हैं ॥ ५५ ॥ क्योंकि काल जब जिसप्रकार इच्छा करता है तब वह उसके प्रति निःसंदेह उसी प्रकार कार्य करता है. भार्गव शुक्राचार्य बोले हे प्रह्लाद ! बलि और देवराज आपसमें इसप्रकार वार्तालाप करके ॥ ५६ ॥ दोनों प्रबोधको प्राप्त हुए और दोनों यथेच्छ स्थानको चले गये: हे असुरसत्तम ! मैंने दैवकी बलवानताके विषयमें यह उपाख्यान तुम्हारे निकट वर्णन किया ॥ ५७ ॥ सुर असुर और मनुष्यसहित यह संपूर्ण जगत् दैवकेही आधीन जानना चाहिये ॥ ५८ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे भाषायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः १५.

दोहा–देवासुरेके युद्धकी, शान्ति भई जेहि भाय ॥
कहब पंचदशमें कथा, सुमिरि शिवा सुखदाय ॥

व्यासजी बोले हे महाराज जन्मेजय ! प्रह्लाद महात्मा भार्गवके पूर्वोक्त वचन सुनकर आनन्दित हुए ॥ १ ॥ तब उन्होंने दैवको बलवान् जानकर दैत्योंसे कहा हे दैत्यलोगो ! देवताओंसे युद्ध करनेपर भी कभी हमारी जीत न हो ॥ २ ॥ फिर विजयी मद गर्वित दानवोंने प्रह्लादसे कहा संग्राम हमारा अवश्य कर्त्तव्य है ! दैव किसको कहते हैं सो हम नहीं जानते ॥ ३ ॥ हे असुरेन्द्र ! जो उद्योगहीन अर्थात् अकर्मण्य हैं दैव उनकाही प्रधान आश्रय है दैव किसप्रकार है ? उसको किसने बनाया है ? और किसने उसको कहाँ देखा है ॥ ४ ॥ जो हो हम इस समय बल अवलम्बन करके युद्धमें प्रवृत्त होंगे. हे दैत्यप्रवर ! आप अतिशय बुद्धिशाली और सर्वज्ञ हैं अतएव हमारे प्रधान नायक होकर इस समय युद्धकार्य संपादन कीजिये ॥ ५ ॥ हे राजन् ! दैत्यलोगोंके इसप्रकार कहनेपर प्रबल–वैरि–विनाशन प्रह्लादने दैत्यकुलके सेनापति होकर देवताओंको युद्धमें बुलाया ॥ ६ ॥ देवता असुरोंको युद्धमें उपस्थित देख अस्त्र शस्त्र धारण कर सुसज्जित हो उनसे संग्राम करने लगे ॥ ७ ॥ तिस काल प्रह्लाद और इन्द्रका पूर्ण सौवर्षपर्यन्त भयंकर संग्राम हुआ इस युद्धके देखनेसे मुनियोंको भी आश्चर्य उत्पन्न हुआ था ॥ ८ ॥ हे राजन् ! उस उपस्थित दारुण संग्राममें शुक्राचार्यके अनुगत प्रह्लाद प्रमुख दैत्यगणोंकी जीत हुई ॥ ९ ॥ तब इन्द्र सुरगुरुके वचनानुसार सर्वदुःखविनाशिनी मुक्तिप्रदा परात्परा कल्याणदायिनी भुवनेश्वरीको मनमें स्मरण करके स्तव करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ १० ॥ इन्द्रने कहा हे महामाये देवी! हे शूलधारिणि अम्बिके ! आप सब विश्वको अभय देनेको शंख चक्र गदा पद्म और कृपाण धारण करतीहैं ॥ ११ ॥ हे भुवनेशानि ! आपको नमस्कार है आपही शक्तिके प्रधान प्रतिपादक दर्शनशास्त्रकी नायिका और शैव शाक्त तथा वैष्णवादि मतसे अनेकभाँति तत्वोंकी भिन्नता रहनेपरभी आप दशतत्वात्मिका हैं. हे मातः ! आपही महाविद्याबिंदुस्वरूपिणी हैं मैं आपको नमस्कार करता हूं ॥ १२ ॥ हे मातः ! आपही आधार पद्ममें स्थित महाकुण्डलिनी हैं आपही सच्चिदानंदस्वरूपिणी हैं आपही प्राण और अग्निहोत्र यागस्वरूपिणी अर्थात् आपही उक्त दोनों यागोंकी

अधिदेवता हैं मेघोंके उदयहोनेपर जिसप्रकार विजली प्रकाश पाती है वैसेही आप हृदयाकाशमें सर्वदा अग्निके शिखाकी समान दीप्तिको प्राप्त होती हैं हे माता! आपको नमस्कार करता हूं ॥ १३ ॥ हे जननि ! आपही अन्नमय प्राणमय मनोमय विज्ञानमय और आनन्दमय इन पंचकोषमें अवस्थित रहीहैं. आपही आनन्दमयकोशमें ब्रह्मस्वरूपिणी हैं. हे माता ! आपही आनन्दकलिका और परा ब्रह्मविद्यारूप सब उपनिषद्की परिपूजिता हैं. हे जननि ! आपको नमस्कार करता हूं ॥ १४ ॥ हे मातः ! आप हमारे प्रति प्रसन्न हूजिये हम दैत्योंसे पराजित और हीनतेज हुए हैं आप हमारी रक्षा कीजिये । हे सर्वशक्तिसंपन्ने देवि ! केवल आपही इस भुवनमें आश्रयदायिनी होकर हमारा दुःख दूर करनेमें समर्थ होती हैं ॥ १५ ॥ हे देवि ! जो सदा आपका ध्यान करते हैं वेही प्रकृत सुखी हैं और जो आपका ध्यान नहीं करते उनका शोक और भय दूर नहीं होता. सुतरां वे केवल दुःखही भोगते हैं जो मोक्षार्थी सदा आपका ध्यान धारण करते हैं वे सज्जनगण अभिमानरहित और निःसंग होकर संसारसमुद्रका अपारपार देखते हैं इस विषयमें कुछ संदेह नहीं है ॥ १६ ॥ हे विश्वजननि देवि ! विश्वकी रक्षाके लिये आपका प्रभाव विख्यात है. कहैं क्या ? आपके प्रभावसे दुःखी पुरुषकी पीड़ा दूर होती है आपही इस संपूर्ण संसारका संहार करनेको, कालरूपिणी होकर रहती हैं. हे अम्ब ! मंदमति मनुष्योंमें कौन आपका आचरित जान सक्ता है ! ॥ १७ ॥ सूर्य, मैं, यम, वरुण, अग्नि, पवन, महानुभाव मुनिगण, आगम, निगम, अधिक क्या ! ब्रह्मा विष्णु और महादेवभी आपका अतुल प्रभाव जाननेमें समर्थ नहीं हैं. हे माता! मैं आपके चरणोंमें नमस्कार करता हूं ॥ १८ ॥ हे उमे ! जो आपके प्रति भक्तिपरायण हैं वेही धन्य और वेही महान् हैं वे संसारके दुःखसे रहित होकर सदा सुखसागरमें मग्न रहतेहैं और जो आपके प्रति भक्ति विहीन हैं वे जन्ममृत्यु स्वरूप तरंगयुक्त दुःखसमुद्रके पार होनेमें किसीप्रकार समर्थ नहीं होते ॥ १९ ॥ हे देवि ! जो सदा श्वेत चामरसे वीज्यमान होता है और जो पालकीमें चढ़कर जाता आता है उसने निस्संदेह पूर्व जन्ममें अनेक प्रकारके उपहारसे आपकी पूजा की थी. अतएव इस जन्ममें उसके अनुरूप फल पायाहै. यही मैं विचारता हूं ॥ २० ॥ जो मनुष्यमण्डलमें सदाही पूज्य हैं, जो श्रेष्ठहाथीपर चढ़कर गमन करते हैं, जो विलासिनीगणोंके विलासरसमें निमग्न होकर आनंदअनुभव करते हैं, जो अधीनस्थ सामन्तगणोंसे परिवेष्टित

होकर गमन करते हैं. हे देवि! मैं विचारता हूं कि, उन्हों ने पूर्वजन्ममें आपकी पूजा की थी, तिसीके फलसे इस सब सुखसंपत्तिलाभके अधिकारी हुए हैं ॥ २१ ॥ व्यासजी बोले हे राजन्! देवराज इन्द्र इसप्रकार स्तव कर रहे थे. इसी समयमें देवी सिंहपर चढी सहसा प्रगट हुई॥ २२॥ उनकी चारों भुजा शंख, चक्र, गदा और पद्मसे सुशोभित थीं. उनके तीनों नेत्र अत्यन्त मनोहर, परिधान लाल वस्त्र और गलदेश दिव्य मालासे विभूषित था ॥ २३॥ देवीने प्रसन्नवदन हो देवताओंसे कहा हे देवताओ! तुम भयका परित्याग करो. इस समय मैं तुम्हारा मंगल करूंगी ॥ २४ ॥ वह दिव्य सुंदरी सिंहपर चढ़ी देवी देवताओंसे उक्त वचन कहकर जिस स्थानमें मदमत्त असुरगण स्थित थे; उसी स्थानमें चलीं गईं ॥ २५ ॥ तब प्रह्लाद इत्यादि असुरगण देवीको आगे स्थित देख भयभीत हो परस्पर कहने लगे. इस समय क्या करना चाहिये ॥ २६ ॥ यह चण्डिका देवताओंकी रक्षा करनेको इस स्थानमें आई हैं. इसनेही महिषासुर और चण्डमुण्डको विनाश किया है ॥ २७ ॥ इसनेही वक्रदृष्टिसे पूर्वमें मधुकैटभको संहार किया था. अब वही अम्बिका हम सबका विनाश करेगी. इसमें संदेह नहीं ॥ २८ ॥ प्रह्लादने दानवोंको इस प्रकार चिन्तातुर देखकर कहा हे दानवगण! इस समय युद्ध न करके भागनाही उचित है ॥ २९ ॥ तब नमुचिनामक दैत्य भागते हुए दानवोंसे बोला कि, तुम्हारे पलायन करनेपर यह जगन्माता हस्त धृत अस्त्रद्वारा क्या तुमको विनाश करेंगी? ॥ ३०॥ जो हो जिससे दोनों पक्षोंकी रक्षा हो, वही करना हमारा कार्य है. हम भुवनेश्वरीकी स्तुति कर, उनकी आज्ञा ले, अभी पातालतलमें गमन करेंगे मैं ने यही स्थिर किया है ॥ ३१ ॥ तब प्रह्लादने कहा मैं. सृष्टि, स्थिति, प्रलय करनेवाली सबकी जननी सर्वजनोंको अभय देनेवाली महामायाका स्तवन करता हूं ॥ ३२ ॥ व्यासजी बोले कि, इसप्रकार कह परमार्थतत्वके जाननेवाले विष्णुभक्त प्रह्लाद हाथ जोड़ देवीका जगद्धात्रीका स्तवन करने लगे ॥ ३३ ॥ मालाके देखनेसे जिसप्रकार सर्पका भय होता है. इसी प्रकार जिनके आश्रयसे यह चराचर शोभापाता है. जो इस अखिलको अधिष्ठानस्वरूप है. उन्हीं ह्रींकारबीजमूर्त्ति भुवनेश्वरीको मैं नमस्कार करता हूं ॥ ३४ ॥ हे देवि! आपसेही स्थावर जंगमादि इस संपूर्ण विश्वकी उत्पत्ति हुई है. ब्रह्मा, विष्णु इत्यादि कर्त्ता निमित्तमात्र हैं. वास्तवमें आपनेही सृष्टि इत्यादि कार्यके निमित्त उनको उत्पन्न किया है ॥ ३५ ॥ हे महामाये! मैं आपको नमस्कार करता हूं

आप सबकी जननी हैं. जब सुर और असुरगण सभी आपसे उत्पन्न हैं, तब फिर आपकी दृष्टिमें देवता और दैत्यगणोंमें भेद किसप्रकार संभवित है ? ॥ ३६ ॥ जब उत्तम और अधम पुत्रमें माताकी भेदबुद्धि दिखाई नहीं देती. तो देवतालोग और हमलोगोंको भेदभावसे नहीं देखिये. यही हमारी प्रार्थना है ॥ ३७ ॥ हे देवि ! आप सब पुराणोंमें विश्वजननी कहकर कीर्त्तित हुई हैं. अतएव हे मातः ! देवतालोग जिसप्रकार आपके पुत्र हैं. हमभी उसीप्रकार हैं ॥ ३८ ॥ हे जननि ! वह जिसप्रकार स्वार्थमें तत्पर हैं. हमारा स्वार्थभी उसीप्रकार है. सुतारां दैत्य और देवताओंमें कोईभी भेद नहीं है. यदि कोई भेदबुद्धि करे तो वह भ्रान्तिमूलक है ॥ ॥ ३९ ॥ हे देवि ! धन स्त्री इत्यादि विषयभोगमें हम जिसप्रकार आसक्त हैं देवता भी इसीप्रकार हैं. हे देवेशि ! तो असुरगणोंके सहित देवताओंमें क्या भेद है ? ॥ ॥ ४० ॥ हे मातः ! वहभी महर्षि कश्यपजीके पुत्र हैं और हमभी उन्हींके आत्मज हैं. अतएव इस विषयमें आपके स्नेहका विपरीतभाव किसप्रकार होसक्ता है ॥ ॥ ४१ ॥ हे विश्वजननि ! आपमें ऐसा विरोध कहींभी दिखाई नहीं देता. इस कारण आप देवता और असुरगणोंको समान जानिये ॥ ४२ ॥ देवतागण और असुरगण सभी गुणोंके संयोगसे उत्पन्न हुए हैं. तो देवतागण देहधारी होकर किसप्रकार अधिगुणयुक्त होसक्ते हैं ॥ ४३ ॥ संपूर्ण देहमेंही काम, क्रोध और लोभ इत्यादिका अधिकार है. तब कौन व्यक्ति अविरोधी होसक्ता है ? ॥ ४४ ॥ मैं जानता हूं कि, आपनेही कौतुकवशतः युद्ध देखनेको हमारा परस्पर भेद कराकर यह विरोध उपस्थित किया है ॥ ४५ ॥ नहीं तो हे चामुण्डे ! यदि हमारा कलह देखनेकी तुम्हारी इच्छा नहीं होती, तो हम भ्रातालोग परस्पर विरोध क्यों करते ? ॥ ४६ ॥ हे देवि ! हम धर्मको भी जानते हैं. शतक्रतुकोभी जानते हैं. तथापि विषय संभोगकेलिये हमारा सदाही कलह होता है ॥ ४७ ॥ हे अम्बिके ! इस संपूर्ण संसारमें तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा कोई सबका शासन कर्त्ता दिखाई नहीं देता । जो स्पृहावान् हैं, उनका वचन प्रतिपालन करनेमें कौन पंडित समर्थ होसक्ता है? ॥ ४८ ॥ हे मातः ! किसी समयमें देवता और असुरोंने मिलकर समुद्रका मथन किया था, तब विष्णुने सुधा, रत्नबाँटनेके मिषसे देवता और असुरोंमें परस्पर भेद करादिया था ॥ ४९ ॥ हे मातः ! आपने जिनको जगद्गुरु और जगत्का पालनकर्त्ता किया है, उन्होंनेही लोभके वशीभूत हो अमरसुंदरी लक्ष्मी देवीको ग्रहण

किया था ॥ ५० ॥ देवराज इन्द्रने ऐरावत, पारिजात, कामधेनु, तथा उच्चैःश्रवा-को ग्रहण किया था। इसीप्रकार विष्णुकी इच्छासे अन्यान्य देवताओंने उत्तम उत्तम सामग्री ग्रहण करी थी ॥ ५१ ॥ क्या आश्चर्य है! इस प्रकार अन्याय-कार्य करनेपर भी देवता साधु हुए, वास्तवमें देवताही अन्याय कारी हैं इसमें सं-देह नहीं। हे देवि! आप इस विषयमें यथार्थ धर्म क्या है? सो अवलोकन कीजिये. बहुमानी विष्णुने देवताओंको स्वपदमें स्थापित और दैत्योंको पराभूत किया है। हे देवि! आप इस विषयमें धर्मका लक्षण अवलोकन कीजिये धर्म कहां है? किस प्रकारका है? धर्मका कार्य क्या है? साधुता किस प्रकार है? यह आप भली भाँति विचार करके देखिये, किसके धर्मकी रक्षा हुई है. किस की साधुता प्रकाशित हुई है, किसकी जीत वा हार होनी उचित है? क्योंकि इन सब बातोंके विचारनेमें आप भलीभाँति समर्थ हैं ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ हाय मीमांस-कगणोंका सिद्धान्त किसके सन्मुख प्रकाश करूं? विचार करके देखनेसे यह जगत् विवादका क्षेत्र है. क्योंकि तार्किकगण युक्तिपथके पक्षपाती और वेदवादी विधिमार्गके अनुवर्त्ती हैं ॥ ५४ ॥ यह सब स्थूलबुद्धिगण इस संसारको एक जनके कर्त्तृत्वसे उत्पन्न और पालित स्वीकार करते हैं, तथा आपसमें विरोध कर-ते हैं ॥ यदि इस अनन्त विस्तृत संसारमें एकही जन कर्त्ता हो तो एक कार्यमें परस्परका मतभेद और विरोध क्यों होता है? वेदमें किस कारण एकमत दिखाई नहीं देता? और सब शास्त्रोंका मतभी किस निमित्त पृथक् २ है? ॥५५॥५६॥ वेदविद्गणोंके अभिप्रायका भी अनैक्य क्यों देखा जाता है? हे देवि! यह स्थावर जंगमात्मक सब जगत् स्वार्थपरायण है, इसकारणही उक्त प्रकारका मतभेद हुआ है, इसमें संदेह नहीं ॥ ५७ ॥ इस संसारमें स्पृहाहीन पुरुष न है, न होगा देखो, चन्द्रमाने जानकर तथा सुनकरभी बलपूर्वक गुरुकी भार्याका हरण किया ॥ ५८ ॥ इन्द्रने धर्मके तत्त्वको निश्चय जानकरभी गौतमकी भार्याका हरण किया, देवगुरुने अनुजको भार्यासे बलपूर्वक रमण किया और ज्येष्ठकी गर्भवती भार्यासे ॥ ५९ ॥ बलात्कार करके गर्भगत बालकको शाप देकर अंधा किया। अधिक क्या? सत्वगुणयुक्त विष्णुनेभी विना अपराध बलपूर्वक राहुका मस्तक काटा ॥ ६० ॥ हे अम्बिके! धार्मिकगणोंमें अग्रणी, सत्यव्रतपरायण, यज्ञशील, वदान्य, शान्त, सर्वज्ञ मेरा पौत्र बलि, जो सबके मानकी रक्षा करता था छला-

चलम्बी हरिने वामनरूप धारण पूर्वक ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ उसको छलकर उसके संपूर्ण राज्यका हरण कर लिया. हाय! तोभी मुनिगण देवताओंको धर्मका स्थापन कर्त्ता कहकर व्याख्या करते हैं ॥ ६३ ॥ क्या आश्चर्य है! इस जगत्में जो चाटुकार "बनावटी" कहते हैं, उनकीही जय और जो यथार्थ धर्मवादी हैं, उनकाही क्षय होता है ॥ हे देवि! आप जगत्की माता है, यह सब विचार कर जो इच्छा हो वही कीजिये ॥ ६४ ॥ सब दानवोंको अपनीही शरणागत जानो अब उनका वध वा रक्षा, जो उचित हो, सो करो. देवों ने कहा हे दानवलोगो! तुम सब पातालको जाओ और समर जनित क्रोध छोड़कर निर्भय रहो वहां इच्छानुसार वास करते रहो तुम लोग इस समय शुभ और अशुभ प्राप्तिके कारण स्वरूप कालकी प्रतीक्षा करो ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ जो निर्वेदपरायण संसारसे पृथक् और विरागी हैं उनको सर्वदा सब स्थानोंमेंही सुख विद्यमान है और जिनका मन लोभाकृष्ट है. उनको त्रैलोक्यका राज्य प्राप्त होनेपरभी सुख नहीं होता ॥ ६७ ॥ अधिक क्या सत्ययुगमेंभी लोभपरायण पुरुष फल प्राप्त होनेपरभी सुखलाभ नहीं करसके ॥ ६८ ॥ अतएव तुम लोग पृथ्वी छोड़कर पातालको जाओ तुम विगतपाप हो मेरी आज्ञा मस्तकपर धारण करके पातालतलमें गमन करो. व्यासजी बोले दानवोंने देवीका यह वचन सुनकर शिरोधारणकर ॥ ६९ ॥ और उनको प्रणाम कर तथा उनके द्वारा प्रतिपालित हो पातालतलमें चले गये इसके उपरान्त देवी अन्तर्धान होगई और देवता अपने अपने भवनको चले गये ॥ ७० ॥ इस प्रकार देवता और दानव लोग आपसका वैरभाव छोड़कर वास करने लगे हे महाराज! जो कोई इस आख्यानको पढ़ते हैं वा सुनते हैं ॥ ७१ ॥ वे सब प्रकारके दुःखोंसे छूटकर भगवान्के परमपदको पाते हैं ॥ ७२ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः १६.

जन्मेजय बोले हे विभो! भृगुशापके कारण विचित्रकर्मा हरि किस मन्वन्तरमें किस अवतारमें किस प्रकार अवतीर्ण हुए थे? ॥ १ ॥ हे धर्मज्ञ! आप पापनाशिनी सर्वसुखदायिनी और कल्याणविधायिनी उन्हीं हरिके अवतारकी कथाका

विस्तारसहित वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ व्यासजीने कहा हे नरेन्द्र ! जिस २ मन्वन्तर और जिस जिस युगमें भगवान् अवतीर्ण हुए थे, वह सब वर्णन करता हूं सुनो॥ ३ ॥ भगवान् नारायणने जो जो आकार धारण करके जो जो कार्यसाधन किये थे. इस सम्भव मैं संक्षेपसे वे सब तुम्हारे निकट वर्णन करता हूं, श्रवण करो ॥ ४ ॥ चाक्षुषमन्वन्तरमें धर्मका अवतार प्रकाशित हुआ. तिसमें नरनारायणनामक दो धर्मके पुत्र अवतीर्ण होकर पृथ्वीतलमें विख्यात हुए थे॥५॥ फिर वर्त्तमान वैवस्वत मनुके अधिकार समय दूसरे युगमें भगवान् हरि अत्रिऋषिके पुत्र होकर दत्तात्रेयनामसे अवतीर्ण हुए थे ॥ ६ ॥ अत्रिकी अनसूयाने ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र, इन तीन प्रधान देवताओंको संतानरूपमें प्राप्त करनेकी इच्छा की. उसीके अनुसार उन्होंने ऋषिपत्नीकी कामना पूर्ण करनेको उसके गर्भसे जन्म ग्रहण किया ॥ ७ ॥ अनसूया सती स्त्रियोंमें श्रेष्ठ थी. इस कारण केवल उसके प्रार्थना करते ही ब्रह्मा विष्णु और महेश्वरने उसके पुत्र होना स्वीकार किया ॥ ८ ॥ तिनमें ब्रह्मा सोमरूपसे, स्वयंहरि दत्तात्रेय रूपसे और रुद्रदेव दुर्वासा रूपसे प्रादुर्भूत हुए थे ॥ ९ ॥ चौथे युगमें भगवान् देवताओंका कार्य साधनके निमित्त मनोहर द्विरूप अर्थात् मृगेन्द्रमुख और अवशिष्टांग नराकार धारण करके नृसिंहरूपसे अवतीर्ण हुए थे ॥ १० ॥ वे हिरण्यकशिपुको मारनेकेलियेही देवतागणोंको भी विस्मित कर नृसिंहमूर्तिमें अवतीर्ण हुए ॥ ११ ॥ भगवान् हरिने बलिका प्रभाव प्रशमित करनेके युगश्रेष्ठ त्रेतामें महर्षि कश्यपके और सपुत्र होकर वामनरूप धारण किया था ॥ १२ ॥ उन्हीं वामनरूपधारी हरिने यज्ञस्थलमें छलपूर्वक बलिका राज्य ग्रहण करके उसको पातालमें स्थापित किया था ॥ १३ ॥ फिर त्रेतानामक एकोनविंश युगमें भगवान् हरि जमदग्नि ऋषिके महाबल पुत्ररूपमें जन्म ग्रहण कर परशुराम नामसे विख्यात हुए ॥ १४ ॥ वे रूपवान् सत्यवादी और जितेन्द्रिय थे ! उनसेही क्षत्रियकुल निर्मूल हुआ और उन्होंनेही महात्मा कश्यप ऋषिको संपूर्ण पृथ्वीका राज्य समर्पण किया था ॥ १५ ॥ हे राजेन्द्र ! उन्हीं अद्भुत कर्मा हरिका परशुराम नामक पाप–विनाशक अवतार है ॥ १६ ॥ अनन्तर भगवान् हरि त्रेतायुगके समय रघुकुलमें रामनामसे दशरथके पुत्ररूपमें प्रादुर्भूत हुए थे ॥ १७ ॥ अनन्तर अष्टाविंशतिद्वापरयुगमें नरनारायणके अंशसे महाबल अर्जुन और कृष्णरूपसे पृथ्वीतलमें जन्म ग्रहण किया इन कृष्ण और अर्जुनने

भूमिके भारका नाश करनेकेलिये जन्म ग्रहण करके ॥ १८ ॥ कुरुक्षेत्रमें अत्यन्त दारुण संग्राम उपस्थित किया। हे राजन् ! इसप्रकार युगयुगमें ॥ १९ ॥ हरिकी प्रकृतिके अनुरूप अनेक अवतार होते हैं. हे राजेन्द्र ! यह अखिल तीनों जगत प्रकृतिके वशमें अवस्थित रहते हैं ॥ २० ॥ यह प्रकृति जिसप्रकार इच्छा करती है. उसीप्रकार जगत्को निरंतर भ्रमण कराती है प्रकृतिपुरुषका प्रिय साधन करनेके लियेही निरन्तर इस अखिलजगत्की रचना करती है ॥ २१ ॥ जिस मायाकी उपाधिसे परात्पर, सर्वादि, सर्वगत, दुर्ज्ञेय, परम, अव्यय, निरावलम्ब निराकार निस्पृह भगवान् इस चराचर जगत्की सृष्टि करके ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वररूपसे अथवा सात्विक, राजस और तामस रूपसे प्रतिभात हुए हैं. उस मायाकोही परमाप्रकृति जानना चाहिये ॥ २२ ॥ २३ ॥ वह शिवा प्रकृति,उत्पत्ति और कालयोगसे भिन्न भिन्न रूपमें प्रतिभात होती है. वह त्रिरूपा विश्वमोहिनीही विश्वकी सृष्टि और पालन करतीं हैं ॥ २४ ॥ और कल्पान्तमें संहार करतीं हैं. हे राजन् ! इस प्रकृतिके सहित संयुक्त होनेसेही ब्रह्मा सृष्टि, विष्णु पालन ॥ २५ ॥ और कल्याणमय महादेव संहार कार्य साधन करते हैं. उन्होंनेही पूर्वकालमें नृपसत्तम काकुत्स्थको उत्पन्न करके ॥ २६ ॥ दानवगणोंकी जयको किसी स्थानमें स्थापित किया था. हे महाराज ! इसप्रकार प्राणिगण इस संसारमें विधिनियमसे आबद्ध होकर कभी सुखी और कभी दुःखी होकर विचरण करते हैं ॥ २७ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः १७.

दोहा–सुरललनाको गमन जिमि, नारायणके गेह ।
भयो सप्तदशमें सकल, वर्णहिं सहित सनेह ॥

जन्मेजयने कहा हे मुनिवर ! आपने कहा है कि, नरनारायणके आश्रममें स्वर्गकी अप्सराओंने कामातुर होकर शान्तचित्त एकमात्र नारायणकीही कामना की थी ॥ ॥ १ ॥ उस समय नारायण मुनि उनको शाप देनेको उद्यत हुए तब उनके भ्राता नरऋषिने उनको निवारण किया था ॥ २ ॥ इस समय पूँछता हूं इसप्रकार संकटका समय उपस्थित होनेपर नारायण मुनिने क्या किया था ? अमरनाथ इन्द्रने जिन

सब कामाभिलाषी सुरवाराङ्गनाओंको भेजा था ॥ ३ ॥ उनके अनेकबार परिणय प्रार्थना करनेपर उन विष्णु नारायणऋषिने क्या किया ? ॥ ४ ॥ हे पितामह ! उन नारायणके ये मोक्षप्रद संपूर्ण पवित्र चरित्र श्रवण करनेकी हमारी अत्यन्त वासना उत्पन्न हुई है. आप उनको विस्तारसहित वर्णन करके हमारी अभिलाषा पूर्ण कीजिये ॥ ५ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! उन महात्मा धर्मपुत्रके आचरणोंका मैं तुम्हारे निकट विस्तारसहित वर्णन करता हूं तुम सुनो ॥ ६ ॥ नारायण हरिने जब शाप देनेकी इच्छाकी. तब नरऋषिने यह देख उनको सांत्वना शान्ति पूर्वक निवारण किया॥ ७॥ तब महामुनि तपोधन धर्मनन्दनने अपना क्रोध भाव छोड़ कुछेक हँसकर उनसे मधुर वचनद्वारा कहा ॥ ८ ॥ हे सब सुन्दरियो ! इस जन्ममें हमने तपश्चरणका संकल्प किया है. सुतरां इस अवस्थामें हमको स्त्रीग्रहण करना किसी प्रकार उचित नहीं है ॥ ९ ॥ इसकारण तुम हमपर कृपा करके स्वर्गको जाओ. देखो जो धर्मज्ञ हैं, वह कभी दूसरेका व्रतभंग करनेकी अभिलाषा नहीं करते ॥ १० ॥ हे सुलोचनागणो ! शृंगाररसमें रतिही स्थायीभावसे कही गई है, हममें इस समय उसका अभाव है, अतएव हम किसप्रकार उस संबंधकी संयोजना कर सक्ते हैं? ॥ ११ ॥ कारणके विना कार्यकी उत्पत्ति नहीं होती यह स्थिर निश्चय है, कवियोंने शास्त्रमें रसकोही स्थायीभाव कहा है ॥ १२ ॥ जो हो, हमारे अंग प्रत्यङ्ग सब निश्चयही सुशोभन है, मैंही पृथ्वीतलमें धन्य और सौभाग्यवान हूं नहीं तो मैं तुम्हारा अकृत्रिमप्रणयास्पद क्यों होता ! ॥ १३ ॥ तुम सौभाग्यवती हो. इसकारण कृपा करके हमारे व्रतकी रक्षा करो. मेरी यही प्रार्थना है कि, जन्मान्तरमें तुम्हारा पति हूं ॥ १४ ॥ हे विशालाक्षी सब सुंदरीगणो ! अट्ठाईसवें द्वापरयुगमें देवताओंकी कार्यसिद्धिके निमित्त मैं पृथ्वीतलमें निःसंदेह अवतीर्ण हूंगा ॥ १५ ॥ तिस समय तुम भी सब पृथ्वीतलमें राजकन्यारूपसे पृथक् पृथक् जन्म ग्रहण करके हमारे पत्नीभावको प्राप्त होंगी ॥ १६ ॥ नारायणने इसप्रकार भरोसा दे, विवाह करना स्वीकार कर उनको बिदा किया ॥ १७ ॥ वे भी मनकी उत्कंठा छोड़कर सुरपुरमें चलीं गईं और इन्द्रके निकट जायकर आदिसे अंततक सब वृत्तान्त उन्होंने कहा ॥ १८ ॥ सुरपति इन्द्र सुरांगनागणोंके मुखसे उन दोनों ऋषियोंका वृत्तान्त विस्तारपूर्वक सुनकर और नारायण ऋषिके ऊरुसे उत्पन्न हुई उर्वशी इत्यादि सुंदरियोंको देखकर महात्मा नारायणके गुणकीर्त्तन करने

लगे ॥ १९ ॥ इन्द्रने कहा-अहो! मुनिकी क्या आश्चर्य धैर्य शक्ति है ! क्या चमत्कारी तपका प्रभाव है! अहो! उन्होंने तपोबलसे उर्वशी इत्यादि इन सब अनुपम सुंदरीगणोंको अपने ऊरु देशसे उत्पन्न किया है ॥ २० ॥ सुरराज इस प्रकार उनके गुणकीर्त्तन करके निरुद्वेग हुए, इधर धर्मात्मा नारायणभी अपनी तपस्यामें निरत हुए ॥ २१ ॥ हे राजेन्द्र! यह मैंने तुमसे महामुनि नारायणका अद्भुत संपूर्ण वृत्तान्त सम्यक्प्रकार वर्णन किया ॥ २२ ॥ हे भरतकुलभूषण! वही नर नारायण भृगु शापके कारण पृथ्वीका भार हरण करनेके लिये कृष्ण और अर्जुन नामक वीरस्वरूपमें अवतीर्ण हुए थे ॥ २३ ॥ राजाने कहा हे मानद! हे मुने! इस समय कृष्णावतारके चरित्र विस्तारसहित कहकर मेरे मनका संदेह दूर कीजिये ॥ २४ ॥ हे मुनिवर! महाबल हरि और अनन्तने जिनका पुत्रत्व स्वीकार किया था, वे वसुदेव और देवकी दुःखके भाजन क्यों हुए ॥ २५ ॥ तपस्यासे संतुष्ट होकर साक्षात् भगवान् जनार्दन जिनके पुत्र हुए थे, वे बहुत काल पर्यन्त कंसके कारागारमें निगडबद्ध क्यों रहे? इसका क्या तात्पर्य है ॥ २६ ॥ कृष्ण मथुरामें जन्म लेकर गोकुलमें क्यों गये और कंसको मारकर किसकारण समुद्रमध्यवर्तिनी द्वारावती नगरीमें वास किया? ॥ २७ ॥ उनके माता पिता और आत्मीयवर्ग समृद्धिसपन्न जिस समृद्धिसंपन्न देशमें वास करते थे, उसका परित्याग करके दूसरे जघन्य देशान्तमें वास करनेका क्या करण है? ॥ २८ ॥ किस कारण ब्राह्मणके शापसे यदुपतिका निज-कुलक्षय हुआ? किसप्रकार सनातन वासुदेव पृथ्वीका भार उतार ॥ २९ ॥ देहपरित्यागपूर्वक स्वर्गमें गये? पापिष्ठ लोगोंके भारसे पृथ्वी व्याकुल हुई थी ॥ ३० ॥ वे पापीगण अमितकर्मा कृष्ण और अर्जुनके हाथसे मारेगये थे किन्तु जिन्होंने हरिकी पत्नियोंको लूटा था उन दुष्टोंको न मारनेका क्या तात्पर्य है? ॥ ३१ ॥ भीष्म, द्रोण, कर्ण, नरपति बाह्लीक, विराट्, विकर्ण, धृष्टद्युम्न ॥ ३२ ॥ राजा सोमदत्त इत्यादि प्रधान प्रधान पुरुषोंको मारकर भूमिका भार हरण किया गया, किन्तु तस्करलोगोंको मारकर उनका भार हरण क्यों न हुआ? ॥ ३३ ॥ पतिव्रता कृष्णकी पत्नियोंने किस कारण अंतमें दुःख पाया? इस विषयको जानकर मेरे मनमें महान् संदेह उत्पन्न हुआ है ॥ ३४ ॥ धर्मात्मा वसुदेवने पुत्रके दुःखसे तापित होकर किस निमित्त प्राणपरित्याग किया और किस कारण उनको अपमृत्यु हुई ॥ ३५ ॥

हे मुनिसत्तम! पाण्डवगण कृष्णनिरत और धर्मज्ञ थे तब उनके इतना दुःख भोगनेका क्या कारण है? ॥ ३६ ॥ जो द्रौपदी लक्ष्मीके अंशसे संभूत और यज्ञकी वेदीसे उत्पन्न हुई थी, उसने किस कारण इतना दुःख भोगा? ॥ ३७॥ उस बालाके रजस्वला होनेपरभी दुःशासन उसके केश पकडकर सभास्थलमें क्यों लाया? ॥ ३८॥ और किसकारण वनवास कालमें सिंधुराज जयद्रथने उसको अत्यन्त मर्मपीड़ा दी थी? उस भामिनी पाण्डवगेहिनीके रोदन करनेपरभी किसकारण कीचकने उसको उत्पीड़न और अपमानित किया था? ॥ ३९॥ किसकारण उसके गृह-स्थित पाँचों पुत्रोंको अश्वत्थामाने मारा था?सुभद्राके बालक पुत्रने युद्धस्थलमें प्राणपरित्याग किया, इसका क्या कारण है? ॥ ४०॥ कंसराजने किसकारण देवकीके छे बालकोंको मारा था? किसनिमित्त भगवान् हरिने दैवके अन्यथा करनेमें समर्थ होकर भी उसको न किया? ॥ ४१ ॥ क्या आश्चर्य है! यादवगणोंके प्रति ब्रह्मशाप होकर प्रभासमें उनका निधन, एकबार हो यदुकुलका ध्वंस और उनकी पत्नियोंका लुटना इन सब भारी विषयोंमें भी क्या उन्होंने दैवकी उपेक्षा करी थी? ॥४२ ॥ यदि वे सबके ईश्वर और स्वयं नारायण थे तो उन्होंने सर्वदा उग्रसेनके प्रति दासकी समान व्यवहार क्यों किया? ॥ ४३ ॥ हे महाभाग! उन नारायण मुनिके प्रति यह संदेह होता है कि, उनका व्यवहार निरंतरही साधारण जीवके समान था ॥ ४४ ॥उनके हर्ष शोकादि सब भाव किस कारण साधारण मनुष्योंके समान थे! यदि वह नारायण हरि परमेश्वर थे! तो क्यों उनका भाव ऐश्वरिक न होकर साधारण जन्तुकी समान हुआ था ॥ ४५ ॥ अतएव लोकातीत प्रभाव हरिने पृथ्वीतलमें जो जो कर्म किये थे, आप वे सब और उनकी दिव्य लीलाभी विस्तार सहित कहिये ॥ ४६ ॥ हे मुनिसत्तम! आयुके क्षय होनेपर ही जीवका जीवन नष्ट होता है तो अत्यन्त कष्ट स्वीकार करके दैत्योंके मारनेमें ईश्वर हरिका क्या ऐश्वर्य प्रकाशित हुआ! ॥ ४७ ॥ रुक्मिणीके हरणकालमें भगवान् रुक्मिणीको ग्रहण करके भागे थे, तो उनका वह आचरण चोरकी समान हुआ था, इसमें संदेह नहीं ॥ ४८ ॥ जरासन्धके भयसे महासमृद्धिसंपन्न कुलसम्मत मथुरामंडलपरित्याग करके उनके द्वारकामें भागनेका उद्देश क्या था? ॥ ४९ ॥ जब कि उन्होंने यह सब कार्य किये. तब क्या उनको कोई ईश्वर भगवान् हरि जान सक्ताहै! हे ब्रह्मन्! यदि वह स्वयं भगवान् होते तो व्रजमें छिपेहुए क्यों रहते? इसका क्या कारण है सो आप

मुझसे कहिये ॥ ५० ॥ हे मुने! वह सब और अन्यान्य अनेक संदेह मेरे हृदयमें सदा विद्यमान् रहते हैं, आप द्विजोत्तम सर्वज्ञ और महाभाग हैं, आपके निकट प्रार्थना है कि, मेरे यह सब संदेह दूर कीजिये॥ ५१ ॥हे तपोधन मेरे मनमें और एक अत्यन्त गोपनीय संदेह वर्तमान रहता है, वह किसीसे दूर नहीं होता। हे मुनिवर! पांचालीके जो पांच पति हुए थे, वे क्या लोकसमाजमें घृणाकर और लज्जाजनक नहीं हैं ॥ ५२ ॥ पण्डितगण सदाचारकोही धर्मका प्रमाण कहकर निर्देश करते हैं, तब उन पांडवगणोंने सम्यक्प्रकारसे समर्थ होकर भी किसकारण पशुधर्मका आचरण किया था! ॥ ५३ ॥ पृथ्वीतलमें देवरूपसे वास करके भीष्मने क्या किया? मैं आपसे पूँछताहूं कि, गोलक दो पुत्र उत्पन्न करके वंशकी रक्षा करना क्या उनके सदृश कार्य हुआ है! ॥ ५४ ॥ मुनियोंने "जिस किसी उपायसे हो पुत्र उत्पन्न करै" इस प्रकार व्यवस्था देकर जो धर्मका निर्णय किया है उनके उस धर्मनिर्णयको धिक्कार है ॥ ५५ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः १८.

व्यासजी बोले हे राजन्! कृष्णके विस्तृत चरित्र और अवतारकी कथा तथा देवी भुवनेश्वरीके विचित्र चरित्रादिका विषय वर्णन करता हूं, सुनो ॥ १ ॥ किसी समयमें पृथ्वी दुष्ट राजाओंके भारसे आक्रान्त होकर अत्यन्त पीडित और भीत हुई थी तब वह गौका रूप धारण कर रोदन करती करती दीन मनसे देवलोकमें गई ॥ २ ॥ देवराजने उससे पूँछा हे वसुंधरे! इस समय तुम्हारे भयका क्या कारण है? किसने तुमको पीड़ित किया है तुमको क्या दुःख उपस्थित हुआ है? यह सब मुझसे कहो ॥ ३ ॥ पृथ्वीने इन्द्रका यह वचन सुनकर कहा हे मानद! आप यदि मेरे दुःख और पीड़ाका कारण पूँछते हैं, तो मैं आपसे सब बात कहती हूं. सुनिये मैं इस समय अत्यन्तभारसे दबी जाती हूं ॥ ४ ॥ घोर पापी मगधराज पृथ्वीमें राजत्व करता है! इसी प्रकार चेदि पति शिशुपाल, दुर्द्दान्तकाशीराज॥ ५॥ रुक्मी, बलवान् कंस, महाबल नरक, सौभपतिशाल्व, क्रूरमति केशी, धेनुक और वत्सक ॥ ६ ॥ ये सभी राज्यपदमें प्रतिष्ठित हुए हैं हे देवराज! अधिक क्या कहूं! यह

सभी राजालोग धर्महीन परस्परविरोधी मदोन्मत्त और पापाचारमें रत हैं. यह कालस्वरूपराजा होकर ॥ ७ ॥ मुझको निरंतर पीड़ित करते हैं. मैं उनका भार वहन नहीं कर सक्ती. इस समय कहां जाऊं ! क्या करूं ! यह महती चिन्ता मेरे अन्तःकरणमें उदित रहकर मुझको निरन्तरही पीडा देती है ॥ ८ ॥ हे वासव ! कहूं क्या प्रभावशाली वराहरूपी विष्णुही मेरे कष्टके कारण हुए हैं. हे शक्र ! इससेही मैं दुःखके ऊपर दुःखमें गिरीहूं ॥ ९ ॥ क्योंकि जब कश्यपके पुत्र दुष्ट दैत्य हिरण्याक्षने मुझको हरणकर महार्णवमें डुबोकर रक्खा था ॥ १० ॥ तिसकाल विष्णुने वराहरूप धारणपूर्वक उसको मार मेरा उद्धार कर स्थिरभावसे रक्षाकी थी ॥ ॥ ११ ॥ वे यदि उस समय मेरा उद्धार न करते तो मैं रसातलके गर्भमें सुखपूर्वक काल व्यतीत करती । हे देवेन्द्र ! मैं इस समय उक्त दुरात्माओंका भार वहन करनेमें समर्थ नहीं होती हूं ॥ १२ ॥ हे सुरेन्द्र ! शीघ्रही सामने दुष्ट अठाईसवाँ कलियुग आता है उसका जिसप्रकार प्रभाव है उससे बोध होता है कि, उसी समय मुझको पीड़ित होकर रसातलमें जाना पड़ेगा ॥ १३ ॥ अतएव हे देवेश्वर ! मैं आपके चरणकमलमें प्रणाम करती हूं आप मेरा भार हरण करके इस अपार दुःखके समुद्रसे मेरी रक्षा कीजिये ॥ १४ ॥ सुरपति इन्द्रने कहा हे पृथ्वी ! मैं तुम्हारा क्या करूं ? तुम ब्रह्माजीके निकटजाय उनकी शरण ग्रहण करो मैंभी वहां जाता हूं उनसेही तुम्हारा दुःख दूर होगा ॥ १५ ॥ तब पृथ्वी इन्द्रका वचन सुनकर तत्काल ब्रह्मलोकमें गई और इधर इन्द्रभी सब देवताओंके सहित पृथ्वीके पीछे पीछे ब्रह्मलोकमें उपस्थित हुए ॥ १६ ॥ हे महाराज ! पितामह ब्रह्माजीने पृथ्वीको आती हुई देख ध्यानयोगसे उसके आनेका कारण जान लिया और कहा ॥ १७ ॥ हे कल्याणि ! तुम क्यों रोती हो ? तुमको इस समय क्या दुःख हुआ है ? किस दुराचारीने तुमको पीड़ित किया है ? कहो ॥ १८ ॥ पृथ्वी बोली हे जगतीपते ! दुष्ट कलि सम्मुखही आ रहा है. इसके प्रभावमें सब प्रजा घोर पापाचारी होगी, अतएव मैं कलिके भयसे अत्यन्त शंकित हुई हूं ॥ १९ ॥ इस कलिके प्रारम्भमें राजरूपसे अवतीर्ण पूर्ववैरी असुरगण अत्यन्त दुराचारी, परस्परविरोधी, और चोरीके कार्यमें चतुर हैं. इसमें संदेह नहीं ॥ २० ॥ हे पितामह ! इस समय इन दुर्वृत्त राजाओंको मारकर मेरा भार हरण कीजिये ! हे महाप्रभो ! मैं उन राजाओंकी सेनाके भारसे अत्यन्त पीड़ित हुई हूं ॥ २१ ॥

ब्रह्माजीने कहा हे देवि ! इन्द्रकी समान मैं भी तुम्हारा भार हरण करनेमें समर्थ नहीं हूं चलो हम दोनों जने चक्रधारी विष्णुके पास चलें ॥ २२ ॥ वह जनार्दन ही तुम्हारा भार हरण करेंगे मैं ने प्रथमही चिन्ता करके तुम्हारा कार्य विचार रक्खा है ॥ २३ ॥ सो जनार्दनके निकट गमन करना चाहिये व्यासजी बोले इसप्रकार वे कहकर वेदकर्त्ता ब्रह्माजी पृथ्वी और देवताओंको आगे कर ॥ २४ ॥ अपने वाहन हंसपर चढ़ विष्णुके समीप गये और भक्तिभावसहित वेदवाक्यद्वारा उन देवदेव जनार्दनका स्तव करने लगे ॥ २५ ॥ ब्रह्माजी बोले आप सहस्रशीर्षा अर्थात् असंख्यमस्तक, आपही सहस्राक्षा अर्थात् असंख्यनेत्र, आपही सहस्र-पात् अर्थात् असंख्य चरण और आपही वेदपुरुष देवदेव तथा सनातन हैं ॥ ॥ २६ ॥ हे विभो ! जो अतीत हैं जो भविष्यत् और वर्त्तमान हैं वह सब आपही हैं हे रमापते ! आपनेही मुझको अमरत्व प्रदान किया है ॥ २७ ॥ आपही इस जगत्के करने वाले पालनेवाले और संहारकरनेवाले हैं आपही जगत्की एकमात्र गति और ईश्वर हैं, आपमें जो यह सब महिमा विद्यमान है सो त्रिभुवनमें कौन नहीं जानता ! ॥ २८ ॥ श्रीव्यासजी बोले हे महाराज ! ब्रह्माजीके इसप्रकार स्तवन करनेपर गरुडध्वज विष्णु प्रसन्न हुए और उन्होंने उन ब्रह्मादिदेवताओंके सामने प्रगट होकर उनको दर्शन दिया ॥ २९ ॥ इसके उपरान्त भगवान्ने उनका स्वागत करके उनके आनेका कारण सम्यक प्रकारसे पूँछा ॥ ३० ॥ तब ब्रह्माजीने उनको प्रणाम करके धरणीके समस्त दुःखका कारण स्मरण पूर्वक कहा हे प्रभो ! इस समय आपको पृथ्वीका भार हरण करना चाहिये ॥ ३१ ॥ हे दयानिधे ! द्वापर-युगका शेषभाग समागत होनेपर आप पृथ्वीतलमें अवतीर्ण हो, दुष्टराजाओंको मारकर पृथ्वीका भार हरण कीजिये ॥ ३२ ॥ विष्णुने कहा मैं इस विषयमें स्वाधीन नहीं हूं, केवल मैंही क्या ? ब्रह्मा, महादेव, इन्द्र, यम, विश्वकर्मा, सूर्य, और वरुण इत्यादि देवताओंमें भी कोई स्वाधीन नहीं है ॥ ३३ ॥ यह सब स्थावरजंगमात्मक जगत् योगमायाके वशीभूत रहता है और ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्त सभी उनके गुणसूत्रमें ग्रथित रहते हैं ॥ ३४ ॥ हे सुव्रत ! वही हितकारिणी इच्छामयी अपनी इच्छासे जो करनेकी अभिलाषा करें वही कर सकती हैं हम सबकोही उनके वशीभूत जानो ॥ ३५ ॥ तुम मनमें विचार करके देखो, यदि मैं स्वाधीन होता तो क्यों महार्णवमें वास करके मत्स्य और

कच्छप देह धारण करता ॥ ३६ ॥ हे ब्रह्मन्! तिर्यग्योनिमें संभोग, कीर्ति, सुख क्या है? क्षुद्रयोनिमें जन्म ग्रहण करके मुझको क्या पुण्य वा फलकी प्राप्ति है ॥ ३७ ॥ किस कारण मैं सूकर देह धारी होता? क्यों नृसिंहरूप और वामन देह धारण करता? किसकारण जमदग्निका पुत्र होकर जन्मग्रहण करता? ॥ ३८ ॥ भूतलमें क्यों नृशंस कर्म करके क्षत्रियोंके रुधिरसे कुंड पूर्ण करता ॥ ३९ ॥ विशेषकरके ऐसे महात्माका पुत्र और द्विजोत्तम होकर भी क्यों ऐसा नृशंस कार्य करता? मैंने निर्दयी होकर क्षत्रियोंका तथा विशेषकर उनकी गर्भस्थित संतानका संहार किया है, यदि मैं स्वाधीन होता तो क्यों ये सबका कठोर और बीभत्स कार्य करता ॥ ४० ॥ हे देवेन्द्र! देखो, मैंने रामावतारके समय दण्डकवनमें प्रवेश कर चीर, जटा और वल्कल धारण पूर्वक ॥ ४१ ॥ असहाय और पाथेयरहित होकर पयादेही भयंकर निर्जनवनमें निर्लज्जकी समान पशुहननादिरूप व्याधका कार्य करके निरंतर भ्रमण किया है ॥ ४२ ॥ मैं मायासे मोहित होकर सुवर्णके मृगका स्वरूप नहीं जान सका, इस कारण पर्णशालामें जानकीको छोड, वहांसे निकलकर उस मृगके पदका अनुसरण किया ॥ ४३ ॥ मेरे बहुत बार समझाने पर भी लक्ष्मणने प्रकृतिके गुणसे मोहित होकर जानकीको परित्याग कर मेरा अनुसरण किया था ॥ ४४ ॥ तब कपटमूर्ति राक्षसराज रावणने भिक्षुकका वेश धारणकर शोकसे क्षीण हुई जनक तनयाको बलपूर्वक हरण किया था ॥ ४५ ॥ मैं प्रियाके विरह जनित दुःखसे अत्यन्त कातर हो वनवनमें रुदन करता फिरा हूं और कार्यके वशीभूत हो वानरराज सुग्रीवसे मित्रता की थी ॥ ४६ ॥ मैंने अन्यायपूर्वक वानरराज वालीको मारकर उसको शापसे छुडाया है फिर वानरोंको सहाय करके लंकामें गया हूं॥ ४७॥ जिस समय अनुज लक्ष्मण और मैं दोनों जने नागपाशमें बँध और चेतनारहित होकर गिरगये, तिसकाल वानरगण अत्यन्त आश्चर्ययुक्त हुए थे ॥ ४८ ॥ फिर गरुड़ने आनकर हम दोनों भाइयोंको नागपाशसे छुड़ाया, तब मैं वह चिन्ता करने लगा कि, नहीं जानता दैवने हमारे अदृष्टमें किस अमंगलकी संयोजना की है ॥ ४९ ॥ मेरा राज्य हरण हुआ, वनमें वास हुआ, पिता परलोक गये, जानकी हरी गई, इस समय दारुणयुद्धमें अतिशय क्लेश होता है, नहीं जानता दैव मुझको और भी किस घोर कष्टमें निपतित करेगा? ॥ ५० ॥ हे देवताओ! इसकी अपेक्षा अधिक दुःखका दूसरा क्या विषय है कि, मैं प्रथमही राज्यहीन और वन-

गमनपूर्वक राजपुत्री सीताके सहित वनाश्रयी हूं ॥ ५१ ॥ वनगमनकालमें पिताने मुझको एक वराटिका भी नहीं दी, मैं धनहीन और असहाय होकर पैरोंही अयोध्यासे निकला था ॥ ५२ ॥ मैंने महावनमें जाय अन्य उपाय न देख क्षत्रियधर्म छोड़ा व्याधवृत्ति अवलम्बन कर चौदह वर्ष विताये थे ॥ ५३ ॥ इसके उपरान्त दैवके अनुग्रहसेही उस महाअसुर रावणको मारकर युद्धमें जयी हुआ और सीताको पुनर्वार अयोध्यामें लाया ॥ ५४ ॥ वहां कोशलनिवासी प्रजा शासनकर्त्ता होकर कितनेही वर्ष संसारका सुख अनुभव करके पूर्ण राज्यको प्राप्त हुआ ॥ ५५ ॥ पूर्वकालमें सीताहरणादि व्यापार संघटित हुआ था. इसके पीछेही राज्य प्राप्त हुआ. फिर मनुष्यगण सीताको निन्दित कहकर अपमान करने लगे तब मैंने अत्यन्त भीत होकर उसको वनवास करनेको त्याग दिया ॥ ५६ ॥ उस समय मुझको दूसरी बार पत्नीके विरहका कठिन दुःख भोगना पड़ा था. इसके उपरान्त धरात्मजा धरातलभेद करके पातालमें चली गईं ॥ ५७ ॥ हे देवताओ ! रामावतारमें मैंने भी जब पराधीन होकर निरंतर दुःख भोगा है. तब फिर दूसरा कौन पुरुष स्वाधीन है. सो कहो ॥ ५८ ॥ तदुपरान्त कालके वश हो भ्राताओंके सहित मैं स्वर्गको गया था. जो हो पराधीन पुरुषके पक्षमें कितनी दुर्घटना होती है. उसके कहनेमें बुद्धिमान् पण्डितगणही समर्थ होते हैं ॥ ५९ ॥ हे पद्मासन ! तुम मेरा वचन सुनो मैं निःसंदेह पराधीन हूं और केवल मैंही क्या इसीप्रकार तुम और रुद्र तथा संपूर्ण सुरोत्तमगणभी पराधीन हैं ॥ ६० ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषायां अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः १९.

व्यासजीने कहा हे महाराज! भगवान् विष्णु फिर प्रजापति ब्रह्माजीसे कहने लगे हे ब्रह्मन्! सभी उन भगवती महामायाकी मायासे मोहित होकर परमतत्वको नहीं जानसक्ते ॥ १ ॥ मैंभी माया द्वारा मोहित होनेसे शान्त परमपुरुष जगद्गुरु सच्चिदानन्दमय अव्यय परमात्माको किसीप्रकार नहीं जान सकता ॥ २ ॥ हे विधाता ! मैं ही विष्णु, मैंही ब्रह्मा, मैंही रुद्र इसप्रकारके गर्वमें मोहित रहकर मैं सनातन परमवस्तुको नहीं पहँचान सकता ॥ ३ ॥ जैसे काठकी पुतली

इन्द्रजालिकके वशमें रहकर उसकी इच्छानुसार नृत्य इत्यादि करती हैं. मैं भी इसीप्रकार परमात्माकी मायासे मोहित होकर पराधीनभावमें सदाही भ्रमण करता हूं ॥ ४ ॥ हे ब्रह्मन् ! कल्पादिमें मैं ने तुमने तथा महादेवजीने मंदारवृक्ष शोभित रासक्रीड़ाके स्थानस्वरूप मणिद्वीप तथा देवताओंके समाजमें परमात्माकी उस अनिवचनीय मूर्तिका दर्शन किया था ॥ ५॥ मैं ने फिर एकवार और भी सुधार्णवमें उस अद्भुतमूर्त्तिका दर्शन किया. किन्तु आश्चर्यका विषय यही है कि, जिस समय तक उसका दर्शन नहीं किया था. तबतक उसका विषय कुछ भी नहीं सुना ॥ ६ ॥ इससे हे देवताओ ! अब तुम लोग परमात्माकी आद्याशक्ति शिवरूपिणी शक्तिका स्मरण करो. वही तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करेंगी ॥ ७ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! भगवान् हरिके इस प्रकार कहनेपर ब्रह्मादिदेवताओंने उन सनातनी योगमाया भुवनेश्वरी देवीको मनहीमनमें स्मरण किया ॥ ८ ॥ स्मरण करतेही रक्त-जपा (गुड हरफूल) की समान अरुणवर्णा देवीभुवनेश्वरी पाश अंकुश वर और अभय धारण किये प्रत्यक्षरूपसे प्रगट हुई तब देवतालोग देवीका दर्शन करके उनका स्तव करने लगे ॥ ९ ॥ जिसप्रकार ऊर्णनाभसे तन्तु और विभावसुअग्निसे विस्फुलिंग (चिनगारे) निकलते हैं, इसीप्रकार जिनसे यह संपूर्ण जगत् निकला है हम भक्तिनम्रहृदयसे उनको प्रणाम करते हैं ॥ १० ॥ जिनकी मायाशक्तिके प्रभावसे यह चराचर जगन्मण्डल विरचित हुआहै उन्हीं चित्स्वरूप करुणार्णवरूपिणी भुवनेश्वरी देवीको हम नमस्कार करतेहैं ॥ ११ ॥ जिनके स्वरूपका तत्व न जाननेसे ही यह जगत् प्रतिभात होता है और जिनके स्वरूपका तत्व जाननेसेही यह संपूर्ण जगत् मिथ्याभ्रमसे नष्ट होता है उन्हीं सम्वित्स्वरूपिणी देवीको हम स्मरण करतेहैं वहभी हमको इस स्मरण और ध्यानमें नियोग करें ॥ १२॥ हम उन्हीं महालक्ष्मीको जानने की वासना करते हैं और उन्हीं शक्तिस्वरूपिणीका ध्यान करते हैं वह देवी कृपा करके हमको अपने ध्यानादिविषयमें प्रेरण करें ॥ १३ ॥ हे संपूर्ण दुःखविनाशिनी जननी ! हम आपको नमस्कार करते हैं आप प्रसन्न हूजिये । हे करुणामयी ! आप यह कार्य संपादन करके हमारा कल्याण कीजिये. हे विश्वेश्वरि ! आप असुरोंको मार पृथ्वीका भार हरणकर हमारा मंगल कीजिये ॥ १४ ॥ हे कमललोचने ! आप यदि देवताओंपर दयाप्रकाश न करेंगी तो वह रणस्थलमें अस्त्रशस्त्रोंसे शत्रुओंको प्रहार करनेमें कभी समर्थ नहीं होंगे. हे देवि ! आपने

यक्षरूप धारण पूर्वक "हे हुताशन! तुम यह तृण भस्म करो" इत्यादि वचनसे उसको भलीभाँति प्रकाशित किया है ॥ १५ ॥ हे मातः! कंस, भौम, कालयवन, केशी, बृहद्रथतनय जरासंध, बक, पूतना, खर और शाल्व इत्यादि तथा अन्यान्य अनेक पापिष्ठ राजालोग पृथ्वीतलमें वास करते हैं आप उनको मारकर पृथ्वीका भार हरण कीजिये॥ १६॥ हे कमललोचने मातः! जो असुरगण इन्द्र विष्णु और महादेवजीके हाथसे नहीं मरे, आपने उनको लीलापूर्वकही मारा है और उन्होंने तिस कालमें आपका सुख कर आनन अवलोकन करते करते जीवनलीला संवरण परिपूर्ण करी है ॥ १७ ॥ हे चन्द्रशेखरे देवि! हरिहर ब्रह्मादि देवतागण शक्तिके विना पदमात्र चलनेमेंभी समर्थ नहीं हैं हे देवि! अधिक बात क्या है! धारण शक्ति न होनेसे नागराज अनन्त कभी क्षणमात्र पृथ्वीधारण करनेमें समर्थ नहीं होते ॥ १८ ॥ इन्द्रने कहा हे भगवति! सरस्वतीके विना ब्रह्मा क्या विश्व रचनेमें कभी समर्थ होते! रमाके विना क्या देवदेव विष्णु विश्वका पालन करसक्ते थे! उमाके विना क्या महादेव विश्वका संहार करनेमें समर्थ होते! कभी नहीं ये महाप्रभु तीनों देवता अपने अंशरूप सरस्वती इत्यादि शक्तिसे युक्त होकरही विश्वका कार्य चलानेमें समर्थ होते हैं ॥ १९ ॥ विष्णुने कहा हे विमले! आपकी शक्तिसे रहित होकर ब्रह्मा जगत्के उत्पन्न करनेमें समर्थ नहीं होते और मैंभी जगत्का पालन करनेमें कभी समर्थ नहीं होता तथा महेश्वरभी विश्वका संहार करनेमें समर्थ नहीं होते. अतएव हे देवि! आपही विश्व वैभवकी ईश्वरी होकर विश्वमें विराजित रहती हैं ॥ २० ॥ व्यासजी बोले हे राजन्! देवताओंके इस प्रकार भुवनेश्वरीकी स्तुति करनेपर देवीने उनसे कहा हे सुरोत्तमगण! तुमलोग निश्चिन्त होओ तुम्हारा क्या कार्य है? कहो ॥ २१ ॥ क्योंकि इसलोकमें अत्यन्त असाध्य होनेपरभी जो देवताओंका अभिलषित कार्य होगा वह निःसंदेह करूंगी, अब अपने और पृथ्वीके दुःखका कारण कहो ॥ २२ ॥ देवताओंने कहा कि, दुष्ट राजाओंने इस पृथ्वीको अत्यन्त पीडित किया है, अब पृथ्वी उनकी भारवहन नहीं कर सक्ती, इसीसे रोदन पूर्वक काँपती काँपती देवताओंके समीप आई है ॥ २३ ॥ हे भुवनेश्वरि! इस समय आपको इस पृथ्वीका भार हरण करना चाहिये हे शिवे! इस समय इसी कार्यको देवताओंका अभीष्ट जानिये ॥ २४ ॥ हे मातः! आपने पूर्वकालमें महिषरूपी अत्यन्त बलवान् दानवको करोड करोड सहायकके सहित मारा

है ॥ २५ ॥ अधिक क्या शुम्भ, निशुम्भ, रक्तबीज, महाबलवान् चण्ड, मुण्ड, धूम्रलोचन, दुर्मुख, दुःसह, अतिवीर्यवान् कराल और अन्यान्य अनेक क्रूर दानवोंको संहार किया है ॥ २६ ॥ अबभी उसी प्रकार देवताओंके वैरी राजाओंको मारकर उनके भारी बोझसे पृथ्वीकी रक्षा कीजिये. व्यासजी बोले देवताओंके देवीसे इसप्रकार कहनेपर कल्याण रूपिणी ॥ २७ ॥ असितापाङ्गी देवी अम्बिकाने हँसकर मेघकी समान गंभीरस्वरसे कहा देवी बोली हे देवताओ! मैंने विचारलिया है जिससे अंशावतार ॥ २८ ॥ और दुष्टराजाओंका भार हरण होगा, वह मैंने पहिलेही विचार लिया है मैं इन सब अधर्मी राजाओंको मारूंगी ॥ २९ ॥ ३० ॥ मगधराज जरासंध इत्यादि महैश्वर्यशाली जो असुरांशसंभूत राजा प्रदीप्त हुए हैं मैं उन सबकोही अपनी शक्तिके द्वारा हीन बल करके मारूंगी हे देवताओ! तुमलोग भी अपने अपने अंशसे ॥ ३१ ॥ पृथ्वीमें मेरी शक्तिसहित अवतीर्ण होकर भारहरण करोगे देव प्रजापति महर्षि कश्यपने प्रथमही भार्याके सहित ॥ ३२ ॥ यदुकुलमें आनकदुन्दुभी वसुदेव होकर जन्म ग्रहण किया है ॥ अव्ययात्मा भगवान् विष्णुभी भृगुशापके कारण ॥ ३३ ॥ वसुदेवके पुत्र होकर अंशसे अवतीर्ण होंगे हे देवताओ! उसी समय मैंभी गोकुलमें यशोदाके जठरसे जन्मग्रहण कर ॥ ३४ ॥ देवताओंके संपूर्ण कार्यसंपादन करूंगी कारागारसे विष्णुको गोकुलमें ॥ ३५ ॥ और देवकीके गर्भसे अनन्तदेवको रोहिणीके गर्भमें प्रेरण करूंगी वे दोनों मेरी शक्तिसे वर्द्धित होकर द्वापरके अंतमें दुष्ट राजाओंको संहार करेंगे इसमें संदेह नहीं ॥ ३६ ॥ द्वापरके अन्तमें अवश्य दुष्टराजाओंका क्षय होगा इन्द्रके अंशसे उत्पन्न अर्जुनभी उन दुर्वृत्त राजाओंके बलका क्षय करेगा ॥ ३७ ॥ तिसकाल धर्मके अंशसे महाराज युधिष्ठिर, वायुके अंशसे भीमसेन, दोनों अश्विनी कुमारके अंशसे नकुल और सहदेव ॥ ३८ ॥ तथा वसुके अंशसे गंगापुत्र भीष्मदेव जन्मग्रहण करके उनके बलको नष्ट करेंगे हे देवताओ! इस समय तुम स्थिर चित्त होकर जाओ ॥ ३९ ॥ पृथ्वीभी स्थिर होवे तुम निश्चय जानो कि, मैं अवश्यही पृथ्वीका भार हरण करूंगी ॥ ४० ॥ मैं उनको निमित्तमात्र करके अपनी शक्तिके द्वारा निस्संदेह कुरुक्षेत्रमें क्षत्रियगणोंको संहार करूंगी ॥ ४१ ॥ असूया (निन्दा) ईर्षा दुर्मति तृष्णा ममता अभिमान स्पृहा जयेच्छा मदन और मोह इन सब दोषोंसे यादवगण नाशको प्राप्त होंगे. ब्राह्मणोंके शापसेही यदुकुलध्वंस होगा ॥ ४२ ॥ भगवान्भी शापके वशीभूत हो कलेवर परित्याग करेंगे

अब तुमभी अपने अंशसे अवतीर्ण होकर भगवान्‌की सहायताको ॥ ४३ ॥ स्त्रियोंके सहित गोकुल और मथुरामें जन्म ग्रहण करो. व्यासजी बोले यह सब बातें कहकर परमात्माकी माया स्वरूपिणी भुवनेश्वरी देवी अन्तर्धान होगई ॥ ४४ ॥ देवतालोग और पृथ्वी अपने अपने स्थानको चलेगये । हे राजन् जन्मेजय ! तिसकाल पृथ्वीदेवी देवीके वचनसे संतुष्ट और स्थिर होकर ॥ ४५ ॥ भाँति भाँतिको औषधि और वीरुध गुल्मवृक्षद्वारा पवित्र होकर अवस्थिति करने लगी उस काल प्रजालोग जिसप्रकार सुखी हुए ब्राह्मणोंके जिसप्रकार सुख समृद्धिकी वृद्धि हुई ॥ ४६ ॥ मुनिगणभी तदनुरूप संतुष्ट होकर धर्मकर्ममें तत्परहुए ॥ ४७॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषायां एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९॥

विंशोऽध्यायः २०.

व्यासजीने कहा हे भरतकुलभूषण ! मैं तुम्हारे निकट पृथ्वीका भार उतारना कुरुक्षेत्र और प्रभास तीर्थमें सैन्यगणोंका संहार ॥ १ ॥ एवं भृगुशापसे अमिततेजा भगवान् हरिने महामायाके प्रभावसे जिसप्रकार यदुकुलमें जन्म ग्रहण किया वह समस्तही कहता हूं श्रवण करो ॥ २ ॥ हे राजन् ! भगवान् विष्णुने जो पृथ्वीतलमें जन्मग्रहण किया मेरे विचारमें वह मायाकृत योगके सिवाय और कुछ नहीं है. मायाहीने पृथ्वीका भार उतारनेको इसप्रकार किया था. यही मेरा स्थिर सिद्धान्त है ॥ ३ ॥ हे नृपते ! जो त्रिगुणा माया देवी ब्रह्मा विष्णु इत्यादि देवगणोंको भी नचाती रहती हैं. वह जो अन्यको मोहित करे तो फिर इस विषयमें आश्चर्यही क्या है ? ॥ ४ ॥ हे राजन् ! उस महामायाकी लीला तो प्रसिद्धही है. अधिक क्या उसने विष्णुकोभी भलीभाँतिसे विष्ठा मूत्र और स्नायु परिपूरित गर्भमें वास कराकर दुःख दिया था ॥ ५ ॥ पूर्वकालके समय रामअवतारमें उसने देवगणोंकोभी वानर किया था. हे राजन् ! मैं मेरा इसप्रकार मायापाशमें बँधकर भगवान् विष्णुने जो कि दुःख भोगा था. वह तो तुम भलीभाँति जानते हो ॥ ६ ॥ इसीसे अहं ममताके पाशमें बँधताहै मुक्तसङ्ग मुमुक्षु योगीगण मुक्तिलाभकी आशासे ॥ ७ ॥ उसी विश्वरूपिणी विश्वेश्वरी देवीकी उपासना करते हैं. हे राजन् ! जिसकी भक्तिलेशका करणामात्र प्राप्त करके ॥ ८ ॥ जीवगणोंको मुक्ति प्राप्त होती हैं. कौन प्राणी उसकी सेवा नहीं करता है मनुष्योंमें यदि कोई “ भुवनेश्वरी ” यह नाम उच्चारण करे तो

वह उसको त्रिभुवनप्रदान करती है ॥ ९ ॥ और कोई यदि " मेरी रक्षा करो " यह वचन कहता है तो विश्वेश्वरी विश्वब्रह्माण्डमें देनेयोग्य वस्तु न देखकर उसके निकट ऋणी होती हैं. इसमें सन्देह नहीं है. हे पार्थिव ! उसके विद्या और अविद्या यह दो प्रकारके रूप जानने चाहिये ॥ १० ॥ जीवगण इस विद्यासे मुक्ति और अविद्यासे बन्धनको प्राप्त होते हैं ब्रह्मा विष्णु रुद्र ॥ ११ ॥ और उनके अवतार-गण रस्सीमें बँधे हुएकी समान उसके अधीनमें अवस्थित रहते हैं. भगवान् हरि कभी वैकुण्ठमें कभी क्षीरसमुद्रमें अवस्थान करके सुख भोगते हैं ॥ १२ ॥ कभी बलवान् दानवगणोंके सहित युद्ध, किसी समय बहुत विस्तृत यज्ञका अनुष्ठान ॥ १३ ॥ कभी तीव्रतर तपस्याका आचरण करते हैं और कभी योगमायाके आश्रयमें शयन करते हैं ॥ १४ ॥ अतएव भगवान् मधुसूदन किसी समय स्वाधीनतालाभ करनेमें समर्थ नहीं होते. हे राजन् ! विष्णुकी समान ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, वरुण, यम ॥ १५ ॥ कुबेर, अग्नि, सूर्य्य, चन्द्र और अन्यान्य देवताश्रेष्ठगण, सनकादि मुनिगण, एवं वसिष्ठादि ऋषिगण ॥ १६ ॥ सबही नाचनेवाली पुतलीके समान सदाही उस भुवनेश्वरीके वशीभूत होते हैं नथा हुआ बलवान् बैल जिसप्रकार मनुष्यके वशी-भूत होकर विचरण करता है ॥ १७ ॥ इसीप्रकार सम्पूर्ण देवतागण कालपाशमें नियन्त्रित हो रहे हैं. हे राजेन्द्र ! हर्ष, शोक, निद्रा, तन्द्रा और आलस्यादि समस्त भाव ॥ १८ ॥ सर्वदाही देहीमात्रके देह, ग्रहका आश्रय करके रहते हैं ग्रन्थकारगणोंने देवतागणोंको अमर अर्थात् मरण धर्म्मरहित और निर्ज्जर अर्थात् जरा धर्म्मविहीन कहा है ॥ १९ ॥ किन्तु वह नाममात्रही प्रकाश पाते हैं. वास्तवमें अर्थगत वह कभी नहीं होसक्ते क्योंकि जिनका उत्पत्ति स्थिति और विनाशधर्म सदाही रहता है ॥ २० ॥ उनको किसप्रकार अमर और निर्ज्जर कहा जासक्ता है दुःखयुक्त विबुध कैसे होते हैं ॥ २१ ॥ क्योंकि विपद् उपस्थित होनेपरभी किस प्रकार क्रीडा होसक्ती है देखनेमें आता है कि,इस संसारमें कमलकीट और मशकगण उत्पन्न होकर क्षणमेंही नष्ट होते हैं. इसप्रकार देवतागणोंकोभी आयुके शेषमें मरण धर्म प्राप्त होता है. तो देवतागण इन सम्पूर्ण मरणधर्म्मशील जीवगणके उपमास्थल क्यों न हों ? क्यों उनका " मर " यह नाम न हो ॥ २२ ॥ २३ ॥ जन्मादि विकारवान् होनेसे मनुष्योंमें कोई एक वर्ष कोई सौवर्ष कालकी आयुलाभ करते हैं. और फिर देवतागण मनुष्यसे; प्रजापति ब्रह्मा देवतागणोंसे ॥ २४ ॥ रुद्रदेव ब्रह्मासे,

और विष्णु रुद्रसे अधिकतर आयुको प्राप्त होते हैं. इसप्रकार क्रमक्रमसे समस्तही नष्ट और बराबर बढ़ते हैं ॥ २५ ॥ जो देहधारण करता है निश्चयही उसका विनाश होता है हे राजन् ! इसप्रकार इस संसारमें सम्पूर्ण जीवही चक्रकी समान सदा भ्रमण करते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ २६ ॥ जीवगण मोहजालमें आच्छन्न हैं. वह कभी मुक्तिलाभ नहीं करसक्ते जबतक माया विद्यमान रहती है तबतक मोहजाल दूर नहीं होता ॥ २७ ॥ हे नृप ! सृष्टि कालमें ब्रह्मादि समस्त वस्तुओंकी यथाक्रमसे उत्पत्ति और प्रलयकालमें नाश होता है ॥ २८ ॥ इससे जिसके नाशविषयमें जो कारण होता है वह उसको विनाश करता है भगवतीकी इच्छासे विधाता जो रचना करते हैं वह फिर अन्यथा नहीं होती ॥ २९ ॥ इस संसारमें यही स्थिर सिद्धान्त जानना चाहिये विधाताके नियत अनुसार सम्पूर्ण जीवगणोंका जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि दुःख अथवा सुख यह समस्त व्यापारही सम्पादित होता है कभी इसके अन्यथा नहीं होता ॥ ३० ॥ देखो प्रत्यक्ष देवता चन्द्र और सूर्य सबकोही सुखप्रदान करते हैं किन्तु इनकी वैरिकृत पीड़ा कभी नष्ट नहीं होती ॥ ३१ ॥ सूर्यके पुत्र सदाही अपकारी होनेसे उनका "मन्द" नाम हुआ है, चन्द्रमा राजयक्ष्मा रोगसे ग्रस्त और कलङ्की है. हे राजन् ! सामान्य व्यक्तिके सम्बन्धमें और क्या कहूं ? महद् व्यक्तिगणोंके प्रति भी विधिनियतका इसप्रकार प्रभाव दिखाई देता है ॥ ३२ ॥ जगत्को उत्पन्न करनेवाले ब्रह्मा वेदकर्त्ता और बुद्धिप्रद हैं वेभी अपनी कन्या सरस्वतीको देखकर कामातुर हुए थे ॥ ३३ ॥ शिवकी भार्या सतीके प्राणत्याग करनेपर महादेव सम्पूर्ण दुःखनाशन होनेपर भी अत्यन्त कामार्त्त हो अतिदुःखसे सन्तप्त हुए थे ॥ ३४ ॥ उस समय वह कामाग्निसे दग्ध देह हो कालिन्दीके जलमें पतित हुए उनके सन्तापसे तापिता ही यह नदी भी श्यामवर्ण होगई ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! महादेव जिस समय कामार्त्त और नग्न हो भृगुके वनमें जा रमणकर रहे थे । उस समय तपोधन भृगुने उनको इस अवस्थामें देखकर तुम अत्यन्त निर्लज्ज हो ॥ ३६ ॥ अतएव "इस समय तुम्हारा लिङ्ग पतित हो" यह कहकर उनके प्रति दारुण शाप दिया तब महादेवजीने आनन्द भोगके लिये दानवगणोंका बनाया हुआ अमृतदीर्घिका जल पान किया ॥ ३७ ॥ देवराज इन्द्रभी पृथिवीतलमें बैल होकर ककुत्स्थ राजा के वाहन हुए थे अधिक क्या सम्पूर्ण लोकके आदिभूत विवेकी भगवान् विष्णुकी ॥ ३८ ॥ सर्वज्ञता और प्रभु शक्तिही कहां गई थी ! क्या

आश्चर्य्यका विषय है कि, वह स्वर्णके मृगके विषयमें कुछ भी नहीं जानसके॥ ३९॥ हे राजेन्द्र! आप योगमायाका बल अवलोकन कीजिये रामचन्द्रजीने कामसे मोहित और सीताके विरहानलमें सन्तप्त एवं अत्यन्त कातर हो अतिरोदन किया था ॥ ४० ॥ उन्होंने अत्यन्त मोहित हो उच्चस्वरसे रोदन करते करते वृक्षगणोंसे पूँछा था जनकात्मजा सीता कहाँ गई है ? क्या उनको हिंस्र जन्तुगण भक्षण करगये? अथवा कोई दुर्वृत्त उनको हरण कर लेगया ? ॥ ४१ ॥ हे भ्रातृ लक्ष्मण ! मैं प्रियाके विरहानलमें दग्ध हो इस समय प्राणत्याग करूंगा हाय ! फिर तुमभी मेरी विरहवह्निमें जीवन विसर्ज्जन करोगे ॥ ४२ ॥ मेरा मृत्यु सम्वाद सुनकर माता भी जीवन विसर्ज्जन करेगी शत्रुघ्नभी अत्यन्त दुःखसे कातर हो जीवन धारण करनेमें समर्थ नहीं होंगे ॥ ४३ ॥ सुमित्रा माता भी पुत्रमरणकी शोकानलमें प्राणत्याग करेगी तब भरतके सहित कैकयीका मनोरथ निःसन्देह पूर्ण होगा ॥ ४४ ॥ हा सीते ! मैं कामबाणसे पीड़ित होता हूं तुम मुझको त्यागकर कहां चलीं गई. हे मृगलोचने ! हे कृशोदरि ! तुम आओ और शीघ्र मुझको प्राणदान दो ॥ ४५ ॥ मैं क्या करूं ? कहां जाऊं ? मेरा जीवन तुम्हारे ही आधीन है हे जनकनन्दिनि ! मैं तुम्हारा प्रियहूं इस समय तुम्हारे विरहमें अत्यन्त दीन हुआ हूं तुम आकर मुझको समझाओ ॥ ४६ ॥ अलौकिक प्रभावसम्पन्न श्रीरामचन्द्रजीने इसप्रकार विलाप करते करते वनवनमें भ्रमण किया था किन्तु जनकतनयाको नहीं देखसके ॥ ४७॥ क्या आश्चर्य्य है ! कि कमललोचन श्रीरामचन्द्र सम्पूर्णलोकोंकी शरण देनेवाले थे उन्होंने मायामें मोहित होकर वानरगणोंका आश्रय ग्रहण किया था ॥ ४८ ॥ और उनकी सहायतासे समुद्रमें पुल बाँध महोदर वीरवर कुम्भकर्ण और रावणका विनाश किया था ॥ ४९ ॥ तदनन्तर सीताको अपने समीप लाय स्वयं सर्वज्ञ होकर भी दुरात्मा रावणने सीताका हरण किया है यह जानकर उसको दिव्य कराया था ॥ ५० ॥ हे महाराज ! योगमायाका बल अत्यन्त महत् है उसके प्रभावकी बात क्या कहूं यह समस्त विश्वमण्डल उसके द्वारा चलायमान हो निरन्तर भ्रमण करता है ॥ ५१ ॥ इसप्रकार अनेक अवतारमें भगवान् विष्णु शापके वशीभूत और दैवके आधीन हो सदाही अनेकप्रकारके कार्य्य करते हैं॥ ५२॥ हे राजन् ! मैं इस समय देवतागणोंका कार्यसाधनेकेलिये श्रीकृष्णकी मनुष्यलोकमें उत्पत्ति और उनके चरित्रकी कथा वर्णन करता हूं सुनो ॥ ५३ ॥

पूर्वकालके समय कालिन्दीके मनोहर तटपर मधुवननामक एक स्थान था मधुका पुत्र लवण नामक एक महाबलवान् दानव उस स्थानमें वास करता था ॥ ५४ ॥ वह पापाशय वरलाभसे गर्वित हो ब्राह्मणगणोंको अत्यन्त दुःख देता. इसके उपरान्त लक्ष्मणके भ्राता शत्रुघ्नने उस कठिनता मारने योग्य दैत्यको संग्राममें दलित कर उसी स्थानमें मथुरानामक परम मनोहर एक पुरी बनाई ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ शत्रु-विनाशन मतिमान् शत्रुघ्नने अपने (पुष्कराक्षो) कमललोचन दोनों पुत्रोंको उस राज्यमें अभिषिक्त करके मरनेका समय उपस्थित होनेपर स्वर्गमें गमन किया ॥ ५७ ॥ फिर सूर्यवंशकी क्षीणदशा हुई ययाति कुलमें उत्पन्न हुए यादवगणोंने उस मुक्ति-देनेवाली मथुरापुरीपर अधिकार किया ॥ ५८ ॥ हे राजेन्द्र ! शूरसेन नामक शूरवर एक यादवनृपति उस स्थानमें राजा हो मथुराके ऐश्वर्यका भोग करता रहा ॥ ५९ ॥ वहां वरुणके शाप और कश्यपके अंशसे वसुदेवनामक विख्यात शूरसेनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ६० ॥ वह वैश्यवृत्ति अर्थात् खेतीकार्य्यादिमें तत्पर हुआ फिर उसके पिताकी मृत्यु होनेपर श्रीमान् उग्रसेनने मथुराका आधिपत्य लाभ किया कुछ काल व्यतीत होनेपर कंसनामक उसके एक अत्यन्त तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ६१ ॥ इधर देवक राजाके अदितिके अंशसे देवकी नामक एक कन्याने वरुणके शापसे जन्म ग्रहण किया कश्यपकी अनुगामिनी ॥ ६२ ॥ महात्मा देवक राजाने अपनी कन्याके संग वसुदेवका विवाह किया यह विवाह कार्य्य होचुकनेपर ॥ ६३ ॥ कंसके प्रति यह आकाशवाणी हुई कि, हे महाभाग कंस! इस देवकीके गर्भसे आठवीं सन्तान तेरे मारनेवाली होगी ॥ ६४ ॥ महाबल कंस उस आकाशवाणीको सुन आश्चर्ययुक्त हो और उसको सत्य जानकर अत्यन्त चिन्ता में मग्न हुआ ॥ ६५ ॥ तिस समय कंस क्या करूं ! इसप्रकार चिन्ता करके मनमें विचारने लगा एकबार यह विचार किया कि, अब शीघ्र इसको मारडालूं तो फिर मैं न मरूंगा ॥ ६६ ॥ क्योंकि इस मृत्युजनक कार्य्यका अन्य कोई उपाय नहीं दीखता फिर विचारा कि, यह मेरे पिताके स्थानापन्नदेवककी कन्या अतएव मेरीभगिनी है तथा पूजनीयहै इसको किसप्रकार मारूं? ॥ ६७ ॥ अन्तमें यह निश्चयकिया कि यह मेरी पूजनीय भगिनी होनेपरभी मेरी मृत्युरूपिणी हुई है अतएव इसके मारनेसे मुझको पाप स्पर्श नहीं करसक्ता क्योंकि पंडितगण कहते हैं कि, पापकार्यद्वाराभी अपना देहकी रक्षा करनी चाहिये ॥ ६८ ॥ प्रायश्चित्तसे सर्वदाही पापकी शुद्धि होती है

अतएव पापकार्य्य करकेभी अपने शरीरकी रक्षा करनी चाहिये॥ ६९ ॥ पापाशय कंसने मनमें इसप्रकार चिन्ता करके शीघ्र खड्गधारणपूर्वक उसके केशग्रहण किये ॥ ७० ॥ और वरारोहा देवकीके विनाशकी इच्छासे मियानसे खड्ग खींचकर सबके सामने उस नवविवाहिता कामिनीका आकर्षण करनेलगा ॥ ७१ ॥ कंसको देवकीके मारनेमें उद्यत देखकर सभी महाकोलाहल करनेलगे तब वसुदेवके वशमें रहनेवाले वीरोंने शरासन संयोजित किया ॥ ७२ ॥ वह अद्भुत साहसशाली वीरगण देवकीको छोड़नेके लिये वारंवार कंससे कहनेलगे फिर उन्होंने दया करके देवमाता देवकीको दुरात्मा कंसके हाथसे छुड़ालिया ॥ ७३ ॥ तब महाबलवान् कंससे उन वसुदेवके सहायक वीरोंका घोर युद्ध हुआ ॥ ७४ ॥ फिर दारुण लोमहर्षण युद्ध होता देख बूढे यादवोंने कंसको निवारण करके कहा ॥ ७५ ॥ यह देवकी तुम्हारी बहन है. इसका तुमको सन्मान करना उचित है. किन्तु तुम जो इसको मारोगे. यह बात इस बालिकाने विचारी भी नहीं है. अतएव हे वीर ! इस विवाहके उत्सवकालमें इसका वध करना तुम्हारा कर्त्तव्य नहीं है ॥ ७६ ॥ हे योद्धाओंमें श्रेष्ठ ! स्त्रीकी हत्यासे यशका नाश और घोरतर पाप होता है, एवं वह मनुष्यके पक्षमें अत्यन्त असहनीय है और ज्ञानी पुरुषका सामान्य आकाशवाणीके ऊपर विश्वास करके स्त्रीहत्या करना कभी उचित नहीं है ॥ ७७ ॥ ज्ञात होता है तुम्हारे अथवा वसुदेवके किसी शत्रुने छिपकर यह अनर्थकर वचन कहा है. ऐसा न होनेसे कोईभी कारण संभव नहीं होसक्ता ॥ ७८ ॥ हमको बोध होता है. तुम्हारे यशका नाश और वसुदेवके गृहका नाश करनेकोही इन्द्रजालिक मायाविद्याविशारद किसी शत्रुने यह आकाशवाणी रची है ॥ ७९ ॥ हे नृप ! तुम वीरवर होकरभी भूत वाक्यसे भय करते हो ! हमको निश्चय बोध होता है, तुम्हारे यशरूपी वृक्षकी जड़ उखाड़नेके लिये ही शत्रुओंने इस प्रकार उपाय किया है. इसमें संदेह नहीं ॥ ८० ॥ हे महाराज ! भवितव्यके अन्यथा कभी नहीं होता. इस कारण विवाहकालमें इस पूजनीय बहनका वध करना उचित नहीं है ॥ ८१ ॥ हे राजन् जन्मेजय ! वृद्धयादवोंके समझानेपर भी जब कंसराज निवृत्त नहीं हुआ. तब नीतिशास्त्रके जाननेवाले वसुदेवने उससे कहा ॥ ८२ ॥ हे कंस यह त्रिभुवन सत्यमेंही प्रतिष्ठित है. मैं सत्य कहता हूं कि, देवकीके गर्भसे मेरे जितनी संतान उत्पन्न होगी. उत्पन्न होतेही वह सब मैं आपको

समर्पण करूंगा ॥ ८३ ॥ जो सब पुत्र उत्पन्न होंगे. वे उत्पन्न होतेही यदि सब तुमको न दूं. तो मेरे पूर्वपुरुषगण कुंभीपाकनरकमें गिरें ॥ ८४ ॥ सामने खड़े पुरुवंशी लोगोंने वसुदेवका इसप्रकार सत्य वचन सुन वारंवार साधुवाद देकर कंससे कहा ॥ ८५ ॥ वसुदेव महाशय पुरुष हैं. यह किसी समय भी मिथ्यावचन नहीं कहते अतएव हे महाभाग ! अब देवकीके केशकलाप छोडकर हत्याके पापसे मुक्त होओ ॥ ८६ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! जब महात्मा बूढ़े यादवोंने कंसको इसप्रकार समझाया. तब वह वसुदेवके सत्य वाक्यका अनुमोदन कर क्रोधपरित्याग पूर्वक खड़ा रहा. तिसकाल दुन्दुभीकी ध्वनि और वादित्रस्वरसे वह स्थान पूर्ण होगया ॥ ८७ ॥ "और सबका" धन्य धन्य जयशब्द उच्चारित होने लगा " तब शूरसेनके पुत्र महायशा वसुदेवने इसप्रकार कंसराजको प्रसन्न करके देवकीको छुड़ाया और फिर स्वजनगणोंसे परिवृत्त हो नवोढ़ा (नई व्याही) वधूके सहित निर्भय अपने घरकी ओर शीघ्र प्रस्थान किया ॥ ८८ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः २१.

व्यासजी बोले हे राजन् ! अनन्तर देवरूपिणी देवकीने वसुदेवके संग यथानियमसे मिलित हो गर्भधारण किया ॥ १ ॥ फिर दशमास पूर्ण होनेपर देवकीका स्वरूप शोभनाकृति प्रथमपुत्र उत्पन्न हुआ ॥ २ ॥ उस समय महाभाग वसुदेव कंसके निकट प्रतिज्ञाके सत्यवाक्य और भवितव्यता स्मरण करके अदितिके अंशोत्पन्न देवकीसे कहने लगे ॥ ३ ॥ हे सुंदरी ! मैंने तुम्हारे विवाहकालमें कंससे " देवकीके गर्भसे जो संतान जन्मग्रहण करेगी, उत्पन्न होतेही तुमको दूंगा " यह कह शपथ कर तुम्हारी उसके हाथसे रक्षा करी है. सो तुम जानती ही हो. अब कंसके हाथमें पुत्रको समर्पण करनेका वही समय उपस्थित है ॥ ४ ॥ हे सुकेशी ! इस समय इस पुत्रको तुम्हारे पितृव्यपुत्रअर्थात् भ्राता कंसके हाथमें समर्पण करूंगा हे देवि ! देखो अत्यन्त खल कंस और दैवके विषयमें पुत्रके नाशार्थ क्या उपाय करोगी ? यह मैं कहनहीं सक्ता. हे महाभागे ! इसविषयमें तुम्हारी वा मेरी क्या सामर्थ्य है । कर्मका परिणाम अतिशय विचित्र है साधारण मनुष्य उसको नहीं जानसक्ते ॥ ५ ॥

सम्पूर्णही जीव कालपाशके वशीभूत हो अपने किये अच्छे बुरे कर्मका फल भोगते हैं ॥ ६ ॥ जीवगणोंका प्रारब्ध अर्थात् कर्माधीन फल भोग विधि निर्मित जानकर इस विषयका अनुमोदन करो। देवकी बोली हे स्वामिन्! मनुष्योंको अवश्यही पूर्वकृत कर्मोंका फल भोगना होता है॥ ७॥ किन्तु वह क्या तीर्थवास, तपस्या, अथवा दानसे वह पाप ध्वंस नहीं होता, महात्मा महर्षिगणोंने धर्मशास्त्रमें पूर्वार्जित पाप विनाशके निमित्त प्रायश्चित्तकी विधि कही है ॥ ८ ॥ ब्रह्मघाती, सुवर्ण चुरानेवाले, मदिरा पीनेवाले और गुरुकी स्त्रीका हरण करनेवाले इत्यादि पातकी ॥ ९ ॥ द्वादश वार्षिक व्रतका अनुष्ठान करनेसे शुद्ध होते हैं, मनु इत्यादि मुनियोंने जिस प्रकारसे प्रायश्चित्त विधान किया है ॥ १० ॥ यदि मनुष्यगण उसीके अनुसार क्रियाका अनुष्ठान करें तो क्या पापसे मुक्त न हों? यदि प्रायश्चित्त को शुद्धिका कारण स्वीकार न किया जाय तो क्या धर्मशास्त्रके प्रवर्त्तक याज्ञवल्क्यादि तत्त्वदर्शी महर्षिगणोंके वचनको मिथ्या और गर्हित कहैं। हे प्रभो! जो भवितव्य अर्थात् होनहार है वह अवश्यही होगा ॥ ११ ॥ १२ ॥ यह यदि निश्चित ही है, तौ सम्पूर्ण आयुर्वेद और मंत्रवाद मिथ्या हुआ जाता है, यदि सम्पूर्ण कार्यही दैव संघटित हों तो किसी उद्यमसे कोईभी फललाभ नहीं होता, अतएव उन सबको ही वृथा मानना होगा ॥ १३ ॥ और जो भवितव्य है वही होगा. यदि यह बात स्वीकार कीजाय तो कर्ममें प्रवृत्ति और अग्निष्टोमादि स्वर्गसाधक सब यज्ञ निरर्थक हुए जाते हैं ॥ १४ ॥ विचार करके देखो, यदि दैवकीही प्रबलता स्वीकार की जाय, तो परमेश्वरके कहे सम्पूर्ण वेदही मिथ्या हुए जाते हैं यदि वेदका प्रमाण मिथ्या हो तो धर्मकाभी नाश क्यों न होगा? ॥ १५ ॥ जब कि उद्यम करनेसेही फलसिद्धि प्रत्यक्ष देखी जाती है तो कार्यसाधनके लिये विचारपूर्वक किसी उपायका अवलम्बन करना चाहिये ॥ १६ ॥ अतएव जिससे मेरे सद्योजात बालकका मंगल हो, विचार करके इसका कोई अच्छा उपाय स्थिर करो. पंडितगण कहते हैं कि, यदि किसी जीवकी रक्षा इत्यादि मंगलाकांक्षासे कदाचित् झूठ बोले ॥ १७ ॥ तो वह दोषमें नहीं गिना जाता यह महात्माओंका कथन है। वसुदेवजी बोले हे महाभागे! मैं तुमसे सत्यका विषय कहता हूं सुनो ॥ १८॥ यद्यपि उद्यम मनुष्यका अवश्यकर्तव्य है, किन्तु उसका फल दैवके आधीन जानना चाहिये। पुरातन तत्त्ववादी इस संसारमें तीन प्रकारके कर्म कहते हैं ॥ १९ ॥ पुराण और आगम (शास्त्र) में कहा है कि, इस संसारमें जीवोंके कर्म तीन प्रकार हैं हे सुमध्यमे! पूर्वकृत संचित कर्म, प्रारब्ध-

कर्म ॥ २० ॥ और वर्तमान अनेक जन्मोंके किये बीजस्वरूप जो शुभाशुभ (अच्छेबुरे) कर्म हैं ॥ २१ ॥ वह सभी जन्मान्तरोंके समयमें अवस्थित रहते हैं उन कर्मोंके वशीभूत होकर ही जीव पूर्व देह छोड़कर अपने कर्मसे ॥ २२ ॥ स्वर्ग वा नरक भोगते हैं, जीवगण अपने अपने शुभाशुभ कर्मानुसार पुण्यजनित दिव्यदेह अथवा पापजनित यातनामय देह धारण करके ॥ २३ ॥ स्वर्ग वा नरकमें पुण्यपापसे उत्पन्न विविधप्रकारके भोग भोग करते हैं इन कर्मोंके भोगनेपर फिर जब उसके देह धारण करनेका समय आता है ॥ २४ ॥ तब लिंगदेहके सहित जीवसंज्ञाको प्राप्त होकर जन्मग्रहण करता है। लिंगदेहके आविर्भाव समयमें परमेश्वर जीवके संचित कर्मसमूहसे परिपक्व कर्मसमूह ॥ २५ ॥ इस जीवमें योजित करते हैं. इस कारण संचित शुभाशुभ कर्मसमूह जीवदेहमें निरन्तर वर्तमान रहते हैं ॥ २६ ॥ हे सुलोचने ! प्रारब्धकर्मका फल जीवोंको अवश्यही भोगना होता है. हे भामिनी ! यथा विधि प्रायश्चित्त अनुष्ठानसे जीवोंके वर्त्तमान सब कर्म नष्ट होते हैं ॥ २७ ॥ इसीप्रकार संचित भी और प्रारब्धभोगद्वाराही क्षय होता है ! प्रायश्चित् वा अन्य किसीप्रकारसे उसका क्षय नहीं होता ॥ २८ ॥ अतएव कंसराजको तुम्हारा यह पुत्र अवश्य देनाचाहिये। हे देवि ! इस संसारमें जिससे लोकनिन्दा वा मिथ्या बात प्रकाशित हो मैं कभी वह नहीं करूंगा ॥ २९ ॥ इससे तुम सत्यकी रक्षा करके कंसके हाथमें कुमारको समर्पण करो। हे देवकी ! इस असार संसारमें धर्मही सार वस्तु है महात्मालोगोंका जीवन मरण दैवके आधीन है ॥ ३० ॥ इसकारण जीवोंको निरर्थक शोकप्रकाश करना कभी कर्त्तव्य नहीं है. हे जीवनाधिके ! अधिक क्या कहूं। जिसका सत्य नष्ट होजाताहै उसका जीवनही वृथा है ॥ ३१ ॥ हे सुभ्रू ! जिसका यह लोक नष्ट हुआ इससे फिर परलोकका क्या कार्य साधित हो सक्ता है। कहो अतएव हे देवि ! बालकको दो, मैं कंसके हाथमें इसको समर्पण करूं ॥ ३२ ॥ हे प्रिये ! सत्यपार होनेपर फिर अवश्यही हमारा मंगलहोगा जिस स्थानमें जीवका सुखदुःख निश्चितरहता है, उस स्थानमें सुकृत साधन ही उचित है ॥ ३३ ॥ "सत्यकी रक्षा करनेसे अवश्य ही शुभ फल होगा, इसमें संदेह नहीं" व्यासजी बोले अपने स्वामी वसुदेवके यह सब वचन कहनेपर शोकयुक्त मनस्विनी देवकीने कंपित कलेवर हो सद्यःप्रसूत उस पुत्रको वसुदेवके हाथमें समर्पण किया ॥ ३४ ॥ धर्मात्मा वसुदेव उस बालक पुत्रको लेकर कंसके भवनकी ओर चले।

मार्गमें मनुष्य उनके इस अद्भुत कार्यको देख प्रशंसा करके कहने लगे ॥ ३५ ॥ लोक बोले हे जनगण! वसुदेवकी मनस्विता देखो, यह अपने सत्य वचनकी रक्षाके निमित्त निजबालक पुत्रको ग्रहण करके कंसके घर जा रहे हैं ॥ ३६ ॥ यह सत्यवादी असूया रहित पुरुष प्रधान वसुदेव अपने पुत्रको मृत्युके कराल कवलमें देनेके अभिलाषी हुए हैं तुम लोग इनका यह अद्भुत धैर्य देखो. अहो! इस महापुरुषका ही जीवन सार्थक है ॥ ३७ ॥ यह कालरूप कंसको पुत्र देने जाते हैं व्यासजी बोले हे पृथ्वीन्द्र! वसुदेव इस प्रकार स्तूयमान होकर कंसके गृहमें पहुँचे ॥ ३८ ॥ और तुर्तके हुए उस देवरूपी पुत्रको कंसके हाथमें समर्पण किया उनका इस प्रकार धैर्य देखकर कंसराजकोभी अत्यन्त अचंभा हुआ ॥ ३९ ॥ तब उसने बालकको ले कुछेक हँसकर कहा हे शूरपुत्र! तुम इस समय मुझको पुत्र देकर धन्य हुए ॥ ४० ॥ किन्तु वह आकाशवाणी हुई है कि तुम्हारा आठवां पुत्रही मेरा कालस्वरूप है, तुम्हारा यह प्रथम पुत्र मेरा मृत्यु स्वरूप नहीं है इससे मैं इस बालकको नहीं मारूंगा, यह बालक तुम्हारे घर जाय ॥ ४१ ॥ हे महामते! जब तुम्हारा आठवां पुत्र जन्म ले, तब तुम वह पुत्र मुझको अवश्य प्रदान करना, क्रूरात्मा कंसने यहकह वसुदेवके हाथमें उस बालकको फेर दिया ॥ ४२ ॥ और कहा कि हे राजन्! इस पुत्रको निर्विघ्न घर ले जाओ कंसराजके इस प्रकार कहनेपर शूरसेनके पुत्र वसुदेव पुत्रको लेकर अपने घर चले गये ॥ ४३ ॥ तब कंसराजने भी अपने मंत्रियोंसे कहा जब आकाशवाणी हुई है कि, देवकीका आठवां पुत्र ही मेरा मृत्यु स्वरूप होगा तब इस बालकको वृथा क्यों मारूं ॥ ४४ ॥ प्रथम पुत्रको मार कर पापग्रहण करनेका क्या प्रयोजन है? मंत्रीलोग कंसका यह वचनसुन साधु साधु कह उसकी बहुत प्रशंसा करने लगे ॥ ४५ ॥ अनन्तर कंसराजके उनको बिदा देनेपर वह अपने अपने घर गये तदुपरान्त मुनिसत्तम नारदजी आनकर कंसके समीप उपस्थित हुए ॥ ४६ ॥ तब उग्रसेनके पुत्र कंसने उठ पाद्य और अर्घ्यादिदे, उनकी पूजा और कुशल प्रश्नकर उनके सहसा आनेका कारण पूँछा ॥ ४७ ॥ तब महर्षि नारदने कुछेक हँस, आदर पूर्वक कंससे कहा हे महाभाग! मैं घटना उपस्थित होनेपर सुमेरु पर्वतमें गया था ॥ ४८ ॥ वहां ब्रह्मादि देवता लोग मिलित होकर यह परामर्श करते थे कि वसुदेवकी भार्या देवकीके गर्भसे सुरसत्तम ॥ ४९ ॥ विष्णु कंसके मारनेको जन्मग्रहण करैं तुमसे पूछता हूं कि तुम नीतिशास्त्र

में पण्डित हो. विशेष करके देववाणीका मर्मभी जानते हो. किन्तु तोभी वसुदेवके पुत्रको न मारनेका कारण क्या है ॥ ५० ॥ कंसने कहा मैं आकाशवाणीके अनुसार आठवेंही पुत्रको मारूंगा नारदजीने कहा हे नृपवर ! जान पड़ता है. तुम शुभाशुभ भूल कर नीतिको कुछ नहीं जानते ॥ ५१ ॥ विशेष कर देवताओंकी माया किसप्रकार है, उसको जब तुम नहीं जानते. तब फिर तुमसे क्या कहूं ! कल्याणकी इच्छा करनेवाले शूरगण अत्यन्त छोटे शत्रुकीभी उपेक्षा नहीं करते ॥ ५२ ॥ तुमसे अधिक और क्या कहूं आप अष्टम शब्दका अर्थ भलीभांतिसे नहीं समझसके, प्रथमसे आरंभ करके अष्टमपर्यन्त जो संतान हो. गणनाप्रणालीसे वह सब आठवीं होसक्ती है शत्रुको छोड़ना नहीं चाहिये. यह तुम जानते ही हो. तो फिर क्यों हाथमें लेकर उस शत्रुको छोड़ दिया ? इसमें तुम्हारी मूर्खता प्रकाशके सिवाय और क्या होसक्ता है ॥ ५३ ॥ यह कहकर श्रीमान् देवप्रतिम महर्षि नारदजी तत्काल चलेगये तब मंदबुद्धि कंस बालकको उसी समय बुलाय ॥ ५४ ॥ पत्थरपर पटक. उसका प्राणसंहार कर स्थिरचित्त हुआ.

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषायां एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः २२.

जन्मेजय पूछने लगे हे पितामह ! उस बालकने ऐसा क्या पापकार्य किया था जो उत्पन्न होतेही कंसने उसका विनाश किया ॥ १ ॥ विशेष करके महर्षि नारद मुनियोंमें श्रेष्ठ. ब्रह्मविद्गणोंमें अग्रणी, सदा धर्ममें तत्पर. और ज्ञानवान होकर ऐसे पापकार्यमें प्रवृत्त क्यों हुए ॥ २ ॥ पण्डितगण कहते हैं कि पापकार्यका कहनेवाला और उसमें प्रवृत्त करानेवाला. दोनोंही समान पापके भागी हैं. तो मुनिश्रेष्ठ नारदने किसकारण उस खल कंसको शिशुवधमें प्रवृत्त किया ॥ ३ ॥ इस विषयमें मुझको घोर संदेह उपस्थित हुआ है हे मुनीन्द्र ! जो कर्मविपाकके कारण वह बालक मृत्युको प्राप्त हुआ हो. यह आप विस्तारसहित मुझसे कहिये ॥ ४ ॥ व्यासजी बोले. देवर्षि नारद सदा कलहप्रिय हैं, अतएव सर्वदाही कौतुक देखना अच्छा समझते हैं. विशेष कर वह देवताओंका कार्य साधनके निकट ही कंसके निकट आकर इस प्रकार कार्यमें प्रवृत्त हुए थे ॥ ५ ॥ वास्तवमें उनके कभी मिथ्या कहनेका अभिप्राय नहीं है. वह सत्यवक्ता. पवित्रचेता और देवताओंके कार्यसाधनमें सदा तत्पर हैं ॥ ६ ॥

जो हो. इसीप्रकार क्रमानुसार देवकीके छे पुत्र उत्पन्न हुए कंसने भी उत्पन्न होतेही उन छओं बालकोंका क्रमशः विनाश किया वे गर्भ छे बालक शापके कारण जन्मतेही नष्ट हुए ॥ ७ ॥ हे राजन् ! उनके शापका कारण कहता हूं. सुनो स्वायम्भुव मनुके अधिकार कालमें महर्षिमरीचिकी ॥ ८ ॥ ऊर्णानाम्नी पत्नीके गर्भसे धर्मनिरत महाबलवान् छे पुत्र उत्पन्न हुए किसी समय प्रजापति ब्रह्मा कामबाणसे मोहित हो. अपनी कन्याके संग रमण करनेमें उद्यत हुए. तब वे इनको देखकर हँसे ॥ ९ ॥ इसकारण ब्रह्माने उनको यह कहकर शाप दिया कि तुम शीघ्र असुरयोनिमें जन्म ग्रहण करो हे राजन् ! तदनन्तर उसी षड्गर्भने प्रथम कालनेमिके पुत्र होकर जन्म ग्रहण किया था ॥ १० ॥ दूसरे जन्ममें वह हिरण्यकशिपुके पुत्ररूपमें प्रादुर्भूत हुए इस बार वह पूर्वके शापभयसे ज्ञानविच्युत नहीं हुए ॥ ११ ॥ इस जन्ममें वे शान्त और सावधान होकर तपस्या करनेमें प्रवृत्त हुए. इससे ब्रह्माजीने प्रसन्नता पूर्वक उनको वर देनेमें उद्यत होकर कहा ॥ १२ ॥ ब्रह्माजी बोले हे पुत्रगण ! मैं ने पूर्वमें क्रोधित होकर तुमको शाप दिया था किन्तु अब मैं तुम्हारे प्रति अत्यन्त प्रसन्न और संतुष्ट हुआ हूं तुम लोग वांछित वर मांगो ॥ १३ ॥ व्यासजी बोले अनन्तर वह सभी ब्रह्माजीका वचन सुन अपने कार्यसाधनमें तत्पर हुए और प्रसन्नमन हो प्रजापतिसे कहा ॥ १४ ॥ हे पितामह ! आप अब हमारे प्रति प्रसन्न हुए हैं तो इस समय हमको वांछित वर दीजिये। हे पितामह ! हम सब देवता मानव महोरग॥ १५॥ गंधर्व और सिद्धपतिगणोंसे अवध्य हों यही हमारी प्रार्थना है व्यासजी बोले उनके यह वचन सुनकर ब्रह्माजी बोले तुमने जो प्रार्थना की वह सिद्ध होगी ॥ १६ ॥ हे महाभाग ! तुमलोग जाओ यह वर सत्य होगा इसमें संशय नहीं है ब्रह्माजीके इस प्रकार वर देनेसे वे अत्यन्त प्रसन्न हुये और ब्रह्माजी अपने स्थानको चले गये ॥ १७ ॥ हिरण्यकशिपुके पुत्रगणभी अभिलाषित वर पाकर अत्यन्त आनंदित हुए हे कुरुसत्तम ! हिरण्यकशिपुने "पुत्रोंने मुझको छोड़ पितामहको संतुष्ट किया" यह जान अत्यन्त क्रोधित होकर उनसे कहा ॥ १८ ॥ तुम लोग वरके प्रभावसे अत्यन्त दर्पित हुए हो विशेष करके तुमने जब मेरे प्रति स्नेहत्याग किया; तो मैं भी तुम्हारात्याग करता हूं ॥ १९ ॥ अब तुम पातालमें जाओ, तुम पृथ्वीतलमें षड्गर्भ नामसे विख्यात होगे और तुम पातालमें जाकर सदा निद्रामें पड़े हुए अनेक वर्ष पर्यन्त वास करते रहो ॥ २० ॥ फिर तुम जिस समय देवकीके गर्भसे

वर्ष २ में जन्म ग्रहण करोगे, उसी समय में तुम्हारा पूर्व पिता कालनेमि कंसरूपमें प्रगट होगा ॥ २१ ॥ वह नृशंसचित्त कंस तुमको उत्पन्न होते ही वध करेगा व्यासजी बोले उनको इस प्रकार शाप हुआ था, इसकारण ही उन्होंने वारंवार जन्मग्रहण किया ॥ २२ ॥ और कंसने भी उसी शापसे देवकीके गर्भोत्पन्न पुत्रोंको जन्मते ही विनाश किया जब देवकीके सातवें गर्भमें अनन्त देव आये ॥ २३ ॥ तब योगमायाने योगबलसे इस गर्भका आकर्षण कर रोहिणीके गर्भमें स्थापन किया ॥ २४ ॥ फलतः तिसकाल देवकीका गर्भ पांचवें महीनेमें गिरगया यही लोकमें प्रचरित है कंसने भी जानलिया कि देवकीका गर्भ गिरगया ॥ २५ ॥ यह सुखदायक संवाद सुनकर उस दुष्टात्माके संतोषकी सीमा न रही किन्तु इधर भक्तजन प्रतिपालक भगवान्नेभी इसी समय देवताओंका कार्यसाधन ॥ २६ ॥ और पृथ्वीका भारहरण करनेको देवकीके अष्टमगर्भमें वास किया राजाने कहा हे मुनिवर ! आपने केवल कश्यपके अंश वसुदेव और पृथ्वीकी प्रार्थनानुसार भारहरण करनेको अनन्त ॥ २७ ॥ और विष्णु देवके अंशावतारकोही विषय कहा किन्तु क्रमसे किसी अंशावतारका विषय न कहा अतएव अब अन्यान्य देवता जो जिसरूपमें अपने अपने अंशसे आनकर ॥ २८ ॥ पृथ्वीमें भार उतारनेको उत्पन्न हुए थे, आप यह सब वर्णन कीजिये व्यासजी बोले देवता और असुरोंके जो सब अंश पृथ्वीमें जिस नामसे विख्यात हुए थे ॥ २९ ॥ मैं वह विवरण संक्षेपसे कहता हूं, सुनो वसुदेव कश्यपके अंश, देवकी अदितिका, ॥ ३० ॥ बलदेव अनन्तका अंश, धर्मके पुत्र श्रीमान् नारायण ऋषि कहकर विख्यात हैं ॥ ३१ ॥ उनके अद्यापि पूर्व शरीरमें विद्यमान रहनेपर भी वासुदेव कृष्ण उनको अंश हैं, जो नारायणके अनुज नरनामसे विख्यात हैं, अर्जुन उनकाही अंश है ॥ ३२ ॥ इसी प्रकार धर्मका अंश युधिष्ठिर, वायुका अंश भीमसेन, महा-बलवान् माद्रीके दोनों पुत्र दोनों अश्विनी कुमारका अंश ॥ ३३ ॥ कुन्ती गर्भजात महावीर कर्ण दिनपति सूर्य देवका अंश और परम तत्त्वके जाननेवाले महात्मा विदु-रको साक्षात् धर्मराज यमका अवतार जानना चाहिये. कुरु पाण्डवोंके आचार्य द्रोण महाशय बृहस्पतिके अंश हैं, उनका पुत्र अश्वत्थामा रुद्र देवका अंश है, ॥ ३४ ॥ समुद्रके अंश शन्तनु, उनकी भार्या मानवरूप धारिणी गंगा है। पुराणमें कथित है कि, देवक नृपति गंधर्वपतिका अंश है. ॥ ३५ ॥ कौरव-पितामह शूराग्रगण्य

भीष्मदेव साक्षात् वसुका अवतार है. मत्स्यपति विराट् मरुद्गणोंका अंश. दैत्य अरिष्टनेमि पुत्र हंसके अंशसे धृतराष्ट्र उत्पन्न हैं ॥ ३६ ॥ कृप और कृतवर्मा मरुद्गणोंका अंश. दुर्योधन कलिका और शकुनि द्वापरयुगका अंश है ॥ ३७ ॥ सोमपुत्र सुवर्चाख्य सोमभरुनामसे विख्यात हुआ था. धृष्टद्युम्न अग्नि और शिखंडी राक्षसका अंश है॥ ३८॥ प्रद्युम्न सनत्कुमारका अंश. द्रुपदराजा वरुणका अंश. द्रौपदी लक्ष्मीका अंश ॥ ३९ ॥ द्रौपदीके पांच पुत्र विश्वेदेवाओंके अंश. कुन्ती सिद्धिरूपिणी.माद्रीधृतिरूपिणी गान्धारी मतिरूपिणी है॥ ४०॥ कृष्णपत्नीगण स्वर्गवाराङ्गनाहै इसप्रकार संपूर्ण देवता इन्द्रसे प्रेरित होकर राजाआदि अपने२अंशसे उत्पन्न हुए थे ॥ ४१ ॥ असुरोंमें स्वयं हिरण्यकशिपु शिशुपाल रूपमें अवतीर्ण हुआ था. इसीप्रकार जरासंध विप्रचित्तिके, शल्य प्रह्लादके, ॥ ४२॥ कंस कालनेमिके और केशी हयशिराके अंशसे उत्पन्न है. अरिष्टनामक वृषभरूपधारी जो असुर गोकुलमें कृष्णके हाथसे मारागया वह बलिका पुत्र था ॥ ४३ ॥ धृष्टकेतु अनुह्लादके, भगदत्त बाष्कलके, प्रलम्ब लम्बके और धेनुक खरके अंशसे उत्पन्न हुआ था ॥ ४४ ॥ वाराह और किशोरनामक जो अत्यन्तदारुण दो दैत्य थे चाणूर और मुष्टिक नामक दोनों मल्ल इन्हीं दोनोंके अंशसे उत्पन्न हैं ॥ ४५ ॥ कुवलयनामक कंसका हाथी अरिष्टनामक दितिपुत्रके अंशसे उत्पन्न है बकी बलिकी कन्या बक उसका अनुज ॥ ४६ ॥ द्रोणाचार्यका महाबलवान् पुत्र अश्वत्थामा यद्यपि केवल रुद्रांशकहकर विख्यात है किन्तु वास्तविक यम, रुद्र, काम और क्रोध इन चारके अंशसे उत्पन्न हुआ था ॥ ४७ ॥ पृथ्वीके भारावतरणको अंशावतारसे जो जो दैत्य और राक्षसगण उत्पन्न हुए थे. वह सभी असुरगणोंका अंश हैं ॥ ४८ ॥ हे नृप ! पुराणमें सुर और असुरगणोंका अंशावतार कथित है. वह मैंने तुमसे सब वर्णन किया ॥ ४९ ॥ ब्रह्मादि देवता जिस समय प्रार्थनाके उद्देशसे विष्णुके निकट गये थे. तिसकाल हरिने उनको एक अपना श्वेतवर्ण और एक कृष्णवर्ण यह दोकेश दिये थे ॥ ५० ॥ उनमेंसे श्यामवर्णकेशसे कृष्णकी और शुभ्र (सफेद) केशसे संकर्षण बलदेवजी की उत्पत्ति हुई. उन दोनोंने ही भूमिका भार हरण करनेके लिये विष्णुके अंशसे जन्मग्रहण किया था ॥ ५१ ॥ जो पुरुष भक्तिभावसे इस अंशावतारकी कथा सुनता है. वह सब पापों से छूट स्वजनगणोंके संग प्रमोदसहित कालव्यतीत करता है. इसमें संदेह नहीं ॥५२॥ यह केशादिशब्द अंशवाचक जाननेचाहिये

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः २३.

व्यासजी बोले उग्रसेन तनय कंसके देवकीके छेपुत्रोंका इसप्रकार विनाश करनेपर और सातवें गर्भके गिरजानेपर ॥ १ ॥ फिर जब आठवें गर्भका संचार हुआ तब कंस नारदजीके वचनानुसार अपने मरणकी चिन्ता करके सावधानीसे उस गर्भकी रक्षा करनेके लिये अतियत्न करने लगा ॥ २ ॥ इस ओर उसी समय भगवान् हरिने अंशद्वारा प्रथम तो वसुदेवके देहका आश्रयकर यथाक्रमसे देवकीके गर्भमें प्रवेश किया ॥ ३ ॥ इसीअवसरमें देवी योगमायाने देवताओंका कार्यसाधनके लिये अपनी इच्छासे यशोदाके गर्भमें प्रवेश किया ॥ ४ ॥ वसुदेवकी रोहिणीनामक स्त्री कंसके भयसे उद्विग्न होकर नन्दगोकुलमें वास करती थी अंश. बलरामने उनके पुत्र होकर उसी स्थानमें जन्म ग्रहण किया ॥ ॥ ५ ॥ तदुपरान्त कंसने देवपूज्य देवकीको कारागारमें डाल कर उसकी रक्षाकेलिये सेवकोंको नियुक्त कर दिया ॥ ६ ॥ वसुदेव अपनी प्रियतमा भार्याके प्रेमसूत्रमें बँध और अपने पुत्रोत्पत्तिके विषयकी चिन्ता कर भार्यादेवकीके सहित कारागारमें प्रविष्ट हुए ॥ ७ ॥ इस और देवताओंकी कार्यसिद्धिके निमित्त देवकीके गर्भागारमें प्रविष्ट देवदेव विष्णु देवतागणोंसे नित्य स्तूयमान होकर यथानियम वृद्धिको प्राप्त होने लगे ॥ ८ ॥ फिर जब देवकीके गर्भका दशवाँ महीना पूर्ण हुआ. तब उस जगन्मंगलजनक श्रावणमास, कृष्णपक्ष रोहिणीनक्षत्रयुक्त अष्टमीतिथिके दिन॥ ९॥ कंसने अत्यन्त भयसे विह्वल हो अनुचर दानवोंसे कहा.तुम सब लोग कारागारके भीतर स्थित देवकीकी यत्नपूर्वक रक्षा करो॥ १०॥ देवकीका यह आठवां गर्भही मेरा परमशत्रु है.अतएव मेरे उसी मृत्युस्वरूप बालककी यत्नपूर्वक रक्षा करो. जिससे वसुदेव वा देवकी किसीप्रकारसे उस बालकको स्थानान्तरित न करसकें॥ ११॥ हे दैत्यगण! अपने निरन्तर उद्वेगकारी और अशेष दुःखदायक देवकीके अष्टम पुत्रको विनाश करकेही मैं निर्विघ्न अपने घर नींदले सकता हूं ॥ १२ ॥ तुम सभी खड्ग प्रास (शस्त्रविशेष) और धनुर्धारण करके निद्रा तन्द्रापरित्याग पूर्वक सब ओर दृष्टि रखकर स्थित रहो ॥ १३॥ व्यासजी बोले अनन्तर सदा चिन्तासे कृश कंसराज असुरगणोंको इस प्रकार आज्ञा दे भयसे विह्वल चित्त हो शीघ्रही निजमंदिरमें चलागया, किन्तु किसी प्रकार मनमें सुख लाभ न करसका ॥ १४ ॥ इधर देवकीने उस कारागारमें अर्धरात्रिके समय वसुदेवसे कहा हे महाराज! मेरा प्रसवकाल

उपस्थित है क्या करूं ॥ १५॥ यहां अनेक भयंकर रक्षपाल नियुक्त हैं अब मैं क्या करूं पूर्वमें नन्दपत्नी यशोदाने मेरा वचन सुनकर इस प्रकार कहा था ॥ १६ ॥ हे मानिनी ! तुम्हारा चित्त शोक तापसे जर्जरित होगया है इस कारण तुम मेरे घर अपने पुत्रको भेज देना. मैं भलीभाँति उसका लालन पालन करूंगी॥ १७॥ विशेषकर कंसकी प्रतीतिके निमित्त मैं भी तुमको एक सन्तान दूंगी हे नाथ! इस समय विषम संकट उपस्थित है. अब क्या कर्त्तव्य है ? कहिये ॥ १८ ॥ ऐसे स्थलमें आप किसप्रकार सन्तानके बदलनेमें समर्थ होंगे ? जो हो, हे नाथ ! इस समय मुझको अधिकतर लज्जा उपस्थित हुई है. अतएव आपदूरही रहो ॥ १९ ॥ हे स्वामि ! आप मुँह फेरकर बैठिये. नहीं तो मैं क्या करूं दूसरा उपाय कोई नहीं है देवकीने देवपूजित महाभाग वसुदेवसे यह कह ॥ २०॥ आधी रातके समय उस कारागारमेंही एक अद्भुत पुत्ररत्न उत्पन्न किया उस शोभनदर्शन बालकको देखकर महाभाग देवकी आश्चर्ययुक्त हुई ॥ २१ ॥ और प्रफुल्लित कलेवर हो उसने पतिसे कहा हे नाथ ! तुम दुर्लभ पुत्रका मुख देखो ॥ २२ ॥ हाय ! मेरे पिताका भ्रातृपुत्र कालरूप कंस अभी मेरे इस बालकका विनाश करेगा वसुदेव "कंस तो यही करेगा" यह कह पुत्रको ग्रहण कर ॥ ॥ २३ ॥ उस अद्भुत कर्म्मा बालकका मुख देखने लगे वसुदेव पुत्रका मुख देखकर मनमें चिन्ता करने लगे मैं क्या करूं ॥ २४ ॥ क्या करनेसे मुझको यह पुत्रनाशका दुःख भोगना न हो वसुदेव इसप्रकार चिन्तातुर हो रहे थे इसी समय अशरीरिणी वाणी हुई ॥ २५ ॥ वसुदेवसे संभाषण कर गगनमें स्पष्टाक्षरसे आकाशवाणी हुई. हे वसुदेव ! तुम शीघ्र इस बालकको ग्रहण करके गोकुलमें जाओ ॥ २६ ॥ सम्पूर्ण रक्षपालोंको मैंने मायानिद्रासे मोहित किया है दृढ अष्टधातके किंवाड खोल दिये हैं तुम जंजीर खोलकर॥ २७॥इस पुत्रको नन्दके घर रख वहांसे योगमायाको ले आओ"उस कारागारमें स्थित वसुदेवने इस आकाशवाणीको सुन ॥ २८ ॥ द्वारकी ओर दृष्टि करके देखा कि, दर्वाजा खुला है हे राजेन्द्र ! तब वह शीघ्र उस पुत्रको ले सम्पूर्णद्वारपालोंसे छिपकर बाहर हुए ॥ २९ ॥ और यमुनातटपर जाय कलिन्दकन्याका तीव्रप्रवाह बहता देख चिन्तातुर हुए किन्तु वह सरिद्वरा यमुना तत्काल कमरकी बराबर हुई ॥ ३० ॥ तब वसुदेव योगमायाके प्रभावसे यमुनापार हो निर्जनमार्गद्वारा गमन कर निशीथ समय गोकुलमें पहुँचे ॥ ३१ ॥ और नन्दके द्वारमें उपस्थित होकर उनका गौमहिषादि ऐश्वर्य देखने लगे इसी समय

उस स्थानमें यशोदाके गर्भसे ॥ ३२ ॥ त्रिगुणात्मिका दिव्यरूपिणी महादेवी योग-मायाने अपने अंशसे जन्मग्रहण किया तब महादेवी योगमायाने उस प्रगट बालिकाको ॥ ३३ ॥ सैरन्ध्रीका रूप धारण करके करकमलमें ग्रहणपूर्वक उस स्थानमें आय वसुदेवके हाथमें अर्पण किया॥ ३४ ॥ वसुदेवभी पुत्रको देवीके करकमलमें समर्पणकर बालिकाको ग्रहणपूर्वक प्रसन्न चित्तसे शीघ्र चले इसके उपरान्त कारागारमें जाय देवकीकी शय्यापर॥ ३५ ॥ उस कन्याको स्थापन कर भयातुर जो चिन्तायुक्त हो देवकीके निकटमें बैठ रहे किन्तु शयन करातेही वह कन्या उच्चस्वरसे रोनेलगी॥ ३६ ॥ तब राजाके रक्षकगण जागे और वह रोनेकी ध्वनि सुनकर भयसे अतिविह्वल हो शीघ्र जाय राजाके निकट उपस्थित हुए और बोले ॥ ३७ ॥ हे महाराज! शीघ्र जाइये, देवकीके पुत्र उत्पन्न हुआ है भोजनृपति उनका यह वचन सुन वहां शीघ्र गया ॥ ३८ ॥ और द्वार खुला देख वसुदेवको बुलाकर कहा कंस बोला हे महामते! मेरा मृत्युस्वरूप देवकीका आठवाँ पुत्र लाओ ॥ ३९ ॥ मैं उस हरिसंज्ञक वैरीको अभी विनाश करूंगा व्यासजीने कहा हे महाराज! वसुदेवने कंसका यह वचन सुन भयसे व्याकुलनेत्र ॥ ४० ॥ और विह्वल हो काँपते काँपते उस कन्याको कंसके हाथमें समर्पण किया राजा कंस देवकीकी कन्या सन्तान देखकर अत्यन्त आश्चर्यको प्राप्त हुआ ॥ ॥ ४१ ॥ और चिन्ता करने लगा कि देववाणी और नारदकी वाणी वृथा हुई वसुदेव इस स्थानमें रहकर दुःखरूपी संकटमें भी अन्यायकार्य्य करनेमें किस प्रकार समर्थ होंगे ॥ ४२ ॥ विशेष कर मेरे रक्षकगण निःसन्देह सावधानीसे रहते थे यह कन्या यहां किसप्रकार आई! और वह अष्टमगर्भोत्पन्न पुत्र कहां गया ॥ ४३ ॥ इस विषयमें सन्देह करना उचित नहीं क्योंकि कालकी गति अत्यन्त विषम है इसप्रकार चिन्ताकरके उस निर्दयी कुलनाशक खल भूपाल कंसने कन्याके दोनों पैर पकड़ ॥ ४४ ॥ पत्थरपर पटकनेके लिये उसको आकाशमें उठा लिया तिसकाल वह कन्या इसके हाथसे छूटकर आकाशमंडलमें गई॥ ४५ ॥ और दिव्यरूप धारण कर मीठी वाणी द्वारा कंसराजसे बोली मेरे मारनेसे तुझको क्या होगा? तेरे बलवान् शत्रुने जन्म ग्रहण किया है ॥ ४६ ॥ नराधम! वह दुराराध्य पुरुषश्रेष्ठ तुझको निश्चय ही मारेंगे इसमें सन्देह नहीं यह कहकर वह शिवरूपिणी कामगामिनी कन्या गगनतलमें गई ॥ ४७ ॥ कंसभी आश्चर्ययुक्त होकर घर गया और क्रोध तथा भयसे अधीर हो दानवोंको बुलाय बोला ॥ ४८ ॥ बक धेनुकं वत्स इत्यादि दानवोंसे कहने लगा

हे दानवगण ! तुमलोग सभी मेरे कार्य्यसिद्धिको जाओ ॥ ४९ ॥ तुम जिसकिसी स्थानमें ही बालकको उत्पन्न होता देखकर हनन करो यह बालकघातिनी पूतना अभी नन्दके गोकुलमें जाय ॥ ५० ॥ मेरी आज्ञासे उत्पन्न हुए बालकमात्रकोही विनाश करे धेनुक वत्सक केशी प्रलम्ब और बकादि ॥ ५१ ॥ तुम सब लोगही मेरा कार्य्यसाधन करनेके लिये उस गोकुलमें वास करते रहो खल भूपाल कंस असुरगणोंको इसप्रकार आज्ञा दे अपने घर जाय ॥ ५२ ॥ निरन्तर इस विषयकी चिन्ता कर अत्यन्त भयातुर और दीन होने लगा ॥ ५३ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः २४.

व्यासजी बोले हे महाराज! इधर प्रातःकालके समय नन्दके घर पुत्रजन्मका महोत्सव आरम्भ हुआ तदनन्तर कंसराजने किम्वदन्ती और दूतके द्वारा जाना कि ॥ १ ॥ नन्दके गोकुलमें पुत्रजन्मके कारण महोत्सव आरम्भ हुआ है इससे पहले वह जानता था कि वसुदेवकी पत्नी पशुगण और दासगण सभी गोकुलमें नन्दके घर वास करते हैं ॥ २ ॥ हे राजन्! इन सब कारणोंसे कंसराज गोकुलपर सन्देह करता था विशेष करके देवर्षि नारदने भी पूर्वमें उससे इस प्रकार कहा था कि ॥ ३ ॥ नन्दादि जो जो गोपगण गोकुलमें वास करते हैं वे और उनकी सब पत्नी तथा देवकी और वसुदेव इत्यादि सब ही देवताओंके अंशसे उत्पन्न हैं अतएव वे सभी तुम्हारे शत्रु हैं ॥ ४ ॥ नारदके इन सब वचनोंसे प्रबोधित होकर वह परम पापाचारी कुलाधम कंस अत्यन्त क्रोधित हुआ था ॥ ५ ॥ और पूतना बक वत्स धेनुक तथा प्रलम्ब इत्यादि महाबलशाली दुर्दान्तदानवोंको गोकुलमें भेजा था। अमितपराक्रमशाली कृष्णने उन सबको ही विनाश किया ॥ ६ ॥ प्रलम्बको मार गोप और महिषादिकी रक्षाके निमित्त गोवर्द्धनपर्वत धारण किया यह सब वृत्तान्त सुनकर कंसने अपना मरण निश्चय जाना ॥ ७ ॥ इसके उपरान्त जब सुना कि केशी दैत्यभी मारागया है तब अत्यन्त उदास हो धनुर्यज्ञके बहाने बलराम और कृष्ण दोनों भाइयोंको मथुरामें बुलानेके लिये उद्योग करने लगा ॥ ८ ॥ अनन्तर उस पापमति कंसने अमितविक्रम रामकृष्णका विनाश करनेके निमित्त उनको मथुरामें बुलानेके अर्थ अक्रूरको गोकुलमें भेजा ॥ ९ ॥

गान्दिनी पुत्र अक्रूर कंसकी आज्ञानुसार गोकुलमें जाय उन दोनों गोपालोंको रथमें चढ़ाय मथुरामें ले आये ॥ १० ॥ राम और कृष्णने मथुरामें आय प्रथम तो धनुष तोड़ा, फिर रजक, कुवलयापीड हाथी एवं चाणूर मुष्टिक ॥ ११ ॥ शल और तोशल इत्यादि मल्लोंको मारकर सर्व देवेश्वर हरिने कंसके केश खैंचकर लीलापूर्वक ही उसको मार डाला ॥ १२ ॥

दोहा—"कंस मार भूभार हर, उग्रसेन करि भूप।
कहाँ हमारे मातु पितु, तब बोले सुखरूप" ॥

शत्रुओंके मारनेवाले कृष्णने मातापिताको कारागारसे मुक्तकर उनके मनमें गड़े दुःखरूपी बाणको निकाला और उग्रसेनको मथुराका राज्य दिया ॥ १३ ॥ अनन्तर महामना वसुदेवने उस स्थानमें मौंजी मेखला यज्ञोपवीतके निमित्त बांध, राम और कृष्णको उपनयन प्रदानकर व्रत धारण कराया ॥ १४ ॥ वह उपनीत अर्थात् जनेऊ होनेपर सान्दीपन मुनिके पवित्र गृहमें विद्या सीखनेके अर्थ उपस्थित हो शीघ्र सब विद्याका अभ्यासकर फिर मथुरामें आये ॥ १५ ॥ आनकदुन्दुभीके वे दोनों पुत्र मथुरामें वास करते करते जब उनकी अवस्था बारह वर्षकी हुई तब वे सब विषयमें चतुर और महाबलशाली होगये ॥ १६ ॥ इसी समय मगधराज जरासंध जमाईके मरनेसे अत्यन्त दुःखित हो, असंख्य सेना इकट्ठीकर मथुरामें आया ॥ १७ ॥ मगधराजने इस प्रकार सत्रह बार मथुरा नगरीपर आक्रमण किया था,किन्तु कृतबुद्धि महामति मधुपुरनिवासी कृष्णने अपनी बुद्धिसे सत्रहों बार उसको पराजित किया ॥ १८ ॥ अन्तमें जरासंधने यादवोंको भयावह समस्त म्लेच्छके अधिपति वीर्य सम्पन्न कालयवनको मथुरामें आक्रमण करनेको भेज दिया ॥ १९ ॥ मधुसूदन कृष्ण यवनको आता सुन संपूर्ण यादव सत्तम और बलदेवजीको बुलाकर कहने लगे, हे महाभागगण ! ॥ २० ॥ इस समय हमारे घोर शत्रु जरासंधसे महाभय उत्पन्न होता है, अब कालयवन आता है, अतएव क्या करना चाहिये ? ॥ २१ ॥ गृह, भवन, धन और सेना परित्याग करके प्राण रक्षा ही कर्त्तव्य है आप जानते हैं. जिस स्थानमें सुखसे वास किया जाय. वही पैतृक स्थान है ॥ २२ ॥ जिस स्थानमें वास करनेसे सदा उद्वेग (दुचिताई) उपस्थित हो. वह स्थान कुलोचित होनेसे भी उसमें वास करना उचित नहीं है इस कारण सुखसहित वास करनेकी इच्छा हो तो पर्वत और सागर-निकटवर्त्ती प्रदेशमें वास करना चाहिये

॥ २३ ॥ जिस स्थानमें वैरीका भय नहीं होता. पण्डितगण उसी स्थानमें वास करते हैं भगवान् हरि शेषशय्याका आश्रय करके समुद्रके भीतर सुखपूर्वक शयन करते हैं ॥ २४॥ बोध होता है. त्रिपुरारी महादेवजी भी इसी कारण कैलासपर्वतमें वासकर रहे हैं कि शत्रुभय न हो मैंभी इस स्थानमें शत्रुसे दुःखी हुआ हूं. इसकारण अब इस स्थानमें मेरा रहना युक्तिसंगत नहीं है ॥ २५ ॥ हम स्वजन और धनादिसंग लेकर द्वारावती नगरीमें जाय पक्षिराज गरुड़ने मुझको उस द्वारावतीका विषय भलीभांति विदित किया है ॥ २६ ॥ वह मनोहर नगरी रैवतक नामक पर्वतके समीप समुद्रके तटपर वसी हुई है व्यासजी बोले प्रधान प्रधान यादवगणोंने श्रीकृष्णके इसप्रकार हितकर वचन सुन ॥ २७ ॥ संपूर्ण स्वजन और वाहनोंके सहित उस स्थानमें जानेकी इच्छा की तब उनके जो सब ऊंट घोड़े और महिषादि थे ॥ २८ ॥ उनको इकट्ठा कर और संपूर्ण शकटों (गाडियों) को धन रत्नादिसे भर नगरसे बाहर हुए राम और कृष्ण आगे आगे चलने लगे ॥ २९॥ पीछे पीछे सब यादवगण और आगे २ प्रजागणके झुंडके झुंड चले वे कुछ दिनों चलकर द्वारावती पहुँचे ॥ ३० ॥ अनन्तर द्वारकाके जो जो स्थान पुराने और नष्ट होगये थे श्रीकृष्णने शिल्पकारोंसे उन सब स्थानोंका संस्कार कराया बलराम और केशव यादवोंको उस स्थानमें रख ॥ ३१ ॥ आप दोनों जन शीघ्र मथुरामें आय उस जनशून्य पुरीमें वास करने लगे इस ओर महाबलशाली यवनराज उसी समय मथुरामें आनकर उपस्थित हुआ ॥ ३२ ॥ श्रीकृष्ण यवनपतिके आनेका वृतान्त जानकर नगरके बाहर निकले जनार्दन भगवान् मधुसूदन ॥ ३३॥ पीतवसनमें सुसज्जित होकर हँसते हँसते पैदलही कालयवनके सन्मुख उपस्थित हुए. क्रूरमति यवनपतिने कमललोचन श्रीकृष्णको सन्मुख उपस्थित देख ॥ ३४ ॥ पकड़नेको पैदलही उनका अनुसरण किया तब भगवान् मधुसूदन जिस स्थानमें महाबल राजर्षि मुचुकुन्द गाढ़निद्रामें मग्न था ॥ ३५ ॥ कालयवनको लेकर क्रमक्रमसे उसी स्थानमें जाकर उपस्थित हुए श्रीकृष्ण मुचुकुन्दको देखतेही उसी स्थानमें छिपगये ॥ ३६ ॥ तब यवनराजने भी वहाँ पहुँच उस निद्राभिभूत राजर्षिको देखा उस क्रूरमति यवनने उनको वासुदेव जान उनके अंगपर पदाघात किया॥ ३७॥ महाबल नृपति मुचुकुन्द जागरितहो क्रोधसे लोहितलोचन हुए और तत्काल उस पापिष्ठ यवनको दृष्टिसे भस्म कर दिया यवनको भस्म करके नृपति मुचुकुन्दने कमललोचन श्रीकृष्णका दर्शन किया

॥ ३८ ॥ फिर वह देवप्रवर वासुदेवको प्रणाम करके वनमें चला गया इसके उपरान्त श्रीकृष्ण बलदेवजीके सहित द्वारका नगरीमें आय ॥ ३९ ॥ उग्रसेनको राजा कर यथेच्छ विहार करने लगे. फिर कुछ काल बीतने पर जनार्दनने शिशुपालके विवाहमें विदर्भराज भवनमें जो स्वयंवरसभाका आडम्बर हुआ था. वहांसे रुक्मिणीको हरण करके ॥ ४० ॥ राक्षस विधिके अनुसार उसका पाणिग्रहण किया. हे महाराज! इसके उपरान्त उन्होंने जाम्बवती सत्यभामा मित्रविन्दा ॥ ४१ ॥ कालिन्दी लक्ष्मणा भद्रा और नाग्नजिती (नग्नजित राजाकी कन्या) इनको भिन्न भिन्न समयमें लाय विवाह किया ॥ ४२ ॥ यह आठ स्त्रियेंही श्रीकृष्णकी परमशोभना महिषी थीं प्रथम रुक्मिणीके प्रियदर्शन प्रद्युम्न नामक पुत्रको उत्पन्न करनेपर ॥ ४३ ॥ श्रीकृष्णने उसका जातकर्मादि समापन किया इसके उपरान्त शम्बरनामक बलवान्दानव सूतिकागृहसे उस बालक पुत्रको हरण कर ॥ ४४ ॥ अपनी नगरीमें ले जाय मायावतीके हाथमें समर्पण किया वासुदेव श्रीकृष्णपुत्रको हरण हुआ जान अति शोकातुर हुए ॥ ४५ ॥ और भक्तियुक्त मनसे भगवतीकी शरणागत हुए जिन्होंने लीलापूर्वकही वृत्रासुर इत्यादि दैत्योंको निहत किया है ॥ ४६ ॥ श्रीकृष्ण परममहत् अक्षर संयुक्त कल्याणदायक मधुरस्वरसे उन्हीं योगमायाकी स्तुति करने लगे ॥ ४७॥ हे जननि ! मैं ने पूर्वजन्ममें धर्मपुत्र होकर बदरीवनमें तपस्या करके आपको सन्तुष्ट किया है और अनेक भाँतिके उपहारोंसे आपका पूजन किया है. हे मातः ! आपके प्रति मेरा जो भक्तिभाव है वह क्या आप भूलगई हैं ? ॥ ४८ ॥ हे अम्ब ! क्या कोई दुराशय शत्रु सूतिकागारसे मेरे शिशु सन्तानको हरण करके ले गया है वा कौतुक देखनेके लिये ही यह कार्य हुआ है ? किन्तु मुझको बोध होता है कि निःसंदेह कोई शत्रुपक्षीय पुरुष अपमानित करनेके निमित्त बालकको हरण करके ले गया है जो हो हे मातः ! आपके भक्तजनोंकी लज्जा जानी इसप्रकार कभी उपयुक्त नहीं है ॥ ४९ ॥ हे मातः ! मेरी यह द्वारावती अत्यन्त रक्षित है इसमें महान् दुर्ग बने हुए हैं जिसमें फिर मेरा घर इसके मध्यभागमें अवस्थित है फिर अन्तःपुरमें सूतिकागृह है तोभी अदृष्टदोषसे ही मेरा यह बालक पुत्र हृत हुआ है यही कहना चाहिये ॥ ५० ॥ हे जननि ! मैं शत्रुपुरीमें भी नहीं गया यादवगणभी वहां नहीं गये; यह द्वारावती श्रेष्ठ योधाओंसे रक्षित है तो किसप्रकार मेरी बालकसंतान हरी गई. हे जननी ! मुझको ज्ञात होता है यह आपकी ही मायाका कार्य है हे देवी !

आपकी मायाका ऐसा प्रभाव तो तीनों लोकमें ही होता है ॥ ५१ ॥ हे देवि ! जब मैं ही आपके गुह्यतम चरित्र नहीं जानता तब देहाभिमानी तुच्छबुद्धि जीवोंमें ऐसा कौन है ? जो आपके चरित्र जाननेमें समर्थ हो ? मेरा बालक पुत्र कहां गया ? किसने उसको हरण किया ? मेरे रक्षकोंने कुछ नहीं देखा. हे अम्बिके ! जानपड़ता है यह आपकीही कल्पित मायाजवनिका मात्र है ॥ ५२ ॥ हे जननि ! आपके पक्षमें यह आश्चर्यका विषय नहीं है क्योंकि पतिव्रता रोहिणी देवीके दूर देशमें अवस्थित और पुरुषसंगसे हीन होनेपर भी आपने मेरे सामने पंचममासमेंही मेरी माताके गर्भसे पुत्रको मायाद्वारा सञ्चलित करके फिर बलदेवको प्रसव कराया था सो भी प्रसिद्ध है ॥ ५३ ॥ हे मातः ! आपही सदा गुणोंके द्वारा इस संपूर्ण जगत्की सृष्टि पालन और विनाश करती हैं. हे अम्ब ! आपके अप्रमेय पापहारक चरित्र कौन जानसक्ता है. हे मातः ! आप बाहुल्यरूपसे इस अखिलके अखिल कार्यका निर्वाह करती हैं इसमें संदेह नहीं ॥ ५४ ॥ आपही प्रथम मनुष्यको पुत्रजन्मका आनंद उत्पन्न कराय फिर पुत्र–विरहका दुःख देकर ललितविहार द्वारा सदाही क्रीडा करती हैं नहीं तो मेरे यहां पुत्रउत्सव वृथा क्यों होता ॥ ५५ ॥ इस बालककी माता दिन रात कुररीके समान रोती है वह नित्य मेरे समीप आनकर अपने मनकी वेदना कहती है. हे कृपामयी ! आप अपरिमित प्रभावसंपन्न होकरभी क्या मेरा यह कष्ट नहीं जान सक्ती? क्योंकि हे मातः! आपही भवपीडित जनका एक मात्र आश्रय हैं इसमें संशय नहीं ॥ ५६ ॥ हे देवि ! तत्त्वके जाननेवाले मुनिलोग कहते हैं कि मनुष्यके घर पुत्रजन्मही सुखकी सीमा है और पुत्रका विनाश ही दुःखकी परम अवस्था है अतएव हे जननि ! अब मैं इस विषयमें क्या करूं?अधिक क्या प्रथम पुत्रके नष्ट होनेसे इस समय मेरा हृदय विदीर्ण हुआहै॥५७ हे मातः! मैं आपके तुष्टिकर यज्ञ व्रत और पूजा इत्यादि संपूर्ण दैवकार्यका अनुष्ठान करूंगा आप मेरा दुःख दूर कीजिये. हे जननि ! यदि मेरा पुत्र बचा हो तो एक बार मुझको दिखाओ हे मातः ! आपके अतिरिक्त शोक नष्ट करनेमें दूसरा कोई समर्थ नहीं है ॥ ५८ ॥ व्यासजी बोले जो लीलापूर्वक ही भूभारहरणादि देवतागणोंसे भी असाध्य संपूर्ण कार्य संपादन करते हैं. उन जगद्गुरु श्रीकृष्णने जब देवीका इस प्रकार स्तव किया. तब वह प्रगट होकर उनसे कहने लगी ॥ ५९ ॥ हे देवेश !

अब शोक मत करो. पूर्वमें तुम्हारे प्रति एक शाप था, इसी कारण शम्बरने अपनी आसुरी मायाके प्रभावसे तुम्हारे पुत्रका हरण किया है ॥ ६० ॥ अतएव तुम्हारा पुत्र जब सोलह वर्षका होगा, तब वह मेरे प्रसादसे शम्बरदैत्यको बलपूर्वक मारकर आवेगा. इसमें संदेह नहीं है ॥ ६१ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! चण्डविक्रमा देवी चण्डिका इसप्रकार आश्वासप्रद वचनोंसे समुझाकर अन्तर्धान होगई तब भगवान् श्रीकृष्ण भी पुत्रशोकको छोड़ सुखपूर्वक काल व्यतीत करने लगे ॥ ६२ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे भाषायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः २५.

राजाने कहा हे मुनिवर ! विष्णुके अंशस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णकी दुःखोत्पत्तिका विषय सुनकर आपकी बातमें मुझको संशय उत्पन्न होताहै ॥ १ ॥ देखो, भगवान् वासुदेव साक्षात् नारायणके अंशसे उत्पन्न थे. तो फिर शम्बरासुरने सूतिकागृहसे किसप्रकार उनके पुत्रकाभी हरण किया? ॥ २ ॥ एक तो मनोरम द्वारका नगरी भलीभांति रक्षित थी, तिसपरभी फिर सूतिकागृह उसके मध्यमें स्थित था, ऐसे स्थानमें इस दैत्यने किसप्रकार प्रवेश करके पुत्रका हरण किया ? ॥ ३ ॥ हे सत्यवतीतनय! वासुदेव क्यों उसको नहीं जानसके ?यह विषय मुझको अद्भुत बोध होता है, और मनमें परम आश्चर्यरसका उदय होता है॥ ४॥ हे ब्रह्मन् ! केशव मूर्त्तिके द्वारकामें उपस्थित रहनेपर भी किसप्रकार सूतिकागृहसे बालकका हरण हुआ ? और किसलिये वह उसको नहीं जान सके इसका कारण वर्णन कीजिये ॥ ५ ॥ व्यासजी बोले हे राजन्! मनुष्योंकी बुद्धिको मोहित करनेवाली शाम्भवी मायाही इस विषयका कारण है. यह लोकमें विख्यात है. इस संसारमें ऐसा कौन है?जो मायासे मोहित न हो ॥ ६ ॥ जीवगण जब मनुष्यजन्मको प्राप्त होते हैं तब उनमें सब मनुष्योंके ही गुण वर्त्तमान रहते हैं. कुछ देवता वा असुरोंके गुण वर्त्तमान नहीं रहते॥ ७॥ हे नराधिप ! मनुष्योंके देहधारण करनेपरही भूंख, प्यास, निद्रा, भय, तन्द्रा, मोह, शोक, संशय हर्ष, अभिमान, जरा, मरण, अज्ञान, ज्ञान, अप्रीति, ईर्षा, असूया, मद, और भ्रम

यह सब देहजात भाव उत्पन्न होते हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥ देखो श्रीरामचन्द्र निशाचर मारीचके मायाबलसे हेममय मृगरूप धारण करके सम्मुख उपस्थित होनेपर भी कुछ नहीं जानसके. फिर सीताहरण और जटायुमरण ॥ १० ॥ तथा अभिषेक के दिन वनगमन और उनके शोकमें पितृमरण. इन सब बातको भी कुछ नहीं जानसके ॥ ११ ॥ रावणने जब बलपूर्वक जानकीको हरण किया. तब वह इसके पहले कुछ नहीं जान सके, केवल वन वनमें अज्ञानीके समान ढूंढते हुए फिरे थे ॥ १२ ॥ इसके उपरान्त वह वानरगणोंकी सहायतासे इन्द्रपुत्र वालीको मारकर समुद्रमें पुल बांध उसके पार हुए थे ॥ १३ ॥ उन्होंने सीताको ढूंढनेके लिये प्रधान प्रधान वानरगणोंको सब और भेजा था और रणांगणमें घोरतर युद्ध करके महत् दुःखभोग किया था ॥ १४ ॥ महाबलशाली रघुनंदन श्रीरामचन्द्रजी नागपाशमें बँधगये थे, फिर गरुड़ने आनकर उनको मुक्त किया ॥ १५ ॥ इसके उपरान्त उन्होंने कुपित होकर कुंभकर्ण, निकुंभ, मेघनाद और रावणका विनाश किया ॥ १६ ॥ उन जनार्दन श्रीरामचन्द्रजीने सीताकी निर्दोपता न जानकर उनको शुद्ध कराया और विशेष परीक्षा लेनेके लिये अग्निमें प्रवेश कराया था ॥ १७ ॥ तदनन्तर दशरथ तनय श्रीरामचंद्रजीने लोकापवादके भयसे दोपरहित प्रेयसी सीताको दूषित जानकर त्याग किया ॥ १८ ॥ वनमें लवकुशनामक उनके जो दो पुत्र उत्पन्न हुए उनको वह नहीं जान सके फिर महर्षिवाल्मीकिके कहदेनेपर वह जान सके थे ॥ १९ ॥ और देखो, रामचंद्र जानकीके पाताल जानेका विपय कुछ भी नहीं जान सके और वे एक समय कुपित होकर भ्राताके मारनेमें उद्यत हुए थे ॥ २० ॥ खर निशाचरके मारनेवाले श्रीरामचन्द्रजी कालपुरुषके आनेका वृत्तान्त नहीं जानसके और उन्होंने मनुष्यदेह धारण करके मनुष्योंकेही कर्म किये थे । इसी प्रकार यदुनंदन श्रीकृष्णने भी मनुष्यजन्म ग्रहण करके संपूर्ण कार्य मनुष्यके ही किये थे, इस विषयमें फिर संदेह क्या है ? ॥ २१ ॥ देखो कृष्ण प्रथमही कंसके भयसे गोकुलमें चले गये थे, फिर जरासंधके भयसे द्वारावती नगरीमें भागे ॥ २२ ॥ और उन्होंने सनातनधर्म जान कर भी शिशुपालकी वरी रुक्मिणीका हरण किया था, इस कार्यमें उनका अत्यन्त अधर्म हुआ था ॥ २३ ॥ शम्बर दैत्यके बालक पुत्रको हरण करनेपर उन्होंने शोक किया था, फिर भगवतीसे उसको जानकर हर्षयुक्त हुए थे, तो भलीभांति जाना जाता है कि,

साधारण मनुष्योंके समान सम्पत् विपद्में उनको भी हर्ष विषाद उपस्थित होता था ॥ २४ ॥ इसके उपरान्त पारिजात वृक्षके निमित्त स्वर्गमें जाय सत्यभामाकी आज्ञासे इन्द्रके संग जो युद्ध किया था, इससे वे स्त्रीके वशीभूत थे, यह स्पष्टही प्रकाशित होता है ॥ २५ ॥ इस युद्धमें चक्रधर हरिने देवराज इन्द्रको पराजित करके मानिनीकी मानरक्षाके निमित्त कल्पवृक्ष हरण किया था ॥ २६ ॥ किन्तु सत्यभामाने फिर हरिको वृक्षमें बांधकर नारदको दिया इसप्रकार हरिने उसके मानकी रक्षाकी ॥२७॥ फिर उसी भामिनीने कनक देकर उनको छुड़ाया था अनेक गुणसंपन्न प्रद्युम्न इत्यादि रुक्मिणीके पुत्रोंको देखकर ॥ २८ ॥ जाम्बवन्तीने अतिदीनभावसे उनके निकट शोभायमान सन्ततिके निमित्त प्रार्थना की श्रीकृष्ण उसके पुत्रार्थ तपस्याका निश्चय होकर पर्वत परगये ॥२९॥ जिस स्थानमें शिवभक्त उपमन्यु मुनि वास करते थे, उसी स्थानमें गये, वह हरि, पुत्रकामनासे उपमन्युको दीक्षागुरु कर ॥३०॥ पाशुपतमंत्र ग्रहण और मस्तक मुंडन पूर्वक दंडी हुए और वहां प्रथम मासमें फलमात्र आहार करके॥३१॥शिवध्यान परायण और शिवमंत्र जपमें निरत होकर उन्होंने उग्रतर तपस्याकी थी दूसरे महीनेमें जलमात्र पान करके एक चरणसे खड़े रहे ॥ ३२ ॥ तीसरे महीनेमें केवल वायुभक्षण पूर्वक पादांगुष्ठके अग्रभागसे खड़े होकर तपस्या करने लगे इसप्रकार कुछ काल व्यतीत होनेपर छठे महीनेमें इन्दुमौलि भगवान् रुद्रदेवने उनकी भक्तिसे प्रसन्न होकर ॥ ३३ ॥ उस स्थानमें उनको दर्शन दिया महादेवजीने बैलपर चढ़ देवतोंसे युक्त ॥ ३४ ॥ ब्रह्मा और विष्णुके सहित इन्द्रादि देवताओंसे परिवृत यक्ष तथा गंधर्वगणोंसे सेवित हुए वहां आय वासुदेवसे कहा॥३५॥ हे महामते यदुनंदन कृष्ण! मैं तुम्हारी उग्र तपस्यासे बहुत संतुष्ट हुआ हूं. अब तुम अपना वांछित वर मांगो, मैं वही दूंगा॥३६॥मैं संपूर्ण भक्तगणोंकी अभिलाषा पूर्णकारी हूं, मेरा साक्षात्कार प्राप्त होनेसे ऐसी क्या कामना है, जो पूर्ण न हो, व्यासजी बोले भगवान् देवकीतनय शंकर देवको प्रसन्न देखकर ॥ ३७ ॥ प्रेमाकुलित चित्तसे उनके चरणकमलोंमें दण्डके समान गिरपड़े और वही सुरेश्वर सनातन वासुदेव शंभुके आगे खड़े होकर मेघके समान स्वरसे उनकी स्तुति करने लगे श्रीकृष्ण बोले हे देव देव हे जगन्नाथ! आपही सब जीवोंकी दुर्गतिविनाश करते हैं ॥३८॥३९॥ हे असुरनाशन! आपही इस विश्वके

उत्पन्न कर्त्ता और कारणस्वरूप हैं अतएव आपको नमस्कार करता हूं हे नीलकंठ! आपको प्रणाम करता हूं हे शूलधारिन्! आपको मैं वारं वार नमस्कार करता हूं ॥ ४० ॥ हे शैलजावल्लभ! आपही दक्षयज्ञके विनाशक हैं मैं आपको नमस्कार करता हूं, आपका दर्शन करके मैं धन्य, और कृतकृत्य हुआ ॥ ४१ ॥ हे सुव्रत! आपके चरणकमलोंमें प्रणाम करनेसे मेरा जन्म सफल हुआ हे अखिलगुरो! हे त्रिलोचन! मैं कामिनीमय पाशसे इस संसारमें बँध रहा हूं ॥४२॥ अब रक्षा पानेको आपकी शरणागत हुआ हूं हे दुःख विनाशन! मैं मनुष्यजन्म पाकर अत्यन्त खिन्न (दुःखी) हुआ हूं ॥ ४३ ॥ हे भव! संसारके भयसे डरकर आपकी शरण ग्रहण की है अब आप मेरी रक्षा कीजिये हे मदनदाहन! मैंने गर्भवासके समय महादुःख पाया है॥ ४४ ॥ फिर कंसके भयसे नन्दके गोकुलमें जाकर निरंतर दुःखभोग किया है वहां गोपोंकी आज्ञासे गोचारणपूर्वक नंदका गोपालहो ॥४५॥ और गोधूलिद्वारा धूसरित केश हो सदाही वृन्दावनके निविड़वनमें घूमता फिरा हूं हे विभो! मैंने म्लेच्छराज कालयवनके भयसे अत्यन्त त्रसित हो द्वारावतीमें गमन किया ॥ ४६ ॥ दुर्लभ पितृस्थान मथुरापुरी छोड़ा हे प्रभो! ययातिके शापके कारण धर्मकी रक्षाके निमित्त मैं ने उत्कृष्ट ॥ ४७ ॥ पुष्ट राज्यभी उग्रसेनको देदिया है. मेरे पूर्वजगणोंने उनको ही यादवोंका राजा किया था मैं उन्हींके अनुसार उनको राज्य दे उनका दासत्व (सेवा) करता हूं हे शम्भो! गार्हस्थ्य आश्रम अत्यन्त दुःखदायक, स्त्री-वश्य और धर्मनाशक है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ इससे सदा पराधीनता है. संसार-बंधन छूटनेकी वार्त्ता उसमें अत्यन्तही दुर्लभ है हेमदना-न्तक! जाम्बवतीनामक मेरी एक भार्या ने रुक्मिणीके पुत्रको देखकर ॥ ५० ॥ सुशोभन संतानलाभ करनेको मुझे तपस्या करने भेजा है. हे देवेश! हे जगद्गुरो! मैं इस समय कामनाके वशीभूत हूं पुत्रके निमित्त तपस्या करनेमें प्रवृत्त हुआ हूं ॥ ५१ ॥ हे देव! इस पुत्रकी प्रार्थनासे मुझको अत्यन्त लज्जाबोध होती है आप भक्तवत्सल. मुक्तिप्रद और सब देवताओंके ईश्वर हैं. आराधनाद्वारा ॥५२॥ आप को प्रसन्न करके कौन मूढ विनाशशील तुच्छ फलकी प्रार्थना करेगा हे जगतीपते!

हे विभो! आपको साक्षात् मुक्तिदाता स्वरूप जानकर भी मायासे मोहित हो स्त्रीकी प्रलोभनासे मोक्षतत्त्वको त्यागकर पुत्रसुखकी प्रार्थना करता हूं इससे मेरे समान मूढ दूसरा कौन है हे शंकर! संसारःदुःखका घर संसारदुःखका कारण ॥५३-५४॥ संसार अनित्य और विनाशधर्मशील है यद्यपि मैं यह सब जानता हूं, किन्तु तौभी मैं संसारसे विरत नहीं होता मैं ने,नारायणके अंशरूपी होकर भी शापके वशीभूत हो पृथ्वीमें जन्म लिया ॥५५॥ माया-पाशमें बँध, अनेक दुःख भोगनेको आया हूं व्यासजी बोले हे महाराज! शत्रुघातन गोविन्दके इसप्रकार स्तव करनेपर देव देव महादेवने उनसे कहा ॥५६॥ हे कृष्ण! तुम्हारे अनेक पुत्र होंगे तुम्हारी एक शत सोलहहजार स्त्री होंगी ॥५७॥ उन सब स्त्रियोंमें प्रत्येकके गर्भसे दश दश महाबलयुक्त पुत्र उत्पन्न होंगे. इसमें संदेह नहीं प्रियदर्शन शंकर जब यह कहकर मौन हुए॥५८॥ तब श्रीकृष्णने गिरिजाके चरणोंमें प्रणाम किया. तब देवी पार्वतीने वारंवार वासुदेवसे कहा हे महाबाहो! कृष्ण! हे नरश्रेष्ठ! इस संसारमें ॥ ५९ ॥ तुम सब गृहस्थगणोंके आदर्शस्वरूप होगे. फिर सौवर्ष व्यतीत होनेपर विप्रशाप ॥ ६० ॥ और गान्धारीके शापसे तुम्हारा कुलक्षय होगा. तुम्हारे पुत्रगण और अन्यान्य यादवगण मदिरापानसे मोहितहो ॥ ६१ ॥ युद्धस्थलमें परस्पर प्रहार करके नाशको प्राप्त हों गे इसके उपरान्त फिर तुम बलभद्रके सहित देहपरित्याग करके स्वर्गमें जाओगे ॥ ६२ ॥ हे विभो! तुम इस भवितव्य (होनहार) विषय कदापि शोक न करना तुमको जानना चाहिये कि भवितव्यताका प्रतीकार नहीं है ॥ ६३ ॥ अतएव इस विषयमें शोक करना उचित नहीं है यही मेरा सदा मत है हे मधुसूदन! महर्षि अष्टावक्रके शापसे तुम्हारे मरनेके पीछे तुम्हारी भार्याओंको ॥ ६४ ॥ दुर्दान्तदस्युगण हरण करेंगे इसमें संदेह नहीं है व्यासजी बोले हे राजन्! देवी पार्वतीके इस प्रकार वचन कहनेपर शंभु देवताओंके सहित अन्तर्धान होगये ॥ ॥ ६५ ॥ और श्रीकृष्णभी उपमन्युको प्रणामकरके द्वारकामें गये हे राजेन्द्र! यद्यपि ब्रह्मा इत्यादि देवता जगत्के अधीश्वर कहकर विख्यात हैं ॥ ६६ ॥ किन्तु तोभी वह माया सिंधुकी कल्लोलमालासे क्षुभित होते हैं वह काठकी पुतलीके समान मायाके आधीन होकर अवस्थित रहते हैं इसमें संदेह नहीं ॥ ६७ ॥ उनके जैसे

जैसे पूर्वजन्म कृतकर्म हैं परब्रह्मरूपिणी महामाया उनको उसी उसी रूपमें प्रेरणा करती है ॥ ६८ ॥ वह विषम वा करुणारहित नहीं हैं वह भुवनेश्वरी जीवोंकी मुक्तिके निमित्त सदा यत्न करती रहती हैं ॥ ६९ ॥ यदि वह भुवनेश्वरी इस चरा-चर जगत्को उत्पन्न न करतीं और कूटस्थ चैतन्य रूपमें जीवोंकी अधिष्ठात्री न होतीं तो यह संपूर्ण जगत् जड़वत् होकर तामसी मायामें विलीन होजाता इसमें संदेह नहीं ॥ ७० ॥ अतएव देवी भुवनेश्वरी करुणावशसे इस जीवादिसंपूर्ण जगत्को उत्पन्न कर प्रत्येकजीवमें अधिष्ठात्री रह उनके कर्मानुसार उनको प्रेरणा करती हैं ॥ ७१ ॥ इसकारण ब्रह्मादि भी जो मायामें मोहित रहते हैं इसमें फिर संदेहही क्या है? क्योंकि सुर और असुरादि सबही मायाके अन्तर्गत और मायाके आधीन हैं ॥ ॥ ७२ ॥ अतएव हे राजन्! यह निश्चय जानना चाहिये कि केवल वह महादेवी भगवतीही अपनीइच्छानुसार विहार और विचरण करती हैं! वह किसीकेआधीन नहीं हैं इस कारण सर्वान्तःकरणसे महेश्वरीकी सेवा करनी चाहिये ॥ ७३ ॥ इस त्रिभुव-नमें उनकी अपेक्षा अधिक तर वा उत्कृष्टतर वस्तु दूसरी कुछ नहीं है, अतएव उन परमाशक्तिके चरणोंका विना स्मरण किये जन्मकी सफलता नहीं होसक्ती ॥ ७४ ॥ "वह देवी जिस कुलकी अभीष्ट देवता नहीं हैं, उस कुलमें जन्म न हो मैंही वह देवी भगवती हूं, अन्य नहीं, मैं ही ब्रह्म हूं; मैं शोकभागी नहीं" ॥ ७५ ॥ इस प्रकार अभेद ज्ञानसे उन नित्या जगदम्बिकाकी चिन्ताकरे प्रथम गुरुमुखसे फिर वेदान्तश्रवणादि द्वारा भगवतीको जानकर ॥ ७६ ॥ प्रतिदिन एकाग्रमनसे उन आत्मरूपिणीका ध्यान करनेसे शीघ्रही मुक्तिलाभ होगा अन्यथा करोड़ कर्म द्वारा भी मुक्ति प्राप्त होनेकी संभावना नहीं है ॥ ७७ ॥ श्वेताश्वतरादि निर्मलाशय ऋषिगणोंने इन आत्मरूपिणीकी हृदयमें चिन्ता करके भवबंधनसे मुक्तिलाभ कीथी ॥ ७८ ॥ ब्रह्मा विष्णु इत्यादि देवतागण और गौरी तथा लक्ष्मी इत्यादि देवीगणभी उन सच्चिदानंदरूपिणीकी उपासना करती हैं ॥ ७९ ॥ हे विमलात्मन्! राजेन्द्र! तुमने संसारभयसे त्रसित होकर जो जो पूछाथा वह सबही मैंने तुम्हारे निकट वर्णन किया अब क्या सुननेको इच्छा करते हो? ॥ ८० ॥ हे राजन्! यह मैंने तुमसे सब प्रकारके पापोंका नाश करनेवाला पुण्यप्रद परमअद्भुत पुराणा-

ख्यान वर्णन किया ॥ ८१ ॥ जो पुरुष प्रतिदिन इस वेद तुल्य भागवत पुराणकी कथा सुनता है वह सबप्रकारके पापोंसे छूटकर देवीलोकमें जाय महामहिमासे काल व्यतीत करता है इसमें संदेह नहीं ॥ ८२ ॥ सूतजी बोले हे ऋषिगण ! व्यासदेवने यह श्रीमद्भागवतनामक पंचमपुराण पूर्वमें किर्त्तन किया था, मैंने उनसे जिस प्रकार सुना था, आपके निकट भी उसी प्रकार वर्णन किया ॥ ८३ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे पं० ज्वालाप्रसादमिश्रकृत भाषायां पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

१४१८ श्लोकोंमें यह चतुर्थस्कन्ध पूर्ण हुआ. श्रीजगदम्बा मंगल करैं।

शुभमस्तु.

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस-खेतवाडी-(बंबई.)

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ श्रीमद्देवीभागवत।

पञ्चमस्कन्धः ५.

प्रथमोऽध्यायः १.

दोहा—दुस्तर भवसागरहरण, अजा कोटिरविज्योति ॥
मन्दहसनके चरणयुग, वन्दत मंगल होति ॥ १ ॥
सकलकामप्रद भक्तहित, धरत सदा अवतार ॥
जगदम्बाके चरण भज, जो चाहत निस्तार ॥ २ ॥
श्रीरघुपतिकोमलचरण, बार बार मन लाय ॥
यहि पंचमस्कन्धकी, भाषा लिखत बनाय ॥ ३ ॥

ऋषिगण बोले हे सूत ! तुमने श्रीकृष्णके उपाख्यानविषयमें उनके अद्भुत अलौकिक और संपूर्ण पापोंके विध्वंस करनेवाले पवित्र चरित्रोंकी कथा वर्णनकी है ॥ १ ॥ किन्तु हे महाभाग ! तुमने महाप्राज्ञ होकरभी वासुदेव-विषयक कथा संक्षेपसे वर्णन करी. इस लिये हमारे अन्तरमें अनेक संशय उपस्थित हुए हैं ॥ २ ॥ प्रथम तो विष्णुके अंशावतार वासुदेव पुत्रकी कामनासे वनमें जाय कठोर तपस्यामें प्रवृत्त हो शक्ति सहित शिवकी आराधनाको सर्वोत्तम जान उनकी ही आराधनामें रत हुए ॥ ३ ॥ दूसरे जगज्जननी परा प्रकृति श्रीदेवीके अंशरूप होकर भी देवी पार्वती और महादेवजीने वासुदेवको वर दिया ॥ ४ ॥ श्रीकृष्णने ईश्वर होकर भी क्यों उनकी पूजा की ? तो क्या श्रीकृष्ण हर पार्वतीकी अपेक्षा हीनप्रभाव हैं ? यही हमारा संशय है ॥ ५ ॥ सूतजीने कहा हे महाभाग ! महर्षिगण ! श्रीकृष्णके शिवकी आराधना करनेका कारण जो श्रीव्यासदेवजीसे मैंने सुना है सो सुनो, मैं आपके निकट उन्ही श्रीकृष्णकी गुणोंकी गाथा वर्णन करता हूं ॥ ६ ॥ परीक्षितपुत्र बुद्धिमान् जन्मेजयने जब व्यासजीसे यह

वृत्तान्त सुना तब उन्होंने भी उक्त विषयमें अत्यन्त संदेहयुक्त होकर उनसे पूँछा था ॥ ७ ॥ जन्मेजयने कहा हे सत्यवतीतनय ! आपसे परमकारणस्वरूप भगवतीकी अनेकानेक तत्त्वकथा सुनकरभी मेरे मनका संशय दूर नहीं होता। हे महाभाग ! श्रीकृष्णने स्वयं देवादिदेव विष्णुका अवतार होकर भी जो अतिकठोर तपानुष्ठान करके शंभुकी आराधना की थी यही मेरे आश्चर्यका विषय है ॥ ८ ॥ ९ ॥ जो सब जीवोंके आत्मा जगत्‌के एक मात्र अधीश्वर और संपूर्ण सिद्धिप्रदानकरनेमें समर्थ हैं उन प्रभु हरिने प्राकृत मनुष्यके समान किस कारण घोर तपस्याका अनुष्ठान किया ॥ १० ॥ जो श्रीकृष्ण स्थावरजंगममय विश्वकी सृष्टि पालन वा संहार सभी करनेमें समर्थ हैं उन्होंने किसकारण ये कठोर तपका आचरण किया ॥ ११ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! तुमने जो कहा सो सत्य है यद्यपि दानवनिषूदन वासुदेव जनार्दन देवताओंकी भी सृष्टि और पालनादि सब कार्यमें समर्थ हैं ॥ १२ ॥ किन्तु तोभी उन परमेश्वरने मनुष्यदेहधारी होनेसे मनुष्योंके अवलम्बित वर्ण और आश्रमधर्मका अनुष्ठान किया था ॥ १३ ॥ देखो बूढे मनुष्योंकी पूजा, गुरुजनोंके पदवंदन, ब्राह्मणकी सेवा, देवताओंकी आराधना ॥ १४ ॥ शोकके समयमें शोकका उदय हर्षके समयमें हर्षका उदय अपवाद वा दीनता प्रकाश अथवा स्त्रियोंके सहित रतिक्रीडादि ॥ ॥ १५ ॥ अधिक क्या कहूं ? तात्पर्य यह है कि समय समयमें काम क्रोध वा लोभ इत्यादि ये सब कार्यही मनुष्यमात्रसे देह–धर्मके कारण होते हैं अतएव श्रीकृष्ण-स्वरूपसे विशुद्धसत्व प्रधान होनेपरभी गुणमय मनुष्यदेहधारण करके फिर किसप्रकार निर्गुणभाव अवलंबन करते॥ १६ ॥ हे नरनाथ ! सुबल–तनया गांधारी और ब्राह्मणोंके शापसे यादवकुलके ध्वंस होनेपर श्रीकृष्णने देहत्याग किया ॥ १७॥ इसके उपरान्त उन आभीरजातीय तस्करोंके मार्गमें उनकी पत्नियोंको हरण और धन रत्नादि लूटनेपर अर्जुन उनको निवारण नहीं करसके उन्होंने इस समय निर्वीर्यपुरुषके समान केवल आंसू बहाये थे॥ १८॥ कामदेव और अनिरुद्ध इनके द्वारका गृहसे हरण होनेपर वे जो कुछभी नहीं जानसके वह केवल इस मनुष्यदेहकाही व्यवहार धर्म है ॥ १९॥ विशेषतः विष्णुके अंशावतार नारायणऋषि और उनके अंशावतार वासुदेव हैं, अतएव इन वासुदेवने जो शिवकी आराधना की, इसमें फिर आश्चर्यही क्या है ? ॥ २० ॥ सुषुप्तिका आधार भूत जो कारण अपना शरीर है सर्वेश्वर शिव उस कारण देहके अधिष्ठाता स्वरूप हैं, इससे वे विष्णुकेभी जनक हैं अतएव स्वयं विष्णु

भी इसीकारण उनकी पूजा करते हैं ॥ २१ ॥ राम कृष्ण इत्यादि संपूर्ण अवतार उन विष्णुका अंशमात्र हैं. फिर वे क्यों शिवकी पूजा न करें ? अकार भगवान् ब्रह्मा, उकार साक्षात् हरि ॥ २२ ॥ मकार स्वयं भगवान् रुद्र, और अर्द्धमात्राही माहेश्वरी है। इसीसे पण्डितोंने ब्रह्माकी अपेक्षा विष्णुका विष्णुकी अपेक्षा रुद्रका और रुद्रकी अपेक्षा तुरीयरूपिणी महेश्वरीका श्रेष्ठत्व प्रतिपादन किया है ॥ २३ ॥ जो अर्द्धमात्रा किसीसे भी उच्चारित नहीं होती. वही नित्यरूपा देवी उसका स्वरूप है. अतएव संपूर्ण शास्त्रोंमें ही उसका सबकी अपेक्षा श्रेष्ठत्व प्रतिपादित हुआ है ॥ २४ ॥ ब्रह्मासे विष्णु प्रधान, विष्णुसे रुद्रप्रधान हैं. अतएव कृष्णने जो शिवकी पूजा की इसमें फिर संशय करना उचित नहीं है ॥ २५ ॥ शिवकी इच्छानुसार ब्रह्माको वरदेनेको ब्रह्माके ललाटसे मूलरुद्रके अंश दूसरे रुद्र उत्पन्न हुए थे ॥ २६ ॥ मूलरुद्रकी बात तो दूर रहे. वे भी सबके पूजनीय हैं हे राजन् ! परमात्मस्वरूपिणी देवीके प्रभावसे शिवका उत्कर्ष प्रतिपादित हुआ है ॥ २७ ॥ योगमायाके प्रभावसे युगयुगमें विष्णुके इसीप्रकार अनेक अवतार होते हैं. इस विषयमें विचार करनेका प्रयोजन नहीं है ॥ २८ ॥ केवल अच्युतकोही नहीं. वह ईश्वरी ब्रह्मा और महादेवकोभी सदा अनेक अवतारोंके निमित्त क्लेशप्रदान करती है. अधिक क्या वही प्रच्छन्न भावसे नेत्रनिमेषमात्रमें सर्वप्रकारसे विश्व संसारकी सृष्टि, स्थिति और संहार करती हैं ॥ २९ ॥ योगमायाने श्रीकृष्णको सूतिकागृहसे ब्रजमें भेजकर पशुपालपति नंदके घर भलीभांतिसे रक्षाकी. फिर कंसका विनाश करनेकी इच्छासे कृष्णको मथुरामें लेगई उस स्थानमें जरासंधसे भीत होनेपर फिर द्वारावतीमें प्रेरण किया था ॥ ३० ॥ अधिक क्या. उन्होंने सोलह हजार पांचसौ रमणी और अपने अंशसे प्रधान आठ नायिका उत्पन्न करके अनन्तके अवतारस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णको उनके विलासभोगके वशीभूत दासस्वरूप किया था ॥ ३१ ॥ स्त्री अकेली होनेपर भी जब दृढ लोहेकी शृङ्खला [जंजीर] के समान मायाजालमें पुरुषको बांध सक्ती हैं. तब पचास अधिक षोड़श सहस्र रमणी जो उन कृष्णको पालित शुकके समान सब कार्यमें प्रयोग करैं. फिर इससें आश्चर्यही क्या है ॥ ३२ ॥ श्रीकृष्ण सत्यभामाके इस प्रकार वशीभूत हुए थे कि उसकी आज्ञासे अत्यानंदसहित पारिजात पुष्प लेने इन्द्रालयमें गये फिर सुरपतिसे संग्राम करके पारिजात तरु हरणपूर्वक उसको प्रियतमा सत्यभामाके

आलयेंमे महार्ह भूषणस्वरूप करदिया था ॥ ३३ ॥ देखो. उन्हीं श्रीकृष्णने संपूर्ण धर्मकार्यके विधानाभिलाषसे अपने बाहुबलद्वारा शिशुपाल इत्यादिको पराजित कर भीष्मकी कन्या रुक्मिणीका हरणपूर्वक फिर स्वीयधर्मपत्नीरूपमें ग्रहण किया. अतएव पराई स्त्री ग्रहण करनेसे जो पाप होता है. वह विधि कहां रही ? ॥ ३४ ॥ बोध होता है. देह धारणमात्रसे प्राणीगण एकबारही प्रकृतिके कारण अहंकारके दास होजाते हैं. सुतरां तब उसी अधःपातनकारी भीषण मोहसे मोहित होकर शुभ वा अशुभ कार्यका अनुष्ठान करते हैं ॥ ३५ ॥ मूलप्रकृतिसे ब्रह्मा विष्णु तथा हर और प्रकृतिसंभव तामस अहंकारसे स्थावर जंगममय विश्व संसार उत्पन्न हुआ है ॥ ३६ ॥ कमलयोनि पितामह जब अहंकारसे वियुक्त होते हैं. तभी विमुक्त रहते हैं. यह न होनेसे संसार कार्य करते हैं ॥ ३७ ॥ अहंकारका त्याग करनेसे ही जीव विमुक्त होता है. तब गृह, धन, स्त्री, पुत्र और सहोदर किसीका बंधन नहीं रहता. किन्तु अहंकारमें बँधनेसे ही जीव उनके वशमें हो जाता है ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! अहंकार प्राणीमात्रकाही बंधनकारक है. सुतरां अहंबुद्धिसे ही "मैंने अपनी सामर्थ्यसे यह कार्य किया है, करता हूं ॥ ३९ ॥ वा करूंगा" इत्यादि ज्ञानसे जीव स्वयंही बँधता है मिट्टीके पिंडविना घट उत्पन्न नहीं होता, इसी प्रकार कारणके विना कभी कार्यकी उत्पत्ति नहीं होसक्ती सुतरां विष्णु अहंकारमें बंधकरही विश्वसंसारका पालन करते हैं ॥ ४० ॥ ४१ ॥ मनुष्यमात्रही अहंकारमें बँधकर सर्वदा चिन्तासागरमें डूबे रहते हैं, किन्तु जब अहंकारसे मुक्त होते हैं तो फिर चिन्तामें मग्न क्यों रहेंगे ॥ ४२ ॥ अहंकारसे मोह उत्पन्न होता है. मोहसे संसार इत्यादि होता है,नहीं तो वह मंगलमय हरि अनेक योनियोंमें अवतीर्ण क्यों हों ? ॥ ४३ ॥ अहंकारहीन पुरुषको मोह नहीं होता, इसकारण संसारमें भी प्रवृत्ति नहीं रहती हे महाराज ! अहंकार गुणभेदसे तीन हैं, सात्विक, राजसिक और तामसिक ॥ ४४ ॥ वह तीनों अहंकारही सृष्ट्यादि कार्यानुसार क्रमसे ब्रह्मा, विष्णु और महादेवमें विराजमान हैं हे राजेन्द्र ! यह जो केवल मैं ही कहता हूं, ऐसा नहीं है प्रजापति, हरि और हर इन प्रत्येकमें ॥ ४५ ॥ जो विविध अहंकार सदा वर्त्तमान रहते हैं, वह तत्त्वज्ञानी महर्षि मात्रही सदा कहते हैं, अतएव उस अहंकारसेही जो यह बद्ध हैं, इसमें संशय नहीं है ॥ ४६ ॥ मन्दबुद्धि पण्डितजन भी मायासे मोहित होकर कहते हैं कि विष्णु अपनी इच्छासे नाना अवताररूपमें उत्पन्न होते

है ॥ ४७ ॥ किन्तु जब कि मूर्ख लोगभी अत्यन्त क्लेशकारी गर्हित अतिशय संकट स्थल गर्भवासकी अभिलाषा नहीं करते तब चक्रधारी विष्णु किसकारण गर्भवासकी अभिलाषा करैंगे ? ॥ ४८ ॥ मधुसूदन कौशल्या और देवकीके मलादिसे दूषित गर्भमें अपनी इच्छासे आये थे, वैष्णवलोग यही बात कहते हैं ॥ ४९ ॥ किन्तु क्लेशकर विषके समान उस गर्भमें शत शत चिन्ता उदय होती हैं, अतएव हरि वैकुण्ठवास त्यागकर जो गर्भमें वास करैं तो उसमें सुख क्या है ? ॥ ५० ॥ विशेष करके देखा जाता है कि पुरुष दुःसहगर्भवासके क्लेशसे छूटनेको ही तपस्या यज्ञ और अनेक प्रकारके दान करते हैं ॥ ५१ ॥ भगवान् विष्णु क्या स्वाधीन हैं ? यदि वे अपने स्वाधीन होते तो कभी गर्भमें वास करनेकी कामना नहीं करते ॥ ५२ ॥ अतएव हे महाराज ! यह एक प्रकार स्थिर जानिये कि देवता, मनुष्य, तिर्यक्, अधिक क्या, ब्रह्मासे स्तम्बपर्यन्त समस्त जगन्मण्डल उन्हीं योगमायाके आधीन हैं ॥ ५३ ॥ ब्रह्मा, विष्णु और हर इत्यादि सभी उनकी मायारूप तन्तुसे बँधे हैं, अतएव मायासे बँधकर ही ऊर्णनाभके समान वह क्रीड़ाकी वासनासे अनेक योनियोंमें भ्रमण और बंधन लाभ करते हैं ॥ ५४ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे भाषायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

राजाने कहा हे प्रभो ! आपने महामाया योगेश्वरीका प्रभाव विस्तारपूर्वक वर्णन किया, अब उनके चरित्रकी कथा सुननेको मेरे हृदयमें अत्यन्त कौतूहल उत्पन्न हुआ है, आप उसे वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ उन महेश्वरीसेही यह चराचर संपूर्ण जगत् उत्पन्न है, यह जानकर कौन उस महादेवीके प्रभावकी कथा सुननेकी वासना नहीं करता है ?॥ २ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! तुम अत्यन्त बुद्धिमान् हो मैं तुम्हारे निकट यह विषय विस्तार सहित वर्णन करूंगा, श्रद्धायुक्त और शान्तके निकट जो उसका वर्णन नहीं करते, उनका अन्तःकरण अत्यन्त हीन है, इसमें संदेह नहीं ॥ ३ ॥ हे भूपते ! पूर्वमें पृथ्वीमें महिषासुरके महीपति होनेपर देवता और दानवोंकी सेनामें घोर संग्राम उपस्थित हुआ था ॥ ४ ॥ हे राजेन्द्र ! अपनी मनोरथ सिद्धिके निमित्त वह महिष सुमेरु पर्वतपर जाय देवताओंको विस्मय कर उत्कृष्ट और कठोरतर तपस्या

करने लगा ॥ ५ ॥ हे महाराज! हृदयमें इष्टदेवताका ध्यान करते करते उसको दश हजार वर्ष पूर्ण हुए तब सर्वलोक पितामह ब्रह्माजी उसपर संतुष्ट हुए ॥ ६ ॥ चतुराननने हंसपर चढ़ उस स्थानमें आकर महिषासुरसे कहा हे धर्मात्मन्! तुम अपने अभिलाषित वरकी प्रार्थना करो, मैं वही दूंगा ॥७॥ महिषने कहा हे प्रभो! कमलयोने! मैं अमर होनेकी वासना करता हूं, अतएव हे देवदेव पितामह! जिससे मुझको मृत्युका भय न रहे आप वही कीजिये ॥८॥ ब्रह्माजीने कहा हे महिष! उत्पत्ति होनेपर मरण और मरण होनेपर उत्पत्ति, यही जीवगणोंका सनातन धर्म है अतएव जन्म लेनेसे मृत्यु और मृत्यु होनेपर जन्म अवश्यही होगा, इसमें संदेह नहीं ॥ ९ ॥ हे दानवपते! अधिक क्या? कालसे महागिरि, महासागर और संपूर्ण प्राणीगण सर्वथा विलीन होंगे ॥ १० ॥ हे महीपाल! तुम साधु हो, अतएव अमर होनेके अतिरिक्त तुम्हारे मनमें जो अभिलाषा हो, सो कहो, मैं वही प्रदान करूंगा ॥ ११ ॥ महिषने कहा हे पितामह! देव दानव और मनुष्य जाति पुरुषसे मेरी मृत्यु नहीं होवे स्त्रियोंको मैं गिनता नहीं अबलाओंमें कोई मुझको नहीं मारसक्ती ॥ १२ ॥ अतएव हे पद्म-योने! कामिनीसेही मेरी मृत्यु स्थिर कीजिये, कामिनीयोंका बल बहुत थोड़ा है अतएव वह मुझको किसप्रकार मारनेमें समर्थ होंगी? ॥ १३ ॥ पितामहने कहा हे दानवेन्द्र! किसी समय नारीसेही अवश्य तुम्हारी मृत्यु होगी, किसी पुरुषजातिसे तुमको मृत्युका भय नहीं है। हे महिष! तुमने सौभाग्यशाली होनेसेही यह वर प्राप्त किया ॥ १४ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन्! ब्रह्माजी उसको इसप्रकार वर देकर अपने स्थानमें चले आये और वह दानवेन्द्रभी हर्षसहित अपने स्थानको चला गया ॥ १५ ॥ राजाने कहा हे भगवन्! महाबल महिषा-सुर किसका पुत्र था? किसप्रकार जन्मग्रहण किया था? और किसप्रकार उसने महात्मा होकर भी महिष देह प्राप्त किया? ॥ १६ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज! रंभ और करम्भनामक दनुके दो पुत्र हुए. यह श्रेष्ठदानवयुगल भूमण्डलमें विख्यात हैं॥ ॥ १७ ॥ हे महाराज! उनके पुत्र नहीं हुआ. सुतरां अभिलाषित पुत्रकी काम-नासे वह पंचनदके पवित्र जलमें जाय अनेक वर्षपर्यन्त तपस्या करनेलगे ॥ १८ ॥ इनमें करम्भ जलमें निमग्न होकर महत्तपस्याके अनुष्ठानमें निरत हुआ और रम्भ यक्षि-णीका स्थान रसालवटवृक्षअवलम्बनपूर्वक अग्निकी आराधना करने लगा ॥ १९ ॥ रंभ पंचाग्निसाधनामें निरत हुआहै. शचीपति यह वृत्तान्त जान दुःखित चित्त हो दोनों

दानवोंके समीप गये ॥ २० ॥ वासवने पंचनदमें जाय कुंभीर (ग्राह) रूप धारणपूर्वक करम्भदानवके दोनों पैर पकड़ उसका विनाश किया ॥ २१ ॥ वृत्रनिषूदन वासवने उसी प्रकार दुष्ट करंभको मारा रम्भ भ्राताकी मरणवार्त्ता सुनकर अत्यन्त कुपित हुआ ॥ २२ ॥ तब रंभने क्रोधसे तत्काल वामहस्तमें केश ग्रहणपूर्वक अपना मस्तक छेदन करके अग्निमें होम करनेकी अभिलाषा की ॥ २३ ॥ फिर दक्षिण हाथमें तीक्ष्ण खड्ग लेकर जैसेही मस्तक काटनेमें उद्यत हुआ, उसी समयमें अग्निने उसको ज्ञान दानपूर्वक निषेध करके कहा ॥ २४ ॥ रे मूर्ख दानव! तू अपना मस्तक छेदन करनेकी अभिलाषा करता है? आत्महत्या अतिदुष्कर्म है, किसी प्रकार उससे छूटनेका उपाय नहीं है, अतएव ऐसे कार्यमें क्यों उद्यत हुआ है? ॥ २५ ॥ तू इस समय प्राणत्याग मत करै, मरनेसे तेरा क्या कार्य सिद्ध होगा? अतएव तू अपने मनका अभिलषित वर मांग, मंगल होगा ॥ २६ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज! पावकके यह मधुर वचन सुनकर रंभने केशसमूहत्याग करके कहा ॥ २७ ॥ हे देवेश! यदि आप संतुष्ट हुए हैं, तो मुझको अभिलाषित वरप्रदान कीजिये, जिससे त्रैलोक्यविजयी शत्रुवल विनाशक मेरे एक पुत्र हो ॥ २८ ॥ वह पुत्र सबप्रकार देव, दानव और मनुष्यसे अजय महावीर्यवान् कामरूपी और सबसे सन्मानित हो ॥ २९ ॥ पावकने कहा हे महाभाग! तुमको वांछितपुत्र प्राप्त होगा. अतएव मरनेकी इच्छा छोड़ दो ॥ ३० ॥ हे महाभाग! रंभ तुम जिस स्त्रीकी इच्छा करोगे, उससेही तुम्हारे अधिक बलवान पुत्र होगा, इसमें संदेह नहीं ॥ ३१ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन्! उस दानवश्रेष्ठ रंभने अग्निका मनोरंजन वचन सुन उनको प्रणामकर ॥ ३२ ॥ यक्षगणोंसे परिवृत शोभायमान रमणीय स्थानमें प्रस्थान किया, तब एक सुदृश्यमत्तमहिषी 'दानवश्रेष्ठके दृष्टिगोचर हुई' फिर उसने अन्यरमणी परित्याग पूर्वक उससे ही रमण करनेकी अभिलाषा की! महिषीने भी सहर्ष हो समागमकी वासनासे तत्काल उसकी कामना करी ॥ ३३ ॥ ॥ ३४ ॥ रंभके भी भवितव्यताके वश हो उससे संगम करनेपर महिषी उसके वीर्यसे गर्भवती हुई ॥ ३५ ॥ दानवने भी मनोमत प्रियतमाकी रक्षा करनेके लिये उसको लेकर मनोहर पातालपुरमें प्रवेश किया ॥ ३६ ॥ अनन्तर किसीसमय अन्य एकमहिषने कामसे पीड़ित होकर उक्त महिषीको आक्रमण किया, तब दानव स्वयं उपस्थित होकर उसका विनाश करनेमें उद्यत हुआ ॥ ३७ ॥ दानवने अपनी

पत्नीकी रक्षा करनेके निमित्त वेगसहित आनकर उस महिषको आघात किया फिर उस काममोहित महिषने भी तत्कालसिंगोंसे रंभपर आघात किया ॥ ३८ ॥ महिषने दोनों तीक्ष्ण सींगोंसे उसके हृदयमें ऐसा दारुण प्रहार किया कि, रम्भ उसके आघातसे सहसा पृथ्वीतलमें गिरकर मूर्च्छित और अन्तमें मृत्युको प्राप्त हुआ ॥ ३९ ॥ स्वामीकी मृत्यु होनेपर महिषी कातर हो भयसे तत्काल भाग गई वह शीघ्रतासहित जाय वटवृक्षके समीप यक्षगणोंके शरणागत हुई ॥ ४० ॥ किन्तु वह कामातुर महिष बलवीर्यके मदसे उद्धत हो महिषीकी कामना करता हुआ उसके पीछे पीछे दौड़ा ॥ ४१ ॥ यक्षोंने देखा कि महिषी भयके कारण कातर होकर दीनभावसे अत्यन्त रोदन करती है और कामवृत्तिको चरितार्थ करनेकी इच्छासे महिष उसके पीछे दौड़ रहा है, यह देख यक्षगण महिषीकी रक्षा करनेके लिये आये ॥ ४२ ॥ महिषके संग यक्षोंका घोरतर संग्राम उपस्थित हुआ, फिर महिष उनके बाणोंसे आहत होकर सहसा पृथ्वीमें गिरगया ॥ ४३ ॥ रम्भ यक्षोंका परमप्रिय पात्र था, इसकारण उन्होंने उसका देह शुद्ध करनेकी इच्छासे उसका मृतक देह लेकर अग्निमें जलाया पतिको चितामें रखता हुआ देखकर महिषीने उसके सहित पावकमें प्रवेश करनेकी इच्छा की ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ यक्षोंके निवारण करनेपर भी वह साध्वी प्रियतमा पतिको लेकर शिखासमाकुल हुताशनमें प्रविष्ट हुई ॥ ४६ ॥ महिषीके मरनेपर तब महाबलवान् महिष मातृगर्भपरित्याग करके चिताके मध्यसे उत्थित हुआ. फिर रम्भ भी पुत्रके प्रति वात्सल्यके कारण रूपान्तरधारण करके बहिर्गत हुआ ॥ ४७ ॥ रम्भ रूपान्तरको प्राप्त होकर रक्तवीज नामसे विख्यात हुआ तिसके पुत्र महाबलवान दानवने इसप्रकार जन्म ले महिष नाम ग्रहण किया, तब प्रधान प्रधान दानवोंने महिषको राज्यमें अभिषिक्त किया ॥ ४८ ॥ हे नृपवर ! महावीर्यवान् रक्तवीज और महिषदानव इसप्रकार जन्मग्रहण करके देवता, दानव और मनुष्यगणोंसे अवध्य हुए थे ॥ ४९ ॥ हे राजन् ! वह मैंने तुमसे उस महात्मा महिषदानवका जन्म और उसके वरलाभका वृत्तान्त संपूर्ण विस्तारसहित वर्णन किया ॥ ५० ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

व्यासजी बोले उस बलदर्पित महाबलवान् महिषासुरने राज्यलाभ करके संपूर्ण जगत्को अपने वशमें कर लिया॥ १ ॥ महिषासुर जब बाहुबलसे सागरसहित भूमण्डल को जीतकर शासन करने लगा, तिसकाल उस राज्यमें छत्रधारी दूसरे किसी राजा वा वैरियोंका गर्व तथा किसी भयका कारण नहीं था ॥ २ ॥ तिस समय अतीव वीर्यवान् मदोद्धत चिक्षुर उसके सेनापतिकार्यमें नियुक्त था और ताम्र बहुसंख्यक सेनाके सहित धनकी रक्षामें नियोजित हुआ ॥ ३ ॥ असिलोमा, बिडाल, उदर्क, बाष्कल, त्रिनेत्र, और कालबंधक इत्यादि बलदर्पित ॥ ४ ॥ सेनानायक दानवलोग तिसकाल अपनी २ सेनासहित सागरसहित समृद्धिशाली पृथ्वीमंडल को आवृत करके वास करने लगे. हे राजन् ! जिन सब पराक्रान्त राजाओंने क्षत्रियधर्मके अनुसार पलायन न करके युद्ध किया, महिषने उनको निहत किया और उनमें बचेहुए पुरातन महीपालोंको करद किया अर्थात् उनसे कर लेनेलगा॥ ५॥ पृथ्वीमण्डलके ब्राह्मणलोग महिषके वशीभूत होकर उसको यज्ञभाग देने लगे॥ ६ ॥ ७॥ इसप्रकार भूमण्डलमें महिषका राज्य हुआ. एक छत्र राज्य करके भी महिषने वरलाभसे गर्वित होकर स्वर्गका राज्य जीतनेकी इच्छा की ॥ ८ ॥ तब दानवराज महिषने शचीपतिके निकट दूत भेजनेका निश्चय कर शीघ्र वार्त्तावाहकको बुलाकर कहा॥ ९ ॥ कि तुम सत्यनिष्ठ वीर हो, अतएव तुम मेरा दूतकार्य करो,तुम निःशंक चित्तसे सुरालयमें जाय देवताओंके समीप इन्द्रसे कहो कि॥ १०॥ हे सहस्रलोचन ! तुम स्वर्ग छोड़कर जहां तुम्हारी इच्छा हो वहां चले जाओ, अब विलम्ब मत करो, अथवा महात्मा महिषकी सेवा करो ॥ ११ ॥ वह राजा हैं इस कारण तुम्हारे शरणागत होनेपर अवश्यही तुम्हारी रक्षा करेंगे अतएव हे शचीनाथ ! तुम महिषका आश्रय ग्रहण करो ॥ १२ ॥ हे बलसूदन ! यदि ऐसा करनेकी तुम्हारी इच्छा न हो तो शीघ्र युद्धके लिये वज्र ग्रहण करो. तुम मेरे पूर्वपुरुषोंसे पराजित हुए थे अतएव मैं तुम्हारे पुरुषत्वको जानता हूं ॥ १३ ॥ हे सुरपते ! तुम अहल्याके जार हो सुतरां तुम्हारा बल स्त्री आकर्षणमें ही उपयुक्त है यह मैं भलीभांति जानता हूं इससे यदि इच्छा हो तो युद्ध करो नहीं राज्यत्याग करके जहां तुम्हारी इच्छा हो वहां चले जाओ ॥ १४ ॥ व्यासजी बोले हे नृपवर ! दानवके दूतने सुरपतिके निकट उपस्थित होकर महिषासुरके कहे सब वचन कहे तब शक्रने उसके वचनसे कुपित हो कुछेक हँसकर कहा ॥ १५ ॥ रे निर्बोध ! तू मदके गर्वसे

दर्पित हुआ है इसीसे मुझको नहीं जानता, अतएव तेरे प्रभु महिषासुरको इस रोगकी औषधी शीघ्रही प्रदान करूंगा ॥ १६ ॥ अब इसको समूल निर्मुल करूंगा. नीतिके जाननेवाले पुरुष दूतको नहीं मारते, मैं इसीकारण तुझको छोड़ता हूं,अतएव हे दूत! मैं तुझसे जो कहता हूं, दुरात्मा महिषासुरके पास जाकर वह सब कह दे। हे महिषीपुत्र! यदि तुझे युद्धकी वासना हुई है, तो शीघ्र आ ॥ १७ ॥ १८ ॥ हे महिष! तू तृणभक्षक और जडाकृति है, अतएव तेरा बल विक्रम हमसे छिपा नहीं है, सुतरां संग्राममें आते ही तेरे सींग लेकर दृढ शरासन बनाऊंगा ॥ १९ ॥ तू सींगोंके बलसे ही दर्प करता है, यह मैं भलीभांति जानता हूं. रे महिषाधम! तू सींगोंसे ही आघात करनेमें चतुर है युद्धका विषय कुछ भी नहीं जानता. अतएव तू जिन सींगोंके बलसे पूर्ण होकर बलका दर्प करता है, मैं वेही दोनों सींग काटकर तेरा संपूर्ण बलवीर्य नष्ट करूंगा ॥ २० ॥ २१ ॥ व्यासजी बोले दूत सुरपतिके इसप्रकार वचन सुनकर शीघ्र उस स्थानसे चला फिर प्रमत्त महिषासुर दानवके सन्मुख जाय प्रणाम करके कहने लगा ॥ २२ ॥ हे राजन्! देवाधिपति इन्द्रने देवसेनासे परिवेष्टित हो अपनेकोही पूर्ण बलसे युक्त समझा है। आपकी उपयुक्त प्रतिद्वन्द्वीमें गणना नहीं की ॥ २३ ॥ प्रभुके सन्मुख भृत्यको प्रिय वा सत्य बातही कहनी चाहिये. उस मूर्ख सुरपतिने जो कहा है वह मैं आपसे किसप्रकार कहूं? ॥ २४ ॥ विशेष कर हे महाराज! हिताभिलाषी भृत्य प्रभुके समीप प्रिय और सत्य वचन कहै यह मंगलविधायिनी नीति जागरित रहती है ॥ २५ ॥ यदि केवल तृप्तिकर बातही कहूं तो आपका कार्य नहीं होगा और शुभाभिलाषी भृत्यको कभी परुष वचन कहना भी उचित नहीं है ॥ २६ ॥ हे नाथ! शक्रके मुखसे जिसप्रकार विषकी समान परुष वचन निकले हैं वैसे कठोर वचन भृत्यके मुखसे किसप्रकार निकलेंगे ॥ २७ ॥ हे महीपते! सुरपतिने जैसे वचन कहे हैं मेरी जिह्वा कभी वैसे वचन कहनेमें समर्थ नहीं होगी ॥ २८ ॥ व्यासजी बोले वार्त्तावहके उक्त प्रकारके हेतुयुक्त वचन सुन तृणभोजी महिष दानव अत्यन्त कुपित हो ॥ २९ ॥ पूंछको पीठमें स्थापन कर मूत्रत्याग करने लगा, फिर क्रोधसे दोनों नेत्र लाल कर दानवोंको बुलाय उनसे कहा ॥ ३० ॥ हे दानवलोगो! सुरेन्द्रने युद्धके लिये सबप्रकार निश्चय किया है, अतएव तुम सेना इकठी करो उस सुराधमको जीतना होगा

॥ ३१ ॥ मेरी अपेक्षा कौन वीर है ? यदि सुरेन्द्रकी समान करोड़ करोड़ वीर आवें, तो उनमें मैं किसीका भी भय नहीं करता. हे दानवो ! उस सुरपतिको आज सब प्रकारसे निहत करूंगा ॥ ३२ ॥ वह इन्द्र केवल शान्त और निरीह पुरुषोंके निकट ही शूर और तपसे कृश हुए तपस्वीगणोंके निकटही बलवान् है, किन्तु मेरी समानके समीप उसमें किसी विक्रमके प्रकाश करनेकी सामर्थ्य नहीं है, वह लंपट है सुतरां अन्यायबलका प्रयोग कर छलसे पराई स्त्रीका हरण करता है ॥ ३३ ॥ वह अत्यन्त खल पापपरायण और छिद्रान्वेषी है, नहीं तो अप्सराओंके सौन्दर्यबलसे मत्त होकर तपस्यामें विघ्न उत्पादन क्यों करते ? उसने अत्यन्त विश्वास-घातक होनेसे ॥ ३४ ॥ प्रथम तो भीत हो अनेकप्रकारसे शपथ करके महात्मा नमुचिके सहित संधि की. फिर अवसर पाय उस दुरात्माने संधि तोड़कर कपटता-पूर्वक उनको मारा ॥ ३५ ॥ किन्तु वीर्यवान् विष्णु कपटव्यवहारके आचार्य शपथके आकर स्वरूप और अपना गर्व करनेमेंही चतुर और पण्डित हैं वह माया-द्वारा इच्छानुसार अनेक रूप धारण करते हैं ॥ ३६ ॥ इन्हीं सब कारणोंसे विष्णुने शूकराकृति होकर हिरण्याक्षको और नृसिंहमूर्ति धारण करके हिरण्यकशिपुको मारा था ॥ ३७ ॥ हे दानवलोगो ! मै कभी उस विष्णुके वशीभूत नहीं हूंगा. क्योंकि मैं देवताओंका किसी वचन वा कार्यमें कभी विश्वास नहीं करता ॥ ३८ ॥ जब कि अत्यन्त बलवान् रुद्र युद्धके मध्य मेरे प्रतिकूल आचरण करनेमें समर्थ नहीं हैं, तब इन्द्र वा विष्णु मेरा क्या करेंगे ? ॥ ३९ ॥ मैं अभी इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर, पावक, चंद्र और सूर्यको पराजित करके स्वर्गका राज्य ग्रहण करूंगा ॥ ४० ॥ देवताओंको जीतकर हम सभी यज्ञका भाग ग्रहण और सोमपान करके दानवोंसे विहार करेंगे ॥ ४१ ॥ हे दानवगण ! वरलाभके कारण देवताओंसे हमको किंचिन्मात्रभी भय नहीं है. विशेषकर पुरुषसे तो मुझको मृत्यु-भय है ही नहीं. केवल स्त्रीसेही मुझको मरनेका भय है; किन्तु स्त्रियें मेरा क्या कर सकेंगी ? ॥ ४२ ॥ हे दूतलोगों ! अभी पाताल और पर्वतसे प्रधान २ दानवोंको बुलाकर मेरे सेनाध्यक्ष पदमें नियुक्त करो ॥ ४३ ॥ हे दानवो ! मैं अकेलाही संपूर्ण प्रधान प्रधान देवताओंको पराजित करसक्ता हूं. केवल युद्धकी शोभाके लिये ही तुमको बुलाकर देवताओंके संग्राममें लिये जाता हूं ॥ ४४ ॥ वरप्रभावके कारण देवताओंसे हमको कोई भय नहीं है. अतएव सींग और खुरोंके प्रहारसेही उनको मार डालेंगे ॥ ४५ ॥ सुर, असुर वा दानव

सबसेही मैं अवध्य हूं, अतएव देवलोकको जीतनेके लिये तुमलोग सज्जित होओ ॥ ॥ ४६ ॥ हे दानवलोको! सुरालयको जीत पारिजातकी मालासे विभूषित हो हमलोग देवाङ्गनाओंके संग नन्दनवनमें विहार करेंगे ॥ ४७ ॥ हम उस समय कामधेनुके दुग्धपान और सुधापानसे उल्लासित होकर देवता और गंधर्वोंके नृत्य गीत और वाद्य दर्शन तथा श्रवण करेंगे ॥ ४८ ॥ उर्वशी, मेनका, रंभा, घृताची, तिलोत्तमा, प्रमद्वरा, महासेना, मिश्रकेशी, मदोत्कटा ॥ ४९ ॥ विप्रचित्ति इत्यादि नृत्यगीतविशारद स्वर्गकी वेश्याओंसे नानाविध मद्यनिषेवणद्वारा तुम सबका ही चित्त प्रसन्न करूंगा॥ ५०॥ अतएव यदि तुम्हारी इच्छा हो तो तुम पवित्र माङ्गल्यां कार्यका अनुष्ठान करके देवताओंके संग संग्राम करनेके लिये अभी सज्जित होओ ॥ ५१ ॥ और दैत्यगुरु मुनिसत्तम भृगुनंदन पवित्रात्मा शुक्राचार्यजीको बुलाय उनकी पूजा करके सब दैत्योंकी रक्षाके लिये विजयकी कामनासे उनको यज्ञ करनेमें नियोजित करो ॥ ५२ ॥ हे राजन्! पापबुद्धि महिषने उसकाल प्रधान प्रधान दानवोंको इसप्रकार आज्ञा दे प्रसन्न चित्तसे अपने घरमें प्रवेश किया ॥ ५३ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

व्यासजी बोले हे राजन्! दानवदूतके चले जानेपर देवराज इन्द्रने यम, वायु, वरुण और कुबेर इत्यादि देवताओंको बुलाकर कहा ॥ १ ॥ हे देवताओ! रम्भपुत्र महाबलवान् महिष इस समय दानवोंका राजा है. विशेषकर वह शतशत मायाओंमें चतुर और वरके दर्पसे दर्पित होरहा है. ॥ २ ॥ हे देवताओ! महिषने स्वर्गकी कामनासे दूत भेजा है. उसके दूतने अभी मेरे निकट आनकर इसप्रकार कहा है. ॥ ३ ॥ हे शक्र! सुरालय त्याग करके जहां तुम्हारी इच्छा हो वह चले जाओ, अथवा दानवपति महात्मा महिषासुरकी सेवामें तत्पर होओ ॥ ४ ॥ विपक्षके भृत्यकी समान बनेपर दानवपति उसके प्रति कभी कुपित नहीं होते. जब तुम उनकी सेवामें प्रवृत्त होंगे तब वह दयाके वश हो तुम्हारी वृत्ति नियत कर देंगे ॥ ५ ॥ हे देवेश! यह बात यदि तुम्हैं स्वीकार न हो, तो युद्धके लिये स्वयं सेना इकट्ठी करो, इस स्थानसे मेरे लौटतेही दानव-

पति महिष अभी युद्धके लिये उपस्थित होगा. ॥ ६ ॥ दुष्टप्रकृति उस दानवका दूत यह अभी कहकर गया है, अतएव हे सुरोत्तमगण ! अब क्या करना चाहिये इस विषयका विचार करो ? ॥ ७ ॥ हे देववृन्द ! देखो स्वयं बलवान् होनेपर भी शत्रुको दुर्बल जानकर उपेक्षा करनी उचित नहीं है । विशेष करके जो शत्रु बलवान् बाहुबलसे दर्पित और सर्वदाही उद्यमशील है उसकी तो कभी उपेक्षा न करे॥ ८ ॥ अपने अपने बल और बुद्धिके अनुसार उद्योग करना एकान्त कर्त्तव्य है, फिर जीत हो, वा हार हो, सो नितान्तही दैवके आधीन है ॥ ९ ॥ खलके संग संधि करना निरर्थक है, इसकारण इसके संग संधि करना किसीप्रकार उचित नहीं है. तुमलोग साधु हो और वह दानव अत्यन्त खल हैं इस कारण वारंवार भलीभांति विचारकर जो अच्छा विचार हो वही करो ॥ १० ॥ शत्रुका बलाबल न जानकर सहसा इस समय युद्धयात्रा करना भी अनुचित है अतएव जिसका शत्रुपक्षीय किसीके संग कुछ संबंध नहीं है और जो सहजसेही शत्रुके दलमें प्रवेश कर उसका बलाबल जानले ॥ ११ ॥ ऐसे इङ्गितज्ञ (चेष्टाके जाननेवाले) सत्यवादी निःस्पृह और द्रुत-गामी दूतको भेजना चाहिये. वह सेनाका स्थान उसकी गति और संख्याको ठीक ठीक जान ले ॥ १२॥ और उनका कौन कैसा वीर है? उनकी संख्या कितनी है ? यह भी जानकर शीघ्रतासहित यहां लौट आवे, पहिले तो उस दानव-पतिकी सैन्यका बलाबल जान ॥ १३ ॥ फिर तत्काल युद्धमें यात्रा करेंगे अथवा दुर्गका आश्रय लेंगे. बुद्धिमान् पुरुषको सर्वदा विचारकर कार्य करना चाहिये, सहसा कोई कार्य करनेसे वह क्लेशदायी होता है ॥ १४ ॥ इसकारण विज्ञपुरुष विचारकर कार्य करै, तो सब विषय सुखदायक होते हैं. सब दानवलोग एक प्राण और एकचित्त हैं, अतएव उनमें भेदप्रयोग करना किसी प्रकार न्यायसंगत नहीं है ॥ १५ ॥ वे सब एकचित्त हैं अतएव हमारे दूत वहां जायँ, उनके बलाबलको जान जब यहां आवें, तब उनके मुखसे संपूर्ण वृत्तान्त जानकर विचारपूर्वक ॥ १६ ॥ कार्यतत्पर दानवोंके प्रति विधिवत् नीतिका प्रयोग करना चाहिये. नीतिके विरुद्ध कार्य होनेसे ॥ १७ ॥ वह अज्ञात औषधकी समान सब प्रकार विपरीत फलप्रदान करता है, इसमें संदेह नहीं. व्यासजी बोले हे राजन् ! सुरपति इन्द्रने देवताओंसे इसप्रकार परामर्श कर कार्यज्ञानके॥ १८॥ संपूर्ण वृत्तान्तको जाननेकी इच्छासे कार्यदक्ष दूतको भेजा. दूतनेभी शीघ्र दानवालयमें जाय, भलीभांति

अनुसंधान कर फिर आय सुरपतिसे ॥ १९ ॥ संपूर्ण दानवसैन्यका बलाबल निवेदन किया, तब इन्द्र दानवसेनाके उद्योगका विषय जानकर अत्यन्त अचंभेमें हुए ॥ २० ॥ फिर देवताओंको शीघ्र युद्धके उद्योगमें नियोजित कर त्रिदशनाथ मंत्रकुशल पुरोहितको बुलाय परामर्श करने लगे ॥ २१ ॥ आङ्गिरस-श्रेष्ठ बृहस्पतिके उत्तम आसनमें बैठनेपर सुरपतिने पूंछा हे देवगुरो! इस समय हमको क्या करना चाहिये ॥ २२ ॥ यह मुझसे कहिये ? आप सर्वज्ञ हैं इसकारण आपसे कोई विषय छिपा नहीं है.सम्प्रति जो महिषनामक दानव अत्यन्त पराक्रमशाली और मदसे गर्वित हुआ है ॥ २३ ॥ वह दानवदलसे युक्त होकर मेरे संग संग्राम करनेको आता है, आप मंत्रविशारद हैं अतएव आप इस समय इसका प्रतिविधान कीजिये ॥ २४ ॥ शुक्राचार्य जिसप्रकार असुरोंके विघ्न हरण करते हैं आपभी हमारे उसी प्रकार विघ्नहर्त्ता ही रहे हैं यह मैं भलीभांति जानताहूं. व्यासजी बोले हे राजन्! बृहस्पतिने वासवका वचन सुन ॥ २५ ॥ कार्यसाधनकी वासनासे मनमें भलीभांति अभिलाषित विषयकी आलोचना करके उनसे कहा. बृहस्पति बोले हे सुरेन्द्र! तुम सबके माननीय हो, अतएव धैर्यअवलम्बन करके प्रकृतिमें स्थित होओ ॥ २६ ॥ व्यसन उपस्थित होनेसे सहसा धैर्यका त्याग करना उचित नहीं है. हे सुराध्यक्ष! जय वा पराजय सर्वथा दैवके ही आधीन है ॥ २७ ॥ इससे बुद्धिमानों-को सर्वदा धैर्यका अवलम्बन करके रहना उचित है. हे शतक्रतो! जो होनहार है, वह अवश्यही होगा ॥ २८ ॥ यह निश्चय जानकर सदा अपने पौरुषके अनुरूप उत्साह करे, संपूर्ण कार्य दैवके आधीन है यह जानकर मुनिलोग मुक्तिलाभकी आशासे एक मात्र उद्योगमेंही निरत रहकर ॥ २९ ॥ योग और ध्यानमें मग्न रहते हैं. सब दैवाधीन न जान्ते हैं अतएव व्यवहारशास्त्रका बताया उद्यम करना अवश्य है ॥ ३० ॥ फिर सुख हो वा दुःख हो,दैवविषयमें परिताप अकर्त्तव्य है. यद्यपि पुरुषकारके विना कभी सिद्धि प्राप्त होजाय अर्थात् ॥ ३१ ॥ अंध और पंगुकी समान कदाचित् सिद्धिलाभ होती है, किन्तु उसमें अत्यन्त हर्षित होना उचित नहीं है. शरीर मात्रही दैवके आधीन है, अतएव पुरुषकार का अवलम्बन करनेसेभी यदि कार्यसिद्धि न हो ॥ ३२ ॥ इसमें पुरुषका कुछ दोष नहीं है कारण कि, शरीर दैवाधीन है. हेसुराधिप ! क्या सैन्य, क्या मंत्र, क्या मंत्रणा ॥ ३३ ॥ क्या रथ, क्या आयुध, किसीसे कार्यसिद्धि नहीं होती; केवल दैवके द्वाराही निःसंदेह कार्यसिद्धि होती है. संसार दैवके आधीन है, अतएव

बलवान् पुरुष दैवके बलसे ही क्लेश पाता है, दुर्बल पुरुषभी सुखलाभ करता है ॥ ३४ ॥ बुद्धिमान् पुरुषभी क्षुधित होकर शयन करता है, निर्बुद्धिपुरुष भोगवान् होता है, कातर पुरुषभी जयलाभ करता है, शूरकी भी पराजय होती है ॥ ३५ ॥ इसमें परितापका क्या विषय है ? हे सुरनाथ ! उद्यममें सुख हो वा दुःखहो भवितव्यता अवश्यही उसमें नियोजित करेगी॥ ३६ ॥ अर्थात् वह उद्योग सुखदायक वा दुःखदायक होगा प्रथमही इसप्रकार विचार न करे.संपूर्ण लोग दुःखके समय दुःखकी अधिकताही देखते हैं, सुखके समय सुखकी अधिकता देखते हैं ॥ ३७ ॥ किन्तु हर्ष और शोकमें अभिभूत होकर शत्रुके मुखमें आत्मसमर्पण करना उचित नहीं है;हर्षशोकमें पंडितोंको धैर्य धारण करना चाहिये॥ ३८ ॥ अधैर्य होनेसे जिसप्रकार क्लेश होता है. धैर्यअवलम्बन करनेसे वैसा क्लेश नहीं होता, सुख वा दुःखके समय उसका सहन कठिन है ॥ ३९ ॥ अतएव बुद्धिकी निश्चयताके कारण जिससे हर्ष और शोकका उदय न हो,वही करना कर्त्तव्य है. मैं निरंतर अव्यय और निर्गुण हूं, अतएव दुःख किसको है? और वह दुःख क्या है ? तब इसप्रकार करना चाहिये ॥ ४० ॥ मैं चौबीस तत्वोंसे अतिरिक्त हूं अतएव मुझको सुख वा दुःख क्या है ? प्राणका धर्म क्षुधा और पिपासा (भूंख प्यास) मनका धर्म शोक और मूर्च्छा ॥ ४१ ॥ शरीरका धर्म जरा और मृत्यु इन छे व्याधियोंसे मुक्त होकर मैं शिव हूं. शोक और मोह यह शरीरके गुण हैं सुतरां इनकी चिन्तासे मेराक्या प्रयोजन है?॥ ४२ ॥ मैं शरीरका धर्म वा उसके संबंधसे जीवभी नहीं हूं. मैं महदादि सप्त विकृति प्रकृति और सोलह विकृतिसे पृथक् हूं अतएव मैं सदाही सुखी हूं ॥ ४३ ॥ मैं प्रकृति वा विकृति नहीं अतएव मुझको सदा दुःख क्यों होगा ? हे सुरेश ! तुम अपने मनमें इस प्रकार विचार करके निर्मोह हो ॥ ४४ ॥ हे शतक्रतो ! मोहही परम दुःखका कारण और निर्ममताही परम सुखका मूल है, इसलिये निर्ममताही तुम्हारे दुःखनाशका प्रधान उपाय है ॥ ४५ ॥ हे शचीपते ! संतोषसे अधिक सुखका विषय दूसरा कोई नहीं है अथवा ममतानाश विषयमें यदि तुमको ज्ञान न हो ॥ ४६ ॥ तो भवितव्य (होनहार) विषयमें विवेक करना चाहिये हे सुराधिप ! भोग न होनेसे कभी प्रारब्ध कार्यका नाश दिखाई नहीं देता ॥ ४७ ॥ हे सुरसत्तम ! तुम्हारा बुद्धिबल हो सहाय हो अथवा सब देवता सहाय हों, तुम्हारा जो होनेवाला है वह अवश्यही होगा, अतएव सुख वा दुःखमें फिर तुमको क्या चिन्ता है?॥ ४८ ॥ हे ? राजन् ! पुराणपुण्यक्षयके लिये

सुख और पापक्षयके लिये दुःख होता है, अतएव सुखके क्षय होनेपर पण्डितगणोंको भलीभांतिसे हर्ष प्रकाश करना उचित है ॥ ४९ ॥ हे महाराज! इस समय मंत्रणा करके यथाविधि यत्न करो किन्तु यत्न करनेपर भी जो भवितव्य है वह होगा ॥ ५० ॥ ५१ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ५.

व्यासजी बोले हे राजन्! सहस्रलोचन इन्द्रने यह वचन सुनकर बृहस्पतिसे फिर कहा कि महिषासुरके मारनेको युद्धका उद्योग करो॥ १ ॥उद्यमके विना राज्यलाभ सुख वा यश कुछ नहीं होता, जो कातर हैं, वही निरुद्यमकी प्रशंसा करते हैं, और जो पराक्रान्त है, वे उसकी प्रशंसा नहीं करते ॥ २ ॥ यतीलोगोंका ज्ञान और ब्राह्मणोंका संतोषही परम भूषण है किन्तु जो ऐश्वर्यकी अभिलाषा करते हैं उनका उद्यम और शत्रुसंहारक पराक्रम ही उत्तम भूषण है ॥ ३ ॥ हे मुनिसत्तम! मैंने उद्यमसे जिसप्रकार वृत्र नमुचि और बलासुरको मारा है इसीप्रकार उद्यमसे महिषासुरको मारूंगा ॥ ४ ॥ आप देवताओंके गुरु हैं, अतएव आप और उत्तम आयुध वज्र ये दोनोंही मेरा उत्तम बल हैं और फिर इसपरभी अव्यय हरि और उमापति हर अवश्यही मेरी सहायता करेंगे ॥ ५ ॥ हे गुरो! जिससे मेरी मानरक्षा हो वही कीजिये, इस समय मेरी मंगलकामनासे विघ्ननाशक मंत्रपाठ कीजिये मैं महिष दानवके उद्देशसे स्वीयसेनासन्निवेशपूर्वक युद्धका उद्योग करता हूं ॥ ६ ॥ श्रीव्यासजी बोले बृहस्पतिने देवराज इन्द्रका वचन सुननेके पीछे कुछेक हँसकर युद्धमें अनुरक्त सुरेन्द्रसे कहा ॥ ७ ॥ बृहस्पति बोले हे इन्द्र! युद्ध करनेसे जीत वा हारका निश्चय नहीं है मैं इस सन्दिग्ध विषयमें तुमको प्रेरणभी नहीं करता और निवारणभी नहीं करता ॥ ८ ॥ हे शचीपते! भवितव्य विषयमें तुम्हारा कुछ दोष नहीं है इसमें यदि सुख विहित हो तो सुख होगा और यदि इसमें दुःख विहित हो तो दुःख होगा हे वासव! तुमको युद्धमें सुख वा दुःख होगा ॥ ९ ॥ इस भविष्यतविषयको मैं नहीं जानता क्योंकि पूर्वमें जब मेरी भार्या हृत हुई तब मैंने जो क्लेश अनुभव किया है तुम उसको जानते हो अतएव मुझको भविष्यत् ज्ञान नहीं है यदि वह होता, तो फिर दुःख क्यों पाता ? ॥ १० ॥ हे शत्रुनाशन! चन्द्रमाने

मेरी भार्याका हरण किया, इस कारण मेरे संपूर्ण सुखका विनाश हुआ मैं अपने आश्रममें अवस्थित होकर अत्यन्तही दुःख पाने लगा. ॥ ११ ॥ हे सुरनाथ! मैं सब लोकोंमें बुद्धिमान् कहकर विख्यात हूं, किन्तु जब चन्द्रमाने बलपूर्वक भार्याका हरण किया था, तब मेरी बुद्धि कहां गई थी? ॥ १२ ॥ हे सुराधिप! मुझको बोध होता है कार्यसिद्धि सब प्रकारसे दैवके आधीन है, तथापि बुद्धिमान् लोगोंको सर्वदा उपाय अवलम्बन करना चाहिये ॥ १३ ॥ श्रीव्यासजी बोले हे राजन्! शचीपति गुरुके इसप्रकार सत्यवचन सुन, उनके संग ब्रह्मलोकमें जाय पितामहकी शरणागत हो प्रणामपूर्वक कहने लगे ॥ १४ ॥ हे पितामह! महिष दानव मेरा स्वर्गराज्य छीननेकी अभिलाषासे अधिकतर सेना इकट्ठी करता है, ॥ १५ ॥ अन्यान्य दानवगण सभी संग्रामके अभिलाषी होकर उसकी सैन्यमें उपस्थित हुए हैं वह सभी युद्धविशारद और अत्यन्त वीर्यशाली हैं ॥ १६ ॥ इससे मैं अत्यन्त डरकर आपके निकट आया हूं. हे महाप्राज्ञ! आप सर्वज्ञ हैं इसलिये आप मेरी सहायता कीजिये ॥ १७ ॥ ब्रह्माजी बोले हम सब अभी कैलासमें जायँ वहांसे शंकरको संग लेकर विष्णुके निकट चलैं ॥ १८ ॥ वहां सब देवताओंके एकत्र होनेपर मंत्रणा करनेके पीछे देश और कालका विचार करके युद्ध करना उचित है वा नहीं यह स्थिर किया जायगा ॥ १९ ॥ क्यों कि जो पुरुष अपना बलाबल न जान और विचार न कर किसी कार्यके करनेमें शीघ्रता करता है वह अपनी अवनतिकाही लाभ करता है ॥ २० ॥ श्रीव्यासजी बोले हे राजन्! सहस्रलोचन इन्द्र यह बात सुन ब्रह्माको आगे कर लोकपालोंके सहित कैलासकी ओर चले ॥ २१ ॥ अनन्तर शंकरके समीप उपस्थित हो वेदमंत्रसे उनका स्तव करनेलगे. महेश्वरके प्रसन्न होनेपर उनको आगे करके विष्णुपुर वैकुंठमें गये ॥ २२ ॥ सुरपति देवदेवेशने विष्णुका स्तव करके कहा कि महिषदानव वर पानेसे अत्यन्त उद्धत हुआ है. इसकारण अब उससे हमको अतिशय भय उपस्थित है. आप उसके वधका उपाय कीजिये ॥ २३ ॥ तब विष्णुने उनके भयका विवरण जानकर देवताओंसे कहा कि, हम संग्राम करके उस दुर्जय असुरको मारेंगे ॥ २४ ॥ श्रीव्यासजी बोले हे राजन्! ब्रह्मा, विष्णु, शिव और इन्द्र इत्यादि देवता स्थिर निश्चय कर अपने अपने वाहनपर चढ़ चलेगये ॥ २५ ॥ जिसकाल ब्रह्मा हंसपर, विष्णु गरुड़पर, शंकर बैलपर, देवराज ऐरावतपर ॥ २६ ॥

स्कन्द मोरपर और यम भैंसेपर चढ़कर समस्त देवताओंकी सेनाके सहित निकले ॥ २७ ॥ उसी समय अस्त्र शस्त्र युक्त महिषसे पालित दानवोंका सेनादल सन्मुख हुआ. तब देवता और दानवोंकी सेनाका घोर तुमुल संग्राम होने लगा ॥ २८ ॥ बाण, खड्ग, प्रास (साँग) मूशल, परशु, गदा, पट्टिश (अस्त्र-विशेष), शूल, चक्र, शक्ति, तोमर ॥ २९ ॥ मुद्गर, भिन्दिपाल, गोपाल, लाङ्गल (कूंड) और अन्यान्य अनेक दारुण अस्त्रोंसे वह परस्पर प्रहार करने लगे ॥ ॥ ३० ॥ तब महिषके सेनापति महाबलवान् चिक्षुरने अत्यन्त तीक्ष्ण पांच बाणों-से वासवको ताडित किया ॥ ३१ ॥ लघुहस्त इन्द्रने भी शीघ्र बाणोंसे उन सब बाणोंको काटकर अर्द्धचन्द्र बाणद्वारा उसके हृदयमें प्रहार किया ॥ ३२ ॥ सेनापतिके शराहत होकर गजपृष्ठमें मूर्च्छित होनेपर वासवने उस हाथीकी सूंडमें वज्रप्रहार किया ॥ ३३ ॥ तब वह हाथी उनके वज्रसे सब प्रकारसे आहत और भग्न होकर अपनी सेनासे भागा। दानवपतिने यह देख, कुपित हो बिडालना-मक दानवसे कहा ॥ ३४ ॥ हे वीर! तुम अत्यन्त बलशाली हो, अतएव तुम जाकर प्रथम मदगर्वित इन्द्रको मारो, फिर वरुण इत्यादि अन्यान्य देवता-ओंको मारकर मेरे निकट आओ ॥ ३५ ॥ श्रीव्यासजी बोले हे राजन्! बिडालनामक महाबली असुर दानवपतिका यह वचन सुन मतवाले हाथीपर चढ़ त्रिदशाधिपति इन्द्रके निकट आया ॥ ३६ ॥ वासवने उसको आता देखकर क्रोधसहित आय विषकी समान प्रभावशाली भयंकर बाणसे उसपर आघात किया ॥ ३७ ॥ परन्तु उसनेभी चापनिस्सृत बाणोंके द्वारा शीघ्रता-सहित उनके सब बाण काट पांचसो शिलीमुख चलाकर वासवपर सहसा प्रहार किया ॥ ३८ ॥ इन्द्रनेभी उन सब बाणोंको काटकर क्रोधसहित फिर सर्पके समान तीक्ष्ण बाणोंसे उसपर आघात किया ॥ ३९ ॥ और धनुषके छूटेहुए अपने बाणोंसे उसके बाणोंको खंड खंड करके तत्काल उसके हाथीकी सूंडमें गदा मारी ॥ ४० ॥ हाथी अपनी सूंडमें आघात लगनेके कारण आर्तस्वरसे वारंवार चीत्कार शब्द करने लगा. तब वह भयातुर हो फिर आते आते दानवोंकी सेनाकाही विनाश करने लगा ॥ ४१ ॥ सेनापति बिडालाख्य रणस्थलसे हाथीको भागता देख, मनोहर रथमें बैठ तत्काल युद्धस्थलमें देवताओंके सन्मुख हुआ ॥ ४२ ॥ सुरपतिने रथमें चढ़े दानवको फिर आता देख आशीविष (सर्प) के समान तीक्ष्ण बाणोंसे उसकोपर

प्रहार किया ॥ ४३ ॥ वह महाबलवान् दानव भी कुपित होकर भयंकर बाणों-की वर्षा करने लगा, तब जयाभिलाषी वासव और दानवका तुमुल संग्राम होने लगा ॥ ४४ ॥ दानवको बलवान् देखकर क्रोधके मारे इन्द्रकी सब इन्द्रिय आकुल होगई, तब अपने पुत्र जयन्तको संग ले दोनों संग्राममें प्रवृत्त हुए ॥ ४५ ॥ जयन्तने पांच शाणित बाण बलसे खैंच मदगर्वित दानवकी छातीमें मारे ॥ ४६ ॥ दानव बाणोंके द्वारा आहत होकर रथके नीड़में गिरगया, तब सारथी रथ लेकर रणाङ्गणसे चलागया ॥ ४७ ॥ उस बिडालनामक दानवके मूर्च्छित होकर चलेजाने-पर देवताओंकी दुन्दुभिका निःस्वन और महान् जयशब्द होनेलगा ॥ ४८ ॥ देवता हर्षमें भर शचीपतिका स्तव करने लगे, गंधर्वपतिगण गान और अप्सरागण नृत्य करने लगीं ॥ ४९ ॥ हे राजन् ! महिषने उस समय देवताओंका उच्चारित जयशब्द सुन कुपित हो शक्रगर्वहारी ताम्रनामक दानवको संग्राममें भेजा ॥ ५० ॥ ताम्र रणस्थलमें उपस्थित और अनेकानेक प्रतिपक्ष योधाओंके सन्मुख हो मेघके सागरपर जलवर्षणकी समान बाण बरसाने लगा ॥ ५१ ॥ तब वरुण पाश उद्यत करके चले. यमभी भैंसेपर चढ़ दण्ड हाथमें ले धावमान हुए ॥ ५२ ॥ बाण खड्ग, मूशल, शक्ति और परशुद्वारा देवता और दानवोंका परस्पर घोर युद्ध होने लगा ॥ ५३ ॥ यमने हाथसे दण्ड उद्यत करके ताम्रको प्रहार किया, महाबाहु ताम्र यमदण्डसे ताडित होकर भी तिसकालः रणस्थलसे विचलित न हुआ ॥ ५४ ॥ वरन् उसने वेगसहित धनुष खैंचकर तीक्ष्णबाणोंसे रणाङ्गणमें इन्द्र इत्यादि देवता-ओंको शीघ्र प्रहार किया ॥ ५५ ॥ देवता भी कुपित होकर शिलापर पैनाये तीक्ष्ण और दिव्य बाणोंसे दानवोंको आघात करके. ठहरो ठहरो यह कहकर अक्रोश प्रकाश करने लगे ॥ ५६ ॥ देवताओंके बाणोंसे आहत होकर दानव ताम्र रणस्थलमें मूर्च्छित हुआ, तब दानवोंकी सेना भयातुर होकर महान् हाहाकार शब्द करने लगी ॥ ५७ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे भाषायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

श्रीव्यासजी बोले हे राजन् ! सेनापति ताम्रके मूर्च्छित होनेपर महिषने क्रोधमें भर, भारी गदा तान देवताओंके समीप उपस्थित होकर ॥ १ ॥ कहा हे देवताओ ! तुम काककी समान सदा ही बलहीन हो अतएव रहो, अभी तुमको गदाघातसे मारता

हूं ॥ २ ॥ मदगर्वित महाबलवान् महिषने ऐरावतारूढ इन्द्रको सन्मुख पाय गदासे तत्काल उसके बाहुमूलमें आघात किया ॥ ३ ॥ इन्द्रनेभी उसी समय घोरतर वज्रके प्रहारसे उस गदाको खंड खंड कर डाला और उसपै प्रहार करनेकी अभि-लाषा करके सहसा उसके समीपमें हुए ॥ ४ ॥ तब महिषभी क्रोधके वशीभूत होकर दीप्तिमान् खड्ग ग्रहण कर महावीर्यवान् इन्द्रको मारनेके निमित्त उनके निकट आया ॥ ५ ॥ फिर अनेक आयुधोंके वर्षणसे उन दोनोंका जो युद्ध हुआ उससे संपूर्ण लोकोंको भय और मुनिलोगोंको विस्मय उत्पन्न हुआ ॥ ६ ॥ तिस समय इस दानवने सब लोकोंका विनाश करनेवाली अधिक क्या मुनियोंको भी मोह उत्पन्न करानेवाली शाम्बरी माया फैलाई॥ ७॥ तब रणस्थलमें महिषकी समान रूप-युक्त, और पराक्रमशाली करोड़ करोड़ महिष दिखाई देनेलगे, वह सभी आयुध लेकर देवताओंकी सेनाका संहार करनेमें प्रवृत्त हुए॥ ८॥ इस दानवकृत मोहकरी मायाको देख इन्द्र विस्मित और अत्यन्त भयके कारण उद्विग्न हुए ॥ ९॥ वरुण, धनपति, यम, अग्नि, चन्द्र, सूर्य इत्यादि सब देवता भयार्त होकर ॥ १० ॥ भागे, तब देवता माया-जालसे मोहित हो मनमें ब्रह्मा, विष्णु और महादेवको स्मरण करने लगे ॥ ११ ॥ स्मरण करतेही सुरवर ब्रह्मा, विष्णु और महादेव हंस, गरुड और बैलपर चढ़, उत्तम उत्तम अयुध धारण पूर्वक उनकी रक्षा करनेको आये ॥ १२ ॥ शौरिने उस मोहिनी मायाको देखकर उज्वल सुदर्शन चक्र चलाया, तब सुदर्शनके तेजके प्रभावसे ही वह माया तिरोहित हुई ॥ १३ ॥ महिष सृष्टिकारी ब्रह्मा, पालनकर्ता विष्णु और प्रलयकारी महेश्वरको वहां देख युद्धकी अभिलाषासे परिघ लेकर दौड़ा ॥ १४ ॥ फिर सेनापति चिक्षुर, उग्रास्य, उग्रवीर्य, चले ॥ १५ ॥ असिलोमा, त्रिनेत्र, वाष्कल, अन्धक और अन्यान्य योद्धा सभी युद्धकी इच्छासे निकले॥ १६॥ उन मदोद्धत दानवगणने वर्म (कवच) धारे और धनुष बाण लिये रथमें चढ़ क्षुद्र व्याघ्र जिसप्रकार सुकुमार वत्सगणोंपर आक्रमण करता है, इसीप्रकार देवताओंका वेष्टन किया ॥ १७ ॥ अनन्तर उन मदगर्वित दानवोंने बाणवर्षा आरंभ की और देवता भी परस्पर मारनेकी इच्छासे उसीप्रकार बाणवृष्टि करने लगे॥ १८॥ सेनापति अन्धकने हरिके समीपस्थ हो अत्यन्त बलसे कानोंपर्यन्त खैंचकर विषके बुझे शिला-पर पैनाये पांच बाण चलाये ॥ १९ ॥ तब शत्रुनाशक वासुदेवने भी स्वप्रेरित चक्र द्वारा उन सब बाणोंके सन्मुख न आते आतेही तत्काल काटकर फिर पांच बाण

छोड़े ॥ २० ॥ तब हरि और दानवपक्षके वाण, असि, चक्र, मूशल, गदा, शक्ति और परशुद्वारा परस्परको आघात करने लगे ॥ २१ ॥ इस ओर महादेव और अंधकका परस्पर पचास दिनपर्यन्त लोमहर्षण तुमुल युद्ध हुआ था ॥ २२ ॥इसी-प्रकार वाष्कलके संग इन्द्रका, महिषके संग रुद्रका, त्रिनेत्रके संग यमका, महाहनुके संग धनपतिका, और असिलोमाके संग वरुणका अत्यन्त दारुण युद्ध होने लगा ॥ ॥ २३ ॥ महिषने हरिके वाहन गरुडको गदासे आघात किया तब गरुड गदा-प्रहारसे अति कातर हो श्वास छोड़ता हुआ गिरगया ॥ २४ ॥ तिस समय देव-पति शौरिने दाहिने हाथसे सान्त्वना आश्वासन करके विनतानंदन महाबल गरुडको स्थिर किया ॥ २५ ॥ जनार्दनने कोपवशसे अन्धकका संहार करनेकी इच्छा-कर शार्ङ्ग धनुष खैंच उसके ऊपर अनेक बाण चलाये ॥ २६ ॥ प्रथम तो दानवने अपने तीक्ष्ण शरजालसे उनके उन सब बाणोंको खंड खंडकर डाला ॥ ॥ २७ ॥ फिर कोपसहित शिलापर पैनाये पचास बाणोंसे हरिपर आघात किया, वासुदेवनेभी तत्काल उन उत्तम२ सब बाणोंको विफल करके ॥२८॥ सहस्र अरोंसे युक्त सुदर्शन चक्र वेगसहित छोड़ा. हे महाराज ! अन्धकने अपने चक्रसे सुदर्शनचक्रका निवारण करके ॥ २९ ॥ ऐसी गर्जना करी कि उस समय उससे समस्त देवता मोहको प्राप्त हुए, शार्ङ्गधर वासुदेवके चक्रको विफल हुआ देख ॥ ३० ॥ देवता शोकाकुल हुए और दानवोंको हर्ष प्राप्त हुआ वासुदेवभी देवता-ओंको शोकाकुल देख ॥ ३१ ॥ कौमोदकी गदा ग्रहणकर दानवके सामने दौड़े तब हरिने उस मायावी दानवके मस्तकमें गदाप्रहार किया ॥ ३२ ॥ तिसकाल वह गदा-घातसे मूर्छित हो पृथ्वीमें गिरगया अतिकोपन स्वभाव महिषदानव अंधकको गिरा देख ॥ ३३ ॥ गंभीर गर्जनशब्दसे रमानाथको त्रसित करता हुआ आया-उसको क्रोधसे अधीर होकर आया देख वासुदेवने ॥ ३४ ॥ धनुर्ज्या [प्रत्यंचा]-का ऐसा भयंकर शब्द किया कि, उससे देवताओंको हर्षका उदय हुआ तब भगवान्ने महिषके ऊपर बाणोंकी वर्षा करी ॥ ३५ ॥ किन्तु महिषने अपने बाणोंसे आका-शमार्गमें ही उन सब बाणोंको काट डाला. हे राजन् ! फिर उनके परस्पर भया-वह युद्धका आरंभ हुआ ॥ ३६ ॥ केशवने गदासे उसके मस्तकमें आघात किया वह गदाप्रहारसे मस्तकमें आहत होकर पृथ्वीमें गिरगया ॥ ३७ ॥ तब उसकी सेनामें दारुण हाहाकारशब्द होनेलगा वह दानव मुहूर्त्तमात्रमें व्यथारहित होकर उठा

॥ ३८ ॥ तब उसने फिर परिघ लेकर मधुसूदनके मस्तकमें प्रहार किया उस परि-घसे आहत होकर जनार्दन मूर्छित हुए ॥ ३९॥ तब गरुड उनको मूर्छित अवस्थामें लेकर तत्काल रणस्थलसे चले गये जगन्नाथके फिर जानेसे इन्द्रआदि देवता॥ ४०॥ भीत और अतिशय कातर होकर आर्त्तनाद करने लगे. शंकरने देवताओंका रुदन करना सुन शूल ले ॥ ४१ ॥ सरोष चित्तसे शीघ्र महिषके निकट जाय उसपर शूलसे प्रहार किया दुष्टस्वभाव महिषने भी उनका त्रिशूल विफल करके गर्जना की और शक्ति लेकर शंकरके वक्षःस्थलमें मारी तब शंकर वक्षस्थलमें आघात लगनेसे भी कुछ व्यथित नहीं हुए ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ बरन क्रोधसे लाललालनेत्र कर उन्होंने फिर त्रिशूलसे उसपर आघात किया दुरात्मा. महिषके संग शंकरको समरमें प्रवृत्त हुआ देख ॥ ४४ ॥ हरिभी प्रहारजनित मूर्च्छा छोड़कर वहां आये महावीर्य देवदेव चक्रधर हरि और शूलधारी शंकरको संग्रामकी वासनासे समरस्थलमें उपस्थित हुआ देख महिष अतिशय कुपित हुआ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ तब महिष देहधारण कर अपनी विशाल पूँछ इधर उधर संचालित करता हुआ समरकी इच्छासे उनके सन्मुख हुआ ॥ ४७ ॥ उस महाकाय भयानक महिषने दोनों सींग कम्पित करके मेघकी समान इसप्रकार गंभीर गर्जना करी कि उससे देवतालोगभी त्रसित हुए ॥ ४८ ॥ वह दोनों सींगोंसे विशाल२ पर्वतके शिखरोंका निरन्तर निक्षेप करनेलगा महावीर्य देवसत्तम हरि और हर दानवको देखकर ॥ ४९ ॥ दारुण बाणोंकी वर्षा करने लगे. हरि और हर दोनोंको बाणवृष्टि करता देख ॥ ५० ॥ महिष पूँछसे दारुण गिरिशृंग लपेटकर चलाने लगा. पर्वतके शिखरको गिरता हुआ देखकर भगवान् हरिने ॥ ५१ ॥ बाणोंसे उसके शतखंड (सौटुकड़े) करके तत्काल चक्रसे उसका प्रहार किया.हरिके चक्रसे आहत होकर दानवपति रणमें मूर्छित होगया॥ ५२॥ किन्तु क्षणमात्रमें ही फिर मनुष्यदेह धारण करके उठा तब पर्वतकी समान वह भयंकर दानव हाथमें गदा लेकर ॥ ५३ ॥ देवताओंको भय दिखाता मेघकी समान गंभीर शब्दसे गर्जने लगा, भगवान् विष्णुने भी उस शब्दके सुनतेही समुज्वल पाञ्च-जन्य शंख लेकर ॥ ५४ ॥ पूर्ण कर गंभीर और घोरतर शब्द किया शंखके उस शब्दको सुनकर दानवलोग भयसे चकित हुए ॥ ५५ ॥ तथा तपोधन ऋषि और देवता आनन्दित हुए ॥ ५६ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषायां षष्ठोऽध्याय ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ७.

व्यासजी बोले हे राजन् ! उस समय महिषने दानवोंको व्याकुल देखकर महिष-रूप छोड़ सिंहमूर्त्ति धारण की ॥ १ ॥ और अपनी विशाल जटाओंको विस्तार कर घोर गर्जना करता हुआ देवताओंकी सेनामें टूटा, तब देवता उसके तीक्ष्ण नख देखकर अत्यन्त त्रसित हुए ॥ २ ॥ उस सिंहरूप धारी महिषासुरने प्रथम तो गरुडके इसप्रकार नखाघात किया कि, उसका शरीर रुधिरस्रावसे प्लावित होगया इसके पीछे फिर विष्णुके बाहुमूलमें नखसे प्रहार किया ॥ ३ ॥ वासुदेव हरिने भी उस दानवको देख क्रोधसे चक्र उद्यत कर उसको मारनेकी इच्छासे वेगसहित आक्रमण किया ॥ ४ ॥ जैसेही हरिने महिष दानवपर अतिवेगसे चक्रप्रहार किया, वैसेही उस महाबलवान् दानवने भी तत्काल सिंहरूप त्याग महिषरूप धारणकर दोनों सींगोंसे हरिपर आघात किया ॥ ५ ॥ वासुदेव सींगोंसे वक्षस्थलमें ताडित हो विह्वल चित्तसे वेगसहित वहांसे अपने वैकुण्ठ धाममें चलेगये ॥ ६ ॥ हरिके चले जानेपर शंकरभी उसको नितान्त अवध्य विचार कर भयसे कैलास पर्वतको चले गये ॥ ७ ॥ ब्रह्माभी भयके कारण शीघ्र अपने आलयकी ओर दौड़े किन्तु महाबलवान् वासव धैर्य अवलम्बन करके समरमें स्थिर रहे ॥ ८ ॥ वरुण शक्ति ले धैर्य धारण कर समरकी प्रतीक्षामें रहे; यमभी दंडग्रहण किये समरमें तत्पर होकर रहे ॥ ९ ॥ इसी प्रकार यक्षपति कुबेर भी अतिशय संग्राममें व्यग्र रहे, पावक शक्ति ग्रहण करके वहां युद्धकी अभिलाषसे स्थित रहे ॥ १० ॥ दानवश्रेष्ठ महि-षको देखकर नक्षत्रपति चन्द्र और सूर्य दोनों एकत्र युद्धके लिये कृतनिश्चय होकर रहे॥ ११ ॥ हे महाराज ! इसी अवसरमें दानवसैन्य कुपित होकर कठिन विषहरकी समान बाण वर्षण करती हुई चारों ओरको दौड़ी ॥ १२ ॥ तब दानवराजभी महिषरूप धारण करके उसमें स्थिति करने लगा इसी समय देवता और दानवोंके योधाओंका तुमुलशब्द उत्थित हुआ ॥ १३ ॥ देवता और दानवसेनाके घोरतर संग्राम समयमें मेघके शब्दकी समान ज्याघात (प्रत्यंचाशब्द) का और करतला-घातका शब्द समुत्थित होने लगा ॥ १४ ॥ ॥ तिस समय महाबल दानव मदगर्वित होकर सींगोंसे पहाड़ोंके शिखर चलाकर देवताओंका संहार करने लगा ॥ १५ ॥ वह अति अद्भुत महिष क्रोधयुक्त होकर किसी किसी देवताको खुरप्रहारसे और

किसी किसीको पूंछके घुमानेसे मारने लगा ॥ १६ ॥ तब देवता और गंधर्व बहुत डरे, यही क्या ? बरन महिषको देखतेही इन्द्रको भी भागना पड़ा ॥ १७ ॥ जब शचीपति इन्द्र संग्राम त्यागकर चलेगये तब यम, कुवेर और वरुण, यह भी सब भयसे आर्त हो रणस्थल छोड़कर चले गये ॥ १८ ॥ इन्द्र ऐरावत हाथी, और उच्चैःश्रवा घोड़ेको छोड़कर भागे थे, सुतरां महिष वह हाथी घोड़ा और भास्करकी कामदुहा गौ हरणकर महाजय हुई विचार अपने गृहको चलागया. फिर शीघ्र अपनी सेनासे युक्त हो स्वर्गधाममें जानेकी इच्छा करी ॥ १९॥२० ॥ महिषने तत्काल देवसदनमें जाय भयातुर देवताओंके छोड़े हुए सुरराज्यको ग्रहण किया ॥ २१ ॥ फिर दानवराजने इन्द्रके रमणीय आसनमें बैठकर अन्यान्य दानवोंको देवताओंके स्थानमें स्थापित किया ॥ २२ ॥ इस प्रकार पूरे सौ वर्ष युद्ध करके उस मदगर्वित दानवने अभिलषित इन्द्रपद प्राप्त किया ॥ २३ ॥ जब उसने देवताओंको स्वर्गलोकसे निकाल दिया, तब वे सब पीडित होकर उसी प्रकार बहुत वर्षपर्यन्त पर्वतकी गुहाओंमें घूमते फिरे ॥ २४ ॥ हे राजन् ! तब देवता दुःखी होकर रजोमूर्त्ति चतुर्मुख प्रजापति ब्रह्माकी शरणमें गये ॥ २५ ॥ तिस समय वेदगर्भ जगत्पति कमलासनपर आसीन थे उनके चारोंओर वेदवेदांगके पारगामी शान्तचित्त उनके मनसे प्रगट मरीचि इत्यादि मुनिगण ॥ २६ ॥ सिद्धगण, गंधर्व-गण, किन्नरगण, चारणगण, उरगगण और पन्नगगण, दण्डायमान थे. इसी अवसरमें वे भयभीत देवतालोग देवदेव जगद्गुरु ब्रह्माका स्तव करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ २७ ॥ देवता बोले हे कमलयोने ! आप जगत्का संपूर्ण क्लेश निवारण करते हैं किन्तु दानवपतिसे पराजित होकर हम स्थानभ्रष्ट हुए हैं, अधिक क्या ? हमलोग पर्वतके गुहाओंमें वास करके अत्यन्त क्लेश भोग करते हैं, तो हमारी यह अवस्था देखकर भी क्यों आपको दया नहीं होती ? ॥ २८ ॥ हे धातः ! पुत्र शतअपराधका अपराधी होनेपर भी लोभरहित पिता क्या उसको छोड़कर अतिशय क्लेश देते हैं ? हमलोग दानवोंसे पीडित हुए हैं और विशेषकर आपके चरणकमलोंमें एकान्तभक्ति परायण हैं, किन्तु तो भी इन दीन लोगोंकी आज आप उपेक्षा करते हैं ॥ २९ ॥ वह दुरात्मा सब प्रकारसे देवताओंका राज्य भोग करता है. यज्ञीयहविका योगभाग ब्राह्मणोंसे बलपूर्वक ग्रहण करता है. पारिजात पुष्पोंका उपभोग करता है और जलनिधिकी निधिस्वरूप कामधेनु लेकर उसका भी भोग करता है ॥ ३० ॥ असुर

गणोंके अद्भुत कार्यके विषयमें और क्या कहैं हे देवेश ! आप देवताओंके शत्रुओंकी सबही चेष्टा जानते हैं. क्योंकि आपको ज्ञानके द्वारा सब कार्य विदित होते हैं. अतएव हे प्रभो ! हम आपके चरणोंमें प्रणत हैं ॥ ३१ ॥ दानवपतिका शरीर अपवित्र और उसका मन पापसे कलुषित है. अतएव देवता जिस किसी स्थानमें जाते हैं, वहीं वह अनेक प्रकारसे क्लेश देता है. हे देवेश ! आपही एकमात्र रक्षक हैं. अतएव हे विभो ! हमारा मंगलविधान कीजिये ॥ ३२ ॥ आप देवताओंको अभीष्ट प्रदान करते हैं. आपही सबके आदि प्रजापति और विधाता हैं. अतएव आप यदि मंगल न करेंगे, तो हम दारुण दावानलमें पीडित हो आपको छोड़ अन्य किस अमिततेज मंगलमय शान्तिकर्त्ताकी शरणमें जायँगे ? ॥ ३३ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! संपूर्ण देवताओंने इस प्रकार स्तव करके अत्यन्त मलीन वदनसे हाथ जोड़ प्रजापतिको प्रणाम किया ॥ ३४ ॥ लोकपितामह उन देवताओंकी ऐसी अवस्था देख मधुरवचनसे सुख उत्पादन कर कहने लगे ॥ ३५ ॥ हे देवताओ ! मैं क्या करूं ? वह दानव वर पानेके कारण अत्यन्त दर्पित है. वह स्त्रीसे मरेगा. पुरुषसे नहीं मरेगा. अतएव इसका उपाय क्या है? ॥ ३६ ॥ इस कारण हे देवताओ ! हम सब मिलकर पर्वतश्रेष्ठ कैलासको चलें, वहांसे देवकार्यविशारद शंकरको आगे करके ॥ ३७ ॥ वैकुण्ठमें देवदेव जनार्दनके निकट चलें. वहां सब मिलित होकर देवकार्यसाधनके लिये विशेष परामर्श करें ॥ ३८ ॥ इस प्रकार कार्यकी आज्ञा करके ब्रह्मा हंसपर चढ़ देवताओंके सहित कैलासपर्वतकी ओर चले ॥ ३९ ॥ शिवभी ध्यानयोगसे देवताओंके सहित पद्मयोनिका आगमन वृत्तान्त जान अपने गृहसे शीघ्र निकल कर आगे हुए ॥ ४० ॥ फिर दोनोंका साक्षात् होनेपर शिव और ब्रह्मा आपसमें प्रणाम कर अत्यन्त संतोषको प्राप्त हुए. तब देवताओंने उनको प्रणाम किया ॥ ४१ ॥ देवताओंकी पृथक् पृथक् आसनप्रदान करनेपर वे उनपर बैठे. पार्वतीपतिभी अपने आसनपर विराजमान हुई ॥ ४२ ॥ वृषध्वजने ब्रह्मा और देवताओंसे कुशल प्रश्न कर उनके कैलास आनेका कारण पूँछा ॥ ४३ ॥ शिवजी बोले हे ब्रह्मन् ! इन्द्र इत्यादि देवताओंके सहित आप किस कारण इस स्थानमें आये हैं ? हे महाभाग ! इसका कारण क्या है ? उसको आप कहिये ॥ ४४ ॥ ब्रह्माजी बोले हे देवदेव ! महिष दानव स्वर्गवासी देवताओंको पीडित करता है, इसकारण देवता इन्द्रके सहित भयसे अतिशय दु-

पर्वतोंकी गुहाओंमें भ्रमण करते हैं ॥ ४५ ॥ महिष और अन्यान्य दानव यज्ञभागका भोग करते हैं. अतएव लोकपाल पीडित होकर आज आपकी शरणागत हुए हैं ॥ ४६ ॥ हे शम्भो ! कार्यके भारी होनेसे मैं उनको आपके स्थानमें ले आया हूं. इसकारण हे सुरेश्वर ! जिससे देवताओंका कार्य युक्ति अनुसार सिद्ध हो आप वही कीजिये॥ ४७॥ हे भतभावन ! सब देवताओंका भार आपमेंही (स्थित) है. व्यासजी बोले हे राजन् ! शंकर यह बात सुन कुछेक हँसते हुए ॥ ४८॥ मधुरवचन द्वारा कमलयोनिसे कहने लगे. शिवजी बोले हे विभो ! वर देनेसे आपनेही पहिले ॥ ४९ ॥ देवताओंका अनर्थ कर कार्य किया है, अब फिर क्या करना चाहिये ? वह ऐसा बलवान् और शूर है कि सब देवताओंको भी उसने भय उत्पादन किया है ॥ ५० ॥ अतएव कौन ऐसी उत्तम स्त्री है, जो उस मदगर्वित दानवके मारनेमें समर्थ होगी ? तुम्हारी भार्या वा मेरी भार्या संग्राममें जानेको समर्थ नहीं होंगी॥ ५१ ॥ और जो वे दोनों महाभागा समरमें जायँ तो वह किसप्रकार युद्ध करेंगी ? सौभाग्यशालिनी इन्द्राणी भी समरमें कुशल नहीं हैं ॥ ५२ ॥ अतएव अन्य कौन स्त्री उस पापबुद्धि मदगर्वित दानवके मारनेमें समर्थ होगी ? अतएव मेरा अभिप्राय यही है कि अभी जनार्दनके समीप जाय ॥ ५३ ॥ उनका स्तव कर देवकार्यके निमित्त शीघ्र उनको नियोजित करें. विष्णु बुद्धिमानोंमें अग्रणी हैं, इस कारण सब प्रयोजन संपादन विषयमें समर्थ हैं ॥ ५४ ॥ वासुदेवके सहित मिलित होकर कार्यका विचार करना चाहिये, वह अपनी तीक्ष्ण बुद्धिसे परामर्श स्थिर कर कार्यसाधन करेंगे॥ ५५॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! ब्रह्मादि सुरसत्तमगण रुद्रके इसप्रकार वचन सुन "यही हो" ऐसा कहकर शिवके सहित शीघ्र उठे ॥ ५६ ॥ तिस समय कार्यसिद्धिके निमित्त सब प्रसन्नचित्त हो उत्तम शकुन देखकर अपने अपने वाहनपर चढ़ विष्णुपुरीको चले ॥ ५७ ॥ तब शीतस्पर्श सुगंधित वायु अनुकूलभावसे मन्द मन्द बहने लगा और पक्षीगण मार्गमें सर्वत्र ही मंगलध्वनि करने लगे ॥ ५८ ॥ आकाश निर्मल और सब दिशाएं निर्मल हुईं, अधिक क्या देवताओंके गमनसमयमें समस्तही शुभकर होगया ॥ ५९ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ८.

व्यासजी बोले देवता शीघ्रतासहित विष्णुपालित वैकुण्ठमें पहुँच उसका अनिर्वचनीय सौन्दर्य देखने लगे कि स्थान स्थानमें शोभायमान गृह विराजमान हैं ॥१॥ उनके सन्मुख सरोवर और दीर्घिका कल्हार पुष्पसे शोभित हैं, कहीं नदियें वह रहीं हैं, तिनमें हंस सारस और चक्रवाकादि जलचर पक्षीगण श्रवणमनोहर ध्वनि करते करते विचरण करते हैं ॥२॥ कहीं मनोहर उपवन हैं. उनमें चंपक, अशोक, मन्दार, बकुल, आम्रातक, तिलक, कुरबक, और मल्लिका इत्यादि पुष्पतरु शोभायमान थे. तहां स्थान स्थानमें कोकिल और भ्रमरगण मनोहर झङ्कार शब्द और मोर नृत्य करते थे ॥ ३ ॥ ४ ॥ मध्यस्थलमें हरिका गगनस्पर्शी प्रासाद (महल) उसके सब दूसरे महल मनोहर स्थान स्थानमें रत्नखचित और विचित्र चित्रसे अलंकृत थे उसके मध्य मणिमय आसनपर विष्णु विराजमान हैं, सुनन्द और नन्दन इत्यादि पार्षद्गण उनके ऐसे भक्त हैं कि, उनके चित्तकी वृत्ति अन्य कहींभी आसक्त नहीं होती. अतएव वे एकान्तचित्तसे उनकी भक्तिपरायण होकर उनका स्तव करते हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥ उस स्थानमें अप्सराओंके नृत्य और देवगंधर्व तथा किन्नरगण मनोहर मधुर स्वरसे संगीत करते हैं ॥७॥ जो वेदपाठमें आदर करते हैं. ऐसे शान्तस्वभाव मुनि वेदसूक्तपाठ करके उनका स्तव करते हैं ॥ ८ ॥ सुन्दराकृति द्वारपाल जय और विजय स्वर्णयष्टि धारण करके द्वारपर स्थित हैं. देवताओंने विष्णुपुरके समीप पहुँच उनका अवलोकन करके कहा ॥ ९ ॥ तुम दोनोंमेंसे एक जन विष्णुके समीप जाकर निवेदन करो कि ब्रह्मा और रुद्रादि देवता मिलित होकर आपके दर्शनकी लालसासे द्वारपर खड़े हैं ॥ १० ॥ व्यासजी बोले हे महाराज! विजयने उनका वचन सुन शीघ्र विष्णुके समीप जाय प्रणाम कर संपूर्ण देवताओंके आनेका वृत्तान्त निवेदन करके कहा ॥ ११ ॥ हे महाराज! संपूर्ण सुरशत्रु संहार करनेसे आप संपूर्ण देवताओंके परमाराध्य देवता हैं, अतएव हे रमानाथ! इस समय सब देवता आनकर आपके द्वारपर खड़े हुए हैं ॥ १२ ॥ हे विभो! ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, वरुण, पावक, और यम इत्यादि देवतालोग आपके दर्शनकी लालसासे वेदवाक्य द्वारा आपकी स्तुति कर रहे हैं ॥ १३ ॥ हे महाराज! रमापति विष्णु विजयके वचन सुनकर अत्यन्त आनन्दित हुए, और देवताओंसे भेंट करनेके लिये उत्सुक होकर तत्काल गृहसे बाहर निकले ॥ १४ ॥ तब हरिने उनके निकट जाय

द्वारपर खड़े हुए देवताओंको अतिदुःखी तथा श्रमसे कातर देख प्रीतिपूर्ण अनुकूल-दृष्टिसे मनको प्रसन्न किया ॥ १५ ॥ तिसकाल संपूर्ण देवता उन वेदविदित दैत्यारि देवदेव जगन्नाथको प्रणाम करके स्तव करने लगे ॥ १६ ॥ देवता बोले हे देवदेव ! आप सृष्टि स्थिति और संहारकारक होकरभी दयाके सागर और जगत्के एकमात्र आश्रय हैं. हे महाराज ! हम आपकी शरणागत हैं, इस कारण आप हमारी रक्षा कीजिये ॥ १७ ॥ देवताओंका इस प्रकार स्तव सुनकर विष्णुने कहा हे देवताओ ! तुम आसनपर बैठकर अपना अपना कुशलवृतान्त कहो, सबके मिलित होकर इस स्थानमें आनेका क्या कारण है ? ॥ १८ ॥ तुम दीनचित्त दुःखसे व्याकुल और इतने चिन्तातुर क्यों हुए हो ? हे देवताओ ! तुम किस कार्यके लिये ब्रह्मा और रुद्रके सहित मिलित होकर इस स्थानमें आये हो ? सो शीघ्र कहो ॥ १९ ॥ देवता बोले हे महाराज ! महिषासुर अति दुष्टस्वभाव और विशेषकर सदाही पापकार्यमें निरत है, अब वह पापिष्ठ वर पानेके कारण अत्यन्त उद्धत होकर हमको निरन्तर क्लेश देता है ॥ २० ॥ अधिक क्या ? ब्राह्मणलोग जो यज्ञ संपन्न करते हैं वह उन सब यज्ञोंका भाग भोग करता है, अतएव हम उसके भयसे कातर होकर गिरिदुर्गमें भ्रमण करते हैं ॥ २१ ॥ हे मधुसूदन ! विधाताके वरदानसे वह दुर्ज्जय है, इसलियेही हम उस कार्यके भारी विचार कर आपकी शरणमें आये हैं ॥ २२ ॥ हे कृष्ण ! आपही दैत्योंकी संपूर्ण माया जानते हैं कारण आपही दानओंका विनाश करते हैं, अतएव इस विपदसे हमको उद्धार करनेमें आपही समर्थ हैं, आपही उसके वधका उपाय विचारिये ।। २३ ।। विधाताने उसको यह वर दिया है कि तू पुरुषसे अवध्य होगा, अतएव उस शठको समरमें निहत करसके, ऐसी बलशालिनी स्त्री कौन है ? ॥ २४ ॥ महिष वरदानके बलसे अति दुरात्मा हुआ है, अतएव उमा, लक्ष्मी, शची, वा विद्या कौन स्त्री उसको मार सकेगी ? ॥ २५ ॥ अतएव हे भक्तवत्सल ! आपही भुवनके रक्षक हैं इस समय बुद्धिसे भलीभांति इसकी मृत्युका कारण विचारकर जिससे देवताओंका कार्य सिद्ध हो, वही कीजिये ॥ २६ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! विष्णुने इस प्रकार उनके वचन सुनकर हँसते हँसते उनसे कहा, मैंने पहिले संग्राम किया था; किन्तु यह असुर उसमेंभी न मरा ॥ २७ ॥ यदि इस समय देवताओंकी निज निज शक्तिके अंश और रूपसे कोई वरारोहा रमणी उत्पन्न हो, तो वह ललना बल-पूर्वक उसका विनाश करै ॥ २८ ॥ हम लोगोंकी शक्तिके अंशसे नारीके निर्मित

होनेपर वह शतशत माया विशारद बलदर्पित महिषका संहार करसकेगी ॥ २९ ॥ अतएव तुमलोग अपनी अपनी स्त्रीके संग मिलकर तैजस अंशके निकट प्रार्थना करो कि उत्पन्न हुआ सब तेज मिलकर स्त्रीरूप हो ॥ ३० ॥ तब रुद्रादि देवताओंके त्रिशूल इत्यादि जो सब दिव्य अस्त्र हैं; हम सब वह सब आयुध उनको देंगे ॥ ३१ ॥ इसके उपरान्त वह नारी संपूर्ण तेजःपुंजसे परिपूर्ण होकर संपूर्ण आयुध धारणपूर्वक मदगर्वित दुष्टस्वभाव पापिष्ठ असुरको विनाश करेगी ॥ ३२ ॥ व्यासजी बोले देवेश विष्णुके इस प्रकार कहतेही ब्रह्माजीके मुखमण्डलसे स्वयंही अतिदुःसह तेजोराशि प्रादुर्भूत हुई ॥ ३३ ॥ यह तेज पद्मरागमणिके समान रक्तवर्ण, कुछेक शीतल और उष्ण सुंदर अवयव (अंग) युक्त और मरीचिमालासे मण्डित था ॥ ३४ ॥ हे महाराज ! विपुलविक्रम महात्मा हरि और हरभी उस निकले हुए तेजको देखकर आश्चर्यमें हुए ॥ ३५ ॥ इसके पीछे फिर शंकरके शरीरसे जो अतिअद्भुत विपुलतेज निकला वह रौप्यवर्ण, भयानक, दुःसह और अत्यन्त कष्टसेभी नहीं देखा जाता था ॥ ३६ ॥ वह पर्वतके शिखरकी समान विशाल और दूसरे तमोगुणकी समान भयंकर था, उसको देखनेसे देवताओंको आश्चर्य और दैत्योंको भय उदय हुआ ॥ ३७ ॥ इसके उपरान्त नीलवर्ण सत्वगुणयुक्त महाद्युति अपर तेजोराशिके समान विष्णुके शरीरसे निकली ॥ ३८ ॥ फिर सुरपति वासवके शरीरसे जो दुःसह तेज निकला. वह अतिसुंदर और त्रिगुणमय था, अतएव वह विचित्रवर्ण था ॥ ३९ ॥ कुबेर, यम अग्नि और वरुणके शरीरसे एकबारही महत् तेजःपुञ्ज प्रादुर्भूत हुआ ॥ ॥ ४० ॥ और अन्यान्य देवताओंके शरीरसे भी अत्यन्त भास्वर (प्रकाशमान) तेज निकला. तिसकाल उस महातेजका समूह मिलकर अतिउज्वल होगया ॥ ४१ ॥ दूसरे हिमाचलकी समान वह महान् दिव्यतेजोराशि देखकर विष्णु इत्यादि संपूर्ण देवतालोग विस्मित हुए ॥ ४२ ॥ देवता इकटक नेत्रोंसे देख रहे थे, इसी अवसरमें उस तेजःपुंजसे एक अद्वितीय सुंदरी स्त्रीने उत्पन्न होकर उनको आश्चर्यउत्पादन किया ॥ ४३ ॥ सब देवताओंके शरीरसे जो त्रिगुण रमणीय शक्ति उत्पन्न हुई वह साक्षात् महालक्ष्मी थीं. उन त्रिवर्णधारिणी विश्वमोहिनीके अठारह बाहु ॥ ॥ ४४ ॥ मुखमण्डल श्वेतवर्ण नयन कृष्णवर्ण अधरपल्लव रक्तवर्ण और हथेली ताम्रवर्ण थीं । उन्होंने दिव्यभूषणोंसे भूषित होकर मनोहर कान्ति धारण की थी ॥ ॥ ४५ ॥ देवी परा शक्तिके हजार बाहु होनेपर भी इस समय वह असुरोंको

मारनेके लिये तेजोराशिसे अठारहही भुजायुक्त होकर प्रगट हुई ॥ ४६ ॥ जन्मेजयने कहा हे मुनिसत्तम कृष्ण ! आप सब प्रकार सौभाग्यमें परिपूर्ण और सर्वज्ञ हैं अतएव आपसे कोई बात छिपी नहीं है इस कारण उनके शरीरकी उत्पत्तिका विषय विस्तारसहित वर्णन कीजिये ॥ ४७ ॥ हे देव ! सब देवताओंका तेज क्या इकट्ठा हुआ था? अथवा पृथक् पृथक् था और उसके सब अंग क्या तेजोमय हुए थे?॥ ४८॥ मुख नासिका नेत्र इत्यादि सब अंग क्या पृथक् पृथक् तेजके विभागसे वा संपूर्ण तेजके मिलित होनेसे उत्पन्न हुए थे ? ॥ ४९ ॥ शरीर और अंगकी उत्पत्ति विस्तारसहित कहिये और जिस जिस देवताओंके तैजस अंशसे जो जो अंग उत्पन्नहुए थे, यह भी कहिये॥ ५०॥ देवताओंने उसके अंगमें जो जो आभरण और आयुध दिया था, आपके मुखकमलसे उस वृत्तान्तके सुननेकी अत्यन्त इच्छा है॥ ५१॥ हे ब्रह्मन् ! मैं आपके मुखकमलसे निकला हुआ महालक्ष्मीका चरित्ररूप सुधामय रसपान करके तृप्तिलाभ नहीं करसक्ता ॥ ५२ ॥ सूतजी बोले सत्यवती-तनय श्रीवेदव्यासजी राजाके यह वचन सुन उनको मधुरवचनोंसे प्रसन्न करके कहने लगे ॥ ५३ ॥ हे कुरुवर ! आप अतिभाग्यवान् हैं, नहीं तो आपकी इस प्रकार प्रवृत्ति क्यों होती ? इस कारण अपनी बुद्धिके अनुसार विस्तारपूर्वक उनके देहकी उत्पत्तिका विषय तुमसे कहता हूं सुनो ॥ ५४ ॥ साक्षात् रुद्र, क्या ब्रह्मा, क्या हरि, क्या इन्द्र, कभी यथा योग्य उनके रूपका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हैं॥ ५५॥ तुमसे पहिलेही कहा है कि, वचनके आरंभमात्रमें ही वह उत्पन्न हुई इस निमित्त देवीका रूप वा सादृश्यका विषय किसप्रकार जान सक्ता हूं ॥ ५६ ॥ वह नित्या हैं अतएव सदा ही सत्स्वरूप हैं, वह एक रूपा होकर भी देवताओंका भारी कार्य सिद्ध करनेके लिये अनेक रूप धारण करती हैं ॥ ५७ ॥ स्वभावतः नटका रूप एक होनेपरभी वह जिसप्रकार मनुष्योंका चित्त प्रसन्न करनेके निमित्त अनेक रूपमें दिखाई देता है, इसीप्रकार स्वभावसे एकरूप होकर ॥ ५८ ॥ यह निर्गुणा देवी अरूपा होकर देवताओंका कार्य संपादन करनेको अपनी लीलासे सत्वादिगुणयुक्त अनेक रूप धारण करती हैं ॥ ५९ ॥ कहीं कार्यके अनुसार कहीं कर्मानुसार धातुका अर्थ, और गुणयुक्त मुख्य तथा गौण उनके अनेक नाम होते हैं॥ ६०॥ इस कारण हे नराधिप ! तेजसे जिसप्रकार उनका मनोहर रूप प्रगट हुआ था, मैं अपने ज्ञानानुसार आपके निकट उसीका वर्णन करता हूं ॥ ६१ ॥ शंकरके तेजसे उनका विमल

श्वेतवर्ण और मनोहर मुखकमल उत्पन्न हुआ था ॥ ६२ ॥ उनके चिकने केश यमके तेजसे उत्पन्न हुए, यह केश जानुपर्य्यन्त लम्बित कुटिलाग्र कृष्णवर्ण और मनोहर थे ॥ ६३ ॥ उनके तीनों नेत्र पावकके तेजसे उत्पन्न थे. इन सबके तारा कृष्णवर्ण, मध्यस्थल श्वेतवर्ण और प्रान्तभाग रक्तवर्णका था ॥ ६४ ॥ देवीकी कृष्णवर्ण दोनों भौं हें दोनों संध्याओंके तेजसे उत्पन्न हुई थीं. ये दोनों भौंहें चिकनी, वक्र और कामकार्मुककी समान तेजस्कर थीं ॥ ६५ ॥ वायुके तेजसे उनके दोनों कान उत्पन्न हुए. बहुत बड़े और बहुत छोटेभी नहीं थे. कामदेवके दोला [तराजूके पल्ले] की समान अत्यन्त मनोहर थे ॥ ॥ ६६ ॥ धनदके तेजसे उनकी नासिका उत्पन्न हुई. वह तिलकुसुमकी समान स्निग्धवर्ण और अत्यन्त मनोरम थी ॥ ६७ ॥ हे राजन् ! उनके सब दांत दक्षादिके तेजसे उत्पन्न हुए. वह कुन्दकुसुमकी समान श्रेणीबद्ध. मसृण (चिकने) और द्युतिशाली थे ॥ ६८ ॥ उनके अत्यन्त रक्तवर्ण अधर अरुणके तेजसे और मनोहर ओष्ठ कार्तिकके तेजसे उत्पन्न हुए ॥ ६९ ॥ उनकी अठारह बाहु विष्णुके तेजसे और रक्तवर्ण सब अंगुलियें वसुगणोंके तेजसे उत्पन्न हुई ॥ ७० ॥ उनके उत्तम दोनों स्तन सोमके तेजसे और त्रिवलीयुक्त मध्यस्थल इन्द्रके तेजसे उत्पन्न हुआ ॥ ७१ ॥ उनकी जंघा और दोनों ऊरु वरुणके तेजसे और विपुल नितम्ब पृथ्वीके तेजसे उत्पन्न हुए ॥ ७२ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार देवताओंके तेजःपुंजसे यह नारी उत्पन्न हुई. उनके सब अंग सुंदर, रूप अनुपम और स्वर अतीव मधुर था ॥ ७३ ॥ अधिक क्या ? उस चारु लोचनाके सभी अवयव मनोहर थे; महिषासुरसे पीड़ित देवता उस शोभना देवीको देखकर हर्षित हुए ॥ ७४ ॥ तिस समय विष्णुने देवताओंसे कहा हे देवताओ ! तुम इनको शुभदायक सब आयुध और आभरण प्रदान करो ॥ ७५ ॥ तुम सब अभी अपने अपने आयुधसे तेजःसंपन्न अनेक आयुध उत्पन्न करके देवीको समर्पण करो ॥ ७६ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषायां अष्टमोऽध्यायः ८ ॥

नवमोऽध्यायः ९.

व्यासजी बोले देवता विष्णुके वचन सुन संतुष्ट हो तत्काल भूषण, वस्त्र और अपने अपने आयुध देने लगे ॥ १ ॥ क्षीरोद समुद्रने प्रसन्न होकर उनको सुसज्जित विमल हार और अजय सूक्ष्म रक्तवर्ण दिव्य दो वस्त्र दिये ॥ २ ॥ विश्वकर्माने प्रसन्नचित्त होकर उनको मस्तकमें करोड सूर्यकी समान प्रभाशाली दिव्य चूडामणि, कर्णमें शुभ्र वर्ण कुंडल, हाथमें वलय (कंकण) केयूर (बाजूबंद) और अनेक प्रकारके रत्नसे खचित कङ्कण ॥ ३ ॥ ४ ॥ तथा सुंदर पैरोंमें शब्दायमान रत्न भूषित विमलकान्ति, सूर्यके समान उज्वल, दो नूपुर दिये ॥ ५ ॥ महार्णवकी समान अगाध बुद्धिशाली उस सुरशिल्पीने उनको रमणीय ग्रीवाभूषण और परमज्योतिर्मय रत्नखचित उत्तम उत्तम सब अंगुलीयक, (अँगूठी) प्रदान किये ॥ ६ ॥ जो कमल किसी समयभी नहीं कुँभलाते गंधमें भरकर अंध हो भौंरे जिसका अनुगमन करते हैं. वरुणने वही कमलमाला और वैजयन्ती माला अर्पण करी ॥ ७ ॥ हिमवानने संतुष्ट होकर उनको नानाविध रत्न और सवारीके लिये कनकवर्ण मनोहर सिंह प्रदान किया ॥ ८ ॥ तिसकाल वह वरारोहा सर्वलक्षणसंपन्ना प्रधाना कल्याणदायिनी कामिनी दिव्यभूषणोंसे भूषित होकर सिंहके ऊपर शोभा पाने लगी ॥ ९ ॥ उस समय विष्णुनेभी अपने चक्रसे अपर एक असुरशिरोहर सहस्रार तेजोमय चक्र उत्पन्न करके उनको दिया ॥ १० ॥ शंकरने अपने शूलसे देवताओंका भयनाशक और असुरनाशक एक उत्तम शूल उत्पन्न करके देवीको दिया ॥ ११ ॥ वरुणने प्रसन्नचित्त हो अपने शंखसे मंगलमय घोररव अतिउज्वल शंख उत्पन्न करके उनको दिया ॥ १२॥ जो शतघ्नी शक्ति यमके समान अत्यन्त वेगसे दैत्योंका विनाश करती है. हुताशनने प्रसन्नचित्तसे उनको वही शक्ति दी ॥ १३ ॥ जो अति कठिनतासे खेंचाजाय. और जिसका शब्द अत्यन्त कठोर है. ऐसा अद्भुत दर्शन चाप और बाणपूर्ण तरकस अमरप्रवर मारुतने उनको दिया ॥ १४ ॥ इन्द्रने अपने वज्रसे अतिदारुण वज्र उत्पन्न करके और ऐरावतसे शब्दायमान घंटा लेकर तत्काल उनको दिया ॥ १५ ॥ कालपूर्ण होनेपर जिस दण्डसे सब भूतोंका विनाश करते हैं, यमने उसी कालदंडसे मनोहर दण्ड उत्पन्न करके उनको दिया ॥ १६ ॥ ब्रह्माजीने हर्षमें भरकर गंगाजलपूर्ण दिव्यकमण्डलु, और वरुणने पाश दिया ॥ १७ ॥ हे नराधिप ! कालने खड्ग और

चर्म व विश्वकर्मने उनको तीक्ष्ण परशु दिया ॥ १८ ॥ धनपतिने सुवर्णमय सुरापूर्ण पानपात्र, और वरुणने दिव्य मनोहर पंकज अर्पण किया ॥ १९ ॥ जिसमें शतशत-घंटा लगे हुए और जो देवताओंके शत्रुओंका विनाश करती है, विश्वकर्माने प्रसन्न होकर वही कौमोदकी गदा ॥ २० ॥ अभेद्य कवच और अनेक प्रकारके सब अस्त्र उनको दिये. दिवाकरने जगन्माताको अपनी रश्मि प्रदानकी ॥ २१ ॥ आयुध और अलंकारोंसे उनको भूषित देखकर देवता विस्मितभावसे उन त्रैलोक्यमोहिनी शिवा देवीका स्तव करने लगे ॥ २२ ॥ देवता बोले हे देवि ! तुम शिवा और कल्याणी हो, तुमको नमस्कार है, तुम्हीं शान्ति और पुष्टि हो, तुमको वारंवार नमस्कार करते हैं. तुम्हीं देवी भगवती और रुद्राणी हो, हम तुमको सर्वदा नमस्कार करते हैं ॥ २३ ॥ तुम्हीं कालरात्रि, तुम्हीं इन्द्राणी, तुम्हीं अम्बा हो, तुमको वारंवार प्रणाम करते हैं, तुम्हीं सिद्धि, तुम बुद्धि, तुम्हीं वृद्धि, और तुम्हीं वैष्णवी हो, तुमको हम वारंवार प्रणाम करते हैं ॥ २४ ॥ जो पृथ्वीके अन्तरमें वास करती हैं, किन्तु तोभी पृथ्वी जिनको नहीं जानसक्ती, और पृथ्वीके अन्तर रहकर जो अपना कार्य होनेसे उसको नियमित करती हैं, उन्हींपर देवता ईश्वरीकी वंदना करते हैं ॥ २५ ॥ जो मायामें वास करतीं हैं, तोभी माया जिनको नहीं जानती, किन्तु मायाके अन्तरवर्तिनी होकर जो उस अजा [अजन्मा] को कार्यमें नियुक्त करती हैं उन्हीं प्रेरयित्री शिवाको हम नमस्कार करते हैं ॥ २६ ॥ हे मातः ! तुम कल्याण करो, हम शत्रुसे पीडित हुए हैं, अतएव हमारी रक्षा करो. तुम अपने तेजके प्रभावसे मोहित करके पापी महिषका संहार करो ॥ २७ ॥ वह स्त्रीवध्य, खल, शठ, भयंकर और वरदर्पित है और मायासे अनेक रूप धारण करके सब देवताओंको क्लेश देता है ॥ २८ ॥ हे भक्तवत्सले ! सब देवताओंकी तुम्हीं एक मात्र आश्रयस्थान हो, हे देवि ! हम इस दानवसे पीडित हैं, अतएव इस समय तुम हमारी रक्षा करो, हम तुमको नमस्कार करते हैं ॥ २९ ॥ व्यासजी बोले जब देवताओंने देवीका इसप्रकार स्तव किया, तब सर्वसुखदात्री महादेवी हँसते हँसते उनसे मंगलमय वचन कहने लगीं ॥ ३० ॥ हे देवताओ ! मन्दमति महिषको मोहित करके अभी समरमें संहार करूंगी ॥ ३१ ॥ व्यासजी बोले देवी देवताओंसे इस प्रकार कहकर मधुरस्वरसे हँसने लगीं. हे राजन् ! जगत् भ्रम और मोहसे पूर्ण है ॥ ३२ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, महादेव और इन्द्र इत्यादि अन्यान्य देवता महिषके भयसे

त्रसित होकर कांपते हैं, संसारमें यह अत्याश्चर्यका विषय है ॥ ३३ ॥ क्या आश्चर्य है, दैवबल अति भयंकर है और वह सुरसत्तमगणोंको भी दुरतिक्रमणीय है. हे राजन् ! कालही सुखका प्रभु, और दुःखका कर्त्ता है, अतएव वही ईश्वर है ॥ ३४ ॥ क्योंकि, जो सृष्टि, स्थिति और संहार करसक्ते हैं, वे भी महिषसे पीडित होकर क्लेशसंतापसे मोहित हुए ॥ ३५ ॥ देवी इसप्रकार जान कुछेक हँसतीहुई अत्यन्त उच्चशब्दसे अट्टहास करने लगीं, उस महाघोर शब्दसे दानवोंको भय उपस्थित हुआ ॥ ३६ ॥ उस समय उस अद्भुत शब्दको सुनकर पृथ्वी कंपित, पर्वत चंचल और वीर्यवान् अक्षोभ्य समुद्रभी क्षुभित हुआ ॥ ३७ ॥ अधिक क्या उस शब्दसे सब दिशायें पूर्ण और मेरु पर्वतभी चलायमान हुआ, तब दानव उस महत् शब्दको सुनकर अत्यन्त भीत हुए ॥ ३८ ॥ देवताओंने अत्यन्त हर्षित चित्त होकर देवीसे कहा, हे देवि ! आपकी जय हो. आप हमारी रक्षा कीजिये मदगर्वित महिष भी यह शब्द सुनकर कुपित हुआ ॥ ३९ ॥ महिषने शब्द सुन शंकित हो दैत्योंसे पूछा हे दूतो ! तुम शब्द उत्पत्तिका कारण जाननेके लिये शीघ्र जाओ ॥ ४० ॥ कानोंको क्लेशकर यह भयंकर शब्द किसने किया ? देव दानव वा जो कोई शब्द करता हो ॥ ४१ ॥ तुम उस दुरात्माको लेकर मेरे निकट आओ मैं अहंकारसे मत्त गर्जनकारी इस दुराचारीका संहार करूंगा ॥ ॥ ४२ ॥ क्षीण आयु उस मंदमतिको नष्ट करूंगा देवता पराजित होकर भयार्त्त हुए हैं इसकारण वह कभी गर्जन नहीं करेंगे ॥ ४३ ॥ और असुर तौ हमारे वशीभूत हैं अतएव वहभी गर्जना नहीं करसक्ते तो फिर यह मूढकी समान किसका कार्य है ? तुम अभी शब्दका कारण जानकर मेरे निकट आओ ॥ ४४ ॥ फिर मैं जाकर उस वृथा शब्दकारी पापमतिका संहार करूंगा. व्यासजी बोले महिषके यह वचन सुनते ही दूतोंने देवीके समीप जाकर देखा कि ॥ ४५ ॥ उनके सब अंग सुंदर, बाहु अठारह, सब अवयव अनेक प्रकारके गहनोंसे विभूषित, शरीरमें सर्वसुलक्षण देदीप्यमान और हाथोंमें उत्तम अस्त्र हैं ॥ ४६ ॥ वह शुभप्रदा मनोरमा देवी हाथमें चषक [पानपात्र] लेकर वारंवार मधुपान करती हैं, उन्होंने देवीका इसप्रकार रूप देख भीत हो शंकितचित्तसे तत्काल भाग ॥ ४७ ॥ महिषासुरके समीप जाय शब्दका कारण कहा. दैत्योंने कहा हे दैत्येश्वर ! हमने एक प्रौढ़ा अपरिचिता अंगनाको देखा ॥ ४८ ॥ उस देवीके सब अंग गहनोंसे भूषित और

रत्नोंसे सुसज्जित हैं. वह नारी मानुषी वा आसुरी नहीं है किन्तु उसका रूप अलौकिक और मनोहर है ॥ ४९ ॥ वह प्रधाना नारी सिंहके ऊपर चढ़ी अठारह भुजाओंमें आयुध धारण किये गर्जना कर रही है, वह सुरापानमें रत है अतएव वह मदगर्विता बोध होती है ॥ ५० ॥ हमको निश्चय बोध होता है कि उसका स्वामी नहीं है. देवता आकाशमें टिकेहुए हर्षसहित यह कहकर उसका स्तव करते हैं ॥ ५१ ॥ कि तुम्हारी जय हो, तुम शत्रुका संहार करके हमारी रक्षा करो. हे प्रभो ! वह वरारोहा सुंदरी कौन है ? किसकी पत्नी है? ॥५२॥ किस कारण यहां आई है ? और उसकी अभिलाषा क्या है ? यह हम कुछ नहीं जानते. शृंगार, वीर, हास्य, रौद्र और अद्भुत रस उसमें देदीप्यमान हैं, अतएव हम उसके तेजप्रभावसे पीडित होकर उसके देखनेमेंभी समर्थ नहीं हुए, हे महाराज ! ऐसी नारीको देखतेही हम आपकी आज्ञानुसार बातचीत न करके लौट आये हैं ॥५३॥ ॥ ५४ ॥ अब क्या करें ? सो आज्ञा दीजिये. महिषने कहा हे मंत्रिश्रेष्ठ वीर ! मेरी आज्ञासे तुम सेनासहित जाकर ॥ ५५ ॥ सामादि उपायसे उस चन्द्रवदनाको मेरे निकट लाओ. साम, दान, भेद इन तीन उपायोंसे वह नारी यदि यहां न आवे॥५६॥ तो वरारोहाका जिससे जीवन नष्ट न हो, ऐसा दंड देकर उसको मेरे समीप ले आओ मैं उस कुटिलकेशी रमणीको हर्षसहित पटरानी करूंगा ॥ ५७ ॥ यदि वह मृग-लोचना प्रीतिसहित चली आवे तो जिससे रसभंग न हो, तदनुसार मेरा अभिलाषित कार्य करो ॥ ५८ ॥ मैं उसके सौन्दर्य संपद्का विषय सुनकर मोहित हुआ हूं, व्यासजी बोले मंत्रिसत्तम महिषके उत्तम वचन सुन ॥ ५९ ॥ हाथी, घोड़े और रथ लेकर शीघ्र अभिलाषित स्थानमें गये. मंत्री देवीके समीप उपस्थित हो दूरसे ही ॥ ६० ॥ विनयावनत वचन द्वारा उनसे मधुर वचन कहने लगा. प्रधानने कहा हे मधुरालापे ! तुम कौन हो ? तुम्हारे यहां आनेका क्या कारण है ? ॥ ६१ ॥ हे महाभागे ! मेरे प्रभुने मेरे मुखद्वारा तुमसे यह बात पूछी है, वह सब देवता और मनुष्योंसे अवध्य हैं और सर्वलोकविजयी हैं ॥ ६२ ॥ हे चारुलोचने ! वह बलवान् दैत्येश्वर ब्रह्माके वरदानसे गर्वित हो सदा अपनी इच्छानुसार रूप धारणकरते हैं ॥ ६३ ॥ हमारे राजा महिषनामक पृथ्वीप-तिने तुम्हारे मनोहर रूप और वेषका वृतान्त सुनकर तुम्हारे देखनेकी इच्छा की है ॥ ३४ ॥ हे चार्वङ्गी ! वह मनुष्यरूप धारण करके तुम्हारे समीप आवेंगे, अथवा

तुम्हारी जैसी इच्छा होगी हम उसीके अनुसार कार्य करेंगे ॥ ६५ ॥ अतएव हे मृगलोचने! उन बुद्धिमान् महाराजके निकट चलो, यदि तुम न चलोगी तो हम भक्तिपरायण राजाको तुम्हारे पास लावेंगे ॥ ६६ ॥ हे सुरेश्वरी! तुम्हारे रूपलावण्यका विषय सुनकर राजा तुम्हारे अत्यन्त वशीभूत हुए हैं. इस कारण तुम्हारी जैसी इच्छा हो, हम वही करें ॥ ६७ ॥ अतएव हे करभोरु! तुम्हारी जिसप्रकार इच्छा हो, सो कहो हम उसीके अनुसार शीघ्र कार्य करेंगे ॥ ६८ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः १०.

व्यासजी बोले हे महाराज! उन प्रमदोत्तमा महामायाने महिषके मंत्रीका इस प्रकार वचन सुन, कुछेक हँस मेघकी समान गंभीरवचन द्वारा उससे कहा ॥ १ ॥ हे मंत्रिवर! मुझको देवताओंकी जननी जानना चाहिये. मेरा नाम महालक्ष्मी है. मैंही संपूर्ण दैत्योंका संहार करती हूं ॥ २ ॥ दानवपतिने देवताओंको पीड़ित करके यज्ञभागसे वंचित किया है, इसकारण उन सबने मिलकर महिषासुरका वध करनेके लिये मेरी प्रार्थना की है ॥ ३ ॥ अतएव हे सचिवसत्तम! उसका वध करनेमें उद्यत हो सेना संग न लेकर आज अकेलीही इस स्थानमें आई हूं ॥ ४ ॥ हे अनघ! तुमने जो मेरा सन्मान करके मधुरवचनोंसे आदरपूर्वक स्वागत पूंछा, इससे मैं संतुष्ट हुई हूं ॥ ५ ॥ यदि तुम ऐसा व्यवहार न करते, तो कालाग्निकी समान दृष्टिसे तुमको निःसंदेह भस्म कर देती, हे मंत्रिन्! मीठी बात किसको प्रीतिकर नहीं होती? ॥ ६ ॥ तुम महिषके निकट जाकर मैंने जो कहा है, वह सब वचन उससे कहो कि, रे पाप! यदि तुझे जीवनकी इच्छा है, तो इस समय रसातलमें चला जा॥ ७ ॥ इसके अन्यथा करनेसे उस अपराधी दुष्टको समराङ्गणमें संहार करूंगी अधिक क्या? मेरे शरजालसे छिन्न भिन्न कलेवर हो शमनसदनमें जाना होगा ॥ ८ ॥ रे मूढ! मैं तुझपर दया प्रकाश करकेही कहती हूं, तू यह जानकर शीघ्र पातालमें चला जा और देवता अभी स्वर्गका राज्यग्रहण करें ॥ ९ ॥ रे मन्द! जबतक मेरे बाण पतित न हों, उससे पहिलेही तू एकाकी सप्तसागरभूमण्डल छोड़कर शीघ्र पातालमें प्रवेश कर ॥ १० ॥ हे असुरवर! यदि तेरे मनमें युद्धकी इच्छा हो, तो महाबलवान् वीरोंके सहित शीघ्र आ. मैं सबको ही शमनसदनमें प्रेरण करनेको प्रस्तुत हूं ॥

॥ ११ ॥ हे महामूढ ! तेरी समान असंख्य असुरोंको जिस प्रकार युगयुगमें निहत किया है. इसीप्रकार तुमको भी समरमें निहत करूंगी ॥ १२ ॥ हे कामार्त्त ! तू मेरे सहित संग्राममें प्रवृत्त होकर मेरे शस्त्रधारणके श्रमको सफल कर नहीं तो वह निष्फल होगा ॥ १३ ॥ रे मूढ ! तैंने स्त्रीवध्य होनेसे पूज्यतम देवताओंको पीड़ित किया है. किन्तु रे दुष्टात्मन् ! तू स्त्रीवध्य होनेसे ब्रह्माके इस वरका गर्व मत कर ॥ ॥ १४ ॥ विधाताका वचन पालन करना चाहिये. यह विचार कर मैं अतुलनीय स्त्रीरूपधारण कर पापिष्ठ होनेसे तुझको मारनेके लिये यहां आई हूं॥ १५॥ रेमूढ ! यदि तू जीवनकी इच्छा करता है, तो स्वर्गका राज्य छोड़ पन्नगोंसे युक्त पाताल वा जहां तेरी इच्छा हो वहां चला जा ॥ १६ ॥ व्यासजी बोले कि देवीके इस प्रकार वचन सुनकर उस बलयुक्त सचिवप्रवरने हेतुयुक्त वचनसे उत्तर दिया॥ १७॥ हे देवी ! तुम मदगर्वित होकर ऐसे वचन कहती हो तुम स्त्री हो और दैत्यपति वीर है, अतएव तुम दोनोंका युद्ध किसप्रकार होगा ? यह मुझको अत्यन्त असंभव बोध होता है॥ १८॥ तुम कोमलाङ्गी नवयौवना और बाला हो, विशेष करके अकेली हो और महिष महाकाय है सुतरां तुम्हारा समर असंभव है ॥ १९ ॥ विशेष कर उनके हाथी, घोड़े, रथ और पैदल इत्यादि विविध आयुधधारी असंख्य सैन्य है ॥ २० ॥ अतएव हे वामोरु ! गजराजको जिसप्रकार मालतीपुष्प मर्दन करनेमें कुछ क्लेश नहीं होता, इसीप्रकार तुमको समरमें विनाश करनेमें उनको किंचित् मात्रभी श्रम नहीं होगा ॥ २१ ॥ किन्तु यदि कुछभी तुमसे परुष वचन कहूं, तो यह शृंगार-रसके विरुद्ध होगा, इस कारण रसभंगके भयसे कोई कठोर वचन कहनेमें समर्थ नहीं हूं ॥ २२ ॥ यद्यपि हमारे राजा देवताओंके शत्रु हैं, किन्तु तोभी तुम्हारे अत्यन्त भक्त हुए हैं अतएव साम वा दानयुक्तही वचन कहना चाहिये ॥ २३ ॥ ऐसा न होकर तुम जिसप्रकार वृथा अभिमान और रूपयौवनका गर्व तथा चतुरताप्रकाश करके मिथ्या वचन कहती हो इसकारण मैं बाणोंसे अभी तुमको निहत करता ॥ २४ ॥ किन्तु तुम्हारा भुवनातीत रूप सुनकर हमारे प्रभु मोहित हुए हैं सुतरां उनकी प्रियकामनासे तुमको यथेष्ट प्रिय वचन कहनाही हमको उचित है ॥ २५ ॥ हे विशालनयने ! राज्य और समस्त धनही तुम्हारा है अधिक क्या महिषभी तुम्हारा दास होगा इसकारण अपना मरणदायक क्रोध त्यागकर उनके प्रति सद्भाव स्थापन करो ॥ २६ ॥ हे शुचिस्मिते ! मैं तुम्हारे

चरणोंमें गिरता हूं तुम अभी जाकर महाराजकी पटरानी होओ ॥ २७ ॥ हे भामिनि ! तुम्हारे महिषकी पत्नी होनेपर त्रैलोक्यके संपूर्ण विमल विभव और संसारजनित असीम सुख यहां सभी प्राप्त होंगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ २८ ॥ देवीने कहा हे सचिव ! तुम्हारे वाक्चातुर्यका विषय विचारकर शास्त्रदृष्ट पथानुसार तुमसे सारगर्भ उत्तम वचनही कहती हूं. सुनो ॥ २९ ॥ सम्प्रति तुम्हारे वचनानुसार मैंने बुद्धिसे विचार कर जाना कि तुम महिषके प्रधान कर्मचारी पुरुष हो. अतएव तुम्हारा स्वभाव और बुद्धि पशुकी समान है ॥ ३० ॥ जिसके मंत्री तुम्हारे समान हैं, वह किसप्रकार बुद्धिमान् होगा ?तुम दोनोंका इसप्रकार सदृशयोग निस्संदेह विधाताने किया है ॥ ३१ ॥ रे मूढ ! तैंने जो मुझको स्त्रीस्वभाव कहा. यह क्या विचार कर देखा है ? यद्यपि मैं वास्तवमें पुरुष नहीं हूं किन्तु वह परमपुरुष स्वभावा केवल स्त्रीवेष धारिणी मात्र हूं ॥ ३२ ॥ तेरे प्रभुने पूर्वमें ब्रह्माजीके निकट स्त्रीसे मरनेकी प्रार्थना की है. इसकारण मैं विचारती हूं कि वह अत्यन्त मूर्ख और वीररसका अनभिज्ञ है ॥ ३३ ॥ क्योंकि स्त्रीके हाथसे मरण वीरको क्लेशदायक और क्लीबको संतोषजनक है. देखो तुम्हारे प्रभु महिषने आत्मबुद्धिके अनुसार कामिनीके हाथसे मरनेकी प्रार्थना की है ॥ ३४ ॥ इसलियेही मैं स्त्रीरूप धारण करके कार्यसाधनके निमित्त आई हूं. अतएव शास्त्रविरोधी तुम्हारे वचनोंसे मैं क्यों भय करूं ? ॥ ३५ ॥ जब दैव प्रतिकूल होता है तिस समय तृणभी कुलिशकी समान होता है और विधाताके अनुकूल होनेपर वह वज्रभी फिर रुईकी समान कोमल होजाता है ॥ ३६ ॥ विपुलसैन्य आयुध अथवा अतिविस्तृत दृढ़ दुर्गकाही आश्रय करनेसे क्या होसक्ता है मरण जिसका समीपवर्त्ती है उसका सैन्यसे क्या फलोदय होगा ? ॥ ३७ ॥ कालयोगसे जब इस जीवका देहसम्बन्ध होता है तिसी समय सुख दुःख और मृत्यु यह सब लिखी जाती हैं ॥ ३८ ॥ जिसकी जिसप्रकार मृत्यु दैवने निर्दिष्ट की है उसकी उसी प्रकार मृत्यु होगी इससे अन्यथा कभी न होगा यही स्थिर निश्चय जानना चाहिये॥ ॥ ३९ ॥ ब्रह्मादि देवताओंका जिसप्रकार यथासमयमें नाश और उत्पत्ति विहित हुई है तुम्हाराभी अवश्य उसी प्रकार होगा, अन्यके विचारसे प्रयोजन क्या है ? ॥ ४० ॥ जो मृत्युधर्मके एकान्तवशवर्ती हैं उनके वरदानसे दर्पित होकर जो मनमें विचारे कि " मैं नहीं मरूंगा " वह मूढ और अत्यन्त मन्द बुद्धि है ॥ ४१ ॥

इसकारण तुम अभी नृपके समीप जाकर मेरे वचन कहो. फिर भूपति जो आज्ञा दें. तुम वह अवश्य पालन करो ॥ ४२ ॥ यदि जीवन रखनेकी इच्छा हो तो पातालपुरमें प्रवेश करो और इन्द्र स्वर्गराज्य व देवता यज्ञीय हविर्लाभ करें ॥ ४३ ॥ यदि दुरात्मा महिषकी अन्यथा मति हो तो मरनेके निमित्त उत्सुक होकर मेरे संग संग्राम करै ॥ ४४ ॥ यदि मनमें जानते हो कि, विष्णु इत्यादि देवता समर छोड़कर भाग गये हैं. इसमें तुम्हारा किंचिन्मात्रभी पुरुषार्थ नहीं है केवल प्रजापतिका वरदान और दैव उसका कारण है॥ ४५॥ व्यासजी बोले देवीके इसप्रकार वचन सुनकर दानव चिन्ता करने लगा कि, मुझको क्या युद्ध करना उचित है ? वा महिषके निकट हो जाना चाहिये ॥ ४६ ॥ राजाने कामातुर होकर विवाहके निमित्त मुझको इस कार्यमें नियुक्त किया है. वह कार्य रसहीन करके मैं किसप्रकार राजाके समीप जाऊं ? ॥ ४७ ॥ इस समय युद्ध न करके राजाके निकट जानाही उचित है. अतएव जिसप्रकार आया हूं उसीप्रकार शीघ्र जाकर राजासे सब वृतान्त निवेदन करूं ॥ ४८ ॥ राजा अद्वितीय बुद्धिमान् और विशेषकरके हमारे प्रभु हैं इसकारण वह चतुर मंत्रियोंके संग विचार करके इस विषयमें जो उचित होगा. वही करेंगे ॥ ४९ ॥ अतएव इसके संग सहसा संग्राम करना मुझको उचित नहीं है क्यों कि जय वा पराजय दोनों बातही राजाके अप्रिय होंगी ॥ ५० ॥ यदि यह सुंदरी मुझको मार डाले अथवा मैं ही इसको निहत करूं तो जिसकिसी प्रकार हो राजा अवश्यही मेरे ऊपर कुपित होंगे ॥ ५१ ॥ अतएव देवीने इस समय जो कहा मैं वहां जाकर राजासे वह कहूं फिर उनकी जो रुचि हो सो करैं॥ ५२॥ व्यासजी बोले वह बुद्धिमान् मंत्रीका पुत्र इसप्रकार विचार करके राजाके समीप गया फिर प्रणामपूर्वक हाथ जोड़कर उनसे कहने लगा ॥ ५३ ॥ हे राजन् ! वह वरारोहा भुवनमोहिनी मनोरमा देवी अठारह भुजाओंमें उत्तम आयुध धारण करके सिंहके ऊपर चढ़ीहुई है॥ ५४ ॥ हे महाराज! "हे भामिनी! तुम महिषासुरसे प्रीति करो तो त्रैलोक्याधिपति राजाकी प्रियतमा महिषी होगी ॥ ५५ ॥ तुम्हीं उनकी पटरानी होगी इसमें संदेह नहीं. वह तुम्हारे वशवर्ती, आज्ञाकर दास होकर जीवन व्यतीत करेंगे ॥ ५६ ॥ हे वरानने ! महिषको पति करनेसे तीनों लोकके संपूर्ण विभव भोगकर तुम स्त्रियोंमें सौभाग्यवती होगी" ॥ ५७ ॥ मेरे इसप्रकार वचन सुनकरभी अहंकारसे मोहित हो उस विशालाक्षीने कुछेक हँसते हँसते मुझसे कहा

कि ॥ ५८ ॥ वह महिषीके गर्भसे उत्पन्न और पशुओंमें अधम है, इस कारण मैं देवताओंके हितकी कामनासे उसको देवीके सन्मुख बलिदान दूंगी ॥ ५९ ॥ इस लोकमें ऐसी मन्दबुद्धि स्त्री कौन है जो महिषको पतिरूपसे वरण करेगी ? रे मन्द-बुद्धे ! मेरी समान स्त्री क्या पशुभावकी अभिलाषा करती है ? ॥ ६० ॥ महिषी शृंगसंयुक्त है, अतएव वह शृंगारमदसे प्रमत्त होकर अव्यक्तशब्द करते करते सशृंग महिषको पति कर सक्ती है, किन्तु मैं उसकी समान वा मूढस्वभाव नहीं हूं जो उसको पति करूं ॥ ६१ ॥ रे दुष्ट ! समराङ्गणमें युद्ध करके उस देवताओंके अप्रियकारी असुरका संहार करूंगी, यदि उसको जीवनकी इच्छा हो तो पातालमें भाग जाय ॥ ६२ ॥ हे राजन् ! उसने मत्त होकर इसप्रकार कर्कशवचन कहे, मैं उनको सुनकर प्रतीकारका विचार करते करते आपके पास आया हूं॥६३॥ हे महाराज ! रसभंग होनेकी आशंकासे मैं ने युद्ध नहीं किया. विशेष कर आपकी आज्ञाके विना अत्यन्त निरर्थक उत्साह किसप्रकार करता ? ॥६४॥ हे महीपाल ! वह भामिनी अपने बलके मदसे अत्यन्त उन्मत्त हो रही है, जाना नहीं जाता कि क्या होनहार है ? वा जो होनहार है सो अवश्यही होगा ॥ ६५ ॥ इस विषयमें आपही एकमात्र प्रभु हैं अतएव आप जो कहैं हम वही करैं, किन्तु इसकी मंत्रणा अत्यन्त कठिन है सुतरां युद्ध करना अच्छा वा भागना अच्छा इसका मैं कुछ निश्चय नहीं करसक्ता ॥ ६६ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे भाषायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ११.

व्यासजी बोले कि, मदमोहित राजा महिषासुरने दूतके इस प्रकार वचन सुन बूढे मंत्रियोंको बुलाकर कहा ॥ १ ॥ हे मंत्रियो ! इस समय मुझको क्या करना चाहिये ? आप उसको निश्चय करके शीघ्र कहिये. क्या यह देवी शंम्बरासुरकी मायाके समान देवताओंसे विरचित होकर यहां आई है ? ॥ २ ॥ आपलोग सामादि चारों प्रकारके उपाय प्रयोग करनेमें विचक्षण हैं और उपस्थित मंत्रणा कार्यमें भी निपुण हैं, अतएव इस समय साम, दान, भेद और दंड, इन चार उपायोंमें किस उपायका अवलम्बन करना चाहिये ? यह मुझसे कहो ॥ ३ ॥ मंत्री बोले हे नृपसत्तम ! सदा सत्य और प्रियवचन कहना चाहिये, उसमें जो हितकारी है

पण्डितलोग विचार करके उसीको स्वीकार करें ॥ ४ ॥ हे राजन्! इसलोकमें औषधी जिसप्रकार मनुष्योंको अप्रिय होनेपर भी रोगविनाश करती है इसीप्रकार सत्यवचन अप्रिय होनेपर भी हितकर हैं, किन्तु केवल प्रियवचन अहितकर होता है ॥ ५ ॥ हे पृथ्वीपते! जो सत्यवचनको सुनते हैं और जो अनुमोदन करते हैं. इन दोनों प्रकारके पुरुषही दुर्लभ हैं, और सत्यवक्ता पुरुष भी अत्यन्त दुर्लभ है. क्योंकि लोकमें चाटुवादीही (मीठी बातोंवाले) अधिक दिखाई देते हैं ॥ ॥ ६ ॥ हे नरनाथ! शुभ वा अशुभ क्या है? इस त्रैलोक्यमें उसको कौन जानता है? इस दुरूह [कठिन] विचारके विषयका निर्णय हम किसप्रकारसे कहें? ॥ ७॥ राजाने कहा—आप लोग अपनी बुद्धिके अनुसार जिसका जो अभिप्राय हो वह पृथक् पृथक् कहो, वह सब सुनकर फिर मैं विचार करूंगा ॥ ८ ॥ क्योंकि सब पुरुषोंका मत भलीभांतिसे जान वारंवार विचार कर जो श्रेष्ठ हो कार्यकुशल पुरुष उसी कार्यको कर्तव्य जाने ॥ ९ ॥ व्यासजी बोले—उसके इसप्रकार वचन सुनकर महाबल विरूपाक्ष शीघ्र राजासे मनोरंजन वचन कहने लगा ॥ १० ॥ हे राजन्! आप निश्चय जानिये कि उस सामान्य नारीने मदसे गर्वित होकर जो कहा है वह विभीषिका [डरावनी] मात्र है ॥ ११ ॥ स्त्रियोंकी चेष्टा और साहस निरर्थक होता है इस वातको मनुष्यमात्र जानता है अतएव कौन पुरुष स्त्रीके रणश्लाघाकर कटुवचनोंसे डरता है? ॥ १२ ॥ हे राजन्! आपने वीरताके दर्पसे त्रिभुवनको जीता है किन्तु इस समय यदि अबला कामिनीके भयसे आप हीनता स्वीकार करेंगे तो संसारमें आपका बहुतही अयश होगा ॥ १३ ॥ अतएव हे महाराज! मैं अकेलाही चंडिकासे युद्ध करने जाऊंगा और मैंही उसको मारूंगा आप अब निर्भयचित्त होकर रहिये ॥ १४ ॥ हे राजन्! आप मेरा पराक्रम देखिये मैं सेनासहित जाकर अनेक अस्त्र शस्त्रोंसे उस चंडविक्रमा दुर्मदा चण्डिकाका वध करूंगा ॥ १५॥ वा सर्पमय पाशसे बांधकर आपके पास लेआऊंगा तो वह निरुपाय स्त्री सदा आपके वशीभूत होकर रहेगी इसमें संदेह नहीं ॥ १६ ॥ व्यासजी बोले—विरूपाक्षके इस प्रकार वचन सुनकर दुर्द्धरने कहा हे राजन्! विरूपाक्ष अत्यन्त बुद्धिमान् है अतएव इन्होंने जो कहा है वह युक्तिसंगत और सत्य है॥ १७॥ हे राजन्! आप बुद्धिमान् हैं इसकारण मेरा भी यथार्थ वचन सुनिये मैंने अनुमानसे उस सुदती रमणीको कामातुर जाना है ॥ १८ ॥ क्योंकि उस नितम्बिनीने भय दिखलाकर आपको वशीभूत

करनेकी इच्छा की है. विशेषकर प्रायः रूपगर्विता नायिका कामातुर होकर इसी प्रकार व्यवहार करतीं हैं ॥ १९ ॥ मानिनीके ऐसे व्यवहारको हाव कहते हैं. जो अत्यन्त रसज्ञ हैं, वेही इसको जानसक्ते हैं. स्त्रियोंकी यह वक्रोक्ति ही प्रियपुरुषोंके आकर्षणविषयमें प्रधान कारण होती है॥ २० ॥जो पुरुष कामशास्त्रमें चतुर हैं. उनमें कोई कोई पुरुष केवल इस विषयको भलीभांति जानसक्ते हैं. हे राजन् ! उस कामिनीने कहा है " तुमको सन्मुख समरमें बाणोंसे मारूंगी ॥ २१ ॥ इसका तात्पर्य पृथक् है. जो पण्डित लोग हेतुविद्यामें निपुण हैं, वेही उसको हेतुगर्भ जानसक्ते हैं. देखो, मानिनीगणोंका दूसरा कोई बाण नहीं है. केवल कटाक्षबाणही प्रसिद्ध है ॥ २२ ॥ और अभिप्रायके प्रगट करनेवाले मर्मार्थ वचनहीं पुष्पमय दूसरा बाण है. हे पार्थिव ! आपके ऊपर बाण चलानेकी ब्रह्मा, विष्णु और महादेवमेंभी शक्ति नहीं है ॥ २३ ॥ अतएव तादृशी शृङ्गारवती अबला कामिनीमें प्रकृत बाण चलानेकी क्या सामर्थ्य है ? हे राजन् ! उस स्त्रीने कहा है "रे मन्द ! तुम्हारे राजाको नयनबाणसे निहत करूंगी ॥ २४ ॥ किन्तु दूतको रसज्ञान नहीं है, इस कारण उसनें विपरीत ज्ञान किया है, इसमें संदेह नहीं है. उस कामनिपुणा कामिनीने और भी कहा है कि तुम्हारे पतिको रणशय्यापर निपातित करूंगी ॥ २५ ॥ यह निश्चय ही विपरीतरतिक्रीडाके अभिप्रायसे कहा गया है, इसमें संदेह नहीं. उस सुन्दरीने कहा है कि, उसका प्राणहरण करूंगी ॥ २६ ॥ हे राजन्! इस विषयमें भी विचार करके देखो कि वीर्यही प्राण कहागया है, अतएव वह स्त्री आपको वीर्यहीन करेगी, इसी अभिप्रायसे कहा है,दूसरा कोई अभिप्राय नहीं है. हे नृप ! उत्तम स्त्रियें व्यङ्ग्य वचनोंसेही प्रियपुरुषको वरण करती हैं ॥ २७ ॥ मैंने जो कहा रतिशास्त्रमें चतुर पण्डितलोग विचार करके यह जानसक्ते हैं. हे महाराज ! आप इसको जानकर उस कामिनीके प्रति सरस व्यवहार कीजिये ॥ २८ ॥ हे भूपते ! साम और दानके अतिरिक्त उसको बाध्य करनेका दूसरा उपाय नहीं है. वह मानिनी गर्वित हो वा रुष्ट हो, इससे अवश्य वशीभूत होगी ॥ २९ ॥ हे राजन् ! मुझको अधिक वचन कहनेका प्रयोजन नहीं है. मैं अभी जाकर ऐसे मधुरवचनोंसे उसको आपके समीप लाऊंगा ॥ ३० ॥ अधिक क्या उसको किङ्करीके समान सदा आपके वशीभूत करदूंगा. व्यासजी बोले दुर्द्धरके इसप्रकार वचन सुनकर कार्यकुशल ताम्रने कहा ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! मैं हेतुयुक्त सरस और धर्मसम्मत नीति वचन कहता हूं. सुनो

३२ ॥ हे मानद! वह बुद्धिमती रमणी कामातुर वा आपके प्रति अनुरक्त नहीं है और उस रमणीने आपके प्रति व्यंग्य वचन भी प्रयोग नहीं किये हैं ॥ ३३ ॥ हे महाराज! वह विचित्ररूपा मनोहारिणी वरवर्णिनी रमणी जो निराश्रय होकर अकेली ही इस स्थानमें युद्धकी इच्छासे आई है. यह अत्यन्त आश्चर्यका विषय है॥ ३४॥ स्त्रियोंके दो भुजा होती हैं, किन्तु इस स्त्रीके अठारह भुजा हैं, और उन अठारह भुजाओंमें उत्तमोत्तम अस्त्र धारण करके पराक्रमप्रकाशमें उद्यत है. हे महाराज! ऐसी स्त्री त्रैलोक्यमें कभी नहीं देखी और कहीं सुनी भी नहीं अतएव यह सब कालका विपरीत कार्य प्रतीत होता है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ हे महाराज! मैं रात्रिमें दुर्निमित्त स्वप्न देखता हूं, इससे मुझको निश्चय बोध होता है कि निकट ही घोर विपद् उपस्थित है ॥ ३७ ॥ मैंने उषःकालमें स्वप्न देखा है कि एक स्त्री काले वस्त्र पहन कर घरमें रोती है. इससे बोध होता है कि, आपका अमंगल उपस्थित होगा ॥ ३८ ॥ हे राजन्! रात्रिकालके समय पक्षीगण घरघर विकट शब्दसे चीत्कार करते हैं और सभी गृहोंमें अनेक उत्पात प्रादुर्भूत होते हैं ॥ ३९ ॥ विशेष कर इस समय यह बाला युद्धके लिये दृढ़प्रतिज्ञा होकर आपको बुलाती है. इससे अनुमान करता हूं कि इसका अवश्यही कोई गूढ कारण है ॥ ४० ॥ हे विभो! यह रमणी मानवी वा गंधर्वकामिनी अथवा असुरपत्नी नहीं है. केवल हमको मोह उत्पन्न करानेके लियेही देवताओंने इस मायारूपिणीको निर्माण किया है ॥ ४१ ॥ हे राजेन्द्र! कातरता अवलम्बन करना उचित नहीं है. सब प्रकारसे युद्धही करना उचित है, जो होनहार है, वह अवश्यही होगा. यह मेरा निश्चित अभिप्राय है ॥ ४२ ॥ शुभ हो वा अशुभ हो. देवताओंका कार्य कोई नहीं जानसक्ता. इसकारण बुद्धिमान् पुरुषोंको विशेष विचारपूर्वक धैर्य अवलम्बन करके स्थिर रहनाही उचित है ॥ ४३ ॥ हे नराधिप! पुरुषका जीवन वा मरण दैवाधीन है.इसकारण त्रिभुवनमें कोई भी उसके अन्यथा करनेमें समर्थ नहीं है ॥ ४४ ॥ यह बात सुनकर महिषासुरने कहा हे महाभाग ताम्र! तुम युद्धके लिये कृतनिश्चय होकर उस रमणीके निकट जाओ और उस वरारोहा मानिनीको धर्मानुसार जीतकर मेरे समीप लाओ ॥ ४५ ॥ यदि वह नारी संग्राममें तुम्हारे वशीभूत न हो, तो उसको संहार करो और यदि वशीभूत हो तो वध न करके यत्नसहित यथेष्ट सन्मान करो ॥ ४६ ॥ हे सर्वज्ञ! तुम वीर और कामशास्त्रमें सुपण्डित हो. अतएव जिस किसी उपायसे हो

तुम उस वरवर्णिनीको जीतो ॥ ४७ ॥ हे महाबाहो ! वीरवर ताम्र ! तुम महती सेनाके सहित उस स्थानमें जाकर वारंवार विचार कर उसका मनोगत भाव जानो ॥ ४८ ॥ वह स्त्री कामभावसे वा वैरभावसे या अन्य किसी प्रयोजनसे आई है ? अथवा किसीकी माया है? तुम इन सबका कारण भलीभांतिसे जानो ॥ ४९ ॥ प्रथम तो इन इन सब विषयोंका निश्चय करके उसका चिकीर्षित [इच्छित] विषय जानना चाहिये. फिर बल और सामर्थ्यके अनुसार उससे संग्राम करना उचित है ॥ ५० ॥ देखो, कातरता दिखाना भी उचित नहीं है और निर्दय व्यवहार करना भी उचित नहीं है. उस रमणीका जैसा अभिप्राय हो, उसीप्रकार तुमको व्यवहार करना चाहिये ॥ ५१ ॥ श्रीव्यासजी बोले हे महाराज ! ताम्र कालके नितान्त वशीभूत हो नरपतिके इसप्रकार वचन सुनतेही उनको प्रणाम करके सेनासहित बाहर निकला ॥ ५२ ॥ यह दुरात्मा गमन करते करते मार्गमें यममार्गके प्रदर्शक दारुण दुर्निमित्त (दुःशकुन) देखकर विस्मित और भीत हुआ ॥ ५३ ॥ उसने क्रमानुसार वहां उपस्थित हो उस देवीको देखा कि वह देवी सब आयुधोंसे विभूषित हो सिंहके ऊपर विराजमान हैं और सब देवतालोग उनकी स्तुति कर रहे हैं ॥ ॥ ५४ ॥ तब ताम्र विनयावनत हो प्रथम सामभाव अवलम्बन पूर्वक मधुर वचनद्वारा उनसे कहने लगा ॥ ५५ ॥ हे देवि ! दैत्येश्वर महिष आपके रूप और गुणोंसे मोहित होकर पाणिग्रहणके लिये अभिलाषी हुए हैं ॥ ५६ ॥ हे सुन्दरि ! तुम इस सुरविजयी महिषासुरके सहित प्रीति स्थापन करो. हे कोमलाङ्गि ! उसको पति बनाकर तुम परमानन्दसे अलौकिक नन्दनवनमें विहार करो ॥ ५७ ॥ देखो, संपूर्ण सुखका आस्पद सर्वाङ्गसुन्दर शरीर धारण करके सब प्रकारसे सुखग्रहण और दुःखका त्याग करनाही उचित है. यह रीति चिरकालसे प्रसिद्ध है ॥ ५८ ॥ हे करभोरु ! तुम्हारे कमलकी समान कोमल करकमल पुष्पनिर्मित कन्दुक (गेंद) क्रीडाके योग्य हैं, तो आयुध किस कारण ग्रहण किये हैं ॥ ५९ ॥ आपके पास युगलभ्रूचापके विद्यमान रहते सामान्य धनुषका क्या प्रयोजन है ? कटाक्षरूप बाणोंके विद्यमान रहते साधारण बाण धारण करनेका फिर क्या प्रयोजन है ? ॥ ६० ॥ संसारमें युद्ध अत्यन्त क्लेशदायक है; जो इस बातको जानते हैं, उनको युद्ध करना उचित नहीं है. लोभासक्त मनुष्यही परस्पर युद्ध करते हैं॥ ६१ ॥ निश्चित बाणकी बात तो दूर रहै, पुष्पद्वारा भी युद्ध नहीं करना

चाहिये क्यों कि हे देवि ! अपने देहके विद्ध होनेसे किस पुरुषको सुख होता है ? ॥ ६२ ॥ इस कारण हे कोमलाङ्गी ! तुम प्रसन्नचित्त होकर देवता और दानवोंसे पूजित महीपति महिषका भजन करो ॥ ६३ ॥ तो वह तुम्हारा सब अभिलाषित मनोरथ पूर्ण करेंगे, अधिक क्या ? तुम्हीं सब प्रकारसे राजाकी पटरानी होगी इसमें सन्देह नहीं ॥ ६४ ॥ हे देवि ! अत्यंत कष्ट करनेपरभी संग्रामके जय विषयमें सन्देह रहता है, इसमें संशय नहीं, इसकारण मेरा कहना मानो तो उत्तम सुख पाओगी ॥ ६५ ॥ हे सुन्दरि ! तुम राजनीतिका यथार्थ तात्पर्य जानती हो, अतएव अनेक वर्षतक भलीभांति राज्यसुख भोगो ॥ ६६ ॥ और महिषासुरका पाणिग्रहण करनेसे तुम्हारे अति मनोहर पुत्र होगा और वह पुत्र भी राजा होगा, तो यौवनकालमें क्रीडा करके तुम वार्द्धक्य कालमें भी सुख लाभ करोगी, इसमें संदेह नहीं है ॥ ६७ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषायां एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः १२.

व्यासजी बोले हे राजन् ! जगदम्बिका दुर्गा ताम्रके इसप्रकार वचन सुनकर कुछेक हँसती हुई मेघकी समान गंभीर वचन द्वारा उससे कहने लगी ॥ १ ॥ हे ताम्र ! तेरे प्रभु अतिकामातुर और मूढ हैं नहीं तो कार्य अकार्यके ज्ञानसे रहित क्यों होते ? चित्तकी विचित्रता देखनेसे बोध होता है कि उनका मरणसमय उपस्थित हुआ है. तुम जाकर उस मन्दमति महिषसे कहो कि तेरी प्रौढा माता जिसप्रकार लम्बपुच्छा (लंबी पूँछवाली) सींगयुक्त और महोदरी महिषी है, मैं उसकी जातिकी नहीं हूं. वह जिसप्रकार तृणादि भक्षण करती है, मैं उस भांति नहीं करती ॥ २ ॥ इस कारण मेरी इच्छा करना उसका अत्यन्त अन्याय है ॥ ३ ॥ देवेश, विष्णु, शंकर, ब्रह्मा, कुवेर, वरुण वा पावक ॥ ४ ॥ इनमेंसे मैं किसीकी अभिलाषा नहीं करती. इन सब देवताओंको छोड़कर किस गुणसे पशुको वरण करूंगी ? यदि वरण करूं तो लोकमें मेरी अत्यन्त निन्दा होगी ॥ ५ ॥ विशेष कर मैं फिर पतिकी अभिलाषा नहीं करती क्यों कि मेरा पति वर्त्तमान है. वह सबके निग्रहानुग्रहमें समर्थ है, वह समस्त कार्योंके कर्त्ता होकर भी अकर्त्ता है और वह सबके साक्षीस्वरूप निश्चल और निस्पृह ॥ ६ ॥ निर्गुण, निर्मम, अनन्त, निराश्रय निरावलम्ब, सर्वज्ञ, सर्वगामी, पूर्ण और पूर्णाशय शिव हैं ॥ ७ ॥ वह सबके आवासस्वरूप सब कार्योंमें समर्थ

शान्त सर्वभावन और सर्वदृक् हैं. मैं उनको त्यागकर किसप्रकार मन्दमति महिषकी सेवा करनेका यत्न करूं?॥ ८॥ वह ऐसा समझकर युद्ध करता है कि, मैं उसको युद्धमें जीतकर यमका वाहन करूंगी, वा मनुष्योंका जलवाहक करूंगी ॥ ९॥ उस पाखंडको यदि जीनेकी इच्छा हो तो अभी सब दानवोंके सहित पातालमें भाग जाय नहीं तो मैं समरमें उसको मारूंगी ॥ १० ॥ क्योंकि परस्पर समानवस्तुका संयोग ही संसारमें विशेष सुखदायक होता है, किन्तु यदि अज्ञानतासे इसके विपरीत घटना हो; तो निःसंदेह क्लेशकर होती है ॥ ११ ॥ तुमने अभी कहा कि हे भामिनी ! तुम मेरे पतिकी सेवा करो, इस कारण बोध होता है तुम भी अत्यन्त निर्बोध और मूर्ख हो, क्योंकि मेरा यह रूप लावण्य और महिष शृंगवान्, अतएव किसप्रकार हम दोनोंका संबंध होगा ? ॥ १२॥ तुम चले जाओ वा इच्छा हो तो युद्ध करो उसमें मैं तुमको बांधवों सहित विनाश करूंगी और यदि तुमलोग यज्ञभाग और देवलोक परित्याग करो, तो सुखी होसक्ते हो ॥ १३ ॥ श्रीव्यासजी बोले हे महाराज ! उस देवीने यह वचन कहकर ऐसी अद्भुत गर्जना करी कि कल्पान्त कालके समान उस घोर शब्दसे दानवोंको भय उत्पन्न हुआ॥ १४॥ तब उस भयंकर गर्जन शब्दसे पर्वतों सहित पृथ्वी कांपने लगी, अधिक क्या उससे दानवोंकी स्त्रियोंके गर्भ भी गिरगये ॥ १५ ॥ ताम्र उस शब्दको सुन, भयसे चंचलमन हो महिषके निकट भागगया॥ १६ ॥ हे नृप ! उसके नगरमें तिसकाल जो दानव उपस्थित थे,वे बधिर (बहरे) होकर भागे और उस विषयकी चिन्तामें निमग्न हुए॥ १७॥ फिर सिंहभी क्रोधसे जटा ऊर्ध्वमें उत्क्षिप्त करता हुआ घोरतर उत्कट गर्जना करने लगा. उस शब्दसे दानव बहुत डरे ॥ १८॥ महिषासुर ताम्रको लौट आया देखकर विमोहित हुआ और फिर क्या करना चाहिये ? मंत्रियोंके संग इस विषयकी चिन्ता करने लगा॥ १९॥ महिषने कहा हे दानवोत्तमगण! अब दुर्गका आश्रय लेना चाहिये अथवा बाहरनिकलकर युद्ध करना उचित है? वा भागनेसे मंगल होसक्ता है ॥ २० ॥ तुमलोग सभी बुद्धिमान् और सर्वशास्त्रमें सुपण्डित हो. तथा शत्रुओंसे अजीत हो इसकारण कार्यसिद्धिके लिये अत्यन्त गुप्तभावसे इसविषयकी मंत्रणा करो ॥ २१ ॥ क्योंकि मंत्रही राज्यका मूल है यदि वह मंत्र भलीभांतिसे रक्षित हो तो राज्यभी रक्षित होता है इसकारण सदाचारसंपन्न मंत्रीगणद्वारा उस मंत्रणाको सब प्रकारसे रक्षित करना अत्यन्त आवश्यक है ॥ ॥ २२ ॥ मंत्रणाके प्रकाशित होनेसे राज्य और भूपतिका विनाश होता है अतएव

अभ्युदयके अभिलाषी मनुष्योंको भेदभयसे अवगत मंत्रणा अत्यन्त गुप्त रखनी चाहिये ॥ २३ ॥ हे मंत्रियो ! इस समय देश और कालके अनुसार नीतिविषयका निर्णय करके इस विषयमें जो हित और हेतुयुक्त हो वही कहो ॥ २४ ॥ देवताओंसे निर्मित होकर जो प्रबला बाला अकेली निराश्रय इस स्थानमें आई है. पहले उसका कारण खोजना चाहिये ॥ २५ ॥ वह बाला संग्रामकी प्रार्थना करती है इससे अधिक दूसरा आश्चर्यका विषय क्या है ? इसमें श्रेयोलाभ (कल्याण) होगा वा उसके विपरीत होगा त्रिभुवनमें इसको कौन कहसक्ता है ? ॥ २६ ॥ अनेक पुरुषोंकी जय नहीं होती और एक पुरुषकी पराजय भी नहीं होती इस कारण जय और पराजयको सर्वथा दैवके आधीन जानना चाहिये ॥ २७ ॥ जो दोनोंके पक्षपाती हैं वे कहते हैं दैव क्या है ? पण्डितलोग जिसका नाम अदृष्ट कहते हैं, उस अदृष्टको क्या किसीने कभी देखा है ? अतएव जयलाभके लिये उचित उपाय अवलम्बन करना अत्यन्त कर्त्तव्य है ॥ २८ ॥ यदि कहो कि दैव होनेपर भी होसक्ता है तो इसमें प्रमाण क्या है ? यह केवल कातरपुरुषकी आशाका अवलम्बमात्र है और जो अपना कार्य सम्पादन करनेमें समर्थ हैं, ऐसे पुरुषोंने दैवका आश्रय किया हो यह कहीं दिखाई नहीं देता ॥ २९ ॥ अतएव उद्यम शूर पुरुषोंके अभिमत और दैव कातर पुरुषोंके सम्मत है यही निश्चय है अतएव आज इन सब विषयोंको बुद्धिसे विचार कर यत्नसहित कार्य संपादन करना चाहिये ॥ ३० ॥ व्यासजी बोले नृपति महिषासुरके हेतुपूर्ण वचन सुनकर महायश विडालाक्ष हाथ जोड़कर कहनेलगा ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! यह विशालनयना बाला किसकी पत्नी और कहांसे किस लिये आई है ? प्रथम यह सब विषय यत्नसहित जानकर फिर इसका विचार करना चाहिये ॥ ३२ ॥ मुझको बोध होता है कि स्त्रीसेही आपका मरण होगा. देवताओंने यह वृत्तान्त जानकर आन्तरिक यत्नसहित अपने तेजसे इस कमलनयना कामिनीको उत्पन्न करके भेजा है ॥ ३३ ॥ और वह सभी युद्ध करनेकी इच्छासे संग्रामदर्शनके अभिलाषी होकर आकाशमण्डलमें गुप्तभावसे स्थिति करते हैं यथा समयमें सभी उस कामिनीकी सहायता करेंगे इसमें संदेह नहीं ॥ ३४ ॥ संग्राम उपस्थित होनेपर विष्णु इत्यादि देवतालोग उस कामिनीको आगे करके हम सबका विनाश करेंगे और वह देवी आपका वध करेगी ॥ ३५ ॥ हे नरनाथ ! वही उसकी

एकान्तवासना है यह मैंने प्रथमही जान लिया है किन्तु भवितव्य क्या होगा ? यह मैं नहीं कहसक्ता ॥ ३६ ॥ हे प्रभो ! इस समय हमको युद्ध करना उचित नहीं है. इस बातको कहनेमें मैं समर्थ नहीं हूं अतएव इस दैवकृत कार्यमें आपका जो विचार हो वही कीजिये ॥ ३७ ॥ महाराजके कार्यके गौरवअनुसार हमको जीवन त्यागना चाहिये और विहारके समय आपके संग विहार करना उचित है यही अनुजीवियोंका यथार्थ धर्म है ॥ ३८ ॥ किन्तु हे नृपवर ! वह कामिनी अकेली होनेपरभी जब बलदर्पित सेनासमेत हमसे संग्रामकी प्रार्थना करती है तब इसमें भली भांति विचार करना अवश्य कर्त्तव्य है ॥ ३९ ॥ दुर्मुखने कहा हे राजन् ! मैं निश्चय जानता हूं कि युद्धमें हमारी जीत नहीं होगी किन्तु तोभी भागना उचित नहीं है क्यों कि इसमें पुरुषके यशकी हानि होती है ॥ ४० ॥ विशेषकर इन्द्रादि देवताओंके समरमें भी हमने जब ऐसा (निन्दित) कार्य नहीं किया तो असहाय स्त्रीके सन्मुखसे कौन पुरुष भागेगा ? ॥ ४१ ॥ अतएव समरमें जय हो अथवा मरण हो युद्ध करना अवश्य कर्त्तव्य है. जो होनहार है वह अवश्यही होगा इसको विचारकर आज चिन्ता करनेकी क्या बात है ? ॥ ४२ ॥ समरमें मृत्यु होनेसे यशका लाभ और जीवन रहनेसे सुख होता है,इन दोनों विषयोंको मनमें स्थिर करके अब युद्धही करना चाहिये ॥ ४३ ॥ आयुका क्षय होनेपर ही मरण होगा, और भागनेसे यशकी हानि होगी इसकारण जीवन वा मरणविषयमें वृथा शोक करना उचित नहीं है ॥ ४४ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! दुर्मुखकी बात सुनकर वाक्य-विशारद बाष्कल प्रणतहो हाथ जोड़ राजासे कहने लगा ॥ ४५ ॥ हे राजन् ! मैं अकेला उस चंचललोचना चण्डीको मारूंगा. हे महाराज ! इस अप्रियकार्यमें कातरभावसे चिन्ता करनेका प्रयोजन नहीं है ॥ ४६ ॥ हे नृपसत्तम ! वीररसका स्थायीभाव उत्साह फिर भयानक उसका वैरी है इसकारण उत्साहअवलम्बन करना हमारा अवश्य कर्त्तव्य है ॥ ४७ ॥ हे राजन् ! भय छोड़कर हम घोरतर युद्ध करेंगे अधिक क्या हम समरमें उस चण्डिकाको यमसदन प्रेरण करेंगे इसमें संदेह नहीं॥ ४८॥ क्या यम क्या इन्द्र क्या कुबेर क्या वायु क्या अग्नि क्या विष्णु क्या शंकर क्या चन्द्रमा क्या हरि मैं किसीका भी भय नहीं करता ॥ ४९ ॥ उस अकेली मदगर्वित स्त्रीकी तो बातही क्या है. मैं शिलाशाणित बाणोंसे उस अबला ललनाको निहत करूंगा ॥ ५० ॥ आज आप मेरा बाहुबल देखकर सुखपूर्वक विहार की-

जिये. उसके संग युद्ध करनेमें आपको संग्राममें नहीं जाना होगा ॥ ५१ ॥ व्यासजी बोले हे राजेन्द्र ! वाष्कलके मदगर्वित होकर महीपति महिषसे इसप्रकार कहने पर फिर दुर्द्धर उसको प्रणाम करके कहने लगा ॥ ५२ ॥ हे महीन्द्र ! दैवनिर्मित्त अष्टादशभुजायुक्त रमणीय देवी जिसकिसी कार्यसे यहां आई हो. मैं उसको पराजय करूंगा ॥ ५३ ॥ हे राजन् ! मुझको बोध होता है. आपको भय दिखानेके लिये ही देवताओंने उस मायारमणीको बनाया है. अतएव इसको बिभीषिका (भयदात्री) जानकर आप मनका मोह दूर कीजिये ॥ ५४ ॥ हे राजन् ! राजनीति इसीप्रकार है. अब मंत्रियोंके कार्यादिका विषय सुनो. हे दानव नाथ ! इस लोकमें मंत्री तीन प्रकारके हैं. कोई सात्विक, कोई राजसिक और कोई तामसिक होते हैं. जो मंत्री सत्वगुण प्रधान हैं. वे अपनी शक्तिके अनुसार प्रभुका कार्य करते हैं ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ सात्विक मंत्रीलोग मंत्रशास्त्रविशारद और धर्मपरायण होकर एकाग्रचित्तसे प्रभुके कार्यकी हानि न करके अपना कार्य करते हैं ॥ ५७ ॥ और जो राजस हैं उनका चित्त अन्यप्रकार है. वे सदाही आत्मकार्यमें निरत होते हैं और कभी कभी इच्छानुसार प्रभुका कार्यभी करते हैं ॥ ५८ ॥ तामस मंत्री लोग सदा लोभके वशीभूत होकर अपने कार्यमें निरत होते हैं इसकारण वे प्रभुका कार्य नष्ट करके भी अपना कार्य संपादन करते हैं ॥ ५९ ॥ वही विग्रहादिसमयमें शत्रुके दिये द्रव्यसे वंचित होकर भेदको प्राप्त होते हैं. सुतरां गृहमें रहकर अपने छिद्र शत्रुपक्षीय लोगोंको दिखा देते हैं ॥ ६० ॥ उनके कोषमें रुद्ध हुई तलवार के समान निरन्तर कार्यभेद करते हैं अधिक क्या युद्धकाल उपस्थित होनेपर प्रभुको सदा भय दिखाते हैं ॥ ॥ ६१ ॥ अतएव हे महाराज ! उनका कभी विश्वास न करें. उनका विश्वास करनेसे सर्वदा कार्य और मंत्रणाकी हानि होती है ॥ ६२ ॥ जो खल, लोभतत्पर, बुद्धीहीन, शठ और सदा पापकार्यमें तत्पर हैं. वे तामसमंत्रीगण विश्वासपात्र होकर क्या अकार्य नहीं करते हैं ॥ ६३ ॥ इसलिये हे नृपसत्तम ! मैं समरमें जाकर आपका कार्य करूंगा. सुतरां आपको कुछ चिन्ता करनेका प्रयोजन नहीं है ॥ ६४ ॥ उस दुष्ट-चारिणी रमणीको लेकर मैं अभी आता हूं. मैं अपनी शक्ति और बलके अनुसार आपका कार्य करूंगा. अतएव आप स्थिरचित्त होकर मेरा बल, धैर्य और पराक्रम देखिये ॥ ६५ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः १३.

अनन्तर अस्त्रशस्त्रविद्यामें पारदर्शी महाबाहु दानवश्रेष्ठ बाष्कल और दुर्मुख वीर मदसे मत्त हो संग्रामके सन्मुख चले ॥ १ ॥ उन मदमत्त दोनों दानवोंने समराङ्गणमें जाय मेघके समान गंभीर वाणी द्वारा देवीसे कहा ॥ २ ॥ हे वरारोहे देवी ! जिस महात्मा महिषासुरने देवताओंको जीता है, तुम सब दैत्योंके अधिपति उस नरपतिका वरण करो ॥ ३ ॥ वह सर्वलक्षणसमन्वित मानुषरूप धारणपूर्वक मनोहर गहनोंसे विभूषित होकर गुप्त भावसे आपके समीप आवेंगे ॥ ४ ॥ हे शुचिस्मिते ! तुम उस मनोहर महिषासुरमें अपना मनोगत परम भाव स्थापन करो, तो इस त्रैलोक्यके संपूर्ण विभव इच्छानुसार लाभ कर सकोगी ॥ ५ ॥ हे चारुभाषिणि ! अधिक और क्या कहैं, उस महावीर महिषासुरको पतित्वमें वरण करनेसे स्त्री जिस अतुलसंसार सुखकी अभिलाषा करेगी, वह आपही प्राप्त होगा ॥ ६ ॥ बाष्कल और दुर्मुखके इस प्रकार वचन सुनकर देवीने कहा रे मूढ ! तैंने क्या मुझको काममोहित विचारा है ? मुझको क्या बुद्धि और बल नहीं है, जो मैं उस शठ महिषका पतिरूपमें भजन करूं ? ॥ ७ ॥ क्योंकि जो पुरुष कुल, शील और गुणमें समान हो, वा जो रूप, चतुरता, बुद्धिशील और क्षमादिगुणमें अधिक हो, कुलाङ्गना उसीका भजन करती हैं ॥ ८ ॥ अतएव कौन देव रूपिणी नारी कामातुर होकर पशुगणोंमें अधम पशुरूपी महिषका भजन करेगी ? ॥ ९ ॥ हे असुरद्वय ! तुम अभी गजतुल्य कलेवर और विषाण [सींग] धारी उस भूपति महिषके निकट जाओ और उससे कहो कि ॥ १० ॥ तू पातालमें प्रवेश कर वा मेरे संग आनकर संग्राममें प्रवृत्त हो, युद्ध उपस्थित होनेपर देवराज अवश्यही निर्भय होंगे, इसमें संदेह नहीं ॥ ११ ॥ रे दुर्बुद्धे ! मैं तुझको संहार करके तब जाऊंगी. मेरा आना कभी विफल नहीं होगा, अतएव यह जानकर जो इच्छा हो सो कर ॥ १२ ॥ रे पशु ! मुझको विना जीते क्या स्वर्ग, क्या भूभाग क्या पर्वतकी कन्दरा, कहीं तेरा स्थान नहीं होगा, यह निश्चय जानना चाहिये ॥ १३ ॥ व्यासजी बोले, देवीके इसप्रकार वचन सुनकर वे वीरवर दोनों दानव कोपसे रक्तनेत्र हो धनुर्बाण धारण करके युद्धके लिये कृत निश्चय हुए ॥ १४ ॥ हे कुरुकुलधुरन्धर ! तब वह देवी घोर गर्जना करके निर्भय वहां अवस्थित रही तब वे दोनों दानव बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ १५ ॥ भगवती भी देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिये मधुरशब्द करके दोनों दानवों पर बाण वर्षाने लगी ॥ १६ ॥ उनमें प्रथम बाष्कल शीघ्र रण-

स्थलमें उनके सन्मुख हुआ, किन्तु दुर्मुख उस समय देखनेवाला होकर देवीके सन्मुख अवस्थित रहा ॥१७॥ तिस समय उस देवी और बाष्कलका घोर संग्राम उपस्थित हुआ बाण, असि और परिघके आघातसे वह युद्ध मंदबुद्धि लोगोंको भयदायक हुआ ॥ १८ ॥ अनन्तर जगन्माताने युद्ध दुर्मद बाष्कलको देख क्रोधके वश हो शिलाशाणित पांच बाण कानों पर्यन्त खैंचकर मारे ॥ १९ ॥ दानवने भी निशित बाणोंसे देवीके बाणोंको काटकर सात बाणोंसे उस सिंहवाहिनीपर आघात किया ॥ २० ॥ देवीने भी उसके बाणोंको काटकर दश सुशाणित तीक्ष्ण बाणोंसे उस खलपर प्रहार किया. और वारंवार हास्य करने लगी ॥ २१ ॥ फिर अर्द्धचन्द्र बाणसे उसका शरासन काट डाला. तब बाष्कल गदा लेकर देवीको मारनेकी इच्छासे दौड़ा ॥ २२ ॥ उस मदगर्वित दानवको गदा हाथमें लिये आता देख चण्डिकाने अपनी गदाके प्रहारसे उसको पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ २३॥ प्रचंडपराक्रम बाष्कलने पृथ्वीमें गिरकर मुहूर्त्त मात्रमें ही फिर उठा और देवीके ऊपर गदा चलाई ॥ २४ ॥ देवीने उसको पुनर्वार आता देखकर क्रोधसहित शूलग्रहण कर उसके हृदयको विद्ध किया तब बाष्कलने उस प्रहारसे गिरकर प्राणत्याग किया ॥ २५ ॥ जब बाष्कल समरमें गिर गया. तब उस दुरात्माकी सब सेना युद्ध छोड़कर भागने लगी और तिस-काल देवतालोग आनन्दित होकर आकाशसे जयशब्द उच्चारण करनेलगे ॥ २६ ॥ उस दैत्यके मरजानेपर दुर्मुख क्रोधसे लाल लाल नेत्र कर अधिक सेनाको संग ले संग्राम करनेके लिये देवीके समीप आया॥२७॥"हे अबले ! ठहर ठहर" इसप्रकार बार बार कहते हुए सर्वाङ्ग कवचसे आच्छादित कर धनुर्बाणधारण पूर्वक श्रीमान् दुर्मुख रथमें चढ़ देवीके समीप आया॥२८॥देवीने उसको आता देखकर शंखध्वनि करी और उस दानवको कोपान्वित करनेके लिये ज्याशब्द करने लगी ॥ २९ ॥ तब असुरने (सर्पराज) के समान तीक्ष्ण बाण चलाये. महामाया उनको अपने बाणोंसे काटकर सिंह-नाद करने लगी॥३०॥हे नरनाथ! तिसकाल बाण, शक्ति, गदा, मूशल और तोमरादि वर्षण द्वारा उन दोनोंका परस्पर तुमुल संग्राम उपस्थित हुआ॥३१॥तब रणभूमिमें रुधिरप्रवा-हिनीनदियें बहनेलगीं उनके तटोंपर पड़े हुये मस्तक ऐसे दिखाई देने लगे॥३२॥मानों नूतन सन्तरणशिक्षामें प्रवृत्त यमकिंकरोंके दलपति लोग वैतरणी नदीमें सन्तरण करनेके लिये आनन्दित हृदयसे तुम्बीफल लाते हैं ॥ ३३ ॥ तिसकाल घोरतर रणभूमि अतीव दुर्गम हुई कहीं शरीर पृथ्वीमें पड़े हैं. वृक इत्यादि जीव उनका मांस भक्षणकरते

हैं ॥३४॥ कहीं शृगाल, कुक्कुर, कंक, काक, अयोमुख, गृध्र, श्येन इत्यादि मांसभोजी पशु और पक्षी उन दुरात्माओंके शरीरको भक्षण करते हैं ॥ ३५ ॥ तिससमय वायु मृत पुरुषोंके देहस्पर्शसे दुर्गन्ध होकर बहनेलगा. और मांसभोजी पक्षियोंका किलकिलाशब्द होने लगा ॥ ३६ ॥ तब दुष्टस्वभाव दुर्मुख कालसे विमोहित हो क्रोधसे दक्षिण हाथ उठाय गर्वसहित देवीसे कहने लगा ॥ ३७ ॥ हे चण्डिके ! तुमको दुर्बुद्धि उपस्थित हुई है तुम इस समय भाग जाओ नहीं तो तुम्हारा संहार करूंगा. और यदि ऐसा न हो तो तुम मदगर्वित दैत्यवर महिषका भजनकरो ॥३८॥ देवी बोली रे दुष्ट ! आज तेरी मृत्यु निकट उपस्थित है. इसीकारण तू मोहित होकर प्रलापवाक्य कहता है. अतएव बाष्कलके समान अभी तेरा विनाश करूंगी ॥ ॥ ३९ ॥ रे मन्द ! तू पलायन कर वा यदि मरनेकी अभिलाषा हो. तो ठहर प्रथम तुझको मारकर फिर महिषीसुत मूढ़मति महिषका विनाश करूंगी ॥ ४० ॥ देवीके इसप्रकार वचन सुनकर दुर्मुख मरनेमें उद्यत हो चंडिकाके ऊपर दारुण बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ ४१ ॥ देवीने भी तत्काल उसके बाणोंको काटकर वृत्रासुरके प्रति वज्रधरके समान शाणित बाणोंसे क्रोधित हो दानवको विद्ध किया ॥ ४२ ॥ उन दोनोंका परस्पर दारुण संग्राम उपस्थित हुआ. हे राजन् ! इस युद्धको देखनेसे कातर पुरुषका भय और शूरोंको उत्साह होने लगा ॥ ४३ ॥ तब देवीने शीघ्रता-सहित उसके हाथमें स्थित धनुषको काटडाला और पांच बाणोंसे उसका उत्तम रथ तोड़ दिया ॥ ४४ ॥ रथ टूटनेपर महाबाहु दुर्मुख दुर्द्धर्ष गदा ले पैदल वेगसे देवीके सन्मुख दौड़ा ॥ ४५ ॥ उसने सिंहके मस्तकमें विषम बलसहित गदाप्रहार की. किन्तु महाबल सिंह ताडित होकर भी उस स्थानसे कुछ विचलित नहीं हुआ ॥ ॥ ४६ ॥ असुरको गदा हाथमें लिये सन्मुख खड़ा देख अम्बिकाने शितधार खड्गसे उसका मस्तक काटडाला ॥ ४७ ॥ मस्तक कटनेसे मृत होकर दुर्मुख पृथ्वीमें गिरगया तब देवता आनंदित होकर घोरतर जयजयशब्द उच्चारण करने लगे ॥४८॥ दुर्मुखके मारे जानेपर देवतालोग आकाशमें स्थित रहकर देवीका स्तव, पुष्पवृष्टि, और जयघोषणा करने लगे॥४९॥ ऋषिगण, सिद्धगण, गंधर्वगण, विद्याधरगण और किन्न-रगणोंने समराङ्गणमें उस दानवको निहत देखकर अत्यन्त संतोष प्राप्त किया ॥ ५० ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे भाषायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः १४.

व्यासजी बोले हे राजन् ! महिषासुर दुर्मुखकी मरणवार्त्ता सुनकर क्रोधसे अंधा होगया और दानवोंसे " यह क्या हुआ. यह क्या हुआ. " इसप्रकार कहने लगा ॥ ॥ १ ॥ हाय ! उस क्षीणाङ्गी रमणीने दानववीर दुर्मुख और बाष्कलको समरमें निहत किया है. हे असुरो ! इस समय इस परमआश्चर्यकर दैवकार्यको अवलोकन करो ॥ २ ॥ पुण्य और पापके योगानुसार मनुष्य पराधीन हैं. सुतरां बलवान् काल तदनुसार ही उनके सुख और दुःखका विधान करता है ॥ ३ ॥ दो प्रधान दानव मारे गये हैं. अब हमको क्या करना चाहिये ? इस विषम विपद्कालमें जो युक्ति संगत हो. तुम लोग सब मिलकर वही कहो ॥ ४ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! जब उस बलशाली महिषने यह बात कही. तब सेनापति महारथ चिक्षुराख्यने उससे कहा ॥ ५ ॥ हे राजन् ! एक अबलाको मारनेके लिये आपको क्या चिन्ता हैं ? मैंही उसको निहत करूंगा. यह कह कर उसने अपनी सेनासहित रथपर चढ़ समरमें प्रस्थान किया ॥ ६ ॥ महाबल ताम्र उसका पार्श्वरक्षक होकर सहचर हुआ. तब उसकी महासेनाके कोलाहलसे आकाश और सब दिशायें पूर्ण होगई ॥ ७ ॥ मंगलदायिनी देवी भगवतीने उसको आताहुआ देखकर अतिअद्भुत शंखध्वनि, ज्याशब्द. और घंटानाद किया ॥ ८ ॥ उस शब्दको सुनकर सब देवताओंके शत्रु भयसे त्रसित हुए और यह क्या ? यह कहते कहते भयसे कंपित कलेवर हो भयसे भागने लगे ॥ ९ ॥ तब चिक्षुराख्यने उनको भागताहुआ देख अत्यन्त क्रोधित होकर कहा हे दानवो ! अब क्या तुमको भय उपस्थित हुआ है ॥ १० ॥ समरमें बाणोंसे इस मदोन्मत्ता कामिनीको अभी मारूंगा. इसकारण तुम भय छोड़कर समरमें स्थिर होकर रहो ॥ ११ ॥ यह कहकर दानवश्रेष्ठ चिक्षुर धनुर्बाणधारण करके सेनासहित समरमें आयाः और निश्शंक होकर देवीसे कहा ॥ १२ ॥ हे विशाललोचने ! दुर्बल मनुष्योंको डरानेके लिये किस लिये गर्जना करती हो ? हे कृशाङ्गी ! तुम्हारा कार्यकलाप सुना है, किन्तु उससे मैं डरा नहीं हूं ॥ १३ ॥ हे वामलोचने ! स्त्रीके मारनेसे दोष और अकीर्त्ति होती है, यह मैं जानता हूं, इसकारण मेरा चित्त स्त्री वधमें उपेक्षा करता है ॥ १४ ॥ हे सुन्दरी ! कटाक्षविक्षेप और हावभावद्वारा ही स्त्रियोंका युद्ध होता है, किन्तु तुमसी स्त्रियोंका शस्त्रद्वारा युद्ध किसी समयमें कहीं विहित नहीं है ॥ १५ ॥ तुम्हारी समान

सुन्दरी स्त्रियोंके शरीरमें मालतीदल भी पीड़ा देता है, अतएव निशित बाणोंकी बात दूर रहे पुष्पके द्वारा भी तुमसे संग्राम करना उचित नहीं है ॥ १६ ॥ जो क्षात्रधर्मके अनुसार जीवनयात्रा निर्वाह करते हैं मनुष्य लोकमें उनके जन्म लेनेको धिक्कार है हाय! यत्नपूर्वक लालित और प्रियदेह जिस धर्मसे शितशर-निकरद्वारा छिन्न हो, कौन पुरुष उस धर्मकी प्रशंसा कर सक्ता है? ॥ १७ ॥ मिष्टान्न भोजन, तैलमर्दन और पुष्पगंधि वायु सेवनद्वारा यह प्रिय देह प्रतिपालित हुआ है, इसकारण इसको क्या कभी शत्रुके बाणोंसे नष्ट करना उचित है? ॥ १८ ॥ मनुष्यगण तलवारसे देह छिन्न करके फिर धनवान् होते हैं, अतएव प्रथम तो जो धन दुःखका मूल है,वह क्या फिर कभी सुख देनेमें समर्थ होता है? यदि यह भी हो तो भी उस धनको धिक्कार है ॥ १९ ॥ हे वामोरु! तुम ज्ञानहीन बोध होती हो, क्योंकि संभोग जनित सुख छोड़कर युद्धकी अभिलाषा करती हो. हे सुन्दरी! तुम समरमें क्या गुण देखकर ऐसी अभिलाषा करती हो? ॥ २० ॥ जिस युद्धमें खड्गपात, गदाघात और शिलीमुख अस्त्रप्रहारसे शरीर छिन्न भिन्न होता है और जिसमें मृत्यु होनेपर गोमायुगण मुखसे खैंचकर संस्कार करते हैं, उसमें क्या गुण दिखाई देता है? ॥ २१ ॥ धूर्त्त कविगणही केवल उसकी अतिशय प्रशंसा करते हैं. वेही कहते हैं. मरे मनुष्योंको स्वर्गलाभ होता है. हे सुन्दरी! यह उक्ति केवल स्तुतिवादमात्र है. इसमें संदेह नहीं ॥ २२ ॥ इसकारण हे वरारोहे! तुम्हारी जहां अभिलाषा हो, उसी स्थानमें चली जाओ अथवा सुरमर्दन महिषका स्वामीरूपमें भजन करो ॥ २३ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज! चिक्षुर दानवके इस प्रकार कहनेपर जगदम्बिकाने उससे कहा. रे मूढ! बुद्धिमान् पण्डितोंके समान क्यों वृथा वचन कहता है. तू नीति शास्त्र वा आन्वीक्षिकी विद्या नहीं जानता. तैंने बूढे पुरुषोंकी सेवा भी नहीं की, तेरी धर्ममें भी मति नहीं है ॥ २४ ॥ २५ ॥ तू मूर्खकी सेवा करता है, इस कारण तू भी अत्यन्त मूर्ख है, तू राजधर्म नहीं जानता, तथापि मेरे निकट क्या कहता है? ॥ २६ ॥ मैं समरमें महिषासुरको निहत करूंगी, उसके रक्तसे पृथ्वीको कर्दम युक्त कर तिसके द्वारा यशस्तम्भ सुदृढ करती हुई सुखपूर्वक अपने स्थानको चली जाऊंगी ॥ २७ ॥ मैं देवताओंके क्लेशदाता दुराचारी मदगर्वित उस दानवको निःसंदेह निहत करूंगी, तू स्थिर होकर युद्ध कर ॥ २८ ॥ तुझे और महिषको यदि जीवन धारणकी इच्छा हो, तो सब दानवोंके संग मिलकर पातालमें चले जाओ ॥ २९ ॥ और यदि

तुम्हारे चित्तमें मृत्युकी वासना हो, तो शीघ्र युद्ध करो, मैं इसी समय सबका वध करूंगी. यही मेरा स्थिर निश्चय जानना चाहिये ॥ ३० ॥ व्यासजी बोले हे महाराज! देवीके यह वचन सुनकर बलदर्पित दानव तत्काल उनके ऊपर दूसरे घनवृष्टिके समान बाणवृष्टि करने लगे ॥ ३१ ॥ तब देवी निशित बाणोंसे उनके सब बाणोंको खंड खंड करके आशीविषके समान घोर बाणोंसे उसपर प्रहार करने लगी॥ ३२॥ तिस समय परस्पर उनका संग्राम सर्वसाधारणको विस्मयकारक हुआ, इसी अवसरमें जगदम्बिकाने गदाप्रहार द्वारा उसको रथसे गिरा दिया ॥ ३३ ॥ तब वह दुष्टस्वभाव गदासे ताडित होकर भी अचलके समान रथके समीप दो मुहूर्त्ततक मूर्च्छित अवस्थामें पड़ा रहा ॥ ३४ ॥ शत्रुविमर्दन ताम्र उसको ऐसी अवस्थामें देखकर चपलतासे संग्राम करनेके लिये चण्डिकाके समीप आया ॥ ३५ ॥ देवी चण्डिकाने उसको आता देखकर हँसते हँसते कहा—हे दानवश्रेष्ठ! आओ आओ!! तुमको अभी यमलोकमें प्रेरित करती हूं ॥ ३६ ॥ अथवा तुम्हारे आनेका प्रयोजन क्या है ? तुम लोग ऐसे दुर्बल हो कि तुम्हारा जीवन नहीं कहना चाहिये. वह मूढ़ महिष क्या इस समय गृहमें रहकर जीवनका उपाय करता है ? ॥ ३७ ॥ तुम अत्यन्त दुर्बल हो इस कारण तुमको विनाश करनेसे मुझे क्या फल होगा ? उस दुष्टस्वभाव सुरशत्रु पापमति महिषके नहीं मरनेसे मेरा सब परिश्रम विफल होगा ॥ ३८ ॥ अतएव तुम घर जाकर अपने राजा महिषको इस स्थानमें भेजो वह दुष्ट स्वभाव मुझको जिस प्रकार देखनेकी वासना करता है. मैंभी उसीप्रकार अवस्थिति करती हूं ॥ ३९ ॥ ताम्र उनके वचनसे कुपित हो कानोंपर्यन्त धनुषको खैंचकर चण्डिकाके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ ४० ॥ भगवतीने भी क्रोधसे लाल लाल नेत्र कर धनुषको खेंचा और सुरशत्रुको मारनेकी इच्छासे शीघ्रता सहित बाण चलाने लगी ॥ ४१ ॥ इसी अवसरमें बलवान् चिक्षुराख्य मूर्च्छा त्यागकर उठा और क्षणमात्रमेंही फिर कार्मुक ग्रहण करके देवीके सन्मुख स्थिति करने लगा ॥ ४२ ॥ महावीर चिक्षुराख्य और ताम्र दोनों अत्यन्त उग्रभावसे देवीके संग रणभूमिमें युद्ध करने लगे ॥ ४३ ॥ तब महामाया कुपित होकर शीघ्रतासहित इसप्रकार शरवर्षण करनेलगी कि उन बाणोंसे सब दानवोंके बख्तर छिन्नभिन्न होगये ॥ ४४ ॥ वह शरविद्ध असुर कोपसे अत्यन्त विमोहित होकर क्रोधसहित देवीके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४५ ॥ वसन्तकालमें पुष्पित किंशुक जिस प्रकार शोभा पाता

है. शिलीमुखद्वारा क्षत विक्षत होकर दानवलोग रणस्थलमें उसीप्रकार शोभा पाने लगे ॥ ४६ ॥ तब ताम्रके सहित भगवतीका इसप्रकार तुमुल संग्राम हुआ कि दर्शकभावसे अवस्थित देवता भी अत्यन्त विस्मित हुए ॥ ४७ ॥ ताम्रलौहमय दृढ़ दारुण मूशल ले सिंहके मस्तकमें प्रहार करके हास्य और गर्जन करने लगा ॥ ॥ ४८ ॥ उसको गर्जता हुआ देखकर देवीने कुपित होकर शितधार खड्गसे शीघ्र उसका मस्तक काट डाला ॥ ४९ ॥ मस्तक कटजानेपर बलवान् ताम्र मस्तकहीन होकर भी क्षणकालमें मूशल धारण पूर्वक भ्रमण करके रणस्थलमें गिरगया ॥ ५० ॥ महाबल चिक्षुराख्य ताम्रको गिरा देखते ही तत्काल खड्ग लेकर चण्डिकाकी ओर दौडा ॥ ५१ ॥ चिक्षुराख्य खड्ग हाथमें लेकर जब समीप आया तब यह देखकर भगवतीने पांच बाणोंसे उसको प्रहार किया ॥ ५२ ॥ एक बाणसे उसका खड्ग और दूसरेसे उसका हस्त काटकर अवशिष्ट बाणोंके द्वारा उसका कंठसे मस्तक काटडाला ॥ ५३ ॥ रणदुर्मद क्रूर उन दोनों असुरोंके इसप्रकार मरनेपर उनकी सेनाभीत हो तत्काल चारों ओर को भागगई ॥ ५४ ॥ तब देवतालोग समरमें उनको गिराहुआ देखकर आनन्दित हुए और आकाशसे प्रसन्नतापूर्वक पुष्पवृष्टि करते हुए. जयशब्द उच्चारण करनेलगे ॥ ५५ ॥ इधर ऋषिगण, गंधर्वगण, वेतालगण, सिद्धगण और चारणमण आनन्दित होकर. हे अम्बिके ! तुम्हारीजय हो. हे देवि! तुम्हारी जय हो. यह वचन वारंवार उच्चारण करने लगे ॥ ५६ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः १५.

व्यासजी बोले हे महाराज ! देवीके हाथसे दोनों दैत्योंकी मरणवार्त्ता सुन महिषासुरने देवीका विनाश करनेकी इच्छासे महाबली ॥ १ ॥ असिलोमा और बिडालाख्य इत्यादि दानवोंको समरमें भेजा. तब उन युद्धविशारद दानवोंने आयुध और युद्धसाजसे सज्जित होकर महासेनाके सहित संग्रामस्थलमें प्रस्थान किया ॥ ॥ २ ॥ उन्होंने वहां उपस्थित होकर देखा कि वह अष्टादशभुजा दिव्यरूपधारिणी देवी खड्ग और खेटकधारण करके सिंहके ऊपर विराजमान है ॥ ३ ॥ तब शान्त स्वभाव असिलोमाने कुछेक हँसकर उनके सन्मुख जाय दैत्यवधमें उद्यता देवीसे विनयपूर्वक कहा ॥ ४ ॥ ५ ॥ हे देवी ! तुम किसकारण यहां आई हो ? और किसलिये निरपराध

दैत्योंको संहार करती हो? हे सुन्दरी! आप यह सब विषय मुझसे सत्य सत्य कहिये. हे नितम्बिनी! हम आपके संग संधि स्थापन करेंगे अतएव इस समय आपके यहां आनेका क्या कारण है? सो कहिये काञ्चन रत्न मणि और अन्य उत्तम द्रव्य इनमेंसे जो आपकी इच्छा हो वह लेकर तुम अभी चली जाओ ॥ ५ ॥ ६ ॥ महानुभव पुरुष कहते हैं कि, युद्ध करनेसे सब सुख नष्ट होजाता है. केवल दुःख और संतापकी वृद्धि होती है. इसकारण तुम किस लिये युद्धकी इच्छा करती हो? तुम्हारा देह अत्यन्त कोमल है अधिक क्या वह पुष्पका आघात सहनेमें भी समर्थ नहीं है॥ ७ ॥ ८ ॥ अतएव आप किसलिये इस देहमें शस्त्राघात सहन करतीं हैं. यह विचार कर मैं अतिशय विस्मित होता हूं. देखो, शान्तिही चतुरताका फल है. क्योंकि इससे सदाही सुखसेवा होती है ॥ ९ ॥ अतएव दुःखका हेतु संग्राम करनेकी क्यों अभिलाषा करती हो? इस संसारमें सुख ग्राह्य और दुःख त्याज्य है. यही मर्यादा प्रतिष्ठित हुई है ॥१०॥ वह सुख नित्य और अनित्यभेदसे दो प्रकारका है. आत्मज्ञानजनित जो सुख है, वही नित्य और भोगजनित जो सुख है, वही अनित्य है ॥ ११ ॥ जो वेदशास्त्रका यथार्थतत्व जानते हैं. वे इस विनाशशील संभोगसुखको ही त्याग करते हैं. हे वरानने! यदि तुम सुगत बुद्धलोगोंकी समान "परलोक नहीं है" यह स्वीकार करो ॥१२॥ तो युद्ध त्यागकर इस लोकमें यौवनलाभ करके उत्तमोत्तम भोग्यवस्तुओंको भोगो. हे कृशोदरी! यदि आपको परलोकमें सन्देह हो ॥ १३ ॥ तोभी युद्ध छोड़कर आप इस पृथ्वीमें सदा स्वर्गभोगके प्रतिपादक कर्मादिका अनुष्ठान कीजिये क्योंकि यौवन अनित्य है इसको जानकर सदाही पुण्यकार्य करना ॥ १४ ॥ और परपीडन त्याग करना पण्डित लोगोंका कर्त्तव्य है, और इसी प्रकार धर्म अर्थ और कामके परस्पर अविरोधभावसे उन सबकी सेवा करना अतिउचित है ॥ १५ ॥ अतएव हे कल्याणी! आपभी सदा धर्ममें मति कीजिये. हे अम्बिके! विना अपराध दैत्योंको किसलिये संहार करती हो? ॥ १६ ॥ क्योंकि इस पुरुषके देहमें दयारूप धर्म विद्यमान है, और सब प्राणीभी सत्यमें प्रतिष्ठित हैं अर्थात् सत्यद्वारा रक्षणीय हैं अतएव दया और धर्मकी बुद्धिमानोंको सदा रक्षा करनी चाहिये ॥ १७ ॥ हे सुश्रोणी! दानवोंके मारनेमें तुम्हारा क्या प्रयोजन है? यह आप प्रकाश करके कहिये. देवीने कहा हे महाबाहो! तुमने पूँछा कि तुम्हारे यहां आनेका क्या प्रयोजन है? १८ ॥ सो हे

वीरवर! मेरे इस स्थलमें आनेका और दैत्यसंहारका जो प्रयोजन है वह कहती हूं सुनो. हे दैत्यवर! मैं साक्षिरूपिणी होकर जीवोंका न्याय और अन्याय सदा देखती हुई समस्त लोकमें विचरण करती हूं. मुझको कभी भोगकी इच्छा नहीं है वा किसी विषयमें लोभ नहीं है॥ १९॥ २०॥ और किसीसे शत्रुताभी नहीं है. केवल धर्मकी रक्षाके लिये ही इस संसारमें विचरण करती हूं. साधुओंकी रक्षा करनाही मेरा व्रत है.इसको मैं सदाही पालन करती हूं ॥ २१ ॥ साधुओंकी रक्षा और असाधुओंका विनाशही मेरा कार्य जानना चाहिये. युगयुगमें अनेक अवतार लेकर वेदकी रक्षा करनी होती है. ॥ २२ ॥ इसकारण मैं ही युगयुगमें अवतीर्ण होती हूं. इस समय दुरात्मा महिष देवताओंका विनाश करनेमें उद्यत है ॥ २३ ॥ यह जानकर उसको मारनेके लिये मैं यहां आई हूं, इस दुराचारी देवताओंके शत्रु महाबल महिषासुरको निहत करूंगी॥ ॥ २४ ॥ यह तुमसे मैं ने सत्यही कहा है. इस कारण यदि तुम्हारी इच्छा हो तो ठहरो. नहीं चले जाओ वा उस दुष्टस्वभाव राजा महिषासुरसे कहो ॥ २५ ॥ कि, दूसरे असुरोंको क्यों भेजता है? तू स्वयं आनकर युद्ध कर. तुम्हारे राजाको यदि मेरे संग संधि करनेकी इच्छा हो ॥ २६ ॥ तो देवताओंसे वैर छोड़ सब मिलकर सुखपूर्वक पाताल-तलमें चले जाओ रणमें देवताओंको जीतकर जो कुछ देवद्रव्य हरण किया है ॥ २७ ॥ वह सब देवताओंको देकर पातालके जिस स्थानमें प्रह्लाद वास करता है, उसी स्थलमें प्रवेश करो. व्यासजी बोले हे महाराज! असिलोमाने देवीके इस प्रकार वचन सुनकर सन्मुख स्थित ॥ २८ ॥ महावीर बिडालाख्य असुरसे प्रीतिपूर्वक पूछा. असिलोमा बोला हे बिडालाख्य! इस समय देवीने जो कहा वह तो सुना ॥ २९ ॥ अब इस अवस्थामें संधि करना कर्त्तव्य है अथवा विग्रह? बिडालाख्य बोला युद्धमें अवश्य ही मृत्यु होगी यह जानकर भी राजा अपने स्वाभाविक अभिमानसे संधि करनेमें सम्मत नहीं हैं ॥ ३० ॥ उन्होंने प्रतिदिन दानवोंकी मृत्यु देखकर भी हमको रणमें भेजा है अतएव दैवका अतिक्रम करनेमें कौन पुरुष समर्थ होता है? सूत्रके तारतम्यानुसार नृत्यकरनेवाली पुतली जिसप्रकार नचानेवालेके वशवर्त्ती होती है इसीप्रकार सेवकलोगभी प्रभुके वशवर्ती और आज्ञाधीन हैं अतएव सदा मानादि छोड़कर प्रभुका कार्य करना होता है, इस्से संसारमें सेवकका कार्य अतिदुःसाध्य है, हम उनके सामने यह कठोरवचन जाकर कैसे कहेंगे कि ॥ ३१ ॥ आप देवताओंको धन रत्न देकर यहांसे सब असुरोंके सहित

पातालमें प्रवेश करो. देखो असत्यवचनही प्रिय होता है किन्तु जो हितकर है वह कभी प्रिय नहीं होता ! सत्य और प्रिय ऐसे वचन संसारमें अत्यन्त दुर्लभ हैं इसकारण इस प्रकारके स्थलमें बुद्धिमान् पुरुषको मौनावलम्बन करके ही रहना उचित है ॥ ३१ ॥ और विशेषकरके अपने वचनोंसे राजाको लुभाकर वशीभूत करना वीरपुरुषोंका कर्त्तव्य नहीं है, यही नीतिशास्त्रका सार मर्म है ॥ ३२ ॥ इसकारण राजासे सादर हितकी बात कहने वा हितकी बात पूछनेको हमारा वहां जाना कभी उचित नहीं है. क्योंकि ऐसा कहनेसे राजा निस्संदेह कुपित होंगे ॥ ३३ ॥ अतएव इसप्रकार जीवनसंशयके स्थलमें भी प्रभुका कार्यसंपादन करना ही कर्त्तव्य है. इसभांति विचार और मरणको तृणकी समान जानकर युद्ध करनाही अतिउत्तम है ॥ ३४ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! इसप्रकार विचार करनेके पीछे वे दोनों वीर बखतर पहर धनुष वाण धारणकर रथमें चढ़ संग्राम करनेके लिये वहां स्थिति करने लगे ॥ ३५ ॥ प्रथम विडालाख्यने सात बाण छोड़े. तिस समय परमास्त्रवेत्ता असिलोमा दर्शक होकर दूर स्थित रहा ॥ ३६ ॥ उस बाणके आतेही अम्बिकाने अपने बाणोंसे खंड खंड करके शिलाशाणित तीन बाणोंसे विडालाख्यको प्रहार किया ॥ ३७ ॥ दैत्य विडालाख्य बाणवेदनासे मूर्छित होकर रणस्थलमें गिरगया और क्षणकालोपरान्तही दैवयोगसे मृत्युको प्राप्त हुआ ॥ ३८ ॥ शक्तिके बाणोंसे विडालाख्यको समरमें निहत हुआ देख असिलोमा धनुषबाणधारण करके युद्धके लिये आया ॥ ३९ ॥ तब यह वीरवर बाईं भुजा उठाय देवीसे कहने लगा कि हे देवी ! दुष्टस्वभाव दानवोंकी मृत्यु होगी यह मैं जानता हूं ॥ ४० ॥ किन्तु यह जानकर भी मुझको समरमें प्रवृत्त होना पड़ा है क्योंकि मैं पराधीन हूं और महिषासुर अत्यन्त मन्दबुद्धि है इसकारण वह प्रियअप्रियको नहीं जानता ॥ ४१ ॥ उसके निकट हितकर अप्रिय वचन कभी न कहै अतएव अच्छा हो वा बुरा हो मैं राजधर्मके अनुसार युद्धमें प्राणपरित्याग करूंगा ॥ ४२ ॥ दानवलोग तुम्हारे बाणोंके प्रहारसे आहत होकर तत्क्षण भूतलमें गिरते हैं यह देखकर मैं दैवको ही प्रधान जानता हूं. पुरुषकारसे कोई कार्य सिद्ध नहीं होता, इसकारण पौरुषको धिक्कार है ॥ ४३ ॥ यह कहकर वह दानवश्रेष्ठ असिलोमा बाणोंकी वर्षा करने लगा. तब देवीभी उन बाणोंको निकट आते आते ही अपने बाणोंसे खंड खंड करने लगी ॥ ४४ ॥ और फिर क्रोधमें भरकर अन्य बाणोंसे उसको शीघ्रतासहित बींधडाला. उस समय देवता आकाशमें टिकेहुए

देवीका यह सब कार्य देखने लगे ॥ ४५ ॥ बाणोंके लगनेसे देह क्षत विक्षत होगया और उससे रुधिरकी धारा निकलने लगी. इसकारण वह दानव प्रफुल्ल किंशुकवृक्षकी समान शोभा पाने लगा ॥ ४६ ॥ तब असिलोमाने लोहमय भारी गदा उठाकर वेगसहित चंडिकाकी ओर दौड़ा और क्रोधयुक्त हो सिंहके मस्तकमें आघात किया ॥ ४७ ॥ प्रबल असुरके उस गदाघातसे न गिरकर सिंहने नखाघातसे उसकी बाहु विदारण की ॥ ४८ ॥ फिर उस दारुण दैत्यने गदा हाथमें ले सिंहके कंधेपर चढ़ अम्बिकाको महावेगसे प्रहार किया ॥ ४९ ॥ हे महाराज ! तब देवीने असुरके किये प्रहारको व्यर्थ करके शितधार खड्गसे उसका मस्तक काट डाला ॥ ५० ॥ मस्तकके कटनेसे दैत्यपति वेगसहित पृथ्वीमें गिरगया. यह देखकर उस दुरात्माकी सेनामें महान् हाहाकार शब्द होनेलगा ॥ ५१॥ इस ओर "देवीकी जय हो." यह कहकर देवता उन जगदम्बिकाका स्तव करने लगे. देवदुन्दुभि बजने लगीं और गंधर्वलोग महानन्दसे संगीत करने लगे ॥ ५२ ॥ दोनों दानव निहत होकर समर स्थलमें गिरगये. यह देखकर केसरीने बलपूर्वक बचीहुई सेनामें कितनोंको निहत और ॥ ५३ कितनोहीको भक्षण करके उसने रणस्थल खाली कर डाला, तिनमें कोई कोई भागकर दुःखित चित्तसे महिषासुरके निकट चलेगये ॥ ५४ ॥ भागी हुई सेना "रक्षा करो, रक्षा करो" यह कहकर चीत्कार करने लगी और रोती हुई बोली हे नृपसत्तम ! असिलोमा और बिडालाख्य मारे गये ॥ ५५ ॥ और जो अन्यान्य सैनिक थे, उनको सिंहने भक्षण कर लिया. उन्होंने महिषराजसे यह बात कहकर उसको दुःख सागरमें डाल दिया ॥ ५६ ॥ महिषासुर उनके वचन सुनकर दुःखसे विमन हुआ, तब अन्यमनस्क दुश्चित्तसा होकर व्याकुलभावसे चिन्ता करने लगा ॥ ५७ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः १६.

व्यासजी बोले हे राजन् ! उनके वचन सुन नृपति महिषासुरने कोपसहित दारुक नामक सारथीसे कहा, मेरा वह अद्भुत रथ शीघ्र लाओ ॥ १ ॥ हे राजन् ! ध्वजा पाताकाओंसे शोभित अनेक अस्त्रशस्त्रोंसे सज्जित, सुंदर चक्रयुक्त और शोभायमान युगन्धर जुएसे अलंकृत वह रथ उत्तमोत्तम सहस्र अश्वोंसे चलायमान ॥ २॥ सारथीने

भी शीघ्र वह रथ लाकर उससे कहा हे राजन्! आपके उस शोभायमान रथको लाकर द्वारे खड़ाकिया है ॥ ३ ॥ वह उत्तम आभरण और अनेक प्रकारके अस्त्रशस्त्रोंसे सुसज्जित है महाबलवान् असुरपति रथको आया जान ॥ ४ ॥ "मुझको सींगयुक्त महिष और मेरा कुत्सित मुखमंडल देखकर देवी अत्यन्त विमन होगी" मनमें इसप्रकार विचारकर मनुष्य देहधारण पूर्वक समरमें जानेको उद्यत हुआ कारण कि सुंदरता और चतुरता स्त्रियोंको प्रिय है, ॥ ५ ॥ ६ ॥ इस कारण रूप और चतुरता अवलम्बन करके उसके निकट जाऊं क्योंकि वह बाला मुझको देखकर जिससे मेरे ऊपर प्रीति करै ॥ ७ उससे ही मुझको सुख होगा, अन्य किसी प्रकार सुख प्राप्त नहीं होगा. महाबलवान् दानवने मनमें इसप्रकार विचार कर ॥ ८ ॥ महिषरूप त्यागपूर्वक सुंदर मनुष्यरूप धारण किया वह दैत्यपति सब आयुध ले केयूर और अंगदादि मनोहर अलंकार ॥ ९ ॥ तथा दिव्य वस्त्र पहन और गलेमें पुष्पोंकी माला धारण कर दूसरे कामदेवकी समान शोभा पाने लगा, तब सब प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंको ग्रहण करके धनुष ले रथमें चढ़े ॥ १० ॥ सेनासहित मदके गर्वसे उत्कंठित होकर देवीके समीप गया. दानवोंका अधिपति महिषासुर मानिनीगणोंका अतिमनोहर सुंदररूप धारण कर ॥ ११ ॥ और अनेक वीरोंसे परिवृत हो आरहा है, देवी भगवतीने यह देखकर शंखध्वनि करी ॥ १२ उस काल वह असुरराज सर्वजन विस्मयकर शंखनादको सुन देवीके सन्मुख उपस्थित हो कुछेक हँसकर उनसे कहने लगा ॥ १३ ॥ हे देवि! इस संसारचक्रमें जो सब लोग विद्यमान हैं, वे नर(पुरुष) हों, वा नारी (स्त्री)हों सब सदा सुखकी अभिलाषा करते हैं ॥ १४ ॥ यह सुख इस संसारमें मनुष्योंका परस्पर संमिलन होनेसे ही उत्पन्न होता है, संमिलनका अभाव होनेपर वह कभी उत्पन्न नहीं होता, हे देवि! वह संमिलनभी अनेक प्रकारका है अतएव मैं उसको कहता हूं सुनो ॥ ॥ १५ ॥ संमिलन प्रीति हेतुक और स्वभावहेतुक भेदसे अनेक प्रकारका है तिनमें प्रथम प्रीतिसंभवसंयोगका विषय आपसे बुद्धिके अनुसार कहता हूं ॥ १६ ॥ पिता माताका पुत्रके संग जो संमिलन होता है वह प्रीतिके कारण उत्पन्न है अतएव यही उत्तम कहागया है और भाईके संग भाईका जो मिलन है वह उपकारसे होता है इसकारण इसको मध्यम कहना चाहिये ॥ १७ ॥ फलतः जो मिलन उत्तम सुखप्रदान करे वही उत्तम कहकर प्रतिपादित होता है और जो उसकी अपेक्षा अल्पसुखप्रदान करे वही मध्यम कहागया है ॥ १८ ॥ और देखो नाविकलोग नानादेशमें

नानाकार्योंके लिये व्याकुल हृदय हो प्रसङ्गाधीन कार्यान्तरमें लगे रहते हैं अतएव इनका जो परस्परसंयोग है पण्डितलोग उसको स्वाभाविक संयोग कहते हैं ॥ १९॥ इस संयोगके अति अल्पसुख देनेसे पण्डितोंने उसका निकृष्टत्व प्रतिपादन किया है इस्से इस संसारमें जो अतिउत्तम मिलन है वही प्रकृतसुखदायक है इसमें संदेह नहीं ॥ ॥ २० ॥ हे कान्ते ! समान अवस्थावाले स्त्री पुरुषोंका जो निरन्तर संयोग होता है उसको ही अतिउत्तम जानना चाहिये क्योंकि यह मिलनही अत्युत्तम सुखप्रदान करता है ॥ २१ ॥ इसकारण इसको अतिउत्तम संमिलन कहते हैं अत्युत्तम मिलन होनेसे कुल, शील, गुण, रूप ॥ २२ ॥ चातुर्य और वेष सब विषयमें ही स्त्री वा पुरुष परस्परके श्रेष्ठताका विषय वर्णन करते हैं अतएव हे प्रिये ! तुम यदि मेरे संग उसी प्रकार संयोग करो ॥ २३ ॥ तो तुमको अतिउत्तम सुख प्राप्त होगा इसमें संदेह नहीं है, विशेष कर मैं अपनी इच्छानुसार अनेक प्रकारके रूप धारण करूंगा इससे तुमको कोई चिन्ता नहीं है ॥ २४॥ मैंने इन्द्रादि देवताओंको समरमें जीतकर जो दिव्यरत्न हरण कर लिये हैं वे संपूर्ण मेरे घर विद्यमान हैं ॥ ॥ २५ ॥ तुम मेरी पटरानी होकर वे सब रत्नोंका इच्छानुसार दान वा भोग करो हे सुन्दरि ! मैं तुम्हारा दास हूं ॥ २६ ॥ इसकारण मैं तुम्हारे वचनानुसार देवताओंसे शत्रुता परित्याग करूंगा इसमें संदेह नहीं, अधिक क्या? तुम्हे जिससे सुख मिले मैं वहीं करूंगा ॥ २७ ॥ हे चारुभाषिणि ! हे विशाललोचने ! तुम्हारे रूपसे मेरा चित्त मोहित हुआ है. इसकारण जो तुम आज्ञा करोगी, मैं उसीके अनुसार कार्य करूंगा ॥ २८ ॥ हे नितम्बिनि! मैं आतुर होकर तुम्हारी शरणागत हुआ हूं. हे रम्भोरु ! मैं कामबाणसे पीड़ित होकर दुःखी हुआ हूं, अतएव तुम मेरी रक्षा करो, ॥ २९ ॥ क्योंकि शरणागत पुरुषकी रक्षा करना सब धर्मोंसे उत्तम धर्म है, हे असितापाङ्गि ! हे कृशोदरि ! मैं तुम्हारा सेवक होकर काल व्यतीत करूंगा ॥ ॥ ३० ॥ और प्राणान्त होनेपर भी तुम्हारा वचन अन्यथा नहीं करूंगा. उसको सत्य जानो अब मैं सब आयुध त्यागकर तुम्हारे चरणोंमे गिरता हूं ॥ ३१ ॥ हे विशालनयने ! मैं कामबाणसे अत्यन्त कातर हुआ हूं. इसकारण तुम मुझपर दया करो हे सुन्दरि ! मैंने जन्मसे अबतक ॥ ३२ ॥ ब्रह्मादिदेवताओंके निकट कभी दीनता स्वीकार नहीं की, किन्तु आज तुम्हारे निकट स्वीकार की और वह ब्रह्मादि देवतालोग भी संग्रामस्थलमें मेरा चरित जानते हैं ॥ ३३ ॥ मैंने उन सबकोही

जीत लिया है.किन्तु हे भामिनि! मैं ऐसा पराक्रमशाली होकर भी अब तुम्हारा दास हुआ, तुम मेरा मुख देखकर मुझपर कृपा करो. व्यासजी बोले हे महाराज! दैत्यपति महिषासुरके इसप्रकार कहनेपर उन वरवर्णिनी भगवती देवीने ॥ ३४ ॥ उच्चहास्य कर सम्मित वचनसे कहा. देवी बोली मैं परमपुरुषके अतिरिक्त अन्य किसी पुरुषकी इच्छा नहीं करती ॥ ३५ ॥ हे दैत्य! मैं उनकी इच्छाशक्ति हूं. इसकारण मैं ही सब जगत्को उत्पन्न करती हूं, मैं उनकी शिवा प्रकृति हूं, वह विश्वात्मा मेरा दर्शन करते हैं ॥ ३६ ॥ उनकी निकटतासे ही शाश्वत चैतन्य विश्वरूपसे मुझमें वर्त्तमान रहता है, अयस्कान्तकी समीपतासे लोहा जिसप्रकार सचेष्ट होता है इसी प्रकार मैं स्वाभाविक जड़ होकर भी उक्त चैतन्यके संयोगसे सचेतन होकर कार्य करती हूं. मुझे कभी इन्द्रियसुखकी अभिलाषा नहीं होती ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ हे मन्दात्मन्! जब कि तू स्त्रीसंगकी इच्छा करता है, तो तू निस्संदेह अत्यन्त मूर्ख है; क्योंकि स्त्रीजाति मनुष्योंको बांधनेके लिये शृङ्खला स्वरूप कही गई है ॥ ३९ ॥ लोहबद्ध मनुष्य तो कदापि छूट सक्ता है, किन्तु स्त्रीबद्ध मनुष्य कभी नहीं छूट सक्ता. रे मूर्ख! तू मूत्रागारकी सेवा करनेमें अभिलाषी हुआ है ॥ ४० ॥ सुखके लिये शान्तिअवलंबन कर. शान्तिसेही सुख पावेगा स्त्रीसंगमसे महादुःख उत्पन्न होता है. तू यह जानकर भी क्यों मोहित होता है? ॥ ४१ ॥ तू देवताओंसे वैर छोड़ इच्छानुसार पृथ्वीमण्डलमें विचरण कर वा तुझे यदि जीवित रहनेकी इच्छा हो तो पातालमें चला जा ॥ ४२ ॥ नहीं तो मेरे संग युद्ध कर किन्तु मैं तुझसे अधिक बलवती हूं, इस बातको जान लेना. हे दानव! तुम लोगोंको मारनेके लिये देवताओंने मिलकर मुझको भेजा है ॥ ४३ ॥ मैं तुझसे यह सत्य ही कहती हूं, क्यों कि सौहृद्य "साम" वचन कहनेसे मैं तुझपर संतुष्ट हुई हूं, इसकारण तू जीवित अवस्थामें सुखपूर्वक चला जा ॥ ४४ ॥ देख केवल सातबार मात्र वाक्यकथन होनेसे ही साधु पुरुषोंकी मैत्री स्थापित होती है, हमारा वह होगया है, इसकारण तेरे संग मेरी मित्रता उदय हुई है, अतएव मैं अब तेरा जीवन ग्रहण नहीं करूंगी. हे वीरवर! यदि तेरी मरनेकी इच्छा हो, तो सुखसे संग्राम कर ॥ ४५ ॥ हे महाबाहो! मैं तुझको संहार करूंगी इसमें सन्देह नहीं है. व्यासजी बोले कि, हे राजन्! दानवने भगवतीके इसप्रकार वचन सुन काममोहित हो ॥ ४६ ॥ मनोहर मधुरवाणीसे कहा हे वरारोहे! तुम्हारे सब अंग मनोहर और कोमल हैं, ऐसी ललनाके देखनेसे मनुष्य-

मात्रही मोहित होता है. इसकारण हे चारुवदने!तुम्हारे प्रहार करनेमें मुझे अतिशंका उत्पन्न होती है. हे कमललोचने! मैं ने हरि हर इत्यादि देवता और सब लोकपालोंको जीता है॥ ४७॥ ४८॥ अतएव तुमसे युद्ध करना क्या मुझको उचित है? हे सुन्दरी! यदि तुम्हारी अभिलाषा हो तो विवाह करके मेरा भजन करो ॥ ४९ ॥ नहीं तो तुम जिस स्थानसे आई हो उसी स्थानको चली जाओ. तुमने मुझसे मित्रता करी है, इसी कारण तुमको प्रहार करनेकी इच्छा नहीं करता ॥ ५० ॥ यह मैं ने तुमसे हित और मंगलकर वचन कहे अतएव तुम सुखसे प्रस्थान करो. हे वरानने! तुम सुलोचना ललना हो तुमको मारकर अन्तमें मेरी क्या प्रशंसा होगी?॥ ५१ ॥हेकृशोदरि! स्त्रीहत्या, बालहत्या और ब्रह्महत्याका फल अवश्यही भोगना पड़ता है. मैं तुमको नहीं मारूंगा बरन् ग्रहण करके घर लेजाऊँगा इसमें संदेह नहीं ॥ ५२ ॥ किन्तु बलप्रयोग करनेसे कहीं सुख नहीं होता इसकारण उससे भी मुझको फललाभ नहीं होगा. हे सुकेशी! मैं विनय पूर्वक तुमसे कहता हूं कि ॥ ५३ ॥ कामिनीके मुखपंकज विना पुरुषको सुख नहीं होता इसी प्रकार पुरुषके मुखकमलविना स्त्रियोंको सुख नहीं होता ॥ ५४ ॥ क्योंकि दोनोंका सुसंयोग होनेसे ही सुखकी परा काष्ठा होती है, और वियोग होनेसे ही क्लेश होता है. यद्यपि तुम मनोहर सब आभरणोंसे विभूषित हो ॥ ५५ ॥ किन्तु तुममें चतुरता दिखाई नहीं देती. क्योंकि तुम मेरा भजन नहीं करतीं, तुमको भोगपरित्याग करनेका क्या किसीने उपदेश दिया है? ॥ ५६ ॥ हे मधुरभाषिणी! यदि ऐसा हुआ हो, तो किसी शत्रुने तुमको इस विषयमें छला है इसमें संदेह नहीं. हे कान्ते! तुम यह आग्रह छोड़कर सुशोभन ॥ ५७ ॥ विवाह-कार्य संपादन करो तो हम दोनोंको ही परम सुख लाभ होगा. विशेषकर विष्णु कमलाके संग, ब्रह्मा सावित्रीके संग ॥ ५८ ॥ रुद्र पार्वतीके संग और इन्द्र शचीके संग जिसप्रकार शोभा पाते हैं मैं भी तुम्हारे संग इसीप्रकार शोभाको प्राप्त हूंगा, इसमें संदेह नहीं.पतिहीन कौन स्त्री निरन्तर सुख लाभ करसकती है?॥ ५९॥ इसमेंभी फिर तुम अति उत्तम पति पाकर स्वीकार नहीं करती.हे कान्ते!मन्दबुद्धि काम इस समय कहां गया है!वह उन्माद कर ॥६०॥ सुकोमल पांच बाणोंसे तुमको अत्यन्त पीड़ित क्यों नहीं करता! हे सुंदरी! बोध होता है मदन मेरी समान तुम्हारे प्रति सदय हो॥ ६१ ॥ और तुमको अबला जानकर ही बाणप्रयोग नहीं करता. अथवा हे कुटिलनयने! जान पडता है मनोभवकी मेरे संग कुछ शत्रुता है ॥ ६२ ॥ इससे ही तुमपर बाण नहीं

छोड़ता वा मेरे सुखघातक वैरी देवताओंने कामको निवारण किया है ॥ ६३ ॥ कारण कि यह देवता मेरा सुखविध्वंस करनेवाले हैं, इसीकारण कामने तुमपर प्रहार नहीं किया. हे मृगलोचनी! तुम मुझे छोड़कर पश्चात्ताप करोगी॥६४॥ हे तन्वंगी! जैसे मन्दोदरीने अनुकूल और सुन्दर राजाको त्याग एक शठको अपना पति किया ॥ ६५ ॥ और मोहसे व्याकुल हो कामार्त हुई यही दशा तुम्हारी होगी ॥ ६६॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे भाषायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः १७.

व्यासजी बोले हे राजन् ! फिर देवीने इस प्रकार महिषासुरके वचन सुन कर उससे पूँछाः—वह मन्दोदरी स्त्री कौन थी? और उसने जिसको पहिले छोड़ दिया था, वह राजा कौन था?॥१॥और फिर जिस शठ नृपतिको पति बनाया था वह नर-पति कौन था?और उस वनिताने पीछे किसप्रकार दुःखानुभव किया? यह सब मुझसे विस्तारसहित वर्णन कर ॥ २ ॥ देवीकी यह बात सुनकर महिषासुर कहने लगा— हे देवी! इस पृथ्वीमंडलमें सिंहलदेश अति प्रसिद्ध स्थान है. वह स्थान अनेक तरुराजिसे शोभायमान और धनधान्यसमृद्धिशाली था ॥ ३॥ चन्द्रसेन नामक एक धर्मपरायण राजा उस स्थानमें वास करता. वह शान्त सत्यवादी वीरवर दयालु धैर्यशाली क्षमा-वान् नीतिशास्त्रमें सागरकी समान ज्ञानसंपन्न शास्त्रवित् सर्वधर्मज्ञ और धनुर्वेदमें अत्यन्त निपुण था, वह प्रजापालनमें तत्पर होकर न्यायानुसार दंडविधान करता ॥ ४ ॥ ५ ॥ मनोहर रूपसौन्दर्यशालिनी गुणवती नाम उसके एक नितम्बिनी भार्या थी, वह पतिकी भक्तिमें परायण होकर नियत सदाचारमें रत रहती॥६॥उसका नाम गुणवती. वह सब लक्षणोंसे सम्पन्न थी.उस सब सुलक्षण युक्त कान्ताने प्रथम गर्भसेही एक सुन्दरी कन्या उत्पन्न करी॥७॥पिता चन्द्रसेन भूपति कन्याको पाकर अतिसन्तुष्ट हुए और परमानन्दसे उस कन्याका मन्दोदरी नाम रक्खा॥८॥वह कन्या चंद्रमाकी कलाके समान दिन दिन बढ़ने लगी जब कन्याकी अवस्था दशवर्षकी पूर्ण हुई तब वह कन्या अत्यन्त मनोहारिणी होगई ॥ ९ ॥ नरपति कन्याको देखकर उसके लिये प्रतिदिन चिन्ता करने लगे. इसी समयमें ब्राह्मणोंने राजासे कहा कि, मद्रदेशके शाधिपति महावीर सुधन्वा राजाका ॥ १० ॥ अत्यन्त बुद्धिमान् कम्बुग्रीव नामक

एक पुत्र है, यह कुमार सर्वराजलक्षणोंसे विभूषित और सर्वविद्याओंका पारदर्शी है अतएव वह राजपुत्रही इस कन्याका उपयुक्त और सुशोभन वर होगा. तब राजाने अपनी प्यारी गुणवतीसे पूँछा ॥ ११ ॥ १२ ॥ कि मैं यह वरवर्णिनी कन्या कम्बुग्रीवको देना चाहताहूं ? राजमहिषीने पतिके वे वचन सुनकर अपनी कन्या मन्दोदरीसे पूँछा कि ॥ १३ ॥ तुम्हारे पिता मद्रराजपुत्र कम्बुग्रीवके संग तुम्हारा विवाह करनेकी इच्छा करते हैं ! मन्दोदरीने जननीका यह वचन सुनकर उससे कहा ॥ १४ ॥ हे जननि ! विवाहकी मेरी इच्छा नहीं है मैं पतिका ग्रहण नहीं करूंगी मैं सम्यक् प्रकारसे कौमारव्रत अवलम्बन करके काल व्यतीत करूंगी ॥ १५ ॥ हे मातः ! इस संसार सागरमें पराधीनताकी अपेक्षा अतिदुःखकर विषय दूसरा नहीं है. इसकारण मैं स्वाधीनभावसे सदा कठोर तपस्या करनेकी इच्छा करती हूं ॥ १६ ॥ शास्त्रका तत्व जाननेवाले पंडित कहते हैं कि, स्वतंत्रता अवलम्बन करनेसेही मोक्ष होती है. अतएव मैं उससे मुक्त हूंगी, पतिसे मेरा प्रयोजन नहीं है ॥ १७ ॥ विवाहकालके समय अग्निके समीप कहना होता है कि, मैं सब प्रकारसे सदा तुम्हारे अधीन रहूंगी ॥ १८ ॥ और देखो. श्वशुरके घर जाय श्वशुर और देवरकी दासी होकर समय बिताना होता है. विशेष कर पतिके सुखमें सुखी और दुःखमें दुःखी होकर उसके चित्तके अनुसार कार्य करना पड़ता है, यह दुःखसे भी दुःखतर है ॥ १९ ॥ और यदि किसी समय पति दूसरी किसी स्त्रीसे विवाह करे तो उस समय सपत्नीजनित महादुःख उपस्थित होता है ॥ २० ॥ हे माता ! तब पतिसे ईर्षा होती है. इस कारण अनेक क्लेश भोगने पड़ते हैं अतएव स्वमकी समान इस संसारमें क्या सुख है ? ॥ २१ ॥ विशेषकर इसमें स्वाभाविक पराधीन स्त्रियोंको तो कोई भी सुख नहीं है. हे जननि ! मैं ने सुना है कि पूर्वकालमें उत्तानपादके पुत्र ॥ २२ ॥ धर्मज्ञ उत्तम ध्रुवसे छोटे भी राजा हुए थे और उत्तानपाद राजाने पतिभक्तिपरायण धर्मरूपिणी साध्वी ॥ २३ ॥ प्रियतमा कान्ताको विना अपराधही वनमें छोड़ दिया था स्वामीके विद्यमान रहनेपरभी स्त्रियोंको अनेक दुःख अनुभव करने पड़ते हैं ॥ २४ ॥ और यदि कालवश पति परलोकगामी हो तो स्त्रियें अनन्त दुःख पाती हैं क्योंकि वैधव्य-दशा स्त्रियोंके एक मात्र दुःख शोक और संतापका कारण है ॥ २५ ॥ और पतिके विदेश चले जानेपर भी स्त्रियोंका देह कामाग्निमें दग्ध होता है इससे उनके घरमें अधिक दुःख होता है फिर पतिसंगका क्या सुख है ? ॥ २६ ॥ इसकारण

क्या जीवित अवस्था क्या मृतअवस्था क्रिसी समय भी पतिलाभमें सुख नहीं है. अतएव मेरे विचारसे पति स्वीकार करना कभी उचित नहीं है. तब माताने कन्याकी यह बात सुनकर पतिसे कहा ॥२७॥ कि मन्दोदरी कौमारव्रत अवलम्बन करेगी उसको विवाह करनेकी इच्छा नहीं है वह पतिग्रहण करनेमें अनेक दोष दिखलाकर संसारसे विमुख हो व्रत और जपका अनुष्ठान करती हुई ॥ २८ ॥ अकेली काल वितावेगी, वह पतिग्रहण करनेकी इच्छा नहीं करती. राजाने भार्याकी यह बात सुन जान लिया कि, कन्याका विवाहमें अनुराग नहीं है. तब उसका विवाह न करके उसी अवस्थामें काल व्यंतीत करने लगे ॥ २९ ॥ इसी कारण राजाने उसका पतिमें भाव न देख विवाह न किया । इसप्रकार कन्या पिता मातासे रक्षित होकर घरमें वास करने लगी ॥३०॥ इसी समयमें उस राजकन्यामें स्त्रियोंका कामोद्दीपक यौवनाङ्कुरका उदय हुआ राजकन्याकी सखियोंने पतिग्रहण करनेके लिये यद्यपि वारंवार प्रार्थना करी ॥ ३१ ॥ किन्तु तोभी उस बालाने अनेकप्रकारके ज्ञानयुक्त वचन कहकर पतिग्रहणकी अभिलाषा प्रकाश नहीं की. एक समय वह सुमुखी अनेक पादपोंसे शोभित उद्यानमें॥ ३२॥ विहार करनेको गई, वह कृशोदरी वहां वयस्या सैरंध्री सखियोंके सहित अनेक प्रकारके पुष्प मनोहर पुष्पित लताओंको देखती हुई क्रीड़ा करनेलगी ॥ ३३ इसी अवसरमें जब कि वह सखियोंके सहित फूल तोड़ रही थी. कोशलाधिपति महावीर ॥ ३४ ॥ वीरसेननामक अतिप्रसिद्ध राजा दैवात् उसी मार्गसे आये. एक मात्र वह अकेले कुछेक सेवकोंके सहित रथपर चढ़ उस उद्यानके निकट उपस्थित हुए ॥३५॥ पीछे धीरे धीरे उनकी सेना आती थी, तब उसकी वयस्या सखियोंने दूरसे उन राजाको देखकर ॥ ३६ ॥ मन्दोदरीसे कहा हे सखी! दूसरे कामदेवकी समान रूपवान् महाबाहु एक पुरुष रथपर चढाहुआ मार्गमें आ रहा है ॥ ३७ ॥ मुझको जान पड़ता है कि, कोई राजा हमारे भाग्यसे इस स्थानमें उपस्थित हुए हैं. इसप्रकार कहतेही कोशलपति वहां आनकर उपस्थित हुए ॥३८॥ वह नरपति असितापाङ्गी राजनन्दिनीको देखकर विस्मित हुए और तत्काल रथसे उतर परिचारिका (दासी) से उन्होंने पूँछा ॥ ३९ ॥ हे भद्रे! यह विशालनेत्रोंवाली बाला कौन है? और किसकी कन्या है? यह तुम मुझसे शीघ्र कहो. शुचिस्मिता सैरन्ध्रीसे इसप्रकार पूँछनेपर उसने कहा ॥ ४० ॥ हे सुलोचनवीर! प्रथम हम आपसे पूँछतीं हैं कि,

आप कौन हैं? किसलिये आप आये हैं? और आपका प्रयोजन क्या है? सो कहिये ॥ ४१ ॥ सैरन्ध्रीके यह पूँछनेपर महीपतिने उससे कहा पृथ्वीमें कोशल नामक अतिसुन्दर परमविस्मयकर एक देश है ॥ ४२ ॥ मैं उस देशका अधिपति हूं, मेरा नाम वीरसेन है. मेरी चतुर्विध सेना इच्छानुसार पीछे आती है ॥ ४३ ॥ मैं मार्ग भूलकर यहां आगया हूँ, मुझको कोशल देशका अधिपति जानना चाहिये. सैरन्ध्री बोली–हे राजन्! यह कमलनयना चन्द्रसेन राजाकी कन्या है और इसका नाम मन्दोदरी है ॥ ४४ ॥ यह क्रीडा करनेकी इच्छासे इस उद्यानमें आई है. राजाने सैरन्ध्रीका यह वचन सुनकर उससे कहा ॥ ४५ ॥ हे सैरन्ध्री! मैं तुमको चतुर जानता हूं अतएव मैं जो कहता हूं वह तुम राजपुत्रीको भलीभाँति समझा दो. हे चारुलोचने! मैं ककुत्स्थवंशोत्पन्न राजा हूं ॥ ४६ ॥ हे कामिनी! गांधर्व विवाहकी विधिसे मुझको पतित्वमें वरण करो. हे नितम्बिनी! मेरे दूसरी कोई भार्या नहीं है ॥ ४७ ॥ और तुम रूपवती कामिनी सद्वंशोत्पन्न और वयसानुसार यौवनको प्राप्त हो इसकारण मैं तुमको लाभ करनेकी इच्छा करता हूं, वा तुम्हारे पिता मुझको विधिपूर्वक देभी सक्ते हैं ॥ ४८ ॥ तो मैं तुम्हारा अनुकूल पति हूंगा, इसमें सन्देह नहीं. महिषने कहा हे देवी! उनकी यह बात सुनकर कामशास्त्रमें पण्डित वह सैरन्ध्री ॥ ४९ ॥ हँसते हँसते मधुर वचन द्वारा राजकन्यासे कहने लगी. हे मन्दोदरी! मनोहर-कान्तियुक्त सूर्यवंशीय एक नरपति आये हैं ॥ ५० ॥ वे रूपवान्, बलवान् और तुम्हारी समान वयस्क हैं. हे सुन्दरी! वह नृपति तुम्हारे प्रति सम्यक्प्रकार प्रीतिपरायण हुए हैं ॥ ५१ ॥ हे विशाललोचने! तुम्हारा विवाह काल उपस्थित है किन्तु तो भी तुमने विवाह नहीं किया, बरन इस विषयमें तुमको बहुत वैराग्य है. तुम्हारे पिता यह जानकर निरन्तर दुःख करते हैं ॥ ५२ ॥ देखो तुम्हारे पिताने बारंबार श्वास छोड़कर हमसे कहा है हे सैरन्ध्रियो! तुम इसकी सेवामें तत्पर रहकर इसको समझाओ ॥ ५३ ॥ किन्तु तुम हठ-धर्ममें निरत हो रही हो इसकारण हम तुमसे कुछ नहीं कहसक्तीं, मुनियोंने कहा है कि, स्वामीकी शुश्रूषा करनाही स्त्रियोंका परमधर्म है ॥ ५४ ॥ हे विशाल-नयने! स्वामीकी सेवा करनेसे ही स्त्रियें स्वर्गको प्राप्त करतीं हैं इससे तुम विधिपूर्वक विवाह करो ॥ ५५ ॥ मन्दोदरी बोली, मैं विवाह न करके अद्भुत तपस्याका अनुष्ठान करूंगी. हे बाले! तुम नरपतिसे निवारण करके कह दो कि, वह निर्लज्ज

होकर क्यों मुझको देखते हैं ॥ ५६ ॥ सैरन्ध्री बोली—हे देवि ! काम अत्यन्त दुर्जय है और कालभी दुरतिक्रमणीय है, अतएव हे सुन्दरी! मेरे वचनको पथ्यस्वरूप जानकर प्रतिपालन करो ॥ ५७ ॥ और यदि इसके अन्यथा करोगी तो निःसंदेह तुमको विपत् उपस्थित होगी । मन्दोदरीने सैरन्ध्रीके इसप्रकार वचन सुनकर उससे कहा ॥ ५८ ॥ हे परिचारिके ! दैवयोगसे जो होनहार है वह अवश्य होगा इसमें संशय नहीं. किन्तु इस समय मैं किसीप्रकार विवाह नहीं करूंगी ॥ ५९ ॥ महिषने कहा—सैरन्ध्रीने उसका इसप्रकार निश्चय जानकर राजासे कहा हे राजन् ! यह कामिनी सत्पति प्राप्त करनेकी इच्छा नहीं करती, आपकी जहाँ इच्छा हो वहाँ जाइये ॥ ६० ॥ राजाने उसकी यह बात सुन कामिनीसे मोह छोड़दिया और विमन हो सेनासहित कोशल देशकी ओर प्रस्थान किया ॥ ६१ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः १८.

महिषने कहा हे देवि ! उस मन्दोदरीकी इन्दुमती नामक सुलक्षण संपन्न अविवाहिता एक बहन थी कालक्रमसे वह विवाहके योग्य हुई ॥ १ ॥ तब उसके विवाहार्थ स्वयंवर सभा रची गई. अनन्तर उस सभामण्डपमें जब अनेक देशोंके राजा आये ॥ २॥ तब उस कन्याने उनमें कुलशीलसंपन्न सर्वसुलक्षणसंयुक्त बलशाली और रूपवान् एक नरपतिको वरण किया ॥ ३ ॥ उस समय मन्दोदरीने भी दैवके अनिर्वचनीय प्रभावसे धूर्त, चातुर्यमय और शठ मद्रपतिको देख कामातुर हो, उससे ही विवाह करनेकी इच्छा की ॥ ४ ॥ तब उस कृशाङ्गीने अपने पितासे कहा हे पितः ! इस सभामें मद्रराजको देखकर इनसे विवाह करनेकी मेरी इच्छा हुई है. अतएव आप इस समय मेरा विवाहकार्य कीजिये ॥ ५ ॥ अपनी कन्याके एकान्तमें इसप्रकार कहनेपर राजा चंद्रसेन यह सुन अत्यन्त प्रसन्न चित्त हो कन्याके विवाहमें तत्पर हुए ॥ ६ ॥ उन्होंने उस राजाको घर बुलाय विवाहकार्यके नियमानुसार उसको अनेक धन यौतुकके सहित अपनी मन्दोदरी कन्या प्रदान करी ॥ ७ ॥ मद्रपति चारुदेष्ण उस सुन्दरीको पाय प्रफुल्लचित्तसे स्त्रीके सहित अपने घर गया ॥ ८ ॥ उस नृपवरने कामिनीके संग बहुत कालतक क्रीडा की फिर किसी समय वह दासपत्नियोंसे निर्जनमें क्रीडामें

आसक्त हुआ ॥ ९ ॥ तब एक परिचारिकाने यह वृत्तान्त जान मन्दोदरीसे कहा. मन्दोदरीने पतिकी यह अवस्था देख कुपित हो कुछेक हास्यवदनसे तिरस्कार किया ॥ १० ॥ अनन्तर एक समय राजा किसी सामान्यरूपवती रमणीके सहित पुनर्वार इच्छानुसार क्रीड़ामें रत होकर आमोद कर रहे थे. इसी समय मन्दोदरीने यह देखा और अत्यन्त दुःखित होकर मनमें विचारा ॥ ११ ॥ प्रथम जब स्वयंवरमें इसको देखा तब इसको शठ नहीं जानसकी, इस राजाने मुझको छला है हाय! मोहके वश होकर मैंने क्या अन्यायकार्य किया है ॥ १२ ॥ यह राजा शठ और इसको किसी प्रकारकी घृणा और लज्जा नहीं है. अतएव इसके लिये अब सन्ताप करना वृथा है. ऐसे पतिसे किसप्रकार प्रीति हो सक्ती है ? इस कारण अब मेरे जीवनधारण करनेको धिक्कार है ॥ १३ ॥ अब मैंने पतिसम्भोगजनित संसारका सबही सुख त्यागकरके बलमात्र संतोषअवलम्बन किया ॥ १४ ॥ मैंने अकर्त्तव्य कार्य किया है इस कारण वह अब मुझको अति दुःखदायक हुआ है, यदि इस समय मैं देहत्याग करूं तो आत्महत्याका पाप मुझको कभी नहीं छोड़ेगा अवश्यही उसका फल भोगना होगा ॥ १५ ॥ और यदि पिताके घर जाऊं तो वहां भी मुझको सुख नहीं होगा क्योंकि सखियें मेरी ऐसी अवस्था देखकर दिनरात हँसी करेंगी इसमें सन्देह नहीं ॥ १६ ॥ अतएव कामसुखपरित्याग कर वैराग्य अवलम्बनपूर्वक कालकी कुटिलतासे इसी स्थानमें वास करना मुझको अवश्य कर्त्तव्य है ॥ १७ ॥ महिषने कहा हे देवी ! वह स्त्री शोकसंतप्त हृदयसे इसप्रकार विलाप और परिताप करके स्वामीका शयनगृह और सांसारिक सुख एकही बार छोड़ वहां वास करनेलगी ॥ १८ ॥ अतएव हे कल्याणी ! मैं राजा हूं, तो भी तुम मेरा अनादर करती हो किन्तु अन्तमें तुमभी उस मन्दोदरीके समान कामार्त्त होकर अन्य किसी मूर्ख पुरुषका आश्रय करोगी इसमें सन्देह नहीं ॥ १९ ॥ इस समय तुम स्त्रियोंके हितकर और पथ्यस्वरूप मेरे वचनोंका पालन करो नहीं तो अन्तमें परमशोकको प्राप्त होगी इसमें सन्देह नहीं ॥ २० ॥ महिषासुरके यह वचन सुनकर देवीने कहा हे मन्दात्मन् ! तू पातालमें भाग जा. वा इस समय युद्धमें प्रवृत्त हो. मैं तुझको और सब असुरोंको मारकर सुखपूर्वक चली जाऊंगी ॥ २१ ॥ जब जब साधुपुरुषोंको क्लेश उपस्थित होता है तब तब मैं उनकी रक्षाके लिये देहधारण करती हूं ॥ २२ ॥ हे दैत्यवर ! मेरा रूप और जन्म नहीं है. केवल

देवताओंकी रक्षा करनेके लिये ही समय समयमें रूपधारण और जन्मग्रहण करती हूं. तुम यह बात निश्चय जानो ॥ २३ ॥ रे दुराचार महिष ! तेरे मारनेके लिये देवताओंने मेरे निकट प्रार्थना की है. इसकारण मैं तेरा संहार करके स्थिर हूंगी. हे महिष ! मैंने जो कहा इस सबको सत्यही जान ॥ २४ ॥ अब तू असुरालय पातालमें भाग जा वा युद्ध कर मैं तुझको सबप्रकारसे विनाश करूंगी यह मैंने तुझसे सत्यही कहा है ॥ २५ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! देवीके इसप्रकार वचन सुन दानव धनुष ग्रहण कर युद्धकी अभिलाषासे उस रणभूमिमें अवस्थित हुआ ॥ २६ ॥ और कानोंपर्यन्त खैंचकर शिलाशाणित बाण शीघ्रतासहित छोड़ने लगा. तब देवी भी क्रोधित हो लोहफलके बाण छोड़कर उसके बाणोंको खंड खंड करने लगी॥ २७॥ तब उनका आपसमें इसप्रकार तुमुल संग्राम होने लगा कि परस्पर जयकी इच्छा करनेवाले देवता और दानवोंको उससे भय उत्पन्न हुआ ॥ २८॥ घोर संग्राम होरहा था उसी समय दुर्द्धर संग्रामस्थलमें आया और देवीको कुपित करके विपलिप्त दारुण शिलीमुख बाणोंको उनके ऊपर छोड़ने लगा ॥ २९॥ तब भगवतीने कुपित होकर तीक्ष्ण बाणोंसे उसपर प्रहार किया. दुर्द्धर उस प्रहारसे प्राणहीन होकर पर्वतके शिखरकी समान पृथ्वीमें गिरपड़ा ॥ ३० ॥ तब महास्त्रवित् त्रिनेत्र उसको निहत देख समरमें उपस्थित हुआ और सात बाणोंसे परमेश्वरीको प्रहार किया ॥ ३१ ॥ उन बाणोंके आते आतेही देवीने विशिखद्वारा उनको काट डाला और फिर उन जगदम्बिकाने त्रिशूलसे उस त्रिनेत्रका विनाश किया ॥ ३२ ॥ इसप्रकार त्रिनेत्रके मरनेपर अन्धक यह देख शीघ्रतासहित समरमें आया और लोहमय गदा लेकर सिंहके मस्तकमें वेगसे उसको प्रहार किया ॥ ३३ ॥ तब सिंहभी नखाघातसे अत्यन्त बलशाली उस अंधकको निहत करके अति क्रोधित हो उसका मांसभक्षण करने लगा ॥ ३४ ॥ जब समरमें यह सब असुर मारे गये तब यह देख महिषासुर अतिआश्चर्यमें हो, शिलाशाणित बाणोंको वेगसहित छोड़ने लगा ॥ ३५ ॥ देवी अम्बिकाने उन बाणोंके न आतेही शिलीमुखसे द्विखंड करके गदाद्वारा दैत्यके वक्षःस्थलमें प्रहार किया ॥ ३६ ॥ वह देवताओंको पीडा देनेवाला दुरात्मा महिषासुर गदाघातसे मूर्च्छित हुआ, किन्तु कुछ कालोपरान्तही प्रहारकी वेदना सह फिर आय ॥ ३७ ॥ महाक्रोधसे गदाद्वारा सिंहके मस्तकमें प्रहार किया, तब सिंहने भी नखाघातसे उस महाअसुरको विदीर्ण किया ॥ ३८ ॥ तब महिषासुरने भी पुरुष-

रूप छोड़ सिंहरूप धारण कर नखरद्वारा देवीके मदोत्कट सिंहको क्षत विक्षत किया ॥ ३९ ॥ महिषासुरको सिंहरूप धारण किये देख देवीने कुपित होकर कठिन आशीविषकी समान तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा की ? ॥ ४० ॥ तब महिषासुर सिंहरूप छोड़ मदस्रावी हाथीका रूप धारणकर सूंडसे पर्वतके शिखर ग्रहणपूर्वक देवीके ऊपर निक्षेप करनेलगा ॥ ४१ ॥ देवी जगदम्बिका पर्वतके शिखरोंको आता हुआ देख शिलाशाणित बाणोंसे उनको तिलप्रमाण खंड खंड कर हास्य करने लगी ॥ ॥ ४२ ॥ इधर सिंहने कूदकर उसके मस्तकमें प्राप्त होकर गजरूपी महिषासुरको नखरद्वारा विदीर्ण किया ॥ ४३ ॥ तब उसने सिंहको संहार करनेकी इच्छासे हाथीका रूप छोड़ सिंहसे भी अधिक बलवान् भयंकर शरभ अष्टापद रूप धारण किया ॥ ४४ ॥ देवीने उस शरभको देखकर क्रोधसे कुपित हो खड्गद्वारा उसके मस्तकमें प्रहार किया तब शरभने भी तत्काल देवीको प्रहार किया ॥ ४५ ॥ उस समय उसका परस्पर अत्यन्त भयंकर युद्ध होनेलगा तब महिषासुरने महिषरूप धारण करके सींगोंसे भगवतीको प्रहार किया ॥ ४६ ॥ वह घोररूप भयानक असुर पुच्छभ्रमण और दोनों सींगोंके आघातसे उन कृशाङ्गी देवीपर प्रहार करने लगा ॥ ४७ ॥ वह दुर्द्धर्ष असुर लांगूलद्वारा पर्वतके शिखरोंको ग्रहण करके बलपूर्वक घुमाय घुमाय फेंकने लगा तब पापात्मा बलोन्मत्तताके कारण अत्यन्त विह्वलता पूर्वक हँसता हुआ ॥ ४८ ॥ देवीसे कहने लगा हे देवी ! रणस्थलमें स्थिर होओ रूप और यौवनके सहित अभी तुमको समरमें निहत करूंगा ॥ ४९ ॥ तुम मदमत्त होकर मुझसे युद्ध करती हो तुमको कुछ ज्ञान नहीं है तुम अत्यन्त मोहके वशीभूत हुई हो, तुम अपनेको अत्यन्त बलवान् विचार कर जो अभिमान करती हो उसको मिथ्या जानो ॥ ५० ॥ जो शठ नारीको सन्मुख करके हमको जीतनेकी इच्छा करते हैं पहिले तुमको मारकर फिर उन कपटपण्डित देवताओंका संहार करूंगा ॥ ५१ ॥ देवी बोली हे दुरात्मन् ! गर्व मत करे रणाङ्गणमें स्थिर हो अभी मैं तेरा विनाश करके उन सुरसत्तम गणोंको निर्भय करूंगी ॥ ५२ ॥ हे अधम ! तू पापिष्ठ है तू देवताओंको दुःख देता रहता है और मुनियोंको भय दिखाता है मैं सुमिष्ट माधवी सुराका पान करके तुझको समराङ्गणमें निहत करूंगी इसमें सन्देह नहीं ॥ ५३ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! देवी इसप्रकार कह क्रोधकर महिषासुरको मारनेकी इच्छासे सुरापूर्ण सोनेका कटोरा ग्रहण कर वारंवार सुरारस

पान करने लगी ॥ ५४ ॥ फिर सुमिष्ट द्राक्षारस पान करके देवी शूलग्रहणपूर्वक दानवकी ओर दौड़ी. यह देखकर देवता अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ ५५ ॥ और प्रीतिसहित उन देवीके ऊपर फूलोंकी वर्षा करके स्तव करने लगे और "जय जीव" यह कह दुन्दुभिके शब्दसे उनकी जय घोषणा करी ॥ ५६ ॥ ऋषिगण, सिद्धगण, गंधर्वगण, पिशाचगण, उरगगण और किन्नरगण आकाशमण्डलसे संग्राम देखकर परमप्रसन्न हुए ॥ ५७ ॥ इधर वह कपटपण्डित महिषासुर वारंवार मायामय अनेक प्रकारके देहधारण करके देवीपर वारंवार प्रहार करने लगा ॥ ५८ ॥ तब चण्डिकाने क्रोधसे लाल लाल नेत्र कर तीक्ष्ण शूलसे उस पापमति महिषासुरके हृदयमें बलपूर्वक प्रहार किया ॥ ५९ ॥ असुर शूलाघातकी वेदनासे मूर्छित होकर पृथ्वीमें गिरगया किन्तु मुहूर्तकालमें ही फिर उठकर चण्डिकाके ऊपर वेगसहित दोनों चरणोंका प्रहार किया ॥ ६० ॥ उस महासुरने देवीको पदद्वारा प्रहार करके वारंवार हँसकर ऐसा भयंकर चीत्कार शब्द किया कि, उस शब्दसे देवता बहुत डरे ॥ ६१ ॥ तब देवीने सुनाभवाले सहस्रार उत्तम चक्रको हाथमें ले सन्मुख स्थित असुरसे उच्चस्वरसे कहा ॥ ६२ ॥ रे मूढ ! देख. यह चक्र आज तेरे कंठका छेदन करेगा. क्षणकाल मात्र ठहर अभी तुझको यमलोक भेजती हूं ॥ ६३ ॥ जगदम्बिकाने यह कहतेही दारुण चक्र छोड़ा, तब तत्काल उस चक्रने दानवका मस्तक काट डाला ॥ ६४ ॥ गेरुका द्वारा अरुणवर्ण विशाल निर्झर प्रवाह जिसप्रकार पर्वतसे निकलता है. इसी प्रकार उसके कंठनालसे उष्ण रुधिरकी धारा निकलने लगी ॥ ६५ ॥ उस असुरका मस्तकहीन देह क्षणकाल इधर उधर घूमकर पृथ्वीमें गिरगया देवता आनन्दवर्द्धन जयशब्द उच्चारण करने लगे ॥ ६६ ॥ अत्यन्त बलशाली सिंह रणस्थलमें भागतेहुए दानवोंको क्षुधार्त्तकी समान भक्षण करने लगा ॥ ६७ ॥ हे राजन् ! क्रूरप्रकृति महिषासुरके निहत होनेपर मृतावशिष्ट जो दानव थे. वे डरकर पातालमें भाग गये ॥ ॥ ६८ ॥ उस पापमति असुरके मारेजानेपर देवता ऋषि और मनुष्य तथा पृथ्वीतलमें अन्यान्य जो जो साधुलोग थे. वे सब अत्यन्त आनन्दित हुए ॥ ६९ ॥ भगवती चंडिका भी समरपरित्याग करके पवित्र स्थानमें स्थिति करने लगी. अनन्तर देवता सुखप्रदा देवीका स्तव करनेकी इच्छासे वहां आये ॥ ७० ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषायां अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः १९.

व्यासजी बोले हे महाराज! अनन्तर इन्द्र इत्यादि देवतागण महिषासुरका मरण देख आनन्दित हो देवीका स्तव करने लगे ॥ १ ॥ देवता बोले हे भगवति! तुम्हारीही शक्तिके बलसे ब्रह्मा जगत्की सृष्टि, विष्णु जगत्का पालन और महेश्वर प्रलयकालमें जगत्का संहार करते हैं. किन्तु तुम्हारी शक्ति विहीन होनेसे वे कभी इस विश्वकी सृष्टि स्थिति और संहार करनेमें समर्थ नहीं होते. अतएव हे देवि! आपही इस अखिल जगत्की स्थिति नाशका एक मात्र कारण हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ २ ॥ हे देवि! आपही सब जगत्का कारणस्वरूप हैं. अतएव सभी आपमें अधिष्ठित रहते हैं. इस विश्वसंसारमें कीर्ति, मति, स्मृति, गति, करुणा, दया, श्रद्धा, धृति, वसुधा, कमला, मंत्ररूपा, अजपा, पुष्टि, कला, विजया, जया, तुष्टि, प्रभा, बुद्धि, रमा ॥ ३ ॥ विद्या, क्षमा, कान्ति, मेधा, अधिक क्या रुद्रशक्ति गिरिजा और ईश्वरशक्ति उमा इत्यादि जो सब शक्तियां विद्यमान हैं. वे सब आपही हैं यह बात त्रिभुवनमें किसीसे छिपी नहीं है. आपकी इन शक्तियोंके विना कभी कोई कार्य नहीं करसक्ता ॥ ४ ॥ हे भगवति! यदि आप धारणशक्ति न होतीं तो कूर्म अनन्तदेव किसप्रकार पृथ्वी धारण करनेमें समर्थ होते? हे जननि! आप यदि पृथ्वी न होतीं तो यह बहुभारपूर्ण सब जगत् क्या कभी अन्तरिक्ष (आकाश) में रहसक्ता ॥ ५ ॥ हे जननि! जो मनुष्य, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, चन्द्र, अग्नि, यम, वायु और गणेश इत्यादि देवताओंका स्तव करते हैं. वे निःसन्देह आपकी मायाके बलसे मोहित हैं. हे देवि! ये देवता क्या आपकी शक्तिके विना किसी कार्यके करनेमें समर्थ हो सक्ते हैं ॥ ६ ॥ हे मातः! जो विस्तृत यज्ञमें देवताओंके उद्देशसे विपुल हवि आहुति देता है. वह अत्यन्त अल्पबुद्धि है. क्योंकि आप यदि स्वाहा न होतीं तो देवतालोग क्या तत्काल उस हुत हविको प्राप्त हो सक्ते थे? हे देवि! वे सबलोक आपकी पूजा न करनेसे निःसन्देह मूढ हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ ७ ॥ हे जननि! आपही प्रकृतिकी सप्त विकृति और षोडश-विकार यह त्रयोविंशतितत्वरूप स्वीय अंशद्वारा प्राणियोंके प्रारब्धकर्मभोगके लिये जीवनदान करतीं हैं और आप अनुगत देवताओंको इस जगत्में जिसप्रकार पोषण करती है, वैसेही असुरोंको भी कर्मानुसार भोग और जीवन दानसे पालन करती हो. अतएव हे भगवति! आपही इन चराचर मनुष्योंको भोग प्रदान करतीं

हैं इसमें फिर संशय क्या है ॥ ८ ॥ हे मातः! चित्तविनोदनके लिये उद्यानमें मनोहर वृक्ष रोपण करनेपरभी यदि स्वाभाविक गुणसे किसीमें फल वा किसीमें पत्ते न हो. या किसी वृक्षका रस कड़वा हो. तोभी विज्ञ पुरुष कभी उसको स्वयं नहीं काटते. हे देवि! आपभी इसी प्रकार निकृष्ट कर्मानुसार दैत्योंको उत्पन्न करके आपही उनका पालन करतीं हैं ॥ ९ ॥ हे भगवति! आपका हृदय करुणारसमें इतना आकृष्ट है कि, देवाङ्गनाओंको सुरताभिलाषी जानकर तामसप्रकृति दैत्यगण यागादिद्वारा स्वर्गलाभ नहीं कर सक्ते. अतएव वह मेरे बाणोंसे प्राणत्याग करनेपर देहावसानके समय स्वर्गलोकमें जाकर देवाङ्गना-ओंके सहित सुरतक्रीडामें रत हो, आपने इस अभिप्रायके कारणही उन शत्रुओंको बाणोंसे समरमें विनाश किया है, अतएव आपका यह व्यवहार उनका मनोरथ सिद्ध करनेके लिये था, कुछ वधके लिये नहीं ॥ १० ॥ हे जननि! आपने जिसका विनाश करनेकी इच्छासे शरीर धारण किया है, सो आपके संकल्प मात्रसेही जो उन विख्यात प्रभाव असुरोंके प्राण न गये, यह अत्यन्त आश्चर्य जान पड़ता है. आपका देहधारण करनेकी लीलाके अतिरिक्त दूसरा कोई कारण नहीं है ॥ ११ ॥ हे देवि! इस घोर कलियुगमें जो मनुष्य आपका भजन न करके अन्यान्य देवता-ओंका भजन करते हैं. पुराण चतुरोंने निस्सन्देह उनको छलकर आपके बनाये हरिहरादिका सेवामें परायण किया है. हाय! इससे इन मनुष्योंका क्या दुर्भाग्य ही संघटित हुआ है ॥ १२ ॥ हे देवि! असुरनिपीडित ये देवतालोग आपके अधीन हैं, यह जानकर भी जो मनुष्य अनुरागपरायण हो पृथ्वीमें उन देवताओंकी पूजा करते हैं, वह निःसन्देह विमल दीपक हाथमें धारण करके भी निबिड़ अन्धकारा-च्छन्न निर्ज्जल कूपमें गिरते हैं ॥ १३ ॥ हे मातः! आपही चित्स्वरूपिणी विद्या हैं, सुतरां सुख अर्थात् मुक्ति प्रदान करती हैं, आपही अविद्या अर्थात् माया हैं, सुतरां असुख अर्थात् संसार क्लेश प्रदान करतीं हैं. हे देवि! जो आपकी पूजा करते हैं, आप उन मनुष्योंका जन्म क्लेश हरण करती हैं मोक्षाभिलाषी मुनिलोगही आपकी आराधना करते हैं और लोभ परायण मन्दमति अज्ञानी पुरुषही आपकी आराधनासे विरत होते हैं ॥ १४ ॥ अधिक क्या ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर और अपरापर देवता लोग सदा आपके आराध्य चरणकमलोंकी अर्चना करते हैं, किन्तु जो अल्पबुद्धि भ्रान्तमनुष्य मनमें आपके चरणकमलोंका ध्यान नहीं करते वह सदा इस भवसागरमें

गिरते हैं ॥ १५ ॥ हे चंडिके ! आपके चरणकमलोंसे उठी हुई रजके प्रसादसे ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर इस विश्वसंसारकी सृष्टि पालन और संहार करते हैं. अतएव हे देवि ! जो मनुष्य आपकी सेवा नहीं करते वे अत्यन्त भाग्यहीन हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥ १६ ॥ हे जगदम्बिके ! आपही सुर और असुरोंकी वाग्देवता हैं. अतएव आप यदि उनके मुखमंडलमें विराजमान न होतीं तो वह किसीप्रकारसे कुछ उच्चारण करनेमें समर्थ नहीं होते. अतएव हे देवि ! मनुष्यलोग आपसे रहित होकरभी किसप्रकार बात कहनेमें समर्थ होंगे ! ॥ १७ ॥ हे जननि ! प्रकुपित भृगुमुनिके शापसेही हरि पृथ्वीमें मीन, कूर्म, शूकर, नृसिंह और वंचनातत्पर वामन इत्यादिकी रूप धारण करके अवतीर्ण हुये थे, इसमें उनकी पराधीनता स्पष्टही प्रतीत होती है. जो उन पराधीन अवतारोंकी सेवा करते हैं, उनको किसलिये मृत्युका भय नहीं होगा ? ॥ १८ ॥ हे मातः ! सतीके वियोगसे महादेवके अरण्यमध्यस्थ ऋषियोंके आश्रममें गमन करनेपर भृगुमुनिके शापसे उनका लिंग पृथ्वीमें गिरा, यह तो सर्वत्र ही प्रसिद्ध है. अतएव जो अपने लिंगकी रक्षा करनेमें भी समर्थ नहीं हैं, विशेष कर जो स्पर्श करनेके अयोग्य नरकपाल इत्यादि धारण करते हैं, उन शंभुको जो मनुष्य भजते हैं, उनको इसका काल और परकालमें किस प्रकार सुख होगा ? ॥ १९ ॥ हे देवि ! जिन गणाधिपति गजाननने पूर्वोक्त महेशसे जन्म ग्रहण किया है, जो मनुष्य उन गणपतिकी पूजा करते हैं वे अत्यन्त भ्रान्त हैं, विशेष कर वे निःसन्देह चतुर्वर्गप्रदानमें समर्थ इस विश्व ब्रह्माण्डकी जननी स्वरूप सुखाराध्य आपको नहीं जानते ॥ २० ॥ हे देवि ! आपने दयार्द्रताके वश होकर ही शत्रुओंको शित बाणोंसे समरमें निहत करके स्वर्गलोकमें भेज दिया है. यदि ऐसा न करतीं तो वे निःसन्देह अपने कर्मोंके फलसे नरककी अधिकतर आपदामें गिरते, इसमें सन्देह नहीं ॥ २१ ॥ ब्रह्मा, हरि और हर तथा अन्यान्य देवता भी आपका प्रभाव जाननेमें समर्थ नहीं हैं तो आपके अमित प्रभावसत्वादि गुणसे मोहित सामान्य मनुष्यगण किसप्रकार तुम्हारा प्रभाव जाननेमें समर्थ हों ? ॥ २२ ॥ हे मातः ! जो विचारके अगोचर आपके चरणकमलोंकी पूजा नहीं करते और दृश्यमान सूर्य भी अनलकी सेवामें निरत हैं, वे शतशत श्रुतिद्वारा प्रतिपादित वेदका सार

१ यहां उत्कर्षता दिखानेको ऐसा कहा है भजन आदिका निषेध न जानना, यह स्तुतिवाद है भगवत्का उत्कर्ष है कारण कि, इनमें सब देवताओंका सत्व है ।

परमतत्व न जानकरही मोहित चित्तसे केवल क्लेशोंका भोग करते रहते हैं ॥ २३ ॥ हे जननि! मैं विचारता हूं कि, आपके सत्व रज और तमोगुणका प्रभाव भूमण्डलमें विस्तृत रहता है. वही सब गुण पुरुष बुद्धिविरचित नाना विध मोहकर तंत्रादि शास्त्रद्वारा सब मनुष्योंको विष्णु महेश्वर सूर्य और गणेश इत्यादि देवताओंकी उपासनामें प्रवृत्त करके आपकी भक्तिभावसे विमुख करदेते हैं ॥ २४ ॥ हे अम्बिके! जो हरिहरादिके अर्चनाविषयक भक्तियोगप्रतिपादित आगम शास्त्रद्वारा ब्राह्मणोंको आपके चरणकमलोंसे विमुख करते हैं आप उनके प्रति कुपित नहीं होतीं वरन् वश्याकर्षणादि मोहमंत्रनिपुण उन मनुष्योंको भलीभाँति विख्यात करके उनके प्रति दया प्रकाश करती हो ॥ २५ ॥ सत्ययुगमें विशुद्धसत्वगुणही अधिक बलवान् था इससे ही असत्शास्त्रोंका प्रभाव संकुचित था किन्तु कलिकालमें उसके अभावसे अविशुद्धगुणकी प्रधानता हुई है सुतरां पण्डिताभिमानी निपुण मनुष्य आपकी उपासना न करके आपके बनाये हरिहरादि देवताओंकी पूजा करते हैं ॥ २६ ॥ हे मातः! आपही चित्स्वरूपिणी विद्या हैं आपही योगसिद्धि होनेपर भक्तोंको मुक्तिका फलप्रदान करतीं हैं. इसलिये विशुद्धसत्वगुणप्रधान मुनिलोग आपकाही ध्यान करते हैं किन्तु जो मनुष्य आपमें लीन हुए हैं वेही धन्य हैं अधिक क्या उनको फिर जननीके जठरमें दुःखभोगना नहीं पड़ता ॥ २७ ॥ हे जननि! आपही चित्शक्ति रूपसे परमात्मामें वास करतीं हैं. इसकारण परमात्मा भी इस जगन्मंडलमें विशेष रूपसे व्यक्त होकर जगत् प्रपंचकी सृष्टि स्थिति और संहारकर्त्ता विदित होते हैं? हे देवि! तुम्हारी शक्तिसे विहीन होकर कौन पुरुष अपनी शक्तिके अनुसार इस जगत्प्रपंचमें कर्म करने विहार करने अथवा विचरण करनेमें समर्थ होता है? ॥ ॥ २८ ॥ हे भगवति! आपसेही यह विश्व संसार रचागया है अतएव आपही विश्व जननी हैं. महदादि चौवीस तत्व जड़ हैं, सुतरां तुम्हारी चित् शक्तिसे रहित होकर वे जगत्के बनानेमें किसप्रकार समर्थ होसक्ते हैं!हे देवि! गुणकर्मयुक्त जो सब इन्द्रियें विद्यमान हैं वे भी तुम्हारी शक्तिसे हीन होकर संसारका कार्यविधान वा फल देनेमें कभी समर्थ नहीं होतीं ॥ २९ ॥ आप यदि स्वाहारूप होकर यज्ञकी निमित्तभूत न होतीं तो देवता क्या मुनिगण कर्तृक यथाविधि प्रतिपादित यज्ञमें आहुत हविका स्वस्वभाग ग्रहण कर सक्ते? अतएव हे देवि! आपही इस

विश्वसंसारका पालन करतीं हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ ३० ॥ हे भगवति ! भवसागरके प्रथम आपनेही इस सब जगत्को उत्पन्न किया है. हरि हर इत्यादि देवता और दिग्पालोंकी आपही रक्षा करतीं हैं. आपही अंतकालमें इस विश्वसंसारका संहार करती हैं. अतएव हे भवानि ! आपका चरित्र देवतालोग भी नहीं जानते फिर मंदभाग्य मनुष्य लोग किसप्रकार उसको जान सक्ते हैं ॥ ३१ ॥ हे मातः ! महिषरूपधारी भयंकर असुरको मारकर आपने इन देवताओंकी रक्षा की है. हे जननि ! संपूर्ण वेदभी आपकी गति यथार्थरूपसे नहीं जान सक्ते. फिर हम मंद बुद्धि होकर आपकी क्या स्तुति करैं॥ ३२॥ हे जननि ! आपने हमारे वैरी अभावनीय भुवनकंटक दुष्टदानवका दलन करके हमारा कार्य साधन किया है. इससे आपकी कीर्ति जगत्में विस्तीर्ण हुई है. अतएव हे विदितप्रभावे ! आपही जगत्की माता हैं. कृपा करके हमारी रक्षा कीजिये ॥ ३३ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! जब देवताओंने इसप्रकार स्तुति करी, तब देवीने उनसे मधुर वचन द्वारा कहा हे सुरसत्तमगण ! तुम्हारा अपर दुःसाध्य कार्य क्या है ? सो कहो ॥ ३४ ॥ जब तुम्हारा अत्यन्त दुर्घट कोई कार्य उपस्थित हो उसी समय मेरा स्मरण करो. मैं तत्काल उस आपदाको विनष्ट करूंगी ॥ ३५॥ देवता बोले हे देवि ! आपने इस समय जो हमारे शत्रु महिषासुरको मारा है इससेही हमारा सब कार्य होगया है ॥ ३६ ॥ अब जिससे आपके चरणकमलोंका सदा स्मरण करसकें और जिससे आपके प्रति अचल भक्ति रहे आप वही कीजिये ॥ ३७॥ माताही पुत्रके हजार हजार अपराध सहती है मनुष्य यह जानकर भी किसकारण जगन्माताकी अर्चना नहीं करते सो कह नहीं सक्ते ॥ ३८॥ इस देहमें जीवात्मा और परमात्मारूप दो विहंगम (पक्षी) सदा वास करते हैं उन दोनोंका ऐसा सख्य (मित्रभाव) है कि, कभी उनका वियोग नहीं होता किन्तु उनके अपराधको सहै ऐसा और तीसरा सखा कोई नहीं है ॥ ३९ ॥ अतएव जो जीव सखा स्वरूप आपको परित्याग करता है वह फिर क्या करेगा ? वह कभी कल्याणलाभ नहीं करसक्ता वह पापात्मा देवता और मनुष्योंमें मन्दभाग्य है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ४० ॥ जो मनुष्य दुर्लभ देह पाकर वचन मन और कर्मसे आपका वारंवार स्मरण नहीं करता, वह निःसंदेह नराधम है, यह हम वारंवार सत्य कहते हैं ॥ ४१ ॥ हे देवि ! सुखके समय हो, वा दुःखके समय हो, आपही हमारी रक्षा करनेवाली हैं, अतएव आपही उत्तमोत्तम

अस्त्रोंसे हमारी रक्षा कीजिये ॥ ४२ ॥ हे देवि ! तुम्हारी चरणरेणुके विना हमारी रक्षाका दूसरा कोई उपाय नहीं है. श्रीव्यासजी बोले हे जन्मेजय ! जब देवता इसप्रकार भगवतीका स्तव करचुके तब देवी भगवती उसी स्थानमें अन्तर्धान होगई ॥ ४३ ॥ देवता देवीका अन्तर्धान होना देखकर बहुत अचंभेमें हुए ॥ ४४ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषायां एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः २०.

जन्मेजय बोले हे ऋषिवर ! भगवतीके इस परम पवित्र जगत्के हितकर अद्भुत चारित्रका विषय तो मैंने जाना, किन्तु आपके मुखकमलसे निकला कथामृत श्रवण कर इस समय भी मैं तृप्त नहीं हुआ ॥ १ ॥ हे मुनिवर ! भवानीके अन्तर्धान होनेपर उन प्रधान प्रधान देवताओंने तिसकाल क्या किया ? यह आप कहिये. हे भगवन् ! जिन जीवोंके पुण्यका बल अतिथोड़ा है वे कभी देवीके इस परम पवित्र चारित्रको नहीं जान सक्ते ॥ २ ॥ हे मुने ! अल्पभाग्य मनुष्यकी बात तो दूर रहे जिसके कर्णविवर कथामृत सुननेमें निपुण हैं वे महात्माभी क्या देवीके चरितामृत पीनेसे तृप्त होसक्ते हैं ? जिस वचनामृतके पान करनेसे मनुष्य अमरत्वको प्राप्त होता है वह सर्वसार वाक्यामृत जो नहीं पीते उनको धिक्कार है ॥ ३ ॥ जगदम्बिकाके लीलाचरित्र देवता और महामुनियोंकी रक्षा करनेवाले व मनुष्यादिको संसारसमुद्रको नौकास्वरूप हैं अतएव कृतज्ञ पुरुष उनको किसप्रकार छोड़सक्ते हैं॥ ४॥ वेदके जाननेवाले पण्डित कहते हैं कि देवीके चरित्र सब अभिलाषित प्रदान करनेमें समर्थ हैं अतएव क्या मुक्त,क्या मुमुक्षु,क्या संसारी,क्या रोगी सबकोही श्रवणपुटद्वारा सदा उनको पान करना चाहिये ॥५॥ विशेषकर धर्म अर्थमें और कामभोगमें निरत राजाओंको भी इस चरितामृतका पान करना चाहिये. हे मुने! मुक्त पुरुष भी जब देवीके चरितामृतका पान करते हैं, तब उनके अतिरिक्त अन्याय सामान्य पुरुषोंको जो उसका पान करना कर्त्तव्य है, इसमें फिर संदेह क्या है ? ॥ ६ ॥ हे मुनिवर ! भोगी राजा और दुःखी दरिद्रोंको देखकर इसप्रकार अनुमान करना चाहिये कि, जिन्होंने पूर्व जन्ममें सुन्दर कुन्दपुष्प, चम्पकपुष्प और बिल्व-दलद्वारा भवानीकी अर्चनाकी है वही भूलोकमें राजा होकर भोग सुख अनुभव करते

हैं ॥ ७ ॥ और जिसने भारतभूमिभागमें दुष्प्राप्य मनुष्यदेह धारण करके भक्तिहीनताके कारण उनकी पूजा नहीं की वही रोगी धन, धान्य और सम्पत्ति लाभसे वञ्चित तथा सन्तानहीन होते हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥८॥ अधिक क्या ? वे केवल भारवाही आज्ञाकारी दास होकर दिन रात भ्रमण करते हैं, किन्तु दिनरात स्वार्थको खोजकर भी उदर पूर्तिमात्र द्रव्यलाभमें समर्थ नहीं होते ॥९॥ अंधे, गूंगे, बहरे, खंज, और कुष्ठरोगी इत्यादि जो भूलोकमें दुःख भोगते हैं, उनको देखकर पण्डितलोग अनुमान करैं कि इन्हों ने कभी भवानीकी आराधना नहीं की ॥ १० ॥ जो समृद्धिशाली और अनेक अनुचरोंसे भलीभाँति सेवित होकर राजयोग्य भोग भोगते हैं जो धनवान् दिखाई देते हैं उन्हेंने निःसन्देह जगदम्बिकाके चरणकमलोंकी पूजा की थी यह अनुमान करना चाहिये ॥ ११ ॥ अतएव हे सत्यवतीतनय आप दयालु हैं इस कारण अब कृपा करके मेरे निकट देवीकी अनुत्तम चरित्रगाथा वर्णन कीजिये ॥ १२ ॥ हे मुनिवर ! सब देवताओंके तेजःपुंजसे उत्पन्न वह महालक्ष्मी पापिष्ठमहिषासुरको मारकर तथा देवताओंसे पूजित और संस्तुत होकर कहाँ गई॥ १३ ॥ हे महाभाग ! आपने कहा है कि, वह अन्तर्धान होगई अब मैं जानना चाहता हूं कि वह भुवनेश्वरी अन्तर्धान होकर स्वर्गलोकमें वा मृत्युलोकमें अवस्थिति करतीं हैं॥ १४ ॥ वह उसी स्थानमें लीन होगई या उन्होंने वैकुण्ठका आश्रय किया वा सुमेरुपर्वतमें चली गई ? हे मुनिवर! आप यह सब विवरण यथार्थरूपसे मेरे निकट वर्णन कीजिये ? ॥ १५ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! मैं ने पहिले ही आपके निकट मनोहर मणिद्वीपका विषय वर्णन किया है. यह द्वीप देवीभगवतीका क्रीड़ास्थान और परमप्रिय है ॥ १६ ॥ इस स्थानमें ही ब्रह्मा, विष्णु और महादेव स्त्रीभावको प्राप्त होते हैं. फिर पुरुषत्वलाभ करके अपने अपने कार्यमें नियुक्त होते हैं ॥ १७ ॥ यह स्थान परमशोभायमान और सुधासिंधुके मध्यदेशमें स्थित है. अम्बिका देवी अनेकप्रकारके रूप धारण करके सदा उसस्थानमें विहार करती हैं ॥ १८ ॥ परब्रह्मस्वरूपिणी सनातनी भगवती भुवनेश्वरी जिस स्थानमें सदा क्रीड़ा करतीं हैं. देवताओंके पूजा और स्तव करनेपर तदंशसंभूत यह शिवा देवी भी उसी मणिद्वीपमें जाती हैं ॥ १९ ॥ उन सर्वेश्वरी देवीके अन्तर्धान होनेपर देवतालोगोंने सर्वलक्षणसम्पन्न सूर्यवंशीय बली ॥ ॥ २० ॥ अयोध्यापति महाबल वीरप्रवर शत्रुघ्ननामक नरपतिको महिषासुरके सिंहासनपर बैठाकर साम्राज्यका अधीश्वर किया ॥ २१ ॥ इन्द्र इत्यादि देवता

उनको राज्य दे अपने अपने वाहनपर चढ़ स्वस्वस्थानको चले गये ॥ २२ ॥ हे महाराज! देवताओंके चले जानेपर पृथ्वीमें धर्मानुसार राज्यपालन होने लगा. इसकारण प्रजा सुख व स्वछन्दतासे समय व्यतीत करने लगीं ॥ २३ ॥ उस समय मेघके यथासमयमें वर्षा करनेपर धरामंडल धनधान्यसे परिपूर्ण होगया और वृक्ष सब फलपुष्पसे परिपूर्ण होकर सदा सबके सुखदायक हुए ॥ २४ ॥ घटकी समान ऐनवाली गायें ऐसी दुग्धवती हुईं कि, मनुष्य इच्छानुसार दुहने लगे. नदियें स्वच्छ और शीतल जलसे पूर्ण होकर सुमार्गमें वहने लगीं और उनके चारोंओर खग आदि स्थिति करने लगे ॥ २५ ॥ ब्राह्मणलोग वेदतत्वपरायण होकर यज्ञकार्यमें निरत हुए और क्षत्रिय अपने धर्ममें तत्पर होकर दान और अध्ययनमें प्रवृत्त हुए ॥ २६ ॥ राजा न्याय दंडधारण करके प्रजाकी रक्षामें तत्पर हुए. हे राजन्! इस समय राजा अनेक प्रकारके अस्त्रशस्त्रोंमें रत होकर भी सभी शान्तिपरायण हुए॥ ॥ २७ ॥ इसीप्रकार फिर जीवोंका परस्पर विरोध न हुआ, आकर (खानें) मनुष्योंको वहुत धन देने लगीं. गाय चरानेके सब स्थान गायोंके यूथोंसे पूर्ण होगये ॥ २८ ॥ हे नृपसत्तम! इस समय धरातलस्थ ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र सभी देवोंके प्रति भक्तिपरायण हुए ॥ २९ ॥ ब्राह्मण और क्षत्रिय इतने अधिक यज्ञ करने लगे कि, जिनसे पृथ्वीके सब स्थानोंमें ही मनोहर यज्ञयूप और यज्ञमण्डप विराजमान होने लगे ॥ ३० ॥ सब स्त्रियें सुशील और सत्यपरायण होकर पतिव्रता धर्मका अनुष्ठान करने लगीं. पुत्र धर्मनिष्ठ होकर पिताके प्रति भक्तिपरायण हुए ॥ ॥ ३१ ॥ पृथ्वीके सब स्थानोंसे ही नास्तिकता वा अधर्मका अनुष्ठान एकवारही दूर होगया. शुद्ध तर्क वितर्करहित होकर केवल वेदानुयायी शास्त्रका वादानुवाद होने लगा ॥ ३२ ॥ किसी पुरुषको किसीके संग कलहमति न रही. दीनता वा अशुभकार्यमें मति न रहनेसे संपूर्ण लोग सर्वत्र सुखपूर्वक वासकरने लगे. तिसकाल अकालमृत्यु न होनेसे ॥ ३३ ॥ कभी किसीको सुहृद्गणोंसे वियोग और आपदा उपस्थित न हुई. अनावृष्टि, दुर्भिक्ष वा मनुष्योंको क्लेशदायक मारीभय न रहा ॥ ॥ ३४ ॥ अधिक क्या किसी जीवके रोगपर्यन्त भी दिखाई नहीं देता था. परस्पर विरोध वा मात्सर्यभाव दूर हुआ नर नारी परस्पर सुखपूर्वक स्थित थे ॥ ३५ ॥ हे राजन्! स्वर्गस्थ देवताओंकी समान नर, नारी परमसुखपूर्वक क्रीड़ा करने लगे अधिक क्या उस समय चोर, पाखंड, वंचक, दाम्भिक ॥ ३६ ॥ खल, लम्पट

चुगल, जड़, वेदविद्वेषी, पापपरायण मनुष्य कोई नहीं था ॥ ३७ ॥ हे पृथ्वीपते! उसकाल सब मनुष्यही धर्ममें अतिअनुरक्त होकर सदा ब्राह्मणोंकी सेवामें तत्पर रहे सृष्टि धर्मके त्रिविध होनेसे सब ब्राह्मण भी तीन प्रकारके हैं ॥ ३८ ॥ वे सात्विक, राजसिक और तामसिक भेदसे त्रिविध हैं, सात्विक ब्राह्मण वेदवित् दक्ष और सत्यव्यवहारमें निरत हैं ॥ ३९ ॥ वे दयावान्, चतुर और किसीके निकटसे कोई वस्तु ग्रहण नहीं करते वे धर्ममें तत्पर होकर सात्विक अन्न द्वारा ॥ ४० ॥ पुरोडाश विधानसे यज्ञ करते हैं, किन्तु पशुद्वारा कभी यज्ञ नहीं करते. हे नरपाल ! जो सात्विक ब्राह्मण हैं वे दान, अध्ययन और यजन ॥ ४१ ॥ इन तीन कार्योंमें निरत हैं राजसी ब्राह्मण वेदविद् और क्षत्रियोंके पुरोहित होकर ॥ ४२ ॥ विधिपूर्वक मांसभक्षण करते हैं. वे यजन, याजन, दान, प्रतिग्रह ॥ ४३ ॥ अध्ययन और वेदका अध्यापन इन छैः कार्योंमें निरत हैं. तामस ब्राह्मण क्रोध राग और द्वेषपरायण होते हैं ॥ ४४ ॥ वे किंचिन्मात्र वेदाध्ययन करके सदा राजाओंके कार्य करते हैं. हे महाराज! महिषासुरके मरनेपर सब ब्राह्मणही सुखी वेदशास्त्रानुसारी ॥ ४५ ॥ और व्रतपरायण होकर दानधर्मका अनुष्ठान करने लगे. क्षत्रियलोग प्रजा पालन, वैश्यगण वणिग्वृत्ति ॥ ४६ ॥ और अपर जातिके लोग खेती, वाणिज्य, गौरक्षा और कुसीद (व्याज) व्यवहार करने लगे. महिषासुरके मारे जानेपर मनुष्य इसप्रकार संतुष्टचित्त हुए थे ॥ ४७ ॥ तब प्रजालोग निरुद्वेग होकर धन संचय करने लगे. संपूर्ण गाय सुलक्षण युक्त और बहु दुग्धवती हुई ॥ ४८ ॥ सब नदियें जलपूर्ण वृक्ष अनेक फलोंसे शोभायमान् और मनुष्य रोगरहित हुए. उस समय किसी मनुष्य मानसिक क्लेश और बहुकष्टदायक अतिवृष्टि, अनावृष्टि, शलभ, मूषिक, खग और राजविद्रोह कुछ वर्त्तमान नहीं था ॥ ४९ ॥ हे राजन् ! उस समय प्राणी कालमेंही अकालकवलित न हुए, बरन् सदा निरोगी रहकर सब विभवके अधिकारी होने लगे. विशेष करके सब कोई निगम विहित धर्ममें तत्पर होकर चण्डिकाके चरणकमलोंकी सेवामें एकाग्र चित्त होकर समय व्यतीत करने लगे ॥ ५० ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे भाषायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः २१

व्यासजी बोले हे राजन्! जिनके सुननेसे प्राणियोंके सब पाप नष्ट होकर सुख प्राप्त होता है मैं देवीके वही पवित्र चरित्र वर्णन करता हूं, सुनो ॥ १ ॥ पूर्वकालमें शुंभ और निशुम्भ नामक असुरप्रवर महावीर दो भाई थे, वह अतिशय वीर्यवान् और पुरुषसे अवध्य थे ॥ २ ॥ यह दुराचारी दोनों असुर असंख्य दानवदलसे परिवृत होनेसे अत्यन्त मदोन्मत्त होगये थे. इस कारण असीम सैन्यदल सहित देवताओंको सदाही क्लेश देते ॥ ३ ॥ तब अम्बिका देवीने देवताओंके हितकी कामनासे अत्यन्त दारुण संग्राममें सब अनुचरोंके सहित उस शुम्भ और निशुम्भको मारा था ॥ ४ ॥ रणस्थलमें उनके प्रधान सहचर महाबाहु चण्ड मुण्ड, अत्यन्त भयंकर रक्तबीज और धूम्रलोचनकोभी विनाश किया था ॥ ५ ॥ देवीके द्वारा उन सब दानवोंके मरनेपर देवताओंका भय दूर हुआ था. तब देवताओंने शोभायमान सुमेरुपर्वतमें जाकर उनका स्तव और पूजा की थी ॥ ६ ॥ जनमेजयने शुम्भ और निशुम्भकी कथा सुनकर पूंछा। हे मुनिवर! वे दोनों असुर कौन थे? किसप्रकार अद्वितीय बलवान् हुये थे किस पुरुषने इनको यहां स्थापित किया? किस कारणसे सर्वावध्य हुए ॥ ७ ॥ किसकी तपस्या और वरके प्रभावसे वे महाबलशाली हुए? किसनिमित्त देवी भगवतीने इनको मारा? आप इस सब वृत्तान्तको मुझसे विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये ॥ ८ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज! देवीके पवित्र चरित्र युक्त मनोहर उपाख्यान वर्णन करता हूं, सुनो इस मंगलमय पवित्र कथाके सुननेसे संपूर्ण पाप नष्ट होते हैं और सब अभिलषित फल प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ पूर्वकालमें शुंभ और निशुंभ नामक दोनों भाई पातालसे भूमण्डलपर आये थे॥ १०॥ अनन्तर वे दोनों असुर यौवनकाल प्राप्त होनेपर भुवनमें परम पवित्र पुष्कर तीर्थमें अन्न और जल त्याग कठिन तपस्याका अनुष्ठान करने लगे॥ ११ ॥ उन्होंने योगविद्यामें ऐसी निपुणता लाभ की थी कि, एक स्थानमें ही एकासनपर अयुतवर्ष पर्यन्त दुश्चर तपस्या की ॥ १२ ॥ तब लोकपितामह भगवान् ब्रह्माजी उनकी तपस्यासे संतुष्ट हो हंसकी पीठपर चढ़कर उस स्थानमें आये ॥ १३ ॥ विधाताने उनको ध्यानमें मग्न देखकर कहा कि, मैं तुम्हारी तपस्यासे संतुष्ट हुआ हूं अतएव तुम उठो ॥ १४ ॥ मैं सब लोकोंकी मनोकामना पूर्ण करता हूं इस समय तुम्हारा

तपोबल देखनेसे संतुष्ट होकर यहां आया हूं तुम मुझसे अभिलषित वर मांगो मैं वही तुमको दूंगा ॥ १५ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! शुंभ और निशुंभ पितामहके इस प्रकार वचन सुनकर ध्यानसे निवृत्त हुए और उन्होंने समाहित चित्तसे उनकी प्रद-क्षिणा करके प्रणाम किया ॥ १६ ॥ तपस्याके क्लेशसे क्षीणकलेवर दीन दोनों असुर दण्डकी समान प्रणाम करके गद्गदस्वर मधुरवचनसे कहने लगे ॥ १७ ॥ हे ब्रह्मन् ! आप भक्तोंको अभयप्रद देवताओंके भी देवता और विशेष कर दयाके सागर हैं आप इच्छानुसार सबही करसक्ते हैं. अतएव आप यदि हमारे प्रति संतुष्ट हुए हैं तो हमको अमर होनेका वर दीजिये ॥ १८ ॥ पृथ्वीमें मरनेके अतिरिक्त गुरुतर दूसरा कोई भय नहीं है. अतएव हम उस महाभयसे डरकर आपकी शरणमें आये हैं ॥ १९ ॥ हेविश्वात्मन् ! आप क्षमागुणके आधार, देवताओंके भी ईश्वर और विशेषकर जगतके निर्माताहैं. अतएव मरणजनित भयनिवारण करके हमको अभय प्रदान कीजिये ॥ २० ॥ ब्रह्माजीने कहा क्या तुम्हारा यही प्रार्थनीय है ? यह तो सब प्रकारसे विपरीत बोध होता है. क्योंकि यह त्रिभुवनमें कोई किसीको नहीं देसक्ता ॥ २१ ॥ जन्म लेने पर अवश्यही मृत्यु है और मृत्यु होनेपर अवश्यही जन्म होगा. यह नियम विश्वनि-यन्ताने पूर्वकालके समय इस लोकमें स्थापन किया है ॥ २२ ॥ अतएव सब प्राणी अवश्यही मरेंगे इसमें कुछ संशय नहीं है. इसलिये तुम दूसरा कोई वर मांगो मैं वह दूंगा ॥ २३ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! दोनों दानव ब्रह्माके इसप्रकार वचन सुन कर विशेष विचारपूर्वक सन्मुख स्थित प्रजापतिको प्रणाम करके कहने लगे ॥ २४ ॥ हे दयामय ! अमरसे मनुष्य और मृग पक्षी पर्यन्त जितने पुरुष हैं हम उन सबसे अवध्य हों यही हमारी अभिलाषा है अतएव आप हमको यदि वर दीजिये ॥ ॥ २५ ॥ हमारा विनाश करसके ऐसी बलवती नारी कौन है ? हम सचराचर त्रैलोक्यमें स्त्रियोंसे कभी भय नहीं करते ॥ २६ ॥ हे कमलयोने ! हम दोनों भाई पुरुषसे अवध्य हों स्त्रियें स्वभावसेही अबला हैं अतएव स्त्रियोंसे हमको कोई भयका कारण नहीं है ॥ २७ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! उनके इसप्रकार वचन सुन पितामह ब्रह्मा प्रसन्न हृदयसे उनको अभिलषित वर देकर अपने स्थानको चले गये ॥ २८ ॥ ब्रह्माजीके निजगृह चलेजानेपर वे दोनों असुरभी घर गये तब वह दैत्य गुरु भृगुमुनिको पुरोहित करके उनकी पूजा करने लगे ॥ २९ ॥ मुनिवर भृगुने शुभदिन और शुभनक्षत्रमें स्वर्णमय सुन्दर मनोहर सिंहासन निर्माण कराकर राज्यके लिये प्रदान किया ॥ ३० ॥ शुम्भके ज्येष्ठ होनेसे उसकोही राज्यासन प्रदान

किया तब असुरवर शुम्भकी सेवा करनेको प्रधान बलशाली असुर शीघ्र उसके निकट उपस्थित हुए ॥ ३१ ॥ बलदर्पित महावीर चंड मुंड नामक दोनों भाई रथ अश्व और गजसमाकुल सैन्यमें परिवृत होकर उसके समीप आये ॥ ३२ ॥ इसीप्रकार प्रचंड पराक्रमशाली धूम्रलोचन नामक असुर शुंभका राजा होना सुन अपनी सेनासहित उसके समीप आया ॥ ३३ ॥ इसी समय वरप्राप्तिके कारण अत्यन्त बलशाली महावीर रक्तबीजनामक असुरभी दो अक्षौहिणी सेना संग लेकर उसके संग मिलित हुआ ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! इस रक्तबीजकी दुर्जयताका एक प्रधान कारण था वह सुनो ! इस असुरके शस्त्रद्वारा आहत होनेपर इसके शरीरसे पृथ्वीमें जब रुधिरकी बूंदें गिरती ॥ ३५ ॥ उसी समय उसकी समान क्रूरस्वभाव शस्त्रपाणि असंख्य असुर उत्पन्न होते ॥ ३६ ॥ वे रुधिरसे उत्पन्न हुए असुरगण उसीकी समान आकृति संपन्न और पराक्रमशाली होते और उत्पन्न होतेही फिर युद्ध करते ॥ ३७ ॥ इसकारणही वह महावीर्य महासुर रक्तबीज संग्राममें नितान्त अजेय और सब प्राणियोंसे अवध्य हुआ ॥ ३८ ॥ अन्यान्य असुर भी तिस समय शुंभको नृपति जानकर चतुरंग सेना सहित वहां आनकर उसके भृत्य हुए ॥ ३९ ॥ तब शुंभ और निशुंभकी सेना अगणित होगई. अतएव पृथ्वीमें जितने राजा थे उन्होंने बलपूर्वक सबको ग्रहण किया ॥ ४० ॥ इसी समय शत्रुहन्ता निशुंभ शचीपतिका पराजय करनेकी इच्छासे बहुतसी सेनाको संग ले सहसा स्वर्गमें गया ॥ ४१ ॥ निशुंभ लोकपालोंके सहित चारों ओर भयंकर युद्ध करने लगा. उस संग्रामके समय शचीपति इन्द्रने उसके वक्षस्थलमें वज्रप्रहार किया ॥ ४२ ॥ वह दानवराजानुज वज्रप्रहारसे आहत होकर भूमिमें गिरगया, तब उसकी सेना रणमें पराजित होकर भागने लगी ॥ ४३ ॥ शत्रुबल विनाशक शुम्भ भ्राताकी मूर्च्छाका वृत्तान्त सुनतेही संग्रामस्थलमें उपस्थित हो बाणोंसे सब देवताओंको प्रहार करने लगा ॥ ४४ ॥ अक्लिष्टकर्मा शुंभने ऐसा महाघोर संग्राम किया कि, जिससे इन्द्र इत्यादि सब देवता और दिग्पालगण पराजित हुए ॥ ४५ ॥ तब कल्पवृक्ष और कामधेनु इत्यादि इन्द्रका जिन सब श्रेष्ठ वस्तुओंके ऊपर अधिकार था शुंभने बलपूर्वक वह सब वस्तु ग्रहण करीं ॥ ४६ ॥ अधिक क्या उस महात्मा असुरने त्रैलोक्यराज्य और सब यज्ञभागहरण किया असुरप्रवर नन्दनकाननमें पहुँच अत्यन्तही आनन्द प्राप्त कर ॥

॥ ४७ ॥ सुधापानसे परमसुखका अनुभव करने लगा. फिर दानववर कुबेरको रणमें पराजय कर उनका राज्य ग्रहणपूर्वक शासन करने लगा ॥ ४८ ॥ चन्द्र सूर्य और यमको पराजित करके उनके पदमें अधिकार किया ॥ ४९ ॥ निशुंभ अपने बलसे परिवृत हो वरुण, अनल और वायुका राज्य ग्रहणकर उनका कार्य करने लगा ॥ ५० ॥ तब राज्यभ्रष्ट और श्रीभ्रष्ट होनेसे देवता त्रसित हो नंदन वन छोड़ पर्वतकी गुहामें भाग गये ॥ ५१ ॥ समस्त अधिकारके छीन जानेपर वे सब आयुध विहीन तेजविहीन आलयविहीन और स्थानभ्रष्ट होकर निर्जन वनमें विचरण करने लगे ॥ ५२ ॥ हे महाराज ! लोकपाल देवता व्याकुल हृदयसे जनशून्य स्थानमें, पर्वत, गुहा और नदी इत्यादि स्थानोंमें विचरण करने लगे ॥ ॥ ५३ ॥ किन्तु स्थानभ्रष्ट होनेसे कहीं भी सुख न मिला. क्योंकि सुख तो सदा दैवके अधीन है ॥ ५४ ॥ हे नरनाथ ! जो बड़े ज्ञानी हैं, जिनके बल और धन हैं, वे महाभाग पुरुष भी कालके वश होकर दुःख और दरिद्रताको प्राप्त होते हैं, ॥ ५५ ॥ हे महाराज ! कालकी क्या विचित्र गति है ? काल राजाको भिक्षुक, दाताको याचक, बलवानको दुर्बल, पण्डितको मूर्ख और शूरको अत्यन्त कातर करदेता है ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ हे महाराज ! वासव इन्द्रने शत अश्वमेध यज्ञ कर उत्तम सिंहासनके पानेपरभी फिर बहुत दुःख पाया. अतएव कालकी गति ऐसीही जाननी चाहिये ॥ ५८ ॥ कालही पुरुषको ज्ञानरत्नप्रदान करके धर्मिष्ठ करता है और फिर कालही उसको ज्ञानरत्नसे वंचित करके पापिष्ठ कर देता है ॥ ५९ ॥ भगवान् विष्णुने बलवान् कालके वशीभूत होकर शूकर इत्यादि नीचयोनिमें जन्म ग्रहण किया और महादेवजीने भी जिसका स्पर्श नहीं करना चाहिये, ऐसा नरकपाल धारण किया. जब कि ब्रह्मा, विष्णु, महादेव इत्यादिको भी ऐसे कष्टकर कार्य करने पडे तो कालके इन सब कार्योंमें किसी प्रकार अचंभा करना उचित नहीं है ॥ ६० ॥ ६१ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषायां एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः २२.

व्यासजी बोले हे नृपसत्तम ! जब संपूर्ण देवता पराजित होगये तब शुंभ उनके सब राज्यका शासन करने लगा. इसप्रकार हजार वर्ष बीत गये ॥ १ ॥ तब देवता राज्यभ्रष्ट होनेके कारण अतीव दुस्तर चिन्तासागरमें निमग्न हुए अन्तमें दुःखसे

अत्यन्त कातर हो आदर सहित अपने गुरु बृहस्पतिजीसे पूँछने लगे ॥ २ ॥ हे गुरो ! आप मुनियोंमें अग्रणी और विशेषकर सर्वज्ञ हैं. अतएव इस समय हमको क्या करना चाहिये ? हे महाराज ! उपस्थित महादुःखनिवारणका यदि कोई उपाय हो तो आप उसको कहिये ॥ ३ ॥ हजारों वेदमंत्र हैं, किन्तु वे सब यथाविधि अनुष्ठान सापेक्ष हैं, यदि वे सूत्रद्वारा भलीभाँति लक्षित हों तो वांछित फलप्रदान करते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ ४ ॥ हे मुनिवर ! संपूर्ण मनोवांछित प्रदान करें, ऐसे अनेक यज्ञोंका विषय वेदमें कहा है. आप निःसन्देह वह सब कार्य जानते हैं, अतएव उन सब यज्ञोंका अनुष्ठान कीजिये ॥ ५ ॥ वेदमें शत्रुविनाशके लिये जिसप्रकारकी विधि निर्दिष्ट हुई है. आप उसी विधिके अनुसार कार्य कीजिये, हे आङ्गिरस ! जिससे शीघ्र हमारा क्लेश नष्ट हो ॥ ६ ॥ आप दानवोंको मारनेके लिये ज्ञानानुसार वैसेही अभिचार क्रियाका अनुष्ठान कीजिये जिससे दुःखका नाश हो ॥ ७ ॥ बृहस्पतिजी बोले हे सुराधिप ! वेदोक्त समस्त मंत्र दैवके अधीन होकरही फलप्रदान करते हैं. कुछ वह स्वभाविक फलप्रद नहीं हैं, केवल नियममें बाध्यहोनेके कारणही फल देते हैं ॥ ८ ॥ तुम्हीं सब मंत्रोंकी अधिष्ठात्री देवता हो, किन्तु कालके वशीभूत होकर इस समय तुम्हीं एकमात्र दुःखके भाजन हुए हो. अतएव मैं इसमें क्या उपाय करूं ? ॥ ९ ॥ देखो, यज्ञ कार्यमें इन्द्र, अग्नि और वरुण इत्यादि देवताओंका यजन होता है, किन्तु तुम्हीं सब महाविपदमें पड़े हो सुतरां फिर सब यज्ञ क्या करेंगे ॥ १० ॥ अतएव जिन सब कार्योंमें अवश्य भावित्व विद्यमानहैं, उनका प्रतीकार नहीं है. किन्तु शिष्ट पुरुषोंने अनुशासन किया है कि, ऐसे स्थलमें उपायका अवलम्बन करना चाहिये ॥ ११ ॥ कोई कोई पण्डित कहते हैं कि, दैवही बलवान् है, किन्तु उपायवादी लोग कहते हैं कि, दैव अनर्थक है, उपाय वा पुरुषार्थसे हो सब कार्य सिद्ध होसक्ते हैं ॥ १२ ॥ किन्तु हे सुरराज ! जीवोंको दैव और उपाय, इन दोनोंका अवलम्बन करना चाहिये. केवल दैवको आश्रय करके रहना कभी उचित नहीं है ॥ १३ ॥ अतएव अपनी बुद्धिके अनुसार विचार करके भलीभाँति उपाय करना चाहिये. हे देवताओ ! मैं वारंवार विशेष विचारपूर्वक तुमसे कहता हूं, सुनो. ॥ १४ ॥ पूर्वकालमें भगवतीने प्रसन्न होकर महिषासुरका वध किया था. तिसकाल जब तुमने देवीका स्तव किया. तब उन्होंने प्रसन्न होकर वर दिया था, ॥ १५ ॥ कि तुम्हारे स्मरण करते ही मैं सर्वकाल तुम्हारी आपदा नष्ट करूंगी ! हे

देवताओ! जिस जिस समय तुमको दैवजनित कोई विपद उपस्थित हो ॥ १६ ॥ तब तुम अवश्यही मेरा स्मरण करना तो मैं तुम्हारा परम विपत्सागरसे उद्धार करूंगी ॥ १७ ॥ इसकारण तुम परमपवित्र, अतिमनोहर हिमालयपर्वतमें जाकर प्रीतिसहित परमाराध्य चण्डिका देवीकी उपासना करो ॥ १८ ॥ तुम मायाबीजके विधानको जानकर उसके पुरश्चरणमें प्रवृत्त होओ मैं योगबलसे जानता हूं कि, वह तुम्हारे प्रति प्रसन्न होंगी ॥ १९ ॥ मुझको बोध होता है कि, अभी तुम्हारी विपद्का अंत होगा. इसमें अणुमात्र भी संदेह नहीं है. मैंने सुना है कि, उस हिमाचलमें देवी सदा वास करती है ॥ २० ॥ उनकी पूजा और स्तुति करनेसे वह तुमको अवश्य अभिलषित वर देंगी. अतएव तुम सब स्थिरनिश्चय होकर उस हिमालयमें जाओ ॥ २१ ॥ हे देवताओ! वे तुम्हारे अवश्य सब कार्यका सम्पादन करके उपस्थित विपद्को दूर करेंगी. व्यासजी बोले हे महाराज! उनके यह वचन सुन सब देवता हिमालय पर्वतमें गये ॥ २२ ॥ और वे सब भगवतीकी आराधनामें निमग्न होकर भक्तिसहित निरन्तर हृदयमें मायाबीजका जप करने लगे ॥ २३ ॥ वह भक्तोंको अभय देनेवाली ब्रह्मरूपिणी महामायाको प्रणाम करके परमभक्तिसहित स्तोत्रमन्त्रद्वारा उनका स्तव करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ २४ ॥ हे देवि! आप विश्वेश्वरी और विश्वजननी हैं. सुतरां जीवनकी भी ईश्वरी हैं आपही सदानन्दस्वरूपिणी हैं. अतएव आप देवताओंका भी आनन्द बढ़ाती हैं इस कारण आपको नमस्कार करते हैं. आपनेही दानवोंका दलन किया है, आपही मनुष्योंको अभीष्ट प्रदान करती हैं, आपका स्वरूप भक्तिद्वारा ही जाना जाता है. अतएव हे देवि! हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ २५ ॥ हे सर्वदेवस्वरूपे! कोई आपको रूपका निश्चय नहीं करसक्ता और आपके नामकी भी कोई संख्या नहीं कर सक्ता. प्राणियोंके सृजन और संहारकालमें अधिक क्या सब कार्यमेंही आप सदा शक्तिस्वरूपसे वास करती हैं ॥ २६ ॥ हे देवि! आपही स्मृति, धृति, बुद्धि, जरा, पुष्टि, तुष्टि, आधाररूपा, कान्ति, शांति, सुविद्या सुलक्ष्मी, गति, कीर्ति और मेधा हैं और आपही विश्वकी अव्यक्तबीजस्वरूप हैं॥ २७ ॥ आप जिस समय जिन रूपोंसे इस लोकमें देवताओंका कार्य सम्पादन करतीं हैं. हम इस समय शान्तिकी कामनासे उन उन रूपोंको नमस्कार करते हैं. आपही क्षमा, आपही योग निद्रा, आपही दया और आपही अनेक प्रकारके प्रशस्त रूपोंसे सब जीवोंमें वास करती हैं ॥ २८ ॥ हे देवि! आपनेही मदान्ध महाशत्रु

महिषासुरको मारकर पहिलेही देवताओंका कार्यसंपादन किया है. अतएव हे देवि ! आपकी दया सब देवताओंमें सदा प्रसिद्ध है. अधिक क्या आपकी वह दया पुराण और वेदमें भी वर्णित हुई है ॥ २९ ॥ आपही देवताओंको उत्पन्न करनेवाली हैं. इसकारण यदि माता अपने पुत्रोंका आनन्दसहित सदा पालन और पोषण करैं. इसमें फिर विचित्रता क्या है ? विशेष करके आप देवताओंको सहाय कारिणी हैं. अतएव आप एकाग्रचित्तसे संपूर्ण कार्यका संपादन कीजिये ॥ ३० ॥ हे देवि ! आपके गुणोंकी सीमा वा आपके स्वरूपको हम नहीं जानते. हे देवि ! विश्वसंसारके संपूर्ण लोकही आपकी पूजा करते हैं. काम विपद्के समय रक्षा करनेमें भलीभाँति समर्थ हैं. इसकारण हमको कृपापात्र विचारकर इस उपस्थित विपद्से हमारी रक्षा कीजिये ॥ ३१ ॥ आप बाणपात, मुष्टिप्रहार, शूल, खड्ग, शक्ति, दंड, वा अन्यान्य शस्त्रोंका विना प्रहार किये सहजमेंही इच्छानुसार शत्रुका विनाश करसक्ती हैं. किन्तु तोभी विनोद और लोकपालोंका उपकार करनेके लिये अवतीर्ण होकर युद्धादिद्वारा लीला करती हैं ॥ ३२ ॥ जन्ममरणके परिणामवशसे मूढलोग भी जानते हैं कि, यह जगत् नित्य नहीं है. कारणके विना कभी कार्य नहीं होसक्ता यह भी वे जानते हैं. अतएव आपही इस विश्वसंसारका कारण है. हमने अनुमान प्रमाण-द्वारा यही कल्पना की है ॥ ३३ ॥ ब्रह्मा सृष्टिकर्त्ता, विष्णु पालनकर्त्ता और महादेव संहारकर्त्ता पुराणोंमें प्रसिद्ध है. आपने इन तीनोंको युगादिमें उत्पन्न किया है. अतएव आप सबकी जननी हैं. इसमें सन्देह नहीं ॥ ३४ ॥ हे देवि ! पूर्वमें इन तीन देवताओंने ही आपकी आराधना की, तब आपने प्रसन्न होकर संपूर्ण उत्कृष्ट शक्तियें उनको दीं, थीं. आपकी शक्तियोंसे संयुक्त होकर ही भलीभाँति जगत्की सृष्टि, पालन और संहार करते हैं ॥ ३५ ॥ देवतालोग जिनके चरणोंकी वन्दना करते हैं. जिनकी अर्चना करनेसे संपूर्ण अभीष्टफल प्राप्त होता है जो उन मुक्ति देनेवाली विश्वजननी चित्स्वरूपिणीकी अर्चना नहीं करते. वे यति होनेपर भी क्या मन्दमति मूढ नहीं हैं ? ॥ ३६ ॥ जो कमला, लज्जा, कान्ति, स्थिति, कीर्ति, पुष्टिस्वरूप आपका ध्यान नहीं करते. वे सब सौर (सूर्योपासक) पांशुपत (पशुपतिनिष्ठ) और वैष्णव निःसंदेह भेदबुद्धिसे दाम्भिक जान पड़ते हैं ॥ ३७ ॥ हे जननि ! असुरगण और हरि हर इत्यादि प्रधान प्रधान देवता भी इस लोकमें आपकी सेवा करते हैं. अतएव जो सामान्यबुद्धि मनुष्य पृथ्वीमें आपकी पूजा नहीं करते. विधाताने उनको निस्सं-

देह वञ्चित किया है ॥ ३८॥ हे देवि ! हरि लाक्षारसके द्वारा कमलाके चरणकमलोंको स्वयं रञ्जित करते हैं. त्रिलोचन महादेवजी भी पार्वतीके चरणकमलोंको पराग (रज) का सेवन करनेमें अत्यन्त उत्सुक हैं कमला और पार्वती आपकी अंश मात्र हैं. इस कारण उनकी सेवा करनेसे आपकी सेवा होती है ॥ ॥ ३९ ॥ अन्यान्यमनुष्योंकी तो बात दूर रहै. जो सदसद्विचार करके कार्य कर सक्ते हैं. और जिन्होंने विषयानुराग तथा घर छोड़ दिया है. ऐसे मुनिलोग भी आपके अंशरूप क्षमा और दयाकी सेवा करते हैं. अतएव आपके चरणकमलोंकी कौन सेवा नहीं करता है ॥ ४० ॥ हे देवि ! जो मनुष्य आपके चरणकमलोंकी सेवामें अनुरक्त नहीं हैं वे सुखसे वञ्चित होकर संसाररूपी घोर कूपमें गिरते हैं. अधिक क्या ? वे पतित मनुष्य कुष्ठ, गुल्म (उदररोग) शिरकी पीड़ासे युक्त हो दीनता और दरिद्रता इत्यादि महाक्लेशको भोगते हैं ॥ ४१ ॥ हे जननि ! जो लोग धन और स्त्रीविहीन होकर काष्ठभारवहन, तृणहरण इत्यादि कार्योंमें निपुणता प्रकाशित करते हैं. उन अल्पबुद्धि मनुष्योंने पूर्वजन्ममें कभी आपके पद-पंकजकी सेवा नहीं की यह हम भलीभाँति जानते हैं ॥ ४२ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! संपूर्ण देवताओंके इसप्रकार स्तवन करतेही रूपयौवनसंपन्न अम्बिका देवी करुणाके वश हो तत्काल उस स्थानमें प्रगट हुई ॥ ४३ ॥ वह अलौकिकरूपलावण्यवती सर्वसुलक्षणसंपन्न भगवती दिव्यवस्त्रभूषणमाल्य और चंदनादिसे विभूषित होकर देवताओंकी दृष्टिमें उपस्थित हुई ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ विश्वको मोहित करनेवाला कामदेवभी जिससे मोहित होता है ऐसा मनोहर दिव्यरूप धारण करके देवी गंगा स्नान करनेकी इच्छासे पर्वतकी गुहासे निकलीं ॥ ४६ ॥ कोकिलकी समान मधुरभाषिणी वह देवी प्रीतिसहित कुछेक हँसकर मेघकी समान गंभीर स्वरद्वारा स्तुतिपरायण देवताओंसे बोली॥ ४७॥ देवी बोली हे सुरसत्तमगण ! तुम निरन्तर यहाँ किसकी स्तुति करते हो?तुम्हारा प्रयोजन क्या है ? तुम ऐसे चिन्ताकुल क्या हो?यह सब विस्तारसहित मुझसे कहो॥ ४८॥ व्यासजी बोले हे महाराज!देवता प्रथम तो उनका रूपलावण्य देखकर मोहित हुए फिर उनके मधुरवचनोंसे उत्साहित हो प्रीतिपूर्वक उनसे कहने लगे ॥४९॥ देवता बोले हे देवि ! तुम इस विश्वसंसारकी ईश्वरी और विशेष करके कृपासागर हो, अतएव आपको प्रणाम करके स्तव करते हैं. हे देवि ! हम दैत्योंके उपद्रव तापित होकर अत्यन्त भीत हुये हैं, अतएव आप हमारी

सब दुःखोंसे रक्षा कीजिये ॥ ५० ॥ हे भगवति ! आपने पूर्वमें सबके कंटक महिषासुरको मारकर हमको वर दिया है कि, आपत्काल उपस्थित होनेपर तुम मेरा स्मरण करना ॥ ५१ ॥ स्मरण करतेही मैं तुम्हारे सब दैत्यकृत क्लेश विनष्ट करूंगी इसमें सन्देह नहीं है. हे देवि ! हम इसकारण ही इस समय आपका स्मरण करते हैं ॥ ५२ ॥ इस समय शुंभ और निशुंभ नामक घोरदर्शन दो असुर उत्पन्न होकर विषम उपद्रव कर रहे हैं. किन्तु यह दोनों असुर पुरुषसे नितान्त अवध्य है ॥ ५३ ॥ बलवान् रक्तबीज और चंड मुंड इत्यादि अन्यान्य असुरोंने मिलित होकर देवताओंका संपूर्ण राज्यहरण किया है ॥ ५४ ॥ आपही हमारी एक मात्र गति हैं. आपके अतिरिक्त हमारा अन्यउपाय नहीं है अतएव हेसुमध्यमे ! आप इन एकान्त संतापित देवताओंका कार्य संपादन कीजिये ॥ ५५ ॥ हे देवि ! आपके चरण कमलोंकी सेवामें देवता सदा निरत रहते हैं तोभी अतिबलवान् दानव उनको विपदमें डालते हैं. हे मातः ! आप दुःखी पुरुषोंकी रक्षा करने वाली हैं अतएव भक्तिपरायण देवताओंकी दुःखसे रक्षा कीजिये ॥ ५६ ॥ हे जननि ! दानव अपने बलके मदसे गर्वित होकर पृथ्वीमें अनेक प्रकारके उपद्रव कर रहे हैं आपने युगादिसमयमें इस विश्वसंसारको स्वयं उत्पन्न किया है यह जानकर इस समय सब भुवनोंकी रक्षा करना आपका अवश्य कर्त्तव्य है ॥ ५७ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः २३.

व्यासजी बोले हे महाराज ! शत्रु–संतापित देवताओंके इसप्रकार स्तव करनेपर देवीने अपने शरीरसे एकपरमरूपको उत्पन्न किया ॥ १ ॥ अम्बिका देवी पार्वतीके शरीरकोषसे निकली इसकारण उनका नाम सब लोकोंमें कौशिकीविख्यात हुआ ॥ २ ॥ पार्वतीके शरीरसे कौशिकीके निकलने पर उन पार्वतीका शरीर परिणामवशसे कृष्णवर्ण होकर कालिका नामसे प्रसिद्ध हुई ॥ ३ ॥ उनकी वह भयंकर मूर्त्ति देखकर दैत्योंको भय बढ़ने लगा, हे राजन् ! यही देवी इस लोकमें सर्व मनोरथ पूर्णकारिणी कालरात्रिके नामसे विख्यात हुई ॥ ४ ॥ तब अम्बिकाका संपूर्ण गहनोंसे सुसज्जित वह मनोहर लावण्यमय रूप सुशोभित होने लगा ॥ ५ ॥ फिर अम्बिका देवीने कुछेक हँसकर देवताओंसे कहा

तुम निर्भय होकर अवस्थान करो मैं तुम्हारे शत्रुओंका अभी विनाश करूंगी ॥ ६ ॥ तुम्हारा कार्यसंपादन करना मेरी कर्त्तव्य है. अतएव तुम्हारे सुखसाधनके लिये समराङ्गणमें अवतीर्ण होकर निशुंभ इत्यादि असुरोंका वध करूंगी, इसमें सन्देह नहीं ॥ ७ ॥ देवी भगवतीने यह कह मदके गर्वसे उद्धत हो सिंहकी पीठपर चढ कालिकाको संगले देव शत्रु शुंभके नगरमें प्रवेश किया ॥ ८ ॥ अम्बिका कालिकाके सहित उस नगरके उपवनमें जाय जगत्को मोहित करनेवाला कामदेव भी जिसके सुननेसे मोहित हो, ऐसे मनोहर मधुरस्वरसे गान करने लगी ॥ ९ ॥ अधिक क्या उस मनोहर गानके सुननेसे पशुपक्षी भी मोहित होगये तब देवता आकाशमंडलमें अतिआनन्दको प्राप्त हुए ॥ १० ॥ इसी अवसरमें शुंभके अनुचर चण्ड मुण्ड नामक दो असुरोंने क्रीडा करते करते इच्छानुसार वहां आनकर देखा कि ॥ ११ ॥ वह मनोहर रूपवती अम्बिका देवी गान कर रही हैं और कालिका देवी उनके सन्मुख विराजमान हैं ॥ १२ ॥ हे नृपसत्तम ! चण्ड मुंड भगवतीका वह अलौकिक रूपलावण्य देख आश्चर्यमें हो तत्काल शुंभके समीप गये ॥ १३ ॥ वह घरमें बैठे दैत्यपतिके निकट जाय, मस्तक झुकाय प्रणामपूर्वक उनसे मधुर वचन द्वारा कहने लगे ॥ १४ ॥ हे राजन् ! हिमालयसे अपनी इच्छानुसार एक कामिनी सिंहपर चढ़कर यहां आई है; उसके सब अंग प्रत्यङ्ग सुलक्षण विराजमान हैं, यही क्या ? उस्कारूप देखकर रतिपति भी मोहित होते हैं ॥ १५ ॥ हे महाराज ! ऐसी सुन्दरी स्त्री देवलोक गंधर्वलोक और भूलोकमें भी विद्यमान नहीं है, ऐसी स्त्री हमने कभी नहीं देखी और कहीं सुनी भी नहीं ॥ १६ ॥ हे महाराज ! वह रमणी ऐसा लोकरंजन मनोहर संगीत गान करती है कि, सब मृग भी उसके मधुर स्वरसे मोहित होकर उसके पार्श्वमें खड़े रहते हैं ॥ १७ ॥ हे राजेन्द्र ! यह स्त्री आपके ही योग्य है, अतएव वह कामिनी किसकी कन्या है ? और किसलिये यहां आई है ? प्रथम यह जानकर फिर इसको ग्रहण कीजिये ॥ १८ ॥ आप निश्चय जानिये कि, ऐसी रूपवती नारी संसारमें दूसरी कोई नहीं है. इसकारण आप उस सुलोचनाको घर लाकर उसका पाणिग्रहण कीजिये ॥ १९ ॥ हे महाराज ! हे नरपाल ! आपने देवताओंके सभी रत्न ग्रहण किये हैं तो फिर किसकारण यह स्त्रीरत्न ग्रहण नहीं करते ? ॥ २० ॥ हे राजन् ! आपने इन्द्रका परम सुन्दर ऐरावत हाथी, पारिजातवृक्ष, सप्तास्य उच्चैःश्रवा अश्व इत्यादि संपूर्ण रत्न

बलपूर्वक ग्रहण किये हैं ॥ २१ ॥ हे नृपवर ! मरालध्वज चिह्नित विधाताका रत्नस्वरूप दिव्यविमान भी आप बलपूर्वक ले आये हैं ॥ २२ ॥ कुबेरकी पद्मनिधि और जलपति वरुणका शुभ्रछत्र आपने बलात्कार ग्रहण किया है ॥ २३ ॥ हे नृपोत्तम ! वरुणके पराजित होनेपर आपके भ्राता निशुम्भने बलपूर्वक उनका पाशास्त्र ले लिया है ॥ २४ ॥ हे महाराज ! समुद्रने डरकर आपको अनेक प्रकारके रत्न और जिसके कमल कभी म्लान नहीं होते, ऐसी कमलमाला देकर सन्मानित किया है ॥ २५ ॥ हे नृपवर ! अधिक और क्या कहूं ? आपने मृत्युको जीत कर उसकी शक्ति और यमको पराजित करके उनका वह दारुण दंडग्रहण किया है ॥ २६ ॥ हे राजन् ! जो कामधेनु समुद्रसे निकली थी, आप उसको ले आये हैं, वह कामधेनु अब भी आपके पास विद्यमान है, अधिक क्या मेनका इत्यादि अप्सरायें आपके वशीभूत रहती हैं ॥ २७ ॥ इसप्रकार आपने पराक्रम प्रकाश करके संपूर्ण रत्नग्रहण किये हैं।यह वराङ्गना भी रमणीरत्न है,अतएव इसको किसलिये ग्रहण नहीं करते ? ॥ २८ ॥ हे भूपते ! आपके घरमें जो सब रत्नहैं वह इस स्त्री रत्नद्वारा विशद होकर यथार्थरत्नस्वरूपता प्राप्त करेंगे. इसमें संदेह नहीं ॥ २९ ॥ हे दैत्येन्द्र ! तीनों लोकोंमें ऐसी प्रियतमा ललना दूसरी नहीं है, इसकारण आप शीघ्र उस मनोरमा स्त्रीको लाकर उसका भोग कीजिये ॥ ३० ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! दैत्याधिराज शुंभने चंडमुंडके इसप्रकार कोमलाक्षर मधुर वचन सुनकर समीप स्थित सुग्रीवसे कहा ॥ ३१ ॥ हे सुग्रीव ! तुम सब कार्योंमें चतुर हो. अतएव इस समय मेरा दूतकार्य संपादन करो । जिससे वह कृशोदरी मेरे समीप आवे, तुम उससे वैसेही वचन कहो ॥ ३२ ॥ शृङ्गाररसमें चतुर सुधीगण कहते हैं कि, स्त्रियोंके प्रति साम और दान, यह दोनों प्रकारके उपाय प्रयुक्त करने चाहिये ॥ ॥ ३३ ॥ क्योंकि भेद प्रयोग करनेमें अवश्य कपटताका प्रयोजन होता है. सुतरां कपट व्यवहारसे रसाभास होता है और निग्रह करनेसे रसभंग होता है, इसकारण पण्डितोंने इन दोनों उपायोंको दूषित कहा है ॥ ३४ ॥ हे दूतवर ! साम और दानयुक्त मधुरवचन कहनेपर कौन स्त्री कामबाणसे पीडित होकर वशीभूत नहीं होती ॥ ३५ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! सुग्रीव शुंभके इसप्रकार चातुर्यतागर्भित वचन सुनकर तत्काल जगन्माता अम्बिकाके समीप गया ॥ ३६ ॥ अनन्तर वह सिंहपर चढ़ी सुवदना कान्ता जगदम्बिकाको देखकर प्रणतिपूर्वक

मधुर वचनसे कहने लगा ॥ ३७ ॥ दूतबोला हे सुंदरि ! महाराज सुरशत्रु शुंभ सर्वाङ्गसुन्दर और वीरपुरुष हैं वे नरपाल सबको पराजित कर तीनों लोकोंके अधिपति हो परमसुखसे काल व्यतीत करते हैं ॥ ३८ ॥ वे महात्मा आपके रूपलावण्यका वृत्तान्त सुन आपके प्रति अतिशय आसक्त हुए हैं इसकारण उन्होंने अत्यन्त सन्तप्त होकर आपके प्रति अपनी अभिलाषा प्रकाशित करनेके लिये मुझको भेजा है ॥ ३९ ॥ हे कृशाङ्गी ! उन दैत्यपतिने प्रणत होकर आपसे जो कहा है आप उनके वे प्रेममय वचन सुनिये ॥ ४० ॥ हे कान्ते ! मैं सब देवताओंका पराजय करके त्रैलोक्यका अधिपति हुआ हूं. विशेष कर मैं घरमें रहकरही नित्य संपूर्ण यज्ञभाग ग्रहण करता हूं ॥ ४१ ॥ देवताओंके जो सब धन, रत्न थे मैं वह सब हरण करके ले आया हूं अतएव रत्नोंका हरण होजानेसे अमर-भवन निस्संदेह सारविहीन होगया है ॥ ४२ ॥ हे सुन्दरि ! तीनों लोकोंमें जो सब धन रत्न हैं वे उन सबका भोग करता हूं. अधिक क्या संपूर्ण सुर असुर और मनुष्यलोग मेरे एकान्त अनुगत होकर काल व्यतीत करते हैं ॥ ४३ ॥ किन्तु तुम्हारे गुणग्राम मेरे कर्णविवरद्वारा हृदयमें प्रवेश करके मुझको बलात्कार तुम्हारे अधीन करते हैं. इसकारण मैं तुम्हारा किंकर स्वरूप हुआ हूं, अतएव अब मैं क्या करूं ॥ ४४ ॥ हे सुन्दरि ! तुम जो आज्ञा करो गी, मैं तुम्हारे वशवर्ती होकर वही करूंगा. हे सुन्दरि ! मैं तुम्हारा दास हूं, इसलिये मेरी कामबाणसे रक्षा करो ॥ ४५ ॥ हे हंसगमने ! मैं तुम्हारे नितान्त आधीन हूं, विशेषकर कामबाणसे अत्यन्त व्याकुल हुआ हूं, अतएव तुम मेरा भजन करो तो तुम तीनों लोकोंकी अधीश्वरी होकर अनुपम भोग्य वस्तु ओंका भोग करोगी ॥ ४६ ॥ हे नितम्बिनी ! तुम मेरे मरनेकी शंका मत करो, क्योंकि मैं देवता असुर और मनुष्योंसे अवध्य हूं, मैं सदा तुम्हारा आज्ञाकारी दास होकर रहूंगा ॥ ४७ ॥ हे वरानने ! मेरा वचन प्रतिपालन करनेसे तुम सौभाग्यवती होगी हे सुन्दरी ! तुम जहाँ अभिलाषा करोगी, उसी स्थानमें विहार करता फिरूंगा ॥ ४८ ॥ हे देवि ! उन दैत्यपतिके यह सब वचन मनमें विचार कर, जो आपको कहना हो,आप प्रीतिसहित तादृश मधुरवचन कहिये॥ ४९ ॥ हेचंचलापाङ्गि ! मैं अभी जाकर यह सब वृत्तान्त महाराज शुंभसे कहताहूं. व्यासजी बोले हे राजन् ! देवकार्यमें तत्पर भगवतीने दूतके यह वचन सुन कुछेक हँसकर ॥ ५० ॥ मधुर

वचनद्वारा कहा देवी बोली हे दूत ! शुंभ और निशुंभको मैं भलीभाँति जानती हूं ॥ ॥ ५१ ॥ वह असुरराज शुंभ अतिबलवान् है वह शुंभ देवताओंको पराजित करके अतुल ऐश्वर्यभोग करता है ॥ ५२ ॥ वह सब गुणोंकी खान है अत्यन्त शूर दाता और रतिपतिकी समान सुन्दर है वह दैत्यवर बत्तीस सुलक्षण संभूषित हैं विशेष कर देवता और मनुष्यसे अवध्य है ॥ ५३ ॥ हे दूतवर ! यह जानकरही मैं उस महासुर शुंभको देखनेकेलिये यहां आई हूं. देखो रत्न अपनी अधिक शोभा बढ़ानेके लिये जिसप्रकार सुवर्णके निकट आनकर मिलते हैं ॥ ५४ ॥ इसीप्रकार मैं अपने पतिको देखनेके लिये दूरसे यहां आई हूं मैंने संपूर्ण देवता गंधर्व राक्षस भूतलस्थ विख्यात मनुष्य इत्यादि अत्यन्त प्रियदर्शन पुरुषोंको देखकर जानलिया है कि, वह सब शुंभके भयसे भीत और विचेतन होकर कंपित हो रहे हैं ॥ ५५ ॥ ॥ ५६ ॥ अतएव शुंभको यह सब गुणग्राम सुनकर उनके देखनेके लिये यहां आई हूं. हे दूत! तुम अत्यन्त सौभाग्यवान् हो, अब तुम शुंभके निकट जाकर एकान्तमें ॥ ५७ ॥ उस महाअसुर शुंभसे मेरे वचनानुसार मधुरवचन कहो कि, आप बलवानोंमें अग्रणी हैं, सुंदरसे भी सुन्दर हैं ॥ ५८ ॥ सर्वविद्याविशारद, शूर, गुणी, दाता, चतुर, सत्कुलसंभूत, तेजस्वी और देवताओंके जीतनेवाले हैं ॥ ५९ ॥ विशेषकर अपने बाहुबलसे उन्नत और स्वाधीन होकर सब रत्न उपभोग करते हैं अतएव हे नरनाथ! मैं तुम्हारे इन समस्त गुणोंको जानकर निःसन्देह पतिप्राप्तिकी अभिलाषासे ॥ ६० ॥ इच्छापूर्वक तुम्हारे नगरमें आई हूं. हे महात्मन्! मैंही तुम्हारे योग्य स्त्री हूं. हे दैत्यवर ! परन्तु मेरे विवाहमें किंचित् मात्र प्रतिबन्धक है ॥ ६१ ॥ पूर्वकालके समय एकान्तमें वयस्या सखियोंके सहित क्रीडा करते करते इच्छानुसार बालस्वभावसे ॥ ६२ ॥ और अपने शरीरके बलसे दर्पित होकर सखियोंके सामने एक प्रतिज्ञा करी है कि, मेरी समान बलशाली कोई पुरुष यदि मुझको रणमें पराजित कर सके ॥ ६३ ॥ तो मैं उसका बलाबल जानकर अवश्य उसका वरण करूंगा सखियोंने मेरा यह वचन सुनकर हँसी की थी और आश्चर्यमें होकर कहाथा कि ॥ ६४ ॥ इस बालिकाने किसलिये ऐसी अद्भुत कठोर प्रतिज्ञा करी. अतएव हे राजेन्द्र! आपभी मेरा इसप्रकार बल जानकर ॥ ६५ ॥ अपने पराक्रमसे मुझको पराजित कर अपना अभिलषित कीजिये. हे सर्वाङ्गसुंदर ! आप वा आपके छोटे भाई समरस्थलमें आय ॥ ६६ ॥ मुझको पराजित कर विवाहकार्य संपादन करें ॥ ६७ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे भाषायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः २४.

व्यासजी बोले हे राजन् ! देवीके यह वचन सुनकर दूतने आश्चर्ययुक्त चित्तसे कहा सुन्दरी ! तुम स्त्रियोंके स्वभावसे भलीभाँति विचार न करके यह क्या कहती हो ? ॥ १ ॥ हे देवि ! तुम व्यर्थ अभिमानसे गर्वित हुई हो, जिस शुंभने इन्द्रादि देवता और अपरापर अनेक दैत्योंको पराजित किया है, तुम उसको किसप्रकार समरमें जीतनेकी इच्छा करती हो ? ॥ २ ॥ हे कमलनयने ! तुम तो दैत्यराज शुंभके सन्मुख अति तुच्छ पदार्थ दिखाई देगी जो शुंभको युद्धमें पराजय करसके इस त्रिलोकीमें ऐसा कोई वीर नहीं हैं ॥ ३ ॥ हे सुन्दरी ! विना विचारे कहीं किसी वचनको नहीं कहना चाहिये. अपना और दूसरे का वल जानकर समयानुसार वचन कहने चाहिये ॥ ४ ॥ तीनों लोकोंका अधिपति राजा शुंभ तुम्हारे रूपलावण्यसे मोहित होकर तुम्हारी प्रार्थना करता है. इसकारण तुम प्रणयिनी होकर उसकी इच्छानुसार कार्य करो ॥ ५ ॥ तुम अब मूर्खस्वभावको छोड़कर शुंभ वा निशुंभका भजन करो. यह मैं तुमसे हितके वचनही कहता हूं. अतएव मेरे वचनोंका प्रतिपालन करो ॥ ६ ॥ नवप्रकारके रसोंमें शृंगाररस सर्वोत्तम है. इस कारण परमानन्दसहित उस शृंगाररसका सेवन करना समस्त बुद्धिमान् प्राणियोंका कर्त्तव्य है ॥ ७ ॥ और यदि तुम बाल्यस्वभावके कारण शुंभके समीप नहीं चलोगी तो वह पृथ्वीपति कुपित हो आज्ञाकारी दूतोंको भेज अभी तुमको वलपूर्वक ले जायँगे ॥ ८ ॥ हे सुन्दरी ! वे बलदर्पित दानवलोग तुम्हारे केशाकर्षण करके अभी शुंभके समीप लेजायँगे इसमें सन्देह नहीं ॥ ९ ॥ हे कृशाङ्गी ! तुम सब प्रकारसे साहस छोड़कर अपनी मानरक्षा करो. तुम सन्मानको पात्र हो. इस कारण सन्मानित होकरही उसके समीप चलो ॥ १० ॥ देखो ! निशित बाणोंसे देह छेदन कराकर युद्ध और रति जनित सुख. इन दोनोंमें कितना अन्तर है ? यह दोनों परस्पर अतिशय भिन्न हैं, इसकारण सारासार विचारकर मेरे इन हितकर वचनोंका प्रतिपालन करो ॥ ११ ॥ शुंभ वा निशुंभका भजन करनेसे तुम अत्यन्त सुख पाओगी इसमें सन्देह नहीं. देवीने कहा हे दूत ! तुम अत्यन्त भाग्यशाली हो, सुतरां सत्य कहनेमें बड़े निपुण हो ॥ १२ ॥ शुंभ और निशुंभको मैं भलीभाँति बलबान् जानती हूं किन्तु बाल्यस्वभावके वश होकर मैं ने जो पूर्वमें प्रतिज्ञा की है, उसके अन्यथा किसप्रकार करूं ? ॥ १३ ॥ अतएव तुम अत्यन्त बलशाली उन

शुंभ वा निशुंभसे कहो कि, विना युद्ध किये सौन्दर्य वशसे कोई मेरा स्वामी नहीं होसकेगा ॥ १४ ॥ इसलिये तुम अभी मुझको जीतकर इच्छानुसार मेरा पाणिग्रहण करो मैं अबला होकर भी युद्धकी इच्छासे यहां आई हूं ॥ १५ ॥ यह निश्चय जानो. अतएव यदि समर्थ हो तो युद्धदान करके वीरधर्मका आचरण करो और यदि मेरे शूलके देखनेसे तुमको भय होता हो, अथवा यदि तुमको जीवनकी इच्छा हो तो स्वर्ग और धरातलपरित्याग करके अभी पातालमें चले जाओ. हे दूत ! तुम अभी अपने प्रभुके समीप जाय आदर सहित मेरे यह सब वचन कहो ॥ १६ ॥ १७ ॥ फिर वह महाबलवान् दानवपति विचार करके जो उचित बोध होगा वही करेंगे. हे धर्मज्ञ ! इस संसारमें शत्रु वा स्वामीके निकट सत्यवचन कहनाही दूतका धर्म है॥ ॥ १८ ॥ इसमें सन्देह नहीं. इसकारण तुम शीघ्र अपने प्रभुके निकट जाकर सत्यवचन कहो. व्यासजी बोले हे राजन् ! तब वह दूत देवीके इसप्रकार नीतिसम्मत बलयुक्त ॥ १९ ॥ हेतुयुक्त बलमदगर्वित प्रगल्भ (तीक्ष्ण) वचन सुननेसे आश्चर्ययुक्त होकर चलागया. फिर दैत्यपतिके निकट जाय उनके चरणकमलोंमें प्रणाम किया और वारंवार विचारकर विनीतभावसे नीतिसंयुक्त कोमल प्रियवचन कहने लगा ॥ २० ॥ २१ ॥ दूत बोला हे राजेन्द्र ! प्रभुके निकट सत्य और प्रियवचन कहने चाहिये. किन्तु सत्य और प्रियवचन अत्यन्त दुर्लभ है ॥ २२ ॥ पक्षान्तरमें कर्ण–कठोर अप्रियवचन कहनेसे राजा अत्यन्त कुपित होते है. इसी कारण अब मैं अतिचिन्तान्वित हुआ हूं. हे राजेन्द्र ! वह अबला नारी क्या बलवती है ? वह कहांसे इस स्थानमें आई है ॥ २३ ॥ और वह किसकी रमणी है ? यह सब विषय मैं कुछभी नहीं जानसक्ता. अतएव उसके व्यवहारका विषय किसप्रकार कहूं ? किन्तु तोभी उस कटुभाषिणी रमणीको देखकर इतना समझा है कि, वह अत्यन्तगर्वित होकर संग्राम करनेकी इच्छासे यहां आई है ॥ २४ ॥ हे राजन् ! आप अत्यन्त बुद्धिमान् हैं, अतएव उस स्त्रीने आपसे जो कहा है वह सब सुनकर जो कर्त्तव्य हो सो कीजिये. उस स्त्रीने कहा है कि, मैंने पूर्वकालके समय बाल्यस्वभावसे क्रीडा करते करते सखियोंके सामने विवाहके विषयमें यह प्रतिज्ञा की है कि, जो कोई वीर मुझको भलीभाँति युद्धमें पराजित करके सहसा मेरा गर्व खर्व करेगा ॥ २५ ॥ २६ ॥ मैं उस समबल पुरुषको अवश्य पति बनाऊंगी. हे नृपवर ! आप तो धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ हैं इसकारण मेरी प्रतिज्ञा मिथ्या करना

आपको उचित नहीं है ॥ २७ ॥ संग्राम करके मुझको अपने वशीभूत करो. हे महाराज! उसके कहे यह वचन सुनकर मैं लौट आया हूं ॥२८॥ अब आपको जो प्रिय हो इच्छानुसार वही करो. वह स्त्रीयुद्धके लिये कृतनिश्चय होकर अनेक प्रकारके आयुध धारण किये सिंहके पीठपर बैठी हुई है ॥ २९॥ वह बड़ी दृढ़ है. अब इस विषयमें जो कर्त्तव्य हो वही कीजिये. व्यासजी बोले हे राजन्! नरपति शुंभने सुग्रीवके इसप्रकार वचन सुनकर ॥ ३० ॥ समीप स्थित वीरवर अपने भ्राता निशुंभसे पूँछा शुंभ बोला हे भाई! तुम अत्यन्त बुद्धिमान् हो, अतएव इस विषयमें क्या करना चाहिये? यह सत्य कहो ॥ ३१ ॥ अकेली स्त्री युद्धकी अभिलाषासे इस समय हमको बुलाती है इस कारण मैं संग्राममें जाऊं वा तुम सेनाको संग लेकर युद्धमें जाओगे ॥ ३२ ॥ इसमें तुम्हारी जो रुचि हो मैं वही करूंगा. निशुंभने कहा हे महाराज! संग्रामस्थलमें आपका वा मेरा जाना उचित नहीं है ॥ ३३ ॥ अतएव धूम्रलोचनको शीघ्र समरमें भेजो यह वीर वहां जाकर उस चारुलोचना ललनाको रणमें जीतकर यहां ले आवे ॥ ३४ ॥ तो फिर आप उससे विवाह कीजिये. व्यासजी बोले शुंभने कनिष्टभ्राताकी यह बात सुन ॥ ॥ ३५ ॥ तत्काल क्रोधित होकर पार्श्वस्थित धूम्रलोचनको युद्धके लिये भेजा. शुंभने कहा हे धूम्रलोचन! तुम बहुतसी सेनासहित अभी रणमें जाओ ॥ ३६ ॥ और वीर्यके मदसे गर्विता उस मुग्धा स्त्रीको ले आओ और यदि देवदानव वा मनुष्योंमें ॥ ३७ ॥ कोई भी महाबलवान् पुरुष उसका पृष्ठरक्षक हो तो तुम तत्काल उसका विनाश करो उसके पार्श्ववर्तिनी कालीको मारकर उसको ग्रहण करो ॥ ॥ ४८ ॥ हे वीरवर! तुम यह सब महत् कार्य संपादन करके शीघ्र यहाँ आओ. उस कृशाङ्गी साध्वीका शरीर अतिशय कोमल है. अतएव जिससे वह रमणी विनष्ट न हो, तुम अत्यन्त यत्नसहित उसी प्रकारके कोमल बाण परित्याग करो ॥ ३९ ॥ हे वीर! इसमें यत्न रखना कारण कि, उस कृशोदरीका कोमल शरीर है किन्तु जो शस्त्र धारण करके उसका सहायक हो उसका संहार करो ॥ ४० ॥ फलतः उस कामिनीको किसीप्रकार निहत न करके उसकी यत्नसहित रक्षा करो. व्यासजी बोले हे राजन्! धूम्रलोचन राजाकी इस प्रकार आज्ञा पाते ही ॥४१॥ दैत्यपति शुंभको प्रणाम कर छैः हजार दानवोंके सहित शीघ्र संग्राममें गया ॥ ४२ ॥ और उस स्थानमें उपस्थित होकर देखा कि,वह देवी मनोहर उपवनमें बैठी हुई है. तब धूम्रलोचन उस मृगनयनीको देख विनयसहित ॥ ४३ ॥ हेतुपूर्ण मधुर और सरस वचनसे

कहने लगा हे देवि ! तुम अतिसौभाग्यवती हो. क्योंकि दैत्यपति शुंभ तुम्हारे विरहमें कातर हुए हैं ॥ ४४ ॥ उन नीतिविशारद राजाने रसभंगके भयसे उद्विग्न होकर तुम्हारे निकट प्रीतिवचन कहकर स्वयंही दूतभेजा था ॥ ४५ ॥ किन्तु हे वरानने ! उस दूतने जाकर राजाके निकट सब विपरीत वचन कहे हैं. इससे महाराज दुःखी हुए ॥ ४६ ॥ हे रसज्ञे ! इससे कामातुर मेरे प्रभु महाराज शुंभ चिन्तामें निमग्न हुए हैं. वह दूत तुम्हारे वचनोंका गूढ़ तात्पर्य नहीं जान सका ॥ ४७ ॥ हे मानिनि " जो पुरुष संग्राममें मुझको जीतेगा " तुम्हारे इस कठोरवचनका तात्पर्य गूढ होनेसे तुम्हारे अभिलषित संग्रामके अर्थको नहीं जानसका ॥ ४८ ॥ हे वामोरु ! रतिजनित और उत्साहजनित संग्राम पात्रभेदसे दो प्रकारका है. रतिजनित संग्राम तुममें ही शोभा पाता है और उत्साहजनित संग्राम शत्रुके प्रति प्रयुक्त होता है ॥ ४६ ॥ इन दोनों संग्राममें रतिजनित संग्राम सुखदायक है. और शत्रु जनित संग्रामको क्लेशदायक जानना चाहिये. हे नितम्बिनि ! तुम्हारे मनका भाव मैं भलीभाँति समझ गया हूं ॥ ५० ॥ तुम्हारे हृदयमें रति जनित संग्रामका भावही देदीप्यमान रहता है. नरपति शुंभने इस समय इस विषयमें मुझको विशेषज्ञ जानकर ॥ ५१ ॥ विपुलसैन्यसहित मुझको ही तुम्हारे पास भेजा है. हे भाग्यवति ! तुम चतुर हो, अतएव मेरे वचनोंका तात्पर्य सहजमेंही समझ सकती हो. अब मेरे हितकर वचन सुनो ॥ ५२॥ देखो, शुंभ देवताओंका दर्पदलन करके तीनों लोकोंके अधीश्वर हुए हैं. तुम उनसे विवाह करो तो तुम उनकी प्रियतमा पटरानी होकर अनेक भोग करोगी ॥ ५३ ॥ और वह महाबाहु शुंभ कामरणका प्रकृत अर्थ जानते हैं, अतएव वह तुमको अनायास ही जीतेंगे तुम्हारे विचित्रभाव और मनोगत भावप्रदर्शन करनेपर वह भी भावप्रकाश करेंगे ॥ ५४ ॥ और यह कालिका तुम्हारी नर्मक्रीडाकी सहचरी होकर उसी स्थानमें वास करेगी. कामशास्त्रवित् दैत्यपति शुंभके सहित रतियुद्धमें प्रवृत्त होनेसे ॥ ५५ ॥ वह तुमको जीतकर सुखशय्यापर परिश्रांत थकित करेंगे, वह तुम्हारा शरीर नखाघातसे शोणितसिक्त और अधरदंतद्वारा खंड खंड कर डालेंगे ॥ ५६ ॥ तब वह स्वेदयुक्त शरीर करके तुमको कामरणमें पराजित कर देंगे. तुम्हारी मानसिक रतिजनित संग्रामलालसा इसीप्रकार पूर्ण होगी ॥ ५७ ॥ हे प्रणयिनि ! तुम्हारे दर्शनमात्रसेही शुंभ सर्व अन्तःकरणसे तुम्हारे वशीभूत होंगे. अतएव तुम मेरे हितकर मनोहर वचनोंका प्रतिपालन करो ॥ ५८ ॥ तुम अतिशय

मानिनी हो, इसकारण शुंभसे विवाह करके सबकी माननीय होगी, इसमें सन्देह नहीं. जो शस्त्रयुद्धको प्रिय जानते हैं, वह अत्यन्त मंदभाग्य हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥ ५९ ॥ हे कान्ते ! सुरतही तुमको सदा प्रिय है, अतएव शस्त्रादिसे संग्राम करना तुम्हारे उपयुक्त नहीं है. हे देवि ! अधिक और क्या कहूं ? पदाघातसे राजाको ऐसे अशोक करो ॥ ६० ॥ बकुल और कुरबक तरु मुख मदिराद्वारा उत्सिक्त होनेपर जिसप्रकार विकसित होते हैं और अशोकवृक्ष स्त्रियोंके पदप्रहारसे जिसप्रकार विकसित होते हैं तुमभी उसीप्रकार मुखमदिरासे और पदाघातसे राजाका अन्तःकरण प्रफुल्लित करके उसको शोकरहित करो ॥ ६१ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे भाषायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः २५.

व्यासजी बोले हे जन्मेजय ! धूम्रलोचनके इसप्रकार कहकर चुप होनेपर कालिका देवीने उत्कट हास्यकर ललितवचनसे कहा ॥ १ ॥ रे मूढ ! तू चाटुकारी वचन कहनेमें निपुण होनेसे नटकी समान वचन कहता है. तैंने मनमें जाना है कि, मधुरवचन कहनेसेही मनोरथ पूर्ण होगा, किन्तु यह अत्यन्त असंभव है ॥ २ ॥ हे मूढमते ! तू बलवान् है और विशेषकर उस दुरात्माकी अनुमतिके अनुसार बहुतसी सेना संग लेकर यहां आया है, अब व्यर्थ वाक्यव्यय छोड़कर युद्ध कर ॥ ३ ॥ यह देवी कुपित होकर तुझे शुंभ और निशुंभको तथा अन्यान्य सेनापतियोंको बाणोंसे संहार करके फिर अपने स्थानको जायगी ॥ ४ ॥ देखो, शुंभ मन्दमति और यह देवी विश्वमोहिनी है, सुतरां इन दोनोंमें अधिक अंतर है. अतएव इस संसारमें इन दोनोंकी परस्पर विवाह विधि अत्यन्त अयोग्य है ॥ ५ ॥ रे मूढ ! तू विचार देख, सिंही यदि अत्यन्त कामातुर हो तथापि वह क्या कभी सामान्य शृगालको वा हाथिनी क्या गधेको वा गाय क्या गवय गोसदृश को पति कर सक्ती है ? ॥ ६ ॥ तू इसी समय शीघ्र शुंभ और निशुंभके समीप जाकर मेरे यह सत्यवचन कह कि, वह अभी युद्धके लिये तैयार हों; नहीं तो अभी पातालमें भागकर अपने प्राणोंकी रक्षा करैं ॥ ७ ॥ व्यासजी बोले हे महाभाग ! वह दानव धूम्रलोचन कालिकाके इसप्रकार वचन सुन अत्यन्त क्रोधित हो लाल लाल नेत्र कर उनसे कहने लगा ॥ ८ ॥ हे कुत्सिताङ्गी ! आज तुझको और इस मदगर्वित सिंहको समरमें निहत करके इस

सुन्दरीको राजाके निकट लेजाऊंगा ॥ ९ ॥ हे काली ! केवल रसभंगके भयसे अबतक यह कार्य नहीं करसका. हे कलहप्रिये ! यदि ऐसा न होता तो अभी तुमको निशित बाणोंसे मार डालता, इसमें सन्देह नहीं ॥ १० ॥ कालिकाने धूम्रलोचनकी यह बात सुनकर कहा रे मूढ ! तू क्यों मिथ्या आत्मश्लाघा करता है, यह धनुर्धारी वीरोंका धर्म नहीं है, तू अब अपनी शक्तिके अनुसार बाण छोड़ मैं अभी तुझको शमन सदनको प्रेरण करती हूं ॥ ११ ॥ व्यासजी बोले हे राजेन्द्र ! देवीके इसप्रकार वचन सुन दानव धूम्रलोचन दृढकार्मुक ग्रहण कर कालिकाके ऊपर शाणित सायकोंकी वर्षा करने लगा ॥ १२ ॥ इन्द्र इत्यादि देवता उत्तम उत्तम विमानोंमें बैठकर युद्धको देखते हुए "जयहो जयहो" इसप्रकार कहकर देवीका स्तव करने लगे ॥ १३ ॥ तब बाण, खड्ग, गदा, शक्ति और मूशल इत्यादि अनेक प्रकारके अस्त्रवर्षणद्वारा उनका परस्पर घोरतर दारुण युद्ध होने लगा॥ १४ ॥ कालिकाने बाणोंके प्रहारसे प्रथम तो उसके रथवाहक खच्चर नष्ट कर डाले. फिर उसका विशाल रथ तोड़कर वारंवार हास्य करने लगी ॥ १५ ॥ हे भारत ! तब धूम्रलोचन दूसरे रथमें चढ़. क्रोधसे प्रज्वलित हो कालिकाके ऊपर घोर बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ १६ ॥ कालिका देवीने भी उन सब बाणोंके आते आतेही तत्काल खंड खंड कर डाले और दानवोंके ऊपर सवेग अपने बाणोंको छोड़ने लगी ॥ ॥ १७ ॥ उन बाणोंसे उसके हजार हजार पार्श्वरक्षक निहत हुए, अधिक क्या? उन्होंने उन सब बाणोंसे उसके वाहक खर और सारथीको मारकर रथतोड़ डाला ॥ १८ ॥ सर्पकी समान वेगशाली बाणोंसे उसके धनुषको काटकर शंखध्वनि करी. यह देखकर देवतागण अत्यन्त आनन्दित हुए ॥ १९ ॥ धूम्रलोचन विरथ होतेही कुपित हो लोहमय दृढ परिघ ले रथके समीप आया ॥ २० ॥ तब कालकी समान भयंकर दानव देवीकी भर्त्सना करके कहने लगा. हे कुत्सिताङ्गी ! पिंगल-लोचने कालि ! मैं अभी तुमको मारूंगा ॥ २१ ॥ यह कहकर सहसा उनके निकट जाय परिघनिक्षेप करनेमें उद्यत हुआ, तभी अम्बिका देवीने हुंकारशब्दसे उसको भस्म कर डाला ॥ २२ ॥ धूम्रलोचनको भस्म हुआ देख उसकी सब सेना भयसे विह्वल हो मार्गमें हा तात ! हा तात ! कह रोदन करती करती तत्काल भाग गई ॥ ॥ २३ ॥ देवता धूम्रलोचनको निहत देखकर प्रफुल्ल अन्तःकरण हो आकाशमण्डलसे फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ २४ ॥ हे महाराज ! उस समय किसी स्थानमें

निहत दानवलोग, किसीस्थानमें घोडे, किसीस्थानमें हाथी और किसीस्थानमें खरों (गधों) के गिरनेसे रणभूमिने भयंकर मूर्ति धारण करी ॥ २५ ॥ गृध्र, काक, श्येन (पक्षी) बढवरकादि एकप्रकारके पिशाच और जम्बुक इत्यादि मांसलोभी जीव रणस्थलमें पड़े हुए प्रेतोंको देखकर नृत्य और विकट कोलाहलशब्द करने लगे ॥ २६ ॥ तब अम्बिकादेवीने वह रणस्थल छोड़, दूरवर्ती स्थानमें जाय ऐसी भयदायक प्रचण्ड शंखध्वनि करी ॥ २७ ॥ कि शुम्भने अपने स्थानमें बैठेहुए भी उस भयजनित शंखनादको सुना फिर कुछ कालोपरान्त ही देखा कि, दानव रणमें पीठ दे रोदन करते करते रणस्थलसे आरहे हैं. उनमें किसीका सर्वाङ्ग शरीर रुधिरकी धारामें डूबा हुआ ॥ २८ ॥ किसीका पद छिन्न, किसीके बाहु छिन्न, कोई नेत्रविहीन, किसीकी पीठ टूटी हुई, किसीकी कमर टूटी हुई, किसीकी ग्रीवा टूटी हुई. और कोई शय्यापर सोया हुआ है ॥ २९ ॥ शुंभ और निशुंभने इनको देखकर पूँछा कि धूम्रलोचन इस समय कहां है ? तुम किसलिये रणमें पीठ दिखाकर लौट आये हैं ? और किसलिये उस सुवदना स्त्रीको नहीं लाये ॥ ३० ॥ अन्यान्य सब सेना कहां हैं और यह जो भयवर्द्धक शंखका शब्द कर्णविवरमें प्रविष्ट होता है यह शंखध्वनि किसकी है ? रे मूढो ! तुम इन सब बातोंका यथार्थ विवरण शीघ्र कहो ॥ ३१ ॥ सेनाने शुंभके यह वचन सुनकर कहा हे राजन् ! कालिका देवीने धूम्रलोचनको निहत और संपूर्ण सेनाको मारकर रणस्थलमें अलौकिक कार्य किया है ॥ ३२ ॥ हे महाराज ! जिस शंखका शब्द कर्णविवरमें प्रविष्ट होकर दानवोंके हृदयमें भयसंचार कर देवताओंके हृदयमें आनन्द बढाताहुआ आकाशमंडलमें प्रतिध्वनित होता है यह अम्बिकाके शंखका नाद हैं ॥ ३३ ॥ हे प्रभो ! देवीने निरन्तर बाणवर्षा कर जिससमय दानवश्रेष्ठ धूम्रलोचनका रथ भग्न और घोड़ोंको मारकर उनको भी मारडाला. वह केसरी जब सेनाका विनाश करने लगा ॥ ३४ ॥ जब धूम्रलोचन रणशय्यामें शयन कर गये. जब सब सेना भग्न होगई. तब देवतालोग यह सब देख हर्षसहित आकाशमण्डलसे फूलोंकी वर्षा करनेलगे ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! हमको जय प्राप्त नहीं होगी. हमने इसप्रकार निश्चय कर लिया है. इसकारण अब आप मंत्रण कुशल मंत्रियोंके संग विचार करके जो कर्त्तव्य हो. वही करो ॥ ॥ ३६ ॥ हे महाराज ! जगदम्बिका सेनाकी सहायता न लेकर भी आपके संग संग्राम करनेकी इच्छासे जो अकेली अपेक्षा करती है यही हमारे आश्चर्यकी बात है ॥ ३७॥

हेमहाराज! मदके गर्वसे गर्विता वह बाला निर्भय हो अकेली सिंहकेपीठपर विराजमान है. हेराजेंद्र! यह सब तुमको अद्भुत बोध होताहै ॥ ३८ ॥ हे महाराज! संधिविग्रह पलायन वा उदासीनभावमें अवस्थित,इनमें जो आपकी अभिलाषा हो मंत्रण करके उसी कार्य का अनुष्ठान कीजिये ॥ ३९ ॥ हे शत्रुसंतापन! हमको बोध होता है कि, यद्यपि देवीके पास सेना नहीं है किन्तु तोभी आपद्कालके समय सब देवतालोग उसके पार्श्वरक्षक होंगे इसमें सन्देह नहीं ॥ ४० ॥ यथासमय हरि और हर दोनों उसके समीप उपस्थित होंगे; इस समय लोकपालगण गगनमंडलका आश्रय करके उसके समीप ही वर्त्तमान रहते हैं ॥ ४१ ॥ हे सुरतापन! आप यह जानिये कि गंधर्व किन्नर और मनुष्य लोग सभी यथासमयमें उसके सहायक होंगे, इसमें सन्देह नहीं ॥ ४२ ॥ हे महाराज! हम अनुमानसे यही विचारते हैं कि, वस्तुतः वह अम्बिका किसीको सहायताकी आशा नहीं करती वा कोई उनका कार्य करै, वह यह आशा नहीं करती ॥ ४३ ॥ आप निश्चय जानिये कि, वह अकेलीही चराचरके सहित संपूर्ण जगन्मण्डलका विनाश कर सक्ती हैं, फिर सब दानवोंकी बात क्या कहैं? ॥ ४४ ॥ हे महाभाग! यह सब वृत्तान्त जानकर आपकी जो रुचि हो, वही कीजिये. हित और परिमित सत्यवचनही भृत्यको कहना चाहिये, इसी कारण आपसे यह सब बात कही ॥ ४५ ॥ व्यासजी बोले हे राजन्! परबल विमर्दक शुंभने उनके इसप्रकार वचन सुन छोटे भाईको निर्जनमें बुलाकर कहा ॥ ४६ ॥ हे भैया! अकेली कालिकाने आज धूम्रलोचनको मारकर सब सेनाका नाश किया है, शेप सेना भागकर हमारे पास चली आई है॥ ४७॥ इस समय अम्बिका मदगर्वित होकर शंखध्वनि करती है,कालकी गतिका जानना ज्ञानियोंके पक्षमें भी सहज नहीं है ॥ ४८ ॥ देखो,कालकी गतिसे तृण कहीं वज्रकी समान,कहीं वज्र तृणकी समान और कहीं बलवान् भी बलहीन होता है, अतएव दैवकी गति इसी प्रकार जाननी चाहिये ॥ ४९ ॥ हे महाभाग! तुमसे पूँछता हूँ, अब हमारा क्या कर्त्तव्य है? इस पराभवपर आई अम्बिकाको भोग करना उचित है ॥ ५० ॥ वा यहांसे भागना चाहिये? या युद्ध करना ठीक है? तुम यह शीघ्र कहो, यद्यपि तुम मेरे छोटे भाई हो, किन्तु संकटस्थलके समय मैं तुमको बड़ा समझता हूं ॥ ५१ ॥ निशुंभने शुंभकी ऐसी बातें सुनकर कहा हे पापहीन! भागना वा दुर्गका आश्रय ग्रहण करना युक्ति संगत नहीं है, इसके संग युद्ध करनाही सबप्रकारसे श्रेष्ठ होगा ॥ ५२ ॥ मैं प्रधान प्रधान

योधा और सेनासहित समरमें जाय उस अबलाका संहार करके शीघ्र आऊंगा ॥ ५३ ॥ वा यदि दैवकी प्रबलतासे इसके अन्यथा हो, मेरे मरनेपर आप वारंवार विचार कर जो उचित हो वह कीजिये ॥ ५४ ॥ शुंभने छोटे भाईके इस प्रकार वचन सुनकर कहा तुम अपेक्षा करो, इस सेना समूहको संग लेकर चंड और मुंड दोनों जायँ ॥ ५५ ॥ क्योंकि खरगोशके पकड़नेको गजेन्द्रका भेजना उचित नहीं है, यह अतिसामान्य विषय है. महावीर चंड और मुंड उसका विनाश करनेमें सम्यक्प्रकारसे समर्थ होंगे ॥ ५६ ॥ राजा शुंभने भाईसे यह कहकर सन्मुख स्थित महावीर चण्ड मुण्डसे कहा ॥ ५७॥ हे चण्ड ! हे मुण्ड ! तुम मदगर्विता लज्जाहीन उस अबला ललनाको मारनेके लिये शीघ्र अपनी सेना सहित जाओ ॥ ५८ ॥ हे वीरयुगल ! उस पिंगल नयना कालिकाको संग्रामस्थलमें मारकर और उस अम्बिकाको ग्रहणपूर्वक यह बड़ा काम करके शीघ्र आओ ॥ ५९ ॥ और यदि वह गर्वित अम्बिका गृहीत होनेपरभी न आवे तो पैने बाणोंसे रणभूषणरूप दुर्गाकोभी मार डालो ॥ ६० ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे भाषायां पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

षड्विंशोऽध्याय २६.

व्यासजी बोले हे महाराज ! तब महावीर चंड और मुंड शुंभकी यह आज्ञा पातेही महती सेनाके सहित उसी समय समरमें गये॥ १ ॥ वह अत्यन्त बलवान् दोनों दानव समरस्थलमें देवताओंकी हितकारिणी देवीको देख सामसंयुक्त मधुर वचनोंसे कहने लगे ॥ २ ॥ हे बाले ! तुम क्या इस बातको नहीं जानती हो कि, महाबल पराक्रमी असुरराज शुंभ और निशुंभने देवताओंकी सब सेनाको पीडित किया है और सुरपति इन्द्रको पराजित करके विजयके मदसे उन्मत्त हुए हैं ॥ ३ ॥ हे नितम्बिनी ! तुमको दुर्बुद्धि उपस्थित हुई है इसमें सन्देह नहीं. नहीं तो किसलिये तुम अकेली केवलमात्र कालिका और सिंहको सहाय करके सब सेनाके सहित शुंभको परास्त करनेकी इच्छा करतीं ॥ ४ ॥ मुझको जान पड़ता है जो तुमको सुबुद्धि प्रदान करैं, ऐसा पुरुष वा स्त्री कोई नहीं है ? देवताओंने तुम्हारे विनाशकेलियेही तुमको रणस्थलमें भेजा है इसमें सन्देह नहीं ॥ ५ ॥ हे कृशाङ्गी ! अपना और दूसरेका बलाबल विचार कर कार्यमें प्रवृत्त होओ और यदि अपने अठारह बाहुद्वारा अनेक

प्रकारके अस्त्र शस्त्र चलाकर युद्धमें जय प्राप्त करूंगी मनमें इस प्रकार गर्व करती हो. वह अत्यन्त निष्फल है ॥ ६ ॥ क्योंकि वह सुरविजयी शुंभ जब संग्राम करनेमें प्रवृत्त होंगे. तब तुम्हारी सब बाहु और आयुध उनका क्या करेंगे ? यह सब केवल वहनजनक परिश्रममात्र होगा. किन्तु उससे किसी फलके प्राप्त होनेकी आशा नहीं करनी चाहिये ॥ ७ ॥ जिस वीरश्रेष्ठने ऐरावतकी सूंडें छेदन की हैं. जिन्होंने हाथियोंके दांत उखाड़े हैं. और जिन्होंने सब देवताओंको पराजित किया है. तुम उन शुंभका अभिलषित कार्य करो ॥ ८ ॥ हे कान्ते ! तुम वृथा गर्विताके समान व्यवहार करती हो. हे विशालनयने ! मेरे प्रियवचनोंका प्रतिपालन करो मेरे यह हितवचन सुननेसे तुम्हारा क्लेश दूर होकर सुखका उदय होगा. इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ ९ ॥ जिन कार्योंके करनेसे क्लेश होता है. शास्त्रतत्त्वविशारद पण्डितगण वह कार्य नहीं करते. वरन वह सदासुखदायक कार्यही करते हैं ॥ १० ॥ हे मधुरभापिणी ! तुम चतुर हो. अतएव शुंभने देवताओंको पीडित करके अपने महत् बलसे कितनी श्रीवृद्धिकी है यह तुम प्रत्यक्ष देखो ॥ ११ ॥ और यदि तुम देवताओंकी सेनाको महत्तर अनुमान करती हो. सो मिथ्या है. क्योंकि पण्डितगण प्रत्यक्षप्रमाण छोड़कर कभी सन्देहयुक्त अनुमानकार्यमें प्रवृत्त नहीं होते हैं ॥ १२ ॥ समरदुर्जय शुंभ देवताओंका परमशत्रु है, अतएव दानवपतिसे देवताओंने पीडित होकर ही तुमको इस स्थानमें भेजा है ॥ १३ ॥ हे शुचिस्मिते ! तुम इसीकारण देवताओंके मधुर वचनोंसे वञ्चित हुई हो. देवताओंने अपने कार्यसाधनकी अभिलाषासे तुमको क्लेश देनेके लियेही ऐसा उपदेश दिया है ॥ १४ ॥ कार्यवशसे जो मित्र हो. उसको छोड़कर धर्मके कारण जो मित्र हो. उसको ही आश्रय करना चाहिये देखो. मैं तुमसे निश्चय कहता हूं. कि देवतालोग अत्यन्त स्वार्थपरायण हैं. वह अपना कार्य साधन करनेके लियेही तुम्हारे परममित्र हुए हैं ॥ १५ ॥ शुंभ देवताओंको जीत कर त्रिभुवनके अधीश्वर हुए हैं विशेष कर वह शूर,सुन्दर,चतुर और कामशास्त्रमें विशारद हैं. इसकारण अब तुम उनकी ही भजना करो ॥ १६ ॥ देखो त्रैलोक्यमें जो सब ऐश्वर्य है शुंभके शासनसे वह तुम सब प्राप्त करोगी. अतएव तुम स्थिरनिश्चय करके उन्ही सुशोभनभर्त्ता शुंभका भजन करो ॥ १७ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज! जगदम्बिका चण्डके इसप्रकार वचन सुन. मेघके समान गंभीर स्वरसे गर्जन कर पुनर्वार कहने लगीं ॥ १८ ॥ रे जाल्म ! तू क्यों मिथ्या छलयुक्त वचन कहता है तू अभी चलाजा.

विष्णु महादेव इत्यादि देवताओंको छोड़ कर मैं शुंभको किसलिये पति करूं ॥ १९॥ रे मूर्ख ! मेरा पतिसे कोई कार्य नहीं है. अतएव किसीको भी पति बनानेका प्रयोजन नहीं है. मैंही सब जीवोंकी स्वामिनी होकर इस अखिल ब्रह्माण्ड स्थित प्राणियोंका प्रतिपालन करती हूं. यह निश्चय कर ॥ २० ॥ मैंने पूर्वमें हजार हजार निशुंभ व शुंभको देखा और विनाश किया है एवं शत शत दैत्य दानवोंको शमनसदनमें भेजा है ॥ २१ ॥ मेरे सामने युग युगमें सैकड़ों देवता विनष्ट हुए हैं. अब फिर यह सब दानवयूथ क्षयको प्राप्त होगा ॥ २२ ॥ अब दैत्योंका संहारक काल आनकर उपस्थित हुआ है. इस कारण तू अपने दलबलकी रक्षाके लिये अब क्यों वृथा यत्न करता है ॥ २३ ॥ तू निर्बुद्धि विदित नहीं होता. अतएव वीर धर्मकी रक्षाके लिये अब युद्धमें प्रवृत्त हो मरना अवश्यही होगा. कोई कभी उससे रक्षा नहीं पावेगा. अतएव महात्माओंके यशकी रक्षा करना ही सब भांतिसे कर्त्तव्य है ॥ २४ ॥ दुरात्मा शुंभ और निशुंभसे तेरा क्या प्रयोजन है ? अब श्रेष्ठ वीरधर्मका अवलम्बन करके स्वर्गमें जा ॥ २५ ॥ शुंभ निशुंभ और तेरे अन्यान्य बांधव सब तेरे अनुगामी होकर अभी इस स्थानमें आवेंगे इसमें सन्देह नहीं ॥ २६ ॥ रे मूढ ! आज मैं क्रमशः सब दानवोंका क्षय करूंगी, अतएव तू विषाद छोडकर युद्धमें प्रवृत्त हो ॥ २७ ॥ मैं अभी तुझे और तेरे भाईको मारूंगी, फिर मदमत्त रक्तबीज निशुंभ शुंभ ॥ २८ ॥ और अन्यान्य दानवोंको समरस्थलमें मारकर अभीष्टस्थानको चली जाऊंगी, अब यदि तेरी इच्छा हो तो रह, नहीं तो भाग जा ॥ २९ ॥ तू वृथा पुष्ट हुआ है क्योंकि युद्ध करनेसे डरता है. अब कातरपुरुषोंके प्रिय निष्फल वचन कहनेसे क्या होगा ? मेरे वचनानुसार यह सब वृथा वचन छोड़. अस्त्रग्रहण कर मेरे संग युद्धमें प्रवृत्त हो ॥ ३० ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! बलदर्पित चण्ड और मुंडने देवीके इसप्रकार वचनोंसे उत्साहित और कुपित होकर अत्यन्त वेगसे घोर ज्याशब्द किया ॥ ३१ ॥ तब देवीने भी ऐसी शंखध्वनि करी. कि उस शब्दसे दशों दिशा परिपूर्ण होगई. इसी अवसरमें बलवान् सिंहनेभी कुपित होकर घोरतर सिंहनाद किया ॥ ॥ ३२ ॥ उस शब्दको सुनकर इन्द्र इत्यादि देवतागण, मुनिगण, यक्षगण, सिद्धगण, साध्यगण और किन्नरगण आनन्दित हुए ॥ ३३ ॥ तब बाण, खड्ग और गदासे चण्डिका और चंडका परस्पर कातर पुरुषोंको भयावह घोर युद्ध आरंभ हुआ ॥ ॥ ३४ ॥ चण्डिका देवीने उग्रमूर्ति हो निशित बाणोंसे चण्डके छोड़ेहुए सब

बाणोंको खंड खंडकर तत्काल सर्पके समान अन्यान्य बाण उसपर छोड़े ॥ ३५ ॥ तब किसानोंको भयावह शलभ (टीडी) जिसप्रकार मेघमंडलको ढकलेते हैं. इसी प्रकार रणस्थलमें परस्परके छूटेहुए बाणोंसे आकाशमंडल ढकगया ॥ ३६ ॥ इसी अवसरमें अत्यन्त भयंकर मुंडभी सेनासहित समरमें उपस्थित हुआ. और क्रोधसे अधीर होकर बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ ३७ ॥ उस महत् शर जालको देखकर अम्बिका अत्यन्त कुपित हुई. तब कोपके कारण उनका वदनमंडल कृष्णवर्ण होगया ॥ ३८ ॥ भ्रुकुटि द्वारा कुटिल और कृष्णवर्ण एवं नेत्र कदली पुष्पके समान लालवर्ण होगये. इसी अवसरमें उनके ललाट फलकसे सहसा काली निकली ॥ ३९ ॥ उन क्रूरप्रकृति घोराकृति देवीके परिधानवस्त्र व्याघ्राजिनरचित, उत्तरीय वस्त्र गजचर्म निर्मित, जंघा विशाल, उदर शुष्क वापीके समान गंभीर ॥ ४० ॥ वदन विस्तीर्ण, जीभ लाल, गलेमें मुंडमाला, हाथमें खड्ग पाश और खट्वाङ्ग, अधिक क्या ? उनकी मूर्ति कालरात्रिके समान अत्यन्त रौद्र थी ॥ ४१ ॥ वह देवी वारंवार जीभ चलाती हुई अत्यन्त भीषणमूर्त्ति धारण कर पुरुषोंको भयप्रदान करने लगीं और महावेगसे असुरोंकी सेनामें प्रविष्ट हो उनको वध करनेमें प्रवृत्त हुई ॥ ४२ ॥ तिसकाल वह क्रोहित हो वेगसहित महावीर दानवोंको हाथसे पकड़ पकड़, मुखमें डालती हुई दांतोंसे क्रमानुसार चर्वण करने लगीं ॥ ४३ ॥ वह रणस्थलमें बाहुबलसे घंटोंके सहित हाथियोंको पकड़कर मुखमें डालने लगी और फिर आरोही (सवार) के सहित उनको भक्षण करके अट्टहास किया ॥ ४४ ॥ इसप्रकार घोड़े ऊंट और सारथियोंके सहित रथोंको मुखमें डालकर दांतोंके द्वारा भयंकर रीतिसे चावने लगीं ॥ ४५ ॥ हे महाराज ! तब महाअसुर चण्ड और मुण्डने अपनी सेनाको नष्ट होता हुआ देख निरन्तर बाणोंकी वर्षाकर देवीको ढक दिया ॥ ४६ ॥ चंडसूर्यके समान प्रभायुक्त सुदर्शनचक्रके सदृश चक्र ले बलपूर्वक देवीपर चलाय वारंवार गर्जन करने लगा ॥ ४७ ॥ कालीने उसको गर्जता और रविके समान दीप्तिशाली चक्रको आता हुआ देखकर केवल एकही बाणसे उस सुदर्शनके समान प्रभावाले चक्रको काट डाला ॥ ४८ ॥ और शिलाशाणित तीक्ष्णबाणोंसे उसपर प्रहार किया तब वीरवर चण्ड देवीके बाणोंसे अत्यन्त पीडित और मूर्च्छित होकर पृथ्वीमें गिरगया ॥ ४९ ॥ महाबल मुण्ड भाईको गिरता हुआ देखकर दुःखसे अत्यन्त कातर हुआ और फिर तत्काल क्रोधित होकर देवीके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ ५० ॥ तब चण्डिकाने बलपूर्वक ईषिकास्त्र निक्षेप करके मुण्डके छोड़े

हुए संपूर्ण दारुण बाणोंको क्षणमात्रमें तिल तिल कर डाला ॥ ५१ ॥ और अर्द्धचन्द्राकार बाणसे उसपर फिर प्रहार किया तब महाबलवान् असुर मदका गर्व परित्याग कर पृथ्वीमें गिरगया ॥ ५२ ॥ मुंडके गिरते ही दानवोंकी सेनामें महा हाहाकार शब्द हुआ आकाशमें टिकेहुए देवतालोग उस शब्दको सुनकर अत्यन्त हर्षित हुए ॥ ५३ ॥ इसी अवसरमें चण्डने मूर्च्छासे जाग गुर्वी गदा ग्रहण कर कालिका की दाहिनी भुजामें वेगसहित प्रहार किया ॥ ५४ ॥ कालिकाने गदाघातको विफल करके तत्काल मंत्रपूत पाशास्त्रसे उस महाअसुरको बांध लिया ॥ ५५ ॥ किन्तु मुंड उठतेही अनुज चंडकी बंधनअवस्था देख वर्म्म (बख्तर) द्वारा सुरक्षित हो दृढशक्ति हाथमें लेकर आया ॥ ५६ ॥ उस दानवको आता हुआ देखते ही कालीने तत्काल दूसरे भ्राता मुंडको भी दृढ रूपसे बाँध लिया ॥ ५७ ॥ तब काली उन महाबलवान् चण्ड और मुण्डको शशकके समान ग्रहण करके विपुलहास्य करते करते अम्बिकाके निकट आईं ॥ ५८ ॥ कालिकाने अम्बिकाके निकट जाकर उनसे कहा मैं रणयज्ञके लिये रणदुर्जय दानवरूप इन प्रशस्त दोनों पशुओंको लाई हूं आप इनको ग्रहण कीजिये ॥ ५९ ॥ वृकयुगलके समान उन दोनों दानवोंको आया देख अम्बिकाने कालिकासे मधुर वचन द्वारा कहा॥ ६०॥ हे रणप्रिये! तुम अतीव चतुर हो अतएव इनकी हिंसा मत करो और इनको छोड़ना भी उचित नहीं है किन्तु मेरे वचनका तात्पर्य विचार कर जिससे देवताओंका कार्य भलीभांति सिद्ध हो वह तुमको अवश्य कर्त्तव्य है ॥ ६१ ॥ श्रीव्यासजी बोले हे महाराज ! अम्बिकाके इसप्रकार वचन सुन कालिकाने उससे फिर कहा हे देवि ! अतिविख्यात इस युद्धयज्ञमें खड्गरूपी यूप प्रतिष्ठित रहता है ॥ ६२ ॥ इनको उससे ही इसप्रकार मारूंगी कि उसमें हिंसा नहीं होगी अर्थात् यज्ञस्थलमें वध करनेसे वह हिंसा हिंसामें नहीं गिनी जाती. इसकारण रणयज्ञमें पशुविवेचना कर देवताओंकी कार्य सिद्धिके लिये इनकी बलि दूंगी. यह कहतेही वह कालिका देवी खड्गप्रहारसे उनका शिर काटकर ॥ ६३ ॥ तत्काल आनन्दसहित रुधिरपान करने लगी इस प्रकार दोनों दानवोंको निहत देखकर अम्बिका देवी प्रीतिसहित कहने लगी॥ ६४॥ हे कालिके ! तुमने देवताओंको कार्य संपादन किया है इस कारण मैं तुमको एक उत्तम वर देती हूं हे कालिके ! तुमने चंडमुंडको निहत किया है. इसलिये ॥ ६५॥ इस पृथ्वीमें तुम्हारा नाम चामुण्डा विख्यात होगा ॥ ६६ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषायां षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः २७.

व्यासजी बोले हे राजन् ! चण्डमुंडके निहत होनेपर मृत्युसे बचेहुए सैनिक लोग भागकर शुंभके निकट जानेलगे ॥ १ ॥ उनमें शरप्रहारसे किसीके अंग क्षत, विक्षत किसीके बाहु छिन्न और किसीका देह रुधिरधारामें डूबाहुआ था, वे ऐसी अवस्थामें रुदन करते करते नगरकी ओर जाने लगे ॥ २ ॥ वे दानव-पतिके समीप जाय वारंवार बुम्बाशब्द (कर मुख संयोगसे विपदसूचक शब्द) करते करते उनसे कहने लगे हे महाराज ! अद्य कालिका सबकाही भक्षण करती है अतएव आप हमारी रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये ॥ ३ ॥ उस कालीने देवता-ओंको पीडित करनेवाले महावीर चंडमुंडको मार डाला है. और प्रायः सबही सैनि-कोंका भक्षण किया है. हमलोग यह देख भयसे कातर हो रणसे भागकर चले आये हैं ॥ ४ ॥ हे प्रभो ! कालिकाने उस रणस्थानको हाथी, घोड़े, ऊंट, वीर और पैदलोंके गिरेहुए शरीरसे भयावह करदिया है ॥ ५ ॥ उस संग्रामस्थलमें शोणित-धारा प्रवाहित होकर एक नदी होगई है. सेनाका मांसही उस नदीका प्रचुर पंक, केशकलाप शैवाल, भग्नरथचक्रही आवर्त्त ॥ ६ ॥ छिन्नबाहु और चरण मत्स्यकुल और मस्तक सब तुम्बी फल हैं, हे राजन् ! इस समय इस नदीके देखनेसे कातर दैत्योंको भयसंचार और देवताओंको आनन्दवर्द्धन होता है ॥ ७ ॥ हे महाराज ! अभी पातालमें भागकर कुलकी रक्षा कीजिये देवी कुपित होकर अभी दानवोंका क्षय कर डालेगी इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८ ॥ हे दनुजेश्वर ! अधिक और क्या कहूं ? वह सिंहभी समरस्थलमें दानवोंका भक्षण करता है और कालिका देवी बाणोंसे असंख्य दानवोंको निहत करती हैं ॥ ९ ॥ अतएव हे राजेन्द्र ! आप मनमें क्या आशा करते हैं, हमको बोध होता है, आप सहोदर निशुंभके सहित निरर्थक मरनेके लिये वासना करते हैं ॥ १० ॥ और यदि आपकी जय हो तो आप जिसके लिये बाधवोंका संहार करनेकी वासना को करते हैं, वह क्रूर प्रकृति कुलविनाशिनी नारी आपका क्या मंगल करेगी ? ॥ ११ ॥ हे महाराज ! इस लोकमें जय और पराजय दैवके आधीन है, इसकारण बुद्धिमान् पुरुष सामान्य प्रयोजन साधनके लिये महतदुःखजनक कार्यमें प्रवृत्त नहीं होते ॥ १२ ॥ हे प्रभो ! यह जगन्मंडल जिसके आधीन है, उस विधाताका विचित्र कार्य अवलोकन कीजिये क्या आश्चर्य है ? उस एकमात्र स्त्रीने सब दानवोंको मार डाला ॥ १३ ॥ हे महाराज ! आपने सेना सहित लोक-पालोंको भी पराजित किया है, किन्तु अब वह बाला अकेली होकर भी आपको

युद्धके लिये बुलाती है, यह अति आश्चर्यकी बात है ॥ १४ ॥ हे महाराज! आपने पूर्वकालके समय देवताओंके वासस्थान परम पवित्र पुष्करतीर्थमें तपस्या की थी सर्वलोक पितामह ब्रह्माजीने वर देनेके लिये उस स्थानमें उपस्थित होकर ॥ १५ ॥ आपसे वर मांगनेके लिये कहा था तब आपने ब्रह्माजीसे अमर होनेका वर मांगा था ॥ १६ ॥ किन्तु जब ब्रह्माजीने अमर होनेका वर देना अस्वीकार किया, तब आपने उनसे देव, दानव, मनुष्य, नाग, किन्नर, यक्ष इत्यादि किसी पुरुषसे मृत्यु न हो, यह वर ग्रहण किया था ॥ १७ ॥ हे प्रभो! इसलिये ही बोध होता है कि, आपको मारनेकी इच्छासे यह ललना आई है हे दानवेन्द्र! आप एकाग्र चित्तसे ऐसा विचारकर अब इस युद्धसे विरत हूजिये ॥ १८ ॥ हे राजेन्द्र! यह देवीही महामाया परमा प्रकृति हैं अतएव यही कल्पान्तके समयमें सब जगत्का संहार करती हैं ॥ १९ ॥ इन्हीं शुभदायिनी देवीने सब लोक और देवताओंको उत्पन्न किया है यही सबकी अधीश्वरी और रक्षा करनेवाली हैं एवं यही तामसी अर्थात् संहार करनेवाली हैं फलतः यह देवीही त्रिगुणा और सर्वशक्ति समन्विता हैं ॥ २० ॥ यह देवीही अजेया, अक्षरा, नित्या, संध्यास्वरूप और देवताओंका आश्रयस्वरूप हैं, यही वेदमाता गायत्रीस्वरूप और अधिक क्या यही सदा प्रकाश-मान हो सब विषयही जीवोंके ज्ञान गोचर करती हैं ॥ २१ ॥ यही अव्यय निर्गुण होकर भी कभी सगुण होती हैं, यही स्वयंसिद्धस्वरूप और आराधित होकर सब लोकोंको सिद्धिप्रदान करती हैं, यही आनन्दमयी होकर भक्तोंको आनंद देती हैं, अधिक क्या कहैं, यह गौरीही देवताओंको अभय देनेवाली हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥ २२ ॥ हे महाराज! आप इन सब बातोंको जानकर इनसे वैरभाव छोड़ दीजिये हे राजेन्द्र! आप इनके शरणागत हूजिये, तो देवी आपकी अवश्यही रक्षा करेगी ॥ २३ ॥ आप उनके आज्ञाकारी होकर अपने कुलकी रक्षा कीजिये तो मृत्युसे बचे हुए दानवलोग चिरजीवनलाभ कर सकेंगे ॥ २४ ॥ व्यासजी बोले हे राजन्! सुरबलविमर्दन शुंभ उनके इस प्रकार वचन सुन वीरोचित वचनोंसे यथार्थ वचन कहने लगा ॥ २५ ॥ शुंभने कहा रे मूर्खगण! तुम मौन हो रहो तुमको जीवनकी आशा बलवती है, इसीकारण रणस्थलसे भाग आये हो, अतएव तुम अभी पातालमें चले जाओ ॥ २६ ॥ यह जगत् दैवके आधीन है, सुतरां मुझको जयके विषयमें क्या चिन्ता है? ब्रह्मादि देवता भी जिस प्रकार दैवके आधीन हैं हम भी उसीप्रकार

देवके आधीन हैं ॥ २७ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, यम, अग्नि, वरुण, सूर्य, चन्द्र और शक्र सबही दैवके नितान्त वशीभूत हैं ॥ २८ ॥ रे मूर्खगण! जो होनेवाला है, वह अवश्य होगा जिसप्रकार भवितव्यता है इस लोकमें उसीप्रकार उद्यम होता है, अतएव मुझको उस विषयमें चिन्ता करनेका क्या प्रयोजन है? ॥ २९ ॥ पण्डितलोग इस प्रकार विचार करके ही कभी शोक नहीं करते विशेष कर ज्ञानीलोग मरनेके भयसे इस लोकमें स्वधर्म परित्याग करना स्वीकार नहीं करते॥ ३० ॥ जीवोंका सुख दुःख आयु,जीवन और मरणकाल प्राप्त होनेपर ही दैवकर्तृक विहित होता है॥ ३१ ॥ क्योंकि स्वीयकालका अवसान होनेपर ब्रह्मा, विष्णु और पार्वतीपति महादेवका भी पतन होता है आयुके अवसानमें इन्द्र इत्यादि सब देवताभी नाशको प्राप्त होते हैं ॥ ३२ ॥ इसीप्रकार मैंभी भलीभांति कालके वशीभूत हूं अतएव इस समय स्वधर्म पालन करके जय अथवा विनाशको प्राप्त हूंगा इसमें संशय क्या है? ॥ ३३ ॥ यह अबला इच्छानुसार मुझको युद्धके लिये बुलाती है अतएव मैं भागकर किसप्रकार शत शत वर्ष जीवन धारण करनेमें समर्थ हूंगा? ॥ ३४ ॥ मैं आज संग्राम करूंगा जो होनहार है सो हो. इसमें जय हो वा मृत्यु ही हो मैं दोनों ही स्वीकार करूंगा ॥ ॥ ३५ ॥ उद्यमवादी पण्डितगण दैवको मिथ्या कहते हैं जो उनके वचनका सार मर्म जान सक्ते हैं वही उनके वचनको युक्तिसंगत जानते हैं ॥ ३६ ॥ उद्यमके विना कभी मनोरथ सिद्ध नहीं होता कातर मनुष्य जो होनेवाला है वह अवश्य होगा, इसप्रकार कल्पना करते हैं ॥ ३७ ॥ मन्दबुद्धि मनुष्यही अदृष्टको बलवान् कहते हैं किन्तु पण्डितलोग नहीं कहते अदृष्ट है वा नहीं इसका कोई प्रमाण नहीं है क्योंकि जो अदृष्ट अदृश्य है वह किसप्रकार दृश्य होगा? ॥ ३८ ॥ अदृष्ट क्या कभी दिखाई दिया है?यह मूर्खलोगोंकी विभीषिका मात्र है सुतरां यह अज्ञ मनुष्योंकी दुःखावस्थामें अवलम्बनके अतिरिक्त चित्त धारणका उपाय मात्र है इसमें सन्देह नहीं ॥ ३९ ॥ चक्कीके समीप रहनेपर भी कोई वस्तु पुरुषके उद्यम विना किसी प्रकार नहीं पिस सक्ती ॥ ४० ॥ अतएव कार्यानुरूप उद्यम करनेसे वह कार्य अवश्यही सिद्ध होता है कार्यकी अपेक्षा यदि उद्यम अल्प हो, तो वह कार्य कभी सम्पन्न नहीं होता ॥ ४१ ॥ देश, काल, शत्रु और अपने बलको भलीभांति जानकर कार्य करनेसे वह सिद्ध होता है यह बात बृहस्पतिने कही है ॥ ४२ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज! शुंभने इसप्रकार निश्चय कर बहुतसी सेनासहित महावीर रक्तबी-

जको संग्रामस्थलमें भेजनेके लिये उससे कहा ॥ ४३ ॥ शुंभ बोला हे रक्तबीज ! तुम अतिबलवान् हो इसकारण तुम्हीं समरस्थलमें जाओ हे महाभाग ! वहां जाकर तुम्हारा जैसा बल है उसीके अनुसार युद्ध करो ॥ ४४ ॥ रक्तबीज बोला कि, हे महाराज ! आप इस विषयमें किंचिन्मात्रभी चिन्ता न कीजिये मैं निस्सन्देह उसको मारूंगा वा आपके वशमें कर दूंगा ॥ ४५ ॥ मेरी युद्धचतुरता आप देखिये वह सुरप्रिया बाला अतिसामान्य है मैं इसको बलसहित अभी जीतकर आपकी दासी कर दूंगा ॥ ४६ ॥ व्यासजी बोले हे कुरुश्रेष्ठ ! महावीर रक्तबीजने यह कहकर अपनी सेनासहित रथमें चढ़ रणमें प्रस्थान किया ॥ ४७ ॥ हाथी, घोडे, रथ और पैदल इस चतुरङ्गिणी सेनामें परिवेष्टित हो रथमें चढ़ शैलपर बैठी हुई देवीसे युद्धको नगरसे निकला ॥ ४८ ॥ अनन्तर देवीने उसको आया देखकर शंखध्वनि करी उस शब्दसे दानवोंको भयसंचार और देवताओंको आनन्द बढ़ने लगा ॥ ॥ ४९ ॥ रक्तबीज उस शंखकी ध्वनि सुनतेही अत्यन्त वेगसे चामुण्डाके निकट जाय उनसे कोमल वचन कहने लगा ॥ ५० ॥ रक्तबीज बोला हे बाले ! क्या मुझको कातर जानकर शंखनादसे भय दिखलाती हो ? हे कृशाङ्गी ! क्या मुझको धूम्रलोचन जानती हो ? ॥ ५१ ॥ हे मधुरभाषिणि ! मेरा नाम रक्तबीज है मैं तुम्हारे कारण इस स्थानमें आया हूं यदि तुम्हारी युद्धकी इच्छा हो तो सज्जित होओ मुझको उससे कुछ भय नहीं है ॥ ५२ ॥ हे कान्ते ! जो युद्धसे कातर हैं तुमने उनको ही देखा है मैं उस श्रेणीके अन्तर्गत नहीं हूं अतएव तुम्हारी जैसी इच्छा हो उसी प्रकार युद्ध करो तो मेरा बल प्रत्यक्ष देखोगी ॥ ५३ ॥ हे सुन्दरी ! तुमने यदि पूर्वमें वृद्धजनोंकी सेवा की है नीतिशास्त्र सुना है अर्थविज्ञान अध्ययन किया है पण्डितोंकी सभामें मिलित हुई हो ॥ ५४ ॥ अथवा साहित्य और तंत्र विषयमें यदि तुमको विज्ञान हो तो प्रमाणसह सत्य और पथ्य मेरे वचन सुनो ॥ ५५ ॥ नौ प्रकारके रसोंमें विद्वानोंकी सभामें शृंगार और शान्त यह दो प्रकारके रसही प्रधान कहे गये हैं ॥ ५६ ॥ किन्तु इन दोनों रसोंमें शृंगाररसही प्रथम राजभावमें प्रतिष्ठित रहता है अधिक क्या इस रसमें आसक्त होकर विष्णु कमलाके सहित ब्रह्मा सावित्रीके सहित ॥ ५७ ॥ इन्द्र शचीके सहित और शंकर उमाके संग वास करते हैं वृक्ष लताके सहित, मृग मृगीके सहित और कबूतर कबूतरीके सहित मिलित होता है ॥ ५८ ॥ इसीप्रकार संपूर्ण प्राणीसंयोग रसमें अत्यन्त आसक्त

होते हैं जो पीडाके कारण कातर होकर भोग विभव उपभोग नहीं करसक्ते॥५९॥ वह मूढ़ मनुष्यही दैवकी विडंबनासे वंचित हो यति होते हैं जो संसाररसको नहीं जानते, वही वंचकोंके ॥ ६० ॥ मधुर वचनोंसे वंचित हुए शान्तिरसमें निरत होते हैं. कामके उदय होनेमें ज्ञानवैराग्यकहां ? ॥६१॥ बुद्धि विनाशक मोह क्रोध लोभ बड़ा दुर्धर्ष है. अतएव हे कल्याणि ! तुम मनोहर पति करो अर्थात् सुरविजयी मनोहर शुंभ वा महाबल निशुंभको पति बनाओ. व्यासजी बोले हे महाराज ! जब रक्तबीज देवीके सामने यह सब कहकर मौन हुआ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ तब कालिका अम्बिका और चामुण्डा यह सुनकर हँसने लगीं ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषायां सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः २८.

व्यासजी बोले हे नरपते ! देवी रक्तबीजके इस प्रकारके वचन सुन हँसती हुई मेघकी समान गंभीरस्वरद्वारा उससे इसप्रकार युक्तिसंगत वचन कहने लगीं ॥ १ ॥ हे मन्दात्मन् ! मैं ने प्रथमही दूतसे यथोचित वचन कहे हैं, इसकारण अब क्यों व्यर्थ श्लाघा करता है? ॥ २ ॥ त्रिभुवनमें यदि कोई पुरुष रूप, बल और विभवमें मेरे समान हो तो मैं उसको ही पति बनाऊंगी ॥ ३ ॥ तुम शुंभ और निशुंभके समीप जाकर उनसे कहो कि, मैं ने पूर्वमें यही प्रतिज्ञा की है,अतएव मुझे युद्धमें जीत कर विधिपूर्वक विवाह करो ॥ ४ ॥ तुम दैत्यपति शुंभकी आज्ञानुसार उनका कार्य करनेके लिये यहां आये हो, अतएव होसके तो संग्राममें प्रवृत्त हो. नहीं तो अपने प्रभुके सहित पातालमें भाग जाओ ॥ ५ ॥ व्यासजीबोले हे महाराज ! देवीके इसप्रकार वचन सुन वह दानव क्रोधमें भरगया और तत्काल सिंहके ऊपर दारुण बाण छोड़ने लगा ॥ ६ ॥ तब अम्बिकाने आकाशमार्गमें सर्पकी समान उस शरजालको देखकर लघुहस्तता प्रयुक्त तीक्ष्ण बाणोंसे क्षणमात्रमेंही उन सब बाणोंको छिन्न भिन्न कर डाला ॥ ७ ॥ और अपना धनुष कानोंपर्यन्त खैंच शिलापर पैनाये अन्यान्य बाणोंको छोड़कर महावीर रक्तबीजको प्रहार किया ॥ ८ ॥ तब वह पापिष्ठ देवीके शराघातसे मूर्छित होकर रथपर गिरपड़ा. रक्तबीजके गिरनेपर उसकी सेनामें महान् हाहाकार शब्द होने लगा

॥९॥ और हाय ! हाय ! हम मारे गये, यह कहकर सेना रुदन करने लगी. फिर असुरराज शुंभने दारुण बुम्बारव (करमुखसंयोगसे विपद्सूचक आर्त्तनाद) सुनकर ॥ १० ॥ संपूर्ण दानवसेनाको रणसाजसे सज्जित होनेकी आज्ञा दी. शुंभने कहा इसी समय सब दानव, कम्बोजगण ॥ ११ ॥ और अन्यान्य सेनापतिगण अपनी अपनी सेनासहित युद्धमें जाय विशेष कर कालिकेयगण शूर और अत्यन्त बलवान् हैं, अतएव वे भी सेनासहित समरमें जायँ. व्यासजी बोले हे महाराज ! शुंभकी आज्ञा पातेही हाथी घोड़े पैदल और रथी. यह चतुरंगिणी सेना ॥ १२ ॥ मदमत्त होकर देवीके संग्रामस्थलमें चली. चंडिका देवी दानवोंकी सेनाको समीप आती हुई देख ॥ ॥ १३ ॥ तत्काल वारंवार भीषण और भयप्रद घंटाध्वनि करने लगी. फिर जगदम्बिकाने भी ज्याशब्द और शंखनाद किया ॥ १४ ॥ तब कालीभी अपना मुँह फैलाय उस शब्दके संगही संग तदनुरूप घोरशब्द करने लगी. अनन्तर देवीके वाहन बलवान् सिंहने भी ॥ १५ ॥ उस घोरशब्दको सुन ऐसी गर्जना करी कि, जिससे दानवोंको अद्भुत भय हुआ. तब महाबलवान् दानव उस शब्दको सुनकर क्रोधसे अधीर हो ॥ १६ ॥ देवीके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे. उस रोमहर्षण विस्मयकर दारुण युद्धके आरंभ होनेपर ॥ १७ ॥ ब्रह्मादि देवताओंकी सब शक्तियाँ चण्डिका देवीके निकट आने लगीं. जिस देवताका जैसा रूप जिस प्रकारके भूषण और जैसे वाहन थे ॥ १८ ॥ उन उन देवताओंकी शक्ति ये उसी प्रकार रूपधारण कर तदनुयायी वाहन पर चढ़ और वैसेही भूषणोंसे विभूषित होकर समरमें आने लगीं. हंसकी पीठपर चढ़ अक्ष सूत्र और कमण्डलु, लेकर ॥ १९ ॥ ब्रह्माजीकी विख्यात ब्रह्माणी शक्ति आई. पीतवसना वैष्णवी गरुडपर चढ़ शंख चक्र गदा ॥ २० ॥ और पद्म हाथमें धारण करके आई. शिवरमणी शाङ्करी देवी वृषभारूढ हो त्रिशूल लिये ॥ २१ ॥ ललाटमें अर्द्धचन्द्र हाथमें सर्पवलय चूडी धारण करके आई चारुवदना कौमारी देवी मोरपर चढ़ शक्ति ले ॥ २२ ॥ कार्तिकेयकी समान रूप धारणपूर्वक युद्ध करनेकी इच्छासे रणस्थलमें आई. सुमुखी इन्द्राणी श्वेतहाथीपर चढ़ी ॥ २३ ॥ संपूर्ण अंग प्रत्यङ्गको विविधभूषणोंसे भूषित कर हाथमें वज्र लिये युद्धकी अभिलाषासे रणस्थलमें आई. शूकर रूपिणी वाराही अतिऊंचे प्रेतासनपर विराजमान हो रणस्थलमें उपस्थित हुई ॥ २४ ॥ नारसिंही नृसिंहके समान देहधारण करके वहां आई. यमकी शक्ति यमके समान

भयानक रूप धारण कर भैंसेकी पीठपर चढ़ हाथमें दंड लिये ॥ २५ ॥ कुछेक हँसती हुई समरस्थलमें आई. इसीप्रकार मदोन्मत्ता कौबेरी शक्ति, वारुणी शक्ति ॥ २६ ॥ और अन्यान्य सब शक्तियाँ तदनुयायी रूप वाहन और भूषणोंसे सज्जित हो अपनी सेनाके सहित समरमें आने लगीं. देवी उनको आयी हुई देखकर अत्यानन्दित हुई ॥ २७ ॥ देवता भी स्वस्थचित्त होकर हर्ष प्रकाश करने लगे. किन्तु दानव यह देखकर बहुत भयभीत हुए. सब लोकोंके मंगलकारक शंकरने तिसकाल उन शक्तियोंको संग ले ॥ २८ ॥ समरस्थलमें उपस्थित हो चण्डिका देवीसे कहा. शुंभ निशुंभ तथा और जो सब दानव इस समरमें आये हैं, देवताओंका कार्य साधन करनेके लिये उन असुरोंका शीघ्र संहार करो. संपूर्ण दानवकुलका विनाश करके जगत्की भयसे रक्षा कर ॥ २९ ॥ ३० ॥ शक्तियें अपने अपने स्थानको जाय देवता यज्ञभोजी ब्राह्मण लोग यजन कार्यमें निरत ॥ ३१ ॥ और स्थावर जंगम इत्यादि सब प्राणी परम संतुष्ट हो उत्पात और अतिवृष्टि अनावृष्टि इत्यादि सब ईति शलभादिभय दूर हो ॥ ३२ ॥ मेघ नियमित समयमें जलवृष्टि करैं और कृषिकार्यमें बहुत सस्य उत्पन्न हो. व्यासजी बोले हे महाराज ! सर्व लोकोंके मंगलदायक देवेश शंकरने जब इसप्रकार कहा ॥ ३३ ॥ तब चंडिका देवीके शरीरसे एक अतिअद्भुत शक्ति निकली उसकी आकृति अत्यन्त भीषण और प्रचंड थी उसके चारोंओर शत शत शिवा घोरतर भीषण शब्द करनेलगीं ॥ ३४ ॥ तब उस घोररूपा शक्तिने कुछेक हँसते हँसते पञ्चाननसे कहा हे देवदेव ! आप दैत्योंके अधिपति शुंभके निकट अभी जाइये॥ ३५॥ हे कामनाशन ! आप मेरे दूतकार्यमें तत्पर हूजिये. हे शंकर! मेरे वचनानुसार मदगर्वित कामातुर दैत्यपति शुंभ और निशुंभसे कहिये कि॥ ३६॥ तुम देवताओंका राज्य छोड़कर अभी पातालमें प्रवेश करो. देवता स्वर्गमें जाकर सुखपूर्वक वास करैं इन्द्र अपने सुशोभित आसनको प्राप्त हो ॥ ३७॥ और अधिक क्या कहूं? देवता स्वर्गस्थान और अपना अपना यज्ञभाग पावें और यदि तुमको जीवनकी नितान्त वासना हो॥ ३८॥ तो जहां दानवलोग वास करते हैं, तुम अभी उस पातालमें प्रवेश करो. नहीं तो यदि मरनेके लिये तुम्हारी सेनासहित संग्राम करनेकी इच्छा है तो शीघ्र रणस्थलमें आओ ॥ ३९ ॥ तुम्हारा मांस भक्षण करके मेरी शिवागण तृप्त हों. व्यासजी बोले हे महाराज ! उनके इसप्रकार वचन सुन शूलपाणिने शीघ्रतासे ॥ ४० ॥ उसी समय सभामें बैठेहुए दानवराज शुंभके निकट जाकर कहा. शिव

बोले हे राजन्! मैं त्रिपुरासुरका अन्तक स्वयं हर हूं, इस समय अम्बिका देवीका दूत होकर ॥ ४१ ॥ तुम्हारे सब विषयोंमें हित साधन करनेकेलियेही तुम्हारे पास आया हूं. वीरवर बलि और प्रह्लाद जिस स्थानमें वास करते हैं, तुम स्वर्गराज्य और मर्त्यलोक राज्यको त्यागकर अभी उस पातालपुरमें चले जाओ अथवा यदि मृत्युकी इच्छा हो तो युद्धमें आओ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ तो मैं तुम सबको अभी समरमें विनष्ट करूंगी. हे राजन्! तुम्हारे कल्याणकी कामनासे महाराणी अम्बिका देवीने यह सब कहकर मुझको भेजा है ॥ ४४ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज! वे शूलधारी शंकर देवीके अमृतमय हितकर वे वचन प्रधान प्रधान दानवोंको सुनाकर मौन होगये ॥ ४५ ॥ जिस शक्तिने शंभुको दूत बनाकर दानवोंके पास भेजा था. संपूर्ण त्रिभुवनमें वह शिवदूतीके नामसे विख्यात हुई ॥ ४६ ॥ तब दैत्यलोग देवीके वे दुष्कर वचन शंकरके मुखसे सुन, कवच बांध और धनुष बाण धारण करके युद्धकी इच्छासे शीघ्र निकले ॥ ४७ ॥ दानवलोग वेगसहित रणस्थलमें आय आकर्णआकृष्ट शिलाशाणित तीक्ष्णबाणोंसे चण्डिकापर प्रहार करने लगे ॥ ४८ ॥ तब कालिका देवी किसीको शूलाघातसे किसीको शक्तिप्रहारसे और किसीको गदाघातसे विदीर्ण करके उनको भक्षण करतीं हुईं रणस्थलमें विचरण करने लगीं ॥ ॥ ४९ ॥ ब्रह्माणी समराङ्गणमें महाबल दानवोंके शरीरमें कमण्डलके जलका सिंचन करके उनके प्राण विनष्ट करने लगी ॥ ५० ॥ माहेश्वरी बैलपर चढ़ी अतिवेगसे त्रिशूलद्वारा दानवोंको प्रहार करके पृथ्वीमें गिराने लगीं ॥ ५१ ॥ वैष्णवी गदाघातसे अनेक दैत्योंका प्राणविनाश और चक्रप्रहारसे अनेक दैत्योंके मस्तक काटने लगीं ॥ ५२ ॥ इन्द्राणी ऐरावतके करप्रहारसे पीड़ित प्रधान प्रधान दानवोंपर वज्रप्रहार करके उनको पृथ्वीपर गिराने लगीं ॥ ५३ ॥ वाराही क्रोधके वशीभूत हो दाँतोंके अग्रभाग और तुण्डप्रहारसे शत शत दैत्य दानवोंको शमन-सदनमें प्रेरण करने लगीं ॥ ५४ ॥ नारसिंही तीक्ष्ण नखोंके द्वारा दानवश्रेष्ठोंको विदीर्ण करके भक्षण करती हुई समरस्थलमें विचरण और वारंवार घोर शब्द करने लगीं ॥ ५५ ॥ शिवदूती अट्टहास द्वारा दानवोंको जैसेही पृथ्वीपर गिराती थीं वैसेही कालिका और चंड़िका तत्काल उनको भक्षण करने लगीं ॥ ५६ ॥ देवताओंके हितकी कामनासे उस समरमें कौमारी मयूरपर चढ़ी शिलापर पैनाये बाण कर्णपर्यन्त आकर्षण कर शत्रुसंहार करने लगीं ॥ ५७ ॥ वारुणी शक्ति

सन्मुख संग्राममें दैत्योंको पाशद्वारा बांधकर गिराने लगीं. इससे वह चेतनारहित और मूर्च्छित हो पृथ्वीमें गिरने लगे॥ ५८॥ हे राजन्! इस प्रकार मातृका गणोंने जब दानवोंकी सेनाको विमर्दित किया तब वह अत्यन्त वीर्यवान् पराक्रान्त दानवोंकी सेना डरकर भागने लगी ॥ ५९ ॥ तब उस सेनारूपी सागरमें महान् विपद्सूचक बुम्बारव होने लगा. इधर उस समय सब देवता देवियोंके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ ६० ॥ असुरोंका घोरतर आर्त्तनाद और देवताओंकी जयध्वनि सुनकर दानवश्रेष्ठ रक्तबीज अत्यन्त कुपित हुआ ॥ ६१ ॥ विशेषकर तिस समय दानवोंकी सेनाको भागता और देवताओंको गर्जता देख वह महाबलवान् तेजस्वी दानव क्रोधमें भर शीघ्र समरमें आया ॥ ६२ ॥ तिसकाल रक्तबीज क्रोधसे लाल लाल नेत्रकर, अनेक अस्त्रशस्त्रोंके सहित रथमें बैठ अद्भुत ज्याशब्द करता हुआ. समरकी इच्छासे देवीके समीप आया ॥ ६३ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे भाषायां अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

ऊनत्रिंशोऽध्यायः २९.

व्यासजी बोले हे राजन्! देवदेव महादेवजीने महावीर रक्तबीजको जिसप्रकार अद्भुत वर दिया था उस विषयको कहता हूं, आप मन लगाकर सुनिये ॥ १ ॥ जिस समय इस महावीरके शरीरसे रक्तबिन्दु गिरेंगे उसी समय उस रक्तसे उसीकी समान रूपवान् ॥ २ ॥ और पराक्रमशाली असंख्य दानव उत्पन्न होंगे. पूर्वकालमें रुद्रदेवने उसको यह अद्भुत वर दिया था ॥ ३ ॥ वही दानव इस वरके प्रभावसे दर्पित हो कालिकाके सहित अम्बिका देवीको मारनेके लिये क्रोधित हो महावेगसे संग्रामस्थलमें आया ॥ ४ ॥ उस दैत्यवरने कमलनयना वैष्णवी शक्तिको गरुडपर विराजमान देख उसपर शक्तिसे प्रहार किया ॥ ५ ॥ तब वैष्णवीने शक्तिके सहित गदाद्वारा उस शक्तिको निवारण करके महाअसुर रक्तबीजपर सुदर्शन चक्रसे प्रहार किया ॥ ६ ॥ उसका देह चक्रप्रहारसे आहत होनेपर वज्राहत गिरिशृंगसे जिस प्रकार गेरूकी धारा निकलती है इसीप्रकार उसके देहसे शोणितकी धारा निकलने लगी ॥ ७॥ उस समय उसके रक्तकी बूँदें पृथ्वीके जिस स्थानमें गिरीं उसी स्थानमें तदाकार हजार हजार पुरुष तत्काल उत्पन्न हुए॥ ८॥ इन्द्राणीने क्रोधित होकर उस

भयंकर रक्तवीज असुरको वज्रसे प्रहार किया, तब उसके उस देहसे शोणितकी धारा निकलने लगी ॥ ९ ॥ रक्तके गिरतेही उसके शरीरकी समान वीर्यवान् रूपसंपन्न आयुधधारी युद्धदुर्मद अनेक रक्तबीज रुधिरसे उत्पन्न होने लगे ॥ १० ॥ तब ब्रह्माणीने कुपित होकर ब्रह्मदण्डसे उसको अतिबलसहित प्रहार किया. माहेश्वरीने शूलप्रहार करके दानवोंको विदीर्ण किया ॥ ११ ॥ नारसिंहीने नखाघातसे उस महासुरको विद्ध किया. वाराहीने क्रोधित होकर तुण्डाघातसे उस दानवाधमको आहत किया ॥ १२ ॥ इसीप्रकार कौमारीने भी इसके वक्षस्थलमें शक्तिप्रहार किया, तब दानवप्रवर क्रोधित हो निशित बाणोंकी वर्षा कर उन सबकोही विद्ध करने लगा ॥ १३ ॥ इस महाअसुरने गदा शक्ति इत्यादि अस्त्रोंके प्रहारसे सब मातृकाओंको पृथक् पृथक् विद्ध किया, तब शक्तियें भी उससे प्रकोपित होकर बाणोंके प्रहारसे उसको विद्ध करने लगी ॥ १४ ॥ चण्डिका देवीने कुपित होकर शित बाणोंसे उसके बाणोंको खंड खंड कर अपने बाणोंसे उसपर दारुण प्रहार किया ॥ १५ ॥ हे महाराज! ऐसे भारी प्रहारसे उसके शरीरसे जैसेही अधिक समान सहस्र सहस्र असुर उस रुधिरसे प्रादुर्भूत हुए ॥ १६ ॥ अधिक क्या उस शोणितके प्रहारसे जो रक्तबीज उत्पन्न हुए उनसे संपूर्ण जगन्मण्डल आच्छन्न होगया. तब वह भी सब कवचसे अंगोंको ढक आयुध ग्रहण कर अत्यन्त अद्भुत युद्ध करने लगे ॥ १७ ॥ अब अनेक रक्तबीज उत्पन्न होकर देवीको प्रहार करने लगे. तब देवता यह देखकर अति डरते हुए शोकसे अत्यन्त कातर होगये ॥ १८ ॥ और दुःखितचित्त हो आपसमें कहने लगे कि; यह रुधिरोत्पन्न महाकाय हजार हजार दानव दिखाई देते हैं, यह सब महावीर्यशाली हैं. अतएव यह इस समय किसप्रकार मरेंगे? ॥ १९ ॥ मातृका कालिका और अकेली चण्डिका इस समरस्थलमें वर्त्तमान हैं, यह इन सब दानवोंको जीतेंगी सो यह अत्यन्त कष्टकर बात है, इसमें सन्देह नहीं॥ २० ॥ और यदि इसी समय शुंभ वा निशुंभ सेना लेकर सहसा युद्धमें आजाय, तो महाअनर्थ उपस्थित होगा इसमें संशय नहीं है ॥ २१ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज! देवता जब इसप्रकार भयसे उद्विग्न हो चिन्ता करनेलगे तब अम्बिका देवीने कमलनयना कालीसे कहा ॥ २२ ॥ हे चामुण्डे! तुम शीघ्र मुख फैलाओ मैं जब अस्त्रसे रक्तबीजपर प्रहार करूं तब उससे जैसेही रक्तकी बूँदें निकलें तुम तत्काल उनको पान करो ॥ २३ ॥ मैं तीक्ष्ण बाण गदा शक्ति और मूशलके

प्रहारसे रक्तोत्पन्न दानवोंको अभी हनन करूंगी. तुम उन दानवोंको इच्छानुसार भक्षण करके इस रणस्थलमें विचरण करती रहो ॥ २४ ॥ हे विशाललोचने! अधिक और क्या कहूं तुम उसके रुधिरकी धारा इस प्रकार पीना कि, एक बूँदमात्र भी पृथ्वीमें न गिरै ॥ २५ ॥ ऐसा होनेसेही इस दानवको भक्षित होनेपर फिर अपर दानव उत्पन्न नहीं होसकेंगे. अतएव इसप्रकारही यह अवश्य नाशको प्राप्त होगा. इसके अन्यथा होनेसे यह कभी नहीं मरेगा ॥ २६ ॥ मैं रक्तबीजको प्रहार करती हूं और तुम शत्रुके मारनेमें यत्नवान् होकर तत्काल सब रुधिर पान करो ॥ ॥ २७ ॥ हे चामुण्डे! इस प्रकार दैत्यदलनिर्मूल कर इन्द्रको निष्कण्टक स्वर्गका राज्य दे फिर स्थिर हो हम सब सुखपूर्वक प्रस्थान करैं ॥ २८ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज! चण्डविक्रमा चामुण्डा देवी अम्बिकाके इसप्रकार वचन सुनतेही रक्तबीजके देहसे निकली रुधिरधारा पान करने लगी ॥ २९ ॥ अम्बिका देवी मूशल और खड्गसे उसके शरीरको खंड खंड करनेलगी और वह कृशोदरी चामुण्डा भी उस खंडितदेहको तत्काल भक्षण करने लगी ॥ ३० ॥ तब रक्तबीजभी कुपित हो गदाघातसे चामुण्डाको प्रहार करने लगा. चामुण्डा इसप्रकार गुरुतर आहत होकर भी रुधिरकी धारा पान करके उसके अंग प्रत्यङ्गको भक्षण करने लगी ॥ ३१ ॥ हे महाराज! जो सब क्रूर प्रकृति महाबलवान् दानव रक्तबीजके रुधिरसे उत्पन्न हुए थे कालिका देवीने उनका रुधिर पान किया और अम्बिकाने उनको निपतित किया ॥ ३२ ॥ इसप्रकार शोणितसम्भूत दानवोंके भक्षित होनेपर जो प्रकृत रक्तबीज था अम्बिका देवीने उसको भी खड्गसे खंड खंड करके गिरा दिया ॥ ३३ ॥ तब उस महासुर रक्तबीजको समरमें देवीके हाथसे निहत हुआ देख अन्यान्य दानवलोग भयसे कंपितकलेवर हो भागने लगे ॥ ३४ ॥ अस्त्र शस्त्रहीन विचेतन प्रायः रुधिराक्तकलेवर उस संपूर्ण सेनाने अत्यन्त विह्वलहो "हाय क्या हुआ???" इस प्रकार आर्त्तनाद करते करते दैत्यपति शुंभसे जाकर कहा ॥ ३५ ॥ हे राजेन्द्र! अम्बिका देवीने रक्तबीजको मार डाला है और चामुण्डाने उसका सभी रक्त पान किया है ॥ ३६ ॥ प्रचण्डवेगशाली देवीके वाहन सिंहने अन्यान्य वीर्यशाली दानवोंको निहत किया है. और कालीने बची हुई सेनाको जीत लिया है ॥ ३७ ॥ हे दानवेन्द्र! युद्धका यह सब वृत्तान्त और चण्डिका देवीके समराङ्गणके वे अद्भुत चरित्र कहनेके लियेही हम भागकर आपके पास

आये हैं ॥३८॥ हे महाराज! हमारे विचारसें क्या दैत्य, क्या दानव, क्या गंधर्व, क्या असुर, क्या यक्ष, क्या पन्नग, क्या चारण, क्या राक्षस, क्या उरग कोई इस रमणीके जीतनेमें समर्थ नहीं हो सकेगा ॥ ३९ ॥ हे राजेन्द्र ! इन्द्राणी इत्यादि अपर सब शक्तियें उस समरस्थलमें आई हैं वह अपने अपने वाहनपर चढ़ कर अनेक प्रकारके आयुधोंसे युद्ध करती हैं ॥ ४० ॥ हे दानवेन्द्र! अधिक और क्या कहें उन सबने एकत्र मिलकर उत्तमोत्तम आयुधोंसे सब दानवोंकी सेना और उस रक्तबीजको भी विना विलम्ब मार डाला है ॥ ४१ ॥ उस अमित प्रभाव सिंहने भी समरमें अनेक दानवोंको निहत किया है. हे राजन्! एक मात्र उस देवीका ही भार सहना कठिन था इसपर भी अब वह देवताओंकी शक्तियोंसे मिलित होकर युद्ध करती है ॥ ४२ ॥ अतएव मंत्रियोंके संग परामर्श करके जो युक्ति संगत हो वही करो. हमारे विचारमें उससे शत्रुता छोड़कर संधि करनाही तुम्हारे पक्षमें अति उत्तम है ॥ ४३ ॥ हे महाराज! विचार कर देखिये कि, उस रमणीने सब दानवोंको मार फिर रक्तबीजका सब शोणित पान कर उसको भी मार डाला. इसकी अपेक्षा आश्चर्यका विषय और क्या है? ॥ ४४ ॥ हे राजन्! अम्बिका देवीने अपरापर सब दैत्योंकोही रणस्थलमें विनष्ट किया है व चामुंडाने उनका रुधिर और मांस सभी भक्षण किया है ॥ ४५ ॥ हे महाराज! यह सब देखकर विचार होता है कि, अम्बिका देवीकी सेवा या पातालपुरमें भागना यह दोनों कार्य हमारे पक्षमें श्रेष्ठ हैं. किन्तु उससे युद्ध करना कभी बोध नहीं होता ॥४६॥ यह सामान्य स्त्री नहीं है, वरन् निस्संदेह महामाया है. केवल देवताओंका प्रयोजन सिद्ध ही प्रगट होकर असुरकुलक्षय करती हैं ॥ ४७ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज दैत्यपति शुंभ कालकी मायासे मोहित होनेके कारण मुमूर्षु हुआ था, इसलिये उन इस प्रकार प्रकृत वचन सुनकर भी क्रोधसे कंपिताधर हो उसने इसप्रकार दिया ॥ ४८ ॥ तुम भयातुर होकर चंडिकाकी शरणमें जाओ. अथवा भागो, किन्तु मैं उद्योगी होकर उसका अभी विनाश करूंगा॥४९॥मैंने सब देवताओंको जीतकर विपुल साम्राज्य भोग किया है. अब क्या एक सामान्य भयसे उद्विग्न होकर पातालमें प्रवेश करूं? ॥ ५० ॥ मैंने अपने सेवक प्रधान प्रधान वीरोंको समरमें संहार कराया. विशेष कर अपने उस विपुल छोड इस समय अपने बाणोंकी रक्षाके लिये किसप्रकार भागूं? ॥ ५१ ॥

कालसे कल्पित प्राणियोंकी मृत्यु अनिर्वार्य है. जन्मग्रहण करते ही जीवको मरण-भय उपस्थित होता है, तो कौन पुरुष मृत्युके भयसे दुर्लभ यशके त्यागनेमें समर्थ होता है? ॥ ५२ ॥ हे निशुंभ ! मैं रथमें चढ़कर अभी समरमें जाता हूं और युद्धमें उसको मारकर लौटूंगा और यदि उसको संग्राममें नहीं मारसका तो फिर लौटकर नहीं आऊंगा ॥५३॥ हे वीरवर ! तुम सेना सहित समरमें मेरे पार्ष्णिरक्षक होओ, और अतिवेगसे तीक्ष्णवाण प्रहार कर उस स्त्रीको यमसदनमें प्रेरण करो ॥ ५४ ॥ निशुंभने कहा मैं अभी समरमें जाकर प्रथम उस दुष्टा कालिकाको मारता हूं. और फिर उस अम्बिकाको लेकर अभी आऊंगा ॥ ५५ ॥ हे राजेन्द्र ! मेरे बाहुबलसे विश्व (संसार) वशीभूत हुआ है.सुतरां मेरे सन्मुख वह बाला अतिसामान्य है, अतएव आप इस तुच्छ रमणीके लिये वृथा चिन्ता न कीजिये ॥ ५६ ॥ हे भ्राता ! उस मानिनी स्त्रीको मैं यथेष्ट सन्मानसहित लें आऊंगा आप कठिन मानसिक व्यथा त्यागकर अनुत्तम भोग, भोग कीजिये॥५७॥ हे राजन् ! मेरे रहते आपको समरमें जाना उचित नहीं है मैं युद्धमें जाकर अभी आपके लिये जयलक्ष्मी लाऊंगा ॥ ५८ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! छोटे भाई निशुंभने अपने बाहुबलसे गर्वित हो, बड़े भ्राता शुंभसे इस प्रकार कहकर कवचद्वारा शरीरआच्छादन किया और अनेकप्रकारके आयुध इत्यादि युद्धकी सब सामग्रीसे सुसज्जित हो विशालरथमें बैठकर ॥ ५९ ॥ शीघ्र युद्धमें गया । तब बंदी और सूतगण उसकी स्तुति करने लगे और अनेक प्रकारके माङ्गल्यकार्य होने लगे ॥ ६० ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषायां ऊनत्रिंशोऽध्यायः॥ २९ ॥

त्रिंशोऽध्यायः ३०.

व्यासजी बोले हे महाराज ! तब वह पराक्रमशाली निशुंभ युद्धमें जीत हो वा न हो, मृत्यु होगी यह स्थिरकर अतिउत्साहसहित सब सेनाको संग ले देवीसे संग्राम करनेके लिये गया ॥ १ ॥ इधर दैत्यपति शुंभ भी अपनी सेनासहित निशुंभके पीछे आया । शुंभ धर्मयुद्धमें अति पण्डित था, इसकारण उसकाल स्वयं युद्ध न करके केवल उनका युद्ध देखने लगा ॥ २ ॥ इन्द्र इत्यादि देवता और यक्षगण उस घोर-तर समर देखनेकी इच्छा कर मेघमालमें आच्छन्न हो आकाशमंडलमें अवस्थिति

करने लगे ॥ ३ ॥ अनन्तर निशुंभ रणस्थलमें उपस्थित हो शृंगनिर्मित दृढ धनुष ग्रहणकर जगदम्बिकाको भय दिखाय बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ ४ ॥ चण्डिका निशुंभको श्रेष्ठ धनुष ले बाणोंकी वर्षा करता हुआ देखकर मृदु मन्दस्वरसे वारं वार हास्य करने लगी ॥ ५ ॥ और फिर कालिकासे कहा हे काली! इसकी मूर्खता देखो. यह मृत्युकी इच्छा करकेही इस समय मेरे निकट आया है ॥ ६ ॥ यह मेरी मायासे ऐसा मोहित है कि, दानवोंका यह घोरतर क्षय और रक्तबीजका निधन देख अब भी जयकी आशा करता है ॥ ७ ॥ आशा ऐसीही बलवती है कि, वह कभी प्राणियोंको नहीं छोड़ती । क्या आश्चर्य है ? स्वपक्षीय बलमेंसे कितनेही भग्न, कितनेही नष्ट, कितनेही चेतनारहित और कितनेही बलहीन हुए हैं ॥८॥ यह प्रत्यक्ष देखकर भी यह जयाशारूपी पाशसे बँधकर मरनेके लिये आये हैं. हे काली! अब मैं समरमें निःसन्देह इस शुंभ और निशुंभको वध करूंगी ॥ ९ ॥ इनका मृत्यु निकटवर्ती है, अतएव यह दैवमायासे मोहित होकरही मेरे निकट उपस्थित हुए हैं, इसकारण अब सब देवताओंके सामनेही मैं इनको निहत करूंगी ॥ १० ॥ व्यासजी बोले हे महाराज! चण्डीने कालिकासे यह बात कहतेही सहसा कानों-पर्यन्त धनुषको खैंच मारे बाणोंके पुरोवर्त्ती शुंभको ढकदिया ॥ ११ ॥ निशुंभने भी तत्काल शाणित बाणोंसे उनके वह सब बाण काट दिये । तब इसप्रकार उनका परस्पर अत्यन्त भयानक युद्ध होनेलगा ॥ १२ ॥ इसी समयमें भगवतीके सिंहने, केशर कंपायमान करतेहुए बलवान् हाथी जिसप्रकार सरोवरमें प्रवेश करता है, इसीप्रकार उस सेनारूपी समुद्रमें अवगाहन किया ॥ १३ ॥ तिसकाल जो जो दानव उसके सामने पड़ने लगे, वैसेही वह नख और दाँतोंके प्रहारसे उनके सब अंगोंको विदीर्ण कर मदमत्त हाथीकी समान उनका भक्षण करने लगा ॥ १४ ॥ उसके शरीरके इसप्रकार सैन्यविमर्दन करनेपर फिर निशुंभ उत्कृष्ट धनुषको ग्रहण करके दौड़ा ॥ १५ ॥ तब अन्यान्य शत शत दानव पतिभी क्रोधसे लाल लाल नेत्र कर दाँतोंसे होठोंको काटते हुए देवीको मारनेके लिये वहां आये ॥ १६ ॥ इधर शुंभ कालिकाको निहत कर जगदम्बिकाको ग्रहण करनेकी इच्छासे सेनाको संग ले अत्यन्त वेगसहित वहां आया ॥ १७ ॥ शुंभने रणस्थलमें आकर देखा कि जगदम्बिका सन्मुख हो विराजमान है, वह शृंगाररसोचित कमनीय कान्तिधारण करने परभी रौद्ररसमें परिपूर्ण हो रही हैं ॥ १८ ॥ उन त्रिभुवनसुन्दरी विपुल

अपांगवाली भगवतीके दोनों नेत्र स्वाभाविक रक्तवर्ण होनेपर भी उसकाल कोपके कारण अत्यन्त लोहित होगये थे॥ १९॥ शुंभने उनका ऐसा रूपलावण्य देखकर भी विवाहकी इच्छा और जयेच्छाको त्याग किया और मरनेमें स्थिरनिश्चय हो धनुष धारण कर स्थिति करने लगा॥ २०॥ तब देवी समरस्थलमें दानवको इस प्रकार स्थित देखकर कुछेक हास्यसहित संपूर्ण दानवोंके सन्मुख कहने लगी ॥ २१ ॥ रे पामरगण ! यदि तुमको जीवित रहनेकी इच्छा हो तो इसी स्थानमें सब अस्त्र शस्त्र छोड़कर पाताल अथवा समुद्रमें भाग जाओ ॥ २२ ॥ वा मेरे बाणोंके प्रहारसे रणस्थलमें विनष्ट हो, स्वर्गसुख प्राप्त कर निर्भय क्रीडारसका अनुभव करो ॥ २३ ॥ एक समय वा एकाधारमें किसी प्रकारसे कातरता और वीरता प्रकाशित नहीं होती. इस कारण मैं सबको ही अभय देती हूं, अब जिस स्थानमें सुख हो उसी स्थानमें चले जाओ ॥ २४ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! वह मदगर्वित निशुंभ देवीके इसप्रकार वचन सुन निशित खड्ग और अष्टचन्द्रक शोभायमान चर्म ढाल लेकर दौड़ा ॥ २५ ॥ और प्रथम तो असिद्वारा मदमत्त सिंहके मस्तकमें वेगसहित प्रहार किया और फिर वह असि अत्यन्त बलपूर्वक घुमाय जगदम्बिकाके ऊपर चलाई ॥ ॥ २६ ॥ तब देवीने अपनी गदासे असिका आघात निवारण करके परशुद्वारा उसके बाहुमूलमें प्रहार किया ॥ २७ ॥ वीरवर निशुंभने बाहुमूलमें आहत होकर भी उस वेदनाको सहकर फिर चण्डिकाको खड्गद्वारा प्रहार किया ॥ २८ ॥ तब देवीने ऐसी घोर घंटाध्वनि करी कि उससे संपूर्ण दैत्य डरगये । फिर उन्होंने निशुंभको मारनेकी इच्छासे वारंवार मधुपान किया ॥ २९ ॥ हे महाराज ! इस प्रकार परस्पर जयाभिलाषी देवता और दानवोंका अत्यन्त भयंकर युद्ध होने लगा॥ ॥ ३० ॥ तिसकाल मांसभक्षक क्रूरप्रकृति सारमेय (श्वानसमूह) जम्बुक, गृध्र, कंक (पक्षिविशेष) और वायस इत्यादि पक्षिगण अत्यन्त संतुष्ट होकर रणस्थलमें नाचने लगे ॥ ३१ ॥ असंख्य दानव हाथी और घोड़ोंके देह रुधिर धारणमें भीजकर समरमें गिरनेसे रणभूमिने अत्यन्त भयंकर आकार धारण किया ॥ ३२ ॥ तब निशुंभ दानवोंको गिरता हुआ देखकर अत्यन्त क्रोधके वशीभूत हुआ और दारुण गदा लेकर तत्काल चण्डिकाके निकट दौड़ा ॥ ३३ ॥ उस मदगर्वित असुरने प्रथम तो सिंहके मस्तकमें गदाप्रहार करके हास्य किया और उसी गदासे देवीपर प्रहार किया ॥ ३४ ॥ देवीने भी पुरोवर्त्ती निशुंभको प्रहार करते देख अत्यन्त

कुपित होकर कहा ॥ ३५ ॥ रे मन्दमते ! जबतक मैं इस खड्गसे तेरा गला नहीं काटती हूं तबतक अपेक्षा कर, अब तू शीघ्रही छिन्नस्कन्ध होकर शमनभवनमें जायगा ॥ ३६ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! चण्डिका देवीने यह बात कहतेही अत्यन्त सावधानीसे कृपाणद्वारा तत्काल उस निशुंभका मस्तक काट डाला॥ ३७॥ देवीके प्रहारसे मस्तक कटजानेपर वह अतिदारुण कबंध गदा हाथमें लेकर प्रचण्ड वेगसे भ्रमण करने लगा ! तब देवता उसकी ऐसी अवस्था देखकर अत्यन्त भीत हुए ॥ ३८ ॥ फिर देवीने शाणित बाणोंसे उस कबंधके हाथ और पाँव काट डाले, तब वह पापिष्ठ जीवनविहीन होकर पर्वतकी समान पृथ्वीमें गिरगया ॥ ३९ ॥ उस भीमपराक्रम दानव निशुंभके मरनेपर उसकी भय कंपित सेनामें महान् हाहाकार शब्द हुआ ॥ ४० ॥ तब सब सैनिक रुधिरकी धारामें प्लावित होकर समस्त आयुध परित्यागपूर्वक आर्त्तनाद करते करते असुरराज शुंभके समीप भागकर गये ॥ ॥ ४१ ॥ उस शत्रुनिषूदन शुंभने उनको आया हुआ देखकर पूँछा हे दैत्यगण ! इस समय निशुंभ कहां है ? तुम किसलिये रणसे भागकर चले आये हो ? ॥ ४२॥ उन सैनिकोंने शुंभके इसप्रकार वचन सुनकर प्रणामपूर्वक कहा हे राजन् ! आपके भाई निशुंभने निहत होकर रणभूमिमें शयन किया है ॥ ४३ ॥ हे महाराज ! जो सब वीर दानव तुम्हारे भ्राताके अनुगामी हुए थे, देवीने उनको भी मारडाला है, केवल हमलोग ही आपसे यह वृत्तान्त कहनेके लिये यहां आये हैं ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! सम्प्रति देवीके शस्त्रप्रहारसे निशुंभ मृत्युको प्राप्त हुए हैं। इसकारण अब आपके उस संग्रामस्थलमें जानेका उपयुक्त समय नहीं है, यही हमको बोध होता है ॥ ४५ ॥ देवकार्यके मिषसे सबकी कारणरूपिणी कोई उत्कृष्ट रमणी दानवकुलका संहार करनेको आई है, यह आप निश्चय जानिये ॥ ४६ ॥ यह देवी कभी सामान्य रमणी नहीं है.यह निस्सन्देह परमा शक्ति हैं, इनके चरित्रचिन्ताके अगोचर हैं.अधिक क्या इन अनुत्तमा शक्तिको देवतालोग भी कभी जाननेमें समर्थ नहीं होते ॥४७॥ जितनी माया हैं, यह देवी भलीभाँति उनका मूल जानती हैं. अतएव उसी मायाके बलसे इस समय नानाप्रकारके रूप धारण किये हैं। उन मंगलमयीने विचित्र भूषणोंसे भूषित होकर समस्त आयुध धारण किये हैं ॥ ४८ ॥ यह देखनेसे दूसरी कालरात्रिकी समान भयंकर बोध होती है.इनके चरित्रोंका जानना अत्यन्त कठिन है, सर्वसुलक्षणोंसे विभूषित यह पूर्णा प्रकृति कठिन कार्यके करनेमें भी समर्थ हैं ॥ ४९॥

अधिक क्या कहैं? अद्भुत स्वभावा वह देवी देवताओंका कार्य साधन करती हैं. और देवतालोग आकाशमें टिकेहुए निडर होकर उनका स्तव करते हैं ॥ ५० ॥ हे महाराज! अब देहकी रक्षा करनाही प्रधान धर्म है. क्योंकि इस देहकी रक्षा होनेसेही फिर जब समय हमारे अनुकूल होगा ॥ ५१ ॥ तब आपकी भी समरमें जय होगी. इसमें सन्देह नहीं. देखो, काल किसी समय बलवान्‌को दुर्बल करता है ॥ ५२ ॥ और समयान्तरमें उसकोही सबल करके विजयके निमित्त उद्यत करता है । काल किसी समय दाताको भिक्षुक ॥ ५३ ॥ और समयान्तरमें उस भिक्षुकको धनदाता करता है अधिक क्या ? ब्रह्मा विष्णु, महेश्वर ॥ ५४ ॥ और इन्द्रादि देवता सभी कालके वशीभूत हैं. अतएव कालही स्वयं सब विषयोंका प्रभु है. इसकारण हे महाराज! आप कालकी प्रतीक्षा कीजिये इसका समय काल देवताओंके अनुकूल और आपके प्रतिकूल है ॥ ५५ ॥ इस लियेही देवताओंके सन्मुख हो वह काल अब दैत्योंका नाश करता है किन्तु हे भूपते! कालकी गति कभी एक प्रकारकी नहीं है ॥५६॥ बरन् उसके कार्य नानाप्रकारके होते हैं, यह आप निश्चय जानिये.काल कभी मनुष्योंको उत्पन्न करता है और कभी उनका संहार करता है ॥ ५७ ॥ हेमहाराज! उत्पत्तिका काल एक और नाशका एक दूसरा है यह तो आपने प्रत्यक्षही देवी और इन्द्रादि विषयमें देखा है ॥ ५८ ॥ क्योंकि जब काल आपके अनुकूल था. तब आपने इन्द्रादि सब देवताओंको करद किया था, अब वह कालही आपके प्रतिकूल हुआ है; इस कारण एक सामान्य अबला नारी भी बलवान् असुरोंको निहत करतीं है ॥ ५९ ॥ अतएव काल सदाही शुभ वा अशुभ करता है. सनातन देवता अथवा वह काली इसका कारण नहीं है ॥ ६० ॥ हे राजन्! वर्त्तमान काल आपके और दानवोंके अनुकूल नहीं है, अतएव आप इसको जानकर जो इच्छा हो सो कीजिये ॥ ६१ ॥ देखो, पूर्वकालके समय इन्द्र, विष्णु, रुद्र, वरुण, यम इत्यादि प्रधान प्रधान देवता भी आयुधत्यागपूर्वक रणमें पीठ दिखाय आपके सन्मुखसे भागे थे ॥ ६२ ॥ उसी प्रकार आपभी अब जगत्‌को कालके वशीभूत जान रणसे भागकर शीघ्र पातालमें प्रवेश कीजिये। क्योंकि जीवित रहनेपर पुनर्वार सब सुख प्राप्त होंगे ॥६३॥ और यदि आप मृत्युके कराल गालमें गिरगये तो वह आपके शत्रु आनंदित हो,मंगलसूचक गान करते हुए निर्भय सर्वत्र विचरण करेंगे६४॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे भाषायां त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशोऽध्यायः ३१.

व्यासजी बोले हे महाराज ! दानवपति शुंभ उन सैन्यगणोंके इसप्रकार वचन सुन क्रोधसे इधर उधर नेत्र चलाय तत्काल उनसे कहने लगा ॥ १ ॥ रे मूढगण ! तुम क्या कहते हो ? मैं क्या यह अकथनीय घृणित कार्य करके जीवन धारण करनेकी इच्छा करसक्ता हूं ? कहो, मैं मंत्री और भ्राताओंको निहत करके अब निर्लज्ज हो किसप्रकार विचरण करनेमें समर्थ हूंगा ? ॥ २ ॥ कालही अच्छे वा बुरे कार्यका प्रधान कर्त्ता है, अतएव वह रूपविहीन कालही यदि अच्छा वा बुरा करनेका अलंबनीय प्रभु है तो फिर मेरे चिन्ता करनेसे क्या फल होगा ? ॥ ३ ॥ जो होनहार है वह हो, जो करनेवाला है वह करे, मुझको मरण वा जीवन किसी बातकी चिन्ता नहीं है ॥ ४ ॥ विशेष कर वह काल आराधित होनेपरभी मरण अथवा जीवनके अन्यथा करनेमें कभी समर्थ नहीं होता । देखो, मेघ वर्षाकालमें वर्षा करके भी कभी कभी श्रावण मासमें वर्षा नहीं करते ॥ ५ ॥ और कभी कभी अगहन पौष माघ अथवा फाल्गुन इत्यादि अकालमेंभी अत्यन्त वर्षा करते हैं, अतएव स्पष्टजानाजाता है कि, मुख्यता नहीं है ॥ ६ ॥ बरन् काल केवल निमित्तमात्र है और दैवही कालकी अपेक्षा बलवान् है अतएव दैवनेही सब विश्व संसारको बनाया है. यह किसी प्रकारसे अन्यथा नहीं है ॥ ७ ॥ मैं दैवकोही श्रेष्ठ विचारता हूं. निरर्थक पुरुषकारको धिक्कार है. क्योंकि जिस निशुंभने सब देवताओंको जीत लिया था, अब उसकोही एक सामान्य रमणीने मार डाला ॥ ८ ॥ हाय ! यह महावीर रक्तबीज भी जब मृत्युको प्राप्त हुआ है, तब मैं कीर्त्ति विसर्जन करके किसप्रकार जीवनकी आशा करूं ? ॥ ९ ॥ जिन्होंने स्वयं विश्व (संसार) बनाया है, वे ब्रह्माभी अपनी आयुका अंतिम काल उपस्थित होनेपर तत्काल मृत्युको प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥ देखो, ब्रह्माके एक दिनमें चार हजार युग होते हैं और उस एक दिनमें ही चौदह इन्द्रोंका पतन होता है ॥ ११ ॥ इसीप्रकार इनका द्विगुण समय बीतनेपर विष्णुकी परमायु शेष होती है, और उनका द्विगुण काल बीतनेपर महादेवभी शान्तिलाभ करते हैं ॥ १२ ॥ इस दृश्यमान पृथ्वी, पर्वत, चन्द्र और सूर्य सबकाही विनाश होगा. विशेषकर दैवने सबकाही मरण स्थिर कर रक्खा है. अतएव रे मूढगण ! उस विषयमें मुझको कुछ

भी चिन्ता नहीं है ॥ १३ ॥ जीवके जन्म लेनेपर अवश्यही उसकी मृत्यु होगी और जीवका मरण होनेपर भी उसका फिर जन्म होगा इसमें सन्देह नहीं. अतएव इस नाशवान् शरीरसे स्थिर यशकी रक्षा करनाही मनुष्यका कर्त्तव्य है ॥ १४ ॥ मेरा रथ सज्जित करो, अब दैववशतः युद्धमें जय हो अथवा मरण हो, मैं शीघ्रही रणस्थलमें जाता हूं ॥ १५ ॥ अनन्तर शुंभ सैनिकोंसे इसप्रकार कह, रथमें चढ़ हिमालय पर्वतके जिस स्थानमें अम्बिका देवी विराजमान थी, उसी स्थानमें गया ॥ १६ ॥ तब हाथी, घोड़े, रथ और पैदलों सहित चार प्रकारकी असंख्य सेना आयुध धारण करके उसके संग चली ॥ १७ ॥ शुंभने हिमाचलमें जाकर उस जगदम्बिकाको देखा कि, वह हिमाचलके एक प्रदेशमें सिंहके ऊपर चढ़ी त्रिभुवन-मोहिनी कान्ति धारण करके विराजमान हैं ॥ १८ ॥ उनके अंग प्रत्यंग अनेक प्रकारके अलंकारोंसे सुसज्जित और संपूर्ण शरीरमें सुलक्षण देदीप्यमान हैं; आकाशमें स्थित देवता, गंधर्व, यक्ष और किन्नरगण ॥ १९ ॥ पारिजातके पुष्पोंसे उनकी पूजा करके स्तव करते हैं और वह देवी जयसूचक मनोहर घंटानाद और शंखध्वनि करती हैं ॥ २० ॥ शुंभ उनको देखतेही कामसे मोहित होगया और मन्मथशरसे विद्ध होकर मनमें चिन्ता करने लगा ॥ २१ ॥ अहो! यह अत्याश्चर्यका रूप लावण्य है!! इसका चातुर्य भी अद्भुत और विस्मयकर है!! क्या आश्चर्य है! सुकुमारता और समरसहिष्णुताका परस्पर विरोध होनेपर भी इसमें दोनोंही विद्यमान हैं ॥ २२ ॥ इसका शरीर अत्यन्त कोमल और अंग प्रत्यंग सब कृश हैं, तिसपरभी सम्प्रति नवीन यौवनका उदय हुआ है, तथापि इस बालाको किंचिन्मात्र कामभाव नहीं है, यह अत्याश्चर्यका विषय है, इसमें सन्देह नहीं ॥ २३ ॥ कामकामिनीकी समान अत्यन्त सुन्दरी और समस्त सुलक्षणोंसे विभूषित होकर भी प्रमोदादि त्यागकर यह अम्बिका इन महाबलवान् असुरोंका संहार करती हैं, यह अति आश्चर्यका विषय है इसमें सन्देह नहीं ॥ २४ ॥ जो हो, अब जिससे यह स्त्री मेरे वशीभूत हो, मुझको वही उपाय अवलम्बन करना चाहिये. इस मरालनयनाको वशमें करनेके लिये वशीकरणमंत्र भी मेरे निकट नहीं है ॥ २५ ॥ अथवा मेरे पास मंत्र रहनेसेभी क्या होगा? यह मदगर्विता बाला समस्त मंत्र स्वरूप है, अतएव उसी बलसे सब लोकोंको मोहित करती है, सुतरां यह वरवर्णिनी सुन्दरी किसप्रकार मेरे वशीभूत होगी? ॥ २६ ॥ साम, दान और भेदसे यह वीराङ्गना

वशमें होनेवाली नहीं है और अब समरस्थलसे भागकर पातालमें जाना भी युक्तिसंगत नहीं है ॥ २७ ॥ अतएव इस समय मेरा विषम समय उपस्थित है, अब क्या कर्त्तव्य है ? कहां जाऊं ? और यदि समर करनेपर इस स्त्रीके हाथसे मृत्यु हुई तो वह मृत्यु भी उत्तम नहीं है, बरन् उसमें यशकी हानिही होगी ॥ ॥ २८ ॥ क्योंकि वीरगण सन्मुख समबलके सहित परस्पर युद्ध करके जो मृत्युको प्राप्त होते हैं, ऋषियोंने उसी मरणको मङ्गलास्पद कहा है ॥ २९ ॥ देवताओंने इस स्त्रीको शतपुरुषोंकी अपेक्षा भी बलवती करके निर्माण किया है सुतरां यह नाममात्रकी अबला है कार्यमें इसके बलकी सीमा नहीं है. अतएव यह नारी हमारे कुलका क्षय करनेकेलियेही यहां आई है इसमें संदेह नहीं ॥ ३० ॥ अब सामवचन कहनेसे क्या फल होगा ? क्योंकि यह नारी हमारा विनाश करनेको ही आई है अतएव यह क्या सामवाक्योंसे प्रसन्न होगी ? ॥ ३१ ॥ यह रमणी अब अनेक प्रकारके अस्त्र और शस्त्रोंसे सुसज्जित रहती है तो दानद्वारा इसको वशीभूत करना कभी संभव नहीं है और सब देवता जब इसके वशीभूत हैं तो भेद अवश्यही विफल होगा ॥ ३२ ॥ इस कारण पलायन न करके समरमें मरनाही श्रेष्ठ है. अब दैववश जय हो वा मरण हो इसमें हमारे चिन्ता करनेकी कोई बात नहीं है ॥ ३३ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! शुंभ मनमें इसप्रकार विचार कर बलप्रकाश करनेमें उद्यत हुआ और युद्धके लिये स्थिर निश्चय हो सामने खड़ी देवीसे कहने लगा ॥ ३४ ॥ हे देवि ! तुम्हारे युद्ध करनेसे हानि नहीं है किन्तु हे कोमलाङ्गि ! तुम्हारा यह श्रम करना विफल होता है तुमको कुछ ज्ञान नहीं है क्योंकि जो नारीका धर्म नहीं है तुम उसकाही आचरण करती हो ॥ ३५ ॥ क्योंकि स्त्रियोंके दोनों नेत्रही बाण भ्रूयुगल शरासन, हावभाव शस्त्र और शृङ्गार-रसविचक्षण पुरुषही लक्ष्यस्थानीय हैं ॥ ३६ ॥ उनका अंगरागही युद्धका कवच, मनोरथही रथ और मृदु मधुरवाक्यालापही भेरी शब्द है. इनके अतिरिक्त स्त्रियोंके युद्धका दूसरा साज नहीं है ॥ ३७ ॥ अतएव हे कान्ते ! स्त्रीका अन्य अस्त्रधारण करना केवल विडम्बनामात्र है, इसमें सन्देह नहीं. स्त्रीका लज्जाही भूषण है किन्तु धृष्टता उसका भूषण कभी नहीं होसकता ॥ ३८ ॥ परमसुन्दरी स्त्रीभी यदि समरमें निहत हो तो वहभी कर्कशकी समान दिखाई देती है विशेष कर तुम जब धनुष खैंचोगी तब तुम्हारे दोनों स्तन किस प्रकारसे गुप्त रहेंगे ॥ ३९ ॥ जब गदा लेकर दौड़ोगी

तो तुम्हारी मन्थरगति कहाँ रहेगी ? हे सुन्दरि ! तुमको परामर्श देनेवाली कालिका और चामुंडा चतुर नहीं है ॥ ४० ॥ चण्डिका तुमको मंत्रणा देती है उसका स्वर अत्यन्त कर्कश है. अतएव वह किसप्रकार तुम्हारा लालन पालन करेगी ? इसके अतिरिक्त सब प्राणियोंको भयप्रद मृगराज तुम्हारा वाहन है. अतएव हे कान्ते ! तुम इन सबको छोड़कर मेरे निकट आओ ॥ ४१ ॥ हे वरवर्णिनि ! वीणाध्वनि त्यागकर तुम जो घंटाध्वनि करती हो यह तुम्हारे रूप और यौवनके अतिशय विरुद्ध है ॥ ४२ ॥ हे अभिमानिनि ! यदि तुमको समरकी इच्छा हो तो तुम कुत्सितरूप धारण करो. तुम्हारी आकृति क्रूर, वर्ण काककी समान काला हो विलोचती हो ॥ ४३ ॥ लम्बे दोनों पाँव, दीर्घ नख, कुत्सित दांत, विकट दोनों नेत्र, बिडालकी समान पिंगलवर्ण होवें. हे देवि ! तुम ऐसा कुत्सितरूपधारण करके स्थिरभावसे समरमें रहो ॥ ४४ ॥ हे मृगलोचने ! तुम प्रथम मुझसे कर्कश वचन कहो फिर मैं युद्ध करूंगा. तुमको रतिकी समान सुन्दरी देखकर मेरा हाथ रणाङ्गण में तुम्हारे ऊपर प्रहार करनेको अग्रेसर नहीं होता ॥ ४५ ॥ हे मृगलोचने ! रतिकी समान तुमको कैसे मारूं ? व्यासजी बोले हे भारतोत्तम ! जब शुंभने इसप्रकार वचन कहे तब जगदम्बिकाने उसको कामार्त्त देख ॥ ४६ ॥ कुछेक हँसकर यह बात कही देवी बोली रे मन्दात्मन् ! कामबाणोंसे मोहित होकर क्यों विषाद करता है ॥ ४७ ॥ मूढ ! यदि मुझको प्रहार करनेमें तेरा हाथ अग्रेसर नहीं होता तो इस कुरूपा कालिकाके संग अथवा चामुण्डके संग युद्ध कर ॥ ४८ ॥ यही समराङ्गणमें तेरे उपयुक्त है. सुतरां यही तुझसे युद्ध करेंगी मैं केवल देखती रहूंगी तेरी जैसी इच्छा हो वैसाही प्रहार कर किन्तु मैं तेरे संग युद्ध करनेकी इच्छा नहीं करती. देवी भगवतीने उससे इसप्रकार कह फिर कालिकासे मधुरवचनद्वारा कहा ॥ ४९ ॥ हे कालिके ! तुम्हारे अवयव (अंग) कठिन हैं और यह शुंभ भी समरमें कुरूपको बहुत अच्छा समझता है. इसकारण तुमही इसका संहार करो. व्यासजी बोले हे महाराज ! वह कालरूपिणी कालिका देवीकी यह आज्ञा पाते ही ॥ ५० ॥ तत्काल गदा ले काल प्रेरितकी समान समरमें उद्यत होकर स्थिति करने लगी. उनका परस्पर अत्यन्त भयानक युद्ध होने लगा ॥ ५१ ॥ देवता और मुनी देखने लगे प्रथम तो शुम्भने गदा उद्यत करके समरस्थलमें उस कालिकाको प्रहार किया ॥ ५२ ॥ और फिर कालिकाने भी दैत्यराजको गदासे अत्यन्त पीड़ित किया फिर

अत्यन्त क्रोधित हो, घोर चीत्कार कर उस गदाघातसे उसका सुवर्णमण्डित उज्वल रथ तत्काल तोड डाला ॥ ५३ ॥ और फिर उसके रथवाहक सब खर खिच्चर मारकर सारथीको भी यमसदनमें प्रेरण किया. तब शुंभ गुरुभार युक्त महती गदा ग्रहण कर पादचारीहो क्रोध सहित ॥ ५४ ॥ कालिकाके हृदयमें प्रहार करके हँसने लगा. इसी अवसरमें कालिकाने उसका गदाघात विफल कर तत्काल खड्ग ग्रहण किया ॥ ५५ ॥ और और अस्त्र शस्त्रसे विभूषित चन्दन चर्चित उसकी वाम भुजा काट डाली. तब वाम भुजाके कट जानेसे उसका सब शरीर रुधिर धारामें डूबगया ॥ ५६ ॥ तो भी उसने गदा हाथमें लिये सहसा आनकर कालिकाको प्रहार किया. कालिकाने भी हँसते हँसते खड्गसे उनकी दक्षिण भुजा काट डाली ॥ ॥५७॥ जब हँसते २ उसकी अंगद सहित भुजा काट डाली तब शुंभ कुपित होकर पादप्रहार करनेके लिये वेगसे दौड़ा ॥ ५८ ॥ फिर कालीने भी शीघ्रता सहित खड्गसे उसके दोनों चरण काट डाले. हाथ और पैर कटजाने पर भी वह दैत्य "ठहर ठहर" कहकर ॥ ५९ ॥ कालिकाको डराता हुआ तत्काल दौडता हुआ उनके समीप आया. कालिकाने उसको आता हुआ. देखकर उसका मस्तक कंठसे कमलकी सामान ॥ ६० ॥ काट डाला. तब उससे अनर्गल रुधिरकी धारा बहने लगी. हे महाराज! शुंभका मस्तक कटजानेपर वह पर्वतकी समान पृथ्वीमें गिरगया ॥ ६१ ॥ और तत्काल उसका प्राण वायुदेहसे बहिर्गत होकर चलागया. इन्द्रादि देवता उस दानवको गतासु हो गिरता हुआ देख ॥ ६२ ॥ उन देवी भगवती चामुण्डा और कलिकाका स्तव करने लगे. तिस काल वायु सुख स्पर्श होकर बहने लगा. सबदिशायें अतीव निर्मल होगईं ॥ ॥ ६३ ॥ और हुताशन होम कालमें प्रदक्षिण शिखावाला होकर शुभ कथन कनेवाला चलनेलगा. इधर उस समय जो दैत्य मरनेसे बचे थे वह अस्त्र शस्त्र त्यागकर जगदम्बिकाको प्रणामकर ॥ ६४ ॥ अस्त्रत्याग पातालमें चले गये यह सब तुमसे देवीका चरित्र कहा ॥ ६५ ॥ हे महाराज! शुंभ इत्यादि असुरोंको मारकर देवीने जिसप्रकार देवताओंकी रक्षा की थी मैंने वह सब पवित्र चारित्र तुमसे वर्णन किया. पृथ्वीमें जो मनुष्य भक्तिपूर्वक यह उपाख्यान आद्योपान्त पाठ ॥ ६६ ॥ वा नित्य श्रवण करते हैं, उनकी सब अभिलाषापूर्ण होती हैं, इसमें संदेह नहीं है. हे राजन्! जिसके पुत्र नहीं है, वह पुत्र प्राप्त करता है, जिसके धन नहीं है, उसको

बहुत धन मिलता है ॥ ६७ ॥ रोगी रोगसे छूट जाता है. अधिक क्या ? जो पुरुष देवीका यह सब माहात्म्य सुनता है वह सब कामना प्राप्त करसकता है. हे महाराज ! जो मनुष्य इस पवित्र चरित्रको नित्य पाठ करता है अथवा श्रवण करता है, वह शत्रुसे कभी नहीं डरता, विशेषकर मृत्युके पीछे मुक्तिको प्राप्त होता है ॥६८॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषायां शुंभवधो नाम एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशतितमोऽध्यायः ३२.

जनमेजय बोले हे मुनिवर ! आपने सम्यक प्रकारसे चण्डिकाकी महिमा वर्णन किया है. किन्तु मधुकैटभ नाशादि तीनों चरित्र पाठ और श्रवण करके किस पुरुषने पूर्वमें उनकी आराधना की थी? ॥ १ ॥ किस पुरुषने उस अभीष्ट प्रदायिनी देवीकी उपासना करके महत्फल प्राप्त किया है ? किस समयमें उन्होंने किसके प्रति प्रसन्न होकर वरदान किया था ? हे कृपानिधे ! आप कृपा करके वह समस्त वृत्तान्त विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन् ! आप उन महादेवीकी उपासना, विधि, पूजाप्रणाली और होमविधि विस्तार सहित वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥ सूतजी बोले हे ऋषिगण ! सत्यवतीके पुत्र कृष्णद्वैपायनराजा जन्मेजयके इस प्रकार वचन सुनकर परम प्रसन्न हो उनसे महामाया भगवतीकी पूजाविधि कहने लगे ॥ ४ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! पूर्वकालके समय स्वारोचिषमन्वन्तरमें अतीव उदार प्रकृति और प्रजापालनपरायण सुरथ नामक एक राजा थे ॥ ५ ॥ वह सत्यवादी कार्यदक्ष और गुरुके प्रति भक्तिमान् थे. वह सदा ब्राह्मणोंकी सेवा करते और अपनी धर्मपत्नीके अतिरिक्त कभी किसी स्त्रीके संग सहवास नहीं करते ॥ ६ ॥ वह दाता अग्रगण्य और धनुर्विद्यामें अतिनिपुण थे, वह किसीके संग विरोध नहीं करते. हे राजन् ! वह राजा सुरथ इसप्रकार निर्विघ्न राज्य पालन करते थे, इसी अवसरमें पर्वतवासी म्लेच्छगण ॥ ७ ॥ उनके शत्रु होगये ! यह मदमत्त कोला नगर विध्वंशी म्लेच्छगण युद्ध नीतिका अनुसरण न करके केवल बलपूर्वक समस्त (पृथ्वी) ग्रहण करनेकी अभिलाषासे हाथी घोड़े रथ और पैदल इस चार प्रकारकी सेनाके सहित ॥ ८ ॥ सुरथ राजाका राज्य ग्रहण करनेके लिये आये.

सुरथराजा भी अपनी सेनाको संगलेकर उनके सन्मुख हुए ॥ ९ ॥ तब उन परम दारुण म्लेच्छोंके संग उनका घोर युद्ध हुआ. हे महाराज! तिसकाल म्लेच्छोंका सैन्यबल सामान्यमात्र और राजा सुरथका सैन्यबल अधिक था ॥ १० ॥ किन्तु तोभी म्लेच्छोंने दैववश युद्धमें जयलाभ की. तब राजा रणमें पराजित हो पलायनपूर्वक दुर्गद्वारा सुरक्षित अपने नगरमें चले आए ॥ ११ ॥ वह नीतिविशारद राजा मन्त्रियोंको शत्रुओंके पक्षमें मिला देख अत्यन्त विमन होकर चिन्ता करने लगे कि, अब प्रधानमंत्री विमन होकर शत्रुके पक्षमें होगये हैं ॥ १२ ॥ अब परिखा वेष्टित आकारसे सम्पन्न खाईसे व्याप्त विपुल स्थानका आश्रय लेकर समयकी प्रतीक्षा करनी चाहिये अथवा युद्ध करना उत्तम है ? ॥ १३ ॥ राजा मनहीमनमें और भी चिन्ता करने लगे कि, इस समय मंत्रीलोग शत्रुके वशीभूत हैं, इसकारण उनसे मंत्रण करना कभी उचित नहीं है. अतएव अब मुझको क्या कर्त्तव्य है ? ॥ १४ ॥ उन्होंने जब विपक्षका आश्रय ग्रहण किया है, तब वह विपरीत कार्य करनेमें कभी कुण्ठित नहीं होंगे. यह पापिष्ठ मंत्रीगण यदि किसी समय मुझको ग्रहण करके शत्रुओंके हाथमें दे दें तो फिर मैं क्या उपाय करूंगा ? ॥ १५ ॥ जो मनुष्य लोभके वशीभूत हैं, उनको अकार्य कुछ नहीं है अतएव उन पापबुद्धियोंका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये ॥ १६ ॥ लोकमें लोभके वशीभूत होकर पिता, माता, भ्राता, मित्र, सुहृद्, बांधव, गुरु और पूज्य ब्राह्मणोंसे भी सदा द्वेष करते हैं ॥ १७ ॥ मंत्रीलोग जब शत्रुसे मिलगये हैं, तब वह निरसन्देह पापिष्ठ हैं, अब इनका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये ॥ १८ ॥ राजा मनहीमनमें इस प्रकारसे अनेक चिन्ता करके अत्यन्त विमन हुए किन्तु उपाय न देख घोड़ेपर चढ़कर अकेले उस पुरीसे निकले ॥ १९ ॥ वह सहाय विहीन बुद्धिमान् राजा नगरसे निकल गहन वनमें जाकर चिन्ता करने लगे कि, अब मैं कहां जाऊं ? ॥ २० ॥ अनन्तर उस स्थानसे तीन योजन अन्तर पर तापसप्रवर सुमेधा ऋषिका पवित्र आश्रम विद्यमान है, यह जानकर उस आश्रममें गये ॥ २१ ॥ हे महाराज ! उस आश्रमके शोभाकी सीमा नहीं थी. वह नदीके तटपर स्थापित है, इसके स्थान स्थानमें अनेक प्रकारके वृक्ष विराजमान थे और उनके ऊपर कोकिला मधुर रव करतीं थीं. स्थान स्थानमें हिंसक जंतु विचरण करते थे, किन्तु उनका परस्पर वैरभाव नहीं था ॥ २२ ॥ कही सैकड़ों मृगोंके दल विचरण करते थे. कहीं पादपोंने कुसु-

मित होकर अपूर्व श्री धारण की थी, कहीं वृक्ष फलोंके भारसे झुक रहे थे, कहीं पकाहुआ नीवार मुनिअन्न स्थापित है, कहीं शिष्योंकी अध्ययन ध्वनि॥ २३ ॥ और कहीं अत्यन्त मनोहर वेदध्वनि होरही थी, कहीं होमके धुएँकी सुगंध सदा प्राणियोंकी प्रीति वर्धन करती थी.अधिक क्या ? उस तपोवनको देखनेपर वह स्वर्गसे भी अतिमनोहर जान पड़ता था ॥ २४ ॥ राजा सुरथ ऐसा आश्रम देखकर आनन्दसागरमें निमग्न हुए और भय त्यागकर द्विजवरके इस आश्रममें विश्राम करनेकी इच्छा की ॥ २५॥ तदनन्तर राजाने वृक्षकी जड़में घोड़ेको बांध, विनीत भावसे उन ऋषिके निकट जाकर देखा कि मुनिवर शालवृक्षकी घनी छायामें मृगचर्मपर विराजमान होरहे हैं ॥ ॥ २६ ॥ तपस्याके क्लेशसे उनका शरीर कृश और सरल है, वह शीत वा उष्णसे तिरस्कृत नहीं हैं. उनका क्रोध, लोभ और मोह इत्यादि कोई शत्रु नहीं है. अतएव शान्त, सत्यवादी और मत्सर विहीन हैं. विशेषतः आत्मज्ञानमें निरत होकर अतीन्द्रियको निग्रह किया है. वह वेदशास्त्रार्थपारदर्शी मुनिवर तिस समय शिष्यों को वेद पढ़ा रहे थे ॥ २७ ॥ २८ ॥ राजाके दोनों नेत्र उनको देखतेही जलसे परिपूर्ण होगये और भक्ति सहित उनके सन्मुख दण्डकी समान पृथ्वीमें गिर गये ॥ ॥ २९ ॥ तब मुनिवरने उनकी ऐसी अवस्था देखकर कहा हे वत्स ! उठो ! उठो !! तुम्हारा मंगल तो है ? फिर गुरुकी आज्ञानुसार एक शिष्यने उनको कुशासन दिया ॥ ३० ॥ राजा उठकरके उनकी आज्ञानुसार उस आसन पर विराजमान हुए. तब मुनिवर सुमेधाने विधिपूर्वक पाद्य और अर्घ्यद्वारा उनकी पूजा करके ॥ ३१ ॥ पूँछा कि, तुम कौन हो ? किसलिये यहां आये हो ? किसकारण चिन्तामें निमग्न हो ? इन सबका कारण गुप्त हो रहा है, अतएव यह समस्त मुझसे कहो ॥ ३२ ॥ तुम्हारे आनेका उद्देश क्या है ? तुम अपने मनका अभिप्राय प्रकाश करके कहो यदि वह मेरे असाध्य भी होगा तोभी मैं तुम्हारा कार्य संपादन करूंगा इसमें संदेह नहीं ॥ ३३ ॥ राजाने कहा हे मुनिवर ! मैं सुरथनामक राजा हूं. शत्रुसे पराजित होकर राज्य गृह और भार्या परित्याग करके आपकी शरणागत हुआ हूं ॥ ३४ ॥ हे ब्रह्मन् ! आप जो आज्ञा करेंगे मैं भक्तिसहित वही करूंगा. आपके अतिरिक्त पृथ्वीतलमें मेरी रक्षा करने वाला दूसरा कोई नहीं है ॥ ३५ ॥ इस समय शत्रुसे मुझको घोर भय उपस्थित है मैं इसी लिये आपके निकट आया हूं. हे मुनिवर ! आप शरणागतवत्सल हैं

इसकारण मैं आपकी शरणागत हूं. आप मेरी विपद्से रक्षा कीजिये ॥ ३६ ॥ महर्षिने कहा हे राजेन्द्र ! तुम इस स्थानमें निर्भय होकर वास करो तुम्हारे शत्रु बलवान् होनेपर भी तपोबलके प्रभावसे वह यहां नहीं आसकेंगे ॥ ३७ ॥ हे नृपोत्तम ! इस स्थानमें हिंसा नहीं करसकोगे केवल वनवृत्तिके अनुसार नीवार फल और मूल इत्यादि प्रशस्त खाद्य द्रव्यद्वारा जीवनयात्रा निर्वाह करनी होगी ॥ ३८ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! राजा सुरथ उनके इसप्रकार वचन सुन फल मूल भक्षण करते हुए पवित्रभावसे निर्भय उस आश्रममें वास करने लगे ॥ ३९ ॥ किसीसमय आश्रमके वृक्षोंकी छायामें बैठकर अनेक प्रकारकी चिन्ता करते करते अपने घरकी बात मनमें उदय होतेही विचार करने लगे ॥ ४० ॥ कि, मेरा राज्य शत्रुओंने ले लिया है किन्तु वह दुराचारी म्लेच्छ और लज्जाविहीन हैं विशेष कर सदा पापकार्यमें रत हैं. अतएव वह प्रजाको सदाही पीड़ित करते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ ४१ ॥ मेरे हाथी घोड़े अब नियमित प्रकारसे आहार नहीं पाते. अतएव वह दुर्लभ होकर शत्रुके निकट अत्यन्त कष्ट पाते हैं ॥ ४२ ॥ मैंने जिन सेवकोंको पूर्वमें पालन किया है अब वह सब शत्रुके वशीभूत होकर दुःखभोग करते हैं इसमें संशय नहीं ॥ ४३ ॥ वह दुराचारी शत्रुगण असत्कार्यमें धन व्यय करते हैं सुतरां मेरा संचित धन उन्होंने द्यूतक्रीडा मद्य और वेश्याके निमित्त व्यय करके अवश्यही क्षय करडाला होगा ॥ ४४ ॥ उन म्लेच्छोंकी और मेरे मंत्रियोंकी मति सदाही पापकार्यमें रत है. वह दानके पात्र अपात्रको विचारकर दान करना नहीं जानते अतएव संपूर्ण कोष व्यसनद्वाराही क्षय करडाला होगा इसमें सन्देह नहीं ॥ ४५ ॥ वृक्षकी जड़में बैठे राजा जब इसप्रकार चिन्ता कर रहे थे तब कोई एक वैश्य कातर होकर उसी स्थानमें उपस्थित हुआ ॥ ४६ ॥ राजाने उसको सन्मुख देखतेही अपने पार्श्वमें बैठाया और फिर उस वैश्यके बैठनेपर राजाने उससे पूँछा हे महाभाग ! तुम कौन जातीय हो ? किस देशसे इस वनमें आये हो ॥ ४७ ॥ तुम्हारा नाम क्या है ? किसलिये तुम शोकसे कातर होकर मलीन और पांडुवर्ण हुए हो ? हे महाभाग ! परस्पर सात बात कहतेही मित्रता होती है उसीके अनुसार मैं तुम्हारा मित्र हूं इस कारण यह सब वृत्तान्त मुझसे सत्य कहो ॥ ४८ ॥ व्यासजी बोले वैश्यवर राजाके इसप्रकार वचन सुन श्रम अपनयनपूर्वक स्थिरभावसे बैठ " साधुके संग समागम हुआ " यह विचारकर

उनसे कहने लगा ॥ ४९ ॥ हे मित्र ! मैं वैश्यजातीय हूं मेरा नाम समाधि है. मैं धनवान् था कभी किसीसे असूया नहीं करता सदा सत्य वचन कहकर धर्म कार्यमें निरत रहता था ॥ ५० ॥ मेरी स्त्री और पुत्रगण धनलोलुप हैं और असाधु हैं अतएव उन्होंने अतीव दुस्त्यज्य मायाका त्याग कर "यह कृपण है" इसप्रकार छल-अवलम्बनकर मुझको घरसे निकाल दिया है आत्मीय स्वजनोंसे त्यागा जाकर मैं अब वनमें आया हूं ॥ ५१ ॥ आप भाग्यवान्की समान दिखाई देते हैं. अतएव हे प्रियवर ! इस समय अनुग्रह करके मुझको अपना परिचय दीजिये. वह वचन सुनकर राजाने उससे कहा मैं सुरथनामक राजा हूं सम्प्रति दस्युगणोंसे पीड़ित हुआ हूं ॥ ५२ ॥ इस परभी फिर मुझे मंत्रियोंनें छला है अतएव राज्यभ्रष्ट होकर इस तपोवनमें उपस्थित हुआ हूं. हे विशोत्तम ! सौभाग्यसेही आज तुम मेरे परम मित्ररूपसे उपस्थित हुए हो ॥ ५३ ॥ हम दोनों मनोहर वृक्षोंसे मंडित इस वनमें परम सुखसे विहार करें. हे महाबुद्धे ! अब शोक त्यागकर सावधान होओ ॥ ५४ ॥ और इच्छानुसार मेरे संग इस स्थानमें परमसुखसे वास करो. वैश्यने कहा हे राजन् ! मेरे बांधवलोग मेरे न होनेसे निराश्रय होकर अतिदुःखित होंगे. विशेषकर व्याधि और शोकसे संतापित होकर उनके चिन्ताकी सीमा न रहेगी ॥ ५५ ॥ हे राजन् ! इस समय मेरी भार्या और पुत्र सुखसे वा दुःखसे काल व्यतीत करते हैं, इस चिन्तासे कातर होकर मेरा हृदय शान्तिलाभ नहीं करसकता ॥ ५६ ॥ हे राजेन्द्र ! मैं पुत्र, कलत्र, स्वजन, बंधु, बांधव और घर, इन सबको फिर देखूं मेरा मन सदा इस चिन्तामें व्याकुल रहता है. किसीसे सावधान नहीं होता ॥ ५७ ॥ राजाने कहा हे महामते ! तुम्हारे असदाचारी मूर्ख पुत्र और कपटाचारी आत्मीय स्वजनोंने तुमको घरसे बाहर निकाल दिया है, अतएव ऐसे पुत्र इत्यादि आत्मीय पुरुषोंको देखकर तुम्हें क्या सुख होगा ? ॥ ५८ ॥ शत्रुगण यदि हितका अनुष्ठान करैं तो वह शत्रुभी श्रेष्ठ हैं. किन्तु जो क्लेश दे, वह फिर किसप्रकार सुहृद् होसक्ता है. अतएव तुम मन स्थिर करके मेरे संग परम सुखसे विहार करते रहो ॥ ५९ ॥ वैश्यने कहा हे राजन् ! दुरात्मालोग भी जिस कुटुम्बके छोडनेमें समर्थ नहीं होते आज मेरा मन उसी कुटुम्बके देखनेको अत्यन्त दुःखित होता है किसी प्रकार स्थिर नहीं होता ॥ ६० ॥ राजा बोले मुझको भी राज्यके लिये इसीप्रकार दुःख उपस्थित होकर निरन्तर चित्तको संतापित करताहै अतएव आओ हम दोनोंही आज

मुनिवरसे इस शोक विनाशकी औषधीके विषयमें पूँछे ॥ ६१ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! राजा सुरथ और वैश्यवर इसप्रकार स्थिर करके शोकका कारण पूँछनेकी इच्छासे अति दीनभावयुक्त हो मुनिके निकट गये ॥ ६२ ॥ फिर राजा उनके समीप जाय प्रणाम पूर्वक आसनपर बैठ सुखासीन प्रशान्तचित्त मुनिवरसे शान्तिसहित पूँछने लगे ॥ ६३ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे भाषायां द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ३३.

सुरथने कहा हे मुनिवर ! इस वैश्यके पुत्र कलत्रने एकत्र मिलित होकर इसको घरसे बाहर कर दिया है. इसी कारण यह अपना घर त्यागकर अब इस तपोवनमें उपस्थित हुआ है यह इस समय मेरे सहित मिलित होनेसे मेरा परम मित्र हुआ है ॥ १ ॥ हे ऋषिवर ! यह आत्मीय स्वजनोंके विरहसे अत्यन्त विमन होकर अतिशय क्लेश अनुभव करता है. किसीसे भी शान्तिलाभ नहीं करसकता. हे महामते ! इसीकी समान मैंभी इस समय अपहृत राज्यके लिये दुःख और शोकसे अत्यन्त कातर हुआ हूं. यह अकारणचिन्ता किसी प्रकार मेरे हृदयसे दूर नहीं होती. मेरे हाथी और घोड़े शत्रुके अधीन होकर क्या अब दुर्बल होगये हैं ? ॥ २ ॥ मुझको न देखनेसे क्यों भृत्यलोग अतिशय क्लेशभोग करते हैं. शत्रुगण क्षणकालमें बलसहित सब धन व्यय करके कोषका क्षय करेंगे ॥ ३ ॥ हे ऋषिवर ! इस प्रकारकी चिन्ता करनेसे मेरे हृदयमें कुछ सुख नहीं है, अधिक क्या ? इसी विचारमें मुझको नींद तकभी नहीं आती. हे प्रभो ! यद्यपि मैं जानता हूं कि, यह संपूर्ण जगत् संसार स्वप्नकी समान मिथ्या है, किन्तु तो भी मेरा मन ॥ ४ ॥ ऐसा भ्रान्त है कि किसी प्रकार स्थिर नहीं होता मैं कौन हूं ? हाथी और घोड़ेसे मेरा क्या संबंध है ? वस्तुतः वह मेरे सहोदर ॥ ५ ॥ पुत्र वा मित्र नहीं हैं, किन्तु तोभी उनके दुःखसे मेरा अन्तःकरण व्यथित होता है मोह नहीं त्यागता इसमें क्या अद्भुत कारण है ? हे ऋषिवर ! यह सब भ्रमकार्य है ऐसा मैं जानता हूं, तथापि मेरे मन से ॥ ६ ॥ मोह दूर नहीं होता, यह अत्यन्त आश्चर्यका विषय है. अतएव इसका क्या कारण है ? हे स्वामिन् ! आपसे कोई बात नहीं छीपी है, आप सब विषयका संशय छेदन करनेमें समर्थ हैं ॥ ७ ॥ इस कारण हे दयासागर ! कृपा करके आप मेरे

और वैश्यके मोहका कारण कहिये व्यासजी बोले हे महाराज! जब राजा सुरथने मुनिसत्तम सुमेधासे इसप्रकार पूछा ॥ ८ ॥ तब वह जिससे शोक और मोह दूर हो,ऐसे परम ज्ञानजनक वचन उनसे कहने लगे.ऋषि बोले हे राजन्! बंधन और मोक्षके कारणका विषय आपसे कहता हूं आप मन लगा कर वह सब सुनिये ॥ ९ ॥ देखो सत, रज और तम इन तीन गुणोंकी साम्य अवस्थाही मूल प्रकृति है वही महामाया नामसे विख्यात है वह महामायाही इस लोकमें सब प्राणियोंके बंधन और मुक्तिका कारण है अधिक क्या, ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, इन्द्र, वरुण, वायु ॥ १० ॥ और अन्यान्य सब देवतागण, गंधर्वगण, नागगण, राक्षसगण, मनुष्यगण, मृगगण, पशु, पक्षी, वृक्ष और अनेक जाति लता ॥ ११ ॥ इत्यादि सभी इस मायाके आधीन होकर बंधन और मुक्तिलाभ करते हैं. यह स्थावर जंगमात्मक सब जगत् उसकाही सृष्ट उत्पन्न किया पदार्थ है ॥ १२ ॥ सब जीव मोहरूपी जालमें बँधकर उसीके वशीभूत रहते हैं. हे महाराज! आप क्षत्रिय हैं, इसकारण आपका चित्त रजोगुणसे कलुषित हो रहा है ॥ १३ ॥ देखो जो मायाके बलसे ज्ञानियोंके मनको भी सदा मोहित करती है, उसके निकट आप तो अतिसामान्य मनुष्य हैं, अधिक क्या ब्रह्मा,विष्णु और महादेव असीम ज्ञानी होनेपर भी ॥ १४ ॥ वह भी मायाबलसे विषयानुरागके कारण सम्यक्प्रकार मोहित होकर त्रिभुवनमें भ्रमण करते हैं हे राजन्! पूर्वकालके समय सत्ययुगमें नारायण विष्णु ॥ १५ ॥ श्वेतद्वीपमें जाकर स्वयं विपुलतपस्या करनेमें प्रवृत्त हुए थे, उन्होंने अखंड आनन्दलाभ करनेकी इच्छासे ब्रह्मविद्याकी स्थिरताके लिये दश हजार वर्ष ध्यानमें विताये थे॥ १६ ॥जिससे अखण्ड सुख मिलै हे राजेन्द्र! ब्रह्माजी भी एक निर्जन परम अद्भुत स्थानमें॥ १७ ॥ मोह क्षय करनेकी इच्छासे उस आद्या शक्तिकी तपस्यामें निरत हुए थे किसी समयमें उन्हीं वासुदेव हरिने दूसरे स्थानमें जानेकी इच्छा की ॥ १८ ॥ तब वह उस स्थानसे उठकर अन्य स्थान देखनेकी अभिलाषासे गये, इधर ब्रह्मा भी विष्णुकी समान अपने पूर्वस्थानसे बहिर्गत हुए ॥ १९ ॥ अनन्तर मार्गमें उनका परस्पर साक्षात् होनेपर वह आपसमें "तुम कौन हो २" इसप्रकार कहकर पूछँने लगे ॥ २० ॥ तब प्रजापतिने कहा मैं जगतकर्त्ता ब्रह्मा हूं, विष्णुने ब्रह्माजीकी यह बात सुनकर कहा रे मूर्ख! मैं अच्युत विष्णु हूं ॥ २१ ॥ इसकारण मैंही जगत्कर्त्ता हूं. तुममें रजोगुणकी अधिकता होनेसे तुम मेरी अपेक्षा बलहीन हो तुम

मुझको सत्वगुण प्रधान सनातन वासुदेव जानो ॥ २२ ॥ तुमको क्या स्मरण नहीं है कि मैंने दारुण युद्ध करके तुम्हारी रक्षाकी है. तुम जब मधु और कैटभनामक दो दानवोंसे पीड़ित होकर मेरी शरणागत हुए ॥ २३॥ तब मैंने उसी समय उनको मारा तुम अब किसप्रकार गर्व प्रकाश करते हो. हे मन्दात्मन् ! तुम अभी इस मोहको छोड़ दो ॥ २४ ॥ मैं अधिक क्या कहूं ? इस विस्तीर्ण विश्व संसारमें मेरी अपेक्षा श्रेष्ठ अन्य कोई नहीं है. ऋषिने कहा हे राजन् ! जब ब्रह्मा और विष्णु परस्पर इसप्रकार विवादमें प्रवृत्त हुए ॥ २५ ॥ तब उन दोनोंको शरीर कांपने लगा और नेत्र लोहितवर्ण होगये व ओष्ठाधर प्रस्फुरित होने लगे तब उन विवाद करते हुए दोनों देवताओंके मध्यमें सहसा ॥२६॥ सुधासदृश श्वेतवर्ण विशाल और दीर्घाकार एक अद्भुत लिंग प्रादुर्भूत हुआ उसी समय अशरीरिणी वाणी आकाशसे उद्भूत होकर ॥२७॥ उन परस्परविवाद करतेहुए महाभाग ब्रह्मा और विष्णुको संबोधन देकर कहने लगी हे ब्रह्मन् ! हे विष्णो आप दोनों विवाद क्यों करते हैं ॥२८॥ इस लिंगके ऊपर हो अधोभागमें हो जो इसके परंपार जासके वही आपमें श्रेष्ठ है इससे सन्देह नहीं ॥ २९ ॥ इसकारण एक जन पातालमें जाय और एक जन आकाशमें जाय आपको इस विवादके समयमें एक जनको मध्यस्थ करना अवश्य है. अतएव आप अनर्थक विवाद त्यागकर मेरा वचन प्रमाणस्वरूप ग्रहण करो ऋषि बोले हे महाराज ! यह दिव्य वचन सुनकर वे दोनों सुसज्जित और उत्साहित हो ॥ ३० ॥ ॥ ३१ ॥ उस सन्मुख स्थित अद्भुत लिंगका परिमाण करनेको गये अपने अपने महत्ववृद्धिकी इच्छासे लिंगका परिमाण करनेके लिये विष्णु पाताल और ब्रह्मा आकाशमें गये विष्णु कुछेक देशोंमें जाकर थक गये ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ और जब सम्यक्प्रकारसे यत्न करके भी लिंगका अन्त न पाया तब लौटकर अपने स्थानमें उपस्थित हुए इस ओर ब्रह्मा आकाशमार्गमें जाते थे. इसी अवसरमें शिव मस्तकसे गिरा हुआ एक केतकीदल ॥ ३४ ॥ शिवके ऊपरसे गिरता पाया तब वह अत्यन्त आनन्दित हो, उसको ग्रहण करके लौट आये ब्रह्माने मदमोहित होकर तत्काल लौट वह दल विष्णुको ॥ ३५ ॥ दिखाय कर मिथ्यावचन कहा हे विष्णो ! लिंगके मस्तकसे यह केतकीदल गृहीत हुआ है ॥ ३६ ॥ यह केवल अभिज्ञान और तुम्हारे चित्तकी शान्तिके लिये लाया हूं. ब्रह्माजीने उनका इस प्रकार वचन सुन और केतकी देखकर ॥ ३७ ॥ उनसे कहा हे ब्रह्मन् ! इस बातमें

तुम्हारा साक्षी कौन है ? जो सत्य वचन कहता ह, जिसका सबके प्रति समभाव है, जो बुद्धिमान् शुचि और सदाचारी है ॥ ३८ ॥ विवाद उपस्थित होनेपर वही पुरुष साक्षी होसक्ता है ब्रह्माजीने कहा इस समय उस दूरदेशसे कौन साक्षी यहां आवे ॥ ३९ ॥ अतएव जो सत्य है, वह यह केतकीही कहेगी यह बात कहकर ब्रह्माजीने केतकीको वह कहनेके लिये सविशेष अनुरोध किया ॥ ४० ॥ केतकी भी उनकी आज्ञानुसार शीघ्र विष्णुके प्रबोधार्थ बोली हे विष्णो ! मैं महादेवके मस्तकमें थी, ब्रह्माजी मुझको वहांसे लेकर इस स्थानमें चले आये हैं ॥ ४१ ॥ अतएव इस विषयमें कभी आपको संदेह नहीं करना चाहिये, शिवभक्तिपरायण किसी पुरुषने मुझको उनके मस्तकमें समर्पण किया था, ब्रह्माजी भी मुझको पाकर ले आये हैं, अतएव ब्रह्मा जो इसकी शेषसीमातक गये थे, इसमें संदेह नहीं है, इस विषयमें मेरे वचनको ही प्रमाण जानना चाहिये विष्णुने केतकीका यह वचन सुन आश्चर्ययुक्त होकर कहा, ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ मैं तुम्हारी बातका विश्वास नहीं करसक्ता, यह महादेव स्वयं यह बात कहैं, तो इसका प्रमाण होसक्ता है. ऋषि बोले हे राजन् ! सनातन महादेवने हरिके यह वचन सुन ॥ ४४ ॥ कुपित होकर केतकीसे कहा रे मिथ्यावादिनि ! तू ऐसे मिथ्या वचन मत कहे मेरे मस्तकसे तू गिरी थी ब्रह्माने जाते जाते मार्गमें तुझको पाया है ॥ ४५ ॥ अतएव जब तू मिथ्या वचन कहती है तब मैं तुझे कभी ग्रहण न करूंगा आजसे मैंने तुझको त्याग दिया तब ब्रह्माजीने अत्यन्त लज्जित होकर मधुसूदनको प्रणाम किया ॥ ४६ ॥ और श्रीमहादेवजीने उस दिनसे कुसुममें केतकीको त्याग दिया. हे महाराज ! माया बलको इसीप्रकार प्रबल जानना चाहिये क्योंकि जब वह ब्रह्मा विष्णु इत्यादि ज्ञानियोंको भी मोहित करती है ॥ ४७ ॥ तब अन्यान्य साधारण प्राणियोंके मोहकी तो बातही क्या कहूं ? देखो रमापति विष्णु देवकार्यसिद्धिके निमित्त ॥ ४८ ॥ मोहके वश हो पापभय छोड़ सदा दैत्योंको छलते हैं अधिक क्या वह सब विषयके प्रभु होकर भी आनन्दसुख त्याग अनेक योनिमें अवतीर्ण होकर ॥ ४९ ॥ दैत्योंसे संग्राम करते हैं हे भूपते! विष्णु सर्वज्ञ और जगत्के गुरू एवं विशेषकर देवताओंकी सृष्टिकार्यके एकमात्र अधीश्वर हैं अतएव जब उनके ऊपरही मायाका इतना बल है तब अपर प्राणी जो मायासे मोहित हो इसमें फिर आश्चर्य क्या है ? हे महाराज ! वह परमा प्रकृति ज्ञानियोंके चित्तको ॥ ५० ॥ ५१ ॥ बलपूर्वक आकर्षण करके

मोह–सागरमें निमग्न करती हैं वह भगवती इस चराचर विश्व संसारमें व्याप्त रहकर ॥ ५२ ॥ मोह प्रदानपूर्वक बंधन करती हैं और फिर वही ज्ञान देकर मुक्ति देती हैं, राजा बोले हे ब्रह्मन् ! उनका स्वरूप किस प्रकार है ? तथा उत्तम बल कैसा है ? ॥ ५३ ॥ उत्पत्तिका कारण क्या है ? और उनका परम स्थान कहां है ? आप यह सब विषय मुझसे विस्तारसहित वर्णन कीजिये ऋषिने कहा हे नरपाल ! वह आनादि हैं इसकारण उनकी उत्पत्ति कभी नहीं है ॥ ५४ ॥ वह परमा प्रकृति नित्या और वही सदा सबके कारणका भी कारण होती हैं अतएव उनके समान बलवान् और कौन हो सकता है. हे राजन् ! वह शक्तिरूपसे सब पदार्थमें ही सम्यक् प्रकारसे विराजमान रहती हैं ॥ ५५ ॥ सुतरां जीव शक्तिविहीन होनेसे शवकी समान निश्चल होता है इस चराचर विश्वमण्डलमें जो सब पदार्थ विद्यमान हैं वह सब चित् स्वरूप ब्रह्म हैं अतएव उनकी शक्ति भी सब प्राणियोंमें स्थिर रहती है सुतरां इस शक्तिका रूप भी ब्रह्म है इसमें सन्देह नहीं क्योंकि अग्निकी शक्तिका अग्निके अतिरिक्त दूसरा रूप दिखाई नहीं देता ॥ ५६ ॥ तब केवल देवताओंका कार्य करनेके लिये ही समय समयमें उनका आविर्भाव और तिरोभाव होता है हे राजन् ! देवता और मनुष्यलोग जब उनका स्तव करतेहैं ॥ ५७ ॥ तभी अम्बिका प्राणियोंका क्लेश निवारण करनेके लिये प्रादुर्भूत होती हैं वह परमेश्वरी देवी अनेक रूप धारणके नानाप्रकार शक्तियोंके सहित ॥ ५८ ॥ अपनी इच्छानुसार ही देवकार्यके लिये आविर्भूत होती हैं, हे नृपवर ! काल और दैव उनसे ही उत्पन्न है इसकारण वह देवताओंकी समान ॥ ५९ ॥ दैव वा कालके आधीन नहीं हैं. वरन् वह पुरुषार्थके अनुसार जीवोंको सदा कार्यमें प्रवृत्त करती है पुरुष कार्य नहीं करता केवल सबके साक्षीरूपमें विद्यमान रहता है ॥ ६० ॥ यह सब जगत् दृश्य है, वह देवी इस सबका कार्य और कारण स्वरूप है, अतएव उन्होंने ही इस सब दृश्यमान विश्वको उत्पन्न किया है वह अकेली ही यह ब्रह्माण्डनाटक प्रगट करके ॥ ६१ ॥ पुरुषको रंजित करती हैं, और पुरुषके रंजित होनेपर फिर अतिशीघ्र उसका संहार करती हैं ब्रह्मा, विष्णु और महादेव सृष्टि, स्थिति और संहारकर्त्ता हैं ॥ ६२ ॥ यह लोकप्रवाद मात्र है; वास्तवमें वह सृष्टि स्थिति और संहारके निमित्त मात्र हैं, प्रकृत प्रस्तावमें भगवतीने लीलाके लिये इनको कल्पना करके स्व स्व कार्यमें नियुक्त कर रक्खा है भगवतीने अपना अंश समर्पण करके ॥ ६३ ॥ ब्रह्मा, विष्णु और महादेवको

अपनी शक्ति सरस्वती लक्ष्मी और गिरिनन्दिनी देकर उनको बलशाली किया है वह देवता महाशक्तिको जानकर उनका ध्यान पूजन करते हैं ॥ ६४ ॥ सृष्टि,स्थिति और संहारकारिणी देवीको जानकर आनन्दसहित उनका ध्यान धरते हैं हे भूपते ! मैं ने ज्ञान और बुद्धिके अनुसार देवीका पवित्र माहात्म्य आनुपूर्विक तुमसे वर्णन किया किन्तु इसका अन्तमें भी नहीं जान सक्ता ॥ ६५ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषायां त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ३४.

राजाने कहा हे भगवन् ! आप भगवतीकी आराधना विधि, पूजाविधि, होमविधि और मंत्र इत्यादि सब विषयका विवरण मुझसे विस्तारसहित वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ ऋषिने कहा हे राजन् ! मैं उन देवीकी पूजाविधि कहता हूं सुनो विधिपूर्वक भगवतीकी पूजा करनेसे मनुष्योंको अभीष्ट सिद्धि, दुःखविनाश, ज्ञानलाभ और मोक्षप्राप्ति इत्यादि समस्त मंगल लाभ होता है ॥ २ ॥ मनुष्य प्रथम तो स्नान करै और फिर सफेद वस्त्र पहर वैदिक संध्या और तान्त्रिक संध्या करै इसके उपरान्त प्रयत चित्तसे आचमन करके अपना शुभ स्थान निर्वाचन करले, ॥ ३ ॥ फिर वह स्थान गोवर आदिसे लीपकर उसमें पवित्र आसन विछावे तदुपरान्त प्रसन्न चित्तसे उस आसनपर वैठे विधिपूर्वक तीन बार आचमन करै ॥ ४ ॥ इसके पीछे अपनी शक्तिके अनुसार पूजाकी सामग्री संग्रह पूर्वक यथायोग्य स्थानमें स्थापन कर प्राणायाम करता हुआ भूत शुद्धिसे मातृकान्यास पर्यन्त सब कार्य करै ॥ ५ ॥ अनन्तर मास तिथि इत्यादिका उल्लेखपूर्वक संकल्प करके यथाविधि मातृकान्यासादि मंत्रन्यासपर्य्यन्त करै फिर अपने देहमें पीठकल्पना कर अन्तर्याग करके वाह्य पूजा करै इसके उपरान्त प्राणप्रतिष्ठा पूर्वक पूजाकी सब सामग्री अस्त्रमंत्रद्वारा अथवा फट्कार द्वारा पोषण करके यथाविधि उत्सर्ग करै ॥ ६ ॥ फिर ताम्रमय शुभ्र पात्रमें श्वेत चन्दन अथवा अष्टविध गंधद्वारा षट्कोण यंत्र अङ्कित करके उसके वाहर अष्टपत्र और मयूर यंत्र भी लिखे ॥ ७ ॥ फिर प्रत्येक दलमें नवाक्षर मन्त्रका एक एक वीज अक्षर लिख कर नवम अक्षरको कर्णिकामें लिखै तदुपरान्त प्राणप्रतिष्ठाके मंत्रसे अथवा वेदमंत्रसे यन्त्रकी प्रतिष्ठा करके कर्णिकामें आधारशक्तिसे पीठमंत्र पर्यन्त पूजा करै इसके पीछे देवीको आवाहन कर मूलमंत्र द्वारा आसनादि

यथायोग्य उपचारसे अर्चना पूर्वक षट्कोणमें षडङ्ग पूजा और भूपुरमें इन्द्रादि एवं वज्रादिकी पूजा करता हुआ यंत्रपूजा करै ॥ ८ ॥ हे महाराज ! पूर्वोक्त यंत्रके अभावमें भगवतीकी धातुमयी मूर्त्ति बनाकर शिवोक्त तंत्रविहित मंत्र द्वारा यत्न सहित उनकी पूजा करै ॥ ९ ॥ अथवा वैदिक मंत्रद्वारा समाहित चित्तसे उनकी यथाविधि पूजा कर, फिर ध्यानमें निमग्न रह नवाक्षर मंत्रका जप करे ॥ १० ॥ जप दो प्रकारके हैं नित्य और पौरश्चरणिक नित्य जपका नित्य होम होता है और नैमित्तिकका पुरश्चरणके जपका दशांश होम, होमका दशांश अभिषेक, अभिषेकका दशांश तर्पण और तर्पणका दशांश ब्राह्मणभोजन करना चाहिये ॥ ११ ॥ हे महाराज ! इस प्रकार जप समापन पूर्वक नित्य देवीके चरित्रत्रयमूलक चण्डी-पाठ करके फिर देवीको विसर्जन करै. हे नरनाथ ! मनुष्योंको शास्त्रकी विधिके अनुसार अवश्य नवरात्रिव्रत करना चाहिये ॥ १२ ॥ जो मंगलकी इच्छा करैं उनको आश्विन और चैत्रमासके शुक्लपक्षमें नवरात्रिव्रतका उपवास करना अवश्य कर्त्तव्य है ॥ १३ ॥ जिस मंत्रका जप करै उसी मंत्रसे सुसंस्कृत पायसमें घृत मधु और शर्करा मिलाकर बहुसंख्यक होम करै ॥ १४ ॥ अथवा छागमांस या पवित्र विल्बपत्रलाल करवीरका पुष्प अथवा शर्करामिश्रित तिलद्वारा होम करै ॥ १५ ॥ प्रति तिथिमेंही पूजाके विधिकी व्यवस्था होनेपर भी अष्टमी नवमी और चतुर्दशीमें देवीकी पूजा करके ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये ॥ १६ ॥ हे नरनाथ ! इसप्रकार महादेवीकी पूजा करनेसे निर्धन मनुष्य धन पाता है रोगी रोगसे छूट जाता है और अपुत्र मनुष्य वशवर्त्ती और गुणवान् पुत्र प्राप्त करता है ॥ १७ ॥ राजा राज्यभ्रष्ट हो तो देवीकी पूजा करनेसे सार्वभौमराज्यको प्राप्त होते हैं और पहिले जिन शत्रुओंसे परास्त होगये हो महामायाके प्रसादसे उनको भी संहार कर सक्ते हैं ॥ १८ ॥ विद्याभिलाषी पुरुष यदि जितेन्द्रिय होकर उनकी पूजा करै तो वह अनवद्या मंगलप्रदा विद्या लाभ कर सकता हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ १९ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य वा शूद्र जो कोई हो भक्तिपरायण होकर जगद्धात्रीकी पूजा करनेसे संपूर्ण सुखका अधिकारी होसकता है ॥ २० ॥ सदा भक्तिमें तत्पर होकर मनुष्य वा स्त्रियोंमें जो कोई नवरात्रव्रत करता है वह अपना अभिलाषित फल पाता है ॥ २१ ॥ जो आश्विन मासके शुक्ल पक्षमें मन-लगाया पवित्र नवरात्र व्रत करता है वह संपूर्ण काम्यवस्तुको प्राप्त होता है ॥

॥ २२ ॥ हे महाराज ! अब नवरात्रव्रतकी विधि कहता हूं सुनो विधिके अनुसार चारों ओर मण्डल बनाकर पूजास्थानकी रचना करै फिर वेदके मंत्र और विधानानुसार उसके ऊपर कलश स्थापन करै ॥ २३ ॥ पूर्वोक्त नियमानुसार सुंदर यंत्र निर्माण करके उसके ऊपर कलश रक्खे और कलशके चारों ओर वेष्टन करके सुन्दर यव बिखेरै ॥ २४॥ पूजास्थानका ऊपरीभाग चन्द्रातप और पुष्पमालासे सुशोभित करके चण्डिकाके गृहमें धूप और दीप प्रदान करै ॥ २५ ॥ हे महाराज ! अपनी शक्तिके अनुसार उस पूजागृहमें भगवती देवीकी प्रातःकाल, मध्याह्नकालमें पूजा करनी चाहिये किन्तु किसीप्रकार वित्तकी शठता वा कृपणता करना उचित नहीं है ? ॥ २६ ॥ वहां धूप, दीप, मनोहर नैवेद्य, पुष्प और नानाप्रकारके फल उपहारमें देकर उनकी पूजा करै विशेष कर स्तोत्रपाठ वेदपारायण गीतवाद्य, और अनेक प्रकारके बाजों द्वारा उत्सव करना चाहिये ॥ २७ ॥ अधिकतर चंदन भूषण वस्त्र अनेक भांतिके खाद्य सुगंधित तेल और मनोहर मालासे यथाविधि कुमारीकी पूजा करनी॥ २८॥ २९॥इसप्रकार उनकी पूजा करके अष्टमी वा नवमी तिथिमें पूर्वोक्त होमद्रव्यसे विधानानुसार होम करावे ॥ ३० ॥ अंतमें विधिपूर्वक ब्राह्मणभोजन कराकर दशमीके दिन स्वयं पारण करै फिर भक्तिमें तत्पर होकर अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको अनेक वस्त्रदान करै ॥ ३१ ॥ हे महाराज इस प्रकार भक्तिसहित जो कोई पुरुष वा जो कोई पतिव्रता साध्वी या विधवा नारी उक्त विधिके अनुसार नवरात्र व्रतका अनुष्ठान करते हैं ॥ ३२ ॥ वह इस लोकमें मनकी सब अभिलाषित वस्तु भोग कर असीम सुख पाते हैं और देहके अन्तमें परमस्थानको प्राप्त होते हैं ॥ ३३ ॥ और यदि किसी कारणसे जन्म ग्रहण करना पड़े तो जन्मान्तरमें वह मनुष्य उत्तम कुलमें जन्म पाकर सदाचारसपन्न होता है और अम्बिकाके प्रति उसकी अचला भक्ति होती है ॥ ३४ ॥ हे महाराज ! मैंने आपसे इस नवरात्रव्रतकी विधि कही यह सब व्रतोंसे उत्तम है इससे महामाया शिवाकी आराधनाके कारण परम सुख प्राप्त होता है ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! आप इसी विधिके अनुसार चण्डिकाकी भलीभांति आराधना कीजिये तो उनके प्रसादसे सब शत्रुओंको पराजित करके अकंटक अतिउत्तम राज्यको प्राप्त होगे और अपने घर पुत्र व स्त्रीके सहित मिलकर इस देहमें ही पुनर्वार परमसुख लाभ कर सकेंगे इसमें सन्देह नहीं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ हे वैश्यवर ! जो

इच्छामात्रसे ही सृष्टि और संहार करतीं हैं जिनकी पूजा करनेसे सब अभिलाषा पूर्ण होती है तुमभी उन्हीं विश्वेश्वरी महामायाकी आराधना करो॥ ३८॥ तो तुम घर जाकर अभिलाषित सांसारिक सुखको प्राप्त हो स्वजनोंके मान्य होंगे ॥ ३९ ॥ और फिर अन्तमें पवित्र देवीलोकमें वास पाओगे, इसमें संशय नहीं. क्योंकि जो भगवतीकी आराधना नहीं करते, वही नरकमें जाते हैं ॥ ४० ॥ और अधिकतर इस लोकमें अनेक प्रकारके रोगोंसे वारंवार पीड़ित होकर सदा क्लेश भोगते हैं जो मनुष्य देवीकी पूजासे विमुख हैं. वही मनुष्य शत्रुसे पराभूत ॥ ४१ ॥ स्त्रीपुत्रविहीन, जड़बुद्धि और तृष्णासे कातर होकर क्लेश भोग करते हैं और जो बिल्वदल, करवीर, कनेर, शतपत्र (कमल) और चम्पककुसुमद्वारा ॥ ४२ ॥ जगद्धात्रीकी पूजा करते हैं वह पुण्यवान् देवी भक्तिपरायण मनुष्यही अतिशय विलासी होते हैं ॥ ४३ ॥ हे महाराज ! अधिक और क्या कहूं ? जिन्होंने निगम शास्त्र अनुमोदित मंत्रसे भगवतीकी पूजा करी है वे मनुष्य ही इस लोकमें धन और विभवसुखसे पूर्ण होकर संसारमें सन्मानके भाजन होते हैं फलतः वह संपूर्ण गुणग्रामके एक मात्र आश्रय होकर इस लोकके मध्य राजाओंमें अग्रणी होते हैं ॥ ४४ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भाषायां चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ३५.

श्रीव्यासजी बोले हे महाराज ! राजा सुरथ और वैश्यवर समाधि अत्यन्त दुःखित मनसे समय व्यतीत करते थे किन्तु इस समय मुनिके इसप्रकार वचन सुन अत्यन्त प्रसन्न हुए और अत्यन्त विनयसहित मस्तक झुकाय कर प्रणाम किया ॥ १ ॥ तब उनका अन्तःकरण भक्तिरससे अभिषिक्त और दोनों नेत्र प्रफुल्लित होगये तब वचन कहनेमें चतुर शान्तस्वभाव वैश्य तथा राजा दोनोंही हाथ जोड़कर उनसे कहने लगे ॥ २॥ हे महाभाग ! हम दीन और शोकयुक्त हो शान्तभावसे आपके आश्रममें थे, किन्तु भगीरथने जिसप्रकार गंगाद्वारा जगत्को पवित्र किया था. इसीप्रकार आज आपने भी हमको परमपावन वचनोंसे पवित्र किया ॥ ३ ॥ स्वाभाविक गुणग्रामसे विभूषित साधुजन पराये उपकारमें निरत हो सब देहधारियोंको जिससे सुख हो वही कार्य करते हैं॥ ४॥ हे महाभाग ! हमको निस्सन्देह पूर्व

जन्मके किये हुए पुण्यसे आपकायह पवित्र आश्रम प्राप्त हुआ था और इसीकारण आज हमारे अत्यन्त क्लेश दूर हुए ॥ ५ ॥ इस पृथ्वीके ऊपर स्वार्थसाधनमें तत्पर अनेक मनुष्य दिखाई देते हैं, किन्तु जो पराये हितका साधन करनेमें समर्थ हों ऐसे आपकी समान पुरुष कदाचितही दिखाई देते हैं ॥ ६ ॥ हे मुनिवर ! मैं तो दुखी हूं ही, परन्तु मुझसे भी अधिक यह वैश्य दुःखी है, हम दोनोंही संसार तापसे तापित हो शान्तिलाभके लिये प्रसन्न मनसे आपके आश्रममें आये थे ॥ ७ ॥ और इस स्थानमें आय केवल आपके दर्शन करनेसेही हमारे दैहिक दुःख दूर होगये. किन्तु अब आपके मनोहर वचन सुननेसे हमारा सब मानसिक क्लेश भी दूर होगया ॥ ८ ॥ हे ब्रह्मन् ! आपके अमृतकी समान वचनोंसे अभिषिक्त हो हम धन्य और कृतकृत्य हुए. हे करुणासागर ! अधिक और क्या कहैं, आपने ही कृपा करके आज हमको पवित्र किया है ॥ ९ ॥ हे साधो ! हम भवसागरमें निमग्न होकर थक गये हैं, आप यह जान मंत्रदान पूर्वक हमारा हाथ पकड़कर संसार सागरसे पार ले चलिये ॥ १० ॥ पहिले हम अत्यन्त विपुल तपस्या करके सुख देनेवाली भगवतीकी आराधना करेंगे फिर उनका दर्शन लाभ कर तब अपने घरको जायँगे ॥ ११ ॥ इस समय आपके, मुखमंडलसे देवीका नवाक्षर मंत्रलाभ कर नवरात्रिव्रत अवलंबन पूर्वक निराहार रहकर उनका स्मरण करेंगे ॥ १२ ॥ व्यासजी बोले वैश्य और राजाके इसप्रकार प्रार्थना करनेपर मुनिसत्तम सुमेधाने उनको ध्यान और बीजसहित वह मंगलदायक मंत्र दिया ॥ १३ ॥ अनन्तर वह वैश्य और राजा मुनिसे मंत्रके ऋषि बीज छन्द शक्ति और देवता प्राप्त कर गुरुको आमंत्रण पूर्वक उसकी आज्ञा ले पवित्र नदीके तटपर गये ॥ १४ ॥ अत्यन्त कृशोदर स्थिर बुद्धि वैश्य और राजा वहां एकान्त निर्जन स्थानमें आसन ग्रहण कर उसके ऊपर विराजमान हुए ॥ १५ ॥ उस शान्तचित्त वैश्य और राजाने देवीके ध्यानमें निमग्न हो उनका मंत्रजप और तीनों चरित्रोंका पाठ करते २ उसी स्थानमें एक महीना बिताया ॥ १६ ॥ केवल इस महीनेही व्रतका अनुष्ठान करनेसे उनको भगवतीके चरणकमलोंमें अत्यन्त अनुराग उत्पन्न हुआ विशेष कर उनकी मति अतिस्थिर होगयी ॥ १७ ॥ वह इस समय अन्यकार्यमें रत नहीं होते, केवल प्रति दिन एक बार महात्मा मुनिवरके चरण-कमलोंके सन्मुख जाय और उनको प्रणाम प्रत्यागमन पूर्वक अपने अपने कुशासन-पर बैठते और देवीके ध्यानमें निमग्न हो सदा मंत्र जप कार्यमें निरत रहते ॥ १८ ॥

॥ १९ ॥ हे राजन्! इसप्रकार संवत्सरके पूर्ण होनेपर फिर उन्होंने फलाहार त्याग कर पत्ते भक्षण करना प्रारंभ किया॥ २० ॥ इस प्रकार उन दोनोंने तप और ध्यानमें निरत हो सूखे पत्ते भक्षण कर वहां एक वर्ष तपस्या करी॥ २१ ॥ हे महाराज ! इन दो वर्षोंके पूर्ण होनेपर उन्होंने किसी समय स्वप्नमें भगवतीका मनोहर दर्शन पाया वह राजा और वैश्य किसी समय स्वप्नमें भगवतीका मनोहर दर्शन प्राप्त करते हुए ॥ २२ ॥ वह राजा और वैश्य किसी समय भूषणोंसे भूषित लाल वस्त्र धारे अम्बिका देवीको ॥ २३ ॥ स्वप्नमें देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए. स्वप्न देखकर दोनोंही प्रसन्न हुये और फिर जलाहारसे तीसरे वर्ष तप किया ॥ २४ ॥ इस प्रकार तीन वर्ष तपस्या करके भी जब प्रत्यक्ष दर्शन नहीं पाया, तब वैश्य और राजा देवीके दर्शनकी इच्छासे मन मनमें चिन्ता करने लगे ॥ २५ ॥ कि जिससे मनुष्योंको परम श्रेय प्राप्त होता है, हमको उनका प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त नहीं हुआ अतएव अब हम अत्यन्त दुःखसे कातर होकर प्राणत्याग करेंगे ॥ २६ ॥ राजाने मनमें इस-प्रकार चिन्ता करके एक हाथकी बराबर सुंदर दृढ एक त्रिकोण कुण्ड बनाया ॥ २७ ॥ और उसमें अग्निस्थापन करके अत्यन्त भक्तिपूर्वक अपने गात्रसे वारंवार मांस काटकर होम करने लगा ॥ २८ ॥ तब वैश्य भी इसी प्रकार अग्निस्थापन कर जलती हुई अग्निमें अपने मांसको डालने लगा. हे महाराज ! इसप्रकार वे दोनोंही उत्साहित हो देवीको रुधिरकी बलि देने लगे ॥ २९ ॥ तब भगवती उनको अत्यन्त दुःखित और भक्ति रसमें व्याकुलचित्त देख प्रत्यक्ष दर्शन देकर कहने लगी ॥ ३० ॥ देवी बोली हे राजन् ! तुम मेरे परमप्रिय भक्त हो मैं तुम्हारी तपस्यासे संतुष्ट हुई हूं अतएव तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो, वह प्रार्थना करो मैं तुमको वही वर दूंगी ॥ ३१ ॥ फिर उन्होंने वैश्यसे भी कहा हे महामते ! मैं प्रसन्न हुई हूं, अतएव तुम्हारी क्या इच्छा है ? शीघ्र कहो मैं अब तुमको अभीष्ट वर दूंगी ॥ ३२ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! राजा सुरथ देवीके इस प्रकार वचन सुन, आनन्दित होकर उनसे कहने लगे हे देवि ! बलपूर्वक शत्रुओंको मारकर अभी अपने राज्यको प्राप्त करूं मुझको यही वर दीजिये ॥ ३३ ॥ तब देवीने उनसे कहा हे राजन् ! तुम अपने घर जाओ, तुम्हारे शत्रु क्षीणबल होकर अवश्य पराजित होंगे ॥ ३४ ॥ हे महाभाग ! तुम्हारे मंत्रीगण आय चरणोंमें गिरकर तुम्हारे वशीभूत होंगे अतएव तुम अपने नगरमें जाकर सुखसहित राज्य पालन करो ॥ ३५ ॥ हे राजन् !

इसप्रकार तुम अयुतवर्ष १०००० विशाल राज्य शासनपूर्वक फिर देह त्याग सूर्यसे जन्मग्रहण कर सावर्णिनामक मनु होगे ॥ ३६ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! उस पवित्र स्वभाव वैश्यने भी हाथ जोड़कर उनसे कहा हे देवि ! गृह, पुत्र अथवा धनसे मेरा कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ ३७ ॥ हे जननि ! गृह पुत्र और धन, यह सब संसारके बंधन स्वरूप और स्वप्नकी समान नाशवान् हैं, अतएव जिससे संसारबंधन टूटकर मुक्ति प्राप्त होती है, ऐसा विशद ज्ञान मुझको दीजिये ॥ ३८ ॥ ज्ञानविहीन मूढ पामर गणही इस असार संसारसागरमें निमग्न होते हैं पण्डितलोग कभी संसारकी इच्छा नहीं करते, अतएव वही इससे पार होते हैं ॥ ३९ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! यह वचन सुनकर महामाया सन्मुख स्थित वैश्यसे कहने लगीं हे वैश्यवर ! तुमको ज्ञान प्राप्त होगा, इसमें सन्देह नहीं ॥ ४० ॥ देवी उनको इस प्रकार वर देकर उसी स्थानमें अन्तर्धान होगईं, देवीके अन्तर्धान होनेपर राजाने उन मुनिको ॥ ४१ ॥ प्रणाम कर, घोड़ेपर चढ़ घर जानेकी इच्छा की उस समय उनके मंत्री-गण और प्रजागणोंने सामने जाय ॥ ४२ ॥ विनय भावसे उनको प्रणाम किया और हाथ जोड़ खड़े होगये फिर बोले हे राजन् ! शत्रुओंने अत्यन्त पापाचरण किया था, इसकारण वह सबही समरमें मृत्युको प्राप्त हुए ॥ ४५ ॥ अब आप नगरमें वास करके निष्कण्टक राज्यशासन कीजिये राजाने मंत्रियोंका इसप्रकार वचन सुननेके पीछे उन मुनिवरको प्रणाम कर ॥ ४४ ॥ अनुमति ग्रहण पूर्वक मंत्रियोंसे परिवेष्टित हो अपने नगरकी ओर प्रस्थान किया इसके उपरान्त अपना राज्य स्त्री आत्मीय और बांधवगणोंको प्राप्त हो ॥ ४५ ॥ समुद्रसे घिरे हुए सब पृथ्वीमण्डलको भोग करने लगे इस और वैश्य भी ज्ञानलाभ करतेही भलीभांति संगरहित हो संसारसे छूटगया ॥ ४६ ॥ अनन्तर वह जीवन्मुक्त वैश्य-वर अनेकानेक तीर्थोंमें विचरण ओर देवीका गुणगान करते करते समय विताने लगा ॥ ४७ ॥ हे महाराज ! मैं ने आपसे देवीका परम अद्भुत चारित्र राजा और वैश्यको देवीकी आराधनासे फलप्राप्ति ॥ ४८ ॥ दानवोंका संहार और उनके कल्याणजनक आविर्भावका सब विषय भलीभांति वर्णन किया. हे राजन् ! आप उन भक्तोंको अभय देनेवाली देवीका प्रभाव इसीप्रकार जानिये ॥ ४९ ॥ जो मनुष्य देवीभगवतीका चारित्र उपाख्यान सदा सुनते हैं उन श्रेष्ठमनुष्योंको संसारका

अद्भुत पवित्र सुख प्राप्त होता है ॥ ५० ॥ इस अद्भुत उपाख्यानके सुननेसे मनुष्य ज्ञान मुक्ति कीर्त्ति सुख और पवित्रता लाभ करनेमें समर्थ होते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ ५१ ॥ इस उपाख्यानमें सब धर्मोंका तत्व स्थिर हुआ है यही धर्म अर्थ काम और मोक्षका परम कारण है विशेष कर यह मनुष्योंको सब अभीष्ट प्रदान करता है ॥ ५२ ॥ सूतजी बोले हे ऋषियो ! राजा जन्मेजयने जब सत्यवतीतनय व्यासदेवजीसे पूछा तब सर्वतत्वके जाननेवाले उन महर्षिने यह दिव्य संहिता उनके निकट कीर्त्तन की थी ॥ ५३ ॥ परमकारुणिक भगवान् श्रीवेदव्यासजीने शुंभादि दानवोंके वध संघटित चण्डिकाके चारित्र इस प्रकारही वर्णन किये थे, हे मुनिवरगण ! मैंने भी आपसे इस पुराणका सारसंग्रह वर्णन किया ॥ ५४ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पण्डितज्वाला-
प्रसादमिश्रकृतभाषायां पंचमस्कन्धे पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

२०९० श्लोकोंमें पांचवां स्कंध पूर्ण हुआ ।

शुभमस्तु ।



श्रीगणेशाय नमः ।

अथ श्रीमद्देवीभागवत ।

षष्ठस्कन्धः ६.

प्रथमोऽध्यायः १.

दोहा—दीर्घनैन शृंगाररस, सागर छवि गुणऐन ॥
भजहुँ नित्य जगदम्बिका, गुणागार सुखदैन ॥ १ ॥

नैमिषारण्यमें वास करनेवाले ऋषिगण सूतजीसे कहने लगे हे महाभाग ! तुम्हारे मुखचन्द्रसे निकला हुआ महर्षि द्वैपायनकथित कल्याणकर वचनामृत हमको अत्यन्त मीठा वोध होता है इसलिये हम उसे पान करके भी भलीभांति तृप्तिलाभ नहीं करसक्ते ॥ १ ॥ हे सूतजी ! जो प्रसिद्ध पापनाशन और मनोहर तथा वेदमें भी जो कथित है हम उसी शुभकर पुराणकी कथा पुनर्वार तुमसे पूछनेकी इच्छा करते हैं ॥ २ ॥ वृत्रासुर नामक विख्यात अत्यन्त वीर्यवान् विश्वकर्माका एक पुत्र था इन्द्रने महात्मा होकर भी युद्धमें उसको किसप्रकार मारा ॥ ३ ॥ विश्वकर्म्मा देवताओंका पक्षपाती था उसका पुत्र वीर्य्यवान् और महाबल तथा ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न था अतएव इन्द्रने देवताओंका राजा होकर भी उसका किसकारण विनाश किया ॥ ४ ॥ पुराणके जाननेवाले और आगमवादी पंडितगण कहते हैं कि देवता सत्वगुणसे, मनुष्य रजोगुणसे और सब तिर्य्यग्जाति तमोगुणसे उत्पन्न हुई हैं ॥ ५ ॥ किन्तु वृत्रासुरके विनाशसे उसका महत्‌विरोध दिखाई देता है क्योंकि, इन्द्रने शतयज्ञकारी सत्वगुणसम्पन्न होकर भी छलसे बलवान् वृत्रासुरका विनाश किया था ॥ ६ ॥ और सत्वगुणधारी विष्णुने उसको इसकार्य्यमें प्रवर्तित किया, और उन भगवान् प्रभु विष्णुने वृत्रासुरके वधार्थ छलपूर्वक वज्रमें प्रवेश किया था ॥ ७ ॥ महाबलवान् वृत्रासुर मिलाप करके निश्चिन्त था किन्तु इन्द्र और विष्णुने सत्य त्यागकर जलफेनसे मारा ॥ ८ ॥ इसप्रकार साहस किया यह अत्यन्त आश्चर्य्यका विषय है !

जो हो मैं समझगया महत् महत् जनभी मोहद्वारा वञ्चित होकर पापबुद्धि होते हैं ॥ ९ ॥ प्रधान प्रधान देवतागण अत्यन्त अन्यायकारी हैं केवल शास्त्रानुमत सदाचारद्वारा उनको शिष्ट कहा जाता है ॥ १० ॥ इसप्रकार केवल सदाचारसे कैसे शिष्टता होती है ? यह मैं नहीं समझसक्ता वास्तवमें इसप्रकारकी शिष्टता शिष्टता नहीं है सो जो हो इन्द्रने छलसे वृत्रासुरको मारकर ॥ ११ ॥ ब्रह्महत्याजनित कोई फल पाया था वा नहीं ? हे सूतजी ! तुमने पहले कहा है कि देवी भगवतीने वृत्रासुरको मारा था ॥ १२ ॥ किन्तु इन्द्र वृत्रासुरका मारनेवाला है यह सर्वत्र प्रसिद्ध है अतएव कौन विषय यथार्थ है उसको स्थिर न करसकनेसे इस समय हमारा मन मोहित हुआ जाता है, सूतजीने कहा हे मुनिगण ! वृत्रासुरके वधका वृत्तान्त सुनो ॥ १३ ॥ और देवराज इन्द्रने जिसप्रकार ब्रह्महत्याजनित दुःख भोग किया था वह कहता हूं,परीक्षितके पुत्र महाराज जन्मेजयने पहले यह कथा पूंछी थी तब ॥ १४ ॥ सत्यवतीके पुत्र व्यासदेवजीने जो कहा था मैं वही आपके निकट वर्णन करता हूं सुनो जन्मेजयने कहा हे मुनिवर ! पहले सत्वगुणसम्पन्न सुरपति इन्द्रने विष्णुकी सहायतासे वृत्रासुरको किसप्रकार मारा ? अथवा श्रीदेवीजीने किसनिमित्त इस दैत्यश्रेष्ठको मारा था ॥ १५ ॥ १६ ॥ हे मुनीन्द्र ! दो व्यक्ति एक जनको मारें यह किसप्रकार सम्भव है ? इसको सुननेके लिये मेरे मनमें अत्यन्त कुतूहल उत्पन्न हुआ है ॥ १७ ॥ कौन मनुष्य महत् पुरुषोंके चारित्रकी कथा सुननेसे विरत होगा, आप शक्तिरूपिणी जगज्जननीके वृत्रासुरवधसंघटित वैभवकी कथा वर्णनकर मेरे श्रवण और मनको चारितार्थ कीजिये ॥ १८ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! सुरश्रेष्ठ अमृतपान कर तिसके पीनेसे भी तृष्णारहित होते हैं किन्तु आप अबतक पुराणोंकी कथासे तृष्णारहित नहीं हुए वरन् पुराणोंके सुननेमें आपका आदर दिन दिन बढ़ता है आपकी बुद्धि पुराणपीयूषरसमें निमग्न हुई है अतएव हे राजेन्द्र ! आप धन्य हैं ॥ १९ ॥ हे नृपवर ! पृथ्वीमें आपकी कीर्त्ति प्रशंसनीय है पुराणकी कथामें आपका भक्तिभाव दिन दिन बढ़ता है अतएव मैं भी आपके निकट पुराणकी कथा कीर्त्तन कर परमप्रीतिलाभ करता हूं क्योंकि श्रोता यदि एक मनसे तद्गतचित्त कथा सुने तो वक्ता भी आनन्दित हो यत्नपूर्वक कथा कहता है इसमें सन्देह नहीं ॥ २० ॥ हे पृथ्वीन्द्र ! पूर्वकालमें वृत्रासुर और इन्द्रका जो युद्ध हुआ था और इन्द्रने विश्वकर्म्माके पुत्रको मारकर जो दुःख पाया

था वह वेद और पुराणमें भलीभांति वर्णित है ॥ २१ ॥ हे राजन् ! जब मायाके बलसे मोहित हो मुनिगण पापका भय करके भी निन्दित कर्म्म करते हैं तो विष्णु और इन्द्रने जो छलसे त्रिशिरा और वृत्रासुरको मारा फिर विचित्रता ही क्या है ॥ २२ ॥ विष्णु सत्वमूर्ति होकर भी जब मायासे मोहित हो सर्वदा ही कपटचतुरता दिखाय दैत्यगणोंको मारते हैं तब कौन उस सर्वजनमोहकारिणी मायास्वरूपिणी भगवती भवानीको मनसे भी जीतनेमें समर्थ है ॥ २३ ॥ हे नृप ! इस मायाके संयोगसे भगवान् अनन्तस्वरूप नरसखा नारायण सहस्र युगमें मत्स्यादि योनिमें इस संसारके बीच उत्पन्न होकर कभी विहित और कभी अविहित कर्म करते हैं ॥ ॥ २४ ॥ देवता और मनुष्य सब जीवगण मायाद्वारा विकल और विह्वल होनेसे देह, धन, गृह, पुत्र, कलत्र और स्वजन "यह सब मेरे हैं" इसप्रकार मोहको प्राप्त हो कभी पुण्य और कभी पापकर्म करते हैं ॥ २५ ॥ हे महाराज ! इस प्रकार पृथ्वीवासमें कोई कार्य और कारणवित् पुरुष मोहसे छुटकारा पानेमें समर्थ नहीं हो तो वह पहलेही मायाके तीनों गुणोंसे मोहित हो उसीके वशीभूत होता है ॥ २६ ॥ अतएव उन विष्णु और इन्द्र दोनोंने ही मायासे मोहित और स्वार्थसाधनमें तत्पर हो छलपूर्वक वृत्रासुरको मारा था ॥ २७ ॥ हे राजन् ! मैं यह वृत्तान्त और वृत्रासुर तथा इन्द्रकी परस्पर शत्रुताका कारण आपसे कहता हूं सुनो ॥ २८ ॥ देवप्रवर विश्वकर्मा प्रजापति महातपस्वी ब्राह्मणोंके अत्यन्तप्रिय और देवतागणोंके चतुर शिल्पकार थे ॥ २९ ॥ उन्होंने इन्द्रके प्रति विद्वेषके कारण परमरूपवान् त्रिशिरा विश्वरूपनामक एक पुत्र उत्पन्न किया था ॥ ३० ॥ उस पुत्रके परमसुन्दर तथा मनोहर तीन मुख थे विश्वरूप इन तीनोंसे पृथक् पृथक् मुखसे भिन्न २ कार्य निर्वाह करते ॥ ॥ ३१ ॥ उनमें एकसे वेद पढ़ते, एकसे सुरापान और अन्यसे सब दिशाओंको देखते ॥ ३२ ॥ मुनिवर त्रिशिरा मृदु चतुर और धर्मशील हो विषयवासना त्यागकर कठोर तपस्याका अनुष्ठान करने लगे ॥ ३३ ॥ वे ग्रीष्मकालमें पञ्चाग्नि तापते, और वृक्षके ऊपर पैर बांध अधोमुख होकर स्थिति और हेमन्त शिशिर तथा शीतके समय जलमें वास करते ॥ ३४ ॥ इसप्रकार आहार त्याग और आत्माको जीतकर सब विषयसंगपरित्यागपूर्वक मन्दबुद्धियोंको दुष्कर ऐसी कठोर तपस्याका अनुष्ठान करने लगे ॥ ३५ ॥ शचीपति उनको इसप्रकार तपस्या करते देखकर अत्यन्त खेद और विषादको प्राप्त हुए और जिससे वे इन्द्रपदलाभ करसकें इसप्रकारकी

इच्छा करने लगे ॥ ३६ ॥ पाकशासन इन्द्र उस अमिततेजा तपस्वीका तपोवीर्य और स्थिर अनुराग देखकर अत्यन्त चिन्ता करने लगे ॥ ३७ ॥ कि त्रिशिरा तपोबलसे दिन दिन बलवान् होता है अतएव यह मुझको मारसकेगा क्योंकि जिस शत्रुका बल दिन दिन बढ़ता है पंडितगणं कभी उसकी उपेक्षा नहीं करते ॥ ३८ ॥ अतएव इस समय इसकी तपस्याके विनाशका उपाय करना मुझको अवश्य कर्तव्य है, इसप्रकार चिन्ता कर निश्चित किया कि, कामही तपस्याका शत्रु है कामसेही तपस्याका नाश होता है॥ ३९॥ अतएव वे जिसमें भोगासक्त हो मुझको वही करना उचित है बुद्धिमान् इन्द्रने इसप्रकार चिन्ता कर॥ ४०॥ विश्वकर्माके पुत्र त्रिशिराको लुभानेके लिये उर्वशी, मेनका, रंभा, घृताची और तिलोत्तमा इत्यादि रूपगर्वित अप्सरागणोंको बुलाकर कहा ॥ ४१ ॥ हे अप्सरागणो! इस समय मेरा एक भारी कार्य्य उपस्थित हुआ है तुम इस विषयमें मेरा प्रिय कार्य साधन करो ॥ ४२ ॥ इस समय मेरा एक दुर्जय महान् शत्रु प्रगट हो तपस्या करता है तुम विलम्ब न करके शीघ्र जाय कार्य्यसाधनका यत्न करो ॥ ४३ ॥ तुम शृङ्गारवेश धारण कर देहसे हावभावादि अनेक चेष्टासे उसको लुभाओ तुम्हारा मंगल हो तुम उसको लुभाकर मेरे हृदयका ज्वर दूर करो ॥ ४४ ॥ हे अप्सरागणो ! अधिक और क्या कहूं मैं उसका तपोबल जानकर किसीप्रकारसे ही स्वास्थ्यलाभ नहीं करसक्ता, हे अबलागणो ! वह बलवान् तपस्वी शीघ्रही मेरा आसन ग्रहण करेगा ॥ ४५ ॥ मुझको यही भय उपस्थित हुआ है. अतएव तुम शीघ्रही वह भय दूर करो इस समय यह कार्य्य उपस्थित है तुम सब मिलकर हमारा उपकार करो ॥ ४६॥ अप्सरागण उनका यह वचन सुन प्रणाम पूर्व्वक कहने लगीं हे देवेश्वर ! आप भय न कीजिये, हम उस तपस्वीके लुभानेको भलीभांति यत्न करेंगी ॥ ४७॥ हे महाद्युते! उस मुनिको लुभानेके निमित्त नृत्य गीत और विहारादि कर जिससे आपका भय दूर हो हम वही करेंगी॥ ४८॥ हे देवराज! उस मुनिको कटाक्ष अंगभंग और द्वारा मोहित चलायमान चित्त तथा नियन्त्रित कर अपने वशीभूत करेंगी ॥ ४९ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! अप्सरागण देवराज इन्द्रसे यह कह त्रिशिराके पास गईं और कामशास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार हावभाव प्रकाश करने लगीं ॥ ५०॥ वे मुनिके सामने कभी गान तथा कभी भिन्न भिन्न तालसहित नृत्य करने लगीं बहुत क्या वे देवताओंकी स्त्रियें उन मुनिको लुभानेके निमित्त अनेक प्रकारके हावभाव प्रकाश करने लगीं ॥ ५१ ॥ किन्तु

तपःप्रभावयुक्त उन महर्षि त्रिशिराने अङ्गनागणोंकी अङ्गभङ्गरूप विडम्बनाको देखा भी नहीं वरन् वह इन्द्रियगणोंको वशीभूत कर गूंगे अन्धे और बहरेकी समान स्थिति करने लगे ॥ ५२ ॥ अङ्गनागणोंने मुनिके उस मनोहर आश्रममें अत्यन्त मनको मोहित करनेवाले संगीत और नृत्यादि अनेक प्रकारकी कामकला फैलाकर कुछ दिनतक वहां वास किया ॥ ५३ ॥ किन्तु जब वह त्रिशिरामुनि कुछभी ध्यानसे विचलित न हुए तब अप्सरागण ॥ ५४ ॥ विश्रान्त (थककर) दीनभावयुक्त हो लौटकर इन्द्रके सामने उपस्थित हुईं और सबही भयसे त्रसित हो हाथ जोड़कर कहने लगीं ॥ ५५ ॥ महाराज! हमने अत्यन्त यत्न किया किन्तु किसीसे भी उन दुर्धर्ष मुनिवरको ध्यानसे न छुटासकीं ॥ ५६ ॥ हे पाकशासन! इस समय आप दूसरा उपाय कीजिये उस जितेन्द्रिय तपस्वीके ध्यानच्युत करनेमें हम समर्थ न हुईं ॥ ५७ ॥ हमारे भाग्यसेही अग्निकी समान तपःप्रभावयुक्त उन मुनिवरने हमको शाप न दिया ॥५८॥ अनन्तर अप्सरागणोंको विदा कर मन्दबुद्धि पापमति इन्द्र अत्यन्त अन्याय होनेपरभी उस मुनिके मारनेकी इच्छा करने लगे ॥ ५९ ॥ हे महाराज! उन अमरराज इन्द्रने लोकलज्जा और पापभय विसर्ज्जन-कर उनको मारनेके निमित्त अतिनिन्दित पापबुद्धि स्थिर की ॥ ६० ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे भाषायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

व्यासजीने कहा हे महाराज! अनन्तर सुरपति इन्द्रने त्रिशिराके मारनेका संकल्प कर ऐरावतके ऊपर चढ उन अमितपराक्रम मुनिवरके सामने जाय देखा कि, ॥ १ ॥ वह मुनिवर वाक्यसंयतकर दृढ आसनपर विराजमान रहकर एकाग्रचित्तसे समाधि कर रहे हैं तिसकाल उनके शरीरसे इसप्रकार तेज निकल रहा था कि वह सूर्य्य और अग्निकी समान बोध होते थे इन्द्र त्रिशिराको इसप्रकार देखकर अत्यन्त खेद और विषादको प्राप्त हुए ॥ २ ॥ तब उन्होंने विचारा कि, यह निर्म्मल-चित्त मुनिवर प्रदीप्त तपोबलयुक्त हैं, मैंने इनको मारनेकी इच्छाकी यह अत्यन्त धर्म्मविरुद्ध है; किन्तु यह मेरा सिंहासन ग्रहण करनेके अभिलाषी हुए हैं अतएव किसप्रकार ऐसे शत्रुकी उपेक्षा करूं ॥ ३ ॥ देवराज इन्द्रने इस प्रकार विचार कर स्वयं उस तपस्यामें बैठे चन्द्र और सूर्यकी समान दीपमान मुनिवर

त्रिशिराके प्रति शीघ्रगामी अपना अमोघ अस्त्र वज्रनिक्षेप किया ॥ ४ ॥ तब पर्वतका विशालशिखर वज्रसे आहत होकर जिसप्रकार पृथ्वीमें गिरता है इसीप्रकार तपस्वी-प्रवर त्रिशिरा भी वज्रसे आहत हो पृथ्वीमें गिरपड़े और तत्काल प्राणत्याग किया ॥ ५ ॥ इन्द्र उनको मारकर अत्यन्त प्रसन्न हुए किन्तु वहां बैठे मुनिगण " हा हतोस्मि " हाय क्या हुआ ? यह कह आर्तस्वरसे शब्द कर उठे और ऊंचे स्वरसे कहने लगे हाय पापमति ! इन्द्रने आज क्या दुष्कर्म किया ॥ ६ ॥ हाय दुरात्मा पापमति शचीपतिने विना अपराध इन तपोनिधि मुनिवरको मारा ? अतएव यह पापात्मा मुनिके हत्याजनित पाप फलको शीघ्र ही प्राप्त हो ॥ ७ ॥ अनन्तर देवराज इन्द्र उनको मारकर शीघ्र अपने स्थानको चलेगये इधर वह महात्मा तपोनिधि हत होकर भी अपने शरीरकी प्रभासे जीवितकी समान स्थिति करने लगे ॥ ८ ॥ तब वृत्रासुरके नाश करनेवाले इन्द्र उनको जीवितकी समान पड़ाहुआ देखकर " यह मुनिवर जीवित होसक्ते हैं " इसप्रकार चिन्ता कर अत्यन्त दुःखसे सन्तापित होने लगे ॥ ९ ॥ फिर मनमें अनेक प्रकारकी चिन्ता कर सामने खड़े काष्ठच्छेदक तक्षासे स्वार्थसाधनके अनुरूप वचन कहने लगे ॥ १० ॥ हे शिल्पवर ! तुम इनका मस्तक काटकर मेरा वचन प्रतिपालन करो यह महातेजा महर्षि जीवितकी समान बोध होते हैं अतएव जब तुम उनका मस्तक काटडालोगे तब यह जीवित नहीं हो सकेंगे ॥ ११ ॥ तब तक्षाने इन्द्रका यह वचन सुन उस कार्यकी निन्दा कर उनसे कहा तक्षा बोले हे देवराज ! इन मुनिवरका कण्ठ अत्यन्त स्थूल है अतएव अच्छेद्य है मेरा यह कुठार उनका मस्तक छेदन करनेमें समर्थ नहीं होगा ॥ १२ ॥ विशेष कर यह नीचकार्य नहीं करूंगा आपने गणोंके पक्षमें जो अत्यन्त नीच है वह अधर्म कार्य किया है ॥ १३ ॥ किन्तु मैं पापका भय करता हूं अतएव इन मरेहुए मुनिवरके अंगमें फिर आघात नहीं करूंगा यह मुनि मरेहुए पड़े हैं इनके मस्तक काटनेका क्या प्रयोजन है॥ १४॥हे पाकशासन ! इस विषयमें आपके भयका क्या कारण है सो कहो इन्द्रने कहा हे शिल्पवर ! यह मुनि हमारे परम शत्रु हैं इनका देह इस समय जीवितकी समान प्रभावयुक्त बोध होता है ॥ १५ ॥ अतएव यह फिर जीवित होजायँगे मैं इसी कारण डरता हूं तक्षाने कहा आप सब विषयको जान-कर भी इस नृशंस कर्म्म करनेमें क्या लज्जाबोध नहीं करते ? ॥ १६ ॥ इन ऋषि-पुत्रको मारकर ब्रह्महत्याका भय नहीं करते इन्द्रने कहा मैं दूर करनेके निमित्त फिर

प्रायश्चित्त करूंगा ॥ १७ ॥ किन्तु इस समय इस शत्रुका मारना मुझको अवश्य है. हे महामते ! नीतिके जाननेवाले पंडितगण कहते हैं कि, छलकरके भी सर्वप्रकार शत्रुको मारना तब तक्षाने इन्द्रका यह वचन सुनकर कहा हे मघवन् ! आपने लोभके वशीभूत होकर यह पापकार्य किया है ॥ १८ ॥ किन्तु हे विभो ! मुझको लोभका कारण कुछ नहीं है. अतएव उसके विना मैं किसप्रकार इस पापकार्य्यके करनेमें प्रवृत्त हूं. इन्द्रने कहा हे तक्षन् ! मैं यज्ञस्थलमें तुम्हारा भाग दूंगा ॥ १९ ॥ मनुष्योंके यज्ञमें दिया हुआ पशुका मस्तक सदा तुमको दूंगा अब तुम इस नियमानुसार इनका मस्तक काटकर मेरा प्रियकार्य्य करो ॥ २० ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! वह तक्षा इन्द्रका यह वचन सुनकर प्रसन्न हुआ और दृढ कुठारसे इन मुनिके सब मस्तक काटडाले ॥ २१ ॥ हे महाराज ! उनके तीनों मस्तक काटकर पृथिवीमें गिरपड़े उनसे हजारों पक्षी वेगसहित निकलने लगे ॥ २२ ॥ कलविङ्क[1], तित्तिर और कपिञ्जल यह तीन प्रकारके पक्षी पृथक् पृथक् मुखसे पृथक् पृथक् रूपमें शीघ्रही निकलने लगे ॥ २३ ॥ हे नृपवर ! वह तीव्रतेजा मुनिवर जिस मुखसे वेदाध्ययन और सोमपान करते उनसे सब कपिञ्जल पक्षी ॥ २४ ॥ और जिस मुखसे दिशाओंको पान करनेकी समान देखते उससे सब तित्तिरपक्षी ॥ २५ ॥ तथा जिससे सुरापान करते उससे सब कलविङ्कपक्षी निकलने लगे ॥ २६ ॥ देवराज इन्द्र पक्षिगणोंको उनके मुखविवरसे निकलता हुआ देखकर मनमें अत्यन्त प्रसन्न हुए और तत्काल स्वर्गमें गमन किया ॥ २७ ॥ हे महाराज ! इन्द्रके अपने नगरमें जानेपर तक्षाभी शीघ्र अपने घरको चलागया और यज्ञका भाग प्राप्तकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ ॥ २८ ॥ देवराज इंद्र शत्रुको मारकर अपने घर जायकर अपनेको कृतार्थ जानने लगे किन्तु ब्रह्महत्याके विषयमें कुछ चिन्ता न की ॥ २९ ॥ अनन्तर विश्वकर्माने सुना कि मेरा परम धार्मिक पुत्र मरा है तब वह मनमें अत्यन्त क्रोधित होकर कहने लगे कि ॥ ३० ॥ जब इन्द्रने मेरे गुणवान् और तपस्यामें निरत पुत्रको निरपराध मारा है, तब मैं उसके मारनेको फिर दूसरा पुत्र उत्पन्न करूंगा ॥ ३१ ॥ देवतागण मेरा वीर्य और तपका बल देखें और वह दुरात्मा इन्द्र भी अपने किये हुए कार्यका महत् फल अनुभव करै ॥ ३२ ॥ विश्वकर्मा यह कह क्रोधसे अत्यन्त आकुल हुए और अथर्ववेदमें कहे हुए विधानानुसार पुत्र उत्पन्न करनेके निमित्त अग्निमें होम करने लगे ॥ ३३ ॥ आठ रात्रि होम करनेपर उस जलती हुई अग्निसे दूसरे अग्निके समान दीप्तिमान्

१ गौरैया ।

एक पुरुष शीघ्र प्रगट हुआ ॥ ३४ ॥ विश्वकर्माने अनलसे निकले हुए तेज और बलसे युक्त दीप्यमान अग्निके समान ॥ ३५ ॥ उस पुत्रको सामने देखकर कहा हे इन्द्रशत्रो ! तुम मेरे तपोबलसे वर्धित होओ ॥ ३६ ॥ विश्वकर्माके क्रोधसे प्रज्वलित हो यह वचन कहनेपर अग्निकी समान दीप्तिशाली वह पुत्र आकाशमण्डल स्तब्ध करता हुआ बढ़ने लगा ॥ ३७ ॥ क्षणकालमें ही वह पुरुष कालान्तक शमनकी समान पर्वताकार हो अपने तेजसे स्थिति करने लगा और अत्यन्त कातर हुए अपने पिता विश्वकर्मासे कहा ॥ ३८ ॥ हे प्रभो ! आप मेरा नामकरण कीजिये हे तात ! मैं आपका क्या कार्य साधन करूं ? आप किसीनिमित्त चिन्तातुर और शोकातुर हुए हैं इसका सब कारण कहिये ॥ ३९ ॥ मैं आपका शोक दूर करूंगा. यह मेरा इस समय निश्चित विषय है. हे पितः ! जो पुत्र पिताका दुःख दूर करनेमें समर्थ नहीं होता उस पुत्रके उत्पन्न होनेका क्या फल है ॥ ४० ॥ हे पितः ! मैं इस समय सब सागर पान करूंगा समस्त पर्वत चूर्णकर डालूंगा, उदयशील तेजस्वी सूर्यको निवारण करूंगा ॥ ४१ ॥ अथवा सब देवतागणोंके सहित इन्द्रको यमको वा अन्य जो कोई देवता हो उसका विनाश करूंगा और पृथ्वीको उखाड़कर सब जीवगणोंको समुद्रके जलमें डुवा दूंगा ॥ ४२ ॥ हे महाराज ! विश्वकर्माने उस पुत्रके इसप्रकार मनोहर वचन सुनकर प्रसन्न हो उस पर्वतोपम पुत्रसे कहा ॥ ४३ ॥ हे पुत्र ! तुम इस समय वृजिन अर्थात् दुःखसे रक्षा करनेमें समर्थ हो उसीकारण तुम वृत्रनामसे विख्यात होगे ॥ ४४ ॥ हे महाभाग ! तुम्हारे भ्राता त्रिशिरानामक तपस्वी थे उनके तीनों मस्तक वीर्यवान् अर्थात् उत्तम कर्म करनेमें समर्थ थे॥ ४५॥ वह वेद और वेदांगशास्त्रका तत्व जाननेवाले और सर्वविद्याविशारद हो सदाही त्रिलोककी आश्चर्ययुक्त तपस्यामें निरत रहते थे ॥ ४६ ॥ इन्द्रने हमारे उसी गुणवान् पुत्रको वज्रसे मारा है उस पापात्मा इन्द्रने विना अपराधही उसके तीनों मस्तक काट डाले॥ ४७॥ अतएव हे पुरुष श्रेष्ठ ! तुम उस अपराध करनेवाले ब्रह्महत्याके पापसे युक्त पापस्वरूप निर्लज्ज शठ और दुष्टमति इन्द्रका संहार करो॥ ४८ ॥ हे महाराज ! पुत्रशोकसे व्याकुल विश्वकर्माने इसप्रकार कह अनेकप्रकारके सब दिव्य आयुध उत्पन्न किये ॥ ४९ ॥ उन्होंने इन्द्रके मारनेको विशेष कार्यमें समर्थ उत्तम उत्तम खड्ग, शूल, गदा, शक्ति, तोमरादि ॥ ५० ॥ और शार्ङ्गधनुष, वाण, परिघ, पट्टिश, सुदर्शनकी समान प्रभायुक्त सहस्र आरेवाला दिव्यचक्र ॥ ५१ ॥ दिव्य अक्षय दो

तरकस, सुन्दर कवच, मेघकी समान प्रभायुक्त दृढवायुके समान वेगवान् रथ यह सम्पूर्ण निर्माण करके पुत्रको दिये ॥ ५२ ॥ हे महाराज ! क्रोधयुक्त शिल्पवर विश्वकर्माने इसप्रकार युद्धकी सब सामग्री बनाय वह सब अपने पुत्र वृत्रासुरको प्रदानपूर्वक इन्द्रके मारनेको भेजा ॥ ५३ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

व्यासजीने कहा हे राजन् ! महाबलवान् वृत्रासुर वेदके जाननेवाले ब्राह्मणगणोंसे स्वस्त्ययन कराय रथपर चढ़कर देवराज इन्द्रको मारनेके निमित्त निकला ॥ १ ॥ पहले देवतागणोंने जिन सब दानवगणोंको पराजित किया था इस समय वह वृत्रासुरको बलवान् जानकर उसकी सेवा और सहायताको उसके निकट आय उपस्थित हुए ॥ २ ॥ इन्द्रके दूतने उन सबको युद्धके निमित्त उपस्थित देख शीघ्रतासहित आय देवराज इन्द्रसे उनका कार्य और सब वृत्तान्त निवेदन कर कहा ॥ ३ ॥ दूत बोला हे प्रभो ! विश्वकर्माने पुत्रके मारे जानेसे सन्तप्त और क्रोधयुक्त हो आपको मारनेके निमित्त अभिचारकर्मसे जो पुत्र उत्पन्न किया है ॥ ४ ॥ वह दुःसह वृत्रासुरनामक असुर आपका दारुण शत्रु है वह इस समय रथपर चढकर असुरगणोंसे परिवृत हो युद्धके कारण इस स्थानमें आरहा है ॥ ५ ॥ हे महाभाग ! यह शत्रु सुमेरु और मंदराचलकी समान अत्यन्त दारुण है वह इस समय घोरतर शब्द करता हुआ शीघ्र आरहा है आप भलीभाँति यत्न कीजिये ॥ ६ ॥ हे महाराज ! देवराज इन्द्र दूतका वचन सुनही रहे थे इसी समयमें देवतागण भयभीत और त्रस्त हो आनकर कहनेलगे ॥ ७ ॥ देवता गण बोले हे सुरपते ! इस समय देवतागणोंके भवनमें अनेक अमंगलशब्द दिखाई देते हैं. पक्षीगण जिसप्रकार ध्वनि करते हैं उससे जाना जाता है कि, शीघ्रही अनिष्टपात होगा ॥ ८ ॥ काक, गृध्र, श्वेत और कंक इत्यादि सब दारुण पक्षीगण भवनके ऊपर विकृत और ऊंचे शब्दसे रोते हैं ॥ ९ ॥ अन्यान्य पक्षीगण सदाही चींचीं कूचीं इत्यादि शब्द करते हैं वाहनोंकी आंखोंसे आंसू गिरते हैं ॥ १० ॥ हे महाभाग ! अधिक और क्या कहैं ? रात्रिके समय भवनके ऊपर रोतेहुए राक्षसीगणोंका भयंकर तथा दारुण शब्द सुनाई आता है ॥

॥ ११ ॥ हे मानद ! विना पवनके ही रथस्थित समस्त ध्वजा टूटकर गिरती है इस-प्रकार स्वर्गमें भूमिजात और अंतरिक्षजात सम्पूर्ण उत्पात प्रादुर्भूत होते हैं ॥ १२ ॥ हे देवराज ! इस समय देवतागणोंके स्थानमें विकृतमुखवाली स्त्रियें काले वस्त्र पहनकर घरघरमें भ्रमणपूर्वक "घरसे शीघ्र जाओ शीघ्र जाओ" यह वचन सदाही कहती हैं ॥ १३ ॥ देवतागणोंकी स्त्रियें अपने अपने घरमें निद्रित रहकर भी स्वप्नमें देखती हैं कि भयंकर राक्षसी आनकर उनके, केशकलाप छिन्नकर उनको भय दिखाती हैं ॥ ॥ १४ ॥ हे देवेन्द्र ! इस समय सब अशुभ लक्षण और भूमिकम्प तथा उल्कापा-तादि उत्पात संघटित होते हैं अधिक क्या रात्रिकालके समय गीदड़ घरके आङ्ग-नमें आनकर घोर हृदयको क्षोभित करनेवाले दारुणशब्दसे रोते हैं ॥ १५ ॥ अनेक कृकलास (गिरगिट) घरघरमें भ्रमण करते फिरते हैं और अनेकानेक अङ्ग फड़-कना इत्यादि सब अमंगल लक्षण सदाही प्रकाशित होते हैं ॥ १६ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! उनके यह वचन सुनकर देवराज इन्द्र अत्यन्त चिन्तायुक्त हुए और सुरगुरु बृहस्पतिजीको बुलाकर पूँछने लगे ॥ १७ ॥ इन्द्र बोले हे ब्रह्मन् ! घोरतर सब अनिष्ट प्रकाशित होते हैं दारुण पवन चलता है और आकाशसे उल्कासमूह गिरते हैं यह सब क्या है ॥ १८ ॥ हे महाभाग ! आप बुद्धिमान् शास्त्रके जाननेवाले देवतागणोंके गुरु विशेषकर सर्वज्ञ और विघ्ननाश करनेके सब उपाय जानते हैं ॥ १९ ॥ अतएव आप शत्रुके विनाश करनेवाली शान्तिका अनुष्ठान कीजिये जिससे मुझे दुख न हो सो करो ॥ २० ॥ बृहस्पतिजीने कहा हे सहस्रलोचन ! मैं क्या करूं तुमने पहले अत्यन्त पापकर्म किया है उन निरपराध मुनिको मारकर तुमने अतिकुत्सित-फल उपार्जन किया है ॥ २१ ॥ अत्यन्त उग्र पाप और पुण्यका फल शीघ्रही फलता है अतएव कल्याणकी कामना करनेवालोंको विचारकरही कर्म करना चाहिये ॥ २२ ॥ जिससे दूसरेको अतिसन्ताप हो इसप्रकारका कर्म कभी करना उचित नहीं है. जो प्राणी दूसरेको दुःख देनेमें रत हैं वे कभी सुखलाभ नहीं करसक्ते ॥ २३ ॥ हे शक्र ! तुमने उस समय लोभ और मोहके वशीभूत होकर ब्रह्महत्या की है उसी पापका यह फल सहसा आनकर उपस्थित हुआ है ॥ २४ ॥ हे सुरराज ! इस वृत्रासुरनामक असुरने सब देवतागणोंसे अवध्य हो जन्म ग्रहण किया है वह दुर्द्धर्ष असुरवर अनेक दानवगणोंसे परिवृत हो और विश्वकर्माके दियेहुए वज्रकी समान सब दिव्य अस्त्र ग्रहण कर ॥ २५ ॥ २६ ॥ रथपर चढ तुम्हारे मारनेको मानो प्रलयकाल

उपस्थित करता हुआ आरहा है इन तीनों लोकोंमें उसको मारसके ऐसा कोई नहीं है अतएव इसकी मृत्यु भी नहीं होगी ॥ २७॥ बृहस्पतिजी इसप्रकार कहही रहे थे कि इसी समयमें एक महाकोलाहल शब्द उठा इस समय गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, तपोधन, मुनिगण ॥ २८॥ और अन्यान्य सब अमरगण अपने २ घरको छोड़ भागने लगे देवराज इन्द्र सुर-गणोंको भागता हुवा देखकर अत्यन्त चिन्तायुक्त हुए ॥ २९ ॥ और तत्काल सब सेनाका उद्योग करनेके निमित्त सब सेवकगणोंको आज्ञा देकर कहा कि, तुम वसुगण, रुद्रगण दोनों अश्विनीकुमार आदित्यगण॥ ३० ॥ पूषा, भग, वायु, कुबेर, वरुण और यम इत्यादि सुरगणोंको बुला लाओ शत्रु प्रायः उपस्थित हुआ है अतएव वे देवतागण अपने अपने आयुध ले विमानोंपर चढ़कर शीघ्र इस स्थानमें आवें ॥ ३१ ॥ शीघ्र आवै शत्रु आचुका है अमरराज इन्द्र इसप्रकार आज्ञा दे गजराजपर चढ़ ॥ ३२ ॥ सुरगुरुको आगे कर अपने घरसे निकले इसी प्रकार सम्पूर्ण देवतागण भी अपने अपने वाहनोंपर चढ ॥ ३३ ॥ युद्धके निमित्त कृतसंकल्प हो अपने अपने अस्त्र-शस्त्रसे लेकर चले इधर वृत्रासुरभी दानवोंसे परिवृत हो मानससरोवरके उत्तर स्थित ॥ ३४ ॥ वृक्षोंकी कतारसे शोभायमान मनोहर पर्व्वतमें आनकर उपस्थित हुआ. हे राजन् ! यह मनोहर स्थानही देवतागणोंका निवासस्थान था इन्द्र भी बृहस्पति-जीको आगे कर देवतागणोंके सहित मानससरोवरके उत्तर स्थित उसी पर्व्वतमें उप-स्थित हुए वहां इन्द्र और वृत्र संग्राम करने लगे ॥ ३५॥ ३६॥ उस स्थानमें वृत्रासुर और इन्द्रका—गदा, असि, परिघ, पाश, वाण, शक्ति और परशु इत्यादिसे दारुण युद्ध होने लगा नियतात्मा ऋषिगणों और मनुष्योंको भय देनेवाला घोरतर वह संग्राम मनुष्योंके परिमाणसे सौ वर्षतक हुआ था तदनन्तर प्रथम वरुण फिर वायुगण॥ ३७॥ ॥ ३८॥ इसके उपरान्त यम, विभावसु और इन्द्र इस प्रकार क्रमानुसार सबही रणमें पीठ दे भाग गये. तब वृत्रासुर इन्द्र इत्यादि देवतागणोंको भागता हुआ देख ॥ ३९॥ आश्रमस्थित प्रसन्नचित्त पिताके निकट जाय प्रणाम पूर्व्वक कहने लगा हे पितः ! मैंने आपकी आज्ञानुसार कार्य्यसाधन किया ॥ ४० ॥ इन्द्र इत्यादि सब देवता-गणोंको संग्राममें पराजित किया है सिंहके निकटसे मृग और हाथीगण जिसप्रकार भागते हैं इसीप्रकार वह सब अपने अपने स्थानोंको भाग गये ॥ ४१ ॥ मैंने देवराज इन्द्रका हाथीछीन लिया है वह पैरोंही भाग गये. हे भगवन् ! मैं इस गजवर ऐराव-तको ले आया हूं आप लीजिये॥ ४२॥ हे पिता ! डरे हुएको मारना अनुचित है, इस

कारण मैंने उनको नहीं मारा इस समय आप आज्ञा कीजिये कि पुनर्व्वार आपका क्या अभीष्ट साधन करूं ? ॥ ४३ ॥ सब देवतागण भयसे भीत और श्रमातुर हो संग्रामस्थलसे भाग गये अधिक क्या इन्द्रभी भीत और संत्रस्तहो ऐरावतको छोड भाग गये॥ ४४ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! विश्वकर्म्मा उस पुत्रका यह वचन सुन प्रसन्न चित्त हुए और कहने लगे कि, आज मैं यथार्थ पुत्रवान् हुआ और मेरा जीवन भी सफल हुआ ॥ ४५ ॥ हे पुत्र ! तुमने आज मुझको पवित्र किया. इस समय अब मेरा चित्तरूपी ज्वर दूर हुआ. तुम्हारा अद्भुतवीर्य्य देखकर मेरा मनभी स्थिर हुआ ॥ ४६ ॥ हे वत्स ! मैं इससमय जो कहता हूं वह मनलगाकर सुनो. हे महाभाग ! तुम सावधान हो स्थिर आसनपर बैठकर तपस्या करो ॥ ४७ ॥ तुम कभी किसीका विश्वास नहीं करना क्योंकि छलका ढूँढनेवाला वेदविशारद इन्द्र तुम्हारा प्रधान शत्रु विद्यमान् है ॥ ४८ ॥ हे पुत्र ! तपस्या साधारणवस्तु नहीं है तपस्यासे लक्ष्मी, उत्तम-राज्य, बलकी वृद्धि और संग्राममें विजय प्राप्त होती है ॥ ४९ ॥ अतएव तुम हिरण्यगर्भकी आराधना कर उत्तम वरलाभ करनेपर ब्रह्महत्यापापयुक्त दुराचारी इन्द्रका संहार करो ॥ ५० ॥ सावधान और स्थिरही कल्याणके देनेवाले विधा-ताका भजन करो तो चतुरानन संतुष्ट हो तुमको इच्छानुसार वर देंगे ॥ ५१ ॥ तुम पहले अप्रमितप्रभावयुक्त विश्वयोनि विधाताको संतुष्ट कर अमरत्वलाभ करनेपर उस अपराध करनेवाले शत्रुका संहार करो ॥ ५२ ॥ हे पुत्र ! पुत्र हत्याजनित वैरभाव मेरे मनमें सदाही विद्यमान रहता है इस कारण मैं सुखसे नहीं सो सक्ता, और किसीप्रकार मुझको शान्तिलाभ नहीं होसक्ती ॥ ५३ ॥ पापिष्ठ इन्द्रने मेरे तपस्वी पुत्रको निरपराध मारा है.हे वृत्र ! मैं तुमको और क्या विदित करूं. मैं दुःख सागरमें निमग्न हुआ हूं इस समय तुम मुझको उद्धार करो ॥ ५४ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! वृत्रासुर पिताके वह वचन सुनकर क्रोधयुक्त हुआ और उनकी आज्ञा ग्रहण कर तपस्याका अनुष्ठान करनेके निमित्त प्रसन्न चित्तसे चला गया ॥ ५५ ॥ अन-न्तर उस गन्धमादनपर्व्वतपर जाय कल्याणदायिनी पुण्यप्रद मंदाकिनीमें स्नान कर तपस्या करनेके निमित्त स्थिर आसन बनाय कुशासनपर बैठा ॥ ५६ ॥ क्रमानुसार अन्न भोजन और जलपान छोड़कर योगाभ्यासमें निरत हो स्थिर आसनपर बैठ निरन्तर विश्वस्रष्टा प्रजापतिका ध्यान करने लगा ॥ ५७ ॥ इधर देवराज इन्द्र वृत्रासुरको तपस्यामें निरत जानकर अत्यन्त चिन्तायुक्त हुए और उसकी तपस्यामें विघ्न करनेके

निमित्त अमितप्रभावयुक्त गन्धर्व्व ॥ ५८ ॥ यक्ष, पन्नग, किन्नर, विद्याधर, अप्सरा और अन्यान्य देवतागणोंके दूतोंको भेज दिया ॥५९॥ वह मायावी गन्धर्व इत्यादि देवयोनि तपस्यामें विघ्न करनेके निमित्त अनेक उपायसे अनेक प्रकारकी चेष्टा और यत्न करने लगे किन्तु परमतपस्वी त्वष्टाका पुत्र अपने ध्यानयोगसे किसीप्रकार विचलित न हुआ ॥ ६० ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

व्यासजीने कहा हे महाराज ! वृत्रासुरको दृढचित्त देखकर तपस्यामें विघ्न करनेवाले देवतागण कार्य्यसिद्धिके विषयमें निराश होगये और वहांसे निकलकर पुनर्वार अपने अपने स्थानको चले आये ॥ १ ॥ अनन्तर सौ वर्ष पूर्ण होनेपर लोकपितामह चतुरानन ब्रह्माजीने हंसपर चढ उस स्थानमें ॥ २ ॥ आनकर कहा हे वृत्रासुर ! तुम सुखी होओ इस समय ध्यान त्यागकर वरकी प्रार्थना करो मैं तुमको इच्छानुसार वर दूंगा ॥ ३ ॥ हे वत्स ! तपस्यासे तुम्हारा देह अत्यन्त क्षीण होगया है तुम्हारी इस उत्कट तपस्याको देखकर मैं इस समय अत्यन्त संतुष्ट हुआ हूं तुम्हारा कल्याण हो इस समय अभिलषित वरकी प्रार्थना करो ॥ ४ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! वृत्रासुर जगत्कर्त्ता ब्रह्माके अत्यन्त स्पष्टाक्षरयुक्त अमृतकी समान भरेहुए वचन सुनकर योगपरित्याग आनन्दके आँसू गिराता हुआ सहसा खड़ा होगया॥५॥तब ब्रह्माजीके सामने जाय विनय सहित मस्तक झुकाय उनके दोनों चरणों में प्रणाम किया और विनयनम्र हो तथा हाथ जोड उन तपस्यासे प्रसन्न वरप्रद ब्रह्माजीसे गद्गद वचन कहने लगा ॥६॥ हे प्रभो ! आपका दुर्लभ दर्शन प्राप्त करतेही अब मुझको सब देवताओंका पद प्राप्त हुआ. हे कमलासन ! मेरे मनमें एक दुष्पूरणीय वासना उपस्थित रहती है आप सर्व्वज्ञ हैं सबही जान सक्ते हैं तथापि मैं उसको कहता हूं सुनिये ॥७॥हे नाथ ! लोहा, काष्ठ, सूखी वा गीली वस्तु और बांस तथा अन्यान्य शस्त्रसमूह द्वारा मेरी मृत्यु नहीं हो और युद्धमें मेरी वीरता अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त हो और मैं सैन्यसहित सब देवतागणोंसे अजय हूं ॥ ८ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! जब वृत्रासुरने ब्रह्माके निकट इस प्रकार प्रार्थना करी तब कमलासन कुछेक हँसते हुए कहने लगे हे वत्स ! उठकर इच्छानुसार स्थानमें जाओ तुम्हारा मंगल हो ॥ ९ ॥

तुमने जो प्रार्थनाकी वह तुम्हारा मनोरथ सर्व्वदाही सफल होगा सूखी वा गीली वस्तुसे अथवा पत्थर तथा अन्याय काष्ठादि द्वारा तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी यह मैंने तुम्हारे निकट सत्यही कहा है ॥ १० ॥ प्रजापति वृत्रासुरको इसप्रकार वर देकर ब्रह्मलोकको चलेगये वृत्रासुरभी वर प्राप्तकर प्रसन्न हो घरको चलागया ॥ ११ ॥ अनन्तर वृत्रासुरने पिताके निकट इस वर प्राप्त करनेकी वार्त्ता निवेदन की विश्वकर्म्मा पुत्रके वरप्राप्तकरनेकी वार्त्ता सुन प्रसन्न सन्तुष्ट होकर कहने लगे ॥ १२ ॥ हे महाभाग ! तुम्हारा मंगल हो तुम मेरे परम शत्रु शतक्रतुको मारो उस त्रिशिराके मारनेवाले पापात्मा इन्द्रको मारकर फिर इस स्थानमें आओ ॥ १३ ॥ तुम संग्रामजीत देवताओंके अधीश्वर होकर मेरी पुत्रजनित अत्यन्त मनोव्यथा दूर करो ॥ १४ ॥ पिता जब जीवित हो तब उनकी आज्ञा पालन, मृत्युदिवस श्राद्धदिनमें भोजनदान और गयामें पिण्डदान इन तीन कार्य्योंसेही पुत्रका पुत्रत्व होता है ॥ १५ ॥ अतएव हे पुत्र ! तुम मेरे वचनकी रक्षा करके मेरा दुःख दूर करनेमें यत्नवान् होओ तुम निश्चयही जानो कि, त्रिशिरा मेरे मनसे कभी दूर नहीं होता ॥ १६ ॥ वह त्रिशिरा सुशील सत्यवादी तपस्वी और वेदके जाननेवालोंमें अग्रगण्यथा. हाय ! मेरे उसी गुणवान् प्रियपुत्रको पापबुद्धि इन्द्रने विना अपराधही मारा है ॥ १७ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! वह अत्यन्त दुर्ज्जय वृत्रासुर उनका यह वचन सुन रथपर चढ़कर शीघ्र पिताके घरसे निकला ॥ १८ ॥ उस मदसे गर्वित असुरने जब अपनी महती सेनाके सहित रणके उद्देशसे गमन किया तब रणदुन्दुभिका शब्द और शंखनाद होनेलगा ॥ १९ ॥ वह नीतिसम्पन्न वृत्रासुर चलनेके समय अपनी सेनासे कहनेलगा आज देवताओंके राजा इन्द्रको मारकर अकण्टक देवताओंका राज्य ग्रहण करूंगा ॥ २० ॥ हे राजन् ! असुरराज यह कह सैन्यसमूहसे परिवृतहो महान् सेनाके शब्दसे अमरावतीको भय उत्पन्न कराता हुआ शीघ्र निकला ॥ २१ ॥ हे भारत ! देवराज इन्द्र उसको आताहुआ जान भयसे संत्रस्त हो शीघ्र सेनागणोंका उद्योग करके कहनेलगे ॥ २२ ॥ और शीघ्रही सब लोकपालगणोंको बुलाय युद्धके निमित्त प्रेरणकर स्थिति करनेलगे ॥ २३ ॥ वह महाद्युति शत्रुतापन पाकशासन (इन्द्र) गृध्रव्यूह (गृध्रपक्षीके समान सेनाविशेष) बनाय अवस्थिति करने लगे इधर शत्रुओंका मारनेवाला वृत्रासुर वेगसहित आय उसी स्थानमें उपस्थित हुआ ॥ २४ ॥ इसके उपरान्त देवता और दानवगणोंका तुमुल संग्राम आरंभ हुआ विजयकी

इच्छा करनेवाले वृत्रासुर और इन्द्र घोरयुद्ध करने लगे ॥ २५ ॥ इसप्रकार उस भयंकर युद्धकी अग्निको प्रदीप्त हुआ देख देवतागण विमर्ष और दैत्यगण हर्षको प्राप्त हुए ॥ २६ ॥ देवता और दैत्यगण तोमर, भिन्दिपाल, खड्ग, परशु, पट्टिश इत्यादि अपने अपने शस्त्रोंसे परस्पर प्रहार करनेलगे ॥ २७ ॥ इसीप्रकार दारुण लोमहर्षण युद्ध उपस्थित हुआ. क्रोधयुक्त वृत्रासुरने इन्द्रको सहसा ग्रहण करलिया॥ २८॥ और कवच तथा वस्त्रादि आवरणरहित कर मुखमें डाल ग्रासपूर्वक पहलेकी शत्रुता स्मरणकर अत्यन्त प्रसन्नचित्तसे स्थिति करनेलगा ॥ २९ ॥ वृत्रासुरके इन्द्रका ग्रास करनेपर देवतागण अत्यन्त संत्रस्त और कातर हो हा इन्द्र ! हाइन्द्र ! कह बार-बार चीत्कार करने लगे ॥ ३० ॥ देवतागण इन्द्रको कवचादिरहित और वृत्रासुरके मुखमें स्थित जानकर दीन और व्यथितमन हो बृहस्पतिजीको प्रणामकर कहने लगे ॥ ३१ ॥ हे द्विजेन्द्र ! आप हमारे परमगुरु हैं, इससमय क्या कर्त्तव्य है ? देवतागणोंकी रक्षा करनेपरभी वृत्रासुरने इन्द्रको ग्रास किया है ॥ ३२ ॥ हम सभी हीनपराक्रमहैं अतएव हम इन्द्रके विना क्या करेंगे? हे विभो ! आप इन्द्रको छुड़ानेका शीघ्र विचार कीजिये ॥ ३३ ॥ बृहस्पतिजीने कहा हे देवतागणो ! देवराज इन्द्र वृत्रासुरके मुखमें पड़े हैं वृत्रासुरने उनको अवसन्न किया है किन्तु वह जीवित रहकरभी शत्रुके कोष्ठमें स्थित हैं अतएव जीवितावस्थामें निकालनेकी चेष्टा करनाही उचित है ॥ ३४ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! देवराज इन्द्रको उस अवस्थामें देखकर देवतागण अत्यन्त चिन्तातुर हुए और शीघ्र इन्द्रको छुड़ानेके निमित्त भली-भाँति विचारपूर्वक यत्न करनेलगे ॥ ३५ ॥ अनन्तर उन्होंने महासत्वसम्पन्न वैरिविनाशिनी जँभाईको उत्पन्न किया तव वृत्रासुरको जँभाईलेनेपर उसका मुख खुलगया ॥ ३६ ॥ और वलविनाशन इन्द्र उसी अवकाशमें अपने सम्पूर्ण अंग-सकोड़कर जँभाई लेतेहुए वृत्रासुरके मुखसे निकलपड़े ॥ ३८ ॥ हे महाराज ! जब-हींसे जँभाई लोकके बीच प्राणिगणोंके देहमें स्थित रहती है तदनन्तर देवतागण इन्द्रको निकलाहुआ देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ ३७ ॥ इस प्रकार इन्द्रके निकलनेपर फिर वृत्रासुर और इन्द्रका १०००० वर्ष पर्यन्त दारुण लोमहर्षण भयंकर संग्राम हुआ ॥ ३९ ॥ इधर सम्पूर्ण देवतागण युद्धको उपस्थित हुए, उधर विपुलविक्रम त्वष्टृनन्दन वृत्रासुर संग्राम करनेलगा ॥ ४० ॥ वृत्रासुर जब वरके मदसे मत्त हो रणमें वर्द्धित हुआ तव इन्द्र उसके तेजसे धर्षित हो पराजित हुए ॥ ४१ ॥ अनन्तर

देवराज इन्द्र युद्धमें हारकर अति व्यथित हुए, देवतालोगभी उनको हाराहुआ देखकर अत्यन्त विषादको प्राप्त हुए ॥ ४२ ॥ जब इन्द्र इत्यादि सब देवतागण रणको त्यागकर भागगये तब वृत्रासुरने शीघ्र जाकर त्रिदशालयपर अधिकार करलिया ॥ ४३ ॥ वह दानवप्रवर बलपूर्वक सब देवोद्यान भोग करनेलगा और गजराज ऐरावतको भी लेलिया ॥ ४४ ॥ उस त्वष्टाके पुत्र वृत्रासुरने सब विमान और घोड़ोंमें श्रेष्ठ उच्चैःश्रवा ॥ ४५ ॥ कामधेनु पारिजात अप्सरागण इत्यादि सब स्वर्गके रत्न ग्रहण करलिये ॥ ४६ ॥ इधर सम्पूर्ण देवता स्थानभ्रष्ट हो पर्वतके दुर्गमें वास करनेलगे, वह यज्ञके भागसे वञ्चित और सुरालयसे भ्रष्टहो अत्यन्त क्लेश भोगनेलगे॥ ४७॥ वृत्रासुर देवताओंके राज्यको प्राप्त हो मदके गर्वसे गर्वित हुआ, विश्वकर्माभी उस समय अत्यन्त सुखी हो पुत्रके सहित आमोद करनेलगे ॥ ४८ ॥ हे भारत! तदनन्तर देवता मुनिगणोंके सहित मिलित हो अपने हितकर विषयकी परामर्श करनेलगे, और क्या करना चाहिये इस विषयकी चिन्ता कर भयसे मोहित होगये॥ ४९॥अनन्तर देवता इन्द्रको संग ले कैलासाचलमें महादेवके सामने गये और अत्यन्त विनीत तथा हाथ जोड़कर उनके चरणोंमें प्रणाम करतेहुए कहनेलगे॥ ५०॥ हे देवदेव महादेव! आप महेश्वर और करुणारसके अपाररुद्रस्वरूप हैं हम वृत्रासुरसे हारकर अत्यन्त डरे हैं आप हमारी रक्षा कीजिये ॥५१॥ हे शम्भो! आप सबका मंगल करते हैं अतएव उस बलवान् दानवने स्वर्गका राज्य छीनलिया है इससमय हमको क्या करना चाहिये? वह आप सत्य कहिये ॥५२॥ हे महेश! हम स्थान-भ्रष्ट होकर क्याकरैं कहांजांय? हमको तो दुःख दूरहोनेका कोई उपाय नहीं दीखता ॥ ५३॥ हे भूतभावन! हम अत्यन्त व्यथितहुए हैं, आप हमारी सहायता कीजिये हे दयामय! वरदानके बलसे वह वृत्रासुर मदमत्त हुआ है, आप उसको मारिये ॥ ५४ ॥ शंकरने कहा हे देवतागणो! हम ब्रह्माको आगेकर हरिके घर जाय उनके सहित उस दुर्वृत्त वृत्रासुरके वधकी चिन्ता करैंगे ॥ ५५ ॥ जनार्दन वासुदेव सब कार्य्योंमें समर्थ हैं. बलवान् छलज्ञ अत्यन्तबुद्धिमान् दयानिधि और सब जनोंके शरण देनेवाले हैं ॥ ५६ ॥ उन देवदेवके विना कार्य्यसिद्धिकी संभावना नहीं है, अतएव सर्वकार्यसिद्धिके निमित्त हम सबको उसी स्थानमें जाना चाहिये ॥ ५७ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज! इन्द्रादिदेवतागण शंकर और ब्रह्माके सहित इसप्रकार स्थिरकर सबही भगवान्के निवासमें जाय उन सर्वजन शरण्य भक्तवत्सल ॥ ५८॥

जगद्गुरु हरिका वेदोक्त पुरुषसूक्तसे स्तव करने लगे ॥ ५९ ॥ तब वह कमलापति जगत्प्रभुजनार्दन उनके प्रत्यक्षहुए और देवतागणोंका सन्मानकर उनके संमुख स्थित हो कहनेलगे ॥ ६० ॥ हे लोकेश गण ! तुम शंकर और ब्रह्माकेसहित किसकारण आएहो हे सुरसत्तमगण! तुम्हारे आनेका क्या कारण है वह मुझसे कहो? ॥ ६१ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! देवता हरिके यह वचन सुनकर रमापतिके कुछ न कहसके और प्रायः सवही चिन्तायुक्तहो हाथजोड़े खड़ेरहे ॥ ६२ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ५.

व्यासजीने कहा हे राजेन्द्र ! सर्वार्थतत्वके जाननेवाले लक्ष्मीपति नारायण देवताओंको चिन्तातुर और अत्यन्तअनुगत देखकर उनसे कहनेलगे ॥ १ ॥ हे सुरगण ! तुम मौनभाव अवलम्बन क्यों कर रहे हो ? तुम मेरे पास किसकारण आए हो? अब अच्छा हो अथवा बुरा हो शीघ्र कहो क्योंकि मैं उसको सुनकर फिर तुम्हारे क्लेश दूर करनेका यत्न करूंगा॥ २॥ देवताओंने कहा हे प्रभो ! त्रिभुवनमें आपसे क्या छिपाहै? आप सब कार्य जानते हैं तो किस कारण हमसे वारंवार पूँछते हैं ॥ ३ ॥ पूर्वकालके समय आपने वामनरूप धारणकर तीन चरणोंसे त्रिभुवन आक्रमण किया था और वलिराजाको बांधकर इन्द्रको देवाधिकार दिया था ॥ ४ ॥ हे विभो! आपनेही दैत्यगणोंको मोहित कर अमृत हरणकिया था और आपनेही उनको शमनभवनमें प्रेरण किया था अतएव हे देव ! आपही देवताओंके सर्वप्रकार विपद् निवारणके एकभाव प्रभु रहे हैं ॥ ५ ॥ विष्णु—देवताओंके यह वचन सुनकर कहनेलगे हे सुरगण ! भय नहीं है जिससे वह दैत्यवर विनष्ट होगा मुझको वही एक सर्व संमत उपाय विदित है. इस समय वही तुम्हारे निकट कहता हूं सुनो, हे देवताओ ! इससेही तुमको सुख प्राप्त होगा इसमें सन्देह नहीं ॥ ६ ॥ देखो बुद्धिवल अर्थ वा छलसे अथवा अन्य जिस किसी प्रकारसे हो तुम्हारा हित करना मुझको अवश्य कर्त्तव्य है ॥ ७ ॥ तत्त्वके जाननेवाले पंडितगणों ने मित्रोंके विशेषकर शत्रुगणोंके प्रति प्रयोग करनेके लिये साम, दान, भेद और दण्ड यह चार प्रकारके उपाय निर्द्धारित किये हैं ॥ ८ ॥ तपस्यासे आराधित होकर ब्रह्माजीने उसको वर

दिया है और उसी वरके प्रभावसे वह दुर्ज्जय हुआ है ॥ ९ ॥ विशेष कर विश्व कर्म्माने अग्निसे उसको उत्पन्न किया है अतएव इन सब कारणोंसेही वह परपुरञ्जय वृत्रासुर अत्यन्त बलवान् हो सब जीवगणोंको अजय हुआ हो ॥ १० ॥ हे सुर-गण ! पहले सामप्रयोग इसके उपरान्त प्रतारणके विना इस शत्रुको जीतना कठिन है, अतएव पहले लोभ दिखाय अपने वशीभूत कर तदनन्तर उसका विनाश करना उचित है ॥ ११ ॥ इस समय जिस स्थानमें वह बलवान् शत्रु वृत्रासुर वास करता है पहले उसी स्थानमें गन्धर्व और ऋषिगणोंके सहित जाय उसके संग सन्धि स्थापन करो, तदनन्तर उसका पराजय करो ॥ १२ ॥ वहां जानेपर वह जो कहे उसी नियमानुसार शपथपूर्वक प्रतिज्ञा करो पहले विश्वास उत्पन्न करो और तदनन्तर बन्धुत्व स्थापन करो फिर यथासमयमें उस प्रबल शत्रुको मारो ॥ १३ ॥ हे सुरगण ! मैं भी इन्द्रके उत्कृष्ट आयुध वज्रमें अदृश्यभावसे प्रवेश कर यथासमयमें उनकी सहायता करूंगा ॥ १४ ॥ देखो ! तुम समयकी प्रतीक्षा करो सम्यक् प्रकार उसकी आयुका कालशेष होगा, नहीं तो किसी प्रकार उसकी मृत्यु नहीं होगी ॥ १५ ॥ इस समय गन्धर्व और ऋषिगणोंके सहित उस असुरके निकट जायकर कपटता-पूर्व्वक केवल वचनसे उसके संग मित्रत्व स्थापन करो ॥ १६ ॥ जब उसको विश्वास उत्पन्न होजाय तबहीं प्रतारण करनी चाहिये मैं दृढ आच्छादित वज्रमें गुप्तभावसे प्रविष्ट हूंगा ॥ १७ ॥ इन्द्र जब उसको विश्वस्त जानसके तबहीं उस वज्रके प्रहारसे उसका विनाश करें अन्यथा किसीप्रकार उसको नहीं मारसकेंगे देवराज विश्वासघात-जनित पापको इस समय पीछेकर ॥ १८ ॥ मेरी सहायतासे उस पापात्मा असुरको वज्रसे मारें. देखो शठ शत्रुके प्रति शठताचरण दोषका कारण नहीं होता ॥ १९ ॥ विशेषकर शठताके विना मात्र केवल वीरधर्म्मसे बलवान् शत्रु कभी नहीं माराजाता पूर्व्वमें मैंने भी वामनरूप धारण करके बलिको ॥ २० ॥ और मोहिनी वेशसे सब दैत्यगणोंको वंचित किया है अतएव बलवान् शठ शत्रुके प्रति शठताचरण कदापि दोषका विषयक नहीं जानना. हे देवगण ! इस समय तुम सब एकत्र मिलित होकर स्तोत्र मंत्रादिसे देवी शिवा भगवतीकी ॥ २१ ॥ आराधना कर उनकी शरणागत होओ तो वह योगमाया तुम्हारी सहायता करेंगी ॥ २२ ॥ हे देवगण ! जो स्वयं कामनारूपिणी होकर भक्तगणोंकी सब कामना पूर्ण करती है जिनकी आराधनासे सब कार्य्योंकी सिद्धि होती है पूतात्मा योगीगणोंके अतिरिक्त उनको कोई प्राप्त नहीं करसक्ता

मैंभी उन्हीं सत्वगुणस्वरूपिणी प्रकृति रूपिणी परात्परा देवीकी वन्दना करता हूं॥ २३ ॥ अतएव इन्द्रभी उनकी आराधना करके निश्चय रणमें शत्रुका संहार करनेमें समर्थ होंगे. कारण कि, वह मोहजननी महामाया पूजित होकर उस दानवको मोहित करेंगी ॥ २४ ॥ वृत्रासुरकी मायासे मोहित होनेपर इन्द्र उसको अनायासही मारनेमें समर्थ होंगे, इसमें सन्देह नहीं. अधिक क्या उन परात्परा अम्बिकाके प्रसन्न होनेपर सर्व कार्य्यकी सिद्धि होगी॥ २५ ॥ वह अन्तर्य्यामिस्वरूपिणी और सब कार्य्योंका कारण है उनकी आराधनाके विना किसीको भी ऋद्धिकी संभावना नहीं है ॥ २६ ॥ अतएव हे सुरसत्तमगण! शत्रुविनाशके निमित्त परम आदर सहित सात्विक भावसे उन्हीं विश्वजननी प्रकृति देवीकी आराधना करो ॥ २७ ॥ देखो पूर्वमें मैंने पांच हजार वर्ष अत्यन्त दारुण युद्धकर मधु कैटभ नामक दोनों असुरोंको संहार किया था ॥ २८ ॥ तब मैंने उन्हीं महामाया पराप्रकृतिकी स्तुति करी थी, इससेही उन्होंने प्रसन्न होकर इन दोनों असुरोंको मोहित किया था इससेही यह मदगर्वित महाबाहु दोनों असुर प्रतारित हुए. कारण कि, मैं छलपूर्वक उन भयंकर दोनों दैत्योंका संहार करनेमें समर्थ हुआ था अतएव हे सुरगण! तुम लोगभी भक्तिभावसे उसीप्रकार पराप्रकृतिकी आराधना करो ॥ २९॥ ॥ ३०॥ तो वह भलीभाँतिसे तुम्हारा कार्य्य सिद्ध करेंगी. हे महाराज! प्रभावशाली विष्णुके देवतागणोंको इसप्रकार बुद्धिप्रदान करनेपर ॥ ३१ ॥ उन्होंने मन्दारतरुसे शोभायमान् सुमेरुके शिखरमें गमन किया और एकान्तमें उपस्थित रहकर जप और तपस्यामें निरत तथा ध्यानपरायण होकर ॥ ३२ ॥ उन सृष्टिस्थिति संहारकारिणी भक्तगणोंको अभीष्ट प्रदान करनेवाली संसारका क्लेश नाश करनेवाली जगज्जननी जगद्धात्रीका स्तव करनेलगे ॥ ३३ ॥ देवता बोले हे परब्रह्मस्वरूपिणि देवि! आप दीनदुःखी प्राणीगणोंकी आधिव्याधि विनाशकरती है इसकारण हमने आपके चरणकमलोंकी शरण ग्रहण की. हे भगवति! हम वृत्रासुरसे समरमें पराजित होकर अत्यन्त सन्तप्त और पीड़ित हुए हैं, आप इससमय हमारे प्रति प्रसन्न हूजिये और हमारी रक्षा कीजिये ॥ ३४ ॥ आपही सम्पूर्ण विश्वकी जननी हैं हमभी इस शत्रुसंकटमें पतित हुए हैं अतएव इस समय हमारी पुत्रकी समान रक्षा कीजिये. हेमातः! त्रिभुवनमें आपसे कुछ नहीं छिपा है हम असुरगणोंकी प्रतापरूपी अग्निसे अत्यन्त सन्तप्त हुए हैं ॥ ३५ ॥ हे जननि! आपही अतएव आप हमारी किसी कारण उपेक्षा करती हैं

इस त्रिभुवनमण्डलकी सृष्टिस्थिति और संहार करती हैं ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर आपकीही इच्छामात्रसे उत्पन्न होकर सम्पूर्ण कार्य्यसम्पादन करते हैं. हे जननि! वह स्वाधीन नहीं हैं आपके ही भ्रूभङ्गसे परिचालित होकर इच्छानुसार विहारकरते हैं ॥ ३६॥ अनेकप्रकारके अपराधसे अपराधी होनेपरभी माता दीन पुत्रगणकी क्लेशसे रक्षा करती है. हे जननि! आपनेही इस रीतिकी रचना करी है तो हे दयामयि! किसकारणसे निरपराध और अपने चरणकमलोंकी शरणागत जानकर भी हमारी रक्षा नहीं करती? ॥ ३७ ॥ हे देवी! यदि आप समझती हैं कि, यह जब मेरे अनुग्रहसे प्राप्त हुआ ऐश्वर्य्य भोग करेंगे तो उसमेंही अत्यन्त आसक्त रहकर मेरे प्रति भक्ति करना एकबारही भूल जाँयगे. अतएव उस समय यह मेरे करुणाकटाक्षके वशीभूत नहीं होसकेंगे यद्यपि यह सत्य है किन्तु हे मातः! पुत्रके प्रति जननीका इस प्रकार भाव कहीं भी दिखाई नहीं देता अतएव हम सदाही आपकी करुणाकटाक्षके पात्र हैं इसमें अब सन्देह नहीं है ॥ ३८ ॥ और एक बात है कि, आपकी आराधना त्यागकर जिस ऐश्वर्यभोगमें निमग्न होंगे इसविषय हमारा कोई भी दोष बोध नहीं होता क्योंकि आपने जो मोहकी रचना कर रक्खी है वह मोह अपना प्रभाव प्रकाश करके हमको मोहित कर रखता है. हे जननि! आप स्वभावसेही करुणामयी हैं अतएव यह जानकर भी किसकारण हमारे प्रति दया प्रकाश नहीं करतीं ॥ ३९ ॥ हे देवि! आपने पूर्वमें हमारे निमित्त ही सब लोकोंको भयावह बलवान् दैत्यपति महिषासुरका संग्राममें विनाश किया है अतएव इस समय किसकारण इस भयावह वृत्रासुरको नहीं मारतीं? ॥ ४० ॥ आपनेही अत्यन्त बलशाली शुम्भ और तदनुज निशुम्भ नामक दोनों भ्राताओंका संहार किया है और अनुगामी अन्यान्य दैत्यगणोंको भी मारा है. हे करुणामयि! इस समय उसीप्रकार खल और प्रबल वृत्रासुरका विनाश कीजिये. हे मातः! जिससे वह फिर कुछभी प्रभाव प्रकाश न करसके आप उसी प्रकार इस मदमत्त वृत्रासुरको मोहित कीजिये॥ ४१ ॥ हम असुरगणोंके प्रभावसे अत्यन्त सन्तापित और उनके भयसे अतिशय विह्वल हुए हैं आप हमारी रक्षा कीजिये क्योंकि आपके विना तीनों लोकोंमें अपनी शक्तिसे देवतागणोंका क्लेश दूर करसके इस प्रकार का दूसरा मार्ग नहीं है॥ ४२॥ हे मातः! यद्यपि आपने वृत्रासुरके प्रति दयाप्रकाशकीहै तथापि जनगणोंकी दुःखदायक और क्रूर स्वभाव उस असुरका शीघ्रविनाश कीजिये. हे भवानि! अपने बाणोंसे पवित्र करके उसको पापसे उद्धार

कीजिये, नहीं तो वह दुष्टबुद्धि निःसन्देहही घोरनरकमें प्रवेश करेगा. अतएव उसकेही, कल्याणार्थ उसको मारना अवश्य कर्त्तव्य है॥ ४३ ॥ पूर्वमें जो देवतागणोंका शत्रु था आपने उसकोही संग्रामस्थलमें अस्त्रद्वारा पवित्र कर स्वर्गस्थ नन्दनवनमें प्रेरणकिया है. हे करुणामयि ! उसके शत्रु होनेपरभी आपने क्या उसकी नरकके भयसे रक्षा नहीं करी है ? तो किसकारण इस समयभी वृत्रासुरको नहीं मारतीं? ॥ ४४ ॥ हम निश्चयही कहते हैं कि, यह असुर आपका शत्रु है, सेवक नहीं है क्योंकि यह पापबुद्धि हमको सदाही पीड़ित करता है. हे जननि ! जो आपके चरणकमलोंकी सेवामें निरत हैं जो पुरुष उन देवताओंको पीड़ित करता है वह किसप्रकार आपका भक्त होसक्ता है ? ॥ ४५ ॥ हे मातः ! हम आपकी पूजा किसप्रकार करें ? पुष्पादि जो कुछ पूजाके द्रव्य दिखाई देते हैं आपहीने तो वह सब बनाये हैं विशेषकर हम और मंत्र इत्यादि पूजाके जो कुछ योग्यपदार्थ हैं वह सबही आपकी शक्तिस्वरूप हैं. अतएव हे भवानि! हम केवल मात्र प्रणामसेही आपकी पूजा करते हैं आप प्रसन्न हूजिये ॥ ४६ ॥ जो संसारके नौकास्वरूप आपके चरणारविन्दोंका भक्तिभावसे भजन करते हैं वेही मनुष्यगण धन्य हैं. हे देवि ! जो योगीगण विषयानुराग विकार मोह त्यागकर मोक्षकी कामना करते हैं वेभी आपके उन्हीं चरणकमलोंका सदा स्मरण करके सिद्धिलाभ करते हैं ॥ ४७ ॥ जो सब वेदोंका तत्त्व जाननेवाले और याज्ञिक हैं वहभी यज्ञके आहुतिकालके समय देवतागणोंकी तृप्ति[illegible] स्वाहास्वरूपिणी और पितृगणोंको परम तृप्त करनेवाली स्वधास्वरूपिणी आपकी सदाही चिन्ता करते हैं ॥ ४८ ॥ हे मातः ! आपही बुद्धि आपही कांति आपही शान्ति आपही पुरुषगणोंकी [illegible]कारिणी प्रसिद्ध वृत्ति और आपही त्रिभुवनके सम्पूर्ण ऐश्वर्य्यस्वरूप हैं. हे देवि ! जो [illegible] करता है आप [illegible]पूर्वक किसप्रकार उसको यह विभवप्रदान करती हैं ॥ ४९ ॥ व्यासजीने कहा हे महा[illegible] ! देवताओंके इसप्रकार स्तव करनेपर देवी [illegible] सम्पूर्णआभरणोंसे विभूषित हो [illegible]रूप धारणकरके देवताओंके [illegible] प्रगट हुईं ॥ ५० ॥ उनके चारों बाहु पाश अं[illegible] और वरदान[illegible] [illegible]मुद्रासे शोभायमान थे, शोभायमान कटितटमें रशना [illegible] (बँधीहुई) [illegible]ओंकी कलध्वनिसे शोभित ॥ ५१ ॥ और चरणयुगल कङ्कण—[illegible] [illegible]जित थे उनका मधुर सुर अत्यन्त कमनीय ललाट चन्द्रखण्डसे शो[illegible] [illegible]क उज्वल रत्नोंके मुकुटसे विराजित था॥ ५२ ॥

उनका मुखारविन्द स्मितशोभासे और कमलकी समान तीनों नेत्रोंसे भूपित था, उनके अंगकी कान्ति पारिजात कुसुमके समान मनोहर ॥ ५३ ॥ रक्तवर्ण अंगप्रत्यंग सब रक्तचन्दनमें रंजित और पहरनेके वस्त्रभी रक्तवर्ण थे, इस प्रकार प्रसन्नमुखी करुणाकी सागर देवी ॥ ५४ ॥ उस समय समस्तशृङ्गारवेशधारिणी बोध होतीथीं हे महाराज! अखिलब्रह्माण्डकी जननी सर्वज्ञ सर्वकर्त्री और सम्पूर्णकी अधिष्ठान-स्वरूपिणी ॥ ५५ ॥ वेदान्तमतसिद्ध सच्चिदानन्दस्वरूपिणी सुप्रसन्न दयामयी भगवती भुवनेश्वरी इसप्रकार देवतागणोंके सन्मुख उपस्थित हुईं देवताओंने उनको सन्मुख स्थित देखकर प्रणाम किया ॥ ५६ ॥ तब उन जगदम्बिकानेभी प्रणत हुए देवताओंसे कहा हे देवगण! तुम किसकारण मेरा स्तव करतेहो वह मुझसे कहो? देवताओंने कहा हे भगवती ! वृत्रासुर देवतागणोंको अत्यन्त दुःख देता है आप उस देवताओंके शत्रुको मोहित कीजिये ॥ ५७ ॥ हे देवि ! जिससे वह देवताओंका विश्वास करै आप उसको उसीप्रकार मोहित कीजिये और जिससे वह परमशत्रु विनष्ट हो हमारे अस्त्रमें उसीप्रकार बलप्रदान कीजिये ॥ ५८ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज! अनन्तर देवीभगवती तथास्तु कहकर उसी स्थानमें अन्तर्धान होगईं, देवतागण भी आनन्दित हो घरको चलेगये ॥ ५९ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

व्यासजीने कहा हे महाराज! तपप्रभावयुक्त सम्पूर्ण ऋषि और देवतागण देवी भगवतीके निकट इसप्रकार वर प्राप्तकर सब एकत्र मिलित हो परामर्श करनेलगे, और इसके उपरान्त वृत्रासुरके उत्तम आश्रममें जाकर देखा कि, वृत्रासुर अपने तेजसे प्रज्वलित हो ॥ १ ॥ त्रिभुवन भस्म करने और अमरगणोंको ग्रास करनेके निमित्त ही मानो विराजमान है तब ऋषिगण उसके निकट जाकर ॥ २ ॥ [illegible]ओंकी कार्य्यसिद्धिके निमित्त सामयुक्त रसो[illegible] प्रियवचन उससे कहनेलगे [illegible] लि हे महाभाग वृत्र! सम्पूर्ण लोकही तुमसे भय [illegible]रते हैं ॥ ३ ॥ [illegible] ब्रह्माण्ड संपूर्ण स्थलोंमेंही अपना अधिपत्य फैलाया है, [illegible]न्तु इन्द्रके [illegible] तुम्हारी जो शत्रुता है उससे तुम्हारे सुखमें विघ्न होता है ॥ ४ [illegible]ह नहीं इस समय यह वैर तुम दोनोंकोही अत्यन्त चिन्ताकी वृद्धि क[illegible]रण यह अत्यन्त

दुःखदायक है तुमभी सन्तुष्ट हो सोनेमें समर्थ नहीं होते और इन्द्रभी सुखसे नहीं सोसक्के ॥ ५ ॥ क्योंकि तुम दोनोंकेही मनमें वैरका भय सदा जागरित रहता है और देखो तुम्हारे युद्धको समाप्त हुए बहुत काल व्यतीत हुआ ॥ ६ ॥ किन्तु देवता असुर और मनुष्य इत्यादि प्रजावर्ग सबही पीड़ा पाते हैं, इस संसार सुखही जीवगणोंको ग्रहणकरनेयोग्य और दुःख त्यागनेयोग्य है ॥ ७ ॥ यही सनातन मर्य्यादा जाननी चाहिये. परन्तु जो शत्रुता करता है उसको कभी सुख नहींहोता यह पंडितगणों ने भलीभाँति निश्चय किया है. संग्रामरसिक शूरगणही युद्धकी प्रशंसा करते हैं किन्तु शान्तिपरायण ॥ ८ ॥ शृङ्गारचतुर पंडितगण कभी इन्द्रियसुखके विनाशक युद्धकी प्रशंसा नहीं करते बरन् वह कहते हैं कि, शाणित (तीक्ष्ण पैने) शरादिकी बात दूर रहे सामान्य पुष्पादिसेभी युद्ध न करैं ॥ ९ ॥ और देखो युद्धमें विजय प्राप्त करनेके विषयमें सन्देह होता है किन्तु बाणकी ताड़ना निश्चयही होती है. हे दैत्यराज ! यह सम्पूर्ण विश्व दैवकेही आधीन है अतएव जयपराजयभी ॥ १० ॥ दैवके आधीन जानकर युद्ध करना कभी उचित नहीं है उपयुक्तकालमें स्नान भोजन उत्तम शय्यापर शयन ॥ ११ ॥ और सेवानिरत पतिव्रता भार्या इन कई एकको संसारसुखका साधन जानना चाहिये और युद्धमें केवल बाणवृष्टि ॥ १२ ॥ तथा उग्रतर खड्गपात होता है अतएव इनमें क्या सुख है बरन् इससे शत्रुसुखही होता है यदि कहो मुनिगण कहते हैं कि, संग्राममें मरण होनेसे स्वर्ग प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ वह केवल प्रलोभका प्रवर्तक वचनमात्र है वस्तुतः उससे कुछभी फल नहीं और यदि देह छेदन कर वेदनाको प्राप्त हो और शृगाल काकादिको अपने शरीरका मांस भोजन कराय ॥ १४ ॥ अन्तमें सुखप्राप्तही हो तो बुद्धिमान्की बात दूर रहे कौन मन्द-बुद्धि उसकी इच्छा करता है. अतएव हे वृत्र ! इन्द्रके सहित तुम्हारी सदाकाल मित्रता हो ॥ १५ ॥ इससे तुम और इन्द्र सदा सुख प्राप्तकरसकोगे. विशेषकर यदि तुम्हारी शत्रुता शान्त होजायगी तो हम सब तापसगण और गन्धर्वगण अपने अपने आश्रममें ॥ १६ ॥ सुखपूर्वक वास करेंगे इसमें सन्देह नहीं. हे वीर ! तुम्हारे संग्रामके सदाही विद्यमान रहनेसे ॥ १७ ॥ मुनिगण, गन्धर्वगण, किन्नरगण और समस्त नरगण दिनरात पीड़ाको प्राप्तहोते हैं. हम वनवासी मुनिगण सम्पूर्ण शान्तिकाम पुरुषोंके सुखनिमित्तही तुम्हारे बन्धुत्वकी इच्छा करते हैं ॥ १८ ॥ तुमको और इन्द्रको तथा समस्त जीवगणोंको सुख प्राप्त हो यही हमारी एकान्त वासना है.

हे वृत्र! तुम्हारे संमिलनमें हम मध्यस्थ हैं ॥ १९ ॥ हम इस विषयमें शपथ कराकर परस्परके प्रियकार्यमें दोनोंको नियोजित करेंगे तुम जिसप्रकार कहोगे इस समय इन्द्र तुम्हारे सामने इसी प्रकार शपथ कर ॥ २० ॥ तुम्हारे चित्तमें प्रीति उत्पन्न करेंगे तुम निश्चयही जानना कि, सत्यके ऊपरही पृथ्वी प्रतिष्ठित है सत्यहीके कारण सूर्य उदय होते हैं ॥ २१ ॥ सत्यहीके बलसे वायु सदा चलता है और सत्यहीके कारण अपार समुद्र अपनी वेलारूप मर्य्यादाको कभी अतिक्रम नहीं करता॥ २२॥ अतएव सत्यहीसे इस समय तुम्हारा बन्धुत्व यथासुखसे तुम मित्रतापाशसे बद्धही एकत्र शयन, एकत्र क्रीडा, एकत्र जलकेलि और एकत्र सुखसे बैठो ॥ २३ ॥ यह तुमको मित्रतापूर्वक करना चाहिये व्यासजीने कहा हे महाराज! महामति वृत्रासुर महर्षिगणोंका वचन सुनकर कहने लगा ॥२४॥हे ऋषिगण! आप ज्ञानादि सम्पन्न और तपस्वी हैं अतएव हमारे माननीय हैं आप मुनि हैं सुतरां कहीं भी मिथ्या नहीं कहते ॥२५॥ आप सदाचार और शान्त हैं अतएव छलका कारण नहीं जानते. वैरी, शठ, लम्पट, बुद्धिरहित, कीर्तिशून्य और निर्लज्ज इन सब ॥ २६ ॥ पुरुषोंके सहित विशेषकर शत्रुके सहित मित्रता स्थापन करना बुद्धिमानगणोंका कर्त्तव्य नहीं है यह दुराचार इन्द्र निर्लज्ज शठ और लम्पट तथा ब्रह्मघातक है ॥२७॥ अतएव इसकी समान पुरुषोंके प्रति विश्वास करना उचित नहीं है. आप साधु और सर्व्वसद्गुण-सम्पन्न हैं अतएव आपकी मति पराये अनिष्टकी चिन्तामें नहीं दौडती ॥ २८ ॥ आपका चित्त शान्त होनेसे आप कपटाचारियोंका मन नहीं समझसक्के अतएव दुष्टजनोंका मध्यस्थ होना आपको उचित नहीं है. मुनिगणोंने कहा हे राजन्! जन्तुगण निश्चयही अपने किये पाप पुण्यका फल भोग करते हैं॥ २९॥ तब नष्टबुद्धि द्रोहाचरण करके किसप्रकार शान्तिलाभ करनेमें समर्थ होंगे? विश्वासघातकोंको निःसन्देह नरक प्राप्त होता है ॥ ३० ॥ और सदाही दुःख भोगते हैं इसमें सन्देह नहीं वरन् ब्रह्मघातक और सुरापान करनेवालोंकी निष्कृति है ॥ ३१ ॥ किन्तु विश्वासघातक और मित्रद्रोही गणोंकी कुछभी निष्कृति नहीं है इनको अवश्य नरक भोगना होगा. अतएव हे सर्व्वज्ञ! तुम्हारे मनमें जो निश्चित है वह नियम प्रकाशकरके कहो ॥ ३२ ॥ उसीके द्वारा तुम दोनोंकी सन्धि स्थापन होगी. वृत्रासुरने कहा हे महाभाग मुनिगणो! इन्द्र सम्पूर्ण देवताओंके सहित सूखी वा गीली वस्तुसे अथवा दारुण काष्ठ पत्थर ॥ ३३ ॥ तथा वज्रद्वारा रात्रि अथवा दिनमें मुझको न मारे

हे महाभागो! यह मेरा नियम है ॥ ३४ ॥ मैं इसी नियमानुसार उनके सहित सन्धिस्थापन करसक्ता हूं नहीं तो अन्य किसी प्रकारभी नहीं करसक्ता. व्यासजीने कहा हे राजन्! ऋषिगणोंने उसका वह वचन आदरपूर्व्वक स्वीकार किया ॥ ३५ और सुरराजको उसी स्थानमें बुलाकर सन्धिके नियम सुनाये इन्द्रनेभी वहां मुनिगणोंके सामने अग्निको साक्षीकर शपथ करी और चिन्तारूपी विषम ज्वरसे युक्त हुए वृत्रासुर तब इन्द्रके वचनमें विश्वास कर ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ उनके सहित मित्रता स्थापनपूर्व्वक एकत्र विहारकरने लगा वह दोनों मिलित हो कभी गन्धमादनमें ॥ ३८ ॥ कभी समुद्रके तटपर आमोद अनुभवकर विचरण करने लगे. दोनों इस प्रकार संधिवन्धन पूर्वक मिलन होनेपर असुरराज वृत्रासुर अत्यन्त आनन्दित हुआ ॥ ३९ ॥ किन्तु देवराज इन्द्र उसको मारनेकी इच्छासे उस विषयके सम्पूर्ण उपायकी चिन्ता करने लगे. इन्द्रने अत्यन्त उद्विग्नचित्तसे उसका छिद्र ढूँढते ढूँढते ॥ ४० ॥ कुछ काल व्यतीत किया इसप्रकार सन्धि स्थापन करनेपर कई एक वर्ष व्यतीत हुए तब सरलचित्त वृत्रासुर अतिदारुण इन्द्रके प्रति अत्यन्त विश्वास करने लगा किन्तु इन्द्र उसके मारनेका उपाय विचारने लगे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ एक-दिन विश्वकर्म्माने अपनी सन्तान वृत्रासुरको पाकशासन इन्द्रके प्रति विश्वस्तचित्त जानकर कहा हे वत्स! वृत्र! तुम मेरा हितकर वचन सुनो ॥ ४३ ॥ देखो! जिसके साथ एकवार शत्रुता होगई उसका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये इन्द्र तुम्हारा परम शत्रु है वह सदा तुम्हारे अनिष्टकी चिन्ता करता है अतएव उसका अब विश्वास न करना ॥ ४४ ॥ वह इन्द्र सर्वदाही लोभनिरत द्वेषरत परपीडा देनेमें उत्साहयुक्त परदारलम्पट पापबुद्धि प्रतारक ॥ ४५ ॥ छिद्रका ढूँढनेवाला हिंसक मायावी और मदगर्वित है. हे वत्स! अधिक और क्या कहूं उस पापिष्ठने लीलाक्रम-सेही पापभयत्याग पूर्व्वक माताके उदरमें प्रवेशकर गर्भछेदन किया ॥ ४६ ॥ उसके गर्भस्थित रोते हुए बालकके प्रथम सातभाग इसके उपरान्त उन सातभागोंके प्रत्येकको फिर सात भाग इस प्रकार (उनचास) भागमें छेदन किया. अतएव हे पुत्र! उसका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये ॥ ४७ ॥ जो सर्वदाही पापकार्य में प्रवृत्त है उसको पुनर्वार पापकार्य्य करनेमें क्या लज्जा है. व्यासजीने कहा हे राजन्! वृत्रासुरका मरणकाल उपस्थित हुआथा इससे वह पिताके हेतुयुक्त वचनसे प्रबोधित होनेपरभी उसको शुभकर नहीं समझसका अनन्तर एकदिन समुद्रके तटपर असु-

रको देखा ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ संध्याके समय अति दारुण मुहूर्त उपस्थित होनेपर इन्द्रने उस महासुर वृत्रासुरको देख ब्रह्माके वरदान विषयकी चिन्ताकरी ॥ ५० ॥ कि, इस समय यह भयंकर संध्या उपस्थित हुई है इस समय दिनभी नहीं रात्रिभी नहीं और यह दैत्यभी अकेला निर्ज्जनस्थानमें यथा समय उपस्थित हुआ है अतएव इस समय बलपूर्व्वकही इसको मारना चाहिये इसमें अब संशय नहीं इन्द्रने इसप्रकार मनमें विचारकर अव्ययात्मा हरिको स्मरण किया ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ भगवान् ! पुरुषोत्तम हरिभी उस स्थानमें अदृश्यभावसे आय वज्रमें प्रविष्ट हुए ॥ ५३ ॥ तब इन्द्र शीघ्रही वृत्रासुरको मारनेके निमित्त स्थिरचित्त हुआ किन्तु चिन्ता करने लगा कि ॥ ५४ ॥ देव दानवगणोंको सर्व्वथा अजेय इस शत्रुको रणमें किसप्रकार मारूं और यदि इस महाबलवान् शत्रुको छलकर इस समय न मारूं ॥ ५५ ॥ तो इस दुरन्त शत्रुके वर्त्तमान रहनेपर हमारा कुछभी मंगल नहीं. इन्द्रने चिन्ता करते करते समुद्रके जलमें पर्व्वतकी समान फेन देखा ॥ ५६ ॥ तिस समय उसको सूखाभी नहीं गीलाभी नहीं और शस्त्रभी नहीं यह विचारकर उसको लीलापूर्वकही ग्रहण किया ॥ ५७ ॥ और तत्काल परमभक्ति सहित पराशक्ति भुवनेश्वरीको स्मरण किया भगवतीने स्मरणमात्रसेही अपना अंश फेनमें स्थापन किया ॥ ५८ ॥ इधर नारायणाधिष्ठित वज्रभी उस फेनपिण्डसे ढकगया तब इन्द्रने वह फेनसे ढकाहुआ वज्र वृत्रासुरको मारा ॥ ५९ ॥ तब तत्काल वृत्रासुर उस वज्रसे आहत होकर अचलकी समान गिरपड़ा वृत्रासुरके निहत होनेपर इन्द्र अत्यन्त प्रसन्नचित्त हुए ॥ ६० ॥ ऋषिगणभी अनेक स्तवद्वारा उनकी स्तुति करनेलगे देवतोंसहित इन्द्र प्रसन्न हुए ॥ ६१ ॥ अनन्तर जिनके अनुग्रहसे शत्रु मारागया देवराज इन्द्रने देवतागणोंके सहित उन्हीं देवीकी पूजा करी और अनेक प्रकारके स्तवसे उनको प्रसन्न किया ॥ ६२ ॥ फिर नन्दनवनमें परमशक्तिकी पद्मरागमयी मूर्ति इन्द्रने स्थापन करी ॥ ६३ ॥ हे महाराज ! तबसेही सब देवतालोग तीनों संध्याओंमें देवीकी पूजा करने लगे और तबसेही श्रीदेवी देवतागणोंकी कुल-देवता हुई ॥ ६४ ॥ उसी समय इन्द्रने तीनों भुवनोंमें श्रेष्ठ विष्णुकी पूजा करी. अनन्तर महावीर्य्य भयंकर वृत्रासुके मारे जानेपर ॥ ६५ ॥ मन्द मन्द शुभकर पवन चलने लगा. देवगण, गन्धर्व, राक्षस और किन्नरगण महानन्दमें विचरण करने लगे ॥ ६६ ॥ हे महाराज ! वृत्रासुर भगवतीकी मायासे मोहित हुआ था और

उसी पराशक्तिके फेनमें प्रवेशकरनेसे इन्द्र उस असुरको सहसा मारनेमें समर्थ हुए थे ॥ ६७ ॥ और इसी कारणसे देवी भुवनेश्वरी "वृत्रनिहन्त्री" नामसे त्रिलोकमें विख्यात हुई किन्तु इन्द्रने उसको बाह्यदृष्ट फेनद्वारा विनाश किया था इस कारण इन्द्रसे मारागया है यही लोक कहते हैं ॥ ६८ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ७.

व्यासजीने कहा हे महाराज! अनन्तर देवदेव विष्णुने वृत्रासुरको पड़ा हुआ देख मनहीमनमें उसके हत्याजनित भयकी शंका करते करते वैकुण्ठपुरमें गमन किया ॥ १ ॥ इधर इन्द्रभी परमशत्रु वृत्रासुरके मारेजानेपर पापके भयसे डरकर अमरपुरको चलेगये तिससमय मुनिगणभी अत्यन्त उद्विग्न हो चिन्ता करनेलगे कि ॥ २ ॥ हमनेही वृत्रासुरको छलकर क्या पाप कर्म किया है हाय! देवराज इन्द्रके संग दोषसे आज हमारा "मुनि" यह नाम वृथा हुआ ॥ ३ ॥ वृत्रासुरने हमारे वचनसेही इन्द्रका विश्वास किया था अतएव विश्वासघातकके संग दोषसे आज हम भी विश्वासघातक हुए ॥ ४ ॥ ममताही सम्पूर्ण अनर्थोंका मूल है अतएव उस ममताके धिक्कार है. क्योंकि ममताकी पाशमें बद्ध होकरही हमने छलपूर्वक शपथसे वृत्रासुरको छला है ॥ ५ ॥ स्वयं पापकार्य्य न करकेभी जो पाप कार्य्य करनेकी दूसरेके संग परामर्श करें वा उस विषयमें बुद्धिप्रदान करें अथवा उस कार्य्यके करनेमें प्रेरणकरें वा जिस किसीभी प्रकारसे उसका पक्षका आश्रय करें वहभी निःसन्देह पापके भागी होते हैं ॥ ६ ॥ विष्णु सत्त्वप्रधान होनेपरभी उन्होंने वज्रमें प्रवेशपूर्वक इन्द्रकी सहायताकर वृत्रासुरका विनाशकिया है तो वहभी पापके भागी हुए हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ ७ ॥ जब भगवान् विष्णुनेभी इन्द्रके सहित सम्मिलित होकर इस प्रकार पापाचरण किया तब निःसन्देह बोध होता है कि, मनुष्यके स्वार्थमें रत होनेपर पापसे फिर भय प्राप्त नहीं होता ॥ ८ ॥ बोध होता है कि, इससमय धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारपदार्थोंमें त्रिभुवन दुर्लभ प्रथम और चतुर्थ धर्म्म तथा मोक्ष एकवारही विनष्ट हुए है॥ ९॥ और अर्थ तथा कामही श्रेष्ठ कहकर प्रिय हुआ है तो "धर्म्मधर्म्म" यह वचन केवल वचनमात्र है तो इस समय महत् पंडित गणोंकोभी दम्भका कारण हुआ है वास्तवमें निष्ठापरायण होकर भक्तिभावसे कोई

धर्म्मका अनुष्ठान नहीं करता ॥ १० ॥ हेराजन्! मुनिगण वारम्वार इस प्रकार मनस्तापकर विमन हुए और हतउद्योग हो अपने अपने आश्रममें चलेगये ॥ ११ ॥ इधर विश्वकर्म्मा इन्द्रसे अपना पुत्र मराहुआ सुनकर शोकसन्तप्त हृदयसे रोदन करनेलगे और मनमें अत्यन्त दुःखको प्राप्तहुए ॥ १२ ॥ अनन्तर वृत्रासुर जिस स्थानमें पडाथा उन्होंने वहां जाय उसको इस अवस्थामें देख अत्यन्त दुःखित हृदयसे उसका दाहादिसंस्कार और पारलौकिक क्रिया यथाविधिसे करी ॥ १३ ॥ और स्नानके अनन्तर इसका तर्पण तथा और्द्धदेहिक क्रिया कर अत्यन्त शोकार्त्त हृदयसे मित्रघाती पापिष्ठ इन्द्रको शाप दिया कि ॥ १४ ॥ इन्द्रने जिसप्रकार मेरे पुत्र को शपथद्वारा लुभायकर निहत किया है इस प्रकार वहभी विधाताके दिये हुए अत्यन्तभारी दुःखको प्राप्तहो ॥ १५ ॥ हे राजन्! पुत्रशोकसे सन्तप्त विश्वकर्म्मा सुरेश्वरको इसप्रकार शाप दे मेरुपर्व्वतके शिखरका आश्रयकर अत्यन्तकठिन तपस्याका अनुष्ठान करनेलगे ॥ १६ ॥ जनमेजयने कहा हे पितामह! सुरराज इन्द्रने त्वष्टाके पुत्र वृत्रासुरको मारकर सुख पायाथा वा दुःख? पहले वह आप मुझसे वर्णन कीजिये ॥ १७ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज! आपक्या पूँछते हैं? आपका सन्देह किस प्रकार है? आप निःसन्देह जानिये कि, जीवगणोंको अपने किये हुए शुभाशुभ कर्म्मोंका फल अवश्यही भोगना होगा ॥ १८ ॥ बलवान् हो अथवा दुर्बल हो और देवता असुर अथवा मनुष्यादि जो कोई हो सबकोही अपने कियेहुए पापपुण्यका अल्प वा अधिक होनेपरभी भलीभाँति उसका फलभोगना होगा ॥ १९ ॥ इन्द्रने जब वृत्रासुरको मारनेकी चेष्टाकीथी विष्णुने तभी उनको बुद्धिदानकर और वज्रमें प्रविष्ट हो उनकी सहायता कीथी ॥ २० ॥ किन्तु विपदके समयमें विष्णुने किसीप्रकारभी इन्द्रकी सहायता नहींकी अतएव हे नरेन्द्र! इस संसारमें सम्पूर्ण समयपरही स्वजन होतेहैं ॥ २१ ॥ किन्तु दैवके प्रतिकूल होनेपर कोईभी फिर सहायता करनेवाला दिखाई नहीं देता अधिक क्या दैवके प्रतिकूल होनेपर पिता माता भार्य्या वा सहोदर ॥ २२ ॥ सेवक मित्र अथवा और सजातपुत्र कोईभी दैवके प्रतिकूल होनेपर सहायता लाभ करनेमे समर्थ नहीं होता ॥ २३ ॥ वास्तवमें जो पाप वा पुण्य करता है वही उसका फल भोग करताहै ॥ वृत्रासुरके मारेजानेपर फिर सब अपने अपने स्थानको चलेगये किन्तु ब्रह्महत्याके पापप्रभावसे शचीपति इन्द्र अत्यन्त तेजहीन होगये ॥ २४ ॥ तब सब

देवता ब्रह्मघातक कहकर उनकी निन्दा करनेलगे. वह और भी कहने लगे कि, कौन पुरुष शपथपूर्व्वक सत्य कहकर ॥ २५ ॥ विश्वस्त मित्रभावको प्राप्तहुए मुनिवरको मारनेकी इच्छा करता है ? हे महाराज ! तिस समय देवतागणोंकी गोष्ठी में, सुरोद्यानमें, गन्धर्वगणोंके सम्मिलनमें ॥ २६ ॥ अधिक क्या सब स्थानोंमें ही इस वातकी चर्चा होनेलगी कि, इन्द्रने विश्वास कियेहुए वृत्रासुरको मुनिगणोंसे धोका दिलाय छलपूर्वक स्वयं निहतकर क्या दुष्कर कार्य किया है उन्होंने वेदका सनातन प्रमाण छोड़कर लीलापूर्वकही वृत्रासुरको निहतकर सौगत अर्थात् बौद्ध-मतका आश्रय कियाहै ॥ २७ ॥ २८ ॥ जिसप्रकार वृत्रासुरको निहत कियाहै इसी प्रकार वचन देकर कौन पुरुष अन्यथा करेगा ॥ २९ ॥ विष्णु और इन्द्रके सिवाय और कौन उसका विपरीताचरण करसक्ता है ? तिस काल इस प्रकार अनेक बातें अनेक समाजोंमें अधिकतासे होनेलगीं ॥ ३० ॥ इधर इन्द्रनेभी अपनी कीर्त्तिमें हानिकर यह सब बातें सुनी. हे महाराज ! लोकमें जिसकी कीर्त्ति नष्ट होगई उसके उस निन्दित जीवनको धिक्कार है ॥ ३१ ॥ हाय ! विनष्टकीर्त्ति मनुष्यको मार्गमें जाताहुआ देखकर शत्रु हँसतेहैं जब राजर्षि इन्द्रद्युम्न निष्पाप होनेपर भी कीर्तिक्षय होनेके कारण स्वर्गसे गिरेथे ॥ ३२ ॥ तब पापाचारी गण किस प्रकार न गिरेंगे ? नरपति ययाति अत्यन्त अल्प अपराधमेंभी स्वर्गसे गिरकर ॥ ॥ ३३ ॥ अठारहयुगपर्य्यन्त कर्कटयोनिको प्राप्त हुए थे अधिक क्या भगवान् स्वयं हरिनेभी भृगुकी स्त्रीका शिरश्छेदन करनेपर ॥ ३४ ॥ ब्रह्मशापसे वराहमकरादि योनिमें जन्म ग्रहणकिया था उन्होंने सर्वव्यापी होनेपरभी क्षुद्र वामनरूप धारण कर याचना करनेकेलिये बलिके गृहमें गमन किया था ॥ ३५ ॥ अतएव पापकारी पुरुषगण इनकी अपेक्षा अब क्या अत्यन्त दुःखको प्राप्त न होंगे ? हे भरतभूषण ! रामचन्द्र भी भृगुके शापसे वनवासमें सीताके विरहसे ॥ ३६ ॥ अत्यन्त भारी दुःखको प्राप्त हुए थे इसी प्रकार इन्द्रभी ब्रह्महत्याजनित पापसे ऐसे भीत हुए थे ॥ ॥ ३७ ॥ सम्पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त होकर भी घरमें उनको सन्तोष न हुआ तब इन्द्राणी उनको हीनतेजयुक्त देखकर बोली ॥ ३८ ॥ जो कि वारंवार श्वास लेते भयसे व्याकुल नष्टसंज्ञा और चेतनाहीन थे उनसे कहा हे स्वामी ! अब क्यों भयभीत हो ? तुम्हारा दारुण शत्रु मरगया है ॥ ३९ ॥ हे शत्रुनाशी स्वामिन् ! कहिये अब आप-को क्या चिन्ता है ? हे लोकेश ! आप साधारण पुरुषोंकी समान वारंवार श्वास लेते

क्या शोच रहे हैं? ॥ ४० ॥ अब तो कोई आपका ऐसा बलवान् शत्रु नहीं है जिस-की आपको चिन्ता हो, तब इन्द्रने कहा हे प्रिये! न तो मेरा कोई बलवान् शत्रु है पर तोभी मुझे शान्ति और सुख नहीं है ॥ ४१ ॥ हे महारानी! मैं घरमें स्थित हुआभी ब्रह्महत्याके भयसे निरन्तर भयभीत हूं. हे देवि! नन्दनवन अलकाभवन अमृत-वन ॥ ४२ ॥ गन्धर्वगणोंका मनोरम सङ्गीत, और अप्सरागणोंका मनोहर नृत्य यह सम्पूर्णही मुझको सुखदायक बोध नहीं होते अधिक क्या तुम्हारी समान त्रिभुवनसुन्दरी नारी और अन्यान्यसुरसुन्दरीगण ॥ ४३ ॥ तथा कामधेनु, मन्दार, पारिजात, सन्तान, कल्पवृक्ष और हरिचन्दन इत्यादि देवतागणोंके वृक्षभी मुझको सुखदायक बोध नहीं होते, इससमय मैं क्या करूं? कहां जाऊं? कहां जानेसे सुख हो? ॥ ४४ ॥ हे प्रिये! इसप्रकार चिन्तातुर होकरही मैं अपने चित्तमें सुख-लाभ नहीं करसक्ता. व्यासजीने कहा हे राजन्! मूढ़ इन्द्र परमकातर हुई प्रिया शचीसे इस प्रकार वचन कह कर ॥ ४५ ॥ गृहसे निकले और परममनोहर मानससरोवरमें गये देवराज इन्द्र वहां भय और शोकसे क्षीणदेह हो पद्मनालमें प्रविष्ट होकर रहे ॥ ४६ ॥ किन्तु वह घोरतर पापमें अभि-भूत हुए थे, इसीकारण उस समय उनको कोई नहीं पहँचानसका वह निश्चल सर्पकी समान ॥ ४७ ॥ आहारविहारशील चिन्तार्त असहाय और विकलेन्द्रिय होकर उसी जलमें गुप्तरूपसे वास करनेलगे अनन्तर देवराज इन्द्रके ब्रह्महत्याभयसे पीड़ित हो प्रस्थान करनेपर ॥ ४८ ॥ देवतागण अत्यन्त चिन्तायुक्त हुए क्योंकि उस समय सर्वत्रही अनेकप्रकारके उत्पात होनेलगे ऋषिगण सिद्ध और गन्धर्वगण अत्यन्त भयार्त हुए ॥ ४९ ॥ क्योंकि तिसकाल सम्पूर्ण जगत् अराजक होनेपर अनेक प्रकारके उपद्रवोंसे अभिभूत होनेलगा तब अनावृष्टिके कारण पृथ्वीमें अल्पधान्य ॥ ॥ ५० ॥ नदीयोंमें अत्यन्त अल्पजल, और सम्पूर्ण सरोवर जलहीन हुए इसप्रकार अराजकता उपस्थित होनेपर स्वर्गवासी समस्त देवतागण और ऋषिगणोंने ॥ ५१ ॥ विचार करके नहुषराजाको इन्द्रके पदमें अभिषिक्त किया. हे महाराज! नहुष धार्मिक होनेपरभी रजोगुणके प्रभावसे ॥ ५२ ॥ कामबाणसे हत होकर अत्यन्त विषयासक्त हुए तिस समय वह नरपति अप्सरागणोंके सहित हो देवोद्यानमें क्रीड़ा करनेलगे ॥ ५३ ॥ एक दिन उन्होंने इन्द्रपत्नी शचीकी गुण माधुरी श्रवण करके उसको प्राप्त करनेकी अभिलाषा की अनन्तर उन्होंने ऋषिगणोंसे कहा कि इन्द्राणी

क्यों नहीं आतीं? ॥ ५४ ॥ आपने और सम्पूर्ण देवताओंने मिलित होकर मुझको इन्द्रत्वपदमें वरण किया है, किन्तु अबतकभी इन्द्राणी मेरे निकट क्यों नहीं आई ? हे देवताओ! बहुत शीघ्र शचीको सेवाके निमित्त मेरे समीप लाओ ॥५५॥ यदि आपको मेरा प्रिय करना है तो यह कार्य करो मैं इस समय इन्द्र हूं इससे देवतागण और सम्पूर्ण लोकोंका ईश्वर हुआ हूं । ५६ ॥ अतएव अब शीघ्रही इन्द्राणी मेरे भवनमें आवे देवतागण और देवर्षिगण नहुषका यह वचन सुनकर ॥ ॥ ५७ ॥ चिन्तातुर हुए और शचीके निकट जाय मस्तक झुकाकर कहनेलगे हे इन्द्रपत्नि ! दुराचार नहुष आपकी इच्छा करता है ॥ ५८ ॥ उसने कुपित होकर हमसे कहा कि शचीको शीघ्र इस स्थानमें लाओ, हे देवि ! हमने उसकोही इन्द्र किया है और हम उसकेही आधीन हुए हैं अतएव हम इस समय क्या करें? ॥ ॥ ५९ ॥ इन्द्रपत्नी शची उनका यह वचन सुन अत्यन्त दुर्मन हुईं और बृहस्पतिजीसे कहने लगीं हे ब्रह्मन् ! मैं आपकी शरणागत हूं मेरी दुराचार नहुषके हाथसे रक्षा कीजिये ॥ ६० ॥ तब बृहस्पतिजीने कहा हे देवि ! पापमोहित नहुषसे तुम डर मत करो, हे वत्से ! सनातन धर्म परित्याग कर मैं तुमको नहुषके हाथमें नहीं दूंगा ॥ ६१ ॥ जो नराधम शरणागत कातर पुरुषको पराये हाथमें देता है वह प्रलय कालपर्यन्त दुर्विपाक नरक भोगता है इसमें सन्देह नहीं हे नितम्बिनि ! तुम सावधान होओ मैं तुमको कभी त्याग नहीं करूंगा ॥ ६२ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ८.

व्यासजीने कहा हे महाराज ! इन्द्रपत्नी देवगुरुकी शरणापन्न हुई है यह सुनकर कामसे व्याकुल नहुषराज बृहस्पतिजीके प्रति अत्यन्त क्रोधित हुए ॥ १ ॥ और देवतागणोंसे कहनेलगे हे देवताओ ! मैंने सुना है कि उस मूढ़ अङ्गिराके पुत्रने इन्द्राणीकी अपने घरमें रक्षा की है अतएव मैं उसको शीघ्रही मारूंगा ॥ २॥ देवतागण और ऋषिगण उस समय उसको इसप्रकार कुपित देख उस भीषणमूर्ति नहुषसे शान्तिपूर्वक कहने लगे ॥ ३ ॥ हे राजेन्द्र ! आप क्रोध दूर कीजिये हे प्रभो ! इस समय इस पापमतिको त्याग कीजिये देखो सम्पूर्ण ऋषिगण धर्मशास्त्रमें परस्त्रीगम-

नको महापाप कहकर निन्दा करते हैं ॥ ४ ॥ आप विचार कीजिये कि पुलोमन-न्दिनी सदाही साध्वी सुशील और पतिव्रता है पतिके वियमान रहनेपर किसप्रकार फिर दूसरा पति ग्रहण करैं ? ॥५॥ हे प्रभो ! आप इस समय तीनो भुवनोंके अधि-पति हैं इस कारणही धर्म्मके रक्षक हुए हैं अतएव आपकी समान पुरुष यदि अधर्म्माचरण करैं तो सम्पूर्णही प्रजा नष्ट होजाय ॥ ६ ॥ सर्वदा शिष्टाचारकी रक्षा करनाही प्रभुगणोंका अवश्य कर्त्तव्य है और देखो इसस्वर्गमें शचीकी समान अनेक सुन्दरी वियमान हैं आप उनकेही द्वारा इन्द्रिय चरितार्थ कीजिये ॥ ७॥ महात्मा-गण परस्परके प्रति परस्परके अनुरागकोही शृङ्गाररसका कारण कहते हैं, अतएव बलात्कारद्वारा रसकी हानि होती है ॥ ८ ॥ हे पार्थिवोत्तम ! यदि दोनोंका समान प्रेम हो तो उससे दोनोंकोही सुख सम्पत्ति उत्पन्न होसक्ती है ॥ ९ ॥ हे राजन् ! इस समय आपको इन्द्रपद प्राप्त हुआ है अतएव इस परदाराभिमर्पण कलुपित भावको दूरकर साधुभावका उदय कीजिये ॥ १० ॥ पापद्वारा समृद्धिका विनाश होता है, तथा पुण्यद्वारा समृद्धिकी अत्यन्त वृद्धि होती है अतएव हे पार्थिव ! आप कलुपित भावको त्यागकर चित्तको सन्मार्गमें लाइये ॥ ११ ॥ नहुपने कहा हे देवगण ! इन्द्रने जब गौतमकी स्त्री हरणकी चन्द्रमाने जब बृहस्पतिकी स्त्री हरण की तब तुम कहां थे ? ॥ १२ ॥ देखो अन्यको उपदेश देनेमें अनेक कुशल और समर्थ हैं किन्तु स्वयं कार्य्यानुष्ठानकर पराये प्रति इसप्रकार उपदेश प्रदान करसके ऐसे पुरुष अत्यन्त दुर्लभ हैं॥ १३ ॥ हे देवगण ! उस गुणवती देवीको मेरे निकट लाओ, इससे तुम्हारा परमहित होगा और उस देवीकोभी परमसुख प्राप्तहोगा इसमें सन्देह नहीं ॥ ॥ १४ ॥ मैं तुमसे सत्यही कहताहूं अन्य किसीप्रकार मैं संतुष्ट नहीं हूंगा विनयसेहो अथवा बलसे हो तुम शीघ्र इन्द्राणीको इसस्थानमें लाओ ॥ १५ ॥ तब देवतागण और मुनिगण मदनबाणसे पीड़ित नहुषराजका इसप्रकार वचन सुन अत्यन्त भीतहुए और उनसे कहनेलगे ॥ १६ ॥ हम कोमलभावसे सम्मत करके इन्द्राणीको आपके निकट लावेंगे वह नहुषसे यह कहकर बृहस्पतिजीके घर चलेगये ॥ १७॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! देवताजन बृहस्पतिजीके घरजाय हाथ जोड़कर कहनेलगे हे गुरु ! इन्द्राणीने आपके गृहका आश्रय ग्रहण किया है यह हम जानते हैं ॥ १८॥ किन्तु अब उसे नहुषराजाको देनाहोगा क्योंकि हम सबने मिलकरही उनको इन्द्रके पदमें वरण किया है. हे गुरु ! यह सर्वाङ्गसुन्दरी वरवर्णिनी इससमय उनको वरण करे ॥

॥ १९ ॥ बृहस्पतिजीने देवताओंका यह दारुण वचन सुनकर उनसे कहा हे देवताओ ! यह पतिव्रता शची इससमय मेरी शरणागतहुई है अतएव मैं कभी इसको त्याग नहीं करसक्ता ॥ २० ॥ देवताओंने कहा हे गुरु ! आप यदि शचीको त्यागनकरै तो इससमय जिससे नहुषराज प्रसन्न हो इस प्रकार कोई उपाय कीजिये नहीं तो उनके कुपित होनेसे किसीसेभी उनको प्रसन्न नहीं कियाजायगा॥ २१ ॥ बृहस्पतिजीने कहा हे देवताओ ! शची इससमय वहां जाय राजानहुषको वचनसे प्रलोभित करके इसप्रकार नियमकरे कि " पतिके विनाशका निश्चय होनेपर फिर आपकी भजना-करूंगी " ॥ २२ ॥ अपने पति इन्द्रके जीवित रहनेपर किसप्रकार दूसरे पतिको ग्रहण करूं ? अतएव इससमय मैं उन महात्माको ढूंढनेको जाती हूं ॥ २३ ॥ शची मेरे वाक्यानुसार इसप्रकार नियमवन्धन पूर्वक उस भूपतिको छलकर पतिको लानेके लिये यत्न करे ॥ २४ ॥ हे महाराज ! अनन्तर बृहस्पति इत्यादि सम्पूर्ण देवतागण ही इसप्रकार परामर्शकर इन्द्राणीको लेकर नहुषके निकटगये ॥ २५ ॥ तब कृत्रिम इन्द्र नहुषने उसको आताहुआ देख हृष्ट और सन्तुष्टहो आनन्दसे इन्द्राणीको अव-लोकन कर कहा॥ २६ ॥ हे कान्ते ! अब मैं यथार्थही इन्द्रहुआ हे चारुलोचने ! तुम मेरी पतिके समान भजनाकरो देखो इससमय देवताओंने मुझको सर्वलोकोंका आरा-ध्यकिया है ॥ २७ ॥ नहुषके इसप्रकार कहनेपर शचीदेवीने अत्यन्त लज्जितहो कांपते कांपते राजासे कहा हे सुरेश्वर ! मैं आपसे एकवर प्राप्त करनेकी इच्छाकरतीहै॥ २८ ॥ ' इन्द्र जीवित है या नहीं, मैं जबतक यह निर्णय नकरसकूं आप उसी थोडेकाल-तक प्रतीक्षा कीजिये वह हैं या नहीं. इसप्रकार सन्देह मेरे हृदयमें रहता है ॥ २९ ॥ हे राजेन्द्र ! जबतक इसविषयमें मैं कुछ स्थिर नकरसकूं आप तबतक मुझको क्षमा कीजिये मैं अपने मनमें यह निश्चयकर तदनन्तर आपकी भजनाकरूंगी यह सत्यही जानना चाहिये ॥ ३० ॥ इन्द्र इससमय नष्टहुआ है या स्थानान्तरमें चलागया है यह कुछ नहीं जानाजाता शचीदेवीके इसप्रकार कहनेपर नहुष अत्यन्त प्रसन्नहुए ॥ ३१ ॥ और यही हो इसप्रकार कहकर आनन्दित चित्तसे उसको बिदाकिया पतिव्रता शची उनसे बिदाहो शीघ्र जाय देवताओंसे कहने लगी कि ॥ ३२ ॥ आप इन्द्रको लानेका उद्योग और भलीभांति यत्न कीजिये. हे राजेन्द्र ! देवतागण इन्द्रा-णीका वह श्रवण मनोहर पवित्र वचन सुनकर ॥ ३३ ॥ एकाग्र चित्तसे इन्द्रके लानेकी परामर्श करने लगे अनन्तर उन्होंने वैकुण्ठमें जाय ॥ ३४ ॥ शरणागत

वत्सल आदिदेव जगन्नाथ परमेश्वर विष्णुका स्तवकिया वाक्यविशारद देवताओंने समुद्विग्नचित्तहो विष्णुसे कहा ॥ ३५ ॥ हे प्रभो! देवदेव सुरपति इन्द्र ब्रह्महत्याके पापसे पीडित हैं इससमय वह सम्पूर्ण भूतोंसे अदृश्य हो किसस्थानमें वास करते हैं॥ ॥ ३६ ॥ हे प्रभो! वह आपकी बुद्धिसेही विप्रवर वृत्रासुरको मारकर ब्रह्महत्याके पापमें अभिभूत हुए हैं. हे विभो! आपही उनकी और हमारी एकमात्रगति हैं ॥ ॥ ३७ ॥ हम इससमय परम आपदामें पतित हुए हैं आप इस विपद छुड़ाने और इन्द्रकी मुक्तिका उपाय निर्देश कीजिये. देवताओंके यह कातर वाक्य सुनकर विष्णुने कहा ॥३८॥ इन्द्र पापसे रक्षापाने निमित्त अश्वमेध यज्ञ करें तो इन्द्र इस पापविनाशक यज्ञसे पवित्र हो ॥ ३९ ॥ सब प्रकार भयसे रहित हो फिर इन्द्रत्वको प्राप्तहोंगे इसमें सन्देह नहीं. विशेषकर अश्वमेधयज्ञ करनेसे अम्बिका देवी सन्तुष्ट हो ॥ ४० ॥ वह सम्पूर्ण ब्रह्महत्याका पाप नष्टकरेंगी यह निश्चयजानना चाहिये. देखो जिनके स्मरणमात्रसेही पापसमूह नष्ट होते हैं ॥ ४१ ॥ अश्वमेधयज्ञसे यदि उनको प्रसन्न कियाजाय तो उसके द्वारा घोरतरपापभी नष्ट होगा इसमें फिर क्या आश्चर्य्य है और इन्द्राणी नित्यभगवतीकी पूजा करें ॥ ४२ ॥ तो उन मंगलमयीकी आराधनासे अवश्य सुख प्राप्त होगा. विशेषकर नहुषभी उस जगन्माताकी मायाद्वारा मोहित होकर ॥ ४३ ॥ अपने कियेहुए पापसे अत्यन्तशीघ्र विनष्ट होगा और शतक्रतु इन्द्रभी अश्वमेधयज्ञसे पवित्रहोकर शीघ्रही ॥ ४४ ॥ अपने आसनस्वरूप परमवैभवको प्राप्तहोंगे. हे राजन्! देवता अमिततेजा विष्णुकी कल्याणदायिनी मनोहारिणी यह वाणी सुनकर ॥ ४५ ॥ जिसस्थानमें पाकशासन वास करतेथे उसी स्थानमें गये बृहस्पति इत्यादि सुरगणने दुर्द्दशायुक्त देवताओंके इन्द्रको आश्वासितकर ॥ ४६ ॥ भलीभाँति महायज्ञ अश्वमेधका अनुष्ठानकराया तब देवताओंके प्रभु इन्द्रने ब्रह्महत्याके पापको त्यागकर वृक्ष नदी ॥४७॥ और पर्वत समूहमें स्त्रियोंमें तथा पृथ्वीमें निक्षेप किया इसकारण भूतसमूहमें ब्रह्महत्याका पाप विसर्ज्जनकर पाकशासन इन्द्र फिर पापहीन ॥ ॥ ४८ ॥ और ज्वरहीनहो कालके आनेकी प्रतिक्षामें उसी जलमें सर्वभूतोंसे अदृश्यहो पद्मनालमें वासकरनेलगे ॥ ४९ ॥ देवता उस अद्भुतकार्य्यको कर उस स्थानसे निकल अपने अपने स्थानको चलेगये तब विरहसे आकुलहुई पुलोमनन्दिनी अत्यन्त दुःखितहो देवगुरु बृहस्पतिजीसे कहनेलगी ॥ ५० ॥ हे प्रभो! हमारे

स्वामी इन्द्र अश्वमेधयज्ञ करकेभी किसकारण अदृश्य रहते हैं मैं उनको किसप्रकार देखूंगी आप मुझसे इसका उपाय कहिये ॥ ५१ ॥ बृहस्पतिजीने कहा हे देवि! तुम कल्याणमयी भगवतीकी आराधनाकरो तो वही तुम्हारे पतिको निष्पापकर तुमको दिखावेंगी ॥ ५२ ॥ उन्हीं जगद्धात्री अम्बिकाकी आराधना करनेपर वह नहुष राजाको अन्यान्यकार्यसे हरावेंगी और वहीउसको मायासे मोहितकर स्वर्गके पदसे निपतित करेंगी ॥ ५३ ॥ हे राजन्! बृहस्पतिजीके इसप्रकार कहनेपर पुलोमतनयाने उनके निकसे देवीका सिद्धिसाधन—युक्त मन्त्र ग्रहण किया ॥ ५४ ॥ शचीदेवी गुरुके निकटसे मंत्र प्राप्त कर बलि और पुष्पइत्यादि उपहारकी सामग्री द्वारा श्रीदेवी भुवनेश्वरीकी सम्यक् प्रकार आराधना करनेलगी ॥ ५५ ॥ ॥ इन्द्राणी पतिके दर्शनकी इच्छासे सम्भोग्यवस्तु त्याग और तापसीका वेषधारणकर देवीकी पूजा करनेलगीं ॥ ५६ ॥ कुछकाल व्यतीत होनेपर वह देवीपरितुष्टहो शान्तमूर्तिसे हंसकी पीठपर चढकर वरदेनेके निमित्त उसके सामने प्रगट हुई ॥ ५७ ॥ तिससमय उनके अङ्गकी कान्ति करोड़ करोड़ सूर्यकी समान प्रदीप्त होनेपरभी करोड़ करोड़ चन्द्रमाके समान शीतलथी उनकी लावण्यछटा करोड़ करोड़ स्थिर विजलीके समान प्रकाशित होनेलगी और मूर्तिमान् चारोंवेद चारों ओर उनका स्तव करने लगे ॥ ५८ ॥ उनके चारों हाथ पाश अंकुश वर और अभयदान सौन्दर्यसे शोभायमान थे. तथा कण्ठसे चरणोंपर्य्यन्त लम्बायमान निर्म्मल मोतियोंकी माला धारण कररहीं थी ॥ ५९ ॥ उनका मुखमण्डल कुछेक हास्य और प्रसन्नतासे शोभायमानथा. वही करुणामयी त्रिनयनी कीटसे ब्रह्मपर्य्यन्त जीवगणोंकी जननी हैं ॥ ६० ॥ उनके दोनों स्थूल स्तन शान्ति इत्यादि अनन्त पीयूषरससे परिपूर्ण थे वही अनन्त कोटि ब्रह्माण्डकी ईश्वरी ॥ ६१ ॥ सर्वेश्वरी तथा परमेश्वरी सर्वज्ञान सम्पन्न कूटस्थित अक्षरकी साक्षी चैतन्यरूपिणी है वही भुवनेश्वरी देवी आराधनामें तत्पर हुई अमरेश्वरी शचीसे ॥ ६२ ॥ मेघके समान गम्भीरस्वरसे उसके आनन्द देने-वाले वचन कहने लगीं. हे शक्रवल्लभे! तुम वांछितवर ग्रहण करो ॥ ६३ ॥ मैं तुम्हारी पूजासे अत्यन्त प्रसन्न हुई हूं हे सुश्रोणि! मैं वर देनेकेही तुम्हारे निकट आई हूं मेरा दर्शन सहजमेंही प्राप्त नहीं होता ॥ ६४ ॥ करोड़ करोड़ जन्मार्जित पुण्यसे मेरादर्शन प्राप्त होता है तब देवीके इस प्रकार वचन सुनकर ॥ ६५ ॥ शक्रपत्नी शचीदेवी साष्टाङ्ग प्रणाम करनेके अनन्तर उन प्रसन्न हुई परमेश्वरी भगवतीसे कहने लगीं हे मातः! मैं आपके निकटसे परमदुर्लभ पतिका दर्शन ॥ ६६ ॥ और नहुष

राजासे भय विनाश तथा इन्द्रको फिर पद प्राप्त होनेकी इच्छा करतीं हूं. देवीने कहा हे सुरेश्वरी ! तुम मेरी इस दूतीके संग मानससरोवरमें जाओ ॥ ६७ ॥ उस स्थानमें मेरी विश्वकामा नामक अचलामूर्ति प्रतिष्ठित है शतक्रतु इन्द्र उसी स्थानमें महादुःखित और भयसे विह्वल हो वास करते हैं तुमउनको देखोगी ॥ ६८ ॥ और कुछकालमेंही मैं नहुषराजाको मायासे मोहित करूंगी हे विशालाक्षि! तुम सावधान होओ मैं तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूंगी ॥ ६९ ॥ मैं शीघ्रही उस भूपतिको मोहितकर देवताओंके सिंहासनसे भ्रष्ट करूंगी व्यासजीने कहा भगवतीकी दूती सुरेश्वरीने शक्रपत्नीको संग लेजाकर शीघ्र ॥ ७० ॥ उसके पति इन्द्रके सामने उपस्थित किया तिसकाल बाला पुलोमजा गुप्तभावसे स्थित ॥ ७१ ॥ चिर वांछित अपने पति इन्द्रको देखकर अत्यन्त आनन्दितहुई ॥ ७२ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे भाषायां अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ९.

व्यासजीने कहा हे राजन् ! देवराज इन्द्रने प्रियभार्या विशालनयना शोकान्वित शचीको निर्ज्जनमें देखकर आश्चर्ययुक्त चित्तसे कहा ॥ १ ॥ हे कान्ते ! मैं सम्पूर्ण जीवगणोंसे अदृश्य होकर इस निर्ज्जनस्थानमें अकेला वास करताहूं हे शुभानने ! तुमने इसस्थानको किसप्रकार जाना ? और किसप्रकार इसस्थानमें आई ॥ २ ॥ शचीने कहा हे सुरेश्वर ! मैंने देवी भगवतीके चरण प्रसादसे आपका निवासस्थान जाना, और उन्हींके प्रसादसे मैं आपको प्राप्तहुई ॥ ३ ॥ देवताओं और मुनिगणोंने मिलकर नहुष नामक नृपतिको आपके सिंहासनमें स्थापित किया है वह कहते हैं हे सुशोभने ! मैं इन्द्रके सिंहासनमें अधिष्ठित हुआ हूं अतएव तुम मेरी पतिके रूपमें भजनकरो इसप्रकार वह निरन्तर मुझको पीड़ित करता है ॥ ॥ ४ ॥ हे बलविनाशन ! वह पापात्मा मुझसे इसप्रकार कहता है अतएव मैं अबलाहूं उसका क्या करसक्ती हूं ॥ ५ ॥ इन्द्रने कहा हे वरवर्णिनी मैं कालकी प्रतीक्षा करके इसस्थानमें वास करता हूं हे कल्याणि ! तुम भी अपने मनको स्थिरकर कालकी प्रतीक्षासे वहां वास करतीरहो ॥ ६ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! बुद्धिमान् इन्द्रके यह वचन कहनेपर फिर शची देवी अत्यन्त दुःखितहोकर दीर्घश्वास त्यागपूर्वक कांपते कांपते कहने लगी ॥ ७ ॥ हे महाभाग ! मैं किसप्रकार उस स्थानमें

वास करसकूंगी वह पापात्मा मदोन्मत्त और वरदानसे गर्वित होकर मुझको वशीभूत करेगा ॥ ८ ॥ देवता और मुनिगण उसके भयसे व्याकुल होकर मुझसे कहते हैं हे शोभने ! सुरपति इन्द्र इस समय तुम्हारे निमित्त कामबाणसे अत्यन्त कातर हुए हैं अतएव तुम उनका भजन करो ॥ ९ ॥ हे परन्तप ! विप्रवर बृहस्पति बलहीन और देवतागणोंके वशीभूत होकर मेरी किसप्रकार रक्षा करनेमें समर्थ होंगे ॥ १० ॥ हे प्रभो! इससे अत्यन्त चिन्ता रहती है देखो मैं अनाथ अबला नारी हूं अतएव सर्वदाही पुरुषके वशीभूत हूं विधाता इस समय प्रतिकूल हुआ है इससे मैं किस प्रकार धर्म्मकी रक्षा करनेमें समर्थ हूंगी ? ॥ ११ ॥ मैं पतिव्रता हूं कुलटा नहीं हूं मेरा चित्त तुममेंही अत्यन्त आसक्त है वहां मेरी रक्षा करनेवाला कोई नहीं है मुझको वहां दुःख होनेसे कौन मेरी रक्षा करेगा ? ॥ १२ ॥ इन्द्रने कहा हे वरानने ! मैं तुमको इस समय एक उपाय बताये देता हूं उसका अवलम्बन करनेसे दुःखके समयमें तुम्हारा सुचरित्रही रक्षित होगा इसमें सन्देह नहीं ॥ १३ ॥ नारीजाति करोड़ करोड़ उपायसे रक्षित होनेपरभी वह पतिव्रता नहीं होसक्ती क्योंकि काम उसका चंचल मन भेदकरके असत् मार्गमें चलाता है ॥ १४ ॥ स्त्रीगणोंकी सच्चरित्रताही उनकी पापसे रक्षा करती है अतएव हे शुचिस्मिते ! तुम सत्शीलता अवलम्बन पूर्वक स्थिर होकर वास करो ॥ १५ ॥ यदि वह दुर्म्मति खल नृपति नहुष तुमको बलपूर्वक पकड़े तो तुम समयकी अवधिकर गुप्तभावसे उसको छलना ॥ १६ ॥ हे मदालसे ! तुम अकेलेमें उसके पास जाकर कहना "हे जगत्पते ! आप ऋषियोंसे वाहित दिव्य विमानपर चढकर मेरे पास आओ ॥ १७॥ तो मैं सन्तुष्ट हो प्रसन्नमनसे तुम्हारे वशीभूत हूंगी यह मेरा निश्चित व्रत जानिये" हे सुश्रोणि ! तुम्हारे इस प्रकार कहनेपर फिर वह नृपति कामसे अन्ध और मोहित हो ॥ १८ ॥ मुनिगणोंको यानवहनमें नियोजित करेगा तब तपस्वीलोग क्रोधित हो शापाग्निद्वारा अवश्यही उसको भस्म करेंगे ॥ १९ ॥ और भगवती जगदम्बिका तुम्हारी सहायता करेगी इसमें सन्देह नहीं जो कोई जगदम्बिकाके चरणकमलोंको स्मरण करता है उसको कभी संकट उपस्थित नहीं होता ॥ २० ॥ यदि उपस्थित हो तो उसको उसके मंगलार्थही जानना चाहिये अतएव तुम गुरुके वाक्यकी अनुवर्तिनी रहकर सम्यक्प्रकार यत्नसे उन मणिद्वीपनिवासिनी ॥ २१ ॥ जगज्जननी भुवनेश्वरीका भजन करो व्यासजीने कहा हे महाराज ! शचीदेवी इन्द्रका यह वचन सुन यहीं हो

इसप्रकार कहकर विश्वस्तचित्तसे भावी कार्यमें उद्योगिनी हो नहुषके निकट गई नहुष शची देवीको देखकर अत्यन्त आनन्दित हो कहनेलगे ॥ २२ ॥ २३ ॥ हे सत्यभाषिणि! तुम्हारी कुशल तो है? हे कामिनि ! मैं तुम्हारे आधीन हूं तुमने मेरा वाक्य प्रतिपालन किया है ॥ २४ ॥ अतएव सत्यही कहता हूं मैं तुम्हारा दास हुआ हे मितभाषिणि! जब तुम मेरे सामने आई हो तो मैं तुमसे अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ हूं हे शुचिस्मिते! तुम लज्जा मत करो मैं तुम्हारा भक्त हूं तुम मेरा भजन करो ॥ २५ ॥ हे विशालाक्षि! तुम्हारा क्या प्रिय कार्य्य करना होगा कहो मैं इस समय वह पूर्ण करूंगा शचीने कहा हे प्रभो वासव ! आप सम्पूर्ण कार्य्यही सम्पादन करते हैं ॥ २६ ॥ इस समय मेरे हृदयमें एक मनो-रथ विद्यमान है आप मेरा वह अभीष्ट मनोरथ पूर्ण कीजिये इसके उपरान्त मैं आपकी वशवर्त्तिनी हूंगी ॥ २७ ॥ हे कल्याणमय! इस समय मैं अपने मनकी अभिलाषा प्रकाशित करती हूं आप उसका सम्पादन कीजिये नहुषने कहा हे चन्द्रानने! तुम्हारा क्या कार्य्य है कहो मैं तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करूंगा ॥ ॥ २८ ॥ हे सुभ्रु! तुम कहो वह यदि दुर्लभ भी हो तथापि मैं वह तुमको दूंगा शचीने कहा हे राजेन्द्र! कैसे करूं आपकी मुझको प्रतीति नहीं होती ॥ २९॥ आप मेरा प्रिय कार्य्य करैं तो शपथ कीजिये हे राजन् ! पृथिवीतलमें सत्यवादी राजा दुर्लभ हैं ॥ ३० ॥ मैं सत्यपाशमें आपके बंधाहुआ जानकर फिर अपना मनोरथ कहूंगी हे भूपते! यदि आप मेरा वांछित सम्पादन करेंगे तो मैं सदा आपकी वशवर्त्तिनी हूंगी॥ ३१॥ यह मैं सत्यही आपके निकट कहतीहूं नहुषने कहा हे सुन्दरि! मैं सब करूंगा॥ ३२॥ अपने यज्ञ और दानादिसे अर्जित संपूर्ण पुण्यकी शपथ करके कहता हूं कि, तुम्हारा वाक्य अवश्य ही पूर्ण करूंगा शचीने कहा इन्द्रका उच्चैःश्रवा घोड़ा, ऐरावत हाथी॥ ३३॥ और वासुदेवका गरुड़ यमका भैंसा, शंकरका,बैल,ब्रह्माका राजहंस ॥ ३४ ॥ षडाननका मोर और गणेशजीका मूँसा वाहन देखाजाता है किन्तु हे सुराधिप! मैं तुम्हारा अपूर्व वाहन देखना चाहती हूं ॥ ३५ ॥ जो विष्णुका भी नहीं देवताओंका भी नहीं राक्षसोंकाभी नहीं है, हे महाराज! वह व्रतके धारण करने वाले मुनिगण तुम्हारे वाहन हों ॥ ३६ ॥ हे महाराज! मुनिगण आपको पालकी द्वारा कंधेपर चढ़ावें यही मेरा मनोवांछित जानिये हे वसुधाधिप! मैं आपको सब देवताओंसे श्रेष्ठ जानती हूं ॥ ३७ ॥ उसके द्वारा आपके तेजकी वृद्धि हो इसकी

मेरे मनमें अत्यन्त कामना है व्यासजीने कहा हे महाराज ! ज्ञानदुर्बल नहुष शचीका यह वचन सुनकर हसनेलगा ॥ ३८ ॥ और तत्काल देवीकृत मोहसे मोहित होकर वासव-प्रियाकी प्रशंसा कर कहनेलगा ॥ ३९ ॥ नहुषने कहा हेतन्वङ्गि ! तुमने सत्यही मेरे उत्तमवाहनका विषय कहा हे सुकेशि ! शीघ्रही मैं तुम्हारे वचनानुसार कार्य सम्पादन करूंगा ॥ ४० ॥ हे चारुहासिनि जो पुरुष अल्पवीर्य है वह मुनिगणोंको कभी वाहन करनेमें समर्थ नहीं होता, मैं मुनिगणोंको वाहन कर विमानपर चढ़ तुम्हारे निकट आऊंगा, इससे मेरा अतुलवीर्य प्रकाशित होगा इसमें सन्देह नहीं ॥ ॥ ४१ ॥ सप्तर्षिगण और सम्पूर्ण देवर्षिगण मुझको त्रिलोकमें सर्वकी अपेक्षा समर्थ और तपस्याद्वारा श्रेष्ठ जानकर वहन करेंगे इसमें संशय क्या है ॥ ४२ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! तब नरपति नहुषने अत्यन्त सन्तुष्ट होकर यह कह इन्द्राणीको विदाकिया और कामाकुलितचित्तसे सम्पूर्ण मुनिगणोंको बुलाकर कहा ॥ ४३ ॥ नहुष बोले भो विप्रवर ! मैं इस समय सर्वशक्तियुक्त देवराज इन्द्र हुआ हूं, आप आश्चर्य न करके मेरा कार्यसाधन कीजिये ॥ ४४ ॥ मैं इन्द्रासनको प्राप्त हुआ हूं किन्तु इन्द्राणी मेरे समीप नहीं आती जब मैंनें उसको बुलाया तब उसने मेरा अभिलाष जानकर प्रणामपूर्वक ॥ ४५ ॥ यह वचन कहा कि, हे देवेन्द्र ! हे मानद ! आप मुनिवाह्य विमानपर चढ़ मेरी निकट आय मेरा प्रियकार्य करो ॥ ॥ ४६ ॥ हे महर्षिगण ! यह कार्य सम्पादन करना मेरे पक्षमें अत्यन्त दुष्कर है, तथापि आप दया करके मेरा यह कार्य कीजिये ॥ ४७ ॥ मेरा मन इन्द्रपत्नीमें अत्यन्त आसक्त होकर कामबाणसे निरन्तर भस्म होता है, आप मेरे आश्रयस्थान होकर यह अद्भुत कार्य सम्पादन कीजिये ॥ ४८ ॥ अगस्त्य इत्यादि महर्षिगणोंने उसका यह असत् और अपमान करनेवाला वचन सुनकर और अवश्यम्भावि दैवव-शसे करुणार्द्रचित्तसे उसमें सम्मति दी ॥ ४९ ॥ नहुषका मन इन्द्राणीमें अत्यन्त आसक्त हुआ था, तत्वदर्शी ऋषिगणोंके यह वचन स्वीकार करनेपर वह अत्यन्त आनन्दित हुआ ॥ ५० ॥ और शीघ्र मनोहर पालकीपर चढ मुनिगणोंको वाहन कर चलते चलते कहने लगा सर्पसर्प (चलोचलो) ॥ ५१ ॥ तब उस नहुष राजाने अत्यन्त कामार्त्त होकर चरणोंसे मुनिका मस्तक स्पर्श किया और जो मुनि अगस्त्य तपस्वियोंमें श्रेष्ठ लोपामुद्राके पति ॥ ५२ ॥ वातापी राक्षसके भक्षणकर्ता सागरके शोषनेवाले थे कामसे मोहित हो राजाने उनको कोड़ा मारा ॥ ५३ ॥

और इन्द्राणीमें चित्त लगा होनेसे सर्प सर्प (चलोचलो) ऐसा मुनिसे कहा, तब मुनिने कशाघातसे क्रोधित हो उसे शाप दिया ॥ ५४ ॥ हे दुराचारी तू सर्प २ कह कर हमको ताडन करता है इस कारण तू घोर वनमें बडा शरीरवाला सर्प होकर वहीं निवास करता रह अपने वीर्यवशसे विचरण कर अनेक हजार वर्ष व्यतीत होने पर जब अत्यन्त क्लेश भोगेगा ॥ ५५ ॥ तब फिर स्वर्गको प्राप्त होगा तू जब युधिष्ठिरनामक नरपतिका दर्शन करेगा ॥ ५६ ॥ उसी समय उस धर्मपुत्रके मुखसे सम्पूर्ण प्रश्नोंका उत्तर सुनकर बंधनसे छूट जायगा व्यासजीने कहा हे महाराज ! इसप्रकार शापको प्राप्त हो राजर्षि नहुष उन मुनिसत्तमका स्तव करते करते ॥ ५७॥ सहसा स्वर्गसे पतित हुआ और तत्काल सर्पका आकार धारण किया अनन्तर देवगुरु बृहस्पतिजीने शीघ्र मानससरोवरमें जाय ॥ ५८ ॥ देवराज इन्द्रसे यह सब वृत्तान्त विस्तारपूर्वक कहा सुरपति, नहुषनृपतिकी स्वर्गच्युति इत्यादि समस्त वृत्तान्त श्रवण कर ॥ ५९ ॥ अत्यन्त आनन्दित हुए और प्रसन्नचित्तसे उसी स्थानमें वास करने लगे देवता और मुनिगण नहुषको पृथ्वीपर गिराहुआ देखकर ॥ ६० ॥ जिस स्थानमें इन्द्र वास करते थे उसी मानससरोवरमें गये तब मुनिगण और देवता सब मिलित होकर इन्द्रको समझाय ॥ ६१ ॥ और सन्मानित कर फिर स्वर्गमें ले आये फिर सम्पूर्ण देवता और ऋषिगणने आये हुए इन्द्रको ॥ ६२ ॥ स्वर्गके सिंहासनपर स्थापित कर तिसके उपरान्त अभिषेकक्रिया सम्पादन की इन्द्रभी अपने सिंहासनको प्राप्त हो प्रणयिनी शचीके सहित सुरालयके ॥ ६३ ॥ मनोहर वनमें क्रीड़ा करने लगे व्यासजीने कहा हे राजन् ! कामरूप महर्षि असुरेश्वर विश्वरूपको मारकर इन्द्र इसप्रकार अत्यन्त दारुण दुःख भोगकर तदनन्तर देवीके प्रसादसे अपने आसनको प्राप्त हुए थे ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ हे राजेन्द्र ! तुमने जो पूँछा था मैंने वही वृत्रासुरका वधवृत्तान्त रूप अत्युत्तम उपाख्यान आपके निकट कीर्त्तन किया ॥ ॥ ६६ ॥ हे कुरुकुलभूषण ! आप निश्चय जानिये कि जीवगण जिसप्रकार कर्म करते हैं उसीप्रकार फलको प्राप्त होते हैं, कियाहुआ कर्म शुभ हो अथवा अशुभ हो अवश्यही उसका फल भोगना होगा, इसमें सन्देह नहीं इसीप्रकार इन्द्रनेभी ब्रह्महत्या रूप अपने किये हुए कर्मका फल भोगा था ॥ ६७ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे भाषायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः १०.

जनमेजयने कहा हे ब्रह्मन् ! आपने अद्भुतकर्मा इन्द्रका अद्भुत चरित्र और उनका स्थानभ्रंश तथा दुःखकी प्राप्ति भलीभांति वर्णन की ॥ १ ॥ और उनके प्रसङ्गमें देवाधिदेवी भुवनेश्वरीकी महिमा भी विशेषरूपसे वर्णन की किन्तु इस बातका मेरे मनमें एक सन्देह उपस्थित हुआ है कि इन्द्र महातपस्वी थे॥ २॥ उन्होंने दुःखनाशक देवाधिपत्यको प्राप्त होकर भी दुःख अनुभव क्यों किया था वह सो अश्वमेधयज्ञका अनुष्ठान करके देवाधिपत्य और उत्तम स्थानको प्राप्त होकर भी॥ ३ ॥ किस कारण उस स्थानसे भ्रष्ट हुए ? हे करुणानिधे ! आप दया करके यह सम्पूर्ण कारण मेरे प्रति वर्णन कीजिये ॥ ४ ॥ आप सर्वज्ञ मुनिश्रेष्ठ और पुराणसमूहके प्रवर्तक हैं. मैं आपका श्रद्धान्वित शिष्य हूं ऐसे प्रियशिष्यके निकट महत् पुरुषोंका न कहनेयोग्य कुछ भी नहीं है ॥ ५ ॥ अतएव हे महाभाग ! आप कृपाकरके मेरा यह सब संशय दूर कीजिये सूतजीने कहा जनमेजयके सत्यवतीपुत्र व्यासदेवजीसे इसप्रकार पूँछनेपर ॥ ६ ॥ उन्होंने अत्यन्त प्रसन्नमनसे यथाक्रमसहित उसका उत्तर दिया व्यासजीने कहा हे नृपवर ! आप उसका सम्पूर्ण अद्भुत कारण सुनिये ॥ ७ ॥ तत्वके जाननेवाले पुरुष कहते हैं कि कर्मकी गति संचित, वर्तमान और प्रारब्धभेदसे तीनप्रकारकी है ॥ ८ ॥ इसके प्रत्येककी फिर सात्विक, राजसिक और तामसिक भेदसे तीन तीन प्रकार जाननी चाहिये अनेक जन्ममें उत्पन्न किये हुए प्राक्तनकर्मको संचित कहते हैं॥ ९॥ हे भूपते! सञ्चित कर्म शुभ हो वा अशुभ हो अथवा बहुत कालका हो प्राणिगणोंको अवश्यही उस अच्छे बुरे कर्मका फल भोगना पड़ेगा॥ १०॥ जीवगण जन्म जन्ममें किये संचित कर्मोंका फल भोगे विना वह सौकरोड़ कल्पमेंभी नष्ट नहीं होता ॥ ११ ॥ जो कर्म करना आरम्भ किया है इस समय भी वह नष्ट नहीं होता, इसको ही वर्तमान कर्म कहते हैं जीव देहधारण करके शुभ हो अथवा अशुभ हो यह वर्तमानकर्म सम्पादन करते हैं ॥ १२ ॥ देहारम्भके समय कल्पपूर्वमें किये हुए संचितकर्मोंमें कुछेक अंश हरण करके भोगके निमित्त प्रेरण करता है ॥ १३ ॥ इसकोही प्रारब्ध कर्म्म कहते हैं, फलके भोगनेसे वह नष्ट होता है प्राणियोंको अवश्यही यह प्रारब्ध कर्म्म भोगना पड़ेगा ॥ १४ ॥ हे महाराज ! देवता हो वा मनुष्य हो असुर हो वा यक्ष हो गन्धर्व हो अथवा किन्नर हो पूर्वमें कियेहुए धर्म्म अधर्म्म

का फल अवश्यही भोगना पड़ेगा, यही स्थिरनिश्चय जानना चाहिये ॥ १५ ॥ पूर्वमें कियाहुआ कर्मही देव मनुष्य यक्ष गन्धर्व किन्नर कोई हो सबके देहारम्भका कारण होता है ॥ १६ ॥ कर्मका क्षय होनेसे प्राणियोंका जन्म नष्ट होता है इसमें संशय नहीं है ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, और सुरगण ॥ १७ ॥ तथा दानव यक्ष गन्धर्वादि सबही कर्म्मके वशीभूत हैं, हे नृप ! कर्म्मके विना देहिगणोंके सुख दुःख भोगनेका कारणस्वरूप देहसम्बन्ध किसप्रकार उपस्थित हो सक्ता है अतएव हे राजेन्द्र ! कालके परिपाकसे अनेक जन्मजनित सञ्चित कर्मोंमें ॥ १८ ॥ १९ ॥ किसी कर्मका वेग उपस्थित होता है जिसका वेग उपस्थित हो वही प्रारब्ध है, इसी प्रारब्धवशसे मनुष्य तथा देवादि सबही जिसप्रकार पुण्य करते हैं ॥ २० ॥ इसीप्रकार पापकार्य्य भी करते हैं, इससे आप जानिये कि इन्द्रने पुण्यसे जिसप्रकार देवाधिपत्य प्राप्त किया था उसी प्रकार पाप प्रारब्धसे ब्रह्महत्या कर अपने पदसे भ्रष्ट हुए थे इसमें फिर संदेहका क्या विषय है ? हे राजेन्द्र ! केवल इन्द्रही कर्मके वशीभूत नहीं हैं धर्म्मपुत्र नर और नारायणनेभी कर्मके वशीभूत हो ॥ २१ ॥ जन्मग्रहण किया था इसमें नर और नारायणके अंशसे अर्ज्जुन और कृष्ण दोनोंही कर्मवशसे नारायणके अंशसे अवतीर्ण हुए थे मुनिगण इनको ही पुराणोंकी पीठिका अर्थात् क्रमरूपसे वर्णन किया है यही प्रमाण है सो वर्णन करते हैं ॥ २२ ॥ जो अतुल ऐश्वर्यवान् हैं उनको देवांश जानना चाहिये, जो मुनि नहीं हैं वे ज्ञान प्रतिपादक शास्त्र प्रणयन नहीं करते जो रुद्र नहीं है वे रुद्रकी अर्चना नहीं करते ॥ ॥ २३ ॥ जो देवताओंके अंशसे नहीं है वे अन्नदान नहीं करते जो विष्णुका अंश नहीं हैं वे पृथिवीपति नहीं होते हे पृथिवीन्द्र ! इन्द्र, अग्नि, यम, विष्णु और धनदसे ॥ २४ ॥ प्रभुत्व प्रभाव कोप और पराक्रम ग्रहण कर जीवोंका शरीर बनता है यही स्थिर निश्चय जानना चाहिये ॥ २५ ॥ लोकमें जो कोई पुरुष बलवान् भाग्यवान् भोगवान् विद्यावान् अथवा दानशील है वही पुरुष देवांश कहा जाता है ॥ २६ ॥ हे वसुधाधिप ! इसीप्रकार पाण्डवोंको देवांश और नारायणके समान प्रभावशाली वासुदेवको तो देवरूप ही जानना चाहिये ॥ २७ ॥ हेराजन् ! आप निश्चय जानिये कि प्राणिगणोंका शरीर सुखदुःख भोगनेका स्थान है यह शरीरधारी जीवगण सदाही सुखके पीछे दुःख और दुःखके पीछे सुख भोगकरते आते हैं ॥ २८ ॥ कोईभी देही(जीवात्मा)स्वाधीन नहीं है सदाही दैवके आधीन हैं वेअपने वशमें न रहकर दैवके वशीभूत हो जन्म,मृत्यु

सुख और दुःख पाते हैं ॥ २९ ॥ हे राजन् ! दैव जो सबकी अपेक्षा बलवान् है इस विषयका निदर्शन देखिये पाण्डवोंने प्रथम वनमें जन्म ग्रहण कर तिसके उपरान्त अपने घर गये थे अनन्तर अपने बाहुबलसे राजसूयमहायज्ञका अनुष्ठान किया ॥ ३० ॥ फिर कठोर दुःखदायक वनवासको प्राप्त हुए तदनन्तर अर्ज्जुनने कठिन तपस्या की जो अजितेन्द्रियोंको दुर्लभ है ॥ ३१ ॥ देवताओंने सन्तुष्ट हो उसको कल्याणदायक वर प्रदान किया तथापि उसने दुःखके कठोर हाथसे रक्षा नहीं पाई रदेहमें किया हुआ वनवासजनित पुण्य कहाँ चलागया ॥ ३२ ॥ उसने पूर्वजन्ममें रनामक धर्मपुत्र हो बदरिकाश्रममें जो भारी तपस्याकी थी इस समय अर्ज्जुन देहमें ह फलदायक नहीं हुई ? ॥ ३३ ॥ प्राणिगणोंके देहसम्बन्धमें कर्मकी गति अत्यन्त ज्ञेय है देवताभी जब उसको नहीं जानसक्ते तब मनुष्योंके सम्बन्धमें फिर क्या बात ॥ ३४ ॥ भगवान् वासुदेवने भी अत्यन्त संकटके स्थल कारागारमें जन्म ग्रहण र अन्तमें वसुदेवसे नन्दगोपके गोकुलमें आय ॥ ३५ ॥ वहां ग्यारह वर्ष वास र तथा फिर मथुरामें आय बलपूर्वक उग्रसेनके पुत्र कंसको मारा था ॥ ३६ ॥ नन्तर उन्होंने अत्यन्त दुःखित पिता माताको बन्धनसे छुडाय और उग्रसेनको थुरापुरीका राजा किया था ॥ ३७ ॥ तदनन्तर उन्होंने म्लेच्छराज कालयवनके यसे द्वारकापुरीको गमन किया इस प्रकार जनार्दन कृष्णने दैवके वशीभूत हो रावती नगरीमें अनेक कार्य साधनकरके महत् पुरुषार्थसाधनके अनन्तर कुटुम्ब-णोंके सहित प्रभासतीर्थमें देहपरित्याग कर वैकुण्ठको गमन [illegible] था ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ भासतीर्थमें विप्रके शापसे सम्पूर्ण यादवगण, पुत्र, पौत्र, सुहृद्, भाई, बहन तथा कुलकामिनी णोंके सहित मृत्युको प्राप्त हुए थे ॥ ४० ॥ हे राजन् ! यह मैंने आपके निकट कर्म्मकी हनगतिविषय वर्णन किया अधिक और क्या कहूं इस कर्मके वशीभूत हो स्वयं सुदेवभी व्याधके बाणसे मृत्युको प्राप्त हुए थे ॥ ४१ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ११.

जनमेजयने कहा हे द्विजेन्द्र ! आपने कहा है कि, पृथिवीका भार हरण करनेके मित्त राम और कृष्णने जन्मग्रहण किया था इस विषयका मेरे हृदयमें बड़ा शय उपस्थित हुआ है ॥ १ ॥ वह आप सुनिये, द्वापरयुगके अवसानमें पृथिवी

भारी पापसे आक्रान्त और कातर हो गोरूपधारण कर ब्रह्माजीकी शरणागत हुई थी ॥ २ ॥ तब ब्रह्माजी पृथिवीके सहित भूभारहरण और साधुओंकी रक्षाके निमित्त ॥ ३ ॥ कमलापति प्रभु विष्णुके निकट जाय प्रार्थना कर कहने लगे हे विभो! आप पृथिवीमें वसुदेवके घर अवताररूपसे शीघ्र जन्मग्रहण कीजिये ॥ ॥ ४ ॥ ब्रह्माजीकी इस प्रकार प्रार्थना करनेपर भगवानने पृथिवीका भारहरण करनेके निमित्त बलरामके सहित देवकीके पुत्ररूपसे जन्मग्रहण किया था ॥ ५ ॥ उन्होंने इस पृथिवीमें अनेक अनेक दुष्टस्वभाव पुरुषोंको और अनेकानेक राजाओंको पापबुद्धि और दुराचारी जानकर उनको मार कुछेक पृथिवीका भार दूर किया था ॥ ६ ॥ इसमें भीष्म, द्रोण, विराट, द्रुपद, बाह्लीक, सोमदत्त और सूर्यका पुत्र कर्ण भी मारे गये थे ॥ ७ ॥ किन्तु जिन्होंने धन लूटा तथा हरीकी रमणीगणोंको हरण किया था वह सम्पूर्ण करोड़ करोड़ आभीर शक म्लेछ और निषादगण पृथ्वीमें शेष रहे बुद्धिमान् कृष्णने यदि उनको न मारा तो उनका पृथिवीका भार दूर करना किस प्रकार हुआ ॥ ८ ॥ ९ ॥ हे महाभाग ! कलिकालमें संपूर्ण प्रजाको पापनिरत देखकर यह महा संशय मेरे चित्तसे किसी प्रकार दूर नहीं होता ॥ १० ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज! कालके वशीभूत हो जिस युगमें जिसप्रकार स्वभावादि युक्त प्रजा उत्पन्न होती है अन्यथा भाव कभी नहीं होता युगधर्मको ही इस विषयका उसका विशेष कारण जानना चाहिये ॥ ११ ॥ तब युगधर्मके अनुसार जो दुष्ट अथवा दुराचारी है उन सबको मारनेपर सम्पूर्ण प्रजा एकबार उच्छेद (नाश) होजाती है इससे सृष्टि स्थिति प्रलयरूप सनातन जगत् प्रवाह विनष्ट होता है इसी कारण भगवान् कृष्णने पृथिवीके भारस्वरूप दानव और दुराचारी क्षत्रियवर्गोंका विनाश किया था अन्योंका नहीं हे राजन् ! जो धर्मपरायण हैं वह सत्ययुगमें और जो धर्म तथा अर्थपरायण हैं वह त्रेतायुगमें ॥ १२ ॥ जो धर्म और अर्थ तथा काम परायण हैं वह द्वापर युगमें और अर्थ तथा कामपरायण हैं वह इस कलिकालमें जन्मग्रहण करते हैं ॥ १३ ॥ हे महाराज! आप निश्चय जानिये कि युगधर्मका व्यत्यय (विपरीत) कभी नहीं होता और काल धर्म तथा अधर्म करनेवाले सदाही विद्यमान हैं ॥ १४ ॥ राजाने कहा हे महाभाग ! सत्य-युगमें जिन सब धर्मपरायण महात्माओंने जन्म ग्रहण किया था वह पुण्यशाली मनुष्य इससमय कहाँ है ? ॥ १५ ॥ हे पितामह ! जो त्रेता अथवा द्वापर युगमें

दानव्रतपरायण थे वह मुनिगणभी इससमय कहां हैं॥ १६॥और इस वर्त्तमान कलियुगमें जो सम्पूर्ण दयारहित तथा निर्लज्ज मनुष्य विद्यमान हैं वह पापिष्ठ देव और गुरुनिन्दक गण सत्ययुगके समय कहां जायँगे॥ १७॥हे महामते! मैं यह सम्पूर्ण धर्मनिर्णयको सुननेके निमित्त अत्यन्त उत्सुक हुआ हूं आप कृपाकरके इन सबका गूढ़तत्त्व विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये ॥ १८ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन्! जो मनुष्य सत्ययुगमें इस पृथ्वीके ऊपर जन्मग्रहण करता है वह पुण्यजनित कर्मोंके अनुष्ठानसे देवलोकको जाता है ॥ १९ ॥ हे नृपसत्तम! विप्रवर्ग क्षत्रिय वैश्य और शूद्रगण अपने अपने धर्मकार्यमें निरत रहकर अपने अपने कर्मार्ज्जित लोकमें जाते हैं ॥ २० ॥ सत्य, दया, दान, स्वदारगमन, अहिंसा और सब जीवोंके प्रति समान भावसे दया ॥ २१ ॥ यह सब साधारण धर्मका आचरण करके वह धर्मके बलसे सम्पूर्ण रजकादि नीचवर्ण भी स्वर्गको जाते हैं ॥ २२ ॥ इसीप्रकार त्रेता और द्वापर युगमेंभी अपने अपने धर्मार्जित पुण्यके बलसे मनुष्यगण स्वर्गमें जाते हैं॥ २३॥ किन्तु इस कलियुगमें पापासक्तमनुष्यगण नरकमें जाकर युगके विपर्यय (समाप्ति) पर्यन्त उस घोर नरकमें वासकर तदनन्तर फिर इस पृथ्वीमें जन्म ग्रहण करते हैं ॥ २४ ॥ हे महाराज! जब सत्ययुगका आदि और कलियुगका अन्त होता है उसी समय पुण्यवान् महात्मा मनुष्य स्वर्गसे पृथ्वीमें जन्मग्रहण करते हैं ॥ २५ ॥ और जब कलियुगका आदि और द्वापरयुगका अन्त उपस्थित होता है उसी समय पापीगण नरकसे पृथ्वीमें फिर मनुष्यजन्म ग्रहण करते हैं ॥ २६ ॥ हे महाराज! कालका आचार इसीप्रकार जानना चाहिये, कभी उसके अन्यथा नहीं होता देखो कलियुग असत्कार्य करनेवाला है इसीकारणसे कलियुगकी सब प्रजाभी उसीके अनुरूप पापाचारी होती है ॥ २७ ॥ कभी कभी दैवयोगसे इन प्राणियोंके जन्म ग्रहणकी विपरीतता होती है इसीकारण कलिकालमें जो सदाचरण करता है वह द्वापरयुगका मनुष्य होता है ॥ २८ ॥ इसीप्रकार सत्कार्य करके द्वापरके युगका मनुष्य त्रेतायुगमें और त्रेताका मनुष्य सत्ययुगमें जन्म ग्रहण करता है और जो सत्ययुगमें दुष्ट है वह क्रमानुसार कलियुगकाही मनुष्य होता है ॥ २९ ॥ जीवगण अपने किये कर्मफलके प्रभावसे असुख भोगकरभी युग धर्मके कारण फिर इसीप्रकार कर्म करके उस फलका अत्यन्त कष्टभोगते हैं ॥ ३०॥ जनमेजयने कहा हेभगवन्! आप भलीभाँति युगधर्मका विषय कहिये कि, सयुगमें किसप्रकार धर्म था उसके सुन-

नेकी मैं अत्यन्त अभिलाषा करता हूं ॥ ३१ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! मैं आपके निकट युगधर्मका विषय विस्तारपूर्वक कहता हूं आप मनलगाकर सुनिये. हे नृपवर ! युगधर्मके अनुसार साधुगणोंका मन विचलित होता है ॥ ३२ ॥ देखो ! आपके पिता महात्मा और धर्मात्मा थे तथापि दुष्टमति कलिने उनके चित्तकी वृत्तिको कलुषित करके उनको ब्राह्मणोंके अपमानार्थ प्रवर्तित किया था ॥ ॥ ३३ ॥ उन्होंने क्षत्रियप्रवर और ययाति कुलमें उत्पन्न राजा होकरभी तपस्वीके गलेमें मराहुआ सर्प क्यों डाला था?॥ ३४॥ अतएव हे महाराज ! सम्पूर्ण कार्य युगधर्मके बलसेही होते हैं, यह पंडितगणभी स्वीकार करते हैं आप विशेष यत्नसे धर्मकार्यका अनुष्ठान करें इससे युगकी प्रबलता होनेपरभी चेष्टासे कुछेक धर्म कर्म अनुष्ठित होसक्ता है ॥ ३५ ॥ हे राजेन्द्र ! पुण्यमय सत्ययुगके समय वेदपारग ब्राह्मण देवीके दर्शनकी इच्छासे सदाही परमशक्तिकी अर्चन में निरत ॥ ३६ ॥ गायत्री और प्रणव मन्त्रमें तथा गायत्री ध्यानमें आसक्त रहकर एक मात्र मायाबीज मंत्रका जप करते ॥ ३७ ॥ समस्तही विप्रगण अपने अपने ग्राममें महामाया अम्बिकाका मन्दिर बनानेमें उत्सुक हो सत्य शौच और दयायुक्त मनसे अपने अपने कर्मोंमें निरत रहते ॥ ३८ ॥ तत्त्व ज्ञानमें निपुण क्षत्रियगण सदाही त्रयीविहित (तीनों वेदोंमें कहे) कर्मका अनुष्ठान करके प्रजाके प्रति पालन करनेमें तत्पर रहते ॥ ३९ ॥ वैश्यगण कृषि वाणिज्य और गोसेवामें अनुरक्त तथा शूद्रगणभी सदाही ब्राह्मणादि तीनों वर्णोंकी सेवामें निरत रहते ॥ ४० ॥ इसप्रकार सत्ययुगमें सम्पूर्ण वर्णही परमशक्ति अम्बिका देवीकी पूजामें अनुरक्त रहते किन्तु त्रेतायुगमें उक्तधर्म की मर्यादा कुछेक कम हुई थी, ॥ ४१ ॥ इसीप्रकार द्वापरयुगमें सत्ययुगकी धर्ममर्यादा भलीभाँति न्यूनताको प्राप्त होगई जो पूर्वके युगमें राक्षस थे वही कलियुगमें ऐसे ब्राह्मण हुए ॥ ४२ ॥ जो पाखण्डमें निरत बहुधा जनोंके छलनेवाले असत्यवादी गूढ वेदके धर्मसे रहित ॥ ४३ ॥ दाम्भिक लोकवार्त्तामें बड़े चतुर मानी वेदवादवर्जित शूद्रोंकी सेवामें तत्पर नानाप्रकारके धर्मके चलानेवाले ॥ ४४ ॥ वेदकी निन्दा करनेवाले क्रूरधर्म भ्रष्ट मुँह देखी कहनेवाले हुए हे राजन् ! जैसे जैसे कलियुग वृद्धिको प्राप्त होता है ॥ ४५ ॥ तैसे तैसे सत्यही है मूल जिस धर्मका उसका क्षय होजाता हैं तिसी प्रकार क्षत्रिय वैश्य शूद्रभी धर्म वर्जित होगये ॥ ४६ ॥ और शेष अंत्यज महाझूंठे पापी हुए कलियुगमें ब्राह्मण शूद्रोंके धर्ममें परायण दान लेनेमें निपुण होंगे ॥ ४७ ॥

हे नृपसत्तम! कलियुगकी वृद्धिमें यह सब होगा स्त्री काम लोभ और मोहयुक्त होकर अत्यन्त प्रवल अपनी इच्छानुसार चलनेवाली ॥ ४८ ॥ पापका आचरण करनेवाली और मिथ्या बोलनेवाली होकर लोकसमाजको महा- क्लेश करनेवाली होती है और अपनेको धर्म भाषणमें परम पंडित जानकर उपदेश देनेमें तत्पर और पतिको छलनेमें प्रवृत्त ॥ ४९ ॥ और अत्यन्त पापिष्ठ होतीं हैं. हे नृपसत्तम! आहारकी शुद्धि चित्तकी शुद्धि होती है ॥५०॥ इससे धर्म भलीभाँति प्रकाशित होता है. वर्णाश्रमधर्मके आचारके संकर दोषसेही॥५१॥ धर्मसंकर दोषकी उत्पत्ति होती है. धर्मसंकरके उपस्थित होनेपर वर्णसंकर दोषकी उत्पत्ति होती है हे राजन्! इसप्रकार कलियुगमें क्रमानुसार सब धर्मोंका लोप होनेसे ॥ ५२ ॥ अपने वर्णके धर्मकी बात फिर कहीं भी नहीं सुनीजाती. हे नृपवर! इस युगमें धर्मके जाननेवाले महान् पुरुष भी अधर्ममें प्रवृत्त होते हैं ॥ ५३ ॥ कलिका स्वभाव ही इसप्रकार है उसको त्याग करनेमें कोई समर्थ नहीं होते. अतएव हे राजेन्द्र! इससमय मनुष्य स्वभावके नियमानुसारही पापकार्यमें नियुक्त होते हैं ॥ ५४ ॥ इसीकारण सामान्य उपायसे उनकी निष्कृति नहीं होसकी. जन्मेजयने कहा हे भगवन्! आप संपूर्ण धर्मोंके जाननेवाले और सर्वशास्त्र विशारद हैं ॥ ५५ ॥ इस अधर्मवाले कलियुगमें नरगणोंकी गति किसप्रकार होगी? यदि कोई उपाय हो तो आप कृपाकरके वह मुझसे कहिये ॥ ५६ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज! कलियुगके पापोंसे निस्तार पानेके लिये एकमात्र उपाय विद्यमान है और दूसराकोई नहीं है जीवगण सम्पूर्ण पाप और दोषके दूर करनेके लिये महादेवीके चरणकम- लोंका ध्यान करैं ॥ ५७ ॥ हे नरेंद्र! महादेवीके पापदाहक नाममें जितनी शक्ति है इस सम्पूर्ण संसारमें उतना पाप नहीं है.अतएव इसमें फिर भयका कारण कहां है? ॥ ५८ ॥ वह नाम अज्ञान द्वारा लीलापूर्वक उच्चारण होनेपरभी वह क्या क्या अनिर्वचनीय फल प्रदान करती हैं उसको विष्णु तथा रुद्र इत्यादिभी जाननेमें समर्थ नहीं हैं ॥५९॥ हे राजन्! श्रीदेवीके नामको स्मरण करनेसेही पापोंका प्रायश्चित्त होता है, अतएव कलिसे डरेहुए मनुष्यगण पुण्यक्षेत्रमें वासकरके॥६०॥ सदाही पर- मादेवीका नाम स्मरणकरैं. इस सम्पूर्ण जगत्में वास करनेवाले जीवगणोंका छेदभेद और विनाशकरकेभी ॥६१॥ जो देवीको भक्तिपूर्वक प्रणाम करताहै वह मनुष्य पापमें लिप्त नहींहोता. हे राजन्! मैं ने सम्पूर्ण शास्त्रोंका गूढतत्व कीर्तन किया॥६२॥ यह सब विषय

भलीभाँति विचारकर आप सदाही देवीके चरणकमलोंका ध्यान कीजिये सम्पूर्ण जीव-गण अजपानामक गायत्रीका सदाही जप करते हैं ॥ ६३ ॥ किन्तु उसकी महिमा नहीं जानते. हे राजन् ! इससे मायाका महत्वैभवही प्रतिपादित होता है. ब्राह्मण हृदयके भीतर गायत्रीमन्त्रका जप करते हैं ॥ ६४ ॥ किन्तु उसकी महिमाको नहीं जान्ते हैं. हे नृपवर ! इससेभी मायाका महत्प्रभाव मात्रही प्रकाशितहोता है. हे राजन् ! आपने युगधर्मकी व्यवस्थाके विषयमें जो पूँछा था वह सम्पूर्ण कहा ॥ ६५ ॥ इससमय आप और क्या सुननेकी अभिलाषा करते हैं ? ॥ ६६ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे भाषायां एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः १२.

जनमेजयने कहा हे मुनिवर ! पृथिवीमें देवता और मनुष्यगणोंके गमन योग्य पवित्र क्षेत्र और नदी इत्यादि जो संपूर्ण पुण्यतीर्थ विद्यमान हैं आप उन सबके नाम ॥ १ ॥ उन सब तीर्थोंमें स्नानादि करनेसे जो फल होता है और उन संपूर्ण तीर्थों की यात्राके विधि नियम किसप्रकार हैं वह सब भलीभांति कहिये ॥ २ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! अनेकप्रकारके तीर्थोंका विषय और जिन सब तीर्थोंमें देवीके श्रेष्ठ-मन्दिर विद्यमान हैं वह सब कहता हूं सुनो ॥ ३ ॥ सम्पूर्ण नदियोंमें गंगा, यमुना सरस्वती, नर्मदा, गण्डकी, सिन्धु, गोमती, तमसा ॥ ४ ॥ कावेरी, चन्द्रभागा, वेत्रवती, चर्म्मण्वती, सरयू, तापी और साबरमती यह सब नदियाँ प्रधान और पवित्र हैं ॥ ॥ ५ ॥ इनके अतिरिक्त शत शत नदी पृथ्वीमें विद्यमान हैं उनमें जो सम्पूर्ण नदी समुद्रमें गिरतीं हैं वह सबही अत्यन्त पवित्र हैं और जो नदियें समुद्रमें नहींजातीं वह उनकी अपेक्षा अल्पपवित्र हैं ॥ ६ ॥ और समुद्रगामिनी नदियोंमें जो सर्वदाही प्रबलप्रवाहसे प्रवाहित होती हैं उनकोअत्यन्त पवित्र जानना चाहिये, किन्तु श्रावण और भाद्र इन दो महीनोंमें वह सम्पूर्ण नदी रजस्वला होती हैं ॥ ७ ॥ और कितनी एक नदियें वृष्टिसे प्रवाहित होकर ग्रामोपयोगी जलमात्र वहन करतीं हैं. हे राजन् ! पुष्कर, कुरुक्षेत्र, पवित्र, धर्मारण्य ॥ ८ ॥ प्रभास, प्रयाग, नैमिषारण्य और अर्बुदारण्य यह सम्पूर्ण क्षेत्रही पुण्यदाता विख्यात है ॥ ९ ॥ हे महाराज ! पर्वतोंमें श्रीशैल सुमेरु और गन्धमादन यह समस्तही पवित्र हैं पुण्यदायक सरोवरोंमें परमपवित्र सर्वत्र

विख्यात मानस ॥ १० ॥ बिन्दु सरोवर और अक्षोद भलीभाँति कहे हैं उदारात्मा मुनिगणोंके सम्पूर्ण आश्रमही पुण्यजनक हैं ॥ ११ ॥ तिनमें सदा पुण्यदायकबदरिकाश्रम सबकी अपेक्षा विख्यात है. इस स्थानमें नरनारायणनामकपुरातन दोनों मुनियोंने तपस्या की थी ॥ १२ ॥ और वामनाश्रम तथा शतयूपाश्रमभी भलीभाँति विख्यात है. इसप्रकार जिसने जिस स्थानमें तपस्या करी थी उसकेही नामानुसार वह आश्रम विख्यात हुआ ॥ १३ ॥ हे महाराज! मुनिगणोंके पृथिवीमें इसप्रकार असंख्य असंख्य परमपावन सम्पूर्ण स्थान कहे ॥ १४ ॥ इन सम्पूर्ण पुण्यस्थानोंमें सर्वत्र देवीके स्थान विद्यमान् हैं उन सब स्थानोंका दर्शन करनेसे पापसमूह नष्ट होते हैं ॥ १५ ॥ उन्हीं स्थानोंमें देवीके भक्तगण नियम अवलम्बन करके वास करते हैं इन सब स्थानोंमें कितने एक विषय प्रसङ्ग क्रमानुसार फिर वर्णन करूंगा. हे नृपवर! तीर्थ, दान, व्रत, यज्ञ ॥ १६ ॥ तपस्या और सम्पूर्ण पुण्यकर्म परस्पर सापेक्ष हैं द्रव्य शुद्धि क्रियाशुद्धि और चित्तशुद्धिकी अपेक्षा करके ॥ १७ ॥ तीर्थ तपस्या और व्रत सम्पूर्ण पुण्यदायक होते हैं द्रव्य शुद्धि और क्रियाशुद्धि किसीकोभी कदाचित् होसक्ती है ॥ १८ ॥ किन्तु सबके पक्षमें चित्तशुद्धि अत्यन्त दुर्लभ है. हे नृपवर! मन सर्वदाही अनेक प्रकार भिन्न भिन्न विषयका आश्रय करताहै अतएव सर्वदाही चंचल है ॥ १९ ॥ इस कारण अनेक प्रकार भावयुक्त मनकी विशुद्धता सहजमेंही किसप्रकार होसक्ती है? काम, क्रोध, लोभ, अहंकार और मद ॥ २० ॥ यह तप तीर्थ और व्रतादिमें सब प्रकार विघ्न करते हैं. हे महाराज! अहिंसा सत्य (चोरी न करता) पवित्रता इन्द्रियनिग्रह ॥ २१ ॥ और अपना धर्मपालन यह सम्पूर्ण समस्त तीर्थोंका फल प्रदान करते हैं तीर्थयात्राके समय मार्गमें नित्यकर्म्म त्याग और संसर्ग दोषके कारण ॥ २२ ॥ तीर्थगमन वृथा होकर वह केवल पापमात्रही होता है और तीर्थका जल केवल देहका मलही धोसक्ता है ॥ २३ ॥ किन्तु कभी मानसिक मल धोनेमें समर्थ नहीं होता. यदि तीर्थके जलसे मानसिक मल धुलसक्ता तो क्यों गंगाके तटपर वास करनेवाले मुनिगण ॥ २४ ॥ ईश्वरपरायण होकर भी परस्पर द्रोहमें निरत होते. वसिष्ठकी समान नम्रशील मुनिगण और विश्वामित्रादि ऋपिगण भी ॥ २५ ॥ सर्वदा राग द्वेषमें निरत और कामक्रोधसे अधीर होते हैं. अतएव चित्तशुद्धिरूप तीर्थ गंगादितीर्थसे भी अधिक पवित्रतासम्पादन करता है इसमें सन्देह नहीं ॥ २६ ॥ हे राजन्! यह अवश्य स्वीकार्य है कि, यदि दैवयोगसे

ज्ञाननिष्ठका भलीभाँति सत्संग उपस्थित हो तो निश्चयही उसके मनकी मलीनता धुलसक्ती है ॥ २७ ॥ हे राजेन्द्र! वेद वा शास्त्र व्रत किंवा तपस्या यज्ञ अथवा दान इनमें कोई भी चित्तशुद्धिका कारण नहीं होसक्ता ॥ २८ ॥ देखो ब्रह्माके पुत्र वसिष्ठ वेदविशारद और गंगावासी होकर भी रागद्वेषके वशीभूत हुये थे ॥ २९ ॥ विश्वामित्र और वसिष्ठके निरर्थक विद्वेषसे देवतागणोंको आश्चर्य देनेवाला आडीबक नामक घोर महायुद्ध उपस्थित हुआ था ॥ ३० ॥ इससे परमतपस्वी विश्वामित्रने राजा हरिश्चन्द्रके कारण वसिष्ठसे शापित होकर बगलेके रूपमें जन्म ग्रहण किया था ॥ ३१ ॥ वसिष्ठऋषिने भी विश्वामित्रसे शापित होकर शरारीनामक विहंग देह धारण करी थी इस प्रकार प्रभावशाली दोनों ऋषिगण आडीबकरूपसें जन्म ग्रहणकर ॥ ३२ ॥ मानससरोवरके तटपर वास करते थे और अत्यन्त क्रोधयुक्त मदोन्मत्त सिंहकी समान नख चोंच और चरणोंके प्रहारसे ॥ ३३ ॥ अयुतवर्ष १०००पर्यन्त घोर युद्ध किया था जैसे परस्पर दो सिंह युद्ध करते हो ॥ ३४ ॥ राजाने कहा हे मुनिवर ! किसकारण वह दोनों महर्षि धर्मतत्पर और तपस्वी होकर भी परस्पर शत्रुताके आचरणमें प्रवृत्त हुए थे ? ॥ ३५ ॥ वे दोनोंही बुद्धिमान् अतएव शापको मनुष्यका दुःखदायक जानकर भी किस कारणसे परस्परको क्लेशकर शाप दिया था ॥ ३६ ॥ व्यासजीने कहा हे नृपवर ! पूर्वकालके समय त्रिशंकुके पुत्र हरिश्चन्द्रने सूर्यवंशमें जन्म ग्रहण किया वह राजाओंमें श्रेष्ठ और रामचन्द्रसे पहले हुए थे ॥ ३७ ॥ उन राजर्षिने अपुत्र होनेके कारण वरुणके निकट प्रार्थना की. हे जलाधिपते ! यदि मेरे पुत्र हो तो मैं आपको प्रसन्न करनेके निमित्त उसी पुत्रसे नरमेधयज्ञका अनुष्ठान करूंगा ॥ ३८ ॥ इस प्रकार यज्ञके निमित्त प्रतिज्ञा करनेपर वरुण उनपर सन्तुष्ट हुये अनन्तर राजाकी परमसुन्दरी भार्याने शीघ्रही गर्भधारण किया ॥ ३९ ॥ राजा भार्याको गर्भवती देखकर अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और उसके गर्भसंस्कारके निमित्त सम्पूर्ण कर्म सम्पादन किये ॥ ४० ॥ हे राजन् ! फिर राजपत्नीके सर्वलक्षणयुक्त पुत्र उत्पन्न करनेपर राजा हरिश्चन्द्रने अत्यन्त आनन्दित होकर ॥ ४१ ॥ विधिपूर्वक जातकर्मादि संस्कार कराया और ब्राह्मणोंको बहुतसा स्वर्ण और दूध देनेवाली गायें दान कारी ॥ ४२ ॥ इस प्रकार राजगृहमें यथासमय अधिकतर पुत्र जन्मका उत्सव हुआ फिर जलाधिपति वरुण विप्रवेष धारणपूर्वक राजभवनमें आये ॥ ४३ ॥ राजाभी उनकी विधिपूर्वक

पूजा कर और आसन दे कार्य पूँछने लगा. उन्होंने उनसे कहा हे राजन् ! मैं जलाधिपति वरुण हूं ॥ ४४ ॥ आपने पूर्वमें प्रतिज्ञा की थी कि, मैं अपने पुत्रको पशुरूपमें बलिदान कर परमपवित्र नरमेध यज्ञका अनुष्ठान करूंगा उसीके अनुसार वह सम्पूर्ण कार्य पूरा करके सत्यवादी हूजिये ॥ ४५ ॥ राजा उनके यह वचन सुनकर विह्वल और मर्माहित हुये और कुछ कालोपरान्त मानसिक दुःख दूरकर और हाथ जोड़ वरुणदेवजीसे कहने लगे ॥ ४६ ॥ हे प्रभो ! मैंने आपके निकट पूर्वमें जो प्रतिज्ञा की है उसी अनुसार वह यज्ञ विधिपूर्वक करके आपके निकट सत्यवादी हूंगा ॥ ॥ ४७ ॥ किन्तु हे सुरसत्तम ! एक महीना पूर्ण होनेपर मेरी धर्मपत्नी सूतिका-शौचसे शुद्ध होगी. तदनन्तर अपनी भार्याके शुद्ध होनेपर मैं वह नरमेधयज्ञ करूंगा ॥ ४८ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! वरुण राजा हरिश्चन्द्रका यह वचन सुनकर अपने गृहको चलेगये राजा भी उनके जानेसे सन्तुष्ट हुए परन्तु पुत्रके विनाशकी शङ्कासे किञ्चित् चिन्तातुर हुए ॥ ४९ ॥ फिर एक महीनेपर पाशधर प्रियवादी, वरुण परमपवित्र ब्राह्मणका वेश धर राजाकी परीक्षा लेनेके निमित्त फिर राजगृहमें आये ॥ ५० ॥ तब राजाने उनकी पूजा कर आसन दिया और विनयसहित हेतुपूर्ण वचन कहने लगे ॥ ५१ ॥ हे प्रभो ! मेरा पुत्र इस समय संस्कार रहित है उसको किसप्रकार यूपकाष्ठमें बांधूं ? इसकारण उसको संस्कारसे क्षत्रियकरके फिर उस उत्तमयज्ञकाअनुष्ठानकरूंगा ॥ ५२ ॥ हे देव ! यदि आप मुझको दीन और अपना सेवक जानकर मेरे प्रति करुणा प्रकाश करें तो मैं कृतार्थ हूं. देखो असंस्कृत बालकका किसी विषयमें अधिकार नहीं है, इस कारण आप कुछकाल प्रतीक्षा कीजिये ॥ ५३ ॥ वरुणजीने कहा हे राजन् ! तुम मुझको धोका देकर फिर फिर समय निर्द्धारित करते हो. मैं समझ गया कि, अपुत्र होनेसे इस समय तुमसे पुत्रका स्नेह नहीं छूटसक्ता ॥ ५४ ॥ जो हो हे भूपाल ! तुम्हारे कातर वचनसे इस समय मैं घरको जाता हूं किन्तु कुछ काल प्रतीक्षा करके फिर तुम्हारे घर आऊंगा ॥ ५५ ॥ हे वत्स ! तिस समय तुम्हारा वाक्य सत्य हो और यदि इसके अन्यथा होगा तो मैं निःसन्देह तुम्हारे ऊपर शापयुक्त कोपाग्निनिक्षेप करूंगा ॥ ५६ ॥ राजाने कहा हे जलाधिपते ! समावर्त्तनकर्मसमापन करनेके पीछे मैं अपने पुत्रको पशुकर विधिपूर्वक महायज्ञका अनुष्ठान करूंगा इसमें संदेह नहीं ॥ ५७ ॥ व्यासजीने कहा वरुण

---

१ वरुण देवता केवल राजाकी परीक्षा देखनेको आये हैं कि, इस की दृढता कैसी है ?

राजाके वचन सुनकर प्रीतिपूर्ण मनसे तथास्तु कह शीघ्र चलेगये, तब राजा भी स्थिर हुए ॥ ५८ ॥ इधर राजा हरिश्चन्द्रका पुत्र रोहित नामसे विख्यात हुआ और आयुबुद्धिके सहित क्रमानुसार चतुर और सर्वविद्याविशारद हुआ ॥ ५९ ॥ वह बालक क्रमक्रमसे यज्ञका सब कारण विस्तारसहित जानकर अपना मरण निश्चय कर भयसे भीत हुआ ॥६०॥ और शीघ्र राजाके निकटसे भागकर अगम्य पर्वतकी गुहामेंभी मनसे वास करने लगा ॥ ६१ ॥ अनन्तर यथासमय उपस्थित होनेपर वरुण यज्ञार्थी हो राजाके घरजाय भूपतिसे कहने लगे हे राजन् ! इस समय नियमित समय उपस्थित है अतएव अपने संकल्पित यज्ञका अनुष्ठान कीजिये ॥ ६२ ॥ तब राजा यह वचन सुनकर अत्यन्त व्यथित हुए और अतिमलीन वदनसे कहने लगे हे सुरसत्तम ! इस समय मैं क्या करूं मेरा पुत्र प्राणोंके भयसे कहीं भाग गया है ॥ ॥ ६३ ॥ वरुणजी राजाके वचन सुनकर अत्यन्त क्रोधित हुए और शाप दिया कि, हे असत्यवादिन् ॥ ६४ ॥ तू कपट पंडित है इस कारण मुझको वारंवार धोखा देता है अतएव तेरे देहमें जलोदर नामक व्याधि उत्पन्न हो ॥ ६५ ॥ पाशधारी वरुणजी इसप्रकार शाप देकर अपने घरको गये राजाभी व्याधिपीड़ित और चिन्तातुर होकर अपने गृहमें वास करने लगे ॥ ६६ ॥ जब राजा हरिश्चन्द्र शाप जनित रोगमें अत्यन्त पीड़ित होने लगे तब उनके पुत्र रोहितने सुना कि, मेरे पिता जलोदररोगसे अत्यन्त पीड़ित हो रहे हैं ॥ ६७ ॥ किसी दिन एक पथिकने उससे कहा हे नृपनन्दन ! तुम्हारे पिता शापके कारण जलोदर रोगमें अतिपीड़ित और दुःखित हुए हैं ॥ ६८ ॥ तुम्हारी निश्चय ही दुर्मति हुई है तुमने वृथाही जन्म ग्रहण किया तुम्हारा जीवन वृथाही नष्ट हुआ क्योंकि तुम अत्यन्त दुःखित पिताको त्यागकर इस समय पर्वतकी गुहामें स्थिति करते हो ॥ ६९ ॥ तुम निश्चयही कुपुत्र हो तुम्हारे इस शरीरका प्रयोजन क्या है तुम्हारे जन्म प्राप्त करनेका क्या फल हुआ ? जिनसे यह शरीर उत्पन्न हुआ है तुम उन्हीं पिताको त्यागकर इस निर्जन पर्वतकी गुहामें स्थित रहते हो ॥७०॥ तुम निश्चय जानना कि, पिताके कार्यमें प्राणत्याग करना ही सत्पुत्रका कार्य है अतएव इस समय अधिक और क्या कहूं तुम्हारे पिता राजा हरिश्चन्द्र व्याधिपीड़ित होकर तुम्हारे निमित्त दुःखसे अत्यन्त रोदन करते हैं ॥ ७१ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! नृपनन्दन रोहितने पथिकके मुखसे धर्म संगत यह वचन सुनकर जब व्याधिपीड़ित और दुःखित पिताको देखनेकेलिये उनके

समीप जानेकी इच्छा करी ॥ ७२ ॥ तब इन्द्र ब्राह्मणका वेष धारण कर उसके निकट उपस्थित हुए और निर्ज्जनमें दयावानकी समान हितकर वचन कहने लगे ॥ ॥ ७३ ॥ हे राजपुत्र ! तुम मूर्ख हो तुम इस समय इस स्थानमें रहकर तुम्हारे पिता व्यथित हुए हैं कि, नहीं ? उसको भलीभाँति नहीं जानते तो वृथा क्यों उस स्थानमें जानेकी इच्छा करते हो ? ॥ ७४ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः १३.

इन्द्रने कहा हे नृपनन्दन ! पूर्वकालके समय राजा हरिश्चन्द्रने वरुणके प्रति प्रतिज्ञा की है कि, मैं आपको प्रसन्न करनेके निमित्त अपने प्रियपुत्रको पशु बनाकर नरमेधमहायज्ञका अनुष्ठान करूंगा उनकी इसप्रकार प्रतिज्ञा करना अत्यन्त साहसका कार्य है ॥ १ ॥ हे नृपनन्दन ! तुम अत्यन्त बुद्धिमान् हो. तुम क्या नहीं समझते हो कि, तुम्हारे वहाँ जानेपर तुम्हारे व्याधिपीड़ित और कातर पिता उस समय दयारहित हो तुमको पशुकर यूपमें बांधकर वध करेंगे ॥ २ ॥ अमिततेजा इन्द्रके उसको इसप्रकार निषेध करनेपर वह राजपुत्र महामायाकी मायासे मोहित होकर उसी स्थानमें वास करने लगे॥ ३॥हेमहाराज! इसप्रकार जबहीं वह वारंवार अपने पिताको अत्यन्त पीड़ित सुनकर उनके समीप जानेकी इच्छा करता तभी इन्द्र वहां आकर उसको निषेध करते॥ ४॥इधर राजा हरिश्चन्द्र अत्यन्त दुःखार्त्त हो सर्वज्ञ और हितसाधक कुलगुरु वसिष्ठदेवको पास बैठेहुए देखकर पूँछने लगे॥ ५॥ हे भगवन् ! इस समय मैं क्या करूं मैं व्याधिकी यातनासे आकुल तथा कातर और इस महाव्याधिके भयसे अत्यन्त आतुर और दुःखित हुआ हूं इस समय सदुपदेश देकर प्राण रक्षा कीजिये ॥६॥ वसिष्ठजीने कहा हे राजन् ! आपका रोगविनाश करनेके निमित्त उत्तम उपाय विद्यमान है. देखो धर्मशास्त्रमें कहा है कि औरस, क्षेत्रज, दत्रिम, कृत्रिम और क्रीतादि भेदसे पुत्र तेरह प्रकारके हैं ॥ ७ ॥ अतएव आप यथोचित मूल्य देकर एक उत्तम ब्राह्मणका बालक क्रय कीजिये और उसके द्वारा उसी उत्तम यज्ञका अनुष्ठान कीजिये ॥ ८ ॥ हे महाराज ! इसप्रकार करनेसे फिर वरुणदेव प्रसन्न हो सुखी होंगे और उनके प्रसन्न होनेपर आपका रोगभी अवश्यही नष्ट हो जायगा ॥ ९ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! राजा हरिश्चन्द्र वसिष्ठजीके यह वचन सुन मंत्रीसे

कहने लगे हे मंत्रिवर! तुम्हारी बुद्धि अत्यन्त तीक्ष्ण है अतएव तुमही परमयत्न-सहित हमारे राज्यमें एक ब्राह्मणके बालकको ढूँढ़ो ॥ १० ॥ यदि कदाचित् कोई भी दरिद्र ब्राह्मण अर्थके लोभसे अपने पुत्रको दे और वह जितने धनकी प्रार्थना करे तो उतनाही देकर उसके पुत्रको लेआओ ॥ ११ ॥ हे मंत्रिवर! तुम जिसप्रकारसे हो यज्ञके निमित्त ब्राह्मणके बालकको अवश्यही ले आओ विशेष कर मेरा कार्य साधनके निमित्त कभी कृपणता और आलस्य न करना ॥ १२ ॥ तुम किसी ब्राह्मणसे इसप्रकार प्रार्थना करो कि, धन लेकर यज्ञके निमित्त अपने पुत्रको दो हम इस बालकको यज्ञमें पशुरूपसे बलि देकर आहुती प्रदान करेंगे ॥ १३ ॥ मंत्री राजाकी इसप्रकार यज्ञकी आज्ञा पाकर नगर नगर ग्राम ग्राम और घरघरमें ब्राह्मणके बालकको ढूँढने लगा ॥ १४ ॥ इसप्रकार ढूँढते ढूँढते जाना कि, उसके अधिकारमें अजीगर्त्तनामक एक आतुर दरिद्र ब्राह्मणके तीन पुत्र हैं ॥ १५ ॥ अनन्तर मन्त्री उस ब्राह्मणको मुँहमाँगा धन देकर उसके शुनःशेप नामक मध्यम पुत्रको क्रय कर ले आया ॥ १६ ॥ कार्यकुशल सचिवने शुनःशेपको राजाके निकट लाय "यह ब्राह्मणका पुत्र पशुयोग्य है" यह कहकर समर्पण किया ॥ १७ ॥ तब राजा अत्यन्त प्रसन्न हो यज्ञ करनेके निमित्त उत्तम उत्तम वेदके जाननेवाले ब्राह्मणोंको बुलाय सम्पूर्ण यज्ञकी सामग्री मँगाई ॥ १८ ॥ जब यज्ञ आरंभ हुआ उसी समय महामुनि विश्वामित्रने शुनःशेपको बँधा हुआ देखकर राजाको निषेध कर कहा हे महाराज! इसको बलिदान करनेका साहस न करना ॥ १९ ॥ इस ब्राह्मणके बालकको छोड़ दो हे आयुष्मन्! मैं अब आपके निकट इस विषयकी प्रार्थना करता हूं आपके ऐसा करनेपर फिर आपका अवश्यही मंगल होगा इसमें संदेह नहीं ॥ २० ॥ हे राजेन्द्र! यह शुनःशेप रोता है इससे मेरे मनमें अत्यन्त करुणा उत्पन्न होकर मुझको अत्यन्त व्यथित करती है हे राजेन्द्र! आप मेरा वचन सुन दया करके इस ब्राह्मणके बालकको छोड़ दीजिये ॥ २१ ॥ देखो पूर्वकालके समय शुद्धशील क्षत्रिय राजागण स्वर्गकी इच्छा करके पराये देहकी रक्षाके निमित्त अपना देह देते थे ॥ २२ ॥ और आप इस समय अपने देहकी रक्षाके लिये ब्राह्मणके बालकको मारते हो यह कितना पापकार्य होता है सो आप स्वयंही विचार देखिये विशेषकर इसप्रकार पापाचरण न करके आप इस बालकपर दया कीजिये ॥ २३ ॥ हे महाराज! सम्पूर्ण मनुष्योंको अपने २ देहमें समान प्रीति विद्यमान ह

यह आप स्वयंही अनुभव करते हैं, अतएव इस समय यदि मेरा वचन प्रमाण जानो तो इस ब्राह्मणके पुत्रका त्याग कीजिये ॥ २४ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज! राजा हरिश्चन्द्रने व्याधिद्वारा अत्यन्त पीड़ित होनेसे उसकाल उनके वचनमें अनादर पूर्वक उस ब्राह्मणके बालकका त्याग किया इससे परमतपस्वी विश्वामित्रभी राजासे अत्यन्त क्रोधित हुए ॥ २५ ॥ तब वेदके जाननेवालोंमें अग्रगण्य कुशिकनंदन विश्वामित्रने शुनःशेपपर दया प्रकाश कर उसको वरुणमंत्रका उपदेश दिया ॥ ॥ २६ ॥ शुनःशेपभी प्राणोंके भयसे अत्यन्त कातर हो वरुणका स्मरणकर ऊंचे स्वरसे उसमंत्रको वारंवार उच्चारण करने लगा ॥ २७ ॥ करुणासमुद्र वरुणने ब्राह्मणके पुत्रको स्तव करता हुआ जानकर उसीस्थानमें आय शुनःशेपको बन्धनसे छुड़ा दिया ॥ २८ ॥ और राजाको रोगरहित कर अपने स्थानको चलेगये, इसप्रकार महर्षि विश्वामित्र उस मुनिकुमारको मृत्युके मुखसे रक्षा करके परम आनन्दित हुए ॥ २९ ॥ जब राजा हरिश्चन्द्रने महात्मा विश्वामित्रका वचन पालन नहीं किया तबसेही गाधिपुत्र मनमें उस राजासे रुष्ट रहे ॥ ३० ॥ एकदिन राजा हरिश्चन्द्रने घोडेपर चढ वनमें जाय मध्याह्नकालके समय कौशिकी नदीके तटपर एक शूकरको मारनेकी इच्छा की ॥ ३१ ॥ तबही विश्वामित्रने वृद्ध ब्राह्मणके वेषसे राजाको छलकर प्रार्थनापूर्वक उनका सर्वस्व और सम्पूर्ण राज्य लेलिया ॥ ३२ ॥ अपने यजमान राजा हरिश्चन्द्रको अत्यन्त कष्ट पाते हुए देखकर महर्षि वशिष्ठ मनमें दुःखित और व्यथित हुए और एक दिन वनमें विश्वामित्रसे भेट होनेपर उनसे कहा ॥ ३३ ॥ रे दुर्बुद्धि! क्षत्रिय कुलाधम! तैंने वृथाही ब्राह्मणका वेष धारण किया है तेरा धर्म बगुलेकी समान है तू दाम्भिक है तथा वृथाही गर्व करता रहता है ॥ ३४ ॥ हमारे यजमान राजा श्रेष्ठ हरिश्चन्द्र हैं उनका कोई अपराध नहीं. रे मूढ! तथापि तैंने उनको क्यों इतना कष्ट दिया ॥ ३५ ॥ तू बगुलेकी समान ध्यानपरायण है अतएव बगुला होकर जन्म ग्रहणकर विश्वामित्रने वशिष्ठसे इस प्रकार शापित हो उनसे भी कहा ॥ ३६ ॥ हे वशिष्ठ! मैं जबतक बगुला होकर रहूं तू भी तबतक आडित अर्थात् शरालिनामक पक्षी होकर अवस्थिति करता रह. व्यासजीने कहा हे महाराज! वह क्रोधित दोनों मुनि परस्पर इस प्रकार शाप दे ॥ ३७ ॥ दोनोंनेही सरोवरमें आडि और बकपक्षी हो जन्म ग्रहण किया बकरूपधारी विश्वामित्र मानसरोवरमें एक वृक्षके ऊपर नीड़ (घोसला) निर्माण पूर्वक वास करने लगे वशिष्ठ भी आडिरूप धारण

कर दूसरे वृक्षमें कुलाय (घोसला) रचना कर वास करने लगे ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ वे दोनों पक्षी द्वेषके कारण क्रोधित हो उच्चस्वरसे घोरतर सर्वलोकोंको पीडाप्रद कठोर चीत्कार कर प्रीतिदिन संग्राम करने लगे ॥ ४० ॥ वह आपसमें चोंच और पक्ष प्रहार तथा नखाघातसे ॥ ४१ ॥ क्षत विक्षत और रुधिरमें डूबकर पुष्पित किंशुकवृक्षकी समान प्रकाशमान हुए पक्षिरूपधारी दोनों ऋषि शापसे दुःखित हो इस प्रकार बहुत दिन रहे ॥ ४२ ॥ परस्पर युद्ध करते करते उसी स्थानमें बहुत वर्ष बीत गये जनमेजयने कहा हे विप्रवर! वे वशिष्ठ और कौशिक नामक दोनों ऋषि किसप्रकार शापसे मुक्त हुए ॥ ४३ ॥ वह मुझसे कहो हे ऋषिवर! यह वृत्तान्त श्रवण करनेके लिये मेरे मनमें अत्यन्त कौतूहल उत्पन्न हुआ है. व्यासजीने कहा लोकपितामह ब्रह्मा उन दोनोंको युद्धमें निरत देख ॥ ४४ ॥ दयार्द्रचित्त हो देवतागणोंके सहित उसी स्थानमें गये पद्मासनने दोनोंको युद्धसे निवारित और आश्वासित कर ॥ ४५ ॥ परस्परके दिये हुए शापसे दोनोंको छुड़ा दिया अनन्तर देवता अपने अपने स्थान और प्रभावशाली पद्मासन ॥ ४६ ॥ हँसपर चढ़ सत्यलोकको चलेगये. इसके उपरान्त महर्षि वशिष्ठ और विश्वामित्र ॥ ४७ ॥ प्रजापतिके उपदेशानुसार परस्पर प्रणय और मित्रता कर अपने अपने आश्रमको चलेगये. हे राजन्! आप देखिये कि, इस समय मित्रावरुण तनय महर्षि वसिष्ठने भी ॥ ४८ ॥ विश्वामित्रसे अकारण ही दुःखप्रद युद्ध किया था अतएव इस अखिलसंसारमें कौन मनुष्य दानव वा देवता ॥ ४९ ॥ अहङ्कार जय करके सर्वदा सुखभागी होसक्ता है? हे पार्थिव! चित्तकी शुद्धि महत्पुरुषोंको भी दुर्लभ है ॥ ५० ॥ परमयत्नके सहित उसका साधन करना होता है. चित्तशुद्धिविहीन मनुष्यगणोंका तीर्थ, दान, तपस्या, सत्य और जो कुछ धर्मसाधन है वह संपूर्णही निरर्थक जानना चाहिये ॥ ५१ ॥ हे राजन्! देहिगणोंके धर्मकर्मविषयमें सात्त्विकी, राजसी और तामसी भेदसे तीन प्रकारकी श्रद्धा कही गई हैं. १ तिनमें सात्विकी श्रद्धा सम्पूर्ण फल तथा लोकमें प्रायः दुर्लभ है विहित राजसी श्रद्धा उससे अर्द्धफलदायक है. २ और तामसी श्रद्धा निष्फल तथा अकीर्ति करनेवाली है, कामक्रोधसे युक्त पुरुषोंको ही तामसी श्रद्धा उत्पन्न होती है अतएव हे राजन्! सत्संग अवलम्बनपूर्वक वेदान्त श्रवणादिसे चित्तकी वासना दूरकर देवीकी पूजामें अत्यन्त निरत हो तीर्थादि स्थलमें वास करै ॥ ५२ ॥ कलिदोषके कारण भयातुर मनुष्यगण देवीका नाम ग्रहण और

उनके गुणकी स्तुति तथा उनके चरण कमलोंका ध्यान कर कालव्यतीत करैं ॥ ॥ ५३ ॥ इस प्रकार करनेसे फिर जीवगणोंको कलिका भय नहीं रहसक्ता और पातकी मनुष्य भी संसारबन्धसे सहजमें ही मुक्तिलाभ करसक्ते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ ५४ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः १४.

जनमेजयने कहा हे भगवन् ! महर्षि वशिष्ठ ब्रह्माके मानसपुत्र थे तो आपने किस कारणसे उनका मैत्रावरुणि नाम कीर्त्तन किया ॥ १ ॥ वे कर्मद्वारा अथवा अन्य किसी गुणसे इस नामको प्राप्त हुए हैं. वक्तृप्रवर ! आप मुझको उनके इस नामका कारण भलीभाँति वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ हे राजेन्द्र ! यद्यपि प्रभावशाली वशिष्ठ ब्रह्माके पुत्र थे, किन्तु उन्होंने नरपति निमिके शापसे तनु त्यागकर मित्रावरुणसे जन्मलाभ किया ॥ ३ ॥ इस कारण लोकमें सर्वत्रही मैत्रावरुणि नामसे विख्यात हुए थे ॥ ४ ॥ राजाने कहा हे भगवन् ! ब्रह्माके पुत्र धर्मात्मा वह मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ किस कारणसे निमिके शापको प्राप्त हुए ? उन क्षत्रिय नृपतिका दारुण शाप मुनिको भी भोगना पड़ा इस विषयमें मुझको आश्चर्य बोध होता है॥ ५॥ हे धर्मज्ञ ! उस राजाने निरपराध मुनिको किसकारण शाप दिया ? उसे सुननेके निमित्त मुझको अत्यन्त कौतूहल हुआ है. अतएव आप उस शापका कारण वर्णन कीजिये ॥ ६ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! पहले मैंने आपसे इन सबका कारण भलीभाँति कहा है. यह संसार सत्व, रज, तम तीन मायाके गुणसे व्याप्त है॥ ७॥ राजालोग धर्माचरण ही करैं और सम्पूर्ण तपस्वी तपाचरण ही करैं उनका वे समस्त धर्मादि मायागुणसे विद्ध होकर उज्ज्वलता लाभ नहीं करसक्ता॥ ८॥ राजा लोग और मुनिगण काम क्रोधमें अभिभूत और लोभ तथा अहङ्कारयुक्त होकर दुष्कर तपस्याका आचरण करते हैं ॥ ९ ॥ हे राजन् ! क्षत्रियगण अथवा ब्राह्मण सबही रजोगुणयुक्त हो यागादि करते हैं. वास्तविक उनमें कोई सत्वगुणयुक्त होकर कार्यका अनुष्ठान नहीं करता ॥ १०॥ निमि राजऋषिद्वारा और ऋषिराज निमिसे शापित हो दोनोंही प्रारब्धप्रेरित तमोगुणसे दुःखको प्राप्त हुए थे॥ ११ ॥ हे महाराज ! इस त्रिगुणात्मक संसारमें प्राणीगणोंके पक्षमें द्रव्यशुद्धि, क्रियाशुद्धि और निर्मल

प्रकारसे चित्तशुद्धि अत्यन्त दुर्लभ है ॥ १२ ॥ हे राजन्! इसकोही परमाशक्ति जगदम्बिकाका प्रभाव जानना चाहिये. कोई पुरुष इसके उल्लंघन करनेमें समर्थ नहीं होता परन्तु वह जिसके प्रति अनुग्रह करनेकी अभिलाषा करती हैं उसको क्षणमें उन गुणोंके बन्धनसे छुड़ा देतीं हैं ॥ १३ ॥ अधिक क्या विष्णु रुद्र और ब्रह्मा इत्यादि महान् देवतागण भी उनके अनुग्रहके विना नहीं छूट सक्ते, किन्तु उनका अनुग्रह होनेसे सत्यव्रत इत्यादिकी समान पामरगणभी मुक्तिलाभ करनेमें समर्थ होते हैं ॥ १४ ॥ उनके हृदयमें जो है उसको त्रिभुवनमें कोई नहीं जानसक्ता, परन्तु वह जो भक्तके वशीभूत होती हैं इसमें कोई भी सन्देह नहीं ॥ १५ ॥ अतएव दोषको नष्ट करनेके निमित्त सात्विकी भक्ति अवलम्बन करनी उचित है किन्तु रागदम्भादि युक्त भक्ति मनुष्यगणोंको अनिष्ट करनेवाली होती है इसकारण उसका त्याग करना अत्यन्त श्रेष्ठ है इसमें सन्देह नहीं है ॥१६॥ हे महाराज! इक्ष्वाकुके बारहवें पुत्र निमिनामक नृपति रूपवान्, गुणसम्पन्न, धर्मज्ञ, लोकरञ्जन ॥ १७ ॥ सत्यवादी, दानशील, याजक, शुद्धाचार, प्रजाके पालनमें तत्पर बुद्धिमान् और ज्ञानयुक्त थे ॥ १८ ॥ उन महात्माने ब्राह्मणोंके हितार्थ गौतमके आश्रमके निकट जयन्तपुरनामक एक नगर वसाया ॥ १९ ॥ कुछ काल व्यतीत होनेपर उनको इसप्रकार राजसी बुद्धि उत्पन्न हुई कि मैं " विपुलदक्षिणायुक्त बहुत कालपर्यन्त एक यज्ञका अनुष्ठान करूं " ॥ २० ॥ अनंतर अपने पिता इक्ष्वाकुकी आज्ञा ग्रहणकर यज्ञकार्यके निमित्त महात्मा पुरुषोंसे सम्पूर्ण कहीहुई सामग्री मँगाई ॥ २१ ॥ भृगु, अङ्गिरा, वामदेव, गौतम, वशिष्ठ, पुलस्त्य, ऋचीक, पुलह, क्रतु ॥ २२ ॥ इत्यादि वेदके जाननेवाले यज्ञविद्याविशारद सर्वज्ञ तपस्वी मुनिगणोंको निमंत्रण देकर बुलाया ॥ २३ ॥ उस धार्मिक नरपति निर्मित यज्ञकी सम्पूर्ण सामग्री संग्रह कर अपने गुरुवशिष्ठदेवकी पूजापूर्वक उनसे विनयसे नम्र हो वचन कहा ॥ २४ ॥ हे मुनिवर! मैं यज्ञ करूंगा आप कृपा करके मेरी यज्ञक्रिया सम्पादन कीजिये, आप गुरु हैं अतएव मेरा सब जानते हैं इस कारण इस समय मेरा यज्ञ कार्य निर्वाह कीजिये ॥ २५ ॥ यज्ञकी सब सामग्री मँगाकर सजाई गई है. हे गुरो! मैं पांचहजार वर्षपर्यन्त यज्ञमें दीक्षित हूंगा यही मेरा सङ्कल्प जानिये ॥ २६ ॥ इस यज्ञमें जगदम्बिका देवीकी आराधना करूंगा, उनको प्रसन्न करनेको मैं विधिपूर्वक इस यज्ञका अनुष्ठान करता हूं ॥ २७ ॥ वशिष्ठजीने राजा निमिका यह वचन सुनकर कहा

हे नृपोत्तम ! देवराजइन्द्रने मुझको पहलेही यज्ञके निमित्त वरण किया है ॥ २८ ॥ इस समय पाकशासन इन्द्र पराशक्तिकी प्रीतिके निमित्त यज्ञ करनेमें उद्यत हुए हैं मैं ने भी पंद्रह वर्षके लिये उनको दीक्षित किया है ॥ २९ ॥ अतएव हे पार्थिव ! जबतक इन्द्रका यज्ञ संपूर्ण न हो आपको तबतक प्रतीक्षा करनी होगी. इन्द्रका यज्ञ समाप्त होनेपर इनका समस्त कार्य कर ॥ ३० ॥ तिसके उपरान्त इस स्थानमें आऊंगा.अतएव हे महाराज!आप तबतक प्रतीक्षा कीजिये राजाने कहा हे मुनिवर!मैं ने यज्ञके निमित्त अन्यान्य मुनिगणोंको निमंत्रण दिया है ॥ ३१ ॥ और सम्पूर्ण सामग्री मँगाली है. तब किस प्रकार इस समय प्रतीक्षा करसकता हूं ? हे ब्रह्मन् ! आप वेदके जाननेवालोंमें अग्रगण्य और इक्ष्वाकुवंशियोंके कुलगुरु होकर ॥ ॥ ३२ ॥ इस समय किसप्रकार मेरा कार्य त्यागकर अन्यत्र जानेमें उद्यत हुए हैं? हे द्विजोत्तम ! आप धनके कठिन लोभसे ज्ञानरहित होकर मेरा यज्ञ त्यागकर जाते हैं ॥ ३३ ॥ यह आपको उचित नहीं. हे राजन् ! निमिराजके इसप्रकार निवारण करनेपर भी वशिष्ठ ऋषि इन्द्रके यज्ञमें गये ॥ ३४ ॥ तब राजानेभी विमन होकर गौतमऋषिको यज्ञकार्यमें वरण किया तब उन्होंने हिमाचलके पार्श्वमें सागरके समीप यज्ञ आरंभ करके ॥ ३५ ॥ ब्राह्मणगणोंको बहुत दक्षिणा दी. इस यज्ञमें निमिराज पांच सहस्र वर्षपर्यन्त दीक्षित हुए थे ॥ ३६ ॥ और इसमें ऋत्विग्गणों पूर्ण धन और गोदानसे परिपूजित होकर अत्यन्त प्रसन्न और सन्तुष्ट हुए थे अनन्तर देवराजका पांच हजार वर्षव्यापी यज्ञ समाप्त होनेपर ॥ ३७ ॥ वशिष्ठऋषि निमिराजका यज्ञ देखनेको राजासे भेंट करनेके निमित्त उसी स्थानमें उपस्थित हुए ॥ ३८ ॥ राजा तिस समय निद्रामें अत्यन्त व्याप्त थे इस कारण सेवकगण उनको न जगासके अतएव राजा भी ऋषिके निकट न आये ॥ ३९ ॥ इस कारण अपमान बोध होनेसे महर्षि वशिष्ठके अन्तःकरणमें क्रोधाग्नि प्रज्वलित हुई वह राजाको न देखकर क्रोधित हुए ॥ ४० ॥ और अत्यन्त क्रोधके वशीभूत हो निमिराजको यह कह शाप दिया कि, तू अत्यन्त मन्दमति राजा है, मेरे चिरगुरु रहते और विशेष कर मेरे तुमको निवारण करनेपर भी तुमने जब मुझको त्याग दूसरेको वरण कर ॥ ॥ ४१ ॥ बलपूर्वक दीक्षित हो मेरा कहा न माना इससे तो तुम विदेह देहरहित) होओ ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! तुम्हारा यह शरीर अभी निपतित हो अर्थात् तुम विदेह होओ व्यासजीने कहा हे राजन् ! सेवकगणोंने वशिष्ठजीके यह शापयुक्त

वाक्य सुनकर ॥ ४३ ॥ राजाको तत्काल जगाया कि वशिष्ठ ऋषि आपकी भेंट न होनेसे अत्यन्त प्रकुपित हुए हैं, यह विषय निवेदन किया पापरहित निमिराजने प्रकुपित वशिष्ठके सामने जाय ॥ ४४ ॥ विनय नम्रभावसे हेतुपूर्ण और युक्तिसंगत वचन कहा हे धर्मज्ञ! मैं आपका यजमान हूं मेरे वारंवार प्रार्थना करनेपर भी आपने लोभकी तृष्णामें व्याकुल होकर ॥४५॥ मुझको त्याग अन्यत्र गमन किया अतएव इसमें मेरा कुछ दोष नहीं आप ब्राह्मणोंमें अग्रगण्य होकर और सन्तोषी ब्राह्मणोंका सारधर्म जानकर भी इसप्रकार नीचकार्य करनेमें लज्जित नहीं होते? ॥ ४६ ॥ ब्राह्मणका सन्तोषही धर्म है आप ब्रह्माके पुत्र और वेदवेदाङ्गपारग होकरभी ॥ ॥ ४७ ॥ श्रेष्ठतर ब्राह्मणधर्मकी सूक्ष्मगति नहीं जानते आप अपना निजदोष मेरे ऊपर आरोपित करके मुझको शाप देनेकी वृथा अभिलाषा करते हैं ॥ ॥ ४८ ॥ क्रोध चण्डालसे भी अधिकतर दूषणीय अतएव स्वजनगणोंको इसका परित्याग करनाही उचित है आप जब अकारण ही क्रोधानलमें प्रज्वलित हो मुझको शाप देते हैं ॥ ४९ ॥ तब मैं भी आपको इस समय शाप देता हूं कि, आपकी यह क्रोधयुक्त देह निपतित हो. हे महाराज! इसप्रकार राजा मुनिवर ॥ ॥ ५० ॥ और मुनिवर राजाको शाप दे दोनोंही अत्यन्त दुःखित हुए तब वशिष्ठ अत्यन्त चिन्ताकुल हो ब्रह्माकी शरणागत हुए ॥ ५१ ॥ और निमिके दिये हुए महत् शापके विषय निवेदन कर कहा हे पितः! "अभी तुम्हारा यह देह पतित हो" यह कहकर निमिराजाने मुझको शाप दिया है ॥ ५२ ॥ इस समय देहपात-जनित महत्कष्ट उपस्थित हुआ है अतएव मैं क्या करूं? हे पितः! कौन पुरुष मुझे जन्म देगा यह आप मुझसे कहिये ॥५३॥ और जिससे मुझको पूर्वकी समान देह प्राप्त हो उसका भी उपाय कीजिये और मेरे इस देहमें जिसप्रकार ज्ञान रहता है उस देहमें भी जिससे इसीप्रकार ज्ञान रहे ॥ ५४ ॥ आप प्रसन्न होकर अपनी असीम प्रभावसे उसीप्रकार कीजिये क्यों कि आप उसके करनेमें भलीभाँति समर्थ हैं. हे राजन्! वशिष्ठके वाक्य श्रवण कर ब्रह्माने अपने उस प्रियपुत्रसे कहा ॥ ॥ ५५ ॥ तुम मित्रावरुणके तेजमें प्रवेश कर स्थिर चित्तसे वास करो इससे तुम यथाकालमें अयोनिज देह प्राप्त कर फिर ॥ ५६ ॥ धर्मयुक्त, सत्यनिष्ठ, वेदज्ञ सर्वज्ञ और सबके पूजित होंगे इसमें कोई भी संशय नहीं ॥५७॥ ब्रह्माके इसप्रकार कहनेपर फिर महर्षि वशिष्ठ पितामहको प्रणाम और प्रदक्षिणा कर वरुणालयमें गये॥

॥ ५८ ॥ अनन्तर उन्होंने अपना अत्युत्तम देह परित्याग कर सूक्ष्मदेहरूप अपने जीवांशद्वारा मित्रावरुणके देहमें प्रवेश किया ॥ ५९ ॥ तदनन्तर किसी समयमें परमरूपलावण्यवती उर्वशी अपने सखियोंके संग इच्छानुसार वरुणालयमें आनकर उपस्थित हुई ॥ ६० ॥ मित्रावरुण दोनों देवतारूप यौवनसम्पन्न उस अप्सराको देखकर अत्यन्त कामातुर हुए ॥ ६१ ॥ और कामबाणसे मोहित और विवश हो उस सर्वाङ्गसुन्दरी मनोरमा देवकन्या उर्वशीसे कहने लगे हे वरवर्णिनी ! हम तुमको देखकर कामबाणसे अत्यन्त व्याकुल हुए हैं ॥ ६२ ॥ हे सुन्दरि ! तुम हमको वरण कर इस स्थानमें इच्छानुसार विहार करती रहो उनके इसप्रकार कहनेपर फिर उर्वशी देवी तिसकाल उनके प्रति अनुरागिनी और उनकी वशवर्त्तिनी होकर ॥ ६३ ॥ उन मित्रावरुणके गृहमें वास करने लगी उर्वशीके उनके प्रति परमअनुरागके सहित वहां स्थिति करनेपर ॥ ६४ ॥ उनका वीर्य एक उघड़े कुम्भमें पतित हुआ उससे अत्यन्त मनोहर दो ऋषिकुमारोंने जन्म ग्रहण किया ॥ ६५ ॥ तिनमें अगस्त्य प्रथम और वशिष्ठ दूसरे हुए इसप्रकार मित्रावरुणके वीर्यसे तपस्वी दो ऋषियोंकी उत्पत्ति हुई ॥ ६६ ॥ प्रथम अगस्त्य बाल्यकालमें ही तपस्वी होकर वनको चले गये और राजश्रेष्ठ इक्ष्वाकुने बालक वशिष्ठको पूरोहितमें वरण किया ॥ ६७ ॥ हे राजन् ! इक्ष्वाकुने उनके वंशके कल्याणार्थ उनको पालन किया विशेषकर वह उनको वशिष्ठ मुनि जानकर उनके प्रति प्रसन्न हुए थे ॥ ६८ ॥ हे जनमेजय ! यह मैंने तुमसे निमिके शापसे वशिष्ठकी देहान्तर प्राप्तिका और मित्रावरुणके कुलमें उनकी उत्पत्तिका विवरण सम्पूर्णही वर्णन किया ॥ ६९ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः १५.

जनमेजयने कहा हे मुनिवर ! आपने महर्षि वशिष्ठदेवकी देहान्तरप्राप्तिका विषय वर्णन किया किन्तु निमिराज किसप्रकार फिर देहको प्राप्त हुए थे ? यह वर्णन नहीं किया उस समय यह विषय कीर्त्तन करके मेरा कौतूहल चरितार्थ कीजिये ॥ १ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! वशिष्ठ ऋषि फिर देहको प्राप्त हुए थे किन्तु निमिराजको वशिष्ठके शाप देनेपर फिर देह प्राप्त नहीं हुई ॥ २ ॥ जब वशिष्ठ

ऋषिने उनको शाप दिया, तिस समय यज्ञकार्यमें नियुक्त ऋत्विक् ब्राह्मणगण चिन्ता करने लगे कि॥ ३॥क्या आश्चर्य है इस यज्ञके सम्पूर्ण न होते होतेही दीक्षित धार्मिक महीपति निमि शापसे ग्रस्त हुए ॥ ४ ॥ यह कार्य विपरीत होगया हम क्या करैं जो होनहार है वह अवश्य ही होगा अतएव हम क्या करके इसको निवारण करैं ॥ ५ ॥ तब उन्होंने उस महात्माकी किंचित् स्वांशयुक्त देहकी अनेक मंत्रोंसे रक्षा की ॥ ६ ॥ और माल्य गन्धादिसे वारंवार पूजाकर अनेक यत्नसे मंत्रशक्ति द्वारा स्तम्भित और विकार हितकर राजाको उक्त देहधारण कराई ॥ ७ ॥ अनन्तर उस यज्ञके समाप्त होनेपर ऋषिगण देवताओंका स्तव करने लगे इससे देवता प्रसन्न और सन्तुष्ट होकर उस स्थानमें आये ॥ ८ ॥ तिस समय मुनिगण राजाकी समस्त अवस्था जानकर दुःखित राजासे कहने लगे हे सुव्रत! हम आपके यज्ञानुष्ठानसे प्रसन्न हुए हैं इस समय आप हमसे वांच्छित वर माँगिये ॥ ९ ॥ हे नृपवर! इस यज्ञके अनुष्ठान फलसे आपका श्रेष्ठ जन्म होना उचित है अतएव आप देवदेह अथवा नरदेह जिसकी अभिलाषा करैं वही कहिये ॥ १० ॥ अतएव आपका पुरोहित जिसप्रकार पूर्व देह परित्यागकर उसीकी समान दूसरा देहधारण पूर्वक गर्वित हो मृत्युलोकमें अवस्थिति करता है आप इच्छा होनेसे भी इसप्रकार प्रार्थना करसक्ते. हैं हे महाराज! देवताओंके इसप्रकार कहनेपर फिर निमिराजकी आत्मा अत्यन्त सन्तुष्ट हो उनसे कहने लगे ॥ ११ ॥ हे सुरसत्तमगण! जो देह सर्वदाही विनष्ट होता है इसमें मेरी अभिलाषा नहीं है अतएव जीवगणोंके दोनों नेत्रोंके उपरि भागमें मेरा वास हो ॥ १२ ॥ मैं समस्त प्राणियोंके नेत्रोपरिः वायुरूपसे विचरण करूं यही मेरी प्रार्थना है निमराजके इस प्रकार कहनेपर फिर देवताओंने निमिकी आत्मासे कहा ॥ १३ ॥ हे महाराज! आप विश्वरूपिणी सर्वेश्वरी देवीके निकट प्रार्थना कीजिये, वह यज्ञसे सन्तुष्ट हुई हैं अतएव अवश्य ही आपका अभीष्ट सिद्ध करेंगी ॥ १४ ॥ निमिराज देवताओंके यह वचन सुनकर भक्तिभावयुक्त गद्गद वाक्यसे अनेकप्रकारके स्तोत्रद्वारा देवीके निकट प्रार्थना करनेलगे ॥ १५ ॥ तब देवी प्रसन्न हो उनके सन्मुख आये उपस्थित हुई उनकी करोड़ सूर्यकी समान ज्योति और रूपलावण्य देखकर ॥ १६ ॥ सम्पूर्णही आनन्दित और प्रफुल्लित होकर मनहीमनमें अपनेको कृतकृत्य बोध करने लगे, तब राजाने भगवती देवीको प्रसन्न जानकर उनके निकट इस वरकी प्रार्थना की ॥ १७ ॥ हे देवि! जिसके द्वारा

मोक्ष प्राप्त होता है मुझको वही विमल तत्वज्ञान प्रदान कीजिये और जिससे सम्पूर्ण जीवोंके नेत्रोपरि मेरा वास हो आप वह भी कीजिये ॥ १८ ॥ अनन्तर प्रसन्न हुई सुरेश्वरी जगदम्बिका देवीने कहा हे नृपवर ! प्रारब्धकार्यके शेष होनेपर तुमको विमल ज्ञान प्राप्त ॥ १९ ॥ और समस्त जीवगणोंके नेत्रोपरि वायुरूपसे तुम्हारा वास होगा तुम्हारे अधिष्ठानसेही देहीगणोंके दोनों नेत्र निमेषयुक्त होंगे ॥ २० ॥ तुम्हारे वासके कारणही मनुष्यगण पशुगण और पतङ्गगणोंके नेत्रोपरि निमेष होगा किन्तु अमरगण अनिमेष रहेंगे ॥ २१ ॥ परमेश्वरी भगवती उनको इसप्रकार वरप्रदानपूर्वक सम्पूर्ण मुनिगणोंसे सम्भाषण कर उसीस्थानमें अन्तर्धान हुई ॥ २२ ॥ देवीके अन्तर्धान होनेपर तत्रस्थित मुनिगणोंने अनेक प्रकारसे चिन्ताकरके विधिपूर्वक मथन करनेकेलिये निमिकी देहको ग्रहण किया ॥ २३ ॥ महात्मा मुनिगण निमिपुत्रके निमित्त होम करके तदुपरान्त उनकी देहमें अरणि (मन्थन काष्ठ) स्थापन पूर्वक मंत्र उच्चारण कर मन्थन करने लगे ॥ २४ ॥ इसप्रकार अरणिद्वारा मथित होनेपर सर्व सुलक्षणयुक्त साक्षात् दूसरे निमिके समान एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ २५ ॥ इस पुत्रने अरणिके मथनेसे जन्म ग्रहण किया इस कारण मिथिनामसे और जनकके अङ्गसे जन्म लेनेपर जनक नामसे विख्यात हुआ ॥ २६ ॥ हे राजन् ! निमिराज वशिष्ठके शापसे विदेह अर्थात् देहरहित हुए थे इसी कारण उनके वंशमें उत्पन्न सबही विदेह कहकर कीर्तित होते हैं ॥ २७ ॥ इसप्रकार निमिके पुत्र जनकनामसे विख्यात हुए थे उन्होंने गंगाके तटपर मनोरमा एक नगरी निर्माण की ॥ २८ ॥ उन्हींके नामानुसार यह नगरी मिथिलानामसे विख्यात हुई. जनकराजने इस नगरीको दुर्ग तोरण हट्टशाला बडेस्थान और अनेक अटारियोंसे शोभायमान कर धनधान्यादिसे परिपूर्ण किया था ॥ २९ ॥ हे राजन्! इस वंशके सम्पूर्ण राजागणही जनक कहकर विख्यात और समस्तही ज्ञानयुक्त तथा विदेह कहकर कीर्त्तित होते हैं ॥ ३० ॥ हे राजन् ! शापके वशीभूत हो जिनको विदेहत्व प्राप्त हुआ था मैंने इस निमिराजका अति उत्तम उपाख्यान आपके निकट विस्तारपूर्वक कीर्त्तन किया ॥ ३१ ॥ राजाने कहा हे भगवन् ! आपने निमिशापका कारण कीर्त्तन किया, उसको सुनकर मेरा मन अत्यन्त संशययुक्त और अतिचंचल होगया ॥ ३२ ॥ वशिष्ठ ऋषि ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ और ब्रह्माके पुत्र हैं विशेषकर राजाके पुरोहित थे अतएव वह किसलिये राजासे शापित हुए ॥ ३३ ॥ निमिराजने उनको गुरु और ब्राह्मण जानकर भी क्षमा क्यों नहीं की? वह

इसप्रकार मंगलजनक यज्ञकार्य करके भी क्यों क्रोधके वशीभूत हुए ? ॥ ३४ ॥ उन्होंने इक्ष्वाकुकुलमें उत्पन्न और धर्मका तत्व जानकर भी किसकारणसे क्रोधके वशीभूत होकर आपने गुरु ब्राह्मणको शाप दिया ? ॥ ३५ ॥ व्यासजीने कहा हे राजेन्द्र ! अजितेन्द्रिय प्राणीगणोंके पक्षमें क्षमा अत्यन्त दुर्लभ है, विशेषकर सामर्थ्यवान् होनेपर भी क्षमावान् हो इसप्रकारके मनुष्य त्रिलोकीमें अत्यन्त दुर्लभ हैं ॥ ३६ ॥ जो समस्त संग परित्याग क्षमा और निद्राको जीतकर सर्वदा योगाभ्यासमें निरत हैं ॥ ३७ ॥ वे तपोधन मुनि काम, क्रोध, लोभ और अहङ्कार इत्यादि देहमध्यस्थित शत्रुगणोंको भलीभाँति नहीं जीतसक्के ॥ ३८ ॥ जो इन शत्रुओंको जीत सक्ता है इस सम्पूर्ण संसारमें ऐसा पुरुष पूर्वमें कोई नहीं था इस समय भी विद्यमान नहीं और फिर भी उत्पन्न न होगा ॥ ३९ ॥ इन शत्रुओंको पराजित करसक्ता है ऐसा कोई पुरुष पृथ्वी स्वर्ग वा ब्रह्मलोक अथवा वैकुण्ठमें अधिक क्या कैलासमें भी विद्यमान नहीं ॥ ४० ॥ जब ब्रह्माके पुत्र महर्षिगण और अन्यान्य तापसोत्तम ऋषिगण समस्तही सत्व रज और तमोगुणसे बँधे हैं तब पृथ्वीमें वास करनेवाले सामान्य मनुष्यकी फिर क्या बात है ॥ ४१ ॥ देखो कपिल सांख्यवेत्ता योगाभ्यासनिरत और पवित्र आत्मा थे. उन्होंने भी दैववशातः क्रोधित होकर राजा सगरके पुत्रोंको दग्ध किया था ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! अहंकारसे वह त्रिभुवन उत्पन्न हुआ है अतएव संपूर्ण संसार और अहंकार परस्पर कार्य कारण भावसे बँधे हैं तो इस संसारमें उत्पन्न हुए जीवगण किसप्रकार उस अहंकारसे छूट सक्के हैं ॥ ४३ ॥ ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर यह भी तीनों गुणद्वारा युक्त हैं उनके शरीरमें भी पृथक् पृथक् भावका आविर्भाव होता है ॥ ४४ ॥ तब मनुष्यगणोंको देहमें जो सत्वगुणका वास नहीं होता इस विषयमें फिर कहना ही क्या है ? क्योंकि मिलेहुए तीनों गुणोंका सर्वत्रही वास होता है ॥ ४५ ॥ अतएव कभी सत्वगुणकी कभी रजोगुणकी और कभी तमोगुणकी वृद्धि होती है और कभी इनकी समभावसे अवस्थित होती है ॥ ४६ ॥ हे राजेन्द्र ! केवल वही सनातन परम पुरुष अव्यय और निर्लेप एवं समस्त भूतोंके अप्रमेय और अलक्ष्य है ॥ ४७ ॥ वही परात्पर परमात्मा निर्गुण हैं और जो सब जीवोंमें वास करते हैं जो अल्पबुद्धि मनुष्योंको दुर्लभ हैं उन्हीं ब्रह्मरूपिणी परमाशक्तिकोभी निर्गुण जानना चाहिये ॥ ४८ ॥ परमात्मा और परमात्माशक्तिकी कथा सर्वदाही विद्यमान है उनकी

मूर्ति अभिन्न है जब इसप्रकार ज्ञानका उदय होता है तबही जीवगण संपूर्ण प्रकारके दोषसे छूटजाते हैं ॥ ४९ ॥ " इसी ज्ञानसे मोक्ष प्राप्त होता है " वेदान्तशास्त्रमें यह (नगाड़ेके शब्द) की समान घोषण है जो उसको जानता है वह इस त्रिगुणात्मक संसारसे छूटजाते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ ५० ॥ हे महाराज ! ज्ञान दो प्रकारका है तिनमें शाब्दिक ज्ञान प्रथम है वेदशास्त्रार्थविज्ञानसे बुद्धियोगद्वारा उस ज्ञानकी उत्पत्ति होती है ॥ ५१ ॥ इसमें मनुष्यगणोंके बुद्धिकल्पित अनेक वितर्क दिखाई देते हैं तिनमें कितनेही एक कुतर्कद्वारा कल्पित और कितनेही सुतर्क कल्पित हैं इस वितर्कसे प्राणीगणोंके भ्रमकी उत्पत्ति होती है भ्रमसे बुद्धि नष्ट और बुद्धि नष्टसे ज्ञान नष्ट होता है. हे राजन् ! दूसरे ज्ञानका नाम अनुभव वा अपरोक्ष ज्ञान है यह ज्ञान प्राणीगणोंके पक्षमें अत्यन्त दुर्लभ जानना चाहिये ॥ ५२ ॥ जब अनुभवकर्त्ता सद्गुरुके सहित संग होता है तबही वह ज्ञान प्राप्त होसक्ता है क्योंकि शब्दज्ञानसे कार्यसिद्धि नहीं होती है ॥ ५३ ॥ अतएव इससे अलौकिक अनुभव ज्ञान (अपरोक्ष) की उत्पत्ति भी नहीं होसक्ती है. इसी कारण इस ज्ञानके निमित्त महत् परिश्रमका प्रयोजन है. हे राजन् ! जिसप्रकार दीपक न जलाकर उसकी बातसे ही अन्धकार नष्ट नहीं होता इसीप्रकार शब्दका बोधमात्र अन्तरका अन्धकार नाश करनेमें समर्थ नहीं होता. जो बन्धनका कारण है उसकोही यथार्थ कर्म और जिससे मुक्ति प्राप्त होती उसकोही यथार्थ विद्या कहा जासक्ता है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ अपर सम्पूर्ण कर्म परिश्रमनिमित्त और अपर विद्याके बल शिल्पनैपुण्य मात्र होती हैं. शीलता, परोपकार अक्रोध, क्षमा, धैर्य ॥ ५६ ॥ और संतोष यह सब विद्यावल्लीके उज्वल और सुन्दर फल हैं. हे राजन् विद्या, तपस्या और योगाभ्यासके विना ॥ ५७ ॥ कभी कामादि सम्पूर्ण शत्रुओंका नाश नहीं होता. जीवगणोंका मन स्वभावसेही चंचल और दुर्गन्ध है. प्राणीगण सब प्रकारसे मनकेवशीभूत हैं. अतएव वह उत्तम, मध्यम और अधम होकर इस संसारमें विचरण करते हैं. काम क्रोधादि समस्तभाव मनसेही उत्पन्न होते हैं ॥ ५८ ॥ जब मनको जीत लिया जाता है, तब सम्पूर्ण भाव उत्पन्न नहीं होते इस कारण राजासे क्षमा न हुई ॥ ५९ ॥ हे राजन् ! पूर्वमें शुक्राचार्यके अपराध करनेपर ययातिने जिसप्रकार उनको क्षमा किया था निमिराज वशिष्ठऋषिके प्रति उस प्रकार क्षमा करनेमें समर्थ नहीं हुए ॥ नृपसत्तम ययातिने भृगुनन्दन शुक्रचार्यसे शापित होकर क्रोधके वशीभूत उन मुनिको शाप न देकर ॥ ६० ॥

आपही जरा (बुढापा) ग्रहण किया था. हे नराधिप ! स्वभावके वशीभूत कोई राजा शान्तभावयुक्त और कोई राजा क्रूर स्वभावयुक्त होता है ॥ ६१ ॥ अतएव इस विषयमें किसका दोष कहा जासक्ता है?देखो पूर्वकालके समय हैहयगणोंने धन लोभके वशीभूत और क्रोधसे मूर्च्छित होकर भृगुवंशीय पुरोहित ब्राह्मणगणोंको जड़सहित नष्ट किया था ॥ ६२ ॥ अधिक क्या उन क्षत्रियगणोंने ब्रह्महत्याके पापको न देखकर अत्यन्त क्रोधके वशीभूत हो उन ब्राह्मणोंके गर्भमें स्थित बालकोंको भी छेदन किया था ॥ ६३ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे भाषायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः १६.

जनमेजयने कहा हे भगवन् ! हैहय नाम जिन क्षत्रियगणोंने ब्रह्महत्याके पापको न देखकर भार्गवगणोंको निहत किया था उन्होंने किसके वंशमें जन्मग्रहण किया था ॥ १ ॥ हे पितामह ! सज्जनगण भारी कारणके विना क्रोध नहीं करते, अतएव आप उनके क्रोधका कारण क्या है यह कहिये ? ॥ २ ॥ पुरोहित गणोंके सहित उनकी शत्रुता क्यों हुई ? मुझको बोध होता है कि, सामान्य कारणसे क्षत्रियगणोंकी यह शत्रुता नहीं होती ॥ ३ ॥ तो वह निरपराध पूजनीय ब्राह्मणोंको किस कारण निहत करते हैं ? क्षत्रियगण बलवान् होनेपरभी उनके पापसे क्यों नहीं डरते ? ॥ ४ ॥ हे मुनिवर ! कौन क्षत्रियश्रेष्ठ सामान्य अपराधके कारण परमपूज्य विप्रवर्गका विनाश करते हैं ? अतएव हे मुनीन्द्र ! मुझको इस विषयमें संशय उपस्थित हुआ है आप इस कारण वर्णन कीजिये ॥ ५ ॥ सूतजीने कहा हे ऋषिगण ! जनमेजयके सत्यवती पुत्र व्यासदेवजीसे इसप्रकार पूँछनेपर वह अत्यन्त प्रसन्न हुए और मनमें हैहयका वृत्तान्त स्मरण कर वह उपाख्यान वर्णन करने लगे ॥ ६ ॥ उन्होंने कहा हे परीक्षिततनय ! जो मैंने पूर्वमें भलीभाँति जाना है क्षत्रियोंका वह अत्यन्त आश्चर्ययुक्त पुरातन उपाख्यान वर्णन करता हूं सुनो ॥ ७ ॥ पूर्वकालके समय हैहयवंशमें उत्पन्न सहस्रबाहु, बलवान्, धर्मतत्पर कार्तवीर्यार्जुननामक एक राजा थे ॥ ८ ॥ वह हरिके अवतार महर्षिदत्तात्रेयके शिष्य और परमाशक्तिके उपासक थे वह योगसिद्ध कहकर सर्वत्र विख्यात और अत्यन्त दान करनेवाले थे किन्तु यह नृपश्रेष्ठ भृगुवंशीय ब्राह्मणग

णोंके यजमान थे ॥ ९ ॥ वह यज्ञ करनेवाले परम धर्मनिष्ठ और सर्वदा ही दानपरायण थे. उसीके अनुसार अनेकबार यज्ञ करके भार्गवगणोंको बहुत धन दिया था ॥ १० ॥ कार्तवीर्यके दानप्रभावसे वह विप्रगण बहुत अश्व और रत्नादि अनेक ऐश्वर्यसे पृथ्वीमें धनशाली कहकर विख्यात हुए थे ॥ ११ ॥ हे क्षितीन्द्र ! नृपतिश्रेष्ठ कार्त्तवीर्यार्जुनके स्वर्ग जानेपर फिर कालके दुरतिक्रमणीय प्रभावसे हैहयगण एकबारही निर्धन होगये ॥ १२॥ अनन्तर किसी समय हैहयगणोंको बहुत धनवाला कोई कार्य्य उपस्थित हुआ उन्होंने भार्गवगणोंके निकट आय विनयसहित बहुत धनकी प्रार्थना की ॥ १३ ॥ किन्तु विप्रगणोंने अत्यन्त लोभार्त हो "नहीं नहीं" यह कहकर कुछभी उनको धनदान नहीं किया॥ १४॥ परन्तु क्षत्रिय बलपूर्वक धन लेंगे इस शंकासे कीसी किसीने उत्तम उत्तम बहुमूल्य धन पृथ्वीमें दबा दिया, और किसी किसीने ब्राह्मणोंको देदिया ॥ १५ ॥ धनलोभी भार्गवगण भयसे विह्वल होकर अपने अपने सम्पूर्ण द्रव्य इसप्रकार स्थानान्तरकलितकर अपना अपना घर छोड़ पर्वतादिमें चले गये ॥ १६ ॥ लोभसे मोहित ब्राह्मणोंने यजमानोंको दुःखित देखकर भी धन न दिया किन्तु भयसे सभी गिरिदुर्गका आश्रय कर वास करने लगे ॥ १७ ॥ इसके उपरान्त क्षत्रियश्रेष्ठ हैहयगणोंने दुःखित हो महत्कार्यके अनुरोधसे धन लेनेके निमित्त भार्गवगणोंके गृहमें जाकर ॥ १८ ॥ देखा कि, भार्गवगण घर छोड़ भाग गये हैं और उनके सम्पूर्ण घर शून्यहुए पड़े हैं. तब वह धनप्राप्त होनेके लिये उनके सम्पूर्ण घर खोदने लगे ॥ १९ ॥ और किसी किसीको भार्गवगणोंके घरसे धन प्राप्त हुआ अनन्तर समस्त क्षत्रियोंको धन प्राप्ति की आशासे इसप्रकार परिश्रम करनेपर ॥ २० ॥ जब पृथ्वीसे अनेकानेक धन प्राप्त होने लगा तब पड़ोसी अन्य अन्य ब्राह्मणोंके घरोंको भी ॥ २१ ॥ खोद और विदारण कर धन ढूँढ़ने लगे. तब सम्पूर्ण ब्राह्मणगण निरुपाय हो रोते रोते उनकी शरणागत हुए ॥ २२ ॥ क्षत्रियगणोंके भलीभाँति ढूँढनेपर ब्राह्मणोंके घरसे बहुत धन प्राप्त हुआ तब उन्होंने मिथ्या कहनेके अपराधसे क्रोधित होकर उन शरणागत ब्राह्मणोंको शरोंसे निहत किया॥ २३॥ हे महाराज ! तिसकाल हैहयगण इसप्रकार क्रोधित हुए थे और जिस स्थानमें सम्पूर्ण भार्गव वास करते थे क्षत्रियगण भी उसी स्थानमें गये और ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंके गर्भमें स्थित बालकोंको विदारण कर पृथ्वीमें विचरण करने लगे ॥ २४ ॥ हैहयगण ब्राह्मणोंमें क्या

बालक, क्या युवा, क्या वृद्ध जिस कीसीको देखते ब्रह्महत्याके पापको परित्यागकर तत्काल तीक्ष्ण बाणोंसे उसको मार डालते ॥ २५ ॥ इसप्रकार ब्राह्मणोंके मूल-सहित नष्ट होनेपर हैहयगण उनकी गर्भिणी स्त्रियोंको पकड़ उनका गर्भ विनाश करने लगे ॥ २६ ॥ पापबुद्धि क्षत्रियोंके गर्भघात करनेपर स्त्रियें दुःखसे कुररीकी समान रोने लगीं ॥ २७ ॥ तब तीर्थवासी अन्यान्य मुनिगण उन हैहयगणोंको क्रोधसे उद्दीप्त देखकर कहने लगे हे क्षत्रियो! तुम ब्राह्मणोंके प्रति जो भयानक क्रोध करते हो वह त्याग करो ॥ २८ ॥ तुम क्षत्रियश्रेष्ठ होकर भी भार्गवगणोंकी स्त्रियोंका गर्भपात करते हो इससे तुम अत्यन्त अयुक्त और अतिनीच कार्यमें प्रवृत्त हुए हो इसमें सन्देह नहीं ॥ २९ ॥ तुम जानते हो कि, जीवगणोंको अत्यन्त भारी पाप और पुण्यकर्मका फल इस लोकमें ही प्राप्त होता है. अतएव कल्याणकी कामना करनेवाले मनुष्योंको अत्यन्त घृणित कर्म त्याग करनाही उचित है ॥ ३० ॥ अनन्तर परमक्रोधित हैहयगण करुणायुक्त तपोधनोंसे कहने लगे आप सभी साधु हैं अतएव पाप कर्मका यथार्थ अर्थ नहीं जानते॥ ३१ ॥ इन छलके जाननेवाले भार्गवगणोंने हमारे उदारात्मा पूर्वपुरुषगणोंसे छल करे मार्गमें चोरकी समान सम्पूर्ण धनहरण किया है ॥ ३२ ॥ यह प्रतारक छली और दाम्भिक तथा वगुलेकी समान धर्मशील हैं देखो हमारा महत् कार्य उपस्थित होनेसे ॥ ३३ ॥ हमने पादपरिमाण वृद्धिदान सवायादेना अंगीकार करके भी विनयपूर्वक धनकी प्रार्थना की थी तथापि इन्होंने वह न दिया वरन् यजमानोंको अत्यन्त दुःखित देखकर भी "नहीं नही" यह कहकर चुप हो गये ॥ ३४ ॥ यद्यपि इन्होंने कार्त्तवीर्यसे धन प्राप्त किया है किन्तु किसकारण उस धनकी रक्षा की है? उससे यज्ञ क्यों नहीं किया? किसनिमित्त याचकगणोंको बहुतसा दान न किया ॥ ३५ ॥ ब्राह्मणोंको किसी समय कहीं भी धन इकठा करना उचित नहीं है विधिपूर्वक दान और सुखसे भोगना ही उचित है ॥ ३६ ॥ हे द्विजगण! धनसे चोरभय राजभय और अत्यन्त अग्नि-भय विशेषकर भयानक धूर्त्तभय विद्यमान रहता है ॥ ३७ ॥ धनका ऐसा ही धर्म जानना चाहिये. धन जिसकीसी उपायसेही अपने रक्षकको परित्याग करता है और भी देखो धनकी रक्षा करनेवाला व्यक्ति जब मरजाता है तब उनको अवश्यही वह त्याग करना पड़ता है॥ ३८ ॥ यदि धनवान् प्राणत्याग करनेके पहले उपार्जित धनसे सद्गतिसाधक यागादिका अनुष्ठान करे तो अवश्यही सद्गति प्राप्त करनेमें समर्थ होता है.

किन्तु ऐसा न करनेसे वह विफल धन त्यागपूर्वक असद्गति लाभ करता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ३८ ॥ हमने पादपरिमाण कुसीद सवाया व्याज दान करना स्वीकार करके विनय सहित महत् कार्यके निमित्त प्रार्थनाकी तथापि लोभके वशीभूत हो हमारे पुरोहितोंने हमको वह न दिया ॥ ३९ ॥ हे महर्षिगण ! दान भोग और विनाश धनकी यह तीन गति हैं तिनमें पुण्यवान् मनुष्य दान और भोगसे धनकी सफलता प्राप्त करते हैं और पापात्माओंका धन वृथाही नष्ट होजाता है ॥ ४० ॥ जो दाता भी नहीं और भोगता भी नहीं केवल धनकी रक्षा करनेमें तत्पर और कृपण है राजा लोग उन दुःखभोगनेवाले आत्मवंचक मनुष्योंको भलीभाँति दण्ड दें ॥ ॥ ४१ ॥ हम इसी कारण गुरु होनेपरभी इन वंचक ब्राह्मणाधमगणोंको विनाश करनेमें प्रवृत्त हुए हैं. हे महर्षिगण ! आप महात्मा हैं अतएव यह सम्पूर्ण जानकर उससे क्रोध न कीजिये ॥ ४२ ॥ व्यासजीने कहा, हैहयगण मुनियोंको इसप्रकार हेतुयुक्त वाक्यसे समझाकर भार्गवोंकी स्त्रियोंको ढूँढते विचरण करने लगे ॥ ४३ ॥ भार्गवोंकी स्त्रियें भयसे कातर और अत्यन्त कृशाङ्गी हो काँपते काँपते और रोते रोते हिमाचलमें जाय वास करने लगीं ॥ ४४ ॥ इसीप्रकार वह विप्रगण अर्थलोलुप क्रोधसे उद्दीप्त पापबुद्धि हैहयगणोंसे अत्यन्त पीडित होकर मरने लगे ॥ ४५ ॥ हे राजन् ! पूर्वमुनि कहते हैं कि, लोभही मनुष्योंका देहमें स्थित महान् महान् शत्रु है. लोभही समस्त दुःखोंकी खान है. लोभही सम्पूर्ण पापोंकी जड है. लोभही सम्पूर्ण दुःखोंका कारण और लोभहीसे प्राण नष्ट होनेकी सम्भावना है ॥ ४६ ॥ लोभहीके कारण ब्राह्मणादि वर्णोंमें सदा विरोध उपस्थित होता है और लोभहीके द्वारा मनुष्यगण विषयकी तृष्णासे, व्याकुल होते हैं ॥ ४७ ॥ मनुष्यगण लोभहीके कारण धर्म कर्म और कुल क्रमागत आचार व्यवहार परित्याग करते हैं और लोभहीके कारण पिता, माता, भ्राता, बन्धु, गुरु ॥ ४८ ॥ मित्र, पुत्र, भगिनी और भगिनीपति इत्यादिको विनाश करते हैं बहुत क्या लोभयुक्तको पापसे मोहित होनेपर उनको अकार्य नहीं रहता ॥ ॥४९॥ क्रोध काम और अहंकार इनसे भी लोभ प्रबल महान् शत्रु है. हे राजन् ! लोभी जीवगण प्राणपर्यन्त त्याग करते हैं. इस लोभकी अनिष्टकारित्व विषयमें कहनेका फिर क्या शेष रहा ! ॥५०॥ " हे महाराज ! आपके पूर्वपुरुष पांडव और कौरवगण धार्मिक और सत्पथावलम्बी थे किन्तु लोभके वशीभूत होकर वह मृत्युको

प्राप्त हुए॥ १ ॥ देखो जिस स्थानमें भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, वाह्लिक, भीमसेन, युधिष्ठिर, अर्जुन और केशव यह सब महात्मा थे॥ २ ॥ उस स्थानमें भी लोभके कारण परस्पर अत्यन्त घोर युद्ध और कुटुम्बका नाश हुआ था ॥ ३ ॥ इससे भीष्म द्रोण और पाण्डवगणोंके पुत्रगण भ्रातृगण और पितृगण सबही युद्धमें निहत हुए थे ॥ ४ ॥ "अतएव लोभके वशीभूत हो मनुष्यगण क्या कार्य नहीं करते हैं ? हे राजन् ! इसी लोभके कारण पापबुद्धि हैहयगणोंने भृगुवंशीयगणोंको मारा था ॥ ५१ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः १७.

जनमेजयने कहा हे मुनिवर ! उन ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंने किस प्रकार इस अपार दुःख सागरसे निस्तारपाया और किसप्रकार उन ब्राह्मणोंका वंश पुनर्वार पृथ्वीमें प्रतिष्ठित हुआ ॥ १ ॥ उन पापाचारी क्षत्रियाधम लोगके वशीभूत हुए हैहयगणोंने ब्राह्मणोंका विनाश करके फिर क्या किया आप यह सम्पूर्ण विषय वर्णन करके मेरा कौतूहल चरितार्थ कीजिये ॥ २ ॥ हे तपोनिधे ! मनुष्यगणोंको इस लोकमें सुखप्रद और परलोकमें पुण्यफलका देनेवाला अतिपवित्र आपका वचनामृत श्रवणाञ्जलि पुटसे पान करके मेरी तृप्ति नहीं हुई ॥ ३ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! भृगुपत्नी गणोंने जिसप्रकार उस कठोर दुस्तर दुःखसागरसे छुटकारा पाया था मैं आपके निकट उसी पापनाशक पवित्र उपाख्यानको वर्णन करता हूं श्रवण करो ॥ ४ ॥ हैहयगणोंके ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंको अत्यन्त पीड़ित करनेपर फिर वह भयसे विह्वल और हताशहोकर हिमाचलमें चलीं गईं ॥ ५ ॥ तब उन सबोंने उस पर्वतमें गंगाके तटपर मृण्मयी गौरीकी मूर्ति बनाय उनकी पूजा की और मनमें मरना निश्चय कर उपवास करनेलगीं ॥ ६ ॥ अनन्तर जगदम्बिका देवीने उन धर्मपरायण स्त्रियोंके सामने स्वप्नमें प्रगट होकर कहा कि, तुममें किसीके ऊरुसे मेरे अंश सम्भूत एक सन्तान उत्पन्न होगी ॥ ७ ॥ वह पुरुष तुम्हारा सम्पूर्ण कार्य करेगा देवी भगवती यह कहकर अन्तर्धान होगईं ॥ ८ ॥ अनन्तर वह स्त्रियें जागरित हो अतिहर्षको प्राप्त हुईं उनमेंसे एक अतिचतुर कामिनीने क्षत्रियोंके भयसे उद्विग्न हो कुलकी वृद्धिके निमित्त एक उरुभेदसे गर्भ धारण किया ॥ ९ ॥ अनन्तर उसकी देह तेजसे प्रदीप्त

होगई तब उसने भयसे विह्वल हो भागनेकी इच्छा की ॥ १० ॥ क्षत्रियगण उस ब्राह्मणीको देखकर अतिवेगसे उसके पीछे दौड़े और कहने लगे कि, देखो यह गर्भवती ब्राह्मणकी स्त्री शीघ्र भागी जाती है इसको पकड़ और इसका प्राण नष्ट करो ॥ ॥ ११ ॥ वह सभी यह कह खड्गधारणपूर्वक उसके निकट उपस्थित हुए तब वह कामिनी उनको आता हुआ देख भयसे रोने लगी ॥ १२ ॥ वह भयातुर हो गर्भकी रक्षाके निमित्त जब चीत्कार करने लगी तब गर्भस्थित बालक निराश्रय दीन कातर ॥ १३ ॥ अश्रुनयना और भयसे कम्पायमान जननीको रक्षकविहीन और अत्यन्त क्षत्रियोंसे पीड़ित देखकर और सिंहसे आक्रान्त गर्भवती हरिणीकी समान ॥ १४ ॥ रोते हुए सुनकर क्रोधपूर्ण जननीका ऊरुदेश विदीर्ण कर दूसरे सूर्यके समान सहसा निकला ॥ १५ ॥ उस शोभायमान बालकने अपने तेजसे क्षत्रियोंकी दर्शनशक्ति लोप करदी तब हैहयगण उस बालकको देखकर तत्काल सभी अन्धे होगये ॥ १६ ॥ अनन्तर वह जन्मान्धकी समान पर्वतकी खोहमें विचरण करने लगे और मनमें चिन्ता करके कहने लगे कि हमको एक दैवदुर्विपाक प्रारब्धका फल उपस्थित हुआ ॥ १७ ॥ बालकको देखतेही हम सब अन्धे होगये अहो ! इन स्त्रियोंका प्रभाव और इनके पातिव्रत्य धर्मका महत् फल है इसमें सन्देह नहीं ॥ १८ ॥ हमने ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंको पीडित किया है इससे वे अत्यन्त दुःखित हुई हैं अब नहीं जानते कि यह सत्यसंकल्प स्त्रियें हमारा और क्या अनिष्ट करेंगी ? वह भ्रान्तचित्त नेत्रहीन और निराश्रय क्षत्रियगण मनमें इसप्रकार चिन्ताकर ॥ १९ ॥ उन्हीं स्त्रियोंकी शरणागत हुए वह स्त्रियें फिर उनको आता हुआ देख अत्यन्त भीत हुई किन्तु वह उन पतिव्रता स्त्रियोंको हाथ जोड प्रणाम कर ॥ २० ॥ अपनी दृष्टिकी प्राप्तिके निमित्त कहने लगे हे मातः ! हम आपके सेवक हैं आप प्रसन्न हूजिये ॥ २१ ॥ हे कल्याणि ! हम पापिष्ठ क्षत्रिय हैं हमने आपके बहुत अपराध किये हैं. हे सुन्दरि ! हम आपके केवल दर्शनमात्रसेही अन्धे हुए हैं ॥२२॥ हे कोपने ! हम जन्मान्धकी समान आपका मुखकमल नहीं देखसक्ते हे जननि ! आपका तपोवीर्य अद्भुत है हम पापकारी हैं अतएव किसी प्रकार इस विषयका प्रतीकार करनेमें समर्थ नहीं होंगे ॥ २३ ॥ इस कारण अब केवल आपहीकी शरणागत हुए हैं आप हमको नेत्रप्रदान कर हमारे मानकी रक्षा कीजिये हे मातः ! अन्धत्व मरनेकी अपेक्षा भी भारी है अतएव आप हमारे ऊपर कृपा कीजिये

॥ २४ ॥ आप फिर देखनेकी शक्ति दानकर क्षत्रियोंको अनुग्रहपूर्वक दास कीजिये. हम दृष्टिशक्तिके प्राप्त होनेपर सभी इस पापकर्मसे विरत हो घरको चले जायँगे ॥ २५ ॥ अभीसे फिर हम ऐसा नीचकर्म कभी न करेंगे अबसे हम सभी ब्राह्मणोंके सेवक होकर रहेंगे ॥ २६ ॥ हमने अज्ञानवश जो सम्पूर्ण पाप किये हैं आप वह समस्त क्षमा कीजिये हम प्रतिज्ञा करके कहते हैं कि, आजसे ब्राह्मणोंके संग फिर क्षत्रियोंकी कुछ भी शत्रुता नहीं रहेगी ॥ २७ ॥ हे नितम्बिनि ! आप पुत्रके सहित सुखपूर्वक काल व्यतीत कीजिये हम आपके निकट सदाही प्रणत हैं ॥ २८ ॥ हे कल्याणि ! आप प्रसन्न हूजिये हम अब कभी विद्वेषभाव नहीं करेंगे व्यासजीने कहा हे महाराज ! ब्राह्मणोंकी स्त्रियें उनके यह वचन सुन आश्चर्ययुक्त चित्तसे ॥ २९ ॥ उन दुर्दशायुक्त प्रणत अन्धे क्षत्रियगणोंको समझाकर कहने लगीं क्षत्रियगण ! हमने तुम्हारी दृष्टि हरण नहीं की॥ ३० ॥अथवा हम तुम्हारे प्रति सन्तुष्ट भी नहीं हुईं तुम इस समय इसका यथार्थ कारण सुनो यह ऊरुजात भृगुकुलोत्पन्न सन्तान तुम्हारे प्रति अत्यन्त प्रकुपित हुई है ॥ ३१ ॥ इसी कारण इस क्रोधपूर्वक बालकने तुम्हारे सम्पूर्ण नेत्र स्तम्भित किये हैं तुमने धनकी इच्छासे इस बालकके परम आत्मीय निरपराध धर्मतत्पर तापसगणोंको और गर्भमें स्थित भार्गवगणोंको भी निहत किया है वह यह बालक जानगया है ॥ ३२ ॥ हे वत्सगण ! जब तुमने भृगुवंशीय गर्भस्थित बालकगणोंको भी विनाश करना आरम्भ किया था ॥ ॥ ३३ ॥ तब मैंने ऊरुदेशमें इस बालकको सौ वर्षपर्यन्त धारण किया था इस बालकने गर्भमें स्थित होकर भृगुवंशकी वृद्धिके निमित्त थोड़ेही समयमें षड़ंगसमस्त वेदअध्ययन किये हैं ॥ ३४ ॥ यह वंशवृद्धिको गर्भमें रहा है इस समय यह भृगु-सन्तान पितृवधके क्रोधसे प्रदीप हो तुम्हारे विनाशके लिये उद्यत हुई है ॥ ३५ ॥ जिसके दिव्यतेजसे तुम्हारी दृष्टिशक्ति नष्ट हुई है वही यह हमारा पुत्र भगवती भुवनेश्वरीके प्रसादसे उत्पन्न हुआ है, अतएव इस बालकको सामान्य नहीं जानना चाहिये ॥ ३६ ॥ इस समय तुम विनययुक्त होकर मेरे इस और्व (उरुजात) पुत्रके निकट याचना करो यह सन्तान प्रणिपात द्वारा सन्तुष्ट होकर तुमको दृष्टि प्रदान करेगी ॥ ३७ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! हैहयगण ब्राह्मणीका यह वचन सुननेके पश्चात् भार्गवसन्तानका स्तव करने लगे उन्होंने विनयान्वित हो उरुजात उस मुनिसत्तमको

प्रणाम किया ॥ ३८ ॥ तब और्वऋषिने सन्तुष्ट हो उन नेत्रहीन हैहयगणोंसे कहा तुम अपने अपने घर जाओ हे भूपालगण ! तुम मेरे इस उपाख्यानसे प्राप्त वक्ष्यमाण वचनका पाठ करना ॥ ३९ ॥ जो दैवनिर्मित और अवश्यम्भावी है यह अवश्यही होगा यह जानकर किसीको भी इस विषयमें शोक करना उचित नहीं है ॥ ४० ॥ तुम पूर्वकी समान दृष्टि प्राप्त कर क्रोध त्यागपूर्वक यथासुखसे अपने अपने घर जाओ और अबसे ऋषिगण भी पूर्वकी समान सुखको प्राप्त होंगे ॥ ४१ ॥ महर्षि और्वके इसप्रकार आज्ञा करनेपर हैहयगण नेत्र प्राप्त कर इच्छानुसार अपने अपने घरको चले गये ॥ ४२ ॥ इधर ब्राह्मणी भी उस तेजस्वी दिव्य पुत्रको लेकर अपने आश्रममें जाय सावधानतासे उसको पालने लगी ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! यह मैंने आपके निकट भार्गवगणोंके विनाशका वृत्तान्त और लोभयुक्त क्षत्रियगणोंने जिसप्रकार पापकर्म किया था वह सम्पूर्ण वर्णन किया ॥ ४४ ॥ जनमेजयने कहा हे तपोधन ! मैंने क्षत्रियोंका अत्यन्त दारुण कर्मका विषय श्रवण कर जाना कि, इस विषयमें एक मात्र लोभही कारण है और लोभसेही दोनोंको इसीप्रकार दुःख हुआ है ॥ ४५ ॥ हे मुनीन्द्र ! मैं आपसे इस विषयमें कुछ पूँछनेकी इच्छा करता हूं यह राजपुत्र पृथ्वीमें हैहय नामसे क्यों विख्यात हुए? ॥ ४६ ॥ क्षत्रियगणोंमें कितनेही एक यदुकुलोत्पन्न कहकर यादव और कितनेही एक भरतोत्पन्न कहकर भारतनामसे विख्यात हुए हैं किन्तु इनके वंशमें हैहयनामक किस राजाने जन्म लिया था ॥ ४७ ॥ अथवा यह क्षत्रियगण अन्य किसी कर्मद्वारा हैहय नामसे विख्यातहुए, मैं उसका कारण सुननेकी अत्यन्त इच्छा करताहूं आप कृपाकरके वह वर्णन कीजिये ॥ ४८ ॥ व्यासजीने कहा हे भूपते ! मैं आपके निकट हैहयगणोंकी उत्पत्तिका वृतान्त विस्तारपूर्वक वर्णन करता हूं श्रवण करो इस पुरातन कथाके सुननेसे पापसमूह नष्ट होकर पुण्यका उदय होता है ॥ ४९ ॥ हे राजन् ! किसीसमय अपरिमितप्रभावयुक्त रूपवान् और सुशोभन रेवन्त नामक ॥ ५० ॥ सूर्यके पुत्र मनोहर घोडोंमें श्रेष्ठ उच्चैःश्रवापर चढ़कर विष्णुके घर वैकुण्ठधाममें गये थे ॥ ५१ ॥ वह जब भगवान्‌के दर्शनाभिलाषी होकर गये तब लक्ष्मीदेवीने इस सूर्यके पुत्रको देखा ॥ ५२ ॥ क्षीराब्धितनया रमादेवी सागरोत्पन्न सहोदर अश्वश्रेष्ठके मनोहररूपको अवलोकनपूर्वक आश्चर्ययुक्त हो इकटक देखती रहीं ॥ ५३ ॥ निग्रहानुग्रहमें समर्थ भगवान् विष्णु मनोहररूपयुक्त रेवन्तको घोड़ेपर चढ़ेहुए आता देखकर विनय सहित लक्ष्मीसे पूँछनेलगे ॥

॥ ५४ ॥ हे सुन्दरि ! दूसरे कामदेवकी समान कौन पुरुषश्रेष्ठ त्रिभुवनको मोहित करता घोड़ेपर चढ़ाहुआ आरहा है ॥ ५५ ॥ तिस समय लक्ष्मीदेवी दैवयोगसे एकाग्रमनसे देखरहीं थीं इसप्रकार भगवान्‌के वारम्वार पूँछनेपरभी उन्होंने कोई उत्तर न दिया ॥ ५६ ॥ चंचलादेवी लक्ष्मी अश्वको अति आसक्त चित्त और अत्यन्त मोहित हो परमप्रेमके वशीभूत स्थिरनेत्रसे देख रहीं हैं ॥ ५७ ॥ भगवान् यह देखकर कुपितहुए और उनसे कहा कि हे सुलोचने! क्या देखती हो ! तुम अश्वको देखकर इसप्रकार मोहित हुई हो कि मेरे पूँछनेपरभी बात नहीं कहती ॥ ५८ ॥ तुम सर्वत्र रमण करती हो इसकारण रमानामसे और तुम्हारा मन अत्यन्त चंचलहै इस कारण चंचलनामसे विख्यात होगी॥५९॥ हे कल्याणि ! प्राकृत स्त्रियें जिसप्रकार चंचल हैं तुमभी उसीप्रकार चंचल होगी, कहीं कभी स्थिर न रहसकोगी ॥ ६० ॥ तुम मेरे समीप अवस्थित होकरभी जिसप्रकार घोड़ेको देखकर मोहित हुई हो तब तुम दारुण क्लेशयुक्त मर्त्यलोकमें घोडी हो जन्म ग्रहण करो ॥ ६१ ॥ रमादेवी दैवयोगसे हरिसे इसप्रकार शाप पाय भय और दुःखसे कम्पायमान हो रोनेलगी ॥६२॥ तब चारुहासिनी रमादेवी शङ्कित और विनययुक्त हो प्रणामपूर्वक अपने पति नारायणसे कहने लगी ॥ ६३ ॥ हे देवदेव ! हे गोविन्द ! आप जगत्‌के नाथ और दयाके समुद्र हैं अल्प अपराधहीके कारण मुझको क्यों यह शाप दिया? ॥६४॥ हे प्रभो ! मैंने आपको ऐसा क्रोध पहले कभी नहीं देखा हाय ! मेरेप्रति आपका जो नाशरहित सहज स्नेह था वह इस समय कहां गया ? ॥ ६५ ॥ हे नाथ ! वज्रपात स्वजनोंके प्रति न करके शत्रुओंके प्रति करनाही उचित है मैं सदा आपके वरदेनेके योग्यपात्र हूं इस समय आपने मुझको शापके योग्य क्यों किया ? ॥ ६६ ॥ हे गोविन्द ! मैं आपके सामनेही प्राणत्याग करूंगी, मैं आपके विरहानलसे सन्तापित होकर कभी जीवन धारण नहीं करसक्ती ॥ ६७ ॥ हे विभो ! प्रसन्न होकर कहिये मैं इसदारुण शापसे मुक्त होकर फिर कब अत्यन्त सुखकर आपके सम्मिलनको प्राप्त हूंगी ॥ ६८ ॥ भगवान्‌ने कहा हे प्रिये ! जब मर्त्यलोकमें मेरे समान तुम्हारे पुत्र होगा तब तुम फिर मुझको प्राप्त होकर सुखी होगी इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६९ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः १८.

जनमेजयने कहा हे मुनिवर! भगवान् विष्णुके कोपके वशीभूत हो इसप्रकार शाप देनेपर फिर उन्होंने किसप्रकार घोडी हो जन्म ग्रहण किया था और रेवन्तने तिससमय क्या किया था ॥ १ ॥ क्षीरोदनन्दिनी लक्ष्मी देवीने किसदेशमें घोडीका रूप धारण कर परदेशमें स्थित पतिवाली बालाके समान अकेले किसप्रकार वास किया था? ॥ २ ॥ हे मुनिवर! उस कमलादेवीने पतिरहित होकर कितने समय पर्यन्त किस निर्जन स्थानमें वास किया और तिसकाल उन्होंने क्या किया था॥ ३ ॥ और किस समय फिर वासुदेवसे मिलीं थी जब उन्होंने नारायणसे वियोगको प्राप्त हो वास किया था तब किसप्रकार पुत्र प्राप्त हुआ था ॥ ४ ॥ हे आर्यप्रवर! आप यह वृत्तान्त विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये. इस अत्युत्तम उपाख्यानके सुननेकी मुझको अत्यन्त अभिलाषा उत्पन्न हुई है ॥ ५ ॥ सूतजीने कहा हे ऋषिगण! जनमेजयके वेद-व्यासजीसे इसप्रकार पूँछनेपर फिर द्वैपायनमुनि इस उपाख्यानको विस्तारपूर्वक वर्णन करने लगे ॥ ६ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन्! जिसके द्वारा मनुष्यगण पवित्र हो कल्याण लाभ करते हैं मैं आपके निकट वह शिवदाक्षरयुक्त श्रुति मधुर पौराणिक पुरातन कथा वर्णन करता हूं श्रवण करो ॥ ७ ॥ देवदेव वासुदेवने कमलादेवीको शाप प्रदान किया, भास्करतनय रेवन्त यह देखकर भयार्त्त हुए और जगत्पति जनार्दनको प्रणामकर दूर चलेगये ॥ ८ ॥ उन्होंने जगत्पति विष्णुका कोप देखकर शीघ्र पिताके निकट जाय उनसे कमलाके प्रति नारायणके शाप देनेका वृत्तान्त निवेदन किया ॥ ९ ॥ इधर कमललोचना कमलादेवी शापके अनन्तर नारायणसे आज्ञा लेकर दुःखित चित्त हो उनके चरणोंमें प्रणामपूर्वक मनुष्यलोकमें चलीं गईं ॥ १० ॥ पहले सूर्यपत्नीने जिस स्थानमें तपस्याकी थी कमलादेवी घोड़ीका रूप धारणकर उसी स्थानमें चलीं गईं ॥ ११ ॥ यह स्थान मनोहर वनसे विभूषित, और सर्वकामप्रद सुवर्णाक्ष पर्वतके उत्तरदेशमें कालिन्दी और तमसाके संगम स्थानमें वासकर शोभाको प्राप्त हुआ था ॥ १२ ॥ रमादेवी उसी स्थानमें वासकर एकाग्र चित्तसे वाञ्छितप्रद और कल्याणके देनेवाले महादेवका इसप्रकार ध्यान करने लगीं कि, महादेव हाथमें त्रिशूल धारणकररहे हैं, उनके ललाटदेशमें मनोरम शीतल चन्द्रमाकी कला शोभायमान होरही है ॥ १३ ॥ उनके पांच मुखोंमें तीन तीन

नेत्र विद्यमान होरहे हैं कण्ठदेश नीलवर्ण रञ्जित, उनकी दशभुजा कलेवर कर्पूरके समान गौर ॥ १४ ॥ परिधान व्याघ्रचर्म गजचर्म उत्तरीय और नागगण उनके उपवीत (जनेऊ) हैं उन्होंने गौरीके देहका अर्ध भाग धारण किया है उनके गल देशमें कपालमाला शोभा पारही है ? ॥ १५ ॥ सिन्धुसुता लक्ष्मीदेवी मनोहर घोडीका रूप धारणकर उस तीर्थमें कठोर तपस्या करने लगीं ॥ १६ ॥ हे राजन् ! उन्होंने वैराग्यका आश्रयकर परमदेव महादेवका ध्यान करते करते उसी स्थानमें दिव्य हजार वर्ष विताये ॥ १७ ॥ तदनन्तर परमप्रभु देवदेव त्रिलोचन महेश्वरने बैलपर चढ पार्वतीके सहित उसीस्थानमें आय कमलादेवीको प्रत्यक्ष दर्शन दिया ॥ १८ ॥ महादेवने उसीस्थानमें गणोंके सहित आनकर अश्वरूपिणी तपस्विनी उस हरिवल्लभाकमलासे कहा ॥ १९ ॥ हे कल्याणि ! तुम सम्पूर्ण जगत्की जननी और तुम्हारे पति समस्त लोकके विधाता तथा सर्वार्थप्रदान करनेमें समर्थ हैं उनके विद्यमान् रहते तुम तपस्या करती हो इसका क्या कारण है ? ॥ २० ॥ हे देवि ! तुम जगत् पालक जगन्नाथ भोग मोक्षके देनेवाले वासुदेव श्रीहरिको त्यागकर किस-कारण मेरी स्तुति करती हो ? ॥ २१ ॥ हे देवि ! वेदमें कहे हुए वचनके अनु-सारही कार्य करना उचित हैं वेदमें कहा है कि, पतिही स्त्रियोंका देवता है अतएव कभी किसीप्रकार अन्यके प्रति भलीभाँति मनका भाव बन्धन करना उचित नहीं है ॥ २२ ॥ पतिकी सेवा करनाही स्त्रियोंका सनातन धर्म है पति साधुहो अथवा असाधुहो मंगलकी इच्छा करनेवाली स्त्रियें भलीभाँति उसकी सेवा करें ॥ २३ ॥ हे सिन्धुतनये ! तुम्हारे पति नारायण सबके सेवनीय और सम्पूर्ण अर्थ दान करनेमें समर्थ हैं तुम उन्ही देवदेव गोलोकपतिको त्यागकर किसकारण मेरी आराधना करती हो ? ॥ २४ ॥ लक्ष्मीने कहा हे देवदेव ! हे कल्याणालय ! आप सेवकके प्रति शीघ्रही सन्तुष्ट होते हैं यह मैं जानती हूं, मेरे पतिने मुझको शाप दिया है हे दयानिधे ! आप मुझको दया करके इस शापसे उद्धार कीजिये ॥ २५ ॥ हे शम्भो ! मैंने जब उनसे विनय सहित वचनसे मनका दुःख कहा तब उन्होंने अनुग्रह करके करुणान्वित चित्तसे शापके छूटनेका उपाय कहा ॥ २६ ॥ हे कमले ! जब तुम्हारे पुत्र उत्पन्न होगा तबही शाप छूटकर फिर तुम्हारा वैकुण्ठमें वास होगा इसमें सन्देह नहीं ॥ २७ ॥ उनके मुझको इसप्रकार कहनेपर फिर मैं तपस्या करनेके लिये इस तपोवनमें आनकर भगवान् भवानीपति

आपको सर्वेश्वर और सर्वार्थ देनेवाले जानकर आपकी आराधनामें प्रवृत्त हुई हूं ॥ ॥ २८ ॥ हे देवेन्द्र ! पतिके संगविना किसप्रकार पुत्र प्राप्त करूंगी मेरे निरपराधिनी होने परभी वह मुझको त्यागकर वैकुण्ठमें वास करते हैं ॥ २९ ॥ हे महेश्वर ! आप सम्पूर्ण लोकोंका मंगल करते हैं यदि आप मुझसे सन्तुष्ट हुए हैं तो मुझको वर दीजिये हे प्रभो ! मैं निश्चय जानती हूं कि आपमें और उनमें कुछ भिन्नभाव नहीं है ॥ ३० ॥ हे गिरिजाकान्त ! मैं ने अपने पतिसे जाना हैं. हे हर ! जो आप हैं सोई वह हैं और वह जो हैं सोई आप हैं इसमें कुछ संशय नहीं ॥ ३१ ॥ हे मंगलमय ! मैं आप दोनोंका अभेदभाव जानकरही आपका ध्यान करती हूं, ऐसा न होनेसे आपका आश्रय करना मुझको दोष होता इसमें सन्देह नहीं ॥ ३२ ॥ शङ्करने कहा हे देवि सिन्धुतनये ! मेरा और उन हरिका तुमने एक भाव किसप्रकार जाना वह मुझसे सत्य कहो ॥ ३३ ॥ देवगण मुनिगण और वेदके जाननेवाले महर्षिगण कुतर्कसे हतबुद्धि हो हम दोनोंमें अभेद नहीं जानसक्के ॥ ३४ ॥ तुम प्रायःदेखतीहो कि हमारे भक्तोंमें बहुतसे मनुष्य वासुदेवके और विष्णुके भक्तोंमेंसे अनेक मेरी निन्दा करतेहैं ॥ ३५ ॥ विशेषकर कलिकालमें कलिमहात्म्यके वशीभूत हो अतिद्वेषी होंगे सो जो हो हे कल्याणि ! उदारात्मा पुरुषोंको भी जो कठिन है ॥ ३६ ॥ वह विषय तुमने किसप्रकार जाना मेरी और हरिकी एकताका जानना अत्यन्त दुर्लभ है व्यासजीने कहा हे महाराज ! आशुतोषके सन्तुष्ट हो इसप्रकार पूँछनेपर फिर हरिवल्लभा ॥ ॥ ३७ ॥ कमला प्रसन्नवदनसे पूँछे हुए विषयका सार महादेवके सामने कहने लगी ॥ ३८ ॥ लक्ष्मीने कहा हे देवदेव ! एकदिन भगवान् विष्णुको निर्जनमें पद्मासन ग्रहणकर तपस्या करते करते ध्यान परायण देखकर मैं ॥ ३९ ॥ अत्यन्त आश्चर्य युक्त हुई अनन्तर ध्यान त्यागकर प्रसन्न चित्तसे बैठे हुए देख मैं ने उनसे पूँछा ॥ ॥ ४० ॥ हे देवदेव ! आपही तो जगत्के अधिनाथ और सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके प्रभु हैं इस समय मैं आपसे पूँछती हूं कि, ब्रह्मादि देवगण और असुरादिगणोंके मिलित हो समुद्र मथनेपर जब मैं उससे निकली ॥ ४१ ॥ तब मैं ने पतिकी इच्छासे सबहीको देखा था किन्तु हे नाथ ! आप सम्पूर्ण देवताओंसे श्रेष्ठ हैं यह निश्चय करके आपको वरण किया था ॥ ४२ ॥ हे सर्वेश ! इस समय आप फिर किसका ध्यान करते हैं इससे मुझको महान संशय उपस्थित हुआ है. हे भगवन् ! आप मेरे अत्यन्त प्रिय हैं इस समय आप मुझसे अपने मनका भाव प्रकाश करके कहिये ॥ ४३ ॥

विष्णुने कहा हे कान्ते! मैं जिनका ध्यान करता हूं वह तुमसे कहता हूं श्रवण करो मैं उन्हीं आशुतोष महेश्वर सुरसत्तम गिरिजावल्लभका हृदयकमलमें ध्यान करता हूं॥ ॥ ४४ ॥ वह अमितप्रभावदेवदेव महादेव कभी मेरा ध्यान करते हैं और कभी मैंभी उन सुरेश्वर त्रिपुरान्तक शङ्करका ध्यान करता हूं ॥ ४५ ॥ मैं शङ्करको प्राणोंकी समान प्रिय हूं और शंकर मुझको भी इसी प्रकार प्रिय हैं, हम दोनोंका चित्त गूढ़भावसे परस्पर आसक्त है अतएव उनमें हममें कुछभी भेद नहीं है ॥ ४६ ॥ हे विशालाक्षि! जो मनुष्य मेरा भक्त होकर शिवसे विद्वेष करते हैं, वह निश्चयही नरकभागी होते हैं, यह मैंने तुमसे सत्यही कहा ॥ ४७ ॥ हे महेश्वर! मेरे एकान्तमें पूँछनेपर उन देवदेव परमप्रभु विष्णुने मुझसे इसप्रकार कहा था ॥ ४८ ॥ इसीकारण आपको उनका प्रिय जानकर मैंने आपका ध्यान किया. हे महेश! जिससे मेरे प्रियका मिलनहो आप वही उपाय कीजिये ॥ ४९ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज! वाक्यविशारद महादेव लक्ष्मीका यह वचन सुनकर प्रियवचनसे उनको समझाकर कहने लगे ॥ ५० ॥ हे नितम्बिनि! तुम सावधानहोओ मैं तुम्हारी तपस्यासे सन्तुष्ट हुआ हूं पतिसे तुम्हारा शीघ्रही मिलनहोगा इसमें संशय नहीं ॥ ५१ ॥ मेरे भगवान् जगत्पतिको प्रेरण करनेपर फिर तुम्हारी कामना पूर्ण करनेके निमित्त अश्वरूप धारणकर इसस्थानमें आवेंगे ॥ ५२ ॥ मैं उन देवदेव मधुसूदनको इसप्रकार भेजूंगा कि वह अश्वरूप धारणकर मदातुर होकर तुम्हारे पास आवेंगे ॥ ५३ ॥ हे सुभ्रु! उनसे तुम्हारे नारायणकी समान एकपुत्र उत्पन्न होगा और वह पृथ्वीमें राजा होकर सर्वलोकोंका पूजनीय होगा इसमें सन्देह नहीं ॥ ५४ ॥ हे महाभागे! तुम पुत्रके प्राप्त होनेपर फिर नारायणसहित वैकुण्ठमें जाय और उनकी प्रिया होकर उसीस्थानमें वास करोगी ॥ ५५ ॥ तुम्हारा वह पुत्र एकवीर नामसे विख्यात और उससे पृथ्वीतलमें हैहयवंश विस्तारित होगा ॥ ५६ ॥ हे कमले! तुम ऐश्वर्य मदसे अन्ध और मत्तचित्त होकर हृदयस्थित परमेश्वरीको भूलगई हो इसीकारण तुम इसप्रकारके फलको प्राप्त हुई ॥ ५७ ॥ अतएव उसी दोषको दूर करनेके निमित्त हृदयस्थित पर देवताकी शरण ग्रहण करो ॥ ५८ ॥ हे देवि! यदि तुम्हारा चित्त आनन्दरूपिणी भगवतीके प्रति आसक्त रहता तो कभी तुम्हारा चित्त उच्चैःश्रवाके प्रति न दौड़ता व्यासजीने कहा हे महाराज! पार्वतीपति भगवान् महादेव कमलादेवीको इसप्रकार वर दे ॥ ५९ ॥ उमाके सहित लक्ष्मीके सामनेही अन्तर्धान होगये शोभायमान्

अंगवाली कमलादेवी भी उसी स्थानमें रहकर ॥ ६० ॥ जिनका नखमण्डल सुरासुर गणोंके शिरोरत्नसे सर्वदाही संघर्षित होता है अम्बिकाके उन्हीं चरण कमलोंको स्मरण करने लगी ॥ ६१ ॥ और हयरूपधारी अपने प्रिय हरिकी प्रतीक्षामें प्रेमगद्गदवचनसे बारम्बार महादेवीका स्तव करनेलगी ॥ ६२ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषायां अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः १९.

व्यासजीने कहा हे राजन् ! देवदेव शंकरने कमलाको वरदान दे अप्सरागणोंसे विभूषित और देवताओं द्वारा परिसेवित मनोहर कैलासाचलमें जाय ॥ १ ॥ चित्ररूप नामक कार्य विशारद एक गणश्रेष्ठको लक्ष्मीकी कार्य सिद्धिके निमित्त वैकुण्ठधाममें भेजा ॥ २ ॥ जानेके समय शिवजीने उससे कह दिया कि, हे चित्ररूप ! तुम हरिके निकट जाय जिससे वह दुःखित अपनी कान्ता समुद्रदुहिताको विरहरूपी शोकबाणसे उद्धारकरें तुम मेरे वचनानुसार उनसे इसीप्रकार कहना ॥ ३ ॥ महादेवकी इसप्रकार आज्ञा पाय चित्ररूप शीघ्रके लाभसे निकल वैष्णवोंसे व्याप्त परमधाम वैकुण्ठ लोकमें गया ॥ ४ ॥ वह स्थान अनेक दिव्य वृक्षोंसे घिरा हुआ शतशत मनोहारिणी दीर्घिकाओंसे सुशोभित हंस, कारण्डव, मोर, शुक और कोकिल इत्यादिसे युक्त ॥ ५ ॥ अनेक प्रकार विहंगमगणोंके श्रवण सुखकर कण्ठरवसे शब्दायमान और पताकावलिसे अलंकृत, तथा अटारियोंसे विमण्डित नृत्य गीतादि अनेक प्रकार मनोहर कलासमूहसे परिपूर्ण उसमें नयनाञ्जन, बकुल, अशोक, तिलक, चम्पक इत्यादि वृक्षोंसे विराजित और मनोहर मन्दारतरुने दिगन्तव्यापी अपनी पुष्पगन्ध विस्तारित कर परम शोभाधारण की है ॥६॥ ७ ॥ चित्ररूपने विष्णुका नयन मनोहर सुन्दर भवन देखकर द्वारे स्थित जय विजय नामक वेत्रपाणि दोनों पुरुषोंको प्रणाम कर कहा ॥ ८ ॥ चित्ररूप बोला अहो ! तुम शीघ्र जाय परमात्मा हरिसे निवेदन करो कि, भगवान् शूलपाणिका भेजा हुआ एक जन दूत इस स्थानमें आय द्वारमें प्रतीक्षा कर रहा है ॥ ९ ॥ उसका वचन सुनकर परम बुद्धिमान् जय हरिके सन्मुख आय प्रणामपूर्वक हाथ जोड कहने लगा ॥ १० ॥ हे करुणाकर ! हे केशव ! हे देवदेव ! रमाकान्त ! भवानीपतिका चित्ररूप नाम दूतश्रेष्ठ इस स्थानमें आनकर द्वारस्थित है कार्य

गौरव नहीं जानता उसको आपके निकट लाऊं कि नहीं आज्ञा कीजिये ॥ ११ ॥ ॥ १२ ॥ जयकी बात सुनतेही अन्तर्यामी हरिने अन्तरका कारण जानकर कहा हे जय ! तुम आये हुए रुद्रके दूतको भवनमें लाओ ॥ १३ ॥ यह सुनकर जयने उस रमणीयमूर्त्ति शिवके सेवकको बुलाय ॥ १४ ॥ जनार्दनके सामने उपस्थित किया विचित्राकार चित्ररूप नारायणको दण्डवत् प्रणाम कर हाथ जोड खडा रहा ॥ १५ ॥ भगवान् विहगेन्द्रवाहन नारायण उस चित्ररूपधारी विनयान्वित शिव सेवकको देखकर आश्चर्य युक्त हुए ॥ १६ ॥ अनन्तर कमलापतिने कुछेक हँसकर चित्र-रूपसे पूँछा हे विमलमते ! परिजनोंके सहित देवदेव महादेवके सर्वाङ्गीन कुशलता है? ॥ १७ ॥ तुमको किसकारण यहां भेजा है ? महेश्वरका क्या कार्य है सो कहो अथवा यदि देवतागणोंका कोई कार्य उपस्थित हुआ है वह भी मुझसे ॥ १८ ॥ कहो दूतने कहा हे अन्तर्यामिन् ! जब कि इस संसारमें आपसे कोई विषय नहीं छिपा है तो उपस्थित विषय जो मैं कहूंगा वह क्या आपसे छिपा है ? ॥ १९ ॥ हे त्रिका-लज्ञ ! तथापि भगवान् भवानीपतिने आपसे तो विषय कहनेके लिये मुझको आपके पास भेजा है उनके वचनानुसार मैं वह आपसे निवेदन करता हूं ॥ २० ॥ उन्होंने कहा है हे विभो ! देवी कमलालया आपकी प्रेयसी भार्या है वह सर्वसिद्धिप्रदा-यीनी सिंधुनन्दिनी यक्ष, किन्नर, नर और देवताओंके ध्यानयोग होकर भी वडवारूप धारण कर कलिन्दकन्या यमुना और तमसाके संगमस्थलमें कठोर तपस्या करती हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥ उन सर्वार्थदायिनी लोकजननीके विना इस त्रिकोलमें कौन पुरुष सुखभागी होसक्ता है ? हे पुण्डरीकाक्ष ! उनको त्याग करके आपको क्या सुख प्राप्त होता है ? ॥ २३ ॥ हे विभो ! निर्धन अथवा दुर्बल भी अपनी भार्याका प्रतिपालन करता है आप जगत्पति होकर भी विना अपराध उन जगत्की आराधना करने योग्य भार्याका क्यों त्याग करते हैं ॥ २४ ॥ हे जगद्गुरो ! आपको मैं क्या उपदेश दूं ? इस संसारमें जिसकी भार्याको दुःख है उसकी शत्रुओंमें अत्यन्त निन्दा होती है हे विभो ! उसके ऐसे जीवनको धिक्कार है ॥ २५ ॥ हे लोकनाथ ! उनको अत्यन्त दुःखित देखकर इस समय आपके शत्रुओंकी कामना पूर्ण हुई हे देवि ! केशवने तुमको परित्याग किया है अतएव इस समय हमारे संग तुम सुखसे काल व्यतीत करो यह कहकर शत्रु दिन रात आपकी हँसी करते हैं ॥ २६ ॥ अतएव हे सुरेश्वर ! आप रमा देवीका चित्त प्रसन्न कीजिये इस सर्वलक्षणयुक्त उपमारहित

रूपवती सुशील कमलाको फिर अपनी गोदीमें बैठाइये ॥ २७ ॥ हे देव ! आप उस चारुहासिनी प्राणवल्लभाको ग्रहण कर सुखी हूजिये भगवान् शङ्करने और भी कहा है कि, मैं इस समय यदि विरहातुर नहीं हूं तथापि जगदम्बिकाके उस विरह दुःखका स्मरण कर अत्यन्त कष्ट अनुभव करता हूं ॥ २८ ॥ हे कमललोचन ! मेरी प्रियतमा भार्या सती देवीने अब दक्षके गृहमें जीवन विसर्ज्जन किया तब मैंने दुःसह दुःख अनुभव किया है ॥ २९ ॥ हे केशव ! इस संसारमें अन्य किसीको ऐसा दुःख न हो ! ! उसके विरहमें मुझको जो शोक और मनमें पीड़ा हुई थी वह मैं इस समय केवल मनहीमनमें स्मरण करता हूं किसीके निकट प्रकाश नहीं करता ॥ ३० ॥ जिसने दक्षके यज्ञमें मेरी निन्दाजनित दीप्त रोषानलमें दग्ध होकर जीवन विसर्जन किया था मैंने अत्यन्त कठिन तपस्या कर बहुत कालोपरान्त फिर उस देवीको गिरिजारूपसे प्राप्त किया ॥ ३१ ॥ हे मुरारे ! प्रणयिनी भार्याको परित्याग कर सहस्रसम्वत्सर अकेले रहकर आपको क्या सुख प्राप्त हुआ है ॥ ॥ ३२ ॥ आप उस सौभाग्यवती सुदती युवतीको समझाकर अपने घर लाइये हे भगवन् ! उन भवभावन भवानीपतिने अन्तमें आपसे यह बात कह दी है कि हे कंसारे ! संसारमें कोई भी उस परमा देवी रमाके विना मुहूर्त्तमात्र भी नहीं ठहर सक्ता ॥ ३३ ॥ हे आयुष्मन् ! आप घोड़ेका रूप धारण कर उस कमलाका भजन करो अनन्तर उस शुचिस्मिता जायाके गर्भसे पुत्र उत्पन्न कर उसको अपने घर लाओ ॥ ३४ ॥ व्यासजीने कहा हे भरतकुलभूषण ! भगवान् हरि उस चित्ररूपका यह वचन सुन "भगवान् भूतपतिने जो कहा है मैं वही करूंगा" यह कहकर उस दूतको शंकरके पास भेज दिया ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ दूतके चलेजानेपर फिर भगवान् मनोहर घोड़ेका रूप बनाय सकाम होकर तत्काल वैकुण्ठसे जिस स्थानमें कमला देवी घोड़ीका रूप धारणकर तपश्चरण करती थी उसी स्थानमें गये वहां आनकर देखा कि विमला देवी घोड़ीका रूप धारण कर बैठी है ॥ ३७ ॥ वह साध्वी भी अश्व-रूप धारी अपने पति गोविन्दको देखतेही जानगई और फिर अन्यत्र न गई वरन् उनको देखकर अत्यन्त आश्चर्ययुक्त चित्तमें उसी स्थानमें बैठी रही किन्तु मनोदुःखसे उनके दोनों विशालनेत्रोंद्वारा बराबर अश्रुधारा गिरने लगी ॥ ३८ ॥ अनन्तर इस कालिन्दी और तमसाके लोकविख्यात संगम स्थानमें उन दोनोंका परस्पर संगम हुआ ॥ ३९ ॥ तब वड़वारूपधारिणी हरिवल्लभाने गर्भवती हो यथासमय

उस स्थानमें रूप सम्पन्न गुणवान् एक पुत्र किया था ॥ ४० ॥ तब भगवान्ने हँसकर उससे समयोचित वचन कहा हे प्रिये! इस समय घोडीका देह त्याग कर पहला देह ग्रहण कीजिये ॥ ४१ ॥ हे सुलोचने! हम दोनों अपना अपना देह धारण कर अपने घर वैकुण्ठ धामको चले और तुम्हारी उत्पन्न हुई यह सन्तान वह उसी स्थानमें वास करै ॥ ४२ ॥ लक्ष्मीने कहा हे नाथ! अपनी जठरजात सन्तानको त्यागकर कैसे चलूं हे सुरेश्वर! आत्मजात सन्तानका स्नेह अत्यन्त कठिनतासे छोडने योग्य है ॥ ४३ ॥ हे महात्मन्! यह बालक अति-शिशु और अत्यन्त क्षुद्रतनु है अभी अपनी आत्माकी रक्षा करनेमें सदा असमर्थ है इसको नदीके तटपर त्याग करनेपर जब यह अनाथ होगा तब इसकी क्या गति होगी? ॥ ४४ ॥ हे कमललोचने! हे स्वामिन्! स्नेहरससे मेरा मन व्याप्त है निराश्रय शिशुसन्तानको त्यागकर चलनेमें किसप्रकार समर्थ होगा? ॥ ४५ ॥ अनन्तर लक्ष्मी और नारायणके पूर्वकी समान दिव्यदेहधारणपूर्वक उत्तम विमानमें चढ़नेपर फिर देवता उनका स्तव करने लगे ॥ ४६ ॥ नारायणके जानेकी इच्छा करनेपर कमलाने कहा हे नाथ! आप इस पुत्रको ग्रहण कीजिये मैं इसको त्यागकर जानेमें समर्थ नहीं होती ॥ ४७ ॥ हे प्रभो! हे मधुसूदन! यह पुत्र मुझको प्राणोंकी अपेक्षा भी प्रिय है देखो यह देहकान्तिसे सब प्रकार आपकी समान है अतएव मैं इस पुत्रको लेकर वैकुण्ठमें जाऊंगी॥ ४८॥ हरिने कहा हे प्रिये! तुम विषाद मत करो यह बालक इस स्थानमें सुखपूर्वक वास करे मैंने इसकी रक्षाके निमित्त उपाय किया है ॥ ४९ ॥ हे वामोरु! इस पृथ्वीमें कोई एक महत् अद्भुत कार्य है वह तुम्हारे इस पुत्रसेही होगा इसकारण मैं इसको इसी स्थानमें छोड़ता हूं इस समय तुम्हारे निकट यह विषय वर्णन करता हूं सुनो ॥ ५० ॥ तुर्वसु नामक विख्यात ययाति राजाके एक पुत्र है उसके पिताने फिर उसका नाम हरिवर्मा रक्खा वह उसी नामसे विख्यात हुआ है॥ ५१ ॥ वह राजा इस समय पुत्र प्राप्त होनेकी इच्छासे पवित्र तीर्थमें शतवर्ष हुए तपस्या करता है ॥ ५२ ॥ हे कमले! उनके निमित्तही मैंने यह पुत्र उत्पन्न किया है हे सुभ्रु! मैं इस समय वहां जाकर उस राजाको भेजूंगा ॥ ५३ ॥ हे वरानने! उस पुत्रकी इच्छा करने वाले राजाको मैं यह पुत्र दूंगा वह इस बालकको लेकर फिर घर जायगा ॥ ५४॥

व्यासजीने कहा हे राजन् ! भगवान् इसप्रकार पद्मालया प्रियाको समझायकर और बालकको उसी स्थानमें रख उत्तम विमानपर चढ़ कमलाके सहित स्वर्गको चलेगये ॥ ५५ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषायां एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः २०.

जनमेजयने कहा हे भगवन् ! इस विषयमें मुझको महान् संशय उपस्थित हुआ है, लक्ष्मी और नारायणके उस सद्योजात असहाय बालक सन्तानको निर्ज्जनवनमें त्याग करनेपर फिर उसको किसने ग्रहण किया ॥ १ ॥ अहो ! उस तत्कालके उत्पन्न हुए बालककी क्या गति हुई? सिंह व्याघ्रादि हिंसक जन्तुगणोंने क्यों उसको भक्षण न किया ? ॥ २ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! लक्ष्मी और नारायणके उस स्थानसे चले जानेपर चम्पकनामक विद्याधर ॥ ३ ॥ मनोहर विमानपर चढ़ मदनालसानामक स्त्रीके संग क्रीड़ा करते करते इच्छानुसार वहां आनकर उपस्थित हुआ ॥ ४ ॥ देवपुत्रकी समान मनोहर कान्ति परमसुन्दर उस बालकको पृथ्वीमें अकेला सुखपूर्वक क्रीडा करते देखकर ॥ ५ ॥ चम्पकने शीघ्र विमानसे उतर उसको ग्रहण किया निर्धन पुरुष जिसप्रकार निधि पानेसे प्रसन्न होता है मनोहर पुत्रको प्राप्त कर विद्याधर भी उसीप्रकार आनन्दित हुआ ॥ ६ ॥ चम्पकने उस सद्योजात मनोहर कामदेवकी समान बालकको ग्रहण कर ॥ ७ ॥ मदनालसा देवीको दिया मदनालसा बालकको ग्रहण कर आश्चर्ययुक्त और पुलकित हुई और हृदयसे लगाय मुखचुम्बन करने लगी ॥ ८ ॥ हे भारत ! मदनालसा बालकको पुत्रभावसे गोदीमें ले आलिङ्गन और चुम्बन कर परमप्रसन्न हुई ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त दोनों बालकको ले परमानन्दसे विमानपर चढ़े अनन्तर तन्वङ्गी मदनालसा हँसकर पतिसे पूँछने लगी ॥ १० ॥ हे नाथ ! यह बालक किसका है इसको वनमें कौन छोड़गया है ? बोध होता है कि देवदेव पिनाकपाणिने मुझको यह पुत्र दान किया है ॥ ११ ॥ चम्पकने कहा यह बालक देव,दानव, अथवा गन्धर्वकी सन्तान है, यह मैं उन सर्वज्ञ शचीपति इन्द्रसे अभी जाकर पूँछूंगा ॥ १२ ॥ उनकी आज्ञा करनेपर फिर इस वनमें प्राप्त हुए को वेदमंत्रद्वारा संस्कृत कराय पुत्रत्वमें ग्रहण करूंगा, विशेष कर विना जाने

हठात् कोई कार्य करना मुझको उचित नहीं है ॥ १३ ॥ चम्पक अपनी स्त्री मदनालसासे यह कह बालकको ग्रहणपूर्वक हर्षोत्फुल्ल लोचनसे शीघ्र इन्द्रपुरमें गया ॥ १४ ॥ चम्पकने प्रीतिपूर्वक शचीपति इन्द्रके चरणोंमें प्रणामकर बालक विवरण सुनाय हाथ जोड़कर कहा ॥ १५ ॥ हे देवेन्द्र ! मैंने कालिन्दी और तमसाके संगमरूप परमपवित्र तीर्थस्थलमें इस कामदेवके समान बालकको प्राप्त किया है ॥ १६ ॥ हे प्रभो ! हे शचीकान्त ! वह पुत्र किसका है ? और इसको कौन छोड़ गया ? यदि आपका विचार हो तो मैं इस बालकको पुत्ररूपमें ग्रहण करूं ॥ १७ ॥ यह बालक अत्यन्त सुन्दर और मेरी स्त्रीको अति प्रिय है धर्म्मशास्त्रमें भी कृत्रिमपुत्रकी विधि कही गई है अतएव मेरी अत्यन्त इच्छा है कि, इस बालकको वेदमंत्रद्वारा संस्कार कराय पुत्ररूपसे ग्रहण करूं ॥ १८ ॥ इन्द्रने कहा हे महाभाग ! भगवान वासुदेवने अवश्यरूपधारणपूर्वक कमलाके गर्भसे उत्पन्न किया है यह हैहयनामक है ॥ १९ ॥ वह ययातितनय तुर्वसुको यह शत्रुसंहारक्षम बालक प्रदान कर भलीभाँति कार्यसाधन करेंगे ॥ २० ॥ वह धार्म्मिक राजा हरिसे प्रेरित अभी पुत्रके निमित्त उस मनोहर पवित्र तीर्थमें आवेंगे ॥ २१ ॥ जबतक वह देवदेव विष्णुसे प्रेरित हो उस स्थानमें न आवे उससे पहलेही तुम शीघ्र वहां जाय इस रमणीय मूर्ति बालकको उसी स्थानमें रख दो ॥ २२ ॥ हे विद्याधरप्रवर ! तुम अब महूर्त्तभाव भी विलम्ब मत करो राजा बालकको न देखकर अत्यन्त दुःखित होंगे ॥ २३ ॥ अतएव हे चम्पक ! तुम इस बालककी ममता त्याग करो राजा इस पुत्रको ग्रहण करे यह बालक पृथ्वीतलमें एक वीर नामसे विख्यात होगा ॥ २४ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! इन्द्रके यह वचन सुनकर चम्पक पुत्रको ले तत्काल वहां जाय ॥ २५ ॥ उसको उसी स्थानमें रख विमानपर चढ़ अपने घरको चलागया ॥ २६ ॥ उसी समय त्रैलोक्यनाथ कमलाकान्त प्रभासे कान्तिमान् विमानपर चढ़ राजाके निकट गये ॥ २७ ॥ भगवान् विमानसे उतरतेही थे उसी समय राजा तुर्वसु उनको देखते ही प्रसन्न हुए और पृथ्वीमें गिरकर दण्डवत प्रणाम किया ॥ २८ ॥ हे वत्स ! उठो मनकी मलीनता दूर करो यह कहकर नारायणने उस पृथ्वीमें पड़ेहुए अपने भक्त राजाको समझाया राजा भी उत्सुक और भक्तियुक्त चित्तसे सामने स्थित वासुदेवकी स्तुति करनेके लिये वचन कहने लगा ॥ २९ ॥ हे रमेश ! आप देवताओंके अधिदेवता, सम्पूर्णलोकमण्डलके नाथ करुणाके समुद्र और

सब मनुष्योंको उपदेश देनेवाले हैं हे प्रभो ! आपका दर्शन योगिगणोंकोभी अत्यन्त दुर्लभ है मैंने अत्यन्त मन्दमती होकर भी आपका वह दर्शन प्राप्त किया है प्रभो! इसके द्वारा आपकी अपार करुणा प्रकाश होती है॥ ३०॥ हे भगवन्! हे अनन्त! जो मोहरहित और विषयसे विरत हैं वही आपका दर्शन प्राप्त करनेके अधिकारी हैं हे देवादिदेव! मैं आशारूपी जालमें बंधा हूं मैं आपका दर्शन प्राप्त करनेमें सब प्रकार अयोग्य हूं इसमें संदेह नहीं ॥ ३१ ॥ नृपतिश्रेष्ठ तुर्वसुके इसप्रकार स्तव करनेपर फिर भगवान् विष्णु अमृतमयवचनसे कहने लगे हे राजन् ! मैं तुम्हारी तपस्यासे सन्तुष्ट हुआ हूं तुम मनके अभिलाषित वरकी प्रार्थना करो मैं इस समय वही दूंगा ॥ ३२ ॥ तदनन्तर राजाने सामने खड़े परात्पर विष्णुके चरणोंमें फिर प्रणाम कर कहा हे मुरारे म[illegible] प्राप्त होनेके निमित्त तपस्या की है मुझको आत्मतुल्य पुत्र दीजिये ॥ ३३॥ आदिदेव राजाकी प्रार्थना सुन उनसे अमोघवचन कहने लगे हे ययातिनन्दन! तुम यमुना और तमसाके संगमतीर्थमें जाओ ॥ ३४ ॥ अभी मैं उस स्थानमें तुम्हारे निमित्त जैसी तुम इच्छा करते थे वैसाही अमितप्रभाव एक पुत्र रख आया हूं तुम शीघ्र जाकर ग्रहण करो हे राजन्! उस पुत्रने मेरे उरसे और कमलाके जठरसे जन्म ग्रहण किया है ॥ ३५ ॥ राजा हरिके मधुर विमल वचन सुनकर अत्यन्त सन्तुष्ट हुए सब भगवान् विष्णु भी उनको वर दे रमाके सहित वैकुण्ठको चलेगये ॥ ३६॥ ययातिपुत्र राजा तुर्वसु जनार्दनके यह वचन सुननेके पीछे प्रेमपूरित चित्तसे एक अप्रतिहतगति रथपर चढ़ जिस स्थानमें वह पुत्र था, उसी स्थानमें गया ॥ ३७ ॥ वहां जातेही असाधारण प्रभायुक्त देखा कि वह परमसुन्दर मनोहर बालक एक कोमल हाथसे चरणका अँगूठा पकड़े मुखमें दिये प्रसन्नतापूर्वक पृथ्वीमें खेल रहा है ॥ ३८॥ यह पुत्र नारायणके अंश और कमलाके उदरसे उत्पन्न है सुतरां नारायणकी समान प्रभावयुक्त है उस कामदेवकी समान मनोहर बालकको देखकर लोकविख्यात नरेश्वर हरिवर्माका मुखकमल हर्षसे प्रफुल्लित होगया ॥ ३९ ॥ राजा दोनों हस्तकमलोंमें पुत्रको ग्रहणकर प्रेमसागरमें निमग्न हुए और हर्षसे भर मस्तक सूंघ अत्यन्त आनन्दित-मनसे आलिङ्गिन करने लगा ॥ ४० ॥ बालकका मनोहर मुखकमल देखकर आनन्दके आंसुवोंसे भर राजाका कण्ठ रुकगया तब उन्होंने बालकसे गद्गद वाणीसे कहा हे पुत्र ! नारायणने सन्तुष्ट होकर मुझको तुम सरीखा पुत्ररत्न दान किया है तुम मेरी पुन्नाम नरकपातके भयसे रक्षा करो ॥ ४१ ॥ हे वत्स ! मैंने

तुम्हारे निमित्त पूर्ण सौ वर्ष कठिन तपस्या की है उससे कमलापतिने परितुष्ट होकर मुझे संसार सुखके निमित्त तुमको दान किया ॥ ४२ ॥ तुम्हारी जननी रमा देवी मेरे निमित्त अपनी अङ्गजात सन्तानको त्यागकर हरिके संग चलीं गई हे वत्स! तुमको गोदीमें लेकर तुम्हारा हास्यविकसित मुखकमल देखनेसे जिसका मुख प्रफुल्लित होता है वही जननी धन्य है ॥ ४३ ॥ हे हृदयनन्दन! देवादिदेव रमापतिने तुम्हें मेरी संसारसागरकी नौकास्वरूप किया है यह कह राजा उस बालकको ग्रहण कर प्रसन्नमनसे घरकी ओर चले ॥ ४४ ॥ नगरीमें राजा फिर आते हैं यह सुनकर राजाके मंत्री पुरवासी और समस्त प्रजा पुरोहितादि उपहारकी सामग्री संग ले उनके निकट आए ॥ ४५ ॥ तब बन्दीगण गायक और सूतगण राजाके सन्मुख उपस्थित हुए राजाने पुरीमें प्राप्त हो आए हुए सम्पूर्ण मनुष्योंको स्नेहदृष्टिसे देख और मधुरसम्भाषणद्वारा समझाया ॥ ४६ ॥ तदनन्तर पौरगणोंसे पूजित हो पुत्रके सहित नगरीमें प्रवेश किया राजा जब राजमार्गमें जानेलगे तब पौरगणोंने उनके ऊपर पुष्प और लाज (खीलैं) बरसाये ॥ ४७ ॥ अनन्तर राजाने दोनों हाथोंसे पुत्रका ग्रहण कर मंत्रीगणोंके सहित अपनी समृद्धिसम्पन्न गृहमें प्रवेश किया तदनन्तर तुर्वसुने उस सद्यःप्रसूत कामदेवकी समान मनोहर पुत्रको अपनी महिषीके हाथोंमें समर्पण किया ॥ ४८ ॥ मनोरमा राजपत्नी अभिनव सन्तानको ग्रहण कर राजासे पूंछने लगी हे राजन्! यह मन्मथमूर्ति सुजात पुत्र कहां पाया ॥ ४९ ॥ किसने आपको यह प्रदान किया? हे नाथ! आप शीघ्र कहिये यह बालक मेरा मन हरण करता है तब राजाने आनन्दित होकर कहा हे प्रिये! कृपानिधि कमलापतिने मुझको यह पुत्र प्रदान किया है ॥ ५० ॥ हे चपलनयने यह सन्तान नारायणके अंश और कमलाके गर्भसे उत्पन्न है हे देवि! इस सन्तानमें बल वीर्य धैर्य गम्भीरता इत्यादि समस्त गुण विद्यमान हैं इसमें सन्देह नहीं तब महिषीने उस बालक सन्तानको ग्रहण कर अपरिमेय आनन्द प्राप्त किया अनन्तर राजा तुर्वसुने राजभवनमें अद्भुत उत्सव आरम्भ किया ॥ ५१ ॥ और याचकगणोंको दान किया राजभवनमें अनेक प्रकारके गीत और बाजोंकी ध्वनि होने लगी भूपति तुर्वसुने पुत्र होनेमें उत्सव कर उसका नाम एकवीर रख दिया ॥ ५२ ॥ इन्द्रकी समान वीर्यवान् वह नरपति भगवान् हरिकी समानरूप और गुणयुक्त पुत्रको प्राप्त हो सुखी हुए और वंशके ऋणदायसे छूटकर अत्यन्त आनन्दित हुए ॥ ५३ ॥ हे राजन्!

इन्द्रकी समान पराक्रमशाली वह राजा इसप्रकार समस्त देवताओंके अधिपति नारायणके दिये सर्वगुणालंकृत उस पुत्रको पाय प्रियतमासे सुखसेवित और उसके सहित अनेक विनोद और राजभोगमें निरन्तर निरत रह अपने घर विहार करने लगे ॥ ५४ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे भाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः २१.

व्यासजीने कहा हे राजन् ! उसी अवसरमें नरपति तुर्वसुने पुत्रका जातकर्मादि संस्कार कराया क्रमानुसार बालक लालित पालित हो दिन दिन बढ़नेलगा ॥ १ ॥ राजा उस पुत्रजनित संसारके सुखको प्राप्त हो " इस उदारात्मा पुत्रद्वारा मैं पितृ ऋण, ऋषिऋण और देवऋणसे छूटा " मनमें इसप्रकार विचारने लगा ॥ २ ॥ अनन्तर छठे मासमें विधिपूर्वक उसका अन्नप्राशन और तीसरे वर्षमें सम्यक्प्रकार चूडाकरणादि क्रिया सम्पादन की ॥ ३ ॥ उन समस्त क्रियाओंमें राजाने ब्राह्मण गणोंको अनेक द्रव्य, धन और गोदान तथा अन्य याचकगणोंको भी अनेकप्रकारके द्रव्य देकर सन्तुष्ट किया ॥ ४ ॥ ग्यारवें वर्षमें उसका मौञ्जीबन्धन (यज्ञोपवीत) इत्यादि उपनयनकर्म साधनकर धनुर्वेद अध्ययनमें उसको नियुक्त किया ॥ ५ ॥ तदनन्तर पुत्रको वेदाध्ययनमें पारदर्शी और राजधर्ममें विशारद हुआ देख राजाने उसका अभिषेक करनेकी इच्छा की ॥ ६ ॥ नृपतिसत्तम तुर्वसुने आदरपूर्वक पुष्य और अर्कयोगयुक्त दिनमें अभिषेकके निमित्त सम्पूर्ण सामग्री मंगाई ॥ ॥ ७ ॥ वह सर्वशास्त्रोंमें निपुण वेदके जाननेवाले ब्राह्मणोंको बुलाय यथाविधि पुत्रकी अभिषेकक्रियामें प्रवृत्त हुए ॥ ८ ॥ तीर्थ और सागरसे जल मँगाय शुभ दिनमें राजाने स्वयंही पुत्रकी अभिषेकक्रिया सम्पादनकी ॥ ९ ॥ अभिषेकके समाप्त होनेपर शीघ्रही वह राजा ब्राह्मणगणोंको भूरि भूरि धनदानपूर्वक पुत्रको राज्यभार दे स्वर्गप्राप्ती की इच्छासे वनको चलेगये ॥ १० ॥ नृपति तुर्वसुने एकवीरको राजासनपर बैठाय मंत्रीगणों का सन्मान कर संयतेन्द्रिय हो भार्याके सहित वनमें प्रवेश किया ॥ ११ ॥ अनन्तर वह मैनाक पर्वतके शिखरमें तृतीयाश्रम (वानप्रस्थधर्म) अवलम्बनपूर्वक प्रतिदिन पत्ते और फलादि आहार कर पार्वतीका ध्यान करने लगे ॥ १२ ॥ इसप्रकार उनके प्रारब्धकर्मका

अवसान होनेपर वह भार्याके सहित मृत्युको प्राप्त हो पुण्यकर्मद्वारा इन्द्रलोकको गये ॥ १३ ॥ राजाको स्वर्ग गया सुनकर एकवीर हैहयने उनकी वेदनिर्दिष्ट और्ध्व-देहिक क्रिया सम्पादनकी ॥ १४ ॥ राजपुत्र बुद्धिमान् हैहय पिताकी सम्पूर्ण उत्तर क्रियाओंका अनुष्ठान कर पिताका दिया निष्कण्टक राज्य पालन करने लगा ॥ १५ ॥ धर्मात्मा राजा एकवीर राज्य प्राप्त होनेके अनन्तर मंत्रीगणोंके विचारसे अनेक उत्तम २भोग्य द्रव्योंके सम्भोग करने लगा ॥ १६॥ वह प्रतापवान् नरपति एकदिन घोडेपर चढ मन्त्रीके पुत्रोंके सहित गंगाके तटपर गया ॥ १७ ॥ वहां विचरणकरते करते उसने देखा कि कोकिलाओंकी मधुरध्वनिसे युक्त भौंरोकी मनोहर गुंजारसे झांकारित फलपुष्पोंसे शोभित वृक्षमाला मनोहर शोभा धारण कर रही है ॥ १८ ॥ समीपही मुनियोंके दिव्य आश्रमोंमें वेदकी ध्वनि होरही है आकाशमें होमका धुआं छा रहा है मृगोंके बच्चे फिर रहे हैं ॥ १९ ॥ क्षेत्र क्यारियोंमें पके धान खडे हैं गोपी उनकी रक्षा करती हैं खिले कमलवाले सरोवरोंयुक्त बगीचे मनोहर निकुंजोंमें॥ २०॥ देखनेवालोंका मन हर जाता है प्रियाल, चम्पक, पनस, बकुल, तिलक, नीप, फूलेमंदार ॥ २१ ॥ शाल, ताल, तमाल, जामन, आम, कदम्ब देखता हुआ गंगाजलमें सौ पखुरीवाले फूले कमलको ॥ २२ ॥ जिसमें बडी गंध आती थी राजाने देखा और इस कमलके दक्षिणपार्श्वमें एक परम मनोहर कमललोचना ॥ २३ ॥ कन्याको देखा उसके अङ्गकी प्रभा सुवर्णकी समान सुशोभित केशकलाप आकुं-चित और दीर्घ ग्रीवा कम्बुकी समान, उदर कृश ओष्ठ बिम्बके फलकी समान मनोहर, सम्पूर्ण अङ्ग सौन्दर्यसम्पन्न और सुगठित स्तन कुछेक उठे हुए ॥ २४ ॥ नासिका मनोहर और सर्वाङ्ग अत्यन्त सुन्दर उस मुकुलितयौवना कामिनीको अपनी सखियोंके विरहजनित दुःखसे कातर ॥ २५ ॥ और विह्वल हुई निर्जनमें कुररीकी समान रोदन करते देखकर राजाने उससे शोकका कारण पूंछकर कहा ॥ ॥ २६ ॥ हे सुनासिके ! तुम कौन हो हे सुमुखी तुम किसकी पुत्री हो गंधर्वी वा देवकन्या कौन हो जो अकेली रोती हो ॥ २७ ॥ हे कोकिलकण्ठि ! तुम बाला हो तुमको अकेला किसने छोड़ दिया है हे प्रियदर्शने ! इस समय तुम्हारे पति अथवा पिता कहां चलेगये तुम मुझसे कहो ॥ २८ ॥ हे कुटिलनयने ! तुमको क्या दुःख है इस समय वह मुझसे कहो हे कृशोदरि ! मैं भली प्रकार तुम्हारा दुःख नष्ट करूंगा इसमें सन्देह नहीं ॥ २९ ॥ हे चारुसर्वाङ्गि ! मेरे राज्यमें कोई किसीको

पीड़ा नहीं देता हे सुदर्शने ! मेरे राज्यमें चौरभय वा राक्षसभय कुछ भी नहीं है ॥ ॥ ३० ॥ मेरे शासनसमयमें पृथ्वीपर उत्पात और सिंहभय अथवा व्याघ्रभय इत्यादि किसी प्रकारके भयकी सम्भावना नहीं ॥ ३१ ॥ हे वामोरु ! तुम गंगाके निर्जन तटपर रक्षकविहीन अकेली विलापकरती हो तुमको क्या दुःख है वह मुझसे कहो ॥ ३२ ॥ हे विमले ! मैं पृथ्वीमें प्राणीगणोंके देव अथवा मनुष्यजात दोनों-प्रकारके दुःख अत्यन्त उग्रतर होनेपरभी दूर करसक्ताहूं यही मेरा प्रधान व्रत है ॥ ॥ ३३ ॥ हे आयतनेत्रे ! तुम्हारे मनमें क्या इच्छा है कहो मैं इस समय वही करूंगा राजाके इस प्रकार कहनेपर फिर वह मनोरमा कामिनी मृदुस्वरसे कहने लगी ॥ ३४ ॥ हेराजन् ! मैं शोकका कारण कहती हूं सुनो हे भूपते ! प्राणीगणोंको विपत्ति उपस्थित न होनेसे वह व्यर्थ क्यों रोवेंगे ॥ ३५ ॥ हे महाबाहो ! मैं जिस कारण रोदन करतीहूं वह इस समय कहतीहूं हेमहाराज ! आपके देशसे अन्यतर देशमें ॥ ३६ ॥ रभ्यनामक परमधार्मिक एक राजा प्रथम निःसन्तान थे रुक्मरेखा नामक उनकी परमसुन्दरी भार्य्या थी ॥ ३७ ॥ वह चतुर साध्वी और सर्व्वसुलक्षण युक्त थी किन्तु वह पुत्रहीन होनेसे दुःखसे दुःखित हो अपने पति रभ्यराजाके प्रति कातरस्वरसे कहनेलगी ॥ ३८ ॥ हे नाथ ! मैं पुत्रहीन है इस कारण मेरे मनमें कुछभी सुख नहीं है पृथ्वीमें मेरा जीवन वृथा है फिर इस जीवनसे क्या प्रयोजन है ? ॥ ३९ ॥ राजमहिषीके दुःखित चित्तसे इस प्रकार कहनेपर राजाने वेदके जाननेवाले ब्राह्मणोंको बुलाय विधिपूर्वक उत्तमयज्ञ आरम्भ किया ॥ ४० ॥ उन्होंने पुत्रप्राप्तिकी इच्छासे शास्त्रमें कहेहुए अनेकानेक द्रव्य दिये जब अनेकानेक घृतराशिकी आहुति दी जानेलगी तब उस प्रदीप्त अग्निसे सर्वाङ्गसुन्दरी सर्वसुलक्षण-युक्त एक कन्या प्रगट हुई ॥ ४१ ॥ उस कन्याके दांतोंकी पंक्ति अत्यन्त मनोहर दोनों भौंये अतिशोभायमान मुख पूर्णचन्द्रमाकी समान बिम्बासे होठ ॥ ४२ ॥ अंगप्रभा कनककी समान मनोहर, केश सूक्ष्म और घुंघराले, कर और चरण लाल वर्ण, दोनों नेत्र लालकमलकी समान और सम्पूर्ण अङ्गप्रत्यङ्ग अत्यन्त कोमल थे ॥ ॥ ४३ ॥ अग्निसे उत्पन्न होनेपर होताने उस सुमध्यमा क्षीणाङ्गी कन्याको दोनों हाथोंमें लेकर राजासे कहा ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! इस सर्वसुलक्षण कन्याको ग्रहण करो होमके समय अग्निसे एकावली मालाकी समान उत्पन्न हुई है ॥ ४५ ॥ अतएव यह कन्या पृथ्वीमें एकावलीनामसे विख्यात होगी. हे पृथ्वीपालक ! इस

पुत्रकी समान सुलक्षण कन्याको ग्रहणकर आप सुखी हूजिये ॥४६॥ हे राजेन्द्र ! देवदेव विष्णुने आपको यह कन्यारत्न दिया है इससे आप सन्तोष प्राप्त कीजिये राजाने होताका वचन सुन इस शोभायमान कन्याको देखकर ॥ ॥ ४७ ॥ प्रसन्नचित्त हो उनके हाथसे उस मनोहर कन्याको लेलिया अनन्तर उस वरानना कन्याको लेकर अपनी स्त्री देवी रुक्मरेखाके निकट जाकर कहा ॥ ४८ ॥ हेसुभगे ! इस कन्याको ग्रहणकर राज्ञी रुक्मरेखा उस कमलके समान नेत्रोंवाली मनोरम कन्याको ले ॥ ४९ ॥ पुत्रप्राप्तिकी समान सुख अनुभव करनेलगी अनन्तर राजाने कन्याके जातकर्मादि मंगलकारी सम्पूर्ण कर्म्म ॥ ५० ॥ औरस पुत्रजन्मके समान किये राजा अपना यज्ञ समाप्त कर ब्राह्मणगणोंको अनेक दक्षिणा ॥ ५१ ॥ प्रदानपूर्व्वक विदाकर अत्यन्त आनन्दित हुए वह असितापाङ्गी कन्या पुत्रवत् वृद्धिको प्राप्त हो लालित और पालित हुई दिनदिन बढ़नेलगी॥५२॥ राजाकी स्त्री रुक्मरेखा उस कन्याको प्राप्तकर अत्यन्त प्रसन्नहुई, उस दिनही पुत्रजन्मोत्सवकी समान उत्सव आरम्भ हुआ ॥ ५३ ॥ वह कन्या पुत्रकी समान अत्यन्त प्रियहो बढ़नेलगी और सबकी प्रिय हुई हेमन्मथमूर्त्ते ! आप राजा और अत्यन्त बुद्धिमान है मैं आपके समीप सम्पूर्ण वृत्तान्त निवेदन करूंगी श्रवण कीजिये मैं उसी राजाके मंत्रीकी कन्या हूं ॥ ५४ ॥ और मेरा नाम यशोवती है वह एकावली और मैं समानरूप और समान वयसवाली थी, अत एव राजाने क्रीड़ाके निमित्त मुझको उसकी वयस्या सखी बनादिया था ॥ ५५ ॥ मैं दिनरात उसकी प्रियसखी हो समय व्यतीत करती थी एकावली जिस स्थानमें गंधयुक्त, कमलको देखती ॥५६॥ उसी स्थानमें रहना और क्रीडा करना अच्छा समझती अन्य कहीं उसको सुख प्राप्त नहीं होता दूरस्थित गंगाके तटपर अनेक कमल उत्पन्न होते हैं॥५७॥ एकावली मेरे और अन्यान्य सखियोंके सहित प्रसन्नतापूर्वक वहां जाती मैंने एकदिन राजासे कहा हेराजन् ! आपकी एकावली प्रतिदिन ॥ ५८ ॥ दूर निर्ज्जनवनमें कमल सरोवर देखनेको जाती है अनन्तर राजानें उसको निषेधकिया और अपने घरमें जलाशय बनाय उसमें अनेक कमलिनी लाय आरोपित की ॥ ५९ ॥ क्रमानुसार जब उसमें सम्पूर्ण कमल खिले तब सब भ्रमरगण आय उसमें मधुपान करने लगे तथापि वह कमलप्राप्त होनेकी इच्छासे बाहर जानेलगी ॥ ६० ॥ तब राजा उसके संग सम्पूर्ण

शस्त्रधारी रक्षकगण भेजनेलगे वह कृशाङ्गी नृपनन्दिनी रक्षकगणसे रक्षित हो और अन्यान्य सखियोंके सहीत ॥ ६१ ॥ क्रीड़ाके निमित्त गंगाके जलमें प्रतिदिन आती फिर क्रीड़ा समाप्त होनेपर घरको जाती ॥ ६२ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषायामेकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः २२.

यशोवतीने कहा हे राजेन्द्र! एकदिन एकावली प्रातःकालके समय उठकर सखियोंके सहित गंगातटको चली सखियें उसका चंवर व्यजन करनेलगीं ॥ १ ॥ रक्षकगण वस्त्रपहन भांतिभांति अस्त्रशस्त्र ग्रहणकर उसके संग संग गये क्रमानुसार वह क्रीड़ा करनेके लिये इस स्थानमें शोभायमान कमलोंके निकट उपस्थित हुई ॥ २ ॥ मैंभी उसके संग कमल लेकर खेलतेखेलते गंगातटपर आई और दोनों जनी अप्सराओंके सहित कमल लेकर क्रीड़ा करनेलगीं ॥ ३ ॥ जब हम दोनों क्रीड़ामें अत्यन्त आसक्त हुई तब कालकेतुनामक विख्यात एक बलवान् दानव परिघ असि गदा चाप बाण और तोमर ॥ ४ ॥ इत्यादि अस्त्रधारी अनेकराक्षसोंके सहित सहसा उस स्थानमें आनकर उपस्थित हुआ ॥५॥ एकावली उत्तमउत्तम कमल लेकर क्रीड़ा कररहीथी इसी समयमें कालकेतुने उसको इसप्रकार रूपयौवनसम्पन्न कामदेवकी रतिके समान देखा ॥ ६ ॥ हे राजन्! मैंने तब एकावलीसे कहा देखो यह एक कौन दैत्य आनकर उपस्थित हुआ हे अम्बुजेक्षणे! इस समय चलो हम रक्षकगणोंके मध्यस्थलमें प्रवेश करैं ॥ ७ ॥ हे नृपनन्दन! तब सखी और मैं दोनों इस प्रकार परामर्श कर भयसे तत्काल अस्त्रधारी रक्षकगणोंके मध्यभागमें गईं ॥ ८ ॥ कालकेतु उस मनोमोहिनी तरुणी कामिनीको देखतेही कामबाणसे पीड़ित हो गुर्वी गदा ग्रहण पूर्वक शीघ्रतासहित हमारे सामने आनकर उपस्थित हुआ ॥ ९ ॥ और रक्षकगणोंको अलग करके उस कमलकी समान नेत्रोंवाली कृशोदरी सखीको पकड़लिया तब वह बाला भयसे कांपतेकांपते रोनेलगी ॥ १० ॥ उसको देखकर मैंने उस दानवसे कहा इसे छोड़ मुझको पकड़ वह कामार्त्त दानव मुझको छोड़ सखीको लेजानेलगा ॥ ११ ॥ रक्षकगण "ठहर ठहर कन्याको लेकर मत भाग तुझको विलक्षण शिक्षा देते हैं" यह कह उस महाबली दानवको लौटार उसके संग घोरतर आश्चर्ययुक्त संग्राममें प्रवृत्त हुए ॥ १२ ॥ उसके समान बलयुक्त क्रूरतर सम्पूर्ण

राक्षससेना स्वामीका कार्य साधनकरनेको उत्साहित हो रक्षकगणोंके सहित युद्ध करनेलगी ॥ १३ ॥ महाबल कालकेतु फिर स्वयंभी उस भीषण संग्राममें प्रवृत्त हो रक्षकगणोंको रणस्थलमें मार सखीको ले राक्षस सैन्यगणोंके सहित अपने नगरको जानेलगा ॥ १४ ॥ उस बालाको दानवसे पकड़ाहुआ भयसे रोतेहुए देख मैं भी सखीके पीछेपीछे जानेलगी ॥ १५ ॥ जिससे वह मुझको देखसके ऐसे मार्गसे चीत्कार करती हुई कांपतेकांपते चलनेलगी ॥ १६ ॥ सखीभी मुझको देखकर कुछेक स्वस्थ-हुई मैं फिर उसके समीप पुकारते पुकारते गई ॥ १७ ॥ सखी अत्यन्त दुःखसे कातर हुई थी मुझको निकट देख स्तम्भित और स्वेदजलमें प्लुवित हो मेरा कण्ठ पकड़ अधिकतर दुःखित हो रोनेलगी ॥ ॥ १८ ॥ तब कालकेतु मेरे प्रति प्रीति प्रकाशकर कहनेलगा कि तुम्हारी यह चञ्चलनेत्रोंवाली सखी अत्यन्त डरी है तुम इसको समझाओ ॥ १९ ॥ हे प्रिये! मेरी नगरी देवलोककी समान है उसमें तुम अभी चलोगी और मैंभी अभीसे तुम्हारी प्रणयमें बंधकर तुम्हारा दास हुआ तुम कातर होकर रोओ मत सावधान हो ॥ २० ॥ हे सुलोचने! मेरे इस वचनसे समझाकर तुम प्रियसखीसे कहो यह कहकर उस दुष्टने मुझको उस मनोहर रथमें चढ़ाय ॥ २१ ॥ अपने पार्श्वमें बैठाय महासेनाके सहित प्रफुल्लमुखसे अपने मनोहर पुरमें शीघ्र गमन किया ॥ २२ ॥ अनन्तर दोनो सखियोंको सुधाधवलित मनोहर घरमें रखकर हमारी रक्षाके निमित्त करोड़ करोड़ राक्षस नियुक्त करदिये ॥ २३ ॥ दूसरे दिन उस दैत्यने मुझसे निर्ज्जनमें पुकारकर कहा तुम्हारी सखी पिता माताके विरहसे अत्यन्त कातर होकर शोक करतीहै तुम इसको समझाकर सावधान करो ॥ २४ ॥ हे सुश्रोणि! तुम पत्नी होकर यथाभिलाष सुख भोगकरो, हेचन्द्रानने! यह राज्य तुम्हाराही है और मैं तुम्हारा निरन्तर दास हूं मेरे इन सब वचनोंसे अपनी सखीको समझादो ॥ २५ ॥ मैंने उसके यह सुननेके अयोग्य कर्कश वचन सुनकर कहा हे प्रभो! मैं इससे अप्रिय वचन नहीं कहसक्ती, तुम स्वयंही उससे समझाकर कहो ॥ २६ ॥ मेरे इस प्रकार कहनेपर फिर दुष्ट दानवने कामबाणसे व्याकुलचित्त हो उस कृशोदरी प्रियसखीसे विनयवचनद्वारा कहा ॥ २७ ॥ हे प्रिये! तुमने इस समय मुझपर वशीकरण मंत्रका प्रयोग किया है, हे कान्ते! इसीकारण मेरा हृदय तुम्हारे एकान्तवशीभूत हुआ है ॥ २८ ॥ इससेही मुझको तुम्हारे दासत्वमें बद्ध किया है. मैंभी तुम्हारा

दास हुआ, यह मेरा स्थिरनिश्चय जानो हे प्रेयसि! अब मैं मन्मथशरसे अत्यन्त पीड़ित और विवश होगया हूं अतएव हे कृशोदरि! तुम इस समय मुझको भजो- ॥ २९ ॥ हे रम्भोरु! यौवन अत्यन्त दुर्लभ और चञ्चल वस्तु है हे कल्याणि? तुम अब मुझको पतिभावसे आलिङ्गनकरके उसको सफलकरो ॥ ३० ॥ एकावलीने कहा हे महाभाग! पहले राजाने मुझे एक राजाके पुत्रको देनेकी कल्पना की थी मैं ने भी उस हैहय राजाको पतिरूपमें वरण किया है॥ ३१ ॥ आप भी तो शास्त्रके निश्चयको जानते हैं इस समय मैं सनातनधर्म और कन्याधर्म त्यागकर किसप्रकार दूसरे पतिको आलिङ्गन करूं ॥ ३२ ॥ पिता जिसको दान करते हैं कन्या उसीको पतिरूपमें ग्रहणकरती है कन्या सर्वदाही पराधीन है वह कभी स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं करसक्ती ॥ ३३ ॥ एकावलीके इसप्रकार कहनेपरभी वह पापिष्ठ दैत्य कामबाणसे मोहित हो शान्त नहींहुआ और उस विशालाक्षी सखीको तथा उसके पास बैठनेवाली मुझको भी न छोड़ा ॥ ३४ ॥ उसका पुर पातालविवरके मध्यमें अत्यन्त संकटस्थानमें अधिष्ठित है, सदा राक्षसगण उसकी रक्षा करते हैं परिखा (खाई) से युक्त मनोहर दुर्ग बना है ॥ ३५ ॥ मेरी प्राणवल्लभा प्रियसखी उसी स्थानमें दुःखित चित्तसे वास करती है मैं इस स्थानमें उसके विरहदुःखसे अत्यन्त कातर और अस्थिर होकर फिरती हूं ॥ ३६ ॥ एकवीरने कहा हे वरानने! तुम उस दुरात्माके पुरसे इस स्थानमें किस प्रकार आई इस विषयमें मुझको महान् आश्चर्य उत्पन्न होता है, तुम मुझसे शीघ्र इसका कारण कहो ॥ ३७॥ हे भामिनि! तुम जो कुछ कहती हो उससे मुझको संशय उत्पन्नहोता है तुम्हारी प्रियसखीको उसके पिताने हैहयके हाथमें समर्पणकरनेके निमित्त स्थिर कर रखाहै ॥ ३८ ॥ मेराही नाम हैहय और मैंही हैहय नामक राजा हूं, इस समय पृथ्वीमें हैहयनामक दूसरा कोई राजा विद्यमान नहीं है तुम्हारी वह सुलोचना प्रियसखी क्या मेरे निमित्त ही कल्पित हुई है ॥ ३९ ॥ हे भामिनि! तुम मेरा यह संशयजाल छुड़ाओ मैं उस राक्षसाधमको मारकर इसी स्थानमें तुम्हारी प्रियसखीको लाऊंगा इसमें सन्देह नहीं ॥ ४० ॥ हे सुव्रते! यदि तुम जानतीहो तो शीघ्र मुझको वह स्थान दिखाओ वह जो इतना दुःख पाती है वह क्या उसके पितासे किसीने न कहा ॥ ४१ ॥ यह जिसकी प्रियकन्या है उनकी वह प्रियकन्या हरण हुई है सो क्या वह नहीं जानते? और उस राक्षसाधमके हाथसे उसको छुड़ानेके निमित्त क्या किसी प्रकारका

उद्योग किया है ? ॥ ४२ ॥ अपनी कन्याको बन्दी हुआ जानकरभी वह राजा किसप्रकार स्थिर हो रहेहैं ? अथवा वह राजा क्या उसके छुड़ानेमें असमर्थ हैं ? तुम शीघ्र इन सब विषयोंका कारण कहो ॥ ४३ ॥ हे सरोजाक्षि ! तुमने अपनी प्रियसखीके अलौकिक गुणकीर्त्तन करके मेरा मन हरण किया है और मुझको कामदेवके अत्यन्त वशीभूत किया है ॥ ४४ ॥ हाय ! मैं कब उस मनोरमा कान्ताको अत्यन्त संकटसे छुडाकर प्रीतिप्रफुल्लितनेत्रोंसे देखूंगा ! हे प्रियसखि ! मेरा हृदय इसप्रकार उच्च मनोरथमें आरोपित किया ॥ ४५ ॥ हे सुभाषिणि ! मैं किस उपायसे उस अत्यन्त दुर्गमपुरीमें जासकूंगा ! अथवा तुम किस प्रकार उस संकटस्थानसे इस स्थानमें आई वह मुझसे कहो ॥ ४६ ॥ यशोवतीने कहा हेराजन् ! मैंने बाल्यावस्थाके समय एक सिद्ध ब्राह्मणसे बीज और ध्यानके सहित भगवतीका मंत्र प्राप्तकिया है ॥ ४७ ॥ उस स्थानमें अवस्थित होकर मनमें विचार किया कि, इस समय मैं सर्व्वदा उन्ही चण्डविक्रमा शीघ्रमनोरथकी देनेवाली चण्डिकाकी आराधना करूं ॥ ४८ ॥ भक्तपर कृपा करनेवाली उन्हीं सर्व्वार्थसाधिनी शक्तिकी आराधना करनेसे अवश्यही वह मेरी प्रियसखीको बन्धनसे छुड़ावेंगी ॥ ४९ ॥ वही देवी भगवती स्वरूपसे निराकार होकरभी और किसीका आश्रय ग्रहण नकरके केवल अपनी शक्तिसेही इस विश्व ब्रह्माण्डकी सृष्टि और पालन तथा कल्पान्तकालमें संहार करती है ॥ ५० ॥ मनमें इस प्रकार चिन्ताकर उन्हीं कल्याणस्वरूपिणी रक्तवसना और लोहितलोचना विश्वेश्वरी देवीका ध्यान और मनमनमें उनके रूपको स्मरणकर मंत्र जपने लगी ॥ ५१ ॥ मेरे केवल एकमास समाधिअवलम्बनपूर्वक देवीकी उपासना करनेपर चण्डिका देवी मेरे भक्तिभावसे ॥ ५२ ॥ स्वप्नमें प्रगट हो अमृतवचनद्वारा मुझसे कहने लगी तू सोरही है ॥ ५३ ॥ उठ शीघ्र उस मनोहर गंगाके तटपर जा वह शत्रुओंका नाश करनेवाले महाबाहु एकवीर राजा श्रेष्ठ हैहय उस स्थानमें आवेंगे महामुनीश्वर दत्तात्रेयने उनको महाविद्या नामक मेरा मंत्र दिया है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ राजा भी उस मंत्रद्वारा सदा भक्तिभावसे मेरी पूजा करते हैं उनका मन मुझमेंही अत्यन्त आसक्त और सदा मेरीही पूजामें निरत रहता है अधिक॥५६॥क्या वह राजा मत्परायण होकर सर्वजीवोंके अन्तर्यामिरूपसे मेराही ध्यान करते हैं वही महाबुद्धि रमापुत्र गंगाके तटपर विहारार्थ आनकर तुम्हारा दुःख दूर करैंगे ॥ ५७ ॥ सर्व-

शास्त्रके जाननेवाले राजा एकवीर घोरसमरमें राक्षसोंको मार एकावलीको छुडावेंगे वह तुम्हारी रक्षा करेंगे ॥ ५८ ॥ अन्तमें उन्होंने मुझसे कहदिया है कि तदनन्तर उस सर्वसुलक्षणयुक्त विद्वान् सुशोभन राजपुत्रको तुम्हे पतित्वमें वरण करना उचित है ॥ ५९ ॥ यह कह उनके अन्तर्धान होनेपर मैं तत्काल जागरित हुई तदनन्तर कमलनयना प्रियसखीसे उस स्वप्नका वृत्तान्त और देवीकी आराधनाका विषय कहा ॥ ६० ॥ यह सुनकर उसका वदन प्रफुल्लित हुआ वह शुचिस्मिता एकावली अत्यन्त सन्तुष्ट हो मुझसे भलीभांति कहने लगी ॥ ६१ ॥ हे प्रियसखि ! कार्यसिद्धिके निमित्त तुम शीघ्र जाओ वह सत्यभाषिणी भगवती अम्बिका देवी मुझको बन्धनसे छुडावेगी॥६२॥मेरी उस प्रणयिनी सखीनें जब मुझको इसप्रकार आज्ञा दी तब मैं उसी स्वप्नके कारण उस स्थानसे निकलना उचित समझ शीघ्र निकली ॥ ६३ ॥ हे नृपनन्दन ! महादेवीके प्रसादसे मुझको मार्ग ज्ञान और द्रुतगति प्राप्त हुई ॥ ६४ ॥ यह मैं ने आपसे अपने दुःखका कारण वर्णन किया हे वीर ! आप कौन हैं और किसके पुत्र हैं ? वह आप मुझसे सत्य कहिये ॥ ६५ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः २३.

व्यासजीने कहा हे राजन् ! वह प्रतापयुक्त कमलापुत्र हैहय यशोवतीका यह वचन सुन प्रसन्न हो उससे कहनेलगे॥ १ ॥ हे रम्भोरु ! तुमने जो ललित वृत्तान्त पूंछा वह मैं कहता हूं सुनो मैं सिन्धुसुता लक्ष्मीका पुत्र हैहय हूं मैं पृथ्वीमें एकवीर नामसे विख्यात हुआ हूं ॥ २ ॥ इससमय तुमने मेरा मन पराधीन करदिया मैं तुम्हारी प्रियसखीके विरहमें अत्यन्त पीडित हो इस समय क्या करूं? कहांजाऊं ॥ ॥ ३ ॥ तुमने पहले उसका अलौकिक रूप वर्णन किया उससे मन कामबाणद्वारा आहत हो विह्वल हुआ है ॥ ४ ॥ इसके उपरान्त फिर तुमने उसका गुण वर्णन किया इससे मेरा मन एकवारही मोहित हुआ है अनन्तर जब तुमने फिर राक्षसका कहा हुआ वचन मुझसे कहा तब मेरे मनमें अत्यन्त आश्चर्य उत्पन्न हुआ ॥ ५ ॥ तुम्हारी प्रियसखी एकावलीने उस दुष्टदानवके सम्मुख कहा था कि "मैं ने पहले हैहयनामक राजाको वरणकिया है उनके अतिरिक्त अन्य किसीकोभी वरण नहीं

करूंगी यही मेरा स्थिर निश्चय है" ॥ ६ ॥ हे सुन्दरि! तुमने मुझसे यह वचन कहकर इस समय मुझको उसका भृत्य करदिया हे सुकेशि! इस समयमें तुम्हारा क्या कार्य साधनकरूं सो मुझसे कहो ॥ ७ ॥ मैं उस दुरात्मा राक्षसका वासस्थान नहीं जानता मैं कभी उसकी पुरीमें नहीं गया हे सुलोचने! तुम मुझको उस स्थानमें जानेका उपाय बतादो॥८॥ क्यों कि तुम्ही मुझको उस स्थानमें लेचलनेको समर्थ होगी, अतएव जिस स्थानमें तुम्हारी वह सर्वाङ्गसुन्दरी सखी वास करती है तुम शीघ्र उसी स्थानमें मुझको लेचलो ॥ ९ ॥ तुम्हारी प्रियसखी राजनन्दिनी अत्यन्त शोकसे सन्तप्त हुई है मैं उस दुराचारी राक्षसको मार शीघ्रही उसको छुड़ाऊंगा इसमें सन्देह नहीं ॥ १०॥ हेकल्याणी! मैं तुम्हारी प्रियसखीको छुड़ाकर तुम्हारी नगरीमें लेजाऊंगा और उसको उसके पिताको हाथमें समर्पण करूंगा॥ ११॥ तदनन्तर यह शत्रुनाशन राजा अपनी कन्याका विवाह कार्य सम्पादन करेंगे बोध होता है कि यही तुम्हारी इच्छा है हे प्रियंवदे! मेरी भी इसीप्रकार वासना जानो ॥ ॥ १२ ॥ हे वरवर्णिनि! इस समय तुम्हारे उद्यमसे यह मनोरथ पूर्ण होगा तुम शीघ्र मुझको उसकी पुरी दिखाय मेरा पराक्रम देखो ॥ १३ ॥ हे चन्द्रानने! तुम्ही मेरा प्रिय कार्य साधन करनेमें समर्थ होगी कारण कि बोध होता है जिससे मैं उस दुराचारी पराई स्त्रीके हरनेवाले राक्षसको मारनेमें समर्थ हूं तुम इसीप्रकारके कार्यका विधान करो ॥ १४ ॥ इस समय तुम उस राक्षसकी दुर्गम पुरीका मार्ग दिखादो व्यासजीने कहा हे महाराज! यशोवती राजपुत्रका वह प्रिय वचन सुनकर आनन्दित हुई ॥ १५ ॥ और आदरपूर्वक उस कमलापुत्र हैहय राजासे राक्षसकी पुरीमें जानेका उपाय कहने लगी हे राजेन्द्र! आप भगवतीका सिद्धिप्रद मंत्र ग्रहण कीजिये ॥ १६ ॥ तो मैं अभी आपको उसकी वह राक्षसरक्षित पुरी दिखा दूं हे राजन्! मेरे संग चलनेके निमित्त आप अपनी महती सेनाके सहित सुसज्जित हूजिये ॥ १७॥ कारण कि उस स्थानमें जातेही आपको उसके सहित युद्ध करना होगा कालकेतु स्वयं महावीर और बलविक्रमशाली राक्षसगणोंसे परिवृत है ॥ १८ ॥ अतएव आप भगवतीका मंत्र ग्रहणकर मेरे संग चलिये मैं आपको उस दुरात्माके पुरका मार्ग दिखाये देती हूं ॥ १९ ॥ आप उस पापाचारी राक्षसाधमको मारकर मेरी प्रिय सखीको छुड़ाइये हैहय एकवीरने यशोवतीका वह वचन सुन प्राणिगणोंके हितकर ज्ञानिप्रवर दैवयोगसे आए हुए महर्षि दत्तात्रेयके निकटसे त्रिलोकी तिलक-

नामक योगेश्वरीका महामंत्र ग्रहण किया ॥ २० ॥ २१ ॥ तब नृपवरको उस मंत्रके प्रभावसे सम्पूर्ण विषय जाननेकी और अप्रतिहत प्रभावसे सर्वत्र जानेकी शक्ति प्राप्त हुई तब उसके सहित उस दुर्गम पुरको चले ॥ २२ ॥ अनन्तर हैहय राजा यशोवतीके सहित बड़ी सेनासे युक्त हो पन्नगगणोंसे युक्त पातालपुरीकी समान घोरतर राक्षससैन्यसे रक्षित उस राक्षसकी दुर्गम पुरीमें शीघ्रतासे गये ॥ २३ ॥ तब राक्षसराजके दूतगण राजाको आते हुए देख भयातुर हुए और चीत्कार करते करते शीघ्रतासे कालकेतुके निकट गये ॥ २४ ॥ कालकेतु कामबाणसे मोहित हो एकावलीके समीप बैठाहुआ अनेकप्रकारके विनययुक्त वचन कहरहा था॥२५॥ दूतगणोंने इसीसमय सहसा आनकर उससे कहा हेराजन्! इस कामिनीकी सखी यशोवती एक ससैन्य राजकुमारके सहित इस स्थानमें आती है ॥२६॥ हे महाराज! वह राजकुमार जयन्त है अथवा कार्त्तिकेय है यह मैं निश्चय नहीं कहसक्ता जो हो वह अपने वाहनके सहित बलोन्मत्त हो आते हैं ॥ २७ ॥ हे राजेन्द्र! संग्राम उपस्थित हुआ है, इस समय आप भलीभांति बलवान् हो देवपुत्रके सहित युद्ध कीजिये अथवा इस कमलेक्षणा कामिनीका त्याग कीजिये ॥ २८ ॥ हे राजन्! इस स्थानसे तीन योजन पर्य्यन्त वह सैन्य स्थित है इस समय आप सज्जित हूजिये शीघ्र दुन्दुभिके घोषसे युद्धकी घोषणा कीजिये ॥ २९ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन्! दूतोंका यह वचन सुन कालकेतुने क्रोधसे मूर्छित हो अनेक बलवान् शस्त्रधारी राक्षसोंको भेजा ॥ ३० ॥ और उनसे कहा कि हे राक्षसगण! तुम शस्त्रपाणि हो शीघ्र उनके सन्मुख होओ कालकेतुने उनको इस प्रकार आज्ञा देकर विनयपूर्वक ॥ ३१ ॥ पास बैठी हुई अत्यन्त दुःखित एकावलीसे पूंछा हे कृशोदरि! यह कौन आता है ? तुम्हारा पिता अथवा अन्य कोई पुरुष तुमको छुड़ानेके निमित्त सैन्यगणोंके सहित आता है ॥३२॥ यह तुम मुझसे सत्य कहो यदि तुम्हारे विरहसे कातर हो तुमको लेनेको तुम्हारे पिता आते हैं॥३३॥यह यदि मैं भलीभांति जानलूं तो मैं उनके संग संग्राममें प्रवृत्त न हूंगा बरन उनको घरमें लाय उत्तम उत्तम अश्वरत्न और वस्त्रादिसे उनकी पूजा करूंगा ॥ ॥ ३४ ॥ और गृहमें आनेपर यथाविधि उनका आतिथ्य सत्कार करूंगा और यदि अन्य कोई पुरुष आता है तो शाणित शरसे उसका प्राणसंहार करूंगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३५ ॥ तुम निश्चय जानों कि अन्य कोई जो तुमको छुडा-

नेको आता है तो मरनेके निमित्त सर्व्वसंहारक कालने उसको मेरे निकट लाकर उपस्थित किया है अतएव हे विशालाक्षि ! मुझको महाबलवान् और दुर्द्धर्ष कालरूप न जानकर कौन मन्दबुद्धि पुरुष आताहै सो तुम मुझसे कहो ॥ ३६ ॥ एकावलीने कहा हे महाभाग ! यह कौन पुरुष शीघ्र वेगसे इस स्थानमें आता है वह मैं नहीं जानती हेमहाराज! मैं आपके बन्धनमें रहकर उसको किसप्रकार जानसक्ती हूं ? ॥ ३७ ॥ किन्तु तोभी यह पुरुष मेरा पिता अथवा भ्राता नहीं है अन्य कोई महाबल पुरुष होगा ॥ ३८ ॥ वह किस कारण इस स्थानमें आता है वह मैं निश्चय नहीं जानती दैत्यने कहा हमारे दूतगण इस प्रकार कहते हैं कि तुम्हारी वयस्या सखी यशोवती ॥ ३९ ॥ उस वीरको संगलिये अत्यन्त उद्यमके सहित इस स्थानमें आती है चतुर कार्य्यमें निपुण तुम्हारी वह प्रियसखी इस समय कहां गई है ॥ ४० ॥ हे कमलनयने ! मेरे विरुद्धसे युद्ध करनेमें समर्थ हो इस त्रिभुवनमें मेरा इसप्रकार कोई शत्रु नहीं है व्यासजीने कहा हेराजन् ! इसी समयमें अन्यअन्य दूत भीत और त्वरान्वित हो उसी स्थानमें उपस्थित हुए ॥ ४१ ॥ और घरमें बैठे कालकेतुसे कहने लगे हे महाराज ! नगरके समीप सेना आगई है आप इस समयभी किस कारण निश्चिन्त और स्थिर घरमें बैठे हैं ॥ ४२ ॥ शीघ्र महती सेनाको संग लेकर नगरीसे निकलिये तब महाबल कालकेतु उनका यह वचन सुन ॥ ४३ ॥ रथपर चढ़ शीघ्र अपनी नगरीसे निकला इधर मनोरमा कामिनीके विरहसे व्याकुल हैहयराजा भी घोड़ेपर चढ़ सहसा उस स्थानमें आनकर उपस्थित हुए तब उस स्थानमें दोनोंका घोर वृत्र इन्द्रकी समान संग्राम आरम्भ हुआ ॥ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ दोनोंही परस्परके ऊपर तीक्ष्ण सम्पूर्ण अस्त्रशस्त्र निक्षेपकरनेलगे, उससे दिङ्मण्डल प्रदीप्त हो उठा तब भीरुगणोंको भयंकर घोर युद्ध होनेमें ॥ ४६ ॥ सिन्धुजाके पुत्र हैहयने भयंकर गदाद्वारा दैत्यराजपर आघात किया अनन्तर उस दैत्यपतिने वज्रसे आहत पर्वतकी समान पृथ्वीमें गिरकर प्राणत्याग किया ॥ ४७ ॥ तब सम्पूर्ण राक्षस भीत हो चारोंओरको भागनेलगे तदनन्तर यशोवती अत्यन्त प्रसन्नचित्त हो अतिवेगसे एकावलीके निकट जाय ॥ ४८ ॥ आश्चर्ययुक्त प्रियसखीसे मधुरवचन कहनेलगी हे सखि ! हे सखि ! आओ आओ वह दानव मरगया ॥ ४९ ॥ नृपतिपुत्र वीरवर एकवीरने दारुण युद्धकर दैत्यपतिको मारा है वह राजा श्रमातुर हो इस समय सैन्यमें स्थिति करते हैं ॥ ५० ॥ उन्होंने पहले मुझसे

तुम्हारा समस्तरूप और गुण श्रवण किया है इससे अब वह तुम्हारा दर्शन प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं हे कुटिलनयने ! इस समय तुम उस कामदेवकी समान महीपालको देखकर नेत्र और मन चारितार्थ करो ॥ ५१ ॥ मैं ने पहले गंगाके तटपर उनसे तुम्हारा रूपगुणादि वर्णन किया है, इसकारण तुम्हारे प्रति उनको अनुराग उत्पन्न हुआ है इस कारण अब वह विरहातुर हो ॥ ५२ ॥ तुम्हारा मनोहर रूप देखनेकी इच्छा करते हैं एकावलीने प्रियसखीका यह वचन सुन उनके निकट जानेके निमित्त मनमें निश्चय किया ॥ ५३ ॥ किन्तु कुमारी सुलभ भयसे भीत और लज्जित होनेलगी उसने जाना कि मैं कुमारी हूं किसप्रकार उस नृपनन्दनका मुख देखूं ॥ ॥ ५४ ॥ वह कामार्त्त हो मुझको पकडेंगे इस प्रकार चिन्तामें आकुल हो वह मलिनमूर्ति और मलिनाम्बरधारिणी नृपनन्दिनी एकावली यशोवतीके सहित नरयान पर चढ़कर स्कन्धावार (छावनी) में गई उस विशालाक्षी राजकन्याको आताहुआ देख राजपुत्रने कहा ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ हे सुन्दरी ! मेरे दोनों नेत्र तुमको देखनेकेलिये तृषित हो रहे हैं तुम दर्शन देकर मेरे नेत्र और मनको चारितार्थ करो नृपतिपुत्रको कामातुर और राजकुमारीको अत्यन्त लज्जित देखकर ॥ ५७ ॥ शिष्टाचारवेदिनी नीतिज्ञानसम्पन्न यशोवतीने राजपुत्रसे कहा हेनृपनन्दन ! प्रियसखीके पिताने इसको आपके हाथमें प्रदान करनेकी इच्छा की है ॥ ५८ ॥ और यहभी आपके वशीभूत है अतएव इसके सहित आपका मिलन अवश्यही होगा हेराजेन्द्र ! आप कालकी प्रतीक्षा कीजिये इसको पिताके निकट लेचलिये ॥ ५९ ॥ वह इसकी विवाहविधि सम्पन्न कर इसे आपको प्रदान करेंगे यह स्थिर निश्चय जानिये राजा उसका वचन यथार्थ और निश्चय जानकर सैन्यके सहित ॥ ६० ॥ उन दोनों कामिनियोंको एकावलीके पिताके घर लेगये एकावलीके पिता अपनी पुत्रीको आताहुआ सुन प्रथम पुलकित हुए ॥ ६१ ॥ और मंत्रीगणोंके सहित परिवेष्टित हो शीघ्र उसके सन्मुख गये राजा बहुत दिनोंके उपरान्त मलिनवसना कन्याको देखकर अत्यन्त प्रसन्नहुए ॥ ६२ ॥ अनन्तर यशोवतीने राजासे वह सम्पूर्ण वृत्तान्त विस्तारपूर्वक वर्णनकिया तब राजा मंत्रीगणोंके सहित मिलित हो राजपुत्रको आदरपूर्वक घर लेआये ॥ ६३ ॥ और शुभदिनमें विधिपूर्वक उनके सहित एकावलीका विवाहकार्य्य सम्पादनकिया तदनन्तर वसनभूषणरत्न अलङ्कार और गृहोपकरण इत्यादि अनेकसामग्री सम्भारदान और विधिपूर्वक पूजाकर ॥ ६४ ॥ पुत्रीको हैहयके संग भेजदिया राजाके मंत्रीनेभी नृपनन्दनके

सहित अपनी नन्दिनीकी प्रणयक्रिया सम्पादनकर उनके संग भेजदिया इस प्रकार विवाहकार्य सम्पन्न होनेपर फिर सिन्धुजापुत्र अत्यन्त आनन्दित हो ॥ ६५ ॥ घर जाय प्रियाके सहित अनेकप्रकार सुखसम्भोगमें निरत हुए अनन्तर एकावलीके गर्भसे हैहयराजाके कृतवीर्यनामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ६६ ॥ इस कृतवीर्यके पुत्रकार्तवीर्य नामसे विख्यात है. हे महाराज ! यह मैंने आपसे हैहयवंशकी उत्पत्तिका विवरण वर्णनकिया ॥ ६७ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः २४.

जनमेजयने कहा हे भगवन् ! आपके मुखकमलसे निकलाहुआ अमृतके समान दिव्यकथारूप मधुररस पान करके मेरी तृप्ति नहीं हुई ॥ १ ॥ आपने मुझसे हैहयवंशकी उत्पत्तिका विचित्र और विस्मयप्रद उपाख्यान विस्तारपूर्वक वर्णनकिया ॥ २ ॥ किन्तु हे मुनिवर ! इस विषयमें मेरे हृदयमें एक परम कौतूहल उत्पन्न हुआ है देखो कमलापति भगवान् विष्णुने देवतागणोंकेभी देवता और सम्पूर्ण जगत्के अधिनाथ तथा सृष्टिस्थिति प्रलयके कर्त्ता थे ॥ ३ ॥ तो भी उन पुरुषोत्तम भगवान् हरिनेभी अश्वरूप धारणकिया वह अच्युत और स्वतन्त्र होकरभी किसकारण परतंत्र हुए ॥ ४ ॥ आप इस समय मेरे हृदयका यह संशय छेदन कीजिये हे मुनिवर ! आप सर्वज्ञ हैं अतएव यह अद्भुत वृत्तान्त कहकर मेरा कौतुहल चरितार्थ कीजिये ॥ ॥ ५ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! पहले मैंने मुनिसत्तम नारदसे इस संदेहके निराकरणविषयमें जिसप्रकार सुनाथा इससमय मैं आपसे उसीप्रकार कहता हूं सुनो ॥ ६ ॥ ब्रह्माके मानसपुत्र महर्षि नारद तपोबलसे सर्वत्रगामी सर्वज्ञ शान्तप्रकृति सर्वलोकोंके प्रिय और कवि हैं ॥ ७ ॥ एक समय वह श्रेष्ठ ऋषि स्वरतानयुक्त वीणा बजातेबजाते इस पृथ्वीपर भ्रमण करनेलगे ॥ ८ ॥ एकदिन बृहद्रथं तरादि [सामगानके मंत्र] सामवेदके अनेकानेक विशेषविषय और मोक्षप्रद अमृतस्यन्दिनी गायत्री गानकरतेकरते मेरे आश्रममें आनकर उपस्थित हुए ॥ ९ ॥ हे राजन् ! सरस्वती नदीके तटपर शम्याप्रास नामक ज्ञानप्रद सुखद अतिपवित्र एक महातीर्थ है तहां अनेक महर्षि वास करते हैं उसी स्थानमें मेरा आश्रम था ॥ १० ॥ तब मैं उन तेजःपुञ्ज

कलेवर पितामहके पुत्र ऋषिवर नारदको आताहुआ देखकर उठा और विधिपूर्वक पाद्य तथा अर्घ्यादिसे पूजा की ॥ ११ ॥ अर्घ्यपाद्यविधिके अनन्तर उन अमिततेजा मुनिवरके आसनमें बैठनेपर फिर मैंभी उनके निकट बैठगया ॥ १२ ॥ तदनन्तर उन ज्ञानप्रद नारदको विश्रान्त और शान्त देखकर तुमने इस समय मुझसे जो पूछाँ मैंनेभी उनसे इसी प्रकार पूँछा ॥ १३ ॥ हे मुनिवर ! इस असारसंसारमें प्राणीगणोंको जन्मग्रहण करके क्या सुख है ? मैं निश्चयकर कभी किसी स्थल तथा किसी विषयमें वह सुख नहीं देखता तथापि बड़े बडे पुरुषभी किसकारण संसारमें मोहित हो कर्म करते हैं ? ॥ १४ ॥ देखो द्वीपमें मेरा जन्म हुआ और जन्मतेही जननीने मुझको परित्यागकिया मैं वनमें निराश्रय होकर कर्मानुसार बढ़नेलगा ॥ १५ ॥ अनन्तर पुत्रप्राप्तिकी कामनासे पर्व्वतमें स्थित हो बहुत वर्ष पर्य्यंत देवदेव महादेवकी उग्रतर तपस्या की ॥ १६ ॥ इससे ज्ञानीगणोंके अग्रगण्य शुकको पुत्ररूपसे प्राप्तहो उसके आदिसे सम्पूर्ण वेदोंका सार भाग भलीभाँति पाठ कराया ॥ १७ ॥ हे देवर्षे ! मेरा वह पुत्र आपकेही वचनसे ज्ञानको प्राप्त हुआ मेरे उसके विरहमें अत्यन्त कातर हो रोनेपरभी मुझको छोड़ इस लोकसे लोकान्तरको चलागया ॥ १८ ॥ तदनन्तर पुत्रशोकसे अत्यन्त सन्तप्त हो महागिरि सुमेरुको परित्याग किया तब मैं पुत्रशोकसे अत्यन्त कातर और पुत्रके स्नेहसे अतिकशाङ्ग हो इस संसारको मिथ्या जानकर भी मायापाशमें बँध माताको स्मरण करते हुए कुरुजंगलमें उपस्थित हुआ ॥ १९ ॥ २० ॥ तदन्तर राजा शान्तनुने कल्याणिनी जननीका विवाह किया है यह सुनकर इस सरस्वतीके पवित्र तटपर आश्रम बनाय वास करने लगा ॥ ॥ २१ ॥ शान्तनु राजाके परलोक जानेपर साध्वी जननी दो पुत्रोंके सहित वास करने लगी तब भीष्म उनका प्रतिपालन करने लगे ॥ २२ ॥ बुद्धिमान् गंगा-पुत्रने चित्राङ्गदको राज्यपदमें स्थापित किया कुछ कालोपरान्त वह कामदेवकी समान मनोहर कान्ति भ्राता कालके ग्रासमें पतित हुए ॥ २३ ॥ माता सत्यवती इसप्रकार पुत्रके शोकसागरमें निमग्न हो पुत्र चित्राङ्गदके निमित्त अत्यन्त कातर हो रोदन करने लगी ॥ २४ ॥ हे महाराज ! तिस कालमें जननीको दुःखित जानकर उसके निकट उपस्थित हुआ अनन्तर मैंने और भीष्मने उसको सान्त्वना प्रदान कर समझाया ॥ २५ ॥ भीष्मदेवने दारपरिग्रह और राजपालनसे विमुख हो कनिष्ठभ्राता वीर्यवान् विचित्रवीर्यको राज्य प्रदान किया ॥ २६ ॥ हे राजन् ! भीष्मने अपने वीर्यसे

राजाओंको पराजित कर काशिराजकी दो कन्या लाय विचित्रवीर्यको प्रदान करनेके निमित्त सत्यवतीको समर्पणकी ॥ २७ ॥ अनन्तर शुभदिन और शुभलग्नमें भ्राता विचित्रवीर्यका विवाह होनेपर तब मैं सुखी हुआ॥ २८॥ तदनन्तर यक्ष्मारोगसे पीड़ित हो उस अपुत्रक युवा धनुर्द्धर भ्राता विचित्रवीर्यनेभी प्राण परित्याग किया इससे माता अत्यन्त दुःखित होगई॥ २९॥ पतिको मरा हुआ देख काशिराजकी कन्या उन दोनों बहिनों ने पतिव्रत धर्मकी रक्षामें तत्पर होकर अत्यन्त दुःखित ॥ ३० ॥ और रोदनशील प्राप्त सतीदेवीसे कहा हम दोनोंजनी अग्निमें पतिकी सहगामिनी होंगी॥ ३१ ॥ देवि ! हम तुम्हारे पुत्रके संग स्वर्गमें जाय दोनों बहिने मिल उनके सहित नन्दनवनमें विहारकरेंगी ॥ ३२ ॥ जननीने स्नेहभावका आश्रय कर भीष्मकी अनुमति ग्रहणपूर्वक दोनों बहुओंको इस महाउद्यमसे निवारित किया ॥ ३३ ॥ विचित्रवी-र्यकी सम्पूर्ण ऊर्ध्वदेहिक क्रिया सम्पादित होनेपर फिर भीष्मसे परामर्शकर जननीने हस्तिनानगरमें मुझको स्मरणकिया ॥ ३४ ॥ स्मरणकरतेही जननीके मनका भाव जान मैं शीघ्र हस्तिनागनरमें आया ॥ ३५ ॥ और मस्तक झुकाय उसके चरणोंमें प्रणाम करे हाथ जोड़ उस पुत्ररूपी शोकानलसे सन्तप्त हुई मातासे कहा ॥ ॥ ३६ ॥ हे जननि ! मुझको मनहीमनमें स्मरण करके क्यों बुलाया है ? तुमको इस समय अत्यन्त दुःखित हुआ देखता हूं मैं आपका दास हूं आज्ञा कीजिये तुम्हारा क्या कर्म सम्पादन करूं ॥ ३७ ॥ हे मातः ! आपही मेरा परम तीर्थ और आपही मेरी परम देवता हैं. मैं इस स्थानमें उपस्थित होकर अत्यन्त उत्कण्ठित होरहाहूं क्या आपका प्रिय कार्य है वह मुझसे कहो ॥ ३८ ॥ व्यासजीने कहा हे मुनीश्वर ! मैं यह कहकर जब माताके सामने खडारहा तब उन्होंने समीप बैठे भीष्मकी ओर देखकर मुझसे कहा ॥ ३९ ॥ हे पुत्र ! तुम्हारे भ्राता विचित्रवीर्य राजयक्ष्मारोगसे पीड़ित हो करालकालके ग्रासमें पतित हुए हैं इसीकारण वंश नष्ट होनेके भयसे मैं अत्यन्त दुःखित होरही हूं ॥ ४० ॥ हे मेधाविन् ! इसी प्रयोजनकी सिद्धिके निमित्त गंगापुत्रकी अनुमति लेकर अब मैंने तुमको बुलाया है ॥ ४१ ॥ हे पराशरनन्दन ! शान्तनुके नामार्थ तुम प्रायः नष्ट हुआ वंश पुनर्वार स्थापन करो. हे व्यासदेव ! तुम शीघ्र मेरी वंशोच्छेदजनित दुःखसे रक्षा करो ॥ ४२ ॥ रूपयौवनसम्पन्न साधुशील काशिराजकी दोनों कन्या तुम्हारे कनिष्ठ भ्राता विचित्रवीर्यकी भार्या हैं ॥ ४३ ॥ हे महामते ! तुम उनके सहित संगम

करके पुत्रोत्पादन पूर्वक भारत वंशकी रक्षा करो इससे तुमको कोई दोष स्पर्श नहीं करेगा ॥ ४४ ॥ व्यासजीने कहा हे देवर्षे ! माताके यह वचन सुनकर मैं अत्यन्त चिन्तित हुआ और लज्जाकुलित चित्तसे विनयपूर्वक उनसे कहा ॥ ४५ ॥ हे मातः ! पराईस्त्रीको स्पर्शकरना अत्यन्त पापकर कर्म है, मैं धर्मका मार्ग भलीभाँति जानकर किसप्रकार यह कार्य आदरपूर्वक करूं ? ॥ ४६ ॥ और भी देखो महर्षिगण कहते हैं कि कनिष्ठ भ्राताकी भार्या कन्याकी समान है, मैं सम्पूर्ण वेदशास्त्र अध्ययन करके किसप्रकार ऐसा व्यभिचार कर्म करनेमें समर्थ हूं ? ॥ ४७ ॥ अन्याय कर्मसे कुलकी रक्षा करना किसीके मतसे कर्त्तव्य नहीं है. क्योंकि पाप करनेवालेके पितृगण संसारसागरसे पार होनेमें समर्थ नहीं होते ॥ ४८ ॥ जो पुरुष संपूर्णलोकोंका उपदेष्टा और पुराणोंका प्रवर्त्तक है वह समस्त जान सुनकर इस अत्यन्त अद्भुत कुत्सित कर्ममें प्रवृत्त होसक्ता है ? ॥ ४९ ॥ माता पुत्रशोकसे अत्यन्त सन्तप्त हुई थी इस कारण उन्होंने कुलके रक्षा करनेकी इच्छासे रोदन करते करते मेरे निकट आनकर पुनर्वार कहा ॥ ५० ॥ हे पराशर पुत्र ! यदि तुम मेरे वचनके अनुवर्त्ती होकर कार्य करोगे तो तुमको कुछभी दोष नहीं होगा. हे पुत्र ! गुरुजनोंके युक्तियुक्त वचन सदोष होने परभी न विचार कर ॥ ५१ ॥ शिष्टाचारप्रमाणसे कार्य सम्पादन करना मनुष्यगणोंको अत्यन्त उचित है. अतएव हे पुत्र ! तुम मेरा वचन प्रतिपालन करके मेरे मानकी रक्षा करो इसे तुमको कुछ दोष नहीं होगा ॥ ५२ ॥ हे पुत्र ! तुम भलीभाँति विचार करके देखो कि तुम्हारी जननी अत्यन्त सन्तप्त और शोकसागरमें निमग्न हुई है अतएव कुलपुत्र उत्पादन करके उसको सुखी करना तुमको अवश्य उचित है ॥ ५३ ॥ मैं जननीको इस प्रकार कहना सुनकर सूक्ष्म धर्मके निर्णय विषयमें विशेषज्ञ गंगानन्दन भीष्म मुझसे कहने लगे ॥ ५४ ॥ हे द्वैपायन ! तुम सर्वप्रकार निष्पाप हो अतएव इसविषयमें तुमको विचार करना उचित नहीं है तुम माताका वचन प्रतिपालन कर सुखपूर्वक विहारकरो ॥ ५५ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! उनके यह वचन और माताकी प्रार्थना सुन मैं निःशङ्कचित्तसे उस अत्यन्त घृणित कार्यमें प्रवृत्त हुआ ॥ ५६ ॥ अम्बिकाके ऋतुस्नानकरनेपर मैं रात्रिकालके समय उसके सहवासमें प्रवृत्तहुआ, किन्तु उस युवतीने मेरा कुत्सित तापसरूप देखकर मुझसे अनुराग न किया ॥ ५७ ॥ तब मैंने उस नितम्बिनीको शाप दिया जब कि,

तुमने मेरे सहित प्रथम सहवासमें ही नेत्र बंदकरलिये अतएव तुम्हारा पुत्र अन्धा होकर जन्मग्रहण करेगा ॥ ५८ ॥ हे मुनिवर! दूसरे दिन माता मुझसे निर्ज्जनमें पूँछने लगी हे द्वैपायन! काशिराजकी कन्याके उदरसे पुत्र उत्पन्न होगा ? ॥ ॥५९॥ तब मैंने लज्जासे झुके हुए मुखद्वारा कहा हे मातः! मेरेही शापसे वह पुत्र जन्मान्ध होगा ॥ ६० ॥ तब जननीने मुझसे कठोर वचनद्वारा भर्त्सनाकर कहा हे पुत्र! अम्बिकाके पुत्र अन्ध होगा यह कहकर तुमने उसको किसकारण शाप दिया ॥ ६१ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः २५.

व्यासजीने कहा हे महाराज! मेरे यह वचन सुन माता चकित होगई और पुत्रके अत्यन्त आतुर हो मुझसे कहने लगी ॥ १ ॥ हे पुत्र! तुम्हारे भ्राताकी भार्या विधवा शोकसंयुक्त काशिराजकी कन्या अम्बालिका ॥ २ ॥ सर्व सुलक्षण-सम्पन्न रूपयौवनशालीनी और सम्पूर्ण गुणोंसे विभूषित है तुम उसके संहित सहवास करके श्रेष्ठपुरुषोंके सम्मत उत्तम पुत्र उत्पन्न करो ॥ ३ ॥ जन्मान्ध पुरुष राज्यको अधिकारी नहीं होता अतएव तुम मेरे वचनसे राजकन्यामें एक मनोहर पुत्र उत्पन्न करके मेरे मानकी रक्षा करो ॥ ४ ॥ हे मुनिवर! तिसकालमें माताके यह वचन सुन जबतक काशिराजकी कन्या अम्बालिका ऋतुमती नहो तबतक मैं हस्तिना-पुरमें वासकरनेलगा ॥ ५ ॥ अनन्तर यथासमय उपस्थित होनेपर कुटिलकेश राज-कन्या सासकी आज्ञासे निर्ज्जन शयनागारमें मेरे समीप आय अत्यन्त लज्जान्वित हुई ॥ ६ ॥ मुझको जटिलतापस और रसवर्ज्जित देखकर उसके मुखपर पसीना आगया देह उसकी पाण्डुवर्ण और मन विरस होगया ॥ ७ ॥ मैंने रात्रिके समय पार्श्वमें बैठी हुई उस कामिनीको कांपता और पाण्डुवर्ण देखकर क्रोधयुक्त हो कहा ॥ ८ ॥ हे सुमध्यमे! तुम जब मुझको देखकर अपने सौन्दर्यके गर्वसे पाण्डुवर्ण हुई तब तुम्हारा पुत्र पाण्डुवर्ण होगा ॥ ९ ॥ यह कह उसी स्थानमें अम्बालिकाके संग रात्रि बिताई. इसप्रकार मैं उस कामिनीके संग रतिसम्भोगकर मातासे आज्ञा ले अपने स्थानको गया ॥ १० ॥ तदनन्तर उन दोनों राजकन्याओंने यथासमयमें अन्ध और पाण्डुवर्ण दो पुत्र उत्पन्न किये अम्बिकाका

पुत्र धृतराष्ट्र नामसे और अम्बालिकाका पुत्र पाण्डुवर्ण होनेपर पाण्डुनामसे विख्यात हुआ ॥ ११ ॥ माता उन दोनों पुत्रोंको ऐसा देखकर विमन हुई तदनन्तर संवत्सरके उपरान्त मुझको बुलाकर कहा ॥ १२ ॥ हे द्वैपायन ! यह दोनों पुत्र ऐसे राज्यके योग्य नहीं हैं अतएव मेरा प्रिय और मनोहर अन्य अब एक पुत्र उत्पन्न करो ॥ १३ ॥ मेरे उनकी बातमें सम्मत होनेपर फिर उन्होंने आनन्दित हो यथासमय अम्बिकाकी प्रार्थना करके कहा ॥ १४ ॥ हे पुत्रि ! व्यासको आलिङ्गन करके अद्भुत गुणयुक्त कुरुराज वंशके योग्य कुलरक्षक एक पुत्र उत्पन्न करो ॥ १५ ॥ वधूने लज्जासे उस समय कुछ न कहा मैंने माताकी आज्ञानुसार रात्रिकालके समय जब शयनागारमें गमन किया ॥ १६ ॥ तिससमय अम्बिकाने रूपयौवनसम्पन्न विचित्रवीर्यकी एक दासीको अनेक प्रकारके वसनभूषणोंसे भूषित करके मेरे समीप भेजदिया ॥ १७ ॥ वह हंसगामिनी सुकेशी दासी रक्तचन्दन और पुष्पमालासे विभूषित हो हावभावसहित आनकर ॥ १८ ॥ मुझको पलँगपर बैठाय स्वयं प्रेमरसमें डूबकर बैठ गई. हे मुनिवर ! मैंने उसके भाव और विलाससे प्रसन्न होकर ॥ १९ ॥ रात्रिकालके समय प्रेमान्वितचित्तसे उसके संग अनेक क्रीडा की इसके उपरान्त प्रसन्न मनसे उसको वर देकर कहा ॥ २० ॥ हे सुभगे ! मेरे औरससे तुम्हारे सर्व सुलक्षण युक्त सुरूप सम्पूर्ण धर्मोका जाननेवाला शान्त और सत्यवादी एक पुत्र उत्पन्न होगा ॥ २१ ॥ अनन्तर यथा समयमें उसके विदुर नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ परक्षेत्रमें इसप्रकार मुझसे तीन पुत्रकी उत्पत्ति होनेपर यह मेरे पुत्र हैं इसप्रकार जानकर मेरे मनमें मायाकी वृद्धि होने लगी ॥ २२ ॥ तब मैं उन तीनों पुत्रोंको वीर्यवान् और वीरसंमत देखकर अपने शोकका एक मात्र कारण शुकविरह भूलगया ॥ २३ ॥ हे द्विजेन्द्र ! माया अत्यन्त बलवती और अजितेन्द्रिय पुरुषोंको अत्यन्त कठिनतासे छोड़ने योग्य है यह माया आकार और अवलम्बनशून्य होनेपरभी ज्ञानीगणोंको मोहित करती है ॥ २४ ॥ माताके स्नेहमें बंध और पुत्रके प्रति आसक्त होकर मेरा मन वनमेंभी शान्तिलाभ न करसका ॥ २५ ॥ हे मुनिवर ! तब मेरा चित्त तराजूपर आरूढकी समान अन्दोलित होने लगा इससे मैं कभी हस्तिनामें और कभी सरस्वतीके तटमें वास करने लगा एक स्थानमें स्थिर होकर न रह सका ॥ २६ ॥ कभी कभी विचारद्वारा इस प्रकार ज्ञान मेरे मनमें प्रतिभात होने लगा कि, यह पुत्र किसके हैं ?

यह स्नेहके बल मोहमात्र है अन्य कुछ नहीं है मेरे मरनेपर यह मेरे श्राद्धाधिकारी नहीं होंगे॥ २७॥ यह पुत्र व्यभिचारद्वारा उत्पन्न हुए हैं यह मुझको क्या सुख देंगे ? हे मुनिवर ! इसप्रकार बलवती मायाही मेरे मनमें मोह विस्तार करती है ॥ २८ ॥ इस संसारको मिथ्या जानकरभी मैं मोहान्धकूपमें पतित हुआ हूं मैंने कभी कभी निर्ज्जनमें समाहित चित्तसे इस विषयकी चिन्ता करके परिताप किया था ॥ २९ ॥ तदनन्तर भीष्मकी परामर्शसे बलवीर्ययुक्त पाण्डु राज्यको प्राप्त हुआ तबभी पुत्रकी समृद्धि देखकर मेरा मन प्रसन्न हुआ. हे मुनिवर ! यहभी उसी मायाका कार्य है ॥ ॥ ३० ॥ शूरसेनराजाकी कन्या कुन्ती और भद्रराजाकी कन्या माद्री यह दोनों स्वरूपाकामिनी पाण्डुकी भार्या हुईं ॥ ३१ ॥ स्त्रीसंग करनेसे तुम्हारी मृत्यु होगी इस प्रकार विप्रशापसे दुःखको प्राप्त हो पाण्डु राज्यपरित्यागकर दोनों भार्याओंके संग वनको चलेगये॥ ३२॥ उस पुत्र पाण्डुको वनमें वास करतां हुआ सुन मेरे हृदयमें शोक उदय हुआ तब मैं दोनों भार्याओंके सहित अवस्थित उस पाण्डुके निकट जाय ॥ ३३॥ और उसको समझाकर फिर हस्तिनापुरमें आया और धृतराष्ट्रके संग कथोपकथनकर सरस्वतीके तटपर आय उपस्थित हुआ॥ ३४॥ पाण्डुने वनाश्रममें उपस्थित होकर वहाँ धर्म वायु, इन्द्र और दोनों अश्विनीकुमारोंसे पांच क्षेत्रज पुत्र उत्पन्न कराये॥ ३५॥ कुन्तीसे युधिष्ठिर भीमसेन और अर्जुन नामक तीन पुत्र क्रमानुसार धर्म अग्नि और इन्द्रके औरससे ॥ ३६ ॥ और माद्रीसे नकुल और सहदेव दोनों अश्विनीकुमारके औरससे उत्पन्न हुए अनन्तर किसी समय पाण्डु निर्ज्जनमें स्थितरूप लावण्यवती माद्रीको आलिङ्गनकर ॥ ३७ ॥ शापके कारण मृत्युको प्राप्त हुए तब वहांके वास करनेवाले मुनिगणोंने अग्निमें उनके देहका संस्कार किया चिताकी अग्नि प्रज्वलित होनेपर पतिव्रता माद्री पतिके संग उसमें प्रविष्ट हो मृत्युको प्राप्त हुई ॥ ३८ ॥ कुन्तीने पुत्रोंका प्रतिपालन करनेके लिये निवारित हो चिताकी अग्निमें प्रवेश न किया तब मुनिगणने ! शूरसेनकी कन्यासे ॥ ३९ ॥ पुत्रापत्ति हीन दुःखित कुन्तीको संग ले हस्तिनामें जाय महात्मा भीष्म और विदुरको समर्पण किया ॥ ४० ॥ यह सुनकर मेरा मन पराये देहके निमित्त सुख दुःख सहित पीडित होने लगा बुद्धिमान् भीष्म और विदुर धृतराष्ट्र युधिष्ठिरादिको परम प्रियतम पाण्डुके पुत्र जानकर परम प्रीतिसहित उनका प्रतिपालन करने लगे दुर्योधनादि धृतराष्ट्रके क्रूरमन निष्ठुरपुत्रगण ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ एकत्र हो पांचों पाण्डवोंके संग अद्भुतरूप

विरोध करने लगे द्रोणाचार्यके दैवात् वहां आनेपर भीष्मने उनका सन्मान करके ॥ ४३ ॥ कुरुपुत्रगणोंको पढानेके निमित्त हस्तिनापुरमें उनको वास कराया जिस समय कुन्तीने उत्पन्न होतेही बालक कर्णको त्याग दिया था ॥ ४४ ॥ उस नदीमें बहे जातेको लेकर सूतने पाललिया था कर्ण शूरगणोंमें अग्रगण्य होनेसे दुर्योधनको अत्यन्त प्रिय था ॥ ४५ ॥ क्रमानुसार भीम और दुर्योधनादिमें परस्पर विरोध होगया धृतराष्ट्रने उन सम्पूर्ण पुत्रोंके क्लेशकी चिन्ता करके ॥ ४६ ॥ विरोधकी शान्तिके निमित्त वारणवत् नगरमें पाण्डवोंका विनासस्थान बनादिया ॥ ४७ ॥ दुर्योधनने विद्वेष बुद्धिके वशीभूत हो अपने सुहृद् पुरोचनको भेजकर मनोहर जतुगृह बनवाया ॥ ४८ ॥ हे मुनिवर ! पृथाके सहित पांचों पाण्डवोंको जतुगृहमें दग्धहुआ सुन पुत्रभावसे मैं दुःखसागरमें निमग्न हुआ ॥ ४९ ॥ अत्यन्त शोकातुर हो निर्ज्जन वनमें दिनरात ढूँढकर एकचक्रानगरीमें दुःखसे दुःखित अत्यन्त कृश और परिपीड़ित पाण्डवगणोंको देखा ॥ ५० ॥ मैंने उनके दर्शन लाभसे परितुष्ट हो उनको द्रुपदराजाकी नगरीमें शीघ्र भेजा ॥ ५१ ॥ उनके दुःखसे कातर होकर मृगचर्म पहनकर विप्रवेषसे जाय राजसभासे विनीत-भावसे वास करनेलगा ॥ ५२ ॥ अर्जुनने पराक्रमप्रकाशपूर्वक लक्ष्य भेदकर द्रुपदराजाकी कन्या द्रौपदीको प्राप्त करनेपर माताकी आज्ञासे पांचों पाण्डवोंने उस मानिनीराजकन्यासे पाणिग्रहण किया ॥ ५३ ॥ हे मुनिवर ! मैं तिस समय उनका विवाहहुआ देख अत्यन्त आनन्दित हुआ अनन्तर पाण्डवगण पाञ्चालीके सहित फिर हस्तिनापुरमें उपस्थित हुए ॥ ५४ ॥ तब धृतराष्ट्रने खाण्डवप्रस्थमें पाण्डवोंका वासस्थान नियत किया तदनन्तर वसुदेवके पुत्र ॥ ५५ ॥ विष्णु जिष्णुके संग मिलित हो अग्निको तृप्त किया उसके उपरान्त पाण्डवगणोंको राजसूययज्ञका अनुष्ठान करता हुआ देखकर मैं अत्यन्त आनन्दित हुआ ॥ ५६ ॥ पाण्डवोंका विभव और शिल्पराज मयकी बनाई सभा देखकर दुर्योधनादि अत्यन्त सन्तप्त हुए और अनर्थकर द्यूतक्रीड़ाका आरम्भ किया ॥ ५७ ॥ शकुनि छलद्यूतमें अत्यन्त चतुर था, धर्मपुत्र अक्षक्रीड़ामें निपुण नहीं थे अतएव दुर्योधनने शकुनिद्वारा द्यूतक्रीड़ा कराय धर्मराजका सर्वस्व हर लिया और राजा द्रुपदकी कन्या याज्ञसेनीको राजस-भामें अत्यन्त अपमानित कर अति क्लेश दिया था ॥ ५८ ॥ अनन्तर पांचालीके-सहित पाण्डवगण बारहवर्ष वनमें वास करनेके निमित्त चलेगये इससे मैं अत्यन्त

दुःखित हुआ ॥ ५९ ॥ हे मुनिवर ! मैं सनातनधर्म जानकर भी भ्रमवश इसप्रकार सुखदुःखात्मक संसारसागरमें निमग्न हुआ हूं ॥ ६० ॥ मैं कौन हूं ? यह सब पुत्र किसके हैं और कौन माता है अथवा सुख किस प्रकार है ? यह सब विचार कर मेरा मन दिनरात भ्रमण करता है ॥ ६१ ॥ हे मुनिवर ! मैं क्या करूं ! कहां जाऊं किसीसे मुझको सन्तोष प्राप्त नहीं होता मेरा मन मानो दोला [तराजू] में आरूढ़ होकर आन्दोलित होता है कभी स्थिर नहीं होता ॥ ६२ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! आप सर्वज्ञ हैं अतएव आप मेरा सन्देह निवारण कीजिये जिससे मेरे मनका ज्वर दूर हो और जिससे मैं सुखी होसकूं आप वही कीजिये ॥ ६३ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषायां पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

षड्विंशोऽध्यायः २६.

व्यासजीने कहा हे राजन् ! मेरे इसप्रकार मोहका कारण पूँछनेपर मेरे इसप्रकार वचन सुन परमार्थतत्त्वके जाननेवाले महर्षि नारद कुछेक हास्यकर कहने लगे ॥ १ ॥ नारदजी बोले हे पराशरतनय ! तुम सब पुराणोंको जानते हो तब तुम मुझसे मोहका निश्चित कारण क्यों पूँछते हो ? इस संसारमें मोहके अतिरिक्त कोई भी शरीरधारी जीव नहीं ॥ २ ॥ ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रादि देवगण जनक तथा कपिलादिऋषिगण यह सभी मायासे परिवेष्टित हो संसारमार्गमें भ्रमण करते हैं ॥ ३ ॥ मनुष्य मुझको ज्ञानी कहते हैं किन्तु मैं भी साधारण प्राकृतमनुष्यकी समान भ्रान्त हूं अपने मायाके मोहका पहला वृत्तान्त निश्चित प्रकारसे कहता हूं सावधान होकर सुनो ॥ ४ ॥ हे वासवीनन्दन ! मैंने पहले भार्याके निमित्त अपने किये हुए मोहसे महादुःख अनुभव किया है ॥ ५ ॥ एक दिन मैं और पर्वतनामक देवर्षि दोनों मिलकर भारतनामक विख्यात अत्युत्तम भूमिखण्ड देखनेके निमित्त देवलोकसे मृत्युलोकमें आए ॥ ॥ ६ ॥ हम दोनों मिलकर पृथ्वीमण्डलमें भ्रमण करते करते तीर्थ और परम पवित्र स्थान तथा मुनिगणोंके सम्पूर्ण मनोहर आश्रम देखते हुए विचरण करने लगे ॥ ७ ॥ भ्रमण करनेको चलनेके पहलेही देवलोकमें हमने परामर्श करके निश्चयपूर्वक परस्पर नियम बन्धन किया था कि ॥ ८ ॥ पृथ्वीमण्डलमें भ्रमण करनेके समय जिसकी जिसप्रकार चित्तकी वृत्तिका उदय हो अच्छा हो अथवा बुरा हो वह उसको कभी न छिपावे ॥ ९ ॥ भोजनकी इच्छा धन प्राप्त करनेकी इच्छा अथवा रमणकी इच्छा हो

जिसके मनमें जिस प्रकारके भावका उदय हो वह उसको प्रकाश करके कहैं ॥ ॥ १० ॥ हम दोनों इस प्रकार नियम कर एकान्तचित्तसे मुनिवरोंके आचरणमें स्थित हो इच्छानुसार भूलोकभ्रमणमें प्रवृत्त हुए ॥ ११ ॥ इस प्रकार पृथ्वीमें भ्रमण करते करते ग्रीष्मका अन्त होनेपर वर्षाकाल आगया हम सञ्जयनामक राजाके मनोहरपुरमें उपस्थित हुए ॥ १२ ॥ राजाने भक्तिसहित हमारा अत्यन्त सन्मान करके हमारी पूजा की तब हमने चार मास पर्यन्त उन महात्माके गृहमें वास किया॥ ॥ १३ ॥ वर्षाके चार महीनोंमें समस्त मार्ग सदाही अत्यन्त दुर्गम रहते हैं अतएव इस समयमें एक स्थानपरही वास करना बुद्धिमानोंका कर्त्तव्य है ॥ १४ ॥ ब्राह्मणगण आठमहीने कार्यवश सदाही प्रवास करें सुखकी इच्छा करनेवाले पुरुष वर्षाकालके समयपर देशको न जाय ॥ १५ ॥ यह सब विचारकर हम दोनों जनोंने वहां सञ्जयराजाके गृहमें वास किया ॥ १६ ॥ उन महीपतिके दमयन्ती नामक सुदती और परमरूपवती एक कन्या थी राजाने उसको हमारी सेवा करनेके निमित्त नियुक्त करदिया ॥ १७ ॥ वह विशालनयना विवेकवती राजपुत्री भलीभाँति उद्यमशील थी वह दिनरात हम दोनोंकी सेवा करने लगी ॥ १८ ॥ यथासमयमें स्नानकेलिये जल स्वच्छ अत्युत्तम भोजन ताम्बूलादि जो कुछ इष्ट वस्तु हैं वह उन सबको देने लगी ॥ १९ ॥ वह राजकन्या व्यजन आसन और शय्या इत्यादि जो कुछ वाञ्छित द्रव्य है वह सब हमको प्रस्तुत कररखती ॥ ॥ २० ॥ इसप्रकार राजकन्या हमारी सेवा करने लगी मैंभी वेद अध्ययन और वेदोक्त व्रतकार्यमें निरत रहता ॥ २१ ॥ हे द्वैपायन ! मैं तिससमय करमें वीणा धारण कर उत्तम उत्तम स्वर निकालकर कर्णरसायन मनोहर सामगायन करने लगा ॥ ॥ २२ ॥ गीतिरसज्ञा राजकन्या यह मनका मोहित करनेवाला सामगान सुनकर मुझमें अनुरागिणी और प्रीतिमती होने लगी ॥ २३ ॥ मेरे प्रति राजकन्याका अनुराग दिन दिन बढ़ने लगा उसको अपनेप्रति प्रीतियुक्त हुआ देखकर उस राज-कन्यामें मुझको भी मोह उत्पन्न हुआ ॥ २४ ॥ इसप्रकार राजकन्या मुझमें रतिरस युक्त होकर मेरे और पर्वतके भोजनादिविषयमें कुछ कुछ प्रभेद करके सेवाका वैल-क्षण्य करने लगी ॥ २५ ॥ मुझको स्नान करनेके लिये उष्णजल और पर्वतके शीतल जल भोजनके लिये मुझको उत्तम दधि और पर्वतको तक्र अर्थात् मठा ॥ ॥ २६ ॥ शयनकरनेके लिये मुझको सुविमल शुभ्र शय्या, पर्वतको मलिन बिछौना

प्रदान करनेलगी, इसप्रकार राजकन्या परम प्रीतिसहित मेरी सेवा करने लगी किन्तु पर्वतकी इसप्रकार सेवा नहीं की ॥ २७ ॥ वह सुन्दरी मुझको प्रेमपूर्ण नेत्रोंसे देखने लगी किन्तु पर्वतको इसप्रकार नहीं देखती पर्वत राजकन्याका इसप्रकार प्रेमकारण देखकर ॥ २८ ॥ आश्चर्ययुक्त हो यह क्या हुआ इसप्रकार मनमें चिन्ता करने लगा अनन्तर निर्जनमें मुझसे पूँछा हे नारद ! तुम भलीभांति सम्पूर्ण विवरण मुझसे कहो ॥ २९ ॥ राजकन्या प्रीतिमती होकर तुममें अत्यन्त प्रेमप्रकाश करती है और स्नेहयुक्त भक्ष्य भोज्य देती है ॥ ३० ॥ किन्तु मुझसे इसप्रकार नहीं करती इसप्रकार सेवाका प्रभेद देखकर मेरे मनमें सन्देह होता है. बोध होता है कि, सञ्जयराजाकी कन्या तुमको पति करनेके निमित्त भलीभाँति इच्छा करती है ॥ ॥ ३१ ॥ तुम्हारे भी मनका भाव इसीप्रकार है यह मैं ने लक्षणद्वारा जानलिया नेत्र और मुखके विकारसे प्रीतिका लक्षण जाना जाता है ॥ ३२ ॥ जो हो हे मुनिवर ! तुम मुझसे सत्य कहो कभी झूंठ नहीं कहना हमने स्वर्गसे निकलनेके पहलेही जो नियम किया है उसको स्मरण कर सत्य कहो ॥ ३३ ॥ नारदजीने कहा पर्वत जब मुझसे हठात् इसप्रकार कारण पूँछने लगा तब मैं ने अत्यन्त लज्जित होकर कहा ॥ ३४ ॥ हे पर्वत ! यह विशालाक्षी राजकन्या मुझको पति करनेके निमित्त उद्यत हुई है मेरे भी मनका भाव राजकन्यामें भलीभाँति बद्ध हुआ है ॥ ३५ ॥ पर्वत मेरा यह वचन सुनकर अत्यन्त कुपित हुआ और धिक् नारद धिक् नारद यह वचन वारंवार कहने लगा ॥ ३६ ॥ तुमने पहले अनेक शपथ करके मुझको छला है अतएव हे मित्रद्रोहिन् ! मेरे शापसे तुम्हारा वानरकी समान मुख हो ॥ ३७ ॥ महात्मा पर्वतने कुपित होकर इसप्रकार शाप दिया तो मेरा मुख तत्काल वानरकी समान कुटिल और विकृताकार हो गया ॥ ३८ ॥ मने भगिनीका पुत्र जानकर भी उसको क्षमा न किया कोपान्वित होकर शाप दिया कि तेरी भी स्वर्गलोकमें गति नहीं होगी ॥ ३९ ॥ हे पर्वत ! अल्प अपराधसेही तैंने मुझको शाप दिया है इससे तेरी बुद्धि अत्यन्त हीन दिखाई देती है जो हो उस समय मर्त्यलोकमें तेरा वास होगा ॥ ४० ॥ अनन्तर पर्वत अत्यन्त विमन होकर उस नगरसे निकला मेराभी तत्काल मर्कटकी समान मुख हो गया ॥ ४१ ॥ मेरा वानरकी समान कुटिल मुख देखकर राजकन्या विमन होगई उसको फिर पहलेकी समान प्रफुल्लित नहीं देखा किन्तु वीणा सुननेकी इच्छा पहलेकी समान नहीं दीखने लगी ॥ ४२ ॥ व्यासजीने कहा हे मुनिवर ! इसके उपरान्त फिर

क्या हुआ आपने किस प्रकार शापसे छूटकर फिर मनुष्यकी समान मुख प्राप्त किया ॥ ४३ ॥ पर्वतऋषि कहां गये ? और किस प्रकार कब किस स्थानमें आपका पुनर्वार मिलन हुआ यह सम्पूर्ण विवरण मुझसे विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये ॥ ४४॥ नारदजीने कहा हे महाभाग ! मैं मायाका महत् चरित्र अब क्या कहूं ? पर्वतके कुपित होकर चले जानेपर फिर मैं अत्यन्त दुःखित हुआ ॥ ४५ ॥ राजकन्या फिर मेरी अधिक सेवा करने लगी पर्वतके चले जानेपर भी मैं उसी स्थानमें वास करने लगा ॥ ४६ ॥ वानरकी समान मुख होनेसे मैं अत्यन्त दीन और दुःखित हुआ और इसके उपरान्त मेरा क्या होगा यह जानकर मैं भलीभाँति चिन्तासे अत्यन्त कातर होगया ॥ ४७ ॥ अनन्तर राजासञ्जयने अपनी कन्या दमयन्तीको यौवनकुसुम कुछेक विकसित हुई देखकर उसके विवाहके निमित्त प्रधान मन्त्रीसे पूँछा ॥ ४८ ॥ कन्याका विवाह करनेका समय उपस्थित हुआ है इस समय विधिपूर्व्वक उसका विवाह करो मनोमत वरके योग्यरूप, गुण और औदार्ययुक्त धीर तथा वीर एवं सत्कुलोत्पन्न राजपुत्र कौन है वह तुम मुझसे भलीभांति कहो ॥ ४९ ॥ ५० ॥ मन्त्रीने कहा हे राजन् ! सर्व्व विधि गुणयुक्त आपकी कन्याके वर योग्य अनेक राजपुत्र पृथ्वीमण्डलमें विद्यमान है ॥ ५१ ॥ जिस राजपुत्रको आपकी इच्छा हो उसकोही बुलाकर हाथी, घोडा, रथ और धन रत्नादिके सहित कन्याप्रदान कीजिये ॥ ५२ ॥ नारदजी बोले तदनन्तर दमयन्तीने पिताका अभिप्राय जानकर अपनी अभिलाषा धात्रीके मुखद्वारा राजासे निवेदन की ॥ ५३ ॥ धात्रीने जाकर कहा हे महाराज ! आपकी कन्या दमयन्तीने मुझसे कहा है कि, हे धात्रि ! जब मेरे पिता सुस्थचित्तसे स्थित हों तब तुम उनसे एकान्तमें मेरा वचन निवेदन करके कहना कि ॥ ५४ ॥ मैं ने वीणाके नादरूप मोहनसे मोहित होकर महती नाम्नी वीणाके बजानेमें विशारद बुद्धिमान् नारदमहर्षिको वरण किया है अन्य कोई मुझको प्रिय नहीं होगा ॥ ५५ ॥ हेतात ! नारदके संग मेरा विवाह कर मेरी मनोवाञ्छा पूर्ण कीजिये हे धर्म्मज्ञ ! मैं नारदके अतिरिक्त अन्य किसीको भी पतित्वमें वर्त्ता वरण नहीं करूंगी ॥ ५६ ॥ हे पितः ! मैं नक्र तिमिङ्गिलादि (नाके घडियालादिक) मुक्त सुखविघातक पदार्थ विवर्ज्जित लवण विहीन सुमधुर आनन्दरसात्मक सुखपरिपूर्ण नादसिन्धुमें निमग्न हुई हूं अन्य किसीसे भी मेरा मन सन्तुष्ट नहीं होगा ॥ ५७ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषायां षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः २७.

नारदजीने कहा राजाने धात्रीके मुखसे कन्याका इसप्रकार सुनकर समीप बैठी हुई सुलोचना कैकेयी नामक महिषीसे कहा ॥ १ ॥ हे कान्ते! धात्रीने जो कहा वह तुमने सुना? दमयन्तीने उस वानरवदन नारदमुनिको मनमें पति किया है ॥ २ ॥ दमयन्तीने क्या विचार कर यह निश्चय किया है जो हो यह अत्यन्त बुद्धिहीनका कार्य हुआ है इसमें सन्देह नहीं उसका वदन बन्दरकी समान है मैं उसको किस प्रकार वह भुवनधन्यकन्यारत्न प्रदान करूं? ॥ ३ ॥ कुरूप और भिक्षुक नारद मुनि कहां और नेत्रोंको आनन्द देनेवाली मेरी कन्या दमयन्ती कहां यह कार्य समस्तही विपरीत है यह कभी कर्त्तव्य नहीं है ॥ ४ ॥ हे सुकेशि! तुम निर्ज्जनमें बुलाकर शास्त्रीय और वृद्धजनसम्मत युक्तिद्वारा उसको इस हटकारिताके कार्यसे निवारित करो ॥ ५ ॥ पतिके यह वचन सुनकर दमयन्तीकी माताने उसको निर्ज्जनमें बुलाकर कहा हे वत्से! तुम्हारा यह भुवनमोहनरूप कहां? और धनहीन बन्दरमुख नारद मुनि कहां? ॥ ६ ॥ तुम चतुर हो तो उस भिक्षुकके प्रति तुम्हारा इसप्रकार मोह-भाव किसकारण हुआ हे वत्से! देखो तुम राजकन्या हो तुम्हारा देह अत्यन्त कोमल लताकी समान है और वह सदा भस्म मलते रहते हैं इससे उन मुनिका देह अत्यन्त रूक्ष होगया है ॥ ७ ॥ हे विमले? तुम उस बन्दरमुख मुनिसे किसप्रकार बातचीत करोगी? तुम किसकारण कुत्सित पुरुषके प्रति अनुरागिणी होती है? इससे तुमको क्या प्रीति प्राप्त होगी ॥ ८ ॥ उत्तम पुरुष राजपुत्रके संग तुम्हारा विवाह होगा तुम इसप्रकार हठकारिताका कार्य कभी मत करो तुम्हारे पिता धात्रीके मुखसे यह बात सुनकर अत्यन्त दुःखित हुए हैं ॥ ९ ॥ हे कोमलाङ्गि! तुम मनमें विचार कर देखो कि, कण्टकी वृक्षमें कोमल मालती लता लगी हुई देखकर कौन बुद्धिमान् पुरुषके अन्तःकरणमें दुःख उदय न होगा? ॥ १० ॥ इस पृथ्वीमें मूर्ख पुरुषभी कण्टकलम्पट ऊंटको कोमल ताम्बूलीदल भक्षण करनेके लिये नहीं देगा ॥ ११ ॥ जब तुम्हारा विवाहकाल उपस्थित होगा तब तुम नारदके निकट जाओगी तब तुमको उनके कर लग्न देख कर किसका मन दुःखानलसे दग्ध न होगा? ॥ १२ ॥ कुमुख पुरुषके संग बातचीत करनेमें किसीकी भी रुचि नहीं होती, तुम उनके संग मरणकाल पर्य्यन्त किस प्रकार समय व्यतीत करोगी ॥ १३ ॥ नारदजीने कहा माताके इस प्रकार वचन सुनकर मुझमें अत्यन्त कृतनिश्चय वह सुकुमारी दमयन्ती अत्यन्त

कातर हो मातासे कहने लगी ॥ १४ ॥ हे जननि! जो पुरुष रस मार्गका पथिक और जो रसका जाननेवाला नहीं है उसके मुख और रूपसे क्या हो सक्ता है! उस नैपुण्य विहीन मूर्ख पुरुषके धन और राज्यसे क्या होगा ॥ १५ ॥ वनमें विचरण करनेवाली हरिणियें नादरससे मोहित होकर गायकगणोंको प्राणतक भी दे देती हैं अतएव वहभी धन्य हैं किन्तु अरसज्ञ मूर्ख मनुष्योंको धिक्कार है ॥ १६ ॥ हेमातः! नारदऋषि जो सप्तस्वरात्मिक संगीतविद्या जानते हैं स्वयं आशुतोषशिवके अतिरिक्त अन्य कोई तीसरा पुरुष उसको नहीं जानता ॥ १७ ॥ मूर्ख पुरुषके सहित सहवास करनेसे क्षणक्षणमें मरण आनकर उपस्थित होता है गुणहीन पुरुषके धनवान अथवा परम रूपवान् होनेपरभी उसको सर्वदा त्याग करना श्रेष्ठ है इसमें सन्देह नहीं ॥ १८ ॥ वृथा मदगर्वसे भरे मूर्ख राजाओंकी मित्रतामें धिक्कार है गुणज्ञपुरुषके भिक्षुक होनेपर उसके संग मित्रता करना सब प्रकारसे श्रेष्ठ है, क्योंकि इसमें अन्य बात दूर रहे उसके संग बातचीत करनेमेंही परम सुख प्राप्त होता है॥ १९॥ षड्ज; ऋषभ, गान्धार, मध्यम पञ्चम; धैवत और निषाद इन सातों स्वरोंका जाननेवाला ग्रामोंका जाननेवाला अर्थात् स्वरोंका आरोह (चढाव) अवरोहरूप (उतार) क्रमज्ञ और जिससे स्वरसमूह मूर्च्छित होकर रागत्वको प्राप्त होते हैं वह ग्रामसम्भवमूर्छनावित् और अष्टविध रसज्ञ पुरुष दुर्बल होनेपरभी इस पृथ्वीतलमें वह अत्यन्त दुर्लभ है इसमें और सन्देह क्या है ? ॥ २०॥ जिसप्रकार गंगा और सरस्वती अपने माहात्म्यसे कैलासधाम देती हैं इसी प्रकार स्वरज्ञानविशारद पुरुषभी कैलासलोकमें ले जाता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं॥ २१॥ जो पुरुष स्वरमान् जानता है वह मनुष्य होकरभी देवतारूप है जो पुरुष स्वरके षड्जादि सप्त भेद नहीं जानता वह सुरराज होकरभी पशुकी समान है॥ २२॥ जो पुरुष मूर्च्छना और सप्तविधस्वरसे समुत्थित और मूर्च्छनादि मिश्रितता न सुनकर प्रमोदित नहीं होता उसको पशु जानना चाहिये हरिणगणोंको पशु नहीं जानना चाहिये क्योंकि वह संगीत सुनकर मुग्ध होते हैं ॥ २३॥ विषधर सर्पगण कर्णरहित होकरभी चक्षुद्वारा मनोहर स्वरनाद सुनकर प्रसन्न होते हैं उनकी भी प्रशंसा कीजाती है किन्तु जो नादस्वर सुनकर प्रसन्न नहीं होते उन कर्णवान् मनुष्योंको धिक्कार है ॥ २४॥ सुस्वर संगीत सुनकर बालकगणभी प्रफुल्लित होते हैं, किन्तु जो वृद्धगण उस संगीतको नहीं जानते उनको शतवार धिक्कार है ॥ २५ ॥ पिता क्या नारदमहर्षिके अनेक गुणोंको नहीं जानते इस त्रिलोकमें

उनकीसमान सामगायक और कौन है ? ॥ २६ ॥ इसीलिये मैंने उनको पहलेही पतित्वमें वरण किया है इसके उपरान्त शापके कारण उन गुणाकर मुनिवरका वानरकी समान मुख हुआ है ॥ २७ ॥ संगीतविद्या विशारद किन्नरगणोंका मुख घोड़ेकी समान होनेपरभी वह किसको प्रिय नहीं हुए थे उनके उत्तम मुखका प्रयोजन क्या ? वह मनमोहन मधुर संगीतस्वरसे देवतागणोंकोभी मोहित करते हैं ॥ ॥ २८ ॥ हे जननि ! तुम अनुग्रहकरके पितासे कहना कि मैं ने पहलेही उन मुनिसत्तम नारद महर्षिको पतित्वमें वरण किया है अतएव अन्य आग्रह न करके सन्तुष्ट चित्तसे मुझको उनके हाथमें समर्पण कीजिये ॥ २९ ॥ नारदजीने कहा अपनी कन्या दमयन्तीके यह वचन सुनकर वह अनिन्दिता सञ्जयराजमहिषी मेरे प्रति अपनी कन्याका अत्यन्त अनुराग जानकर राजासे कहने लगी ॥ ३० ॥ हे नृपसत्तम ! शुभदिन और शुभलग्नमें मुनिवरके संग दमयन्तीका शुभविवाहकार्य सम्पादन कीजिये कन्याने कहा है कि, मैंने उन सर्व ज्ञानसम्पन्न मुनिवरको पहले पतित्वमें वरण किया है इसके अब अन्यथा नहीं होगा ॥ ३१ ॥ महिषीसे इस प्रकार सुनकर पृथ्वीपति सञ्जयने कन्याका विवाह कार्य भलीभाँति विधिपूर्वक सम्पादन किया ॥ ३२ ॥ हे ऋषिवर ! मैं इसे विवाहकर वानरवदन धारणपूर्वक मनमें दग्ध होकर उसी स्थानमें वास करने लगा ॥ ३३ ॥ राजनन्दिनी जब मेरी सेवाके निमित्त जब निकट आती तब वानरमुख स्मरण करके मैं अत्यन्त दुःखित और सन्तप्त होता ॥ ३४ ॥ किन्तु मुझको देखकर दमयन्तीका वदनकमल प्रफुल्लित हो जाता मेरा मुख वानरकीसमान होनेसे वह कभीशोक सन्तप्त और दुःखित नहीं होती ॥ ३५ ॥ इसप्रकार काल व्यतीत होने लगा एक दिन पर्वतमुनि अनेकानेक तीर्थोंमें पर्यटन कर मेरे निकट आनकर उपस्थित हुए ॥ ३६ ॥ मैंने प्रेमसे उनका बडा सत्कार किया वह मुझको उत्तम आसनपर बैठा हुआ देखकर अत्यन्त दुःखित हुए ॥ ३७ ॥ मैं उसका मामाहूं मेरा स्त्रीग्रहण करना देख तथा मेरा बन्दरकीसमान मुख होनेसे मुझे दीन अत्यन्त चिन्तातुर और कृश देखकर उनके हृदयमें करुणाका संचार हुआ तब उसने मुझसे कहा ॥ ३८ ॥ हे मुनिवर ! मैंने कुपित होकर जो तुमको शाप दिया है उस शापका प्रतिमोचन करता हूं सुनो ॥ ३९ ॥ हे महर्षे ! मेरे पुण्यसे आपका मुख पूर्वकीसमान उत्तम हो राजकन्याको देखकर इस समय मेरे अन्तःकरणमें करुणाका सञ्चार हुआ है ॥ ४० ॥ उसका यह वचन सुनकर मेरा

चित्तभी कोमल होगया मैंनेभी तत्काल उसका शापमोचन करनेके निमित्त इच्छुक होकर कहा ॥ ४१ ॥ नारद बोले हे भागिनेय! तुम भी सुरपुरमें जाओ हे पर्वत मैं ने इस समय तेरे प्रति शापके विषयमें भलीभांति अनुग्रह प्रकाश किया ॥ ४२ ॥ नारदजी बोले हे द्वैपायन! उसके वाक्यानुसार देखते देखते मेरा वदन सुचारु और पहले की समान शोभायमान होगया तब राजपुत्री दमयन्तीने अत्यन्त सन्तुष्ट हो अपनी माताके निकट जाकर कहा ॥ ४३ ॥ हे जननि! महामुनि पर्वतके वचनानुसार तुम्हारे जामाताका शापमोचन होकर उनका मुख पहलेकी समान सुन्दर और शोभायमान हो गया इससेही उनके देहकी कान्ति वर्धित हुई है ॥ ४४ ॥ राजमहिषी दमयन्तीके वचन सुनकर परम आह्लादसे पुलकित हुई और तत्काल जाकर राजासे निवेदन किया. नरपति, सञ्जय तब अत्यन्त प्रीतिसहित मुनिवरको देखनेके निमित्त वहां गये ॥ ४५ ॥ तब महामति महीपतिने परम सन्तुष्ट हो मुझको और भागिनेय पर्वतको विवाहके कौतुकमें अनेक धन और रत्नादि प्रदान किये ॥ ४६ ॥ हे द्वैपायन! मैं ने पहले मायाका बल माहात्म्य जिसप्रकार अनुभव किया था इस समय तुमसे वह पुरातन समस्त वृतान्त वर्णन किया ॥ ४७ ॥ हे महाभाग! इन्द्रजालकीसमान मायाके मिथ्या गुणोंके कारण देहधारी मात्रही इस संसारमें पहले कोई कभी सुखी नहीं हुआ वर्त्तमानमें भी कोई सुखी नहीं और भविष्यतमेंभी कोई कभी सुखी नहीं हो सक्ता ॥ ४८ ॥ काम, क्रोध, लोभ, मात्सर्य, ममता, अहङ्कार और मद, यह सभी प्रत्येकको महाबलवान् हैं इनको जीतनेमें कोई समर्थ नहीं होता ॥ ४९ ॥ हे मुनिवर! सत्त्व, रज और तम यह तीन गुण ही प्राणीगणोंके देहकी उत्पत्तिके विषयमें भलीभाँति कारण होते हैं ॥ ५० ॥ हे द्वैपायन! मैं किसी समय भगवान् विष्णुके हास्यपरिहासादि विनोद सेवनमें जा रहा था, दैवात् क्षणमेंही मैं स्त्री होगया ॥ ५१ ॥ तदनन्तर मायाके बलसे मोहित होकर राजपत्नी हुआ और उन नृपतिके गृहमें अवस्थित होकर अनेक पुत्र उत्पन्न किये थे॥५२॥ व्यासजीने कहा हे दवर्षे! आपके वचन सुनकर मुझको महान् संशय उत्पन्न हुआ है हे मुनिवर! आप अत्यन्त ज्ञानवान् होकर भी किस प्रकार नारीभावको प्राप्तहुए थे? ॥ ५३ ॥ और किस प्रकार फिर पुरुषत्वलाभ किया था? किस राजाके गृहमें स्थिति कर किस प्रकार पुत्र उत्पन्न किये थे यह सब विषय विस्तारपूर्वक वर्णन करके मेरा कौतूहलचरितार्थ कीजिये॥५४॥ जिसके द्वारा यह स्थावर जङ्गमात्मक सम्पूर्ण

जगत् मोहित हो रहा है आप उसी मायाका अति अद्भुत चरित्रकीर्त्तन कीजिये ॥५५॥ हे मुनिवर! समस्त ग्रन्थार्थतत्व संयुक्त सब प्रकारके संशयका नाश करने वाला आपका वचनामृत श्रवणाञ्जलिपुटसे पान करके मेरी तृप्ति नहीं होती है॥५६॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषायां सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टविंशोऽध्यायः २८.

नारदजीने कहा हे तपोधन! मैं वह सम्पूर्ण सत्कथा कहता हूं सावधान होकर सुनो. हे मुनिवर! योगके जाननेवालोंमें जो श्रेष्ठतम है यह मायाबल उनको भी दुर्ज्ञेय जानना चाहिये ॥ १ ॥ स्थावर जङ्गमात्मक ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्त यह सम्पूर्ण जगत् उसी अजय और अचिन्तनीय मायासे मोहित होता है अतएव उस मायाके हाथसे कोई छुटने नहीं पाता ॥ २ ॥ मैं एक दिन अद्भुतकर्मा हरिके दर्शनकी इच्छा करके स्वरतान मनोरम वीणा बजाता हुआ और सप्तस्वरयुक्त सामगायन गान करते करते सत्यलोकसे मनोरम श्वेतद्वीपमें गया था ॥३॥४॥ मैंने वहां जाकर देवदेव चतुर्भुज चक्रपाणिगदाधरका दर्शन किया उनकी नवीन मेघकी समान श्याम मूर्ति हृदयमें स्थित कौस्तुभप्रभासे प्रकाशित हो रही है ॥ ५ ॥ वह पीताम्बर पहर रहे हैं मस्तकमें परमप्रभासे उज्वल मुकुटशोभा पा रहा है, वह भगवान् नारायण विलास-शालिनी पयोदनन्दिनी अर्थात् लक्ष्मीके सहित परम प्रसन्नतापूर्वक क्रीड़ा करते हैं ॥ ६ ॥ सम्पूर्ण स्त्रियोंमें श्रेष्ठतम प्रियदर्शन कनकप्रभा सर्व सुलक्षणयुक्त सर्व भूषणोंसे विभूषित रूप यौवन गर्वित वासुदेवप्रिया कमलादेवी मुझको देखते ही जनार्दनके समीपसे अन्तर्धान हो गई ॥ ७ ॥ ८ ॥ सिन्धुजा देवीके स्तनादिवस्त्रोंमें सभी दीखते थे अतएव उन्होंने शीघ्रही अन्तर्गृहमें किया. यह देखकर मैंने वनमालाधारीजगत्प्रभु देवदेवजनार्दनसे पूँछा ॥ ९ ॥ मुरघातन! हे भगवन्! हेपद्मनाथ! लोकमाता कमलादेवी मुझको आता हु देखकर आपके समीपसे किस लिये उठगई? ॥ १० ॥ हेजगद्गुरो! मैं विट (जार और धूर्त्त नहीं हूं मैं इन्द्रिय और क्रोध जीतकर तपस्वी हुआ हूं मैंने मायाको जीत लिया है. अतएव हे देव! कमलादेवीके चलेजानेका क्या कारण है! आप करके वह मुझसे कहिये ॥ ११ ॥ नारदजीने कहा हे द्वैपायन! जनार्दन मेरे गर्वयुक्त वचन सुनकर कुछेक हास्यसहित वीणाध्वनिकी समान मधुरस्वरसे

लगे. हेभगवान् बोले हेनारद! इस विषयकी विधि इसीप्रकारहै कि, किसी पुरुषकी स्त्री क्यों न हो पतिके अतिरिक्त अन्य किसीके भी सामने बैठना उचित नहीं है॥ १३॥ हे नारद! मायाको जीतना अत्यन्त कठिन कार्य है, जिन्होंने प्राणायामसे प्राण, पवन, आहार और इन्द्रियजय की हैं वह सांख्ययोगिलोग॥ १४॥ और देवता भी मायाको जीतनेमें समर्थ नहीं होते. तुम कहते हो कि, मैंने मायाको जीतलिया है यह तुम्हारे योग्य वचन नहीं है. क्योंकि गीतज्ञानसे अनुमान होता है कि, तुम अवश्यही सङ्गीत शब्दसे मोहित होते हो ॥ १५ ॥ मैं, शिव, ब्रह्मा और मुनिलोग कोईभी उस अजय मायाको जीतनेमें समर्थ नहीं होते. तुम अथवा अन्य कोईभी पुरुष उसको पराजय करे यह कभी सम्भवभी नहीं हो सक्ता ॥ १६ ॥ देवदेह, नरदेह अथवा तिर्यग्देह ही हो जो जीव शरीर धारण करता है उनमेंसे कोई इस अजयमायाको जीतनेमें समर्थ नहीं होता ॥ १७ ॥ वेदके जाननेवाले, योगके जाननेवाले, सर्वज्ञ अथवा जितेन्द्रिय हों तीनों गुणयुक्त कोई भी पुरुष मायाको जीतनेमें समर्थ नहीं होते ॥ १८ ॥ कोई कोई कहते हैं कि, यह सम्पूर्ण जगत् स्वयं निराकार होनेपर भी साकारकारी कालके आधीन है. किन्तु हे नारद! वह कालभी मायाका एकरूप है. क्या उत्तम विद्वान् क्या मध्यम और अधम मूर्ख सम्पूर्ण जीवही उस कालके वशीभूत हुए हैं ॥ १९ ॥ स्वभावसे अथवा कर्मसेही हो काल धर्मज्ञ पुरुषको भी कभी विकल कर डालता है. अतएव उसका कार्य अत्यन्त दुर्ज्ञेय जानना चाहिये ॥ २० ॥ नारदजी बोले हे द्वैपायन! यह कह विष्णुके मौन होनेपर मैं अत्यन्त आश्चर्ययुक्त हो उन सनातन वासुदेव देवदेव जगन्नाथसे पूँछने लगे ॥ २१ ॥ हे रमापते! मायाका रूप किसप्रकार है? माया कैसी है? उसके बलका परिमाण कितना है? उसका स्थान कहां है? वह किसका आधार है? सो आप मुझसे कहिये ॥ २२ ॥ हे जगतीपालक! मैं मायाको देखनेके अत्यन्त अभिलाषी हूं आप शीघ्र वह मुझको दिखाईये. हे रमापते! मेरी मायाको जाननेकी अत्यन्त इच्छा हुई है आप प्रसन्न होकर मायाके वैभवका वर्णन कीजिये ॥ २३ ॥ विष्णुने कहा त्रिगुणात्मिक सम्पूर्णके आधार स्वरूप, सर्वज्ञा सर्वसम्मता अजेया अनेकरूपा माया सम्पूर्ण जगत्में व्याप्त होकर स्थित रहती है ॥ २४ ॥ हे नारद! यदि तुम देखनेकी इच्छा करते हो तो शीघ्र मेरे संग गरुडपर चढो हम दोनों यहांसे दूसरे स्थानको गमन करेंगे ॥ २५ ॥ और अजितात्मा मनुष्यगणोंको कठिनतासे जानने योग्य उस

मायाको दिखाऊंगा. हे ब्रह्मपुत्र ! तुम मायाको देखकर व्याकुल मत होना ॥ २६ ॥ जनार्दनने मुझसे यह कह विनतानन्दन गरुडको स्मरण किया स्मरण करतेही वह हरिके समीप उपस्थित हुआ ॥ २७ ॥ जनार्दनगरुडको आया देखकर उसके ऊपर चढ मुझको ले जानेके निमित्त आदरपूर्वक उसीकी पीठपर चढाया ॥ २८ ॥ भगवानने जिस वनमें जानेकी इच्छा की थी गरुड उनसे प्रेरित होकर वैकुण्ठसे वायुवेगकी समान वहांको चला ॥ २९ ॥ हम गरुडपर चढकर मनोहर वन, दिव्य सरोवर, सरित, पुर, ग्राम, खेट (किसानोंके गांव) खर्वट (पर्वत समीपस्थ गांव) गोव्रज गोठ ॥ ३० ॥ मुनियोंके मनोहर आश्रम शोभायमान दीर्घिका (बावली) पल्वल छोटे सरोवर और विशालपंकजभूषित ह्रद ॥ ३१ ॥ मृगयूथ, वराहवृन्द यह सम्पूर्ण देखते देखते कान्यकुब्जदेशके समीप जायकर उपस्थित हुए ॥ ३२ ॥ उस स्थानमें एक मनोहर दिव्य सरोवर देखा उसमें परम मनोहर सम्पूर्ण कमल खिले हुए, हंस और कारंडवोंसेयुक्त, चकवोंसे शोभित ॥ ३३ ॥ जहाँ खिलेकमल शोभा और सुगन्ध विस्तार करते हैं. और सम्पूर्ण भौंरे कलगुंजनसे-श्रवण और अन्तःकरण हरण करते हैं, अनेक प्रकारके फलपुष्प शोभा पाते हैं, उसका जल दूधकी समान मीठा ॥ ३४ ॥ और वह सरोवर मानो समुद्रकी भी स्पर्द्धा करता है, अत्यन्त अद्भुत उस तडागको देखकर भगवानने मुझसे कहा ॥ ॥ ३५ ॥ भगवान् बोले हे नारद! देखो देखो विमल जलपूरित सर्वत्र कमलोंसे ढका हुआ गभीर सरोवर किस प्रकार शोभा पाता है इसमें कलकण्ठ सारसगण मधुर शब्द करते फिरते हैं ॥ ३६ ॥ इसमें स्नान करके हम कान्यकुब्ज नामक पुरमें जायँगे यह कहकर शीघ्र मुझको गरुडसे उतार स्वयं उतरे ॥ ३७ ॥ अनन्तर भगवानने हँसकर मेरी तर्ज्जनी अंगुली पकडी और उस सरोवरकी वारंवार प्रशंसा करके मुझको उसके तटपर लेगये ॥ ३८ ॥ शीतल छायायुक्त मनोहर तटपर बैठकर कुछ काल विश्राम करनेके उपरान्त भगवान्‌ने मुझसे कहा हे मुनिवर ! इसके विमलजलमें तुम पहले स्नान करो ॥ ३९ ॥ तदन्तर मैं इस परमपवित्र तडागमें स्नान करूंगा. हे नारद! देखो देखो ! यह जल साधुओंके चित्तकी समान किस प्रकार निर्म्मल है? ॥ ४० ॥ इसने कमलोंके परागसे सुवासित होकर किसप्रकार सुगन्ध धारण की है? जब भगवान् वासुदेवने मुझसे यह वचन कहा तब मैं वीणा और मृगाजिन त्यागकर॥ ४१ ॥प्रसन्न हो स्नानकी इच्छासे सरोवरके किनारे गया. हाथ, पाँव,

धोकर शिखाबन्धन और कुशग्रहण कर ॥ ४२ ॥ आचमनपूर्वक शुचिहो उस जलमें अवगाहन किया. मैं स्नान कररहा था,हरि मुझको देख रहे थे ॥ ४३ ॥ इसी समय जलमें निमग्नहो निकलर देखा कि मैं पुरुषरूप त्यागकर मनोहर स्त्रीरूप होगया हूं तब हरि मेरा मृगचर्म और वीणा ग्रहण कर ॥ ४४ ॥ गरुडपर चढ आकाशमार्गसे तत्काल अपने गृहको चले गये. मैं शोभायमान भूषणोंसे भूषित नारी देहको प्राप्त हो॥ ४५॥ तत्काल पहले देहको भूलगया वीणा और भगवानको भी भूलगया ॥ ४६ ॥ अनन्तर वह मनमोहन रमणीरूप धारण करके तडागसे निकल कमलोंसे युक्त निर्मल जलपूरित दिव्य सरोवरको देखने लगा ॥ ४७ ॥ उसको देखकर यह क्या है ? मनहीमनमें इस प्रकार आश्चर्य उत्पन्न होने लगा.मैं स्त्रीरूप धारण कर मनहीमनमें इसीप्रकार चिन्ता कर रहा था ॥ ४८ ॥ इसी समयमें अनेक हाथी और घोडोंसे युक्त तालध्वज नामक एक राजा रथपर चढ सहसा आनकर उसी स्थानमें उपस्थित हुआ॥ ४९॥ वह राजा मूर्त्तिमान् कामदेवकी समान थे. उनके सम्पूर्ण अङ्ग अनेक प्रकारके आभरणोंसे विभूषित थे. युवा राजाने उसी स्थानमें आनकर मुझको देखा. दिव्य आभरणोंसे भूषित मेरा देह ॥ ५० ॥ और पूर्णचन्द्रमाकी समान मुख देखकर राजा अत्यन्त आश्चर्ययुक्त हो पूँछने लगे हे कल्याणि ! तुम कौन हो किसकी कन्या हो ॥ ५१ ॥ तुम मनुष्य कन्या ? नागकन्या ? गन्धर्वनन्दिनी अथवा किसी देवताकी कन्या हो ! तुमको रूपयौवनसम्पन्नबाला देखता हूं तुम इस स्थानमें अकेली क्यों बैठी हो ? ॥ ५२ ॥ हे सुलोचने ! किसी सौभाग्यवान् पुरुषने क्या तुम्हारा पाणिग्रहण किया है अथवा इस समय भी तुम्हारा विवाह नहीं हुआ है यह तुम मुझसे सत्य कहो. हे सुकेशि ! इस सरोवरमें तुम क्या देखती हो ॥ ५३ ॥ हे मन्मथमोहिनि ! तुम्हारे मनमें क्या इच्छा है सो कहो? हे कुटिलनयने ! तुम्हारे कोकिलकी समान कण्ठस्वरसे मेरा मन मोहित हुआ है. हे कशोदरि! तुम मुझको पतिरूपमें वरणकरके मेरे संग अनेक प्रकारके अभिलषित मनोरम भोग्य वस्तु भोग करो ॥ ५४ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे भाषायां अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः २९.

नारदजीने कहा हे द्वैपायन ! राजा तालध्वजने जब मुझसे इस प्रकार कहा तब फिर मैं ने मनमें अनेक विचारकर कहा ॥ १ ॥ हे राजन् ! मैं किसकी कन्या हूं

यह मैं नहीं जानती, और मेरे पितामाता कहा हैं यहभी मैं निश्चय नहीं कहसक्ती। एक पुरुष मुझको यह सरोवर दिखाकर कहीं चला गया है ॥ २ ॥ हे राजेन्द्र! मैं अनाथ और निराश्रय हुई हूं इस समय क्या करूं कहां जाऊं कौन कार्य करनेसे मेरा कल्याण होगा इस विषयमें निरन्तर चिन्ता करती हूं ॥ ३ ॥ हे राजन् दैवही बलवान् है इस विषयमें मेरी कुछ प्रभुता नहीं आप धर्मज्ञ और राजा हैं इस समय आपका जो अभिप्राय हो आप वही कीजिये ॥ ४ ॥ ॥ हे नृपवर! मेरा पालनकरनेके निमित्त बन्धु माता पिता, बान्धव कोई नहीं है और दूसरा कोई आश्रयस्थान भी नहीं है- अतएव मैं इस समय आपके अधीन हूं ॥ ५ ॥ मेरे इस प्रकार वचन कहनेपर फिर मेरा मुखकमल बडेनेत्र देखकर राजाका मन कामबाणसे व्याकुल होगया तब उन्होंने अनुचरोंसे कहा ॥ ६ ॥ तुम इसके चढ़नेको रेशमके वस्त्रोंके बिछोनेसे युक्त चतुरपुरुषोंसे वाहित नरयान पालकी लाओ ॥ ७ ॥ जो मोतियोंके जालसे सुशोभित सुवर्णसे जड़ित चौकोन और विस्तृत हो ॥ ८ ॥ राजाके वचन सुनतेही सेवकलोग शीघ्र जाय मेरे निमित्त वस्त्र-युक्त अत्यन्त मनोहर नरयान ले आये ॥ ९ ॥ मैं राजाके प्रियसाधनकी इच्छासे उसपर चढ़ा, राजाने भी प्रसन्नहो मुझको गृहमें लेजाकर ॥ १० ॥ विवाहकी विधि अनुसार शुभदिन और शुभलग्नमें अग्निके समीप मेरा पाणिग्रहण किया ॥ ११ ॥ मैं उनको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हुआ. राजाने आदरपूर्वक मेरा सौभाग्यसुन्दरी नाम रख दिया ॥ १२ ॥ वह राजा कामशास्त्रोक्त अनेक प्रकारके भोगविलास सहित मेरे संग अनेक प्रकार विहार और क्रीड़ा कर प्रमोद और अनेक प्रकार सुख अनुभव करने लगे ॥ १३ ॥ तब वह राजकार्य त्यागकर दिनरात मेरेसंग कामक्रीडामें आसक्त रहे वह महीपाल कामकलामें इस प्रकार निरत हुए थे कि, बहुत काल व्यतीत होनेपर भी वह उसको नहीं जान सके ॥ १४ ॥ वह वारुणी मदिरा पानकरके राजकार्य त्याग मनोहर उद्यान सुरम्य दीर्घिका मनोहर हर्म्य (महल) शोभायमान गृह रमणीय शैल श्रेष्ठ वन उन सब स्थलोंमें विहार करते करते भलीभाँति मेरे अधीन होगये ॥ १५ ॥ १६ ॥ हे द्वैपायन! उस राजाके संग क्रीड़ारसमें निरन्तर आसक्त और उसके ही वशीभूत रहकर मुझको पूर्व देह पुरुषभाव अथवा मुनिजन्म कुछ भी स्मरण न हुआ ॥ १७ ॥ यह राजा मेरे ही प्रति अनुरक्त थे सम्पूर्ण स्त्रियोंमें मैं ही उनकी प्रिय स्त्री था वह सदाही मुझमें निरत रहते थे

मैंही उनकी विलासिनी पटरानी हूं मेराजीवन सफल है ॥ १८ ॥ इस प्रकार चिन्ताकर दिनरात उनके प्रेममें आवद्ध और सुखप्राप्त करनेके निमित्त उनकेही वशीभूत होकर निरन्तर क्रीड़ामें आसक्त रहता ॥ १९ ॥ उन्हींमें मेरा मन अत्यन्त आसक्त हुआ था शाश्वत ब्रह्मज्ञान और धर्मशास्त्रका ज्ञान सम्पूर्णही भूलगया था ॥ ॥ २० ॥ हे मुनिवर! इस प्रकार कामक्रीड़ामें आसक्त रहकर अनेक प्रकार विहार करते करते बारह वर्ष क्षणकालकी समान बीत गये ॥ २१ ॥ किन्तु मैं उनको कुछभी नहीं जान सका, तदनन्तर मैं गर्भवतीहुआ. यह देखकर राजाने अत्यन्त प्रसन्न हो मेरी सम्पूर्ण गर्भसंस्कारक्रिया सम्पादनकी ॥ २२ ॥ राजा मेरः मन सन्तुष्ट करके सर्वदाही गर्भदोहद "मेरे मनोरथ की बात" वारम्वार पूँछते, मैं उससे अत्यन्त लज्जित होता इससे राजा और भी प्रीतिमान् होजाते ॥ २३ ॥ इस प्रकार दश मास पूर्ण होनेपर शुभ ग्रह शुभ नक्षत्र शुभ लग्न और शुभ ताराबलयुक्त शुभ दिननें मैंने एक पुत्र उत्पन्न किया ॥ २४ ॥ राजा पुत्रजन्म होनेसे अत्यन्त आनन्दित हुए और पुत्रजन्मका महामहोत्सव आरम्भ किया ॥ २५ ॥ हे द्वैपायन! जातशौच होनेपर राजा पुत्रका मुख देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए तदनन्तर मैं उन्हीं महीपालकी प्रियतम भार्या होकर रहा ॥ २६ ॥ तदनन्तर दो वर्ष पीछे फिर मेरे गर्भरहा उससेभी सर्वप्रकारके लक्षणोंसे युक्त दूसरा पुत्र उत्पन्न किया ॥ २७ ॥ राजाने दूसरे पुत्रका नाम सुधन्वा रक्खा और ब्राह्मणोंके आदेशसे ज्येष्ठ पुत्रका नाम वीरवर्मा रखदिया ॥ २८ ॥ इसप्रकार क्रमानुसार राजाके सम्मत द्वादश पुत्र उत्पन्न करके तब उनके लालन पालनमेंही मोहित होकर रहा ॥ २९ ॥ इसके उपरान्त फिर क्रमानुसार आठ पुत्र मेरे गर्भसे उत्पन्न हुए इस प्रकार मेरी सुखसम्पन्न गृहस्थली समृद्धिसे पूर्ण होगई ॥ ३० ॥ राजाने उन सम्पूर्ण पुत्रोंका यथोचित रूपसे विवाहकार्य सम्पादन किया उससे पुत्र वधू और पुत्रोंसे मेरा परिवार अत्यन्त वृहत् होगया ॥ ३१ ॥ तदनन्तर मेरे कितनेही पौत्र हुए उनके अनेक प्रकारके क्रीड़ारसमें मेरा मन मोह और भी वर्धित होने लगा ॥ ३२ ॥ इस प्रकार कभी सुख और एश्वर्य एवं कभी पुत्रोंके रोगजनित आश्चर्यजनक दुःख अनुभव करने लगा. इससे मेरा देह अत्यन्त सन्तप्त होने लगा ॥ ३३ ॥ कभी पुत्रोंका परस्पर घोरतर विरोध, कभी पुत्रोंका परस्पर दारुण कलह, इस दुर्घटनासे मेरे मनमें दारुण सन्ताप उत्पन्न होने लगा ॥ ३४ ॥ हे मुनिसत्तम! मैं सुख दुःखात्ममिथ्याचारमय

संकल्पजनित ऐसे मायाके संकटसागरमें निमग्न था ॥ ३५ ॥ अतएव पूर्वविज्ञान और वह शास्त्रज्ञान भूलकर स्त्रीभावसे गृहकार्यमें निरत होकर रहा ॥ ३६ ॥ मेरे इतनी पुत्र वधू हुई हैं यह सम्पूर्ण बलवान् पुत्र एकत्र मिलित होकर मेरे गृहमें क्रीड़ा करते हैं अहो! इससंसारमें मैं सम्पूर्ण स्त्रियोंमें धन्य और पुण्यवति हुई हूं तब मुझको इस प्रकार मोहवर्द्धक अहङ्कार भी उत्पन्न हुआ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ मैं नारदहूं भगवान्ने मुझको मायासे छला है ऐसा भाव मेरे मनमें कभी उदय नहीं हुआ ॥ ३९ ॥ हे कृष्णद्वैपायन! मैं सदाचारनिरतराजपत्नी और पतिव्रता हूं मेरे इतने पुत्र उत्पन्न हुए हैं मैं इस संसारमें धन्य हूं. इस प्रकार ऐश्वर्य आदिकी चिन्ता करके मैं मायासे मोहित होकर काल व्यतीत करने लगा ॥ ४० ॥ अनन्तर दूरदेशके अधिपति कोईएक महान् राजा मेरे पतिके संग बद्ध वैर हो ॥ ॥ ४१ ॥ युद्धके निमित्त रथ और बाणादि चतुरङ्गिणी सेनाके सहित कान्यकुब्ज-नगरमें आया ॥ ४२ ॥ जब उस राजाने सेनासे नगरको घेरलिया तब मेरे पुत्र और पौत्र नगरसे बाहरहो ॥ ४३ ॥ रणस्थलमें जाय उसके संग तुमुल संग्राम करने लगे किन्तु कालके प्रभावसे वैरीने मेरे सम्पूर्ण पुत्रोंको मार डाला॥ ४४॥ राजा रणसे भाग अपने गृहमें आगये फिर मैं ने सुना कि मेरे सम्पूर्ण पुत्र उस भयङ्कर संग्राममें मारे गये॥ ४५ ॥ वह बलवान् राजा मेरे पुत्र पौत्रोंको मारकर अपनी सेनाके सहित अपने नगरको चला गया तब मैं विलाप करती हुई उस संग्राम स्थलमें शीघ्र जाकर उपस्थित हुई ॥ ४६ ॥ हे आयुष्मन्! मैं उन दारुण दुःखपीडित पुत्र और पौत्रोंको भूमिमें पडा हुआ देखकर शोकसागरमें निमग्न हुआ और उच्चस्वरसे विलाप करने लगा ॥ ४७ ॥ हे पुत्रगण! तुम मुझको त्यागकर कहां चले गये. हाय! अत्यन्त बलवान् अतिसन्तापदायक और दुर्निवार दुरात्मा दैवने आज मुझको निहत किया ॥ ४८ ॥ इसी समयमें भगवान् मधुसूदन शोभायमान वृद्ध ब्राह्मणका वेश धारण कर उसी स्थानमें मेरे निकट आये ॥ ४९ ॥ उनके वसन पवित्र और मनोहर थे वह वेदज्ञ बोध होते थे मुझको रणस्थलमें दीनभावसे रोता हुआ देखकर कहने लगे ॥ ५० ॥ ब्राह्मण बोले हे देवि! तुम्हारा शब्द कोकिलकी समान है तुम पतिपुत्रवती और समृद्ध शालिनी गृहस्वामिनी बोध होती हो ॥ ५१ ॥ किन्तु तुम विचारो कि, यह सम्पूर्ण केवल मोहाज़नित भ्रम मात्र है तुम किसलिये रोती हो? किस कारण दुःखित होती है? हे सुलोचने! विचार कर देखो तुम

कौन हो? अथवा यह पुत्र किसके हैं? आपकी उत्तम गति कैसे होगी इसकीही तुम चिन्ता करो इस समय रोदन त्याग उठकर सावधान होओ ॥ ५२ ॥ हे देवि! परलोकमें गये हुए पुरुषोंकी मर्यादाके रक्षार्थ उनको जल और तिल दान करो ॥ ५३ ॥ मरे हुए पुरुषोंके बन्धुगणोंको तीर्थमें स्नान करना चाहिये घरमें स्नान करना कभी उचित नहीं यह धर्मका स्थिर निश्चय जानना चाहिये॥ ५४॥ नारदजीने कहा हे द्वैपायन! उन वृद्धविप्रवरके इस प्रकार समझानेपर फिर मैं और राजा बन्धुगणोंसे परिवृत हो उठे ॥ ५५ ॥ ब्राह्मणरूपधारी भूतभावन भगवान् मधुसूदन आगे आगे चलने लगे मैं शीघ्र उनके पीछे पीछे उस परम पवित्र तीर्थमें चलने लगा ॥ ५६ ॥ द्विजरूपधारी जनार्दनभगवान् हरि मुझको उस पुंतीर्थनामकसरोवरमें ले जाकर कृपाप्रकाशपूर्वक कहने लगे ॥ ५७ ॥ हे गजेन्द्रगामिनि! तुम इस परम पवित्र तड़ागके जलमें स्नान करो व्यर्थ शोक त्याग करो, इस समय तुम्हारे पुत्रोंकी क्रियाका समय उपस्थित हुआ है ॥ ५८ ॥ तुम विचार कर देखो कि, जन्मजन्मान्तरमें तुम्हारे करोड, करोड, पुत्र कन्या हुई हैं और करोड करोड पुत्र कन्याओंने प्राण त्याग किया है और करोड करोड पिता पति भ्राता जामाता प्राप्त हुए हैं ॥ ५९ ॥ फिर उनको छोडा है. हे देवि! मैं कहता हूं देखो इनमें किसके निमित्त तुम इस समय दुःख करोगी? यह केवल मनका भ्रम मात्र है. यह संसार मोहमय इन्द्रजालकी समान मिथ्या और स्वप्नकी समान है, इससे देही पुरुषोंको सन्ताप मात्रही उत्पन्न होता है ॥ ६० ॥ नारदजीने कहा मैं उन विष्णुका वचन सुनकर उनसे प्रेरित हो स्नान करनेकी इच्छासे उस पुंतीर्थके जलमें प्रविष्ट हुआ ॥ ६१ ॥ तब निमग्न हो निकलकर देखा कि क्षणमात्रमेंही मैं पुरुष हुआ निजदेह धारी भगवान् हरि करमें वीणा धारण कर तटपर खडे हैं ॥ ६२ ॥ हे द्विजोत्तम! मैंने उछलकर जब तीरमें स्थित कमललोचन कृष्णको देखा तब मेरे चित्तमें पूर्ण ज्ञानका उदय हुआ ॥ ६३ ॥ तब विचार किया मैं नारद हूं इस स्थानमें आया हूं और हरिकी मायासे मोहित होकर स्त्रीभावको प्राप्त हुआ था ॥ ६४ ॥ मैं इस प्रकार चिन्ता करता था तब भगवान् हरिने मुझसे कहा हे नारद! उठकर आओ जलमें खडे क्या करते हो ॥ ६५ ॥ मैं आश्चर्ययुक्त हो अपने दारुण स्त्री भावका स्मरण करे पुनर्वार किस कारण पुरुषभावको प्राप्त हुआ यही विचारने लगा॥ ६६॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषायां एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

त्रिंशोऽध्यायः ३०.

नारदजीने कहा हे मुनिवर! उस जलमें स्त्रीरूपसे निमग्न हो विप्रवर नारदरूपसे निकला हुआ देखकर वह महीपति अत्यन्त आश्चर्ययुक्त हो मनमें इसप्रकार चिन्ता करने लगे कि, मेरी वह प्रियतमा भार्या कहां गई और मुनि सत्तम नारदही सहसा कहांसे उपस्थित हुए ॥ १ ॥ राजा प्रियतमा भार्याको न देखकर हा प्रिये! मुझको छोडकर तुम कहाँ चली गई? मैं तुम्हारे विरहमें अत्यन्त व्याकुल होता हूं शीघ्र आनकर मुझको दर्शन दो, यह कहकर वारंवार विलाप करने लगे ॥ २ ॥ वह कान्ताके विरहमें अत्यन्त व्याकुल होकर कहने लगे हे कमलनयने! तुम्हारे विना मेरा जीवन और राज्यादि विफल है. हे शुचिस्मिते! तुम्हारे अभावसे मेरा समस्त गृह शून्यमय है ॥ ३ ॥ हे पृथुश्रोणि! तुम्हारे विरहमें इस समय भी मेरे प्राण क्यों नहीं निकलते? हे जीवितेश्वरि! तुम्हारे निमित्त यावज्जीवन मेरा प्रीतिरूप धर्म भ्रष्ट हुआ है! मेरी प्रीति इस समय कहां गई जो मैं जीता हूं ॥ ४ ॥ हे मृग-शावाक्षि! मैं तुम्हारे वियोगसे कातर होकर विलाप करता हूं तुम उसका उत्तर देकर मेरे मन और प्राणको शीतल करो. हे प्रिये! प्रथम मिलनेके समय तुमने मेरे प्रति जिसप्रकार प्रीतिप्रकाश की थी. इस समय वह कहां चली गई ॥ ५ ॥ हे सुभ्रु! मेरे दुर्भाग्यवशसेही क्या तुमने जलमें निमग्न होकर प्राणत्याग किया क्या तुमको मत्स्यकच्छपादि जलचर जन्तुओंने भक्षण करलिया. अथवा जलाधिपति वरुणदेवने तुमको आग्रहसहित ग्रहण कर लिया ॥ ६ ॥ हे अमृतभाषिणी! तुमने पुत्रोंके संग गमन किया, अतएव तुम धन्य हो आहा! पुत्रोंके प्रति जो तुम्हारा अकृत्रिम स्नेह था वह भी तुमने इस समय प्रकाश किया ॥ ७ ॥ हे चारु सर्वाङ्गि! मैं तुम्हारे विरहमें विलाप करता हूं तुम पुत्रस्नेहमें आकृष्ट हो मुझको परित्याग कर स्वर्गमें चली गई यही क्या तुम्हारा कर्त्तव्य है? ॥ ८ ॥ हे प्रिये! देखो मैं ने पुत्र और प्राणवल्लभा प्रिया इन दोनोंको छोड़ दिया तोभी मेरे प्राण नहीं निकले. अत एव मेरे प्राण निःसन्देह कुटिल हैं ॥ ९ ॥ जो मनोरमा पतिव्रता प्रियाकी विरहवेदना जानते हैं वह रघुकुलतिलक रामचन्द्रजी इस समय पृथ्वीमें स्थित नहीं करते तो इस समय मैं यह वेदना प्रकाशकरने को कहां जाऊं क्या करूं वह मैं स्थिर नहीं करसक्ता ॥ १० ॥ सुख और दुःखमे जिसके मनका भाव समान है इस प्रकार दम्पतिका मरण भिन्न भिन्न रूपसे निर्दिष्ट करके निष्ठुर विधाताने अत्यन्त विपरीत

कार्य किया ॥ ११ ॥ मुनियोंने धर्मशास्त्रमें पतिके संग पतिव्रता स्त्रियोंकी सह मरण विधि निर्द्धारित कर उनका विशेष उपकार साधन किया है किन्तु उन्होंने पुरुषोंका स्त्रियोंके संग अग्निप्रवेशका विधान क्यों नहीं किया? वह भी उत्तम होता इसमें सन्देह नहीं ॥ १२ ॥ राजाको इस प्रकार विलाप करता हुआ देखकर भगवान् हरिने उसको युक्ति युक्त वचनोंसे निवारित करके कहा ॥ १३ ॥ भगवान् बोले हे राजन्! तुम इतना विषाद क्यों करते हो? तुम्हारी प्रियस्त्री कहाँ गई है? तुमने क्या कभी शास्त्र श्रवण अथवा बुद्धिमानोंका आश्रय ग्रहण नहीं किया ॥ १४ ॥ तुम्हारी वह प्रिया कौन है? और तुम कौन हो? तुम्हारा संयोग किस प्रकार है? और वह कहां हुआ था. हे राजन्! नौकामें नदीपारजानेको जिस प्रकार मनुष्योंका क्षण-काल मिलन होता है इस प्रवाहरूप संसारमें स्त्रीपुत्रोंका मिलनभी इसी प्रकार जानना चाहिये ॥ १५ ॥ अतएव हे नृपवर! इस समय तुम घरको जाओ वृथा रोनेसे क्या फल है मनुष्योंका संयोग और वियोग सर्वदाही दैवके अधीन है. अतएव उसके लिये विलाप करना बुद्धिमान् मनुष्योंका कर्त्तव्य नहीं है ॥ १६ ॥ हे राजन्! इस स्त्रीके संग तुम्हारा मिलन इसी स्थानमें हुआ था और तुमने उस विशालाक्षी कृशोदरी सुन्दरीको इसी स्थानमें छोडा है॥ १७॥ तुमने उसके पितामाताको नहीं देखा काकतालीकी समान इस सरोवरमेंही प्राप्त हुई है. वह जिस प्रकार तुम्हारी हुई थी. इसी प्रकार फिर तुमको छोड़ गई उसके लिये विलाप करना तुमको उचित नहीं है ॥ ॥ १८ ॥ हे राजेन्द्र! तुम अब वृथा शोक मत करो कालको अतिक्रम करनेमें कोई समर्थ नहीं होता तुम घर जाकर कालयोगमें पहलेकी समान सम्पूर्ण भोग्यवस्तु भोग करो ॥ १९ ॥ वह वरवर्णिनी रमणी जिस प्रकार आई थी उसी प्रकार चली गई तुम भी इसी प्रकार सबके प्रभु रहकर अपने राज्यमें पहले जिस प्रकार राजकार्य करते थे इस समय भी उसी प्रकार कार्य करो. क्योंकि यही तुम्हारा एकान्त कर्तव्य है ॥ २० ॥ हे राजन्! तुम विचारकर देखो कि, तुम्हारे दिनरात रोदन करनेपर भी वह रमणी फिर नहीं आवेगी. हे पृथ्वीन्द्र! तब तुम क्यों वृथा शोक करते हो जाओ मेरे वचनसे योगमार्गमें मन समर्पणकर काल व्यतीत करते

---

(१) काकतालीयन्याय वह है कि कोई कौआ दैवात् तालवृक्षपर आकर बैठा और वह तालका फल उसके बैठनेसे नीचे गिरा और वहां बैठे पुरुषको फल अकस्मात् प्राप्त होगया.

रहो ॥ २१ ॥ सम्पूर्ण भोग्य वस्तु कालवशसेही उपस्थित होती हैं और कालवश-सेही चली जाती हैं. अतएव इस निष्फल संसारमार्गमें शोक करना कभी ज्ञानियोंको उचित नहीं है ॥ २२ ॥ एकत्र सुखसंयोग और एकत्र दुःखसंयोग सर्वदा नहीं होता. अतएव इस संसारमें सुख और दुःख स्थिर न रहकर घटिकायन्त्रकी समान सदाही भ्रमण करता है ॥ २३ ॥ अतएव हे नृपवर! मन स्थिर करके तुम यथा-सुखसे राज्य करते रहो अथवा अपनी सन्तानको राज्यका भार समर्पण कर वनको चले जाओ ॥ २४ ॥ यह प्राणियोंको क्षणभंगुर मनुष्यदेह दुर्लभ है इसके प्राप्त होनेमें सदा आत्मसाधन करना चाहिये ॥ २५ ॥ हे राजन्! लिङ्ग और रसनादि इन्द्रियोंसे पशुभी विषयरस आस्वादन करते हैं किन्तु एक मात्र ज्ञान मनुष्यदेहमें अधिक दिखाई देता है अन्य कुत्सित योनिमें वह दिखाई नहीं देता ॥ २६ ॥ इसी ज्ञानके अनुसार कांताका शोक त्यागन कर घरको जाओ यह भगवतीकी माया है जिसने सब जगत् मोहित कर रक्खा है ॥ २७ ॥ नारदजी बोले भगवान् हरिके यह वचन सुनकर राजा देवदेव कमलापतिको प्रणाम कर स्नानादि विधि पूर्ण कर अपने मन्दिरको गये ॥ २८ ॥ अपने पौत्रको राज्य देकर वैराग्यको प्राप्त हो राजाने वनको जाकर तत्वज्ञानकी प्राप्ति की ॥ २९ ॥ राजाके गमन करनेपर भगवान् अच्युत मेरी ओर वारंवार देखकर हँसते थे यह देखकर मैंने उन देव-देव जगन्नाथसे कहा ॥ ३० ॥ हे देव! आपने मुझको छला है मायाका बल अत्यन्त महत् है वह मैंने इस समय जान लिया. हे जनार्दन! मैंने स्त्रीरूप होकर जो सब कार्य किये इस समय वह सब स्मरण करता हूं ॥ ३१ ॥ हे हरे! मेरे सरोवरके जलमें प्रविष्ट हो स्नान करतेही मेरा पूर्वज्ञान क्यों दूर हुआ? ॥ ३२ ॥ और जब मैंने नारीदेहको प्राप्त हो शचीदेवीको इन्द्र प्राप्तिके समान राजाको पतिरूपसे प्राप्त किया तब मैं मोहित क्यों हुआ ॥ ३३ ॥ मेरा वही पूर्वकामना वही पुरातन जीवात्मा और वही पुरातन सूक्ष्म देह यह सभी विद्यमान थे तब क्यों मेरी स्मृतिका नाश हुआ? ॥ ३४ हे प्रभो! इस ज्ञाननाशके विषयमें मुझको महान् संशय उत्पन्न होता है हे रमानाथ! आप आज इसका यथार्थ कारण वर्णन करके मेरा सन्देह दूर कीजिये ॥ ३५ ॥ मैंने स्त्रीभावको प्राप्त हो अनेक भोग्य वस्तु भोग की हैं और सुरापान तथा अहित द्रव्य भी भोजन किया है हे मधुसूदन! इन सबका क्या कारण है? ॥ ३६ ॥ तब मैंने अपनेको नारद नहीं जानसका मैं इस समय जिस

प्रकार भलीभाँति समस्त जानसका हूं उस समय वह कुछ भी क्यों नहीं जान सका ? ॥ ३७ ॥ केशवने कहा हे बुद्धिमान् नारद ! यह सब मायावी ईश्वरकी मायाका विलास मात्र है तुमको जानना चाहिये कि, सम्पूर्ण जन्तुओंके देहकी अनेक प्रकार अवस्था होती है ॥ ३८ ॥ यदि देहीगणोंके केवल देहकीही जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति और तुरीय यह चार प्रकारकी दशा होती है तो देहान्तर प्राप्त होनेसे जो दशा विपर्याय होता है इसमें तुम सन्देह क्यों करते हो ? ॥ ३९ ॥ मनुष्य जब सोता है तब कोई विषय नहीं जानसक्ता सुनभी नहीं सक्ता और कहभी नहीं सक्ता किन्तु फिर जानकर सब विषय भलीभाँति जान सक्ता है ॥ ४० ॥ निद्रासे चित्त चलायमान होता है तब स्वप्नसे मनकी अनेक प्रकार अवस्थाका भेद और मनोभावका अनेक भाँति प्रकार भेद होता है ॥ ४१ ॥ मत्त हाथी मुझको मारता हुआ आता है मैं भागनेमें समर्थ नहीं होता क्या करूं कहा जाऊं मुझको शीघ्र भागनेका स्थान नहीं है स्वप्नावस्थामें ऐसा अनेक प्रकार मनका भाव होता है ॥ ४२ ॥ और कभी स्वप्नमें दिखाई देता है कि, हमारे मृतपितामह हमारे घर आये हैं उनको मैं देखता हूं और उनके संग अनेक बातचीत करता हूं बरन उनके संग एकत्र भोजन भी करता हूं ॥ ४३ ॥ स्वप्नमें सुखदुःख जो कुछ अनुभव होता है मनुष्य जागकर वह सब जान सक्ता है और स्वप्नका वृत्तान्त स्मरण कर विस्तारपूर्वक कह सक्ता है ॥ ४४ ॥ हे नारद ! स्वप्न देखनेके समय स्वप्नमे दीखे सब विषय भ्रमयुक्त होनेसे कोई इस प्रकार निश्चितरूपसे नहीं जान सक्ता मायाका प्रभाव भी इसी प्रकार दुर्ज्ञेय जानना चाहिये ॥ ४५ ॥ हे मुनिवर ! मायाके तीनों गुण परम दुर्गम प्रभावका परिमाण है ? जब मैं शम्भु और ब्रह्मा कोई नहीं जान सक्ते ॥ ४६ ॥ तब दूसरा कौन मन्दबुद्धि मनुष्य उनकी सीमा जान सक्ता है. अतएव हे नारद ! इस संसारके बीच मायाका गुण जाननेमें कोई समर्थ नहीं है ॥ ४७ ॥ यह स्थावर जंगमात्मक जगत् मायाके गुणसे निर्मित है अर्थात् बना है माया गुणके विना यह संसार किंचिन्मात्र भी वर्त्तमान नहीं रह सक्ता ॥ ४८ ॥ मैं सत्वगुण प्रधान हूं और तमोगुण मुझमें विद्यमान रहता है मैं भुवनेश्वर होकर भी इन तीनों गुणोंको अतिक्रम करनेमें समर्थ नहीं होता ॥ ४९ ॥ इसी प्रकार तुम्हारे पिता प्रजापति रजः प्रधान हैं किन्तु सत्व और तमोगुण कभी त्यागकरनेमें समर्थ नहीं होते ॥ ५० ॥ और महादेव तमप्रधान हैं किन्तु उनमें भी सत्व और रजोगुण सदाही विद्यमान रहता है. अतएव कोई पुरुषभी इन

तीनों गुणोंसे अलग होकर नहीं रह सके यह मैंने श्रुतिमें निर्दिष्ट कर रक्खा है ॥ ५१ ॥ अतएव हे मुनिवर ! मायानिर्मित परम दुर्घट इस अपार संसारमें मोह त्यागकर ब्रह्मरूपिणी भगवती की उपासना करनी ही उचित है ॥ ५२ ॥ हे महाभाग ! तुमने इस समय तो मायाका प्रभाव देखा है, मायाजनित अनेक प्रकारके भोग्य द्रव्य भी भोग किये हैं और मायाका चारित्र जो कि अद्भुत है वह भी जान गये हो तो फिर इस विषयमें मुझसे क्यों पूँछते हो ॥ ५३ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषायां त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशोऽध्यायः ३१.

व्यासजीने कहा हे महाभाग ! मैंने पहले महर्षि नारदसे मायाका माहात्म्य जिस प्रकार सुना है वह सम्पूर्ण आपसे भलीभाँति प्रकाश करके कहता हूं सावधान होकर सुनो ॥ १ ॥ मैंने नारदका नारीदेह प्राप्तिविषयक उपाख्यान सुनकर उन सर्व विद्वुणोंके अग्रगण्य महर्षिसे पूँछा था ॥ २ ॥ हे मुनिवर! तदनन्तर हरिने आपसे क्या कहा और आपके संग वह देवदेव लक्ष्मीपति कहां चले गये ॥ ३ ॥ नारदजीने कहा उस मनोहर सरोवरमें भगवान्‌ने मुझसे यह सब कह गरुड़पर चढ़ वैकुण्ठधाममें जाने की इच्छा की ॥ ४ ॥ तब उन कमलापतिने मुझसे कहा कि, तुम भी अपने अभिलषित स्थानमें जाओ अथवा यदि तुम्हारी इच्छा हो तो मेरे संग गोलोकधाममें भी चल सक्ते हो ॥ ५ ॥ तब मैं प्रणाम और सम्भाषण कर ब्रह्मलोकको चला गया और भगवान् भी तत्काल गरुड़पर चढ़ ॥ ६ ॥ सुखपूर्वक वैकुण्ठमें चले गये जनार्दनके चलेजानेपर, फिर मैं भी मनमें सब प्रकार ॥ ७ ॥ अद्भुत सुख और दुःखकी चिन्ता करते करते ब्रह्मलोकमें पिताके समीप गया अनन्तर प्रणाम कर जैसेही उनके सामने खडा हुआ ॥ ८ ॥ वैसेही पिताने मुझको चिन्तातुर देखकर पूँछा ब्रह्मा बोले हे महाभाग ! तुम कहाँ गये थे ? और तुमको चिन्तातुर क्यों देखता हूं ॥ ९ ॥ हे मुनिसत्तम ! आज मैं तुम्हारा मन सावधान नहीं देखता मुझको बोध होता है कि, किसीने तुमको छला है अथवा तुमने कोई अद्भुत वस्तु देखी है ॥ १० ॥ हे पुत्र ! आज मैं तुमको व्याकुल और ज्ञानहीनकी समान क्यों देखता हूं नारदजी बोले हे द्वैपायन ! पिताके

मुझसे इस प्रकार पूँछनेपर फिर मैं ने कुशासनपर बैठ ॥ ११ ॥ माया माहात्म्य जनित अपना समस्त वृत्तान्त उनसे कहा हे पितः ! मैं महाप्रभावशाली विष्णुसे छला गया हूं ॥ १२ ॥ उन्होंने मुझको स्त्रीभाव देकर अनेक वर्ष उसी भावमें रक्खा था उसमें भी मैं ने पुत्रशोकका महा दुःख अनुभव किया है ॥ १३ ॥ अनन्तर उन्होंनेही मुझको माधुर्यमय वचनामृतसे फिर ज्ञान प्रदान किया है फिर सरोवरमें स्नान करके यह पुरुषरूपी नारद हुआ हूं ॥ १४ ॥ हे पितः ! मैं जो ऐसे मोहको प्राप्त हुआ था उसका क्या कारण है और मैं पूर्वज्ञान भूल एवं बलप्रेरित हो तत्काल मोहमयभावको प्राप्त क्यों हुआ ॥ १५ ॥ हे तात ! मायाका बल जो इस प्रकार कठिनतासे छूटने योग्य है वह मैं पहले नहीं जानता था मायाके बलसेही ज्ञानकी हानि होती है मायाबलही मोहका मूल है यह मैं ने भलीभाँति अनुभव किया है ॥ १६ ॥ और उसमें मङ्गल अथवा अमङ्गल जो कुछ है वह भी जान गया हूं. हे पितः ! आपने उस दुर्घट अचिन्त्य मायाको किस प्रकार जीता है वह आप मुझसे भी कहिये ॥ १७ ॥ नारदजी बोले हे तपोधन ! मेरे इस प्रकार कहनेपर फिर पिताने मेरी चिन्ताका कारण जानकर तदनन्तर मुझसे प्रीतिपूर्ण वचनोंद्वारा कुछेक हँसकर कहा ॥ १८ ॥ ब्रह्माजी बोले हे वत्स ! देवतालोग, महात्मा, मुनि, ज्ञानी, तापस और वायुभोजी योगी भी इस मायाके जय करनेमें समर्थ नहीं होते ॥ १९ ॥ हे नारद ! मायाका बल ऐसा महत् है कि, मैं विष्णु और उमापति शम्भु इत्यादि ॥ २० ॥ कोई उस मायाके जाननेमें समर्थ नहीं होते कालकर्म और स्वभावादिके कारण वह महामायाही इस जगत्की सृष्टि, स्थिति और प्रलय करती है ॥ २१ ॥ हे वत्स ! तुम उसको अत्यन्त दुर्ज्ञेय जानो. हे मेधाविन् ! तुम शोक मत करो और उस मायाके महत् बलविषयमें भी आश्चर्य करना तुमको उचित नहीं है क्योंकि उसमें हम सम्पूर्ण ही मोहित हो रहे हैं ॥ २२ ॥ नारदजी बोले हे द्वैपायन ! पिताके मुझसे इस प्रकार कहनेपर फिर मेरा आश्चर्य दूर होगया. तदनन्तर मैं पिता पद्मयोनीकी आज्ञा लेकर तीर्थोंमें विचरण करनेको निकला क्रमानुसार सम्पूर्ण प्रधान प्रधान तीर्थ देखते देखते अब इस स्थानमें आनकर उपस्थित हुआ हूं ॥ २३ ॥ अतएव हे मुनिसत्तम ! तुम भी कुरुकुलनाशजनित शोक त्याग कर इस स्थानमें परम आनन्द सहित वास कर समय बिताते रहो ॥ २४ ॥ अपने किये शुभाशुभ कर्म अवश्य ही भोगने होते हैं

हृदयमें यह स्थिर निश्चय करके सुखपूर्वक विचरण करो ॥ २५ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! महर्षि नारद यह कह मुझे तत्त्वबोध उदय कराय यथेच्छ स्थानमें चले गये मैं तव नारदजीके कहे उन सब वचनोंकी मनमें चिन्ता करने लगा ॥ २६ ॥ मैंने सरस्वतीके तटपर वास कर अत्युत्तम सारस्वतकल्पमें काल व्यतीत करनेके निमित्त यह देवीभागवत बनाई थी ॥ २७ ॥ यह महापुराण अत्युत्तम है इससे सम्पूर्ण संशय नष्ट होते हैं. क्योंकि यह वेदके प्रमाणसे रचित है इसमें अनेक प्रकारके उपाख्यान वर्णित हैं ॥ २८ ॥ अतएव हे नृपवर ! इसमें कभी संदेह करना उचित नहीं है जिसप्रकार इन्द्रजालिक मनुष्य काठकी पुतलीको हाथमें लेकर ॥ ॥ २९ ॥ अपने इच्छानुसार नचाता है यह जगमोहिनी मायाभी ब्रह्मादिस्तम्ब-पर्यन्त देव और मनुष्यके सहित इस स्थावरजङ्गमात्मक जगत्को इसी प्रकार नचाती है. हे राजन् ! पञ्चेन्द्रिययुक्त जो मन चित्तके अनुसार वर्तता है ॥ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ इसमें मायाके तीनों गुण हैं उनको सर्वथा कारण जानना चाहिये. क्योंकि इनसेही कार्यकी उत्पत्ति है यह भलीभाँति निश्चय हुआ है ॥ ॥ ३२ ॥ तव अनेक प्रकार मायाके गुणोंसे जो भिन्न भिन्न स्वभावयुक्त जीवोंकी उत्पत्ति होगी इसमें फिर क्या सन्देह है? उस मायाके गुणसे अनेक प्रकार इसी कारण संसारमें कोई शान्त कोई घोरतर मूर्ख होता है ॥ ३३ ॥ वह जव कि, मायाके गुणसे उत्पन्न है तव किस प्रकार उनको छोड़ सक्ता है? जिस प्रकार तन्तुके विना वस्त्रकी उत्पत्ति असंभव है ॥ ३४ ॥ इसी प्रकार इस संसारमें मायाके तीनों गुण विना मनुष्योंकी उत्पत्ति भी असंभव है यह स्थिर निश्चय जानना चाहिये. इसी प्रकार देवदेह नरदेह अथवा तिर्यग्देह हो ॥ ३५ ॥ गुणरहित होकर कोई भी उत्पन्न नहीं हो सकता जैसे मृत्तिकाके विना घट नहीं होता ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र यह तीनों भी तीनों गुणोंका आश्रय करते हैं ॥ ३६ ॥ इसी कारण वह कभी प्रसन्न कभी अप्रसन्न और कभी विषादयुक्त होते हैं ॥ ३७ ॥ ब्रह्मा जब सत्वगुणमें स्थित होते हैं तव वह ज्ञानयुक्त और प्रीतियुक्त एवं शान्त तथा समाधिमान् होते हैं ॥ ३८ ॥ और जब सत्वगुण रहित तथा रजोगुण युक्त होते हैं तब सर्वत्र अप्रीति युक्त घोररूप धारण करते हैं ॥ ३९ ॥ और जब वह भलीभाँति तमोगुण युक्त होते हैं, तब विषादयुक्त हो मूढ़ताको प्राप्त होते हैं. इसमें सन्देह नहीं ॥ ४० ॥ माधव भी जब सत्वगुणका आश्रय करते हैं, तब वह शान्त

प्रसन्न और ज्ञानयुक्त होते हैं ॥ ४१ ॥ और रजोगुणकी अधिकता होनेसे वह प्रीतिरहित होकर सब भूतोंके प्रति घोररूप धारण करते हैं ॥ ४२ ॥ रुद्रदेव भी जब सत्वगुण युक्त होते हैं. तब प्रसन्न और शान्त होते हैं और रजोगुण होनेसे वह भी फिर प्रीति छोड़ कर घोररूप धारण करते हैं ॥ ४३ ॥ और जब वह तमोगुणका आश्रय ग्रहण करते हैं, तब मूढ़ और विषादसंपन्न होते हैं. हे राजन् ! ब्रह्मा, विष्णु, महादेव यह भी जब गुणोंके अधीन हैं ॥ ४४ ॥ तथा सूर्यवंशीय और चन्द्रवंशीय राजालोग युगयुगमें मनुआदि चौदह मन्वन्तरोंके अधिपति हैं ॥ ॥ ४५ ॥ जब यह भी सब मायाके अधीन हुए तो अन्यान्य साधारण मनुष्यादि जीवोंके पक्षमें उस विषयका क्या कहना है? हे नृपवर ! सुरनरादि समन्वित यह सब जगत् मायाके अधीन है ॥ ४६ ॥ इस विषयमें कभी सन्देह नहीं करना चाहिये. संपूर्ण देहधारी मायाके अधीन हैं और मायाके वशमें होकरही सब कार्य करते हैं. कभी स्वाधीन होकर कार्य करनेमें समर्थ नहीं होते ॥ ४७ ॥ वही माया फिर संवित् रूपसे परतत्त्वमें सदाही स्थित है. माया उन संवित् रूपिणी परमेश्वरीके अधीन और उनसे प्रेरित होकरही जीवोंके अन्तरमें निरन्तर समवाय संबंधसे अनुसम्बद्ध होकर रहती है ॥ ४८ ॥ अतएव कल्याणकी इच्छा करनेवाले पुरुषगण उस मायाविशिष्ट मायाकी ईश्वरी सच्चिदानन्दस्वरूपिणी परब्रह्मरूपिणी संवित् रूप भगवतीका ॥ ४९ ॥ ध्यान आराधना और सदा उनका मंत्र जप करनेसे वह उसके प्रति दयायुक्त हो अपनी माया संहार ॥ ५० ॥ और अपनी अनुभूषितप्रदान पूर्वक उस देही पुरुषको संसारके बन्धनसे छुड़ा देती हैं यह सम्पूर्ण भुवन मायामय हैं इसी कारण वह ब्रह्मरूपिणी संवित् इनकी ईश्वरी हैं॥ ५१ ॥ इस कारण वह त्रैलोक्य सुन्दरी भगवती भुवनेश्वरीनामसे विख्यात हुई हैं ॥ हे भूमिपते ! यदि जीवोंका चित्त इस संवित् रूपमें आसक्त हो ॥ ५२ ॥ तो सद् असत् रूप माया कुछभी करनेमें समर्थ नहीं होती. अतएव सच्चिदानन्दरूपिणी भुवनेश्वरीके सिवाय दूसरे कोई देवता मायाके दूर करनेमें समर्थ नहीं होते. हे राजन् ! तुम कभी तमोराशि नाश करनेमें समर्थ नहीं होता ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ सूर्यप्रभा, चन्द्रप्रभा, विद्युत्प्रभा, इत्यादिही उसके नाशमें समथ होती हैं. अतएव मायाका गुण निवृत्त होनेके निमित्त प्रीतिपूर्वक उन मायाकी ईश्वरी स्वयंप्रभा सम्वितरूपिणी अम्बिकाकी ॥ ५५ आराधना करनी चाहिये. हे राजेन्द्र ! तुमने जो पूँछा था वह वृत्रासुर वधादिके वृत्तान्तकी सब कथा

वर्णन की ॥ ५६ ॥ अब और किस विषयके सुननेकी इच्छा करते हो ? यह पुराणका पूर्वभाग तुम्हारे निकट वर्णन किया ॥ ५७ ॥ जिसमें देवीकी महिमा विस्तारपूर्वक वर्णन कीगई है. यह भवानी माताका रहस्य जिस किसीको न देना चाहिये ॥ ५८ ॥ परन्तु भक्त शान्त देवीकी भक्तिमें तत्पर शिष्य ज्येष्ठपुत्र गुरुभक्तिमें तत्परको देना चाहिये ॥ ५९ ॥ यह पुराण सब कथाओंका सारभूत है यह सब शास्त्रोंकी समान सत्प्रमाणससे युक्त है जो इसको परम भावसे पढते हैं सुन्ते हैं वे पुरुष धनवान् और ज्ञानवान् होते हैं ॥ ६० ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भगवतीमाहात्म्ये पं० ज्वालाप्रसाद मिश्रकृत भाषायां एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ श्रीजगदम्बार्पणमस्तु ॥

१८८४ श्लोकोंमें यह षष्ठस्कंध पूर्ण हुआ.

दोहा—श्रीमाताके पदकमल, युगल भलीविधिध्याय।
भाषा षष्ठ स्कन्धकी, सुन्दर लिखी बनाय ॥ १ ॥
बसतराम गंगानिकट, नगर मुरादाबाद।
भजन करत हरिको सदा, जनज्वालाप्रसाद ॥ २ ॥

शुभमस्तु.



"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस, खेतवाडी–बंबई.

अथ श्रीमद्देवीभागवत ।

सप्तमस्कन्धः ७.

प्रथमोऽध्यायः १.

दोहा—श्रीजगदम्बापदकमल, प्रेमसहित मनलाय ।
भाषा सप्तमस्कन्धकी, बहुविधि लिखत बनाय ॥ १ ॥
भुवनेशीगौरीशिवा, सकलसुमंगलमूल ।
श्रोता वक्ता पर रहहि, जगन्मात अनुकूल ॥ २ ॥

सूतजीने कहा हे तापसगण ! परीक्षितके पुत्र धर्मात्मा राजा जनमेजयने चन्द्र और सूर्यवंशका दिव्य उपाख्यान सुन आनन्दित हो व्यासदेवजीसे फिर पूँछा ॥ १ ॥ जनमेजय बोले हे प्रभु ! चन्द्रवंशीय और सूर्यवंशीय राजाओंके वंशका विस्तार सुननेकी मुझको अत्यन्त इच्छा हुई है ॥ २ ॥ हे अनघ ! आप सब विषय जानते हैं अतएव चन्द्र और सूर्यवंशका पापनाशन पवित्र आख्यान और राजाओंका चरित्र विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥ वह चन्द्र और सूर्यवंशीय राजा पराशक्ति भगवतीके अत्यन्तभक्त थे यह मैं ने सुना है. हे मुनिवर ! देवीके भक्तोंकी चारित्रकथा सुनकर कौन मनुष्य विरक्त होता है ? ॥ ४ ॥ राजर्षिके यह कथा पूँछनेपर फिर सत्यवतीके पुत्र मुनिवर कृष्णाद्वैपायनमें प्रीतिसे प्रफुल्लितमन हो उनसे कहा ॥ ५ ॥ हे महाराज ! मैं चन्द्र और सूर्य वंशीय राजा और इनके प्रसंगसे अन्यान्य राजाओंकी उत्पत्तिका विवरण विस्तारपूर्वक वर्णन करता हूं आप सावधान होकर सुनिये ॥ ६ ॥ विष्णुकी नाभिकमलसे चतुरानन ब्रह्मा उत्पन्न हुए वह तपस्यामें निरत हो एकान्त क्या दुर्ज्ञेया जो जाननेमें न आवे महादेवी उन दुर्गाकी आराधना करने लगे ॥ ७ ॥ महादेवीने आराधनासे सन्तुष्ट होकर ब्रह्माजीको वरदिया यद्यपि वह सर्वलोक पितामह ब्रह्मा वर पाय जगत्को उत्पन्न करनेमें उद्यत हुए किन्तु वह

सहसा मनुष्योंको उत्पन्न करनेमें समर्थ न हुए ॥ ८ ॥ तात्पर्य यह है कि, यह सृष्टि परमात्मारूपिणी भगवती कर्तृक नित्यरूपसे रचित होनेपर चतुरानन ब्रह्मा मनमें अनेक प्रकारकी चिन्ता करके भी शीघ्र उसका विस्तार न करसके ॥ ९ ॥ अतएव प्रजापति ब्रह्माने प्रथम सात मानस पुत्र उत्पन्न किये. उनके नाम मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वशिष्ठ. यह सात मानस पुत्र कहकर विख्यात है ॥ १० ॥ इसके उपरान्त उन प्रजापतिके रोषसे रुद्र, उत्संगसे नारद और दक्षिण अंगुष्ठसे दक्ष उत्पन्न हुए. इस प्रकार सनकादिऋषिलोग भी उनके मानस पुत्र थे ॥ ११ ॥ हे महीपते ! प्रजापतिके वाम अंगुष्ठसे दक्षकी स्त्री उत्पन्न हुई. वह सर्वाङ्ग सुन्दरी कन्या वीरिणी और असिक्नीनामसे सम्पूर्ण पुराणोंमें विख्यात है ॥ १२ ॥ देवर्षिप्रवर नारदने समयान्तरमें उसके गर्भसे जन्म ग्रहण किया वह असिक्नी नामसे विख्यात थी ॥ १३ ॥ जनमेजयने कहा हे ब्रह्मन् ! आपने कहा है कि, तपस्वी नारदने दक्षके औरससे और वीरिणीके गर्भसे जन्म ग्रहण किया था इसमें मुझको संशय उत्पन्न हुआ है ॥ १४ ॥ नारदमुनि एक तो ब्रह्माके पुत्र हैं विशेषकर धर्मज्ञानयुक्त और तपस्वी लोगोंमें अग्रगण्य हैं. अतएव उन्होंने दक्षकी पत्नी वीरिणीके गर्भसे किस प्रकार जन्म ग्रहण किया ? ॥ १५ ॥ अच्छा, यदि यही हो तो दक्षसे उनकी भार्याके गर्भमें नारदजीने जो जन्म ग्रहण किया था आप वही विचित्र कथा विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये ॥ १६ ॥ हे मुने ! महात्मा नारदजीने अनेक प्रकार ज्ञानयुक्त होकर भी किसके शापसे पूर्वदेह त्यागकर फिर कैसे जन्मग्रहण किया ॥ ॥ १७ ॥ व्यासजीने कहा "जगत्को बढ़ानेके लिये असंख्य प्रजा उत्पन्नकरो" स्वयंभू ब्रह्माने सृष्टिकी इच्छासे यह कहकर प्रथम दक्षको आज्ञादी ॥ १८ ॥ दक्ष-प्रजापतिने पिताकी आज्ञा ले वीरिणीके गर्भसे बड़े बली वीर्यवान् पाँच हजार पुत्र उत्पन्न किये ॥ १९ ॥ उन सम्पूर्ण दक्षके पुत्रोंको प्रजाके बढ़ानेमें अभिलाषी. देखकर देवर्षिनारदने कालसे प्रेरित होकर हँसते हँसते कहा ॥ २० ॥ तुमने पृथ्वीका परिणाम न जानकर किस प्रकार प्रजाको उत्पन्न करनेकी इच्छा की है ? अतएव तुम साधारणलोकोंमें हास्यके पात्र होंगे इसमें सन्देह नहीं ॥ २१ ॥ परन्तु पृथ्वीका परिमाण जानकर सृष्टिकार्यमें प्रवृत्त होनेसे वह सिद्ध होगा. किन्तु इसके अन्यथा करनेसे कभी कार्य सिद्धि नहीं होगी, यही स्थिर निश्चय जानना चाहिये ॥ २२ ॥ हाय !

तुम अत्यन्त अज्ञानी हो ! ! पृथ्वीका वृत्तान्त न जानकर प्रजाको उत्पन्न करनेमें उद्यत हुए हो अतएव तुम्हारा कार्य किसप्रकार सिद्ध होगा? ॥ २३ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! दैवयोगसे सहसा नारदजीका यह वचन सुनकर वह हर्यश्व इत्यादि पुत्र परस्पर कहने लगे कि, यह मुनिवर जो बात कहते हैं सो सत्य है ॥ २४ ॥ पृथ्वीका परिमाण जानकर हम सुखपूर्वक प्रजाको उत्पन्न करेंगे. वह सब इस प्रकार विचारकर पृथ्वीको देखनेके लिये चले गये ॥ २५ ॥ वह नारदजीके वचनसे उत्साहित हो सब पृथ्वी देखते देखते कोई पूर्वकी ओर और कोई दक्षिणकी ओर ॥ २६ ॥ कोई उत्तरकी ओर और कोई पश्चिमकी ओर इच्छानुसार चले गये. पुत्रोंके चलेजानेपर दक्ष उनको न देखकर अत्यन्त शोकातुर हुए ॥ २७ ॥ परन्तु उन्होंने प्रजाकी इच्छासे कृतसंकल्प हो फिर अन्यान्य पुत्र उत्पन्न किये उनके वह सब पुत्र भी फिर प्रजाको उत्पन्न करनेमें उद्यत हुए ॥ २८ ॥ नारद मुनिने उनको देखकरभी पहलेकी समान कहा कि, तुम अत्यन्त अज्ञानी हो ! ! पृथ्वीका परिमाण न जानकर ॥ २९ ॥ किसकारणसे प्रजाको उत्पन्न करनेमें उद्यत हुए हो ? नारद जीका वचन सत्यविचार मोहित हो ॥ ३० ॥ पहले भ्राता जिस प्रकार चलेगये थे वह भी इसी प्रकार चलेगये. दक्षप्रजापतिने उन पुत्रोंको न देखकर कुपित हो ॥ ॥ ३१ ॥ पुत्रशोकसे प्रगटहुए क्रोधद्वारा नारदजीको शाप दिया. दक्षने कहा हे दुर्बुद्धे ! तुमने मेरे पुत्रोंको नष्ट किया है अतएव नाशको प्राप्त हो ॥ ३२ ॥ फलतः मेरे पुत्र नष्ट होनेके पापसे तुमको गर्भमें वास करना होगा और अधिक क्या कहूं तुमने मेरे पुत्रोंको स्थानभ्रष्ट किया है अतएव तुम अवश्य मेरे पुत्र होगे ॥ ३३ ॥ नारदजीने इस प्रकार शापित हो वीरिणीके गर्भसे जन्मग्रहण किया. इस प्रकार सुना है कि, इसके उपरान्त प्रजापति दक्षने वीरिणीके गर्भसे साठ कन्या उत्पन्न की ॥ ॥ ३४ ॥ हे भूपते ! तब परमधर्मको जाननेवाले दक्षने पुत्रशोक त्यागकर उनमेंसे तेरह महात्मा कश्यपको ॥ ३५ ॥ दश धर्मको, चन्द्रमाको सत्ताईस, भृगुको दो, अरिष्टनेमिको चार, कृशाश्वको दो और शेष दो कन्या अङ्गिराको दीं. उनके पुत्र और पौत्र देवता तथा दानव ॥ ३६ ॥ बलयुक्त हो परस्पर विरोधी हुए. वह सभी शूर और अत्यन्त मायावी थे. अतएव राग और द्वेषसे मोहित होकर परस्पर विरोध करने लगे ॥ ३७ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

जनमेजयने कहा हे महाभाग ! भलीभाँति ज्ञानयुक्त जिन सब राजाओंने सूर्यवंशमें जन्म ग्रहण किया था आप उनका वंश विस्तारपूर्वक वर्णनकीजिये ॥ १ ॥ व्यासजीने कहा हे भारत ! पहले ऋषिसत्तम नारदकें मुखसे सूर्यवंशका विस्तारसहित वृत्तान्त जिसप्रकार सुना है, अब मैं वही अविकल वर्णन करता हूं सुनो ॥ २ ॥ एक समय श्रीमान् नारदमुनि इच्छानुसार भ्रमण करते करते शोभायमान् सरस्वतीके तटपर मेरे पवित्र आश्रममें आये ॥ ३ ॥ उनको देख मैं उनके दोनों चरणोंमें मस्तक झुकाय प्रणामकर सन्मुख खड़ाहुआ फिर उनको आसनपर बैठाय आदरसहित उनकी पूजा की ॥ ४ ॥ इसप्रकार यथाविधानसे पूजाकर उनसे कहा हे मुनिवर ! आप विश्वके पूजनीय हैं अतएव आपके आनेसे मेरा आश्रम पवित्र हुआ ॥ ५ ॥ हे सर्वज्ञ ! आप राजाओंके चरित्रयुक्त उपाख्यान कहिये. सातवें मनुके वंशमें जो सब राजा विख्यात हैं ॥ ६ ॥ उनकी उत्पत्तिके विषयमें तुलना नहीं है और उनके चारित्रभी अत्यन्त अद्भुत हैं ॥ ७ ॥ हे मुनिवर ! आप स्थलविशेषसे कभी संक्षेप और कभी विस्तारसहित उनका वर्णन कीजिये. हे राजन् ! मेरे इस प्रकार पूँछनेपर परमार्थवित् नारदजी ॥ ॥ ८ ॥ प्रीतिसहित हँसते हँसते मुझसे प्रसन्नमन हो सूर्यवंका वृत्तान्त वर्णन करनेलगे. नारदजी बोले हे सत्यवतीतनय ! राजाओंके वंश वृत्तान्त अत्यन्त पवित्र ॥ ॥ ९ ॥ और कानोंको सुखदायक है विशेषकर इस अत्युत्तम वृत्तान्तके कर्णमें प्रविष्ट होनेसे धर्म और ज्ञान प्राप्त होता है अतएव आप उसको सुनिये. पूर्व कालमें ब्रह्माने विष्णुकी नाभिकमलसे उत्पन्न होकर ॥ १० ॥ जगत्को उत्पन्न किया, यह कथा पुराणमात्रमें प्रसिद्ध वर्णित है उन विश्वसंसारके आत्मस्वरूप सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् ॥ ११ ॥ सृष्टिकर्ता स्वयंभूने सृष्टिके आरम्भसमयमें दशहजार वर्ष तपस्या की. उस तपस्याके प्रभावसे वह सृष्टि करनेकी विशेषशक्ति प्राप्तकर सम्पूर्ण जगत्को उत्पन्न करनेमें प्रवृत्त हुए. उन्होंने सृष्टिकी इच्छासे देवीकी आराधना करके जिसप्रकार अत्युत्तम शक्ति प्राप्त की ॥ १२ ॥ वैसेही प्रथम शुभलक्षणयुक्त मानसपुत्रोंको उत्पन्न किया उनमें मरीचि सृष्टिकार्यमें प्रसिद्ध हुए थे ॥ १३ ॥ उनके पुत्र कश्यप भी सबके सन्मानित और विख्यात थे. उनकी तेरह भार्या और वह सभी दक्ष प्रजापतिकी

कन्या थीं ॥ १४ ॥ देवता, दैत्य, यक्ष, पन्नग, पशु और पक्षी सभी उनसे उत्पन्नहुये इसीलिये उसको काश्यपी सृष्टि कहते हैं ॥ १५ ॥ देवताओंमें सूर्य विशेष विख्यात हैं. उनका दूसरा एक नाम विवस्वान् हैं विवस्वतके पुत्र वैवस्वतमनु हैं ॥ १६ ॥ उन्होंने राजा होकर अत्यन्त सुख्याति प्राप्त की. इनके सिवाय मनुके नौ पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥ १७ ॥ हे राजेन्द्र! उनके नाम एकाग्र होकर सुनिये. नाभाग, धृष्ट, शर्याति, ॥ १८ ॥ नरिष्यन्त, प्रांशु, नृग, दिष्ट, करुष, पृषध्र, यह नौ मनुके पुत्र हैं ॥ १९ ॥ मनुके दूसरे पुत्र इक्ष्वाकुने प्रथम जन्म ग्रहण किया उनके सौ पुत्र हुए उनमें आत्मवान् विकुक्षिही बड़े पुत्र थे ॥ २० ॥ मनुके अनन्तर उत्पन्न हुए नौ पुत्रोंमेंसे कितनोंहीका वंशविस्तार संक्षेपसे वर्णन करताहूं सो सुनो ॥ २१ ॥ नाभागके पुत्र अम्बरीप वह अत्यन्त सत्यसन्ध पराक्रमी और धर्मज्ञानी हुए थे. अतएव वह सर्वदा न्यायके अनुसार प्रजाका पालनकरते ॥ २२ ॥ धृष्टसे धार्ष्ट उत्पन्न हुए उन्होंने क्षत्रिय होकरभी ब्रह्म स्वरूपता प्राप्त की. वह स्वभावसेही संग्राममें कातर थे और सदा ब्रह्मकार्यका अनुष्ठान करते रहते ॥ २३ ॥ शर्याति आनर्त्तनामसे विख्यात पुत्र और रूप लावण्यवती सुकन्यानामसे एक कन्याने जन्म ग्रहण किया ॥ २४ ॥ राजा शर्यातिने वह सुन्दरी कन्या अन्धे च्यवनऋषिको दी. किन्तु मुनिने अन्धे होकर भी कन्याके चरित्र गुणसे सुन्दरनेत्र प्राप्त किये थे ॥ २५ ॥ मैंने सुना है कि, सूर्यके दोनों पुत्र अश्विनीकुमारोंने फिर दृष्टिशक्ति दी थी. जनमेजयने कहा हे ब्रह्मन्! इस कथामें मुझको बड़ा सन्देह है ॥ २६ ॥ राजा शर्यातिने सुलोचना कन्या सुकन्या दृष्टिशक्ति विहीन च्यवन ऋषिको दी थी. कन्या यदि कुरूप गुणहीन अथवा स्त्रियोंके लक्षणसे रहित हो ॥ २७ ॥ तो राजाको वह कन्या अन्धेको देनी संगत होसक्ती है? किन्तु राजा शर्यातिने ऐसी सुमुखी कन्या उस ऋषिको अन्धा जानकर भी क्यों दी ॥ २८ ॥ हे ब्रह्मन्! मैं आपका सदा कृपापात्र हूं अतएव आप इसका कारण कहिये. सूतजीने कहा परीक्षित्के पुत्र राजश्रेष्ठ जनमेजयका इस प्रकार वचन सुन ॥ २९ ॥ प्रसन्न हो द्वैपायन मुनिने हँसते हँसते कहा. व्यासजीने कहा वैवस्वतके पुत्र शर्यातिके ॥ ३० ॥ चार हजार विवाहिता स्त्रियें वह सब सुलक्षणोंसे भूषित सुन्दरी और सभी राजकन्या थीं ॥ ३१ ॥ विशेषकर वह सब राजपत्नियें पतिके प्रति प्रीति दिखाकर उनके मनोमत और प्रियपात्र हुईं थीं. परन्तु उन सब राजसीमन्तिनियोंमें सुकन्या नामक एक सुन्दरी कन्या थी ॥ ३२ ॥ उस चारुहासिनी

पुत्रीको पिता और माता सभी प्यार करते थे. नगरके कुछेक दूर निर्मल जलसे पूर्ण मानसकी समान एक मनोहर सरोवर था ॥ ३३ ॥ उसके उतरनेका मार्ग सोपान श्रेणियोंसे आबद्ध. था हंस, कारण्डव, चक्रवाक ॥ ३४ ॥ दात्यूह, सारस और अन्यान्य पक्षी उसके जलमें क्रीडा करते पाँच प्रकारके कमल उसमें खिले हुए थे और भौंरे उसमें विराजमान थे ॥ ३५ ॥ पार्श्वमें जाल, तमाल, सरल, पुन्नाग, अशोक ॥ ३६ ॥ वट, अश्वत्थ, कदम्ब, कदली, श्रेणी, जम्बीरी, खर्जूर, पनस ॥ ३७ ॥ गुवाक, पूगवृक्ष नारियल, केतक, कांचन इत्यादि अनेक प्रकारके वृक्षोंसे युक्त और उनके बीचबीचमें शुभ्र वर्ण यूथिका और शल्लिका इत्यादि लता तथा सम्पूर्ण गुल्म शोभायमान थे ॥ ३८॥ विशेषकर उस बीचमें जम्बु, आम्र, तिन्तिड़ी, इमली, करञ्ज, कुटक, पलाश, निम्ब, खदिर बिल्व और आमलेके वृक्ष शोभायमान थे ॥ ३९ ॥ उस स्थानमें मोर केकारव और कोकिलायें मनोहर कण्ठध्वनि करती थीं उसके समीप वृक्षोंसे युक्त पवित्र स्थानमें ॥ ४० ॥ शान्तचित्त तपस्वीप्रधान भृगुके पुत्र च्यवनमुनि वास करते थे. वह स्थान निर्जन था. इस स्थानमें तपस्या करनेसे कोई विघ्न नहीं होता था ॥ ४१ ॥ मुनिवर इस प्रकार मनमें विचार दृढ आसनपर बैठ और समाहित हो मौनावलम्बन तथा वायुनिरोधपूर्वक तपानुष्ठानमें निरत थे ॥ ४२ ॥ फलतः तपोनिधि भार्गव इन्द्रियें संयत और आहार तथा जलपानादि त्यागकर निरन्तर उन सच्चिदानन्दरूपिणी भगवतीके ध्यानमें निमग्न थे. हे राजन्! इसप्रकार ध्यान करते करते उनके शरीरपर वल्मीक होगई यह वल्मीक सर्वत्र लतासे ढकगई ॥ ४३ ॥ हे राजन्! बहुतकाल व्यतीत होनेपर पिपीलिकाओंसे ढ़कगई और अधिक क्या कहूं तिस काल वह बुद्धिमान् मुनिवर भलीभाँति आवृतहो मट्टीके पिण्डकी समान स्थित रहे ॥ ४४ ॥ हे राजन्! एक समय महीपाल शर्याति उपवनमें विहार करनेकी इच्छासे कामिनियोंके सहित इस अत्युत्तम सरोवरमें आये अवनीपति शर्याति सुन्दर स्त्रियोंसे युक्त हो कमलों करके अतिविमल जलके मध्य क्रीड़ा करनेमें एकान्त आसक्त हुए ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ इधर चपलाकी समान रूपयौवनसम्पन्न चञ्चला राजकन्या सुकन्या वनमें आय अपनी सखियोंके सहित इधर पुष्प बीनते बीनते विहार करने लगी ॥ ४७ ॥ सुकन्या सम्पूर्ण अलङ्कारोंसे सज्जित होकर चरणस्थित नूपुरके मनोहर रुनझुनशब्दसहित भ्रमण करतीहुई क्रमानुसार च्यवनऋषिकी वल्मीकके समीप

उपस्थित हुई ॥ ४८ ॥ वह क्रीड़ामें आसक्त उस वल्मीकके समीप बैठगई. बैठतेही वल्मीकमेंसे खद्योतके समान ज्योतिःपदार्थ देखा ॥ ४९ ॥ यह क्या है? इसप्रकार मनमें विचार कर उस कृशोदरीने इसको उखाड़नेकी इच्छासे काँटा ग्रहण किया और तत्काल उसको उखाड़नेके लिये अत्यन्त व्यग्र हुई ॥ ५० ॥ क्रमानुसार उसके निकट जाय जैसेही काँटा छेदनेमें उद्यत हुई वैसेही मुनिवरने कामदेवकी स्त्रीके समान उस रूपवती सुकेशी बालाको देखा ॥ ५१ ॥ तपोनिधि भार्गवने उस कल्याणी सुदतीको देखकर क्षीणकण्ठसे कहा तुम क्या करतीहो ॥ ५२ ॥ हे वरानने ! मैं तपस्वी हूं अत एव तुम इस स्थानसे दूर चली जाओ हे कृशोदरि ! तुम्हारे ऐसे विशाललोचन हैं तोभी मुझको नहीं देखसक्ती ? अतएव मैं निषेधकरता हूं कि, काँटेसे वल्मीकको भेदन मत करो ॥ ५३ ॥ उस मुनिवरके इस प्रकार कहनेपरभी उस कन्याने उनका वचन न सुनकर " यह क्या है ? " इस प्रकार कहकर उनके दोनों नेत्र वींध डाले ॥ ५४ ॥ दैवके वशीभूत होकर राजकन्याने क्रीड़ा करते करते उनके चक्षु छेदन किये किन्तु मैंने क्या किया इसप्रकार शंका युक्त होकर वहांसे लौटी ॥ ५५ ॥ किन्तु नेत्रोंके छिदजानेसे मुनिवर अत्यन्त यंत्रणाके कारण कुपित हुए विशेषकर वेदनासे नितान्त कातर हो निरन्तर परिताप करनेलगे ॥ ५६ ॥ तव राजा, मंत्री, सैनिकलोग, हाथी, घोड़े, ऊंट और यही क्या वहांके समस्त प्राणियोंका क्षणमात्रमें मलमूत्र रुकगया दैवात् इस प्रकार मलमूत्र रुकाहुआ देखकर नरपति शर्याति अत्यन्त दुःखित और चिन्तातुर हुए ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ विशेषकर इस समय सैनिकोंके मलमूत्र रुकनेका विषय राजासे निवेदन करनेपर भूपाल दुःख होनेके कारणकी चिन्ता करनेलगे ॥ ५९ ॥ इसप्रकार चिन्ता करते करते राजा गृहमें आये अन्तमें चिन्तासे कातर हो सैनिकों और स्वजनोंसे पूँछा कि, तुममें से किसी मनुष्यने कोई दुष्कार्य्य किया है ! ॥ ६० ॥ सरोवरके पश्चिम भागस्थित वनमें महर्षि महात्मा च्यवन कठिन तपस्या करतेहैं ॥ ६१ ॥ मुझको अनुमान होता है कि किसी मनुष्यने उन अनलप्रभ तापसराजका अवश्य अपकार किया होगा इससेही हमको यह पीड़ा उपस्थित हुई है यही मेरा स्थिर निश्चय है ॥ ६२ ॥ महात्मा भृगुनन्दन वृद्ध हैं और विशेषकर तपस्यामें प्रवीण हो सबसे श्रेष्ठ हुएहैं अतएव मैं विचार करताहूं कि, अवश्यही उन महात्माका कोई अपकार किया होगा ॥ ६३ ॥ किसी दुष्ट मनुष्यने उनकी अवज्ञा की है यदि जानूं अथवा न जानूं

किन्तु उसकाही यह समुचित फल है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६४ ॥ यह वचन सुन सैनिकलोग वेदनासे कातर हो कहनेलगे हममेंसे किसीने मन, वचन अथवा शरीरसे उनका कोई अपकार नहीं कियाहै यह हम भलीभाँतिसे जानतेहैं ॥ ६५ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

व्यासजीने कहा हे महाराज! राजा शर्यातिने चिन्ताकुल हृदयसे क्रोधितहो सैनिक लोगोंसे इसप्रकार पूँछकर फिर सुहृद्वर्गोंसे मधुरवचन द्वारा पूँछा ॥ १ ॥ तब राजकन्याने पिताको दुःखित और सैनिक लोगोंको कातर देखकर स्वयं जिसं काँटेसे महर्षिके दोनों नेत्र वींधे थे यह बात मनमें विचार अपने पितासे कहा ॥ २ ॥ हे पिता! मैं ने उस वनमें क्रीड़ा करते करते लतागुल्मसे ढ़की हुई एक बँबई देखी वह बँबई दृढ थी और उसमें दो छिद्र दिखाई दिये ॥ ३ ॥ हे महाराज! उन दोनों छिद्रोंमेंसे खद्योत (पटवीजना) की समान एक दीप्तिमान् ज्योतिःपदार्थ देख खद्योत विचार मैं ने उसको काँटेसे छेदा ॥ ४ ॥ हे पितः!! इसी समय "हाय! मैं मरगया" बँबईमेंसे इसप्रकार मृदु मन्द शब्द सुनाई आनेलगा. तिस काल मैं ने उस काँटेको निकालकर देखा कि वह जलसे भीगाहुआ है ॥ ५ ॥ यह क्या है " तब मैं इस संशयसे आश्चर्यमें हुई परन्तु मैं ने उस बँबईको क्यों वींधा" यह मैं नहीं जानसकी॥ ॥ ६ ॥ राजा शर्यातिने अपनी कन्याका इस प्रकार कोमल वचन सुनकर विचार किया कि, इससेही मुनिवरका अपमान हुआ है इसमें सन्देह नहीं. यह विचार तत्काल बँबईके समीप गये ॥ ७ ॥ वहीं जाकर मुनिवरकी देहरोधक, बँबईको तोडकर वेदनासे अत्यन्त कातर तपोवृद्ध च्यवन मुनिको देखा॥ ८ ॥ तब राजा शर्यातिने पृथ्वीमें दण्डवत् प्रणामकर हाथ जोड भृगुनन्दन च्यवनकी विनीत भावसे स्तुति करक कहा ॥ ९ ॥ हे महाराज! मेरी कन्याने क्रीडा करते करते यह दुष्कार्य किया है अतएव हे महात्मन्! उस बालिकाने अज्ञानसे यह कार्य्य किया है आप उसको अपने उदारगुणसे क्षमा कीजिये ॥ १० ॥ मैं सुना है कि तपस्वीलोग सदाही कोपरहित हैं इसकारण आपकोभी उस अबोध बालिकाका अपराध क्षमा करना होगा॥ ११ ॥ व्यासजीने कहा महर्षिच्यवने राजाके इस प्रकार वचन सुन विशेषकर उनको विनीत और कातरभाव युक्त देखकर कहा॥ १२ ॥ हेराजन्! मैं ने कभीभी अणुमात्र क्रोध नहा

किया है तुम्हारी कन्याने मुझको पीडित किया है तोभी कुपित होकर इस समय तुमको शाप नहीं दिया ॥ १३ ॥ किन्तु देखो मैं निरपराधी हूं और नेत्रोंकी पीड़ासे अत्यन्त दुःख उपस्थित हुआ है हे महीपते! बोध होताहै कि तुम उसी पापसे दुःखित और सन्तप्त हुए हो ॥ १४ ॥ यदि शिवभी स्वयं रक्षक हों तथापि देवीके भक्तका थोड़ा अपराध करकेभी कोई पुरुष सुखप्राप्तकरनेमें समर्थ नहीं होसक्ता! ॥ १५ ॥ हे महीपाल! एक मैं तो बुढापेसे जीर्ण हूं इसपरभी मैं नेत्रविहीन हुआ अब क्या उपाय करूं हे पार्थिव! कौन पुरुष इस अन्धेकी अब सेवा करेगा? सो आप मुझसे कहिये ॥ १६ ॥ राजाने कहा हे मुनिवर! तपस्वीलोगोंका क्रोध क्षणस्थाई है आपभी तपस्यामें निरत हैं इसलिये आपका क्रोध असम्भव है अतएव आप दयाकरके उस बालिकाका अपराध क्षमा कीजिये. मेरे अनेक सेवक हैं वह आपकी निरन्तर सेवा करैंगे ॥ १७ ॥ च्यवनने कहा हेराजन्! एक तो मेरा आत्मीय कोई निकट नहीं है इसपरभी अन्धा हुआ हूं इस समयमें किस प्रकार तपस्या करनेमें समर्थ हूंगा! आपके सेवक मेरा प्रिय अनुष्ठान करैंगे यह मुझको बोध नहीं होता ॥ १८ ॥ हे नरपते! यदि मुझको प्रसन्नकरना आप अपना इष्ट समझते हैं तो आप मेरा वचन प्रतिपालन कीजिये. मेरी सेवा करनेके लिये अपनी उसी कमलनयना कन्या रत्नको दो ॥ १९ ॥ हे महाराज! आपकी उस कन्याको पानेसे परम सन्तुष्ट हूंगा मेरे तपस्यामें प्रवृत्त होनेपर वह मेरी सदा सेवा करेगी ॥ २० ॥ हे राजेन्द्र! इस प्रकार करनेसे मुझको सुख होगा. कारण कि, उससे मैं सन्तुष्ट हूंगा और तभी आपका सैनिकलोगोंके सहित क्लेश दूर होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ ॥ २१ ॥ हे भूपते! आप मनमें यह विचारकर मुझको वह कन्या दीजिये मैं यतव्रत तपस्वीहूं इसकारण मुझको कन्या देनेसे आपको किञ्चिन्मात्रभी दोष नहीं होगा॥ २२॥ व्यासजीने कहा हे भारत! राजा शर्यातिने मुनिवर च्यवनके वचन सुनकर चिन्तासे आकुल हुए, किन्तु कन्या देंगे अथवा नहीं यह कुछ न कहा॥ २३॥ राजाने विचारा कि, यह मेरी कन्या देवताओंकी कन्याके समान परमरूपवती है और यह मुनि वृद्ध कुरूप और विशेषकर अन्धे हैं; अतएव यह कन्यारत्न इनको देकर किसप्रकार सुखी हूंगा ॥ २४ ॥ कौन अल्पबुद्धि पापपरायण मनुष्य प्रकृत मंगल और अमंगल जानकर अपने सुखकी इच्छासे कन्याका संसारजनित सुख हरण करसक्ता है ॥ ॥ २५ ॥ वह सुभ्रू कन्या वृद्धच्यवनके समीप जाकर जब कामबाणसे पीड़ित होगी

तब किसप्रकार इस अन्धे पतिको ले काल व्यतीतकरके सुखी होगी ? ॥ २६ ॥ विशेषकर जब सुन्दरी स्त्रियें अपने अनुरूप पतिको प्राप्त करकेभी यौवनकालके समय कामशत्रुको जीतनेमें समर्थ नहीं होतीं ॥ २७ ॥ परमरूपवती अहल्याने तपस्वी गौतमसे विवाह किया किन्तु यौवनकालके समय उस वरवर्णिनीका रूपलावण्य देख इन्द्रने छलकर उसका धर्म नष्ट किया था ॥ ॥ २८ ॥ अन्तमें उसके पति गौतमने धर्मका विपरीत कार्य देखकर उनको शाप दिया. इस कारण उन ऋषिके शापसे मुझको दुःख उपस्थित हो तो भी मैं अपनी कन्याको नहीं देसक्ता ॥ २९ ॥ राजा शर्याति इसप्रकार चिन्तासे विमन हो अपने डेरेको गये और घर जायकर अत्यन्त कातर हृदयसे मंत्रियोंको बुलाय परामर्श करने लगे ॥ ३० ॥ हे मंत्रिगण ! इस समय मुझको क्या करना उचित है ? सो तुम कहो अब विप्रवरको कन्या देना उचित है अथवा दुःख भोगना उचित है ॥ ३१ ॥ क्या कार्य करनेसे मेरा हित होगा. तुम सब लोग मिलकर उसका विचार करो. मंत्रियोंने कहा हे महाराज ! इस दुस्तर संकटमें हम क्या कहैं ॥ ३२ ॥ आप किस प्रकार उस दुर्भग तपस्वीको यह परमसुन्दरी कन्या देंगे? द्वैपायनने कहा तब सुकन्या पिता और मंत्रियोंको चिन्तामें नितान्त व्याकुल देखकर ॥ ३३ ॥ बुद्धिसे सब जानगई अनन्तर हँसते हँसते उसने अपने पितासे कहा हे पितः ! आज आपका अन्तः-करण चिन्तासे आकुल क्यों देखती हूं ॥ ३४ ॥ बोध होताहै कि, आप मेरे निमित्तही दुःखसे अत्यन्त उद्विग्न होते हैं. हे पितः ! उन मुनिवरको मैंनेही पीडित किया है अत-एव मैंही वहां जाकर उनको समझाऊंगी ॥ ३५ ॥ अधिक क्या मैं उनके चरणोंमें आत्मसमर्पण करके उनको प्रसन्न करूंगी. राजा सुकन्याके इस प्रकार वचन सुन ॥ ३६ ॥ अत्यन्त सन्तुष्टचित्तसे मंत्रियोंके सामने उससे कहनेलगे हे पुत्रि ! तुम अबला होकर वनमें मुनिवर च्यवन अन्धे ॥ ३७ ॥ जराजीर्ण देह और विशेषकर कोपनस्वभाव मुनिवरकी किसप्रकार सेवा करोगी ? रूपलावण्यसे तुम रतिकी समान हो ॥ ३८ ॥ मैं अपने सुखकी इच्छासे उन जराजीर्णदेह अन्धे मुनिको किसप्रकार कन्यादान करूं? जिसके ज्ञाति, वयस्, बल, अतुल धान्य और धनरत्नादि विद्यमान् हैं पिता उसकोही कन्या देते हैं ॥ ३९ ॥ धनहीन मनुष्यको कभी कोई कन्या नहीं देते हे विशाललोचने ! तुम अतिरूपलावण्यवती हो और तपस्वी अत्यन्त बूढ़े हैं ॥ ४० ॥ इससे तुम दोनोंमें परस्पर बहुत भेद है और उन मुनिवरके विवाहकी अवस्था व्यतीत

होगईहै अतएव किस प्रकार मैं उनको कन्या दूं ?हेकमलनयने! तुम सदा मनोहर अटारीमें वास करती हो ॥ ४१ ॥ इस समय मैं तुमको किस प्रकार सदाके लिये पर्णशालामें वास दूं ? ॥ ४२ ॥ हे कोकिलभाषिणि ! मैं और सैनिकलोग मृत्युके मुखमें पतित हों यहभी उचित है किन्तु तोभी तुम्हें उस अन्धे वरको कभी समर्पण नहीं करूंगा.जो होनहार है वह हो किन्तु मैं कभी धैर्य्य न छोडूँगा ॥ ४३ ॥ अतएव हे सुश्रोणि ! तुम सावधान होओ मैं अन्धेको कभी कन्या नहीं दूंगा. हे बालिके ! मेरा राज्य और देह रहे अथवा जाय इससे कुछ हानि नहीं है ॥ ४४ ॥ तथापि मैं किसी प्रकार तुम्हें उस नयनविहीन तपस्वीको नहीं दूंगा. पिताके इसप्रकार वचन सुन ॥ ४५ ॥ सुकन्या प्रसन्नमन हो उनसे अत्यन्त स्नेहमय वचन कहने लगी. हे पितः ! आप मेरे लिये निरर्थक चिन्ता न कीजिये. इस समय उन मुनिवरको मुझे दीजिये ॥ ४६ ॥ तो सब मनुष्य सुखी होंगे इसमें सन्देह नहीं. मैं सन्तुष्ट होकर अत्यन्त भक्तिसहित ॥ ॥ ४७ ॥ परमपवित्र वृद्धपतिकी निर्जनवनमें सेवा करके परम प्रीतिलाभ करूंगी. मैं सतीधर्मपरायण हो व्रत करूंगी ॥४८॥ अनर्थक भोगवासनामें मेरी कुछभी इच्छा नहीं है. चित्त प्रकृतिस्थ हुआ है व्यासजीने कहा हे महाराज ! मंत्रिवर्ग उसके यह वचन सुनकर अत्यन्त आश्चर्यमें हुये ॥ ४९ ॥ और राजाभी परम प्रसन्न होकर कन्याके सहित मुनिवरके समीप गये उनके निकट उपस्थित हो मस्तक झुकाय प्रणाम करके उन तपोधनसे कहा ॥ ५० ॥ हे प्रभो ! अपनी सेवा करनेके लिये मेरी इस कन्याको ग्रहण कीजिये. यह कहकर राजाने विवाहकी विधिके अनुसार उनको कन्या दी ॥ ५१ ॥ च्यवनमुनी भी उसको प्रतिग्रहकर परमप्रसन्नहुए किन्तु राजाने व्यवहारोपयोगी जो सब यौतुकमें सामग्री दी थी वह कुछभी न ली॥ ॥ ५२ ॥ केवल अपनी सेवाके निमित्त कन्याको ग्रहण किया इस प्रकार उन मुनिवरके प्रसन्न होनेपर सैनिकलोग तत्काल मलमूत्र त्यागकर सुखी हुए ॥ ५३ ॥ यह देखकर राजाका हृदय भी आनन्दरसमें भरगया राजाने कन्या देकर जब घर जानेकी इच्छा की ॥ ५४ ॥ तब उस कृशाङ्गी राजनन्दिनीने भूपतिसे कहा कन्याने कहा हे पितः! आप मेरे अलङ्कार और वस्त्रादि लेकर॥५५॥ पहरनेके निमित्त एक उत्तम उचित (मृगचर्म) और वल्कल दीजिये. हे पितः ! मैं मुनियोंकी स्त्रियोंके समान वेष धारण करके इसप्रकार पतिकी सेवा करूंगी ॥ ५६ ॥ जिससे आपकी अतुल कीर्ति स्वर्ग पृथ्वी और पातालमें सर्वत्रही अक्षय होकर रहे ॥ ५७ ॥ और इसी-

प्रकार मैंभी जिससे परलोकमें परमसुख प्राप्तकर सकूं ऐसेही पतिके चरणोंकी सेवा करूंगी. मैं युवती और सुन्दरी हूं आप मेरे वृद्ध तपस्वीको देनेसे ॥ ५८ ॥ दूषित चरित्र होनेकी सम्भावना कर अणुमात्रभी चिन्ता न कीजिये. वसिष्ठकी धर्मपत्नी अरुन्धती जिसप्रकार पृथ्वीमें विख्यात हुई है ॥ ५९ ॥ मैंभी उसीके अनुसार सिद्धि प्राप्त करूंगी इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं. महर्षि अत्रिकी भार्या पतिव्रता अनुसूयाने जिस प्रकार पृथ्वीमें ख्याती प्राप्त की है ॥ ६० ॥ उसीके अनुसार मैंभी आपकी पुत्री होकर कीर्त्ति स्थापन करूंगी. उस परमधर्मवित् राजाने सुकन्याके यह वचन सुनकर ॥ ६१ ॥ उसको अजिनादि दिये, उस चारुहासिनी कन्याने जब वसन भूषण त्यागकर मुनिकन्याओंका वेष धारणकिया ॥ ६२ ॥ तब राजा रोदनको न रोकसके और दुःखितमनसे उसीस्थानमें खड़े रहे कन्याको वल्कल और अजिन पहरे हुए देखकर वह राजमहिषियें ॥ ६३ ॥ अत्यन्त शोकसन्तप्त हृदयसे कम्पायमान होकर रोनेलगीं. हे राजन्! तब महीपति शर्याति मुनिवर च्यवनको कन्या देकर उनसे विदा ले मंत्रियोंके संग शोकसन्तप्तहृदयसे अपने घरको चले आये ॥ ६४ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

व्यासजीने कहा हे महाराज! राजा शर्यातिके घर चले जानेपर फिर वह बाला सुकन्या अपने धर्ममें निरत रहकर अग्नि और अपने पतिकी सेवा करनेलगी ॥ १ ॥ वह षोडशवर्षीय सुकन्या पतिकी सेवामें तत्पर होकर अनेकप्रकारके स्वादिष्ठ फलमूलके संग्रहकर मुनिवरके लिये भक्षणको देती ॥ २ ॥ वह स्नानके समय उष्णजलसे पतिको स्नान और मृगचर्म पहराकर पवित्रकुशासनपर बैठाती ॥ ३ ॥ इसके उपरान्त कुश तिल और कमण्डलु सन्मुख स्थापित करके कहती. हे मुनिवर! आप नित्य कार्य कीजिये ॥ ४ ॥ नित्यकर्म समाप्त होनेपर वह बाला उनका हाथ ग्रहणपूर्वक उठाय कुशासन अथवा अन्य बिछौनेपर बैठाती ॥ ५ ॥ इसके उपरान्त वह राजकन्या पकेहुए फल और सुसंस्कृत नीवार अन्न लाकर च्यवनमुनिको भोजन कराती ॥ ६ ॥ पतिके भोजन करके तृप्त होनेपर फिर परम भक्ति सहित आचमनीय जलसे उनके मुख पाँव धुलाकर आदरपूर्वक ताम्बूल और पूगादि देती ॥ ७ ॥ उनके मुखशुद्धि ग्रहण करनेपर फिर उनको उत्तम आसनपर

बैठाल उनकी आज्ञा ग्रहणपूर्वक अपने शरीरका संस्कार करती ॥ ८ ॥ अनन्तर मुनिवरके भक्षणसे बचे हुए फल मूलादि स्वयं आहारकर फिर पतिके समीप जाय विनय सहित कहती हे प्रभो! अब क्या करूं? आज्ञा कीजिये ॥ ९ ॥ आप यदि अनुमति देतो आपके चरण दबाऊं इस प्रकार पतिके प्रति अनुरागिणी होकर राजबाला सदा पतिकी सेवामें काल व्यतीत करने लगी ॥ १० ॥ सायं कालके समय होमकार्य समाप्त होनेपर वह सुन्दरी स्वादिष्ठ और कोमल फल लायकर उनको भक्षणार्थ देती ॥ ११ ॥ तदन्तर उनकी आज्ञा लेकर भोजनसे बचे हुए फल स्वयं भक्षण करती इसके उपरान्त सुखस्पर्श आस्तरण बनाकर प्रीति सहित उनको शयन कराती ॥ १२ ॥ प्रियत्तम पतिके सुखपूर्वक शयन करनेपर फिर वह कृशोदरी राजकुमारी उनके पाँव दबाते दबाते सम्पूर्ण कुलस्त्रियोंके धर्मविषयक प्रश्न पूँछती ॥ १३ ॥ रात्रि कालके समय पदसेवा करते करते जब मुनिवर सोजाते तब वह भक्तिपरायण होकर उनके पदतलमें शयन करती ॥ १४ ॥ ग्रीष्म कालके समय पति जब पसीनेमें भीगते तब वह भामिनी तालके पंखेसे व्यजन करके शीतल वायुद्वारा अपने पतिकी सेवामें नियुक्त रहती ॥ १५ ॥ हेमन्तकालके समय काष्ठ इकट्ठाकर पतिके सन्मुख अग्नि जलाय वारंवार पूँछती हे मुनिवर! इससे आपको सुख तो अनुभव होता है ॥ १६ ॥ वह पतिपरायण राजकन्या सूर्योदयसे पहले शय्यासे उठती फिर पतिको उठाय कर शौचके लिये आश्रमसे कुछेक दूर बैठालती ॥ १७ ॥ और हाथ पाँवआदि प्रक्षालनके लिये मृत्तिका और जल उनके निकट रख आप दूर बैठकर प्रतीक्षा करती उनका शौचकार्य समाप्त हुआ जान समीप जाय पतिका हाथ पकड़ ॥ १८ ॥ धीरे धीरे आश्रममें लाती, इसके उपरान्त मुनिवरको पवित्र आसनपर बैठाल फिर मृत्तिका और जलसे उनके दोनों चरण यथाविधि धोती ॥ १९ ॥ राजनन्दिनी पतिको आचमनपात्र देकर शास्त्रविहित दन्तधावनकाष्ठ लाकर समर्पण करती ॥ २० ॥ पवित्र निर्मल जल लाकर उसको उष्ण करती वह जल स्नानके लिये लायकर प्रीति सहित पूँछती ॥ २१ ॥ हे स्वामिन्! आपका दन्तधावन कार्य तो हो गया, जल उष्ण किया है आपकी आज्ञा पानेपर लाऊंगी आप उस तप्तजलसे समन्त्रक स्नान कीजिये ॥ २२ ॥ प्रातःसन्ध्या उपस्थित है, अतएव अब आपके होमका समय होगया है, यथाविधि होम कर देवताओंकी पूजा कीजिये ॥ २३ ॥ निर्मलस्वभाव

राजदुहिता तपस्वी च्यवनको पति प्राप्तकरके इस प्रकार तपस्या नियम और प्रीति सहित सदा उनकी सेवामें प्रवृत्त रहती ॥ २४ ॥ वह सुमुखी राजबाला अग्नि और अतिथियोंकी सदा सेवा और शुश्रूषा करके आनन्दमनसे महर्षि च्यवनकी आराधना करनेलगी ॥ २५ ॥ फिर किसी समयमें सूर्यपुत्र दोनों अश्विनीकुमार क्रीड़ा करते करते इच्छानुसार महर्षिच्यवनके आश्रममें आनकर उपस्थित हुए ॥ २६ ॥ तब सर्वाङ्ग सुन्दरी राजकन्या पवित्रजलसे स्नानकर आश्रममें आती थी,उसी समय उन दोनों अश्विनीकुमारोंने उसको देखा ॥ २७ ॥ वह देवकन्याकी समान उसका रूप लावण्य देखकर मोहित हो शीघ्र समीप आय आदर सहित उससे पूँछने लगे ॥ २८ ॥ हे गजगामिनि ! देखो हम देवताओंके पुत्र हैं आपसे कोई विषय पूँछनेके लिये आये हैं अतएव हे वरारोहे ! हमारे अनुरोधसे आप क्षणकाल प्रतीक्षा कीजिये. हे-शुचिस्मिते ! हे चारुलोचने ! आप किसकी कन्या हैं ? और किस महात्माने आपका पाणिग्रहण किया है ? आप उद्यान मध्यस्थित इस तडागमें अकेली स्नान करनेके लिये क्यों आई हैं ? ॥ ३० ॥ हे कमलाक्षि ! तुम्हारा जिस प्रकार सौन्दर्य है इससे हमको दूसरी हरिवल्लभा बोध होती हो. हे शोभने ! हम आपसे कुछ जाननेकी इच्छा करते हैं आप यथार्थरूपसे वह विषय कहिये ॥ ३१ ॥ हे कान्ते ! तुम्हारे दोनों चरण अत्यन्त कोमल हैं. अतएव पादत्राण न पहरकर अनावृत भावसे उनको पृथ्वीमें रखती है. हे चंचलनयने ! तुम्हारे चरण जब पृथ्वीमें पडते हैं तब हमारे हृदयमें क्लेश उपस्थित होता है ॥ ३२ ॥ हे कृशोदरि ! तुम्हारा देह जिसप्रकार कोमल है, इससे तुमको विमानपर चढकर गमनागमन करता उचित्त है किन्तु ऐसा न करके क्यों पैरों इस कठिन पृथ्वीमें गमन करती हो ॥ ३३ ॥ तुम्हारे संग शतशत दासी क्या नहीं निकालती. हे वरानने ! तुम राजकन्या अथवा अप्सरा हो यह हमसे सत्य कहो ॥ ३४ ॥ हे अनघे ! जिन पिता मातासे तुम्हारा जन्म हुआ है वह भी धन्य हैं विशेषकर जिस मनुष्यके संग तुम्हारा विवाह हुआ है उसका सौन्दर्य वर्णन करनेमें हमारी सामर्थ्य नहीं है ॥ ३५ ॥ हे सुलोचने ! तुम्हारे दोनों चरण इधर उधर चलकर इस पृथ्वीको पवित्र करते हैं अतएव यह उद्यान आज देवलोककी अपेक्षा भी पवित्र बोध होता है ॥ ३६ ॥ जो सम्पूर्ण मृग और पक्षिकुल इच्छानुसार तुमको देखते हैं उनके सौभाग्यकी सीमा नहीं है अधिक क्या तुम्हारे चरण स्पर्शसे यह वनभूमि अत्यन्त पवित्र बोध

होती है ॥ ३७ ॥ हे सुलोचने! तुम्हारे रूपकी अधिक प्रशंसा करना निष्प्रयोजन है तुम्हारे पिता अथवा माता कौन हैं ? यह हमसे सत्य कहो हम आदर सहित उनको देखनेकी इच्छा करते हैं ॥ ३८ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! वह सर्वाङ्गसुन्दरी राजकुमारी उनके यह वचन सुन लज्जित भावसे उन दोनों देवकुमरोंसे कहने लगी ॥ ३९ ॥ मैं शर्याति राजाकी कन्या हूं पिताने मुझे दैवकी इच्छासे महर्षि च्यवनको दिया है मैं उनकी प्रियतमा साध्वी भार्या हूं वह महर्षि इसी स्थानमें वास करते हैं ॥ ४० ॥ हे दोनों देवताओ ! मेरे पति नयन-विहित तापस और अत्यन्त वृद्ध हुए हैं, अतएव मैं सती धर्मानुसार प्रसन्नमनसे रात दिन उनकी सेवा करती हूं ॥ ४१ ॥ आप कौन हैं ? और किसलिये इस स्थानमें आये हैं ? हमारे पति आश्रममें स्थिति करते हैं अतएव कृपा करके उस स्थानमें चलकर अब आश्रमको पवित्र कीजिये ॥ ४२ ॥ हे नरनाथ ! दोनों अश्विनी कुमारोंने इस प्रकार वचनसुनकर उससे कहा हे कल्याणि ! किस कारणसे तुम्हारे पिताने वृद्धतपस्वीको ऐसा कन्यारत्न दिया ॥ ४३ ॥ तुम इस विजन वनमें स्थिर सौदामिनीकी समान शोभा पाती हो और अधिक क्या कहें तुम्हारी समान रूपवती कामिनी हमारे देवलोकमेंभी दिखाई नहीं देती ॥ ४४ ॥ अहो ! दिव्यवसन सर्वविधि आभरण और नीलवर्ण अलकावलीही तुम्हारे पक्षमें शोभा पाती है इस प्रकार मृगचर्म और वल्कलादि तुम्हारे योग्य नहीं है ॥ ४५ ॥ हे रम्भोरु ! तुम विशालनेत्रोंवाली हो तथापि विधाताने तुमको अन्धे विशेषकर अत्यन्त जरातुर पति दिया है तुम उन्हीं अन्धे पतिको प्राप्त करके निरन्तर इस वनमें दुःखी होती हो इसकी अपेक्षा विधाताका अन्याय कार्य और क्या होसक्ता है ? ॥ ४६ ॥ हे मृगाक्षि ! उस मुनिवरको तुमने निरर्थक पतित्वमें वरण किया है तुम्हारा यह नवयौवन समयमें उन अन्धे पतिके संग कभी शोभा नहीं पावेगा तुम नृत्यविद्यामें चतुर हो किन्तु पति अन्धे और जारातुर हैं तुम्हारे नृत्य करनेपर जब कामदेव शरसन्धान करेगा तब वह शर किसके ऊपर पतित होंगे ? ॥ ४७ ॥ हे आयतलोचने ! वह विधाता अत्यन्त अल्पबुद्धि है ! ! नहीं तो तुमको इस प्रकार नवयौवनसे भूषितकर अन्धेकी भार्या क्यों करता ? हे चारुलोचने ! तुम कभी उसके उपयुक्त नहीं हो इस कारण दूसरा पति करो ? ॥ ४८ ॥ हे कमलनयने ! तुम्हारा पति एक तो नयन-विहीन और तिसपरभी तपस्वी है. अतएव तुम्हारा जीवनधारण करना वृथा है !

विशेषकर वनमें वास और अजिनअम्बरपरिधान तुम्हारे योग्य नहीं है ॥ ४९ ॥ हे असितनयने ! तुम्हारे सम्पूर्ण अंग प्रत्यंग मनोहर हैं अतएव भलिभाँति विचार कर हम दोनोंमेंसे एकको पति करो. हे भामिनि ! तुम इस प्रकार रूपवती होकर मुनि की सेवा करके वृथा यौवन क्यों क्षय करती हो ? ॥ ५० ॥ उन मुनिवरका कोई सौभाग्य नहीं दिखाई देता. विशेषकर तुम्हारे भरणपोषण अथवा रक्षण दर्शन करने कीभी उनमें सामर्थ्य नहीं है. तब वृथा क्यों उनकी सेवा करती हो ? हे अनिन्दिते ! सर्वसुखरहित मुनिवरको त्यागकर हम दोनोंमेंसे एकके संग विवाह करो ॥ ५१ ॥ "हे कान्ते" ! तो नन्दनकानन अथवा चैत्ररथ वनमें विहार कर सकोगी. हे मानिनि ! अन्धे अथवा वृद्ध पतिके सहित गौरवविहीन होकर तुम किस प्रकार काल व्यतीत करोगी ? ॥ ५२ ॥ एक तो तुम शुभलक्षणोंसे विभूषित तिसपरभी फिर राजकन्या हो अतएव संसारके यावतीय विहारभाव तुमको अविदित नहीं है. इस कारण भाग्यविहीन होकर इस गहनकाननमें वृथा क्यों काल व्यतीतकरती हो ॥ ५३ ॥ हे राजपुत्रि ! तुम्हारा वदन अत्यन्त मनोहर नेत्र विशाल क्षीण और तुम्हारे वचन कोकिलकी समान मीठे हैं, अतएव तुम्हारी पेक्षा सुन्दरी कौन है ! तुम वृद्धतपस्वीको इससमय त्यागकर सुखके लिये हममेंसे एककी भजना करो तो त्रिदशालयमें अनुपम भोग्यवस्तु भोगसकोगी ॥ ५४ ॥ हे सुकेशि ! अन्धेके सहित इस वनमें वास करके तुमको क्या सुख होगा ? हे मृगाक्षि ! तुम्हारा इस नवयौवन और इस अवस्थाके समय वनमें रहकर वृद्धकी सेवा करना अत्यन्त क्लेशकर है. हे राजपुत्रि ! क्या तुमको दुःखही वाञ्छित है ॥ ५५ ॥ हे शशिमुखि ! तुम अत्यन्त कोमलाङ्गी दिखाई देतीहो अतएव जल और फल लाना तुम्हारा उचित कार्य नहीं है ॥ ५६ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ५.

व्यासजीने कहा हे महाराज ! यह वचन सुन राजकन्या सुकन्या पहले भयसे काँपनेलगी फिर वह मितभाषिणी बाला धैर्य्य अवलम्बनकर दोनों अश्विनीकुमारोंसे कहनेलगी ॥ १ ॥ आप सूर्य्यके पुत्र और सुरगणोंके सुसम्मत देवता हैं विशेषकर

१ यह वचन परीक्षार्थ कहे हैं।

आप सम्पूर्ण विषय जानते हैं मैं धर्म्मपरायण सती हूं मुझसे ऐसा वचन कहना आपको उचित नहीं है ॥ २ ॥ हे सुरद्वय ! पिताने मुझे योग्य धर्म्मावलम्बी मुनिको दिया है इसपर भी मैं सती होकर किसप्रकार वेश्याओंके अवलम्बित मार्ग में जाऊं? ॥ ३ ॥ वह सूर्य्य सबके कार्य अकार्यके साक्षिस्वरूप हैं अतएव वह मेरे सम्पूर्ण कार्य्य देखते हैं और आप दोनोंनें महात्मा कश्यपके वंशमें जन्म ग्रहण किया है, इसप्रकार पवित्र देवताके उरसे पवित्रवंशमें उत्पन्न हो ऐसा अधर्म्मकर और अकीर्त्तिकर वचन कहना आपको अत्यन्त अनुचित है ॥ ४ ॥ इस असार संसारमें धर्म क्या अथवा अधर्म क्या है यह आप भलीभांति जानते हैं हेरविपुत्रों ! कुलकन्या हो पतित्याग कर किसप्रकार अन्यपुरुषकी भजना करूं ॥ ५ ॥ आप विमलस्वभाव देवता हैं मैं महाराज शर्यातिकी कुलकन्या विशेषकर पतिके प्रति अत्यन्त अनुरक्त और धर्मपरायण हूं अतएव आप इच्छानुसार अपने स्थानमें जाइये ॥ ६ ॥ व्यासजीने कहा हे भारत ! दोनों अश्विनीकुमार उसके यह वचन सुनकर अत्यन्त आश्चर्ययुक्त हुए और मुनिवरके भयसे शंकित होकर फिर उससे कहनेलगे ॥ ७ ॥ हेराजकुमारी ! तुम्हारा पतिव्रत धर्म्म देखकर हम प्रसन्न हुए हैं अतएव हे वरवर्णिनि ! तुम अभिलषित वर माँगो हे सुश्रोणि ! तुम्हारे मंगलके लिये हम तुमको वर देंगे ॥ ८ ॥ हे भामिनि ! हम देवताओंके वैद्य हैं तुम निश्चय जानों कि हम तुम्हारे पतिको परमरूपवान् सुन्दर युवा करदेंगे ॥ ९ ॥ हेसुचतुरे ! जब हम तीनोंका समानरूप समान अवस्था और समान देहकी कान्ति होगी तब तुम तीनों-मेंसे जिसकी रुचि हो एकको पतित्वमें वरणकरो ॥ १० ॥ सुकन्या उनके यह वचन सुनकर आश्चर्ययुक्त हो अपने पतिके समीप गई अनन्तर दोनों देवताओंके वैद्योंने जो बातकही थी वह सम्पूर्ण मुनिवरसे निवेदन की ॥ ११ ॥ सुकन्याने कहा हे स्वामिन् ! सूर्यके पुत्र दोनों अश्विनीकुमार मेरे आश्रमके समीप तपोवनमें उपस्थित हुए हैं उन दोनों दिव्यदेह देवताओंका मैं ने दर्शन किया है, ॥ १२ ॥ वह मेरा सर्वाङ्ग सुन्दर देह देखकर कामातुर हो मुझसे कहनेलगे कि तुम्हारे उन अन्धे पति मुनिवरको दिव्य देह नवयौवन ॥ १३ ॥ और दोनों नेत्र फिर उत्तम करदेंगे इसमें कोई सन्देह नहीं किन्तु तुमको एक नियम करना होगा वह कहते हैं सुनो ॥ १४ ॥ तुम्हारे उन वृद्धपतिका अंगभी अपनी समान करदेंगे किन्तु फिर हम तीनोंमेंसे एकको पतित्वमें वरणकरना होगा ॥ १५ ॥ हेसाधो ! यह सुनकर इस अद्भुत कार्यका विषय आपको विदित करती हूं अतएव इस संकटके

कार्यमें क्या करना चाहिये? आप यह भलीभांति विचारकर कहिये ॥ १६ ॥ देवताओंकी माया जाननी अत्यन्त कठिन है विशेषकर वह किस अभिप्रायसे ऐसा कहते हैं यह मैं नहीं जानती हेसर्वज्ञ! आप जो अनुमति करें तौ मैं आपका वह अभिलाषित कार्य करूं ॥ १७ ॥ च्यवनने कहा हे कान्ते! तुम मेरी आज्ञासे अभी उन दोनों अश्विनी कुमारोंके निकट जाओ हेसुभद्रे! तुम अभी उनको मेरे समीप लाओ ॥ १८ ॥ अधिक क्या कहूं तुम शीघ्र उनका वचन प्रतिपालन करो इस विषयमें कुछ विचार करनेका प्रयोजन नहीं है व्यासजीने कहा हेमहाराज! सुकन्याने पतिकी इस प्रकार आज्ञा पाय तत्काल उनके समीप जायकर कहा ॥ १९ ॥ हे दोनों अश्विनीकुमारो! आप देवताओंमें अग्रगण्य हैं अतएव आपके यह नियमित वचम स्वीकार हुए अब आप अपना कर्तव्य कार्य कीजिये तब वह दोनों देवता उसके इसप्रकार वचन सुन आश्रममें जाय ॥ २० ॥ राजकुमारीसे कहनेलगे तुम्हारे पति जलमें प्रवेशकरैं तब वृद्ध च्यवन सुन्दररूप पानेकी इच्छासे उसी समय अगाधजलमें घुसे ॥ २१ ॥ इसके उपरान्त दोनों अश्विनीकुमारोंने भी उस उत्तम सरोवरके जलमें प्रवेशकिया कुछ कालोपरान्त उस सरोवरसे वह तीनों निकले ॥ २२ ॥ सबकाही दिव्यदेह समान सौन्दर्य समान नवयौवन और सम्पूर्ण अंग प्रत्यंग कुण्डल इत्यादि अनेकप्रकार अलङ्कारोंसे सुशोभित थे अतएव अवयवोंकी कोई विलक्षणता नहीं दिखाई दी ॥ २३ ॥ तब एकवार उन सबोंने कहा हे भद्रे! तुम्हारी समान सुन्दरी रमणी और दूसरी नहीं है विशेषकर तुम्हारा वदनमण्डल विमल है अतएव तीनोंमें से जिसको तुम्हारी इच्छा हो उसको ही पतित्वमें वरणकरो ॥ २४ ॥ हे वरानने! अथवा जिसके प्रति तुम्हारी अधिक प्रीति हो उसको ही वरणकरो व्यासजीने कहा हे राजेन्द्र! तब सुकन्याने देखा कि इन तीनोंका ही देवताओंकी समान अनुरूप रूपलावण्य है ॥ ॥ २५ ॥ विशेषकर सौन्दर्य अवस्था स्वर और वेष समान है कुछ भी भिन्नता दिखाई नहीं देती वह उन सबका समान अवयव देखकर संशययुक्त हुई ॥ २६ ॥ वह राजकन्या अपने पतिको न पहचानकर अत्यन्त व्याकुल हो चिन्ता करने लगी इस समय मैं क्या करूं! तीनोंका अवयव एकप्रकार है अतएव अब किसको वरण करूं ॥ २७ ॥ इनमें कौन पति है यह मैं नहीं जानती बोध होता है कि यह सब देवताओंके पुत्र हैं अथवा उन दोनों देवकुमारोंनें इस स्थानमें निश्चय इन्द्रजाल

फैलाया है जो हो मैं इस समय विषम संशयमें पड़ी हूं ॥ २८ ॥ मैं पतिको त्यागकर अन्य किसीको कभी वरण न करूंगी अतएव मेरा मरण उपस्थित है अब मुझको क्या करना चाहिये ॥ २९ ॥ अब जो तीसरी मूर्ति देखती हूं बोध होता है कि यह भी कोई देवपुत्र हैं ! इसप्रकार मनमें चिन्ताकर निश्चय किया कि अब मैं उन्हीं पराप्रकृति विश्वेश्वरी शिवाकी आराधना करूं ॥ ३० ॥ तब कृशोदरी राजकुमारी देवीभगवतीका स्तव करने लगी सुकन्याने कहा हे जगन्मातः ! मैंने अत्यन्त दुःखमें गिरकर आपकी शरण ली है ॥ ३१ ॥ आपके दोनों चरणोंमें प्रणाम करती हूं आप अब मेरे सतीत्वधर्मकी रक्षा कीजिये हे देवि ! आप कमलसे उत्पन्न हुई हैं आपको नमस्कार करती हूं आप शंकरकी प्रियतमा ॥ ३२ ॥ एवं विष्णुप्रिया लक्ष्मी और आपही वेदमाता सरस्वती हैं अतएव आपको नमस्कार करती हूं स्थावरजंगमात्मक यह जगन्मण्डल आपनेही उत्पन्न किया है ॥ ३३ ॥ और अव्यग्रचित्तसे उसका प्रतिपालन करती हैं और सम्पूर्ण लोकोंके शान्तिकी इच्छासे उसको ग्रास करती हैं अधिक क्या आपही ब्रह्मा विष्णु और महेश्वरकी परम पूजनीय जननी हैं ॥ ३४ ॥ आपही ज्ञानहीन मूर्खोंको बुद्धि और ज्ञानियोंको सदा भक्ति देती हैं आपही पुरुषोंकी प्रियदर्शन पूर्ण आद्या प्रकृति हैं ॥ ३५ ॥ जिन प्राणियोंकी आत्मा पवित्र हुई है आपही उनको भोग और मुक्तिप्रदान करती हैं, जो अत्यन्त ज्ञानहीन हैं उनको दुःख और जो सत्वगुणाश्रित जीव हैं उनको सुख देती हैं ॥ ३६ ॥ हेमातः ! आपही योगियोंको सिद्धि कीर्ति और जयप्रदान करती हैं. इस समय मैंने विस्मयसागरमें पतित होकर आपकी शरण ग्रहण की है ॥ ३७ ॥ हेमातः ! इन दोनों देवताओंने कपटाचरण किया है, मैं इससे मोहित होकर किसको वरणकरूं ? यह स्थिर नहीं करसक्ती अतएव मैं शोकसागरमें निमग्न हुई हूं आपही मुझे मेरे पतिको दिखाकर उद्धार कीजिये ॥ ३८ ॥ हे सर्वज्ञे ! मेरे सतीव्रतको जानकर जिससे पतिका दर्शन प्राप्तकरूं आप वही कीजिये व्यासजीने कहा हे महाराज ! सुकन्याके इसप्रकार स्तवसे परितुष्ट होकर देवी त्रिपुरसुन्दरीने ॥ ३९ ॥ तब उसके हृदयमें सुखकर सत्वज्ञान प्रदान किया तब तीनोंका अवयव और सौन्दर्य समान होनेपरभी ॥ ४० ॥ उस पतिव्रता बालाने उनको देखतेही मनमें निर्णयकर अपने पतिकोही वरण किया सुकन्याने जब च्यवनकोही वरणकिया तब उसको देखकर वह दोनों देवता परम सन्तुष्ट

हुए ॥ ४१ ॥ दोनों देवता भगवतीके प्रसादसे प्रसन्न हुएथे इसके पीछे फिर सतीधर्म देखनेसे परम प्रसन्न हो उसको वर दिया ॥ ४२ ॥ वह दोनों, मुनिवरकी स्तुति करके शीघ्र अपने स्थानको जानेकेलिये उद्यत हुए किन्तु च्यवन उनके अनुग्रहसे रूप यौवन और भार्या प्राप्तकर सन्तुष्ट हुए थे ॥ ॥ ४३ ॥ अतएव उन महातेजा मुनिने दोनों अश्विनीकुमारोंसे कहा हे महानुभाव! सुरयुगल! आपने मेरा विशेष उपकार किया है॥ ४४ ॥ इसप्रकार सुकेशी भार्या पाकरभी मुझको प्रतिदिन दुःखही होता था! किन्तु आपकी कृपासे इस असुखमय संसारमें जो कुछ सुख पाया है वह नहीं कहसक्ता ॥ ४५ ॥ मैं अत्यन्त वृद्ध और नेत्रविहीन होकर भोगरहित हुआ था परन्तु आपनेही वनमें आय मुझको नेत्र यौवन और अद्भुत सौन्दर्य प्रदानकिया ॥ ४६ ॥ अतएव हे दोनों देवताओं! मैं आपका किंचित् प्रत्युपकार करनेकी इच्छा करता हूं जो पुरुष उपकारी मित्रका कुछभी उपकार नहीं करते ॥ ४७ ॥ उनको धिक्कार है विशेषकर वह पुरुष पृथ्वीमें सदा ऋणी होते हैं अतएव आप इस समय जो इच्छा करें मेरी वही देनेकी इच्छा है ॥ ४८ ॥ हे दोनों देवताओं! आप जिसकी इच्छा करें यह यदि देवता अथवा असुरोंको भी दुर्लभ हो तो भी नवीन देहका ऋण छुड़ानेके लिये मैं वही आपको दूंगा ॥ ४९ ॥ मैं आपके सत्कार्यसे परमपारितुष्ट हुआ हूं अतएव तुम मनका अभिलाष कहो उन्होंने मुनिवर च्यवनके इसप्रकार वचन सुन परस्पर परामर्श की ॥ ५० ॥ फिर सुकन्याके सहित एकत्र बैठे हुए मुनिवर च्यवनसे कहा हे महर्षे! पिताके अनुग्रहसे हमने अभिलाषित सम्पूर्ण वस्तु प्राप्त की है तथापि देवताओंके सहित एकत्र सोमपान अतिदुर्लभ जानकर उसमेंही बलवती हमारी इच्छा रहती है ॥ ५१ ॥ कनकाचलमें ब्रह्माके विस्तीर्ण यज्ञकालके समय सुरराज इन्द्रने भिषक् कहकर हमको सोमपान करनेसे निषेध किया है ॥ ५२ ॥ अतएव हे धर्मज्ञ तापसवर! आप यदि अनुग्रहपूर्वक यह कार्य करनेमें समर्थ हो तो हमारा अत्यन्त प्रिय और अभिलाषितकार्य साधन कीजिये ॥ ५३ ॥ हे ब्रह्मन्! आप वांछित सब विषय जानसक्ते हैं इस समय हमको देवताओंके सहित सोमपायी कीजिये हमको यह पिपासा अत्यन्त बलवती रहती है आप वह देकर तृप्त करसक्ते हैं इसी कारण आपसे निवेदन किया ॥ ५४ ॥ दोनों अश्विनी कुमारोंका यह वचन सुनकर महर्षि च्यवन प्रीतिसहित उनसे अतिकोमल वचन कहनेलगे ॥ ५५ ॥ हेसुरद्वय! मैं अन्धा जरातुर वृद्ध था किन्तु आपके अनुग्रहसे रूपवान् पुरुष हुआ हूं

विशेषकर आपकी ही कृपासे फिर भार्या प्राप्त हुई है ॥ ५६ ॥ अतएव देवराज इन्द्रके सामने प्रीतिसहित आपको सोमपायी करूंगा यह मैं सत्य कहता हूं ॥ ५७ ॥ अमितद्युति महाराज शर्यातिके यज्ञमें तुम्हारा अभिलाष पूराहोगा. वह दोनों अश्विनीकुमार मुनिवरके यह वचन सुन परम सन्तुष्ट हो ॥ ५८ ॥ सुरलोकको चलेगये और मुनिवर च्यवनभी उस कन्याको ले अपने आश्रममें आये ॥ ५९ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

जनमेजयने कहा हे मुनिवर! महर्षि च्यवनमें उन दोनों देवताओंको किसप्रकार सोमपानमें अधिकारी किया था? अथवा उन महात्मा मुनिवरका वचन किस प्रकार सत्य हुआ था? ॥ १ ॥ देवराज इन्द्रके बलके निकट मनुष्यका बल अतिसामान्य है इसपरभी इन्द्रके निषेधकरनेपर उन्होंने उन दोनों देववैद्योंको सोमपानमें अधिकार प्रदान किया था ॥ २ ॥ यह अत्यन्त आश्चर्यका विषय है! अतएव हे धर्मनिरत! हे प्रभो! इससमय आप च्यवन महर्षिका चरित्र विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये इसको श्रवण करनेके लिये मेरी अत्यन्त इच्छा है ॥ ३ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज! पृथ्वीपर राजा शर्यातिके उस विस्तीर्ण यज्ञमें च्यवन ऋषिने अत्यन्त अद्भुत कार्य किया था हे भारत! मैं उनका वही परम अद्भुत चरित्र वर्णन करता हूं सावधान होकर उसको सुनिये ॥ ४ ॥ देवताकी समान तेजयुक्त महर्षि च्यवन देवकन्याओंकी समान उस सुन्दरी सुकन्याको पायकर परमप्रीति एवं प्रसन्न चित्तसे उसके संग विहार करने लगे ॥ ५ ॥ अनन्तर एक समय राजा शर्यातिकी प्रियतम भार्या कन्याकी चिन्ता कर अत्यन्त कातर हो कम्पायमान शरीरसे रोदन करते करते अपने पतिसे कहने लगी ॥ ६ ॥ हे राजन्! आपने अन्धे मुनि च्यवनको कन्या दानकी किन्तु वह वनवासिनी कन्या जीवित है अथवा मरगई विशेषकर उसे एकवार खोजना आपको उचित है ॥ ७ ॥ हे नाथ! वह सुन्दरी कन्या ऐसे अन्धे पतिको पायकर क्या करती है? उसको देखनेके लिये आप उन मुनिवरके आश्रममें अभी जाइये ॥ ८ ॥ हे राजर्षे! कन्याका दुःख विचार कर मेरा हृदय सर्वदा दुःखानलमें दग्ध होता है वह विशाललोचना तपस्याके क्लेशसे अवश्यही क्षीणाङ्गी होगई होगी अतएव सुकन्याको शीघ्र मेरे निकट लाओ ॥ ९ ॥ जरातुर

अन्धे पतिको पाय वह सदाही दुःख भोगती है अतएव क्लेशसे कृश और क्षीण होनेकी सम्भावना है सुतरां वल्कल पहरनेवाली कृशोदरी कुमारीको एकवार मेरी देखनेकी इच्छा है ॥ १० ॥ शर्यातिने कहा हे विशालाक्षि ! प्रियतनया सुकन्या और शंसितव्रत उन मुनिवरको देखनेके लिये अभी आदरपूर्वक मैं वहां जाता हूं॥ ११ ॥ व्यासजीने कहा हे राजेन्द्र! महाराज शर्याति शोकाकुल भार्यासे यह कह रथपर चढ शीघ्र मुनिवर च्यवनके आश्रमकी ओर चले ॥ १२॥ महीपति शर्यातिने आश्रमके समीप पहुंचकर नवयौवनसम्पन्न देवपुत्रकी समान च्यवनको देखा ॥ १३ ॥ तब नरपति देवताओंकी समान उनका अंग देखकर अत्यन्त आश्चर्य युक्त हो मनमें चिन्ता करने लगे मेरी इस कन्याने क्या जनसमाजनिन्दनीय कुत्सित कार्य किया है ॥ १४ ॥ वह मुनिवर अत्यन्त शान्तस्वभाव निर्धन और वृद्ध थे अतएव कन्याने कामशरसे कातर हो उनको मार, इच्छानुसार दूसरा पति किया है इसमें सन्देह नहीं ॥ १५ ॥ पुष्पधन्वा कामदेव स्वभावसेही दुःसह है विशेषकर फिर यौवनकालके समय अत्यन्त दुःसह होजाता है अतएव इस, कन्याने कामबाणके वशीभूत हो सुमहान् मनुके विमलकुलमें घोर कलङ्क लगाया है ॥ ॥ १६ ॥ इस लोकमें जिसकी कन्या खोटे चरित्रोंवाली है उसके जीवनको धिक्कार है बोध होता है कि सम्पूर्ण पापोंका दुःख भोगनेके लिये देहिगणोंके कन्या उत्पन्न होती है ॥ १७॥ परन्तु मैंने स्वार्थसिद्धिके लिये क्या अनुचित कार्य किया है यत्न सहित उपयुक्त पात्रकोही कन्या दानकरना पिताको अवश्य कर्तव्य है किन्तु मैंने जान सुनकर भी जरातुर अन्धे तापसको कन्या दान की है ॥ १८ ॥ अतएव मैंने जिस प्रकार कार्य किया है उसके अनुसार फल अवश्यही होगा इसमें फिर क्या सन्देह है ॥ १९ ॥ मेरी कन्याने कुचरित्र हो पापकार्यका अनुष्ठान किया है अतएव अब यदि इस निमित्त कन्याको मारूं तो अवध्य स्त्रीहत्याजनित पाप मुझको स्पर्श करेगा विशेषकर इससे मुझको कन्याकी हत्याका भी पाप होगा ॥ २० ॥ इधर जिसप्रकार लोकापवाद अत्यन्त बलवान् है, इसी प्रकार स्नेहशृंखलाभी दुश्छेद्य है तो इस प्रकार संकटस्थलमें कार्य निर्णय करना मेरी समान मनुष्यकी बुद्धिके अगोचर है तात्पर्य यह है कि मुझसेही विख्यात मानववंश कलङ्कित हुआ ॥ २१ ॥ राजा शर्याति जब किंकर्तव्यमूढ हो चिन्ता कररहे थे तब सुकन्याने दैवयोगसे उन चिन्तासागरमें डूबेहुए पिताको देखा ॥ २२ ॥ उनको देखकर सुकन्या तत्काल

पिताके समीप गई और उनके समीप जाय प्रीतिपूर्ण हृदय हो भूपतिसे पूँछा ॥ २३ ॥ हे राजन् ! यह जो मुनिवर विराजमान हैं इनका रूप यौवन और कमलके समान सुन्दर नेत्र देखकर आपका मुखमण्डल चिन्तासे मलिन क्यों हुआ ? है हे पितः ! आप मनमें क्या चिन्ता करते हैं ॥ २४ ॥ हे पितः ! तुमने विख्यात मनुके वंशमें जन्म ग्रहण किया है विशेषकर आप पुरुषोंमें प्रधान हैं अतएव आपकी समान महात्माओंको सहसा दुःखित होना उचित नहीं है. हे राजेन्द्र ! आप शीघ्र आनकर मेरे पतिको प्रणाम कीजिये ॥ २५ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! कन्याके यह वचन सुन राजा शर्यातिने क्रोधसे अत्यन्त अधीर हो सन्मुखस्थित कन्यासे कहा ॥ ॥ २६ ॥ राजा बोले हे पुत्रि ! तापसप्रधान वह जरातुर अन्धे च्यवन मुनि कहां और यह मदोन्मत्त युवा कहां इस विषयका मेरे मनमें महान् सन्देह उपस्थित हुआ है ॥ २७ ॥ हे पापीयसि ! तैंने कुकार्यमें निरत हो क्या मुनिवर च्यवनको मारडाला है रे कुलकलङ्किनि ! तैंने कामके वशीभूत हो क्या नूतन पति ग्रहण किया है उन मुनिवरको आश्रममें न देखकर मैं इसप्रकार चिन्तासे व्याकुल हुआ हूं ॥ ॥ २९ ॥ रे दुराचारे ! अब महर्षि च्यवनको नहीं देखता किन्तु इस दिव्य पुरुषको देखता हूं अवश्य तेरे कुव्यवहारसेही मैं इसप्रकार चिन्तारूपी समुद्रमें निमग्न हुआ हूं ॥ ३० ॥ तब सुकन्या पिताके वचन सुनकर हँसी और आदरपूर्वक उनको शीघ्र स्वामीके निकट लेजाकर कहा ॥ ३१ ॥ हे तात! यह आपके जामाता च्यवन मुनि हैं इसमें सन्देह नहीं दोनों अश्विनीकुमारोंने दयाके वश होकर इनको ऐसी कमनीय कान्ति और कमलके समान मनोहर नेत्र प्रदान किये हैं ॥ ३२ ॥ अश्विनी कुमार इच्छानुसार मेरे इस स्थानमें आये थे, उन्होंने करुणाके वश हो च्यवनको ऐसा रूपवान् कर दिया है इसमें सन्देह नहीं ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! आप च्यवनका रूप देखकर संशययुक्त और विमोहित हो "मैंने कुकार्य किया है" इसप्रकार जानते हो. हे तात ! आप जानिये कि मैं आपकी पापकारिणी कन्या नहीं हूं ॥ ॥ ३४ ॥ हे पितः ! आप भृगुनन्दन च्यवन मुनिको प्रणाम कीजिये हे राजन् ! आपके उनसे इसका कारण पूँछनेपर वह आपसे आनुपूर्वीसे सम्पूर्ण वृत्तान्त विस्तार सहित वर्णन करेंगे ॥ ३५ ॥ राजा शर्याति, कन्याके इसप्रकार वचन सुन तत्काल मुनिवरके समीप जाय उनको प्रणामकर आदरपूर्वक पूँछने लगे ॥ ३६ ॥ राजा शर्याति बोले हे भृगुनन्दन ! आपको किसप्रकार ऐसे दोनों नेत्र प्राप्त हुए अथवा

आपका बुढापा कहां चलागया आप शीघ्र अपना आनुपूर्विक वृत्तान्त वर्णन कीजिये ॥ ३७ ॥ हे ब्रह्मन् ! आपका अत्यन्त सुन्दर रूप देखकर मुझको महान् संशय उपस्थित हुआ है अतएव आप अपना विवरण विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये मैं उसको सुनकर अत्यन्त सुखी हूंगा इसमें सन्देह नहीं ॥ ३८ ॥ च्यवन मुनि बोले हे नृपसत्तम! देववैद्य दोनों अश्विनी कुमार कार्यवश इस स्थानमें आये थे उन्होंने कृपाके वशीभूत होकर मेरा यही उपकार किया है ॥ ॥ ३९ ॥ उसी उपकारके कारण मैंने उनको वर दिया है कि राजा शर्यातिके अग्निष्टोम यज्ञमें आपको सोमपायी करूंगा ॥ ४० ॥ इसप्रकार मुझको विमलनेत्र और अभिनवयौवन प्राप्त हुआ है अतएव हे महाराज ! आप सावधान होकर पवित्र यज्ञीय आसनपर विराजमान हूजिये ॥ ४१ ॥ विप्रवर च्यवनमुनिके इस प्रकार कहनेपर फिर पृथ्वीपति शर्याति और उनकी प्रियतमा महिषी परमसुखसे विराजमान हुए और उन महानुभाव मुनिवरके संग कल्याणकर कथोपकथन करनेलगे ॥ ४२ ॥ अनन्तर भार्गवश्रेष्ठ च्यवन राजाको भलीप्रकार समझाकर कहनेलगे हे राजन् ! मैं आपका यज्ञकार्य सम्पादन करूंगा अतएव आप यज्ञीय सामग्री सम्भार आयोजन कीजिये ॥ ४३ ॥ मैं दोनों अश्विनीकुमारोंके निकट प्रतिज्ञा करचुकाहूं कि तुमको अवश्य सोमपायी करूंगा अतएव हे नृपवर आपके विस्तीर्ण यज्ञमें मुझको यह कार्य सम्पन्न करना होगा ॥ ४४ ॥ हे राजेन्द्र! इन्द्रके कुपित होनेपरभी मैं तपोबलके प्रभावसे उनको निवारण कर आपके अग्नि-ष्टोम यज्ञमें उनको सोमपान कराऊंगा ॥ ४५ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! तदनन्तर पृथ्वीपति शर्याति परम सन्तुष्ट हो च्यवनमुनिके उन वचनोंका अनुमोदन करनेलगे ॥ ४६ ॥ राजा च्यवनका सन्मान देखकर अत्यन्त प्रसन्नमनसे भार्य्याके सहित मुनिवरकी बात कहते कहते नगरकी ओर चले ॥ ४७ ॥ उन राजाके किसी अभिलाषित धनरत्नादिकी कमी नहीं थी अतएव मुनिवरकी आज्ञानुसार उन्होंनें यज्ञ करनेके श्रेष्ठ दिनमें अत्युत्तम यज्ञभूमि प्रस्तुत कराई ॥ ४८ ॥ अन्तमें भृगुनन्दन च्यवनने वसिष्ठइत्यादि पूज्यपाद मुनियोंको बुलाकर पृथ्वीपति शर्यातिको उस यज्ञमें दीक्षित किया ॥ ४९ ॥ वह विस्तृतयज्ञ आरम्भ होनेपर इन्द्रादि देवतालोग और दोनों अश्विनीकुमार सोमपान करनेके लिये उस स्थलमें आये ॥ ॥ ५० ॥ किन्तु इन्द्र उस यज्ञमंण्डपमें दोनों अश्विनीकुमारोंको देखकर शंकित

हो सम्पूर्ण देवताओंसे पूँछनेलगे यह किस कारणसे इस स्थानमें उपस्थित हुए हैं ? ॥ ५१ ॥ यह चिकित्सक हैं अतएव कभी सोमपानके योग्य पात्र नहीं हैं तब कौन पुरुष इस विस्तृत अग्निष्टोम यज्ञमें इनको लाया है ? देवताओंने तिसकाल राजाके सुविस्तृत यज्ञस्थलमें देवराज इन्द्रको उस वचनका कुछ उत्तर न दिया ॥ ५२ ॥ तब च्यवनमुनिनें दोनों अश्विनीकुमारोंको देनेके लिये जिस समय सोम-ग्रहण किया तिसी समय इन्द्रने उनको निवारणकरके कहा पहलेसेही इनका यज्ञभागमें अधिकार निषिद्ध है अतएव इनके लिये सोमग्रह ग्रहण न कीजिये ॥ ५३ ॥ च्यवन बोले हे शचीपते ! यह सूर्यके पुत्र हैं तो यह अश्विनीकुमार किस लिये सोमग्रहण करनेके उपयुक्त नहीं हैं आप यह सत्य कहिये ॥ ५४ ॥ यह सङ्करजातीय नहीं है सूर्य देवकी धर्मपत्नीके गर्भसे जन्म ग्रहणकिया है. हे देवेन्द्र ! तो यह भिषग्वर किस दोषसे सोमपान नहीं करसकेंगे ? यह आप कहिये ॥ ५५ ॥ हे शक्र ! सम्पूर्ण देवतालोग मिलकर इस यज्ञमें इस विषयका निर्णय कीजिये. हे भगवन् ! मैंने इनको सोमपायी करनेकी प्रतिज्ञा की है ॥ ५६ ॥ अतएव अपना वचन पालन करनेके लिये राजाको यज्ञमें दीक्षित किया है सुतरां इस यज्ञमें मैं इनको सोमग्रहण कराकर अपने सत्यको पालनकरूंगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५७ ॥ हे शक्र ! इन्होंने मुझको नवीन अवस्था और नेत्र प्रदान करके विशेष उपकार किया है अतएव मैं यथाशक्ति इनका प्रत्युपकार करूंगा ॥ ५८ ॥ इन्द्रने कहा देवताओंने इन दोनों अश्विनीकुमारोंको चिकित्सक कार्यमें नियुक्त किया है इसीकारणसे यह देवसमाजमें निन्दनीय हैं सुतरां यह सोमपान करनेके उपयुक्त नहीं हैं अतएव आप इनके लिये सोमपानग्रह ग्रहण न कीजिये ॥ ५९ ॥ च्यवनमुनि बोले हे इन्द्र ! तुम अहल्याके जार होकर क्यों इतना निरर्थक कोप प्रकाश करते हो तुमने विश्वासघातकतापूर्वक वृत्रासुरको मारा है तुम्हारी समान पापात्माके वचनसे सूर्यात्मज अश्विनीकुमार सोमपान न करैं यह कभी सम्भव नहीं होसक्ता ॥ ६० ॥ हे भूप ! इसप्रकार विवाद उपस्थित होनेपर उनसे कोई भी कुछ नहीं कहेगा तिससमय तिग्म-तेजा भार्गवने अपने तपोबलसे उनको सोमग्रहण कराई ॥ ६१ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ७.

व्यासजीने कहा हे राजेन्द्र ! जब दोनों अश्विनीकुमारोंको सोमपूर्णपात्र दिया-गया तब इन्द्रने अत्यन्त क्रोधित हो अपना बलप्रदर्शनपूर्वक मुनिवर च्यवनसे कहा ॥ १ ॥ हे ब्रह्मबन्धो ! तुम कभी इनको ऐसा सन्मान स्थापन करनेमें समर्थ नहीं होगे तुम जब मेरे प्रति विद्वेष प्रकाश करते हो तब निश्चय ही विश्वरूपकी समान तुम्हारा वध करूंगा ॥ २ ॥ च्यवनमुनि बोले हे मघवन् ! जिन्होंने रूपलावण्य और तेज प्रदान करके मुझे साक्षात् देवमूर्तिकी समान मनोहर किया है तुम उन दोनों महात्माओंका अपमान मत करो ॥ ३ ॥ हे देवेन्द्र ! जब अन्य समस्तदेवता तुमको छोड़कर सोमपात्र ग्रहण करते हैं तब ऐसे महाप्रभावयुक्त देव दोनों अश्विनीकुमार भी अवश्य इसको ग्रहण करसक्के हैं ॥ ४ ॥ इन्द्रने कहा यह भिषग् हैं इसकारण यज्ञमें सोमपात्र ग्रहण करनेके किसीप्रकार अधिकारी नहीं होंगे हे दुर्मते ! यदि तुम इनको सोमपात्र प्रदानकरनेकी इच्छा करते हो तो मैं अभी तुम्हारा शिर काट डालूंगा ॥ ॥ ५ ॥ व्यासजी बोले हे भारतभूषण ! भार्गवने इन्द्रके इन वचनोंका निरादर करके तथा उनको अत्यन्त तिरस्कारपूर्वक दोनों अश्विनीकुमारोंको सोम ग्रहण कराया ॥ ६ ॥ सोमपानकी इच्छासे जब उन्होंने सोमपात्र ग्रहण किया तब बलजित् इन्द्रने उनको देखकर यह वचन कहा ॥ ७ ॥ अपने प्रयोजनसे तुम यदि इनको स्वयं सोमग्रहण कराओगे तो विश्वरूपकी समान तुम्हारे मस्तकपर आयुध वज्र प्रहार करूंगा ॥ ८ ॥ अत्यन्त गर्वित भार्गवमुनि इन्द्रके यह वचन सुन महा-क्रोधित हुए और विधिपूर्वक दोनों अश्विनी कुमारोंको सोमग्रहण कराया ॥ ९ ॥ इन्द्रनेभी क्रोधसे सम्पूर्ण देवताओंके सामने उनके ऊपर अपना प्रधान वज्र चलाया तब उस आयुधकी करोड सूर्यके समान प्रभा प्रकाशित होने लगी ॥ १० ॥ तब महर्षि च्यवनने वज्रको चलाताहुआ देखकर तपके प्रभावसे अमिततेजा इन्द्रके वज्रको स्तम्भित करदिया ॥ ११ ॥ तब महाबाहु मुनिवर अभिचार क्रियाद्वारा इन्द्रको संहार करनेकी इच्छासे पक्कहव्य मंत्रपूत करके अग्निमें आहुति प्रदान करने लगे ॥ १२ ॥ अमिततेजा मुनिवर च्यवनके तपोबलद्वारा उस अग्निकुण्डसे कृत्या उत्पन्न हुई उस कृत्यासे प्रबल पराक्रमी पुरुषाकार क्रूरस्वभाव विशालशरीरवाला एक महान् असुर उत्पन्न हुआ ॥ १३ ॥ वह महाघोर मदनामक असुर इस लोकमें प्राणियोंको भयदायक था उसका शरीर पर्वतके समान बड़ा सम्पूर्ण दाँत

तीक्ष्ण और भयानक थे उनमें चार दाँत शतयोजन चौड़े और अन्य दाँत दशयोजन विस्तीर्ण थे ॥ १४ ॥ १५ ॥ और उसके दोनों बाहु पर्वतकी समान दीर्घ और घोरदर्शन थे जिह्वा भीषण कर्कश और इतनी बड़ी थी कि नभोमण्डलको स्पर्श करने लगी ॥ १६ ॥ उसकी ग्रीवा पर्वतके शिखरकी समान कठिन और अत्यन्त भीषणाकार थी नख सब व्याघ्रके नखकी समान और केशसमूह अत्यन्त भीषण थे ॥ १७ ॥ उसका शरीर कज्जलकी समान कृष्णवर्ण तथा मुख-मण्डल विकटाकार और भयानक था दोनों नेत्र अग्निकी समान उज्ज्वल और अत्यन्त भयानक थे ॥ १८ ॥ उसकी एक हनु ठोडी पृथ्वीमें और दूसरी स्वर्गको स्पर्श कररही थी इस प्रकार बृहत्काय मदनामक असुर उत्पन्न हुआ ॥ १९ ॥ सम्पूर्ण देवतालोग उसको देखकर सहसा भीत होगये इन्द्रने भी उसको देखकर भीत हो फिर युद्धकरनेकी इच्छा न की ॥ २० ॥ दैत्यभी इच्छानुसार इन्द्रके उस वज्र को मुखमें डालकर नभोमण्डलको देखताहुआ जगत्को एकवारही ग्रास करनेके लिये खड़ा हुआ ॥ २१ ॥ वह अत्यन्त क्रोधित होकर इन्द्रको भक्षण करनेके लिये दौडा यह देखकर वहां स्थित देवता " हम मरे " यह कहकर चीत्कार करने लगे ॥ २२ ॥ दोनों बाहुओंके स्तम्भित होजानेसे पाकशासन इन्द्र वज्र चलानेकी इच्छा करकेभी किसी प्रकार उसको प्रहार न करसके ॥ २३ ॥ तब वज्रहस्त सुरपतिने कालकी समान असुरको देखकर समयके जाननेवाले गुरुको मनमें स्मरण किया ॥ ॥ २४ ॥ उदारबुद्धि बृहस्पतिजी महत् विपत्तिका समय जानकर तत्काल स्मरण करतेही आये ॥ २५ ॥ तब कर्तव्य कार्य्य मनमें विचारकर उन्हेंने शचीपति इन्द्रसे कहा हे वासव! इसका वज्रसे निवारित होना तो दूर रहे वरन् इसको महामंत्रके बलसे भी निवारण करना कठिन है ॥ २६ ॥ यह महाबलवान् मदनामक असुर च्यवन ऋषिके तपोबलप्रभावद्वारा यज्ञकुण्डसे निकला है इसमें महर्षि प्रभूत तपोवीर्य्य प्रकाशित हुआ है ॥ २७ ॥ हे देवेश ! इस शत्रुको तुम मैं अथवा देवता कोई भी निवारण करनेमें समर्थ नहीं होगा अतएव तुम महात्मा च्यवनकी शरणागत होओ ॥ २८ ॥ जो पुरुष पराशक्तिका भक्त है उसके कोपको दूसरेकी तो बात क्या है ब्रह्माजीभी निवारण नहीं करसक्ते च्यवनमुनि पराशक्तिके भक्त हैं इस कारण दूसरा कोई उनको निवारण करनेमें कभी समर्थ नहीं होगा वेही निजकृत कृत्याको निवारण करेंगे इसमें सन्देह नहीं ॥ २९ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! इन्द्र

गुरुका यह उपदेश सुनकर फिर मुनिके समीप गये और डरसहित मस्तक झुकाय उनको प्रणामकर कहनेलगे ॥ ३० ॥ हे मुनिवर ! मुझको क्षमा करके देवताओंके विनाशमें उद्यत उस असुरको निवारण कीजिये हे सर्वज्ञ ! आप प्रसन्न हूजिये मैं आपका वचन प्रतिपालन करता हूं ॥ ३१ ॥ हे भार्गव ! अबसे यह अश्विनीकुमार सोमपानके अधिकारी हुये यह आपसे सत्य कहता हूं हे विप्र ! आप मेरे प्रति प्रसन्न हूजिये ॥ ३२ ॥ हे तपोधन ! आपका यह उद्यम कभी निष्फल नहीं होगा विशेष-कर मैं आपको धर्मज्ञ जानता हूं अतएव आप अपने वचन कभी मिथ्या नहीं करेंगे ॥ ३३ ॥ यह अश्विनीकुमार आपकी कृपासे सदाही सोमपायी होंगे और राजा शर्यातिकी कीर्तिकी भी सीमा नहीं रहेगी ॥ ३४ ॥ हे मुनिसत्तम ! आप यह निश्चय जानिये कि मैंने जो कर्म किया है वह केवल आपके तपोवीर्यकी परीक्षा करनेके लिये किया है ॥ ३५ ॥ हे ब्रह्मन् ! यज्ञकुण्डसे निकलेहुए इस मदनामक असुरको संहार कर मेरे प्रति कृपा कीजिये इससे सम्पूर्ण देवताओंका कल्याण होगा इसमें सन्देह नहीं ॥ ३६ ॥ परमार्थके जाननेवाले मुनिवर च्यवनने इन्द्रके इसप्रकार कातरतापूर्ण वचन सुनकर उनके सहित विरोध होनेसे जो क्रोध उत्पन्न हुआ था उसको दूर किया ॥ ३७ ॥ फिर महर्षि च्यवननें मदनामक असुरके भयसे उद्विग्न देवताओंको समझाया उस मदको स्त्रीजाति सुरापान द्यूतक्रीडा और मृगया इन चार भागोंमें विभक्त किया ॥ ३८ ॥ इन सम्पूर्ण विषयोंमें मद सदा वास करेगा मदके इसप्रकार विभक्त होनेपर भयचकित देवेन्द्र रक्षा पाय सावधान हुए तब च्यवनने सम्पूर्ण देवताओंको यथाविधि स्थापितकर उस यज्ञको समाप्त किया ॥ ३९ ॥ फिर धर्मात्मा भार्गवने महात्मा इन्द्र और दोनों अश्विनीकुमारोंको सम्यक् प्रकारसे संस्कृत सोमपान कराई ॥ ४० ॥ हे राजन् ! च्यवन मुनिने उन आर्य सूर्यपुत्र दोनों अश्विनी कुमारोंको तपोबलके प्रभावसे इस प्रकार सोमपायी किया था ॥ ४१ ॥ तबसे वह सरोवर यूपमंडित हो विख्यात हुआ और मुनिका आश्रम भी भूमण्डलमें सम्यक् प्रकार विख्यात और सन्मानित हुआ ॥ ४२ ॥ शर्याति राजाभी उस कार्यसे परम सन्तुष्ट हुए और यज्ञ समाप्त करके मंत्रियोंके सहित नगरको चलेगये ॥ ४३ ॥ अनन्तर वह मनुपुत्र प्रतापवान् धर्मज्ञ नरपाल शर्याति निर्विघ्न राज्य शासन करने लगे उनका पुत्र आनर्त्त और आनर्त्तके रेवतनामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ४४ ॥ वह रेवत समुद्रमें कुशस्थली नगरी स्थापनपूर्वक वहां वास कर

आनर्त्तादि प्रदेशस्थ समस्त विषय भोग करने लगा ॥ ४५ ॥ रेवतके सौ पुत्र उत्पन्न हुए. ककुद्मी बडे और पवित्र स्वभावके थे और उन परम सुन्दरी रेवती नामक एक शुभलक्षणयुक्त कन्या उत्पन्न हुई ॥ ४६ ॥ जब वह कन्या विवाहके योग्य हुई तब राजेन्द्र रेवत सत्कुलोत्पन्न राजपुत्रके निमित्त चिन्ता करने लगे ॥ ४७ ॥ वह राजराजेश्वर पृथ्वीपति रेवत गिरिमें वासकर आनर्तोंमें राज्य शासन करने लगा ॥ ४८ ॥ यह कन्या किसको दें ? राजाने मनमें इसप्रकार चिन्तायुक्त हो स्थिर किया कि, मैं ब्रह्माके निकट जाय उन सुरपूजित सर्वज्ञ प्रजापतिसे यह विषय पूँछूगा ॥ ४९ ॥ इसप्रकार विचार वह भूपाल ब्रह्माजीसे पूँछनेकी इच्छा कर अपनी कन्या रेवतीको संग ले शीघ्रतासहित ब्रह्मलोकको गया ॥ ५० ॥ उस स्थानमें देव यज्ञ वेद पर्वत और सरित सम्पूर्ण दिव्यदेह धारण कर विराजमान हैं ॥ ५१ ॥ वहां सनातनऋषि, सिद्ध, गन्धर्व, पन्नग और चराचरगण हाथ जाडे खडे हुए ब्रह्माजीका स्तव कर रहे हैं ॥ ५२ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्याय ८.

जनमेजयने कहा हे ब्रह्मन् ! नरपति रेवत क्षत्रिय होकर अपनी कन्याको संग ले स्वयं किसप्रकार ब्रह्मलोकमें गये ! इस विषयका मुझको महान् संशय उपस्थित हुआ है ॥ १ ॥ पहले मैंने यह विषय ब्राह्मणोंके कथा प्रसंगमें भलीभाँति सुना है कि, जो ब्राह्मण शान्त और ब्रह्मके जाननेवाले हैं वही ब्रह्मलोकको प्राप्त होसक्ते हैं ॥ २ ॥ सत्यलोक मनुष्य जातिके पक्षमें अत्यन्त कठिन है तो राजा स्वयं रेवतीको संग ले भूर्लोकसे किसप्रकार उस सत्यलोकमें गये ? यही मेरा संशय है ॥ ३ ॥ मनुष्य अपना देह त्यागकर स्वर्ग प्राप्त करते हैं यह सब शास्त्रोंमें निर्णय किया है तब मनुष्य देहसेही ब्रह्मलोकमें किसप्रकार गये ? और स्वर्गसे फिर मनुष्यलोकमें किसप्रकार आये ? ॥ ४ ॥ तात्पर्य यह है कि, राजा रेवत प्रजापतिसे पूँछनेकी इच्छा करके किसप्रकार ब्रह्मलोकमें गये आप मेरा यह संशय दूर कीजिये ॥ ५ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! मेरुके शिखरमें इन्द्रकी अमरावती पुरी यमकी संयमनी पुरी ॥ ६ ॥ सत्यलोक वह्निलोक कैलास वैष्णव धाम और वैकुण्ठ इत्यादि सम्पूर्ण लोकही प्रतिष्ठित हैं ॥ ७ ॥ देखो महाधनुर्द्धर पृथानन्दन अर्ज्जुनने इन्द्रलोकमें आयकर

पांचवर्ष व्यतीत किये ॥ ८ ॥ पूर्वकालमें ककुत्स्थ इत्यादि अन्यान्य राजा भी मनुष्य देहसेही इन्द्रके समीप गये थे और महाबलवान् दैत्योंने इन्द्रलोक अथवा अमरावतीको जीतकर वहाँ जाय इच्छानुसार वास किया ॥ ९ ॥ १० ॥ पूर्वकालके समय सार्वभौम नरपति राजा महाभिषके ब्रह्मलोक जानेपर परमसुन्दरी गंगाभी उसी समय ब्रह्मलोकमें आरहीं थीं इसी अवसरमें राजाने उनको देखा ॥ ॥ १२ ॥ हे राजन्! इसी समय दैववशसे वायुने उनके पहरनेका वस्त्र उड़ादिया राजाके उस सुन्दरीकी कुछेक नग्न अवस्था देख कामार्त्तचित्त हो ॥ १२ ॥ अप्रगटभावसे हँसनेपर फिर वह गंगाभी हँसी तिससमय ब्रह्माजीने उन दोनोंकी इसप्रकार अवस्था देखकर तत्काल शाप दिया उसीके अनुसार उन्होंने भूर्लोकमें आनकर जन्म ग्रहण किया ॥ १३ ॥ सम्पूर्ण देवता दानवोंके हाथसे दुःखित हो वैकुण्ठमें जाय जगन्नाथ कमलापति हरिका स्तव करते थे ॥ १४ ॥ हे नरनाथ! मनुष्य सम्पूर्ण लोकोंमें भी जासक्ते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ १५॥ जो अनेकानेक पुण्य सञ्चय करते हैं ऐसे महात्मा यजमान और तपस्वियोंकी तो निश्चयही स्वर्गमें गति होती है हे राजन्! पुण्यकी वहुतायतही स्वर्गमें जानेका एकमात्र कारण है अतएव इस विषयमें कोई सन्देह करना आपको उचित नहीं है ॥ १६ ॥ इसीप्रकार जो यजन यज्ञ अथवा तपस्या करते हैं वह उत्तम लोकमें जाते हैं जनमेजयने कहा हे मुनिवर रेवतराजा शोभायमान नेत्रोंवाली कन्या रेवतीको संग ले ॥ १७ ॥ ब्रह्मलोकमें गये किन्तु उन्होंने वहाँ जाकर अन्तमें क्या किया ब्रह्माजीने उनको क्या आज्ञा दी? और उन्होंने उनकी आज्ञानुसार किसको कन्या दी ॥ १८ ॥ हे ब्रह्मन्! आप यह सम्पूर्ण वृत्तान्त मुझसे विस्तारपूर्वक कहिये व्यासजीने कहा हे महीपाल! वह वृत्तान्त सुनो रेवतराजा ॥ १९ ॥ कन्याके वरका विषय पूँछनेको जिस समय ब्रह्मलोकमें गये तिससमय ब्रह्मलोकमें गाना बजाना होरहा था राजाने कन्याके सहित सभाके अवसरकी अपेक्षासे क्षणकाल प्रतीक्षा की ॥ २० ॥ किन्तु गाना सुनकर कन्यासहित ऐसे सन्तुष्ट हुए कि, तृप्त न हुए वरन् सुनतेही रहे उस गानेवजानेके समाप्त होनेपर राजाने परमेष्ठी ब्रह्माको प्रणाम कर ॥ २१ ॥ उनको कन्या दिखाय अपना अभिप्राय कहा राजा बोले हे देव! यह वरारोहा मेरी कन्या है इसका वर कौन है? यह आप बतादीजिये ॥ २२ ॥ हे ब्रह्मन्! यह कन्या किसको प्रदान करूं यह बात पूँछनेकोही आपके समीप आया हूं सत्कुलोत्पन्न अनेक राजपुत्र

ढूँढकर देखे हैं ॥ २३ ॥ किन्तु उनमेंसे कोई पुरुष भी मेरे मनमें स्थिर नहीं हुआ. हे देवदेवेश ! इसी कारण पूँछनेके लिये इस स्थानमें आया हूं ॥ २४ ॥ अतएव आप इसके उपयुक्त एक वर नियतकर दीजिये वह वर कुलीन बलवान् धर्मात्मा सर्वसुलक्षणयुक्त ॥ २५ ॥ और दाता धर्मशील राजाका पुत्र हो आपसे यही मेरी प्रार्थना है ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! तब जगत्कर्ता पद्मयोनि नरपतिका यह वचन सुन ॥ २६ ॥ कालका अतिक्रम देख हँसते हँसते उनसे कहनेलगे हे राजन् ! तुमने जिन सब राजपुत्रोंको वर जाना था ॥ २७ ॥ वह सभी कालके ग्रास हुए हैं यही क्या उनके पुत्र पौत्र और बान्धवपर्यन्तभी अब जीवित नहीं हैं इससमय सत्ताईसवें मन्वन्तरका द्वापरयुग वर्तमान है ॥ २८ ॥ अतएव तुम्हारे वंशोत्पन्न राजपुत्रोंमेंसेभी अब कोई वर्तमान नहीं है तुम्हारी नगरीको भी दैत्योंने लूटलिया था अब चन्द्रवंशीय राजा उसको शासन करते हैं ॥ २९ ॥ पुण्यात्मा ययातिकुल तिलक माथुर जनपदेश्वर महाराज उग्रसेन उस स्थलमें राज्यशासन करते हैं ॥ ॥ ३० ॥ उनका पुत्र महाबलवान् कंस दानवोंके औरससे जन्म ग्रहणकर सर्वदाही देवताओंका अनिष्टसाधन करने लगा और उसने अपने पिताको कारागारमें बन्द-करके रक्खा ॥ ३१ ॥ वह मदसे गर्वित हो सम्पूर्ण राजाओंका राज्य स्वयं शासनकर प्रजाका महत् अनिष्ट साधन करने लगा. हे महाराज ! इसी समयमें उस दुष्ट दैत्यरा-जाकी सेनाके भारसे पृथ्वी इतनी व्याकुल होगई कि, फिर किसी प्रकार भी भार न सहसकी अतएव ब्रह्माजीके निकट जाय उनकी शरणागत हुई ॥ ३२ ॥ वह दुष्ट राजाओंका भार भूत सेनाके भारसे व्याकुल होगई तदनन्तर ब्रह्मादि देवताओंने कहा हे वसुन्धरे ! तुम्हारा भार हलका करनेके लिये देवताओंने अंशावतारको लिया है ॥ ३३ ॥ कमललोचन नारायणने अपने अंशसे अवतीर्ण होकर जन्म ग्रहण किया है वह स्वयं सनातन नारायण कमललोचन कृष्ण है वही यदुकुलमें देहरूपिणी देवकीके गर्भ और वसुदेवके औरससे अवतीर्ण हो वासुदेव नामसे विख्यात हुए ॥ ३४ ॥ पहले नरसखा धर्मपुत्र नारायणने गंगाकिनारे परम पवित्र बद्रिकाश्रममें भ्राताके सहित घोर तप किया था ॥ ३५ ॥ वह यदुकुलमें अवतीर्ण होकर वासुदेव नामसे विख्यात हुए. हे नृपसत्तम ! उस पापाचार दुष्टमति खलप्रकृति कंसको मारकर ॥ ३६ ॥ उस साम्राज्यमें उग्रसेनको प्रतिष्ठित किया और दुष्ट कंसको मारा महा-विक्रमशाली पापिष्ठ मगधपति जरासंध कंसका श्वशुर था ॥ ३७ ॥ उसने जामाताकी

निधनवार्ता सुन क्रोधके वशीभूत हो मथुरामें आय घोर संग्राम किया महात्मा कृष्णने महाबली जरासंधको जीता ॥ ३८ ॥ वासुदेवके उस महातेजोगर्वित जरासंधको पराजय करनेपर भी उसने सेनासहित कालयवनको फिर युद्ध करनेके लिये भेजा अनन्तर भगवान् वासुदेव सेना सहित यवनराजके आनेका वृत्तान्त जान ॥ ३९ ॥ परिवार सहित सम्पूर्ण यादवोंको द्वारकामें भेज स्वयं बलदेवके सहित यवन राजाके आनेकी प्रतीक्षासे स्थित रहे. फिर अकेलेही यवनके शिविरमें जाय कालयवनको आकर्षणपूर्वक गिरिगुहामें ले जाय सुप्तोत्थित महाराज मुचुकुन्दसे उस दुरात्मा यवनको मरवाय मथुराको छोड द्वारकाको चलेगये तिस समय उस द्वारकापुरीकी भग्नावस्था थी अतएव कृष्णने शिल्पकारोंको बुलाय दिव्य महल दुर्ग और अटारि इत्यादि बनवाकर उसका सौंदर्य सम्पादन किया वह प्रताप-वान् वासुदेव जीर्ण नगरीका संस्कार कराय उग्रसेनको राज्यपदमें नियुक्तकर वह यदूत्तम वहां यादवोंको स्थापित कर अन्यान्य बान्धवोंके सहित अबभी वहां विराज-मान हैं ॥ ४० ॥ उनके अग्रज हलायुध बलदेव नामसे विख्यात हैं वही मूसली अनन्तदेवके अंशावतार और महावीर हैं वही तुम्हारी कन्याके उपयुक्त वर हैं ॥ ॥ ४१ ॥ अतएव इस कमलके समान नेत्रोंवाली रेवतीको विवाहकी विधि अनुसार संकर्षण बलभद्रके हाथमें शीघ्र प्रदान करो ॥ ४२ ॥ और तुम कन्यादान करके तपस्याका अनुष्ठान करनेके निमित्त बद्रिकाश्रममें जाओ वह पुण्याश्रम देवताओंका विहारस्थान और पवित्र तथा मनुष्योंको कामनादायक है ॥ ४३ ॥ व्यासजी बोले हे राजन्! कमलयोनि ब्रह्माजीके आज्ञा देनेपर राजा अपनी कन्याको संग ले द्वारकामें आये ॥ ४४ ॥ वहां पहुँचकर वह सर्वसुलक्षणयुक्त कन्या विधिके अनुसार बलदेवजीको दी अन्तमें ब्रह्माजीके उपदेशसे बदरिकाश्रममें जाय कठोर तपस्यामें निरत हुए ॥ ४५ ॥ फिर मृत्युकाल उपस्थित होनेपर नदीके तटपर देह त्यागकर सुरलोकको चलेगये. जनमेजयने कहा हे भगवन्! आपने अत्यन्त आश्चर्यकी कथा कही ॥ ४६ ॥ रेवतराजा कन्याके सहित ब्रह्मलोकमें रहकर संगीत सुननेमें आसक्त हुए अष्टोत्तरशत (१०८) युग बीतनेपर भी ॥ ४७ ॥ राजा और उनकी कन्या अतिवृद्ध क्यों न हुए? और उनकी इतनी आयु किसप्रकार हुई थी वह आप मुझसे कहिये ॥ ४८ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज! ब्रह्मलोक पापस्पर्शरहित है वहां जरा, क्षुधा, पिपासा अथवा मृत्यु आदि कुछभी नहीं है. उस स्थानमें अन्य कोई

ग्लानि भी नहीं होसक्ती. अतएव वहांके वास करनेवाले पुरुष सर्वदा जरामरणरहित और दीर्घजीवी होते हैं इसमें सन्देह क्या है॥ ४९॥शर्याति राजाके स्वर्ग जानेपर उनकी सन्तानको राक्षसोंने मार डाला और जो शेष रहे वह भयसे भीत होकर कुशस्थली त्यागकर इधर उधर भाग गये ॥ ५० ॥ वैवस्वतमनुके छींकने पर उनके घ्राणद्वारसे एक वीर्यवान् पुत्र उत्पन्न हुआ उसका नाम इक्ष्वाकु था वही सूर्यवंशविस्तार करनेके लिये जगत्में विख्यात हुए ॥ ५१ ॥ महर्षि नारदके उपदेशानुसार अतिउत्तम दीक्षाको प्राप्त हो वंशवढ़ानेकी इच्छासे निरन्तर देवीका ध्यान करते हुए तपस्याका अनुष्ठान करने लगे॥५२॥हे राजन् ! इक्ष्वाकुके सौ पुत्र उत्पन्न हुए उनमें विकुक्षिही प्रथम थे वही वीर्यवान् और बलसम्पन्न हुए ॥ ५३ ॥ इक्ष्वाकुने राजा होकर अयोध्यामें वास किया और उन्होंने शकुनि इत्यादि अत्यन्त बलवान् पचास पुत्रोंको ॥ ५४ ॥ उत्तरापथ प्रदेशकी रक्षा कार्यमें नियुक्त किया. उन महात्माने और भी अडतालीस पुत्रोंको दक्षिणदेशकी रक्षा करनेके लिये भेजा था. हे भूपते ! शेष दो पुत्रोंको सेवाके लिये अपने पासही रक्खा था ॥ ५५ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ९.

व्यासजी बोले हे महाराज ! किसी समय अष्टकाश्राद्ध उपस्थित होनेपर पृथ्वीपति इक्ष्वाकुने अपने पुत्र विकुक्षिको आज्ञा दी कि, हे वत्स ! तुम शीघ्र वनमें जाय श्राद्धके लिये पवित्र मांस संग्रह कर लाओ ॥ १ ॥ सावधान देखो इसमें किसी प्रकारकी त्रुटि न हो. विकुक्षि पिताकी इस प्रकार आज्ञा पाय अस्त्रशस्त्र ग्रहण कर तत्काल वनको चले गये ॥ २ ॥ उन्होंने वनमें जाय निशित बाणोंसे असंख्य शूकर वराह मृग खरगोश इत्यादि सभी संहार किये परन्तु वह वनमें भ्रमण करते करते थककर क्षुधासे इतने कातर होगये कि ॥ ३ ॥ पिताके अष्टकाकी बात भूल वनमेंही एक खरगोशको भक्षण किया. शेष अत्युत्तम सम्पूर्ण मांस लाय पिताको समर्पण किया ॥ ४ ॥ जब मांस प्रोक्षणके लिये लाया गया तब कुलगुरु मुनिसत्तम वसिष्ठ उसको देखतेही भुक्तावशिष्ट (भोजनसे बचा हुआ) जान अत्यन्त क्रोधित हुए ॥ ५ ॥ भुक्तावशिष्ट द्रव्य श्राद्धमें प्रोक्षणके योग्य नहीं होता यही शास्त्रीय विधि है. वसिष्ठजीने राजाको इस पाकदूषणका विषय विदित किया ॥ ६ ॥ गुरु-

देवके वाक्यानुसार पुत्रका यह कार्य जान राजाने विधिलोपवशतः पुत्रके प्रति अत्यन्त क्रोधित हो उसको अपने देशसे निकाल दिया ॥ ७ ॥ तबहीसे राजपुत्र (खरगोश भक्षण करनेके कारण) शशाद नामसे विख्यात हुए. परन्तु यह शशाद पिताके क्रोधसे कुछभी क्षुभित न हो वनमें जाय वास करने लगे ॥ ८ ॥ वह धर्ममें निरत हो वनके फल मूल भक्षण कर सुखसे काल व्यतीत करने लगे. कुछेक कालोपरान्त पिताके परलोक प्राप्त होनेपर वह महात्मा पिताके राज्यको प्राप्त हुए ॥ ९ ॥ शशादने अयोध्याका राजा होकर राज्यशासन करनेके समय सरयूनदीके तपटपर अनेक महत् यज्ञ किये थे ॥ १० ॥ शशादको एक पुत्र था वह तीनों लोकमें ककुत्स्थ नामसे विख्यात हुआ था. उसके इन्द्र बाहु एवं पर परञ्जय यह दो अन्य नाम थे ॥ ११ ॥ जनमेजयने कहा हे पवित्रात्मन् ! राजपुत्रका ककुत्स्थ नामान्तर किसकारणसे और किसप्रकार हुआ था ? किस कार्यसे उनके अन्य दो नाम हुए यह सम्पूर्ण विवरण मुझसे कहिये ॥ १२ ॥ व्यासजीने कहा हे नृपसत्तम ! महाराज शशादके स्वर्गजानेपर कुकुत्स्थ राजा हुए वह धर्मात्मा पिता और पितामहका राज्य अतिदोर्दण्डप्रतापसे शासन करने लगे. उसी समय सम्पूर्ण देवता दानवोंसे पराजित हो ॥ १३ ॥ त्रिलोकाधिपति अच्युत विष्णुकी शरणागत हुए. तब सच्चिदानंदमय सनातन महाविष्णुने उन देवताओंसे कहा ॥ १४ ॥ विष्णु बोले हे देवताओ ! तुम शशादतनय सर्वजनरक्षक महीपाल ककुत्स्थके निकट प्रार्थनाकरो वह महात्मा तुम्हारे पार्ष्णिग्रह(पार्श्वरक्षक)होकर सम्पूर्ण दानवोंको समरमें निहत करेंगे इसमें सन्देह नहीं॥ ॥ १५ ॥ वह कुकुत्स्थ धार्मिक विशेषकर पराशक्तिके उपासक हैं. अतएव उनके प्रसादसे उन नरपतिके बलकी सीमा नहीं है इसकारण प्रार्थना करनेपर वह धनुर्द्धारी हो तुम्हारी सहायता करनेको अवश्यही आवेंगे. इसमें सन्देह नहीं ॥ १६ ॥ हे महाराज ! इन्द्रादि देववृन्द हरिके यह सुधामय वचन सुनतेही अयोध्यानगरमें शशादतनय ककुत्स्थके निकट गये ॥ १७ ॥ देवताओंके उपस्थित होनेपर राजाने सावधान हो उनकी यथाविधि पूजाकर उनसे आनेका कारण पूँछा ॥ १८ ॥ राजाने कहा हे देवताओ ! आपने अनुग्रहपूर्वक जब मेरे घर आय प्रत्यक्ष दर्शन दिया है तब मैं पवित्र और धन्य हुआ और मेरा जन्मभी सफल हुआ ॥ १९ ॥ हे देवेशवृन्द ! आपका क्या कार्य साधन करना होगा वह आप कहिये. वह मनुष्योंको कठिन होनेपरभी मैं आपके उस महत्कार्यको अवश्यही करूंगा ॥ २० ॥

देवता बोले हे राजपुत्र ! तुम हमारी सहायताकर देवताओंसेभी अजय दैत्यपतियोंको समरमें जीतकर शचीपति इन्द्रके सहित मित्रता स्थापन करो ॥ २१ ॥ हे महाराज ! पराशक्तिके प्रसादसे तुमको कहीं भी कुछ दुर्लभ नहीं है अतएव विष्णुकी आज्ञासे हम तुम्हारे पास आये हैं ॥ २२ ॥ राजाने कहा हे सुरसत्तमगण ! सुराधिपति इन्द्र यदि उस युद्धके समय मेरे वाहन हों तो मैं देवताओंका पार्ष्णिरक्षक (दोनों ओर रक्षक) हो सक्ता हूं ॥ २३ ॥ देवताओंके कारण अब मैं दानवोंके संग संग्राग करूंगा किन्तु इन्द्रकी पीठपर चढ़कर संग्रामस्थलमें जाऊंगा, यह मैंने आपसे सत्यही कहा है ॥ २४ ॥ व्यासजी बोले हे राजेन्द्र ! तब देवताओंने इन्द्रसे कहा हे शचीपते ! यह अद्भुत कार्यसम्पादन करना आपको अत्यन्त कर्तव्य है. अतएव आप लज्जा परित्याग कर इस नरेन्द्रके वाहन हूजिये ॥ २५ ॥ सुरपति इन्द्र इस कार्यके करनेसे लज्जित हुए किन्तु हरिने उनको वारंवार उसमें नियुक्तकिया. अतएव देवराज इन्द्रने रुद्रके महावृषभकी समान वृषभमूर्ति धारण की ॥ २६ ॥ राजा संग्राममें जानेके लिये उस वृषभपर चढ़े उन्होंने वृषभकी पीठपर बैठकर युद्ध किया था इसी कारण उनका ककुत्स्थनाम हुआ ॥ २७ ॥ राजाने इन्द्रको वाहन किया इसकारण उनका नाम इन्द्रवाह और उन्होंने युद्धमें दानवोंके पुर जीत इससे उनका नाम पुरञ्जय हुआ था ॥ २८ ॥ उन महाबाहु राजाने दानवोंको समरमें पराजय करके उनकी धनसम्पत्ति देवताओंको प्रदानकी. अनन्तर वह देवताओंसे विदा ले अपने नगरको चलेगये. हे महाराज ! इस प्रकार उन राजर्षिके संग इन्द्रका सख्यभाव उत्पन्न हुआ था ॥ ॥ २९ ॥ हे राजन् ! ककुत्स्थ पृथ्वीतलमें अत्यन्त विख्यात हुए थे उनके वंशोत्पन्न राजाभी काकुत्स्थ कहकर पृथ्वीमें विशेष परिचित हैं ॥ ३० ॥ धर्मपत्नीके गर्भसे ककुत्स्थ एक महाबलवान् पुत्र उत्पन्न हुआ उसका नाम काकुत्स्थ था. उनका पुत्र पृथु अत्यन्त वीर्यवान् हुआ ॥ ३१ ॥ वह पृथू साक्षात् विष्णुके अंश थे. वह सदाही पराशक्तिके चरणकमलोंकी अर्चना करते थे. उनके पुत्र विश्वरन्धि हुए उन्होंने राजा होकर राजत्व किया था ॥ ३२ ॥ उनके पुत्र श्रीमान् चन्द्र हुए उन्होंने राजा होकर राज्यशासन और अपने वंशको भलीभाँति बढ़ाया था युवनाश्व नामक उनके एक पुत्र हुए वह अत्यन्त बलवान् और महातेजस्वी थे ॥ ३३ ॥ युवनाश्वके शावस्तनामक परमधार्मिक एक पुत्र उत्पन्न हुए उन्होंने अमरावतीकी समान शावस्तीनामक एक अतिउत्तम पुरी बनाई ॥ ३४ ॥ महात्मा शावस्तके

पुत्र बृहदश्व और बृहदश्वके पुत्र कुवलयाश्व हुए वह अपने बाहुबलसे सम्पूर्ण पृथ्वीके अधिपति हुए थे ॥ ३५ ॥ उन्होंने धुन्धुनामक दानवका संहारकिया इसीसे भूमण्डलमें धुन्धुमार नामसे अत्यन्त विख्यात हुए ॥ ३६ ॥ उनके पुत्र दृढाश्व हुए उन्होंने पृथ्वीका पालन किया उनके पुत्र श्रीमान् हर्यश्व ॥ ३७ ॥ और हर्यश्वके पुत्र निकुम्भ हुए वह पृथ्वीके अधिपति हुए निकुम्भके पुत्र बर्हणाश्व थे कृशाश्वनामक उनके एक पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ३८ ॥ उनका पुत्र महाबलवान् प्रसेनजित् था उसके विक्रमकी सीमा नहीं थी प्रसेनजित्के पुत्र महाभाग यौवनाश्व हुए ॥ ३९ ॥ हे महाभाग ! यौवनाश्वके पुत्र श्रीमान् मान्धाता हुए उन्होंने पृथ्वीमण्डलके अधीश्वर हो भगवतीको प्रसन्न करनेकी इच्छासे काशी इत्यादि महातीर्थस्थानोंमें उनके अष्टोत्तर सहस्र (एकसौ आठ हजार) मन्दिर बनाये ॥ ४० ॥ हे मानद ! महातीर्थोंमें यह कार्य भगवतीको सन्तुष्ट करनेके लियेही किया था मान्धाता माताके गर्भसे उत्पन्न न हो पिताके उदरसे उत्पन्न हुए थे ॥ ॥ ४१ ॥ तिस समय अमात्योंने पिताकी कुक्षिभेदकर पुत्रको निकालाथा जनमेजयने कहा हे महाभाग ! आपने जो कहा वह न कभी देखा और न कभी सुना ॥ ॥ ४२ ॥ इस प्रकार जन्मग्रहण करना अत्यन्त असम्भव है आप उन महात्माके जन्मका कारण विस्तारसहित वर्णनकरके मेरा सन्देह दूर कीजिये ॥ ४३ ॥ वह सर्वाङ्गसुन्दर राजाके उदरसे किसप्रकार प्रकट हुए ? व्यासजीने कहा हे मुनिसत्तम गण ! नरपति यौवनाश्व परमधार्मिक राजाके सन्तान सन्तति कुछ न हुई ॥ ४४ ॥ और उनके सौ रानी थीं राजा प्रायः सदाही पुत्रके लिये चिन्तासागरमें निमग्न रहते ॥ ४५ ॥ एक समय वह पृथ्वीपति यौवनाश्व दुःखित हो पुत्रकी इच्छासे वनमें ऋषियोंके पवित्र आश्रममें गये ॥ ४६ ॥ वह तपोवनमें पहुँचकर तपस्वियोंके सामने अत्यन्त लम्बे लम्बे श्वास छोडने लगे उनको दुःखित देखकर ब्राह्मण कृपाके वशीभूतहुए ॥ ॥ ४७ ॥ हे राजन् ! तब ब्राह्मणोंने उनसे कहा हे पार्थिव ! आप किसकारण शोक प्रकाश करते हैं ? हे महाराज ! आपके मनमें क्या दुःख है ? वह सत्य कहो ॥ ४८ ॥ हम अवश्य आपके दुःखका प्रतिकार करेंगे. यौवनाश्वने कहा हे मुनिसत्तमगण ! मेरे राज्य, धन और उत्तम २ अश्व सम्पूर्णही विद्यमान हैं ॥ ४९ ॥ मेरे विमल शुद्धस्वभाववाली सौ रानियें विद्यमान हैं त्रिलोकमें मेरा कोई शत्रु भी नहीं है मेरी अपेक्षा बलवान् भी कोई नहीं है ॥ ५० ॥ सम्पूर्ण राजा और अमात्य मेरे

आज्ञाकारी हैं किन्तु हे तपस्वियो! एक मात्र अपुत्रता दुःखनेही मेरा सम्पूर्ण सुख नष्ट किया है ॥ ५१ ॥ देखो पुत्रहीन मनुष्यको कभी स्वर्ग प्राप्त नहीं होता. अतएव हे विप्रेन्द्रगण! केवल सन्तानके लियेही मैं निरन्तर शोक करता हूं ॥ ५२ ॥ आप तपस्वी हैं विशेषकर बहुत परिश्रम करके वेद शास्त्रका सार मर्म जाना है अतएव सन्तानकी इच्छा करनेवाले पुरुषको कौन यज्ञ करना युक्तिसंगत है आप लोग इसकी मुझको आज्ञा दीजिये ॥ ५३ ॥ हे तपस्वियो! यदि आपकी मेरे प्रति कृपा हो तो आप इस सत्कार्यका अनुष्ठान कीजिये. व्यासजी बोले हे महाराज! राजाके यह वचन सुन उन्होंने दयासे पूर्ण हो ॥ ५४ ॥ स्थिरभावसे उनको इन्द्र जिस यज्ञके अधिष्ठात्री देवता थे ऐसा यज्ञ कराया भूपतिको पुत्र प्राप्तिके लिये प्रथम उन्होंने जलपूर्ण कलश स्थापन कराय ॥ ५५ ॥ वैदिक मंत्रद्वारा उसको अभिमंत्रित किया. राजा रात्रिके समय प्यासे हो उस यज्ञमें प्रविष्ट हुए ॥ ५६ ॥ और उसी समय ब्राह्मणोंको सोता हुआ देख वह मंत्रपूत जल स्वयं पिया ब्राह्मणोंने विधिके अनुसार जल उद्धृत और अभिमंत्रितकर राजाकी भार्याके लिये संस्कार किया था ॥ ५७ ॥ किन्तु राजाने प्यासे होकर अज्ञानसे स्वयं वह जल पीलिया दूसरे दिन प्रातःकालके समय ब्राह्मण जलरहित कलश देख अत्यन्त शंकित हुए ॥ ५८ ॥ तब ब्राह्मणोंने राजासे पूँछा यह जल किसने पीया है. तब उन्होंने जाना कि, राजाने यह जल पाया है यह दैवयोगसेही हुआ है ॥ ५९ ॥ मुनि यह जान यज्ञ समाप्त कर अपने अपने घरको चले गये इसके उपरान्त राजाने उस यज्ञीय मंत्रबलसे गर्भधारण किया ॥ ६० ॥ कुछ दिन व्यतीत होनेपर सन्तान पुष्ट हुई तब उन राजाके मंत्रियोंने उनकी दक्षिणकुक्षि भेदकर पुत्रको निकाला ॥ ६१ ॥ केवल देवताओंकी कृपासे उस समय राजाकी मृत्यु न हुई यह कुमार किसका स्तन पान करेगा यह बात कह मंत्रिलोक अत्यन्त आक्षेप करनेलगे ॥ ६२ ॥ तब इन्द्रने 'मांधाता' अर्थात् मुझको (मेरी यह अमृतमय तर्जनी अंगुली) पियेगा यह कह उसके मुखमें तर्जनी अंगुली दी इसी कारणसे उन महाबलीका नाम मांधाता हुआ ॥ ६३ ॥ हे भूपाल! यह मैं ने आपसे उन मांधाताके उत्पन्न होनेका वृत्तान्त विस्तार पूर्वक कहा ॥ ६४ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः १०.

व्यासजी बोले हे महाराज! उन सत्यप्रतिज्ञ नरपति मांधाताने क्रमानुसार सम्पूर्ण भूमण्डलको जीतकर राजाओंके अधीश्वर हो सार्वभौम उपाधि प्राप्त की ॥ ॥ १ ॥ हे महाराज! राजराजेश्वर मांधाताके प्रभावका वृत्तान्त और अधिक क्या कहैं तिस समय तस्कर उनके भयसे त्रस्त होकर पर्वतकी गुहामें भाग गये थे इस कारण इन्द्रने इनका नाम त्रसदस्यु रक्खा ॥ २ ॥ उन्होंने नन्दपाल शशबिदुन्की कन्या बिन्दुमतिका पाणिग्रहण किया उस पतिव्रता ललनाके अंग प्रत्यंगमें सम्पूर्ण सुलक्षण विद्यमान होनेसे उसके सौन्दर्यकी सीमा नहीं थी ॥ ३ ॥ हे महाराज! मांधाताने उसके गर्भसे सुविख्यात पुरुकुत्स और मुचुकुन्द दो पुत्र उत्पन्न किये ॥ ४ ॥ पुरुकुत्सके पुत्र अनरण्य हुए यह राजकुमार बृहदश्व नामसे प्रसिद्ध हुए परन्तु यह अत्यन्त धार्मिक और पितृभक्ति परायण थे ॥ ५ ॥ उनके पुत्र हर्यश्व हुए वह धार्मिक और परमार्थ सत्वके जाननेवाले थे उनके पुत्र त्रिधन्वा और त्रिधन्वाके पुत्र अरुण हुए ॥ ६ ॥ अरुणके पुत्र श्रीमान् सत्यव्रत हुए वह अत्यन्त लोभके वशीभूत कामुक मन्दस्वभाव और इच्छाकारी थे ॥ ७ ॥ एक समय उस पापात्मा राजकुमारने कामसे मोहित हो किसी ब्राह्मणकी भार्या हरण कर उसके विवाहमें विघ्न किया ॥ ८ ॥ हे राजन्! सम्पूर्ण ब्राह्मणलोग मिल अत्यन्त परिताप करते करते राजा अरुणके समीप जाय वारंवार कहने लगे हा! हम मरगये ॥ ९ ॥ राजाने उन दुःखित स्त्री पुरवासी ब्राह्मणोंसे कहा हे विप्रवृन्द! मेरे पुत्रने आपका क्या अनिष्ट कार्य किया है ॥ १० ॥ राजाके यह विनययुक्त वचन सुन उन वेदके जाननेवाले ब्राह्मणोंने वारंवार आशीर्वाद देकर उनसे कहा हे राजन्! आप बलवानोंमें अग्रगण्य हैं अतएव आपके पुत्र भी ऐसेही हैं अब उन्होंने विवाह स्थलमें एक विवाहित ब्राह्मणकी कन्याको बलपूर्वक हरण किया है ॥ ११ ॥ १२ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज! तब परमधार्मिक राजाने ब्राह्मणका यह वचन सत्य जान पुत्रसे कहा हे दुर्बुद्धे! आज तैंने यह दुष्कार्य करके अपने सत्यव्रतनामका अर्थ निष्फल किया ॥ १३ ॥ रे दुराचार! तू मेरे घरसे निकलजा रे पापी! मेरे अधिकारमें अब तू कभी नहीं रहसक्ता ॥ १४ ॥ तब सत्यव्रतने पिताको कुपित देखकर वारंवार कहा हे पितः! मैं कहां जाऊं? उन्होंने

कहा तू श्वपचो (चांडालो) के सहित काल व्यतीत कर ॥ १५ ॥ तैंने ब्राह्मणकी स्त्री हरण करके श्वपचका कार्य किया है अतएव उनके संग रहकर सुखपूर्वक काल व्यतीत कर ॥ १६ ॥ रे कुल पाँसन ! मैं तेरे समान दुराचार पुत्रसे पुत्रवान् होनेकी इच्छा नहीं करता. विशेषकर तैंने वंशकी कीर्तिको नाश किया है अतएव रे दुष्टात्मन् ! तेरी जहां इच्छा हो वहां जा ॥ १७ ॥ सत्यव्रत कुपित पिताके वचन सुन तत्काल उस पुरीसे बाहर निकल श्वपचोंके समीप गये ॥ १८ ॥ वह राजकुमार बख्तर पहर धनुर्बाण धारणकर तिससमय श्वपचोंके संग काल व्यतीत करने लगे किन्तु उस स्थानमें रहकरभी उनके हृदयमें रहकरभी उनके हृदयमें करुणा का अभाव न हुआ ॥ १९ ॥ जब महात्मा पिताने कुपित हो उनको घरसे निकाला तिस समय गुरुदेव वसिष्ठजीने महीपतिको इस विषयमें नियुक्त किया था ॥ २० ॥ विशेपकर धर्मशास्त्रके जाननेवाले वशिष्ठजीने पुत्रके निकालनेमें उद्यत राजाको निवारण नहीं किया यह जानकर सत्यव्रत उनके प्रति कुपित हुए थे॥ २१॥ उनके पिता किसी अनिर्वचनीय कारणसे नगरको त्यागकर पुत्रके लिये तपस्या करनेको वनमें गये ॥ २२ ॥ हे राजेन्द्र ! इस अधर्मसे पाकशासन महेन्द्रने उस राज्यमें बारहवर्षतक एकबारही वर्षा न की ॥ २३ ॥ हे राजन् ! उसी समय विश्वामित्र उस राज्यमें अपने स्त्री पुत्रोंको छोड़कर कौशिकी नदीके तटपर उग्र तपस्यामें प्रवृत्त हुए थे ॥ ॥ २४ ॥ तब कौशिककी वह परमसुन्दरी भार्या कुटुम्बका पालन करनेके लिये दुःखसे अत्यन्त कातर हुई ॥ २५ ॥ बालक क्षुधासे व्याकुल हो नीवार अन्न (समा) माँगते हुए अत्यन्त रोते हैं. पतिव्रता कौशिककी भार्या यह देखकर अत्यन्त दुःखित हुई ॥ २६ ॥ वह पुत्रोंको क्षुधातुर देखकर दुःखित हो चिन्ता करने लगी कि, राजेश्वर राजाभी राजधानीमें नहीं हैं तो अब किससे मांगूं अथवा क्या उपाय करूं ? ॥ २७ ॥ पतिभी समीप नहीं हैं. अतएव मेरे पुत्रोंकी कौन रक्षा करेगा? बालक रात दिन रोते हैं इस कारण मेरे इस वृथा जीवन धारण करनेको धिक्कार है ॥ २८ ॥ धनहीन अवस्थामें मुझको छोडकर पति तपस्या करनेको गये हैं, मैं धनके अभावसे कष्ट भोगती हूं वह समर्थ होकर भी यह नहीं जानसकते ॥ २९ ॥ पतिके अतिरिक्त मैं किससे बालकोंका भरण पोषण करूं ? क्षुधासे पीडित होनेपर सम्पूर्ण पुत्रही कालके ग्रासमें पतित होंगे ॥ ३० ॥ जो हो एक पुत्रको बेंचकर जो कुछ द्रव्य मिलेगा उससे बचे हुए

पुत्रोंका पालन कर सकूंगी इस उपायका अवलम्बन करनाही मुझको उचित है ॥ ३१ ॥ इसके अन्यथा करके सम्पूर्ण पुत्रोंको सहसा मृत्युके मुखमें डालना मुझको किसी प्रकार उचित नहीं है. अतएव जीवनयात्रा निर्वाह करनेके लिये मैं एक पुत्रको बेंचूंगी ॥ ३२ ॥ वहसती मनमें इसप्रकार विचार पूर्वक अपने हृदयको कठिन कर कुशकी रस्सीमें पुत्रका गाला बांध बाहर निकली ॥ ३३ ॥ वह मुनिपत्नी अवशिष्ट पुत्रोंका भरण करनेके लिये गर्भजात मध्यम पुत्रका गला बाँध उसको लेकर घरसे निकली ॥ ३४ ॥ राजा सत्यव्रतने शोकसन्तापसे कातर हुई उस तापसीको देखकर पूँछा हे शोभने! तुम इस किस कार्यांमें प्रवृत्त हुई हो ॥ ३५ ॥ तुम कौन हो? यह बालक क्यों रोता है तुम किस लिये इसका कण्ठ बांधकर लिये जाती हो हे चारुवदने! इसका क्या कारण है यह तुम मुझसे सत्य कहो ॥ ३६ ॥ ऋषि पत्नीने कहा हे नृपनन्दन! मैं विश्वामित्रकी भार्या हूं यह मेरा औरस पुत्र है अन्नके अभावसे गर्भजातपुत्रको इच्छानुसार बेंचने लिये जाती हूं ॥ ३७ ॥ हे नृप! मुझको मेरे स्वामी छोडकर कहीं तपस्या करने गये हैं और घरमें भी कुछ अन्न नहीं है अतएव क्षुधासे कातर हुई अवशिष्ट सन्तानका भरण करनेके लिये मैं इसको बेंचूंगी ॥ ३८ ॥ सत्यव्रतने कहा हे पतिव्रते! तुम पुत्रकी रक्षा करो वनसे तुम्हारे पति जबतक इस स्थानमें नहीं आते हैं तबतक मैं तुम्हारे भरण पोषणके उपयुक्त आहारकी सामग्री दूंगा ॥ ३९ ॥ तुम्हारे आश्रम समीप किसी वृक्षमें कुछेक भक्ष्य द्रव्य नित्य बांध आया करूंगा. यह मैं तुमसे सत्यही कहता हूं ॥ ४० ॥ विश्वामित्रकी पत्नी राजाके यह वचन सुन पुत्रका बंधन छोड़ अपने आश्रममें चली गई ॥ ४१ ॥ गला बंधनेके कारण वह बालक गालवनामसे प्रसिद्ध होकर अन्तमें महातपा ऋषि हुआ तब विश्वामित्रकी भार्या अपने आश्रममें जाय पुत्रोंसे परिवृत हो आनन्द अनुभव करनेलगी ॥ ४२ ॥ परन्तु सत्यव्रत भक्ति और कृपासे पूर्ण हो मिश्वामित्रमुनिकी भार्याका भार वहन करनेलगे ॥ ४३ ॥ वह वनके वराह, मृग और महिषको मारकर उनका मांस मिश्वामित्रकी पत्नी और पुत्रोंके लिये लेजाकर जिस स्थानमें वास करे उसी तपोवनके समीप वृक्षमें बांध आते ॥ ४४ ॥ ऋषिपत्नी वह मांस लेकर पुत्रोंको भक्षण करनेके लिये देती इसी प्रकार उसने अत्युत्तम भक्ष्य प्राप्तकर अत्यन्त सुख अनुभव किया ॥ ४५ ॥ इधर नरपति अरुणके वनमें तपस्या करनेको चलेजानेपर वसिष्ठमुनि अयोध्यानगरीके राज्य और अन्तःपुर

समस्तहीकी सावधानतासे रक्षा करने लगे ॥ ४६ ॥ सत्यव्रतभी पिताकी आज्ञानुसार नित्य पशुमारकर जीविकानिर्वाह करते और धर्ममें निरत रहकर नगरके बाहर वनमें वास करते थे ॥ ४७ ॥ सत्यव्रतने किसी कारणसे वसिष्ठके ऊपर सदाही मनमें कोप धारण कर रक्खा था. क्योंकि पिताने जब धार्मिक प्रिय पुत्रको परित्याग किया तब उन्होंने उन राजाको निवारण नहीं किया. हे महाराज! यही उनके कोपका कारण जानना चाहिये ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ सात पग न चलनेसे पाणिग्रहण कर्म समाप्त नहीं होता अतएव उसके हुए विना कन्याहरण करनेसे ब्राह्मणकी पत्नी हरण करना नहीं होता "कन्या हरण है" धर्मात्मा वसिष्ठने यह कारण जानकरभी उनको निषेध नहीं किया ॥ ५० ॥ एक दिन राजपुत्र सत्यव्रतने मृगयामें किसी पशुको न पाकर वनमें वसिष्ठकी दुग्धवती धेनुको देखा तब ॥ ५१ ॥ राजाने क्षुधासे कातर हो क्रोध और मोहसे दस्युकी समान धेनुकी हत्याकी और उसका कुछेक मांस विश्वामित्रकी स्त्रीको भक्षण करानेके लिये वृक्षमें बाँधकर अवशिष्ट मांस स्वयं भक्षण किया ॥ ५२ ॥ हे सुव्रत! तिस समय विश्वामित्रकी पत्नीने इस मांसको गोमांस न जानकर यह मृगका मांस है इस प्रकार जान वह सम्पूर्ण मांस पुत्रोंको भक्षण कराया ॥ ५३ ॥ इधर वसिष्ठजीने अपनी कामधेनुके विनाशका वृत्तान्त जान क्रोधके वशीभूत हो सत्यव्रतसे कहा रे दुरात्मन्! धेनु मारकर पिशाचकी समान तूने क्या पापकार्य किया है ॥ ५४ ॥ गोवध द्विजपत्नी हरण और पिताका अत्यन्त क्रोध इन तीन अपराधोंसे तेरे मस्तकपर तीन शंकु अर्थात् कुष्ठवत् तीन पाप चिह्न शीघ्र पतित हों ॥ ५५ ॥ अबसे तू सम्पूर्ण प्राणियोंको पिशाचकी समान अपना रूप दिखाकर पृथ्वीमें त्रिशंकुनामसे विख्यात होगा ॥ ५६ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज! राजा सत्यव्रत वसिष्ठसे इस प्रकार शापको प्राप्त हो उस आश्रममें रहकर कठोर तपस्याका अनुष्ठान करने लगे ॥ ५७ ॥ परन्तु वह किसी मुनि पुत्रसे अनुत्तम मंत्र प्राप्त कर परमाप्रकृति शिवा भगवती देवीके ध्यानमें निमग्न हुए ॥ ५८ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महपुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ११.

जनमेजय बोले हे महामते ! जब वसिष्ठने नृपनन्दन त्रिशंकुको शाप दिया तब वह किसप्रकार उस शापसे छूटे थे ? यह आप मुझसे कहिये ॥ १ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! सत्यव्रत वसिष्ठके शापसे पिशाचत्वको प्राप्त होनेपर देवीके प्रति भक्ति परायण हो उसी आश्रममें समय व्यतीत करनेलगे ॥ २ ॥ एक दिन उन्होंने नवाक्षर मंत्र जपकर उस भगवतीमंत्रका पुरश्चरण करानेके लिये ब्राह्मणोंके समीप जाय भक्तिपूर्वक प्रणाम करके कहा ॥ ३ ॥ हे ब्राह्मणो ! आप मेरा वचन सुनिये मैं विनयसहित आपके निकट प्रार्थना करता हूं कि, आप सब मेरे ऋत्विक् हों ॥ ॥ ४ ॥ आप वेदके जाननेवाले हैं इस कारण मेरे प्रति कृपाकर यथाविधि कार्य सिद्धिके लिये जपका दशांश होम कीजिये ॥ ५ ॥ हे विप्रवरगण ! मेरा नाम सत्यव्रत है विशेषकर मैं राजपुत्र हूं. मेरा मंगल करनेके लिये यह कार्य सम्पादन करना आपको अवश्य कर्तव्य है ॥ ६ ॥ ब्राह्मणोंने इस प्रकार राजपुत्रके वचन सुनकर उनसे कहा हे राजपुत्र ! तुम गुरुसे शापित होकर पिशाचपनेको प्राप्त हुए हो ॥ ७ ॥ अब तुम्हारा वेदमें अधिकार नहीं है विशेषकर तुमको जो पिशाचता प्राप्त हुई है वह सम्पूर्ण लोकोंमें निन्दनीय है इसकारण अब तुम यागार्ह नहीं हो सक्ते ॥ ८ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! राजपुत्रने उनके यह वचन सुन दुःखित होकर विचारा कि, मेरे जीवनको धिक्कार है अब मैं वनमें रहकर क्या करूंगा ॥ ९ ॥ पिताने मुझको त्यागन किया है इससे राज्यभ्रष्ट हुआ इसपरभी गुरुके शापसे पिशाचपनेको प्राप्त हुआ हूं अतएव अब मैं क्या करूं ? कुछ स्थिर नहीं करसक्ता ॥ १० ॥ तब राजनन्दनने काष्ठ लाय बडी चिता बनाय चंडिकादेवीको स्मरण किया और उनका मंत्र जपते जपते चितामें प्रवेश करनेको कृतसंकल्प हुए ॥ ११ ॥ फिर राजकुमारने सन्मुख चिता प्रज्वलितकर स्थान किया और उसमें प्रवेश करनेके लिये हाथ जोड़कर खड़े हो देवी महामायाका स्तव करनेलगे ॥ १२ ॥ उसी समय भगवती उस महीपतिकी मृत्युकामना जान तत्काल सिंहको पीठपर चढ़ उनके ऊपर स्थित आकाशमार्गसे आईं ॥ १३ ॥ और फिर प्रत्यक्ष दर्शन दे मेघकी समान गम्भीर वचनोंके द्वारा उन नृपनन्दनसे कहने लगीं ॥ १४ ॥ हे हे साधो ! तुमने मनमें यह क्या निश्चय किया है ? तुम अग्निमें कदापि शरीरका त्याग मत करो स्थिर होओ. हे महाभाग ! तुम्हारे पिताको इससमय बुढ़ापा आगया है ॥

॥ १५ ॥ वह तुमको राज्य देकर तप करनेके लिये वनमें जायँगे अतएव हे वीरवर ! विषाद छोड़ दो. हे भूपते ! परसोंके दिन ॥ १६ ॥ तुम्हारे पिताके मंत्री तुम्हारे लेनेको आवेंगे मेरे प्रसादसे तुम्हारे पिता तुमको राज्यमें अभिषिक्त करेंगे ॥ १७ ॥ और यथासमयमें कामना जीतकर ब्रह्मलोकको जायँगे इसमें सन्देह नहीं. व्यासजीने कहा हे महाभाग ! देवी तिसकाल उनसे यह बात कहकर उसी स्थानमें अन्तर्धान होगई ॥ १८ ॥ और राजपुत्रभी अनल मृत्युसे विरत हुए इसी समय महात्मा नारदजीने अयोध्यामें आनकर ॥ १९ ॥ तत्काल सब आनुपूर्विक वृत्तान्त राजासे कहा तब राजा पुत्रके मरनेका उद्यम सुनकर ॥ २० ॥ दुःखितचित्तसे अनेकप्रकार पछतावा करनेलगे. धर्मात्मा राजाने शोकसन्तप्त होकर मंत्रियोंसे कहा ॥ २१ ॥ तुम सबने मेरे पुत्रके कठोर कार्यका विषय जाना मैंने अपने बुद्धिमान् पुत्र सत्यव्रतको वनमें त्याग किया है॥ २२॥ परन्तु वह परमार्थवित् राज्यार्ह होनेपरभी मेरी आज्ञासे तत्काल वनमें चलागया है यह धनहीन अवस्थामें क्षमाशील हो भलीभाँति ज्ञानकी आलोचना करताहुआ उसी स्थानमें वास करता है ॥ २३ ॥ किन्तु वसिष्ठदेवने शाप देकर उसको पिशाचकी समान किया है वह इस समय दुःखाग्निसे सन्तप्त होकर हुताशनमें प्रवेश करनेको उद्यत हुआ था ॥ २४ ॥ किन्तु महादेवीके निषेध करनेपर वह उस कार्यसे विरत हुआ है इस कारण तुम शीघ्र उस स्थानमें जाय उस महाबल ज्येष्ठपुत्रको ॥ २५ ॥ सांत्वन वचनोंसे समझाय अभी मेरे निकट लेआओ मैं प्रजापालनमें समर्थ उस औरसपुत्रका राज्याभिषेक करूंगा ॥ २६ ॥ मेरा चित्त अब शान्तभावको प्राप्त हुआ है अतएव मैं तपस्या करनेके लिये कृतसं-कल्प हुआ हूं यह कहकर राजाने सब मंत्रियोंको भेजा ॥ २७ ॥ जब पुत्रके प्रति प्रसन्न होकर बुलानेको भेजा तब मंत्रीभी प्रीतिपूर्णमनसे उस स्थानमें जाय महात्मा राजपुत्रको समझाय ॥ २८ ॥ सन्मानसहित अयोध्यामें लेआये. राजा सत्यव्रतको दुर्बल मलीनवस्त्र ॥ २९ ॥ जटाजूटधारी कृशकाय दुर्बल कर्कशाकृति चिन्तातुर देख चिन्ता करनेलगे कि, मैंने पुत्रको निकालकर क्या निष्ठुरकार्य किया है ! ॥ ॥ ३० ॥ महीपतिने मनमें इस प्रकार चिन्ता करके उसको आलिंगन किया ॥ ॥ ३१ ॥ और समझाबुझाकर अपने समीप स्थित आसनपर बैठाया बैठेहुए पुत्रसे वह राजा प्रेमपूर्वक बोले ॥ ३२ ॥ अर्थात् नीतिशास्त्रविशारद राजा प्रेमगद्गद, वचनसे प्रीतिपूर्व कहनेलगे राजा बोले हे पुत्र ! सर्वदा धर्ममें मति रखना और

ब्राह्मणोंका सन्मान करना तुम्हारा कर्तव्य है ॥ ३३ ॥ तुम न्यायके अनुसार धन ग्रहण करके सर्वदा प्रजाकी रक्षा करो कहींभी मिथ्या बात नहीं कहना चाहिये अथवा किसीप्रकार कुमार्गमें नहीं जाना चाहिये ॥ ३४ ॥ किन्तु साधुलोगोंका वचन सम्यक्प्रकार प्रतिपालन करने उचित हैं तपस्वियोंकी पूजा करनी चाहिये इन्द्रियजय करना और क्रूरस्वभाव तस्करोंको वध करना उचित है ॥ ३५ ॥ हे पुत्र ! कार्यसिद्धिके लिये मंत्रियोंसे मंत्रण करके उसको गुप्त रखना चाहिये ॥ ३६ ॥ शत्रु यदि अतिसामान्यभी हो तथापि कार्यकुशल राजा उसकी कभी उपेक्षा न करैं शत्रु परायेप्रति अनुरक्त होकर यदि अवनतभी हो तोभी उसका विश्वास न करै ॥ ३७ ॥ क्या शत्रु क्या मित्र सबके निकट दूतोंको नियुक्त करना चाहिये सदा धर्ममें अनुराग दर्शन और सदा दान करना ॥ ३८ ॥ वृथा वितण्डवाद करना अनुचित है दुष्टोंका संग नहीं करना चाहिये. हे पुत्र ! तुम महर्षियोंकी पूजा और अनेक प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान करो ॥ ३९ ॥ स्त्री, स्त्रैण पुरुष और द्यूतनिरत पुरुषोंका कभी विश्वास न करना. मृगयामें अत्यन्त आसक्त होना कभी उचित नहीं है ॥ ४० ॥ द्यूतक्रीड़ा मद्य गीत और वारवनिता इन सब विषयोंसे विरत रहना और प्रजाओंकी भी इस कार्यसे रक्षा करना ॥ ४१ ॥ नित्य ब्राह्ममुहूर्त्तमें उठकर फिर स्नानादि समस्त कर्त्तव्य कार्यका अनुष्ठान करना ॥ ४२ ॥ हे पुत्र ! गुरुके निकट देवीमंत्रमें दीक्षित होकर भक्तिपूर्वक परमाशक्ति भगवतीकी महती पूजा करनी पराशक्तिके चरणकमलोंकी पूजा करनेसे जन्म सफल होता है ॥ ४३ ॥ हे पुत्र ! जो पुरुष महादेवीकी केवल एकवार मात्रभी महती पूजा करके उनका चरणामृत जल पान करते हैं उन पुरुषोंको फिर कभी जननीके गर्भमें जन्मग्रहण नहीं करना पड़ता यह स्थिर निश्चय है ॥ ४४ ॥ वह महादेवीही इस सम्पूर्ण देखनेवाली वस्तुका स्वरूप है वही द्रष्टा और साक्षि चैतन्यस्वरूप है इस प्रकार भावमें रत पूर्णात्मा होकर निर्भय चित्तसे वास करै ॥ ४५ ॥ प्रतिदिन नैमित्तिक कार्य समापन करके ब्राह्मणोंकी सभामें जाना चाहिये और उनको बुलाकर धर्मशास्त्रकी सिद्धान्त पूँछना चाहिये ॥ ४६ ॥ वेद और वेदान्त पारग ब्राह्मण अवश्यपूजनीय हैं अतएव उनकी पूजा कर पात्र विचार सदा गो भूमि और सुवर्ण इत्यादि दान करना ॥ ४७ ॥ किसी अविद्वान् ब्राह्मणकी कभी पूजा न करना मूर्ख पुरुषको आहारसे अधिक और कुछ दान न करै ॥ ४८ ॥ हे वत्स ! लोभके वशीभूत होकर कभी धर्म

उल्लंघन न करना और यह सदा मनमें विचार रक्खो कि अबसे ब्राह्मणोंका कभी अपमान नहीं करूंगा ॥ ४९ ॥ ब्राह्मण क्षत्रियोंके कारण और विशेष कर उनके भूलोकके देवता हैं अतएव यत्नसहित ब्राह्मणोंके सन्मानकी रक्षा करनी चाहिये इसमें त्रुटी न करनी ॥ ५० ॥ जलसे अग्नि ब्राह्मणसे क्षत्र और पत्थरसे लोह उत्थित होता है इनका तेज सर्वत्र गामी होनेपर भी स्वस्वयोनिके संग विरोध उपस्थित होनेपर उसमेंही प्रशमित होता है यह निश्चय जानो ॥ ५१ ॥ जो राजा अपनी उन्नतिकी कामना करैं वह दान और निश्चयसे ब्रह्माके मुखसे प्रगट ब्राह्मणोंका भलीभाँति सन्मान करैं ॥ ५२ ॥ धर्म शास्त्रके अनुसार सदा नीतिका अनुसरण करैं और न्यायानुसार धन संग्रह करके राज कोष पूर्ण करना ॥ ५३ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः १२.

व्यासजीने कहा हे महाराज ! जब पिताने पुत्रको इस प्रकार उपदेश दिया तब नरपति त्रिशंकुने प्रणत होकर प्रेमसे रुद्धकण्ठ हो पितासे कहा आप जो आज्ञा देंगे मैं वही करूंगा ॥ १ ॥ तब नरपतिने वेदशास्त्रके जाननेवाले मंत्रज्ञ ब्राह्मणोंको बुलाकर शीघ्र अभिषेककी सामग्री मँगाई ॥ २ ॥ सम्पूर्ण तीर्थोंका जल मँगाया सब राजाओंको आदरसहित बुलाया पिताने पुत्र त्रिशंकुको पवित्रदिन देख राज्यमें अभिषिक्त कर उसको विधिके अनुसार राजासन दान किया ॥ ३ ॥ ४ ॥ तदनन्तर भूपति, भार्याके सहित पवित्र वानप्रस्थाश्रम ग्रहणकर वनमें जाय गंगाके तटपर कठोर तपस्याका अनुष्ठान करने लगे ॥ ५ ॥ फिर कालधर्मके वशीभूत हो राजा स्वर्गको गये वहां देवताओंसे सन्मानित हो इन्द्रासनके समीपमें सर्वदा सूर्यकी समान दीप्ति पानेलगे ॥ ६ ॥ जनमेजयने कहा हे भगवन् ! आपने कथा प्रसंगमें पहले कहा है कि, जब सत्यव्रतने धेनुवध किया था तब महर्षि वसिष्ठने कुपित होकर उनको ॥ ॥ ७ ॥ पिशाच होओ यह कहकर शाप दिया था. सम्प्रति किसप्रकार वह पिशाचत्वसे छूटे ? इसका मुझको अत्यन्त सन्देह होता है ॥ ८ ॥ सत्यव्रत शापग्रस्त होनेसे सिंहासनके अयोग्य हुए किन्तु मुनिवरने किस कार्य द्वारा उनको शापसे छुड़ाया ॥ ९ ॥ इस शापसे पिशाचाकृति पुत्रको पिताने किसप्रकार गृहमें बुलाया.

हे विप्रर्ष ! अब उनकी मुक्तिका कारण मुझसे भलीभाँति वर्णनकीजिये ॥ १० ॥ व्यासजीने कहा वसिष्ठके शापसे सत्यव्रत शीघ्र पिशाचत्वको प्राप्त हो अत्यन्त कुत्सित दुर्द्धर्ष (सहनेके अयोग्य) और सर्वलोकको भयदायक होगयेथे ॥ ११ ॥ किन्तु जब उन्होंने भक्तिभावसे देवीकी उपासनाकी तब देवीने प्रसन्न होकर उनको दिव्यदेह दानकी ॥ १२ ॥ देवीके कृपामृत सींचनेसे उनका पाप-क्षय और पिशाचाकृति दूर होगई. तब सत्यव्रत पापरहित होकर अत्यन्त तेजस्वी हुए ॥ १३ ॥ परमशक्तिके प्रसादसे वसिष्ठ उनके प्रति प्रसन्न हुए उनके अनुग्रहसे पिताभी सत्यव्रतके उपर प्रसन्न हुए ॥ १४ ॥ पिताके मरजानेपर धर्मात्मा सत्यव्रत राजा हो राज्यशासन और बीच बीचमें अनेक प्रकार यज्ञोंका अनुष्ठान कर देवदेवी सनातनीकी अर्चना करने लगे ॥ १५ ॥ हे महाराज ! इन त्रिशंकुके हरिश्चन्द्रनामक एक परम सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ उस शोभायमान राजपुत्रके अंगमें सम्पूर्ण शास्त्रविहित सुलक्षण विराजमान थे ॥ १६ ॥ पृथ्वीपति त्रिशंकुने पुत्रको युवराज करके मनुष्य देहसेही स्वर्ग भोगकरनेकी इच्छा की॥ १७॥ तब राजाने प्रसन्न चित्तसे वसिष्ठके आश्रममें जाय विधिपूर्वक प्रणाम कर हाथ जोड़ उनसे कहा ॥ १८॥ हे तपोधन! आप ब्रह्माके पुत्र और सम्पूर्ण वैदिकमंत्रोंके पारदर्शी हैं इस कारण आपके सौभाग्यकी सीमा नहीं है. अतएव आपसे एक विषय निवेदन करता हूं आप प्रसन्न-चित्तसे वह सुनिये ॥ १९॥ इस समय इस मनुष्य शरीरसेही स्वर्गलोकके सुख और सम्पूर्ण देवताओंकी भोग्यवस्तु भोग करनेकी इच्छा उपस्थित हुई है ॥ २० ॥ नन्दनवनमें विहार, अप्सराओंके संग सहवास और देव गन्धर्वोंके मधुर संगीत सुननेकी इच्छा उत्पन्न हुई है ॥ २१ ॥ अतएव हे महामुने ! मैं जिससे इसी शरीरके द्वारा स्वर्गमें वास करसकूं आप मुझको ऐसेही यज्ञमें नियोजित कीजिये ॥ २२ ॥ हे मुनिवर ! आप यह कार्य सम्पादन करनेमें भलीभाँति समर्थ है. अतएव आप मेरे कार्यमें इससमय प्रवृत्त हूजिये. आप यज्ञकरके मुझको शीघ्रही दुर्लभ देवलोक प्रदान कीजिये ॥ २३ ॥ वसिष्ठने कहा हे राजन् ! मनुष्य देहसे स्वर्गमें वास करना अत्यन्त दुर्लभ है. मृतकपुरुष पुण्यबलसे स्वर्गमें वास करते हैं यही वीर प्रसिद्ध है ॥ २४ ॥ अतएव हे सर्वज्ञ ! तुम्हारा मनोरथ दुर्लभ है इस कारण मैं इससे डरता हूं. हे महाराज ! जीवित पुरुषको अप्सराओंके सहित सहवास अत्यन्त दुर्लभ है ॥२५॥ अतएव हे महाभाग ! पहले यज्ञका अनुष्ठान कीजिये फिर यह देह त्यागकर

स्वर्ग प्राप्त कीजिये. व्यासजीने कहा हे महाराज ! महर्षि वसिष्ठ धेनुवधके कारण पहलेसेही राजाके प्रति रोषयुक्त थे इसकारण उन्होंने राजासे ऐसे वचन कहे फिर राजा यह सुनकर अत्यन्त विमन हो ॥ २६ ॥ महर्षिसे फिर कहनेलगे हे ब्रह्मन् ! गर्वके अत्यन्त वशीभूत हो यदि आप मुझको यज्ञ न करावेंगे ॥ २७ ॥ तो मैं इससमय दूसरे पुरोहितको कर यज्ञका अनुष्ठान करूंगा. वसिष्ठने राजाके इस प्रकार वचन सुन कुपित होकर ॥ २८ ॥ उनको शाप दिया रे दुर्मते ! तू चाण्डाल हो अधिक क्या तू शीघ्रही इस शरीरसे श्वपच पिशाच हो ॥ २९ ॥ जिससे स्वर्ग मार्ग रोकता है. तैंने उसी प्रकार पापकार्य किया हैं. तैंने ब्राह्मणकी पत्नी हरणकर धर्म मार्ग नष्ट किया है तू गोवध करके दूषित हुआ है और तू धर्म विदूषक है ॥ ३० ॥ अतएव हे पापिष्ठ ! तेरे मरनेपरभी कभी स्वर्ग प्राप्त न होगा. व्यासजीने कहा हे राजन् ! त्रिशंकु गुरुके ऐसे निष्ठुर वचन सुनतेही तत्काल ॥ ३१ ॥ उसी शरीरसे वहां श्वपचाकृति हुए तिसी समय उनके सुवर्णकुण्डल लोहमय हो गये ॥ ३२ ॥ उनके शरीरमें जो सुगन्धित चन्दन था वह विष्ठाकी समान गन्धयुक्त होगया उनके जो मनोहर पीताम्बरयुगल परिधान थे वह नीलवर्ण होगये ॥ ३३ ॥ उन महात्माके शापसे उनका शरीर हाथीके समान वर्णयुक्त होगया. हे राजन् ! जो परमाशक्तिके उपासक हैं उनके कोपसे इसीप्रकार फल होता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ३४ ॥ अतएव शक्तिके भक्त मनुष्यका अपमान करना कभी उचित नहीं है. हे मुनिसत्तम ! वसिष्ठ देवीके गायत्रीजपमें सदा तत्पर थे इसीकारण उनके कोपसे राजाकी दुर्दशा हुई इसमें क्या विचित्रता है ॥ ३५ ॥ तब राजा त्रिशंकु अपना निन्दनीय देह देखकर दुःखित हुए और घर नहीं गये बरन दीनवेशसे वनको चलेगये ॥ ३६ ॥ राजा त्रिशंकु दुःखसे कातर और शोकसे अभिभूत हो चिन्ता करनेलगे मेरा शरीर ऐसा हुआ है अतएव इस अवस्थामें कहाँ जाऊं अथवा क्या उपाय करूं ॥ ३७ ॥ जिससे मेरा दुःख दूर हो ऐसा कोई उपाय नहीं दीखता. यदि घर जाऊं तो पुत्र मेरी यह अवस्था देखकर अत्यन्त कातर होगा इसमें सन्देह नहीं ॥ ३८ ॥ भार्या मुझको श्वपचाकृति देखकर फिर ग्रहण न करेगी मंत्रीभी मेरा इस प्रकार अंग देखकर पहलेकी समान आदर न करेंगे ॥ ३९ ॥ विशेषकर ज्ञाति और बान्धव वर्ग मेरे निकट आय पहलेकी समान सेवा नहीं करेंगे. अतएव सबसे परित्यक्त होकर जीवित रहनेकी अपेक्षा मरनाही श्रेष्ठ है इसमें सन्देह नहीं ॥

॥ ४० ॥ मैं विषपान कर अथवा जलाशयमें डूब वा गलेमें रस्सी बाँध जीवनत्याग करूंगा ॥ ४१ ॥ अथवा बलपूर्वक यह देह प्रज्वलित अग्निमें विधिके अनुसार जलाऊंगा किंवा निराहार रहकर इस अत्यन्त दूषितजीवनको विसर्जन करूंगा ॥ ॥४२॥ किन्तु हा ! इससे आत्महत्याका पाप होगा इसकारण हत्यादोषके वशीभूत हो प्रतिजन्ममें फिर श्वपचत्व और शाप प्राप्त होगा ॥ ४३ ॥ मनमें इसप्रकार विचार भूपतिने फिर चिन्ताकरके स्थिर किया कि, अब आत्महत्या करना मुझको कभी उचित नहीं है ॥ ४४॥ इस कर्मविपाकका भोग होनेसे वह अवश्य दूर होगा. अतएव इस देहसे वनमें अपने कियेहुए कर्मोंको भोगूं ॥ ४५ ॥ विशेषकर भोगनेके अतिरिक्त प्रारब्धकार्य कभी दूर नहीं होता. अतएव जोजो शुभ अथवा अशुभ कार्य किये हैं इस स्थानमें वह सम्पूर्ण भोगूंगा ॥ ४६ ॥ मैं सदाही पवित्र आश्रमके समीप स्थानमें वास तीर्थस्थानमें पर्यटन अम्बिकाका स्मरण और साधुओंकी सेवा करूंगा ॥ ४७ ॥ वनमें वास करके इसप्रकार निश्चयही कर्मक्षय करूंगा अनन्तर भाग्यवश यदि कभी साधुसमागम संघटित हो तबही मेरी कार्यसिद्धि होगी ॥४८॥ नरपति मनमें इस प्रकार चिन्ता कर अपने नगरको छोड़ गंगाके तटपर गये और अनेक अनुताप करके उस सुरनदीके पुलिनमें स्थिति करने लगे ॥ ४९ ॥ इधर पृथ्वीपति हरिश्चन्द्रने पिताके शापका कारण जान दुःखित हृदयसे मंत्रियोंको उनके निकट भेजा ॥ ५० ॥ जिस समय राजा चाण्डालकी समान हो वारंवार श्वास छोड रहेथे उसी समय मंत्रियोंने उनके निकट उपस्थित हो अति विनीत भावसे प्रणाम करके कहा ॥ ५१ ॥ हे राजन् ! आपके पुत्रने हमको भेजा है उनकी अनुमतिके अनुसार हम आपके पास आये हैं हम राजा हरिश्चन्द्रके आज्ञानुवर्त्ती मन्त्री हैं यह आप सत्य जानिये ॥ ५२ ॥ हे नरनाथ ! आपके पुत्र युवराजने जो कहा है सो सुनिये. उन्होंने कहा है कि, हमारे पिताको तुम शीघ्र इस स्थानमें ले आओ ॥ ५३॥ अतएव हे राजन् ! मनकी वेदना छोडकर राजधानीमें चलिये क्या मन्त्रीलोग क्या प्रजालोग सम्पूर्णही आपकी सदा सेवा करेंगे॥५४॥ गुरुदेव वसिष्ठ जिससे आपके प्रति दयायुक्त हो हम सम्पूर्ण उसी प्रकार उनको प्रसन्न करेंगे तो अवश्यही वह महातेजा प्रसन्न होकर शीघ्र आपका दुःख दूर करेंगे ॥ ५५ ॥ हे राजन् ! आपके पुत्रने इस प्रकार अनेक बातें कही हैं अतएव आप इस समय अपने घरको चलिये ॥ ५६ ॥ व्यासजीने कहा हे नरनाथ ! उन

श्वपचाकृति नरपतिने उनके यह वचन सुनकर भी अपने घर जानेकी इच्छा न की ॥ ५७ ॥ वरन उनसे कहा कि हे मंत्रियों! तुम घरको लौट जाओ और तुम घर जायकर मेरे वचनानुसार पुत्रसे कहा कि ॥ ५८ ॥ अब मैं घरको नहीं आऊंगा तुम आलस्य छोड सावधान होकर राज्यशासन करो विशेषकर ब्राह्मणोंका सन्मान और अनेक यज्ञोंका अनुष्ठान तथा देवताओंकी अर्चना करो ॥ ५९ ॥ मैं इस निन्दनीय चाण्डालवेशसे महानुभव गणोंके सहित अयोध्यामें जानेकी इच्छा नहीं करता अतएव तुम शीघ्रही अयोध्याको जाओ ॥ ६० ॥ मेरी आज्ञानुसार मेरे पुत्र महाबल हरिश्चन्द्रको सिंहासनपर स्थापितकर तुम राज्य कार्य सम्पादन करो ॥ ६१ ॥ अनन्तर मंत्रियोंने राजाकी इसप्रकार आज्ञा सुन कातर हृदयसे अत्यन्त रोदन किया और उनको प्रणामकर शीघ्रही वनाश्रमसे निकले ॥ ६२ ॥ तिसकाल उन्होंने अयोध्यामें आये पवित्र दिन देख हरिश्चन्द्रके मस्तकमें विधिपूर्वक मन्त्रपूत अभिषेक जल प्रदान किया ॥ ६३ ॥ वह तेजस्वी धर्मनिष्ठ हरिश्चन्द्र राजाकी आज्ञानुसार राज्यमें अभिषिक्त हो निरन्तर पिताको स्मरण कर मंत्रियोंके सहित धर्मानुसार राज्य शासन करने लगे ॥ ६४ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः १३.

जनमेजयने कहा हे मुनिसत्तम! नरपतिकी आज्ञानुसार मंत्रियोंने हरिश्चन्द्रको राज्यपदमें अभिषिक्त किया किन्तु त्रिशंकु उस चाण्डाल देहसे किसप्रकार छूटे? वह आप मुझसे कहिये ॥ १ ॥ यह गंगाके तटपर पवित्र जलमें स्नानकर वनमें प्राणपरित्यागपूर्वक शापसे छूटे थे अथवा गुरु वशिष्ठ देवने कृपा करके उनकी शापसे रक्षाकी थी? ॥ २ ॥ हे ऋषिवर! मैं उन नरपतिका चरित्र सुननेकी अत्यन्त इच्छा करता हूं इस कारण आप उनके सब अद्भुत चरित्र मुझसे विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज! राजा पुत्रको राज्यपदमें अभिषिक्त कर सन्तुष्टचित्त हुए और भगवती भवानीका ध्यान करते हुए उस वनमें काल व्यतीत करने लगे ॥ ४ ॥ इस प्रकार कुछ काल व्यतीत होनेपर कुशिकपुत्र विश्वामित्र एकाग्रचित्तसे तपस्याका अनुष्ठान समाप्तकर स्त्री और पुत्रोंको देखनेके लिये अपने घर आये ॥ ५ ॥ वह बुद्धिमान् घर आय पुत्रोंको स्वच्छ-

न्दतासे रहता देख अत्यन्त आनन्दित हुए और जब उनकी भार्या उनकी सेवा करनेके लिये सन्मुख आई तब उन्होंने उससे पूंछा ॥ ६ ॥ हे सुलोचने! दुर्भिक्षके समयमें तुमने किसप्रकार काल व्यतीत किया? घरमें कुछ भी अन्न नहीं था. तो इन बालकोंका किस उपायसे प्रतिपालन किया यह तुम मुझसे कहो ॥ ७ ॥ हे सुन्दरि! मैं तपश्चर्य्यामें सम्यक् प्रकार बँधा हुआ था इसकारण तुम्हारा पालन करनेके लिये यहाँ नहीं आसका किन्तु हेकान्ते! तुमनें खाद्य द्रव्यके अभावसे क्या उपाय अवलम्बनकिया था ॥ ८ ॥ हेशोभने! मैंने अद्भुत दुर्भिक्षका वृत्तान्त सुन-कर तिसकाल विचार किया कि, मैं धनहीन हूं इस कारण इस समय वहाँ जाकर क्या करूंगा? इसप्रकार विचार करही मैं यहाँ नहीं आया ॥ ९ ॥ हे वामोरु! तब मैं एकदिन भूंखसे अत्यन्त कातर हो कोई उपाय न देखकर एक चाण्डालके घरमें चोरभावसे घुसा ॥ १० ॥ घरमें घुसकर श्वपचको सोताहुआ देखा तब मैं भूंखसे अत्यन्त कातर हो उसकी पाकशालाको ढूँढताहुआ उसमें उपस्थित हुआ ॥ ११ ॥ भोजनकी हांडी उघाड़कर भोजनके लिये जिससमय पक्व कुत्तेका मांस ग्रहणकिया तिसीसमय उस श्वपचने मुझको देखा ॥ १२ ॥ उसने मुझसे आदर पूर्वक पूंछा कि तुम कौन हो! किसकारण रात्रिके समय मेरे घरमें घुसेहो! अथवा किस लिये पाककी हाँढ़ी उघाडतेहो? तुम्हारा क्या प्रयोजन है सो मुझसे कहो ॥ १३ ॥ हे सुन्दरि! जब चाण्डालनें मुझसें यह बात पूंछी तब मैं भूंखसे अत्यन्त कातर था इसकारण मैंने अपनी इच्छा गद्गदस्वरसे कही ॥ १४ ॥ मैं तपस्वी ब्राह्मण हूं क्षुधासे अत्यन्त क्लेश पाय चौरभावसे तुम्हारे घरमें आय इस हाँडीमें भक्ष्यद्रव्य ढूँढताहूं ॥ १५ ॥ हे महामते! मैं इस समय तुम्हारे घरमें चौरभावसे अतिथि हूं, विशेषकर मैं इससमय क्षुधासें अत्यन्त पीडित हूं इसकारण सुसंस्कृत मांस भोजन करूंगा तुम इस विषयमें मुझको अनुमति दो ॥ १६ ॥ श्वपचने मेरे यह वचन सुनकर मुझसे शास्त्रविहित वचन कहे, हे वर्णश्रेष्ठ! इसको चाण्डालका घर जानना चाहिये, अतएव आप इसको कभी भक्षण न कीजिये ॥ १७ ॥ देखो इस लोकमें मनुष्यका जन्म अत्यन्त दुर्लभ है और यद्यपि मनुष्यका जन्म प्राप्त हो तथापि ब्राह्मणका जन्म उसकी अपेक्षा अत्यन्त दुर्लभ है और ब्राह्म-णसे भी ब्राह्मणत्व प्राप्त करना अतिकठिन है यह क्या आप नहीं जानते हैं? ॥ १८ ॥ जो स्वर्गादि प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं उनको दूषित अन्न कभी आहार करना

नहीं चाहिये. महर्षि मनुने कर्मके अनुसार सप्त जातिको अन्त्यज कहकर अग्राह्य किया है ॥ १९ ॥ इस कारण हे विप्र ! मैं भी कर्मके वशीभूत होनेसे श्वपचजातिमें उत्पन्न होकर सबके त्यागने योग्य हुआ हूं इसमें संशय नहीं हे द्विजवर ! लोभ-वशसे नहीं किन्तु इस अभिप्रायसे मैं आपको भक्षण करनेसे निवारण करता हूं ॥ २० ॥ वर्णसंकरदोष आपको न लगे. विश्वामित्रने कहा हे धर्मज्ञ ! तुम सत्य कहते हो तुम्हारे चाण्डाल होनेपर भी तुम्हारी बुद्धि अत्यन्त निर्मल है ॥ २१ ॥ इस समय मैं तुमसे आपद् धर्मका सूक्ष्ममार्ग कहता हूं सुनो हे मानद ! सम्पूर्ण समयमें देहकी रक्षा करना सम्यक् प्रकार श्रेष्ठ है ॥ २२ ॥ किन्तु यदि उसमें पाप हो तो आपदाके अन्तमें शुद्धिके लिये उस पापका प्रायश्चित्त करना चाहिये और आपद् कालके विना पापकार्य करनेसे मनुष्योंकी दुर्गति होती है किन्तु आपद् कालके समय नहीं होती ॥ २३ ॥ जो मनुष्य भूंखा मरता है अन्तमें उसको नरक होता है इसमें संशय नहीं इस कारण शुभाकांक्षी मनुष्योंके क्षुधाका निवारण अवश्य कर्तव्य है ॥ २४ ॥ हे अन्त्यज ! मैंने इसी कारण चौर्यवृत्ति अवलम्बन कर देहके रक्षा करनेकी इच्छा की है. देखो; दुर्भिक्षके समय अवर्षणमें चोरी करनेपर पंडितोंने जो पापका विधान किया है ॥ २५ ॥ यदि मेघ वर्षा न करे तो वह पाप उसकोही अवश्य स्पर्श करता है विश्वामित्र बोले हे कान्ते ! यह बात कहतेही सबके आकांक्षित पर्जन्य देव ॥ २६ ॥ सहसा हारितशुण्डाकार धारासे वर्षा करने लगे मेघोंको बिजलीसहित वर्षा करनेपर मैं उनको देखकर आनन्दित हुआ ॥ २७ ॥ तब अत्यन्तप्रसन्नतापूर्वक उस चाण्डालके घरको छोड बाहर निकला हे वरारोहे ! इस घने वनमें सम्पूर्ण प्राणियोंका क्षयकर अत्यन्त भयङ्कर वह दुर्भिक्षका समय तुमने किसप्रकार व्यतीत किया यह मुझसे कहो. व्यासजीने कहा हे महाराज ! पतिके इसप्रकार वचन सुन वह प्रियभाषिणी प्रियतमा उनसे कहनेलगी कि ॥ २८ ॥ २९ ॥ परमदारुण दुर्भिक्षके उपस्थित होनेपर मैंने जिसप्रकार काल व्यतीत किया है वह आप सुनिये. हे मुनिवर ! जब आपके तपस्या करनेको चले जानेपर घोर दुर्भिक्ष उपस्थित हुआ ॥ ३० ॥ तब पुत्र क्षुधासे अत्यन्त कातर हो अन्नके लिये अतिदुःखित हुए जब मैं बालकोंको क्षुधार्त देखकर चिन्ता करनेलगी तब नीवारके लिये वनमें भ्रमण करतेहुए ॥ ३१ ॥ मुझको कितनेही फल प्राप्त हुए इस प्रकार नीवारान्नसे कितनेही महिने व्यतीत होगये ॥ ३२ ॥ फिर

क्रमानुसार उसकाभी अभाव होगया तब मनमें चिन्ता करने लगी इस दारुणदुर्भि-क्षके समय वनमें नीवारअन्नकाभी अत्यन्त अभाव हुआ ॥ ३३ ॥ इससमय भिक्षाभी सुलभ नहीं है वृक्षोंपर भी फल नहीं है और पृथ्वीमेंभी मूल नहीं पायेजाते बालक तो क्षुधाकी ज्वालासे कातर होकर अत्यन्त रोदन करते हुए ॥ ३४ ॥ इससमय क्या उपाय है ? कहां जाऊं ? अथवा क्षुधित बालकोंसे क्या कहूं इस भांति अनेक प्रकारके विषयकी चिन्ता करके स्थिर किया कि ॥ ३५ ॥ एक पुत्रको किसी धनीके निकट वेचूंगी और उसका मूल्य लेकर उस अर्थसे ॥ ३६ ॥ क्षुधार्त बालकों-का प्रतिपालन करूंगी इसके सिवाय पालन करनेका दूसरा उपाय नहीं है हे कान्त ! इसप्रकार मनमें विचार इस बालककोही वेचनेकेलिये नियोजित किया ॥ ३७ ॥ हेमहाभाग ! तब यह बालक अत्यन्त कातर होनेलगा तथापि मैं लज्जारहित हो रोतेहुए बालकको संग ले आश्रमसे बाहर निकली ॥ ३८ ॥ इसीसमय सत्यव्रतनामक राजर्षिने मार्गमें मुझको अत्यन्त कातर देखकर पूँछा हे सुव्रते ! यह बालक किसकारण रोता है ॥ ३९ ॥ हे मुनिसत्तम ! तब मैंने उनसे कहा हे राजन् ! मैं इस बालकको वेचनेके लिये जाती हूं ॥ ४० ॥ मेरे इसप्रकार वचन सुन राजाका हृदय करुणारससे अभिषिक्त हुआ, तब उन्होंने मुझसे कहा कि तुम इस कुमारको लेकर अपने आश्रममें जाओ ॥ ४१ ॥ जबतक मुनिवर आश्रममें न आवेंगे तबतक मैं इन कुमारोंके भोजनार्थ नित्य भोजनका उपयोगी मांस संग्रहकर तुम्हारे पास लाऊंगा ॥ ॥ ४२ ॥ हे मुनिवर ! तबसेही यह भूपाल दयाके वशीभूत हो प्रति दिन मृग और शूकरोंको मारकर उनका मांस इस वृक्षमें बांध जाते ॥ ४३ ॥ हे कान्त ! उससेही मैं ने इन बालकोंकी उस दारुण संकटसागरसे रक्षा की किन्तु यह भूपति मेरेही कारण वशिष्ठसे शापको प्राप्त हुए हैं ॥ ४४ ॥ किसी दिन उस राजाको वनमें मांस प्राप्त न हुआ अतएव वशिष्ठकी कामधेनुका वध किया इस कारणसे मुनि उनपर क्रोधित हुए ॥ ४५ ॥ महात्मा मुनिने गोवधसे कुपित होकर उन भूपतिका त्रिशङ्कुनाम रख उनको चाण्डाल किया ॥ ४६ ॥ हे कौशिक ! राजकुमार हमारा उपकार करनेके कारण चाण्डालपनेको प्राप्त हुए इसकारण उनके उस दुःखसे मैं अत्यन्त दुःखित हुई हूं ॥ ४७ ॥ अतएव जिस किसी उपायसे हो अथवा प्रबल तपस्याके बलसेही हो नृपतिकी उस विपद्से रक्षा करना आपको अवश्य कर्तव्य जो [illegible] [illegible]मजीने कहा हे महाराज ! भार्याके इसप्रकार वचन सुन मुनिसत्तम

कौशिक उस दुःखिता कामिनीको समझाकर कहने लगे ॥ ४९ ॥ विश्वामित्र बोले हे कमललोचने ! जिस नरपतिने तुम्हारी उस दारुण संकटसे रक्षाकरके उपकार किया है मैं उसको शापसे छुड़ा दूंगा ॥ ५० ॥ अधिक क्या विद्याबल अथवा तपोबलसेही हो मैं उसका दुःख निवारण करूंगा तिसकाल प्रियतमाको इस प्रकार समझाकर परमार्थविद् कौशिक ॥ ५१ ॥ किस प्रकारसे नरपतिका दुःखनाश करैं यही चिन्ता करनेलगे तब मुनिवर मनमें भलीभाँति विचारकर पृथ्वीपति त्रिशङ्कुके निकट गये ॥ ५२ ॥ तिस समय राजा त्रिशंकु श्वपचवेशसे चाण्डालके ग्राममें दीनभावसे वास कररहे थे नरपति मुनिवरको आताहुआ देख अत्यन्त विस्मित हो ॥ ५३ ॥ शीघ्रही उनके चरणोंमें दण्डकी समान गिरपड़े तब द्विजवर कौशिकने उन गिरेहुए राजाको हाथ पकड़कर ॥ ५४ ॥ उठाय प्रबोध वचनोंसे कहा हे महीपाल ! तुम हमारेलिये ही वशिष्ठमुनिसे शापको प्राप्त हुए हो ॥ ५५ ॥ अतएव मैं तुम्हारा अभिलाषित सम्पादन करूंगा इससमय क्या करैं सो कहो राजाने कहा मैंने यज्ञ करनेके लिये पहले वशिष्ठसे प्रार्थनाकरके कहा ॥ ५६ ॥ हे मुनिवर मैं एक श्रेष्ठ यज्ञ करूंगा आप मेरा वह कार्य सम्पादन कीजिये जिससे मैं स्वर्ग जासकूं ॥ ५७ ॥ हे विप्रवर ! जिससे इसी शरीरद्वारा मैं सुरपुरमें सुखसे शक्रभवनमें जासकूं आप ऐसे यज्ञका अनुष्ठान कीजिये तब वशिष्ठदेवने कुपित होकर मुझसे कहा ॥ ५८ ॥ हे दुर्मते ! तेरा मनुष्यदेहसे किसप्रकार स्वर्ग में वासहोगा ? मैं स्वर्गका लालची था इसकारण फिर भगवान् वशिष्ठसे कहा हे अनघ ! ॥ ५९ ॥ तो मैं दूसरा पुरोहित कर सर्वोत्तम यज्ञका अनुष्ठान करूंगा तब वशिष्ठदेवने यह बात सुन क्रोधित हो तत्काल "रे पामर ! तू चाण्डाल हो" यह कहकर मुझको शाप दिया ॥ ६० ॥ हे मुनिवर ! यह मैंने आपसे शापका सम्पूर्ण कारण निवेदन किया, इस समय आप मेरा दुःखनाश करनेमें समर्थ हैं ॥ ६१ ॥ राजा दुःखकी वेदनासे कातर हो यह कहकर मौन होरहे, विश्वामित्र मुनिभी किस उपायसे इनका शाप निवारण करैं यही विचारने लगे ॥ ६२ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः १४.

व्यासजीने कहा हे महाराज ! महातप विश्वामित्रने मनमें कर्तव्य निश्चयकर यज्ञकी सम्पूर्ण सामग्रीसंग्रहपूर्वक मुनियोंको निमन्त्रण भेजा ॥ १ ॥ यद्यपि मुनियोंने

विश्वामित्रसे निमन्त्रित हो यज्ञका वृत्तान्त जानलिया, किन्तु ऋषिवर वशिष्ठके निवारण करनेसे वह कोई भी उस यज्ञमें न आए ॥ २ ॥ गाधिनन्दन यह वृत्तान्त जान अत्यन्त चिन्तित हुए और अतिदुःखित हो त्रिशंकु नरपतिके आश्रममें आनकर उपस्थित हुए ॥ ३ ॥ तब महर्षि क्रोधित हो उनसे कहनेलगे हे नृपसत्तम! वसिष्ठके निवारण करनेसें सम्पूर्ण ब्राह्मण इस यज्ञमें नहीं आये ॥ ४ ॥ किन्तु हे महाराज! तुम मेरी तपस्याका बल देखो मैं अभी तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूंगा तुमको शीघ्रही सुरालयमें भेजूंगा ॥ ५ ॥ उन मुनिने यह बात कहकर हाथमें जल ले लिया, और गायत्री जपकर जो पुण्यसञ्चय कियाथा वह सम्पूर्ण राजाको प्रदान किया ॥ ६ ॥ अनन्तर पुण्य देकर उन महीपतिसे कहा हे राजर्षे! तुम आलस्यरहित होकर अपनी इच्छानुसार सुरलोकमें जाओ ॥ ७ ॥ हे राजेन्द्र! तुम प्रसन्न होकर बहुकाल सञ्चित मेरे पुण्यके प्रभावसे स्वर्गलोकमें जाओ और उस सुरलोकमें तुम्हारा मंगल हो ॥ ८ ॥ व्यासजीने कहा हे राजेन्द्र! ब्राह्मणश्रेष्ठ विश्वामित्रके यह बात कहनेपर राजा त्रिशंकु उनके तपोबलसे वेगवान् पक्षीकी समान अत्यन्त शीघ्र आकाशमार्गमें उडे ॥ ९ ॥ राजा त्रिशंकु आकाशमें उडते हुए जब इन्द्रके पुरके समीप पहुँचे तब देवताओंने चाण्डालाकृति भीषणवेश त्रिशंकुको देखकर ॥ १० ॥ देवराज इन्द्रसे कहा आकाशमार्गमें देवताकी समान अत्यन्तवेगसे आताहै यह कौन मनुष्य है? इसकी आकृति श्वपचसदृश और लोहेकी समान घोर दर्शन है ॥ ११ ॥ यह सुन इन्द्रने सहसा उठकर उस पुरुषाधमको देखा और उसको त्रिशंकु जानकर तिरस्कार पूर्वक तत्काल उससे कहा ॥ १२ ॥ तुम श्वपच और देवलोकके अत्यन्त अनुपयुक्त हो अतएव कहाँ जातेहो? यहाँ ठहरना तुमको उचित नहीं है, इस कारण तुम अभी पृथ्वीपर जाओ ॥ १३ ॥ हे अरिनाशन! इन्द्रके यह वचन कहतेही राजा स्वर्गसे स्खलित हो पुण्यक्षीण देवताओंकी समान तत्काल गिरने लगें ॥ १४ ॥ तब त्रिशंकुनें विश्वामित्र विश्वामित्र कहकर चीत्कार करते करते वारंवार कहा मैं स्वर्गसे स्खलित होकर अत्यन्त वेगसे गिरताहूं अतएव आप मेरी इस दुःखसे रक्षा कीजिये ॥ १५ ॥ हे राजन्! महर्षि कौशिकने उनके रोनेंकी ध्वनि सुनकर गिरता हुआ देख "ठहर ठहर" यह वचन कहा ॥ १६ ॥ नृपति सुरालयसे विचलित होकरभी मुनिके तप प्रभाववशतः उनके वाक्यानुसार आकाशमार्गमें उसीस्थानपर स्थित रहे ॥ १७ ॥ व विश्वामित्रनेभीं नूतन सृष्टि और

दूसरा स्वर्गलोक बनानेके लिये आचमनकर सुविस्तीर्ण यज्ञ आरम्भकिया ॥ १८ ॥ उनका इसप्रकार उद्यम देखकर शचीपतिने व्यग्र हो शीघ्रही गाधितनय विश्वामित्र मुनिके निकट आनकर कहा ॥ १९ ॥ हे ब्रह्मन् ! आप क्या करते हैं ? हे साधो ! आप किसकारणसे इतने कोपयुक्त हुए हैं हेमुनिवर ! नूतन सृष्टिकरनेका अब प्रयोजन नहीं है, इससमय आपका क्या कार्य करूं आज्ञा दीजिये ॥ २० ॥ विश्वामित्रने कहा हेदेवराज ! महीपति त्रिशंकु सुरलोकसे पतित होकर अत्यन्त दुःखित हुए हैं अतएव आप प्रसन्नतापूर्वक उनको अपने सुरालयमें लेजाइये यह मेरा अभिप्राय है ॥ २१ ॥ व्यासजीने कहा हेमहाराज ! देवराज इन्द्र उनका स्थिरसङ्कल्प और अत्युग्र तपोबल जानतेथे, इस कारण अत्यन्त शङ्कितचित्तसे उनके वचन स्वीकार-किये ॥ २२ ॥ तब सुरपति इन्द्रने नरपतिको दिव्य देहप्रदानकर उत्तम विमानपर बैठाया और मुनिवर कौशिकसे सम्भाषणकर राजाके सहित अपने स्थानको चले गये ॥ २३ ॥ इन्द्रके त्रिशंकुसहित स्वर्ग में चलेजानेपर विश्वामित्र सुखी हो अपने आश्रममें स्थिर होकर वास करनेलगे ॥ २४ ॥ इधर महाराज हरिश्चन्द्र विश्वा-मित्रके तपोबलसे पिताको स्वर्ग प्राप्तहुआ सुन अत्यन्त आनन्दित चित्तसे राज्य शासन करनेलगे ॥ २५ ॥ तब अयोध्याधिपति वह नरपति प्रीतिके वशीभूत हो रूपयौवनसम्पन्न सुचतुरभार्य्याके संग काम क्रीडामें निरत हुए ॥ २६ ॥ इसप्रकार बहुत समय व्यतीत होगया, तौभी वह युवती गर्भवती न हुई राजा यह देखकर अत्यन्त दुःखित और अतिचिन्तातुर हुए ॥ २७ ॥ तब उन्होंने वशिष्ठके पुण्याश्रममें जाय मुनिवरको मस्तक झुकाय प्रणाम कर पुत्र न होनेके कारण उनके मनमें जो चिन्ता उत्पन्न हुई थी वह गुरुजीसे कही ॥ २८ ॥ हे धर्मज्ञ ! आप मंत्रविद्यामें विशारद विशेषकर सब दैवविषयको जानते हैं अतएव हे मानद ! आप मुझको सन्तान प्राप्त होनेका उपाय कीजिये ॥ २९ ॥ हे द्विजसत्तम ! अपुत्रकी गति नहीं होती यह आप भलीभांति जानते हैं इसकारण मेरा दुःख जानकर और उस दुःखके निवारण करनेमें समर्थ होकर भी आप क्या उपेक्षा करते हैं? ॥ ३० ॥ यह पक्षी भी धन्य हैं जो अपने पुत्रोंको पालते हैं किन्तु मैं ऐसा मन्दभाग्य हूं कि पुत्रके न होनेसे दिनरात चिन्तासागर में डूबा रहता हूं ॥ ३१ ॥ वसिष्ठजीने कहा हे महाराज ! विधिपुत्र वशिष्ठ राजाके खेदपूर्ण वचन सुनकर मनमें चिन्ता कर उनसे विशेष वृत्तान्त कहने लगे ॥ ३२ ॥ वशिष्ठने कहा हे महाराज ! तुम

सत्य कहते हो कि अपुत्रताजनित दुःखकी अपेक्षा दूसरा कोई भी अति अद्भुत दुःख इस संसारमें विद्यमान नहीं है ॥ ३३ ॥ अतएव हे राजेन्द्र! तुम यत्नसहित जलाधिपति वरुणदेवकी आराधना करो वही तुम्हारे कार्यकी सिद्धि करेंगे ॥ ३४ ॥ वरुणकी अपेक्षा सन्तानदायक देवता दूसरा कोई नहीं हैं अतएव हे धर्मिष्ठ! तुम उनकी आराधना करो अवश्यही कार्यसिद्धि होगी ॥ ३५ ॥ दैव और पौरुष यह दोनोंही मनुष्यको माननीय हैं अतएव उद्यम न करनेसे किसप्रकार कार्यसिद्धि होसक्ती है ॥ ३६ ॥ हे नृपसत्तम! तत्वदर्शी मनुष्यको न्यायके अनुसार उद्यम करना अवश्य कर्तव्य है उद्यम करनेसेही कार्य सिद्धि होती है इसके अतिरिक्त कभी कार्यकी सिद्धि नहीं होसक्ती ॥ ३७ ॥ अत्यन्त तेजयुक्त गुरुके इसप्रकार वचन सुन राजा स्थिरसंकल्प हुए और उनको प्रणामपूर्वक तपस्या करनेको चलेगये ॥ ३८ ॥ नरपति गंगाके तटपर पवित्र स्थानमें पद्मासन ग्रहण कर पाशधर वरुण देवके ध्यानमें निमग्न हो कठोर तपस्या करने लगे ॥ ३९ ॥ हे महाराज! इस प्रकार तपस्या करते करते वरुणदेव कृपाके वशीभूत हो प्रफुल्लमनसे उनके दृष्टिगोचर हुए ॥ ४० ॥ तब वरुणने नरपति हरिश्चन्द्रसे कहा हे धर्म्मज्ञ! मैं तुम्हारी तपस्यासे सन्तुष्ट हुआ हूं अतएव इससमय मुझसे वर माँगो ॥ ४१ ॥ राजाने कहा हे देवेश! मैं अपुत्र हूं इस लिये मुझको सुखदायक पुत्र दीजिये मैं देवऋण ऋषिऋण और पितृऋणमें बँधा-हुआ हूं इन तीनों ऋणोंसे छूटनेके लिये मैंने यह उद्यम किया है ॥ ४२ ॥ तब वरुणदेवने दुःखित राजाके विनययुक्त वचन सुन कुछेक हास्यकर सन्मुख स्थित राजासे कहा ॥ ४३ ॥ हे राजन्! यदि तुम्हारी इच्छानुसार गुणवान् पुत्र हो तब कार्यसिद्धिके उपरान्त मेरा क्या प्रियकार्य करोगे? ॥ ४४ ॥ हे नृपते! यदि तुम उस पुत्रको पशुस्थानीय करके निःशङ्कित चित्तसे मेरा यज्ञ करो तो मैं तुमको दूं ॥ ॥ ४५ ॥ राजाने कहा हे देव! मुझको वन्ध्यतादोषसे छुड़ाइये हे जलाधिप! मैं पुत्र होनेपर उसको पशु बनाय तुम्हारा यज्ञ करूंगा यह आपसे सत्य कहता हूं ॥ ४६ ॥ हे मानद! अपुत्रताजनित दुःखकी अपेक्षा अत्यन्त असह्य दुःख पृथ्वीमें दूसरा नहीं है अतएव जिससे मनुष्योंका दुःख दूर हो ऐसी सुसन्तान मुझको दीजिये ॥ ४७ ॥ वरुणने कहा हे राजन्! तुम्हारे इच्छानुसार पुत्र होगा अतएव घरको जाओ किन्तु मेरे निकट जो कहा वह सत्य करना ॥ ४८ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन्! वरुणके इसप्रकार वचन सुनकर राजा हरिश्चन्द्र घरको चलेगये और

वरदानविषयका सम्पूर्ण वृत्तान्त भार्यासे कहा ॥ ४९ ॥ उनके सौ परमसुन्दरी मनोहारिणी स्त्रियें थीं उनमें पतिव्रता शैब्याही धर्मपत्नी और पट्टराणी थी ॥ ५० ॥ कुछ काल व्यतीत होनेपर वह वरवर्णिनी गर्भवती हुई, राजा उसके दोहद (गर्भ) की बात सुन आनन्दित हुए ॥ ५१ ॥ तिससमय राजाने उसका विधिपूर्वक संस्कार कराया क्रमानुसार दशमासपूर्ण होनेपर शैब्याने शुभनक्षत्र ॥ ५२ ॥ और ग्रहबलयुक्त शुभ दिनमें देवताओंकी पुत्रकी समान सन्तान उत्पन्न की पुत्रके जन्म लेनेपर राजानें ब्राह्मणोंके सहित स्नान पूर्वक ॥ ५३ ॥ प्रथम जातकर्म संस्कार कर असंख्य धनरत्नादि दान किये उस समय पुत्रजन्मसे राजाको अत्यन्त हर्ष हुआ ॥ ५४ ॥ उन चतुर राजाने धन धान्य और अनेक प्रकारके रत्न तथा भूमि इत्यादि विशेष विशेष दान और अनेक प्रकारके गीतवाद्योंका अनुष्ठान कराया ॥ ५५ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः १५.

व्यासजीने कहा हे महाराज ! जब नरपतिके भवनमें पुत्र जन्म होनेके कारण महोत्सव हुआ तब वरुण देवने पवित्र विप्रवेश धारण पूर्वक वहाँ आनकर कहा ॥ १ ॥ तब वरुणदेवने "तुम्हारा मंगल हो" यह वचन राजासे कहा हे नरपति ! मुझको वरुण जानो इस समय मैं तुमसें जो कहता हूं सो सुनो हे नराधिप ! इस समय तुम्हारे पुत्र उत्पन्न हुआ है अतएव तुम उससे मेरा यज्ञ करो ॥ २ ॥ हे राजन् ! मेरे वरदानसे तुम्हारा वन्ध्यता दोष दूर होगया है तब तुमने पहले जो कहा था अब वह वचन सत्य करो ॥ ३ ॥ राजा हरिश्चन्द्र वरुणके यह वचन सुनकर चिन्ता करने लगे कि अहो ! मेरे केवल एक पुत्र कमलके समान मुखवाला उत्पन्न हुआ है इसको किसप्रकार मारूं ॥ ४ ॥ परन्तु वीर्यवान् लोकपाल वरुणदेव विप्रवेशसे आए हैं जो कल्याणकी कामना करता है ऐसे मनुष्यको देवताओंका तिरस्कार करना कभी उचित नहीं है ॥ ५ ॥ और प्राणियोंको पुत्र स्नेह छेदन करना भी अत्यन्त कठिन है अतएव मैं अब क्या उपाय करूं ? किसप्रकार मुझको सन्तानजनित सुख होगा ॥ ६ ॥ तब भूपालने धैर्यावलम्बनपूर्वक प्रणतहो उनकी यथोचित पूजा की और विनयसहित युक्तियुक्त मनोहर वचन उनसे कहे ॥ ७ ॥ राजा बोले हे देवदेव ! मैं आपकी आज्ञा पालन करूं ? इसमें सन्देह

नहीं मैं वेदोक्तविधानसे अनेक दक्षिणायुक्त आपका यज्ञ करूंगा ॥ ८ ॥ किन्तु नरमेधयज्ञ करना हो तौ स्त्री पुरुष दोनों उसके अधिकारी हैं इसकारण पुत्र जन्म होनेसे पिता दश दिनके उपरान्त और जननी एकमासके उपरान्त शुद्ध होकर कार्यके योग्य होती है अतएव एकमास न वीतनेपर किसप्रकार यज्ञ करूं ॥ ९ ॥ आप सर्वज्ञ और लोकोंके परमप्रभु हैं, नित्यकर्म क्या है सो आप सभी जानते हैं अतएव हे वारीश ! आप मुझपर कृपा करके इस एकमहीनेतक शान्त रहिये ॥ ॥ १० ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! राजा हरिश्चंद्रके यह वचन सुन फिर वरुणदेवने उन नरपतिसे कहा हे राजन् ! तुम्हारा मंगल हो तुम कर्तव्य कार्य करो मैं इस समय अपने स्थानको जाता हूं ॥ ११ ॥ हे नृपसत्तम ! मैं एक महीनेके उपरान्त फिर आऊंगा, तुम पुत्रका जातकर्म और नामकरण इत्यादि नियमित संस्कार करके तदनन्तर मेरे यज्ञका अनुष्ठान करना ॥१२॥ हे महाराज ! जलाधि-पति वरुणदेवके राजासे इसप्रकार मधुर वचन कहकर चले जानेपर राजा हरिश्चन्द्र भी आनन्द अनुभव करनेलगे ॥ १३ ॥ फिर उन पृथ्वीपतिने करोड़करोड हेम भूषित घटोध्नी (घटाकारस्तनवाली) धेनु और तिलपर्वत सम्पूर्ण वेदके जाननेवाले ब्राह्मणोंको दानकिये ॥ १४ ॥ राजा पुत्रका मुख देखकर अत्यन्त सुखी हुए, और विधिपूर्वक उसका रोहिताश्व नाम रक्खा ॥ १५॥ फिर एक मास पूर्ण होनेपर वरुणदेव विप्रवेश धारण पूर्वक राजासे आनकर वारंवार कहनेलगे हे महाराज ! इससमय यज्ञ आरम्भ कीजिये ॥ १६ ॥ नरपति उन वरुणदेवको देखकर शोक-सागरमें डूबगये फिर प्रणाम और आतिथ्यसत्कारपूर्वक हाथ जोडकर उनसे कहने लगे ॥ १७ ॥ हे देव ! सौभाग्यके अनुसारही आपने मेरे घरमें पदार्पण किया है हे प्रभो ! आपके आनेसे अब मेरा घर पवित्र हुआ हे देव ! मैं आपका वाञ्छित यज्ञ विधिपूर्वक सम्पादन करूंगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ १८ ॥ किन्तु देखो ! दन्त-विहीन पशु यज्ञमें श्रेष्ठ नहीं है यह वेदके जाननेवाले पंडितलोग कहते हैं अतएव पुत्रके दाँत निकलनेपर आपका वाञ्छित महायज्ञ करूंगा यही स्थिर किया है ॥ ॥ १९ ॥ व्यासजीने कहा हे नरनाथ ! वरुणदेव राजा हरिश्चन्द्रके यह वचन सुन यही हो इसप्रकार कहकर अपने स्थानको चलेगये इधर राजा हरिश्चन्द्र आनन्दित हो संसाराश्रममें विहार करनेलगे ॥ २० ॥ फिर कुमारके दाँत उत्पन्न हुए जानकर वरुणदेव विप्रवेशसे राजाके घर आय कहने लगे हे राजन् ! आप इससमय मेरा

यज्ञ कीजिये ॥ २१ ॥ भूपतिनेभी विप्ररूपी जलाधिपतिको आताहुआ देखतेही प्रणामकर आसन प्रदान किया, और यथायोग्य सन्मान करके उनकी पूजा की ॥ ॥ २२ ॥ उन्होंने अत्यन्त विनीतभावसे मस्तक झुकाय स्तवकरके उनसे कहा हे देव ! मैं आपका विधिपूर्वक वांछित अनेकदक्षिणायुक्त यज्ञ करूंगा ॥ २३ ॥ इस बालकका अभी चूड़ाकरण नहीं हुआ है अतएव गर्भकालीन केशकलाप विद्यमान हैं, इस कारण इन केशोंके रहते यह बालक यज्ञीय पशु नहीं होसक्ता यह मैं ने वृद्धोंके मुखसे सुना है ॥ २४ ॥ हे वारीश ! आप शास्त्रकी विधि जानते हैं, इस कारण चूड़ाकरणतक अपेक्षा कीजिये, बालकके मुण्डनकार्य होनेपर फिर मैं आपका यज्ञ करूंगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ २५ ॥ वरुणने उनके यह वचन सुन फिर उनसे कहा हे राजन् ! तुम वारंवार इस प्रकार कहकर मुझको क्यों छलते हो ॥ २६ ॥ हे नरपते ! इससमय तुम्हारे सम्पूर्ण सामग्री विद्यमान है केवल पुत्रके स्नेहमें बँधकरही अब मुझको छलते हो ॥ २७ ॥ जो हो क्षौरकार्य करके भी यदि यज्ञ न करोगे तौ मैं कुपित होकर तुमको दारुण शाप दूंगा ॥ २८ ॥ हे राजेन्द्र ! इस समय मैं तुम्हारे वचनानुसार जाता हूं किन्तु तुम इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न होकर अपना वचन मिथ्या न करना ॥ २९ ॥ वरुण यह वचन कहकर नरपतिके घरसे तत्काल चलेगये राजाभी तब अत्यन्त सन्तुष्ट हो अपने भवनमें आनन्द अनुभव करनेलगे ॥ ३० ॥ फिर जब अत्यन्त उत्सवके सहित चूड़ाकार्य आरम्भ हुआ तब पाशधर शीघ्रही पुनर्वार नरपतिके भवनमें आये॥ ३१ ॥ जिस समय रानी पुत्रको गोदीमें लिये राजाके सामने बैठीथी उसी समय वरुणदेव वहाँ आनकर उपस्थित हुए ॥ ३२ ॥ उन विप्ररूपधारी प्रत्यक्ष अग्निके समान तेजःपुञ्जकलेवर वरुणदेवने नरपतिसे स्पष्ट-वचनद्वारा कहा हे राजन् ! यज्ञ आरम्भ करो ॥ ३३ ॥ नरपतिने उनको देखकर भयसे अत्यन्त विह्वल हो हाथ जोड़ शीघ्र उनको प्रणाम किया ॥ ३४ ॥ फिर यथाविधि उनकी पूजाकर अत्यन्त विनयसहित कहा हे स्वामिन् ! अब मैं विधिपूर्वक आपका यज्ञ करूंगा ॥ ३५ ॥ किन्तु इस विषयमें मुझको कुछ कहना है, आप एकाग्रचित्त होकर सुनिये और तदनन्तर जो कर्तव्य हो वही कीजिये हे स्वामिन् ! आप यदि युक्तिसंगत कहकर अनुमोदन करैं तो मैं वह आपसे कहूं ॥ ॥ ३६ ॥ देखो ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य यह तीनों वर्ण यथाविधि संस्कृत होनेसे द्विजाती होते हैं किन्तु संस्कारविहीन होनेसे यह अवश्यही शूद्र हैं यह वेदके जानने

वाले पंडितलोगही जानते हैं ॥३७॥ इस कारण मेरी यह शिशुसन्तान इस समयभी शूद्रके समान है यज्ञोपवीत होनेपर फिर यह यज्ञक्रियाके उपयुक्त होगी यही वेदशास्त्रमें निर्णय है ॥ ३८॥ क्षत्रियोंकी ग्यारहवें वर्ष में ब्राह्मणोंकी आठवें वर्षमें और शूद्रोंकी बारहवें वर्षमें वयःक्रमसे उपनयनविधि निर्दिष्ट हुई है ॥ ३९ ॥ अतएव हे देवेश ! यदि आप दीन सेवकके ऊपर दया करैं तो बालकके उपनयनपर्यन्त अपेक्षा कीजिये फिर इसका उपनयनकर पशुरूप बालकसे आपका वह उत्तमयज्ञ करूंगा ॥४०॥ हे विभो! आप लोकपाल हैं विशेषकर सम्पूर्णशास्त्रोंका सारधर्म जानकर धर्मतत्त्व प्राप्त-किया है इसकारण यदि आप मेरा वचन सत्य जाने तो आप इससमय अपने घरको जाइये ॥ ४१ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! उनके यह वचन सुनकर जलाधिपति वरुणदेव दयार्द्रचित्त हुए और " यही हो " ऐसा कहकर तत्काल उस स्थानसे चले-गये ॥ ४२ ॥ वरुणके अन्तर्धान होनेपर फिर राजा अत्यन्त आनन्दित हुए और रानीभी पुत्रका मंगल जान सन्तुष्ट हुई ॥ ४३ ॥ अनन्तर राजा हरिश्चन्द्र प्रसन्नचित्तसे राजकार्य की पर्यालोचना करने लगे इसप्रकार कुछ काल व्यतीत होनेपर उनके पुत्रने दशवें वर्षमें पदार्पणकिया ॥ ४४ ॥ तब राजाने शान्त ब्राह्मण मंत्रियोंकी सम्मतिसे अपने ऐश्वर्यके समान उसकी उपनयन द्रव्यसामग्री मँगाई ॥ ४५ ॥ पुत्रका ग्यारहवें वर्षमें वयःक्रम होनेसे राजाने यथाविधि उपनयनकार्य किया किन्तु वरुणदेवके यज्ञका वृत्तान्त स्मरणकर वारंवार चिन्तातुर होनेलगे ॥ ४६ ॥ इधर कुमारका उपनयन कार्य आरम्भ होनेपर वरुणदेव विप्रवेशधारण कर उसी स्थानमें उपस्थित हुए ॥ ४७ ॥ राजाने उनको देखतेही शीघ्र प्रणाम किया और हाथ जोड़ सन्मुख खड़े हो प्रीतिसहित सुरवरसे कहनेलगे ॥ ॥ ४८ ॥ हे देव ! यज्ञोपवीत होजानेसे इससमय मेरा यह पुत्र पशुके उपयुक्त हुआ है और आपके अनुग्रहसे मेरा भी वन्ध्यत्वशोक जातारहा ॥ ४९ ॥ अतएव हे धर्मज्ञ ! मैं जो कहता हूं सो सुनिये कुछकालके विलम्बसे आपका अनेक दक्षिणा युक्त यज्ञ करनेकी इच्छा की है यह आपसे सत्य कहता हूं ॥ ५० ॥ फलतः समावर्तनकार्यके अन्तमें आपका वाञ्छित यज्ञ करूंगा अब मुझपर दयाकरके तब तक क्षमा कीजिये ॥ ५१ ॥ वरुणने कहा हे महामते ! तुम पुत्रस्नेहसे अत्यन्त व्याकुल होकर युक्तियुक्त बुद्धिकौशलसे वारंवार मुझको छलते हो ॥ ५२ ॥ जो हो हे महाराज ! मैं तुम्हारे वचनानुसार आज जाता हूं किन्तु समावर्तनकार्यके

समय फिर मैं आऊंगा यही निश्चय जानिये ॥ ५३ ॥ हे नरपते ! वरुणदेवके यह वचन कह उनसे सम्भाषण कर चलेजानेपर राजाभी आनन्दित हो यथाक्रमसे विहित कार्य करनेलगे ॥ ५४ ॥ राजकुमार अत्यन्त बुद्धिमान थे इसकारण वरुणदेवको आताहुआ देख यज्ञका समय जान चिन्तासे कातर हुए ॥ ५५ ॥ अनन्तर राजाके शोकका कारण इधरउधर पूँछकर अपने विनाशका विषय जाना और तत्काल राजाके घरसे निकल जानेकी इच्छा की ॥ ५६ ॥ फिर सचिवपुत्रोंके सहित परामर्शकर कर्तव्य स्थिरता पूर्वक उस नगरसे बाहर हो वनको चलागया ॥ ५७ ॥ पुत्रके चलेजानेपर नरपतिने अत्यन्त दुःखित हो उसको ढूँढ़नेके लिये अपने सम्पूर्ण दूतोंको भेजा ॥ ५८ ॥ इसप्रकार कुछ काल व्यतीत होनेपर वरुणदेवने उनके घर आय उन शोकसन्तप्त राजासे कहा हे राजन् ! इस समय पहले कहाहुआ यज्ञ कीजिये ॥ ५९ ॥ राजाने उनको प्रणाम करके कहा हे देव ! मैं क्या करूं ? मेरा पुत्र भयसे व्याकुल होकर कहीं चलागया है उसको मैं नहीं जानता ॥ ६० ॥ हे देव ! मेरे सब दूतोंनें पर्वतोंके दुर्गम प्रदेश मुनियोंके आश्रम , अधिक क्या सम्पूर्ण स्थानोंमें ढूंढा है तथापि किसी स्थानमें भी उसको नहीं पाया ॥ ६१ ॥ मेरा पुत्र घरसे चलागया है इस समय मैं क्या करूं ? आप आज्ञा दीजिये हे देव ! आप तो सभी जानते हैं अतएव आप तो विचार देखिये मेरा कुछ भी दोष नहीं है केवल भाग्यके दोषसेही ऐसा हुआ है इसमें सन्देह नहीं ॥ ६२ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! राजाके ऐसे वचन सुनकर वरुणदेव अत्यन्त कुपित हुए और जब उन्होंने देखा कि हरिश्चन्द्रसे वारंवार छला जाकर भी मैं अपने वांच्छितको प्राप्त न हुआ तब क्रोधसे अधीर होकर उनको शाप दिया ॥ ६३ ॥ हे राजन् ! तुमने छलयुक्त वचनोंसे मुझको छला है इसलिये दारुण जलोदर व्याधि तुमको अत्यन्त पीडित करे ॥ ६४ ॥ वरुणके कुपित होकर इस प्रकार शाप देनेपर फिर राजा इस क्लेशदायक व्याधिसे पीडित हो अत्यन्त कष्ट भोगने लगे ॥ ६५ ॥ तब पाशधारी जलाधिपति राजाको इसप्रकार शाप देकर अपने स्थानको चले गये और राजा भी इस दारुण व्याधिसे ग्रस्त हो अत्यन्त कातर हुए ॥ ६६ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः १६.

व्यासजीने कहा हे महाराज! वरुणके अपने स्थानमें चले जानेपर राजा उस जलोदर रोगसे अत्यन्त पीडित हुए और दिन दिन दुःख भोग एवं घोरयन्त्रणा अनुभव कर अत्यन्त क्लेश पाने लगे॥ १ ॥ हे राजन्! इधर राजकुमारने वनमेंही पिताके उस रोगजनित सन्तापका विषय सुना इसकारण स्नेहके वशीभूत होकर पिताके समीप जानेकी इच्छा की॥ २ ॥ संवत्सरके वीतनेपर राजकुमारने आदर सहित पिताको देखने और उनके समीप जानेके लिये इच्छा की है यह जानकर देवराज इन्द्र वहाँ आनकर उपस्थित हुए॥ ३ ॥ उन्होंने दयाके वशीभूत हो शीघ्र विप्ररूप धारणकर अनुकूल युक्तिसे उस जाते हुए कुमारको निवारण किया॥४॥ इन्द्रने कहा हे राजपुत्र! तुम अत्यन्त अज्ञानी हो विशेषकर अबभी कठिनतासे जानने योग्य राजनीतिको नहीं जानसके इसलिये अज्ञानके वशीभूत होकर अब पिताके समीप वृथा जानेको उद्यत हुए हो॥ ५ ॥ हे महाभाग! तुम्हारे वहां जानेपर तुम्हारे पिता वेदपरायण ब्राह्मणोंसे नरमेधयज्ञ करेंगे उसमें तुमको पशु-बनाय तुम्हारे मांसकी प्रज्वलित अग्निमें आहुति प्रदान करावेंगे॥ ६ ॥ हे वत्स! सम्पूर्ण प्राणियोंको आत्मा अत्यन्त प्रिय है इसी कारण आत्माके लिये स्त्री पुत्र और धन रत्नादि प्रिय होते हैं॥ ७ ॥ अतएव तुम्हारे प्राणोंकी समान पुत्र होनेपर भी वह रोगसे छूटनेके लिये अपनी रक्षार्थ तुमको मारकर होम करावेंगे इसमें सन्देह नहीं॥८॥ हे राजपुत्र! तुमको इस समय पिताके घर जाना उचित नहीं है परन्तु जब तुम्हारे पिता मरे तब तुम राज्यप्राप्तिके लिये अवश्यही फिर वहाँ जाओ॥९॥ हे नृपवर! इन्द्रके इसप्रकार निषेध करनेपर फिर राजपुत्रने एकवर्ष पर्यन्त उस वनमें वास किया॥ १० ॥ किन्तु जब राजपुत्र राजा हरिश्चन्द्रके अत्यन्त दुःखका विषय जानता तब अपना मरण निश्चयकर पिताके घर जानेकी इच्छा करता॥ ११ ॥ अनन्तर सुरपति इन्द्रभी तिसी समय द्विजरूप धारणकर राजपुत्र रोहितके समीप उपस्थित होते और युक्तियुक्त वचनोंसे उसको वारंवार निषेध करते॥ १२॥ इधर हरिश्चन्द्रने पीडासे अत्यन्त कातर हो अपने कुलपुरोहित वशिष्ठ देवसे पूंछा हे ब्रह्मन्! इस रोगकी शान्तिका निश्चय उपाय क्या है?॥ १३ ॥ ब्रह्माजीके पुत्र वशिष्ठदेवने उनसे कहा हे महाराज! द्रव्यसे एक पुत्र क्रय कीजिये फिर उस खरीदे हुए पुत्रसे यज्ञ करनेपरही आप शापसे छूटेंगे॥ १४ ॥ हे नृपसत्तम!

वेदपरायण ब्राह्मणोंने कहा है कि पुत्र तेरह प्रकारके हैं ? उनमें क्रीत (खरीदा हुआ) भी पुत्र होता है अतएव मूल्यसे एक बालकको लाय उसको पुत्र कीजिये ॥ १५ ॥ तुम्हारे राज्यहीका कोई ब्राह्मण लोभके वशीभूत हो अपने पुत्रको दे देगा इससे वरुणदेव प्रसन्न हो अवश्यही सुखसम्पादन करेंगे इसमें सन्देह नहीं ॥ १६ ॥ राजा हरिश्चन्द्र महात्मा वशिष्ठके इसप्रकार वचन सुनकर सन्तुष्ट हुए और उसी प्रकार पुत्र ढूँढनेके लिये अपने प्रधान मन्त्रीको आज्ञा दी ॥ १७ ॥ उन भूपतिके राज्यमें अजीगर्तनाम एक अत्यन्त निर्धन ब्राह्मण वास करता था उसके तीन पुत्र थे ॥ १८ ॥ मन्त्रीने क्रय करनेकी इच्छा कर उस निर्धन ब्राह्मणसे कहा मैं आपको एकशत गो देता हूं आप यज्ञके लिये एक पुत्रको दीजिये ॥ १९ ॥ शुनःपुच्छ शुनःशेप और शुनोलांगूल नामक आपके जो तीन पुत्र हैं उनमेंसे एक पुत्र मुझको दीजिये मैंभी उसके बदलेमें तुमको एकशत गो देता हूं ॥ २० ॥ अजीगर्त्त अन्नके अभावसे अत्यन्त कातर हुए थे इस कारण यह वचन सुनकर उनमेंसे एक पुत्रको वेचनेकी इच्छाकी ॥ २१ ॥ किन्तु ज्येष्ठ पुत्र और्द्धदेहिक क्रियाका अधिकारी है यह जानकर उसको न दिया और कनिष्ठ पुत्रको माताने न दिया और कहा कि यह मेरा है ॥ २२ ॥ विशेषकर मध्यम पुत्र शुनःशेपको सौ गायोंके मूल्यमें वेचडाला नरपतिने उसको लाय नरमेध यज्ञके लिये उसको पशु किया ॥ २३ ॥ वह बालक यूपकाष्ठमें बंधकर काँपने लगा और दुःखसे कातर हो अत्यन्त दीनभावसे रोदन करने लगा यह देखकर मुनिलोग अत्यन्त कातर स्वरसे चीत्कारकर उठे ॥ २४ ॥ नरपतिने नरमेध यज्ञमें वध करनेके लिये उसको पशुरूपसे प्रदान किया शमिता पुरुषने उस पशुको छेदन करनेके लिये शस्त्रग्रहण न किया ॥ २५ ॥ उसने कहा यह ब्राह्मणका पुत्र कातर होकर अत्यन्त करुणा स्वरसे रोदन करता है अतएव मैं लोभके वशीभूत होकर इसको कभी नहीं मारूंगा ॥ २६ ॥ यह कहकर उस दुष्कर कार्यसे विरत हुआ तब राजाने सभासदोंसे कहा हे द्विजगण ! इस समय क्या करना चाहिये ॥ २७ ॥ तब शुनःशेप अत्यन्त अद्भुत करुणास्वरसे रोदन करने लगा और साधारण जन उस विषयको लेकर तुमुल आन्दोलन करने लगे इससे तत्काल उस सभामें अत्यन्त कोलाहल उठा ॥ २८ ॥ अनन्तर अजीगर्त्तने सभास्थलमें खडे होकर नरपति हरिश्चन्द्रसे कहा हे राजन् ! आप धैर्यका अवलम्बन कीजिये मैं आपका कार्य सम्पादन करूंगा ॥ २९ ॥ मैं धनका अभिलाषी

हूं. इस कारण आप मुझको दूना धन दीजिये मैं अभी इस पशुका वध करता हूं आप शीघ्रही यज्ञ कार्य सम्पूर्ण कीजिये ॥ ३० ॥ हे राजन्! जो पुरुष धनका लालची होता है उसकी सर्वदा पुत्रके प्रति भी द्वेषबुद्धि होजाती है इसमें फिर क्या सन्देह है व्यासजीने कहा हे महाराज! अजीगर्तके इसप्रकार वचन सुनकर राजा हरिश्चन्द्र परम आह्लादके सहित ॥ ३१ ॥ उससे कहने लगे मैं इस समय आपको एक शत उत्तम गौ देता हूं तब बालकका पिता राजाकी यह बात सुनतेही ॥ ३२ ॥ लोभके वशीभूत और वधकार्य साधन करनेको कृतनिश्चय हो पुत्रके मारनेमें उद्यत हुआ सभासदगण उसको पुत्रके मारनेमें उद्यत देखकर ॥ ३३ ॥ अत्यन्त दुःखसे कातर हुए और हाय! हाय! कहकर विलाप करने लगे उन्होंने कहा यह कुलपांसन अपने पुत्रको मारनेमें उद्यत हुआहै हाय! हमने इस पूर्वमें और कभी भी ऐसा क्रूरकर्मा महापापी नहीं देखा यह निश्चयही द्विजाकृति पिशाच होगा इसमें सन्देह नहीं रे चाण्डाल! तुझको धिक्कार है तैंने यह क्या पापकार्य करनेकी इच्छा की है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ सामान्य धनकी इच्छासे पुत्ररूपी रत्नकी हत्याकरके तुझको क्या सुख प्राप्त होगा? रे पापिष्ठ! वेदमें कहागया है कि आत्माही अङ्गसे पुत्र रूपमें जन्म ग्रहण करता है ॥ ३६ ॥ इस कारण तैंने किसप्रकार उस आत्माके हनन करनेकी इच्छाकी है सभास्थलमें इसप्रकार कोलाहल आरम्भ होनेपर कुशिक नन्दन ॥ ३७ ॥ विश्वामित्र दयाके वशीभूत हो नरपतिके समीप आनकर उनसे कहने लगे विश्वामित्र बोले हे राजेन्द्र! शुनःशेप अत्यन्त कातर होकर रोदन करता है अतएव इसको छोड दो ॥ ३८ ॥ तौ तुम्हारा यज्ञ सम्पूर्ण और अवश्यही व्याधि नष्ट होगी दयाकी समान पुण्य और हिंसाकी समान पाप नहीं है ॥ ३९ ॥ तुम विचार करके देखो कि यज्ञादिपशुहिंसाकी जो विधि कही गई है वह केवल विषयानुरागी मनुष्योंका प्रवृत्तिके लिये है किन्तु उससे निवृत्त होनाही उचित है हे महाराज! जो मनुष्य सम्यक्प्रकार अपने मंगलकी कामना करता है उसको अपने देहकी रक्षाकरनेके लिये पराये देहको छेदन करना कभी कर्त्तव्य नहीं है जो मनुष्य सब जीवोंमें समान दया प्रकाश करता है और सामान्यवस्तु प्राप्त होनेपर प्रसन्न होता है ॥ ४० ॥ ४१ ॥ तथा सम्पूर्ण इन्द्रियोंको वशमें रखता है जगदीश्वर उससे शीघ्र सन्तुष्ट होते हैं हे नृपवर! सम्पूर्ण जीवोंको अपनी ही समान देखे ॥ ४२ ॥ और सबका प्रिय होकर जीवनयात्रा व्यतीत करै इस

ब्राह्मणके पुत्रका देह नष्ट करके तुमने अपने देहके रक्षा करनेकी इच्छा की है ॥ ४३ ॥ अतएव यह ब्राह्मणका पुत्रभी अपने सुखके आस्पद देहके रक्षाकरनेकी क्यों इच्छा नहीं करेगा? हे राजन् ! तुमने निरपराध ब्राह्मणके पुत्रको मारनेकी इच्छा की है. किन्तु यह ब्राह्मणका पुत्र पूर्वजन्मकृत वैर कभी नहीं सहेगा यदि कोई मनुष्य शत्रुता न होनेपरभी अपनी इच्छानुसार किसीको मारे ॥ ४४ ॥ ॥ ४५॥ तो वह मनुष्य दूसरे जन्ममें उस हन्ताका अवश्यही पुनर्वार संहार करता है इसमें सन्देह नहीं. इसके पिताकी धनके लोभसे मति भ्रष्ट हुई है इसकारण अपने पुत्रको अर्पण कियाहै ॥ ४६ ॥ अतएव वह ब्राह्मण अत्यन्त क्रूरस्वभाव लोभी और पापाचारी है इसमें फिर क्या सन्देह है. बहुत पुत्रोंकी इच्छा करते हैं कि, यदि कोई गयामें जाय ॥ ४७ ॥ अथवा यदि कोई अश्वमेध यज्ञ करै किंवा यदि कोई नीलवृषभ उत्सर्ग करै. इस प्रकार विचारकर मनुष्योंको अनेक पुत्रोंकी इच्छा करनी चाहिये और देखो देशमें जो कोईभी पापकर्म क्यों न करै ॥४८॥ राजा उस पापका छठाअंश भोगता है इसमें सन्देह नहीं. अतएव मनुष्यके पापकर्म करनेमें प्रवृत्त होनेपर उसको निषेध करना राजाका अवश्य कर्तव्य है ॥ ॥ ४९ ॥ किन्तु इस ब्राह्मणके पुत्र बेंचनेमें उद्यत होनेपर तुमने किसलिये इसको निषेध नहीं किया ? हे राजन् ! तुम त्रिशंकुकी सन्तान हो विशेषकर सूर्यवंमें जन्म ग्रहण किया है ॥ ५० ॥ इसकारण तुम आर्य होकरभी अनार्यके समान कार्य करनेकी किसप्रकार इच्छा करतेहो ? तुम मेरे वचन ग्रहणकर अत्यन्त शीघ्र यदि इस ब्राह्मणके पुत्रको छोड़ दोगे ॥ ५१ ॥ तो तुम्हारे देहमें अवश्यही सुख होगा तुम्हारे पिता शापवश चाण्डालत्वको प्राप्त हुए थे ॥ ५२ ॥ किन्तु उसी देहसे मैं ने उनको स्वर्गमें भेजदिया, यह तुम अवश्यही जानतेहो अतएव हे राजन् ! तुम उसी प्रीतिके अनुसार मेरा वचन प्रतिपालन करो ॥ ५३ ॥ यह बालक अत्यन्त कातर हो दीनभावसे रोदनकरता है अतएव इसको छोड़दो तुम्हारे इस राजसूय यज्ञमें मैं यही प्रार्थना करता हूं ॥ ५४ ॥ किन्तु इसे पूर्ण न करनेसे तुमको प्रार्थना भङ्गजनित पाप होगा. अतएव तुम इसको हृदयमें क्यों नहीं धारणकरते. हेनृपसत्तम! इस यज्ञमें जो किसकी प्रार्थनाकरै वह अवश्यही उसको देनीचाहिये ॥५५॥ किन्तु इसके अन्यथा करनेसे तुमको पाप होगा इसमें सन्देह नहीं व्यासजीने कहा हेमहाराज! कौशिकके इसप्रकार वचन सुनकर नरपति हरिश्चन्द्र ॥ ५६ ॥ मुनिवर विश्वामित्रसे

कहनेलगे हे गाधेय ! जलोदरकी पीड़ासे मैं महाक्लेश भोगता हूं ॥ ५७ ॥ अतएव मैं इसको नहीं छोड़सक्ता इसकारण आप अन्य कुछ प्रार्थना कीजिये. हे कुशिकनन्दन ! मेरे इसकार्यमें विघ्न करना आपको उचित नहीं है ॥ ५८ ॥ तब राजाकी यह बात सुनकर विश्वामित्र अत्यन्त कुपित हुए और ब्राह्मणके पुत्रको अत्यन्त कातर देखकर दुःखसहित सन्ताप करनेलगे ॥ ५९ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः १७.

व्यासजीने कहा हे महाराज ! विश्वामित्र उस बालक शुनःशेपको अत्यन्त कातरभावसे रोदन करता हुआ देख अतिदयार्द्र चित्त हो उसके समीप जायकर उससे कहने लगे ॥ १ ॥ हे वत्स ! मैं तुझको वरुणमंत्र प्रदान करता हूं तू इस मंत्रको मनहीमनमें स्मरणकर और मेरे वचनानुसार इस मंत्रका जप करनेसे तेरा अवश्यही मंगल होगा ॥ २ ॥ शोकाकुल शुनःशेप विश्वामित्रका यह वचन सुन उनका कहा मंत्र मनहीमनमें स्पष्टाक्षरसे जप करने लगा ॥ ३ ॥ हे राजन् ! शुनःशेफके उस मंत्रको जपतेही कृपालुहृदय वरुणदेव उसकेप्रति प्रसन्न हो सहसा उसके सन्मुख आनकर प्रगट हुए ॥ ४ ॥ वरुणदेवको आया हुआ देखकर सम्पूर्ण सभामें बैठे हुए विस्मित हुए और उनको देख आनन्दित होकर सभी उनका स्तव करने लगे ॥ ५ ॥ तब रोगातुर हरिश्चन्द्र नरपतिभी अत्यन्त विस्मित हो उनके दोनों चरणोंमें गिरे और हाथ जोड़ उनके पुरोवर्ती वरुणदेवका स्तव करने लगे ॥ ६ ॥ हरिश्चन्द्रने कहा हे देवदेव ! मैं अत्यन्त पापात्मा हूं और मेरी बुद्धि नितान्त कलुषित है इस कारण मैं आपके निकट अत्यन्त अपराधी हुआ हूं हे दयामय ! इस समय आप कृपा करके इस दीनको पवित्र कीजिये ॥ ७ ॥ पुत्रके अभावसे मैं अत्यन्त दुःखित था इस कारण पुत्रकामुक होकर आपके वचनमें अवहेला (तिरस्कार) किया है आप प्रभु हैं अतएव आपको निग्रह और अनुग्रहकी सामर्थ्य है इस कारण मेरा यह अपराध क्षमा कीजिये विशेषतः आप विचार करके देखिये कि, जिसकी मति छिन्न हुई है उसका फिर अपराध क्या है ? अतएव दुर्मति पुरुषका अपराध आपको गिन्ना उचित नहीं है ॥ ८ ॥ हे देवदेव ! जो मनुष्य याचक है वह दोष नहीं देखता मैं भी पुत्रका प्रार्थी हूं इस कारण कोई दोष नहीं विचारसका. हे विभो ! नरकके

भयसे डरकर ही मैंने आपको छला है ॥ ९ ॥ अपुत्रकी गति नहीं है विशेष कर उसकी कभी स्वर्ग गति नहीं होती, मैं ने इस शास्त्रके वचनसे डरकरही आपके वचनका अपमान किया है ॥ १० ॥ हे विभो ! आप ज्ञानवान् और मैं अज्ञानी हूं, विशेषकर दुर्द्धर्ष रोगकी यन्त्रणासे अत्यन्त कातर और अपने पुत्रधनसे भी वञ्चित हूं इस कारण मेरा कुछ भी दोषविचारना आपको उचित नहीं ॥ ११ ॥ हे प्रभो ! मेरा पुत्र कहां चलागया है, यह मैं नहीं जानता. हे दयामय ! बोध होता है कि, वह मृत्युके भयसे डरकर और मुझे छलकर वनको चलागया है ॥ १२ ॥ जो हो मैं धनसे इस ब्राह्मणके बालकको मोल लाया हूं और आपको सन्तुष्ट करनेकेलिये क्रीतपुत्रद्वारा यह यज्ञ आरम्भ किया है ॥ १३ ॥ हे देव देव! आपको देखतेही मेरा अत्यन्त क्लेश दूर हुआ है इस समय आपके प्रसन्न होनेसे मेरा जलोदर जनित सम्पूर्ण दुःख दूर होजायगा ॥ १४ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! उन रोगातुर राजाके यह वचन सुनकर देवदेव वरुण कृपाके वशीभूत हो नरपतिसे कहने लगे ॥ १५ ॥ हे राजन् ! शुनःशेप अत्यन्त कातर होकर मेरा स्तव करता है, इस कारण तुम इसको छोड़दो और तुम्हारा यज्ञ भी सम्पूर्ण हुआ, अब तुम रोगसे भी मुक्त होओ ॥ १६ ॥ वरुणने यह बात कहकर सभासदोंके सामनेही राजाको रोगसे मुक्त किया, राजा भी तब सुन्दर देह और स्वस्थता प्राप्तकर उनके सन्मुख स्थिति करने लगे ॥ १७ ॥ वरुणदेवकी कृपासे जब द्विजपुत्र पाशबन्धनसे मुक्त हुआ तब उस यज्ञ सभास्थलमें जयशब्द उच्चारित होनेलगा ॥ १८ ॥ राजा दारुणरोगसे तत्काल मुक्ति प्राप्तकर सन्तुष्ट हुए और शुनःशेप भी यूपसे मुक्त हो निरुद्वेग और स्वस्थ हुआ ॥ १९ ॥ तदनन्तर राजा हरिश्चन्द्रके विनयसहित वह यज्ञ सम्पूर्ण होनेपर फिर शुनःशेपने हाथ जोड़कर सभासदोंसे कहा ॥ २० ॥ हे सभ्यगण ! आप सम्पूर्णही सत्यवादी विशेषकर धर्मका यथार्थ मर्म जानते हैं, इस कारण वेदशास्त्रानुसार धर्मका निश्चय वर्णन कीजिये ॥ २१ ॥ हे सर्वज्ञगण ! इस समय मैं किसका पुत्र हूं ? मेरे पूज्यतम अग्रगण्य पिता कौन हैं, सो आप बतादीजिये. आपके वचनानुसारही उनका आश्रय ग्रहण करूंगा ॥ २२ ॥ शुनःशेपके यह वचन कहनेपर फिर सभासद्लोग परस्पर कहने लगे कि, यह बालक अजीगर्तका पुत्र है अब अन्य किसका पुत्र होगा ? ॥ २३ ॥ उस अजीगर्त्तकेही अङ्गप्रत्यङ्गसे यह बालक उत्पन्न हुआ है उसी ब्राह्मणने इसको अपनी शक्तिकेअनुसार उसका प्रतिपालन किया है अतएव

यह बालक उसकाही पुत्र होगा. यही स्थिर सिद्धान्त है ॥ २४ ॥ यह बात सुनकर वामदेवने उन सभासदोंसे कहा इसके पिताने धनके लोभसे इसको बेंचडाला है ॥ ॥ २५ ॥ राजाने द्रव्य देकर इसको मोललिया है अतएव यह बालक इस समय राजाकाही पुत्र होगा. अथवा यह बालक वरुणदेवका पुत्र है क्योंकि उन्होंने इसको बन्धनसे छुड़ाया है ॥ २६ ॥ कारण कि, जो मनुष्य अन्न देकर प्रतिपालन करता है वा जो भयसे रक्षा करता है अथवा जो धन देकर रक्षा करता है जो विद्या देता है और जो जन्म देता है यह पांच मनुष्यही पितृपदवाच्य हैं॥ २७॥ हे महाराज ! तिस समय कोई अजीगर्तका कोई राजाका अथवा कोई वरुणदेवका पुत्र कहकर वादानुवाद करने लगे किन्तु कोई इसका निर्णय न करसके॥ २८॥ इस प्रकार सन्देह उपस्थित होनेपर फिर सर्वजनोंके समादृत सर्वज्ञानयुक्त वसिष्ठदेव उन विवाद करते हुए सभासदोंसे कहने लगे ॥ २९ ॥ हे महाभागगणो! इस विषयमें श्रुतिसम्मत निर्णय कहता हूं श्रवणकरो पिताने पुत्रस्नेह त्यागकर जब बालकपुत्रको बेंचदिया ॥ ३० ॥ तब उसका संबन्ध भी दूर होगया अनन्तर यह बालक राजा हरिश्चन्द्रका क्रीत पुत्र हुआ था इसमें सन्देह नहीं ॥ ३१ ॥ किन्तु जब राजाने इसको यूपमें बांधा तब यह राजाका पुत्र नहीं होसक्ता परन्तु जब इस बालकने वरुणदेवकी स्तुति की तब उन्होंने उससे सन्तुष्ट होकर इसको छुड़ादिया ॥३२॥ इस कारण यह बालक वरुणदेवका भी पुत्र नहीं होसक्ता क्योंकि जो मनुष्य महामंत्रसे जिस देवताकी स्तुति करता है वह देव उसके प्रति सन्तुष्ट होकर ही उसको ॥ ३३ ॥ धन प्राण पशु राज्य और मुक्ति प्रदान करता है परन्तु अत्यन्त संकटके समय वरुणदेवका महावीर्य मंत्र देकर कुशिकनन्दन विश्वामित्रने इस बालककी रक्षा की है इसलिये यह बालक उनका ही पुत्र होगा इसमें सन्देह नहीं है. व्यासजीने कहा हे राजन्! वसिष्ठके यह वचन सुनकर सभासदोंने उनके वचनमें अनुमोदन किया ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ और विश्वामित्रने प्रेमपूर्ण हो हे पुत्र ! मेरे घरको चलो यह कहकर उसका दक्षिण हाथ पकड़ लिया ॥ ॥ ३६ ॥ तब शुनःशेप भी शीघ्र उनके साथ चलागया इसी समय वरुणदेव भी प्रीतिपरायण हो अपने घरको चलेगये ॥ ३७ ॥ और ऋत्विक् तथा सभासद् भी अपने अपने घरको चलेगये राजा भी रोगसे मुक्ति प्राप्तकर अतिआनन्दित हो ॥ ॥ ३८ ॥ अत्यन्त प्रसन्नचित्तसे राज्य पालन करने लगे. इसी समय राजाका पुत्र रोहितभी वरुणदेवका सम्पूर्ण वृत्तान्त सुन ॥ ३९ ॥ प्रसन्न हो दुर्गम वन और पर्व-

तादि छोड़ घरको आया तब दूतोंने राजाके समीप जाय राजपुत्रके आनेका वृत्तान्त कहा ॥ ४० ॥ वह कोशलाधिपति पुत्रका आगमन सुन प्रेमसे परिपूर्ण और आनन्दित हो शीघ्र उसके सन्मुख आनकर उपस्थित हुए रोहिताश्वभी पिताको आताहुआ देख॥ ४१ ॥प्रेमसे परिपूर्ण होगया और चिरविरहजात शोकके आँसुओंसे मुख प्लावित कर दण्डकी समान पृथ्वीपर गिरपड़ा,तब राजाने इसको उठाय प्रसन्न हृदयसे आलिङ्गन किया ॥ ४२ ॥ और आनन्दसहित उसका मस्तक सूंघ कुशल वार्त्ता पूँछी. इसप्रकार राजा जब पुत्रको गोदीमें लेकर पूँछते थे ॥ ४३ ॥ तब उसके दोनों नेत्रोंसे गरम आँसूओंकी धारा गिरनेलगी उससे कुमारका मस्तक भीगगया अनन्तर राजा उस प्रियतम पुत्रके सहित राज्यशासन करने लगे ॥ ४४ ॥ तिस समय नृपसत्तमने नरमेध यज्ञका आनुपूर्विक वृत्तान्त विस्तारसहित पुत्रसे कहा इसके उपरान्त उन्होंने श्रेष्ठ राजसूययज्ञका अनुष्ठान कर ॥ ४५ ॥ वसिष्ठमुनिकी यथाविहित पूजा करके उनको उस यज्ञके होतृकार्य में वरण किया. फिर उस श्रेष्ठ यज्ञके समाप्त होनेपर राजाने बहुत धनसे वशिष्ठका अत्यन्त सन्मान किया ॥४६॥ अनन्तर एकसमय वसिष्ठमुनि आदरसहित रमणीय इन्द्रभवनमें गये, इसी समय विश्वामित्र भी उस स्थानमें जाय वसिष्ठसे मिले ॥ ४७ ॥ तब वह दोनों महर्षि मिलित होकर सुरसदनमें विराजमान हुए परन्तु विश्वामित्र शचीपति इन्द्रकी सभामें वसिष्ठको सन्मानित देखकर आश्चर्ययुक्त चित्तद्वारा उनसे पूँछने लगे विश्वामित्र बोले हे ऋषिसत्तम ! आपने यह महती पूजा कहाँ पाई ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ हे महाभाग आपकी यह पूजा किसने की है सो आप मुझसे सत्य कहिये. वसिष्ठने कहा हे मुनिवर ! हरिश्चन्द्र नामक एक प्रतापवान् नृपति मेरा यजमान हैं ॥ ५० ॥ उसी राजाने बहुत दक्षिणायुक्त राजसूययज्ञका अनुष्ठान किया इसकी समान धृतव्रत सत्यवादी राजा अन्य नहीं है ॥ ५१ ॥ वह धर्मशील दाता और प्रजाका पालन करनेमें तत्पर है हे कौशिकनन्दन ! उसी राजाके यज्ञमें मुझको यह पूजा प्राप्त हुई है ॥ ५२ ॥ हे द्विजवर ! आप मुझको सत्य कहनेका क्या अनुरोध करते हैं मैं पुनर्वार आपसे यथार्थ ही कहता हूं कि, राजा हरिश्चन्द्रकी समान सत्यवादी वीर चतुर और परमधार्मिक राजा अन्य कोई नहीं हुआ और न कभी कोई होगा ॥ ५३ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! अत्यन्त कोपनस्वभाव विश्वामित्र उनके इस प्रकार वचन सुन लाल लाल नेत्र कर उनसे कहनेलगे ॥५४॥ विश्वामित्र बोले

हे वसिष्ठ! हरिश्चन्द्रने प्रतिज्ञा करके वरुणदेवसे वर प्राप्त किया इसके उपरान्त उसने वरुणकोही कपटरूपी वचनोंसे छला था अतएव वह मिथ्यावादी और कपटप्रिय है तुम उसी राजाकी प्रशंसा करते हो ॥ ५५ ॥ हे महामते! मैंने जन्मावधि तपस्या और अध्ययन करके जो पुण्य सञ्चय किया है और तुमने भी आजन्म अध्ययन और तपस्या करके जो पुण्य उपार्ज्जन किया है इस समय उसकाही प्रण करो ॥ ५६ ॥ तुमने उस अदाता महाबल राजा हरिश्चन्द्रकी अत्यन्त स्तुति की है किन्तु यदि मैं उसको शीघ्रही मिथ्यावादी न करूं तो मेरा आजन्म सञ्चित सम्पूर्ण पुण्य नष्ट हो किन्तु इसके अन्यथा होनेसे तुम्हारा समस्त पुण्य नष्ट होगा मैंने आज यही प्रण किया है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ तब वह परमक्रोधयुक्त दोनों मुनि परस्पर विवाद करते हुए इस प्रकार प्रणकर स्वर्गलोकसे अपने अपने घरको चलेगये ॥ ५९ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः १८.

व्यासजीने कहा हे महाराज! एकसमय राजा हरिश्चन्द्रने मृगयाके लिये वनमें जाय इधर उधर भ्रमण करतेकरते देखा कि, एक चारुलोचन परमसुन्दरी रमणी रोदन करती है ॥ १ ॥ राजाने इसको देखकर करुणाके वशीभूत हो पूँछा हे वरानने! तुम अकेली इस वनमें क्यों रोदन करती हो ॥ २ ॥ हे विशालाक्षी! तुमको क्या-किसीने क्लेश दिया है? तुम्हारे दुःखका क्या कारण है सो तुम मुझसे शीघ्र कहो तुम इस जनशून्य भयंकर वनमें क्यों आई हो तुम्हारे स्वामी और पिताका क्या नाम है? ॥ ३ ॥ हे सुन्दरी! मेरे राज्यमें कभी कोई राक्षस पराई स्त्रीको क्लेश देनेमें समर्थ नहीं होता अतएव हे वरारोहे! तुमको कौन कष्ट देता है मैं उसको अभी मारूंगा ॥ ४ ॥ हेकृशोदरि! तुम सावधान हो अब रोदन मत करो, तुम्हारे दुःखका क्या विषय है सो मुझसे कहो. हे सुमध्यमे! तुम निश्चय जानो कि, मेरे राज्यमें कोई पापिष्ठ मनुष्य नहीं रहता ॥ ५ ॥ नरपतिश्रेष्ठके हरिश्चन्द्रके इस प्रकार वचन सुन वह सर्वाङ्गसुन्दरी स्त्री दोनों हाथोंसे आँसू पोंछतीहुई उनसे कहनेलगी ॥ ६ ॥ नारी बोली हे राजेन्द्र! मैं सिद्धिरूपिणी हूं मुझको प्राप्त करनेके लिये महर्षि विश्वामित्र घोर तपस्या करते हैं अतएव उन्हीं कौशिकसे मुझको यह क्लेश उपस्थित हुआ

है ॥ ७ ॥ हे राजन् ! इसी कारण मैं आपके राज्यमें दुःखित रहती हूं हे सुव्रत ! मैं कोमलस्वभाव मनोहर स्त्री हूं तो भी वह मुनिवर मुझको अत्यन्त क्लेश देते हैं ॥ ८ ॥ राजाने कहा हे विशाललोचने ! अब तुमको दुःख भोगना नहीं होगा तुम धैर्यावलम्बन करो मैं तपश्चर्यामें निरत उन मुनिवरको निवारण करता हूं ॥ ९ ॥ राजा हरिश्चन्द्र उस रमणीको इसप्रकार समझाकर शीघ्र मुनिवर विश्वामित्रके समीप गये और उनको प्रणामपूर्वक हाथ जोड उनसे कहने लगे ॥ १० ॥ हेमहर्षे ! कठोर तपस्यामें निरत होकर किसलिये शरीरको पीडा देते हो ? हे महामते ! आप कौन महत्कार्य साधनके लिये इसप्रकार कठोर तपस्या करते हैं सो आप मुझसे सत्य कहिये ॥ ११ ॥ हे गाधिनन्दन ! आपकी जो इच्छा हो मैं उसको पूर्ण करूंगा. अब इसप्रकार कठोर तपस्या करनेका प्रयोजन नहीं है आप शीघ्र उठिये ॥ १२ ॥ हे महर्षे ! आप तो सभी जानते हैं अतएव आपसे और अधिक क्या कहूं देखो मेरे अधिकारमें रहकर मनुष्योंको पीडादायक दारुण घोर तपस्या करना कभी किसीको उचित नहीं है ॥ १३ ॥ राजा हरिश्चन्द्र विश्वामित्रको इसप्रकार निषेधकर अपने घरको चलेगये और मुनिवर कौशिकभी मनमें क्रोधित हो अपने आश्रमकी ओर चलेगये ॥ १४ ॥ अनन्तर विश्वामित्र आश्रममें जाय पहले इन्द्रभवनमें वसिष्ठके सहित राजा हरिश्चन्द्रके धार्मिकता विषयमें जो वादानुवाद हुआ था और राजा हरिश्चन्द्रने इससमय जो उनको अन्यायरूपसे तपस्या करनेमें निषेध किया उसीकी मनमें चिन्ता करने लगे. फलतः उन्होंने विचारा कि, राजा हरिश्चन्द्र परमधार्मिक है तो उसने किसलिये मुझको तपस्या करनेमें निषेध किया और वसिष्ठने किस प्रकार इसकेलिये प्रण किया ॥ १५ ॥ जो हो विश्वामित्र मनमें क्रोधित हो उनसे बदला लेनेको उद्यत हुए तब उन्होंने मनमें अनेक प्रकारकी चिन्ता कर भयंकर देह एक दानवको ॥ १६ ॥ शूकराकार कर राजा हरिश्चन्द्रकी राजधानीमें भेजा उस विशाल शरीरधारी महा बलवान् शूकरने भयङ्कर चीत्कार करते करते ॥ १७ ॥ राजाके उपवनमें प्रवेश किया तब रक्षक लोग उसके घोर शब्दसे भीत होगये वह शूकर वनमें प्रवेश कर कहीं मालतीवन कहीं कदम्बवन ॥ १८ ॥ कहीं यूथिका लताके वन इन सम्पूर्णका वारम्वार तोडने लगा कहीं दाँतसे भूमि खोदकर वृक्ष तोडता ॥ १९ ॥ कभी चम्पक केतकी और मल्लिका चमेली इत्यादि पादपोंको जड़से उखाड़ने लगा कहीं सुन्दर कोमल उशीर (खस) करवीर ॥ २० ॥

मुचुकुन्द अशोक बकुल और तिलक इत्यादि सम्पूर्ण वृक्षोंकी जड़ोंको खोदकर उस उपवनको छिन्न भिन्न करनेलगा ॥ २१ ॥ तब वनकी रक्षा करनेवाले लोग अस्त्रशस्त्र ग्रहणकर उसके ऊपर दौड़े, और मालीलोग अत्यन्त कातर हो हाहाकार शब्दसे चीत्कार करनेलगे ॥ २२ ॥ यह कालके समान शूकर बाणोंसे ताडित होकर भी जब नहीं डरा बरन रक्षकलोगोंको पीड़ित करनेलगा ॥ २३ ॥ तब वह अत्यन्त भीत और कातर हो राजाकी शारणागत हुए और कम्पायमान कलेवरसे हे महाराज! रक्षा करो रक्षा करो यह कहकर आर्तनाद करनेलगे॥ २४॥ तब भूपति उन भयार्त रक्षकोंको कातर देखकर पूँछनेलगे तुम किसके भयसे इतने कातर होते हो सो तुम मुझसे सत्य कहो ॥ २५ ॥ हे रक्षकवृन्द ! मैं देवता अथवा राक्षसोंकाभी भय नहीं करता, अतएव किस मनुष्यसे तुमको भय उत्पन्न हुआ है वह मुझसे कहो ॥ २६ ॥ जो पापमति खल इस लोकमें मेरा शत्रु होकर आया है मैं उस दुर्भाग्य शत्रुको एक बाणसेही यमसदनमें भेजूंगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ २७ ॥ उस शत्रुका रूप किसप्रकार है अथवा उसके बलका कितना परिमाण है, और इस समय वह किस स्थानमें स्थिति करता है यह शीघ्र कहो. यह शत्रु देव हो अथवा दानव हो इससमय बाणोंसे उसका संहार करूंगा ॥ २८ ॥ मालियोंने कहा हे महाराज ! वह शूकर देव दानव यक्ष अथवा किन्नर नहीं है एक महाकाय शूकरने वनमें आनकर प्रवेश किया है ॥ २९ ॥ अत्यन्त वेगवान् वह शूकर दाँतोंसे सम्पूर्ण शोभायमान पुष्प वृक्षोंको जडसहित उखाडता है अधिक क्या कहैं वह सब वनको छिन्नभिन्न करे डालता है ॥ ३० ॥ हे महाराज ! हमने उसके बाण लाठी और पत्थरोंसे बहुत प्रहार किया तथापि वह किसीसे न डरा बरन् वह हमको विनाश करनेके लिये दौडा ॥ ३१ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! उनके इसप्रकार वचन सुन राजा अत्यन्त क्रोधित हुए और शीघ्र घोडेपर चढ उपवनकी ओर गये ॥ ३२ ॥ वह जिस समय उस उपवनको चले उस समय सादी सवार निषादी हाथीपर चढनेवाले रथी और पैदल सम्पूर्ण सेना उनके पीछे पीछे चली ॥ ३३ ॥ राजाने वहाँ जायकर घुर्घुराते हुए भयंकर विशालकाय उस शूकरको देखा और वनकी भग्नावस्था देखकर अत्यन्त क्रोधयुक्त हुए ॥ ३४ ॥ तब उन्होंने शरासन खैंच बाण चढाय उस शूकरको मारनेके लिये आक्रमण किया ॥ ३५ ॥ वह शूकर राजाको धनुषबाण धारणपूर्वक अत्यन्त क्रोधसे भरे हुए आता देखकर

घोर शब्द करते करते शीघ्र राजाकी ओर चला ॥ ३६ ॥ उस भीमकाय शूकरको मुँह फेलाये आता हुआ देखकर राजा उसके मारनेकी इच्छासे उसके ऊपर शर वर्षण करने लगे ॥ ३७ ॥ तब वह शूकर शीघ्र उन सम्पूर्ण बाणोंको विफलकर तत्काल अत्यन्त वेगसहित बलपूर्वक राजाको उलांघता हुआ निकला ॥ ३८ ॥ उसके चले जानेपर राजा क्रोधके वशीभूत हो अत्यन्त यत्नसहित धनुष खैंचकर बाण छोडने लगे ॥ ३९ ॥ तिस काल वह शूकर राजाको कभी दिखाई देता और कभी छिपजाता था और अनेक प्रकारका शब्द करता हुआ भागा ॥ ४० ॥ राजा हरिश्चन्द्रनेभी अत्यन्त क्रोधित हो शरासन खैंच वायुके समान वेगशाली घोडेपर चड उसके पीछे दौडे ॥ ४१ ॥ तब सम्पूर्ण सैन्यने इधर उधर वनमें प्रवेश किया राजा अकेलेही उस भागते हुए शूकरके पीछे पीछे दौडे ॥ ४२ ॥ मध्याह्न काल उपस्थित होनेपर राजा एक विजनवनमें पहुँचे तिससमय उनका वाहन थक गया था और वहभी भूंख प्याससे कातर होगये थे ॥ ४३ ॥ शूकरके छिपजानेपर राजा घोर निविड वनमें मार्ग भूल दीनभावसे चिन्ता करने लगे ॥ ४४ ॥ उन्होंने मनमें विचारा कि, मैं क्या करूं और कहां जाऊं इस घोर वनमें मेरा कोई सहायक नहीं है विशेषकर जानेका मार्ग नहीं जानता इस समय कहां जाऊं ॥ ४५ ॥ इसप्रकार चिन्ता करते करते राजाने उस जनशून्य वनमें सहसा एक स्वच्छ जलवाली नदी देखी॥ ४६॥ उस नदीको देखकर राजा प्रसन्न हुए और फिर घोडेसे उतर स्वयं निर्मल जलपानकर घोडेको भी जल पिलाया ॥ ४७ ॥ वह नरपालक जलपान कर स्वस्थ हुए और तिसकाल दिग्भ्रमसे अत्यन्त मोहित होनेपर भी नगरके जानेकी इच्छा की ॥ ४८ ॥ इसी समय विश्वामित्र वृद्धब्राह्मणका रूप धारण पूर्वक वहाँ आनकर उपस्थित हुए राजाने उन द्विजवरको देखकर भक्तिसहित प्रणाम किया ॥ ४९ ॥ विप्रवेषधारी विश्वामित्रने उन प्रणाम करते हुए राजा हरिश्चन्द्रसे कहा हे महाराज ! आपका मंगल हो आप किसलिये इस स्थानमें आए हैं ॥ ५० ॥ हे महाराज ! इस विजनवनमें आपका क्या प्रयोजन है ? आप सावधान होकर मुझसे सम्पूर्ण वृत्तान्त कहिये ॥ ५१ ॥ राजाने कहा हे द्विजवर ! एक विशालकाय महाबलवान् शूकरने मेरे पुष्पकवनमें प्रवेशकर कोमल सम्पूर्ण पुष्पपादोंको एकवारही तोड़ डाला है ॥ ५२ ॥ मैं उसी दुष्टशूकरको निवारण करनेके लिये धनुष धारणकर सेनासहित नगरसे निकला था ॥ ५३ ॥

वह वेगवान् पापिष्ठ मायावी शूकर मेरी दृष्टिसे छिपकर कहीं चलागया है मैं उसके पीछे पीछे दौड़ताहुआ इस स्थानमें आया हूं इससमय मेरी सेना कहाँ चलीगई है यह मैं नहीं जानता ॥ ५४ ॥ हे मुनिवर ! मैं सैन्यहीन क्षुधित और तृषित होकर इस स्थानमें आया हूं मैं नगरका मार्ग नहीं जानता और सैनिक लोग किस मार्गको गये हैं यहभी मैं नहीं जानता ॥ ५५ ॥ हे विभो ! मेरे भाग्यसेही आप इस विजन वनमें उपस्थित हुए हैं इस समय मैं नगरको जाऊंगा आप मार्ग बताइये ॥ ५६ ॥ मैं अयोध्याका अधिपति हरिश्चन्द्र हूं मैंने राजसूय यज्ञ किया है अतएव मुझसे जो जिसकी प्रार्थना करता है मैं उसको वही देता हूं यह सब जानते हैं॥५७॥हेद्विजवर! आपकी यज्ञकेलिये यदि धनकी इच्छाहोतो मेरे संग अयोध्याको चलिये फिर मैं आपको बहुत धन दूंगा ॥ ५८ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे भाषायां अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः १९.

व्यासजीने कहा हे नरनाथ ! महर्षिकौशिकने नरपति हरिश्चन्द्रके इसप्रकार वचन सुन फिर हँसकर उनसे कहा ॥ १ ॥ हे राजन् ! यह तीर्थ अत्यन्तपवित्र है इसमें स्नानकरनेसे सम्पूर्णपाप नष्टहोकर पुण्यउदय होता है अतएव हे महाभाग ! आप इसमें स्नानकर पितृगणोंका तर्पण कीजिये ॥ २ ॥ हे नरनाथ ! इस समय अत्यन्त पुण्यकाल उपस्थित है अतएव आप इस पवित्र पुण्यतीर्थमें स्नानकर अपनी शक्तिके अनुसार दान कीजिये ॥ ३ ॥ स्वायम्भुवमनुने कहा है जो पुरुष महापुण्यदायक तीर्थमें उपस्थित होकर स्नानदानादि विना किये जाता है वह मनुष्य आत्माको वञ्चना करता है सुतरां वह आत्मघाती होता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ४ ॥ अतएव हे राजन् ! आप अपनी शक्तिके अनुसार इस अत्युत्तमतीर्थमें पुण्यकार्य सम्पादन कीजिये इसके उपरान्त मैं आपको मार्ग बताऊंगा तभी आप अयोध्याको जायंगे ॥ ५ ॥ हे काकुत्स्थ ! फिर आपके दानसे परितुष्ट होकर मैं आपको मार्ग बतानेके लिये आपके संग चलूंगा यह स्थिरकिया है ॥ ६ ॥ राजाने महर्षीके यह छलयुक्त वचन सुनकर अपने देहसे सम्पूर्णवस्त्र उतारे और वृक्षमें घोड़ेको बांध विधिपूर्वक स्नानकरनेके लिये नदीकी ओर चले ॥ ७ ॥ हे राजन् ! अवश्यम्भावि दैवयोगसे मुनिकेवचनोंसे इतने मोहित होगये थे कि, तिससमय उनके एकबारही वशीभूत

होगये ॥८॥ फलतः उन्होंने यथाविधि स्नानकार्य समापनपूर्वक देव और पितरोंका तर्पणकर विश्वामित्रसे कहा हे स्वामिन् ! मैं आपको दान करता हूं ॥ ९ ॥ हे महाभाग ! गो भूमि स्वर्ण हाथी घोड़े रथ अथवा वाहन इत्यादि आप जिस किसीकी इच्छाकरैं मैं इस समय वही आपको दूंगा ॥ १० ॥ जिसको मैं न देसकूं ऐसी कोईवस्तु नहीं है पहले जब मैंने श्रेष्ठ राजसूय यज्ञका अनुष्ठान किया था तिससमय मुनियोंके सामने यह व्रत अवलम्बन किया है ॥११॥ अतएव हे मुनिवर ! आपभी इस प्रधान तीर्थमें उपस्थित हुए हैं इससमय जो आपका अभिलषित है वह कहिये मैं आपको वाञ्छित वस्तु प्रदान करता हूं ॥ १२ ॥ विश्वामित्रने कहा हे राजन् ! आपकी कीर्ति पृथ्वीतलमें अत्यन्त फैलीहुई है विशेषकर आपकी समान दाता पृथ्वीमें दूसरा कोई नहीं है मैं ने पूर्वमें सुना है वसिष्ठमुनिने कहा है कि ॥ १३ ॥ त्रिशंकुके पुत्र सूर्यवंशीय महीपति हरिश्चन्द्रही इस पृथ्वीतलमें राजाओंके अग्रगण्य अद्वितीय और उदारस्वभाव हैं उनकी समान दाता नरपति पृथ्वीमें दूसरा कोई नहीं हुआ और होगाभी नहीं. अतएव हे पार्थिव ! मेरे पुत्रका विवाह उपस्थित है इसलिये अब आपसे प्रार्थना करता हूं ॥ १४ ॥ १५ ॥ आप उस पुत्रविवाहके लिये धन दीजिये राजाने कहा हे विप्रवर ! आप विवाहकार्य कीजिये मैं आपका प्रार्थित दान दूंगा ॥ १६ ॥ अधिक क्या आप जिस धनकी इच्छा करैं मैं वही आपको यथेष्ट प्रदान करूंगा इसमें कुछ सन्देह नहीं है. व्यासजीने कहा हे महाराज ! कौशिकमुनि उनके इसप्रकार वचन सुनतेही उनको छलनेके लिये तत्पर हुए ॥ १७ ॥ और गान्धर्वी माया प्रगटकर एक सुन्दराकृति कुमार और दशवर्षीय एक कन्या उत्पन्न की ॥ १८ ॥ और भूपालको उन्हें दिखाकर कहा हे नृपसत्तम ! अब इनका विवाहकार्य सम्पादन करना होगा हे महाराज ! गृहस्थका विवाह करनेपर राजसूययज्ञसे अधिक फल प्राप्त होता है ॥ ॥ १९ ॥ अतएव ब्राह्मणके पुत्रका विवाह करनेसे अभी आपको वह फल होगा. राजा उनकी मायासे मोहित हुएथे इसकारण यह वचन सुनते ही ॥ २० ॥ यही होगा ऐसा कहकर प्रतिज्ञा की परन्तु उसके विरुद्धमें सामान्यमात्र भी वचन न कहे अनन्तर विश्वामित्रके मार्ग दिखलानेपर राजा नगरकी ओर चले ॥ २१ ॥ विश्वामित्रने भी राजाको छलकर अपने आश्रमको प्रस्थान किया इसके उपरान्त नरपति अग्निशालामें उपस्थित हुए इसी समय विश्वामित्र उनके समीप उपस्थित हो कहनेलगे

हे राजन् विवाह विधि निष्पन्न हुई है ॥ २२ ॥ अतएव आप अब इस वेदीमें मेरा जो अभिलषित है वह दीजिये. राजाने कहा हे द्विजवर! आपका वांछित क्या है सो कहिये ॥ २३ ॥ अब मैं यशका अभिलाषी हूं इसकारण संसारमें मुझे जो अदेय है आप यदि उसकी भी प्रार्थना करैं तो भी मैं वह आपको दूंगा. इसमें सन्देह नहीं. जो मनुष्य विभवका अधिकारी होकर भी ॥ २४ ॥ परलोकका सुखकर पवित्र यश उपार्जन नहीं करता उसका जीवन निष्फल है इसमें सन्देह नहीं. विश्वामित्रने कहा हे महाराज! आप इस पवित्र वेदीमें छत्र चामरादियुक्त और हाथी घोड़े रथ एवं पदातिसहित रत्नपरिपूर्ण राज्य इस वरको दीजिये. व्यासजीने कहा हे राजन्! महाराज हरिश्चन्द्र उनकी मायासे मोहित होगये थे इसकारण मुनिके वचन सुनते ही ॥ २५ ॥ २६ ॥ विना विचारे अपनी इच्छानुसार उनसे कहा हे मुनिवर! आपकी प्रार्थनासे मैं यह विशाल राज्य प्रदान करता हूं तब अत्यन्त निष्ठुर विश्वामित्रने उनसे कहा हे राजेन्द्र मैंने भी ग्रहण किया ॥ २७ ॥ किन्तु हे महामते! आप इससमय दानके उपयुक्त दक्षिणा प्रदान कीजिये मनुने कहा है कि विनादक्षिणाके दान निष्फल होता है ॥ २८ ॥ अतएव आप दानका फल प्राप्त करनेकेलिये यथाविहित दक्षिणा दीजिये. राजा उनके इसप्रकार वचन सुनते ही अत्यन्त विस्मित हो कहने लगे ॥ २९ ॥ हे प्रभो! अब आपको कितना धनदेना होगा सो आप कहिये. हे साधो! जितना दक्षिणाका मूल्य देनाहोगा सो आप कहिये ॥ ३० ॥ हेतपोधन! आप व्याकुल न हूजिये मैं दान पूर्ण करनेकेलिये वह आपको दूंगा इसमें सन्देह नहीं विश्वामित्र यह सुनकर महीपतिसे कहनेलगे ॥ ३१ ॥ सम्प्रति ढ़ाईभार सुवर्णदक्षिणास्वरूप प्रदान कीजिये. हे महाराज! तब राजा हरिश्चन्द्रने अत्यन्त विस्मित हो यही दूंगा ऐसा कहकर अंगीकार किया ॥ ३२ ॥ और चिन्तित चित्तसे घोड़ेपर चढ़ शीघ्र जानेकेलिये प्रस्थित हुए इसी समय मार्ग भूलेहुए सैनिकलोग उन्हें ढूँढते ढूँढते उनके समीप आनकर उपस्थित हुए तब वह महीपतिको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनको चिन्तातुर देखकर व्यग्रभावसे उनका स्तवकरनेलगे ॥ ३३ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज! उनके वचन सुनकर राजा हरिश्चन्द्रने अच्छा वा बुरा कुछ भी न कहा परन्तु अपने कियेहुए कार्यके विषयकी चिन्ता करते करते अन्तःपुरमें प्रवेश किया ॥ ३४ ॥ हाय! मैंने किस दानके करनेको स्वीकार किया इस समय जो कि, सर्वस्वही समर्पणकिया वनमें चोरके

समान इन द्विजवरसे मैं इस विषयमें छलागया ! ॥ ३५ ॥ वस्त्रसहित सम्पूर्ण राज्य इनको दूंगा ऐसा कहकर प्रतिज्ञा की है,अब उनका दक्षिणास्वरूप ढाईभार सुवर्णभी देना होगा ॥ ३६ ॥ क्या करूं मेरी बुद्धि नष्ट होगई थी इसलिये मैं मुनिकी कपटता नहीं जानसका इससे ही इस तपस्वी ब्राह्मणसे धोखा खाया ॥ ३७॥ दैवका कार्य जानना साध्य नहीं है हा दैव ! इस समय मैं क्या करूं ? अत्यन्त विह्वल हो इसप्रकार चिन्ता करतेकरते राजाने अन्तःपुरके गृहमें प्रवेश किया ॥ ३८ ॥ तब रानी स्वामीको चिन्तामें निमग्न देखकर उनसे चिन्ताका कारण पूँछने लगी. हे प्रभो ! आप क्यों विमन हुए हैं ? सम्प्रति आपकी चिन्ताका क्या विषय है, सो आप कहिये ॥ ३९ ॥ हे राजेन्द्र ! पुत्र वनसे गृहमें आगया है पूर्वमें राजसूय यज्ञभी किया है अतएव किसकारणसे शोक करते हो ? आप उस शोकका कारण कहिये ॥ ४० ॥ आपका बलवान् वा दुर्बल कोई शत्रु कहीं भी विद्यमान् नहींहै केवल वरुणही आपसे कुपित थे वहभी इससमय भलीभाँति सन्तुष्ट हुए हैं अतएव पृथ्वीतलमें आपका शेषकार्य कुछ नहींहैं ॥ ४१ ॥ हेनृपवर ! चिन्तामें दिन दिन क्षीण होताहै अतएव चिन्ताके समान मृत्युका कारण दूसरा कुछ नहीं है आप बुद्धिमान् हो इसकारण चिन्ताको त्यागकर सावधान हूजिये ॥ ४२ ॥ प्रियतमाके प्रीतिसहित इसप्रकार वचन कहनेपर राजाने उसे सुन शुभाशुभ चिन्ताका कारण उससे यथा-कथञ्चित् कठिनतासे कहा ॥ ४३ ॥ किन्तु उन महाराजने चिन्तामें निमग्न होकर भोजन न किया और शुभ्र शय्यापर शयन करके भी निद्रा प्राप्त न करसके॥ ४४ ॥ फिर प्रातःकालके समय उठकर चिन्तित चित्तसे जब सन्ध्यादि कार्य संपादन कर रहे थे उसीसमय उस स्थानमें विश्वामित्र आनकर उपस्थित हुए ॥ ४५ ॥ द्वारपालके मुनिकी आगमवार्त्ता निवेदन करनेपर राजाने उनको आनेकी अनुमति प्रदान की. अनन्तर वह सर्वस्वहारक विश्वामित्र उनके समीप उपस्थित हो वारंवार प्रणाम करते हुए राजासे कहने लगे ॥ ४६ ॥ मुनि बोले हे राजन् ! आप अपना राज्यपरित्याग कीजिये और मुझको जो सुवर्ण दक्षिणा देनेकी प्रतिज्ञाकी है वह देकर इस समय यथार्थ ही सत्यवादी हूजिये ॥ ४७ ॥ हरिश्चन्द्रने कहा हे प्रभो ! मैंने आपको अपना विशाल राज्य प्रदान किया है अतएव मेरा राज्य आपकाही हुआहै इसकारण मैं इस राज्यको परित्यागकर अन्य किसी स्थानमें जाता हूं हे कौशिक ! आप इस

१ एकभार।

विषयमें कुछभी चिन्ता न कीजिये ॥ ४८ ॥ हे ब्रह्मन् ! आपने विधिके अनुसारही मेरा सर्वस्व ग्रहण किया है अतएव मैं इससमय दक्षिणा देनेमें अत्यन्त असमर्थ हूं ॥ ४९ ॥ यदि कालवश फिर मुझको धन प्राप्त हो तो तत्काल आपकी दक्षिणा दूंगा ॥ ५० ॥ नरपति हरिश्चन्द्र उनसे यह बात कह शैब्यानाम्नी भार्या और पुत्र रोहितसे कहने लगे मैंने अग्निहोत्रशालामें यह विस्तीर्ण राज्य इनको दान किया है ॥ ५१ ॥ हाथी घोडे रथ स्वर्ण और रत्नराजीके सहित सम्पूर्ण राज्य प्रदान किया है अधिक क्या हमारे तीन शरीरोंके अतिरिक्त समस्तही इनको समर्पण किया है ॥ ५२ ॥ यह महर्षिवर सर्वसमृद्धि सम्पन्न इस राज्यको भलीभाँति ग्रहण करैं हम अयोध्याको छोड किसी वन अथवा पर्वतकी गुफामें जायँगे ॥ ५३ ॥ अत्यन्त धर्मिष्ठ राजा हरिश्चन्द्र भार्या और पुत्रसे यह बात कह और उन द्विजवरका सन्मान कर अपने घरसे निकले॥ ५४ ॥ तब भूपतिको जाता हुआ देखकर उनकी भार्या और पुत्र चिन्तासे कातर हो अत्यन्त मलिन मुखसे उनके पीछे पीछे चले ॥ ५५ ॥ अयोध्यावासी सम्पूर्ण प्राणी उनको देखकर रोनेलगे तिसकाल नगरमें केवल घोर हाहाकार ध्वनि होने लगी ॥ ५६ ॥ हा राजन् ! आपने क्या कार्य किया ? कहांसे आपको यह क्लेश उपस्थित हुआ हे महाराज ! गुणदोष न जानेवाले विधिने आपको छला है इसमें सन्देह नहीं ॥ ५७ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र चारों वर्णही उन महीपतिको भार्या और महानुभाव पुत्रके सहित जाता हुआ देखकर दुःखप्रकाश करने लगे॥ ५८ ॥ ब्राह्मण इत्यादि सम्पूर्ण पुरवासी लोग दुःखार्त्त हो उस व्यक्तिको धूर्त्त इत्यादि कटुवाक्य कह उस दुराचार ब्राह्मणकी निन्दा करने लगे ॥ ५९ ॥ पृथ्वीपति उस नगरसे निकलकर जाते थे इसी समय विश्वामित्र उनके निकट उपस्थित हो उनसे निष्ठुर वचन कहने लगे ॥ ६० ॥ हे नरनाथ ! दक्षिणाका स्वर्ण देकर जाओ अथवा नहीं दूंगा यह बात कहो तो मैं दक्षिणाका स्वर्ण छोड़ दूं ॥ ६१ ॥ यदि आपके अन्तःकरणमें लोभ विद्यमान हो तो सम्पूर्ण राज्यग्रहण करो हे राजन् ! आपने यदि यथार्थही दान किया है यह जानते हो तो आपने जो प्रतिज्ञा की है वह दीजिये ॥ ६२ ॥ गाधिनन्दन विश्वामित्र इसप्रकार कहरहे थे इसीसमय महीपति हरिश्चन्द्र अत्यन्त दीनभावसे प्रणामकर हाथ जोड उनसे कहने लगे ॥ ६३ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुणे सप्तमस्कंधे भाषायां एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः २०.

हरिश्चन्द्रने कहा हे मुनिवर! आपको दक्षिणाका स्वर्ण विनादिये मैं भोजन नहीं करूंगा. यही मेरी प्रतिज्ञा जानिये अतएव हे सुव्रत! आप दक्षिणाके लिये विषाद त्याग कीजिये ॥ १ ॥ मैं सूर्यवंशीय क्षत्रिय महीपति हरिश्चन्द्र हूं विशेषकर जबसे मैं ने राजसूय यज्ञसम्पादन किया है तबसे जो मनुष्य मेरे निकट जिसकी प्रार्थना करता है मैं उसको वही देता हूं ॥ २ ॥ अतएव हे प्रभो! मैं अपनी इच्छानुसार दान करके उसकी दक्षिणा न दूं यह किसप्रकार सम्भव होसक्ता है? हे द्विजसत्तम! मैं अवश्वही ऋण चुकादूंगा ॥ ३ ॥ आपकी इच्छानुसार स्वर्ण अवश्यही दूंगा. अतएव आप सावधान हूजिये किन्तु आप एक महीनेतक प्रतीक्षा कीजिये तो मैं धन प्राप्त करके आपको देसकूंगा ॥ ४ ॥ विश्वामित्रने कहा हे राजन्! राज्य कोष और बल इनसेही धनका आगमन होता है आपसे वह सम्पूर्ण गया इसकारण फिर आपको धन कहाँसे प्राप्त होगा? ॥ ५ ॥ हे महीपाल! धनकी आशा करना आपको वृथा है इस समय मैं क्या करूं? आप निर्धन हैं अतएव मैं लोभके वशीभूत हो आपको किसप्रकार पीड़ित करूं? ॥ ६ ॥ हे भूपाल! आप "धन नहीं देसक्ता" यह बात कहें तो मैं इस महती आशाको छोड़कर इच्छानुसार जाऊं ॥ ७ ॥ और आपभी "मेरे पास कुछ स्वर्ण नहीं है मैं आपको इससमय क्या दूं" यह बात कहकर भार्या और पुत्रके सहित इच्छानुसार जाइये ॥ ८ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज! भूपतिने गमन कालके समय मुनिवर विश्वामित्रके इसप्रकार वचन सुनकर कहा हे ब्रह्मन्! आप धैर्य अवलम्बन कीजिये मैं आपको दक्षिणाका स्वर्ण दूंगा इसमें संदेह नहीं ॥ ९ ॥ हे द्विजवर! भार्या पुत्र और मैं इन तीन जनोंकाही निरोग देह विद्यमान है सुतारां इनको बेंचकर अवश्यही आपका ऋण चुकाऊंगा ॥ १० ॥ हे विभो! इस वाराणसी पुरीमें कोई ग्राहक विद्यमान है अथवा नहीं उसको ढूंढवाइये मैं इसी स्थानमें भार्या और पुत्रके सहित दासत्व स्वीकार करूंगा ॥ ११ ॥ हे मुने! आप हम सबको बेच उस मूल्यसे ढाई भार सुवर्ण ग्रहणकर हमारे प्रति प्रसन्न हूजिये ॥ १२ ॥ राजाने यह बात कह जिस स्थानमें शंकर प्रियतम उमाके सहित स्वयं स्थिति करते हैं उसी वाराणसी पुरीको भार्या और पुत्रके सहित प्रस्थान किया ॥ १३ ॥ जिस पुरीके दर्शन करनेसे चित्तको आनन्द बढता है उस शोभा-यमान वाराणसी नगरीको देखकर राजाने कहा आज मैं कृतार्थ हुआ ॥ १४ ॥

अनन्तर भागीरथीके तटपर जाय उसी स्थानमें स्नान किया फिर देवता और पितरोंका तर्पण एवं अभीष्ट देवताकी पूजा सम्पादनकर जानेका मार्ग देखनेकी इच्छासे चारों ओर देखने लगे ॥ १५ ॥ भूपाल शोभायमान वाराणसी पुरीमें पहुँचकर मनमें विचार करने लगे कि, यह पुरी मनुष्यसे पालित नहीं है स्वयं शूलपाणि इसका पालन करते हैं अतएव इसमें वास करनेसे मेरा प्रदत्त राज्यमें वास करना नहीं होगा ॥ १६ ॥ तब नरपति दुःखसे अत्यन्त कातर और अति व्याकुल हो भार्या और पुत्रके सहित पैदल्ही वाराणसी पुरीमें गये और नगरीमें प्रवेशकर उसमें विश्वास स्थापन किया॥ १७॥ इसी समय उन्होंने उन दक्षिणार्थी मुनिवरको देखा और उनको आता देख विनीत भावसे प्रणामकर ॥ १८ ॥ हाथ जोड़ उनसे कहा हे मुनिवर ! यह मेरी प्रियतम भार्या और यह मेरा पुत्र एवं यह मेरा जीवन विद्यमान हैं ॥ १९ ॥ हे द्विजवर ! इनमेंसे जिसके द्वारा आपका कार्य सम्पन्न हो उसकोही ग्रहण कीजिये अथवा अन्य जो कोई कार्य हमको करना होगा वह आप हमसे कहिये ॥ २० ॥ विश्वामित्रने कहा हे राजन् ! आपने " मासके अन्तमें दक्षिणा दूंगा " यह कहकर प्रतिज्ञा की है, किन्तु वह एक मास अब पूर्ण हुआ यदि आपको अपना वचन स्मरण हो तो मुझको दक्षिणा दीजिये ॥ २१ ॥ राजाने कहा हे ब्रह्मन् ! आप ज्ञानवान् और तपोबलयुक्त हैं अतएव आपके वचनमें मुझको द्विरुक्ति करना कभी उचित नहीं है किन्तु अभी महीना पूर्ण नहीं हुआ आधा दिन अभी बाकी है आप उसीकी प्रतीक्षा कीजिये अब कल्ल विलम्ब न करूंगा ॥ २२ ॥ विश्वामित्रने कहा हे महाराज ! यही हो मैं फिर आऊंगा यदि तबभी दक्षिणाका सुवर्ण न दिया तो मैं तुमको शाप दूंगा ॥ २३ ॥ विश्वामित्रके यह कहकर चलेजानेपर राजाभी मनमें चिन्ता करने लगे कि दक्षिणाके विषयमें जो प्रतिज्ञा की है वह इनको किस प्रकार दूंगा ॥ २४ ॥ इस काशीमें मेरे मित्रभी नहीं हैं जो उनसे धन लूं तो इस समय धन कहां पाऊं मैं क्षत्रिय हूं मुझको दान लेनाभी निषिद्ध है अतएव वह किसप्रकार करसक्ताहूं ॥ ॥ २५ ॥ धर्मशास्त्रके अनुसार यजन अध्ययन और दान यह तीन वृत्तिही राजाओंको विहित हैं और यदि ब्राह्मणको दक्षिणा न देकर प्राणत्यागकरूं ॥ २६ ॥ तो ब्राह्मणस्वहरणनिबन्धनके कारण पापी होकर कृमि हूंगा अथवा नीच होकर प्रेतयोनिको प्राप्त हूंगा अतएव इसकी अपेक्षा आत्म विक्रय करनाही मेरे पक्षमें श्रेष्ठ है इसमें सन्देह नहीं ॥ २७ ॥ सूतजीने कहा हे ऋषिगण ! राजाको व्याकुल दीनभा-

वसे नीचेको मुख किये चिन्ता करताहुआ देखकर उस स्त्रीने बाष्पगद्गद स्वरसे कहा ॥ २८ ॥ हे महाराज ! आप चिन्ता त्यागकर सत्यरूप अपना धर्मपालन करो क्योंकि जो मनुष्य सत्य धर्मसे च्युत होते हैं वह प्रेतके समान वर्ज्जनीय हैं ॥ ॥ २९ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! अपने सत्यका पालन करना ही पुरुषका धर्म है, इसकी अपेक्षा श्रेष्ठ धर्म दूसरा नहीं है बुद्धिमानोंने यही कीर्त्तन किया है ॥ ३० ॥ जिसका वचन असत्य होता है उसकी अग्निहोत्र अध्ययन और दानादि सम्पूर्ण क्रिया विफल होजाती हैं ॥ ३१ ॥ धर्मशास्त्रमें सत्य अत्यन्त प्रशंसनीय है और वह सत्य ही पुण्यात्मा मनुष्योंको उद्धार करता है, और असत्य पापिष्ठ मनुष्यको नरकमें डालता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ३२ ॥ महीपति ययाति अश्वमेध यज्ञ और राजसूय यज्ञका अनुष्ठान करकेही स्वर्गको गये थे, किन्तु केवल एकवार मिथ्या बात कहनेसे स्वर्गसे च्युत हुए थे ॥ ३३ ॥ राजाने कहा हे गजगामिनि ! तुम दक्षिणा देनेकेलिये मुझको समझातीहो किन्तु मेरे पास कछ नहीं है केवल भार्या और पुत्र शेष हैं उनमें पुत्र वंशको बढ़ानेवाला है इसकारण उसका प्रदानकरना शास्त्रमें निषिद्ध है और भार्याकोभी नहीं बेचना चाहिये किन्तु इस समय तुम जो कहनेकी इच्छाकरती हो वह कहो ॥ ३४ ॥ महिषीने कहा हे राजन् ! पुत्रके लियेही पुरुष स्त्रीपरिग्रह करते हैं मेरे पुत्र होजानेसे आपका वह प्रयोजन सिद्ध होगया, अतएव धनग्रहणपूर्वक मुझको बेचकर ब्राह्मणको दक्षिणा दीजिये तो आपका वचन मिथ्या नहीं होगा ॥ ३५ ॥ व्यासजीने कहा हेमहाराज ! महीपति यह वचन सुनकर मोहको प्राप्त हुए फिर चैतन्य हो अत्यन्त दुःखित अन्तःकरणसे विलाप करनेलगे ॥ ३६ ॥ हे भद्रे ! तुमने जो मुझे ऐसे वचन कहे इनसे मुझको अत्यन्त दुःख उपस्थित हुआ है मैं क्या ऐसा पापिष्ठ हूं कि तुम्हारे वह हास्ययुक्त सम्पूर्ण वचन एकवारही भूलगया ? ॥ ३७ ॥ हे शुचिस्मिते ! ऐसे वचन कहना तुमको उचित नहीं है हे सुन्दरी ! यह न कहने योग्य वचन तुमने मुझसे किसप्रकार कहे ॥ ३८ ॥ यह कहकर वह नृपश्रेष्ठ स्त्रीके बेचनेकी बातसे अधीर और मूर्च्छासे अत्यन्त अभिभूत हो पृथ्वीपर गिरपड़े ॥ ३९ ॥ जब महीपति मूर्च्छासे पृथ्वीपर गिरपड़े तब राजपत्नीने उनको देख अत्यन्त दुःखित हो अतिकरुणावचनद्वारा उनसे कहा ॥ ४० ॥ हे महाराज ! किसका बुरा विचारनेकी इच्छासे आपको यह दुर्घटना उपस्थित हुई. हाय ! आस्तरणमण्डित गृहमें शयन करना जिनको उचित है वह आज नीचके समान भूशैय्यापर शयन कररहे

हैं ॥ ४१ ॥ पूर्वमें जो पृथ्वीनाथ ब्राह्मणोंको करोड़ करोड़ मुद्रा दान करते थे आज मेरे पति वह भूपति पृथ्वीमें गिरपड़े हैं ॥ ४२ ॥ हाय ! क्या कष्ट है ! हा दैव ! इन महीपालने तुम्हारा क्या किया हैं जो इन्द्र और उपेन्द्रके समान राजाको इस दुरवस्थामें डाला है ॥ ४३ ॥ वह सुश्रोणी राजपत्नी यह बात कहकर अत्यन्त असह्य स्वामीके दुःखभारसे अतिसन्तप्त और मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिरपड़ी ॥ ४४ ॥ तब शिशु राजपुत्र पिता और माताको मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिराहुआ देखकर अत्यन्त दुःखित और क्षुधातुर हो हे पितः ! हे पितः ! मुझको अत्यन्त भूंख लगी है मुझको अन्न दीजिये ॥ ४५ ॥ हे मातः ! मेरी जिह्वा अत्यन्त सूखीजाती है मुझको भोजनकी सामग्री प्रदान करो यह कहकर वारंवार रोदन करनेलगा ॥ ४६ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः २१.

व्यासजीने कहा हे महाराज ! इसी अवसरमें अत्यन्त तपः प्रभावयुक्त विश्वामित्र अपना धन मांगनेके लिये अन्तकके समान कुपित हो वहां आनकर उपस्थित हुए ॥ ॥ १ ॥ राजा हरिश्चन्द्र उनको देखकर मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिरपड़े तब विश्वामित्रने उनके अंगमें जल सेचन करते करते कहा ॥ २ ॥ हे राजेन्द्र ! जो मनुष्य ऋण जालमें बँधा है उसको दिन दिन कष्ट बढ़ता है अतएव आप उठकर अपनी अंगीकार कीहुई दक्षिणा दीजिये ॥ ३ ॥ यद्यपि राजा तुषारशीतलजलसेचनसे चैतन्यताको प्राप्त हुए किन्तु विश्वामित्रको देखतेही ॥ ४ ॥ फिर मोहको प्राप्त हुए द्विजवर विश्वामित्र यह देखकर राजाको समझाय कोपके वशीभूत हो कहनेलगे ॥ ५ ॥ मुनिवर बोले हे महाराज यदि आप धैर्यके रक्षा करनेकी इच्छा करते हैं तो मुझको दक्षिणा दीजिये देखो सत्यके बलसेही सूर्य प्रकाशप्रदान करते हैं सत्यहीसे पृथ्वी स्थित है ॥ ६ ॥ अधिक क्या स्वर्ग भी सत्यमेंही प्रतिष्ठित रहता है अतएव सत्यकोही परमधर्ममें विराजमान जानना चाहिये सहस्र अश्वमेध यज्ञका फल और सत्य यदि तराजूमें रक्खा जाय ॥ ७ ॥ तो सहस्र अश्वमेध यज्ञकी अपेक्षा केवल सत्यहीका गुरुत्व अधिक होता है अथवा ऐसा कहनेका मेरा कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ ८ ॥ हे राजन् ! यदि आप मुझको दक्षिणा न देंगे तो सूर्यास्त होनेपरही मैं तुमको शापदूंगा इसमें सन्देह

नहीं ॥ ९ ॥ विश्वामित्र यह बात कहकर चलेगये और राजाभी अत्यन्त भयातुर हुए यद्यपि वह धनहीन नरपति विश्वामित्रके नृशंस वचनोंसे पीड़ित हुए किन्तु दक्षिणा देकर किसप्रकार सत्यकी रक्षा करैं उसकी चिन्तासे कातर हुए ॥ १० ॥ सूतजीने कहा हे ऋषिगण ! इसी समय कोई वेदपारग ब्राह्मणोंके सहित अपने गृहसे उस स्थानमें आया ॥ ११ ॥ तब रानी उस समागत तपस्वीको समीप देखकर राजासे धर्म और अर्थ संगत वचन कहनेलगी ॥ १२ ॥ हे स्वामिन् ! ब्राह्मण अपर तीनं-वर्णोंके पिता कहेगये हैं, अतएव पिताका द्रव्य पुत्र अवश्य ग्रहणकरसक्ता है इसमें सन्देह नहीं ॥ १३ ॥ इसलिये मेरा अभिप्राय यह है कि आप इस ब्राह्मणसे धन मांगिये राजाने कहा हे सुमध्यमे मैं क्षत्रिय हूं इससे प्रतिग्रह न करूंगा ॥ १४ ॥ हे कृशोदरि ! माँगना ब्राह्मणोंके पक्षमें विहित है क्षत्रियोंके पक्षमें वह निषिद्ध है ब्राह्मण सम्पूर्ण वर्णोंके गुरु हैं सुतरां सर्वदाही पूजनीय हैं ॥ १५ ॥ अतएव गुरुसे माँगना नहीं चाहिये विशेषकर क्षत्रियोंके पक्षमें वह अत्यन्त निषिद्ध है यद्यपि यजन अध्य-यन, दान, ॥ १६ ॥ प्रजापालन और शरणागतकी रक्षा करनाही क्षत्रियोंका परम धर्म है किन्तु "दो दो" यह दीनवचन क्षत्रियोंके पक्षमें कभी उचित नहीं है ॥ ॥ १७ ॥ हे देवि ! मेरे हृदयमें "देताहूं" यह वचन सदा विद्यमान रहता है अतएव मैं अन्य किसी स्थानसे धन उपार्जन करके ब्राह्मणको दूंगा ॥ १८ ॥ रानीनें कहा हे महाराज ! काल किसीको समान अवस्थामें रखता है अथवा किसीको विषम अवस्थामें पतित करता है कालही मान और अपमान देता है यह कालही फिर मनुष्योंको दाता और कभी याचक कर देता है ॥ १९ ॥ देखो अत्यन्त तपोबलयुक्त विश्वामित्र मुनिने सुपंडित होकर भी कुपित हो आपको राज्यच्युत और सुखभ्रष्ट कर परपीड़ाकरणस्वरूप धर्मबहिर्भूत कार्य किया है, इससेही आप कालका कार्य अवलोकन कीजिये ॥ २० ॥ राजाने कहा चाहै तीक्ष्णधारवाली असिसें जिह्वाके दो खण्ड करडालूं तथापि क्षत्रियाभिमान त्यागकर "दो दो" यह बात कभी नहीं कहसक्ता ॥ २१ ॥ हे महाभागे ! मैं क्षत्रिय हूं सुतरां किञ्चित्मात्रभी याचना नहीं करूंगा वरन अपने बाहुबलसे धनउपार्जन करके दूंगा यही बात मैं सदा करूंगा ॥ २२ ॥ रानीने कहा हे महाराज ! इन्द्रादि देवताओंने न्यायके अनुसार मुझको आपके हाथमें समर्पण किया है सुतरां मैं आपकी धर्मपत्नी हूं विशे-षकर शिक्षणीय और रक्षणीय हूं अतएव हे महाद्युते ! यदि मांगनेमें आपकी

इच्छा नहो तो मुझको बेचकर गुरुका धन दीजिये ॥ २३ ॥ २४ ॥ महीपति हरिश्चन्द्र इन वचनोंके सुननेसे अत्यन्त दुःखित हो हा कष्ट ! हा कष्ट ! ऐसा कहकर विलाप करने लगे ॥ २५ ॥ उनकी भार्याने फिर कहा हे राजन् ! इसके उपरान्त विप्रकी शापरूपी अग्निमें दग्ध होकर नीचत्वको प्राप्त होंगे अतएव इस समय मेरा वचन प्रतिपालन करो ॥ २६ ॥ आप द्यूतक्रीड़ामें मुग्ध अथवा मदसे मत्त वा भोगोंकी इच्छासे ज्ञानशून्य होकर अथवा राज्यकी विपदके कारण मुझको नहीं बेचते हो मुझको बेचकर गुरुको धन देते हो इसमें कुछ दोष वा पाप नहीं होसक्ता अतएव आप मुझको बेचकर अपने सत्यव्रतकी सफलता सम्पादन कीजिये ॥ २७ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषायां एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः २२.

व्यासजीने कहा हे महाराज ! राजपत्नी माधवीके राजा हरिश्चन्द्रको वारंवार अनुरोध करनेपर उन्होंने कहा हे भद्रे ! इस अवस्थामें निर्दय होकर तुमको बेचूंगा ॥ १ ॥ तुम्हीं ऐसे अति निष्ठुर वचन मुक्तकण्ठसे उच्चारण करनेमें कुण्ठित नहीं होती तो नृशंसभी जिसके करनेमें समर्थ नहीं होसक्ते मैं वही कर्म करूंगा ॥ २ ॥ यह बात कहतेही राजा अत्यन्त कातर हो पत्नीके सहित नगरमें गये इसके उपरान्त राजा हरिश्चन्द्र उस भार्याको राजमार्गमें खडाकर ॥ ३ ॥ बाष्पगद्गद कण्ठसे कहने लगे हे नगरनिवासियो ! तुम सम्पूर्ण हमारा वचन सुनो ॥ ४ ॥ किसीको क्या दासीका प्रयोजन है ? यह रमणी मेरे प्राणोंके अपेक्षा भी प्रिय हैं इसका मूल्य मैं जो कहता हूं इसके देनेको जिसकी सामर्थ्य हो तो वह उसको शीघ्र कहे ॥ ५ ॥ तब पंडितोंने कहा तुम कौन हो किसकारण अपनी स्त्रीको बेचनेके लिये इस स्थानमें आए हो राजाने कहा आप क्या हमारा परिचय पूँछते हैं ? तो सुनिये मैं नृशंस और मनुष्य कहनेके योग्य नहीं हूं ॥ ६ ॥ अथवा मैं राक्षस हूं अधिक क्या इसकी अपेक्षा भी कठिन हूं क्योंकि मैं ऐसे पापकार्यके करनेमें प्रवृत्तहूं व्यासजीने कहा हे महाराज ! विप्ररूपधारी कौशिक यह शब्द सुनतेही सहसा ॥ ७ ॥ वृद्धरूप धारणकर हरिश्चन्द्रसे कहनेलगे मैं अतुल ऐश्वर्यका अधिपति हूं सुतरां तुम्हारी इच्छानुसार धनदेनेमें

समर्थ हूं अतएव मैं धनसे दासीको मोल लेनेके लिये प्रस्तुत हूं तुम मुझको दासी दो मेरी भार्या अत्यन्त सुकुमारी है वह घरका कार्य नहीं करसक्ती अतएव मुझको यह दासी दो ॥ ८ ॥ ९ ॥ किन्तु तुमको कितना मूल्य देना होगा सो कहो विप्रके यह बात कहनेपर राजा हरिश्चन्द्रका ॥ १० ॥ हृदय दुःखसे विदीर्ण होगया इससे वह उससे कुछ न कहसके विप्रने कहा तुम अपनी भार्याकी वयस् रूप गुण और कर्मके ॥ ११ ॥ अनुसार धन ग्रहणकर इस अबलाको मेरे करमें समर्पण करो स्त्री और पुरुषके मूल्यका विषय शास्त्रमें जिसप्रकार देखा है ॥ १२ ॥ वह सुनो जो स्त्री कार्यमें निपुण सत्यस्वभाव गुणयुक्त और बत्तीस शुभलक्षणोंसे भूषित है उसका मूल्य करोड़ स्वर्णमुद्रा है और पुरुष ऐसा गुणयुक्त होनेसे उसका मूल्य अर्बुद (अरब) स्वर्णमुद्रा है ॥ १३ ॥ उस ब्राह्मणके ऐसे वचन सुनकर महीपति हरिश्चन्द्र अत्यन्त दुःखित हुए और उससे कुछ न कहसके ॥ १४ ॥ इसके उपरान्त वह ब्राह्मण नरपति हरिश्चन्द्रके सन्मुख वल्कलके ऊपर धन रखकर रानीके केशपाशग्रहणपूर्वक खेंचने लगा ॥ १५ ॥ रानीने कहा हे आर्य ! मैं एक वार पुत्रका मुखकमल देख लूं इससे मुझको एकवार छोड़दीजिये हे विप्र ! आप विचारकर देखिये कि फिर इसका दर्शन मुझको दुर्लभ होगा ॥ १६ ॥ हे पुत्र ! देखो तुम्हारी माता इस समय दासी भावको प्राप्त हुई हूं अतएव हे राजपुत्र ! तुम अब मुझको स्पर्श मत करो अब मैं तुम्हारे स्पर्शके योग्य नहीं हूं ॥ १७ ॥ तब माताको बालक सहसा आकर्षणकरता हुआ देखकर मा ! मा ! ऐसा कहकर अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे उसके पीछे पीछे दौडा ॥ १८ ॥ वह काकपक्षधारी बालक पद पदपर गिरने लगा तो भी दोनों हाथोंसे माताके वस्त्र खेंचकर उसके संग संग जाने लगा तब वह ब्राह्मण बालकका इसप्रकार कार्य देखकर क्रोधसे अधीर हो उसको प्रहार करने लगा ॥ १९ ॥ तथापि बालक मा ! मा ! कहकर रोदन करने लगा किसीप्रकार माताको न छोडा रानीने कहा हे प्रभो ! आप मेरे प्रति कृपाप्रकाश करके इस बालकको क्रय कीजिये ॥ २० ॥ यद्यपि आपने मुझको क्रय किया है किन्तु इस बालकके विना मैं आपका कार्य करनेमें समर्थ नहीं हूंगी मेरा भाग्य अत्यन्त मन्द है इससेही यह दुर्दशा उपस्थित हुई है अतएव हे प्रभो ! आप मेरे प्रति इस प्रकार अनुग्रहप्रकाश कीजिये ॥ २१ ॥ ब्राह्मणने कहा यह मुद्रा लेकर मुझको बालक प्रदान करो क्योंकि धर्मशास्त्रकुशल पंडितोंने स्त्री और पुरुषका

जिसप्रकार मूल्य स्थिर किया है ॥ २२ ॥ अन्यान्य पंडितोंने भी गुणोंके तारतम्य अनुसार शत सहस्र लक्ष और करोड इत्यादि मूल्यका भी प्रभेद किया है किन्तु जो स्त्री कार्यमें निपुण सुशील और गुणयुक्त एवं जिसके सम्पूर्ण शरीरमें बत्तीस शुभ लक्षण विराजमान हों ॥ २३ ॥ उस ललनाका मूल्य करोड स्वर्णमुद्रा है और जिस पुरुषके यह सम्पूर्ण शुभलक्षण और गुण विद्यमान हैं उसका मूल्य अर्बुद (अरब) स्वर्ण मुद्रा है सूतजीने कहा हे राजन् ! बालकका जो मूल्य स्थिर हुआ ब्राह्मणने वह स्वर्णमुद्रा पहलेके समान राजाके सन्मुख स्थितवल्कलपर पुनर्वार रखदी ॥ २४ ॥ और बालकको ले उसके सहित एकत्र बांध लिया तब वह ब्राह्मण आनन्दित हो उनको संग ले शीघ्र घरको गया ॥ २५ ॥ जानेके समय रानीने प्रदक्षिणाकर जानु टेककर राजाको प्रणाम किया और उसी अवस्थामें उठकर नेत्रोंके आंसुओंमें डूब दीनभाव होकर राजासे बोली ॥ २६ ॥ यदि जो मैंनें कभी दानकिया है. यदि कभी अग्निमें आहुतिप्रदान की है. यदि कभी ब्राह्मणको सन्तुष्ट किया है तो उसी पुण्यके बलसे राजा हरिश्चंद्र पुनर्वार मेरे भर्ता हों ॥ २७ ॥ अपने प्राणोंकी अपेक्षा प्यारी भार्याको पैरोंमें पड़ाहुआ देखकर राजा व्याकुल हो हाय ! हाय ! इसप्रकार कहकर विलाप करनेलगे ॥ २८ ॥ वृक्षकी छाया कभी उस वृक्षको नहीं छोड़ती परन्तु तुम यथार्थ ही सुशील और गुणयुक्त होकरभी क्यों मुझसे अलग हुई ॥ २९ ॥ भार्याके साथ इसप्रकारसे परस्पर सुसम्बन्ध बातचीत कर पुत्रसे कहा हे वत्स ! तुम मुझको छोड़कर कहां जावोगे ? ॥ ॥ ३० ॥ मैं इससमय कहांजाऊं अथवा कौन मेरा दुःख दूर करैगा फिर राजाने उस ब्राह्मणसे कहा कि हे द्विजवर ! पुत्रके वियोगसे मुझे जिसप्रकारका दुःख उपस्थित हुआ है राज्यत्याग अथवा वनवासमें मुझे ऐसा दुःख उपस्थित नहीं हुआ इस लोकमें स्वामि साधुस्वभाव होनेसे ही भार्याका सर्वदा सुखसे भरण पोषण करता है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ किन्तु हे कल्याणि ! मैं तुम्हारे प्रति ऐसा कुपित हूं कि तुमको छोड़कर दुःखसागरमें डालदिया, मैं इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्नहोकर समस्त राज्यसुखका आस्पद हुआ था ॥ ३३ ॥ परन्तु हाय ! तुम ऐसे पतिको प्राप्तकरकेभी इससमय दासी भावको प्राप्तहुई ! हे देवि ! मैं ऐसे विशाल शोकसागरमें निमग्न हुआ हूं कि ॥ ३४ ॥ अनेक प्रकारसे पुराणोंके आख्यान कहकर कौन मुझको छुड़ावेगा

१ स्त्रियोंके ३२ लक्षण विराटपर्वमें और पुरुषके ३२ लक्षण काशीखण्डमें लिखे हैं.

सूतजीने कहा हे राजन् ! वह ब्राह्मण उन राजाके सन्मुख ही देवीको दारुण कशा-घात ॥ ३५ ॥ करते २ ले जानेलगा, वह भूपाल भार्या और पुत्रको ऐसी अवस्थामें ले जाताहुआ देखकर ॥ ३६ ॥ दुःखसे अत्यन्त कातर हुए और वारंवार लंबे श्वास लेतेहुए विलाप करते २ कहने लगे हाय ! पहले जिसको चंद्र, सूर्य, वायु अथवा अन्य किसीने नहीं देखा ॥ ३७ ॥ मेरी वही प्रियतमा आज दीनभावको प्राप्त हुई हाय ! बालकके हाथकी उँगली सभी कैसी सुकुमार हैं हाय ! वह कुमार सूर्यवंशमें जन्म ग्रहण कर ॥ ३८ ॥ बेचागया ! अहो मेरी दुर्मतीको धिक्कार है हा प्रिये ! हा बालक रोहिताश्व ! इस अनार्यकी दुर्नीतिसे तुम्हारी यह दुर्गति हुई ॥ ३९ ॥ मैं दैवकी विडम्बनासे इस दुर्दशाको प्राप्त हुआ परन्तु तौ भी मेरी मृत्यु नहीं हुई ? मुझको धिक्कार है व्यासजीने कहा हे महाराज ! राजा इस प्रकार विलाप करनेलगे इसी समय वह ब्राह्मण ॥ ४० ॥ उनको लेकर अत्यन्त ऊंचे वृक्ष और अट्टालिका (अटारी) के द्वारा राजाकी दृष्टिसे अन्तर्धान होगया, इसी समय मुनिवर महातपा कौशिकश्रेष्ठ आये ॥ ४१ ॥ अपने शिष्योंको साथ ले अत्यन्त शीघ्र निष्ठुर क्रूर दर्शन ऋषि वहां आये विश्वामित्रने कहा हे महाबाहो ! जो आपने पहले राजसूयकी दक्षिणा कही है ॥ ४२ ॥ यदि सत्यका सन्मान करना आपका कर्त्तव्य है तो हे राजन् ! आप इस समय वह मुझको दीजिये हरिश्चंद्रने कहा कि हे राजर्षे ! मैं आपको प्रणाम करताहूं हे अनघ ! ॥ ४३ ॥ पहले राजसूय यज्ञकी जो दक्षिणा देनेको स्वीकार किया था आप वही दक्षिणा लीजिये।विश्वामित्रने कहा हे राजेन्द्र ! आप दक्षिणाके लिये जो स्वर्णमुद्रा देते हैं वह कहांसे संग्रह की?॥ ॥ ४४ ॥ यह अर्थ जिसप्रकार उपार्जन किया है वह मुझसे कहो ? राजाने कहा हे महाभाग ! हे अनघ ! इसके कहनेसे क्या है ॥ ४५ ॥ हे विप्र इसके कथनसे मेरा शोक बढ़ता है विश्वामित्रने कहा हे राजन् ! अन्यायपूर्वक उपार्जित धन मैं ग्रहण नहीं करूंगा यदि यह धन न्यायके अनुसार उपार्जित हुआ है तो वह मुझको प्रदान कीजिये ॥ ४६॥ किन्तु पहले धनके आनेका विषय मुझसे भलीभांति कहिये इसके उपरान्त वह मुझको दो हरिश्चंद्रने कहा हे विप्र ! अपनी भार्या देवी माधवीको करोड़ स्वर्ण मुद्रामें बेचा है ॥ ४७ ॥ और पुत्र रोहितको दसकरोड़ स्वर्णमुद्रामें बेचा है अतएव यह ग्यारहकरोड़ सुवर्णमुद्रा आप मुझसे लीजिये ॥ ४८ ॥ सूतजीनें कहा भार्या और पुत्रको बेचकर जो धन संचित किया था वह धन अत्यन्त सामान्य

था और राजाकोभी शोकसे अत्यन्त अभिभूत देखकर कौशिक रोषयुक्त हो कहने लगे ॥ ४९ ॥ हे राजन् ! राजसूययज्ञकी दक्षिणा इतनी सामान्य नहीं होसक्ती अतएव जिससे वह दक्षिणा पूर्ण हो उसके उपयोगी अन्य धन संग्रह कीजिये॥ ५०॥ हे क्षत्रियाधम ! यदि इस दक्षिणाकोही मेरे समान जानते हो तो पहले मेरी भलीभांति अनुष्ठित तपस्या अमल ब्रह्मण्य उग्र प्रभाव और शुद्धअध्ययनका विपुल बल शीघ्र अवलोकन कीजिये इसके उपरान्त दक्षिणा देना ॥५१॥५२॥ हरिश्चन्द्रने कहा हे भगवन् ! केवल इस पत्नी और बालकको बेचा है इस कारण आप कुछ कालतक प्रतीक्षा कीजिये मैं और भी धनसंग्रह करके आपको देता हूं ॥ ५३ ॥ विश्वामित्रने कहा हे नराधिप ! दिनका जो चौथा भाग शेष है मैं केवल इसकोही प्रतीक्षा करूंगा इसके उपरान्त फिर मुझको कुछ उत्तर न देसकोगे ॥ ५४ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः २३.

व्यासजीने कहा हे महाराज ! इसके उपरान्त महर्षि विश्वामित्र अत्यन्त कुपित हो उस दीन धर्मनिष्ठ राजाका इस प्रकार निर्दय और निष्ठुर वचनोंसे तिरस्कार कर वह एकादशकोटि परिमित सुवर्ण लेकर चले गये ॥ १ ॥ उन ऋषियोंके चलेजानेपर फिर राजा हरिश्चन्द्र शोकाकुल हो वारंवार लम्बे और ऊष्ण श्वास छोडते २ अधोमुख होकर ऊंचे स्वरसे कहने लगे॥२॥ मैं अत्यन्त दुःख और क्लेश भोगसे प्रेतरूप हुआ हूं तथापि धनसे मुझको मोल लेनेपर जो उपकार करै वह शीघ्र सूर्यास्तसे पहले मेरा उचित मूल्य स्थिर करै ॥ ३ ॥ इसके उपरान्त धर्म निर्दय चांडालका रूप धारणकर हरिश्चंद्रकी परीक्षा करनेके लिये शीघ्र उस स्थानमें आये उस अधम पुरुषका शरीर कृष्णवर्ण देखनेमें अत्यन्त भयानक उदर लम्बा दांत विशाल और मुखमंडल श्मश्रुपूर्ण हाथमें जर्जर वांसका दंड गलेमें शवास्थिमाला विराजमान और वक्षस्थल अत्यन्त विकृतभावयुक्त था ॥ ४ ॥ ५ ॥ चांडालने कहा मुझको भृत्यका अत्यन्त प्रयोजन है अतएव मैं तुमको दासत्वमें ग्रहण करूंगा तुम्हारा क्या मूल्य देना होगा वह अतिशीघ्र प्रकाश करके कहो ॥ ६ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! अत्यन्त दयाहीन क्रूरलोचन अतिदुष्टस्वभाव उस चांडालके ऐसे वचन कहनेपर फिर राजा हरिश्चंद्र उसकी ऐसी आकृति देखकर विस्मित हो कहनेलगे कि,

तुम कौन हो॥ ७॥ चांडालने कहा कि हे नृपवर! मैं प्रवीरनामक विख्यात चांडाल हूं तुमको सर्वदा मेरी आज्ञामें रहकर मृतकमनुष्यका वस्त्र ग्रहण करना होगा ॥ ८ ॥ तब राजाने उसके ऐसे वचन सुनकर कहा ब्राह्मण अथवा क्षत्री मुझको ग्रहण करैं, यही मेरी इच्छा है ॥ ९ ॥ देखो पंडितोंने कहा है कि उत्तमका धर्म उत्तम, मध्यमका धर्म मध्यम और अधमका धर्म अधर्म है इसकारण तुम अधम हो और मैं उत्तम हूं तुम्हारे घरमें मेरा धर्म कर्म नहीं चलसक्ता ॥ १० ॥ चांडालने कहा हे नृपसत्तम! यदि यही आपका आन्तरिक अभिप्राय था तो जो कोई "ब्राह्मण मुझको ग्रहण करै" यही बात तुमको कहनी उचित थी, परन्तु प्रकारान्तरमें मिथ्या कहकर तुमने अधर्म किया तो किया तो किसलिये आपने विचार न करके केवल मेरे सामने इस बातका उल्लेख किया था? ॥ ११ ॥ जो हो जो मनुष्य प्रथम विचारकर अपना अभिप्राय प्रकाश करता है, वही पुरुष अभीष्ट प्राप्तकरता है, परन्तु हे अनघ! आपने विचार न करके सामान्य वार्त्ता कही ॥ १२ ॥ यदि आपकी वह बात सत्य है तो आप मेरेही गृहीत हुए इसमें संदेह नहीं हरिश्चंद्रने कहा जो नराधम असत्य व्यवहार करता है वह शीघ्र भयंकर नरकमें जाताहै ॥ १३ ॥ इसकारण असत्य व्यवहारकी अपेक्षा मुझे चांडालपना श्रेष्ठ है व्यासजीने कहा कि, हे महाराज! राजा यह बात कहही रहे थे कि, इसीसमयमें तपोधन विश्वामित्रजी उस स्थानमें आये ॥ १४ ॥ वह क्रोध और अमर्षके वश हो घूर्णित नेत्र कर राजासे बोले कि यह चांडाल तुम्हारी इच्छानुसार धन देनेको उपस्थित है ॥ १५ ॥ तब किसलिये अब मुझको यज्ञकी शेष दक्षिणा नहीं देते? हरिश्चंद्र बोले कि, हे कौशिक! कोई विषय आपसे छिपा नहीं है मेरा यह देह सूर्यवंशसे उत्पन्न हुआ है ॥ १६ ॥ इसकारण धनकी इच्छासे किसप्रकार चांडालका दास होना स्वीकार करूं! विश्वामित्रने कहा कि यदि चांडालको अपनेको बेचकर मुझको ॥ १७ ॥ धन न दोगे तो निश्चय जानों कि मैं तुमको अभी शाप देदूंगा चांडालसे हो अथवा ब्राह्मणसे हो मेरी दक्षिणाका धन अभी दो क्योंकि चांडालके अतिरिक्त और कोई धन देनेवाला यहां नहीं है, परन्तु हे राजन्! विना धन लिये नहीं जाऊंगा॥ १८॥ १९॥ हे नरपते! यदि इससमय पहले कहाहुआ धन नहीं दोगे तो दिनकी आधी घड़ी शेष रहतेमें तुमको कोपानलमें भस्म करूंगा ॥ ॥ २० ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज! राजा हरिश्चंद्र विश्वामित्रके ऐसे वचन सुन

कर मृतकके समान होगये, फिर भयसे व्याकुल हो प्रसन्न हूजिये, इस प्रकार कहकर ऋषिके दोनों चरणोंको पकड़लिया ॥ २१ ॥ हरिश्चन्द्रने कहा हे विप्रर्षे! मैं दीन और अत्यन्त कातर हुआ हूं और विशेष करके मैं आपका भक्त दास हूं इसकारण आप प्रसन्न होकर मुझको क्लेश कर चांडालके सहवाससे छुड़ाइये ॥ ॥ २२ ॥ हे मुनिवर! शेष धनके बदलेमें मैं आपका कार्य करूंगा अधिक क्या मैं आपका आज्ञानुवर्ति सेवक होकर आपके चित्तका अनुगामी हूंगा ॥ २३ ॥ विश्वामित्रने कहा हे महाराज! तो तुम मेरे किंकर हुए हे नराधिप! इससमय सर्वदाही तुमको मेरे वचन प्रतिपालन करने होंगे ॥ २४ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज! विश्वामित्रके यह वचन कहनेपर राजा अत्यन्त हर्षसे अपना पुनर्जन्म जान कौशिकसे कहनेलगे ॥ २५ ॥ मैं सदा आपकी आज्ञा पालन करूंगा इससमय आपका क्या कार्य साधन करूं सो कहिये ॥ २६ ॥ तब विश्वामित्र चांडालको बुलाकर बोले कि हे चांडाल! मेरे निकट आ और इस दासका जो मूल्य है वह मुझको दे मैं इस समय इस दासको तेरे हाथमें समर्पण करताहूं तू मूल्य देकर इसको ले ॥ २७ ॥ मुझको केवल धनहीका प्रयोजन है सेवककी कुछ आवश्यकता नहीं व्यासजीने कहा हे महाराज! विश्वामित्रकी यह बात कहनेसे श्वपचका हृदय आनंदरससे पूर्ण होगया ॥ २८ ॥ तब वह शीघ्र विश्वामित्रके निकट आकर कहनेलगा। चांडाल बोला कि, हे द्विजसत्तम! आपने इसको बेचा इससे आपको प्रयागमंडलकी दशयोजन विस्तारवाली भूमि ॥ २९ ॥ रत्नमयी आपको दूंगा, इसको देकर आपने मेरा क्लेश निवारण किया है ॥ ३० ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज! जब चांडालने एकहजार मणि, एक हजार मोती और एकहजार सुवर्ण मुद्रा देदी तब विश्वामित्रने भी उनको ग्रहण किया ॥ ३१ ॥ उस समय महात्मा हरिश्चन्द्रके मुखमंडलपर कुछभी विकार दिखाई नहीं दिया वरन उन्होंने धैर्य धारणकर स्थिर किया कि इस समय विश्वामित्र ही मेरे प्रभु हैं॥ ३२॥ अतएव उन्होंने मुझको जिस कार्यमें नियुक्त किया है मुझको वही करना चाहिये, इसी समयमें सहसा अशरिणी वाणी आकाशसे सुनाई दी ॥ ३३ ॥ हे महाभाग! तुम इस अंगीकार कीहुई दक्षिणाको देकर ऋणसे छूटगये, फिर स्वर्गसे राजाके मस्तकके ऊपर फूलोंकी वर्षा होनेलगी ॥ ३४ ॥ इसी समय महातेजस्वी इन्द्रादिदेवता "साधु साधु" कहकर राजाकी प्रशंसा करनेलगे तब राजाने अत्यन्त हर्षित हो

विश्वामित्रसे कहा ॥ ३५ ॥ राजा बोले हे महामते! आपने जो अर्थदायसे छुड़ाकर क्षणमात्रमेंही मुझको ऋणविहीन किया है, इसकारण आप हमारे पिता माता और बंधुओंकी अपेक्षा भी हितकारी हैं ॥ ३६ ॥ हे महाबाहो! आपके वचनही श्रेष्ठ हैं, इसकारण अब क्या करूं सो आज्ञा दीजिये, राजाकी यह वार्त्ता कहनेपर फिर विश्वामित्रने उनसे कहा ॥ ३७ ॥ मुनि बोले अबसेही तुम चांडालके वचन प्रतिपालन करो, तुम्हारा मंगल हो यह बात कहकर महर्षि विश्वामित्र उस चांडालके दिये धनको ग्रहणकर अपने आश्रममें चले गये ॥ ३८ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः २४.

शौनकजी बोले कि हे सूतश्रेष्ठ! राजा हरिश्चन्द्रने चांडालके घर जाकर फिर क्या कार्य किया वह आप शीघ्र मुझसे विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ सूतजी बोले हे विप्रवर! विश्वामित्रके चले जानेपर चांडालका मन प्रसन्न होगया, उसने विश्वामित्रको इतने रत्न दिये थे, इसकारण वह नरपतिको बांधकर ॥ २ ॥ तैंने असत्य मार्गमें पैर रक्खा है, यह कहकर दंडसे प्रहार करने लगा, राजा एक तो इष्टजनोंके बियोगसे कातर हुए थे फिर तिसपर भी चांडालका दंडघात इस कारण इन प्रहारोंसे वह अत्यन्त कातर हुए और इनकी इन्द्रियें अत्यन्त शिथिल होगईं ॥ ३ ॥ बांधववियोगका दुःख हुआ चांडालने ऐसी अवस्थासे राजाको अपने घर लाय शृंखलामें बांधकर रक्खा, इसके उपरान्त स्वयं क्लेश दूरकर निद्राका सुख अनुभव करने लगा ॥ ४ ॥ राजा चांडालके घर बेडियोंसे बंधे वास करने लगे परन्तु उसका अन्न जल ग्रहण न किया, वारंवारही केवल स्त्री पुत्रादिके निमित्त अनुताप करनेलगे ॥ ५ ॥ वह कृशाङ्गी सन्मुख पुत्रका मलीन वदन देखकर दुःखसे मुझको स्मरण करती होगी, वह अत्यन्त दुःखित होकर जानती होगी कि राजा धन प्राप्त होनेपर भी मुझे दासत्वसे छुड़ावेंगे ॥६॥ जब वह धन उपार्जन कर ब्राह्मणको देचुकेंगे तब रोतेहुए पुत्रको देख मुझे समझावैं गे ॥ ७ ॥ मैं पिताके समीप जाताहूं इस प्रकारसे रोतेहुए बालकको और तात तात करते हुएको समझावेगी ॥ ८ ॥ वह मृगशावकलोचनी यह नहीं जानती कि मैं चांडाल होगया, मेरा राज्यनाश सुहृद्वियोग भार्यापुत्रका विक्रय हुआ ॥ ९ ॥ और इससमय चांडालके दासत्व

शृंखलमें बँधना पडा. हाय! एकवारही क्लेशपर क्लेश मुझको सतारहे हैं राजाने इस प्रकारसे वारंवार भार्या और पुत्रको स्मरण कर ॥ १० ॥ चांडालके घरमें वास कर क्रमानुसार चार दिन व्यतीन किये, पांचवें दिन चांडालने वहां आय बंधनसे राजाको छोड ॥ ११ ॥ क्रोधित हो निष्ठुर वचनोंसे राजाको वारंवार भर्त्सना कर कहा कि तुम श्मशानमें जाकर मरेहुए मनुष्योंका वस्त्र ग्रहण करो ॥ १२ ॥ काशीके दक्षिण स्थानमें एक बडा भारी श्मशान है तुम वहां जाकर उस श्मशानकी रक्षा करो और न्यायके अनुसार जो मुझको मिलताहै वह किसीपर मत छोडो १३ ॥ तुम यह जर्जर दंड लेकर शीघ्र वहां जाओ मैं वीरबाहुका दूत हूं और उनकाही यह दंड है यह बात कहकर सम्पूर्ण स्थानोंमें घोषण करो ॥ १४ ॥ सूतजीने कहा हे ऋषिगण! इस प्रकारसे एक समय राजा हरिश्चन्द्र चांडालके वशवर्ती हो श्मशानमें मृतक मनुष्योंके वस्त्र लेनेके कार्यमें नियुक्त हुए ॥ १५ ॥ जब उस मृतक मनुष्योंका वस्त्र लेनेवाले चांडालने राजाको इस प्रकार कार्यमें नियुक्त किया तब वह उसकी आज्ञानुसार श्मशानमें गये ॥ १६ ॥ यह श्मशान काशीपुरीके दक्षिणभागमें स्थित है, उसके स्थान स्थानमें शवमाल्य विखरी हुई हैं उसके चारों ओर दुर्गन्ध और धूम परिपूर्ण है ॥ १७ ॥ उस स्थानमें कितनीही शिवा भ्रमण करती हैं उनके घोर शब्दसे वह प्रेतभूमि प्रतिध्वनित होती है कहीं गृध्र कहीं गोमायु कहीं कुकुरगण शवदेह लेकर खैंचते हैं ॥ १८ ॥ स्थान स्थानमें ढेरके ढेर अस्थियोंके लगे हुए हैं शवसमूहोंकी दुर्गन्धसे श्मशानभूमि परिपूर्ण है, कहीं अग्निमध्यस्थित अर्द्धदग्ध शवमुखके दांत निकालकर ॥ १९ ॥ मानों विकट हास्य करते हैं कि सम्पूर्ण देहोंकी अग्निमें दग्ध होकर यही दुर्दशा होती है वहां अनेक मनुष्योंके मृतक देह लाये जाते हैं और उनके सुहृद्वर्ग आर्त्तनादसे भयानक कोलाहल करते हैं ॥ २० ॥ कोई हावत्स ! हा पुत्र ! तुम हमको छोडकर कहां चले गये? कोई हा मित्र ! तुमने हमको छोडकर कहां प्रस्थान किया ? कोई हा बन्धो ! तुमने हमको छोड़ दिया! कोई हा भ्रातः तुमने आज हमको त्यागदिया! कोई हाभागिनेय ? तुमभी क्या आज हमको छोड़गये कोई हा माननीय मातामह ! कोई हा मातुल ! ॥ २१ ॥ कोई हा पितामह ! कोई हा पितः ! कोई हा पौत्र ! कोई हा बांधव ! तुम आज कहां चलेगये एकवार आनकर हमको दर्शन दो इसप्रकार प्राणियोंके भयंकर शब्दसे श्मशानभूमि परिपूर्ण होती थी ॥ २२ ॥ मांस चर्बी और वसादि अग्निमें दग्ध हो शोःशो शब्द फैलातीहुई

उस स्थानमें व्याकुलता करती है उस स्थानमें अग्निका भयंकर चट्चट् शब्द होरहा है ॥ २३ ॥ इसप्रकार उस श्मशानका दृश्य कल्पांतकालके समान अत्यन्त भीषण था, राजा हरिश्चंद्र वहां जाकर अत्यन्त दुःखके कारण इस प्रकारसे शोक करनेलगे ॥ २४ ॥ हा मंत्रीगण ! हा भृत्यगण ! तुम सब इस समय कहां हो ! हाये हमारा वंश परम्पराका राज्य कहां है ? हा पुत्र ! हा प्रेयसी ! तुम इस हतभाग्यको छोड़कर ॥ २५ ॥ ब्राह्मणके कोपवशसे किस दूरस्थानमें चलीगई हो धर्मके विना मनुष्य कभी सुख प्राप्त नहीं करसक्ते ॥ २६ ॥ इस कारण पुरुष यत्नसहित केवल धर्मकाही उपार्जन करै राजा वारंवार इस प्रकारकी चिन्ता करके अन्तमें चांडालका वचन स्मरण कर ॥ २७ ॥ मलीन अंग किये शवके ढूंढ़नेको गये दुश्चिन्ताके कारण उनकी अंगयष्टि यष्टिके समान शीर्ण होगई थी परन्तु तौभी राजा हरिश्चन्द्र इधर उधर घूमकर ॥ २८ ॥ इस शवका शत मुद्रा मूल्य प्रथम मेरे हस्तगत होगा इस मूल्यमें यह राजाका यह मेरा और यह चांडालका ॥ २९ ॥ सदा इसप्रकारकी चिन्ता करते अत्यन्त दुरवस्थाको प्राप्त हुए सौ ग्रन्थीकी एक पुराने वस्त्रकी कंथा पहरे थे ॥ ३० ॥ मुख बाहु उदर चरण सब अंग भस्म और धूलिसे व्याप्त थे अनेकविध वसा मेद मज्जासे पैरकी अंगुलीमें लिप्त होनेसे श्वास लेते ॥ ३१ ॥ अनेक जातिवाले मृतकोंके निमित्त जो अन्न पक्क होता है उसीसे क्षुधा निवृत्त करते उनकी माला शिरमें धरते ॥ ३२ ॥ रात्रि अथवा दिनमें नहीं सोते केवल हांय ! हाय ! शब्द करके सदा लंम्बे श्वांस छोडते इसप्रकार उन्होंने सौ वर्षके समान बारह महीने बिताये ॥ ३३ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोध्यायः २५.

सूतजीने कहा इधर कुमार रोहिताश्व एक दिन काशीके कुछेक दूर खेलनेके लिये बालकोंके सहित बाहर निकला ॥ १ ॥ प्रथम बालकोंके संग खेला इसके उपरान्त अग्रभागयुक्त सहमूल कोमल कुशाओं और समिधोंको अपनी शक्तिके अनुसार ग्रहण करने लगा ॥ २ ॥ बालकोंके यह कारण पूछनेपर रोहिताश्वने समान अवस्थावाले मित्रोंसे कहा मेरे प्रभु ब्राह्मण हैं उनकीही प्रसन्नताके लिये यह ग्रहण किये हैं, उनसे यह बात कह यज्ञीयलक्षणवाली समिध अनलसंदीपक काष्ठ दोनों हाथोंसे

मंत्रसहित संग्रह करने लगा ॥ ३ ॥ फिर अग्निमें होम करनेके लिये लाया हुआ पलाशकाष्ठ और पूर्वोक्त द्रव्य सम्पूर्ण एकत्रकर उस भारको यत्नसहित मस्तकपर उठालिया परन्तु प्रत्येकपदमें पीडित होनेलगा ॥ ४ ॥ तब वह बालक प्याससे दुःखित हो जलके निकटस्थानमें जाय पृथ्वीपर भार डाल जल पानकरनेकेलिये जलाशयमें उतरा ॥ ५ ॥ वहां इच्छानुसार जलपान कर मुहूर्त्तभर विश्रामके उपशान्त ज्योंहीं बँबईके ऊपर उस भारको रखकर फिर मस्तकपर उठानेके लिये उसका उद्योग किया ॥ ६ ॥ कि उसीसमय विश्वामित्रकी आज्ञासे प्राणियोंको भयावह अत्यन्त घोरदर्शन महाविष महाकाय एक कृष्णवर्ण सर्प उस बँबईसे अकस्मात् बाहर निकला ॥ ७ ॥ इस सर्पने निकलतेही बालकको डसलिया उस बालकने पृथ्वीपर गिरकर तत्काल प्राण त्याग किया. उसके मित्रभी रोहिताश्वको मराहुआ देखकर ब्राह्मणके घर गये ॥ ८ ॥ फिर बालक भयसे उद्विग्न हो शीघ्र उसकी माताके निकट उपस्थित हो कहनेलगे हे विप्रदासी! तेरा पुत्र हमारे साथ खेलनेको बाहर गया था ॥ ९ ॥ परन्तु अकस्मात् उस स्थानमें कालसर्पके काटनेसे मरगया. रोहिताश्वकी माता गिरेहुए वज्रके समान ॥ १० ॥ कठोर वचन सुनतेही जडकटे हुए केलेके समान पृथ्वीपर गिरपड़ी, उसी समय ब्राह्मणने अतिरुष्ट हो उसके मुखपर जलसेचन किया ॥ ११ ॥ फिर उसके क्षणकालमें चेतना प्राप्त करनेपर ब्राह्मणने क्रोधित होकर उससे कहा ब्राह्मण बोला हे दुष्टे! रात्रिमें रोना अत्यन्त निन्दनीय है क्योंकि इससे अलक्ष्मीका आविर्भाव होता है ॥ १२ ॥ यह जानकर भी तू क्यों रोदन करती है तेरे हृदयमें क्या कुछभी लज्जा नहीं है? ब्राह्मणके इसप्रकार कहनेपरभी उसने उनको कुछ उत्तर न दिया ॥ १३ ॥ वरन् पुत्रशोकसे अत्यन्त कातर हो करुणास्वरसे रोदन करने लगी तिसकाल उसका शरीर धूलिमें घुसा हुआ बाल बिखर गये और मुख नेत्रोंके जलसे भीग गया वह शोकसे वारंवार कातर हो करुणास्वरसे रोदन करने लगी ॥ १४ ॥ तब उस ब्राह्मणने क्रोधित होकर उस राजपत्नीसे कहा कि रे दुष्टे! तुझको धिक्कार है मैं तुझे मूल्य देकर मोल लाया हूं तौभी तू मेरे कार्यमें हानि करती है ॥ १५ ॥ यदि तू मेरा कार्य न कर सक्ती तो क्यों व्यर्थ मेरा धन ग्रहण किया उस ब्राह्मणके वारंवार इस प्रकार निष्ठुर वचनोंसे तिरस्कार करनेपर ॥ १६ ॥ उसने करुणा स्वरसे रोदन करते गद्गद हो ब्राह्मणसे कहा हे स्वामिन्! मेरा बालक पुत्र सर्पके काटनेसे

मरगया है ॥ १७ ॥ हे सुव्रत ! मैं उसको फिर न देखसकूंगी अतएव मैं उस बालक पुत्रको देखनेके लिये जाऊंगी आप कृपा करके शीघ्र मुझको आज्ञा दीजिये ॥ १८ ॥ यह बात कहकर वह बाला फिर करुणास्वरसे रोदन करने लगी, ब्राह्मणभी महाक्रोधित हो फिर राजपत्नीसे कहनेलगा ॥ १९ ॥ ब्राह्मण बोले हे शठे ! तेरा आचरण अत्यन्त दूषणीय है, किससे पातक होता है उसको नहीं जानती जो मनुष्य प्रभुका धन ग्रहण कर उसका कार्य नहीं करता है ॥ २० ॥ वह घोर रौरव नरकमें पड़ता है वह अल्पकाल नरकमें वासकर फिर मुरगेकी योनिको प्राप्त होता है ॥ २१ ॥ अथवा इस धर्मशास्त्रके उपदेश देनेका मेरा कुछ प्रयोजन नहीं है क्योंकि जो मनुष्य मूर्ख, क्रूर, नीच, शठ और मिथ्यावादी तथा पापकार्यमें रत है ॥ २२ ॥ उससे इस प्रकारके वचन कहने ऊषरभूमिमें बीज बोनेके समान निष्फल है अतएव यदि तुमको परलोकका भय हो तो इस समय आनकर घरका कार्य करो ॥ २३ ॥ वह यह सुनकर कंपित हो ब्राह्मणसे बोली कि हे प्रभो ! आप प्रसन्न हूजिये और दासीके ऊपर प्रसन्न होकर कृपा प्रकाश कीजिये ॥ २४ ॥ मैं एकवार उस मृतक बालकको देखने जाऊंगी अतएव आप मुहूर्तकालके लिये मुझको भेजदीजिये, वह बाला पुत्रशोकसे ऐसी कातर होगई थी कि यह बात कह ब्राह्मणके पैरोंमें मस्तक रख ॥ ॥ २५ ॥ करुणास्वरसे रोदन करने लगी तब वह कुपित विप्र क्रोधसे लाल २ नेत्रकर उससे कहनेलगा ॥ २६ ॥ ब्राह्मण बोले तेरे पुत्रसे मेरा क्या प्रयोजन सिद्ध होगा ? मेरे क्रोधको क्या तू नहीं जानती ? मेरा कशाघात क्या तू भूलगई अतएव शीघ्र मेरे गृहकार्यमें तत्पर हो ॥ २७ ॥ उसके इस प्रकारके वचन सुनकर राजमहिषी धैर्य अवलम्बन कर गृहकार्य करने लगी उस ब्राह्मणके पैर दबाते २ राजपत्नीको आधी रात बीतगई ॥ २८ ॥ उस कार्यके समाप्त होनेपर ब्राह्मणने उससे कहा अब तू पुत्रके निकट जा परन्तु उसका दाहादिकार्य सम्पादनकर शीघ्र इस स्थानमें आ ॥ २९ ॥ देखो ! मेरे प्रातःकालके गृहकार्यमें कुछ हानि न हो, परन्तु राजपत्नी उसकी आज्ञा पाय अकेली विलाप करते २ रात्रिकालके समय पुत्रके समीप गई ॥ ३० ॥ क्रमानुसार काशीके बहिर्भागमें उपस्थित होकर देखा कि उसका पुत्र दरिद्रके समान पृथ्वीमें काष्ठ और तृणके ऊपर पड़ा है अपने पुत्रको मृतक अवस्थामें देखकर वह दीन राजमहिषी यूथभ्रष्ट मृगी और वत्सहीन गायके समान शोकातुर हुई ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ तब राजपत्नी माधवी

अत्यन्त दुःखित हो अति कातरस्वरसे इसप्रकार रुदन करनेलगी हा पुत्र! तुम एक-वार मेरे सन्मुख आओ किस कारणसे तुमको क्रोध हुआ सो मुझसे कहो ॥ ३३ ॥ हा वत्स! तुम जो वारंवार मा मा कहकर सदा मेरेपास आते तो इस समय क्यों नहीं आते यह बात कहते २ डगमगाते पैरोंसे जाय मूर्च्छित हो उसके ऊपर गिरपडी ॥ ३४ ॥ फिर वह चैतन्यताको प्राप्तहोकर दोनों हाथोंसे पुत्रको आलिंगनकर उसका मुख चूम कातरस्वरसे रोने लगी ॥ ३५ ॥ हा पुत्र! हा वत्स! हा कुमार! हा सुन्दर! इस प्रकार कहकर रुदन और मस्तक तथा वक्षःस्थलमें कराघात करनेलगी ॥ ३६ ॥ हे राजन्! तुम कहां हो? तुम जिस अपने पुत्रको प्राणोंकी अपेक्षा भी अधिक जानते थे तुम्हारा वही पुत्र आज मृतक अवस्थामें पृथ्वीपर पड़ा है एकवार आनकर देखो ॥ ३७ ॥ ज्ञात होता है कि पुत्र अभी जीवित है यह विचारकर उसका मुख देखने लगी, परन्तु जब उसका वदन निर्जीव जाना तब तत्काल फिर मूर्च्छित होगई ॥ ३८ ॥ फिर शीघ्रही संज्ञाको प्राप्तकर दोनों हाथोंसे उसका वदन ग्रहण कर उससे कहने लगी, हे वत्स! निद्रा त्यागनकर शीघ्रही जागरित होजाओ अब भीषण ॥ ३९ ॥ रात्रि उपस्थित है इस समय शतशत शिवाका घोर शब्द सुनाई आता है इस समय क्या भूत क्या प्रेत पिशाच और डाकनियोंके यूथके यूथ हूँहूँकार शब्द करतेहुए भ्रमण करते हैं ॥ ४० ॥ तुम्हारे मित्र सूर्य अस्त होतेही चलेगये तुम क्यों इस समय अकेले इस स्थानमें रहगये हो सूतजीने कहा यह कह वह कृशाङ्गी राजमहीषी फिर करुणा स्वरसे रोदन करने लगी ॥ ४१ ॥ हा शिशो! हा बाल हा रोहिताश्व! हा वत्स! हा कुमार! हा पुत्र! तुम क्यों मुझको उत्तर नहीं देते ॥ ४२ ॥ हे वत्स! मैं तुम्हारी जननी हूं यह तुम क्या नहीं जानते, एकवार मेरी ओर देखो हे पुत्र! मैं राज्यसे च्युत और अपने देशसे निकलआई हूं मेरे स्वामीने भी अपना देह पर्यन्त बेंच डाला है॥ ४३॥ मैं स्वयं दासी हो गई हूं ऐसी अवस्थामें कौन प्राणी जीवन धारण करनेमें समर्थ होगा केवल तुम्हारा मुख देखकरही जीवित रहती थी तुम्हारे जन्म कालके समय ब्राह्मणोंने जो भविष्यत् वचन कहे थे अब तो वह कुछभी दिखाई नहीं देते ॥ ४४ ॥ उन्होंने कहा था कि यह बालक शूरवीर दीर्घायु दाता और देव ब्राह्मण तथा गुरुजनोंकी पूजामें तत्पर होगा अधिक क्या भूमंडलका एकमात्र अधी-श्वर होकर पुत्र और पौत्रोंके सहित राज्यसुख अनुभव करेगा ॥ ४५ ॥ यह पुत्र

जितेन्द्रिय होकर मातापिताका प्रियकार्य साधन करेगा, हा पुत्र! अब सम्पूर्ण वातेंही मिथ्या हुईं॥ ४६॥ हा पुत्र! चक्र, मत्स्य, आतपत्र, श्रीवत्स, स्वस्तिक, ध्वज, कलश और चमर इत्यादि सम्पूर्ण चिन्हही तुम्हारी हथेलीमें विद्यमान हैं हे सुत! इनके सिवाय अन्यान्य सम्पूर्ण ॥ ४७ ॥ शुभ लक्षणभी तुम्हारे पैरोंके नीचे तलुओंमें विराजमान हैं, परन्तु आज वह सभी क्या व्यर्थ होगये ॥ ४८ ॥ हा वत्स! तुम पृथ्वीके अधीश्वर हो परन्तु तुम्हारा वह राज्य, वह मंत्रीलोग, वह सिंहासन, वह छत्र, वह रङ्ग, वह विपुलधन ॥ ४९ ॥ वह अयोध्यानगरी, वह शोभायमान अटारियें वह गज, अश्व, रथ और वह प्रजावर्ग आज कहां है हा पुत्र! इस समय इन सब और माताको छोड़कर तुम कहां चलेगये ॥ ५० ॥ हा कान्त! हा नाथ! आकर इस समय अपने पुत्रको देखो जो पुत्र अतिबाल्यावस्थामें विचरण करते २ कुंकुमविलेपित तुम्हारा विशाल वक्षःस्थल ॥ ५१ ॥ अपने शरीरको रजःपंकसे मलीन किया करता था हा नरनाथ! हे भूपते! जो पुत्र तुम्हारी गोदीमें जाकर बाल्यस्वभावके अज्ञानवशसे मृगनाभिरचित तुम्हारे ॥ ५२ ॥ माथेपरका तिलक मलदेता आज उस पुत्रकी अवस्था देखो आहा! पहले मैं धूलिलिप्त जिसके मुखको चूमती थी ॥ ५३ ॥ आज उसी मुखपर मक्खियें बैठती हैं कीट दंशनकरते हैं हाय! यहभी मैं अपनी आंखोंसे देखती हूं हे राजन्! तुम्हारा वह पुत्र दरिद्रकी समान मृतकअवस्थामें भूशय्यापर शयन कररहा है तुम एकवार आनकर देखो ॥ ५४ ॥ हा देव! मैंने जन्मान्तरमें क्या कार्य किया है कि इस लोकमें उस कर्मके फलके पार पानेका उपाय नहीं देखती ॥ ॥ ५५ ॥ हा पुत्र! हा शिशो! हा वत्स! हा कुमार! हा सुन्दर! अब कहींभी क्या तुमको नहीं देखूंगी राजमहिषी माधवी इसप्रकार अनेकप्रकारके विलाप करनेलगी नगरपाल उसके इसप्रकारसे विलापकी ध्वनिको सुनकर ॥५६॥ जागगये और अत्यन्त विस्मित हो शीघ्र उसके निकट जाय पूछनेलगे नगरवासी बोले कि तू कौन है यह किसका पुत्र है तेरा पति कहां है॥५७॥ तू अकेली निर्भय रात्रिकालके समय क्यों इस स्थानमें रोदन करती है, उनके इसप्रकार पूछनेपरभी इस कृशाङ्गी राजमहिषीने कुछ उत्तर न दिया ॥ ५८ ॥ फिर पूछनेपरभी वह कुछ न बोली, परन्तु कुछ कालोपरान्तही अत्यन्त दुःखसे कातर हो विलाप करनेलगी, शोकसे उसके दोनों नेत्रोंसे प्रबल अश्रुधारा वहनेलगी ॥ ५९ ॥ अनन्तर मनुष्य उसके ऊपर संदेहकर

शंकित हुए, यही क्या बरन् त्राससे उनकें सब अंग रोमांचित होगये, तब वह सम्पूर्ण शस्त्र निकालकर परस्पर कहनेलगे ॥ ६० ॥ यह स्त्री जब कि कुछ उत्तर नहीं देती तो यह कभी स्त्री नहीं है, ऐसा बोध होता है कि कोई मायावी बाल-घातिनी राक्षसी होगी, इस कारण यत्नसहित इसको मारना उचित है ॥ ६१ ॥ यदि राक्षसी न होती तो क्यों रात्रिके समय इस नगरके बाहरी भागमें स्थिति करती यह राक्षसी किसी बालकको भक्षण करनेके निमित्त इस स्थानमें लाई है, इसमें संदेह नहीं ॥ ६२ ॥ यह बात कह उन्होंने शीघ्रही उसके केशोंको दृढ़रूपसे पकड़कर हे राक्षसि! कहाँ जाती है? इसप्रकार कह किसीने उसका हाथ और किसीने उसकी गरदन पकड़ ली ॥ ६३ ॥ तब उन असंख्य अस्त्रधारी पुरुषोंने बलपूर्वक उसे चांडालके घर ले जाकर चांडालके हाथमें समर्पण किया ॥ ६४ ॥ सबने मिलकर कहा कि हे चांडाल! आज नगरके प्रान्तभागमें इस बालकघातिनी राक्षसीको पकड़ा है, अतएव तुम बाहर वधभूमिमें लेजाकर इसको शीघ्र मारो ॥ ६५॥ चांडालने उसके शरीरको देखकर कहा कि यह राक्षसी इस लोकमें विख्यात है मैं इसको पहलेसेही जानता हूं परन्तु इसको कभी कोई नहीं देखता इस मायावीने साधारण मनुष्योंके अनेक बालक ॥ ६६ ॥ भक्षण किये हैं इसके मारनेसे तुमको बहुत पुण्य होगा और इस लोकमें तुम्हारी सुकीर्ति सर्वदा विख्यात रहैगी इस समय तुम अपने २ घरोंको जाओ ॥ ६७ ॥ जो मनुष्य स्त्री, बालक, गौ और ब्राह्मणकी हत्या करता है जो सोना चुराता और आग लगाता है जो मनुष्योंका गमनमार्ग विलुप्त करता है जो गुरुपत्नीहरण ॥ ६८ ॥ साधुजनोंके सहित विरोध और सुरापान करता है उसके मारनेसे पुण्य होता है स्त्रीलोक अथवा ब्राह्मणभी यदि इसप्रकार पापकार्यमें लिप्त हों तोभी उसके मारनेमें कुछ दोष नहीं होता ॥ ६९ ॥ अतएव इसको मारना मेरा अवश्य कर्त्तव्य है चांडालने यह बात कहकर उसको मजबूत बांध लिया और उसके बालोंको खेंचकर रस्सीसे मारनेलगा ॥ ७० ॥ इसके पीछे उसने निष्ठुर वचनोंसे हरिश्चंद्रसे कहा रे दास! इसका वध कर दुष्टस्वभाव यह स्त्री अत्यन्त दुष्ट है अतएव इसकें वध करनेमें कुछ विचार न करना ॥ ७१ ॥ तब नरपति उसके इस प्रकार गिरे हुए वज्रकी समान कठोर वचन सुनकर कम्पित होगये फिर चित्तको स्थितकर स्त्रीवधकी शंकासे चांडालसे बोले ॥ ७२ ॥ मैं इस कार्यके करनेमें असमर्थ हूं इस कारण आप यह भार अन्य सेवकके ऊपर

डालिये; वही इसको मारेगा आप इसके अतिरिक्त जिस किसी कार्यकी आज्ञा देंगे यदि असाध्य हो तो भी मैं उसे करूंगा ॥ ७३ ॥ राजाके यह वचन सुनकर श्वपचने कहा तू भय त्यागकर असि ग्रहणकर, इसका मारना पुण्यदायक है ॥ ७४ ॥ यह मायाविनी बालकोंको सर्वदा नष्ट करती है, इसकी रक्षा करना कभी उचित नहीं राजा उसके इस प्रकारके वचन सुन महादुःखित हो कहनेलगे कि ॥ ७५ ॥ स्त्रियोंकी रक्षा करना सर्वदा उचित है कभी संहार करना ठीक नहीं है विशेषकरके धर्मपरायण मुनियोंने स्त्रीके मारनेमें अधिक पाप निर्देश किया है ॥ ७६ ॥ जो पुरुष ज्ञान अथवा अज्ञानसे स्त्रीहत्या करता है वह मनुष्य महारौरव नरकमें पड़ता है इसमें संदेह नहीं ॥ ७७ ॥ चांडालने कहा तुम यह बात मत कहो बिजलीकी समान प्रभायुक्त यह असि ग्रहण करो जिस स्थानमें एकका वध होनेसे अनेकोंको सुख हो ॥ ७८ ॥ उसकी हिंसा करनेसे बहुत पुण्य प्राप्त होता है इसमें संदेह नहीं इस दुष्टाने यहां अनेक बालकोंको भक्षण किया है ॥ ७९ ॥ इस कारण शीघ्र इसको मारकर काशीवासियोंको सावधान करो राजाने कहा हे चांडालाधिपते ! मैंने जन्मसे " कभी स्त्रीवध न करूंगा " यह कठिनव्रत अवलम्बन किया है ॥ ८० ॥ इसी कारण आपकी आज्ञासे स्त्रीवधके विषयमें यत्न नहीं करसक्ता ॥ चांडालने कहा हे दुष्ट! प्रभुकार्यके अतिरिक्त और कोई कार्य श्रेष्ठ नहीं होसक्ता ॥ ८१ ॥ इस कारण चेतन्य होकर आज किस कारणसे मेरा कार्य नहीं करता जो सेवक प्रभुका वेतन लेकर उसके कार्यमें हानि करता है ॥ ८२ ॥ वह अयुत कल्पमें भी नरकसे छुटकारा नहीं पासक्ता राजाने कहा हे चांडालनाथ ! मुझको अत्यन्त दारुण अन्य किसी कार्यमें नियुक्त कीजिये, मैं सहजमेंही उसको करदूंगा ॥ ८३ ॥ अथवा यदि आपका कोई शत्रु हो तो उसको बता दीजिये मैं अभी उसका संहार करूंगा इसमें संदेह नहीं मैं उस शत्रुको संहार कर आपको यह पृथ्वी प्रदान करूंगा ॥ ८४ ॥ अधिक क्या देव, दानव, उरग, किन्नर, सिद्ध और गंधर्वोंके साथ यदि इन्द्रभी स्वयं सन्मुख हो तथापि शाणित बाणोंसे उनको मारकर पराजय करसक्ता हूं, परन्तु स्त्रीहत्या किसी प्रकारसे भी नहीं करसक्ता ॥ ८५ ॥ राजा हरिश्चन्द्रके यह वचन सुनकर चांडाल क्रोधसे कम्पितकलेवर हो महीपतिसे कहनेलगा चांडाल बोला तुमने दास होकर जो किया वह दासके उपयुक्त नहीं है तू चांडालका दासत्व स्वीकार कर देवताओंकी समान वचन कहता है अतएव रे दास !

अब अधिक कहनेका प्रयोजन नहीं है, अब जो कहता हूं सो सुनो ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ रे निर्लज्ज ! तेरे हृदयमें यदि कुछ पापका भय हो तो चांडालके घर किसकारण दासत्व करनेको आता ॥ ८८ ॥ यह असि लेकर उसका मस्तक छेदन कर यह बात कहकर चांडालने राजाको खड्ग प्रदान किया ॥ ८९ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषायां पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

षड्विंशोऽध्यायः २६.

सूतजीने कहा इसके उपरान्त राजा हरिश्चन्द्र नीचेको मुख करके रानीसे कहने लगे कि, हे बाले ! मैं अत्यन्त पापिष्ठ हूं, नहीं तो क्यों ऐसे हीन कार्यके करनेमें प्रवृत्त होता ? जो हो ! इस समय तू मेरे सन्मुख बैठ ॥ १ ॥ मेरे हाथ यदि तेरा संहार करनेमें समर्थ हो तो तेरा शिर छेदन करूंगा, राजा यह बात कहकर असि उठाय उसको मारनेके लिये अग्रेसर हुए ॥ २ ॥ राजा जिसप्रकार उसे अपनी स्त्री नहीं जानसके रानी भी उसी प्रकार उनको हरिश्चन्द्र नरपति नहीं जानसकी इसकारण रानी शोकसे कातर हो अपनी मृत्युकी इच्छासे कहने लगी ॥ ३ ॥ स्त्री बोली हे चांडाल ! यदि तुम्हारी इच्छा हो तो मैं कुछ कहती हूं सो सुनो मेरा पुत्र मरा हुआ यहांसे कुछेक दूर नगरप्रांतमें पडा है ॥ ४ ॥ उसको तुम्हारे निकट लाकर जबतक उसका दाहादिकार्य न करूं तबतक तुम ठहरो, पश्चात् मुझको असिद्वारा निहत करना ॥ ५ ॥ राजाने कहा अच्छा यही हो यह बात कहकर उसको उस मृतक बालकके निकट जानेकी आज्ञा दी, तब वह दुःखसे दारुण विलाप करती चली ॥ ६ ॥ नरेन्द्रकी भार्या सर्पके काटे बालकके समीप जा हा पुत्र ! हा वत्स ! हा शिशो ! इस प्रकार वारम्वार कहती ॥ ७ ॥ कृश विवर्ण मलीन वेष धूरि धूसरित केशवाली श्मशानभूमिमें आ बालकको स्थापितकर वहां बैठी और बोली "हे राजन् ! अपने बालकको देखो ! जो अपने मित्रोंके साथ खेलता हुआ उपवनमें सर्पके काटनेसे मृत्युको प्राप्त हुआ है" ॥ ८ ॥ तब नरपति हरिश्चन्द्रने उस बालाकी इस प्रकार करुणायुक्त विलाप ध्वनिको सुनकर शवके समीप जा उसके मुखपरका ढकाहुआ वस्त्र हटा दिया ॥ ९ ॥ दीर्घकाल प्रवासकष्टसे रानीकी मूर्ति बदलगई थी, इसकारण राजा हरिश्चन्द्र उस रोती हुई अपनी भार्याको नहीं पँहचानसके ॥ १० ॥ इधर राजा भी पहलेकी समान वह कुंचिताग्रकेशकलाप नहीं

थे, इस समय वह जटामें परिणत हुए थे, इस कारण रानीभी राजाको नहीं पहचान सकी ॥ ११ ॥ तब राजा पृथ्वीपर पड़ेहुए विषजर्जरित उस बालकके अंग प्रत्यंगमें सम्पूर्ण राजलक्षण देखकर चिन्ता करने लगे ॥ १२ उसका वदनमंडल पूर्ण चंद्रमाके समान अत्यन्त सुन्दर है कहींभी बिन्दुमात्र व्रण नहीं है नासिका ऊंची, दोनों कपोल दर्पणके समान विमल और प्रशान्त हैं ॥ १३ ॥ केशकलाप नीलवर्ण टेढ़े दीर्घ और तरंगित हैं, दोनों नेत्र कमलदलकी समान खिले हुए दोनों ओष्ठ बिम्बाफलके समान लोहितवर्ण ॥ ॥ १४ ॥ चौंड़ी छाती कानोंपर्यन्त दीर्घ नेत्र जानुतक लम्बी भुजा दोनों कंधे ऊंचे सुन्दर विशाल दोनों चरण सूक्ष्म अंगुली भूमण्डल धारण करनेमें समर्थ॥ १५॥ मृणालकी समान कोमल चरण गंभीर नाभि उन्नत कंधे हैं, अहो कष्ट निश्चयही इसने किसी राजकुलमें जन्म ग्रहण किया है ॥ १६ ॥ अहो क्या कष्ट है दुरात्मा कालने इसको इस दशामें प्राप्त किया सूतजीने कहा फिर माताकी गोदीमें शयन करते हुए उस मृतक बालकको पैरोंसे मस्तकपर्यन्त देखकर हरिश्चंद्रके मनमें पूर्वस्मृतिका आविर्भाव हुआ तब वह अपना पुत्र जानकर हाय! हाय! शब्दसे रोदन करनेलगे नेत्रोंसे अश्रुधारा वहनेलगी और वह कहनेलगे कि हमारेही पुत्रकी यह अवस्था हुई है ॥ १७ ॥ १८ ॥ यद्यपि पुत्र घोरकालके वशीभूत हुआ है तथापि राजा हरिश्चंद्र क्षण काल मनमें चिन्ताकर स्तब्ध रहे ॥ १९ ॥ अनन्तर राणीनें घोर दुःखके वेगसे कहा राणी बोली हा वत्स! किस पापकी चिन्तासे मुझको यह भयानक दुःख हुआहै ॥२०॥ उसके स्वरूपकी उपलब्धि नहीं करसक्ती हा नाथ! हा राजन्! मैं अत्यन्त दुःखसे कातर हुई हूं इस अवस्थामें मुझको छोडकर ॥ २१ ॥ किसकारणसे किस स्थानमें गुप्तभावसे काल व्यतीत करते हो हा विधातः! तैंने राजर्षि राजा हरिश्चंद्रका राज्य नष्टकर सुहृद त्याग और भार्या तथा पुत्रपर्यन्तभी बिकवादिया ॥ २२ ॥ उन्होंने तेरा ऐसा क्या अपकार किया था तब राजा उसको इसप्रकार विलापध्वनिको सुनकर धैर्यच्युत होगये ॥ २३ ॥ और उस देवी तथा मृतक पुत्रको पहचानकर कहनेलगे कि यही मेरी स्त्री और यही मृतक बालक मेरा पुत्र है अहो! क्या कष्ट है ॥ २४ ॥ इसप्रकार अत्यन्त शोकसे आक्रान्त और मूर्छित हो राजा पृथ्वीपर गिरपड़े राणीनेभी राजाकी ऐसी अवस्था देख ज्योंही राजा हरिश्चंद्रको पहचाना ॥ २५ ॥ कि त्योंही मूर्छित और निश्चेष्ट हो धरणीपर

गिरपड़ी कुछ कालोपरान्त फिर राजेन्द्र और राणी दोनोंने एक साथ चेतना प्राप्त की ॥ २६ ॥ फिर शोकसे अत्यन्त संतप्त और कातर हो विलाप करनेलगे. राजाने कहा हा वत्स! तुम्हारा वह कुंचित अलक, सुशोभित सुकोमल मुखमंडल ॥ २७ ॥ आज मलीन देखकर भी क्यों मेरा हृदय शतखंड होकर विदीर्ण नहीं होता? हा रोहित! तुम मधुरस्वरसे तात! तात! कहकर कब मेरे समीप आओगे ॥ २८ ॥ मैं स्नेहवश हो गोदीमें लेकर हे वत्स! हे वत्स! कहकर कब पुकारूंगा, किसकी जानुलिप्त पिंगलवर्ण पृथ्वीकी रजसे मेरा दुपट्टा, उत्सङ्ग (गोदी) और अंग मलीन होगा,हेहृदयानंदवर्धन! मैंने कुछभी पुत्रसुख नहीं देखा॥ २९ ॥ ३० ॥मैंने पिता हो करभी सामान्य वस्तुकी समान तुमको बेचा है, हीनदैवकी विड़म्बनासे मेरा असीम राज्य बांधव और प्रभूत धन, यह सभी जातारहा, अन्तमें मेरा एकमात्र पुत्र था वहभी नृशंस कालके मुखमें पतितहुआ ॥ ३१ ॥ हाय! विषम सर्पके काटनेसे मृतक पुत्रका वदनमंडल देखकर आज मैं घोर संताप विषसे दग्ध हुआ, राजाने गद्गद स्वरसे यह बात कह ज्योंही उस बालकको गोदीमें लिया ॥ ३२ ॥ कि त्योंही मूर्छित हो पृथ्वीपर गिर पडे अनन्तर राजाको पडा हुआ देखकर शैव्या इस प्रकारसे चिन्ता करने लगी ॥ ३३ ॥ इनके कंठस्वरसे बोध होता है कि यही पुरुष प्रवर विज्ञजनोंका चित्त प्रसन्न करनेवाले राजा हरिश्चन्द्र हैं ॥ ३४ ॥ उन विख्यात कीर्ति राजा हरिश्चन्द्रकी जैसी अनारकी समान दशन पंक्ति और नासिका ऊंची तथा तिलके फूलकी समान सुकुमार थी इनकी भी वैसीही दिखाई देती है ॥ ३५॥ परन्तु यदि यही वह नरेश्वर राजा हरिश्चन्द्र हैं तो किसकारणसे श्मशानमें आये हैं इस प्रकार विचार पुत्रशोक त्यागकर ज्योंही पृथ्वीपर पडे हुए पतिको देखने लगी ॥ ३६ ॥ त्योंही हर्ष विषाद और विस्मयने उसके हृदयको आक्रमण किया तब वह राजाको देखते देखते मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पडी ॥ ३७ ॥ फिर क्रमानुसार चैतन्यता प्राप्तकर कातर स्वरसे कहने लगी हा दैव! जो राजा एक समय अमरकी समान थे आज तैंने उन नरपतिको राज्य नष्ट सुहृदत्याग भार्या और पुत्रपर्यन्त बिकवाकर चांडालरूपमें परिणत किया है अतएव तुझको दया नहीं धर्म नहीं न्याय अन्यायका विचार नहीं और लज्जा भी नहीं है इस कारण तुझको धिक्कार है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ हे राजन्! आज कालने तुमको चांडाल बनाया है अब तुम्हारा वह छत्र वह सिंहासन॥ ४० ॥वह चामर और वह दोनों विजय कहां गये?आज विधाता

का यह क्या विपरीत कोप है, पहले इन महात्माके गमन कालमें राजा लोग भृत्य स्वरूप होकर॥ ४१ ॥ अपने डुपट्टोंसे पृथ्वीकी धूलि झाड़ते थे,आज वही राजा कपालोंसे व्याप्त शवसंस्कारको लायेहुए क्षुद्रकलशोंसे पूर्ण ॥ ४२ ॥ मृतकोंके गलेकी पुष्प-मालाओंके डोरेमें बाल उलझनेसे भीषणवसाके निकलनेसे सूखे महापटलसे मंडित ॥ ४३ ॥ भस्मके अंगारोंसे आधे जले मुर्दोंकी अस्थि और मज्जाके संघट्टसे भयंकर गृध्र गोमायुओंके नादसे क्षुद्र पक्षियोंके पोषक ॥ ४४ ॥ चिताके धूमरूप पटसे आकाशको नीलवर्ण करनेवाले मांसके आस्वादमें प्रसन्न विचरणशील राक्षसोंसे व्याप्त ॥ ४५ ॥ इस अपवित्र स्थानमें विचरण करते हैं,दुःखसे पीडित हैं, इसप्रकार कह रानी राजाके कंठमें लिपटगई ॥ ४६ ॥ और कष्ट शोकसे व्याकुल हो घोर विलाप करने लगी, हेराजन्! आप जो अपनेको चांडाल कहते हो यह स्वप्न है अथवा सत्य है ॥ ४७ ॥ हे महाभाग! सो कहो मेरा मन मोहित होता है, हे धर्मज्ञ! जो ऐसा है तो धर्मने कुछ सहायता नहीं दी ॥ ४८ ॥ तथा ब्राह्मण देवता आदिके पूजनमें, सत्यपालनमें यदि ऐसीही सहायता प्राप्त हो तो सत्यकी रक्षा नहीं होसक्ती धर्मकी रक्षा न होनेसे सत्य आर्जव और अनृशंसताकी रक्षा नहीं होसक्ती ॥ ४९॥ आप परम धर्मात्मा होकरभी राज्यच्युत हुए! सूतजीने कहा शीर्णदेह शैब्याके ऐसे वचन सुनकर राजा दीर्घ और उष्ण श्वास छोडते हुए ॥ ५० ॥ जिस प्रकार श्वपचत्वको प्राप्त हुए थे, बाष्पकंठद्वारा स्त्रीसे विस्तारसहित वह वर्णन किया उस राजपत्नीने भी यह सुनकर अत्यन्त दुःखित मनसे ऊष्ण श्वांस त्यागकर ॥ ५१ ॥ जिसप्रकार पुत्रकी मृत्यु हुई थी वह आद्योपान्त राजासे निवेदन किया यह सुनतेही राजा मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिरपड़े ॥ ५२ ॥ फिर क्रमानुसार चेतना प्राप्तकर जिह्वासे चाट वारंवार मृतक पुत्रका मुख चूमने लगे तब शैब्याने गद्गदस्वर हो राजा हरिश्चन्द्रसे कहा ॥ ५३ ॥ इससमय मेरा मस्तक छेदन कर प्रभुकी आज्ञा पालन करो, हे भूपते! तो आप सत्यसे रक्षा पावेंगे और प्रभुकी आज्ञा भी उल्लंघन न होगी ॥ ५४ ॥ हे राजेन्द्र, विशेषकर इस परद्रोहजनित अथवा असत्यव्यवहारजनित पाप आपको स्पर्श नहीं करेगा, यह सुन राजा मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिरपडे ॥ ५५ ॥ किन्तु क्षणमात्रमेंही चेतना प्राप्त कर अत्यन्त दुःखसे विलाप करने लगे राजाने कहा हे प्रिये! तुम किसप्रकार ऐसे निष्ठुर वचन मुखसे निकालती हो॥ ५६ ॥ जो मुखसे भी उच्चारण नहीं किया जासक्ता

वह कार्य किसप्रकार करूंगा ? शैब्याने कहा हे विभो ! मैंने गौरी देवीकी पूजा की है और अन्यान्यदेवता तथा ब्राह्मणोंकी भी पूजा की है ॥ ५७ ॥ अतएव उनकी कृपासे आप जन्मान्तरमें भी मेरे पति होंगे, राजा यह बात सुनकर तत्काल पृथ्वीपर गिरपडे॥५८॥और शीघ्र उठ तथा दुःखित हो मृतक पुत्रका मुख चूमने लगे राजाने कहा हे प्रिये ! मैं अब दीर्घ कालतक क्लेश नहीं सहसकूंगा ॥ ५९ ॥ परन्तु हे कृशाङ्गी ! देखो मैं ऐसा हतभाग्य हूं कि अपने अंतःकरणके ऊपर भी मेरा कुछ आधिपत्य नहीं है, चांडालकी विना आज्ञा यदि अग्निमें प्रवेश करूं ॥ ६० ॥ तो जन्मान्तरमेंभी फिर मुझको चांडालका दासत्व प्राप्त होगा, फिर नरकमें जाकर दारुण क्लेश भोगना होगा ॥ ६१ ॥ किन्तु वह भी मेरे पक्षमें श्रेष्ठ है, महा रौरवनरकमें जाकर बहुत कालतक असह्य नरक यंत्रणा सहूं वह भी मुझको श्रेष्ठ है, दुःख सागरमें मग्न हो प्राणत्यागन करना श्रेष्ठ है ॥ ६२ ॥ परन्तु मेरा यह बालक पुत्रही वंशकी रक्षा करनेवाला है, मेरे इस बलवान् पुत्रने दैवके विपाकवशसे प्राणत्यागन किया है, अतएव क्लेशसागरमें निमग्न हो जीवनधारणकी अपेक्षा प्राणत्यागनाही श्रेष्ठ है ॥ ६३ ॥ मेरा देह इस समय चांडालके आधीन है, इसकारण इस दुर्गतिकी अवस्थामें किस प्रकार जीवन त्याग करूं, कारण कि उसकी विना आज्ञा प्राणत्याग करनेसे उसके ऋणसे नरक भोगना होगा, तोभी अत्यन्त दुःखके कारण अपना देह त्याग करूंगा ॥ ६४ ॥ पुत्रके वियोगसे जैसा दुःख उपस्थित हुआ है वैतरणी नदीके पार होनेसे अथवा असिपत्र वनमें भी ऐसा दुःख नहीं भोगना होगा, अधिक क्या त्रिलोकीमें भी ऐसा कोई दुःख नहीं है ॥६५॥ मैं इस समय पुत्रकी मृतकदेहके साथ प्रज्वलित अग्निमें गिरूंगा ॥ ६६ ॥ अतएव हे कृशाङ्गि ! तुम इसमें कुछ भी न कहना. हे शुचिस्मिते ! सावधान हो तुम मेरे वचन मानो ॥ ६७ ॥ इस समय आज्ञा देताहूं कि तुम ब्राह्मणके घर जाओ यदि मैंने कभी धनदान अग्निमें आहुति प्रदान और गुरुजनोंको संतुष्ट किया हो ॥ ६८ ॥ तो परलोकमें पुत्र और तुम्हारे साथ समागम होगा परन्तु इस लोकमें इस अभीष्टके प्राप्त होनेकी संभावना नहीं है ॥ ६९ ॥ हे शुचिस्मिते ! मैंने हास्यके मिष गुप्तभावसे यदि कोई अप्रमाणिक बात कही हो तो मेरे प्रयाणकालके समय वह सम्पूर्ण क्षमा करना ॥ ७० ॥ हे शुभे ! तुम अपनेको राजपत्नी जानकर ब्राह्मणका कभी तिरस्कार मत करना, प्रभुको देवताकी समान जानकर यत्नसहित उनको संतुष्ट करना ॥ ७१ ॥ रानीने कहा हे

हे राजर्षे ! मैंभी इस प्रज्वलित अग्निमें पतित हूंगी हे देव ! मैं इस दुःखका भार नहीं सहसक्ती अतएव आपके संग चलूंगी ॥ ७२ ॥ आपके संग गमन करना मुझको श्रेष्ठ है अतएव इसके अन्यथा नहीं होगा हे मानद ! आपके संगही स्वर्ग अथवा नरक भोगूंगी ॥ ७३ ॥ तब यह बात सुनकर राजाने कहा हे पतिव्रते! जो तुम्हारी इच्छा हो सो करो ॥ ७४ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषायां षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः २७.

सूतजीने कहा फिर राजा हरिश्चन्द्रने चिता बनाय अपने पुत्रको उसके ऊपर रक्खा, उसके उपरान्त स्वयं हाथ जोड़ भार्याके सहित ॥ १ ॥ जगदीश्वरी परमे शानीका ध्यान करनेलगे, वह शताक्षी जीवोंके अन्नमयादि पंचकोशके अन्तरमें विराजमान रहती है, वह अन्नरसमय पुरुषोंके पुच्छस्थित (आधारचक्रस्थित) ब्रह्मस्वरूपिणी ॥ २ ॥ और करुणारसकी सागरस्वरूप हैं, वह लाल वस्त्र पहरकर अनेक प्रकारके आयुध धारणकर जगत्की रक्षा करनेमें तत्पर रहती है ॥ ३ ॥ जब राजा इसप्रकार ध्यानमें निमग्न हुए तब इन्द्रादि सम्पूर्ण देवता धर्मको आगेकर शीघ्र हरिश्चन्द्रके निकट आये ॥ ४ ॥ उन सबने आनकर कहा हे राजन् ! तुम सुनो ! मैं पितामह, स्वयं धर्म, भगवान् विष्णु ॥ ५ ॥ साध्यगण, विश्वेदेवगण मरुद्गण लोकपालगण, चारणगण, गंधर्वगण, रुद्रगण दोनों अश्वनीकुमार अन्यान्य सम्पूर्ण देवतागण और विश्वामित्र स्वयं आये हैं, जो विश्वामित्र तीनों जगत प्रदान करके भी धर्मानुसार मित्रता करनेकी इच्छा करते हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥ इस समय वही विश्वामित्र तुम्हें अभीष्ट देनेको अत्यन्त अभिलाषी हुए हैं धर्मने कहा हे राजन् ! ऐसे साहसिक कार्यमें उद्यत न होना मैं धर्म हूं ॥ ८ ॥ मैं तुम्हारे तितिक्षा (सहनशीलता) दम और सत्वादिगुणोंसे सन्तुष्ट हो तुम्हारे निकट आया इन्द्रने कहा हे हरिश्चंद्र ! मैं भी तुम्हारे निकट उपस्थित हुआहूं ॥ ९ ॥ अतए तुम्हारे सौभाग्यकी सीमा नहीं तुमने भार्या और पुत्रके साथ इस समय सनात लोकोंको जय किया है अब भार्या और पुत्रके साथ स्वर्गमें चलो ॥ १० ॥ राजन् ! जो मनुष्योंको हुआ है तुमने अपने कर्मफलसे उसको जीतलिया सूतजी कहा इसके उपरान्त अपमृत्युविनाशन अमृतकी वर्षा ॥ ११ ॥ इन्द्रने चितामें स्थि

बालकके ऊपर की इसी समय आकाशमंडलसे पुष्पवृष्टि और दुन्दुभिध्वनि होनेलगी ॥ १२ ॥ इसी अवसरमें वह महानुभाव राजाका पुत्र चितासे उठ बैठा वह पहलेकी समान सुकुमार देह स्वस्थचित्त प्रसन्न और प्रीतमनवाला था ॥ १३ ॥ हरिश्चंद्रने तत्काल पुत्रको आलिंगन किया और इसी समय राजा तथा रानी दोनोंही पूर्वकी समान सौन्दर्य प्राप्त कर मनोहर वस्त्र और मालासे भूषित हुए ॥ १४ ॥ तब स्वास्थ्य और अभीष्ट प्राप्त होनेके कारण आनंदसे उनका हृदय पूर्ण होगया तब इन्द्रने नरपतिसे कहा ॥ १५ ॥ हे महाभाग ! तुम पुत्र और कलत्रके सहित अपने कर्मके फलसे स्वर्गमें चल परम पवित्र सद्गति प्राप्त करो ॥ १६ ॥ हरिश्चंद्रने कहा देवराज ! श्वपच मेरा प्रभु है इनसे छुटकारा न पाकर और उनकी आज्ञा न लेकर मैं स्वर्गको नहीं जाऊंगा ॥ १७ ॥ धर्मने कहा तुम्हारा इस प्रकार भावी क्लेश जानकर मैं ने अपनी मायासे स्वयं श्वपचरूप धारणकर तुमको यह चांडालपुरी दिखाई अधिक क्या मैंही यह चांडाल मैंही वह ब्राह्मण हूं, और मैंनेही काला सर्प होकर तुम्हारे पुत्रको डसा है ॥ १८ ॥ इन्द्रने कहा हे हरिश्चंद्र ! भूमंडलके सम्पूर्ण मनुष्य जिस स्थानका अधिकार करनेकी प्रार्थना करतेहैं तुम स्वयं पुण्यके बलसे उस स्थानको चलो ॥ १९ ॥ हरिश्चंद्रने कहा हे देवराज ! मैं आपको प्रणाम करताहूं आप मेरा वचन श्रवण करके विचार कीजिये, कोसलनगरनिवासी सम्पूर्ण मनुष्य मेरे विरहरूपी शोकसागरमें निमग्न होरहे हैं ॥ २० ॥ इस समय उन शोकसंतप्त प्रजाको छोडकर किसप्रकार स्वर्गको चल सक्ता हूं, भक्तोंके त्यागनसे नरक होता है ब्रह्महत्या सुरापान और गोवधकी ॥ २१ ॥ समान महापातक है हे शक्र ! जो भक्त सर्वदा सेवामें रत हैं उनको त्यागना अत्यन्त अनुचित है, अतएव त्यागनेसे किसप्रकार सुख भोग सक्ताहूं ॥ २२ ॥ इसकारण उनको विनालिये मैं स्वर्गको नहीं जाउंगा, आप स्वर्गको लौट जाइये, हे सुरेश्वर ! यदि वह मेरे संग जासके ॥ २३ ॥ तो मैंभी उनके संग स्वर्ग अथवा नरकमें जासक्ता हूं इन्द्रने कहा हे नृपवर ! उनमेंसे किसीका अधिक पाप अथवा किसीका अधिक पुण्य भिन्न भिन्न है ॥ २४ ॥ अत एव हे भूप ! वह सम्पूर्ण एकही समय स्वर्गके भोगनेका किसप्रकार अधिकार रखतेहैं ! हरिश्चंद्रने कहा हे वासव ! पौरवर्गोंके प्रभावसे ही राजालोग राज्यभोग करते हैं ॥ २५ ॥ महामहायज्ञका अनुष्ठान और पूर्त्तकार्य (वापीकूपादि) सम्पादन करते हैं इसमें सन्देह नहीं है मैं ने भी इसीप्रकार प्रजाके प्रभावसे सम्पूर्ण धर्मकार्यका अनु-

ष्ठान किया है ॥ २६ ॥ इसकारण जिन्होंने राजप्रयोजनीय सम्पूर्ण द्रव्य दान किया है मैं स्वर्ग प्राप्त होनेकी इच्छासे उनको नहीं छोडूंगा, हे देवेश ! यदि उनका स्वर्गमें चलनेके अनुरूप पुण्य न हो तो कुछ मेरा पुण्य है ॥ २७ ॥ अर्थात् मैंने दान यज्ञ याग इत्यादि जो कुछ सत्कार्यका अनुष्ठान किया है वह उनका सब पुण्य स्वर्गभोगको प्राप्त हो यदि मैं अकेला कर्मका फल भोगूं तो बहुत समयतक भोगसक्ता हूं ॥ २८ ॥ परन्तु आपके प्रसादसे उनके संग उस कर्मका फल एकही दिनमें भोगलूं तो भी मुझको परम श्रेय है सूतजीने कहा "यही होगा" ऐसा कहकर त्रिभुवनेश्वर इन्द्र ॥ २९ ॥ गाधिनंदन विश्वामित्र और धर्म प्रसन्न हो योगबलसे उसी समय काशीसे अयोध्याको चले गये वह मुहूर्त्त मात्रमेंही ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्रयुक्त अयोध्यानगरीमें पहुँचे ॥ ३० ॥ और उनमेंसे देवराज इन्द्रने कहा कि नगरनिवासी सम्पूर्ण मनुष्य शीघ्र राजा हरिश्चन्द्रके समीप आवें आज वह हरिश्चन्द्रके धर्मबलसे दुर्लभ स्वर्गलोकको प्राप्त हुए ॥ ३१ ॥ यह बात कहकर नागरिक मनुष्योंको हरिश्चन्द्रके समीप ले आये, तब उन धार्मिकप्रवर राजा हरिश्चन्द्रने भी नगरवासी मनुष्योंसे ॥ ३२ ॥ कहा तुम सम्पूर्णही मेरे साथ स्वर्गको चलो ! सूतजीने कहा वह सुरपति और भूपतिके इस प्रकार वचन सुनकर अत्यन्त आनंदित हुए और उनमें जो संसारकी वासनासे विरत हुए थे वह अपने २ पुत्रोंके ऊपर संसारिक भार डाल आनंदहृदयसे स्वर्गमें चलनेको उद्यत हुए ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ तब प्रजा ज्योतिर्मय देहधारणकर श्रेष्ठ विमानपर चढ़ अत्यन्त आनंदित हुई तब महानुभाव महीपाल हरिश्चंद्रने ॥ ३५ ॥ अपने पुत्र रोहिताश्वको राज्यपर अभिषिक्तकर हृष्टपुष्ट मनुष्योंसे पूर्ण रमणीय अयोध्यानगरी कर ॥ ३६ ॥ सुहृद् मंत्री और पुत्रका सत्कार और अभिनंदन कर पुण्यसे प्राप्त हुई देवादिकोंको दुर्लभ ॥ ३७ ॥ अपने पुण्यप्रभावसे प्राप्त विपुलकीर्ति लाभकर किंकिणीजालमंडित अतुल कामगामी सुशोभित देवदुर्लभ विमानपर विराजमान हुए ॥ ३८ ॥ फिर सर्व शास्त्रके जाननेवाले दैत्यगुरु महाभाग शुक्राचार्यने राजा हरिश्चंद्रको विमानमें देखकर तिससमय यह गाथा गाई ॥ ३९ ॥ शुक्र बोले, अहो तितिक्षाका क्या आश्चर्य माहात्म्य है ! दानका क्या महत्त्वफल है ! आज जिसके प्रभावसे राजा हरिश्चंद्रने महेन्द्रका सालोक्य प्राप्तकिया ॥ ४० ॥ सूतजीने कहा यह हरिश्चंद्रके सम्पूर्ण चारित्र

आपसे वर्णन किये,यदि दुःखी मनुष्य इसको सुने तो सर्वदा सुख प्राप्त होता है, इसमें संदेह नहीं॥ ४१॥ अधिक क्या इसके प्रभावसे स्वर्गाभिलाषी स्वर्ग, पुत्राभिलाषी पुत्र, भार्याकी इच्छा करनेवाला भार्या, राज्य प्रार्थी मनुष्य राज्यपर्यन्त प्राप्तकरसक्ता है ४२

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः २८.

जनमेजयने कहा हे ऋषिवर! शताक्षी देवीके चरणकमलोंके भक्त परमधार्मिक राजर्षि हरिश्चन्द्रका जो उपाख्यान कहा यह अत्यन्त विचित्र है ॥ १ ॥ वह शिवा रमणीय देवी भगवती किसकारणसे शताक्षी हुई हे मुने! आप उनका कारण कहकर मेरा जन्म सफल कीजिये ॥ २ ॥ अकृतज्ञ मनुष्यही देवीके गुण सुनकर तृप्त होसकते हैं परन्तु विमल बुद्धि मनुष्य उनके गुण सुनकर तृप्त नहीं होसक्ते अधिक क्या देवीके गुण वर्णित एक २ शब्द सुननेसे अश्वमेध यज्ञका श्रेष्ठ फल प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन्! शताक्षी देवीका पवित्र उत्पत्तिविषय कहता हूं तुम देवीके परम भक्त हो इसकारण तुमसे मेरा न कहने योग्य कुछ नहीं है ॥ ४ ॥ पूर्वकालके समय दुर्गमनामक अत्यन्त निष्ठुर एक महादानव था, उस रुरुपुत्र महाबलवान् दानवने हिरण्याक्षके वंशमें जन्म ग्रहण किया ॥ ५ ॥ उसने एक समय मनमें विचार किया कि मुनिगण वेदविहित मंत्रसे होम करते हैं वह होमीय हव्य भक्षण कर देवतागण संतुष्ट होते हैं इससे वह बलगर्वित होकर वेदोक्तअस्त्र शस्त्रद्वारा हमको नष्ट करते हैं अतएव वेदही देवताओंका बल है इस कारण वेदके नष्ट होनेपरही देवता नष्ट होंगे इसमें संदेह नहीं, अतएव देवताओंका विनाश करनेकेलिये वेदको नष्ट करना श्रेष्ठ है, इसके सिवाय अन्य उपाय कोई नहीं है ॥ ६ ॥ वेदकर्ताकी आराधनासेही यह कार्य सिद्ध होगा अतएव उनकीही आराधना करूंगा, इसप्रकार मनमें निश्चयकर तपस्या करनेको हिमालयमें चलागया, वह हृदयमें ब्रह्माजीका ध्यान करता हुआ काल व्यतीत करने लगा ॥ ७॥ वह हजारवर्षपर्यन्त कठोर तपस्याके अनुष्ठानमें रतरहा अतएव उसके तेजप्रभावसे सुरासुर इत्यादि सम्पूर्ण लोक संतप्त होगये॥ ८॥ इसी समय भगवान् चतुरानन ब्रह्मा इनसे प्रसन्न हुए और हंसपर चढ उसको वर देनेके निमित्त आये ॥ ९॥ उस समाधिस्थित निमीलितनेत्र (मुँदे-

नेत्र) दानवसे चतुराननने स्वरूपसे कहा, तुम्हारा मंगल हो, इस समय तुम अभिलाषित वरकी प्रार्थना करो ॥ १० ॥ अब मैं तुम्हारी तपस्यासे संतुष्ट होकर वर देनेको आया हूं, वह ब्रह्माजीके इस प्रकार वचन सुन समाधि छोड़कर उठा ॥ ॥ ११ ॥ और उनकी यथाविधि पूजा करके कहा हे सुरेश्वर ! मुझको सम्पूर्णवेद प्रदान कीजिये; हे महेश्वर ! त्रिलोकीमें ब्राह्मण और देवताओंके पास जो सम्पूर्ण वेदमंत्र विद्यमान हैं ॥ १२ ॥ वह सम्पूर्ण वेदमंत्र मेरे पास विद्यमान रहैं, और जिससे देवतागण पराजित हों मुझको ऐसा बलप्रदान कीजिये ॥ १३ ॥ चतुर्वेदकर्ता परमेश्वर ब्रह्मा उसके इसप्रकार वचन सुन तथास्तु कहकर सत्यलोकको चलेगये ॥ १४ ॥ तबसे ही ब्राह्मणलोग सम्पूर्ण वेदोंको भूलगये अतएव स्नान, संध्या, नित्यहोम, श्राद्ध, यज्ञ और जप इत्यादि क्रिया सब लुप्त होगईं ॥ १५ ॥ तिसकाल भूमंडलमें महा हाहाकार शब्द होने लगा, ब्राह्मणलोग परस्पर कहनेलगे कि यह कैसे हुआ यह कैसे हुआ ॥ १६ ॥ इस समय वेदोंका अभाव होनेसे अब हमको क्या करना चाहिये इस प्रकार भूलोकमें परम दारुण घोर अनर्थ उपस्थित होनेपर ॥ ॥ १७ ॥ देवतागण होमीय हविका भाग न पाकर क्रमशः दुर्बल हुए इसी समय उस दानवने अमरावती नगरीको घेर लिया ॥ १८ ॥ अतएव देवतागण वज्रके समान कठिनदेह उस असुरके साथ संग्राम करनेमें असमर्थ हो दूसरे स्थानोंमें चले गये ॥ १९ ॥ वह सुमेरुपर्वतकी गुहा और पर्वतके दुर्गमप्रदेशका आश्रय लेकर परम शक्ति पराम्बिकाका ध्यान करनेलगे ॥ २० ॥ हे राजन् ! अग्निमें आहुति देनेसे वह सूर्यलोकमें आस्थित होकर वृष्टिमें परिणत होती है इसकारण होमकार्यके न होनेसे वृष्टिका भी अत्यन्त अभाव होगया, वृष्टिके अभावसे भूमंडल शुष्क होकर किसी स्थानमें जलका लेशमात्र नहीं रहा ॥ २१ ॥ अधिक क्या कूप, वापी तडाग और सरिता सबही शुष्क होगये यह अनावृष्टि एक शत वर्ष कालपर्यन्त स्थिर रही थी ॥ २२ ॥ असंख्य प्रजा और अनेक गौ तथा महिष इत्यादि सम्पूर्ण मरगये, उन सम्पूर्ण मनुष्योंके मृतकदेह प्रत्येक घरमें ढेरके ढेर पड़े रहे उनका दाहादि कार्य करनेके लिये कोई मनुष्य नहीं मिला ॥ २३ ॥ इसप्रकार अनर्थ उपस्थित होनेपर शान्तचित्त ब्राह्मणलोग शिवाकी आराधना करनेकेलिये अभिलाषी होकर हिमालयके पार्श्वदेशमें चलेगये ॥ २४ ॥ वह तद्गतचित्त हो निराहार रहकर समाधि ध्यान और पूजाद्वारा प्रतिदिन देवीका स्तव

करनेलगे अधिक क्या उनकीही शरणागत होकर उनका स्तव करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ ॥ २५॥ हे महेशानि ! आप हमारे प्रति दया कीजिये. हे अम्बिके ! सम्पूर्ण अपराधसे अपराधी पामरजनोंके ऊपर ऐसा कोपकरना आपको श्लाघनीय नहीं है ॥ ॥ २६ ॥ अतएव हे देवेशि ! आप क्षमा कीजिये यदि हमारे पातकसे आपको क्रोध हुआ है तो उस विषयमें भी हमारा कुछ अपराध नहीं है कारण कि,आपही अन्तर्यामि रूपसे सबके हृदयमें वासकरती है अतएव आपही जिसको जिसकार्यमें नियुक्तकरती हैं वही उसको करता है ॥ २७ ॥ जप पूजा और होमादिका अनुष्ठान करनेसे अन्यान्य देवतागण सन्तुष्टहोकर फलप्रदान करते हैं वेदमंत्रके अभावसे उसकीभी सम्भावना नहीं किन्तु आप बालकके प्रति माताकी समान स्मरण करते ही दयायुक्त होती हो अतएव आपके सिवाय इस प्रजाकी अन्यगति नहीं है हे महेश्वरि ! आप जो इच्छा करैं वही करसक्ती हैं इसकारण आपसे वारंवार कहते हैं। ॥ २८॥ हे अम्बिके ! जलके अतिरिक्त हमारा जीवन किसप्रकार रक्षित होसक्ता है ? अतएव हे महेशानि ! इस उपस्थित विषय संकटसे शीघ्र उद्धार कीजिये ॥ २९ ॥ हे महेश्वरि ! आप ही जगत्की जननी हैं इसकारण जगत्वासी मनुष्योंके प्रति प्रसन्न हूजिये आपही अनन्तकोटि ब्रह्माण्डकी एकमात्र अधीश्वरी हैं अतएव आपको वारंवार नमस्कार करते हैं ॥ ३० ॥ आप ही कूटस्थ चैतन्यस्वरूप हैं सुतरां आपको नमस्कार करते हैं आपही चिद्घनस्वरूपिणी आद्या शक्ति हैं आपको वारंवार नमस्कार करते हैं आप ही वेदप्रतिपाद्य हैं आपको प्रणाम करते हैं आप ही भुवनेश्वरी हैं आपको वारंवार प्रणाम करते हैं ॥ ३१ ॥ सम्पूर्ण वेदवाक्य "यह नहीं यह नहीं" इस प्रकार नश्वर वस्तुके निषेधद्वारा जिनको प्रतिपादित करते हैं जो सम्पूर्ण जगत्की कारणस्वरूप है उन्हीं देवीको हम सर्वान्तःकरणसे प्रणाम करते हैं ॥ ३२ ॥ जब उन ब्राह्मणोंने महेश्वरी पार्वतीका इस प्रकार स्तव किया तब देवी भुवनेश्वरीने अपने शरीरमें असंख्यनेत्र प्रगट कर अपनी मूर्त्ति दिखाई ॥ ३३ ॥ उनका वर्ण अञ्जनके ढेरकी समान नीला नेत्र नीलकमलके समान और चौडे दोनों स्तन कठिन समान भावसे ऊँचे और गोलाकार स्तन स्थूल परस्पर संलग्न परस्पर मिले हुए ॥ ३४ ॥ और चार उनकी भुजा दक्षिण हाथके ऊपर हाथमें कमल वाम हाथके ऊपर हाथमें महाधनु नीचेके हाथमें क्षुधा तृष्णा और ज्वरनाशक सीमारहित रसयुक्त शाक फल पुष्प और मूल सन्निविष्ट सम्पूर्ण सौभाग्यकी सार

स्वरूप लावण्यमय ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ करोड सूर्यके समान ज्योतिर्मय और करुणा रसकी सागर उन जगद्धात्रीने इसप्रकार रूप दिखाकर नेत्रोंसे असंख्य ॥ ३७ ॥ जलधारा छोडी उस लोचनसमुद्भूत जलसे सम्पूर्ण लोकोंमें नवरात्रि पर्यन्त महावृष्टि हुई ॥ ३८ ॥ वह सम्पूर्ण लोकोंका दुःख देखकर करुणावश नेत्रोंसे बराबर अश्रुवर्षण करनेलगीं सुतरां उस जलसे सम्पूर्ण लोक और समस्त औषधि तृप्त हुई ॥ ३९ ॥ अधिक क्या उस जलसमूह द्वारा सम्पूर्ण नद और नदियें वहने लगीं हे राजन् ! जो देवतालोग गुहामें छिप रहे थे वह सभी निकले ॥ ४० ॥ फिर ब्राह्मण लोग देवताओंके सहित मिलित होकर देवीका स्तव करनेलगे आप वेदान्तद्वारा जानी जाती है ब्रह्मस्वरूपिणी हो अतएव आपको वारंवार नमस्कार करते हैं ॥ ४१ ॥ आपही अपनी मायाद्वारा समस्त जगत्का विधान करती हैं अतएव आपको वारंवार नमस्कार करते हैं हे देवि ! आप कल्पद्रुमकी समान भक्तोंको अभीष्टप्रदान करती हैं इसीकारण आपने भक्तोंकी मनोवाञ्छा पूर्ण करनेके लिये देह धारण किया है ॥ ४२ ॥ हे भुवनेश्वरि ! आप सदा तृप्त रहती हैं सुतरां आपकी तुलना नहीं है अतएव आपको हम प्रणाम करते हैं हे देवि ! हमारी शान्तिके लिये ही आपने अतुल असंख्यनेत्र धारणकिये है ॥ ४३ ॥ अतएव आप अबसे ही शताक्षी नामसे अभिहित होंगी हे मातः ! अम्बिके ! हम क्षुधासे अत्यन्त कातर हैं सुतरां हमारी स्तव करनेकी सामर्थ्य नहीं है ॥ ४४ ॥ अतएव महेशानि ! आप हमारे प्रति दया प्रकाश करके सम्पूर्ण वेदोंका उद्धार कीजिये व्यासजीने कहा हे महाराज ! देवता और ब्राह्मणोंके इस प्रकार वचन सुनकर शिवाने अपने करस्थित शाक ॥ ४५ ॥ स्वादिष्ठ फल और मूलादि भक्षण करनेके लिये उनको अर्पण किये ॥ ४६ ॥ उन्होंने प्रार्थित होकर जबतक नवीन अन्न उत्पन्न न हुआ तबतक मनुष्य भोज्य असीम रसयुक्त अनेक प्रकारका अन्न मनुष्योंको और पशुभोज्य तृणादि पशुओंको प्रदान किया हे राजन् ! उसी दिनसे देवीका शाकम्भरी नाम हुआ ॥ ॥ ४७ ॥ जब इससे घोर कोलाहल हुआ तब दुर्गमनामक असुरने दूतके मुखसे यह सम्पूर्ण वृत्तान्त जान शस्त्रधारणपूर्वक सैन्यके सहित युद्धयात्रा की ॥ ४८ ॥ उसने एक सहस्र अक्षौहिणी सेना ले शर छोड़ते छोड़ते शीघ्र जाय देवीके आगे स्थित उस देवसैन्य ॥ ४९ ॥ और ब्राह्मणोंको चारों ओरसे घेर लिया यह देखकर देवताओंके मण्डलमें कोलाहलध्वनि होनीलगी ॥ ५० ॥ तब देवता और ब्राह्मण सभीने

मिलकर कहा हे देवी ! रक्षाकरो रक्षाकरो ! तब शिवाने देव और ब्राह्मणोंकी रक्षा केलिये उनके चारों ओर तेजोमय चक्र उत्पन्नकिया॥ ५१ ॥ और स्वयं उसके बाहर रहीं इसके उपरान्त देवी और दानव दोनोंका घोर अद्भुत युद्ध आरम्भ हुआ ॥ ५२ ॥ निरन्तर शरवर्षणकी छटाओंसे सूर्यमण्डल ढकगया इसलिये अन्धकारके कारण योधालोग लक्ष्यस्थिर न करसके इसीसमय शरोंके परस्पर घिसनेसे अग्नि उत्पन्न होनेके कारण युद्धस्थल और भी प्रभामय होगया ॥ ५३ ॥ कठोर ज्या शब्दसे दिशायें मानो बहरी होगईं इसीसमयमें देवीके शरीरसे शक्तियें निकलीं ॥ ५४ ॥ कालिका तारिणी षोडशी त्रिपुरा भैरवी कमला बगला मातङ्गी त्रिपुरसुन्दरी ॥ ५५ ॥ कामाक्षी तुलजादेवी जम्भिनी मोहिनी छिन्नमस्ता और अयुतबाहु गुह्यकाली इत्यादि समस्त प्रधान शक्तियें देवीके शरीरसे निकलीं ॥ ५६ ॥ फिर बत्तीस शक्ति इसके उपरान्त चौसठ शक्ति इसके पीछे असंख्य शक्ति शस्त्रसहित देवीके शरीरसे निकली॥ ५७॥ परन्तु शक्तियोंके एक शत अक्षौहिणी सेना नष्टकरनेपर समरस्थलमें मृदङ्ग शंख वीणा इत्यादि वाद्यध्वनि होने लगी ॥ ५८ ॥ इसी अवसरमें वह सेनापति सुरशत्रु दुर्गमअसुर सन्मुख उपस्थित होकर प्रथम शक्तियोंके सहित संग्राम करने लगा ॥ ५९ ॥ क्रमानुसार वह युद्ध ऐसा घोर होगया कि दश दिनमेंही वह सम्पूर्ण अक्षौहिणी नष्ट होगई यही क्या मृतक योधाओंकी रुधिरधारासे रक्तकी नदियें बहने लगी ॥ ६० ॥ फिर दारुण ग्यारहवां दिन उपस्थित होनेपर वह दानव कटिमें लालवस्त्र पहरे गलेमें रक्तमाल्य धारण और सर्वाङ्गमें लालचन्दन लेपनपूर्वक ॥ ६१ ॥ महामहोत्सव कर युद्धकेलिये रथपर चढ़ा तब उसने अतीव (परिश्रमसे) समस्त शक्तियोंको जीतकर ॥ ६२ ॥ महादेवीके सन्मुख अपना रथ स्थापन किया इसके उपरान्त देवी और दानव दोनोंका दो पहरतक घोर युद्ध हुआ ॥ ६३ ॥ त्राससे लोकोंका हृदय कम्पित होने लगा इसी समय देवी जगदम्बिकाने अत्यन्त उग्र पंद्रहबाण छोडे ॥ ६४ ॥ चार शरसे उसके चारों वाहन एक शरसे उसका सारथि दो शरसे उसके दोनों नेत्र और दो शरसे उसकी दोनों भुजा एक शरसे उसकी ध्वजा ॥ ६५ ॥ और पाँच शरसे उसका हृदय वीन्धडाला तब उसने रुधिरको वमन करते करते परमेश्वरीके सन्मुखही प्राणत्याग किया ॥ ६६ ॥ इसीसमय उसके शरीरसे निकला हुआ तेज देवीके शरीरमें लीन होगया उस महाबलवान् दानवके मारे जानेपर तीनों जगत्ने

शान्ति भाव धारण किया ॥ ६७ ॥ फिर हरि हर ब्रह्मा और अन्यान्यदेवता भक्तिपूर्वक गद्गदवचनोंसे जगदम्बिका का स्तव करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ ६८ ॥ देवताओंने कहा हे शिवे ! भ्रमरूप जगत्‌के परिवर्त्तनका आपही एकमात्र कारण हैं सुतरां आपही प्राणीमात्रकी अधीश्वरी हैं ऐसा न होनेसे आप शाकादि द्वारा प्राणियोंका पालन क्यों करतीं ? अतएव हे शतलोचने हम आपको वारंवार प्रणाम करते हैं ॥ ६९ ॥ हे शिवे ! समस्त उपनिषद् आपकी महिमा (कथन) करते हैं अतएव आपही मायाकी अधीश्वरी होकर जीवोंके अन्नमयकोषमें विराजमान रहती हैं अतएव हे दुर्गमासुरनाशिनी ! आपको नमस्कार करते हैं ॥ ७० ॥ आपही प्रणवार्थ प्रतिपादित भुवनेश्वरी हैं सुतरां मुनीश्वरलोग निर्विकल्पचित्तसे आपकाही ध्यान करते हैं अतएव हमभी आपकी भावना करते हैं ॥ ७१ ॥ आपही हमारे लिये समय समयमें दिव्यदेह धारण करती हैं वस्तुतः आपही अनन्त ब्रह्माण्डकी जननी हैं अधिक क्या ब्रह्मा हरि और हरकीभी उत्पन्नकरनेवाली हैं अतएव हम सर्वान्तःकरणसे आपको प्रणाम करते हैं ॥ ७२ ॥ आपही सबकी माता हैं इसकारण दयाके वशहो इन पामरजनोंका दुःख देखकर आपही शतनेत्रोंसेरोदन करती हैं किन्तु हे परमेशानि ! यदि कोई सम्पूर्णका ईश्वर हो तथापि आपके अतिरिक्त और कोई रोदन नहीं करेगा ॥ ७३ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! ब्रह्मा विष्णु और हर इत्यादि देवताओंके इसप्रकार देवीका स्तव और अनेकप्रकार उत्तम द्रव्यद्वारा उनकी पूजा करनेपर वह तत्काल सन्तुष्ट हुईं ॥ ७४ ॥ तब देवीने प्रसन्नहोकर सम्पूर्ण वेदोंको लायकर ब्राह्मणोंको समर्पण किये अन्तमें उन कोकिलके समान मधुर बोलने वाली ने उनसे विशेषकरके कहा ॥ ७५ ॥ कि वेदही मेरा उत्तमतनु है अतएव तुम विशेष यत्न सहित इनकी रक्षा करो इनकी अपेक्षा श्रेष्ठतम अन्य कुछ नहीं है क्योंकि कल्याणके लियेही मैंने तुमने यह उपदेश दिया है ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ मेरे उत्तम माहात्म्यको सदा पाठकरना मैं इससे सन्तुष्ट होकर तुम्हारी सम्पूर्ण आपदायें नष्ट करूंगी ॥ ७८ ॥ दुर्गम असुरका संहार करनेसे मेरा दुर्गमाना महुआ है अतएव जो पुरुष मेरा दुर्गानाम और शताक्षीनाम ग्रहण करेंगे वही मायाको दूरकर परमपद जासकेंगे ॥ ७९ ॥ अब अधिक कहनेका प्रयोजन नहीं है इस समय जो सार है वही कहती हूं हे देवताओ ! सुर अथवा असुर सम्पूर्णही सदा मेरी सेवा करो ॥ ८० ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! वह सच्चिदानन्दनस्वरूपिणी

देवी ऐसे वचनोंसे देवताओंका सन्तोष सम्पादन करके उनके सामनेही अन्तर्धान होगई ॥ ८१ ॥ हे राजन् ! यह तो मैंने तुमसे अत्यन्त विस्तीर्ण परम रहस्य समस्तही वर्णन किया किन्तु यह सम्पूर्णही कल्याणका आस्पद है अतएव इसको यत्न सहित गुप्त रक्खो ॥ ८२ ॥ जो मनुष्य भक्तिमें तत्पर होकर यह अध्याय नित्य श्रवण करता है वह सम्पूर्ण काम्यवस्तुओंको प्राप्त करके अन्तमें देवीके लोकमें पूजाको प्राप्त होता है ॥ ८३ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः २९.

व्यासजीने कहा हे महाराज ! यह तो देवीका माहात्म्य वर्णन किया इस समय सूर्यवंशीय और चन्द्रवंशीय धार्मिक राजाओंके पवित्र चरित्रका विषय यथाशक्ति वर्णन करता हूं ॥ १ ॥ इन सम्पूर्ण राजाओंमें ऐसा पराक्रम होनेका कारण यह है कि वह सभी परादेवीके परमभक्त थे अतएव शक्तिके प्रसादसेही उन्होंने ऐसा महत्व प्राप्त किया था आप निश्चय जानिये कि पराशक्तिही उनके महत्वमूल कारण है ॥ २ ॥ उनका विक्रम वीर्य और ऐश्वर्य समस्त ही पराशक्तिके अंशसे उत्पन्न हुआ है इसमें सन्देह नहीं ॥ ३ ॥ हे नरपाल ! यह सम्पूर्ण राजा और अन्यान्य राजा लोगने पराशक्तिके उपासक होकर ज्ञानरूप कुठारसे संसाररूपी वृक्षकी जड़ काटी है ॥ ४ ॥ अतएव अत्यन्त यत्नसहित भलीभाँति देवी भुवनेश्वरीकी सेवा करनी चाहिये धनकी इच्छा करनेवाले मनुष्य जिसप्रकार पलाल परालभूसी त्याग करते हैं इसी प्रकार भक्तोंके सम्पूर्ण वासना त्यागनी उचित है ॥ ५ ॥ हे नरनाथ ! मैंने वेद रूप सागर मथकर पराशक्तिके चरण सरोजरूप रत्न प्राप्त किये हैं इससे अत्यन्त कृतकृत्य हुआ हूं ॥ ६ ॥ ब्रह्मा विष्णु रुद्र और ईश्वर जिनके चारों कोणमें स्थित चार पादपस्वरूप हैं सदाशिव ब्रह्मादिक जिनके मस्तक स्थित फलक स्वरूप हैं उन श्रीदेवीके अतिरिक्त श्रेष्ठ देवता दूसरा कोई नहीं है इन अज्ञानी मनुष्योंको प्रतिपन्न (ज्ञानप्रगट) करनेके लियेही महादेवीने ब्रह्मा विष्णु रुद्र ईश्वर और शिवात्मक आसनकी कल्पनाकी है ॥ ७ ॥ ब्रह्मा विष्णु रुद्र ईश्वर और सदाशिव यह पृथ्वी जल अग्नि वायु और आकाश इन पञ्चभूतोंको अधिपतिहैं इन पञ्चमहाभूतोंकी उत्पत्ति जिनसे हुई है वेदमें उन वस्तुओंको व्यक्त अथवा अव्याकृत (का प्रगट) कहकर

दोनोंही तेजहीन शक्तिहीन और चेतनारहित होकर विक्षिप्त होगये ॥ ३३ ॥ यह देखकर ब्रह्माजीने चिन्तासे व्याकुल हो विचार किया कि, हरि और हर दोनोंही देवताओंमें प्रधान हैं किन्तु यह जगत कार्यमें असमर्थ क्यों हुए ? इस उपस्थित व्यापारका क्या कारण है ? ॥ ३४ ॥ किसलिये अकालमें यह संकट उपस्थित हुआ है? कार्यके अभावसे निरपराध इस जगत्में क्या प्रलय उपस्थित होगी॥ ३५॥ इसका कारण कुछ नहीं जाना जाता अतएव किसप्रकार प्रतिकार करूंगा, इसप्रकार चिन्तासे अत्यन्त कातर हो उसका कारण जाननेकी इच्छासे नेत्र मूंदकर ध्यानमें निमग्न हुए ॥ ३६ ॥ हे नृपोत्तम ! अनन्तर पद्मयोनि ब्रह्माजीने ध्यानसे जाना कि पराशक्तिके अत्यन्त कोपके प्रभावसे यह दुर्घटना उपस्थित हुई है ॥ ३७ ॥ तब वह उनके प्रतिकारमें यत्न करने लगे जबतक हरि और हर स्वस्थ न हुए तपोधन ब्रह्मा स्वीय शक्तिके प्रभावसे तबतक उनका पालन और संहार कार्य स्वयं निर्वाह करने लगे ॥ ३८ ॥ अनन्तर धर्मात्मा प्रजापतिने उनको सुस्थिर करनेकी इच्छासे अपनी सन्तान मनु और सनकादि ऋषियोंको शीघ्र बुलाया ॥ ३९ ॥ जब उन्होंने आनकर प्रणाम किया तब तपोनिधि चतुरानन ब्रह्माजीने कहा मैं इस समय अधिक कार्यमें आसक्त हूं अतएव तपस्याका अनुष्ठान नहीं करसक्ता ॥ ४० ॥ पराशक्तिके कोपसे हरि और हर विक्षिप्त हुए हैं सुतरां उन्हीं महाशक्तिके सन्तोषनार्थ जगत्की सृष्टि संहार और पालन इन तीनों कार्योंका भार मैंने ही लिया है ॥ ४१ ॥ अतएव तुम अत्यन्त भक्तिसहित कठोर तपस्या करके उन पराशक्तिको सन्तुष्ट करो ॥ ४२ ॥ हे पुत्रगण ! जिससे हरि और हर पहलेकी समान अवस्थाको प्राप्त होकर शक्तिके सहित मिलित हों तुम उसीके अनुसार कार्य करो इससे तुम्हारे यशकी वृद्धि होगी इसमें सन्देह नहीं ॥ ४३ ॥ परन्तु जिस कुलमें वह दोनों शक्तियें जन्म लेंगी वह कुल सम्पूर्ण जगत्को पवित्र करेगा अधिक क्या वह व्यक्तिभी स्वयं कृतार्थ होगा ॥ ४४ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! विमलान्तःकरण दक्षादि मानसपुत्र पितामहके इस प्रकार वचन सुनकर उन पराशक्तिकी आराधना करनेकी इच्छासे वनको चलेगये ॥ ४५ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

त्रिंशोऽध्यायः ३०.

व्यासजीने कहा हे महाराज! हिमालय पर्वतकी तटभूमि अत्यन्त निर्जन स्थानहैं, सुतरां उन्होंने वनमें जाकर तपस्याके लिये उसी स्थानमें मन लगाया, वह समाहित चित्तसे मायाबीज भुवनेश्वरीका मंत्र जपते जपते उसी स्थानमें तपस्या करनेलगे ॥ ॥ १ ॥ हे राजन्! परमाशक्तिका ध्यान करते करते एक लक्ष वर्ष व्यतीत होनेपर देवीने प्रसन्न होकर उनको दर्शन दिया ॥ २ ॥ उनकी मूर्त्ति त्रिनयना और सच्चिदानन्दरूपिणी है इस कारण वह करुणारससे परिपूर्ण हो एक हाथमें पाश और एक हाथमें अंकुश धारणकर भक्तोंको एक हाथसे अभय और एक हाथसे वर देती है ॥ ३ ॥ वह विमलस्वभाव मुनिगण जगज्जननीकी इसप्रकार मूर्त्ति देखकर उनका स्तव करनेलगे हे देवि! आप पृथक्रूपसे समस्त स्थूलदेहोंमें विराजमान रहती हो अतएव आपको नमस्कार करते हैं हे परमेश्वरि! आपही पृथक्रूपसे सम्पूर्ण लिंगदेहोंमें वर्तमान रहती हैं अतएव आपको प्रणाम करते हैं ॥ ४ ॥ आपही समष्टिरूप समस्त लिंगदेहोंमें वास करती हैं तैजसरूप हैं अतएव आपको नमस्कार करते हैं जिसमें सम्पूर्ण लिंग देह ओतप्रोतभावसे अवस्थित रहते हैं ॥ ५ ॥ आपही पृथक् रूपसे उन सम्पूर्ण कारण देहोंमें विराजमान रहती हैं अतएव आपको नमस्कार करते हैं आपही समस्त जीवोंके अधिष्ठान भूत कूटस्थ ब्रह्मस्वरूप होकर सम्पूर्ण देहोंमें विराजमान रहती हैं अतएव आपको नमस्कार करते हैं ॥ ६ ॥ आपही समस्त भूतोंकी लक्ष्यभूत आत्मस्वरूप हैं अतएव आपको वारंवार नमस्कार करते हैं अमलस्वभाव दक्षादि मुनियोंने भक्तिपूर्वक गद्गदस्वरसे जगद्धात्रीका इस प्रकार स्तव कर ॥ ७ ॥ उनके चरण कमलोंमें प्रणाम किया अनन्तर देवीने प्रसन्न होकर कोकिलके समान मधुर स्वरसे कहा ॥ ८ ॥ हे महाभागगण! मैं सर्वदाही वर देनेको प्रस्तुत हूं अतएव तुम वरकी प्रार्थना करो हे नृपसत्तम. उन्होंने देवीके इसप्रकार वचन सुनकर प्रार्थनाकी कि, हरि और हर दोनोंही स्वास्थ्य लाभकर ॥ ९ ॥ अपनी अपनी शक्ति लक्ष्मी और गौरीको प्राप्त करैं फिर दक्षने पुनर्वार कहा कि हे देवि! आपका जन्म मेरेही कुलमें हो ॥ १० ॥ हे अम्बे! इससे मैं कृतार्थ हूंगा इसमें सन्देह नहीं अतएव हे परमेशानि! अपनी पूजा जप ध्यान और उसके उपयुक्त अनेक स्थानोंके ॥ ११ ॥ विषय आपही अपने मुखसे वर्णन कीजिये देवीने कहा

मेरीही शक्तिके अपमानसे उन हरि और हर दोनोंकी यह दशा हुई है॥ १२॥ अतएव अब ऐसा अपराध कभी न करैं इससमय मेरी कृपाके लेशसे उन शरीरको स्वास्थ्य प्राप्त होगा ॥ १३ ॥ और दोनों शक्तियोंमेंसे एक शक्ति तुम्हारे घर और अन्य शक्ति क्षीरोदसागरमें जन्म ग्रहण करेगी परन्तु मेरे उनको प्रेरण करनेपर हरि और हर अपनी अपनी शक्तिको प्राप्त होंगे ॥ १४ ॥ मायाबीजही मेरा मुख्य मंत्र है यह सदा मुझको प्रिय है सुतरां इस मंत्रसेही मेरा जप और पूजा करो तुम सन्मुख जिस मूर्त्तिके देखतेहो मेरी यही भुवनेश्वरी मूर्त्ति है अथवा मेरे विराट्रूप ॥ १५॥ किंवा मेरे सच्चिदानन्दरूपका ध्यान करो और सम्पूर्ण जगत्‌ही मेरा स्थान है अतएव समस्त स्थानोंमें मेरी पूजा और ध्यान सर्वदा करो ॥ १६ ॥ व्यासजीने कहा मणिद्वीपवासिनी भुवनेश्वरी देवी इस प्रकार उनके प्रश्नका उत्तर देकर अन्तर्धान होगई दक्ष इत्यादि सम्पूर्ण मुनियोंने फिर ब्रह्माके निकट जाकर ॥ १७ ॥ वह समस्त वृत्तान्त भ्रमयुक्त हो उनसे निवेदन किया हे नृपवर! उस प्रकार हरि और हर दोनों गर्वरहित हो परमादेवी अम्बिकाकी कृपासे स्वस्थ होकर अपने अपने कार्य करनेमें समर्थ हुए थे ॥ १८ ॥ यह गर्वरहित हो महाशक्तिकी कृपासे स्वस्थ हुए अनन्तर किसीसमय पराशक्तिकी परमतेजःस्वरूपिणी देवी भगवती ॥ १९ ॥ दक्षप्रजापतिके घर उत्पन्न हुई हे महाराज! उस समय त्रैलोक्यमें सर्वत्र महोत्सव होनेलगा सम्पूर्ण देवता लोग प्रमुदित हो प्रफुल्लितचित्तसे फूलोंकी वर्षा करनेलगे ॥ २० ॥ स्वर्गमें सुरदुन्दुभि सम्पूर्ण कराङ्गुलियोंसे आहत होकर गम्भीर ध्वनि करनेलगी तब विमलात्मा साधुओंके मन प्रसन्न हुए॥ २१॥ और सूर्यकी प्रभा निर्मल होगई सम्पूर्ण सरित् आनन्दमें भर कर उछलतेहुए अपने मार्गमें वहनेलगे जीवोंकी जन्ममृत्यु निवारणकारिणी देवीजगन्मङ्गलाके जन्म ग्रहण करनेपर सर्वत्र मंगलका सञ्चार हुआ॥ २२॥ वह परब्रह्मस्वरूपिणी देवी सत्यस्वरूपिणी होनेके कारण तत्त्वज्ञानी मुनियोंने उनका "सती" नाम रक्खा अनन्तर प्रजापति दक्षने जो पूर्वमें महेश्वरकी शक्ति थीं उन्होंने उनको फिर देवादिदेव महादेवको प्रदानकी ॥ २३ ॥ वही दाक्षायणी देवी दक्षके अपराधसे प्रज्वलित अग्निमें दग्ध हुई थीं, जनमेजयने कहा हे मुनिवर! आपने मुझको विषम अनर्थकर यह वचन सुना या॥ २४ ॥ ऐसी परम सद्रूप महत् वस्तु किसप्रकार अग्निमें दग्ध हुई जिनका नाम स्मरण करनेसे मनुष्योंका संसाररूप घोर अग्निभय नष्ट होता है ॥ २५ ॥ प्रजापतिके कौन कर्मविपाकसे वह वस्तु दग्ध हुई थी उसको सुननेके लिये मेरी इच्छा

अत्यन्त बलवती हुई है आप कृपाकरके मुझसे विस्तारसहित वर्णन कीजिये व्यासजीने कहा हे राजेन्द्र! सतीके दाहका कारण स्वरूप पुरातन इतिहास वर्णन करता हूं श्रवणकरो ॥ २६ ॥ किसीसमय ऋषिवर दुर्वासाने जाम्बूनदवाहिनी नदीके तटपर जायकर वहाँ स्थित देवीका दर्शनकिया अनन्तर वह उस स्थानमें अवस्थित होकर शांतचित्तसे मायाबीजका जपकरनेलगे ॥ २७॥ तदनन्तर सुरेश्वरी भगवतीने उनके प्रति प्रसन्न होकर मकरन्दगन्धसे प्रमोदित प्रमत्त भौंरोंसे युक्त कण्ठस्थित मनोहरमाला ॥ २८ ॥ प्रसादस्वरूप उनको प्रदानकी महर्षिजीनेभी शीघ्र उसको ग्रहणकर मस्तकमें धारणकिया इसके उपरान्त उन तपस्वीप्रवर महर्षिने शीघ्रता सहित आकाशमार्गसे चला ॥२९॥ अम्बिकाके दर्शनार्थ जहाँ सतीके पिता प्रजापति दक्ष स्थिति करतेथे उस स्थानमें आनकर सतीके चरणकमलोंमें प्रणाम किया ॥ ॥ ३० ॥ अनन्तर प्रजापतिने उनसे पूंछा हे महर्षे ! यह अलौकिक माला किसकी है ? हे प्रभो पृथ्वीमें दुर्लभ यह मोहिनीमाला आपने किसप्रकार प्राप्त की ? ॥ ॥ ३१ ॥ तब वह वाग्मिप्रवर महर्षि दुर्वासा उनके इस प्रकार वचन सुनकर प्रेमविगलितचित्तसे नेत्रोंमें आंसू भर कहने लगे हे प्रजापते ! मैंने देवीका प्रसादस्वरूप यह अनुपम मनोहारिणी माला प्राप्त कीकही ॥ ३२ ॥ यह सुनकर प्रजापतिने महर्षि दुर्वासासे वह माला मांगी उनको भी त्रैलोक्यमें शक्तिके भक्तको अदेय कुछभी नहीं था ॥ ३३ ॥ इसप्रकार विचार कर प्रजापति दक्षको वह मालादेदी उन्होंने उस मालाको मस्तकमें धारणकर फिर जिस घरमें॥ ३४॥ दम्पतिकी अतिमनोहर शय्या सज्जित थी उसी शय्याके ऊपर रखदी रात्रिकालके समय उस मालाकी सुगन्धसे आमोदित होकर वह महीपति सुरतकार्यमें आसक्त हुए ॥ ३५॥ हे नृपवर ! उस पशुकर्म निबन्धनके कारण उनको सतीदेवी और शङ्करके प्रति विद्वेष उत्पन्न हुआ इससे वह शिवकी निन्दा करनेलगे ॥ ३६ ॥ हे महाराज ! उसी अपराधसे सतीने सनातन पतिव्रत धर्मके मर्यादाकी रक्षा करनेके लिये उस दक्ष-जनित देहको त्यागकरनेका संकल्पकर योगाग्निद्वारा अपना देह दग्ध किया ॥ ॥ ३७ ॥ वह शक्ति समद्भूत तेज फिर हिमाचलमें प्रादुर्भूत हुआ था जनमेजयने कहा हे मुनिवर ! सतीका देह दग्ध होजानेपर ॥ ३८ ॥ प्राणाधिका सतीके वियोगमें कातर होकर महादेवने क्या किया था ? व्यासजीने कहा हे महाराज ! इसके उपरान्त जिस प्रकार घटना हुई थी मैं उसको वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हूं ॥ ३९॥

हे नृपवर! तिससमय शिवकी क्रोधाग्निद्वारा त्रिलोकमण्डलमें प्रलय उपस्थित हुईथी भद्रकालीगणद्वारा परिवृत हो वीरभद्र उत्पन्न होकर ॥ ४० ॥ तीनों लोकके नाशमें उद्यत हुए तब ब्रह्मादि देवताओंनें शङ्करकी शरण ग्रहण की ॥ ४१ ॥ सतीके विनाशसे सर्वस्वनाश होनेपरभी करुणानिधान ईशाननें दक्षका यज्ञ विनष्टकर उनका मस्तक छेदन किया और उसी स्थानमें बकरेका शिरसंयोजनपूर्वक ॥ ४२ ॥ उनको जीवित कर देवताओंको अभय प्रदानकी तब देवादिदेव महादेव अतिखिन्न हो यज्ञस्थानके समीप जाकर अत्यन्त दुःखसे रोदन करनेलगे ॥ ४३ ॥ अनन्तर जब उन्होंने देखा कि उस चैतन्यरूपिणी सतीका देह चिताग्निमें दग्ध होता है तब वह हासती हासती इस प्रकार कहकर रोदन करते करते सतीका देह स्वयं कन्धेपर रख॥ ४४॥ भ्रान्तचित्तसे अनेक देशोंमें भ्रमण करनेलगे यह देखकर ब्रह्मादि देवतागण अत्यन्त चिन्तित हुए ॥ ४५ ॥ और भगवान् विष्णुने धनुर्धारणपूर्वक बाणोंसे सतीके सम्पूर्ण अङ्ग छेदनकिये वह सम्पूर्ण अवयव जिनजिन स्थानोंमें पतित हुए ॥ ४६ ॥ शंकरने अनेकमूर्त्ति धारण कर उन उन स्थानोंमें स्थिति की, तब उन्होंने देवताओंसे कहा कि इन सम्पूर्ण स्थानोंमें जोजो पुरुष परमभक्तिसहित भगवतीकी ॥ ४७ ॥ आराधना करैंगे उनको कुछ दुर्लभ नहीं रहैगा इन सम्पूर्ण स्थानोंमें परमादेवी अम्बिका सदा स्थित रहतीं हैं ॥ ४८ ॥ जो जो मनुष्य इन सम्पूर्ण स्थानोंमें समस्त मंत्रोंका विशेषकर मायाबीजका पुरश्चरण करैंगे उनको सम्पूर्ण मंत्रोंकी सिद्धि होगी इसमें सन्देह नहीं ॥ ४९ ॥ हे नृपवर! यह कहकर महेश्वर सतीके विरहसे अत्यन्त कातर हो जप, ध्यान और समाधि अवलम्बनपूर्वक उन उन स्थानोंमें काल व्यतीत करनेलगे ॥ ५० ॥ जनमेजयने कहा किस किस स्थानमें सतीके सम्पूर्ण अंग पतित हुए थे? उन सब सिद्धपीठका क्या नाम है? और उन सम्पूर्ण पीठोंकी कितनी संख्या है? आप आनुपूर्वक समस्त कीर्तन कीजिये ॥ ५१ ॥ हे महामुने! मैं आपके मुखकमलसे निकली हुई सम्पूर्ण कथा सुनकर इस संसारमें कृतार्थता प्राप्त करूंगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५२ ॥ व्यासजीने कहा हे राजेन्द्र! जिन सबका नाम सुननेसेही मनुष्य पापरहित होता है मैं इस समय वह समस्त पीठस्थान कीर्तन करूंगा श्रवण करो ॥ ५३ ॥ जिनजिन पीठस्थानमें ऐश्वर्याकांक्षी सिद्धि काम मनुष्योंको इन देवीकी उपासना और ध्यान करना कर्तव्य है मैं वह समस्त स्थान भलीभांति कीर्तन करता हूं ॥ ५४ ॥ हे महाराज! वाराणसीमें गौरीका

मुख निपतित हुआ है उसी मुखरूप पीठमें भगवतीकी जो मूर्ति विराजमान है वह विशालाक्षी नामसे विख्यात है नैमिषारण्यमें निपतित देवीकी मूर्त्तिका नाम लिङ्गधारिणी है ॥ ५५ ॥ यह महामाया प्रयागमें ललिता गन्धमादनमें कामुकी दक्षिण मानसमें कुमुदा और उत्तर मानसमें ॥ ५६ ॥ विश्वकी वाञ्छापूरिणी विश्वकामा है गोमन्तमें गोमती और मन्दर पर्वतमें कामचारिणी नामसे विख्यात होकर विराजमान रहती है ॥ ५७ ॥ यह देवी चैत्ररथमें मदोत्कटा हस्तिनापुरमें जयन्ती कान्यकुब्जमें गौरी मलयपर्वतमें रम्भा ॥ ५८ ॥ एकाम्रपीठमें कीर्तिमती विश्वमे विश्वेश्वरी और पुष्करमें पुरुहूता नामसे कीर्तित हैं ॥ ५९ ॥ यह केदारपीठमें सन्मार्गदायिनी हिमाचलपृष्ठमें मन्दा गोकर्णमें भद्रकर्णिका ॥ ६० ॥ स्थानेश्वरमें भवानी बिल्वकमें बिल्वपत्रिका श्रीशैलमें माधवी भद्रेश्वरमें भद्रा ॥ ६१ ॥ वराहशैलमें जया कमलालयमें कमला रुद्रकोटिमें रुद्राणी कालञ्जरमें काली ॥ ६२ ॥ शालग्राममें महादेवी शिवलिङ्गमें जलप्रिया महालिङ्गमें कपिला माकोटमें मुकुटेश्वरी ॥ ६३ ॥ मायापुरीमें कुमारी सन्तानमें ललिताम्बिका गयाक्षेत्रमें मंगला पुरुषोत्तममें विमला ॥ ६४ ॥ सहस्राक्षमें उत्पलाक्षी हिरण्याक्षमें महोत्पला विपाशानदीमें अमोघाक्षी पुण्ड्रवर्धनमें पाटला ॥ ६५ ॥ सुपार्श्वमें नारायणी त्रिकूटमें रुद्रसुन्दरी विपुलमें विपुला देवी मलयाचलमें कल्याणी ॥ ६६ ॥ सह्याद्रिमें एकवीरा हरिश्चन्द्रमें चन्द्रिका रामतीर्थमें रमणा युमनामें मृगावती ॥ ६७ ॥ कोटतीर्थमें कोटिवी माधववनमें सुगन्धा गोदावरीमें त्रिसन्ध्या गंगाद्वारमें रतिप्रिया ॥ ६८ ॥ शिवकुण्डमें शुभानन्दा देविकांतरमें नन्दिनी द्वारावतीमें रुक्मिणी वृन्दावनमें राधा ॥ ६९ ॥ मथुरामें देवकी पातालमें परमेश्वरी चित्रकूटमें सीता और विन्ध्यमें विन्ध्याधिवासिनी नामसे विख्यात होकर विराजमान रहती हैं ॥ ७० ॥ हे महाराज! यही महादेवी भगवती करवीरपीठमें महालक्ष्मी विनायकमें उमादेवी वैद्यनाथमें आरोग्या महाकालमें महेश्वरी ॥ ७१ ॥ उष्णतीर्थमें अभया विन्ध्यपर्वतमें नितम्बा माण्डव्यमें माण्डवी माहेश्वरीपुरीमें स्वाहा ॥ ७२ ॥ छगलण्डमें प्रचण्डा अमरकण्टकमें चण्डिका सोमेश्वरीमें वरारोहा प्रभासमें पुष्करावती ॥ ॥ ७३ ॥ सरस्वतीमें देवमाता समुद्रतटमें पारावारा महालयमें महाभागा पयोष्णीमें पिङ्गलेश्वरी ॥ ७४ ॥ कृतशौचमें सिंहिका कार्तिकमें अतिशाङ्करी उत्पलावर्तकमें लोला शोणसङ्गममें सुभद्रा ॥ ७५ ॥ सिद्धवनमें मातालक्ष्मी भारताश्रममें

अनङ्गा जालन्धरमें विश्वमुखी किष्किन्धापर्वतमें तारा ॥ ७६ ॥ देवदारुवनमें पुष्टि काश्मीरमंडलमें मेधा हिमाद्रिमें भीमा विश्वेश्वरक्षेत्रमें तुष्टि ॥ ७७ ॥ कपालमोचनमें शुद्धि कायावरोहणमें माता शंखोद्धारमें धरा पिण्डारकमें धृति ॥ ७८ ॥ चन्द्रभागा नदीमें कला अच्छोदमें शिवधारिणी वेणामें अमृता बदरिकाश्रममें उर्वशी ॥ ॥ ७९ ॥ उत्तर कुरुमें औषधि कुशद्वीपमें कुशोदका हेमकूटमें मन्मथा कुमुदमें सत्यवादिनी ॥ ८० ॥ अश्वत्थमें वन्दनीया वैश्रवणालयमें निधि वेदवदनमें गायत्री शिवसन्निधानमें पार्वती ॥ ८१ ॥ देवलोकमें इन्द्राणी ब्रह्माके आस्यमें सरस्वती सूर्य-बिम्बमें प्रभा और मातृगणोंके सन्निधानमें वैष्णवीनामसे विख्यात होकर विराजमान रहती हैं ॥ ८२ ॥ यही सतियोंमें अरुन्धती और रामागणोंमें तिलोत्तमा नामसे विख्यात हैं तथा यही संविद्रूपा महादेवी हैं, सम्पूर्ण शरीरियोंके चित्तक्षेत्रमें ब्रह्मकला नामक शक्तिरूपसे सदा अधिष्ठित रहती हैं ॥ ८३ ॥ हे जनमेजय ! यह मैंने एकशत अष्ट पीठ और तत्संख्यक ईशानीदेवीका विषय तुमसे वर्णन किया ॥ ८४ ॥ देवीके अंगभूत सम्पूर्ण पीठ और प्रसंगके क्रमसे पृथ्वीतलके अन्यान्य मुख्यस्थानभी कीर्तन हुए ॥ ८५ ॥ जो मनुष्य यह अत्युत्तम एकसौआठ देवीके नाम और पीठोंके नाम श्रवण करता है वह सर्वविध पापसे मुक्तहोकर देवीके लोकको जाता है ॥ ८६ ॥ हे जनमेजय ! जो बुद्धिमान् पुरुष इन सम्पूर्ण पीठस्थानोंमें यथा विधानसे यात्राकर श्राद्धादिद्वारा पितरोंका तर्पण ॥ ८७ ॥ और यथाविधि भगवतीकी महती पूजा करके उस जगद्धात्री जगदम्बिकाके निकट वारंवार क्षमा प्रार्थना करता है ॥ ॥ ८८ ॥ उस मनुष्यका अन्तरात्मा कृतकृत्य और पवित्र होता है इसमें सन्देह नहीं. हे राजेन्द्र ! देवीकी पूजाके अनन्तर भक्ष्यभोज्यादिद्वारा ब्राह्मण ॥ ॥ ८९ ॥ सुवासिनी कुमारी और बटुकगणोंको भोजन करावे और उस क्षेत्रमें चाण्डालादि जो कोई जाति वासकरती हो ॥ ९० ॥ उसको देवीका स्वरूप जाने अतएव उसको पूजा करना कर्तव्य है इन सम्पूर्ण क्षेत्रोंमें कभी दान न ले ॥ ९१ ॥ साधुगण इन सम्पूर्ण स्थानोंमें अपने अपने मंत्रका यथाशक्ति पुरश्वरण करते हैं और मायाबीजसे अपने स्थानकी अधिवासिनी देवीको ॥ ९२ ॥ हे राजन् ! रातदिन पूजनेसे पुरश्वरण होता है देवीके प्रति भक्तिमान् मनुष्य इन सम्पूर्ण विषयोंमें वित्तशाठ्य वा कृपणता प्रकाश न करैं ॥ ९३ ॥ जो पुरुष देवीके प्रति प्रसन्न होकर इसप्रकार पीठ-स्थानमें यात्रा करता है उसके पितृगण सहस्रकल्प पर्यन्त महत्तर ब्रह्मलोकमें ॥ ९४ ॥

वास करते हैं वह मनुष्य परमज्ञान प्राप्त करके भवसमुद्रसे मुक्त होता है तथा देवीलोकमें वास करता है ॥ ९५ ॥ देवीके इन अष्टोत्तर नामोंका पाठ करके वह मनुष्य सिद्धि प्राप्त करता है जिस किसी स्थानमें उक्त नामावली पुस्तकमें लिखित हो॥९६॥ उस स्थानमें ग्रहभय और महामारीका भय इत्यादि कुछभी नहीं होता वरन् पर्वकालमें समुद्रकी समान उस स्थानमें सौभाग्यकी वृद्धि होती है ॥ ९७ ॥ अष्टोत्तरशतनामके जपनेवाले मनुष्यको कुछ दुर्लभ नहीं रहता वह देवीका भक्त निश्चयही कृतकृत्यता प्राप्त करता है॥९८॥ वह साधुव्यक्ति देवीका स्वरूप होता है देवतागण उसको देखकर प्रणाम और उसकी पूजा करते हैं सज्जन मनुष्य जो उनकी पूजा करते हैं उसमें फिर कहना क्या है ? ॥ ९९ ॥ इस अत्युत्तम अष्टोत्तरशतनामके श्रद्धासहित पाठ करनेपर पितृगण तृप्त होकर सद्गति प्राप्त करते हैं ॥ १०० ॥ यह सम्पूर्ण स्थान साक्षात् संविन्मय मुक्तिक्षेत्र हैं अतएव हे राजेन्द्र ! बुद्धिमान् मनुष्य इन सम्पूर्ण सिद्धपीठोंका आश्रय करते हैं ॥ १०१ ॥ हे महाराज ! आपने महेश्वरीका जो जो रहस्य और अतिरहस्यका विषय पूंछा था वह सम्पूर्ण मैं ने वर्णन किया इससमय आप अब क्या सुननेकी इच्छा करते हैं ? सो कहिये ॥ १०२ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशोऽध्यायः ३१.

जनमेजयने कहा हे मुनिवर ! आपने पहले कहा है कि, अनन्तर यह परमज्योति हिमालयके पृष्ठमें आविर्भूत हुई थी इससमय उस परमज्योतिका विषय विस्तार-सहित मुझसे वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ कौन बुद्धिमान् मनुष्य इस शक्तिका कथामृत पान करनेसे विरत होगा यद्यपि सुधापायी देवताओंको किसी प्रकार मृत्युकी सम्भावना हो तथापि देवीकथामृतपान करनेवालोंके पक्षमें उसकी कुछ सम्भावना नहीं होती ॥२॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! देवीके प्रति जिसप्रकार आपकी एकान्त भक्ति देखता हूं, इससे मुझको बोध होता है कि आप महात्माओंसे शिक्षित कृतकृत्य भाग्यवान् और धन्य हुए हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ ३ ॥ हे राजन् ! अब मैं परमपुरातत्व वर्णन करता हूं श्रवण करो देवादिदेव महेश्वरने उस अग्निदग्ध सतीके देहको धारण कर भ्रान्त चित्तसे भूमण्डलपर भ्रमण करते करते जिस स्थानमें स्थिर होकर अवस्थिति की ॥ ४ ॥ उस स्थानमें वह निय-

तेन्द्रिय संसारज्ञानरहित और समाधियुक्त होकर देवीके स्वरूपका ध्यान करते करते काल व्यतीत करनेलगे ॥ ५ ॥ इस समय योगीके विना चराचरयुक्त यह त्रैलोक्यमण्डल ऐश्वर्यरहित और पर्वत, समुद्र तथा द्वीप सहित यह सम्पूर्ण भूमण्डल शक्तिविहीन होगया ॥ ६ ॥ सम्पूर्ण जीवोंके हृदयका आनन्द शुष्क होगया सम्पूर्ण मनुष्य चिन्ताके कारण जर्जरचित्त हो दीनभावसे अवस्थिति करने लगे ॥ ७ ॥ सब दुःखसागरमें निमग्न होकर रोगग्रस्त होनेलगे ग्रहोंकी विपरीत गति और देवताओंकी विपरीत अवस्था होनेलगी ॥ ८ ॥ राजालोग सतीके अभावसे आधिभौतिक और आधिदैविक दुःख परम्पराके आधीन होकर स्थिति करनेलगे ॥ ९ ॥ इसीसमय तारकनामक महासुर ब्रह्माजीसे वर प्राप्तकर अत्यन्त दुर्जय हो उठा वह वीर मदसे मत्त हो त्रिभुवनको जीत त्रैलोक्यका एकमात्र अधी-श्वर होगया ॥ १० ॥ प्रजापति ब्रह्माके "शिवका औरस पुत्र तुम्हारा हन्ता होगा" इसप्रकार वरदान करनेपर और उससमय शिवके औरस पुत्रका अभाव होनेके कारण वह महासुर सदा आनन्दसे उन्मत्त होकर जयका अभिमान करनेलगा ॥ ११ ॥ सम्पूर्ण देवता उसके उपद्रवसे स्थानभ्रष्ट होकर शिवका औरस पुत्र न होनेके कारण दुस्तर चिन्तासागरमें निमग्न हुए ॥ १२ ॥ सती देवीके इससमय प्राण त्यागनेपर महादेव भार्यारहित हुएहैं अतएव इस समय किसप्रकार उनके सुतोत्पत्ति सम्भव होसक्ती है? हम अत्यन्त भाग्यहीन हैं कारण कि शंकरकी पुत्रोत्पत्तिके अभावसे हमारा कार्य सिद्ध होना अत्यन्त कठिन होगया ॥ १३ ॥ इसप्रकार चिन्तासे कातर होकर सम्पूर्ण देवता वैकुण्ठमण्डलमें गये और निर्ज्जनमें भगवान् विष्णुसे समस्त वृत्तान्त निवेदन करनेपर वह उस विषयका उपाय कहनेलगे ॥ १४ ॥ हे सुरगण! जब मणिद्वीपनिवासिनी वाञ्छाकल्पद्रुमरूपिणी कल्याणदायिनी करुणामयी देवी भुवनेश्वरी हमारे लिये सदा जागरित रहतीहै तब तुम चिन्तासे व्याकुल क्यों होतेहो ॥ १५ ॥ वह जगज्जननी केवल हमारे अपराधसे हमको शिक्षा देनेके लिये उपेक्षा दिखाती हैं हे देवताओ! तुम निश्चय जानों कि, वह शिक्षा हमारे विनाशके निमित्त नहीं है हमारे प्रति करुणा दिखानेके लियेही वह करती हैं ॥ १६ ॥ जिसप्रकार अपनी सन्तानके लालन पालन और ताड़न विषयमें माताकी दयाहीनता नहीं दिखाई देती इसीप्रकार तुम्हारे गुण दोष विषयमें वह जगन्नियन्त्री जगज्जननी कभी निर्दय नहीं होगी ॥ १७ ॥ सन्तानसे अपराध पद पदपर होता है त्रैलोक्यमें एकमात्र जननीके

विना और कौन उसको सहसक्ता है ? ॥ १८ ॥ अतएव तुम शीघ्रही एकान्त भक्तिसहित उन्हीं परमजननी परमेश्वरीकी शरणागत होओ अवश्यही वह तुम्हारे कार्यसाधनमें यत्न करेंगी ॥ १९ ॥ देवाधिपति महाविष्णु देवताओंसे इसप्रकार आदेशकर निजजाया लक्ष्मीके सहित देवीकी आराधनाके लिये देवताओंको संग ले शीघ्र निकले ॥ २० ॥ फिर शीघ्र शैलाधिपति हिमालयमें जाय समस्तही पुरश्चरण करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ २१ ॥ हे नृपवर ! अम्बायज्ञके जाननेवाले देवताओंने अम्बा-यज्ञ आरम्भ किया और सम्पूर्णही तृतीयादि व्रतका अनुष्ठान करने लगे ॥ २२ ॥ कोई कोई देवीकी समाधि अर्थात् उनके धारावाहिक ध्यानमें परायण हुए कोई कोई निरन्तर उनका नाम जपने लगे कोई कोई देवीसूक्त जप करनेमें प्रवृत्त हुए कोई कोई नामपरायण ॥ २३ ॥ अथवा कोई कोई मंत्रपरायण हुए और कोई कोई कृच्छ्र चान्द्रायणादि व्रतपरायण हुए कोई कोई अन्तर्योगमें कोई कोई प्राणाग्निहोत्र योगमें अथवा कोई कोई न्यासादिमें नियुक्त हुए ॥ २४ ॥ और कोई २ अतन्द्रित होकर मायाबीजमंत्रद्वारा परमाशक्ति भुवनेश्वरीकी पूजा करने लगे हे महाराज ! इसप्रकार देवताओंको बहुत वर्ष व्यतीत होगये ॥ २५ ॥ फिर एक दिन चैत्रमासकी नवमी तिथि और भृगुवारमें वह श्रुतिबोधित शक्तिसम्बन्धीय परमज्योतिः अकस्मात् उनके सामने प्रगट हुई ॥ २६ ॥ यह तेज करोड करोड विद्युत्की समान अरुणवर्ण और करोड करोड चन्द्रमाकी समान शीतल था उस परमज्योतिकी प्रभा करोड़ करोड़ सूर्य्यकी समान थी चारों ओर अवस्थित होकर मूर्तिमान् चारों वेद उसका स्तव करते थे वह तेजोराशि क्या ऊर्द्ध्वमें क्या पार्श्वमें क्या मध्यमें किसी दिशामें परिच्छिन्न नहीं हुई ॥ २७ ॥ २८ ॥ उसका आदिभी नहीं और अन्तभी नहीं वह हस्तपादादि अंगसंयुक्त स्त्रीरूप पुरुषरूप अथवा नपुंसकरूप भी नहीं थी ॥ २९ ॥ देवताओं ने प्रथम उस तेजकी प्रभासे हत होकर नेत्र मूंदलिये किन्तु क्षणकालमें ही धैर्य्य अवलम्बन कर ज्योंही नेत्र खोले ॥ ३० ॥ त्योंही वह परमज्योति अतिमनो-हर दिव्य रमणीरूपसे प्रकाशित हुई उस मनोरमाङ्गी नवयौवना कुमारीके ॥ ३१ ॥ कमलकलिकानिन्दित दोनों कुच ऊँचे परम शोभायमान होरहे थे कमरमें किंकिणी मेखलाके शब्द और चरणोंसे मनोहर मंजीरकी ध्वनि आती थी ॥ ३२ ॥ उसके चारों हाथोंमें कनकवलय चारों बाहुओंमें केयूर ग्रीवादेशमें ग्रैवेयक गलदेशमें अमूल्य मणि हार गलबन्ध और परमोज्वल प्रभाजाल विस्तारित होकर शोभा पारहा था

॥ ३३ ॥ उनके कर्ण और कपोलके मध्यवर्ती केशावली नवकेतकीपुष्पपत्रोपरि विराजित दीप्तप्रभ नीलवर्ण भ्रमरावलीके समान समुज्ज्वल शोभा पाती है नितम्बबिम्ब सुघटित और अत्यन्त मनोहर रोमराजि नाभिमें विराजित होकर अपूर्व शोभा सम्पादन करती है ॥ ३४ ॥ दीप्यमान कनकताटङ्कमें उज्ज्वल परम सुन्दर मुख-कमल कर्पूरखण्डमिश्रित ताम्बूलसे पूर्ण ॥ ३५ ॥ ललाटमें अर्द्धचन्द्र शोभायमान दोनों भौंए चौड़ी नेत्रोंने उपांतभागमें कोकनदके समान अर्थात् लालकमलके समान शोभा धारण की है नासिका ऊंची अधर बिम्बाफलके समान अति मनोहर ॥ ३६ ॥ सम्पूर्ण दाँत कुन्द कलीके समान अत्यन्त मनोहर गलेमें लम्बायमान मोतीयोंका हार विराजमान है मस्तकके ऊपर हीरक और मणिरत्नमें खचित प्रदीप्त मुकुटालङ्कार कर्णमें चन्द्ररेखाकी समान करनफूल ॥ ३७ ॥ केशपाश मल्लिका और मालतीकी मालासे सुशोभित ललाट काश्मीरबिन्दुद्वारा सुसज्जित और तीनों नेत्र मुखमण्डलकी अपूर्व शोभा सम्पादन करते हैं ॥ ३८ ॥ उनके एक हस्तमें पाश और दूसरे हाथमें अंकुश तथा अन्यान्य दोनों हाथ वर और अभयदान भङ्गिमासे विराजित देहकी क्रान्ति दाड़मीके फूलकी समान परिधान अरुणवर्ण अम्बर परमशोभा विस्तार करते हैं ॥ ३९ ॥ देवताओंने इसप्रकार समस्त शृङ्गारवेषधारिणी समस्त वाञ्छापूरिणी सम्पूर्ण देवताओंसे नमस्कृत हास्यानना अखिलमोहिनी ॥ ४० ॥ अखिलजननी प्रसादसुमुखी कपटतारहित करुणाकी मूर्त्तिरूपिणी अम्बिकादेवीको सामने देखा ॥ ४१ ॥ उस करुणामयी मूर्त्तिको देखकर देवताओंने प्रणाम किया किन्तु वाष्पभारसे कण्ठ रुकजानेके कारण कुछभी न कहसके ॥ ४२ ॥ फिर अति कष्टसे धैर्य अवलम्बनकर भक्तिमें भर शिर झुकाय प्रेम अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे जगदम्बिकाका स्तव करने लगे ॥ ४३ ॥ देवताओंने कहा हे जगदम्बिके ! आप देवी और महादेवी हैं तथा आपही शिवरूपिणी हैं हम सदा संयतचित्तसे आपको वारंवार प्रणाम करते हैं हे देवि ! आपही साम्यावस्थाविशिष्ट मायोपाधियुक्त ब्रह्मरूपिणी प्रकृति और आपही सर्वकल्याणरूपिणी हैं हम संयतमनसे आपके चरणकमलोंमें प्रणाम करते हैं ॥ ४४ ॥ हे जननि ! आपही योगियोंके हृदयमें अनल शिखाकी समान अरुणवर्णसे दीप्ति पाती हैं आपही ज्ञानप्रभासे दीप्यमान हैं हे मातः ! आपही इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें चैतन्यरूपसे सर्वत्र प्रकाशित होती हैं ब्रह्मादि देवता और मानवादि जीवगण कर्मफलप्राप्तिके लिये आपकी

सेवा करते हैं हे देवि! आपही संसारसागरसे तारनेवाली हैं अतएव हम घोर संसारसमुद्रसे पार होनेके लिये आपकी शरणागत होकर आपको वारंवार नमस्कार करते हैं ॥ ४५ ॥ हे मातः ! प्राणादिपञ्चवायुकी सहायतासे जो सम्पूर्ण भावप्रकाशवाक्य उच्चारित होते हैं हम उसको माया कहते हैं वह माया हमारी कामधेनु अर्थात् हम उस कामधेनुरूपिणी मायासे इच्छानुसार धन, मान और अन्नादि दुहकर अहङ्कारमें उन्मत्त होते हैं हे मातः! आप हमारी वही भाषा-स्वरूप हैं अतएव आप सन्तुष्ट होकर हमारी वाञ्छा पूर्ण कीजिये ॥ ४६ ॥ हे देवि! आप सर्वसंहारक कालकाभी संहार करती हैं भगवान् पद्मयोनि ब्रह्मा सदा आपकी स्तुति करते हैं हे मातः! आपही विष्णुशक्ति लक्ष्मी स्कन्दमाता शिवशक्ति पार्वती ब्रह्मशक्ति सरस्वती देवमाता अदिति और आपही सतीनाम्नी दक्षकी कन्या हैं हे मातः! आप ही इसप्रकार अनेकरूप धारण करके अखिलब्रह्माण्डपूत और सम्पूर्ण को शान्तिदान करती हैं अतएव हे देवि! आपको प्रणाम करते हैं ॥ ४७ ॥ हम आपको ही महालक्ष्मी जानते हैं हम आपको सर्वशक्तिरूपिणी देवी भगवती जानकर आपका ध्यान करते हैं हे जननि! आप ही हमको अपने श्रवण, मनन और ध्यानमें प्रेरण कीजिये ॥ ४८ ॥ हे देवि! आप ही विराट्रूपिणी हैं आपको नमस्कार है आपही सूत्रात्मा, हिरण्यगर्भरूपिणी हैं आपको नमस्कार है आप ही महदादि षोड़शविकृतिरूपिणी हैं आपको नमस्कार है हे मातः! आपही ब्रह्मरूपिणी हैं आपको हम नमस्कार करते हैं ॥ ४९ ॥ जिनके सृष्टि अविद्याजनित ज्ञानसे यह जगत् रज्जू और स्रगादि (मालाआदि) में सर्पकी समान सत्य जानकर भ्रम होता है फिर जिनके सृष्टिविद्याजनित ज्ञानसे वह भ्रम दूर होता है हम भक्तिनम्रमनसे उन्हीं सर्वान्तर्यामिनी भगवती भुवनेश्वरीका ध्यान करते हैं ॥ ५० ॥ "तत्त्वमसि" इस महावाक्यस्थ तत् शब्दकी प्रतिपाद्य जो सम्पूर्णदेवताओंकी तात्पर्यभूमि चैतन्यरसरूपिणी और अखण्डानन्दस्वरूप ब्रह्मस्वरूपिणी ॥ ५१ ॥ तथा जो अन्नमय, प्राणमय, मनोमय विज्ञानमय और आनन्दमय इन पञ्चकोशके अतिरिक्त हैं जो जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओंकी साक्षिणी और जो त्वम्पदकी भी लक्ष्यार्थ हैं हम उन्हीं ज्ञानब्रह्मस्वरूपिणी भुवनेश्वरी देवीका ध्यान करते हैं ॥ ५२ ॥ हे मातः! आपही प्रणवरूपिणी ह्रींकारमूर्ति नानाविधमन्त्रात्मिका और करुणामयी हो हम आपके चरणकमलोंमें वारम्वार प्रणाम करते हैं ॥ ५३ ॥

देवताओंके इसप्रकार उन मणिद्वीपनिवासिनी जगदम्बिकाके स्तव करनेपर प्रमत्त कोकिलके कण्ठकी समान कण्ठवाली भगवती मधुर वचनों द्वारा उनसे कहनेलगी ॥ ॥ ५४ ॥ देवी बोली हे देवताओ ! तुम किसलिये यहां आये हो ? तुम्हारा क्या कार्य है सो कहो मैं सदाही भक्तोंकी वाञ्छाको कल्पतरु और वर देनेवाली विद्यमान रहती हूं ॥ ५५ ॥ तुम मेरे भक्त हो मेरे विद्यमान रहते तुमको क्या चिन्ता है ? मैं तुमको दुःखसागरसे उद्धार करूंगी ॥ ५६ ॥ हे देवताओ ! तुम मेरी यह प्रतिज्ञा सत्यही जानो हे राजन् ! देवतागण देवीके यह प्रेमपूर्ण वचन सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ ५७ ॥ और जगन्मातासे अपना मनोदुःख निवेदन करनेलगे देवता बोले हे परमेश्वरि ! आप सर्वज्ञ और सब जगत्की साक्षी है इन तीनों जगतोंमें आपसे अज्ञात कुछ नहीं है ॥ ५८ ॥ हे मातः ! शिवे ! तारक नामक असुर हमको दिनरात दुःख देता है ॥ ५९ ॥ विश्वस्रष्टा विधाताने शिवके औरसपुत्रसे उसका वध निर्दिष्ट किया है. हे महेश्वरि ! इस समय शिवगृहिणी सतीने देह त्यागकिया है सो आप जानती हैं ॥ ६० ॥ जो सर्वज्ञ हैं फिर उनके सामने पामरगण क्या कहे हैं हे जगदम्बिके ! हमने यह सम्पूर्ण वृत्तान्त संक्षेपसे वर्णन किया और हमारा अन्यान्य सम्पूर्ण दारुण दुःख आप मनमें जानसक्ती हैं ॥ ६१ ॥ हम अधिक और क्या कहैं ? आपके चरणकमलोंमें हमारी अचल भक्ति सदा विद्यमान रहे यही हमारी मुख्य प्रार्थना है और शिवकी सुतोत्पत्तिके लिये आप देह धारण कीजिये यह हमारी दूसरी प्रार्थना जानिये ॥ ६२ ॥ देवताओंके यह वचन सुन प्रसादसुमुखी परमेश्वरी उनसे कहने लगी मेरी शक्ति जो गौरीरूपसे हिमालयमें उत्पन्न होगी ॥ ६३ ॥ वही शिवसीमन्तिनी होकर पुत्रोत्पादनपूर्वक उसके द्वारा तारकासुरका वध करके तुम्हारा कार्यसाधन करेगी और मेरे चरणकमलोंमें तुम्हारी प्रेमपूर्ण निश्चल भक्ति होगी ॥ ६४ ॥ हिमालय भी अत्यन्त भक्तिसहित एकान्तमनसे मेरी उपासना करते हैं अतएव उनके गृहमें मेरा जन्म ग्रहणकरना अत्यन्त प्रिय जानना चाहिये ॥ ६५ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! गिरिराज हिमालय भी उनके अत्यन्त अनुग्रहसूचक वचन सुनकर प्रेमजनित बाष्पसे भर रुद्धकण्ठ हो अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे त्रैलोक्यसाम्राज्ञी भुवनेश्वरीसे कहनेलगे ॥ ६६ ॥ हे देवि ! आप जिसके प्रति अनुग्रह करती हैं उसको आप अत्यन्त महत् करदेती हैं नहीं तो जड़ और स्थावर पाषाणपुञ्ज मैं कहाँ ? और वाक्य तथा मनके अगोचर

सच्चिदानन्दरूपिणी आप कहाँ ? हमारे गृहमें उत्पन्न होकर आप हमारे प्रति इतना अनुग्रह कर क्यों प्रकाश करती यही आपके अनिर्वचनीय महत्त्वका परिचयप्रदान करता है इसमें सन्देह नहीं॥ ६७॥ हेविमले!हमारे पक्षमें आपके जनकत्वलाभका अनन्त जन्म अश्वमेधादिजनित अथवा समाधिजनित पुण्यके अतिरिक्त और कोई कारण दिखाई नहीं देता ॥ ६८ ॥ अहो ! हमारे प्रति आपने क्या अनुग्रह किया है " जगन्माता जगद्धात्री इन हिमालयकी कन्या हुई अतएव यह व्यक्ति ही धन्य और भाग्यवान् है " अबसे हमारी इसप्रकार अतुल कीर्ति इस सम्पूर्ण जगत्में प्रचलित होगी ॥६९॥जिनके जठरमें करोड़ करोड़ ब्रह्माण्ड स्थित रहते हैं वह जिनकी कन्या हुई पृथ्वीतलमें उसकी समान सौभाग्यवान् और पुण्यवान् और कौन होसक्ता है ? ॥ ७० ॥ जिनके वंशमें मेरी समान पुण्यवान् मनुष्यने जन्म ग्रहण किया है मेरे उन पितरोंके वासार्थ कैसे परमोत्कृष्ट समस्त स्थान निर्मित हुए हैं वह मैं नहीं कहसक्ता ॥ ७१ ॥ हे मातः परमेश्वरी ! आपने जिस प्रकार प्रेमपरिपूर्ण होकर कृपा प्रकाश की है इसी प्रकार आप हमसे अपना सर्व वेदान्तसिद्ध स्वरूप ॥ ७२ ॥ और श्रुतिसम्मत भक्तियुक्त ज्ञान तथा योगका विषय कीर्त्तन कीजिये क्योंकि हम उसी ज्ञानके बलसे आपका स्वरूपत्व प्राप्त करनेमें समर्थ होंगे॥ ७३ ॥व्यासजीने कहा हे महाराज ! हिमालयके इसप्रकार स्तुतियुक्त वचन सुनकर भुवनेश्वरीने प्रसन्न मुखसे श्रुत्युक्त गूढ रहस्यका विषय कहना आरम्भ किया ॥ ७४ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषायामेकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः ३२.

देवीने कहा हे देवताओं ! जिसके श्रवणमात्रसे जीवगण मेरा स्वरूपत्व प्राप्तकरनेमें समर्थ होते हैं मैं इस समय वही विषय वर्णन करती हूं तुम समाहित चित्तसे श्रवण करो ॥ १ ॥ हे गिरिवर ! सृष्टिके पूर्वमें एकमात्र मैंही विद्यमान थी अन्य और कुछ नहीं था मेरेही आत्मस्वरूपको चित् संवित् और परब्रह्म इत्यादि नामसे निर्देश किया है ॥ २ ॥ मेरा आत्मा अनुमानके अतीत लक्ष्यके अतीत उपमाके अतीत और जन्ममरणादिविकारके भी अतीत पदार्थ है मेरेही आत्माकी स्वतः सिद्ध एक शक्ति है यह शक्ति मायानामसे विख्यात है ॥ ३ ॥ ब्रह्मज्ञानद्वारा

मायाका विनाश होता है यह माया सती अर्थात् सदा नित्य नहीं है और मायाके न होनेसे व्यावहारिकसत्ताका विरोध होनेके कारण असती भी नहीं है सत्ता और असत्ताकी स्थिति सम्भव नहीं होसक्ती अतएव माया सती और असती यह उभयात्मिका भी नहीं होसक्ती इसप्रकार अनिर्वचनीय वस्तुरूप मायाशक्ति मोक्षकालपर्यन्त विद्यमान रहती है ॥ ४ ॥ मेरी यह अनादि मोक्षपर्यन्त स्थायिनी मायाशक्ति अग्निकी उष्णताके समान सूर्यकी मरीचिके समान चन्द्रमाकी ज्योत्स्नाके समान स्वभावसे उत्पन्न होती है ॥ ५ ॥ सुषुप्तिकालके समय जीवोंका व्यवहार जिसप्रकार उसमें लीन होता है इसीप्रकार प्रलयकालके समय जीवोंके कर्मसमूह जीव और काल यह समस्तही अभिन्न भावसे मायामें लीन हो जाते हैं ॥ ६ ॥ हे गिरिवर! यद्यपि मैं निर्गुण हूं तथापि ऐसी मायाशक्तिके संयोगसे जगत्की कारण स्वरूप हुई हूं किन्तु जो माया मेरा आश्रय करके रहती है उस मायाके मुझको आवरण करनेसे मायामें आश्रयावरकता दोष विद्यमान रहता है हे हिमवान्! तुमको जानना चाहिये कि मेरे माया और अविद्या नामसे दो रूप हैं तिनमें विद्यारूपिणी प्रथम इसमें स्वाश्रय व्यामोहकारित्व दोष नहीं है और अविद्यारूपिणी दूसरा इसमें स्वाश्रय व्यामोहकारित्व दोष विद्यमान है इसके द्वाराही जीवोंकी सृष्टि होती है और विद्याके द्वारा जीवगण मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥ ७ ॥ मायाके सहित चैतन्यका संयोग होनेपरही वह मायाप्रतिबिम्बित चैतन्य अर्थात् चिदाभासही जगत्का निमित्तकारण है और यह माया प्रपञ्चरूप परिमाण समवायिकारण कहा जाता है ॥ ८ ॥ कोई कोई शाखाध्यायी वेदके जाननेवाले इस मायाको तप कोई कोई तम कोई कोई जड कोई कोई ज्ञान अथवा कोई कोई माया प्रधानप्रकृति अजा और शक्ति नामसे निर्देश करते हैं ॥ ९ ॥ शैवशास्त्रतत्वज्ञ पंडितलोग उसको विमर्श और अन्यान्य वेदतत्वार्थचिन्तक कोविदगण अविद्या कहकर निर्देश करते हैं फलतः यह माया समस्त वेदान्तिगणोंकी उपजीव्य (निर्वाहक) है इसप्रकार निगमादि शास्त्रमें माया अनेक नामोंसे कही गई है ॥ १० ॥ जो वस्तु दृश्यमान हैं वही वही वस्तु जड हैं इस अभिचारी लक्षण हेतु मायाका जडत्व और स्वाधिष्ठान ज्ञाननाशहेतु मिथ्यात्व प्रतिपादित होता है किन्तु चैतन्य दृश्य पदार्थ नहीं है अतएव उसको जड़भी नहीं कहा जाता ॥ ११ ॥ चैतन्य स्वप्रकाश है वह अन्यके द्वारा प्रकाशित नहीं होता क्योंकि चैतन्य अन्यद्वारा प्रकाशित होता है यह

स्वीकार करनेसे चैतन्य प्रकाशक प्रकाशित होता है ॥ १२ ॥ वह अन्यद्वारा प्रकाशित होताहै इसप्रकार अनवस्था दोष उपस्थित होता है स्वयंप्रकाश पदार्थकी स्थिरता नहीं है यहभी नहीं कहा जाता क्योंकि उसमें कर्म्म कर्त्ताका विरोध होता है एक पदार्थमें ही एक कालमें कर्तृत्व और कर्म्मत्व नहीं रहसक्ता अतएव दीपककी समान चैतन्यको स्वप्रकाश पदार्थ स्वीकार करना चाहिये ॥ १३ ॥ चैतन्य स्वयं प्रकाशमान पदार्थ होनेपरभी अन्य चन्द्र सूर्य्यादि पदार्थोंकोभी प्रकाशित करता है अतएव हे पर्व्वतवर! मेरे संवित् रूप तनुका नित्यत्व सिद्धहुआ ॥ १४ ॥ कारण कि जाग्रत्, स्वम और सुषुप्ति इत्यादि अवस्थाओंमें दृश्य पदार्थका व्यभिचार होता है किन्तु किसी अवस्थामें ही सम्वित् वा चैतन्यका व्यभिचार अनुभव नहीं होता क्योंकि जो मैंने जाग्रत अवस्थाका अनुभव किया है वही मैं स्वम और सुषुप्ति अवस्थाका अनुभव करती हूं मैं इस समय सोती थी, इसप्रकार अनुभव किया अतएव सम्वित् पदार्थका कभी व्यभिचार नहीं होता ॥ १५ ॥ बौद्धगण कहते हैं कि जिसप्रकार सम्वित्का अनुभव होता है इसीप्रकार सम्वित्के अभावकाभी अनुभव होता है जो सत् है वही क्षणिक है इसप्रकार अनुमानद्वारा ज्ञानका भी अनित्यत्व प्रतिपादित होता है इससे कहाजाता है कि यद्यपि सम्वित्के अभावका अनुभव होता है तथापि जिस साक्षीद्वारा उस सम्वित्के अभावका अनुभव होता है वही साक्षी सम्वित् वपु है अर्थात् ज्ञानशरीररूपसे प्रतिपन्न होता है क्योंकि साक्षी ज्ञानका नित्यत्व सबको ही स्वीकार करना होता है ॥ १६ ॥ अतएव अनवद्य सत् शास्त्रोंके तत्वज्ञ पंडितगण कहते हैं कि सम्वित् नित्य और परम प्रेमका आस्पद होनेसे वह आनन्दस्वरूप है कारण कि असुख कभी परम प्रेमका आस्पदीभूत नहीं होसक्ता ॥ १७ ॥ और "मैं हूं" जीवोंका इस प्रकार अनुभव नहीं होता किन्तु "मैं विद्यमान हूं" इसप्रकार प्रेम सम्पूर्ण जीवोंके आत्मामें प्रतिष्ठित रहता है यदि आत्माका आनन्दरूपत्व न हो तो इसप्रकार आत्मप्रेम कभी संभव नहीं होता अतएव प्राणिमात्रके अनुभव हेतु सम्वित्का आनन्दरूपत्व सर्वथा सिद्ध हुआ है हे गिरिराज! यह सम्पूर्ण जगत्प्रपंच मायानिर्मित है अतएव वह मिथ्या भ्रम होनेसे सर्पादि मिथ्या पदार्थका जिसप्रकार रज्जु इत्यादिके सहित सम्बन्ध नहीं होता इसी प्रकार इस जगत्के सहित मेरा (आत्माका) असङ्गत्व भलीभांति सिद्ध हुआ और यह सम्पूर्ण संसार मिथ्या और परिच्छेद्य होनेसे मेरा आत्मस्वरूपिणीका अपरि-

छिन्नता प्रमाणित होती है ॥ १८ ॥ यदि कोई कहै कि ज्ञान आत्माका स्वरूप नहीं है वह आत्माका धर्म है यह भ्रान्तिविलास है क्योंकि यदि आत्माका धर्म होता तो अवश्यही उसकी जड़ता संघटित होती इसमें सन्देह नहीं ज्ञानका जडत्व सम्भव नहीं होता अतएव अन्य कहीं भी ज्ञानका जडपरिणामित्व दिखाई नहीं देता ॥ १९ ॥ यदि कहो कि तो ज्ञानका जड़त्व हो वहभी नहीं होसक्ता क्योंकि ज्ञान भी चितस्वरूप और आत्मा भी चितस्वरूप है चित् पदार्थका धर्मत्व नहीं और चित्पदार्थ चित्से भी भिन्न नहीं होसक्ता अतएव चिद्रूप ज्ञानका धर्माधर्मभाव किसप्रकार सम्भव होसक्ता है? ॥ २० ॥ अतएव आत्मा सर्वदाही ज्ञानस्वरूप आनन्दस्वरूप सत्यस्वरूप पूर्ण संगरहित और द्वैतवर्जित है ॥ २१ ॥ यह आत्मा कामना और कर्मादियुक्त अपनी मायाद्वारा पूर्वानुभूत संस्कार वशसे काल और कर्मके विपाकानुसार ॥ २२ ॥ चौवीस तत्वोंके अविवेक-जनितही इसप्रकार सृष्टिविषयमें इच्छावान् होता है हे गिरिवर! सोता हुआ पुरुष जिस प्रकार पूर्वसंस्कारसे अबुद्धिपूर्वक नींदसे उठता है इसीप्रकार आत्माकी यह सृष्टिभी कालकर्मके संस्कार अबुद्धिपूर्वकही साधित होती है ॥ २३ ॥ हे अचलेन्द्र! मैंने जो तत्वका विषय वर्णनकिया यही सर्वोत्तम और मेरा अलौकिक रूपमात्र है वेदमें यही अव्याकृत अव्यक्त और मायाशबल कह-कर उल्लिखित हुआ है ॥ २४ ॥ और सम्पूर्ण शास्त्रोंमें इसको सर्व कारणोंका कारण सब तत्वका आदिभूत तथा सच्चिदानन्दविग्रह कहकर निर्देश करतेहैं ॥ २५ ॥ ज्ञान और क्रियासंयुक्त समस्त कर्म्म घनीभूत होनेसे वह ह्रींकार मंत्रका वाच्य होताहै तत्वदर्शी महर्षिगण उस ह्रींकाररूप मायाबीजकोही सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका आदि तत्त्व कहकर उल्लेख करते हैं ॥ २६ ॥ उस ह्रींकारवाच्य महत्स्वरूप मायाबीज रूप आदितत्त्वसे क्रमानुसार शब्दतन्मात्ररूप अपञ्चीकृत आकाश उत्पन्न होता है अनन्तर उससे स्पर्शात्मक वायु अनन्तर उससे क्रमानुसार रूपात्मक तेज ॥ २७ ॥ इसके उपरान्त रसात्मक जल तदनन्तर गन्धगुणात्मक पृथ्वी उत्पन्न होती है पंडित-लोग कहतेहैं कि आकाशगुण एकमात्र शब्द है वायुका गुण शब्द और स्पर्श है ॥ २८ ॥ तेजका गुण शब्द स्पर्श और रूप जलका गुण शब्द स्पर्श रूप और रस है ॥ २९ ॥ तथा शब्द स्पर्श रूप रस और गन्ध यह पांच पृथ्वीके गुण हैं इन अपञ्ची-कृत भूतोंसे व्यापक सूत्र उत्पन्न होता है वही लिङ्गदेहनामसे कहागया है ॥ ३० ॥

यह सूत्र अर्थात् लिंगदेह सर्वप्राणात्मक और यही परमात्माका सूक्ष्म देह है पूर्वमें जो कहागया है जिसमें जगत्का बीज प्रतिष्ठित और जिससे लिङ्गदेहकी उत्पत्ति है वही परमात्माका कारण देह है, पूर्व्वोक्त रूपसे अपञ्चीकृत पञ्चमहाभूत उत्पन्न होनेपर ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ फिर उनसे पञ्चीकरण द्वारा जिसप्रकार पञ्चीकृत भूतकी उत्पत्ति होती है इस समय उसका ही नियम कहती हूं हे गिरिराज! पूर्वोक्त पञ्चमहा भूतोंके प्रत्येकको दो भागोंमें विभक्त करके ॥ ३३ ॥ और उनके एकएक भागको पुनर्वार चारभागमें विभक्त करके फिर एक २ सबमें से ले प्रत्येकमें मिलावै इस प्रकार यह अष्टमांश पंचीकरण लानेसे वह पंचपंच अंशयुक्त हो एक एक स्थूल महाभूत होता है ॥ ३४ ॥ इस पंचीकृत भूतपंचकका कार्य विराड्देह है वह परमेश्वरका स्थूलदेह कहा गया है इन पंचभूतस्थित प्रत्येकके सत्वांशसे श्रोत्र (कान) त्वगादि (त्वचाआदि) पंच ज्ञानेन्द्रियोंकी उत्पत्ति होती है ॥ ३५ ॥ उक्त सम्पूर्ण ज्ञानेन्द्रियोंके प्रत्येकका सत्वांश मिलित होकर एक अन्तःकरण होता है यह अन्तःकरण वृत्तिभेदसे चारप्रकार है ॥ ३६ ॥ जब उसका संकल्प और विकल्पात्मक कार्य होता है तब उसको मन जब संशयविहीनरूपसे निश्चित ज्ञानरूप कार्य होता है तब उसको बुद्धि ॥ ३७ ॥ जब अनुसंधानरूप वृत्ति होती है तब चित्त जब अहंकृतिस्वरूप आत्मवृत्तिसमन्वित होता है तब उसको अहङ्कार कहते हैं ॥ ३८ ॥ उन पंचभूतके प्रत्येक रजअंशसे वाक् पाणी पाद पायु (गुदा) और उपस्थनामक पंच कर्मेन्द्रियोंकी उत्पत्ति होती है उनमें प्रत्येकके सम्पूर्ण रजअंशमिलित होकर प्राण अपान समान उदान और व्यान यह पंच प्राणवायु उत्पन्न होती हैं ॥ ३९ ॥ उनमें प्राणवायु हृदयमें अपानवायु गुह्यमें समानवायु नाभिस्थलमें उदान वायु कण्ठमें और व्यान वायु समस्त शरीरमें व्याप्त होकर स्थिति करती है ॥ ४० ॥ पंच ज्ञानेन्द्रिय पंच कर्मेन्द्रिय पंच वायु और बुद्धि तथा मन यह सत्रह पदार्थ मिलित होकर ॥ ४१ ॥ मेरे सूक्ष्म शरीर अथवा लिंगदेहकी उत्पत्ति होती है, उसमें जो प्रकृति स्थिति करती है वह दो भागमें विभक्त है ॥ ४२ ॥ एक शुद्ध सत्वात्मिक माया और दूसरी गुणमिश्रित मलिनसत्वप्रधान अविद्या कही जाती है जो स्वाश्रयको आवृत न करके रक्षा करती है वही माया शब्दसे उक्त हुई है ॥ ४३ ॥ इस स्वाश्रयकी अव्यामोहकारिणी शुद्ध सत्व प्रधान मायामें परमात्माका जो प्रतिबिम्ब पड़ता है वही ईश्वरनामसे कहागया है शुद्धसत्वप्रधान माया तदाधार ब्रह्मको

आवरण न करनेके कारण यह स्वाश्रयज्ञानवान् अर्थात् व्यापक ब्रह्मको जानती है और सर्वव्यापित्व हेतु तथा सर्वत्र इसके ज्ञानावरणके अभावहेतु इसको सर्वज्ञ कहा जाता है और अचिन्त्य मायाशक्तिविशिष्ट होनेके कारण सर्वकर्ता और सम्पूर्ण जगत्का अनुग्रह करनेवाला कहा जाता है ॥ ४४ ॥ और मलिनसत्वप्रधान अविद्यामें परमात्माका जो प्रतिविम्ब पड़ता है वह जीवनामसे अभिहित हुआ है ॥ ४५ ॥ मलिनसत्वप्रधान अविद्या तदाश्रयरूप आनन्द करनेके कारण यह जीव सर्वदुःखका आश्रय होता है उक्त जीव और ईश्वर दोनोंकेही अविद्या और विद्याद्वारा तीन देह होते हैं ॥ ४६ ॥ इन तीनों देहके अभिमानहेतु तीन नाम हैं जीव कारणदेहाभिमानी होनेसे उसको प्राज्ञ सूक्ष्मदेहाभिमानी होनेसे तैजस ॥ ४७ ॥ और स्थूलदेहाभिमानी होनेसे विश्व कहा जाता है और ईश्वरभी कारणदेहाभिमानी होनेसे ईश सूक्ष्मदेहाभिमानी होनेसे 'सूत्र' और स्थूलदेहाभिमानी होनेसे 'विराट्' नामसे अभिहित होता है ॥ ४८ ॥ प्रथम जीव व्यष्टि देहत्रयाभिमानी और ईश्वर समष्टिदेहत्रयाभिमानी होता है, यह सर्वेश्वर निरन्तर आनन्दानुभवहेतु तृप्त होनेपरभी जीवके प्रति मोक्षलाभरूप अनुग्रह करनेकी इच्छासे ॥ ४९ ॥ विविध भोगका आश्रयस्वरूप विश्वकी सृष्टि करता है हे राजन् ! वह ईश्वरभी ब्रह्मरूपिणी मेरी मायाशक्तिसे प्रेरित होकरही सम्पूर्ण विश्वकी सृष्टि करता है क्योंकि मैं ब्रह्मरूपिणी हूं वह मुझमें ही रज्जुकल्पित सर्पके समान कल्पित होरहाहै अतएव उनकोभी मेरी शक्तिके आधीन जानना चाहिये ॥ ५० ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषायां द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ३३.

देवीने कहा हे गिरिराज ! चराचरयुक्त यह सम्पूर्ण जगत् मेरीही मायाशक्तिद्वारा रचित होता है वह माया मुझमेंही कल्पित होती है किन्तु वास्तवमें वह माया मुझसे पृथक् नहीं है अतएव एकमात्र मैं ही चिद्वस्तु हूं मेरे अतिरिक्त चिद्वस्तु अन्य कुछ नहीं है ॥ १ ॥ व्यवहारदृष्टिसे वह माया विद्यादि स्वतन्त्र नामसे विख्यात होती है किन्तु तत्व अथवा ब्रह्मदृष्टिसे मायाकी विद्यमानता नहीं है केवल एकमात्र ब्रह्मही विद्यमान रहता है ॥ २ ॥ मैंही वह चिद्ब्रह्मरूपिणी अविद्या कर्म

और अनेकप्रकार संस्कारयुक्त कूटस्थ ब्रह्मरूपसे सम्पूर्ण जगत्‌की सृष्टि करके उसके भीतर चिदाभासरूपसे प्राणवायु आगे करके प्रवेश करती हूं ॥ ३ ॥ हे गिरिवर! इसप्रकार मेरे प्राणस्वीकारपूर्वक प्रवेशनकरनेपर लोकान्तरगमन जन्म और मरणादि व्यवहार किसप्रकार सिद्ध होसक्ते हैं ? जिसप्रकार एकमात्र व्यापक महाकाश उपाधि भेदसे घटाकाश और मठाकाश इत्यादि भिन्न भिन्न नामसे विख्यात होतेहैं इसीप्रकार मैं अनेक स्थलमें प्राणस्वीकार करके अविद्या और अन्तःकरणके प्रभेदसे हेतु भिन्न भिन्न होती हूं अतएव उससेही अनेकप्रकार भिन्नभिन्न जीवोंकी उत्पत्ति होती है ॥ ४ ॥ जिसप्रकार सूर्य स्वीय किरणसंयोगसे पृथ्वीकी सम्पूर्ण वस्तु प्रदीपितकरके भी दूषित नहीं होता इसीप्रकार मैं भी उत्कृष्ट और निकृष्ट सम्पूर्ण वस्तुके अन्तःप्रवेश हेतु दोषलिप्त नहीं होती ॥ ५ ॥ मढ़बुद्धि अज्ञानद्वारा बुद्ध्यादिनिष्ठ कर्तृत्व आत्मरूपिणी मुझमें आरोपित करके आत्माकोही कर्ता कहते हैं किन्तु बुद्धिमान् पंडितगण उसको स्वीकार नहीं करते फलतः मैं जीवके भीतर कर्त्रीरूपसे न रहकर साक्षीरूपसे स्थिति करती हूं ॥ ६ ॥ हे अचलेन्द्र ! अविद्या और विद्याके भेदहेतु जीवबहुत्व और ईश्वरबहुत्व प्रतिपादित होता है फलतः मायाद्वारा ही मनुष्य पशु इत्यादि जीवभेद और ब्रह्मा, विष्णु इत्यादिमें ईश्वरभेद होता है ॥ ७ ॥ जिसप्रकार महाकाश घटावच्छिन्न होनेपर महाकाश और घटाकाश ऐसा विभाग कल्पित होता है इसीप्रकार व्यापक परमात्मा जीवावच्छिन्न होकर परमात्मा और जीवात्माका इसप्रकार भेद कल्पित होता है ॥ ८ ॥ जिसप्रकार जीवका बहुत्व मायाद्वारा कल्पित होता है स्वभावसे नहीं होता इसीप्रकार ईश्वरबहुत्वभी स्वभावसे नहीं होता मायाद्वाराही कल्पित होता है ॥ ९ ॥ हे धरणीधर ! देह इन्द्रिय और मन इत्यादिके भेदसे अविद्या ही जीवके भेदका हेतु है अन्य कुछ नहीं है ॥ १० ॥ और जो तीनों गुणकी वासनाभेदसे अर्थात् सात्विक राजसिक और तामसिक वासनाभेदसे मायाकीभी भिन्नता उत्पन्न होती है ॥ ११ ॥ वह विभिन्नमायाही ब्रह्मा विष्णु इत्यादि ईश्वरके भेदका कारण है नहीं तो और कुछ नहीं है हे धराधरेन्द्र ! यह सम्पूर्ण जगत् ओत प्रोतभावसे मुझमें ही स्थित रहता है ॥ १२ ॥ अतएव मैं ही कारणदेहाभिमानी ईश्वर लिंगदेहाभिमानी सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ और स्थूल देहाभिमानी विराट् हूं मैं ही ब्रह्मा विष्णु महेश्वर और मैं ही ब्राह्मी वैष्णवी और रौद्री शक्ति हूं ॥ १३ ॥ मैं ही सूर्य मैंही चन्द्रमा मैं ही तारका और मैं ही पशु पक्षी चाण्डाल और तस्कर हूं ॥ १४ ॥ मैंही

क्रूरकर्मा व्याध और सत्कर्मा महाजन तथा मैंही स्त्री पुरुष और नपुंसक हूं इसमें सन्देह नहीं ॥ १५ ॥ हे गिरिवर ! जिस किसी स्थानमें जो कोई वस्तु दिखाई देती अथवा सुनाई देती हैं मैं उस सम्पूर्ण वस्तुके भीतर और बाहर व्याप्त होकर सर्वदा स्थित रहती हूं ॥ १६ ॥ मेरेविना चराचरकी कोई वस्तु विद्यमान नहीं है यदि कुछ है तो वह वन्ध्याके पुत्रकी समान निरर्थक है ॥ १७ ॥ जिसप्रकार एकमात्र रज्जु सर्प और मालादिरूपसे प्रतिभात होती है इसप्रकार एकमात्र मैंही ब्रह्मस्वरूपिणी मैंही ईश्वरादि रूपसे प्रतिभात होती हूं इसमें सन्देह नहीं है ॥ १८ ॥ क्योंकि यह कल्पित जगत् अधिष्ठानसत्ताके अतिरिक्त हेतु प्रतिभात नहीं होता यह मेरी सत्ताद्वाराही सत्तावान् होताहै नहीं तो अन्य किसीप्रकार सम्भव नहींहोसक्ता ॥ १९ ॥ हिमालयने कहा हेदेवि ! यदि मेरे प्रति आपकी कृपा हो तो आपकी समष्ट्यात्मक अर्थात् सर्वसमष्टीरूप सर्वाभिमानी विराड्मूर्ति देखनेकी इच्छा करता हूं आप अनुग्रहकरके वह मुझको दिखाइये ॥ २० ॥ व्यासजीने कहा हेमहाराज ! गिरिवरके यह वचन सुनकर विष्णु इत्यादि सम्पूर्ण देवताओंने प्रसन्नचित्त हो अत्यन्त मानसहित उनके उस वचनका अनुमोदन किया ॥ २१ ॥ अनन्तर भक्तोंकी वाञ्छा पूर्ण करनेवाली भक्तोंकी कामधेनु और कल्याणरूपिणी देवी भुवनेश्वरीने अपना रूप देखनेमें देवताओंको उत्सुक जानकर अपना विराड्रूप दिखाया ॥ २२ ॥ वह महादेवीके उस विराट्रूपको देखनेलगे. सम्पूर्ण उर्द्ध्वस्थित सत्यलोक उस विराट्रूपिणीका मस्तक चन्द्रमा और सूर्य उसकी दोनों आँखें ॥ २३ ॥ सम्पूर्ण दिशा श्रोत्र (कान) सम्पूर्ण वेद वाक्य, वायु उसका प्राण, विश्व उसका हृदय, पृथ्वी जघनस्थल, ॥ २४ ॥ नभस्थल अर्थात् भुवर्लोक नाभिसरोवर ज्योतिष्कमण्डल ऊरुस्थल महर्लोक ग्रीवा जनलोक मुखमण्डल ॥ २५ ॥ सत्यलोकके अधःस्थित तपोलोक उसका ललाटफलक इन्द्रादि देवतायुक्त स्वर्गलोक उसकी बाहु, शब्द उस महेश्वरीका श्रवणेन्द्रिय ॥ २६ ॥ दोनों अश्विनीकुमार उसके नासापुट, गन्ध घ्राणेन्द्रिय, मुखके भीतर अग्नि, दिन और रात उसके दोनों पक्षरूपसे प्रकाश पाते थे ॥ २७ ॥ और उनकी दोनों भौंहें चतुर्मुख ब्रह्माजीका स्थान, जल उसका तालु, रस उसकी जिह्वा, यमराज उनकी दाढे ॥ २८ ॥ स्नेह विलास दाँत, माया उसका हास्य, ब्रह्माण्डसृष्टि उसका कटाक्ष, व्रीडा उर्द्ध्व ओष्ठ ॥ २९ ॥ लोभ अधर और अधर्म उसका पृष्ठभाग, जो जगतीतलमें सृष्टिकर्ता प्रजापति हैं वह उसका मेढ्र ॥ ३० ॥ सम्पूर्ण समुद्र

कुक्षि समस्त पर्वत उस महेश्वरीके अस्थिस्वरूप, समस्त नदियें नाडी और सम्पूर्ण वृक्ष उसके केशरूपसे प्रकाश पाते थे ॥ ३१ ॥ हे राजेन्द्र ! कौमार यौवन और जरा उसकी उत्तम गति मेघसमूह उसका केशजाल दोनों सन्ध्या उन परम प्रभुकी दोनों वस्त्रस्वरूप ॥ ३२ ॥ चन्द्रमा उस जगदम्बिकाका मन हरि उसकी विज्ञान शक्ति और रुद्र उसके अन्तःकरण ॥ ३३ ॥ अश्वादि सम्पूर्ण जीव उसको नितम्ब देश और अतलादि सम्पूर्ण महर्लोक उसके कटिदेशसे चरणकमलोंतक स्थिति करते थे॥ ३४॥ देवतागण आश्चर्ययुक्त नेत्रोंसे जगदम्बिकाकी इसप्रकार मूर्त्ति देखने लगे उनकी उस मूर्त्तिसे सहस्र सहस्र ज्वाला माला निकलने लगीं जिह्वाद्वारा सम्पूर्ण जगत्का आस्वादन करने लगी ॥ ३५ ॥ दोनों दशनपंक्तियोंमें कटकटा शब्द होनेलगा सम्पूर्ण अक्षियोंसे अग्नि उद्गार आरम्भ हुआ हाथमें अनेक प्रकारके आयुध ब्राह्मण और क्षत्रिय उस घोरदर्शन वीरपुरुषके ओदनस्वरूप ॥ ३६ ॥ उनकी उस मूर्ति में अनेक मस्तक अनेक नेत्र और अनेक चरण थे जिनकी सीमा नहीं उस मूर्तिके देखनेसे बोध होता था कि एक वारही करोड सूर्य उदय हुए हैं मानों अनेक विद्युन्माला एकत्र प्रकाशित होरहीं हैं ॥ ३७ ॥ महादेवीके वह महाभयंकर नेत्रभी मनको त्रासउत्पन्न करते थे इस प्रकार महाघोर विराट्मूर्ति देख सम्पूर्ण देवतालोग भीत होकर हाहाकार करनेलगे ॥ ३८ ॥ और उनका हृदय काँपनेलगा वह अत्यन्त मूर्च्छासे आक्रान्त होगये " यही हमारी पालनकरनेवाली जगदम्बिका है " यह ज्ञान एकवारही दूर होगया ॥ ३९ ॥ उससमय उन भुवनेश्वरीके चारोंओर जो सम्पूर्ण वेद स्थिति करतेथे उन्होंने मूर्च्छासे उठायकर देवताओंको समझाया ॥ ४० ॥ अनन्तर वह निर्जरगण वह अत्युत्तम श्रुति प्राप्तकर धैर्यअवलम्बनपूर्वक अन्तर्जनित बाष्पसे रुद्धकण्ठ हो ॥ ४१ ॥ प्रेमविगलित अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे गद्गदवचनद्वारा जगदम्बिकाका स्तव करनेलगे देवताओंने कहा हे मातः ! हम अत्यन्त दीन और आपसेही हम उत्पन्न हुए हैं आप हमारा अपराध क्षमाकीजिये ॥ ४२ ॥ और हमारे प्रति कोप त्यागकीजिये, हम आपके इस रूपको देखनेसे अत्यन्त भीत हुए हैं हे देवि ! पामर अमरगण आपकी क्या स्तुति करैं ? ॥ ४३ ॥ आप स्वयं जब कि अपने पराक्रमकी सीमा करनेमें असमर्थ हैं तब हम आपके पीछे जन्म ग्रहण करके किसप्रकार उसको जानसक्ते हैं॥ ४४॥ हे प्रणवात्मिके भुवनेश्वरि ! हम आपको नमस्कार करतेहैं हेदेवि ! सम्पूर्ण वेदान्तशास्त्रमें आपको प्रतिपादित किया है हम आपकी

उसी ह्रींकारमूर्तिको नमस्कार करते हैं ॥ ४५॥ जिनसे अग्नि सूर्य चन्द्रमा और जिनसे सम्पूर्ण औषधियें उत्पन्न हुई हैं उन्ही सर्वात्मरूपिणीको नमस्कार है ॥ ४६॥ जिनसे सम्पूर्ण देवतागण साध्यगण पशुगण पक्षिगण और मनुष्यगण उत्पन्न हुए हैं हम उन्हीं सर्वात्मरूपिणी देवीके विराट्रूपको नमस्कार करते हैं॥ ४७॥ जिनसे प्राण अपान व्रीहि यव तपस्या श्रद्धा सत्य ब्रह्मचर्य और सम्पूर्ण हितकर्तव्यतारूप विधि उत्पन्न हुई है हम उन्हीं सर्वात्मिका महामायाकी महामूर्तिको नमस्कार करते हैं॥ ४८॥ जिनसे सप्त प्राण सप्त दीप्ति सप्त समाधि सप्त होम और सप्त लोक उत्पन्न हुएहैं हम उन्हीं सर्वस्वरूपिणीको नमस्कार करतेहैं॥ ४९॥ जिनसे सम्पूर्ण समुद्र सम्पूर्ण पर्वत समस्त नदी सम्पूर्ण औषधि और समस्त रस उत्पन्न हुए हैं हम उन्हीं भुवनेश्वरीकी विराट्मूर्तिको नमस्कार करतेहैं ॥ ५० ॥ जिनसे यज्ञ यूप और दक्षिणा एवं ऋक् यजु और सामवेद उत्पन्न हुए हैं हम महामायाकी उस अखिल विश्वात्मक विराट्रूपको नमस्कार करते हैं॥ ५१ ॥ हेमातः महामाये ! आपकें पुरोभागमें नमस्कार आपके पृष्ठ भागमें नमस्कार आपके दोनों पार्श्वमें नमस्कार आपके ऊर्द्ध्वभागमें नमस्कार आपके अधोभागमें नमस्कार और आपके चारों ओर वारंवार नमस्कार करते हैं॥ ५२॥ हे देवि ! आप अपने इस अलौकिक रूपको दूर करके अपना परम सुन्दर मनोहर रूप हमको दिखाइये॥ ५३॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! करुणाकी अर्णवरूपिणी जगदम्बिकाने सुरगणोंको भीत देख अपना घोर विराट्रूप दूर करके परमसुन्दर भुवनमोहन पूर्वरूप दिखाया ॥ ५४ ॥ उनका सम्पूर्ण शरीर कोमल होगया उन्होंने एक हस्तमें पाश और एक हस्तमें अङ्कुशास्त्र धारण किया अपर दोनों हातोंमेंसे एक हस्तमें वरदान और अन्य हस्त अभयदान भङ्गिमामें उद्यत उनके नेत्र देखनेसे बोध होता था कि मानो उनके एकवारही करुणारससे परिपूर्ण मुखकमलमें कुछेक हास्य विराजमान है ॥ ५५॥ देवतागण जगदम्बिकाकी इसप्रकार मूर्ति देखकर भयरहित हो शान्तचित्तसे हर्ष और गद्गदशब्दपूर्वक प्रणाम करनेलगे ॥ ५६ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषायां त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ३४.

श्रीदेवी बोली कहां तो तुम मंदभाग्य और कहां यह मेरा अद्भुत रूप तौभी भक्तिवत्सलतासे तुमको मैने यह रूप दिखाया है ॥ १ ॥ वेदाध्ययन योग दान तप यज्ञसे

यह मेरा रूप नहीं दीखता इसमें केवल मेरी कृपाही कारण है ॥ २ ॥ अब उसी प्रकृत विषयको श्रवणकरो जो परमात्मा उपाधियोगसे जीवताको प्राप्त और कर्तृआदिपदसे व्यवहार कियाजाता है ॥ ३ ॥ धर्म अधर्मके कारण अनेकप्रकारकी क्रिया करता है और यह जीव अनेकयोनियोंको प्राप्त होकर सुखदुःख भोगता है ॥ ४ ॥ फिर उन्हीं संस्कारोंके वशसे अनेकप्रकारके कर्मोंमें रत होता है अनेक देहोंसे युक्त हो अनेक सुखदुःख पाताहै ॥ ५ ॥ घडीयंत्रकी समान यह सदा विचरताही रहता है इसको कभी विश्राम नहीं मिलता आजतक अनेकसृष्टि प्रलय हुई पर इसका विराम न हुआ इसका मूल अज्ञान है इस अज्ञानसे इच्छा और उससे क्रिया होती है ॥ ६ ॥ इससे अज्ञान नाशके निमित्त क्रिया करनी चाहिये यही जन्मकी सफलता है ॥ ७ ॥ जो अज्ञाननाश कियाजाय "यो ह्यविदित्वात्मानमस्माल्लोकात्प्रैति स कृपणः" इति श्रुतेः। पुरुषार्थकी समाप्ति जीवन्मुक्तकी दशाकी प्राप्ति और अज्ञाननाशनमें एक विद्याही समर्थ है ॥ ८ ॥ हे पर्वतराज ! अज्ञानसे उत्पन्न कर्म अज्ञानसे उत्पन्न हुए कर्मके नाशमें समर्थ नहीं है कारण कि इन दोनोंका परस्पर विरोध नहीं है कर्मद्वारा अज्ञानके नाशकी आशा न करनी चाहिये ॥ ९ ॥ कारण कि यह अनर्थके देनेवाले कर्म वारंवार प्रगट होते हैं फिर राग और फिर दोष इससे महाअनर्थ होता है ॥ १० ॥ इसकारण सब प्रयत्नसे मनुष्यको ज्ञान सम्पादन करना चाहिये और "कुर्वन्नेवेह कर्माणि" इस श्रुतिसे कर्मकोभी सदा करना आवश्यक कहा है ॥ ११ ॥ तथा 'ज्ञानादेव हि कैवल्यम्' अर्थात् ज्ञानसे ही मुक्ति होतीहै इनका समुच्चय इसप्रकार है कि ज्ञानके होनेमें कर्म सदा सहायक है ॥ १२ ॥ इसप्रकार इसविषयमें कोई कहते हैं इस भांतिसे विरोध सम्भव नहीं होता कारण कि ज्ञानसे हृदयकी गांठ खुलती है, और हृदयकी ग्रंथिमें कर्म स्थित है जहां ज्ञानके आगे कर्मकी भावना हो वहां ज्ञानकर्मका समुच्चय कहनाचाहिये ॥ १३ ॥ इसकारण उन ज्ञान और कर्मका तम और प्रकाशकी समान एकसाथ विरोध नहीं संभव होसक्ता, इसकारण यदि ज्ञान उत्पन्न न हो तो यावज्जीव कर्मानुष्ठान करतारहै ॥ १४ ॥ हेमहामते! इस कारण जितने वैदिक कर्म हैं, वह सब चित्तशुद्धिके निमित्त हैं उनको यत्नपूर्वक करनाचाहिये, चित्तशुद्धि होनेसे ज्ञान प्राप्त होकर ज्ञानी होगा ॥ १५ ॥ शम—अन्तर इन्द्रियका निग्रह, दम बाह्य इन्द्रियोंका निग्रह तितिक्षा शीत उष्ण आदिका सहना वैराग्य दोनों लोकके फलमें विराग और अन्तःकरणकी शुद्धि जबतक यह प्राप्त न हो तबतक कर्म करता रहै

फिर कर्म करनेकी आवश्यकता नहीं ॥ १६ ॥ ज्ञान होनेपर सब कुछ त्याग आत्मवान् गुरुका आश्रय करै वेदपाठी ब्रह्ममें निष्ठावाले वेदवेदांगके ज्ञातासे छल रहित भक्तिपूर्वक ॥ १७ ॥ सावधान हो नित्य वेदांत श्रवण करै और 'तत्त्वमसि' इत्यादि वाक्योंका नित्यही अर्थ विचारता रहै ॥ १८॥ "तत्त्वमसि" इत्यादिवाक्य जीव और ईशकी एकताबोधक हैं इनकी एकता जानकर यह निर्भय होकर मेरा रूप होजाता है ॥ १९ ॥ पहले पदार्थका ज्ञान फिर वाक्यार्थका ज्ञान करै हे पर्वतराज 'तत्' पदका अर्थ षड्गुण ऐश्वर्यसम्पन्न मैं हूं ॥ २० ॥ और 'त्वं' पदका वाच्यार्थ निःसन्देह जीव है, 'असि' पदसे दोनो जीव ईश्वरकी एकता ज्ञात होती है अर्थात् वही तू है ॥ २१ ॥ यदि कहो कि अत्यन्त विरुद्ध धर्मवाले जीवेश्वरकी एकता किसप्रकार होसक्ती है तो भागलक्षणासे कहते हैं, आशय यह कि, जब वाच्यार्थ विरुद्ध होनेसे दोनोंकी एकता न घटे तो उसमें लक्षणा करनी चाहिये जीवके असर्वज्ञत्व और परिच्छिन्नत्व आदि निकृष्ट धर्म हैं ईश्वरकी सर्वज्ञता व्यापकताआदि उत्कृष्ट धर्म हैं तब इनका अभेद कैसे हो इसपर श्रुतिसम्मत 'तत्, त्वं' पदकी लक्षणा करनी चाहिये ॥ २२ ॥ किस अर्थमें लक्षणा करनी चाहिये तब कहते हैं चिन्मात्रमें लक्षणा होती है, सर्वज्ञत्वादिविशिष्ट ब्रह्मचैतन्य ईश्वर है असर्वज्ञत्वादिविशिष्ट ब्रह्मचैतन्य जीव है इनमें दोनों धर्म छोड़कर चिन्मात्र भागत्यागलक्षणासे ग्रहण करना, इसप्रकार लक्षणासे दोनोंकी एकता होगी अपने अभेदसे इनकी एकताका ज्ञान होनेसे अद्वय होगा यह इसका महाफल है ॥ २३ ॥ वही यह देवदत्त है इस वाक्यसे तत्कालविशिष्ट देवदत्तका इसकालविशिष्ट देवदत्तसे भेद होनेपरभी वैशिष्टचरूप दोनों धर्मके त्यागसे अविरुद्ध व्यक्तिको भागत्यागलक्षणासे ग्रहणकर अभेद किया जाता है इसीकारण लक्षणा ग्रहण की है इस अनुभवसे स्थूलादिभेदरहित हो यह ब्रह्मभावको प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ पंचीकृतमहाभूतसेही यह स्थूलदेह प्रगट हुआ है, यह भोगका स्थान जरा व्याधि तथा सब कर्मोंसे युक्त है ॥ २५ ॥ यह मिथ्या भी है परन्तु मायासे सत्यसा दीखता है हे पर्वतराज! यह मेरे आत्माकी स्थूलउपाधि है ॥ २६ ॥ ज्ञानकर्मेन्द्रियसे युक्त प्राणपंचकसे संयुक्त तथा मनबुद्धिसे युक्त देह सूक्ष्मउपाधि है॥ २७॥ अपंचीकृत भूतोंसे प्रगट यह आत्माका सूक्ष्म देह है, यह अन्तःकरणकी सुखदुःखादिअवबोधक दूसरी उपाधि है ॥ २८ ॥ हे नगेश्वर! अनादि अनि-

वीज्य अज्ञानयुक्त यह कारणशरीर तीसरा है ॥ २९ ॥ इन स्थूलसूक्ष्मकारण उपाधियोंके लीन होनेमें केवल आत्मा अवशेष रहता है इन तीनों देहोंमें अन्नमय प्राणमय मनोमय विज्ञानमय आनंदमय यह पांच कोश सदा अन्तर स्थित रहते हैं ॥ ३० ॥ इन पंचकोशके त्यागमें 'ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा' ब्रह्ममें प्रतिष्ठा प्राप्त होती है जो नेति २ इत्यादि वाक्योंसे मेरा रूप कहा जाता है ॥ ३१ ॥ यह ब्रह्मरूप न कभी उत्पन्न होता न मरता, न कभी होनेवाला और न कभी हुआ है यह अज नित्य शाश्वत पुरातन छहों विकारोंसे रहित है शरीरके हन्यमान होनेपरभी मरता नहीं हन्यमान नहीं होता ॥ ३२ ॥ जो मारनेवाला मारा ऐसा जान्ता है हत हुआ अपनेको हत मानता है यह दोनों ही इसको नहीं जानते कारण कि न यह मरता न माराजाता है ॥ ३३ ॥ यह अणुसे अणु और महान्से महान् आत्मा होकरभी इस प्राणिके हृदयरूपी गुहा वा बुद्धिमें स्थित है इस आत्माकी महिमाको चित्तकी निर्मलता संकल्पविकल्परहित होनेसे जान्ता है तब वीतशोक होता है ॥ ॥ ३४ ॥ आत्मा रथी, शरीर रथ, बुद्धि सारथि, मन लगाम, ॥ ३५ ॥ इन्द्रिय घोड़े हैं यह विषयरूपी मार्गमें निरन्तर गमन करते हैं, आत्मा चिदाभास, इन्द्रिय मन यह तीन कूटस्थ मिलित होकर भोक्ता कहा जाता है ॥ ३६ ॥ जो पुरुष अविद्वान् अर्थात् अविवेकी होता है अस्वाधीन अशुचि होता है वह तत्पदको प्राप्त न होकर संसारमें पड़ता है ॥ ३७ ॥ और जो विज्ञानवान् स्वाधीन मन सदा पवित्र होता है वह उस पदको प्राप्त होता है जहांसे फिर आना नहीं होता ॥ ३८ ॥ जिसका विज्ञान सारथि मनकी लगाम रोकेहुए है वह इस संसारके पार हो मेरे परमपदको प्राप्त होता है ॥ ३९ ॥ इसप्रकार श्रुति बुद्धिद्वारा आत्मासे ही आत्माका निश्चय कर विक्षेपादिरहित हो साक्षात्कार होनेसे चित्तकी एकाग्र वृत्तिसे आत्मरूप मेरा ध्यान करे ॥ ४० ॥ इस प्रकार निदिध्यासन अभ्याससे जब चित्तमें समाधिकी योग्यता होजाय तब समाधिसे पहले अपने शरीरमें प्रणवसंज्ञक मायाबीजमंत्रके तीन अक्षरोंका ध्यान करे मंत्रवाच्य मायाबीजमंत्रार्थके समष्टिव्यष्टिके ध्यानार्थ है ॥ ४१ ॥ हकार स्थूलदेह रकार सूक्ष्मदेह ईकार कारणदेहरूप है और मैं जो तुरीयरूप हूं सोई ह्रींकार है ॥ ४२ ॥ जैसे व्यष्टिदेहमें भावना की है इसीप्रकार समष्टिदेहमें क्रमसे तीनों बीजोंको जानकर बुद्धिमान् समष्टिव्यष्टि पिण्ड और ब्रह्माण्डकी एकता ध्यान करै ॥ ४३ ॥ इस

प्रकार आदरपूर्वक समाधिसे पहले ध्यानकर नेत्र मूंद मुझ जगदीश्वरीका ध्यान करै ॥ ४४ ॥ नासिकाके आभ्यन्तर फिरनेवाले प्राण अपानको समानकर विषयादिकी आकांक्षासे निवृत्त हुआ दोष और मत्सरतासे रहित ॥ ४५ ॥ छलरहित भक्तिसे युक्त हुआ गुह्य वा शब्दरहित एकान्त स्थानमें वैश्वानरात्मक हकारको रकारमें लीन करै अर्थात् हकारवाच्य स्थूल देहको रकारवाच्य सूक्ष्मदेहमें लीन करै ॥ ४६ ॥ रकारवाच्य तैजस अर्थात् सूक्ष्मदेहको ईकारवाच्य कारण देहमें लय करै ईकारवाच्य कारणदेहको ह्रींकारवाच्य ब्रह्ममें लय करै ॥ ॥ ४७ ॥ जब वाच्य और वाचकतासे हीन, द्वैतभावसे वर्जित होजाय तब चैतन्य अग्नि दीपशिखान्तरमें अखंड सच्चिदानंदकी भावना करै ॥ ४८ ॥ हे राजन्! इस प्रकार नरोत्तम ध्यानमें मेरा साक्षात्कार करके मेराही रूप होजाता है कारण कि दोनोंकी एकता सिद्ध है ॥ ४९ ॥ इस प्रकार इस योगयुक्तिसे परात्पर मुझ आत्माको देखते ही अपने कार्यसहित अज्ञान उसीसमय नष्ट होजाता है ॥ ५० ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषायां चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

॥ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ३५. ॥

हिमालयने कहा हे महेश्वरि! जिस योगद्वारा ब्रह्मलाभ होता है उस योगका विषय अंगोंसहित वर्णन करो जिसका अनुष्ठान कर मैं तत्वदर्शनका अधिकारी होऊं ॥ १ ॥ श्रीदेवी बोलीं आकाश भूमि रसातलादिस्थानोंमें योग नहीं है जीव और आत्माकी अभेदविषयक चित्तवृत्तिको ही योगविशारद योग कहते हैं ॥ २ ॥ हे पापरहित! काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य यह छः योगके शत्रु हैं जो इसमें विघ्न कियाकरते हैं ॥ ३ ॥ इसकारण योगियोंको आगे लिखे योगके अंगोंसे योगशत्रुओंको विनाश करके योग प्राप्त करना चाहिये यम, नियम, आसन, प्राणायाम ॥ ४ ॥ प्रत्याहार, धारण, ध्यान और समाधि यह आठ अंग योगियोंको योगमें सहायक हैं ॥ ५ ॥ किसीकी हिंसा न करना, सत्य बोलना, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य, दया, ऋजुता, क्षमा, धृति, सर्वनाशमें भी धीरता मितभोजन दो भाग अन्नसे पूर्ण करै एक भाग जलसे चौथा भाग वायुके गमनागमनको रक्खे यह अल्पाहार है तथा बाह्य आभ्यन्तरकी शुद्धि करै यह दश यम हैं ॥ ६ ॥ तपस्या, सन्तोष, आस्तिक्य, [वेद, देव, द्विज और गुरुमें विश्वास] दान, देवपूजा, सिद्धान्त अर्थात् वेदान्तवाक्यका श्रवण, अकार्यकरनेमें

लज्जा मति (सत्कर्म और सच्छास्त्रविषयक ज्ञान) जप और नित्यहोमादि ॥ ७ ॥ हे पर्वतनायक! यह मैं ने दश नियम कहे हैं पद्मासन, स्वस्तिक, भद्र, वज्रासन ॥८॥ और वीरासन यह क्रमसे पांच आसन कहे हैं दोनों पैरोंके तलुए दोनों जंघाओंपर रखकर ॥ ९ ॥ हाथोंको पीठकी ओरसे ले आगे दहिने हाथसे दहिने चरणका बायेंसे बायें चरणका अँगूठा पकडै यह योगियोंको प्रसन्नकरनेवाला पद्मासन कहा है ॥ १० ॥ जानु और ऊरुओंके अन्तर दोनों पैरके तलुए भलीभांति स्थापितकर सरलभावसे सुखपूर्वक बैठनेको स्वस्तिक आसन कहते हैं ॥ ११ ॥ अंडकोशकी शिराके नीचे सीमनके दोनों पार्श्वमें दोनों गुल्फोंको भली प्रकार स्थापित कर दोनों हाथोंसे अंडकोशके अधोभागमें दोनों पैरोंका पार्ष्णिभाग हाथोंसे दृढभावसे बांधकर ॥ १२ ॥ बैठनेका नाम योगियोंने भद्रासन कहा है योगी इसका विशेष आदर करते हैं दोनों चरण क्रमसे दोनों ऊरुओंपर रखकर दोनों जानुओंके निम्नभागमें अंगुली रखकर ॥ १३ ॥ दोनों हाथ स्थापनकर बैठनेको वज्रासन कहते हैं योगीजन एक ऊरुके नीचे एक चरण दूसरी ऊरुके नीचे दूसरा पद स्थापनकर ॥ १४ ॥ सरल कायासे जो स्थिति करते हैं इसको वीरासन कहते हैं योगका ज्ञाता प्रथम सोलह वार प्रणव उच्चारण करके इडा अर्थात् बाईं नासिकाद्वारा गुह्य वायुको आकर्षण करै ॥ १५ ॥ फिर जितनी देरमें चौंसठ वार प्रणव उच्चारण हो इतने समयतक यह खेंची हुई वायु धारण करके पूरक करै फिर ३२ वार प्रणवोच्चारणकालमें शनैः २ सुषुम्नामध्यगत वायुको ॥ १६ ॥ दक्षिणनासापुटद्वारा रेचन करै योगशास्त्रज्ञाता पंडितोंने इसका नाम प्राणायाम कहा है ॥ १७ ॥ इस प्रकार वारंवार बाह्य वायु ग्रहणकरके पूरक कुंभक और रेचकका अभ्यास करै और क्रमानुसार प्रणवोच्चारणकी संख्या बढावे यह प्राणायाम पहले १२ वार फिर १६ वार और फिर क्रमसे और भी अधिक करै ॥ १८ ॥ सगर्भ और अगर्भके भेदसे प्राणायाम दो प्रकारका है इष्ट मंत्रके जप ध्यानादि पूर्वक जो प्राणायाम किया जाता है वह सगर्भ है और जो प्राणायाम इष्ट मंत्रके जप ध्यानादिविना होता है वह विगर्भ प्राणायाम है ॥ १९ ॥ इस प्रकार क्रमसे प्राणायामका अभ्यास करते २ देहमें पसीना आनेसे वह प्राणायाम अधम, कम्प उत्पन्न होनेसे मध्यम और जिस प्राणायाममें साधक भूमि त्यागकर ऊंचा उठता है वह उत्तम प्राणायाम है॥ २० ॥ जबतक उत्तम प्राणायामका फल लाभ न हो तबतक अभ्यास करता रहै इन्द्रिय

सदाही अपने २ विषयोंमें अबाधित भावसे विचरण करती हैं ॥ २१ ॥ उनको विषयोंसे बलपूर्वक रोकनेहीका नाम प्रत्याहार है अंगूठा, गुल्फ,जानु, ऊरु, मूलाधार, लिंग, नाभि ॥ २२ ॥ हृदय, ग्रीवा, कंठ, लम्बिका, नासिका, भ्रूमध्य, मस्तक, मूर्धा (ब्रह्मरंध्र) इन द्वादशान्त स्थानमें विधिपूर्वक ॥ २३ ॥ प्राणवायुको रोक रखनेका नाम धारणा है प्रथम ध्यानसे अन्तःकरणको चैतन्यवर्ती अर्थात् आत्मसंस्थ करके ॥ २४ ॥ उसमें अभीष्ट देवताके चिन्तनका नाम ध्यान है जीवात्मा और परमात्मा की एकता भावना संप्रज्ञात समाधिको ॥ २५ ॥ मुनियोंने समाधि कहा है यह अष्टांगलक्षणवाला योग तुमसे वर्णन किया अब मंत्रोंका सिद्धिदायक अति उत्कृष्ट योग तुमसे वर्णन करती हूं ॥ २६ ॥ हे पर्वतराज! पिण्ड और ब्रह्माण्डकी एकता होनेसे यह शरीर विश्व वा ब्रह्माण्ड कहा जाता है यह पंचभूतात्मक चन्द्र सूर्य और अग्निसे युक्त होकर जीव ब्रह्मके ऐक्यज्ञानदायक होता है ॥ २७ ॥ इस शरीरमें साढेतीन करोड नाडी हैं उनमें दश मुख्य हैं और दशमें भी तीन अतिशय प्रधान हैं ॥ २८ ॥ इनमें भी एक सुषुम्ना नाड़ी प्रधान है चन्द्र सूर्य और अग्निरूपिणी इस नाड़ीने मेरुदण्डके मध्यभागमें स्थित होकर मूलधारसे ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त गमन किया है इसके वामभागमें शुभ्रवर्ण चन्द्र रूपिणी इडा है ॥ ॥ २९ ॥ यह शक्तिरूपा अमृतमयी है और दक्षिणभागमें पुरुषरूपिणी सूर्य स्वरूपा पिंगला नाड़ी स्थित है ॥ ३० ॥ और वह्निप्रधानासुषुम्नानाड़ी सब तेजोमयी है इसके मध्यमें स्थित चित्ररेखानामक नाडीके भीतर इच्छा, ज्ञान और क्रिया त्मक ॥ ३१ ॥ कोटिसूर्यके समान प्रभावशाली स्वयंभूलिंग प्रतिष्ठित है उसके ऊपर भागमें हरात्मा बिन्दुनाद अर्थात् हकार, रेफ, ईकार बिन्दुनादात्मक मायाबीज स्थित है ॥ ३२ ॥ उसके ऊपरीभागमें दीपशिखाके समान लाल वर्ण देवीरूपिणी कुंडलिनी शक्ति विराजमान है हे नगेश्वर! यह मुझसे अभिन्न है॥ ३३ ॥ इसके बहिर्भागमें पीतवर्ण सुवर्णके समान कान्तिवाले कमलकी चिन्ता करै उससे चार दलोंमें श, ष, स, ह, यह चार अक्षर ध्यान करै ॥ ३४ ॥ इसके ऊपर षट्कोण कमलका ध्यान करै जो अग्निके समान छः दलोंसे युक्त हीरेकेसी कान्तिवाला है इसके छहौं दल, ब, भ, म, य, र, ल, इन अक्षरोंसे सम्पन्न हैं स्व शब्दसे परलिंग जानना चाहिये ॥ ३५ ॥ यह षट्कोण मूलके आधारवाला है इसीसे इसको मूलाधार कहते हैं स्वशब्दसे पर-लिंग और स्वाधिष्ठान जानना चाहिये यही स्वाधिष्ठान पद्म है ॥ ३६ ॥ इसके ऊपर

नाभिस्थानमें विद्युत् छटा और मेघके समान कान्तिमान् अतितेजयुक्त महा प्रभा-वाला मणिपूर ॥ ३७ ॥ मणिवत्प्रभावाला होनेसे मणिपद्म कहाता है उसमें दश-दल ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, यह अक्षरयुक्त है ॥ ३८ ॥ यह पद्म विष्णुसे अधिष्ठित होनेसे इसके ध्यानसे विष्णुका साक्षातकार होता है इसके ऊर्ध्व भागमें बालसूर्यके समान प्रभायुक्त अनाहत पद्म है ॥ ३९ ॥ यह क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, इन बारहवर्णों युक्त बारहदल सम्पन्न है इसके मध्यमें अयुत १००००सूर्यके समान प्रभा सम्पन्न बाणालिंग विराजमान है॥ ४०॥ किसीप्रकारकी ताडनाके विनाही इससे शब्दब्रह्मकी उत्पत्ति होती है इसीसे मुनिजन इसको अना-हत पद्म कहते हैं ॥ ४१ ॥ यह पद्म आनंदका धाम है इसमें रुद्ररूपी पुरुष विराजते हैं इसके ऊपर शुविशुद्धनामक षोडश दल कमल ॥ ४२ ॥ अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः इन सोलह स्वरोंसे युक्त धूम्रवर्ण महाकान्तिमान् है परमात्माके अवलोकनसे इसमें जीव शुद्ध होता है अर्थात् दोनोंका अभेद साक्षात्कार होनेसे जीव विशुद्धिको प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥ इसीकारण इसको विशुद्ध पद्म कहते हैं यह महाअद्भुत पद्म आकाशनामसे अभिहित है इसके ऊपर भ्रूमध्यमें आत्माका परम अधिष्ठान आज्ञाचक्र है ॥ ४४॥ यह ह और क्ष दो-दलसे युक्त मनोहर है इसमें चित् स्थित होनेसे सब पदार्थोंका साक्षात्कार हो आता है, भूत भविष्य वर्तमान् वस्तुओंमें यह तुम्हारा कर्त्तव्य है इसप्रकार परमेश्वरकी आज्ञाका संक्रमण होता है इसीसे इसको आज्ञापद्म कहते हैं ॥ ४५॥ इसके ऊर्ध्वमें कलासचक्र और उसके ऊर्ध्वमें रोधिनीचक्र है हे सुव्रत इसप्रकार आपके निकट आधारचक्रोंका वर्णन किया ॥ ४६ ॥ योगियोंका कथन है उसके ऊर्ध्वमें सहस्रारचक्र है यह बिन्दु अर्थात् परमात्माका स्थान है यह आपसे सम्पूर्ण योगमार्ग वर्णन किया ॥ ४७ ॥ यह जानकर जो करना चाहिये सोई कहती हूं, पहले पूरक प्राणायाम द्वारा आधारचक्रमें मन संयुक्त करै, गुदा और मेढ्रके भीतर मूला-धारमें विराजमान कुंडलिनी शक्तिको मूलाधारमें प्राप्त वायुद्वारा आकुंचित करके प्रबोधित करै ॥ ४८ ॥ अनन्तर लिंगभेद क्रमसे अर्थात् पूर्वोक्त चक्रस्थित तेजो-मय स्वयंभू इत्यादि लिंगका भेदकर उस उस मार्गमें उस कुंडलिनी शक्तिको सहस्रार स्थानमें लावै फिर उस परमशक्तिको सहस्रारमें स्थित शंभुके सहित एकीभूत रूपसे चिन्तन करै ॥ ४९ ॥ अनन्तर शिवशक्तिके संगमसे लाक्षारसकेसमान जो अमृत

निर्गत होता है उसी आनंदस्वरूप अमृतसे योगसिद्धिकरी मायानामिनी कुंडलिनी शक्तिको तृप्त करै ॥ ५० ॥ और छहों चक्रोंमें स्थित देवसमूहोंको उस अमृत धाराद्वारा तृप्त करके पूर्वोक्त मार्गसे उस शक्तिको मूलाधार पद्ममें लावै ॥ ५१ ॥ जो प्रतिदिन इसप्रकार योगका अभ्यास करते हैं उनके सम्बन्धमें छिन्नादिदोष दूषित सब मंत्र सिद्ध होते हैं इसमें अन्यथा नहीं है ॥ ५२ ॥ और इसीसे जरा-मरणादि दुःखवाले संसार बंधनसे मुक्त होता है और मुझ जगन्मातामें जो सब गुण विद्यमान् हैं॥ ५३ ॥ ऐसे साधकको वह समस्त गुण प्राप्त होते हैं इसमें सन्देह नहीं हे तात! यह तुमसे अति उत्तम वायुधारणयोग कथन किया॥ ५४ ॥ अब सावधान होकर चित्तधारणाख्ययोग सुनो दिक् काल और देशादिद्वारा अपरिच्छिन्न देवीमूर्तिमें चित्तको स्थिरकर सकनेसे ॥ ५५॥ तन्मय होनेसे शीघ्रही जीवब्रह्मकी एकताका ज्ञान होता है उस समय साधक ब्रह्ममय हो जाता है और यदि चित्त रज तम द्वारा मलीन हो तो शीघ्र योगसिद्धि नहीं होती॥ ५६ ॥ तब योगी अवयवयोगसे योनाभ्यास करै अर्थात् मेरे हस्तपादादि किसी मनोहर अंगमें॥ ५७॥ चित्तको लगाय एक एक स्थानको जय करता हुआ,चित्तकी शुद्धता होनेसे मेरे सब स्वरूपमें मनको स्थापन करै ॥ ५८॥ हे नगेन्द्र ! जबतक मुझ ब्रह्मरूपिणीमें चित्तका लय न हो तबतक मंत्रयोग-परायण साधक जप और होमके द्वारा इष्टमंत्रसाधनका अभ्यास करै ॥ ५९ ॥ मंत्राभ्यास योगद्वारा ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है योगके विना मंत्र सिद्धि नहीं होती, और मंत्रके विना योगसिद्ध नहीं होता मंत्र और योग दोनोंका अभ्यास ही ब्रह्मज्ञा-नका कारण है ॥ ६० ॥ घरमें रक्खा हुआ अंधकारसे आच्छन्न घड़ा जिसप्रकार दीपकसे दिखाई देता है इसीप्रकार मायासे आवृत जीवात्माभी मंत्रद्वारा प्रकाशित होता है अर्थात् मंत्र मायाअंधकारको दूरकरके आत्माका स्वरूप प्रकाश कर देता है ॥ ६१ ॥ हे पर्वतराज ! यह मैंने तुम्हारे समीप अंगके सहित सब योग विधिका वर्णन किया ॥ ६२ ॥ यह विद्या गुरुके निकट उपदेश प्राप्तकरकेही जानी जाती है अन्यथा कोटिशास्त्रद्वारा भी इसका लाभ नहीं होसक्ता है ॥ ६३ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषायां पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः ३६.

श्रीदेवी बोलीं हे गिरिराज! योगीजन इस प्रकार योगयुक्त हो आसनमें बैठ छलरहित भक्तिसे मुझ ब्रह्मरूपिणीका ध्यान करै ।।१।।अब ब्रह्मस्वरूपका वर्णन करती हूं सुनो यह ब्रह्म आवि अर्थात् प्रकाशमान वस्तु अति समीपवर्ती और गुहाचर अर्थात् सर्व व्यापक होकर भी केवल बुद्धिरूप गुहामेंही इसकी प्राप्ति होती है यह योगादि साधन गम्य है इस ब्रह्मसेही आकाशादि समस्त पदार्थ कल्पित होते हैं इसमेंही पक्षी मनुष्य निमेषादिक्रियावान् सब पदार्थ स्थापित हैं ॥ २ ॥ हे देवताओ! मेरे इस ब्रह्मरूपको जानो जो माया और जगत् इन दोनोंसे श्रेष्ठ है लोकमें ज्ञानातीत और वरिष्ठ अर्थात् सम्पूर्ण बुद्धियोंको भी गम्य नहीं है जो सूर्यादितेजका भी प्रकाशक है इससे वह सूर्यादितेजसे भी अत्यन्त दीप्तिमान् और अणुसे भी अणु अर्थात् अति सूक्ष्म है जिसमें भूरादि लोक और उन लोकनिवासियोंकी स्थिति है ॥ ३ ॥ वह अक्षर अविनाशी पदार्थही ब्रह्म है यही प्राण, वाणी और मन स्वरूप है वही सत्य और अमृत स्वरूप है हे सौम्य! मनरूपी बाणसे उसको विद्धकरना चाहिये अर्थात् उसमें मन समाधान करै॥ ४ ॥ हे सौम्य! उसके विद्ध करनेका उपाय कहती हूं उपनिषद्शास्त्र रूपी महाधनुष ग्रहणकर उसमें ध्यान और उपासनाका तीक्ष्ण बाण संधान और सब इन्द्रियोंको अपने अपने॥ २॥ विषयसे खैंचकर तद्गत चित्तसे उस ब्रह्मरूप लक्ष्यको विद्ध करै ॥ ५ ॥ जिस धनुआदिका विषय कहा है वह भली भांति वर्णन करती हूं इस ब्रह्मरूप लक्ष्यवेधमें ॐकार वा देवी प्रणवही धनु है जिसप्रकार लक्ष्यमें बाणप्रवेशका कारण धनुषही है इसीप्रकार चित्तरूपी लक्ष्यमें प्रवेशसम्बन्धका प्रण वही कारण है प्रणवका अभ्यास करते २ उससे संस्कृत हो प्रणवको अवलम्बनपूर्वक अप्रतिबद्ध भावसे ब्रह्ममें स्थिति कीजाती है,इसमें आत्मा अर्थात् अन्तःकरणही शर है जिस प्रकार शर लक्ष्यको विद्ध करताहै इसीप्रकार अन्तःकरणही आत्माको विद्ध करताहै इसीकारण अन्तःकरणको शर कहागया है इस स्थलमें ब्रह्महो लक्ष्यवस्तु है साधक अप्रमत्त चित्तसे इस लक्ष्यको विद्ध करै तो बाण जिस प्रकार लक्ष्यभेद करके उसके संग एकात्मताको प्राप्त होता है इसीप्रकार साधकभी ब्रह्मके संग एकात्माको प्राप्त होसक्ते हैं ॥ ॥ ६ ॥ वह ब्रह्मपदार्थ अतिदुर्लक्ष्य वस्तु है इससे भलीभांति लक्ष्य करनेको फिर कहा जाता है, जिसमें स्वर्ग, पृथ्वी, अन्तरिक्ष, सब इन्द्रियें और प्राणोंके सहित

मन स्थित है, उसीको आत्मा जानना चाहिये, हे देवताओ ! इसको जानकर अन्य अपर विद्यारूप वाक्योंका त्याग करे यह ब्रह्मज्ञान ही मुक्तिका सेतु अर्थात् संसार सागरसे तारनेका हेतु है ॥ ७ ॥ जिसप्रकार रथकी नाभिमें सब आरे मिलकर सन्निविष्ट रहते हैं इसीप्रकार जिस हृदयमें नाडियें प्रविष्ट हुई हैं उसी हृदयमें बुद्धिवृत्तिका साक्षीरूप आत्मा बुद्धिवृत्तिके द्वारा अनेकरूपयुक्त होकर स्थिति करता है ॥ ८ ॥ ॐकारका अवलम्बन कर यथोक्त प्रकारसे उसी आत्माकी चिन्ता करनी चाहिये संसारसागरके पार जानेकी प्राप्तिमें तुम निर्विघ्न हो यह भगवतीका आशीर्वाद है, तुम अविद्यारहित ब्रह्मस्वरूपको अवगत हो, वह ब्रह्म जिस स्थानमें प्रतिष्ठित है सुनो जो सर्वज्ञ सर्ववित् और जिसके जगत्सृष्टि आदिरूपकी विभूति पृथ्वीमें प्रसिद्ध है, वह प्रकाशशाली आत्मा दिव्य हृदयकमलमें प्रतिष्ठित होनेसे प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ उस आत्माकी मनोवृत्तिद्वारा भावना होती है, इसी कारण उसको मनोमय कहते हैं, यही प्राण और शरीरका नेता यही अन्नमय हृदयपिण्डमें बुद्धिको स्थित कर प्रतिष्ठित है, विवेकी पुरुष इसको भलीभांति जानसक्ते हैं वह आनन्दरूप दुःखसे परे है, अविनाशीरूपसे प्रकाशित होता है ॥ १० ॥ आत्मज्ञानका फल कहती हैं उस परमात्माका साक्षात् कार होनेसे हृदयग्रंथि अर्थात् चैतन्य और अहंकारका तादात्म्यभाव नष्ट होजाता है, समस्त ज्ञेयवस्तु विषयक सन्देह दूर होजाता है प्रारब्धके अतिरिक्त सब कर्म नष्ट होजाते हैं जब उस परात्परका साक्षात्कार होता है ॥ ॥ ११ ॥ फिर पूर्वोक्त विषयको संक्षेपसे कहती हूं यह ब्रह्म ज्योतिर्मय परकोश अर्थात् आनंदमयकोशमें प्रतिष्ठित है यह सत्वादि तीनों गुणरहित निष्फल (मायारहित) स्वच्छवस्तु है, यह सर्वप्रकाशक सूर्यादिकाभी प्रकाशक है आत्मवित् जिसको बड़े परिश्रमसे जान्ते हैं वह हिरण्मय परकोशमें स्थित है ॥ १२ ॥ उस ब्रह्मको सूर्य प्रकाश नहीं करसक्ते, चन्द्र तारा बिजली वा अग्निभी उसके प्रकाश करनेमें समर्थ नहीं, बहुत क्या यह सम्पूर्ण जगत् उस स्वप्रकाश आत्मासेही प्रकाशित होता है उससेही यह सब प्रकाशित है ॥ १३ ॥ यह अमृतमय ब्रह्मही आगे पीछे दक्षिण उत्तर नीचे और ऊपर भागमें स्थित है अधिक क्या इस सब जगत्कोही ब्रह्ममय जानना चाहिये ॥ १४ ॥ हे गिरिराज ! जो पुरुष श्रेष्ठ इसप्रकार अनुभव कर सक्ते हैं वही कृतार्थ हैं वह ब्रह्मस्वरूप प्रसन्नस्वभाव होकर शोक और विषयकी कांक्षा रहित होते हैं ॥ १५ ॥ हे गिरिराज ! द्वैतभावही भयका कारण है द्वैतभाव दूर होनेसे

फिर संसारभय नहीं रहता, मैं अद्वैतभावनिष्ठसे वियुक्त नहीं हूं और वह मुझसे पृथक् नहीं है॥ १६॥ हे पर्वतराज! यह निश्चय जानो, वह ज्ञानी व्यक्ति मैं हूं, जो मैं हूं सो वह ज्ञानी है, जिस किसी स्थानमें ज्ञानी क्यों न रहै उसी स्थानमें उसको मेरा दर्शन प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ मैं तीर्थ कैलास और वैकुण्ठमें निवास नहीं करती परन्तु जो ज्ञानी मुझमें परायण है उसीके हृदयकमलमें वास करती हूं ॥ १८ ॥ जो कोई मुझमें निष्ठावाले ज्ञानीकी एकवार पूजा करता है उसको मेरी पूजाका कोटिगुण फल होता है, जिसका चित्त चैतन्यस्वरूप ब्रह्ममें लीन हुआ है उसका वंश पवित्र है उसकी माता कृतकृत्य ॥ १९ ॥ और उस पुरुषसे पृथ्वी पुण्यशालिनी होती है हे पर्वतराज! आपने जो मुझसे ब्रह्मज्ञानका विषय पूँछा ॥२०॥ वह मैंने सब कह दिया इस विषयमें अब कुछ कहना नहीं है यह ज्येष्ठपुत्र भक्तिमान् शीलसम्पन्न ॥ २१ ॥ यथोक्त शिष्यसे कहना अन्यसे नहीं कहना जिसकी इष्टदेवमें पराभक्ति होती है और देवताके समान गुरुमें भक्ति होती है ॥ २२ ॥ उसीके निमित्त श्रेष्ठ पुरुष यह ब्रह्मविद्या प्रकाशकरते हैं अर्थात् उसी महात्माको यह विद्या प्रकाशित होतीहै जो इस ब्रह्मविद्याका उपदेश करते हैं वह साक्षात् परमेश्वरस्वरूप हैं॥ २३॥ इस विद्या-को प्राप्त होकर शिष्य प्रत्युपकारमें असमर्थ होता है इससे जीवनपर्यन्त गुरुके समीप ऋणी रहता है, जो ब्रह्मरूपमें युक्त करते हैं वह ब्रह्मजन्मदाता गुरु माता पिता सेभी अधिक पूज्य हैं ॥ २४ ॥ पितासे प्रगट होकर जन्म मरण होनेसे नष्ट होतेहैं परन्तु ब्रह्मरूप जन्मसे फिर कभी नष्ट नहीं होता, हे पर्वतराज! "तस्मै न द्रुह्येत्कृतमस्य जानन्" इस श्रुतिनेभी कहाहै कि ब्रह्मदाता गुरुका कार्य स्मरण कर कभी उससे द्रोह न करै ॥ २५ ॥ इसकारण शास्त्रके सिद्धान्तअनुसार ब्रह्मदाता गुरु सबसे श्रेष्ठ है। शिवके रुष्ट होनेपर गुरु रक्षक होसक्ताहै पर गुरुके रुष्ट होनेपर शिव कभी उसकी रक्षा नहीं करते ॥२६॥ हे पर्वतराज! इसकारण काय मन वचनसे सर्वदा यत्नपूर्वक श्रीगुरुको संतुष्ट करै ॥ २७ ॥ अन्यथा वह कृतघ्नी होगा और कृतघ्न पुरुषकी निष्कृति नहीं होती गुरुके वचन उल्लंघन करनेसे क्या दशा होती है सो कहते हैं दध्यङ्नामक आथर्वण मुनिने इन्द्रसे प्रार्थना की कि आप मुझे ब्रह्मविद्या दीजिये इन्द्रने कहा विद्या तौ दूंगा पर यदि आप अन्य किसीको यह विद्या दोगे तो मैं तुम्हारा मस्तक छेदन करूंगा, उनके स्वीकारकरनेपर इन्द्रने ब्रह्मविद्या दी ॥ २८ ॥ तब कुछ काल उपरान्त दोनों अश्विनीकुमारोंने मुनिके पास आय विद्याकी प्रार्थना की

मुनिने कहा विद्या देनेसे इन्द्र मेरा मस्तक छेदन करेगा तब अश्विनीकुमार बोले हम आपका यह मस्तक छेदनकर आपके देहमें अश्वका मस्तक लगाये देते हैं उस मस्तकसे आप हमको विद्या उपदेश कीजिये, जब इन्द्र आपका यह मस्तक छेदन करेगा तब हम आपका पूर्वशिर संयुक्त करदेंगे मुनिने सम्मत हो उनको ब्रह्मविद्याका उपदेश किया तब इन्द्रने आकर उनका वह मस्तक छेदन किया,तब अश्विनीकुमारोंने॥ २९॥ उनका मुख्य शिर जोडकर फिर उनके मुख्य शिरसे ब्रह्मविद्या सुनी यह कथा श्रुतिसिद्ध है इस प्रकार संकटसे प्राप्त होनेवाली विद्याको जिसने प्राप्त किया. हे पर्वतराज ! वह धन्य और कृत कृत्य हैं ॥ ३० ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

॥ सप्तत्रिंशोऽध्यायः ३७. ॥

हिमालय बोले हे मातः ! अधिरागी मध्यम अधिकारी पुरुषको जिस प्रकार सुख पूर्वक ज्ञानलाभ होसके इस समय आप वही अपना भक्तियोग कहो ॥ १ ॥ देवीने कहा हे नगेन्द्र ! मुक्ति प्राप्तिके निमित्त तीन मार्ग हैं कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्ति योग ॥ २ ॥ इन तीनोंमें भक्तियोगही सहजमें सिद्ध होता है कारण कि, यह योग द्रव्यव्यय और शरीरकी पीडाके विना केवल मनकी वृत्तिसेही संपादित होता है, इससे सुलभ है ॥ ३ ॥ सत्व, रज, तम इन तीन प्रकारके गुणभेदसे मनुष्यकी भक्ति सात्विकी राजसी और तामसी ऐसी तीन प्रकारकी होती है,जो दम्भप्रकाशपूर्वक दूसरेको पीडा देनेके निमित्त ॥ ४ ॥ मात्सर्य और क्रोधादियुक्त होकर उपासना करताहै उसकी तामसी भक्ति है और जो परपीडादिसे रहित हो अपने कल्याणके निमित्तही ॥ ५ ॥ सकाम भावसे यश और भोगमें लोलुप हो अतिभक्तिसे उस उस फलप्राप्तिके निमित्त अत्यन्त भक्तिसे उपसना करते हैं ॥ ६ ॥ और अपनी अज्ञतासे हुई भेदबुद्धिद्वारा मुझे अपनेसे अन्य जानते हैं हे नगाधिप ! उस पामरकी भक्ति राजसी है ॥ ७ ॥ परमात्माको अर्पणकिये कर्मही पापनाश करनेमें समर्थ होते हैं वह वेदोक्त कर्म दिन रात मुझे अवश्य कर्तव्य हैं ॥ ८ ॥ इसप्रकार निश्चय कर जो भेदबुद्धिसे मेरी प्रसन्नताके निमित्त नित्यकर्मानुष्ठान करताहै हे पर्वतराज ! उसकी सात्विकी भक्ति है ॥ ९ ॥ यह सात्विकी भक्ति परम प्रेमरूपा और परभक्तिकी प्रापिका है किन्तु यह स्वयंही परा भक्ति नहीं है कारण कि, इसमें भेदबुद्धि वर्तमान रहती है

परन्तु राजसी और तामसी भक्ति परभक्तिकी प्रापिका नहीं इससे तामसी और राजसी भक्तिका त्यागकरके इसकाही आश्रय करे ॥ १० ॥ हे नगेन्द्र ! अब मैं पराभक्तिको वर्णन करतीहूं तुम सुनो जो कोई सदा मेरे गुणश्रवण और सदा मेरे नामको कीर्तन करताहै ॥ ११ ॥ जिसका मन कल्याण और गुण रत्नका आकर मुझमेंही तेलधाराके समान अविच्छिन्नभावसे सदा स्थित रहता है ॥ १२ ॥ और उसमें किसी फलके हेतु व किसी फलकी आकांक्षा नहीं करता तथा सामीप्य, सार्ष्टि सायुज्य और सालोक्य मुक्तिकी भी कामना नहीं करता ॥ १३ ॥ और जो प्राणी मेरी सेवासे अधिक और कुछ नहीं जान्ता, जो सेव्य-सेवकभाव त्यागकर मोक्षकी भी आकांक्षा नहीं करता ॥ १४ ॥ जो जितेन्द्रिय हो परानुरक्तिपूर्वक मेरीही आकांक्षा करता है और मुझको अपनेसे पृथक् न करके मैंही सच्चिदानंदरूप हूं ऐसा जानता है ॥ १५ ॥ और जो सब जीवोंमें मेराही रूप जान्ता है अपने परायेमें समान प्रीतियुक्त है ॥ १६ ॥ जो चैतन्यके समानत्वसे सर्वत्र विद्यमान् सर्वस्वरूपिणी मेरे सहित सदा सब जीवोंका अभिन्नत्व जान्ता है ॥ १७ ॥ हे नगेश्वर ! जो भेद बुद्धि त्यागके कारण चण्डालपर्यन्त सब जीवोंको नमस्कार और सत्कार करता है और भेदवर्जनसे कहीं भी जिसकी द्रोहबुद्धि नहीं है ॥ १८ ॥ जो मेरा मेरे भक्तोंका दर्शन मेरा शास्त्रश्रवण और मेरे मंत्रादिविषयमें श्रद्धायुक्त है ॥ १९ ॥ मेरेहीमें प्रेमसे आकुलमति हो मेरी कथामात्र सुननेसे रोमांचित शरीर होता है प्रेमके आंसुओंसे जिसके नेत्र पूर्ण और गद्गद कण्ठ होता है ॥ २० ॥ हे नगेश्वर! जो अनन्यभावसे जगत्की योनि सर्व कारणोंकी कारण मुझ परमेश्वरीकी पूजा करता है॥ २१ ॥ जो भक्तिपूर्वक कृपणता त्याग मेरे नित्य नैमित्तिक के दिव्यव्रत करता है ॥ २२॥ जिसको स्वभावसे ही मेरे उत्सव करने और देखनेकी इच्छा रहती है हे भूधर! ॥ २३॥ जो मेरे नाम ऊंचे स्वरसे लेकर गाते और नृत्य करते हैं जो अहंकार और देहके तादात्म्यभावसे रहित हैं ॥ २४ ॥ जो कोई यह समस्त ही प्रारब्धकर्मानुसार होता है यह जानकर मेरे ध्यानके अतिरिक्त देहरक्षादि विषयमेंभी चिन्ता नहीं करते ॥ २५ ॥ उन पुरुषोंकी यह भक्ति परा भक्ति कहाती है, जिसमें देवीविचारके अतिरिक्त अन्य किसी विषयकी चिन्ता नहीं रहती ॥ ॥ २६ ॥ हे पर्वतराज! इसप्रकार तत्त्वसे जिसको पराभक्ति प्राप्त हुई है वह तत्काल ही मेरे चिद्रूपमें लीन हो जाता है ॥ २७ ॥ जिस ज्ञानसे भक्ति और

ज्ञानकी पूर्णता होती है इस कारण वैराग्य और भक्तिकी पराकाष्ठाकाही नाम ज्ञान है ज्ञानमें यह दोनों ही हैं ॥ २८ ॥ हे पर्वतराज ! जो भक्तिकरकेभी प्रारब्धवश मेरे ज्ञानके अधिकारी नहीं होते वह मणिद्वीपमें गमनकरते हैं॥ २९ ॥ हे पर्वतराज! वहां जाकर इच्छा न करनेसे भी अनेक भोगोंकी प्राप्ति होती है, उसके अन्तमें मेरा चिद्रूप ज्ञानलाभ करकै॥ ३० ॥ उस ज्ञानसे मुक्त होजाता है. कारण कि, ज्ञानके विना मुक्ति नहीं होती यहां जिसको संवित् स्वरूप हृदयमें प्राप्त प्रत्यगात्माका ज्ञान होता है ॥ ३१ ॥ तो मेरे सम्वित् रूपका ज्ञान होनेसे उसके प्राण उत्क्रान्त नहीं होते इस शरीरमेंही लय होजाते हैं "न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति" इतिश्रुतेः उसका ब्रह्मके साथ अभेद होता है "ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति" इति श्रुतेः ॥ ३२ ॥ जिस प्रकार कंठमें स्थित सुवर्णका भ्रमवश नष्ट होना जानाजाता है और भ्रमके नष्ट होनेसे प्राप्त वस्तुकीही प्राप्ति मानी जाती है ॥ ३३ ॥ हे नगसत्तम ! मेरे चिद्रूपतनुविहित घटादिकार्य अविदित माया-रूपसे भिन्न हैं जिसप्रकार दर्पणमें प्रतिबिम्ब पडता है इसीप्रकार इस देहमें आत्माका अनुभव होता है और जिसप्रकार जलमें प्रतिबिम्ब पूर्वकी अपेक्षा विविक्तरूपसे प्रकाशित होता है इसीप्रकारसे पितृलोकमें देहसे विविक्तभावमें आत्माका अनुभव होता है ॥ ३४ ॥ जैसे छाया और आतपका भेद प्रकाशस्वरूपसे स्वच्छरूपसे दीखता है इसीप्रकार मणिद्वीपमें द्वैतभाववर्जित ज्ञान होता है ॥ ॥ ३५ ॥ जो वैराग्यवान् होकर पूर्णज्ञान प्राप्त हुये विना प्राणत्याग करते हैं वह प्रलयपर्यन्त ब्रह्मलोकमें निवास करके ॥ ३६ ॥ फिर पवित्र श्रीमान् पुरुषोंके घर जन्म ग्रहणकर साधन करने उपरान्त फिर ज्ञानलाभ करते हैं ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! एक जन्ममें नहीं अनेक जन्मोंमें ज्ञान होता है इसकारण सब प्रयत्नसे ज्ञानको आश्रय करै ॥ ३८ ॥ यदि मनुष्यजन्म प्राप्त होकर ज्ञानलाभ न किया तो विनाश होगा. कारण कि, मनुष्यजन्म बड़ा दुर्लभ है उसमें भी ब्राह्मण और उसमें भी वेदप्राप्ति बहुतही दुर्लभ है ॥ ३९ ॥ शम, दम, उपरति, तितिक्षा, समाधान, और श्रद्धा यह षट्सम्पत्ति, योगसिद्धि और उत्तम गुरुकी प्राप्ति यह इस लोकमें बडी दुर्लभ है ॥ ४० ॥ इन्द्रियोंकी पटुता शरीरका संस्कार और अनेक जन्मोंके पुण्योदयसे मोक्षमें इच्छा होती है ॥ ४१ ॥ जो मनुष्य साधनसे सफल होनेवाले इस शरीरको प्राप्त करके ज्ञानके निमित्त यत्न नहीं करता उसका जन्म निरर्थक है ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! इसकारण यथाशक्ति ज्ञानप्राप्तिके निमित्त यत्न करे तो

अवश्य उसको पदपदमें अश्वमेधका फल प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥ जैसे दूधमें घृत निमग्न है इसीप्रकार सब भूतोंमें ज्ञान निवास करता है, उसकी मंथानभूत मनसे सदा मथना चाहिये ॥ ४४ ॥ ज्ञानको प्राप्त होकरही यह प्राणी कृतार्थ होता है यह वेदान्तकी घोषणा है यह संक्षेपसे आपके प्रति सब वर्णन किया अब क्या सुननेकी इच्छा है ॥ ४५ ॥

इति श्री देवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां सप्तत्रिंशोऽध्याय ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशोऽध्यायः ३८.

हिमालय बोले हे देवि ! इस पृथ्वीमें तुम्हारे मुख्य और प्रिय कितने स्थान हैं सो तुम मुझसे कहो ॥ १ ॥ हे मातः ! जिन सब व्रत और उत्सवका अनुष्ठान करनेसे मनुष्य कृतकृत्य होते हैं अपने प्रीतिदायक उन सब व्रत और उत्सवका वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ श्रीदेवी बोलीं हे पर्वतराज ! मैं सर्वाधिष्ठानस्वरूपिणी हूं इसकारण भूमण्डलमें जितने स्थान विद्यमान हैं वह सबही मेरी अधिष्ठान भूमि है और मैं सब कालमयी हूं इसकारण सब कालही मेरा व्रत और उत्सवात्मक है. इस कारण जिस समय जिसका अनुष्ठान करै उसकोही मेरी प्रीतिप्रद जाने ॥ ३ ॥ पर तथापि भक्तवत्सलतासे कुछ तुमसे कहती हूं. हे नगराज ! वह सावधान होकर मुझसे सुनो ॥ ४ ॥ दक्षिणदेशमें कोलापुर (करवीर) स्थानमें लक्ष्मीनामसे सदा स्थित हूं सह्यनाम पर्वतमें मातृपुरस्थानमें रेणुकारूपसे निवास करती हूं ॥ ५ ॥ तुलजापुर और सप्तशृंग स्थानमें हिंगुला और ज्वालामुखी निवासकरती हैं ॥ ६ ॥ यह शाकम्भरी, भ्रामरी, श्रीरक्तदन्तिका और दुर्गाका स्थान है ॥ ७ ॥ विन्ध्याचल निवासिनीका सर्वोत्तम स्थान है, कांचीपुरमें अन्नपूर्णाका महास्थान ॥ ८ ॥ यही पुर भीम देवी विमला श्रीचन्द्रकला और कौशिकीका महास्थान है ॥ ९ ॥ नीलपर्वतके शृंगमें नीलाम्बरीका परमस्थान और सुन्दर श्रीनगरको जाम्बूनदेश्वरीका परम स्थान जानो ॥ १० ॥ नेपालमें गुह्यकालीका उत्कृष्ट स्थान है. चिदम्बरदेशमें मीनाक्षीका परमस्थान है ॥ ११ ॥ वेदारण्यक महास्थानमें सुन्दरी देवी, एकाम्बर महास्थानमें पराशक्ति स्थित रहतीहै ॥ १२ ॥ महालसा, योगेश्वरी और नीलसरस्वतीका स्थान चीनदेशमें है ॥ १३ ॥ वैद्यनाथमें बगलाका सर्वोत्तमस्थान है मणिद्वीपमें मुझ भुवनेश्वरीका परम स्थान है ॥ १४ ॥ जिस कामरूदेशमें सतीका

योनिमंडल गिराहै, वह कामाख्या योनिमंडल त्रिपुरभैरवीका महास्थान है भूमण्डलमें यह क्षेत्ररत्न है इसकारण ऐसा दूसरा स्थान नहीं है ॥ १५ ॥ इससे अधिक पृथ्वीमें ऐसा कोई स्थान नहीं है इस स्थानमें महामाया प्रत्येक मासमें रजस्वला होती है ॥ १६ ॥ यहांके सब देवता पर्वतभावको प्राप्त हो वहां निवास करते हैं ॥ १७ ॥ वहांकी सब पृथ्वी देवीरूप है ऐसा पंडित कहते हैं. इस कामाख्या योनिमण्डलसे श्रेष्ठ दूसरा स्थान नहीं है ॥ १८ ॥ पुष्करक्षेत्र गायत्रीका परम स्थान है अमरेशमें चण्डिका और प्रभासमें पुष्करेक्षिणी निवास करती हैं ॥ १९ ॥ नैमिषमहास्थानमें लिंगधारिणी देवी, पुष्कराक्षमें पुरहूता और आषाढी स्थानमें रति निवास करतीहैं ॥ २० ॥ चण्डमुण्डके महास्थानमें दण्डिनी, परमेश्वरी, भारभूतिस्थानमें भूति नकुलस्थानमें नकुलेश्वरी निवासकरतीहैं ॥ २१ ॥ हरिश्चन्द्रस्थानमें चन्द्रिका, श्रीपर्वतमें शांकरी जप्येश्वरमें त्रिशूला और आम्रातकेश्वरमें सूक्ष्मा निवास करती हैं ॥ २२ ॥ उज्जयनीमें शांकरी मध्यमेश्वरमें शर्वाणी केदार महाक्षेत्रमें प्रसिद्धमार्गदायिनी ॥ २३ ॥ भैरवस्थानमें भैरवी गयामें मंगला कुरुक्षेत्रमें स्थाणुप्रिया नाकुलमें स्वायम्भुवी ॥ २४ ॥ कनखलमें उग्रा विमलेश्वरमें विश्वेशा अट्टहासमें महानन्दा महेन्द्र पर्वतमें महान्तका ॥ २५ ॥ भीम स्थानमें भीमेश्वरी वस्त्रापथमें भवानी शांकरी अर्धकोटिस्थानमें रुद्राणी ॥ २६ ॥ अविमुक्त स्थानमें विशालाक्षी महालयमें महाभागा गोकर्णमें भद्रकर्णी भद्रकर्णमें भद्रा ॥ २७ ॥ सुवर्णाख्य स्थानमें उत्पलाक्षी स्थाणुस्थानमें स्थाण्वीशा, कमलालयमें कमला छगलंडस्थान [दक्षिण देशमें समुद्रके निकट है] में प्रचण्डा ॥ २८ ॥ कुरण्डमें त्रिसंध्या माकोटमें मुकुटेश्वरी मण्डलेशमें शाण्डकी कालंजरमें काली ॥ २९ ॥ शंकुकर्णमें ध्वनि स्थूलकेश्वरमें स्थूला और ज्ञानियोंके हृदयकमलमें परमेश्वरी देवी हृल्लेखा प्राणशक्ति रूपसे निवास करती हैं ॥ ३० ॥ हे नगेश्वर ! यह सब स्थान देवीके प्रिय हैं उन उनक्षेत्रोंका माहात्म्य सुनकर ॥ ३१ ॥ उसमें कहीं विधिके अनुसार देवीकी पूजा कर. हे नगोत्तम ! अथवा सब पुण्यक्षेत्र काशीमें विद्यमान हैं ॥ ३२ ॥ देवीकी भक्तिमें तत्पर मनुष्य नित्य काशीमें निवास करै उन स्थानोंको देखताहुआ निरन्तर देवीका जप करै ॥ ३३ ॥ और भगवतीके चरणकमलका ध्यान करताहुआ भवबंधनसे छूटजाता है. यह देवीके नाम जो प्रभातकाल उठकर पढताहै ॥ ३४ ॥ हे नगसत्तम ! उसीसमय उसके पाप नष्ट होजाते हैं और ब्राह्मणोंके समीप श्राद्धकालमें जो निर्मल नाम पढता है ॥ ३५ ॥ उसके सब पितर मुक्त होकर पर-

गतिको प्राप्त होते हैं. हे सुव्रत! अब तुमसे व्रतोंको कहती हूं ॥ ३६ ॥ नरनारियोंको यत्नपूर्वक व्रतानुष्ठान करना चाहिये अनन्तर तृतीयाव्रत, रसकल्याणनीव्रत ॥ ३७ ॥ आर्द्रानन्दकरव्रत यह तृतीयाके व्रत हैं शुक्रवारका व्रत कृष्णाचतुर्दशीका व्रत ॥ ३८ ॥ भौमवारव्रत प्रदोषव्रत यह चारप्रकारके व्रत हैं इन व्रत और प्रदोषसमय देवदेव महादेव देवीको आसनमें बैठाय ॥ ३९ ॥ देवताओंके सहित देवीके सन्मुख नृत्य करतेहैं इन व्रतोंमें उपवसा कर प्रदोषके समय मंगलमयी शिवाका पूजन करै ॥ ४० ॥ और जो प्रति पखवारेमें ऐसा करताहै उसपर देवी अधिक प्रसन्न होतीहै हे नग! सोमवारका व्रत मुझको अतिप्रिय है ॥ ४१ ॥ उसमेंभी देवीको पूजनकर रात्रिमें भोजन करै दोनों नवरात्रियोंमें व्रत मेरा प्रसन्न करनेवाला है ॥ ४२ ॥ इस-प्रकारसे और भी जो मत्सर हीन होकर मेरी प्रीतिके निमित्त नित्यनैमित्तिक व्रत करता है वह वे उपांगललितादि व्रत हैं ॥ ४३ ॥ इनके करनेसे मेरी सायुज्य मिलती है वह मेरा भक्त और मुझे प्रियहै फिर चैत्र शुक्ल तीजको दोला उत्सव करै शंकर सहित देवीकी कुंकुम,अगर, कपूर, मणि, वस्त्र, सुगंध, माला, धूप, दीपादिसे पूजाकर झुलावै इत्यादि और भी उत्सव करै ॥ ४४ ॥ आषाढपूर्णिमाको शयनोत्सव वा इसके आगेकी तीज कार्त्तिक पूर्णिमाको जागरणोत्सव, आषाढ शुक्लतृतीयाको रथोत्सव करै इसमें पृथ्वीको रथ,चन्द्रसूर्यको चक्र वेदोंको अश्व ब्रह्माको सारथि माने अनेक मणियोंसे जटित फूलमालायुक्त रथकी कल्पना कर उसमें शिवाको बैठावै और लोकोंकी रक्षा तथा लोकोंके देखनेको अम्बा रथपर चढी हैं यह भावना करे रथके चलनेमें शत २ जय शब्द करै. हे भगवती ! हम दीन जनोंकी रक्षा करो. इसप्रकार स्तोत्र पढ बाजे बजाय सीमाके समीप रथ लेजाय पूजा करै. फिर घर लावै उमा संहिता (शिवपुराण)में यह कथा वर्णन की है. चैत्रपूर्णिमामें दमनोत्सव ॥ ४५ ॥ श्रावणपूर्णिमाको पवित्रोत्सव मेरा प्रियकारक है, इसप्रकार मेरे भक्त दूसरे उत्सवोंकोभी सदा करैं ॥ ४६ ॥ प्रीतिसे मेरे भक्त सुवासिनी कुमारी और बटुकोंको मेरा स्वरूप जानकर तद्गतचित्त हो भोजन करावे ॥ ४७ ॥ वित्तशाठ्य कृपणता छोडकर कुसुमादिद्वारा इनकी पूजा करै जो सावधान हो प्रतिवर्ष भक्तिसे ऐसा करता है ॥ ४८ ॥ वह धन्य कृतकृत्य और मेरी प्रीतिका पात्र है इसमें सन्देह नहीं.यह अपनी प्रियकर वस्तुओंका संक्षेपसे वर्णन किया ॥ ४९ ॥ यह वार्ता अशिष्य और अभक्तको कभी न देनी चाहिये ॥ ५० ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषायां अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ३९.

हिमालय बोले हे महेश्वरि! देवदेवि! महेशानि! करुणासागर! जगदम्बा! अब भलीप्रकार अपने पूजाविधानको कहिये ॥ १ ॥ श्रीदेवी बोलीं हे राजन्! मैं अपनी प्रियकर पूजाविधि कहती हूं हे पर्वतश्रेष्ठ! तुम अतिशय श्रद्धापूर्वक श्रवण करो ॥ ॥ २ ॥ बाह्य अभ्यान्तरके भेदसे मेरी पूजा दोप्रकारकी है उसमें बाह्यभी वैदिक और तांत्रिक भेदसे दोप्रकारकी है ॥ ३ ॥ हे भूधर! वैदिकपूजाभी मूर्ति भेदसे दोप्रकारकी है, उसमें विराट्रूपसे देवीका ध्यानरूप पहली पूजा और करचरणादियुक्त देवीकी मूर्तिका ध्यानकर वैदिकमंत्रोंसे देवीका आवाहन और विसर्जन करना यह दूसरी पूजा है इनमें वैदिकमंत्रमें दीक्षित पुरुषको वेदविधिके अनुसार वैदिकी पूजा ॥ ४ ॥ और तंत्रमार्गमें दीक्षित पुरुषको तंत्रोक्त विधिसे पूजा करनी चाहिये. जो मूढ इस प्रकार पूजारहस्य न जानकर वैदिक तांत्रिक रीतिसे और तांत्रिकदीक्षावाले वैदिकरीतिसे पूजा करै तो ॥ ५ ॥ इस विपरीतभावके कारण वह मूढ़ पतित होता है अब प्रथम वैदिकी पूजाका विषय वर्णन करती हूं ॥ ६ ॥ हे भूधर! जो तुमने मेरे साक्षात् पररूपका दर्शन किया है जिसमें अनन्तशिर अनन्तनेत्र अनन्त चरण हैं ॥ ७ ॥ जो सब शक्तिसे युक्त प्रेरक परात्पर है उसीका निरन्तर पूजन करै, इसीका नमस्कार ध्यान और स्मरण करै ॥ ८ ॥ हे नगराज! यही प्रथम वैदिकी पूजाका स्वरूप है यह पूजा शान्त, सावधानमन, दंभ अहंकारहीन होकर करनी चाहिये ॥ ९ ॥ उसीमें तत्पर उसीका यजन और उसीकी शरण हो उसीको चित्तसे देखकर सदा जप ध्यान करो ॥ १० ॥ अनन्यप्रेमभक्तिसे मेरे भावको आश्रित हो यज्ञोंसे मेरा यजन और तप दानसे मुझ विराट्रूपकोही सन्तुष्ट करो ॥ ११ ॥ इस प्रकार करते हुए मेरे अनुग्रहसे संसारबंधनसे मुक्त होगे मुझमें तत्पर और मुझमें आसक्त चित्त भक्तश्रेष्ठ कहे हैं ॥ १२ ॥ यह मेरी प्रतिज्ञा है ऐसे भक्तोंको मैं बहुत शीघ्र उद्धार करदेती हूं हे गिरिराज! कर्मयुक्त ध्यानयोग, अथवा भक्तिमिश्रित ज्ञानयोगसेही ॥ १३ ॥ मैं प्राप्त होसक्ती हूं. केवल कर्मसेही कोई मुझे प्राप्त नहीं करसक्ता धर्मसे भक्ति और भक्तिसे ज्ञानकी उत्पत्ति होती है ॥ १४ ॥ श्रुतिस्मृतिमें प्रतिपादन किये कर्मकोही धर्म कहते हैं श्रुतिस्मृतिके विपरीत अन्य शास्त्रोंका कहाहुआ धर्म यथार्थ धर्म नहीं किन्तु धर्माभास है ॥ १५ ॥ सर्वज्ञ और

सब शक्तिसम्पन्न मेरे स्वरूपसेही वेद प्रगट हुए हैं, इसकारण वेदके अप्रमाणकी शंका नहीं होसक्ती. कारण कि, मैं अज्ञानरहित हूं इससे मुझसे प्रगट हुए वेद भ्रान्तिरहित सत्यवस्तु हैं दूसरे शास्त्र अज्ञपुरुषोंद्वारा कल्पित हैं इससे वह वेदके सन्मुख अप्रमाण हैं इसीसे उनमेंका कहाहुआ धर्म धर्माभास है फलपक्षमें वेदोक्त धर्मही यथार्थ धर्म है ॥ १६ ॥ वेदोंका अर्थ ग्रहणकर स्मृतिशास्त्र प्रणीत हुआ है इससे मनुआदि महर्षि प्रणीत स्मृतिशास्त्रका ग्रहण होता है ॥ १७ ॥ स्मृति और पुराणादिमें जिसकिसी स्थलमें कटाक्षपूर्वक वेदविरूद्ध विषय कहागया वह वैदिकोंको ग्रहण न करना चाहिये ॥ १८ ॥ कारण कि, वेदके अतिरिक्त अन्यशास्त्रकर्ताओंके वचन अज्ञानसंभूत हैं तो अज्ञानदोष वर्तमान होनेसे उनकी उक्तिका प्रणाम नहीं होसक्ता ॥ ॥ १९ ॥ इसकारण मुमुक्षुओंको धर्मज्ञानके निमित्त सर्वथा वेदमार्गका आश्रय लेना चाहिये जिसप्रकार लोकमें राजाकी आज्ञा कभी नष्ट नहीं होती ॥ २० ॥ इसीप्रकार सर्वेशानी राजराजेश्वरी मेरी श्रुतिरूप आज्ञाको मनुष्य कैसे त्यागसक्ते हैं? अपनी आज्ञा रक्षा करनेको मैं ने ब्राह्मण क्षत्रियजाति ॥ २१ ॥ उत्पन्न की है, इस कारण मेरा रहस्यरूप श्रुतिवाक्य अवश्य जानना चाहिये. हे भूधर! जब जब धर्मकी ग्लानि होती है ॥ २२ ॥ और अधर्मका अभ्युत्थान होता है तब मैं शाकंभरी-आदि अनेक वेष रामकृष्णादि अवतार धारण करती हूं वेदके सद्भावसेही वेदरक्षक देवता और वेदविनाशक दैत्य हैं यह विभाग कल्पित हुआ है॥ २३ ॥ जो वेदोक्तधर्मका अनुष्ठान नहीं करते उनकी शिक्षाके निमित्तही नरकोंकी कल्पना की है जिनकी वार्तामात्रके श्रवणसे उनको भय प्राप्त होगा ॥ २४ ॥ जो वेदधर्मको छोड़कर दूसरे धर्मोंका आश्रय करते हैं राजाको उन अधर्मियोंको अपने देशसे निकलवा देना चाहिये॥ २५॥ ब्राह्मणोंको उनके साथ संभाषण न करना चाहिये और उनको ब्रह्मभोजकी पंक्तिमें ग्रहण न करना चाहिये इस लोकमें जो औरभी अनेकप्रकारके शास्त्र हैं॥ ॥ २६ ॥ उनमें जो श्रुति स्मृति विरुद्ध हैं वे सब तामसी हैं यदि कहो कि; फिर शिवने तंत्र क्यों बनाये इसपर कहते हैं याम, कापालक, कौल, भैरवागम ॥ २७ ॥ जो पापी होकर वेदधर्माचरण करतेहैं अर्थात् जब पापियोंकी वेदधर्माचरणसे सद्गति होगी तो कर्मकी विचित्रताके अभावसे प्रपंच विचित्र न होगा इसप्रकार उनको अनेक फल दिखाकर उनकी प्रवृत्तिको मोहितकर वेदसे श्रद्धा च्यावित करनेको शिवजीने मोहनार्थ तंत्र निर्माण किये हैं कारण कि, पापी होनेसे वेदका अधिकार नहीं रहता इससे वे पापका फल.

पाकर शुद्ध हों पश्चात् वेदानुसार कर्म करै तथा दत्तके शाप,भृगुके शाप,दधीचिके शापसे जो॥ २८॥ ब्राह्मण वेदसे बहिष्कृत हुए हैं उन ब्राह्मणोंको सोपानक्रमसे जन्मान्तरमें वेदाधिकारप्राप्तिके निमित्त कुछ परमेश्वरकी उपासना वक्तव्य है यह विचारकर ॥ ॥ २९ ॥ शैव, वैष्णव, सौर, शाक्त, गाणपत्य यह पांचप्रकारके आगम शंकरने निर्माण किये ॥ ३० ॥ इनमें किसी २ अंशमें वेदानुकूल और कहीं २ वेदके विरुद्धभी कहा है इनमें वैदिकोंको वेदानुकूल अंशग्रहणमें दोष नहीं है. कारण कि, वायुसंहितामें लिखा है श्रौत अश्रौत भेदसे शिवागमन दोप्रकारका है श्रौतवेदका सार, और अश्रौत स्वतंत्र हैं, वैदिकोंको श्रौतअंश ग्रहणकरना कहा है ॥ ३१ ॥ सर्वथा वेदविरुद्ध अंशमें ब्राह्मण अधिकारी नहीं है जिनका वेदमें अधिकार नहीं है वही उस वेदविरुद्ध अंशके अधिकारी हैं ॥ ३२ ॥ इस कारण वैदिकद्विजाति सब प्रयत्नसे वेदका आश्रय करै. कारण कि, वेदोक्त धर्मानुष्ठानसे उत्पन्नहुआ ज्ञानही परब्रह्मका प्रकाशक है ॥ ३३ ॥ जो सब प्रकारकी वासना त्यागकर मेरी शरण हुए हैं जो सब प्राणियोंमें दया करते मान और अहंकारसे वर्जित हैं ॥ ३४॥ मुझमें चित्त लगाये मुझमें प्राण अर्पण किये मेरे स्थानवर्णनमें निरत संन्यासी, वनवासी, गृहस्थी, ब्रह्मचारी ॥ ३५ ॥ जो सदा भक्तिसे इस विराट्स्वरूप उपासनानामक योगका अनुष्ठान करते हैं सदा भक्तिसे उपासना करते हैं उन नित्ययोगानुष्ठान करने वालोंका मैं अज्ञानसे उत्पन्न हुआ अंधकार ॥ ३६ ॥ अपने ज्ञानरूपी सूर्यके प्रकाशसे नष्ट करदेती हूं इसमें सन्देह नहीं. हे पर्वतराज ! इस प्रकार यह मैंने पहली वैदिकपूजाका ॥ ३७ ॥ स्वरूप संक्षेपसे कहा अब करचरणादिविशिष्ट मूर्तिपूजा दूसरी कहती हूं मूर्तिमें स्वच्छ भूमिमें सूर्यमंडल, चन्द्रमंडल ॥ ३८॥ जल, बाणलिंग, यंत्र, वस्त्र, हृदयकमलमें परात्परा जगम्बिका देवीका ध्यान करै ॥ ३९ ॥ जो सगुण अर्थात् सत्वादिगुणसम्पन्न करुणारसपरिपूर्ण युवती अरुणवर्ण सुन्दरताके सारकी सीमा सर्वांगसुन्दरी ॥ ४० ॥ शृंगाररसमें परिपूर्ण भक्तोंके दुःख देखतेही कातर होनेवाली प्रसादसे सुमुखी, अम्बा अर्धचन्द्रसे शोभितशिरवाली ॥ ४१ ॥ चारों हाथोंमें पाश, अंकुश, वर और अभय धारण किये, आनंदरूपिणीकी वित्तके अनुसार षोडश उपचारसे पूजनकरै ॥ ४२ ॥ जबतक अभ्यन्तर पूजामें अधिकार न हो तब

तक इसीप्रकार पूजाकरता रहै जब अभ्यन्तरपूजाका अधिकार होजाय तो इच्छासे बाह्यपूजा छोडदे ॥ ४३ ॥ उपाधिरहित संवित् वा ब्रह्म ही मेरा स्वरूप है इस संवित स्वरूपमें चित्तके लीन करनेकोही आभ्यन्तरपूजा कहते हैं ॥ ४४ ॥ इसकारण मेरे संवितूरूपमें एकान्तभावसे चित्त स्थापन करै. कारण कि, संवित् वा ब्रह्मके अतिरिक्त अन्य समस्त जगत् मायामय मिथ्या है ॥ ४५ ॥ इसकारण संसार-नाशके निमित्त आत्मस्वरूपिणी सर्वसाक्षिणी मेरी निर्विकल्प भक्तियोगयुक्त चित्तसे भावना करै ॥ ४६ ॥ इसके आगे बाह्यपूजाका विस्तार कहती हूं. हे पर्वतसत्तम ! तुम सावधान मनसे सुनो ॥ ४७ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषायां एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशोऽध्यायः ४०.

श्रीदेवी बोलीं हे पर्वतराज ! साधक प्रभातही उठकर मस्तकके ब्रह्मरंध्रमें स्थित कर्पूरवर्णकी समान उज्वल सहस्रार कमलका स्मरण कर उसमें अपने अनुरूप गुरुके समान आकार स्मरण करै ॥ १ ॥ जो प्रसन्नतायुक्त उत्तम वेषसे भूषित भूषणोंसे सम्पन्न शक्ति पत्नीसहित है इसप्रकार पत्नीसहित गुरुका ध्यान करके देवी कुंड-लिनीका ध्यान करै ॥ २ ॥ जो मूलाधारसे ब्रह्मरंध्रमें गमन करनेके समय प्रकाशमान अर्थात् चैतन्यरूपमें भासमान है और ब्रह्मरंध्रसे मूलाधारमें गमनकरनेके निमित्त आनन्दामृतमयी है, जो इसप्रकार सुषुम्ना पंथमें गमनागमनशील है उस पराशक्ति आनन्दरूपिणी कुंडलिनीकी मैं शरण होता हूं ॥ ३ ॥ इस प्रकार ध्यान कर मूल-धारमें स्थित चैतन्यरूप अग्निकी कुंडलिनीरूप शिखाके भीतर मुझसच्चिदानंदरूपिणी का ध्यान करै फिर शौच संध्यावंदनादि सब कार्य करै ॥ ४ ॥ फिर वह द्विजोत्तम मेरी प्रीतिके निमित्त अग्निहोत्र करके होमान्तमें आसनपर आकर पूजाका संकल्प करै ॥ ५ ॥ इससे पहले भूतशुद्धि और मातृकान्यास करै मातृकान्यास हृल्लेखा अर्थात् मायाबीजद्वारा करै ॥ ६ ॥ मूलाधारमें हकार हृदयमें रकार भ्रूमध्यमें ईकार मस्तकमें ह्रींकारका न्यास करै ॥ ७ ॥ फिर प्रत्येक मंत्रमें किये न्यासोंको यथोक्त करै

अपने देहमें धर्मादि पीठकल्पना कर पूजा करै ॥८॥ फिर प्राणायामद्वारा विकसित हृदय कमलरूप मेरे स्थानमें पंच प्रेतासनपर स्थित महादेवीकी चिन्तना करै ॥ ९ ॥ ब्रह्मा विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव यह पंचप्रेत कहे जाते हैं यह मेरे पादमूलमें सदा स्थित रहते हैं यह पृथ्वी, अप, तेज,वायु, आकाश इन पांच महाभूतोंके और जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्तितुरीय,अतीत इन पांचो अवस्थाओंके अधिपति हैं और मैं पंचभूत तुरीय और अतीत अवस्थासे भी परे ब्रह्मरूपिणी हूं॥ १०॥ ११॥ इसीकारण यह मेरे आसनको प्राप्त हुए हैं यह शक्तितंत्रमें प्रसिद्ध है इसप्रकार मेरा ध्यान कर मानस उपचारसे मेरा पूजन और जप करे ॥ १२ ॥ जपका फल श्रीदेवीको समर्पण कर फिर अर्घ्य स्थापन करै फिर अर्घ्यपात्रादिको स्थापन करके पूजाके द्रव्योंकी शुद्धि करै॥ १३ ॥ साधक मूलमंत्र वा फट् इस मंत्रसे अभिमंत्रित किये जलसे सब पूजाद्रव्य शुद्ध करै दिग्बंधकर गुरुओंको प्रणामपूर्वक ॥ १४ ॥ उनकी आज्ञाको ले पूर्वोक्त यंत्रादि द्वारा बाह्य पीठमें पूर्वमें भावनाकी हुई हृदयमें स्थित मेरी मनोहर मूर्तिको ॥ १५॥ प्राण स्थापन मंत्रद्वारा आवाहन करै, फिर भक्तिपूर्वक आसन, आवाहन,पाद्य, अर्घ्य, आचमन ॥ १६ ॥ स्नान, दोवस्त्र, भूषण और गंध, पुष्प, यथायोग्य भक्तिसे देवीके निमित्त प्रदान करै ॥ १७ ॥ फिर भलीप्रकार यंत्रस्थ आवरण देवताकी पूजा करै यदि प्रतिदिन आवरण देवताकी पूजा न करसके तो शुक्रवारको करै ॥ १८ ॥ आवरण देवताको मूलदेवीका प्रभारूप जानना चाहिये और त्रिलोकीको उसकी प्रभा मंडलमें व्याप्त चिन्तन करै ॥ १९ ॥ इसप्रकार आवरण देवताओंको यथास्थानमें ध्यान और पूजादि करके फिर सावर्ण सायुध शक्तिसम्पन्न श्रीभुवनेश्वरीकी सुगंध गंधादि सुगंधित पुष्प ॥ २० ॥ नैवेद्य, तर्पण, ताम्बूल और दक्षिणादि उपचारसे पूजा करै और हे हिमालय! तुम्हारे किये सहस्रनामसे मुझको संतुष्ट करै ॥ २१ ॥

---

१ उस पीठपर अनन्तायनमः पद्मायनमः अं सूर्यमंडलायनमः सं सत्वायनमः रंरजसेनमः तंतमसेनमः । पूर्वादिदिशाओंमें आं आत्मनेनमः । अं अंतरात्मनेनमः । पं परमात्मने नमः । ह्रींज्ञानात्मनेनमः। फिर पद्मके पूर्वादिदलमें जयायैनमः। विजयायैनमः। अपराजितायै नमः । नित्यायैनमः। विलासिन्यैनमः । दोग्ध्र्यै नमः । अघोरायैनमः। मध्ये मंगलायैनमः यह पीठशक्तिकी पूजा शारदामें है।

तंत्रादिप्रोक्त कवच और "अहं रुद्रेभिः" यह सूक्त और भुवनेश्वरीउपनिषदमें "सर्वे वैदेवा देवीमुपतस्थुः" हृल्लेखा उपनिषदस्थ मंत्र ॥ २२ ॥ तथा महाविद्याके महामंत्रोंसे वारंवार देवीको संतुष्ट करै और प्रेमसे आर्द्र हृदय होकर देवीसे अपना अपराध क्षमा करावै ॥ २३ ॥ पुलकित अंग होकर प्रेमाश्रुसे परिपूर्ण नेत्र हो गद्गद वचनसे नृत्यगीतादिद्वारा मुझको वारंवार संतुष्ट करै ॥ २४ ॥ कारण कि समस्त वेद और पुराणकी प्रतिपाद्य वस्तु मैंहूं. इसकारण वेदाध्ययन और पुराणोंके पाठद्वारा मुझे सन्तुष्ट करै॥२५॥और समस्त ऐश्वर्य अपनी देह सहित मेरे अर्पण करै फिर नित्य हवनकर ब्राह्मण और सुन्दर वस्त्रधारी कुमारी ॥ २६ ॥ ब्राह्मणोंके बालक तथा दूसरे पामरजनोंको भी देवीकी बुद्धिसे भोजन करावे फिर अपने हृदयमें देवीको प्रणामकर संहार मुद्राद्वारा विसर्जन करै ॥ २७ ॥ हे सुव्रत ! सब मंत्रोंमें मायाबीज प्रधान है इसकारण मेरी सब पूजा इसी मंत्रसे करै ॥ २८ ॥ हृल्लेखारूपी दर्पणमें मैं सदा प्रतिविम्बित हूं इसकारण हृल्लेखामंत्रसे दिया हुआ मानै। सब मंत्रोंसे समर्पित होता है ॥ २९ ॥ इसप्रकार मेरी पूजा करनेपर भूषणादिसे गुरुकी पूजा करै और अपनेको कृतकृत्य जाने जो इस प्रकारसे श्रीभुवनेश्वरीकी पूजा करता है ॥ ३० ॥ उसको कहीं कभी कुछभी दुर्लभ नहीं है देहान्तमें वह मेरे मणिद्वीपको सर्वथा प्राप्त होता है ॥ ३१ ॥ वह देवीका स्वरूप ही जानना चाहिये देवता उसके नित्य नमस्कार करते हैं हे राजन् ! इसप्रकार आपसे यह देवीका पूजन कहा ॥ ३२ ॥ इसको भलीप्रकार विचारकर अपने अधिकारके अनुसार मेरा पूजन करो इससे तुम कृतार्थ हो जाओगे ॥ ३३॥ यह गीताशास्त्र कभी अशिष्यके निमित्त न देना अभक्त, धूर्त और दुर्मनवालेको न देना चाहिये ॥ ३४ ॥ इस शास्त्रका प्रकाश मानो माताके स्तनोंका उद्घाटन करना है, इस कारण यत्नसे इसको गुप्त रखना चाहिये ॥३५॥ भक्त शिष्य और ज्येष्ठ पुत्रके निमित्त देनाचाहिये, तथा

---

१ यह स्तोत्र कूर्मपुराणके बारहवें अध्यायमें है.

सुशील सुवेष देवीभक्तसे कहना उचित है ॥ ३६ ॥ श्राद्धकालमें यह ब्राह्मणोंके समीप पढे तो उसके सब पितर तृप्त होकर परमपदको प्राप्त होतेहैं ॥ ३७ ॥ व्यासजी बोले ऐसा कहकर भगवती वहांही अन्तर्धान होगई और देवीके दर्शनसे सब देवता भी प्रसन्नहुए ॥ ३८ ॥ व्यासजी बोले तब वही हैमवती देवी हिमालयके घर प्रगट होकर गौरीनामसे प्रसिद्धहुई और शंकरने उनका पाणिग्रहण किया ॥ ३९ ॥ तब उनसे कार्तिकेयने जन्म लाभकरके तारक असुरको मारा "गौरी की उत्पत्ति ज्येष्ठशुक्ल चौथको अरुणोदयमें हुई यह रत्नावलीमें लिखाहै" यह गौरीकी उत्पत्ति कही अब लक्ष्मीकी उत्पत्ति सुनो पूर्वमें समुद्र मथनेके समय अनेक रत्न प्रगट हुए थे ॥ ४० ॥ उस समय लक्ष्मीकी प्राप्तिके निमित्त देवताओंने परम आदरसे उनकी स्तुति की तब उनके ऊपर अनुग्रह करनेके निमित्त समुद्रसे लक्ष्मी निकलीं ॥ ४१ ॥ देवताओंने उनको भगवान् विष्णुको दिया जिससे वह बड़ी प्रसन्न हुईं हे राजन् ! यह आपसे उत्तम देवीका माहात्म्य वर्णन किया ॥ ४२ ॥ यह गौरी और लक्ष्मीका प्रादुर्भाव सब कामनाका देनेवाला है यह रहस्य जिस किसीके प्रति नहीं कहना चाहिये ॥ ४३ ॥ रहस्यमयी इस गीताको बड़े यत्नसे गुप्त रखना चाहिये हे पापरहित ! तुमने जो विषय पूछा था वह सब संक्षेपसे वर्णन किया ॥ ४४ ॥ यह पवित्र पावन और दिव्य चरित्र है आपको अब और क्या सुननेकी इच्छा है? ॥ ४५ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषायां चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

दोहा ।

शिवाशंभुके पदकमल, प्रेमसहित मनलाय ।
श्रीसप्तमस्कंधकी, भाषा लिखी बनाय ॥ १ ॥

कर जो प्रतिज्ञापूर्ण नहीं करता ॥ ३७ ॥ देवगृहमें स्थित होकर भी जो कृत्यको उल्लंघन करता है वह ज्वालामुख नरकमें जाता है ब्राह्मण और गौको स्पर्शकर जो प्रतिज्ञा टालता है वह ज्वालामुख नरकमें जाता है ॥ ३८॥ प्रतिज्ञाका न पालनेवाला ज्वालामुख नरकमें जाता है मित्रद्रोही कृतघ्नी विश्वासघाती ॥ ३९ ॥ और मिथ्या साक्षी देनेवाला ज्वालामुखनरकमें जाता है वो वहां चौदह इन्द्रके समयतक निवास करता है ॥ ४० ॥ अंगारोंसे प्रदग्धकर यमदूत उनको ताडन करते हैं तुलसीकी शपथ कर पालन नं करनेसे चाण्डाल होकर सातजन्ममें पवित्र होता है ॥ ४१ ॥ गंगाजलको स्पर्शकर मिथ्या करनेवाला म्लेच्छ होकर पांच जन्ममें शुचि होता है शालिग्राम स्पर्शकर मिथ्या करनेसे विष्ठाका कृमि होकर सात जन्ममें पवित्र होता है ॥ ४२ ॥ अर्चाका स्पर्श करनेवाला ब्राह्मण गृहस्थीके यहां कृमि होता है सात जन्ममें शुद्ध होता है दक्षिण हाथ देनेसे परकार्य न करनेवाला सातजन्मतक सर्प होता है ॥ ४३ ॥ फिर ब्रह्महीन होकर पश्चात् शुद्ध होता है जो देवगृहमें मिथ्या बोलता है वह सातजन्मतक पुजारी होता है ॥ ४४ ॥ विप्रादिका स्पर्श करनेवाला व्याघ्रजाति होता है फिर मूक और तीन जन्मतक बहरा होता है ॥ ४५॥ भार्या बंधु और वंशहीन होकर पश्चात् पवित्र होता है मित्रद्रोही न्यौला और कृतघ्न होनेसे विघ्नकारी गंडक होता है ॥ ४६ ॥ विश्वास-घाती भारतमें सातजन्मपर्यन्त व्याघ्र होता है और मिथ्यासाक्षी देनेवाला सातजन्मतक मैंडक होता है॥ ४७॥ वह अपने सात पहलेके और सात पीछेके पुरुषोंको मारता है जो नित्य क्रियासे हीन है वह ब्राह्मण जडत्वको प्राप्त होता है॥ ४८॥ जिसको वेदवाक्यमें श्रद्धा नहीं और मंद मंद हँसता है जो व्रत और उपवाससे हीन तथा सद्वाक्यका निन्दक है॥ ४९॥ वह सौ वर्ष धुआंपीता हुआ धूम्रांध नरकमें निवास करता है और सौ जन्मके क्रमसे वह जलजन्तु होता है॥ ५०॥ फिर अनेक प्रकारका मत्स्य होकर पश्चात् शुद्ध होता है जो देवता और ब्राह्मणके धनमें उपहास करता है ॥ ५१ ॥ वह दश पहले और दश आगेके पुरुषोंको नरकमें डालकर धूम समूहसे युक्त धूम्रांध नरकमें जाता है॥ ५२॥ धूमसे क्लेशित धूम्रभोजी वहां चौगुने समयतक निवास करता है फिर भारतमें सात जन्मतक मूषक होताहै ॥ ५३॥ फिर अनेक प्रकारकी पक्षिजाति और कृमि योनियोंमें जाकर फिर अनेक जातिके वृक्ष और पशुयोनियोंमें जाकर पश्चात् मनुष्य होता है ॥ ५४॥ जो ब्राह्मण ज्योतिषसे डराकर धन लेते धन ठहराकर

चिकित्सा करते हैं तथा लाख लोहादिका व्यापार और रसादि बेचते हैं ॥ ५५ ॥ वह नागोंसे वेष्टित होकर नागवेष्ट नरकमें जाते हैं और अपने लोमप्रमाण वर्षतक वहां निवास करते हैं ॥ ५६ ॥ फिर अनेक प्रकारकी पक्षिजातिमें जन्म लेकर पश्चात् मनुष्य होते फिर वह गणक और सात जन्म वैद्य होता है ॥ ५७ ॥ गोप कर्मका रंगकार होकर फिर शुचि होता है हे पतिव्रते! यह प्रसिद्ध कुंड तुमसे कथन किये ॥ ५८ ॥ और भी बहुतसे अपवित्र और क्षुद्र कुंड उस स्थानपर हैं उसमें पातकी अपने कर्मोंका फल भोगते हैं ॥ ५९ ॥ और अनेक योनियोंमें भ्रमते हैं अब तुम्हारे क्या सुननेकी इच्छा है ॥ ६० ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषायां पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः ३६.

सावित्री बोली हे महाभाग धर्मराज! वेद वेदांगके पारगामी अनेक पुराण इतिहासका जो सार है सो दिखाइये ॥ १ ॥ जो सबका सारभूत सबका इष्ट सर्व सम्मत हो जो कर्मच्छेदका बीजरूप हो प्रशस्त और मनुष्योंको सुखदायक हो ॥ २ ॥ सब कुछ देनेवाला सबके मंगलका कारण जिससे मनुष्य भय और दुःखको प्राप्त हो ॥ ३ ॥ यह कुंड न देखै न कभी इनमें पडै जिससे जन्मादि न हो उसकर्मको दिखाइये और कहिये ॥ ४ ॥ यह कुंड किस आकारके बनेहुए हैं और किसप्रकारसे कौनरूपसे पापी वहां निवास करते हैं ॥ ५ ॥ अपना देह भस्म होनेसे यह प्राणी लोकान्तर गमन करता है फिर यह किस देहसे शुभाशुभका भोग करता है ॥ ६ ॥ और बहुत कालतक क्लेश भोगनेसे भी यह देह क्यों नहीं नष्ट होता है हे ब्रह्मन्! वह देह किस प्रकारका है सो आप मुझसे कहिये ॥ ७ ॥ नारायण बोले सावित्रीके वचन सुन धर्मराज हरिका स्मरण करतेहुए इस कर्म बंधननाशिनी कथाको कहने लगे ॥ ८ ॥ धर्मराज बोले हे वत्से! चारवेद सब धर्मसंहिताओंमें पुराण इतिहास पंचरात्र ॥ ९ ॥ हे सुव्रते! तथा दूसरे धर्मशास्त्र वेदांगोंमें सबका इष्ट और सारभूत पंचदेवताओंकी उपासना है ॥ १० ॥ यह जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, शोक और संतापनाशिनी है सब मंगलकी रूप परमानंदकी कारण है ॥ ११ ॥ सब सिद्धियोंकी कारण नरकार्णवसे

तारक भक्तिरूपी वृक्षका अंकुर करनेवाली कर्मवृक्षका छेदन करनेवाली है ॥ १२ ॥ यह विमोक्षकी सोपान अविनाश पद है, सालोक्य सार्ष्टि, सारूप्य सामीप्यादि देनेवाला शुभ है ॥ १३ ॥ हे शुभे! कुंडोंको जो तुमने पूँछा इन कुंडोंकी यमदूत सदा रक्षा करते हैं पंचदेवकी उपासना करनेवाले स्वप्नमें भी इन कुंडोंका दर्शन नहीं करते हैं ॥ १४ ॥ जो देवीकी भक्ति नहीं करते वही हमारे स्थानमें आते हैं जो हरितीर्थमें जाते एकादशी आदि व्रत करते हैं ॥ १५ ॥ जो नित्य भगवान्‌को प्रमाण कर उनकी अर्चा करते हैं वे हमारी घोर संयमनी पुरीको नहीं आते ॥ १६ ॥ जो ब्राह्मण तीनों संध्याओंसे पवित्र शुद्धाचार हैं वह भी विना देवीकी उपासनाके मुक्तिको प्राप्त नहीं होते ॥ १७ ॥ जो अपने धर्ममें निरत आचारवाले स्वधर्ममें निरत हैं मर्त्यलोकमें जाते उनको मेरे दूतोंका दर्शन नहीं होता ॥ १८ ॥ शिवके उपासकोंसे मेरे दूत इसप्रकार भय खाते हैं जैसे गरुडसे सर्प और ऐसे स्थानमें पाशधारी दूतको जाता देखकर मैं निवारण करदेता हूं ॥ १९ ॥ हरि-दासके आश्रयके सिवाय वे सर्वत्र गमन करते हैं गरुडसे सर्पकी समान कृष्णभक्तसे मेरे दूत डरते हैं ॥ २० ॥ देवीमंत्रके उपासकोंको भगवतीका नामही कर्म बंधनसे मुक्त करता है इनके कोई कर्म हो तो चित्रगुप्त नखलेखिनीसे भीतहुए लिखते हैं और जो अज्ञानसे चित्रगुप्तने लिखा है वह मंत्रजापसे नष्ट होता है ॥ २१ ॥ और उनको वारंवार मधुपर्क दिया जाता है वह इस लोकको उल्लंघनकर ब्रह्मलोकमें जाते हैं ॥ २२ ॥ इनके स्पर्श मात्रसे पाप नष्ट होजाते हैं वे महाभाग्यवान् सहस्र कुलके पवित्र करनेवाले होते हैं ॥ २३ ॥ जैसे प्रज्वलित अग्निमें शुष्क तृण भस्म होते हैं इसप्रकार उन भक्तोंको देखकर भयसे मोह भी मोहको प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ उनके काम कामियोंपर जाते कामना हीन होनेसे लोभ क्रोध भी नष्ट होते हैं. फिर रोग, जरा, शोक, भय और मृत्यु उनकी लीन होजाती है ॥ २५ ॥ काल, सभा, शुभकर्म, हर्ष, भोग यह निवृत्त होता है. हे देवि! जो जो इस पीडाको प्राप्त नहीं होते उनका वर्णन तुमसे किया ॥ २६ ॥ अब देहका विवरण सुनो यथायोग्य कहता हूं पृथ्वी, वायु, आकाश, तेज, जल ॥ २७ ॥ यह देहधारी और स्रष्टाकी सृष्टिके बीज हैं जो देह पृथ्वी आदि पंचभूतका बना है ॥ २८ ॥ वह कृत्रिम और नश्वर है यह यहांही भस्म होता है परन्तु पुरुषाकृति जीव अंगुष्ठप्रमाण शरीरवाला कर्मसे बद्ध है ॥ २९ ॥ यह भोगके निमित्त उस देहको धारण करता है वह देह यमालयकी प्रज्वलित अग्निमें

भी भस्म नहीं होता ॥ ३० ॥ जल वा प्रहारसे भी यह नष्ट नहीं होता. शस्त्र, अस्त्र, तीक्ष्ण कंटक ॥ ३१ ॥ उपद्रव, तप्त लोह, तप्त पाषाण, तप्त प्रतिमासे आलिंगन कराने तथा पातन करनेसे ॥ ३२ ॥ दग्ध और भग्न नहीं होता अनेक संताप सहता है यह देहका वृत्तान्त और कारण तुमसे कथन किया ॥ ३३ ॥ अब कुंडोंका विवरण कहता हूं सुनो ।

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः ३७.

धर्मराज बोले सम्पूर्ण कुंड पूर्ण चन्द्रमाके मंडलकी समान गोल हैं और विलक्षण पाषाण रूप अंगारोंसे निरन्तर जलते रहते हैं ॥ १ ॥ यह ईश्वरकी इच्छासे निर्मित हुए प्रलयपर्यन्त अविनाशी रहते हैं वह स्थान पापोंके कारण अनेक क्लेश देनेवाला है ॥ २ ॥ और इनमेंसे जलते अंगारोंसे सौहाथ ऊंची ज्वाला निकलती हैं यह अग्निकुंड सब ओरसे एक कोशके घेरेमें है ॥ ३ ॥ और महाशब्द करने वाले पापियोंसे पूर्ण रहता है मेरे दूत निरन्तर रक्षा कर पापियोंको दण्ड देते हैं ॥ ४ ॥ तत्ते जलसे पूर्ण कुंड हिंसक जन्तुओंसे पूर्ण है और दृढप्रहारसे वहां महाघोर काकु शब्द होता है ॥ ५ ॥ यह आध कोशमें है मेरे पार्षद दूत यहां पापियोंको दंड देते हैं एक कुंड तत्तेक्षार जलसे पूर्ण और काकोंसे व्याप्त है ॥ ६ ॥ पापियोंसे युक्त एक कोशपर्यन्त बडा भयानक है और मेरे दूतोंसे ताडित हो पापी त्राहि त्राहि (रक्षा करो) यह शब्द करते हैं ॥ ७ ॥ अनाहारसे इनका ओष्ठतालु सूख जाता है. इसप्रकार एक कुंड कोशपर्यन्त विट्से पूर्ण है ॥ ८ ॥ अति दुर्गन्धियुक्त है इसमें पापी भरे रहते हैं उस दारुण आहार करानेको पापी उनको ताडन करते रहते हैं ॥९॥ वहांके कीट उनको भक्षण करते हैं उस समय वे रक्षा करो रक्षाकरो इस प्रकारका शब्द करते हैं यह तत्ते मूत्र जलसे पूर्ण और मूत्रके कीटोंसे व्याप्त है ॥ १० ॥ कीटोंसे खाये जाते महा पापियोंसे यह कुण्ड व्याप्त रहता है दो कोशके बीचमें ध्वान्त नामक कुंड है जिसमें पापियोंका बडा शब्द होता है ॥ ११ ॥ घोर रूप मेरे दूतोंसे ताडित कंठ ओष्ठ तालु सूखनेसे दुःख पाते हैं श्लेष्मासे पूर्ण श्लेष्मकुंड है और उसी प्रकारके कीटोंसे व्याप्त है ॥ १२ ॥ और उसीके भोजी पापियोंसे यह वेष्टित रहता है आधे

कोशमें गरलकुंड है इसमें गरभोजी डाले जाते हैं ॥ १३ ॥ इसके पापी गरलके कीडोंसे भक्षित होते हैं और मेरे दूतोंसे ताडित होकर बडा शब्द कर कंपित होते हैं ॥ १४ ॥ जो कि सर्पाकार वज्रसी डाढोंवाले दारुण शुष्ककंठ हैं नेत्रोंके मलसे पूर्ण दूषिकाकुंड है यह आधकोशमें है ॥ १५ ॥ यह पापियोंसे व्याप्त है इसमें भ्रमण करते कीट इनको भक्षण करते हैं वसाकुंड चारकोशपर्यन्त व सारससे पूर्ण है ॥ १६ ॥ इसके भोजन करनेवाले पापियोंको मेरे दूत ताडना करते हैं शुक्रकुंड एक कोश परिमाणमें शुक्र कीडोंसे युक्त है ॥ १७ ॥ यहांके पापी निरन्तर इन कीडोंसे खाये जाते हैं, रक्तकुंड बडा दुर्गंधियुक्त वापीकी समान गहरा है ॥ १८ ॥ और उसके भोजी पापियोंसे संकुल कीटोंसे भक्षित होता है नेत्रोंके आंसुओंसे भरा अश्रु कुंड अनेक पापियोंसे व्याप्त है ॥ १९ ॥ यह पूर्वोक्त वापीकी प्रमाणमें चौथाई यहां कीटोंसे भक्षित होता रोता है गात्रमल कुंड मनुष्योंके गात्रके मलसे भरा है इसके खानेवाले पापी उसमें पडे रहते हैं ॥ २० ॥ यह यमदूतोंसे ताडित होकर कीटोंके भक्षणसे बडे दुःखी होते हैं कर्णविट्कुंड कानके मैलसे युक्त है यहां पापी यही खाते हैं और वहांके कीडे उनको काटते हैं ॥ २१ ॥ यह पूर्वोक्त बावडीसे विस्तारमें चौथाई है इसमें कीटोंसे भक्षित हो प्राणी रोता है; मज्जाकुंड मनुष्योंकी मज्जासे युक्त महा दुर्गन्ध वाला है ॥ २२ ॥ यह महा पातकियोंसे युक्त वापीसे चौथाई परिमाणयुक्त है मांसकुंड मांससे पूर्ण है यहां यमदूत पापियोंको ताडन करते हैं ॥ २३ ॥ यह वापी मानतक अनेक पापियोंसे व्याप्त होनेसे महा भयानक है इसमें कन्याके बेचनेवाले पडते और वहांके कीट उनको भक्षण करते हैं ॥ २४ ॥ वे बडे भयानक शब्दसे त्रासित हो हाहाकार करते हैं नखकुंड लोम कुंड अस्थिकुंड यह बावडीसे चतुर्थांश विस्तारवाले हैं ॥ २५ ॥ यह पापियोंसे भरे निरन्तर मेरे दूतोंसे ताडित होते हैं तांबेके ऊपर प्रतप्त ताम्रकुंड है उल्मुकसे युक्त है ॥ २६ ॥ इसमें तांबेकी तपाई लाखों प्रतिमा हैं प्रत्येक पापी इनसे चिपटाये जाते हैं तब यह बडा शब्द करते हैं ॥ २७ ॥ यह दोकोशके विस्तारमें है यमदूत यहां पापियोंको मारते हैं तप्त लोहधार और जलते अंगारोंसे युक्त लोहकुंड है ॥ २८ ॥ उसमें लोहोंकी गरम प्रतिमाओंसे पापी चिपटाये जाते हैं और गरम प्रतिमाओंमें चिपटनेसे बडा रुदन करते हैं ॥ २९ ॥ और दूतोंसे ताडित होकर रक्षा करो२ ऐसा शब्द करते हैं यह दोकोशमें महा पापि-

यौंसे युक्त है ॥ ३० ॥ भयानक अंधकारसे युक्त लोहकुंड कहा है चर्मकुंड तप्त-सुराकुंड वापीसे आधा है ॥ ३१ ॥ यमदूतोंसे ताडित उनके भोजी पापियोंसे युक्त है यह शाल्मलीकुंड तीक्ष्ण कांटोंसे व्याप्त है ॥ ३२ ॥ यह लक्षपुरुष प्रमाण एक कोशमें महा दुःखदायक है और धनुषप्रमाण लम्बे कांटे इसमें भरे पड़े हैं ॥ ३३ ॥ इसके प्रत्येक कंटकमें महापापी विंधे पडे हैं यमदूत वृक्षके अग्रभागसे उस कुंडमें धके लते हैं ॥ ३४ ॥ तालु शुष्क होनेसे जल दो २ ऐसा शब्द करते हैं डरसे व्याकुल और दंडसे शिर चूर्ण किया जाता है ॥ ३५ ॥ और डरसे तेलपायी जीवोंकी समान इधर उधर चलायमान होता है विषोद कुंड एक कोशतक तक्षकोंसे पूर्ण है ॥ ॥ ३६ ॥ उसके भक्षणवाले जीवों और पापियोंसे वह व्याप्त है मेरे दूत उनको ताडन करते हैं तत्ते तेलका कुंड कीटादिसे रहित है॥ ३७॥ यह दग्ध अंगारोंसे चेष्टित महापापियोंसे व्याप्त है और दूतोंके मारनेसे दौडते महाशब्द करते हैं ॥ ३८ ॥ ध्वान्तयुक्त कुंतकुंड क्रोशमान क्लेशदायक बडा भयानक है शूलाकार अग्रमें तीक्ष्ण लोहशस्त्र बरछी समूहोंसे व्याप्त है ॥ ३९ ॥ यहां चारकोशतक बर्छियोंकीही शय्या है वहां बरछियोंसे विंधे पापी भरेपड़े हैं ॥ ४० ॥ मेरे दूतोंके ताडन करनेसे उनके कंठ ओष्ठ तालु सूखगये हैं कीटकुंडमें सर्पाकार शंकुकी समान कीट हैं ॥ ४१ ॥ यह तीक्ष्ण दांतवाले विकृत अंग अंधकारमें व्याप्त हैं इनमें महापातकी भरे मेरे दूतोंसे ताडित होते हैं ॥ ४२ ॥ चारकोशमें पूयकुंड है इसके जीव यहांके प्राणियोंको काटते यही पापी खाते और मेरे दूत इनको ताडन करते हैं ॥ ४३ ॥ सर्प कुंड तालवृक्षके समान लम्बे अनन्त सर्पोंसे भरा है यहां सर्प पापीके सब शरीरमें लिपटकर उसको भक्षण करते हैं ॥ ४४ ॥ और मेरे दूतोंसे ताडित हो बडाशब्द करते हैं. मशककुंड दंशकुंड गरलकुंड यह तीन कुंड मशकादिसे पूर्ण हैं ॥ ४५ ॥ यह सब आधेकोशके परिमाणमें महापातकियोंसे युक्त हैं इनमें हाथ पैर बांधकर डालते हैं शरीर लोहू लुहान होजाता है ॥ ४६ ॥ मेरे दूतोंसे ताडित हो हाहाकार शब्द करते हैं वज्रदंष्ट्रकुंड और वृश्चिक कुंड यह इन दोनोंसे पूर्ण हैं ॥ ४७ ॥ यह प्रमाणमें पापीसे आधे, वापियोंसे युक्त है, जहां वज्रकी समान विच्छू काटते हैं शर कुंड, शूलकुंड, खड्ग कुंड, यह उन्हींसे पूर्ण हैं ॥ ४८ ॥ इनमें इन्हींसे बद्ध हुए पापी रहते हैं यह प्रमाणमें आधी बावडीके हैं और रक्त (रुधिर) से पूर्ण हैं गोलकुंड अंधकारमय तत्तेजलसे पूर्ण है ॥ ४९ ॥ अनेक प्रकारके कीटोंसे परिपूर्ण जो

पापियोंको भक्षण करते हैं यह भी पापीके अर्ध प्रमाणमें है यहां कीटभक्षित पापी दुःख पाते हैं ॥ ५० ॥ सब प्रकार रोते और दुःखी होते और यमदूत उनको ताडन करते हैं यह अति दुर्गन्धिसे संयुक्त पापियोंको सदा दुःखदायक है ॥ ५१ ॥ दारुण विकटाकार पापियोंसे भक्षित नक्रकुंड है यह बावडीसे अर्धपरिमाणमें है, इसके जलमें कोटियों नाके हैं ॥ ५२ ॥ विष्ठा, मूत्र, श्लेष्म, भक्षण करनेवाले अनन्त काकभी जहां पापियोंको भक्षण करते हैं ॥ ५३ ॥ मंथानकुंड और बीजकुंड, मंथान और बीज नामक कीटोंसे व्याप्त है सौ धनुषके प्रमाणमें है यहां इनसे भक्षित हो पापी बडा शब्द करते हैं ॥ ५४ ॥ सौ धनुषमें जीवोंसे जिनकी दंष्ट्रा वज्रके आकार युक्त हैं यह पापियोंको भक्षण करते जिनका बडा शब्द होताहै और वहां बडा अंधकार है ॥ ॥ ५५ ॥ पाषाणकुंड वापी मानसे बना तत्ते पत्थरका है जलते अंगारकी समान भूमिपर दौडते हुए पापियोंसे युक्त है ॥ ५६ ॥ क्षुरधारकी समान तीक्ष्ण पाषाणोंसे निर्मित तीक्ष्ण पाषाणकुंड है लोहितयुक्त प्राणियोंसे युक्त लाला कुंड है ॥ ५७ ॥ यह एक कोशपर्यन्त गहरा है मेरे दूत यहां पापियोंको दंड देते हैं मसीकुंड तप्तांजन पर्वतके समानवाले पाषाणोंसे व्याप्त है सौ धनुषपरिमाणमें है ॥ ५८ ॥ इसमें अनेक पापी पडते और मेरे दूत उनको दंड देते हैं यह चूर्ण द्रव्यसे पूर्ण चिल्लाते हुए पापियोंसे युक्त हैं ॥ ५९ ॥ यहीं भोजन करनेको मिलता बडे प्रदग्ध होते मेरे दूत उनको मारते हैं कुलालचक्रकुंड निरन्तर भ्रमण करता रहता है ॥ ६० ॥ यह बडा तीक्ष्ण सोलह अरोंसे सम्पन्न चूर्णीभूत हुए पापियोंसे युक्त है बडाही टेढा निम्न चार कोशके मध्यमें है ॥ ६१ ॥ कंदराके आकारमें निर्मित तत्ते जलोंसे व्याप्त जलजंतुओंसे युक्त महा-पापियोंसे भराहुआ है ॥ ६२ ॥ जहांके पापी प्रज्वलित होकर भयानक शब्द करते हैं महा अंधकार है, कूर्मकुंड अनेक विकृत आकारवाले दारुण कच्छपोंसे भरा है ॥ ६३ ॥ जो अपने जलमें पडे पापियोंको निरन्तर भक्षण करते हैं ज्वालाकुंड अग्निके समान तेजवाले पदार्थोंसे निर्मित एक कोशपर्यन्त है ॥ ६४ ॥ शब्द करने वाले क्लेश पाये हुए पापियोंसे निरन्तर व्याप्त है,भस्म कुंड एक कोशपर्यन्त गहरा तत्ती भस्मसे युक्त है ॥ ६५ ॥ निरन्तर भस्म होनेवाले और भस्म खानेवाले पापियोंसे युक्त है तत्ते पाषण और लोह समूहोंसे परिपूर्ण है ॥ ६६ ॥ दग्धकुंडमें दग्धगात्र हुए जीव रहते हैं और उनके कंठ तालु सूखजाते हैं यह कुंड एक कोशपर्यन्त अंधकारमय बडा गंभीर और दारुण है ॥ ६७ ॥ यहां मेरे दूत पापियोंको

मारते और दग्धकरते हैं, इससे यह दग्धकुंड कहाता है क्षारकुंड बडी २ लहरोंवाला तत्ते क्षारसे संयुक्त है ॥ ६८ ॥ अनेक प्रकारके शब्द करने वाले जलजंतुओंसे सम्पन्न दो गव्यूती (चार कोश) के प्रमाणमें गंभीर अंधकारसे युक्त है ॥ ६९ ॥ वहांके जीव पापियोंको दुःख देते और काटते हैं यह जलते और शब्द करते परस्पर एक दूसरेको देखते हैं ॥ ७० ॥ प्रतप्त सूचीकुंड बडाभयानक है असिपत्रकुंड असिपत्रके समान धारवाले पत्तोंसे सम्पन्न ताल वृक्षके नीचे है ॥ ७१ ॥ यह इन्हीं पत्तोंसे युक्त आधे कोशके मध्यमें हैं और वृक्षाग्रसे गिराये जाते पापियोंके रुधिरसे व्याप्त है ॥ ७२ ॥ रक्षा करो इसप्रकार असत् पुरुष शब्द करते हैं वो कुंड गंभीर ध्वांतयुक्त रक्तकीटसे सम्पन्न है ॥ ७३ ॥ यह असिपत्र कुंड बडा भयानक है क्षुरधाराकुंड सौ धनुषके प्रमाणमें तीक्ष्ण अस्त्रोंसे व्याप्त है ॥ ७४ ॥ यह पापियोंके रक्तसे पूर्ण भयानक क्षुरधाराओंसे सम्पन्न है.सूचीमुख कुंड अस्त्रोंसे परिपूर्ण पापियोंके रक्तोंसे पूर्ण है ॥ ७५ ॥ यह परिमाणमें पचास धनुष, पापियोंको बडा क्लेशकारक है गोकानामक जन्तुविशेषके मुखकी समान गोका मुख नरक है ॥ ७६ ॥ यह कूपकी समान बड़ा गंभीर वीस धनुषके प्रमाणमें है यह महा पातकियोंको बड़ा क्लेशदेनेवाला है ॥ ७७ ॥ वहां गोकामुख नाम वाले कीट पापियोंको भक्षण करते हैं वहां जीव निरन्तर नम्र मुख रहते हैं नक्रमुखाकार कुंड सोलह धनुषके प्रमाणमें है ॥ ७८ ॥ यह कूपकी समान गंभीर पापियोंसे सम्पन्न है गजदंशनकुंड सौ धनुषके प्रमाणमें है इसमें भी पापी दुःख पाते हैं ॥ ७९ ॥ गोमुखाकृति कुंड तीस धनुषके प्रमाणमें है यह गोमुख निरन्तर पापियोंको क्लेश देता है ॥ ८० ॥ कुंभीपाककुंड कालचक्रके समान भ्रमण करता कुंभके आकार अंधकार युक्त चार कोशमें है ॥ ८१ ॥ यह लाख पुरुषप्रमाण गंभीर और बडे विस्तारमें है इसमें पापी दुःख पाते हैं इसके अन्तर्गत कहीं तेल और कहीं ताम्रकुंड हैं ॥ ८२ ॥ यह कृमियोंसे भरा है प्रधान पापी इसमें मूर्छित पडे रहते हैं सब ओरसे शब्द करते परस्पर नाशको प्राप्त होते हैं ॥ ८३ ॥ यहां यमदूत मूशल और मुद्गरोंसे ताडन करते हैं घूर्णमान और पतित होते क्षण क्षण मूर्च्छित होते हैं ॥ ८४ ॥ और यमदूतोंसे पातित होते हुए रुदन करते हैं. हे सुन्दरि!सब कुंडोंमें जितने पापी हैं॥ ८५ ॥ कुंभीपाकमें इनसे चौगुने पापी रहते हैं वे इस दुःखदायक नरकमें चिरकालतक अपने कर्मोंका भोग भोगते हैं ॥ ८६ ॥ यह कुंभीपाक सब कुंडोंमें प्रधान कहा है

कालसूत्र नरकमें कालनिर्मित सूत्रसे पापी बँधे रहते हैं ॥ ८७ ॥ क्षणमात्रमें दूत ऊपरको उछालते और क्षणमें डुबा देते हैं. बहुत कालतक निश्वासबद्ध होकर मोहको प्राप्त होजाते हैं ॥ ८८ ॥ हे सुन्दरि ! वह देहभोगके कारण दुःख पाते हैं यह कालसूत्र नरक तत्ते जलसे पूर्ण है ॥ ८९ ॥ अवट गर्तसमान कूपके भेदवाला मत्स्योदकुंड है यह भी तप्तजलसे भरा चौवीस धनुष्के प्रमाणमें है ॥ ९० ॥ दग्ध अंगवाले महापातकियोंसे व्याप्त है और मेरे दूतोंद्वारा वे ताडित होते हैं और दुःख पाते हैं ॥ ९१ ॥ जिसके जलस्पर्श करतेही गिरते हुए पापियोंकी सब व्याधी एकसाथ प्राप्त हो जाती है यह सौ धनुष्प्रमाण कुंड है ॥ ९२ ॥ और कृमि कंतुक-कुंडमें इसी नामके जीव पापियोंको दुःख देते हैं. वह मर्मस्थान छेदन होनेसे हाहाकार शब्द करते हैं॥९३॥पांसुभोज्यकुंड तत्ती धूरिसे भरा, जलती हुई भूमीसे व्याप्त, सौ धनुष्के प्रमाणमें है. यहांके जीवोंको तुष भक्षण कराई जाती है ॥ ९४॥ पाशसे वेष्टण कुंडमें गिरतेही प्राणी पाश वेष्टित हो जाता है यह पाशवेष्टणकुंड एक कोश पर्यन्त है ॥ ९५ ॥ शूलकुंडमें गिरतेही पापी शूलसे वेष्टित होता है. यह शूलप्रोत कुंड वीस धनुष्के प्रमाणमें है ॥ ९६ ॥ प्रकंपनकुंडमें गिरतेही प्राणी कंपित होता है. यह बडे शीतल जलका कुंड आधे कोशमें है ॥ ९७ ॥ जिसमें यमदूत पापियोंके मुखमें उल्का देते हैं. यह वीस धनुष्के प्रमाणमें उल्कामुख नरक है॥९८॥अंधकूप-कुंड लाख पुरुषके प्रमाण गहरा, सौ धनुषमें विस्तारवाला अनेक प्रकारके कृमियोंसे व्याप्त बडा भयानक है ॥ ९९ ॥ अधिक अंधकारसे व्याप्त गोल कूपाकार है और वहां वैसेही जीव पापियोंको भक्षण करते हैं व जीवगण परस्पर नष्ट होते हैं॥१००॥ तत्ते जलमें दग्धहोने और कीटोंके सन्मुख भक्षित होनेसे तथा नेत्रोंसे निरन्तर अंधकार रहनेसे इसको अंधकूप कहते हैं ॥ १०१ ॥ जहाँ अनेक प्रकारके शस्त्रोंसे पापी विद्ध होते हैं वहाँ वीस धनुष्के प्रमाणमें वेधन नामवाला नरक है ॥२॥ जहां यमदूत पापियोंको निरन्तर दंडसे ताडित करते हैं वह सोलह धनुष्प्रमाण दंडताडनकुंड है ॥ ३ ॥ जिसमें पापी मच्छियोंकी समान जालमें बाँधे जाते हैं वहाँ वीस धनुष्के प्रमाणमें जालरन्ध्र नाम कुंड है ॥ ४ ॥ जहां गिरतेही पापियोंका देह चूर्ण होजाता है जहां पापी लोहेकी बेडीमें बाँधे जाते हैं कोटि पुरुषोंके मानवाला ॥ ५ ॥ गंभीर अंधकारसे युक्त वीस धनुष्की समान विस्तारवाला मूर्छित जड पापियोंसे युक्त देह चूर्ण नरक कहा है ॥ ६ ॥ और जहाँ यमदूतोंसे ताडित हो पापी दलित होते

हैं वह सोलह धनुषके प्रमाणमें दलन कंड है ॥ ७ ॥ जहां गिरतेही पापीके कंठ ओष्ठ तालुशुष्क होजाते हैं. जहां तत्ती वालुका है तीस धनुषके प्रमाणवाला ॥ ८ ॥ सौ पुरुषमान गहरा अंधकारसे युक्त दूसरेको दुःख देनेवाले पापियोंको दुःखदायक शोषणकुंड है ॥ ९ ॥ अनेक प्रकारके चर्मकषायके जलसे पूर्ण सौधनुषके प्रमाणमें दुर्गन्धसे युक्त और वहाँके भक्षण करने वाले प्राणियोंसे व्याप्त कषकुंड है ॥ ११० ॥ शूर्पकुण्ड शूर्पाकार बारह धनुष्के प्रमाणमें है यह तत्ते लोहेकी वालुकासे युक्त पूर्ण पातकियोंसे भराहुआ ॥ ११ ॥ दुर्गन्धसे युक्त यही वस्तु खानेवाले पापियोंसे संकुल यह शूर्पाकारमुख कुण्ड बारह धनुषके विस्तारमें है ॥ १२ ॥ ज्वालामुखकुंड तत्ती वालुसे व्याप्त महा पापियोंसे युक्त अन्तरमें अग्निशिखा और मुखपरभी ज्वालासे व्याप्त ॥ १३ ॥ जिसका वीस धनुष्का प्रमाण है और ज्वालासे दग्ध शरीर हुए पापियोंसे संकुल ॥ १४ ॥ यह महाक्लेश देनेवाला ज्वालामुखकुंड है जहाँ गिरतेही पापी मूर्छित होते हैं ॥ १५ ॥ धूम्रांधकुंड तत्ती ईंटोंके अंतरमें अर्धजिह्म धूम्र अंधकारसे संयुक्त धूम्रांध पापियोंसे युक्त है ॥ १६ ॥ यह सौ धनुष्के प्रमाणमें स्वांसरंध्र होनेसे धूम्रांध कहाता है और जहां गिरतेही पापी नागोंसे वेष्टित होता है ॥ १७ ॥ वह सौ धनुष्में नागोंसे पूर्ण नागवेष्टित कुंड है यह मैं ने८६ छयासी कुंडोंका तुमसे वर्णन किया ॥ ११८॥ और उनका लक्षण भी कहा अब क्या सुननेकी इच्छा है

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशोऽध्यायः ३८.

सावित्री बोली अब आप सारोंकी सार देवीभक्ति मुझको प्रदान कीजिये जो पुरुषोंके मुक्तिद्वारका बीज और नरकसागरसे तारनेवाली है ॥ १ ॥ मुक्तिसारोंकी कारण सम्पूर्ण अशुभोंकी विनाशक कर्मरूपी वृक्षकी निवारक और कियेहुए पापसमूहोंकी विनाशक है ॥ २ ॥ और मुक्ति कितने प्रकारकी हैं उनके लक्षण क्या हैं तथा भक्तिका स्वरूप और उसके भेद कितने हैं और किये कर्मोंका भोग किसप्रकार खण्डन होता है सो कहिये ॥ ३ ॥ विधाताने स्त्रीजातिको तत्त्वज्ञानसे विहीन कहा है, हे वेदविदांवर ! सो आप सारभूत कछ ज्ञान कहिये ॥ ४ ॥ सर्व दान, यज्ञ, तीर्थ,

स्नान, तप, व्रत यह अज्ञानीको ज्ञान प्रदान करनेकी सोहलवीं कलाभी नहीं है ॥ ५॥ गौरवमें पितासे माता सौगुनी है यह निश्चय है,परन्तु हे प्रभो ! ज्ञानदाता गुरु मातासे सौगुण पूज्य है ॥ ६ ॥ धर्मराज बोले हमने पहले तुमको वर दिया ह कि, जो तुम्हारे मनमें इच्छित है सो प्राप्त होगा अब मेरे वरसे तुमको भगवतीकी भक्ति भी प्राप्त होगी ॥७॥ हे कल्याणी ! अब तुम देवीके गुण कीर्तन सुननेके योग्य हो जो वक्ता पृच्छक और सुननेवालोंके कुल तारण करनेवाली है ॥ ८ ॥ शेषजी जिसको सहस्र मुखसे नहीं कह सक्ते शंकर जिसको पंचमुखसे नहीं कह सक्ते ॥ ९ ॥ चारों वेदोंके धाता जगत्के रचनेवाला विधाता ब्रह्मा चार मुखसे तथा सर्ववित् विष्णुभी पूर्णतया कहनेको समर्थ नहीं है ॥ १० ॥ कार्तिकेय छःमुखसे गणेश तथा योगीन्द्रोंके गुरु भी कहनेको समर्थ नहीं है ॥ ११ ॥ सब शास्त्रोंके सारभूत चार वेद हैं तथा दूसरे पण्डित जिसके गुणोंकी कलामात्रभी नहीं जान्ते हैं ॥ १२ ॥ जिनके गुणवर्णनमें सरस्वतीभी जडीभूत हो रही है.सनत्कुमार, धर्म, सनन्दन, सनातन, ॥ १३ ॥ सनक, कपिल, सूर्य तथा दूसरे ब्रह्माजीके पुत्र यह चतुरभी जिनके गुण नहीं कहसक्ते फिर दूसरे जडबुद्धियोंकी कौन कहै ॥ १४ ॥ जिन देवीके गुण कहनेको सिद्ध मुनीन्द्र भी समर्थ नहीं तो मैं तथा दूसरे क्या कहसक्ते हैं?॥ १५॥ ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि जिनके चरणकमलका ध्यान करते हैं वह केवल भक्तोंकोही अतिशय साध्य है और दूसरोंको अतिशय दुर्लभ है ॥ १६ ॥ कोईही कछ उनके गुणोंका कीर्तन जान्ता है पर हाँ ब्रह्मविशारद ब्रह्माजी कुछ विशेष जानते हैं ॥ १७ ॥ उनसे अधिक गणेश ज्ञानियोंके गुरु जानते हैं और सबसे कधिक सर्वज्ञ शंकर जानते हैं ॥ १८ ॥ परमात्मा कृष्णने उनको पहले ज्ञान दिया था जो अतिशय निर्जनवन गोलोकके रासमण्डलमें ॥ १९ ॥ यह ज्ञान कहा था और शिवलोकमें शंकरने धर्मके निमित्त यह ज्ञान कहा था ॥२०॥ धर्मने पूँछनेपर सूर्यसे कहा था जिसको सुनकर हमारे पिताने तपसे आराधनकर देवीको प्राप्त किया ॥ २१॥ प्रथम मुझको देवताओंके यह अधिकार देनेपर मैंने यह स्वीकार न किया और वैराग्ययुक्त होकर मैंने तपस्या करनेके निमित्त वनजानेकी इच्छा की ॥ २२ ॥ तब हमारे पिताने हमसे वह दुर्लभ ज्ञान कहा सो मैं तुमसे कहता हूं तुम सुनो ॥२३॥ स्वयं वह भगवतीभी अपने गुणोंको नहीं जानती औरोंकी तो क्या कथा है. हेवराननें! जैसे आकाश अपना अन्त नहीं जानता ॥ २४ ॥ इसी कारण सर्वात्मा भगवान् सबके कारणका कारण

सर्वेश्वर सबकी आदि सब कुछ जाननेवाले सबके परिपालक ॥ २५ ॥ नित्यरूपी, नित्य स्वरूपवाले, नित्यानंद, निराकृति, निरंकुश, निरानंद, निर्गुण, निरामय ॥ २६ ॥ निर्लिप्त सर्वसाक्षी, सर्वाधार, परात्पर, मायाविशिष्ट, प्रकृति और उसके विकार प्राकृत ॥ २७ ॥ स्वयं पुरुष और प्रकृति यह परस्पर अभिन्न है जैसे अग्निसे अग्निकी शक्ति भिन्न नहीं है ॥ २८ ॥ सो यह महामाया सच्चिदानंदरूपिणी शक्ति अरूप होनेपर भी भक्तोंके अनुग्रह करनेको अनेक रूप धारण करती है ॥ २९ ॥ पहला इनका रूप परम अद्भुत गोपालसुन्दरी है जो अतिशय सुन्दर और मनोहर है ॥ ३० ॥ यह नये मेघकी समान श्याम किशोरवेषसम्पन्न जो कोटिकंदर्पके समान सुन्दर लीला-धाम मनोहर ॥ ३१ ॥ शरत्के मध्याह्न कमलके शोभाको जिनके नेत्र लज्जित करते शरत्पूर्णिमाके कोटिचन्द्रोंको जिनका मुख लज्जित करता है ॥ ३२ ॥ अमूल्य रत्नोंके बने अनेक भूषणोंसे भूषित स्मितमुख पीतवसनसे निरन्तर शोभाय-मान ॥ ३३ ॥ वह परब्रह्मका स्वरूप ब्रह्मतेजसे प्रकाशमान सुखदृश्य शांत राधाके कान्त अनन्तरूप ॥ ३४ ॥ निरन्तर मन्दमुसकानयुक्त गोपियोंसे देखे जाते हुए रासमण्डलके मध्यमें रत्नसिंहासनपर स्थित ॥ ३५ ॥ वंशी बजाते द्विभुज वनमालासे विभूषित कौस्तुभेन्द्र मणियोंमें श्रेष्ठ मणियोंसे जिनका वक्षस्थल उज्वल हो रहा है ॥ ३६ ॥ कुंकुम अगर कस्तूरी और चन्दनसे चर्चित विग्रह सुन्दर चंपेकी मालासे युक्त मालतीमालासे मंडित ॥ ३७ ॥ सुन्दर चन्द्रक भूषणकी शोभासे व्याप्त चूडा वंकिमसे विराजमान जिनको इसप्रकारसे भक्तजन ध्यान करते हैं ॥ ३८ ॥ जिनके भयसे ब्रह्मा जगत्की सृष्टि करते हैं और कर्मानुसार लिखे सब कर्मोंको करते हैं ॥ ३९ ॥ जिनकी आज्ञासे तप और कर्मोंके फलभी देते हैं और जिनके भयसे विष्णु सबकी रक्षा करते हैं ॥ ४० ॥ जिनके भयसे कालाग्नि रुद्र जगत्का संहार करते हैं शिव मृत्युंजय ज्ञानियोंके भी गुरु ॥ ४१ ॥ जिनके ज्ञानसे वह योगीश ज्ञानवित्प्रभु ज्ञानवान् हैं परमानन्द तथा भक्ति वैराग्यसे संयुक्त है ॥ ॥ ४२ ॥ जिनके भयसे शीघ्रगामियोंमें श्रेष्ठ पवन वहन करती है जिनके भयसे सूर्य निरन्तर तपता है ॥ ४३ ॥ जिनकी आज्ञासे मेघ वर्षता मृत्यु प्राणियोंमें विचरती है जिनकी आज्ञासे अग्नि जलाती और जलशीतल रहता है ॥ ४४ ॥ दिक्पाल दिशा-ओंकी रक्षा करते जिनकी आज्ञासे महाभीत रहते हैं जिनके भयसे राशिचक्र और

१ गोपीवेषधारी-कृष्ण ।

ग्रह भीत होकर चलते हैं ॥ ४५ ॥ वृक्षोंमें फल लगते और भयसे फूल त्यागते हैं जिनकी आज्ञाके भयसे समयपर काल कलनकरता है ॥ ४६ ॥ जलस्थलके जीव जिसकी आज्ञाके विना जीवनधारण नहीं करसक्ते जो अकालमें रणमें विद्धकोभी हरण नहीं करसक्ते ॥ ४७ ॥ उन्हींकी आज्ञासे वायु जलको तथा कर्म सागरके जलको धारण करता है, कूर्म और शेष सागर पर्वतसहित भूमिको ॥ ४८ ॥ अर्थात् क्षमायुक्त नानारत्नसम्पन्नको जिसकी आज्ञासे धारणकरती है जिससे सब प्राणी स्थित और मृत्युको प्राप्त होते हैं ॥ ४९ ॥ इन्द्रकी आयु इकहत्तर चौकडीयुगकी होती और अट्ठाईस इन्द्रके पातमें ब्रह्माका एकदिन होता ॥ ५० ॥ इसप्रकार ब्रह्माके तीस दिनका महीना,दो महीनोंकी एक ऋतु छः ऋतुओंका ब्रह्माका एक वर्ष इसप्रकारके सौवर्षकी ब्रह्माकी आयु होती है ॥ ५१ ॥ ब्रह्माके निपात होनेपर विष्णुका एकपल होता है उनके चक्षु मीचनेपर प्राकृतिक प्रलय हो जाती है ॥ ५२ ॥ प्राकृतिक प्रलय होनेमें चराचर सब देवता धाता विधाता श्रीकृष्णके नाभिकमलमें लीनहोजाते हैं ॥ ॥ ५३ ॥ क्षीरोदशायी विष्णु और वैकुण्ठमें जो चतुर्भुज हैं वह श्रीकृष्णके वामपार्श्वमें लीन होजाते हैं ॥ ५४ ॥ जिसके ज्ञानमें ज्ञानाधीश सनातन शिवलीन होजाते हैं और दुर्गा विष्णुमायामें सब शक्तियें लीन होजाती हैं ॥ ५५ ॥ और वह कृष्णकी बुद्धिमें स्थित होकर बुद्धिकी अधिष्ठात्री देवता होतीहै.नारायणके अंश स्कन्द उनके वक्षस्थलमें लीन होजाते हैं ॥ ५६ ॥ श्रीकृष्ण अंशरूप गणेश्वर उनकी भुजामें लीन हो जाते हैं और पद्मांशा पद्मा राधामें लीनहोजाती है ॥ ५७ ॥ और सबदेवताओंकी स्त्रियें गोपियोंमें और गोपी राधामें लीन होती हैं; वह कृष्णकी प्राणप्रिया देवी उनके प्राणों में स्थित होती है ॥ ५८ ॥ सावित्री और सब वेदशास्त्र सरस्वतीमें लीन होकर वह वाणी परमात्माकी जिह्वामें स्थित होती है ॥ ५९ ॥ गोलोकके गोप उनके लोममें स्थित होते हैं उनके प्राणमें सबके प्राणवायु अग्निमें लीनहोते हैं ॥ ६० ॥ जठराग्निमें हुताशन, जल उनके जिह्वाग्रमें, भक्तिसम्पन्न वैष्णव उनके चरणकमलमें परमानंदसे लीन होते हैं ॥ ६१ ॥ जो सारसे भी सार भक्तिरूपअमृत पानेवाले हैं क्षुद्र विराट्के रूप महाविराट्में और महाविराट्कृष्णमें विलीन होते हैं ॥ ६२ ॥ जिसके लोमकूपोंमें अनन्त विश्व हैं जिनके नेत्रके उन्मेषमें प्राकृत प्रलय होजाता है ॥ ६३ ॥ फिर पलक खोलनेमें सृष्टि होजाती है जितनासमय पलक लगानेका है उतनाही खोल-

१ कठिनसे प्राप्त ।

नेका है ॥ ६४ ॥ ब्रह्माके सौवर्षमें सृष्टिका सूत्र लय होता है. हे सुव्रते ! ब्रह्माकी सृष्टि और लयकी संख्या नहीं है ॥ ६५ ॥ जैसे पृथ्वीके रजोंकी संख्या नहीं है इसप्रकार सृष्टि और लयकी संख्या नहीं है.जिस सर्वान्तरात्माके नेत्रोंके पलक लगानेमें प्रलय होजाती है ॥ ६६ ॥ और पलक खोलनेमें उनकी इच्छासे फिर सृष्टि होजाती है वह कृष्णभी उसकी प्रलयमें प्रकृतिमें लीन होजाते हैं ॥ ६७ ॥ कहीं पराशक्ति और निर्गुणपरमपुरुष है, पहले आगे सत् ही था ऐसा वेदके ज्ञाता कहते हैं ॥ ६८ ॥ मूलप्रकृतिहीं अव्यक्त और अव्याकृत पदनामवाली है चित्से अभिन्न हुई प्रलयमें स्थितरहती है ॥ ६९ ॥ उसके गुणकथनकरनेको ब्रह्माण्डमें कौन समर्थ है? चारोंवेदोंमें चारप्रकारकी मुक्तिकही है ॥ ७० ॥ उनमें प्रधान होनेसे भक्ति मुक्तिसे भी अधिक है. सालोक्य, सारूप्य, ॥ ७१ ॥ सामीप्य और निर्वाण यह चार प्रकारकी मुक्ति हैं. उस विभुकी सेवा भक्तिके सिवाय भक्तजन मुक्तिकी इच्छा करते हैं ॥ ७२ ॥ शिवत्व, अमरत्व, ब्रह्मत्व, जन्ममृत्यु, जराव्याधि, भयशोकादिक धन यह सब वे तुच्छजान्ते हैं ॥ ७३ ॥ तथा दिव्यरूपका धारण निर्वाण मुक्ति नहीं चाहते. मुक्ति सेवारहित है और भक्ति सेवाकी बढानेवाली है ॥ ७४ ॥ यह भक्ति और मुक्तिका भेद है. अब निषेकखण्डनके स्वरूपको सुनो.पण्डितजन! किये कर्मोंके भोगकोही निषेक कहते हैं॥ ७५॥ उस भोगका खण्डनही श्रीविभुकी सेवा है.हे साध्वि! यही तत्त्वज्ञान लोकवेदमें स्थित है॥ ७६॥ यह विघ्नरहित और शुभका देनेवाला है. हेवत्से ! अब तुम यथासुख गमन करो. यह कह यमराजने उसके पतिको जिवाकर ॥ ७७ ॥ और उसको शुभ आशीर्वाद देकर जानेकी इच्छाकी. यमराजको जाता देख सावित्री प्रणामकर ॥ ७८ ॥ साधुके वियोगसे दुःखी हो चरण पकडकर रोनेलगी सावित्रीका रोदन सुनकर कृपासागर यमराज ॥ ७९ ॥ स्वयं नेत्रोंमें आँसूभर उससे कहने लगे धर्म बोले पुण्यक्षेत्र भारतमें लाख वर्षतक सुख भोगकर ॥ ८० ॥ अन्तमें उस लोकको गमन करैगी. जहां देवी विराजमान होती है. हे भद्रे! अपने घर जाकर सावित्रीका व्रत करो ॥ ८१ ॥ यह चौदह वर्ष करनेसे स्त्रीकी मोक्षका कारण है ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्दशीको सावित्रीका सुन्दर व्रत करै ॥ ८२ ॥ भाद्रपद शुक्ल अष्टमीको महालक्ष्मीका जिसप्रकार व्रत है वैसा करै. हे शुचिस्मिते! अथवा सोलह वर्षतक इस व्रतको ॥ ८३ ॥ भक्तिसे जो स्त्री करती है वह विभुके लोकको गमन करती है प्रति मंगलवारको करनेसे देवी मंगलकी देनेवाली होती है ॥ ८४ ॥ प्रति महीनेकी

शुक्ला छठको छठ मंगलदायिनी है और इसीप्रकार आषाढकी षष्ठी मनसे सब सिद्धि देनेवाली है ॥ ८५ ॥ कार्तिकी पूर्णिमाको राधाव्रत जो कृष्णकी प्राणोंकी समान अधिक प्यारी है तथा शुक्ला अष्टमीमें दुर्गाव्रत करै यह प्रतिमहीनेमें करनेसे वरदायी होती है ॥ ८६ ॥ विष्णुकी माया भगवती दुर्गा कठिन दुःखोंकी दूर करने वाली प्रकृति जगदम्बाको पतिपुत्रवाली ॥ ८७ ॥ तथा शुद्ध पतिव्रता औ वा यंत्र और प्रतिमाओंमें जो स्त्री धन सन्तानके निमित्त पूजा करती है ॥ ८८ ॥ वह इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें श्रीविभुके स्थानमें गमन करती है. इसप्रकार उत्तम साधक नित्य देवीकी विभूतिको भक्तिसे पूजन करै ॥ ८९ ॥ सब समय सर्वरूपा परमेश्वरीका सेवन करना चाहिये इससे अधिक कृतकृत्यदायक और कुछ नहीं है ॥ ९० ॥ यह कहकर धर्मराज अपने स्थानको गये और अपने स्वामीको लेकर सावित्री अपने स्थानको चली ॥ ९१ ॥ सावित्री और सत्यवानने अपनेआश्रममें जाय दूसरोंसे वह वृत्तान्त कथन किया ॥ ९२ ॥ क्रमसे सावित्रीके पिताके पुत्र हुए और श्वसुरको नेत्र प्राप्त हुए और वरदानके कारण उसने भी पुत्रोंकी प्राप्ति की ॥ ९३ ॥ वह पतिव्रता इस भारतक्षेत्रमें लाख वर्षतक सुख भोगकर स्वामीके संग देवीके मणिद्वीपको गई ॥ ९४ ॥ जो सविता अर्थात् सूर्यमंडलात्मक देवताकी अन्तर्यामी ब्रह्मरूपिणी है तथा गायत्रीकी अधिष्ठात्री है, वेदोंकी माता होनेसे सावित्री कहाती है ॥ ९५ ॥ हे वत्स ! यह आपसे इसप्रकार सावित्रीका उत्तम आख्यान कहा है तथा जीवका कर्मविपाक कहा अब फिर क्या सुननेकी इच्छा है ॥ ९६ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषायां अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ३९.

नारदजी बोले श्रीमूल प्रकृति तारणी गायत्री देवीके महात्म्ययुक्त सावित्री और यमके संवादमें निर्मल यश श्रवण किया ॥ १ ॥ तथा उनके सत्यरूप गुणोंका कीर्तन जो मंगलोंका मंगल है सो सुना, हे भगवन् ! अब महालक्ष्मीका उपाख्यान सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ २ ॥ प्रथम किसने उनका पूजन किया है वह किस प्रकारकी है ? हे वेदविदांवर मुझसे आप उनके गुणोंका कीर्तन कीजिये ॥ ३ ॥

नारायण बोले हे नारदजी ! सृष्टिकी आदिमें परमात्मा कृष्णकी देवी राधाके वाम अंशसे रासमंडलमें यह प्रगट हुई है ॥ ४ ॥ यह अति सुन्दरी श्यामा न्यग्रोधपर मंडित अथवा द्वादशवर्षकी अवस्थासे सम्पन्न निरन्तर स्थिरयौवनवाली ॥ ५ ॥ श्वेतचम्पकके वर्णकी समान सुखदृश्या परममनोहर शरत्की पूर्णिमाके कोटिचन्द्रके प्रभाकी समान मुखवाली ॥ ६ ॥ और शरत्के मध्याह्न कमलोंकी शोभाको जिनके लोचन मोचन करनेवाले हैं वह देवी सहसाही ईश्वरकी इच्छासे दो रूप हुईं ॥ ७ ॥ अपना रूप, वर्ण, तेज, वय, कान्ति, यश, वसन, कृति, भूषण गुण ॥ ८ ॥ स्मितवीक्षण प्रेम अनुनयमें राधाकी समानही थी. उन कृष्णके वाम अंशसे महालक्ष्मी और दक्षिण अंशसे राधिका प्रगट हुई है ॥ ९ ॥ राधाने प्रथम द्विभुज परात्पर देवको वरण किया. महालक्ष्मीने पश्चात् उन मनोहरकी इच्छा की ॥ १० ॥ तब कृष्ण राधाके गौरवसे दो रूप हुए दक्षिणांशसे द्विभुज और वाम अंशसे चतुर्भुज हुए ॥ ११ ॥ द्विभुज भगवान्ने महालक्ष्मीको चतुर्भुजके निमित्त दिया. जिससे यह सब जगत् निरन्तर स्निग्ध दृष्टिसे दीखता है ॥ १२ ॥ और जो महती देवी है इसी कारण महालक्ष्मी कहाती है. राधाकांत द्विभुज और लक्ष्मीकांत चतुर्भुज है ॥ १३ ॥ वह शुद्धसत्वस्वरूपवाली गोप और गोपियोंसे आवृत है चतुर्भुज लक्ष्मीके सहित वैकुंठमें गये ॥ १४ ॥ वह कृष्ण और विष्णु सर्वांशमें समान है महालक्ष्मीके योगमें वह अनेक रूपा हुई ॥ १५ ॥ वैकुंठमें महालक्ष्मी परिपूर्णतमा रमा है शुद्ध सत्वस्वरूपा सर्व सौभाग्यसे संयुक्त है ॥ १६ ॥ वह सब स्त्रियोंमें प्रेमसे प्रधान है स्वर्गोंमें स्वर्गलक्ष्मी इन्द्रके सम्पत्स्वरूपिणी ॥ १७ ॥ पातालमें नागलक्ष्मी राजाओंमें राजलक्ष्मी घरोंमें गृहलक्ष्मी गृहिणी कला अंशसे निवास करती है ॥ १८ ॥ गृहस्थियोंके यहाँ सम्पत् स्वरूपा सब मंगलकी मंगल करनेवाली गायोंकी प्रसूति होनेसे सुरभी यज्ञकी कामनामें दक्षिणा ॥ १९ ॥ क्षीरसागरकी कन्या पद्मिनियोंमें श्रीरूपा चन्द्रमामें शोभास्वरूप सूर्यमंडलमें मंडित ॥ २० ॥ विभूषण रत्नफल जल नृप नृपपत्नी दिव्यस्त्री और घरोंमें ॥ २१ ॥ सब धान्य वस्त्र संस्कृतस्थान देवताओंकी प्रतिमा मंगल घटोंमें ॥ २२ ॥ माणिक्य मुक्ता मनोहर मालामणियोंके हार क्षीर और चन्दनमें ॥ २३ ॥ मनोहर वृक्षशाखा नवीन मेघ और वस्तुओंमें रहती है. प्रथम नारायणने वैकुण्ठमें पूजन किया ॥ २४ ॥ दूसरी बार भक्तिसे ब्रह्माने और तीसरीबार शंकरने पूजन किया है. हे मुने ! फिर क्षीरोदमें विष्णुने पूजन कियाहै ॥ २५ ॥

मानवेन्द्र स्वायंभू मनुनें तथा ऋषि मुनि और सद्भक्ति करनेवाले गृहस्थियोंने पूजन किया है ॥ २६ ॥ गन्धर्व तथा नागादिने पातालमें पूजन किया है शुक्लाष्टमीको भाद्रपदमें ब्रह्माजीने पूजन किया ॥ २७ ॥ हे नारद ! तीनों लोकमें भक्तिसे पक्षपर्यन्त पूजन होता है. चैत्र, पौष, भाद्रपद, मंगलवारमें पूजन होता है ॥ ॥ २८ ॥ विष्णु तथा त्रिलोकीने भक्तिपूर्वक पूजाकी वर्षके अन्तमें पूषसंक्रान्ति माघी पूर्णिमाको आवाहन करके ॥ २९ ॥ मनुने उनका पूजन कराया और मंगलारूपा लक्ष्मीका महेन्द्रने भी पूजन किया है ॥ ३० ॥ केदार, नील, सुबल, नल, ध्रुव, उत्तानपाद, इन्द्र, बलि ॥ ३१ ॥ कश्यप, दक्ष, कर्दम, विवस्वान्, प्रियव्रत, चन्द्र, कुबेर, वायु ॥ ३२ ॥ यम, वह्नि, वरुणने पूजन किया और प्रणाम किया. इसप्रकार सबने सर्वत्र पूजन किया ॥ ३३ ॥ वह सब ऐश्वर्यकी देवी सब सम्पत्स्वरूपिणी है ॥ ३४ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषायां एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशोऽध्यायः ४०.

नारदजी बोले वह नारायणकी प्रिया श्रेष्ठ वैकुंठवासिनी, वैकुंठकी अधिष्ठात्री देवी महालक्ष्मी सनातनी ॥ १ ॥ फिर भूमिमें किसप्रकार क्षीरसागरकी कन्या हुई और पहले किसने उनकी स्तुति की सो आप मुझसे कहिये ॥ २ ॥ श्रीनारायण बोले एक समय दुर्वासाके शापसे इन्द्र श्रीभ्रष्ट हुए थे और मर्त्यलोकमें देवताओंके समूह एकत्रित हुए ॥ ३ ॥ लक्ष्मी स्वर्गादिको त्यागनकर रुष्ट और परम दुःखित हुई. हे नारद ! वह जाकर वैकुंठमें लीन होगई ॥ ४ ॥ तब सबकोई दुःखी हो ब्रह्माकी सभामें गये और ब्रह्माजीको आगेकर वैकुंठमें गये ॥ ५ ॥ सब देवता वैकुंठमें परमदेव नारायणकी शरण हुए अतिदैन्ययुक्त होनेसे उनके कंठ ओष्ठ तालु सूखगये ॥ ६ ॥ तब पुराण पुरुषकी आज्ञासे कलारूप लक्ष्मी सर्वसंपत्स्वरूपिणी सागरकन्या हुई थी ॥ ७ ॥ तब देवता दैत्योंने क्षीरसागर मंथनकर महालक्ष्मीको प्राप्त किया विष्णुने उनको देखा ॥ ८ ॥ देवादिको वर और क्षीरसागरशायी विष्णुको प्रसन्नतासे वनमालादेकर प्रसन्न किया ॥ ९ ॥ हे नारद ! तब देवताओंने असुरोंके ग्रसित राज्यको फिर पाया तब भगवतीकी पूजाकर सब कोई आपत्ति

रहित हुए ॥ १० ॥ नारदजी बोले हे ब्रह्मन्! तत्त्ववित् मुनिश्रेष्ठ दुर्वासाने क्यों शापदिया क्या दोष था वह तौ तत्त्ववित् थे ॥ ११ ॥ और उन सुरादिने किस-प्रकार सागरको मथा और किस स्तोत्रसे देवी इन्द्रके सन्मुख प्रगट हुई ॥ १२ ॥ हे प्रभो! किसप्रकार उन इन्द्र और दुर्वासाका सम्वाद हुआ सो आप कहिये. श्रीना-रायण बोले पहले त्रैलोक्याधिपति इन्द्र मधुपानसे मत्तहोकर ॥ १३ ॥ कामुक हो एकान्तमें रंभाकेसाथ क्रीडा करने लगे. उसके साथ क्रीडाकरनेसे देवराजका मन उसमें लगगया ॥ १४ ॥ कामसे उन्मथित हो उस महावनमें निवास करने लगे उस समय ऋषिश्रेष्ठ वैकुंठसे कैलासशिखरमें जाते थे ॥ १५ ॥ उन ब्रह्मतेजसे प्रज्वलित दुर्वासा ऋषिको देखकर कि, जिनकी प्रभा मध्याह्नकालीन सूर्यके समान चमक रही थी ॥ १६ ॥ तप्त सुवर्णके समान जटाभार बडा उज्वल था श्वेत यज्ञोपवीत चीर दण्ड कमंडलु लिये ॥ १७ ॥ महा प्रकाशमान् चलायमान् इन्द्र-के समान प्रकाशित लाखोंवेदवेदांगके पारगामी शिष्योंसेयुक्त ॥ १८ ॥ देखतेही इन्द्रने उनको शिरसे प्रणाम किया और प्रसन्न हो उन मुनिके शिष्यसमूहोंको संतुष्ट किया ॥ १९ ॥ मुनिराजने शिष्योंसहित आशीर्वाद दिये और विष्णुके दिये मनोहर पारिजात पुष्पको॥२०॥ "जो कि जरारोग और मृत्युका नाशक शोकहारी और मोक्षका करनेवाला है" दिया. शक्र उस फूलको लेकर राज्य सम्पत्तीसे प्रमत्त हो ॥ २१ ॥ उस अपने हाथीके ऊपर रखदिया हाथी उसके स्पर्शमात्र रूप और गुणसे ॥२२॥ तेज और वयसे विष्णुकी तुल्य हुआ तब गजेन्द्र इन्द्रको छोड कर गहन वनमें चलागया॥ २३ ॥ हेमुने! तेजसे इन्द्र उसकी रक्षाकरनेको समर्थ न हुआ. मुनीश्वरने इन्द्रको इसप्रकार फूलत्यागन करता हुआ देखकर ॥२४॥ महारुष्टहोकर शापदिया. मुनि बोले अरे! लक्ष्मीसे प्रमत्त तुम मेरे अपमान क्यों करते हो ॥२५॥ मेरा दिया फूल तैंने हाथीके मस्तकपर क्यों रख दिया. विष्णुको निवेदनकिया नैवेद्य, जल, फल, ॥ २६ ॥ प्राप्तमात्रही भोगना चाहिये. अन्यथा ब्रह्महत्या लगती है. तुम भ्रष्टश्री भ्रष्टबुद्धि और अपने पुरसे भ्रष्टहो जाओ ॥ २७ ॥ जो भाग्यसे उप-स्थित हुए विष्णुके नैवेद्यको प्राप्त होतेही भोग लगाता है जो भक्त विष्णुनिवेदित नैवेद्यको इसप्रकार भोग करते हैं ॥ २८ ॥ वह सौ पुरुषोंका उद्धारकर स्वयं जीव-न्मुक्त होता है, जो नैवेद्य भोग लगाकर नित्य नारायणके प्रणाम करता है ॥२९॥ अथवा भक्तिसे पूजन और स्तुति करता है वह विष्णुके समान होता है. उसकी

स्पर्शकी हुई वायुसे शीघ्र तीर्थ समूह शुद्ध हो जाते हैं ॥ ३० ॥ हे मूढ उनकी पादरजसे फिर भूमि शुद्ध होती है पुंश्चलीका अन्न अवीरान्न शूद्रान्न श्राद्धान्न ॥ ॥ ३१ ॥ तथा हरिको विना निवेदन किया अन्न वृथामांसका भक्षण शिवलिंगपर चढाया हुआ पदार्थ शूद्रयाजीका दिया द्रव्य ॥ ३२ ॥ चिकित्सक ब्राह्मणका अन्न पुजारीका अन्न कन्याविचनेवालेका अन्न कुटनीका अन्न ॥ ३३ ॥ अच्छिष्ट अन्न वासी अन्न सबके खालेनेपर अवशिष्ट अन्न शूद्रापति ब्राह्मणोंका अन्न वृष वाहक द्विजका अन्न ॥ ३४ ॥ अदीक्षित ब्राह्मणका अन्न शवदाही ब्राह्मणका अन्न अगम्यागामियोंका अन्न ॥ ३५॥ मित्रद्रोही कृतघ्नी विश्वासघाती मिथ्या साक्षी देने वाले ब्राह्मणका अन्न ॥ ३६ ॥ यह सब विष्णुकी नैवेद्य भक्षण करनेसे शुद्ध हो जाते हैं यदि श्वपचभी विष्णुका सेवी हो तो कोटिवंशोंका उद्धार करता है ॥ ३७॥ हरिका अभक्त मनुष्य अपनेको रक्षा करनेमें असमर्थ होता है वह अज्ञानसे यदि विष्णुका नैवेद्य ग्रहण करले ॥ ३८ ॥ तो इसमें सन्देह नहीं कि वह सात जन्मके अर्जित पापसे मुक्त होता है और जो जानकर भक्तिसे विष्णुका नैवेद्य ग्रहण करते हैं ॥ ३९ ॥ हे इन्द्र ! वह कोटिजन्मके अर्जित पापसे निश्चयही मुक्त हो जाते हैं. जो कि तुमने हमारा दिया फूल हाथीके मस्तकपर स्थापित किया है ॥ ४० ॥ इसकारण तुमको छोडकर लक्ष्मी नारायणके स्थानको गमन करेगी मैं नारायणका भक्त हूं देवता विधातासे नहीं डरताहूं॥ ४१॥ कालमृत्यु जरा किसीसेभी नहीं डरता हूं प्रजापति कश्यप तुम्हारे पिता मेरा क्या करसक्ते हैं ॥ ४२ ॥ मैं बृहस्पति गुरुसे निःशंक हूं हे इन्द्र ! यह फूल जिसके शिरपर होता है उसका परम पूजन होता है ॥ ४३ ॥ यह सुन्तेही इन्द्रने मुनिराजके चरण पकडे और शोकसे व्याकुल हो ऊंचे स्वरसे रोताहुआ भयाकुल हुआ॥ ४४॥ महेन्द्रने कहा हेमायाहारी! प्रभो आपने मुझको उचित शाप दिया है, मैं हरीहुई सम्पत्तिकी याचना नहीं करता आप मुझे कुछ ज्ञान दीजिये ॥ ४५॥ ऐश्वर्य विपत्तिका बीज ज्ञानका प्रच्छन्न करनेवाला है तथा मुक्तिमार्गको कुठार और भक्तिमें व्यवधान करनेवाला है ॥ ४६ ॥ मुनि बोले जन्म मृत्यु जरा शोक रोगका बीजांकुर है सम्पत्तिरूपी तिमिरमें अंध हो मुक्तिमार्गको नहीं देखता है ॥ ४७ ॥ सम्पत्तिसे मत्त विमूढ पुरुष सुरामत्तही कहा है और बांधवोंसे वेष्टित हुआ भी एक प्रकारके बंधनमें पडा है ॥ ४८ ॥ सम्पत्ति केसे मदमें मत्त हुआ विषयमें अंधा मदसे विह्वल महाकामी राजसी पुरुष मुक्तिमार्गको

नहीं देखता है ॥ ४९ ॥ रजोगुणी तमोगुणी भेदसे विषयांध दो प्रकारका है अशास्त्रज्ञ तामसी और शास्त्रज्ञ रजोगुणी होता है ॥ ५० ॥ हे इन्द्र! शास्त्र दो प्रकारका मार्ग दिखलाता ह एक प्रवृत्तिका बीज और एक निवृत्तिका कारण है ॥ ५१ ॥ प्रथम मार्ग प्रवृत्तिरूपमें जीव भ्रमण करते हैं स्वच्छन्द प्रसन्न निर्विरोध उन्मत्तवत् रहता है ॥ ५२ ॥ मधुके लोभसे आकर क्लेशमें सुख मानता है परिणाममें नाशकारक जन्म मृत्यु और जरा करनेवाला है ॥ ५३ ॥ इस प्रकार अनेक जन्मपर्यन्त भ्रमण करके अपने कर्मानुसार अनेक योनियोंमें विचरण करता है ॥ ५४ ॥ फिर ईश्वरके अनुग्रहसे उसको सत्संगकी प्राप्ति होती है सहस्रों सैकडोंमें कोई एक संसार सागरके पारके कारण ॥ ५५ ॥ साधु तत्त्वदीपकसे मुक्तिमार्ग दिखाता है तब यह जीव बंधनके खण्डनका यत्न करता है ॥ ५६ ॥ अनेक जन्मके योग तपस्या भोजन त्यागसे निर्विघ्न परम सुखदायक मुक्तिमार्गको प्राप्त होता है ॥ ५७ ॥ हे इन्द्र! जो तुमने पूछा है यह मैं ने गुरुके मुखसे सुना है तब मुनिके वचन सुन इन्द्र वीतराग हुए ॥ ५८ ॥ और दिन दिन वैराग्य बढने लगा मुनिके स्थानसे घरको जाकर जब इन्द्रने अमरावतीको देखा तो ॥ ५९ ॥ वह दैत्य असुरोंसे व्याप्त बडी भयानक होगई थी कहीं विषका उपद्रव कहीं बंधुहीनता॥६०॥ कहीं पिता माता कलत्रसे विहीन अतिचंचल तथा विविध शत्रुसे ग्रसित देखकर इन्द्र बृहस्पतिके समीप गये ॥ ६१ ॥ इन्द्रने मन्दाकिनीके किनारे गुरुजीको देखा जो परब्रह्मको ध्यानकरते गंगाके जलमें स्थित थे ॥ ६२ ॥ सूर्यके सन्मुख पूर्वको मुख किये सब ओर मुखवाले ईश्वरके प्रेममें आंसू भरे रोमांच शरीर परमानन्द सम्पन्न थे ॥ ६३ ॥ वरिष्ठ गरिष्ठ धनिष्ठ श्रेष्ठ पुरुषोंसे सेवित बंधुवर्गोंमें श्रेष्ठ ज्ञानियोंमें अतिश्रेष्ठ ॥६४॥ भ्रातृवर्गोंमें ज्येष्ठ देववैरियोंके अनिष्ठकारक उन गुरुजीको जपमें तत्पर देखकर इन्द्र उसी स्थानमें स्थित हुए ॥ ६५ ॥ जब एक पहरके अन्तमें गुरुजी उठे तब प्रणाम किया और उनके चरणोंमें पडकर अमरेश रुदन करने लगे ॥ ६६ ॥ और दुर्वासाके शापका सब वृत्तान्त कहा फिर वर और दुर्लभज्ञानकी प्राप्ति कही ॥ ६७ ॥ फिर वैरियोंसे ग्रस्त अपनी पुरीका वृत्तान्त कहा शिष्यके वचन सुनकर बोलनेवालोंमें अति श्रेष्ठ सुबुद्धि ॥ ६८ ॥ बृहस्पतिजी क्रोधकर यह वचन बोले बृहस्पति बोले हे इन्द्र! यह मैं ने सब सुना परन्तु मत रोओ हमारे वचन सुनो ॥ ६९ ॥

नीतिज्ञाता पुरुष विपत्तिमें कभी कातर नहीं होते हैं सम्पत्ति वा विपत्ति यह सब भ्रमरूप और नश्वर है॥ ७० ॥ यह अपने पूर्व कर्मके अनुसार सबका स्वयंकर्त्ता है यह जन्म २ सबकोही प्राप्त होती है ॥ ७१ ॥ पहियेके समान सुख दुःख घूमते हैं इसमें दुःख करना क्या है यह कहा हीहै अपना किया कर्म भोगा जाता है ॥ ७२ ॥ शुभ अशुभ कोई क्यों नहो यह पुरुष अपने कर्मका फल भोगता है कोटि कल्प शतवर्षमें भी विना भोगे कर्मक्षय नहीं होता है ॥ ७३ ॥ शुभाशुभ किया कर्म अवश्यही भोगना पडता है यह वेदमें श्रीकृष्ण परमात्माद्वारा कथित हुआ है ॥ ७४ ॥ अर्थात् सामवेदकी शाखामें ब्रह्माजीसे सबके कर्मोंका जन्म भोगावशेष कहा है ॥ ७५ ॥ अर्थात् कर्मकेही अनुसार भारतमें वा अन्य कहीं जन्म होता है कर्मसेही ब्रह्मशाप और कर्मसेही आशीर्वाद प्राप्त होता है ॥ ७६ ॥ कर्मसेही महालक्ष्मी और दीनता प्राप्त होती है कोटि जन्मोंका उपार्जित पुण्य भी जीवोंके पीछे चलता है ॥ ७७॥ हे पुरन्दर विना भोगके उसकी छाया कभी नहीं छोडती देश काल पात्रके भेदसे कर्मोंकी॥ ७८॥ कर्मसेही न्यूनता और अधिकता होतीहै वस्तुके दानसे दिन दिन वस्तुओंके समान पुण्य होताहै॥ ७९ ॥ दिनके भेदसे कोटिगुण और असंख्य वा इससेभी अधिक पुण्य होताहै और हेइन्द्र समदेशमें वस्तुदानका समान पुण्य है॥ ८० ॥ देशभेदसे कोटिगुण असंख्य वा इससे अधिक होता है समपात्रमें वस्तुदान करनेवालेको समान पुण्य होताहै॥ ८१ ॥ पात्र भेदसे सौगुना असंख्य वा उससेभी अधिक होताहै जैसे धान्य बराबर बोये जाकर न्यूनाधिक फलते हैं ॥ ८२ ॥ कर्षकोंके क्षेत्र भेदसे न्यूनाधिकता होती है इसी प्रकार पात्रभेदमें फल होता है हे इन्द्र ! सामान्यदिनमें दानका समान फलहोता है ॥ ८३ ॥ अमावस्या और संक्रांतिमें सौगुणा फल होता है चातुर्मास्यकी पूर्णमासीमें अनन्त फल होता है ॥ ८४ ॥ चन्द्रग्रहणका कोटिगुणा फल सूर्यग्रहणका उससेभी दशगुण फल होता है ॥ ८५ ॥ और अक्षयतिथिमें अक्षयफल होता है इसीप्रकार और भी पुण्यदिनोंमें अधिक फल होता है ॥ ८६ ॥ जैसे दान स्नान जप और पुण्यकर्मोंमें होता है इसीप्रकार मनुष्योंके कर्मका फलजानना चाहिये ॥ ८७ ॥ जिसप्रकार दण्डचक्रादिके भ्रमणसे कुम्हार घट निर्माण करता है और मृत्तिकासे कार्य करता है ॥ ८८ ॥ इसीप्रकार विधाता कर्मसूत्रसे फल देता है जिसकी आज्ञासे यह सृष्टि चलती है उस नारायणको भजो ॥ ८९ ॥ वह विधाताका विधाता,रक्षकका रक्षक,तीनों जगत्का रक्षक, सृष्टिकाभी सृजन करनेवाला,संहार कर-

नेवालेका भी संहार करनेवाला है ॥ ९० ॥ महा विपत्तिवाले संसारमें जो मधुसूदनका स्मरणकरता है उसकी विपत्तिमें सम्पत्ति होती है ऐसा शंकरने कहा है ॥ ९१ ॥ वह तत्त्वज्ञ इसप्रकार कह इन्द्रको आलिंगनकर और इष्ट आशीर्वाद देकर समझादिया ॥ ९२ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषायां चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशोऽध्यायः ४१.

नारायण बोले तब इन्द्रने हरिका ध्यानकर ब्रह्माकी सभामें गमन किया तब सब देवता बृहस्पतिको आगे करके ॥ १ ॥ शीघ्र ब्रह्मलोकमें जाय ब्रह्माजीको देख इन्द्र और गुरुके सहित उनको प्रणाम करते हुए ॥ २ ॥ तब सुराचार्यने विधातासे यह सब वृत्तान्त कहा तब कमलासनने हँसकर महेन्द्रसे कहा ॥ ॥ ३ ॥ ब्रह्मा बोले हे वत्स! मेरे वंशमें उत्पन्नहुए तुम मेरे चतुर प्रपौत्रहो बृहस्पतिके शिष्य और देवताओंके स्वयं अधिपति हो ॥ ४ ॥ तुम्हारे मातामह दक्ष प्रतापवान् विष्णुभक्त हैं जिसके तीनों कुल शुद्ध हैं उसको अहंकार कैसे हो सकता है ॥ ५ ॥ जिसकी माता पतिव्रता और पिता शुद्ध जितेन्द्रिय है मातामहके मामा जिसका शुद्धहो वह अहंकार युक्त कैसे होसकता है ॥ ६ ॥ यह मनुष्य पिता और मातामहके दोषसे तथा गुरुके दोषसे देवताका अपराधी होता है ॥ ७ ॥ सबके अन्तरात्मा भगवान् सबके देहमें स्थित है जिसके देहसे निर्गत हो जाता है वह उसीसमय शवरूप होजाता है ॥ ८ ॥ मन इन्द्रियोंका अधिपति और शंकर ज्ञानरूपहै प्रकृति भगवती बुद्धि सती विष्णुकी प्राणस्वरूपाहै ॥ ९ ॥ निद्रादिक शक्तियें सब प्रकृतिकी कला हैं अपना प्रतिबिम्ब जीवभोग शरीरका धारण करनेवाला है ॥ १० ॥ और जब आत्माका अधीश्वर चलाजाता है तब सब संग्रामरूपसे चलेजाते हैं, जैसे मार्गमें जाते राजाके पीछे उनके अनुचरभी जातेहैं ॥ ११ ॥ मैं, शिव, शेष, विष्णु, धर्म, महाविराट् तुम जिसके अंशके भक्तहो उसी फूलका तुमने तिरस्कार किया है ॥ १२ ॥ जिस पुष्पसे शिवने भगवान्के चरणकमलका पूजन किया है वह दुर्वासाका दिया हुआ तुमने तिरस्कार कर दिया ॥ १३ ॥ वह कृष्णके चरणकमलका चढा पुष्प जिसके मस्तकमें स्थित है उसकी सबसे अधिक और पूजा पहले क्यों नहो ॥ १४ ॥ तुम प्रारब्धसे वंचित

हुए हो दैवही बलवान है भाग्यहीन मनुष्यको देवताभी रक्षा करनेको समर्थ नहीं ॥ १५ ॥ कृष्णनिर्माल्यके वर्जनसे अब लक्ष्मी चलीगई अब हमारे और गुरुके सहित वैकुण्ठको चलो ॥ १६ ॥ वहां श्रियानाथको सेवनकर मेरे वरसे लक्ष्मीकी प्राप्ति होगी ब्रह्माजी यह कह सब देवतादिके सहित ॥ १७ ॥ वहां जाय सनातन परब्रह्म तेजस्वरूप अपने तेजसे प्रकाशमान तेजस्वरूपको देखकर ॥ १८ ॥ ग्रीष्म मध्याह्न मार्तण्डके समान सौ कोटिसूर्यकी प्रभावाली, कांति शान्ति अनादि मध्यांत लक्ष्मीकान्त अनंत ॥ १९ ॥ चारभुजावाले पार्षद और सरस्वतीसे युक्त भक्तिपूर्वक चारवेद और गंगासे परिवेष्टित ॥ २० ॥ और ब्रह्मा आदि सब देवता उनको प्रणाम करते हुए और भक्तिसे नम्रहो नेत्रोंमें आंसू भर परमेश्वरकी स्तुति करने लगे ॥ २१ ॥ और स्वयं ब्रह्माजी हाथ जोडकर अपना वृत्तान्त कहने लगे और अपने अधिकारसे च्युत होनेसे देवता भी सब रोने लगे ॥ २२ ॥ उन्होंने विपद्ग्रस्त भयाकुल देवताओंको देखा, जो रत्नभूषण शून्य वाहनादिसे वर्जित थे ॥ २३ ॥ शोभासे शून्य लक्ष्मीसे हत, प्रभारहित भयभीत हुए देवताओंको कातर देखकर भयमोचन भगवान् कहने लगे ॥ २४ ॥ श्रीभगवान् बोले हे ब्रह्मन्! हे देवताओ! मतडरो मेरे होते तुमको भय नहीं है मैं परम ऐश्वर्य बढानेवाली अचललक्ष्मीको दूंगा ॥ २५ ॥ परन्तु इस समय समयोचित मेरे वचनको सुनो जो हित सत्य सारभूत और परिणाममें सुख करनेवाले हैं ॥ २६ ॥ असंख्य विश्वमें स्थित प्राणी मेरे आधीन हैं परन्तु यथा तथा मैं भक्तोंके विषयमें पराधीन हूं ॥ २७ ॥ मेरे भक्त निरंकुश हैं वह जिस जिसपर रुष्ट होंगे मैं लक्ष्मीके सहित उनके यहां स्थित नहीं रहता हूं ॥ २८ ॥ दुर्वासा शंकरांश वैष्णव मेरे परमभक्त हैं उनके शापसे मैं तुम्हारे घरसे लक्ष्मीसहित चलाआया हूं ॥ २९ ॥ जहां शंखध्वनि नहीं है तुलसी और शिव शिवार्चन नहीं है तथा जहां ब्राह्मणभोजन नहीं होता वहां लक्ष्मी नहीं रहती ॥ ३० ॥ हे ब्रह्मन् जहां मेरे भक्त और मेरी निन्दा होती है वहां महारुष्ट हो महालक्ष्मी पराभवको प्राप्त होती है ॥ ३१ ॥ मेरी भक्तिसे हीन होकर जो मूढ हरिवासर एकादशीको भोजन करता है वा मेरे जन्मदिनमें भोजन करता है लक्ष्मी उनके घरसे चली जाती है॥ ३२॥ जो मेरे नामको बेचता और स्वकन्याको बेचता है तथा जहां अतिथि भोजन नहीं करते मेरी प्रिया उनके घरसे चली जाती है॥ ३३॥ जो ब्राह्मण पुंश्चलीका पुत्र है उसका पति महापापी है जो पापि-

योंके घर जाते हैं तथा जो शूद्रके श्राद्धान्नका भोजन करता है ॥३४॥ उसके यहांसे लक्ष्मी रूठकर चली जाती है जो शूद्रोंके शव जलाते हैं वह द्विजाधम भाग्यहीन हैं ॥३५॥ हे देवताओ! उसके गृहसे लक्ष्मी कमलवासिनी चली जाती है जो ब्राह्मण होकर शूद्रोंका सूपकारी तथा जो ब्राह्मण वृषवाही है ॥ ३६ ॥ उनके जलपानके भयसे भी उनके घरसे लक्ष्मी चली जाती है जिसका हृदय अशुद्ध क्रूर जो द्विज हिंसक और निन्दक है ॥ ३७ ॥ तथा जो ब्राह्मण शूद्रयाजी है हे देवी! उसके घरसे लक्ष्मी चली जाती है तथा जो अवीराका अन्न खाता है उसके घरसे लक्ष्मी चली जाती है॥ ३८॥ जो नखूनोंसे तृण छेदन करते वा उनसे जो भूमिको लिखते हैं. जहांसे ब्राह्मण निराश चले जाते हैं उनके घरसे लक्ष्मी चली जाती है ॥ ३९ ॥ जो ब्राह्मण सूर्योदयमें भोजन करते हैं जो ब्राह्मण दिनमें शयन करते हैं तथा जो दिनमें मैथुन करते हैं उनके घरसे लक्ष्मी चली जाती है ॥ ४० ॥ जो ब्राह्मण आचारहीन और शूद्रसे प्रतिग्रह लेता है जो मूढ अदीक्षित है उसके स्थानसे लक्ष्मी चली जाती है ॥ ४१ ॥ जो ज्ञानहीन गीले पैरसे नंगा होकर सोता है तथा वाचाल और निरन्तर हँसता है उसके घरले लक्ष्मी चली जाती है ॥ ४२ ॥ शिरसे तेलसे न्हाया हुआ जो दूसरेका अंग स्पर्श करै तथा जो आपने शरीरमें बाजा बजाता है उसके घरसे लक्ष्मी चली जाती है ४३ ॥ जो ब्राह्मण व्रत उपवाससे हीन और संध्यासे हीन अशुचि है तथा जो विष्णुभक्तिसे हीन है. उसके स्थानमें मेरी प्रिया नहीं रहती॥४४॥जो ब्राह्मणकी निन्दा करता और निरन्तर उनसे द्वेष करता है जो जीवहिंसक दयाहीन है उनके घरसे लक्ष्मी चली जाती है॥४५॥ जहां जहां हरिकी अर्चा और हरिका कीर्त्तन होता है वहाँ २ सर्वमंगला देवी निवास करती है ॥४६॥ हे पितामह जहाँ कृष्ण और उनके भक्तोंकी प्रशंसा है वहां कृष्णप्रिया देवी निरन्तर निवास करती है ॥ ४७ ॥ जहां शंख, शंख ध्वनि, शालिग्राम, तुलसीदल तथा भगवान्की सेवा, वंदन, ध्यान है वहां कमला निवास करती है ॥ ४८ ॥ जहां शिवलिंगार्चन और उनका सुन्दर कीर्त्तन है तथा दुर्गाका अर्चन और उनके गुणोंका गान है वहां लक्ष्मी निवास करती है ॥ ४९ ॥ जहां ब्राह्मणोंका सेवन और उनका भोजन है जहां सब देवोंका अर्चन है वहां लक्ष्मी निवास करती है॥ ५० ॥ सब देवताओंसे ऐसा कहकर रमापतिने लक्ष्मीसे कहा कि तुम अपनी कलासे क्षीर सागरमें जन्म लो ॥ ५१ ॥ जगन्नाथ इसप्रकार कहकर फिर ब्रह्मासे बोले कि,

सागरसे लक्ष्मी मथन कर देवताओंको दो ॥ ५२ ॥ हे मुने! कमलाकान्त यह कहकर अन्तःपुरमें चले गये देवता भी तत्काल क्षीरसागरको गये ॥ ५३ ॥ कूर्मको भाजन कर और मंदरको मंथान करके और शेषको मंथपाश करके सुर असुरोंने सागरमंथन किया ॥ ५४ ॥ धन्वन्तरि, अमृत, उच्चैःश्रवा, अनेक रत्न, ऐरावत हाथी सुदर्शन, लक्ष्मी उसमेंसे निर्गत हुई ॥ ५५ ॥ हे मुने! उन्होंने क्षीरोदशायीके निमित्त वनमाला दी जो विष्णु सर्वेश्वर अति मनोहर हैं उनहीको वैष्णवी सतीने माला दी ॥ ॥ ५६ ॥ फिर देवताओंसे स्तुतिको प्राप्त हो वह ब्रह्मा और शंकरसे पूजित हुई और ब्रह्माके शाप मुक्त होनेसे उन्होंने देवताओंके स्थानमें दृष्टि दी ॥ ५७ ॥ तब देवताओंने दैत्योंसे भयंकर ग्रसित अपने विषय (राज्य) को पाया. हे नारद! महालक्ष्मीके प्रसाद और वरदानसे ॥ ५८ ॥ राज्य पाया यह सब तुमसे लक्ष्मीका उपाख्यान कहा यह सुखदायक सारभूत है अब आपके क्या सुननेकी इच्छा है ॥ ५९ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषायामेकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ४२.

नारदजी बोले हे भगवन्! हरिका उत्कीर्तन और उनका ज्ञान श्रवण किया और लक्ष्मीका उपाख्यान भी सुना हे प्रभो! अब उनका स्तोत्र कहिये ॥ १ ॥ नारायण बोले इन्द्र तीर्थमें स्नानकर धुले वस्त्र पहरकर क्षीरसागरमें घट स्थापन कर छः देवताओंका पूजन करता हुआ ॥ २ ॥ गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव, शिवा इनको भक्तिपूर्वक पुष्प गंधादिसे अर्चनकर ॥ ३ ॥ परमैश्वर्यरूपिणी लक्ष्मीका आवाहन कर देवेश ब्रह्मा और अपने पुरोहितके सहित पूजा करते हुए ॥ ४ मुनि ब्राह्मण हरि गुरु इनके आगे स्थित होने में तथा ज्ञानानन्द शिव और देवादिके सुदेशमें स्थित होनेसे ॥ ५ ॥ चन्दनसे सिक्त पारिजातका फूल ग्रहण करनेपर महालक्ष्मी देवीका ध्यान करके हे नारद! उनका पूजन किया ॥ ६ ॥ जो प्रथम ब्रह्माजीको हरिने सामवेदोक्त लक्ष्मीका ध्यान कहा था वही ध्यान किया सुनिये मैं वह ध्यान आपसे कहता हूं ॥ ७ ॥ सहस्रदल कमलकी कर्णिकामें निवास करनेवाली शरत्पूर्णिमाके कोटिचन्द्रकी प्रभाको तिरस्कार करनेवाली ॥ ८ ॥ अपने तेजसे प्रज्वलित सुख

दृश्या मनोहर तत्ते सुवर्णके समान शोभावाली मूर्तिमती सती ॥ ९ ॥ रत्नभूषणोंकी शोभासे पूर्ण पीतवस्त्रसे शोभित कुछ हास्यसे प्रसन्नमुखी निरन्तर स्थिरयौवनवाली ॥ १० ॥ सब सम्पत्तिकी देनेवाली शुभ महालक्ष्मीका भजन करता हूं इस ध्यानसे उन अनेक गुणसम्पन्नका ध्यान करके ॥ ११ ॥ और सोलह उपचारसे ब्रह्मवाक्यसे पूजन कर प्रत्येक पदार्थको मंत्र पूर्वक भक्तिविधानसे दिया ॥ १२ ॥ प्रशस्त और प्रकृष्ट अनेक प्रकारके श्रेष्ठ पदार्थ अमूल्य रत्नसार जो ब्रह्माजीके बनाये हैं ॥ १३ ॥ और विचित्र आसन हे महालक्ष्मी ! ग्रहण करो और यह सबसे वंदित मनोहर शुद्ध गंगाजल है ॥ १४ ॥ यह पापरूपी ईंधनके जलानेको अग्निरूप है. हे लक्ष्मी ! इसको ग्रहण करो. यह पुष्प चंदन दूर्वादिसे संयुक्त जाह्नवी जल है ॥ १५ और इस शंखमें स्थित अर्घ्यको हे कमललोचनी ! ग्रहण करो सुगंधित पुष्पका तेल और सुगंधित आमला ॥ १६ ॥ हे हरिप्रिये ! इस देहकी सुन्दरताके बीजको ग्रहण करो हे देवी यह सूती और रेशमी वस्त्र ग्रहण करो ॥ १७ ॥ रत्न और सुवर्णके गहने देहकी शोभा बढानेवाले हैं यह श्रीकररत्न शोभाके निमित्त हैं हे देवि ! इनको ग्रहण करो ॥ १८ ॥ सम्पूर्ण सुन्दरताके बीज और सब शोभा करनेवाले वृक्षकी निर्यासरूप गंध ग्रहण करो ॥ १९ ॥ हे कृष्णकांते ! यह पवित्र धूप ग्रहण करो यह सुगंधियुक्त सुखद चंदन है इसको ग्रहण करो ॥ २० ॥ यह जगत्‌के चक्षुःस्वरूप पवित्र अंधकारनाशक सुखरूप दीपक हे सुरेश्वरि ग्रहण करो ॥ २१ ॥ अनेक उपहाररूप अनेक रससे सम्पन्न अति स्वादिष्ट नैवेद्य ग्रहण करो ॥ २२ ॥ यह अन्न ब्रह्मस्वरूप प्राणरक्षणका कारण है हे देवि इस तुष्टि और पुष्टि देनेवालेको ग्रहण करो ॥ २३ ॥ शालि अन्नसे बनाई खीर शर्करा और दूधघृतयुक्त है. हे महालक्ष्मी ! यह परम स्वादिष्ठ है इसको ग्रहण करो ॥ २४ ॥ शर्करा दूधमें पक्क सुस्वादिष्ठ मनोहर मेरा निवेदित यह स्वस्तिक अन्न ग्रहण करो ॥ २५ ॥ और भी अनेक प्रकारके पक्क मधुर अन्न मनोहर सुरभीके स्तनसे निकला स्वादिष्ठ ॥ २६ ॥ मनुष्योंका अमृतस्वरूप दूध घृतादि हे अच्युतप्रिये ! ग्रहण करो, अच्छे स्वादिष्ट रससे संयुक्त गन्नेके रससे प्रगट ॥ २७ ॥ अग्निमें पक्क अति स्वादिष्ठ गुड ग्रहण करो एवं गोधूम सस्योंका चूर्ण ॥ २८ ॥ सुपक्क गुड और गव्यसे युक्त मिष्टान्न ग्रहण करो सस्यचूर्णोद्भव पक्क स्वस्तिकादिसे युक्त ॥ २९ ॥ यह मेरे दिये नैवेद्यको भक्ति पूर्वक ग्रहण करो शीत वायुका करने

वाला और दाहमें भी परम सुखकारी ॥ ३० ॥ हे कमले देवि ! यह व्यजन और श्वेतचमर आप ग्रहण करो मनोहर ताम्बूल कर्पूरादिसे सुवासित ॥ ३१ ॥ जिह्वाकी जडताका छेदकारी ताम्बूल ग्रहण करो सुवासित सुशीतल प्यासका नाशक ॥ ३२ ॥ जगत्‌काजीवनरूप जल हे देवि ! ग्रहण करो देहकी सुन्दरताका बीज सदा शोभाका बढानेवाला ॥ ३३ ॥ कपास और रेशमी वस्त्र हे देवि ! ग्रहण करो यह स्वर्ण विकार रत्न देहकी शोभा बढानेवाले ॥ ३४ ॥ शोभाधारक श्रीकरभूषण हे देवि ! ग्रहण करो अनेक ऋतुओंमें निर्मित्त बहु शोभाकारी ॥ ३५ ॥ सुरभूप प्रियमाला हे देवि ! ग्रहण करो शुद्धिदायक शुद्धरूप सब मंगलका मंगलरूप ॥ ३६ ॥ गन्ध वस्तुओंका उद्भव परम मनोहर गंध हेदेवि ! ग्रहण करो पुण्यतीर्थका जल विशुद्ध और शुद्धिका देनेवाला है ॥ ३७ ॥ हे कृष्णकान्ते ! यह मनोहर आचमन ग्रहण करो रत्नसारादिसे निर्मित पुष्प चन्दनसे चर्चित ॥ ३८ ॥ वस्त्र भूषणोंसे भूषित शय्याको ग्रहण करो जो जो द्रव्य अपूर्व है और पृथ्वीमें अपूर्व है ॥ ३९ ॥ देवभूषणके योग्य हे देवि ! उन उन भूषणोंको ग्रहण करो हे देवपुंगव ! मूलमंत्रसे इन द्रव्योंको देकर ॥ ४० ॥ विधिपूर्वक भक्तिसे दशलक्ष मंत्रका जप करै दश लाख जपसे मंत्र सिद्धि होती है ॥ ४१ ॥ ब्रह्माका दिया मंत्र सब प्रकार कल्पवृक्ष होता है लक्ष्मी श्रीबीज मायाबीज कामबीज वाणीबीज इनका उच्चारण कर चतुर्थीविभक्ति लगावै अर्थात् कमलवासिन्यै स्वाहा ॥ ४२ ॥ यह वैदिक मंत्र राज है और प्रसिद्ध है इसी मंत्रसे कुबेरने परमऐश्वर्य पाया था ॥ ४३ ॥ राज राजेश्वर दक्ष सावर्णि मनु इसी मंगलदायक मंत्रसे सप्तद्वीपावसुमतीके पति हुए ॥ ४४ ॥ प्रियव्रत उत्तानपाद केदार नृपति हे नारद ! यह राजेन्द्र इसी मंत्रके प्रभावसे सिद्ध हुए थे ॥ ४५ ॥ मंत्रसिद्ध होनेपर महालक्ष्मीने इन्द्रको दर्शन दिया वह वर देनेको रत्नोंके सारके सिंहासनपर स्थित होकर आईं ॥ ४६ ॥ जिनकी कान्तिसे सात द्वीपकी वसुमति आच्छादित होती थीं वह श्वेत चम्पेके वर्णवाली रत्न भूषणोंसे भूषित ॥ ४७ ॥ कुछेक हास्यसे प्रसन्न मुखी भक्तोंके अनुग्रहसे कातर हुई कोटिचन्द्रमाके समान कांतिवाली रत्न मालाको धारण करती ॥ ४८ ॥ जगन्माताका दर्शन कर इन्द्र उनको सन्तुष्ट करने लगे उनका सब अंग पुलकितनेत्रोंमें जलभरि आया हाथ जोडे ॥ ४९ ॥ ब्रह्माके दिये स्तोत्रराजसे जो सर्वाभीष्ट प्रद वैदिक है स्तुति करने लगे ॥ ५० ॥ इन्द्र बोले कमल वासिनी नारायणी कृष्णप्रिया महालक्ष्मीको निरन्तर

नमस्कार है ॥ ५१ ॥ कमल लोचनी कमल मुखी पद्मासना पद्मिनी वैष्णवीके निमित्त प्रणाम है ॥ ५२ ॥ सर्व सम्पत् स्वरूपिणी सर्वाराधिनी हरिभक्ति और हर्ष दायिनीको प्रणामहै।।५३।।कृष्णके वक्षस्थलमें स्थित कृष्णेशी चन्द्र शोभा स्वरूपिणी रत्नपद्मा शोभना ॥ ५४ ॥ सम्पत्तिकी अधिष्ठात्री देवी वृद्धिरूपा वृद्धिदायीको नित्य प्रणाम है ॥ ५५ ॥ जो महालक्ष्मी वैकुंठ क्षीरसागर स्वर्ग इन्द्रके घरमें और राजोंके स्थानमें है ॥५६॥ जो गृहस्थियोंके घरकी लक्ष्मी गृह देवता है जो सागरमें प्रगट हुई सुरभी दक्षिणा और यज्ञकामिनी है ॥ ५७ ॥ तुमही अदिति देवमाता कमला कमलालया हवि देनेमें स्वाहा और कव्यदानमें स्वधा हो ॥ ५८ ॥ तुमही विष्णुस्वरूपिणी सर्वाधारा वसुंधरा हो शुद्ध सत्वस्वरूपा नारायण परायणी हो ॥ ५९ ॥ क्रोध हिंसासे वर्जित वरदायक शारदा शुभा हो तुमही परमार्थ दायिनी हरिका दासत्व देनेवाली ॥ ६० ॥ जिसके विना यह सब जगत् भस्मीभूत और असार है और जिसके विना यह सब विश्व जीताहुआही मृत है ॥ ६१ ॥ वह सबकी परामाता सबकी बंधुस्वरूपिणी तथा धर्म अर्थ काम मोक्षकी कारणरूपिणी तुमही हो ॥ ६२ ॥ जिसप्रकार माता दूध पीनेवाले बालकोंकी बालकपनमें रक्षाकरती है हे माता इसीप्रकार तुम सबकी सर्वरूपसे रक्षाकरती हो ॥ ॥ ६३ ॥ चाहै मातासे पृथक् हुआ दुधारीबालक दैववश जीवित होजाय परन्तु तुम्हारे विना कोई जीवित नहीं रहसक्ता यह सत्य है ॥ ६४॥ हे अम्बिके! प्रसन्न स्वरूपिणी तुम हमसे प्रसन्न हो हे सनातनि! हमारे वैरियोंके ग्रसे देशको हमें दीजिये ॥ ६५ ॥ जबतक मैं तुमसे हीन हूं तबतक बंधुहीन भिक्षुक हूं हेहरिप्रिये! तबहीतक सब सम्पत्तिसे हीन हूं ॥ ६६ ॥ ज्ञान धर्म और ईप्सित सौभाग्य मुझको दीजिये प्रभाव प्रताप और सब अधिकार दीजिये ॥ ६७ ॥ युद्धमें जय पराक्रम तथा परम ऐश्वर्य दो ऐसा कहकर महेन्द्रने सब देवताओंके सहित ॥ ६८ ॥ नेत्रोंमें जलभर वारंवार शिरसे प्रणाम किया ब्रह्मा शंकर शेष धर्म केशव ॥६९॥ यह सबही देवताओंके निमित्त प्रार्थना करते हुए तब देवताओंको वर और मनोहर पुष्पमाला ॥ ॥ ७० ॥ संतुष्ट होकर देवताओंकी सभामें केशवको देतीहुई हे नारद! तब सम्पूर्ण देवता संतुष्ट हो अपने २ स्थानको गये ॥ ७१ ॥ और देवीभी प्रसन्न हो क्षीरोदशायीके स्थानको गईं हे नारद! ब्रह्मा और शिवभी अपने स्थानोंको गये ॥ ७२॥ यह दोनों प्रेमसे देवताओंको शुभ आशिर्वाद देकर गये इस महापवित्र स्तोत्रको जो

तीनों संध्याओंमें पढता है ॥ ७३ ॥ वह कुबेरतुल्य महान् राजराजेश्वर होता है पांचलाख जपनेसे मनुष्योंको स्तोत्र सिद्धि होजाती है ॥ ७४ ॥ इस सिद्धस्तोत्रको जो एकमास निरन्तर पाठकरता है वह राजेन्द्र महासुखी होगा इसमें सन्देह नहीं ॥ ७५ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषायां द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ४३.

नारदजी बोले हे महाभाग हे नारायणसम हे प्रभो! तुम रूप गुण यश तेजमें नारायण ॥ १ ॥ हो हे मुने आप ज्ञानी सिद्ध और योगियोंमें श्रेष्ठ हो तुम तपस्विमुनियोंमें परे वेदविदाम्वर हो ॥ २ ॥ मैंने महालक्ष्मीका महाअद्भुत आख्यान जाना अब और भी कोई निगूढ उपाख्यान कहिये ॥ ३ ॥ जो अधिकही गोपनीय और सबके उपयोगी हो जो पुराणोंमें अप्रकाश्य और वेदोक्त धर्मसंयुक्त हो ॥ ४ ॥ नारायण बोले पुराणोंमें अनेक प्रकारके आख्यान अप्रकाशित हैं वह सुनेहुए अनेक प्रकारसे गूढ हैं ॥ ५ ॥ क्या उनमेंके सारभूत आख्यान सुननेकी तुम्हारी इच्छा है वह कितने प्रकारका गूढ तुमने सुना है ॥ ६ ॥ नारदजी बोले हविदानमें स्वाहादेवी सब कर्ममें प्रशस्त हैं पितृदानमें स्वधा और सबसे अधिक दक्षिणारूप है ॥ ७ ॥ इनका जन्म चरित फल और प्रधानता हे वेदविदाम्वर! आपके मुखसे सुना चाहता हूं ॥ ८ ॥ सूतजी बोले नारदजीके वचन सुन मुनिश्रेष्ठ हँसकर पुराणोक्त पुरानी कथा कहने लगे ॥ ९ ॥ नारायण बोले सृष्टिसे प्रथम देवता अपने आहारके निमित्त गये अर्थात् ब्रह्मलोकमें मनोहर ब्रह्मसभामें प्राप्त हुए ॥ १० ॥ हे मुने! जाकर अपने आहारके निमित्त निवेदन किया यह वार्त्ता सुन प्रतिज्ञाकर ब्रह्माजी श्रीहरिकी स्तुति करने लगे ॥ ११ ॥ नारदजी बोले यज्ञरूप परमात्मा है अर्थात् यह यज्ञ उनकी कलाही है तो यज्ञमें जो ब्राह्मण देवताओंके निमित्त हवि देते हैं क्या देवता उससे तृप्त नहीं होते ॥ १२ ॥ नारायण बोले ब्राह्मण क्षत्रिय जो भक्तिसे हवि देते हैं हे मुनिश्रेष्ठ! देवता उस दानको नहीं प्राप्त होते थे वह किसी और कोही प्राप्त होता था ॥ १३ ॥ तब देवता दुःखी होकर ब्रह्माकी सभामें गये और जाकर आहारके निमित्त निवेदन किया ॥ १४ ॥ ब्रह्माजी यह सुनकर ध्यानसे श्रीकृष्णकी शरण हुए और उनकी आज्ञासे

ध्यानमें प्रकृतिकी पूजाकी ॥ १५ ॥ प्रकृतिकी कलासे वह सर्वशक्तिस्वरूपिणी अतिसुन्दरी नवीनवया रमणीया मनोहरा ॥ १६ ॥ कुछेक हँसीसे प्रसन्नमुखी भक्तों पर अनुग्रह करनेमें तत्पर ब्रह्मासे बोली हे पद्मयोने ! वर मांगो ॥ १७॥ विधाता यह वचन सुनकर संभ्रमसे उससेबोले प्रजापति बोले हेसुन्दरि ! तुम अतिशय अग्निकी दाहिका शक्ति हो ॥ १८ ॥ तुम्हारे विना यह भौतिक अग्नि जलानेको समर्थ नहीं होती तुम्हारा नाम उच्चारणकर मंत्रान्तमें जो मनुष्य हवि देगा ॥ १९ ॥ उसको देवता आनंद पूर्वक प्राप्त होंगे वह गृहेश्वरी अग्निकी सम्पत्स्वरूपा और गृहेश्वरी है ॥२०॥ हे अंबिके ! इसप्रकारसे तुम देवता मनुष्योंकी निरन्तर पूजनीया हो ब्रह्माके वचन सुनकर वह विषण्णवदन हुई ॥ २१ ॥ और स्वयंभूसे अपना अभिप्राय कहने लगी मैं चिरकालके तपसे श्रीकृष्णका भजन करूंगी ॥ २२ ॥ हे ब्रह्मन्! उनकेविना जो कुछभी है वह भ्रमरूप है वह जगत्के विधाता शंभु मृत्युंजय विभु हैं ॥ २३ ॥ शेषहो विश्वको धारण करते धर्मरूप हो धर्मियोंके साक्षी होते देवताओंमें सबके आद्य पूज्य गणेश्वर हैं ॥ २४ ॥ जिनके प्रसादसे प्रकृति सर्वाद्या और सर्व पूज्य हुई है ऋषि और मुनियोंने सेवापूर्वक जिसको सेवन किया है ॥ २५ ॥ मैं परमभावसे उनके पादपद्मको चिन्तन करती हूं पद्ममुखी पद्मजन्मा ब्रह्मासे यह वचन कहकर भगवानके उद्देश्यसे ॥ २६ ॥ निरामय भगवान् कृष्णके निमित्त तपकरनेको गई और एकचरणसे खड़ेहोकर लक्षवर्षतक तपकिया ॥२७॥ तब प्रकृतिसे परे कृष्णका दर्शन हुआ, वह रूपिणी उनका अत्यन्त कमनीयरूप देखकर ॥ २८॥ और उनकी शोभासे कामुकी मूर्च्छित होगई तब वह सर्वज्ञ उनके अभिप्रायको जानकर उनसे बोले ॥२९॥ उन तपसे क्षीण हुई को गोदीमें बैठाकर श्रीभगवान् बोले हे वरारोहे ! तुम अंशसे मेरी पत्नी होगी॥ ३० ॥ हे कान्ते ! तुम नामसे नग्नजित्राजाकी कन्या नाग्न-जिती होगी हे भामिनी! इससमय तुम अग्निकी दाहिकारूप पत्नी हो ॥ ३१ ॥ और मेरे प्रसादसे तुम मंत्रागरूपा पूजनीया होगी अग्नि तुमको गृहेश्वरिरूपसे भक्तिभावसे पूजन करेगी ॥ ३२ ॥ और रमणीय रामा होकर रमण करोगी हे नारद ! इसप्र-कार देवीसे कहकर देव अन्तर्धान होगये ॥ ३३॥ वहां ब्रह्माकी आज्ञासे व्याकुली-भूत हुए अग्निदेवता आये सामवेदोक्तध्यानसे जगदम्बिकाका ध्यान करके ॥ ३४॥ मंत्रपूर्वपाणिग्रहणकर संतोष करतेहुए और दिव्य सौवर्षतक रामाके साथ रमण करते हुए ॥ ३५ ॥ अत्यन्त निर्जनदेश संभोगमें सुखका देनेवाला हुआ तब

अग्निके तेजसे देवीके गर्भकी स्थिति हुई ॥ ३६ ॥ देवीने बारह वर्षतक उस गर्भको धारण किया और फिर रमणीय मनोहर पुत्रोंको प्रगट किया ॥ ३७ ॥ दक्षिणाग्नि गार्हपत्य आहवनीय अग्नि यह क्रमसे हुए ऋषि मुनि और क्षत्रियादि ब्राह्मण ॥ ३८ ॥ यह स्वाहान्त मंत्रको उच्चारणकर हविर्दानादि करते हुए, जो यह प्रशस्त स्वाहायुक्त मंत्र ग्रहण करता है ॥ ३९ ॥ मंत्रग्रहणमात्रसे उसको सब सिद्धि होती है, जैसे विषहीन सर्प और वेदहीन ब्राह्मण है ॥ ४० ॥ जैसे पतिकी सेवासे विहीन स्त्री, विद्याहीन जैसे पुरुष, जैसे फलशाखाहीन निन्दित वृक्ष ॥ ४१ ॥ इसीप्रकार स्वाहा-हीन मंत्र फलदायक नहीं होता इससे सब ब्राह्मण संतुष्ट हुए देवताओंने आहुति ग्रहणकी ॥ ४२ ॥ स्वाहांत मंत्रलगाकर ही सब सफल होजाता है यह आपसे सब उत्तम स्वाहाका उपाख्यान कहा है ॥ ४३ ॥ यह सुख और मोक्षदायक सारभूत है अब क्या सुननेकी इच्छा है नारदजी बोले हे मुनीश्वर! स्वाहाकीपूजा विधान ध्यान स्तोत्र ॥ ४४ ॥ जिसकेद्वारा अग्निने स्तुतिकी थी सो आप कहिये श्रीनारायण बोले सामवेदोक्त ध्यान स्तोत्र पूजाका विधान ॥ ४५ ॥ कहताहूं सो सावधान होकर आप श्रवण करो सब यज्ञके आरंभकालमें शालिग्राम तथा घटमें ॥ ४६ ॥ यत्नपूर्वक स्वाहाको पूजनकरके फलप्राप्तिके निमित्त यज्ञकरै स्वाहाअंगसे युक्त मंत्र सिद्धिस्वरूप है ॥ ४७ ॥ सिद्ध और मनुष्योंको सिद्धकरनेवाला कर्मका फलदेने-वाला परम शुभ है इस प्रकार ध्यानकर मूलमंत्रादिसे पाद्यादिक दे ॥ ४८ ॥ तो स्तुतिकरनेसे सब सिद्धिहोती है अब मूलमंत्रको सुनो ॐ ह्रीं श्रीं वह्निजायै देव्यै स्वाहा ॥ ४९ ॥ जो इसप्रकार भक्तिसे पूजन करते हैं उनको सब सिद्धि होती है अग्निबोले स्वाहा वह्निप्रिया वह्निजाया संतोषकारिणी ॥ ५० ॥ शक्तिक्रिया काल-दात्री परिपाककरी ध्रुवा सदा मनुष्योंकी गति दाहिका दहनमें समर्थ ॥ ५१ ॥ संसारकी साररूप घोरसंसारकी तारनेवाली देवी जीवनरूप, देवपोषणकारिणी ॥ ॥ ५२ ॥ जो भक्तिपूर्वक इन सोलह नामोंको पढता है उसको इस लोक पर-लोकमें सर्व सिद्धि होती है ॥ ५३ ॥ अंगहीन न होकर उसके सब कर्म शुद्ध होते हैं इसके पाठसे अपुत्रके पुत्र भार्याहीनके भार्या प्राप्त होती है ॥ ५४ ॥ वह रंभाके समान अपनी कान्ताको प्राप्त होकर सुख पाता है ॥ ५५ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधेभाषायां त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ४४.

श्रीनारायण बोले हे नारदजी! सुनो उत्तम स्वधाउपाख्यान कहता हूं यह पितरों-का तृप्तिकारी श्राद्धान्नका फल बढानेवाला है ॥ १ ॥ जगत्के विधाताने सृष्टिकी आदिमें पितृगणोंकी सृष्टिकी आदिमें जगत्के विधिने पितृगणोंकी रचनाकी है उनमें चार मूर्त्तिमान् और तीन तेजस्वरूपा है ॥ २ ॥ सात पितृगणोंको सुखरूप मनोहर देखकर विधाताने श्राद्ध तर्पण पूर्वक उनके आहारकी सृजनाकी ॥ ३ ॥ स्नान तर्पणपर्यन्त श्राद्ध और देवपूजन पंचायतन पूजन तीनो संध्या और आह्निककर्म जैसे शास्त्रमें श्रुत हुआ है ॥ ॥ ४ ॥ जो ब्राह्मण नित्य तीनों संध्याओंमें श्राद्ध तर्पण नहीं करते तथा बलि और वेदध्वनि जिनके नहीं वह विषहीन सर्पके समान है ॥ ५ ॥ जो देवीकी सेवासे विहीन है और भगवान्को विना निवेदन किये खाता है. हे नारद! भस्मपर्यंत उसको सूतकही रहता है वह कर्मके योग्य नहीं रहता ॥ ६ ॥ ब्रह्मा पितरोंके श्राद्धादि निर्माण करके पितरोंके निमित्त प्राप्तहुए उस समय पितर ब्राह्मणादिके दिये अन्नको नहीं पाते थे ॥ ७ ॥ तब वे सब क्षुधित हो ब्रह्माकी सभामें गये और उस जगत्के विधातासे निवेदन करनेलगे ॥ ८ ॥ ब्रह्माजीने मनोहर एक मानसी कन्या प्रगटकी जो रूप यौवनसे सम्पन्न सौ चन्द्रमाके समान कान्तिमान थी॥ ९॥ विद्यावान् गुणवान् अतिरूप सम्पन्न सती श्वेतचम्पकके वर्णके समान रत्नभूषणोंसे भूषित ॥ १० ॥ विशुद्ध प्रकृतिका अंश मन्द हँसनयुक्त वरदायक शुभ स्वधानामवाली सुरती लक्ष्मीके लक्षणसे संयुक्त ॥ ११ ॥ शतपद्मके पदमें चिह्नवाली चरणकमलोंके विलाससे युक्त पितरोंकी पत्नी पद्मास्या पद्मजा पद्मलोचना ॥ १२ ॥ उस तुष्टिरूपिणीको ब्रह्मा जीने पितरोंको दिया और ब्राह्मणोंको गोपनीय उपदेश किया ॥ १३ ॥ इस कारण स्वधारूपमंत्रको उच्चारण कर पितरोंको अन्न देना चाहिये क्रमसे विप्रोंने इस दानको दिया ॥ १४ ॥ इससे देवताओंके दानमें स्वाहा और पितृदानमें स्वधा कही जाती है और दक्षिणा सर्वत्र शस्त है अदक्षिणयज्ञ हत होता है ॥ १५ ॥ पितर देवता विप्र मुनि मनु यह सब शांत स्वधाको परम आदरसे पूजनकर स्तुति करते हुए ॥ १६ ॥ और देवादि संतुष्ट होकर पूर्ण मनोरथ हुए तथा विप्रादि और [illegible]वीके वरदानसे भागभोजी हुए ॥ १७ ॥ यह सब स्वधाका करते हुए ॥ तुमसे कहा यह सबका तुष्टि करनेवाला है फिर और

क्या सुननेकी इच्छा है ॥ १८ ॥ नारदजी बोले हे महामुने ! स्वधा पूजा विधान ध्यान स्तोत्र यह आपसे सुन्नेकी इच्छा करता हूं हे वेदविदाम्वर ! आप कहिये ॥ १९ ॥ नारदजी बोले हे ब्रह्मन् ! वेदोक्त सब मंगलका ध्यान यह तुम सब जान्ते हो वृद्धिके लिये सब जान्ते हो ॥ २० ॥ शरदकृष्णत्रयोदशी मघा नक्षत्रयुक्त श्राद्धके दिनमें यत्नपूर्वक स्वधाका पूजन कर श्राद्ध आरंभ करै ॥ २१ ॥ जो ब्राह्मण विना स्वधाके अर्चन किये अहंकारसे श्राद्ध करता है वह श्राद्ध और तर्पणका फल भागी नहीं होता है ॥ २२ ॥ ब्रह्माकी मानसी कन्या जो निरन्तर स्थिर योवनवाली है देवता पितरोंकी पूज्य श्राद्धका फल देनेवालीको मैं भजन करता हूं ॥ २३ ॥ इसप्रकार शिला वा मंगल घटमें ध्यान करके मूल मंत्रसे पाद्यादिक उसके निमित्तदे ऐसा श्रुतिमें कहा है ॥ २४ ॥ ओं ह्रीं श्रीं क्लीं स्वाधादेव्यै स्वाहा इसप्रकार उच्चारण और पूजन करके उनको प्रणाम करै ॥ २५॥ हे मुनिश्रेष्ठ हे विशारद ! आप स्तोत्रको सुनिये जो पहले मनुष्योंको वांछादायक ब्रह्माजीने कहा है॥ २६॥नारायण बोले स्वधाके उच्चारण मात्रसेही मनुष्योंको तीर्थ स्नानका फल होता है और सब पापसे मुक्त होकर वाजपेयका फल मिलता है ॥ २७ ॥ जो तीनवार स्वधा ३ उच्चारण करता है वह श्राद्ध और बलितर्पणके फलको प्राप्त होता है ॥ २८ ॥ श्राद्धकालमें सावधान हो जो स्वधास्तोत्रको सुनता है उसको निःसन्देह श्राद्धका फल प्राप्त होता है ॥ २९ ॥ स्वधा स्वधा स्वधा इस प्रकार जो तीनों संध्याओंमें पढ़ता है वह साध्वी पुत्र गुणयुक्त विनीत प्रियाको प्राप्त होता है ॥ ३० ॥ तुम पितरोंकी प्राणतुल्या द्विजोंकी जीवन रूपिणी हो-श्राद्धकी अधिष्ठातृदेवी श्राद्धादिके फल देनेवाली हो ॥ ३१ ॥ तुम नित्य सत्य-रूपा पुण्यरूपा हो. हे सुव्रते ! आविर्भाव और तिरोभावमें तुम्हारी सृष्टि और प्रलय होती है ॥ ३२ ॥ ओं स्वस्ति नमः स्वाहा स्वधा दक्षिणा तुम हो चारों वेदोंमें श्रेष्ठ कर्मद्वारा तुमही निरूपित हुई हो ॥ ३३ ॥ ईश्वरने यह कर्म पूर्त्तिके अर्थही निर्माण किये हैं इसप्रकारसे ब्रह्मा कथन कर ब्रह्मलोककी सभामें॥ ३४ ॥ स्थित हुए उस समय सहसा स्वधा प्रगट हुई तब उस कमलाननाको ब्रह्माजीने पितरोंको दिया ॥ ३५ ॥ उसको प्राप्त हो पितृगण परमहर्षित होकर अपने स्थानको गये इस स्वाधा स्तोत्रको जो बडापवित्र कोई सावधान हो सुन्तेहैं॥ ३६॥ वह मानो सब तीर्थोंमें स्नान करके वांछित फलको प्राप्त होते हैं ॥

इति देवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ४५.

श्रीनारायण बोले स्वाहा और स्वधाका आख्यान सुनाया जो अत्यन्त श्रेष्ठ है अब दक्षिणाख्यान कहता हूं सावधान होकर सुनो ॥ १ ॥ गोलोकमें एक सुशीला नामक गोपी हरिको बहुत प्यारी थी वह राधाकी प्रधान सखी धन्यामान्या और अति मनोहरा थी ॥ २ ॥ वह बहुत सुन्दरी रामा सुभगा सुदती सती विद्यावती गुणवती तथा अति रूपवती थी ॥ ३ ॥ कलावती कोमलांगी कांता कमललोचना सुश्रोणी सुस्तनी श्यामा शरीर शोभामें वट वृक्षके समान शोभित ॥ ४ ॥ कुछेक हास्यसेही प्रसन्नमुखी रत्नोंके अलंकारोंसे युक्त श्वेतचंपकके वर्णकी समान कान्तिशाली बिम्बोष्ठी चारुमृगलोचनी ॥ ५ ॥ कामशास्त्रमे निपुण कामिनी हंसगामिनी भावमें अनुरक्त भावकी ज्ञाता कृष्णकी प्रिया भामिनी ॥ ६ ॥ रसकी ज्ञाता रासमें रसिक तथा रासेशके रसमें उत्सुक राधाके सन्मुख हरिके वाम अंगमें स्थित हुई ॥ ७ ॥ भयसे मधुसूदन नम्रमुख हुए गोपियोंमें श्रेष्ठ राधाको सन्मुख देखकर॥८॥ जो कामिनी क्रोधसे लाल मुख किये लाल कमलके समान नेत्र कोपसे कंपित शरीर किये होठ फडकते हुए ॥ ९ ॥ बडे वेगसे राधाको गमन करती जानकर विरोधसे भीत हो भगवान् अन्तर्धान हुए ॥ १० ॥ शान्तशरीर सत्वविग्रह कृष्णको गमन करते देखकर सुशीलादि गोपी भयसे कंपित हुईं ॥ ११ ॥ गोपियोंके लक्ष कोटि समूह उन लम्पटको देखकर भीत हो हाथ जोडे भक्तिसे नम्र कंधे किये ॥ १२ ॥ रक्षा करो २ ऐसे बार २ देवीसे कहने लगे भयसे उनके चरण कमलकी शरणमें प्राप्त हुईं ॥ १३ ॥ सुदामाको आदिले तीनलाखकोटि गोप हे नारद ! भयसे यह सब उनके शरणागत हुए ॥ १४ ॥ स्वामीको द्रुत वेगसे गमन करता देखकर तथा पलायन करती उस सुशीला सहचरीको देखकर परमेश्वरीने शापदिया ॥ १५॥ यदि यह गोपी आजसे कभी गोलोकमें आवेगी तौ तत्काल भस्म हो जायगी॥ १६॥ देवदेवेश्वरीने क्रोधसे यह वचन कहकर रासेश्वरीने रासके मध्यमें रासेशको बुलाया ॥ १७ ॥ तब आगे कृष्णको न देखकर विरहसे कातर राधाने एकक्षणको कोटि युगके समान जाना ॥ १८ ॥ हे कृष्ण हे प्राणनाथ ईश प्राणाधिक प्रिय प्राणके अधिष्ठातृदेवता ! आओ तुम्हारे विना प्राण जाते हैं ॥ १९ ॥ पतिके सौभाग्यसेही दिन दिन स्त्रीका गर्व बढता है और बडा सुख होता है इस कारण धर्मसे उसको सदा

सेवन करै ॥ २० ॥ कुलस्त्रियोंका पतिही बंधु अधिदेवता सदा गति है परमसम्पत्ति स्वरूप मूर्तिमान भोगदायक है ॥ २१ ॥ धर्म सुख प्रीति और सदा शांतिका देने वाला है सन्मानसे दीप्तिमान मानदायक मानका खण्डन करनेवाला है ॥ २२ ॥ यह स्वामी सारसे भी सारतर बंधुओंकी बंधुताका बढानेवाला स्त्रियोंको भर्त्ताकी समान कहीं दूसरा बंधु नहीं है ॥ २३ ॥ स्वामी भरणकरनेसे भर्ता और पालनसे पति कहाता है शरीरका ईश होनेसे स्वामी और कामदायक होनेसे कान्त कहाता है ॥ २४ ॥ सुखवृद्धिकरनेसे बंधु और प्रीतिदानसे प्रिय कहाता है ऐश्वर्यदानसे ईश और प्राणेश होनेसे प्राणनायक होता है ॥ २५ ॥ रतिदानसे रमण, इससे अधिक कोई प्रिय नहीं इसकारण यह प्रियात्पर है स्वामीके वीर्यसेही पुत्रहोता है इसकारण इसको प्रिय कहते हैं ॥ २६ ॥ कुलस्त्रियोंको स्वामी सौ पुत्रोंसेभी अधिक प्रिय है और असत्कुलकी स्त्री अपने स्वामीकी महिमा नहीं जान्ती ॥२७॥ सब तीर्थोंमें स्नान, सब यज्ञोंकी दक्षिणा, पृथ्वीकी परिक्रमा, सम्पूर्ण तप २८ ॥ सब व्रत और महादान और जितने प्रसिद्ध उपवास हैं ॥ २९ ॥ गुरु ब्राह्मण तथा वेदकी सेवा स्वामीकी पादसेवाकी सोलहवीं कलाकेभी योग्य नहीं है ॥ ३० ॥ गुरु विप्रदेवसेवाओंमें गुरु सबसे अधिक है कारण कि पुरुषोंको विद्या दान करता है, इसी प्रकार कुलस्त्रियोंको स्वामी प्यारेहैं ॥ ३१ ॥ लक्षकोटि गोपी और गोप असंख्य ब्रह्माण्ड और उनकी स्थिति ॥ ३२ ॥ जिसके प्रसादसे विश्वादि गोलकान्तोंकी ईश्वरी हूं मैं उस स्वामीको नहीं जान्ती स्त्रियोंका स्वभाव बडा दुरव-गाह है ॥ ३३ ॥ यह कहकर राधिकाने भक्तिसे कृष्णका ध्यान किया और प्रेमसे रुदन कर नाथ २ कहने लगी ॥ ३४ ॥ हे रमण ! मैं दीना तुम्हारे वियोगसे दुःखी हूं मुझे दर्शन दो हे मुने! इसप्रकार तो राधा व्याकुल हुई और उधर वह देवी दक्षिणा गोलोकसे भ्रष्ट हो ॥३५॥ महातप करके लक्ष्मीके शरीरमें प्रवेश करगई तब सम्पूर्ण देवता बडा दुस्तर यज्ञ करके भी॥ ३६॥उसका फल न पातेहुए तब दुःखी हो ब्रह्माजीके समीप गये तब विधाताने उनका निवेदन सुनकर देवादिके जगत्पतिका ॥ ३७ ॥ बहुत कालतक ध्यान करके उनकी आज्ञा पायी कि मैं तुम्हारा कार्य करूंगा तब नारायण भगवान्ने महालक्ष्मीके शरीरसे ॥३८॥ निकालकर मनुष्योंकी लक्ष्मी दक्षिणा नाम उनको दी ब्रह्माजीने यज्ञके पूर्ण करनेमें और कर्मोंकी पूर्त्तिमें उसको दिया ॥३९॥ विधिपूर्वक यज्ञको पूजन कर परम प्रसन्नतासे उनको सन्तुष्ट

किया जो कि तप्त सुवर्णके वर्णकी समान कोटि चन्द्रकी समान प्रभावाली ॥ ४० ॥ अतिही कमनीय सुन्दरी मनोहर कमलमुखी कोमलांगी कमलकी समान दीर्घ लोचनी ॥ ४१ ॥ विधातासे पूजित लक्ष्मीके अंगसे प्रगट अग्निसे शुद्ध पट्ट वस्त्रधारिणी बिम्बा फलकी समान ओष्ठवाली सुन्दर दांतवाली सती ॥ ४२ ॥ मालतीमालासे गुंथे वेणीके जूडेको धारण किये कुछेक हास्यसे प्रसन्नमुखी रत्नोंके भूषणोंसे भूषित ॥ ४३ ॥ सुवेष सुस्नात मुनियोंका मन भी मोहनेवाली कस्तूरीके बिन्दुओंके सहित सुगंधित चन्दन लगाये ॥ ४४ ॥ सिन्दूरके अल्प २ बिन्दुधारे उज्वल अच्छे नितम्बोंसे सम्पन्न पुष्टश्रोणी और स्तनोंसे युक्त ॥ ४५ ॥ कामदेवके आधाररूपवाली कामबाणसे पीडित इसप्रकार उस मनोहारिणीको देखकर यज्ञको मूर्छा प्राप्त हुई ॥ ४६ ॥ और विधातासे पूर्वमें बोधित होनेके कारण उसको भार्यात्वमें ग्रहण किया ॥ ४७ ॥ उसके साथ यज्ञ परम आनंदसे विहार करने लगा तब उस देवीने बारह दिव्य वर्षतक गर्भ धारण किया ॥ ४८ ॥ तब सब कर्मोंके फलरूप पुत्रको उत्पन्न किया कर्मके पूर्ण होनेमें वह पुत्र फलदायक होता है ॥ ४९ ॥ यज्ञ अपनी दक्षिणा पत्नी और फलरूपपुत्रके सहित यज्ञकर्म करनेवालोंको फलका दाता है ऐसा वेदवादी कहते हैं ॥ ५० ॥ इसप्रकार यज्ञ दक्षिणा और फलदायक पुत्रको प्राप्त होकर हे नारद सबको कर्मोंका फल देने लगे ॥ ५१ ॥ तब देवादि संतुष्ट होकर पूर्णमनोरथहुए और सब अपने २ स्थानमें गये यह हमने धर्मके मुखसे सुना है ॥ ५२ ॥ कर्ता कर्म करके शीघ्र दक्षिणाको देतो हे मुनिराज ! उसी समय वह उसके फलको प्राप्त होता है ॥ ५३ ॥ कर्मी कर्मके पूर्ण होनेमें उसी समय यदि दक्षिणा ब्राह्मणोंको प्रारब्धवश वा अज्ञानसे न दे ॥ ५४ ॥ तो एक मूहूर्तके बीतनेमें वह दूनी होजाती है एक रातके बीतनेमें सौगुणी होजाती है ॥ ५५ ॥ तीन रातमें उससे सौगुणी और सप्ताहमें उससे द्विगुणी होती है और एक महीना बीतनेमें ब्राह्मणोंकी दक्षिणा लाखगुणी हो जाती है ॥ ५६ ॥ एकवर्ष बीतनेपर फिर तीनकोटि गुणी होती है और उसके विना यजमानोंका सब कर्म निष्फल होजाता है ॥ ५७ ॥ वह मनुष्य ब्रह्मस्वहारी होकर कर्मके योग्य नहीं होता उस पापसे पातकी होकर दरिद्र और व्याधियुक्त होता है ॥ ५८ ॥ लक्ष्मी दारुण शाप देकर उसके घरसे चली जाती है उसका दिया श्राद्ध तर्पण पितर ग्रहण नहीं करते ॥ ५९ ॥ इसप्रकार देवता उसकी पूजा और अग्नि आहुती ग्रहण नहीं करते कर्म

समय मनसे संकल्पित दक्षिणारूप दान यजमान नदे तथा ग्रहीता ब्राह्मण न ले॥ ६०॥ वह टूटी रस्सीवाले घटकी समान दोनोंही नरकको जाते हैं और मांगनेपरभी यदि दक्षिणा नदे ॥ ६१ ॥ तौ ब्राह्मणका धन हरण करनेका प्रायश्चित्त लगता है इससे वह अवश्य कुंभीपाक नरकमें जाता है ॥ ६२ ॥ फिर वह व्याधियुक्त दरिद्री चांडाल होता है सात आगे और सात पीछेके पुरुषाओंको नरकमें डालता है ॥ ६३ ॥ हे नारद ! यह तौ आपसे कहा अब और क्या सुननेकी इच्छा है नारदजीबोले हे मुने ! जो कर्म दक्षिणाहीन है उसका फल कौन भोगता है॥ ६४॥ और यज्ञकी कीहुई दक्षिणाकी पूजाविधि कहिये नारायण बोले हे मुने अदक्षिण कर्मका फलही कहां है ॥ ६५ ॥ दक्षिणावाले कर्मकाही फल मिलता है और जो कर्म दक्षिणाहीन है उसका फल बलि भोगते हैं ॥ ६६ ॥ यह पहले वामनजीने वलिको वर दिया है कि अश्रोतृयके श्राद्धका द्रव्य तथा विना श्रद्धाका दिया हुआ ॥ ६७ ॥ तथा वृषली ब्राह्मणोंका जो कुछ पूजादि द्रव्य है वा अशुद्ध असत् ब्राह्मणोंका यज्ञ अशुचिका पूजन ॥ ६८ ॥ तथा गुरुके अभक्तका कर्म बलि भोगता है इसमें सन्देह नहीं दक्षिणाका जो ध्यान स्तोत्र पूजाविधान है ॥ ६९ ॥ वह सब कण्व शाखामें लिखा है सुनो पहले वह यज्ञ अपनी कर्मदक्ष दक्षिणाको प्राप्त होकर ॥ ७० ॥ उसके स्वरूपसे मोहित हो कामसे व्याकुलीभूत मनसे प्रार्थना करने लगा यज्ञबोला पहले तुम गोलोककी गोपी सब गोपियोंमें श्रेष्ठ थीं ॥ ७१ ॥ और श्रीकृष्णकी सखी राधाकी समान प्रिय थीं कार्तिकी पूर्णमासीको राधाके महोत्सव रासमें ॥ ७२ ॥ लक्ष्मीके दक्षिण अंशसे प्रगट हुई इससे दक्षिणा कहाती हो हे शोभने पहले तुम शीलसे सुशील नामसे विख्यात थी ॥ ७३ ॥ लक्ष्मीके दक्षिणांश भागवाली तुम राधाके शापसे दक्षिणा हुई हो तुम गोलोकसे भ्रष्ट होकर हमारे भाग्यसे यहां प्राप्त हुई हो ॥ ७४ ॥ हे महाभागे कृपाकरके मुझको अपनास्वामीकरो हे देवि कर्मियोंके कर्मकी फलदाता तुम्हीं हो ॥ ७५ ॥ तुम्हारे विना सबके सब कर्म निष्फल होते हैं और तुम्हारे विना कर्मियोंके कर्म शोभा नहीं पाते ॥ ७६ ॥ ब्रह्मा विष्णु महेशादि दिक्पाल तुम्हारे विना कर्मके फल देनेको समर्थ नहीं हैं ॥ ७७ ॥ कर्मरूपी स्वयं ब्रह्माजी हैं और फलरूपी महेश्वर हैं यज्ञरूपी विष्णु मैं हूं और तुम इनकी साररूपिणीहो ॥ ७८ ॥ फलदायक परब्रह्म निर्गुण पराप्रकृति है, स्वयं कृष्ण भगवान् तुम्हारेसहित कार्यमें समर्थ हैं ॥ ७९ ॥ हे कान्ते तुमही हमारे जन्म

जन्मान्तरकी शक्तिहो हे वरानने तुम्हारे सहितहीमैं सब कर्म करनेमें समर्थ हूं ॥ ॥८०॥ यज्ञके अधिष्ठात्री देवता यह कहकर उसके आगेस्थित हुये तब वह कमला की कला उनपर संतुष्ट हुई और उनको भजने लगी ॥ ८१ ॥ यह दक्षिणास्तोत्र जो कोई यज्ञकालमें पढता है निःसन्देह उसको सब यज्ञोंका फल प्राप्त होता है ॥ ॥८२॥राजसूय, वाजपेय, गोमेध, नरमेध, अश्वमेध,लांगल, श्रीकर, यशस्कर, वैष्णव यज्ञ॥८३॥धनदायक, भूमिदायक, पूर्त, फलद, गजमेध, लोहयज्ञ, स्वर्णयज्ञ, रत्नयज्ञ, ताम्रयज्ञ ॥८४॥ शिवयज्ञ, रुद्रयज्ञ, शक्रयज्ञ, बंधुकयज्ञ, वृष्टिमें वरुणयाग, कंडक, वैरि मर्दन ॥ ८५ ॥ शुचियज्ञ धर्मयज्ञ पाप मोचन यज्ञ ब्रह्माणी यज्ञ कर्मयाग योनियाग भद्रकयाग ॥ ८६ ॥ यदि इनयागोंके आरंभमें इसस्तोत्रको जो कोई पढै निश्चयही उसका सब कर्म निर्विघ्न होता है ॥ ८७ ॥ यह स्तोत्र तौ कहा अब ध्यान और पूजा विधि सुनो शालिग्राम वा घटमें दक्षिणाको पूजन करै ॥ ८८ ॥ लक्ष्मीके दक्षिणांशसे समुत्पन्न कमलाकी कला दक्षिणा सब कर्ममें दक्ष औरसबकर्मोंका फल देने वाली ॥ ८९ ॥ विष्णुकी शक्तिस्वरूपा पूजित और विदित शुद्धिदा शुद्धिरूपा सुशीला शुभदायकाका मैं भजन करता हूं ॥ ९० ॥ वरदायकाको इसप्रकार ध्यान कर मूलमंत्रसे पूजन करै और हे नारदजी! वेदानुसार देवीको पाद्यादिक देकर॥९१॥ ओं श्रींक्लींह्रींदक्षिणायैस्वाहा इसप्रकारके मंत्रसे विचक्षण पुरुष परम भक्तिसे सर्वपूजित दक्षिणाका पूजन करै॥९२॥हे ब्रह्मन्! यह आपसे दक्षिणाका आख्यान कहा यह सुखदायक प्रीतिदायक और सबकर्मोंका फलदेनेवाला है ॥ ९३॥ जो सावधान होकर इस दक्षिणाके आख्यानको सुनते हैं भारत भूमिमें वह कर्म अंगहीन नहीं होता है ॥ ९४ ॥ अवश्यही अपुत्र पुरुषके निश्चित गुणसम्पन्न पुत्र होता है भार्याहीन पुरुष सुशील सुन्दर भार्याको प्राप्त करता है ॥ ९५ ॥ जो सुन्दरमुखी पुत्र प्रगट करनेवाली पतिव्रता शुद्ध कुलजा श्रेष्ठवधू होती है ॥९६॥ विद्याहीनको विद्या और धनहीनको धन मिलताहै भूमि हीनकोभूमि और प्रजाहीनको प्रजा प्राप्त होती है॥९७॥ संकटमें भाइयोंके वियोग विपत्ति बंधनकी उपस्थितिमें एकमहीने इसस्तोत्रको सुनकर संकटसे मुक्त हो जाता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ९८ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषायां पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४५॥

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ४६.

नारदजी बोले अनेक देवियोंका आख्यान सुना हे वेदविदांवर ! अब दूसरी देवियोंका चारित वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ नारायण बोले हे ब्रह्मन् ! वेदमें पृथक् पृथक् सबके चारित्र कहे हैं तुम पूर्वोक्त देवियोंमें किसके चरित्र सुनना चाहते हो ॥ २ ॥ नारदजी बोले षष्ठी, मंगली, चण्डी और मनसा प्रकृतिकी कला हैं इनकी उत्पत्ति और चारित्रमें तत्वसे सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ ३ ॥ नारायण बोले प्रकृतिका षष्ठांशही षष्ठी है यह बालकोंकी अधिष्ठात्री विष्णुकी माया बालकोंको देनेवाली है ॥ ४ ॥ यह देवसेनानामक मातृकाओंमें विख्यात है यह प्राणसे अधिक प्रिय स्कंदकी साध्वी सुव्रता भार्या है ॥ ५ ॥ बालकोंको आयु देनेवाली धात्री रक्षणकरनेवाली है योगसे सिद्ध यह योगिनी निरन्तर बालकके पार्श्वभागमें स्थित रहती है ॥ ६ ॥ हे ब्रह्मन् उसकी पूजाविधि और इतिहास सुनो जो पुत्रदायक सुखदायक कथा धर्मराजके मुखसे सुनी है ॥ ७ ॥ स्वायंभु मनुके पुत्र राजा प्रियव्रत हुए यह तपस्यामें सदा रत योगीन्द्र भार्या परिग्रह न करते हुए ॥ ८ ॥ तब ब्रह्माजीकी आज्ञासे स्त्री ग्रहण की परन्तु चिरकालतक भी कोई पुत्र नहीं हुआ ॥ ९ ॥ तब कश्यपजीने उनसे पुत्रेष्टि यज्ञ कराया मुनिने यज्ञचरु उनकी मालिनी नामक स्त्रीको दिया ॥ १० ॥ उस चरुके भक्षण करतेही उसको तत्काल गर्भ रहा तब देवीने बारह वर्षतक गर्भको धारण किया ॥ ११ ॥ तब उसके सुवर्णकी समान कांतिमान पुत्र जन्मा जो सब अवयवसे सम्पन्न मृत उत्तार नेत्रयुक्त था ॥ १२ ॥ उसको मृतक देख सब स्त्री आदि हा हा कारसे रोने लगी और पुत्रशोकसे माता मूर्छित होगई ॥ १३ ॥ हे मुने ! उस बालकको लेकर राजा श्मशानमें गये और उसे हृदयसे लगाय वनमें रुदन करने लगे ॥ १४ ॥ राजाने बालकको न छोडा और प्राणत्यागन करनेपर उतारू हुआ और दारुण शोकसे ज्ञानयोगको भूलगया ॥ १५ ॥ इसी समय उसने एक विमान देखा जो शुद्ध स्फटिकमणिकी समान मणिश्रेष्ठोंसे बना था ॥ १६ ॥ निरन्तर तेजसे प्रकाशमान क्षौमवस्त्रोंसे शोभित और अनेकप्रकारकी चित्र विचित्र फूलमालाओंसे विराजित ॥ १७ ॥ उसमें एक बडी मनोहरा देवीका दर्शन किया जो श्वेत चंपककी समान वर्ण सम्पन्न निरन्तर स्थिर यौवनवाली ॥ १८ ॥ कुछेक हास्यसे प्रसन्नमुखी रत्न

भूषणोंसे भूषित कृपामयी योगसिद्धा भक्तोंके अनुग्रहमें तत्पर थी ॥ १९ ॥ राजाने भगवतीको देख परम आदरसे संतुष्ट किया और बालकको भूमिपर छोडकर उसका पूजन किया ॥ २० ॥ उस ग्रीष्मकालीन सूर्यकी समान कान्तिवाली प्रसन्न, तेजसे प्रज्वलित, शान्त. स्कंदकी भार्यासे राजा पूछने लगे ॥ २१ ॥ राजा बोला, हे शोभने कान्ते तुम कौन किसकी प्रियाहो हे वरारोहे तुम स्त्रियोंमें धन्या मान्या किसकी कन्या हो ॥ २२ ॥ राजाके यह वचन सुन यह जगन्मंगला चंडिका देवसेना देवरणकारिणी बोली ॥ २३ ॥ पहले मैं दैत्योंसे ग्रस्त देवताओंकी सेना हुई थी, और देवताओंको जयदेनेके कारणही देवसेनाहुई ॥ २४ ॥ देवसेना बोली मैं ब्रह्माकी मानसी कन्या देवसेना ईश्वरी हूं, हे राजन् विधाताने मुझे मनसे रचनाकर स्कंदके निमित्त दिया ॥ २५ ॥ मैं माताओंमें विख्यात स्कंदकी सुव्रता भार्या हूं और प्रकृतिका षष्ठांश होनेसे संसारमें षष्ठीनामसे विख्यात हूं ॥ २६ ॥ मैं अपुत्रोंको पुत्र और प्रियाकी इच्छावालोंको प्रिया देती हूं, दरिद्रोंको धन और कर्मियोंको कर्म देती हूं॥ २७॥ सुख, दुःख, भय, शोक, हर्ष, मंगल, संपत्ति, विपत्ति, सब कर्मसे होती है ॥ २८ ॥ कर्मसे बहुत पुत्र कर्मसेही वंशहीन कर्मसेही मृत पुत्र और कर्मसेही चिरजीवी पुत्र होता है ॥ २९ ॥ कर्मसेही गुणवान् अंगहीन बहुत भार्यावाला तथा भार्याहीन होता है ॥ ३० ॥ कर्मसेही रूपवान् धर्मी रोगी व्याधित और अरोगी होता है ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! इसकारण सब शास्त्र वेदमें कर्मविशेष सुना गया है हे मुने ऐसा कह वोह देवी बालकको ग्रहणकर ॥ ३२ ॥ महा ज्ञानसे अपनी लीलासेही उसको जिवाती हुई जब राजाने कंचन वर्ण उस बालकको हँसता देखा ॥ ३३ ॥ तब राजासे देवसेना पूछकर उस बालकको लेकर आकाशमें जानेकी इच्छा करने लगी ॥ ३४ ॥ तब फिर राजा शुष्क कंठ ओष्ठ तालुसे उसकी प्रार्थना करने लगे तब वह देवी राजाके स्तोत्रसे संतुष्ट हुई ॥ ३५ ॥ और वेदोक्त कर्मको राजासे कहने लगी देवी बोली तुम स्वायंभुव मनुके पुत्र त्रिलोकीके राजा हो ॥ ३६ ॥ तुम सर्वत्र हमारी पूजा कराओ तब मैं तुमको कुलवर्द्धक मनोहर पुत्र दूंगी ॥ ३७ ॥ जो सुव्रत नामसे विख्यात गुणवान पंडित जातिस्मरणवाला योगीन्द्र नारायणकी कलाही होगा ॥ ३८ ॥ सौ यज्ञका करनेवाला श्रेष्ठ क्षत्रियोंसे नमस्कृत लक्ष मत्त मातंगके बलसे सम्पन्न ॥ ३९ ॥ धनी गुणी शुद्ध विद्वानोंका प्रिय योगी ज्ञानी और तपस्वियोंका सिद्धरूप ॥ ४० ॥

लोकमें यशस्वी सब सम्पत्तियोंका देनेवाला होगा यह कहकर देवीने वह बालक राजाको दिया॥४१॥राजाने पूजा स्वीकारकी और देवी उसको सुन्दर वर देकर स्वर्गको गई॥४२॥ राजा मंत्रियों सहित प्रसन्न हो अपने घर आये और आकर पुत्र पानेका वृत्तान्त कहा॥४३॥ स्त्रियें यह वर सुनकर बहुत प्रसन्न हुईं और पुत्रके निमित्त सर्वत्र मंगल कराया॥४४॥देवीको पूजनकर ब्राह्मणोंको धन दिया और राजाने प्रतिमहीने शुक्लापष्ठीमें महोत्सव ॥४५॥ षष्ठी देवीका कराया और सूतिका स्थानमें बालकोंके निमित्त छठीका उत्सव करवाया ॥ ४६ ॥ छठे अथवा इक्कीसवें दिन उसकी पूजा कराई बालकोंके शुभकार्य अथवा अन्नप्राशनदिनमें ॥ ४७ ॥ राजाने सर्वत्र पूजा कराई और आपभी की उनकी ध्यान पूजाविधान और स्तोत्र मुझसे सुनो ॥४८॥ सुव्रत जो धर्मके मुखसे सुनकर कौथुमने कहा है शालिग्राम, घट, अथवा वट मूलमें ॥ ४९ ॥ वा भतिमें मूर्ति खैंचकर चतुर पुरुष पूजनकरै इस शुद्ध प्रकृतिके छठे अंशकी पूजा करके जो सुप्रभा॥५०॥सुपुत्रदा शुभदा दयारूपा जगत्की प्रसूति श्वेतचम्पकके वर्णवाली रत्नोंके भूषणोंसे भूपित हैं ॥ ५१ ॥ उस पवित्ररूपा परमा देवसेनाका मैं भजन करता हूं इसप्रकार चतुर पुरुष ध्यानकर अपने शिरपर फूल रख कर ॥ ५२ ॥ फिर ध्यानकर मूलमंत्रसे सुव्रता सतीका पूजनकरै पाद्य, अर्घ्य, आचमन, गंध, पुष्प, दीप ॥ ५३ ॥ विविध नैवेद्य और फल निवेदनकरै 'ओंह्रीं पष्ठीदेव्यै स्वाहा' यह मंत्र विधिपूर्वक जपै ॥ ५४ ॥ इसअष्टाक्षर महामंत्रको यथाशक्ति जपै फिर स्तुतिकर भक्तिसे प्रणामकरै ॥ ५५ ॥ सामवेदोक्त स्तोत्र वर और पुत्रफलका देनेवाला है इस अष्टाक्षर महामंत्रको जो एकलाखवार जपै॥५६॥ उसको अवश्य सुपुत्रकी प्राप्ति होती है यह ब्रह्माजीने कहा है हे मुनिश्रेष्ठ! सब कामना दायक सुन्दर स्तोत्र सुनो ॥ ५७ ॥ हे नारद ! यह सबको वांछादायक स्तोत्र वेदोंमें गूढ रूपसे स्थित है प्रियव्रत बोले देवी महादेवी सिद्धि शांतिके निमित्त नमस्कार है ॥ ५८ ॥ शुभा देवसेना षष्ठी देवीको न०वरदा पुत्रदा धनदाके निमित्त प्रणाम है॥५९॥ सुखदा, मोक्षदा, षष्ठी देवीको न०सृष्टि षष्ठांशरूपा सिद्धाको प्रणाम है ॥ ६० ॥ माया सिद्धयोगिनी षष्ठी देवी सारा शारदा परा देवीको प्रणाम है ॥६१॥बालकोंकी अधिष्ठात्रीदेवीषष्ठी देवीको प्रणामहै कल्याणदा कल्याणी कर्मोंका फल देनेवाली ॥ ६२ ॥ अपने भक्तोंके निमित्त प्रत्यक्ष होनेवाली षष्ठी देवीको प्रणाम है सब कर्मोंमें पूजनीया स्कन्दकांता ॥ ६३ ॥ देवरक्षणकारिणी षष्ठी

देवीको प्रणाम है शुद्धसत्वस्वरूपा मनुष्योंसे सदा वंदित ॥ ६४ ॥ हिंसा क्रोध रहित षष्ठी देवीको प्रणाम है हे सुरेश्वरि! धन, प्रिया और पुत्र दीजिये ॥ ६५ ॥ हे महेश्वरि! मान और जय दो शत्रुओंको नष्टकरो धर्म और यश दो षष्ठी देवीको प्रणाम है ॥ ६६ ॥ हे सुपूजिते! भूमि प्रजा और विद्या दो कल्याण जयदायक षष्ठी देवीको प्रणाम है ॥ ६७ ॥ इससे देवीकी स्तुतिकर प्रियव्रतने पुत्र पायाथा हे राजेन्द्र! षष्ठी देवीके प्रसादसे यशस्वी पुत्र मिला था ॥ ६८ ॥ जो यह षष्ठीका स्तोत्र एक वर्षतक सुनता है यह अपुत्र चिरंजीवीपुत्र को प्राप्त होता है ॥ ६९ ॥ और जो एक वर्ष भक्तिसे इसको पूजनकर सुनता है वह सब पापसे रहितहोता है और महावंध्या भी प्रसूती होती है ॥ ७० ॥ वीर, गुणी, विद्वान्, यशस्वी, चिरायुप पुत्रको देवीके प्रसादसे प्राप्त होता है ॥ ७१ ॥ जो स्त्री काकवंध्या और मृतवत्सा होती है वह एक वर्ष इस स्तोत्रको सुनकर षष्ठी देवीके प्रसादसे पुत्र पावैगी॥ ७२॥ बालकके रोगी होनेमें जो पिता माता इसको सुने तौ षष्ठी देवीके प्रसादसे एक महीनेमें बालक रोगसे मुक्त होजाता है ॥ ७३ ॥

इति श्री देवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां
षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ४७.

श्रीनारायण बोले हे नारद! यथाशास्त्र षष्ठीका उपाख्यान कहा अब मंगला चंडी देवीका उपाख्यान सुनो ॥ १ ॥ उसकी सब पूजादि जो धर्मके मुखसे सुनी है जो श्रुति और सब विद्वानोंको इष्ट है ॥ २॥ जो कल्याणकर्मोंमें प्रतापवती है वह दक्षा चंडी है और जो मंगल कार्योंमें दक्ष है वह मंगलाचण्डी है ॥ ३॥ अथवा भूमि पुत्र मंगलकी अभीष्टदात्री जो चंडी है वह मंगलचंडिका है ॥ ४ ॥ मंगल एक मनु वंशमें सप्त द्वीपका अधिपति हुआ है उसकी पूज्या और अभीष्टदानसे भी यह मंगलचंडिका कहाती है ॥ ५ ॥ मूर्त्ति भेदसेहीं वह दुर्गा मूलप्रकृति अधीश्वरी है प्रत्यक्षरूपसे स्त्रियोंको अभीष्टदात्री है ॥ ६ ॥ प्रथम इस परात्पराका शंकरने पूजन किया था जब घोर त्रिपुर वधको विष्णुने प्रेरणाकी थी ॥ ७ ॥ हे नारद! जब दैत्यने क्रोधकर आकाशसे विमान पातित किया था तब दुर्गतसंकटमें ब्रह्माके

उपदेशसे ॥ ८ ॥ ब्रह्मा विष्णुके उपदेशसे शंकर वे दुर्गाभगवतीको संतुष्ट किया था वह रूपभेदसे मंगलचंडी कहाती है ॥ ९ ॥ शिवजीसे यह कहा था कि हे प्रभो ! अब भय नहीं है विष्णु भगवान् वृषरूपसे तुम्हारे वाहन होंगे ॥ १० ॥ और निसन्देह मैं युद्धशक्तिस्वरूपा हूंगी हे शंकर मेरे और विष्णुके सहायक होनेसे ॥ ११ ॥ देवताओंके पदघातक शत्रुको तुम भलीभांति जयकरसकोगे यह कह भगवती अन्तर्द्धान होकर शंभुकी शक्ति हुई ॥ १२ ॥ और विष्णुके दिये शस्त्रसे शिवजीने उस दैत्यको मारा हे मुनीन्द्र उस दैत्यके पतित होनेमें सम्पूर्ण देवता महर्षि ॥ १३ ॥ भक्तिसे नम्र कंधर हो शंकरकी स्तुति करने लगे और उसी समय शिवजीपर पुष्पवृष्टि हुई ॥ १४ ॥ ब्रह्मा विष्णुने प्रसन्न हो उनको श्रेष्ठ आशीर्वाद दिये और इन दोनोंकी आज्ञासे शिवजी स्नानकर ॥ १५ ॥ भक्तिसे मंगल चंडिका देवीकी पूजा करते हुए पाद्य अर्घ्य आचमन दूसरे अनेक प्रकारके वस्त्र ॥ १६ ॥ हे मुने ! पुष्प चन्दन नैवेद्य और अनेक प्रकार छाग, मेष, महिष गवय, विविध पक्षी ॥ १७ ॥ वस्त्र, अलंकार, माला, पायस, पिष्ट पदार्थ, मधु, सुधा अनेक प्रकारके फल ॥ १८ ॥ संगीत, नृत्य, वाद्य, उत्सव, नामकीर्तनद्वारा माध्यन्दिनके अनुसार ध्यान करके भक्तिपूर्वक ॥ १९ ॥ हे नारद ! मूलमंत्रसे देवीकी प्रीतिके निमित्त यह सब दिये "ओं ह्रीं श्रीं क्लीं सर्व पूज्ये देवी मंगल चंडिके हूं हूं फट् स्वाहा ॥ २० ॥ यह इक्कीस अक्षरका ओंकार रहित मंत्र है यह पूज्य कल्पतरु और भक्तोंको सब कामना देनेवाला है ॥ २१ ॥ दशलाख जपनेसे इस मंत्रकी सिद्धि अवश्य होती है हे ब्रह्म ! वेदोक्त सर्व सम्मत भगवतीका ध्यान सुनो ॥ २२ ॥ वह सोलहवर्ष की अवस्था वाली निरन्तर स्थिर यौवनवाली बिम्बोष्ठी सुदती निरन्तर शुद्ध शरत्पद्मकी समान मुखवाली ॥ २३ ॥ श्वेतचम्पक के वर्णकी समान नीलकमलवत् नेत्र जगद्धात्री और सबको सब संपत्तियों की देनेवाली ॥ २४ ॥ इस घोर संसारसागरमें ज्योतिरूप का सदा भजन करता हूं हे मुने ! देवीका यह ध्यान है अब स्तुति सुनो ॥ २५ ॥ महादेवजी बोले हे जगन्माता ! चण्डिके हमारी रक्षा करो विपत्ति समूहकी हरनेवाली और हर्ष मंगलकी करनेवाली हो ॥ २६ ॥ हर्ष मंगलदक्ष और हर्ष मंगलकी देनेवाली शुभ मंगलमें दक्ष शुभ-मंगल चंडिके ॥ २७ ॥ मंगला मंगलके योग्य सब मंगलकी करनेवाली हे देवी ! सत्पुरुषोंको मंगल देनेवाली सबके मंगलका स्थान ॥ २८ ॥ मंगलवारमें

पूज्य मंगलकी अभीष्ट देवता तथा मनुवंशमें हुए मंगल राजासे निरन्तर पूजित॥ २९॥ हे देवी ! तुम मंगलकी अधिष्ठात्री देवी मंगलोंकी भी मंगलस्वरूपा इस मंगलाधार संसारमें मोक्षमंगल देनेवाली तुम हो ॥ ३० ॥ मंगलाधारकी सार सब कर्मोंकी पारगामिनी प्रतिमंगलावारमें पूज्य सर्वत्र जानेवाले बहुत सुखकी देनेवाली हो ॥ ३१ ॥ शिवजी इस स्तोत्रसे मंगलचंडिकाकी स्तुतिकरके और प्रतिमंगलवारमें पूजा देकर गये ।। ३२ ।। प्रथम सर्व मंगलाका शंकरने पूजन किया दूसरीवार मंगल ग्रहने इसका पूजन किया ।। ३३ ।। तीसरीवार राजा मंगलने पूजन किया चौथीवार मंगलवारको सुन्दरियोंने पूजा की ।। ३४ ।। पांचवींवार मंगलाकांक्षी मनुष्योंने पूजा की फिर सब संसार और विश्वेशने पूजाकी ।। ३५ ।। फिर यह परमेश्वरी सर्वत्र पूजित हुई हे मुने देवता मुनि मानव मनु इन्होंने पूजन किया ।। ३६ ।। जो कोई सावधान होकर इस देवीके मंगलस्तोत्र को सुनते हैं उसको मंगल ही होता है अमंगल नहीं होता पुत्र पौत्रयुक्त मंगल दिन दिन बढता है ।। ३७ ॥ नारायण बोले हे नारद! यथाशास्त्र दोनों देवियोंका उपाख्यान कहा अब धर्मके मुखसे सुना मनसाका आख्यान सुनो ।। ३८ ।। यह भगवती कश्यपकी मानसी कन्या है यह मनसे क्रीडा करने केही कारण मनसा देवी विख्यात हैं ॥ ३९ ॥ जो मनसा परमात्मा ईश्वरका ध्यान करती है वह मनसादेवी इसी कारण उस योगसे क्रीडा करती है ॥ ४० ॥ यह देवी आत्मा रामा वैष्णवी सिद्धयोगिनी है इसने तीन युगपर्यन्त परमात्मा कृष्णका तप किया ॥ ४१ ॥ पुराने वस्त्रकी समान इसका शरीर क्षीण देखकर वा जरत्कारु मुनिकी समान क्षीण शरीर देखकर श्रीकृष्णने इसका जरत्कारु नाम रक्खा ॥ ४२ ॥ और कृपानिधिने इसको मनवांछित वर देकर स्वयं इनकी पूजाकी और कराई थी ॥ ४३ ॥ स्वर्ग नागलोक पृथ्वी और ब्रह्मलोक तक पूजा हुई तथा गौरी सुन्दरी मनोहरा ॥ ४४ ॥ जगत् गौरी नामोंसे उनसे पूजित हो विख्यात हुई और शिवकी शिष्या होनेसेही यह शैवी कहाती हैं ॥ ४५ ॥ और अत्यन्त विष्णुभक्त होनेसे यह वैष्णवी कहाती है जन्मेजयके यज्ञमें इसीने नागोंके प्राणोंकी रक्षाकी थी ॥ ४६ ॥ इसीसे यह नागेश्वरी और नागभगिनी कहकर विख्यात है यह विषहरण करनेमें स्वतंत्र होनेसे विषहरी कहाती है ॥ ४७ ॥ शिवजीसे सिद्धयोग प्राप्त होनेसे यह सिद्धयोगिनी है यह महाज्ञान योगदायक मृतसंजीविनी परा विद्या है ॥ ४८ ॥ मनीषी इसीकारण

इसको महाज्ञानवती कहते हैं यह तपस्विनी आस्तीक मुनिश्रेष्ठकी माता है ॥ ४९॥ आस्तीककी माता होकरही जगत्में प्रतिष्ठित है और महात्मा जरत्कारु मुनीन्द्रकी प्रिया है ॥ ५० ॥ इसीसे विश्वपूज्ययोगी जरत्कारुकी प्रिया कहाती है जरत्कारु जगद्गौरी मनसा सिद्धयोगिनी है ॥ ५१ ॥ वैष्णवी नागभगिनी शैवी नागेश्वरी जरत्कारु प्रिया आस्तीकमाता विषहरा ॥ ५२ ॥ महाज्ञानयुता देवी विश्वपूजिता यह बारह नाम जो पूजाके समय पढते हैं ॥ ५३ ॥ उसको तथा उनके वंशवालोंको सर्पोंका भय नहीं होता नागभयमें, शयनमें नागग्रस्त मंदिरमें कहीं भय नहीं होता ॥ ५४ ॥ नागशोभे महादुर्गे नागवेष्टित विग्रहवाली ऐसा यह स्तोत्र पढकर सर्पभयसे छूट जाता है ॥ ५५ ॥ जो इस स्तोत्रको पढता है उसे देखकर सर्पसमूह भाग जाते हैं दशलाख जपनेसे मनुष्योंको स्तोत्र सिद्धि होजाती है ॥ ५६ ॥ जिसको स्तोत्रसिद्धि होजाय वह विषभी खा सक्ता है और भय नहीं होता और नागोंके भूषण करके वह नागवाहन हो सक्ता है ॥ ५७ ॥ वह पुरुष नागोंके आसन नागोंकी शय्यापर स्थित होनेवाला महासिद्ध होता है अन्तमें विष्णुके साथ निरन्तर क्रीडा करता है ॥ ५८ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायांसप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ४८.

श्रीनारायण बोले हे नारदजी ! अब मुझसे पूजाका विधान सुनो और ध्यान विधानभी सामवेदोक्त कहता हूं ॥ १ ॥ श्वेतचंपककी समान वर्ण रत्नोंके भूषणोंसे भूपित वह्नि शुद्ध शुकाधाना, नागोंका यज्ञोपवीत पहरे ॥ २ ॥ महाज्ञानयुता बडे २ ज्ञानियोंमें भी बडी सिद्धा धिष्ठातृ देवी सिद्धासिद्धि देनेवालीका भजन करता हूं ॥ ३ ॥ इसप्रकार देवीको ध्यानकर मूलमंत्रसे पूजाकरै नैवेद्य धूप पुष्प गंधानुलेपन ॥ ४ ॥ और वेदोक्त मूलमंत्र पढनेसे वह भक्तोंको मनवांछित फलकोदेने वाली है हे मुने! इसमंत्रको कल्पतरु कहते हैं यह बारह अक्षरका है ॥५॥ "ओंह्रींश्रींक्लीं ऐं मनसादेव्यैस्वाहा" यह मंत्र है इसके पांच लाख जपसे सिद्धि होती है ॥ ६ ॥ जिसको इसमंत्रकी सिद्धि हो वही भूमिमें सिद्ध है उसको विषभी अमृतकी समान होता है वह धन्वन्तरिकी समान होता है ॥ ७ ॥ हे नारद ! स्नानकर एकान्त

शालामें बैठ ईशानीदेवीको आवाहन कर यत्नसे पूजनकरै ॥ ८ ॥ जो पंचमीको मनसे ध्यानकर देवीको बलिदेता है वह अवश्य धन पुत्र और कीर्तिमान् होता है ॥ ॥ ९ ॥ यह पूजाविधान कहा अब आख्यान सुनो हे महाभाग वह धर्मके मुखसे निर्गत हुआ कहता हूं ॥ १० ॥ पहले मनुष्य नागोंसे बहुत व्याकुल हुए थे तब सब कश्यपकी शरणमें गये थे ॥ ११ ॥ तब ब्रह्माके सहित कश्यपने मंत्रोंको निर्माण किया वे वेदके बीजानुसार ब्रह्माके उपदेशसे विषहर मंत्रबने ॥ १२ ॥ और सब मंत्रोंकी अधिष्ठात्री देवीको मनसे सृजन किया वह तप और मनसे प्रगट होनेके कारण मनसा नामवाली हुई ॥ १३ ॥ वह कुमारी शंकरके स्थानको गई और कैलासमें जाय भक्तिसे पूजन कर शंकरको संतुष्ट किया ॥ १४ ॥ उस कन्याने शिवजीको दिव्य सहस्र वर्ष तक सेवन किया तब आशुतोष शिवजी उसपर प्रसन्न हुए ॥ १५ ॥ उसको महाज्ञान देकर सामवेद पढाया और आठ अक्षरका कल्पतरु नामक कृष्ण मंत्र उसको दिया ॥ १६ ॥ लक्ष्मी माया कामबीज चतुर्थी विभक्तियुक्त कृष्णका मंत्र दिया और त्रैलोक्य मंगलनामक कवच और पूजन क्रम बताया ॥ १७ ॥ और वेदोक्त सर्वसम्मत पुरश्चरण कहा इस प्रकार वह मुनिसुता सती शिवजीसे मंत्रोंको प्राप्त होकर ॥ १८ ॥ शंकरकी आज्ञासे वह साध्वी पुष्करमें तप करनेको चलीगई वहां परमात्मा कृष्णका तीनयुग पर्यन्त आराधन करके ॥ १९ ॥ सिद्धहुई और कृष्णका दर्शन पाया उस कृशांगीबालाको देखकर कृपापूर्वक कृपानिधिने ॥ २० ॥ उसकी पूजा स्वयंकी और दूसरोंसे कराई और उसको वर दिया कि तुम संसारमें पूजित होगी ॥ २१ ॥ इसप्रकार उस कल्याणीको वरदे भगवान् अन्तर्द्धान हुए प्रथम परमात्मा कृष्णने उसका पूजन किया ॥ २२ ॥ फिर शंकर कश्यप मुनि मनु नाग मनुष्योंने पूजन किया ॥ २३ ॥ इसप्रकार वह सुव्रता त्रिलोकीमें पूजित हुई कश्यपजीने प्रथम उसको जरत्कारु मुनीन्द्रको दियाथा ॥ २४ ॥ मुनिश्रेष्ठकी इच्छा नथी परन्तु ब्रह्माकी आज्ञासे उसको ग्रहण किया वह महायोगी उससे विवाह कर तपसे थकितहो ॥ २५ ॥ पुष्कर क्षेत्रवटके मूलमें देवीकी जंघापर शिर धर-कर सोगये अर्थात् निर्द्वेश ईश्वरको स्मरण कर सोये ॥ २६ ॥ जब संध्यासमय सूर्य अस्त होनेलगे तब पतिव्रता मनसाने विचार किया ॥ २७ ॥ अर्थात् संध्याके धर्म लोक भयसे विचारने लगी ब्राह्मण नित्यकी पश्चिम संध्या न करके ॥ २८ ॥ ब्रह्महत्यादि पापको प्राप्त होते हैं सो मेरे पतिको यह प्रायश्चित्त लगेगा जो पूर्व और

पश्चिमकी संध्या नहीं करते ॥ २९ ॥ वह सर्वत्र नित्य अशुचि होता है उसे ब्रह्म-हत्यादि पाप लगते हैं यह वेदोक्त वार्ता विचारकर सुन्दरीने अपने पतिको जगाया ॥ ॥ ३० ॥ हे मुने वह मुनि जागतेही उसपर बडे कुपित हुए मुनि बोले हे साध्वी ! तुमने सुखपूर्वक सोते मेरी निद्राभंग क्यों की ॥ ३१ ॥ जो स्वामीका अपकार करती है उसके व्रतादि सब व्यर्थ होजाते हैं तप अनशन व्रत दान जो कुछ भी है ॥ ॥ ३२ ॥ स्वामीकी अप्रिय करने वालीका सब वृथा होजाता है जिसने स्वामीका पूजन किया उसने श्रीकृष्णका पूजन किया ॥ ३३ ॥ पतिव्रताके व्रतके निमित्त पतिही स्वयं नारायण है सब दान सब यज्ञ सब तीर्थोंका सेवन ॥ ३४ ॥ सब व्रत तप सब उपवासादि सब सत्य धर्म और सब देवपूजन ॥ ३५ ॥ यह सब स्वामीसे बाकी सोलहवीं कलाभी नहीं है जो पवित्र भारतवर्षमें पतिकी सेवा करती है ॥ ३६ ॥ वह स्वामीके सहित वैकुण्ठमें ब्रह्मपदको प्राप्त होती है जो स्वामीका अप्रिय कहती और उनको अप्रिय वचन बोलती है ॥ ३७ ॥ वह असत्कुलकी उत्पन्न हुई जाननी उसका फल सुनो वह चन्द्र सूर्यकी स्थितिपर्यन्त कुंभीपाकमें पडती है ॥ ३८ ॥ फिर पतिपुत्रसे वर्जित चांडाली होती है यह कहते २ मुनि श्रेष्ठके होठ फडक उठे ॥ ३९ ॥ तब वह साध्वी भयसे कंपितहो मुनिश्रेष्ठसे बोली साध्वीने कहा स्वामिन् संध्याविधिके लोप होनेके भयसे ही आपको जगायाथा ॥ ४० ॥ हे महाभाग मुझ दुष्टाकी शांतिकरो शृंगार आहार निद्राको जो भंगकरता है ॥ ४१ ॥ वह चन्द्र सूर्यकी स्थितिपर्यन्त कालसूत्र नरकमें पडता है मनसा देवी यह कहकर स्वामीके चरणकमलमें ॥ ४२ ॥ भयभीतहो गिरपडी और वारंवार रुदन करने लगी तब क्रोधकर मुनि सूर्यको शाप देनेको उद्यत हुए ॥ ४३ ॥ उस स्थानमें भगवान् संध्याके सहित वहां आये हे नारद ! उस समय मुनिसे स्वयं भास्कर कहने लगे ॥ ४४ ॥ और विनय तथा भीतिसे यथोचित वचन कहने लगे भास्कर बोले सूर्यास्तका समय देखकर इस साध्वीने धर्मके भयसे ॥ ४५ ॥ हे विप्र इसकारण तुमको जगाया अब मैं तुम्हारी शरण हुआ हूं हे ब्रह्मन् मुझे क्षमा कीजिये मुझे शाप मत दीजिये ॥ ॥ ४६ ॥ ब्राह्मणोंका हृदय मक्खनकी समान कोमल होता है इनका क्रोध क्षणार्ध होता है नहीं तो जगत् भस्म होजाय ॥ ४७ ॥ और फिर भी जगतके निर्माण करनेमें समर्थ होसक्ते हैं ब्राह्मणसे अधिक कोई तेजस्वी नहीं है ब्राह्मण ब्रह्माके वंशमें होनेसे तेजसे अधिक प्रज्वलित होता है ॥ ४८ ॥ सनातन ब्रह्मज्योति कृष्णकी

नित्य भावना करै सूर्यके वचन सुन ब्राह्मण जरत्कारु सन्तुष्ट हुए ॥ ४९ ॥ और ब्राह्मणका आशीर्वादले सूर्य अपने स्थानको गये और ब्राह्मणने अपनी प्रतिज्ञा पालनके निमित्त मनसाको त्यागदिया ॥ ५० ॥ उसको शोकसे रोता देख यह भी दुखी हुए उस समय मनसाने अपने गुरु शंकर इष्टदेव विधाता हरिका स्मरण किया ॥ ५१ ॥ तथा इस विपत्तिमें जन्म दाता कश्यपका स्मरण किया तब उस स्थानमें गोपीश्वर, भगवान् शंभु ॥ ५२ ॥ ब्रह्मा और कश्यप मनसाके विचार करतेही आगये जब ब्राह्मणने निर्गुण प्रकृतिसे परे अपने इष्टदेवको देखा ॥ ५३ ॥ तब परम भक्तिसे स्तुतिकर वारंवार प्रणाम करने लगे तथा शिव ब्रह्मा और कश्यपको प्रणाम किया ॥ ५४ ॥ हे देवताओ तुम कैसे आये यह प्रश्न भी किया ब्रह्माजी उनके यह वचन सुनकर सहसा समयानुसार ॥ ५५ ॥ हृषीकेशके चरण कमलको प्रणाम कर बोले यदि तुमने अपनी धर्मपत्नी सती मनसाको त्यागन किया है तो ॥ ५६ ॥ अपने धर्म पालन करनेके निमित्त इसको एक पुत्र दीजिये हे मुने! जायामें पुत्रोत्पत्ति करके पश्चात् त्याग दो ॥ ५७ ॥ जो विरागी विना पुत्रोत्पत्ति किये अपनी प्रियाको त्यागता है उसका पुण्य चलनीके जलकी समान निर्गत होजाता है॥ ५८॥ जरत्कारु मुनीश्वर इसप्रकार ब्रह्माजीका वचन सुन योगसे मंत्र पूर्वक उसकी नाभिस्पर्श करते हुए ॥ ५९ ॥ मनसे यह करके मुनिश्रेष्ठने मनसासे कहा जरत्कारु बोले हे मनसे इस गर्भसे तुम्हारे पुत्र होगा ॥ ६० ॥ जितेन्द्रियोंमें प्रवर धर्मात्मा ब्राह्मणोंमें अग्रणी होगा तेजस्वी तपस्वी यशस्वी गुणान्वित ॥ ६१ ॥ वेदवित् ज्ञानी और योगियोंमें श्रेष्ठ वह पुत्र धर्मात्मा विष्णुभक्त कुलका उद्धार करैगा ॥ ६२ ॥ ऐसे पुत्रके जन्ममात्रसे प्रसन्न हो पितर नृत्य करते हैं पतिव्रता सुशीला स्वामीसे प्रिय बोलनेवाली ॥ ६३ ॥ धर्मिष्ठा पुत्रकी माता कुलकी स्त्री कुलपालिका है जो बंधु हरिकी भक्ति देवही बंधु है, केवल अभीष्ट सुखप्रद बंधु नहीं होता ॥ ६४ ॥ हरि मार्गको दिखानेवाला बंधुही पिता है वही माता यथार्थमें गर्भ धारिणी है जो गर्भका रहना छुडा दे ॥ ६५ ॥ यमका भय छुडानेवाली दयाही भगिनी है विष्णुका मंत्र और भक्तिका देनेवाला गुरु होता है ॥ ६६ ॥ ज्ञान दातागुरु वही है जिस ज्ञानमें कृष्णकी भावना होती है ब्रह्मासे स्तंबपर्यन्त जिससे चराचर विश्व होता है ॥ ६७ ॥ आविर्भाव और तिरोभाव होता है उसके जाननेसे अधिक और क्या ज्ञान होगा ॥ ६८ ॥ यही

तत्वोंका सारभूत है हरिसे अन्य वस्तु विडम्बना मात्र है मैंने तुझको ज्ञान दिया है ज्ञानदाता ही यथार्थ स्वामी है ॥ ६९ ॥ ज्ञानसे ही बंधसे छूटता है जो बंधनमें डाले वह शत्रु है जो गुरु विष्णुभक्तियुक्त ज्ञानको नहीं देता ॥ ७० ॥ वह शत्रु शिष्यघाती है कारण कि वह बंधनसे मुक्त नहीं करता जननीके गर्भस्थितिके क्लेश और यमयातनासे ॥ ७१ ॥ जो मुक्त नहीं करता वह कैसा गुरु पिता वा बंधु है परमानन्दरूप अविनाशी कृष्णका मार्ग है ॥७२॥ जो इसको निरन्तर नहीं दिखाता वह कैसा बंधु है हे साध्वि अच्युत निर्गुण परब्रह्मका भजन करो ॥ ७३ ॥ इनकीही सेवामें पुरुष कर्मबंधनसे छूटता है मैंने इसी निमित्तसे तुमको त्यागा है सो क्षमा करना "विवाहके समय प्रतिज्ञाकी थी यदि यह मेरी आज्ञा न पालन करेगी तो त्याग दूंगा" ॥ ७४ ॥ क्षमायुक्त साध्वी स्त्रियोंको सत्वगुण अधिक होनेसे क्रोध नहीं होता हे देवि अब मैं पुष्करमें तप करने जाता हूं तुम यथासुख गमन करो ॥ ७५ ॥ निस्पृही पुरुषोंके मनोरथ श्रीकृष्णके चरणकमलमेंही होते हैं जरत्कारुके वचन सुन मनसा बडी शोकित हुई ॥ ७६ ॥ आंखोंमें आंसू भर अपने प्राणवल्लभ से बोली मनसा बोली हे प्रभो! आपकी निद्राभंग होनेसे मेरे त्यागनेमें आपका दोष नहीं है ॥ ७७ ॥ पर जहां मैं आपको स्मरण करूं वहां तुम आना बंधुका भेद महा क्लेशदायक है और इसके उपरान्त पुत्रका भेद क्लेशकर है ॥ ७८ ॥ पर स्वामीका वियोग प्राणविच्छेदसे भी दुस्तर है पतिव्रताओंको पति सौ पुत्रोंसे अधिक प्रिय होता है ॥ ७९ ॥ सबसे अधिक प्रिय होनेसेही स्त्री पतिको प्रिय कहती है एक पुत्रवालीका जैसे पुत्रमें वैष्णओंका जैसे हरिमें ॥८०॥ एक नेत्रवालोंका जैसे नेत्रोंमें प्यासोंका जैसे जलमें भूखोंका अन्नमें और कामियोंका मैथुनमें॥८१॥चोरोंका पराये धनमें कुलटाओंका जारमें पण्डितोंका शास्त्रमें बनियोंका व्यापारमें ॥ ८२ ॥ जैसे मन होता है इसीप्रकार साध्वी स्त्रियोंका स्वामीमें मन होता है यह कहकर मनसा देवी स्वामीके चरणोंमें गिरी ॥ ८३ ॥ तब वह कृपानिधि क्षणमात्रको प्रियाको गोदमें लेते हुए और मुनिके नेत्रोंके जलसे मनसा भीजगई ॥ ८४ ॥ और वियोगके कारण नेत्रोंके जलसे स्वामीकी गोदी मनसाने भिजोदी तब दोनों ज्ञान अवलम्बन कर शोकरहित हुए ॥ ८५ ॥ वारंवार परमात्मा कृष्णके चरणकमलका स्मरणकर अपनी प्रियाको समझाय ब्राह्मण तप करने गये ॥ ८६ ॥ और मनसा शिवजीके स्थान कैलास मंदिरको गई

और शोकसे व्याकुल मनसाको पार्वतीने समझाया ॥ ८७ ॥ और शिवके अतिशय ज्ञान दानके कारण शिवालयमें स्थित वह साध्वी अच्छे दिन मंगलमुहूर्तमें ॥ ८८ ॥ नारायणके अंश योगी और ज्ञानियोंके गुरु पुत्रको उत्पन्न करती हुई शिवजीके मुखसे गर्भमेंही वह ज्ञान सुनकर ॥ ८९ ॥ योगीन्द्र योगी और ज्ञानियोंका गुरु हुआ तब मंगलवाचनकर उसके जातकर्म कराये ॥ ९० ॥ शिवजीने स्वयं उस बालकके कल्याणके निमित्त वेदपाठ करवाया और मणि रत्नकिरीटादि ब्राह्मणोंको दिया ॥ ९१ ॥ पार्वतीने लाख गौ और रत्न दिये शिवजीने चारों वेद और वेदांग ॥ ९२ ॥ मृत्युंजयके सहित ज्ञानपूर्वक बालकको पढाये और देवगुरुकी अधिक भक्ति उसकी माताके थी ॥ ९३ ॥ इसकारण उसके बालकका नाम आस्तीक रक्खा तब वह शिवजीकी आज्ञासे पुष्करमें तप करनेको गया ॥ ९४ ॥ वहां परमात्माके महामंत्रको जो शिव ने दिया था जपते २ उस तपस्वीने दिव्य तीनलाख वर्षतक तपकिया ॥ ९५ ॥ तब फिर वह महायोगी शिवके नमस्कार करनेको आये और शिवजीको प्रणामकर वह कुमार वहां स्थित हुए ॥ ९६ ॥ और तब मनसा अपने पुत्रसहित पिता कश्यपके आश्रममें गई,महर्षिने सुपुत्रा अपनी कन्याको देख बडा आनंदमाना ॥ ९७ ॥ उस समय उन्होंने ब्राह्मणोंको सौलाख रत्न दिये और बालकके कल्याणार्थ असंख्य ब्राह्मणोंको भोजन कराया ॥ ९८ ॥ हे परंतप उस समय अदिति और दिति सबको आनंद हुआ,तब, वह सुपुत्रा चिरकालतक पिताके ॥ ९९ ॥ आश्रम में रही मैं उसका आख्यान कहता हूं सुनो उसी समय अभिमन्युतनय परीक्षित् को ब्राह्मण का शाप हुआ था ॥ ॥ १०० ॥ हे नारद! देव दोष कर्मसे ही ऐसा हुआकि एक सप्ताहमें तक्षक तुझको काटैगा ॥ १ ॥ यह शृंगी ऋषिने कौशिकी का जल हाथमें लेकर शापदिया राजा यह सुनकर ऐसे स्थानमें स्थित हुए जहां स्वच्छन्द पवनभी नहीं जासक्ती ॥ २ ॥ वह सातदिन देहकी रक्षामें तत्पर होकर रहा, सप्ताह बीतनेपर मार्गमें जाते तक्षकको ॥ ३ ॥ राजाके पास धनकी इच्छासे गमन करते धन्वन्तरि मिले वहां उन दोनोंका परस्पर प्रेमपूर्वक संवाद हुआ ॥ ४ ॥ तब तक्षकने स्वेच्छयासे धन्वन्तरिको मणिदी वह उसे ले सन्तुष्ट मनसे गये ॥ ५ ॥ तक्षकने मंचपर स्थित राजाको डसलिया राजाका तत्काल देह नष्ट होगया ॥ ६ ॥ जन्मेजयने पिताके संस्कार कराये फिर जन्मेजयने सर्पसत्र यज्ञ किया ॥ ७ ॥ वहां ब्रह्मतेजके कारण सर्पोंके समूह नष्ट

होने लगे तब तक्षक डरकर महेन्द्रकी शरण गया ॥ ८ ॥ तब ब्राह्मणोंने इन्द्रसहित तक्षकके नष्ट करनेका उद्योग किया तब देवता इन्द्रादिक मनसाके समीप गये ॥ ९॥ वहां भयसे कातर और विह्वलहो इन्द्रने उसको संतुष्ट किया, तब माताकी आज्ञासे आस्तीकने यज्ञमें आकर ॥ १० ॥ राजासे महेन्द्र और तक्षकके प्राणोंकी याचना करी तब नृपश्रेष्ठने ब्राह्मणोंकी आज्ञासे वरदिया ॥ ११ ॥ और यज्ञ समाप्तकर ब्राह्मणोंको दक्षिणादी तथा विप्रमुनिदेवता मनसाके समीप गये ॥ १२ ॥ और मनसाको पूजनकर पृथक् पृथक् पूजन करते हुए और उस समय इन्द्रने भी सामग्री सजाय पवित्रहो ॥ १३ ॥ आदरसे मनसाको पूज उसकी स्तुतिकरी उसको प्रणामकर षोडशोपचारसे पूज बलि दी ॥१४॥ यह भेंट पूजा ब्रह्मा विष्णु शिवकी आज्ञासे सन्तुष्ट होकर दी वे मनसा देवीको पूज अपने २ स्थानको गये ॥ १५ ॥ यह आपसे सब कहा अब क्या सुननेकी इच्छा है नारदजी बोले महेन्द्रने मनसाको किस स्तोत्रसे प्रसन्न किया ॥ १६ ॥ और तत्वसे उनके पूजाविधि क्रमको कहिये नारायण बोले स्नान आचमन कर पवित्र वस्त्र पहर ॥ १७ ॥ रत्नसिंहानपर मनसा देवीको बैठाय भक्तिपूर्वक रत्नघटमें भरे स्वर्गगंगाके जलसे ॥ १८ ॥ वेदमंत्रसे इन्द्रने मनसादेवी को स्नान कराया और अग्निमें शुद्ध मनोहर वस्त्र पहराये ॥१९॥ सर्वांगमें चंदन लगाय भक्तिसहित पादार्घ देकर गणेश, सूर्य, अग्नि,विष्णु, शिव, शिवा ॥ १२० ॥ पहले इन छहों देवताओंको पूजन कर फिर उस सतीकी पूजा की ॐह्रीं श्रीं मनसादेव्यै स्वाहा ' यह मंत्र है ॥ २१ ॥ दशाक्षर मूलमंत्रसे सब वस्तु समर्पण की इसप्रकार इन्द्रने दुर्लभ षोडश उपचार देकर ॥ २२ ॥ विष्णुसे प्रेरित हो भक्तिपूर्वक पूजा करी, और वहां अनेक प्रकारके बाजे बजाये ॥ ॥ २३ ॥ आकाशसे मनसाके ऊपर पुष्पवृष्टि हुई देवप्रियता विप्रकी आज्ञासे तथा ब्रह्मा विष्णु शिवकी आज्ञासे ॥ २४ ॥ पुलकित हो नेत्रोंमें जल भर इन्द्र स्तुतिकरने लगे, इन्द्र बोले हे साध्वियोंमें श्रेष्ठ मैं तुम्हारी स्तुतिकी इच्छा करता हूं ॥ २५ ॥ तुम परात्पर परमात्माकी कौन स्तुति कर सक्ता है, वेदमें स्तोत्रका लक्षण और स्वभावाख्यान ॥ २६ ॥ हे प्रकृति तुम्हारे गुणोंकी गणना कोई नहीं कह सक्ता तुम शुद्धसत्वकी स्वरूप वाली क्रोध हिंसासे रहित हो ॥ २७ ॥ इससे मुनि तुमको त्यागनेके योग्य नहीं थे कारण कि चलते स उन्होंने तुम्हारी याचनाकी थी हे साध्वी मैंने तुम्हारी

पूजा की तुम मेरी माता अदितिकी समान हो ॥ २८ ॥ तुम दयारूप होनेसे भगिनी और क्षमारूप होनेसे माता हो हे सुरेश्वरि तुमने मेरे प्राण पुत्रदारादि बचाये हैं ॥ २९ ॥ मैं प्रीति बढानेवाली तुम्हारी पूजाको करता हूं हे जगदम्बिके तुम नित्य और सर्वत्र पूजनीया हो ॥ १३० ॥ हे सुरेश्वरि! तो भी तुम्हारी पूजाको बढाता हूं जो भक्तिसे तुमको आषाढकी संक्रान्तिको पूजन करैंगे ॥ ३१ ॥ वा मनसा नागपंचमी मासान्त वा दिन दिनमें पूजा करैंगे उनके पुत्र पौत्र और धनादिकी वृद्धि होगी ॥ ३२ ॥ वे यशस्वी कीर्त्तिमान् विद्यावान् गुणी होंगे और जो तुम्हारा पूजन न कर अज्ञानसे निन्दा करैंगे ॥ ३३ ॥ वे लक्ष्मीहीन होंगे और उनको सदा नागोंसे भय होगा तुमही स्वयं सबकी लक्ष्मी वैकुंठमें कमलास्वरूप हो ॥ ३४ ॥ जरत्कारु मुनीश्वर नारायणके अंश है पिताने तुमको तेज और तपसे मनसे निर्माण किया है ॥ ३५ ॥ हमारी रक्षाको मनसे तुमको प्रगट किया है इसकारण तुम मानसी हो हे देवि तुम सिद्धियोगिनी मनसेही सब कुछ करनेको सम ॥ ३६ ॥ उसकारणसे हे मानसी देवि तुम पूजित और वंदित हुई हो जो कि देवता भक्तिसे मनसे तुमको पूजन करते हैं ॥ ३७ ॥ इसकारण विद्वान् लोग तुमको मानसी देवी कहते हैं हे देवि निरन्तर सत्यसेवनसे तुम सत्यस्वरूपा हो ॥ ३८ ॥ जो तुम्हारी नित्य भावना करते हैं वह तुममें तत्पर हुए तुमको प्राप्त होंगे इसप्रकार इन्द्र मनसाकी स्तुतिकर और अपनी भगिनीसे वर ग्रहण कर ॥ ३९ ॥ भूषण और सब सामग्री ले कुटुम्बसहित अपने घर गये और वह देवी पुत्रके सहित चिर कालतक पिताके यहां रही ॥ १४० ॥ वह अपने भाइयोंसे भी पूजित हो सर्वत्र माननीया और पूजनीया हुई, हे नारद ! गोलोकसे कामधेनुने उस पूजिताके समीप आकर ॥ ४१ ॥ क्षीरसे उसको स्नान कराकर आदरसे पूजन किया है, और बड़ा दुर्लभ गुप्त ज्ञान उसको कथन किया ॥ ४२ ॥ उससे और देवतोंसे पूजित होकर वह स्वर्गलोकको गई, इन्द्रके स्तोत्र पुण्य बीजवालेसे जो मनसाको पूजन करता है, और पढ़ता है ॥ ४३ ॥ उसे और उसके वंशवालोंको नागभय नहीं होता, जब यह स्तोत्र सिद्ध होजाय तौ विषभी सुधाकी तुल्य होजाता है ॥ ४४ ॥ पांच लाख जपनेसे मनुष्य यह स्तोत्र सिद्धकर लेता है, और वह अवश्यही सर्पोंपर सोने वाला और सर्पोंपर चढ़नेवाला होसकता है ॥ १४५ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषायां अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

एकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ४९.

नारदजी बोले वह सुरभी देवी कौन है जो गोलोकसे आई है ब्रह्मन् मैं उसके जन्मचारित्र सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ १ ॥ नारायण बोले यह गौओंकी अधिष्ठात्री देवी गौओंकी प्रसूता गौओंमें प्रधान सुरभी गोलोकवासिनी गोलोकमें प्रगट हुई। ॥ २ ॥ मैं सर्वादि सृष्टिका चरित्र कहता हूं सुनो जिसकारण फिर वृन्दावनमें उसका जन्म हुआ ॥ ३ ॥ एक समय कौतुकी राधिकानाथ राधाके सहित गोपाङ्गनाओंसे युक्त पवित्र वृंदावनमें गये ॥ ४ ॥ और वहां कौतुकसेही एकान्तमें विहार करने लगे तब उनकी स्वेच्छासे क्षीरपानकी इच्छा हुई ॥ ५ ॥ तब उन्होंने लीला पूर्वक वाम ओरसे सुरभी देवीकी सृष्टिकी जो वत्सयुक्त दुधारीथी वत्सका नाम मनोरथ था॥ ६ ॥ उसको देखकर श्रीदामाने नये वर्तनमें दुहा वह क्षीर जन्म मृत्यु जराका हरनेवाला है ॥ ७ ॥ उसके स्वादुदूधको स्वयं गोपीपतिने पानकिया फिर उस पात्रके टूटनेसे वहां एक दूधका कुंड होगया ॥ ८ ॥ वह दीर्घ और विस्तृत सौयोजनके मध्यमें था वह क्षीरसरोवर गोलोकमें प्रसिद्ध है॥ ९ ॥ वह गोपी और राधाकी क्रीडावावडी हुई और ईश्वरकी इच्छासे वह रत्नजटित होगई ॥ १० ॥ और वहां सहसा लक्ष कोटिकामधेनु होगईं जितने वहां गोपथे उतनेहीं सुरभीके लोम कूपसे ॥ ११ ॥ उनके असंख्य पुत्र हुए यह गौओंकी सृष्टि कही जिससे जगत् पूर्ण है ॥ १२ ॥ हे मुने पहले भगवानने सुरभीकी पूजा की फिर त्रिलोकीमें इनकी पूजा होने लगी ॥ १३ ॥ दिवालीसे दूसरे दिन श्रीकृष्णकी आज्ञासे गौओंकी पूजा चली है यह हमने धर्मके मुखसे सुना है ॥ १४ ॥ ध्यान स्तोत्र मूल मंत्र जो जो पूजाविधिका क्रम है हे महाभाग वह वेदोक्तमैं सब कहता हूं सुनो ॥ १५ ॥ ॐ सुरभ्यैनमः यह षडक्षर मंत्र है यह लाख वार जपनेसे सिद्ध होकर कामना पूर्ण करता है ॥ १६ ॥ यजुर्वेदका कहा ज्ञान और उसकी पूजा ऋद्धि और वृद्धि देने वाली है ॥ १७ ॥ लक्ष्मीस्वरूपा परमा राधा सहचरी परमा गौओंकी अधिष्ठात्री देवी गौओंकी आद्या प्रसूती ॥ १८ ॥ पवित्रोंकी पवित्ररूपा परमा भक्तोंको सब कामना देनेवाली जिसने सब विश्व पवित्र किया है उस सुरभी देवीको भजन करता हूं ॥ १९ ॥ घटमें वा धेनुके शिरमें गौओंके बंधन और स्तवमें शालिग्राम जल तथा अग्निमें सुरभीको ब्राह्मण पूजा करै ॥ २० ॥ दीवालीसे अगलेदिन पूर्वाह्णमें

भक्ति पूर्वक जो गौओंकी पूजा करता है वह पृथ्वीमें पूजनीय होता है ॥ २१ ॥ एक समय वाराह कल्पमें विष्णुकी मायासे सुरभीने त्रिलोकीका क्षीर ग्रहण करलिया तब सबदेवता चिन्ता करने लगे ॥ २२ ॥ और वे सब ब्रह्मलोकमें जाकर ब्रह्माको सन्तुष्ट करने लगे तब उनकी आज्ञासे इन्द्रने सुरभीकी प्रार्थनाकी थी ॥ २३ ॥ इन्द्र बोले देवी महादेवी सुरभी गौओंकी बीजस्वरूपा जगदम्बाको प्रणाम है। ॥ २४ ॥ राधाप्रिया पद्मांशा कृष्णप्रिया गौओंकी माताको प्रणाम है ॥ २५ ॥ कल्पवृक्षकी स्वरूपवाली सबको निरन्तर क्षीरधन और बुद्धि देनेवालीको प्रणाम है ॥ २६ ॥ शुभा, सुभद्रा, गोप्रदा, यशोदा, कीर्तिदा, धर्मदाको प्रणाम है ॥२७॥ इस स्तोत्रके सुन्तेही जगत्प्रसूती प्रसन्न हुई और वहीं वह सनातनी ब्रह्मलोकमें प्रगट हुई ॥ २८ ॥ इन्द्रको वांछित और दुर्लभ वर देकर वह गोलोक को और देवादि अपने लोकको गये ॥२९॥ हे नारद! तब सब विश्व दूधसे पूर्ण होगया दूधसे घी उससे यज्ञ और यज्ञसे देवताओंकी प्रीति हुई ॥ ३० ॥ इस महा पुण्यदायक स्तोत्रको जो भक्तिपूर्वक पढता है वह गोमान्, धनवान्, कीर्तिमान्, पुत्रवान् होता है ॥ ३१ ॥ मानो वह सब तीर्थोंमें नहा लिया सब यज्ञोंमें दीक्षित होगया और इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें कृष्णके मन्दिरमें जाता है ॥ ३२ ॥ वहां चिरकालतक निवास कर कृष्णका सेवन करता है फिर यहां न लौटकर ब्रह्मपुत्र होता है ॥ ३३ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां एकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः॥ ४९॥

पंचाशत्तमोऽध्याय ५०.

प्रकृतिका यथायोग्य सब उपाख्यान सुना जिसके सुननेसे प्राणी जन्म संसार बंधनसे छूट जाता है ॥ १ ॥ अब वेदमें गुप्त रहस्यके सुननेकी इच्छा करता हूं जो राधा और दुर्गाका श्रुतिकथित विधान है ॥ २ ॥ तुमने इन दोनोंकी बडी महिमा वर्णन की है इसको सुनकर इसमें किसका मन न लगेगा ॥ ३ ॥ जिनके अंशसे यह सब चराचर जगत् है जिनकी भक्तिसे मुक्ति होती है उसका अब विधान कहो ॥४॥ नारायण बोले हे नारद! सुनो वेदकथित विधानरहस्य कहता हूं जो आजतक किसीसे नहीं कहा और सारका भी सार है परात्पर है ॥ ५ ॥ और यह सुनकर

दूसरेसे न कहना चाहिये कारण कि बडा गुप्त है मूलप्रकृति जगदीश्वरीसे जगत्के प्रगट होनेमें ॥ ६ ॥ समष्टि व्यष्टि प्राणकी अधिदेवता राधा शक्ति तथा समष्टि व्यष्टि बुद्धिकी अधिदेवता दुर्गा यह समस्त जीवोंकी प्रेरणकरनेवाली प्रगट हुई है ॥ ७ ॥ यह विराटादि सचराचर जगत् उसीके आधीन है जबतक इन दोनोंका प्रसाद नहो तबतक मुक्ति बडी दुर्लभ है ॥ ८ ॥ इसकारण उन दोनोंके प्रसन्न करनेके निमित्त दोनोंहीका सेवन करै हे नारद ! प्रथम भक्तिसे राधिकाका मंत्र सुनो ॥ ९ ॥ जो परात्पर ब्रह्मा विष्णु आदिसे नित्य सेवित है उसके साथ श्रीराधा यह चतुर्थ्यन्त मंत्र लगावै अर्थात् ओं ह्रीं श्रीराधायै स्वाहा ॥ १० ॥ यह छः अक्षरका महामंत्र धर्मादि अर्थका प्रकाशक है और मायाबीज होनेसे वांछावालोंको चिन्तामणि है ॥ ११ ॥ सौ करोड मुख सौ करोड जिह्वा भी इस मंत्रका माहात्म्य नहीं कह सकती ॥ १२ ॥ प्रथम इस मंत्रको परम भक्तिसे कृष्णने ग्रहण किया गोलोकमें रास मंडलमें मूलदेवी ने उपदेश दिया था ॥ १३ ॥ उनसे विष्णुने, विष्णुसे ब्रह्माने, ब्रह्मासे विराट्ने, उनसे धर्मने, धर्मसे मैने लिया यह इस मंत्रकी परम्परा है॥१४॥ मै इस मंत्रको जपता हूं, इसकारण मैं इस मंत्रका ऋषि हूं, ब्रह्मादि सम्पूर्ण देवता भी नित्य उसका प्रसन्नतासे ध्यान करते हैं ॥ १५ ॥ राधामंत्रकी उपासनाके बिना कृष्ण पूजाका अधिकार नहीं होता इस कारण सब वैष्णवोंको राधाका अर्चन करना चाहिये ॥ १६ ॥ वह कृष्णकी प्रिया देवी हैं और इसीसे वह विभु राधाके आधीन हैं, और वह रासेश्वरी उनके बिना स्थित नहीं रह सकती ॥ १७ ॥ सब कामके साधनेसेही इनका राधा नाम है दुर्गा मंत्रके विना और जो मंत्र इस स्कंधमें कहे हैं उन सबका ऋषिमैं हूं ॥ १८ ॥ इसका देवी गायत्री छन्द राधा देवता है प्रणव बीज भुवनेश्वरी शक्ति है ॥ १९ ॥ मूल मंत्रको छः वार आवर्तन कर षडंग न्यास करै फिर रासकी नायिका महादेवी राधिका का ध्यान करै ॥ २० ॥ हे मुने सामवेदके कहे अनुसार पूर्वोक्त प्रकारसे ध्यान करै श्वेत चंपेकी समान वर्णकी कांति शरदचन्द्रकी समान मुख ॥ २१ ॥ कोटिचन्द्रकी समान कांति शारद कमलकी समान नेत्र बिम्बाकी समान अधर बड़ा श्रोणिभाग कौंधनीयुक्त नितम्ब॥२२॥ कुन्दकी पंक्तिकी समान दांतोंकी पंक्ति क्षौम वस्त्र पहरे अग्निमें शुद्ध जो अग्निमें रखनेसे न जलै

१ बुद्धि प्राणके संयमनाधी नहीं योग विचार है उनके आधीन मोक्ष है इससे बुद्धि प्राणके अधिष्ठात्री देवताओंकी उपासना करनी ॥

वस्त्रोंसेयुक्त॥ २३॥कुछेक हास्यसे प्रसन्न मुखवाली हस्तीके कुंभकीसमान स्तन द्वादश वर्षकी अवस्था रत्नोंके भूषणोंसे युक्त ॥ २४ ॥ शृंगार सागरकी लहरवाली भक्तके अनुग्रहमें तत्पर मल्लिका चमेलीकी मालायुक्त केशपाशसे विराजित ॥ २५ ॥ सुकुमार अंगकी लतावाली रासमण्डलके मध्यमें स्थित सुन्दर अभयकारिणी शान्त नितन्तर स्थिरयौवनवाली ॥ २६ ॥ रत्नसिंहासनपर स्थित गोपी मण्डलकी नायिका कृष्णकी प्राणसे अधिक प्यारी वेदबोधित परमेश्वरीकी ॥ २७ ॥ इस प्रकारसे ध्यान करके शालिग्राम शिला अथवा घटमें बाह्य ध्यान करके वा अष्टदल यंत्रमें विधानसे देवीको पूजन करै ॥ २८ ॥ आवाहन करनेके उपरान्त आसनादिदे मूल मंत्रका उच्चारणकर आसनादिकी कल्पना करै ॥ २९ ॥ पाद्यचरणोंमें और मस्तकमें अर्घ्य दे और मुखमें मूलमंत्रसे तीनवार आचमन करै ॥ ३० ॥ फिर मधुपर्क और एक पयस्विनी गौदे फिर स्नानशालामें लाकर वहां उसकी भावना करै ॥ ३१ ॥ उबटन स्नानविधि और वस्त्रादिकी कल्पना करके फिर अनेक अलंकारपूर्वक चन्दन दे ॥ ३२ ॥ अनेकप्रकारकी पुष्पमाला तुलसीकी मंजरी युक्तदे पारिजातके फूल शतपत्र कमल पुष्पदे ॥ ३३ ॥ फिर पवित्रतापूर्वक परिवारका अर्चन करै फिर अग्नि, ईशान, नैऋत्य, वायव्य, मध्यादिमें अंगपूजन करै ॥ ३४ ॥ फिर अष्टदल यंत्रमें दक्षिण क्रमसे मालादि अष्टशक्तिका पूजन करै उसका क्रम यह है कि अग्रदलमें मालावतीका अग्निकोण में माधवीका ॥ ३५ ॥ दक्षिणमें रत्नमालाका, नैऋत्यमें सुशीलाका, पश्चिममें शशिकलाका, बुद्धिमान् नित्य पूजन करै ॥ ३६ ॥ वायव्यमें पारिजातका, उत्तरमें परावतीका, ईशानकोणमें प्रियकारिणी सुन्दरीका ॥ ३७ ॥ ब्राह्मी आदिका उसके बाहरभागमें आशापालका भूमिके अग्रभागमें और वज्रादि आयुध सहित इसप्रकारसे निरन्तर देवीका पूजन करै ॥ ३८ ॥ फिर आवरणसहित देवीको गंधादि उपचारके सहित तथा राज उपचारके सहित बुद्धिमान् पूजन करै ॥ ३९ ॥ फिर सहस्रनामस्तोत्रसे देवीका पूजन करै सहस्र संख्यक जप नित्य प्रयतन से करै ॥ ४० ॥ जो इसप्रकारसे परादेवी परमेश्वरीका पूजन करते हैं वह विष्णुकी तुल्य होकर गोलोकमें जाते हैं ॥ ४१॥ जो पण्डित कार्तिकी पूर्णमासीको राधाका जन्मोत्सव करता है उसको परादेवी रासेश्वरी अपना सान्निध्य देती है ॥ ४२ ॥ किसी एक कारणसे वृंदावन वनमें वही गोलोक स्थायिनी राधा वृषभानुनन्दिनी हुई ॥ ४३ ॥ इसमें कहे मंत्र और वर्ण संख्याके

विधानसे पुरश्चरण कर्म कहा है और इसका दशांश होम करना चाहिये ॥ ४४ ॥ तिल, मधु, घृत, पयके साथ हवन करै और परमभक्तिकरै नारदजी बोले हे मुने वह स्तोत्र कहिये जिससे देवी प्रसन्न हो ॥ ४५ ॥ नारायण बोले हे परमेशानि हे रासमंडलकी निवासकरनेवाली हे रासेश्वरि हे कृष्णप्राणाधिका तुमको प्रणाम है ॥ ४६ ॥ त्रैलोक्यजननी करुणाकी सागर ब्रह्मा विष्णु आदि देवताओंसे नमस्कृत चरणवाली तुमको प्रणाम है ॥ ४७ ॥ सरस्वतीरूप सावित्रि. शांकरि गंगा पद्मावती रूपे षष्ठि मंगलचण्डिके तुमको प्रणाम है ॥ ४८ ॥ तुलसीरूप लक्ष्मी स्वरूपिणी, दुर्गे भगवति सर्वस्वरूपिणी तुमको प्रणाम है ॥ ४९ ॥ तुम मूलप्रकृति करुणा रूपिणी हो तुमको प्रणाम है हे मातः हमको संसार सागरसे उद्धार कर दयाकरो ॥ ५० ॥ जो इस स्तोत्रको राधाको स्मरण करता तीनोसंध्याओंमें पढता है उसको कभी कोई बात दुर्लभ नहीं रहेगी ॥ ५१ ॥ वह देहान्तमें नित्य रासमण्डलमें निवास करता है यह परम रहस्य किसीसे नहीं कहना चाहिये ॥५२॥ हे ब्रह्मन् ! अब दुर्गाका विधान सुनो जिसके स्मरणमात्रसे महाआपत्ति दूर होती है ॥ ५३ ॥ जो इनका भजन नहीं करते हैं उनको कहीं कुछ नहीं हैं वह सर्व माता शैवीशक्ति सबसे उपासनीय है ॥५४॥ वह सबकी बुद्धि अधिष्ठात्री देवी अन्तर्यामी स्वरूपिणी बडे संकटकी हरनेवाली पृथ्वीमें दुर्गानामसे विख्यात है॥५५यह वैष्णव और शैवोंसे नित्य उपासनी है वह मूल प्रकृतिरूप सृष्टिकी स्थिति अन्त करनेवाली है ॥ ५६ ॥उसका मंत्रोंमें उत्तम नवाक्षर मंत्र कहता हूं वाणी बीज भुवनेश्वरी बीज काम बीज ॥ ५७ ॥ ओं ऐंह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे इसप्रकार यह नवाक्षर मंत्र है यह भजन करनेवालोंको कल्पवृक्षरूप है ॥ ५८ ॥ ब्रह्मा विष्णु महेश यह इनके ऋषि हैं गायत्री उष्णिक् अनुष्टुप् यह छन्द हैं ॥ ५९ ॥ महाकाली महालक्ष्मी महासरस्वती देवता हैं रक्तदन्तिका दुर्गा भ्रामरी बीज हैं ॥ ६० ॥ नंदा शाकंभरी देवी भीमा शक्तियें हैं धर्म अर्थ काम मोक्षमें इनका विनियोग है ॥ ६१ ॥ ऋषि छन्द देवता मौली (शिर) मुख और हृदयमें न्यास करै सर्व अर्थ सिद्धिके निमित्त स्तनोंमें शक्तिबीजका न्यास करै तीन बीज दक्षिणस्तनमें और तीन शक्ति वामस्तनमें न्यास करै ॥ ६२ ॥ फिर तीन और चामुण्डायै इन चार बीजको और विच्चे इन दोसे और पूरेमंत्रसे नमःस्वाहा वषट् हूं वौषट् फट् लगाकर षडंगन्यास करै ॥ ६३ ॥ शिखा दोनों नेत्र कान नासिका

मुख गुद इनमें मंत्रवर्णोंका न्यास कर सर्वांगमें न्यास करै ॥ ६४ ॥ ध्यान कहते हैं खड्ग, चक्र, गदा, बाण, चाप,परिघ, शूल, भुशुण्डी, शिर, शंख, हाथमें लिये॥६५॥ महाकाली त्रिनयना नाना भूषणोंसे भूषित नीलांजनकी समान दशपाद और दश मुखवालीको भजन करता हूं ॥६६॥ मधुकैटभके नाशके निमित्त ब्रह्माजीने जिनको स्तुति की इसप्रकार कामबीजस्वरूपिणी महाकालीका ध्यान करै ॥ ६७ ॥ महा लक्ष्मीका ध्यान कहते हैं अक्षमाला, परशु, गदा, वज्र,पद्म,धनुष, कुंडिका,दंड शक्ति असि (तलवार) ॥ ६८ ॥ चर्माम्बुज, घंटा, सुरापात्र, शूल, पाश, सुदर्शन धारण करनेवाली अरुणप्रभा ॥ ६९ ॥ नवार्णअन्तर्गत माया बीजकी अधिदेवता लाल कमलके आसनमें स्थित महिषासुरमर्दिनी महादेवीको भजन करता हूं ॥ ७० ॥ महासरस्वतीका ध्यान कहते हैं घंटा, शूल,हल, मुशल, सुदर्शन, धनुर्बाण हस्तकमलमें धारे कुंदकी समान ॥ ७१ ॥ शुंभादि दैत्यका संहार करनेवाली नवार्णमंत्रके वाग् बीजकी अधिदेवता सच्चिदानंद विग्रहवाली महासरस्वतीका ध्यान करता हूं ।। ७२ ।। इसका यंत्र पहले तीनकोण षट्कोण युक्तकरे तथा उसे अष्टदले पद्म और चौवीसदल पद्मयुक्त करै ।।७३॥ भूगृह(गृह)से युक्त इसप्रकारसे विचारकरै शालिग्राम घटयंत्र वा प्रतिमामें ॥ ७४ ॥ बाणलिंग वा सूर्यमें अनन्य बुद्धिसे देवीका यजन करै जयादि शक्ति संयुक्त पीठ'सिंहासन'में देवीको ध्यान करै जयादिशक्ति जयायैनमः विजयायैनमःअजितायैनमः अपराजितायैनमः नित्यायैनमः विलासिन्यैनमः दोग्ध्र्योनमः अघोरायैनमः मंगलायै नमः ।। ७५ ।। आवरण देवता कहते हैं पूर्वकोण नाम देवीके अग्रकोणमें सरस्वती सहित ब्रह्माजीको पूजे 'सरस्वती सहिताय ब्रह्मणेनमः' इत्यादि सर्वत्र जानना नैऋत्य कोणमें लक्ष्मीसहित हरिको ।। ७६ ।। वायु कोणमें पार्वती सहित शिवको देवीके उत्तरकी ओर सिंह और वाम ओर महासुर महिषकी सायुज्य पानेके कारण पूजा करै ।। ७७ ।। महिषपूजा अन्तमें करै यह यजनक्रमसे षट्कोणमें करै नंदजा, रक्तदंतका, शाकंभरी, शिवा ।। ७८ ।। दुर्गा, भीमा, भ्रामरीको पूजै आठों दलोंमें फिर ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी ।।७९।। वाराही, नारसिंही, ऐन्द्री चामुण्डाको पूजै फिर चौवीस दलोंमें पूर्वसे क्रमानुसार ।। ८०।। विष्णुमाया, चेतना बुद्धि, निद्रा, क्षुधा, छाया, शक्ति, परा, तृष्णा, शांति, जाति, लज्जा ।।८१।। शांति श्रद्धा, कीर्ति,लक्ष्मी,धृति,वृत्ति,श्रुति, स्मृति,दया, तुष्टि,पुष्टि मातृ भ्रांति यह क्रमसे पूजै ॥ ८२ ॥ फिर भूसुर कोणमें गणेश क्षेत्रपाल वटुक योगिनीका बुद्धिमान् पूजन

करै ॥ ८३ ॥ इसके बाहर वज्रादि हाथमें लिये इन्द्रादिका पूजन करै इसप्रकार आवरणसहित देवीको पूजै ॥ ८४ ॥ और भगवतीकी सन्तुष्टताके निमित्त विधिवत राजउपचार समर्पण करै, फिर अर्थपूर्वक नवार्ण मंत्रका जप करै, इस मंत्रमें महासरस्वती महालक्ष्मी महाकालीके क्रमसे बीज हैं, और वित च इ यह तीन पद क्रमसे सत चित् आनंदके वाचक चामुण्डापद ब्रह्मविद्याका विशेषण है, उसका हम ध्यान करते हैं, अर्थात् हे चिद्रूपिणी महासरस्वती हे सद्रूपिणी महासरस्वति हे आनंदरूपिणी महाकालिका तुमको चामुण्डायै ब्रह्मविद्याप्राप्तिके लिये ध्यान करता हूं॥८५॥ फिर देवीके आगे सप्तशती स्तोत्र पढै इसके समान तीनों भुवनमें दूसरा स्तोत्र नहीं है. [यह मार्कण्डेय पुराणका है] ॥ ८६ ॥ इससे प्रतिदिन मनुष्य देवेशीका यजन करै चार लाख इसका पुरश्चरण और दशांश पायसका हवन करै ॥ इससे मनुष्यको धर्म अर्थ काम मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥ ८७ ॥ हे विप्र यह आपसे श्रीदुर्गा पूजाका विधान कहा, इससे कृतार्थता प्राप्त होती है सो आपसे सुनाया ॥ ८८ ॥ सब देवता हरि, ब्रह्मा, मनु, ज्ञाननिष्ठ मुनि, योगी, आश्रमवासी ॥८९॥ लक्ष्मी आदिक देवी सबही उस शिवाका ध्यान करती हैं दुर्गाके स्मरणसेही जन्मकी सफलता होती है ॥ ९० ॥ चौदह मनु जिसके चरणकमलका ध्यान करके मनुत्वको प्राप्त हुए तथा दूसरे देवता निज २ पदको प्राप्त हुए ॥ ९१ ॥ सो रहस्यसे भी रहस्य यह हमने तुमसे कहा है पांचौ प्रकृति तथा उनके अंशोंका वर्णन किया ॥ ९२ ॥ इसके सुननेसे मनुष्य चारों पदार्थोंको प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं यह मैंने सत्यही कहा है ॥ ९३ ॥ इसके सुननेसे अपुत्रको पुत्र, विद्यार्थीको विद्या मिलती है बहुत क्या जिस जिस निमित्त सुनै उसको उसी२ कामनाकी प्राप्ति होती है ॥ ९४ ॥ जो देवीके आगे सावधान होकर नौरातमें इसको पढै उसपर भगवती अवश्य संतुष्ट होतीहैं ॥९५॥ और जो मनुष्य नित्य एक एक अध्यायको पढता है वह देवीका प्रिय करनेवाला है, देवी उसके वशीभूत होती है ॥ ९६ ॥ इसमें यथा विधि शकुनोंकी परीक्षा करै उसका क्रम यह है कि कुमारीके अथवा बटुकके हाथसे ॥ ९७ ॥ अपना मनोरथ मनमें विचार कर पुस्तक पूजन करावै और जगत्की ईशानी देवीको वारंवार प्रणाम करै ॥ ९८ ॥ अच्छी प्रकार स्नान करी कन्याको लाकर और स्वयं स्नान कर एक सुवर्णशलाका उनके हाथमें दे ॥ ९९ ॥ उन

अध्यायोंके चक्रमें उस शलाकाको रखावै फिर जिस अध्यायमें वह शलाका रक्खै उसके अनुसार उस अध्यायको देखकर जैसा लिखा हो वैसा कहै, उसीके अनुसार ग्रंथका शुभाशुभ फल कहै यदि शुभ हो तो शुभ यदि अशुभवार्त्ता निकलै तौ अशुभ फल जानना यदि उसके डालनेमें कुमारी उदासीनता करै तौ उदासीन फल जानना चाहिये यह आपसे देवीचरित्र वर्णन किया ॥ १०० ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे गंगागर्भ सम्भूत सर्वविद्यासम्पन्न मिश्र सुखानंदात्मज विद्यावारिधिपण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतौ भाषायां पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

शुभमस्तु.



श्रीगणेशाय नमः ।

अथ श्रीमद्देवीभागवत।

दशमस्कन्धः १०.

प्रथमोऽध्यायः १.

दोहा-शिवा भवानी भक्तहित,-कारिणि सब सुखमूल ।
जन ज्वालाप्रसादपर, सदा रहो अनुकूल ॥

श्रीनारदजी बोले हे नारायण अधराधार ! सबके पालनके कारण आपका कहा हुआ पापनाशन देवीचरित्र सुना ॥ १ ॥ सब मन्वन्तरोंमें वह देवी जो स्वरूप धारण करती है जिस आकारसे वह महेश्वरी प्रादुर्भाव करती है ॥ २ ॥ वह देवी माहात्म्य संयुक्त कथा हमसे कहिये जिस प्रकार वह जिससे पूजित और स्तुतिको प्राप्त होती है ॥ ३ ॥ और भक्तोंके भक्तवत्सलतासे मनोरथ पूरे करती है वह हम देवीचरित्र सुननेवालोंको ॥ ४ ॥ वर्णन कीजिये जिससे बडे सुखकी प्राप्ति हो श्रीनारायण बोले हे महर्षे ! पापनाशन चरित्रको श्रवण कीजिये ॥५॥ जो भक्तोंको भक्ति देनेवाला और महासंपत्ति करनेवाला है लोकपितामह ब्रह्मा महातेजस्वी जगत्के आदिकारण ॥ ६ ॥ भगवान् चक्रधारीके नाभिकमलसे प्रगट हुए हे महामते ! इसप्रकार उन चतुर्मुखका प्रादुर्भाव हुआ ॥ ७ ॥ उन्होंने मनसे स्वायंभुव मनुको प्रगट किया वह ब्रह्मापरमेष्ठीके मानसपुत्र हुए ॥ ८ ॥ धर्मरूपिणी उनकी पत्नी शतरूपा हुई वह मनु क्षीरसागरके परम पावन तटमें ॥ ९॥ महाभाग्य फलकी देनेवाली देवीकी आराधना करने लगे राजा उसकी मृण्मयी मूर्तिका विधान करके॥ १०॥ व एकान्तमें भजन करते वाङ्मय देवीका आराधन करने लगे निराहार श्वास रोके हुए नियमव्रतसे कर्शित ॥ ११ ॥ एक पैरसे निरन्तर पृथ्वीमें खडे रहे इस प्रकार सौवर्षतक महात्माने काम क्रोध जीते रक्खा ॥ १२ ॥ और हृदयमें देवीके चरणोंका ध्यान करते रहे उनके तपसे जगन्माता देवी प्रगट हुई ॥ १३ ॥ और कहा

हे राजन् ! वर माँगो यह आनंदजनक दिव्यवचन सुन राजा ॥ १४ ॥ हृदयमें स्थित उन अमरदुर्लभ वरोंको माँगता हुआ मनु बोले हे विशालाक्षि ! सर्वान्तरमें स्थित आपकी जय हो ॥ १५ ॥ हे माननीय ! पूजनीय जगत्की माता सब मंगल मंगला तुम्हारी कटाक्षसेही ब्रह्मा जगत् निर्माणकरते हैं ॥ १६ ॥ भगवान् पालते और शंकर क्षणमें संहार करते हैं, तुम्हारी आज्ञासेही इन्द्र त्रिलोकीका शासक है ॥ १७ ॥ और यमराज दण्डसे प्राणियोंको शिक्षा देते हैं और वरुण पाशलिये अस्मदादिका पालन करते हैं ॥ १८ ॥ निधिपतित्व कुबेर करता है नैर्ऋत अग्नि वायु ईशान शेष ॥ ॥ १९ ॥ यह सब तुम्हारी शक्तिसे होकर तुम्हारी शक्तिसेही परिबृंहित होते हैं तो भी हे देवि! यदि इस समय मुझे वर देती हो तो ॥ २० ॥ हे शिवे! इस बडे सृष्टिके कार्यमें मेरे विघ्ननाशको प्राप्त हों जो वाग्बीज मंत्रका सेवन करते हैं ॥ २१ ॥ उनके कार्योंमें शीघ्रही सिद्धि हो जो इस देवीके संवादको पढते सुनाते हैं ॥ २२ ॥ हे शिवे! लोकमें उनको भक्ति मुक्ति सुलभ हो तुम्हारी कृपासे स्मरणता प्राप्त हो ॥ ॥ २३ ॥ ज्ञानसिद्धि कर्ममार्ग सिद्धि भी हो तथा पुत्र पौत्रकी समृद्धि हो यही मेरा वचन है ॥ २४ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे भाषायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

श्री देवी बोली हे राजन् !हे महाबाहो! यह सब कुछ होगा हे राजन् !जो तैंने प्रार्थना की यह मैं प्रदान करती हूं ॥ १ ॥ हे दैत्येन्द्र ! मैं प्रसन्न हूं मैं दैत्येन्द्रोंकी नाशक अमोघविक्रमवाली तुम्हारे मायाबीज जप और तपसे ॥ २ ॥ प्रसन्न हूं तुम्हारा राज्य निष्कंटक होगा और पुत्र वंशकरनेवाले होंगे हे वत्स ! मुझमें तुम्हारी दृढभक्ति और अन्तमें सत् पदकी प्राप्ति होगी ॥ ३ ॥ हे महामुने ! इस प्रकार मनुराजसे कहकर देवी देखते २ विन्ध्यपर्वतको चली गई ॥ ४ ॥ जिस विंध्याचलको महर्षि अगस्त्यने रुद्धकर लियाथा जो पर्वत एकसमय सूर्यका मार्ग रोकनेको उठ खडा हुआ था ॥ ॥ ५ ॥ वह वरदायक विन्ध्यवासिनी विष्णुकी अवरजा सब लोकोंकी पूजनीया हुई ॥ ६ ॥ ऋषि बोले हे सूतजी! यह विन्ध्याचल क्या है और किस प्रकार आकाश

स्पर्शकरने लगा था और इसने सूर्यका मार्ग क्यों रोका था ॥ ७ ॥ और किस प्रकार अगत्स्यजीने महा ऊँचे पर्वतको प्रकृतिमें स्थित किया यह आप विस्तारसे कहो ॥ ८ ॥ हे साधो! आपके मुखसे निर्गत देवीचारित्ररूपी अमृतको पानकरके हम तृप्त नहीं होते हैं ॥ ९ ॥ सूतजी बोले विन्ध्याचल सब पर्वतोंमें मान्य महावन और वृक्षोंसे समृद्ध है ॥ १० ॥ वह अनेक पुष्प लता गुल्मोंसे युक्त मृग वराह महिष व्याघ्र शार्दूल ॥ ११ ॥ वानर खरगोश रीछ शृगालोंसे निषेवित, जहां यह सब हृष्ट पुष्ट होकर विचरण करते हैं ॥ १२ ॥ नदी नदोंके जलोंसे आक्रान्त, देव गंधर्व किन्नर, अप्सरा किंपुरुष और सब कामना देनेवाले वृक्षोंसे सम्पन्न ॥ १३ ॥ पर्वतराज हैं वहाँ एकसमय पृथ्वीपर्यटन करते हुए मुनिराज अपनी इच्छासे आनकर प्राप्त हुए ॥ १४ ॥ उनको देखतेही विन्ध्यका अधिष्ठात्री देवता अपने आसनसे शीघ्रताके सहित उठ पाद्य अर्घ्य दे ऋषिराजको आसन देता हुआ ॥ १५ ॥ देवर्षिके प्रसन्न होकर बैठनेपर ' विन्ध्यने कहा ' हे देवर्षे! इस समय आपने कहांसे आगमन किया है ॥ १६ ॥ आपके आनेसे मेरा मन्दिर पवित्र हुआ! हे देव! आपका विचरण सूर्यके समान अभयके निमित्तही है ॥ १७ ॥ सो जो आपका मनोवृत्त हो उसको कहिये. नारदजी बोले हे पर्वतराज! मैं सुमेरुसे आता हूं ॥ १८ ॥ वहां मैं ने इन्द्र, अग्नि, यम, वरुण आदिके लोक देखे सब लोकपालोंके भवन चारों ओर हैं ॥ १९ ॥ जो कि मैं ने अनेक भोगोंके देनेवाले देखे ऐसा कह नारदने फिर श्वास लिया ॥ २० ॥ मुनिको श्वास लेते देखकर फिर विन्ध्यने पूछा हे ऋषिराज! दीर्घनिश्वास लेनेका कारण कहिये ॥ २१ ॥ पर्वतराजके यह वचन सुन परम द्युतिमान् नारदजी बोले हे वत्स! मेरे दीर्घश्वासका कारण सुनो॥ २२ ॥ गौरी गुरु हिमालय शिवके श्वसुर हैं वह पशुपतिके सम्बन्धसे सदा प्राणियोंसे पूजित हैं ॥ २३ ॥ एक कैलास शिवका निवासस्थान है वह भी पापनाशक होनेसे लोकोंसे पूज्य है ॥ २४ ॥ निषध पर्वत नीलपर्वत गन्धमादन पर्वत यह सब पर्वत अपने स्थानको प्राप्त होकर सदा पूजनीय हैं ॥ २५ ॥ जिसकी विश्वात्मा सहस्रकिरण ग्रह नक्षत्र गणोंके सहित परिक्रमा करते हैं वह यह कनकपर्वत है ॥ २६ ॥ वह सब भूमिके पर्वतोंसे अपनेको श्रेष्ठ मान्ते हैं कि सबसे अग्रणी मैं हूं मेरे समान कोई नहीं ॥ २७ ॥ इसप्रकार मानियोंके अभिमान देखकर मैं श्वासत्यागन करता हूं हम तपोबल

वालोंका भी ऐसा कृत्य नहीं होता ॥ २८ ॥ यह बात मैंने प्रसंगसे कही अन्तमें ब्रह्मलोकको गमन करता हूं ॥ २९ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे भाषायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

इस प्रकार महातेजस्वी नारदजी उसको उपदेश देकर स्वच्छन्द विचरण करते ब्रह्मलोकको चले गये ॥ १ ॥ मुनिके चले जानेपर विन्ध्यको बडी चिन्ता हुई सदा शोचके कारण उसको शान्तिकी प्राप्ति न हुई ॥ २ ॥ मैं अब क्या करूं मेरुको किसप्रकार जय करूं मेरे मनमें शांति और स्वास्थ्य नहीं होता ॥ ३ ॥ 'मेरे उत्साह मान और कीर्त्तिको धिक्कार है तथा कुलको धिक्कार है' मेरे बल पौरुषको धिक्कार है जिसको पूर्वमहात्माओंने सराहा है इस प्रकार चिन्ता करते विन्ध्यके मनमें ॥ ४ ॥ दोष कार्य करनेकी मति प्रगट हुई कि यह सूर्य नित्य मेरुकी प्रदक्षिणा करते उदय होते हैं ॥ ५ ॥ ग्रहनक्षत्र गणोंके सहित परिक्रमा होनेसे मेरु सदा अभिमानमें है मैं अपने शृंगोंसे इसका मार्ग रोध करूंगा ॥ ६ ॥ तब सूर्य निरुद्ध होकर पर्वतकी परिक्रमा कैसे करेगा इस प्रकार मेरे द्वारा सूर्यमार्ग निरुद्ध होनेसे ॥ ७ ॥ तो यह दिव्य पर्वत भग्नदर्प होगा इसमें संदेह नहीं यह विचार विन्ध्याद्रि अपने शृंगोंसे आकाशको स्पर्श करता बढने लगा ॥ ८ ॥ और बडे उन्नत शृंगोंसे सबको व्याप्त कर बढा कि कब सूर्य उदय हो और मैं उसका रोध करूं ॥ ९ ॥ इस विचारमेंही उसको रात बीत गई जिस समय प्रभातकी सूर्यकिरणोंसे दिशा अंधकारहीन हुईं ॥ १० ॥ और उदयाचलसे सूर्यउदय होने लगे और सूर्यकी उज्ज्वल किरणोंसे आकाश निर्मल हुआ ॥ ११ ॥ कमल खिले कुमोदिनी कुँभिलाई सब लोक अपने२कार्यमें लगे ॥ १२ ॥ देवताओंको हव्य पितरोंको कव्य भूतोंको बलि दीजाने लगी, पराह्ण तीसरा पहर और मध्याह्न समय सूर्य ॥ १३ ॥ वियोगिनीरूप पूर्व और आग्नेयी दिशाको सावधान करते हुए जो चिरकालकी विरहवती कामिनीके समान प्रज्वलित हो रही थी ॥ १४ ॥ इस प्रकार सूर्य अग्नि दिशाको छोडकर जब दक्षिणदिशाको गमन करने लगे ॥ १५ ॥ तब आगे चलनेको समर्थ न हुए उस समय वरुणने कहा वरुण बोले हे सूर्य ! इस समय मानो विन्ध्य पर्वत ऊपरका

उठा है ॥ १६ ॥ और आपसे प्रदक्षिणापानेवाले मेरुसे स्पर्धा करता है, सूतजी बोले वरुणके वचन सुन सूर्य विचारने लगे ॥ १७ ॥ अहो आश्चर्य है क्या आकाशमार्ग भी रुद्ध हो सकता है उत्पथमार्गमें स्थित होकर शूर क्या नहीं कर सकते ॥ १८ ॥ मेरे अश्व मार्गमें रुकेंगे दैवही बलवान् है जो राहुकी बाहुसे व्यग्र होकर क्षणमात्रको भी स्थित नहीं होते ॥ १९ ॥ वह चिरकाल तक मार्गमें रुद्ध होंगे बली विधाता क्या करैगा इस प्रकार रुद्धमार्ग होनेपर सब लोक और सब ईश्वर ॥ २० ॥ शरण और कर्तव्यको नहीं जानते हुए चित्रगुप्तादि भी सूर्यके द्वाराही कालको जानते हैं ॥ २१ ॥ वह भी विन्ध्य पर्वतसे रुद्ध होते हैं अहो दैव बडा विपरीत है जब इस प्रकार स्पर्धा करते हुये गिरिदेवने सूर्यके रोकनेकी इच्छा की ॥ २२ ॥ उस समय स्वाहा स्वधाकार नष्ट होकर प्रायः जगतही नष्ट होने लगा इस प्रकार पश्चिम और दक्षिणके आलोक ॥ २३ ॥ निद्रासे नेत्र मूँदकर निशाको प्राप्त हुए पश्चिम और उत्तरके देश दिन रहनेसे तीक्ष्ण तापसे तपने लगे ॥ २४ ॥ प्रजागण मृत नष्ट भग्न और विनाशको प्राप्त होने लगी, स्वधा और कव्यसे वर्जित हो जगत्में हाहाकार होने लगा ॥ २५ ॥ देवता इन्द्र उद्विग्न होकर क्या करैं इस प्रकार कहने लगे ॥ २६ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे भाषायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

सूतजी बोले तब सम्पूर्ण देवता महेन्द्र आदि ब्रह्माजीको आगेकर शंकरकी शरणमें गये ॥ १ ॥ और नम्रहो अनेक प्रकारकी स्तुति करने लगे उस समय देवदेव गिरिशायी चन्द्रमाको मस्तकपर धारण करनेवाले शंकरकी इस प्रकार प्रार्थना करनेलगे ॥ २ ॥ देवता बोले हे देवगणोंके अधिपति उमासे सेवित चरणवाले भक्तजनोंको आठ सिद्धि और विभूतिके देनेवाले ॥ ३ ॥ महामायासे परमात्मारूप स्थानपर शोभित वृषांक अमरोंके पति कैलाशपर निवास करनेवाले ॥ ४ ॥ अहिर्बुध्नमान्य मनुके मान देनेवाले अज बहुरूप स्वात्माराम शंभु ॥ ५ ॥ गणनाथ देव गिरिशायीके निमित्त प्रणाम है महाविभूतिके दाता महाविष्णुके पुत्र ॥ ६ ॥ विष्णुके हृदय कमलमें वास करनेवाले महायोगमें रत योगगम्य योगस्वरूप योगियोंके पतिके निमित्त

प्रणाम है ॥ ७ ॥ आप योगीशके निमित्त प्रणाम है योगियोंके फलदाता दीन दानमें तत्पर दयासागररूप ॥ ८ ॥ दुःखोंके शान्त करनेवाले उग्रवीर्य गुणमूर्त्ति वृषध्वज कालकालके कलन करनेवाले आपको प्रणाम है ॥ ९ ॥ सूतजी बोले जब देवताओंने इस प्रकार शंकरकी स्तुति की तब हँसकर गंभीर वाणीसे शिवजी देवताओंसे बोले ॥ १० ॥ श्रीभगवान् बोले हे देवताओ ! तुम्हारे इस रूपसे हम प्रसन्न हैं हे देवताओं मैं तुम सबके मनोरथ पूर्ण करूंगा ॥ ११ ॥ देवता बोले हे सर्वदेवेश गिरिशायी भालचन्द्र महाबली आप दुःख दूरकरने वाले हमारा मंगल करो ॥ १२ ॥ विन्ध्याचल पर्वत मेरुसे द्वेषकर ऊंचा हुआ है वह सूर्यका मार्ग निरोधकर सबको दुःख देता है ॥ १३ ॥ हे ईशान सब मंगलकर्त्ता आप इसकी वृद्धिको निवारण कीजिये, यदि सूर्यका संचार रुकगया तौ कालज्ञान किसप्रकार होगा ॥ १४ ॥ स्वाहा स्वधाकार नष्ट होनेमें लोक किसकी शरण होंगे, हम भयार्तोंकी आपही शरण हैं ॥ १५ ॥ हे गिरिजापते हमारे दुख नाशक होकर हमपर आप कृपा कीजिये, श्रीभगवान् बोले हे देवतो इस समय नियमके पालनानुसार तौ हम उसकी वृद्धि नहीं रोकेंगे ॥ १६ ॥ परन्तु भगवान् माधवसे आप यह कहिये वह हम सबके आत्मा पूज्य कारणरूप धारी हैं ॥ १७॥ गोविन्द भगवान् विष्णु सब कारणोंके कारण हैं उनसे चलकरकहैं वे सबका दुःख नाश करेंगे ॥ १८ ॥ शिवजीके यह वचन सुनकर इन्द्रादिक देवता गणोंके सहित रुद्रको आगेकर कंपित होते हुए शीघ्रतासे वैकुण्ठको गये ॥ १९ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे भाषायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ५.

सूतजी बोले वे सब देवता वहाँ जाय कमललोचन, रमानाथ जगद्गुरु प्रभासे व्याप्त भगवान् विष्णुका दर्शन करते हुए ॥ १ ॥ और गद्गद स्वरसे स्तोत्र पाठ करने लगे, देवता बोले हे महापुरुषपूर्वज विष्णु आपकी जय हो ॥ २ ॥ हे दैत्य-शत्रुकामजनक सब कामना और फलको देनेवाले महावराह गोविन्द महायज्ञके स्वरूपवाले ॥ ३ ॥ महाविष्णु, ध्रुवेश, आद्य, जगत्के उत्पत्ति कारण मत्स्यावतारमें वेदोंका उद्धार करनेवाले आधाररूपक ॥ ४ ॥ सत्यव्रत धराधीश मत्स्यरूपधारी

के निमित्त नमस्कार है अकूपार दयासागर दैत्यशत्रु देवकार्यकर्त्ता ॥५॥ अमृत प्राप्ति-कर ईशान कूर्मरूप आपके निमित्त प्रणाम है जयादि दैत्यके नाशनिमित्त आदि सूकररूप धारण करनेवाले ॥ ६ ॥ मही उद्धारके उद्योगकर्त्ता कालरूप आपके निमित्त प्रणाम है जो महान्नृसिंहरूप धारणकर महादैत्यकुलको नष्ट करते हुए ॥७॥ नखोंसे दीप्त अंगवाले नृसिंहजीके निमित्त प्रणाम है वामनरूप धारणकर त्रिलोकीके ऐश्वर्यसे मोहित हुए ॥ ८ ॥ बलिको छलते हुए उन वामनरूपधारीके निमित्त प्रणाम है दुष्ट शत्रुके नाश करने सहस्र भुजावाले शत्रुको मारते हुए ॥ ९ ॥ उन रेणुकागर्भसंभूत परशुरामको प्रणाम है दुष्ट राक्षस रावणके शिर छेदन करनेवाले ॥ १० ॥ अनन्त विक्रमी रामके निमित्त प्रणाम है कंस दुर्योधन शिशुपाल राज-चिह्नधारी दैत्योंके ॥ ११ ॥ भारसे आक्रान्त हुई पृथ्वीको जिन महाप्रभुने उद्धार किया और पापोंको दूरकर धर्मको स्थापन किया ॥ १२ ॥ बहुत प्रकारसे उन कृष्णदेवके निमित्त प्रणाम है दुष्ट यज्ञको विघात और पशुहिंसा निवृत्तिके लिये ॥ १३ ॥ बौद्धरूप धारण करनेवाले देवके निमित्त प्रणाम है जब लोक म्लेच्छप्राय होकर दुष्टराजोंसे पीडित हुआ ॥ १४ ॥ तब कल्किरूपधारी आप देवदेवके निमित्त प्रणाम है हे देव ! आपके दशावतार भक्तोंके रक्षा करने ॥ १५ ॥ और दुष्ट दैत्योंके नाशके निमित्त हैं इसकारण आप सब दुःखोंके हरनेवाले हैं भक्तोंके दुःख दूरकरनेवाले नारी जलात्मरूपधारी आपकी जय हो ॥ १६ ॥ हे देव ! जो इस प्रकार रूप धारण करे तुमसे अधिक ऐसा दयासागर कौन है ? इस प्रकार देवदेव श्रीनिवासकी स्तुतिकर ॥ १७ ॥ देवता साष्टांग भक्तिसे प्रणाम करते हुए श्रीपुरु-षोत्तमदेव उनकी स्तुति सुनकर ॥ १८ ॥ उनको प्रसन्नकरके गदाधर बोले श्रीभग-वान् बोले हे देवताओ ! मैं तुमसे प्रसन्न हूं आप दुःख त्यागो ॥ १९ ॥ तुम्हारा मैं परमदुःख दूर करूंगा हे देवताओ ! मुझसे तुम परम दुर्लभ वर मांगो ॥ २० ॥ मैं प्रसन्न हो इस स्तवके प्रभावसे तुमको वर देताहूं जो मनुष्य प्रभातही उठकर इस स्तोत्रका पाठ करता है ॥ २१ ॥ उसको मेरी भक्ति होती और कभी दुःख नहीं होता है तथा उसके घरमें अलक्ष्मी काल कभी नहीं आक्रमण करती ॥ २२ ॥ उपसर्ग, वेताल, ग्रह, ब्रह्मराक्षस, वात पित्त, श्लेष्माके रोग ॥ २३ ॥ अकाल मरण कभी नहीं होता चिरकालमें रहनेवाली सन्तति और सब सुखदायी भोग होते हैं ॥ २४ ॥ यह सब वस्तु स्तोत्रपाठीको प्राप्त होती हैं बहुत कहनेसे क्या है

यह स्तोत्र सम्पूर्ण अर्थका साधक है ॥ २५ ॥ इसके पाठसे मनुष्योंको भुक्ति मुक्ति दूर नहीं रहती हे देवताओ ! जो तुमको दुःख है वह निश्चय कहो ॥ २६ ॥ मैं तुम्हारा वह दुःख दूर करूंगा इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं है सब देवता इस प्रकार श्रीभगवान्‌का वचन सुनकर ॥ २७ ॥ प्रसन्नमन होकर विष्णुसे कहने लगे

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

सूतजी बोले विष्णुके वचनसे सब देवता प्रसन्न हुए और प्रसन्न मन होकर फिर भी कहने लगे ॥ १ ॥ देवता बोले हे देवदेव महाविष्णु ! सृष्टिकी स्थिति और अन्त करनेवाले देव यह विन्ध्यपर्वत सूर्यका मार्ग रोधकरता है ॥ २ ॥ सो भानुके विरोधसे विना भाग पाये हुए क्या करैं कहां जाँय ॥ ३ ॥ श्रीभगवान् बोले जो सबकी निर्माता आद्या कुलवर्द्धिनी देवी भगवती है उसीके उपासक परमकान्तिमान् ॥ ४ ॥ मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी वाराणसीमें स्थित हैं हे देवताओ ! वह अगस्त्यजी विन्ध्याचलका तेज हरण करैंगे ॥ ५ ॥ उन ब्राह्मणश्रेष्ठ अगस्त्यजीको प्रसन्नकर मुक्तिदायक काशीमें जाय अभयदान मांगो ॥ ६ ॥ सूतजी बोले जब इस प्रकार विष्णुने कहा तब सब देवता प्रणाम कर काशीमें गये ॥ ७ ॥ वह देवता क्षणमात्रमें काशीपुरीमें जाय मणिकर्णिकामें भक्तियुक्त प्रणाम करके ॥ ८ ॥ देवता पितरोंका तर्पणकर विधिपूर्वक दान दे मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजीके आश्रममें आये ॥ ९ ॥ जो प्रशान्त श्वापदोंसे व्याप्त अनेक वृक्षोंसे संघटित मयूर सारस हंस चक्रवाकोंसे उपाश्रित ॥ १० ॥ महावराह, कोल, व्याघ्र, शार्दूल, मृग, रुरु, खड्ग, शरभसे ॥ ११ ॥ युक्त परमलक्ष्मीसे व्याप्त मुनिश्रेष्ठको देखते हुए और दंडक समान लेटकर सब प्रणाम करने लगे ॥ १२ ॥ हे द्विजगणोंसे पूज्यमान्य भूमिसुर ! आपकी जय हो वातापीके बलनाशक अगस्त्यजीको प्रणाम है ॥ १३ ॥ लोपामुद्राके पति श्रीमान् मित्रवरुणसे प्रगट सब विद्याके निधि, शास्त्रयोनि अगस्त्यजीके निमित्त प्रणाम है ॥ १४ ॥ जिनके उदय होते ही जलसमूह निर्मल और उज्ज्वल हो जाते हैं उन आपके निमित्त प्रणाम है ॥ १५ ॥ काशपुष्पोंके खिलानेवाले लंकावासके प्रिय जटामंडल युक्त शिष्योंके सहित आपको प्रणाम है ॥ १६ ॥ सब देवताओंसे स्तुतिको

प्राप्त गुणराशि महामुनिवरिष्ठ पूज्य स्त्री सहित आपको प्रणाम है॥ १७॥ हे स्वामिन्! प्रसन्न हो हम सब आपकी शरण हुए हैं हे परमकान्तिमान्! हम दुस्तर शैलके दुःखसे पीडित हुए हैं॥ १८॥ जब परमधर्मात्मा अगस्त्यजीकी इस प्रकार प्रार्थना की तब हँसते हुए महर्षि प्रसन्न हो बोले॥ १९॥ मुनिने कहा हे देवताओ! तुम त्रिभुवनमें सबसे श्रेष्ठ हो लोकपाल महात्मा निग्रह अनुग्रह करनेमें समर्थ हो॥ २०॥ जो अमरावतीके अधिपति तथा वज्र जिनका आयुध है, जिसके द्वारे आठों सिद्धि निवास करती हैं वह मरुत्पति इन्द्र ॥ २१ ॥ वैश्वानर हव्य कव्यका वहन करनेवाला अग्नि सब देवताओंका मुख है उसको दुष्कर क्या है ॥ २२ ॥ सब रक्षोंका अधिपति कान्तिमान् सबके कर्मोंका साक्षी दण्डधारी देव है हे देवताओ! कौन बात इनको दुर्लभ है॥ २३ ॥ तौ भी जो देवता अपने कार्यकी इच्छा करते हैं वह कहिये मैं अवश्य उसको करूंगा इसमें सन्देह नहीं ॥ २४ ॥ इस प्रकार देवता मुनिके वचन सुनकर विश्वासकर प्रेमसे अपना कार्य कहने लगे ॥ २५ ॥ हे महर्षि! विन्ध्याचलने सूर्यका मार्ग निरुद्ध किया है उससे त्रिलोकी नष्ट होकर हाहाकार करती है ॥ २६ ॥ हे मुने! अपने तपकी कान्तिसे उसकी वृद्धि स्तंभित कीजिये हे ऋषे! आपके तेजसे वह अवश्य नम्र होगा बस केवल यही हमारा कर्तव्य कार्य है ॥ २७ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे भाषायां दशमस्कंधे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ७.

सूतजी बोले अगस्त्यजी इस प्रकार ब्राह्मणोंके वचन श्रवणकर बोले मैं यह तुम्हारा कार्य करूंगा ॥ १ ॥ जब कुंभजन्मा अगस्त्यजीने यह देवताओंका कार्य स्वीकार किया हे द्विजसत्तम! तब देवता बडे प्रसन्न हुए ॥ २ ॥ मुनिके वचनसे सब देवता अपने २ स्थानोंको गये तब मुनिवर नृपकन्या अपनी स्त्रीसे कहने लगे ॥ ३ ॥ हे प्रिये! यह अनर्थकारी विघ्न प्राप्त हुआ है विन्ध्य पर्वतने सूर्यका मार्ग रोकनेकी इच्छाकी है ॥ ४ ॥ उस विघ्नका कारण पुरातन तत्त्ववादी ऋषियोंका वाक्य स्मरण करके मैंने जाना है जो काशीके उद्देश्यसे कहा गया है ॥ ५ ॥ मुमुक्षुओंको कभी काशीवास त्यागना न चाहिये परन्तु काशी सेवन करनेवालोंको बडे विघ्न उपस्थित होते हैं॥ ६॥ हे प्रिये! वही काशीमें निवास करते हुए मुझे विघ्न प्राप्त हुआ

हे परम तपस्वी मुनिभार्यासे इस प्रकार कहकर ॥ ७ ॥ मणिकर्णिकामें स्नानकर विश्वेश्वरका दर्शनकर दण्डपाणिकी अर्चनाकर कालभैरवके समीप आय ॥ ८ ॥ कहने लगे हे महाबाहु! भैरवजी भक्तोंका भय हरनेवाले तुम काशीपुरीके अधीश्वर होकर मुझे क्यों दूरकरते हो ॥ ९ ॥ आप काशीके निवासियोंके सब भय दूर करते हो भक्तोंके रक्षकहो हे भक्तोंके भय निवारक! मुझे क्यों दुःख देते हो॥ १०॥ न मैं ने पराया अपवाद किया, न चुगली की, न असत्य बोला फिर किस कर्मविपाकसे मुझे काशीसे दूरकरते हो ॥ ११ ॥ अगस्त्यजी इस प्रकार भैरवजीकी प्रार्थना करके सब विघ्नके निवारण करनेवाले विघ्नेशकी साक्षीको प्राप्त हुए ॥ १२ ॥ उनको देख और प्रार्थनाकरके पुरीसे बाहर हुए और श्रीमान् लोपामुद्राके पति दक्षिणदिशामें चले ॥ १३ ॥ वह महाभाग्यनिधि मुनि काशीके विरहसे सन्तप्त हो वारंवार काशीका स्मरण करते भार्याकेसहित गये ॥ १४ ॥ आधे निमेषमेंही वह मुनि तपके यानमें प्राप्त हो आगे उठे हुए विन्ध्यपर्वतको देखने लगे ॥ १५॥ आगे स्थित होते हुए मुनिको देख पर्वत कंपायमान होगया और सूक्ष्म होकर पृथ्वीमें स्पर्शसा करने लगा ॥ १६ ॥ भक्तिभावसे पृथ्वीमें दंडवत् करता हुआ इस प्रकार महामुनि विन्ध्यपर्वतको नम्रीभूत देखकर ॥ १७ ॥ प्रसन्न हो विन्ध्याचलसे कहने लगे हे वत्स! मैं जबतक इधर आऊं तबतक तुम योंही स्थित रहो ॥ १८ ॥ हे पुत्र! मैं तुम्हारे ऊंचे शिखर नहीं लाँघसक्ता हूं ऐसा कहकर मुनि दक्षिणदिशा जानेको उत्सुक हुए ॥ १९ ॥ और उसके शिखरोंपर आरोहण करते उतरगये फिर दक्षिणदिशामें जाय मार्गमें श्रीपर्वतको देख ॥ २० ॥ मलयाचलको प्राप्त हो वहाँ अपना आश्रम निर्माण करते हुए और मुनिसे पूजित हो देवीभी विन्ध्याचलपर आई ॥ ॥ २१ ॥ हे शौनक वह लोकमें विन्ध्यवासिनीनामसे विख्यात हुई सूतजी बोले यह शत्रुनाशन परमोत्तम चरित्र है ॥ २२ ॥ यह अगस्त्य और विन्ध्याचलका पापनाशी आख्यान है यह राजोंको विजय और द्विजोंके ज्ञानका बढानेवाला है ॥ २३॥ वैश्योंको धान्यादिका दाता तथा शूद्रोंका सुख देनेवाला है इससे धर्मार्थीको धर्म और पुत्रार्थीको पुत्र मिलता है ॥ २४ ॥ भक्तिसे एकवारभी स्मरण करनेसे कामनावालेकी सब कामना पूर्ण होती हैं इसप्रकार स्वायंभुवमनु भक्तिसे देवीका आराधन कर ॥ २५॥ अपने मन्वन्तरके आश्रयवाले पृथ्वीका राज्य लेते हुए हे सौम्य! यह

मैंने मन्वन्तर चरित्र वर्णन किया यह देवीका आद्य चारित्र है अब और क्या सुनने की इच्छा है ॥ २६ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे भाषायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ८.

शौनकजी बोले मैंने आपसे जो पूछा सो आपने आद्यमन्वन्तर कहा अब आप दिव्य तेजवाले मनुओंका वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ सूतजी बोले इसप्रकार स्वायंभुवकी उत्पत्ति सुनकर क्रमसे उनकी संभूतिकी इच्छासे ॥ २ ॥ परमज्ञानी देवीके तत्त्व जाननेमें पण्डित नारदजी पूछने लगे हे भगवन्! मुझसे मनुओंकी उत्पत्ति कहिये ॥ ३ ॥ नारायण बोले पहले हमने आपसे स्वायंभुवमनुका चरित्र कहा जिससे देवीके आराधनसे उन्होंने अकंटक राज्य पाया ॥ ४ ॥ उस मनुके प्रियव्रत और उत्तानपाद दो पुत्र हुए यह राजपालनमें पृथ्वीमें विख्यात हुए ॥ ५ ॥ दूसरे मनु स्वारोचिष हुए यह अप्रमेय पराक्रमी प्रियव्रतके पुत्र थे ॥ ६ ॥ वह स्वारोचिषनाम मनु कालिन्दीके तटपर सब प्राणियोंके प्रिय करनेको निवास करते हुए ॥ ७॥ और जीर्ण पत्ते खाकर तप करनेको उद्यत हुए और देवीकी मृत्तिकाकी मूर्त्तिकी भक्तिसे पूजा करने लगे ॥ ८॥ इसप्रकार वनमें निवास करते बारह वर्ष बीत गये हे तात! तब सहस्र सूर्यके समान कान्तिवाली देवी प्रगट हुई ॥ ९॥ हे सुव्रत! तब उनके स्तवराजसे देवी प्रसन्न हुई और स्वारोचिषको मन्वन्तरका आश्रय दिया ॥ १० ॥ इसप्रकार जगन्माता आधिपत्य देकर तारिणी नामसे विख्यात हुई इसप्रकार स्वारोचिषमनु तारिणीके आराधनसे ॥ ११ ॥ सब शत्रुओंसे रहित हो आधिपत्यको प्राप्त हुए इसप्रकार विधिपूर्वक धर्मको स्थापित कर राज्यको पुत्रोंको दे ॥ १२ ॥ भोग भोगकर अपने मन्वन्तरके आश्रयसे स्वर्ग लोकको गया प्रियव्रतका पुत्र मनु तीसरा उत्तमनामक हुआ ॥ १३ ॥ वह गंगा किनारे देवीका जप करता हुआ तप करने लगा इसप्रकार तीन वर्षमें देवीके अनुग्रहको प्राप्त हुआ ॥ १४ ॥ भक्तिसे भावित मन हो देवीको अनेक स्तोत्रोंसे पूजकर चिरकालिक सन्ततिके सहित निष्कंटक राज्यको प्राप्त होता हुआ ॥ १५ ॥ राजोंके योग्य सुख और युग धर्मको भोगकर राजर्षियोंसे भावित पदवीको प्राप्त होता हुआ ॥ १६ ॥ चौथा तामस नाम मनु

प्रियव्रतका पुत्र हुआ वह नर्मदाके दक्षिणकूलमें जगन्माताकी आराधना कर॥ १७॥ जो माहेश्वरी है उनका भजन कर कामराजके कूटजापमें परायण हुआ वसन्त शरद् और नवरात्रमें पूजा जपसे ॥ १८ ॥ श्रेष्ठ कमललोचनी देवीको सन्तुष्ट करता हुआ उनकी प्रसन्नताको अनेक स्तोत्रोंसे प्राप्त होकर ॥ १९ ॥ निर्भय हो अकंटक राज्य भोगने लगा और बडे पराक्रमी शूर दशपुत्रोंको ॥ २० ॥ भार्यामें प्रगटकर स्वर्गलोकको गमन किया तामसका छोटा भाई पांचवाँ मनु रैवत हुआ ॥ २१ ॥ उसने भी यमुनाके किनारे कामराज मंत्रका जप किया जो साधकको अनेक प्रकारकी मनोरथसिद्धिका देनेवाला है ॥२२॥ इसके आराधनसे उस मनुको श्रेष्ठ राज्यकी सिद्धि प्राप्त हुई और लोकमें सब सिद्धिविधायक बडा बल प्राप्त हुआ ॥ २३ ॥ और चिरायुष पुत्र पौत्रभार्या सन्तति हुई इसप्रकार धर्मको स्थापन कर विषयोंको भोगकर ॥ २४ ॥ अन्तमें वह शूर महेन्द्र स्थानको प्राप्त हुए ॥ २५ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे भाषायां दशमस्कंधे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ९.

श्रीनारायण बोले अब विचित्र देवीका माहात्म्य सुनो जिसप्रकार अंगपुत्रमनुने उत्तम राज्य पाया ॥ १ ॥ अंगराजाका पुत्र चाक्षुषमनु हुआ यह छठवाँ मनु पुलहनाम ब्रह्मर्षिकी शरणको प्राप्त हुआ ॥ २ ॥ हे ब्रह्मर्षि! मैं आपकी शरण हुआ हूं हे दुःखनाशक! आप मुझे समझाइये जिससे मैं श्रेष्ठ लक्ष्मीको प्राप्त होऊं ॥ ३ ॥ जैसे मेरा पृथ्वीमें अखण्ड राज्य होजाय मेरी भुजाओंका बल अप्रतिहत और अस्त्र शस्त्रमें मैं निपुण होजाऊं ॥ ४ ॥ निरन्तर स्थायी सन्तति, अखण्ड उत्तम आयु और अन्तमें मुक्ति हो इसप्रकार मुझे उपदेश करो ॥ ५ ॥ जब इस प्रकारके वचन मुनिने सुने तब राजपुत्रसे देवीका परमाराधन कहने लगे ॥ ६ ॥ हे राजन्! मेरे श्रोत्रसुखकारी वचन सुनो तुम शिवाका आराधन करो उसके प्रसादसे यह सब कुछ होजायगा ॥ ७ ॥ चाक्षुष बोले हे मुने! भगवतीका परमाराधन किस प्रकार है किस प्रकार करना चाहिये वह कृपाकर आप कहिये ॥ ८ ॥ मुनि बोले हे राजन्! देवीका परम अव्यय पूजन आप सुनिये महासरस्वती देवता वाला बीज निरन्तर जपना चाहिये ॥ ९ ॥ तीन काल जपनेसे भुक्ति मुक्तिकी प्राप्ति होती है हे राजन्! वाग्भवबीजके समान और मंत्र नहीं है ॥ १० ॥ यह जपसेही सिद्धि

करनेवाला बलवीर्यकी वृद्धि करनेवाला है इसीके जपसे ब्रह्माजी सृष्टि करनेमें समर्थ हुए हैं ॥ ११ ॥ इसीके जपसे विष्णु सृष्टिपालक और महेश्वर संहर्ता कहे जाते हैं ॥ १२ ॥ तथा इसीसे दूसरे लोकपाल भी निग्रह अनुग्रह करनेमें समर्थ होते हैं जिसके आश्रयसे यह सब कोई बलवीर्य सम्पन्न हुए हैं ॥ १३ ॥ हेराजन् ! इसी प्रकार तुम भी माहेश्वरी जगदम्बिकाको आराधन कर शीघ्रही महासमृद्धिको प्राप्त होगे ॥ १४ ॥ जब मुनिश्रेष्ठ पुलहने इस प्रकार समझाया तब अंगपुत्र तप करने विरजा नदीके तटपर गया ॥ १५ ॥ वहां वाणीबीजका जप करता परम तप करने लगा और यह राजा सूखे पत्तोंका आहार करने लगा ॥ १६ ॥ पहले वर्षमें पत्ते खाये दूसरेमें जल पिया तीसरेमें वायु भक्षण कर ठूंठके समान अचल रहे ॥ १७ ॥ इस प्रकार बारह वर्षपर्यन्त राजाने भोजन त्यागकर जप किया जिससे मतिमें प्रकाश हुआ ॥ १८ ॥ जब एकान्तमें देवीका भजन करने लगा तब साक्षात् परमेश्वरी जगन्माता प्रसन्न हो प्रगट हुई ॥ १९ ॥ जो तेज सम्पन्न दुराधर्ष सर्व देवमय ईश्वरी है, वह मनोहर अक्षरोंसे अंगपुत्रसे कहने लगी ॥ २० ॥ देवी बोली हे पृथ्वीपाल ! जो तुमने अपने मनमें विचारा है वह मांगो मैं तुम्हारे तपसे प्रसन्न हो तुमको देती हूं ॥ २१ ॥ चाक्षुष बोले हे देवेशि ! जो प्रार्थना मेरे मनमें है उसको तुम जानती हो हे देवपूजिते ! अन्तर्यामिस्वरूपसे तुम सब जानती हो ॥ २२ ॥ यह मेरा बड़ा भाग्य है जो तुम्हारा दर्शन प्राप्त हुआ हे देवि ! मुझको मन्वन्तरपर्यन्तके आश्रयका राज्य दो ॥ २३ ॥ देवी बोली, हे राजसत्तम ! मैंने मन्वन्तरपर्यन्तका राज्य तुमको दिया, तुम्हारे गुणी महाबली पुत्र होंगे ॥ २४ ॥ निष्कंटक राज्य और अन्तमें तुम्हारी मोक्ष होगी इस प्रकार देवी मनुको वर दे ॥ २५ ॥ उससे भक्तिपूर्वक स्तुतिको प्राप्त होकर अदर्शनको प्राप्त हुई वह राजा भगवतीके आश्रयसे छठा मनु हुआ ॥ २६ ॥ यह बड़ा मान्य और सार्वभौम सुखसे युक्त हुआ इसके पुत्र बडे बली कार्यके भार बहनमें समर्थ हुए ॥ २७ ॥ वह सब देवीके भक्त, शूर, महाबली, पराक्रमी हुए सर्वत्र माननीय महाराज सुखसे सम्पन्न हुए ॥ २८ ॥ इस प्रकार चाक्षुष मनुने देवीका आराधन कर श्रेष्ठताको प्राप्त हो अन्तमें वैकुण्ठ गमन किया और शिवाका पद पाया ॥ २९ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे भाषायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः १०.

श्रीनारायण बोले सातवें वैवस्वत मनु हुए जो श्राद्धदेवनामसे विख्यात परानंदके भोक्ता राजोंके माननीय हुए ॥ १ ॥ यह वैवस्वत मनु देवीकी परम प्रसन्नतासे उस तप और जपसे मन्वन्तरके अधिपति हुए ॥ २ ॥ आठवें मनु पृथ्वीमें विख्यात सावर्णि होंगे वह जन्मान्तरमें देवीका आराधन कर उनके वरदानसे ॥ ३ ॥ सब राजोंसे पूजित मन्वन्तर पति हुए, यह धीर महापराक्रमी देवीकी भक्तिमें परायण हुए ॥ ४ ॥ नारदजी बोले इन मनुने किसप्रकार पूर्व जन्ममें पृथ्वीसे प्रगट भगवतीका आराधन किया था, सो आप हमसे कहिये? ॥५॥ श्रीनारायण बोले स्वारोचिष मनुके अन्तरमें चैत्रवंशमें एक सुरथ नामवाला राजा बडा बली और विख्यात था ॥ ६ ॥ यह गुणग्राही, धनुर्धर मान्य श्रेष्ठ और कवि था, धनका संग्रह कर्त्ता और याचकमंडलको दान देता था ॥ ७ ॥ वह मानी शत्रुओंका मर्दन करनेवाला सब अस्त्रोंमें कुशल और बली हुआ एक समय उसकी कोलानगरीके विध्वंस करने वाले राजा ॥ ८ ॥ शत्रु सेनाके सहित आकर इसे घेरते हुए जब इस मानधनी राजाकी नगरी उन्होंने घेर ली ॥ ९ ॥ तब सुरथराजा सेनासहित शत्रुके मारनेकी इच्छासे नगरीसे बाहर निकला ॥ १० ॥ तब शत्रुओंने युद्ध कर सुरथ राजाको जीत लिया अमात्य मंत्री और कोषधन उसका सब जाता रहा ॥ ११ जब सब धन हरगया तब राजा बडा दुःखी हुआ तब वह परमद्युति नगरीसे बाहर किये गये ॥ १२ ॥ और मृगयाके मिससे वनको चले गये इकले वनमें भ्रांत हो राजा विचरनेलगे ॥ १३ ॥ फिर किसी एक शान्तमनवाले श्वापदोंसे व्याप्त मुनि और शिष्यगणोंसे संयुक्त ॥ १४ ॥ मुनिश्रेष्ठ बुद्धिमान् दीर्घदृष्टिके आश्रममें राजा कुछ दिनों तक निवास करता हुआ ॥ १५ ॥ एक समय वह राजा पूजाके अन्तमें मुनिके समीप जाय प्रणाम कर नम्रतासे पूछने लगा ॥ १६ ॥ हे मुनिराज ! मेरा मन बडा दुःखी है हे भूदेव ! तत्त्वज्ञान होने और निष्प्रज्ञा होनेपरभी ॥ १७॥ शत्रुकेद्वारा जो मेरा राज्यधन हरण हुआ है तौभी मेरे मनसे राज्यका ममत्व नहीं छूटता ॥ १८॥ हे मुनिराज ! मैं क्या करूं कहां जाऊं किस प्रकार मेरे मनमें शान्ति होगी हे वेद

---

१ प्रकृतिखण्डके दुर्गामाहात्म्यमें इसका विस्तार है कि ध्रुवका पौत्र नंदि शत १०० अक्षौहिणी सेना लेकर नगरीपर चढा था।

ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ! अब मैं आपके अनुग्रहकी इच्छा करता हूं सो आप कृपा कर कहिये ॥ १९ ॥ मुनि बोले हे राजन्! महाआश्चर्य करनेवाली बातको सुनो, जो देवीका माहात्म्य सब कामनादायक है ॥ २० ॥ जो जगन्मयी महामाया विष्णु, शिव ब्रह्माकी भी प्रगट करनेवाली है, जो बलसे जन्तुओंके मन आकर्षण करती है ॥ ॥ २१ ॥ और फिर मोहितकर देती है ऐसा जानो वही सब जगत्को उत्पन्नकर पालन करती है ॥ २२ ॥ और संहारके समय हररूप धारण करती है, वह कामदात्री महामाया दुरन्ता कालरात्रि है ॥ २३ ॥ यह काली विश्वकी संहार करने वाली कमला कमलमें निवास करनेवाली है उसीसे सब जगत् होकर उसीमें प्रतिष्ठित है ॥ २४ ॥ अन्तमें उसामें लय होगा इस कारण वही परात्पर है हे राजन्! जिसके ऊपर उस देवीका प्रसाद हो जाता है ॥ २५ ॥ वही मोहके पार हो जाता है इसमें सन्देह नहीं ॥ २६ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे भाषायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ११.

राजा बोले हे काल जाननेवालोंमें श्रेष्ठ! कहो वह कौनसी देवी है कौन इन प्राणियोंको मोहित करती है इसमें कारण क्या है ॥ १ ॥ वह देवी किससे प्रगट होती है क्या उसका स्वरूप है क्या आत्मा है हे ब्रह्मन्! कृपा कर आप यह सब कहिये ॥ २ ॥ मुनि बोले सुनो राजन्! मैं तुमसे देवीका स्वरूप कहता हूं जिस प्रकार वह जगन्मयी प्रगट हुई सो आपसे कहता हूं ॥ ३ ॥ जिस समय योगनिद्रामें भगवान् सब जगत्का संहार कर शयन कर गये और शेष शय्यापर सागरमें निद्रित हुये ॥ ४ ॥ तब देवदेव जनार्दनके शयन करनेसे मधु कैटभ दानव उनके कानोंके मैलसे प्रगट हुए ॥ ५ ॥ वह घोररूप दानव ब्रह्माजीके मारनेको उद्यत हुए तब ब्रह्माजी उन दोनों दैत्योंको देखकर ॥ ६ ॥ तथा विष्णुको सोता देख बडी चिन्ताको प्राप्त हुए कि भगवान् शयन करते हैं और ये दोनों दैत्य बडे प्रबल हैं ॥ ७ ॥ मैं क्या करूं कहां जाऊं किस प्रकार मुझे मंगलकी प्राप्ति हो इस प्रकार महात्मा ब्रह्माजीके चिन्ता करनेमें ॥ ८ ॥ तब कार्यसाधनी बुद्धि प्रगट हुई जिसकेद्वारा भगवान् निद्रित हुए थे ॥ ९ ॥ उस सबकी प्रसूती भगवती देवीके

शरण होता हूं ब्रह्माजी बोले हे जगद्धात्री ! भक्तोंको अभीष्ट फल देनेवाली आपकी जय हो ॥ १० ॥ हे जगत्की माया, महामाया, समुद्रमें शयन करनेवाली शिवे तुम्हारी आज्ञामें वश हुए सब अपना २ कार्य करते हैं ॥ ११ ॥ तुम कालरात्री, महारात्री, मोहरात्री, मदसे उत्कट हो सर्वत्र व्याप्त वशगामिनी महा आनंदकी मर्यादाहो ॥ १२ ॥ तुम पूजनीय महा आराधनीया माया, मधुमती, मही, परमा, परमेशानी अर्थात् सब पर और अपरकी परमा कही गई हो ॥ १३ ॥ लज्जा, पुष्टि, क्षमा कीर्ति, कान्ति, कारुण्य विग्रहवाली, मनोहर जगत्से वंदित जाग्रदादि स्वरूपवाली ॥ १४ ॥ परमा, परमेशानी, परनंदा, परायणा, अद्वितीया, एक, एक स्वरूपवाली तथा मायावस्तुके सहित दयामयी हो कहीं द्वयात्मिका पाठ है, तब यह अर्थ करना कि द्वित्व संख्याविशिष्ट पदार्थात्मिका हो ॥ १५ ॥ त्रयीविद्यारूप, त्रिगुणरूप, धर्म, अर्थ, काम, स्वरूपिणी तुर्यावस्था स्वरूप ब्रह्मपदात्मिका, अथवा एकसे चार संख्या तिथि-रूपा हो पंचतत्त्व संख्यारूप पांच भूतोंकी अधीश्वरी षष्ठी, षट् संख्या रूपा अथवा, छः के पूरक पदार्थकी अधीश्वरी हो ॥ १६ ॥ सप्तमी तिथि सातों वारकी अधीश्वरी सात सात वरकी देनेवाली अष्टमी वसुओंकी अधीश्वरी, नवग्रह युक्त और उनकी अधीश्वरी ॥ १७ ॥ नवीन रागवानो रागोंकी कलासे मनोहर नौ संख्या तथा नौकी अधीश्वरी दशमी दश दिशाओंमें पूजनीया, दशों दिशाओंमें व्याप्त रमारूप ॥ १८ ॥ एकादशात्मायुक्त ग्यारह रुद्रोंसे निषेवित, एकादशी तिथिको प्यार करनेवाली, एकादश गणोंकी स्वामिनी ॥ १९ ॥ द्वादशी, बारह भुजावाली बारह आदित्योंको प्रगट करनेवाली, त्रयोदशात्मिका "मलमासके सहित तेरहवां महीना भी ग्रहण करना" देवी त्रयोदश गणको प्यार करनेवाली ॥ २० ॥ त्रयोदश नामवाली, तथा इनसे अभिन्न विश्वेदेवाओंकी अधिदेवी चौदह इन्द्रोंको वर देनेवाली चौदह मनुओंको प्रगट करनेवाली ॥ २१ ॥ पंचदशी कामराज विद्यारूपवाली त्रिपुर सुन्दरी विद्या, जानने योग्य पंचदशी तिथिवाली षोडशी षोडश भुजा सोलह चन्द्रमाकी कलामय व्याप्त ॥ २२ ॥ षोडशात्मक चन्द्रकिरणमें व्याप्त दिव्य कलेवरवाली हो, हे देवेशि ! तुम इस प्रकारके रूपवाली निर्गुण तमके उदयमें ॥ २३ ॥ आपने देवदेव रमापतिको ग्रहण किया है और यह दोनों दुरासद मधु कैटभ दैत्य हैं ॥ २४ ॥ इनके वधके निमित्त देव देवको जगाओ, मुनि बोले जब भगवत् प्रिया तामसीकी इस प्रकार स्तुति की ॥ २५ ॥ तब देव देवको त्यागनकर उसने

दोनों दानवोंको मोहित किया, तभी भगवान्, विष्णु, परमात्मा, जगत्पति ॥ २६ ॥ जागे और उन्होंने दोनों दानवोंको देखा तब वे दोनों घोर दानव मधुसूदनको देखकर ॥ २७ ॥ युद्धका संकल्पकर भगवान्के समीप गये उनके संग भगवान् वासुदेवका युद्ध हुआ ॥ २८ ॥ पांच सहस्र वर्षतक भगवान्ने बाहुयुद्ध किया तब यह दोनों बलसे मत्त हो जगन्मायासे मोहित हुए ॥ २९ ॥ वर मांगो यह मधुसूदनसे बोले आदि पुरुष भगवान् उन दोनोंके वचन सुन ॥ ३० ॥ बोले तुम दोनों हमारे वध्यहो तब वे दोनों बडे बली हरिसे बोले ॥ ३१ ॥ हमको उस स्थानमें मारो जहां कहीं पृथ्वी जलसे व्याप्त न हो तब भगवान् शंखचक्रधारीने ॥ ३२ ॥ चक्रसे उनका शिरच्छेदन कर दिया हे राजन् ! इस प्रकार ब्रह्मासे स्तुतिको प्राप्त हो देवी प्रगट हुई ॥ ३३ ॥ हे महाराज ! वह महाकाली सब योगेश्वरोंकी ईश्वरी है हे राजन् ! अब महालक्ष्मीकी उत्पत्ति सुनो ॥ ३४ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे भाषायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः १२.

मुनि बोले महिषीगर्भसे प्रगट हुआ महाबली पराक्रमी महिषासुर सब देवताओंको जीतकर जगत्का अधिपति स्वयं हुआ ॥ १ ॥ वह महासुर सब लोकपालोंके अधिकारोंको बलसे छीन त्रिलोकीका ऐश्वर्य भोगने लगा ॥ २ ॥ तब पराजित हो सब देवता स्वर्गसे च्युत हुए और ब्रह्माको आगेकर उत्तम लोकको गये ॥ ३ ॥ जहां उत्तम देव शंकर और अच्युत निवास करते हैं वहां जाकर दुरात्मा महिषासुरका वृत्तान्त कथन किया ॥ ४ ॥ कि उस असुरने बडे वेगसे सब देवताओंके स्थान जीतकर मदोद्धत हो उनको स्वयं भोगा है ॥ ५ ॥ हे देवताओ ! वह महिषासुर बडा दुष्टदैत्य है हे असुरनाशको! उसके वधका उपाय विचारो ॥ ६ ॥ वह भगवान् देवताओंका इस प्रकार दुःख पूर्ण वचन सुनकर शंकर भगवान् बडा क्रोध करते हुए ॥ ७ ॥ हे राजन् ! उस समय क्रोध करते हुए भगवान् हरिके मुखसे सहस्र सूर्यके समान दिव्यतेज निर्गत हुआ ॥ ८ ॥ फिर क्रमसे सब देवताओंका तेज देवताओंको प्रसन्न करता हुआ उनके शरीरसे निर्गत हुआ ॥ ९ ॥ शंभुके तेजसे मुख यमके तेजसे केश विष्णुके तेजसे भुजा ॥ १० ॥ चन्द्रमाके

तेजसे स्तन, महेन्द्रके तेजसे मध्यभाग, वरुणके तेजसे जंघा हुई ॥ ११ ॥ भूमिके तेजसे नितम्ब, ब्रह्माके तेजसे चरण, सूर्यके तेजसे पादांगुली, इन्द्रके तेजसे हाथोंकी अंगुली ॥ १२ ॥ कुबेरके तेजसे नासिका, प्रजापतिके उत्तम तेजसे दांत ॥ १३ ॥ अग्निके तेजसे तीन नेत्र, संध्याके तेजसे तेजकी निधि भ्रुकुटी ॥ १४ ॥ हे राजन्! वायुके तेजसे कान, इस प्रकार सबके तेजसे महिषमर्दिनी प्रगट हुई ॥ १५ ॥ शिवने शूल, विष्णुने चक्र, वरुणने पाश, अग्निने शक्ति, वायुने धनुषबाण ॥ १६ ॥ महेन्द्रने वज्र, ऐरावतने घंटा, यमने कालदण्ड, ब्रह्माने अक्षमाला और कमंडलु ॥ १७ ॥ दिवाकरने रोमकूपोंमें रश्मिमाला, हे राजन्! कालने दिव्य ढाल तलवार ॥ १८ ॥ समुद्रने निर्मलहार और मलीन न होनेवाले वस्त्र चूडामणि कटक कुंडल बाजूबंद ॥ ॥ १९ ॥ निर्मल अर्धचन्द्र और नूपुर तथा गलेका भूषण प्रसन्नतासे देवीके निमित्त दिया ॥ २० ॥ हे राजन्! विश्वकर्माने यह सब देवीके निमित्त दिया, हिमालयने वाहन सिंह तथा अनेक रत्न दिये ॥ २१ ॥ धनाधिप कुबेरने सुरापूर्ण पान पात्र दिया, शेषजीने नागहार दिया ॥ २२ ॥ और भी सम्पूर्ण देवताओंने जगन्माताका मान्य किया, महिषपीडित देवता महादेवीकी स्तुति करने लगे ॥ २३ ॥ इस प्रकार जगत्की उत्पन्न करनेवाली महेशानीकी स्तुतिकी, देवताओंसे पूजित भगवती उनके स्तोत्रको सुनकर ॥ २४ ॥ महिषासुरके मारनेको महानाद करती हुई हे राजन्! उस नादसे महिषासुर चकित होगया ॥ २५ ॥ और सब सेनालेकर जगद्धात्रीके समीप आया तब महिषासुर देवीसे युद्ध करने लगा ॥ २६ ॥ और शस्त्रास्त्रोंसे आकाश पूर्ण कर दिया, चिक्षुर, ग्रामणी, दुर्धर, दुर्मुख ॥ २७ ॥ बाष्कल, ताम्र, विडालवदन इसप्रकारके और भी दैत्य असंख्य संग्राम करनेवाले ॥ २८ ॥ योद्धाओंसे युक्त दानवश्रेष्ठ महिषासुर आया तब क्रोधसे लालनेत्रकर लोकमोहिनी देवी ॥ २९ ॥ महिषके आश्रित योद्धाओंको समरमें मारनेलगीं, तब उनके मरनेसे क्रोधसे मूर्च्छित हो वह दैत्य ॥ ३० ॥ मायामें चतुर देवीके समीप प्राप्त हुआ और मायासे दानव अनेक प्रकारके रूपान्तर धारण करने लगा ॥ ३१ ॥ भगवती उसके उन्हीं २ रूपोंका नाशकरने लगी, तब अन्तमें अमरमर्दकने महिषका रूप धारणकरा ॥ ३२ ॥ तब देवीने पाशसे बाँधकर खड्गसे उसका शिरच्छेदन किया और देवगणोंके नाशक महिषसुरको भूमिमें पटक दिया ॥ ३३ ॥ तब सब सेनामें हाहाकार मचगया, सब ओर सेना भग्नहोगई और सब देवता प्रसन्न हो देवेशीकी स्तुतिकरने लगे ॥ ३४ ॥

इस प्रकार महिषमर्दिनी लक्ष्मी प्रगटहुई हे राजन्! अब जैसे सरस्वतीका प्रादुर्भाव हुआ सो सुनो ॥ ३५ ॥ एकसमय बडा बली दैत्य शुंभनामक था, निशुंभ उसका भ्राता महाबली पराक्रमी था ॥ ३६ ॥ उससे पीडित हो देवता राज लक्ष्मीसे विहीन होगये, तब देवता हिमालयको प्राप्त देवीकी प्रार्थना आदरसे करने लगे ॥ ३७ ॥ देवता बोले हे भक्तोंके दुःख दूर करनेवाली देवी!आपकी जय हो तुम दानवोंके नाश करनेको रूप धारण करतीहो हे पापरहिते! तुम अजर अमर हो ॥ ३८ ॥ हे देवेशि! तुम भक्तिसेही प्राप्त होती हो तुम अनन्तविक्रमवाली विष्णु शंकर ब्रह्मादिका स्वरूप हो ॥ ३९ ॥ हे कान्तिदायिनी! तुम सृष्टिकी स्थिति उत्पत्ति और संहार करती हो, महातांडवसे प्रसन्न होनेवाली तथा मोददायक हो ॥ ४० ॥ हे करुणानिधे देवदेवेशि! प्रसन्न हो, तथा निशुंभशुंभका भय दूरकरती हो ॥ ४१ ॥ हम तुम्हारी शरणमें आनकर प्राप्त हुए हैं हमारा उद्धार करो हे धरापते! इस प्रकार उनके स्तुति करने पर ॥ ४२ ॥ प्रसन्न होकर पार्वती बोली अपने स्तवनका कारण कहो इसीसमय उसके शरीर कोशसे उत्थित होकर ॥ ४३ ॥ जगत्पूज्या कौशिकी प्रसन्न हो देवताओंसे कहने लगी, हे देवताओ! मैं इस आपके स्तवनसे प्रसन्नहूं ॥ ४४ ॥ तुम वर मांगो तब देवता बोले कि शुंभ निशुंभ यह दो भ्राता हैं इनमें बडाभाई ॥ ४५ ॥ शुंभ अपने पराक्रमसे त्रिलोकीको आक्रमण किये है, हे देवी! वह दानवेश्वर बडा दुरात्मा है, इसका वध विचार कियाजाय ॥ ४६ ॥ वह अपने तेजसे सबको तिरस्कार करता है श्रीदेवी बोली, देवशत्रु शुंभ और निशुंभका मैं वध करूंगी ॥ ४७ ॥ तुम स्वस्थ होकर स्थित हो मैं तुम्हारे कंटकको नाश करूंगी इस प्रकार इन्द्रादि देवताओंसे दयामयी देवी कहकर ॥ ४८ ॥ देवताओंके देखते २ अदर्शन होगई और देवता प्रसन्न हो सुमेरुकी गुहाओंमें आये ॥ ४९ ॥ तब शुंभ निशुंभके भृत्य चंड-मुंडने उस सुंदर अंगवाली लोकमोहिनी देवीको देख ॥ ५० ॥ अपने राजासे जाकर उसका रूप वर्णन किया हे मानदायी असुरश्रेष्ठ देव! आप सम्पूर्ण रत्नोंके भोगनेवाले हैं ॥ ५१ ॥ हे शत्रुमर्दन! हमने एक अपूर्व कामिनीका दर्शन किया है वह आपके ही संभोग योग्य है इसमें सन्देह नहीं ॥ ५२ ॥ उस सुन्दर अंगवालीको बुलाकर सुख भोगो, उस प्रकारकी स्त्री असुर, गंधर्व, दानव ॥ ५३ ॥ मनुष्य देवताओंमें कहीं नहीं है, वह जैसी मनोहर है ऐसा कोई नहीं इस प्रकार शत्रुतापन शुंभ भृत्योंका वचन सुन ॥ ५४ ॥ सुग्रीवनामक अपने दानवदूतको भेजता हुआ, वह दूत शीघ्र-

तासे जाकर आदरपूर्वक ॥ ५५ ॥ देवीसे शुंभके वचन आदरसे कहता हुआ, हे देवी! शुंभासुरनाम त्रिलोकीमें विजयी है ॥ ५६ ॥ वह त्रिलोकीके सब रत्नोंका भोक्ता देवताओंका मान्य है, हे देवि! जो उसने कहा है वह हमारे अविनाशी वचन सुनो हे चारुलोचने! जब कि मैं रत्नोंका भोक्ता हूं अविनाशी हूं ॥ ५७ ॥ तब तुम रत्नरूप होनेसे मेरा भजन करो, देवता असुर नरोंमें जितने रत्न हैं ॥ ५८ ॥ वह सब मेरे यहां हैं, हे सुभगे! मुझे कामरससे भजन करो, देवी बोली हे दूत! तुम सत्यही दैत्यराजके प्रियकर वचन कहते हो ॥ ५९ ॥ पर जो पहले मैंने प्रतिज्ञा की है, वह मिथ्या किस प्रकार होसक्ती है हे दूत! मेरी प्रतिज्ञाको सुनो॥६०॥ जो मेरा दर्प और बल नष्ट करै, जो लोकमें मुझसे अधिक बली होगा वही मेरे भोगका भागी होगा॥६१॥हे असुरेश्वर! उस मेरी प्रतिज्ञाको सत्य कर मेरा पाणिग्रहण करै और उसे तो कुछ अशक्य नहीं है ॥ ६२ ॥ हे दूत! इस कारण तुम जाकर स्वामीसे आदर पूर्वक मेरा वचन कहो यदि वह बलाधिक मेरी सत्य प्रतिज्ञा करेगा तो कार्य होगा ॥ ६३ ॥ वह दानव इस प्रकार देवीके वचन सुन आदिसे शुंभके निमित्त देवीका वृत्तान्त कहता हुआ ॥ ६४ ॥ महाबली शुंभ दूतसे यह अप्रिय वचन सुन बलकी अधिकता और अधिकाईसे महा क्रोध करता हुआ ॥ ६५ ॥ तब उस दैत्यपतिने धूम्राक्षनामक दैत्यसे कहा मेरे वचन सुनो ॥ ६६ ॥ उस दुष्टाके बाल पकड कर यहां ले आओ देर न हो शीघ्र जाकर मेरे समीप लाओ ॥६७॥६८॥ धूम्र लोचन दैत्य यह आज्ञा पाकर साठ सहस्र असुरोंको लेकर हिमालयमें देवीके समीप गया और ऊंचे स्वरसे बोला हे शुभे! दैत्यपतिको भजो६९॥ उस महाबली शुंभके भजनेसे सब भोगोंको प्राप्त होगी, न मानोगी तो केश पकडकर दैत्यराजके पास तुमको ले जाऊंगा ॥ ७० ॥ यह वचन उस दैत्यके सुनकर देवी बोली हे दैत्य! जो कहता है वह सब सत्य है ॥ ७१ ॥ राजा शुंभ और तू क्या करेगा सो कह ऐसा कहनेपर शस्त्र लेकर वह दैत्य धावमान हुआ ॥ ७२ ॥ महेश्वरीने हुंकारसेही उसको भस्म कर दिया और देवीके वाहन सिंहने सब सेना नष्ट कर दी ॥ ७३ ॥ और वह हाहाकार करती अचेतन हो दशों दिशामें धावमान हुई, दैत्यपति शुंभने यह वृत्तान्त श्रवण कर ॥ ७४ ॥ महाक्रोधसे कुटिल भौंहें करली, तब वह प्रतापी दैत्यराज महा क्रोधकर ॥ ७५ ॥ क्रमसे चंड, मुंड,

और रक्तबीजको भेजता हुआ, वे तीनों दैत्य बडे विक्रमी वहां जाकर ॥ ७६ ॥ यत्नसे देवीके ग्रहणका यत्न करने लगे, तब जगद्धात्री मदोत्कटा उनपर टूट पडी ॥ ७७ ॥ शूल ग्रहण कर बडे वेगसे उनको पृथ्वीमें गिरा दिया तब दानवेश्वर शुंभ, निशुंभने तीनों दैत्योंको मृतक और सेनाको नष्ट हुआ सुन ॥ ७८ ॥ तब क्रोध कर शुंभ निशुंभही आनकर प्राप्त हुए और दोनोंने बडा युद्ध किया ॥ ७९ ॥ और देवीके वशीभूत होकर निहत हुए, इस प्रकार जगन्माता दैत्यप्रवर शुंभ निशुंभको मारकर ॥ ८० ॥ वह वागीश्वरी देवताओंसे स्तुतिको प्राप्त होने लगी, हे राजन् ! यह भगवतीका उत्तम प्रादुर्भाव आपसे वर्णन किया ॥ ८१ ॥ यह क्रमसे महाकाली महालक्ष्मी, महासरस्वतीका वर्णन किया यही परा परेश्वरी देवी जगत्की सृष्टि करती है ॥ ८२ ॥ यही देवी पालन और संहार करती है, इस जगत्के मोह निवारण करनेवाली देवीका आश्रय करो ॥ ८३ ॥ वही पूज्यतमा महामाया आपका कार्य विधान करेगी, श्रीनारायण बोले इस प्रकार राजा मुनिके परम उत्तम वचन सुनकर ॥ ८४ ॥ सब कामना और फलकी देनेवाली देवीके शरणमें हुआ निराहार यतात्मा और सावधान हो उन्हींमें मन लगाया ॥ ८५ ॥ भक्तिसे देवीकी मृन्मयी मूर्त्तिकी पूजा करने लगा और पूजनके अन्तमें बलिमें अपने शरीरका रुधिर देने लगा ॥ ८६ ॥ तब जगत्की योनि कृपावती देवी प्रसन्न हुई और आगे प्रगट हो वर मांगनेको कहा ॥ ८७ ॥ तब राजाने अपने मोह नाशनका उत्तम ज्ञान और निष्कंटक राज्य देवीसे मांगा ॥ ८८ ॥ श्रीदेवी बोली हे राजन् ! निष्कंटक राज्य और मोहनाशक ज्ञान मेरी कृपासे इसी शरीरमें तुझको प्राप्त होगा ॥ ८९ ॥ हे राजन् ! और भी जन्मान्तरकी चेष्टा सुनो आप सूर्यसे जन्म लेकर सावर्णि मनु होगे ॥ ९० ॥ वहाँ मन्वन्तरका पतिपन बडा विक्रम तथा बहुत सन्तान मेरे वरसे तुमको प्राप्त होंगी ॥ ९१ ॥ इस प्रकार वर देकर भगवती अन्तर्द्धान होगई, वह भी देवीके प्रसादसे मन्वन्तराधिप हुआ ॥ ९२ ॥ हे साधो ! यह आपसे सावर्णिका जन्मकर्म वर्णन किया, इसके पढने सुननेसे देवीके अनुग्रहकी प्राप्ति होती है ॥ ९३ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः १३.

श्रीनारायण बोले अब शेषमनुओंका चरित्र श्रवण कीजिये जिसके स्मरणमात्रसे देवीकी भक्ति होती है ॥ १ ॥ वैवस्वतमनुके छः पुत्र बडे विज्ञानी थे, करूष, पृषध्र, नाभाग, दिष्ट ॥ ॥ २ ॥ शर्याति, त्रिशंकु यह महबली थे, तब यह छहों कालिन्दीके तटपर जाकर ॥ ३ ॥ निराहार हुए श्वास रोककर पूजा करने लगे देवताकी मूर्त्ति बनाकर पृथक् २ सेवाकी ॥ ४ ॥ और अनेक उपचारोंसे आदरपूर्वक पूजा करने लगे तब यह सब तपके सार महाबली ॥ ५ ॥ सूखेपत्ते, वायुभक्षण, तथा जल जीवी मात्र होकर धूमपान रश्मिपान करके महाश्रम करने लगे ॥ ६ ॥ तब इस प्रकार आदरसे उनके आराधन करनेपर सब मोहनाशिनी उज्ज्वल मति उनको प्राप्त हुई ॥ ७ ॥ वे सब देवीके चरणोंका ध्यान करनेवाले मनुके पुत्र हुए, वह मतिकी विमलतासे अपनेमेंही सब जगत् ॥ ८ ॥ देखने लगे, यह बडी अद्भुत बात हुई इस प्रकार बारह वर्षके उपरान्त वह जगदीश्वरी तपस्यासे ॥ ९ ॥ सहस्र सूर्यके समान कान्तिमान् प्रगट हुईं, विमलात्मा वे छः राजपुत्र उनको देखकर ॥ १० ॥ भक्तिसे नम्र अन्तःकरण भावसंयुक्त हो स्तुति करने लगे, राजपुत्र बोले, माहेश्वरि, ईशानी, आपकी जय हो आप परम करुणामयी हो ॥ ११ ॥ सरस्वतीबीजके आराधनसे प्रसन्न होनेवाली, सरस्वतीबीजमें प्रतिपादित 'क्लीं' विग्रहवाली क्लींसे प्रीति देनेवाली ॥ १२ ॥ कामराज मंत्र जपनेसे मनको आनंद देनेवाली, हे ईश्वरको प्रसन्न करनेवाली ! हे महामाया ! हे मोदमें तत्पर ! हे महासाम्राज्यदायिनी ॥ १३ ॥ हे विष्णु, सूर्य, शिव, इन्द्रादिके स्वरूपवाली ! हे भोगकी बढानेवाली ! आपकी जय हो, जब महात्मा राजपुत्रोंने इस प्रकार भगवतीकी स्तुतिकी ॥ १४ ॥ तब प्रसन्न हो देवी सुन्दर वचन बोली देवी बोली हे महात्मा राजपुत्रो ! आप बडे तपसे संयुक्त हो ॥ १५ ॥ तुम मेरी उपासनासे पापरहित और शुद्धबुद्धि हुए हो, शीघ्र अपना मनवांछित वर मांगो ॥ १६ ॥ मैं प्रसन्न होकर आपके मनचिन्तित वरको दूंगी राजपुत्र बोले हे देवि ! निष्कंटक राज्य और चिरजीविनी सन्तान ॥ १७ ॥ विघ्नरहित भोग, यश, तेज, मति यह सब अकुंठित रहैं, यही वर हमैं हितकारी है ॥ १८ ॥ श्रीदेवी बोली जो तुम सबके मनमें स्थित है वह सब इसी प्रकार होगा और भी मेरे वाक्य आदरसे सुनो ॥ १९ ॥

तुम सब मन्वन्तरोंके अधिपति होगे और दीर्घजीवी सन्तानको प्राप्त होगे, तथा अनेक भोग भोगोगे ॥ २० ॥ अखंडित बल ऐश्वर्य तेज और विभूति होगी, हे राजपुत्रो ! मेरे प्रसादसे यह सब कुछ प्राप्त होगा ॥ २१ ॥ श्रीनारायण बोले इस प्रकार भ्रामरी जगदम्बिका उनको वरदान देकर उनसे भक्तिद्वारा स्तुतिको प्राप्त हो अन्तर्धान हुई ॥ २२ ॥ वे सब राजपुत्रभी उस जन्ममें पृथ्वीका उत्तम राज्य भोगते हुए ॥ २३ ॥ पश्चात् भूतलमें अखण्ड सन्तान उत्पन्नकर और वंश स्थापनकर सब मनुओंके पति हुए ॥ २४ ॥ और जन्मान्तरके क्रमसे सावर्णिके पदभागी हुए पहला दक्ष नौवाँ सावर्णि मनु हुआ ॥ २५ ॥ यह देवीके वरसे अव्याहतगतिवाला महाबली हुआ, दूसरा मेरुसावर्णि दशवाँ मनु हुआ ॥ २६ ॥ यह भी महादेवीके प्रसादसे मन्वन्तरका अधिपति हुआ तीसरा मनु सूर्यसावर्णि नामक ॥ २७ ॥ अपने तपके बलसे ग्यारहवां मनु हुआ चौथा चन्द्रसावर्णि बारहवां मनु हुआ ॥ २८ ॥ यह भी देवीके आराधनसे मन्वन्तराधिपति हुआ, पांचवाँ रुद्रसावर्णि तेरहवां मनु हुआ ॥ २९ ॥ यह महाबली महासत्ववान् जगत्का अधिपति हुआ, छठा विष्णुसावर्णि चौदहवां मनु हुआ ॥ ३० ॥ यह देवीके वरसे जगत्के प्रभु हुए यह चौदह मनु महातेज और बलसे सम्पन्न हैं ॥ ३१ ॥ यह देवीके आराधनसे लोकमें वंदित और पूजनीय हुए, और भ्रामरीके प्रसादसे महाप्रतापी हुए ॥ ३२ ॥ नारदजी बोले यह भ्रामरी देवी कौन है कैसे प्रगट हुई क्या आत्मावाली है आप यह विचित्र शोकनाशन आख्यान कहिये ॥ ३३ ॥ देवीकथामृत पानकरते मेरी तृप्ति नहीं होती है इस अमृतपानसे मृत्युका भय नहीं रहता ॥ ३४ ॥ श्रीनारायण बोले हे नारदजी! जगन्माताकी चेष्टा सुनो मैं कहता हूं, जो अचिन्त्य अव्यक्तरूपा विचित्र और मोक्षदायक है ॥ ३५ ॥ देवीका जो जो चरित्र है सो सबलोकके हितके निमित्त है, जैसा माताका कार्य पुत्रके निमित्त होता है ॥ ३६ ॥ पहले एक महाबली अरुण नामक दैत्य हुआ है, वह महाखल दैत्योंके निवासस्थान पातालमें देवीका द्वेष करता स्थित था ॥ ३७ ॥ वह देवताओंके जीतनेकी इच्छासे परमतप करता हुआ, और ब्रह्माकाही तप किया कि यह हमारी रक्षा करैंगे ॥ ३८ ॥ हिमालयके निकट जाय शीतल गंगाजल पके पत्ते खाता हुआ श्वास रोककर ॥ ३९ ॥ गायत्रीजपमें संसक्त हुआ, तमयुक्त हो सकामतासे तपकरा दशसहस्र वर्षतक जलकणका भोजन किया ॥ ४० ॥ फिर दशसहस्र वर्षतक वायुभोजन किया फिर दशसहस्रवर्षतक निराहार

रहा ॥ ४१ ॥ इस प्रकार तप करते २ उसके शरीरसे अग्नि निकली उससे सब जगत् भस्म होने लगा यह बडी अद्भुत बात हुई ॥ ४२ ॥ यह क्या है यह क्या है यह कहकर सब देवता कंपित होगये, और सब लोक संत्रस्त होकर ब्रह्माजीकी शरणमें गये ॥ ४३ ॥ ब्रह्माजी देवतोंकी विज्ञापना सुनकर गायत्रीके सहित हंसपर आरूढ होकर गये॥ ४४॥ जो कि वह दैत्य प्राणमात्रसे अवशिष्ट सैकडों नसोंसे व्याप्त सूखा पेट दुबला शरीर ध्यानसे नेत्र मींचे था ॥ ४५ ॥ तेजसे दीप्त दूसरी अग्निकी समान उसको देखा, तब ब्रह्माजी बोले हे भद्र! जो तुम्हारे मनमें आवै सो वर मांगो ॥ ४६ ॥ जब श्रवणमात्रसेही संतोषकारक वाक्य सुना तब अरुणने यह वाणी सुधाधाराकी समान मानी ॥ ४७ ॥ आंख खोलतेही आगे गायत्रीसहित चारों वेदोंसे संयुक्त ॥ ४८॥ रुद्राक्षकी माला लिये कुंडिका हाथमें लिये, ओंकारका जप करते ब्रह्माजीको देखा, देखतेही प्रणाम करने उपरान्त अनेक स्तोत्रोंसे स्तुतिकर ॥ ४९ ॥ यह बुद्धिसे विचार कर वर मांगा कि मेरी मृत्यु न हो, अरुणके वचन सुन ब्रह्मा आदरसे समझाने लगे ॥ ५० ॥ जब ब्रह्मा, विष्णु, महेश, भी कालधर्म मानते हैं, तो हे दानव! मरणमें औरोंकी तो बातही क्या है॥ ५१ ॥ तुम वरके योग्य मांगो जिसको मैं देसकूं, बुद्धिमान् पुरुष इसमें आग्रह नहीं करते ॥ ५२॥ यह ब्रह्माके वचन सुन फिर वह दैत्य आदरसे बोला कि युद्धमें शस्त्र, अस्त्र, पुरुष, स्त्री ॥ ५३ ॥ द्विपाये, चौपाये, वा दोनों प्रकारके आकारवाले इनमें किसीसे भी मेरी मृत्यु न हो हे देव यही वर दो ॥५४॥ हे देव! इतना अधिक बल दो जिससे मेरी जय हो ब्रह्माजीने यह वचन सुनकर तथास्तु कहा ॥ ५५ ॥ वर देकर ब्रह्माजी शीघ्र ही अपने स्थानको चलेगये, तब दैत्यने पातालसे अपने आश्रित ॥ ५६ ॥ दैत्योंको बुलाय ब्रह्माका वर सुनाया, वे सब असुर आकर दैत्यपतिको घेर लेते हुए ॥५७॥ और युद्धके निमित्त अमरावतीम दूतको भेजा दूतके वचन सुनकर देवराज भयसे कंपित हुए॥५८॥ और देवताओंके साथ शीघ्रही ब्रह्मलोकको गये फिर ब्रह्माजी विष्णुको लेकर शंकरके स्थानमें गये ॥ ५९ ॥ और उस दैत्यके मारनेका विचारकरने लगे, इसी समय वह दैत्य सेना लिये ॥ ६०॥ बडी शीघ्रतासे स्वर्गको चला सूर्य, चन्द्र, यम, अग्नि इन सबके अधिकारोंको पृथक् पृथक् ॥ ६१ ॥ लेकर आप अनेक रूप धारणकर तपसे स्वर्ग भोगने लगा यह सब देवता अपने २ स्थानसे भ्रष्ट हो कैलासको गये ॥ ६२ ॥ और सब देवता अपना २ दुःख पृथक्२शिवजीसे

निवेदन करने लगे, उस स्थानमें बडा विचार प्रारंभ हुआ कि, हमको अब क्या करना चाहिये ॥ ६३ ॥ युद्ध, अस्त्र, शस्त्र, पुरुष, स्त्री, दुपाये, चौपाये वा दोनों प्रकारके जीवोंसे ॥ ६४ ॥ मृत्यु न हो यही उसको ब्रह्माजीका वरदान है, ऐसा विचार कर वे कुछ भी करनेमें समर्थ न हुए ॥ ६५ ॥ इसी समय अशरीरिणी वाणी हुई तुम ईशानीका भजन करो वह तुम्हारा कार्य करैगी ॥ ६६ ॥ यह दैत्यराज गायत्रीका जप निरन्तर करता है, जो उसको त्याग देगा तो यह वधके योग्य होगा ऐसी संतोषकारिणी वाणी हुई ॥ ६७ ॥ देवीकी यह वाणी सुन आदरसे देवता मंत्रणा करने लगे तब बृहस्पतिको बुलाकर इन्द्रने कहा ॥ ६८ ॥ हे गुरुदेव! आप देवकार्यसिद्धिके निमित्त असुरके पास जाओ जिस प्रकार वह गायत्रीका त्याग करै तैसा करो ॥ ६९ ॥ हम ध्यानयोगसे परमेशानीकी सेवा करते हैं, वह भगवती प्रसन्न होकर तुम्हारी सहायता करैगी ॥ ७० ॥ यह आदेश करके सब देवता जाम्बूनदेश्वरीके समीप गये कि, वह शोभना दैत्योंके भयसे घबराये हुए हमारी रक्षा करैगी ॥ ७१ ॥ वहां जाकर सब कोई तपश्चर्या करने लगे वे सब मायाबीजके जपमें आसक्त देवीके ध्यानयज्ञमें परायण हुए ॥ ७२ ॥ तब बृहस्पति बहुत शीघ्र असुरके समीप गये मुनिको आया देख दैत्यराज पूंछने लगा ॥ ७३ ॥ हे मुनि! तुम्हारा आगमन कहांसे किस निमित्त हुआ है, मैं तुम्हारा पक्षपाती नहीं किन्तु शत्रु हूं ॥ ७४ ॥ यह उसके वचन सुन मुनिराज बोले जो देवी हमारी सेवनीय है, उसीको निरन्तर तुम आराधन करते हो ॥ ७५ ॥ फिर, तुम हमारे पक्षपाती क्यों नहीं यह कहिये यह वचन सुन वह दैत्य देवमायासे मोहित हो ॥ ७६ ॥ अभिमानसे उस परम मंत्रका जप त्यागन करता हुआ, गायत्रीके त्यागतेही वह तेजहीन हो गया ॥ ७७ ॥ यह कार्यकर गुरु उस स्थानसे निर्गत हुए और इन्द्रसे सब वृत्तान्त कहा ॥ ७८ ॥ तब देवता संतुष्ट हो परमेश्वरीका भजन करने लगे हे मुने! इस प्रकार बहुत समय बीतनेसे कुछ कालके उपरान्त ॥ ७९ ॥ जगन्मंगलकारिणी जगन्माता प्रगट हुई, कोटि सूर्यकी समान प्रकाशमान, कोटि कामवत् सुन्दर ॥ ८० ॥ चित्रविचित्र लेपन लगाये चित्रित दो वस्त्रोंसे सम्पन्न विचित्र मालाका आभरण पहरे चित्र भ्रमरोंको मुठीमें लिये ॥ ८१ ॥ वरदायका अभयकारिणी शांता, करुणामृतसागरा अनेक भौरोंसे संयुक्त फूलोंकी मालासे विराजित ॥ ८२ ॥ असंख्यात विचित्र भ्रमरियोंसे संयुक्त भ्रमरोंसे

गीयमान अर्थात् ह्रींकार शब्द करते हुए भौंरोंसे सेवित ॥ ८३ ॥ चारों ओर कोटि २ ऐसे भ्रमर व्याप्त सब शृंगार वेषसे सम्पन्न सब वेदोंसे प्रशंसित ॥ ८४ ॥ सर्वात्मावाली, सर्वमयी, सब मंगलकी रूपवाली, सर्वज्ञा, सबकी जननी, सर्वरूपा, सर्वेश्वरी, शिवाको ॥ ८५ ॥ देखकर चंचलात्मा देवता प्रसन्नमन होकर वेदप्रतिपाद्या देवीका स्तव करने लगे ॥ ८६ ॥ देवता बोले हे देवि ! महाविद्ये सृष्टिकी स्थिति और अन्त करनेवाली कमललोचनी सर्वाधारे ! तुमको प्रणाम है ॥ ८७ ॥ विश्व, तैजस, प्राज्ञ, विराट् सूत्रात्मावाली तुमको प्रणाम है, अव्याकृतरूप कूटस्थके निमित्त प्रणाम है ॥ ८८ ॥ हे दुर्गे ! तुम सर्वादिसे रहित दुष्टोंके निरोध करनेको शृंखलारूप स्वयं निरर्गल, प्रेमसे गम्यमान हो तेजरूप देवीके निमित्त प्रणाम है ॥ ८९ ॥ हे मातः कालिके हे नीलसरस्वती, हे उग्रतारा, महाउग्रा ! आपके निमित्त वारंवार प्रणाम है ॥ ९० ॥ हे पीताम्बरा ! [बगलामुखि देवी] हे त्रिपुरसुन्दरि भैरवी, मातंगी, धूमावती तुमको वारंवार प्रणाम है ॥ ९१ ॥ हे छिन्नमस्ता ! आपको प्रणाम है हे क्षीरसागरकन्या ! आपको प्रणाम है हे शांकभरि ! हे शिवे ! हे रक्तदन्तिके ! तुमको वारंवार प्रणाम है ॥ ९२ ॥ हे शुंभनिशुंभकी दलन करनेवाली ! हे रक्तबीजनाशनी ! हे धूम्रलोचनकी नाशक तेजरूपिणी ! तुमको वारंवार प्रणाम है वृत्रासुरनाशिनी तुमको प्रणाम है ॥ ९३ ॥ चण्डमुण्डनाशिनी दानवान्तकरी शिवा, विजया, गंगा, शारदा, विकच [खिले] मुखवाली शारदाको प्रमाण है ॥ ९४ ॥ हे पृथ्वीरूप दयारूप, तेजोरूप, प्राणरूप, महाभूतरूप तुमको वारंवार प्रणाम है ॥ ९५ ॥ विश्वमूर्त्ति, दयाकी मूर्त्ति, धर्ममूर्त्ति, देवमूर्त्ति, ज्योतिमूर्त्ति, ज्ञानमूर्त्ति, तुमको वारंवार प्रणाम है ॥ ९६ ॥ हे गायत्री ! [गान करनेवालोंकी रक्षक,] वरदायक, दिव्यगुणवाली, सावित्रि, सरस्वति, स्वाहा स्वधा, दक्षिणामाता, आपको वारंवार प्रणाम है ॥ ९७ ॥ सब आगम तुमको नेति वाक्यसे वर्णन करते हैं, हम सबसे पृथक् रूप परदेवताका भजन करते हैं ॥ ९८ ॥ भ्रमरोंसे वेष्टित होनेसे तुम्हारा नाम भ्रामरी होगा, इस देवीस्वरूप आपको वारंवार प्रणाम है ॥ ९९ ॥ दोनों ओर पृष्ठभाग आगे पीछे ऊपर नीचे सर्वत्र तुमको प्रणाम है ॥ १०० ॥ हे मणिद्वीपाधिवासिनी महादेवि ! कृपा करो हे अनंत कोटि ब्रह्माण्डकी नायिका जगदम्बा ! ॥ १०१ ॥ देवी जगन्मातः परात्परा श्रीभुवनेशानी, सर्वोत्तमोंमें उत्तम, तुम्हारी जय हो ॥ १०२ ॥

कल्याणकारी गुणरूपी, रत्नोंकी खान भुवनेश्वरि, परमेशानी, जगत्की कारण प्रसन्न हो ॥ ३ ॥ नारायण बोले, इसप्रकार देवताओंके प्रगल्भ और मनोहर वचन सुन मत्त कोकिलकी समान जगदम्बा बोली ॥ ४ ॥ श्रीदेवी बोली, हे देवताओं मैं तुमसे प्रसन्न हूं जो तुम्हारी इच्छा! हो सो हमसे कहो ॥ ५ ॥ देवीके वचन सुनकर देवता अपने दुःखका कारण दुष्टदैत्यका चरित्र और उसकी जगत्को बाधा देना कहने लगे ॥ ६ ॥ जिस प्रकार उसने देवता और ब्राह्मणोंकी अवमानना की उनका नाश किया तथा जैसे देवताओंको स्थानभ्रष्ट किया वह सब आदरसे कहा ॥ ७ ॥ और यथावत् उन्हों ने ब्रह्माके वरदानको कथन किया, तब महाभगवती देवताओंके मुखसे यह वचन सुन ॥ ८ ॥ उस स्थानमें स्थित भ्रमरोंको प्रेरण करती हुई जो पार्श्वमें स्थित नाना रूप धारण किये थे ॥ ९ ॥ इस प्रकार बहुतसे भ्रमर और भ्रामरियोंको देवीने प्रगट किया, जिनसे जगत् व्याप्त होगया शलभोंके यूथकी समान उनका यूथ निर्गत हुआ ॥ ११० ॥ तब उनसे अन्तरिक्ष व्याप्त होगया जिससे पृथ्वीमें अंधकार छागया आकाश पर्वत वृक्षों और वनोंमें ॥ ११ ॥ भ्रमरही व्याप्त होगये यह अद्भुत बात हुई वे सब एकत्र होकर दैत्योंकी छाती विदीर्ण करने लगे ॥ १२ ॥ जिस प्रकार शहतकी मक्खी शहत लेनेवाले मनुष्यको लिपट जाती है, ऐसे भौंरे लिपट गये उस समय अस्त्रशस्त्रोंका उपाय न चला ॥ १३ ॥ युद्ध और बात नहीं होती थी केवल मरणही होता था जिस २ स्थान जो जो दैत्य जिसप्रकार स्थित थे ॥ ॥ १४ ॥ वह वहां उसी प्रकार मरणको प्राप्त होते हुए, उस समय परस्पर किसीको किसीका समाचार ज्ञात न हुआ ॥ १५ ॥ क्षणमात्रमें वह सब दैत्य नष्ट होगये इस प्रकार कार्यकर भौंरे देवीके समीप आगये ॥ १६ ॥ लोक सब आश्चर्य आश्चर्य कहने लगे कि, जगदम्बामें क्या आश्चर्य है, जिसकी माया इस प्रकार है ॥ १७ ॥ तब विष्णुको आदिलेकर सब देवतागण महाप्रसन्न हो जगदम्बाका पूजन करने लगे ॥ १८ ॥ अनेक प्रकारके उपचार और भेटोंसे पूजते जयशब्द करते फूल वर्षाने लगे ॥ १९ ॥ आकाशमें दुंदुभी बजी, अप्सरा नाचने लगीं मुनिश्रेष्ठ वेदपाठ करने लगे और गन्धर्वादि गान करने लगे ॥ १२० ॥ मृदंग मुरज वीणा ढक्का डमरू घंटा और शंखके शब्दोंसे त्रिभुवन व्याप्त होगया ॥ २१ ॥ अनेक स्तोत्रोंसे स्तुतिको करते शिरपर अंजली बांधकर माता! आपकी जय हो, हे ईशानी! आपकी जय हो. इस

प्रकारसे सब कहने लगे॥२२॥तब महादेवी सब पर प्रसन्नहो उनको पृथक् २ वर
देकर और उनको अपनेमें प्रार्थनानुसार अचला भक्ति देकर ॥ २३ ॥ देवताओंके
देखते २ अन्तर्धान होगईं यह आपसे सम्पूर्ण भ्रामरीका चरित्र कहा ॥ २४ ॥ यह
पढते और सुन्तेमें सम्पूर्ण पापोंका नाशक है ॥ २५ ॥ यह देवीमाहात्म्यसे संयुक्त
चरित्र पढने सुन्नेसे शुभ देता है ॥ २६ ॥ जो इसको नित्य पढते और सुन्ते हैं वह
सम्पूर्ण पापसे रहित हो देवीके सायुज्यको पाते हैं ॥ १२७ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृत-
भाषायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालय–बंबई.

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ श्रीमद्देवीभागवत ।

एकादशस्कन्धः ११.

प्रथमोऽध्यायः १.

दोहा—शरणसुखद दुखभयहरण, करन सकल सुरकाज ।
रखहिं सदा जनमिश्रकी, श्रीजगदम्बालाज ॥ १ ॥

नारदजी बोले, हे भगवन्! भूतभव्येश नारायण सनातन आपने देवीका चरित्र परम उत्तम कथन किया ॥ १ ॥ जिस प्रकार देवताओंकी प्रार्थनासे माता प्रगट होती है और देवीकी पूर्णकृपासे आपने अधिकारकी प्राप्ति कही ॥ २ ॥ अब वह सुननेकी इच्छा करता हूं जिससे वह सदा प्रसन्न होती है और अपने भक्तोंसे प्रसन्न होती है, वह आचार हमसे कहिये ॥ ३ ॥ श्रीनारायण बोले, हे तत्वज्ञाता नारदजी! आपसे क्रमसे आचारकी विधि कहता हूं जिसके अनुष्ठानसे सदा देवी प्रसन्न होती है॥ ४॥ ब्राह्मणको जो वार्ता दिन २ प्रभात समय उठकर करनी चाहिये वह मैं ब्राह्मणोंके उपकारके निमित्त कहता हूं ॥५॥ उदयसे अस्तपर्यन्त जिसके द्वारा ब्राह्मण सत्कर्म करता है तथा नित्य नैमित्तिक अगर्हित कर्म करता है ॥ ६ ॥ आत्माका सहायक परलोकमें पिता, माता, पुत्र, स्त्री, ज्ञाति, कोई नहीं है केवल धर्मही स्थित होता है ॥ ७ ॥ इस कारण अपनी सहायताके निमित्त साधनोंद्वारा धर्मका उपार्जन करना चाहिये धर्मकी सहायतासेही दुस्तर अंधकार तरा जाता है ॥ ८ ॥ श्रुति स्मृतिमें पहला मुख्यधर्म आचारही कहा है इस कारण ब्राह्मणको नित्य आचारयुक्त होना चाहिये ॥ ९ ॥ आचारसेही आयु, आचारसे सन्तान, आचारसेही अक्षय अन्न प्राप्त होता और आचारसेही पाप दूर होता है ॥ १० ॥ आचारही मनुष्योंके कल्याणका कर्ता है जिससे इस लोकमें सुखी होकर परलोकमें सुख प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ अज्ञान और अंधजन्मवाले कुदृष्टियोंसे मोहितपुरुषोंको धर्मरूपी महा-

दीपकही मुक्तिका दिखानेवाला है ॥ १२ ॥ आचारसेही श्रेष्ठता प्राप्त होती है आचारसे कर्म प्राप्त होता, कर्मसे ज्ञान और ज्ञानसे मोक्ष होती है यह मनुजी कहते हैं ॥ १३ ॥ हे परंतप! यह आचारही सब धर्मोंमें श्रेष्ठ है, इसीसे ज्ञान होता है इस ज्ञानसेही सब साधा जाता है ॥ १४ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ! जो पुरुष आचारहीन होकर वर्तता है वह शूद्रकी समान सब धर्मोंसे बाहर होनेसे आचारभ्रष्ट होनेसे शूद्रकी समान है ॥ १५ ॥ शास्त्र और लौकिक भेदसे आचार दोप्रकारका है शुभकी इच्छावालेको यह दोनोंही करने चाहिये, त्यागने न चाहिये ॥ १६ ॥ ग्रामधर्म, जातिधर्म, देशधर्म, कुलधर्म, यह सब मनुष्योंको ग्रहण करने चाहिये और उल्लंघन न करना चाहिये ॥ १७ ॥ दुराचारी पुरुष लोकमें निन्दित होता है वह सदा दुःखभागी और व्याधिसे व्याप्त रहता है ॥ १८ ॥ धर्मसे रहित अर्थ और कामकोभी त्याग न करदे और जो धर्मभी प्राणियोंको पीडा करनेवाले हों उनको भी त्यागन कर दे पशुहननादि धर्मभी गर्हित है ॥ १९ ॥ नारदजी बोले हे मुने! शास्त्र बहुत है इनमें निश्चय किस प्रकार हो सकता है? सो धर्ममार्गके निर्णयमें किसका प्रमाण किया जाय ॥ २० ॥ श्रीनारायण बोले, परमात्माके श्रुति स्मृति यह दोनों नेत्र हैं, पुराण हृदय है, इन्हीं तीनमें कहा हुआ धर्म है और इनके सिवाय कहीं नहीं अर्थात् परमेश्वरके नेत्ररूप श्रुति स्मृतिसे देखा हुआ धर्म सत्य है और पुराणरूप हृदयमें विचाराहुआ सत्य है ॥ २१ ॥ जहां कहीं वेद स्मृति और पुराणोंमें विरोध दीखै वहां श्रुतिका प्रमाण मानना होता है और जहां पुराण और स्मृतिका विरोध हो वहां स्मृतिका प्रमाण मानना चाहिये ॥ २२ ॥ और जहां श्रुतिमें परस्पर विरोध हो वहां दोनोंही प्रमाण हैं जहाँ स्मृतिमें दो भाँति लिखाहो वहाँ भिन्न विषयकी कल्पना करकै विरोधका परिहार करना चाहिये ॥ २३ ॥ और जो कहीं पुराण और तंत्रोंमें किसी कटाक्षसे जो धर्म कहा है वोह श्रुति स्मृतिका विरोधी धर्म ग्रहण-करना न चाहिये ॥ २४ ॥ और वेदका अविरोधी तंत्रका प्रमाण होसक्ता है इसमें सन्देह नहीं जो प्रत्यक्ष श्रुतिके विरुद्ध हो उसका प्रमाण नहीं होसक्ता जिस प्रकार कि, तप्त मुद्राधारण आदि कहीं कहीं लिखा है, वह वेदके विरुद्ध होनेसे अप्रमाण है ॥ २५ ॥ धर्ममार्गमें सर्वथा वेदही प्रमाण है, उसके अविरुद्धही जो कुछ हो उसीका प्रमाण है औरका नहीं ॥ २६ ॥ जो वेद धर्मको त्यागकर दूसरे प्रमाणमें वर्तते हैं उनकेही शिक्षाके निमित्त यमलोकमें कुण्ड विद्यमान हैं ॥ २७ ॥ इस कारण

सब प्रयत्नसे वेदोक्त धर्मका आश्रय करना चाहिये स्मृति पुराण दूसरे और ग्रंथ वा तंत्रशास्त्र ॥ २८ ॥ यह वेदमूलक होनेसेही प्रमाण हैं, अन्यथा नहीं जो कुशास्त्रोंके योगसे मनुष्योंको वर्तवाते हैं ॥ २९ ॥ वे अधोमुख और ऊर्ध्वपाद होकर नरकसागरमें पडते हैं यथेष्ट आचरण करनेवाले, लिंगधारी पाशुपत ॥ ३० ॥ जो तप्तमुद्रा शंख चक्र जलाकर शरीरपर धारण करनेवाले वैखानस मतके अनुसार चलनेवाले वे वेदमार्गके बाहर चलनेवाले सब नरकमें जाँयगे ॥ ३१ ॥ वेदकाही कहाहुआ सद्धर्म है इसकारण मनुष्योंको वही सदा करना चाहिये बार २ जागरूक होकर जानना चाहिये कि, मैंने आज क्या किया है ॥ ३२ ॥ दिया दिलाया वा वाणीसे कहा हुआ, वा सब उपपातक और महापातकोंमें मैंने क्या पातक किया है यह निरन्तर विचारना चाहिये ॥ ३३ ॥ जब पहरभर रात रहजाय तब उठकर ब्रह्मका ध्यान करै वह क्रम यह है कि पहले वाम ऊरुके ऊपर दक्षिण चरण चित्त करकै रक्खे और दक्षिण ऊरुके ऊपर बाँयाँ चरण उसी प्रकार स्थापित करै ३४॥ फिर मस्तक कुछेक ऊंचा होकर हिलावे मुख ऊँचाकर अपनी ठोढीसे वक्षस्थलको स्पर्श कर नेत्र बंद कर अपने बलसे स्थित होकर दांतोंसे दाँतोंको न लगावे॥ ३५॥ जिह्वाको लौटकर तालुस्थानमें लगादे विवृतमुख हो निश्चल हुआ इन्द्रियसमूहको रोके हुए चैल अजिन वा कुशके आसनपर स्थित जो बहुत नीचा न हो बैठे॥ ३६ ॥ दूने वा तिगुने प्राणायामको करै इसके उपरान्त जो प्रभु हृदयमें दीपकके समान स्थित हैं उसका ध्यान करै ॥ ३७ ॥ और विद्वान् धारणपूर्वक धारणा करै, प्राणायाम सधूम (श्वाससंयुक्त) विधूम अर्थात् अतिशय अभ्याससे चित्तके स्थिर होनेपर मध्यम कहाता है, वही दो प्रकारका है सगर्भ (मंत्रजपके सहित) अगर्भ मंत्रजपरहित ॥ ३८ ॥ फिर अति अभ्याससे चित्तके स्थिर होनेसे प्राणायाम उत्तम होता है वह सलक्ष्य देवताके ध्यानके सहित अलक्ष्य ध्यानरहित होनेसे यह प्राणायाम छः प्रकारका है प्राणायामकी समान योगप्राणायामही है दूसरा नहीं ॥ ३९ ॥ रेचक, पूरक, कुंभक नामसे तीन प्रकारका है इसमें 'ओं' के तीनों वर्णोंका क्रमसे ध्यान होता है ॥ ४० ॥ वह परमात्माही प्रणव कहाता है और तन्मय होनेसे प्राणायाम उसीका रूप है बाँई ओरकी नाडी इडा दक्षिण ओरकी नाडी पिंगला कहाती है सो इडानाडीद्वारा वायुको पूर्णकर अर्थात् वामनासिका पुटसे ३२ वार अकारको आवर्तन कर वायुको आरोपण कर उसे खैंचकर

पूरक करै पीछे चौसठ बार उकारको आवर्तन करते हुए उदरमें स्थित कुंभक करके फिर दक्षिणनासापुटसे ॥ ४१ ॥ सोलह वार मकारका आवर्तन करता हुआ उस वायुको विरेचन करै अर्थात् त्यागे इसीप्रकार पिंगलासे करै यह प्राणायाम सूक्ष्म कहाता है ॥ ४२ ॥ प्राणायामके पश्चात् कुण्डलिनीके चक्रभेद कहते हैं इस देहमें क्रमसे षट् कमल हैं पहला गुदस्थानमें,दूसरा लिङ्गके मूलमें, तीसरा नाभिचक्र चौथा हृदयमें, पांचवाँ कण्ठ और छठा भ्रूमध्यमें हैं उनमें भ्रूमध्यमें जो कमल है उसमें दो दल हैं उन दो दलोंमें दक्षिण क्रमानुसार लगे हुए ब्रह्म हं, क्षं वर्ण हैं उनको नमस्कार करता हूं कण्ठमें जो कमल है उसमें सोलह दल हैं उन दलोंमें दक्षिणावर्तके क्रमसे लगे हुए अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः, सोलह स्वर वर्णरूप हैं उनको नमस्कार है हृदयस्थित -पद्मके बारह दल हैं उनमें यथा क्रमसे क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, यह बारह वर्णरूप है, उनको प्रणाम है नाभिस्थानमें स्थित पद्मके १० दल हैं उनमें दक्षिणावर्तके अनुसार लगे हुए ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, वर्ण हैं इनको नमस्कार है लिङ्गमूल पद्मके छः दल हैं उसमें दक्षिणावर्त क्रमसे लगे हुए ब, भ, म, य, र, ल, वर्णको नमस्कार है. गुदमूलस्थित पद्मके चार दल हैं उनमें दक्षिणा वर्तक्रमसे स्थित व, श, ष, स, चार वर्णको नमस्कार है. इनका आशय यह है कि, उक्त छः स्थानोंमें कहे छः पद्मोंके ध्यान कर उनके दलमें प्रत्येक रूप और वर्णका ध्यान करके नमस्कार करै ॥ ४३ ॥ रक्तवर्ण चार युक्त गुदमूलमें जो कमल है उसमें पद्मनीलके सूतकी समान अत्यन्त सूक्ष्मरूपवाली कुलकुण्डलिनी शक्ति विराजमान है वह रजोगुण-मयी रक्तवर्ण है सूर्यबिन्दु उसका मुख, अग्निबिन्दु उसके दोनों स्तन हैं उसका नाम मायाबीज अर्थात् (ह्रीं) है यह बीज प्रतिपाद्य अर्थ है वह जिसके हृदयमें एकवार भी प्रगट होता है वह जीवन्मुक्त होता है ॥ ४४ ॥ वही कुंडलिनी शक्ति सहकृत अहंशब्द प्रतिपाद्य है यही हम,यही भगवती,वही, स्थिति, गति, यात्रा, मति, चिन्ता, स्तुति, वचन सर्वात्मक देव मैंही हूं और सब स्तुति हमारा अर्चन है ॥ ४५ ॥ मैं ही देवी हूं, दूसरा नहीं. मैं ही ब्रह्म हूं शोकभागी नहीं हूं मैंही सच्चिदानन्द हूं इस प्रकार अपने आत्मामें विचार करै ॥ ४६ ॥ फिर हर्षगद्गद चित्तसे देवी कुंडलि-नीका ध्यान करै जो प्रथमही ब्रह्मरन्ध्रमें जानेसे प्रकाशमान है फिर मूलाधारमें आनेसे अमृतसे परिव्याप्त अर्थात् ब्रह्मरंध्रमें स्थित अमृतधारासे युक्त सुषुम्नामें गमन

करती हुई आनंदरूप अबला कुंडलिनीको शरण होतां हूं ॥ ४७ ॥ फिर अपने ब्रह्मरन्ध्रमें गुरुरूप ईश्वरका ध्यान करै और मनके कल्पित उपचारोंसे विधिपूर्वक पूजन करै ॥ ४८ ॥ इसप्रकार इस मंत्रसे संयुत होकर साधक स्तुति करै गुरुही ब्रह्मा गुरु विष्णु गुरु देव महेश्वर है गुरुही परब्रह्म है उन श्रीगुरुदेवके निमित्त प्रणाम है ॥ ४९ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भाषायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

श्रीनारायण बोले चाहै षट् अंगों सहित वेद पढाहो परन्तु आचारहीनको पवित्र नहीं करसकता मृत्युकालमें आचारहीन पुरुषको वेद इसप्रकार त्यागन कर देते हैं जैसे पंख निकलनेसे पक्षी घौंसलोंको त्याग देते हैं ॥ १ ॥ ब्राह्म मुहूर्त पिछले पहरमें उठ मुखादि प्रक्षालन कर वह सब कुछ भलीप्रकार करै और उस अन्तिम प्रहरमें विद्वान् वेदाभ्यास करै ॥ २ ॥ फिर कुछ कालपर्यन्त अपने इष्ट देवका चिन्तन करै पूर्व कहे अनुसार योगी छः घडीतक ब्रह्मध्यान करै ॥ ३ ॥ जिसके द्वारा जीव ब्रह्मकी निरन्तर एकता होती है हे नारद ! वह उसी समय जीवन्मुक्त होता है ॥ ४ ॥ पचपन घड़ीके उपरान्त उषःकाल होता है सत्तावन घडीके उपरान्त अरुणोदय होता है अट्ठावन घडीपर प्रभात और शेषमें सूर्योदय होता है ॥ ५ ॥ प्रभातकाल उठकर ब्राह्मण विष्ठा मूत्र करै अर्थात् शयनस्थानसे उठकर बाणविक्षेप मात्रतक दूर जाकर वा अधिक दूर जाकर शौचादि करै ॥ ६ ॥ प्रथम आश्रम ब्रह्मचर्यमें विष्ठा मूत्र करतेमें कानमें यज्ञोपवीत रक्खै वानप्रस्थ और गृहस्थ अवस्थामें यज्ञोपवीत पीठकी ओरही लगाकर ॥ ७ ॥ पृष्ठकी ओर कंठलम्बित यज्ञोपवीत करकै गृहस्थी विष्ठा मूत्र करै ब्रह्मचारी कानपर धरै ॥ ८ ॥ तृणसे पृथ्वी आच्छादित करकै वस्त्रसे शिर ढककर यत्नपूर्वक वाणीको रोक निष्ठीवन करै और श्वाससे वर्जित हो ॥ ९ ॥ हलसे जोती, भूमि, जल, चिता, पर्वत, जीर्ण देवालय, वल्मीक, (सर्पस्थान) हरित तृण ॥ १० ॥ जीवसहित गर्तस्थानमें, चलते हुए मार्गमें, स्थित होता हुआ मलत्यागन करै दोनों संध्याओंमें जप, भोजन, दँतौन ॥ ११ ॥ पितृकार्य, देवकार्यमें, मूत्रपुरीष करनेमें, मैथुनमें गुरुके समीपमें ॥ १२ ॥ योग दान तथा ब्रह्मयज्ञमें द्विजको मौन रहना चाहिये

सब देवता, ऋषि, उरग, राक्षस ॥ १३ ॥ इस भूमिसे बाहर होजाओ मैं शौच करता हूं इसप्रकार प्रार्थना कर विधिपूर्वक शौच करै ॥ १४ ॥ वायु, अग्नि, ब्राह्मण, आदित्य, जल और गौको देखता हुआ कभी विष्ठामूत्र न करै ॥ १५ ॥ दिनमें उत्तरकी ओर मुखकर रात्रिमें दक्षिणकी ओर मुखकर मलमूत्र करै फिर उसके ऊपर मृत्तिका पत्ते और तृण डाल दे जिससे सूर्यकी किरणे न पडैं ॥ १६ ॥ फिर मेढ़ ग्रहण किये उठकर जलके समीप जाय और पात्रमें जल ग्रहण कर अन्यत्र जाय ॥ १७ ॥ किनारेसे अच्छी श्वेतवर्णकी मृत्तिकाको ग्रहण करै और क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, रक्त, पीत, कृष्णवर्णकी मृत्तिका ग्रहण करै ॥ १८ ॥ अथवा अभावमें जिस देशमें जो हो द्विजोत्तम उसीको ग्रहण करे जलके भीतरसे, देवगृहसे बँबईसे मूषककी खोदी हुई ॥ १९ ॥ शौचसे अवशिष्ट रही मृत्तिका यह सात मृत्तिका ग्रहण न करै मूत्रसे दूनी शौचमें और मैथुनमें तिगुनी पवित्रता करै ॥ २० ॥ एकवार लिंगमें तीनवार हाथमें दोनों हाथोंमें दोवार मूत्र करनेपर शुद्धि करै और शौचमें उससे दूना करै ॥ २१ ॥ विष्ठाशौचमें लिंगदेशमें दोवार मृत्तिका लगावै पांचवार गुदामें दशवार हाथमें और फिर सातवार दोनों हाथोंमें मृत्तिका लगावै ॥ २२ ॥ वाम चरणको आगे कर पीछे दक्षिणको आगेकर प्रत्येकमें चार २ वार मृत्तिका लगावै ॥ २३ ॥ इस प्रकार गृहस्थीका शौच कहा है ब्रह्मचारीका इससे दूना वानप्रस्थका तिगुना और यतियोंका चौगुना है ॥ २४ ॥ गीली आमलेकी समान मृत्तिका शौच कर्ममें लेनी चाहिये यह एक २ वार ग्रहण करै इससे न्यून न करै ॥ २५ ॥ यह दिनका शौच कहा रातको इससे आधा करै आतुरको इससे आधा और मार्गमें स्थितको इससे भी आधा करना चाहिये ॥ २६ ॥ स्त्री, शूद्र, अशक्त और बालकोंको शौचकर्म वहांतक करै जहांतक गंधक्षय हो इसमें संख्या नहीं है ॥ २७ ॥ जबतक गंध और लेपका क्षय हो तबतक अशुद्ध है यह सब वर्णोंके निमित्त है ऐसा भगवान् मनुने कहा है ॥ २८ ॥ वाम हाथसे शौच करै दक्षिणसे नहीं नाभिसे नीचे बायाँ हाथ रहै नाभिसे ऊपर दहना रहै ॥ २९ ॥ यह शौचकर्मकी विधिमें है अन्यथा नहीं विष्ठा मूत्र उत्सर्जन करते समय जलपात्रको ग्रहण न करै ॥ ३० ॥ और जो मोहसे ग्रहण करै तो प्रायश्चित्त करै जो मोह वा आलस्यसे अपना शौच नहीं करै तो ॥ ३१ ॥ तीनराततक जलाहार मात्र करताहुआ गायत्रीके जपसे शुद्ध होता है देश काल द्रव्य शक्ति और अपनी उपपत्ति ॥ ३२ ॥ विचारकर शौच करना चाहिये

इसमें आलस्य न करै पुरीषउत्सर्जनके उपरान्त बारह कुल्ले करै ॥ ३३ ॥ मूत्र करने उपरान्त चार कुल्ले करै कमती नहीं नीचेको मुखकरता हुआ वाम ओरसे त्यागन करै ॥ ३४ ॥ फिर आचमन कर आदरसे दँतोन करै जो कीकड, अश्वत्थ गूलर, पिलखन, न्यग्रोधादिकी बारह अंगुल प्रमाणकी व्रणादिसे रहित हो॥ ३५॥जो कनिष्ठिकाके अग्रभागवत् स्थूल हो पूर्वार्द्ध जिसका पत्थरसे कूटकर कूचीकी समान किया हो करंज, गूलर, आम, कदम्ब, लोध, चम्पा ॥ ३६॥ बेरी इनकी दँतौन करनी उत्तम है मंत्र यह है कि, अन्नके भक्षण और शत्रुओंके ध्वंसके निमित्त सोमराजा इस वृक्षमें प्रगट है ॥ ३७ ॥ वह यश और ऐश्वर्यद्वारा मेरे मुखको प्रक्षालन करै आयु, बल, यश, कान्ति, प्रजा, पशु, धन ॥ ३८ ॥ ब्रह्म, प्रज्ञा और मेधा हे वन स्पते! मुझे दीजिये निषिद्ध दिनोंमें जब कि, दँतोन न की जाती हो ॥ ३९ ॥ जलके बारह कुल्लेसे दँतौन करै उसने सविताका भक्षण और अपने कुलका घात किया ॥ ॥ ४० ॥ जिसने पडवा अमावस छठ नौमी एकादशी रविवारको दँतौनकी इन दिनोंमें दांतोंमें काष्ठका संयोग होनेसे सातकुलतक दग्ध करता है ॥ ४१ ॥ फिर निर्मल जलसे पादशौच करके तीनवार उत्तम जल पियै, फिर तर्जनी और अंगूठेसे दोवार जलस्पर्श कर नासिकाके दोनों पुटछुये फिर अंगुष्ठ अनामिकासे दोनों नेत्र फिर कनिष्ठिका अंगुष्टसे कान और हृदय करतलसे सब अंगुलियोंसे शिरस्पर्श करै ॥ ४२ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

श्रीनारायण बोले " शुद्ध, स्मार्त आचमन, पुराण, वेद, तंत्र, श्रुतिमें कहाहुआ आचमन छःप्रकारका है विष्ठा मूत्र आदिद्वारा शौचकरने उपरान्त आचमन करना शुद्ध कहाता है, स्मार्त पौराणिक कर्मके उपरान्त कियाहुआ आचमन स्मार्त और पौराणिक कहाता है ब्रह्मयज्ञादि पूर्वक आचमन वैदिक और श्रौत कहाता है अस्त्र-विद्यादि कर्ममें तांत्रिक विधिका आचमन कहाता है" ॐकारपूर्वक गायत्रीका स्मरण कर शिखा बाँधे फिर आचमन कर हृदय वा बाहु और कंधोंको छुये ॥ १ ॥ छींक, खकार, दांतोंकी उच्छिष्ट, असत्यभाषण, और पतितोंसे भाषण करनेमें दहिना कान स्पर्श करै ॥ २ ॥ अग्नि, जल, वेद, सोम, सूर्य, अनिल (वायु) यह सब ब्राह्मणके दहिने कानमें स्थित रहते हैं यह मंत्र पढे ॥ ३ ॥ फिर नदीआदिमें

जाकर प्रभातस्नानकी शुद्धि करै. हे मुने ! इससे देहकी शुद्धि होती है ॥ ४ ॥ यह देह अत्यन्त मलिन है इसके नौओं द्वारोंसे मल बहता है इनके शोधनको सदा प्रभात स्नान करै ॥ ५ ॥ अगम्या स्त्रीमें गमनका पाप प्रतिग्रहका पाप गुप्तपाप भी स्नान करनेसे नष्ट होजाते हैं ॥ ६ ॥ विनास्नान कियेकी सब क्रिया नष्ट होजाती है इसकारण प्रतिदिन नित्य प्रभातमें स्नान करै ॥ ७ ॥ कुशाग्रहण करके स्नान और सन्ध्यावंदन करै प्रभातस्नान नकरनेसे सातदिनमें, विनासंध्याके तीन दिनमें ॥ ८ ॥ अग्नि होत्र न करनेसे बारह दिनमें द्विज शूद्रत्वको प्राप्त होजाताहै स्नानादिविधिके बहुत होने और हवनकालके अल्प होनेसे इसप्रकार स्नानविधि करके तथा सन्ध्यादि विधि करनेमें होमकाल नहीं मिलताहै ॥ ९ ॥ इससे प्रभातकालमें वैसी विधिसे स्नान न करके संक्षेपसे करै इसलोक और परलोकमें गायत्रीसे परे कुछ नहीं है ॥ १० ॥ अपने जपनेवालेकी रक्षा करती है इसीसे इसको गायत्री कहते हैं ओंकार और तीनों व्याहृतियोंके सहित ॥ ११ ॥ ब्राह्मण तीनवार प्राणायाम करके वायुका निरोध करै श्रुतिसम्पन्न ब्राह्मण सदा अपने धर्ममें निरत हुआ ॥ १२ ॥ वैदिक मंत्रका जप करै लौकिक मंत्रका नहीं गौके शृंगपर जितनी देर सरसों स्थित रहती है इतने कालतक भी जिनका प्राणनिरोध नहीं होता ॥ १३ ॥ वह माता पिताके १०१ एकसौ एक पितरोंको तारनेमें समर्थ नहीं होता सगर्भ प्राणायाम जपसे युक्त और अगर्भ ध्यानमात्रका होताहै ॥ १४ ॥ स्नानका अंग भूत तर्पण देवता पितरोंको संतुष्ट करताहै जलसे बाहर आय शुद्ध वस्त्र धारण कर ॥ १५ ॥ विभूति और रुद्राक्ष धारण करै जपसाधकोंको सदा क्रमयोगसे करना चाहिये ॥ १६ ॥ कंठमें ३२ मस्तकमें ४० कानोंमें छः छः, बारह २ हाथोंमें, भुजदण्डोंमें सोलह, सोलह, नेत्रमें एक, शिखामें एक वक्षस्थलमें १०८ जो धारण करता है वह स्वयं शिवस्वरूप होता है ॥ १७ ॥ सुवर्ण अथवा चांदीके तारमें हे मुने ! रुद्राक्ष पिरोकर शिखा वा कर्णमें धारण करना चाहिये ॥ १८ ॥ यज्ञोपवीतमें हाथमें कंठमें तुंदमें पंचाक्षर मंत्र नमःशिवाय वा ओंकारसे धारण करै ॥ १९ ॥ बुद्धिमान् निष्काम भक्तिसे रुद्राक्षको धारण करै रुद्राक्षका धारण साक्षात् शिवके ज्ञानका साधक होता है ॥ २० ॥ शिखामें रुद्राक्ष है इस तारकतत्वका स्मरण करै दोनो कानोंके रुद्राक्षमें देवदेवीको भावना करै ॥ २१ ॥ यज्ञोपवीतमें वेदोंकी, हाथोंमें दिशाओंकी, कंठमें सरस्वती देवी और अग्निकी भावना करै ॥ २२ ॥ सब आश्रम और वर्णोंको रुद्राक्ष धारण करना

चाहिये उनमें द्विजातियोंको मंत्रपूर्वक धारण करना चाहिये अन्यथा नहीं ॥ २३ ॥ रुद्राक्षके धारण करनेसे वह निःसन्देह रुद्रही होजाता है निषिद्धोंको देखता सुन्ता स्मरण करता हुआ ॥ २४ ॥ सूंघता, खाता, प्रलाप करता, गमन विसर्जनमें इन निषिद्ध कर्मोंको करता हुआ ॥ २५ ॥ रुद्राक्ष धारण करनेसे फिर उसको पाप नहीं लगता है इसका भोजन किया हुआ देवताओंके भोजन करनेकी समान है ॥ २६ ॥ जो उसने पान किया सो रुद्रने उसने सूंघा सो शिवने हे महामुने ! जिनको रुद्राक्ष धारणमें लज्जा है ॥ २७ ॥ उनका संसारसे कोडजन्ममें भी निस्तार नहीं होता रुद्राक्षधारणको देखकर जो निन्दाकरता है ॥ २८ ॥ उसकी उत्पत्तिमें संकरता है यह निश्चय है रुद्राक्षके धारणसे रुद्र भी रुद्रत्वको प्राप्त होता है ॥ २९ ॥ मुनि सत्यसंकल्प और ब्रह्मा ब्रह्मत्वको प्राप्तहुए रुद्राक्षधारणसे कोई वस्तु श्रेष्ठ नहीं है ॥ ३० ॥ रुद्राक्षधारीके निमित जो वस्त्र और धान्य देताहै वह सब पापसे रहित होकर शिवलोकको जाता है ॥ ३१ ॥ जो रुद्राक्षधारीको प्रसन्न होकर जिमाता है वह पितृलोकको प्राप्तहोताहै इसमें सन्देह नहीं ॥ ३२ ॥ जो पुरुष रुद्राक्षधारण किये पुरुषको चरण धोकर जलपानकरे वह सब पापसे मुक्त होकर शिवलोकको प्राप्तहोताहै ॥ ३३ ॥ जो ब्राह्मण हार कटक वा सुवर्णको रुद्राक्षके सहित धारण-करताहै वह रुद्रताको प्राप्तहोता है ॥ ३४ ॥ हे महामते ! केवल रुद्राक्षको भी जहां कहीं मंत्र वा अमन्त्रसे भाव वा अभावसे ॥ ३५ ॥ जो कोई भक्ति वा लज्जासे भी धारणकरताहै वह सर्वपापसे रहित हो भलीप्रकारके ज्ञानको प्राप्तहोताहै ॥ ३६ ॥ अहो मैं रुद्राक्षका माहात्म्य नहीं कहसकता. इससे सबप्रकार रुद्राक्षधारणकरै ॥ ३७ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भाषायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

नारदजी बोले हे अनघ ! जब रुद्राक्षका इसप्रकारका प्रभाव है और महान् पुरुषोंसे पूजित है तो इसका क्या कारण है कहिये ॥ १ ॥ नारायण बोले यही वार्ता पहले भगवान् गिरिशसे षण्मुखने पूछी थी रुद्रने इसपर जो कहा सो सुनो ॥ २ ॥ ईश्वर बोले हे कुमार तत्वपूर्वक सुनो मैं संक्षेपसे कहता हूं पहले एक त्रिपुरनामक दैत्य बडा दुर्जय होगया है ॥ ३ ॥ उसने ब्रह्मा विष्णु आदि सब देवताओंको तिर-स्कृतकरदिया, तब सबने उसकी व्यवस्था मुझसे कही ॥ ४ ॥ तब मैं अपने अघो-

रनामक महाशस्त्रको विचारकर जो सब देवमय दिव्य ज्वलित महाघोररूपी है ॥ ५॥ उस समय त्रिपुरके वधकरने और देवताओंकी रक्षा करनेको सब विघ्नके नाशके निमित्त अघोर अस्त्रका चिन्तन किया ॥ ६ ॥ दिव्यसहस्रवर्षतक मैंने नेत्र निमीलित किये तब मेरे नेत्रोंसे जलबिन्दु गिरे ॥ ७ ॥ उन आसुओंकी बूंदोंसे महारुद्राक्षके वृक्ष उत्पन्न हुए हे महासेनापते! सबके हितकी कामनासे मेरी आज्ञासे उत्पन्न हुए ॥ ८ ॥ वे अठ्ठाईस प्रकारके भेदवाले हुए सूर्यनेत्रसे उत्पन्न कपिलवर्णके बारह उत्पन्नहुए ॥ ९ ॥ सोमनेत्रसे उत्पन्न हुए श्वेतवर्णके सोलहप्रकारके हैं और वन्हिनेत्रसे उत्पन्नहुए कृष्णवर्ण दशभेदवाले हैं ॥ १० ॥ श्वेतवर्ण रुद्राक्ष जातिसे ब्राह्मण कहाता है, रक्तवर्ण क्षत्रिय, मिश्र वैश्य और कृष्णवर्ण शूद्रसंज्ञक है ॥ ११ ॥ एकमुखी साक्षात् शिव ब्रह्महत्याको दूर करता है दोमुखी देवी और देवतास्वरूप है अनेक पाप दूरकरताहै ॥ १२ ॥ तीनमुखी साक्षात अनल स्त्रीहत्या दूरकरता है चतुर्मुखी स्वयं ब्रह्मा नरहत्या दूरकरता है ॥ १३ ॥ पंचमुखी साक्षात् रुद्र कालाग्नि नामक है वह अभक्ष्यभक्षण और अगम्यागमन अपराधसे ॥ १४ ॥ तथा और भी सब पापोंसे मुक्त करता है. षण्मुखवाले साक्षात् कार्तिकेय हैं इनको दक्षिणहाथमें धारणकरना चाहिये ॥ १५ ॥ तो वह ब्रह्महत्यादि पापोंसे छुटजाते हैं इसमें सन्देह नहीं सातमुखी अनंगनामक है यह महाभाग है ॥ १६ ॥ इसके धारणादिसे स्वर्णचोरी आदिके पापसे छुटजाता है हे पुत्र! अष्टमुखी साक्षात् विनायकदेव है ॥ १७ ॥ अन्नकूट, तुलाकूट, स्वर्णकूट, दुष्टवंशस्त्री वा गुरुस्त्रीका स्पर्श ॥ १८ ॥ इत्यादि पाप उसके धारणसे दूर होते हैं उनके सब पापनाश होजाते हैं और अन्तमें परमपदको जाते हैं ॥ १९ ॥ यह सब गुण अष्टमुखीके धारणकरनेसे होते हैं नौमुखका भैरव है उसे बाईं भुजामें धारणकरना चाहिये ॥ २० ॥ उसको भुक्तिमुक्तिकी प्राप्ति और मेरी तुल्यबल होता है सहस्रों गर्भहत्या सैकडों ब्रह्महत्या ॥ २१ ॥ नौमुखीके धारणसे शीघ्रही नाश होजाती है दशमुखी साक्षात् देवदेव जनार्दन है ॥ २२॥ ग्रह, पिशाच वेताल, ब्रह्मराक्षस, पन्नगादि सब दशमुखके धारणसे शान्त होजाते हैं ॥ २३ ॥ एकादशमुखी साक्षात् रुद्र है जो इसको शिखामें धारणकरते हैं उसके पुण्यफलको सुनो ॥ २४ ॥ सहस्रअश्वमेध सौ वाजपेय और सौ सहस्र गोदानका जो फल है ॥ २५ ॥ वह एकादशमुखी रुद्राक्षके धारणकरनेसे मिलता है और द्वादशमुखी

रुद्राक्ष कर्णमें धारण करै ॥ २६ ॥ तो उससे बारह आदित्य प्रसन्न होजाते हैं गोमेध और अश्वमेधका फल प्राप्त होता है ॥ २७ ॥ शृंगवाले शस्त्रधारी और व्याघ्रादिका भय नहीं होता उसकी आधि व्याधिका भी भय नहीं होता ॥ २८ ॥ न उसको कोई भय और न व्याधि होती है न कहीं भय होता किन्तु सर्वत्र सुख होता है तथा अधिपति होता है ॥ २९ ॥ हाथी, अश्व, मृग, मार्जार, मूषक, दर्दुर खर, कुत्ते, शृगाल बहुत प्रकारके जीवोंको मारकर भी ॥ ३० ॥ द्वादशमुखी रुद्राक्षधारणसे इनके पापसे छूटजाता है. हे वत्स ! यदि तेरहमुखी रुद्राक्ष प्राप्त होजाय ॥ ३१ ॥ तब वह कार्तिकेयकी समान सब अर्थ और कामका देनेवाला होता है उसको रस रसायन सब सिद्ध होजाती हैं ॥ ३२ ॥ उसको सब भोग प्राप्त होते हैं इसमें विचारकी आवश्यकता नहीं जो माता पिता वा भाईको मारता है ॥ ३३ ॥ हे षण्मुख ! वह उसके धारणसे उस पापसे मुक्त होजाता है. हे पुत्र ! यदि चौदहमुखी रुद्राक्ष धारण करता है ॥ ३४ ॥ तो शिरपर धारण करनेसे शिवके शरीररूप होता है. हेमुने ! वारंवार वर्णनसे क्या है ॥ ३५ ॥ वह सदा देवतोंसे पूजित होकर परमगतिको प्राप्त होता है. एकही रुद्राक्ष शिखापर भक्तिसे धारण करनेसे ॥ ३६ ॥ छब्बीसकी माला शिरपर, पचासकी हृदयमें, सोलहकी बाहुमें बारहकी मणिबंधमें ॥ ३७ ॥ हे षडानन ! एकसौआठ, पचास, अथवा सत्ताईस दानेकी रुद्राक्षमाला ॥ ३८ ॥ धारण या जपसे अनन्त फल होता है १०८ रुद्राक्षोंकी माला धारणकरते हैं ॥ ३९ ॥ हे षण्मुख ! उसको क्षण २ में अश्वमेधका फल प्राप्त होता है.तथा २१ कुल उद्धारकर शिवलोकमें प्रतिष्ठाको प्राप्त होता है ॥ ४० ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ५.

ईश्वर बोले हे षण्मुख ! जपमालाका लक्षण सुनो मैं कहताहूं रुद्राक्षका मुख ब्रह्मा-बिन्दु रुद्र कहा है ॥ १ ॥ विष्णु पुच्छ है जो भोगमोक्षको देनेवाला है पचीस रुद्राक्षोंकी पंचमुखी कंटकमाला ॥ २ ॥ जो लाल श्वेत वर्णोंसे मिश्रित रन्ध्रद्वारा ग्रथित होतो गोपुच्छवदायके आकारमाला निर्माण करनी चाहिये ॥ ३ ॥ मुखसे मुख और पुच्छसे पुच्छ संयुक्त करै मेरुको ऊर्ध्वमुख करै उसके ऊपर नागपाश धारण

करै ॥ ४ ॥ इसप्रकारसे ग्रथित हुई गोपुच्छमाला सब सिद्धिदेनेवाली होती है. गंध-जलसे धोकर फिर पंचगव्यसे प्रक्षालनकर ॥ ५ ॥ फिर शुद्धजलसे प्रक्षालन करके मंत्रसमूहोंका न्यास करै फिर शिवास्त्रमंत्रसे जो षडंगमें है स्पर्शकर कवचमंत्र हुम् से संयुक्त करै ॥ ६ ॥ फिर मूलमंत्रसे न्यास करै यह स्वयं पूर्वोक्तप्रकारसे करै वा गुरुके हाथसे करावे फिर सद्योजातादि मंत्रोंसे शोधन एकसौ आठ ॥ ७ ॥ मूल-मंत्रको उच्चारण कर शुद्धभूमिमें रख, उसके ऊपर अम्बासहित परमकारुणिक शंकरका न्यास करे ॥ ८ ॥ इस प्रकार माला प्रतिष्ठित होकर सब कामना और फलकी देनेवाली होती है जिस देवताका जो मंत्र है उसको उसीसे पूजन करै ॥ ९ ॥ मूर्धा कंठ वा हाथमें जपमालाका न्यास करै अर्थात् जपके अन्तमें इन स्थानोंपर रखले नियतात्मा होकर रुद्राक्षमालासे जप करना चाहिये ॥ १० ॥ कंठ, शिर, हृदय, कान, बाहु, इनमें परमभक्तिसे रुद्राक्ष धारण करना चाहिये ॥ ११ ॥ बहुत कहने और वारंवार वर्णन करनेसे क्या है, रुद्राक्ष नित्य धारणसे प्रतिष्ठा होती है ॥ १२ ॥ स्नान, दान, जप, होम, वैश्वदेव, सुरार्चन, प्रायश्चित्त, श्राद्ध और विशेष कर दक्षिणाकालमें ॥ १३ ॥ विनारुद्राक्षके धारण किये जो कुछ भी वैदिककर्म करते हैं वह मोहसे नरकमें जाते हैं ॥ १४ ॥ रुद्राक्षको शिरमें कंठमें यज्ञोपवीत और हाथमें सुवर्णमणिसे युक्त रुद्राक्ष धारणकरे कुछ मिलाकै नधारे अशुचि होकर रुद्रा-क्षको न धारण करै सदा भक्तिसेही धारणकरै रुद्राक्षवृक्षसे लगीहुई वायुके तृणभी पुण्यलोकको प्राप्त होते हैं, जिनके जीवोंकी फिर आवृत्ति नहीं होती रुद्राक्ष धारण कर पाप करते हुएभी मनुष्य ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ सब पाप तरजातेहैं ऐसा जाबाल श्रुति कहती है पशुभी रुद्राक्षधारणसे रुद्रलोकको प्राप्त होते हैं ॥ १८ ॥ और जो मनुष्य रुद्राक्षकी माला धारण करते हैं उनकी बात तो कौन कहै एकभी रुद्राक्ष जो शिरपर शिवके भक्त धारण करते हैं ॥ १९ ॥ सब दुःखोंका ध्वंस करनेवाला और सब पापोंका मुक्त करनेवाला परमात्मा शंकरका जो नाम लेते हैं ॥ २० ॥ और जो रुद्राक्षसे अलंकृत हैं वह उत्तम भागवत हैं सब कल्याणकी इच्छावालोंको सदा रुद्राक्ष धारण करना चाहिये ॥ २१ ॥ कर्ण, शिखा, कंठ, हाथ, उदरमें महादेव विष्णु और ब्रह्माकी विभूति हैं ॥ २२ ॥ तथा औरभी देवता भक्तिसे रुद्राक्ष धारण करतेहैं सबके गोत्र ऋषि सब कूटस्थ मूलरूपी श्रौतधर्ममें रत रुद्राक्षके धारण करने वाले हैं ॥ २३ ॥ उन्हींसे सब मुनियोंके वंश हैं वे सब रुद्राक्षधारी श्रौतधर्ममें

तत्पर और शुद्ध हैं ॥ २४ ॥ वेदसिद्ध रुद्राक्षधारणमें एकसंग श्रद्धा नहीं होती परन्तु बहुत जन्मोंके अन्तमें महादेवके प्रसादसे ॥ २५ ॥ रुद्राक्षधारणमें स्वभाव-सेही वांछा होती है रुद्राक्षमाहात्म्य जाबालश्रुतियोंमें आदरपूर्वक ॥ २६ ॥ सब मुनियोंसे पढ़ा जाताहै, हे पुत्र! हम भी पढते हैं रुद्राक्षका फल त्रिलोकीमें विख्यातहै ॥ २७ ॥ रुद्राक्षके दर्शनसे पुण्य स्पर्शसे कोटिगुण पुण्य और धारणसे उससे भी सौकोटिगुण पुण्य होताहै ॥ २८ ॥ लक्षकोटि सहस्रलक्षकोटि सौगुना फल जपसे प्राप्त होताहै इसमें सन्देह नहीं ॥ २९ ॥ हाथ, हृदय, कंठ, कान और मस्तकमें जो रुद्राक्ष धारण करताहै वह शिवहै इसमें सन्देह नहीं ॥ ३० ॥ वह सब प्राणियोंसे अवध्य हो भूमिमें विचरण करताहै वह शिवकी समान सुरासुरोंका वन्दनीय होताहै ॥ ३१ ॥ रुद्राक्षधारी सदा मनुष्योंसे वन्दनीय होताहै उच्छिष्ट वा विकर्ममें स्थित वा सब पापोंसे युक्तहो ॥ ३२ ॥ वह रुद्राक्षके धारणसे सब पापोंसे छूट जाताहै कंठमें रुद्राक्ष बाँधकर श्वानभी यदि प्राण त्यागे ॥ ३३ ॥ वहभी मुक्त होजाताहै मनुष्योंकी तो बातही क्याहै जप ध्यानसे विहीन भी यदि रुद्राक्ष धारण करे ॥ ३४ ॥ वह सब पापसे निर्मुक्त होकर परमगतिको प्राप्त होताहै जो एकभी रुद्राक्ष यत्नपूर्वक धारण करता है ॥ ३५ ॥ वह इक्कीस कुलका उद्धार करके रुद्र-लोकमें प्रतिष्ठा पाता है अब रुद्राक्षका फिर विधान कहता हूं ॥ ३६ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

ईश्वर बोले हे महासेन! कुशग्रंथि जीयापोता आदिक जो कितनेही दूसरी वस्तु हैं यह रुद्राक्षकी सोलहवीं कलाको भी नहीं प्राप्त हो सकते ॥ १ ॥ पुरुषोंमें जैसे विष्णु, ग्रहोंमें जैसे सूर्य, नदियोंमें जैसी गंगा, मुनियोंमें कश्यप ॥ २ ॥ अश्वोंमें उच्चैःश्रवा, देवताओंमें जैसे महादेव, देवीमें जैसे गौरी इसीप्रकार यह सबसे श्रेष्ठ है ॥ ३ ॥ इससे परे दूसरा स्तोत्र इससे परे व्रत तथा अक्षय्य दानोंमें रुद्राक्ष सबसे विशेष है ॥ ४ ॥ शिवभक्त शान्तके निमित्त उत्तम रुद्राक्ष देने चाहिये उसके पुण्य फलकी अनन्तता कोई नहीं कह सकता ॥ ५ ॥ कंठमें रुद्राक्ष धारण किये पुरुषको जो अन्न देता है वह कुलोंका उद्धारकर रुद्रलोकको जाता है ॥ ६ ॥ जिसके

मस्तकमें विभूति, अंगमें रुद्राक्ष नहीं जो शिवके मंदिरमें जाकर पूजा नहीं करता वह ब्राह्मण श्वपचोंमें नीच है ॥ ७ ॥ मांस खाते मद्यपीते अन्त्यजोंका संग करते भी शिरमें रुद्राक्ष धारण करके पातकोंसे छूटता है ॥ ८ ॥ सब यज्ञ तपो दान वेदाभ्यास का जो फल है वह फल रुद्राक्षके धारणसे तत्काल मिलता है ॥ ९ ॥ जो चार वेद और पुराणपाठका फल है जो तीर्थ और सब विद्यासेवनका फल है वह फल शीघ्रही रुद्राक्षधारणसे प्राप्त होता है प्रयाणकालमें रुद्राक्ष धारण कर यदि मरजाय १० ॥ ११ ॥ वह फिर जन्मको प्राप्त न होकर रुद्रलोकमें गमन करता है कंठ और भुजामें रुद्राक्ष धारण करके यदि मृत्यु होजाय ॥ १२ ॥ वह २१ कुल तारकर रुद्रलोकमें निवास करता है ब्राह्मण वा चाण्डाल निर्गुण वा सगुण कोई हो ॥ १३ ॥ भस्म रुद्राक्ष धारण करनेवाला शिवताको प्राप्त होता है. शुचि अशुचि अभक्ष्यका भक्षण करनेवाला ॥ १४ ॥ म्लेच्छ चाण्डाल वा सब पातकोंसे युक्त हो वह रुद्राक्ष धारणसे रुद्रही होजाता है इसमें सन्देह नहीं ॥ १५ ॥ एक कोटि गुना फल शिरपर, दश कोटि कर्णमें, शतकोटि गलेमें मूर्धापर सहस्र कोटि ॥ १६ ॥ यज्ञोपवीत में अयुत, भुजाओंमें लक्षकोटि गुना फल होता है, तथा मणिबंधने रुद्राक्ष धारण कर मोक्षसाधनमें तत्पर होता है ॥ १७ ॥ रुद्राक्षधारण करताहुआ जो कुछ कर्म ब्राह्मण वेदके अनुसार करता है उससे बडे फलको प्राप्त होता है ॥ १८ ॥ जो भक्तिरहित होकर भी कंठमें रुद्राक्षकी मालाको धारण करता है वह पापकर्मा भी मुक्त होजाता है ॥ १९ ॥ जो रुद्राक्षमें चित्त लगाकर रुद्राक्ष धारण करता है वह शिवभक्त शिवलोकमें शिवकी समान नमस्कृत होता है ॥ २० ॥ विद्यावान् वा अविद्यावान् कोई भी रुद्राक्ष धारण करे वह शिवलोकको प्राप्त होता है, जैसे किकट देशमें रासभ मुक्त हुआ ॥ २१ ॥ स्कंदजी बोले हे देव! गर्दभने किसप्रकार रुद्राक्ष धारण किया? कीकटमें किसने उसको दिया सो आप भलीप्रकार कहिये ॥ २२ ॥ श्रीभगवान् बोले हे पुत्र! पहली एक कथा सुनो विंध्याचल पर्वतपर एक गर्दभ रहता था, वह पथिकद्वारा रुद्राक्ष भार ढोया करता था ॥ २३ ॥ एक समय वह भार उठानेमें असमर्थ होकर भूमिपर गिरगया और प्राण निकल गये तब त्रिनेत्र शूलपाणि महेश्वररूप हो ॥ २४ ॥ मेरे प्रसादसे वह मेरे समीप प्राप्त हुआ जितने रुद्राक्षोंके सुखकी संख्या थी ॥ २५ ॥ उतनेही सहस्रवर्ष शिवलोकमें प्रतिष्ठा पाई यह अपने शिष्योंके प्रतिही कहनी अशिष्योंसे नहीं कहनी ॥ २६ ॥ अभक्त तथा

मूर्खोंसे इन कथाओंको प्रकाश न करे कोई अभक्त वा भक्त नीचसे भी नीच क्यों न हो ॥ २७ ॥ जो रुद्राक्ष धारण करता है वह सब पातकोंसे छूट जाता है रुद्राक्षके धारणका पुण्य किसकी समान कहै ॥ २८ ॥ तत्त्वदर्शी मुनियोंने यह महाव्रत कहा है जो सहस्र रुद्राक्षको धारण करता है ॥ २९ ॥ उसको सब देवता प्रणाम करते हैं वह रुद्रकी समान है सहस्र न मिलें तो भुजाओंमें सोलह२ धारण करे ॥ ३० ॥ शिखामें एक, हाथोंमें बारह २ कंठमें ३२ और चालीस मस्तकमें ॥ ३१ ॥ एक एक कानमें छः छः वक्षस्थलमें १०८ रुद्राक्ष जो धारण करता है वह रुद्रकी समान पूजित होता है ॥ ३२ ॥ मुक्ता प्रवाल (मूँगा) स्फटिक चांदी वैडूर्य सुवर्णसहित जो धारण करता है वह शिवरूप होता है ॥ ३३ ॥ जो आलस्यसेही केवल रुद्राक्षोंको धारण करता है उसको पाप नहीं छूसक्ते जैसे सूर्यको अंधकार ॥ ॥ ३४ ॥ रुद्राक्ष मालाका मंत्र जपनेसे अनन्त फलका देनेवाला होता है जिसके अंगमें बहुत पुण्य देनेवाला एकभी रुद्राक्ष नहीं है ॥ ३५ ॥ उसका जन्म निरर्थक होता है इसीप्रकार त्रिपुण्ड्ररहित है जो कोई रुद्राक्ष शिरपर धारण करके शिरसे स्नान करता है ॥ ३६ ॥ उसको गंगास्नानका फल प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं. एकमुखी पंचमुखी एकादशमुखी ॥ ३७ ॥ चौदहमुखी रुद्राक्ष लोकमें पूजित हैं जो शंकरात्मक रुद्राक्षको भक्तिसे पूजन करता है ॥ ३८ ॥ वह दरिद्रको-भी राजा करदेता है इसमें आपसे उत्तम पुराणका मत कहता हूं ॥ ३९ ॥ कोशल देशमें कोई ब्राह्मण गिरिनाथ नामक बडा विख्यात महाधनी धर्मात्मा वेदवेदांगका पारगामी ॥ ४० ॥ यज्ञ करनेवाला दीक्षित था उसका पुत्रभी सुन्दरगुणनिधि नामवाला तरुण कामवन सुन्दर था ॥ ४१ ॥ वह सुधिष्ण गुरुकी मुक्तावली पत्नीको अपने रूपयौवनमदसे मोहितकरता हुआ ॥ ४२ ॥ उसके साथ कुछ कालतक तो भयसहित संगति करता हुआ पीछे गुरुको विषदेकर उससे निर्भय मैथुन करने लगा ॥ ४३ ॥ जब माता पिताने उसके इस कुकर्मको जाना तब विष-देकर उनकोभी मारडाला ॥ ४४ ॥ तब अनेक विलासभोगमें द्रव्यके व्यय होजा-नेसे तब वह दुष्ट ब्राह्मणोंके घरमें चोरी करनेलगा ॥ ४५ ॥ सुरापानसे मदो-न्मत्त होनेकेकारण ज्ञातिने उसको बाहर करदिया सबने इसको ग्रामसे निकाल-दिया तब यह वनचारी होगया ॥ ४६ ॥ तब उस मुक्तावलीके साथ गहन वनको चला गया, मार्गमें स्थित हो द्रव्यके लोभसे बहुतसे ब्राह्मणोंको मारडाला ॥ ४७ ॥

इसप्रकार बहुत समय बीतनेसे वह अधम मृत्युको प्राप्त होगया उसको लेनेको अनेक यमदूत आये ॥ ४८ ॥ उसी अवसर शिवलोकसे शिवजीके गण आये हे गिरिजासुत! उनका परस्पर विवाद होनेलगा ॥ ४९ ॥ यमदूत बोले इसका क्या पुण्य है हे शिवके सेवको कहो जिसके कारण तुम इसको लेने आये हो ॥ ५० ॥ शिवदूत बोले यह जिस स्थानमें मृतक हुआ है वहां भूमिसे दश हाथ नीचे रुद्राक्ष है ॥५१॥ हे दूतो! उसीके प्रभावसे हम इसको शिवके समीप ले जायँगे तब वह ब्राह्मण दिव्यरूप धर विमानपर चढ ॥ ५२ ॥ गुणनिधि दूतोंके साथ शिवके स्थानको गया हे सुव्रत! यह तुमसे रुद्राक्षका माहात्म्य कहा ॥ ५३ ॥ यह रुद्राक्षकी महिमा संक्षेपसे तुमसे कही यह सब पापक्षयकारी महापुण्यका फल देने वाला है ॥ ५४ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भाषायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ७.

श्रीनारायण बोले हे नारद! इसप्रकार शिवजीने कार्तिकेयसे कहा था, रुद्राक्षकी महिमा जानकर वह कृतार्थ हुए ॥ १ ॥ इसप्रकार रुद्राक्षका प्रभाव मैंने कहा सदाचारके प्रसंगसे औरभी सुनो ॥ २ ॥ जैसे रुद्राक्षकी महिमा बहुत पुण्यकी देनेवाली कही है वैसेही लक्षण और मंत्र न्यास भी मैं तुमसे वर्णन करता हूं हे मुने! सुनो ॥ ३ ॥ देखनेसे लाखगुण स्पर्शसे करोड गुण और धारणसे उससे भी कोटि गुण पुण्य फल प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ लक्षकोटि सहस्र, लक्षकोटि सौ गुना रुद्राक्षके जपसे पुण्य प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ रुद्राक्षोंमें भद्राक्ष धारणका बडा पुण्य है आमलेकी समान रुद्राक्ष श्रेष्ठ हैं ॥ ६ ॥ बेरकी समान मध्यम, चनेकीसमान अधम हैं यह मेरी प्रतिज्ञा है ॥ ७ ॥ शिवकी आज्ञासे ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र यह चार प्रकारके रुद्राक्षके वृक्ष हैं उन्हींके जातवाले सुभाक्ष कहाते हैं ॥ ८ ॥ श्वेत ब्राह्मण, लाल क्षत्रिय, पीत वर्ण वैश्य और कृष्णवर्ण शूद्र जानने ॥ ९ ॥ ब्राह्मण श्वेत वर्णके, क्षत्रिय लाल, वैश्य पीत और शूद्र कृष्ण वर्णके धारण करै ॥ १० ॥ समान स्निग्ध दृढ कंटक उठेहुए शुभ होते हैं कृमिदष्ट छिन्न भिन्न कंटकोंसे रहित ॥ ११ ॥ व्रणयुक्त अनावृत यह छः प्रकारके रुद्राक्ष धारण न करै जिसमें स्वयं छिद्र हो वह

उत्तम रुद्राक्ष है ॥ १२ ॥ और जो यत्नसे छिद्र किया रुद्राक्ष है वह मध्यम है समस्निग्ध, दृढ, गोलदानोंको रेशमके सूत्रसे पहरे ॥ १३ ॥ सब शरीरमें साम्यता पूर्वक विलक्षण धारण करै जैसे कसौटीपर घर्षण करनेसे सुवर्ण रेखा पडजाती है इसप्रकार जिसकी कसौटीपर रेखा पडजाय ॥ १४ ॥ वह उत्तम रुद्राक्ष शिव-भक्तोंको सदा धारणकरना चाहिये जो शिखामें एक और तीस रुद्राक्ष शिरपर धारण करता है ॥ १५ ॥ गलेमें बाहुओंमें सोलह सोलह पहुँचेमें बारह और स्कंधदेशमें पचास धारण करता है ॥ १६ ॥ एकसौ आठकी मालासे यज्ञोपवीतकी कल्पना करै दो लड वा तीन लडकी माला कंठमें धारण करै ॥ १७ ॥ कुंडल मुकुट, कर्णिका, हार, केयूर, कटक, कुक्षिवंशमें ॥ १८ ॥ सोते पान करते सब समयमें मनुष्य रुद्राक्ष धारण करें तीनसौ धारण करना अधम, पांचसौ धारण करना मध्यम है ॥ १९ ॥ सहस्र धारण करना उत्तम है इस प्रकारके भेदसे धारण करै शिरमें 'ईशान' मंत्रसे कानमें 'तत्पुरुषाय विद्महे' इत्यादि मंत्रसे ॥ २० ॥ ललाट-में अघोर मंत्रसे इसी मंत्रसे हृदयमें अघोर बीज मंत्रसे हाथोंमें धारण करै ॥ २१ ॥ पचास रुद्राक्षकी माला 'वामदेव' मंत्रसे उदरमें इसप्रकार पंच ब्रह्म मंत्रोंसे अंगोंमें रुद्राक्ष धारण करै ॥ २२ ॥ मूलमंत्रसे ग्रथित कर रुद्राक्षोंको धारण करै एक मुखी रुद्राक्ष परतत्वका प्रकाशक है ॥ २३ ॥ परतत्वकी धारणासे उसका प्रकाश होता है. हे मुनिश्रेष्ठ ! द्विमुखी अर्धनारीश्वर होता है जो उसे धारण करता है उससे अर्धनारीश्वर प्रसन्न होजाते हैं ॥ २४ ॥ त्रिमुखी अग्नि-रूप है साक्षात् स्त्री हत्याको दूर करता है ॥ २५ ॥ त्रिमुखी रुद्राक्षभी तीन अग्निके रूपवाला है उसके धारणसे अग्निकी तृप्ति होती है ॥ २६ ॥ चतुर्मुखी रुद्राक्ष पितामहस्वरूपवाला है उसके धारणसे श्री और उत्तम आरोग्यकी प्राप्ति होती है ॥ २७ ॥ इससे महाज्ञान, सम्पत्ति और शुद्धिके निमित्त मनुष्यको धारण करना चाहिये पंचमुखी रुद्राक्ष पंचब्रह्मस्वरूपवाला है ॥ ॥ २८ ॥ उसके धारणमात्रसे शिवजी संतुष्ट होते हैं षण्मुखीके कार्तिकेय देवता हैं ॥ २९ ॥ कोई बुद्धिमान् गणेश देवता कहते हैं इससे यह दोनों प्रसन्न होते हैं सातमुखी रुद्राक्षकी सातमातायें देवता हैं ॥ ३० ॥ तथा सूर्य और सातों मुनिभी

---

१ यह मंत्र हमारे टीका किये शिवपुराणमें देखो।

देवता हैं इसके धारणसे महालक्ष्मी और महाआरोग्यकी प्राप्ति होती है ॥ ३१ ॥ पवित्र होकर धारण करनेसे बडी ज्ञानकी सम्पत्ति प्राप्त होती है अष्टमुखी रुद्राक्षकी आठमातायें देवता हैं ॥ ३२ ॥ यह आठौ वसु और गंगाकोभी प्रसन्न करनेवाला है इसके धारण करनेसे यह सत्यवादी देवता प्रसन्न होते हैं ॥ ३३ ॥ नवमुखीके यमराज देवता हैं इसके धारणसे यमराजका भय नहीं होता है ॥ ३४ ॥ दशमुखी रुद्राक्षकी दशदिश देवता हैं इसके धारणसे दशों दिशाओंकी प्रीति होती है इसमें सन्देह नहीं ॥ ३५ ॥ एकादशमुखीके ग्यारह रुद्र देवता हैं, इन्द्र देवताभी कहाते हैं यह सदा प्रीतिका बढानेवाला है ॥ ३६ ॥ बारहमुखी रुद्राक्ष महाविष्णुके स्वरूपवाला है इसके बारह आदित्य देवता हैं इसके धारणसे उनकी प्रीति होती है ॥ ३७ ॥ तेरहमुखी रुद्राक्ष काम और सिद्धि देनेवाला है इसके धारणमात्रसे कामदेव प्रसन्न होता है ॥ ३८ ॥ चौदहमुखी रुद्रके नेत्रसे प्रगट हुआ है यह सब व्याधी हरनेवाला और सब आरोग्यका देनेवाला है ३९ ॥ मद्य, आमिष, लहसन प्याज, शिग्रु, (सहिंजना) श्लेष्मातक, (लहसोडा) विड्वराह इतनी वस्तुओंका रुद्राक्षधारी सेवन न करै ॥ ४० ॥ ग्रहण विषुव (मेषतुला) संक्रान्ति अयनसमय आमावस पूर्णिमा पवित्रदिनोंमें ॥ ४१ ॥ रुद्राक्षधारणसे शीघ्रही सब पापोंसे छूट जाता है ॥ ४२ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ८.

श्रीनारायण बोले हे महामुने ! अब भूतशुद्धिका प्रकार तुमसे कहते हैं परदेवता कुंडलीको मूलाधारसे उठाकर ॥ १ ॥ सुषुम्नामार्गमें आश्रित होकर ब्रह्मरंध्रतक गई है इसप्रकार विचार करै और साधक हंसमात्रसे जीवब्रह्मकी एकता संयुक्त करके ॥ २ ॥ चरणोंसे लेकर जानुपर्यन्त चतुष्कोण यंत्रका विचार करै उससे लंबीजसे युक्त सुवर्णके वर्णका अवनीमण्डल स्मरण करै ॥ ३ ॥ जानुसे आदिलेकर नाभि पर्यन्त अर्धचन्द्रके समान दोपद्मसे अंकित वीजसे युक्त श्वेतकान्तिवाले सोममण्डलका स्मरण करै ॥ ४ ॥ नाभिसे लेकर हृदयपर्यन्त त्रिकोणस्वस्तिक आसन रंबीजसे युक्त रक्तवर्ण पावक मंडलका स्मरण करै ॥ ५ ॥ हृदयसे लेकर भ्रूमध्य

पर्यन्त गोल छः बिन्दुसे लक्षित यंबीजसे युक्त धूम्रवर्ण वायुमंडलका स्मरण करै॥ ६ ॥ भ्रूमध्यसे ब्रह्मरंध्रपर्यन्त गोलाकार स्वच्छ परममनोहर हंबीजयुक्त आकाशमण्डलका विचार करै ॥ ७ ॥ इसप्रकार भूतोंकी चिन्ताकर प्रत्येकको अपनेमें लयकरै भूको जलमें जलको अग्निमें अग्निको वायुमें वायुको आकाशमें॥ ८ ॥ विलीन करके आकाशको अहंकारमें अहंकारको महत्तत्त्वमें महान्‌को प्रकृतिमें मायाको आत्मामें लय करै ॥ ९ ॥ शुद्धसंवित् होकर अपने शरीरमें पापपुरुषका चिन्तन करै जो बाई ओर स्थित कृष्णवर्ण अंगुष्ठपरिमाणवाला है ॥ १० ॥ ब्रह्महत्यारूप शिरसे युक्त कनककी चोरीरूप बाहुसेयुक्त मदिरापानरूपी हृदय गुरुतल्परूपी कटिसेयुक्त ॥ ११ ॥ उसके संसर्गरूपी दोनो चरण उपपातकरूप मस्तकसे संयुक्त खड्गचर्म धारण करनेवाले दुष्ट, अधोमुखसे दुःसह ॥ १२ ॥ इसप्रकार चिन्ताकर वायुबीजको स्मरण कर उस बीजसे उठी हुई वायुद्वारा पूरक प्राणायामसे देहको पूर्णकर पाप पुरुषको शुष्ककरै पश्चात् अपने शरीरमें स्थित पापपुरुषको रंबीजसे अग्नि प्रगट कर भस्म करै ॥ १३ ॥ फिर कुंभकद्वारा वह्नि बीजके जपके उपरान्त वायुबीजको उच्चारणकर पापपुरुषकी भस्मको अपने शरीरसे बाहर फेंक दे यह क्रिया रेचक प्राणायामसे करै ॥ १४ ॥ अनन्तर स्वशरीरोद्भव भस्मको अमृत बीज ‘ वम् ’ बीजका उच्चारणकरके उससे उठे अमृतसे उसे संप्लावित करै जिससे पिण्डहो पीछे भूबीज ‘ लम् ’ मंत्रसे उसभस्मको घनीभूत करै और उसको कनक अंडवत् भावनाकरै ॥ ॥ १५ ॥ फिर आकाशका हंबीज जपकर उसपिंडकी मुकुराकार भावना करै फिर उस पिण्डके मूर्धासे नखपर्यन्त अवयव मनसेही रचना करै ॥ १६ ॥ फिर जिसक्रमसे ब्रह्ममें पंचभूतोंका संहार किया है इसीक्रमसे फिर ब्रह्मसे पंचभूतोंको प्रगट करै, फिर ‘ सोहम् ’ मंत्रसे ब्रह्ममें एकीभूतहुए जीवको हृदयकमलमें लावे ॥ ॥ १७ ॥ पहले जैसे कुंडलीमें जीवब्रह्मसे संयुक्त हुआ था वही कुंडली उस परमात्माके संगसे सुधामय जीवनको हृदयकमलमें स्थापनकर मूलाधारमें प्राप्तस्मरण करै यही जीवनका प्रकार है इसके उपरान्त प्राणप्रतिष्ठा करै ॥ १८ ॥ शोणसागरमें स्थित नौका है उसमें स्थित एक रक्तकमल है उसमें आरूढ करकमलोंमें शूलकोदण्ड अर्थात् इक्षुका धनुष, पाश, अंकुश, पांच बाण, रक्तपूर्ण कपाल, धारण किये षड्हस्ता, तीन नेत्रसे शोभित, पीनवक्षस्थल बालसूर्यके समान वर्णवाली देवी पराप्राणशक्ति हमको सुखकारी हो ॥ १९ ॥ इसप्रकार परमात्मस्वरूपिणी

प्राणशक्तिको ध्यान करके प्राणको स्थापनकर सब सिद्धिके निमित्त विभूति धारण करना चाहिये ॥ २० ॥ विभूतिके धारणका महाफल विस्तारसे कहता हूं कि श्रुतिस्मृतिके पुराणसे युक्त भस्मधारण करना परमउत्तम है ॥ २१ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषायां अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ९.

श्रीनारायण बोले जिन ब्राह्मणोंने विधिपूर्वक यह शिरोव्रत कियाहै उन्हींसे अज्ञान-बाधक इस परा विद्याको प्रकाश करना चाहिये ॥ १ ॥ और जिन्होंने विधिपूर्वक शिरोव्रत नहीं किया है उनको श्रुतिस्मृतिका आचरण उपकारी नहीं होता ॥ ॥ २ ॥ शिरोव्रतके आचारवाले ब्रह्मादि देवता हैं इससे ब्रह्माने ब्रह्मत्व पाया है औरसे नहीं ॥ ३ ॥ शिरोव्रतका माहात्म्य पूर्वसे पूर्वतरों ने भी किया है. सब ब्रह्मा विष्णु रुद्र-देवता शिरोव्रत करते हैं ॥ ४ ॥ सब पातकों से युक्त हुआभी, इसके अनुष्ठानसे सब पातकों से छूट जाता है. हे ब्राह्मणों ! जिन्होंने शिरोव्रतका आचरण किया है वह मंगलको प्राप्त हुए हैं ॥ ५ ॥ अथर्वशिर उपनिषदमें यह शिरोव्रत कथन किया है परन्तु यह पुण्यके द्वारा प्राप्त होता है ॥ ६ ॥ हे मुनिराज ! शाखाभेदसे इस एकही व्रतके अनेकनाम पढेजाते हैं कोई पाशुपत् और कोई उसे शिवव्रत कहते हैं ॥ ७ ॥ सब शाखाओंमें यह एकही शिवनामक व्रत सत् चित् घन है तथा उसको विषयका ज्ञान इसीप्रकार शिरोव्रत है ॥ ८ ॥ शिरोव्रतसे विहीन पुरुष सब धर्मोंसे रहित होता है सब विद्याओंमें अधिकारी हो तोभी धर्मवर्जित ही जानना यदि यह व्रत न किया हो ॥ ९ ॥ यह शिरोव्रत पापरूपी वनका दहन करनेवाला है सब विद्याओंका साधक है इसकारण इसको भलीभाँतिसे आचरण करना चाहिये ॥ १० ॥ अथर्वणकी श्रुति सूक्ष्म अर्थका प्रकाश करनेवाली है उसने प्रीतिसे जो कहा है उसको भलीप्रकार आचरण करना चाहिये ॥ ११ ॥ अग्नि इत्यादि छः मंत्र अर्थात् 'अग्निरितिभस्म, जलमितिभस्म, स्थलमितिभस्म, वायुरितिभस्म, व्योमेतिभस्म, सर्वं ह्वाइदं भस्म' इन अथर्वणमें कहे छः मंत्रोंद्वारा भस्मको सब अंगमें लगावै इसका नाम शिरोव्रत है ॥ १२ ॥ सन्ध्यासमय आदरसे यह शिरोव्रत करै जबतक ब्रह्मविद्याका उदय हो तबतक उसकी विद्या उत्तम है ॥ १३ ॥ बारह वर्ष, एकवर्ष, छःमहीने,

तीन महीने अथवा बारह दिन संकल्पकरके शिरोव्रत करना चाहिये ॥ १४ ॥ जो शिरोव्रतसे स्नात है उसको जो गुरु उपदेश नहींकरता उसकी विद्या नष्ट होती है, और वह गुरु कठोर है ॥ १५ ॥ ब्रह्मविद्याका देनेवाला ही साक्षात् परम कारुणिक गुरु है जैसे सर्वेश्वर श्रीमान् परमकारुणिक नारायण हैं. इसीप्रकार सत् उपदेष्टा गुरु हैं ॥ १६ ॥ जिन मनुष्योंने सहस्रों जन्मान्तरोंमें धर्माचरण किया है उनकीही इसमें श्रद्धा होती है अन्योंकी नहीं ॥ १७ ॥ अज्ञानकी बहुतापनसे इसमें द्वेषही होता है इसकारण द्वेषयुक्तको आत्मज्ञान नहीं होसकता ॥ १८ ॥ हे ब्रह्मन्! इस ब्रह्मविद्या उपदेशके वेही अधिकारी हैं जो शिरोव्रतमें स्नान करचुके हैं ॥ १९ ॥ जिन ब्राह्मणोंने आदरसे पाशुपतव्रत किया है उन्हींको उपदेश करना चाहिये. यह वेदका अनुशासन है ॥ २० ॥ जो पशु है वह पुरुष इसव्रतसे पशुत्व त्यागन करै उन पशुओंको मारकर वह ज्ञानी पापी नहीं होता यह वेदान्तका निश्चय है ॥ २१ ॥ जावालि श्रुतिमें आदरपूर्वक त्रिपुंड्र धारणकरना कहा है त्र्यम्बकमंत्र और तारक मंत्रसे लगावै ॥ २२ ॥ गृहस्थाश्रममें स्थित हुआ नित्य त्रिपुंड्र धारण करै तीनवार ॐकार अथवा हंस इसमंत्रसे धारण करै ॥ २३ ॥ भिक्षुकभी नित्यधारण करै यह जावालकी श्रुति है त्र्यम्बकमंत्र, ओंकारमंत्र नमःशिवाय मंत्र चाहै ॥ २४ ॥ गृहस्थ और वनवासीको त्रिपुंड्र धारण करना उचित है मेधावी इत्यादि मंत्रसे दिन २ ब्रह्मचारी धारण करै ॥ २५ ॥ भस्म तथा जलसे त्रिपुंड्र धारण करै, ब्राह्मण विधिपूर्वक भस्मद्वारा त्रिपुंड्र धारण करै ॥ २६ ॥ ललाटमें तिरछी भस्म धारण करै [महादेवके सम्बन्धसे इस धर्ममें संगति होती है] त्रिपुंड्रधर्मको नित्यही ब्राह्मणको धारण करना चाहिये ॥ २७ ॥ आदिब्राह्मण ब्रह्माजीने त्रिपुंड्र धारण किया है इसकारण ब्राह्मण सदा त्रिपुंड्र धारण करै ॥ २८ ॥ वेदसिद्ध भस्मसे देहमें भस्म लगाकर त्रिपुंड्र चढाना चाहिये और मोहसेभी कभी शिवलिंगका अर्चन न त्यागे ॥ २९ ॥ त्र्यम्बकमंत्र तारकमंत्र पंचाक्षर वा प्रणवमंत्रसे ॥ ३० ॥ हे महामुने ! ललाट हृदय भुजाओंमें संन्यासाश्रममेंभी स्थित हुआ नित्य त्रिपुंड्र धारण करै ॥ ३१ ॥ त्र्यायुषंजमदग्ने० मेधावीत्यादि० मंत्रसे गौणभस्म (अग्निहोत्र की जो नहो) का त्रिपुंड्रभी ब्रह्मचारी धारण करसकता है ॥ ३२ ॥ 'शिवायनमः' इसमंत्रसे सेवामें तत्पर शूद्रभी शरीरमें भस्म और मस्तकपर नित्य भक्तिसे त्रिपुंड्र लगावै ॥ ३३ ॥ हे सुव्रत ! और सबोंको विनामंत्रकेही शरीरमें भस्म और त्रिपुंड्र धारण करना चाहिये ॥ ३४ ॥

ऐश्वर्यके निमित्त शरीरमें भस्म लगाना त्रिपुंड्रका धारण करना सब धर्मोंसे श्रेष्ठ है इस कारण नित्य इसको भक्तिसे आचरण करै ॥ ३५ ॥ अग्निहोत्रकी भस्म वा विरजा होमकी भस्म आदरसे लेकर शुद्ध पात्रमें रख छोडे ॥ ३६ ॥ हाथ पैर धोय दो वार आचमन कर भस्म लेकर शनैः शनैः वह सद्योजातादि पंचब्रह्म मंत्रों [सद्योजातादि] से ग्रहण कर ॥ ३७ ॥ तीन प्राणायाम करकै अग्निरिति भस्म जलमिति भस्म, स्थलमिति भस्म, वायुरिति भस्म, व्योमेति भस्म, सर्वंहवा भस्म इन सात मंत्रोंसेतीन वार अभिमंत्रण करै ॥ ३८ ॥ ओम् आपोज्योतीरसोमृतम् यह कहकर मंत्रोंको उच्चारण करै पहले श्वेतभस्मसे शरीरको उद्धूलन करै ॥ ३९ ॥ इससे मनुष्य पापरहित होते हैं इसमें सन्देह नहीं फिर जगन्नाथ जलाधिप महाविष्णुको ध्यान कर ॥ ४० ॥ भस्मसे जल मिलाय अग्निरित्यादि मंत्रोंसे वारंवार मिलाकर शिवका ध्यान करते ऊर्ध्व मस्तकमें उद्धूलन करै ॥ ४१ ॥ इस भावनासे ब्रह्मभूत सितभस्मद्वारा अपने आश्रमके उचित मंत्रोंसे ललाट छाती स्कंधोंमें ॥ ४२ ॥ मध्यमा अनामिका अंगुष्ठा इनसे सव्य अपसव्य द्वारा अर्थात् दो अंगुलीसे बाईं ओरसे आरंभकर दक्षिणभागपर्यन्त दो रेखा करै और अँगूठेसे दक्षिण भागसे आरंभकर वामभागपर्यन्त एकरेखा करै इसप्रकार भक्तिसे तीनोंकालमें त्रिपुंड्र धारण करै ॥ ४३ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः १०.

नारायण बोले अग्निकी गौणभस्म भी अज्ञाननाशक और ज्ञानसाधक है हे ब्रह्मन्! हे ब्रह्मविदांवर ! तुम गौणभस्मको भी अनेक प्रकारकी जानो ॥ १ ॥ हे मुने ! और जैसी अग्निहोत्रकी भस्म है वैसेही विरजाहोमकी [संन्यासके] समय विराजाहोमका विशेष प्रचार है उपासन अग्निसे उत्पन्न स्मार्त विवाहाग्निसे प्रगट समिधाकी अग्निसे उत्पन्न ॥ २ ॥ पंचाग्निसे दावानलसे तथा अग्निहोत्रसे उत्पन्नहुई तीनोंवर्णों और सबको हितकारी है ॥ ३ ॥ हे महामुने ! विरजाभस्म तीनोंवर्णोंको धारण करनी चाहिये, स्मार्ताग्नि गृहस्थोंको धारण करनी चाहिये ॥ ४ ॥ समिधाग्नि ब्रह्मचारियोंको, शूद्रोंको श्रोत्रियके स्थानकी पचनाग्नि भस्म धारण करनी चाहिये ॥ ५ ॥

और सबको दावानलके अग्निकी भस्म धारण करनी चाहिये विरजानलकी उत्पत्तिका समय कहते हैं चित्रायुक्त पूर्णमासी पुण्यकाल है जहां स्वयं स्थितहो वही पुण्यदेश है ॥ ६ ॥ क्षेत्र बगीचा वन शुभलक्षणवाला उत्तम है सो पहले त्रयोदशीके दिन स्नानकर आह्निक क्रियाकर ॥ ७ ॥ अपने आचार्यसे अनुज्ञप्तिकर पूजापूर्वक प्रणामकर तथा विशेष पूजाकर स्वयं शुक्लवस्त्र धारणकर ॥ ८ ॥ शुद्ध यज्ञोपवीत और श्वेतमालाको पहर श्वेत अनुलेपन लगाय कुशासनपर बैठ एकमुष्टि कुश ग्रहण कर ॥ ९ ॥ तीन प्राणायामकर पूर्व वा उत्तरको मुखकर देवी और देवका ध्यान कर उसकी आज्ञा मनसे ग्रहण करकै ॥ १० ॥ मैं यह व्रत करता हूं इसप्रकार संकल्पकर दीक्षित हो जबतक शरीरपातहो अथवा बारह वर्षतक ॥ ११ ॥ वा छः वा तीन वा एक वर्षतक छः महीने तीन महीने वा एक महीने ॥ १२ ॥ बारहदिन छः दिन तीन दिन वा एकदिन व्रतकी संकल्पना विधिके अनुसार ॥ १३ ॥ अपने गृह्यसूत्रके अनुसार अग्निका आधान करकै विरजाहोमके निमित्त अग्निमें हवनकरै घृत, समिधा और यथाविधि चरुको त्यागे ॥ १४ ॥ पूर्णमासीसे प्रथमही तत्वकी शुद्धि होती है इस उद्देश्यसे यह हवनकरना चाहिये मूलमंत्रसे उन्हीं समिधाओंद्वारा हवनकरना चाहिये ॥ १५ ॥ और यह स्मरणकरै कि यह मेरे देहके तत्व शुद्धहों पीछे पांच महाभूत उन पांचोंकी तन्मात्रा पंचकर्मेन्द्रिय ॥ १६ ॥ यह ज्ञान और कर्मके भेदसे पांच, पांच, तथा त्वचाआदि सातधातु और प्राणादि पांचवायु॥ १७॥ मन,बुद्धि, अहंकार उनके सत्वादि गुण प्रकृति और पुरुष, राग, विद्या, कला, नियति, काल ॥ १८॥ माया, शुद्धविद्या, महेश्वर, सदाशिव, शक्ति और शिवतत्व यह क्रमसे तत्व हैं ॥ १९॥ विरजाहोमके मंत्रोंसे हवनकरनेसे होता पापरहित होता है, गौका गोबर लाय उसका पिण्ड बनाय पंचाक्षरमंत्रसे उसको अभिमंत्रणकर॥ २०॥ उसको अग्निमें रखकर रक्षाकरै और उसदिन हविष्यान्न खाय फिर प्रभातकाल चतुर्दशीको पूर्वोक्तरीतिसे पंचाक्षर द्वारा हवन करकै ॥ २१ ॥ उसदिन निराहार रहकर शेष समय व्यतीत करै फिर पूर्णिमाको नित्यकर्म समाप्त करकै फिर पंचाक्षर मंत्रसे हवन करकै ॥ २२ ॥ रुद्राग्निको विसर्जनकर यत्नसे भस्म लेकर फिर जटावान् वा मुंड-शिखा वा एक जटावाला होकर ॥ २३ ॥ स्नानकरै यदि लोकलाज न रही हो तो

१पृथ्वीतत्वमें शुध्यतां ज्योतिरहं विरजाविपाप्माभूयासं स्वाहा यहक्रमसे मंत्रजानै इस प्रकार एक २ तत्वका नाम उच्चारण कर हवन करै ।

दिगम्बर होजाय यदि सलज्ज हो तो कषाय वस्त्र चर्म चीरके वस्त्रधारण किये रहै॥ २४॥ एक वस्त्र वा वल्कलधारी दण्ड और मेखला धारण किये रहे, पश्चात् अपने दोनों चरणोंको प्रक्षालनकर फिर दोवार आचमनकर ॥ २५ ॥ विरजानलकी भस्मको एकत्र करके 'अग्निरिति भस्म' इन अथर्वणके छः मंत्रोंसे ॥ २६ ॥ मूर्धासे चरणोंतक धोकर इसीक्रमसे भस्मसे उद्धूलन करै ॥ २७ ॥ फिर ओंकार वा शिवमंत्रसे सर्वांगमें भस्म लगावै फिर "त्र्यायुषंजमदग्नेः" इस प्रकारके मंत्रसे त्रिपुंड्र धारणकरै ॥ ॥ २८ ॥ शिवभावको प्राप्त होकर शिवभावकाही आचरण करै. ऐसा तीनोंसंध्याओंमें करै यह पाशुपत व्रत है ॥ २९ ॥ यह भुक्तिमुक्तिका दाता और पशुत्वका निवृत्त करनेवाला है. इसकारण पशुत्वत्याग पाशुपत व्रत करके ॥ ३० ॥ लिंगमूर्ति सदाशिव महादेव सदा पूजाके योग्य है भस्मका स्नान महा पवित्र सब सुखदायक है ॥ ३१ ॥ आयु, बल, आरोग्य, श्री और पुष्टिका बढानेवाला है रक्षामंगल और सब सम्पत्तिकी समृद्धिके निमित्त करना चाहिये ॥ ३२ ॥ भस्मसे स्नान करनेवाले मनुष्योंको महामारीका भय नहीं होता यह भस्म शान्ति पुष्टि और कामना देने से तीन प्रकारकी है ॥ ३३ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ११.

नारदजी बोले हे देव ! यह भस्म तीनप्रकारकी कैसे है इसके सुननेका मुझे परम कौतूहल है सो आप कहिये॥ १ ॥श्रीनारायण बोले हे नारद!भस्मके तीनप्रकार आपसे कहता हूं सुनो यह महापापक्षयकारी महाकीर्ति करनेवाला है ॥ २ ॥ जो गोबर भूमिपर नहीं गिरनेपाता और हाथमेंही ग्रहणकर लिया जाता है और'सद्योजातादि' पंचब्रह्म मंत्रोंसे दग्धकियाजाय वह शांतिकरनेवाला होता है॥ ३ ॥ मनुष्य सावधान होकर गोबर ग्रहण करै अर्थात् उसे अन्तरिक्षमें ही ग्रहणकर षडंगके मंत्रोंसे भस्मकरै ॥ ४॥ यह पुष्टिकारक भस्म होती है अब कामनादायकको सुनो जो 'हौम' मंत्रसे भस्म की जाय वह कामद है ॥ ५ ॥ हे नारद ! भस्मका व्रत करनेवाला प्रभातही उठकर गौके गोठमें जाय गोकुलको नमस्कार कर ॥ ६ ॥ गौओंके वर्णके अनुसार सुन्दर गोठर लेकर अर्थात् ब्राह्मणकी गौ श्वेत क्षत्रियकी लाल ॥ ७ ॥ वैश्यकी पीली और शूद्रकी कृष्णवर्णकी कही है विशुद्धबुद्धिवाला पूर्णिमा अमा-

वस अष्टमीमें ॥ ८ ॥ 'हौम्' इस मंत्रसे सुन्दर गोबर ग्रहण कर 'हृदयेनमः' इस मंत्रसे उसकी पिण्डी बनाय ॥ ९ ॥ अच्छे स्थानमें सूर्यकी किरणोंसे सुखावै और भूसी वा बुस (भूसा) से वेष्टित कर प्रासाद मंत्रसे उसमें निक्षेप करै ॥ १० ॥ वनकी अग्नि श्रोत्रियके स्थानकी अग्निमें शिवके बीज मंत्रसे डालकर पूर्वोक्त रीतिसे हवन करै ॥ ११ ॥ फिर चतुर पुरुष उस अग्निकुंडसे भस्म ग्रहण करै नया पात्र लेकर 'हौम्' मंत्रसे उसमें भस्म डालै ॥ १२ ॥ केतकी, पाढल, खस, चन्दन और केशरादि अनेक सुगंधके द्रव्य ॥ १३ ॥ 'सद्योजात' मंत्रसे उसमें डालै पहले जल और पीछे भस्मस्नान करै ॥ १४ ॥ जलस्नानमें अशक्त हो तौ भस्मस्नानही करै 'ईशानः सर्व विद्याना' मित्यादि मंत्रसे हाथ पैर शिरके प्रक्षालन करनेपर ॥ १५ ॥ अंगोंमें उद्धूलन करै तत्पुरुष मंत्रसे मुखमें, अघोर मंत्रसे हृदयमें, वामदेव मंत्रसे नाभिमें, ॥ १६ ॥ सद्योजात मंत्रसे विचक्षण सर्वांगमें समद्धूलन करै. पहले वस्त्रको त्यागकर फिर शुद्ध वस्त्रको ग्रहण करै ॥ १७ ॥ हाथ पैर धोकर पीछे आचमन करै भस्मके उद्धूलनके अभावमें त्रिपुंड्र धारण करै ॥ १८ ॥ मध्याह्नसे पहले जलसे स्नान करै फिर जलके विना स्नान करै तर्जनी और अनामिका मध्यसे त्रिपुंड्र लगावै ॥ १९ ॥ शिर, ललाट, कर्ण, कंठ, हृदय, बाहु, यह न्यासके स्थान हैं ॥ २० ॥ 'हौम्' मंत्रसे पांच अंगुलीसे शिरमें लगावै तीन अंगुलीसे भालमें शिरोमंत्र (स्वाहा) से लगावै ॥ २१ ॥ 'सद्यो' मंत्रसे दहिने कानमें 'वामदेव' मंत्रसे बांये कानमें 'अघोर' मंत्रसे कंठमें मध्य अंगुलीसे स्पर्श करै ॥ २२ ॥ हृदयको हृदयद्वारा 'हृदयेनैवनमः' इसप्रकार तीन अंगुलीसे स्पर्श करैं दक्षिण बाहुमें शिखामंत्रसे न्यास करै ॥ २३ ॥ तीन अंगुलसे वामबाहुसे तीन अंगुल कवचका न्यास करै 'ईशान' मंत्रसे मध्यमा अंगुलीसे नाभि स्पर्श करै ॥ २४ ॥ यह तीन रेखा ब्रह्मा विष्णु महेशरूप हैं पहली रेखा ब्रह्मा दूसरी विष्णु और तीसरी महेश्वर है ॥ २५ ॥ जो एक अंगुलीसे न्यास है उसका ईश्वर देवता है शिरोमध्यका ब्रह्मा और ललाटका देवता ईश्वर है ॥ २६ ॥ दोनों कानोंके अश्विनीकुमार गणेश गलेके देवता हैं क्षत्रिय वैश्य और शूद्र यह सर्वांगमें उद्धूलन न करै ॥ २७ ॥ और सब अन्त्यज जातियोंका मंत्ररहित होता है अदीक्षित मनुष्योंका भी मंत्ररहित होता है ॥ २८ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे भाषायां एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः १२.

श्रीनारायण बोले हे देवर्षे ! भस्म लगानेका फल सुनो यह रहस्य और विधानके सहित कहता हूं जो सब कामना और फलका देनेवाला है ॥ १ ॥ कपिला गौका गोबर आकाशमेंही ग्रहणकरै जो बहुत पतला कठिन और दुर्गन्धयुक्त और वासी न हो ॥ २ ॥ और जो गिरपडा हो तौ ऊपरनीचेका त्यागकर बीचसे ग्रहण करै और शिवाग्निमें पिंडीकरकै मूलमंत्रसे उसमें डाले ॥ ३ ॥ फिर उसे वस्त्रसे लेकर भस्मके पात्रमें डालै अच्छे सुकृत सुदृढ क्षालित सुदेशमें ॥ ४ ॥ उसको रखकर फिर पात्रमें डालै सुवर्ण ताम्रादि धातुका काठका मृत्तिका चैलवस्त्रका ॥ ५ ॥ अथवा और किसी प्रकारका शुद्ध भस्माधार कल्पना करै क्षौम वस्त्र (अलसीकेवस्त्र) में वा अतिशुद्धमें भस्म धरै ॥ ६ ॥ मार्गमें जातेहुए स्वयं भस्म ग्रहणकरै अथवा अनुचरोंको दे दे पर अयुक्त पुरुषको नदे और न अपवित्र स्थानमें धरै ॥ ७ ॥ नीचअंगोंसे भस्मको स्पर्श नकरै नकहीं डालै न उलंघन करै भस्म लेकर मंत्रसे नियुक्त करै ॥ ८ ॥ विभूति धारणकी विधि स्मृतिमें मेरी कही है जिसके आचरण करतेही निःसन्देह यह प्राणी शिवकी तुल्य होजाता है ॥ ९ ॥ जो वेदमंत्रों द्वारा शैवोंने शिवके समीप भस्म धारण की है उसे प्रार्थनाकर परमभक्तिसे ग्रहण करनी चाहिये ॥ १० ॥ तांत्रिकोंसे पूजीत भस्म तंत्रोक्तमार्गसे ग्रहण करनी चाहिये और वैदिकोंको जहां कहांकी दीहुई ग्रहण नहीं करनी चाहिये ॥ ११ ॥ शूद्र कापालिकोंसे वा पाखंडवालोंसे न लेनी भक्तिसे त्रिपुण्ड्र धारण करै और मनसे भी उल्लंघन न करै ॥ १२ ॥ कारण कि इसमें श्रुतिका विधान है इसके त्यागसे पतित होता है भक्तिसे त्रिपुंड्र धारण देहमें अवगुंठन (मलना) ॥ १३ ॥ मंत्रपूर्वक ब्राह्मण करै इसके त्यागसे पतित होता है जो भक्तिसे भस्म धारण और त्रिपुण्ड्र नहीं लगाते हैं ॥ १४ ॥ करोड जन्मोंमें भी संसारसे उनका छुटकारा नहीं होता. हे मुनिश्रेष्ठ ! जिसने उक्तमार्गसे भस्म धारण नकी ॥ १५ ॥ हे मुनिराज ! उसका शूकरकी समान निष्फल जन्म जानना, जिन मनुष्योंका शरीर विना त्रिपुंड्रके है ॥ १६ ॥ वह श्मशानकी समान है पुण्यात्माओंको उसका दर्शन करना नचाहिये भस्मरहित मस्तकको और शिवालयरहित ग्रामको धिक्कार है ॥ १७ ॥ विना शिवके पूजनके जन्म विना शिवाश्रयके विद्याको धिक् है जो त्रिपुंड्र और शिवकी निन्दा करते हैं

उनको धिक् है ॥ १८ ॥ जो भक्तिसे धारण करते कराते हैं वह कृशानुरहित भूधरके समान शोभित नहीं होते ॥ १९ ॥ जो विना सब साधनोंके विना भस्महीन शिवार्चन करते हैं भस्म धारण और त्रिपुंड्र जो भक्तिसे धारण नहीं करते ॥ २० ॥ उनका पूर्वाचरित सब विपरीत होता है, भस्म और वेदमंत्रद्वारा त्रिपुंड्रका धारण करना ॥ २१ ॥ विना त्रिपुंड्रके उचित आचार स्मार्त्त वैदिक कर्म अनर्थका कारण है उसका किया न करनेके समान और सुना न सुनेके समान है ॥ २२ ॥ पढा अनपढा है जो त्रिपुंड्रको धारण नहीं करता उसका वेद, यज्ञ, दान, तप, वृथा है ॥ २३ ॥ व्रत उपवास वृथा है जो त्रिपुंड्रको धारण नहीं करता जो पुरुष भस्म धारणको त्यागकर मुक्तिकी इच्छा करता है ॥ २४ ॥ वह विषपान करकै अपनेको नित्य माननेकी इच्छा करताहै जगत्स्रष्टाने सृष्टिके छलसेही त्रिपुंड्रका धारण करना कहा है ॥ २५ ॥ उसने ललाटको दण्डाकार ऊर्ध्व वा कदम्बपुष्पवत् वर्तुलाकार सृजन नहीं किया है सबके ललाटमें तिर्यक् रेखा दिखाई देती हैं ॥ २६ ॥ तौ भी मूर्ख मनुष्य त्रिपुंड्र धारण नहीं करते हैं वह ध्यान, मोक्ष, ज्ञान, तपस्या नहीं है जिसमें त्रिपुंड्र न हो ॥ २७ ॥ त्रिपुंड्र धारण किये विना ब्राह्मणने जो अनुष्ठान किया है वह वृथा है जैसे वेदके अध्ययनका शूद्र अधिकारी नहीं है ॥ २८ ॥ इसीप्रकार त्रिपुंड्रके विना विप्र शिवार्चनका अधिकारी नहीं प्राङ्मुख हो ब्राह्मण पूर्ववत् हाथ पैर धोय आचमन कर ॥ २९ ॥ प्राणायामपूर्वक संकल्प करकै भस्म-स्नान करै अग्निहोत्रकी शुद्ध भस्म लेकर ॥ ३० ॥ ईशान मंत्रसे अपने शिरपर धारण करै फिर तत्पुरुष मंत्रसे मुखमें धारण करै 'अघोर' मंत्रसे हृदय 'वामदेव' मंत्रसे गुह्य, और 'सद्योजातसे' दोनों चरणोंमें मले ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ (ओंकारसे) सर्वांगमें उद्धू-लन करै परम ऋषियोंने इसका आग्नेयस्नान नाम कहा है ॥ ३३ ॥ सब कर्मकी समृद्धिके निमित्त पंडितको पहले इसे करना चाहिये फिर हाथादिको प्रक्षालनकर यथा विधि जलस्पर्श कर ॥ ३४ ॥ जो त्रिपुंड्रकी विधिसे ललाट हृदय गलेमें पंच ब्रह्मके मंत्रसे धारण करते हैं तथा भस्म धारण करते हैं ॥ ३५ ॥ तौ त्रिपुंड्र धारण करनेसे सब कर्मोंमें पवित्र होजाते हैं शूद्र और अन्त्यजोंके हाथकी भस्म कभी धारण न करनी चाहिये ॥ ३६ ॥ जो अग्निहोत्रकी भस्मसे लिप्तहोकर कर्मकरते हैं वे सिद्ध होते हैं इससे अन्यथा कोई कर्म भी नहीं फलतेहैं ॥ ३७ ॥ सत्य, शौच, जप, होम, तीर्थ, देवा-दिपूजन त्रिपुण्ड न धारण करनेवालेके सब वृथा हैं ॥ ३८ ॥ जो ब्राह्मण पवित्र

हो त्रिपुंड्र और रुद्राक्ष धारण करता है वह रोग, दुरित, व्याधि और तस्करोंके शान्त करनेमें समर्थ होता है ॥ ३९ ॥ और आवृत्तिरहित ब्रह्मको प्राप्त होता है फिर नहीं लौटता वह ब्राह्मण पंक्तिपावन है श्राद्धमें ब्राह्मण और देवताओंसे पूजनीय है ॥ ४० ॥ श्राद्ध, यज्ञ, जप, होम, वैश्वदेव, सुरार्चन इनमें त्रिपुंड्र धारण करनेसे पवित्र हो मनुष्य मृत्युको जयकरता है ॥ ४१ ॥ मैं भस्मधारणका माहात्म्य फिर भी तुमसे कहता हूं ॥ ४२ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः १३.

श्रीनारायण बोले महापातकसमूह तथा दूसरे पातक इसके धारणसे अवश्य नष्ट होजाते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ १ ॥ एक भस्मही जिससे धारणकी है उसके पुण्यका बल सुनो यतियोंको ज्ञान और वनवासियोंको वैराग्य देता है॥२॥हे मुने गृहस्थोंको धर्म-वृद्धिका करनेवालाहै ब्रह्मचारियोंको स्वाध्यायका देनेवाला है॥३॥ शूद्रोंको पुण्यदायक तथा दूसरोंका भी पापनाश करनेवाला है भस्म लगाना त्रिपुंड्र धारण करना ॥ ४ ॥ सब प्राणियोंकी रक्षाके निमित्त होता है यह वेदकी श्रुति है भस्मका सर्वांगमें लेपन तथा त्रिपुंड्रधारण ॥ ५ ॥ यह यज्ञमें सबको धारण करना चाहिये यह वैदिकी श्रुति है भस्मद्वारा उद्धूलन और तिर्यक् त्रिपुंड्र धारण ॥ ६ ॥ सब धर्मोंका कारण है यह वेदकी श्रुतिहै भस्म लगाना त्रिपुंड्र धारण ॥ ७ ॥ यह शैवोंका चिह्न है यह वेदकी श्रुति है भस्म लगाना त्रिपुंड्र धारण करना ॥ ८ ॥ सबके विज्ञानके निमित्त है यह वेदकी श्रुति है, शिव, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, ॥ ९ ॥ हिरण्यगर्भ उनके अवतार वरुणादि इन सब देवताओंने भस्म और त्रिपुंड्र धारण किया है ॥ १० ॥ उमादेवी लक्ष्मी तथा सरस्वती दूसरे आस्तिक तथा और देवांगनाओंने भस्म और त्रिपुंड्र धारण किया है ॥ ११ ॥ यक्ष, राक्षस, गंधर्व, सिद्ध, विद्याधर, मुनि सबने भस्म और त्रिपुंड्र धारण किया है ॥ १२ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र, संकरजाति अपभ्रंश सबने भस्म और त्रिपुंड्रधारण किया है ॥ १३ ॥ जो उद्धूलन और त्रिपुंड्र आनंदसे धारण करते हैं वही शिष्ट और विद्वान हैं हे मुनिश्रेष्ठ दूसरे नहीं ॥ १४ ॥ जैसे स्त्रीवशीकरणमें कंठमें बहुमूल्य मणि सरूपता वाजीकरण

ओषधी वा गुटिका एक साधनहै इसीप्रकार मुक्तिरूपी स्त्रीके वश करनेमें शिवलिंगमणि पंचाक्षर मंत्र सख्यता विभूति ओषधी है ॥ १५ ॥ जहां भस्म धारण किये मूर्ख वा पंडित कोई भोजन करता है वहां सपत्नीका शंकर ही भोग लगाते हैं ॥ १६ ॥ जो शरीरमें भस्मलगाये कहीं गमन करते हैं वह सब पातकोंसे युक्त होकर भी पूजित होता है ॥ १७ ॥ भस्म लगाकर जो श्रद्धासे स्तुति करता है वह सब पातकोंसे रहितहो पूजित होता है ॥ १८ ॥ जो त्रिपुंड्र धारियोंको भिक्षा देते हैं उसने सब कुछ पढ़ासुना और अनुष्ठान करलिया ॥ १९ ॥ जिस ब्राह्मणने शिरपर भस्मका त्रिपुंड्र लगाया वह मगधदेशमें भी विभूतिधारी ॥ २० ॥ रहताहुआ उसे काशी क्षेत्रके समान करता है दुःशील शीलयुक्त योगयुक्त वा लक्षणहीन हो ॥ २१ ॥ जो विभूति धारण करता है वह मेरे पुत्रवत् पूज्य है जो छद्मसेभी विभूति धारण करताहै ॥ २२ ॥ वहभी जिस गतिको प्राप्त होता है कोई सौ यज्ञकरनेसे भी उस गतिको नहीं प्राप्त होता संपर्क लीला वा भयसे भी जो विभूति धारण करता है वहभी महापुण्य पाता है ॥ ॥ २३ ॥ और विधियुक्त विभूति धारण करनेवाला मेरेसमान पूज्य होता है वह शिव विष्णु और ब्रह्मादि देवतोंकी तृप्तिका कारण होता है ॥ २४ ॥ पार्वती महालक्ष्मी और महासरस्वतीकी तृप्तिका कारण होता है दान यज्ञ और दुर्लभ तपसे भी ऐसा नहीं ॥ २५ ॥ तथा तीर्थयात्राका पुण्यभी त्रिपुंड्रधारणके समान नहीं है हे नारद! दान, यज्ञ, धर्म, तीर्थयात्रा ॥ २६ ॥ ध्यान, तप यह त्रिपुंड्रधारणकी सोहलवीं कलाकेभी बराबर नहीं है जैसे राजा अपने चिह्नसे अपने भृत्यको पहँचान्ते हैं मान्ते हैं ॥ २७ ॥ इसी प्रकार शिव त्रिपुंड्रधारीको अपने समान मान्ते हैं द्विजाति हो वा अन्यजाति हो जो शुद्धचित्तसे भस्म ॥ २८ ॥ और त्रिपुंड्र धारण करता है मानो उसने शंकरको वशीभूत करलिया है ॥ २९ ॥ जो एकवारभी तिरछा त्रिपुंड्र धारण करते हैं वहभी मुक्त होजाते हैं इसके ज्ञान और कुल तथा व्रतकी परीक्षा नकरै ॥ ॥ ३० ॥ मस्तकपर त्रिपुंड्र धारणकरतेही वह पूज्य होता है शिवमंत्रसे अधिक मंत्र शिवसे परे देवता ॥ ३१ ॥ शिवार्चनसे परे पुण्य और भस्मसे अधिक तीर्थ नहीं है रुद्राग्निका जो परंवीर्य है उसीको भस्म कहते हैं ॥ ३२ ॥ यह सब पापोंकी नाशक और सब दुःखनिवारक है अन्त्यज, अधम, मूर्ख वा पंडित ॥ ३३ ॥ जिस स्थानमें विभूतिधारणपूर्वक निवास करता है उसमें सदाशिव पार्वती सहित सब भूत गणोंको लिये सब तीर्थोंसे संयुक्तहो उसके निकट निवास करते हैं ॥ ३४ ॥ यह

'सद्योजातादि' शिवके पांचमंत्र पवित्र हैं, भस्म शिवके अंगसे विभूषित है जिन्होंने ललाटपर त्रिपुंड्र लगाये हैं उनके दैवके लिखे खोटे अक्षर मिटजाते हैं ॥ ३५ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः १४.

नारायण बोले जो भस्मधारीके निमित्त प्रसन्नतासे धन देता है उसके सब पाप नाश होजाते हैं इसमें सन्देह नहीं॥ १ ॥ श्रुति स्मृति और सब पुराण विभूतिका माहात्म्य कहते हैं इससे ब्राह्मण भस्मधारण करै ॥ २ ॥ जो तीनों संध्याओंमें श्वेत भस्मसे त्रिपुंड्र धारण करते हैं वह सब पापोंसे रहितहो शिवलोकमें जाता है ॥ ३ ॥ योगी पादसे मस्तकपर्यन्त सर्वांगमें स्नानकरै जो तीनों संध्याओंमें ऐसा करता है वह शीघ्र योगको प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ भस्मस्नायी पुरुष अपने कुलका उद्धारक होता है जलस्नानसे भस्मस्नान असंख्य गुणवाला है ॥ ५ ॥ सब तीर्थोंमें जो पुण्य सब तीर्थोंमें जो फल प्राप्त होता है वह सब भस्मस्नानसे प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ६ ॥ महापातक वा उपपातकसे युक्त हो वह सब भस्मस्नानसे ऐसे नष्ट होजाते हैं जैसे अग्निसे ईंधनकी दशा होती है ॥ ७ ॥ जो महापातक वा उपपातक हैं वह सब दूर होते हैं बहुत क्या भस्मस्नानसे अधिक पवित्र कोई वस्तु नहीं यह प्रथम शिवने कहकर पीछे स्वयं स्नान किया ॥ ८ ॥ उसीदिनसे ब्रह्मादिमुनि शिवकी इच्छावाले सबप्रकार यत्नसे भस्मस्नान करते हैं ॥ ९ ॥ इसकारण जो कोई इस आग्नेय स्नानको करते हैं वह इसी शरीरसे रुद्र होजाते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ १० ॥ जो भस्मधारण करनेवालेको देखकर परितुष्ट होते हैं वह निःसन्देह देवता असुर मुनीन्द्रोंसे पूजित होते हैं सन्देह नहीं ॥ ११ ॥ भस्मधारी पुरुषको देखकर जो खड़े होते हैं उनको देखकर देवराजभी प्रणाम करैंगे ॥ १२ ॥ हे मुने ! जिन्होंने भस्मधारणके उपरान्त अभक्ष्यभी भक्षणकरलिया है उनका वह भक्ष्यही है इसमें विचार नहीं है ॥ १३ ॥ जो जलमें स्नान करनेसे पहले भस्मसे स्नान करता है ब्रह्मचारी ग्रहस्थ वानप्रस्थ कोई हो आदरसे स्नानकरके ॥ १४ ॥ सब पापरहितहो परमगतिको पाता है आग्नेय भस्मसे स्नानकरना यतियोंको विशेष रीतिसे उचित है ॥ १५ ॥ जलके स्नानसे भस्मस्नान श्रेष्ठ है कारण कि भस्मस्नानसे प्रकृतिरूप बंधनका नाश होता है ॥ १६ ॥

प्रकृतिबंधनके नाशके निमित्तही भस्मस्नान कहा है हे ब्रह्मन् भस्मके समान कुछभी त्रिलोकीमें नहीं है ॥ १७ ॥ पहले देवताओंने यह रक्षामंगल पवित्रताके निमित्त धारणकी थी हे मुने पहले शंकरने यह अपनी प्रियाको दी थी ॥ १८ ॥ इसकारण इस तेज सम्पन्नस्नानको सदा करना चाहिये कारण कि भस्ममें अग्नि विद्यमान है जो सूक्ष्मरूपसे उसमें रहती है जिससे विद्युत् शक्ति बढती है, इससे स्नानकर भवपाशसे मुक्तहो शिवलोकमें जाता है ॥१९॥ ज्वर, राक्षस, पिशाच, पूतना, कुष्ठ, गुल्म सब प्रकारके भगन्दर अस्सीवातके रोग ॥ २० ॥ चौंसठ पित्तके रोग बत्तीस प्रकारके श्लेष्मरोग व्याघ्र चोरका भय वा दूसरे दुष्टग्रहोंकेरोग ॥ २१ ॥ भस्मस्नानसे ऐसे नष्ट होते हैं, जैसे सिंहको देखकर हाथी पलायन करते हैं शुद्ध शीतलजल और भस्मसे त्रिपुंड्रको ॥ २२ ॥ जो धारण करता है वह निःसन्देह परब्रह्मको प्राप्त होता है "जो कोई भस्मसे त्रिपुंण्ड्रको धारण करता है वह निःसन्देह पापरहितहो ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है" यथाविधि मस्तकमें अग्निवीर्य धारण करनेसे ॥ २३ ॥ मस्तकमें लिखी यमकी लिपी मिट जाती है कंठके ऊपर भागसे किये पाप इसके धारणसे नष्ट होजाते हैं ॥२४॥ अर्थात् कंठमें धारणसे कंठभोगादिके किये पातक बाहुमें धारण करनेसे भुजासे किये पाप वक्षस्थलमें धारण करनेसे मनके किये पाप ॥ २५ ॥ नाभिमें धारणसे मेढ्रके, गुदमें धारण करनेसे गुह्यके, पार्श्वमें धारण करनेसे परस्त्री आलिंगनके सब पाप दूर होते हैं ॥ २६ ॥ इस कारणसे सर्वथा त्रिलिंगयुक्त भस्म धारण करनी चाहिये यह ब्रह्मा विष्णु महेशरूप तीन अग्नियोंका धारण है ॥ २७ ॥ त्रिपुण्ड्र धारण करनेसे मानो त्रिलोकीके गुण धारण कर लिये भस्म लगाये हुए विद्वान् ब्राह्मण महापातकसे प्रगट हुए ॥ २८ ॥ दोषोंसे शीघ्रही मुक्त होता है इसमें सन्देह नहीं भस्म लगानेवालेके दोष भस्माग्निसे नष्ट होजाते हैं ॥ २९ ॥ भस्मस्नानसे शुद्ध पुरुष आत्मनिष्ठ कहाता है सर्वांगमें भस्म लगाये भस्मसे त्रिपुंड्र जिनका दीप्तिमान् है ॥ ३० ॥ जो पुरुष भस्ममें शयन करते हैं वही आत्मनिष्ठ हैं भूत प्रेत पिशाच और बडे दुःसह रोग ॥ ३१ ॥ भस्मनिष्ठकी निकटतासेही दूर होजाते हैं इसमें सन्देह नहीं यह प्रकाशमान होनेसे भसित, और पाप भक्षण करनेसे भस्म कहाती है ॥ ३२ ॥ यह विभूति पुरुषोंको ऐश्वर्य करानेवाली और राक्षसोंसे रक्षा करनेवाली है, त्रिपुंड्रधारीको देखकर भूत प्रेतादि ॥ ३३ ॥ भीत और कंपित होकर शीघ्रही नष्ट होजाते हैं इसमें सन्देह नहीं जैसे रुद्रके स्मरण करतेही पापनाश होजाते हैं ॥ ३४ ॥

जो सहस्रों अकार्य करके भी भस्मसे स्नान करता है वह भस्म सब नष्टकरती है जैसे अग्निके तेजसे वन नष्ट होजाता है ॥ ३५ ॥ जो ब्राह्मण अनेक पाप करके भी अन्त्यसमयमें भस्मस्नान करै वह सब पापोंसे छूट जाता है ॥ ३६ ॥ भस्मस्नानसे शुद्धात्मा जितक्रोध और जितेन्द्रिय होकर मेरे समीप आकर फिर संसारमें नहीं पडता है ॥ ३७ ॥ जिस समय अमावस्याको चन्द्रमा वनस्पतिमें जाता है उस समय शरीरमें भस्म लगाकर शंकरके दर्शन करनेसे सब पाप दूर होजाते हैं अमावसको पन्द्रहकला क्षीण होतीहैं सो सोलहवीं कलासे सब प्राणियोंमें प्रवेश करके प्रभातको पगट होता है ॥ ३८ ॥ जो पुरुष आयु ऐश्वर्य मोक्षकी कामना करै वह नित्य भस्म धारण करै ॥ ३९ ॥ यह त्रिपुंड्र ब्रह्मा विष्णु शिवात्मक परम पवित्र है जो घोर राक्षस प्रेत और क्षुद्र जन्तु हैं ॥ ४० ॥ वह त्रिपुंड्रधारीको देखकर पलायन करते हैं इसमें सन्देह नहीं शौचादि कर्मकर उज्ज्वल जलमें स्नान करके॥ ४१ ॥ शिखासे मस्तकपर्यन्त भस्म लगावै, जलस्नान तौ देहका बाह्य मल दूरकरता है ॥ ॥ ४२ ॥ और विभूतिस्नान बाहर भीतरका मल हरण करता है इससे जलस्नान न कियाहो तौभी विभूति स्नान करै ॥ ४३ ॥ हे मुने भस्मस्नानके विना किया कार्य भी नहीं किया है,यह श्रुतिमें कहा भस्मस्नान आग्नेयस्नान कहाता है ॥ ४४ ॥ जब भीतर बाहर शुद्ध हो तब शिवपूजाका फल प्राप्त होता है जो बाह्य मल नाशकरै वही स्नान है ॥ ४५ ॥ पर भस्म तीव्रतासे प्राणीके बाहर भीतरका मलनाश करती है जो करोडोंवार आदरसे जलस्नानकिया जाय ॥ ४६ ॥ हे मुने वह भस्मस्नानके विना पवित्र नहीं होता है जो भस्मस्नानका माहात्म्य है वह तत्त्वसे वेदही जान्ता है ॥ ४७ ॥ अथवा सब देवताओंके अधिपति महादेव उसको जान्ते हैं भस्मस्नान विनाकिये जो वैदिक कर्म करता है ॥ ४८ ॥ वह उस कर्मकी कलाके आधेको भी प्राप्त नहीं होता जो यत्नसे भस्मस्नान विधिपूर्वक करता है ॥ ४९ ॥ वह एकही सब कर्ममें अधिकारी है यह शास्त्रमें कथित है वेदमें कहा है भस्मस्नान पवित्रोंका भी पवित्र करनेवाला है ॥ ५० ॥ जो मोहसे नहीं करता है वह महापातकी होता है जो पुण्य ब्राह्मणोंको अनन्त जलस्नानसे प्राप्त होता है ॥ ५१ ॥ उससे अनन्त गुण भस्मस्नानसे प्राप्त होता है तीनोकालमें यत्नसे भस्मस्नान करना चाहिये ॥ ५२ ॥ भस्मस्नान श्रौतकर्म है उसके त्यागनेसे पतित होता है मूत्रादि उत्सर्जनके उपरान्त यत्नसे भस्मस्नान ॥ ५३ ॥ करना चाहिये अन्यथा वह पवित्र न होग

जिसने विधिपूर्वक शौच कियाहो वह ब्राह्मण भस्मस्नानके विना ॥ ५४ ॥ पवित्र नहीं होता न किसीकर्ममें अधिकारी होता है अपानवायुके आनेमें जंभाई स्कंदन तथा छींक आनेमें ॥ ५५ ॥ तथा थूकादिके निकलनेमें यत्नसे भस्मस्नान करना चाहिये यह भस्मस्नानमाहात्म्यका एकदेश तुमसे वर्णन किया ॥ ५६ ॥ फिरभी भस्मस्नानका माहात्म्य तुमसे कहता हूं हे मुनिश्रेष्ठ सावधान होकर आप सुनो ॥ ५७ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भाषायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः १५.

श्रीनारायण बोले अग्नि इत्यादि मंत्रोंसे आदरपूर्वक भस्मको शोधनकर ब्राह्मणको ललाटादिमें त्रिपुंड्रधारण करना चाहिये ॥ १ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य यह द्विज कहाते हैं इसकारण द्विजोंको यत्नपूर्वक त्रिपुंड्रधारण करना नित्य उचित है ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन्! जिसका यज्ञोपवीत होगयाहो उसीको ब्राह्मण कहते हैं इसकारण श्रौत ब्राह्मणोंको त्रिपुंड्रधारण करना चाहिये ॥ ३ ॥ जो विभूति न धारणकरके दूसरे सत्कर्म करता है वह निःसन्देह उसका विना कियेके समान होता है ॥ ४ ॥ भस्मधारण विना गायत्रीका उपदेश उचित नहीं अंगमें भस्मधारण करकेही गायत्रीका जप करै ॥ ५ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ गायत्रीही ब्राह्मणताकी मूल है वह विना भस्मधारे किसीसे यथार्थ उपदेश नहीं होते ॥ ६ ॥ हे मुने! तबतक गायत्री ग्रहणका अधिकार नहीं है जबतक अग्निकी प्रगट हुई भस्म भालपर धारण नहीं कीजाती ॥ ७ ॥ भस्मके विना मस्तकमें ब्राह्मणता नहीं दीखती हे ब्रह्मन्! इसीकारण मैंने इसे हेतुयुक्त पुण्यदायक कहा है ॥ ८ ॥ जिसके मस्तकमें मंत्रसे पवित्र भस्म दिखाई देती है हम उसकोही विद्वान् ब्राह्मण कहते हैं यह सत्य है ॥ ९ ॥ जिसकी मणिके समान भस्म संग्रहमें स्वाभाविक प्रीति है हे ब्रह्मन् वही ब्राह्मण है यह मैं सत्य २ कहता हूं ॥ १० ॥ और मणिके समान भस्म संग्रहमें जिसकी स्वाभाविक प्रीति नहीं है वह जन्म जन्मान्तर चाण्डाल जानना ॥ ११ ॥ जिसकी त्रिपुण्ड्र और भस्ममें स्वाभाविक प्रीति नहीं वह अन्त्यज है यह मैं सत्य कहता हूं ॥ १२ ॥ जो भस्म धारण किये विना फलादिक खाते हैं वे सब घोर नरकको जाते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ १३ ॥ विभूति धारण किये विना जो शंकरका पूजन करैंगे वह दुर्भागी शिवद्वेषी हैं वही द्वेष

नरकका देनेवाला है विना विभूति धारण किये जो सुवर्णकी तुला करता है वह उसके फलको प्राप्त नहीं होता वह पतित होता है ॥ १४ ॥ जैसे उपवीतरहित ब्राह्मण सन्ध्या नहीं करता इसीप्रकार विभूतिके विना संध्या न करै ॥ १५ ॥ उपवीत रहितोंको संध्यामें कहीं प्रतिनिधि होता है गायत्रीका जपादि तथा उपोषणादि होता है ॥ १६ ॥ पर विभूतिधारणमें कोई प्रतिनिधि नहीं होता यदि कोई विभूति विना धारण किये संध्या करै ॥ १७ ॥ तौ उसको प्रत्यवाय लगता हैं विना भस्मके यह ब्राह्मण गायत्रीका अधिकारी नहीं होता जैसे अन्त्यज वेदोंको सुनकर प्रत्यवायको प्राप्त होता है ॥ १८ ॥ इसप्रकार भस्म विना धारण किये शैव संध्या करनेसे प्रायश्चित्तको प्राप्त होता है ॥ १९ ॥ स्मार्त वा उसके अभावमें लौकिक कर्म सावधान होकर चाहै जैसे कर्म करै वह भस्मसंयुक्त हो तौ पवित्र होता है ॥२०॥ संध्यादि कर्मोंमें ब्राह्मणको पवित्रतापूर्वक भस्म धारण करनी चाहिये भस्मनिष्ठ पुरुषको पाप स्पर्श नहीं करते ॥ २१ ॥ ब्राह्मणोंको यत्नपूर्वक भस्म धारण करनी चाहिये अपने दहिने हाथसे मध्यकी तीन अंगुलीसे धारण करै ॥ २२ ॥ त्रिपुंड्रका छः अंगुल वा इससे अंगुलीका भी प्रमाण है, दोनों नेत्रोंके प्रमाण पर्यन्त मस्तकमें दीप्तिमान् त्रिपुंड्र ॥ २३ ॥ जो कभी भी भस्मका धारण करता है वह रुद्र होता है इसमें सन्देह नहीं, अकार अनामिका, उकार मध्यमा ॥ २४ ॥ मकार तर्जनी है इसकारण त्रिपुंड्र त्रिगुणात्मक है त्रिपुंड्रको मध्यमा तर्जिनीके अनुलोमसे लगावै ॥ २५ ॥ मैं इसमें पुरातन इतिहास कहता हूं एक समय दुर्वासा पितृलोकको गये ॥ २६ ॥ सर्वांगमें भस्म लगाये रुद्राक्षके आभरणोंसे युक्त श्रीशंकर सर्वात्मन् श्रीमाता जगदम्बिका ॥ २७ ॥ इसप्रकार वह तपस्वियोंके शिखामणि इन नामोंको उच्चारण करते गये तब कव्यवाडनलादि उस समय प्रत्युत्थान अभिवादन करते हुए ॥ २८ ॥ और आसनादिके उपचारसे बहुत मान करते हुए, तथा अनेक कथाओंसे परस्पर संभाषण करने लगे ॥ २९ ॥ उसी समय कुंभीपाक नरकमें पडे रहने वालोंका घोर हाहाकार शब्द सुनाई दिया ॥ ३० ॥ कोई बोले मरे कोई बोले दग्ध हुए कोई बोले छिन्न भिन्न हुए इसप्रकार परस्पर रुदन करने लगे ॥३१॥ मुनिराज हृदय भरे उस करुणा शब्दको सुनकर बडे दुःखी हुए पितृनाथोंसे पूछा कि यह किनका शब्द है ॥ ३२ ॥ वे कहने लगे कि यह संयमनी पुरी है यहाँ यमराज पापियोंको कष्ट देते हैं ॥ ३३ ॥ अनेक कालरूपी कृष्णवर्ण भयंकर दूतोंके

सहित इस पुरीके नायक यहां वर्तमान हैं ॥ ३४ ॥ यहां अनेक कुंड पापियोंको भोगदायक हैं जो चौरासी घोररूप दूतोंसे व्याप्त हैं ॥ ३५ ॥ वहां मुख्य कुंड कुंभी-पाक नामवाला है वहां रहनेवालोंके दुःखका वर्णन ॥ ३६ ॥ कोई सौ वर्ष भी नहीं करसक्ते जो शिव और देवीके द्रोही हैं तथा जो विष्णुके द्रोही हैं वे इस नरकमें पडते हैं जो वेद सूर्य और गणेशके निन्दकहैं॥ ३७॥ ३८॥ हे मुने जो ब्राह्मणोंके द्रोहीहैं वह यहां पतित होते हैं जो यथेच्छ मनके अनुसार आचरण करते तथा तपाकर बाहोंपर शंख चक्रादि लगाते॥ ३९॥ तथा जो त्रिशूलका अंक धारण करते हैं वह यहां पतित होते हैं "कारण कि यह बातें वेदानुकूल नहीं है" जो माता, पिता, गुरु, ज्येष्ठ, पुराण और स्मृतियोंके निन्दक हैं ॥ ४० ॥ तथा जो धर्मके दूषक हैं वह यहां पतित होते हैं उन्हींका यह महाघोर दारुण शब्द सुनाई आता है ॥ ४१ ॥ यह हम रातदिन सुनते हैं इसके सुननेसे वैराग्य होता है यह उनके वचन सुन मुनिराज उनके देखनेकी इच्छासे ॥ ४२ ॥ शीघ्रही उठकर चले और कुंडके समीप गये और नीचेको मुखकर देखने लगे उसी समय ॥ ४३ ॥ वहांके निवासियोंको स्वर्गसे अधिक सुख हुआ कोई हँसने गाने और नाचने लगे ॥ ४४ ॥ कोई उत्तम सुख बढनेसे परस्पर आलाप करने लगे मृदंग, मुरज, वीणा, ढक्का, दुंदुभीके शब्द ॥ ४५ ॥ पंचमस्वरसे भूषित वहांसे उठने लगे वसन्तकी वेलफूलोंकीसी हवा वहन करने लगी ॥ ४६ ॥ मुनि भी चकित और यमदूत भी विस्मित हुए उन्होंने शीघ्रही धर्मराजसे कहा ॥ ४७ ॥ हे महाराज ! इस समय बड़ा आश्चर्य हुआ कुंभीपाकवाले पापियोंको स्वर्गसे भी अधिक सुख हुआ है ॥ ४८ ॥ हे विभो ! यह किस कारणसे ऐसा हुआ इस निमित्तको मैं नहीं जानता हूं हम चकित होकर आपके समीप आकर प्राप्त हुए हैं ॥ ४९ ॥ यह वाणी सुनकर धर्मराज बहुत शीघ्रतासे उठे और महा महिषपर चढकर पापियोंके समीप गये ॥ ५० ॥ और दूतोंके द्वारा इस बातको अमरावतीमें कहा भेजा, यह सुनकर देवराजभी देवताओंके सहित प्राप्त हुए ॥ ५१ ॥ ब्रह्मलोकसे ब्रह्मा वैकुंठसे भगवान् तथा दूसरे सब लोकपालभी वहां आनकर प्राप्त हुए ॥ ५२ ॥ अपने गणोंके सहित कुंभीपाकको घेरकर खड़े हुए और वहांके जीवोंको स्वर्गसे अधिक सुखी देखनेलगे ॥ ५३ ॥ सब चकित रहे किसीने उसके कारणको न जाना और बोले अहो यह कुंड तो पापके भोगके निमित्त किया था ॥ ५४ ॥ जब यहां यह

सुख हुआ तौ फिर पापसे क्या भय होगा परमात्माकी कीहुई वेदमर्यादा कैसे छिन्न हुई॥ ५५॥ भगवान्ने अपने संकल्पको मिथ्या किस प्रकार किया यह बड़ा आश्चर्य है इस प्रकार सब परस्पर कहने लगे ॥ ५६ ॥ समीपवर्त्ती होकरभी किसीने इस कारणको न जाना इसीसमय भगवान् विष्णु देवताओंसे सम्मतिकर ॥ ५७ ॥ कुछ देवताओंको साथले शिवके स्थानपर गये जहां वह देव कोटिकामके समान सुन्दर पार्वतीके सहित विराजमान थे ॥ ५८ ॥ जो अतिशय रमणीय और लावण्यताकी खान है सदा सोलह वर्षकी अवस्था अनेक अलंकारोंसे शोभित ॥ ५९ ॥ नाना गणोंसे युक्त शिवाको प्यार करते हुए शंकरको देख चतुर्वेदके सहित हरिने प्रणाम किया ॥ ६० ॥ और उस चमत्कारका वृत्तान्त कहा कि हे देव हम इसका कारण नहीं जान्ते हैं ॥ ६१ ॥ हे प्रभो आप सर्वज्ञ हो इसकारण इसका कारण कहो विष्णु के यह वचन सुन प्रसन्नमुखसे ॥ ६२ ॥ मेघगंभीरवाणीसे शिवजी मधुर वाक्य बोले इसका निमित्त सुनो इसमें कुछभी आश्चर्य नहीं है ॥ ६३ ॥ यह सब भस्मकी महिमा है भस्मसे क्या नहीं होता है शैवसंमत दुर्वासाजी कुंभीपाक देखनेगये ॥ ॥ ६४ ॥ सो वह नीचेको मुखकर देखने लगे उसीसमय वायुवशसे उनके मस्तकसे भस्मके कण कुण्डमें पतित हुए ॥ ६५ ॥ उसीसे यह सब कुछ हुआ है यह भस्मकी महिमा है अबसे यह पितृलोक निवासियोंको तीर्थ ॥ ६६ ॥ होगा इसमें सन्देह नहीं यहां स्नान करनेसे सुख होगा और पितृतीर्थनाम होगा इसमें सन्देह नहीं ॥ ॥ ६७ ॥ यहां मेरी प्रतिमा देवीके सहित स्थापन करनी, पितृलोकनिवासी इसका पूजन करेंगे ॥ ६८ ॥ त्रिलोकीके सब तीर्थोंसे यह श्रेष्ठ होगा यहां पित्रीश्वरीकी पूजासे त्रिलोकी पूजित जाननी ॥ ६९ ॥ नारायण बोले हरि इसप्रकार हरके वचन सुन उनको शिरसे प्रणामकर उनकी आज्ञाले देवताओंके समीप आये ॥ ७० ॥ और शिवकी कही सब बात सुनाई सब देवता शिरकंपित करते धन्य २ कहने लगे॥ ७१ ॥ हरि ब्रह्मादिक देवता भस्मका माहात्म्य कहनेलगे हे परंतप तीर्थलाभसे पितरभी संतुष्ट हुए ॥ ७२ ॥ देवताओंने उस तीर्थके निकट शिवलिंग और देवीकी मूर्त्ति विधिपूर्वक स्थापन कर निरन्तर पूजाकी ॥ ७३ ॥ उस स्थानमें पाप भोगनेको जितने प्राणी थे वे सब विमानोंमें बैठ कैलासमंडलको चले गये ॥ ७४ ॥ वे भद्र नामवाले गण होकर आजतक वहां निवास करते हैं फिर वहांसे दूर देशमें कुंभीपाक नरक बनाया गया ॥ ७५ ॥ उस दिनसे देवताओंने वहां

शिवभक्तोंके जानेकी मनाई की है यह तुमसे सब भस्मका माहात्म्य कहा ॥ ७६ ॥ हे मुने इससे अधिक और कुछ नहीं है ऊर्ध्वपुंड्रकी विधि अधिकारीके भेदसे ॥ ७७ ॥ वर्णन करता हूं जो वैष्णवशास्त्रमें है हेमुनिश्रेष्ठ ऊर्ध्व पुंड्रका प्रमाण दिव्य अंगुलीके भेद ॥ ७८ ॥ तथा वर्णमंत्र और उसका फल कहूंगा पर्वतके अग्रभाग नदीके तट तथा विशेष कर शिवक्षेत्रमेंसे ॥ ७९ ॥ समुद्र तट, वल्मीक, तुलसीकी जडकी मृत्तिका लावै और सब मृत्तिका वर्जित हैं ॥ ८० ॥ श्याम कांतिकारी, लाल वश्यकारी, पीली श्रीकरनेवाली, श्वेत ऊर्ध्वपुंड्र धर्म देनेवाला है ॥ ८१ ॥ अंगुष्ठ पुष्टिदायक, मध्यमा आयुष्करी, अनामिका अन्नदायक, प्रदेशिनी अंगुली मुक्तिदायक है ॥ ८२ ॥ इन अंगुलीके भेदोंसे तिलक करै नखूनोंसे स्पर्श न करै जलते हुए दीपकके लोयके समान तथा बांसपत्रके आकार ॥ ८३ ॥ वा पद्मकी कलीके समान, प्रयत्नसे करै मत्स्य कूर्मके आकार शंखके आकार ॥ ८४ ॥ बनावे दशांगुलि प्रमाणका परमोत्तम तिलक है नौ अंगुलका मध्यम और आठ अंगुलका उससे भी निकृष्ट है ॥ ८५ ॥ सात छः पांच अंगुलका तीन प्रकारका मध्यम है चार तीन दो अंगुलका तीन प्रकारका कनिष्ठ है ॥ ८६ ॥ ललाटमें केशवको जानै उदरमें नारायण, हृदयमें माधव कंठमें गोविन्द ॥ ८७ ॥ उदरके दक्षिणपार्श्वमें विष्णु, उसके दूसरे पार्श्व और बाहु मध्यमें मधुसूदन ॥ ८८ ॥ कर्णमें त्रिविक्रम, बांईकोखमें वामन बाईभुजामें श्रीधर दहिने कानमें हृषीकेश ॥ ८९ ॥ पीठमें पद्मनाभ कंधेमें दामोदरको स्मरण करै यह बारह वासुदेवके नाम लेकर तिलक करै यह तिलकोंके देवता हैं ॥ ९० ॥ प्रभात संध्या समय पूजा और हवनके समय विधिसे इन नामोंको उच्चारण कर ऊर्ध्वपुंड्र धारण करै ॥९१॥ जो मनुष्य ऊर्ध्वपुंड्र धारण करते हैं वह अशुचि अनाचारी, चाहैं मनमें पापभी स्मरण करते हों तौभी शुद्ध होते हैं॥९२॥ ऊर्ध्वपुंड्रधारी जहां कहींभी मृत्युको प्राप्तहो चाण्डालपर्यन्तभीहो वह विमानमें चढकर मेरे लोकको आताहै॥९३॥ एकान्त रहनेवाले महाभाग निर्मलही मेरा स्वरूप जानते हैं, जो दो रेखावाला मध्यमें शून्य विष्णुके पदके समान तिलक करते हैं ॥ ९४ ॥ वे परम एकान्ती भी मेरे चरणोंके भक्त हैं, जो हलदीके चूर्णसे संयुक्त शूलाकार अमल तिलक करते हैं॥९५॥

---

१ ब्रह्माण्ड पुराणमें इसका विनियोग लिखा है ललाटमें बाहुवत् कानमें दंडकेसमान हृदयमें कमलकेसमान उदरमें दीपकेसमान स्कंधमें जम्बू और पलाशवत् धारण करै ॥ ८४ ॥

तथा जो दूसरे वैष्णव भक्तिपूर्वक दीप कमलकली बांसीके पत्तेके समान अछिद्र तिलक करते हैं ॥ ९६ ॥ तथा जो अछिद्र और सछिद्र केवल वैष्णव तिलक करते हैं, तौ अछिद्र करणमें उनको कोई विघ्न नहीं है ॥ ९७ ॥ जो एकांतिक परं वीरभक्त वैष्णव है उनको अच्छिद्र पुंड्रके करनेमें महा प्रत्यवाय प्राप्त होता है ॥ ९८ ॥ जो कोई दंडके आकार शोभित ऊर्ध्व पुंड्र करता है मध्यमें छिद्र रखता है अर्थात् दोनों रेखाओंके मध्यमें अवकाश रखता है केशवादि नामोंको उच्चारण करताहै॥९९॥तथा जो अवकाशयुक्त उज्ज्वल ऊर्ध्व पुंड्रोंको धारण करता है वह मानो मेरा मंदिरही करता है ॥ १०० ॥ विशाल मनोहर ऊर्ध्वपुंड्रके मध्यमें लक्ष्मीसहित अविनाशी विष्णु रमण करते हैं ॥ १ ॥ और जो द्विजाधम निरवकाश ऊर्ध्व पुंड्रको करता है वह विष्णुको स्थितकर वहांसे लक्ष्मीवियुक्त करता है ॥ २ ॥ जो मूढबुद्धि अच्छिद्र ऊर्ध्वपुंड्रको करते हैं वह क्रमसे इक्कीस नरकोंको प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥ दोनों पार्श्व सीधे स्फुट करने चाहिये ऊर्ध्व पुंड्र दंड कमलकली और दीपकके समान करने चाहिये ॥ ४ ॥ द्विजको शिखा उपवीतके समान ऊर्ध्व पुंड्र धारण करना चाहिये हे महामुने इसके विना किये सब क्रिया निष्फल होगी ॥ ५॥ इस कारण सब कार्योंमें बुद्धिमान्‌को ऊर्ध्वपुंड्र त्रिशूल, वर्तुलाकार चौकोन तिलक धारण करना चाहिये ॥ ६ ॥ वेदनिष्ठ पुरुषको अर्ध चन्द्रादि चिह्न धारण करने उचित नहीं हैं, वेदसे अतिरिक्तही इनके अधिकारी हैं जो जन्मसे द्विज हैं वेदमार्गका आश्रय लिये हैं ॥ ७ ॥ वह भ्रमसे भी मस्तक ललाटमें कोई दूसरा पुंड्र न धारण करैं वैष्णवशास्त्रोंमें ख्याति और कांति आदिकी सिद्धिके निमित्त तिलक धारण कहे हैं पर वैदिक पुरुषोंको नहीं चाहिये ॥ ८ ॥ वैदिक पुरुषको और तिलक न देना, अर्थात् वैदिक जो तिरछे त्रिपुंड्रको छोडकर किसीप्रकार भी भ्रमसे ॥ ९ ॥ ललाटमें भस्म वा तिर्यक् त्रिपुंड्रको छोडकर और कुछ धारण न करै जो मोहसे धारण करता है वह नारकी (आवागमन सम्पन्न) होता है ॥ ११० ॥ जो वेदमार्गमें निष्ठावाला होकर यदि मोहसे अंकित होजाय तौ अवश्य पतित होगा इसमें सन्देह नहीं यही दशा अन्य पुंड्र धारणमें जाननी ॥ ११ ॥ वेदमार्गमें स्थित पुरुषको शरीर दगाना अंकित करना उचित नहीं, श्रौतधर्ममें निष्ठावालोंको तौ श्रौतलिंगही युक्त है ॥ १२ ॥ हां जो श्रुतियोंके धर्ममें निष्ठ नहीं है उनके कारण वेदबाह्य चिह्न धारण करनेमें क्या निषेध है वेदसिद्धदेवताओंका तौ वेदही चिह्न है ॥ १३ ॥

जो श्रौतकर्म नहीं करते तंत्रनिष्ठावाले हैं उनके अपरापर चिह्न होते हैं, पर वैदिक कर्मसिद्ध महादेव साक्षात् संसारके छुडानेवाले हैं ॥ १४ ॥ भक्तोंके उपकारके निमित्तही श्रुतिसम्मत भस्मादि चिह्न धारण करते हैं वैदिक कर्मकारी वैष्णवको भी श्रुतिसम्मत भस्मही धारण करनी होगी अन्य नहीं (तप्तमुद्रा ऊर्ध्व पुंड्र तंत्रोक्त दीक्षावाले वैष्णवोंको है वेदानुसार वर्तनेवालोंको नहीं) ॥ १५ ॥ जो राम कृष्ण इत्यादि विशेष अवतार हुए हैं उन्होंने वेदानुसार कर्मकर त्रिपुंड्र भस्म धारण की है इससे उनके भक्तोंको भी वही कर्तव्य है " रामचन्द्रका शिवस्थापन वाल्मीकिमें और कृष्णका शिवकी तपस्या करना हरिवंश पुराणमें स्पष्ट है ॥ १६ ॥ जो श्रुतिकर्मसे बाह्य हैं वही ऊर्ध्वपुंड्रादिक धारण करते हैं वह त्रिर्यक् त्रिपुंड्र धारण नहीं करते जो वेदमार्गमेंही निष्ठावाले हैं वे वेदोक्त मार्गसे ॥ १७ ॥ ललाटमें भस्म और त्रिपुंड्र धारण करते हैं जो नारायण देवकी शरण हो परम पदकी इच्छा करता है ॥ १८ ॥ वह गंधजलसे ललाटमें सदा शूलाकार तिलक धारै "इस अध्यायसे तथा दूसरे सूत संहिता, पराशर कूर्मपुराणादिसे सिद्ध है कि भस्म धारण वैदिक कर्म है, त्रिपुंड्र वैदिक कर्म है, कारण कि श्रौतस्मार्त्त कर्मवालेही त्रिपुंड्र धारण करते हैं, इनकी पद्धति वैदिक है और दूसरे तिलकधारी वेदानुसार वा वेदको मुख्यमान कर कर्म नहीं करते बहुत क्या सन्ध्या आदि न करके सम्प्रदाय भेदमें रत हो रहे हैं इन्हीं कारणोंसे भारतवर्षमें वेदविद्या लुप्तसी होगई है" ॥ ११९ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भाषायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोड़शोऽध्यायः १६.

श्रीनारायण बोले अब हम उत्तम संध्योपासन कहते हैं और भस्मधारणका माहात्म्य तो विस्तारसे कहचुके, संध्याकालकी अधिष्ठात्री देवी गायत्रीकी उपासनाही संध्योपासना है संध्या तीन कालमें होती है सोई याज्ञवल्क्य कहते हैं पूर्वसंध्या गायत्री, मध्यमा सावित्री, पश्चिमा सरस्वतीरूप है गायत्री श्वेत, सावित्री, रक्त, सरस्वती कृष्णवर्ण है इसी क्रमसे ब्रह्म, रुद्र, विष्णुके समानाकार होनेसे तीन देवताओंका ध्यान कहा है, उपासनाका अर्थ ध्यान है कोई ध्यान जप कहते हैं, पर गायत्रीका जप प्रधान है, ऋषियोंने गायत्रीजपसेही दीर्घायु पायी है यह मनु कहते हैं ॥ १ ॥

हे पापरहित अब मैं प्रभातसंध्याका विधान कहूंगा जब तारे दीखते हों उस समयसे आरंभ कर सूर्योदयपर्यन्त प्रातःसंध्या है, मध्यस्थानमें सूर्य आनेसे मध्यमा है ॥ २ ॥ और सूर्यास्तसमयकी पश्चिमासंध्या है इस प्रकार तीन संध्या हैं हे नारद ! सुनो इनके भेदभी कहता हूं ॥ ३ ॥ तारोंसे युक्त उत्तमा लुप्ततारेवाली मध्यमा, और सूर्यनिकलेमें संध्या अधमा इसप्रकार प्रातःसंध्या तीन प्रकारकी है ॥ ४ ॥ सायंसंध्या सूर्यके सहित उत्तमा, सूर्यास्तमें मध्यमा, तारोंमें अधमा है इसप्रकार इसकेभी तीन भेद हैं ॥ ५ ॥ ब्राह्मण वृक्ष है मूल उसकी संध्या है वेद शाखा है धर्म कर्म पत्ते हैं इससे मूलकी यत्नपूर्वक रक्षा करनी मूल नष्ट होनेमें वृक्ष और शाखा कुछ नहीं रहती ॥ ६ ॥ जिसने संध्या न जानी तथा जिसने संध्याकी उपासना न की, वह जीता हुआही शूद्र है वह मरकरभी शूद्र होता है ॥ ॥ ७ ॥ इस कारण नित्यही संध्योपासन करना चाहिये संध्याके विना और कर्मोंका अधिकारी नहीं होता ॥ ८ ॥ उदय और अस्तमें जबतक तीन घडी हो तबतक संध्योपासन करना चाहिये ऐसा न करनेसे प्रायश्चित्त लगता है ॥ ९ ॥ यदिकालातिक्रम हो जाय तौ चतुर्थअर्घ्य दे अथवा आठ सौ गायत्रीदेवीको जपकर पीछे प्रायश्चित्त करै ॥ १० ॥ जिसकालमें जो कर्म करना है उसकालकी अधीश्वरी संध्याकी उपासना करकै उस कर्मको करै ॥ ११ ॥ घरमें साधारण, गोष्ठमें मध्यमा, नदीतीरमें उत्तमा, और देवीके मंदिरमें उत्तमोत्तम है ॥ १२ ॥ जिसकारणसे कि यह देवीकी उपासना है इससे देवीके निकट तीनोंकालमें संध्या करै तौ अनन्त फलकी देनेवाली है ॥ ॥ १३ ॥ इससे अधिक ब्राह्मणोंको और देवता नहीं है, विष्णु और महादेवकी उपासना अनन्त फल देनेवालीनहीं है ॥ १४ ॥ जैसे महादेवी गायत्रीकी उपासना वेदबोधित है सर्ववेदसारभूत गायत्रीकी अर्चना करनी चाहिये ॥ १५ ॥ ब्रह्मादिकभी संध्यामें उसीका ध्यान और जप करते हैं, वेदभी उसकी नित्य उपासना करते हैं इसकारण वह वेदद्वारा उपासनीय है ॥ १६ ॥ इसकारण सबही द्विज शाक्त हैं शैव वैष्णव नहीं हैं, आदिशक्ति वेदमाता गायत्रीकी उपासना करते हैं ॥ १७ ॥ आचमन कर केशवादिनोंमासे प्राणायाम करकै केशव, नारायण, माधव, ॥ १८ ॥ गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर ॥ १९ ॥ हृषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर संकर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध ॥ २० ॥ पुरुषोत्तम, अधोक्षज, नारसिंह, अच्युत जनार्दन, उपेन्द्र, हरि, श्रीकृष्ण ॥ २१ ॥ यह चौवीस नाम २४ संख्यामें ओंकारपूर्वक

स्मरणकर स्वाहा लगाय फिर नमःलगावै ॥ २२ ॥ केशवाय स्वाहा नारायणाय-स्वाहा,माधवायस्वाहा, ऐसे तीननामसे जलपान करै गोविन्दायनमः विष्णवेनमः कहकर दोनों हाथ धोवै मधुसूदन त्रिविक्रमनाम लेकर अंगुष्ठमूलसे होठ मल श्रीधरादि दो नामोंसे मुखमार्जनकर ॥ २३ ॥ हृषीकेश नामसे बायां हाथ प्रोक्षणकर, पद्मनाभनामसे चरण प्रोक्षणकर दामोदर नामसे मूर्धा संकर्षणादिनामसे बारह अंगोंमें स्पर्शकरै संकर्षणसे मध्यमा अंगुली, वासुदेव प्रद्युम्नसे अंगुष्ठ और तर्जनीसे नासापुटस्पर्शकरै अनिरुद्ध और पुरुषोत्तम नामसे अंगुष्ठ और अनामिकासे नेत्र छूकर, अधोक्षज नारसिंहनामसे श्रोत्र, अच्युत नामसे कनिष्ठ अंगुष्ठसे नाभिको स्पर्शकर, जनार्दननामसे पाणितलसे हृदयको स्पर्शकर उपेन्द्रनामसे शिरछूकर हरयेनमः श्रीकृष्णायनमः इनसे दहिनी और बाईं भुजमूलको स्पर्शकरै ॥ २४ ॥ दक्षिण हाथसे जल पीकर वामसे स्पर्शकरै, जबतक वामहाथसे स्पर्श नकरै तबतक जल शुद्ध नहीं होता ॥ २५ ॥ गौके कानके समान हाथका आकार करकै एकमासे जलपियै, फिर इससे न्यूनाधिकपियै तो ब्राह्मण सुरा-पायी होता है ॥ २६ ॥ दक्षिण हाथकी मिली हुई अंगुलियोंसे अंगूठाऔर कन अंगुली छोडकर शेषसे आचमन करै ॥ २७ ॥ तब ओंकार स्मरण कर प्राणायाम करके तुरीयपादसहित गायत्रीको जपता हुआ प्राणायाम करै ॥ २८ ॥ दक्षिणनासापुटसे वायु रेचन करै, बायेंसे उदरको पूर्णकरै कुंभकसे धारण करै इसका नाम पंडितोंने प्राणायामकहा है ॥ २९ ॥ अंगुष्ठसे दक्षिण नाडीको पीडितकरै, कनिष्ठ और अनामिकासे यह कार्य करै मध्यमा और तर्जनीको त्यागन करै ॥ ॥ ३० ॥ रेचक पूरक और कुंभक यह तीन प्रकारका प्राणायाम जितेन्द्रिय योगी कहते हैं ॥ ३१ ॥ रेचकसे वायु छोडीजीती, पूरक पूर्णकरती, और समानतासे इसकीस्थितिका नाम कुंभक है ॥ ३२ ॥ नीलोत्पलके समान श्यामस्वरूपनाभिमें प्रतिष्ठित है, वहां चतुर्भुज हरिको पूरकके समय ध्यानकरै ॥ ॥ ३३ ॥ कुंभकके समय हृदयमें कमलासन प्रजापति जगन्नाथ चतुर्मुख पि-तामहका ध्यान करै ॥ ३४ ॥ रेचकके समय ललाटमें स्थित महेश्वर शुद्ध स्फटिकके समान पापनाशी शंकरका ध्यान करै ॥ ३५ ॥ पूरकमें विष्णुका सायुज्य कुंभकमें ब्रह्मकी गति, रेचकसे शिवकीगति परम प्राप्तहोती है ॥ ३६ ॥ हे देवर्षि यह पुराणसम्मत आचमन आपसे कहा आपसे अब श्रौत आचमन कहता हूं ॥ ३७ ॥ पहले ओंकार पढकर फिर गायत्री त्रिपदी उच्चारणकर जलपान करै,यह श्रौत आचमन

ह ॥ ३८ ॥ जो व्याहृतिपूर्वक शिरके सहित गायत्रीका जपकरता प्रत्येकवार प्राणायाम रेचक पूरक कुंभककर ऐसे तीनवार करनेका नाम प्राणायाम करै॥ ३९॥ अब लक्षण सहित प्राणोंका आयाम कहते हैं जो अनेक पापनाशक और महापुण्यका फल देने वाला है ओंकारसे पांचौअंगुलियों द्वारा नासाग्रभागकोपीडित करै यह मुद्रा वानप्रस्थ और ग्रहस्थोंके सब पापकी हरनेवाली है॥ ४० ॥ कनिष्ठिका अनामिका और अंगूठेसे यती और ब्रह्मचारीका प्राणायाम होता है आपोहिष्ठा तीन मंत्रसे कुशोदकसे प्रोक्षण करै ॥ ४१ ॥ ऋचाके अन्त वा पादके अन्तर्में मार्जन करै नौवार आपोहिष्ठादिके साथ प्रणव लगाय मार्जन करै ॥ ४२ ॥ मार्जनसे एक वर्षका किया पाप नष्ट होता है फिर 'सूर्यश्चमा' ७ ऋचा पढकर जलपिये ॥ ४३ ॥ तौ उसके अन्तःकरणका पाप नष्ट होजाता है प्रणव व्याहृति गायत्री सबमें ॐकार लगाय ॥ ४४ ॥ 'आपोहिष्ठा' सूक्तसे मार्जन करै गोकर्णवत् किये दक्षिण हाथमें जल लेकर ॥ ४५ ॥ उसे नासिकाके अग्रभागमें लाकर बाईं ओरके पापको स्मरण करै कृष्णवर्ण पापपुरुषका ध्यानकरकै 'ऋतंचसत्यं' यह पढै ॥ ४६ ॥ फिर द्रुपदादि मंत्रको पढता हुआ दक्षिण नासापुटसे श्वासमार्गसे उस पापको हाथके जलमें लावै ॥ ४७ ॥ विनादेखे हुए उस जलको वाम भागमें अश्मके समान डालै मेरा शरीर पापरहित हो यही भावना करै ॥ ४८ ॥ फिर उठकर दोनों चरणोंको समान नियुक्त करकै जलांजलि ग्रहण कर तर्जनी और अंगुष्ठके विना ॥ ४९ ॥ गायत्री पढ सूर्यको देख जल छोड़दे ऐसा तीनवार करै हे मुनि यह विधि पापनाश और अघमोचनके निमित्त है ॥ ५० ॥ फिर 'असौवाआदित्य' इस मंत्रसे प्रदक्षिणा करै मध्याह्नमें एकही वार अर्घ्य होता है संध्याओंमें तीनवार अर्घ्य दे ॥ ५१ ॥ प्रभातकालमें कुछ नम्र हो मध्याह्नमें दंडवत् स्थितहो और संध्यासमय आसनपर बैठा हुआ ही जलत्यागे ॥ ॥ ५२ ॥ जिस कारण जल त्यागाजाता है सो कारण सुनो मन्देहा नामक तीस करोड़ महाबली राक्षस ॥ ५३ ॥ बडेकृतघ्न और घोर दारुण हैं यह सूर्यके खानेकी इच्छाकरते हैं जब सब देवता और तपोधन ऋषि संध्याके उपासनामें जलांजलि देते हैं वह जल वज्रीभूत होकर दैत्योंको नष्ट करते हैं [ताआपोवज्रीभूतास्तानिर-

---

१ ओमापोज्योतिरसोमृतम् ब्रह्मभूर्भुवःस्वरोम् यहगायत्रीशिर है। २ इनका विचार हमारी निर्मित संध्याविधिमें देखो।

क्षांसि मंदेहारुणोद्वीपेप्रक्षिपन्ति तैत्तरीयश्रुतिः]॥५४॥५५॥ इसकारणसे विप्र नित्य संध्योपासनमें ऐसा करते हैं संध्योपासन महापुण्यका देनेवाला कहा है ॥ ५६ ॥ हे नारद ! यह अर्घ्यका अंगभूत मंत्र कहते हैं सुनो जिसके उच्चारणमात्रसे सांग संध्याका फल होता है ॥ ५७ ॥ वह मैं हूं सूर्य मैं हूं ज्योति, आत्मा ज्योति शिव मैं हूं आत्म्यज्योति शुक्र और सब ज्योतिका रस मैं हूं ॥ ५८ ॥ हे ब्रह्मरूपिणी गायत्री देवी आकर मुझे वरदीजिये जपानुष्ठानकी सिद्धिके निमित्त मेरे हृदयमें प्रवेशकर ॥ ५९ ॥ हे देवि उठो और फिर आनेके लिये जाओ हे देवि मेरे हृदयमें प्रवेशाकर अर्घ्यों में गमन करो ॥ ६० ॥ फिर चतुर शुद्ध स्थानमें अपने आसनकी कल्पना करै उसपर बैठ वेदमाता गायत्रीका जप करै ॥ ६१ ॥ हे मुने प्राणायाम के उत्तर यहीं खेचरी मुद्राकरै हे मुनिश्रेष्ठ वह प्रातः संध्याके विधानमें कीर्त्तन की है ॥ ६२ ॥ हे नारद ! सुनो इसके नामका अर्थ कहता हूं जिस कारण कि, चित्त आकाशमें विचरता है आकाशमें गई जिह्वा चरती है ॥ ६३ ॥ जिस समय भौंके मध्यमें दृष्टि लगती है उसमें खेचरी मुद्रा होती है सिद्धासनके समान आसन कुंभकके समान प्राणायाम ॥ ६४ ॥ खेचरीके समान दूसरी मुद्रा नहीं. हेनारद! यह सत्य सत्य है घंटाके समान ॐकारके उच्चारणसे यत्नपूर्वक वायुको जीतकर ॥ ६५ ॥ अहंकार ममता छोड़ दृढ आसनपर दृढ होकर बैठे हे नारद सिद्धासनके लक्षण सुनो ॥ ६६ ॥ एक पादमूल लिंगके मूलमें दूसरे चरणका मूल वृषणके नीचे हृदय और शरीरको दंडवत् स्थितकर स्थाणुके समान नियतेन्द्रिय हो अचल दृष्टिसे भौंके मध्यभागको देखताहुआ स्थित हो, यह योगियोंको सुखदायक सिद्धासन है ॥ ६७ ॥ आसन बांधने उपरान्त इसप्रकार आवाहन करै वरदायक देवी गायत्री छन्दोंकी माता ब्रह्मसम्मित अक्षर ब्रह्मके सेवनके निमित्त मेरे समीप आवै ॥ ६८ ॥ दिनमें पाप किया जाता है वह सब इससे छूट जाता है जो रात्रिमें पाप किया जाय वह रातकी उपासनासे छूट जाता है ॥ ६९ ॥ हे सब अक्षररूप हे महादेवि, संध्या विद्या सरस्वति अजर अमर सर्व देवि तुमको प्रणाम है ॥ ७० ॥ फिर 'तेजोसी' इत्यादि मंत्रसे देवीका आवाहन करै जो तुम्हारा अनुष्ठान किया है वह सब पूर्ण हो ॥ ७१ ॥ फिर शापनाशके निमित्त भली प्रकार विधान करै ब्रह्मा और विश्वामित्र दोका शाप है ॥ ७२ ॥ तथा वशिष्ठका यह तीन प्रकारका शाप लगा है, ब्रह्माके स्मरणसे ब्रह्माका शाप॥७३॥ विश्वामित्रके

स्मरणसे विश्वामित्रका शाप वसिष्ठके स्मरणसे वशिष्ठका शाप दूर होता है ॥ ७४ ॥ हृदयकमलमें सत्यस्वरूप सत्यात्मक पुरुष निवास करते हैं उस परमात्माको मैं नित्य ध्यान करता हूं जो एकचित्तस्वरूप वार्णोसे भी परे है ॥७६॥ अब संध्यामें अंगसंभव न्यासकी विधिको कहता हूं पहले ॐकार उच्चारण कर पीछे मंत्रको संयुक्त करै॥ ७६ ॥ भूः पादाभ्यांनमः, भुवः, जानुभ्यांनमः,स्वःकटिभ्यांनमः,इसप्रकार कहै॥ ७७॥ महर्नाभ्यै नमः, जनःहृदयायनमः,तपःकंठायनमः सत्यंललाटायनमः इसप्र-प्रकार कल्पना करै ॥ ७८ ॥ तत्सवितुःअंगुष्ठाभ्यांनमः, वरेण्यम् तर्जनीभ्यांनमः भर्गो देवस्य मध्यमाभ्यांनमः, धीमहि ॥ ७९ ॥ अनामिकाभ्यांनमः, धियोयोनः, कनिष्ठाभ्यांनमः प्रचोदयात् करतल कर पृष्ठाभ्यांनमः इस प्रकार बुद्धिमान् न्यास करै ॥ ८० ॥ ब्रह्मात्मने तत्सवितुर्हृदयायनमः । विष्णवात्मने वरेण्यं शिरसे नमः ॥ ८१ ॥ भर्गोदेवस्य रुद्रात्मने शिखायैवषट् शक्त्यात्मने धीमहि कवचायहुम् ॥ ८२ ॥ कालात्मने धियोयोनः नेत्रत्रयाय, वौषट् प्रचोदयात्सर्वात्मने अस्त्राय फट्॥ ॥ ८३ ॥ हे मुने अब अक्षरन्यास कहता हूं गायत्रीमंत्र संभूत न्यास पापके हरनेवाले हैं ॥ ८४ ॥ पहले प्रणवको उच्चारण कर वर्णन्यास करना चाहिये पहले तत् उच्चारण करकै पादांगुष्ठमें न्यास करै ॥ ८५ ॥ सकारका गुल्फोंमें विकारका जंघाओंमें तुकार जानुओंमें वकारका उरुओंमें ॥ ८६ ॥ रेकार गुदमें णिकार मेढ्रमें यंकार कटिमें भकार नाभिमें ॥ ८७ ॥ गोकार हृदयमें दे दोनों स्तनोंमें व हृदयमें स्य कंठमें ॥ ८८ ॥ धी मुखमें म तालुमें हि नासिकाके अग्रभागमें धि नेत्र मंडलमें ॥ ८९ ॥ यो दोनों भ्रूमध्यमें यो ललाटमें नकार पूर्व मुखमें प्रकार दहिने मुखमें ॥ ९० ॥ चो पश्चिम मुखमें दकार उत्तर मुखमें या मूर्धामें तकारका व्यापकतामें न्यास करै ॥ ९१ ॥ कोई जापक यह न्यासविधि नहीं भी करते, फिर न्यासकर जगन्माता अम्बिका देवीका ध्यान करै ॥ ९२ ॥ जो परमेश्वरी चमकते हुए जपाके फूलोंके समान प्रकाशमान् है, जो लाल कमलके आसनमें आरूढ है लाल गंधका अनुलेपन लगाये है ॥ ९३ ॥ लाल माला और वस्त्र पहरे हुए चारमुख चतुर्भुजा प्रतिमुखमें दो दो नेत्र स्रुक् स्रुवा जपमाला और कमण्डलु धारण किये ॥ ९४ ॥ सम्पूर्ण आभरणोंसे

१ ॐतत् नमः पादाङ्गुष्ठद्वये, ॐसनमः गुल्फद्वये, ॐविनमः जङ्घाद्वये इस प्रकार चौवीसों न्यास करै।

संदीप्त ऋग्वेदकी कथनकरनेवाली परा हंसके ऊपर स्थापित रक्तकमलपर स्थित, आहवनीयके मध्यमें स्थित, ब्रह्म देवता अर्थात् ब्रह्माकी उपास्य देवता ॥ ९५ ॥ चार वेदरूप चार चरणवाली पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊर्ध्व, अधर, अन्तरिक्ष अवान्तर दिशारूप आठकुक्षिसम्पन्न व्याकरण, शिक्षा, कल्प, निरुक्त, ज्योतिष, इतिहास, पुराण, उपनिषदरूप सात शिरवाली अग्निरूप मुख, रुद्रशिखा और विष्णु रूप चिह्नवालीका ध्यान करै ॥ ९६ ॥ जिसके ब्रह्मा कवच सांख्यायन गोत्र है आदित्य मंडलमें स्थित उस महेश्वरी देवीका ध्यान करै ॥ ९७ ॥ इस प्रकार विधिसे वेदमाता गायत्रीका ध्यान करके फिर देवीकी प्रसन्न करनेवाली मुद्रा दिखावै ॥ ९८ ॥ संमुख, संपुट, विततं, विस्तृत, द्विमुख, त्रिमुख, चतुष्क, पंचक ॥९९॥ षण्मुख, अधोमुख, व्यापक आंजलिक, शकट, यमपाश, ग्रथित, संमुखोन्मुख ॥१००॥ विलम्ब, मुष्टिक, मत्स्य कूर्म, वराह, सिंहाक्रान्त, महाक्रान्त, मुद्गर, पल्लव ॥ १ ॥ यह चौवीस मुद्रा एकान्तमें गायत्रीको दिखावै और बुद्धिपूर्व शताक्षरा गायत्रीको आवर्तन करै ॥ २ ॥ गायत्रीके २४ अक्षर कहे हैं 'जातवेदसे सुन वामसो' यह चौवालीस अक्षर ऋचा साथमें उच्चारण करै ॥ ३ ॥ तथा 'त्र्यम्बकं यजामहे' यह ३२ अक्षरके मंत्रके साथमें गायत्री शताक्षरी होजाती है यह महा पुण्यदायक है गायत्रीसे पहले शताक्षरा गायत्री जपै ॥ ४ ॥ पहले ओंकार उच्चारणकर फिर 'भूः, भुवः, स्वः' कहकर २४ अक्षरवाली गायत्रीको जपै ॥ ५ ॥ इसप्रकार जो ब्राह्मण श्रेष्ठ नित्य जप करता है वह संध्याका सब फल पाकर पूरा सुख पाता है ॥ १०६ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भाषायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः १७.

नारायण बोले भिन्नपाद गायत्री ब्रह्महत्या दूर करती है और संलग्न सब पाद पढनेसे जिसमें सन्दिग्ध अक्षर निकलैं ऐसी पढनेसे ब्रह्महत्या लगती है॥ १ ॥ जो पाद आदिके सहित यथार्थ गायत्रीका उच्चारण नहीं करते वे द्विज अधोमुखसे सौ कोटि कल्प रहते हैं ॥ २ ॥ प्रणव, संपुट, षट् ओंकारादिसे गायत्री इतिहास पुराणोंमें विविध प्रकार लिखी है ॥ ३ ॥ पांच प्रणवसे युक्त जपकरनेकी भी आज्ञा है

जितनी संख्याका जप करै उसके अष्टम भागमें 'परोरजसे' इत्यादि लगाकर चतुर्थ पाद जपना चाहिये ॥ ४ ॥ वह द्विज परम जानना और ऐसा करनेसे पर सायुज्यकी प्राप्ति होती है अन्यथा जप करनेसे जप निष्फल होता है ॥ ५ ॥ संपुटा और षडोंकारा ऊर्ध्वरेतसवालोंको जपनी और गृहस्थी वा ब्रह्मचारी तुरीया एक ओंकार वालीको जपै॥६॥गायत्रीका चौथा पाद 'परोरजसे साव दोम्' है अब इसका ध्यान जप सांग फलका देनेवाला कहता हूं ॥ ७ ॥ हृदयमें कमल खिला है सूर्य सोम अग्निका विम्बरूप प्रणवमय अचिन्त्यरूप जिसका सिंहासन है अचल परम सूक्ष्म ज्योति आकाशका सार सच्चिदानंदस्वरूप मेरे आनंदका देनेवाला हो ॥८॥ तुरीया गायत्रीकी मुद्रा कहते हैं त्रिशूल, योनि, सुरभि, अक्षमाला, लिंग,अम्बुज,महामुद्रा यह सात दिखावे ॥९॥ जो संध्या है वही सच्चिदानंदरूपिणी गायत्री है उसको भक्तिसे ब्राह्मण नित्य पूजै और नमस्कार करै ॥१०॥ ध्यानयोग्य देवकी पंचोपचारसे पूजा करै 'लंपृथिव्यात्मने गंधं समर्पयामि' नमोनमः इससे गंध ॥ ११ ॥ हमाकाशात्मने पुष्पं समर्पयामि नमोनमः इससे पुष्प, यंवाय्वात्मने धूपं समर्पयामि इससे धूप ॥ १२ ॥ रंवन्ह्यात्मने दीपं समर्पयामि इससे दीप, वममृतात्मने नैवेद्यं समर्पयामि इससे नैवेद्य दे ॥ १३ ॥ यं रं लं वं हं कहकर पुष्पांजलि दे इसप्रकार पूजा कर अन्तमें मुद्रा दिखावे ॥ १४ ॥ मनसे देवीका ध्यान कर शनैः मुद्रा दिखावै शिर ग्रीवाको कंपित न करै दांत भी न दिखावे ॥ १५ ॥ विधिपूर्वक एक सौ आठ बार ॥२८॥ और शक्ति न हो तौ दशवार जपै इससे न्यून न करै ॥ १६ ॥ फिर उत्तम अनुवाकसे देवीका अनुवासन करै जलके मध्यमें गायत्रीको न जपै "बहुत स्थानोंमें हारितादिके वचनोंसे जलमें भी जप लिखा है पर यदि आसनादि विद्यमान हो तौ आलस्यसे जलमें न जपै इस कारण कहा है" ॥ १७ ॥ कारण कि गायत्री अग्निमुखी है ऐसा कोई महर्षि कहते हैं सुरभि ज्ञान,शूर्प,कूर्म,योनि पंकज ॥ १८ ॥ लिंग,निर्वाण यह आठ मुद्रा दिखावे जो अक्षर पद भ्रष्ट स्वर व्यंजन वर्जित है ॥१९॥ हे कश्यप ! प्रियवादिनी यह हमारी क्षमाकरना हे महामुने ! इसके उपरान्त गायत्रीका तर्पण करना चाहिये ॥ २० ॥ गायत्री छन्द विश्वामित्र ऋषि सवितादेवता तर्पणमें विनियोग करै ॥ २१ ॥ ओं भूरिति ऋग्वेदपुरुषं तर्पयामि ओं भुव इति यजुर्वेदं तर्पयामि ॥ २२ ॥ ओंस्व इति सामवेदं तर्पयामि, ओं मह इत्य-

१. गायत्र्येकपदीद्विपदी इत्यादिसे हृदयसे उठावै ॥ उत्तरे शिखरे जातेसे निद्रा करै।

र्थर्ववेदं तर्पयामि॥ २३॥ ओंजनः इति इतिहास पुराणपुरुष तर्पयामि, ॐ तपःसर्वागम पुरुषं तर्पयामि ॥ २४ ॥ ओं सत्यमिति सत्यलोकाख्यपुरुषं तर्पयामि, ओं भूःभूर्लोक पुरुषं तर्पयामि ॥ २५ ॥ ओं भुव इति भुवर्लोकपुरुषं तर्पयामि ओं स्वः स्वर्लोक पुरुषं तर्पयामि ॥ २६ ॥ ओं भूरेकपदां गायत्रीं तर्पयामि, ओं भुवः द्विपदा गायत्रीं तर्पयामि ॥ २७ ॥ ओं स्वः त्रिपदां गायत्रीं तर्पयामि, ओं भूर्भुवः स्वः चतुष्पादां गायत्रीं तर्पयामि ॥२८॥ उषसी, गायत्री, सावित्री, सरस्वती, वेदमाता, पृथ्वी अजा, कौशिकी ॥ २९ ॥ सांकृति, सार्वजिति गायत्री इन सबको तर्पणमें कहै तथा उषसीं तर्पयामि इत्यादि तर्पणके अन्तमें शान्तिके निमित्त 'सुनवामसोमम्' यह मंत्र बोले॥ ३०॥शान्तिके निमित्त मानस्तोक यह मंत्र बोले वा त्र्यम्बकंयजामहे यह मंत्र उच्चारण करै॥ ३१॥वा शान्तिके निमित्त 'तच्छंयोः' यह मंत्र उच्चारण करै 'अतोदेवा' यह दोमंत्र पढ सर्वांगमें स्पर्शकरै॥ ३२॥स्योनापृथ्वीइसमंत्रसे पृथ्वीमें प्रणाम करै फिर ब्राह्मण विधिसे गोत्रादिका उच्चारण करै ॥ ३३ ॥ इसप्रकार प्रभातकालीन संध्याका विधान है संध्या करने उपरान्त अग्निहोत्र करै ॥ ३४ ॥ फिर सावधानहो पंचायतन पूजा करै शिवा, शिव, गणपति, विष्णुको पूजै ॥ ३५ ॥ पुरुषसूक्त व्याहृतिसंयुक्त वा देवीके मूलमंत्रसे वा श्रीश्चतेलक्ष्मीश्चपत्न्यौ इस तैत्तीरीय शाखाके मंत्रसे पूजै॥ ३६॥ मध्यमें भवानीको, ईशानमें माधवको, आग्नेय दिशामें गिरिजापति शंकरको गणेशको राक्षसोंकी दिशामें पूजै ॥ ३७ ॥ वायव्य दिशामें सूर्यका यजन करै यह देवताओंके स्थापनका क्रम है पुरुषसूक्तके सोलह मंत्रोंसे भगवानका षोडशोपचार पूजन करै ॥ ३८ ॥ पहले देवीकी पूजाकर पीछे अन्य देवताओंकी पूजा करै देवीपूजनसे अधिक पुण्य कहीं नहीं है ॥ ३९ ॥ इसीकारण संध्यामें संध्योपासनकी श्रुति कही है अक्षतसे विष्णु और तुलसीसे गणेशका पूजने न करै ॥ ४० ॥ दूर्वासे भगवतीको केतकीसे शंकरको न पूजै मल्लिका, जातिकुसुम, कुटज, पनस ॥ ४१ ॥ किंशुक, वकुल, कुंद, लोध, करवीर(कनेर)शिंशपा, अपराजिता फूल, बंधुक, अगस्त्य ॥ ४२ ॥ मदंत, सिन्धुवार, ढाकके फूल, दूर्वांकुर, बेलपत्र, जारिकाफूल ॥ ४३ ॥ शल्लकी, चमेली, आक, मंदार, केतकी कर्णिकार कदम्बके फूल ॥ ४४ ॥ पुन्नाग चम्पक, यूथिका, तगर इत्यादि पुष्प देवीके प्रिय हैं भगवतीके दुर्गा विग्रहपर दूर्वांकुरका निषेध है अन्यत्र नहीं ॥ ४५ ॥ ग्गुलकी धूप तिलके तेलका दीपक कर 'एक ओर घृतकाभी रख' पूजा करने उपरान्त मूल मंत्र जपै ॥ ४६ ॥ इसप्रकार

पूजाकर वेदाभ्यास करै फिर अपनी वृत्तिके अनुसार पालनीयोंका पालन करै॥ ४७॥ माता पिता गुरु गुरुपत्नी भार्या पुत्र अनाथादि पोष्य वर्ग हैं नियमपूर्वक चतुर पुरुष यह कृत्य दिनके तृतीय भागमें करै ॥ ४८ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः १८.

श्रीनारदजी बोले हे मानद ! देवीकी विशेष पूजा सुननेकी इच्छा करता हूं जिसके आश्रयसे मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है ॥ १ ॥ श्रीनारायण बोले हे देवर्षि ! सुनो श्रीमाताका पूजनक्रम कहता हूं जो साक्षात् भुक्तिमुक्तिदायक सब आपत्तियोंका निवारक है ॥ २॥ मौन हो आचमन कर संकल्प करने उपरान्त भूतशुद्धि करै फिर मातृकान्यासपूर्वक षडंगन्यास करै ॥ ३ ॥ शंखको स्थापनकर सामान्य अर्घ्य देकर फट् मंत्रके जलसे पूजाद्रव्यको प्रोक्षण करै ॥ ४ ॥ फिर गुरुकी आज्ञा लेकर पूजा आरंभ करै, पहले पीठ पूजाकर फिर देवीका ध्यान करै ॥ ५ ॥ भक्ति प्रेमसे आसनादि उपचार करै और पंचामृतके जलों से देवीको स्नान करावै रसादिसे न्हवावै ॥ ६ ॥ पौंड्र ईखके रससे सौकलशोंसे जो देवीको स्नान कराता है उसका फिर जन्म नहीं होता ॥ ७ ॥ जो आमके रससे देवीको स्नान कराता है वा वेदपारायण करके इक्षुरससे न्हवावै ॥ ८ ॥ उसके घरको लक्ष्मी सरस्वती कभी त्यागन नहीं करती, जो वेदपारायण करता हुआ दाखके रससे ॥ ९ ॥ महेशानीको सकुटुम्ब स्नान कराता है वह नरोत्तम होता है रेणुमात्र रसदेनेसे भी देवीलोकमें पूजित होता है, ॥ १० ॥ कपूर अगर केसर कस्तूरीके जलोंसे न्हवाते वेदपारायण करता हैं ॥ ११ ॥ उसके सौ जन्मोंके पाप भस्म होते हैं, जो वेदपाठ करते दूधके कलशोंसे देवीको स्नान कराते हैं ॥ १२ ॥ वह कल्पपर्यन्त क्षीरसागरमें निवास करते हैं जो दहीसे न्हवाते वह दधिकुल्या नदी जो देवलोकमें है उनके अधिपति होते हैं ॥ १३ ॥ मधु घी शर्करासे स्नान करानेसे मधु घी शर्करादि कुल्याओंका अधिपति होता है ॥ १४ ॥ जो भक्तिपूर्वक सहस्र कलशोंसे देवीको स्नान कराता है वह दोनों लोकमें सुखी होता है ॥ १५ ॥ दो अलसीके बने वस्त्र देकर वायुलोकमें जाता है, और रत्ननिधियोंका देनवाला निधिपति होता है ॥ १६ ॥ केशर

चंदन, कस्तूरी, बिन्दी, केशविधायक सिंदूर चरणोंमें महावर ॥ १७ ॥ देकर इन्द्रासनमें स्थित हो देवपति होता है, महात्माओंने पूजामें अनेक फूल कहे हैं ॥ १८ ॥ यथालाभ उनको देकर कैलासवासी होता है जो अमोघ[1] बेलपत्र भगवतीको देता है ॥ १९ ॥ उसको कभी कदाचित् दुःख नहीं होता, तीनों बेलपत्र पर लालचंदनसे ॥ २० ॥ स्फुट तीन मायाबीज (ह्रीं) लिखकर और चतुर्थी युक्त "ह्रीं भुवनेश्वर्यैनमः" उच्चारणकर ॥ २१ ॥ परम भक्तिसे देवीके चरणकमलमें कोमल पत्रोंको अर्पण करै ॥ २२ ॥ जो परम भक्तिसे ऐसा करते वह मनु होते हैं, जो कोमल और अति निर्मल ऐसे कोटि दलोंसे ॥ २३ ॥ भुवनेश्वरीका पूजन करते हैं, वह ब्रह्माण्डके अधिपति होते हैं जो नवीन कुंदके पुष्पोंको अष्टगंधसे युक्त ॥ २४ ॥ एककोटि चढाय पूजा करते हैं वह प्राजापत्य पदको प्राप्त होते हैं, अष्टगंधसे मायाबीज लिखकर उसके सहित जो मल्लिका मालतीके ॥ २५ ॥ एक कोटि फूल चढाकर पूजाकरते हैं वह चतुर्मुख होते हैं हे मुने जो उसके दशकोटि पुष्प चढाते हैं ॥ ॥ २६ ॥ वह मनुष्य देवताओंको दुर्लभ विष्णुत्वको प्राप्त होते हैं अपनी पद प्राप्तिके निमित्त पहले विष्णुने यह व्रत किया था ॥ २७ ॥ इसके सौकोटि फूल चढानेसे जिसमें मायावीज लिखाहो मनुष्य सूत्रात्मापद 'हिरण्यगर्भ' को प्राप्त होता है यह व्रत प्रयत्नसे भक्तिपूर्वक करनेसे ॥ २८ ॥ इसके प्रभावसे हिरण्यगर्भताको प्राप्त होता है जपाकुसुम, बंधूक पुष्प ॥ २९ ॥ दाडिमीकुसुमकी भी यही विधि है इसी प्रकार औरभी फूल भक्तिसे देवीको अर्पण करै ॥ ३० ॥ इसके पुण्यफलाके अन्तको ईश्वरभी नहीं जान्ते प्रत्येक ऋतुमें हुए फूलोंसे ॥ ३१ ॥ स्कन्धमें लिखे सहस्रनामकी संख्यासे सावधानहो प्रतिवर्ष देवीको समर्पण करै, जो ऐसा करता है वह महापातकसंयुक्त होकरभी ॥ ३२ ॥ वा उपपातक संयुक्तहो वह उनसे छूट जाता है देहान्तमें, वह साधक देवताओंको भी दुर्लभ देवीके पदकमलको प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥ हे मुने इसमें संदेह नहीं काला अगर, कपूर, चन्दन ॥ ३४ ॥ सिह्लक (लोवान) घृत, गुग्गुल इनसे महादेवीको धूपदे जो भगवतीका मंदिर धूपित करता है ॥ ३५ ॥ उससे प्रसन्नहो देवेशी उसको त्रिलोकी देती है जो निरन्तर देवीको दीपक और कपूर देता है ॥ ३६ ॥ वह निःसन्देह सूर्यलोकको प्राप्त होता है जो

---

१ सावतः शुद्ध ।

सौ वा सहस्र दीपक देता है ॥ ३७ ॥ और महान् पर्वताकार नैवेद्य भगवतीके आगे स्थापित करता है लेह्य, चोष्य, पेय, षड्रसोंको ॥ ३८ ॥ तथा अनेक दिव्य स्वादिष्ट रसभरे फल सोनेके पात्रमें रखकर जो देवीको देता है ॥ ३९ ॥ तौ महादेवीके तृप्त होनेपर सब जगत् तृप्त होजाता है, कारणकि यह सब जगत् तदात्मकही है रज्जुमें सर्पकीसी समान भ्रम है ॥ ४० ॥ फिर सुन्दर गंगाजल पीनेको दे जो कर्पूर नेत्रवाला, इनसे शीतलकर कलशमें स्थापन किया है ॥ ४१ ॥ फिर देवीके निमित्त संपूर्ण सुगंध लवंगसे युक्त मुखकी सुगंधि करनेवाला ताम्बूल दे, जिसमें कपूरभी हो ॥ ४२ ॥ महाभक्तिसे देनेसे देवी प्रसन्न होती है मृदंग, वीणा, मुरज, ढक्का, दुंदुभीके शब्दोंसे ॥ ४३ ॥ तथा मनोहर गानोंसे जगन्माताको संतुष्ट करै, वेदपारायण तथा पुराणोंके स्तोत्र पढै ॥ ४४ ॥ सावधानहो देवीके निमित्त छत्र और दो चंवर प्रदान करै श्री देवीके निमित्त नित्यही राजोपचार समर्पण करै ॥ ४५ ॥ अनेक प्रकारसे देवीकी प्रदक्षिणा नमस्कार करै और वारंवार जगद्धात्री जगदम्बासे क्षमाकरावै ॥ ॥ ४६ ॥ जहां एकवार स्मरण करनेसेही देवी प्रसन्न होती है, फिर इतने उपचारोंसे प्रसन्नहो इसमें आश्चर्यही क्या है ॥ ४७ ॥ माता स्वभावसेही पुत्रमें दयावती होती है, फिर भक्तिकरने परतौ क्या कहना है ॥ ४८ ॥ यहां एक भक्तिदायक वृहद्रथ राजर्षिका पुरातन इतिहास कहते हैं ॥ ४९ ॥ कहीं एक हिमालय देशमें चक्रवाक पक्षी था. वह अनेक देशोंमें भ्रमण करता काशीपुरीमें गया ॥ ५० ॥ वह प्रारब्ध वश अन्नपूर्णाके स्थानमें प्राप्त हुआ, वह कणलोभसे अनाथवत् लीलासे होगया ॥ ॥ ५१ ॥ फिर एक प्रदक्षिणकर आकाशमें गया, इसप्रकार देशान्तरोंको छोडकर मुक्ति दायकापुरीमें रहा ॥ ५२ ॥ फिर कुछ कालान्तरमें मृत्युको प्राप्त हो स्वर्गमें गया दिव्यरूपधारी युवा होकर सब विषयोंको भोगने लगा ॥ ५३ ॥ इस प्रकार दो कल्प आनंदकर फिर भूर्लोकमें आया और सर्वोत्तम क्षत्रियोंके कुलमें जन्म पाया ॥ ५४ ॥ भूमण्डलमें वृहद्रथ नामसे प्रसिद्ध हुआ जो महायज्ञ करनेवाला धर्मात्मा सत्यवादी जितेंद्रिय था ॥ ५५ ॥ त्रिकालका ज्ञाता सार्वभौम यम नियममें तत्पर शत्रुनाशी था और उसको इस भूमिमें दुर्लभ पूर्वजन्मकी स्मृति बनी रही ॥ ५६ ॥ इस किंवदन्तीको सुनकर वहां मुनिराज आनकर प्राप्त हुए और राजासे अतिथिसत्कारको प्राप्त हो विस्तरोंपर बैठे ॥ ५७ ॥ और सब ऋषि बोले हेराजन् हमको बडा संशयहै किस पुण्यके प्रभावसे तुमको

पूर्वजन्मकी स्मृति है॥ ५८॥ तथा किस पुण्यके प्रभावसे तुमको त्रिकालज्ञान है तुम्हारा ज्ञान जाननेके निमित्त हम तुम्हारे समीप आये हैं ॥५९॥ सो आप उपालंभरहित हो यथार्थ रूपसे हमसे वर्णन कीजिये. नारायण बोले इसप्रकार उनके वचन सुन परम धर्मात्मा राजा ॥ ६० ॥ सम्पूर्ण त्रिकालज्ञानके कारणको कहने लगा., हे मुनियो! तुम सब मेरे ज्ञानका कारण सुनो ॥ ६१ ॥ मैं पहले नीच योनि चक्रवाकमें स्थित था, अज्ञानसे मैंने अन्नपूर्णाकी प्रदक्षिणा की थी ॥ ६२ ॥ उस पुण्यके प्रभावसे स्वर्गमें दोकल्प रहा. हे सुव्रतो! अब इस जन्ममें भूलोकमें त्रिकालज्ञान प्राप्त होकर स्थित हुआ हूं ॥ ६३ ॥ कौन जाने जगदम्बाके चरण स्मरणका कितना फल है, वह महिमा उनकी स्मरण कर मेरे अश्रुपात होते हैं ॥ ६४ ॥ उन कृतघ्न पापी जनोंके जन्मको धिक्कार है जो सबकी माता देवीकी उपासना नहीं करते॥ ६५॥ शिव विष्णुकी उपासना नित्य नहीं है परादेवीके उपासनाकी नित्य आज्ञा वेदमें स्थित है [अहरहःसंध्या मुपासीत इत्यादि] ॥ ६६ ॥ इस सन्देहरहित स्थानमें बहुत क्या कहूं निरन्तर भगवतीके चरणकमलोंका सेवन करना चाहिये ॥ ६७ ॥ भूमितलमें इससे अधिक और कुछ नहीं है वह परादेवी सगुणा निर्गुणा सेवन करनी चाहिये ॥ ६८ ॥ नारायण बोले इसप्रकार धार्मिक राजाका वचन सुन प्रसन्न मन हो सब अपने २ स्थानको गये॥ ६९॥ भगवतीका इतना प्रभाव है फिर उसकी पूजाका फल कितना है! यह कौन कहसकता है. इसके पूँछनेपर पूरा उत्तर कौन देसकता है? ॥ ७० ॥ जिनका जन्म सफल है उन्हींकी इसमें श्रद्धा होती है जिनका जन्म संकरता युक्त है उनकी श्रद्धा नहीं होती ॥ ७१ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भाषायां अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः १९.

श्रीनारायण बोले अब मध्याह्न समयकी शुभसंध्याको सुनो जिसके अनुष्ठानसे उत्तम फल होता है ॥ १ ॥ मध्याह्न समय सावित्री युवती श्वेतवर्णा त्रिलोचना वरदायक अक्षमालासे युक्त त्रिशूल अभय हाथमें धारण किये ॥ २ ॥ वृषपर आरूढ यजुर्वेद उच्चारण करती रुद्रसे उपास्य तमोगुणयुक्त भुवर्लोकमें स्थित ॥ ३ ॥ आदित्यमार्गमें संचार करनेवाली मायाको मैं प्रणाम करता हूं. इस-

प्रकार आदिदेवीको ध्यान कर पूर्ववत् आचमनादि करै ॥ ४ ॥ फिर अर्घ्यके निमित्त पुष्पचयन करै उसके अभावमें बिल्वपत्र जलसे संयुक्तकर ॥ ५ ॥ सूर्यके सन्मुख ऊर्ध्वमुख होकर अर्घ्य दे और सब प्रभातसंध्याके समान उपचार करै ॥ ॥ ६ ॥ कोई मध्याह्नमें अर्घ्यदानका निषेधकर कहते हैं कि यह संप्रदायसिद्ध नहीं इसमें कार्यहानि होती है ॥ ७॥ कारण यह है कि, दोनों संध्याओंमें मन्देहा नाम राक्षस सूर्यके भक्षणकी इच्छा करते हैं इससे अर्घ्य देते हैं यह श्रुतिकथित कारणहै ॥८॥हेब्राह्मण! इसकारण संध्यामें दोनों समय अवश्यअर्घ्य दे और दोनों संध्याओंमें ओंकारसहित गायत्रीका जपकरै ॥ ९ ॥ फिर अर्घ्यदे अन्यथा श्रुतिघातक होताहै 'आकृष्णेन, वा हंसः शुचिषद्' यह मंत्र पढकर फूल और जल मिलावै ॥ १० ॥ यदि बिल्व दूर्वादि नमिलैं तो फूल फूलके अभावमें दूर्वादि मिलाय अर्घ्य दे तौ संध्याका सांग फल प्राप्त होताहै ॥ ११ ॥ हे देवर्षिसत्तम ! इसी विषयमें तर्पण कहते हैं ॐभुवः पुरुषं तर्पयामि नमोनमः ॥ १२ ॥ ॐयजुर्वेदं तर्पयामि ॐ मण्डलं तर्पयामि ॐहिरण्य गर्भंत०ॐअन्तरात्मानंत० ॥ १३ ॥ ॐसावित्रींत०ॐवेदमातरंत०ॐसांकृतिंत०ॐसंध्यांत०ॐयुवतींत०ॐरुद्राणींत०ॐनीमृजांत० ॥ १४ ॥ ॐसर्वार्थानामसिद्धिकरींत०ॐसर्वमंत्रार्थ सिद्धिदांत०ॐभूर्भुवः स्वः पुरुषं तर्पयामि, यह मध्याह्नतर्पण है ॥ १५ ॥ ओं 'उदुत्यम्' इससूक्तसे और 'चित्रं देवानां' इसमंत्रसे सूर्यका उपस्थानकरै ॥ १६ ॥ फिर मंत्र साधनमें तत्पर अपना जपकरै हे नारद सुनो मैं जपकाभी प्रकार कहता हूं ॥ १७ ॥ प्रभातको हाथ ऊंचेकर संध्याको नीचे और मध्याह्नको हृदयमें हाथ धरकर जपकरै ॥ १८ ॥ अनामिकाके दोनों पर्व मध्यम और मूल और कनिष्ठाके मूलपर्वसे दक्षिणावर्त क्रमसे तर्जनी मूल पर्वपर्यन्त करमाला कही गईहै ॥१९॥ जो गोघ्न, पितृघ्न, मातृहा, गर्भहा, गुरुतल्पगामी, ब्राह्मणका धनहरनेवाला तथा जो सुरापान करता है ॥ २० ॥ वह मनुष्य एक सहस्र गायत्री जपकर पवित्र होजाताहै मन वचन कर्म और विषयेन्द्रियके संगसे उत्पन्न हुआ पाप ॥ २१ ॥ गायत्री ऐसे तीन जन्मके मनुष्यके पापदूर करती है जो गायत्रीको नहीं जान्ता है उसका परिश्रम वृथा है ॥ २२ ॥ चारों वेदका पढना, और एक ओर गायत्रीका जप इनमें गायत्रीही मुख्यहै ॥ २३ ॥ यह मैंने मध्याह्न संध्याका प्रकार कहा अब ब्रह्मयज्ञ विधिका क्रम कहते हैं ॥ २४ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषायां एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः २०.

नारायण बोले ब्राह्मण पहले तीनवार आचमन कर दोवार मार्जन करै सीधा हाथ धोकर फिर चरणोंको प्रक्षालन करै ॥ १ ॥ शिर चक्षु नासिका श्रोत्र हृदय शिर इनमें प्रोक्षण करै फिर देश काल उच्चारण कर ब्रह्मयज्ञ करै दक्षिणहाथमें दो कुशा, वायें हाथमें तीन, आसनमें एक ॥ २ ॥ ३ ॥ उपवीत शिखा और पादमूलमें एक एक रक्खै यह मुक्ति और सबपापक्षयमें उपयोगी हैं ॥ ४ ॥ सूत्रमें कहे देवता की प्रीतिके निमित्त मैं ब्रह्मयज्ञ करता हूं पहले तीन गायत्री पढकर फिर 'अग्निमीळे पुरोहितम्' ॥ ५ ॥ 'यदंग' इति, 'अग्निर्वै' इत्यादि मंत्र पढै फिर महाव्रतका यह मार्ग है महाव्रतंचैवपंथा, ऐसा कहै ॥ ६ ॥ फिर संहिताके 'विदामघवत्' 'महा व्रतस्य इषेत्वा ऊर्जेत्वा' ॥ ७ ॥ 'अग्नआयाहि, शन्नोदेवी' और उसका समाम्नाय 'वृद्धिरादैच् पाणि० सू० ॥ ८ ॥ और अथशिक्षां प्रवक्ष्यामि पंचसंवत्सरेति मय, रसतजगेत्येवगौग्मा, यह प्रतीक हैं इनको सम्यक् प्रकार कीर्त्तन करै ॥ ९ ॥ फिर अथातो धर्मजिज्ञासा, अथातो ब्रह्म जिज्ञासा, पढकर फिर नमोब्रह्मणे नमोस्त्वग्नयेनमः पृथिव्यै इत्यादि तच्छंयो इति उच्चारण करके पढै ॥ १० ॥ फिर देवताओंका तर्पण और प्रदक्षिणा करै प्रजापति, ब्रह्मा, वेद, देवता, ऋषि ॥ ११ ॥ सब छंद, ओंकार वषट्कार, व्याहृति, सावित्री ॥ १२ ॥ गायत्री, यज्ञ, द्यावापृथ्वी, अन्तरिक्ष, अहोरात्र, सांख्य ॥ १३ ॥ सिद्ध, समुद्र, नदी, पर्वत, ओषधि, वनस्पति, गन्धर्व अप्सरा ॥ १४ ॥ नाग, पक्षी, गौ, साध्य, विप्र, यक्ष, राक्षस, भूतादि कीर्त्तन कर तर्पण करै[1] ॥ १५ ॥ फिर निवीती (गलेमें यज्ञोपवीत डाल) ऋषियोंका तर्पण करै वह शतर्चि, माध्यमा, गृत्समद ॥ १६ ॥ विश्वामित्र वामदेव अत्रि भरद्वाज वशिष्ठ प्रगाथ, पावमान्य ॥ १७ ॥ क्षुद्र सूक्ता, महा सूक्ता, सनक सनंदन सनातन सनत्कुमार ॥ १८ ॥ कपिल आसुरि वोहलि, पंचशीर्षक, यह ऋषि तर्पण प्राचीनावीतिसे करै ॥ १९ ॥ सुमंतु जैमिनि वैशंपायन पैल सूत्रभाष्य भारत महाभारत ॥ २० ॥ धर्माचार्यास्तृप्यन्तु ऐसा कहै जानन्ति बाहविगार्ग्य गौतम शाकल्य ॥ २१ ॥ बाभ्रव्य माण्डव्यमाण्डूकेयास्तृप्यन्तु गर्गीवाचक्नवी तृप्यतु वडवा प्रातिथेयी तृप्यतु ॥ २२ ॥ सुलभामैत्रेयी तृप्यतु कहोला कौषीतक और महाकौषीतकको तर्पण करै ॥ २३ ॥ भरद्वाज पैंग्य महापैंग्य

---

१ ओं प्रजापतिस्तृप्यतु ॐ ब्रह्मातृप्यताम् ॐ वेदास्तृप्यन्ताम् इत्यादि तर्पणमें देखलो ।

सुज्ञयक सांख्यायन ऐतरेय, महैतरेय ॥ २४ ॥ बाष्फल शाकल वसुजात वंक्र औद-वाहि सौजामि शौनक आश्वलायन ॥ २५ ॥ तथा जो और आचार्य हैं वे सब तृप्तिको प्राप्त हों जो हमारे कुलमें हुए अपुत्र और गोत्री मरे हैं ॥ २६ ॥ यह मेरा दिया वस्त्र निष्पीडित जल ग्रहण करैं हे मुने यह आपसे ब्रह्मयज्ञकी विधिकही॥२७॥ हे ब्रह्मन्! जो इस यज्ञकी उत्तम विधि करता है उस साधकको सब वेदांग पाठका फल होता है ॥२८॥ फिर वैश्वदेव और नित्य श्राद्ध करै अतिथियोंको नित्य अन्न दान करै ॥ २९ ॥ फिर गोग्रास दे ब्राह्मणोंके सहित भोजन करै दिनके पंचम भागमें यह उत्तम कर्म करै ॥ ३० ॥ दिनके छठे सातवें भागमें इतिहास पुराण पढ़े आठवें भागमें लोकयात्रा करै फिर बहिः संध्या करै ॥ ३१ ॥ हे महामुने अब सायंसंध्या कहता हूं जिसके अनुष्ठानमात्रसे महामाया प्रसन्न होती है ॥ ३२ ॥ साधक आचमन कर प्राणायाम करकै स्थिर मौन हो पद्मासनसे बैठ योगयुक्त हो सायंकालमें स्थिरहो ॥ ३३ ॥ श्रुति स्मृति आदि कर्मादिमें सगर्भ प्राणायाम होता है, अगर्भ प्राणायाम ध्यान भावका और अमंत्र कहा है ॥ ३४ ॥ भूतशुद्धि आदि करकै अन्यथा कर्मदूर कर रेचक पूरक कुंभक द्वारास लक्षण (इष्ट) देवताका ध्यान करै ॥ ३५ ॥ इसप्रकार चतुर पुरुष संध्या कालमें ध्यान करकै वृद्धा सरस्वती देवी कृष्ण अंग कृष्णवस्त्र धारण किये ॥ ३६ ॥ शंख चक्र गदा पद्म हाथमें लिये गरुडवाहना अनेक रत्नोंके भूषणोंसे शोभित मंजीर मेखलाके शब्दसे व्याप्त ॥३७॥ अनर्घ्य रत्नके मुकुट धारे तारहारावलीसंयुक्त ताटंक कर्णभूषणमें बँधे माणिक्यकी कांतिसे शोभित कपोलवाली ॥ ३८ ॥ पीताम्बर धारिणी सच्चिदानन्द रूपिणी देवी सामवेदके सहित सत्यमार्गमें संयुक्त ॥ ३९ ॥ स्वर्लोकमें स्थित आदित्य मार्गमें गमन करनेवाली सूर्यमंडलसे आती हुई देवीको आवाहन करता हूं ॥४०॥ इसप्रकार देवीको ध्यान करकै संध्या संकल्पकरै आपोहिष्ठा और आग्निश्चेति मंत्रोंसे॥ ४१ ॥ और शेष पूर्ववत् आचमन आदि करै श्रीनारायणकी प्रीतिके निमित्त गायत्रीका उच्चारण करै ॥ ४२ ॥ शुद्ध मनसे साधक सूर्यके निमित्त अर्घ्यदे दोनोंचरण समानकर हाथमें अंजलिले ॥ ४३ ॥ मंडलमें स्थित देवताका ध्यान करकै क्रमसे अर्घ्यदे जो मूढात्मा ज्ञानसे वर्जितहो नीरमें अर्घ्य देता है वह ज्ञानरहित होता है ॥ ४४ ॥ जो स्मृतिके मंत्रोंको उल्लंघन करता है वह प्रायश्चित्ती होताहै फिर असावादित्य इस मंत्रसे सूर्योपस्थान करकै ॥ ४५ ॥ आसनपर बैठ गायत्रीका जप करै सहस्र वा पांचसौ श्रीदेवीके ध्यानपूर्वक जप करै ॥ ४६ ॥ और

प्रभात कालके समान उपस्थानादि करै सायंसंध्याके तर्पण क्रमसे परिकीर्त्तन करै ४७ सायं संध्यारूप सरस्वतीका वसिष्ठ ऋषि विष्णु देवता सरस्वती छन्द है ॥ ४८ ॥ और सायंसंध्याके तर्पणमें विनियोग है स्व कहकर पुरुषको सामवेदको ॥ ४९ ॥ मंडल हिरण्यगर्भका उच्चारण करके तथा परमात्मा, सरस्वती, ॥ ५० ॥ वेद-माता संकृति संध्या वृद्धा विष्णुरूपिणी उषसी ॥ ५१ ॥ निम्रुजी सर्व सिद्धीनां क-रणीसु सब मंत्रकी अधिपतिका भूर्भुवः पुरुष ॥ ५२ ॥ इस प्रकार संध्यामें श्रुति-सम्मत तर्पण करना चाहिये यह तुमसे पापनाशक सायंसंध्याका विधान कहा ॥ ५३ ॥ सब दुःख हरनेवाला व्याधिनाशक और मोक्षदायक है हे मुनि-श्रेष्ठ सदाचारमें यह सायंसंध्यामें प्राधान्य कहा है ॥ ५४ ॥ संध्या करनेसे देवी भक्तोंको इष्ट देती हैं ओं स्वःपुरुषं तर्पयामि, ओं सामवेदं तर्पयामि, ओं मंडलं तर्पयामि इत्यादि कहै ॥ ५५ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः २१.

श्रीनारायण बोले हे ब्रह्मन् अब गायत्रीका पाप नाशन यथेष्टफलदायक पुर-श्चरण कहता हूं ॥ १ ॥ पर्वतके अग्रभाग नदीके किनारे वेलकी मूल जलाशय गोष्ठ देवालय अश्वत्थ उद्यान तुलसीवन, ॥ २ ॥ पुण्यक्षेत्र गुरुके पार्श्व चित्त एकाग्र वाले स्थलमें पुरश्चरण करनेवाला मंत्री सिद्ध होता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ३ ॥ जिस किसीभी मंत्रका पुरश्चरण आरंभ करै तीनों व्याहृतियोंके सहित १०००० गायत्री जपै ॥ ४ ॥ नृसिंह सूर्य वाराहादि तांत्रिक, वा वैदिक पुरश्चरण कोई हो विनागायत्रीके जपे सब निष्फल होजाता है ॥ ५ ॥ सबही ब्राह्मण शाक्त हैं शैव और वैष्णव नहीं सब वेदमाता आदि शक्ति गायत्रीकी उपासना करते हैं ॥ ६ ॥ पुरश्चरणमें तत्पर मनुष्य यत्नसे इसप्रकार प्रथम १०००० सहस्र मंत्र जपकर उसै शोधन कर पीछे पुरश्चरणमें तत्परहो और मंत्र शोधनसे पहले अंग शोधन आत्मशो-धन करै सो तीन लाख वा एकलाख आत्मशोधनके निमित्त गायत्री जपै, यही पुरश्चरण भास्करमें लिखा है ॥ ७ ॥ विद्वान् आत्मतत्त्वशोधनके निमित्त तीन लाख गायत्रीका जप करै अथवा वेद कथित आज्ञानुसार एक लाख जपै ॥ ८ ॥ जो अपने और

मंत्रशोधमके विना जो कुछ क्रिया करता है वह सब निष्फल होती है यह श्रुति-कथित कारण है ॥ ९ ॥ तपसे देहको तापित करै पितृ और देवताओंका तर्पण करै कारण कि तपसेही स्वर्ग मिलता तपसे महानता होती है ॥ १० ॥ क्षत्रिय अपनी आपत्ति बाहुवीर्यसे तरजाता है धनसे वैश्य, शूद्र सेवासे और ब्राह्मण जप होमसे आपत्ति तरजाता है ॥ ११ ॥ हे विप्रेन्द्र इस कारण यत्नपूर्वक तप करै तापस शरीरशोषणको ही उत्तम तपस्या कहते हैं ॥ १२ ॥ इसको विधिमार्ग कृच्छ्रचान्द्रायणादि व्रतसे शोधे हे नारद अब अन्नशुद्धि कारणको कहता हूं सुनो ॥ १३ ॥ विना मांगे जो मिला, उञ्छ वृत्ति शुक्ला अयाचित, भिक्षा यह चार वृत्ति हैं इस प्रकार वैदिकोंने अन्नकी शुद्धि कही है ॥ १४ ॥ शुद्ध भिक्षा अन्नको लेकर उसके चार भाग करकै उसमें एकभाग ब्राह्मणको दूसरा गोग्रास ॥ १५ ॥ अतिथियोंको तीसरा भाग तदुपरान्त अपनी भार्याको दे और आप ले जिस आश्रमम हो उसीके अनुसार ग्रासविधि करकै ॥ १६ ॥ यथाशक्ति यथाक्रमसे पहले गोमूत्र प्रक्षेप करके फिर वानप्रस्थ और ग्रहस्थको ग्रास संख्याका विधान करना चाहिये ॥ १७ ॥ कुक्कुट मुर्गेके अंडके समान ग्रासका परिमाण कहा है गृहस्थीको आठ वनस्थको चार ब्रह्मचारीको यथेष्ट गोमूत्रसे विधिपूर्वक नौवार छःवार तीन वार प्रोक्षण करने चाहिये गायत्री मंत्र उतनीहीं वार पढना चाहिये ॥१८॥१९॥ दोनों हाथछिद्र रहित करकै सावित्री मंत्रको उच्चारण कर मनसे प्रोक्षणकी विधि कही है ॥ २० ॥ चौर चाण्डाल वैश्य क्षत्रिय इनके दिये अन्न अधम जाने इनके अन्नकी अधम विधि हैं ॥ २१ ॥ शूद्रका अन्न शूद्रसे संपर्क शूद्रके साथ भोजन जो करते हैं वह चन्द्र दिवाकरपर्यन्त घोर नरकमें जाते हैं ॥ २२ ॥ गायत्री छंद मंत्रके जितने संख्यावाले अक्षर हैं उतनेही लाख पुरश्चरण करना चाहिये यह गायत्री मंत्रका पुरश्चरण है और जो दूसरे मंत्रका पुरश्चरण हो वहां उसके अक्षरोंकी संख्या देखे ॥ २३ ॥ विश्वामित्र का मत २४ लाख पुरश्चरणका ह जैसे विना जीवके देह कोई कर्म करनेमें समर्थ नहीं होता इसी प्रकार पुरश्चरणके विना मंत्र है ज्येष्ठ आषाढ भाद्रमास पौषमास मलमाल ॥ २५ ॥ मंगल शनिवार व्यतिपात वैधृति योग अष्टमी नवमी षष्ठी चतुर्थी त्रयोदशी ॥ २६ ॥ चौदश अमावास्या प्रदोष रात्रि यम 'भरणी' अग्नि कृत्तिका रुद्र 'आर्द्रा' सर्प आश्लेषा इन्द्र ज्येष्ठा वसु धनिष्ठा श्रवण नक्षत्र तथा जन्मनक्षत्रमें ॥ २७ ॥ मेष कर्क तुला कुंभ मकर लग्न

पुरश्वरणमें यह मास तिथि नक्षत्र योग लग्न सब वर्जित हैं ॥ २८ ॥ जब चंद्रतारा (ग्रह) अनुकूल हों विशेष कर शुक्लपक्षमें पुरश्चरण करनेसे मंत्रसिद्धि होती है ॥ २९ ॥ पहले स्वस्तिवाचन कराय विधिपूर्वक नांदीश्राद्ध करके भोजनाच्छादनसे यत्नपूर्वक ब्राह्मणोंको तृप्तकर ॥ ३० ॥ गुरु आदिकी आज्ञासे आरंभ करै शिवकेस्थानमें लिंगके समीप पश्चिम मुख होय जप करै वा अन्य शिवस्थानोंमें जप करै ॥ ३१ ॥ काशीपुरी केदारनाथ महाकाल (उज्जैन) नासिक त्र्यम्बक महाक्षेत्र यह पांच द्वीप अर्थात् शंकरके प्रसिद्ध स्थान हैं ॥ ३२ ॥ सब द्वीपोंमें कूर्मासन कहा है और इन स्थलोंके अतिरिक्त कूर्म चक्रभी द्वीप है प्रारंभसे लेकर जबतक समाप्ति हो॥ ३३ ॥ प्रतिदिन बराबर जप करै न्यूनाधिक न करै मुनीश्वर पुरश्चरणको निरन्तरही करते हैं ॥ ३४ ॥ प्रभातसे लेकर विधिपूर्वक मध्याह्नतक जप करै मनका रोकना पवित्रता ध्यान मंत्रार्थका चिन्तन करना गायत्री छन्दके जितने अक्षर हैं उतनेही लाख पुरश्चरण करना चाहिये ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ पश्चात् उसका दशांश घृत दूध ओदनसे तथा तिल बेलपत्र फूल शर्करादि युक्त पदार्थोंसे हवन करै ॥ ३७ ॥ इसप्रकार दशांश होमसे गायत्रीका सेवन करै तो यह धर्म अर्थ काम मोक्षकी देनेवाली होती है ॥ ३८ ॥ नित्य निमित्त काम्य कार्यों तथा मोक्षमें परायण हुआ यही जपै इस लोक वा परलोकमें गायत्रीसे परे कोई पदार्थ नहीं है ॥ ३९ ॥ दूसरा पुरश्चरण कहते हैं मध्याह्नमें मितभोजन कर मौन रहै तीनवार स्नान कर अर्चनमें तत्पर रहै जलमें धीमान् अनन्य मन तीन लाख जप करै ॥ ४० ॥ इसप्रकार पहले पुरश्चरण कर पीछे काम्य कर्म वा स्वेच्छासे जबतक कार्य सिद्ध नहो जपादिक करता रहै ॥ ४१ ॥ सामान्य काम्य कर्मादिकी यथावत् विधि कहते हैं सूर्योदयमें स्नानकर प्रतिदिन सहस्र जप करै ॥ ४२ ॥ तो आयु आरोग्य ऐश्वर्य और धन बहुत मिलता है छः महीने तीन महीने वा एक वर्षके उपरान्त सिद्धिकी प्राप्ति होती है ॥ ४३ ॥ एक लाख घृतमें बोरे कमलोंके हवनसे मोक्ष अवश्य प्राप्त होती है इसमें सन्देह नहीं ॥ ४४ ॥ मंत्रसिद्धिके विना कर्त्ताकी जप होमादि सब क्रिया काम्यवा मोक्ष सब निष्फल होती हैं ॥ ४५ ॥ पचीस लाख दधि और क्षीरकी आहुती देनेसे इसी जन्ममें प्राणी सिद्ध होता है यह महर्षियोंका मत है ॥ ४६ ॥ अष्टांग योगकी सिद्धिसे मनुष्योंको जो फल प्राप्त होता है उस फलको मंत्र सिद्धिसे प्राप्त करसकता है इसमें विचारकी

आवश्यकता नहीं ॥ ४७॥ शक्त वा अशक्त जो नियत आहारसे मंत्र जपता है उस गुरुभक्तको छः महीनेमें सिद्धि होजाती है॥ ४८॥ एकदिन पंचगव्य एकदिन वायुभोजन एकदिन ब्राह्मणोंके यहांका अन्न खाकर गायत्री जप करै॥ ४९॥ गंगादितीर्थोंमें जाकर जलके अन्तरमें ही सौवार जपै और सौवार जपकर सब पापोंसे छूटजाता है ॥ ५० ॥ और चान्द्रायणादि कृच्छ्रव्रतोंका अवश्य फल पाता है राजा वा ब्राह्मण जो अपने घरमें तप करै ॥ ५१ ॥ गृहस्थ ब्रह्मचारी वानप्रस्थके अपने अधिकार परत्वसे यज्ञादि पूर्वक फल मिलता है ॥ ५२ ॥ मोक्षकी आकांक्षावाले श्रौतस्मार्तादि कर्म करते हैं, सात्विक सदाचार विद्वानोंसे शिक्षित ब्राह्मण ॥ ५३ ॥ प्रयत्नसे फल मूल उदक वा भिक्षा अन्न शुद्धखाय आठ ग्रास स्वयं भोजन करै ॥ ५४ ॥ इसप्रकार पुरश्चरण करके मंत्रसिद्धिको प्राप्त होता है, हे देवर्षे ! इसके अनुष्ठानसे दारिद्र नष्ट होजाता है ॥ ॥ ५५ ॥ इसके सुननेसे पुण्योंकी बडी सिद्धि प्राप्त होती है ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषायां एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः २२.

श्रीनारायण बोले हे देवर्षे ! अब वैश्यदेव विधान सुनो पुरश्चरणके प्रसंगसे जो हमको स्मरण हुआ है ॥ १ ॥ देवयज्ञ ब्रह्मयज्ञ भूतयज्ञ पितृयज्ञ, मनुष्ययज्ञ, यह पांचयज्ञ हैं ॥ २ ॥ गृहस्थको पांच हत्या लगती हैं चूल्हा चकी बुहारी ओखली घटकुंभ यहां जो चैंटी आदि मरती हैं इनकी पापशान्तिके निमित्त यज्ञ करै ॥ ३॥ चूल्हा लोहपात्र भूमि खर्पर इनस्थानोंमें वैश्वदेव न करै कुंड वा स्थंडिल स्थानमें करै ॥ ४ ॥ हाथ शूर्प मृगचर्म इनसे अग्निको न फूंके किन्तु मुखकी फूंकसे धमन करै कारण कि मुखसे अग्नि उत्पन्न हुई है ॥ ५ ॥ वस्त्रसे बाले तौ व्याधिहो शूर्पसे धननाश, हाथसे मृत्यु होती है मुखसे कर्मसिद्धि होती है ॥ ६ ॥ फल दही घी मूल शाक उदक आदिसे करै यदि यह प्राप्त नहों तौ जिस किसी काष्ठ मूल तृणादिसे करै ॥ ७ ॥ तेल क्षारको छोडकर सर्पि (घी) दही दूधसे हवन करै यह नहों तो जलसेही हवन करै ॥ ८ ॥ शुष्क और बासी अन्न हवन करनेसे कुष्ठी उच्छिष्टसे शत्रुओंके वशीभूत रूखे पदार्थोंसे दरिद्र और क्षारसे हवन करै तौ नरकमें जाता है ॥ ९ ॥ भस्मयुक्त अंगारोंको अन्नपाचक अग्निके उत्तर देशसे लावै यह लेकर

वैश्वदेवके निमित्त हवन करै क्षारादि मिश्रित न करै ॥ १० ॥ जो मूर्ख विना वैश्व-देव किये भोजन करते हैं वह मूढ कालसूत्रमें नीचेको मुखकर गिरते हैं ॥ ११ ॥ शाकपत्र मूल फल जिसवस्तुको भोजन करै उसे अग्निमें हवन करै ॥ १२ ॥ बिना वैश्वदेवकिये भिक्षुकके भिक्षा करनेके निमित्त आनेमें वैश्वदेव भाग निकालकर भिक्षा देकर विसर्जन करै ॥ १३ ॥ अतिथि वैश्वदेवका दोष दूर करसक्ता है पर भिक्षुके दोषको वैश्वदेव दूर नहीं करसक्ता. जो उसको भिक्षा न दीजाय ॥ १४ ॥ यति और ब्रह्मचारी यह दोनों पकान्नके स्वामी हैं, उनको विनादिये भोजन करकै चान्द्रायण करना पडता है ॥ १५ ॥ वैश्वदेव करनेके उपरान्त गोग्रास दे हे देवर्षे! सुनो उसका विधान कहता हूं ॥ १६ ॥ सुरभी वैष्णवी माता नित्य विष्णुपदमें स्थित है मैं गोग्रासको देताहूं सुरभी ग्रहण करै ॥ १७ ॥ "गोभ्यश्चनमः" ऐसा कहकर गौकी पूजा गौको अर्पण करै, गोग्राससे गोमाता सुरभी प्रसन्न होती है ॥ १८ ॥ फिर गोदोहन कालतक अर्थात् जितनी देरतक गौ दुही जाती है उतने समयतक अतिथिकी प्रतीक्षा करता हुआ आँगनमें स्थित रहै कि, कोई आवे तो उसे कुछ भागदे भोजन करै अतिथी जिसके घरसे भग्न आशाहोकर लौटजाता है ॥ १९ ॥ वह उसको अपने पाप देकर उसका पुण्य लेकर चलाजाता है माता पिता गुरु भ्राता दास आश्रित ॥ २० ॥ अभ्यागत अतिथि अग्नि यह पोष्यवर्ग कहेगये हैं यह जानकर जो मूढ गृहाश्रम नहीं करता ॥ २१ ॥ उसको धर्मसे यह लोक और परलोक नहीं है धनवान्को जो फल सोमयागसे प्राप्त होता है ॥ २२ ॥ दरिद्र उसको पंचयज्ञ द्वारा विना ही परिश्रम प्राप्त करता है. हे मुनिश्रेष्ठ! अब प्राणाग्निहोत्रको कहूंगा ॥ ॥ २३ ॥ जिसको जानकर यह प्राणी जन्म मृत्यु जरा आदिसे छूटजाता है इसके ज्ञानसे मनुष्योंके पातक नष्ट हो जाते हैं ॥ २४ ॥ जो विधिपूर्वक भोजन करता है वह तीनों ऋणसे छूट जाता है और वह ब्राह्मण (२१) कुलको उद्धार करता है ॥ २५ ॥ सब यज्ञोंके फलकी प्राप्ति सब लोकोंकी प्रीति होती है हृदयकम-लको अरणी मन मथानी ॥ २६ ॥ वायुकी रज्जूकरकै अग्निको मथै चक्षुको अध्वर्यु करै तर्जनी मध्यमा अंगुष्ठसे प्राणकी आहुती दे ॥ २७ ॥ मध्यमा अनामिका अंगुष्ठसे अपानकी आहुतीदे कनिष्ठिका अनामिका अंगुष्ठसे व्यानकी आहुती दे ॥ २८ ॥ कनिष्ठिका तर्जनी अंगुष्ठसे उदानकी आहुती दे सब अंगुलियोंसे अन्नको ग्रहण करकै समानकी आहुती दे ॥ २९ ॥ सबके अन्तमें स्वाहा लगाकर 'ओं प्राणायस्वाहा'

इसप्रकार नाममंत्रोंसे पढै मुखमें आहवनीय हृदयमें गार्हपत्य ॥ ३० ॥ नाभिमें दक्षिणाग्नि अधस्थानमें आवसथ्य कहैं वाक् होता प्राण उद्गाता चक्षु अध्वर्यु॥ ३१॥ मन ब्रह्मा श्रोत्र आग्नीध्र अहंकार पशु प्रणव पय है ॥ ३२ ॥ बुद्धि पत्नि है जिसके आधीन यह गृहाश्रमी है हृदय वेदी रोम दर्भ है स्रुक् स्रुव दोनों हाथ हैं प्राण मंत्रोंका ऋषि सुवर्णवर्ण क्षुधाग्निक ऋषि है आदित्य देवता गायत्री छन्द है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ यह उच्चारण कर "प्राणायस्वाहा" कहे "इदमादित्य देवायनमः" यह भी कहै ॥ ३५॥ अपान मंत्रका धवलाकार गोक्षीर श्रद्धा अग्नि ऋषि सोम देवता है ॥ ३६॥ उष्णिक् छन्द है यह कह "अपानाय स्वाहा सोमाय इदं च नमम" यह इसमें ऊह करै ॥ ३७ ॥ व्यान मंत्रका अम्बुजवर्ण हुताशन ऋषि है अग्नि देवता अनुष्टुप् छन्द है ॥ ३८॥ "व्यानायस्वाहा अग्नय इदं नमम" कहै उदान मंत्रका शक्र गोप स-वर्ण ।। ३९ ॥ अग्नि ऋषि कहा है वायु देवता बृहती छन्द है "उदानाय स्वाहा ।। ४० ।। वायवेचेदं नमम" कहे समान वायु मंत्रका विद्युद्वर्ण विरूपक ।। ४१ ॥ अग्नि ऋषि है. पर्जन्य देवता पंक्ति छन्द है "समानायस्वाहा ।। ४२ ।। पर्यन्यायेदं नमम" कहकर छठी आहुती दे वैश्वानर महान् अग्निमें ऋषि कहा है ।। ४३ ।। गायत्री छन्द आत्मा देवता है "ओं ब्रह्मणे स्वाहा" इसप्रकार कहकर "इदं नमम" कहे ।। ४४ ।। यह प्राणाग्निहोत्र है यह जानकर विधि करनेसे ब्रह्मत्वको प्राप्त होता है ॥ ४५ ॥ यह प्राणाग्निहोत्रविधा संक्षेपसे कही है ॥ ४६ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भाषायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः २३.

नारायण बोले "अमृतापिधानम्" यह कहकर अर्थात् हे अमृतरूपी जल ! तुम हमारे भक्त अन्नके आच्छादकरूप हो, यह कह भोजनान्तमें एक गंडूष जलपान करै फिर पात्रोंसे उच्छिष्ट भागियोंको दे ॥ १ ॥ जो कोई हमारे कुलमें बंधु आदि तथा दासादि अन्नके कांक्षी हैं वे सब मेरे दिये अन्नसे तृप्तिको प्राप्त हों ॥ २ ॥ जो दुःखदायक अपुण्यस्थान है उसमें पद्मों अरबों वर्षों रहनेवाले अर्थियोंको दिया हुआ यह उदक प्राप्त हो इससे उनकी अक्षय तृप्ति हो यह मंत्र पढकर जल दे ॥ ३ ॥ पवित्रग्रंथिको छोडकर मंडलभूमिमें निक्षेप करै जो उस कुशग्रंथिके

पात्रमें डालता है वह ब्राह्मण पंक्तिदूषक है ॥ ४ ॥ जो उच्छिष्ट होकर सुना और शूद्रको स्पर्श किया हो वा उच्छिष्टको छुआ हो तो एक रात व्रत रहकर पंचगव्यसे शुद्धि होती है ॥ ५ ॥ जो स्वयं उच्छिष्ट अनुच्छिष्टसे स्पर्श होजाय तो स्नान करना चाहिये और एक आहुति देनेसे कोटि यज्ञका फल होता है ॥ ६ ॥ पांच आहुतिसे पांच कोटि यज्ञका फल कहा है तथा अनन्त होता है जो प्राणाग्नि होत्र करने वालेको अन्नदान करता है ॥ ७ ॥ दाता भोक्ताको जो फल है उससे वह दोनोंही स्वर्वगामी होते हैं ॥ ८ ॥ जो ब्राह्मण विधानसे पवित्र हाथकर खाता है उसको प्रत्येक ग्रासमें पंचगव्यके समान फल होता है ॥ ९ ॥ पूजाकालमें जो जप तर्पण तीनों काल कर्ता है होम ब्राह्मणभोजन मार्जनादि करता है उसको पंचांग पुरश्चरण कहते हैं ॥ १० ॥ अधःशयन करता हुआ धर्मात्मा इन्द्रिय और क्रोध जय किये लघु और मिष्टभोजी विनीत शान्त चित्त ॥ ११ ॥ नित्यही तीन सवनमें स्नान करनेवाला नित्य शुभ भाषण करनेवाला हो, स्त्री शूद्र पतित व्रात्य नास्तिक उच्छिष्टोंसे भाषण करता है ॥ १२ ॥ तथा चाण्डाल इनसे हे मुनिसत्तम ! भाषण न करै. जप होम अर्चनादिमें प्रवृत्त पुरुषको प्रणाम करै उससे भाषण न करै॥ १३ ॥ मैथुनका आलाप और उसकी गोष्टीभी त्यागन करै कर्म मन वचनसे यह सब अवस्थाओंमें त्यागदे ॥ १४ ॥ सर्वत्र मैथुनके त्यागसेही ब्रह्मचारी होता है, राजा और गृहस्थ दोनोंको ब्रह्मचर्य कहा है ॥ १५ ॥ ऋतुस्नाता होनेपर जो विधिपूर्वक स्त्री गमन है और संस्कार की हुई भार्यामें प्रयत्नसे ऋतु देखकर ॥ १६ ॥ रात्रिमें जो गमन करता है वह ब्रह्मचर्य दूरकरनेवाला नहीं है विना देव ऋषि पितृ ऋणके शोधे संतान उत्पन्न किये विना ॥ १७ ॥ और यज्ञोंके किये विना मोक्षकी इच्छा करने वाला अधोगमन करता है. श्रुतिने उसका जन्म अजागलस्तनकी समान निरर्थक कहा है ॥ १८॥ इसकारण ब्राह्मणको तीनों ऋणका शोधन करना चाहिये, देवता ऋषि और पितरोंके ऋणी हुए पुरुष ॥ १९ ॥ ब्रह्मचर्यसे ऋषियोंके, तिलोदकसे पितरोंके और यज्ञकरनेसे देवताओंके ऋणसे छूटते हैं, इसकारण अपने आश्रमका धर्म आचरण करै ॥ २० ॥ क्षीर आहारी फलाहारी शाकाहारी हविष्यभोजी वा भिक्षाशी कृच्छ्रचान्द्रायण किये हुए जप करै ॥ २१ ॥ लवण खार अम्लपदार्थ, गृंजन, कांस्यपात्रमें भोजन, ताम्बूल भक्षण, दोवार भोजन अशुद्ध वस्त्र धारण प्रमाद ॥ २२ ॥ श्रुति स्मृतिसे विरोध और रात्रिमें जप यह सब वर्जित हैं द्यूत स्त्री

और अपवादमें वृथा समय न गमावै ॥ २३ ॥ स्तोत्रपाठ तथा शास्त्र आगमके अवलोकनसे देवपूजा वितावै भूमिशय्या, ब्रह्मचर्य मौनचर्या ॥ २४ ॥ नित्य तीनों सवनमें स्नान शूद्रकर्मसे वर्जना नित्यपूजा नित्यदान आनंद स्तुति कीर्तन ॥ २५ ॥ नैमित्तिक अर्चन गुरुदेवतामें विश्वास यह बारह धर्म जप निष्ठके कहे हैं जिससे सिद्धि होती है॥ २६ ॥ नित्य सूर्यका उपस्थानकर सन्मुख गायत्री जपै, देवताकी प्रतिमा वा अग्निमें अर्चन करै ॥ २७ ॥ स्नान पूजा जप ध्यान होममें तथा तर्पणमें तत्पर निष्कामहो देवतामें सब कर्म अर्पण करदे॥ २८ ॥ इसप्रकारसे नियमोंसे पुरश्चरण करै और प्रसन्न मन हो द्विज जप होममें परायण रहै॥ २९ ॥ तप और अध्ययनमें युक्त प्राणियोंपर दया करनेवाला रहै तपसे ही स्वर्ग और तपसे ही महत्व प्राप्त होता है ॥ ३० ॥ जितेन्द्रिय तपस्वीके सबकर्म सिद्ध होते हैं विद्वेषण, संहरण, मारण, रोगनाशन॥ ३१ ॥ जिस २ निमित्त ऋषियोंने देवता ओंकी स्तुति की है उनके वह वह काम सिद्ध होते हैं ॥ ३२ ॥ वह कर्म और उन कर्मोंके विधान कहता हूं पहले पुरश्चरण कर्मोंकी सिद्धि करने वाला है ॥ ३३ ॥ पहले स्वाध्यायके अभ्यासके आदिमें ब्राह्मण प्राजापत्य व्रत करै, बाल, डाढी, मूछ, लोम, नख इनको वपन कराय स्नानकर पवित्रहो ॥ ३४ ॥ दिनरात वाणीको रोके पवित्र रहै सत्यवादी पवित्रहो व्याहृतियोंका जप करै ॥ ३५ ॥ पहले ओंकारपूर्वक सावित्रीको जपकरै फिर पवित्र पापनाशी 'आपोहिष्ठा' सूक्तका जपकर ॥ ३६ ॥ पुनन्ती, स्वस्तिमती, पावमानी ऋचाओंका पाठ करै, कर्मोंके आदि अन्तमें इन सबका प्रयोग करना चाहिये ॥ ३७ ॥ सहस्रसौ अथवा दश गायत्री जपै ओंकार तीनों व्याहृतिपूर्वक १०००० दशसहस्र गायत्री जपै ॥ ३८ ॥ जलसे आचार्य ऋषि छन्द देवताओंका तर्पण कर, अनार्य भाषाका भाषण न करै, शूद्र तथा गर्हितोंसे भाषण न करै ॥ ३९ ॥ उदकी (रजस्वला) स्त्री, पतित अन्त्यज इनसे भाषण न करै, ब्राह्मण आचार्य गुरुसे निन्दा वा द्वेष न करै ॥ ४० ॥ माता पिताका द्वेष वा उनका तिरस्कार कभी न करै और सब कृच्छ्रोंमें भी यही विधि करै ॥ ४१ ॥ प्राजापत्य कृच्छ्र संतापन पराक् कृच्छ्रकी विधि चान्द्रायणकी विधि करनेसे॥ ४२॥ ब्रह्महत्यादि पांच महापातक और सब पापोंसे मुक्त होता है, तप्तकृच्छ्र व्रतसे क्षणमें सब पाप दूर होते हैं ॥ ४३ ॥ तीन चान्द्रायणसे पवित्रहो ब्रह्मलोकमें गमन करता है, आठ करनेसे वरदायक देवताओंका दर्शन कर सकता है ॥ ४४ ॥ दश चान्द्रा-

यर्णोंसे छन्दोंको जानकर सब कामनाओंको प्राप्त होता है. तीन दिन प्रभात तीन दिन संध्यासमय तीन दिन अयाचित भोजन ॥ ४५॥ तीन दिन निराहार रहना. इसप्रकार बारहदिन करनेसे प्राजापत्य व्रत होता है. गोमूत्र गोबर दूध दही घी कुशाका जल यह पहलेदिन सेवन कर ॥ ४६॥ परदिन एकरातका उपवास करै यह कृच्छ्र सांतपन है और पूर्ववत् तीन दिन एक २ ग्रास खाय ॥ ४७ ॥ फिर तीन दिन उपवास करै यह कृच्छ्र व्रत है यही तिगुना करनेसे महासांतपन होता है. तीनदिन गोमूत्र ३ दिन गोबर ३ दिन दही ३ दिन क्षीर ३ दिन घी पीनेसे महासांतापन व्रत होता है यह सब पाप दूर करता है ॥ ४८॥ जल क्षीर घृत इनको प्रति तीन दिन गरमकर पिये तथा वायु आहार तीनदिन करै एकबार स्नान और सावधान रहै यह तप्तकृच्छ्र व्रत होता है ॥ ४९ ॥ जो प्राजापत्य विधिसे नियत होकर जितेन्द्रियहो जलमात्र पान कर रहै बारह दिन भोजन न करै ॥ ५० ॥ यह पराक् नामक कृच्छ्र सब पापका दूर करनेवाला है. कृष्णपक्षमें एक एक ग्रास घटावै शुक्लपक्षमें एक २ बढावै ॥ ५१ ॥ अमावास्याको भोजन न करै यह चान्द्रायणकी विधि है. तीनों सवनमें स्नान करै यह चान्द्रायणहै ॥५२॥ आह्निक कर्म समाप्त कर चार पिण्ड प्रभात और चारपिण्ड संध्याको भोजन करै इसका नाम शिशुचान्द्रायणहै॥५३॥ जो मध्य दिनमें आठ आठ समान ग्रास भोजन करै नियतात्मा होकर हविष्य ग्रास भोजन करै यह यतिचान्द्रायण है ॥ ५४ ॥ इसको रुद्र आदित्य और वसुभी करते हैं इसीसे सब देवता निरापद हुए थे और मरुतभी इसीको करके प्रसन्न हुए थे ॥ ५५ ॥ यह एक एक विधिपूर्वक किया हुआ सातरातमेंही क्रमसे त्वचा, रुधिर, मांस, अस्थि, मेद, मज्जा, वसा, एक २ धातुको पवित्र करता है ॥ ५६ ॥ निःसन्देह यह सात रातमें एक २ शुद्ध होजाते हैं, इन व्रतोंसे पवित्र हो नित्यकर्म करै ॥ ५७ ॥ इस प्रकार शुद्धहुएके कर्म अवश्य सिद्ध होते हैं. सत्यवादी जितेन्द्रिय शुद्धात्मा होकर कर्मकरै ॥ ५८ ॥ तौ वह निःसन्देह अपनी इष्ट कामनाओंको प्राप्त होता है, सब कर्मोंसे रहित हो तीनरात उपवास करै ॥ ५९ ॥ अथवा तीनरात व्रत करकै कर्म समाप्त करै. इसप्रकार विधान करनेसे पुरश्चरणका फल मिलता है ॥६०॥ गायत्रीका पुरश्चरण सब कामना देनेवालाहै. हे देवर्षे! यह महापापनाशक व्रत तुमसे कहा॥६१॥ मंत्रीको पहले देह शोधनके निमित्त व्रत करना चाहिये फिर पुरश्चरण करनेसे सब

फलका भागी होता है॥६२॥ यह आपसे गुह्य पुरश्चरणका विधान कहा यह प्रत्येकसे न कहना श्रद्धावानसे कहना कारण कि, यह श्रुतिका सार है ॥ ६३ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भाषायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः २४.

नारदजी बोले हे नारायण महाभाग ! संक्षेपसे गायत्रीके शान्ति आदि प्रयोगोंको कहिये आप करुणा सागर हो ॥ १ ॥ नारायण बोले हे नारद ! आपने बड़ी गुप्त बात पूँछी है, यह दुष्ट और चुगलोंसे कभी न कहनी चाहिये ॥ २ ॥ शान्तिके निमित्त ब्राह्मण पयमें भिजोकर सहस्र समिधाओंसे जो शमीवृक्षकी हों हवन करै तो भूत रोग ग्रहादि शान्त होते हैं ॥ ३ ॥ भूतरोगादिकी शान्तिमें अश्वत्थ उदुंबर पिलखन न्यग्रोधादि वृक्षकी गीली समिधा वा क्षीरवृक्षके खंडोंसे हवन करै ॥ ४ ॥ हवनमें सर्वत्र गायत्री पढै यह अनुष्ठान (४९) दिनपर्यन्त करै फिर 'सूर्यं तर्पयामिनमः' इसमंत्रसे सूर्यको तर्पण कर हाथोंसे जलदे तो शांतिकी प्राप्ति होती है. और जंघापर्यन्त जलमें जपनेसे सब दोष शान्त होते हैं ॥ ५ ॥ कंठपर्यन्त जलमें जपै तो प्राणान्तका भय छूटता है सब शांति कर्मोंमें जलमें स्थित हो जप करना चाहिये॥ ६ ॥ अब प्रयोगान्तर कहते हैं, सोना—चांदी, तांबा वा क्षीरिवृक्ष वा मृत्तिकाके अच्छिद्र पात्रमें पंचगव्य स्थापन कर ॥ ७ ॥ प्रज्वलित अग्निमें क्षीरि वृक्षके काष्ठोंकी समिधाके सहित पंच गव्यका हवन करै ॥ ८ ॥ प्रत्येक आहुतीमें पंचगव्यका स्पर्श करता हुआ पीछे पात्रमें स्थित पंचगव्यको गायत्री मंत्रसे सहस्र जपकर अभिमंत्रणकर गायत्री मंत्रसे प्रोक्षण करै ॥ ९ ॥ और बलिदान करकै परदेवताका ध्यान करै इससे अभिचारसे प्रगट हुई कृत्या नष्ट होती है ॥ १० ॥ जो इसप्रकार आचरण करते हैं, वह देवता भूत पिशाच गृह ग्रामपुर राज्य सबको वशी करता है और सबसे छूट जाता है ॥ ॥ ११ ॥ वक्ष्यमाण शूलके चतुरस्र मण्डलके लिखने और उसके भूमिमें गाडनेसे पूर्वोक्त कृमि आदि उपद्रव होजाते हैं, चतुरस्रमण्डलमें अष्टगंधसे शूलको लिखकर ॥ १२ ॥ गायत्रीसे सहस्रवार अभिमंत्रित कर सब शांतिके लिये उसे भूमिमें गाडदे सोना चांदी वा तांबेका घडा ॥ १३ ॥ वा मृत्तिकाका नया साबत घट लेकर उसे दिव्य सूत्रसे वेष्टित कर स्थंडिल वा रेतेके समीप रख उसको मंत्रका ज्ञाता जलसे

पूर्ण करै ॥ १४ ॥ चारों ओर दिशाओंके तीर्थोंके जल ब्राह्मणोंद्वारा मँगाय इलायची, चन्दन, कपूर, जाती, पाटल, मल्लिका ॥१५॥ बेलपत्र, विष्णुक्रान्त, सहदेई, व्रीहि, जौ, यव, तिल, सरसों, क्षीरवृक्ष, पीपल, गूलर, पिलखन, न्यग्रोधादि ' कोंके फलोंको भी घटमें डालदे ॥१६॥ यह सब इसप्रकार लेकर उसमें कुशकूर्चि 'सताईस कुशाओंकी ग्रंथि ' डालकर फिर विप्र स्नान करने उपरान्त उसको सहस्र गायत्री मंत्रसे अभिमंत्रण करले ॥ १७॥ तीनों वेदके ज्ञाता ब्राह्मण सब ओरसे सौरमंत्रोंको पढते रहैं इस जलको प्रोक्षणकर भूतादि रोगग्रस्तको पिलावे और उसका अभिषेक करै ॥ १८ ॥ तो वह भूतरोगादि अभिचारसे मुक्त होकर सुखी होता है. इस अभिषेकसे मृत्युके मुखमें प्राप्त हुआ भी प्राणी छूटता है ॥ १९ ॥ इसको विद्वान् राजा दीर्घजीवनकी इच्छासे अवश्य करै. हे मुने! इस अभिषेकमें ऋत्विजोंको सौ गायें देनी चाहिये ॥ २० ॥ अथवा जिस प्रकार वे संतुष्ट होजायँ इसप्रकार दक्षिणादे. यदि अभिचारका महाभय हो तो हे ब्राह्मण ! शनिवारके दिन अश्वत्थके नीचे बैठकर सौचार गायत्रीमंत्र जपै ॥ २१ ॥ वह भूतरोगादिके उपचार और महाभयसे छूट जाता है, जो ब्राह्मण पर्व पर्वमें अर्थात् पोरी पोरीसे काटी हुई गुडूची (गिलोय) को दूधके सहित हवन करता है ॥ २२ ॥ तो यह मृत्युंजय होम सब व्याधि नाशक है ज्वरशांतिके निमित्त आमके पत्ते और दूधका हवन करै ॥ २३ ॥ दूध दही घी इन तीन मधुके हवनसे राजयक्ष्मा दूर होती है. वचको दूधमें भिजो हवन करनेसे क्षयरोग दूर होता है ॥ २४ ॥ पायस अन्न होमपूर्वक सूर्यको निवेदन कर पश्चात् उसे प्राशन कर राजयक्ष्मा दूर होती है ॥ २५ ॥ अथवा क्षयशान्तिके निमित्त सोमलताकी पोरी छेदन कर अमावास्याको पयके सहित हवन करै ॥ २६ ॥ शंखवृक्षों कौंडिह्लाके फूलोंसे हवन करनेसे कुष्ठ और चिरचिटेके बीजोंसे हवन करनेसे अपस्मार रोग दूर होता है ॥ २७ ॥ क्षीरी वृक्षकी समिधाओंके होमसे उन्माद नष्ट होता है उदुम्बर (गूलरकी) समिधाओंके होमसे अतिमेह (प्रमेह) भेद नष्ट होता है ॥ २८ ॥ मधु और गन्नेके रसका हवन करै तो प्रमेह, दूध दही घीके होमसे मसूरिका पाद रोग नष्ट होता है ॥ २९ ॥ कपिलाके घृतसे हवन करनेसे मसूरिका शान्त होती है उदुम्बर वट अश्वत्थसे गौ गज अश्वका रोग दूर होता है ॥ ३० ॥ पिपीलिका वल्मीक, मुहाल, इनका घरमें विशेष उपद्रव हो तो सौ सौ शमीकी समिधाओंसे घी सहित हवन करै ॥ ३१ ॥ तो शांति होती है शेष

अन्नकी बलि दे मेघगर्जन, भूकम्प, आदिमें वनके वेतकी एक लक्ष आहुती दे ॥ ३२ ॥ इसप्रकार सात दिन हवन करनेसे राज्य सुखी होता है, सौवार मट्टीके ढेलेको जपकर जिस दिशामें फैंक दे ॥ ३३ ॥ उसको वहां अग्नि और पवनका भय नष्ट होता है कारागारमें मनसेही इसको जपनेसे बँधुआ बंधनसे छूट जाता है कारण कि, वहां सामग्रीका अभाव है इससे मनसेही जपै ॥ ३४ ॥ भूतरोग विषादिमें कुशसे स्पर्श कर जपै तो व्याधि जाय और अभिमंत्रित जलपानसे भूतादि रोग नष्ट होते हैं ॥ ३५ ॥ भूतादिकी शांतिके निमित्त १०० वार अभिमंत्रित कर भस्म धारण करै सावित्रीसे अभिमंत्रित करके शिरपर भस्म धारण करै ॥ ३६ ॥ वह सब व्याधिसे मुक्त हो सौ वर्ष जीता है स्वयं समर्थ नहो तो दक्षिणा देकर ब्राह्मणोंसे शांति करावै ॥ ३७ ॥ पुष्टि श्री लक्ष्मी फूलोंके हवनसे प्राप्त होती है. श्रीकामनावाला लालकमलोंसे हवन करै ॥ ३८ ॥ वा जातीके नये पत्तोंसे हवन करै वा शालितंडुलके हवनसे भी लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है ॥ ३९ ॥ अथवा बेलवृक्षकी समिधा वा उसके खण्ड पत्र पुष्प फलोंसे हवन करनेसे ॥ ४० ॥ वा मूलके खण्डोंसे हवन करनेसे महालक्ष्मीकी प्राप्ति होती है बेलकी समिधा दूध और घीके साथ ॥ ४१ ॥ सौ सौ वार सप्ताहतक हवन करनेसे शांतिकी प्राप्ति होती है पय दधि घृतके साथ लाजाहोम करनेसे कन्याकी प्राप्ति होती है ॥ ४२ ॥ इसी विधानसे कन्या मनोवांछित वरको प्राप्त होती है सप्ताहभर प्रतिदिन सौ लाल कमलोंका हवन करै तो सुवर्णकी प्राप्ति होती है ॥ ४३ ॥ सूर्यबिंबमें जलका तर्पण करनेसे जलमें गुप्त हुए सुवर्णकी प्राप्ति होती है, अन्नके हवनसे अन्न और व्रीहिके हवनसे व्रीहिपति होता है ॥ ४४ ॥ बछडेके गोबरके चूर्णको हवन करनेसे पशुकी और प्रियंगु घी दूधके हवन करनेसे प्रजाकी प्राप्ति होती है ॥ ४५ ॥ होमपूर्वक पायसान्न सूर्यको निवेदन कर फिर ऋतुस्नाता स्त्रीको भोजन करानेसे परम पुत्रकी प्राप्ति होती है ॥ ४६ ॥ पलाशसमिधाके गीले प्ररोह हवन करनेसे वा क्षीरवृक्षकी समिधाओंके हवनसे आयुकी प्राप्ति होती है ॥ ४७ ॥ दूध दही घी इनके साथ क्षीरवृक्षके लाल गीले अंकुरोंका हवन तथा सौ व्रीहियोंका हवन करनेसे सुवर्ण और आयुकी प्राप्ति होती है ॥ ४८ ॥ सौ सुवर्ण कमलोंके हवनसे वा दूर्वा, दूध, मधु, घी इन एक एकके हवनसे आयु मिलती है ॥ ४९ ॥ प्रतिदिन सौ सौ वार सप्ताह भर इसी हवनसे अकाल मृत्यु दूर होती है जो मनुष्य दूधके

आहारसे सातदिन मंत्र जपै तो विजयी होता है ॥ ५० ॥ जो न्यग्रोधकी सौ सौ समिधा पायसके साथ सप्ताहभर हवन करै तो अपमृत्यु दूर होती है ॥ ५१ ॥ यह प्रतिदिन सौ सौ आहुति देनेसे एक सप्ताहमें अपमृत्यु दूर करता है जो मनुष्य क्षीरका आहार कर एक सप्ताहतक इसको जपै वह विजयी होता है ॥ ५२ ॥ और विना भोजन किये मौन हो तीन रात जपै तो यमके भयसे छूट जाता है और जो जलमें निमग्न होकर जपै तो शीघ्रही मृत्युभय छूट जाता है ॥ ५३ ॥ बिल्वके निकट एक महीने जपै तो राज्य मिलता है बिल्वके मूल फल पल्लव हवन करनेसे राज्य मिलता है ॥ ५४ ॥ एक महीनेतक सौ पद्म प्रतिदिन हवन करनेसे अकटक राज्य मिलता है शालियुक्त यवागूका हवन करनेसे ग्रामकी प्राप्ति होती है ॥ ५५ ॥ अश्वत्थकी समिधाओंका हवन कर युद्धमें जय प्राप्त होती है आककी समिधाओंसे हवन करनेसे सर्वत्र विजयी होता है ॥ ५६ ॥ वेतके पत्र पुष्प दूधके साथमें सौवार प्रतिदिन हवन करै तो सातदिनमें वर्षा होती है ॥ ५७ ॥ वा नाभिपर्यन्त जलमें सात दिन जपनेसे वर्षा होती है जलमें सौवार भस्मका हवन करनेसे महावृष्टि निवृत्त होती है ॥ ५८ ॥ ढाककी समिधाओंके हवनसे ब्रह्मतेज और ढाकके फुलोंसे सब इष्टकी प्राप्ति होती है ॥ ५९ ॥ दूधके हवनसे मेधा, घृतसे बुद्धि, अभिमंत्रणकर ब्रह्मीका रसपीनेसे मेधा प्राप्त होती है ॥ ६० ॥ पुष्पके हवनसे वास [सद्गंध] तंतुओंसे उसी प्रकारका पटलाभ होता है और मधु मिले लवणसे हवन करनेसे इष्ट वशमें होता है ॥ ६१ ॥ बेलके फूलोंको मधु मिलाय होमें तो अभीष्ट वशीभूत होता है, जो जलमें स्थित हो नित्य अंजलिसे अपने आपको सिंचन करता है ॥ ६२ ॥ वह मति आरोग्य आयुष्य अग्रता और स्वस्थताको प्राप्त होता है, जो ब्राह्मण दूसरेके उद्देशसे करै वहभी पुष्टिको प्राप्त होता है ॥ ६३ ॥ और जो श्रेष्ठ विधिसे प्रतिदिन एक सहस्र महीनेभरतक पवित्र स्थानमें आयुकी कामनासे जपे तो उसको आयुकी प्राप्ति होती है ॥ ६४ ॥ आयु आरोग्यकी कामनासे ब्राह्मण दोमहीने जपे तो आयु आरोग्य होती है, लक्ष्मी तीन महीने जपकरनेसे मिलती है ॥ ६५ ॥ चारमहीने जपसे आयु लक्ष्मी पुत्र स्त्री यश प्राप्त होताहै. पांच महीने जपसे पुत्र दारा आयु आरोग्य श्री विद्या प्राप्त होती है ॥ ६६ ॥ इसीप्रकार उत्तरोत्तर जप करनेसे अधिकतर कामनाओंकी प्राप्ति होती है, एक चरणसे ऊर्ध्व भुजाकर निराश्रय ॥ ६७ ॥

तीन महीने जपकरनेसे सब कामनाओंको प्राप्त होता है, इसप्रकार सौसे सहस्रतक जप करनेसे सब मनोरथ मिलते हैं ॥ ६८॥ जो प्राण अपानको रोंक कर प्रतिदिन तीनसौ एकमहीनेतक जपता है वह यथेच्छ फल पाता है और सहस्र हवनसे परम उत्कृष्टताको प्राप्त होता है ॥ ६९ ॥ एक चरणसे स्थित हो ऊपरको भुजा उठाये प्राण रोककर सौवार महीनेभरतक जप करनेसे यथेच्छ फल पाता है ॥ ७० ॥ इसप्रकार तीन शत वा सहस्र जपसे सब कामना प्राप्त होती हैं. जलमें स्थित हो मास पर्यन्त सौवार जपनेसे इष्टको प्राप्त होता है ॥ ७१ ॥ इसप्रकार प्राणका पान रोंक कर प्रतिदिन तीनशत गायत्री जपनेसे सब कुछ प्राप्त होता है विश्वामित्रने कहा है एक चरणसे स्थित ऊपरको भुजा उठाये निराश्रय हो प्राण रोंक ॥ ७२ ॥ केवल रात्रिमें हविष्य अन्न खाता हुआ वर्षदिनमें ऋषिताको प्राप्त होता है दोवर्ष इसप्रकार जपनेसे अमोघ वाणी होजाती है जो कहै सो होजाय ॥ ७३ ॥ इसीप्रकार तीनवर्ष जपनेसे त्रिकालदर्शी होजाता है चारवर्ष जपनेसे भगवान सूर्यका आगमन होता है ॥ ७४ ॥ पांचवर्ष जपनेसे अणिमादि सिद्धि और छःवर्ष जपनेसे काम रूपत्व मिलता है ॥ ७५ ॥ सातवर्षमें जपसे अमरत्व नौसे मनुत्व और दशवर्ष जपनेसे इन्द्रत्वकी प्राप्ति होती है ॥ ७६ ॥ ग्यारह वर्ष जपनेसे प्राजापत्य और इसीप्रकार बारह वर्षतक जपै तो ब्रह्मत्व प्राप्त होता है ॥ ७७ ॥ इसीके द्वारा नारदादिने तपकरके लोकोंको जीता है. कोई शाक, कोई मूल, कोई फल, कोई पय ॥ ७८ ॥ कोई घी, कोई सोम, कोई चरु, कोई भिक्षावृत्तिसे दिनमें एकवार ॥ ७९ ॥ हविष्य अन्नखाते हुए परम तपकरते हैं. रहस्य पापोंकी शुद्धिके निमित्त तीन सहस्र जपकरै ॥ ८० ॥ सुवर्णकी चोरीसे एक महीना जपकर शुद्ध होजाता है. महीनेमें तीन सहस्र जपनेसे सुरापी शुद्ध होता है ॥ ८१ ॥ एक महीनेसे तीन सहस्र जपवाला गुरुतल्पगमनके पापसे मुक्त होता है. जो कुटीबनाया वनमें रहकर महीनेभरतक तीन सहस्र जपकरै ॥ ८२ ॥ तो ब्रह्महत्याके पापसे छूटता है यह कौशिक विश्वामित्रने कहा है जो जलमें निमग्न हो बारह दिनमें बारह सहस्र जप करै ॥ ८३ ॥ उसके सब पाप और महापातक नष्ट होजाते हैं, जो प्राणायामकर वाणी रोक महीनेमें तीन सहस्र जपकरै ॥ ८४ ॥ वह महापातक तथा महाभयसे छूट जाता है, सहस्र प्राणायामसे ब्रह्महत्याराभी शुद्ध होजाता है ॥ ८५ ॥

जो सावधान हो प्राण अपानको छःवार ऊपरको कर अभ्यास करता है तो यह प्राणाया-मैं सब पापका नाशक हो जाताहै॥ ८६ ॥ जो महीनेतक सहस्रवार अभ्यास करै वह राजा शुद्ध होजाताहै गोहत्या लगनेमें वारह दिनतक तीन सहस्र जपकरै॥ ८७॥ अगम्यागमन करने, चोरी अभक्ष्य भक्षणमें दशसहस्र गायत्री जप ब्राह्मणको शुद्ध करताहै ॥ ८८ ॥ सौ प्राणयाम करनेसे सब पापोंसे छूट जाता है सब पापोंकी संकरताकी शुद्धिमें ॥ ८९॥ वनमें निवास कर सहस्र नित्य जप कर महीना व्यतीत करै, तीन सहस्र गायत्रीजप उपवासकी समान है ॥ ९० ॥ चौवीस सहस्र जप कृच्छ्र व्रतकी समान है चौंसठ सहस्र जप चान्द्रायण व्रतके समान है ॥ ९१ ॥ दोनों संध्याओंमें प्राणायामकर सौ सौ वार अभ्यास करै तो सब पाप क्षय होजाते हैं॥ ९२॥ जो जलमें निमज्जन कर सौ वार गायत्री जप कर सूर्यरूपा देवीका ध्यान करता है वह सब पापोंसे छूट जाता है ॥ ९३ ॥ यह आपसे शान्ति शुद्धि आदिकी कल्पना भलीप्रकारसे कही, यह रहस्यसे भी रहस्य है इसको आप सदा गुप्त रखना ॥ ९४ ॥ यह संक्षेपसे सदाचारकी कल्पना कही इसके विधिपूर्वक आचरणसे माया दुर्गा प्रसन्न होती है ॥ ९५ ॥ नैमित्तिक और नित्य यथाविधि काम्य कर्म आचरण करनेसे मनुष्य भुक्ति मुक्तिके फलको प्राप्त होता है ॥ ९६ ॥ आचारही प्रथम धर्म है धर्मकी अधिष्ठात्री भगवती है, इसप्रकार सब शास्त्रोंमें आचारका बडा फल कहा है ॥ ९७ ॥ आचारवान् सदा पवित्र और आचारवान् सदा सुखी है आचारवान् सदा धन्य है, हे नारद यह सत्य २ है ॥ ९८ ॥ यह सदाचारका विधान देवीकी प्रसन्नता करनेवाला है जो मनुष्य इसको सुने वह महासम्पत्ति तथा सुखका भागी होता है ॥ ९९ ॥ सदा-चारसेही इस लोक और परलोकका सुख सिद्ध होता है सो यह आपसे वर्णन किया अब और क्या सुननेकी इच्छा है ॥ १०० ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे पं० ज्वालाप्रसादशर्मकृत भाषायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

एक सहस्र दो सौ तेतालीस श्लोकोंमें एकादशस्कन्ध पूर्ण हुआ ।

दोहा—शिवाभवानी मायके चरणकमल मन लाय ।
भाषा रुद्रस्कंधकी बहुविधि लिखी बनाय ॥ १ ॥

पढहिं सुनहिं करि प्रेम जो, पावहिं मोद महान् ।
श्रीदेवी तिनके करहिं, नित नूतन कल्यान ॥ २ ॥
बसतराम गंगा निकट, नगरमुरादाबाद ।
गुण गावत जगदम्बके, जनज्वालाप्रसाद ॥ ३ ॥
गायत्री समद्विजनको, नहिं कोउ और उपास ।
तासे गायत्री जपहु, दोनों लोक विकास ॥ ४ ॥
गायत्रीही भगवती, देवी रूपलखाय ।
देवी भागवत मध्यमें, ऋषि द्वैपायन गाय ॥ ५ ॥

॥ शुभमस्तु ॥



खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालय-बंबई.

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ श्रीमद्देवीभागवत ।

द्वादशस्कन्धः १२.

प्रथमोऽध्यायः १.

दोहा—श्रीजगदम्बा शारदा, कीजे आय सहाय ॥
एहि द्वादशस्कन्धकी, भाषा देहु बनाय ॥ १ ॥

नारदजी बोले हे प्रभो ! आपने सदाचार विधि और उसका सब पाप दूर करने वाला बडा माहात्म्य वर्णन किया ॥ १ ॥ आपके मुखकमलसे निर्गत देवीकथामृत श्रवण किया और जो आपने चान्द्रायणादि व्रत कहे ॥ २ ॥ वह दुःसाध्यसे हैं कारण कि कर्ताके साध्यरूप है साधारणोंके उपयोगी नहीं परन्तु इस समय जो शरीरधारियोंको सुखरूप हों ॥ ३ ॥ जो देवीकी प्रसन्नता करनेवाला सुख दायक अनुष्ठान हो हे सुरेश्वर ! कृपा करके हमसे वही वर्णन कीजिये ॥ ४ ॥ सदाचारकी विधिमें जो गायत्रीकी सिद्धि कही है उसमें मुख्य पुण्यरूप क्या है और कौन अधिक पुण्यदायक है ॥ ५ ॥ जो गायत्रीके वर्ण हैं उतनेही आपने तत्व कथन किये हैं, उनके कौन ऋपि और कौन छन्द हैं ॥ ६ ॥ हे प्रभो ! उनके कौन देवता हैं यह सब बात आप हमसे कहो हमारे मनमें इसका बड़ा कौतूहल होरहा है ॥ ७ ॥ श्रीनारायण बोले और अनुष्ठान करै बात करै केवल गायत्रीमात्रकी निष्ठा करनेसें ही ब्राह्मण कृतकृत्य होजाता है ॥ ८ ॥ तीनों सन्ध्याओंमें अर्घ्यदान गायत्रीका जप तीन सहस्र करनेसे हे मुने ! वह देवताओंसे पूजित होता है ॥ ९ ॥ न्यासकरै वा न करै निर्व्याज भक्तिसे सच्चिदानंदरूपिणी भगवतीका ध्यान करके गायत्रीका अभ्यास करै ॥ १० ॥ जिस गायत्रीके एक अक्षरकी सिद्धि जो ब्राह्मण करलेता है उसकी स्पर्धा हरि, शंकर, ब्रह्मा, सूर्य, चन्द्र और अग्नि करते हैं ॥ ११ ॥ हे ब्रह्मन् ! अब गायत्रीके वर्णोंके ऋष्यादि छन्द देवता क्रमसे कहते हैं सुनो ॥ १२ ॥

वामदेव, अत्रि, वसिष्ठ, शुक्र, कण्व, पराशर, महा तेजस्वी विश्वामित्र, कपिल, महान्, शौनक ॥ १३ ॥ याज्ञवल्क्य, भरद्वाज, तपोनिधि जमदग्नि, गौतम, मुद्गल, वेदव्यास, लोमश ॥ १४ ॥ अगस्त्य, कौशिक, वत्स, पुलस्त्य, मांडूक, दुर्वासा, नारद, कश्यप ॥ १५ ॥ हे मुने! यह क्रमसे (२४) वर्णोंके चौवीस ऋषि हैं. अब छन्द कहते हैं. गायत्री, उष्णिक् अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति ॥ १६ ॥ त्रिष्टुप्, जगती, अतिजगती, शक्करी, अतिशक्करी, धृति, अतिधृति ॥ १७ ॥ विराट् प्रस्तारपंक्ति, कृति, प्रकृति, आकृति, संकृति, अक्षर पंक्तिः ॥ १८ ॥ भूः, भुवः, स्वः और ज्योतिष्मती यह क्रमसे ॥ (२४) छन्द कहे गये हैं ॥ १९ ॥ हे मुनीश्वर ! अब क्रमसे इनके देवता सुनो प्रथमके अग्नि, दूसरेके प्रजापति ॥ २० ॥ तीसरेके चन्द्रमा, चौथेके ईशान, पाँचवेंके सविता, छठेके आदित्य ॥ २१ ॥ सातवेंके बृहस्पति, आठवेंके मित्रावरुण, नौवेंके भग, दशवेंके अर्यमा ॥ २२ ॥ ग्यारहवेंके गणेश बारहवेंके त्वष्टा, तेरहवेंके पूषा, चौदवेंके इन्द्र और अग्नि ॥ २३ ॥ पन्द्रहवेंके वायु, सोलहवेंके वामदेव, सत्रहवेंके मैत्रावरुण ॥ २४ ॥ अठारहवेंके विश्वेदेवा उन्नीसवेंके मातायें, वीसवेंके विष्णु, इक्कीसवेंके वसु ॥ २५ ॥ बाईसवेंके रुद्र, तेईसवेंके कुबेर, चौवीसवेंके अश्विनीकुमार ॥ ॥ २६ ॥ यह चौवीस वर्णोंके देवता कहे जो परमश्रेष्ठ और महापापके शोधक हैं ॥ २७ ॥ हे मुने ! जिनके श्रवणसे सांग जाप्यका फल होता है गायत्री ब्रह्मकल्पमें भिन्न देवता कहे हैं वह भी क्रमसे लिखते हैं- अग्नि, वायु, सूर्य, कुबेर, यम, वरुण, बृहस्पति, पर्जन्य, इन्द्र, गन्धर्व, प्रोष्ठ, मित्रावरुण, त्वष्टा, वासव, मरुत्, सोम, अंगिरा, विश्वेदेवा, अश्विनीकुमार, पूषा, रुद्र, विद्युत् ब्रह्म, अदिति, यह क्रमसे देवता हैं ॥ २८ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे भाषायां गायत्रीविचारोनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

श्रीनारायण बोले हे नारद! अब वर्णोंकी शक्तियोंको क्रमसे सुनो वामदेवी प्रिया सत्या, विश्वा, भद्रा, विलासिनी ॥ १ ॥ प्रभावती, जया, शान्ता, कान्ता, दुर्गा, सरस्वती, विद्रुमा, विश्वालेशा, व्यापिनी, विमला ॥ २ ॥ तमोपहारिणी सूक्ष्मा, विश्वयोनि,

जाया, वशा, पद्मालया, परा, शोभा, भद्रा, त्रिपदा ॥ ३ ॥ यह क्रमसे चौबीस अक्षरोंकी शक्ति हैं. अब चौबीस वर्णोंके रंग कहते हैं ॥ ४ ॥ चम्पक अलसीके फूलकी समान मूँगेका रंग नवीन पल्लव वनस्फटिककी समान, पद्मरागमणिकी समान ॥ ५ ॥ तरुण सूर्यकी समान, शंख, कुंद, इन्द्र, प्रवाल, पद्मपत्रकी समान, पद्मरागकी समान ॥ ॥ ६ ॥ इन्द्रनीलमणिकी समान, मोती, कुंकुम, अंजन समान, लाल वैडूर्यकी समान, शहदकी समान ॥ ७ ॥ हलदी, कुंद, दूध, सूर्यकान्ति, शुकपुच्छ, शतपत्रकी समान ॥८॥ केतकीपुष्प, केतकीपुष्पकी समान, मल्लिका (चमेली) और कनेरकी समान चौबीसोंके क्रमसे रंग जानने ॥ ९ ॥ यह वर्णोंके रंग महापापके शुद्धकरने वाले हैं, पृथ्वी, अप (जल,) तेज, वायु, आकाश ॥१०॥ गंध, रस, रूप, शब्द, स्पर्श, उपस्थ, गुद, चरण, हाथ, वाणी ॥ ११ ॥ प्राण, (नासा) जिह्वा, चक्षु, त्वचा, श्रोत्र, प्राण, अपान, व्यान, समान ॥ १२ ॥ यह क्रमसे सब वर्णोंके तत्त्व हैं अब क्रमसे वर्णोंकी मुद्रा कहते हैं ॥ १३ ॥ सम्मुख, सम्पुट, वितत, विस्तृत, एकमुख, द्विमुख, त्रिमुख, चतुर्मुख, पंचमुख ॥ १४ ॥ षण्मुख, अधोमुख, व्यापक, अंजली, शकट, यमपाशक, ग्रथित, सन्मुख, उन्मुख ॥ १५॥ विलम्ब, मुष्टिक, मत्स्य, कूर्म, वराह, सिंहाक्रान्त, महाक्रान्त, मुद्गर, पल्लव ॥ १६ ॥ त्रिशूल, योनि, सुरभि, अक्षमाला, लिंग, अंबुज (कमल) यह महा मुद्रा गायत्रीके चतुर्थ चरणरूप कही हैं ॥ १७ ॥ हे महामुने ! यह वर्णोंकी मुद्रा कही यह महा पापनाशिनी कीर्ति और कान्ति देनी हैं ॥ १८ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

नारदजी बोले, हे स्वामिन्! हे सब जगत्के प्रभो हे चौसठ कलाके ज्ञाता, योगजानने वालोंमें श्रेष्ठ! यह मुझको सन्देह है कि, पातकोंसे ॥ १ ॥ किस पुण्यसे छूटकर ब्रह्म हुआ जाता है देह देवतारूप और विशेष कर मंत्ररूप है ॥ २ ॥ उस कर्म और विधिपूर्वक न्यासके जाननेकी इच्छा करता हूं, हे प्रभो ! ऋषि, छन्द, देवता और विधिपूर्वक ध्यान कहो ॥ ३ ॥ श्रीनारायण बोले, एक परम गुह्य गायत्रीकवच है जिसके पढ़ने और धारण करनेसे मनुष्य सबपापोंसे छूट जाता है ॥ ४ ॥ और सब कामनाओंको प्राप्तहो देवीरूपहो जाता है, इस गायत्री कवचके ब्रह्मा विष्णु महेश्वर

॥५॥ ऋषि हैं, हे नारद ! ऋक्, यजु, साम, अथर्व छन्द हैं, ब्रह्मरूपा देवता और गायत्री परमा कला है ॥ ६ ॥ तत् पदबीज, भर्गशक्ति धियः कीलक और मोक्षमें इसका विनियोग है ॥७॥ प्रथमके चार अक्षरोंसे हृदय, तीनसे शिर, चारसे शिखा, तीनसे कवच ॥ ८ ॥ फिर चारसे नेत्र और चार अक्षरोंसे अस्त्र क्रिया करै, इस प्रकार २४ अक्षर हुए, अब साधकको सब अभीष्ट देनेवाला ध्यान कहते हैं ॥९॥ मोती, मूँगे सुवर्ण, नीलमणि, उज्ज्वल छायायुक्त प्रत्येक मुखमें तीन २ नेत्र ऐसे पांच मुखयुक्तरत्नके मुकुटमें चन्द्रमा धारण किये २४ तत्त्ववर्णस्वरूपिणी वरदायिनी ऊर्ध्व हाथोंमें दो कमल, उससे नीचेके करोंमें चक्र, शंख उससे नीचे केमें रज्जु,कपाल उससे नीचेकेमें पाश,अंकुश,उससे नीचेके हाथोंमें अभयवर धारण किये गायत्री देवीको भजन करता हूं ॥ १० ॥ पूर्वसे गायत्री, दक्षिणसे सावित्री, पीछेसे ब्रह्माद्वारा आराधना की हुई संध्या, उत्तरसे सरस्वती रक्षाकरै॥ ११ ॥ पार्वती अग्निकोणमें, यातुधानभयंकरी नैर्ऋत्य कोणमें रक्षा करै ॥ १२ ॥ पवमानविलासिनी वायव्यमें, रुद्ररूपिणी रुद्राणी ईशान कोणमें ॥ १३ ॥ ऊर्ध्व दिशामें ब्रह्माणी, नीचे वैष्णवी, इसप्रकारसे सब अंग और दशों दिशामें भुवनेश्वरी रक्षा करै ॥१४॥ तत् पदचरणोंकी, सवितुः जंघाओंकी, वरेण्यम् कमरकी, भर्ग नाभिकी ॥ १५ ॥ देवस्य हृदयकी, धीमहि गालोंकी, धियः पदनेत्रोंकी, यः ललाटकी ॥१६॥ नः पद-शिरकी, प्रचोदयात् शिखाकी, फिर तत् शिरकी, सकार भालकी ॥ १७ ॥ विकार नेत्रोंकी, तुकार कपोलोंकी, वकार नासिकाकी, रेकार मुखकी ॥ १८ ॥ णिकार ऊपरके होठकी, यकार नीचेके होठकी, भकार मुखमध्यकी गोकार दाढीकी॥ १९॥ देकार कंठदेशकी, वकार कंधोंकी, स्यकार दहने हाथकी, धीकार वाम हाथकी ॥ ॥२०॥ मकार हृदयकी, हिकार पेटकी, धिकार नाभिकी, योकार कटिकी ॥२१॥ योकार गुह्यस्थानकी, नः दोनों ऊरुओंकी प्र जानुकी, चो जंघाकी ॥ २२ ॥ दकार गुल्फोंकी, या दोनों चरणोंकी, त् व्यंजन मेरे सर्वांगकी रक्षा करै ॥२३॥यह दिव्यकवच सैकडों बाधा दूर करता है चौसठ कलायुक्त विद्या और मोक्षदायक है ॥ २४ ॥ इसके धारणसे सब पापोंसे छूटकर परब्रह्मको प्राप्त होता है इसके पठन श्रवणसे सहस्र गोदानका फल प्राप्त होता है ॥ २५ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

नारदजी बोले हे भगवन्! देवदेवेश भूतभव्य जगत्के प्रभु! मैं ने दिव्य गायत्री मंत्रका विग्रह और कवच सुना॥ १॥ अब गायत्री हृदयके सुननेकी इच्छा है जिसके धारणसे गायत्रीजपका समस्त पुण्य प्राप्त होता है ॥ २॥ श्रीनारायण बोले हे नारद! अथर्वमें देवीका हृदय लिखा है वह रहस्यकाभी रहस्य तुमसे कहता हूं ॥ ३ ॥ वह विराट् रूप महादेवी गायत्री वेदमाता है उसका ध्यानकर अंगोंमें इन देवताओंका ध्यान करै ॥ ४ ॥ जब विराट्रूपमें पिण्ड और ब्रह्माण्डकी एकतासे अपने देहको गायत्रीरूप देखे तो अपने देहमें गायत्रीकी भावना करै जिससे तन्मय होजाय ॥ ॥ ५ ॥ वेदवित् कहते हैं अदेव देवकी पूजा न करै अभेद होनेके निमित्त अपने शरीरमें इन देवताओंकी भावना करै ॥ ६ ॥ जिससे तन्मय होजाय वह मैं तुमसे कहता हूं इस गायत्री हृदयका मैं नारायण ऋषि हूँ ॥ ७ ॥ गायत्री छन्द परमेश्वरी देवता है, पूर्वोक्त प्रकारसे षडङ्ग न्यास करै, विजन स्थानमें आसन लगाय एकाग्रमनसे ध्यान करै ॥ ८ ॥ अर्थन्यास कहते हैं द्यौः मस्तकमें, दन्तपंक्तिमें अश्विनी कुमार, दोनों सन्ध्या ओष्ठोंमें, मुखमें अग्नि, जिह्वामें सरस्वती, ग्रीवामें बृहस्पति, स्तनोंमें आठोंवसु, दोनों भुजाओंमें मरुत, हृदयमें पर्जन्य, उदरमें आकाश, नाभिमें अन्तरिक्ष, कटिमें इन्द्राग्नी, जंघामें विज्ञानघन प्रजापति,उरुओंमें कैलास और मलयाचल, जानुओंमें विश्वदेव,जङ्घामें कौशिक,इन्द्र गुह्यमें, दोनों अयन उरुओंमें, पितर चरणोमें, पृथ्वी अंगुलियोंमें, वनस्पति रोमोंमें, ऋषि नखोंमें, मुहूर्त्त अस्थियोंमें,ग्रह रुधिर मांसमें, छहों ऋतु निमेषमें, संवत्सर अहोरात्रमें,आदित्य,चन्द्रमा, ऐसी श्रेष्ठ दिव्य सहस्र नेत्रवाली गायत्रीको मैं शरण होताहूं,ॐतत्सवितुर्वरेण्यायश्रेष्ठ तेजके निमित्त नमस्कारहै। ॐउस पूर्वदिशामें उदय होनेवालेके निमित्त प्रणाम है । प्रभातके आदित्यके निमित्त प्रणाम है। प्रभात कालके सूर्यकी प्रतिष्ठाको प्रणाम है । प्रभातमें स्मरण किये सविता रात्रिके पापको दूर करते हैं।संध्यामें स्मरणकिये हुए दिनके पापको दूर करते हैं।सायंप्रातः स्मरणकरनेसे मनुष्य पापरहित होता है । वह पुरुष मानो सबतीर्थोंमें स्नानकर चुका वह सब देवताओंसे जाना ज्ञाता है । अवाच्य वचन कहनेके दोषोंसे पवित्र होजाता है अभक्ष्य भक्षण करनेसे पवित्र होता है, अभोज्य भोजनसे पवित्र होता है अचोष्य वस्तु चूसनेसे पवित्र होता है । असाध्य साधनसे पवित्र होता, सैकडों

सहस्र नष्ट दान लेनेसे पवित्र होता, सब प्रतिग्रहोंसे पवित्र होता, पंक्ति,दूषणोंसे पवित्र होता अमृतवचन कहनेके पापसे छूटता अब्रह्मचारी ब्रह्मचारी होता इस गायत्रीहृदयके पाठसे सहस्रयज्ञका फल मिलता है (६००००) साठ सहस्र गायत्रीजपका फल होता है आठ ब्राह्मणोंको भलीप्रकार ग्रहण करावे तो उसको सिद्धि होती है जो ब्राह्मण पवित्र होकर प्रातःकालमें इसको नित्य अध्ययन करता है वह सब पापसे मुक्त होकर ब्रह्मलोकमें गमन करता है ऐसा भगवान् नारायणने कहा है ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे भाषायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ५.

नारदजी बोले हे भक्तोंपर दयाकरनेवाले सर्वज्ञ! आपने पापनाशक गायत्रीका हृदय कथन किया अब गायत्रीका स्तोत्र कहिये ॥ १ ॥ नारायण बोले हे आदि शक्ति जगत्की माता ! भक्तोंके ऊपर अनुग्रह करनेवाली सर्वत्र व्यापक अनन्त श्री दोनों संध्यारूप! आपको प्रणाम है ॥ २ ॥ आपही संध्या गायत्री सरस्वती सावित्री ब्राह्मी वैष्णवी रौद्री रक्त श्वेत श्याम हो ॥ ३ ॥ प्रभातमें बाला, मध्याह्नमें युवा, सामसें वृद्धा होतीहो. इसप्रकार मुनिजन सदा तुम्हारी चिन्तना करते हैं ॥ ४ ॥ हंसपर गरुडपर वृषभपर चढी ऋग्वेदकी पढनेवाली जो तपस्वियोंको भूमिपर दीखती है ॥ ५ ॥ और यजुर्वेदका पाठ करती हुई अन्तरिक्षमें विराजमान् होती है वह सब में सामगाती भूमिमें भ्रमण करती है ॥ ६ ॥ तुमही रुद्रलोकमें प्राप्त होकर विष्णु लोकमें निवास करती हो तुमही ब्रह्मलोकमेंही मनुष्योंपर अनुग्रह करती हो ॥ ७ ॥ सप्तऋषियोंको प्रसन्न करनेवाली बहुत वर देनेवाली माया शिव और शक्ति हाथ नेत्रसे उत्पन्न उन्हींके अश्रु और पसीनेसे उद्भव ॥ ८ ॥ आनन्दकी प्रगट करने वाली दुर्गा दश प्रकार पढी जाती है वरेण्या वरदा वरिष्ठा वरवर्णिनी ॥ ९ ॥ गारीष्ठा, वराहा, वरारोहा, नीलगंगा, संध्या, सदा भोग मोक्ष देनेवाली ॥ १० ॥ मर्त्यलोकमें भागीरथीरूप, पातालमें भोगवती, स्वर्गमें सीता इसप्रकार त्रिलोकवाहिनी देवी तीनों स्थानमें निवास करती है ॥ ११ ॥ भूलोकमें लोकधारिणी भूमि तुमही हो भुवर्लोकमें वायुशक्तिरूप और स्वर्लोकमें तेजोंकी निधि तुमहो ॥ १२ ॥

महर्लोकमें महासिद्धिरूप जनलोकमें जननी तपोलोकमें तपस्विनी और सत्यलोकमें सत्यवाक् तुमही हो ॥ १३ ॥ विष्णुलोकमें कमला ब्रह्मलोक देनेवाली गायत्री और रुद्रलोकमें गौरी शिवके अर्धांगनिवास करनेवाली तुमहीहो ॥ १४ ॥ अहं महान् प्रकृति रूपसे तुमही गाई जाती हो, साम्यावस्थात्मिका शबल ब्रह्मरूपिणी तुमही हो ॥ १५ ॥ तिससे परे परा परमाशक्ति तुमही गाई जाती हो. इच्छाशक्ति क्रियाशक्ति ज्ञानशक्ति, तीनशक्ति देनेवाली तुमही हो ॥ १६ ॥ गंगा यमुना विपाशा सरस्वती सरयू देविका सिन्धु नर्मदा ऐरावती ॥ १७ ॥ गोदावरी शतद्रु कावेरी देवलोकगामिनी कौशिकी चन्द्रभागा वितस्तासरस्वती ॥ १८ ॥ गंडकी तपनी करतोया गोमती वेत्रवती तुमहो,इडा पिंगला तीसरी सुषुम्ना ॥ १९ ॥ गांधारी हस्तजिह्वा पूषा अपूषा अलंबुषा कुहू शंखिनी प्राणवाहिनी ॥ २० ॥ यह शरीरमें स्थित नाडीस्वरूप तुमही हो ऐसा पुरातन आचार्य कहते हैं हृदय कमलमें स्थित प्राणशक्ति कंठमें स्थित स्वप्ननायका ॥ २१ ॥ तालुमें सदाधारा, भौंहके मध्यमें विन्दुमालिनी, मूलाधारमें कुंडलिनी शक्ति केशमूलमें व्यापिनी ॥२२॥ शिखाके मध्य अर्थात् ज्ञानकलामें आसन करनेवाली, शिखाके अग्रमें मनोन्मनी तुमही हो, वहुत कहनेसे क्या है त्रिलोकीमें जो कुछ है ॥ २३ ॥ हे महादेवी! वह सब तुमही हो, श्री और संध्यारूप तुमको प्रणाम है, संध्याके समय यह स्तोत्र पढनेसे महापुण्य होता है ॥ २४ ॥ यह महापापका शान्तकरने और महासिद्धिका देनेवाला है, जो सावधान हो संध्याकालमें यह स्तोत्र पढते हैं ॥ २५ ॥ अपुत्रको पुत्रकी प्राप्ति धनार्थिको धन मिलता है, सब तीर्थ तप दान यज्ञ योगका फल मिलता है ॥ २६ ॥ वह चिरकाल भोग भोगकर अन्तमें मोक्षको प्राप्त होता है तपस्वियोंको किया स्तोत्र जो स्नानकालमें पढते हैं ॥ २७ ॥ जहां कहीं जलमें स्नान करै संध्याके मज्जनका फल मिलता है इसमें सन्देह नहीं. हे नारद! यह सत्य है ॥ २८ ॥ जो भक्तिसे सुनै वह सब पापोंसे छूटजाता है हे नारद ! मैंने यह स्तोत्र तुमसे कहा संध्याके उद्देशसे अमृतके समान है ॥ २९ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषायां गायत्रीस्तोत्रं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

नारदजी बोले हे भगवन्! सब धर्मोंके जाननेवाले सब शास्त्रमें पण्डित आपके मुखसे श्रुति स्मृति पुराणोंका रहस्य सुना ॥ १ ॥ अब जिससे सब पापहारिणी विद्याकी प्रवृत्ति होती है किससे ब्रह्मविज्ञान और मोक्षका साधन होता है ॥ ॥ २ ॥ किसे ब्राह्मणोंकी गति और किससे मृत्युका साधन होता है हे पद्मलोचन किसके द्वारा दोनों लोकका साधन प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ वह आदिसे आप सब वर्णन कीजिये श्रीनारायण बोले हे महाभाग! धन्यहो तुमने भलीबात पूँछी ॥ ॥ ४ ॥ सुनो मैं यत्नसे गायत्रीके एक सहस्र आठ नामोंको वर्णन करता हूं जो शुभ दिव्य और सम्पूर्ण पापोंके नाशक है ॥ ५ ॥ जो सृष्टिकी आदिमें पूर्वमें भगवान्‌ने कहे सो मैं आपसे सब कहता हूं, इन १००८ नामोंके ब्रह्मा ऋषि ॥ ॥ ६ ॥ अनुष्टुप्छन्द, गायत्रीदेवी, हलअक्षर बीज और स्वर शक्तियें हैं ॥ ७ ॥ मातृकाअक्षरोंसे अंगन्यास करन्यास होता है अब साधकोंके हितके निमित्त ध्यान कहता हूं ॥ ८ ॥ लाल श्वेत हिरण्य नील धवल वर्णके मणिगणोंसे युक्त तीनों नेत्रोंसे उज्ज्वल अरुण वर्ण लाल फूलोंकी नवीन माला पहरे कुमारी कमलासनपर आरूढ कण्डिका और कमल धारण किये कमललोचिनी इष्ट अक्षमालापहरे हंसारूढ गायत्रीको भजताहूं ॥ ९ ॥ अकारादि ३५ नाम कहते हैं अचिन्त्य लक्षणवाली अव्यक्ता (अस्पष्ट नामरूपवाली) अर्थमातृमहेश्वरी अमृतसागरके मध्यमें स्थित अजिता, अपराजिता ॥ १० ॥ अणिमादि गुणोंकी आधार अर्कमंडलमें स्थित अजरा अजा, अपरा अधर्मा (जाति आदि धर्मसे रहित) अक्षसूत्रकी धारण करनेवाली अधरा [निकृष्टरूपा] ॥ ११ ॥ अकारसे आदि लेकर क्षकार पर्यन्त, अरिषड्वर्गकी भेदकरनेवाली, अंजनाद्रिकी समान कान्तिवाली अंजनाद्रिपर निवास करनेवाली ॥ १२ ॥ अदिति (देवमाता) अजपा (गायत्री) अविद्या अरविन्दलोचनी अन्तर बाहरमें स्थित अविद्या जीव उपाधिकी ध्वंस करनेवाली अन्तरात्मिका ॥ १३ ॥ अजा, अजमुखा (ब्रह्ममुखमें निवासकरनेवाली) अवासा अरविन्द लोचनी अर्धमात्रा, अर्थदानज्ञा (चारों पुरुषार्थके दानकी ज्ञाता) अरिमण्डलकी मर्दन करनेवाली ॥ १४ ॥ असुरोंकी नाशक अमावास्या अलक्ष्मी नाशक अन्त्यजार्चिता (मातंगी रूपसे पूजित) आकारादि २२ नाम आदिलक्ष्मी आदि शक्ति आकृति आयतानना (विस्तृतमुखवाली) ॥ १५ ॥ आदित्यमार्गमें विचरण करने

वाली अदितिपुत्रोंसे सेवित आचार्या (स्वयं व्याख्याता) आवर्तना (जगत्की आवर्तन करनेवाली) आचारा (दक्षिणाचारादि आचारवाली) आदिमूर्ति ब्रह्ममें निवास करनेवाली ॥ १६ ॥ आग्नेयीदिशारूप आमरी अमरावतीरूपवाली आद्या आराध्या आसनमें स्थित आधारनिलया मूलाधारमें निवासवाली आधारा (सबकी आधारा कुंडलिनीरूप) आकाशान्तनिवासिनी (अहंकार तत्वमें स्थित) आद्याक्षरसे युक्त अन्तराकाश अर्थात् दहराकाशरूपवाली आदित्यमण्डलमें प्राप्त; अन्तरध्वान्त अविद्या अंधकारकी नाशिनी इकारादि ॥ १७ ॥ १८ ॥ नाम इन्दिरा इष्टदा; इष्टा, इन्दीवर कमलकी समान नेत्रवाली, इरावती (भूवाक् सुराम्बुमती) इन्द्रपदा, इन्द्राणी इन्दुरूपिणी ॥ १९ ॥ इक्षु पौंड इक्षु धनुषसे युक्त इषुसंधान करनेवाली, इन्द्रनीलमणिके समान आकारवाली इडा पिंगलारूपवाली ॥ २० ॥ इन्द्राक्षी (शताक्षी) ईकारादि दो नाम, ईश्वरी देवी, ईहात्रयवर्जिता (तीनों इच्छाओंसे रहित) उकारादि आठनाम उमा, उषा, उडुनिभा, (नक्षत्र समान) उर्वारुक फल कर्कटी फलकी समान मुखवाली ॥ २१ ॥ उडुप्रभा, उडुमती, उडुपा (पोत रूपिणी) उडुमध्यगामिनी, (ऊकारादि ५ नाम,) ऊर्ध्वा, ऊर्ध्वकेशी, ऊर्ध्व और अधो ऊंच नीच गतिकी भेदनकरनेवाली ॥ २२ ॥ ऊर्ध्वबाहुप्रिया, ऊर्मिमाला वा ग्रन्थदायिनी समुद्रवत् कवितारूप ग्रंथकी देनेवाली ऋकारादि नाम ऋत (सत्य) ऋषि (वेदरूप) ऋतुमती ऋषिदेवताओंसे नमस्कृत ॥ २३ ॥ ऋग्वेदा, ऋणहर्त्री ऋषिमण्डलमें विचरण करनेवाली, ऋद्धि ऋजुमार्गमें स्थित ऋजुधर्मवाली, ऋतुदायिनी ॥ २४ ॥ ऋग्वेदनिलया ऋज्वी, [ऌकारादि ॡकारादि अप्रसिद्ध होनेसे नहीं कहे, ऌकारादिके यहां ऌकारके जानने] लुप्तधर्मोंको प्रवृत्त करनेवाली लूतारिवरसंभूता, लूता [मकरी] आदिके विषकी हरनेवाली ॥ २५ ॥ [एकारादि ४ नाम] एकाक्षरा, एकमात्रा, एका एकैकनिष्ठिता [ऐकारादि ३ नाम] ऐन्द्री ऐरावतपर आरूढ, ऐहिक इस लोक और परलोकमें फल देनेवाली [ओकारादि ४ नाम] ओंकारा, ओषधी ओता ओतप्रोता [सूतकी समान सबके अभ्यन्तरमें व्याप्त] [औकारादि ३ नाम] और्वा भूमिमें होनेवाली, औषधसम्पन्ना औपासन उपासनावालोंको फल देनेवाली ॥ २६ ॥ २७ ॥ [अं आदि एक नाम] अंडमध्यमें स्थित देवी [अः कारादि नाम] अःकार विसर्ग रूप मंत्रके रूपवाली [ककारादि ९६ नाम] कात्यायनी कालरात्रि, कामाक्षी, कामसुन्दरी ॥ २८ ॥ कमला, कामिनी कान्ता,

कामदा, कालकंठिनी, करिकुंभस्तनभरा, करवीरसे पूजित हो वहां निवास करने वाली ॥ २९ ॥ कल्याणी, कुंडलवती, कुरुक्षेत्र निवासिनी कुरुविन्द रत्नके दलकी समान आकारवाली, कुंडली, कुमुदालया ॥ ३० ॥ कालजिह्वा, करालमुखी, कालिका, कालरूपिणी, कमनीयगुणवाली, कान्तिः कलाधारा, कुमुद्वती ॥ ३१ ॥ कौशिकी कमलाकारा कामचारकी ध्वंसकरनेवाली, कौमारी, करुणापांगी ककुबन्ता (दिशाओंकी अवसानरूप) करिप्रिया ॥ ३२ ॥ केशरीरूप केशवसे स्तुतिको प्राप्त, कदम्बपुष्पकी इच्छावाली, कालिन्दी, कालिका, कांची, कलशोद्भव अगस्त्यसे स्तुतिको प्राप्त होनेवाली ॥ ३३ ॥ काममाता, क्रतुमती, कामरूपा, कृपावती, कुमारी कुंडनिलया, (अग्निहोत्रमें स्थित) किराती, कीरवाहना ॥ ३४ ॥ कैकेयी, कोकिलाकी समान शब्द करनेवाली, केतकीरूपा, कुसुमप्रिया, कमंडलुधरा, काली कर्मकी निर्मूल करनेवाली ॥ ३५ ॥ कलहंसगति, कक्षा, कृतकौतुकमंगला, कस्तुरीतिलका, कम्रा सुन्दरी करीन्द्र समान गमनवाली कुहू ॥ ३६ ॥ कर्पूरलेपना, कृष्णा, कपिला, कुहराश्रया, कूटस्था, कुधरा (पर्वतधारिणी) कम्रा कुक्षिस्थाखिलविष्टपा ॥ ३७ ॥ [खकारादि ११ नाम] खड्ग, खेटकरा, खर्वा, खेचरी, खगवाहना, खट्वांगधारिणी, ख्याता, खगराजपर स्थित ॥ ३८ ॥ खलनाशिनी, खंडितजरा, खंडाख्यानकी देनेवाली, खण्डेन्दुतिलका [गकारादि ३६ नाम] गंगा, गणेशगुहपूजिता ॥ ३९ ॥ गायत्री, गोमती, गीता, गान्धारी, गानलोलुपा, गौतमी, गामिनी, गाधा, (प्रतिष्ठारूपिणी) गन्धर्वाप्सरोंसे सेवित ॥ ४० ॥ गोविन्दचरणाक्रान्ता, गुणत्रयविभाविता, गंधर्वी, गह्वरी, गोत्रा, (पृथ्वी) गिरीशा, गहना गमी (पर्यालोचन करनेवाली) ॥ ४१ ॥ गुहावासा, गुणवती, गुरुपापप्रणाशिनी, गुर्वी, गुणवती, गुह्या, गोप्तव्या, गुणदायिनी ॥ ४२ ॥ गिरिजा, गुह्यमातंगी, गरुडध्वजकी प्रिया, गर्वापहारिणी, गोदा, गोकुलस्था, गदाधरा ॥ ४३ ॥ गोकर्णस्थानमें आसक्त गुह्य मण्डलमें निवास करनेवाली [घकारादि १४ नाम] घर्मदा, घनदा, घंटा, घोर दानव मर्दिनी ॥ ४४ ॥ घृणि (सूर्य) मंत्रमयी, घोषा, घनसंताप दायिनी घंटारवप्रिया घ्राणा घृणि संतुष्ट कारिणी ॥ ४५ ॥ घनारिमंडला, घूर्णी, घृताची, घनवेगिनी, [ङकार अप्रसिद्ध हैं ज्ञकारका नाम एक है] ज्ञानधातुमयी (चिद्धातुमय) [चकारादि ४९ नाम] चर्चा (भाषणादि) चर्चिता, चारुहासिनी ॥ ४६ ॥ चटुला,

चंडिका, चित्रा, चित्रमाल्यसे विभूषित, चतुर्भुजा, चारुदंता, चातुरी, चरितप्रदा ॥ ॥ ४७ ॥ चूलिका, चित्रवस्त्रान्ता, चन्द्रमारूप कानोंमें कुंडलधारणकरने वाली चन्द्रहासा, चारुदात्री, चकोरी चन्द्रहासिनी ॥ ४८ ॥ चंद्रिका, चन्द्रधात्री, चौरी चौरा (औषधी विशेपरूपा) चंडिका, चंचद्वागवादिनी, चन्द्रचूडा, चोरविनाशिनी ॥ ४९ ॥ चारुचंदनलिप्तांगी (सुन्दर चन्दससे लिप्त अंगवाली) चंचत् चलाय मान चामरोंसे वीजित, चारुमध्यभागवाली, चारुगति, चंदिला (कर्णाटक देशमें प्रसिद्ध देवता) चन्द्ररूपिणी ॥ ५० ॥ चारुहोमप्रिया, चार्वा, चरिता, चक्रबाहुका चन्द्रमंडलके मध्यमें स्थित चन्द्रमण्डल दर्पणवाली ॥ ५१ ॥ चक्रवाकके समान स्तनवाली: चेष्टा, चित्रा, चारुविलासिनी, चित्स्वरूपा, चन्द्रवती, चन्द्रमा, चन्दन प्रिया ॥ ५२ ॥ चोदयित्री (प्रेरणा करनेवाली) चिरप्रज्ञा, चारुहेतुकी (जगत् निर्माणमें सुन्दरहेतु वाली) (छकारादि १४ नाम) छत्रयाता छत्रधरा,छाया, छन्दा परिच्छदा ॥ ५३ ॥ छायादेवी (स्वामिनी) छिद्रनखा (रन्ध्रयुक्त नखोंवाली) छन्नेन्द्रिय विसर्पिणी (इन्द्रियजित् योगियोंके निकट जानेवाली) छन्दोनुष्टुप् प्रतिष्ठान्ता (अनुष्टुप् छन्दवाले मंत्रसे जानने योग्य) छिद्रोपद्रवभेदिनी (कपटके उपद्रव नाशनेवाली ॥५४॥ छेदा, छत्रेश्वरी, छिन्ना, छूरिका, छेदनप्रिया [जकारादि ४० नाम] जननी, जन्मरहिता, जातवेदा, जगन्मयी, जाह्नवी, जटिला जेत्री, जरामरणसे वर्जित, जम्बूद्वीपवती ज्वाला, जयन्ती, जलशालिनी ॥५५॥ ५६ ॥ जितेन्द्रिया, जितक्रोधा, जितमित्रा, जगत्प्रिया, जातरूपमयी, जिह्वा, जानकी जगती जरा ॥ ॥ ५७ ॥ जनित्री, जह्नुतनया, जगत्त्रयहितैषिणी, ज्वालामुखी, जपवती, ज्वरघ्नी, जितविष्टपा ॥५८॥ जिताक्रान्तमयी, (जयसे आक्रान्त पुरुषमयी) ज्वाला,जाग्रती, ज्वरदेवता, ज्वलंती, जलदा, ज्येष्ठा ज्याघोषास्फोटदिङ्मुखी (ज्याघोषस, दिशाओंके मुख फोडनेवाली) ॥ ५९ ॥ जंभिनी, जृंभणा, जृंभा, ज्वलितमाणिक्यके कुंडलवाली [झकारादि ४ नाम] झिंझिका झणनिर्घोषा, झंझामारुतवेगिनी (सवृष्टि पवनके वेग वाली) ॥६०॥ झल्लकी, बाजेमें कुशल [ञकारादि २ नाम] ञरूपा (बलीवर्दरूपा) ञभुजास्मृता (श्यामलांगिका वा बलीवर्दकी समान भुजावाली) [टकारादि ६ नाम] टंकबाणसे युक्त, टंकिनी, टंकभेदिनी ॥६१ ॥ टंकीगण रुद्रवत् कोप करनेवाली टंकनीयमहोरसा (वर्णनयोग) महाउरस्थलवाली, टंकारकारिणी देवी [ठकारादि एकनाम] ठठशब्दसे नाद करनेवाली ॥ ६२ ॥ [डका-

रादि आठ नाम] डामरी, डाकिनी डिंभा [बालक रूप] डुडुमारैक निर्जिता, डामरी तंत्र मार्गस्था [डामरी तंत्रके मार्गमें स्थित] डमड्डमरुनादिनी ॥ ६३ ॥ डिंडीनामक बाजेके शब्दको सहन करनेवाली, डिंभलसत् क्रीडापरायण [ढकारादि ३ नाम] ढुंढि विघ्नेशकी माता, ढक्का बाजा हाथमें धारण करनेवाली, ढिलिव्रजा (ढिलिनामक शिवगणके समुदायवाली) ॥६४॥ णकारादि नाम अप्रसिद्ध हैं उसके स्थानमें पांच नकारादि कहते हैं नित्यज्ञानवाली, निरुपमा, निर्गुण, नर्मदा नदीरूप [तकारादि ६२ नाम] त्रिगुणा, त्रिपदा. तंत्री, वीणारूप तुलसी, तरुणा,तरु॥६५॥ त्रिविक्रमपदाक्रान्ता, तुरीया पदमें गमन करनेवाली, तरुण आदित्यके समान प्रकाशवान् तामसी, तुहिनातुरा ॥ ६६ ॥ त्रिकालज्ञानसे सम्पन्न, त्रिवली, त्रिलोचना, त्रिशक्ति, त्रिपुरा, तुंगा, तुरंगवदना ॥ ६७ ॥ तिमिंगल गिल, तीव्रा, त्रिस्रेता, तामसादिनी तंत्र मंत्रकी विशेषरूपसे ज्ञाता, तनुमध्या, त्रिविष्टया ॥६८ ॥ त्रिसंध्यारूप त्रिस्तनी, तोषा संस्था (संतोषमें स्थित) ताल प्रतापिनी, ताटंकिनी तुषाराभा (तुषारकी समान कान्तिवाली) तुहिनाचलवासिनी ॥ ६९ ॥ तंतुजालमें युक्त, तारहारावलिप्रिया, तिलहोमप्रिया, तीर्था, तमाल कुसुमके समान आकृतीवाली ॥ ७० ॥ तारका त्रियुता(तीन गुण वा तीनवेदसे युक्त)तन्वी त्रिशंकुसे परिवारित, तलोदरी, तिलोभाषा, ताटंक प्रियवादिनी ॥ ७१ ॥ त्रिजटा, तित्तरी, तृष्णा, त्रिविधा, तरुणाकृति, तप्तकांचनके समान तप्तकांचनके भूषणोंवाली ॥ ७२ ॥ त्रैयम्बका, त्रिवर्गा, त्रिकालका ज्ञान देनेवाली तर्पणा, तृप्तिदा, तृप्ता, तामसी, तुम्बुरुस्तुता ॥७३॥ तार्क्ष्यस्था, त्रिगुणाकारा, त्रिभंगी,तनुवल्लरि [थकारादि ३ नाम]थात्कारी (शब्दकारी) थारवा (भयसे रक्षा करनेवाली) थान्ता (मंगलकी पर्यवसान भूमि) [दकारादि२७ नाम] दोहिनी, दीनवत्सला, ॥७४॥दानवान्तकरी, दुर्गा दुर्गासुरनिबर्हिणी(भयंकर असुरकी मारनेवाली)देवरीति, दिवारात्रि, द्रौपदी, दुंदुभिस्वना ॥ ७५ ॥ देवयानी, दुरावासा, दारिद्र्यभेदिनी दिवा, दामोदरकी प्रिया, दीप्ता, दिग्वासा, दिग्विमोहिनी ॥ ७६ ॥ दण्डकारण्यमें निवासवाली दण्डिनी, देवपूजिता, देवताओंसे नमस्कृत, दिविषदा द्वेषिणी, दानवाकृति ॥ ७७ ॥ दीनानाथस्तुता, दीक्षास्वरूप, देवतादिस्वरूपिणी [धकारादि २० नाम] धात्री, धनुर्धर, धेनुः धारिणी, धर्मचारिणी ॥ ७८ ॥ धुरंधुरा धरा, धारा, धनदा, धान्यदोहिनी, धर्मशीला, धनाध्यक्षा, धनुर्वेदविशारदा ॥ ७९ ॥ धृति, धन्या, धृतपदा, धर्मराज प्रिया, ध्रुवा (निश्चल) धूमावती, धूम-

केशी, धर्मशास्त्रकी प्रकाशकरनेवाली ॥ ८० ॥ [नकारादि ५५ नाम] नंदा (आनंददायिनी) नंदप्रिया, नन्दा, निद्रा, नृनुता (मनुष्योंसे नमस्कृत) नन्दनात्मिका, नर्मदा, नलिनी, नीला, नीलकंठसमाश्रया ॥ ८१ ॥ नारायणप्रिया, नित्या, निर्मला, निर्गुणा, निधि, निराधारा, निरुपमा, नित्यशुद्धा, निरंजना ॥ ८२ ॥ नादबिन्दुकी कलासे परे, नादबिन्दुकलामय, नृसिंहवेषवाली नगधरा, नृपनागविभूषिता ॥ ८३ ॥ नरकका क्लेश शान्त करनेवाली नारायणपदोद्भवा, निरवद्या, निराकारा, नारदप्रियकारिणी ॥ ८४ ॥ नाना ज्योतिसे कहीगई, निधिदेनेवाली निर्मलात्मिका, नवसूत्र धरा, नीतिः, निरुपद्रवकारिणी ॥ ८५ ॥ नन्दके होनेवाली, नवरत्नाढ्या, नैमिषारण्यवासिनी, नवनीतप्रिया, नारी नीलमेघके समान शब्दवाली ॥ ८६ ॥ निमेषिणी, नदीरूपा, नीलग्रीवा, निशीश्वरी, नामावली, निशुंभकी मारनेवाली, नागलोकमें निवास करनेवाली ॥ ८७ ॥ नवीन सुवर्णके समान कांतिवाली नागलोककी अधिदेवता, नूपुराक्रान्तचरणा, नरचित्तप्रमोदिनी ॥ ८८ ॥ निमग्ना, रक्तनयना, निर्घातसमनिस्वना (वज्रवत् शब्दवाली) नंदनवनमें स्थानवाली, निर्व्यूहोपरिचारिणी ॥ ८९ ॥ [पकारादि १२५ नाम] पार्वती, परमोदारा, परब्रह्मात्मिका, परा, पंचकोशसे निर्मुक्त, पांच पातकोंकी नाशक ॥ ९० ॥ परचित्तके विधानकीज्ञाता, पंचिका (श्रीविद्यामें दक्षिणा मूर्तिके सहित पूजित पंचिका देवतारूप) पंचरूपिणी पूर्णिमा, परमा, प्रीतिः परतेज प्रकाशिनी ॥ ९१ ॥ पुराणी पौरुषी (पुरुपार्थरूपा) पुण्डरीक (कमल) के समान नेत्रवाली पातालतल निर्मग्ना, प्रीता, प्रीतिकी बढाने वाली ॥ ९२ ॥ पावनी (पवित्रकरने वाली) पाद सहिता (किरण युक्त) पेशला (श्रेष्ठ) पवनभोजिनी, प्रजापतिरूप, परिशान्ता, पर्वतस्तनमण्डला ॥ ९३ ॥ पद्मप्रिया, पद्ममें स्थित, पद्माक्षी, पद्मसंभवा, पद्मपत्रा, पद्मपदा, पद्मिनी, प्रियभाषिणी ॥ ९४ ॥ पशुपाशसे निर्मुक्त, पुरन्ध्री, पुरवासिनी, पुष्कला, पुरुषा, पर्वा, पारिजातकुसुमप्रिया ॥ ९५ ॥ पतिव्रता, पवित्रांगी, पुष्पहासपरायणा, प्रजावती, सुता, पौत्री, पुत्रपूज्या, पयस्विनी ॥ ९६ ॥ पट्टिपाश धरा, पंक्ति, पितृलोककी देनेवाली, पुराणी, पुण्यशीला प्रणत पुरुषोंके दुःखनाश करनेवाली ॥ ९७ ॥ प्रद्युम्न जननी, पुष्टा पितामहपरिग्रहा, पुंडरीकपुर (चिदम्बरक्षेत्र) में वास करनेवाली, पुण्डरीकके समान मुखवाली ॥ ९८ ॥ पृथुजंघा, पृथुभुजा, पृथुपादा, पृथूदरी, प्रवालशोभा, पिंगाक्षी, पीतवासा, प्रचापला ॥ ९९ ॥ प्रसवा, पुष्टिदा,

पुण्या, प्रतिष्ठा, प्रणवागतिः [स्तुतिकरनेवाले देवताओंको शरण देनेवाली] पंचवर्णा (विस्तृत वर्ण) पंचिका देवता, पंजरास्थिता॥ १००॥ परमाया, परज्योतिः,परप्रीतिः, परागति, पराकाष्ठा परेशानी पाविनी, पावकद्युतिः (अग्निके समान कान्ति) ॥ ॥ १ ॥ पुण्यभद्रा, परिच्छेद्या, पुष्पहासा, पृथूदरा, पीतांगवाली, पीतवस्त्रवाली, पीत शय्या वाली, पिशाचिनी ॥ २ ॥ पीतक्रिया, पिशाचघ्नी, पाटलाक्षी, पटुक्रिया, पंचभक्ष प्रियाचारा (पंचमकारभक्षी वामियोंके आचारसे प्रसन्न) पूतना प्राणघातिनी ॥ ३ ॥ पुन्नागवनके मध्यमें स्थित पुण्यतीर्थनिषेवित, पंचगी, पराशक्ति, परमआह्लादकी करनेवाली ॥ ४ ॥ पुष्पकाण्डस्थिता, पूषा, पोषिताखिलविष्टपा, (सबदेवताओंकी रक्षक) पानप्रिया, पंचशिखा, पन्नगोंपर शयन करनेवाली ॥ ५ ॥ पंचमात्रात्मिका, पृथ्वी, पथिका पृथुदोहिनी, पुराण न्यायमीमांसारूप पाटली, पुष्प गंधवाली ॥ ६ ॥ पुण्यप्रजा पारदात्री, परमार्गैक गोचरा, प्रवालवत् शोभा वाली, पूर्णाशा, प्रणवरूपिणी, पल्लवोदरि ॥ ७ ॥ [फकारादि ७ नाम] फलिनी फलदा, फलगु, फूत्कारी फलकाकृति फणीन्द्रभोगपर शयन करनेवाली, फणिमंडलसे मंडित ॥ ८ ॥ (बकारादि ५० नाम) बालबाला, (बालकसेभी बालक) बहुमता , बालसूर्यके समान वस्त्रवाली, बलभद्रप्रिया, वन्दनयोग्य, वडवा बुद्धिसे स्तुतिको प्राप्त ॥ ९ ॥ वंदीदेवी बिलवती (छिद्रकर्मकी देखने वाली) वडिशघ्नी (कपटनाशिनी) वलिप्रिया, बांधवी बोधिता बुद्धिः बंधूककुसुमप्रिया ॥ ११० ॥ बालसूर्यके प्रभाकीसमान आकारवाली, ब्राह्मी, ब्राह्मणोंकी देवता, बृहस्पतिसे स्तुतिको प्राप्त, वृन्दादेवीरूप, वृंदावनमें विहारकरनेवाली ॥ ११ ॥ बालाकिनी (बलाकाओंके समूहवाली) बिलाहारा (छिद्रनाशिनी) बिलवासा (गुहामें शयनकरनेवाली) बहूदका, बहुनेत्रा, बहुपदा, बहुतकर्णोंके भूषणवाली ॥ १२ ॥ बहुतबाहूओंसे युक्त बीजरूपिणी, बहुरूपिणी, बिन्दुनादकी कलासे परे बिन्दुनादस्वरूपिणी ॥ १३ ॥ बद्धगोधाङ्गुलित्राणा (गोधाके चर्मका अंगुली त्राण बाँधे) बद्रिकाश्रमनिवासिनी, वृन्दारकारूप बृहत्स्कंधवाली, बृहती, बाणपातिनी ॥ १४ ॥ वृन्दाध्यक्षा, बहुतोंसे स्तुतिकी हुई, विनता, बहुविक्रमा, बद्धपद्मासनासीना, बिल्वपत्रके तलमें स्थित ॥ १५ ॥ बोधिद्रुम निजावासा, बडिस्था (बलिमें स्थित) बिन्दुदर्पणा अव्यक्तात्मक दर्शन वाली बाला,बाणासनवती (धनुषधारिणी) वडवानलवेगिनी॥ १६ ॥ब्रह्माण्डके बाहर

भीतरव्याप्त ब्रह्मकंकणसूत्रिणीब्रह्मविद्या देनेवाली (भकारादि ४० नाम) भवानी, भीषणवती, भाविनी, भयहारिणी ॥ १७ ॥ भद्रकाली भुजंगाक्षी, भारती, भारताशया, भैरवी, भीषणाकारा, भूतिदा, भूतिमालिनी ॥ १८ ॥ भामिनी, भोगनिरता, भद्रदा (कल्याणदायिनी) भूरिविक्रमा, भूतवासा, भृगुलता, भार्गवी, भूसुरोंसे पूजित ॥ १९ ॥ भागीरथी भोगवती, भवनस्था, भिषग्वरा, भामिनी, भोगिनी, भाषा, भवानी, भूरिदक्षिणा ॥ १२० ॥ भर्गात्मिका, भीमवती, भवबंधविमोचनी, भजनीया, भूतधात्री, रंजिता, भुवनेश्वरी ॥ २१ ॥ भुजंगोंके वलयवाली, भीमा, भेरुण्डा, भागधेयिनी, [मकारादि ५४ नाम] माता, माया, मधुमती, मधुजिह्वा, मधुप्रिया ॥ २२ ॥ महादेवी, महाभागा, मालिनी, मीनलोचना, मायातीता, मधुमती, मधुमांसा, मधूद्भवा ॥ २३ ॥ मानवी, मधुसंभूता, मिथिलापुरवासिनी, मधुकैटभकी संहार करनेवाली मेदिनी, मेघमालिनी ॥ २४ ॥ मंदोदरी, महामाया, मैथिली, मसृणप्रिया, महालक्ष्मी, महाकाली, महाकन्या, महेश्वरी ॥ २५ ॥ माहेन्द्री, मेरुतनया, मन्दारकुसुमार्चिता, मंजुमंजीरचरणा, मोक्षदा, मंजुभाषिणी ॥ २६ ॥ मधुरद्राविणी मुद्रा, मलया, मलयान्विता, मेधामरकतश्यामा, मागधी, मेनकात्मजा ॥ २७ ॥ महामारी, महावीरा, महाश्यामा, मनुस्तुता, मातृका, मिहिराभासा, मुकुन्दपदविक्रमा ॥ २८ ॥ मूलाधारमें स्थित, मुग्धा, मणिपुरनिवासिनी, मृगाक्षी, महिषारूढा, महिषासुरकी मर्दन करनेवाली ॥ २९ ॥ (यकारादि २० नाम) योगासना, योगगम्या, योगा, यौवनकाश्रया, यौवनी, युद्धमध्यस्था, यमुना, युगधारिणी ॥ १३० ॥ यक्षिणी, योगयुक्ता, यक्षराजप्रसूतिनी, यात्रा, यानविधानकी ज्ञाता, यदुवंशसमुद्भवा, ॥ ३१ ॥ यकारसे हकारपर्यन्त याजुषी, यज्ञरूपिणी, यामिनी, योगनिरता यातुधानोको भय देनेवाली ॥ ३२ ॥ [रकारादि ३७ नाम] रुक्मिणी, रमणी, रामा, रेवती, रेणुका, रति, रौद्री, रौद्रप्रियाकारा, राममाता, रतिप्रिया ॥ ३३ ॥ रोहिणी, राज्यदा, रेवा, रमा, राजीवलोचना, राकेशी, रूपसंपन्ना, रत्नसिंहासनपर स्थित ॥ ३४ ॥ रक्तमाल्याम्बरधरा, रक्तगंधका अनुलेपन लगाये, राजहंसपर चढी, रंभा, रक्तवलिप्रिया ॥ ३५ ॥ रमणीययुगाधारा राजिताखिलभूतला, रुरुका चर्म ओढनेवाली, रथिनी, रथमालिका ॥ ३६ ॥ रोगेशी, रोगशमनी, राविणी रोमहर्षिणी, रामचन्द्रपदाक्रान्ता, रावणकी नष्ट करनेवाली ॥ ३७ ॥ रत्न और वस्त्रोंसे परिच्छिन्न, रथमें स्थित रुक्मभूषणवाली, [लकारादि १३ नाम] लज्जाधि-

देवता, लोला, ललिता, लिंगधारिणी ॥ ३८ ॥ लक्ष्मी, लोला, लुप्तविषा, लोकिनी, लोकविश्रुता, लज्जा, लम्बोदरीदेवी, ललना, लोकधारिणी ॥ ३९ ॥ [वकारादि ३७ नाम] वरदा, वंदिता, विद्या, वैष्णवी, विमलाकृति, वाराही, विरजावर्षा, वरलक्ष्मी, विलासिनी ॥ १४० ॥ विनता, व्योममध्यस्था, वारिजासनसंस्थिता, वारुणी वेणुसंभूता, वीतिहोत्रा, विरूपिणी ॥ ४१ ॥ वायुमण्डलमध्यस्था, विष्णुरूपा, विधिक्रिया, विष्णुपत्नी, विष्णुमती, विशालाक्षी, वसुन्धरा ॥ ४२ ॥ वामदेवप्रिया, वेला, वज्रिणी, वसुदोहिनी वेदाक्षरसे युक्त अंगवाली, वाजपेयका फलदेनेवाली ॥ ४३ ॥ वासवी वामजननी वैकुंठस्थानवाली, वरा, व्यासप्रिया, वर्मधरा, वाल्मीकिसे परिसेवित ॥ ४४ ॥ [शकारादि २९ नाम] शाकंभरी, शिवा, शान्ता, शारदा, शरणागति, शातोदरी, शुभाचारा, शुंभासुरविमर्दिनी ॥ ४५ ॥ शोभावती, शिवाकारा शंकरार्धशरीरिणी, शोणा, शुभाशया, शुभ्रा, शिरःसंधानकारिणी ॥ ४६ ॥ शरावती, शरानंदा, शरज्ज्योत्स्ना, शुभानना, शरभा, शूलिनी, शुद्धा, शबरी, शुकवाहना ॥ ४७ ॥ श्रीमती, श्रीधरानंदा, श्रवणानंददायिनी, शर्वाणी, शर्वरी वंद्या, [षकारादि ५ नाम] षड्भाषा, षड् ऋतुप्रिया, षडाधारस्थिता देवी (मूलाधारमें आदिमें स्थित देवियोंकी स्वामिनी) षण्मुखप्रियकारिणी, षडंगरूपसुमतिसुरासुरनमस्कृता (षडंगरूप देवताओंसे नमस्कृत) तथा असुरोंसे नमस्कृत ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ [सकारादि २७ नाम] सरस्वती सदाधारा, सर्व मंगलकारिणी, सामगानप्रिया, सूक्ष्मा, सावित्री, सामसंभवा, ॥ १५० ॥ सर्ववासा, सदानंदा, सुस्तनी, सागराम्बरा, सर्वैश्वर्यप्रिया, सिद्धि, साधुबंधु परा (पद) क्रमा अपने भक्तोंके जो बांधव तिनमें विचरनेवाली अर्थात् अपने भक्तोंके भक्तोंमें दयावती ॥ ५१ ॥ सप्तर्षिमंडलमें प्राप्त, सोममण्डलवासिनी, सर्वज्ञा सान्द्रकरुणा, समानाधिकवर्जिता ॥ ५२ ॥ सर्वोत्तुंगा, संगहीना, सद्गुणा, सकलेष्टदा, सरघा (मधुमक्षिकारूप) सूर्यतनया, सुकेशी सोमसंहति ॥ ५३ ॥ [हकारादि चारनाम] हिरण्यवर्णा, हरिणी, ह्रींकारी, हंसवाहिनी, [क्षकारादि तीन नाम] क्षौमवस्त्रपरीतांगी, क्षीराब्धितनया, क्षमा ॥ ५४ ॥ [गायत्रीआदिआठनाम मातृका क्रम रहित हैं] गायत्री, सावित्री, पार्वती, सरस्वती, वेदगर्भा, वरारोहा श्रीगायत्री पराम्बिका ॥ ५५ ॥ हेनारद! यह गायत्रीके सहस्रनाम पुण्यकारी पापनाशक महा सम्पत्तिदायक हैं ॥ ५६ ॥ यह नाम गायत्रीके संतुष्ट करनेवाले हैं ब्राह्मणोंके सहित अष्टमीको पढने चाहिये ॥ ५७ ॥ जप होम पूजा और विशेषरूप ध्यान करकै आराधन करै, यह गायत्री जिसाकि-

सीको न देनी चाहिये ॥ ५८ ॥ सुभक्त सुशिष्य ब्राह्मणके निमित्त कहनी चाहिये भ्रष्टसाधक तथा बांधवोंको न दिखावै ॥ ५९ ॥ जिसके घरमें यह शास्त्र लिखा है उसको कुछ भय नहीं होता, चंचला लक्ष्मी उस स्थानमें स्थित होकर रहती है ॥ ६० ॥ यह परम रहस्य गुह्यसे भी गुह्य है यह मनुष्योंको पुण्य और दरिद्रियोंको निधि देनेवाला है ॥ ६१ ॥ मुमुक्षुओंको मोक्ष और कामियोंको सब कामना देनेवाला है, रोगी रोगसे बंधाहुआ बँधनसे मुक्त होजाता है ॥ ६२ ॥ जो मनुष्य ब्रह्महत्यारे सुरापानेवाले सुवर्णके चोर गुरुदारगामी हैं वह भी इसका जपकरकै पातकोंसे छूटजाते हैं ॥ ६३ ॥ असत्य प्रतिग्रह और विशेषकर अभक्ष्यभक्षण करनेसे तथा पाखण्ड और असत्यके पापसे पढतेही छूटता है ॥ ६४ ॥ हे नारद! यह निर्मल रहस्य आपसे कहा यह मनुष्योंको ब्रह्मसायुज्यका देनेवाला है सत्य २ कहता हूं इसमें सन्देह नहीं ॥ १६५ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे भाषायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ७.

श्रीनारदजीबोले मैं ने गायत्री सहस्रनाम महापुण्यफल देनेवाला सुना जो स्तोत्र महा उन्नति करनेवाला, महाभाग्य करनेवाला है ॥ १ ॥ अब दीक्षालक्षण सुननेकी इच्छा करताहूं जिसके विना देवीमंत्रमें अधिकार सिद्ध नहीं होता ॥ २ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य स्त्रियोंको सामान्य विधि और विस्तारसे कहो ॥ ३ ॥ श्रीनारायणबोले भावितात्मा शिष्योंको दीक्षाविधान कहता हूं जिससे देव अग्नि गुरु पूजाकी विधिमें जिसप्रकार अधिकारहो ॥ ४ ॥ जो दिव्य ज्ञानदे तथा पापक्षय करै विदत विशारदोंने उसीका नाम दीक्षा कहाहै ॥ ५ ॥ यह अवश्यकरनी चाहिये जिससे वह फल अधिक देनेवाली है इसमें गुरुशिष्योंकी शुद्धि अधिक अपेक्षित है ॥ ६ ॥ गुरुविधिपूर्वक सब प्रातःकृत्य करकै संध्यास्नानादि सब यथाविधि विधान कर ॥ ७ ॥ कमंडलु हाथमें लिये मौनी हो सरितके किनारेसे घर आजाय फिर यागमण्डपमें प्राप्तहो वर आसनमें स्थित हो ॥ ८ ॥ आचमन कर प्राणायामपूर्वक गंध पुष्पसे युक्त सातवार फट् अस्त्रमंत्रसे जलको साधन करै ॥ ९ ॥ बुद्धिमान् उस जलसे अस्त्रमंत्रको उच्चारण करता हुआ मण्डपके द्वारेको प्रोक्षण कर फिर पूजा

आरंभ करै ॥ १० ॥ द्वारके ऊर्ध्व फलक प्रथम प्रान्तमें गणनाथ मध्यमें लक्ष्मी और दूसरेमें सरस्वतीकी मंत्रपूर्वक धूप दीपसे पूजा करै ॥ ११ ॥ दक्षिणद्वारकी शाखामें गंगा और विघ्नेशकी पूजा करै द्वारकी वाम शाखामें क्षेत्रपाल और यमुनाकी पूजा करै ॥ १२ ॥ देहलीमें अस्त्रदेवताकी फट् मंत्रसे पूजा करै सब प्रकारसे यह चिन्ता करै यह दृश्य सब देवीमय है सब जगह पूजै ॥ १३ ॥ इस मंत्रके जपसे दिव्य विघ्नोंको दूर करै अस्त्रमंत्रके जपसे अन्तरिक्ष और पादाघातसे भूमिके विघ्नोंको दूरकरै ॥ १४ ॥ बाँईशाखाको स्पर्शकरता हुआ पीछे दक्षिण चरणके चौंखटके उसपार प्रवेशकर मंडपमें जाय सामान्य अर्घ्यदे कुंभस्थापन करै॥ ॥ १५ ॥ उस अर्घ्यदानके पश्चात् नैर्ऋत्यदिशामें पूजाकरै वास्तोष्पति और ब्रह्मा इनकी गंध पुष्प अक्षतादिसे पूजाकरै ॥ १६ ॥ फिर उस अर्घ्यजलसे पंचगव्य करै तोरणस्तंभपर्यन्त गुरु मंडपको प्रोक्षण करै॥ १७॥ और मनसे भावना करै कि,यह सब देवीमय है, भक्तिसे मूलमंत्रका जप और अस्त्रमंत्रसे प्रोक्षण करै ॥ १८ ॥ शरमंत्र (फट्) का उच्चारण करकै मण्डपकी भूमिको ताडन करै हुं मंत्रका उच्चारण कर अभ्युक्षण (सेक) करै ॥ १९ ॥ अन्तर धूपोंसे धूपित करै विकरोंको विकरित करै.जल चन्दन, सरसों, भस्म, दूर्वांकुर अक्षत यह विकिर सब विघ्नोंके नाशक हैं कुशके पुञ्जोंसे मार्जनी बनाय मार्जन करै ॥ २० ॥ हे मुने! उस पुञ्जको ईशान दिशामें करके मार्जन करै और पुण्याहवाचन करकै दीन और अनाथोंको सन्तुष्ट करै ॥ २१ ॥ फिर अपने गुरुको प्रणामकर मृदु आसनपर बैठे विधिपूर्वक पूर्व मुखकर ध्यानकर मंत्रके देवताका ध्यानकर ॥ २२ ॥ पूर्वोक्तप्रकारसे भूतशुद्धि आदि करकै ऋषि आदिका न्यास करके मंत्र देना चाहिये ॥ २३ ॥ मंत्रके ऋषिको शिरमें मुखको छन्दमें देवताको हृदयमें बीजको गुह्यमें शक्तिको ॥ २४ ॥ चरणोंमें न्यास करके पीछे तीन ताली बजाय, फिर तीन चुटकी बजाकर दिग्बंधकरै ॥ २५ ॥ फिर प्राणायामकर मूलमंत्रका उच्चारण करते हुए देहमें मातृकान्यास करै उसका प्रकार कहते हैं ॥ २६ ॥ ओं अंनमः कहकर शिरमें न्यास करै ओं आंनमः ओं इंनमः आदिसे हे मुने। सब स्थानोंमें न्यास करै ॥ २७ ॥ जो शिष्यको मंत्र दियाजाय उसका षडंगन्यास करै अंगुली और हृदयादि क्रमसे न्यास करै ॥ २८ ॥ जैसे हृदयायनमः शिरसेस्वाहा शिखायैवषट् कवचायहुम् नेत्रत्रयायवौषट् अस्त्रायफट् इस रीतिसे करै इसप्रकार करकै ॥ २९ ॥ फिर मूलमंत्रसे यथायोग्य वर्णन्यास करै

उन सबस्थानोंमें करै यही न्यासकी विधि है ॥ ३० ॥ फिर अपने शरीरमें आसनकी कल्पना कर दहिनी ओर धर्म बायेंमें ज्ञानका न्यास करै ॥ ३१ ॥ बाईं उरुमें वैराग्य, दहिनीमें ऐश्वर्य, मुखमें अधर्मका न्यास करै ॥ ३२ ॥ यथा वामपार्श्वमें अधर्मायनमः नाभिमें अवैराग्यायनमः दक्षिणपार्श्वमें अज्ञानायनमः अनैश्वर्य्याय नमः यह पढै ॥ ३३ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! पीठके धर्मादि पाद हैं और अधर्मादि अंग मुनियोंने स्मरण किये हैं ॥ ३४ ॥ पीठ (पलंग) पर अनन्तका न्यास करै अनन्तमें प्रपंचकमलका ध्यान करै कमलमें सूर्य चन्द्र और अग्निका ध्यान करना चाहिये ॥ ३५ ॥ सबको कलासहित न्यास करै उनकी कला संक्षेपसे कहते हैं सूर्यकी बारह और चन्द्रमाकी सोलह कला हैं ॥ ३६ ॥ अग्निकी दश कला हैं इनसे युक्त स्मरण करै इसके उपरान्त सत्वादि गुणोंका न्यास करै ॥ ३७ ॥ आत्मा अन्तरात्मा परमात्मा ज्ञानात्मा इनका न्यास पूर्वादि दिशाओंमें करै, इसप्रकार पीठ (आसन) की कल्पना है ॥ ३८ ॥ अमुकासनायनमः इससे साधक आसनकी पूजाकरै फिर पराम्बिकाका ध्यानकरै ॥ ३९ ॥ जो मंत्र देना है उस देवताकी कल्पकी विधिसे मानसी पूजा करकै ॥ ४० ॥ विद्वान् कल्पमें कही आनन्ददायक मुद्रा दिखावै जिनको दिखानेसे देवी बहुत प्रसन्न होती है ॥ ४१ ॥ नारायण बोले फिर अपने वामभागमें षट्कोण करै फिर गोलाकार बनावै उस पर चौकोन चन्दनसे बनावै ॥ ॥ ४२ ॥ उसके मध्यमें त्रिकोण लिखकर शंखमुद्रा दिखावै, फिर छहों कोनोंमें देने वाले मंत्रके षडंगोंकी फूलोंसे पूजा करै ॥ ४३ ॥ यह अग्नि आदिकोणमें षडंग पूजा करै फिर शंखके नीचेके आधारपात्रको लेकर हेमुनिराज! ॥ ४४ ॥ फट् इस अस्त्र मंत्रसे उसको प्रोक्षण कर उस मंडलमें स्थापनकरै मं वह्निमंडलाय दशकलात्मने दुर्गादेव्यर्घ्यपात्रस्थापनायनमः ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ यह शंखके आधारपात्रके स्थापनकामंत्र है आधारमें पूर्वादिदिशाके क्रमसे अग्निकी दशकलाओंकी पूजा करै ॥ ४७ ॥ फिर मूलमंत्रसे शंखको प्रोक्षण कर मूलमंत्रको स्मरण करते हुए उस आधारमें स्थापन करै ॥ ४८ ॥ अं सूर्यमंडलाय द्वादशकलात्मने दुर्गादेव्यर्घपात्रायनमः यह मंत्र उच्चारण करै ॥ ४९ ॥ फिर 'शं शंखाय नमः' यह मंत्र पढकर शंखपर जल छिडकै उसमें बारह कलाका पूजन करै ॥ ५० ॥ सूर्यकी जो तापिनी आदि बारह कला हैं उनको यथाक्रमसे पूजै उलटी मातृका और मूलमंत्र पढकै ॥ ५१ ॥ जलसे शंखको पूर्ण कर उसमें सोमकलाका न्यास करै ओं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने दुर्गादेव्यर्घ्यामृताय

हृदायनमः इस मंत्रसे कुशमुद्रासे जलकी पूजा करै ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ उसमें तीर्थोंका आवाहन कर आठवार देय मंत्रको जपकर जलमें षडंग न्यास कर हृदा इस मंत्रसे जलकी पूजा करै ॥ ५४ ॥ आठवार मंत्र जपकर मत्स्यमुद्रासे उसको आच्छादन करै फिर उसके दक्षिणभागमें शंखकी प्रोक्षणी धर दे ॥ ५५ ॥ फिर शंखसे कुछ जल लेकर उससे सब ओर प्रोक्षण करै, फिर पूजाद्रव्य और अपनेको विशुद्ध भावना करै ॥ ५६ ॥ नारायण बोले फिर अपने आगे वेदीमें सर्वतोभद्रमण्डल लिखकर जडहनके चावलसे उसकी कर्णिकाको पूरित करै ॥ ५७ ॥ वहां कुशाओंको फैलाकर २७ कुशोंका कूर्च बनाय स्थापित करै आधारशक्तिसे आरंभकर मन्त्रान्ततक पीठकी पूजा करै ॥ ५८ ॥ फिर छिद्र-रहित सुन्दर कलश स्थापनकर फट् मंत्र पढकर जलसे पोंछे फिर तीन भागके लाल-डोरेसे उसे लपेटे ॥५९॥ नवरत्न कूर्च गन्धादि उसमें डालै डालनेके समय ॐकार मंत्र पढै और उसपर स्थापन करै ॥ ६० ॥ कुंभको पीठपर धर उसकी एकत्वभा-वना करै और क्षकारसे ले अकारपर्यन्त उलटे अक्षर पढकर कुंभको पीठपर धर ॥ ॥ ६१ ॥ तीर्थजलसे पूरित करै और मूलमंत्र जपै अश्वत्थ पनस आमके कोमल नवीन पत्तोंसे ॥ ६२ ॥ घटका मुख ढकदे उसपर चषक फल और अक्षत रखकर बुद्धिमान् दो वस्त्रोंसे वेष्टन करै ॥ ६३ ॥ प्राणप्रतिष्ठाके मंत्रोंसे उसमें प्राणप्रतिष्ठा करै आवाहनादिमुद्रा दिखाकर देवताको प्रसन्न करै ॥ ६४ ॥ और कल्पोक्तप्रकारसे उस परमेशानीका ध्यान करै देवीके आगे स्वागत कुशल प्रश्न करै ॥ ६५ ॥ पाद्य, अर्घ्य, आचमन, मधुपर्क, अभ्यंग, स्नान यह देवीके निवेदन करै ॥६६॥ फिर लाल अलसीके निर्मल वस्त्र प्रदान करै जो अनेक मणियोंसे युक्त हों परन्तु अकल्पोंकी कल्पना नकरै॥६७॥मातृका वर्णोंसे संपुटित हुए मंत्रसे भलीभाँति पूजा करै,फिर देवीके अंगमें चन्दनादि लगावै ॥ ६८ ॥ काले अगर और कपूरकी गंध केशर चन्दन कस्तूरीके सहित हे मुने! ॥ ६९ ॥ फिर कुन्दादिके फूल देवीको निवेदन करै अगर कपूर उशीर चंदन शर्करा इसकी धूप ॥ ७० ॥ मधु डालकर दे यह धूप देवीको बहुत प्रिय है फिर अनेक दीपक देकर बुद्धिमान् नैवेद्य दे ॥ ७१ ॥ प्रतिद्रव्यके पीछे प्रोक्षणीपात्रको स्थापन करै फिर कल्पके कहे आवरणोंके अनुसार अंगपूजा करै ॥ ७२ ॥ भलीप्रकार सांग देवीका अर्चन कर वैश्वदेव करै. वह इसप्रकार है कि

१ ह्रीं मं ह्रीं ह्रीं मां ह्रीम् इत्यादि मंत्र हैं.

दक्षिण ओर चौंतरा बनाकर उसमें अग्नि स्थापन करै ॥ ७३ ॥ उसमें मूर्त्तिमें स्थित देवताका आवाहन कर क्रमसे पूजन करै फिर ॐकार सहित व्याहृतियोंसे मूल मंत्र पढकर आहुती दे ॥ ७४ ॥ पायस (खीर) और घृतकी २५ आहुती दे. हे मुने ! फिर अन्य साकल्यसे व्याहृतियोंसे आहुती दे ॥ ७५ ॥ फिर गंधादिसे पूजाकर देवीको आसनपर बैठावै फिर अग्निको विसर्जन कर सब ओरसे बलि बखेरदे ॥ ७६ ॥ देवताके पार्षदोंको गंधपुष्पादि संयुक्त पंच उपचारसे पूजन कर ताम्बूल छत्र चामर देकर ॥७७॥ देवीके आगे सहस्र वार मंत्र जपै फिर ईशानी देवीको जप समर्पण कर ईशानकोणमें॥७८॥ कर्करीको रख उसपर दुर्गाको आवाहन कर पूजे और रक्ष रक्ष इसप्रकार उच्चारण कर नालसे छोडे जलसे ॥ ७९ ॥ फट् मंत्र पढकर सब भूमि सींचदे फिर वहां कर्करीको स्थापन कर अस्त्रदेवताकी पूजा करै ॥ ८० ॥ पीछे गुरु शिष्यके साथ मौन हो भोजन करै उस रात्रिको यत्नपूर्वक उसी वेदीमें शयन करै ॥ ८१ ॥ नारायण बोले हे मुने ! अब स्थंडिल और कुंडके संस्कार कहते हैं; वह संक्षेपसे यथान्याय विधानसे कहताहूं ॥८२॥ मूलमंत्र उच्चारण कर कुंड देखै फट् मंत्रसे प्रोक्षण करै और उसी (हुं) कवचसे ताडन करै ॥८३॥ फिर तीन २ वार जलसे सींचकर पूर्व पश्चिमभागमें तीन तीन रेखा लिखै ॥ ८४ ॥ फिर प्रणवसे प्रोक्षण कर देवीके सिंहासनकी पूजा करै आधारशक्तिसे आरंभ कर पीठमंत्रपर्यन्त पूजै अर्थात् आधारशक्तये मनः अमुकदेवीपीठाय नमः कहकर पूजा करै ॥ ८५ ॥ उस पीठपर शिव पार्वतीका आवाहन कर गंधादि उपचारोंसे सावधान हो पूजन करै ॥ ८६ ॥ स्नानकिये शंकरसहित देवीका ध्यान करै कि, ऋतुस्नाता होकर शंकरमें सकाम मन लगाये हैं, इस प्रकार कुछ काल उनकी क्रीडाको ध्यान करै ॥ ८७ ॥ फिर पात्रमें अग्नि लाकर सन्मुख धरै क्रव्याद अंशको छोडकर पूर्वोक्त सब वीक्षणादि करै ॥ ८८ ॥ अच्छीप्रकार संस्कार कर रंबीजका उच्चारण कर सातवार प्रणवका उच्चारण कर उसमें चैतन्यतासंयुक्त करै८९॥ फिर गुरु धेनुमुद्रा दिखावै फट् मंत्रसे रक्षा करकै हुं मंत्रसे अवगुंठित करै ॥ ९० ॥ इसप्रकार गंधादिसे पूजा कर अग्निकुंडपर तीनवार घुमाय कुंडके निकट ओंकार जपता हुआ जाँघोंसे महीतलको स्पर्श करताहुआ ॥ ९१ ॥ शिवका वीर्य प्रकृतिमें गिरता है ऐसा समझके योनिरूप कुंडमें अग्नि निक्षेप करै फिर शिवा और शिवको आचमन करावै ॥ ९२ ॥ हन २ दह २ पच २ सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा यह

अग्निर्दीपनका मंत्र है ॥ ९३ ॥ जातवेद हुताशन प्रदीप्त अग्निको प्रणाम करता हूं जो सुवर्णके समान निर्मल सबओर प्रदीप्त है ॥ ९४ ॥ इस मंत्रसे परम आदरसे अग्निकी स्तुति करै फिर अग्निमंत्रसे षडंगन्यास करै ॥९५॥ अंग यह है सहस्रार्चिः स्वस्तिपूर्ण उत्तिष्ठ पुरुष धूमव्यापी सप्तजिह्व धनुर्धर यह क्रमसे अंग हैं ॥ ९६ ॥ यह जातियुक्त षडंग हैं इनका पूर्वोक्त प्रकारसे न्यास करै अर्थात् जातियुक्ताय नमः स्वाहा वषट् हुं वौषट् फट् यह पद लगावै ॐ सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा इत्यादि मंत्र जानना ॥ ९७ ॥ वरमुद्रा, शक्ति, स्वस्तिक, अभयमुद्रा धारक परममंगल है फिर मंत्रका ज्ञाता कुंडमेखलापर सिंचन करै ॥ ९८ ॥ फिर परिधीमें कुशा बिछावै फिर त्रिकोण षट्कोण अष्टपत्र॥ ९९ ॥ इसप्रकार अग्नियंत्र जाने तिसके मध्यमें नीचेलिखे मंत्रसे अग्निकी पूजाकरै ॥ १०० ॥ वैश्वानर ततोजातवेदः पश्चात् इह आवह लोहिताक्षपद सबकार्योंको साधन करो ॥ १ ॥ यह वह्नि जायान्त मंत्र है इससे अग्निकी पूजाकरै छहों कोनोंके मध्यमें हिरण्या, गगना ॥२॥ रक्ता, कृष्णा, सुप्रभा, बहुरूपा अतिरिक्तका इसप्रकारसे अग्निकी सात जिह्वाओंका पूजन करकै केसरोंमें अंगोंका पूजन करै॥ ३ ॥ दलोंके मध्यमें स्वस्तिक-धारिणी शक्तिका पूजन करै जातवेदा सप्तजिह्व, हव्यवाहन ॥ ४ ॥ अश्वोदर-जसंज्ञ वैश्वानर कौमारतेजा विश्वमुख देवमुख ॥ ५ ॥ "ॐअग्नयेजातवेदसेनमः" इसप्रकार इनके मंत्र जानै और सब ओर वज्रादि आयुध लिये लोकपालोंकी पूजा करै ॥ ६ ॥ नारायण बोले फिर स्रुक् आज्यसंस्कार कर होम करै जिस स्रुवसे घृतलेकर होम करै ॥ ७ ॥ और घृतके दक्षिणभागमें अग्निके दक्षिण नेत्रमें हुनै ॐअग्नयेस्वाहा इसमंत्रसे होम करै ॥ ८ ॥ सोमायस्वाहा इससे मध्यभाग घृतसे अग्नीषोमाभ्यांस्वाहा इससे मध्य नेत्रमें हुनै ॥ ९ ॥ फिर दक्षिणभागसे घृतले-कर अग्निके मुखमें अग्नयेस्विष्टकृते स्वाहा इससे होम करै ॥ ११० ॥ फिर ॐभू र्भुवः स्वाहा इत्यादिसे आहुतीकरै फिर तीनवार पूर्वोक्त अग्निमंत्रसे आहुती दे ॥ ॥ ११ ॥ फिर प्रणवमंत्रसे आठ घीकी आहुती दे हे मुने ! इसप्रकार गर्भाधाना-दि संस्कार करनेके अर्थ हुनै ॥ १२ ॥ वे ये है गर्भाधान, पुंसवन सीमंतोन्नयन, जातकर्म, नामकर्म, निष्क्रमण ॥ १३ ॥ अन्नप्राशन, चूडाकरण व्रतबंध ॥ १४ ॥ गोदान विवाह यह श्रुतिकथित कर्म है फिर शिव पार्वतीका पूजनकर विसर्जन करै ॥ १५ ॥ और अग्निके उद्देशसे साधक पांच समिधा हवन करै फिर एक एक आ-

वर्णकी आहुती दे ॥ १६ ॥ फिर स्रुवसे चारवार घृत लेकर अपने आसनमें स्थित हुआ आहुती दे ॥ १७ ॥ फिर अग्निके वौषट् मंत्रपूर्वक महागणेशके मंत्रसे दशआहुती दे ॐ ॐ स्वाहा, १ ॐश्रींस्वाहा २ ॐ श्रीं ह्रीं स्वाहा ॐ श्रीं ह्रीं क्लींस्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गंस्वाहा ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौंगंगणपतेस्वाहा ७ वरवरद ८ सर्वजनंमेवशं ९ आनयस्वाहा यह दश आहुती हैं ॥ १८ ॥ फिर अग्निमें पीठकी पूजाकर सुनानेवाले मंत्रके देवताका ध्यान अग्निमुखमें करै और २५ मूल मंत्रसे आहुती दे ॥ १९ ॥ अग्नि और देवताका एक मुख करनेके निमित्त अपने साथ भावना करै ॥ १२० ॥ इसप्रकार जो भावना करता है वह उत्तम साधक है षडंग देवताओंकी पृथक् आहुती दे ॥ २१ ॥ हेमुनिसत्तम! इसप्रकार ग्यारह आहुती दे. हे मुने! इससे अग्नि और अभीष्ट देवताकी एकता होजाती है ॥ २२ ॥ फिर एक देवताके एक अग्निके उद्देशसे आहुती दे. हे मुने! इसप्रकार क्रमसे आहुती दे ॥ २३ ॥ फिर कल्पमें कहे शेष साकल्य वा तिलसे आहुतीदे देवीके अष्टोत्तर सहस्रनामसे हवन करै ॥ २४ ॥ इस प्रकार आहुतीसे देवी आवृत्तिदेवी और अग्नि आदिदेवताओंको संतुष्ट समझै ॥ ॥ २५ ॥ फिर जब शिष्य स्नान संध्या कर चुके तब दोवस्त्र धारण किये सुवर्णके आभूषण पहरे हो ॥ २६ ॥ उस शुद्धचित्त कमंडलु हाथमें लियेको गुरु कुंडके निकट प्राप्त करै तब शिष्य गुरु और सभासदोंको प्रणाम कर ॥ २७ ॥ तथा कुलदेवताको प्रणाम कर विष्टरपर बैठे तब गुरु उस शिष्यको कृपादृष्टिसे देखैं ॥ २८ ॥ और उसके चैतन्यको अपने देहमें संगत हुआ भावना करै फिर शिष्यके शरीरमें आगेलिखे अध्वाका शोधन करै ॥ २९ ॥ होमसे उसकी शुद्धिहोती है सोकरके कृपादृष्टिसे अवलोकनकरै जिससे यह शुद्धात्मा होकर देवादिके अनुग्रह योग्य होता है ॥ १३० ॥ नारायण बोले शिष्यके शरीरमें क्रमसे छः मार्ग ध्यान करै चरणोंमें कलाध्वा लिंगमें तत्वाध्वा ॥ ३१ ॥ नाभिमें भुवनाध्वा, हृदयमें वर्णाध्वा मस्तकमें पदाध्वा मूर्धामें मंत्राध्वा ॥ ३२ ॥ शिष्यको कूर्चसे स्पर्शकर मंत्र पढै और विचारे कि, इसके अध्वा शुद्ध हों तिल आज्यसे आहुती दे "अस्य शिष्यस्यकलाध्वानं शोधयामि स्वाहा" यह मंत्र उच्चारण करै ॥ ३३ ॥ इसप्रकार आठ वार पढै फिर प्रत्येक अध्वाका नाम लेकर छहों अध्वा ब्रह्ममें लीन भावित करै ॥ ३४ ॥ फिर सृष्टिमार्गसे उत्पादन करै और आत्मस्थित चैतन्य फिर शिष्यमें योजित करै ॥

॥ ३५ ॥ फिर पूर्णाहुती कर देवताको कलशमें विसर्जन करै फिर व्याहृति होम आङ्ग्यंग हवन करै ॥ ३६ ॥ एक एकको आहुती देकर गुरु अपनेमें सबको विसर्जन करै फिर गुरु वस्त्रसे शिष्यके नेत्र बाँधै ॥ ३७ ॥ बाँधनेके समय वौपट् पढकर कुंडके निकटसे कलशके समीप शिष्यको लेजाय और शिष्यके हाथसे मुख्य देवीके आगे पुष्पांजलि करावै ३८ ॥ फिर शिष्यके नेत्र खोलकर कुशके विष्टरपर बैठावै पूर्वप्रकारसे शिष्यके देहमें भूत-शुद्धि करै ॥ ३९ ॥ फिर शिष्यके शरीरमें मंत्रोदित न्यास करकै फिर दूसरे मंडल पर शिष्यको बैठावै जहां घट स्थापित हैं ॥ १४० ॥ मातृका पढ २ कर कुंभके पल्लव शिष्यके शिरपर धरै कलशके जलसे स्नान करावै ॥ ४१ ॥ फिर वर्द्धनी जलसे सींचै, फिर शिष्य उठकर दोवस्त्र धारण करै ॥ ४२ ॥ और अपनी देहमें भस्म लगाकर गुरुके निकट जाय तब गुरु अपने हृदयसे निकली शिवा भगवतीको ॥ ४३ ॥ शिष्यके हृदयमें प्रवेश हुई भावना करै और गन्धादिसे पूजै देवता तथा शिष्यकी एकता जानकर ॥ ४४ ॥ अपना दक्षिण हाथ शिष्यके मस्तकपर धर-कर उसके दहिने कानमें मंत्र सुनावै इसप्रकार अपना हाथ उसके शिरपर रखता हुआ महादेवीका महामंत्र पढै ॥ ४५ ॥ हे मुने ! शिष्यभी एकसौ आठ मंत्र जपता हुआ उन देवतात्मक गुरुको भूमिमें दंडवतः प्रणाम करै ॥ ४६ ॥ और उनको सर्व-स्व समर्पण करकै जीवनपर्यन्त अनन्यबुद्धि रक्खै ऋत्विजोंको दक्षिणा देकर ब्राह्म-णोंको भोजन करावै ॥ ४७ ॥ सुवासिनी कुमारी बटुक भैरव दीन अनाथ दरिद्रि-योंको वित्तकी शठता न करकै दे ॥ ४८ ॥ और अपनेको कृतार्थ मानकर सदा मंत्र जपै यह आपसे उत्तम प्रकारसे दीक्षाविधि कही ॥ ४९ ॥ इसको भलीप्रकार विचार देवीके चरणकमलोंका ध्यान करो ब्राह्मणके निमित्त और कोई परमधर्म नहीं है ॥ १५० ॥ हे नारद ! जो वैदिक अपने गृह्योक्तक्रमसे वेदका उपदेश करै तांत्रिक तंत्ररीतिसे करै यह सनातनी श्रुति है ॥ ५१ ॥ वे अपने २ किये प्रयोगोंको अन्यथा न करै. नारायण बोले हे नारद ! जो तुमने पूँछा सो कहा ॥ ५२ ॥ अब पराम्बाके नित्य चरणोंका भजन करो और परमशान्तिको प्राप्त होकर नित्य आराधना करो ॥ ५३ ॥ व्यास बोले हे राजन् ! इसप्रकार नारदसे सब कुछ कथन कर समाधिमें हो नेत्र मीच नारायण देवीका ध्यान करने लगे ॥ ५४ ॥ इसप्रकार भगवान् नारायण मुनिजनोंमें श्रेष्ठ परमप्रसन्न हुए और नारदजी भी परम नारायण गुरुको प्रणामकर ॥ १५५ ॥ देवीदर्शनकी इच्छासे तप करने चले गये ॥ १५६ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे भाषायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ८.

जन्मेजय बोले हे भगवन् ! सब धर्मोंके ज्ञाता सब शास्त्र जाननेवालोंमें श्रेष्ठ आपने सब द्विजातियोंको शक्तिकी उपासना कही है ॥ १ ॥ जब कि, तीनों कालमें गायत्रीकीही परम उपासना है फिर इसको त्याग ब्राह्मण और देवता क्यों ग्रहण करते हैं, अपनेही देवताको स्मरण करना चाहिये "यो वैस्वां देवतामतियजते प्रस्वायै देवतायै च्यवतेनपरां प्राप्नोति पापीयान् भवति" इति श्रुतेः [तथा च गोपथब्राह्मणे गायत्र्युपनिषदि] यह ब्रह्महीं प्रतिष्ठाका आयतन है इसको जो धारण करता है उसकी सत्यमें प्रतिष्ठा है उसीसे गायत्री है जो जपनेसे पुण्य कीर्ति आदि देती है सामविधान ब्राह्मणमें इसप्रकार अंग लिखे हैं "शिर ब्रह्मा, द्यौ ललाट, चन्द्रादित्य नेत्र, मुख अग्नि, जिह्वा, सरस्वती, त्वष्टा, ग्रीवा, वसुरुद्र बाहू, ऊरु वायु, पृष्ठ इन्द्र, विष्णु नाभि, प्रजापति जघन, उरु मरुत, वेद पाद, स्मित बिजली, उच्छ्वास वायु, अस्थी पर्वत, समुद्र वस्त्र, नक्षत्र अलंकार हैं" जो इसप्रकार जानता है उसका न्यूनाधिक सब पूर्ण होता है. बृहदारण्यकमें कहा है "साहैषा गयांस्तत्रे प्राणावैगयास्तत्प्राणांस्तत्रे तद्यद्गणायां स्तत्रे तस्माद्गायत्रीनामेति" इसीप्रकार अनेक श्रुति हैं, यदि कहो गायत्रीका सविता देवता है सविताका अर्थ यहां तदन्तर्गत जगत्कर्ता परमात्माही विवक्षित है, संध्यामें सूर्यमें ब्रह्मकीही उपासना है, यह सबकी शक्ति है इसकारण यही ध्येय है इसको छोडकर ॥ २ ॥ कोई वैष्णव कोई गाणपत्य कोई चीनदेशीय मार्गमें रत हैं, कोई वल्कल धारी हैं. कोई बहुतसे वेदशास्त्रसे वर्जित दिगम्बर बौद्ध चार्वाकादि दिखाई देते हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥ हे ब्रह्मन्! इसमें क्या कारण है सो आप कहिये जो बुद्धिमान् पंडित अनेक तर्कोंमें चतुर हैं ॥ ५ ॥ यहभी वेद श्रद्धासे रहित हैं. बुद्धिसे कोई अपना कल्याण छोडनेकी इच्छा नहीं करता ॥ ६ ॥ हे वेदविदाम्वर! इसमें कारण क्या है सो कहिये और आपने पहले मणिद्वीपकी महिमा कही थी ॥ ७ ॥ वह कैसा है जहां देवीका परमस्थान है मुझ भक्त श्रद्धावालेसे आप यह भी कहिये ॥ ८ ॥ प्रसन्न हुए गुरु गुह्य बात भी कहते हैं. भगवान् बादरायण यह जन्मेजयके वचन सुन ॥ ९ ॥ हे मुनीश्वरो क्रमसे सब कहने लगे जिसको सुनकर द्विजातियोंकी वेदमें श्रद्धा होती है ॥ १० ॥ व्यासजी बोले हे राजन्! आपने समयोचित भली बात पूँछी तुम बुद्धिमान्

१ तव लकार उपनिषदमें यह कथा देखो ।

वेदमें श्रद्धावाले हो ॥ ११ ॥ पहले मदोद्धत हुए दैत्य देवताओंसे युद्ध करते हुए हे महाराज ! सौ वर्षतक महाविस्मयकारक युद्ध हुआ ॥ १२ ॥ जो अनेक, शस्त्रोंके प्रहार और अनेक मायासे विचित्र अर्थात् उनका जगत्क्षयकारी युद्ध हुआ ॥ १३ ॥ उस समय पराशक्तिकी कृपासे देवताओंने दैत्योंको जीता और वह भूलोकको छोडकर पातालमें चले गये ॥ १४ ॥ तब देवता प्रसन्न होकर अपना अपना पराक्रम वर्णन करने लगे और अभिमानसे बोले ॥ १५ ॥ जब कि हमने अपने पराक्रमकी महिमा दिखाई तब जय क्यों न होती सबसे बडे भी दैत्य क्यों नहीं तथापि वे दैत्य पामर और निष्पराक्रम हैं ॥ १६ ॥ हम तो सब यशस्वी सृष्टिकी स्थिति और लय करनेवाले हैं. हमारे आगे पामर दैत्योंकी क्या कथा है ॥ १७ ॥ वह सब पराशक्तिके प्रभावको न जानकर मोहको प्राप्त होगये उनके ऊपर अनुग्रह करनेको उसी समय जगदम्बा ॥ १८ ॥ कृपाकर यक्षरूपसे प्रगट हुई जो कोटिसूर्यके समान प्रकाशमान् चन्द्रमा करोड़की समान शीतल ॥ १९ ॥ कोटि विद्युत्की समान कान्तिमान् हाथपैर आदिसे रहित वह अदृष्टपूर्व परम सुन्दर तेज देखकर सब कोई विस्मयपूर्वक बोले यह क्या यह क्या यह कोई दैत्योंकी माया वा चेष्टा वा किसी अन्यकी माया है ॥ २० ॥ २१ ॥ यह किसीने देवताओंको विस्मय कारक निर्माण की है तब सब देवता मिलकर विचार करनेलगे ॥ २२ ॥ कि, यक्षके समीप जाकर पूँछना चाहिये कि, तुम कौन हो फिर उसका बलाबल जानकर प्रतिक्रिया करनी चाहिये ॥ २३ ॥ तब अग्निको बुलाकर कहा हे अग्नि ! जाओ तुम हमारा मुखस्वरूप हो ॥ २४ ॥ जाकर इस यक्षको जानो कि यह कौन है. इन्द्रके वचन सुन अपने पराक्रमसे गर्वित ॥ २५ ॥ अग्नि बड़े वेगसे उठकर यक्षके समीप गया तब यक्षने हुताशनसे कहा तुम कौन हो ॥ २६ ॥ कितना तुममें बल है वह सब मुझसे कहो उसने कहा मैं अग्नि जातवेदा हूं ॥ २७ ॥ मुझमें सब विश्वके दहन करनेकी सामर्थ्य है, तब परमतेजस्वी यक्षने अग्निके आगे तृण रखकर ॥ २८ ॥ कहा यदि विश्वदहनकी तुममें शक्ति है तो इसको जलाओ, तब हुताशनने अपने पूर्ण बलसे यत्नकिया पर जला न सका ॥ २९ ॥ तब लज्जित हो देवताओंके समीप गया और देवताओंको पूंछने पर अग्निने सब वृत्तान्त कहा ॥ ३० ॥ हे देवताओं सर्वेश्वर होनेका हमको वृथा अभिमान है तब इन्द्रने वायुको बुलाकर यह कहा ॥ ३१ ॥ यह सब जगत् तुममें प्राप्त है और

तुम्हारी चेष्टाओंसे चेष्टित है तुम सबके प्राणरूप और सबकी शक्तिधारण करनेवाले हो ॥ ३२ ॥ तुम्ही जाकर देखो यह यक्ष कौन है, इस यक्षके जाननेमें और कोई समर्थ नहीं है ॥ ३३ ॥ वह गुणगौरवसे गुंफित इन्द्रके वचन सुन अभिमानपूर्वक यक्षके समीप गया ॥ ३४ ॥ यक्ष वायुको देख कोमल वाणीसे बोला तुम कौनहो क्या तुम्हारी शक्ति है सो हमसे कहो ॥ ३५ ॥ यक्षके वचन सुन गर्वसे मरुत् देवताने कहा मैं वायु मातरिश्वा हूं ॥ ३६ ॥ मुझमें सबके चालन और ग्रहणका पराक्रम है मेरी चेष्टासे सब जगत् व्यापारवाला होताहै ॥ ३७ ॥ वायुकी वाणी सुनकर यक्षने कहा यह तुम्हारे आगे तृण रखता हूं इसको परिचालन करो ॥ ३८ ॥ नहीं तो गर्व छोड़ लज्जितहो इन्द्रके स्थानमें जाओ सर्वशक्तियुक्त वायु यक्षके वचन सुन ॥ ३९ ॥ पूर्ण उद्योग करकै भी उसे अपने स्थानसे चलायमान न करसका तब गर्व त्याग लज्जितहो इन्द्रके समीप गया ॥ ४० ॥ और अपने गर्व दूरकरनेका सब कारण कहा कि हम मिथ्यागर्ववाले इसके जाननेको समर्थ नहीं है ॥ ४१ ॥ यक्षका परम अलौकिक तेज विदित होता है तब सबदेवता सहस्राक्षसे बोले ॥ ४२ ॥ आप देवराजहो तत्वसे इसको जानो तब इन्द्र महागर्वसे चले ॥ ४३ ॥ तब वह यक्षरूप परात्परका तेज इन्द्रके आगेसे अन्तर्धान होगया ॥ ४४ ॥ तब इन्द्र अतिशय लज्जितहुआ यक्षका संभाषणतकभी नहुआ इससे मनमें लघुता हुई ॥ ४५ ॥ और कहा अब मैं देवसभामें नजाऊंगा, देवताओंके सन्मुख मैं अपना लघुत्व कैसे कहूंगा ॥ ४६ ॥ इससे देहत्याग उत्तम है कारण कि मानही महान् पुरुषोंका धन है मानके नष्ट होनेपर जीवन मृत्युकी तुल्य है इसमें सन्देह नहीं ॥ ४७ ॥ इसप्रकार इन्द्र वहां विचार गर्व त्याग कर जिसके यह चरित्र है उसीकी शरण हुआ ॥ ४८ ॥ उसी समय आकाशसे वाणी हुई हे सहस्राक्ष ! तुम मायाबीजका जप करनेसे सुखी होगे ॥ ४९ ॥ तब इन्द्र परात्पर मायाबीजका जप करनेलगे, लाख वर्षतक निराहारहो ध्यानमें नेत्र मूँदे रहा ॥ ५० ॥ फिर अकस्मात् चैत्रशुक्ल नवमी मध्याह्न समय उसी स्थलमें फिर वहतेज प्रगट हुआ ॥ ५१ ॥ एक नव यौवना कुमारी तेजोमण्डलके मध्यमें प्रकाशित जपाकुसुमकी समान कान्तिवाली प्रभातकालीन कोटि सूर्यके समान प्रकाशित ॥ ५२ ॥ भालचन्द्र मुकुटमें धारे वस्त्रान्तरितस्तन लक्षणसे लक्षित चारभुजाओंमें वर पाश अभयरूप अंकुश लिये ॥ ५३ ॥ वह कोमल अंगवाली रमणीयमूर्ति शिवा भक्तोंको कल्पवृक्ष

अनेक भूषणोंसे भूषित ॥ ५४ ॥ तीन नेत्रवाली जूडेमें चमेलीकी माला गुंथीहुई चारोंओर मूर्त्तिमान् चारों वेदोंसे स्तुतिको प्राप्त ॥ ५५ ॥ सबओर, दांतोंकी कान्तिसे भूमिको पद्मराग मणिके समान करती हुई प्रसन्न हँसी कामुख, करोंडो कामकी समान सुंदर ॥ ५६ ॥ लाल वस्त्रोंको धारे लालचन्दनसे चर्चित है. भगवती उमानाम्नी देवी सन्मुख स्थित हुई ॥ ५७ ॥ विनाही कारण करुणाकी मूर्त्ति सब कारणोंकी कारण दिखाई दीं देखतेही इन्द्र प्रेमसे गद्गद होगया ॥ ५८॥ प्रेमाश्रु से नेत्र पूर्ण होकर रोमांचित शरीर होगया और श्रीभुवनेश्वरीके चरणोंमें दंडकी समान पतित हुआ ॥ ५९ ॥ और भक्तिसे प्रसन्नमुख होकर अनेक स्तुतिकी और नम्रहो पूँछा यह यक्ष कौन है॥६०॥और कहांसे प्रादुर्भाव हुआ सो सब कहिये यह वचन सुन करुणामयी बोली॥६१॥वह सब कारणका कारण ब्रह्मरूप मेराही है जो माया-का अधिष्ठान सर्वसाक्षी निरामय है ॥ ६२ ॥ सब वेद जिसके पदका वर्णन करते सब तप जिसके गुण कहते, जिसकी प्राप्तिके निमित्त ब्रह्मचर्य कियाजाता है संग्रहसे वह पद तुमसे कहती हूं ॥६३॥ जो एकाक्षर ॐ है वही ह्रीं है, हे सुरोत्तम! मुख्य-तासे मेरे मंत्रके दोबीज हैं॥६४॥यह दोनोंभागसेंही मैं सबजगत् प्रगट करतीहूं उसीका एकभाग सच्चिदानंद नामकहै ॥ ६५ ॥ प्रकृतिसंज्ञक माया दूसरा भाग है वह माया पराशक्ति और वह ईश्वरी शक्ति मैं हूं ॥ ६६ ॥ चन्द्रमासे चांदनीकी समान यह सबमुझसे अभिन्न है हे सुरोत्तम! यह मेरी माया साम्यावस्थावाली है ॥६७॥ प्रल-यमें सब जगत् मुझसे अभिन्न रहता है फिरभी प्राणियोंके कर्मके परिपाक वशस ॥ ॥ ६८ ॥ वह अव्यक्तरूप प्रगट होते हैं और जो अन्तर्मुखा अवस्था है उसे ही माया कहते हैं ॥ ६९ ॥ और बहिर्मुख माया तम शब्दसे व्यवहार की जाती है वहिर्मुख तमोरूपसे सत्वगुणका संभव है ॥ ७० ॥ हे राजन्! उससे रजोगुण होता है, उससें ब्रह्मा विष्णु महेश्वरी त्रिगुणात्मक देवता होते हैं ॥ ७१ ॥ रजोगुण अधिक होनेसे ब्रह्मा, सत्वगुणकी अधिकतासे विष्णु तमोगुणकी अधिकताही सर्व कारणरूप रुद्र है ॥ ७२ ॥ स्थूल देहका अर्थ ब्रह्मा, लिंग देह हरि, कारणदेह रुद्र, और तुरीयारूप मैं हू ॥ ७३ ॥ जो तीनों गुणोंकी साम्यावस्था अन्तर्मुख है वही माया तुरीयारूप उपाधिवाली है वही अन्तर्यामीरूपिणी है इससे आगे परब्रह्म मेरा रूप रूपवर्जित है ॥ ७४ ॥ निर्गुण सगुण यह मेरे दो रूप हैं मायाहीन निर्गुण और मायायुक्त सगुण है ॥ ७५ ॥ सो मैं सब जगत् सृजन

कर उसके अन्तरमें प्रवेश कर कर्मानुसार निरन्तर जीवकी प्रेरणा करती हूं ॥ ॥ ७६ ॥ सृष्टि स्थिति और तिरोधानमें मैंही प्रेरणा करतीहूं. ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र इन कारणात्माओंको मैंही प्रगट करती हूं ॥ ७७ ॥ मेरे भयसे वायु चलता सूर्य उदय होता. इसी प्रकार इन्द्र, अग्नि, अपना २ कार्य करते हैं. मैं सर्वोत्तमा हूं ॥७८॥ मेरीही कृपासे तुम सर्वथा जय पातेहो काष्ठकी पुतली समान मैं तुम सबको नचातीहूं ॥ ७९ ॥ कभी देवता और कभी दैत्योंकी विजय होती, सर्व स्वतंत्र और स्वेच्छासे कर्मानुसारही अपना कर्म करते हैं ॥ ८० ॥ सो मुझ सर्वात्मिकाको तुम अपने गर्वसे भूलकर अहंकारयुक्त हो दुरंत मोहसे व्याप्त हुए ॥ ८१ ॥ अनुग्रह करनेके निमित्त तुम्हारे सबके देहसे मेरा यक्षरूप तेज निर्गत होगया था ॥८२॥ अब सब भावसे अपने देहका गर्वत्यागकर सच्चिदानंदरूपिणी मेरी शरण हो ॥ ८३ ॥ व्यासजी बोले महाप्रकृति ईश्वरी मूलरूप भगवती यह कह भक्तिपूर्वक देवताओंसे स्तुतिको प्राप्त हो अन्तर्धान हुई ॥ ८४ ॥ तब सब देवता गर्वत्याग भगवतीके परात्पर चरणकमलोंका ध्यान करने लगे ॥ ८५ ॥ तीनों कालमें सब गायत्रीजपमें तत्पर हुए और यज्ञभागादिसे सब नित्यदेवीकी सेवा करने लगे ॥ ॥ ८६ ॥ इसप्रकार सतयुगमें सब गायत्रीजपमें तत्पर थे प्रणव और हृल्लेखा मंत्रोंके जपमेंही मन लगाये थे ॥ ८७ ॥ वेदमें जैसे "अहरहस्संध्यामुपासीत" यह संध्या करनेमें गायत्रीजपके नित्य विधिवाक्य हैं ऐसे विष्णु उपासना विष्णुदीक्षा, वा शिव उपासनाके नित्य विधिवाक्य नहीं देखे जाते ॥ ८८ ॥ सर्व वेद सिद्धान्त गायत्री उपासनाही नित्य है, जिसके विना सर्वथा ब्राह्मणका अधःपतन होजाता है ॥ ८९ ॥ ब्राह्मण गायत्रीसेही कृतकृत्य है इसको और अपेक्षा नहीं है गायत्रीमें निष्णात होकरभी ब्राह्मण मुक्तिका अधिकारी होता है ॥ ९० ॥ चाहे वह और कार्यकरै वा नकरै यह स्वयं मनुने कहा है [कुर्यादन्यन्नवाकुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते मनु०] जो ब्राह्मण अपनी परम इष्टगायत्रीको तो किंचित् जप नहीं करता केवल विष्णुकी उपासना ॥ ९१ ॥ वा शिवोपासनामेंही रत है वह मोक्षको नहीं प्राप्त होता आवागमनरूप दुःखमें ही जाता है. हे राजन् ! इससे आदियुगमें सब गायत्री जपमें तत्पर थे ॥ ९२ ॥ और इसीसे सब देवता गायत्री देवीके चरणकमलमें प्रीति करते थे ॥ ९३ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे भाषायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ९.

व्यासजी बोले हे विभो! एक समय प्राणियोंके कर्मवशसे पन्द्रह वर्षतक मेघ नहीं वर्षा था ॥ १ ॥ अनावृष्टिके कारण क्षयकारक घोर दुर्भिक्ष हुआ घर घरमें शवोंकी संख्या न रही ॥ २ ॥ कोई क्षुधासे व्याकुल हो अश्व वराह तथा कोई निकृष्ट मृतक मनुष्योंके शरीर भक्षण करने लगे ॥ ३ ॥ बालकको माता स्त्रीको पुरुष यह सबही क्षुधासे व्याकुल हो खानेकी इच्छा करने लगे ॥ ४ ॥ उस समय बहुतसे ब्राह्मण यह विचार करने लगे कि, तपस्वी गौतमजी हमारे खेदको दूर करैं गे ॥ ५ ॥ सब मिलकर हम गौतमके आश्रममें चलैं वह गौतम गायत्रीजपमें लगे हुए हैं ॥ ६ ॥ वहां सुभिक्ष सुना जाता है और बहुतसे प्राणी वहां गयेभी हैं, ऐसा विचार कर भूदेव अग्निहोत्री कुटुम्बी ॥ ७ ॥ गौ और दासोंको साथले गौतमके आश्रममें गये कोई पूर्व कोई दक्षिण देशसे आये ॥ ८ ॥ कोई पश्चिम कोई उत्तर इसप्रकार अनेक दिशाओंसे आये ब्राह्मणोंके समाजको आया देख गौतमने प्रणाम किया ॥ ९ ॥ आसनादि उपचारोंसे सबको पूजन किया और कुशलप्रश्न तथा आगमन कारण पूँछा ॥ १० ॥ उन सबनेभी अपना २ वृत्तान्त कहा उन ब्राह्मणोंको दुःखी देख मुनिने अभय दिया ॥ ११ ॥ कि, यह आपहीका स्थान है मैं तुम्हारा सर्वथा दासहूं हे ब्राह्मणो! मुझसेवकके होते आपको क्या चिन्ता है ॥ १२ ॥ मैं इस समय धन्यहूं जो तुम सब तपोधनोंका दर्शन पाय जिनके दर्शनसे दुष्कृतभी सुकृत होजाते हैं ॥ १३ ॥ वे सब चरणरजसे मेरे घरको पवित्र करैंगे जब तुम्हारा अनुग्रह हुआ तो मुझसे अधिक और कौन धन्य है ॥ १४ ॥ आप सबको संध्याजपमें परायण हो सुखपूर्वक निवास करना चाहिये व्यासजी बोले मुनिराज गौतम इसप्रकार सबको सावधान करके ॥ १५ ॥ भक्तिसे नम्रकंधर हो गायत्रीकी प्रार्थना करने लगे हे देवि! महाविद्ये, वेद माता परात्परे तुमको प्रणाम है ॥ १६ ॥ व्याहृति आदि महामंत्रके रूपवाली प्रणवरूपिणी साम्यावस्थामें स्थित, माता, ह्रींकाररूपिणीको प्रणाम है ॥ १७ ॥ स्वाहा स्वधास्वरूप सब अर्थकी देनेवाली तुमको प्रणाम है हे देवी! तुम भक्तोंको कल्पवृक्ष और तीनों अवस्थाकी साक्षी हो ॥ १८ ॥ तुरीयातीतस्वरूप सच्चिदानंदरूपिणी सब वेदान्तसे जानने योग्य सूर्यमंडलमें निवास करनेवाली ॥ १९ ॥ प्रभातमें रक्तवर्ण बालस्वरूप मध्याह्नमें युवती संध्यामें कृष्णवर्ण वृद्धारूपको नित्य प्रणाम करता हूं ॥ २० ॥ सब प्राणियोंकी तारनेवाली परमेश्वरी देवी मेरे अपराध क्षमा

करना इसप्रकार स्तुतिको प्राप्त हो जगन्माताने प्रत्यक्ष दर्शन दिया ॥ २१ ॥ और गौतमजीको एक पूर्णपात्र दिया जिसमें सब संतुष्ट होजाँय और मुनिसे देवीने कहा तुम जिस २ वस्तुकी इच्छा करोगे ॥ २२ ॥ उस उसकी पूर्ति इस मेरे पात्रद्वारा होगी ऐसा कह परमकला गायत्री देवी अन्तर्धान हुई ॥ २३ ॥ उस पात्रसे पर्वतकी समान अन्नोंके ढेर निर्गत होने लगे. हे राजन् ! अनेक प्रकारके षड्रस और विविध तृण प्रगट हुए ॥ २४ ॥ दिव्य भूषण, क्षौम वस्त्र, यज्ञोंके समारंभ अनेक पात्र प्रगटे ॥ २५ ॥ हे राजन् ! जो कुछ भी उन मुनिराजको इष्ट होता, वह सबही उस गायत्रीके पूर्णपात्रसे निर्गत होता ॥ २६ ॥ तब मुनिराज गौतम सब मुनियोंको बुलाकर धनधान्य भूषणादि प्रसन्नतासे देते हुए ॥ २७ ॥ बहुत क्या उस पूर्णपात्रसे गोमहिषी आदि पशुभी निर्गत हुए यज्ञके संभार स्रुक् स्रुव प्रभृति निर्गत हुए ॥ २८ ॥ तब वे सब मिलकर मुनिके कथनानुसार यज्ञ करने लगे वह स्थान देवयज्ञके कारण स्वर्गकी समान होगया ॥ २९ ॥ त्रिलोकीमें जो कुछ सुन्दर वस्तु दीखती है उस गायत्रीके दिये पात्रसे वह सबही निष्पन्न हुई ॥ ३० ॥ स्त्रीजन भूषण धारण कर देवताओंकी स्त्रियोंकी समान शोभित हुईं. मुनिजन वस्त्र चंदन भूषण धारण करनेसे देवताओंके समान शोभित हुये ॥ ३१ ॥ इसप्रकार मुनिजनोंके आश्रममण्डलमें नित्य उत्सव प्रवृत्त हुआ रोग दैत्यादि किसीका कुछ भय न रहा ॥ ३२ ॥ वह मुनिका आश्रम सौ योजनतक घिरगया दूसरे प्राणी भी सब उस स्थानमें आगये ॥ ३३ ॥ यह विचारवान् उन सबको अभय देकर पालन करने लगे अनेक प्रकारके महायज्ञोंकी कल्पनासे देवता ॥ ३४ ॥ परमसंतोषको प्राप्त हो मुनिका यश कथन करने लगे उस समय अपनी सभामें स्वयं इन्द्रने यह श्लोक कहा था ॥ ३५ ॥ अहो इस समय यह गौतम हमको कल्पवृक्ष स्वरूप होरहा है प्रतिष्ठित हो हमारे मनोरथ पूर्ण करता है नहीं तो इस दुर्लभ समयमें हविवपा कहां प्राप्त होसकती है, जब कि जीवनकी आशा भी दुर्लभ होरही है ॥ ३६ ॥ इसप्रकार गौतमजीने बारह वर्ष गर्वरहित हो पुत्रके समान सबका पालन किया ॥ ३७ ॥ वहां मुनिश्रेष्ठने गायत्रीका परम स्थान बनाया जहां सब मुनिश्रेष्ठ जगदम्बाका पूजन करतेथे ॥ ३८ ॥ तीनों काल परम भक्तिसे पुरश्चरणादि करते थे अब भी वहां देवी प्रभातकालमें बाल स्वरूप ॥ ३९ ॥ मध्याह्नमें युवती और सायंकालमें वृद्धास्वरूप दिखाई देती है

एक समय वहां नारदजीका आगमन हुआ॥ ४०॥ जो अपनी महती नामक वीणाको बजाते उसमें गायत्रीके परम गुण गाते थे उस समय वह उन ज्ञानी मुनियोंकी सभामें स्थित हुए॥ ४१॥ और गौतमादिने भी उच्च पूजा की. शान्त मन नारदजीने अनेक प्रकार गौतमका यश कहा ॥ ४२॥ हे ब्रह्मर्षि! राजा इन्द्रने भी अपनी सभामें यह तुम्हारा ऋषिपोषणरूप निर्मल यश बहुत प्रकारसे वर्णन किया है ॥ ४३ ॥ इन्द्रकी वह वाणी सुन मैं तुमको देखनेको आया हूं. हे मुनि ! तुम गायत्रीके प्रसादसे धन्य हो ॥ ४४ ॥ मुनि श्रेष्ठसे यह वचन कह नारदजी गायत्रीके स्थानमें गये और प्रेमसे उत्फुल्ल लोचन हो जगदम्बाका दर्श किया ॥ ४५ ॥ और विधिपूर्वक देवीकी स्तुति कर स्वर्गको गये उस स्थानमें जो ब्राह्मण मुनिसे पोषण हुए स्थित थे ॥ ४६॥ वह मुनिका उत्कर्ष सुनकर असूयासे बडे खेदको प्राप्त हुए और विचारा कि, अब वह करना चाहिये जिससे इनका यश न हो ॥ ४७ ॥ समयपर कार्यसाधन करेंगे यह सबने निश्चय किया फिर कुछ समयमें भूमिपर वर्षा हुई ॥ ४८ ॥ हे राजन् ! सब देशोंमें सुभिक्ष हुआ सुभिक्षकी बात सुन सब ब्रह्मचारी मिलकर ॥ ४९ ॥ गौतमके शाप देनेका उद्योग करने लगे. हे राजन् ! यह बडे खेदकी बात है उनके माता पिताको धन्य है जिनकी ऐसी उत्पत्ति ऐसी है ॥५०॥ हे राजन् ! कालकी महिमा कौन कह सकता है उन मुनियोंने एक बडी वृद्धा मरणको प्राप्त गौ मायासे निर्माणकी ॥५१॥ वह मुनिके होम समय शालामें गई ज्योंही हुं हुं शब्दसे ऋषिने उसको निवारण किया कि उसी समय उसने प्राण त्याग दिया ॥ ५२॥ तब ब्राह्मण कोसने लगे अहो इस दुष्टने गौ मारडाली तब मुनिराज होम समाप्त करके परम विस्मयको प्राप्त हुए ॥ ५३ ॥ और समाधिमें हो नेत्रमूँद इसका कारण देखने लगे, तब यह सब इन ब्राह्मणोंका कर्तव्य है यह सब जाना ॥ ५४ ॥ तथापि प्रलयमें रुद्रकोपकी समान अपने कोपको धारण कर लाल नेत्रकर सब ऋषियोंको शाप दिया ॥ ५५ ॥ हे ब्राह्मणो ! जो वेदमाता गायत्री सर्वस्वरूप है तुम उसके ध्यान और जपसे उन्मुख होंगे गायत्री त्यागी होनेसेही ब्राह्मणोंमें अधम होंगे ॥ ५६ ॥ हे ब्राह्मणाधमो ! वेद यज्ञ और उसकी वार्तासे तुम सदाही विमुख होंगे ॥ ५७ ॥ हे ब्राह्मणाधमो ! शिव शिवमंत्र और शिव शास्त्रसे तुम सदा विमुख होंगे ॥ ५८ ॥ मूलप्रकृति श्रीदेवी उसका ध्यान और कथा इससे विमुख होकर तुम ब्राह्मणाधम होंगे ॥ ५९ ॥ देवीके मंत्र स्थान और

अनुष्टानसे विमुख होकर ब्राह्मणाधम होंगे ॥ ६०॥ हे अधमो ! देवीके उत्सव देखने देवीके नामकीर्तनसे तुम सदा विमुख होंगे ॥ ६१ ॥ हे ब्राह्मणाधमो ! देवीभक्तकी निकटता उसका अर्चन इसमें तुम सदा विमुख होंगे ॥ ६२ ॥ शिवका उत्सव देखनेकी इच्छा, शिवभक्तका पूजन इनसे तुम सदा विमुख होकर ब्राह्मणाधम होंगे ॥ ॥ ६३ ॥ हे निकृष्टो ! रुद्राक्ष बिल्वपत्र भस्म इससे तुम सदा विमुख होंगे ॥६४॥ हे श्रुति स्मृतिके सदाचार ज्ञानमार्ग इससे तुम सदा विमुख ब्राह्मणाधम होंगे॥६५॥ अद्वैतज्ञानकी निष्ठा शांति दांतिकी निष्ठाके साधनमें तुम सदा विमुख अधम होंगे ॥ ॥ ६६ ॥ हे ब्राह्मणो ! नित्यकर्मके अनुष्ठान, अग्निहोत्रके साधनमें तुम विमुख होंगे ॥ ६७॥ हे ब्राह्मणाधमो! वेदपाठ स्वाध्याय प्रवचनमें तुम सदा विमुख होंगे ॥६८॥ गोदानादि दान और पितृश्राद्धमें तुम सदा विमुख होंगे ॥ ६९ ॥ हे ब्राह्मणाधमो ! कृच्छ्रचान्द्रायण और प्रायश्चित्तसे तुम सदा विमुख होंगे ॥ ७० ॥ हे ब्राह्मणो ! तुम श्रीगायत्री देवीको छोडकर दूसरे देवताओंमें श्रद्धा भक्ति करकै शंख चक्रादिसे अंकित हो ब्राह्मणाधम होंगे ॥ ७१ ॥ कापालिक मतमें आसक्त, बौद्धशास्त्रमें रत, पाखण्डाचारमें निरत हो ब्राह्मणाधम होंगे ॥ ७२ ॥ हे ब्राह्मणाधमो! तुम पिता माता सुत भ्राता कन्या भार्याके बेचनेवाले होंगे ॥ ७३ ॥ हे ब्राह्मणाधमो ! तुम वेद तीर्थ और धर्मके बेंचनेवाले होंगे ॥ ७४ ॥ पंचरात्र, काम शास्त्र, कापालिकमत, और बौद्धोंमें श्रद्धावाले होंगे ॥ ७५ ॥ तुम सब माता कन्या भगिनीगामी परस्त्रीलम्पट होनेसे स्त्रीलम्पट होंगे ॥ ७६ ॥ तुम्हारे वंशके स्त्री वा पुरुष मेरे शापसे दग्धहो तुम्हारीही समान होंगे ॥ ७७ ॥ मेरे बहुत कहनेसे क्या है वह मूलप्रकृति ईश्वरी परमा गायत्री तुमपर क्रुद्ध रहैगी ॥ ७८ ॥ अंधकूपादि कुंडोंमें तुम्हारी स्थिति होगी, व्यासजी बोले इसप्रकार गौतमजी वाग्दंड देकर जलस्पर्शकर ॥ ७९ ॥ परमउत्सुक हो गायत्रीके दर्शनोंको गये महादेवीको प्रणाम किया वह भी परात्परादेवी ॥ ८० ॥ ब्राह्मणोंके कर्तव्यको देख बडी विस्मित हुई अबतक उनका मुख स्मययुक्त दीखता है ॥ ८१ ॥ फिर हँसती हुई मुखकमलसे मुनि श्रेष्ठसे कहने लगी सर्पको दिया दूध विषके निमित्तही होता है ॥८२॥ हे महाभाग ! शांतिकरो कर्मकी ऐसीही गति है इसप्रकार देवीको प्रणाम कर गौतम अपने आश्रम में आये ॥८३॥ तब शापदग्ध होनेके कारण ब्राह्मण वेद भूलगये तथा गायत्री भी विस्मृत हुई यह बडी अद्भुत बात हुई ॥८४॥ वे सब मिलकर पश्चात्ताप करने लगे और दंडवत् पतितहो मुनिश्रेष्ठको प्रणाम करने लगे ॥८५॥ और लज्जासे नीचेको

मुखकर कुछ न बोले प्रसन्नहो२ ऐसा बार २ कहने लगे ॥८६॥ इसप्रकार मुनिको घेर सब ओरसे प्रार्थना करनेलगे तब करुणासे पूर्णहृदय हो मुनिने उनसे कहा ॥ ॥ ८७ ॥ कि कृष्णावतारपर्यन्त तुम्हारी कुंभीपाकमें स्थितिहोगी मेरा वाक्य असत्य नहीं होता यह तुम सर्वथा सत्य जानो ॥ ८८ ॥ फिर कलियुगमें तुम्हारा जन्म होगा मेरा कहा यह सब होगा इसमें अन्यथा नहीं ॥ ८९ ॥ मेरे शाप दूर-करनेकी यदि तुम्हारी इच्छाहो तो सबको गायत्रीके चरणकमल सेवन करने चाहिये ॥ ९० ॥ व्यासजी बोले मुनिश्रेष्ठ! गौतम इसप्रकार सबको बिदाकर प्रारब्ध है. यह जानकर चित्तमें शान्त हुए ॥९१॥ हे राजन्! इसकारण कृष्णके परम धाममें जानेसे कलियुगके प्रारंभमें वे कुंभीपाकसे निकले " और देवताकी पूजा क्यों करते हैं, यह उसका उत्तर हुआ " ॥ ९२ ॥ वह पहले शापसे दग्ध हुए पृथ्वीपर जन्मे वही तीनों कालकी संध्यासे विहीन गायत्रीकी भक्तिसे वर्जित हुए ॥ ९३ ॥ वेदभक्तिसे हीन पाखण्डमतगामीथे अग्निहोत्रादि सत्कर्म स्वाहा स्वधासे वर्जित हुए ॥ ९४ ॥ मूलप्रकृति अव्यक्तको वह नहीं जान्ते कोई तप्तमुद्रासे अंकित कोई कामाचारमें तत्पर हुए ॥ ९५ ॥ कापालिक कौलिक बौद्ध जैन इन मतोंमें पंडित होकरभी वह दुराचारमें प्रवृत्त हुए ॥ ९६ ॥ पराईस्त्रियोंमें लंपट दुराचारमें परायण हुए यह सब अपने कर्मोंसे फिर कुंभीपाकमें जायँगे ॥ ९७ ॥ हे राजन्! इसकारण सर्वात्मासे परमेश्वरीका सेवस करना चाहिये शिव विष्णुकी उपासना नित्य नहीं है ॥ ९८ ॥ गायत्रीरूपं शक्तिकी उपासनाही नित्यहै जिसके विना यह प्राणी अधःस्थानमें पतित होता है ये पापरहित जो तुमने पूँछा वह मैं ने सब संक्षेपसे कहा ॥९९॥ अब इसके उपरान्त सुन्दर मणिद्वीपका वर्णन सुनो जो संसारकी आदिकारण भुवनेशीका परम स्थान है ॥ १०० ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः १०.

ब्रह्मलोकसे ऊर्ध्वभागमें जो सर्वलोक श्रुत ह वही मणिद्वीप है जहां देवी विराज मान है, सुबालोपनिषदमें लिखा है, " सर्वलोका आत्मनि ब्रह्मणि मणय इवोताश्च प्रोताश्चेति " ॥ १ ॥ यह सबसे अधिक है, इसीकारण इसको सर्वलोक कहते हैं,

पहले श्रीभगवतीने मनकी इच्छासेही इसको कल्पित किया है ॥ २॥ मूलभूत प्रकृतिने सबकी आदिमें अपने निवासके निमित्त कैलाससे अधिक वैकुंठसे उत्तम ॥ ३ ॥ तथा गोलोकसे भी उत्तम किया है इससे अधिक त्रिलोकीमें कोई सुन्दर लोक नहीं है ॥ ४ ॥ यह तीनों जगत्का छत्रभूत संसारका संतापनाश करने वाला है, हे सत्तम ! यह ब्रह्माण्डोंका छायाकारक है ॥ ५ ॥ बहुत योजनोंके विस्तारमें तथा उतनाही गंभीर है मणिद्वीपके चारों ओर सुधासागर है ॥ ॥ ६ ॥ जिसमें वायुद्वारा अनेक तरंगें उठती हैं, रत्नोंकी सुन्दर वालुका झष शंखोंसे व्याप्त है ॥ ७ ॥ वीचियोंके संघर्षणसे अनेक लहरीकणोंसे शीतल अनेक ध्वजा और जहाजोंसे युक्त है ॥ ८ ॥ सब ओरसे विराजमान्, तीरमें रत्न समान कांति-वाले वृक्ष हैं इसके उपरान्त अपधातु (लोहा) का निर्मित अतिऊंचा ॥ ९ ॥ सातयोजनका विस्तारवाला महान् परकोटा है जिसमें अनेक शस्त्रोंके प्रहारवाले अनेको युद्धमें चतुर ॥ १० ॥ प्रसन्नचित्तसे रक्षक निवास करते हैं चार जिसके द्वार और सैकडों द्वारपालोंसे युक्त ॥ ११ ॥ तथा देवीके परमभक्त अनेक गणोंसे व्याप्त है जो देवता जगदीश्वरीके दर्शनोंको आते हैं ॥ १२ ॥ उनके गण और वाहन सब वहीं निवास करते हैं. सैकडों विमानोंसे व्याप्त घंटोंके शब्दोंसे समाकीर्ण॥ १३ ॥ घोडोंकी हिनहिनाहट तथा खुराघातसे जहाँ की दिशायें बधिरीभूत हो रही हैं किल किल शब्दवाले वेत्रधारी गणोंसे शब्द निवारणार्थ ताडित ॥ १४ ॥ देवता-ओंके सेवक जहां विराजमान् होते हैं. हे राजन् ! उस कोलाहलमें कौन किसका शब्द ॥ १५ ॥ उस महाध्वनिमें सुन सकता है. पदपदमें मीठे जलके सरोवर हैं ॥ ॥ १६ ॥ हे राजन् ! रत्नवृक्षोंकी अनेक वाटिका विद्यमान हैं उसके उत्तरमें महासार कांसीका बना हुआ मण्डल है ॥ १७ ॥ यह प्राकारभी गगनका स्पर्श करने वाला महान् है और लोहप्राकारसे तेजमें यह ऊंचे शिखरवाला सौगुणा अधिक है ॥ १८ ॥ गोपुरद्वारोंके सहित बहुत वृक्षोंसे समन्वित है जगत्में जितनी वृक्षोंकी जाति हैं यह वहां सब हैं ॥ १९ ॥ जिनमें फल फल सदा लगे रहते नवपल्लव और परम गंधसे युक्त हैं ॥ २० ॥ पनस, बकुल, लोध, कर्णिकार शिंशपा, देवदारु, कचनार आम सुमेरव ॥ २१ ॥ लिकुचा, हिंगुल, एला, लवंग, कट्फल, पाटल, मुचकुन्द, फलिनी जघनेफला ॥ २२ ॥ ताल, तमाल, साल कंकोल नागभद्रक, पुन्नाग, पीलव, शाल्व, कर्पूरके वृक्ष ॥ २३ ॥ अश्वकर्ण, हस्तिकर्ण तालपर्ण, दाडिमी, गणिका, बंधुजीवक,

जंभीरी, कुरंटक ॥ २४ ॥ चंपोय, बंधुजीव, कनकद्रुम, कालागरवृक्ष, चंदन वृक्ष, ॥ २५ ॥ खजूर, यूथिका, तालपर्णी, ईख, क्षीरवृक्ष, खैर, चिंचा, भल्लातक (भिलावा) ॥ २६ ॥ रुचक, कुटज, बेलोंके वृक्ष, तुलसी और चमेलियोंके वन हैं ॥ २७ ॥ इसप्रकार वृक्षोंके वन उपवनोंसे व्याप्त, अनेक बावडियोंसे सम्पन्न है ॥ २८ ॥ कोकिलके शब्द और भौंरोंकी गुंजारसे व्याप्त है जो सब वृक्ष गोंदस्रावी और सुन्दर छायावाले हैं ॥ २९ ॥ वे वृक्ष अनेक ऋतुओंमें होनेवाले अनेक पक्षियोंसे सेवित अनेक रस बहानेवाली नदियोंके तटपर शोभित हैं ॥ ३० ॥ कबूतर तोतोंके समूह और मैनाओंके पक्षोंकी पवन तथा हंसोंके पंखोंकी वायुसे जहाँके वृक्ष बहुत चलायमान रहते हैं ॥ ३१ ॥ सुगंधग्राही पवनसे वह वन पूरित होरहा है. इधर उधर हरिणियोंके यूथ धावमान होरहे हैं ॥ ३२ ॥ मोरोंके समूह नृत्य करते मोरोंकी वाणी सब ओरसे होरही. इसप्रकार सुखदायक वाणीसे वह मधुस्रावी वन व्याप्त होरहा है ॥ ३३ ॥ कांसीके प्राकारके आगे ताम्रका परकोटा है जो चौकोन और सातयोजन ऊंचा है ॥ ३४ ॥ इनदोनों परकोटोंके मध्यमें कल्पवृक्षोंके बगीचे हैं. हे राजन् ! जिन वृक्षोंके पुष्प सुवर्णके समान कांतिवाले हैं ॥ ३५ ॥ पत्र सुवर्णके समान बीजफल रत्नोंके समान हैं उनकी गंध सब ओरसे दशयोजन पर्यन्त जाती है ॥ ३६ ॥ वसन्त ऋतु दिनरात उसकी रक्षा करता है. हे राजन् ! वह वसन्त पुष्पोंके सिंहासनपर आसीन, फूलोंके छत्रसे विराजित ॥ ३७ ॥ पुष्पोंके भूषणोंसे भूषित पुष्पोंके आसवसे मदको प्राप्त मधुश्री माधवश्री दोभार्या ॥ ३८ ॥ स्मितमुखियोंके साथ कुसुमके गुच्छोंकी गेंदसे खेलता हुआ रहता है वह मधुस्रावी वन बहुतही मनोहर है ॥ ३९ ॥ दशयोजनतक वायुद्वारा इसकी गंध जाती है और गंधके लोलुप अंगना साथ लिये गन्धर्वोंसे वह वनपूरित रहता है ॥ ४० ॥ वह दिव्य वन मत्तवाले कोकिलाओंके नादसे शोभित है, यह वसन्त लक्ष्मीसे संयुक्त कामियोंके कामका बढानेवाला है ॥ ४१ ॥ ताम्र परकोटेके आगे सीसेका परकोटा है जो सातयोजन पर्यन्त ऊंचा है ॥ ४२ ॥ हेराजन् ! इनदोनों परकोटोंके मध्यमें सन्तानक वृक्षोंकी वाटिका है जिसके फूलोंकी दशयोजन पर्यन्त गंध जाती है ॥ ४३ ॥ हिरण्यकी समान कान्तिमान् जहांके फूल नित्य खिले रहते हैं जिनके मधुर फल अमृतद्रवकी समान हैं ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! उस वाटिकाका ग्रीष्म ऋतु नायक है शुक्रश्री, शुचिश्री, यह दोभार्या इसको प्रिय हैं ॥ ४५ ॥ जहाँ सन्तापसे

व्याकुल हुए लोक वृक्षोंके नीचे स्थित होते हैं, अनेक सिद्ध और देवता निवास करते हैं ॥ ४६ ॥ चन्दनको अधिकतर अंगमें लगाये पुष्पमाला धारे ताल पंखा हाथमें लिये जहां विलासिनियोंके समूह विचरते हैं ॥ ४७ ॥ हे राजन् ! शीतल जल सेवियोंसे वह प्राकार शोभित है, शीशेके परकोटेके आगे पीतलका सुन्दर ॥ ४८ ॥ परकोटा सात योजन लम्बा विद्यमान है इन दोनोंके बीचमें हरिचंदन वृक्षकी वाटिका है ॥ ४९ ॥ इनका अधिपति मेघवाहन वर्षाऋतु है जिसके बिजलीकी समान पिंगल नेत्र और मेघोंका कवच है ॥ ५० ॥ वज्रके शब्दकी समान शब्दायमान इन्द्र धनुष धारे सहस्रों वारिधारा त्यागन करते गणोंसे युक्त शोभायमान है ॥ ५१ ॥ नभश्री (श्रावण) नभस्यश्री (भादों) स्वरस्या, रस्यमालिनी अम्बादुला निरत्नि भ्रमंती मेघयंतिका ॥ ५२ ॥ वर्षयन्ती, चिबुणिका वारिधारा मदविह्वला यह वर्षाऋतुकी बारह शक्तियें कहीहैं ॥ ५३ ॥ नयेपत्तेवाले वृक्ष और नवीन लतायें तथा हरित तृणोंसे वहांकी धरा वेष्टितहै ॥ ५४ ॥ नदी नदोंका प्रवाह वेगसे चलायमान होता है सरोवरोंमें कलुष हुए जल रागियोंके चित्तकी समान है ॥ ५५ ॥ वहां देवीके कर्म करनेवाले देवता सिद्ध निवास करते हैं. वापी कूप सरोवर जिन्होंने देवीके अर्पण किये हैं ॥ ५६ ॥ वह गण यहां अंगनाओंके सहित निवास करते हैं, पीतलके आगे सातयोजनका बड़ा दीर्घ ॥ ५७ ॥ पंचलोहात्मक परकोटा है जिसके मध्यमें मंदारवाटिका है, जो अनेक पुष्पलताओंसे आकीर्ण अनेक पल्लवोंसे शोभित हैं ॥ ५८ ॥ जिसका अनामय अधिष्ठाता शरदृऋतु है इषलक्ष्मी, ऊर्जलक्ष्मी दो उसकी भार्या हैं ॥ ५९ ॥ वहाँ अंगना और कुटुम्बके सहित अनेक सिद्ध निवास करते हैं पंचलोहात्मकसे आगे सात योजन दीर्घ ॥ ६० ॥ महाशृंगोंसे दीप्यमान रौप्य परकोटा है जहां पारिजात वृक्षोंमें गुच्छे लटक रहे हैं ॥ ६१ ॥ उसके फूलोंकी गंध दशयोजनतक फैलकर देवीके कर्मकारी भक्तोंको प्रसन्न करती है ॥ ६२ ॥ उसका अधिपति महाउज्ज्वल हेमन्त ऋतु है जो अपने गण और आयुधोंसे सब रागियोंको प्रसन्न करता है ॥ ६३ ॥ सहश्री, सहस्यश्री, यह उसकी दो भार्या हैं देवीव्रतकरनेवाले सिद्ध वहां निवास करते हैं ॥ ६४ ॥ चांदीके परकोटेके आगे सात योजनका दीर्घ सुवर्णका परकोटा है जो तपाये सुवर्णसे बना है ॥ ६५ ॥ उसके मध्यमें पुष्प पल्लवसे शोभित कदंबवाटिका है जिनसे कदम्बके मदकी धारा सहस्रों प्रवृत्त होती हैं ॥ ६६ ॥ जिनके यथेष्टपानसे निजानंदकी प्राप्ति होती है उसका अधिपति शिशिर ऋतु कहा है ॥ ६७ ॥ तपश्री, तपस्यश्री यह दो उसकी भार्या हैं यह शिशिर आकृति उनके संग प्रसन्न हुआ निवास करता है ॥ ६८ ॥ अनेक विलाससे संयुक्त

अनेक गणोंके सहित वहां देवीके उद्देशसे दानकरनेवाले सिद्ध निवास करते हैं ॥ ॥ ६९ ॥ वे अनेक भोगोंसे संयुक्त महानंदसे सम्पन्न स्त्री और परिवारके सहित निवास करते हैं ॥ ७० ॥ सुवर्णके परकोटेके आगे सात योजनके विस्तारमें पुष्पराग मणियोंका परकोटा है जो कुम २ की समान अरुण वर्ण है ॥७१॥ वहांकी सब भूमि वन उपवन पुष्परागके हैं रत्नोंके वृक्ष और पुष्परागमणिकेही थांवले हैं ॥ ७२ ॥ जिस रत्नका परकोटा उसीके वृक्ष हैं वनभू पक्षिगण सब रत्नोंहीके समान हैं ॥ ७३ ॥ मंडप मण्डपके स्तंभ सरोवर कमल जो कुछ उस प्राकारमें है वह सब उसीके समान है ॥७४॥ हे प्रभो! यह रत्न परकोटेकी परिभाषा कही है. हे राजन्! दूसरे परकोटोंसे यह तेजमें लाख गुणा है ॥ ७५ ॥ वहां प्रतिब्रह्माण्डवर्ती दिक्पाल निवास करते हैं अर्थात् प्रतिब्रह्माण्डवर्ती इन्द्रादि दिक्पालोंके व्यष्टिभूत जो नायक हैं समष्टिभूत जो इन्द्रादिक जो श्री भुवनेश्वरीयंत्र भुपुरमें पूजे जाते हैं वे वहां निवास करते हैं जो वरायुध लिये शोभित होते हैं ॥ ७६ ॥ उसकी पूर्वदिशामें ऊंचे शिखरवाली अमरावती शोभित होती है जो अनेक उपवनोंसे युक्त है वहां महेन्द्र विराजते हैं ॥७७॥ स्वर्गकी शोभा जो स्वर्गमें है यह उससे अधिक है, समष्टि शतनेत्रसे सहस्रगुणा अधिक शोभित है ॥ ७८ ॥ वह ऐरावतपर चढा वज्र हाथमें लिये महाप्रतापी देवताओंकी सेनासे युक्त इन्द्र विराजमान होता है ॥ ॥ ७९ ॥ देवांगनाओंके सहित वहां इन्द्राणी विराजमान् होती है और अग्निकोणमें अग्निपुरीकी समान अग्निपुरी है ॥ ८० ॥ स्वाहा स्वधाके साथ वहां अग्नि विराजमान है अपने वाहन भूषणोंसे युक्त तथा अपने देवताओंसे शोभित है ॥ ॥ ८१ ॥ दक्षिण दिशामें यमपुरी है उसमें दंडधारी महान् अपने चित्रगुप्त आदि भटोंसे वेष्टित ॥ ८२ ॥ अपनी शक्तिसहित प्रकाशमान सूर्यपुत्र शोभा पाते हैं नैर्ऋत्य दिशामें राक्षसोंकी पुरी राक्षसोंसे वेष्टित है ॥ ८३ ॥ जहां निर्ऋति खड्ग लिये अपनी शक्तिसहित शोभा पाताहै वरुणदिशामें पाशधारी प्रतापी वरुण राजाहै॥८४॥ जो महामच्छपर चढे वारुणीमदसे विह्वल हुए अपनी शक्ति और जलजीवोंसे युक्त ॥८५॥ अपनी भार्यासे प्रसन्न हुए वरुण लोकमें निवास करते हैं वायुकोणमें वायुलोक है जहाँ वायु विराजते हैं ॥ ८६ ॥ वह वायुसाधनमें सिद्ध हुए योगियोंसे परिवारित ध्वजा हाथमें लिये विशाललोचन मृगवाहनपर स्थित हैं ॥ ८७ ॥ मरुद्गणोंसे व्याप्त अपनी शक्तिसे समन्वित है. हेराजन्! उत्तरदिशामें महान् यक्षलोक है ॥८८॥ वहां वृद्धि ऋद्धि आदि शक्तियोंके सहित यक्षराज निवास करते हैं वहां तुन्दिल धननायक नौओं ऋद्धियोंसे सम्पन्न है ॥ ८९ ॥ मणिभद्र पूर्णभद्र मणिमान् मणि-

कंधर मणिभूषण, मणिमालाधारी मणिकार्मुकधारी ॥ ९० ॥ इत्यादि बड़ी यक्ष सेना और अपनी शक्ति सहित विराजमान है. ईशानकोणमें महान् रुद्रलोक है ॥ ॥ ९१ ॥ जो बडे मोलके रत्नोंसे रचित रुद्रदेवतायुक्त है वह मृत्युमान दीप्तनेत्र पुष्ट तरकसबांधे ॥ ९२ ॥ बाँयें हाथमें स्फुरायमान धनुष ज्यारोपण किये अपनी समान असंख्यात रुद्रोंसे संयुक्त जो शूल हाथमें लिये हैं ॥ ९३ ॥ विकृतमुख कराल-मुख कोई मुखसे अग्नि वमन करते, किन्हींके दश किन्हींके सौ किन्हींके सहस्र हाथ ॥ ९४ ॥ दशपाद, दशशिर तीननेत्र उग्रमूर्तिवाले कोई अन्तरिक्ष और कोई भूमिमें विचरनेवाले ॥ ९५ ॥ जो रुद्राध्यायमें स्मरणकिये रुद्र हैं उन सबसे संयुक्त कोटिरुद्राणी और भद्रकाली आदि माताओंसे संयुक्त ॥ ९६ ॥ अनेक शक्ति और डामरादि गणोंसे संयुक्त हे राजन्! वीरभद्रादिके सहित वहां रुद्र विराजते हैं ॥ ९७ ॥ मुंडमालाधारी नागोंका कंकण पहरे नागको गलेमें डालै व्याघ्रचर्मका परिधान वस्त्र और ओढनेको गजचर्म ॥ ९८ ॥ चिताभस्मको अंगमें लपेटे प्रथमादि गणोंसे सम्पन्न शब्दायमान डमरुओंसे दिशाओंको शब्दाय-मान करते ॥ ९९ ॥ अट्टहास और स्फोटशब्दोंसे आकाशको त्रासितकरनेवाले भूत संमूहोंसे युक्त भूतावास महेश्वर ॥ १०० ॥ ईशान दिशाके अधिपति होनेसे ईशान नामवालेही हैं ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे भाषायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ११.

व्यासजीबोले पुष्परागमय परकोटेके आगे कुंकुमकी समान लालवर्ण पद्मराग मणियोंका परकोटा है वैसीही वहांकी भूमि है ॥ १ ॥ वह दशयोजन दीर्घ गोपुर द्वारसे संयुक्त है. हेराजन्! उसी मणिके स्तम्भवाले सैंकडों स्तंभ वहां हैं ॥ २ ॥ मध्य भूमिमें अनेक आयुध लिये परम वीरा सुन्दरभूषण पहर चौंसठ कला निवास करती हैं ॥ ३ ॥ उनके प्रत्येक लोकोंमें उन उनके नायक निवास करते हैं,वह चारों ओरसे पद्मरागको घेरे हुए स्थित हैं ॥ ४ ॥ अपने २ लोकके जन अपने वाहन और अस्त्रोंसे सम्पन्न हैं, हे जन्मेजय! तुम सुनो मैं उनके नाम कहताहूं ॥ ५ ॥ पिंगलाक्षी, विशालाक्षी, समृद्धि, वृद्धि, श्रद्धा, स्वाहा, स्वधा, अभिख्या, माया, संज्ञा, वसुंधरा ॥ ६ ॥ लोकधात्री, सावित्री, गायत्री, त्रिदशेश्वरी, सुरूपा, बहुरूपा, स्कंदमाता, अच्युतप्रिया ॥ ७ ॥ विमला, अमला, अरुणी, पुनरारुणी, प्रकृति, विकृति, सृष्टि, स्थिति,

संहति; ॥ ८ ॥ संध्या, माता, सती, हंसी, मर्दिका, वज्रिका, देवमाता, भगवती, देवकी, कमलासना ॥ ९ ॥ त्रिमुखी, सप्तमुखी, अन्या, सुरासुर विमर्दिनी, लम्बोष्ठी, ऊर्ध्वकेशी, बहुशीर्षा, वृकोदरी ॥ १० ॥ रथरेखा, शशिरेखा, गगनवेगा, पवनवेगा, ॥ ११ ॥ अग्रेभुवनपाला, मदनातुरा,अनंगा, अनंगमथना, अनंगमेखला ॥ १२ ॥ अनंगकुसुमा, विश्वरूपा, सुरादिका, क्षयंकरी शक्ति, अक्षोभ्या ॥ १३ ॥ सत्यवादिनी, बहुरूपा, शुचिव्रता, उदारा, वागीशी, यह ६४ शक्ति हैं ॥ १४ ॥ इनके यह सबका प्रकाशमान सज्वल जिह्वा है अनेक मुखसे अग्नि निर्गत होती है हम सब जल पीजांय, अग्निका संहार करजांय॥ १५॥ पवनको स्तंभित करदे, सब जगत्को भक्षण करजांय, क्रोधसे लालनेत्र किये सब कोई यह वचन कहती हैं ॥ १६ ॥ सब चापबाण धारण किये सदा युद्धको उत्सुक रहती हैं उनकी डाढोंके कटकट शब्दसे दिशा शब्दायमान होती हैं ॥ १७ ॥ पीले और ऊर्ध्वकेशवाली धनुष बाण धारे एक एकके निकट सौ सौ अक्षौहिणी सेना है ॥ १८ ॥ एक २ शक्तिमें लाख ब्रह्माण्ड नाश करनेकी सामर्थ्य है. हे राजन् ! वैसीही सौ अक्षौहिणीवाली सेना है ॥ १९ ॥ यह इच्छा करनेसे इस जगत्में क्या नहीं करसकती सो कौन कह सकता है ? हे मुने ! उस प्राकारमें सब युद्धकी सामग्री स्थित है ॥ २० ॥ रथ हाथी घोड़े शस्त्र और गणोंकी गणना कौन कर सकता है ॥ २१ ॥ पद्मराग परकोटेके आगे गोमेदका परकोटा दशयोजनमें महान् वर्तमान है ॥ २२ ॥ प्रकाशमान् जपके फूलकीसमान कान्तिमान् है मध्यकी भूमिभी वैसी ही है वहांके वासी और भवन गोमेदसे ही कल्पित है ॥ २३ ॥ पक्षी, श्रेष्ठस्तंभ, वावडी, सरोवर, यह कुंकुमकी समान रक्तवर्ण गोमेदसेही कल्पित हैं ॥ २४ ॥ उसके मध्य महादेवीकी बत्तीसशक्ति हैं जो अनेक शस्त्रोंके प्रहारवाली गोमेदजटित भूषण पहरे हैं ॥ २५ ॥ यह प्रत्येक लोकनिवासिनी चारों ओरसे घेरे हैं अर्थात् एक २ शक्तिकी दश अक्षौहिणी सेना है, उनसे युक्त एक २ लोक है इसप्रकार ३२ लोक उस परकोटेमें चिन्तामणि घरको चारों ओरसे घेरकर स्थितहैं.हे राजन् ! गोमेदके परकोटेमें पिशाच मुखा ॥ २६ ॥ उस शक्तिलोकनिवासियों द्वारा वे चक्रधारिणी पूजित होती हैं क्रोधसे लालनेत्र किये छेदन भेदन करो दहनकरो ॥ २७ ॥ इसप्रकार वचनको युद्धमें उत्कट हो उच्चारण करती हैं, एक २ महाशक्तिके पास दश दश अक्षौहिणी सेना है ॥ २८ ॥ उनमें एक एक शक्ति लाख २ ब्रह्माण्ड नाश करसकती है, फिर उस महासेनाके वर्णनकीतो कथाही क्या है ॥ २९ ॥ रथ वाहनकी गणनाही नहीं है वहां देवीके सब युद्धका आरंभ विराजमान है ॥ ३० ॥ पापनाशक उनके

नाम कहता हूं सुनो-विद्या, ह्री, पुष्टि, प्रज्ञा, सिनीवाली, कुहू ॥ ३१ ॥ रुद्रवीर्या, प्रभा, नंदा, पोषिणी, ऋद्धिदा, शुभा, कालरात्रि. महारात्रि, भद्रकाली, कपर्दिनी, ॥ ३२ ॥ विकृति, दंडि, मुंडिनी, सेन्दुखण्डा, शिखण्डिनी, निशुंभशुंभमथिनी, महिषासुरमर्दिनी ॥ ३३ ॥ इन्द्राणी, रुद्राणी, शंकरार्धशरीरिणी, नारी, नारायणी, त्रिशूलिनी, पालिनी ॥ ३४ ॥ अम्बिका, ह्लादिनी यह शक्तियें हैं, जो यह देवी क्रोध करै तो ब्रह्माण्डनाशकरदें ॥ ३५ ॥ इनको कभी कहीं पराजय नहीं है. गोमेदपर कोटेके आगे हीरेका प्राकार है ॥ ३६ ॥ यह दशयोजन ऊंचा गोपुरद्वार सम्पन्न है, इसमें शृंखलाबद्ध किवाँड लगे हैं नवीन वृक्षोंसे कान्तिमान् है ॥ ३७ ॥ इस परकोटेके मध्यकी भूमि हीरेमय है घर गली बडे मार्ग ॥ ३८ ॥ वृक्ष, वेल, तरु और पक्षीभी वैसेही रंगके हैं दीर्घिकासमूह बावड़ी तालाव कूप है ॥ ३९ ॥ वहां श्रीभुवनेश्वरीकी दासी निवास करती हैं. एक परिचारिकाकी लाख २ दासी सेवा करती हैं ॥ ४० ॥ कोई तालका पंखा कोई प्याला हाथमें लिये कोई बडे गर्वसे ताम्बूलपात्र हाथमें लिये हैं ॥ ४१ ॥ कोई छत्र चमरधारे कोई अनेक वस्त्र और पुष्प कमल धारे हैं ॥ ४२ ॥ कोई अनेक दर्पण लिये कोई कुंकुम लेपन लगाये कोई कज्जल सिन्दूर और पानपात्र लिये हैं ॥ ४३ ॥ कोई चित्र बनानेमें तत्पर कोई पादसंवाहनमें रत कोई गहने बनानेवाली कोई अनेक भूषण धारे ॥ ४४ ॥ कोई पुष्पोंके भूषणबनानेवाली कोई फूलोंका शृंगार करनेवाली इसप्रकार अनेक विलासोंमें चतुर अनेक हैं ॥ ४५ ॥ सब कमरकसे सबही युवती हैं, देवीकी कृपादृष्टिके कारण तीनों लोकको तुच्छ मान्ती हैं ॥ ४६ ॥ जो शृंगार मदसे गर्वित देवीकी दूती हैं, हे राजन्! मैं उनके नाम कहता हूं सुनो ॥ ४७ ॥ अनंगरूपा, अनंगमदना, सुन्दरी, मदनातुरा ॥ ४८ ॥ भुवनवेगा, भुवनपालिका, सर्वशिशिरा, अनंगवेदना, अनंगमेखला ॥ ४९ ॥ यह बिजलीकी समान अंगवाली शब्दायमान् मेखलावाली चरणोंके मंजीरकी ध्वनिवाली बाहर भीतर इधर उधर चलती हुई ॥ ५० ॥ बिजलीकी समान सब इधर उधर धावमान होती शोभा पाती हैं यह वेत्रधारिणी सब कार्योंमें कुशल हैं ॥ ५१ ॥ प्राकारकी आठों दिशाओंमें प्राकारके बाहरे अनेक वाहन और शस्त्रसहित इनके महल विराजते हैं ॥ ५२ ॥ वज्रके परकोटेके आगे वैडूर्य मणिका परकोटा है यह दशयोजन ऊंचा गोपुर और द्वारसे भूषित है ॥ ५३ ॥ वहांकी सब भूमि और घर वैडूर्यमय हैं गली छोटी बडी और महामार्ग सब वैडूर्यके निर्मित हैं ॥ ५४ ॥ बावडी कूप सरोवर नदियोंके किनारे तथा वालुका वैडूर्य मणिकी बनी है ॥ ५५ ॥ उसकी आठों दिशाओंमें सब ओर ब्राह्मी आदिका

मंडल है. हे राजन्! यह अपने गणोंके सहित शोभित होती है ॥ ५६ ॥ यह प्रत्येक ब्रह्माण्डकी माताओंकी समष्टिरूप हैं. ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी ॥ ५७ ॥ वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा, यह सात मातायें हैं आठवीं महालक्ष्मी नामक माता है ॥५८॥ यह ब्रह्मा रुद्रादि देवताओंके समान आकारवाली हैं यह जगत्की कल्याण-कारिणी अपनी २ सेनाके सहित हैं ॥ ५९ ॥ हे राजन्! इस परकोटेके चारों द्वारमें भवानीके अलंकार धारण किये वाहन सदा शोभा पाते हैं ॥ ६० ॥ कोटिशः हाथी घोडे पालकी हंस सिंह गरुड मयूर वृषभ ॥ ६१ ॥ हे राजन्! इनके सहित कोटिशः रथ पार्ष्णिग्राहसे युक्तहैं जिनकी ध्वजायें आकाशचुम्वन करती हैं ॥६२॥ अनेक चिह्नोंसे युक्त कोटिशः विमान अनेकवाजे और महाध्वजासे सम्पन्नहैं॥६३॥ वैडूर्यप्राकारसे आगे दशयोजन ऊंचा इन्द्रनीलमणिका परकोटा है ॥ ६४ ॥ उसके मध्यकी पृथ्वी छोटी वडी गली महामार्ग वावडी कूप सरोवर सव इसीमणिके वने हैं ॥ ६५ ॥ उसमें कईयोजनके विस्तारमें एक कमल है जिसकी सोलह कली सुदर्शन चक्रके समान प्रकाशित हैं ॥ ६६ ॥ वहां सोलह शक्तियोंके अनेक प्रकार के स्थान हैं, वह सव सामग्रीसे युक्त वहां निवास करती हैं ॥ ६७ ॥ हे राजन्! इनके नाम कहता हूं सुनो कराली, विकराली, उमा, सरस्वती ॥ ६८ ॥ श्री दुर्गा, ७५॥ लक्ष्मी, श्रुति, स्मृति, धृति, श्रद्धा, मेधा, मति, कांति, आर्या यह सोलह शक्ति हैं ॥ ६९ ॥ यह नीलमेघके समान वर्णवाली हाथमें तलवार लिये, समा खेटक धारिणी युद्धमें मन लगाये ॥ ७० ॥ श्रीजगदीश्वरी देवीकी यह सव सेनानायका हैं यह प्रति ब्रह्माण्डमें स्थित शक्तियोंकी अधीश्वरी हैं ॥ ७१ ॥ यह ब्रह्माण्डका क्षुभित करनेवाली देवीकी शक्तिसे सम्पन्न हैं अनेक रथोंमें आरूढ अनेक शक्तियोंसे युक्त हैं ॥७२॥ इनका पराक्रम कहनेको शेषभी समर्थ नहीं है इन्द्रनील प्राकारके आगे वडे विस्तारमें ॥ ७३ ॥ दशयोजन दीर्घमोतियोंका परकोटा है मध्यकी भूमि भी मोतियोंकी है उसके आगे वडा आठदलका कमल है ॥ ७४ ॥ जो मुक्ता मणिके समूहोंसे आकीर्ण बहुत केशरवाला है वहां देवीके समान आकारवाली देवीकेसे आयुध धारे ॥ ७५ ॥ जगत्की वार्ताको प्रबोध करनेवाली आठ मंत्रकर्त्री हैं वह देवीके समान भोगवाली उसकी चेष्टाओंकी ज्ञाता पंडिता है ॥ ॥ ७६ ॥ सब कार्यमें कुशल स्वामिकार्यमें परायण है वे देवीका अभिप्राय जाननेवाली चतुर अति सुन्दरी हैं ॥ ७७ ॥ प्रतिब्रह्माण्डवर्ती अनेक शक्तियोंसे युक्त हैं, वह अपनी ज्ञानशक्तिसे प्राणियोंके समाचारको जानती हैं ॥ ७८ ॥ हे राजन्! सुनो मैं उनके नाम कहता हूं-अनंगकुसुमा, अनंगकुसुमातुरा॥ ७९॥ अनंगमदना,

अनंगमदनातुरा, भुवनपाला, गगनवेगा ॥ ८० ॥ शशिरेखा, गगनरेखा, यह सब पाश अंकुश वर अभयधारे अरुणशरीर हैं ॥ ८१ ॥ प्रतिक्षण संसार संबंधिनी वार्ताको बोधन करती हैं मुक्ताप्राकारके आगे महामरकत मणिका परकोटा है ॥ ॥ ८२ ॥ वह परमोत्तम दशयोजन दीर्घ है अनेक सौभाग्य और भोगसे युक्त है ॥ ८३ ॥ मध्यकी भूमि और घरभी महा मरकत मणिके हैं इसमें षट्कोणकी विस्तीर्ण रचना है उसके कोणमें स्थित देवता सुनो ॥ ८४ ॥ पूर्वकोणमें गायत्रीके सहित चतुर्मुख ब्रह्म हैं जो कमंडलु अक्षमाला अक्षसूत्र अभय और दंड आयुध धारे हैं ॥ ८५ ॥ वही आयुध धारे परदेवता गायत्री है मूर्तिमान् सबवेद अनेक शास्त्र ॥ ८६ ॥ स्मृति और पुराण सबमूर्तिमान् हैं, जो ब्रह्मविग्रह, ब्रह्मावतार गायत्रीविग्रह ॥ ८७ ॥ व्याहृतियोंके विग्रह हैं, वे सदा वहां निवास करते हैं नैर्ऋत्यकोणमें शंख चक्र गदा पद्म हाथमें लिये ॥ ८८ ॥ सावित्री और उसी प्रकार महाविष्णु वर्तते हैं जो विष्णुके मत्स्य कूर्मादि विग्रह हैं ॥८९॥ और जो सावित्रीके विग्रह हैं वे सब वहां निवास करते हैं. वायुकोणमें परशु अक्षमाला अभयवरसे युक्त ॥ ९० ॥ महारुद्र वर्तते हैं वैसेही उनके साथ सरस्वती है जो दक्षिणामूर्ति आदि रुद्रके विग्रह हैं ॥ ९१ ॥ तथा जो गौरीभेद हैं वे सब वहां निवास करते हैं चौंसठ आगम तथा जो दूसरे आगम हैं ॥ ९२ ॥ वे सब मूर्तिमान् होकर वहां निवास करते हैं. अग्निकोणमें रत्नकुंड तथा म[illegible] ॥ ९३ ॥ अपने हाथमें धारण किये धननायक कुवेर अनेक वीथी और महालक्ष्मीके सहित ॥ ९४ ॥ अपने गुणोंसे युक्त देवीका निधिपति स्थित है. पश्चिमके महाकोणमें कामदेव रतिके सहित ॥ ९५ ॥ पाश अंकुश धनुर्बाण लिये नित्य विराजमान् होता है सब शृंगार मूर्तिमान् होकर वहां स्थित हैं ॥ ९६ ॥ ईशान कोणमें विघ्नेश नित्य पुष्टिसहित पाश अंकुश धारे वीरवेष विघ्नहर्ता विराजमान् होते हैं ॥ ९७ ॥ हे राजन् ! जो जो गणेशकी विभूति हैं वह महाऐश्वर्यसहित वहां निवास करती हैं ॥ ९८ ॥ प्रतिब्रह्माण्डमें रहनेवाले ब्रह्मादिकी समष्टि हैं वे सब ब्रह्मादिक परमेश्वरीका सेवन करते हैं ॥ ९९ ॥ महामरकतमणिके परकोटेके आगे शतयोजनका दीर्घ कुंकुमकी समान रक्तवर्ण मूँगोंका परकोटा है ॥ १०० ॥ उसके मध्यकी भूमि तथा स्थान भी मूँगोंकेहैं उसके मध्यमें पाँच भूतोंकी पांच स्वामिनी हैं ॥ १ ॥ हल्लेखा, गगना, रक्ता, करालिका, महोच्छुष्मा यह पांच भूतोंकी समान कांतिवाली हैं ॥ २ ॥ पाश अंकुश वर अभय धारण किये मितभूषण पहरे देवीके समान वेष धारे नवयौवनसे गर्वित वहां निवास करती हैं ॥ ३ ॥ हे राजन् ! प्रवालपरकोटेके आगे

बहुत योजनके विस्तारमें नवरत्नका परकोटा है॥ ४॥ वहां पूर्वआम्नाय पश्चिम आम्नाय दक्षिण आम्नाय उत्तर ऊर्ध्व आम्नाय देवियोंके बहुत स्थान हैं वहांके तडाग सरोवरभी नवरत्नोंकेही हैं॥ ५॥ श्रीदेवीके अवतार पाशांकुशेश्वरी भुवनेश्वरी भैरवी, कपालभुवनेश्वरी, अंकुशभुवनेश्वरी प्रसादभुवनेश्वरी क्रोधभुवनेश्वरी, त्रिपुटा, अश्वारूढा, नित्यक्लिन्ना, अन्नपूर्णा त्वरिता आदि वहां निवास करते हैं ॥६॥ कान्ती तारा षोडशी भैरवी मातंगी आदि दशों महाविद्या वहां निवास करती हैं.अपने आवरणकी देवियों द्वारा अपने भूषण वाहनोंके सहित कोटिसूर्यकी कान्तिवाली सब देवी विराजमान होती हैं ॥ ७ ॥ वहीं सात कोटि महा मंत्रोंके देवता निवास करते हैं नवरत्नमय स्थानोंसे आगे चिन्तामणीनिर्मित वडा घर है ॥ ८ ॥ वहांकी सम्पूर्ण वस्तु चिन्तामणिकी बनी हुई है सूर्यके समान कान्ति फैलानेवाले चन्द्रसमान कान्ति फैलानेवाले ॥९ ॥ तथा विद्युत्समान कान्तिप्रकाश करनेवाले रत्नोंके वहां सहस्रों स्तंभ हैं जिनकी कान्तिसे वहांकी कोई वस्तु दिखाई नहीं देती ॥ ११० ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषायां एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः १२.

व्यासजी बोले यही मध्यभागमें देवीका स्थान विराजमान है जो सहस्र स्तंभरूप है उसमें चार मंडप हैं ॥ १ ॥ एक शृंगारमंडप, दूसरा मुक्तिमंडप, तीसरा ज्ञानमंडप ॥ २ ॥ चौथा एकान्तमंडप है यह अनेक वितानोंसे संयुक्त और अनेक धूपोंसे धूपित है ॥ ३ ॥ यह मंडप कोटिसूर्यके समान कांतिमान है उन मंडपोंके सब ओर केसरकी वाटी॥ ४॥ मल्लिका कुंद यह तीन वाटी लगी हैं जहां असंख्यात गंधमृग मदसे पूरित तथा मदस्रवन करते विचरते हैं ॥ ५ ॥ आगे उनके महापद्मोंकी अटवी, रत्नसोपाननिर्मित विराजमान हैं जो सुधारससे पूर्ण हैं जिनपर मधुके लोभसे भौंरे गुंजारते हैं ॥ ६ ॥ हंस कारंडवोंसे युक्त किनारे सुगंधसे पूर्ण हैं , उन वाटिकाओंकी गंधसे मणिद्वीप सुवासित रहता है ॥ ७ ॥ शृंगारमंडपमें देवियें सुन्दर स्वरसे गानकरती हैं उस मंडपके मध्य देवी सिंहासनपर स्थित है पूर्वोक्त देवता सभासद हैं ॥ ८ ॥ मुक्तिमंडपमें स्थितहो सब ब्रह्माण्डके भक्तोंको मुक्त करती है तीसरेमंडपमें भक्तोंके अपने भक्तोंको ज्ञान उपदेश करती है जो निजब्रह्मरूप विषयक ज्ञान है ॥ ॥९॥ चौथेमंडपमें स्थितहो मंत्रिणियोंके सहित जगत् रक्षाका विचार करती है॥ १०॥

हे राजन् ! चिन्तामणिमन्दिरमें शक्तितत्वात्मक दशसोपानोंसे युक्त एक सिंहासन है, निवृत्ति आदि पांच कला, बिन्दुकला, नादशक्ति, सदापूर्वा शिवप्रकृति इनही मूल प्रकृति भुवनेश्वरीके दशतत्वोंसे दशसोपानयुक्त मंच निर्मित है ॥ ११ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, यह चार इस मंचके पायेस्वरूप हैं, और सदाशिव फलकस्थानी हैं ॥ १२ ॥ इसके ऊपर भुवनेश महादेव विराजते हैं जो भुवनेश्वरी अपनी लीलाके निमित्त द्विधाभूत होती है, उसका दक्षिणभाग यह भुवनेश्वर है एकही साम्यावस्थामें स्थित मायाशबलब्रह्मरूपिणी भगवती भुवनेश्वरी भुवनेश्वर रूपसे प्रादुर्भूत हुई है ॥ १३ ॥ सृष्टिकी आदिमें होकर यह महेश्वर उसका अर्धांग है कन्दर्पदर्पके नाशनेमें उद्यत कोटि कन्दर्पकी समान सुन्दर ॥ १४ ॥ पंचमुख तीननेत्र मणिभूषणोंसे भूषित हरिण अभय परशु वर अपनी भुजाओंमें धारणकिये १५॥ षोडश वर्षकी अवस्थावाले वह सर्वेश्वरदेव हैं कोटि सूर्यके समान कान्तिमान् कोटि चन्द्रके समान शीतल ॥ १६ ॥ शुद्ध स्फटिक मणिके समान कान्तिमान् तीननेत्र शीतल द्युति जिनके बाईं ओर श्रीभुवनेश्वरी स्थित हैं ॥ १७ ॥ नवरत्न समूहोंसे व्याप्त कांची मेखलासे विराजित तपे सुवर्णसे बने और जडे वैदूर्य अंगदकी भूषणवाली ॥ १८ ॥ सुवर्णका दीप्यमान श्रीचक्र तदाकारके जो ताटंक कर्णभूषणोंसे जिनका मुख सुन्दर होरहा है और ललाटकी क्रांतिके ऐश्वर्यसे जिसने अर्धचन्द्रको जय करलिया ॥ १९॥ बिम्बकांतिको तिरस्कार करनेवाले जो ओष्ठपुट तिससे विराजमान श्रेष्ठ कुंकुम कस्तूरीके तिलकसे प्रकाशमान् मुखवाली ॥ २० ॥ दिव्य चूडामणि शिरोभूषणमें चन्द्र सूर्यनामक भूषणोंसे सम्पन्न उदित शुक्रके समान नासाभूषणसे संयुक्त ॥ २१ ॥ चिन्तानामक कंठभूषणमें लम्बायमान स्वच्छ मोतियोंके गुच्छेसे विराजित पटीर पंक कर्पूर और कुंकुमसे अलंकृत स्तनवाली ॥ २२ ॥ विचित्र अनेक प्रकारके कल्पवाली, शंखके समान गर्दन दाडिमीफलके बीजकी समान कान्तिमान् दांतोंकी पंक्तिसे विराजित ॥ २३ ॥ बडे रत्नोंके मूल्यसे बने मुकुटसे जिनका मस्तक शोभित है मत्तभ्रमरमालासे जिनके मुखकी अलकावली शोभित होरही है ॥ २४ ॥ श्यामतासे निर्मुक्त शरच्चन्द्रके कान्तिकी समान मुखवाली गंगाके आवर्तकी समान गंभीर नाभिसे शोभित ॥ २५ ॥ माणिक्य जड़ी अँगूठीसे शोभायमान, कमलदलकी समान आकारवाले तीन नेत्रोंसे सुन्दर ॥ २६ ॥ शाणपर धरे महाराग पद्मरागमणिके समान उज्ज्वल कांतिवाली रत्नोंकी किंकिणी और रत्नोंके कंकणसे शोभित ॥ २७ ॥ मणि मोतियोंकी मालामें विद्यमान अमूल्य पदक पंक्तिसे शोभित और रत्नांगुलियों

अर्थात् मुद्रिकाके रत्नोंकी निकली कान्तिसे जिनके कर शोभित होरहे हैं ॥ ॥ २८ ॥ कंचुकीमें गुम्फित् अनेक रत्नोंकी विस्तृत कांतिसे शोभित, मल्लिकाकी सुगन्धिवाला जो धम्मिल्ल (केशपाश) उसमें स्थित मल्लिका मालापर भ्रमण करते हुए भ्रमरसमूहसे युक्त ॥ २९ ॥ गोल निबिड़ 'सघन' ऊंचे कुचभारसे आलसको प्राप्त शिवा भवानी वर, पाश, अंकुश, अभयसे जिनकी चारोंभुजा शोभायमान हैं ॥ ॥ ३० ॥ सब शृंगार वेषसे सम्पन्न सुकुमार अंगवाली, सौन्दर्य धाराकी सर्वस्वरूप विना हेतुकेही करुणावाली ॥ ३१ ॥ अपने संलापकी माधुरीनादसे वीणाको लज्जित करनेवाले कोटि २ चन्द्र सूर्यके कांतिको धारण करनेवाली ॥ ३२ ॥ अनेक सखी दासी देवांगना तथा सब देवताओंसे चारों ओर वेष्टित ॥ ३३ ॥ इच्छा शक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्तिसे युक्त लज्जा, पुष्टि, तुष्टि, कीर्ति, कांति, क्षमा, दया ॥ ३४ ॥ बुद्धि, मेधा, स्मृति, लक्ष्मी यह सब मूर्तिमान् अंगनायें स्थित हैं. जया, विजया,अजिता पराजिता ॥ ३५ ॥ नित्या, विलासिनी दोग्ध्री अघोरा मंगला नवा यह पीठशक्तियें हैं जो परा अम्बिकाका सेवनकरती हैं ॥ ३६ ॥ जिसके पार्श्वभागमें शंख और पद्मक निधियें विद्यमान हैं जिनसे नवरत्न और कांचनस्रावी नदी वहन करती हैं ॥ ३७ ॥ तथा सातधातुकी बहानेवाली नदियें निधियोंसे निर्गत होती हैं. हे राजन् ! वह सब सुधासागर पर्यन्त बहती हैं ॥ ३८ ॥ वह महेशानी देवी उनके वामअंकमें विराजमान हैं इन्हींके संगसे महेशको सर्वेशत्व प्राप्त है इसमें अन्यथा नहीं ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! इस चिन्तामणिगृहका प्रमाण सुनो सहस्रयोजनके आयाम (विस्तारोंमे) है ॥ ४० ॥ उसके उत्तर महापरकोटे लम्बावमें उससे दूने हैं, यह अन्तरिक्षमें स्थित निराधारमें विराजमान हैं ॥ ४१ ॥ यह निरन्तर संकुचित और विकसित होसकता है यह कार्यवश सृष्टिकी आदिमें पटवत् फैलता और प्रलयमें संकुचित होजाता है ॥ ४२ ॥ सब परकोटोंकी कान्तिकी यह चिन्तामणि मन्दिर परम अवधि है जहां महाप्रभावा देवी निवास करती है ॥ ४३ ॥ प्रतिब्रह्माण्डके रहनेवाले जो जो उपासक हैं देवलोक नागलोक तथा मनुष्यलोकमें हैं ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! वह सब यही श्रीदेवीके निकट प्राप्त होते हैं जो देवीके पूजनमें तत्पर देवीके क्षेत्रमें प्राणत्यागन करते हैं ॥ ४५ ॥ वह सब वहीं जाते हैं जहां देवीका महोत्सव है वहाँ घृतकल्या मधुकुल्या दधिकुल्या मधुकी बहाने वाली हैं ॥ ४६ ॥ सब नदी अमृतकी बहानेवाली हैं कोई द्राक्षारस कोई जम्बूरस बहानेवाली हैं ॥ ४७ ॥ आम ईखके रसवाली सहस्रों नदियां हैं, मनोरथ फलनेवाले

वृक्ष बावडी और कूप हैं ॥ ४८ ॥ जो यथेष्ट पान फलके देनेवाले हैं, जिनमें कुछ भी न्यूनता नहीं होती, रोग पलित और जरा नहीं होती ॥ ४९ ॥ चिन्ता मात्सर्य काम क्रोधादिक नहीं हैं, सहस्र सूर्यके समान कान्तिमान् वहांके पुरुष स्त्रीसहित सदा युवा रहते हैं ॥ ५० ॥ वह श्रीभुवनेश्वरीका नित्य भजनकरते हैं. कोई सालोक्य कोई सामीप्य मुक्तिको प्राप्तहुए ॥ ५१ ॥ कोई सारूप्य और कोई सार्ष्टि मुक्तिको प्राप्तहुए हैं प्रतिब्रह्माण्डवर्ती वहां जितने देवता हैं ॥ ५२ ॥ वहां उनकी समष्टि सब श्रीजगदीश्वरीकी सेवा करते हैं, वहां सातकरोड महामंत्र मूर्तिमान् होकर उपासना करते हैं ॥५३॥ और सब महाविद्या साम्यावस्थामें स्थित शिवा, कारणब्रह्मरूपा, मायासे शबल विग्रहवालीकी उपासना करते हैं॥५४॥ हे राजन् ! यह मैं ने आपसे मणिद्वीपका महाप्रभाव कहा चन्द्र सूर्य बिजली कोटियों अग्नि यह ॥ ५५ ॥ इस कान्तिके कोटि अंशके कोटि अंशमें भी नहीं हैं कहीं मूँगेकी समान कहीं मरकतकीछवि॥५६॥ कहीं विद्युत्सूर्यके समान कहीं मध्याह्न सूर्यके समान कहीं कोटि विद्युत्कीसमान महाधारासारकान्ति ॥५७॥ कहीं सिन्दूरनील इन्द्र माणिक्यके समान छवि,कहीं हीरेकी समान कान्ति चारों ओर फैलतीहै और॥५८॥ कहीं कांतिमें दावानलकी समान तत्ते किये सुवर्णकी समान कहीं चन्द्रकांत कहीं सूर्यकान्तमणि ॥५९॥ रत्न शिखरोंसे युक्त रत्नके प्राकार और गोमुखी सम्पन्न रत्नपत्र और रत्न फलवाले वृक्षोंसे मंडित ॥ ६० ॥ मयूरोंके समूहोंके नृत्य और कपोतोंके शब्दोंसे शब्दायमान कोकिला काकली और तोतोंके आलापसे शोभित ॥ ६१ ॥ मनोहर रमणीय जलके लक्षों सरोवर, उनके मध्यभागमें रत्नोंके कमल खिले हुए ॥ ६२ ॥ चारों ओर सौ योजन तक सुगन्धि व्याप्त होरही मंदमारुतसे जहांके वृक्ष चलायमान होरहे ॥ ६३ ॥ चिन्तामणिके समूहोंकी ज्योति आकाशमें फैल रही उनमें रत्नोंकी कांतियोंसे सब ओर प्रकाश हो रहा है ॥ ६४ ॥ वृक्षोंके समूहोंकी महा गंधसे युक्त पवनसे पूर्ण हे राजन् ! सब स्थान धूपोंसे धूपित और मणिद्वीपोंसे समुज्वल हैं ॥ ६५ ॥ मणियोंके जालके छिद्रोंमें चंचल दिपोंकी कान्ति निकलकर गृह मध्यके दर्पणोंमें पडकर एक अपूर्व मोहजनक कान्तिधारण करती है ॥६६॥ सम्पूर्ण ऐश्वर्य सम्पूर्ण शृंगार सब सर्वज्ञता सम्पूर्ण तेज ॥ ६७ ॥ सब पराक्रम, सर्वोत्तम गुण और सम्पूर्ण दयाकी यहां संप्राप्ति है. हे राजन् ॥ ६८ ॥ राजाके आनंदसे प्रारंभकर ब्रह्मलोकपर्यन्त जो आनंद है वे सब आनंद यहां है ॥ ६९ ॥ हे राजन् ! यह आपसे मणिद्वीपका महत्व कहा यह महादेवीका परमस्थान सब लोकोंसे उत्तमोत्तम है ॥ ७० ॥ इसके स्मरणमात्रसे सब पाप नष्ट होते हैं प्राण

प्रयाणके समय इसको स्मरण करनेसे प्राणी मणिद्वीपमेंही गमन करता है ॥ ७१ ॥ जो सावधान हो आठवें अध्यायसे बारह अध्यायतक पांच अध्याय नित्य सुने ॥ है उसको भूत प्रेत पिशाचादिकी बाधा नहीं होती ॥ ७२ ॥ नवीन ग्रहके निर्माणमें वास्तुयोगमें प्रयत्नसे इसको पढै तो कल्याण मंगल होता है ॥ ७३ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः १३.

व्यासजी बोले हे राजन् ! जो जो आपने पूँछा सो सब तुमसे कहा जो कुछ नारायणने महात्मा नारदसे कहा था ॥ १ ॥ इस महादेवीके परम अद्भुत पुराणको श्रवण कर यह प्राणी कृतकृत्य और देवीका प्रिय होता है ॥ २ ॥ हे राजन् ! अब अपने पिताके उद्धारके निमित्त "अम्बायज्ञ कीजिये जिसके विनाकिये पिताकी सुगति न होनेके कारण तुम खिन्न हो रहे हो ॥ ३ ॥ आप सर्वोत्तम महादेवीके मंत्रको ग्रहण करो जो यथाविधि विधानसे जन्मकी सफलता देता है ॥ ४ ॥ सूतजी बोले मुनिश्रेष्ठके यह वचन सुन वह नृपश्रेष्ठ मुनिराजकी प्रार्थना कर उनसेही प्रणवसंज्ञक महादेवीके मंत्रको ॥ ५ ॥ दीक्षाविधिके विधानसे राजाने ग्रहण किया फिर नवरात्रके समागममें धौम्यादि महर्षियोंको बुलाय॥ ६ ॥ वित्तशाठ्यसे वर्जित हो अम्बायज्ञ किया और यह उत्तम पुराण ब्राह्मणोंद्वारा पाठ कराया ॥७॥ श्रीदेवी अम्बिकाकी प्रीतिके निमित्त परम देवीभागवत सुनी असंख्य ब्राह्मण और सुवासिनियोंको भोजन कराया ॥ ८ ॥ कुमारी बटुक दीन अनाथ इन सबको भोजन और द्रव्यदानसे राजाने प्रसन्न किया ॥ ९ ॥ यज्ञ समाप्त करके ज्योंही यज्ञमंडपमें स्थित थे कि, तबतक आकाशसे नारदजी उतरे ॥ १० ॥ प्रज्वलित अग्निके समान कांतिवाले महतीनामक अपनी वीणाको बजाते आये नारदजीको देखतेही राजा संभ्रांत हो उठ खडा हुआ ॥ ११ ॥ और आसनादि उपचारोंसे राजाने उनकी पूजा की और कुशलप्रश्नकर आगमनकारण पूँछा ॥ १२ ॥ राजा बोले हे महात्मन् ! आप कहांसे आये हो कहिये मैं आपका क्या प्रिय करूं आपके आगमनसे मैं सनाथ और कृतार्थ हुआ हूं ॥ १३ ॥ राजाके यह वचन सुन मुनिश्रेष्ठ बोले हे राजन् ! इस समय देवलोकमें मैंने बडा आश्चर्य देखा है ॥ १४ ॥ वह मैं विस्मित हो तुमसे निवेदन करनेको आया हूं अपने कर्मकी विपरीततासे तुम्हारे पिताकी सद्गति नहीं हुई थी ॥ १५ ॥ जो इस समय वह दिव्य

वृक्ष बुद्धि इच्छारूपकी स्तुतिको प्राप्त हो सब ओर अप्सराओंसे वेष्टित हो ॥ १६ ॥ भृगाढ आश्विन माघ मणिद्वीपको गये हैं यह इस देवीभागवतके सुननेकाही फल र लोकों अपनी गायत्रीके कारण तुम्हारे पिताकी सद्गति हुई तुम धन्य और कृत- है ॥ पढना चाहिये का जीवन सफल है ॥ १८ ॥ हे कुलभूषण! आपने अपने पिताका दुः सहित हो तथा तुम्हारा इस समय देवलोकमें तुम्हारी वडी कीर्त्ति हुई है ॥ १९ ॥ उद्धार किया नारदजीके कहे वचन सुनकर प्रेमसे गद्गद हो अद्भुतकर्मा व्यास- जी बोले राजा यह २० ॥ और बोले हे देव ! मैं आपके अनुग्रहसे कृतार्थ हुआ हूं नमः चरणोंमें पडे और मैं इसका प्रत्युपकार क्या कर सकता हूं ॥ २१ ॥ हे मुने ! के सिवा ऊपर सदा अनुग्रह रखना चाहिये यह राजाके वचन सुन आशीर्वाद कारके की प्रसन्न कर ॥ २२ ॥ भगवान् व्यासजी मनोहर वचन बोले हे राजन् ! और सब त्यागनकर देवीके चरणकमलका भजन करो ॥ २३ ॥ और नित्य सावधान होकर देवीभागवतका पाठ करो और आलस्य त्याग भक्तिपूर्वक सदा अम्बामख किया करो ॥ २४ ॥ इससे अनायासही संसारबंधनसे छूट जाओगे और भी शिव विष्णु आदि पुराण हैं ॥ २५ ॥ पर इस देवीभागवतकी सोलहवीं कलाके भी बरावर नहीं है यह पुराण और वेदोंका सार है ॥ २६ ॥ कारण कि, इसमें शबलब्रह्मरूपिणी मूलप्रकृति प्रतिपादन की गई है फिर और पुराण ब्रह्मा विष्णु आदि एक २ गुणके कहनेवाले इस त्रिगुणकी साम्यावस्थावाले पुराणकी बरावरी कैसे कर सक्ते हैं ॥ २७ ॥ हे जन्मेजय इसके पाठसे वेदपाठकी समान पुण्य होता है इसकारण उत्तम विद्वानोंको प्रयत्नसे इसे पढना चाहिये ॥ २८ ॥ इसप्रकार कहकर मुनिश्रेष्ठ राजासे विदाहुए और धौम्यादि निर्मल मुनिभी अपने स्थानोंको गये ॥ २९ ॥ और देवीभागवतकी उत्तम प्रशंसा करनेलगे और राजा प्रसन्नमन होकर पृथ्वीका पालन करनेलगे ॥ ३० ॥ और निरन्तर भागवत पढते सुनते रहे ॥ ३१ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः १४.

सूतजी बोले तीसरे स्कन्धमें वटपत्रमें शयन करते विष्णुसे जो देवीने ' सर्वखल्विदमे वाहंनान्यदस्तिसनातनम् ' अर्थात् यह सब मैंही हूं मेरेसिवाय कोई नित्य पदार्थ नहीं यह आधाश्लोक देवीके मुखसे निर्गत हुआ वेदसिद्धान्तका जतानेवाला वेद

सिद्धान्तका बोधक है ॥ १ ॥ जो वटपत्रनिवासी विष्णुको उप ा है ॥ ७१ हैं ॥
इसको सौकरोड श्लोकोंमे विस्तार किया था॥ २॥ उसीका व्यासजी पाय नित्य सुनकाकी
अठारह सहस्र बारहस्कन्धमें सार कहा है॥ ३॥ देवीभागवतनाम पु न ग्रहके निम करते
निर्माण किया अबभी देवलोकमें वह बडे विस्तारयुक्त है ॥ ७३ ॥
पुण्यदायक पवित्र तथा पापनाशक दूसरा पुराण नहीं है इसके
मेधके फलको प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ वस्त्र आभरणादिभिः ॥ १२ ॥ ॥ ७६
करनी चाहिये, पुराणवक्ताको व्यासबुद्धिसे पूजै और नियमसे ४ ॥ इसत्र
पुर्ने अपने हाथसे वा लेखकके हाथसे लिखाकर भाद्रपद पौर्णमासी पाठसे मनुष्य
भागवतको देवीरूप जान, सुवर्णका सिंह बनवाय ॥ ७ ॥ पौराणसे पौराणिक
करे इसपर दक्षिणामें कपिला गौ दे वह गौ दुधारी अलंकृत सवत्सा सुवर्ण पहरे ६
॥ ८ ॥ इसमें ३१० अध्याय होनेसे इतनेही ब्राह्मणोंको भोजन करावे इत देवी
भागन कुमारी बटुकोंको भोजन करावै ॥ ९ ॥ देवीबुद्धिसे वसन आभ नीहीं
उनको पूजन करै पायसादिश्रेष्ठ अन्न गंधमाला कुसुमादिसे पूजा करै ॥ रणादि
पुराणदानसे भूमिदानका फल होता है इसलोकमें सुखी हो अन्तमें दे १०॥
होता है ॥ ११ ॥ जो नित्य भक्तिसे देवीभागवत सुन्ते हैं उसको वीलोक
सी समय कुछ दुर्लभ नहीं होता ॥ १२ ॥ अपुत्रवाला पुत्र प्राप्त कर्मी
को धन मिलता है विद्यार्थी विद्याको प्राप्त होकर अपनी कीर्तिसे करता धन
ता है ॥ १३ ॥ वंध्या काकवंध्या जिसके एकही वार संतान भूमिको
जिसकी सन्तान होकर मरजाती हो) इसके श्रवणसे हुई हो मृतवन्ध्या
होजाता है इसमें सन्देह नहीं ॥ १४ ॥ जिस घरमें यह पुस्तक हो दोष नि
ी है उसघरको लक्ष्मी और सरस्वती त्यागन नहीं करती॥ पूजित होकर
आदि राक्षस उस घरको देखनेको समर्थ नहीं होते मनुष्यको १५॥ वेताल डाकि
इसका पाठ करै तो ॥ १६ ॥ दाहज्वर ग्लानिसहित ज्वरयुक्त देख
इसकी सौ आवृत्ति करनेसे क्षयरोग नाश होता है ॥ १ त नाशको प्राप्त
उपरान्त प्रतिसंध्यामें जो इसके एक एक अध्यायको ७ ॥ सावधान
प्राप्त होकर मोक्षका अधिकारी होता है ॥ १८ ॥ पढता है वह
अनुसार शकुनोंको देखै जिसका प्रकार मैं पहले कह कार्याकार्यमें नव
नवरात्रमें इसको नित्यपाठ करै अम्बिका प्रसन्न होक वकाहूं ॥१९॥ शरत्कालकी
॥ २० ॥ वैष्णव शैव गाणपत्य सौर शाक्त वैदिक उसको इच्छित फल देती है
अर्थात् अपने इष्टदेव विष्णु शिव गणेश सूर्यकी श को अपन इष्टदेवकी शक्ति
के पार्वती राधा लक्ष्मी

वृद्ध बुद्धि इच्छारूपकी पुष्टिके निमित्त इस पुराणको पढना चाहिये ॥ २१ ॥
आषाढ आश्विन माघ चैत्रके शुक्लपक्षकी चारों नवरात्र में इसको पढना चाहिये,
लोकों अपनी गायत्रीको प्रीतिके निमित्त सदा पढना चाहिये ॥ २२ ॥ इसको
पढना चाहिये कारण कि इसमें किसीका विरोध नहीं है जो कि सब देवता
की उपासना शक्तिसहित है और शक्तिकी अधिष्ठात्री भगवती है ॥ २३ ॥
शक्तिके संतोषके निमित्त द्विजोंको सदा पढनी चाहिये, स्त्री शूद्र मोहको प्राप्त हुए
इसका पारायण नकरैं ॥ २४ ॥ उनको सदा ब्राह्मणोंके मुखसे इसको सुनना
ये ऐसी मर्यादा है वहुत कहनेसे क्या है तत्त्वसे इसका सार कहता हूं ॥
॥ हे ब्राह्मणश्रेष्ठो ! यह पुराण वेदका सार परमपुण्यदायक है, इसका पाठ
श्रवण वेदपाठ और श्रवणकी समान पुण्यदायक है ॥ २६ ॥ गायत्रीसे
प्रतिपाद्य सच्चिदानंदरूपिणी ह्रींमयी देवीको प्रणाम करता हूं वही हमारी बुद्धिको
प्रेरणा करे "ह्रींब्रह्मेति श्रुतेः" ॥ २७ ॥ नैमिषारण्यवासी तपोधन इसप्रकार सूतजीके
वचन सुन पौराणिकोंमें उत्तम सूतजीकी उच्च पूजा करते हुए ॥ २८ ॥ वे देवीके
चरणकमल का पूजन करनेवाले सब प्रसन्न हुए और इस पुराणके प्रभावसे परम
शान्तिको प्राप्त हुए ॥ २९ ॥ सूतजीको वारंवार प्रणाम कर श्रम देनेके अपरा-
धको क्षमा कराते हुए और बोले हे तात ! इस संसारसागरके पार करनेको तुमही
हमको नौकारूप हुए॥ ३०॥ इसप्रकारसे वह सूतजी सब निगमोंमें गुप्त इसपुराणको
उन श्रेष्ठ ऋषियोंको सुनाकर मुनियोंसे प्रणामको प्राप्तहो उन्हें आशीर्वादसे बढाय,
माता भगवतीके चरणकमलोंमें भृंगरूप अर्थात् देवीके अतिशय भक्त सूतजी वहांसे
विदा होकर अन्यत्र चलेगये ॥ ३१ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां राजमान्य कान्यकुब्जकमल
दिवाकर हरिभक्तिनिरत श्रीमिश्रसुखानन्दसूनु महोपदेशक भारतधर्ममहामण्डल
पण्डित ज्वालाप्रसादकृत भाषायां द्वादशस्कंधे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

समाप्तोऽयंग्रन्थः ।

दोहा—जगदम्बा श्रीशारदा, ब्रह्मरूपिणी मात ।
तिनके पगवंदन किये, कोटि विघ्न मिटजात ॥ १ ॥
चरणकमल सुन्दर अमल, प्रेमसहित मनलाय ।
देविभागवत ग्रंथकी, भाषा लिखी बनाय ॥ २ ॥

वेद अर्थ गर्भित सकल, गायत्रीको ध्यान ।
इहिमें अतिविस्तारसे, कह्यो व्यास भगवान ॥ ३ ॥
पढ़हिं सुनहिं कर प्रेम जो, पावहिं मोद महान ।
अर्थ धर्म कामादि सुख,अन्त मिलहिं निर्वान ॥ ४ ॥
सब पदार्थ गूढार्थ अरु, भावतिलक [illegible] ।
वर्णी भाषा भागवत, सज्जन होहिं प्रसन्न ॥ [illegible]
श्रीकृष्णदासात्मज, खेमराज [illegible]
वसत बम्बई नगरमें, दिव्यगुणनकी खान ॥ ६ ॥
वेङ्कटेश्वर यंत्रपति, विदित सकल संसार ।
तिनहित की श्रीभागवत, [illegible] ॥ ७ ॥
पुत्र पौत्रकी होय नित, वृद्धि समृद्धि विशाल ।
जगज्जननि परमेश्वरी, [illegible] दयाल ॥ ८ ॥
मिश्रसुखानंद [illegible] गंगगर्भसंजात ।
बुधज्वालाप्रसाद [illegible] गुणगात ॥ ९ ॥
[illegible] मुरादाबाद ।
[illegible] ज्वालाप्रसाद ॥ १० ॥
[illegible] ।
[illegible] पूर्णतिलक सुखरास ॥ ११ ॥
[illegible] त्रेसठ श्लोकमें, यह द्वादशस्कंध ।
[illegible]त्री महिमा कही, और वैदिक प्रबन्ध ॥ १२ ॥
[illegible]था फिरत क्यों विषनमें, रे मतिमन्दगँवार ।
जगदम्बाके चरणगहि, अपनो जन्मसुधार ॥ १३ ॥
[illegible]क्षपात तज धर्मगहि, व्यासमुनिहिं शिरनाय ।
यथा शक्ति टीकाकरी, दर्पणवत दिखराय ॥ १४ ॥
तासौं दर्पण नाम यह, टीका सब सुखमूल ।
पढहिं सुनहिं तिनपर रहैं,सदा शिवा अनुकूल ॥ १५ ॥

॥ श्रीजगदम्बार्पणमस्तु ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-
खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) [illegible]

दोसहस्र दोसै अधिक, पंचाशत यहि पद्य ।
सो सब वर्णे मिश्रने, निर्मलभाषागद्य ॥ २ ॥
सकलकामप्रद जानिये, यह गीताको ज्ञान ।
पढहिं सुनहिं करि प्रेम जो, पावहिं पद निर्वान ॥ ३ ॥
देवी हिमवत्को भयो, जो सुन्दर संवाद ।
सो सब भाषा करि कह्यो, बुध ज्वालाप्रसाद ॥ ४ ॥

शुभमस्तु.

इति सप्तमस्कन्धः समाप्तः ॥ ७ ॥



"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस, खेतवाडी-बंबई.

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ श्रीमद्देवीभागवत।

अष्टमस्कन्धः ८.

प्रथमोऽध्यायः १.

दोहा—जगदानंदप्रदायिनी, सकल सुमंगल मूल ।
शिवाभवानी मिश्रपर, सदा रहो अनुकूल ॥

जनमेजय बोले आपने सूर्य चन्द्रवंशी राजोंका जो चरित कहा सो अमृतका स्थान चरित्र हमने सुना॥ १ ॥ अब यह सुननेकी इच्छाहै कि, वह जगदम्बिका देवी सब मन्वन्तरों में जिस जिस रूपसे पूजित होती है॥ २॥ और जिस जिस स्थानमें जिस जिस कर्मसे पूजित होती है "तथा जिस जिस शरीरसे देवी फल देनेको पूजी जाती है जिस जिस मंत्रबीजसे जहां जहां पूजी जाती है" देवीका विराट्रूप और उसका वर्णन ॥ ३ ॥ तथा जिस ध्यानसे उस सूक्ष्म शरीरमें बुद्धिकी गति होती है हे विप्रर्षे! वह सब कहिये जिसमें हमको मंगलकी प्राप्ति हो ॥ ४ ॥ व्यासजी बोले हे भारत! देवीका आराधन सुनो जिसके करने सुननेसे मनुष्यका कल्याण होता है ॥ ५ ॥ यही बात पहले नारदजीने नारायणसे पूछी थी योगमार्गके प्रवर्तक भगवानने जो उनसे कहा ॥ ६ ॥ वही कहते हैं एक समय श्रीमान् नारदजी पृथ्वीपर्यटन करते हुए नारायणके आश्रममें आय खेदरहित स्थित हुए ॥ ७॥ नारदजी उन योगात्माके निमित्त नमस्कार करके जो आपने पूछा यही बात पूछते हुए ॥ ८ ॥ नारदजी बोले, हे देवदेव! महादेव! हे पुराणपुरुषोत्तम ! हे जगत्के आधार! हे सर्वज्ञ ! हे सद्गुणोंसे श्लाघनीय! आप जगत्के जिसप्रकार आदि हो सो मुझसे विस्तारसे कहो यह जगत् कहांसे उत्पन्न और किसमें प्रतिष्ठित है ॥९॥ १०॥ और अन्तमें किसमें लय होता है तथा सम्पूर्ण फलका उदय कहांसे होता है और किसके ज्ञानसे यह माया नाशको प्राप्त होती है ॥ ११ ॥ किसके पूजन, जप, ध्यानसे हे देव ! प्रकाश होता है जैसे सूर्यो-

दयसे अन्धकार दूर होता है ॥ १२ ॥ हे देव ! सब प्रकारसे इस प्रश्नका उत्तर दीजिये, जिस प्रकार यह लोक अंधकारमें निमग्न हुआ तरजाय ॥ १३ ॥ व्यासजी बोले जब इस प्रकारसे देवर्षि नारदजीने प्रश्न किया तब महायोगी नारायण प्रसन्न होकर कहने लगे ॥ १४॥ नारायण बोले हे देवर्षि ! सुनो जिसप्रकार यह जगत्का तत्त्व है जिसके जाननेसे यह जन्तु जगत्के भ्रममें नहीं पड़ता ॥१५॥ देवीने मुझसे जगत्का तत्त्व वर्णन कियाहै. ऋषि,गन्धर्व, देवता और दूसरे मनीषियोंनेभी वर्णन किया है ॥ १६ ॥ वह देवी जगत्को प्रगटकर पालन करती है और त्रिगुणके द्वारा वहीं जगत्का नाश करती है,उस सिद्ध और ऋषियोंसे पूजित देवीके स्वरूपको वर्णन करताहूं जो स्मरण करते ही सब पापको दूरकरती है और काम तथा मोक्षकी देनेवाली है॥१७॥१८॥ ब्रह्माजीके पुत्र स्वायंभुव मनु हुए और शतरूपा उनकी स्त्री थी, यह मन्वन्तराधिप हैं ॥ १९ ॥ वह मनु अपने देवरूप पापरहित पिताजीकी परमभक्तिसे उपासना करने लगे तब उन ब्रह्माजीने अपने पुत्रसे कहा ॥ २० ॥ हे पुत्र ! तुम देवीका श्रेष्ठ आराधन करो हे पुत्र! उसीके प्रसादसे यह तुम्हारी प्रजासृष्टि सिद्ध होगी ॥२१॥जब स्वायंभुवमनुसे इसप्रकार ब्रह्माजीने कहा तब वह तपसे जगत्की योनिरूप देवीको प्रसन्न करने लगे ॥ २२ ॥ सावधान मनसे देवीको सन्तुष्ट करने लगे जो आदिमाया सर्वशक्ति और सब कारणोंका कारण है ॥ २३ ॥ मनु बोले हे जगत्की कारणस्वरूप देवी ! आपको प्रणाम है तुम शंख, चक्र, गदा हाथमें लिये नारायणके हृदयमें स्थित हो ॥ २४ ॥ वेदकी मूर्त्ति जगत्की माता सब कारणोंकी कारण स्थानकी रूपवाली तीन वेदके प्रमाणकी ज्ञाता सब देवताओंसे स्तुतिको प्राप्त कल्याणस्वरूप॥२५॥हे महेश्वरि ! हे महामाये ! हे महोदये ! महादेवकी प्रिया सर्वनिवास महादेवकी प्रिय करनेवाली ॥ २६ ॥ गोपेन्द्रकी प्रिया ज्येष्ठा महानंदा और महोत्सवस्वरूप महामारीके भय हरनेवाली देवादिसे पूजित तुमको प्रणाम है ॥२७॥ हे सम्पूर्ण मंगलोंकी मंगल हे शिवे ! हेसर्वार्थ साधक हे शरणागतवत्सले ! गौरीनारायणी आपको प्रणाम है ॥ २८ ॥ जिसके द्वारा यह विश्व ओत प्रोत हो रहा है चैतन्यस्वरूप एक आद्यंतरहित तेजोंकी निधि॥२९॥ ब्रह्मा जिसके ईक्षणसे सब करता है जिसके अनुग्रहसे विष्णु पालते और शिव संहार करते हैं ॥ ३० ॥ जब मधुकैटभके भयसे ब्रह्माजी घबराये जिसकी स्तुतिसे घोर दैत्यभय छूट गया ॥ ३१ ॥ तुम ही, कीर्त्ति, स्मृति, कान्ति, कमला, गिरिजा, सती,

दाक्षायणी, वेदगर्भा, बुद्धिकी देनेवाली, सदा निर्भयरूप ॥ ३२ ॥ मैं तुम्हारी स्तुति करता नमस्कार करता पूजन और जप करता हूं हे देवि! मैं तुम्हारा ध्यान, ईक्षण, और श्रवण करता हूं तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हो॥ ३३ ॥ब्रह्मा वेदके निधि,विष्णु लक्ष्मीके आवास, इन्द्र तीन लोकका अधिपति, पाशधारी वरुण उत्तम जलोंके पति ॥ ॥ ३४ ॥ कुबेर निधिनाथ और यमराज प्रेतराट् हुए हैं निर्ऋति राक्षसोंके अधिपति चन्द्रमा जलोंके स्वामी हुए ॥ ३५ ॥ हे देवेशि ! यह सब आपहीकी कृपासे हुए हेत्रिलोकवंद्ये ! हेलोकेशि ! हेमहामंगलस्वरूपिणी ! आपको प्रणामहै. हेजगन्माता ! फिर भी वारंवार प्रणाम है ॥ ३६ ॥ नारायण बोले जब दुर्गा नारायणी परादेवीकी इस प्रकार स्तुति करी. हे देवर्षे! तब भगवती प्रसन्न हो ब्रह्मपुत्रसे यह बोली॥ ३७॥ श्रीदेवी बोली हे राजेन्द्र ! ब्रह्मपुत्र जो तुम्हारी इच्छा हो सो वर मांगो तुम्हारी स्तुति भक्तिपूर्वक आराधन और स्तुतिसे मैं प्रसन्न हूं॥ ३८ ॥ मनु बोले हेकरुणामयी! यदि आप हमारे ऊपर प्रसन्न हो, तो आपकी आज्ञासे यह सृष्टि निर्विघ्न पूरी होजाय ॥ ३९ ॥श्री देवी बोली मेरे अनुग्रहसे प्रजासर्ग करसकोगे. हेराजेन्द्र! दिन दिन वृद्धि होगी कोई विघ्नभी न होगा और जो कोई तुम्हारे किये इस स्तोत्रको मेरी भक्तिसे कहेंगे उनको विद्या और प्रजाकी सिद्धि तथा कान्तिका उदय होगा॥ ४० ॥ ४१ ॥जो शक्तिसे हत नहीं है उसको धनधान्यकी प्राप्ति होती है. हे राजन्! उसको सर्वत्र जय सुख होकर शत्रुका क्षय होता है॥ ४२॥ नारायण बोले इस प्रकार ब्रह्मपुत्र मनुको वरदान देकर भगवती उसके देखते २ अन्तर्धान हो गई ॥ ४३ ॥ तब प्रतापवान् ब्रह्मपुत्र राजा वरको प्राप्त हो ब्रह्मासे कहने लगे हे तात ! मुझे स्थान दो ॥ ४४ ॥ जहां स्थित होकर मैं श्रेष्ठ प्रजाकी रचना करसकूं तथा यज्ञानुष्ठानकर मैं देवेशीका पूजन करूंगा आप शीघ्र आज्ञा दीजिये ॥ ४५ ॥ यह पुत्रके वचन सुन प्रजापति विभु विचारने लगे कि, यह कार्य कैसे होगा ॥ ४६ ॥ सृजन करते २ मुझे बहुत समय बीतगया और जलकी धाराओंमें मग्न हो सब भूमि नीचे जाती है ॥ ४७ ॥ इस मेरे चिन्तितका र्यको आदिपुरुषभगवान् सम्पादनकर हमारी सहायता करेंगे जिसके आदेशसे मैं स्थित हूं ॥ ४८ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे भाषायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

नारायण बोले हे परंतप ! इस प्रकार उन ब्रह्माजीके विचार करनेपर मनुआदिमुनिश्रेष्ठ और मरीचिआदिऋषियोंने सब ओरसे विचार किया ॥ १ ॥ ब्रह्माजीके ध्यान करते ही उनके नासारन्ध्रसे एक अंगुलप्रमाणका एक वराहबालक प्रगट हुआ ॥ २॥ हे नारद ! वह उनके देखते २ आकाशमें स्थित हुआ क्षणमात्रमें ही हाथीके समान बढगया यह अद्भुत बात हुई ॥ ३ ॥ हे नारद ! मरीचिको आदिले ब्राह्मण श्रेष्ठ सनकादि तथा ब्रह्माजी उस सूकरको देख विचारने लगे ॥ ४ ॥ यह सूकर देहके उपालंभमें कौन अद्भुत जीव है, यह कोई दिव्य वस्तु अति आश्चर्यदायक मेरी नासिकासे निर्गत हुआ है ॥ ५ ॥ देखनेमें प्रथम तो यह अंगुष्ठ शिरकेसमान था, क्षणमें ही पर्वतराजके समान होगया, अहो यह भगवान् हैं वा यज्ञ है, जो मेरा मन संदेहमें डालकर चंचल कर रहे हैं ॥ ६॥ परमात्मा ब्रह्माके इस प्रकार तर्कना करनेसे पर्वततुल्य भगवान् गर्जना करने लगे ॥ ७॥ तब संहत हुए ब्राह्मणोंको ब्रह्माजी प्रसन्न करने लगे वह अपनी गर्जनाओंसे दिशाओंको शब्दायमान करने लगे ॥८॥ वे अपने खेदका नाशक घुर घुर शब्द सुनकर तप सत्य जनलोकनिवासी श्रेष्ठ देवता॥९॥ ऋक् साम अथर्वके छन्दोमय स्तोत्र तथा पुरुषसूक्तके वचनोंसे ब्राह्मण अभिवर्षण करनेलगे ॥ १० ॥ हरि ईश्वर भगवान् उनके स्तोत्रोंको सुनकर कृपादृष्टिसे उनको देख जलमें प्रविष्ट हुए ॥ ११ ॥ उनके भीतर प्रवेश करनेसे केशरके आघातसे पीडित हो समुद्र कहनेलगा हे शरणागतके दुःख दूरकरनेवाले मेरी रक्षा करो॥ ॥ १२ ॥ भगवान् सागरका यह वचन सुनकर जलचरोंको विदीर्ण करते सागरमें प्रविष्ट हुए ॥ १३ ॥ पृथ्वीके खोजनेको इधर उधर धावमान होने लगे वारंवार सूंघकर ऊपर उठाने योग्य धराको शनैःप्राप्त हुए ॥ १४ ॥ जो सब जीवोंके आश्रयवाली भूमि जलके अन्तरमें थी देवदेवेशने उसको अपनी दंष्ट्रापर धारण किया ॥ १५ ॥ यज्ञेश यज्ञपुरुष उसको अपनी दंष्ट्रापर धारण कर पद्मिनीको उखाडे दिग्गजके समान शोभित हुए ॥ १६ ॥ उन देवदेवको ब्रह्मा स्वराट् मनु देखकर वसुन्धराधारी देवकी स्तुति करने लगे ॥ १७ ॥ ब्रह्माजी बोले हे पुण्डरीकाक्ष ! हे भक्तोंके दुःखनाशक ! हे सबकामफलके दाता ! हे सुराधार आपने सत्यलोकतकको खर्व किया है आपकी जय हो ॥ १८ ॥ हे देव! यह वसुधा धरणी आपसे शोभा

पाती है जैसे मतंगद्वारा उखाडी हुई कमलिनी हो ॥ १९ ॥ यह आपका शरीर भूमिके संगमसे शोभा पाता है जैसे सूंडमें कमल उखाडे हाथीका शरीर शोभित हो ॥ ॥ २० ॥ हे सृष्टिसंहारकारक ! देवेश! आपको प्रणाम है हे प्रभो ! आप दानवोंके नाशके निमित्त अनेक शरीर धारण करते हो ॥ २१ ॥ आपको आगे पीछे प्रणाम है, आप सम्पूर्ण देवताओंके आधार बृहद्धाम हो आपको प्रणाम है ॥ २२ ॥ आपनेही शक्तियुक्त हो मुझे प्रजाके निर्माणमें नियुक्त किया है आपहीकी आज्ञासे मैं प्रजाकी सृष्टि करता और बिगाडता हूं ॥ २३ ॥ हे देवेश ! आपहीकी सहायतासे पहले देवताओंने अमृत पाया जो यथासमयमें बलानुसार प्राप्त हुआ ॥ २४ ॥ इस त्रिलोकीके साम्राज्यको आपहीकी आज्ञासे इन्द्र देवताओंसे पूजित हो ऐश्वर्यके सहित भोगता है ॥ २५ ॥ अग्नि जठरादिके भेदसे पावकताको प्राप्त होकर देवासुर मनुष्योंका पालन करताहै ॥ २६ ॥ पितरोंके अधिपति धर्मराजभी सबकर्मोंके द्रष्टाहैं वहभी आपहीके नियोगसे सब कर्मोंके फल दाताहैं ॥ २७ ॥ नैर्ऋतराक्षसोंके अधिपति यक्ष विघ्ननाशक सब प्राणियोंके कर्मसाक्षी आपहीके द्वारा होते हैं ॥ २८ ॥ जलोंके पति वरुण लोकपाल जलाधिप आपहीकी आज्ञाबलको प्राप्त हो लोकपालत्वको प्राप्त हुए हैं ॥ २९ ॥ वायु गंध वहन करनेवाला सबका प्राणधारण करनेका कारण वहभी लोकपालक जगत्का गुरु आपहीकी आज्ञासे हुआ है ॥ ३० ॥ कुबेर किन्नर और यक्षोंके जीवनका आश्रय आपकीही आज्ञासे सब लोकमें मान्य हुआ है ॥ ३१ ॥ सब रुद्रोंके अधिपति ईश्वर अन्तकारी सब देवोंके पालक हे लोकेश ! आपहीके कारण सबके वन्दनीय हुए हैं ॥ ३२ ॥ हे जगदीश्वर ! भगवान् आपको प्रणाम है जिसके अंशभागसे सब देवता हुए हैं ॥ ३३ ॥ नारदजी बोले जब इस प्रकार ब्रह्माजीने आदिपुरुष भगवानकी स्तुति की तब भगवानने अपनी लीलाके अवलोकनसे उनपर कृपा की ॥ ३४ ॥ उसी समय महाअसुर हिरण्याक्ष वहां आकर मार्ग रोकने लगा तब भगवानने उसको गदासे ताडन किया ॥ ३५ ॥ भगवान् आदिपुरुषका शरीर उसके रुधिरसे आर्द्र होगया और इसप्रकार अपनी दंष्ट्रारूपी एक अंशसे पृथ्वीको उद्धार कर और उस जलके ऊपर ॥ ३६ ॥ स्थापित कर भगवान् अपने स्थानको गये यह भगवान्का धरणी उद्धार बड़ा आश्चर्यजनक है ॥ ३७ ॥ जो पुरुष इस चरित्रको पढते सुन्ते हैं वह सब पापसे रहित हो वैष्णवगतिको प्राप्त होते हैं ॥ ३८ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे भाषायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

नारायण बोले हे नारदजी! इसप्रकार भगवान् भूमिको यथा स्थानमें स्थापित कर वैकुण्ठमें गये और ब्रह्माजीने अपने पुत्रसे कहा ॥१॥ हे तेजस्वियोंमें श्रेष्ठ महाभुज-स्वायम्भुव इस पृथ्वीके स्थानमें स्थित होकर प्रजाकी रचना करो ॥२॥ देशकालके विभागसे यज्ञेशपुरुषका यजन करो ऊंचे नीचे पदार्थोंसे जो कि, यज्ञके साधन हैं ॥ ३ ॥ शास्त्रोक्त वर्ण आश्रमके निबन्धवाले धर्मका आचरण करो, इस क्रमयोगसे प्रजाकी वृद्धि होगी ॥ ४ ॥ गुणपूर्वक कीर्त्तिद्वारा कान्तिमें अपने समान पुत्रोंको उत्पन्न करो जो विद्याविनयसम्पन्न और सदाचारयुक्त हों ॥५॥ और गुणयशवाली कन्या देकर प्रधान पुरुषेश्वरमें मनको समाधान कर ॥ ६ ॥ भक्तिसाधनके योगसे भगवान्की परिचर्या करतेहुए योगियोंकी इष्टगतिको आप प्राप्त होगे ॥ ७ ॥ पद्मयोनि प्रजापति इसप्रकार अपने मनुपुत्रको समझाकर प्रजासर्गमें नियुक्तकर अपने धामको प्राप्त हुए ॥ ८ ॥ हे पुत्र! प्रजाको सृजन करो इस प्रकार उनकी आज्ञा धारण की तब स्वायंभुवमनुने प्रजासर्गकी रचना की॥ ॥ ९ ॥ प्रियव्रत और उत्तानपाद यह मनुपुत्र बड़े प्रतापी हुए और तीन कन्या हुई उनके नाम सुनो ॥ १० ॥ आकूती १ देवहूती २ प्रसूती, ३ यह तीन कन्या लोकमें विख्यात हुईं ॥ ११ ॥ रुचिको आकूती, कर्दमको देवहूती, दक्षको प्रसूती, दी जिससे यह सब प्रजा हुई हैं ॥ १२ ॥ रुचिके आदिपुरुष यज्ञनामसे आकूतीमें प्रगट हुए और देवहूतीमें कपिलदेव कर्दमजीसे प्रगट हुए ॥ १३ ॥ कपिलदेवजी सबलोकमें सांख्याचार्यनामसे विख्यात हुए हैं दक्षसे प्रसूतीमें बहुतसी सन्तान प्रगट हुई ॥ १४ ॥ जिनके सन्तान देवता और तिर्यक् इत्यादि हुए वे सब लोक विख्यात सर्गके प्रवृत्त करनेवाले हुए ॥ १५ ॥ भगवान् यज्ञने यामनामक देवगणोंसे युक्त होकर एक समय राक्षसोंसे स्वायंभुवमनुकी रक्षा की थी ॥ १६ ॥ महायोगी भगवान् कपिलजी अपने आश्रममें स्थित हुए देवहूतीको सब अविद्याका निवृत्तकरने वाला परमज्ञान ॥ १७ ॥ तथा विशेष कर ध्यान, योग, अध्यात्मज्ञानका, निश्चय सब अज्ञानका नाशक कपिलशास्त्र ॥ १८ ॥ उपदेशकर वह महायोगी पुलहाश्रममें चले गये वह महाशय सांख्यमें निपुण अबतक वहां वर्तमान हैं ॥ १९ ॥ जिनके नामस्मरणमात्रसे सांख्ययोग सिद्ध हो जाता है, उन योगाचार्य सर्वश्रेष्ठ

१ विदित होता है कि, इस राजाने अमेरीकामें गमन किया और भूमिकी गोलाई जानी।

कपिलदेवजीको प्रणाम करता हूं जो सब वरके देनेवाले हैं ॥ २० ॥ यह मनु कन्याका उत्तम वंश वर्णन किया इसके पढने सुननेसे सब पाप नाश होते हैं ॥ २१ ॥ अब मनुपुत्रोंका सुन्दर वंश कहता हूं जिसके श्रवण करनेसे परमपदकी प्राप्ति होती है ॥ २२ ॥ द्वीप वर्ष, सागर आदिकी व्यवस्था जिसके पुत्रोंने की जिससे व्यवहारकी प्रसिद्धी और सब प्राणियोंको सुख प्राप्त होता है ॥ २३ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषायां
तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

नारायण बोले स्वायंभुवमनुका ज्येष्ठ पुत्र प्रियव्रत हुआ वह नित्य पिताकी सेवामें तत्पर सत्यधर्मका परायण हुआ ॥ १ ॥ उसने प्रजापति विश्वकर्माकी बर्हिष्मतीनाम कन्या रूपशीलवान्से विवाह किया ॥ २ ॥ उसमें अपने समान दश पुत्र और एक कन्या ऊर्जस्वतीनाम प्रगट की ॥ ३ ॥ आग्नीध्र, इध्मजिह्व यज्ञबाहु, महावीर, रुक्मशुक्रक ॥ ४ ॥ घृतपृष्ठ, सवन, मेधातिथि, वीतिहोत्र, कवि यह दश वह्निनामक हुए ॥ ५ ॥ इन दश पुत्रोंमें तीन विरक्त होगये वे कवि, सवन और महावीर थे ॥ ६ ॥ यह सब आत्मविद्यामें निष्णात होनेके कारण ऊर्ध्वरेता हुए और परम हंसनामक आश्रममें आनंदसे निवास करने लगे ॥ ७ ॥ दूसरी भार्यामें तीन पुत्र हुए वे उत्तम, तामस, रैवत नामसे विख्यात हुए ॥ ८ ॥ यह प्रतापी पुत्र मन्वन्तरोंके अधिपति हुए, इस प्रकार राजा प्रियव्रत इस भूमिको भोगने लगा ॥ ९ ॥ ग्यारह अर्ब वर्षतक बलवान् इन्द्रिय होकर राज्य करता रहा जब सूर्य इस पृथ्वीके अर्धगोलकमें तपता है ॥ १० तब नीचेके आधे भागमें अंधकार रहता है राजाने यह व्यतिकर देख मनमें विचार किया ॥ ११ ॥ कि मेरे शासनकालमें पृथ्वीमें अंधकार कैसे रह सक्ता है मैं अपने योगबलसे इस अंधकारको दूर करूंगा ॥ १२ ॥ इस प्रकार स्वायंभुवपुत्रने विचारकर सूर्यके समान एक प्रकाशित रथ बनाय सात बार प्रदक्षिणा कर निम्नभागका अंधकार दूर किया ॥ १३ ॥ ऐसी सात प्रदक्षिणा उस रथकी होनेसे जो भूमिमें गर्त हुए वही सात सागरनामसे विख्यात हुए ॥ १४ ॥ और भूमिविभागके कारण वही स्थलभाग सात द्वीप कहाये रथनेमिसे प्रगट हुई परिखाही सात

सागर कहाये ॥ १५ ॥ उनके बीचकी भूमि सात द्वीपनामवाली हुई जंबू, प्लक्ष, शाल्मली ॥ १६ ॥ कुशद्वीप, क्रौंचद्वीप, शाकद्वीप, पुष्करद्वीप हुए इनका परिमाण भी एकसे दूसरेका दूना है ॥ १७ ॥ और इनके चारों ओर क्रमसे खारीजल, इक्षुरस, सुरोद, घृतरूपजल, ॥ १८ ॥ क्षीरोद, दधि, मंडोद, शुद्धोद, यह सात सागर पृथ्वीमें विख्यात हैं यह जलोंके भेद हैं इन्हीं सातों सागरोंसे यह सातों वस्तु गो इक्षुआदिद्वारा प्रगट होती हैं १९ पहला जंबूद्वीप क्षारसमुद्रसे वेष्टित है, उसका राज्य राजाने आग्नीध्रपुत्रको दिया ॥ २० ॥ इक्षुरससे वेष्टित प्लक्षद्वीपका अधिपति इध्मजिह्वको किया ॥ २१ ॥ सुरोदसे वेष्टित शाल्मलीद्वीपका अधिपति यज्ञबाहुको किया ॥ २२ ॥ घृतोदसे वेष्टित मनोहर कुश द्वीपका अधिपति रुक्मशुक्रको किया ॥ २३ ॥ क्षीरोदसे वेष्टित पांचवें क्रौंचद्वीपका अधिपति प्रियव्रतने महाबली घृतपृष्ठको किया ॥ २४ ॥ दधिमंडसे वेष्टित मनोहर शाकद्वीपका अधिपति राजाने सुपुत्र मेधातिथिको किया ॥ २५ ॥ शुद्ध जलसे पूर्ण पुष्करद्वीपका अधिपति राजाने वीतिहोत्रको किया ॥ २६ ॥ ऊर्जस्वतीनामक कन्या उशनाको व्याहदी उससे देवयानी कन्या प्रगट हुई ॥ ॥ २७ ॥ इस प्रकार प्रियव्रतने सात द्वीपोंको विभाग करके पुत्रोंको दे ज्ञानमार्गकी प्राप्तिके निमित्त योगमार्गका आश्रय लिया ॥ २८ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ५.

श्री नारायण बोले हे नारदजी द्वीपवर्षके भेदसे इस सब भूमण्डलका विस्तार सुनो ॥ १ ॥ जो संक्षेपसे कहता हूं विस्तारसे नहीं यह जम्बूद्वीपप्रमाणमें लाख योजन है ॥ २ ॥ यह विशाल गोलाकार कमलकर्णिकाके समान है जिसमें नव सहस्र योजनमें नौ वर्ष हैं ॥ ३ ॥ इतनेही चौडे पर्वतोंसे घिरा हुआ है अर्थात् एक २ वर्षका नौ सहस्रयोजनमें विस्तार है आठ मर्यादा पर्वतोंमें विभक्त है ॥ ४ ॥ दक्षिण उत्तरके दो वर्ष धनुषके समान स्थित हैं और चार केवल दीर्घाकार मात्र हैं इस सबके मध्य इलावृत है ॥ ५ ॥ इलावृत मध्यवर्षनाभिरूपसे प्रतिष्ठित है इसमें मेरु सुवर्णका पर्वत लाख योजनका ऊंचा है ॥ ६ ॥ यह भूगोल कमलकी कर्णिकारूप है शिखरका बत्तीस सहस्र योजनका विस्तार है ॥ ७ ॥ मूलमें

यह पर्वत सोलह सहस्र योजन तक चलागया है इलावृतके उत्तरमें नील और श्वेत पर्वत शृंगवाला है ॥ ८ ॥ इनमें यह तीन मर्यादापर्वत कहाते हैं रम्यकनामक वर्ष दूसरे हिरण्मयवर्षमें ॥ ९ ॥ तथा तीसरे कुरुवर्षमें यह पर्वत मर्यादा करते हैं यह पूर्वकी ओरसे दीर्घ हुए क्षारसमुद्रतक अवधिवाले हैं ॥ १० ॥ एक तटसे दूसरे तटतक पूर्वसे उत्तरतक दो सहस्र योजनमें वर्तमान हैं इसके एक२क्रमसे पूर्वसे उत्तर दिग्भागमें दश अंशसे किंचित् मात्र अधिक परिमाणमें दीर्घतासे स्थित है॥ ११ ॥ इस पर्वतसे कितने नद नदी निकलते हैं इलावृतसे दक्षिणकी ओर निषध हेमकूट ॥ १२ ॥ और हिमालय यह तीन पर्वत विस्तारको प्राप्त हैं यह दश२सहस्र योजनके ऊंचे हैं ॥ १३ ॥ इन तीनों वर्षोंकी हरिवर्ष किंपुरुष और भारत वर्ष इन तीन वर्षोंकी मर्यादा होती है इनके विभाग करनेसे यह मर्यादापर्वत कहाते हैं ॥ १४ ॥ इलावृतके पश्चिममें माल्यवान्नाम पर्वत है पूर्वमें श्रीमान्गंधमादन पर्वत है॥ १५॥ नील निषधपर्वत पर्यन्त यह मर्यादाकारी पर्वत दो सहस्र योजनपर्यन्त विस्तृत हो रहे हैं ॥ १६ ॥ केतुमाल और भद्राश्व वर्षोंकी मर्यादा करते हैं मंदर, मेरुमंदर, और सुपार्श्व ॥ १७ ॥ तथा कुमुद यह पर्वत मेरुपादरूप कहलाते हैं इनका अयुत १०००० योजनोंका विस्तार है और यह मेरुके चारों ओर हैं ॥ १८ ॥ अर्थात् मेरुको अवरोध करनेवाले यह सब ओरसे विराजते हैं इन ही पर्वतोंपर आम जामुन ॥ १९ ॥ कदम्ब न्यग्रोधनामक चार वृक्ष स्थित हैं यह ग्यारह सौ योजन ऊंचे पर्वतकी ध्वजारूपसे शोभित हैं ॥ ॥ २० ॥ इतनाही वृक्षोंका विस्तार है उतनाही इनकी शाखाओंका परिमाण है और शोभित हैं इनमें पयहृद, मधुहृद, इक्षुहृद और अच्छे जलके चार हृद हैं ॥ ॥ २१ ॥ जिनके स्पर्शमात्रसे देवतायोगैश्वर्यको जान्ते हैं और वह स्त्रीजनोको सुखदायक चार देवोद्यान हैं ॥ २२ ॥ नन्दनवन, चित्ररथ, वैभ्राज, और सर्वभद्र जहां देवता स्त्रीजनोंसे संयुक्त होकर ॥ २३ ॥ उपदेवताओंसे अपनी महिमा गवाते प्रसन्न होते हैं और स्वतंत्र होकर यथाकाम यथासुखसे विहार करते हैं ॥ २४ ॥ मन्दरपर्वतके ऊपर स्थित देव आम्रके ऊपरसे जो कि ग्यारहसै योजन ऊंचा है अमृतमय फल टपकते हैं॥ २५॥ जो कि पर्वतखण्डके समान स्वादु और मृदु होते हैं उन गिरकर टूटे हुए फलोंके रससे ॥ २६ ॥ जो कि लालरंग सारस है उससे अरुणोदा नदी निर्मलजलवाली दैत्यराजसे पूजित वहन करती है ॥ २७ ॥ हे महाराज वहां पापहारिणी अरुणाख्या देवी जो सब कामना देती है उसको

सब कोई पूजन करते हैं ॥ २८ ॥ उन पापनाशिनी अभयदायिनीको अनेक प्रकारके उपहार भेंट बलिसे पूजते हैं और उसके कृपावलोकनसे क्षेम और आरोग्यताको प्राप्त होते हैं ॥ २९ ॥ वह आद्यामाया अतुला अनन्ता, पुष्टि, ईश्वरमालिनी है, वह दुष्टोंकी नाशक, कान्तिदायिनी, पृथ्वीमें विख्यात हैं ॥ ३० ॥ इन्हींकी पूजाके प्रभावसे जाम्बूनद प्रवाहित होता है ॥ ३१ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

श्रीनारायण बोले हे नारद जो मैं ने अरुणोदानामक नदी कही है वह मंदरपर्वतसे निकलकर इलावृतके पूर्वसे पतित होती है ॥ १ ॥ जिसके प्रेमपूर्वक सेवनसे भवानीकी अनुचरी-सखियें यक्ष गन्धर्वोंकी पत्नियोंके देहसे गंध ले चलनेवाली पवन ॥ २ ॥ दश योजनपर्यंत भूमिको वासित करती है इस प्रकार जम्बूफलोंके ऊंचे देशसे गिरनेके कारण ॥ ३ ॥ वे हाथीके समान बडे फल टूटकर उसके रससे मेरुमंदरसे जम्बूनामक नदी ॥ ४ ॥ भूमिभागमें प्राप्त होकर इलावृतके दक्षिण ओरसे वहती है वहां जम्बूफलके आस्वादसे तुष्ट होनेके कारण देवीजम्ब्वादिनी कहाती हैं ॥ ५ ॥ यहांके रहनेवाले देव नाग ऋषि राक्षस उस सम्पूर्ण प्राणियोंपर दया करनेवालीका पूजन करते हैं ॥ ६ ॥ वह पापियोंकी पवित्र करनेवाली और स्मरणसेही रोग नाशने वाली कीर्त्तनसे विघ्न हरती और सदा देवताओंकी माननीया हैं ॥ ७ ॥ वह कोकिलाक्षी कामकला दया और कामसे पूजित कठोर शरीरवाली धन्या देवताओंकी माननीया गभस्तनयुक्त ॥ ८ ॥ इन नामोंसे वहांके निवासियोंको सदा भजन करना चाहिये जम्बूनदीके किनारेकी जो मृत्तिका है ॥ ९ ॥ वह जामुनके रससे संयुक्त हो वायु और सूर्यके संपर्कसे विद्याधर और देवताओंकी स्त्रियोंके अनेक प्रकारके भूषणोंका हेतु ॥ १० ॥ देवनिर्मित जाम्बूनद सुवर्ण कहाता है. जिस सोनेकी इच्छा देवताओंकी स्त्रियें करती हैं ॥ ११ ॥ मुकुट, मेखला, बाजूबंद आदि बनवाती हैं और सुपार्श्वपर्वतपर स्थित वृक्ष महा कदम्ब कहाता है ॥ १२ ॥ उसके खखोडलसे जो पांच धारा निकलती हैं वे सुपार्श्वपर्वतके शिखरसे पतित होती हैं ॥ १३ ॥ वे पांचों मधुधारा पश्चिम इलावृत्तमें बहती हैं जहांके भोगी देवताओं के मुखकी गंधको लेकर ॥ १४ ॥ वायु समन्तात् सौ योजन तक सुगन्ध कर देती है

वहां भक्तोंकी कार्यसाधिका धारेश्वरी महादेवी है ॥ १५ ॥ वह देवताओंसे पूजित महा उत्साहवाली कालरूपा, महामनवाली वनग्रहणकी अधिष्ठात्री कर्मफल दात्री निवास करती है, ॥ १६ ॥ वह करालदेहवाली, कालांगी, करोड़ों कामकी प्रवृत्त करनेवाली सर्वेश्वरी देवी इन नामोंसे पूजनी चाहिये ॥ १७ ॥ इसी प्रकार कुमुदपर्वतपर जो शतवलनामक वटवृक्ष है उसकी स्कन्ध शाखासे कुमुदशिखरपर होते हुए नद ॥ १८ ॥ पय, दधि, मधु, घृत, गुड, अन्न, अम्बर, शय्या, आसन आदि आभरणदायक होते हैं बहुत क्या वे सब कामना देनेवाले हैं ॥ १९ ॥ वे सब ओरसे इलावृत्तके उत्तरभागको प्लावित करते हैं उसके निकटवर्तीदेवता असुरोंसे सेवित मीनाक्षी देवी है ॥ २० ॥ वह नीलाम्बरा, रौद्रमुखी, नीलअलक संयुक्त, स्वर्गवासी देवताओंको फलदात्री और वरदायिनी है ॥ २१ ॥ अतिशय माननीया अतिपूज्या, मत्तमातंगके समान गमन करनेवाली, मदनकी उन्मादक, मानप्रिया, मानप्रियांतरा ॥ २२ ॥ कामवेगधारिणी, कामपूजिता, काममादिनी सुन्दर मयूरवत शोभाकी खान कार्त्तिकेयको गर्भसे प्रगट करनेवाली ॥ २३ ॥ इन नामोंसे मीनाक्षी देवीको प्रणाम करना चाहिये वह ईश्वरसंगिनी जपने और स्मरण करनेवालोंको मान देती है ॥ २४ ॥ उन नदोंके जल पान करने वालोंके कभी बालोंमें श्वेतता तथा झांई नहीं पडतीं ॥ २५ ॥ परिश्रमके स्वेदकी दुर्गन्धि जरारोगकी प्राप्ति और श्रम, शीत, उष्णवातसे विवर्णता मुखपर झाईं पडजाना ॥ २६ ॥ यह जीवन-पर्यन्त भी नहीं होते हैं जीवनपर्यन्त सुखी रहते निरन्तर उनको अधिक सुख होता है ॥ २७ ॥ अब इसके आगे कहता हूं कि, उस पर्वतके निकटही सुवर्णमयनामवाले सुमेरुके पृथक् पर्वत हैं ॥ २८ ॥ वे वीस पर्वत कर्णिकाके समान शोभित होते हैं वे मेरुके मूलभागमें केसररूपसे स्थित हैं ॥ २९ ॥ वे चारों ओर शोभित हैं उनके नाम सुनो कुरंग, कुरग. कुशुंभ, विकंकत ॥ ३० ॥ त्रिकूट, शिशक, पतंग, रुचक, निषध, शितीवास, कपिल, शंख ॥ ३१ ॥ वैदूर्य, चारुधि, हंस, ऋषभ नाग, कालिंजर और नारद यह वीस पर्वत हैं ॥ ३२ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे भाषायां अष्टमस्कंधे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ७.

श्रीनारायण बोले सुमेरुपर्वतके पूर्व दो पर्वत अठारहसहस्र योजनपर उत्तरकी ओरको लम्बे दो सहस्र ऊंचे और इतनेही चौडे हैं ॥ १ ॥ इन पर्वतोंके नाम जठर और देवकूट हैं मेरुके पश्चिमसे दो पर्वत इतनीही दूर इतनेही लम्बे चौडे हैं इसके आगे पवमान है॥ २॥ और पारियात्र है इनका भी पूर्वके समान विस्तार है मेरुके दक्षिणमें कैलास और करवीर पर्वतहै यह पर्वतराज पूर्वदिशामें दीर्घ हो रहे हैं इस प्रकार सुमेरुके उत्तरमें त्रिशृंग और मकरपर्वत हैं ॥ ४ ॥ इन आठ श्रेष्ठ पर्वतोंसे यह पर्वत व्याप्त है सुमेरु सुवर्णका पर्वत सूर्यके समान विराजमान होता है ॥ ५ ॥ सुमेरुके शिखरपर ही कमलभव विधाता ब्रह्माकी पुरी है, यह मध्यमें दशसहस्र योजनकी है ॥ ६ ॥ वह समान और चौकोन सोनेकी पुरी है ऐसा परावरके ज्ञाता महात्मा वर्णन करते हैं॥ ७॥ उस पुरीके निम्नभागमें आठौं लोकपालोंकी सुवर्णमयपुरी आठों दिशाओंमें स्थित हैं ॥ ८ ॥ वे सब ढाई सहस्रयोजनके प्रमाणमें हैं ऐसी मेरुपर ब्रह्मपुरीके सहित नौपुरी हैं मनोवती, अमरावती ॥ ९ ॥ तेजोवती, संयमनी, कृष्णांगना, श्रद्धावती, गंधवती, महोदया ॥ १० ॥ यशोवती यह क्रमसे ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि आदिकोंकी हैं उसी स्थानमें त्रिविक्रमावतारधारी भगवान विष्णुके ॥ ११ ॥ वामपादके नखसे भिन्नहोकर हे नारद! अंडकटाहके ऊर्ध्वभागके रंध्रमध्यसे दिवलोकमें प्रविष्ट होती हुई सी ॥ १२ ॥ स्वर्गसे अवतरित होकर गंगा प्रवाहित होती है, जिसका जल सम्पूर्ण लोकोंका पाप हरण करता है ॥ १३॥ यह साक्षात् लोकमें भगवत्पदीनामसे विख्यात है वह सहस्रयुग पर्यन्त बडे समयतक ॥ १४ ॥ दिव्यलोकके मूर्धदेशमें आकर वह देवनदियोंकी अधीश्वरी स्थित है जो विष्णुपदनामक त्रिलोकीमें विख्यात स्थान है ॥ १५॥ जहां परमपवित्र उत्तानपादके पुत्र ध्रुव निवास करते हैं जो भगवान्के चरणारविंदकी रज मस्तकपर धारण करते हैं ॥ १६ ॥ अबतक यह राजर्षि अचलपदवीको प्राप्त हो स्थित हैं वहां उनके प्रभावके जाननेवाले सप्तऋषि ॥ १७ ॥ सब लोकके हितकी इच्छासे उनकी परिक्रमा करते हैं यह तपकी सिद्धि अत्यंतिकी सिद्धि देनेवाली है ॥ १८॥ यही विचारकर वे महर्षि अपने जटाजूटोंमें नित्य गंगाका आदर करते अर्थात् स्नान करते हैं फिर यह देवी विष्णुपदसे अनेक सहस्र कोटि ॥ १९॥ विमानोंसे व्याप्त देवमान मार्गमें अवतरण करतीहै और चन्द्रमण्डलको प्लावितकर ब्रह्मभवनमें प्राप्त होती है २०॥

हे नारद ! ब्रह्मलोकमें वह चार प्रकारसे भेदको प्राप्त होती है, और चार नामसे वह देवी चार दिशामें निर्गत हुई है ॥ २१ ॥ और सरित्पति सागरमें प्राप्त होती है गंगा, सीता, अलकनन्दा, चतुर्भद्रा यह चारोंके नाम हैं ॥ २२ ॥ सीता ब्रह्मलोकसे होकर पर्वतोंके शिखरोंसे जिनका कि केसर नाम है अर्थात् सुमेरुकर्णिकाके केसरभूत पर्वतोंसे निकलती हुई ॥ २३ ॥ वह पापहारिणी गंधमादन पर्वतके शिखरमें पतित होती है और भद्राश्ववर्षके मध्य होती हुई सागरसे मिलती है ॥ २४ ॥ इस प्रकार देवपूजित द्युलोककी नदी क्षारसमुद्रमें मिलती है और दूसरी माल्यवान्के शृंगसे निकली है ॥ २५ ॥ फिर बडी वेगवती होकर केतुमाल पर्वतसे संगतिको प्राप्त होती है चक्षुनामवाली देवनदी प्रतीचीदिशामें प्राप्त होकर ॥ २६ ॥ देववंदित वह गंगा समुद्रमें प्राप्त हुई है हे नारद ! उसकी तीसरी धारा बडी विख्यात ॥ २७ ॥ पवित्र अलकनंदा ब्रह्मभवनके दक्षिणस्थानसे बही है वह अनेक वनपर्वतकूटोंको उलंघन करती प्राप्त हुई है ॥ २८ ॥ वह पर्वतश्रेष्ठ हेमकूटको प्राप्त होकर वहांसे निर्गत हुई और अतिवेगवती होकर भारतवर्षमें आई ॥ २९ ॥ यह नदी तीसरी दक्षिणसागरमें मिली है जिसमें स्नानको जाते हुए मनुष्योंको पदपदमें ॥ ३० ॥ राजसूय और अश्वमेधका फल मिलता है चौथी धारा श्रृंगवानपर्वतसे ॥ ३१ ॥ भद्रा नामवाली गिरती हुई उत्तर कुरुओंको तृप्त करती है वह त्रैलोक्यपाविनी गंगा भी समुद्रमें मिली है ॥ ३२ ॥ प्रत्येक वर्षमें और भी अनेक नदी और नद हैं हे नारद बहुतसे मेरुपर मन्दार वृक्ष हैं वहां देवता सुख पाते हैं ॥ ३३ ॥ तौ भी भारतवर्षकोही कर्मक्षेत्र कहते हैं और आठ वर्ष पृथ्वीसम्बन्धी स्वर्गसुख देते हैं ॥ ३४ ॥ अर्थात् हे नारदजी स्वर्गमें गये हुओंके शेष रहे पुण्यके भोगनेके स्थान हैं वहांके पुरुष अयुत वर्ष जीते व्रजकी समान दृढ शरीर और देवताओंकी तुल्य होते हैं ॥ ३५ ॥ पुरुषोंको दश २ सहस्र हाथियोंका बल होता है यह महा सुरतसे सन्तुष्ट होनेवाले स्त्री और सुखोंसे युक्त होते हैं ॥ ३६ ॥ हे वत्स ! यहांकी स्त्रियें चिरयुवती हैं एक वर्षकी अल्प आयु रहनेसे गर्भ धारण करनेमें समर्थ होती हैं और वहां निरन्तर त्रेतायुगकी समान समय रहता है ॥ ३७ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे भाषायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ८.

श्रीनारायण बोले उन २ वर्षोंमें देवता पूर्वोक्तस्तोत्रोंसे जपध्यान समाधीसे देवेशीका पूजन करते हैं ॥ १ ॥ वहां सब ऋतुके फूलोंसे वनराजी शोभाको प्राप्त होती है वहां फल पल्लव निरन्तर शोभाको प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥ उन वनवाले वर्षोंके पर्वतोंके निम्नभागमें तथा सब पर्वतोंकी द्रोणीमें जहां कि निर्मल जल है॥ ३॥ कमलोंके समूह खिले हुए हंस सारस बैठे हुए जहां परस्पर मिले हुए पक्षियोंका शब्द हो रहाहै॥ ४॥ जलक्रीडाके विचित्रविनोदका जहां विहार होता है जहां सुन्दरियोंकी भौंके विलास देखे जाते हैं ॥ ५ ॥ जहांके पुरुष स्वच्छन्द स्त्रियोंसे विहार करते हैं इन नौओं वर्षोंमें आदिपुरुष भगवान् ॥ ६ ॥ "नारायण लोकोंपर अनुग्रह करनेवाले" सबसे पूजित हुए देवीकी आराधना करते स्थित होते हैं और अपनी मूर्तिके भेदसे लोगोंसे की हुई पूजाके कारण सब वर्षोंमें निवास करते हैं ॥ ७ ॥ इलावृत्तखण्डमें कमलभवके नेत्रोद्भूत एक रुद्रांश भव देव नित्य निवास करते हैं ॥ ८ ॥ उस क्षेत्रमें और किसीका प्रवेश नहीं होता है भवानीके शापसे वहां पुरुष जातेही स्त्री हो जाता है ॥ ९ ॥ भवानी नाथके स्त्रियोंके कोटिगण देवेशको वेष्टन किये देव संकर्षणका भजन करते हैं ॥ १० ॥ सब प्राणियोंके हितकी इच्छासे अपने ध्यानयोगद्वारा उस तामसी तुरीयानामक अपनी प्रकृतिमूर्तिको ॥ ॥ ११ ॥ एकाग्रमनसे भगवान् ध्यान करते हैं श्रीभगवान् बोले ओं भगवान्! महा पुरुष सर्वगुणोंके संख्याता अनंतअव्यक्तके निमित्त प्रणाम है ॥ १२ ॥ भजन करने योग्य शरण देनेवाले, सब ऐश्वर्यादिगुणके परम आश्रय, भक्तोंके निमित्त शरीर प्रगट करनेवाले संसारके नाशक अभक्तोंको संसारमें भावना करनेवाले आपके चरणोंका हम भजन करते हैं॥ १३॥ जिसकी देखनेपर भी मायाके गुणकर्मकी वृत्तिद्वारा अणुमात्र भी दृष्टि लिप्त नहीं होती कारण कि नियमनके निमित्त वह ईक्षण करता है जैसे जितक्रोध हमारी दृष्टि विषयोंमें संयुक्त है पर आप ऐसे नहीं इससे कौन आत्म जयकी इच्छावाला मुमुक्षु उसका आदर न करै ॥ १४ ॥ जो मायासे असदृश विदित होता है जैसे मधु और सबसे रक्तनेत्र हुआ मतवाला भयंकर विदित होता है जिनके चरण स्पर्शसे धर्षितइन्द्रिय हो नागवधू लज्जासे किसी प्रकार और उपासना करनेमें समर्थ नहीं होती ॥ १५॥ इस जगतकी स्थिति जन्म और संयमका जिनका हेतु कहते हैं और यह इन तीनोंसे विहीन भी है इसीसे ऋषि मंत्र इनको अनन्त कहते हैं जो कि

सहस्र मस्तकके किसी एक देशमें स्थित इस भूमण्डलको सरसोंकी समान भी नहीं जान्ते ॥ १६ ॥ जिनका गुणनिमित्तक आदि विग्रह महत्तत्व है, वह विज्ञान सत्वके आश्रय भगवान है वह चित्तरूप होनेसे सत्वप्रधान हैं जिस ब्रह्मसे प्रगट मैं रुद्र अपने त्रिगुणात्मक तेजवाले विभूतिरूप अहंकारसे तामसभूत सर्ग तथा इन्द्रियसमूहको सृजन करता हूं ॥ १७ ॥ यह हम सब जिस महात्माके वंशमें पक्षीकी समान सूत्रमें बंधे हैं क्रियासे निरुद्ध हैं अहंकारविकार तामसइन्द्रिय हम जिसके अनुग्रहसे इस जगत्के सृजन करते हैं उसको प्रणाम करते हैं ॥ १८ ॥ जिसकी निर्माण की हुई कर्मरूपग्रंथिवाली मायाको यह प्राणी प्रज/सर्गमें मोहित हुआ कुछ जान्ता है परन्तु उसके निस्तारका उपाय नहीं जान्ता ऐसे विलीन और उदयवाले आपके रूपके निमित्त प्रणाम है ॥ १९ ॥ नारायण बोले इस प्रकार भगवान् रुद्रदेव संकर्षणप्रभुको देवीगणोंके सहित इलावृतमें उपासना करते हैं ॥ २० ॥ इसी प्रकार यह धर्मपुत्र भद्रश्रवा नामसे भद्राश्ववर्षमें सेवा करते हैं उस कुलके पति पुरुषभी भद्रनामक वर्षपतिके सेवक हैं ॥ २१ ॥ भद्राश्ववर्षमें वासुदेवकी विख्यात हयग्रीवमूर्ति जो उसी नामसे अंकित है ॥ २२ ॥ परम एकाग्रमनसे समाधिस्थ होकर स्तुति करते उस मूर्तिकी उपासना करते हैं ॥ २३ ॥ भद्रश्रवस बोले भगवान् धर्मके स्थान विशुद्ध करनेवालेको प्रणाम है अहो भगवान्‌की चेष्टा बडी विचित्र है जो यह मनुष्य मारती हुई मृत्युको देखकर भी नहीं देखता है जोकि पुत्र वा वृद्धपिताको दग्ध करके उन्हीके धनसे स्वयं जीनेकी इच्छा करता है और तुच्छ विषय सेवन करनेको पापहीका ध्यान करता है ॥ २४ ॥ कविजन इस संसारको नश्वर कहते हैं अध्यात्मवादी विद्वान भी समाधीमें ऐसाही देखते हैं हे अज! तोभी तुम्हारी मायासे मोहित होते हैं यह आपकी चेष्टा बडी विचित्र है आपको प्रणाम है॥ २५॥ आप विश्वके उत्पन्न पालन निरोधकर्म करते हो तथापि आवरणरहित होकर अकर्ताही हो ऐसा वेद स्वीकार करता है कारण कि मायासेही सर्वात्मामें सृष्टिकार्य कारणतासे कही गई है, यथार्थमें तौ सबसे व्यतिरिक्त निरुपाधि होनेसे आप निरावरण और अकर्ताही हैं ॥ २६ ॥ जो युगान्तमें असुररूप तमसे तिरस्कृत हुए वेदोंको हयग्रीव विग्रहवान् होकर रसातलसे लाय याचना करते ब्रह्माजीको देते हुए उस सत्य संकल्पके निमित्त प्रणाम है॥ २७॥ इस प्रकार वे भद्रश्रवस् हयग्रीव

भगवान्‌की स्तुति करते हैं और उनके गुण वर्णन करते हैं ॥ २८ ॥ इनके चरित्रको जो पढते सुनते हैं वह पापरूपी केचलीको त्याग देवीके लोकको जाते हैं ॥ २९ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ९.

श्रीनारायण बोले हरिवर्षमें भगवान नृसिंहजी पापनाशक हैं वह भक्तोंपर कृपा-कर योगयुक्त हो निवास करते हैं ॥ १ ॥ उनके उस मनोहर रूपको देखकर महा-भक्त प्रहलादजी उनकी स्तुति करते हैं ॥ २ ॥ प्रहलाद बोले ओंनमो भगवते यह मंत्र है संसारका मंगलही असुरोंका भी मन निर्मल हो और सब प्राणी परस्पर मिलकर मंगलध्यान करैं मन नारायणमें कल्याणयुक्त रमे प्राणियोंकी हमारी मति निष्कामा हो॥ ३ ॥धरा पुत्र धन बंधुओंमें हमारा प्रेम न हो यदि हो तौ भगवद्भक्तोंमें प्रेम हो जिसकी आत्मा अपनी प्राणवृत्तिसे संतुष्ट है वही सिद्ध होता है घरमें आस-क्तिवाला नहीं ॥ ४ ॥ जिन हरिभक्तोंकी संगतिको प्राप्त होकर असाधारण ऐश्वर्य-वाले भगवानके चरित्र कर्णोंमें स्पर्श कर सेवनकरनेवाले पुरुषोंके अन्तर्गत मलको हरण करते हैं और तीर्थ तौ वारंवार अवगाहनसे मलको हरण करते हैं ऐसे भगवा-न्‌को कौन न सेवन करै ॥ ५ ॥ जिसकी भगवानके चरणोंमें अकिंचन भक्ति है उसको सम्पूर्ण गुण सब और देवता सेवन करते हैं जिसकी हरिमें भक्ति नहीं उसको महद्गुण प्राप्त नहीं होते और वह विषयसुखके मनोरथोंमें बाहर धावमान होते हैं ॥ ६ ॥ जिस प्रकार मच्छी जलके विना जीवित नहीं होसक्ती इसीप्रकार भगवान् सब शरीरियोंके जीवनरूप आत्मा हैं उन महान्‌को त्याग न कर जो घरादिमें प्रसक्त होते हैं तौ उन दम्पतियोंके महत्त्वकी समान अकिंचित्कर होता है ॥ ७ ॥ इस कारण रज, राग, विषाद, क्रोध, मान, स्पृहा, भय, दीनता, जो आधिका मूल है इसको और गृहरूपी चक्रवालको छोडकर नृसिंहजीका भजन करनेवालेको कहीं भय नहीं है ॥ ८ ॥ इसप्रकार प्रहलादजी भक्तिसे दिनरात स्तुति करते हैं पापरूपी मातंगको सिंहरूप नृसिंहजीको अपने हृदयमें धारण करते हैं ॥ ९ ॥ केतुमालवर्षमें भगवान कामदेवका रूप धारण किये हैं और उस वर्षके निवासी सदा उनका पूजन करते हैं ॥ १० ॥लक्ष्मी इस स्तोत्रसे उनका पूजन करती है उस वर्षके निवासियोंको निरन्तर

मान देती हैं ॥ ११ ॥ लक्ष्मी कहती है ओंह्रीं यह मंत्र है भगवान् हृषीकेश सब गुणविशेषोंसे लक्षित आत्मावाले क्रिया, ज्ञान, संकल्प, अध्यवसायवालोंके अधिपति ग्यारह इन्द्रिय पाँच विषय लक्षणयुक्त सोलह कला, वेदोक्त कर्मसे प्राप्त होने योग्य अन्नमय, अमृतमय, सर्वमय ओजबल, कान्ति कामके हेतुरूप भगवानको सब ओरसे प्रणाम है लोकमें स्त्रियों व्रतोंद्वारा इन्द्रियोंके पति ईश्वर आपको आराधन करके जो अन्यकी इच्छा करती हैं उनके वे पति और अपत्य उनकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं होते, कारण कि प्रिय धन और आयुमें वे अस्वतंत्र हैं ॥ १२ ॥ वही पति है जो स्वयं निर्भय हो और भयातुर जनको सब ओरसे रक्षा करनेमें समर्थ हो सो ऐसे एक आपही है जो कि आप आत्मलाभसे अधिक और नहीं मान्ते, अन्याधीनमें सुख नहीं होता और स्वतंत्रोंके अधिक होनेमें मंडलेश्वरकी समान परस्पर भय होता है ॥ १३ ॥ जो स्त्री तुम्हारे चरणकमलकी सेवाकी ही इच्छा करती है और फलकी इच्छा नहीं करती वह सब काममें लम्पट न होकर भी सबकामनाको प्राप्त होती है और जो फलान्तर प्राप्तिकी इच्छासे सेवा करती है वह उसको एकही कामना आप देते हो, और इससे फलभोगके उपरान्त भग्नयाञ्चा होनेसे फिर भी उसको दुःख होता है॥ १४॥ हे भगवन् ! मेरी प्राप्तिके निमित्त अज, ईश,सुर,असुर, इन्द्रिय-सुखमें बुद्धि लगाकर तप करते हैं,परन्तु तुम्हारे चरणकी भक्ति किये बिना कोई भी मुझको प्राप्त नहीं होते, कारण कि तुममें मन लगानेके कारण में परतंत्र तुम्हारी अनुगामिनी हूं इससे तुम्हारे अनुगामीको देखती हूं अन्यको नहीं॥ १५॥ हेअजित! सो आप जो अपना हस्तकमल भक्तोंके ऊपर रखते हैं,वही मेरे ऊपर रखिये, वह आपका वंदित हाथ सब कामना देनेवाला होनेसे सत्पुरुषोंसे स्तुति किया गया है हे वरेण्य मुझको तौ आप वक्षस्थलमेंही धारण करते हैं यह केवल आदर मात्र हैं परन्तु भक्तोंपर आपकी परम कृपा है आपकी मायाकी चेष्टा कौन जान सकता है॥ १६॥ उसप्रकार लोकबंधुस्वरूपवाले कामकी स्तुति करती हैं और प्रजापति वर्षके अधिपति कामकी सिद्धिके निमित्त इसप्रकार स्तुति करते हैं ॥ १७ ॥ रम्यकवर्षमें भगवानकी देवा-सुरोंसे वंदित मत्स्यमूर्ति है मनुजी उसकी इस प्रकार स्तुति करते हैं ॥ १८ ॥ मनु बोले सबसे मुख्य सत्वप्रधान प्राण ओजबलसम्पन्न महामत्स्यके निमित्त प्रणाम है जो अन्तर बाहर किसी लोकपालसे भी न देखे जाकर महा पराक्रमसे विचरण करते हैं वह आप ईश्वर इस जगत्को वशीभूत करते हुए विधिनिषेधके आलम्बनसे काठकी

पुतलीकी समान नचाते हैं ॥ १९ ॥ अभिमानरूपी ज्वरको प्राप्त होकर भी लोकपाल जिसको छोडकर अन्य समस्त मिलकर द्विपद, चतुष्पद, सरीसृप, जंगम, स्थावर, किसीकी भी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं होते ॥ २० ॥ प्रलयके जलमें बड़े वेगसे विचरते हुए आपने इस पृथ्वी औषधी गुल्मलता बीजके आश्रय भूतको मेरे सहित धारण किया जगत्के प्राणगणात्मा आपके निमित्त प्रणाम हैं ॥ २१ ॥ इस प्रकार संशयके निवारण करनेवाले मत्स्यावतारधारी देवेशकी मनुजी स्तुति करते हैं ॥ २२ ॥ पाप दूर होजानेसे इस प्रकार ध्यानयोगद्वारा भगवानकी परिचर्या करते हुए परम भागवत मनुजी स्थित रहते हैं ॥ २३ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः १०.

श्रीनारायण बोले हिरण्यवर्षमें कूर्मरूपधारी भगवान् योगपति अर्यमासे पूजे जाकर स्थित होते हैं ॥ १ ॥ भगवान् कूर्मरूप सम्पूर्ण सत्वगुणोंके विशेषणोंसे उपलक्षित जलस्थानवाले सुखके वर्षानेवाले सर्वगत सबके आधार आपको प्रणाम है जिन्होंने अपना यह दृश्यरूप मायासेही कल्पना किया है यह पृथ्वीआदि भी इन्हीका स्वरूप है, जो बहुतरूपोंसे निरूपित किये जाते हैं अयथार्थ उपलंभनसे जिनके रूपोंकी संख्या नहीं है ऐसे अनिरुक्त प्रपंचवाले आपके निमित्त प्रणाम है ॥ २ ॥ जरायुज, स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज, देवता, ऋषि, पितर चराचर यह द्यौ, आकाश, भूमि, पर्वत, सरित, समुद्र, द्वीप, ग्रह, नक्षत्र, इन्द्रिय, सब आपही एक हो ॥ ३ ॥ जिसमें सांख्यादि आचार्योंने विशेष नामरूपादिकी कल्पना की है यह चौवीस तत्वादि संख्या जिस तत्वदृष्टिसे अपनी न होती है उस सांख्यसिद्धान्तरूप आपके निमित्त प्रणाम है ॥ ४ ॥ अर्यमावर्षाधिपोंके सहित इस प्रकार देवेशकी स्तुति करते हैं और सब भूतोंके उत्पादक प्रभुको गानकर भजन करते हैं ॥ ५ ॥ उसके उत्तरकुरुओंमें भगवान् यज्ञपुरुष आदिवराह पृथ्वी देवीसे सदा पूजे जाते हैं ॥ ६ ॥ भगवानको पूजन कर उनकी भक्तिसे आर्द्र हृदय होकर दैत्यमर्दन आदिवराहकी भगवती धरणी स्तुति करती है ॥ ७ ॥ भूमि बोली भगवान् मंत्रतत्वसे जानने योग्य यज्ञक्रतुरूप महायज्ञरूप शरीरवाले महावराह (पृथ्वीके उद्धारक) शुद्धयज्ञके अनुष्ठान करानेवाले तीन युगरूप

आपको प्रणाम है [कलिमें यज्ञ च्छिन्न हैं] ॥ ८॥ विद्वान् और चतुर पुरुष जिसके स्वरूपको देहेन्द्रियादि गुणोंमें लकडीमें अग्निकी समान विवेक साधनवाले मनसे मथन करते हैं, कर्म और उनके फलसे भी गूढ आपको देखनेकी इच्छावाले ज्ञानसे जान्ते हैं ऐसे आपको प्रणाम है ॥ ९ ॥ विषय, इन्द्रियव्यापारहेतु–देवता; देह, काल अहंकार इन मायाके गुण अर्थात् कार्यद्वारा जाना जाता हुआ जो आत्मा, और विचारपूर्वक यमनियमादिसे निश्चययुक्त बुद्धिवालों द्वारा मायारहित आकृति करनेवाले आपके निमित्त प्रणाम है ॥ १० ॥ अयस्कान्त मणिसे जैसे लोह घूमता है इसी प्रकार माया अपने गुणोंसे परस्पर सहचारी कर अपने दर्शन गोचर उपस्थित होकर विश्वकी सृष्टि स्थिति और प्रलय करती है. इससे आपका कुछ भी अभिलाष नहीं है, एक मात्र जीवकेही निमित्त नितान्त अनिच्छाक्रमसे इच्छाका संवेश हुआ है यह आपका आत्मा उस अदृष्टका साक्षीमात्र है आपको प्रणाम है ॥ ११ ॥ युद्धमें निवारण करनेवाले दैत्यको मथन करकै जो आदि वराह मुझ भूमिको अपनी डाढपर रखकर सागरसे निर्गत हुए और हस्तीकी समान क्रीडा करते आय उन विभुको मैं प्रणाम करती हूं ॥ १२ ॥ किंपुरुषवर्षमें सबके अधिपति दशरथपुत्र आदिपुरुष श्रीरामको सीतासहित महावीरजी स्तुति करते हैं ॥ १३ ॥ हनुमानजी कहते हैं उत्तमश्लोक भगवानको प्रणाम है, आर्योंके लक्षण और शीलवृत्त सम्पन्न संयत चित्तवाले लोकानुसारकार्यकारीके निमित्त प्रणाम है, साधुवादकी कसौटी ब्रह्मण्यदेव महापुरुष महाभागके निमित्त प्रणाम है, जो विशुद्ध अनुभववाले एक अपने तेजसेही सब गुणोंकी जाग्रदादि अवस्थाके तिरस्कार करनेवाले प्रत्यक् शान्त, सुबुद्धियोंके जानने योग्य अनामरूप, अहंकाररहित, वेदान्तके प्रसिद्ध तत्व हैं उनकी शरण होता हूं ॥ १४ ॥ हे विभो आपका मनुष्यावतार लोकोंको शिक्षा करनेके निमित्त है केवल राक्षसोंके मारनेके निमित्तही नहीं है. नहीं तो अपने स्वरूपमें रमण करनेवाले आपको सीताके निमित्त विरहव्यसन क्यों करने पडते यही दिखाया है कि स्त्रीसंगका दुःख दुर्निवार है ॥ १५ ॥ वह भगवान् वासुदेव आत्मज्ञानियों के अतिशय सुहृद त्रिलोकीमें किसी वस्तुमें आसक्त नहीं उनको स्त्रीका कश्मल प्राप्त नहीं होता न दुर्वासाके आनेके समय लक्ष्मणको त्यागते [वाल्मीकि उत्तरकाण्ड देखो] ॥ १६ ॥ सत्कुलमें जन्म होना, रूप, सौभाग्य, वाणी, बुद्धि, कर्तव्य यह भगवानके संतोषका कारण नहीं उन्हे केवल भक्ति प्यारी है देखो रामचन्द्रने इन ऊपर

गुणोंसे रहित वनवासी वानरादिके साथ सख्यता की ॥ १७ ॥ सुर, असुर, नर, नारी कोई भी हो जो सर्वात्मासे थोडे भजनसे बहुत संतुष्ट होनेवाले मनुजाकार रामका भजन करते हैं वे मुक्त होते हैं कारण कि वे सब उत्तरकोसलवासियोंको स्वर्गमें लेगये श्रीनारायण बोले इस प्रकार किंपुरुषवर्षमें सत्यसंध दृढव्रत कमललोचन रामको वानरोत्तम महावीरजी ॥ १८ ॥ १९ ॥ भक्तिपूर्वक स्तुति कर गाते और पूजते हैं जो इस पवित्र रामचन्द्रकी कथा सुन्ते हैं ॥ २० ॥ वह सब पापसे रहित हो शुद्ध होकर रामके लोकको जाते हैं ॥ २१ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे भाषायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ११.

श्रीनारायण बोले इस भारत वर्षमें आदिपुरुषरूपसे मैं स्थित रहता हूं और आप इसप्रकार स्तुति करते हो ॥ १ ॥ नारदजी बोले भगवान शान्तिशीलके स्थान अहंकारहीन अकिंचनोंके धनरूप ऋषियोंमें श्रेष्ठ नारायण परमहंस परमगुरु आत्मारामोंके अधिपतिको प्रणाम है सृष्टिके आदिमें जो इस जगत्‌का कर्ता होकर भी कर्मसे बद्ध नहीं होता देहको प्राप्त होकर भी जो देहकी क्षुधा, पिपासासे, अभिभूत नहीं होते द्रष्टा होकर भी जिसकी दृष्टि गुणोंसे दूषित नहीं होती ऐसे असक्त विविक्त साक्षी आपको प्रणाम है ॥ २ ॥ हे योगेश्वर ! यह आपके योगकी निपुणता हिरण्यगर्भने कही है अभिमानरूप कलेवर त्यागन करते हुए अन्तमें जिसने आपका उच्चारण कर तुममें मन लगाया वही पार हो गया यही योग है ॥ ३ ॥ जैसे यहांके और परलोकके पदार्थोंके कामलम्पट पुरुष पुत्र दारा और धनकी चिन्तामें लगे रहते हैं और कुत्सित कलेवरकी मृत्युसे नाश होनेकी चिन्ता करते हैं यदि विद्वान् होकर भी कोई यही चिन्ता करै तौ उसका ज्ञानमें श्रम मात्र है ॥ ४ ॥ हे अधोक्षज ! आप अपनेमें स्वाभाविक प्रेमरूपयोग हमको प्रदान कीजिये जिस योगसे हम आपकी मायासे इस कुकलेवरमें हुए अहंता, ममता, आदि दुर्भेद दुःखोंको नष्ट कर सकैं ॥ ५ ॥ इस प्रकार मुनिश्रेष्ठ नारदजी सब सारके ज्ञाता अनामय नारायणकी सदा स्तुति करते हैं ॥ ६ ॥ इस भारतवर्षमें जो नदी पर्वतही है हे राजन् ! उनको कहता हूं सुनो ॥ ७ ॥ मलय, मंगलप्रस्थ, मैनाक, त्रिकूट, ऋषभ, कुटक, कोल्ह, सह्य, देवगिरि ॥ ८ ॥

ऋष्यमूक, श्रीशैल, व्यंकटाचल, महेन्द्र, वारिधार, विन्ध्य, मुक्तिमान्, ऋक्षपर्वत ॥ ९ ॥ पारियात्र, द्रोण, चित्रकूट, गोवर्द्धन, रैवतक, ककुभ, नीलपर्वत ॥ १० ॥ गौरमुख, इन्द्रकील, कामगिरि इनके सिवाय और भी बहुतसे पुण्यदायक पर्वत हैं ॥ ११ ॥ इनसे उत्पन्न हुई सैंकडौं सहस्रो नदी हैं जो अवगाहन, स्नान, दर्शन, और कीर्तनसे पवित्र करती हैं ॥ १२ ॥ प्राणियोंके तीनों प्रकारके पाप दूर करती हैं ताम्रपर्णी, चन्द्रवशा, कृतमाला, वटोदका ॥ १३ ॥ वैहायसी,कावेरी, वेणा, पयस्विनी, तुंगभद्रा, कृष्णा, वेणा शर्करावर्तका, ॥ १४ ॥ गोदावरी, भीमरथी, निर्विन्ध्या, पयोष्णिका, तापी, रेवा, सुरसा, नर्मदा, सरस्वती ॥ १५ ॥ चर्मण्वती, सिंधु, अंध, महानदशोण, ऋषिकुल्या, त्रिसामा, वेदस्मृति, महानदी ॥ १६ ॥ कौशिकी, यमुना, मन्दाकिनी, दृषद्वती, गोमती, सरयू, रोधवती, सप्तवती ॥ १७ ॥ सुषोमा, शतद्रु, (सतलज) चन्द्रभागा, मरुद्वृधा, वितस्ता, असिक्नी और विश्वा यह नदी हैं॥ १८॥ इस भारतवर्षमें पुरुष अपने कर्मोंसे जन्म धारण करके सत, रज, तमके कारण क्रमसे शुक्ल, लोहित,कृष्ण अन्तःकरणसे स्वर्ग मनुष्य और नरकके भोगवाले होते हैं॥ १९॥ सब निवासियोंको अनेक भोग होतेहैं और अपने२वर्णके धर्मानुसार सबकी मोक्ष होती है ॥ २० ॥ इस वर्षमें यही एक प्रधान कार्य है कि अनायासही परमेश्वर प्रसादरूप कार्यसिद्धि होती है स्वर्गवासी कहते हैं ॥ २१ ॥ अहो इन भारतवासियोंने क्या उत्तम कार्य किये हैं जिनपर स्वयं भगवान् विष्णु प्रसन्न हैं जो यह भारतवर्षमें जन्म लेकर मुकुन्दसेवामें हमको स्पृहा करते हैं॥ २२॥ हमारे किये दुष्कर तप, व्रत,दान, जो तुच्छरूप है उसके द्वारा प्राप्त हुए स्वर्ग फलसे क्या है? जहां नारायणके चरणारविन्दके स्मरणकी स्मृति नहीं है, इन्द्रियोंके भोगने यह स्मरण चोर लिया है ॥ २३ ॥ फिर जन्म देनेवाले कल्पायुवाले स्वर्गस्थानसे क्षणमात्रको भारत भूमिमें प्राप्त होना उत्तम है अर्थात् अल्पायुवाले भारतमें जन्म श्रेष्ठ है, जहां बुद्धिमान् मनुष्य सब कुछ त्यागन कर क्षणमात्रमें हरिके समीपको प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ जहां अमृतमयी नारायणकी कथा नहीं, जहां हरिभक्त साधुओंका समागम नहीं जहां यज्ञेशके यज्ञोंका महोत्सव नहीं ऐसा इन्द्रलोक भी न सेवन करना चाहिये ॥ २५ ॥ जो प्राणी इस भारत वर्षमें मनुष्य जन्म पाकर ज्ञान क्रिया द्रव्यसे सम्पूर्ण हुए मुक्त होनेका यत्न नहीं करते वे फिर भी वनके जीवोंकी समान बंधनमें प्राप्त होते हैं ॥ २६ ॥ जिन्होंने श्रद्धापूर्वक कुशामें विभाग कीहुई है विधि मंत्रसे

पृथक् २ नाम लेकर दी है 'अग्नये जुष्टं निर्वपामि' इत्यादि कहा है उनके पृथक् इन्द्रादि नामसे आहूत परिपूर्ण हरि स्वयं उनके भागको ग्रहण करते हैं ॥ २७ ॥ यह सत्य है कि प्रार्थना करनेपर अर्थकी कामना पूरी करते हैं परन्तु परमार्थ नहीं देते जिससे फिर मांगनेकी इच्छा न रहै, और जो निष्काम होकर भजन करते हैं उनको तौ सब इच्छाओंके पूर्ण करनेवाले अपने पादपल्लवको स्वयं देते हैं इससे निष्काम भजन श्रेष्ठ है ॥ २८ ॥ "यदि हमको स्वर्गका सुख शेष है, हमारे इष्टा-पूर्तका कुछ शोभन है तौ हमको अपर जन्ममें अजनाभके चरणोंका स्मरण हो और भारतवर्षमें जन्म होकर शांति मिले" नारायण बोले इसप्रकार स्वर्गके देवता सिद्ध और परम ऋषि भारत वर्षका सुन्दर माहात्म्य कहते हैं ॥ २९ ॥ जम्बूद्वीपके समीप आठ और उपद्वीप हैं जिनको घोडा शोधते हुए सगरके पुत्रोंने कल्पित किया था ॥ ३० ॥ स्वर्णप्रस्थ, चन्द्रशुक्र, आवर्तन, रमणक, मंदरहरिण, पांचजन्य ॥ ३१ ॥ सिंहलद्वीप और लंका यह आठ उपद्वीप हैं जम्बूद्वीपका प्रमाण विस्तारपूर्वक कहा ॥ ३२ ॥ अब प्लक्षादि छः द्वीपोंका वर्णन करेंगे ॥ ३३ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे भाषायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्याय १२.

श्रीनारायण बोले जितने प्रमाणका यह जम्बूद्वीप है उतनेही क्षारसमुद्रसे घिरा हुआ है ॥ १ ॥ जम्बूद्वीपसे जिस प्रकार मेरु वेष्टित है इसी प्रकार दूने विस्तारवाले प्लक्षद्वीपसे क्षारसमुद्र वेष्टित है ॥ २ ॥ जैसे बाहरी परिखा उपवनोंको वेष्टन करती हैं इसीप्रकार यह है उस प्लक्षद्वीपमें प्लक्षवृक्ष जम्बूद्वीपके जम्बूवृक्षकी समान प्रमाण युक्त है ॥ ३ ॥ हिरण्मय कान्तिसे स्थित होता है वहां प्रियव्रतका पुत्र इध्मजिह्व निवास करता है ॥ ४ ॥ उसके अधिपति अग्निजिह्वने अपने द्वीपके सात विभाग करके अपने सात पुत्रोंको बांट दिये ॥ ५ ॥ और स्वयं आत्मारामोंकी माननीय योगचर्यामें मग्न हुआ, उसी योगसे भगवानको प्राप्त हुआ ॥ ६ ॥ शिव, यवस, भद्र शान्त, क्षेम, अमृत और अभय यह सात वर्ष उसके सात पुत्रोंके नामसे हुए ॥ ७॥ उनमें सात नदी और सात पर्वत मुख्य हैं अरुणा, नृम्णा, आंगिरसी, सावित्री, सुप्रभा-तिका, ॥ ८ ॥ ऋतंभरा, सत्यंभरा यह नदियें हैं मणिकूट, वज्रकूट, इन्द्रसेन ॥ ९ ॥ ज्योतिष्मान्, सुपर्ण, हिरण्यष्ठीव, मेघमाल यह प्लक्षद्वीपके पर्वत हैं ॥ १० ॥ नदियोंके

जलमात्र दर्शन, स्पर्शसे, सब पाप और मल वहांकी प्रजाके नष्ट होजाते हैं ॥ ११ ॥ हंस, पतंग, ऊर्ध्वायन, सत्यांग, यह चार वर्ण प्लक्षद्वीपमें रहते हैं ॥ १२ ॥ मनुष्योंकी आयु सहस्र वर्षकी देखनेमें देवताओंकी समान स्वरूपमान स्वर्गद्वार नामक त्रयी-विद्याके विधानसे सूर्यका पूजन करते हैं ॥ १३ ॥ कि पुराणपुरुष विष्णुका जो सूर्यरूप है उसकी हम शरण होते हैं जो सत्यादि आत्माका अधिष्ठानस्वरूप है उस ब्रह्मबोधक अमृतरूप शुभफल और अशुभफलके प्रेरक हैं उनको सत्यधर्मके अनुष्ठान और प्रेमभक्तिसे ध्यान कर शरणमें प्राप्त होते हैं ॥ १४ ॥ हे नारदजी प्लक्षद्वीप तथा दूसरे पांचों द्वीपोंमें आयु, इन्द्रिय, ओज, बल, बुद्धि, प्राण ॥ १५ ॥ सब प्राणियोंका विक्रम स्वाभाविक उत्पन्न होता है प्लक्षद्वीपके आगे ईखका समुद्र सब ओरसे व्याप्त है ॥ १६ ॥ जो प्लक्षद्वीपको सब ओरसे घेर कर स्थित है इसके आगे शाल्मलीद्वीप विस्तारमें इससे दूना है ॥ १७ ॥ जो अपने समान सुरासागरसे वेष्टित हो रहा है जहां सेमलका वृक्ष प्लक्षकी समान है ॥ १८ ॥ वहां महात्मा पक्षिराज गरुडजीका स्थान है उस द्वीपका स्वामी यज्ञबाहु प्रियव्रतका ॥ १९ ॥ पुत्र उसके सात भाग कर अपने सात पुत्रोंको देता हुआ उसके वर्षोंके नाम सुनो ॥ २० ॥ सुरोचन, सौमनस्य, रमण, देववर्षक, पारिभद्र, आप्यायन, विज्ञातनाम ॥ २१ ॥ इनमें वर्षोंके मर्यादापर्वत सात और सात ही नदी हैं सरस, शतशृंग, वामदेव, कंदक, ॥ २२ ॥ कुमुद, पुष्पवर्ष, सहस्रस्तुति यह सात पर्वत हैं नदियोंके नाम कहते हैं ॥ २३ ॥ अनुमति, सिनीवाली, सरस्वती, कुहू, रजनी, नंदा, राका कही हैं ॥ २४ ॥ उस वर्षके सब पुरुष चारोंवर्णके हैं जो श्रुतधर, वीर्यधर, वसुंधर, इषुंधर कहाते हैं ॥ २५ ॥ जो वेदमय सोममय भगवान् ईश्वरका यजन करते हैं जो अपनी किरण अन्नद्वारा शुक्लकृष्णपक्षोंका विभाग करते हुए देवता पितरोंका विभाग करते हैं ॥ २६ ॥ सम्पूर्ण प्रजाओंके अधिपति सोम हमपर प्रसन्न हों इस प्रकार सुरोदसे दूना अपने मानसे प्रतिष्ठित ॥ २७ ॥ घृतसे आवृत कुशद्वीप प्रकाशित होता है जिसमें इस द्वीपका कारण एक कुशस्तंब प्रकाशित होता है ॥ २८ ॥ और अपने अंकुरोंकी कान्तिसे परम प्रकाशकर्ता स्थित होता है उस द्वीपका पति राजा हिरण्यरेता है ॥ २९ ॥ इसने भी आपने सात पुत्रोंके नामसे इस द्वीपके सात भाग किये वसु, वसुदान, दृढरुचि, ॥ ३० ॥ नाभिगुप्त, स्तुत्यव्रत, विविक्त, नामदेवक यह सात हैं और सातही इनमें मर्यादापर्वत हैं ॥ ३१ ॥ सातही नदी हैं अब नाम सुनो चक्र, चतुःशृंग, कपिल,

चित्रकूटक ॥ ३२॥ देवानीक, ऊर्ध्वरोमा, द्रविण यह सात पर्वत कहाते हैं रसकुल्या, मधुकुल्या, मित्रविंदा ॥ ३३ ॥ श्रुतविन्दा, देवगर्भा, घृतच्युता, मन्दमालिका, यह नदी हैं जिनके जलसे सब कुशद्वीपनिवासी प्रसन्न रहते हैं ॥ ३४ ॥ कुशल, कोविद, अभियुक्त और कुलक यह चार वर्णोंकी संज्ञा है ॥ ३५ ॥ सबका देवतोंकी समान रूप है सब कुछ जाननेवाले वे कर्ममें कुशल अग्निरूप देवका यजन करते हैं ॥ ३६॥ हे हव्यवाट्! आप साक्षात् परब्रह्मका रूप हो इससे देवतोंके यज्ञसे परमेश्वरको यजन करो यह उन्हींके नाम दिये हैं ॥ ३७॥ हे देव! यह हम सब द्वीप वासी प्रकाशस्वरूप आपका यजन करते हैं ॥ ३८ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः १३.

नारदजी बोले हे सम्पूर्ण अर्थके देखनेवाले अवशेष द्वीपोंका भी प्रमाण कहिये जिसके जाननेसे परमानंद प्राप्त हो ॥ १ ॥ श्रीनारायण बोले: कुशद्वीपके चारों ओर घृतोदनाम सागर है इसके आगे क्रौंचद्वीप मानमें इससे दूना है ॥ २ ॥ यह क्षीरोदसागरसे व्याप्त है इसीमें क्रौंचनामक पर्वत है अपने नामसेही इसने यह द्वीप प्रगट किया है ॥ ३ ॥ जिसकी कुक्षि प्रथम कार्तिकेयकी शक्तिसे विदीर्ण हुई थी, फिर क्षीरोदसे सींचकर वरुणने इसकी रक्षाकी थी ॥ ४ ॥ जिसका स्वामी घृतपृष्ठ नाम शोभित होता है यह भी प्रियव्रतका पुत्र सब लोकसे नमस्कृत है॥ ५॥ इसने भी अपने द्वीपको पुत्रोंके नामसे विभाग कर उन सातोंको राज्य दे दिया ॥ ६ ॥ और आप भगवानकी शरणमें हुए आम, मधुरुह, मेघपृष्ठ, सुधामक ॥ ७॥ भ्राजिष्ठ, लोहितार्ण, वनस्पति यह सात वर्षोंके नाम हैं, इनमें भी सात मर्यादापर्वत और सात नदी हैं॥ ८॥ शुक्ल, वैवर्धमान, भोजन, उपबर्हण, नन्द, नन्दन, सर्वतोभद्र, यह पर्वत हैं ॥ ९ ॥ अभया, अमृतौघा, आर्यका, तीर्थवती, वृत्तिरूपवती, शुक्ला, पवित्रवती यह नदी हैं ॥ १० ॥ इनका पवित्र जल वहांके चारों वर्ण पान करते हैं पुरुष, ऋषभ, द्रविण, देवक ॥ ११ ॥ यह चार वर्णके पुरुष वहां निवास करते हैं वहांके पुरुष जलमय जलोंके पतिको ॥ १२ ॥ पूर्णभक्तिसे जलकी अंजलीसे यजन करते हैं हेजलो! तुम ईश्वरलब्धवीर्यरूप हो इससे भूः भुवः, स्वः, त्रिलोकीको पवित्र करते हो ॥ १३ ॥ वह आप स्पर्श करनेवाले हमारे शरीरोंको पवित्र करो जिससे

कि आत्मस्वरूपसे तुम पाप हरनेवाले हो इसप्रकार मंत्रजपके अन्तमें अनेक स्तुति करते हैं ॥ १४ ॥ इसप्रकार चारों ओर क्षीरसागरसे वेष्टित ३२ लक्ष योजनमें विस्तृत है ॥ १५ ॥ अपने मानसे आगे इस द्वीपके दधिमण्डोदसे घिरा हुआ शाकद्वीप है जिसमें एक शाकवृक्ष है ॥ १६ ॥ हे नारद ! वह अपने क्षेत्रव्यपदेशके कारण विख्यात है वहां प्रियव्रतका पुत्र मेधातिथि राजा है ॥ १७ ॥ पुत्रके सात नामोंसे उसके सात भाग कर वहां का राज्य पुत्रौंको दे स्वयं योगगतिको प्राप्त हुआ ॥ १८ ॥ पुरोजव, मनःपूर्वज, पवमानक, धूम्रानीक, चित्ररेफ, बहुरूप, विश्वधृक्, यह सात नाम हैं ॥ १९ ॥ मर्यादापर्वत और नदी भी सातही हैं ईशान, उरुशृंग, बलभद्र, शतकेशर ॥ २० ॥ सहस्रस्रोतक, देवपाल, महासन, यह सात पर्वत हैं नदियोंके नाम सुनो ॥ २१ ॥ अनघा, आयुर्दा, उभयस्पृष्टि, अपराजिता, पंचपदी, सहस्रश्रुति, ॥ २२ ॥ निजधृति यह सात नदी हैं बडी निर्मल हैं वहांके पुरुष सत्यव्रत, ऋतुव्रत, ॥ २३ ॥ दानव्रत, अनुव्रत, यह चार वर्णयुक्त हैं प्राणायामद्वारा भगवान् प्राणवायुको ॥ २४ ॥ रोककर निर्मल हुए परम हरिरूपसे भजन करते हैं जो प्राणियोंके अन्तरमें प्रवेश करके अपनी प्राणादि वृत्तियोंसे प्राणियोंको धारण करते हैं ॥ २५ ॥ अन्तर्यामी ईश्वर हमारी रक्षा करै जिसके वशीभूत यह सब जगत् है इसके आगे दधिमंडोद बडे विस्तारमें है ॥ २६ ॥ यह पुष्करद्वीप, शाकद्वीपसे प्रमाणमें दूना है अपनी बराबर स्वादूदकसे चारोंओर वेष्टित है ॥ २७ ॥ जहां अग्निके वलयकी समान पुष्कर विराजमान है, बडी पवित्र उसकी सुवर्ण पंखरी विस्तृत हुई सहस्रों हैं ॥ २८ ॥ यह श्रीभगवान् परमेष्ठी पुरुषका आसन है सब लोकके रचनेकी इच्छासे लोक गुरुने यहां अपने आसनकी कल्पना की थी ॥ २९ ॥ इस द्वीपमें एकही पर्वत मानसोत्तर नामक है जो अर्वाचीन और पराचीन वर्षोंकी मर्यादा करता है ॥ ३० ॥ यह लम्बावमें १०००० योजन है जिसकी चारों दिशाओंमें चार पुर हैं ॥ ३१ ॥ यह इन्द्रादि लोकपालोंके हैं जिनके ऊपर होकर सूर्यगमन करते हैं जहां सूर्य मेरुकी प्रदक्षिणा करते चलते हैं ॥ ३२ ॥ संवत्सरका चक्ररूपसे भ्रमण देवताओंका यहां उत्तरायण दक्षिणायनके भेदसे अहोरात्र होता है इसमें प्रियव्रतका पुत्र वीतिहोत्र राज्य करता है उसने अपने दो पुत्रोंको ॥ ३३ ॥ दो वर्ष कर वहां स्थापन किया, रमण, और धातकी यही दो अधिपति हुए ॥ ३४ ॥ अपने पूर्वजोंकी समानक्रिय भगवद्भक्तिमें तत्पर इस वर्षके पुरुष ब्रह्मरूप परमेश्वरको

॥ ३५ ॥ शीलसम्पन्न हो कर्मयोगसे यजन करते हैं इसप्रकार ब्रह्मलोक्यादि साधनोंके फलरूप ब्रह्मकी खोज करते हैं ॥ ३६ ॥ ऐसे एकान्त, अद्वैत, शान्त भगवानको प्रणाम है ॥ ३७ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः १४.

श्रीनारायण बोले इसके आगे लोकालोकनामक पर्वत है जिन पर्वतोंके अन्तराल मध्यमेंही सूर्यका आलोक है ॥ १ ॥ हे देवर्षे ! मानसोत्तरसे मेरुका जितना अन्तर है उतनीही वहां सुवर्णकी भूमि है यह शुद्धोदसागरके पार है यह एक करोड साढे-सत्तावन लाख योजन पर्यन्त है बडी मनोरम है ॥ २ ॥ वह दर्पणकी समान है देवताओंके सिवाय अन्य कोई वहां नहीं जा सक्ता जिसमें डाला हुआ पदार्थ सुवर्णही हो जाता है ॥ ३ ॥ हे नारद! इस कारण वहां प्राणी निवास नहीं करते लोकालोक इस पदकी लोकोंको 'अगम्य' यही व्याख्या है ॥ ४ ॥ लोकालोकके अन्तरहीमें अर्थात् मध्यमें सदा इसकी सर्वदा स्थिति है ईश्वरने यह त्रिलोकीके अन्तगामी किया है अर्थात् मर्यादा रूप है ॥ ५ ॥ सूर्यसे लेकर ध्रुवतककी किरणौं जिसके कारण तीन लोकसे बाहर गमन नहीं करती ॥ ६ ॥ हे नारद ! यह परम महान् पर्वतराज इसप्रकार उन्नत और विस्तारयुक्त है,कभी भी रश्मियें इसको अतिक्रम करनेमें समर्थ नहीं होती ॥ ७ ॥ यही लोकोंके मानका विन्यास है कविजनोंने इन पर्वतोंके सहित पचास कोटि योजनका विस्तार कहा है॥ ८ ॥हे मुने ! भूगोलके चतुर्थांशमें लोकालोक पर्वत है उसके ऊपर चारों ओर परमेष्ठी ब्रह्माजीने॥ ९॥ जो दिग्गज निवेशित किये हैं उनके नाम सुनो ऋषभ,पुष्पचूड,वामन,अपराजित॥ १०॥ यह सम्पूर्ण लोककी स्थितिके कारण हैं इनकी विभूति पराक्रम विशेष है॥ ११ ॥ भगवान् हरि इनका विशुद्ध सत्व बढाते हुए विष्वक्सेनादि आठ सिद्धोंके सहित विराजते हैं ॥ १२ ॥ वह भगवान् शंख, चक्र, गदा, पद्म, धारण किये अपने आयुधोंसे समान सब लोकोंके कल्याणके निमित्त स्थित हैं ॥ १३ ॥ इस प्रकार इसको अपनी मायासे रचकर सनातन विष्णु एक कल्पतक इसकी रक्षा करते हैं ॥ १४ ॥ जो यह पूर्वमें अन्त-विस्तार वर्णित हुआ है उससे ही आलोकका परिमाण निर्दिष्ट होता है कारण कि इसके बहिर्भागमें लोकालोक प्रतिष्ठित है यह कहागया है ॥ १५ ॥ हेनारद! इसके

ऊपर शुद्ध योगियोंकी ही गति है इस द्यावाभूमिके मध्यमें सूर्य गमन करते हैं॥ १६ ॥ सूर्य अंड और भूमिगोलकका अन्तर २५ कोटि योजन है वैराजरूपसे आत्माके प्रविष्ट होनेसे यह मार्तण्ड कहा जाता है ॥ १७ ॥ हिरण्य अंडसे प्रगट होनेसे यही हिरण्यगर्भ हैं, सूर्यसे ही दिशा आकाश द्युलोक और भूमिका भेद होता है ॥ १८ ॥ स्वर्ग, अपवर्ग, नरक, रसोंके स्थान, देवता, तिर्यक्, मनुष्य, सरीसृप,वृक्ष, लता ॥ १९ ॥ तथा संपूर्ण बीजसमूहोंकी आत्मा सूर्य ही है, यह इतना भूमंडलका घेरा कहा ॥ २० ॥ इसीके अनुसार ज्ञाता गण द्युलोकका मान कहते हैं जैसे दो दलोंमें एकका मान जाननेसे दूसरेका जानाजाता है ॥ २१ ॥ इन दोनोंका जो मध्य है सो परस्पर सँलग्न है इनके मध्यमें तपनेवालोंमें श्रेष्ठ सूर्य ॥ २२ ॥ अपने आतपसे प्रकाश करते त्रिलोकीको तपाते हैं पहले उत्तरायणको प्राप्त होकर मंदगति करते हैं ॥ २३ ॥ कारण कि यह आरोहणस्थान है इसमें जानेसे दिन बड़ा होता है, और दक्षिणायनको प्राप्त होकर शीघ्र गति करते हैं ॥ २४ ॥ यह उतरनेका समय है उतरनेमें दिन छोटा होता है विषुव 'तुला मेष' संज्ञाको प्राप्त होकर साम्यगति होती है ॥ २५ ॥ समस्थानको प्राप्त होनेसे दिन बराबर होता है जब मेष और तुलामें सूर्य होते हैं ॥ २६ ॥ तब दिनरात समान होते हैं और वृषादि पंच राशियोंमें जब गमन करते हैं ॥ २७ ॥ तब दिन बढता रात छोटी होती है जब वृश्चिकादिमें गमन करते हैं ॥ २८ ॥ तब दिन छोटा होकर रात बढती है ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे भाषायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः १५.

श्रीनारायण बोले अब सूर्यका गमन कहता हूं शीघ्र मंदादिगतिसे सूर्यका तीन प्रकार गमन है ॥ १ ॥ हेसुरसत्तम ! सब ग्रहोंके तीनही स्थान है जारद्गवस्थान मध्यका और ऐरावत उत्तरका है ॥ २ ॥ और वैश्वानर दक्षिणका है अश्विनी, कृत्तिका, भरणी नागवीथी हैं ॥ ३ ॥ रोहिणी, आर्द्रा,मृगशिर,गजवीथी, पुष्य,आश्लेषा, आदित्या,(पुनर्वसु)ऐरावती वीथी हैं ॥ ४ ॥ इन तीन वीथियोंका उत्तरमार्ग कहा जाता है तथा पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, मघा यह आर्षभी वीथी है ॥ ५ ॥ हस्त,चित्रा, स्वाती, गोवीथी है ज्येष्ठा,विशाखा,अनुराधा,जारद्गवी वीथी है ॥ ६ ॥ इन तीनों वीथियोंका मध्यम मार्ग कहा जाता है मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, अजवीथी है ॥ ७ ॥ श्रवण, धनिष्ठा,

शतभिषा, मृगवीथी है पूर्वाभाद्रपदा उत्तराभाद्रपदा, रेवती, वैश्वानरी वीथी है ॥ ॥ ८ ॥ यह तीनों वीथियें दक्षिणमार्ग कहाती हैं उत्तरायणको प्राप्त होकर युगाक्षांति पाशसे बँधा है ॥ ९ ॥ वायुके बंधे इन पाशोंका जो आकर्षण है वह रोहण है इसके अन्तरसे जो रथकी गति होती है ॥ १० ॥ हे सुरसत्तम! इस कारण मंदगतिसे दिनकी वृद्धि होती है रात्रिकी ह्रास होती है यह चलनेका क्रम है ॥ ११ ॥ जब दक्षिणायन पाश ध्रुवलोकसे प्रेरण करता है तब अवरोहण होनेसे बहिर्मण्डलवेशद्वारा शीघ्र गति होती है ॥ १२ ॥ उस समय दिन छोटा रात्रि बडी होती है विषवमें साम्यपाश रहनेके कारण मध्यमंडलप्रवेशके कारण ॥ १३ ॥ गतिसाम्य होनेसे दिन रात समान होता है जब वह ध्रुवके समीप खेंचे जाते हैं ॥ १४ ॥ तब अन्तरमें सूर्य मंडलमें भ्रमण करते हैं और जब ध्रुवद्वारा पाशयुगल मुक्त किये जाते हैं ॥ १५ ॥ तब बाहरी भागमें सूर्यमंडलोंमें भ्रमण करते हैं उस मेरुके पूर्वभाग इन्द्रकी पुरी है जो देवधानी कहाती है ॥ ॥ १६ ॥ दक्षिणमें यमकी संयमनी पुरी है पश्चिममें निम्लोची वरुणकी महापुरी है ॥ १७ ॥ उत्तरमें चन्द्रकी विभावरी पुरी है प्रथम इन्द्रपुरीकी ओरसे ब्रह्मवादी सूर्यका उदय कहते हैं ॥ १८ ॥ संयमनीमें आकर मध्यान्ह और निम्लोचीमें आकर अस्त होता है ॥ १९ ॥ इनकी प्रवृत्तिसे मेरुके चारों ओरवाले अपना २ उदय कहते हैं जो मेरुके दक्षिणमें हैं वे इन्द्र पुरीसे पूर्वादि जो पश्चिममें है वे यमपुरीसे जो उत्तरमें हैं वे वरुण पुरीसे आरंभ करके जो पूर्वमें हैं वेचन्द्रपुरीसे आरंभ करके सूर्यद्वारा चारों दिशा मान्ते हैं ॥ २० ॥ नक्षत्रादिके सन्मुख गतिसे मेरुको वाम ओर करते प्रवह नामक वायुसे भ्रामित होते ज्योतिष चक्रके कारण प्रतिदिन परिक्रमा करते हैं चक्रगति वशसे अति दूर होनेसे भूमिमें लगाहुआसा दर्शन होना उदय है आकाशमें आरूढ दर्शनही मध्याह्न भूमि प्रविष्ट होनेका दर्शनही अस्त है और बहुत दूर गमनही अर्धरात्रि है यह सब विचार कर स्वर्णपर्वतकी प्रदक्षिणा करते हैं ॥ २१ ॥ उदय और अस्तमें सब समय सन्मुख होते हैं हे नारद! और सब दिशाविदिशाओंमें॥ २२॥ जिनको जहां सूर्यका दर्शन होता है वही उनका उदय है और जहां तिरोभाव है वही अस्त है॥ २३॥ वास्तविक सूर्यका उदय अस्त नहीं है सदाही उदय है अपने दिखने और न दीखनेको उदयास्त मान लिया है ॥ २४ ॥ शक्रादिके पुरमें स्थित होते यही इन्द्र यम, सोम, तीनों पुरोंको किरणोंसे स्पर्श करते

हैं, तथा विकर्णमें स्थित हो ईशान कोण और वह्नि कोणको स्पर्श करते हैं, और जब वह्निपुरमें होते हैं तब त्रिकोण अर्थात् वह्निकोण, निर्ऋतिकोण ईशान कोण इन्द्रपुर और यमपुरको स्पर्श करते हैं शेष मेरुसे व्यवधान हुए रहते हैं इसी प्रकार याम्यादि पुरकी स्थितिमें जानना ॥ २५॥ सब द्वीप और वर्षोंके मेरु उत्तरमें स्थित हैं जो जहां सूर्योदय देखते हैं उसे ही पूर्व कहते हैं ॥ २६ ॥ उसीके वामभागमें मेरु होता है यह निर्णय है जब इन्द्रपुरीसे पन्द्रह घडीमें यमपुरीमें आते हैं ॥ २७ ॥ तब यमपुरी आतेमें दो करोड़से तीस लाख पिचहत्तर सहस्र योजन मार्ग चलना होता है ॥ २८ ॥ कालमार्गको दिखानेवाले इतना मार्ग आक्रमण करते हैं, इसीप्रकार वरुण, सोम और फिर इन्द्रकी पुरीमें आते हैं ॥ २९ ॥ इस प्रकार यह दिनमणि काल ज्ञानके निमित्त परिक्रमण करते हैं तथा और भी जो चन्द्र आदि ग्रह, द्युलोकमें विचरण करते हैं ॥ ३० ॥ नक्षत्रोंके साथ उदय और अस्तको प्राप्त होते हैं, इस प्रकार एक मुहूर्तमें सूर्यका रथ ॥ ३१ ॥ चौतीस लाख आठसौ योजन भ्रमण करता है यह त्रयीविद्यामय वायुद्वारा चारों पुरियोंमें गमन करते हैं ॥ ३२ ॥ प्रवह नामक वायुद्वारा कालचक्ररूप सूर्य भ्रमण करता है जिसका सम्वत्सररूप एक पहिया बारह महीने रूप बारह आरे तीन चातुर्मास्य नाभि ॥ ३३ ॥ षट्ऋतुरूप नेमि हैं कवि इसकोही सम्वत्सरात्मा कहते हैं मेरुके शिरोभाग मानसोत्तर पर्वतमें इसका अक्ष धुर है, ॥ ३४ ॥ इसी सूर्यचक्रके प्रान्तभागद्वारा अपरापर कलाकाष्ठा मुहूर्त, याम, प्रहर, अहोरात्र, और पक्षादि विभक्त हुए हैं, इसी निमित्त यह चक्र चलता है भगवान् भानुमान तेलकारके यंत्रके समान इस चक्रको भ्रमण कराते मानसोत्तर नामक उल्लिखित पर्वतकी परिक्रमा करते हैं चक्रके पूर्वभागमें वे अक्ष और दूसरे भागमें अक्ष सन्निवेशित हुआ है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ दूसरा परिमाण इसका एक चतुर्थांश है यह तैलयंत्रके अक्षानुरूप कहा है इसके ऊपर भागमें जगत्-पति सूर्यका भाग कहा गया है ॥ ३७ ॥ सूर्यका उपवेशनस्थान अर्थात् जहां स्थित हुआ जाता है वह श्रेष्ठ उनके ॥ ३८ ॥ रथका नीड छत्तीस लाख योजन है उसीके तुर्यभागमें इसकी दीर्घता है और शास्त्रोंमें इतनाही इस रथका युग (जुआ कहा है) इसमें गायत्री आदि छन्दनामके सात अश्व सूर्यके सारथिने लगाये हैं ॥ ३९ ॥ यही लोकोंके सुखके निमित्त आदित्यदेवको वहन करते हैं अरुण सारथि सूर्यके आगे स्थित होकर भी प्रत्यङ् मुख स्थित हैं ॥ ४० ॥ यह गरुडके बडे भ्राता रथवाहका

कर्म करते हैं इसीप्रकार अंगुष्ठप्रमाणवाले बालखिल्यनामक ऋषि ॥ ४१ ॥ साठ सहस्र सूर्यकी ओर मुख किये सूक्तवाक्योंसे सूर्यकी स्तुति करते चलते हैं ॥ ४२ ॥ इसीप्रकार और ऋषि गंधर्व, अप्सरा, उरग, ग्रामणी, यातुधानदेवता, यह सब इन परेश्वरको ॥ ४३ ॥ प्रत्येक चौदह,बारह,सात,गुणे महीने महीनेमें, विरोचनदेवकी सेवा करते हैं अर्थात् एक २ सात सात गणमें विभक्त होकर इन परम ज्योतिर्मय शरीरी परमेश्वर रूपी भानुमान्की उपासना करते हैं और नौ करोड़ ॥ ४४ ॥ एकलाख बावन हजार दो योजन भूमण्डलके परिमाणमें देवदेवेश्वर सर्वव्यापी एक क्षणमें परिभ्रमण करते हैं और क्षणमात्रको भी विश्राम नहीं करते ॥ ४५ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे भाषायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्याय १६.

श्रीनारायण बोले अब चन्द्रादिकी गति श्रवण करो उनकी गतिसे मनुष्योंका शुभाशुभ जाना जाता है ॥ १ ॥ जैसे कुलालचक्र निरन्तर भ्रमण करता रहे तौ उसके आश्रयसे और कीटादिकी भी वही गति होती है अर्थात् घूमते हैं ॥ २ ॥ इसी प्रकार उसी कालचक्रकी राशिसमूहद्वारा मेरुकी धुरका अनुसरण करते सर्वदा प्रदक्षिणा करते हुए ॥ ३ ॥ सूर्यादि मुख्य ग्रहोंकी गति अन्यसी ही दीखती है नक्षत्रान्तरमें गमनके कारण इसी भाँति अन्य नक्षत्रोंमें गमन होता है ॥ ४ ॥ यह दोनोंगति चक्रवशसे अविरुद्ध हैं सर्वत्र ही यह निर्णय है, यही भगवान् आदिपुरुषलोकभावन ॥ ५ ॥ नारायण सबके आधार लोकोंकी शुभकामनाके निमित्त भ्रमण करते हैं यही कर्मशुद्धीके निमित्त त्रयीमय कहे जाते हैं ॥ ६ ॥ वही अविनाशी कवियोंद्वारा अवितर्क होकर सूर्यरूपसे बारह भेदसे कहेजाते हैं, यह स्वयं वसन्तादि षट्ऋतुओंमें ॥ ७ ॥ उनको सेवन करते हुए पूर्तिपूर्वक उनमें गुणस्थापन करते हैं इन्हींको सब पुरुष त्रयीविद्याद्वारा ॥ ८ ॥ वर्णाश्रम आचारके मार्गसे तथा वेद, उच्चावच कर्मोंद्वारा श्रद्धा और योगसे ॥ ९ ॥ निरन्तर अपने अभीष्टके निमित्त यजन करते और कल्याणको प्राप्त होते हैं यही लोकोंके आत्मा द्यावापृथ्वीके अन्तरमें ॥ १० ॥ कालचक्रको प्राप्त हुए मेषादि बारह राशियोंद्वारा बारह मासोंको भोगते हैं महीने सम्वत्सरके अवयव हैं महीनेके दो पक्ष हैं दिन ॥ ११ ॥

और रात सौर परिमाणमें सवादो नक्षत्रोंका भोग होता है इस परिमाणसे छठे अंश अर्थात् दो राशिका भोग होता है इसका नाम ऋतु है ॥ १२ ॥ यह सम्वत्सरके अवयव कविजनोंने वर्णन किये हैं जब तक सूर्य तीन ऋतुमें आकाश वीथीमें विचरण करते हैं ॥ १३ ॥ उसीको पूर्व पुरुष एक अयन कहते हैं और जब द्यावापृथ्वीके सहित समस्त मंडलमें गमन हो चुकता है ॥ १४ ॥ तो बारह ऋतुओंके भोगनेसे उस कालको वर्ष कहते हैं उसके पांच नाम हैं सम्वत्सर, परिवत्सर, इडावत्सर ॥ १५ ॥ अनुवत्सर, इद्वत्सर यह पांच नाम हैं सूर्यकी मंद, शीघ्र, सम गतिसे कालज्ञाताओंने ॥ १६ इसप्रकार सूर्यकी गति कही है अब चन्द्रादिकी गति सुनो इसी प्रकार चन्द्रमा सूर्यकी किरणोंसे लाख योजन दूर है ॥ १७ ॥ और सूर्यके सम्वत्सर भोगको दो पखवारोंमें भोगते हैं ॥ १८ ॥ सवादो दिन चन्द्रमा एक राशिपर रहते हैं इस प्रकार शीघ्र गतिसे चन्द्रमा नक्षत्रोंको भोगता है ॥ कलाओंसे पूर्ण होते देवताओंकी प्रीति धारणकरते हैं और क्षीणकला होनेमें पितरोंका मन रंजन करते हैं॥१९॥२०॥ पूर्व अपर पक्षसे यह दिन रात्रिका विस्तार करते हैं सब जीवधारियोंके जीवनका हेतु है कारण कि, अमृतमय है ॥ २१ ॥ तीस मुहूर्तमें एक २ नक्षत्रको भोगता है यही षोडशकलात्मक अनादि उत्तम पुरुष हैं ॥ २२ ॥ मनोमय अन्नमय अमृतके धाम सुधाकर देव, पितर, मनुष्य, सरी, सृप, वीरुध ॥२३॥ यह सबके प्राणोंका आयतन है शीलवान होनेसे सर्वमय है इसके आगे तीन लाख योजनमें नक्षत्रचक्र भ्रमण करता है ॥ २४ ॥ यह सब ईश्वरद्वारा नियुक्त हुए मेरुकी प्रदक्षिणा करते हैं यह अभिजित सहित अट्ठाईस नक्षत्र हैं ॥ २५ ॥ इसके ऊपर दो लाख योजन शुक्र है यह आगे भोगे हुए सूर्यके नक्षत्रको पश्चात् भोगता है अर्थात् आगे, पीछे और सन्मुख चलते हैं ॥ २६ ॥ यह भी शीघ्र समान मंदगतिसे विचरण करता है यह लोकोंके अनुकूल सुखदायक कहे गये हैं ॥ २७ ॥ हे मुने शुक्र वृष्टि रोकनेवाले ग्रहोंकी शांति करता है शुक्रसे बुध दो लाख योजन दूर है ॥ २८ ॥ इसकी भी शुक्रके समान शीघ्र मंद और समान गति है जिस समय बुध जब सूर्यसे दूर हो जाता है उस समयमें ॥ २९ ॥ अतिपवन, अभ्रपात और अनावृष्टिका भय सूचन करता है उसके आगे मंगल दो लाख योजन ऊंचा है ॥ ३० ॥ यह तीन, तीन, पक्षमें एक, एक राशिको भोगता है यदि वक्री न हो तो तीन पक्षमें एक राशि पूर्ण करता है ॥ ३१ ॥ यह प्रायः अशुभ ग्रह दुःखोंको सूचन करता है इसके आगे दो

लाख योजनपर बृहस्पति ॥ ३२ ॥ एक २ राशिको यदि वक्री न हो तौ एक वर्षमें भोगता है वक्री न होनेपर यह ब्रह्मवादियोंको अनुकूल होता है ॥ ३३ ॥ इसके ऊपर दो लाख योजन घोर ग्रह शनिश्चर रहता है यह तीस महीनेमें एक राशिपरसे चलता है ॥ ३४ ॥ इसप्रकार यह महाग्रह बारह राशि भोग करता है ज्योतिषियोंने इसे सबके निमित्त अशुभ कहा है ॥ ३५ ॥ इसके ऊपर ग्यारह लाख योजनपर सप्तर्षियोंका मंडल है ॥ ३६ ॥ हे नारद यह सातों मुनिलोकोंके मंगल निमित्त विष्णुपद स्थानकी प्रदक्षिणा करते हैं ॥ ३७ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे भाषायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः १७.

श्रीनारायण बोले सप्तर्षिमण्डलसे तेरह लाख योजन आगे परम वैष्णवपद है॥ १॥ जहां महाभागवत लोकवंदित उत्तानपादपुत्र, ध्रुव, इन्द्र, अग्नि, कश्यप ॥ २ ॥ धर्मके सहित स्थित हैं और देखनेवाले सदाही उनकी बहुत मानना करते हैं ॥ ३ ॥ कल्पपर्यन्त जीनेवाले भगवत्की सब उपासना करते हैं ज्योतिश्चक्रमें प्राप्त सब ग्रह, नक्षत्रोंको ॥ ४ ॥ अव्यक्तगतिसे भ्रमण कराते हुए ईश्वरने इनको स्थाणुके समान निश्चल किया है ॥ ५ ॥ देवपूजित हो अपनी कान्तिसे सबको प्रकाश करते हैं जैसे मेढिस्तंभमें बँधेहुए पशुगण कर्षकेद्वारा ॥ ६ ॥ उसके चारों ओर मण्डलरूपसे भ्रमण करते हैं इसी प्रकारसे सब ग्रह, नक्षत्र, यथाक्रमसे॥ ७ ॥ अन्तर बाहरके विभागद्वारा कालचक्रमें बंधे हैं केवल ध्रुवसे अवलम्बित हो वायुसे विचरण करते हैं ॥ ८ ॥ आकाशमें जैसे श्येनादि पक्षी उडते हैं इसी प्रकार कर्म सारथिरूप वायु रश्मि सारथिद्वारा बंधे हुए नहीं गिरते हैं ॥ ९ ॥ इसी प्रकार यह सब ज्योतिर्गण नक्षत्र प्रकृतिपुरुषके संयोगरूप अनुग्रहसे अनुग्रहीत हुए नहीं गिरते हैं ॥ १० ॥ ज्योतिषचक्रको कोई शिशुमार स्वरूपसे कथन करते हैं कि भगवान्के योगसाधनकार्यसे यथोपयुक्त स्थित है इससे नहीं गिरता है ॥ ११ ॥ हे मुने! यह कुण्डली भूतकलेवरसे नीचा मुख किये स्थित है पुच्छके अग्रभागमें उत्तानपाद ध्रुव स्थित है ॥ १२॥ लांगूलमें पापरहित प्रजापति, तथा अग्नि,इन्द्र और धर्म देवताओंसे पूजित हो स्थित होते हैं ॥ १३॥ धाता, विधाता, पुच्छके अन्तमें, कटिमें सप्त ऋषि यह दक्षिणावर्तके भोगसे कुंडलाकार हैं ॥ १४ ॥ उत्तरायणके

नक्षत्र अभिजितसे पुनर्वसु तक चौदह दक्ष पार्श्वमें और पुष्यसे उत्तराषाढ तक चौदह नक्षत्र दक्षिणपार्श्वमें हैं ॥ १५ ॥ कुंडलरूप शरीरके समान दोनों पार्श्वोंमें बराबर अवयवोंकी संख्या है ॥ १६ ॥ अजवीथी पृष्ठभागमें आकाशगंगा उदरमें पुनर्वसु पुष्य दक्षिणवामश्रेणीमें ॥ १७ ॥ आर्द्रा, श्लेषा, पश्चिमके दहने बायें चरणमें अभिजित उत्तरापाढा दहिनी बाईं नासिकामें जानने ॥ १८ ॥ हे नारद इसीप्रकार यथा संख्यक श्रवण और पूर्वापाढा दहिने और बायें नेत्रोंमें कल्पना किये हैं ॥ १९ ॥ धनिष्ठा, और मूल दहिने बायें कर्णमें मघाको आदि ले आठ नक्षत्र दक्षिण पार्श्वमें ॥ २० ॥ तथा वामपार्श्वकी अस्थियोंमें जानने हे मुनि इसीप्रकार मृगशिरादि उदयनगामी नक्षत्र ॥ २१ ॥ दक्षिणपार्श्वकी अस्थियोंमें प्रतिलोमसे युक्त करे शतभिषा और ज्येष्ठा दहिने बायें स्कंधमें ॥ २२ ॥ उत्तरठोढीमें अगस्त्य नीचेकी, ठोढीमें यम मुखमें मंगल, उपस्थमें शनि, ॥ २३ ॥ बृहस्पति, ककुदमें वक्षस्थलमें ग्रहाधिप सूर्यनारायण हृदयमें, चन्द्रमा मनमें ॥ २४ ॥ अश्विनीकुमार स्तनोंमें, नाभिमें शुक्र, प्राणापानमें बुध, गलेमें राहु केतु ॥ २५ ॥ सर्वांग और रोमकूपमें तारागण यह भगवान विष्णुका सर्व देवमय शरीरहै [यह अलंकार है] ॥ २६ ॥ जो मौन हो प्रतिसंध्यामें इसका ध्यान करता है और इस मंत्रसे जो बुद्धिमान देखता हुआ उठता है उसका कल्याण होता है ॥ २७ ॥ ज्योतिर्लोक काल अनिमिषोंके पति महापुरुषका ध्यान करते हुए प्रणाम करते हैं ॥ २८ ॥ ग्रह नक्षत्र तारामय आप त्रिकालज्ञमें मंत्र पाठ करनेवालोंके पापदूर करते हो आपको नमस्कार हैऔर त्रिकालमें स्मरण करनेवालेके पाप तत्काल दूर होतेहैं ॥ २९ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः १८.

श्रीनारायण बोले सूर्यसे दशसहस्र योजन नीचे अयोग्य दारुण राहुका मंडल है ॥ १ ॥ यही सिंहिका पुत्र राहु सूर्य चन्द्रमाका मर्दन करनेवाला है इसने विष्णुके अनुग्रहसे अमरत्व और नक्षत्रत्व प्राप्त किया है ॥ २ ॥ जो यह सूर्यका बिम्ब १०००० योजन तपता है उसका छादन करनेवाला यह असुर है चन्द्रमण्डल बारह सहस्र योजन है ॥ ३ ॥ तेरह सहस्र योजन होनेसे चन्द्रमाको राहु आच्छादन करता है जो अमावस्या और पूर्णिमाके पर्वसमयमें वैरसे आच्छादनकी इच्छा करता है ॥ ४ ॥

दूर होनेसे भी यह सूर्य चन्द्रका आच्छादक होता है आच्छादन श्रवण होते ही विष्णु अपना ॥ ५ ॥ अग्निकी लपटोंसे भीषण, सुदर्शन चक्र प्रेरित करते हैं इसके दुस्सह तेजसे सब ओर घेरा हुआ ॥ ६ ॥ एक मुहूर्तमें ही खेदको प्राप्त होकर चकित मन होकर समीपसे ही निवृत्त होजाता है इसीका नाम ग्रहण है ॥ ७ ॥ हे देवर्षे लोकमें इसे ग्रहण कहते हैं सो तुम जानो इसके नीचे परम पवित्र लोक ॥ ८ ॥ सिद्ध चारण और विद्याधरोंके हैं यह पुण्य निषेवितलोक १०००० दश सहस्र योजनके मध्यमें हैं ॥ ९ ॥ हे देवर्षे इसके नीचे यक्ष,राक्षस, पिशाच, प्रेत,भूतोंके विहारस्थान हैं॥ १० ॥ जहां तक वायु वहन करती है वह अन्तरिक्ष है और जहां तक मेघ हैं यहीं तक इसकी अवधि है ॥ ॥ ११ ॥ हे द्विजोत्तम इसके नीचे सौ योजनमें पृथ्वी है इसमें गरुड, श्येन, (गिद्ध) सारस ॥ १२ ॥ हंसादिक पृथ्वीपर होनेसे पार्थिव कहाते और उड़ते हैं यह तुमसे पृथिवीका सन्निवेश वर्णन किया ॥ १३ ॥ हे नारद इस पृथ्वीतलमें भी सात विवर हैं इनमें एक एक दश दश सहस्र योजनमें हैं ॥ १४ ॥ यह बड़े विख्यात १०००० अयुत योजनके अन्तरमें स्थित सब ऋतुओंमें सुखदायक हैं, पहला अतल, दूसरा वितल ॥ १५ ॥ तीसरा सुतल चौथा तलातल पांचवां महातल छठा रसा-तल ॥ १६ ॥ सातवां पाताल हैं हे विप्र इस प्रकार सात विवर हैं इन बिलोंमें स्वर्गसे अधिक ऐश्वर्य है ॥ १७ ॥ कामभोग, ऐश्वर्य, सुख समृद्धिके भुवन नित्य उद्या-नोंका विहार सदा सुखरूप होता है ॥ १८ ॥ कद्रूके पुत्र, दैत्य तथा बड़े बलशाली दानव अपने कलत्र सन्तान बंधुआदिके सहित सदा आनंदसे रहते हैं ॥ १९॥ अपने सुहृद और अनुजीवियोंसे युक्त गृहोंमें रहते हैं कोई भी उनकी कामना नहीं रोक सकता वे सब मायावी होते हैं ॥ २० ॥ यह सब ऋतुओंमें सुखसे सम्पन्न हो निवास करते हैं वे स्थान मायावी मयने बनाये हैं ॥ २१ ॥ जिनकी मणिमुक्ता ओंसे बडी शोभा हो रही है भवनोंकी सहस्रों अटारी छज्जोंकी शोभा हो रही है ॥२२॥ सभा चौराहे आंगनोंकी शोभा देव सदनोंका तिरस्कार करती है नाग असु-रोंके मिथुन, तथा कबूतर, मैना ॥ २३ ॥ तथा कृत्रिम भूमिपै उत्तम गृह शोभित होते हैं अलंकृत हुए उद्यान शोभाको प्राप्त हो रहे हैं॥२४॥ जहांके विशाल फल, पुष्प, मनको, प्रसन्न करनेवाले हैं ललनाओंके विलासयोग्य जहांके स्थान शोभा पाते

१ ताराआदि रहित स्थान।

है ॥ २५ ॥ अनेक विहंगोंके समूहसे जहांकी जलराशी शोभित होती है स्वच्छ जलसे पूर्ण ह्रद जिनमें पाठीन जातिकी मछली शोभित होतीं हैं ॥ २६ ॥ अनेक प्रकारके जलमें होनेवाले जन्तु जहांके जलोंको क्षुब्ध करते हैं कुमुद, उत्पल, कल्हार, नील, लालकमल ॥ २७ ॥ इनमें अपना विहारस्थान कल्पना किये हैं इन्द्रियोंको आनंददायक अनेक शब्द कर रहे हैं॥ २८॥ बहुत क्या देवताओंकी परम लक्ष्मीको तिरस्कार करते हैं जहां कालके अंगवाले दिन रातका कुछ भय नहीं है॥ २९॥ जहां बड़े २ सर्पोंके शिरोंकी मणियोंसे कभी अंधकार न होकर प्रकाश बना रहता है ॥ ३० ॥ यहांके निवासियोंको दिव्य औषधि रसायनसे रस अन्नपान स्नानादिके कारण आधि व्याधि नहीं होती ॥ ३१ ॥ वली,बाल पकना, जीर्णता, विवर्णता, स्वेद, दुर्गन्ध, अनुत्साह, शरीरकी अवस्थाके गुण कभी बाधा नहीं देते ॥ ३२ ॥ उनको सदा कल्याण रहता है मृत्युका अन्यत्र भय नहीं होता भगवानके तेज और चक्र सुदर्शनको छोडकर अन्यत्र भय नहीं है ॥ ३३ ॥ हे नारद जिसमें भगवान्के तेज प्रविष्ट होनेसे दैत्यस्त्रियोंके गर्भ भयसे पतित हो जाते हैं ॥ ३४ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कंधे भाषायां अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः १९

श्रीनारायण बोले हे नारद पहले अतलनामक विवरमें मयपुत्र बलगर्वका खंडन करनेवाला निवास करता है ॥ १ ॥ जिसने सर्वार्थ साधक ९६ छानवे माया सृजन की हैं जो कोई उनको धारण करता है वह मायावी होता है ॥ २ ॥ उस बलीबलके जंभाई लेनेसे त्रिलोकीको मोहित करनेवाली स्त्री प्रगट हो जाती है ॥ ३ ॥ पुंश्चली, स्वैरिणी तथा दूसरी कामिनी प्रगट होती हैं जो बिलमें प्रविष्ट हुए पुरुषको ॥ ४ ॥ हाटकरससे संभोगमें समर्थ करके अपने विलास अवलोकन अनुरागस्मित आलिंगनादि ॥५॥ तथा संलाप और विभ्रमादिसे रमण कराती हैं जिसके उपयोगमें मनुष्य अपनेको बहुत मानता है ॥६॥ मैं ईश्वर सिद्ध और दशसहस्र हाथीका बलवाला हूं वह ऐसे अपनेको मान्ता हुआ मदान्ध हो जाता है ॥ ७ ॥ हे नारद यह आपसे अतलकी स्थिति कही अब दूसरे विवर वितलका वृत्तान्त सुनो ॥ ८ ॥ भूतलके अधस्थल वितलमें भगवान शिव हाटकेश्वरनामसे अपने पार्षद और गणोंसे संयुक्त हो ॥ ९ ॥ प्रजापतिके किये सर्गके

बढानेके निमित्त देवताओंसे पूजित हुए भवानीके सहित विराजते हैं ॥ १० ॥ शिवके वीर्यसे यहां हाटकी सरित् प्रगट हुई है जो बढी हुई पवन और अग्निको अपने तेजसे बाहरही पान करलेती है ॥ ११ ॥ वह्निद्वारा उगला हुआ वह हाटक-नाम सोना दैत्योंको बहुत प्यारा है दैत्योंकी स्त्रीजन भूषण बनाय सदा उसे धारण करती हैं ॥ १२ ॥ उस बिलके नीचे सुतल है यहां पुण्यश्लोक विरोचन पुत्र राजा बलि निवास करता है॥ १३ ॥ महेन्द्र देवका प्रिय करनेकी इच्छासे त्रिविक्रम भग-वान सुतलमें बलिको लाये॥ १४ ॥ त्रिलोककी लक्ष्मी आक्षित कर दैत्यराट्को वहांस्था-पित किया जो लक्ष्मी इन्द्रादिको भी प्राप्त नहीं वह राजा बलिके है॥ १५॥ वह सुतलपति निर्भय हो भगवान वामनजीकी आराधना करते हुए आज तक वर्तमान् हैं ॥ १६ ॥ पात्रभूत जगदीश्वरको भूमिदान करनेका ही यह फल है हे नारद! ऐसा महात्मा जन वर्णन करते हैं सो यह अयुक्त नहीं है ॥ १७ ॥ वासुदेव भगवान हरिमें जो अपना पुरुषार्थ लगाते हैं हे विप्र इस दानका फल सब प्रकार उपयुक्त नहीं है॥ १८॥ जिस देवदेवके विवश होकर नाम लेनेसे अपने किये कर्मबंधनके गुण सर्वथा नष्ट हो जाते हैं॥ १९ ॥ जिस क्लेशबंधनकी हानिके निमित्त सांख्ययोगादिका साधन किया जाता है यति नित्य भगवान अखिलेश्वरका ध्यान करते हैं ॥ २० ॥ हे नारद यह भगवान नारायण यदि हमको मायामयभोगोंका ऐश्वर्य विस्तार करते हैं ॥ २१ ॥ तौ अनुग्रह नहीं है कारण कि आत्माकी स्मृतिका नष्ट होना सम्पूर्ण क्लेशोंका कारण है जिसको सब उपायके ज्ञाता भगवान् विष्णुने ॥ २२ ॥ यांचाके छलसे हरण कर लिया अर्थात् देहको छोड़ और सर्वस्व ले लिया शेषभूमि न मिलनेसे वरुणकी पाशोंसे बांधकर॥ २३॥ फिर इस गिरिकंदरामें छोड़दिया आप द्वारे रहे तब भक्तिका प्रताप देख बलिने कहा यह इन्द्र महामूढ है जिसके मंत्री बृहस्पति हैं॥ २४॥ जो प्रसन्न होकर इसने लोकसम्पत्तिकी याचना की यह त्रिलोकीका ऐश्वर्य क्या है अतितुच्छ है ॥ २५॥ जो मूढ कल्याणोंके स्वामीनारायणको छोडकर लोकसम्पदामें आसक्त है वह महा मूढ है हमारे पितामह श्रीमान् प्रह्लाद भगवत् प्रिय ॥ २६॥ सर्वलोकका उपकारक भगवतका दासभाव मांगते हुए यद्यपि विष्णु पिताका सम्पूर्ण ऐश्वर्य देते थे ॥ २७॥ पर उन भगवत्प्रियने पिताके उपराम होनेमें इस बातकी इच्छा नहीं की यह दृश्यमान सब लोक जिसकी उपाधी है ॥ २८ ॥ तथा जिसकी ऐश्वरी शक्तिका अन्त नहीं उन भगवानका स्वरूप वा अन्त हमारी नाईं दोषयुक्त कौन जान सक्ता है? इसप्रकार

यह दैत्यपति बलि परमपूजित ॥ २९ ॥ सुतलमें वर्तता है जिसके द्वारपाल स्वयं नारायण हैं एक समय लोकोंको रुवानेवाला रावण दिग्विजयमें ॥ ३० ॥ सुतलमें प्रविष्ट हुआ तब भक्त अनुग्रहकारी भगवानने पादके अंगुष्ठसे १०००० योजन फेंक दिया था ॥ ३१ ॥ इसप्रकारके प्रभाववाला बलि सब सुखोंका स्थान है वह सुतलराजमें देवदेवके प्रसादसे स्थित है ॥ ३२ ॥

इतिश्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे भाषायां एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः २०.

श्रीनारायण बोले इसके नीचे तलातलनामक विवर है जहां त्रिपुराधिपति मय-नामक दानव रहता है ॥ १ ॥ जिस समय शंकरने त्रिपुर जलाया तब इसकी रक्षा की थी देव२के प्रसादसे राज्य और सुखकी प्राप्ति की ॥ २ ॥ यह अनेकों मायामें पंडित मायावियोंका आचार्य है सब काम समृद्धिके निमित्त घोर राक्षस इसकी पूजा करते हैं ॥ ३ ॥ इसके नीचे विख्यात महातल है जिसमें कद्रूके पुत्र महाक्रोधी सर्प निवास करते हैं ॥४॥ हे नारद इनके अनेक शिर हैं प्रधान २ तुमसे कहता हूं कुहुक, तक्षक, सुषेण, कालिय ॥ ५ ॥ यह महाशरीरवाले महाबली क्रूर स्वजातिमें भी क्रूर हैं गरुडके डरसे यह सब भीत रहते हैं ॥ ६ ॥ अपनी स्त्री संतान सुहृत कुटुम्बियोंसे संगत हुए प्रमत्त हुए अनेक क्रीडाओंसे संगत रहते हैं ॥ ७ ॥ इस विवरके नीचे रसातल है उसमें दैत्य और पणनामके दानव निवास करते हैं ॥ ८ ॥ तथा हिरण्यपुरवासी निवातकवचोंके समूह जो कालेय कहाते और देवताओंके शत्रु होते हैं ॥ ९ ॥ यह उत्पत्तिसे ही महापराक्रमी महासाहसी हैं केवलभगवानके तेजसे ही इनका पराक्रम महत होता है ॥ १० ॥ यह सदैवकाल बिवरमें ही निवास करते हैं जो सरमा इन्द्रकी दूतीद्वारा निरन्तर मंत्ररूपवाणीसे ॥ ११ ॥ जो मंत्र-वर्णात्मक होती है निरन्तर ताडित होकर डरते हैं इसके नीचे पातालमें नागलोकके पालक निवास करते हैं ॥ १२ ॥ वे वासुकि आदि शंख, कुलिक, श्वेत, धनंजय, महाशंख, धृतराष्ट्र ॥ १३ ॥ शंखचूड कंबल, अश्वतर, देवउपदत्तक, महाक्रोधी महाफणाविषैले निवास करते हैं ॥ १४ ॥ किसीके पांच, सात, दश सौ ॥ १५ ॥ कोई सहस्र शिरवाले प्रकाशमान मणियें धारण करनेवाले हैं जिनकी किरणोंसे पातालका अंधकार दूर होता है ॥ १६ ॥ हे नारद वे सदा क्रोधसे फूत्कार

करते हैं इसके मूलमें तीस सहस्र ॥ १७ ॥ योजन उपरान्त भगवानकी तामसी कला सब देवताओंसे पूजित अनन्तनामसे विख्यात है॥ १८ ॥ जिसको अहं इस अभिमानका लक्षण कहते हैं दृष्टादृष्टयका जो भली प्रकार एकीकरण है उसको संकर्षण कहते हैं १९ हे नारद उन अनन्तमूर्ति सहस्र शिरवाले अनन्तके मस्तकपर यह सारा भूमण्डल स्थित है ॥ २० ॥ उनपर यह सम्पूर्ण पृथ्वीका गोला सरसोंके समान लक्षित होता है चराचरके लय करनेको जिस कालमें इच्छा करते हैं तव उनकी भौंसे ग्यारह व्यूहसे शोभायमान संकर्षणनामक रुद्र प्रगट होते हैं॥ २१ ॥ २२ ॥ वे त्रिलोचन, हाथमें शूल लिये वह महासत्व सब प्राणियोंको भय देनेवाले उत्थित होते हैं ॥ २३ ॥ जिनके चरणकमलकी लालीसे नखमंडल महा अहिपतियोंकी मणिक्योंमें विराजते हैं ॥ ॥ २४ ॥ जिनको श्रेष्ठ जन एकान्त भक्तियोगसे शिरझुकाकर प्रणाम करते हुए अपने मुखका प्रतिविम्ब देखते हैं ॥ २५ ॥ स्फुण्यमान कुंडलोंके माणिक्योंकी कान्तिमण्डलसे सुन्दर कपोल और गंडस्थल प्रकाश करते हैं ॥ २६ ॥ सुन्दर अंगकी कान्तिवाली नागराजकी कुमारियें भी विशद स्वच्छ, वडे॥ २७॥ शोभायमान भुजदंडोंको चंदन अगर केशरसे भूषित करती हैं ॥ २८ ॥ उनके अंगस्पर्शमात्रसे कामातुर होजाती हैं मनोहर स्मित करके लज्जापूर्वक देखने लगती हैं ॥ २९ ॥ अनुरागके मदसे मत्त हो उनके लाल नेत्र घूमने लगते हैं और करुणावलोकी नेत्रोंसे उनके आशीर्वादोंकी इच्छा करती हैं ॥ ३० ॥ वह अनन्त सत्व महा यशस्वी अनन्त गुणसागर, महा द्युत्तिमान् ॥ ३१ ॥ अमर्षरोषादिको रोके हुए महा सत्वसम्पन्न सब देवताओंसे पूजित उस स्थानमें निवास करते हैं ॥ ३२ ॥ सुरसिद्ध, असुर, उरग, विद्याधर, गंधर्व, मुनिसमूह उनका नित्य ध्यान करते हैं ॥ ३३ ॥ निरन्तर मदोन्मत्त तथा विह्वल नेत्र किये अपने वाक्यरूपी अमृतसे देवता और अपने पार्षदोंको ॥ ३४ ॥ प्रसन्न करते हुए वह विभु मलीन न होने वाले तुलसीदलोंसे सम्पन्न वैजयन्ती माला धारण किये स्थित हैं ३५ ॥ मत्त हुए भ्रमरोंके घोषसे संयुक्त नीलवस्त्र पहरे वह देवदेव एक कुंडल धारण किये हैं ॥ ॥ ३६॥ हलकी ककुदपर वह श्री अविनाशी अपनी पुष्ट भुजा रखकर तथा इन्द्रके ऐरावतके समान कक्षा धारण कर विराजतेहैं॥ ३७॥ इस प्रकार तत्त्वदर्शियोंने देवेशको उदारलीलावाला वर्णन किया है ॥ ३८ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे भाषायां विंशोऽध्यायः ॥ २०

एकविंशोऽध्यायः २१.

नारायण बोले भगवान् सनातन ब्रह्मपुत्र इनका प्रभाव ब्रह्मसभामें गाया करते हैं ॥ १ ॥ इस जगत्की उत्पत्ति स्थिति और लयके हेतु जिसके गुण हैं जिसकी ईक्षासे सत्वादि प्रकृतिके गुण अपने २ कार्यमें समर्थ होते हैं जिसका रूप ध्रुव और अनादि है जो एक होकर भी अपनेमें अनेक प्रपंच धारण करते हैं उस ब्रह्मरूपका तत्त्व यह प्राणी कैसे जानसक्ता है ॥२॥ जिसके द्वारा यह सत् असत् प्रकाश करता है वही भक्तोंके ऊपर कृपाकर सत्वमूर्ति धारण करते हैं अपने भक्तोंके मन वशीभूत करनेको जिसकी लीला सिंहरूप है उन्हींसे यह कार्यकारणमय विश्व दिखाई देता है मोक्षकी इच्छावाले उन उदारवीर्यका सेवन क्यों न करैं ॥३॥ आर्त वा पतित अवस्थामें अथवा उपहासमें भी उसका नाम एकवार कीर्तन करनेसे मनुष्यके सम्पूर्ण पाप उसी समय दूर होजाते हैं मोक्षाभिलाषी पुरुषगण इन अनन्त भगवानके अतिरिक्त और किसका आश्रय ग्रहण करैं ॥ ४ ॥ शैल, सागर, सरित, सम्पूर्णप्राणियों सहित यह विशाल भूमि अपने मस्तकपर अणुवत् धारण करते हैं वे अनन्तस्वरूप हैं इस कारण उनके विक्रमका किसी प्रकार क्षय नहीं होता यदि किसीके सहस्र जिह्वा हैं तो भी कोई उनके कार्यपरम्पराके वर्णन करनेमें समर्थ नहीं होता ॥ ५ ॥ इसप्रकार प्रभाववाले अनन्त गुणसम्पन्न भगवान् अनन्त स्वतंत्रतापूर्वक भूमिके मूलभागमें स्थित हैं जो अपनी लीलासे विश्वको धारण करते हैं ॥ ६ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! मनुष्य जिस प्रकार कर्म करै और शास्त्रविहित पदवीमें परतंत्र होकर ॥ ७ ॥ सर्वदा जिस जिस प्रकार कामना करता है इस लोकमें उसीके अनुसार हे राजेन्द्र ! मनुष्य मृगपक्षियोंमें ॥ ८ ॥ यह विपाकगति धर्मकी वशगामिनी कही हैं यह तुम्हारे प्रश्नानुसार सब प्रकार उच्चावच गति कहीं ॥ ९ ॥ नारदजी बोले हे भगवन् ! प्राणियोंके विहित कर्म सबही समान हैं परमात्मा भगवानने इस जगत्को विचित्र क्यों किया है॥ १०॥ नारायण बोले हे नारद ! कर्ताकी श्रद्धाके अनुसार कर्मकी गति अनेक प्रकारकी होती है कारण कि यह श्रद्धा त्रिगुणात्मक होनेसे फलभिन्न भिन्न देती है ॥ ११ ॥ सात्विकी श्रद्धासे कर्म करनेसे सदा सुख होता है और राजसी श्रद्धासे दुःखरूप होता है ॥ १२ ॥ दुःख और मूढता तामसी श्रद्धासे होती है श्रद्धाके तारतम्यसे फल विचित्र होता है ॥ १३ ॥ अनादि अविद्यासे विहित कर्मोंके परि-

णामसे होनेके कारण सहस्रों गति होजाती हैं ॥ १४ ॥ हे द्विजोत्तम ! प्रविस्तारसे मैं इनके भेद कहता हूं त्रिजगतीके अन्तरालमें दक्षिणदिशा में ॥ १५ ॥ भूमिके अधोभाग अतलके ऊपर अग्निष्वात्तानामक पितृगण और पितर ॥ १६ ॥ निवास करते हैं वे परम समाधि साधनसे वहां स्थित हो अपने गोत्रोंकी आशीर्वाद करते हैं ॥१७॥ इसी प्रकार पितृराजभगवान् यम अपने पुरुषोंद्वारा लाये हुए ॥ १८ ॥ मृत प्राणीके प्रति यथाकर्म यथादोषके अनुसार दण्ड देते हैं दण्डधारी भगवत्के वे गण हैं ॥१९॥ धर्मके तत्त्व जाननेवाले आज्ञामें वर्तनेवाले यथादेशमें नियोजित अपने गणोंको निरन्तर भेजते हैं॥२०॥कोई नरकोंकी संख्या इक्कीस कोई अट्ठाईस कहते हैं यथासंख्यक आपसे वर्णन करता हूं॥२१॥ तामिस्र, अंधतामिस्र, रौरव, महारौरव, कुंभीपाक ॥२२॥ कालसूत्र, असिपत्रार्णव, सूकरमुख, अंधकूप, कृमिभोजन ॥ २३ ॥ संदंश, तप्तमूर्ति, वज्रकंटक, शाल्मली, वैतरणी ॥२४॥ पूयोद, प्राणरोध, विशसन, लालाभक्ष सारमेयादन, ॥ २५ ॥ अवीचि, अपःपान, क्षारकर्दम, रक्षोगण, संभीज, शूलप्रोत, ॥ २६ ॥ दंदशूक, वाटारोध, पर्यावर्तन, सूचीमुख यह अट्ठाईस नरक हैं ॥ २७ ॥ यह नारकियोंको दुःख देनेवाली भूमियें हैं हे नारद ! कर्मद्वारा प्राणी इनमें गमन करते हैं ॥ २८ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे भाषायां एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः २२.

नारदजी बोले हे सनातनमुने ! कर्मभेद कितने हैं और वे यातनाभूमि कैसे प्राप्त होती हैं सो कहिये ॥ १ ॥ श्रीनारायण बोले जो दुष्टात्मा पराया धन, दारा, सन्तान, हरण करता है उसको यमदूत मारते हैं ॥ २ ॥ वे भयानक यमदूत कालपाशमें बांधकर महा दुखःदायक तामिस्र नरकमें डालते हैं ॥ ३ ॥ वहां यमदूत पाश हाथमें लिये उसको ताडते दंड देते और घुडकते हैं ॥ ४ ॥ हे नारद ! तब यह नारकी मूर्च्छाको प्राप्त होता है जो कोई अपने स्वामीकी वंचना करके उसकी दाराको भोग करता है ॥ ५ ॥ यमकिंकर, उसको अंधतामिस्र नरकमें डालते हैं जहां पड़कर इसको महादुःख होता है ॥ ६ ॥ तत्काल इसकी दृष्टि और मति नष्ट हो जाती है मूल भग्न होनेसे जैसे वृक्ष होता है यही दशा इसकी होती है ॥७॥ इस कारण इसका अंधतामिस्रनाम कहा है जो प्राणी अहंकारके वश हो निरन्त

भूतोंसे द्रोह करते हैं ॥ ८ ॥ और कार्यमें लंपट हो अपने कुटुम्बको ही पुष्ट करते हैं वह यह सब यही छोडकर अपने कर्मसे ॥ ९ ॥ सब प्राणियोंको भयावह रौरव नरकमें पडते हैं और जिन्होंने इस लोकमें प्राणियोंकी हिंसा की है ॥ १० ॥ वेही रुरु होकर दूसरे जन्ममें उसको पीडा देते हैं इस कारण पुराणज्ञाता महात्मा इसको रौरव कहते हैं ॥ ११ ॥ पुरातन कहते हैं कि रुरु सर्पसे भी अति क्रूर हैं इसीप्रकार महा रौरव नामक नरक है ॥ १२ ॥ जो दूसरोंको यातना करते हैं वे उसमें पडते हैं और रुरुनामक क्रव्यादगण उसके शरीरको भक्षण करते हैं ॥ १३ ॥ जो कोई क्रूर और उग्र पुरुषपशुपक्षियोंको बंधनमें डालता हैयमदूत उसको बांधते हैं॥ १४॥ वह उसे कुंभीपाकमें डालकर ऊपरसे तत्ता तेल डालते हैं जितने पशुके रोम हैं उतनेही सहस्रवर्षतक ॥ १५ ॥ पिता ब्राह्मणका द्रोही कालसूत्र नरकमें पडता है अग्नि और सूर्यद्वारा तपाया जाकर नरकमें पडता है ॥ १६ ॥ क्षुधा, पिपासासे, उसका शरीर भीतर, बाहर, तप्त होता है वहीं रहना, सोना फिरना और बैठना, दौडना, होता है ॥ १७ ॥ जो अपने वेद मार्गसे पृथक् होकर पाखण्डमार्गमें चलता है विना आपदाके ऐसा करनेसे उस पापी पुरुषको यमकिंकर ॥ १८ ॥ असिपत्र-नामक नरकमें डालते हैं और उस नारकीके चाबक मारते हैं ॥ १९ ॥ तब वह इधर, उधर, दौडता है और दुधारावाले असिपत्रोंसे विदीर्ण होजाता है "यातना भोगनेको एक शरीर मिलता है जिसको पीडा होती और प्राण नहीं निकलता" ॥२०॥सब अंग छेदन होनेसे "हा मैं मरा" ऐसा कह मूर्च्छित होता है परमदुःखको प्राप्त हो पदपदमें गिरता है ॥ २१ ॥ और वह दुष्टबुद्धि अपने धर्मानुसार पाखण्ड-फलको भोगता है जो राजा वा राजपुरुष अधर्मसे प्रजाको दंड देता है ॥ २२ ॥ तथा ब्राह्मणके शरीरमें दण्डप्रहार करता है वह नरकको जाता है यमदूत उसको सूकरमुख नरकमें डालते हैं ॥ २३ ॥ वहां कोल्हूमें इसके अंग बलपूर्वक पीसे जाते हैं तब आर्तस्वरसे शब्द करता हुआ मूर्च्छित होता है ॥ २४ ॥ महापीडाको प्राप्त हो वेदनाको प्राप्त होता है जो पराई पीडाको नहीं जानता और कुत्सित कर्म करता है ॥ २५ ॥ और ईश्वरद्वारा कल्पित रक्तपानादिकी वृत्तिवाले मत्कुणादिको व्यथा देते हैं वह अंधकूपनाम नरकमें डाले जाते हैं ॥ २६ ॥ वहां यह क्रूर जन्तु, पशु मृग, पक्षीगण, सरी, सृप, मशक, यूका, मत्कुण,[खटमल] ॥ २७ ॥ मक्खी, दंद-शूकादि द्वारा अंधकारमें पीडा पाते हैं यह अवस्था कुशरीरकी नाईं देहमें आक्रमण

करती है ॥ २८ ॥ जो पुरुष यत् किंचित् अन्न और धनादिको प्राप्त होकर उसे शास्त्रविहित पंचयज्ञके अनुष्ठानपूर्वक देवताके उद्देश्यसे विभाग न करके का समान स्वयं भोग करता है ॥ २९ ॥ वह पापी पुरुष यमदूतोंद्वारा कृमिभोज नरकमें पडकर अपने दुष्ट कर्मोंका फल भोगता है ॥ ३० ॥ वह भयंकर कीडोंके कुंड लाख योजनके विस्तारमें है वहां वे कृमि रूपसे उसका भक्षण करते हैं॥ ३१॥ जो विना अतिथियोंको दिये स्वयं आपही खाजाता है वह इसमें पड़ता है जो को चोरी वा बलसे सुवर्ण वा रत्न ॥ ३२ ॥ ब्राह्मण वा और किसीका हरण करता विना आपत्तिके ऐसा करनेपर उसे यमदूत ॥ ३३ ॥ लोहेके लाल किये पिंडोंसे उसे कूटते हैं जो पुरुष आगम्या स्त्रीमें गमन करता और जो स्त्री पुरुष चांडालादिमें गमन करती है ॥ ३४ ॥ परलोकमें, यमदूत उन दोनोंको चाबकोंसे मारते हैं और तीव्र लोहेकी गरम स्त्री पुरुषोंकी मूर्तिसे उनको आलिंगन कराते हैं ॥ ३५ ॥ स्त्रीको पुरुषकी मूर्तिसे आलिंगन कराते हैं जो पापी पुरुष सबमें गमन करता है ॥ ३६ ॥ यमदूत उसको शाल्मली नरकमें डालते हैं जहां वज्र कंटक युक्त लोहेके सेमलकेसे कांटे हैं ॥ ३७ ॥ राजा वा राजपुरुष जो पाखण्डी है जो धर्मसेतुको नष्ट करते हैं वही मरकर मर्यादाके तोडनेवाले वैतरणीमें पडते हैं हे नारद! वह घोर नरककी नदी है वही नरकरूपी दुर्गकी परिखा है ॥३८॥ ३९॥ उसमें जीवगण सब ओरसे भक्षण करते हैं तथापि उनका प्राण और देह नष्ट नहीं होता ॥ ४० ॥ अपने कर्मानुसार निरन्तर दुःख पाते हैं विष्ठा, मूत्र, पूय, रक्त, केश, अस्थि, नख, मांस ॥ ४१ ॥ मेद चर्बीसे संयुक्त नदीमें पापी डाले जाते हैं जो उच्च वृषलीपति होते भ्रष्टाचार, निर्लज्ज ॥ ४२॥ सत् आचरण नियमके त्यागी स्वेच्छाचारी हैं वेही इसमें आकर विष्ठा मूत्र श्लेष्मा रक्त ॥ ४३॥ तथा श्लेष्म मलसे पूर्णनदीमें पडते हैं यमानुचरके वर्ग इन्हीं वस्तुओंको प्राणीजनोंको खवाते हैं ॥४४॥ जो द्विजाति श्वानगर्दभादिके पालक हैं तथा निरन्तर मृगयामें आसक्त वृथा मृग मारते हैं ॥ ४५ ॥ मरनेपर यमराजके दूत उन क्रूर कर्मियोंको बाणोंसे लक्षकर मारते हैं ॥ ४६ ॥ जो नराधम देशाचार परायण होकर पशुओंको दम्भयज्ञ प्रवृत्त कर मारते हैं यमकिंकर उनको विशसन नामक नर्कमे ॥ ४७ ॥ डालकर भयंकर कशाघातसे पीडा देते हैं जो द्विज कामसे मोहित हो अपनी सवर्ण भार्यामें ॥ ४८॥ मूढतासे वीर्यपात करता है उसको यमकिंकर रेतके कुंडमें डालकर वीर्यपात कराते हैं॥ ४९ जो चोर अग्नि और विषके देनेवाले सार्थनाशक हैं तथा ग्राम और सार्थके

शासक राजा और राजपुरुष हैं ॥ ५० ॥ उनके मरनेपर यमदूत उनको श्वानकाद नरकमें डालते हैं वहां महा अद्भुत वीस अधिक ॥ ५१ ॥ सातसौ सारमेय हैं जो वड़े वेगसे प्राणियोंको भक्षण करते हैं हे मुने सारमेयादन नामक दारुण नरक है ॥ ५२ ॥ अब अवीची आदि नरकोंका वर्णन करता हूं ॥ ५३ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे भाषायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः २३.

श्रीनारायण बोले जो मनुष्य साक्षीमें सदा असत्य भाषण करते हैं तथा अर्थके लेने देनेमें असत्य भाषण करते हैं ॥ १ ॥ वे मरकर अवीचिनरकमें पड़ते हैं सौ योजन ऊंचे पहाड़परसे नीचे गिराये जाते हैं ॥ २ ॥ अनाकाशमें नीचा शिरकर इस नरकमें गिराये जाते हैं जहां स्थलभाग जलके समान तरंगवाला दीखता है ॥ ३ ॥ इसीसे इसे अवीचि कहते हैं इसमें गिरकर शरीर तिल२ छिन्न होजाता है पर हे नारद ! मरता नहीं फिर नवीन शरीर होजाता है ॥ ४ ॥ हे नारद जो ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य सोमपान कर प्रमादवश सुरापान करते हैं ॥ ५ ॥ तौ वह भी नरकमें जाते हैं हे मुने यमदूत उनको गरम लोहा पिलाते हैं ॥ ६ ॥ हे नारद ! जो निरन्तर अग्निसे पिघलाया जाता है जो नराधम अपने गौरवपरायण होकर ॥ ७ ॥ विद्या जन्म तपसे वडे वर्णाश्रमके आचारवाले जनोंको वरिष्ठ और श्रेष्ठ जानकर आदर नहीं करते ॥ ८ ॥ यमदूत उनको क्षारकर्दम नरकमें डालते हैं वहां नीचे शिरकर घोर यातना भोगनी पडती है ॥ ९ ॥ जो स्त्री वा पुरुष मोहित होकर अन्य देवको नरपशुद्वारा यजन करते हैं अर्थात् मांस भक्षणको ऐसा करते हैं ॥ १० ॥ वे मरे हुए पशु यमलोकमें प्राप्त हुए सैनिकके समान तीक्ष्ण खड्गसे विदीर्ण कर ॥ ११ ॥ उन पुरुषोंका [illegible] अनेक प्रकार नाचते गाते हैं जैसे यहां दुरासद मांस भोजी पुरुष हैं वैसाही करते हैं ॥ १२ ॥ हे नारद ! जो विना अपराध वन वा ग्राममें अनेक प्रकार विश्वासोंके उपायोंसे जीवन धारणकी इच्छावालोंको विश्वास देकर ॥ १३ ॥ [illegible] आदिमें पाकर क्रीडा करते हैं मरकर वे यमदूतोंद्वारा शूलपात नरकमें डाले ज[illegible] हैं ॥ १४ ॥ वहां उनका देह शूलमें पोया जाता है क्षुधा पिपासासे बड़े पीडि[illegible] हैं तीक्ष्ण तुंडवाले कंक और बकोंसे ताडित होते हैं ॥ १५ ॥ वे पीडित हो [illegible] कर्मोंको स्मरण करते हैं जो तीक्ष्ण वृत्तिवाले

पुरुष प्राणियोंको उद्विग्न करते हैं ॥ १६ ॥ जैसे सर्प भय देते हैं ऐसे पुरुष भी नरकमें पडते हैं जो नरक दंदशूक है उसमें निरन्तर रहते हैं ॥ १७ ॥ वे पांच सात मुखवाले नरकवासियोंको निरन्तर काटते हैं हे नारद ! जिस प्रकार बिलमें शयन करनेवाले मूषोंको सर्प उद्वेजित करते हैं ॥ १८ ॥ जो जीवगणोंको अन्धकूपमें तथा अन्धकारमय गुहादिमें बद्ध करते हैं यमकिंकर हाथ उठाकर उनको ॥ १९ ॥ विषविमिश्रित अग्नि और धूमसे परिपूर्ण वैसीही गुहाओंमें रुद्ध करते हैं ॥ २० ॥ जो गृहपति ब्राह्मण समयपर प्राप्त हुए अतिथियोंको नेत्रोंसे भस्म करनेसे पापदृष्टि फैलाकर देखते हैं ॥ २१ ॥ यमके अनुचरगण वज्रतुण्ड कंक और काकवटादि विहंगम ॥ २२ ॥ तथा क्रूरतरगृध्र बलपूर्वक उनके नेत्र फोडते हैं जो धनगर्वित पुरुष अहंकारसे बडा गर्व प्रकाश करते ॥ २३ ॥ और तिरछीदृष्टिसे गुरुआदिमें धन चोरादिका सन्देह करते और निरन्तर धनके आयव्ययमें ही चिन्तित रहते हैं ॥ २४ ॥ इसीमें सदा जिनका हृदय और मुख सूखता है कभी शान्त नहीं होता धनकी रक्षा ब्रह्मराक्षसके समान करते हैं यमकिंकर उनको ॥ २५ ॥ उनके कर्मानुसार सूचीमुख नरकमें डालते हैं और इस अर्थ पिशाच पुरुषको वायक (जुलाहे) के समान यमदूत ॥ २६ ॥ सर्वांगमें सूत्रद्वारा वयन करते हैं इसप्रकारसे अनेकों नरक पापियोंको प्राप्त होते हैं ॥ २७ ॥ पापियोंको सैकडों यातना स्थानकी भूमियें हैं हे देवर्षे सहस्रों कहे और वे कहे स्थान हैं ॥ २८ ॥ हे मुने इनमें बडी यातना प्राप्त होती है और धर्मपरायण सुखके लोकोंमें गमन करते हैं ॥ २९ ॥ उनको उत्तम स्थान प्राप्तिका धर्म बहुत प्रकार कहाहै वह देवी पूजनरूप श्रेष्ठ धर्म है ॥ ३० ॥ जिसके अनुष्ठान मात्रसे यह प्राणी नरकको नहीं जाता पूजन करनेवाले मनुष्योंको वह देवी संसारसागरसे उद्धार करती है ॥ ३१ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे भाषायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः २४.

नारद बोले भगवन् ! देवी आराधनरूप धर्म किस प्रकार है वह देवी आराधित होकर किस प्रकार परमपद देती है ॥ १ ॥ उसके आराधनकी विधि क्या है वह कब किस प्रकार आराधन कीजाती है किसप्रकार वह बडे नरकसे निकालकर रक्षा करती है ॥ २ ॥ श्रीनारायण बोले हे ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ आप एकाग्रचित

होकर सुनिये जैसे धर्माराधनसे देवी प्रसन्न होती है ॥ ३ ॥ हे नारद ! जिसको स्वधर्म कहते हैं वह आप मुझसे सुनिये अनादि इस संसारमें देवीकी भली प्रकार पूजा करनेसे ॥ ४ ॥ हे मुने वह घोरसंकटसे इस संसारमें रक्षा करती है सो लोक उस देवीको जिस विधानसे पूजते हैं वह सुनो ॥५॥ प्रतिपदातिथिको देवीका घृतसे पूजन करे और ब्राह्मणके निमित्त घृत देनेसे सदा रोगहीन होता है ॥ ६ ॥ द्वितीयाको जगदम्बिकाका शर्करासे पूजन करै ब्राह्मणको शर्करा देनेसे दीर्घायुको प्राप्त होता है ॥ ७ ॥ तृतीयाको देवीका दूधसे पूजन करै ब्राह्मणको इस दिन क्षीर देनेसे सब दुःख दूर होजाते हैं ॥ ८ ॥ चौथको देवी और ब्राह्मणको पुए देनेसे विघ्न नहीं होते ॥ ९ ॥ पांचैको देवीको और ब्राह्मणको कदली देनेसे पुरुष बुद्धिमान् होता है ॥ १० ॥ छठको मधुसे देवीका पूजन करै ब्राह्मणको मधु देनेसे कान्तिको प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ सप्तमीको गुड और नैवेद्य देवी तथा ब्राह्मणको देनेसे शोकरहित होता है ॥ १२ ॥ अष्टमीको देवीके निमित्त नैवेद्य और नारियल दे ब्राह्मणको देनेसे यह प्राणी तापहीन होता है ॥ १३ ॥ नौमीको देवी और ब्राह्मणके निमित्त लाजा देनेसे इस लोक और परलोकमें सुख मिलता है ॥ १४ ॥ हे मुने ! दशमीको देवीके निमित्त काले तिल चढावे ब्राह्मणको देनेसे यमका भय नहीं होता ॥ १५ ॥ एकादशीको दहीसे देवीकी पूजा कर ब्राह्मणको देनेसे देवीका प्रिय होता है ॥ १६ ॥ द्वादशीको देवी और ब्राह्मणको पृथुक (चूरा) देनेसे देवीका प्रिय होता है ॥ १७ ॥ तेरसको देवी और ब्राह्मणको चने देनेसे प्रजा और सन्तान वाला होता है ॥ १८ ॥ हे नारद चौदसको देवी और ब्राह्मणके निमित्त सत्तू देनेसे शिवका प्रिय होता है॥ १९॥ पूर्णिमाको जो अपर्णाका खीरसे पूजन कर ब्राह्मणको देता है उसके सब पितरोंका उद्धार होता है ॥२०॥ हे महामुने उस तिथिमें पूजापटलके कहे अनुसार नित्य हवन करै तो सम्पूर्ण अरिष्ट शान्त होते हैं ॥२१॥ रविवारको पायसका नैवेद्य, देना सोमवारको दूध, मंगलको कदलीफल ॥२२॥ बुधको नवनीत (मक्खन) गुरुवारको शर्करा शुक्रवारको मिश्री ॥२३॥ शनिवारको गौका घी, नैवेद्य कहा है हे मुने अब सत्ताईस नक्षत्रोंका नैवेद्य सुनो ॥ २४ ॥ घी, तिल, शर्करा, दही, दूध, दूधकी मलाई, दधिकूर्ची, लड्डू, फेनी, घृतमण्डक ॥२५॥ कसार वटपत्र (पापड) घेवर, वटक, खर्जूररस, गुडनिर्मितचणकपिष्ट, शहत, घृतमें भुना सूरण ॥२६ ॥ गुड

पृथुक, द्राक्षा, खजूर, चारक, (खाद्यविशेष) अपूप (पूये) मक्खन, मूंगके लड्डू॥ २७॥ और मातुलिंग (विजौरानींबू) यह क्रमसे अश्विनी आदि सब नक्षत्रोंका नैवेद्य है अब विष्कंभादि योगका नैवेद्य कहते हैं॥ २८॥ इन पदार्थोंके देनेसे जगदम्बा प्रसन्न होती है गुड, मधु, घी, दूध, दही, तक्र, पुए॥ २९॥ मक्खन, ककेटी, कूष्माण्ड, मोदक, पनस, केला, जामन, आम तील॥ ३०॥ नारंगी, दाडिमी, वेर, आमला, पायस, पृथूक, चना ॥ ३१॥ नारियल, जंबीरी, कसेरू, जिमीकंद हे विप्र यह क्रमसे सुन्दर नैवेद्य॥ ३२॥ विष्कंभादि योगोंमें महर्षियों ने निर्णय की हैं. हेमुने! अब पृथक् पृथक् करणोंका नैवेद्य कहते हैं, ॥ ३३॥ कसार, मण्डक, फेनी, मोदक, वटपत्रक, लड्डू, घृतपूर, तिल, दही, घी मधु॥ ३४॥ यह करणोंमें आदरसे नैवेद्य देना अब और भी देवीका प्रीति विधायक ॥ ३५ ॥ विधान कहता हूं हे नारद सो आदरसे सुनो मनुष्य चैत्र शुदी दोयजको महुएके पेड़को ॥ ३६ ॥ पूजन कर पंचमेवा निवेदन करै इस प्रकार बारह महीनोंमें तीजआदि तिथियोंमें क्रमसे ॥ ३७ ॥ शुक्लपक्षके विधानसे नैवेद्य दे हे नारद वैशाखमासमें गुडयुक्त नैवेद्य दे ॥ ३८ ॥ ज्येष्ठके महीनेमें देवीकी प्रीतिके निमित्त मधु दे आषाढमें नवनीत और मधूक दे ॥ ३९ ॥ श्रावणमें दही, भादोंमें शर्करा, आश्विनमें पायस, कार्त्तिकमें दूध दे ॥ ४०॥ अगहनमें फेनी, पूषमें दधिकूर्चिका, माघमें गौका घी॥ ४१॥ और फाल्गुनमें नारियलकी नैवेद्य दे, इसप्रकार बारह महीनेमें क्रमसे नैवेद्य देकर पूजै ॥ ४२ ॥ मंगला, वैष्णवी, माया, कालरात्रि, दुरत्यया, महामाया, मातंगी, काली, कमलवासिनी ॥ ४३ ॥ शिवा, सहस्रचरणवाली, सब मंगलकी रूपवाली, इन नामोंसे देवीको मधूकवृक्षमें पूजन करै ॥ ४४ ॥ फिर मधूकमें स्थित देवेशीकी सब कामकी प्राप्ति और व्रतपूर्तिके निमित्त स्तुति करै ॥ ४५ ॥ पुष्करनेत्र जगत्की माता माहेश्वरी महादेवी महामंगलमूर्त्तिके निमित्त नमस्कार है ॥ ४६ ॥ परम पापनाशिनी, मुक्तिमार्गदायिनी, परमेश्वरी प्रजाकी उत्पत्तिकारण, परब्रह्मस्वरूपिणी ॥ ४७॥ मददायका, मदोन्मत्ता, मानसे गम्या, महाउन्नत, मनस्विनी, मुनियोंसे ध्यान करनेयोग्य सूर्यमंडलमें स्थित॥ ४८॥ सब लोकोंकी ईश्वरी, प्राज्ञतमा, प्रलयमेघके समान कान्तिमान्, महामोहके नाश करनेको सुरासुरोंसे पूजित, आपकी जय हो ॥ ४९ ॥ तुमही यमलोककी निवारण करनेवाली, यमसे पूजनीय, यमकी अग्रजा, यमकी निग्रहरूप, सबकी यजनयोग्य,

तुमको प्रणाम है ॥ ५० ॥ समान स्वभाव, सबकी अधीश्वरी, सब संगसे रहित; लोककी विषयाशक्तिनाशिनी, काम्या, दयामयशरीरवाली, ॥ ५१ ॥ कंकालक्रूरा, कामाक्षी, मीनाक्षी, मर्मभेदनी, माधुर्यरूपशीलवाली, मधुरस्वरसे पूजित वा प्रणवसे पूजित ॥ ५२ ॥ तुम मायाबीजस्वरूपिणी, मंत्र जपकी सहायतासे प्राप्त होनेवाली, निदिध्यासनरूप, एकान्तविचारसे प्रसन्न होनेवाली साधकमनुष्योंके मानसमें प्राप्त, महादेवकी प्रियकरनेवाली॥ ५३ ॥ अश्वत्थ, वट, नींब, आम, कैथ, वेर, पनस, अर्क, (आक) करीरादिक्षीरवृक्षस्वरूपवाली ॥ ५४ ॥ तुम दुग्धवल्लीमें निवासकरती दयनीयस्वरूप होनेसे अधिक दयावाली, दाक्षिण्य और करुणारूपवाली, सर्वज्ञवल्लभा, हो आपकी जय हो ॥ ५५ ॥ इसप्रकारके स्तोत्रसे पूजनके अन्तमें देवीकी स्तुति करै तौ मनुष्यको व्रतका सम्पूर्ण पुण्य प्राप्त होता है ॥ ५६ ॥ जो मनुष्य देवीकी प्रीति करनेवाले इस स्तोत्रको नित्यप्रति पढ़ते हैं उसको आधिव्याधि और शत्रुका भय नहीं होता ॥ ५७ ॥ अर्थी अर्थ, धर्मार्थी धर्म, कामी कामना, मोक्षार्थी मोक्षको प्राप्त होता है ॥ ५८ ॥ ब्राह्मण इसके पाठसे वेदसम्पन्न, क्षत्रिय, विजयी वैश्य धनधान्यसमृद्धि और शूद्र अधिक सुख पाता है ॥ ५९ ॥ जो मनुष्य नियत होकर श्राद्ध कालमें इस स्तोत्रको पढते हैं तौ उसके पितरोंकी कल्पपर्यन्त अक्षय तृप्ति होती है ॥ ६० ॥ इसप्रकार सुरपूजित देवीका आराधन कहा जो मनुष्य भक्तिसे पूजा करता है वह देवीके लोकको प्राप्त होता है ॥ ६१ ॥ हे नारद ! देवीके पूजनसे सब काम प्राप्त होते हैं और अन्तमें सब पापसे रहित हो शुद्धमति होती है ॥ ६२ ॥ वह जहाँ तहाँ पूजित और मान पाता है हे नारद ! जगन्माताके ही प्रसादसे वह उत्तम होता है ॥ ६३ ॥ उसको नरकका भय स्वप्नमें भी नहीं होता महामायाके प्रसादसे पुत्र पौत्रकी वृद्धि होती है ॥ ६४ ॥ वह निःसन्देह देवीका भक्त होता है यह तुमसे नरकके उद्धारलक्षणवाला धर्म कहा ॥ ६५ ॥ महादेवीका पूजन सब मंगलकारक है हे मुने इसी प्रकार महीनोंके क्रमसे मधूकपूजन करना ॥ ६६ ॥ जो सब प्रकार यह मधूक पूजन करता है वह पापरहित होता है उसको कोई रोगादि बाधाका भय नहीं होता ॥ ६७ ॥ इसके उपरान्त प्रकृतिस्वरूपिणी महादेवीके अपर पंचक कीर्त्तन करैंगे उसके नामरूप और उत्पत्ति आदि समुदाय जगतको

आनंददायक है ॥ ६८ ॥ हे मुने आख्यान और माहात्म्यके सहित यह प्रकृतिपंचक श्रवण करो यह कौतूहलकारी और मुक्तिका विधायक है ॥ ६९ ॥

'इसमें विराटस्वरूप वर्णन कर पश्चात् एक स्वरूपसे उपासना कही है सो विस्तार पूर्वक अष्टमस्कंध ८३९ श्लोकोंमें कहा है।'

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टादशसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां पंडितज्वालाप्रसादमिश्रकृत भाषायां समाराधनविधाने अष्टमस्कंधे देवीपूजननिरूपणं नामं चतुर्विंशो ऽध्यायः ॥ २४ ॥

स्कन्धश्चायं समाप्तः ॥ ८ ॥

॥ शुभमस्तु ॥

"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालय-मुंबई.

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ श्रीमद्देवीभागवत ।

नवमस्कन्धः ९.

प्रथमोध्यायः १.

दोहा ।

भालबिन्दु केशर लसत, करुणासार शृँगार ॥
फुल्लकमललोचन विमल, वन्दों वारंवार ॥ १ ॥
जगदम्बाके चरणगह, नारायण संवाद ॥
सो सब भाषा कर लिखत, बुध ज्वालाप्रसाद ॥ २ ॥

भगवान् नारायण नारदजीसे बोले हे वत्स ! जो वेदादि सब शास्त्रोंमें ही त्रिगुण साम्यावस्थ मायाशबलित परब्रह्मरूपिणी प्रकृतिनामसे विख्यात है, वह परा प्रकृति ही सृष्टिके समयमें गणेश जननी, दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती और सावित्री इन पंच मूर्तिमें आविर्भूत होती है ॥ १ ॥ नारायणके मुखसे यह बात सुनते ही नारदजीने कहा हे भगवन् ! जो पुरुष इस जगत्में ज्ञानी कहकर प्रसिद्ध हैं. आप उन सबमें अग्रणी हैं, साधुता वा ज्ञानवत्तादि सभी आपमें जाज्वल्यमान रहती है, अतएव आप अनुग्रहपूर्वक कहिये कि, वह मूल प्रकृति कौन है ? अर्थात् वह चैतन्यरूपिणीहै वा जड़ात्मिका?क्योंकि मैं ने सुनाहै कि "मायाशबलित ब्रह्महीं प्रकृति नामसे कहे जातेहैं." जो हो.आप उसके लक्षणप्रकाश करके कहिये तो मैं सब समझ लूंगा और एक बात यह है कि उस मूलप्रकृतिके आविर्भावका कारण क्या है ? विशेषकर उनका पांच मूर्तियोंमें ही आविर्भाव क्यों होता है ॥ २ ॥ विशेषतः उन अवतीर्ण दुर्गा इत्यादि पंच मूर्त्तिमें प्रत्येककी चरित्र गाथा, पूजाविधि, और उनकी पूजाका क्या फल है ? और उनमें कौन कौन मूर्त्ति किस किस स्थलमें अवतीर्ण हुई थी ? यह आप वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥ नारायणने कहा हे वत्स ! इस विश्वसंसारमें ऐसा कौनह कि जो

सम्पूर्ण रूपसे प्रकृतिके लक्षण कहनेमें समर्थ हो? किन्तु तौभी मैंने अपने पिता धर्मके मुखसे जो कुछ सुना है, वह किंचित् कहता हूं सुनो ॥ ४ ॥ 'प्र' यह उपसर्ग प्रकृष्टवाचक और "कृति" यह पद सृष्टिवाचक है, अतएव जो सृष्टिविषयमें प्रकृष्ट रूपा हैं, वही महादेवी प्रकृतिनामसे प्रसिद्ध हैं ॥ ५ ॥ हे वत्स! तुमसे प्रकृतिशब्दका यह जो व्युत्पत्तिलक्षण कहा, यह तटस्थ लक्षण मात्र है, अब उसके स्वरूपका लक्षण कहता हूं, सावधान हो सुनो तीनों गुणोंमें सत्वगुणको विमल और ज्ञानप्रकाश करनेके कारण सर्वोत्कृष्ट जानना चाहिये, सुतरां "प्र" शब्द प्रकृष्टार्थबोधक सत्वगुणमें वर्तित है विक्षेपतादोष होनेके कारण रजोगुण मध्यम है, अतएव कृ शब्दको रजोगुणमें प्रवर्तित होनेसे मध्यम जानना चाहिये, तमोगुण ज्ञानका आवरके होनेके कारण अधमनामसे विख्यात है "ति" शब्द तमोगुण बोधक है ॥ ६ ॥ अतएव निरतिशयरूपमेंआवरण विक्षेपादि दोषरहित वह गुणातीत चिन्मयी ब्रह्मरूपिणी जब उल्लिखित लक्षणा क्रान्त तीनों गुणोंसे मिलित होकर सर्व शक्तियुक्त होती है तिसीसमय सृष्टिकार्यमें प्रधान है, इसीलिये उनको प्रकृति कहा जाता है ॥ ७ ॥ हे वत्स नारद! प्रकृति शब्दकी सलक्षण व्युत्पत्ति फिर कहता हूं सुनो सृष्टिकी पूर्व अवस्थाका नाम "प्र" और कृति शब्द सृष्टिवाचक है. अतएव जो सृष्टिके पहिलेभी देदीप्यमान रहती हैं, वह महादेवी ही प्रकृतिनामसे कही गई हैं ॥ ८ ॥ इसका तात्पर्य यही है कि, वह निरञ्जनदेव परमात्मा सृष्टिकार्यके निमित्त अपनी योगमायाके प्रभावसे दो प्रकार आविर्भूत होते हैं, उन्हींके दक्षिणार्द्धभागका नाम पुरुष और वामार्द्ध भागका नाम प्रकृति है ॥ ९ ॥ अतएव हे वत्स! उन प्रकृतिदेवीको नित्य ब्रह्मरूपा सनातनी जानना चाहिये वस्तुतः जिसप्रकार अग्नि और उसकी दाहिका शक्ति दोनों परस्पर भिन्न स्थित नहीं है इसी प्रकार पुरुष और प्रकृतिको अभिन्न जानो. हेवत्स नारद! तुम ब्रह्माके मानसपुत्र हो अतएव तुमको समझानेके लिये बहुत श्रम उठाना नहीं पडेगा ॥ १० ॥ इसीलिये योगेन्द्र पुरुष प्रकृति पुरुषको अभिन्न चक्षुसे देखते हैं फलतः एकमात्र वह नित्य निरंजन चिदानंदमय ब्रह्मही निरन्तर प्रकृति पुरुषरूपमें सर्वत्र विराजमान हैं इस अनन्त विश्वब्रह्माण्डमें जो कुछ दिखाई देता है वह सर्वही ब्रह्ममय है, इस विश्व संसारमें ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जो उस प्रकृति पुरुषात्मक ब्रह्मके विना क्षण कालके लिये भी प्रकाश पासके! ॥ ११ ॥ हे वत्स! वह परब्रह्म अनिर्वचनीय महिमा शक्तिसंपन्न होनेपर भी मैंने तुम्हारी शक्ति और ज्ञानका उदय

होनेके लिये उनके किंचित्मात्र तत्त्वका वर्णन किया इसप्रकार इच्छामय सर्व ज्ञानैश्वर्य शक्तिमान् उन कृष्ण परमात्माको सृजनाभिलाषात्मिका इच्छाके उदय होतेही सहसा वह मूलप्रकृति (स्वरूप पराशक्ति) प्रथम सर्व नियन्त्री भगवती रूपमें (साम्यावस्थ मायोपहित ब्रह्मरूपिणी होकर) प्रादुर्भूत हुई ॥ १२ ॥ तदनन्तर सृष्टि—विषयक भिन्न भिन्न कार्य संपादन करनेके लिये हो, वा भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये हो, अपने शरीरसे निज इच्छासे भक्तानुग्रहरूप ॥ १३ ॥ पांच शक्ति मूर्त्ति उत्पादन करीं यद्यपि यह पंच शक्तिही जगत्की सर्व प्रधान कहकर विख्यातहैं किन्तु तो भी इनमें जो दुर्गानामसे प्रसिद्ध है, यही सर्व मंगलमयी पूर्णब्रह्मस्वरूपिणी हैं क्योंकि परमात्मा श्रीकृष्ण जीवोंका मंगलसाधन करनेके लिये इस दुर्गाशक्तिके गर्भसेही गणेशरूपमें आविर्भूत होते हैं, इस कारण यही विश्व जगत्में विष्णुमाया नारायणी सब जीवोंका आश्रयरूप कही जाती हैं वास्तवमें यह दुर्गाशक्तिही परम मंगलमय परब्रह्म कृष्णकी प्रियतमारूप शक्ति है ॥ १४ ॥ हे वत्स ! तुमसे अधिक और क्या कहूं ! यही स्थिर जानो कि यह सर्वमंगलस्वरूप सनातनी भगवती दुर्गादेवीही सबकी अधिष्ठात्री देवता है इसी कारण क्या ब्रह्मादि देवतागण क्या मुनिगण क्या मनुष्यगण सभी उनकी अर्चन और स्तवादि करते हैं ॥ १५ ॥ इन भगवती दुर्गाके भाग्य एकवार प्रसन्न होनेपर यह शरणागत भक्तोंके सब शोक दुःखादि विनाश करके धर्म, चिरस्थायिनी कीर्त्ति, परम पवित्र मंगलमय यश एवं आनन्दादि समस्त सुख और मोक्षपर्यन्त देती है ॥ १६ ॥ यह नितान्त शरणागत दीनभक्तोंका परम आश्रयस्वरूप होकर उनकी सब विपदजालसे रक्षा करती है वास्तवमें इनकोही परमात्मा श्रीकृष्णके अन्तःकरणकी अधिष्ठात्रीरूपा तेजोमयी पराशक्ति जानना चाहिये ॥ १७ ॥ यह सर्वशक्तिस्वरूप भगवती दुर्गाही परमात्मा परमेश्वरकी नित्य संगिनी पराशक्ति है यही समस्त सिद्धपुरुषोंकी परमाराध्य है अठारह सिद्धि इनकेही हाथमें हैं यही आराधनासे संतुष्ट होकर भक्तोंको अभिलाषित सिद्धिप्रदान करती है ॥ १८ ॥ यह महादेवी ही जगत्में स्थित जीवोंकी बुद्धि, निद्रा, क्षुधा, पिपासा, छाया, तन्द्रा, दया, स्मृति, जाति, क्षान्ति, भ्रान्ति, शान्ति, कान्ति, चेतना ॥ १९ ॥ तुष्टि, पुष्टि, लक्ष्मी और धृतिरूपा है यही वेदादि शास्त्रमें विश्वरूपिणी महामाया कहकर कीर्त्तित हुई है, फलतः यह जगदाराध्य शक्तिही परमात्मा कृष्णकी स्वरूपा शक्ति है ॥ २० ॥ हे वत्स ! मैंने उन अनन्तगुणमयी

भगवती दुर्गाकी जो सब गुणगाथा वर्णन की यह श्रुतिवर्णित प्रसिद्ध गुणराशिमें कुछेक अंशमात्र है क्योंकि वेदही जब उनके अनन्त गुणग्राम वर्णन करके शेष नहीं कर सकते तब इस विश्वमें ऐसी किसकी सामर्थ्य है जो उनके संपूर्ण गुणोंकी महिमा वर्णन करनेमें समर्थ हो ! तो केवल इतनाही जानो कि मैंने जो कुछ कहा है, उसमें कहीं शास्त्रका मत अतिक्रम करके नहीं कहा सो जो हो उन परमेश्वरकी पराशक्तिके पांच अवतारोंमेंसे तुमने दुर्गारूपा प्रथमांशक्तिका माहात्म्य कुछेक सुना अब उनकी शक्तिके अवतार माहात्म्यका विषय कुछेक वर्णन करता हूं सुनो ॥ २१ ॥ परमात्माको द्वितीय अवताररूपा शक्तिका नाम पद्मा लक्ष्मी है, यह विशुद्ध सत्वस्वरूपा और यह महाशक्तिही परमात्मा कृष्णके संपूर्ण ऐश्वर्यकी अधिष्ठात्री देवता है ॥ २२ ॥ यह परम मनोहर मूर्त्ति लक्ष्मी रूपा महादेवी अतिशय जितेन्द्रिय है अतएव यह अतीव शान्तप्रकृति सुशील और समस्त मंगलकी आधार भूमि है, अचंभेकी बात यही है कि ऐसे असाधारण गुण होनेपर भी लोभ, मोह, काम क्रोध अहंकार कोई शत्रु उनको स्पर्श करनेमें समर्थ नहीं होता ॥ २३ ॥ यह महादेवी निजपति और भक्तोंपर अत्यन्त अनुरक्त हैं, विशेष कर वह निरन्तर प्रियंवदा होनेसे भगवानके प्राणके समान प्रीतिभाजन होती है, इन सब असामान्य गुणोंके कारण इन्होंने पतिव्रताओंमें प्रधान आसन ग्रहण किया है ॥ २४ ॥ यह महाशक्ति जीवोंकी जीवन रक्षाके लिये एकांशमें शस्यरूपिणी है किन्तु स्वरूपसे यह जगत्में सतीधर्मका आदर्शरूप होकर महालक्ष्मी रूपसे वैकुण्ठ धाममें निरन्तर निजपति वैकुण्ठनाथकी पदसेवामें निरत रहती है ॥ २५ ॥ हे वत्स! यह महाशक्ति रूपिणीही स्वर्गधामकी स्वर्गलक्ष्मी राजाओंकी राजलक्ष्मी और मर्त्यलोकमें पुण्यवान् पुरुषोंकी गृहलक्ष्मी है॥ २६॥ हेनारद ! सम्पूर्ण प्राणियोंमें और सम्पूर्ण द्रव्य समूहमें जो मनोहर शोभा दिखाई देती है, वह समस्तही यह है यही पुण्यात्माओंकी कीर्त्तिरूप और बलवान् राजाओंका प्रभाव स्वरूप है ॥ २७ ॥ अधिक क्या कहूं! यह स्थिर जानो कि यह निरन्तर परोपकार व्रतरत साधुओंके अन्तरमें दयारूपसे वैश्योंमें वाणिज्य रूपसे और पापात्माओंके घरमें कलहके अंकुरस्वरूपसे विराजमान है ॥ २८ ॥ वास्तवमें इस लक्ष्मीरूपा दूसरी शक्तिको सम्यक् प्रकार जगतकी पूजनीय और वन्दनीय जानना चाहिये अब परमेश्वरकी ज्ञानाधिष्ठात्री, वाक्य बुद्धि और विद्यारूप तीसरी शक्तिके अवतारका विषय कुछेक कहता हूं सुनो ॥ २९ ॥

जो इस अनन्तविश्वकी समस्त विद्यास्वरूप हैं जो महाशक्ति परमात्मा मनुष्यके हृदयमें बुद्धिरूपसे अवस्थित होकर मेधा ग्रंथधारण सामर्थ्य,कविता शक्ति.स्मृति शक्ति, और प्रतिभाशक्ति कार्यकालमें तत्तद् विषयकी स्फूर्ति प्रदान करती है उन तीसरी अवतारशक्तिका नाम सरस्वती है ॥ ३० ॥ सुधीपुरुषको किसी विषयमें सन्देह होनेपर यही उसका वह दुर्बोध व्याख्या अर्थ ध्यानमें स्थित करके सब संशय छेदन और नाना विषयक सिद्धान्त सबका भिन्न भिन्न प्रकारसे अर्थ संकलन-कर देती है ॥ ३१ ॥ हे वत्स ! पण्डितोंकी ग्रंथकरणशक्ति वा विचारशक्ति अथवा संगीत व्यवसायीगणोंकी स्वरसंगीतका सन्धान या तालल्यादि इस महा-शक्तिको इन सबकाही कारण जानना चाहिये ॥ ३२ ॥ यह महादेवीही समस्त शास्त्रकी व्याख्या और वाद अर्थात् वितर्क रूप हैं. इनकोही ब्रह्माण्डस्थ जीवोंकी स्व स्व विषयमें ज्ञानरूपा और वाक्यरूपा जानना चाहिये. अधिक क्या ? इस महाशक्तिको अवलम्बन करकेही जीवगण अपनी अपनी जीवनयात्रा निर्वाह करते हैं "मैंही सब विद्याका आधार भूमि हूं" सब जीवोंको यह विदित करनेके लिये ही इन महादेवी सरस्वतीने एक हाथमें वीणा और दूसरे हाथमें पुस्तक धारणकी है ॥ ३३ ॥ यह शुद्ध–सत्व–स्वरूप सुशील और श्रीहरिकी अत्यन्त प्रियतमा है इनका वर्ण हिमशिला चन्दन कुन्द चन्द्र कुमुद और श्वेत कमलके समान गौर है ॥ ३४ ॥ यह सदा रत्नकी माला लेकर परमात्मा श्रीकृष्णके नामका जप करती है यह तपस्वरूप और तपस्वियोंको तपका फल देती है ॥ ३५ ॥ यह सबकी सिद्धि और विद्यास्वरूप हैं यह सदा सबको सिद्धि प्रदान करती हैं इनके न होनेसे जगत्के सम्पूर्ण ब्राह्मण निरन्तर मृत मनुष्यके समान मूक गूंगे होते ॥ ३६ ॥ वेदमें जो जगदम्बिकाको तीसरी देवी कहकर वर्णन किया है यही वह तीसरी देवी सरस्वती है यह मैंने उनकी कथा वर्णन की अब शास्त्रानुसार अपरा देवीका माहात्म्य वर्णन करता हूं सुनो ॥ ३७ ॥ जो चार वर्णकी जननी जो संपूर्ण वेदाङ्ग और सब छन्दोंकी उत्पत्तिका निदान हैं जो संध्यावंदन मंत्र और तंत्रका स्थानीय बीज है, जो स्वयं सब विषयमें पण्डित हैं ॥ ३८ ॥ जो स्वयं तपस्विनी होकरभी ब्राह्मणोंकी जाति और तपःस्वरूप हैं, जो ब्रह्मण्यतेज और सर्वप्रकार संस्कार स्वरूप हैं॥ ३९ ॥ जो स्वयं पवित्ररूपा, सावित्री और गायत्रीनामसे कहीजाती हैं, जो सदा ब्रह्मलोकमें वासकरतीहैं, सर्वतीर्थ पवित्र होनेके लिये जिनके स्पर्शकी प्रार्थना करते हैं ॥ ४० ॥

जिनका शुद्ध स्फटिकके समान शुभ्रवर्ण है, जो स्वयं शुद्ध सत्वस्वरूपा परमानन्दस्वरूपा सर्वश्रेष्ठ और सनातनी हैं ॥ ४१ ॥ जो परब्रह्मरूपिणी और मोक्ष दायिनी हैं जो ब्रह्मकी तेजोमयी शक्ति और ब्रह्मतेजकी अधिष्ठात्री देवता हैं ॥ ४२॥ जिनके चरणरेणुके स्पर्शसे सम्पूर्ण जगत् पवित्र होता है वह देवी सावित्रीही चौथी प्रकृति हैं हे वत्स नारद ! अब तुमसे पांचवी शक्ति देवी राधिकाका विषय वर्णन करता हूं सुनो ॥ ४३ ॥ जो पंचप्राणकी अधिष्ठात्री देवी हैं जो स्वयं सबको जीवन स्वरूप जो श्रीकृष्णको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं जो सब प्रकृति देवियोंसे अधिक सुन्दरी और सर्व श्रेष्ठ हैं ॥ ४४ ॥ जो सब पदार्थमें विद्यमान रहती हैं, जो सौभाग्यके गर्वसे अत्यन्त गर्वित हैं जिनके गौरवकी सीमा नहीं है जो श्रीकृष्णका वामाङ्ग स्वरूप हैं क्या गुण क्या तेजमें कोई उनकी अपेक्षा अधिक नहीं हैं ॥ ४५ ॥ जो श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठतम सबकी सारभूत सर्वोत्कृष्ट सबकी आदि सनातनी परमानन्दस्वरूप धन्या मान्या और सबकी पूजिता हैं ॥ ४६ ॥ जो परमात्मा श्रीकृष्णके रासकी क्रीड़ाकी अधिदेवी हैं जिनसे रासमंडलकी उत्पत्ति हुई है जो रासमण्डलकी भूषणस्वरूप हैं ॥ ४७ ॥ जो रासेश्वरी रसिकोंमें अग्रगण्य और सदा रासावासमें स्थिति करती हैं गोलोकधाम जिनका निवासस्थान है जिनसे सब गोपियें उत्पन्न हुई हैं ॥ ॥ ४८ ॥ जो परमानन्द परम सन्तोष और परमहर्षरूपा हैं जो सत्वादि तीनों गुणोंसे अतीत पदार्थ और निराकार हैं किन्तु निर्लिप्तभावसे सर्वत्र अवस्थान करती हैं-जो सबकी आत्मास्वरूप हैं ॥ ४९ ॥ जो सब विषयोंमें ही निश्चेष्ट और अहंकार रहित हैं, जो भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लियेही केवल शरीर धारण करती हैं विचक्षण पण्डितगण केवल वेदोक्त ध्यानद्वारा जिनकी महिमा पाठ करते हैं ॥ ५० ॥ सुरेन्द्र और मुनीन्द्रगण जिनको कभी चक्षुसे नहीं देखते जिनके अग्निमें न जलनेवाला लाल वस्त्र है और सर्वाङ्ग अनेक प्रकारके अलंकारोंसे विभूषित हैं ॥ ५१ ॥ जिनके शरीरकी कान्ति देखनेसे बोध होता है कि एकही वार करोड़चन्द्रमा उदय हुए हैं जो कृष्णदास्य कृष्णभक्ति और सब संपत्तिकी दान करनेवाली है ॥ ५२ ॥ जो वराहकल्पमें अर्थात् वाराहावतारसमयमें ब्रजवासी वृषभानु नामक गोपके कन्यारूपमें अवतीर्ण हुई थीं वसुन्धरा जिनके चरणकमलोंके स्पर्शसे पवित्र होती हैं ॥ ॥ ५३ ॥ जो ब्रह्मादि देवताओंको भी अदृष्ट हैं भारतवर्षमें आय वृन्दावनमें जिनको सब सुखसे देखते हैं जो स्त्रीरत्नमें श्रेष्ठ रत्न हैं जिनके श्रीकृष्णकी छातीमें वास

करनेसे बोध होता है॥ ५४ ॥ मानों आकाशस्थित नीले बादलोंमें विजली विराजमान है पूर्वकालमें ब्रह्माजीने जिनके चरणनखको देखकर आत्माको पवित्र करनेके लिये साठ हजार वर्ष घोर तपस्या की थी किन्तु चरणनखका प्रत्यक्ष देखना तो दूर रहे स्वप्नमें भी जिनका दर्शन प्राप्त करनेमें समर्थ न हुए ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ किन्तु अन्तमें तपके फलसे वृन्दावनके काननमें जिनका दर्शन पाकर कृतार्थ हुए हे वत्स नारद ! वह यही पांचवी प्रकृति है इसीको राधानामसे निर्देश करते हैं ॥ ५७ ॥ हे वत्स ! सब जगत्में जितनी स्त्रियें वास करती हैं वह सभी श्रीराधाके अंश कला कलांश और अंशांशसे उत्पन्न हुई हैं ॥ ५८ ॥ हे वत्स नारद ! मूलप्रकृतिसे दुर्गादि जो पांच पूर्णतम प्रकृति उत्पन्न हुई हैं, उनका विषय कहा अब जो प्रकृतिकी अंशरूपा हैं उनका वृत्तान्त कहता हूं सुनो ॥ ५९ ॥ जो प्रधानांशस्वरूप भुवन पाविनी गंगा हैं जो विष्णुके पादपद्मसे उत्पन्न हुई हैं जो द्रवरूपा और सनातनी हैं ॥ ६० ॥ जो पापियोंके पापरूपी काष्ठ जलानेमें प्रज्वलित अनलस्वरूप हैं, जो स्नान और पानादि विषयमें सुखस्पर्शा हैं, जो जीवोंको निर्वाणपद प्रदान करती हैं ॥ ६१ ॥ जो गोलोक धाम जानेकी सुख सोपान हैं, जो सब तीर्थोंमें पूततमतीर्थ हैं, जो सब स्रोतवतीमें प्रधान स्रोतवती हैं ॥ ६२ ॥ जो महादेवके मस्तकस्थित जटामें रुकी मुक्तापंक्ति हैं जो इस कर्मक्षेत्रभारतवासी तपस्वियोंकी सद्यो संभूत तपस्या हैं ॥ ॥६३॥ जिनकी प्रभा पूर्ण चन्द्रके समान, श्वेतकमलके समान और दूधके समान धवल वर्ण है जो विशुद्ध सत्वस्वरूपिणी, निर्मल अहंकारहीन साध्वी और नारायणकी प्रिया हैं वह त्रिभुवन पावनी गंगा मूल प्रकृतिका अंश हैं ॥ ६४ ॥ विष्णुकामिनी देवी तुलसी हैं जो नारायणकी अलंकृतिरूपा हैं जो सदा नारायणके चरण कमलोंमें अवस्थान करती हैं ॥ ६५ ॥ क्या तपस्या, क्या संकल्प, क्या पूजादि कार्य, समस्तकार्य जिनके द्वारा संपादित होते हैं जो पुष्पोंमें प्रधान पवित्र और पुण्यदायिनी हैं ॥ ६६ ॥ जिनके दर्शन और स्पर्शसे तत्काल निर्वाणपद प्राप्त होता है जिनके अतिरिक्त कलियुगमें पापकाष्ठ दहनकी दूसरी अग्नि नहीं है जो स्वयं अग्निस्वरूपिणी हैं ॥ ६७ ॥ जिनके चरणकमलोंका स्पर्श करके वसुंधरा पवित्र हुई है सम्पूर्ण तीर्थ स्व स्व शुद्धिलाभके लिये जिनके दर्शन और स्पर्शकी कामना करते हैं ॥ ६८ ॥ जिनके विना विश्वके सब कार्य निष्फल हैं जो मुमुक्षु पुरुषोंको मोक्षदायिनी जो सबके सब प्रकार मनोरथ संपन्न करती हैं ॥ ६९ ॥ स्वयं कल्पवृक्षस्वरूप जो

भारतके सब वृक्षोंकी अधिष्ठात्री देवता भारतवासी कामिनीगणोंको प्रसन्न करनेके लिये जो उत्पन्न हुई हैं और जो सर्वश्रेष्ठ देवता कहकर भारतके सर्वत्र परिगृहीत होती हैं ॥ ७० ॥ वह तुलसी देवी मूलप्रकृतिकी प्रधान अंश हैं कश्यपकन्या मनसा जो शंकरकी प्रिय शिष्या हैं सुतरां शास्त्रज्ञान विषयमें महापण्डिता हैं ॥ ७१ ॥ जो नागेश्वर अनन्त देवकी बहन और समस्त नागगणोंसे सत्कृत हैं जो स्वयं सुन्दरी नागेश्वरी नागजननी और नागवाहिनी हैं ॥ ७२ ॥ जो सदा नागेन्द्रगणोंमें परिवेष्टित नागभूषणोंसे विभूषित नागेन्द्रगणसे वंदित और नागशय्यापर शयन करती हैं जो सिद्धयोगिनी ॥ ७३ ॥ विष्णुस्वरूपिणी विष्णुभक्ता और विष्णुपूजामें तत्पर हैं जो तपःस्वरूप और तपस्याकी फलप्रदा होकरभी स्वयं तपस्विनी हैं ॥ ७४ ॥ जो देवमानके तीन लक्ष वर्षपर्यन्त श्रीहरिकी आराधना करके भारतमें तपस्वी और तपस्वियोंमें प्रधान कही गई हैं ॥ ७५ ॥ जो सम्पूर्ण मंत्रकी अधिदेवी जिनका शरीर ब्रह्मतेजसे जाज्वल्यमान होता है जो स्वयं ब्रह्मरूपिणी होकर भी फिर ब्रह्मभावकी भावना करती हैं ॥ ७६ ॥ जो श्रीकृष्णके अंशसे उत्पन्न और जरत्कारु ऋषिकी पतिव्रता स्त्री हैं जो मुनिश्रेष्ठ आस्तिक मुनिकी माता हैं वह भी मूल प्रकृतिकी अंश हैं ॥ ७७ ॥ हे वत्स नारद! जिनका नाम देवसेना है वही षष्ठी हैं षष्ठी देवी जो गौरीआदि षोडश मातृकामें श्रेष्ठतम मातृका हैं ॥ ७८ ॥ जो पतिव्रता तीनों जगत्को पुत्र पौत्रादि दात्री और सबकी धात्री हैं जो मूल प्रकृतिका षष्ठांशस्वरूप होनेके कारण षष्ठीनामसे कही गई हैं ॥ ७९ ॥ जो वृद्धभाव और योगिनीके वेषसे सम्पूर्ण बालकोंके निकट विद्यमान रहती हैं वैशाखादि बारह मासमें जिनकी पूजा सर्वत्र प्रचलित हुई है ॥ ८० ॥ बालकके उत्पन्न होनेपर छठे दिन सूतिका गृह सोवरमें जिनकी पूजा होती है और बीस दिन बीतनेपर इक्कीसवें दिन जिनकी शुभकरी पूजाका विधान करना होता है ॥ ८१ ॥ मुनि अवनतमस्तकसे जिनको प्रणाम और सदा जिनके दर्शनकी कामना करते हैं जो माताके समान स्नेहार्द्रहृदयसे सर्वदा बालकोंकी रक्षा करती हैं वह षष्ठी देवी मूल प्रकृतिका षष्ठांश हैं ॥ ८२ ॥ देवी मंगल चण्डिका जो जल स्थल अन्तरिक्ष और बालकोंके घर घर मंगल विधान करके भ्रमण करती हैं ॥ ८३ ॥ जो प्रकृति देवीके मुखमंडलसे उत्पन्न हुई हैं और सर्वदा सबका सब प्रकार मंगलविधान करती हैं सृष्टिकालमें मंगलमयी और संहार कालमें प्रचण्ड रोष रूपिणी मूर्त्ति ॥ ८४ ॥ धारण

करनेके कारण पण्डितोंने जिनका मंगल चण्डी नाम रक्खा है प्रतिविश्व और प्रति मंगलवारमें जिनकी पूजा होती है ॥ ८५ ॥ जो प्रसन्न होकर स्त्रियोंको पुत्र पौत्र धन ऐश्वर्य यश और सब प्रकार मंगल व सब प्रकार अभीष्ट प्रदान करती हैं, यह मंगल चंडी भी मूल प्रकृतिका अंश हैं ॥ ८६ ॥ कमललोचना महेश्वरी काली जो रुष्ट होनेसे क्षणकालमें सब विश्वको संहार करनेमें समर्थ हैं ॥ ८७ ॥ जो समरमें शुंभ और निशुंभ दैत्योंको निपात करनेके लिये मूल प्रकृति दुर्गाके ललाट देशसे आविर्भूत हुई हैं, जो दुर्गाकी अर्धांश स्वरूपा और उनके समान गुणवती और तेजस्विनी हैं ॥८८॥ जिनके शरीरकी कान्ति देखनेसे बोध होता है मानो एकही कालमें करोड़ सूर्य उदय हुए हैं जो सब शक्तियोंमें प्रधान और सबकी अपेक्षा अधिक बलवती हैं ॥ ८९ ॥ जो संपूर्ण लोकोंको सब प्रकारकी सिद्धि प्रदान करती हैं जो सर्व श्रेष्ठ और योगस्वरूपा हैं जो अतिशय कृष्णभक्त एवं तेज, गुण और विक्रममें कृष्णके समान हैं ॥ ९० ॥ निरन्तर श्रीकृष्णकी चिन्तासे जिनका शरीर कृष्णवर्ण होगया है जो सनातनी एक निश्वासमें संपूर्ण ब्रह्माण्ड विध्वंस कर सकती हैं ॥ ९१ ॥ जो केवल क्रीड़ा और लोकशिक्षाके लिये दैत्योंके सहित समरमें प्रवृत्त हुई थीं जो पूजासे संतुष्ट होनेपर धर्म, अर्थ, काम,मोक्ष इन चारों वर्गका फल प्रदान कर सकती हैं, वह काली भी प्रकृतिका अंश हैं ॥ ९२ ॥ वसुंधरादेवी, जिनका ब्रह्मादि देवतागण समस्त मुनिगण, चौदह मनु और संपूर्ण मनुष्य स्तव करते हैं ॥ ९३ ॥ जो सबकी आधारस्वरूप और सर्व प्रकार शस्यसे परिपूर्ण हैं जो रत्नाकरा रत्नगर्भा और सर्व प्रकार श्रेष्ठतम वस्तुकी प्रसूति और आश्रय स्थान हैं॥ ९४ ॥ प्रजामंडल और राजमंडल नित्य जिनकी पूजा और स्तुतिवाद करते हैं जो जीवमात्रकी (जीवनदायिनी) और सबको सब प्रकारकी सम्पद देनेवाली हैं ॥ ९५ ॥ जिनके विना स्थावर जंगमात्मक संपूर्ण जगत् निराधार हो जाता है वह वसुंधराभी मूलप्रकृतिका अंश है. हे वत्स नारद! जो प्रकृतिकी कलासे उत्पन्न है॥ ९६ ॥ और जो जिनकी पत्नी हैं, अब एकादिक्रमसे वह सब वर्णन करता हूं सुनो देवी स्वाहा अग्निकी पत्नी हैं। संपूर्ण विश्व उनकी पूजा करते हैं ॥ ९७ ॥ इनके विना देवतागण कभी आहुति ग्रहण करनेमें समर्थ नहीं होते दक्षिणा और दीक्षा, यह दोनों यज्ञपत्नी हैं इनका सर्वत्र आदर होता है ॥ ९८ ॥ यही क्या? दक्षिणाके विना कोई कार्य सफल नहीं हो सकता देवी स्वधा पितरोंकी पत्नी हैं क्या मनुष्य

गण, क्या मनुगण, क्या मुनिगण ॥ ९९ ॥ सबही स्वधादेवीकी पूजा करते हैं। स्वधामंत्रके विना पितरोंको जो कुछ दान किया जाय, वह सब निष्फल है देवी स्वस्ति वायुदेवकी पत्नी हैं इनका संपूर्ण विश्वमें आदर होता है ॥ १०० ॥ स्वस्तिदेवीके विना क्या आदान, क्या प्रदान कोई कार्य फलदायक नहीं हो सकता गणपतीकी पत्नीका नाम पुष्टि है जगत्में सबही पुष्टिदेवीकी पूजा करते हैं ॥ १०१ ॥ जगत्में पुष्टिकेविना क्या स्त्री, क्या पुरुष, सभी अतिशय क्षीण होते हैं, तुष्टि अनन्तदेवकी पत्नी हैं पृथ्वीके सर्वत्रही वह सत्कृत और वंदित होती हैं ॥ १०२ ॥ जिनके असद्भावसे पृथ्वीके किसी स्थानमें कोई मनुष्य सुखी नहीं हो सक्ता सम्पत्तिदेवी ईशानकी पत्नी हैं क्या देवता क्या मनुष्य सभी जिनका समान आदर करते हैं ॥ १०३ ॥ उनके न होनेसे जगत्के सभी मनुष्य दरिद्रदोषसे अत्यन्त पीड़ित होते ॥ देवी धृति कपिलदेवकी सहधर्मिणी हैं जगत्के सब स्थानोंमें ही सब इनका समान आदर करते हैं॥ १०४ ॥ यही क्या ? इनके न होनेसे जगत्के सब मनुष्य ही अत्यन्त अधैर्य होते देवी सती सत्यदेवकी पत्नी हैं यह जगत् प्रिय हैं मुक्तपुरुष सर्वदाही इनकी पूजा करते हैं ॥ १०५ ॥ सत्यप्रिया सती यदि विद्यमान न होतीं तो एकवारही संपूर्ण जगत् वन्धुता (बाँधवपन) से वंचित होजाता पतिपरायणा दया, मोह, देवकी पत्नी हैं सबही जगत् इनका आदर करते हैं॥ १०६ ॥ इनकेन होनेसे पृथ्वीके सब मनुष्य सब विषयमें हताश होते देवी प्रतिष्ठा पुराणदेवकी पत्नी हैं मनुष्य इनका जितना यत्न करता है, यह उनको उतनाही पुण्यप्रदान करती हैं ॥ १०७ ॥ अधिक क्या इनके विना पृथ्वीके समस्त मनुष्य जीवन्मृतके समान होते, देवी कीर्त्ति सुकर्मकी पत्नी हैं यह स्वयं सिद्ध और कृतार्थ मनुष्य इनका परम आदर करते हैं ॥ १०८ ॥ इनके न होनेसे जगत्के संपूर्ण मनुष्य मृतकवत् यशहीन होते क्रिया उद्योगकी पत्नी है। इनका सभी सन्मान और महाआदर करते हैं ॥ १०९ ॥ हे मुनिवर नारद ! जगत्में उद्योगकी पत्नी क्रिया यदि विद्यमान न होती, तो सब मनुष्य एक वारही विधि हीन हो जाते मिथ्या अधर्मकी पत्नी है इस जगत्में जितने धूर्त विद्यमान हैं, वह सब इसका अत्यन्त आदर करते हैं ॥ ११० ॥ मिथ्याके न होनेसे विधाताका विधान किया सब धूर्तपन जगत्में नहीं रहता सत्ययुगमें यह कभी किसीको दिखाई न दी त्रेतासे ही इसके सूक्ष्मतम शरीरका संचार हुआ है ॥ १११ ॥ जब द्वापरयुग

उपस्थित था, तब इसके अवयव अर्धपुष्ट थे। इसके उपरान्त कलि प्रवृत्त हुआ तब इसके संपूर्ण अंग प्रत्यङ्ग सब अवयवमें पुष्ट होगये तिस कालमें इसके समान वाचाल और व्यापिका दूसरी नहीं है ॥ ११२ ॥ उस समय यह अपने भ्राता कपटको संग लेकर मनुष्योंके घर घरमें भ्रमण करती है शान्ति और लज्जा यह दोनोंही सुशीलकी भार्या हैं ॥ ११३ ॥ इन दोनोंके विद्यमान न होनेसे संपूर्ण जगत् एकवारही मूढ और उन्मत्तके समान हो जाता. बुद्धि मेधा और धृति, यह तीनों ज्ञानकी भार्या हैं ॥ ११४ ॥ इनके न होनेसे जगत्के संपूर्ण मनुष्य एकवारही मूढ और उन्मत्त हो जाते मूर्त्ति धर्मदेवकी पत्नी है, यह सबकी कान्तिरूपिणी और अतीव मनोहारिणी है॥ ११५॥ इनके न होनेसे परमात्मा आश्रयस्थान प्राप्त नहीं कर सकते इस कारण समस्त विश्व निरालम्ब हो जाता यह पतिव्रता सती मूर्त्ति शोभारूप ॥ ११६ ॥ लक्ष्मीरूप, सर्वत्र मान्या धन्या और पूजिता हैं सिद्धयोगिनी निद्रा कालाग्नि रुद्रदेवकी पत्नी हैं॥ ११७॥ जिसके सम्बन्धसे जीवगण रात्रिकालमें समाच्छन्न होते हैं संध्या, रात्रि और दिन, यह तीन कालकी भार्या है॥ ११८॥ इनके न होनेसे विधाता भी संख्या, गणना करनेमें समर्थ नहीं होते क्षुधा और पिपासा दोनों लोभकी पत्नी हैं यह धन्य, मान्य और जगत्पूज्य हैं ॥ ११९ ॥ इन दोनोंके विद्यमान न होनेसे जगत्के सब जीव एकवारही चिन्तासागरमें निमग्न हो जाते प्रभा और दाहिका यह दोनों तेजकी भार्या हैं ॥ १२० ॥ इन दोनोंके न होनेसे जगदीश्वर कभी जगत्की सृष्टि और नियमित व्यवस्था व्यवस्थापित नहीं कर सकते मृत्यु और जरा दोनों कालकी कन्या हैं किन्तु ज्वरकी प्रियतमा पत्नी हैं ॥ १२१ ॥ इनके न होनेसे विधातृविहित संपूर्ण सृष्टि वृद्धिकोही प्राप्त होती नष्ट न होती देवी तन्द्रा और प्रीति दोनों निन्द्राकी कन्या हैं यह दोनों सुखकी प्रियतमा भार्या हैं ॥ १२२ ॥ यह दोनों संपूर्ण जगत्में व्याप कर अवस्थान करती हैं हे मुनिवर ! जगत् पूज्य श्रद्धा और भक्ति, वैराग्यकी भार्या है ॥ १२३ ॥ इन दोनोंके विद्यमान होनेसे विश्वको सब मनुष्य जीवन्मुक्तके समान अवस्थान कर सकते हैं इनके अतिरिक्त देव माता अदिति, गोजननी सुरभी ॥ २४ ॥ दैत्यजननी दिति, नागमाता, कद्रुः, खगेन्द्रजननी विनता और दानवमाता दनु यह सभी सृष्टिकार्यकी विशेष उपयोगिनी हैं, किन्तु सब मूलप्रकृतिकी कला हैं ॥ १२५ ॥ इनके अतिरिक्त अन्यान्य जो प्रकृतिकी कला हैं विद्यमान हैं, उनके कितनोंहीके नाम कहता हूं, सुनो । चन्द्रकी पत्नी

रोहिणी, सूर्यकी भार्या संज्ञा ॥ १२६ ॥ मनुपत्नी शतरूपा, इन्द्रपत्नी शची, बृहस्पतिकी भार्या तारा, वशिष्ठकी पत्नी अरुन्धती ॥१२७॥ गौतमपत्नी अहल्या, अत्रिकी भार्या अनुसूया, कर्दमकामिनी देवहूती,दक्ष भार्या प्रसूति ॥ १२८ ॥ पितरोंकी मानसी कन्या और अम्बिकाकी जननी, मेनका, लोपामुद्रा कुन्ती कुबेरपत्नी ॥ १२९ ॥ वरुणपत्नी, बलिराजाकी पत्नी विन्ध्यावली मनोहर दमयन्ती यशोदा, देवकी, ॥ १३० ॥ गान्धारि, द्रौपदी, शैब्या, सत्यवती, वृषभानुपत्नी कुलीना राधाकी जननी ॥ १३१ ॥ मन्दोदरी कौशल्या कौरवी सुभद्रा, रेवती, सत्यभामा, कालिन्दी, लक्ष्मणा ॥१३२॥ जाम्बवती,नाग्नजिती, मित्रविन्दा,लक्ष्मणा रुक्मिणी, सीता, यह स्वयं लक्ष्मी हैं ॥ १३३ ॥ काली, योजनगंधा, महासती, पतिव्रता, व्यासजननी,बाणपुत्री, ऊषा उसकी सखी चित्रलेखा ॥१३४॥ प्रभावती, भानमती, सतीमायावती; परशुरामकी जननी रेणुका, बलरामकी जननी रोहिणी ॥ ॥१३५॥ एकनन्दा और श्रीकृष्णकी भगिनी सती दुर्गा इत्यादि अन्यान्य अनेक कामिनी भारतमें प्रकृतिका अंशस्वरूप हैं ॥ १३६ ॥ इनके अतिरिक्त ग्रामदेवी भी प्रकृतिका अंश हैं और सब विश्वमें जितनी स्त्री विद्यमान हैं वह सब प्रकृतिके अंशसे उत्पन्न हुई हैं ॥ १३७ ॥ अतएव स्त्रीका अपमान करनेसे प्रकृतिका अपमान होता है पतिपुत्रवती पतिव्रता ब्राह्मणीकी वस्त्र अलंकार और चन्दनादिसे पूजा करनेपर॥ १३८॥ प्रकृतिकी पूजा हो जाती है यही क्या वस्त्रालंकार और चन्दनादिसे अष्टवर्षीय ब्राह्मण कुमारीकी पूजा करनेपरभी ॥ १३९ ॥ प्रकृति देवी पूजित होती है उत्तम मध्यम और अधम सभी प्रकृति संभूत हैं ॥ १४० ॥ जो रमणी सत्वगुणके अंशसे उत्पन्न हैं, वही उत्तम सुशील और पतिव्रता हैं जो रजोगुणके अंशसे उत्पन्न हैं वह मध्यम हैं और भोग्या हैं ॥ १४१ ॥ और भोग विषयमें अत्यन्त अनुरक्त होकर अपने कार्य साधनमें तत्पर होती हैं और जो तमोगुणसे उत्पन्न हैं वही अज्ञात कुलशील अधम कही गई हैं ॥ १४२ ॥ उनके समान दुर्मुख कुलनाशक धूर्त्त स्वाधीनताप्रिय और कलहनिपुण दूसरी स्त्रियें दिखाई नहीं देतीं ऐसी स्त्रियें मर्त्यलोकमें कुलटा और स्वर्लोकमें अप्सरा कहाती हैं ॥ १४३ ॥ यद्यपि पुंश्चली भी प्रकृतिका अंश हैं किन्तु वह तमोगुणात्मक हैं यह तो प्रकृतिका स्वरूप वर्णन किया ॥ १४४ ॥ अतएव पुण्यक्षेत्रभारत भूमिमें समुदाय प्रकृति देवीकी पूजा करना सम्यक् प्रकार उचित है पूर्वकालमें सुरथराजाने दुर्गति नाशिनी मूल प्रकृति दुर्गाकी

पूजा की थी ॥ १४५ ॥ इसके पीछे श्रीरामचन्द्रजीने रावणके मारनेकी इच्छासे उनकी पूजा करी फिर तीनों लोकमें उनकी पूजाका प्रचार हुआ ॥ १४६ ॥ उन्होंनेही प्रथम दक्षकी कन्या रूपमें जन्म ग्रहण किया उन्होंनेही दैत्यकुल और दानवकुलको संहार किया था उन्होंनेही दक्षके यज्ञ समयमें पति निन्दा सुन अपना देह त्याग फिर जन्मग्रहण किया था ॥ १४७ ॥ उन्होंनेही हिमाचल पत्नी मेनकाके गर्भसे जन्मग्रहण करके पशुपतिको पतिलाभ किया था फिर कार्त्तिकेय और गणेश नामक पार्वतीके जो दो पुत्र उत्पन्न हुए तिनके कार्त्तिकेय नारायणके अंश और गणपति स्वयं राधापति श्रीकृष्ण थे ॥ १४८ ॥ हे देवर्षे ! इन दो पुत्रोंके उपरान्त दुर्गासे जो लक्ष्मी देवीकी उत्पत्ति हुई प्रथम मङ्गल राजने उनकी पूजाकी ॥ १४९ ॥ फिर त्रिलोकीमें क्या देवता क्या मनुष्य सबनेही उनकी पूजा करी प्रथम तो राजा अश्वपतिने सावित्री देवी की पूजा करी ॥ १५० ॥ फिर त्रिभुवनमें क्या देवता क्या मुनिगण, सबही उनकी पूजा करते हैं देवीसरस्वतीके उत्पन्न होनेपर सबसे पहिले भगवान् ब्रह्माजीने उनकी पूजा करी ॥ १५१ ॥ तबसे क्या श्रेष्ठतममुनिगण, क्या देवतागण, सभी उनकी पूजा करते हैं गोलोकरासमंडलमें पहले राधाकी पूजा हुई ॥ १५२ ॥ कार्त्तिकी पौर्णमासीकी रजनीमें परमात्मरूपी भगवान् श्रीकृष्णने गोलोकधाम रासमंडलमें देवी राधाकी प्रथम पूजा करी फिर श्रीकृष्णकी अनुमतिसे सम्पूर्ण गोप सम्पूर्ण गोपिका सम्पूर्ण बालकबालिका ॥ १५३ ॥ गोपजननी सुरभी और अन्यान्य गोपोंने उनकी पूजा की. यही क्या? तबसेही ब्रह्मादि देवता और मुनिपर्यन्त अत्यन्त भक्तिसहित ॥ १५४ ॥ धूपदीपादि विविध उपाहार द्वारा परमानन्दसे श्रीराधाकी पूजामें रत हुए हैं भूतलमें राधाका प्रथम सुयज्ञराजाने पूजन किया ॥ १५५ ॥ भगवान् शंकरके उपदेशानुसार इस पुण्यक्षेत्र भारत भूमिमें राजा सुयज्ञने पूजाकरी फिर परमात्म रूपी भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञानुसार तीनों लोकमें ॥ १५६ ॥ सर्वत्र उनकी पूजा प्रचलित हुई है मुनिगण भक्ति पूर्वक पुष्प धूपादि विविध उपहारसे सर्वदा देवीराधिकाकी पूजा करते हैं हे वत्स नारद ! इनके अतिरिक्त प्रकृतिके अंशसे जो सब देवी उत्पन्न हुई हैं भारतमें वह सबही पूजित होती हैं ॥ १५७ ॥ यही क्या ? ग्राममें ग्राम्य देवी वनमें वनदेवी और नगरमें नगर देवीकी पूजा होती है हे वत्स नारद ! यह मैंने तुमसे

शास्त्रानुसार संपूर्ण प्रकृतियोंके शुभचरित्र वर्णन किये ॥ १५८ ॥ शास्त्रानुसार लक्षण कहे अब क्या सुननेकी इच्छा है? सो कहो ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

देवर्षि नारदने नारायणसे कहा हे प्रभो! आपने जो संक्षेपसे पंचप्रकृति देवीका चरितविषय कहा वह मैंने सुना पर अब विस्तारसे कहिये ॥ १ ॥ आप वेदवेत्ताओंमें अग्रणी हैं इसकारण पूछता हूं कि इस जगत्प्रपंचके पहिलेही मूलप्रकृति आद्याशक्तिकी सृष्टि क्यों हुई किस निमित्त वह पांच प्रकारसे हुई ॥ २ ॥ कैसे त्रिगुणरूपिणी होकर पांच भागोंमें विभक्त हुई? यह आनुपूर्वीसे सब सुननेकी इच्छा है ॥ ३ ॥ अतएव अब आप उनके मंगलदायक जन्मका वृत्तान्त पूजाप्रकरण ध्यानविधि, स्तोत्रकवच महिमा और प्रभाव-विषय सब विस्तारपूर्वक कहिये ॥ ४ ॥ नारायणने कहा हे देवर्षे! आत्मा, नभोमंडल, काल, दशदिक् विश्वोंके गोलक, गोलोक ॥ ५ ॥ और जिसकी अपेक्षा निम्नभाग स्थित वैकुण्ठधाम जिस प्रकार नित्य पदार्थ है परब्रह्मरूपिणीकी मायारूपिणी मूलप्रकृति भी उसी प्रकार नित्य पदार्थ है ॥ ६ ॥ अग्नि और दाहिकाशक्ति, चन्द्र और रमणीयता, कमल और शोभा रवि और प्रभा जिस प्रकार अभिन्न भावसे सदा परस्पर संयुक्त रहते हैं आत्मा और प्रकृति भी उसी प्रकार अभिन्न भावसे परस्पर मिलित रहती हैं ॥ ७ ॥ जैसे सुनार सुवर्णके विना कुण्डल और कुंभार मट्टीके विना घट बनानेमें समर्थ नहीं है ॥ ८ ॥ इसी प्रकार आत्मा सर्वशक्तिस्वरूपाप्रकृतिके विना कोई कार्य नहीं कर सकता अतएव आत्मा प्रकृतिकी सहायतासे ही सर्व शक्तिमान है ॥ ९ ॥ "श" ऐश्वर्यवाचक और "क्ति" पराक्रमवाचक है. सुतरां ऐश्वर्य और पराक्रमस्वरूपा एवं इन दोनोंकी दात्री होनेसे मूलप्रकृति शक्तिनामसे कही गई है ॥ १० ॥ भग शब्दज्ञान, समृद्धि, सम्पत्ति, यश और बलवाचक है अतएव मूलप्रकृतिकी यह सब ज्ञानादिशक्तिं विद्यमान रहनेसे उनको भगवती भी कहते हैं ॥ ११ ॥ आत्मा सदा शक्तिरूपाभगवतीके संग सम्मिलन होनेके कारण भगवान् नामसे अभिहित हुआ है भगवान् स्वयं इच्छामय देव हैं इसीलिये वह कभी साकार और कभी निराकार होते हैं ॥ १२ ॥

योगिगण सदा इन्हीं निराकारभगवान्की तेजोमूर्त्तिकी भावना और उनको ही परमानन्दरूपी, परब्रह्म, परमेश्वर कहकर कीर्त्तन करते हैं ॥ १३ ॥ यद्यपि वह अदृश्य, सर्वद्रष्टा, सर्वज्ञ, सर्व कारण, सर्वदाता, और सर्व रूपी है किन्तु वैष्णवगण यह बात स्वीकार नहीं करते ॥ १४ ॥ वह कहते हैं कि तेजस्विके विना किस प्रकार तेजकी उत्पत्ति होगी? अतएव जो ज्योति मण्डलके मध्यभागमें विराजमान रहते हैं वही परब्रह्म,वही तेजस्वीपुरुष, वही परात्पर ॥ १५॥ वही इच्छामय वही सर्वरूपी और वही सब कारणोंका कारण हैं और उनका रूप अत्यन्त मनोहर है ॥ १६ ॥ वह अवस्थामें किशोर उनकी मूर्त्ति अति शान्त और सबसे कमनीय है। वह परात्पर हैं, उनका श्यामाङ्ग नवीन मेघके समान आभासमान है ॥ १७ ॥ उनके दोनों नेत्रोंने मध्याह्नके कमलोंकी शोभाका तिरस्कार किया है, उनके दांतोंकी पंक्ति देखनेसे मुक्तापंक्ति भी लज्जित होती है ॥ १८ ॥ उनके चूडामें मयूरपुच्छ गलेमें मालतीमाला नासिका अत्यन्त मनोहर और मुखमें हास्य सदा विराजमान है। भक्तोंके प्रति दया प्रकाश करनेमें उनके समान दूसरा कोई नहीं है ॥ १९ ॥ पहरनेके पीताम्बरने मानो प्रज्वलित अग्निके समान द्युति धारण की है। आजानुलम्बित दोनों हाथमें मुरली विराजमान और संपूर्ण अंग रत्नमयभूषणोंसे भूषित हैं ॥ २० ॥ वह जगत्के एक मात्र आधार सबके प्रभु और सर्व शक्तिमान् विभु हैं। वह सबको सब प्रकार ऐश्वर्य और मंगल प्रदान करते हैं वह किसीके आधीन नहीं हैं ॥ २१ ॥ उनमें अपूर्णताका लेश मात्रभी नहीं है। वह स्वयं सिद्धपुरुष और समस्त सिद्धपुरुषोंमें प्रधान हैं सबको ही सिद्धि प्रदान करते हैं वैष्णवगण निरन्तर उन्हीं सनातन देवदेव श्रीकृष्णका ध्यान करते हैं ॥ २२ ॥ उनके प्रसादसे मनुष्योंको जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, शोक, और भयका लेश मात्रभी नहीं रहता उनका एक निमेष ब्रह्माकी आयुका परिमाण है ॥ २३ ॥ वही परमात्मा वही परब्रह्म कृष्ण नामसे अभिहित होते हैं 'कृषि' शब्द श्रीकृष्णकी भक्ति वाचक और "न" उनका दास्यवाचक है ॥ २४ ॥ अतएव जो भक्ति और दास्यके दाता हैं वही कृष्ण हैं प्रकारान्तरमें "कृषि" शब्दका अर्थ सकल और "न" शब्दका अर्थ बीजहै ॥ २५ ॥ सुतरां जो सबके बीज अर्थात् सबके उत्पन्न कर्ता हैं वही कृष्ण हैं जब सबसे पहिले उन्होंने इस विश्वको उत्पन्न करनेकी इच्छाकी तब एक मात्र श्रीकृष्णके अतिरिक्त अन्य कोई

विद्यमान नहीं था अंतमें वही प्रभु कालप्रेरित होकर अंशसे सृष्टिकार्यमें उद्योगी हुए २६॥ फिर उन्हीं स्वेच्छामयके स्वीय इच्छानुसार द्विधा विभक्त होनेपर उनका वाम भाग स्त्री और दहिना अंग पुरुष रूपमें परिणत होता है ॥ २७ ॥ तब वह सनातन महा-कामी कामके एक मात्र आधार लोचन लोभनीय शोभायमान कमलके समान वामाङ्ग संभूता रमणीपर दृष्टिपात करते हैं ॥२८॥ इस स्त्रीके दोनों नितम्ब चन्द्रम-ण्डलका तिरस्कार करते हैं उसके दोनों ऊरु देखनेसे कदली स्तम्भ स्तम्भित हो जाँय ॥ २९ ॥ उसके दोनों स्तनके देखनेसे शोभायमान दो श्रीफलकी भ्रान्ति होती है कवरी बंधनमें पुष्प गुँथे हुए कमर अत्यन्त पतली, देखनेमें अत्यन्त मनोहर ॥ ३०॥ अतीव सुंदर, मूर्त्ति अतिशान्त मुखमें सदा हास्य दृष्टि पैरोंमें लगी हुई पहरनेके अन-लमें विशुद्ध उत्कृष्ट, वस्त्र, सर्वाङ्ग रत्नमय भूषणोंसे भूषित हैं ॥ ३१ ॥ उसके नयन चकोर आनंदसे निरन्तर श्रीकृष्णके करोड़ चन्द्र लजानेवाले मुख चन्द्रको पान करते हैं ॥३२॥ उसकें ललाटमें सिन्दूरविन्दु उसके ऊपर चन्दनविन्दु और उसके ऊपर कस्तूरी लगी हुई है॥ ३३॥ उसके मस्तकका कवरीभाव कुछेक वक्र, वहभी फिर मालती मालसे विभूषित गलेमें सर्वोत्कृष्ट रत्नहार विराजित और वह सदा केवल स्वामीके प्रति स्पृहावती है ॥ ३४॥ उसका रूप देखनेसे बोध होता है मानो एकवारही करोड़ चन्द्रमा उदय हुए हैं उसका गमन देखकर राजहंस और मातङ्गका गर्व खर्व होजाता है ॥ ॥ ३५॥हेमुनिवर ! रासेश्वर रासक्रीडा रसिक श्रीकृष्ण वे क्षणकाल अपाङ्गमें उसको देख फिर उसका हाथ पकड रासमंडलमें जाय रासक्रीडा आरम्भ करी ॥ ३६ ॥ मानो शृङ्गारदेव स्वयं मूर्त्तिमान् होकर विविध शृंगार सुख संभोग करने लगे यही क्या ? इस क्रीडामें ब्रह्माका एक दिन वीतगया ॥ ३७ ॥ तब जगत् पिताने थकित होकर शुभ कालमें उस वामाङ्ग संभूता रमणीकी योनिमें गर्भाधान किया ॥ ३८ ॥ प्रकृति देवी श्रीकृष्णके निपीडनसे बहुत थकगई थी इस कारण सुरताके अन्तमें उनके गात्रसे पसीना निकलने लगा॥ ३९ ॥ और घनघन श्वास चलने लगा, उनके ही पसीनेने जलरूपमें परिणत होकर सम्पूर्ण विश्वको आच्छादित किया ॥ ॥४०॥और वह निश्वास वायुही वायुरूप धारण करके जगत्वासी मनुष्योंके जीवन रूपमें परिणत हुआ ॥ ४१ ॥ वायुदेवके वामाङ्ग जिस रमणीरत्नकी उत्पत्ति होती है वही इन वायुदेवकी पत्नी और उसके ही संसर्गसे प्राण अपान समान उदान और व्यान नामक जो पंचपुत्रोंकी उत्पत्ति होती है वही जीवोंके पांच प्राण हैं उनके अति

रिक्त वायुपत्नीके गर्भसे नागादि और पांच अधः प्राणकी उत्पत्ति हुई है ॥ ४२ ॥ ॥ ४३ ॥ पसीनेके जलसे जिस जलकी उत्पत्ति हुई, वरुण देव उसके अधिष्ठाता और वरुणदेवके वामाङ्गसे जिस रमणीकी उत्पत्ति हुई वही वरुणपत्नी वरुणानी हैं॥ ४४ ॥ इस ओर श्रीकृष्णकी ज्ञानरूपाशक्तिने श्रीकृष्णके सहवाससे शत मन्वन्तर पर्यन्त गर्भधारण किया ब्रह्मतेजसे उसके शरीरने उज्ज्वल ज्योति धारण की ॥ ४५॥ कृष्ण ही उसके जीवन और वही कृष्णको प्राणोंसे भी प्रियपदार्थ है सदा ही कृष्णके संगमें अवस्थित है अधिक क्या श्रीकृष्णके वक्षस्थलका आश्रय करके अवस्थान करती है ॥ ४६ ॥ अनन्तर शत वर्ष काल व्यतीत होनेपर उस सुन्दरीने सुवर्णकेसमान वर्णयुक्त एक बालक उत्पन्न किया यह (बालक) ही विश्वाधारका एक मात्र आधार है ॥ ४७ ॥ तब श्रीकृष्णकी कान्ता उस डिम्बको देखकर मनमें अत्यन्त दुःखी हुई और क्रोधमें भरकर उस डिम्बको ब्रह्माण्ड मध्यवर्ती सलिलमें डाल दिया ॥ ४८ ॥ यह देख श्रीकृष्ण हाहाकार शब्द कर उठे और तिसी समय यथोचित [illegible] कहा ॥ ४९ ॥ हे कोपने ! निष्ठुरे ! जब तुमने क्रोधमें भरकर अपने स[illegible] त्याग दिया है [illegible] मैं कहता हूं कि आजसे तुम निःसन्देह अपत्यसे वञ्चित होगी ॥ ५० ॥ इसके अतिरिक्त जो सब देवयाङ्गना तुम्हारे अंशसे उत्पन्न होंगी वह भी सब स्थिर यौवन होकर तुम्हारे समान अपुत्र होंगीं ॥ ५१ ॥ हे मुनिवर ! श्रीकृष्ण इसप्रकार शाप दे ही रहे थे उसी अवसरमें सहसा उस श्रीकृष्ण प्रियाकी जिह्वाके अग्रभागसे श्वेतवर्ण अति मनोरम एक कन्याकी उत्पत्ति हुई ॥ ५२ ॥ उसके वस्त्र सफेद हाथमें वीणा और पुस्तक और सब अंगरत्नमय भूषणोंसे विभूषित थे वही संपूर्ण शास्त्रोंकी अधिदेवता है ॥ ५३ ॥ कुछ कालोपरान्त वह श्रीकृष्ण प्रिया मूलप्रकृति दो भागमें विभक्त हुई उसके वाम अंगसे कमला और दक्षिणअंगसे राधिका की उत्पत्ति हुई ॥ ५४ ॥ इसी अवसरमें श्रीकृष्ण भी द्विधा विभक्त हुए उनके दक्षिणार्द्धसे द्विभुज और वामार्द्धसे चतुर्भुज मूर्त्तिका आविर्भाव हुआ ॥ ५५ ॥ तब श्रीकृष्णने वीणाधारिणी वाणीसे कहा हे देवि ! तुम इस द्विभुज पुरुषकी कामिनी होओ और राधासे कहा हे राधे ! तुम अभिमानवती हो इस कारण तुम मेरी पत्नी होओ तुम्हारा मंगल होगा ॥ ५६ ॥ श्रीकृष्णने संतुष्ट होकर लक्ष्मीको भी द्विभुज नारायणके हाथमें समर्पण किया फिर जगत्पति नारायण

लक्ष्मी और सरस्वती दोनोंको संग लेकर वैकुण्ठधाममें चले गये ॥ ५७॥ हे मुनिवर! लक्ष्मी और सरस्वती दोनोंको संग लेकर वैकुण्ठधाममें चले गये ॥ ५७ ॥ हे मुनिवर! श्रीकृष्णके शापसे लक्ष्मी और सरस्वती दोनों ही पुत्रधनसे वञ्चित रहीं चतुर्भुज नारायणके अंगसे उनके अनुरूप कितने ही पार्श्व चर उत्पन्न हुए ॥ ५८॥ वह सब रूप गुण तेज और वयसमें उनके समान थे इधर कमलाके शरीरसे भी उसके समान रूप गुणशालिनी करोड करोड पार्श्वचारिणियोंकी उत्पत्ति हुई ॥ ५९ ॥ अनन्तर गोलोकनाथ श्रीकृष्णके रोमकूपसे असंख्य गोपोंकी उत्पत्ति हुई ॥ ६० ॥ वह सभी रूप गुण पराक्रम और वयसमें गोलोकनाथके अनुरूप थे अधिक क्या ! वह सब उन विभुके प्राणोंके समान प्रियपात्र थे ॥ ६१ ॥ राधिकाके रोमोंसे गोपकन्याओंकी उत्पत्ति हुई वह सब गोपाङ्गना राधाके अनुरूप राधाकी ही पार्श्वचरी और सभी प्रियंवदा थीं ॥ ६२ ॥ उनका संपूर्ण शरीर रत्नमय भूषणोंसे विभूषित और सभा स्थिरयौवना थीं श्रीकृष्णके शापसे उनमें किसीके भी संतान सन्तति नहीं हुई ॥ ६३ ॥ हे द्विजवर! इस ओर इसीसमय सहसा कृष्णदेवता सनातनी विष्णुमाया दुर्गाकी उत्पत्ति हुई ॥ ६४ ॥ वही नारायणी वही ईशानी सबकी शक्तिरूपिणी और वही परमात्मरूपी श्रीकृष्णकी बुद्धिको अधिष्ठात्री देवता हैं ॥ ॥ ६५ ॥ उनसे ही अन्यान्य देवियोंकी उत्पत्ति हुई है वही मूलप्रकृति और वही ईश्वरी हैं उनमें अपूर्णताका लेशमात्र नहीं है वही तेजःस्वरूपा और वही त्रिगुणात्मिका हैं ॥ ६६ ॥ उनका वर्ण तप्त कंचनके समान उज्ज्वल है, उनका सौन्दर्य देखनेसे बोध होता है मानो एकवार ही करोड़ सूर्य उदय हुए हैं कुछेक हास्यसे मुस्कुरातामुख संतत प्रसन्न और हस्तसंख्यामें सहस्र हैं ॥ ६७ ॥ और सब हाथोंमें ही अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र हैं उन त्रिलोचनाका परिधान अग्नि विशुद्ध उज्ज्वल वर्ण वस्त्र और अंगोंमें जो कितने ही रत्नाभरण हैं. उनकी सीमा नहीं है. ॥ ॥६८॥ उनके ही अंश और उनके ही अंशके अंशसे संपूर्ण रमणीरत्नकी उत्पत्ति हुईहै उनकी ही मायाके प्रभावसे जगत्के संपूर्ण लोक मोहित हैं ॥ ६९ ॥ गृहस्थी लोग जिस जिस प्रकारके ऐश्वर्यकी कामना करते हैं वह उनको वही प्रदान करती हैं वही कृष्णभक्त मनुष्यको कृष्णभक्ति प्रदान करती हैं अधिक क्या वही वैष्णवोंकी वैष्णवी शक्ति हैं ॥ ७० ॥ वह मोक्षकी अभिलाषा करनेवाले पुरुषको मोक्ष और सुखकी इच्छा करनेवाले पुरुषको सुख देती हैं वही स्वर्गकी स्वर्गलक्ष्मी और गृहकी गृहलक्ष्मी हैं ॥ ७१ ॥ वही तपस्वि-

योंका तप राजाओंकी राज्यश्री, अग्निकी दाहिकाशक्ति सूर्यकी प्रभा ॥ ७२ ॥ चन्द्रकी रमणीयता, कमलकी शोभा और परमात्मरूपी श्रीकृष्णकी शक्तिस्वरूप हैं ॥ ७३ ॥ क्या आत्मा क्या जगत् समस्त ही उनके द्वारा शक्तिशाली है उनके विना संपूर्ण जगत् प्रायः जीवन्मुक्त होता है ॥ ७४ ॥ हे नारद ! वही संसारवृक्षका बीज वही सनातनी वही स्थिति वही बुद्धि वही फल ॥ ७५ ॥ वही क्षुधा वही पिपासा वही दया वही निद्रा वही तन्द्रा वही क्षमा वही धृति वही शान्ति वही लज्जा वही पुष्टि वही तुष्टि और वही कान्तिरूपिणी हैं ॥ ७६ ॥ वह मूल प्रकृति सर्वेश्वर श्रीकृष्णका स्तव करके उनके सन्मुख अवस्थान करने लगीं तब राधिकेश्वरने उसके बैठनेको सिंहासन दिया ॥ ७७ ॥ हे महामुने ! इसी समयमें पद्मनाभके नाभिपद्मसे अतीव रमणीय मूर्त्ति सावित्रीपत्नीसहित चतुर्मुख ब्रह्माजीका आविर्भाव हुआ ॥ ७८ ॥ वह कमण्डलुधारी ज्ञानियोंमें अग्रणी तपःपरायण श्रीमान् चतुर्मुख उत्पन्न होते ही चारोंमुखसे श्रीकृष्णका स्तव करने लगे ॥ ७९ ॥ इधर वह सुख संभूत शत चन्द्रप्रभा, अग्निविशुद्धवसनधारिणी अनेक प्रकारके भूषणोंसे भूषित ॥ ८० ॥ देवी सावित्री विश्वके एकमात्र कारण स्वरूप श्रीकृष्णका स्तव करके परमानन्दपूर्वक स्वामीके संग रत्नमय सिंहासनपर विराजमान हुई ॥ ८१ ॥ इसी अवसरमें श्रीकृष्णभी द्विधा अर्थात् दो भागोंमें विभक्त हुए उनका वामार्द्धभाग महादेव और दक्षिणार्द्ध गोपिकापति रूपमें परिणत हुआ ॥ ८२ ॥ महादेवजीके शरीरकी प्रभा विशुद्ध स्फटिकके समान शुभ्रवर्ण देखनेसे बोध होता है मानो एक-संग सौ करोडसूर्य उदय हुए हैं जिनके हाथमें त्रिशूल और पट्टिश, परिधान व्याघ्र चर्म ॥ ८३ ॥ शिरपर तप्तकाञ्चनके समान पिङ्गलवर्ण जटाभार, सर्वाङ्गमें भस्म विलेपन मुखमें हास्य और भालमें अर्द्धचन्द्र ॥ ८४ ॥ जिनके कटितटमें वस्त्र नहीं अतएव दिगम्बर हैं जिनका कंठ नीलवर्ण है अंगमें सर्प विभूषण, दहिने हाथमें (जपके उपयोगी) रत्नमाला ॥ ८५ ॥ जो पंचमुखसे केवल सनातन वेदमंत्रका जप करतेथे जो सत्यस्वरूप कृष्णस्वरूप परमात्मस्वरूप ईश्वरस्वरूप ॥ ८६ ॥ सम्पूर्ण उपादानके भी उपादानस्वरूप सम्पूर्ण मंगलके भी मंगलस्वरूप, जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि-शोक और भय भंजन ॥ ८७ ॥ श्रीकृष्णका स्तवकर मृत्युको जीत मृत्युञ्जय नाम पाया वही महादेव श्रीकृष्णके सन्मुख रत्नमय सिंहासनपर विराजमान हुए ॥ ८८ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

नारायण बोले हे देवर्षे! मूलशक्तिप्रसूत जो डिम्भ ब्रह्माके वयः परिमित काल-तक जलमें भासमान था वह डिम्भ अब यथोचित समयमें सहसा द्विधा विदीर्ण हुआ ॥ १॥ इस डिम्भमें सौकरोड़ सूर्यके समान प्रभायुक्त एक बालक विद्यमान था माताके परित्याग करनेसे स्तनपान नहीं करसका इसकारण भूखसे कातर होकर क्षणकालतक वारंवार रोदन करने लगा ॥ २ ॥ जो बालक परिणाममें असंख्य ब्रह्माण्डके अधीश्वर रूपमें परिणत है पिता माता हीन वह बालक निराश्रय होकर जलसे ऊर्द्धभाग अवलोकन करने लगा ॥ ३ ॥ फिर अन्तमें यही बालक एकही वार स्थूलतम होकर महाविराट्नामसे अभिहित हुआ है जिसप्रकार परमाणुसे सूक्ष्म तम पदार्थ अन्य (दूसरा) नहीं है इसी प्रकार महाविराट्से स्थूलतम पदार्थ भी दूसरा नहीं है ॥ ४ ॥ इस महाविराट्का प्रभाव परमात्मरूपी श्रीकृष्णके सोलहवें अंशका एक अंश है किन्तु राधारूपा प्रकृतिसंभूत यह बालक ही सब विश्वका एकमात्र आधार और वही महाविष्णुनामसे अभिहित है ॥५॥ उसके प्रत्येक रोममें असंख्य विश्व विराजमान हैं अधिक क्या श्रीकृष्ण भी उन सब विश्वकी संख्या गणना करनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ ६ ॥ कदाचित् रजःसंख्याकी गणना होजाय किन्तु विश्वकी संख्या गणना संभव नहीं है और इसी प्रकार कितने ब्रह्मा कितने विष्णु और कितने महादेव विद्यमान रहते हैं उनकी भी संख्या नहीं है ॥ ७ ॥ प्रति ब्रह्माण्डमें ही ब्रह्मा विष्णु और महादेव विद्यमान रहते हैं पातालसे ब्रह्मलोकपर्यन्त एक एक ब्रह्माण्डकी सीमा है ॥ ८ ॥ वैकुण्ठधाम उसके ऊपर अर्थात् ब्रह्माण्डके बहिर्भागमें अवस्थित है और गोलोकधाम इस वैकुण्ठधामके पञ्चाशत कोटि योजन ऊर्द्धमें अवस्थित है॥९॥ श्रीकृष्ण जिसप्रकार नित्य और सत्यस्वरूप हैं यह गोलोकधाम उसी प्रकार है सप्तद्वीप समन्वित यह पृथ्वी सातसमुद्रसे परिवेष्टित रहती है ॥ १० ॥ इसमें उंचास उपद्वीप विद्यमान हैं इनके अतिरिक्त कितने ही जो पर्वत और वन विद्यमान रहते हैं उनकी संख्या नहीं है उनके ऊर्द्धमें ब्रह्मलोकसहित सप्तस्वर्ग ॥ ११ ॥ और अधोभागमें सप्तपाताल हैं यही ब्रह्माण्डकी सीमा है धराके व्यवधानसे आगे ऊर्द्धमें भूर्लोक उसके ऊपर भुवर्लोक ॥ १२ ॥ उसके ऊपर स्वर्लोक उसके ऊपर जनलोक उसके ऊपर तपोलोक; उसके ऊपर सत्यलोक ॥ १३ ॥ और तिसके ऊपर ब्रह्म-

लोक है। इस ब्रह्मलोककी प्रभा तप्तकांचनके समान है, किन्तु यह ब्रह्माण्ड विवृति के बहिर्भागमें स्थित हो वा आभ्यन्तरीण हो संपूर्ण पदार्थ ही कृत्रिम अर्थात् अनित्य हैं ॥ १४ ॥ ब्रह्माण्डके विनाशमें सम्पूर्ण ही नष्ट होताहै। समस्त विश्वही जलबुद्‌बुदके समान अनित्य है ॥ १५ ॥ केवल गोलोक और वैकुण्ठ-धाम नित्य पदार्थ है महाविराट्के प्रत्येक रोममें ही एक एक ब्रह्माण्ड विराजमान है ॥ १६ ॥ दूसरेकी तो बातही नहीं स्वयं श्रीकृष्ण भी इन समस्त ब्रह्माण्डकी संख्या गणना करनेमें समर्थ नहीं है प्रत्येक ब्रह्माण्डमें ही ब्रह्मा विष्णु और महादेव विद्यमान रहते हैं ॥ १७ ॥ हे वत्स नारद ! प्रति ब्रह्माण्डमें ही देवताओंकी संख्या तीन करोड़ है इनमें कितने ही दिक्पति कितने ही दिक्पाल कितने ही नक्षत्र और कितनेही ग्रहादि हैं ॥ १८ ॥ भूलोकमें ब्राह्मणादि चारोंवर्ण और पातालमें नाग हैं इस प्रकार स्थावर जंगमात्मक विश्व विद्यमान रहता है ॥ यही ब्रह्माण्ड विवृति है ॥ ॥ १९ ॥ हे वत्स नारद ! इस ओर वह विराट् पुरुष वारंवार ऊपरको देखनेलगे किन्तु उन्होंने उस (दोभाग हुए) अंडेमें शून्य पदार्थके अतिरिक्त और कुछ नहीं देखा, तव वह भूंखसे अत्यन्त कातर हो वारंवार रुदन करते हुए अत्यन्त चिन्ता-करने लगे ॥ २० ॥ कुछ कालोपरान्त पूर्वसंस्कारके बलसे ज्यों ही उनके मनमें अस्तित्व बुद्धिका उदय हुआ, उसीसमय वह परम पुरुष श्रीकृष्णके ध्यानमें निमग्न हुए तव तत्काल वहां उस सनातन ब्रह्मज्योतिको देखा ॥ २१ ॥ उनका रूप नवीन मेघके समान श्यामवर्ण दो हाथ परिधान पीताम्बर मुखमें कुछेक हास्य हाथमें मुरली और उनका रूप देखनेसे बोध होता था, मानों भक्तके प्रति दया प्रकाश करनेमें अत्यन्त तत्पर हैं ॥ २२ ॥ विराट्रूपी बालक सर्वेश्वर अपने पिताको देखतेही आनन्दसे हँसने लगा तव उन वरद देवने बालकको समयोचित वरदान करके कहा ॥ २३ ॥ "हे वत्स ! तुम मेरे समान ज्ञानयुक्त होओ, तुम्हारी भूंख प्यास दूरहो तुम प्रलयकालपर्यन्त असंख्य ब्रह्माण्डके आधार होओ ॥ २४ ॥ तुम संपूर्ण वासनाको छोड़ सम्यक्प्रकारसे भयरहित हो प्राणियोंको अभीष्ठ प्रदान करो जरा मरण रोग, शोक वा किसीप्रकारकी पीड़ादि तुमको स्पर्श करनेमें समर्थ न हो॥ २५॥ यह कहकर उसके कानमें साङ्गवेदपूजित अभीष्टप्रद सर्वविघ्नविनाशन "ओं कृष्णाय स्वाहा" यह षडक्षर महामंत्र तीनवार जपा ॥ २६ ॥ २७ ॥ हे ब्रह्मपुत्र नारद ! विभु श्रीकृष्णने इसप्रकार महामंत्र प्रदान

करके फिर उसके भोगके लिये जिसप्रकार आहारविधान किया वह कहता हूं सुनो ॥ २८ ॥ प्रति विश्वमें भक्तलोग श्रीकृष्णको जो नैवेद्य प्रदान करते हैं उसका सोलहवाँ भाग वैकुण्ठपति नारायणके और अपर पन्द्रहभाग इस विराट्रूपी बालकके लिये कल्पित हुए हैं॥ २९॥ श्रीकृष्णने अपने लिये अंशकी कल्पना नहीं करी क्योंकि स्वयं गुणातीत और पूर्णतम हैं अतएव जो सदाही तृप्त रहते हैं उनको फिर नैवेद्यका क्या प्रयोजन है ॥ ३० ॥ मनुष्य भक्तिपूर्वक उनको जो प्रदान करता है वह लक्ष्मीपति विराट्पुरुषही उस सबको भोग करते हैं ॥ ३१ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने इसप्रकार उस विराट्पुरुषको मंत्र और वरदेकर कहा हे वत्स ! तुम्हारी अब क्या अभिलाषा है ? सो कहो मैं अभी प्रदान करूंगा ॥ ३२ ॥ उस विराट्रूपी बालकने श्रीकृष्णका वचन सुनकर उनसे उचित वचन कहा ॥ ३३ ॥ बालक बोले हे विभो ! मुझको अब कछ वासना नहीं है केवल क्षणकाल हो वा दीर्घकाल हो जतबक जीवित रहूं तबतक आपके चरणकमलोंमें सदा मेरी विमलभक्ति रहे ॥ ॥ ३४ ॥ इस जगत्में जो पुरुष आपके भक्त हैं वह सदाही जीवन्मुक्त हैं और जो आपके प्रति भक्तिशून्य हैं वह पुरुष जीवित रहनेपर भी मृतकके समान हैं ॥ ॥ ३५॥ कृष्णभक्तिविहीन पुरुषके जव तप यज्ञ पूजा नियम उपवास पवित्र तीर्थसेवा और अन्यान्य पुण्यकर्मके अनुष्ठानका क्या प्रयोजन है ॥ ? ॥ ३६ ॥ जो पुरुष परमात्मरूपी श्रीकृष्णसे जीवन धारण करके फिर उनकोही अग्राहव करता है उसके समान कृतघ्न और कौन है ? उस कृष्णभक्तिहीन मूढका जीवन धारणकरना वृथा है॥ ३७॥ जबतक देहमें आत्मा वास करता है तबतक संपूर्ण शक्ति विद्यमान रहती हैं किन्तु आत्माके प्रस्थान करतेही आत्माधीन संपूर्ण इन्द्रियशक्तिभी उसके संग संग चली जाती हैं॥ ३८॥ हेमहाभाग!जो प्रकृतिके अतीत स्वेच्छामय आदि पुरुष परमज्योतिस्वरूप सनातन ब्रह्म हैं आप स्वयं वह विश्वात्मा हैं ॥ ३९ ॥ हे वत्स नारद ! विराट्रूपी बालक केवल इतना कहते ही चुपगया फिर भगवान् श्रीकृष्णने श्रुति मधुरवचनसे कहा ॥ ४० ॥ भगवान् बोले हे वत्स ! तुम अनन्त काल मेरेसमान स्थिरभावसे अवस्थान करो असंख्य ब्रह्माके अतीत होनेपर भी तुम्हारा पतन नहीं होगा ॥ ४१ ॥ तुम स्वीय अंशमें विभक्त होकर प्रति ब्रह्माण्डमें ही क्षुद्र क्षुद्र विराट्रूपसे परिणत होओ ब्रह्मा तुम्हारे नाभिकमलसे उत्पन्न होकर विश्वकी सृष्टि करैं गे ॥ ४२ ॥ सृष्टिसंहारके निमित्त उन ब्रह्माके ललाटसे

एकादशरुद्र उत्पन्न होंगे किन्तु वह सबही शिवांश हैं ॥ ४३ ॥ इन एकादशरुद्रोंमें जो कालाग्निनामक रुद्र हैं वही सब विश्वके संहारकर्ता हैं इनके सिवाय तुम्हारे क्षुद्रांशसे एक एक विष्णु उत्पन्न होंगे और वह भोगवान् विष्णु ही विश्वके पालक हैं ॥ ४४ ॥ मैं कहता हूं कि मेरे वरदानसे तुम सदा मेरेप्रति भक्तिमान् होगे और तुम ध्यानयोग अवलम्बन करते ही मेरी मनोहर मूर्त्ति देखोगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ॥ ४५ ॥ मेरे वक्षस्थलाश्रित तुमको जननीका दर्शन भी दुर्लभ नहीं होगा हे वत्स! तुम स्वच्छन्दतासे इस स्थानमें वासकरो मैं गोलोकको चलता हूं जगत्पति श्रीकृष्ण यह कहकर अन्तर्धान होगये ॥४६॥ फिर उन्होंने गोलोकमें उपस्थित हो तत्काल सृष्टि और संहारकार्यपटुब्रह्मा और महादेवजीसे कहा ॥ ४७ ॥ भगवान् बोले हे वत्स विधातः! तुम शीघ्र जाओ जाकर सृष्टिकार्यके लिये महाविराट्के लोमसे जो क्षुद्रविराट् उत्पन्न हों उन सब क्षुद्रविराट्के नाभिपद्मसे अंशमें उत्पन्न होओ ॥ ४८ ॥ हे वत्स महादेव! तुम भी जाओ जाकर सृष्टिसंहारके लिये प्रति विश्वमें प्रत्येक ब्रह्माके कपालसे अंशमें उत्पन्न होओ किन्तु देखो अपनी दीर्घकाल तपस्या करनी मतभूल जाना ॥ ४९ ॥ हे ब्रह्मपुत्र नारद! श्रीकृष्ण ब्रह्मा और महादेवको इस प्रकार आज्ञा करके मौन होगये इस ओर ब्रह्मा और शिवदाताशिव दोनों जगत्पतिको प्रणाम करके स्वस्वकार्य करनेके लिये गये ॥ ५० ॥ उधर उस ब्रह्माण्डगोलकजलमें जो महाविराट् भासमान थे पूर्वमें उनके ही अंशसे उनके ही प्रतिलोमसे एक एक क्षुद्र विराट् उत्पन्न हुए थे ॥ ५१ ॥ दूर्वादलश्यामरूप पीताम्बरधारी हास्य प्रफुल्ल वदन युवा विश्वव्यापी जो विराट्रूपी जनार्दन जलशय्यापर शयन कर रहे थे ॥ ५२ ॥ ब्रह्माने जाकर उनके नाभिपद्मसे जन्मग्रहण किया जन्मग्रहण करनेके उपरान्त कमलयोनिने उस नाभिपद्म और उसके मृणालदण्डमें लक्षयुगपर्यन्त भ्रमण किया ॥ ५३ ॥ किन्तु किसी प्रकार भी पद्म और मृणाल दण्डका कुछ अन्त नहीं पाया हे वत्स नारद! तब तुम्हारे पिता अत्यन्त चिन्ताकुल हो ॥ ५४ ॥ फिर अपने स्थानमें आय श्रीकृष्णके चरणकमलोंका ध्यान करने लगे ध्यानयोगकेद्वारा दिव्यचक्षुसे प्रथम तो क्षुद्रविराट् ॥५५॥ फिर जिनके लोममें ब्रह्माण्ड विराजमान है उन अनन्त जलशय्याशायी महाविराट्का ॥ ५६ ॥ और फिर गोपगोपी समन्वित गोलोक विहारी परमेश्वर श्रीकृष्णका दर्शन किया तब तुम्हारे पिताके गोलोकपतिके स्तुतिवादमें प्रवृत्त होनेपर उन्हों ने तुम्हारे

पिताको वर दिया इसके पीछे तुम्हारे पिता सृष्टिकार्यमें प्रवृत्त हुए ॥ ५७ ॥ प्रथम तो तुम्हारे पिताके मानससे सनकादि मातृगण और फिर कपालसे एकादश रुद्र उत्पन्न हुए ॥ ५८ ॥ इसके उपरान्त उन जलमें सोये हुए क्षुद्रविराट् पुरुषके वामपार्श्वसे विश्वपाता चतुर्भुज भगवान् विष्णुकी उत्पत्ति हुई वह श्वेतद्वीपमें जाकर वास करने लगे ॥ ५९ ॥ इस ओर तुम्हारे पिता उन क्षुद्रविराट्पुरुषके नाभिपद्ममें स्वर्ग मर्त्य और पाताल इस त्रिभुवनात्मक स्थावर जङ्गम समाकीर्ण विश्वकी सृष्टि करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ ६० ॥ हे वत्स नारद! इस प्रकार उन महा-विराट्के लोमसे प्रत्येक विश्वकी उत्पत्ति हुई है और प्रति ब्रह्माण्डमें ही एक एक क्षुद्र विराट् एक एक ब्रह्मा एक एक विष्णु एक एक शिव और सनकादि अन्यान्य सम्पूर्ण विद्यमान रहते हैं ॥ ६१ ॥ हे द्विजवर! यह मैंने अतिसुखकर और मोक्ष-प्रद कृष्णके गुण कहे अब और क्या सुननेकी इच्छा है सोकहो ॥ ६२ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

नारदजीने कहा हे प्रभो! मैंने आपके अनुग्रहसे सुधाके समान मधुर पूर्वतन सब वृत्तान्त सुना, अब पंचप्रकृति देवीमें ॥ १ ॥ किसकी किसने किसमंत्रसे पूजा करी है किसने किस प्रकार किसका स्तव किया है? किस प्रकार किसकी पूजा मर्त्यलोकमें प्रचारित हुई है ॥ २ ॥ उनमें प्रत्येकका स्तोत्र, ध्यान प्रभाव और चरित सेवा किस प्रकार है? और किस देवीने किसको किस प्रकार वरदान किया है वह आनु-पूर्विक संपूर्ण पृथक् पृथक् वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥ नारायणने कहा हे वत्स! सृष्टि-विषयमें गणेशजननी दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती और सावित्री यह पंचप्रकृति ही मूलाधार है यह तो सुना है ॥ ४ ॥ इसके अतिरिक्त उनकी पूजाविधि, अद्भुतप्रभाव अपूर्व स्तोत्र और सुधासदृश सर्वमङ्गलनिदान चरित वेद पुराण और तंत्रादि संपूर्ण शास्त्रों मेंही प्रसिद्ध हैं अतएव उनके वर्णन करनेका प्रयोजन नहीं है ॥ ५ ॥ अब जो प्रकृ-तिके अंश और कलासे उत्पन्न हैं उनकेही शुभचरितका वृत्तान्त अद्योपान्त वर्णन करता हूं सावधान होकर सुनो ॥ ६ ॥ काली, वसुन्धरा, गङ्गा, षष्ठी, मंगलचण्डिका, तुलसी, मनसा, निद्रा, स्वधा, स्वाहा और दक्षिणा यह प्रकृतिका अंश हैं ॥ ७ ॥ इनका

पुण्यदायक श्रवण सुखकर चरित उसीके संग जीवोंका कर्मविपाक ॥ ८ ॥ एवं दुर्गा और राधाका अत्यन्त विस्तारित उदारचरितका क्रमानुसार संक्षेपसे वर्णन करूंगा ॥ ९ ॥ सम्प्रति सरस्वतिका वृत्तान्त कहता हूं सुनो हे मुनिवर जिन वीणा पाणीके प्रभावसे अज्ञानान्ध मूढपुरुषोंका हृदयाकाश भी ज्ञानालोकसे प्रकाशित होता है श्रीकृष्णने सबसे प्रथम उन्हीं देवी सरस्वतीकी पूजा भारतमें अवतीर्ण की ॥ ॥ १० ॥ कामरूपिणी कामुकी देवी सरस्वतीने राधाके जिह्वाग्रभागसे आविर्भूत होकर कामवश कृष्णकोही पति बनानेकी अभिलाषा की ॥ ११ ॥ सर्वान्तर्यामी श्रीकृष्ण तत्काल यह जानकर उन लोकमातासे परिणाम सुखकर सत्य और पथ्य-वचन कहने लगे ॥ १२ ॥ श्रीकृष्ण बोले हे पतिव्रते! मेरे अंशोत्पन्न चतुर्भुज नारायण युवा सुश्री और सर्वगुणान्वित हैं यही क्या! वरन् मेरेही समान हैं ॥ ॥ १३ ॥ वह ऐश्वरिक गुणसे विभूषित हैं अतएव स्त्रियोंके हृदयकी वासना विलक्षण जानते हैं और वासना पूर्णभी करते हैं उनके सौन्दर्यकी बात क्या कहूं? उनके शरीरमें करोड़ कामदेवकी लावण्यता क्रीड़ा करती है ॥ १४ ॥ हे कान्ते! और यदि मुझको पति बनाकर मेरे निकट वास करनेकी इच्छा करो तो यह तुमको कल्याणदायक नहीं है क्योंकि मेरे समीपस्थ राधा तुम्हारी अपेक्षा प्रबल है ॥ ॥ १५ ॥ यदि कोई पुरुष अपेक्षाकृत बलवान् हो तो वह आश्रितपुरुषकी अन्यसे रक्षा करनेमें समर्थ होसक्ता है किन्तु यदि उसकी अपेक्षा दुर्बल हो तो स्वयं असमर्थ होकर किस प्रकार दूसरेकी रक्षा कर सकता है ॥ १६ ॥ यद्यपि मैं सर्वेश्वर हूं और सबका शासन करता हूं किन्तु मुझमें राधाको शासन करनेकी सामर्थ्य नहीं है क्योंकि वह क्या प्रभाव? क्या रूप? क्या गुण? सर्वांशमें ही मेरे समान है ॥ १७ ॥ राधाको परित्याग करनेकी भी मुझमें सामर्थ्य नहीं है क्योंकि राधा मेरे प्राणकी अधिष्ठात्री देवता है अतएव कौन पुरुष अपना जीवन विसर्जन करनेमें समर्थ होता है? यद्यपि पुत्र सबके आदरकी सामग्री है किन्तु तो भी क्या प्राणोंसे अधिक प्रियतम होसकता है? ॥ १८ ॥ इस कारण हे भद्रे! तुम वैकुण्ठधाममें जाओ वहां तुमको कल्याणलाभ होगा तुम वैकुण्ठनाथको पतिपाकर चिरकाल सुखपूर्वक विहार करसकोगी ॥ १९ ॥ यद्यपि लक्ष्मी वहां वास करता है किन्तु वहभी तुम्हारे समान काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्यके वशीभूत नहीं हैं और क्या रूप, क्या गुण, क्या प्रभाव, सर्वांशमेंही तुम्हारे समान है ॥ २० ॥ अतएव उनके

संग परमसुखकसे काल व्यतीत करसकोगी वैकुण्ठनाथ हरिभी तुम दोनोंका ही समान आदर करेंगे॥ २१॥ विशेषतः मैं कहता हूं प्रति ब्रह्माण्डमेंही माघमासकी जो शुक्ला पंचमीके दिन विद्यारंभ होता है उस दिनके महामहोत्सवमें॥ २२॥ क्या मनुष्यगण, क्या मनुगण, क्या देवगण, क्या मुमुक्षु मुनि, क्या वसु, क्या योगी, क्या नाग, क्या सिद्ध, क्या गंधर्व, क्या राक्षस॥ २३॥ सभी जबतक महाप्रलय उपस्थित नहीं होती तबतक प्रति-कल्पकल्पमें भक्तिभावसे षोड़शोपचारद्वारा तुम्हारी पूजाकरेंगे॥ २४॥ सब जितेन्द्रिय और संयमी होकर घटमें वा पुस्तकमें तुमको आवाहन करके यजुर्वेदके काण्वशाखोक्त विधानसे ध्यान और स्तव पाठकरके तुम्हारी अर्चना करेंगे॥ २५॥ तुम्हारा कवच आठ प्रकार गंधद्रव्यद्वारा भोजपत्रपर लिख सुवर्णके तवीजमें मढ़ाय कंठमें वा दक्षिण भुजामें धारण करें॥ २६॥ विशेष करके विद्वान् पुरुष मात्रही पूजाकालके समय तुम्हारे स्तव पाठमें निरत होंगे इस प्रकार कहकर पूर्णब्रह्म श्रीकृष्णने स्वयं सरस्वती देवीकी पूजा करी॥ २७॥ उसी दिनसे ब्रह्मा, विष्णु और महादेव तथा अनन्त देव, धर्म, सनकादि मुनीन्द्रगण॥ २८॥ समस्त देव, समस्त मुनि, समस्त राजा और समस्त दानवोंके समाजने सरस्वती देवीकी पूजा आरंभ की है. हे वत्स नारद! इस प्रकार उन अनन्तकालस्थायिनी देवी सरस्वतीकी पूजा तीनों लोकमें प्रचलित हुई है॥ ॥ २९॥ नारदजी बोले, हे वेदविदाम्वर! सरस्वती पूजाकी श्रवण मनोहर पद्धति ध्यान, कवच, स्तोत्र और पूजाके उपयुक्त नैवेद्य, पुष्प और चन्दनादि उपचारका॥ ॥ ३०॥ विषय सुननेके लिये मेरे हृदयमें सदा महाकौतूहल विद्यमान् रहता है अतएव आप वह सब कहिये॥ ३१॥ नारायणने कहा हे वत्स नारद! यजुर्वेदके अन्तर्गत काण्वशाखामें जन्मदाता सरस्वतीकी पूजाविधि समन्वित जैसी पद्धति प्रचलित है वह कहता हूं सुनो॥ ३२॥ माघशुक्ला पंचमी वा विद्यारंभदिनके पहिले दिनसंयत हो॥ ३३॥ स्नानके पीछे नित्य कर्मका अनुष्ठान कर कण्वशाखोक्त विधानसे हो अथवा तंत्रोक्त विधानसे हो भक्तिपूर्वक घट स्थापन करै॥ ३४॥ इसके उपरान्त प्रथम उस घटमें गणपतिकी पूजा करके फिर जो ध्यान कहता हूं उसी ध्यानसे सरस्वतीकी भावना करके आवाहनपूर्वक फिर ध्यान पढ़कर षोडशो-पचारसे पूजा करै॥ ३५॥ हे भद्र! अब वेदमें वा तंत्रमें पूजाकी जिस प्रकार नैवेद्य निर्दिष्ट हुई है॥ ३६॥ अपने ज्ञानके अनुसार समस्त कहता हूं सुनो नवनीत, दधि, क्षीर, खीलैं, तिल, लड्डू॥ ३७॥ गन्ना, इक्षुरस, पकाहुआ गुड, मधु,

स्वतिक (मंगलपिष्टघृतयुक्त अन्न) शर्करा, सफेद धान्यके अक्षत, तंडुल, ॥ ३८ ॥ अस्विन्न शुक्लधान्यका चिपिटक (बनाहुआ पदार्थ) शुक्लमोदक, घृत सैंधवसंयुक्त हविष्यान्न ॥ ३९ ॥ यवचूर्ण वा गोधूमचूर्णका घृतसंयुक्त पिष्टक, कसार, स्वस्तिक पिष्टक (मंगलदायक मिष्टपदार्थ) स्वतिकयुक्त पकी हुई केलेकी फलीका पिष्टक ॥ ४० ॥ घृतसंयुक्त परमान्न, अमृततुल्य मिष्टान्न, नारिकेल, नारिकेलोदक, कसेरू, मूली ॥ ४१ ॥ अदरक, पकी हुई केलेकी फली अत्युत्कृष्ट श्रीफल, बदरीफल, (बेर) और यथाकाल यथा देशोत्पन्न अन्यान्य शुक्लवर्ण सुसंस्कृतफल प्रदान करै ॥ ४२ ॥ हे वत्स नारद ! सुगंध शुक्लपुष्प सुगंधित श्वेतचंदन नवीन शुक्लवस्त्र, मनोहर शंख ॥ ४३ ॥ सफेद फूलोंकी माला, शुक्लहार और सुंदर भूषण सरस्वतीको प्रदान करै हे महाभाग ! वेदमें सरस्वती देवीका जिस प्रकार भ्रमभंजन श्रवणमनोहर ध्यान निर्दिष्ट हुआ है ॥ ४४ ॥ वह कहता हूं सुनो जो सरस्वती शुक्लवर्ण हास्ययुक्त मनोहर हैं ॥ ४५ ॥ जिनकें शरीरकी प्रभासे करोड़ चन्द्रमाकी प्रभा भी मलिनता धारण करती है जिनका परिधान अग्निपरीक्षित विशुद्ध पट्टवस्त्र है जिनके हाथमें वीणायंत्र और पुस्तक है ॥ ४६ ॥ जो सर्वोत्कृष्ट रत्नजात नव भूषणोंसे विभूपित हैं ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरादि देवतागण सदा जिनकी पूजा करते हैं ॥ ॥ ४७ ॥ जो मुनीन्द्र ! मनु और मनुष्योंसे सर्वदा वंदित होती हैं मैं भक्तिभावसे उन्हीं शुक्लवर्ण हास्यानना मनोहरा सरस्वतीकी वन्दना करता हूं विचक्षण पुरुष इस प्रकार ध्यान करके सब द्रव्य मूलमंत्र उच्चारणपूर्वक प्रदान करै ॥ ४८ ॥ फिर स्तवपाठ और कवच धारणपूर्वक पृथ्वीमें गिरकर दण्डवत प्रणाम करै हे मुनिवर ! यह देवी सरस्वती जिनकी इष्टदेवता है उनकी तो बातही नहीं ॥ ४९ ॥ इसके अतिरिक्त सर्व साधारणको विद्यारम्भ दिवसमें और वर्षके अन्तमें माघशुक्ला पंचमीके दिन सरस्वतीकी पूजा करनी चाहिये वेदोक्त अष्टाक्षरयुक्त मंत्रही सरस्वतीका मूलमंत्र है ॥ ५० ॥ अथवा जो जिस मंत्रमें दीक्षित हों वही उनका मूलमंत्र है अतएव निज मूलमंत्रसे हो, वा सरस्वती शब्दमें चतुर्थी मिलाकर अग्नि पत्नी "स्वाहा" पर्यन्त शेष धरकर ॥ ५१ ॥ उसके पहिले प्रणव " श्रीं ह्रीं बीज उच्चारण पूर्वक उस मंत्रसे अर्थात् " श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा " इस अष्टाक्षर मंत्रसे सरस्वतीको सम्पूर्ण वस्तु प्रदान करै लक्ष्मीमायादिक यह मंत्रही कल्प वृक्ष है अर्थात् कल्पवृक्षके निकटसे जिस प्रकार सम्पूर्ण अभीष्ट लाभ होता है इस मंत्रसे भी उसी प्रकार सम्पूर्ण अभीष्ट लाभ होता है कृपानिधिनारायणने पूर्वकालके

समय ॥ ५२ ॥ पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें गंगाके तटपर वाल्मीकिको यह मंत्र प्रदान किया इसके उपरान्त भृगुने एक समय सूर्य ग्रहणके समय पुष्करतीर्थमें महर्षि शुक्राचार्यको ॥ ५३ ॥ मरीचिने चन्द्रग्रहणके समय बृहस्पतिको, बद्रिकाश्रममें ब्रह्माने भृगुको ॥ ५४ ॥ क्षीरोदसागरके तटपर जरत्कारुने आस्तिकको सुमेरुपर्वतमें विभाण्डकने धीमान् ऋष्यशृङ्गको ॥ ५५ ॥ शिवने कणाद और गौतमको सूर्यने याज्ञवल्क्य और कात्यायनको ॥ ५६ ॥ अनन्तदेवने पातालतलमें बलिसभामें पाणिनी धीमान् भरद्वाज और शाकटायनको यह मंत्र प्रदान किया था ॥५७॥ इस मंत्रको चार लक्षवार जपनेसेही मनुष्य सिद्ध होते हैं मंत्र सिद्ध होनेसेही बृहस्पतिके समान शक्तिशाली होसकता है ॥ ५८ ॥ पूर्वकालके समय विश्वस्रष्टा ब्रह्माजीने गंधमादन पर्वतमें भृगुको विश्वजय नामक जो कवच प्रदान किया था, उसको कहता हूं, सुनो ॥ ५९ ॥ एक समय भृगुने सर्वेश्वर सर्वपूजित ब्रह्मासे कहा, भृगु बोले हे ब्रह्मन्! आप सब वेदवेत्ताओंमें अग्रणी हैं वेदज्ञान विषयमें आपके समान दूसरा नहीं है ॥ ६० ॥ यही क्या! आपको अविदित कुछ भी नहीं है, अर्थात् आप सभी जानते हैं, क्योंकि समस्तही आपसे उत्पन्न हुआ है, अतएव हे प्रभो! जो निर्दोष और समस्त मंत्र गुणनिष्ठ है आप वही सर्वोत्कृष्ट विश्वविजयनामक सरस्वती कवच मेरे निकट कीर्त्तन कीजिये ॥ ६१ ॥ ब्रह्माजी बोले हे वत्स! तुमने जो श्रवण मनोहर वेदविहित वेद पूजित सर्वाभीष्ट प्रद सरस्वतीकवचको पूछा सो कहता हूं सुनो ॥ ६२ ॥ सबसे पहले रासेश्वर विभु श्रीकृष्णने गोलोक धाममें वृन्दावन नामक अरण्यमें रासोत्सवके समय रासमण्डलमें वह सरस्वती कवच मुझसे कहा था ॥ ६३ ॥ यह कवच अतीव गोपनीय और कल्पवृक्षकी समान अश्रुत अद्भुत मंत्रोंसे परिपूर्ण है ॥ ६४ ॥ यह कवच पाठ और धारण करके बृहस्पति बुद्धिवेत्ता विषयमें अग्रणी हुए हैं इसी कवचके बलसे शुक्राचार्यने दैत्योंके निकट प्रधानता लाभ की है ॥ ६५ ॥ इसी कवचके पाठसे मुनिवर वाल्मीकिने वाग्मिता लाभ करके कवीन्द्र पदमें आरोहण किया है स्वायंभुवमनु इसको धारण करके सर्वत्र समादृत हुए हैं ॥ ६६ ॥ कणाद, गौतम, कण्व पाणिनी, शाकटायन, दक्ष, कात्यायन, यह सभी इस कवचके प्रभावसे ग्रंथकार पदमें अभिषिक्त हुए हैं ॥ ६७ ॥ कृष्णद्वैपायन वेदव्यासने इस कवचको धारण करके वेदविभाग और अठारह पुराणकी रचनाकी है॥ ६८॥शातातप,संवर्त्त-

वसिष्ठ पराशर और याज्ञवल्क्य सरस्वती कवचको धारण और पाठ करके ग्रंथकार हुए हैं॥ ६९॥ ऋष्यशृंग, भरद्वाज, आस्तीक,देवल, जैगीषव्य और ययाति इन सबने इसकेही बलसे सर्वत्र समान आदर लाभ किया है ॥ ७० ॥ हे द्विजवर! प्रजापति स्वयं इस कवचके ऋषि बृहती इसका छन्द और शारदा अम्बिका इसकी अधिष्ठात्री देवता है ॥ ७१ ॥ क्या तत्वार्थज्ञान क्या प्रयोजन सिद्धि क्या समस्त कविता सर्वत्र इसका विनियोग होता है ॥ ७२ ॥ श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा सम्यक् प्रकारसे मेरे शिरकी रक्षा करो श्रीं वाग्देवतायै स्वाहा मेरे कपालकी ॥ ७३ ॥ ओं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा सर्वदा मेरे दोनों कर्णकी औं श्रीं ह्रीं भगवत्यै सरस्वत्यै स्वाहा सर्वदा मेरे दोनों नेत्र ॥ ७४ ॥ ऐं ह्रीं वाग्वादिन्यै स्वाहा सर्वदा मेरी नासिकाकी ॐ ह्रीं वियाधिष्ठात्र्यै देव्यै स्वाहा सदा मेरे ओष्ठकी ॥ ७५ ॥ ॐ श्रीं ह्रीं ब्राह्म्यै स्वाहा मेरी दन्तपंक्तिऐं यह एकाक्षरमंत्र सदा मेरे कंठकी ॥ ७६ ॥ ॐ श्रीं ह्रीं मेरी ग्रीवाकी श्रीं मेरे दोनों कंधेकी ॐ ह्रीं वियाधिष्ठात्री देव्यै स्वाहा सदा मेरे वक्षस्थल ॥७७॥ ॐ ह्रीं वियाधिस्वरूपायै स्वाहा मेरी नाभिकी ॐ ह्रीं क्लीं वाण्यै स्वाहा मेरे दोनों हाथोंकी ॥ ७८ ॥ ॐ सर्ववर्णात्मिकायै स्वाहा मेरे चरणयुगल और ॐ वागधिष्ठात्र्यै देव्यै स्वाहा मेरे सर्वाङ्गकी सदा रक्षा करै ॥ ७९ ॥ ॐ सर्वकण्ठवासिन्यै स्वाहा मेरे पूर्वदिक् ॐ सर्वजिह्वाग्रवासिन्यैस्वाहा मेरे अग्निकोण ॥ ८० ॥ ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सरस्वत्यै बुधजनन्यै स्वाहा मेरे दक्षिणदिक् ॥ ८१ ॥ ऐं ह्रीं श्रीं यह त्र्यक्षरमंत्र मेरे नैर्ऋतकोण ॐ ऐं जिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहा मेरे पश्चिमदिक् ॥ ८२ ॥ ॐ सर्वाम्बिकायै स्वाहा मेरे वायुकोण ॐ ऐं श्रीं क्लीं गद्यवासिन्यै स्वाहा मेरे उत्तरदिक् ॥ ८३ ॥ ऐं सर्वशास्त्रवासिन्यै स्वाहा मेरे ईशानकोण ॐ ह्रीं सर्वपूजितायै स्वाहा मेरे ऊर्द्ध्वभाग ॥ ८४ ॥ ह्रीं पुस्तकवासिन्यै स्वाहा मेरे अधोभाग और ॐ ग्रंथबीजस्वरूपायै स्वाहा मेरे समस्त दिक्की रक्षा करै ॥ ८५ ॥ हे वत्स नारद! यह मंत्रशरीर ब्रह्मस्वरूप विश्वजय नामक कवच तुमसे कहा ॥ ८६ ॥ पूर्व कालके समय मैंने यह कवच गंधमादनपर्वतमें धर्मदेवके मुखसे सुना था अब अतिशय स्नेह होनेके कारण तुमसे कहा किन्तु यह कवच कभी किसीके निकट न कहना ॥ ८७ ॥ वस्त्र अलंकार और चन्दनद्वारा यथाविधि गुरुदेवकी अर्चना करके गुरुदेवके चरणमें दण्डवत्प्रणामपूर्वक यह कवच धारण करै॥ ८८॥ फिर लक्षवार जप करनेसे कवच सिद्ध होता है कवचधारी पुरुष कवचके सिद्ध

होनेसेही बृहस्पतिके समान बुद्धिमान् ॥८९॥ वाग्मी कवीन्द्र और त्रैलोक्यविजयी होता है अधिक क्या इस कवचके प्रभावसे संपूर्ण जय करनेमें समर्थ होता है ॥ ९० ॥ हे मुने ! मैं ने तुमसे यह काण्वशाखोक्तकवचका विषय कहा, और पूजा विधि ध्यान और वन्दनादिका विषय वर्णन करता हूं सुनो ॥ ९१ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ५.

नारायणने कहा हे वत्स नारद ! पूर्वकालके समय ऋषिवर याज्ञवल्कने जिस स्तोत्रसे वाग्देवी सरस्वतीका स्तव किया था इस समय सर्वकामप्रद उन्हीं सरस्वतीका स्तवकीर्त्तन करता हूं सुनो ॥ १ ॥ मुनिवर याज्ञवल्क्य गुरुशापके कारण समस्त वेदादि भूलकर अत्यन्त दुःखित चित्तसे पुण्यप्रद रविस्थानमें गये ॥ २ ॥ वहां कुछ काल तपस्याके पीछे सूर्यदेवके नयनगोचर होनेपर अति शोकमें पीडित हो वारंवार रोदन करते करते उनके स्तुतिमें प्रवृत्त हुए ॥ ३ ॥ तब भगवान् सूर्यने प्रसन्नहोकर उनको संपूर्ण वेद और वेदाङ्गशिक्षाप्रदानपूर्वक कहा हे वत्स ! अब तुम स्मरण शक्तिप्राप्तिके लिये भक्तिसहित वाग्देवीका स्तव करो ॥ ४ ॥ दिवाकर यह कहते ही वहांसे अन्तर्धान होगये इधर मुनिवर याज्ञवल्क्य स्नानकरके भक्तिपूर्वक मस्तक झुकाय वाग्देवीके स्तवपाठमें प्रवृत्त हुए ॥ ५ ॥ याज्ञवल्क्यने कहा हे मातः ! गुरुके शापसे मेरी मति भ्रंश हुई है मैं विद्याहीन और तेजहीन होगया हूं मेरे दुःखकी अवधि नहीं है हे जगज्जननी ! मुझपर कृपा करो ॥६ ॥ मुझको ज्ञान, विद्या, स्मृति, शिष्य-बोधिनी शक्ति, ग्रन्थकर्तृत्व और प्रतिभासम्पन्नसुशिष्यत्व प्रदान करो ॥७॥ जिससे सज्जनोंके समाजमें मेरीभी भलीभांति प्रतिभा और विचारशक्ति प्रसारित हो दैवके दुर्विपाकसे मेरा जो कुछ नष्ट हुआ है ॥ ८ ॥ वह भस्मराशिसमुद्भत बीजांकुरकी समान संपूर्ण मेरे उत्पादिकाशक्तिशून्य चित्तक्षेत्रमें उदय होकर पुनर्वार नवीनभाव धारण करे हे मातः ! तुमही ब्रह्मस्वरूपिणी तुमही सर्वश्रेष्ठ तुमही ज्योतिःस्वरूपा तुमही सनातनी॥९॥और तुमही समस्तविद्याकी अधिष्ठात्री देवीहो इस कारण तुमको वारंवार नमस्कार करता हूं हे मातः ! अनुस्वार विसर्ग और चन्द्रबिन्दु जिन वर्णका आश्रय करके रहते हैं॥१०॥तुम वही वर्णस्वरूपिणी हो अतएव तुमको नमस्कारहै. हे मातः !

तुमही शास्त्रकी व्याख्यास्वरूप और तुमही समस्त व्याख्याकी अधिष्ठात्री देवी हो ११॥ तुम्हारे विना गणितविद्याके पारदर्शी भी किसीविषयकी गणना करनेमें समर्थ नहीं हैं अत एव तुम कालगणनाकी संख्यास्वरूप हो ॥ १२ ॥ तुमही मनुष्योंका भ्रमभंजन करनेवाली सिद्धान्तशक्तिरूप हो अत एव तुमको वारंवार नमस्कार है हेमातः! तुमही स्मृतिशक्ति, तुमही ज्ञानशक्ति, तुमही बुद्धिशक्ति, स्वरूपिणी हो॥ १३ ॥ तुमही प्रतिभाशक्ति और तुमही कल्पनाशक्ति हो अतएव वारंवार तुमको प्रणाम करते हैं स्वयं सनत्कुमारने भी जब भ्रमयुक्त होकर ब्रह्माजीसे प्रश्न किया ॥ १४ ॥ तब वह उसका सिद्धान्त करनेमें असमर्थ होकर मूककी समान निरुत्तर रहे तब परमात्मरूपी परमेश्वर श्रीकृष्णने वहां उपस्थित होकर ॥ १५ ॥ कहा हे प्रजापते ! तुम अभीष्टदात्री वागीश्वरीका स्तव करो तो तुम्हारा सिद्धान्त स्थिर होगा तब चतुराननने परमेश्वरकी आज्ञानुसार देवी सरस्वतीका स्तव करके ॥ १६ ॥ उनके प्रसादबलसे अति उत्तम सिद्धान्त स्थिर किया एक दिन वसुन्धराने संदिग्ध चित्तसे अनन्त देवके निकट प्रश्न किया ॥ १७ ॥ तब वह भी सिद्धान्त स्थिरकरननेमें असमर्थ होकर मूककी समान निरुत्तर रहे अन्तमें महाभीत हो कश्यपकी आज्ञानुसार तुम्हारा स्तव करनेसे ॥ १८ ॥ उनका भ्रम दूर होकर सिद्धान्त स्थिर हुआ जब श्रीवेदव्यासजीने वाल्मीकिके निकट जायकर पुराणसूत्रका विषय पूँछा ॥ १९ ॥ तव मुनिवर वाल्मीकिने हतबुद्धि होकर जगत्की मातास्वरूप तुमको स्मरण किया तुम्हारे प्रसादसे ज्ञानज्योतिके प्रकाशित होनेपर ऋषिवरका भ्रमान्धकार दूर हुआ ॥ ॥२०॥ तब वह श्रीवेदव्यासके किये प्रश्नके विषयका सिद्धान्त स्थिर करनेमें समर्थ हुए तब कृष्णांशोत्पन्न श्रीव्यासदेवजीने महर्षि वाल्मीकिजीके मुखसे पुराणसूत्रका विषय सुनकर तुम्हारी महिमा जानी॥ २१ ॥ और फिर पुष्करतीर्थमें जाय शत वर्षपर्यन्त शान्तिदात्री स्वरूप तुम्हारी आराधनामें प्रवृत्त हुए इसके पीछे तुम्हारे प्रसन्न होकर उनको वरदेनेसे वह कवीन्द्रपदवीमें आरूढ हुए ॥ २२ ॥ फिर उन्होंने वेदविभाग और अठारह पुराणोंकी रचना करी जब महेन्द्रने सदाशिवसे तत्वज्ञानकी कथा पूछी ॥ २३ ॥ तव सदाशिवने क्षणकाल तुम्हारी चिन्ताकरके तत्वज्ञानका उपदेश प्रदान किया फिर एक समय देवराजने सुरगुरु बृहस्पतिजीके निकट शब्दशास्त्र विषयक प्रश्न पूँछा ॥ २४ ॥ तव उन्होंने उसके उत्तर देनेमें असमर्थ होकर पुष्कर तीर्थमें जाय देवपरिमाणसे हजारवर्षपर्यन्त तुम्हारी आराधना करके तुमसे वर पाया॥

॥ २५ ॥ फिर दिव्य सहस्र वर्षपर्यन्त महेन्द्रको शब्दशास्त्र और शब्दशास्त्रार्थ विषयक उपदेश प्रदान करनेमें समर्थ हुए हे सुरेश्वरी जो मुनिगण शिष्यको शिक्षा प्रदान करते हैं ॥ २६ ॥ जो स्वयं अध्ययनमें प्रवृत्त होते हैं वह कोई भी प्रथम तुम्हारा स्मरण विना किये अपने कार्यमें प्रवृत्त नहीं होसक्के कितनेही मुनीन्द्र कितने ही मनु ॥ २७ ॥ कितने ही दानव कितने ही दैत्येन्द्र कितने ही अमर यही क्या ब्रह्मा विष्णु और महादेव पर्यन्त तुम्हारी पूजा और तुम्हारा ही स्तव करते हैं किन्तु विष्णु जब सहस्रमुखसे महादेव पांचमुखसे और ब्रह्मा चारमुखसे ॥ २८ ॥ तुम्हारा स्तव करनेमें जड़ीभूत होते हैं तो फिर मैं सामान्य मनुष्य एकमुखसे क्या स्तव करूं कृतोपवास महर्षि याज्ञवल्क्यने इसप्रकार कहकर भक्तिभावसे मस्तक झुकाय॥ २९॥ देवीको प्रणाम किया और क्षणक्षणमें रुदन करनेलगे इस समय फिर उन ज्योतिरूपा महामाया सरस्वतीसे नहीं रहागया उन्होंने उनके समीप आनकर कहा ॥ ३० ॥ " हे वत्स ! तुम सुकवीन्द्र होओ " इसप्रकार वर दे वैकुण्ठधामको चलीं गईं जो याज्ञवल्क्यकृत इस सरस्वतीस्तवका पाठकरते हैं ॥ ३१ ॥ वह सुकवि वाग्मी और बृहस्पतिकी समान बुद्धिशक्तिसंपन्न हो सक्ते हैं यदि महामूर्ख मनुष्य भी एक वर्ष-तक यह वाणीस्तवपाठ करता है ॥ ३२ ॥ तो वह सहजमें ही सुपण्डित मेधावी और सुकवि होनेमें समर्थ होता है ॥ ३३ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

नारायणने कहा हे वत्स नारद ! सरस्वती सदाही वैकुण्ठमें नारायणके निकट वास करतीं हैं एक दिन गंगाके सहित कलह उपस्थित होनेपर उनके शापके कारण अंशद्वारा सरितरूपसे भारतमें अवतीर्ण हुईं ॥ १ ॥ यह भारतमें अतिपावनी पुण्य-रूपा और पवित्र तीर्थस्वरूपिणी हैं पुण्यवान् मनुष्य इनके तटमें वास करके निरन्तर इनकी सेवा करते हैं ॥ २ ॥ यह तपस्वियोंकी तपस्या और तपका फलस्वरूप हैं जो पापस्वरूप काष्ठराशिको आहरण करता है, यह प्रज्वलित हुताशनरूप धारण करके उसकी उस पापरूप काष्ठराशिको भस्मकरतीं हैं ॥ ३ ॥ भारतमें जो ज्ञान सहित सरस्वतीके जलमें कलेवर त्याग करते हैं, वह सदा वैकुण्ठके मध्य हरिकी

सभामें वास करसक्ते हैं ॥ ४ ॥ भारतमें जो पापाचरणकरके सरस्वतीजलमें स्नान करते हैं, वह लीलापूर्वकही अपने किये सब पापोंसे छूटकर दीर्घकालतक विष्णुलोकमें वास करते हैं ॥ ५ ॥ क्या चातुर्मास्यका समय, क्या पूर्णिमा, क्या अक्षया, क्या दिनक्षयसमय, क्या व्यतीपातयोग, क्या ग्रहणकाल, क्या अन्यपुण्यदिन ॥ ६ ॥ वा आनुषङ्गिक जिस किसी कारणसे हो अधिक क्या अश्रद्धापूर्वक होनेपर भी सरस्वतीके जलमें केवल एकवार स्नान करनेसे वैकुण्ठधाममें जाकर श्रीहरिकी स्वरूपता लाभ करनेमें समर्थ होते हैं ॥ ७ ॥ एक मासतक सरस्वतीके तटपर वास करके सरस्वतीका मंत्र जपनेसे महामूर्ख पुरुष भी कवीन्द्रपदमें प्रतिष्ठित होसकता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८ ॥ एकवार मस्तक मुण्डन करके सरस्वतीके तटपर वास करके जो पुरुष प्रतिदिन उसमें स्नान करता है उसको फिर गर्भकी यंत्रणा भोगनी नहीं होती ॥ ९ ॥ हे वत्सनारद ! यह तो मैंने भारतके असीमगुणोंमें सुखप्रद कामप्रद और सारभूत कुछेक वर्णन किया, अब और क्या सुननेकी इच्छा है ? सो कहो ॥ १० ॥ सूतजीने कहा हे शौनक ! मुनिवर नारदने नारायणके मुखसे इसप्रकार सुनकर सन्देह दूर होनेकेलिये फिर उसी समय जो प्रश्न पूछा था, सो कहता हूं सुनो ॥ ११ ॥ नारदजी बोले हे प्रभो ! सरस्वती देवी गंगाके संग कलह करके उनके शापसे किसप्रकार स्वीय अंशद्वारा भारतमें पुण्यप्रद संवित् रूपसे अवतीर्ण हुई ॥ १२ ॥ यह श्रुतिसार वृत्तान्त सुननेके लिये मेरा चित्त अत्यन्त उत्सुक हुआ है आपका वचनामृत पान करके किसी प्रकारभी मुझको तृप्ति नहीं होती फलतः श्रेयो लाभमें किसका चित्त चारितार्थता लाभ कर सकता है ? ॥ १३ ॥ सरस्वती सामान्य नारी नहीं है, त्रैलोक्यमें सभी उसकी पूजा करते हैं और गंगाभी सत्वगुणप्रधान हैं अतएव उन्होंने सर्वदा सबको पुण्य और शुभदात्री होकर सरस्वतीको किसलिये शाप दिया ॥ १४ ॥ दोनोंही तेजस्विनी थीं, अतएव बलवत् दोनों पक्षके विवादका कारण सुननेसे कानोंमें अमृतधारा वर्षण करता है विशेष कर पुराणमें यह सब वृत्तान्त अत्यन्त दुर्लभ है अतएव आप कृपा करके मुझसे वर्णन कीजिये ॥ १५ ॥ नारायणने कहा हे वत्सनारद ! जिस कथाके सुननेसे संपूर्ण पाप दूर होते हैं वही पुरातन कथा वर्णन करता हूं सुनो ॥ १६ ॥ लक्ष्मी सरस्वती और गंगा यह तीनो नारायणके निकट समान प्रेमसे वास करती हैं ॥ १७ ॥ इनमें गंगा एक दिन हास्य वदन

हो उत्सुक चित्तसे वारंवार नारायणके प्रति कटाक्ष विक्षेप करनेलगी ॥ १८ ॥ प्रभु नारायणभी यह देखकर चकितकी समान गंगाकी और दृष्टिपात करके कुछेक हँसे यह देखकर लक्ष्मीजीने तो कुछ अपराध नहीं माना किन्तु सरस्वती महाक्रोधित होगईं ॥ १९ ॥ यद्यपि सत्वगुणयुक्त लक्ष्मीजीने हास्यमुख हो उन क्रुद्ध सरस्वतीको अनेक प्रकारसे समझाया किन्तु तो भी किसीप्रकार शान्त न हुईं ॥ २० ॥ बरन क्रोधसे उनके वदनमण्डलने लोहितराग धारण किया दोनों नेत्र रक्तवर्ण होगये वह क्रोधके वश हो कांपने लगी उनके ओष्ठ बराबर प्रस्फुरित होनेलगे तब भर्तासे कहने लगी ॥ २१ ॥ जो स्वामी सज्जन धार्मिक और गुणवान् है वह सब भार्याओंकोही समाननेत्रोंसे देखते हैं किन्तु धूर्तोंके पक्षमें इसके विपरीत है ॥ २२ ॥ हे गदाधर! गंगाके प्रतिही आपका प्रणय पक्षपात है लक्ष्मीके प्रतिभी उससे न्यून नहीं है केवल मैंही उससे वंचित हूं॥२३॥इसीकारण गंगा और लक्ष्मीमें परस्पर प्रणय है,क्योंकि आपभी लक्ष्मीको प्यार करते हैं अतएव लक्ष्मी यह विपरीताचरण क्यों न सहे ? ॥ २४ ॥ मैं हतभाग्य हूं मेरे जीवनसे क्या प्रयोजन है कारण कि जो स्त्री पतिके प्रेमसे वंचित है उसका जीवन विडम्बना मात्र है ॥ २५ ॥ जो मनीषिगण आपको सत्वगुणका अधिष्ठाता कहकर निर्देश करते हैं वह कभी पण्डितपदवाच्य होनेके योग्य नहीं हैं वह नितान्त मूर्ख हैं, उनको कुछभी वेदज्ञान नहीं है वह आपकी मनोवृत्ति जाननेमें एकान्त असमर्थ है ॥ २६ ॥ हे वत्स नारद ! नारायण सरस्वतीके वचन सुन और उनको अत्यन्त कोपयुक्त जान क्षण काल चिन्ताके पीछे अन्तःपुरसे बाहर गये ॥ २७ ॥ इस ओर वागीश्वरी सरस्वती नारायणके जानेसे निर्भयचित्त हो क्रोधमें भर असहनीय कटुवचनोंके द्वारा गंगासे कहनेलगी ॥ २८ ॥ रे निर्लज्जे! कामातुरे ! तू स्वामीके सौभाग्यका गर्व करती है. स्वामी तेरे प्रति अत्यन्त प्रणय प्रकाश करतेहैं. वही जताती है? ॥ २९ ॥ तू बडी पतिसोहागिनी हुई है, आज तेरा दर्प चूर्ण करूंगी ! आज देखतीहूं तेरे हरि मेरा क्या करेंगे ? ॥ ३० ॥ यह कहतेही जब सरस्वती गंगाके केशाकर्षण करने अर्थात् बाल खेंचनेमें उद्यत हुई, तब लक्ष्मीने दोनोंको मध्यवर्तिनी होकर निवारण किया ॥ ३१ ॥ वाणी (सरस्वती) गंगाके बाधा देनेसे इतनी प्रबल होगई कि तिस काल उसको कुछभी हिताहितका विचार नहीं रहा, बरन उसने क्रोधसे अधीर हो उसको यह कहकर शाप दिया कि हे पद्मे! तुमने जब गंगाके अन्यान्य आचरण वा पक्षपात वशसे कुछ बात न कहकर

वृक्ष तथा सारित्‌की समान जड़भावसे स्थित रही तो मैं कहती हूं कि शीघ्र तुमको वृक्ष और सारित्स्वरूप धारण करना होगा इसमें सन्देह नहीं ॥ ३२ ॥ ॥ ३३ ॥ लक्ष्मीने सरस्वतीकी बात सुनकर कुछभी क्रोध नहीं किया केवल दुःखितहो सरस्वतीका हाथ पकड़कर निस्तब्धभावसे अवस्थान करनेलगी ॥ ३४ ॥ इस समय गंगाकेभी कोपसे वारंवार ओष्ठाधर कांपनेलगे फिर लाल लाल नेत्र कर सरस्वतीको क्रोधमें अत्यन्त उन्मत्त देख लक्ष्मीसे कहा ॥ ३५ ॥ गंगा बोली हे पद्मे ! तुम इस दुष्टस्वभावा मुखराको छोडदो, यह दुःशीला वाचाल हमारा क्या करेगी? ॥ ॥ ३६ ॥ यह वाक्यकी अधिष्ठात्री होनेसे केवल सदा कलहही करतीहै उस दुर्मुखीका जितना प्रभाव है जितनी शक्ति है ॥ ३७ ॥ मेरे संग विवाद करके देखले वह अपना बल कितना और मेरा बल कितना है ? यह जाननेकी इच्छा करती है ॥ ३८ ॥ अतएव उपेक्षाको छोड़ सब हम दोनों पराक्रम और प्रभाव देखो इसप्रकार कहकर गंगाने सरस्वतीको शाप देनेमें उद्यत हो लक्ष्मीसे कहा ॥ ३९ ॥ हे सखि पद्मे ! उसने जब तुमको सारिद्रूपिणी होनेका शाप दिया तब मैंभी कहती हूं कि, जहां पापी हैं वहां मृत्यु लोक जो नीचे है गमन करै ॥ ४० ॥ उसकोभी सरित्‌रूप धारण करके पापियोंके निवास स्थान मर्त्यलोक जाकर कलियुगमें उनके पापग्रहण करना हो यह सुनकर सरस्वतीने भी शाप दिया ॥ ४१ ॥ तुमभी पृथ्वीमें जाकर पापियोंका पाप ग्रहणकरो. हे वत्स नारद! इसीप्रकार कलह होहीरहाथा कि इसी समय भगवान्‌ आये ॥ ४२ ॥ चतुर्भुजमूर्ति सर्वज्ञ भगवान् हरि चतुर्भुज चार पार्षदोंके सहित वहां आनकर उपस्थितहुए और सरस्वतीको हाथ पकड़ हृदयसे लगाकर ॥४३॥ पुराना रहस्य कहनेलगे तब वह अपने २ शापदान और कलहका कारण जानकर ॥ ४४ ॥ अत्यन्त दुःखित हुईं इसीसमय भगवान् हरि समयोचित वचनद्वारा एकादिक्रमसे उनसे सब कहनेलगे भगवान् बोले हे लक्ष्मि ! तुम अंशसे मर्त्यलोकमें धर्मध्वज राजाके घर ॥ ४५ ॥ अयोनिसंभवा कन्यारूपमें जन्म लोगी वहां भाग्यके दोषसे तुमको वृक्षत्व लाभकरना होगा ॥ ४६ ॥ वहां मेरे अंशसे उत्पन्न असुरेन्द्र शङ्खचूडनामक तुम्हारा पाणिग्रहण करेगा फिर तुम यहां आनकर जिस प्रकार मेरी पत्नी हैं उसी प्रकार रहोगी इसमें सन्देह नहीं ॥ ४७ ॥ भारतमें जाकर तुम त्रैलोक्यपाविनी तुलसीनामसे विख्यात होगी हे वरानने ! शीघ्र भारतमें जाय अंशके द्वारा सारितरूपसे ॥ ४८ ॥ अवतीर्ण होकर पद्मावती नामसे विख्यात

होओ हे गंगे ! तुमको भी सरस्वतीके शापसे मेरे अंशसे ॥ ४९ ॥ भारतमें भारतवासियोंके पाप दूर करनेको विश्वपाविनी सरित्रूपसे अवतीर्ण होना पडेगा भगीरथके तपसे अनेक आराधना करके तुमको लेजानेसे ॥ ५० ॥ तुम भूलोकमें पूततमा भागीरथी नामसे विख्यात होगी वहां मेरे अंशसम्भूत समुद्र ॥ ५१ ॥ और मेरे अंशसे उत्पन्न राजा शन्तनु तुम्हारे पति होंगे. हे भारती ! गंगाके शापसे तुमभी भारतमें जाकर अंशसे अवतीर्ण होओ ॥ ५२ ॥ दोनों सपत्नीके सहित कलहका फल भोगो हे भद्रे ! तुम स्वयं पूर्णरूपसे ब्रह्मसदनमें जाकर ब्रह्माकी पत्नी होओ ॥ ५३ ॥ गंगाभी पूर्णरूपसे शिवके समीप जाय और पद्मा मेरेही निकट रहे पद्मा अत्यन्त शान्तप्रकृति क्रोधरहित मद्भक्तिपरायण और सत्वगुणावलम्बिनी है ॥ ५४ ॥ पद्माकी समान साध्वी सच्चरित्रा भाग्यवती और धर्मचारिणी अतिविरल हैं जो स्त्रियें पद्माके अंशसे जन्म ग्रहण करतीं हैं वह सब अतिशय धार्मिका और पतिपरायण होती हैं ॥ ५५ ॥ अधिक क्या ? शान्तस्वभाव और सुशीलकामिनियोंका सर्वत्र समान आदर होताहै क्या तीन भार्या क्या तीन भृत्य क्या तीन बांधव ॥ ५६ ॥ भिन्न स्वभावके तीन जन एकत्र बैठालना निषिद्ध है और वेदविरुद्ध है क्योंकि तीन जन कभी एकस्वभावके नहीं होसकते अतएव भिन्नप्रकृति तीन जनोंका एकत्र वास कभी मंगलदायक नहीं है जिस घरमें पुरुषकी समान स्त्रियोंका आधिपत्य प्रबल है और पुरुष स्त्रीके वशीभूत हैं ॥ ५७ ॥ उनका जन्म निष्फल है और पद पदमें उनको अशुभ संघटित होते हैं जिसकी स्त्री मुखदुष्ट योनिदुष्ट और कलहप्रिय है ॥ ५८ ॥ उसको निबिड़वनमें चलाजाना ही श्रेष्ठ है. क्योंकि ऐसे व्यक्तिके पक्षमें महावन घरकी अपेक्षा सुखका स्थान होता है वह मनुष्य घरमें पैर धोनेका जल बैठनेका स्थान भक्षणार्थफल इत्यादि कुछ नहीं पाता ॥ ५९ ॥ किन्तु वनमें उसको किसी वस्तुका अभाव नहीं होता दुष्टा स्त्रीके संग रहनेकी अपेक्षा हिंसक जंतुओंमें वास वा अग्निमें प्रवेश करना उत्तम है ॥ ६० ॥ परन्तु दुष्ट स्त्रीके समीप अवश्य घोर दुःख है हे वरानने ! यद्यपि व्याधियंत्रण (रोगजनित कष्ट) वा विषकी ज्वाला सहन होसक्ती है ॥ ६१ ॥ किन्तु दुष्टा स्त्रीके वाक्यकी यंत्रण नहीं सही जाती अधिक क्या उसकी अपेक्षा मृत्युही श्रेष्ठ है जो स्त्रीके अत्यन्त वशीभूत हैं, यह निश्चय जानो कि जबतक वह चितामें नहीं जायगे तबतक उनके मन शान्त न होंगे ॥ ६२ ॥ वह प्रतिदिन जिस कार्यका अनुष्ठान करते हैं उससे

किसी प्रकार वह फलभागिनी नहीं होसक्ते उनका इस लोक वा परलोक कहीं भी यश नहीं है बरन चरमावस्थामें नरक प्राप्त होता है ॥ ६३ ॥ जिसका यश वा कीर्ति नहीं है उसका जीवन विडम्बनामात्र है बहुत सपत्नियोंका एकत्र रहना कभी मंगलका निमित्त नहीं है ॥ ६४ ॥ केवल एक स्त्री ग्रहण करके जब मनुष्य सुखी नहीं होसकता तब बहुत भार्यावाले पुरुषको जो कष्ट होता है उसमें फिर कहनाही क्या है. हे गंगे! तुम शिवके समीप और सरस्वती! तुम ब्रह्माके घर जाओ ॥ ६५ ॥ केवल कमलवासिनी सुशीला कमला मेरे निकट रहे जिसकी पत्नी पतिव्रता सुशीला और आज्ञा कारिणी है ॥ ६६ ॥ उसको इस लोकमें सुख और धर्म एवं परकालमें मुक्तिलाभ होता है फलतः जिसकी स्त्री पतिव्रता है वह सर्वान्तःकरणसे सुख भोगकरता है यही नहीं बरन वह जीवन्मुक्त है ॥ ६७ ॥ और जिसकी स्त्री दुश्चारित्रा है इस लोकमें सर्वान्तःकरणके सहित उसको केवल दुःखही भोगना पड़ता है अधिक क्या उसको जीवन्मृत कहनेसे भी अन्योक्ति नहीं होती ॥ ६८ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ७.

नारायणने कहा हे वत्स नारद ! जब जगन्नाथ श्रीकृष्ण इसप्रकार कहकर मौन (चुप) हुए, तब लक्ष्मी सरस्वती और गंगा परस्परको आलिंगन करके अत्यन्त रुदन करनेलगीं ॥ १ ॥ अनन्तर वह सब जगदीश्वर श्रीकृष्णकी ओर देखकर कंपितगात्र हो शोक और भयसे आँसु बहाती हुई क्रमानुसार उनसे अपने मनका भाव कहने लगीं ॥ २ ॥ प्रथम तो सरस्वतीने कहा हे नाथ ! हमारे इस आजन्म पर्यन्त क्लेशप्रद अतिकठोर शापके छूटनेका क्या उपाय है ? अबलागण क्या कभी अनुकूलपतिके त्यागनेपर जीवन धारण करसकतीं हैं ॥ ३ ॥ हे नाथ ! मैं निश्चय कहती हूं कि, मैं भारतमें जाकर योगावलम्बनपूर्वक इस देहको विसर्जन करूंगी, महात्मा लोग निःसंदेह सदा सबकी रक्षा करते हैं ॥ ४ ॥ फिर गंगाने कहा हे जगत्पते ! आपने किस अपराधसे मुझको त्याग किया ? मैं शरीरपरित्याग करूंगी इस समय आप इस दोषविहीन रमणीके वध भागी हुए ॥ ५ ॥ इस भूमण्डलमें जो मनुष्य

निरपराध स्त्रीको परित्याग करता है वह यद्यपि सर्वेश्वर हो किन्तु तो भी उसको नरकगामी होना पड़ता है ॥ ६ ॥ पद्माने कहा हे नाथ ! आप पूर्णसत्वगुणस्वरूप है. क्या आश्चर्य है कि, आपके शरीरमें किसप्रकार क्रोधका संचार हुआ ? जो हो आप सरस्वती और गंगापर प्रसन्न हूजिये. क्योंकि क्षमाही सत्पात्रका प्रधान गुण है ॥ ७ ॥ और सरस्वतीने जब मुझको शाप दिया है तब मैं इसी समय भारतमें जानेको प्रस्तुतहूं किन्तु मुझको कितने कालतक वहां रहना होगा ? कितने दिनोंमें आपके चरणकमलोंका दर्शन प्राप्त होगा ॥ ८ ॥ पापीगण सदा स्नान और अवगाहनद्वारा मेरे जलमें पापरूपी कीचड धोवेंगे तब किस उपायद्वारा उससे छूटकर फिर आपके चरणकमलोंका दर्शन पाऊंगी ॥ ९ ॥ जब मैं अंशसे धर्मध्वजकी दुहिता हूंगी तब मुझको कितने दिन पीछे आपका दर्शन प्राप्त होगा ॥ १० ॥ कितने दिन मुझको आपका अधिष्ठानभूत तुलसीवृक्षरूप धारण करके अवस्थान करना होगा ? हे कृपानिधे ! कहो कितने दिनोंमें मेरा उद्धार करोगे ॥ ११ ॥ भारतीके शापसे यदि गंगाको भारतमें अवतीर्ण होना पडे तो शापसे और पापसे छूटकर कितने दिन पीछे आपका दर्शन करसक्ती हैं ॥ १२ ॥ और यदी गंगाके शापसे सरस्वतीही भारतमें गमन करै तो उसके शापावसानमें कितना विलम्ब होगा? कितने दिन पीछे आपके चरणोंका दर्शन करनेमें समर्थ होगी? ॥ १३ ॥ इसके अतिरिक्त सरस्वतीको ब्रह्मसदनमें और गंगाको जो शिवसदनमें जानेकी अनुमति दी सो इस विषयमें क्षमा कीजिये ॥ १४ ॥ हे वत्स नारद ! देवी कमला जगन्नाथसे यह बात कहकर उनके चरण कमलोंमें गिरगई और अपने केशोंसे उनके चरण वेष्टन करके वारंवार रोदन करने लगी ॥ १५ ॥ इसीसमय भक्तानुग्रह कातर पद्मनाभ हरिने हास्यमुख और प्रसन्नचित्त हो पद्माको हृदयसे, लगाकर कहा भगवान् बोले हे सुरेश्वरि ! अपने वचनकी रक्षा करके तुम्हारे कथनानुसार कार्य करूंगा. हे कमललोचने ! जिस प्रकारसे दोनों बातोंकी रक्षा हो वह कहता हूं सुनो ॥ १६ ॥ सरस्वती एकांशसे नदीरूप धारण करके भारतमें और अर्धांशसे ब्रह्माके समीप वास करै और पूर्णांशसे वैकुण्ठमें मेरे समीप विद्यमान रहै ॥ १७ ॥ भगीरथके यत्नसे त्रिभुवन पूत (पवित्र) करनेके लिये गंगाको एकांशसे भारतमें जाना होगा ॥ १८ ॥ और एकांशसे चन्द्रशेखरकी दुर्लभ जटामें स्थान लाभ करके स्वभावसे जिसप्रकार पवित्र हैं, उससे भी अधिक पवित्र होगी और पूर्णांशसे मेरे

समीप अवस्थान करै ॥ १९ ॥ हे वामलोचने पद्मे ! तुम सबकी अपेक्षा निरपराध हो अतएव तुम्हारा अंशका अंश भारतमें पद्मावती नामक नदी और तुलसी वृक्ष रूपमें परिणत होवे ॥ २० ॥ कलिके पांच हजार वर्ष बीतनेपर तुम शापसे छूटोगी तब फिर तुम मेरे गृहमें आसकोगी ॥ २१ ॥ हे पद्मे ! विपत्तिही देहधारियोंकी सम्पत्तिका निदान हैं संसारमें विपत्तिके विना कोई सम्पद्का गौरव नहीं समझ सकता ॥ २२ ॥ मेरे मंत्रोपासक जो साधुपुरुष तुम्हारे जलमें स्नान और अवगाहन करेंगे उनके दर्शन और स्पर्शनसे तुम्हारा पाप छूट जायगा ॥ २३ ॥ हे सुन्दरी ! मेरे भक्तोंके दर्शन और स्पर्शनसे भूलोकस्थित संपूर्ण तीर्थ पवित्र होंगे ॥ २४ ॥ सुपवित्रधराका उद्धार और पवित्रता साधन करनेके लिये मेरे मंत्रोपासक अर्थात् ब्रह्मनिष्ठ शैव वैष्णव शाक्त और गाणपत्यादि संपूर्ण भक्त भारतमें वास करते हैं ॥ २५ ॥ मेरे भक्त वहां अवस्थान करके पैर धोते हैं वह स्थान निःसन्देह पवित्र तीर्थ कहकर परिगणित होते हैं ॥ २६ ॥ यही क्या ! मेरे भक्तोंके स्पर्श और दर्शनसे स्त्री हत्या गोहत्या और ब्रह्महत्याकारी एवं कृतघ्न और गुरुदारापहारी पुरुष तकभी पवित्र और जीवन्मुक्त होते हैं ॥ २७ ॥ मेरे भक्तोंके दर्शन और स्पर्श-नसे एकादशीविहीन संध्यावर्जित नास्तिक और नर हत्याकारीकाभी पाप दूर होता है ॥ २८ ॥ मेरे भक्तोंके दर्शन और स्पर्शसे असिजीवी मसिजीवी धावक अर्थात् रजककर्मकारी ग्रामयाचक और वृषवाही ब्राह्मणोंका भी पाप दूर होता है ॥ २९ ॥ मेरे भक्तोंके दर्शन और स्पर्शनसे विश्वासघातक मित्रद्रोही मिथ्यासाक्षीदाता और धरोहर मारनेवाला पुरुषभी पापोंसे मुक्त होजाता है ॥ ३० ॥ मेरे भक्तोंके दर्शन और स्पर्शसे अति वाग्दुष्ट अर्थात् उग्रवचन बोलनेवाला जारक (अन्यपितासे उत्पन्न) पुंश्चली पति और पुंश्चलीका पुत्रभी पवित्र होता है ॥ ३१ ॥ मेरे भक्तोंके दर्शन और स्पर्शसे जो ब्राह्मण शूद्रका पाचक (रसोई दार) जो देवल पुजारी जो ग्रामवालोंका यज्ञ करानेवाला और जो गुरु मंत्रमें दीक्षित नहीं है वह भी पवित्र होता है ॥ ३२ ॥ हे सुन्दरि ! जो पामर पिता, माता, भ्राता, स्त्री, पुत्र, कन्या, भगिनी, अंध, बंधु ॥ ३३ ॥ गुरुकुल, सास और श्वशुरका भरण पोषण नहीं करता मेरे भक्तोंके दर्शन और स्पर्शसे वह पातकी भी पापसे छूट जाता है ॥ ३४ ॥ मेरे भक्तोंके दर्शन और स्पर्शसे पीपलका काटनेवाला मेरे भक्तोंकी निन्दा करनेवाला और शूद्रोंका अन्न भोजन करनेवाला ब्राह्मणपर्यन्त अपने अपने किये पापोंसे मुक्त होता

है ॥ ३५ ॥ जो देवताका द्रव्य और ब्राह्मणका द्रव्य हरण करता है जो लाक्षा (लाख) लोहा और रस तथा कन्या बेचता है ॥ ३६ ॥ जो महापातकी और शूद्रोंका शव फूँकनेवाला है वह भी मेरे भक्तोंके दर्शन और स्पर्श करनेपर अपने अपने पापसे छूटते हैं॥ ३७॥ महालक्ष्मीने कहा हे भक्तवत्सल! आप भक्तोंके लक्षण कहिये जिन भक्तोंके दर्शन और स्पर्शसे नराधम शीघ्र पवित्र होते हैं॥ ३८॥ हरिभक्ति विहीन घोर अहंकारी आत्मश्लाघमें निरत धूर्त शठ और साधुओंकी निन्दा करने वाले ॥ ३९ ॥ पापात्मा लोग भी शीघ्र महापातकसे छूटते हैं जिन भक्तोंके स्नानावगाहनसे संपूर्ण तीर्थ पवित्रतालाभ करते हैं जिन भक्तोंकी चरणरेणु और पादोदकस्पर्शसे वसुंधरा पवित्र होती है ॥ ४० ॥ भारतीयमनुष्य सदा जिन भक्तोंके दर्शन और स्पर्शकी प्रार्थना करते हैं और जिन भक्तोंके समागमसे भारी लाभ दूसरा नहीं है ॥ ४१ ॥ विशेषतः जलमय संपूर्ण तीर्थ एवं मृण्मय और शिलामय देवताओंसे बहुत कालमें पाप दूर होता है, किन्तु अब पूँछती हूं कि, आपके जिन भक्तोंसे शीघ्र महापातक नष्ट होते हैं, आपके उन्हीं निर्दिष्टभक्तोंके लक्षण किसप्रकार हैं? ॥ ४२ ॥ सूतजीने कहा हे महर्षे! लक्ष्मीकान्तने महालक्ष्मीके वचन सुन कुछेक हँसकर निगूढतत्व अर्थात् भक्तोंके लक्षण निर्देश करनेका उपक्रम करके कहा ॥ ४३ ॥ श्रीभगवान् बोले हे लक्ष्मी! भक्तोंके लक्षण श्रुति और पुराणमें अत्यन्त गूढभावसे कथित हुए हैं यह अत्यन्त पवित्र पापघ्न (पापनाशक) सुखद और भक्ति मुक्तिदायक है ॥ ४४ ॥ यह सारभूत गोपनीय वृत्तान्त खलके निकट प्रकाशित न करै किन्तु तुम अत्यन्त सरलस्वभाव और मेरे प्राणोंकी समान हो. इसकारण तुमसे कहताहूं सुनो ॥ ४५ ॥ हे सुन्दरि! गुरुदेवके मुखसे जिसके कानमें विष्णु, शिव, गणेश और सूर्यादिमंत्र पडताहै, संपूर्ण वेदही उसको पवित्र और नरोत्तम कहतेहैं ॥ ४६ ॥ ऐसे पुरुषके जन्म लेतेही उसके पूर्व शत (१००) पुरुष स्वर्गमें हों वा नरकमें हों, तत्काल मुक्तिलाभ करते हैं ॥ ४७॥ और उनमें यदि कोई किसी स्थानमें वा किसी जीवयोनिमें जन्म ग्रहण करता है तो वह जीवन्मुक्त होकर अन्तमें विष्णुपद लाभ करता है ॥ ४८ ॥ जो पुरुष मेरे भक्ति रसमें आर्द्र होताहै, जो पुरुष निरन्तर मेरे गुण कीर्तन और तदनुरूप व्यवहार करताहै, जो पुरुष सदा मेरी कथामें चित्त लगाये रहताहै ॥ ४९ ॥ और मेरे गुणानुवाद सुनकर जिसका मन आनन्दमें नृत्य करता रहताहै, सर्वाङ्ग पुलकित

होताहै, कंठस्वर रुद्ध होजाताहै, अनवरत नेत्रोंसे आसुओंकी धारा गिरती रहती है, बाह्यज्ञान तिरोहित होताहै, वही पुरुष मेरा भक्तहै ॥ ५० ॥ मेरे भक्त क्या सुख, क्या मुक्ति, क्या सायुज्य, क्या सारूप्य, क्या सालोक्य, क्या ब्रह्मत्व, क्या अमरत्व किसीकी इच्छा नहीं करते, वह केवल मेरी सेवा करनेमें अत्यन्त तत्पर होते हैं ॥ ॥ ५१ ॥ वास्तविक वह कभी स्वप्नमेंभी दुर्लभ इन्द्रत्व, मनुत्व, ब्रह्मत्व और स्वर्ग-राज्यभोग करनेकी वासना नहीं करते ॥ ५२ ॥ मेरेभक्त केवल मेरेही गुण सुननेमें लग्न और मेरेही मधुरगुणगानमें नित्य आनंदित होकर भारतमें भ्रमण करतेहैं. फलतः भारतमें ऐसे भक्तजन्म अत्यन्त दुर्लभहै ॥ ५३ ॥ वह पृथ्वीको पवित्र करके अंतमें मेरे आलयरूप श्रेष्ठतम तीर्थमें गमन करतेहैं. हे पद्मे ! यह मैंने तुमसे अभिलाषित समस्त विषय वर्णन किया अब जो रुचि हो, सो करो ॥ ५४ ॥ अनन्तर गंगादि सभी श्रीहरिकी आज्ञा पालन करनेको गईं, इस ओर वह स्वयं हरि अपने धाममें अवस्थान करनेलगे ॥ ५५ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ८.

नारायणने कहा हे देवर्षे ! अनन्तर सरस्वती गंगाके शापवश अंशसे पुण्यक्षेत्र भारतमें आई और पूर्णांशसे विष्णुभवन वैकुण्ठधाममें स्थिति करने लगी ॥ १ ॥ भारतमें गमन करनेके कारण उनका नाम भारती और ब्रह्माकी प्रिया होनेके कारण उनका दूसरा नाम ब्राह्मी हुआहै और वाणी अर्थात् वाक्यकी अधिष्ठात्री देवी हैं, इस कारण उनका वाणी नाम हुआहै ॥ २ ॥ हरि सर्व व्यापी हैं, अतएव वह क्या सर अर्थात् सरोवर, क्या वापी, क्या स्रोत, सर्वत्रही विद्यमान रहतेहैं। सरसमें विद्यमान होनेके कारण वह सरस्वान्‌हैं। वाणी उन सरस्वान्‌की शक्तिहै, इसलिये सरस्वती नामसे कही गई हैं ॥ ३ ॥ नदीरूपा सरस्वती अतिपावन तीर्थस्वरूपहै। मणियोंके पापरूपीकाष्ठ जलानेमें वह प्रज्वलित अग्निस्वरूप हैं ॥ ४ ॥ हे वत्स नारद ! सरस्वतीके शापसे देवी गंगाने अंशसे सलिलरूप धारण किया। फिर भगीरथ उनको भूलोकमें लाये हैं, इसीकारण उनका नाम भागीरथी हुआहै॥५॥ भगीरथकी प्रार्थनासे जब गंगाकी एक धारा ऊपरसे पृथ्वीपर गिरी, तब वसुंधराके धारापातका

वेग धारण करनेमें असमर्थ होनेपर एकमात्र धारण पटु श्रीमहादेवजीके निकट प्रार्थना करनेपर उन्होंने उस समय उनको मस्तकमें धारण कियाथा ॥ ६॥ भारतीके शापसे पद्माकोभी अंशसे पद्मावती नदी होकर भारतमें अवतीर्ण होना पड़ाहै किन्तु पूर्णभावसे वैकुण्ठमें नारायणकी अंकलक्ष्मी होकर वास करती हैं ॥ ७ ॥ इनका अपर अंश प्रथम भारतमें राजा धर्मध्वजके तुलसी नामसे विख्यात कन्यारूपमें अवतीर्ण हुआ ॥ ८ ॥ अन्तमें भारतीके शापसे और श्रीहरिकी आज्ञासे विश्वपावनी तुलसी वृक्ष-रूपमें परिणत हुई हैं ॥ ९ ॥ कलिके पाँच हजार वर्ष बीतनेपरही यह सब सरित् रूप त्यागकर भारतसे फिर वैकुण्ठधाममें हरिसदनमें गमन करेंगी ॥ १० ॥ श्रीकृ-ष्णकी आज्ञानुसार काशी और वृंदावनके अतिरिक्त और संपूर्ण तीर्थ सरिद्गणोंके संग संग वैकुण्ठमें जाँयगे ॥ ११ ॥ इसके उपरान्त कलिके दश हजार वर्ष बीतने पर शालिग्राम शिला शिव और शिवशक्ति एवं पुरुषोत्तम जगन्नाथ इस भारतभूमिको छोड़कर अपने अपने स्थानको जाँयगे अर्थात् भारतसे शालग्राम माहात्म्य पीठस्थानमा हात्म्य और पुरुषोत्तममाहात्म्य एकबारही अन्तर्धान होजायगा॥ १२॥ शैव शाक्तगण पत्य और वैष्णवादि धर्मपरायण साधुगण अठारह पुराण. मांगल्य शंखध्वनि श्राद्धतर्पण और वेदोक्त क्रियाकलापादि कुछभी नहीं रहेगी ॥ १३॥ देवपूजा. देवप्रशंसा और देवताओंके गुणगानकी बात तो दूर रहे, देवताओंका नाम पर्यन्तभी लुप्त होगा साङ्ग वेद शास्त्रका नाम पर्यन्त फिर सुनाई नहीं देगा॥ १४॥ साधुसमाज,सत्यधर्म, चारोंवेद, ग्राम्यदेव, देवी, व्रत, तपस्या और उपवास एकबारही लयको प्राप्त होंगे ॥ १५ ॥ सभी मद्यमांसादिकी सेवामें अनुरक्त होंगे, मिथ्या और कपटता सबको आश्रय करे-गी, यदि कोई पूजाभी करेगा तो वह अर्चना तुलसी विहीन होगी ॥ १६ ॥ प्रायः समस्तलोक शठ, क्रूर, दाम्भिक, अहंकारी, तस्कर और हिंसक होजाँयगे ॥ १७ ॥ पुरुष पुरुष और स्त्री स्त्रीमें परस्पर प्रणय नहीं रहेगी। केवल स्त्री पुरुष मात्र भेद रहेगा। जातिभेद एकबारही अन्तर्धान होगा। सुतरां विवाहके संबधमें भयका लेशमात्रभी न रहेगा। प्रतिपदार्थमेंही स्वस्वस्वाति सत्वबद्धमूल होगा अर्थात् पिता पुत्रके और पुत्र पिताके द्रव्यको स्पर्श नहीं करसकेगा ॥ १८ ॥ पुरुषमात्रही प्रायः स्त्रीके वशीभूत होंगे और प्रत्येकघरमेंही प्रायः संपूर्ण स्त्रियें पुंश्चली धर्म अवलम्बन करेगी।वह निरंतर तर्जन गर्जन करके अपने अपने स्वामीको ताड़ना करती रहेंगी॥ १९॥ गृहणी गृहकर्त्री होंगी और गृहस्वामी अधम मृत्युकी समान उनके निकट हाथजोड़े रहेंगे

सास और श्वशुर उनके निकट दास दासीकी समान व्यवहृत होंगे॥ २०॥ स्त्रीके सहोदर इत्यादि बांधवलोगही गृहके कर्ता होंगे किन्तु सहाध्यायीगणोंके सहित आलाप मात्र नहीं रहेगा ॥ २१ ॥ गृहस्वामिके भ्रातादि बांधवगण एकबारही अनजान परदेशीके समान अपरिचित्त होजाँयगे गृहणीकी अनुमतिके विना गृहकर्ताका किसी विषयमें कर्तृक करनेकी सामर्थ्य नहीं रहेगी ॥ २२ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रादि जाति भेद एकबारही तिरोहित होगा. संध्यावंदनादि कर्तव्य कार्यका अनुष्ठान करना तो दूररहे ब्राह्मणगण एकबारही यज्ञोपवीत रहित होंगे ॥ २३ ॥ ब्राह्मणादि चारों वर्णही अपना अपनाशास्त्र और आचार परित्याग करके म्लेच्छशास्त्र अध्ययन और म्लेच्छ आचारमें अत्यन्त आसक्त होंगे॥ २४ ॥ कलियुगमें ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यगण शूद्रके दास होंगे सबही शूद्रके पाचक (रसोईदार) धावक(कपडेधोनेवाले)वा दूत और वृषवाहक अर्थात् बैलके लादनेवाले होंगे ॥ २५॥ मनुष्यमात्रही सत्यहीन पृथ्वी सस्यरहित, वृक्ष फलशून्य और स्त्रियें पुत्रहीन होंगी ॥ २६ ॥ गायोंके स्तनमें प्रायः दुग्ध नहीं रहेगा और यदि कुछेक दुग्ध निकलाभी, तो घृत उत्पन्न नहीं होगा । स्त्री पुरुष आपसमें प्रेमहीन और गृहस्थगण मिथ्यावादी होंगे ॥ २७ ॥ राजाका पराक्रम कुछ नहीं रहेगा, प्रजागण करभारसे अत्यन्त पीड़ित होजाँयगे । क्या विस्तीर्ण जलवाली नदियें क्या अल्पजला नदी, क्या कन्दरादि समस्तही क्रमानुसार क्षीणजलवाली होंगी ॥ २८ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रकी धर्मप्रवृत्ति तिरोहित और पुण्यलोप होगा प्रथम तो लक्ष पुरुषोंमें एकजन पुण्यवान् होगा, किन्तु फिर वह भी न रहेगा ॥ २९ ॥ क्या नर, क्या नारी, क्या बालक, सभी कुत्सित और विकलाकृति होंगे । कुत्सित बात और कुत्सित शब्दके अतिरिक्त किसीके मुखसे दूसरी बात उच्चरित नहीं होगी ॥ ३० ॥ कोई कोई ग्राम और कोई कोई नगर एकबारही मनुष्यरहित होकर भीषणमूर्त्ति धारण करेंगे और किसी किसी स्थान वा अतिसामान्य कुटीरमें और सामान्यलोकोंमें स्थिति रहेगी ॥ ३१ ॥ सम्पूर्ण ग्राम और नगर अरण्यमें परिणत और अरण्यलोकोंके निवाससे पूर्ण होकर वनवासी मनुष्य करभारसे पीडित हो जायँगे ॥ ३२ ॥ अनावृष्टिके कारण जलका अभाव होनेसे तालाब और नदियोंमें खेती होनेलगेगी. सद्वंशोत्पन्न कुलीन नितान्त नीच होजायँगे ॥ ३३ ॥ पृथ्वी अलीकवादी असत्यपरायण धूर्त और शठोंसे परिपूर्ण होंगी भूमि भलीभाँति जोतने यह भी सस्यका नाममात्र नहीं रहेगा ॥ ३४ ॥

जो अतुल ऐश्वर्यके अधिपति कहकर विख्यात हैं वही निर्धन और जो देवभक्त हैं वही नास्तिक होंगे पुरवासियोंके शरीरमें दयाका लेशमात्र नहीं रहेगा वरन वह प्रति वेशीके विद्वेष्टा और नरघातक हो जाँयगे ॥ ३५ ॥ पृथ्वीके सब स्थानोंमें नर और नारीमात्र लघुकाय व्याधिग्रस्त, क्षीणायु, रोगी और हीनयौवन होंगे ॥ ३६॥ सोलह वर्षमें पदार्पण न करते करते ही केश सफेद वर्ण हो जाँयगे वीसवाँ वर्ष उपस्थित होनेपर समस्त पुरुष महावृद्ध होंगे अष्टवर्षीय रमणी युवती रजस्वला और गर्भवती होंगी ॥ ३७ ॥ प्रसव करनेमें वर्ष नहीं जायगा इसके उपरान्त सोलहवाँ वर्ष उपस्थित होतेही बुढापा आजयगा,कदाचितही कोई२ स्त्री पति पुत्रवती होगी,नहीं तो प्रायःसभी वांझ होगी ॥ ३८ ॥ चारों वर्णही कन्या वेचेगी. माता भार्या पुत्रवधू कन्या और भगिनीके उपपतिही जीवनके अवलम्बन होंगे ॥ ३९ ॥ विना अर्थके कोई हरि नाम जपजनित पुण्यसंचयमें अधिकारी नहीं होगा ॥ ४० ॥ यश प्राप्तहोनेकी इच्छासे दान करके फिर अन्तमें उस अपनी दी हुई वस्तुको ग्रहण करेंगे ॥ ४१ ॥ देवता ब्राह्मण वा गुरुकुलके निमित्त अपनी दी हुई हो, वा अपने पूर्व पुरुषोंकी दी हुई यदि कोई वृत्ति निर्दिष्ट हो, तो फिर आत्मसात् (अपने आधीन) करनेमें त्रुटि नहीं होगी ॥ ४२ ॥ कोई कोई कन्या कोई कोई सास कोई कोई पुत्रवधू कोई सब कोई कोई ॥ ४३ ॥ भगिनी, कोई सपत्नी जननी और कोई कोई भ्रातृजाया गमन करेगा किसीको कोई गमन अवशिष्ट नहीं रहेगा ॥ ४४ ॥ केवलमातृयोनिके अतिरिक्त प्रत्येक घरमेंही अगम्यागमन प्रचलित होजायगा ॥ ॥ ४५ ॥ कलियुगमें कौन किसकी पत्नी और कौन किसका भर्त्ता कुछ निर्णय न रहेगा कौन किसीकी प्रजा और कौन किसका ग्राम है विशेषतः कौन वस्तु किसकी है कुछ निर्दिष्ट नहीं रहेगा ॥ ४६ ॥ सभी मिथ्यावादी, लम्पट, तस्कर, परस्त्रीकातर और नरघातक होंगे ॥ ४७ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन श्रेष्ठतम तीनों वर्णके घरमें पापस्रोत बहता रहेगा शास्त्रनिषिद्ध लाक्षा (लाख) लोहा और. लवण वेचना इनका जीवनोपाय होगा ॥ ४८ ॥ ब्राह्मणगण वृषचालन, शूद्रका शवदाहन शूद्रान्नभोजन और वृषलीगमन करेंगे ॥ ४९॥ ऋषियज्ञादि पंचयज्ञमें फिर आस्था नहीं रहेगी. प्रायः ब्राह्मणमात्रही अमावास्या (की रातको भोजन करेंगे) भोजन न करनेकी आज्ञा पालनमें विमुख होंगे. यज्ञसूत्र दूर फेंककर ब्राह्मणोचित संध्यावन्दनादि और शौचाचार एकबारही त्याग करेंगे ॥ ५० ॥ ऋणदान जीविनी पुंश्चली

और रजस्वला कुटनियें ब्राह्मणोंकी रन्धनशाला (रसोईघर) में पाचिका अर्थात् भोजन बनानेवाली होगी ॥ ५१ ॥ अन्नविचार योनिविचार आश्रमविचार और लोकविचार कुछभी नहीं रहेगा, सब ही म्लेच्छाचार होंगे ॥ ५२ ॥ हे वत्स ! नारद ! इस प्रकार घोर कलिके प्रवृत्त होनेपर सम्पूर्ण जगत् म्लेच्छोंसे भरजायगा सम्पूर्ण वृक्ष हस्तप्रमाण और मनुष्य सब अंगुष्ठप्रमाण होंगे ॥ ५३ ॥ इसी अवसरमें बलियोंमें श्रेष्ठ भगवान् नारायण अपने अंशसे विष्णुयशा नामक ब्राह्मणके घर उसके पुत्ररूपमें अवतीर्ण होंगे ॥ ५४ ॥ इसके उपरान्त वह हाथमें खड्ग धारणकर सुदीर्घ एक घोड़ेपर चढ़, तीन रात्रिमें पृथ्वी म्लेच्छहीन कर अंतर्धान होंगे ॥ ५५ ॥ तब पृथ्वी उनके अन्तर्धान होनेपर अराजक और दस्युग्रस्त होजायगी ॥ ५६ ॥ इसी समय अनवरत छःदिन धारापातसे यह विस्तीर्ण स्थूलकाय पृथ्वी डूबजायगी. मनुष्य, वृक्ष और गृहादिका चिह्नमात्रभी नहीं रहेगा ॥ ५७ ॥ इसके उपरान्त एक वारही बारह सूर्यके उदय होकर करप्रसारण करनेसे ही सम्पूर्ण जल सूखकर भूमण्डल समान होजायगा ॥ ५८ ॥ हे वत्सनारद ! इस प्रकार घोरतर कलिके बीतजानेपर और सत्ययुगके प्रवृत्त होनेपर फिर तपस्यादि सत्वगुणनिष्ठ सत्य धर्मका पूर्ण प्रचार होगा ॥ ५९ ॥ फिर ब्राह्मणगण तपस्याधर्मनिष्ठ और वेदपरायण होजाँयगे फिर घर घर स्त्रियें पतिपरायण और धर्मनिष्ठ होजाँयगी ॥ ६० ॥ फिर ब्राह्मणभक्त मनस्वीक्षत्रियगण सिंहासन अधिकार करेंगे पुनः उनका प्रताप, धर्मनिष्ठा और सत्कर्मानुराग बढ़ेगा ॥ ६१ ॥ फिर वैश्योंकी वही वाणिज्यप्रवृत्ति वही ब्राह्मणभक्ति और वही धर्मानुरक्ति प्रत्यागमन करेगी शूद्रगण फिर पुण्यशील, धार्मिक और ब्राह्मणोंके सेवक होंगे ॥ ६२ ॥ पुनर्वार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, सभी देवीध्यान देवीज्ञान और देवीमंत्र परायण होंगे ॥ ६३ ॥ फिर उन्हीं वेद-उन्हीं स्मृति और उन्हीं पुराणोंका ज्ञान फैल जायगा सबही ऋतुकालमें भार्या-गमन करेंगे अधर्मका लेशमात्रभी नहीं रहेगा पुनर्वार सत्ययुगमें धर्म पूर्णकलामें प्रवृत्त होगा ॥ ६४ ॥ इसके पीछे जब त्रेता उपस्थित होगा तब धर्म त्रिपाद्, जब द्वापर तब द्विपाद् जब कलिकी प्रवृत्ति तब एक पाद किन्तु कलिके पूर्णकलामें प्रवृत्त होनेसे फिर धर्मका नाममात्रभी नहीं रहेगा ॥ ६५ ॥ हे वत्स नारद ! अब समयका स्वरूप कहता हूं सुनो रवि इत्यादि सातवार प्रतिपदादि षोडशतिथि वैशाखादि बारह मास. ग्रीष्मादि छै ऋतु॥ ६६ ॥ शुक्ल और कृष्ण दो पक्ष एवं दक्षिण

और उत्तर दो अयन कल्पित हुये हैं चार प्रहरमें दिन चार प्रहरमें रात्रि सुतरां रात्रि और दिन लेकर एकदिन होता है इस प्रकार तीस दिनमें एक मास परिगणित होता है ॥ ६७ ॥ काल–संख्या–गणनामें पांच प्रकार वर्ष पहिलेही (अष्टमस्कंधमें) निर्देश किया है जिस प्रकार सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि, यह चार युगपर्याय क्रमसे आकर फिर बीत जाते हैं वार और मासादि समात्मक वर्ष भी उसी प्रकार क्रमसे एकवार आकर और फिर बीत जाते हैं ॥ ६८ ॥ मनुष्योंका वर्ष पूर्ण होनेपर ही देवमानका एक दिन होता है गणनावित् पण्डित कहते हैं कि, इसप्रकार मनुष्योंके वर्ष परिमाण तीन सौ साठ मानवीय युग बीतने पर ॥ ६९ ॥ देवमानका एक युग होता है इसी प्रकार (इकहत्तर) देवयुग बीतनेपर एक मन्वन्तर होता है ॥ ७० ॥ हे वत्स ! इस प्रकार एक एक मन्वन्तर शचीपति इन्द्रकी आयुका परिमाण अर्थात् एक एक मन्वन्तरके बीतनेपरही एक एक इन्द्रका पतन होता है इस प्रकार अट्ठाईस (२८) इन्द्रका पतन होनेपर हिरण्यगर्भ ब्रह्माका एक दिन होताहै ॥ ७१ ॥ इस प्रकार परिमाणसे एक सौ आठ (१०८) वर्ष पूर्ण होनेपरही ब्रह्माका पतन होता है यह ब्रह्माका पतनही प्राकृत प्रलय है अर्थात् फिर उस समय यह पृथ्वी दिखाई नहीं देती ॥ ७२ ॥ संपूर्ण ब्रह्माण्ड जलमें डूब जाता है ब्रह्मा विष्णु और महेश्वरादि ज्ञानपूर्ण ऋषिगण उन सत्यमय चिन्मय परब्रह्ममें एकवारही लीन होजाते हैं ॥ ॥ ७३ ॥ इसी समय प्रकृत देवीभी परब्रह्ममें विलीन होती हैं ब्रह्माका पतन और प्रकृतिका विलय इसकोही प्राकृत प्रलय कहते हैं ॥ ७४ ॥ हे मुनिवर ! यह प्रलयकाल मायायुक्त परब्रह्मरूपिणी मूलप्रकृतिका एक निमेष है इस समय जिस स्थानमें जितने ब्रह्माण्ड विद्यमान रहते हैं सब नष्ट होतेहैं ॥ ७५ ॥ और यह निमेष परिमित काल बीतनेपरही फिर क्रमानुसार सृष्टिकार्य वर्धित होता है इस प्रकार कितनीही वार सृष्टि और कितनीही वार प्रलय होती है उसकी सीमा नहीं है ॥ ७६ ॥ अतएव कितने कल्प बीत गये हैं और कितने कल्प आवेंगे और कितने वार कितने ब्रह्माण्डकी सृष्टि और कितने वार कितने ब्रह्माण्डका लय होगया है,इसको कौन कह सकता है? ॥ ७७ ॥ यदि ब्रह्माण्डही असंख्य हो तो कितने ब्रह्माण्डमें कितने विष्णु और कितने महेश्वर हैं इनका भी निर्णय करनेमें कौन समर्थ होगा ? किन्तु एकमात्र परब्रह्म परमेश्वर इन असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधीश्वर हैं ॥ ७८ ॥ वह सच्चिदानंदरूपी परमेश्वरही सबके परमात्मा हैं क्या ब्रह्मा क्या विष्णु क्या महादेव क्या महाविराट् ॥ ७९ ॥ क्या

क्षुद्रविराट् सभी उनके अंशहैं वही मूल प्रकृतिहै उनसेही अर्धनारीश्वर श्रीकृष्ण उत्पन्न हुए हैं ॥ ८० ॥ जो द्विधाभूत होकर द्विभुजरूपसे गोलोकमें और चतुर्भुजरूपसे वैकुण्ठमें वास करते हैं ॥ ८१ ॥ ब्रह्मासे तृणपर्यन्त अति सामान्य पदार्थ भी प्रकृतिसे उत्पन्न हैं अतएव प्रकृतिप्रभव संपूर्ण पदार्थही नाशमान हैं ॥ ८२ ॥ इस प्रकार उस सृष्टिके निदानभूत स्वेच्छामय सत्यसनातन त्रिगुणातीत परब्रह्मही प्रकृतिके अतीत पदार्थ हैं ॥ ८३ ॥ उनकी उपाधि नहीं और आकृति भी नहीं है, तब जो वह यह सब स्वीकार करते हैं सो केवल भक्तोंपर अनुग्रह प्रकाश मात्र है कमलयोनि ब्रह्मा केवल उनकेही ज्ञानबलसे ब्रह्माण्डकी रचना करनेमें समर्थ होतेहैं ॥ ८४ ॥ योगीश्वर शिवने जो मृत्युञ्जय नाम धारण किया है, सबके संहारकर्त्ता और सर्वतत्त्वविज्ञाता हुए हैं, वह केवल उनकी ही कृपाका बल है ॥ ॥ ८५ ॥ तपश्चरणसे उन परब्रह्मकी उपलब्धि करनेके कारण वह सर्वेश । सर्वज्ञ, महाविभूतियुक्त, सर्वदर्शी, सर्वव्यापी, सबके रक्षक हैं और सर्वसम्पद्दाता हुए हैं ॥ ८६ ॥ उनपर ब्रह्मके प्रति भक्ति और उनकी आराधना ही श्रीमान् विष्णु वो सर्वेश्वरत्वलाभका मूलकारण है। महामाया प्रकृतिदेवीभी उनके ही बलसे सर्वेश्वरी और सर्वशक्तिमयी हुई है॥८७॥ भगवती दुर्गाने उनके ही प्रति भक्ति, उनकी आराधना और उनकीही सेवा करके अनुग्रहलाभ किया है और उस अनुग्रहके बलसेही सच्चिदानंदरूपिणी मूलप्रकृति हुई है॥८८॥ वेदमाता देवी सावित्री भी उनके प्रति भक्ति और उनकी ही सेवाके बलसे चार वेदकी अधिष्ठात्री देवी, वेदज्ञ और ब्राह्मणोंकी पूज्य हुई है ॥ ८९ ॥ उनको समस्तविद्याओंकी अधिदेवी, समस्त विद्वन्मण्डलीकी आराध्य और सब विश्वमें पूजित होना केवल प्रकृति देवीकी आराधना और प्रकृति देवीकी उपासनाका फलमात्र है ॥ ९० ॥ उनकी ही आराधनाके बलसे सबकी सम्पद्दात्री और समस्त ग्रामकी अधिदेवी लक्ष्मी सबकी ईश्वरी सबसे स्तुतिको प्राप्त सर्वज्ञ सर्वदुःखनिवारिणी सबकी वन्दनीय. और सबको पुत्रदायिनी हुई हैं ॥ ९१ ॥ दुर्गा श्रीकृष्णके वामाङ्गसम्भूत उनके प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी ॥ ९२ ॥ राधाभी प्रकृतिको उपासनाके बलसे ही सबकी उपासना करनेयोग्य और सर्वज्ञानसम्पन्न हुई हैं मान गौरव और सौभाग्यमें सबसे अधिक हैं, ॥ ९३ ॥ राधिकाका कृष्णकी प्राणेश्वरी होना, कृष्णके निकट आदर और सन्मान लाभ करना श्रीकृष्णके वक्षस्थलमें स्थान प्राप्तहोना और लोकातीत सौन्दर्यशालिनी

शक्तिसेवा अर्थात् मूलप्रकृ-
होकर कृष्णको पतिपाना इन सब बातोंका मूलकारण
तिकी आराधना है, क्योंकि राधिकाने श्रीकृष्णको पतिलाभ करनेकेलिये
भारतमें शतशृंग पर्वतपर मूल प्रकृतिको प्रसन्नताके उद्देशसे ॥ ९४ ॥ देव
मानके हजार वर्षपर्यन्त घोरतर तपस्या की है फिर शक्तिरूपा मूलप्रकृतिके
प्रसन्न होनेपर श्रीकृष्णने राधिकाको शशिकलाके समान देखकर ॥ ९५ ॥
स्वयं वक्षःस्थलमें धारणकर करुणायुक्त होकर उनको अनन्य दुर्लभ वर
देकर कहा ॥ ९६ ॥ हे प्रिये! तुम मेरे प्रति भक्तिमती होकर सदा मेरे वक्षः-
स्थलमें वास करो मेरी सब पत्नियोंके मध्य तुम सौभाग्यमें, मानमें, प्रणयमें और
गौरवमें सबसे श्रेष्ठ होओ ॥ ९७ ॥ तुम आजसे मेरी ज्येष्ठ और श्रेष्ठतमा पत्नी
हुई मैं तुमको सर्वप्रधाना जानकर आदर करूंगा ॥ ९८ ॥ हे प्राणवल्लभे! मैं
सदा तुम्हारे वशीभूत और एकान्त आधीन होकर रहूंगा हे मुनिवर! जगन्नाथ
श्रीकृष्णने इसप्रकार कहकर उसको सपत्नीहीन पत्नी बनाकर प्राणप्रिया किया ॥
॥ ९९ ॥ पूर्वमें पंचप्रकृतिके अतिरिक्त संपूर्ण देवियोंकी कथा लिखीगई हैं, उन्हों
नेभी एक मूलप्रकृतिकी सेवासे सबकी अपेक्षा श्रेष्ठता लाभ की है ॥ १०० ॥ हे
मुने! अधिक क्या कहूं जिसकी जैसी तपस्या है, वह वैसाही फल लाभ करता है
हे मुनिवर! भगवती दुर्गा दिव्य सहस्रवर्षपर्यन्त हिमालय पर्वतमें तपस्या ॥ १०१ ॥
और मूलप्रकृतिके चरणकमलोंका ध्यान करके सबकी पूजनीय हुई हैं देवीसरस्वती
गंधमादनपर्वतमें ॥ १०२ ॥ दिव्यलक्ष वर्षतक तपस्या करके सबकी वंदनीय हुई
हैं देवी लक्ष्मी दिव्य सौ युग पर्यन्त पुष्करमें तपस्या करके ॥ १०३ ॥ मूलप्रकृतिके
प्रसाद-बलसे सबको सम्पददात्री हुई हैं देवी सावित्री मलयपर्वतमें ॥ १०४ ॥ दिव्य
साठसहस्र वर्ष पर्यन्त शक्तिकी आराधनासे सबकी पूजनीय और सबकी वन्दनीय हुई
हैं हे विभो! सौ मन्वन्तरतक शिवने तप कियाहै ॥ १०५ ॥ ब्रह्मा और विष्णु इन्होंने
शत मन्वन्तरतक शक्तिकी आराधना करके जगत्का पालकत्व पद लाभ किया
है ॥ १०६ ॥ श्रीकृष्णने दश मन्वन्तरपर्यन्त घोर तपस्या करके गोलोकमें
स्थान पाया है और अबतक वहां परमानन्दसे वास करते हैं ॥ १०७ ॥
धर्मदेव दश मन्वन्तरतक भक्तिभावसे शक्तिकी आराधना करके सबके जीवन
स्वरूप, सबके आराध्य और सबके आधारस्वरूप हुए हैं ॥ १०८ ॥ हे
मुनिवर! इस प्रकार क्या देवीगण, क्या देवगण, क्या मुनिगण, क्या मनुगण, क्या

भूपालगण, क्या ब्राह्मणगण सबही शक्तिकी आराधना करके जगत्में पूजनीय हुए हैं ॥ १०९ ॥ हे देवर्षे ! मैं ने पूर्वकालमें गुरुके मुखसे वेदविधानानुसार जिस प्रकार सुना है, वह सब पूर्वतन वृत्तान्त वर्णन किया अब और क्या सुननेकी वासना है, सो कहो ॥ ११० ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषायां अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ९.

देवर्षि नारद नारायणसे बोले हे प्रभो ! आपने कहा कि, प्रकृतिदेवीके निमेषमें प्रलय उपस्थित होती है और उस पतनमेंही ब्रह्माण्डका पतन होता है और यह प्रलय ही प्राकृतप्रलय है ॥ १ ॥ इस प्रलयमें वसुंधरा देवी तिरोहित होती है संपूर्ण विश्वभी जलमें डूब जाता है और संपूर्ण जगत् प्रपंच प्रकृतिके शरीरमें लीन होता है॥ २ ॥ किन्तु मैं जिज्ञासा करता हूं, वसुन्धरा देवी तिरोहित होकर किस स्थानमें अवस्थान करती है और फिर सृष्टिके आरंभमें वह किसप्रकार किस स्थानसे फिर आविर्भूत होती है ? ॥ ३ ॥ उनके इस प्रकार धन्य, मान्य, सबके आश्रय और विजयप्रद होनेका कारण क्या है ? आप अनुग्रह पूर्वक उनका मंगलनिदान जन्मवृत्तान्त वर्णन कीजिये ॥ ४ ॥ नारायणने कहा हे वत्सनारद ! सबही कहते हैं कि, देवी वसुंधरा सृष्टिके प्रारंभमें जन्म ग्रहण करती हैं किन्तु वास्तविक मायामयी प्रकृति देवीकी महिमासे उनकीही शक्तिरूपिणी धरणीका कभी आविर्भाव और कभी तिरोभाव होता है. अतएव उनकी इच्छानुसारही प्रतिप्रलयमें पृथ्वी एकवार तिरोहित और फिर आविर्भूत होती है ॥ ५ ॥ जो हो, अब मंगलप्रद विघ्नविनाशन, पापमोचन और पुण्यवर्द्धक पृथ्वीके जन्मका वृत्तान्त वर्णन करता हूं, सुनो ॥ ६ ॥ कोई कोई कहते हैं कि, मधु और कैटभ दैत्यके मेदसे मेदिनीकी उत्पत्ति हुई है, किन्तु वास्तवमें यह बात नहीं है, सम्प्रति मधुकैटभके मेदसे जो मेदिनीकी उत्पत्ति हुई है, वह विरुद्धमत वर्णन करता हूं, सुनो ॥ ७ ॥ अतिपूर्वकालमें विष्णुके संग मधु और कैटभनामक दो दैत्योंका घोर युद्ध उपस्थित हुआ उस युद्धमें दोनों दैत्य विष्णुसे संतुष्ट होकर बोले हे "विष्णु ! हम दोनों युद्धमें संतुष्ट हुए हैं, अतएव हमसे वर मांगो" विष्णुने कहा "यदि संतुष्ट हुए हो, तो मैं यही वर

मांगता हूं कि, तुम दोनों मुझसे मारे जाओ" तब दैत्योंने कहा "पृथ्वीका जो स्थान जलमें प्लावित न हो अर्थात् जहां जल न हो उस स्थानमें हमारा वध करो"॥ ८ ॥ इससे स्पष्ट बोध होता है कि, इन दोनों दैत्योंके जीवित कालमें पृथ्वी विद्यमान थी. किन्तु केवल जलमें निमग्न होकर अदृश्यभावसे अवस्थित थी, नहीं तो "पृथ्वीका जो स्थान जलकीर्ण न हो, उस स्थानमें हमारा वध करो" यह बात क्यों कहते ? और केवल मेदसे पृथ्वीकी उत्पत्ति भी असंभव है क्योंकि शतसूर्य भी मेदको शुष्क करके पृथ्वीको उत्पन्न नहीं करसक्ते तो मेदिनीका फलितार्थ यही है कि, विष्णुके अपने उरुदेशके ऊपर स्थापन करके दोनों दैत्योंका विनाश करनेसे उनका जो मेद जलमें गिरा ॥ ९ ॥ और वराहदेवने धराका उद्धार होनेपर उस धराके संग मेदका संश्लेष संबंध उपस्थित होनेके कारण पृथ्वीका नाम मेदिनी हुआ है ॥ १० ॥ अब मैं ने पूर्वकालके समय पुष्कर तीर्थमें धर्म देवके मुखसे श्रुतिसम्मत, संगत और मंगलदायक जो मत सुना है वह कहता हूं, सुनो ॥ ११ ॥ जलमें प्रविष्ट महा विराट्का मन सर्वाङ्ग व्यापी होनेसे प्रतिलोममेंही प्रविष्ट हुआ इसके पीछे पञ्चीकरण समयमें जो महा पृथ्वीकी उत्पत्ति हुई, उस महापृथ्वीको खंड खंड करके प्रत्येक लोममें स्थापन किया इसके अनन्तर खंड खंडमें अवस्थित वह पृथ्वी सृष्टिकालमें एकवार आविर्भूत और प्रलय कालमें तिरोहित हुई ॥ १२ ॥ अतएव महाविराट्के प्रति लोमकूपमें जो मन प्रविष्ट होता है, उस मनसेही बहुत कालके पीछे वसुधाकी उत्पत्ति होती है ॥ १३ ॥ विराट्रूपी पुरुषके प्रतिलोमकूपमेंही एक एक पृथ्वी विराजमान रहती है केवल वारंवार आविर्भूत और तिरोभूत होना मात्र है॥ १४ ॥ जब आविर्भूत होती है, तब जलके ऊपर भासमान होती है और जब तिरोभूत होती है, तब जलमें मग्न होती है ॥ १५ ॥ यह पृथ्वी प्रति विश्वमेंही शैल, कानन, सप्तसागर, सप्तद्वीप ॥ १६ ॥ सुमेरुपर्वत, चन्द्र सूर्यादि ग्रह, ब्रह्मा विष्णु शिवादि सुर लोक ॥ १७ ॥ संपूर्ण पुण्यतीर्थ, पवित्र भारतवर्ष, काञ्चनीभूमि, सप्तस्वर्ग ॥ १८ ॥ अधोभागमें सप्त पाताल, ऊर्ध्वमें ब्रह्मलोक और ध्रुवलोक संयुक्त होकर स्थिति करते हैं इस प्रकार संपूर्ण पदार्थ संयुक्त एक एक भूमण्डल एक एक विश्व है ॥ १९ ॥ प्रतिभूमण्डलमें ही पूर्वोक्त नियमसे विश्व विरचित होता है सुतरां विश्वमात्रही कृत्रिम और नश्वर है ॥ २० ॥ जब प्राकृतप्रलय उपस्थित होकर ब्रह्माका पतन होता है और जब आदि सृष्टिका प्रारंभ होता है तब परमात्मा

रूपी श्रीकृष्णसेही महाविराट्की उत्पत्ति होती है ॥ २१ ॥ सृष्टि, स्थिति, प्रलय, काल और ब्रह्मादि समस्तही प्रवाहरूपसे नित्य हैं वराहकल्पमें सुरगण ॥ २२ ॥ मुनिगण, मनुगण, विप्रगण और गंधर्वादिद्वारा जो वसुंधरा पूजित होती है, यह भी प्रवाहरूपसे नित्य है श्रुतिमें कहा है कि, धरा वराह रूपधारी विष्णुकी पत्नी है ॥ ॥ २३ ॥ मंगल उस धराका पुत्र और मंगलके पुत्र घटेश हैं देवर्षिनारदने कहा हे भगवन्! वराहकल्पमें वाराही नामक प्रसिद्ध, भूमि देवताओंने किसरूपसे पूजी ॥ ॥ २४ ॥ सचेतन और अचेतन सम्पूर्ण पदार्थोंकी आश्रयस्थानीय सुरपूजिता यह पृथ्वी पंचीकरण प्रथानुसार किस प्रकार मूलप्रकृतिसे उत्पन्न हुई ॥२५॥ भूलोकमें और स्वर्लोकमें उसकी पूजापद्धति किस प्रकार है और मंगलकी भी मंगलजनक अर्थात् अत्यन्त पावन उस पृथ्वीका विस्तार किसप्रकार है और जन्मवृत्तान्त किस प्रकार है, यह विस्तारसहित वर्णन कीजिये ॥ २६ ॥ नारायणने कहा वराहदेव पूर्वकालके समय वाराह कल्पमें ब्रह्माजीके स्तुति करनेसे हिरण्याक्ष दैत्यको मारकर पृथ्वीको रसातलसे निकाल लाये ॥ २७ ॥ फिर हृदयमें जिस प्रकार पद्मपत्र भासमान होता है, इसीप्रकार पृथ्वीको जलके ऊपर स्थापन किया इस ओर ब्रह्माजीने उसी अवसरमें उस धरापृष्ठमें अत्यन्त मनोहर विश्व संसार रचा ॥ २८ ॥ इसी समय करोड़सूर्यके समान प्रभायुक्त वराहरूपी भगवान् हरि पृथ्वीकी अधिदेवीको रूपवती और अनुरागवती देखकर ॥ २९ ॥ स्वयं मनोहरमूर्त्ति रमणोपयोगी वेष किया अनन्तर देवमानके एक वर्ष पर्यन्त दिनरात दोनोंने रतिक्रिया की ॥ ३० ॥ सुन्दरी धरा संभोगसुखसे एकवारही मूर्च्छित होगई,क्योंकि रसिकाके संग रसिकका समागम अत्यन्त सुखजनक है ॥ ३१ ॥ इधर विष्णु भी धराके अंगस्पर्शजनित सुखसे अत्यन्त अभिभूत हुए यही क्या?दिनरात्रि उनके किस ओर होकर बीत गये थे कुछ न जानपड़े पूर्ण एकवर्ष बीतनेपर समागम सुखके अन्तमें पूर्ववत् बोधका विकास हुआ, तब कामुक और कामुकी दोनोंमें पृथक् हुए ॥ ३२ ॥ श्रीहरिने पुनर्वार लीला पूर्वकही पूर्ववत् वराहरूप धारण किया और उस सती धरणीकी पूजा की ॥ ३३ ॥ और धूप, दीप, नैवेद्य, सिन्दूर, चन्दन, वस्त्र, पुष्प और अन्यान्य अनेक प्रकारकी सामग्रीसे उसकी पूजा करके कहा ॥ ३४ ॥ श्रीभगवान् बोले हे शुभे! तुम सम्पूर्ण पदार्थोंका आधार होओ मुनिगण, मनुगण, देवगण, सिद्धगण और दानवादि सम्पूर्ण

स्वच्छन्दतासे तुम्हारी अर्चना करैं॥ ३५॥मैं कहता हूं,अम्बुवाची त्यागके दिन और इसके अतिरिक्त गृहारंभ, गृहप्रवेश वापी वा तालाव इत्यादि खोदने एवं कृषिकार्यके प्रारंभदिनमें ॥ ३६ ॥ सबही तुम्हारी पूजा करेंगे जो मूढ तुम्हारी पूजासे विमुख होंगे वह निःसन्देह नरकवास करेंगे ॥ ३७ ॥ वसुन्धराने कहा हे प्रभो ! मैं आपकी आज्ञानुसार वाराही मूर्त्ति धारण करके लीलापूर्वकही स्थावर जङ्गमात्मक सम्पूर्ण विश्वको पीठपर वहन करूंगी ॥ ३८ ॥ किन्तु मोती, सीपी, शालग्राम, शिवलिंग, देवी,प्रतिमा, शंख, प्रदीप यंत्र,माणिक्य,हीरक ॥ ३९ ॥ यज्ञोपवीत,पुष्प, पुस्तक, तुलसी पत्र, जपमाला, पुष्पमाला, सुवर्ण,कपूर, ॥ ४० ॥ गोरोचन, चन्दन और शालग्राम शिलाका जल यह सब किसीप्रकार वहन नहीं करसकूंगी इन सबको वहन करनेसे मेरे कष्टकी सीमा नहीं रहेगी अर्थात् यह वस्तु किसी आधारपर धरौ ॥ ४१ ॥ भगवान् नारायणने कहा हे सुन्दरी जो मूढ पापात्मालोग तुम्हारी पीठपर यह सब द्रव्य स्थापन करेंगे, वह दिव्य शतवर्षपर्यन्त कालसूत्र (नरकविशेष) में गमन करेंगे ॥ ४२ ॥ हे वत्सनारद ! भगवान् नारायण धरासे इसप्रकार कहकर मौन होगये इस ओर पूर्वसंभोगके कारण धराके गर्भसे तेजस्वी मंगल ग्रह उत्पन्न हुए ॥ ४३ ॥ श्रीहरिकी आज्ञानुसार सबही काण्वशाखोक्त ध्यानसे धराकी पूजा करके स्तवपाठ करने लगे ॥ ४४ ॥ मूलमंत्रसे नैवेद्य इत्यादि समस्त द्रव्य देने लगे त्रैलोक्यमें सर्वत्रही उनका स्तव और पूजा चलनिकली ॥ ४५ ॥ नारदजी बोले हे भगवन् ! वसुन्धराका ध्यान स्तव और मूलमंत्र पुराणोंमें अति गूढ है, अतएव उसको सुननेके लिये मुझको बड़ा कौतूहल उपस्थित हुआ है अनुग्रहपूर्वक वर्णन कीजिये ॥ ४६ ॥ नारायणने कहा हे वत्स ! सबसे पहिले वराह देवके पृथ्वीकी पूजा करलेपर फिर ब्रह्माने उनकी पूजा की ॥ ४७ ॥ ब्रह्माकी पूजाके पीछे समस्त मुनीन्द्र समस्त मनु और मनुष्यादि सबने पृथ्वीकी पूजा आरम्भकी है अब देवीका ध्यान स्तव और मंत्र कहता हूं सुनो ॥ ४८ ॥ पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने "ओं ह्रीं श्रीं क्लीं वसुधायै स्वाहा" इस मूलमंत्रसे पृथ्वीकी पूजा की थी इसके उपरान्त फिर "हे देविधरे" तुम्हारा वर्ण श्वेतसरोज (कमल) के समान है, तुम्हारा मुखमण्डल शरद्के चन्द्रमाके समान है ॥ ४९ ॥ तुम्हारा सर्वाङ्ग चन्दनादिलेपनसे लिप्त है तुम्हारा संपूर्ण शरीर रत्नमय विभूषणोंसे विभूषित है, तुम सब

१ आर्द्रानक्षत्रके प्रथम पादमें पृथ्वीरजस्वला होती है उस दिनको त्यागना चाहिये यही अम्बुवाची है। तीनदिनतक रजस्वलाजाननी।

रत्नोंका आधार हो, तुम्हारेही गर्भमें समस्त रत्न निहित रहते हैं तुम्हीं रत्नाकरमें व्याप्त हो ॥ ५० ॥ तुम्हीं अग्निपरीक्षित (वस्त्र) पहरे रहती हो हे स्मितानने ! तुम तीनों लोकोंसे पूजित हो, अतएव मैं तुम्हारी भजना करता हूं" इस ध्यानसे सभी भूमिकी पूजा करने लगे ॥ ५१ ॥ नारायणने कहा हे द्विजेन्द्र ! अब काण्वशाखामें पृथ्वीका जिसप्रकार स्तव निर्दिष्ट हुआ है सो कहता हूं सुनो " हे जगजये ! हे जलाधारे ! हे जलशीले ! हे जयप्रदे ! ॥ ५२ ॥ हे यज्ञवराहपत्नि ! हे जयावहे ! तुम मुझको जयप्रदान करो हे मङ्गले ! हे मङ्गलाधारे ! हे माङ्गल्ये ! हे मङ्गल प्रदे ! ॥ ५३ ॥ तुम मंगलप्रदानकेलिये मंगलकी अधीश्वरी हुई हो, अतएव इस संसारमें मुझको मंगल प्रदान करो हेसर्वाधारे! हे सर्वज्ञे ! हे सर्वशक्तिसमन्विते ॥ ५४ ॥ ॥ हे सर्वकामप्रदे ! हे देवि पृथिवि ! तुम इस संसारमें मुझको वांछित फलप्रदान करो हे पुण्यस्वरूपे ! हे समस्त पुण्यबीजरूपे ! हे सनातनि ! ॥ ५५ ॥ हे पुण्याश्रये ! तुम संपूर्ण पुण्यवान् ! पुरुषोंकी स्थानस्वरूप हो, इस संसारमें तुम सबको पुण्यप्रदान करती हो, तुम्हीं सम्पूर्णसस्य (धान्य) का आलय और तुम्हीं सब प्रकारके शस्य धनमें धनवती हो, तुम्हीं सबको सब प्रकारका सस्यप्रदान करती हो ॥ ५६ ॥ इस संसारमें तुम्हीं एक समय समस्त सस्य करती हो और फिर एक समयमें अनेक प्रकारका सस्य उत्पन्न करती हो हे भूमे ! तुम्ही भूमिपतियोंकी सर्वस्व स्वरूप हो ॥ ५७ ॥ उनको श्रेष्ठतम आश्रयस्वरूप और सुखस्वरूप हो, अतएव हे भूमिदे ! तुम मुझे भूमिदान करो" हे वत्स ! पृथ्वीका यह स्तोत्र अतीव पुण्यप्रद है, अधिक क्या प्रतिदिन प्रातःकालमें उठकर जो इस भूमिस्तोत्रको पढते हैं ॥ ५८ ॥ वह करोड २ जन्ममें सार्वभौम राजा होकर काल व्यतीत करसकते हैं मनुष्यगण इसको पाठ करके भूमिदानके पुण्यलाभ करनेमें अधिकारी होते हैं ॥ ५९ ॥ यदि कोई भूमिदान करके उसको फेरले, जो अम्बुवाची दिनमें भूमिखनन करता है ॥ ६० ॥ जो विना अनुमतिके दूसरेके बनाये कूपमें कूपखनन करता है, जो पराई भूमि हरण करता है ॥ ६१ ॥ जो भूमिमें वीर्यपात करता है जो भूमिके ऊपर प्रदीप स्थापन करता है, तो वह निःसन्देह इस स्तोत्रका पाठ करनेपर अपने अपने किये पातकसे छूट जाते हैं ॥ ६२ ॥ इसके पढनेसे सौ अश्वमेधके समान पुण्यलाभ होता है इसमें संशय नहीं वास्तवमें देवी धरणीका यह स्तोत्र सब प्रकारके कल्याणका आकरस्वरूप है ॥ ६३ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः १०.

नारदजी बोले हे वेदवेत्ताओंमें अग्रगण्य दूसरेकी भूमिका हरण, दूसरेके कूपमें कूपखनन ॥ १ ॥ अम्बुवाची दिनमें भूमिखनन, पृथ्वीपर वीर्यत्याग, भूमिके ऊपर प्रदीप स्थापन ॥ २ ॥ वा पृथ्वीपर अन्यप्रकारका असदाचरण करनेसे जिस प्रकार पापका स्पर्श होता है, सो कैसे कार्यका अनुष्ठान करनेसे उसका प्रतीकार होता है, यह सुननेकी अभिलाषा है, कृपापूर्वक वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥ नारायण बोले हे वत्सनारद ! इस भारतमें जो कोई एक बिलस्त भूमि त्रिसंध्या करनेवाले ब्राह्मणको देता है, तो उसका शिवलोकमें वास होता है ॥ ४ ॥ धान्यपूर्ण पृथ्वी ब्राह्मणको दान करनेसे दाता अन्तकालमें भूमि रेणुपरिमित समयतक विष्णुलोकमें वास करता है ॥ ५ ॥ ब्राह्मणको ग्रामदान भूमिदान और धान्यदान करनेसे दाता और प्रतिगृहीता दोनोंही पापसे छूटकर देवीलोकमें जाते हैं ॥ ६ ॥ अधिक क्या यदि कोई सज्जन भूमिदानके प्रसंगमें स्थित होकर दाताको प्रवृत्ति करै तो वह भी अन्तमें मित्र बांधवोंके सहित वैकुण्ठधाममें गमन करते हैं ॥ ७ ॥ अपनी दी हुई हो वा पराई दी हुई हो ब्रह्मवृत्ति हरण करनेसे जबतक जगत्में चन्द्र सूर्य प्रकाशमान रहेंगे, तबतक उसको कालसूत्र नामक नरकमें वास करना पड़ेगा ॥ ८ ॥ यही नहीं, वरन् उसके पुत्र पौत्रादितकको भी भूमिहीन श्रीहीन पुत्रहीन और धनहीन हो घोरतर रौरवनरकमें वास करना होगा ॥ ९ ॥ ग्रामके प्रान्तभागमें गोप्रचार[1] स्थानकी रक्षा करनी चाहिये, यही शास्त्रका शासन है किन्तु यदि कोई उस गोप्रचार भूमिको कर्षण करके, उस भूमिजातधान्यादिसे पुण्यसंचय वा उसको ब्राह्मणके निमित्त ही देदे तो उसका पुण्यसंचय करना तो दूर रहै, वरन् वह दिव्य शतवर्षपर्यन्त कुंभीपाक नामक नरकमें वास करता है ॥ १० ॥ गोठ वा तालाबादि नष्ट करके जो उसमें धान्यादि उत्पन्न करता है, उसको भी चौदह इन्द्रपात होनेके समयतक असिपत्र नामक नरकमें वास करना पड़ता है ॥ ११ ॥ अन्यनिर्मित पुष्करिणी इत्यादिमें स्नान करनेके समय पांच मिट्टीकी डली उठा करके स्नान करना चाहिये किन्तु कोई यदि ऐसा न करके स्नान करता है, उसको स्नानका फललाभ होना तो दूर रहै, वरन उसको नरकवासका आश्रय ग्रहण करना होता है ॥ १२ ॥ जो पुरुष कामके

---

१ जहां गौ चराकरती हैं उस स्थानको गोप्रचार कहते हैं।

वशीभूत होकर किसी प्रकारकी निर्जन भूमिमें वीर्यपात करता है, तो उसको वहांकी भूमिकी रेणुका परिमित वर्षपर्यन्त नरकका दुःख भोगना पड़ता है ॥ १३॥ अम्बुवाची दिनमें भूमिखनन करनेसे चार युगपर्यन्त कृमिदंश नामक नरकमें काल व्यतीत करना पड़ता है ॥ १४ ॥ जो मूढ पुरुष कूप बनानेवालेकी वा जलाशयदाताकी विना अनुमतिलिये लुप्तकूपका वा लुप्तजलाशयका पङ्कोद्धार करता है ॥ १५ ॥ तो उसका कुछभी फलोदय नहीं होता, वरन् पूर्वस्वामीको ही पुण्यलाभ होता है अधिकतर उस मूर्खको तप्तकुंड नरकमें जाकर चौदह इन्द्रके समयपर्यन्त वहां वास करना पड़ता है ॥ १६ ॥ दूसरेके सरोवरके जलमें स्नान करनेके समय पांच डली उठा करके स्नान करनेसे उन गुटिकाकी रेणुपरिमितकाल स्नान करनेवाला ब्रह्मलोकमें वास करता है ॥ १७ ॥ पिता और पितामहादिके श्राद्धमें भूस्वामीको पिंड आदि कोई खाद्य वस्तु विनादिये श्राद्ध करनेसे उस मूढ श्राद्ध करनेवालेको निःसन्देह नरकमें वास करना पड़ता है॥ १८॥ विना आधार भूमिके ऊपर प्रदीप स्थापन करनेसे सात जन्मतक अंधा और जन्मान्तरमें कुष्ठ रोगसे आक्रान्त होता है॥ १९॥ मोती, मूँगा, हीरा, सुवर्ण, मणि इन पांच रत्नको भी भूमिमें स्थापन करनेसे स्थापन करनेवाला अंधा होता है ॥ २० ॥ शिवलिंग, शिवाकी प्रतिमूर्ति और शालग्राम शिला भूमिमें स्थापन करनेसे स्थापन करनेवालेको शतमन्वन्तरतक कृमिभक्षक होकर वास करना पडताहै॥ २१ ॥ शंख यंत्र शिलाजल अर्थात् चरणामृत पुष्प और तुलसीपत्र भूमिमें स्थापन करनेसे निःसन्देह नरकवास प्राप्त होता है ॥ २२ ॥ जपमाला, पुष्पमाला, गोरोचन और कपूर भूमिमें स्थापन करनेसे स्थापन करनेवालेको निःसन्देह घोरतर नरककी यंत्रणा भोगनी पडती है ॥ २३ ॥ चन्दन काष्ठ रुद्राक्षमाला और कुशमूल पृथ्वीमें स्थापन करनेसे एक मन्वन्तरपर्यन्त नरकमें वास होता है ॥ २४ ॥ पुस्तक और यज्ञसूत्र भूमिपर स्थापन करनेसे फिर उसको ब्राह्मणके कुलमें जन्म नहीं मिलता ॥ २५ ॥ वरन् उसको ब्रह्महत्याके समान पातकमें लिप्त होना पडता है ग्रंथियुक्त यज्ञसूत्र सब वर्णोंको पूज्य है ॥ २६ ॥ यज्ञकार्य समापनके पीछे जो पुरुष दूध दहीसे पृथ्वीका अर्थात् यज्ञभूमिका अभिषेक नहीं करता उसको सात जन्मतक संतप्त होकर तप्तभूमिमें वास करना पडता है ॥ २७॥ भूकम्प वा ग्रहणके समय जो मिट्टी खोदता है वह महापापी जन्मान्तरमें अंगहीन होता है ॥ २८ ॥ हे मुनिवर ! यह पृथ्वी सबका भवन होनेके कारण भूमि कश्य-

पकी कन्या होनेसे काश्यपी स्थिर रूपा होनेसे अचला ॥ २९ ॥ संपूर्ण विश्वको धारण करनेके कारण विशम्भरा अनन्त विस्तार होनेसे अनन्ता और पृथुराजकी कन्या वा बहुत विस्तृत होनेके कारण पृथ्वीनामसे अभिहित हुई है ॥ ३० ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ११.

देवर्षि नारदने कहा हे वेदविदाम्वर ! अत्यन्त मनोहर पृथ्वीका उपाख्यान ना- अब गंगाका उपाख्यान सुननेकी इच्छा है ॥ १ ॥ पूर्वमें सुना है कि सुरेश्वरी विष्णुस्वरूपिणी विष्णुपादोद्भवा गंगा भारतीके शापसे भारतमें गई ॥ २ ॥ किन्तु उनके भारतमें जानेका कारण क्या है? किस युगमें किसकी प्रार्थनासे वह भारतमें गई? हे प्रभो! वही पापनाशक पुण्यप्रद शुभवृत्तान्त वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥ श्रीनारायण बोले हे वत्स ! पूर्वकालके समय सूर्यवंशमें सगर नामक श्रीमान् एक राजराजेश्वरने जन्म लिया था उनकी परमरूपवती दो भार्या थीं, तिनमें एकका नाम वैदर्भी दूसरीका नाम शैव्या था ॥ ४ ॥ शैव्याके गर्भसे नरपतिके वंशधर अतिरूपवान् एक पुत्रने जन्म ग्रहण किया इस पुत्रका नाम असमञ्जस था[1] ॥ ५ ॥ इस उ- दूसरी रानी वैदर्भी पुत्रकी इच्छासे श्रीशंकरकी आराधना करने लगी भगवान् भूतनाथके प्रसन्न होकर वरदेनेसे वैदर्भी भी गर्भवती हुई ॥ ६ ॥ अनन्तर शतवर्ष गर्भ धारणके पीछे उसने एक मासका पिंड प्रसव किया यह देख कर राजपत्नी अत्यन्त दुःखितमनसे महादेवकी शरणागत हो उच्चस्वरसे वारंवार रोदन करने लगी ॥ ७ ॥ तब भगवान् शंकरने ब्राह्मणके वेषमें वहां उपस्थित होकर उस मांसपिंडको सहस्र खंडमें विभक्त किया ॥ ८ ॥ वह सहस्रखंड महाबलपराक्रान्त पुत्ररूपमें परिणत हुए अधिक क्या ? उन कुमारोंके शरीरकी प्रभा ग्रीष्म कालके मध्याह्नसूर्यकी प्रभासे भी अधिक उज्ज्वल थी ॥ ९ ॥ किन्तु संपूर्ण कुमारोंके कपिलमुनिके शापसे भस्म होनेपर राजाने अत्यन्त रुदनकरते करते निविड़ वनमें प्रवेश किया ॥ १० ॥ इधर

---

१ सगरके यज्ञ करनेपर इन्द्रने घोडा हरणकर कपिलजीके समीप जा रक्खा यह राजकुमार उसको खोजनेगये वहां पाय कपिलजीको दुर्वचन कहनेसे उनके कोपानलमें भस्म हुए असमंजसकी प्रार्थनासे गंगासे उद्धार होगा यह मुनिने कहा ना०पु०

असमंजस गंगाको लानेकेलिये घोरतर तपस्या करनेलगे क्रमानुसार लाख वर्ष बीतने पर उन्होंने कालके वशीभूत होकर देह त्याग दिया ॥ ११ ॥ फिर उनके पुत्र अंशुमान् गंगाको लानेकेलिये लक्षवर्षपर्यन्त कठोर तपस्या करके कालकवलमें पतित हुए ॥ १२ ॥ इसके उपरान्त अंशुमान्के पुत्र भगवद्भक्त परम वैष्णव अजर अमर अशेषगुणोंकी खान बुद्धिमान् भगीरथने ॥ १३ ॥ गंगाको लानेकेलिये एक लक्षवर्षपर्यन्त तपस्या की अन्तमें करोड़ ग्रीष्मके सूर्यके समान प्रभायुक्त श्रीकृष्णने उनको दर्शन दिया ॥ १४ ॥ उन किशोर मूर्त्ति गोपवेषधारी द्विभुज श्रीकृष्णके हाथमें मुरली विराजमान थी और उनका वह गोपाल सुंदरीरूप देखनेसे बोध होता था मानों भक्तोंके प्रति अनुग्रहप्रकाश करनेके लिये ही सर्वदा उन्मुख रहते हैं ॥ १५ ॥ वह स्वेच्छामय परब्रह्म हैं उनकी अपूर्णता नहीं है ब्रह्मा विष्णु और महेश्वरादि देवता तथा मुनि इत्यादि सभी उन विभुका स्तव करते रहते हैं ॥ १६ ॥ वह किसीमें लिप्त नहीं हैं और सबके साक्षीरूपसे अवस्थान करते हैं वह तीनों गुणोंसे अतीत और प्रकृतिसे भी अतीत पदार्थ हैं कुछेक हास्यसे उनका मुखमंडल सदाही प्रफुल्ल है भक्तोंके प्रति अनुग्रह प्रकाश करनेमें उनके समान दूसरा और कोई नहीं है ॥ १७ ॥ उनका परिधान अग्नि परीक्षित विशुद्ध अंशुक और सर्वांग रत्नमय विभूषणोंसे विभूषित था राजा भगीरथ उस अपूर्व मूर्त्तिका दर्शन करके प्रणामपूर्वक वारंवार स्तव करने लगे ॥ १८ ॥ उनका सर्वांग पुलकावलीसे पूर्ण होगया अनन्तर उन्होंने स्वच्छन्दतासे अपने वंशका तारनेवाला अभिमत वर लाभ किया ॥ १९ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णने गंगासे कहा हे सुरेश्वरि ! सरस्वतीके शापसे तुम शीघ्र भारतमें अवतीर्ण होओ, मेरे कहनेके अनुसार तुम शीघ्र जाकर सगर–सन्तानका उद्धार करो ॥ २० ॥ वह सलिलकणवाही वायुके स्पर्शसे पवित्र हो, मेरे समान मूर्त्ति धारण कर दिव्य विमानमें चढ़ मेरे भवनमें आवेंगे ॥ २१ ॥ और निरन्तर वहां मेरे पार्षद होकर वास करेंगे और उनको जन्म जन्मान्तर कृतपातकमें लिप्त होना नहीं पड़ेगा ॥ २२ ॥ हे वत्सनारद ! वेदमें इस प्रकार वर्णित हुआ है कि मनुष्यगण भारतमें जन्म ग्रहण करके यदि करोड करोड जन्म पापाचरण करें तो भी एक गंगाके सलिलकणवाही वायुके स्पर्शसे वह सब ध्वंस होजाते हैं ॥ २३ ॥ गंगाजीके दर्शन और गंगाजलके स्पर्शसे दशगुणा पुण्य होता है मनुष्य सामान्यदिनमें जो

संकल्प रहित विधिहीन स्नान करता है गंगासलिल कणवाहि वायुसेवनकी अपेक्षा दशगुण पुण्यलाभ होता है ॥ २४ ॥ विशेष कर गंगाजलमें स्नान करनेसे मनुष्य शीघ्र पापसे छूट जाता है वेदसे जाना गया है कि विधिपूर्वक गंगास्नान करनेपर भी शतकोटिजन्मजनित जो ब्रह्महत्यादि पातक हैं ॥ २५ ॥ ज्ञानकृत हों वा अज्ञानकृत हों जन्मपर्यन्तके किये समस्त पातक विधिपूर्वक स्नानसे नष्ट होजाते हैं ॥ २६ ॥ पुण्य दिनमें स्नान करनेसे जितना पुण्य लाभ होता है, उसका वर्णन करनेकी वेदमें भी सामर्थ्य नहीं है, तो वेदमें जो कुछ वर्णन किया गया है, वह अति सामान्य है ॥ २७ ॥ अधिक क्या ब्रह्मा विष्णु और महादेवादि देवतागण भी गंगास्नानकी प्रकृत महिमा वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हैं हे विप्रवर ! यह तो साधारण दैनिक (नित्य) गंगास्नानका माहात्म्य है अब संकल्पजनित स्नानका माहात्म्य वर्णन करता हूं सुनो ॥ २८ ॥ साधारण दैनिक स्नानसे जो फल लाभ होता है संकल्पपूर्वक गंगास्नान करनेसे उसकी अपेक्षा दशगुण पुण्य लाभ होता है और यदि सूर्यके संक्रमण दिनमें अर्थात् संक्रान्तिके दिन गंगास्नान किया जाय तो उसकी अपेक्षा तीस गुणा पुण्य बढता है ॥ २९ ॥ अमावस्याके दिनमें गंगास्नान करनेसे पूर्ववत् फल लाभ होता है किन्तु दक्षिणायन स्नान करनेसे उसकी अपेक्षा दूना और उत्तरायणमें स्नान करनेसे पूर्वकी अपेक्षा दशगुणा पुण्य संचय होता है ॥ ३० ॥ चातुर्मास्य, पूर्णिमा, अक्षयनवमी वा तृतीयामें गंगास्नान करनेसे जितना पुण्य लाभ होता है उसकी सीमा नहीं है॥ ३१ ॥ और पूर्वोक्त पर्ववाले दिनमें स्नान और दान इन दोनों प्रकारके कार्योंका अनुष्ठान होनेसे पुण्य फल लाभकी सीमा नहीं रहती प्रात्याहिक स्नानकी अपेक्षा दानसे शतगुणा पुण्यलाभ होता है ॥ ३२ ॥ मन्वन्तरा तिथि युगाद्या माघमासकी शुक्ला सप्तमी भीष्माष्टमी ॥ ३३ ॥ अशोकाष्टमी और श्रीरामनवमीके दिन गंगास्नान करनेसे महापुण्य लाभ होता है और नन्दास्नानसे उसकी अपेक्षा दूना पुण्य संचय होता है ॥ ३४ ॥ दशहरा दशमीमें स्नान करनेसे युगाद्या स्नानकी तुल्य फल होता है और यदि महानन्दा अथवा महावारुणीमें गंगास्नान किया जाय तो पूर्वकी अपेक्षा चतुर्गुणा पुण्य लाभ होता है ॥ ३५ ॥ महा महा वारुणीमें स्नान करनेसे साधारण गंगास्नानकी अपेक्षा करोड गुण पुण्य लाभ होता है॥ ३६ ॥ चन्द्रग्रहणके समयमें स्नानकी अपेक्षा सूर्य ग्रहणमें स्नान करनेसे उसकी अपेक्षा दशगुण पुण्य लाभ होता है किन्तु अर्द्धोदय

योगमें स्नान करनेसे उसकी अपेक्षा शतगुणा पुण्य लाभ होता है ॥ ३७॥ हे वत्स जब देवेश हरि गंगा और भगीरथके सन्मुख इसप्रकार कहकर मौन हुए तब देवी गंगाने भक्तिपूर्वक कंधे झुकाय उनसे कहा ॥ ३८ ॥ गंगा बोली हे नाथ! यदि पूर्वविहित सरस्वतीके शापसे और आपकी आज्ञासे अवश्यही मुझको भारतमें जाना होगा ॥ ३९ ॥ तो पापी मनुष्य मेरे जलमें जो पापमल धोवेंगे मैं किस प्रकार उनसे छुटकारा पाऊंगी? इसका उपाय बताइये ॥ ४० ॥ और कितने समयतक मुझको भारतमें रहना होगा कितने दिनोंके पीछे मैं आपके परमपदको प्राप्तहूंगी ॥ ४१ ॥ हे सर्वान्तर्यामिन्! हे सर्वज्ञ! हे प्रभो! इसके अतिरिक्त मेरे मनकी जो वांछा है वह आपसे छिपी नहीं है, क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं, अतएव अनुग्रह करके समस्त विषयका उपाय बताइये ॥ ४२ ॥ भगवान् श्रीहरिने कहा हे सुरेश्वरीगंगे! मैं ने तुम्हारे हृदयका भाव समझ लिया है, कुछ चिन्ता नहीं तुम्हारी जलमयी मूर्त्ति धारण करनेसे लवणोदधि तुम्हारे पति होंगे ॥ ४३ ॥ वह भी मेरे अंशस्वरूप और तुम भी लक्ष्मीस्वरूपिणी हो, अतएव भूलोकमें रसिकके संग रसिकाका समागम अतीव सुखजनक होता है ॥ ४४ ॥ भारतमें सरस्वती इत्यादि जो सब नदी विद्यमान हैं, तुम उनकी अपेक्षा सौभाग्य शालिनी होगी ॥ ४५ ॥ भारतीके शापवश आजसे कलिके पांच हजार वर्षतक तुमको भारतमें रहना होगा ॥ ४६ ॥ तुम नित्य जलनिधिके संग क्रीडाकौतुकमें काल व्यतीत करोगी, क्योंकि जैसी तुम रसिका हो, वह भी इसी प्रकार रसिकचूडामणि है ॥ ४७ ॥ भारतवासी सब मनुष्य भगीरथकृत स्तोत्रसे तुम्हारी स्तुति और भक्तिभावसे तुम्हारी पूजा करेंगे ॥ ४८ ॥ काण्व शाखोक्त ध्यानद्वारा ध्यान करके जो प्रतिदिन तुम्हारी अर्चना, तुम्हारी स्तुति और तुमको प्रणाम करेंगे, वह अश्वमेध यज्ञके फलको प्राप्त होंगे ॥ ४९ ॥ अधिक क्या शतयोजनके अन्तरमें भी वास करके जो कोई "गंगा गंगा," यह शब्द मुखसे उच्चारण करता है, तो वह पुरुष सब प्रकारके पापोंसे छूटकर विष्णुलोकमें जाता है ॥ ५० ॥ हजार हजार पापियोंके स्नान करनेसे तुमको जो पापस्पर्श होगा वह अविचलित चित्तसे सहना क्योंकि प्रकृति मंत्रउपासक भक्तोंके स्पर्शसे तुम्हारे संपूर्ण पातक नष्ट होंगे ॥ ५१ ॥ अधिक क्या हजार हजार पापी शव स्पर्श करके तुम्हारे जलमें स्नान करनेपर भी उन प्रकृतिमन्त्रोपासक साधुओंके स्पर्शसे तुम्हारे समस्त ही पाप नष्ट होंगे ॥ ५२ ॥ हे शुभे! तुम भारतमें

सरस्वती इत्यादि श्रेष्ठ नदियोंके संग अवस्थान करके पापियोंके पापपङ्क प्रक्षालन करो ॥ ५३ ॥ जहां प्रकृति देवीकी महिमा कीर्तित होगी वह स्थान पवित्रतीर्थके नामसे विख्यात होगा तुम्हारी चरणरेणुके स्पर्शसे घोर पातकी भी पवित्र होंगे ॥ ॥ ५४ ॥ और वह निःसन्देह उस रेणुपरिमित वर्ष देवीलोक अर्थात् मणिद्वीपमें वास करेंगे जो ज्ञान सहित भक्तिपूर्वक मेरा नाम स्मरण करते करते ॥ ५५॥ तुम्हारे गोदमें देहत्याग करेंगे, वह निःसन्देह मेरे लोकमें जाकर अनन्तकालतक मेरे प्रधान पार्षद हो अवस्थान करेंगे ॥ ५६ ॥ कितनी ही असंख्य प्राकृतप्रलय उनके दृष्टि-गोचर होगी जिनकी सीमा नहीं मृतपुरुषका महापुण्य न रहनेसे उसका देह तुम्हारे क्रोडमें कभी पात नहीं होसकता ॥ ५७ ॥ जबतक सूर्य उदय होंगे, तबतक वह पुरुष वैकुण्ठधाममें वास करेगा अनेक देह धारण कराय स्वकर्मफल भोगके अन्तमें ॥ ५८ ॥ उसको सारूप्य प्रदान करके पार्षद करता हूं यदि कोई अज्ञानी पुरुष तुम्हारे जलको स्पर्श करके देहत्याग करे ॥ ५९ ॥ उसको सालोक्य प्रदान करके पार्षद करता हूं अधिक क्या यत् किंचित् तुम्हारा नाम स्मरण करके स्थानान्तरमें भी देहत्याग करनेसे ॥ ६० ॥ ब्रह्माकी अवस्था तक उसको सालोक्य प्रदान करता हूं और यदि भक्तिभावसे तुम्हारा नामस्मरण करके अन्यत्र देहत्याग करे ॥ ॥ ६१ ॥ उसको असंख्य प्राकृतलयपर्यन्त सारूप्य प्रदान करता हूं, वह अतिउत्तम रत्ननिर्मित विमानमें बैठ, तत्काल पार्षदोंके सहित ॥ ६२ ॥ गोलोकमें जाय मेरे समान रूप धारण करसकता है उसको तीर्थ अतीर्थके मरनेमें कुछ विशेष नहीं है ॥ ६३ ॥ जो नित्य मेरे मंत्रकी उपासना करके मुझको निवेदनकी हुई वस्तु भक्षण करता है वह भक्तजन लीलापूर्वक ही त्रिभुवन पवित्र करसकता है॥ ६४॥ वह पुरुष सर्वोत्कृष्ट रत्ननिर्मित विमानमें चढकर गोलोकधाममें जाता है हे पतिव्रते मेरे भक्तके बांधवगणभी यदि पशुजन्मलाभ करें॥ ६५॥ तो वह भी मेरी भक्तिके प्रभावसे पवित्र होकर रत्नमय विमानमें बैठ दुर्लभ गोलोकमें गमनकर सक्ते हैं भक्तगण जिस किसी स्थानमें वास क्यों न करें भक्तिपूर्वक मुझको स्मरण करने पर॥ ६६॥ उस भक्तिके प्रभावसे वह जीवन्मुक्त होते हैं और पवित्र होते हैं भगवान् श्रीहरिने गंगासे इस प्रकार कहकर भगीरथसे कहा ॥ ६७ ॥ हे वत्स! अब तुम भक्तिपूर्वक गंगाका स्तव और गंगाकी पूजा करो तब भगीरथने भक्तिभावसे ॥ ६८ ॥ कौथुमीशाखोक्त ध्यानसे देवीकी पूजा करके वारंवार उनकी स्तुति करी अनन्तर गंगा और भगीरथके परमात्मरूपी

श्रीकृष्णको प्रणाम करनेपर ॥ ६९ ॥ वह उनके सामने ही अन्तर्धान होगये देवर्षि नारदजी बोले हे वेदविदग्रगण्य ! राजा भगीरथने कुथुमशाखोक्त किस ध्यान किस स्तोत्र और किस विधानसे ॥ ७० ॥ गंगाकी पूजा करी हे श्रेष्ठ ! वह कहिये नारायणने कहा हे वत्स नारद ! प्रथम तो स्नानपूर्वक धौतवस्त्र पहर कर नित्य क्रिया करै ॥ ७१ ॥ फिर संयत होकर भक्तिभावसे गणेश दिनेश अग्नि विष्णु शिव और शिवा ॥७२॥ इन छः देवताओंकी पूजा करै क्योंकि इन छः देवताओंको विना पूजा किये पूजाका अधिकारी नहीं होता प्रथम विघ्नविनाशके लिये गणेश आरोग्यता लाभके लिये सूर्य ॥ ७३ ॥ पवित्र होनेके लिये अग्निदेव ऐश्वर्यलाभके लिये विष्णु ज्ञानलाभके लिये शिव और मुक्तिलाभके लिये शिवानीकी पूजा करै ॥ ७४ ॥ इन सब देवताओंकी पूजा करनेसे कार्यमें अधिकार होता है नहीं तो विपरीत फल प्राप्त होता है अब भगीरथने जिस ध्यान द्वारा गंगाका ध्यान किया था वह कहताहूं सुनो ॥ ७५ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषायां एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः १२.

नारायणने कहा हे वत्सनारद ! अब पापनाशक काण्वशाखोक्त गंगाका ध्यान कहताहूं सुनो हे श्वेतसरोजवर्णे गङ्गे ! तुम सबके समस्त पाप ध्वंश करती हो ॥ १ ॥ तुम्हीं श्रीकृष्णके शरीरसे उत्पन्न हुई हो तुम्हीं श्रीकृष्णके समान सामर्थ्य शालिनी हो तुम्हारे समान सती अन्य दूसरी नहीं है तुम अग्निपरीक्षित विशुद्ध वस्त्र पहरती हो, तुम्हारा सर्वाङ्ग रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित है ॥ २ ॥ तुमने शरत्कालीन शतपूर्णचन्द्रमाकी अपेक्षा उज्ज्वल ज्योति धारण की है ईषत्हास्यसे तुम्हारा मुखमंडल सदा प्रसन्न रहता है और तुम आजीवन स्थिरयौवना हो ॥ ३ ॥ तुम्हीं शान्तस्वभाव नारायणकी प्रियतमा और उनके सौभाग्यगर्वसे गर्विता हो तुम मालतीमालासे विभूषित केशभारसंपन्न हो ॥ ४ ॥ तुम्हारा गण्डदेश चन्दनविन्दु सिंदूरविन्दु और नानाविध विचित्र कस्तूरी (———) रेखासे कैसा सुसज्जित रहता है ॥ ५ ॥ तुम्हारे परिहित वस्त्र और अतिमनोहर ओष्ठपुट परिपक्वबिम्बफलकी अपेक्षाभी लोहित वर्ण हैं तुम्हारे दांतोंकी पंक्ति मुक्तापंक्तिकी

शोभाका तिरस्कार करती है ॥ ६ ॥ तुम्हारे नयन कैसे मनोहर हैं तुम्हारा अपाङ्ग विलोकन कैसा आनन्दजनक है तुम्हारे दोनों स्तन श्रीफलके समान कैसे कठिन हैं ॥ ७ ॥ नितम्बदेश रंभास्तम्भकी अपेक्षा कैसे कठिन और सुघन हैं दोनों चरणकमलोंने स्थलपद्मकी शोभाका तिरस्कार करके कैसी शोभा धारण की है ॥ ८ ॥ चरणमें लोहित वर्ण पादुका कुंकुम और अलक्तक कैसी शोभा पाता है देवेन्द्रके मस्तकस्थित पारिजात कुसुमके मकरन्दमें दोनों चरणोंने कैसा अरुणिमा राग धारण किया है ॥ ९ ॥ देवता सिद्ध तथा मुनींद्रोंका दियाहुआ अर्घ्य चरणोंमें कैसी शोभा पाता है तपस्वियोंके मस्तक झुकाकर प्रणाम करनेसे बोध होता है कि मानों चरण कमलोंमें भ्रमरपंक्ति सन्निविष्ट हुई है ॥ १० ॥ हे मातः ! तुम्हारे पादपद्म मुक्तिकी कामना करनेवालेको मुक्ति और भोगकी अभिलाषा करनेवालेको भोग प्रदान करते हैं हे मातः ! तुम्हीं वर तुम्हीं वरेण्य तुम्हीं वरद और तुम्हीं भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाली हो ॥ ११ ॥ तुम्हीं विष्णुपद प्रदानकरती हो और तुम्हीं विष्णुपदसे उत्पन्न हुईहो सतीहो,तुमको प्रणाम करताहूं हे वत्स ! इस ध्यानसे त्रिपथगा शुभदायिनी गंगाका ध्यान करके ॥ १२ ॥ षोडश उपचारसे पूजे आसन पाद्य अर्घ्य स्नानीय अनुलेपन ॥ १३ ॥ धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, सुशीतल जल, वसन, भूषण, माल्य, चंदन, आचमनीय १४ ॥ और मनोहर शय्या इन षोडश उपचारोंसे देवीकी पूजाकरै फिर हाथ जोडेहुए स्तव करके भक्तिभावसे प्रणाम करै ॥ १५ ॥ इसप्रकार पूजा करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल लाभ होता है नारदजीने कहा हे देवेश ! अब लक्ष्मीकान्त जगत्पति विष्णुके ॥ १६ ॥ चरणोंसे उत्पन्न पतितपावनी श्रीगंगादेवीका पापनाशक पुण्यप्रद स्तोत्र सुननेकी इच्छा करता हूं, आप कहिये नारायण बोले हे वत्स नारद ! अब पापनाशक पुण्यप्रद ॥ १७ ॥ गंगास्तोत्र कीर्त्तन करता हूं सुनो जो शिवके संगीतसे मोहित हो श्रीकृष्णके अंशसे उत्पन्न हैं और श्री राधाके अंग जलमें सिंचित हैं उन गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ १८ ॥ सृष्टिके पहिले गोलोक धाममें रासमंडलके मध्य जिनका जन्म हुआ है, जो सदा शंकरके समीप वास करती हैं, उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ १९ ॥ जिन्होंने कार्त्तिककी पूर्णिमाको गोप और गोपीमण्डलमें समाकीर्ण शुभप्रद राधाके रासमहोत्सवमें अवस्थान किया उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ २० ॥ जो विस्तारमें करोड़ योजन और दीर्घतामें अपना लक्षगुण स्थान अधिकार करके गोलोक धाममें वास करती हैं, उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ २१ ॥ जो

विस्तारमें साठलाख और दैर्घ्यमें उससे चतुर्गुण स्थान अधिकार करके वैकुण्ठमें वास करती हैं, उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं॥ २२॥ जो विस्तारमें तीसलाख योजन और दीर्घतामें उससे पचगुना स्थान अधिकार करके ब्रह्मलोकमें वास करती हैं उन्ही गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ २३ ॥ जो विस्तारमें त्रिंशतलक्ष योजन और दैर्घ्यमें उससे चतुर्गुण स्थान अधिकार करके शिवलोकमें वास करती हैं उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ २४ ॥ जो विस्तारमें लक्षयोजन और दैर्घ्यमें उससे सातगुण स्थान अधिकार करके ध्रुव लोकमें वास करती हैं उन्ही गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ २५ ॥ जो विस्तारमें लक्षयोजन और दैर्घ्यमें उससे पांच गुणा स्थान अधिकार करके चन्द्रलोकमें वास करती हैं, उन्ही गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ २६ ॥ जो विस्तारमें साठहजार योजन और दैर्घ्यमें उससे दशगुण स्थान अधिकार करके सूर्य लोकमें वास करती हैं. उन्ही गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ २७ ॥ जो विस्तारमें लक्ष योजन और दैर्घ्यमें उससे पांच गुण स्थान अधिकार करके तपोलोकमें वास करती हैं उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ २८ ॥ जो विस्तारमें हजार योजन और दैर्घ्यमें उससे दशगुण स्थान अधिकार करके जनलोकमें वास करती हैं, उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ २९ ॥ जो विस्तारमें दक्षलक्ष योजन और दैर्घ्यमें उससे पचगुणा स्थान अधिकार करके महर्लोकमें वास करती हैं उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ ३० ॥ जो विस्तारमें सहस्र योजन और दैर्घ्यमें उससे शतगुण स्थान अधिकार करके कैलासमें वास करती हैं उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ ३१ ॥ जो मन्दाकिनी नामसे विख्यात होकर विस्तारमें शतयोजन और दैर्घ्यमें उससे दशगुण स्थान अधिकार करके इन्द्रलोकमें वास करती हैं उन्ही गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ ३२ ॥ जो भोगवती नामसे विख्यात होकर विस्तारमें दश योजन और दैर्घ्यमें उससे दशगुण स्थान अधिकार करके पाताल तलमें वास करती हैं उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं॥ ३३॥ जो भूमंडलमें अलकनन्दाके नामसे विख्यात होकर विस्तारमें एक कोश वा किसी स्थानमें उसकी अपेक्षा कुछेक न्यून होकर बहती हैं उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ ३४ ॥ जो सत्ययुगमें क्षीरवर्ण त्रेतायुगमें चन्द्रवर्ण और द्वापरमें चंदनवर्ण होकर बहती हैं उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ ३५ ॥ जो कलियुगमें केवल भूमण्डलमें जलमयी और स्वर्गमें क्षीरमयी होकर बहती हैं, उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं॥ ३६॥ हे वत्स ! इन गंगाके जलकणस्पर्शसे प्राणियोंके

ज्ञानकृत कोटिजन्मार्जित ब्रह्महत्यादि सब भारी पातक भस्म होजाते हैं॥ ३७॥ हे वत्स नारद ! इसप्रकार इक्कीस पद्यमें पापनाशक और पुण्यवर्द्धक गंगाका परमस्तोत्र कहा गया है ॥ ३८ ॥ जो मनुष्य प्रतिदिन भक्तिपूर्वक सुरेश्वरी गंगाकी पूजा करके उनका स्तव करता है उसको अश्वमेध यज्ञका फल लाभ होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ३९ ॥ इसके प्रभावसे अपुत्र पुरुषको पुत्र और भार्याहीन पुरुपको भार्या लाभ होती है रोगी पुरुष रोगसे छूटता है और बँधा हुआ पुरुष बंधनसे छूट जाता है ॥ ४० ॥ जो प्रतिदिन प्रातःकालके समय उठकर गंगास्तव पाठ करता है, वह पुरुष अख्यात नाम होनेपर भी विख्यात नाम और अज्ञानान्ध होनेपर भी ज्ञानालोकमें पूर्ण होता है ॥ ४१ ॥ उसको दुःस्वम दर्शन सुस्वम और नित्य गंगास्नानजनित पुण्य लाभ होता है नारायणने कहा हे वत्स नारद ! राजा भगीरथ उपरोक्त स्तोत्रसे गंगाका स्तव करके ॥ ४२ ॥ उनको संग ले जहां सगरसन्तानगण कपिलदेवके शापसे भस्म हुए थे, वहां गये भागीरथीके सलिलकणवाही वायुके स्पर्शसे वह तत्काल मुक्त होकर वैकुण्ठधाममें चलेगये ॥ ४३ ॥ भगीरथ जो गंगाको भूलोकमें लायेथे, इस कारण इनका नाम भागीरथी हुआ है हे वत्स ! यह मैंने तुम्हारे निकट गंगाका उपाख्यान वर्णन किया ॥ ४४ ॥ यह उपाख्यान अतीव पुण्यप्रद और मोक्षपथका सोपान है, अब क्या सुननेकी अभिलाषा है सो प्रकाश करो नारदने कहा हे प्रभो ! गंगा त्रिपथगा होकर किस प्रकार त्रिभुवनपावनी हुई ॥ ४५ ॥ कौन किस प्रकार उनको किस स्थानमें लेगया था और उस स्थानके रहनेवाले पुरुषोंने उनके संबंधमें किस प्रकार व्यवहार किया था ॥ ४६ ॥ यह सब आनुपूर्विसे वर्णन कीजिये नारायण बोले हे वत्स नारद ! कार्त्तिकी पूर्णिमाके दिन श्रीराधाके महोत्सवमें ॥ ४७ ॥ श्रीकृष्णने राधाकी पूजा करके रासमण्डलमें स्थिति की तब कृष्णकी पूजित राधाकी प्रसन्नतासे पूजा करके ॥ ४८ ॥ ब्रह्मादि देवता और शौनकादि ऋषि परमानंदपूर्वक वहां वास करनेलगे इसी समय कृष्णविषयिणी संगीतशास्त्रकी अधिष्ठात्री देवी सरस्वती ॥४९॥ मनोहर ताल लयपूर्वक वीणायंत्रमें गान करनेलगी तब ब्रह्माजीने सरस्वतीको संतुष्ट होकर रत्नमय हार ॥ ५० ॥ महादेवजीने ब्रह्माण्डमें दुर्लभमणि कृष्णने सर्वोत्कृष्ट कौस्तुभमणि ॥ ५१ ॥ राधिकाने अमूल्य रत्ननिर्मित उत्कृष्ट हार नारायणने मनोहर सर्वोत्कृष्ट रत्नमयमाला ॥ ५२ ॥ लक्ष्मीने अमूल्य रत्नखचित कनक

कुण्डल तथा जो विष्णुमाया मूलप्रकृति भगवती ॥ ५३ ॥ दुर्गा नारायणी ईश्वरी और ईशानी हैं उन्होंने दुर्लभ ब्रह्मभक्ति धर्मने धर्ममें भक्ति और विपुल यश ॥ ५४ ॥ अग्निने अग्निपरिक्षित उत्कृष्ट वस्त्र और वायुने अतिउत्तम मणिमय नूपुर प्रदान किये इसी समय भूतपति महादेवजीने ब्रह्माजीके वचनानुसार ॥ ५५ ॥ श्रीकृष्णके रासोत्सवविषयक संगीत आरंभ किया देवता यह देख मोहित हो चित्रलिखित पुतलीके समान रहगये और मूर्च्छित होगये ॥ ५६ ॥ यही क्या वरन् अत्यन्त कष्टसे उनको चैतन्यता प्राप्त हुई तब उन्होंने देखा कि रासमंडलमें वह राधाभी नहीं है और वह कृष्णभी नहीं हैं, सम्पूर्ण जलमय है ॥ ५७ ॥ तब गोप, गोपी, देवता और ब्राह्मण उच्चस्वरसे रोनेलगे तब ब्रह्माजीने ध्यानमें स्थित होकर जाना कि, अब कुछ नहीं है, तीर्थ है ॥ ५८ ॥ संसारवासी पुरुषोंका उद्धार करनेके लियेही राधा और कृष्ण दोनोंने जलमयी मूर्त्ति धारण की है हे वत्स नारद! तिस समय ब्रह्मादि सभी परमेश श्रीकृष्णकी स्तुति करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ ५९ ॥ और कहनेलगे हे विभो! तुम अब हमको अपनी मूर्ति दिखाकर अभिलाषित वर दो उसी समय अतिमधुर यह आकाशवाणी स्पष्टही ॥ ६० ॥ सबके कानोंमें प्रविष्टहुई कि "मैं सर्वात्मा अर्थात् सर्वव्यापी और यह शक्तिरूपिणी राधाभी सर्वव्यापिनी है ॥ ६१ ॥ सुतरां मेरे वा राधाके संग क्षणकालके लियेभी तुम्हारा वियोग नहीं होगा तो मैं केवल भक्तोंके प्रति अनुग्रह प्रकाश करनेके निमित्त देह धारण करता हूं इसी लिये मेरे देह मात्रसे केवल तुम्हारा वियोग है नहीं तो और कुछ नहीं है मेरे देहसे भी तुम्हारा कुछ प्रयोजन नहीं है हे देवगण! तो भी यदि मेरे मंत्रपूत मनुगण, मानवगण, मुनिगण, वैष्णवगण ॥ ६२ ॥ और तुम मेरी स्पष्टमूर्त्ति देखनेकी अत्यन्त ही अभिलाषा करते हो तो मैं जो कहता हूं ॥ ६३ ॥ महेश्वरसे मेरा यह वचन प्रतिपालन करनेको कहो हे ब्रह्मन्! विधातः! तुम जगद्गुरु महादेवजीको यह आज्ञा दो ॥ ६४ ॥ कि वह वेदाङ्गसंगत मनोहर तन्त्रशास्त्र प्रणयन करैं और यह शास्त्र अभीष्टप्रद मंत्रसमूह ॥ ६५ ॥ स्तोत्र यथाविधि पूजाक्रमयुक्त ध्यानसे परिपूर्ण हो और इसमें मेरामंत्र कवच और स्तोत्र गूढभावसे सन्निवेशित रहै ॥ ६६ ॥ जिससे पापिष्ठ मनुष्यगण उसके मर्मावरोधमें असमर्थ होकर मेरे प्रति अत्यन्त विमुख हों जिससे सहस्रमें अथवा सौ मनुष्योंमें एकजन मेरा मंत्रोपासक हो ॥

॥ ६७ ॥ और मेरे मंत्रोपासक साधुगण पूतात्मा होकर मेरे लोकमें गमन कर सकें मेरा शास्त्रप्रणीत न होनेसे अर्थात् यदि सभी इस शास्त्रके मर्मावरोधमें समर्थ होंगे और यदि सभी भूलोकसे गोलोकमें जाँयगे ॥ ६८॥ तो तुम्हारा ब्रह्माण्डकारण निष्फल होगा अतएव तुम सात्विक तामसिकादि भेदसे पंचप्रकार तथा नाना प्रकार लोकोंकी सृष्टि करो तो ॥ ६९ ॥ अपने कर्मके वश कोई भूलोकवासी और कोई कोई द्युलोकवासी होंगे हे ब्रह्मन्! यदि महादेव देवसभाके सामने ॥ ७० ॥ तंत्रशास्त्र बनानेके विषयमें दृढ प्रतिज्ञा करैं तो मैं अपनी मूर्त्ति दिखाऊं हे वत्सनारद! सनातन पुरुष श्रीकृष्ण यह कहकर विरत होगये ॥ ७१ ॥ इस प्रकार आकाशवाणीके अन्तमें जगत्कर्त्ता ब्रह्माजीने उसको सुननेसे आनन्दित होकर शिवजीको उस आकाशवाणीका मर्म समझाया ज्ञानियोंमें अग्रणी ज्ञानके अधीश्वर भूतनाथने विधाताका वचन सुन ॥ ७२ ॥ गंगाजल हाथमें लेकर प्रतिज्ञापूर्वक कहा मैं राधा मंत्रसे परिपूर्ण वेदका अविरोधी ॥ ७३ ॥ तंत्र शास्त्र प्रणयन करूंगा गंगाजल स्पर्श करके यदि कोई मिथ्या बात कहै ॥ ७४ ॥ तो वह ब्रह्माकी अवस्थाके कालतक घोरतर कालसूत्र नामक नरकमें वास करता है हे द्विजवर! गोलोकस्थित सुरसभाके सामने जब भगवान् शंकरने इसप्रकार कहा ॥ ७५ ॥ तब श्रीकृष्ण राधासहित वहां प्रगट हुए उनको देखतेही फिर देवताओंके आनन्दकी सीमा न रही तिस समय वह उन पुरुषोत्तमकी स्तुति करके ॥ ७६ ॥ फिर पूर्ववत् आनंदसे रासमहोत्सवमें प्रवृत्त हुए अनन्तर कुछ काल पीछे महादेवजीने मुक्तिदीप प्रज्वलित किया अर्थात् महादेवजीके द्वारा पूर्व प्रतिज्ञाके अनुसार तंत्रशास्त्र प्रकाशित हुआ ॥ ७७ ॥ हे वत्स! यह मैंने तुम्हारे निकट अति दुर्लभ गोपनीय वृत्तान्त प्रकाशित किया वह श्रीकृष्णही गोलोकसंभूत द्रवमयी गंगा हैं ॥ ७८ ॥ अभिन्न देह राधा और कृष्ण अंगोत्पन्न गंगा सबको भोगैश्वर्य और मुक्तिप्रदान करती हैं परमात्मा श्रीकृष्णने इनको स्थान स्थानमें स्थापित किया है ॥७९॥ सुतरां गंगा श्रीकृष्णस्वरूप और सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके सर्वत्र सबके द्वारा समान पूजनीय हैं ॥ ८० ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः १३.

देवर्षि नारदने कहा हे सुरेश्वर! कलिके पांच हजार वर्ष बीतनेपर देवी गंगा किस लोकमें गई थीं? सो कहिये ॥ १ ॥ नारायणने कहा हे वत्स! भागीरथी भारतीके शापसे भारतमें अवतीर्ण होकर फिर ईश्वरकी इच्छासे शापके अन्तमें वैकुण्ठ धामको गईं ॥ २ ॥ और इस ओर भी जैसेही शापका अवसान हुआ उसी समय भारती और पद्मावती दोनों भारत त्यागकर नारायणके समीप गईं ॥ ३ ॥ गंगा लक्ष्मी और सरस्वती यह तीन एवं तुलसी यह चार श्रीहरिकी प्रियतमा हैं ॥ ४ ॥ नारदने कहा हे भगवान्! गंगा किसप्रकार विष्णुके पादपद्मसे उत्पन्न हुईं ब्रह्माजीने किस निमित्त उनको कमण्डलुमें धरा था, सुना है कि वह शिवकी पत्नी हैं ॥ ५ ॥ तो फिर किसप्रकार नारायणकी पत्नी हुईं? हे मुनिवर! यह सब वृत्तान्त आदिसे अन्ततक मेरे निकट वर्णन कीजिये ॥ ६ ॥ ॥ नारायणने कहा हे मुने! पूर्व कालके समय गंगाने शिवलोकमें द्रवमूर्त्ति धारण की थी, गंगा; श्रीकृष्ण और राधाके अंगसे उत्पन्न हैं सुतरां वह दोनोंकाही अंश और आत्मस्वरूपिणी हैं ॥ ७ ॥ वह जलकी अधिष्ठात्री देवी हैं उनके समान रूपवती भूमंडलमें दूसरी नहीं है वह नवयौवनसे युक्त और सब प्रकारके अलंकारोंसे अलंकृत हैं ॥ ८ ॥ शरत् कालीन मध्याह्नपंकजके समान उनके मुखमें हँसी रहती है रूप अतीव मनोहर शरीरका वर्ण तप्त कांचनके समान और प्रभा शरत्कालीन चन्द्रमाके समान है ॥ ९ ॥ उनकी प्रभाके देखनेसे नयन और मन अतिशय स्निग्ध होते हैं वह स्वयं अति शुद्ध सत्वस्वरूपा हैं और नितम्ब पीन और कठिन हैं, उनके ऊपर अत्युत्कृष्ट वस्त्र ढका हुआ है ॥ १० ॥ उनके दोनों स्तन पीन, उन्नत, कठिन और सुगोल हैं नयनयुगल अति मनोहर सदा वक्रभावसे अपाङ्गमें विलोकन ॥ ११ ॥ एक तो वङ्किमभावसे कवरी बन्धन उसके ऊपर मालतीमालाके समर्पित होनेसे अधिक मनोहर हुई हैं, उनके भालमें चन्दनबिन्दुके ऊपर सिन्दूर लगा होनेसे शोभाकी सीमा नहीं है ॥ १२ ॥ और गण्डोपरि कस्तूरी पत्रकी रचना होनेसे क्या सुंदरता हुई है, उनके दोनों ओष्ठने बन्धुक पुष्पके समान रक्तवर्ण आभा धारणकी है ॥ १३ ॥ उनके दांतोंकी पंक्ति देखनेसे बोध होता है मानों सुपक दाडिमबीज श्रेणिबद्ध होकर स्थापित हैं उन्होंने नीवीस्थान (चीन) पर्यन्त अग्नि विशुद्ध वस्त्र

युगल धारण किये हैं ॥ १४ ॥ हे वत्स नारद ! ऐसी रूपलावण्यवती और वेष-भूषासंपन्न गंगा रति लाभकी इच्छाकर लज्जाभावसे वस्त्राञ्चलसे अपना मुख ढक श्रीकृष्णके पार्श्वमें बैठ अनिमेष नयनसे ॥ १५ ॥ परमानन्दपूर्वक उनका चन्द्र-वदन पान करने लगी नवसमागम लाभके आनंदसे उनका मुखकमल अत्यन्त प्रफुल्लित होगया ॥ १६ ॥ वह श्रीकृष्णका रूप देखकर मूर्च्छित होगई उनका सर्वांग रोमाञ्चित होगया इसी अवसरमें कृष्णप्राणा राधिका वहां उपस्थित हुई ॥ १७ ॥ तीस करोड गोपी उनकी सहगामिनी थीं उनका रूप देखनेसे बोध होता है, मानों एक कालमें करोड सूर्य उदय हुए हैं गंगाको श्रीकृष्णके पार्श्वमें बैठा देख क्रोधसे उनका मुखमण्डल और दोनों नेत्र रक्तपद्मके समान रक्तवर्ण होगये ॥ १८ ॥ उनका वर्ण पीत चंपकके समान और गमन मदवाले हाथीके समान था वह अमूल्य रत्ननिर्मित अनेक प्रकारके भूषणोंसे विभूषित थीं ॥ १९ ॥ अमूल्य रत्न-खचित अग्निपरीक्षित बहुमूल्य परिधेय पीताम्बरयुगल उनके नीविस्थानमें आबद्ध थे ॥ २० ॥ श्रीकृष्ण प्रदत्त अर्घ्यमें समायुक्त स्थलपद्म प्रभाविनिन्दित सुरञ्जित चरणकमल पग पगमें विन्यस्त होते थे ॥ २१ ॥ वह उत्कृष्ट निर्मित विमानमें चढकर जब मंद मंद गमन करती थीं, उस समय ऋषिगण उनका श्वेत चामरसे वीजन करते थे ॥ २२ ॥ उनके सीमन्तके अधोभागमें सिन्दूरबिन्दु उज्ज्वल दीपशिखाके समान प्रभा विस्तार करती थी उनके दोनों पार्श्वमें कस्तूरी बिन्दु और चन्दनबिन्दु विराजमान था ॥ २३ ॥ वह जैसेही क्रोधसे कंपित होने लगीं, वैसेही उनका पारिजातमाला वेष्टित ॥ २४ ॥ वक्र कबरीभार कंपित होने लगा चारु रागसंयुक्त ओष्ठ प्रस्फुरित होने लगा ॥ २५ ॥ वह रोषयुक्त गमन करके श्रीकृष्णके पार्श्वमें रत्नमय सिंहासन पर बैठ गईं और उनकी अनुगामिनी सखियें भी यथा स्थानमें बैठगईं ॥ २६ ॥ श्रीकृष्ण राधाको देखतेही संभ्रम और हास्यवदनसे उठकर सादर संभाषणपूर्वक मीठी बातें करने लगे ॥ २७ ॥ गोपियें संत्रस्त होकर मस्तक झुकाय प्रणामपूर्वक भक्तियुक्त हो स्तव करने लगीं तब श्रीकृष्ण भी उनकी स्तुति करने लगे ॥ २८ ॥ इसी समय देवी गंगाने भी उठकर अनेक स्तव स्तुति करके भय सहित विनयनम्र वचनोंसे कुशलप्रश्न पूछा ॥ २९ ॥ भयसे उनका कंठ ओष्ठ और तालु शुष्क होगया उन्होंने नम्रभावसे श्रीकृष्णके चरणोंमें शरण ग्रहण की ॥ ३० ॥ जब श्रीकृष्णने उनको हृदयसे लगाय अभय प्रदान किया तब उनका चित्त स्थिर हुआ ॥ ३१ ॥

हे वत्सनारद ! उसी समय सुरेश्वरी गंगाने सिंहासनपर विरामान सुस्निग्धा सुखदृश्या राधाको देखा कि, मानों ब्रह्मतेजसे ज्वलित होरही हैं ॥ ३२ ॥ वह सृष्टिके आदिसे असंख्य ब्रह्माकी एकमात्र कर्त्री और सनातनी हैं उनके देखनेसे बोध होता है, मानों बारहवर्षकी नव यौवना कन्या हैं ॥ ३३ ॥ किसी विश्वमें ऐसी रूपवती वा ऐसी गुणवती रमणी दूसरी दिखाई नहीं देती वह शान्त कान्त अनन्त और आद्यन्त रहित हैं ॥ ३४ ॥ वह शुभा, सुभद्रा, ऐश्वर्यवती और स्वामिसौभाग्यशालिनी हैं, वह सम्पूर्ण रमणीयोंमें प्रधान रत्न हैं, देखनेसे बोध होता है मानों समुदायसौन्दर्य एकत्र सन्निवेशित हुआ है ॥ ३५ ॥ वह श्रीकृष्णका अर्द्ध शरीर है. क्या तेज, क्या वयस, क्या कान्ति, सर्वांशमेंही कृष्णके समान हैं लक्ष्मी और लक्ष्मीकान्त दोनोंही उनकी पूजा करते हैं॥ ३६॥ श्रीकृष्णकी तादृश उज्ज्वल सभा है, किन्तु राधाके रूपसे सब आच्छादित होरही हैं वह सिंहासनपर बैठकर सखीका दिया हुआ ताम्बूल चाबने लगीं ॥ ३७॥ वह सब जगत्को उत्पन्न करनेवाली हैं, किन्तु उनको उत्पन्न करनेवाला कोई नहीं है वह धन्य मान्य और मानिनी हैं वह श्रीकृष्णकी प्राणेश्वरी और प्राणोंसे भी प्रियतमा रमणी हैं ॥ ३८ ॥ हे देवर्षे ! सुरेश्वरी गंगा अनिमेष लोचनसे वारम्वार उनको देखने लगीं किन्तु किसी प्रकार भी उनके नेत्र व उनका मन तृप्त नहीं हुआ ॥ ३९ ॥ इसी समय शान्तमूर्त्ति राधाने विनीत भाव, हास्यवदन और मधुर वचन द्वारा जगदीश्वर श्रीकृष्णसे कहा ॥ ४० ॥ राधा बोली प्राणेश्वर ! आपके पार्श्वमें हास्यवदन वक्रलोचन उत्सुक चित्तसे जो आपके वदनसुधाकरका पानकर रही है ॥ ४१॥ यह कल्याणी कौन है यह आपका रूप देखकर एकवार ही मोहित हुई है, इसका सब शरीर रोमाञ्चित दीखता है, यह वस्त्रसे अपना मुखमंडल ढककर वारम्वार आपको देखती है ॥ ४२ ॥ और आपभी इसको देखकर उत्सुक चित्तसे हास्य करते हैं, यह क्या व्यापार है मेरे गोलोकमें विद्यमान रहते ऐसा कुव्यवहार आरंभ क्यों हुआ ॥ ४३ ॥ आप तो वारम्वार इस प्रकार दुष्कर्म करते हैं किन्तु क्या करूं मैं स्त्रीजाति स्वभावसेही सरलचित्त प्रणयके वश होकर समस्त ही क्षमा करती हूं ॥ ४४॥ हे लम्पट! आप शीघ्र अपनी प्रणयिनीको लेकर गोलोकसे चले जाइये नहीं तो यह कार्य आपको कल्याणदायक नहीं है ॥ ४५ ॥ पहिले एक दिन चंदन वनमें गोपाङ्गना विरजाके संग इसी प्रकार मिलित देखा था, किन्तु क्या करूं सखि-

योंके अनुरोधसे उसको क्षमा किया ॥ ४६ ॥ उस समय आप मेरे पैरका शब्द सुनकर भाग गये थे और विरजाने लज्जाके कारण देहत्याग करके नदीरूप धारण किया है ॥ ४७ ॥ उसका विस्तार बहुत योजन और दैर्घ्य इससे चतुर्गुण है अद्यापि आपकी कीर्त्तिस्वरूपा वह विरजा विद्यमान है ॥ ४८ ॥ विरजाकी यह घटना देखनेके पीछे मेरे गृह प्रस्थान करनेपर आप फिर उसके निकट जाय उच्चस्वरसे "विरजे विरजे" कहकर रोदन करते फिरे थे ॥ ४९ ॥ जब आपके चीत्कार शब्दसे उस सिद्धयोगिनीने योगबल द्वारा जलसे उत्थित होकर आपको भूषणभूषित अपनी दिव्यमूर्त्ति दिखाई ॥ ५० ॥ तब आप उसको खैंचकर संगममें प्रवृत्त हुए और उसमें वीर्य निक्षेप किया विरजाके क्षेत्रमें वीर्याधान करनेसे ही सात समुद्रोंकी उत्पत्ति हुई है ॥ ५१ ॥ दूसरे एक दिन चंपकवनमें शोभानामक गोपिनीके संग संगत होते देखा था उस दिनभी आप मेरे पैरका शब्द सुनकर भाग गयेथे ॥ ५२ ॥ किन्तु शोभाने लज्जासे अपना कलेवर त्यागकर चन्द्रमण्डलमें प्रस्थान किया वह शोभाही चन्द्रमण्डलकी स्निग्ध तेजस्वरूपिणी है ॥ ५३ ॥ शोभाकी इस प्रकार दुर्दशा होनेपर आपने ही दुःखित अन्तःकरणसे उसका विभाग करके कुछ रत्नमें, कुछ सुवर्णमें, कुछ उत्कृष्ट मणिमण्डलमें ॥ ५४ ॥ कुछ स्त्रियोंके मुखकमलमें कुछ राजशरीरमें, कुछ वृक्षपत्रमें, कुछ पुष्पमें ॥ ५५ ॥ कुछ पके हुए फलोंमें, कुछ धान्यमें कुछ कुछ नृप और देवतायतन (देवस्थान) में, कुछ कुछ सुसंस्कृत पदार्थोंमें ॥ ५६ ॥ कुछ कुछ नवकिसलयमें और कुछ थोडासा दूधमें प्रदान किया था तीसरे आपको वृन्दावनमें प्रभा गोपीके संग संगत होते देखा है ॥ ५७ ॥ मेरा शब्द सुनतेही आपके भागनेपर प्रभा भी लज्जासे देह त्यागकर सूर्यमण्डलमें उपस्थित हुई ॥ ५८ ॥ वह प्रभाही सूर्यमण्डलके तीव्र तेजस्वरूपमें परिणत हुई है आपने ही प्रणयविच्छेदके कारण मनमें क्षुभित हो रोदन करते करते ॥ ५९ ॥ कुछ नेत्र लज्जा और कुछ मेरे भयसे उस प्रभाको विभाग करके कुछ हुताशनमें कुछ यक्षमें ॥ ६० ॥ कुछ पुरुष सिंहमें कुछ देवताओंमें कुछ वैष्णवोंमें कुछ नागोंमें ॥ ६१ ॥ कुछ ब्राह्मणोंमें कुछ मुनियोंमें कुछ तपस्वियोंमें यशस्वियों एवं कुछ कीर्तिमती और सौभाग्यवती अबलाओंमें समर्पण किया है ॥ ६२ ॥ पूर्वमें

---

१ इनके अधिष्ठाता पुरुष।

प्रभाका इसप्रकार विभाग करके उसके वियोगमें आपको रोदन करना पड़ा था चौथे मैंने रासमंडलमें आपको शान्तिनी नामक गोपिनीके संग प्रेमासक्त होते देखा है ॥ ६३ ॥ वसन्तके आगममें आप एक दिन गलेमें पुष्पमाला डाले और सर्वाङ्ग में चंदन विलेपनपूर्वक रत्नमयभूषणोंसे विभूषित हो रत्नदीपविराजित रत्नमंदिरमें ॥ ६४ ॥ वस्त्रालंकारसे विभूषिता शान्ति गोपीके संग पुष्पशय्यापर शयन करके प्रणयिनीका दिया हुआ ताम्बूल चर्वण करते थे ॥ ६५ ॥ आपने मेरा शब्द सुनतेही तत्काल प्रस्थान किया शान्ति गोपीभी लज्जा और भयसे देह त्यागकर एकवारही आपके शरीरमें लीन हुई ॥ ६६ ॥ इससेही शान्ति गुण श्रेष्ठ कहकर परिगणित हुई है आपनेभी प्रणयभंगसे रोदन करते करते शान्तिके देहको विभाग करके ॥ ६७ ॥ विश्व संसारके मध्य कुछ वनस्थलमें कुछ ब्रह्माको कुछ मुझको कुछ शुद्धसत्वस्वरूप लक्ष्मीको ॥ ६८ ॥ कुछ अपने मंत्रोपासकको कुछ मेरे मंत्रोपासकोंको कुछ तपस्वियोंको कुछ धर्मको और कुछ धार्मिकोंको प्रदान किया था ॥ ६९ ॥ पांचवें मनमें विचारकर देखो फिर एकदिन आप सर्वाङ्गमें चंदन विलेपन और गलेमे पुष्पमाला डाल सज्जित हो रत्नभूषणोंसे विभूषित और गंध चन्दनसे चर्चित ॥ ७० ॥ ७१ ॥ क्षमा नाम्नी गोपीके संग पुष्पसमाकीर्ण चन्दनादि युक्त सुखशय्यापर शयन करके सुखपूर्वक सोरहे थे यही नहीं वरन् नव समागमके पीछे परस्परको आलिंगनपूर्वक नींदमें ऐसे अभिभूत हुए थे कि मेरे जाकर जगानेसे दोनोंकी निद्रा भंग हुई ॥ ७२ ॥ मैंने आपका पीताम्बर मनोहर मुरली वनमाला कौस्तुभ और अमूल्य रत्नकुंडल लेलियेथे ॥ ७३ ॥ फिर सखियोंके अनेकयत्न और वचनोंसे पुनर्वार प्रदान किये पाप और लज्जासे आपका देह कालेवर्ण होगया था ॥ ७४ ॥ इसके पीछे क्षमाने लज्जासे देह त्यागकर पृथ्वीमें गमन किया इसीकारण क्षमाका शरीर श्रेष्ठतम गुणका आधार हुआ है ॥ ७५ ॥ अनन्तर आपने प्रणयवश अत्यन्त दुःखित हो उस देहको विभागकर कुछ विष्णुको कुछ वैष्णवोंको ॥ ७६ ॥ कुछ धर्मको कुछ धार्मिकोंको कुछ दुर्बलोंको कुछ तपस्वियोंको कुछ देवताओंको और कुछ पण्डितोंको प्रदान किया था ॥ ७७ ॥ हे प्रभो ! मैं तुम्हारे गुणोंके विषयमें जितना जानती हूं वह सब कहदिया अब क्या सुननेकी अभिलाषा है ? इनके अतिरिक्त और भी आपके अनेक गुण हैं किन्तु उनको मैं अधिक नहीं जानती ॥ ७८ ॥ इस समय लाल कमलके समान नेत्रोंवाली

राधा कृष्णसे इस प्रकार कहकर उनकी बगलमें बैठी हुई लज्जासे नम्रमुखी गंगाकी यथोचित भर्त्सना करने लगी ॥ ७९ ॥ तब सिद्धयोगिनी गंगा योगबलसे समस्त रहस्य जान तत्काल सभासे अन्तर्धान हो अपनी जलमयी मूर्त्तिमें विलीन हुई ॥ ॥ ८० ॥ सिद्धयोगिनी राधाभी योगबलसे गंगाका रहस्यभेद जानकर चुल्लू द्वारा उसका सब जल पान करनेमें उद्यत हुई ॥ ८१ ॥ तब गंगाने योगबलसे यह सब बात जान श्रीकृष्णकी शरणागत हो उनके चरणतलमें प्रवेश किया ॥ ८२ ॥ तब राधाने प्रथम गोलोक फिर गोलोक त्यागकर वैकुण्ठधाम वैकुण्ठ त्यागकर ब्रह्मलोक इसप्रकार योगबल द्वारा एकादि क्रमसे समस्तही देखा किन्तु कहीं भी गंगाका दर्शन न पाया ॥ ८३ ॥ गोलोक धामके सब स्थान जलहीन होकर शुष्कपङ्क होगये जल जन्तु सब जीवन शून्य होकर निपतित होनेलगे ॥ ८४ ॥ तब ब्रह्मा, विष्णु, शिव, अनन्त, धर्म, इन्द्र, निशाकर, दिवाकर, मनु, मुनि, सिद्ध और तपस्वीगण ॥ ८५ ॥ प्याससे शुष्ककण्ठ और शुष्कतालु हो गोलोक धाममें आय जो सर्वेश्वर प्रकृतिके अतीत पदार्थ वरस्वरूप वरेण्य वरद वरिष्ठ और वर कारण हैं, जो गोपिका और गोपकुलमें सबसे प्रधान प्रभु हैं ॥ ८६ ॥८७॥ जो निराकार निरीह निर्लिप्त निराश्रय निर्गुण निरुत्साह निर्विकार और निरंजन हैं ॥ ८८ ॥ जो इच्छामय भक्तोंके प्रति अनुग्रह प्रकाश करनेके लिये आकार धारण करते हैं, जो सत्यस्वरूप सत्येश साक्षिरूपी और सनातन पुरुष हैं ॥ ८९ ॥ जो पर परमेश परम परमात्मा और परमेश्वर हैं, उनको भक्ति भावसे मस्तक झुकाय प्रणाम करके सब स्तव करनेमें प्रवृत्त हुए ॥९०॥ सबही भक्तिभावसे गद्गद सबहीके नेत्रोंसे प्रेमाश्रुधार भरे और सबकाही कलेवर रोमाञ्चित हुआ ऐसे वे परात्पर भगवान्‌की स्तुति करने लगे॥ ९१ ॥ जो ज्योतिर्मय परब्रह्म जो समस्त कारणोंके भी कारण जो अमूल्य रत्ननिर्मित सिंहासनपर विराजमान ॥ ९२ ॥ गोपालगण जिनका श्वेतचामरसे बीजन करते थे, जो परमानंदपूर्वक हास्यवदनसे गोपिकाओंका नृत्य गीत दर्शन और श्रवण करते थे ॥ ९३ ॥ जो प्राणोंसे भी प्रियतमा राधाके वक्षस्थलमें स्थित होकर उसका दिया हुआ सुगंधित ताम्बूल भक्षण करते थे ॥ ९४ ॥ मुनि मनुष्य और तपस्वी इत्यादि सबनेही उन पूर्णतम विभु रामेश्वर श्रीकृष्णको देखतेही प्रणाम किया ॥ ९५ ॥ एक साथही सबके मनमें हर्ष और आश्चर्य उत्पन्न हुआ तब उन्होंने परस्पर, परस्परके सुखकी अपेक्षा करके अन्तमें ॥ ९६ ॥ अपने

मनका भाव प्रकाश करनेके लिये ब्रह्माजीको नियुक्त किया तब चतुरानन ब्रह्मा विष्णुको दक्षिण ॥ ९७ ॥ और वामदेवको वामभागमें लेकर क्रमानुसार श्रीकृष्णके आगे गये आगे जाकर रासमण्डलके जिस ओर दृष्टि डाली, उसी ओर देखा कि, परमानन्दरूपी परमानन्दयुक्त ॥ ९८॥ श्रीकृष्ण विराजमान हैं सबही कृष्णमय सबकाही आसन एकाकार सबकाही एक वेष ॥ ९९ ॥ सभी द्विभुज और मुरलीधारी हैं सबकेही गलेमें वनमाला सबकेही चूडेमें मोरपंख और सबकेही वक्षःस्थलमें कौस्तुभमणि है ॥ १०० ॥ उनकी मूर्त्ति अत्यन्त मनोहर अति सुंदर और अतीव शान्त है क्या रूप ? क्या गुण ? क्या भूषण ? क्या प्रभा ? क्या अवस्था ? क्या कान्ति ? किसीविषयमेंभी किसीके संग कुछ भिन्नता नहीं है॥ १०१ ॥ कोई अपूर्ण नहीं और किसीका ऐश्वर्य्य न्यूनाधिक नहीं है उनमें कौन प्रभु और कौन सेवक है यह देखकर कहना कठिन है ॥ १०२ ॥ कभी तेजोमूर्त्तिके अतिरिक्त और कुछ नहीं कभी दिव्य स्पष्ट मूर्त्ति कभी निराकार कभी साकार कभी द्विविध॥ १०३ ॥ कभी राधा नहीं केवल कृष्ण विराजमान हैं और कभी प्रति आसन परही राधाकृष्ण युगलरूपसे विराजमान हैं ॥ १०४ ॥ कभी कभी राधा कृष्णरूप धारण करती है सुतरां ब्रह्माजी उनको स्त्रीरूपी वा पुरुषरूपी कुछ भी स्थिर न करसके ॥ १०५ ॥ अन्तमें ध्यानद्वारा स्वीय हृदयपद्ममें स्थित कृष्णकी चिन्ता करके भक्ति भावसे उनकी स्तुति कर उनसे अपराध क्षमा करनेकी प्रार्थनाकी ॥ १०६ ॥ तब श्रीकृष्णके प्रसन्न होनेपर ब्रह्माजीने फिर नेत्र खोलकर देखा कि, श्रीकृष्णके वक्षःस्थलमें राधा विराजमान हैं ॥ १०७ ॥ चारों ओर पार्षद और चारों ओर गोपीमण्डल है यह देखकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर उनको प्रणाम करके स्तव करने लगे ॥ १०८ ॥ इस ओर उन सर्वव्यापी सर्वान्तर्यामी सर्वेश्वर सर्व कारण रमापति श्रीकृष्णने उनके हृदयका भाव समझ प्रत्येकको पृथक् पृथक् संबोधन देकर कहा ॥ १०९ ॥ श्रीभगवान् बोले हे ब्रह्मन् ! तुम कुशलसे तो हो ? कमलापते ! आओ, महादेव ! यहां आओ, तुम्हारा मंगल हो ॥ ११० ॥ तुम गंगाके निमित्त मेरे समीप आये हो, गंगाने राधाके भयसे मेरे चरणमें शरण ली है ॥ १११ ॥ राधा गंगाको मेरे निकट बैठा देखकर इसको पान करनेमें उद्यत हुई थी जो हो मैं अब इसको तुम्हारे हाथमें समर्पण करता हूं,किन्तु तुम राधाके निकट प्रार्थना करके जिससे इसको अभयदान करसको उसी विषयकी चेष्टा करो ॥ ११२ ॥

तब कमलयोनि ब्रह्मा श्रीकृष्णका वचन सुनकर कुछेक हँसे और फिर सबकी आराध्या कृष्णपूजिता राधाकी स्तुति करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ ११३ ॥ ऋगादि चारों वेदके विधाता चतुरानन धाताने भक्तियुक्त हो कंधे झुकाय चारों मुखसे राधाका स्तव करनेके पीछे उनसे कहा ॥ ११४ ॥ हे राधे! गंगा तुम्हारे और इन प्रभुके अंगसे उत्पन्न हुई है पूर्वकालके समय तुम दोनों रासमण्डलमें शंकरका संगीत सुनकर आर्द्र होगये थे तुम्हारी वह आर्द्रताही द्रवमयी गंगा है ॥ ११५ ॥ अतएव यह जब तुम्हारे और श्रीकृष्णके अंगसे उत्पन्न है तब यह तुम्हारी कन्याके समान आदर करनेकी सामग्री है विशेषकर यह तुम्हारे मंत्रमें दीक्षित तुम्हारीही पूजा करती है ॥ ११६ ॥ चतुर्भुज वैकुण्ठनाथ उसके पति होंगे और जब अंशसे भूलोकमें अवतीर्ण होंगी तब लवणोदधि उसके पति होंगे ॥ ११७ ॥ हे मातः! जो गंगा गोलोकविहारिणी है वही सर्वत्र विहारिणी है हे देवेशि! तुम उसकी माता हो वह सभी समयमें तुम्हारी कन्या है ॥ ११८ ॥ हे वत्स! जब राधाने विधाताके वचन सुनकर कुछेक हास्यपूर्वक गंगाकी रक्षामें सम्मति दी, तब वह श्रीकृष्णचरणके अंगुष्ठाग्रभागसे बाहर निकलीं ॥ ११९ ॥ अनन्तर द्रवमयी गंगा अपनी मूर्त्ति धारण कर जलसे समुत्थित हो महा आदरसे उनके समीप वास करने लगीं ॥ १२० ॥ भगवान् ब्रह्माने वह गंगाका जल कुछ अपने कमण्डलुमें और कुछ भगवान् चन्द्रशेखरके मस्तकमें धारण किया ॥ १२१ ॥ तब कमलयोनिने गंगाको राधामंत्रमें दीक्षित किया उसको सामवेदोक्त राधास्तोत्र राधाकवच राधाध्यान राधाकी पूजा विधि ॥ १२२ ॥ और राधाके पुरश्चरण प्रकरणकी शिक्षा प्रदान की उसीके अनुसार गंगा राधाकी पूजाकरके उनके संग वैकुण्ठधाममें गईं ॥ १२३ ॥ हे मुनिवर! लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा, और विश्वको पवित्र करनेवाली तुलसी, यह चारों नारायणकी पत्नी हैं ॥ १२४ ॥ अनन्तर श्रीकृष्ण कुछेक हँसकर विधाताके निकट दूसरेको कठिनतासे जाननेयोग्य कालका वृत्तान्त विस्तार सहित कहने लगे ॥ १२५ ॥ हे ब्रह्मन्! हे महेश्वर! हे विष्णो! सम्प्रति तुम्हारे गंगाका ग्रहण और काल वृत्तान्त कहता हूं सुनो ॥ १२६ ॥ तुम तीन जने और अन्यान्य देवता मुनि मनु सिद्ध और अपरापर जो सब महात्मा इस स्थानमें

---

१ यहां कन्याशब्द अलौकिक अर्थवाली कन्यामें है मनुष्योंके समान योनिप्रगटताका नहीं इससे मानुषीनियमका व्यवहार नहीं है यह दिव्य आविर्भाववाली देवी है इनके अनेक अंश आविर्भाव तिरोभाव अनेकरूपमें होते हैं।

उपस्थित हैं॥ १२७॥ वह सभी जीवित हैं क्योंकि इस गोलोकधाममें कालचक्रका प्रभाव नहीं है अब कल्पान्तकाल उपस्थित है इस समय सब विश्व जलमें मग्न है ॥ १२८ ॥ अतएव गोलोकधाम और वैकुण्ठधामके अतिरिक्त अन्यान्य समस्त विश्वमें जो अपरापर ब्रह्मा विद्यमान थे वह सबही इससमय मेरे शरीरमें विलीन हुए हैं हे कमलयोने ! इस समय वैकुण्ठधाम और गोलोकधामके अतिरिक्त अन्य समस्तही जलमय हैं ॥ १२९ ॥ अब तुम जाकर फिर ब्रह्मलोकादिक्रमसे अपने ब्रह्माण्डकी रचना करो. तब गंगा उस नवीन विरचित ब्रह्माण्डमें जायगी ॥ १३० ॥ मैंभी अन्यान्य विश्व और उन विश्वोंके ब्रह्माण्डोंकी सृष्टि करता हूं किन्तु तुम शीघ्र देवताओंके संग अपना कार्य साधन करनेके निमित्त जाओ ॥ १३१॥ तुमको बहुत विलम्ब होगया है जितने ब्रह्मादिकोंका पतन हुआ है फिर सबकी उत्पत्ति होगी ॥ १३२ ॥ हे मुनिवर ! राधापति श्रीकृष्णने यह कहकर अपने अन्तःपुरमें प्रवेश किया इधर देवतालोगभी तत्काल वहांसे लौटकर फिर यत्नपूर्वक सृष्टिकार्यमें प्रवृत्त हुए ॥ १३३ ॥ गंगाभी फिर पहिलेके समान गोलोकधाम, वैकुण्ठधाम, शिवलोक, ब्रह्मलोक और अन्यान्य जिस जिस स्थानमें पहिले वास किया था॥ १३४॥ परमात्मा श्रीकृष्णकी आज्ञानुसार उसी स्थानमें वास करने लगी विष्णुके पादपद्मसे निकलनेके कारण उनका नाम विष्णुपदी भी है ॥ १३५ ॥ हे द्विजवर ! यह मैं ने अतिसुखकर मोक्षप्रद और सारभूत गंगाका उपाख्यान वर्णन किया, अब और क्या सुननेकी वासना है सो प्रकाश करो ॥ १३६ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः १४.

नारदजी बोले हे प्रभो ! गंगा, लक्ष्मी, सरस्वती और विश्वपावनी तुलसी, यह चारोंही नारायणकी प्रियतमा हैं॥ १॥ तिनमें गंगाने गोलोकधामसे वैकुण्ठमें गमन किया, यह सुना, किन्तु वह किसप्रकार नारायणकी पत्नी हुई ? यह नहीं सुना अतएव अब यही वर्णन कीजिये ॥ २॥ नारायणने कहा जगत् स्रष्टा विधाता गंगाको आगे करके

वैकुण्ठधाममें उपस्थित हुए और वहां जगदीश नारायणको प्रणाम करके कहा ॥ ३ ॥ हे प्रभो ! जो राधा कृष्णके अंगसे उत्पन्न नहीं है जो द्रवमयी नवयौवन-सम्पन्न सुशील अलोक सामान्यरूपवती ॥ ४ ॥ शुद्ध सत्वस्वरूपा तथा क्रोध और अहंकार रहित हैं उन गंगाने कृष्णाङ्गसे उत्पन्न होनेके कारण उनके अतिरिक्त और किसीको भी पतित्वमें वरण करनेकी अभिलाषा नहीं करी ॥ ५ ॥ किन्तु राधा अत्यन्त अभिमानवती और अति उग्रस्वभाव है यही क्या वह गंगाको पान करनेमें उद्यत हुई थी ॥ ६ ॥ उसने राधाके भयसे तत्काल बुद्धिपूर्वक श्रीकृष्णके चरण कमलोंमें प्रवेश किया सुतरां संपूर्ण गोलोक जलरहित होगया है ॥ ७ ॥ यह देखकर मैं इसका विशेष वृत्तान्त जाननेके लिये गोलोकपति श्रीकृष्णके निकट गया तब सर्वान्तर्यामी श्रीकृष्णने मेरे मनका भाव समझ ॥ ८ ॥ तत्काल अपने चरणनखके अग्रभागसे गंगाको बाहर निकाला और फिर राधामंत्रमें दीक्षित करके मेरे हाथमें समर्पण किया ॥ ९ ॥ मैं भी राधापति श्रीकृष्णको प्रणाम करके गंगाको संग ले आपके निकट आया हूं, अब तुम गांधर्वविधानसे इस सुरेश्वरी गंगाका पाणिग्रहण करो ॥ १० ॥ सुरसमाजमें तुम जैसे सुरसिक हो, यह भी वैसीही है पुरुष संप्रदायमें तुम जिसप्रकार रत्न हो यह भी उसी प्रकार रमणियोंमें रत्नस्वरूप है विशेष कर रसिकोंके संग रसिकका समागम अतीव सुखजनक है ॥ ११ ॥ तुम स्वयं आई हुई इस कन्याको ग्रहण करो, जो उपस्थित कन्याको ग्रहण नहीं करते हैं ॥ १२ ॥ महालक्ष्मी रुष्ट हो उनको छोडकर चली जाती है, इसमें सन्देह नहीं है बुद्धिमान् पुरुष कभी प्रकृतिका अपमान नहीं करते ॥ १३ ॥ पुरुष मात्रही सब प्रकृतिसे उत्पन्न हुए हैं और रमणी मात्रही प्रकृतिका अंश हैं, सुतरां प्रकृति और पुरुष दोनों अभिन्न हैं अतएव परस्पर परस्परका अपमान करना कभी उचित नहीं है यदि कहो कि " गंगा कृष्णासक्त है " किस प्रकार मैं उसका पाणिग्रहण करूं ? "तो इस विषयमें यह कहना है कि, श्रीकृष्ण जिसप्रकार गुणातीत और प्रकृतिके अतीत पदार्थ हैं तुमभी उसी प्रकार हो ॥ १४ ॥ श्रीकृष्णका अर्द्धाङ्ग द्विभुज और अपर अर्द्धाङ्ग चतुर्भुज है अतएव श्रीकृष्णमें और तुममें कुछ भी भेद नहीं है राधिका श्रीकृष्णके वामाङ्गसे उत्पन्न हुई है ॥ १५ ॥ सुतरां श्रीकृष्ण स्वयं दक्षिणांश और पद्मा उनका वामांश है जिस प्रकार राधा और कमला दोनोंमें कुछ भी भिन्नता

नहीं है इसी प्रकार श्रीकृष्णमें और तुममें कुछ भेद नहीं हैं सुतरां तुम्हारे देहसे उत्पन्न होनेके कारण यह तुमको पतित्वमें वरण करनेकी अभिलाषा करती हैं ॥ ॥ १६ ॥ जिस प्रकार प्रकृति और पुरुष अभेदात्मक हैं इसी प्रकार स्त्री और पुरुष दोनों एकात्मा हैं ब्रह्मा नारायणसे इसप्रकार कह गंगाको उनके हाथमें समर्पण कर वहांसे चलेगये ॥ १७ ॥ इधर नारायणने स्वयं गान्धर्व विधानद्वारा गंगाका पुष्पचन्दनर्चर्चित पाणिग्रहण किया ॥ १८ ॥ रमापति पद्माके समान गंगाके संग वैकुण्ठधाममें सुखसे विहार करनेलगे गंगा सरस्वतीके शापसे पृथ्वीमें अवतीर्णहोकर फिर वैकुण्ठधाममें चलीगई थीं ॥ १९ ॥ वह विष्णुके पादपद्मसे उत्पन्न हुई इसी कारण विष्णु पदीके नामसे विख्यात हुई हैं देवी गंगा नारायणके संग नवसमागमके कारण सुखमें एकान्त मूर्च्छित हुई थीं, यही क्या उसके शरीरमें स्पन्दमात्र नहीं रहा ॥ २० ॥ इसप्रकार रसिका गंगा रसिक चूडामणि नारायणके सहित मिलित होकर परमसुखसे काल व्यतीत करने लगीं लक्ष्मीके निवारण करनेपर भी गंगाके पतिसे सरस्वतीकी ईर्षा दूर न हुई ॥ २१ ॥ वह नित्य गंगाके प्रति विद्वेष प्रकाशकरने लगी किन्तु गंगा उनके प्रति कुछ भी ईर्षाप्रकाश नहीं करती फिर अंतमें एक दिन बहुत विरक्त करनेसे गंगाने कुपित होकर सरस्वतीको भारतमें जन्मग्रहण करनेका शाप दिया ॥ ॥ २२ ॥ सुतरां लक्ष्मी, सरस्वती और गंगा, यह तीनों रमापति नारायणकी पत्नी हैं, अन्तमें देवी तुलसी भी उनकी पत्नी हुई थीं सुतरां सब समेत नारायणकी चार पत्नी हैं ॥ २३ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः १५.

नारदजी बोले हे भगवन् ! पतिपरायण तुलसी किस प्रकार नारायणकी पत्नी हुई कौन स्थान उनका जन्मभूमि है वह पूर्वजन्ममें कौन थीं उन्होंने कौन कुल अलंकृत किया था॥ १ ॥और वह किसकी कन्या थीं जो नारायण प्रकृतिके अतीत ॥ २ ॥ निर्विकार, निरीह (इच्छा रहित) विश्वात्मा परब्रह्म और परमेश्वर हैं, जो सबके ईश्वर ॥ ३ ॥ सर्वज्ञ सर्वकारण सबके आधार पूजनीय सर्वव्यापी

और सबके परिपालकहैं, तुलसीने किस तपस्याके फलसे उन नारायणको पतिलाभ किया ॥ ४ ॥ तुलसी ऐसी प्रधान देवी अर्थात् नारायणकी प्रिया होनेपर भी किसप्रकार वृक्षत्वको प्राप्त हुई ? किसप्रकार स्वयं निरपराध होनेपर भी दुर्दान्त असुर अर्थात् रावणके द्वारा ग्रस्त हुई ? ॥ ५ ॥ हे सन्देह भंजन ! मेरा निर्मल चित्त चंचल हो उठा है श्रवणपिपासा मुझको वारंवार व्याकुल करती है अतएव आप मेरा संशय छेदन कीजिये ॥ ६ ॥ नारायणने कहा हे वत्स नारद ! दक्षसावर्णि मनु अत्यन्त पुण्यवान् विष्णुभक्त यशस्वी कीर्त्तिमान् और विष्णुके अंशसे उत्पन्न थे ॥ ७ ॥ दक्षसावर्णिके पुत्र ब्रह्मसावर्णि भी अतिशय धार्मिक विष्णुभक्त और शुद्धसत्व था ब्रह्मसावर्णिके पुत्र धर्मसावर्णिभी विष्णुपरायण और जितेन्द्रिय थे ॥ ८ ॥ धर्मसावर्णिके पुत्र रुद्रसावर्णि भी जितेन्द्रिय और परमभक्त थे विष्णुपरायण देवसावर्णि रुद्रसावर्णिके पुत्र थे ॥ ९ ॥ देवसावर्णिके पुत्रका नाम इन्द्रसावर्णि था इन्द्रसावर्णिके समान विष्णुभक्त अतिविरले हैं उनकेही पुत्रका नाम वृषध्वज है वृषध्वज घोरतर शैव थे ॥ १० ॥ शंकरने स्वयं उनके भवनमें देवमानके तीन युग पर्यन्त वास किया था यही नहीं वरन् भगवान् भूतनाथ पुत्रसे भी अधिक उनपर स्नेह रखते थे ॥ ११ ॥ वृषध्वज नारायण, लक्ष्मी वा सरस्वती किसीको भी नहीं मानते, शंकरके अतिरिक्त और सब देतताओंकी पूजा एकवार ही छोड़दी थी ॥ ॥ १२ ॥ उन्होंने उन्मत्त हो भादोंके महीनेमें महालक्ष्मीकी पूजा और माघमासमें जो श्रीपंचमीकी पूजा ॥ १३ ॥ जो सर्वदेवसम्मत थीं, उन सरस्वतीकी पूजा एकवार ही छोडदी थी तब सूर्यने यज्ञरहित विष्णुविद्वेषी निन्दक ॥ १४ ॥ सम्राट् वृषध्वजके प्रति कुपित होकर यह शाप दिया कि "हे राजन् ! जिसप्रकार तुम शुद्ध शिवभक्त हो और किसीको नहीं मानते, ऐसे ही मैं कहता हूं कि अचिरात् तुम भ्रष्टश्री होगे ॥ १५ ॥ देव शंकर शापकी बात सुनते ही कुपित हो स्वयं शूलास्त्र ग्रहण करके सूर्यके प्रति दौडे, तब सूर्यभयसे पिता कश्यपको संग लेकर ब्रह्माकी शरणागत हुए ॥ १६ ॥ भगवान् शंकर क्रोधमें पूर्ण हाथमें त्रिशूल लिये ब्रह्मलोकमें गये ब्रह्माजी महादेवके भयसे सूर्यको संगलेकर वैकुण्ठधाममें गये ॥ १७ ॥ भयसे ब्रह्मा कश्यप और सूर्यके कंठ तालु सूखगये वह वैकुण्ठधाममें उपस्थित शरणागत हो भयसे ॥ १८ ॥ मस्तक झुकाय वारंवार स्तव करने लगे और अन्तमें उनसे भयका यथार्थ कारण कहा ॥ १९ ॥ नारायणने सुनतेही दयाभावसे उनको अभय देकर कहा " तुम

स्थिर होओ जो मेरे विद्यमान रहते तुम्हारे भयका कोई कारण दिखाई नहीं देता ॥ ॥ २० ॥ जिस किसी स्थानमें पुरुष अवस्थान क्यों न करे यदि भयार्त्त हो मेरा स्मरण करे तो मैं तत्काल चक्रधारणपूर्वक वहां जाकर उसकी रक्षा करता हूं॥ २१ हे देवगण मैं जगत्‌की सृष्टि स्थिति और प्रलयकरता हूं मैं विष्णुरूपसे सब जगत्‌का पालन ब्रह्मरूपसे सब जगत्‌की सृष्टि और शिवरूपसे सब जगत्‌का संहार करता हूं ॥ २२ ॥ मैं ही शिव मैं ही तुम और मैं ही त्रिगुणात्मक सूर्य हूं मैंही अनेकप्रकारके रूप धारण करके जगत्‌को पालन करता हूं ॥ २३ ॥ तुम अपने स्थानको जाओ तुमको भय क्या है ? मैं कहता हूं आजसे तुम्हारा महा देवजनित भय दूर हुआ ॥ २४ ॥ सर्वेश्वर भगवान् शंकर साधुओंकी गति हैं वह भक्ताधीन और भक्तवत्सल हैं ॥ २५ ॥ सूर्य और शिव दोनोंही मुझे प्राणोंसे भी प्रिय हैं हे ब्रह्मन् ! ब्रह्माण्डमें शंकर और सूर्यके समान तेजस्वी और कोई नहीं है ॥ २६ ॥ महादेवजी लीला पूर्वकही करोड सूर्य और करोड ब्रह्माकी सृष्टि करसके हैं प्रभु शूलपाणिको कुछ भी असाध्य नहीं है ॥ २७ ॥ ॥ वह बाह्य (बाहरी) ज्ञानरहित होकर दिन रात मेरे ध्यानमें निमग्न रहते हैं वह तद्गत चित्त हो भक्ति पूर्वक पंचमुखसे केवल मेराही मंत्र जप और मेरेही गुणोंका गान करते हैं ॥ २८ ॥ मैं भी दिन रात उनके कल्याणकी चिन्तामें रत रहता हूं मेरा जो जिस भावसे भजन करता है, मैं भी उसके प्रति वैसाही अनुग्रह प्रकाश करता हूं ॥ २९ ॥ भगवान् महादेव शिवस्वरूप अर्थात् मंगलमय हैं, वह शिवके अर्थात् मोक्षके अधिष्ठात्री देवता हैं उनसे शिव अर्थात् मोक्षपद लाभ होता है इसीकारण पण्डितोंने उनको "शिव" नाम प्रदान किया है ॥ ३० ॥ हे वत्स नारद ! नारायण इस प्रकार कहते ही थे कि, इसी अवसरमें रक्तपद्मके समान लोहितनेत्र किये बैलपर चढे शूलधारी महादेवजी वहां आनकर उपस्थित हुए ॥ ३१ ॥ और बैलसे उतर भक्तिभावसे कंधे झुकाय उन शान्त प्रकृति परात्पर लक्ष्मीकान्तको प्रणाम किया ॥ ॥ ३२ ॥ लक्ष्मीकान्त इस समय रत्नमय गहनोंसे विभूषित होकर रत्नसिंहासनपर विराजमान थे उनके मस्तकमें किरीट, कानमें दो कुण्डल, देदीप्यमान् हाथमें चक्रास्त्र गलेमें वनमाला ॥ ३३ ॥ वर्ण नवीन नीले मेघके समान श्याममूर्त्ति अतीव मनोहर चतुर्भुज पार्षद चारों हाथोंसे श्वेत चामर बीजन करते थे ॥ ३४ ॥ सर्वाङ्गमें चंदन विलेपन और परिधान पीताम्बर था वह परमात्मा भक्तवत्सल भगवान् रत्नसिंहासन

पर बैठे पद्माका दिया ताम्बूल चर्वण और हास्यवदनसे विद्याधरियोंका नृत्य गीत दर्शन और श्रवण करते थे॥ ३५॥ ३६॥ महादेवजीने उपस्थित होकर जैसे ही नारायणको प्रणाम किया उसी समय उन ब्रह्माने भी भूतनाथको प्रणाम किया सूर्य भी तटस्थ होकर भक्तिभावसे उन चन्द्रशेखरके चरणोंमें अवनत हुए ॥ ३७ ॥ फिर कश्यपजीभी महाभक्तियुक्त हो उनको प्रणाम करके स्तव करने लगे इस ओर भगवान् शंकर भी नारायणकी स्तुति करके सिंहासनपर विराजमान हुए ॥ ३८ ॥ चन्द्रशेखरके आसनपर बैठनेसे नारायणके पार्षद श्वेत चामर लेकर उनकी वीजन करनेलगे ॥ ३९ ॥ इसी समय विष्णुने अमृतधारावर्षी मधुरस्वरद्वारा शंकरसे कहा विष्णु बोले हे महेश्वर ! यहां आनेका कारण क्या है किस निमित्त कुपित हुए हो? ॥ ४० ॥ महादेवजी बोले हे विष्णो ! राजा वृषध्वज मेरा परमभक्त है, इस कारण मेरे प्राणोंसे भी प्रिय है भास्कर उसको शाप देना मेरे क्रोधके कारण हुए हैं ॥ ४१ ॥ पुत्रस्नेहके वश मैं अतिशय दुःखित होकर सूर्यका वधकरनेमें उद्यत हुआ हूं सूर्य प्रथम तो ब्रह्माकी शरणागत हुए थे किन्तु अब विधाताको संगलेकर आपके निकट आये हैं ॥ ४२ ॥ जो विषन्न (दुःखी) होकर मनसे वा वचनसे तुम्हारी शरणागत होता है, वह एकवार ही निरापद और शंकारहित हो जाता है, बरन् जरा, मृत्यु वर्जित होता है ॥ ४३ ॥ और जो स्वशरीरसे तुम्हारी शरणागत होता है,उसको जैसा फल प्राप्त होता है, उसका क्या वर्णन करूं वास्तवमें हरिका स्मरणकरनेसे कोई भय नहीं रहता बरन् सदा सब प्रकार मंगल लाभ होता है ॥ ४४ ॥ हे जगत् प्रभो ! आप अब बताइये सूर्यके शापसे हतश्री हुए मेरे मूढ भक्तका उपाय क्या होगा ॥ ४५ ॥ विष्णुने कहा हे शंकर ! दैवघटनाके कारण वैकुण्ठमें आनेसे इस आधीघडीमें मर्त्यलोकके मध्य इक्कीस युग बीतगये हैं अब तुम शीघ्र अपने स्थानको जाओ ॥ ४६ ॥ दुर्निवार दारुण कालके प्रभावसे वृषध्वजको लोकान्तर प्राप्त हुआ है, उसका पुत्र रथध्वज भी हतश्री होकर कराल कालकवलमें निपतित हुआ है ॥ ४७ ॥ रथध्वजके धर्मध्वज और कुशध्वज नामक दो महाभाग पुत्रोंने जन्म लिया है वह दोनोंही परम वैष्णव हैं, किन्तु सूर्यके शापसे हतश्री हुए हैं ॥ ४८ ॥ वह राज्यभ्रष्ट और श्रीभ्रष्ट होनेसे महालक्ष्मीकी आराधनामें अनुरक्त हुए हैं महालक्ष्मी उन दोनोंकी भार्याओंके शरीरसे अंशमें अवतीर्ण होंगी ॥ ४९ ॥ तब फिर धर्मध्वज और कुशध्वज दोनों लक्ष्मीके अनुग्रहसे

सम्पद्युक्त होकर नृपश्रेष्ठ होंगे हे शंभो ! तुम्हारा सेवक वृषध्वज कालकवलमें पतित हुआ है अतएव तुम अपने स्थानको जाओ हे ब्रह्मन् ! हे भास्कर ! हे कश्यप तुम भी अपने अपने स्थानको जाओ ॥ ५० ॥ हे वत्स नारद ! भगवान् विष्णु इसप्रकार कहकर भार्याके सहित सभासे अन्तःपुरमें चलेगये और देवताओंने भी परमानन्दसे अपने अपने स्थानको प्रस्थान किया ॥ ५१ ॥ और इस ओर पूर्णतम महादेवजी भी तपस्या करनेके लिये तत्काल वहांसे चले गये ॥ ५२ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः १६.

नारायणने कहा हे देवर्षे ! धर्मराज और कुशध्वज दोनोंने घोर तपस्याद्वारा लक्ष्मीकी आराधना करके उनसे अभिमत (वांछित) वरलाभ किया ॥ १ ॥ इस वरसे वह फिर पृथ्वीश्वर होगये, उनके पुण्यकी सीमा न रही दोनोंही पुत्रमुख देखनेमें अधिकारी हुए ॥ २ ॥ कुशध्वजकी पत्नीका नाम मालावती था सती मालावतीने बहुत कालके पीछे कमलाका अंश स्वरूप एक कन्या उत्पन्नकी ॥ ३ ॥ यह कन्या लक्ष्मीका अंश होनेके कारण जन्मतेही ज्ञानपूर्ण हुई और उत्पन्न होतेही सतीका गृहसे स्पष्ट वेद पाठकर उठी ॥ ४ ॥ जो कि उसने वेद ध्वनिकी इसी कारण पण्डितोंने उसको वेदवती संज्ञा प्रदानकी थी ॥ ५ ॥ वह जन्म लेनेके पीछे स्नान करके तपके अर्थ वन जानेमें उद्यतहुई जानेके समय उस नारायणपरायणा वेदवतीको यत्नपूर्वक सबनेही निषेध किया किन्तु उसने किसीप्रकार भी उनकी बातोंपर कान नहीं दिया ॥ ६ ॥ एक मन्वन्तर कालतक पुष्करमें जाकर लीलासेही उसने अति दुष्कर तपस्या की॥ ७॥ तोभी उसका शरीर कुछ शीर्ण नहीं हुआ बरन् क्रमसे मोटा होने लगा क्रमानुसार शरीरमें नवयौवनका आविर्भाव हुआ ॥ ८ ॥ एक दिन यह आकाशवाणी उसके कर्णमें प्रविष्ट हुई कि "हे सुंदरि ! जन्मान्तरमें ब्रह्मादि वंदित श्रीहरि स्वयं तुम्हारे स्वामी होंगे" ॥ ९ ॥ यह बात सुनतेही वेदवतीके आनंदकी सीमा न रही, वह फिर गंधमादन पर्वतके निर्जन प्रदेशमें बैठकर तप करने लगी ॥ १० ॥ बहुत काल तपस्या करते करते एक दिन दुर्निवार रावण अतिथि वेषमें वहां उपस्थित हुआ ॥ ११ ॥ वेदवतीने देखतेही अतिथिभक्ति वशतः उसको पैर धोनेको

जल स्वादिष्ट फल और शीतल पानी दिया ॥ १२ ॥ पापिष्ठने आतिथ्य स्वीकार पूर्वक उसके समीप बैठकर पूँछा कि, हे कल्याणि ! तुम कौन हो ? ॥ १३ ॥ वह दुराचारी उस (पुष्ट नितम्बवाली) पीनपयोधरसम्पन्न शरत्पंकजवदना हास्य मुखी सुदती सुन्दरीको देखकर ॥ १४ ॥ कामबाणसे जर्जरित होगया बाह्यज्ञान एकबारही तिरोहित होगया और वह पापाशय वेदवतीको आकर्षण करके बलात्कार करनेमें उद्यत हुआ ॥ १५ ॥ सती वेदवतीने यह देखकर कुपित हो अपने तपके प्रभावसे उसको स्तम्भित किया, अधिक क्या वह जडके समान बैठा रहा उसको हाथ पैरादि चलाने वा बोलनेकी भी सामर्थ्य न रही ॥ १६ ॥ तब दुरात्मा मन मनमें पद्मपलाश लोचना सती वेदवतीका स्तव करने लगा, पराशक्तिकी स्तुति कभी व्यर्थ होनेवाली नहीं है, उन्होंने संतुष्ट होकर उसको परलोकप्रद सुकृति प्रदान की ॥ १७ ॥ किन्तु उसके द्वारा यह शाप दिया गया "जब तैंने कामके वशीभूत होकर मेरे अंगको स्पर्श किया है तब मेरे लियेही तुझको वंश सहित ध्वंस होना पडेगा, इस समय मेरी कितनी सामर्थ्य है, देख" ॥ १८ ॥ हे वत्स नारद ! वेदवतीने रावणसे यह बात कहकर योगबलसे देहत्याग किया, तब रावण वेदवतीका वह देह गंगाके जलमें डालकर अपने भवनको चलागया ॥ १९ ॥ किन्तु "क्या आश्चर्य देखा" इस रमणीने किस अद्भुत कार्यका अनुष्ठान किया ? रावण बारंवार यह चिन्ता करके विलाप करने लगा ॥ २० ॥ हे वत्स पवित्रस्वभाव ! यह वेदवतीने ही एक समयमें जनकात्मजा सीता होकर जन्मग्रहण किया था, इस सीताके निमित्त ही रावण वंशसमेत मृत्युको प्राप्त हुआ है ॥ २१ ॥ इस तपस्विनीनेही जन्मान्तरीय तपके प्रभावसे रामचन्द्ररूपी पूर्णतम हरिको पतिलाभ ॥ २२ ॥ और बहुत काल-तक उन दुराबध्य जगत्पतिके संग परम सुखसे काल बिताया ॥ २३ ॥ उन्होंने जातिस्मरा होनेपर भी पूर्वजन्मकृत कठोर तपस्याका क्लेश कुछ भी अनुभव नहीं किया क्योंकि कष्ट सफल होनेपर कष्टको कष्ट कहकर बोध नहीं किया जाता ॥ २४ ॥ नवयौवना सीता सुकुमार शान्त सुरसिक सर्वप्रधान देवस्त्रियोंमें मनोहर गुणवान् अभिलाषित पतिलाभ करनेसे बहुत काल अनेक प्रकारके सौभाग्य सुखभोग करने लगी ॥ २५ ॥ २६ ॥ किन्तु बलवान्कालकीगति दुर्निवार है कालके प्रभावसे पिताका सत्य पालन करनेके निमित्त उन सत्यप्रतिज्ञ रघुकुलधुरन्धर श्रीरामचंद्रजीको वनवासका आश्रय लेना पड़ा ॥ २७ ॥ वह सीता और लक्ष्मणके

संग समुद्रके तटपर वास करने लगे एक समय हुताशन (अग्नि) ब्राह्मणका वेष धारण करके उनके समीप आये ॥ २८ ॥ ब्राह्मणरूपी वैश्वानर श्रीरामचन्द्रजीको दुःखित देखकर स्वयं दुःखित हुए और उन्हीं सत्यपरायण हुताशनने सत्यस्वरूप, रामचंद्रजीसे कहा ॥२९॥ द्विज बोले हे भगवन् श्रीरामचंद्रजी ! जैसा समय आया है, सो कहता हूं सुनो तुम्हारी सीता हरीजानेका समय उपस्थित हैं ॥ ३० ॥ दैवकी गति दुर्निवार है, दैवसे बलवान् दूसरा अन्य कोई नहीं है, इस कारण तुम जगज्जननी सीताको मेरे हाथमें समर्पण करो और इस समय इस छायारूपी सीताको अपने समीप रक्खो ॥ ३१ ॥ जब सीताकी परीक्षाका समय उपस्थित होगा, तब मैं इसको पुनर्वार तुम्हें समर्पण करूंगा देवताओंने मिलकर मुझे तुम्हारे पास भेजा है मैं यथार्थमें ब्राह्मण नहीं हूं, मैं अग्नि हूं ॥ ३२ ॥ श्रीरामचन्द्रजी अग्निके वचन सुनकर उनमें सम्मत हुए, किन्तु उनका हृदय विदीर्ण होने लगा उन्होंने लक्ष्मणजीसे यह सब बात कुछ न कही ॥ ३३ ॥ अग्निने योगबलसे मायासीताको उत्पन्न किया हे वत्स नारद ! वह मायासीता सब अंगोंमें प्रकृत सीताके समान हुई, तब उन्होंने वह मायारूपी सीता श्रीरामचंद्रजीके हाथमें समर्पण करी ॥ ३४ ॥ हुताशन प्रकृत सीताको ग्रहण पूर्वक " यह बात किसी प्रकार भी दूसरेके निकट प्रकाशित न हो "यह कहकर चलेगये इधर दूसरेकी बात तो क्या कहैं, लक्ष्मणभी उस बातको कुछ न जानसके ॥ ३५ ॥ एकदिन सहसा एक सुवर्णमृग श्रीरामचन्द्रजीको दिखाई दिया सीताने उस सुवर्णमृगके लिये यत्नपूर्वक श्रीरामचंद्रजीको भेजा ॥ ३६ ॥ सुतरां वनमें सीताकी रक्षाके लिये लक्ष्मणजीको वहां रख स्वयं शीघ्रतासहित वहां जाय एक बाणसे उस स्वर्णमृगको वींध डाला ॥ ३७ ॥ विद्ध होतेही उस माया-मृगने " हा लक्ष्मण ! कहकर ऊंचे स्वरसे चीतकार करके सामने खडे हरिका दर्शन और हरिनाम स्मरण करते करते प्राणत्याग किया ॥ ३८ ॥ तब उसका वह मृग-देह दूर होकर दिव्यमूर्त्तिका आविर्भाव हुआ वह रत्ननिर्मित विमानमें चढ़कर वैकुण्ठ धाममें गया ॥ ३९ ॥ यह मायामृग पूर्वमें वैकुण्ठके दो द्वारपालोंका किंकर था, किन्तु कार्यवश राक्षसयोनि पाई थी, इस समय भगवान् भक्तहितकारी असुरारी कौशल्यानन्दवर्द्धक श्रीरामचन्द्रजीके हाथसे मृत्युको प्राप्त हो फिर उन्हीं वैकुण्ठके दोनों द्वारपालोंका किंकर हुआ ॥ ४० ॥ इधर देवी सीताने " हा लक्ष्मण ! " यह आर्त्तनाद सुनते ही अत्यन्त कातर हो लक्ष्मणको श्रीरामचन्द्रजीके निकट भेजा

लक्ष्मणके आश्रमसे बाहर होतेही दुर्निवार रावण सीताको लेकर अत्यानन्दसे लंकापुरीको चलागया ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ इस ओर श्रीरामचन्द्रजी वनमें लक्ष्मणको आया हुआ देख विषादसागरमें निमग्न हुए और काल व्यतीत न कर अपने आश्रममें आय फिर सीताको न देखा ॥ ४३ ॥ तब तत्काल मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिरगये बहुत देर पीछे चेत होनेपर विलाप करते करते इधर उधर उसकी खोजमें विचरने लगे ॥ ४४ ॥ कुछ दिनों पीछे गोदावरीके तटपर उसकी सुधि पाय वानर सैन्यकी सहायतासे समुद्रमें पुल बांधा ॥ ४५ ॥ फिर सेना सहित लंकामें प्रवेश करके बाणोंके द्वारा रावणको बांधवोंसहित मारडाला ॥ ४६ ॥ अनन्तर सीताकी अग्निपरीक्षाका समय उपस्थित हुआ तिस काल हुताशनने श्रीरामचन्द्रजीके हाथमें प्रकृत सीताको समर्पण किया ॥ ४७ ॥ तब छायासीताने विनीतभावसे अग्नि और श्रीरामचन्द्रजीसे कहा हे प्रभो! अब मैं क्या करूं इसका उपाय बताइये ॥ ४८ ॥ अग्नि और श्रीरामचन्द्रजी दोनोंने छायासीतासे कहा हे देवि! तुम तपाचरणके लिये पुण्यप्रद पुष्करतीर्थमें जाओ वहां कुछ काल तप करके सहजमें ही स्वर्गलक्ष्मी होसकोगी ॥ ४९ ॥ छायारूपी सीता यह बात सुन, दिव्य तीन लाखवर्ष पर्यन्त पुष्करमें तपस्या कर स्वर्गलक्ष्मी हुई ॥५०॥ अन्तमें यह स्वर्गलक्ष्मी ही एकसमय यज्ञ कुण्डसे उत्पन्न हुई यही द्रुपदकी कन्या होकर पांच पांडवोंकी पत्नी हुई थी ॥ ५१ ॥ वही सत्ययुगमें कुशध्वजकी कन्या वेदवती त्रेतायुगमें जनककन्या रूपस रामपत्नी ॥ ५२ ॥ और द्वापरमें उसकी छाया द्रुपदात्मजा द्रौपदीनामसे उत्पन्न हुई यह सत्य, त्रेता और द्वापर इन तीन युगमें विद्यमान रहती है इस कारण उनको त्रिहारिणी कहते हैं ॥ ५३ ॥ देवर्षि नारदने नारायणसे कहा हे मुनिपुंगव ? हे सन्देहभंजन ! द्रौपदीके पांच पति क्यों हुए इस विषयमें मुझको महान् संशय उपस्थित हुआ है, अतएव आप मेरा संशय छेदन कीजिये ॥ ५४ ॥ नारायण बोले हे देवर्षे! जब लंकापुरीमें प्रकृत सीतारामके समीप उपस्थित हुई तब अग्निदत्ता छाया रूपी नवयौवना सीताके अत्यन्त व्याकुल होनेपर ॥ ५५ ॥ अग्निदेव और श्रीरामचन्द्रजी दोनोंने उसको पुष्करमें जाय शंकरके आराधना करनेकी अनुमति दी अनन्तर छायारूपी सीताने पुष्करमें तपस्या करते करते कामातुर और श्रेष्ठ पति प्राप्त होनेके लिये अत्यन्त व्यग्र हो श्रीमहादेवजीके निकट वारंवार ॥ ५६ ॥ अर्थात् पांचवार "मुझको पति प्रदान करो" कहकर

प्रार्थना करी ॥ ५७ ॥ रसिकचूडामणि शिवजीने यह कामना सुनकर "हे प्रिये ! तुम पांच पति प्राप्त करोगी" यह कहकर उसको वर दिया ॥ ५८ ॥ इसी कारण वह पांच पांडवोंकी प्रियतम भार्या हुई थीं. हे वत्स नारद ! यह मैंने तुम्हारे निकट विस्तार सहित सब विषय वर्णन किया, अब दूसरी वास्तविक कथा वर्णन करता हूं सुनो ॥ ५९ ॥ लंकाका युद्ध समाप्त होनेपर श्रीरामचन्द्रजी अपनी मनोहारिणी प्रियतमा पत्नी सीताको पाय विभीषणको लंकाके राज्यसिंहासनपर बैठाय स्वयं फिर अयोध्यामें आये ॥ ६० ॥ फिर ग्यारह हजार वर्षपर्यन्त भारतमें आधिपत्य विस्तार कर अन्तमें फिर सब प्रजाओंके सहित वैकुण्ठधाममें उपस्थित हुये॥ ६१ ॥ लक्ष्मीके अंशसे उत्पन्न वेदवती भी कमलाके शरीरमें विलीन हुई हे वत्स ! यह मैं ने तुमसे वेदवतीका पवित्र उपाख्यान वर्णन किया इसके सुननेसे पापध्वस और पुण्यका संचार होता है ॥ ६२ ॥ ऋगादि चारों वेद मूर्त्तिमान् होकर वेदवतीके जिह्वाग्रमें विराजमान थे, इसी कारण उसका नाम वेदवती हुआ है ॥ ६३ ॥ यह मैं ने तुम्हारे निकट कुशध्वजकी कन्या वेदवतीका वृत्तान्त वर्णन किया, अब धर्मध्वजकी कन्या तुलसीका वृत्तान्त वर्णन करता हूं, सुनो ॥ ६४ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः १७.

नारायणने कहा हे वत्स नारद ! धर्मध्वजकी पत्नीका नाम माधवी था माधवी गंधमादन पर्वतपर जाकर राजा धर्मध्वजके संग परमसुखसे विहार करने लगी ॥ १ ॥ वहां पुष्पोंसे अलंकृत और चंदनविलिप्त रतिशय्या प्रस्तुत हुई स्वयं सर्वाङ्गमें चन्दनविलेपन किया पुष्प और चंदन गंध समायुक्त सुस्निग्ध वायु सब शरीरको शीतल करने लगा ॥ २ ॥ माधवी एक स्त्रीरत्नथी, उसका सर्वाङ्ग अतिमनोहर था इस पर भी फिर सब रत्न मय भूषण पहिरे हुई थी वह जैसी रसिका थी, नरपति भी वैसेही रसिक चूडामणि थे बोध होता है मानो विधाताने धर्मध्वजके लिये ही अनुरूप रसिका कामुकीको उत्पन्न किया है ॥ ३ ॥ दोनों ही रतिविशारद थे, सुतरां सुरतिमें किसीकी भी विरति नहीं थी इस कार्यके उपलक्षणमें देवमानके एक शतवर्षपर्यन्त दिनरात्रि किधर होकर

बीतगये, वह यह कुछभी न जानसके ॥ ४ ॥ अनन्तर नरपतिको चेत हुआ, तब वह रतिकार्यसे विरत हुए किन्तु कामातुरा सुंदरी माधवीकी इससे कुछ भी तृप्ति न हुई ॥ ५ ॥ जो हो दैवयोगसे उसने गर्भवती होकर शतवर्ष पर्यन्त गर्भधारण किया गर्भमें लक्ष्मीका आविर्भाव हुआ, इस कारण दिन दिन शरीरकी कान्ति बढने लगी ॥ ६ ॥ अनन्तर शुभदिन, शुभक्षण, शुभयोग, शुभलग्न, शुभअंश एवं शुभस्वामी और ग्रहयोगके उपस्थित होनेपर ॥ ७ ॥ कार्तिकी पूर्णिमा शुक्रवारमें लक्ष्मी अंशसंभूत एक मनोहर कन्या उत्पन्न करी ॥ ८ ॥ कन्याका मुखमंडल शरद्के पूर्ण चन्द्रमाके समान और दोनों नेत्र शारदीय कमलकी शोभा विस्तार करते थे, अधर और ओष्ठ पक्व बिम्बाफलकी शोभा प्रकाशित करते थे कन्या उत्पन्न होतेही हास्य वदनसे सूतिकागृह (सोवर) को देखने लगी ॥ ९ ॥ उसके करतल (हथेली) और पदतल (पैरके तलुए) लालवर्ण थे नाभि गहरी और उसके निम्नदेशमें त्रिवली विराजमान् तथा नितम्ब गोलाकार थे ॥ १० ॥ शीत कालमें उस श्यामाङ्गीका शरीर उष्णस्पर्श और ग्रीष्ममें शीतल तथा सुखस्पर्श था. केशकलापन्यग्रोधजटाके समान लम्बे थे ॥ ११ ॥ उसका वर्ण पीतचम्पकके समान समुज्ज्वल था वह सब रमणी रत्नोंमें प्रधान रत्न थी नर और नारीगण उसके शरीरके सौन्दर्यकी तुलना देनेमें असमर्थ जानकर ॥ १२ ॥ महर्षियोंने उसका तुलसीनाम रक्खा, वह उत्पन्न होतेही योग्य स्त्री प्रकृतिके समान प्रतीयमान होनेलगी ॥ १३ ॥ वारंवार सब उसको निषेध करने लगे, तो भी वह तपस्याके अर्थ बदरीवनमें चलीगई वहां उसने देवमानके लक्ष वर्षतक कठोर तपस्या करी ॥ १४ ॥ नारायणको पतिलाभ करनाही उसकी तपस्याका प्रधान उद्देश्य था वह ग्रीष्ममें पंचतपा, शीतमें सलिलस्था और वर्षाके समय अनावृत (उघड़े) स्थानमें बैठकर ॥ १५ ॥ दिनरात धारापात सहने लगी. वीसहजार वर्ष केवल फल और जलांशनमें बीतगये ॥ १६ ॥ तीसहजारवर्ष केवल वृक्षके पत्तेमात्र आहार किये चालीस सहस्र वर्ष उपस्थित होनेपर वायुमात्र भक्षण करनेके कारण दिन दिन शरीर दुबला होने लगा ॥ १७ ॥ अनन्तर दशहजार वर्ष काल एक वार ही सब आहार छोड़ जब लक्ष्य विहीन होकर एक पैरसे खडी हुई उसी समय कमलयोनि ब्रह्माजी ॥ १८ ॥ यह देखकर वर देनेके लिये वहां आये तब देखते ही तुलसीने तत्काल हंसवाहन चतुराननको प्रणाम किया ॥ १९ ॥ तब जगतकर्ता विधाताने उससे कहा हे देवि तुलसी ! मनोवांछित वर मांगो ॥ २० ॥

तुम हरिभक्ति हरिदास्य, अजरता और अमरता इत्यादि जिस किसी अभीष्टकी प्रार्थना करोगी, मैं वही दूंगा तुलसीने कहा हे तात ! इस समय मेरी जो अभिलाषा है, वह कहती हूं, सुनो ॥ २१ ॥ क्योंकि जो अंतर्यामी हैं, उनके निकट लाज करके क्या करूंगी हे प्रभो ! मेरा नाम तुलसी गोपी है मैं पूर्वकालके समय गोलोकमें अवस्थिति करतीथी २२ ॥ और मैं कृष्णप्रिया राधिकाकी प्रिय किंकरी थी मैंने भी उसके अंशसे जन्म ग्रहण किया था उसकी सब सखियेंभी मेरा आदर करती मैं एकसमय रासमंडलमें गोविंदके द्वारा सम्भुक्त होकर तृप्त न होनेसे प्रायःमूर्च्छित होकर गिरपड़ी थी ॥ २३ ॥ इसी अवसरमें रासेश्वरी राधाने वहां आय मुझको उस अवस्थामें देख गोविंदकी भर्त्सना करी और क्रोधमें भरकर मुझको यह शाप दिया कि ॥ २४ ॥ " तू अभी भूलोकमें जाकर मानवी हो " तब गोविंदने मुझसे कहा " तेरे भारतमें जाकर तपस्या करनेपर ब्रह्मा संतुष्टहोकर वर देंगे तू उसी वरके पानेसे मेरे अंशसंभूत चतुर्भुज मूर्त्तिको पतिलाभ करेगी " हे तात ! देवेश ! श्रीकृष्ण यह बात कहकर अन्तर्धान होगये ॥ २५ ॥ २६ ॥ हे गुरो ! मैंने उन देवी राधाके भयसे शरीर त्यागकर इस भूमण्डलमें जन्म ग्रहण किया है अब मेरी और कोई अभिलाषा नहीं है केवल मुझको यह वरदो " जिससे मैं शान्त कान्त सुंदर शरीर नारायण को ॥ २७ ॥ पतिलाभ करसकूं" ब्रह्माजीने कहा ! हे वत्से ! तुलसी सुदामा नामक गोप श्रीकृष्णके अंगसे उत्पन्न हुआ है ॥ २८ ॥ इस समय उस कृष्णांशरूपी अतितेजस्वी सुदामाने श्री राधाके शापसे भारतके मध्य दानववंशमें जन्म ग्रहण किया है ॥ २९ ॥ उसका नाम शंखचूड है तीनों लोकमें उसके समान पराक्रमी दूसरा नहीं है पूर्वकालके समय वह गोलोक धाममें तुमको देख उसका चित्त कामबाणसे जर्जरित हुआ ॥ ३० ॥ किन्तु केवल राधिकाके प्रभावसे तुमको आलिंगन करनेमें समर्थ न हुआ वही सुदामा अब जातिस्मर हुआ है ॥ ३१ ॥ हे सुन्दरि ! तुमभी जातिस्मरा हो कोई बात भी तुमसे छिपी नहीं है हे शोभने! तुम इस समय उसकी पत्नी होओ ॥ ३२ ॥ फिर शान्त स्वभाव मनोहरमूर्त्ति नारायणको पतिलाभ करसकोगी तुम नारायणके शाप अंशसे ॥ ३३ ॥ विश्वपावनी तुलसी वृक्षरूपमें परिणत होगी तुम पुष्पोंमें सर्व प्रधानपुष्प और नारायणको प्राणोंकी अपेक्षा भी प्रियतम होगी ॥ ३४ ॥ तुम्हारे पुष्पके विना किसीकी पूजाभी सिद्ध नहीं होगी तुम वृन्दावनमें वृक्षरूप धारण करके वृन्दावनी नामसे प्रसिद्ध होगी ॥ ३५ ॥ गोप और गोपियें

तुम्हारे पत्र लेकर माधवकी पूजा करेंगी तुम तुलसी वृक्षकी अधिष्ठात्री देवी रूपसे सदा गोपवर श्रीकृष्णके संग स्वच्छन्द विहार करोगी ॥ ३६ ॥ हे वत्स नारद ! देवी तुलसी ब्रह्माजीके इस प्रकार वचन सुनकर अत्यन्त आनन्दित हुई ॥ ३७ ॥ उनके मुखपर हास्यका विकाश हुआ तब उन्होंने विधाताको प्रणाम करके कहा तुलसी बोली हे तात ! मैं तुमसे सत्य कहती हूं कि, द्विभुज श्यामसुंदर कृष्णके प्रति जैसी भक्ति है ॥ ३८ ॥ चतुर्भुजके प्रति वैसी नहीं है यह सत्य कहती हूं क्योंकि सहसा गोविन्दके संग मेरी रतिभंग होनेसे मेरी आशा पूर्ण नहीं हुई ॥ ३९ ॥ मैं तो केवलगोविन्दके वचनसेही चतुर्भुजकी प्रार्थना करती थी अब निश्चय बोध होता है कि, आपके अनुग्रहसे फिर दुर्लभ गोविन्दको प्राप्त हूंगी ॥ ॥ ४० ॥ किन्तु हे तात ! अब मुझको राधाके भयसे कातर होना न पड़े ब्रह्माजी बोले हे वत्से ! मैं तुमको षोडशाक्षर राधामंत्र देता हूं ॥ ४१ ॥ मेरे वरसे तुम राधाकी प्राणके तुल्य स्नेहपात्र होगी तुम्हारा गुप्त विहार व्यापार फिर राधा नहीं जानसकेगी ॥ ४२ ॥ ॥ हे सौभाग्यवती ! तुम राधाके समान गोविन्दकी प्रियतमा होगी जगत्कर्त्ता ब्रह्माजीने तुलसीसे इस प्रकार कह उनको षोड़शाक्षर ॥ ४३ ॥ राधामंत्र, स्तोत्र, कवच, पूजाविधि और पुरश्चरणके नियमका उपदेश प्रदान ॥ ॥४४॥ पूर्वक यथेष्ट आशिर्वाद दिया तब तुलसीभी तदनुसार ही पूजा करनेमें प्रवृत्त हुई लक्ष्मीके समान तुलसीनेभी इसप्रकार ब्रह्माजीके अनुग्रहसे सिद्धिलाभ की थी ॥ ॥ ४५ ॥ सिद्धमंत्रके प्रभावसे उनको अभीष्टवर प्राप्त हुआ वह जगदुर्लभ अनेक भोगोंमें सौभाग्यवती हुई ॥ ४६ ॥ उनका मन सुस्थिर हुआ तपस्याका क्लेश दूर होगया वास्तविक मनुष्यकी मनोकामना सिद्ध होनेपर चाहै जितना कष्टभोग क्यों न हो ? सबही सुखमें परिणत होता है ॥ ४७ ॥ फिर उन्होंने पान, भोजन समाप्त करके पुष्प और चन्दन समायुक्त मनोहर शय्यापर शयन किया ॥ ४८ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः १८.

श्री नारायण बोले हे वत्स नारद ! इस प्रकार तपश्चर्या समाप्तिके पीछे वृषध्वज कन्या नवयौवनसंपन्न तुलसी देवीके अत्यन्त आनन्दित होकर सुखसे शयन करने

पर ॥ १ ॥ पंचशर (कामदेव) ने उनपर सम्मोहनादि पांच बाण छोडे यद्यपि चंदन लगाये होकर पुष्प शय्यापर शयनकर रही थीं, किन्तु तो भी पुष्पधन्वाके बाणोंसे उनका शरीर दग्ध होने लगा॥ २ ॥उनका सर्वाङ्ग रोमाञ्चित होगया शरीरकाँपने लगा नेत्र रक्तवर्ण होगये क्षणमें उद्वेग, क्षणमें मूर्च्छा ॥ ३ ॥ क्षणमें शुष्कता, क्षणमें सुखा-वह तन्द्रा, क्षणमें दाह, क्षणमें प्रसन्नता ॥ ४ ॥ क्षणमें चेतना और क्षणमें विषाद होने लगा कभी शय्यासे उठै कभी बैठ जाय कभी उद्वेगसे फिर निद्रा होजाती थी ॥ ५॥ क्षणमें उद्वेगसे भ्रमने लगती क्षणमें स्थित होती क्षणमें उद्वेगसे सोजाती ॥ ६ ॥ चंदनदिग्ध, पुष्पशय्या उसको कंटक होगयी अतीव सुंदर और सुखकर फल तथा सुशीतल जल उसको विषवत् होगया ॥ ७ ॥ वासगृह भूविवर तथा सूक्ष्म सूक्ष्म वस्त्र हुताशनके समान बोध होनेलगे सिन्दूरबिन्दु उसको व्रणतुल्य दुखःदायक हुआ ॥ ८ ॥ वह तन्द्राके आवेशमें स्वप्न देखने लगी कि, एक सुवेष सुंदर रसिक युवा पुरुष हास्यवदनसे उनके समीप उपस्थित हुआ है ॥ ९ ॥ उसका सर्वांग चन्दन विलिप्त और उत्कृष्ट रत्नमय विभूषणोंसे विभूषित और गलेमें वनमाला विराज-मान है वह आनकर मानों उनके मुखकमलका मधु पान करता है ॥ १० ॥ और रतिकथा तथा अन्यान्य अनेक प्रकारकी मधुर बातोंसे मिष्टालाप करता है और मानों आलिंगन पूर्वक शय्यापर शयन करके संभोग सुख आस्वादन करता है॥ ११ ॥ फिर संभोगके पीछे एकबार चला जाता है और फिर निकट आजाता है जानेके समय "हे प्राणेश्वर ! कहां जाते हो निकट रहो" यह कहकर वह सीमन्तिनी उससे संभाषण करती है॥ १२ ॥और फिर ज्योंही चेतनका संचार हुआ, उसी समय वारंवार विलाप करने लगी हे वत्स नारद ! देवी तुलसी यौवनकी सीमामें भरकर इस प्रकार बद्रिकाश्रममें वास करने लगी ॥ १३ ॥ इधर महायोगी शंखचूडने महर्षि जैगीषव्यसे कृष्णमंत्र पाय पुष्करमें सिद्धि प्राप्त करी ॥ १४ ॥ सर्वमंगलमय कवच गलेमें धारणपूर्वक ब्रह्माजीसे अपना अभिलाषित वर लाभ करके ॥ १५ ॥ उनकीही आज्ञानुसार बद्रिकाश्रममें उपस्थित हुआ उपस्थित होतेही शंखचूड देवी तुलसीके नेत्र पथका पथिक हुआ ॥ १६ ॥ शंखचूडके शरीरमें नव यौवनका आविर्भाव होनेसे बोध होता था मानो मूर्त्तिमान् काम है वर्ण श्वेत चम्पकके समान और सर्वाङ्गमें रत्नमय आभूषण थे ॥ १७ ॥ मुखमण्डल शारदीय पूर्ण चन्द्र और चक्षु पद्मपलाशके सदृश बड़े थे वह मनोहर मूर्त्ति उत्कृष्ट रत्नमय विमानमें विराजमान थी ॥ १८ ॥

दो रत्नकुण्डल गण्डस्थलपर्यन्त चलायमान थे गलेमें पारिजात पुष्पकी माला ॥ ॥ १९ ॥ शरीरमें कुंकुम और सुगन्धित चन्दन लगा हुआ था हे वत्स नारद ! देवी तुलसी शंखचूडको समीप आयाहुआ देख वस्त्रके अंचलसे अपना मुख ढक ॥ २० ॥ हास्य वदनसे वारंवार उसके प्रति कटाक्ष विक्षेप और नव समागम पिपासाकी लज्जासे मुख नीचा करने लगी ॥ २१ ॥ जिसका विमल मुखचन्द्र शरदके चन्द्रमाकी शोभाका तिरस्कार करता है चरणोंमें अमूल्य रत्ननिर्मित चरणाभरण ॥ २२ ॥ और उत्कृष्ट मणिनिर्मित नूपुर हैं मस्तकमें सुगंधित मालतीमालासे कबरीबंधन है ॥ २३ ॥ कानमें अमूल्य रत्ननिर्मित मकराकृत विचित्र कुण्डल गण्डस्थलपर्यन्त चलायमान है ॥ २४ ॥ अमूल्य रत्नमय हारने स्तनमण्डलके मध्यभागमें लम्बायमान होकर वक्षःस्थलको उज्ज्वल किया है हाथमें रत्नमय कंकण और शंख भूषण हैं ॥ २५ ॥ दोनों बाहुमें रत्नमय केयूर और हाथोंकी अंगुलियोंमें श्रेष्ठ रत्नांगुली शोभा पाती है हे मुनिवर! शंखचूडने उस मनोहर सुशील सुंदरीसती तुलसीको देखते ही ॥ २६ ॥ समीप आय बैठकर मधुरस्वरसे कहा शंखचूड बोला हे मानिनी ! हे कल्याणी ! हे कल्याणदायिनी ! तुम कौन हो किसकी कन्या हो ? ॥ २७ ॥ रमणियोंमें तुम धन्या और मान्या बोध होती हो, मैं तुम्हारा मौनीभूत दास हूं मेरे संग बात चीत करो ॥ २८ ॥ उत्सुक चित्तवाली उन वामलोचना तुलसीने अनुरागवान् शंखचूडका वचन सुनतेही हास्य मुख और नम्रवदन होकर उससे कहा ॥ २९ ॥ तुलसी बोली महाराज ! मैं वृषध्वजकी कन्या हूं तपश्चरणके अर्थ तपोवनमें आनकर तपस्यामें निमग्न रहती हूं आप कौन हैं आपकी बातोंसे क्या प्रयोजन है? आप यथेच्छ यहांसे गमन कीजिये ॥ ३० ॥ शास्त्रमें सुना है कि, सद्वंशोत्पन्न पुरुष कभी सद्वंशमें उत्पन्न हुई निर्जनमें बैठी स्त्रीसे बात चीत नहीं करते ॥ ३१ ॥ जो लम्पट धर्मशास्त्रहीन, वेदज्ञानरहित और अकुलीन हैं, वही कामीपुरुष अकेलेमें कामिनीके संग बात चीत करनेकी अभिलाषा करते हैं ॥ ३२ ॥ और जो स्त्रियें आपातरमणीयें कामोन्मत्त और पुरुषकी अन्तक हैं, पयोमुख विषपूर्ण घडेके समान जिनके अन्तरमें गरल और मुखमें मधुरालाप है ॥ ३३ ॥ जिनके हृदय क्षुरधार और मुखमें मिष्टभाषा है जो सदा अपना कार्य साधनमें तत्पर हैं ॥ ३४ ॥ जो अपने कार्यके वश होकर स्वामीके वशवर्तिनी और अन्यथा स्वेच्छाचारिणी हैं, जिनके अन्तरमें मलभरा है किन्तु वदन और नेत्रमें

प्रसन्नता विद्यमान रहती है ॥ ३५ ॥ श्रुति और पुराणमें जिनका चरित अति दूषित वर्णित हुआ है, कौन विद्वान् बुद्धिमान् उन्नताशय पुरुष उनका विश्वास करता है ॥ ३६ ॥ ऐसी स्त्रियोंमें शत्रु मित्रका विचार नहीं है, वह नित्य नवीन अभिलाषा करती हैं, वह वेषवान् पुरुषको देखतेही अपने कार्यसाधन करनेकी वासना करती हैं ॥ ३७ ॥ किन्तु बाहरमें अत्यन्त यत्नसहित स्वीय सतीत्वका घोषण करती हैं वह एकमात्र कामकी आधार हैं, वह सदा दूसरेके चित्तको आकर्षण और स्वीय कामवृत्ति चरितार्थ करनेके लिये विशेष व्यग्र रहती हैं ॥ ३८ ॥ वह मुखसे नायकको प्रत्याख्यान करनेके उद्योग करती हैं, किन्तु अन्तरमें रमणवासना सदा जाज्वल्यमान है नायकको अकेला पानेपर निर्लज्ज हसती रहती हैं किन्तु बाहर लज्जाकी सीमा नहीं रहती ॥ ३९ ॥ वह नायकके सहित संगत न होनेके कारणही अभिमानमें भरती हैं क्रोधसे अंग जलते रहते हैं और उनमें कलहबीज अंकुरित होजाता है जब बराबर संभोगवासना चरितार्थ होती रहती हैं, तब फिर आनन्दकी सीमा नहीं रहती, किन्तु उसकी लाघवता होनेपर ही ऐसी दुःखाग्नि प्रज्वलित हो उठती है ॥ ४० ॥ मिष्टान्न और सुशीतल सलिलके कारणही गुणवान् सुरसिक सुश्री युवा पुरुष उनके एकमात्र लक्ष्यस्थल हैं ॥ ४१ ॥ वह संभोगमें चतुर सुरसिक युवाको पुत्रकी अपेक्षा प्राणोंसे अधिक प्रियतम जानती हैं ॥ ४२ ॥ और यदि वही प्रियतम संभोगमें अपटु (मूर्ख) वा वृद्ध हो, तो उसको शत्रुके समान जानती हैं, क्रोधमें भरीं सदा उसके संग क्लेश करती हैं ॥ ४३ ॥ यही क्या सर्प जिसप्रकार चूहेको ग्रास करता है, इस प्रकार वह तादृश पुरुषको ग्रासकरजाती हैं वह मूर्त्तिमान् दुःसाहस और समस्त दोषोंकी आकर (खान) स्वरूप हैं ॥ ४४ ॥ ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरादि देवताभी उनके निकट मोहित होते हैं यही क्या वह ऐसी मोहिनी स्त्रियोंका अन्त नहीं पासक्ते यह तपोमार्गकी महान् विघ्नकारी और मोक्षद्वारकी कपाटस्वरूप हैं ॥ ४५ ॥ हरिभक्ति ऐसी स्त्रियोंके निकट तीनों अवस्थामें नहीं जासकती वह मायाकी एकमात्र आधार और संसाररूपी कारागारकी निगड़ (बेड़ी) स्वरूप हैं ॥ ४६ ॥ वह ऐन्द्रजालिकी विद्या और मिथ्यास्वप्नस्वरूप हैं उनका बाहिरी सौन्दर्य सबको मोहित करता है उनका आधाअंग अति कुत्सित ॥ ४७ ॥ और विष्ठा मूत्र तथा लार इत्यादि मलका एकमात्र आधार है उसम दुर्गंध दोषकी सीमा नहीं और वह स्थान रक्ताक्त एवं अति अपवित्र है ॥ ४८ ॥ भगवान् विधाताने उनको मायावी पुरुषों

की माया और मुमुक्षु पुरुषोंको विषरूपा कहकर उत्पन्न किया है ॥ ४९ ॥ हे वत्स नारद ! जब देवी तुलसी शंखचूडसे इस प्रकार कहकर मौन होगई तब वह हास्यवदन हो उनसे कहने लगा ॥ ५० ॥ शंखचूड बोला हे देवि ! तुमने जो कहा वह सर्वथा मिथ्या नहीं है इसमें कुछ मिथ्या और कछ सत्य है मैं इसका स्वरूप कहता हूं सुनो ॥ ५१ ॥ विधाताने सर्व विमोहन रमणीमूर्त्तिको द्विधा विभक्त करके उत्पन्न किया है तिनमें एकभाग प्रशंसनीय और एक भाग अप्रशंसनीय है ॥ ॥ ५२ ॥ लक्ष्मी सरस्वती दुर्गा सावित्री और राधा इत्यादि स्त्रियोंको सृष्टिके मूल कारण रूपमें उत्पन्न किया है अतएव यह आदि सृष्टि हैं ॥ ५३ ॥ जो सबस्त्रियें इनके अंशसे उत्पन्न हैं वास्तवमें वह अति प्रशंसनीय कीर्त्तिस्वरूप और मंगलदायक हैं ॥ ५४ ॥ शतरूपा, देवहूती, स्वधा, स्वाहा. दक्षिणा, छायावती, रोहिणी, वरुणानी शची ॥ ५५ ॥ कुवेरकीपत्नी, दिति, अदिति, लोपामुद्रा, अनुसूया, (कौटभी,) कोटरी, तुलसी ॥ ५६ ॥ अहल्या, अरुन्धती, मेना, तारा, मन्दोदरी, दमयन्ती, वेदवती, गंगा, मनसा ॥ ५७ ॥ पुष्टि, तुष्टि, स्मृति, मेधा, कालिका, व सुन्धरा, षष्ठी, मंगलचण्डी, धर्मकामिनी मूर्त्ति ॥ ५८ ॥ स्वस्ति, श्रद्धा, शान्ति, कान्ति, क्षान्ति, निद्रा, तन्द्रा, क्षुधा, पिपासा, संध्या, रात्रि, दिवा, ॥ ५९ ॥ सम्पत्ति, धृति, कीर्त्ति, क्रिया, शोभा, प्रभा और शिवा इत्यादि जो सब स्त्रियें उत्पन्न होती हैं वह सब युगोंमें ही श्रेष्ठ हैं ॥ ॥ ६० ॥ स्वर्गवेश्या रमणीगण पूर्वोक्त कामिनियोंकी कला और अंशरूप हैं विश्वमें वह प्रशंसनीय नहीं हैं वह पुंश्चली कहकर विख्यात् हैं ॥ ६१ ॥ जो स्त्रियें सत्वप्रधाना हैं वह श्रेष्ठ और प्रभा सम्पन्न हैं विश्वमें वही उत्तम और साध्वी कहकर प्रसिद्ध हैं ॥ ६२ ॥ वास्तवमें वह बात भी मिथ्या नहीं है पण्डितगण भी उनको उत्कृष्ट कहकर गणना करते हैं जिसप्रकार सत्वगुणात्मक अंश है इसी प्रकार रज और तमोगुणके भेदसे अंश नानाविध हैं ॥ ६३ ॥ रजोगुणात्मिका स्त्रियोंको मध्यम कहा जाता है वह केवल भोग सुखमें लालच करनेवाली संभोगके वशीभूत और सदा स्वीय (अपने) कार्य साधनमें तत्पर हैं ॥ ६४ ॥ ऐसी स्त्रियें प्रायः कपटी मोहकारिणी और धर्मार्थ कार्यके बहिर्भूत होती हैं इस कारण रजोगुणा-त्मिका स्त्रियें प्रायः असती दोषमें लिप्त होती हैं ॥ ६५ ॥ पण्डित जन ऐसी स्त्रियों को मध्यम कहते हैं और तमोगुणात्मिका स्त्रियें अधम कहीगई हैं ॥ ६६ ॥ सद् वंशो त्पन्न पण्डित गण कभी निर्जनमें वा गुप्तस्थानमें पराई स्त्रीकेसंग बात चीत नहीं कर-

ते ॥ ६७ ॥ किन्तु मैं केवल ब्रह्माकी आज्ञानुसार तुम्हारे निकट आया हूं हे सुन्दरी! इस समय गांधर्व विवाहके अनुसार तुम्हारा पाणिग्रहण करूंगा ॥ ॥ ६८ ॥ मेरा नाम शंखचूड है देवतातक भी मुझको देखकर भयसे भाग जाते हैं. मैं पूर्वकालके समय सुदामा नामक ॥ ६९ ॥ श्रीहरिका अति प्रियतम सखा था सम्प्रति राधिकाके शापसे दानवकुलमें जन्मग्रहण किया हैं. मैं श्रीकृष्णका पार्षद और आठ गोपोंमें प्रधान गोप था. इससमय राधिकाके शापप्रभावसे दानवेन्द्र शंखचूड हुआ हूं॥ ॥ ७० ॥ मैंने श्रीकृष्णके अनुग्रहसे और मंत्रके प्रभावसे जातिस्मर होकर जन्मग्रहण कियाहै तुम भी जातिस्मरा तुलसी हो. पूर्वमें श्रीकृष्णने तुमसे संभोग कियाहै॥ ७१ ॥ तुमने राधिकाके कोपसे भारतमें जन्म ग्रहण किया है. मैं उससमय तुमको भोगकर नेकेलिये अत्यन्त व्यग्र हुआ था किन्तु राधाके भयसे आशा चरितार्थ नहीं करसका॥ ॥ ७२ ॥ हे मुनिवर! जब शंखचूड यह बातें कहकर मौन होगया तब तुलसी आनन्दितमन हो हँसते हँसते उससे कहने लगी॥ ७३ ॥ तुलसी बोली जगत्में ऐसे पुरुष ही यशस्वी होते हैं और स्त्रियें ऐसे कंतकीही सदा अभिलाषा करतीं हैं ॥ ७४ ॥ वास्तवमें इससमय तुम्हारेद्वारा विचारसे परास्त हुई जो पुरुष स्त्रीजित है, वह अत्यन्त अशुचि और समाजनिन्दित है ॥ ७५ ॥ स्त्रीजित मनुष्यको पितृलोक देवलोक और गंधर्वगण पर्यन्त त्याज्यज्ञान करते हैं यही नहीं वरन्, पिता, माता, भ्राता पर्यन्त मनही मनमें उससे अत्यन्त घृणाकरते हैं ॥ ७६ ॥ वेदमें कहा है कि, जननाशौच और मरणाशौच होनेपर ब्राह्मण दशवें, क्षत्रिय बारह दिनमें॥ ७७ ॥ वैश्य पंद्रह दिनमें और हीनजाति शूद्रभी एक महीनमें शुद्धिलाभ करता है. किन्तु स्त्रीजित अशुचि पुरुषका चितानलके अतिरिक्त शुद्धिका उपाय नहीं है ॥ ७८ ॥ पितृ कभी इच्छापूर्वक स्त्रीजित पुरुषका पिंड और तर्पणादि ग्रहण नहीं करते अधिक क्या देवताभी उसका दिया पुष्प और जलांजलि ग्रहण करनेमें संकुचित होते हैं॥ ७९ ॥ जिनका चित्त स्त्रियोंके अत्यन्त वशीभूत है, उनके विज्ञान, तपस्या, जप, होम, पूजा, विद्या और यशसे कोई फल उदय नहीं होता ॥ ८० ॥ मैंने तुम्हारा विद्याबल जाननेके लिये तुम्हारी परीक्षा की है. क्योंकि दोषगुणकी परीक्षा करके कान्तको वरण करना स्त्रियोंका अवश्य कर्तव्य है ॥ ८१ ॥ गुणहीन, वृद्ध, अज्ञानान्ध, दरिद्र मूर्ख, रोगयुक्त, कुत्सिताकार अत्यन्त कोपनस्वभाव, अत्यन्त, दुर्म्मुख, पंगु, अंगहीन अंध, बधिर (बहरा) ॥ ८२ ॥ मूक (गूंगा) जड और क्लीबतुल्य पापीको कन्यादान

करनेसे ब्रह्महत्याकी समान फल लाभ होता है ॥ ८३ ॥ शान्तस्वभाव, गुणवान् विज्ञान, सच्चरित्र, युवापुरुषको कन्यादान करनेसे दश अश्वमेधयज्ञका फललाभ होता है ॥ ८४ ॥ यदि कोई कन्याका पालन करके धनके लोभसे उस कन्याको बेचता है, उसको कुम्भीपाक नरकमें गिरना पडताहै ॥ ८५ ॥ वह पातकी उस नरकमें वास करके उस कन्याका मूत्र और मल भक्षण करके काल व्यतीत करता है वह चौदह इन्द्रोंके समयपर्यन्त कृमि और काकोंके द्वारा दंशित होताहै ॥ ८६ ॥ इसमें भी उसका विस्तार नहीं होता इस नरकके भोगनेपर फिर उसको व्याधिग्रसित होकर मनुष्य लोकमें जन्म ग्रहणकरना पडता है उस मनुष्यजन्ममें मांसविक्रय और मांसभार वहन करके जीविका (निर्वाह) करनी पडती है॥ ८७ ॥ ८८ ॥ हे तपोधन ! जब तुलसी इस प्रकार कहकर मौन अर्थात् चुप होगई, तब ब्रह्माजीने वहां प्रगट होकर शंखचूडसे कहा हे शंखचूड ! तुम क्यों वृथा तुलसीके संग कथोपकथनमें काल व्यतीत करते हो ॥ ८९ ॥ शीघ्र गांधर्व विवाहमें इसको ग्रहण करो तुम जैसे पुरुषरत्न हो, तुलसी भी वैसीही स्त्रीरत्न है ॥ ९० ॥ रसिकाके संग रसिकका समागम अतीव सुखकर होता है. हे राजन्! अनायास प्राप्त दुर्लभ सुखको कौन पुरुष छोडनेकी इच्छा करता है ॥ ९१ ॥ जो पुरुष उसको त्याग करता है, इस जगत्में उसकी समान पशु दूसरा कोई नहीं है. हे तुलसी ! तुमभी किसलिये ऐसे ॥ ९२ ॥ देवासुर दानव विमर्दनकारी गुणवान् पुरुषकी परीक्षा करती हो. हे वत्से ! तुम नारायणकी लक्ष्मी कृष्णकी राधिका ॥ ९३ ॥ मेरी सावित्री, भव (शिव) की भवानी, वराहकी धरा, यज्ञकी दक्षिणा ॥ ९४ ॥ अत्रिकी अनसूया, नलकी दमयन्ती, चन्द्रकी रोहिणी, कन्दर्पकी रति ॥ ९५ ॥ कश्यपकी अदिति, वशिष्ठजीकी अरुन्धती, गौतमकी अहिल्या, कर्दमकी देवहूति ॥ ९६ ॥ बृहस्पतिकी तारा, मनुकी शतरूपा, हुताशनकी स्वाहा, यज्ञकी दक्षिणा ॥ ९७ ॥ देवेन्द्रकी शची, गणेश्वरकी पुष्टि, स्कन्दकी देवसेना और धर्मकी मूर्ति के समान ॥ ९८ ॥ शंखचूडकी सौभाग्यशालिनी प्रियतमा पत्नी होओ. तुम रूपवान् शंखचूडके संग कुछ कालतक ॥ ९९ ॥ अनेक स्थानोंमें इच्छानुसार विहार करो इसके पीछे जब शंखचूड देहत्याग करेगा, तब तुम गोलोकमें द्विभुज श्रीकृष्ण ॥ १०० ॥ और वैकुण्ठमें चतुर्भुज श्रीकृष्णके सहित महासुखसे अनायास विहार कर सकोगी ॥ १०१ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः १९.

नारदजी बोले यह आपने बडा विचित्र आख्यान कहा जिसके सुननेसे किसी प्रकार मेरी तृप्ति नहीं होती है ॥ १ ॥ इसके उपरान्त जो हुआ सो हे महामते ! आप कहिये नारायण बोले इसप्रकार हरि आशिषदे अपने स्थानको गये ॥ २ ॥ दानवने गंधर्वविवाहसे उसको ग्रहण किया. उस समय स्वर्गमें दुंदुभी बजी और पुष्प वर्षा हुई ॥ ३ ॥ तब वह अपने घरमें उसके साथ रमणकरनेलगा और नवसंगम से संगत होनेके कारण तुलसी मूर्छित होगई ॥ ४ ॥ और वह साध्वी संभोग रूपी सुखसागरमें विना जलकेही निमग्न होगई. चौंसठ शृंगारकी कलाओंसे युक्त जो चौंसठ प्रकारका सुख है ॥ ५ ॥ जो काम शास्त्रमें रसिकोंकेनिमित्त कहा है जो अंग प्रत्यंगके श्लेषसे स्त्रीजनोंको मनोहर है॥६॥ वह सब शृंगाररस उस रसिके-श्वरने किया, अतीव मनोहर जन्तु और हितस्थानमें ॥७॥ पुष्पचन्दनकी शय्यामें पुष्पचन्दनकी सुगन्धिद्वारा पुष्पचन्दनसे चर्चित फूलोंके उद्यान और नदियोंके किनारे ॥८॥ रासमें उस पुष्पचन्दनसे चर्चिताको ग्रहणकर रत्न और भूषणोंसे भूषित॥९॥ उन सुरत चतुरोंकी सुरतसे विरति न हुई अपनी अनेक लीलाओंसे सतीने स्वामीका मन हर लिया॥१०॥ और उस रसभावके ज्ञाताने भी अपनी प्रियाका मन हरलिया परस्पर शरीरसंघर्षणसे राजाने उसकी छातीका और मस्तकका तिलक हरलिया ॥ ११ ॥ उसने उस प्रियाका सिन्दूर और बिन्दी हरण की उसने उसके वक्षस्थल और उरोजोंमें प्रसन्नतासे नखरेखा की॥१२॥ और प्रियाने उसके वामपार्श्वमें करभूषणकी रेखा की राजाने उसके होठोंमें दंतदंशन किया ॥ १३ ॥ उसने उसके दोनों कपोलोंमें चौगुना दन्तचिह्न किया, आलिंगन चुम्बन जंघादिमर्दन ॥ १४ ॥ इस प्रकार वे दोनों पर-स्पर क्रीडा करनेलगे, सुरतके विरत होनेमें वे दोनों परस्पर उठकर ॥ १५ ॥ मन वांछित वेपकरते हुए उसने चन्दन और रक्तकुंकुमसे उसका तिलक किया ॥ ॥ १६ ॥ और सर्वांगमें सुन्दर अनुलेपन किया सुवासित ताम्बूल और अग्निमें शुद्ध वस्त्र दिये ॥ १७ ॥ पारिजातके फूल जरारोगके हरनेवाले तथा अमूल्य रत्नोंसे जडी अँगूठी ॥ १८ ॥ तथा त्रिलोकीमें श्रेष्ठ सुन्दर मणियें मैं तुम्हारी दासी हौं इस प्रकार वारंवार कह पहराईं ॥ १९ ॥ और परमभक्तिसे अपने गुणशाली स्वामीको प्रणाम किया और हँसकर उसके मुखको वारंवार अपने नेत्रोंसे ॥२०॥ निमेषरहित

हो सुन्दरताकी खान देखने लगी. तब शंखचूडने उसे खैंचकर हृदयसे लगाया ॥ २१ ॥ और घूंघटमें उसका हास्ययुक्त मुखकमल देखनेलगा फिर भी उसके कपोल और विम्बोष्ठोंको चुम्बन किया ॥ २२ ॥ और वरुणके लाये दो वस्त्र उसको दिये और उसीकी लाई त्रिलोकीमें दुर्लभ रत्नमाला दी ॥ २३ ॥ स्वाहाद्वारा अग्निसे लाये दो मंजीर नूपुर दिये सूर्यपत्नी छायाके लाये केयूर बाजूबंद और चन्द्रपत्नी रोहिणीके लाये कुंडल दिये ॥ २४ ॥ अँगूठी आदि रत्न और रतिके भूषण तथा विश्वकर्माका दियाहुआ शंख ॥ २५ ॥ विचित्र पद्मरागमणिकी बनी शय्या तथा भूषण आदि देकर राजाने हास किया ॥ २६ ॥ और उसके कवरीभारमें मंगलके भूषण बांधे और सुचित्र चंदन वल्लीरूप पत्र इसके गंडस्थलमें किये ॥ २७ ॥ तीन कर्पूरकी लेखा सुगंधित चंदन और सब ओर विचित्र कुंकुमकी बिन्दु लगाई ॥ २८ ॥ प्रज्वलित दीपकके समान सिंदूरका तिलक किया. उसके दोनों पदकमल जो स्थल पद्मको लज्जित करते थे ॥ २९ ॥ वहां नखरेखाओंमें महावरसे चित्रित किया फिर वह रँगाहुआ पद अपनी छातीमें रखकर ॥ ३० ॥ हे देवी ! मैं तेरा दास हूं इसप्रकार वारंवार उच्चारण कर रत्न भूषित हाथसे उसे अपने वक्षस्थलमें कर ॥ ३१ ॥ तपोवनको छोडकर राज्यके स्थानान्तरमें आया. मलयाचल, देवस्थान, तपोवन प्रत्येक पर्वतमें ॥ ३२ ॥ अतिरमणीय स्थान स्थान तथा निर्जन पुष्पोद्यान प्रति कन्दरा समुद्रके तट ॥ ३३ ॥ पुष्पभद्रा नदीके किनारे जहां मनोहर जलमिश्रित पवन चलती है दिव्य पुलिन २ नदी २ नद २ में ॥ ३४ ॥ मधुके कारण मधुकरोंकी दिव्यध्वनिसे शब्दायमान विस्पन्दन वन सुरसन वन नंदन गंधमादन ॥ ३५ ॥ देवोद्यान नंदन चित्रचन्दन काननमें चम्पक केतकी वसन्तमें वासन्ती लताओंके वनमें ॥ ३६ ॥ कुमुद मालती कुमुदाम्भोजवन प्रति कल्पवृक्ष पारिजातके वन वनमें ॥ ३७ ॥ निर्जन कांचन स्थान धन्यकांचन पर्वत कांचीवन किंजल्क कंचुक कांचनाकर ॥ ३८ ॥ पुष्प चंदनोंकी शय्या पुंस्कोकिलाओंके शब्द पुष्पचन्दनसे संयुक्त पुष्पचन्दनकी वायुसे सेवित ॥ ३९ ॥ इसप्रकार उस कामुकी रामाके संग वह कामुक रमण करने लगा दानवेन्द्र और तुलसी कोई भी तृप्त नहीं हुए ॥ ४० ॥ अग्निमें पडे घीकी समान दोनोंका काम बढने लगा, तब दानवराज उसके सहित अपने आश्रममें आया ॥ ४१ ॥ फिर रम्य क्रीडागृहमें जाकर वारंवार विहार करनेलगा इस प्रकार प्रतापी शंखचूडने राज्य भोगा ॥ ४२ ॥ एक मन्वन्तर पर्यन्त वह राजराजेश्वर रहा. देव असुर

दानवोंको ॥ ४३ ॥ तथा गंधर्व, किन्नर, राक्षसोंको शान्तिमें रक्खा परन्तु देवता अधिकार हरजानेसे भिक्षुककी समान विचरते थे ॥ ४४ ॥ वे सब बडे दुःखी हो ब्रह्माकी सभामें गये और वारंवार अपना वृत्तान्त कहकर रोये ॥ ४५ ॥ तब ब्रह्मा देवताओंके साथ शंकरके स्थानमें गये और विधाताने चन्द्रशेखर विश्वेशसे सब वर्णन किया ॥ ४६ ॥ तब देवतोंके साथ ब्रह्मा और भगवान् शंभु वैकुंठको गये जो परमधाम बड़ादुर्लभ जरामृत्युका हरनेवाला है ॥ ४७ ॥ उन हरिके स्थानके द्वारमें प्राप्तहुए वहां रत्नसिंहासनोंपर स्थित द्वारपालोंको देखा ॥ ४८ ॥ जो पीतवस्त्रोंसे शोभित और रत्नभूषणोंसे भूषित थे सब वनमाला पहरे श्याम सुन्दर शरीर ॥ ॥ ४९ ॥ चार भुजा शंख, चक्र, गदा, पद्म, धारण किये कमलमुख मुसकुराते हुए कमललोचन मनोहर है ॥ ५० ॥ तब ब्रह्माने उनसे अपने आनेका वृत्तान्त कहा तब उनकी आज्ञासे ब्रह्माजी आदि भीतर गये ॥ ५१ ॥ इसप्रकार ब्रह्माजी सोलह द्वार देखतेहुए देवताओंके साथ हरिकी सभामें प्रविष्ट हुए ॥ ५२ ॥ जो सभा देवर्षि तथा चतुर्भुजी पार्षदोंसे परिवृत् थी सब नारायणस्वरूप और कौस्तुभ धारण कियेथे ॥ ५३ ॥ जो नये चन्द्रके मंडलकी समान चौकोन मनोहर मणीन्द्र हारसे बनी हीरोंके सारसे शोभित ॥ ५४ ॥ अमूल्यरत्नोंसे खचित स्वेच्छासे हरिकी बनाई माणिक्य मालाके जालकी आभावाली मुक्ता पंक्तिसे विभूषित ॥ ५५ ॥ मंडलाकार कोटिरत्नोंके दर्पणोंसे मंडित विचित्र चित्ररेखा और अनेकचित्रोंसे विचित्रित ॥ ५६ ॥ पद्मरागमणियोंसे रचित रुचिर मणियोंके कमलोंसे संयुक्त तथा स्यमन्तकमणि निर्मित सैकडों सोपानोंसे शोभित ॥ ५७ ॥ रेशमकी ग्रंथि लगे सुन्दर चन्दनके पत्ते जो इन्द्रनीलमणीके स्तंभोंमें लिपट रहे थे जिससे बडी मनोहर थी ॥ ५८ ॥ उन्हीं रत्नोंके पूर्णकुम्भोंके समूहोंसे युक्त तथा पारिजातके फूलोंकी बनी सैकडों मालाओंसे विराजित ॥ ५९ ॥ कस्तूरी, कुकुंम, महावर, सुगंधितद्रव्य चन्दनवृक्षोंसे सर्वत्र संस्कार की हुई और गंधवायुसे सुगंधित होरही ॥ ६० ॥ विद्याधरियोंके समूह नृत्य कर रहे सहस्रयोजनके विस्तारमें किंकरोंसे व्याप्त ॥ ६१ ॥ इसप्रकार ब्रह्मा और शिवजीने सभामें हरिभगवान्का दर्शन किया जो उनके मध्य तारोंमें चन्द्रमाकी समान शोभित थे ॥ ६२ ॥ जो अमूल्य रत्नोंके बने विचित्र सिंहासनपर स्थित थे किरीट कुंडल और वनमालासे भूषित ॥ ६३ ॥ सर्वांगमें चन्दन लगाये लीला कमल हाथमें लिये आगे हँसते हुए नृत्य गीतका अवलोकन करते ॥ ६४ ॥ शान्त

लक्ष्मी और सरस्वती जिनके चरणोंका स्पर्श कर रही लक्ष्मीके दिये सुगंधित ताम्बूलको चाबतेहुए ॥ ६५ ॥ परमभक्तिसे गंगा श्वेत चमर कर रही और भक्तिसे शिर झुकाये सब कोई स्तुति कर रहे ॥ ६६ ॥ इसप्रकार परिपूर्णतम प्रभुको देखकर सब ब्रह्मादिक प्रणाम कर स्तुति करनेलगे ॥ ६७ ॥ उनके सर्वांग पुलकित होगये आखोंमें जलभर गद्गद कंठ हो परम भक्तिसे भयभीत हुए शिर झुकाये रहे ॥ ६८ ॥ तब जगत्के विधाताने हाथ जोडकर विनयपूर्वक हरिसे सब वृत्तान्त कहा ॥ ६९ ॥ सर्वज्ञ सर्वभावज्ञाता हरि उन सबके वचन सुन हँसकर ब्रह्मासे रहस्य कहने लगे ॥ ७० ॥ श्रीभवान् बोले हे ब्रह्माजी! मैं शंखचूडका सब रहस्य जानता हूं वह पहले मेरा भक्त महातेजस्वी गोप रहा है ॥ ७१ ॥ उसके वृत्तान्तका पुरातन इतिहास सुनो. गोलोकका चरित पापनाशक पुण्यकारी है ॥ ७२ ॥ सुदामानाम गोप मेरा श्रेष्ठ पार्षद था उसनेही राधाके दारुण शापसे दानवी योनि पाई है ॥ ७३ ॥ एक समयमें अपने स्थानसे रासमंडलमें गया और अपनी प्राणाधिक प्रिया विरजा गोपी भी संग थी ॥ ७४ ॥ उस समय राधा किंकरीके मुखसे विरजाके संग मुझे सुनकर देखनेको क्रोध किये आई परन्तु मुझे वहां न देखा ॥ ७५ ॥ विरजाको नदीरूप और मुझे अन्तर्धान जानकर तब वह फिर सखियोंके सहित अपने स्थानको गई ॥ ७६ ॥ तब वह देवी सुदामाके सहित मुझे मन्दिरमें देखकर मौन हुए मेरी क्रोधसे भर्त्सना करने लगी ॥ ७७ ॥ यह सुनकर इस बातको न सहकर सुदामाको क्रोध हुआ और मेरे समीपही उसने क्रोधसे राधाको घुडका ॥ ७८ ॥ यह सुन्तेही राधा क्रोधसे लाल नेत्र कर उसे मेरी सभामेंसे बाहर जानेकी आज्ञा दी ॥ ७९ ॥ तब आज्ञा पातेही सहस्रों सखियाँ उठ खडी हुईं और निवारण करनेके अयोग्य महातेजस्वी उस जल्पना करते गोपको बाहर करती हुईं ॥ ८० ॥ फिर सुदामने उन सखियोंको ताडन किया तब राधिकाने सखियोंका ताडन सुनकर रुष्ट हो यह दारुण शाप दिया अरे ! तू दानवी योनिको प्राप्त होगा ॥ ८१ ॥ तब शापित हो रुदन करता मुझे प्रणाम कर सुदामा जाने लगा तब नेत्रोंमें जल भर कृपाकर राधाने उसको निवारण किया ॥ ८२ ॥ हे वत्स ! स्थित हो मत जाओ कहां जाते हो ऐसा वारंवार कहा. इसप्रकार कहकर फिर बडे खेदको प्राप्त हुई ॥ ८३ ॥ सब गोपी रुदन करने लगीं और गोप भी बडे दुःखित हुए उन सबने और मैंने भी राधिकाको पीछे समझाया ॥ ८४ ॥ तब उसने कहा यह आधे क्षणमें शापका पालन करके

आवेगा. हे सुदामा! तुम यहां आना ऐसा कह उसको शोकसे निवारण किया स्वयं भी शोकरहित हुई ॥ ८५ ॥ परन्तु गोलोकका आधाक्षण मर्त्यलोकका एक मन्वन्तर होता है जगत्के धाताने पृथ्वीमें ऐसाही नियम किया है ॥८६॥ इस प्रकार यह शंखचूड फिर वहीं आवेगा वह महाबलिष्ठ योगेश सब मायाका पंडित है ॥ ८७ ॥ यह तुम हमारा शूल ग्रहण कर शीघ्र भारतमें जाओ इस मेरे शूलसे शिवजी उस दानवका संहार करेंगे ॥ ८८ ॥ और वह दानव कंठमें मेराही सर्व मंगलकारक कवच धारण करता है इसकारण संसारमें विजयी होरहा है ॥ ८९ ॥ हे ब्रह्मन्! जबतक उसके पास वह कवच है तबतक उसको कोई नहीं मार सकता ब्राह्मणका रूप धारणकर उसको मैं मांगलूंगा ॥ ९० ॥ जिस समय उसकी स्त्रीके सतीत्वकी हानि होगी उसी समय उसकी मृत्यु होगी यह वर तुमनेही दिया है॥९१॥ सो मैं उसकी पत्नीसे निश्चित संगम करूंगा उसी समय उसकी मृत्यु होगी इसमें सन्देह नहीं [जगन्निवास हरिके प्रत्यक्ष संभोगसे उनमें दोष नहीं है कारण कि, वह सर्वत्र व्यापक हैं] ॥ ९२ ॥ पीछे वह देहत्यागनकर मेरीही प्रिया होगी. यह कह जगत्पतिने शिवजीको शूल दिया ॥ ९३ ॥ शूल देकर भगवान् निजमन्दिरमें प्रविष्ट हुए और ब्रह्मा, शिव आदि देवता भारतवर्षमें आये ॥ ९४ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषायां एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः २०.

श्रीनारायण बोले इसप्रकार दानवोंके संहारमें ब्रह्माजी शिवको नियुक्तकर देवता शीघ्रतासे अपने स्थानको चलेगये ॥ १ ॥ चन्द्रभागा नदीके किनारे मनोहर वटमूलमें देवताओंके निस्तारके निमित्त महादेव स्थित हुए ॥ २ ॥ और गंधर्वोंके अधिपति चित्ररथगंधर्वको दूतबनाकर शीघ्रही शंखचूडके निकट भेजा ॥ ३ ॥ वह सर्वेश्वरकी आज्ञासे शीघ्र उस नगरमें गये जो महेन्द्र और कुबेरके नगरसेभी उत्कृष्ट था ॥ ४ ॥ पांचयोजनका विस्तार दशयोजनदीर्घ स्फटिकमणियोंके समूहसे युक्त यानसे वेष्टित ॥५॥ सात परिखा और दुर्गसमन्वित जलतीहुई अग्निके समान कोटिरत्नोंसे व्याप्त ॥ ६ ॥ मणिकी विचित्रवेदीवाली सैकडों गलियोंसे व्याप्त अनेकवस्तुओंसे विराजित वणिकोंके महलसे व्याप्त ॥ ७ ॥ सिन्दूरके आकारवाली विचित्रमणियोंसे वेष्टित भूषित और दिव्यसैकडों कोटियों आश्रमोंसे व्याप्त था ॥ ८ ॥

उसके मध्यमें शंखचूडका आश्रम थां जो वलयाकार पूर्णचन्द्रमण्डलकी समान था ॥ ९ ॥ अग्निकी शिखासे युक्त प्रज्वलित चार परिखासे व्याप्त वह दुर्ग शत्रुओंको दुर्गम तथा दूसरोंको सुगम था ॥ १० ॥ अतिऊंचे आकाशको छूनेवाले मणिजडित शिखरोंसे सम्पन्न बारह द्वारोंमें स्थित द्वारपालोंसे सम्पन्न ॥ ११ ॥ मणियोंके सार वाले लक्षमंदिरोंसे शोभित रत्नसोपान और रत्नोंके स्तंभोंसे शोभित था ॥ १२ ॥ यह देखकर पुष्पदन्तने द्वारको देखा कि, द्वारमें एकपुरुष शूल हाथमें लिये नियुक्त है १३ ॥ जो ताम्रवर्ण पिंगललोचन बड़ा भयंकर है यह अपना वृत्तान्त कहकर उसकी आज्ञासे भीतर गया ॥ १४ ॥ उस द्वारको अतिक्रमणकर भीतरगया रणसन्वधी आह्वानमें आयेहुए दूतको सुनकर कोईभी नहीं रोकता था ॥ १५ ॥ वह भीतरके द्वारपर जाय द्वारपालसे बोला कि, युद्धका वृत्तान्त बहुत शीघ्र कहो ॥ १६ ॥ उसने वहां जाकर दूतकी बात कही उसने बुलाया तब यह जाकर शंखचूडको देखने लगा ॥ ॥ १७ ॥ जो राजमण्डलके मध्यमें स्थित रत्नसिंहासनपर शोभित जिसमें मणियोंके रचित सुन्दर दंडे लगे थे ॥ १८ ॥ रत्नोंके कृत्रिम मनोहर पुष्पोंसे शोभित भृत्यद्वारा मस्तकपर श्वेतछत्रधारण किये हुए ॥ १९ ॥ श्वेतचमर लिये मनोहर पार्षदोंसे वीज्यमान रत्नोंके भूषणोंसे भूषित मनोहर सुन्दर वेष किये ॥ २० ॥ माला अनुलेपन और सुन्दर वस्त्र धारण किये अनेक सुवेष किये दानवोंसे व्याप्त ॥ २१ ॥ सैकडों शस्त्रधारी योधाओंसे सम्पन्न इसप्रकार उसको देख पुष्पदन्त बडा विस्मित हुआ ॥ २२ ॥ और शंकरका कहा वृत्तान्त कहनेलगा. पुष्पदन्त बोला हे राजेन्द्र! मैं पुष्पदन्तनामवाला शिवका दूत हूं ॥ २३ ॥ मैं शिवजीका संदेशा कहता हूं सुनो इससमय देवताओंका राज्य और अधिकार उनको देदो ॥ २४ ॥ सब देवता भगवान् विष्णुकी शरण हुए हैं हरिने शूलदेकर शिवको प्रस्थापित किया है ॥ २५ ॥ पुष्पभद्रा नदीके किनारे वटमूलमें भगवान् त्रिलोचन स्थित हैं या तो देवताओंका राज्य दो अथवा युद्धकरो ॥ २६ ॥ मैं शिवजीसे जाकर क्या कहूंगा सो आप कहिये. दूतके वचन सुनकर शंखचूड हँसकर बोला ॥ २७ ॥ तुम चलो प्रभातको मैं आऊंगा तब उस दूतने जाकर वटमूलमें स्थित ईश्वरसे कहा ॥ २८ ॥ जो कुछ शंखचूडके मुखसे वचन निकले थे कहे. इसीसमय स्कंद शिवजीके निकट आये ॥ ॥ २९ ॥ वीरभद्र, नंदी, महाकाल, सुभद्रक, विशालाक्ष, बाण, पिंगलाक्ष, विकंपन ॥ ॥ ३० ॥ विरूप, विकृत, मणिभद्र, बाष्कल, कपिल, दीर्घदंष्ट्र, विकट, ताम्रलोचन

कालकंठ, बलीभद्र, कालजिह्व, कुटीचर, बलोन्मत्त, रणश्लाघी, दुर्जय, दुर्गम ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ आठभैरव, ग्यारह रुद्र, आठ वसु, बारह आदित्य ॥ ३३ ॥ हुताशन चन्द्रमा, अश्विनीकुमार, कुबेर, यम, जयन्त, नलकूबर ॥ ३४ ॥ वायु, वरुण, बुध, मंगल, धर्म, ईशान, बली, कामदेव ॥ ३५ ॥ उग्रदंष्ट्र, उग्रचंड, कोटर, कैटभी और स्वयं अष्टभुजा भयंकरी कालिकादेवी ॥ ३६ ॥ यह रत्नोंके सारसे निर्मित विमानोंपर स्थित थीं. लालवस्त्रपहरे लाल मालाका अनुलेपन लगाये ॥ ३७ ॥ नाचती सुंदर सुरसे गाती हुई हँसतीथी वह अभया अपने भक्तोंको अभय और शत्रुओंको भय देती थी ॥ ३८ ॥ एकयोजनतक विस्तार होनेवाली विकट चलायमान जिह्वाको धारण किये शंख, चक्र, गदा, पद्म, खड्ग, चर्म, धनुप, शर ॥ ३९ ॥ गोल एक योजन परिमाणका खप्पर लिये, तथा गगनस्पर्शी त्रिशूल और एकयोजनके परिमाणकी शक्ति धारण किये ॥ ४० ॥ मुद्गर, मूसल, वज्र, खेट, उज्वल फलक, वैष्णवास्त्र, वारुणास्त्र, आग्नेयास्त्र, नागपाश ॥ ४१ ॥ नारायणास्त्र, गंधर्वास्त्र, ब्रह्मास्त्र, गरुडास्त्र, पर्जन्यास्त्र, पाशुपतास्त्र, जृंभणास्त्र, पर्वतास्त्र ॥ ४२ ॥ माहेश्वर वायव्य दंड सम्मोहन अव्यर्थमस्त्र तथा दूसरे सैकडों दिव्यास्त्र युक्तथे ॥ ४३ ॥ और वहां तीनकोटियोगिनी आनकर स्थित हुईं, जिनके संग विकट डाकिनी भी तीनकोटि थी ॥ ४४ ॥ भूत प्रेत पिशाच कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, वेताल, राक्षस, यक्ष, किन्नर ॥ ४५ ॥ इनके सहित स्कंदजी शिवजीको प्रणामकर सहायकरनेको पिताके समीप उनकी आज्ञासे स्थित हुए ॥ ४६ ॥ उधर दूतके चलेजानेपर प्रतापवान् शंखचूड मंदिरमें जाय तुलसीसे यह सब बात कहने लगा ॥ ४७ ॥ रणकी वार्ता सुनकर उसका ओष्ठ और कंठ सूखगया और दुःखी मनसे वह साध्वी कहने लगी ॥ ४८ ॥ तुलसी बोली हे प्राणबंधो ! हेस्वामिन् ! क्षणमात्र मेरे हृदयमें स्थितहो. हे प्राणके अधिष्ठाता देव! मेरे प्राणोंकी रक्षा करो ॥ ४९ ॥ मेरे मनकी वांछित रतिको इस जन्ममें भोगो कुछ क्षणमें तुमको सादर नेत्रोंसे देखती हूं ॥ ५० ॥ इस समय मेरे प्राण चंचल और मन दग्ध होता है. हे स्वामिन् ! आजही रातको मैं ने बुरा स्वप्न देखा है ॥ ५१ ॥ तुलसीके वचन सुन वह राजा भोजन पान करके यथेच्छ हितकारी सत्यवचन कहने लगा ॥ ५२ ॥ शंखचूड बोला सब कर्म योगनिबंधन कालसे युक्त है. शुभ, हर्ष, सुख, दुःख, भय, शोक, मंगल कालसे होता है ॥ ५३ ॥ कालसेही वृक्ष और उनके स्कंध होते हैं. फिर कालसेही वे फल पुष्पवान् होते हैं ॥ ५४ ॥ कालसेही उनके फल पकते हैं फिर कालसेही

पककर कालसेही गिरते हैं ॥ ५५ ॥ हे सुन्दरि ! यह सब विश्व कालसे होकर काल-सेही नष्ट होता है. स्रष्टा कालसे प्रगट करता रक्षक कालसे ही रक्षा करता है॥ ५६ ॥ कालसेही संहार और काल क्रमसे संचरण होता है. ब्रह्मा विष्णु शिवादिकी परा-प्रकृति ईश्वरी है ॥ ५७ ॥ वह प्रकृतिरूप ईश्वर सबका सृजन कर पालन करने उपरान्त संहार करता है वही कालकोभी नचाता है. समयपरही. वह प्रभु अपनेसे अभिन्न प्रकृतिको निर्माण करके ॥ ५८ ॥ इस चराचर विश्वको करता है. वह सर्वात्मा परमेश्वर सर्वेश और सर्वरूप है ॥ ५९ ॥ वही जनसे जनको प्रगट करते और जनसेही पालन करते हैं. जनको जनसेही हरण कराते हैं. इस समय उन्हीं देवका भजन करते ॥ ६० ॥ जिनकी आज्ञासे पवन शीघ्रतासे गमन करता जिनकी आज्ञासे सूर्य प्रतिक्षण तपता है ॥ ६१ ॥ इन्द्र यथा क्षण वरसता मृत्यु प्राणियोंमें विचरण करता अग्नि जलाता और चन्द्रमा शीतल रहता ॥ ६२ ॥ मृत्युका मृत्यु कालका काल यमका यम स्रष्टाके भी स्रष्टा रक्षकके भी रक्षक विभु ॥ ६३ ॥ संहर्ताके भी संहारकरनेवाले परमात्माकी शरण हो. हे प्रिये ! कौन किसका बंधु है जो सबका बंधु है उसका भजन करो ॥ ६४ ॥ मैं और तुम कौन हो विधाताने नियुक्त कर दिया है कर्मसेही तुमसे मिले अब वही तुमसे नियुक्त करता है ॥६५॥ शोक विपत्तिमें अज्ञानीही कातर होते हैं पंडित नहीं. यह सुख दुःखरूप काल चक्रनेमि क्रमसे भ्रमण करता है ॥ ६६ ॥ तुम अवश्य सर्वेश नारायणको प्राप्त होगी. जिस निमित्त पहले बद्रिकाश्रममें तप किया था ॥६७॥ मैंने तुमको ब्रह्माके वर और तपसे प्राप्त किया है और तुम्हारा तप हरिके निमित्त था. इस कारण हे कामिनी ! तुम हरिको प्राप्त होगी ॥ ६८ ॥ गोलोकके वृंदावनमें तुम गोविन्दको प्राप्त होगी और मैं भी यह दानवी शरीर त्यागनकर उस लोकमें जाऊंगा ॥ ६९ ॥ वह तुम मुझे और मैं तुमको देखूंगा मैं राधाके शापसे दुर्लभ भारत वर्षमें आया था ॥ ७० ॥ फिर वहीं जाऊंगा. हे प्रिये ! इसमें मुझको क्या शोक है तुम भी यह देहत्याग दिव्यरूप धारण कर ॥ ७१ ॥ तत्काल हरिको प्राप्त होगी. हे प्रिये ! शोक मत करो. यह कह दिनान्तमें उसके साथ मनोहर ॥ ७२॥ दिव्यचन्दनसे चर्चित शय्यामें शयन करकै तथा रत्न मंदिरमें अनेक प्रकारके विभव कर ॥ ७३ ॥ जहां रत्नोंके दीपक जल रहे उस स्थानमें परम सुन्दरी स्त्रीरत्नको प्राप्त होकर क्रीडा कौतुक मंगलसे राजाने रात्रि व्यतीत की ॥ ७४ ॥ रोती और अति दुःखित

अपनी प्रियाको गोदीमें बैठाय जो कृशोदरी निराहार शोकसागरमें निमग्न थीं ॥ ७५ ॥ उस ज्ञानीने फिर भी दिव्यज्ञानसे उसको समझाया जो पहले कृष्णने भांडीर वनमें तत्त्वज्ञान दिया था ॥ ७६ ॥ वह सब शोकनाशी ज्ञान उसने उसको दिया तब वह देवी उस ज्ञानको प्राप्त होकर प्रसन्नवदन हुई ॥ ७७ ॥ सब विश्वको नश्वर मान प्रसन्नतासे क्रीडा करने लगी. तब वे दोनों स्त्री पुरुष क्रीडा करते हुए सुखसागरमें निमग्न हुए ॥ ७८ ॥ सर्वांग उनके पुलकित और निर्जनमें मूर्च्छित हुए सुरतमें उत्सुक होकर उन्होंने अंग प्रत्यंगसंयुक्त कर लिये थे ॥ ७९ ॥ वे दो थे परन्तु अर्धनारीश्वरके समान एक अंग होगये थे उस समय तुलसी प्राणपतिको प्राणोंसे अधिक मानती हुई ॥ ८० ॥ और राजाने भी उस प्राणेश्वरी सतीको प्राणोंसे अधिकमाना वह दोनों समान सुन्दर सुखसे स्थित हो सोये ॥ ८१ ॥ वह सुन्दर वेषवाले मनोहर सुख संभोगसे अचेष्ट होगये और रसाश्रयकी कथासे क्षणमें चैतन्यताको प्राप्त हुए ॥ ८२ ॥ मनोहर दिव्य कथा करते हास्य करने लगे. वह रसभावमें युक्त हो क्षणमें केलि करते क्षणमें बात करते ॥ ८३ ॥ वे दोनों इस विषयमें पंडित थे. इस कारण सुरतिसे विरामको प्राप्त न हुए निरन्तर दोनों जयकी इच्छा करते क्षणमात्रको भी पराजित न हुए ॥ ८४ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषायां शक्तिप्रादुर्भावे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः २१.

श्रीनारायण बोले वह कृष्णपरायण दानव कृष्णको मनमें ध्यानकर उस मनोहर फूलोंकी शय्यासे ब्राह्ममूहूर्तमें उठकर ॥ १ ॥ रात्रिके वस्त्रत्याग मंगल जलसे स्नान कर धुले वस्त्र पहर उज्वल तिलक धारण कर ॥ २ ॥ अभीष्ट आह्निक कर्म और देववंदन कर दही घृत मधु खीलैं इन मांगलिक पदार्थोंका दर्शन कर ॥ ३ ॥ श्रेष्ठ रत्न, श्रेष्ठ मणि, श्रेष्ठ वस्त्र, श्रेष्ठ सुवर्ण, जैसे वह नित्य ब्राह्मणोंको दान करता था इसीप्रकार कर ॥ ४ ॥ जो अमूल्य रत्न मुक्तामणि हीरे आदि थे वह यात्रा मंगलके निमित्त ब्राह्मण और गुरुजीको दे॥५॥ गजरत्न, अश्वरत्न, धन रत्न, यह सब दरिद्र ब्राह्मणोंको मंगलके निमित्त दिये ॥ ६ ॥ सहस्रों भंडारे दोलाख नगर शतकोटि ग्राम प्रसन्न हो ब्राह्मणोंको दिये ॥७॥ सब दानवोंका अधिपति अपने पुत्रको करक

उस भार्या और सब राज्यको पुत्रके समर्पणकर ॥ ८ ॥ प्रजा अनुचरोंके समूह भांडारादिदे आपने वस्त्र पहर धनुष धारण किया ॥ ९ ॥ और भृत्योंके द्वारा सेना संग्रहकराई. तीन लाख घोडे, एकलाख हाथी ॥ १० ॥ दशसहस्र रथ, तीनकोटि धनुषधारी तीनकोटि वर्मधारी तीनकोटि शूलधारी ॥ ११ ॥ हे नारद! उस दानवेन्द्रने इतनी सेना एकत्रकी उस सेनाका अधिपति युद्धशास्त्रमें विशारद ॥ १२ ॥ रथियोंमें प्रवर महारथी था. उसको तीनलाख अक्षौहिणीका सेनापति करकै ॥ १३ ॥ और तीस अक्षौहिणीको रक्षामें किया. यह सब मनसे भगवान्‌का स्मरणकर शिबिरोंसे बाहर हुए ॥ १४ ॥ और वह रत्नोंसे बने विमानपर चढा और गुरुजनोंको आगेकर शंकरके समीप गया ॥ १५ ॥ जहां पुष्पभद्रा नदीके किनारे सुन्दर अक्षय वट था. हे नारद! वह सिद्धोंका सिद्धाश्रम सिद्धक्षेत्र है ॥ १६ ॥ इस पुण्यक्षेत्र भारतमें कपिलजीके तपका स्थान पश्चिम सागरके पूर्व और मलयाचलके पश्चिममें ॥ १७ ॥ श्रीशैलके उत्तरभाग गंधमादनके दक्षिणमें पाँचयोजनके चौवडावमें और इससे सौगुनेके विस्तारमें ॥ १८ ॥ शुद्ध स्फटिकमणिके समान स्वच्छजलवाली इस पुण्यदायक भारतमें निरन्तर जलसे पूर्ण पुष्पभद्रा नदी है ॥ १९ ॥ वह सागरकी प्रिया भार्या निरन्तर सौभाग्यसे सम्पन्न शरावतीसे मिली है जो हिमालयसे निकली है ॥ २० ॥ वह गोमतीको बाईं ओर करती पश्चिमसागरमें मिली है. वहां जाकर शंखचूडने शिवजीका दर्शनकिया ॥ २१ ॥ जो सौकोटि सूर्यके समान कान्तिमान् वटमूलमें स्थित थे. योगासनमारे मुद्रायुक्त हास्यकरतेहैं ॥ २२ ॥ जो शुद्धस्फटिक मणिके समान ब्रह्मतेजसे प्रदीप्त होरहे हैं. त्रिशूल पट्टिश और व्याघ्रचर्मका वस्त्र धारे ॥ २३ ॥ भक्तोंकी मृत्यु हरनेवाले शांत गौरीकान्त मनोहर तपके फल और सब सम्पतियोंके देनेवाले ॥ २४ ॥ आशुतोष प्रसन्नमुख भक्तोंपर दयाकरनेमें तत्पर विश्वनाथ विश्वबीज विश्वरूप विश्वज ॥ २५ ॥ विश्वके भरणकरनेवाले विश्वमें श्रेष्ठ विश्वके संहारकारक कारणोंके भी कारण नरकसागरसे तारनेवाले ॥ २६ ॥ ज्ञानदाता ज्ञानके बीज ज्ञानमें आनन्द सनातनशिवको विमानसे उतरकर दानवेन्द्रने देखा ॥ २७ ॥ और सबके सहित भक्तियुक्त हो प्रणाम किया जिनके बाईं ओर भद्रकाली और आगे स्कंदजी स्थित थे ॥ २८ ॥ तब काली स्कंद और शंकरने उसको आशीर्वाद दिया और नंदीश्वरादि उसको आया देख खडे होगये ॥ २९ ॥ और परस्पर वार्ता करने लगे, राजाभी वार्ताकर शिवजीके समीप स्थित हुआ ॥ ३० ॥ तब भगवान्

महादेवने प्रसन्न हो उससे कहा महादेवजी बोले ब्रह्मा जगत्के विधाता और धर्मवित् धर्मके पिता हैं॥ ३१॥ उनके पुत्र मरीचि परमधार्मिक वैष्णव हैं. उनके पुत्र धर्मिष्ठ प्रजापति कश्यप हैं ॥ ३२ ॥ जिनको प्रसन्न हो दक्षने तेरह कन्या दान की हैं उसमें एक साध्वी दनुसौभाग्यसे वर्द्धित है ॥ ३३ ॥ उस दनुके चालीस पुत्र दानव बडे तेजस्वी हुए उनमें एक विप्रचित्ति महाबली दानव हुआ ॥ ३४ ॥ उसका पुत्र धार्मिक दंभ विष्णु भक्त जितेन्द्री हुआ, उसने लाख वर्षतक पुष्करमें परम मंत्रका जप किया ॥ ३५ ॥ शुक्राचार्यको गुरु करके परमात्मा कृष्णको आराधन किया तब कृष्णपरायण तुम पुत्रको पाया ॥ ३६ ॥ पहले तुम गोपपार्षद गोपोंमें अति धार्मिक थे. हे दानवेश्वर! अब इस भारतवर्षमें तुम राधाके शापसे ॥ ३७॥ जन्मले वैष्णव हो ब्रह्मासे स्तम्बपर्यन्त तुच्छ मान्ते हो सालोक्य सामीप्य सारूप्य सायुज्य मुक्ति हरिके ॥ ३८ ॥ देनेपर भी वैष्णव उनकी सेवा विना कुछ ग्रहण नहीं करते हैं, वैष्णव ब्रह्मत्व और अमरत्व भी तुच्छ मानते हैं ॥ ३९ ॥ इन्द्रत्व और मनुत्व कीभी इच्छा नहीं करते. फिर तुम कृष्णके भक्तका देवताओंके अधिकार लेनेमें क्यों भ्रमता है ॥४०॥ हे भूमिपति! देवताओंको राज्य देकर मेरी प्रीतिकी रक्षा करो तुम अपने राज्यमें सुख भोगो देवता अपने अधिकारमें संतुष्ट हो ॥ ४१ ॥ तुम सब कश्यपके वंशमें हो विरोध मत करो जो कोई पाप ब्रह्महत्यादिक हैं ॥ ॥४२॥ वे ज्ञातिद्रोह पापकी सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं है.हे राजेन्द्र! यदि अपनी सम्पदाकी हानि मानते हो ॥ ४३ ॥ तो सब अवस्था किसकी समान बीतती है. लय प्राकृत लयमें ब्रह्माका भी तिरोभाव होजाताहै ॥ ४४ ॥ फिर ईश्वरकी इच्छासेही उसका आविर्भाव होता है. तपसे ज्ञानकी वृद्धि होतीहै. यह सत्य है किन्तु स्मृतिका लोप होता है ॥ ४५॥ ज्ञानसे ही स्रष्टा सृष्टि करता है. सत्ययुगमें सत्या-श्रयसे परिपूर्ण धर्म होता है ॥ ४६ ॥ त्रेतामें तीनभाग द्वापरमें दो भाग रहता है कलियुगमें एक भाग और फिर वह भी क्रमसे घटता है ॥ ४७ ॥ कलियुगान्तमें कलामात्र शेष रह जाता है जैसे अमावसमें चन्द्रमाकी कला रहती है.जैसे ग्रीष्म ऋतुमें सूर्यका तेज रहता है वैसा शिशिर ऋतुमें नहीं होता ॥ ४८ ॥ दिनमें भी जैसा मध्याह्नमें होता है वैसा प्रभात और संध्यामें नहीं,समयपरही उदय बाल ॥ ४९॥ और समयपर प्रचण्डता तथा फिर अस्त होजाताहै और समयपरही दुर्दिन होकर बादलोंमें छिपजाता है ॥ ५० ॥ राहुके ग्रासमें कंपित होकर फिर प्रसन्न होता है पूर्णिमाको ॥

चन्द्रमा परिपूर्ण होता है॥५१॥ वैसा दिन दिन नहीं होकर क्षय होता रहता है और अमावसके उपरान्त फिर दिन २ पुष्ट होता है ॥५२॥ शुक्ल पक्षमें संपत् युक्त कृष्ण पक्षमें क्षयसे मलीन होता है राहुग्रस्त होनेसे मलीन और दिनमें शोभा नहीं पाता ॥ ॥ ५३ ॥ समयसेही चन्द्रमा शुभ्र और समयसेही भ्रष्टश्री होता है. इस समय सुतलमें बलीभ्रष्टश्री है समयपर इन्द्र होगा ॥ ५४ ॥ समयपरही पृथ्वी सब सस्य शालिनी होती है. यह पृथ्वी सबकी आधार है और समयपरही जलमें निमग्न हो छिपजाती है ॥ ५५ ॥ समयपरही जगत् नष्ट होकर समयपरही फिर होता है. यह चराचर कालसे नष्ट होकर फिर प्रगट होता है ॥ ५६ ॥ ईश्वरकी समता ब्रह्मा परमात्मा देखो जिससे मैं मृत्युंजय होकर असंख्य प्राकृत प्रलयोंको ॥ ५७ ॥ अन्तर्धान और प्रगट होता बार २ देखता हूं वही प्रकृतिरूप और वही पुरुष है ॥ ५८ ॥ वही आत्मा वही नानारूपधारी जीव है. जो निरन्तर उसके नामगुणोंका कीर्तनकरता है ॥ ५९ ॥ वह समयपर जन्म रोग भय जरा वाली मृत्युको जयकरता है विधाताको स्रजनेवाला और विष्णुको पालक इसीने किया है ॥ ६० ॥ और अहंकारयुक्त संहारकरनेवाला मैं हुआ हूं. हे राजन् ! संहारमें कालाग्नि रुद्र नियुक्त होते हैं ॥ ६१ ॥ मैं स्वयं उसके नाम गुणका कीर्तन करता रहता हूं इसीके ज्ञानसे मैं निर्भय और मृत्युंजय कहाता हूं ॥ ६२ ॥ गरुडसे सर्पकी समान मृत्यु भी मृत्युके भयसे जिससे भगती है इसप्रकार सर्व भावनामें तत्पर सर्वेश उससे यह वचन कहा ॥ ६३ ॥ हे नारदजी ! सभाके मध्यमें शिवजी विरामको प्राप्त हुए और राजा भी यह वचन सुन वारंवार शिवजीकी प्रशंसा करने लगा ॥ ६४ ॥ और विनयपूर्वक शिवजीसे मधुर वचन बोला शंख चूड बोला हे देवजी ! आपने कहा यह इसी प्रकार है इसमें अन्यथा नहीं है॥ ६५ ॥ तौ भी आप यथार्थ मेरे निवेदनको सुनो जो कि आपने अभी ज्ञातिद्रोह [illegible] बड़ा पाप बताया है ॥ ६६ ॥ तब बलिका सर्वस्व हरण करकै उसको पातालमें क्यों भेजा. हे ईश्वर ! मैंने अब ऊर्ध्वलोकका ऐश्वर्य ग्रहण कर लियाहै॥ ६७ ॥ और सुतलसे उसको ऐश्वर्य उद्धार करनेकी सामर्थ्य स्वयं गदाधर भगवान् फिर भाई सहित हिरण्याक्षको देवताओंने क्यों मरवाया ॥ ६८ ॥ देवताओंने शुंभादि असुरोंको क्यों मारा पहले समुद्रमथनमें अमृत भी देवताओंनेही पिया ॥ ६९ ॥ हम दैत्यको बल क्लेशभागी और वह सब फलभोगी हुए यह. विश्व परमात्माप्रकृतिका क्रीडा करने

कुछभी थकित न हुआ ॥ ७० ॥ तब देवीने क्षुधासे दानवोंका रुधिरपान किया तब उसको पान भोजन कर भद्रकाली शंकरके समीप गई ॥ ७१ ॥ और यथाक्रम पूर्वापर युद्धका वृत्तान्त कहा दानवोंका विनाश सुन शिवजी हँसे॥ ७२॥ काली बोली अब युद्धमें लाखही दानव अवशिष्ट हैं जो मेरे मुखसे भोजन करते निकल गये हैं हे शिव ! और सब खालिये ॥ ७३ ॥ जब संग्राममें पाशुपतास्त्रसे दानवेन्द्रको मारने लगी तब यह अशरीरिणी वाणी हुई कि, राजा तुमसे अवध्य है ॥ ७४ ॥ यह राजेन्द्र महाज्ञानी महाबली पराक्रमी है इससे मेरे ऊपर अपने अस्त्र नहीं चलाये किन्तु मेरे अस्त्र छेदन किये ॥ ७५ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः २३.

श्रीनारायणजी बोले तत्त्वज्ञानविशारद शिवजी इस तत्त्वको श्रवण कर हे नारद ! अपने गणोंके सहित युद्धमें गये ॥ १ ॥ शंखचूड शिवजीको देख विमानसे उतर परम भक्तिसे भूमिमें दंडवत् करता हुआ ॥ २॥ और उनको प्रणाम कर बडे वेगसे विमानपर चढा और दुर्वह उद्योग कर धनुष धारण किया ॥ ३ ॥ हे ब्रह्मन् ! इस प्रकारसे सौवर्ष पर्यन्त शिव और दानवका युद्ध होता रहा परन्तु किसीकी जय पराजय न हुई ॥ ४ ॥ तो शिव और दानव दोनोंहीने शस्त्र रखदिये रथमें स्थित शंखचूड और वृषमें स्थित शंकर थे ॥ ५ ॥ उस समय दानवोंके शतक अनेक युद्धमें मथित होगये थे युद्धमें जो देवताओंके पक्षवाले मरे थे शिवजीने उनको जीवित करदिया ॥ ६ ॥ इसी समय कोई वृद्ध ब्राह्मण परम आतुर रणस्थानमें आकर दानवेश्वरसे बोला ॥ ७ ॥ वृद्ध ब्राह्मणने कहा हे राजेन्द्र ! इस समय मुझ ब्राह्मणको भिक्षा दो तुम मेरी मनवांछित सब सम्पत्तियोंके दाता हो ॥ ८ ॥ निरीह वृद्ध प्यासेके निमित्त दक्षिणा दो, परन्तु जब पहले शपथ कर लोगे तब पीछे तुमसे कहूंगा ॥ ९ ॥ राजाने प्रसन्न हो [illegible] स्वीकार किया तब उस मायीपुरुषने कहा मैं तुम्हारे कवच लेनेकी इच्छा करता हूं ॥ १० ॥ यह सुन उसने कवच उतारदिया और वह हरिकवच [illegible] शंखचूडका रूप धारणकर तुलसीके समीप गये ॥ ११ ॥ और जाकर उसमें मायापूर्वक वीर्य आधान किया और उसी समय शिवजीने हरिका शूल दानवके प्रति ग्रहण किया॥

जो ग्रीष्मके मध्याह्न सूर्यके समान प्रलयाग्निके शिखाकी समान था दुर्निवार दुर्धर्ष और शत्रुनाशमें अव्यर्थ था ॥ १२ ॥ १३ ॥ तेजमें चक्रकी समान सब शस्त्र अस्त्रका सार शिवके सिवाय दुसरोंको दुर्वह और भयंकर ॥ १४ ॥ दीर्घतामें सहस्रधनुष चौंडाईमें सौहाथ, सजीव ब्रह्मरूप और नित्यरूप अनिर्देश्य ॥ १५ ॥ जो अपनी लीलासे सब ब्रह्माण्डके संहार करनेको समर्थ है हेनारद ! उसको उत्तोलन कर शिवजीने शंखचूड़पर छोड़ा ॥ १६ ॥ तब राजा चापको छोड श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंको योगासनसे ध्यान करनेलगे ॥ १७ ॥ इधर वह शूल भ्रमणकर दानवके ऊपर गिरा और लीलासहितही रथसहित उसको भस्म करदिया ॥ १८ ॥ इधर राजाभी किशोर गोपवेष धारण कर दो भुजा मुरली हाथमें लिये रत्नभूषणोंसे भूषित ॥ ॥ १९ ॥ रत्नेंद्रसारसे बने गहने पहरे कोटिहौ गोपोंसे वेष्टित गोलोकसे आये उस विमानपर आरोहण कर अपने पुरको गया ॥ २० ॥ हे मुने ! जाकर शिरसे राधा–कृष्ण को प्रणाम किया और वृन्दावनके रासमें भक्तिसे चरणारविंदोंमें प्रमाण किया ॥ २१ ॥ यह दोनों सुदामाको देख प्रसन्नवदन हुए और प्रेमसे उनको अपनी गोदीमें लेते हुये ॥ २२ ॥ और बडे वेगसे वह शूल श्रीकृष्णके समीप चला गया और शंखचूडकी अस्थियोंसे शंखजाति हुई ॥ २३ ॥ जो अनेक प्रकारके रूपसे पवित्र हुए देवार्चनमें युक्त रहते हैं और शंखका जल देवताओंको प्रीति दायक है ॥ २४ ॥ यह तीर्थके जलस्वरूप है, पर शिवजीके ऊपर शंखका जल नहीं दिया जाता जहां शंखका शब्द होता है वहां लक्ष्मी स्थिर रहती है ॥ २५ ॥ जो शंखजलसे स्नान करता है वह मानो सब तीर्थोंमें न्हा चुका. शंख हरिका अधिष्ठान है जहां शंख हैं वहीं हरि स्थित है ॥ २६ ॥ वहीं लक्ष्मी स्थित रहती और सब अमंगल दूर होते हैं पर स्त्री और शूद्र शंखध्वनि न करैं स्त्री और शूद्रोंकी शंख ध्वनिसे ॥ २७ ॥ भीत और रुष्ट हो लक्ष्मी उस स्थानसे अन्यत्र चली जाती है, शिवजी भी दानवको मारकर निज लोकको चले गये ॥ २८ ॥ प्रसन्न हो वृषपर चढे अपने गणों सहित चले गये और देवताभी परमानंदको प्राप्त हो अपने स्थानको गये ॥ २९ ॥ स्वर्गमें दुंदुभी बजी गंधर्व किन्नर गाने लगे और शिवके ऊपर पुष्पवर्षा हुई ॥ ३० ॥ और बडे २ मुनीन्द्रादि शिवजीकी प्रशंसा करने लगे ॥ ३१ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्याय २४.

नारदजी बोले भगवान् नारायणने तुलसीमें किसरूपसे वीर्याधान किया था वह आप मुझसे कहिये ॥ १ ॥ श्रीनारायण बोले नारायण भगवान् देवताओंके कार्य साधनको शंखचूडका कवच मायासे ग्रहण कर ॥ २ ॥ शंखचूडका रूप विधान कर शंखचूडके नाशकी इच्छासे उसका पातिव्रत्य भंग करने लगे ॥ ३ ॥ तुलसीके द्वार दुंदुभीका शब्द कराया और जय शब्द कराकर उस सुन्दरीको उद्बोधन कराया ॥ ४ ॥ वह सुनकर वह साध्वी परमानन्दको प्राप्त हुई और झरोखेमें परम आदरसे राजमार्गको देखने लगी ॥ ५ ॥ ब्राह्मणोंको धन देकर मंगल पाठ कराया. बन्दी, भिक्षुक वाचियोंको बडा धन दिया ॥ ६ ॥ इधर रथपर स्थित हो देव देवीके मंदिरमें गये जो अमूल्य रत्नोंका बना बडा सुन्दर और मनोहर था ॥ ७ ॥ वह मनोहर अपने स्वामीको आगे देखतेही प्रसन्न हो उनका चरण धोय प्रणाम कर प्रेमाश्रु वर्षाने लगी ॥ ८ ॥ उस कामवतीने उन्हें रत्नोंके मनोहर सिंहासनपर बैठाया और कर्पूरादिसे सुवासित ताम्बूल इनको दिया ॥ ९ ॥ और बोली इस समय मेरा जीवन और जन्म सफल है जो युद्धमें गये प्राणेशको फिर आया देखती हूं ॥ १० ॥ तब वह कटाक्षसे देखती कामकी व्याप्तीसे पुलकित हुई और मधुर वाणीसे पतिसे रणवृत्तान्त पूँछने लगी ॥ ११ ॥ तुलसी बोली हे प्रभो ! तुम्हारा संग्राम असंख्य विश्वके संहार करनेवालेके संग हुआ. हे कृपानिधे ! विजय किस प्रकार हुई सो कहो ॥ १२ ॥ कमलापति तुलसीके वचन सुन हँसकर शंखचूडके रूपसे अमृतमय वचन कहने लगे ॥ १३ ॥ श्रीभगवान् बोले हे कान्ते ! हम दोनोंका संग्राम पूरे सौ वर्ष हुआ हे कामिनि ! उसमें सम्पूर्ण दानवोंका नाश होगया ॥ १४ ॥ तब ब्रह्माजीने आकर हम दोनोंकी प्रीति करादी और ब्रह्माजीकी आज्ञासे मैं ने देवताओंका अधिकार देदिया ॥ १५ ॥ मैं अपने घर और शिवजी अपने लोकको गये, यह कह जगत्पतिने शयन किया ॥ १६ ॥ हे नारद ! तब उस रामाके सहित रमापति रमण करनेलगे उस साध्वीने अलौकिक सुखसंभोग तथा आकर्षके व्यतिक्रमसे "स्त्रीका बल आकर्षण कर स्वयं च्युत न होना" ॥ १७ ॥ वितर्क कर जाना कि यह मेरे पति नहीं है तब यों बोली तुम कौन हो तुलसी बोली हे मायेश ! तुम कौन हो जो मायासे तुमने मुझे भोगा ॥ १८ ॥ मेरा सतीत्व दूर किया इस कारण मैं तुमको शाप देती हूं तुलसीके वचन सुनकर हरि शापके भयसे ॥ १९ ॥ अपनी

मनोहर मूर्ति लीलासेही धारण करते हुए. तब उस देवीने अपने आगे सनातन देव देवका दर्शन किया ॥ २० ॥ जो नवीन मेघके समान श्याम शरत्कमलके समान नेत्र कोटि कामकी समान आभा रत्नोंके भूषणोंसे भूषित ॥ २१ ॥ कुछ हँसते प्रसन्न मुख पीतवस्त्रसे शोभित थे उनको देखतेही तुलसी तत्काल मूर्छित होगई ॥ २२ ॥ फिर चैतन्य हो हरिसे बोली तुलसीने कहा हे नाथ! तुम पाषाणकी समान हो तुमको कुछभी दया नहीं है ॥ २३ ॥ छलसे धर्म नष्ट कर तुमने मेरे स्वामीको मारा तुम दयाहीन होनेसे पाषाण हृदय हो ॥ २४ ॥ इस कारण तुमको पाषाण होना पडेगा जो तुमको साधु कहते हैं वे अवश्य भ्रान्त हैं ॥ २५ ॥ आपने विना अपराध अपना भक्त दूसरोंके निमित्त क्यों मारा इसप्रकार कह वह शोकसे व्याकुल हो वारंवार विलाप करने लगी ॥ २६ ॥ तब करुणासागर उसकी करुणाको देखकर नीतिसे उसे समझाते हुए बोले श्रीभगवान् बोले हे भद्रे! कृष्ण मेरे पति हों इस निमित्त तुमने भारतवर्षमें मेरा आराधन किया और शंखचूडने तुम्हारे पानेको तप किया ॥ २७ ॥ २८ ॥ उसने तुमको भार्या पाकर विहार कर अपने तपका फल पाया अब तुमने जिसनिमित्त तपकिया था तुमको वह फल देना उचित है ॥ २९ ॥ अब इस शरीरको त्याग दिव्य देह धारण कर लक्ष्मीकी समान होकर तुम हमारे साथ रमण करो ॥ ३० ॥ यह तुम्हारा शरीर नदीरूप होकर गंडकी नामसे विख्यात होगा और भारतमें स्नान करनेवालोंको पुण्यरूप होगा ॥ ३१ ॥ तुम्हारे केशसमूहोंका एक पवित्र वृक्ष होगा तुलसीके केशसे प्रगट होनेसे लोकमें तुलसीनामसे विख्यात होगी ॥ ३२ ॥ तीन लोकमें देवपूजनमें जितने पत्र, पुष्प हैं हे वरानने! उनमें तुम प्रधानरूपसे तुलसी होगी ॥ ३३ ॥ स्वर्ग, मृत्यु, पाताल, गोलोकमें मेरे समीप हे सुन्दरि! सब पुष्पोंमें श्रेष्ठ तुम तुलसीवृक्ष होगी ॥ ३४ ॥ गोलोकमें विरजाके किनारे रासवृंदावनके वनमें, भांडीर चम्पकवन और सुन्दर चन्दनोंके वनमें ॥ ३५ ॥ माधवी, केतकी, कुंद, मल्लिका, मालतीके वन और पुण्यस्थानोंमें पुण्यदायक तुम्हारा निवास होगा ॥ ३६ ॥ तुलसीतरुके मूलमें पुण्यदेशोंमें पुण्यदायक सब तीर्थोंका अधिष्ठान तुम्हारा निवास होगा ॥ ३७ ॥ वहीं और भी सब देवताओंका अधिष्ठान होगा हे वरानने! तुलसी पत्रके मस्तकमें गिरनेके समय ॥ ३८ ॥ प्राणी सब यज्ञोंमें दीक्षित और सब तीर्थोंमें स्नात होजाता है, जो तुलसीपत्रके जलसे अभिषेक करता है ॥ ३९ ॥

जो सहस्र अमृत घटसे भगवान्‌की तुष्टि होती है वह फल तुलसी पत्रके दानसे हो जाती है ॥ ४० ॥ दशसहस्र गोदानका जो फल है वही फल कार्तिकमें तुलसीके दानका है ॥ ४१ ॥ तुलसीपत्रका जल जिसको मृत्युकालमें प्राप्त हो वह सब पापसे छूटकर विष्णुलोकमें जाता है ॥ ४२ ॥ जो मनुष्य नित्य भक्तिसे तुलसीजल प्राप्त करता है उसको लाख अश्वमेधका पुण्य प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥ जो मनुष्य अपने हाथ वा देहमें तुलसी धारणकर तीर्थमें प्राण त्यागन- करता है वह विष्णुलोकको जाता है॥ ४४ ॥जो मनुष्य तुलसी काष्ठकी बनी मालाको धारण करताहै उसको पद पदमें अश्वमेधयज्ञका फल मिलता है ॥ ४५ ॥ जो तुलसीपत्रको हाथमें ले स्वीकार की हुई बातकी रक्षा नहीं करता वह चन्द्र आदि- त्यकी स्थितितक कालसूत्र नरकमें पडता है ॥ ४६ ॥ जो मनुष्य तुलसी लेकर मिथ्या शपथ करता है वह चौदह इन्द्रके कालपर्यन्त कुंभीपाकमें जाता है ॥ ४७ ॥ जो मृत्युकालमें तुलसी जलकी कणिका भी मिलजाय तो वह रत्नोंके विमानपर बैठकर अवश्य वैकुंठको जाताहै ॥ ४८ ॥ पूर्णिमा, अमावास्या, द्वादशी, संक्रान्ति तथा मध्याह्न और निशिसंध्यामें तेल मलतेमें ॥ ४९ ॥ आशौच अपवित्र समयमें तथा रात्रिमें जो मनुष्य तुलसी तोडते हैं वे मानो हरिका शिर छेदन करते हैं ॥ ५० ॥ तीनरातका भी वासी तुलसीपत्र शुद्ध है श्राद्ध, व्रत, दान, प्रतिष्ठा, देवार्चन ॥ ५१ ॥ इनमें पृथ्वीपर गिरा जलमें पतित, जो विष्णुको दियाहै, वह सब तुलसीपत्रक्षालनसे अन्य कर्ममें शुद्ध है ॥ ५२॥ जो यह वृक्षकी अधिष्ठात्री देवी है यह निरामय गोलोकमें कृष्णके साथ नित्य क्रीडा करैगी ॥ ५३ ॥ और नदीकी अधिष्ठात्री देवी होकर भारतमें भी पुण्यदायक है और यह मेरे अंशरूप सागरकी पत्नी होगी ॥ ५४ ॥ हे महासाध्वी ! तुम स्वयं वैकुण्ठमें मेरे समीप लक्ष्मीकी समान होगी इसमें सन्देह नहीं ॥ ५५ ॥ और मैं पाषाण रूपसे गंडकी नदीके किनारे तुम्हारे शापसे निवास करूंगा ॥ ५६ ॥ कोटि संख्यांक कीट अपनी तीक्ष्ण डाढोंसे इसमें चक्रका चिह्न करैंगे ॥ ५७ ॥ एक द्वार, चार, चक्र, वनमालासे भूषित माला कार रेखा नवीन मेघके आकारवाली लक्ष्मी नारायण नामक होगी ॥ ५८ ॥ जो एक द्वार चारचक्र नवीन मेघकी समान हो वह वनमालासे रहित लक्ष्मी जनार्दन जानने॥ ५९ ॥ जो दोद्वार चारचक्र और गोष्पादसे विराजित हों यह वनमाला रहित रघुनाथजी है ॥ ६० ॥ जो जिसमें अतिछोटे दोचक्र नवीन मेघकी समान हों वह वन-

माला रहित वामनजी हैं॥ ६१ ॥ जो अतिक्षुद्र दोचक्र वनमालासे विभूषित हों वह गृहस्थियोंको सदा लक्ष्मीदायक श्रीधरका रूप जानना चाहिये ॥ ६२ ॥ जो स्थूल गोल वनमालासे रहित हों और स्फुट दोचक्रहों उनको दामोदर जानो ॥ ६३ ॥ जो मध्यम वर्तुलाकार दोचक्र शरप्रहारके चिह्नसे अंकित हों वे शरतूण सहित रणराम जानने ॥ ६४ ॥ जो मध्यम सातचक्र और छत्र भषणसे भूषित हो वह मनुष्योंको राज संपत्ति देनेवाले राजराजेश्वर जानने ॥ ६५ ॥ जिनमें, स्थूल चौदह चक्र हों नये मेघकी समान कान्तिमान उनको चारवर्गके फलदाता अनन्त जानना ॥ ६६ ॥ जो चक्राकार दोचक्र हों वामांकमें लक्ष्मीका चिह्न हो वह जगत्की समान कान्तिमान् गोपदसे अंकित मध्यमें परिमाण मधुसूदन जानने ॥ ६७ ॥ एक सुदर्शन चक्र गुप्तचक्र गदाधर जानने और दोचक्र हयमुखके आकारके हयग्रीव जानने ॥ ६८ ॥ जिनका अति विस्तृत मुख दोचक्र विकटाकार हो वह मनुष्योंको शीघ्र वैराग्य देने वाले नृसिंहजी जानने ॥ ६९ ॥ जो दोचक्र विस्तृत मुख वनमालासे विभूषित हों वह गृहस्थियोंको सुखदेने वाले लक्ष्मीनृसिंह जानने ॥ ७० ॥ जिनके द्वार देशमें दोचक्र लक्ष्मीका वाम और चिह्न सम (वक्रभिन्न) स्फुट हो उनको सब कामना दायक वासुदेव जानो ॥ ७१ ॥ सूक्ष्मचक्र नवीन मेघकी समान प्रभावाले महामुखके अन्तमें सूक्ष्म छिद्र हों तो प्रद्युम्न जानो ॥ ७२ ॥ जो दोचक्र एकत्र मिले हों अर्थात् परस्पर दोनोंका मुख मिलाहो और उनका पृष्ठ भाग विशाल रूप हो वह गृहस्थियोंको सदा सुखदायक संकर्षण जानो ॥ ७३ ॥ जो गोल अतिशोभित पीतवर्ण हो वह अनिरुद्ध जानो मनीषी इनको गृहस्थियोंका सुखदायी कहते हैं ॥ ७४ ॥ जहां शालिग्रामकी शिला है वहां साक्षात् हरि हैं वहां लक्ष्मी सब तीर्थोंके सहित निवास करती है ॥ ७५ ॥ जितने पाप ब्रह्महत्याको आदि लेकर हैं वह सब शालिग्रामशिलाके पूजनसे नष्ट होजाते हैं ॥ ७६ ॥ चक्राकारसे राज्य और गोलाकारसे महालक्ष्मी मिलती है शकटाकारसे दुःख और शूलाकार अग्रभागवाली मूर्तिके पूजनसे मरण होता है ॥ ७७ ॥ विकृतमुखीसे दरिद्र पिंगल वर्णसे हानि भग्नचक्रसे व्याधि और विदीर्णसे अवश्य मरण होता है ॥ ७८ ॥ व्रत दान प्रतिष्ठा श्राद्ध देवपूजन शालिग्राम शिलाके निकट सब प्रशस्त होता है ॥ ७९ ॥ वह सब तीर्थोंमें स्नान और सब यज्ञोंमें दीक्षित हो चुका तथा सब यज्ञतीर्थ व्रत तप करचुका ॥ ८० ॥ चारों वेदोंका पाठ तपस्या करनेका फल पाचुका जो शालिग्राम

शिलाका पूजन करता है॥८१॥ "जो शालिग्रामकी शिलाको जलसे सदा अभिषेक करता है उसको सब दानका पुण्य और भूमिकी प्रदक्षिणाकाफल प्राप्त होता है" जो मनुष्य नित्य शालिग्राम शिलाके जलको पान करते हैं वह निःसन्देह देवताओंके इच्छित प्रसादको पाते हैं ॥८२॥ उसके स्पर्शको सम्पूर्ण तीर्थ वांछा करते हैं वह जीवन्मुक्त और महा पवित्र हो अन्तमें हरिके पदको प्राप्त होता है ॥ ८३ ॥ वहां हरिके साथ असंख्य प्राकृतप्रलयपर्यन्त निवास करता है जो उनकी सेवामें नियुक्त होताहै ॥८४ ॥ जितने ब्रह्महत्याकी समान पातक हैं वोह उसे देखकर गरुडसे सर्पकी समान भागते हैं ॥८५॥ हे देवि ! उसके चरणोंकी रजसे शीघ्रही वसुन्धरा पवित्र होती है उसके जन्मसे लाख पितर उसके कुलके तरजाते हैं ॥ ८६ ॥ जो कोई मृत्युकालमें शालिग्रामशिलाजलको पान करता है वह सब पापरहित हो विष्णुलोकको जाता है ॥ ८७ ॥ वह कर्मभोगसे रहित हो निर्वाण मुक्तिको प्राप्त होता है और निःसन्देह विष्णुके पदमें लीन होता है ॥ ८८ ॥ शालिग्राम शिलाको धारणकर जो मिथ्या वाक्य बोलता है वह ब्रह्माकी अवस्थापर्यन्त कुंभीपाकमें जाता है ॥ ८९ ॥ शालिग्रामशिलाको धारणकर जो स्वीकारको पालन नहीं करता वह लाख मन्वन्तरतक असिपत्र वनमें जाता है ॥ ९० ॥ जो शालिग्रामसे तुलसी पत्रका वियोग करता है हे कान्ते ! जन्मान्तरमें उसका स्त्रीसे वियोग होता है॥९१॥ अथवा जो शंखसे तुलसीपत्रका वियोग करता है वह सातजन्म भार्याहीन और रोगी रहता है ॥ ९२ ॥ जो महाज्ञानी शालिग्राम तुलसीपत्र और शंखको एकत्र रखता है रक्षा करता है वह श्रीहरिका प्रिय होता है ॥९३॥ एकबारही जो जिसमें वीर्याधान करता है उसके वियोगमें परस्पर उनको दुःख होता है ॥ ९४ ॥ तुम शंखचूडकी प्रिया एक मन्वन्तरतक रहीं तब शंखके सहित तुम्हारा वियोग केवल दुःख दाई ही है ॥ ९५ ॥ हे नारद ! इसप्रकार हरि उससे कह विरामको प्राप्तहुए वहभी यह देहत्याग दिव्यरूप धारणकर ॥ ९६ ॥ लक्ष्मीकी समान हरिके हृदयमें निवास करनेलगी और लक्ष्मीपति उसके सहित वैकुंठको गये ॥ ९७ ॥ हे नारद ! लक्ष्मी सरस्वती, गंगा, तुलसी यह चारों हरिकी प्रिया हुईं ॥ ९८ ॥ तुलसीके देहसे तत्काल गंडकी नदी हुई और ईश्वर भी शिलारूपसे उसके समीप मनुष्योंको पुण्यदेनेको स्थित हैं॥९९॥हे मुने ! वहांके कीट अनेकप्रकारका शिलाओंमें चिह्न करते हैं

उनमें जो जो जलमें पतित होती हैं वह वह मनुष्योंको फलदायी हैं ॥१००॥ स्थलकी शिला सूर्यके उपतापसे पिंगलवर्ण होजाती हैं यह आपसे सब कहा अब और क्या सुननेकी इच्छा है ॥ १०१ ॥

इति श्रीदेवीभागवते माहापुराणे नवमस्कन्धे तुलसीमाहात्म्ये भाषायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः २५.

नारदजी बोले जब नारायणने अपनी प्रियातुलसीको पूजनीय किया तो हे ब्रह्मन्! इसकी पूजाविधि और स्तोत्रभी कहिये ॥ १ ॥ हे मुने! पहले किसने इनकी पूजा और स्तुति की और किससे किसप्रकार पूजनीया हुई वह आप कहिये ॥ २ ॥ सूतजी बोले नारदजीके वचन सुन मुनिश्रेष्ठ हँसकर पुण्यदायक पापहारिणी कथा कहनेलगे ॥ ३ ॥ नारायण बोले हरिने तुलसीका पूजनकर रमाके साथ क्रीडा की और गौरवमें लक्ष्मीकी समान उसका सौभाग्य किया ॥ ४ ॥ लक्ष्मी और गंगाने तो उसका नवसंगम सहनकरलिया परन्तु सौभाग्य और गौरवके क्रोधसे सरस्वतीने सहन न किया ॥ ५ ॥ उस मानिनीने क्लेश कर हरिके समीपही उसे ताडनकिया तब तुलसी लज्जा और अपमानसे अन्तर्धान होगई ॥ ६ ॥ वह सब सिद्धोंकी ईश्वरी देवी ज्ञानियोंकी सिद्धयोगिनी कोपसे हरिसे अन्तर्हित होगई ॥७॥ तब हरिने तुलसीको न देखकर सरस्वतीको समझाया और फिर उसकी आज्ञालेकर तुलसीके वनमें गये ॥ ८ ॥ वहां जाय हरिने स्नानकर तुलसी सतीका ध्यानकर पूजन किया और भक्तिसे स्तोत्र पढा ॥ ९ ॥ श्रीबीज, भुवनेश्वरी बीज, मन्मथबीज, वाग्बीज, चतुर्थीयुक्त,वृंदावनी वह्निजायापूर्वक दशाक्षरमंत्र वह्निजायात्मक पढा अर्थात् बीज युक्त श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं वृन्दावन्यै स्वाहा॥१०॥हेनारद! इस कल्पवृक्षरूप मंत्रराजसे जो विधानसे तुलसीका पूजन करताहै उसको अवश्य सब सिद्धि प्राप्त होती हैं ॥११॥ घृतका दीपक, धूप, चंदन, नैवेद्य और पुष्पादि षोडशोपचारसे पूजी हुई॥१२॥ हरिके स्तोत्रसे सन्तुष्ट हो वह वृक्षसे निर्गत हुई और प्रसन्न हो हरिके चरणोंकी शरणमें हुई ॥ १३ ॥ तब विष्णुने उसको वर दिया तुम सर्व पूज्याहोगी मैं तुम सुरूपाको शिर और वक्षस्थलमें धारण करूंगा ॥ १४ ॥ और सब देवता आदि तुमको अपने शिरपर धारण करैंगे यह कह हरि उसको ग्रहणकर वैकुंठको गये ॥ १५ ॥ नारदजी बोले हे प्रभो! तुल-

सीका ध्यान स्तोत्र पूजन विधान किसप्रकार है हे! महाभाग! सो आप मुझसे कहिये ॥ १६ ॥ नारायण बोले तुलसीके अन्तर्धान होनेपर हरि वृन्दावनमें जाय विरहातुर हो तुलसीकी स्तुति करने लगे ॥ १७ ॥ श्रीभगवान् बोले जो कि, यह वृन्दरूप वृक्ष एकत्र होते हैं इसकारण पण्डित इसको वृन्दा कहते हैं यह मेरी प्रिया है इसको मैं भजता हूं ॥ १८ ॥ आदिमें जो देवी पहले वृन्दावनके वनमें हुई इसीसे वृन्दावन कहा गया है उस सौभाग्यवतीको मैं भजता हूं ॥ १९ ॥ जो असंख्य विश्वोंमें निरन्तर पूजित है इससे उस विश्वपूजित नामवालीको मैं निरन्तर भजता हूं ॥ २० ॥ तुमसे सदा असंख्य विश्व पवित्र होते हैं उस विश्वपाविनी देवीको मैं विरहसे स्मरण करता हूं ॥ २१ ॥ जिसके विना पुष्पसमूहसे भी देवता सन्तुष्ट नहीं होते उस शुद्ध पुष्पोंकी सारको मैं शोकाकुल देखनेकी इच्छा करता हूं ॥ २२ ॥ विश्वमें जिसके प्राप्तिमात्रसे भक्तोंको आनंद होता है इसीसे वह नंदिनीनामसे विख्यात है हमपर प्रसन्न हो ॥ २३ ॥ सब संसारमें जिस देवीकी उपमाको कोई नहीं है और तुला न होनेसे तुलसी नामसे विख्यात है उस प्रियाकी मैं शरण होता हूं ॥ २४ ॥ यह कृष्णकी जीवनरूप निरन्तर अतिशय प्यारी है इससे कृष्णजीवनी नामवाली है मेरे जीवनकी रक्षा करै ॥ २५ ॥ इसप्रकार स्तुति कर रमापति वहां स्थित हुए तब चरणकमलमें प्रणामकरती तुलसीका हरिने साक्षात् दर्शन किया ॥ २६ ॥ जो मानिनी मानसे पूजित होकर अवमानके कारण नेत्रोंमें आंसू भरे थी हरिने प्रियाको देखतेही हृदयमें बसाया ॥ २७ ॥ और भारतीकी आज्ञासे उसके सहित अपने स्थानमें गये और सरस्वतीसे तुलसीकी प्रीति करादी ॥ २८ ॥ और सबसे पूजित होनेका विष्णुने उसे वरदिया सबको शिरोंपर धारण करनेयोग्य तथा मुझसे भी वन्दित और माननीया होगी ॥ २९ ॥ तब वह देवी विष्णुके वरसे संतुष्ट हुई और सरस्वतीने स्वयं उसे लेकर हरिके समीप बैठाया ॥ ३० ॥ हे नारद ! तब लक्ष्मी और गंगानेभी हँसकर तुलसीका हाथ पकड विनयपूर्वक घरमें प्रवेश कराया ॥ ॥ ३१ ॥ वृन्दा, वृन्दावनी, विश्वकी पवित्रकरनेवाली विश्वसे पूजित हुई अथवा विश्वपावनी, विश्वपूजिता, पुष्पसारा, नंदिनी, कृष्णजीवनी ॥ ३२ ॥ इन आठ नामोंका स्तोत्र अर्थसंयुक्त जो पढ़ता और तुलसीकी पूजा करता है उसको अश्वमेधका फल मिलता है ॥ ३३ ॥ कार्तिकी पूर्णिमाको तुलसीका मंगलमय जन्म है हरिने उसी समय तुलसीपूजाका विधान कहा है ॥ ३४ ॥ उसमें जो भक्तिसे विश्व-

पावनीका पूजन करते हैं वह सब पापसे रहित हो विष्णुलोकको जाते हैं ॥ ३५ ॥ कार्तिकमें जो वैष्णवको तुलसीपत्र देता है उसको अवश्य दशसहस्र गोदानका फल मिलता है ॥ ३६ ॥ अपुत्रको पुत्र, प्रियाहीनको प्रिया, बँधु, इस स्तोत्रके श्रवणमात्रसे प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥ रोगी रोगसे, बंधनमें पडाहुआ बंधनसे, भीत भयसे और पापी पातकसे, छूटजाता है ॥ ३८ ॥ यह आपसे स्तोत्र कहा वह अब ध्यान पूजा विधिको सुनो जिसको कण्वशाखामें कहे वेदमें तुम भी सब जान्ते हो ॥ ३९ ॥ विना आवाहनके तुलसीके वृक्षमेंही भक्तिसे पूजन करै उसको ध्यानकर षोडश उपचारसे पूजन करै ध्यान पातकोंका नाशक है ॥ ४० ॥ तुलसी, पुष्पसारा, सती, पूता, (पवित्र) मनोहरा, पापरूपी ईंधनके भस्मकरनेकी जलती अग्निके शिखाकी समान ॥ ४१ ॥ जिसकी समान कोई पुष्प नहीं ऐसा वेदोंमें कहा है, सबमें पवित्र होनेसे जो तुलसी कहाती है ॥ ४२ ॥ सबको शिरपर धारण करनेयोग्य ईप्सिता, विश्वकी पवित्रकरनेवाली स्वयं जीवन्मुक्त, भक्तोंको मुक्ति देनेवाली, हरिभक्ति देनेवालीको भजता हूं ॥ ४३ ॥ बुद्धिमान् इसप्रकार ध्यानकर पूजन करने उपरान्त प्रणाम करै यह तुलसीका उपाख्यान कहा अब क्या सुननेकी इच्छा है ॥ ४४ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषायां पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

षड्विंशोऽध्यायः २६.

नारदजी बोले यह मैं ने अमृतके समान तुलसीका उपाख्यान सुना अब आप मुझसे सावित्रीका उपाख्यान कहिये ॥ १ ॥ यह सावित्री वेदकी माता है इन्होंने किसकारणसे जन्म लिया और प्रथम किसके द्वारा लोकमें पूजित हुई ॥ २ ॥ नारायण बोले हे मुने ! इस वेदमाताका प्रथम ब्रह्माजीने पूजन किया है, दूसरे कालमें वेदगणोंने और पश्चात् विद्वानोंने पूजन किया है ॥ ४ ॥ फिर भारतमें अश्वपति राजाने इनकी पूजा की पीछे चारों वर्णोंने इनकी पूजाकी ॥ ३ ॥ नारदजी बोले हे ब्रह्मन् ! वह अश्वपति कौन थे और किसप्रकार उन्होंने पूजा की सर्वपूज्या वह देवी प्रथम एक और फिर दूसरोंसे पूजित हुई ॥ ५ ॥ श्रीनारायण बोले हे मुने ! राजा अश्वपति भद्रदेशके निवासी थे वह वैरियोंके बलहर्ता और मित्रोंका दुःखनाश करते थे ॥ ६ ॥ धर्मचारिणी उनकी महारानी मालतीनामक विष्णु प्रिया लक्ष्मीकी समान थी ॥ ७ ॥ हे नारद ! उसकी रानी वंध्या थी वसिष्ठके उपदेशसे भक्तिसे

सावित्रीका आराधन करने लगी ॥ ८ ॥ बहुत कालतक आराधन करनेपरभी भगवतीसे उत्तर वा दर्शन न मिला, तब दुःखी मनसे अपने घर चली आई ॥ ९ ॥ राजाने उसे दुःखीदेखकर नीतिपूर्वक समझाया और भक्तिसे सावित्रीकी तपस्या करनेको पुष्करमें गया ॥ १० ॥ वहां नियत इन्द्रिय होकर शतवर्ष तप किया, परन्तु सावित्रीका दर्शन न पाकर आज्ञा पाई ॥ ११ ॥ राजाने आकाशसे अशरीरिणी वाणी सुनीकि, हे नारद! तुम गायत्रीका दशलक्ष जप करै॥१२॥ उसी समय वहां पराशरजी आये राजाके प्रणाम करनेपर मुनिने उनसे कहा ॥ १३ ॥ मुनि-बोले एकवार गायत्री जप, दिनका किया पाप हर लेता है दशवार जपनेसे दिनरातका किया पाप दूर होताहै ॥ १४ ॥ सौवार जपनेसे महीनेका पाप दूर होजाता है, सहस्रवार जपनेसे सम्वत्सरकृत पाप नष्ट होजाता है ॥ १५ ॥ एक लाख जपनेसे जन्मका किया पाप और दश लक्षसे अन्य जन्मका और सौलाख जपनेसे सब जन्मका किया पाप नष्ट होताहै ॥ १६॥ दशकोटि जपसे ब्राह्मणोंकी मुक्ति होजाती है; जपका विधान कहते हैं सर्पके फणकी समान हाथ करके और अंगुलियोंको छिद्र मूँद और ऊर्ध्वांगुलीके अग्र भागको अधोभागमें भुग्न करके ॥ १७ ॥ शिर झुकाये अचल भावसे प्राङ्मुख होकर द्विज जप करै अनामिकाके मध्य देशसे नीचे वामक्रमसे ॥ १८॥ तर्जनीके मूल पर्यन्त जप करै यह करमालाका क्रम है श्वेत कमलके बीज; स्फटिक मणिकी माला ॥ १९ ॥ बनाकर तीर्थमें जाय देवालयमें जप करै मालाको स्थापनकर पीपलके पत्ते कमलमें संयत होकर ॥ २० ॥ गोरोचनसे लिखकर सुधी पुरुष गायत्रीको स्नान करावे उसपर गायत्री शतकका जप करै ॥ २१ ॥ और पंचगव्यसे संस्कार कीहुई मालाको संस्कार कराकर और फिर स्वयं स्नान कर मालाको भी गंगाजलसे स्नान कराय ॥ २२ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार दशलाख जप करो तब तीन जन्मके पातक क्षय होनेसे साक्षात् गायत्री देवीका दर्शन करोगे ॥ २३ ॥ हे राजन् ! जब दिन दिन नित्य संध्याको करोगे मध्याह्न, सायाह्न और प्रभातमें सदा पवित्र रहोगे तो दर्शन पाओगे ॥ २४ ॥ जो संध्याहीन है वह नित्य अशुचि होनेसे सब कर्मोंके अयोग्य होता है बिना संध्याके जो दिनका किया कर्म हैं वह उसका फलभागी नहीं होता ॥ २५ ॥ जो प्रभात और सायं संध्या नहीं करता उसको सर्व द्विज कर्मोंसे बाहर करदेना चाहिये ॥ २६ ॥ जो जीवन-पर्यन्त तीनों कालमें संध्या करता है वह ब्राह्मण सूर्यके समान सदा अपने तेजसे

तपता है ॥ २७॥ उसके चरणकमलकी रजसे भूमि सदा पवित्र होती हैं जो ब्राह्मण संध्यासे पवित्र है वह पवित्र तेजस्वी जीवन्मुक्त होता हैं ॥ २८ ॥ उसके स्पर्श मात्रसे तीर्थ पवित्र होते हैं सर्प जैसे गरुडको देख भागते हैं इसप्रकार उसे देख पाप भागते हैं ॥ २९ ॥ और जो ब्राह्मण तीनों कालकी संध्यासे रहित है देवता उसकी पूजा और पितर उसका पिण्ड ग्रहण नहीं करते ॥ ३० ॥ जो मूलप्रकृतिका अभक्त है और उसके मंत्रकी अर्चा नहीं करता और भगवतीके उत्सवविहीन है वह विषहीन सर्पके समान है ॥ ३१ ॥ जो ब्राह्मण विष्णुमंत्र और तीनों संध्याओंसे रहित है तथा एकादशीव्रतविहीन है वह विषहीन सर्पके समान है ॥ ३२ ॥ जो विना भगवान्को भोग लगाये नैवेद्य खाता धावक कर्मकारी, बैलोंपर बोझ लादनेवाला तथा शूद्रोंका अन्न खानेवाला जो ब्राह्मण है वह विषहीन सर्पके समान है ॥ ३३ ॥ जो शूद्रोंके शवका दहन करनेवाला है वह ब्राह्मण शूद्रीपति होता है जो शूद्रोंकी रसोई करता है वह विषहीन सर्पके समान है ॥ ३४ ॥ जो ब्राह्मण शूद्रोंसे प्रतिग्रह लेता शूद्रोंको यजन करता स्याहीका व्यवहार करनेवाला शस्त्र बेचनेवाला विषहीन सर्पके समान है ॥ ३५ ॥ जो ब्राह्मण कन्याका बेचने वाला हरिनाम बेचने वाला जो ब्राह्मण पुत्ररहित 'अवीरा' ब्राह्मणीपतिके भोजन करता है जो ऋतु स्नाताके अन्नका भोगनेवाला है ॥ ३६ ॥ जो कुटना है जो ब्याजसे जीता है, जो ब्याज लेता है जो विद्या बेचता है वह विषहीन सर्पके समान होता है ॥ ३७ ॥ जो ब्राह्मण सूर्योदयतक सोता है जो ब्राह्मण मच्छी खाता है जो देवीकी पूजासे रहित है वह विषहीन सर्पके समान है ॥ ३८ ॥ यह कहकर पराशरने सब पूजाकी विधि क्रम और सावित्रीका ध्यानादिक वर्णन किया॥ ३९ ॥ इस प्रकार राजाको सब देकर हेमुने ! वह मुनि अपने आश्रमको गये राजाने सावित्रीको पूज वर पाया ॥ ४० ॥ नारदजी बोले सावित्रीका ध्यान और पूजाविधि क्या है और क्या स्तोत्र देकर पराशरजी चले गये ॥ ४१ ॥ और राजाने किस विधानसे वेद माताका पूजन किया और उस पूजाके विधानसे क्या वर पाया ॥ ४२ ॥ वह मैं सब सावित्रीके परम महत् श्रुति सिद्ध रहस्यको संक्षेपसे सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ ४३ ॥ नारायण बोले ज्येष्ठकृष्ण त्रयोदशीको शुद्ध समय यत्नपूर्वक रहकर परम भक्तिसे चौदशको व्रत करै ॥ ४४ ॥ यह चौदह वर्षका व्रत चौदह फलसे संयुक्त है भगवतीको चौदह नैवेद्य देनेसे पुष्प और धूपादि करै ॥ ४५ ॥ वस्त्र

यज्ञोपवीत विधिपूर्वक भोजन निवेदन करै फल शाखासंयुक्त मंगल घटस्थापन कर के ॥४६॥ गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव, शिवा इनको भलीप्रकार पूजनकर ब्राह्मण घटमें आवाहन करै ॥ ४७ ॥ जो मध्यदिनमें ध्यान कहा है वह सावित्रीका ध्यान सुनो. स्तोत्र पूजाविधान और सब कामना देनेवाला मंत्र है ॥ ४८ ॥ तपाये सुवर्णकी समान कांतिमान् ब्रह्मतेजसे प्रकाशित ग्रीष्मऋतुके सहस्र मध्याह्न सूर्यके समान अतिकान्तिमान् ॥ ४९ ॥ कुछ हँसीसे प्रसन्नमुख रत्नके भूषणोंसे भूषित [अग्निशुद्ध शुकाधान] "अग्निमें न जलनेवाले वस्त्र पहरे" भक्तोंके ऊपर अनुग्रहका शरीर धारण करनेवाली ॥ ५० ॥ सुखदायक मुक्तिकारक शान्त भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाली मनोहर जगत्की निधियोंमें श्रेष्ठ सब सम्पत्तिस्वरूपवाली सब संपत्तिकी स्वरूप और सब सम्पत्तियोंकी देनेवाली ॥५१॥ वेदकी अधिष्ठातृदेवी वेदशास्त्रकी स्वरूपवाली वेदबीजकी स्वरूपा जगन्माताका भजन करते हैं ॥ ५२ ॥ इस प्रकार ध्यानमें ध्यान कर अपने शिरपर हात लगाय नैवेद्य देकर फिर घटमें भक्तिसे ध्यान कर व्रती देवीका आवाहन करै॥५३॥ वेदोक्त मंत्रपूर्वक षोडश उपचार देकर पूजन और स्तुति करके विधानसे देवदेवीका पूजन करै ॥५४॥ आसन, पाद्य, अर्घ्य, स्नान अनुलेपन, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, शीतल जल ॥ ५५ ॥ वसन, भूषण, माला, गंध, आचमन, मनोहर शय्या, यह षोडशवस्तु देनी चाहिये ॥५६॥ चन्दन वा सुवर्णादिक बना सिंहासन देवाधार पुण्यदायक मैं ने तुमको निवेदन किया है ॥ ५७ ॥ देवी तीर्थजल पवित्र पाद्य रूप जो कि, महान् प्रीतिका देनेवाला है वह पूजाङ्गभूत शुद्ध मैंने तुमको निवेदन किया ॥ ५८ ॥ पवित्ररूप अर्घ्य, दूर्वा, पुष्पदलके सहित पुण्यदायक शंखजलसम्पन्न मैं ने तुमको निवेदन किया है ॥ ५९ ॥ सुगंध रूप गंध जल स्नेह और सुगंध करनेवाला मैंने यह स्नानीय जल भक्तिसे निवेदन किया है तुम इसको ग्रहण करो ॥ ६० ॥ यह गन्धद्रव्योंसे प्रगट प्रीतिदायक दिव्य गंध है. हे अम्बिके ! यह प्रेमसे दिया गंधजल ग्रहण करो ॥ ६१ ॥ सब मंगलका रूप और सब मंगलका देनेवाला पुण्यदायक धूपको हे परमेश्वरी ! ग्रहण करो ॥६२॥ सुगंध युक्त सुखदायक मैंने तुमको निवेदन किया है यह जगत्के दर्शनके निमित्त दीप्तिकारक दीपक ॥ ६३ ॥ अंधकारके नाशका बीज मैंने तुमको निवेदन किया है, तुष्टि पुष्टिदायक प्रीतिदायक क्षुधानाशक ॥ ६४ ॥ पुण्य और स्वादुरूप यह नैवेद्य

ग्रहण करो, यह सुन्दर रम्य ताम्बूल कर्पूरादिसे सुवासित ॥ ६५ ॥ तुष्टि, पुष्टि दायक मैंने तुमको निवेदन किया है यह सुन्दर ठंडाजल पिपासानाशक ॥ ६६ ॥ जगत्का जीवरूप जीवन ग्रहण करो, देहका शोभास्वरूप सभाकी शोभा बढानेवाला ॥ ६७ ॥ सूत और रेशमका यह वस्त्र ग्रहण करो, सुवर्णादिका निर्मित लक्ष्मी करनेवाला श्रीयुक्त ॥ ६८ ॥ सुख और पुण्य देनेवाला यह पवित्र भूषण ग्रहण करो अनेक वृक्षोंसे उत्पन्न अनेक रूपसम्पन्न ॥ ६९ ॥ फलस्वरूप फलदायक यह फल ग्रहण करो, सब मंगलरूप सब मंगलोंका मंगलकर्ता ॥ ७० ॥ अनेक फूलोंसे निर्मित बहुतशोभा सम्पन्न प्रीति और पुण्यदायक वह माला ग्रहण करो ॥ ७१ ॥ हे देवि ! पुण्यदायक सुगंधभरी यह गंध ग्रहण करो, यह सुन्दर सिन्दूर मस्तककी शोभा बढानेवाला है ॥ ७२ ॥ भूषणोंमें श्रेष्ठ यह सिन्दूर ग्रहणकरो विशुद्ध ग्रंथियोंसे संयुक्त पुण्यसूत्रसे बने ॥ ७३ ॥ वेदमंत्रसे पवित्र इस यज्ञसूत्रको ग्रहण करो. यह द्रव्य मूलमंत्रसे देकर फिर बुद्धिमान् स्तोत्र पाठ करै ॥ ७४ ॥ फिर व्रती भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको दक्षिणा दे "सावित्र्यै स्वाहा" इस प्रकारसे ॥ ७५ ॥ लक्ष्मीबीज (श्रीबीज) मायाबीज (भुवनेश्वरीबीज) मन्मथबीज इन तीनबीज "पूर्वसावित्र्यैस्वाहा" यह मंत्र पढे माध्यन्दिनोक्त स्तोत्र सब कामनाका देनेवाला है ॥ ७६ ॥ यह ब्राह्मणोंका जीवनरूप है सुनो मैं आपसे कहता हूं कृष्णने गोलोकमें पहले ब्रह्माको सावित्री दी थी ॥ ७७ ॥ हेनारद ! वह उनके साथ ब्रह्मलोकमें आनेको सम्मत न हुई तब ब्रह्माजीने कृष्णकी आज्ञासे वेदमाताको सन्तुष्ट किया ॥ ७८ ॥ तब उसने प्रसन्न होकर ब्रह्माको स्वामित्वमें वरण किया ब्रह्माजी बोले सच्चिदानंदरूपे ! हेमूल प्रकृतिरूपवाली! ॥ ७९ ॥ हे हिरण्यगर्भरूपिणी सुन्दरि ! तुम प्रसन्न हो. हे तेजस्वरूपे हेपरमानंद रूपिणी ॥ ८० ॥ हेद्विजातियोंकी जातिरूप सुन्दरि ! प्रसन्न हो नित्य नित्य प्रिय देवी नित्यानंदस्वरूपिणी ॥ ८१ ॥ हे सब मंगलरूप सुन्दरी ! मुझपर प्रसन्न हो सर्वस्वरूप ब्राह्मणोंके मंत्रसार परात्पर ॥ ८२ ॥ हे सुखमोक्षकी देनेवाली सुन्दरि देवी ! प्रसन्न हो तुम ब्राह्मणोंके पापरूपी अग्निदाहके निमित्त जलती हुई अग्निकी शिखा हो ॥ ८३ ॥ हे ब्रह्मतेजकी देनेवाली सुन्दरीदेवी ! प्रसन्न हो मन वचन कर्मसे मनुष्य जो पाप करता है ॥ ८४ ॥ वह पाप तुम्हारे स्मरणमात्रसे भस्मीभूत होजाता है जगत्के धाता ऐसा कहकर उस सभामें स्थित हुए ॥ ८५ ॥ तब सावित्री ब्रह्माके साथ ब्रह्मलोकमें गई. हे नारदजी !

अश्वपतिने इसी स्तवराजसे भगवतीकी स्तुति की ॥ ८६ ॥ तब सावित्रीका दर्शन कर मनवांछित वर पाया यह पवित्र स्तवराज संध्याकरके जो पढना हैं ॥ ८७ ॥ वह इसके पाठसे चारवेद पढनेके फलको प्राप्त होता है ॥ ८८ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषायां षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः २७.

श्रीनारायण बोले अश्वपति इस मंत्रसे स्तुति कर विधिपूर्वक पूजन करने उपरान्त सहस्र सूर्यकी समान कांतिवाली देवीने उनको दर्शन दिया ॥ १ ॥ और वह प्रसन्न मुख राजासे बोली जैसे माता अपने पुत्रसे कहती है उनकी दशनकान्तिसे दिशायें प्रदीप्त होगईं ॥ २ ॥ सावित्री बोली हे राजन्! जो तुम्हारे मनवांछितहै मैं उसको जान्ती हूं जो तुम्हारी पत्नीको वांछित है वह मैं तुमको देती हूं ॥ ३ ॥ तुम्हारी साध्वी स्त्री कन्याकी अभिलाषी है और तुम पुत्रकी इच्छा करते हो तोभी क्रमसे प्राप्त होगा ॥ ४ ॥ ऐसा कहकर वह देवी ब्रह्मलोकको गई राजा अपने घर गये उनवे पहले कन्या हुई ॥ ५ ॥ सावित्रीके आराधनसे वह मानो दूसरी कमलाही हुई अश्वपतिः उसका नाम 'सावित्री' रक्खा ॥ ६ ॥ फिर वह समयानुसार दिन २ बढने लगी, वह शुक्लपक्षमें चन्द्रमाके समान बढती हुई रूपयौवन सम्पन्न हुई ॥ ७ ॥ तब उसने द्युमत्सेनके पुत्रको वरणकिया, जो सत्यवान् सत्यशील अनेकगुणसम्पन्न था ॥ ॥ ८ ॥ राजाने अपनी उस सब भूषणोंसे भूषित कन्याको द्युमत्सेनको दिया वह भी उसको कौतुकसे लेकर घरगया ॥ ९ ॥ वह सत्यवान् सत्यविक्रमी संवत्सर बीचनेमें पिताकी आज्ञासे वनमें फल और काष्ठ लेनेगया ॥ १० ॥ दैवयोगसे उस दिन सावित्रीभी सत्यवान्के संग गई वहां वृक्षसे निपतित होनेसे सत्यवानका शरीर छूटगया ॥ ॥ ११ ॥ यमराज उस पुरुषको अंगुष्ठ प्रमाणका शरीरसे लेकर चले पतिव्रताधर्मके प्रभावसे सावित्रीने यमराजको देखा और उनके पीछे २ चली ॥ १२ ॥ संयमनीपति यमराज इसप्रकार उस धर्मशीलाको देखकर साधुओंमें प्रवर महानुभावतासे कहने लगे ॥ १३ ॥ अहो सावित्री ! मानुषीशरीरसे तुम कहाँ जातीहो यदि जाना चाहती हो तो यह देह त्यागनकर चलो ॥ १४ ॥ पांचभौतिक शरीरसे कोई मनुष्य हमारे यहां जानेको समर्थ नहीं है कारण कि पांचभौतिक देह नश्वर है ॥ १५ ॥

तुम्हारे स्वामिकी आयु पूरी होगई अपने कर्मफल भोगनेको सत्यवान् मेरे लोकको जाता है ॥ १६ ॥ कर्मसेही यह प्राणी प्रगट होकर कर्मसेही लय होता है सुख दुःख भय शोक कर्मसेही प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ कर्मसेही यह जीव इन्द्र कर्मसेही ब्रह्मपुत्र होता है अपने कर्मसेही हरिका दास और जन्मादि रहित होता है ॥ १८ ॥ अपने कर्मसेही सब सिद्धि और अमरत्व प्राप्त होता है और कर्मसेही विष्णुके सालोक्यादि चारलोक प्राप्त होते हैं ॥ १९ ॥ देवत्व मनुष्यत्व राजेन्द्रत्व शिवत्व गणेशत्व कर्मसेही मनुष्यको प्राप्त होता है ॥ २० ॥ मुनीन्द्रपन तपस्वीपन, क्षत्रिय तथा वैश्यत्व सब कर्मसेही प्राप्त होता है ॥ २१ ॥ इसमें सन्देह नहीं कर्मसेही म्लेच्छत्व होता है जंगमपन और शैलत्वभी कर्मसेही प्राप्त होता है ॥ २२ ॥ कर्मसे राक्षसत्व किन्नरत्व प्राप्त होता है आधिपत्य और वृक्षत्व प्राप्त होता है ॥ २३ ॥ कर्मसेही पशुत्व और वनजीवी होता है कर्मसेही क्षुद्र जन्तुपन कृमिपन प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ दैत्यदानव असुरत्व सब अपने कर्मसे प्राप्त होते हैं सावित्रीसे यह कहकर यमराज मौन हुए ॥ २५ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषायां सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः २८.

श्रीनारायण बोले पतिव्रता सावित्री यमके यह वचन सुन परमभक्तिसे यमको प्रसन्न करती हुई बोली ॥ १ ॥ सावित्री बोली कर्मका स्वरूप क्या है कैसे वह होता है उसका हेतु क्या है देही और देह क्या है तथा इसमें कर्म करनेवाला कौन है ॥ २ ॥ ज्ञान, बुद्धि, शरीरियोंका प्राण इन्द्रिय यह क्या हैं इनके लक्षण और देवता क्या हैं ॥ ३ ॥ भोक्ता और इसको भुगानेवाला कौन है भोग और इसकी निष्कृति क्या है, जीव और परमात्मा क्या है? इसकी व्याख्या आप हमसे कीजिये ॥ ४ ॥ धर्मने कहा वेदमें जिसके करनेकी आज्ञा है वही धर्म है, उसका करनाही परममंगल है और जो अवैदिक कर्म है वही अशुभ और नरकका देनेवाला है ॥ ५ ॥ जो देवसेवा विनाकारण संकल्परहित होकर कीजाती है वही सेवा कर्मकी निर्मूल करनेवाली परमभक्तिदायका है ॥ ६ ॥ जा मनुष्य ब्रह्मभक्त है वही श्रुतियोंमें मुक्तकहागया है उसको कौन कर्मफलका भोक्ता और कौन

निर्लिप्त है यह कुछ नहीं है ॥ ७ ॥ वह जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, शोक और भयसे वर्जित होता है वेदमें कही भक्ति दोप्रकारकी है ॥ ८ ॥ एक निर्वाणपद देनेवाली निर्गुण भक्ति है दूसरी सगुण भक्ति हरिरूप देनेवाली है हरिरूपस्वरूप भक्तिकी वैष्णव इच्छाकरते हैं ॥ ९ ॥ और जो ब्रह्मवियोगी हैं वे निर्वाणपदकी इच्छा करते हैं अब कर्मका उपादानकारण कहते हैं जो परमात्मा है वही कर्मरूप बीजका फलदेनेवाला है ॥ १० ॥ कर्मरूप भगवान् हैं, जो परात्मा है और पराप्रकृति उसकाहेतु है अर्थात् सृष्टिकी सृष्टि स्थिति संहार कर्मवाले भगवान् हैं मूल प्रकृति इसका उपादान कारण है विवृत तथा निमित्त कारण है उसमें अविद्या उपादान अर्थात् अविद्यामें चित्प्रतिविम्ब निमित्त कारण ब्रह्म विवृत कारण है अविद्यासे काम और कामसे कर्म होताहै इससे निमित्तकारण अदृष्टरूप विना कहे भी अर्थसे जानलेना, देह नश्वररूप है ॥ ११ ॥ पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, तेज यह ब्रह्माकी सृष्टिरूप विधिमें सूत्ररूप हैं ॥ १२ ॥ जो कर्मकर्ता जीव है वही देही है. वही भोक्ता है अन्तर्यामी आत्मा उसका भुगानेवाला है विभवके भेद सुख दुःख साक्षात्कार पर्यन्त भोग है आत्मामें अवस्था न होनेको निष्कृति मुक्ति कहते हैं ॥ १३ ॥ सत् आत्मा और असत् माया इनके भेदका बीजरूप कारण ज्ञान है अर्थात् अपरोक्ष आत्मवस्तु विषय ब्रह्मविद्या ज्ञान है वह अनेकविध घटपटादि विषय तथा विषयोंके जो परस्पर विभाग हैं उनका भेदक सब वासनाओंका बीज है ॥ १४ ॥ सबकी विवेचना करने वाली बुद्धि ज्ञानका बीज है. ऐसा श्रुतिमें कहागया है और वायुके भेद पांच प्राण देहधारियोंको बलरूप हैं ॥ १५ ॥ मनका रूप कहते हैं इन्द्रियोंमें श्रेष्ठ ईश्वरका अंश अर्थात् ईश्वर परमात्माका बिम्बभूत संशयात्मक कर्मों अर्थात् इन्द्रियविकारका प्रेरण करनेवाला देहधारियोंको स्वाधीन करनेमें अशक्य ॥ १६ ॥ निरूपण करनेमें अशक्य, दीखनेमें न आनेवाला, बुद्धिके भेदवाला मन है उसको ज्ञानेन्द्रिय कहते हैं. लोचन, श्रवण, नासिका, त्वचा, रसना इन्द्रियोंका ॥ १७ ॥ तथा अंगियोंका अवयवरूप सब कर्मेंद्रियव्यापारोंका प्रेरक है रिपुरूप मित्ररूप सुखरूप तथा दुःखदायी है इन्द्रियोंमें आसक्त होनेसे रिपुरूप दुःखदाई होता है सद्विषयोंमें आसक्त होनेसे मित्ररूप सुखदाई है ॥ १८ ॥ इन्द्रियोंके देवता सूर्य, वायु, पृथ्वी, ब्रह्मादिक है, विस्तारसे दिशा वायु, सूर्य, प्रचेता, अश्विनीकुमार, अग्नि यह है. जो प्राण देहादिका धारक है वह अन्तःकरणमें प्रतिबिम्बरूप जीव कहाता है ॥ १९ ॥ परमात्माका स्वरूप कहते हैं, जो

परमव्यापक ब्रह्म निर्गुणप्रकृतिसे परे है और कारणोंका भी कारणहै उसको परमात्मा कहते हैं ॥ २० ॥ हे देवी ! जो तुमने शास्त्रकी बात पूँछी सो तुमसे सब कही यह ज्ञानियोंको ज्ञानरूप है हे. वत्से! अब तुम यथासुख गमन करो ॥ २१ ॥ सावित्री बोली अपने स्वामीको और ज्ञानके सागर तुमको त्यागकर मैं कहां जाऊं ? जो मैं तुमसे प्रश्नकरूं सो आप उत्तर दीजिये ॥ २२ ॥ हे पिता ! किस २ कर्मसे यह प्राणी किस २ योनियोंमें गमनकरता है किसकर्मसे स्वर्ग और किसकर्मसे नरक होता है ॥ २३ ॥ किसकर्मसे मुक्ति और किसकर्मसे गुरुमें भक्ति होती है किसकर्मसे योगी और किसकर्मसे रोगी होता है ॥ २४ ॥ किसकर्मसे दीर्घजीवी और किसकर्मसे अल्पायु होता है किसकर्मसे दुःखी और सुखी होता है ॥ २५ ॥ अंगहीन, काणा, बहरा, अंधा, पंगु, प्रमत्त किसकर्मसे होता है ॥ २६ ॥ क्षिप्त, अतिलोभी, चोर, किस-कर्मसे होता है और सिद्धि सालोक्यादिचतुष्टय किसकर्मसे प्राप्त होता है ॥ २७ ॥ ब्राह्मणत्व तपस्वित्व स्वर्गभोगादि वैकुण्ठ किसकर्मसे प्राप्त होता है ॥ २८ ॥ सबसे उत्कृष्ट निरामय गोलोक किसकर्मसे प्राप्त होता है नरक कितने हैं उनकी संख्या और नाम कहिये ॥ २९ ॥ कौन नरकमें जाना कितनेकाल वहां रहना होता है पापियोंकी किसकर्मसे क्या व्याधि होती है ॥ ३० ॥ जो मैंने आपसे पूँछा सो मुझसे कहिये ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः २९.

श्रीनारायण बोले सावित्रीके वचन सुन यमराज अति विस्मित हुए और हँसकर जीवोंका कर्मविपाक कहनेलगे ॥ १ ॥ धर्म बोले हे वत्से ! अवस्थामें तौ तुम द्वादश वर्षीया कन्या हो और ज्ञान तुम्हारा ज्ञानी योगियोंसे भी अधिक है॥ २ ॥ सावि-त्रीके वरदानसे तुम सावित्रीकी कला हो राजाने तपसे तुमको प्राप्त किया है ॥ ३ ॥ जैसे लक्ष्मी भगवान्‌की गोदमें, भवानी शिवकी गोदमें, अदिति, कश्यप, अहिल्या, गौतमके समीप ॥ ४ ॥ शची महेन्द्रसे, रोहिणी चन्द्रमासे, रति कामसे, स्वाहा अग्निसे ॥ ५ ॥ स्वधा पितरोंमें, संज्ञा दिवाकरमें, वरुणानी वरुणमें, दक्षिणा यज्ञमें ॥ ६ ॥ पृथ्वी वराहमें, देवसेना कार्तिकेयमें अनुरक्त हैं अर्थात् जैसे देवताओंकी यह स्त्रियें अखंडित सौभाग्य

वाली है इसीप्रकार तुम सत्यवान्में अखण्ड सौभाग्यवाली हो ॥ ७ ॥ यह मैं ने तुझको वर दिया है हे महाभागे! और भी जो तेरी इच्छा हो वह वर मांग मैं तुझको दूंगा ॥ ८ ॥ सावित्री बोली हे महाभाग ! सत्यव्रतके औरससे मेरे सौ पुत्रहों यही वर मुझको दीजिये ॥ ९ ॥ मेरे पिताके भी सौ पुत्र हों श्वशुर नेत्रविहीन हैं उनके नेत्र होजांय और उनका राज्य उनको प्राप्तहोजाय यही वर मुझको दो ॥ १० ॥ अन्तमें सत्यवान्के सहित हरिमंदिरमें मेरा गमन हो लक्षवर्षके उपरान्त सत्यवान् और मैं इसलोकसे गमन करैं ॥११॥ तथा जीवोंके कर्मविपाक सुननेका मुझे परम कौतूहल है वही विश्वके निस्तारका बीज है सो आप मुझसे कहिये ॥ १२ ॥ धर्म राज बोले हे महासाध्वि! तेरे सब मनोरथ पूर्णहोंगे जीवोंका कर्मविपाक कहता हूं सुनो ॥ १३ ॥ इस पुण्यक्षेत्रभारतवर्षमें शुभाशुभकर्मोंसे ही जन्म होता है दूसरे स्थानोंमें केवल पुण्य वा पापही भोगा जाता है ॥ १४ ॥ सुर, दैत्य, दानव, गंधर्व-राक्षसादि यह सब नर कर्मके करनेवाले हैं पश्वादि सब जीव कर्मकारी नहीं है ॥१५॥मुख्यजीव कर्माधिकारी मनुष्यही सब योनियोंमें कर्म भोगते हैं स्वर्ग नरकमें शुभ अशुभ सर्वत्र है ॥ १६ ॥ विशेषकर यह जीव सब योनियों में भ्रमता है और पूर्व अर्जित कर्मके अनुसार अशुभ भोगता है ॥१७॥ शुभकर्मसे स्वर्गलोका-दिमें गमन करता है अशुभकर्मोंसे नरकमें भ्रमण करना होता है ॥ १८ ॥ कर्मके निर्मूल करनेका साधन भक्ति है वह दो प्रकारकी है एक निर्वाणरूप निर्गुण भक्ति और दूसरी मायाविशिष्ट ब्रह्मरूपिणी है ॥ १९ ॥ बुरेकर्म करनेसे रोगी और अच्छेकर्मसे अरोगी होता है दीर्घजीवी सुखी शुभकर्मसे अल्पायु और दुःखी दुष्ट-कर्मसे होता है ॥ २० ॥ अंधे और हीनांग खोटेकर्मोंसे होते हैं सर्वोत्कृष्ट कर्मोंसे सिद्धि आदिको प्राप्त होता है ॥ २१ ॥ हे देवी ! यह आपसे सामान्यसे कहा अब विशेषरूपसे सुनो यह पुराणस्मृतियोंमें दुर्लभ है इसको भलीप्रकार गुप्त रखना चाहिये ॥ २२ ॥ भारतकी सब जातियोंमें मानुषीजाती बडी दुर्लभ है इन सबमें ब्राह्मण श्रेष्ठ है और वह सबकर्म में श्रेष्ठ हैं ॥ २३ ॥ भारतमें ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ है निष्काम सकामभेदसे ब्राह्मण दो प्रकारके हैं ॥ २४ ॥ सकाम ब्राह्मण लोक-प्रधान है और निष्काम भक्त है कर्मभोगी सकाम है और निष्काम उपद्रवरहित है ॥ २५ ॥ वह निष्काम देहत्यागकर निरामय पदको गमन करता है उन निष्कामि-योंका फिर आगमन नहीं होता ॥ २६ ॥ जो परमात्मा ईश्वर द्विभुज कृष्णका

सेवन करते हैं वह दिव्यरूपधारी भक्त गोलोकमें निवास करते हैं ॥ २७ ॥ सकामी वैष्णव वैकुण्ठमें जाकर फिर भारतमें आय द्विजातियोंमें जन्म ग्रहण करते हैं ॥ २८ ॥ फिर वे कालपाय क्रमसे निष्कामी होते हैं मैं उनकी निर्मल भक्ति प्रदान करता हूं ॥ २९ ॥ अवैष्णव ब्राह्मण सब जन्ममें सकाम होते हैं विष्णुभक्तिरहित होनेसे उनकी बुद्धि निर्मल नहीं होती ॥ ३० ॥ जो ब्राह्मण तीर्थमें आश्रित और तपस्यामें निरत हैं वह ब्रह्मलोकतक जाकर फिर भारतमें आते हैं ॥ ३१ ॥ जो अपने धर्ममें निरत हुए तीर्थ वा अन्यत्र कहीं निवास करते हैं वे सत्यलोकमें जाकर फिर भारतमें आते हैं ॥ ३२ ॥ स्वधर्ममें निरतब्राह्मण सूर्यभक्त होनेसे सूर्यलोकमें गमनकर फिर भारतमें आते हैं ॥ ३३ ॥ मूलप्रकृतिके भक्त निष्काम ब्रह्मचारी महात्मा मणिद्वीपमें जाकर फिर नहीं आते हैं ॥ ३४ ॥ अपने धर्ममें निरत शैव, शाक्त, गाणपत्य, शिवादिलोकमें गमनकर फिर भारतमें आते हैं ॥ ३५ ॥ जो ब्राह्मण अपने धर्ममें निरतहुए अन्यदेवताओंका यजन करते हैं वे सबलोकोंमें गमनकरते फिर भारतमें आते हैं ॥ ३६ ॥ जो हरिभक्त निष्काम ब्राह्मण स्वधर्ममें तत्पर भक्त हैं वे अपनी भक्तिके बलसे हरिलोकमें गमन करते हैं ॥ ३७ ॥ अपने धर्मसे रहित ब्राह्मण देवताओंके त्याग भूत प्रेतादिका सेवनकरते हैं वे भ्रष्टाचार अवश्य नरकमें जाते हैं ॥ ३८ ॥ चारोंवर्ण अपने धर्ममें तत्पर हुए शुभकर्मके फलभोगी होते हैं ॥ ३९ ॥ जो अपने कर्मसे रहित हैं वेही नरकमें जाते हैं वह अपने कर्मफलभोगनेकेकारण भारतवर्षमें नहींहोते ॥ ४० ॥ चारोंवर्ण अपने धर्ममें निरतहुए शुभफल पाते हैं अपने धर्ममें निरत ब्राह्मण अपने धर्ममें निरत ॥ ४१ ॥ ब्राह्मणको कन्या देताहै वह चन्द्रलोकमें गमन करता है.हेसाध्वि ! वे चौदह इन्द्र भोग कालतक इन्द्रलोकमें निवास करते हैं ॥ ४२ ॥ अलंकृत कन्यादानसे दूना फल मिलता है. सकामा उस लोकको जाते हैं निष्कामा नहीं ॥ ४३ ॥ वे फलसंघातसे रहित विष्णुलोकको जाते हैं. घी, चांदी, सोना, वस्त्र, दूध, फल, जल ॥ ४४ ॥ जो ब्राह्मणोंको देते हैं वे चन्द्रलोकमें गमन करते हैं वे एकमन्वन्तरपर्यन्त उस लोकमें निवास करते हैं ॥ ४५ ॥ इसप्रकार वे प्राणी वहां बहुत कालपर्यन्त निवास करते हैं जो सुवर्ण और ताम्रसे अलंकृत कर गोदान करते हैं ॥ ४६ ॥ वे पवित्र ब्राह्मणको देनेवाले सूर्य लोकमें निवास करते हैं वे उन लोकोंमें दशसहस्र वर्षतक निवास करते हैं ॥ ४७ ॥ वे उन लोकोंमें चिरकालतक निरामय हो निवास करते हैं अनेक धन भूमि जो ब्राह्मणोंको देते हैं ॥ ४८ ॥

वह मनोहर श्वेतद्वीप और विष्णुलोकमें गमन करते हैं वह चन्द्रदिवाकरको स्थिति पर्यन्त वहां रहते हैं ॥ ४९ ॥ और वह विपुल लोकमें बहुत समयतक निवास करते हैं जो मनुष्य भक्तिपूर्वक ब्राह्मणके निमित्त घर देते हैं ॥५०॥ वह सुखदायक विष्णुलोकमें बहुत समयतक रहते हैं उसकी रेणुप्रमाणतक विष्णुलोकमें महाप्रतिष्ठा होती है ॥ ५१ ॥ ऐसा होनेसे मनुष्य विपुललोकमें बहुत काल निवास करते हैं जो मनुष्य जिस जिस देवताके निमित्त घर देता है उस घरकी जितनी रेणु हैं उतने वर्षतक वह उसी देवताके लोकमें निवास करता है राज महलका चौगुना पुण्य और देशका सौगुनापुण्य होता है॥ ५२॥५३॥प्रकृष्ट देशका इससे दूना पुण्य है ऐसा ब्रह्माजीने कहा है जो सब पापनाशके निमित्त सरोवर दान करता है ॥ ५४ ॥ वह उसके रेणुप्रमाण वर्षोंतक जनलोकको जाता है बावडीका इससे दशगुण फल मनुष्यको प्राप्त होता है "चार हाथका एक धनुष चार सहस्र धनुषकी वापी होती है दोसहस्रधनुषका कोश होता है"॥ ५५ ॥ वापीप्रदानसे भी तडागका फल प्राप्तहोता है जिसकी दीर्घता चारसहस्रधनुष हो ॥ ५६ ॥ उतनीही चौडी वा उससे कुछ न्यून हो तो वह वापी कहाती है यदि पात्रको दीजाय तो कन्यादानका इससे दशगुणा पुण्य है ॥ ५७ ॥ यदी कन्या अलंकारयुक्त हो तो दूना फल देती है जितना फल तडाग खुदानेमें है उतना ही उसके जीर्णोद्धारमें है ॥ ५८ ॥ बावडीकी पंक निकलवानेमें वापीदानका ही फल है जो पीपलका वृक्ष लगाकर उसकी प्रतिष्ठा करता है ॥ ५९ ॥ वह दशसहस्रवर्ष तपलोकमें जाता है. हे सावित्री!जो सबके निमित्त फूलोंका उद्यान लगाता है देता है ॥ ६० ॥ वह दशसहस्रवर्ष ध्रुवलोकमें निवास करता है जो भारतवर्षमें विष्णुके निमित्त विमान देता है ॥ ६१ ॥ वह मन्वन्तरपर्यन्त विष्णुलोकमें निवास करता है और जो चित्रयुक्त विपुलविस्तारका विमान देता है उसका चौगुना फल होता है ॥ ॥ ६२. ॥ पालकीदानका इससे आधा फल है जो भक्तिपूर्वक हरिके निमित्त दोल झूले योग्यस्थानवाले मन्दिरको देता है ॥ ६३ ॥ वह सौ मन्वन्तरतक विष्णु लोकमें निवास करता है, हे पतिव्रते! जो महलयुक्त राजमार्गको करता है ॥६४॥ वह दशसहस्रवर्ष इन्द्रलोकमें निवास करता है ब्राह्मण और देवताके निमित्त दानमें समान फलहोता है ॥६५॥ जो दिया है सोई भोगाजाता है विनादिये नहीं मिलता स्वर्गादिसुख भोगकर यह पुण्यात्मा प्राणी भारतमें जन्म लेकर ॥ ६६ ॥ ब्राह्मण

होता है क्रमसे उत्तम गतिको प्राप्त होता है भारतमें पुण्यवान् ब्राह्मणस्वर्गादि फल भोग कर फिर ॥ ६७ ॥ विप्रही होता है इसी प्रकार क्षत्रियादि जानने. क्षत्रिय,वैश्य,कोई क्यों नहो सौ कोटिकल्पमें भी ॥ ६८ ॥ तपस्याकरके ब्राह्मण नहीं बनता जन्मसे ही होता है यह श्रुतिमें कहा है सौ कोटिकल्पमें भी विनाभोगे कर्मका क्षय नहीं होता ॥ ६९ ॥ शुभाशुभ किया कर्म अवश्यही भोगना होता है देव और तीर्थकी सहायतासे कायव्यूहसे शुद्धहोजाता है॥७०॥यह कुछ तुमसे कहा अब और क्या सुननेकी इच्छा है ॥ ७१ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषायां ऐकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

त्रिंशोऽध्यायः ३०.

सावित्री बोली हे भगवन् यम ! जिस कर्मसे यह प्राणी स्वर्गमें गमनकरते हैं वेपुण्य वान् मनुष्य होते हैं वह आप हमसे कहिये ॥ १ ॥ धर्म बोले इस भारतमें जो अन्नदान करते हैं वह अन्नके जितने रेणु हैं उतने समयतक शिवलोकमें प्रतिष्ठा पाते हैं ॥ २ ॥ यह अन्नदान महादान है जो ब्राह्मणोंसे अतिरिक्तके निमित्त देता है वह अन्नदानके प्रमाणसे शिवलोकमें प्रतिष्ठा पाता है ॥ ३ ॥ अन्नदानकी समान न कुछ और दान है न होगा इसमें पात्रपरीक्षा और कालका नियम नहीं है ॥ ॥ ४ ॥ यदि देवता और ब्राह्मणोंके निमित्त आसनदेता है वह दशसहस्रवर्ष विष्णु लोकमें प्रतिष्ठा पाता है ॥ ५ ॥ जो ब्राह्मणको दिव्य दुधारी गाय देता है वह उसके रोमप्रमाणवर्षतक विष्णुलोकमें महिमा पाता है ॥६॥ पुण्यदिन दानकरनेसे चौगुना तीर्थमें सौगुणा, नारायणक्षेत्रमें दानका कोटि गुना फल है ॥ ७ ॥ जो भक्तिपूर्वक भारतमें ब्राह्मणको गौ देता है वह१००००दश सहस्रवर्षतक चन्द्रलोकमें प्रतिष्ठा पाता है ॥ ८ ॥ जो ब्राह्मणको उभयमुखी गौदान करता है उसके लोममान वर्षतक विष्णु लोकमें प्रतिष्ठा पाता है ॥ ९ ॥ जो ब्राह्मणको मनोहर श्वेतछत्र देता है वह अयुत १०००० वर्ष वरुणलोकमें प्रतिष्ठा पाता है ॥ १० ॥ जो पीडितशरीर ब्राह्मणके निमित्त दो वस्त्र देता है वह अयुतवर्ष वायुलोकमें प्रतिष्ठा पाता है ॥ ११ ॥ जो

---

१ गर्भिणी ।

ब्राह्मणके निमित्त सवस्त्र शालिग्राम देता है, वह चन्द्रसूर्यकी स्थितितक वैकुण्ठमें निवास करता है ॥१२॥ जो ब्राह्मणको दिव्य मनोहर शय्या देता है वह चन्द्र सूर्यकी स्थितितक चन्द्रलोकमें प्रतिष्ठा पाता है ॥ १३ ॥ जो देवता ब्राह्मणके निमित्त दीपदान करता है वह मन्वन्तरपर्यन्त वह्निलोकमें प्रतिष्ठा पाता है ॥ १४ ॥ जो भारतमें ब्राह्मणके निमित्त गजदान करता है वह इन्द्रकी आयुपर्यन्त इन्द्रके अर्ध आसनमें निवास करता है ॥ १५ ॥ जो भारतमें ब्राह्मणके निमित्त अश्वदान करता है वह चौदह इन्द्रकी स्थितिपर्यन्त वरुणलोकमें निवास करता है ॥ १६ ॥ जो ब्राह्मणको पालकी दान करता है वह चौदह इन्द्रकी स्थितिपर्यन्त वरुणलोकमें निवास करता है ॥ १७ ॥ जो ब्राह्मणको श्रेष्ठ बगियाका दान करता है वह मन्वन्तरपर्यन्त वायुलोकमें निवास करता है ॥ १८ ॥ जो ब्राह्मणको व्यजन और श्वेतचामर देते हैं वह दशसहस्रवर्ष वायुलोकमें निवास करते हैं ॥ १९ ॥ धान्य और रत्नदेनेवाला चिरजीवी होता है. इसके दाता ग्रहीता दोनों वैकुंठको जाते हैं ॥ ॥ २० ॥ इस भारतमें जो मनुष्य निरन्तर श्रीहरिका नाम जपता है वह चिरजीवी होता है उससे मृत्यु पलायमान होती है ॥ २१ ॥ जो मनुष्य भारतवर्षमें दोलोत्सव कराता है पूर्णिमा और रात्रिके शेषमें इस उत्सवका करनेवाला जीवन्मुक्त होता है ॥ २२ ॥ इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें विष्णुमन्दिरको जाता है और निश्चय वहां सौ मन्वन्तरतक निवास करता है ॥ २३ ॥ उत्तराफाल्गुनीमें इससे भी दूना फल होता है वह कल्पान्तजीवी होता है यह ब्रह्माजीका कथन है ॥ २४ ॥ जो भारतमें ब्राह्मणके निमित्त तिल दान करता है वह तिल जितने हों उतने वर्षतक शिवमंदिरमें निवास करता है ॥ २५ ॥ फिर अच्छीयोनिको प्राप्त होकर चिरजीवी सुखी होता है ताम्रपात्रके दानसे इससे दूना फल होता है ॥ २६ ॥ जो अलंकारसम्पन्न सवस्त्रा सुन्दरी पतिव्रता अपनी भार्याको ब्राह्मणके निमित्त दान करता है ॥ २७ ॥ वह मन्वन्तरपर्यन्त चन्द्रलोकमें निवास करता है " पतिव्रताका दान कर फिर उसके भार वा यथाशक्ति सुवर्ण ब्राह्मणोंको देकर उसे ग्रहण करे अन्यथा दाता प्रतिग्रहीता दोनों नरकमें जाते हैं यह पतिव्रता शब्दही सूचित करता है स्कन्दमें कहा है " स्त्रियं दत्वा ततस्तां तु क्रीणीयात्कांचनादिना " और वहां वह अप्सराओंके साथ निरन्तर क्रीडा करता है ॥ २८ ॥ फिर दशसहस्रवर्ष गंधर्वलोकमें दिनरात कौतुक देखता उर्वशीके साथ प्रसन्न होता है ॥ २९ ॥ और सहस्रजन्मतक सुन्दरीप्रि-

याको प्राप्त होता है जो सती सौभाग्ययुक्त कोमल और प्रियवादिनी होती है ॥ ॥ ३० ॥ जो मनुष्य ब्राह्मणके निमित्त श्रेष्ठ फल देता है वह फलप्रमाणवर्षतक इन्द्रलोकमें प्रतिष्ठा पाता है ॥ ३१ ॥ फिर सुयोनिको प्राप्त हो सुन्दर पुत्र लेता, फलयुक्त सहस्रवृक्षोंका दान प्रसंशनीय है ॥ ३२ ॥ अथवा जो ब्राह्मणोंको केवल फलदान करता है वह बहुतकाल स्वर्गमें रहकर फिर भारतमें आता है ॥ ३३ ॥ अनेक द्रव्य और धान्ययुक्त घर जो भारतमें ब्राह्मणको देता है ॥ ३४ ॥ वह सौ मन्वन्तरपर्यन्त स्वर्गलोकमें निवास करता है फिर सुयोनिको प्राप्त हो महाधनी होता है ॥ ३५ ॥ जोब्राह्मण पुण्यक्षेत्र भारतमें सस्ययुक्त भूमि ब्राह्मणको देता है ॥ ३६ ॥ वह सौ मन्वन्तर वैकुंठमें वास करताहै फिर सुयोनिको प्राप्त हो महान् राजा होता है ॥ ३७ ॥ सौ जन्मभी उसको भूमि त्यागन नहीं करती वह श्रीमान् धनवान् पुत्रवान् प्रजेश्वर होताहै ॥ ३८ ॥ जो गोठसहित अच्छा ग्राम ब्राह्मणको देते हैं वह लाख मन्वन्तरतक वैकुंठमें रहते हैं ॥ ३९ ॥ फिर सुयोनिको प्राप्त होकर लाखग्रामसे युक्त होता है लाख जन्मभी उसको पृथ्वी त्यागन नहीं करती है ॥ ४० ॥ भली प्रजायुक्त प्रकृष्ट पक्वशस्यसम्पन्न अनेक पुष्करिणी वृक्ष फल वल्लीसे सम्पन्न ॥ ४१ ॥ नगर जो भारतमें ब्राह्मणके निमित्त देता है वह कैलासमें दशलाख इन्द्रके कालपर्यन्त प्रसन्न रहता है ॥ ४२ ॥ फिर सुयोनिको प्राप्त हो भारतमें राजेन्द्र होता है वह एक नियुत (१००००००) नगर प्राप्त करता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ४३ ॥ दशसहस्र जन्मपर्यन्त भी भूमि उसको त्यागन नहीं करती महीतलमें परम ऐश्वर्यसम्पन्न होता है ॥ ४४ ॥ जो ब्राह्मणोंको नगरोंका शतक सुप्रकृष्ट मध्यकृष्ट प्रजायुक्त देता है ॥ ४५ ॥ तथा तडागसंयुक्त वापी अनेक वृक्षसंयुक्त देता है वह कोटिमन्वन्तरतक वैकुण्ठमें प्रतिष्ठा पाता है ॥ ४६ ॥ फिर सुयोनिको प्राप्त होकर जम्बूद्वीपका अधिपति होता है. स्वर्गमें जैसे इन्द्र, इसप्रकार परम ऐश्वर्यसम्पन्न होता है ॥ ४७ ॥ कोटिजन्मतक भी उसको पृथ्वी नहीं छोडती वह राजराजेश्वर कल्पान्तजीवी होता है ॥ ४८ ॥ जो अपना समस्त अधिकार ब्राह्मणको देता है उसको अन्तमें उसका चौगुना फल होता है ॥ ४९ ॥ जो तपस्वी ब्राह्मणको जम्बूद्वीपका अधिकार देता है उसको अन्तमें उसका सौगुणा फल होता है ॥ ५० ॥ जम्बूद्वीपका पृथ्वीका दान, सब तीर्थोंका सेवन सब तपस्या सब त्रासकारी ॥ ५१ ॥ सब दानके देनेवाले सब सिद्धेश्वरदर्शनसे पुनरावृत्ति होती है परन्तु महेशानीके भक्त फिर नहीं लौटते ॥ ५२ ॥ जो मणिद्वीपमें श्रीदेवीके परमपदमें निवास करते हैं

उन्होंने असंख्य ब्रह्माओंका पात देखा है ॥ ५३ ॥ देवीमंत्रके उपासक मानवी शरीर त्यागकर जरामृत्युरहित दिव्यरूप और ऐश्वर्यको प्राप्त हों ॥ ५४ ॥ देवीके सारूप्यको प्राप्त होकर देवीकी सेवाको करते हैं और मणिद्वीपमें अखण्ड लोकसंक्षय देखते हैं ॥ ५५ ॥ देव सिद्ध और सब विश्व नष्ट होते हैं, परन्तु जन्म मृत्यु जराके हरनेवाले देवीके भक्त नष्ट नहीं होते हैं ॥ ५६ ॥ जो कार्तिकमें हरिके निमित्त तुलसी दान करते हैं वह तीनयुगपर्यन्त हरिमन्दिरमें निवास करते हैं ॥ ५७ ॥ फिर सुयोनिको प्राप्त होकर हरिभक्तिको प्राप्त होते हैं वह भारतभूमिमें जितेन्द्रियोंमें श्रेष्ठ होते हैं ॥ ५८ ॥ जो अरुणोदयके समय गंगाके मध्यमें स्नान करते हैं, वह साठ सहस्रयुगतक हरिमंदिरमें निवास करता है ॥ ५९ ॥ फिर सुयोनिको प्राप्त होकर श्रेष्ठ हरिभक्तिको प्राप्त होते हैं. मनुष्यदेह त्याग करनेपर फिर हरिके पदको जाते हैं ॥ ६० ॥ वैकुण्ठसे भूलोकमें फिर आवृत्ति नहीं होती. हरि अपने दासोंको सारूप्य मुक्ति देते हैं ॥ ६१ ॥ गंगामें नित्य स्नानकरनेवाला सूर्यके समान पृथ्वीमें पवित्र होता है और पद पदमें उसको अश्वमेधका फल मिलता है ॥ ६२ ॥ उसीकी पादरजसे भूमि शीघ्र पवित्र होती है, वह चन्द्र दिवाकर पर्यन्त वैकुण्ठमें निवास करता है ॥ ॥ ६३ ॥ फिर सुयोनिको प्राप्त हो हरिकी परमभक्तिको प्राप्त होता है, वह जीवन्मुक्त तेजस्वी तपस्विप्रवर होता है ॥ ६४ ॥ तथा स्वधर्ममें निरत शुद्धविद्वान् जितेन्द्रिय होता है जैसे मीन और कर्कके मध्यमें सूर्य गाढरूपसे तपता है ॥ ६५ ॥ जो भारतमें किसीको सुगंधित जल देता है वह चौदह इन्द्रपर्यन्त कैलासमें प्रसन्न होता है ॥ ६६ ॥ फिर सुयोनिको प्राप्त होकर रूपवान् और सुखी होता है शिवभक्त तेजस्वी वेदवेदाङ्गका पारगामी होता है ॥ ६७ ॥ जो वैशाखमें ब्राह्मणको सत्तु दान करता है वह सत्तुके कणप्रमाण वर्षोंतक शिवमंदिरमें प्रसन्न रहता है ॥ ६८ ॥ जो भारतमें कृष्णजन्माष्टमीव्रत करता है निःसन्देह उसके सौ जन्मके पाप नष्टहो जाते हैं ॥ ६९ ॥ चौदह इन्द्रकी आयुपर्यन्त वह निःसन्देह वैकुण्ठमें निवास करता है फिर सुयोनिको प्राप्तहो कृष्णभक्ति लेते हैं ॥ ७० ॥ इस भारतवर्षमें जो शिवरात्रिका व्रत करते हैं वह सातमन्वन्तरपर्यन्त शिवलोकमें निवास करते हैं ॥ ७१ ॥ जो शिवरात्रिमें शिवके निमित्त बेलपत्र देता है वह पत्रके प्रमाणवर्षोंतक शिवमन्दिरमें निवास करता है ॥ ७२ ॥ फिर सुयोनिको प्राप्त हो शिवभक्ति पाता है. विद्यावान् पुत्रवान्, श्रीमान्, प्रजावान्, भूमिवान् होता है ॥ ७३ ॥ जो व्रती चैत्र वा माघमें शंकरका

अर्चन करता है और भक्तिसे नृत्यकर दिनरात वेत्रपाणी होता है ॥ ७४ ॥ महीने पखवारे वा दश सातदिन जितने दिन अर्चन करै उतनेही युगपर्यन्त शिवलोकमें प्रतिष्ठा पाता है ॥ ७५ ॥ जो मनुष्य भारतवर्षमें श्रीरामनवमीव्रत करते हैं वह सातमन्वन्तरतक विष्णुलोकमें प्रसन्न होते हैं ॥ ७६ ॥ फिर सुयोनिको प्राप्त होकर रामभक्तिको अवश्य लेते हैं जितेन्द्रियोंमें श्रेष्ठ और महाधनी होते हैं ॥ ७७ ॥ जो शरत्कालमें देवीकी महापूजा करते हैं महिष, छाग, मेष, खड्ग, भेकादि॥ ७८॥ नैवेद्य, उपहार, धूप, दीपादि तथा नृत्य गीतादिसे अनेक कौतुक करते हैं ॥ ७९ ॥ वह सात मन्वन्तरतक शिवलोकमें निवास करता है फिर सुयोनिको प्राप्त हो निर्मल बुद्धि पाता है ॥ ८० ॥ पुत्र पौत्रकी बढानेवाली अतुल श्रीको प्राप्त होता है और महाप्रभावसे युक्त हाथी घोडोंसे युक्त होता है ॥८१॥ निःसन्देह वह राजराजेश्वर होता है. फिर शुक्लाष्टमीको प्राप्त होकर जो महालक्ष्मीको अर्चन करता है ॥ ८२ ॥ नित्य भक्तिसे पुण्यक्षेत्र भारतमें जो एक पक्षतक प्रकृष्ट षोडशोपचार करता है ॥ ८३ ॥ वह चौदह इन्द्रके समयतक गोलोकमें निवास करता है फिर सुयोनिको प्राप्त होकर राजराजेश्वर होता है ॥ ८४ ॥ जो कार्तिकी पूर्णिमाको रासमण्डलकरके गोप और गोपियोंका शतक पढै ॥ ८५ ॥ शिलाकी प्रतिमामें श्रीकृष्णराधिकाको षोडश उपचारसे भक्तिपूर्वक जो पूजन करता है ॥ ८६ ॥ वह गोलोकमें ब्रह्माकी आयु पर्यन्त निवास करता है फिर भारतमें आकर कृष्णकी दृढभक्तिलेता है ॥ ८७ ॥ क्रमसे दृढभक्ति हरिकी प्राप्त होती है, तथा देहत्यागनकर फिर वह गोलोकको जाता है॥८८॥ फिर कृष्णके सारूप्यको पाय पार्षद होता है वहांसे फिर पतन नहीं होता जरा मृत्यु नहीं होती ॥८९ ॥ और जो शुक्ला वा कृष्णा एकादशी करता है वह ब्रह्माकी अवस्थातक वैकुंठमें निवास करता है ॥९०॥ फिर भारतमें आकर कृष्णभक्त होता है अहो फिर क्रमसे हरिका दृढभक्त होता है ।। ९१ ।। देह त्यागनकर यह फिर गोलोकको जाता है फिर कृष्णका सारूप्य पाकर पार्षद होता है ॥ ९२ ॥ फिर वह जरा मृत्युरहित हो वहांसे पतित नहीं होता भाद्रशुक्ल द्वादशीको मनुष्योंको इन्द्रकी पूजा करनी चाहिये ॥ ९३ ॥ तो वह साठसहस्र वर्षतक इन्द्रलोकमें निवास करता है शुक्लपक्ष वा रविवार संक्रान्तिमें ।। ९४ ।। भारतमें सूर्यका पूजनकर जो हविष्य अन्न करता है वह चतुर्दश इन्द्रकी स्थितितक स्वर्गलोकमें निवास करता है ।।९५।। फिर भारतमें आकर श्रीयुक्त योगी होता है ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशीको जो सावित्रीका

पूजन करता है ॥ ९६ ॥ वह सात मन्वन्तरतक ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठा पाता है फिर पृथ्वीमें आकर श्रीमान् अतुलविक्रमी होता है ॥ ९७ ॥ वह ज्ञानवान् सम्पत्तिसे युक्त चिरंजीवी होता है माघशुक्ल पंचमीके जो सरस्वतीका पूजन करता है ॥ ९८ ॥ और भक्तिपूर्वक सोलह उपचार देता है वह कल्पपर्यन्त मणिद्वीपमें निवास करता है ॥ ९९ ॥ फिर जन्मको प्राप्त होकर वह कवि पंडित होता है. सुवर्ण संयुक्त गौ जो ब्राह्मणके निमित्त देता है ॥ १०० ॥ वह जीवनपर्यन्त नित्य भक्ति युक्त भारतमें गौओंका दान करनेसे जितने गौके लोम हों उससे दूनो वर्ष विष्णु-मंदिरमें निवास करता है ॥ १०१ ॥ क्रीडा कौतुक मंगलपूर्वक हरिके सहित प्रसन्न होता है फिर लौटकर यहां राजराजेश्वर होता है ॥ २ ॥ श्रीमान् पुत्रवान् विद्वान् ज्ञानवान् सबप्रकार सुखी होता है जो भारतमें ब्राह्मको मिष्टान्न भोजन करता है॥ ३ ॥ वह ब्राह्मणके लोमप्रमाणवर्षतक विष्णु मंदिरमें प्रसन्न होता है फिर यहां आकर सुखी और धनवान् होता है ॥ ४ ॥ विद्वान् चिरजीवी श्रीमान् अतुलविक्रम होता है जो भारतमें हरिका नाम लेता लिवाता है ॥ ५ ॥ वह नामके अनुसार विष्णु लोकमें प्रतिष्ठा पाता है फिर यहां आकर सुखी और धनवान् होता है ॥ ६ ॥ जो नारायण क्षेत्रमें हरिका नाम लेनेसे कोटिगुणा फल होता है॥ ७ ॥ ऐसा पुरुष सब पापसे रहित होकर जीवन्मुक्त होता है उसका फिर जन्म न होकर वह वैकुण्ठमें प्रतिष्ठा पाता है ॥ ८ ॥ वह विष्णुके सारूप्यको प्राप्त होता है फिर उसका पतन नहीं होता वह विष्णु भक्तिको प्राप्त होकर विष्णुकी सारूप्यताको प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ और जो पार्थिवलिंग बनाय नित्य शिवका पूजन करै वह जीवनपर्यन्त शिवलोकमें निवास करता है ॥ ११० ॥ उस पार्थिवलिंगके रेणुप्रमाण वर्षतक शिवलोकमें निवास करता है फिर भारतमें आय राजेन्द्र होता है ॥ ११ ॥ जो शालिग्रामशिलाका नित्य पूजन कर चरणामृत लेता है वह सौ ब्रह्माकी आयुतक वैकुण्ठमें निवास करता है ॥ १२ ॥ फिर जन्म लेकर दुर्लभ हरिभक्तिको प्राप्त होता है और विष्णुलोकमें प्राप्त होकर फिर नहीं आता ॥ १३ ॥ सब तप और व्रत करके चौदह इन्द्रके कालतक वैकुण्ठमें निवास करता है ॥ १४ ॥ फिर भारतमें जन्मले राजा होता है पश्चात् जन्मले मुक्त होकर फिर जन्म नहीं पाता ॥ १५ ॥ जो पृथ्वीकी प्रदक्षिणा कर सब तीर्थोंमें स्नान करता है वह निर्वाणताको प्राप्त होता है उसका भूमिमें जन्म

नहीं होता ॥ १६ ॥ जो इस पुण्यक्षेत्र भारतमें अश्वमेध करता है वह घोडेके लोम प्रमाण वर्षतक इन्द्रके अर्धासनका भागी होता है ॥ १७ ॥ यह मनुष्य राजसूयसे चौगुने फलको प्राप्त होता है सब यज्ञोंसे विशेष देवीयज्ञ है ॥ १८ ॥ यह पहिले ब्रह्मा विष्णु और त्रिपुरासुरनाशके निमित्त शंकरने किया था ॥ १९ ॥ हेसुन्दरि ! सब यज्ञोंमें शक्तियज्ञ प्रधान है तीन लोकमें इसकी समान और यज्ञ नहीं है१२०॥ बडे संभारसंयुक्त पहले इसको दक्षने किया जहां शंकर और दक्षका क्लेश हुआ था ॥ २१ ॥ वहां ब्राह्मणोंमें नंदिको और नंदिने क्रोधकर ब्राह्मणोंको शाप दिया जिस कारण चन्द्रशेखरने दक्षका यज्ञ विध्वंस किया ॥ २२ ॥ दक्ष प्रजापतिने पहले देवीका यज्ञ किया धर्म कश्यप और कर्दमने यज्ञ किया ॥ २३ ॥ स्वायंभुवमनु उनके पुत्र प्रियव्रत शिव सनत्कुमार कपिल ध्रुव ॥ २४ ॥ यह सबही यज्ञ करते हुए इससे सहस्र राजसूयका फल प्राप्त होता है देवी यज्ञकी बराबर वेदमें फल देनेवाला और यज्ञ नहीं है ॥ २५ ॥ सैकडों वर्ष जीकर जीवन्मुक्त होता है वह ज्ञान और तेजमें विष्णुकी तुल्य होता है ॥ २६ ॥ देवताओंमें जैसे विष्णु, वैष्णवोंमें जैसे नारद शास्त्रोंमें जैसे वेद वर्णोंमें ब्राह्मण ॥ २७ ॥ तीर्थोंमें गंगा पवित्र करनेवालोंमें शिवव्रतोंमें एकादशी पुष्पोंमें जैसे तुलसी ॥ २८ ॥ नक्षत्रोंमें चन्द्रमा पक्षियोंमें गरुड स्त्रियोंमें जैसे प्रकृति राधा वाणी भूमि ॥ २९ ॥ शीघ्रगामी इन्द्रियों और चंचलोंमें जैसे मन प्रजापतियोंमें प्रजाओंके पति ब्रह्मा ॥ १३० ॥ वनोंमें वृंदावन, वर्षोंमें भारत, श्रीमानोंमें जैसे लक्ष्मी, विद्वानोंमें सरस्वती ॥ ३१ ॥ पतिव्रताओंमें दुर्गा, सौभागिनियोंमें राधिका है हे भामिनी ! इसीप्रकार सब यज्ञोंमें देवीयज्ञ श्रेष्ठ है ॥ ३२ ॥ सौ अश्वमेधसे शक्रत्वकी निश्चयही प्राप्ति होती है और सहस्रसे विष्णुपद मिलता है जो राजा पृथुको प्राप्त हुआ है ॥ ३३ ॥ सब यज्ञोंमें स्नान सब यज्ञोंमें दीक्षा सब व्रत और तपका फल ॥ ३४ ॥ चार वेदोंके पाठ भू प्रदक्षिणाका फल इनसेही मुक्तिदायक देवीके चरणकमलकी भक्ति होती है ॥ ३५ ॥ वेद पुराण और सब इतिहासोंमें देवीके चरणकमल पूजनकोही सार कहा है ॥ ३६ ॥ उसीका वर्णन ध्यान उसीके नाम गुणका कीर्तन उसीके स्तोत्रका स्मरण वंदन और जप ॥ ३७ ॥ उनके चरणका ! अमृत लेना उनका नैवेद्य भक्षण यह सब सम्मति और सब इच्छितोंका देनेवाला है ॥ ३८ ॥ परब्रह्म निर्गुण पराप्रकृति मायाविशिष्ट मूलरूपिणीका भजन करो. हेवत्से !

अपने स्वामीको ग्रहण कर अपने मंदिरमें सुखसे निवास करो ॥ ३९ ॥ यह मैंने तुमसे मनुष्योंका मांगलीक कर्मविपाक वर्णन किया यह सबके ईप्सित सर्व सम्मत और तत्त्वज्ञानका देनेवाला है ॥ १४० ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशोऽध्यायः ३१.

श्रीनारायणबोले यमराजके मुखसे सावित्री शक्तिका कीर्तन सुनकर नेत्रमें जल भरनेसे पुलकित हो यमराजसे बोली ॥ १ ॥ सावित्री बोली हे धर्म ! शक्तिका उत्कीर्तन सब धर्मोंका कारण है सुनने और कहनेवालोंकी जरा मृत्यु हरता है ॥ २ ॥ दानव सिद्ध तपस्वियोंकी परमपददायक है, योग और वेदोंका कीर्तन हे विभो ! सबको मंगल करनेवाला है ॥ ३ ॥ मुक्ति अमरत्व और सब सिद्धियें श्री शक्तिके सेवककी सोलहवीं कलाभी नहीं है ॥ ४ ॥ हे वेदविदांवर ! किसप्रकार उनका भजनकिया जाय सो कहो मैंने मनुष्योंका शुभ कर्मविपाक तो सुना ॥ ५ ॥ अशुभ कर्मोंका विपाक भी आप हमसे कहिये. हे ब्रह्मन् ! ऐसा कहकर वह सती नम्र कंधाकर ॥ ६ ॥ वेदोक्त स्तवसे धर्मराजको प्रसन्न करनेलगी सावित्री बोली पहले पुष्करमें सूर्यदेवने तपसे धर्मकी आराधनाकर ॥ ७ ॥ धर्मराज नामक पुत्रको प्राप्त किया जिस सर्व साक्षीकी सब भूतोंमें समानता है उस धर्मराजको प्रणाम करती हूं ॥ ८ ॥ इससे जिनका नाम शमन है इसकारण उनको प्रणाम करती हूं जिन्होंने सम्पूर्ण प्राणधारियोंका अन्त किया है ॥ ९ ॥ जो समयपर कामानुरूप हरण करता है उसको मैं प्रणाम करती हूं जो पापियोंकी शुद्धिके हेतु दंड धारणकरते हैं ॥ १० ॥ उन सब जीवोंके शास्ता दंडधरको प्रणाम करती हूं जो निरन्तर सब विश्वका कलन करता है ॥ ११ ॥ जो अतीवदुर्निवार है उस कालको प्रणाम करती हूं जो तपस्वी ब्रह्मनिष्ठ संयमी जितेन्द्रिय हैं ॥ १२ ॥ जीवोंके कर्मफलदाता यमको प्रणाम करती हूं जो स्वात्माराम सर्वज्ञ पुण्य कर्म करनेवालोंके मित्र हैं ॥ १३ ॥ तथा पापियोंके क्लेश देनेवाले पुण्यके मित्रको मैं प्रणाम करती हूं. जिनका जन्म ब्रह्मके अंशसे तेजसे प्रज्वलित है ॥ १४ ॥ जो परब्रह्मका ध्यान करनेवाले हैं उन ईशको मैं प्रणाम करती हूं. हे मुने ! ऐसा कह सावित्रीने यमको प्रणाम किया ॥

॥ १५ ॥ तब यमने उनको शक्तिका भजन और कर्मविपाक वर्णन किया जो प्रभात उठकर नित्य इस अष्टकको पढते हैं ॥ १६ ॥ उनको यमराजका भय नहीं होता वह सब पापोंसे छूट जाते हैं महापापी भी यदि नित्य भक्तिसे पढे तो ॥ १७॥ निश्चय उसको यमराज कायव्यूहसे शुद्ध कर देते हैं ॥ १८ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषायां एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः ३२.

श्रीनारायण बोले विधिपूर्वक मायाबीज महामंत्रको देकर अशुभ कर्मके विपाक को यमराज कहने लगे ॥ १ ॥ धर्मराज बोले शुभकर्मके विपाकसे यह मनुष्य नरकको नहीं जाता है अब अशुभ कर्मका विपाक कहताहूं सुनो ॥ २ ॥ हे भामिनि! अनेक पुराण और नामके भेद तथा अनेक प्रकारके कर्मोंसे यह जीव विविध प्रकारके स्वर्गमें जाता है ॥ ३ ॥ शुभ कर्मके विपाकसे नरकको नहीं जाता है कुकर्मके विपाकसे अनेक प्रकारके नरकमें जाता है ॥ ४॥ नरकके अनेक प्रकारके कुण्ड हैं वह अनेक शास्त्रके प्रमाण और कर्म भेदसे ॥ ५ ॥ वह मनुष्योंको क्लेश देनेवाले गर्त दुःखियोंको क्लेश देनेको विस्तृत हुए हैं भयंकर घोर और बडे कुत्सित हैं ॥ ६ ॥ इसीप्रकार ८६ कुंड हैं वेदप्रसिद्ध उनके नाम सुनो ॥ ७ ॥ वह्निकुंड, तप्तकुंड, भयानक, क्षारकुंड विष्ठाकुंड, मूत्रकुंड, श्लेष्माकुंड, बडा दुःसह ॥८॥ गरकुंड दूषिकुंड, वसाकुंड, शुक्रकुंड, रुधिरकुंड, कुत्सित अश्रुकुंड ॥ ९ ॥ शरीरके मलोंकाकुंड, कर्ण विट्कुंड, मज्जाकुंड, मांसकुंड, दुस्तर नक्रकुंड ॥ १० ॥ लोमकुंड, केशकुंड, दुस्तर अस्थिकुंड, ताम्रकुंड, लोहकुंड, तप्तकुंड बडाक्लेश देनेवाला है ॥ ११ ॥ चर्मकुंड, तप्तसुराकुंड, तीक्ष्णकंटककुंड, विषोदककुंड, विषकुंड, ॥ १२ ॥ तप्ततैलकुंड, दुर्वह अनेक प्रकारके तुंडकुंड, कृमिकुंड, पूयकुंड दुरन्त सर्पकुंड ॥ १३ ॥ मण्डककुंड, दंशकुंड, भीमकुंड, गरलकुंड, वज्रदंष्ट्रकुंड वृश्चिक कुंड ॥ १४ ॥ शरकुंड, शूलकुंड, खड्गकुंड, गोलकुंड, नक्रकुंड, काककुंड, शोकका स्थान ॥१५॥ मंथान जीवोंकेकुंड, बीजनामक जीवोंके कुंड, दुःस्सह वज्रकुंड, तप्त पाषाणकुंड, तीक्ष्ण पाषाणकुंड ॥१६॥ लालाकुंड, मसीकुंड, चूर्णकुंड, चक्रकुंड, वक्रकुंड, बडा विकट कूर्मकुंड॥१७॥ज्वालाकुंड भस्मकुंड, दग्धकुंड, तप्तसूची असिपत्र

क्षुरधार, सूचीमुख ॥ १८ ॥ गौकामुख नक्रकुंड, गजदंश, गोमुख, कुंभीपाक कालसूत्र, मत्स्योद, कृमिकंतुक ॥ १९ ॥ पांसुभोज, पाशोंसे वेष्टित,शूलप्रोत, प्रकंपन उल्कामुख, अंधकूप, वेधन, ताडन, ॥ २० ॥ जालरंध्र, देहचूर्ण दलन, शोषण, कशाघात, शूर्पज्वालामुख, धूमांध, नागवेष्टन ॥ २१ ॥ हे सावित्रि, यह सब कुंड पापियोंको क्लेश देने वाले हैं लक्षों किंकर गण इनकी रक्षाकरते हैं ॥ २२ ॥ दण्ड पाश हाथमें लिये मदमत्त भयंकर शक्ति गदा दारुण असि हाथमें लिये ॥ २३ ॥ नमयुक्त दयाहीन अनिवार्य तेजस्वी निश्शंक ताम्रपिंग ललोचनवाले ॥ २४ ॥ कोई योगयुक्त कोई सिद्धियुक्त नानारूप धारी भट है यह जिनकी मृत्यु निकट है उन पापियोंको दीखने वाले है ॥ २५ ॥ और जो अपने कर्म में निरत सब शाक्त सौर गाणपत्य सिद्ध योगी पुण्यात्मा हैं उनको नहीं दीखनेवाले हैं ॥ २६ ॥ अपने धर्ममें श्रेष्ठज्ञानवाले वा स्वतंत्र मानसिक बलवान् निश्शंक वैष्णव ज्ञानियोंको देव भावापन्न होनेसे दूत स्वप्नमें दीखेंतो दीखें नहींतो उनको नहीं दीखते उन देव रूप पुरुषोंसे यमदूत अदृश्य हैं हे साध्वी यह तुमसे कुंडसंख्या निरूपण की जिसका निवास जिसकुंडमें है वह समझो मैं तुमसे कहता हूं ॥ २७ ॥२८ ॥

इति श्रीदेवीभागवेत महापुराणे नवमस्कंधे भाषायां द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ३३.

धर्मराज बोले हरिसेवामें निरत शुद्धयोग सिद्ध, व्रती, तपस्वी, ब्रह्मचारी इनमें कोई नरकको नहीं जाता ॥ १ ॥ जो बलके विद्याधनके घमण्डसे कटुवचन बोलकर आपने बंधु आदिको दग्धकरताहै वह वह्निकुंडमें जाता है ॥ २ ॥ वह अपने शरीरके लोमप्रमाण वर्षतक हुताशनमें स्थित हो पीछे छायारहित वनमें पशुयोनिको तीन जन्मतक प्राप्तहोता है ॥ ३ ॥ कोई ब्राह्मण अपने यहां भूखा प्यासा आगया हो उसको जो मूढ भोजन नहीं कराता वह तप्त कुंडको जाता है ॥ ४ ॥ वहां उसके लोमप्रमाण वर्षतक तप्तकुंडमें निवास कर फिर कहीं तप्तस्थलवह्नितल्पमें सातजन्म पक्षी होता है ॥ ५ ॥ रविवार संक्रान्ति अमावस श्राद्धदिवसमें जो वस्त्रोंमें खार लगाता है ॥ ६ ॥ वह उसके सूत्रप्रमाणवर्ष-तक क्षार कुंडमें जाता है और सातजन्मतक वह भारतमें धोबीकी योनिको प्राप्त

होता है ॥ ७ ॥ जो मनुष्याधम मूल प्रकृतिकी निन्दा करे है तथा वेद शास्त्र पुराणकी निन्दा करते हैं ॥ ८ ॥ जो ब्रह्मा विष्णु शिवादिकी निन्दा करते हैं तथा गौरी वाणी आदि देवताओंकी निन्दा करते हैं ॥ ९ ॥ वे उस भयानक कुंडमें सब जाते हैं इससे अधिक दुःखदायक और कोई कुंड नहीं है ॥ १० ॥ उसमें अनेक कल्प निवास कर फिर यह प्राणी सर्पयोनिमें जाता है देवी निन्दाके अपराधका प्रायश्चित नहीं है ॥ ११ ॥ जो स्वयं वा दूसरेकी दी हुई सुरविप्रकी वृत्तिको हरण करते हैं वह साठ सहस्र वर्षतक विष्ठाके कुंडमें गमन करते हैं ॥ १२ ॥ और साठ सहस्र वर्षतक वहां विष्ठा भोजन करता है फिर इतनेही समयतक भूमिमें आनकर विष्ठाका कृमि होता है ॥ १३ ॥ जो दूसरेके करोवरमें उसकी आज्ञाके विना स्वयं तडाग करते हैं तथा मूत्र करते हैं तो ये मूत्रकुंडको गमन करतेहैं॥ १४ ॥ उसके रेणुमान वर्षतक मूत्रपान करता वहां स्थित रहता है फिर वहांसे आनकर पूर्ण सौ वर्ष भारतमें वृष होता है ॥१५॥ जो इकलाही मीठा खाता है वह श्लेष्मकुंडमें गमन करता है और सौवर्षतक वहां उसको भोजनकरता स्थित रहता है ॥ १६ ॥ फिर भारतमें आकर सौवर्षतक प्रेत होता है यहां भी वह श्लेष्मा मूत्र पूय भोजनकरनेउपरान्त शुद्ध होता है ॥ १७ ॥ माता पिता, गुरु, भार्या, सुत, कन्या, तथा अनाथोंका जो पालन नहीं करता, वह विषकुंडमें गमन करता है ॥ १८ ॥ और सौवर्षतक वहां उसे यही भोजनकरनेको प्राप्त होता है फिर भूतयोनिको प्राप्तहो सौवर्षमें पवित्र होता है ॥ १९ ॥ जो मनुष्य अतिथिको देखकर कटिलनेत्र करते हैं उस पापी का जल पितृ देव ग्रहण नहीं करते ॥ २० ॥ और भी जो ब्रह्महत्यादि पाप है वह यही प्राप्त होकर अन्तमें दूषिकाकुंडको गमन करताहै ॥ २१ ॥ वहां यही भोजनकरता सौवर्षतक निवास करता है फिर सौवर्षतक भूतयोनिको प्राप्त होकर सौवर्षमें पवित्र होता ॥२२॥ ब्राह्मणको देनेको कहा द्रव्य यदि औरको दियाजायतो वह वसाकुंडमें जाय वहां सौवर्षतक वहीं भोजन करते हैं॥ २३ ॥ वह सातजन्ममें गिरगट होता है फिर यहां आकर महादरिद्री अल्पायु होता है॥२४॥ पुरुषको कामिनी वा कामिनीको पुरुष जो अपना वीर्यपानकराते हैं वह वीर्यके कुंडमें जातेहैं ॥ २५ ॥ और सौवर्षतक यही भोजन करते वहां रहतेहैं फिर सौजन्म कृमिको पाकर शुचि होताहै ॥ २६ ॥ जो गुरु या ब्राह्मणको ताडनकर उनका रक्त भूमिपर गिराता है वह सौ वर्ष रक्तके कुंडमें स्थित हो उसीको

भोजन करता है॥२७॥फिर भारतमें आय सात जन्मतक व्याघ्र होता है फिर क्रमसे शुद्धिको प्राप्त होता है ॥ २८ ॥ जो कोई आश्रुत्यागकर गद्गद हो गाते हुए भक्त वा श्रीकृष्णके गुण संगीतपर हास्य करता है ॥ २९ ॥ वह सौवर्षतक अश्रु कुंडमें उन्हींको भोजन करता स्थित रहता है फिर तीन जन्म चांडाल होकर शुचि होता है ॥ ३० ॥ जो मनुष्य अपने सुहृदोंमें नित्य शठता करता है वह सौ वर्षतक शरीरके मलोंके कुंडमें निवास करता है ॥ ३१ ॥ फिर वह तीन जन्म गधा होता है तीन जन्म शृगाल होकर शुद्ध होता है ॥ ३२ ॥ जो बहरेके ऊपर हँसकर अभिमानसे उसकी निन्दा करता है वह सौ वर्षतक कर्णविट्में निवास कर उसीको भोगता है ॥ ३३ ॥ फिर वह बहरा होकर सात जन्मतक दरिद्री होता है फिर सात जन्म अंगहीन होकर शुद्ध होता है ॥ ३४ ॥ जो मनुष्य लोभसे अपनी उदरपूर्तिके निमित्त जीवघात करते हैं वह मज्जाकुण्डमें निवास कर सौ वर्ष उसीको खाते हैं ॥ ३५ ॥ फिर खरगोश और सात जन्म मछली होता है तीन जन्म वराह और सात जन्म कुक्कुट होता है ॥ ३६ ॥ फिर कर्मसे मृगादि होकर फिर शुद्ध होता है जो मनुष्य अपनी कन्याका पालनकर बेचता है ॥ ३७ ॥ वह महामूढ अर्थके लोभसे मांसकुंडको गमन करता है और कन्याके लोमप्रमाणं वर्ष वहां रहकर वह खाता हुआ वहां निवास करता है ॥ ३८ ॥ यमकिंकर उसपर महादंडका प्रहार करते हैं मांसभार शिरपर कराकर जिह्वासे रक्त चटवाते हैं ॥ ३९ ॥ फिर वह पापी भारतमें आय विष्ठा कीट तथा अन्य कीटादिमें जन्म लेता है साठसहस्र वर्ष यह योनि भोगकर सातजन्मतक व्याध होता है ॥ ४० ॥ तीन जन्ममें वराह सातजन्ममें कुक्कुट और सातजन्म भारतमें मण्डूक और जलौका होता है ॥ ४१ ॥ फिर सातजन्म काक होकर पश्चात् शुद्ध होता है व्रत उपवास और श्राद्धादिके समागममें ॥४२॥ जो क्षौर कराता है वह सब कर्ममें अशुचि होता है. हे सुन्दरि! वह नखादिके कुंडमें पडता है ॥४३॥ और देवताओंके एकवर्ष पर्यन्त वही भोजन करता वहां स्थित रहता है जो भारतमें सकेश पार्थिवलिंगका पूजन करता है ॥ ॥ ४४ ॥ वह मृद्रेणुवर्षपरिमाण वर्षतक केशकुंडमें निवास करता है फिर हरके कोपसे यवनयोनिको प्राप्त होता है ॥ ४५ ॥ सौवर्षमें शुद्धिको प्राप्त होकर राक्षस होता है जो गयामें पितरोंके निमित्त पिंड नहीं देता है ॥ ४६ ॥ वह अपने लोमप्रमाण वर्षतक महाभयंकर अस्थिकुंडमें निवास करता है

फिर सुयोनिको प्राप्त होकर सातजन्ममें कुबंजा होता है ॥ ४७ ॥ फिर महा दारिद्री हो देहसे शुद्ध हो जाता है जो महामूढ गर्भवती अपनी कामिनीकी मैथुन सेवा करता है॥ ४८ ॥ वह प्रतत ताम्रकुंडमें सौवर्ष निवास करता है जो अवीरा और ऋतुस्नाताका अन्न खाता है॥ ४९ ॥ वह सातजन्म तप्तलोह कुंडमें निवास करता है वह रजकयोनिमें और सातजन्म काकयोनिमें निवास करता है ।। ५० ।। फिर वह मनुष्य महाव्रणी दरिद्री और शुद्ध होता है जो चर्मके हाथसे देवद्रव्यको स्पर्श करता है ।। ५१ ।। वह सौवर्षतक चर्मके कुंडमें निवास करता है जो शूद्रकी आज्ञासे शूद्रका अन्न खाता है ।। ५२ ।। वह द्विज सुराकुण्डमें सौवर्ष निवास करता है फिर सातजन्मतक वह ब्राह्मण शूद्रयाजी होता है ।। ५३ ।। फिर शूद्रके श्राद्धका अन्न भोगकर पश्चात् शुद्ध होता है जो वाग्दुष्ट कटुवाणीसे सदा स्वामीको त्यागन करता है ।। ५४ ।। वह तीक्ष्ण कंटकके कुंडमें उसीको खाता सदा निवास करता है और यमदूत अपने दंडसे उसे चौगुना दंडदेते हैं ।। ५५ ।। फिर सातजन्ममें उच्चैश्रवाहोकर पवित्र होता है जो मनुष्य निर्दयी होकर विषसे किसीका जीवन हरते हैं ।। ५६ ।। वह सहस्रवर्ष उसीको खाते सहस्रवर्षतक रहते हैं फिर मनुष्यघाती और व्रणी सातजन्मतक होते हैं ॥ ५७ ॥ फिर सातजन्ममें कुष्ठी होकर शुद्ध होते हैं जो वृषवाहक दंडसे वृष और गौकी ताडना करता है ॥ ५८ ॥ अथवा भृत्यद्वारा ताडन करता वा स्वतंत्र ताडन करता है वह चारयुगतक तप्त तेलके कुंडमें निवास करता है ॥ ५९ ॥ इस प्रकार गौओंके लोमप्रमाण वर्षतक वहां रहकर फिर वृष होता है जो कुन्त बरछी वा लोहको लालकर खेलसेही जीवको मारते हैं ॥ ६० ॥ वह दशसहस्र वर्ष तक कुन्तके कुंडमें निवास करते हैं फिर सुयोनिको प्राप्त होकर उदरमें व्याधिवाले होते हैं ॥ ६१ ॥ एकजन्म क्लेशपाकर फिर शुद्ध होते हैं जो द्विजाधम मांसके लोभसे वृथा मांस खाता है ॥ ६२ ॥ हरिको विना भोगलगाये नैवेद्य भोग लगाता है वह कृमिकुंडमें गमन करता है और अपने लोमप्रमाण वर्षतक वहां निवास करता है ॥ ६३ ॥ फिर तीनजन्मतक म्लेच्छजातिमें रहकर ब्राह्मण होता है जो ब्राह्मण शूद्रयाजी और शूद्रका अन्न खानेवाला है ॥ ६४ ॥ जो शूद्रोंके शवदाह करता है वह पूयकुंडमें निवास करता है. हे सुव्रते! वह लोमप्रमाण वर्षोंतक यमदंडसे ॥ ६५ ॥ यमदूतोंद्वारा ताडित होकर वहां निवास करता है फिर भारतमें आय सातजन्मतक शूद्र होता है ॥ ६६ ॥ महारोगी दरिद्री बधिर मूक होता है

कृष्ण सर्प वा जिसके मस्तकमें पद्माकार चिह्नहोता है उस सर्पको जो मनुष्य मारता है ॥ ६७ ॥ वह अपने लोमप्रमाण वर्षतक सर्पकुंडमें गमन करता है वह सर्पोंसे भक्षित हो यमदूतोंसे ताडित होता है ॥ ६८ ॥ और सर्पोंकी विष्ठा खाताहुआ निवास करता है पीछे सर्प ही होता है फिर वह मनुष्य स्वल्पायु दारोंसें संयुक्त होता है ॥ ॥ ६९ ॥ फिर सर्पसे भक्षित होनेसे महाक्लेशसे उसकी मृत्यु होती है और विधिकी दी हुई जीविकासे जो क्षुद्रजन्तुओंको मारता है ॥ ७० ॥ वह जन्तुप्रमाण वर्षतक दंश मशकके कुंडमें निवास करता है और रातदिन यही जीव उसको भक्षण करते हैं जिससे वह अनाहार होकर शब्द करता है ॥ ७१ ॥ हाथपर विद्धहुए यमदूतोंसे ताडित हुआ रहता है फिर यहां आकर क्षुद्रजन्तु होकर पीछे यावनी जाती होता है ॥ ७२ ॥ फिर अंगहीन मनुष्य होकर पीछे शुद्ध होता है जो मूढ मधुमाखीको मारकर मधु खाता है ॥ ७३ ॥ वह विषके कुंडमें जीवोंके प्रमाणवर्षतक निवास करता है और गरलसे दग्धहो जीवोंसे दग्ध हो मेरे दूतोंसे ताडितहोता है ॥ ७४ ॥ फिर मक्षिक होकर मनुष्य शुद्ध होजाता है. जो अदंडको दंड करता और ब्राह्मणको दंडदेता है ॥ ७५ ॥ वह वज्रदंष्ट्रकीटोंके कुंडमें अवश्य गमन करता है और वह उसके लोमप्रमाण वर्षतक वह रातदिन रहता है ॥ ७६ ॥ बडा शब्द करता है जीव भक्षण करते हैं मेरे दूत उसको ताडना करते हैं. हे भद्रे! वहां वह क्षणक्षणमें हाहाकार करता रोता है ॥ ७७ ॥ फिर सातजन्म सूकर होकर तीन जन्म काक होकर शुद्ध होता है ॥ ७८ ॥ जो मूढ अर्थलोभसे प्रजाको दंड देता है वह उनके लोमप्रमाण वर्षतक विच्छुओंके कुंडमें निवासकरता है ॥ ७९ ॥ फिर भारतमें सातजन्म वृश्चिक होकर फिर अंगहीन व्याधियुक्त मानव होता है ॥ ८० ॥ ब्राह्मण शस्त्रधारी जो दूसरोंका घातक होता है जो ब्राह्मण संध्याहीन हरिभक्तिरहित है ॥ ८१ ॥ वह अपने लोमप्रमाण वर्षतक बाणोंके कुंडमें पडता है शरादिसे विद्ध होकर पश्चात् शुद्ध होता है ॥ ८२ ॥ जो अंधकारयुक्त कारागारमें प्राणी और प्रजाको मारता है वह अपने दोषसे प्रमत्त हुआ गोलकुंडमें जाता है ॥ ८३ ॥ वह तप्तजलकी कीच अंधकारसे भयंकर तीक्ष्ण डाढोंवाले जीवोंसे युक्त गोलकुंड है ॥ ८४ ॥ वहां कीटसे विद्ध हुआ प्रजाके लोमप्रमाण वर्षतक निवास करता है फिर प्रजाका भृत्य होकर पश्चात् शुद्ध होता है ॥ ८५ ॥ जो सरोवरसे उडतेहुए नक्रादिको मारता है वह नक्रकंटकप्रमाण वर्षतक नक्रकुंडमें जाता है ॥ ८६ ॥ फिर नक्रादिमेंही अवश्य उसका जन्म होता है फिर वारंवार

दंडको प्राप्त हो शुद्ध होता है ॥ ८७ ॥ जो इस पुण्यक्षेत्रमें कामी होकर कामनासे परस्त्रियोंके हृदय, स्तन, मुख, नितम्ब देखता है ॥ ८८ ॥ वह काककुंडमें वसता है वहां कौए उसके नेत्र फोडते हैं फिर वह अपने लोमप्रमाण वर्ष वहां रहकर तीन जन्ममें वह्निआदिसे दग्ध होता है ॥ ८९ ॥ जो भारतमें देवब्राह्मणका सुवर्ण चुराता है वह अपने लोमप्रमाण वर्षतक मंथानकुंडमें पडता है॥९०॥यमदूतोंसे ताडित हुआ मंथानसे छन्न लोचन हो वहां उसको ही विड्भोजन करनेको मिलती है, फिर तीन जन्म अंधा होताहै॥९१॥फिर वह महाक्रूर पातकी सात जन्मतक दारिद्री होता है फिर वह भारतमें स्वर्णकार और स्वर्णवणिक् होता है॥९२॥हे सुन्दरि! जो भारतमें तांबा और लोहा चुराता है वह अपने लोमप्रमाण वर्षतक बीज कुंडमें जाता है ॥ ९३ ॥ वहां वह बीजरूप विष्ठाभोजन करनेवाला बीजसेही छन्ननेत्र हुआ यमदूतोंसे ताडित हो पश्चात् शुद्ध होता है ॥ ९४ ॥ फिर भारतमें देव चोर और देवद्रव्यका हरनेवाला दुस्तर वज्रकुंडमें अपने लोमप्रमाण वर्षतक निवास करता है ॥ ९५ ॥ वहां वह देहसे वज्रोंसे दग्ध होनेपर भोजन न मिलनेसेही 'हा हा'शब्द करता है यमदूतोंसे ताडित हो पीछे शुद्ध होता है ॥९६॥ जो चांदी गौओंके पदार्थ तथा सुरविप्रके पदार्थोंका चोर है, वह तप्तपाषणकुंडमें अपने लोम प्रमाण वर्षतक वहां निवास करता है ॥ ९७ ॥ तीन जन्म कूर्म और तीन जन्म कुष्ठी होता है एक जन्ममें श्वेतचिह्नवाला फिर श्वेत पक्षी होता है ॥ ९८ ॥ फिर रक्तविकार और शूलरोग ग्रसित मनुष्य होता है फिर सात जन्म अल्पायु होकर फिर शुद्ध होता है ॥ ९९ ॥ जो देव और ब्राह्मणके पीतलकांसेके पात्र हरण करता है वह अपने लोमप्रमाण वर्षतक पाषाण कुंडमें जाता है ॥ १०० ॥ फिर सात जन्मतक भारतमें अश्वजाति होता है फिर अधिक अंगवाला पश्चात् पादरोगी होता है ॥ १ ॥ जो पुंश्चलीका अन्न खाता और पुंश्चलीके अन्नसे जीता है वह अपने लोमप्रमाण वर्षतक लाला (लार) कुंडमें निवास करता है ॥ २ ॥ वहां यमदूत उसको ताडनकर लारही खवाते हैं इससे वह बडा दुःखी होता फिर शूलरोगी और पश्चात् क्रमसे शुद्ध होता है ॥ ३ ॥ जो ब्राह्मण म्लेच्छोंकी सेवा और लेखे आदि कार्य करता है वह ब्राह्मण मसी कुंडमें पडकर दुःखी होता है और स्वलोमप्रमाण वर्षतक वहां निवास करता है ॥ ४ ॥ यमदूत उसे मारते हैं और वह मसी भक्षण करता वहां निवास करता है, फिर तीन जन्मतक कृष्णपशु होता है ॥ ५ ॥ फिर कृष्णवर्ण

छाग फिर तीन जन्ममें कृष्णवर्ण फिर तालवृक्ष और पश्चात् शुद्ध होता है ॥ ६ ॥
जो देव ब्राह्मणके धान्यादि श्रेष्ठ ताम्बूल हरण करते हैं तथा जो आसन, शय्या, हरण करते हैं वह चूर्णकुंडमें जाते हैं ॥ ७ ॥ सौ वर्षतक वहां यमदूतोंसे ताडित होकर वहां निवास करते हैं. फिर वह मेष जाति और तीन जन्मतक कुकुट होता है ॥ ८ ॥ फिर कास व्याधिसंयुक्त भूमिमें वानर होता है फिर वंशहीन और दरिद्री होकर पश्चात् शुद्ध होता है ॥ ९ ॥ जो मनुष्य ब्राह्मणोंका द्रव्य हरण कर चक्र पूजा वा कुलालादि चक्र करता है वह दंडसे ताडित होकर सौ वर्षतक चक्रकुंडमें निवास करता है ॥ ११० ॥ फिर तीन जन्मतक मर्त्यलोकमें तेली होता है व्याधियुक्त रोगी वंशहीन होकर पश्चात् शुचि होता है ॥ ११ ॥ जो पुरुष गोधन और ब्राणोंमें वक्रता करता है वह वक्र कुंडमें जाकर वहां सौ युगपर्यन्त निवास करता है ॥ १२ ॥ फिर वह वक्रांग और हीनांग सात जन्ममें होता है व दरिद्र वंशहीन भार्याहीन होकर फिर शुद्ध होता है ॥ १३ ॥ फिर गृध्र और तीन जन्ममें शूकर होता है तीन जन्ममें बिडाल और तीन जन्म मयूर होता है ॥ १४ ॥ जो ब्राह्मण निषिद्ध कूर्ममांस भक्षण करता है सौ वर्ष कूर्मकुंडमें उसको कूर्म भक्षण करते हैं ॥ १५ ॥ फिर कूर्म जन्म और तीन जन्ममें सूकर होता है तीन जन्मतक बिडाल और मयूर होकर शुद्ध होता है ॥ १६ ॥ जो देव ब्राह्मणका घी और तेल हरण करता है वह पातकी ज्वालाकुंड और भस्मकुण्डमें गमन करता है ॥ १७ ॥ वहां सौ वर्ष रहकर तैलपाचित होता है सात जन्ममें मत्स्य और फिर मूषक होकर पवित्र होता है ॥ ॥ १८ ॥ सुगंधि तेल धात्री (आमले) वा दूसरे गंधद्रव्य जो सुरविप्रकी कोई वस्तु हरण करता है ॥ १९ ॥ वह दग्धकुंडमें निवासकर दिनरात दग्ध होता है. वह अपने लोम प्रमाण वर्षतक वहाँ निवास करके फिर दुर्गन्धिवाला होता है ॥ १२० ॥ सात जन्ममें दुर्गन्धिक. तीन जन्मतक मृगनाभि. सात जन्म मंथान और फिर मनुष्य हो... ॥ २१ ॥ जो छल बल वा हिंसासे बलिष्ठ पुरुष दूसरेकी पैतृकभूमि हरण
पहस्रवर्ष ... ॥ २२ ॥ वह तप्तसूची कुंडमें पडकर दिनरात तप्त होता है जैसे तप्त ...व निरन्तर दग्ध होता है ॥ २३ ॥ परन्तु वह भस्म नहीं होता भोगमें ... नहीं होता वह पापी सात मन्वन्तरतक वहीं निवास करता है ॥ २४ ॥ और अनाहार होकर 'हा हा' शब्द करता यमदूतोंसे ताडित होताहै फिर ब्रह्महत्याको प्राप्त

रहकर विष्ठाका कीट होता है ॥ २५ ॥ फिर भूमिहीन दरिद्री होकर पश्चात् शुद्ध होता है फिर स्वयोनिको प्राप्त होकर शुभकर्म करता है ॥ १२६ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ३४.

धर्मराज बोले जो दयाहीन हो खड्गसे जीवोंको मारते हैं और जो लोभसे भारतमें मनुष्योंको मारते हैं ॥ १ ॥ वह चौदह मन्वन्तरतक असिपत्र वनमें निवास करते हैं. उनमें जो ब्राह्मणोंको मारता है. वह सौ मन्वन्तर निवास करता है ॥ २ ॥ अर्थात् वह खड्गसे छिन्न अंग होकर वहां निवास करता है और यमदूतोंसे ताडित हो अनाहार होनेसे हाहाकार करता है ॥ ३ ॥ सौ जन्म मंथानजीव, सौ जन्म शूकर, सात जन्म कुक्कुट और सात जन्म शृगाल होता है ॥ ४ ॥ सात जन्मतक व्याघ्र तीन जन्मतक वृश्चिक, सात जन्म मंडूक यमदूतोंसे ताडित हुआ होता है ॥ ५ ॥ फिर वह भारत वर्षमें महिष होकर पश्चात् शुद्ध होता है जो ग्राम और नगरोंमें आग लगाते हैं ॥ ६ ॥ वह असिधारकुंडमें पड़कर तीन युगोंतक छिन्नाग होता है, फिर प्रेत होकर वह्निमुख हो विचरण करता है ॥ ७ ॥ सात जन्मतक अमेध्य वस्तुका खानेवाला सात जन्मतक कपोत होकर फिर मनुष्यजन्ममें शूलरोग युक्त होता है ॥ ८ ॥ फिर सात जन्ममें गलितकुष्ठ और पश्चात् शुद्ध होता है जो दूसरेके कानमें दूसरोंकी निन्दा करता है ॥ ९ ॥ और पराये दोषमें महाप्रलापी देव ब्राह्मणकी निन्दा करता है वह सूचीमुख नरकमें सूचीविद्ध हो तीन युगपर्यन्त निवास करता है ॥ १० ॥ फिर वृश्चिक और सात जन्मतक सर्प होता है सात जन्म वज्रकीट और फिर भस्मकीट होता है ॥ ११ ॥ फिर महाव्याधियुक्त मनुष्य होकर सातजन्ममें शुद्ध होता है जो गृहस्थियोंके घरमें सैंध लगाय वहांकी वस्तु हरण करता है ॥ १२ ॥ तथा गौ छाग, मेषादिको जो हरण करता है वह गोका मुखमें गमन करता है और यमदूतोंसे ताडित होकर वहां तीन युग निवास करता है ॥ १३ ॥ फिर सातजन्मतक व्याधिसम्पन्न हो गोजाति होता है तीन जन्म मेष और तीन जन्म छाग होता है ॥ १४ ॥ फिर मनुष्यजन्ममें नित्य रोगी दरिद्री निवास करता है, बन्धुहीन संतापी और फिर शुचि होता है ॥ १५ ॥ सामान्य

छाग फि चुरानेवाला नक्रमुख नरकमें जाता है और यमदूतोंसे ताडित हो तीनवर्ष जो ?े निवास करता है ॥ १६ ॥ फिर सातजन्म व्याधियुक्त गोपति होता है फिर मानव महारोगी होकर पश्चात् शुद्ध होता है ॥ १७ ॥ जो गौ, हाथी, घोडे और वृक्षोंका नाश करते हैं वह महापापी तीनयुगपर्यन्त गजदंशनरकमें जाते हैं ॥ ॥ १८ ॥ और यमदूत हाथीदाँतसे निरन्तर उनको मारते हैं फिर वह तीनजन्म घोडे और हाथीकी योनिको प्राप्त होते हैं ॥ १९ ॥ फिर गोजाती और म्लेच्छ जाती होकर पश्चात् शुद्ध हो जाते हैं. जो प्याससे जलपानकरती गायको निवारण करता है ॥ २० ॥ वह गोमुखाकार कृमितप्तोदनरकमें जाता है और वहां तप्त होकर एक मन्वन्तरतक रहता है ॥ २१ ॥ फिर वह मनुष्य गौहीन महारोगी दरिद्री होता है सातजन्म नीचजातिमें जन्म लेकर फिर शुद्ध होता है ॥ २२ ॥ जो शास्त्र वचनके तात्पर्यको नजानकर गोहत्या ब्रह्महत्या करता है जो अगम्यागमन और स्त्रीहत्या करता है ॥ २३ ॥ तथा जो महापापी भिक्षुहत्या और भ्रूणहत्या करता है वह चौदहमन्वन्तरतक कुंभीपाकमें निवास करता है ॥ २४ ॥ वहाँ यमदूतोंसे ताडित होकर चूर्ण होता है कभी क्षणमें अग्नि और क्षणमें कंटकमें डाला जाता है ॥ २५ ॥ क्षणमें तप्ततेल और क्षणमें तपते जलमें निवास करना होता है क्षणमें तप्तलोह और क्षणमें तप्ततांबेके पात्रमें डाला जाता है ॥ २६ ॥ सहस्रजन्ममें गृध्र और सौ जन्मतक शूकर सातजन्मतक काक और सातजन्मतक सर्प होता है ॥ २७ ॥ फिर साठ सहस्रवर्षतक विष्ठाका कीडा होता है. अनेक जन्मतक वृष और पश्चात् कुष्ठी दरिद्री होता है ॥ २८ ॥ सावित्री बोली अतिदेशिकी विप्रहत्या और गोहत्या कैसीहोती है,मनुष्योंको अगम्या कौन है,और संध्याविहीन कौन है? ॥ २९ ॥ कौन अदीक्षित और तीर्थप्रतिग्रही कौन है कौन ग्रामयाजी ब्राह्मण है और कौन देवल है ॥ ३० ॥ शूद्रोंका रसोइयाप्रमत्त वृषलीपति है वेदविदाम्वर इनसबके लक्षण कहो ॥ ३१ ॥ धर्मराज बोले श्रीकृष्ण उनकी पूजा तथा दूसरोंकी मूर्ति शिव शिवलिंग सूर्य सूर्यमणि ॥ ३२ ॥ गणेश दुर्गा हे सुन्दरी! इसीप्रकार सर्वत्र देवताओंमें जो भेदबुद्धि करता है उसको ब्रह्महत्या लगती है ॥ ३३ ॥ अपना गुरु इष्टदेव जन्मदाता माता इनमें जो भेदबुद्धि करता है उसको ब्रह्महत्या लगती है ॥ ३४ ॥ वैष्णवभक्त तथा ब्राह्मणादि इतर देवताभक्त महात्माओंमें जो भेदबुद्धि करता है उसको ब्रह्महत्या लगती है ॥ ३५ ॥ ब्राह्मणका पादोदक शालिग्रामोदकमें जो भेदबुद्धि करता है वह ब्रह्महत्याको प्राप्त

होता है ॥ ३६ ॥ शिव और हरिके नैवेद्यमें भेद करता है उसे ब्रह्महत्या लगती है ॥ ३७॥ सर्वेश्वर सबके कारणके कारण सबके आदि सब देवताओंसे सेवनीयसर्वान्तर्यामी श्रीकृष्णमें ॥ ३८ ॥ मायासे अनेकरूप धारण करनेवाले वा एकनिर्गुणमें जो भेद करता है वह ब्रह्महत्याको प्राप्त होता है ॥ ३९ ॥ जो शक्तिके भक्त और शक्तिशास्त्रमें द्वेषबुद्धिसे द्वेष करता है उसे ब्रह्महत्या लगती है ॥ ४० ॥ जो वेद निरूपित पितृदेवताओंके पूजनको निषेध करता है उसे ब्रह्महत्या लगती है ॥ ४१ ॥ जो हृषीकेश और उनके मंत्रोपासककी निन्दा करता है तथा पवित्रोंका पवित्र सनातन ज्ञानानन्द ॥ ४२ ॥ वैष्णवोंके प्रधान देव सेवनीय विष्णुकी जो अर्चा नहीं करता और निन्दा करता है उसे ब्रह्महत्या लगती है ॥ ४३ ॥ जो कारण ब्रह्मरूपिणी मूलप्रकृतिमहादेवी सर्वशक्तिस्वरूपा प्रकृति सबकी माता ॥ ४४ ॥ सर्ववेद स्वरूपिणी सबको जाननेयोग्य सबकी कारणरूपकी निन्दा करता है उसको ब्रह्म हत्या लगती है ॥४५॥कृष्णजन्माष्टमी और पवित्र रामनवमी, शिवरात्रि, एकादशि, रविवार ॥४६॥ इन पांच पवित्रपर्वोंको जो मनुष्य नहीं करते हैं वह हत्याको प्राप्त होकर चाण्डालसे अधिक पापी होते हैं ॥४७॥ अम्बुवाची अर्थात् आर्द्रा नक्षत्रके आदिपादसे तीन दिन भूमि रजस्वला होती है उस समय उसका खनन तथा उस जलसे जो शौचादि करते हैं वे ब्रह्महत्याको प्राप्त होते हैं ॥४८॥ गुरु,माता, साध्वीभार्या, पुत्र,बेटी इन अनिंद्योंका जो पालन नहीं करते उनको ब्रह्महत्या लगती है ॥४९ ॥ जिसका विवाह नहुआ जिसने पुत्रका मुख न देखा वह ब्रह्महत्याको प्राप्त होता है तथा हरिभक्तिहीन पुरुषको ब्रह्महत्यालगती है ॥ ५० ॥ जो हरिको नैवेद्यका भोग नहीं लगाता तथा जो विष्णुका नित्य पूजन नहीं करता तथा जो पवित्र पार्थिवलिंगका पूजन नहीं करता उसको ब्रह्महत्या लगती है ॥ ५१ ॥ जो गौ प्रहार करते हुएको देखकर निवारण नहीं करता है गौ ब्राह्मणके मध्यसे होकर देखता चलाजाता है उसको ब्रह्महत्या लगती है ॥ ५२ ॥ जो विप्र दंडसे गौको ताडन करते और बैलपर चढते हैं उनको दिन दिन गोहत्या लगती है इसमें संदेह नहीं ॥ ५३ ॥ जो गौओंको उच्छिष्ट देते गोवाहकको भोजन कराते तथा बैलपर चढनेवालेका अन्न खाते हैं उनको गोहत्या लगती ह ॥५४ ॥ जो शूद्रीपतिको यजन कराते वा जो उसकाअन्न खाते हैं उसको सौ गोहत्याका पाप लगता है इसमें संदेह नहीं ॥५५॥ जो अग्निपर पैर रखते और चरणसे गायको ताडन करतेहैं

विना पैरधोये जो घरोंमें घुसते हैं वह गोहत्या पाते हैं ॥ ५६ ॥ जो गीले चरणोंसे भोजनको बैठते हैं तथा गीले चरण सोते हैं तथा सूर्योदयके समय जो भोजन करते हैं उनको ब्रह्महत्या लगती है ॥५७॥ जो अवीरान्न खाता और जो ब्राह्मण कुटनांपन करता है और जो तीनों कालकी संध्यासे रहित है उसे गोहत्या लगती है ॥ ॥ ५८ ॥ जो स्त्री अपने स्वामी और देवतामें भेदबुद्धि करती है और स्वामीको कटूक्ति कहती है उसको गोहत्या लगती है ॥ ५९ ॥ जो गोमार्गको विगाडकर सस्य तडाग वा दुर्गमें खेदता है उसे गोहत्या लगती है ॥६०॥ जो गोवधके प्रायश्चित में व्यतिक्रम करता है पुत्रलोभ वा अज्ञानसे न करै तो अर्थात् पुत्रने हत्या की है ऐसा जानकर जो प्रायश्चित नहीं कराता उसे गोहत्या लगती है ॥ ६१ ॥ राजोपद्रव और देवके उपद्रवमें यत्नसे जो गोस्वामी गौओंकी रक्षा नहीं करता और जो मूढ दुःख देता है उसको अवश्य गोहत्या प्राप्त होती है॥६२॥जो प्राणी देवार्चा,अनल, जलको नैवेद्य, पुष्प, अन्न इनको उल्लंघन करता है उसे गोहत्या लगती है ॥६३॥ जो मिथ्यावादी छली अतिथिके आनेपर नहीं है ऐसा कहता है जो देवता और गुरुसे द्वेष करता है उसे गोहत्या लगती है ॥ ६४ ॥ देवताकी प्रतिमाको देखकर गुरु वा ब्राह्मणको देखकर जो सहसा प्रणाम नहीं करता उसे गोहत्या लगती है ॥ ॥ ६५ ॥ जो ब्राह्मण क्रोधसे प्रणाम करनेवालेको शीर्वाद नहीं देता तथा विद्यार्थीको विद्या नहीं देता उसको गोहत्या लगती है ॥ ६६ ॥ यह तुमसे शास्त्रानुसार गोहत्या और विप्रहत्या कही अब गम्य स्त्रियोंका वर्णन करताहूं सुनो ॥ ६७ ॥ अपनी स्त्री सबको गम्य है यह वेदानुशासन है, दूसरी अगम्या है यह वेदके ज्ञाता कहते हैं॥६८॥ हे सुन्दरि ! सामान्यसे तुमसे सब कहा अब विशेषको श्रवण करो जो अत्यन्त अगम्य है उसको कहता हूं सुनो ॥६९॥ शूद्रोंको विप्रपत्नी विप्रोंको शूद्रकी स्त्री हे पतिव्रते! यह अत्यन्त अगम्य और निन्दनीय हैं ॥ ७० ॥ शूद्र यदि ब्राह्मणोंमें गमन करे तो सौ ब्रह्महत्या लगती हैं और उसीकी समान वह ब्राह्मणी भी कुंभीपाकमें जाती है ॥ ७१ ॥ शूद्रोंको विप्रपत्नी और ब्राह्मणोंको शूद्रपत्नी ऐसीही है यदि ब्राह्मण शूद्रामें गमन करे तो वह वृषलीपति होता है ॥ ७२ ॥ वह विप्र ब्राह्मण जातिसे भ्रष्ट होकर चाण्डाल होता है उसका पिण्ड विष्ठाकी समान और तर्पण मूत्रके समान होता है॥७३॥उसका दिया देवतापितरोंको प्राप्त नहीं होता और कोटि जन्मोंमें जो उसने तप पूजासे फल प्राप्त किया है॥७४॥ वह उस ब्राह्मणका वृषलीके लोभसे नाश हो

जाता है जो ब्राह्मण सुरापान करता है और वृषलीपति है वह विड्भोजी है ॥ ७५ ॥ तथा जिसका शरीर तप्तमुद्रासे दग्ध है तप्तशूलसे अंकित है तथा जो एकादशीके दिन भोजन करता है वह कुंभीपाकमें जाता है ॥ ७६ ॥ गुरुपत्नी, राजपत्नी सपत्नीमाता, पुत्री, पुत्रवधू, सास, सहोदरा, भगिनी, सती ॥ ७७ ॥ सगेभाईकी स्त्री, मामी, मा, (दादी) माताकी मा, (नानी) नानीकी बहन, भगिनी, भाईकी कन्या ॥ ७८ ॥ शिष्या, शिष्यकी पत्नी, भांजेकी बहू, भाईके पुत्रकी स्त्री, ब्रह्माने इनको अधिक अगम्य कहा है ॥ ७९ ॥ जो अधमपुरुष इनके निकट कामनासे गमन करता है वह वेदमें मातृगामी है और सौ ब्रह्महत्याका उसको पाप लगता है ॥ ८० ॥ वह किसीकर्मके योग्य नहीं तथा स्पर्शके योग्य नहीं वह लोकवेदमें निन्दित होता है वह महापापी रौरव दुःखरूप कुंभीपाकमें गमन करता है ॥ ८१ ॥ जो अति अशुद्ध शास्त्रसे विहीन संध्याकरता है वा जो तीनो कालमें सन्ध्या नहीं करता वह संध्याहीन ब्राह्मणहै ॥ ८२ ॥ वैष्णव, शैव शाक्त, सौर, गाणपत्य इनमें जो अहंकारसे मंत्रग्रहण नहीं करता वही अदीक्षित है ॥ ८३ ॥ गंगाके प्रवाहसे चार हाथ भूमिपर्यन्त गंगागर्भ कहाता है भगवान् नारायण निरन्तर वहां रहते हैं अथवा बहते जलके चार हाथतक किनारेतकके नारायण स्वामी हैं उस नारायणक्षेत्र काशी आदिमें जो प्रतिग्रह करता है वह तीर्थप्रतिग्राही है ॥ ८४ ॥ नारायणक्षेत्रमें मरकर हरिके पदको जाता है. वाराणसी बद्रिकाश्रम गंगासागरसंगम ॥ ८५ ॥ पुष्कर हरिहरक्षेत्र, त्र्यम्बक, प्रभास, कामरू, हरिद्वार, केदार, श्रीरेणुका स्थान ॥ ८६ ॥ सरस्वतीके किनारे पवित्र वृंदावनमें गोदावरी, कौशिकी, त्रिवेणी हिमालय ॥ ८७ ॥ जो इन पवित्र तीर्थोंमें कामनापूर्वक दान ग्रहण करता है यह तीर्थप्रतिग्राही कुंभीपाकमें जाता है ॥ ८८ ॥ शूद्रसेवी, शूद्रयाजी, ग्रामयाजी कहा है देवताकी पूजाकर आजीविका करनेवाला देवल कहाता है ॥ ८९ ॥ जो शूद्रकी रसोई करके जीविका करता है वह रसोईया है जो संध्या पूजनसे हीन है वह प्रमत्त और पतित होजाता है ॥ ९० ॥ हे भद्रे ! मैंने वृषलीपतिके सब लक्षण कहे यह महापातकी कुंभीपाकको जाते हैं ॥ ९१ ॥ तथा जो दूसरे कुंडोंमें जाते हैं उसको सुनो मैं कहता हूं ॥ ९२ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषायां चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ३५.

धर्मराज बोले हे साध्वि ! देवताओंकी सेवाके विना कर्म बंधन नष्ट नहीं होता शुद्धकर्म सुकर्मका बीज है और कुकर्मसे नरक होता है ॥ १ ॥ हे पतिव्रते जो व्यभिचारिणीका अन्न खाता और उससे गमन करता है वह ब्राह्मण मर कर कालसूत्र नरकमें जाता है ॥ २ ॥ वह सौ वर्षतक कालसूत्रमें पडा रहता है उस जन्ममें रोगी और फिर यह मनुष्य शुद्ध होता है ॥ ३ ॥ एकपति तक पतिव्रता दूसरा करनेमें कुलटा तीसरेपर गमन करनेसे धर्षिणी और चतुर्थपर गमन करनेसे पुंश्चली कहाती है ॥ ४ ॥ पांच और छः पुरुषतक वेश्या, सातवें आठवें पुरुषतक पुंगी, इससे अधिक पुरुषोंमें गमन करे तो वह महावेश्या कहाती है सब जातियोंसे वह स्पर्शके अयोग्य है॥५॥जो ब्राह्मणकुलटा धर्षिणी और पुंश्चलीके पास जाता है अथवा पुंगी वेश्या महावेश्याके समीप गमन करता है वह मत्स्योदनरकमें जाता है॥६॥ कुलटागामी सौवर्ष धृष्टागामी ४०० वर्ष पुंश्चलीगामी छः गुणेवर्ष वेश्यागामी अठगुणे ॥ ७ ॥ पुंगीगामी दशगुणे वर्ष वहां निवासकरता है इसमें सन्देह नहीं महावेश्याकी इच्छावाला इससे दशगुणे वर्ष नरकमें रहता है ॥८॥ और यमदूतोंसे ताडित होकर वहां ही यातनाको भोगता है कुलटागामी तीतर, धृष्टागामी वायस ॥ ९ ॥ पुंश्चलीगामी कोकिल वेश्यागामी भेडिया होता है और पुंगीगामी सातजन्म भारतमें सूकर होता है ॥ १० ॥ महावेश्यागामी सेमलका वृक्ष होता है जो चन्द्रसूर्यके ग्रहण में भोजन करता है ॥ ११ ॥ वह अन्नके मानप्रमाण अरुंतुद नरकमें जाता है फिर उदररोगग्रसित मनुष्य होता है ॥ १२ ॥ गुल्मयुक्त काना दांतोंसे हीन होकर पश्चात् शुद्ध होता है जो अपनी कन्याको वाग्दान कर फिर अन्यको देता है ॥१३॥ वह धूरिके कुंडमें पडकर निरन्तर धूरिपान करता है हे साध्वि जो कन्याका द्रव्य हरण करता है वह सौवर्षतक धूरिसे युक्त ॥ १४ ॥ यमदूतोंसे ताडित हो शरशय्यापर शयन करता है जो ब्राह्मण भक्तिसे शिवलिंगका पूजन नहीं करता ॥ १५ ॥ वह पापी शूलप्रोत नामक नरकमें शूली होकर निवास करता है वह सौवर्षतक रहकर सात जन्मतक श्वापद जीव होता है ॥ १६ ॥ फिर देवल होकर सातजन्ममें पवित्र होता है जो ब्राह्मणको कुंठित करता है वा जिसके भयसे ब्राह्मण कंपित होता है ॥१७॥ वह ब्राह्मणके लोमप्रमाण वर्षतक प्रकम्पन नरकमें निवास करता है जो क्रोधकरके

अपने स्वामीको देखता है ॥ १८ ॥ तथा कटूक्ति कहता है वह उल्मुकनरकमें जाता है मेरे दूत निरन्तर उसके मुखमें उल्मुक देते हैं ॥ १९ ॥ और उसके लोम प्रमाणवर्षतक शिरपर दंडकी ताडना होती है फिर वह मानवी और सातजन्मतक विधवा होती है ॥ २० ॥ वह व्याधियुक्त वैधव्य भोगकर पश्चात् शुद्ध होती है जो ब्राह्मणी शूद्रसे संगम करती है, वह अंधकूपमें जाती है ॥ २१ ॥ तत्ते शौचजल और अंधकारमें निराहार पड़ी रहती है और यमदूतोंसे ताडित हो बडेदुःखसे रहती है ॥ २२ ॥ वह चौदहइन्द्रके कालतक शौचके जलमें निमग्न रहती है सहस्र काकी जन्म और सौजन्म शूकरी होती है ॥ २३ ॥ सौजन्मतक शृगाली सौजन्ममें कुतिया सौजन्म कबूतरी, सात जन्म वानरी ॥ २४ ॥ फिर भारतमें सर्वभोग्या चाण्डाली होती है फिर धोबन फिर यक्ष्मरोगवाली पुंश्चली होती है ॥ २५ ॥ फिर कुष्ठयुक्त होकर पश्चात् तेलन होती है तब शुद्ध होती है वेश्यावेधन और पुंगी दंडताडन नरकमें निवास करती है ॥ २६ ॥ वेश्या जलरंध्रस्थान और कुलटा देहचूर्णस्थानमें निवास करती है, स्वैरिणी दलन और धृष्टा शोषण नरकमें निवास करती है ॥ २७ ॥ यह हमारे दूतोंसे ताडित हो बड़ी यातना युक्त निवास करती है, विष्ठा मूत्र भक्षणको निरन्तर मिलता, ऐसे एक मन्वन्तर तक रहती है ॥ २८ ॥ फिर विष्ठाका कृमि होकर लाख वर्षमें शुचि होती है जो ब्राह्मण ब्राह्मणीमें क्षत्रिय क्षत्रियामें गमन करता है ॥ २९ ॥ वैश्य वैश्या और शूद्र शूद्रोंमें गमन करता है अर्थात् सवर्ण परदाराओंमें जो गमन करता है वह कषाय नरकमें जाता है ॥ ३० ॥ वहां कसैला तत्ता जल पानकर बारह वर्ष निवास करता है तब ब्राह्मण और क्षत्रिय शुद्ध होते हैं ॥ ३१ ॥ और इसी प्रकार स्त्री भी शुद्ध होती है यह ब्रह्माजीने कहा है हे पतिव्रते जो क्षत्रिय वा वैश्य ब्राह्मणीमें गमन करता है ॥ ३२ ॥ वह मातृगामी होकर शूर्पनामक नरकमें पडता है वह ब्राह्मणीके सहित उन कीडोंसे भक्षित होता है ॥ ३३ ॥ यमदूतोंसे ताडित हो तत्ते मूत्रका भोजन करना होता है एक मन्वन्तरपर्यन्त वहां इस प्रकार दुःखभोगना होता है ॥ ३४ ॥ सात जन्म वराह और फिर छाग होकर पवित्र होता है जो हाथमें तुलसी लेकर अपनी प्रतिज्ञाको पूर्ण नहीं करता ॥ ३५ ॥ वा मिथ्या शपथ करता है वह ज्वालामुख नरकमें जाता है वा जो हाथमें गंगाजल लेकर प्रतिज्ञा पूरी नहीं करता ॥ ३६ ॥ जो शालिग्राम वा देवमूर्त्ति हाथमें लेकर प्रतिज्ञा करता है और फिर उसे उल्लंघन करता है वह ज्वालामुख नरकमें जाता है अथवा दहिना हाथ मिला